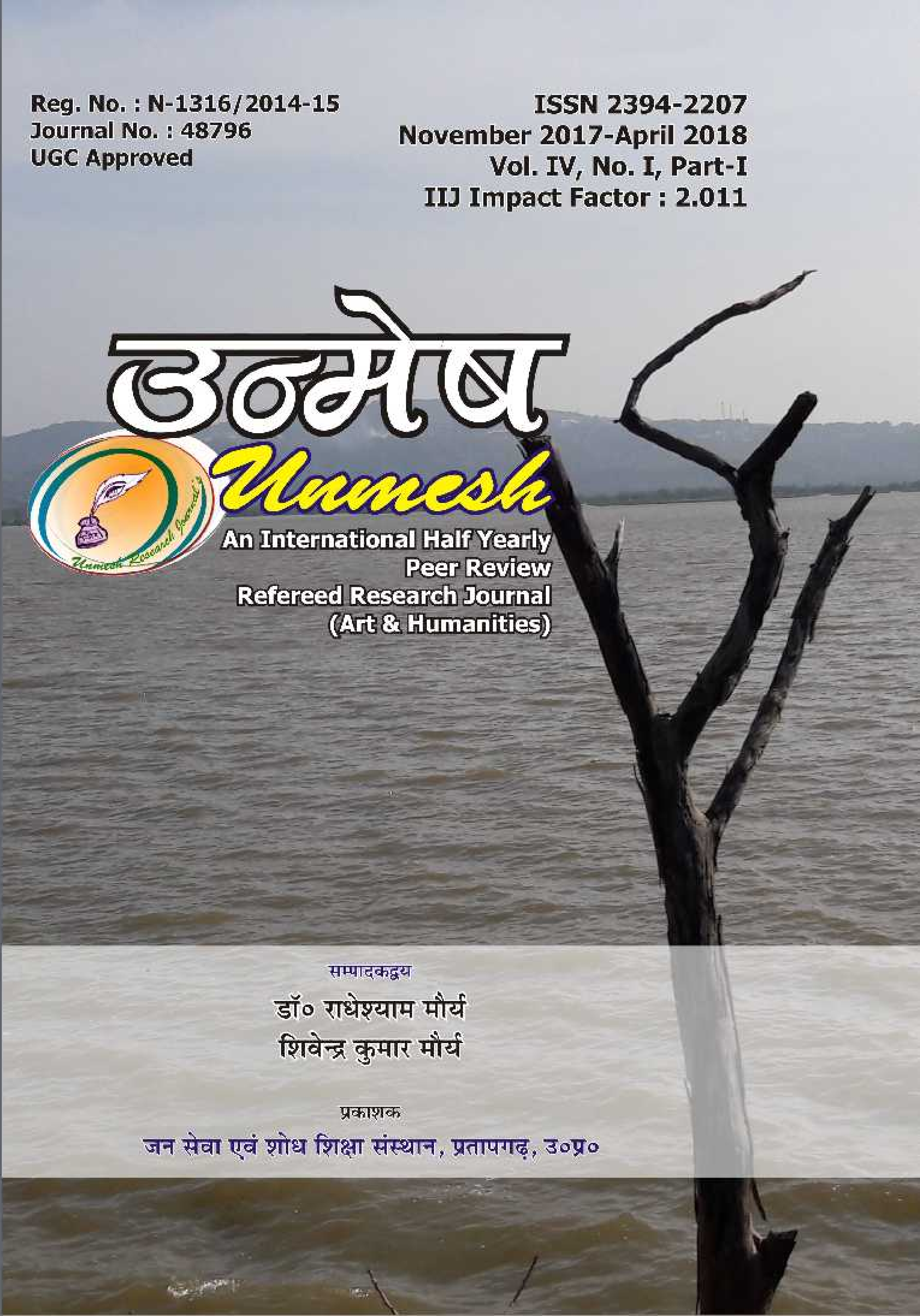

Reg. No. : N-1316/2014-15
Journal No. : 48796
UGC Approved

ISSN 2394-2207
November 2017-April 2018
Vol. IV, No. I, Part-I
IIJ Impact Factor : 2.011

उन्मेष
Unmesh

An International Half Yearly
Peer Review
Refereed Research Journal
(Art & Humanities)

सम्पादकद्वय

डॉ० राधेश्याम मौर्य
शिवेन्द्र कुमार मौर्य

प्रकाशक

जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान, प्रतापगढ़, उ०प्र०

Reg. No. : N-1316/2014-15
Approved by UGC

ISSN : 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011

उन्मेष

Unmesh

An International Half Yearly Refereed Research Journal (Art & Humanities)

Vol. : IV **No. I** **November, 2017-April, 2018**

सम्पादकद्वय
डॉ० राधेश्याम मौर्य
शिवेन्द्र कुमार मौर्य

सह-सम्पादक
डॉ० मनोहर लाल

प्रकाशक
जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान, प्रतापगढ़-२३०००१ (उ०प्र०)

lj{kd&eMYk

M,0 pEik d|ekjh flg] प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

Mk0 ch0,u0 flg] पूर्व निदेशक, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उ0प्र0

M,0 gjh'kpUæ tk; lokYk] पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, इविंग क्रिश्चियन महाविद्यालय, इलाहाबाद वि0वि0, उ0प्र0

lEiknd

M,0 jk/k';ke ek;] प्रवक्ता, जी0वी0आई0सी0, देल्हूपुर, प्रतापगढ़, उ0प्र0

f'koUn d|ekj ek;] शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

lg&lEiknd

Mk0 eukgj yky] असि0 प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

lEiknd&e.MYk

Mk0 d".k d|ekj dkf'kd ½ प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

Mk0 fgjk'kh llkdh ½ एसो0 प्रोफेसर, डिपार्टमेंट ऑफ सोशल एजूकेशन, हिरोशिमा विश्वविद्यालय, जापान

Mk0 vfuy d|ekj ek; ½ असि0 प्रोफेसर, विधि संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ0प्र0

Mk0 lehj d|ekj ikBd ½ असि0 प्रोफेसर, डी0ए0वी0 पी0जी0 कॉलेज, वाराणसी, उ0प्र0

Mk0 jek'kdj d|'kokgk ½ असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

lUr""k d|ekj ½ विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, जक्खिनी, वाराणसी, उ0प्र0

fHk{k| Ýklkelkd o..klu] विहाराधिपति, वॉट थाइ बुद्ध विहार, बैकाक, थाईलैंड

ijke'k&e.My

Mk0 ikdk'k pUn frokjh] विभागाध्यक्ष, पर्यावरण विभाग, कमला नेहरू इंस्टीट्यूट ऑफ फिजिक्स एण्ड सोशल साइंस, सुल्तानपुर (उ0प्र0)

Mk0 lnhi oek] असि0 प्रोफेसर, जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

Mk0 eukt d|ekj ek;] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय, सूर्यमणि नगर, अगरतला

';keuUnu] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

Mk0 iPkrl] असि0 प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, यूइंग क्रिश्चियन कालेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

rkf'kdk bnkdk] शोध छात्रा, तुलनात्मक धर्म दर्शन विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

Mk0 vfer d|ekj flg d|'kokgk] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, पंचशील डिग्री कॉलेज, मवईकला, हलियां, मिर्जापुर, उ0प्र0

eY;kdu lfefr

Mk0 inkk"k jFk] असि0 प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, उड़ीसा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, उड़ीसा।

ikQlj ¼Mk0½ l/;kjkuh 'kkD;] क्षेत्रीय उच्च शिक्षा अधिकारी एवं प्राचार्या राजकीय महाविद्यालय, समथर, झाँसी, उ0प्र0

Mk0 vfe"k oek] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल

Mk0 ';kek flg] असि0 प्रोफेसर, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, झूँसी, इलाहाबाद

Mk0 /kuth ilkn] असि0 प्रोफेसर, भाषा विज्ञान एवं भाषा प्रोद्यौगिकी, महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

Mk0 bnthr fe=] असि0 प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, डी0ए0वी0पी0जी0 कॉलेज, बी0एच0यू0, वाराणसी

Mk0 jkt'k flg d|'kokgk] असि0 प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग, डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद

Mk0 jke jru ikloku] असि0 प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया।

Mk0 l|d'k ykgkj] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कल्याणी विश्वविद्यालय, कल्याणी, नदिया, पश्चिम बंगाल

unh iVkfn;k] असि0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग, डॉ0 हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश

Mk0 ih;"kdkUr 'kek] एसो0 प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, एम0डी0पी0जी0 कॉलेज, प्रतापगढ़, उ0प्र0

Mk0 Kkukck f=cd <x] विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, कर्मवीर काका साहेब बाघ आर्ट्स, साइंस एण्ड कॉमर्स कॉलेज, पीपल गाँव (बी) नासिक, महाराष्ट्र

Mk0 vfu'k d|ekj oek] असि0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, मड़ियाहूँ पी0जी0 कॉलेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर

Mk0 idt flg] असि0 प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, बांदा, उ0प्र0

jke flg] असि0 प्रोफेसर, भूगोल विभाग, जवाहरलाल नेहरू पी0जी0 कॉलेज, एटा, आगरा, उ0प्र0

{k=h; lEiknd

f'kojke ek;] शोध छात्र, हिन्दी विभाग, डॉ0 हरि सिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश
l'khy dekj] शोध छात्र, विधि विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद
iepUn ek;] शोध छात्र, हिन्दी विभाग, केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, केरल

icU/k&lEiknd

Mk0 lhrk jke flg] एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग,
गणपत सहाय पी0जी0 कॉलेज, सुलतानपुर, उ0प्र0
vt; dekj ek;] शोध छात्र, तुलनात्मक धर्म दर्शन विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

vuokn lgk;d

gfj'pUn d'kokgk] अतिथि प्रवक्ता, डी0ए0वी0पी0जी0 कॉलेज, बी0एच0यू0, वाराणसी
leuyrk dekjh] शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

fof/k&ijke'k

Kku Ádk'k e©;l : पूर्व राज्य सूचनायुक्त, उ0प्र0
Mk0 vkn'k dekj : असि0 प्रोफेसर, विधि संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

lEikndh; lEidl : जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान, सी–23, आवास विकास कालोनी
प्रतापगढ़–230001 (उ0प्र0) भारत
मो0– 08004802456, 09415627372
ई–मेल : unmesh0110@gmail.com
shivendrakr.maurya@gmail.com

idk'kd % tu lok ,o 'kks/k f'k{kk lLFkku] प्रतापगढ़, उ0प्र0

eæd % jkt xkfQDl] बी0एच0यू0 रोड, लंका, वाराणसी
ek0 % 09415842611@08081711954

u¨V % सम्पादन, संचालन–पूर्णतः अवैतनिक/अव्यावसायिक/अनियतकालीन। उन्मेष में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं। लेखों एवं उद्धरणों से सम्बन्धित किसी भी वाद–विवाद के लिए लेखक की जिम्मेदारी स्वयं की होगी। सम्पादक, प्रकाशक एवं उन्मेष परिवार के किसी भी सदस्य की जिम्मेदारी नहीं होगी। किसी भी विवाद के लिए न्याय क्षेत्र इलाहाबाद उच्च न्यायालय होगा।

lEikndh;

प्रकृति के सम्बन्ध में लोगों द्वारा अज्ञानता प्रकट किये जाने पर मुझे आश्चर्य होता है। हमें प्रकृति को समझने तथा प्रकृति के प्रेम करने की क्रिया अवश्य सीखनी चाहिए। प्रकृति की रक्षा ही मानव जाति के भविष्य के विकास की कुंजी है, जिसकी रक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य और दायित्त्व है। पर्यावरण के ह्रास का सम्बन्ध विकास की प्रकृति तथा पर्यावरण संतुलन के प्रति मुनष्य की अज्ञानता है, मानव ने प्रकृति को निष्ठुरता से लूटा और पृथ्वी को उजाड़ बना दिया। मानव और उसका समाज पृथ्वी में दूर तक फैले हुए हरे–भरे सघन वनों के आवरण से वंचित कर रहा है। कुछ लोग लाभ कमाने, जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की प्राप्ति तथा मनोरंजन के लिए प्रकृति का विनाश कर रहे हैं। विशेषकर भारत में पर्यावरण जैव विविधता बहुत है, जो लोगों को अनेक संसाधन देती है और मनुष्य उसका अन्धाधुन्ध उपयोग कर रहा है; जिसका हमारे वातावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। परिणाम स्वरूप भूकम्प, सूनामी, बाढ़, सूखा तथा अनेक रोग जैसे एड्स, मधुमेह, डेंगू, हेपोटाइटिस आदि का उत्पन्न एवं विस्तार होना पृथ्वी पर परिवर्तन के संकेत हैं। आज आजादी के 68 वर्ष बाद भी भारत के 60 प्रतिशत घरों में शौचालय नहीं है, जिससे महिलाएं सुरक्षित नहीं हैं। सर्वप्रथम स्वच्छ भारत का सपना आजादी के बाद महात्मा गांधी द्वारा देखा गया था उनके अनुसार निर्मलता और स्वच्छता दोनों ही स्वास्थ्य और शान्तिपूर्ण जीवन का अनिवार्य भाग है। स्वच्छता के अभाव में नदियाँ, वायु, तालाब प्रदूषित हो रहे हैं, जिनका हमारे जीवन तथा रहन–सहन पर कुप्रभाव पड़ रहा है। आज मानव इस विकास की चकाचौंध में अपने अस्तित्त्व को स्वयं मिटा रहा है। आइये हम लोग मिलकर स्वच्छ भारत, प्रदूषण मुक्त भारत के निर्माण का संकल्प लें।

iÑfr gekjh lgpjh lcdh ik.kk/kkjA
bl d fcu lHko ugh thou dk m)kjAA
& ^f'ko*

Mk0 jk/k';ke ek;l
f'koUn dekj ek;l

उन्मेष
Unmesh - ISSN 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I,
November, 2017-April, 2018

vuØef.kdk

- ^,d dkB fo"kik;h* e 0;kIr vk/kfudrk ck/k 1&3
  पूजा
- efFkyh'kj.k xqIr dk dkO; e jk"Vªh; psruk 4&9
  डॉ0 श्रवण कुमार गुप्त
- rqylhnkl th dk dk'kh e fojks/k 10&12
  बालकृष्ण मिश्र
- fujkyk dh dforkv e n'kiu vkj jk"Vªh;rk 13&15
  सत्य प्रकाश चतुर्वेदी
- ijk.kk e ifrikfnr HkfDr dh vo/kkj.kk 16&20
  प्रियंका राय
- tkfrck Qqy vkj tkfr&ç'u 21&23
  अमिष वर्मा
- vk|kxhdj.k&uxjhdj.k d iHkko d QyLo:i xkeh.k lejnk; dh fL=;k e jktuhfrd tkx:drk 24&27
  डॉ0 ओमप्रकाश यादव
- ^fgUnh lkfgR; dk Lo.kdky % HkfDrdky* 28&32
  मोना यादव
- Ukkxlnh; lIr e lf"V&mRifÙk fo"k;d nk'kfud fl)kUr 33&37
  बीना यादव
- lokn; ,o vjkt drkokn % ,d rqyukRed v/;;u 38&40
  संजय कुमार चौहान
- ikO jkeLo:i prqonh dk 0;fDrÙo ,o drfrÙo 41&44
  अमरेश कुमार सिंह
- xhrk e Kku ;kx 45&47
  क्षमा
- _Xon e ifr"Bkfir ey Hkkfrd rÙok d lUnHk e vfnfr dk oKkfud ,o nk'kfud foopu 48&51
  मीना यादव
- cUny[k.M {k= e tyk'k; 52&56
  अखिलेश कुमार
- 'kj.kdekj fyEcky dh vkRedFkk e vfHkO;Dr ekuo vf/kdkj 57&60
  दीपा भण्डारी
- Hk.Myhdj.k dh ifØ;k vkj efgyk] ckt kj vkj ng d f=dk.k 61&64
  डॉ0 सुरभि त्रिपाठी
- ek{knkf;uh xxk fdruh eyh 65&70
  पुनीत कुमार
- Hkkjr e tho fofo/krk dk ,d lf{kIr voyksdu 71&75
  अनूप कुमार सिंह
- vkfMvk ukVdk e vkfnoklh thou 76&80
  रूपधर गोमांगों

उन्मेष
Unmesh - ISSN 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I,
November, 2017-April, 2018

- ued lR;kxg vkSj egkRek xka/kh % ,d ,sfrgkfld v/;;u — 81&84
  डॉ0 शशांक पाण्डेय
- fo'ukbZ lekt dk bfrgkl % ,d lkekU; ifjp; — 85&88
  विजेंद्र मीना
- fo".kq [kjs dk dkO; lxzg Þdky vkSj vof/k ds njfe;kuß% lelkef;d Lianu — 89&93
  अजेय पाण्डेय
- Lkedkyhu dgkuh vkSj johUnz dkfy;k — 94&97
  राज कुमार मौर्य
- Hkkjr esa miHkksDrk laj{k.k&,d voyksdu — 98&103
  अखिलेश कुमार यादव
- thou eqY;ksa dk jRu % dkVZ ek'kZy — 104&107
  प्रो0 हुकुमचंद जाधव
- e/;nsa'k dk dyk dsUnz dks'kkEch — 108&113
  डॉ0 कमलेश कुमार चौधरी
- Hkkjr esa iapk;rh jkt O;oLFkk dk cnyrk Lo:i — 114&120
  सियालाल नाग
- iapk;rh jkT; O;oLFkk % jktuSfrd ,oa lkoS/kkfud foe'kZ — 121&124
  सोनी यादव
- NRrhlx<+ esa tutkfr;ksa dh lkaoS/kkfud fLFkfr;k¡ — 125&128
  डॉ. भुनेश्वर लाल साहू
- Hkkjr foHkktu dh =klnh vkSj ^rel* — 129&130
  जयसिंह यादव
- fo|kifr dk dkO; oSHko — 131&134
  डॉ0 विकास सिंह
- [kM+h cksyh fgUnh dfork ds fuekZ.k esa eSfFkyh'kj.k xqIr dk ;ksxnku — 135&138
  पद्म भूषण प्रताप सिंह
- ekbZ % L=h&eqfä dk lathnk Loj — 139&142
  सोनल
- ukxktZqu ds dkO; esa O;aX; nf"V — 143&146
  अनिल कुमार पाण्डेय
- ;'kiky dh dgkfu;ksa esa lkekftd leL;kvksa dk fp=.k — 147&149
  अमृता सिंह
- rkjlIrd ds dfo;ksa esa dq¡oj ukjk;.k % 'kks/kijd fo'ys"k.k — 150&153
  राज कुमार पाण्डेय
- vuqlwfpr tkfr;ksa dh leL;k,¡ ,oa fu;ksX;rk,¡ ¼Hkkjrh; lanHkZ esa½ — 154&157
  चेतराम मीना
- ek;kdkyhu Hkkjr esa m|ksx rFkk O;kikj — 158&161
  डॉ0 विमलेन्दु सिंह

उन्मेष
Unmesh - ISSN 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I,
November, 2017-April, 2018

- iirkix< d i e[k ,frgkfld LFky 162&165
डॉ०पीयूष कान्त शर्मा
- ^^fd lku _.kxLrrk vkj vkRegR;k**
¼vk/kfud fgUnh lkfgR; e fd lku thou dh vfHkO;fDr;k½ 166&170
गौरव पाण्डेय
- ljUn oek d ,frgkfld ukVd ,o vk/kfud lonuk o leL;k, 171&173
डॉ0 आभा गुप्ता
- ^^n/kukFk flg d dFkk&lkfgR; e e/;oxh dh Nfo;k** 174&176
अनुज कुमार यादव
- /ke dh ykddY;k.kijd vk/kkj Hkfe % ck) /ke d lnHk e 177&181
डॉ. मुकेश कुमार सिंह
- vkfFkd etcfj;k dh djkg dh dgkuh % ^nkigj dk Hkkstu* 182&186
संजय सिंह
- lkEinkf;drk dk ;FkkFk % dkydFkk 187&191
सुनील कुमार
- 'kkldh; ,o v'kkldh; fo|ky;k e dk;jr f'k{kdk dh lpuk lEiz"k.k
rduhdh ¼vkbZ-lh-Vh½ lk{kjrk dk v/;;u 192&196
दिनेश शाक्य
- ikB; iLrd dh le> e xFkky; v/;;u dh Hkfedk dk v/;;u 197&201
तुलेन्द्र कुमार वर्मा
- e/;dkyhu fgUnh lkfgR; e ukjh dh fLFkfr 202&204
किरन
- Ñf"k vk/kkfjr vk; ,o dj % fof/kd voyksdu 205&207
प्रशांत कुमार बघेल

उन्मेष
Unmesh - ISSN 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I,
November, 2017-April, 2018

- **The Birth and The Development of The Mythological Genre in The India Film Industry:1912-1931** **1-5**
  Achal Vibhu Tripathi
- **Emerging Relation between India and Sri Lanka in 21 Century** **6-12**
  Jitendra Kumar Verma
- **The Sixteenth century European Travel Accounts on Orissa** **13-20**
  Mamata Nanda
- **Psychological Impact of Stress on Human being by Noise Pollution** **21-25**
  Sushil Kumar Singh, Prakash Chandra Tewari
- **Chabahar Port and India's Security** **26-29**
  Ranjeet Kumar Patel
- **Intrinsic value of a Heritage Monument: A Study on Sun Temple Konark, Odisha** **30-38**
  Santosh Kumar Dwivedi, Dr. Md. Sabir Hussain
- **Music and Emotion** **39-40**
  Harsha Bandara Gamage
- **Socio-Political Analysis of Shukraneeti** **45-49**
  Satrudra Prakash
- **Nidra as Important Pillar of Trayaupastambha : A Review** **50-54**
  Dr. Piyush Kumar Tripathi

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 1-3

^,d daB fo"kik;h* esa 0;Dr vk/kqfudrk cks/k

iwtk*

'एक कंठ विषपायी' दुष्यंत कुमार कृत एक महत्वपूर्ण गीतिनाट्य है। 1963 ई. में प्रकाशित इस रचना द्वारा दुष्यंत कुमार ने आधुनिक भाव–बोध को दर्शाया है। कथा का आधार श्रीमद्भागवत् पुराण के चतुर्थ स्कंध से ली गई 'दक्ष–यज्ञ–विध्वंस कथा' है। पुरानी और मृत परंपराओं को ढोने के बजाए, उन परंपराओं का खण्डन कर हम नए मानवीय मूल्य, नए आधारों को प्राप्त कर पाएंगे। 'एक कंठ विषपायी' द्वारा लेखक ने इसकी स्थापना की है। कथा का आरंभ दक्ष द्वारा यज्ञ का आयोजन, यज्ञ में सभी को आमंत्रण, यज्ञ–स्थान पर पुत्री सती का जाना और पति को उचित सम्मान न मिलने की स्थिति में प्रतिशोधपूर्ण आत्मदाह, क्रोधित शिवगणों द्वारा यज्ञ–स्थल का विध्वंस, शिव द्वारा प्रिया मोह में सती का क्षत–विक्षत शव कंधे पर ढोना और उसी शव के खण्डन द्वारा निर्मित नवांकुरों का नवजीवन है।

दुष्यंत कुमार ने 'एक कंठ विषपायी' द्वारा पौराणिक कथा को मिथकीय आख्यान प्रदान कर, आधुनिक भाव–बोध दर्शाया है। 'एक कंठ विषपायी' में पात्र–रचना इस प्रकार की गई है कि समाज के सभी वर्गों को ऐतिहासिक संदर्भ प्रदान कर स्थान मिल सके। दक्ष, परंपरावादी और समताविरोधी है, जो जनविरोधी शासक वर्ग का प्रतीक है। सर्वहत नामक पात्र, प्रजा का प्रतीक है, जिसका कार्य मूक रहकर सत्ता पक्ष के निर्णयों को सुनना और उसका निर्वाह करना है। प्रजा प्रश्न नहीं पूछती... या उसे यह अधिकार ही नहीं इस संदर्भ में सर्वहत कहता है–

^^bl n`[kkr ukVd dk iVk{ki@ejs ep ij vkus ls iwoZ gh gks pqdk FkkA@lkjs n'kZd lkjs vfHkusrk tks pqds FkkA@eSa rks doy@funs'kd dh bPNkvksa dk vuqpj Fkk @ek= HkR;A@e>ls ;k gels@;g vk'kk dc dh tkrh gSA@fd ge ukVd ns[ksa@mlesa Hkkx ysaA**[1]

सर्वहत द्वारा दुष्यंत कुमार प्रजा की स्थिति को दर्शाते हैं। शासन बदले, युग बदले किंतु प्रजा की यही स्थिति सदैव बनी रही।

राजनैतिक पक्षों द्वारा लिए गए निर्णय का सर्वाधिक प्रभाव प्रजा पर ही पड़ता है। सर्वहत के माध्यम से दुष्यंत कुमार लिखते हैं–

^^'kkld dh Hkwyksa dk mRrjnkf;Ro@iztk dks ogu djuk iM+rk gS@mls xyr eqY;ksa dk n.M Hkjuk iM+rk gS@vkSj eSa euq"; gh ugha gw¡@eSa iztk Hkh gw¡AÞ[2]

सर्वहत द्वारा यह कहना कि 'मैं मनुष्य ही नहीं हूं, मैं प्रजा भी हूं' प्रजातंत्र की अवस्था को दर्शाता है। 'नाटक में प्रजातंत्र और उसके भविष्य को लेकर चिंता व्यक्त की गई है। नाटक में दक्ष राजतंत्रीय व्यवस्था का प्रतीक है, तो देवलोक में लोकतंत्रीय व्यवस्था है। प्रजातंत्र की बागडोर जब ब्रह्मा जैसे निष्क्रिय और शीघ्र निर्णय न लेने वाले राजनेता के हाथ में होती है तो अहित की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में शासक और प्रजा दोनों में ही धैर्य की आवश्यकता है। सर्वहत समकालीन परिवेश को उभारता है।'[3]

आधुनिक समाज की सबसे बड़ी नियति 'युद्ध' रही। 'युद्ध' राजनैतिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप उत्पन्न एक जटिल स्थिति है जिसका नकारात्मक प्रभाव कई भावी पीढ़ियों पर पड़ता है। 'युद्ध व्यक्ति और समाज की नैतिक मान्यताओं का उच्छेद कर डालता है क्योंकि युद्ध के समय केवल अपना स्वार्थ और उस स्वार्थ की सिद्धि सत्ताधारियों के माध्यम से व्यक्ति का माध्यम बन जाती है।'[4]

*शोधार्थी, हिंदी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, दिल्ली

'एक कंठ विषपायी' भी शंकर और देवताओं के मध्य बन रहे तनाव के कारण 'युद्ध' का वातावरण तैयार कर देती है। अपमान और प्रतिशोध की ज्वाला से जूझती कृति 'एक कंठ विषपायी' में भी युद्ध के कारणों तथा उससे उत्पन्न विभीषिका को वर्ण्य विषय बनाया गया है। युद्ध के कारण को परिभाषित करते हुए इन्द्र ब्रह्मा से कहते हैं–

^fd tgk U;k; dh gR;k gk@vU;k; lQy gk@tgk 'kfDr dk vgdkj gk@lR; fody gk]@tgk foo'k&lk 'kk;l@>dk, 'kh'k flgjrk]@tgk icy gk vlj@vkj fucy gk Hkrk]@ogk /k;l dk nx vrr% <g tkrk g@vkj] ,dek= mik; ;) gh jg tkrk gA*5

इन्द्र के द्वारा ब्रह्मा से शिव से युद्ध करने की अनुमति मांगने पर, ब्रह्मा युद्ध की स्थितियों और उसके निष्कर्ष पर गहन विचार करते हैं। यह विचार प्रत्येक काल में सटीक बैठते हैं। युद्ध की स्थिति के संदर्भ में ब्रह्मा कहते हैं–

^^'kkld itk dh j{kk dj ;) d }kjk\@vkj itk dk jDr cgk;---@{k.k e lc fpUe; lkn;l :f/kje; dj n]@xk;u xf tr uxj fpRdkjk l Hkj n]@tu food dk@o/k dh cfynoh ij /kj nA**6

'एक कंठ विषपायी' में शंकर विद्रोही व्यक्ति के प्रतीक हैं। विद्रोह परंपरा के प्रति, सत्ता के प्रति, अधिकारों के हनन के प्रति हैं। प्रतीकों के माध्यम से आधुनिक–बोध को उभारा गया है। शंकर तीन स्तरों पर चित्रित होते हैं–

i. परंपरा के प्रति विद्रोही

ii. परंपरा ग्रस्त व्यक्ति

iii. मानवीय संवेदनाओं से युक्त मोहासक्त प्रेमी

शंकर द्वारा दुष्यंत कुमार ने तीनों रूपों को स्पष्ट किया है। शंकर सर्वप्रथम पंरपरा के प्रति विद्रोही दिखाई पड़ते हैं। सती से विवाह करना उनके 'परंपरा भंजक' रूप को उभारता है। शंकर ने दक्ष की अनुमति के बिना ही सती का वरण किया था। 'विवाह सूत्र के संयोजन में कन्या के पिता की अनुमति की प्रतिष्ठित परंपरा के खण्डन के कारण दक्ष ने यज्ञ के विराट आयोजन में सती और शिव को आमंत्रित नहीं किया।'[7] शिव प्रारंभ में 'एक कंठ विषपायी' में परंपराग्रस्त व्यक्ति के रूप में उभरते हैं किंतु उनका मस्तिष्क सती की मृत्यु के पश्चात् उनके इसी परंपरा ग्रस्त व्यक्तित्व पर प्रश्न उठाता है। शिव कहते हैं–

^^noRo vkj vkn'kk dk ifj/kku vk<@eu D;k ik;k\@fuokl u!@i; lh fo;kx!!@gj ijiijk d eju dk fo"k@e> feyk@gj l=ikr dk@J; y x; vkj ykx@e Åc pdk g@bl efgekefMr Ny lA**8

शिव का परंपराग्रस्त रूप, व्यवस्थाओं और टकराहटों से लड़कर स्वयं को टूटा अथवा छला हुआ पाता है। शिव सती की मृत्यु के पश्चात् अपने सामर्थ्य पर प्रश्नचिन्ह उठाते हैं यहां सामाजिक व्यवस्था की बेड़ियों में बंधे शिव का स्वरूप, आधुनिक मानव का ही प्रतीक लगता है जो छले जाने के पश्चात् स्वयं के बिखराव, को समेटने में व्यस्त है। यह बिखराव, व्यवस्था द्वारा निर्मित है। अंत में शिव का मानवीय संवेदनाओं से युक्त मोहासक्त प्रेमी का रूप दिखाई देता है। शिव सती का शव मोह के कारण ढोते हैं। यह शव सती का नहीं अपितु मृत परंपराओं का शव है। मोह ने शिव को अंधा कर दिया। 'शिव की हिंसावृत्ति उस सर्वसाधारण की हिंसावृत्ति का प्रतीक है, जिसे बार–बार अवहेलित, अपमानित और शोषित किया गया है।'[9]

शिव और सर्वहत दोनों आधुनिक मानव को प्रस्तुत करते हैं। सर्वहत व्यवस्था में प्रजा का प्रतीक बन और शिव समाज की परंपरा–भंजक के रूप में। परंपरागत व्यवस्था के भीतर मनुष्य के विकास की संभावनाएं समाप्त होने पर विद्रोह उत्पन्न होता है, शिव भी इसका अपवाद नहीं, वह भी विद्रोह को ही बेहतर मानते हैं किंतु जब वह पुरानी पंरपराओं के खण्डन से नवांकुरों का निर्माण देखते हैं तो जीवन के सत्य को जान पाते हैं। आधुनिक मनुष्य भी जीर्ण–क्षीर्ण परंपराओं में से नव–जीवन मूल्यों को प्राप्त कर रहा है। मनुष्य को नए जीवन मूल्य और सौंदर्यबोध प्राप्त होते हैं। इस प्रकार एक समय का विद्रोही दूसरे समय का संरक्षक बन जाता है–

^gj ij~ijk d~ eju~ ij FkkM~ fnu rd@ lkjk okrkoj.k 'kU; l~ Hkj tkrk g~]@vk~j] ij~ijk d~ pj.kk~ e~ ur&eLrd@mldk gj ik"kd@lglk eu e~ Mj tkrk g~A@vFkok vkdqy ;k fg~ld gk~ tkrk g~A**[10]

आधुनिकता की मूल प्रवृत्ति विरोध होती है। शिव का परंपरागत जीर्ण मूल्यों के प्रति विरोध आधुनिक मानव का ही प्रतिकार है। सर्वहत द्वारा शासक और सर्वहारा वर्ग में भेद दिखा 'एक कंठ विषपायी' में दुष्यंत कुमार ने आधुनिक दृष्टि का परिचय दिया। सर्वहत आज के विवेकशील, बुद्धिसम्मत मनुष्य का प्रतीक है जो व्यवस्था के खोखलेपन के साथ–साथ राजनीति और सत्तावर्ग के अधिकार क्षेत्र को कब्जाने के संघर्ष को सामने लाता है। आधुनिक शासनतंत्र की अव्यवस्था और अराजकता के परिचायक के रूप में दक्ष उभर कर आते है, वहीं इन्द्र, कुबेर और वरुण आदि दिव्य पात्र, शंकर के प्रति अपने प्रतिहिंसावादी रूप के कारण प्रतिशोध की भावना से शिव की प्रतिष्ठा को नष्ट करने की घात लगाए, अवसरवादी प्रतीत होते हैं।

^dfr e~ ij~ijk dh fujFk~drk dk rho~ vkxg vk~j 0;kid fu"k/k g~A ble~ thou&eY;k~ dk m}fyr vk~j mnckf/kr dju~ dh 'kfDr g~A*[11]

परंपरा–भंजक, व्यवस्था के प्रति विरोध, शंकर द्वारा अस्तित्वबोध का प्रश्न, सर्वहत द्वारा अवस्था का नग्न चित्रण, सर्वहारा और प्रजा (सर्वहत) का वर्ग भेद, राजनीतिक सत्ता के वर्चस्व स्वर (वरुण, कुबेर और इन्द्र के संदर्भ में) और जीर्ण पंरपरा (सती के शव) के खण्डन द्वारा नवांकुरों या नए अर्थों का विस्तार यह सभी तत्व आधुनिक जीवन बोध के ही प्रतीक हैं। दुष्यंत कुमार की कृति 'एक कंठ विषपायी' आधुनिक मानव के द्वन्द्वात्मक जीवन का प्रतिबिंब ही है। 'वर्तमान जीवन की टूटी–फूटी मान्यताओं से उत्पन्न विकृतियों, मानव होते हुए भी पूंजीवादी मनोवृत्ति, शासकीय अधिकार सुख की मादकता से उत्पन्न मोहाधंकार, काल की चिरंतन शाश्वत सत्यता और युद्धोपरांत उत्पन्न विभीषिकाओं और स्थितियों की प्रस्तुति ने इस कृति को आधुनिकता प्रदान की है।'[12] जर्जर रूढ़ियों से टकराव व नए जीवन सत्यों की प्राप्ति तथा युद्ध को टालने के प्रयास और शांति व्यवस्था के नियमन द्वारा नए तथ्यों और परंपराओं का निर्माण 'एक कंठ विषपायी' की मूल आत्मा है, जो स्वतः आधुनिकबोध से निमित है।

LkUnHk %

1. दुष्यंत कुमार – एक कंठ विषपायी, पृ.48, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1974
2. वही, पृ.50
3. डॉ. प्रभात शर्मा– हिंदी नाटक : इतिहास दृष्टि और समकालीन बोध, पृ. 186, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006
4. डॉ. शेखर वर्मा – समकालीन संवेदना और हिंदी नाटक, पृ. 153, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1988
5. दुष्यंत कुमार– एक कंठ विषपायी, पृ.113, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1974
6. वही, पृ.104
7. डॉ. हरिशचन्द्र वर्मा– नयी कविता के नाट्य काव्य, पृ. 294, शोध–प्रबंध प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1955
8. दुष्यंत कुमार – एक कंठ विषपायी, पृ.151, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1974
9. शंभुनाथ – मिथक और आधुनिक कविता, पृ.21, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र.सं. 1985
10. दुष्यंत कुमार – एक कंठ विषपायी, पृ.200, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1974
11. डॉ. जीवन प्रकाश जोशी – नयी कविता की मानक कृतियां, पृ.123, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1981
12. डॉ. सुरेश, वीणा गौतम – त्रिकोण में उभरती आधुनिकता, पृ.191, राजेश प्रकाशन, दिल्ली

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 4-9

eSfFkyh'kj.k xqIr ds dkO; esa jk"Vªh; psruk

MkW0 Jo.k dqekj xqIr*

विषय वस्तु की भूमिका पर यदि गुप्तजी के काव्य को परखें तो स्पष्ट होता है कि उनका काव्य धर्म, संस्कृति, इतिहास, पुराण, महाभारत और रामायण के प्रसंगों पर आधारित नवीन उद्भावनाओं से युक्त पुनरुत्थान की प्रवृत्ति से प्रेरित एवं परिचालित है। इतना ही नहीं, उसमें समसामयिक भावों–विचारों को आधार बनाकर लिखी गयी रचनाएँ भी काव्य–सौन्दर्य की विविधरूपिणी छटा से सज्जित हैं। वस्तु–निरूपण की दृष्टि से हमारा ध्यान पहले राष्ट्रीयता की ओर जाता है। रीतिकाल के पश्चात् भारतेन्दु और उनके मण्डल के कवियों ने जिस देशभक्ति, स्वजाति हित और स्वराष्ट्र–समृद्धि का मंत्र प्रसारित किया था, उसी का ऊँचा स्वर मैथिलीशरण गुप्त की काव्य–कृतियों में देखने को मिलता है। ''भारत भारती'' में राष्ट्रीयता का रंग काफी गहरा है। ''वैतालिक'' के जागृतिमूलक गीतों के स्वर में यह गहराई भारतीय संस्कृति के योग से और भी सूक्ष्म हो गयी है। ''किसान'' में उनके शोषण के प्रति आवाज उठाई गई है, और ''अनघ'' में स्वातंत्र्य बोध को विकसित करते हुए आत्मोत्सर्ग की पावन मनोभूमि में राष्ट्रीयता का एक नया रंग प्रस्तुत किया गया है। ''हिन्दू'' काव्य के अन्तर्गत राष्ट्रव्यापी जड़ता और निष्क्रियता के ध्वंस पर राष्ट्रोत्थान की प्रेरणा दी गई है। यही प्रेरणा ''शक्ति'' में अधिक व्यापक और अधिक स्पष्टता से उभरी है। राष्ट्रीय चेतना का अलख जगाते हुए गुप्तजी ''नहुष के सहारे राष्ट्रोत्थान'' और जागरण का मंत्र फूँकते दिखाई देते हैं। ''अर्जन और विसर्जन'' की रचना के मूल में भी यही भाव मुखरित है। कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि राष्ट्रोत्थान और निर्माण के लिए त्याग और बलिदान की भाषा सीखे बिना न तो जीवनव्यापी जड़ता को दूर किया जा सकता है और न आजादी का सपना देखा जा सकता है। ''काबा और कर्बला'', ''विश्ववेदना'', ''अजित'', ''अँजलि और अर्ध्य'' आदि कृतियों के रूप में भी राष्ट्र के सजग प्रहरी कवि की स्वातंत्र्य भावना, हिन्दू–मुस्लिम एकता और आत्मगौरव के भावों की प्रसारिका पंक्तियाँ अनेक रूपों में अभिव्यक्त होती हुई राष्ट्रीय चेतना को प्रकाशित करती हैं।

''जयभारत'' में महाभारतीय आख्यानों को आधुनिक रंग देकर एक ओर तो भारत के अतीत का गुणगान किया गया है और दूसरी ओर मानवता के आदर्श की प्रतिष्ठा की गई है। मानवीय आदर्शों की प्रतिष्ठा के क्रम में ''यतोधर्मस्यतोजनः'' की भावना के रेखांकन के साथ–साथ राष्ट्रीयता, मानवता और युगधर्म को वाणी दी गयी है। महाभारतीय पात्रों का पुनर्निमाण और पुनर्विश्लेषण की प्रक्रिया में ही सत्य, अहिंसा, त्याग, करूणा और स्वातंत्र्य भावों की महत्ता भी प्रतिपादित की गयी है। इस प्रकार गुप्तजी का काव्य राष्ट्रीय चेतना का प्रसारक और स्वातंत्र्य का उद्घोषक काव्य है। उन्होंने क्रियात्मक और व्यापक भूमिका पर भारतीय जन–जीवन को श्रृंगार की वासनाकुल गलियों से निकलने, पराधीनता की श्रृंखलाओं को तोड़ने एवं निष्क्रियता और जड़ता को समाप्त करते हुए

*असिस्टेन्ट, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बभनान–गोण्डा

राष्ट्रीय जागृति की पुनीत गंगा में अभिषेक का स्नेह और आत्मीयतायुक्त आमंत्रण दिया है। गुप्तजी की राष्ट्रीयता गांधीवादी भूमिका पर विकसित होकर तो और भी अधिक व्यापक हो गयी है।

''राष्ट्र'' एक बिन्दु है और राष्ट्रीय चेतना, व्यक्त करने वाली विषद रेखा है। राष्ट्र शब्द का प्रयोग भले ही प्राचीन हो, किन्तु राष्ट्रीयता की भावना के उदय का इतिहास सही अर्थ में 19वीं शताब्दी से पहले का नहीं है। राष्ट्रीयता विशिष्ट मानव समूह में पाई जाने वाली चेतना है जिसके कारण वह समूह पारस्परिक ऐक्य भावना से संयुक्त होकर अन्य किसी भी जन—समूह से अपने पृथक् सत्ता की अनुभूति करता है। इस एकता के आधार भौगोलिक एवं सांस्कृतिक होते हैं। अतः राष्ट्रीय चेतना का उस सांस्कृतिक परंपरा से घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाता है जो प्रत्येक आधुनिक समाज में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चली आती है। यही कारण है कि राष्ट्रीय संस्कृति उन सभी शक्तियों के विरूद्ध क्रोधाग्नि प्रज्जवलित कर देती है जो राष्ट्रीय विकास के मार्ग में दीवार बनकर खड़ी होती है। वस्तुतः राष्ट्रीय चेतना मात्र राजनैतिक संदर्भ में संकुचित रहती है, सांस्कृतिक पक्ष का बल पाकर वह एक व्यापक आधार पा लेती है। राष्ट्र के प्रति निष्ठा, श्रद्धा और गौरव की अनुभूति के अभिव्यंजन के लिए राष्ट्रीय चेतना या राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना अभियान अधिक सार्थक व सटीक है।

आधुनिक हिन्दी कविता की विविध प्रवृत्तियों के बीच एक प्रबल प्रवृत्ति राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति से सम्बन्धित है। यह चेतना देशभक्ति के रूप में उदित हुई। मध्ययुग में विदेशी आक्रान्ताओं के विरूद्ध प्राणों की बाजी लगाकर लड़ने वाले, शौर्य एवं पौरूष के प्रतीक राजपूत भी इस स्थिति में देशभक्त थे जब वे सीमित उद्देश्य को भुलाकर एक उदात्त भावना से युद्ध के मैदान में उतरते थे, किन्तु ऐसी उदात्त भावना से युद्ध के मैदान में उतरते थे, किन्तु ऐसी उदात्त भावना उस समय विरल थी। साथ ही वह देशभक्ति के वर्तमान रूप से अत्यन्त भिन्न थी। तब भिन्न नहीं कहा जा सकता जो अपने खेत की मेंड़ में बहुत छोटे से हिस्से को दूसरे पड़ोसी किसान द्वारा काट लिए जाने पर संघर्ष के लिए उतावला हो जाता है। हाँ, वह देशभक्ति आज की राष्ट्रीय चेतना का प्रस्थान बिन्दु अवश्य कही जा सकती है। आधुनिक राष्ट्रीय चेतना का प्रारंभ सन् 1857 के विद्रोह में मिलता है। अंग्रेजों की शासनवृत्ति के विरूद्ध हिन्दुस्तान की जनता ने जो संगठित विद्रोह किया वही इस राष्ट्रीय चेतना का पहला कदम था। इसकी पदचाप भारतेन्दुयुगीन कविता में सुनी जा सकती है।

भारतेन्दुजी की राष्ट्रीयता यदि एक पंक्ति में विदेशी शासन को समूल उखाड़ फेंकने के लिए उसकी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक नीतियों पर प्रहार करती है, देश को नवजागरण का संदेश देकर कुंभकर्णी निद्रा से जगाने का मंत्र फूंकती है तो दूसरी पंक्ति में राजभक्ति का परिचय भी देती है। हाँ, राष्ट्रीयता की यह स्थिति राजपूत राजाओं के धरती—प्रेम से आगे जाकर किंचित् बड़े फलक पर खड़ी अवश्य दिखाई देती है।

समय कुछ और आगे बढ़ता है और भारतेन्दुकालीन राष्ट्रीयता का बीज द्विवेदीयुग की जमीन में अंकुरित होकर न केवल फैलता है, अपितु लहलहाता पौधा भी बन जाता है। यही पौधा हमारे राष्ट्रीय चेतना के खाद—पानी से वृक्ष का आकार ले लेता है। मेरी स्पष्ट धारणा है कि भारतेन्दु ने जिस देशभक्ति का बीज वपन किया था, वही मैथिलीशरणजी के हाथों विशाल वृक्ष बना है। गुप्तजी की राष्ट्रीयता में देशभक्ति तो है ही, एक सांस्कृतिक बोध भी है। वे राष्ट्रीय—सांस्कृतिक चेतना के कवि हैं। वे जनता और शासन दोनों के द्वारा घोषित राष्ट्रीय चेतना के कवि रहे हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में बार—बार मानव की प्रतिष्ठा की है, राष्ट्र के प्रति श्रद्धा—सुमन अर्पित किए हैं, अतीत का गौरवगान करते हुए

वर्तमान को नवजागरण और नवचेतना का संदेश देते हुए एकता, समानता, भ्रातृत्व और उदात्त मानवता का अलख जगाना है। वे उस भूमि से काफी उठे हुए थे जहाँ खड़े होकर ''भारत दुर्दशा'' को देख सकने की हिम्मत न रखने वाले भारतेन्दु सब भारतवासियों को रोने का आमंत्रण देते हैं। गुप्तजी ने अपनी कविता के सहारे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं करने की बात कहकर आत्मविश्वास और कर्मठता की ओर संकेत किया है। यही कारण है कि भारतेन्दु की राष्ट्रीयता में निष्क्रियता का भाव है, विवशता की भंगिमा है और हताश मन की अभिव्यंजना, तो गुप्तजी की राष्ट्रीयता में सक्रियता, जीवन्तता और विश्वास एवं आस्था का गहरा रंग है।

गुप्तजी के काव्य में एक ओर राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न रूप और आंदोलन हैं, यथा—अतीत का गौरवगान, भारत के भव्य स्वरूप की विविध झाँकियाँ, अंग्रेजी शासन के अत्याचार और उनके विरूद्ध संघर्ष, सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा, किसान मजदूर आंदोलन, जेल जीवन, स्वतंत्रता का उत्सव और उल्लास, विभाजन की विभीषिका, गांधी की हत्या, संसद की गतिविधियाँ, महँगाई की समस्या, चीन का आक्रमण, राज्यसभा का प्रश्न आदि तो दूसरी ओर सामाजिक—सांस्कृतिक जीवन के विविध पक्ष भी संकेतिक हैं। अभिप्राय यह है कि गुप्तजी का काव्य एक महान राष्ट्र के इतिहासव्यापी जातीय जीवन का इतिहास प्रस्तुत करता है जो राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना की स्याही से लिखा गया है। गुप्तजी अपनी कविताओं में भारत के स्वर्णिम अतीत की झाँकियाँ बड़ी श्रद्धा और निष्ठा के साथ प्रस्तुत करते हैं—

Hkw ykd dk xkjo iÑfr dk iq.;yhyk LFky dgka \
Qsyk euksgj fxfj fgeky; vkSj xaxk ty tgkaA
lEiw.kZ ns'kksa ls vf/kd fdl ns'k dk mRd"kZ gS \
mldk fd tks _f"kHkwfe gS] og dkSu \ Hkkjro"kZ gSAA

समाजव्यापी आलस्य, फूट, खुदगर्जी और मिथ्या कुलीना आदि कुप्रवृत्तियों व विसंगतियों की ओर भी गुप्तजी का ध्यान गया था। देशव्यापी गरीबी, सामाजिक अंधता और रूढ़िग्रस्तता का स्पष्ट प्रत्याख्यान करते हुए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने जागरणमयी शैली में मातृभूमि, राष्ट्र और समाज की महत्त को स्वीकारा है। इस स्वीकार बोध में स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग और उनके महत्व को रेखांकित किया गया है। गुप्तजी की ''मातृभूमि'' कविता इसका ठोस प्रमाण है।

गुप्तजी राष्ट्रकवि तो थे ही, युग के सजग प्रहरी और वैतालिक भी थे। वे अपने जीवन के यौवनकाल से ही कुछ ऐसी परिस्थितियों में रहे और जिये कि राष्ट्रीय चेतना उनके व्यक्तित्व का और उसी अनुपात में कृतित्व का अंग बनती चली गयी। भगवत् भक्ति से वे देशभक्ति की ओर उन्मुख हुए और जब वे देश की भक्ति की ओर झुके तो अनेक स्वाधीनता सेनानियों के सम्पर्क में आये। यह संपर्क अधिक बढ़ा तो राजनीतिक वातावरण भी उनके अनुकूल रहा। हिन्दू, संस्कृति के प्रति आस्था, राजनैतिक भागीदारी, गांधी दर्शन का प्रभाव और भारतीय जीवन के क्षण—प्रतिक्षण परिवर्तित होने वाले प्रसंगों ने गुप्तजी को कवि से युग कवि, युग कवि से राष्ट्रकवि और राष्ट्रकवि से जीवन—कवि बना दिया। ''भारत—भारती'', ''स्वदेश संगीत'', ''हिन्दू वैतालिक'', ''मंगली घट'', ''विश्ववेदना'', ''अर्जित'', ''अनघ'' और ''साकेत'' में युग जीवन का स्तर मुखरित हुआ है। इन कृतियों में कवि ने अपने समकालीन परिवेश की हलचल को स्पष्ट और यथार्थ बिम्बों में बाँधकर प्रस्तुत किया है तो साथ ही राष्ट्रकवि के दायित्व का पालन भी किया है।

''साकेत'' गुप्तजी की कीर्ति का यदि अक्षय आधार है तो ''भारत भारती'' उनकी लोकप्रियता और राष्ट्रीय चेतना की प्रामाणिक अभिव्यंजना है। साकेत के आधार पर यदि

वे महाकवि हैं तो भारत भारती के आधार पर भारत की सुषुप्त राष्ट्रीय आत्मा के अमर उद्घोषक भी हैं, परतंत्रता के उस युग में ''भारत भारती'' के कवि का यह उद्घोष तो देखिए–

jh y[kuh! gRi= ij fy[kuh rq> g ;g dFkk
nDdkfyek e Mcdj] r;kj gkdj loFkkA
LoPNnrk l xj rq> djus iMs iLrko tk
tx tk;s rjh ukd l lk;s g, gk Hkko tkA –भारत भारती

इतना ही क्यों, गुप्तजी ने जैसे समस्त राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधते हुए समर्पण, निष्ठा और जागृति की वाणी में जो कहा था, वह कोई राष्ट्रीय चेतना वलयित कवि ही राष्ट्र–हित में कह सकता था–

g ckge.kk! fQj iotk d rqY; rqe Kkuh cukA
Hkyk u vuqie vkRexkjo /ke d /;kuh cukA
{kf=; mBk vc rk dq;'k dh dkfyek dk eV nkA
fut n'k dk thou lfgr ru eu rFkk /ku HkV nkAA

वस्तुतः गुप्तजी के मानस में भारत की जो मूर्ति बस गयी थी, भारत के जिस रूप की कल्पना के चित्र उनके पलकों पर तैरा करते थे, वे ही उनकी कविता पंक्तियों में आकर राष्ट्रीय चेतना के वाहक बन गये हैं–

fo|k dyk dk'kY; e lcdk vVy vuqjkx gkA
m|kx dk mUekn gk] vkyL;&v?k dk R;kx gkAA
lq[k vkj nq[k e ,d lk lc Hkkb;k dk Hkkx gkA
vr%dj.k e xqt rk jk"Vh; rk dk jkx gkAA –भारत भारती

''भारत भारती'' का कवि ''वैतालिक'' में भी भारतीयों को उद्बोधित करता है और ''हम कौन थे क्या हो गये और क्या होंगे अभी'' का प्रश्न उठाकर समस्त परिवेश में फिर से अपने को याद करने और अलौकिक भाव भरने का जीवंत संदेश देता है।''हिन्दू'' नामक ग्रंथ में गुप्त जी ने ''हिन्दुत्व'' की सीमा में संस्कृति के व्यापक और उदात्त रूप को भी समेट लिया है। ''मंगल घट'' में मांगलिक स्वर प्रधान है। इसमें भी कवि की स्वदेश प्रेम, राष्ट्रीय चेतना और मानव जीवन से सम्बन्धित उदात्त भावनाओं को अभिव्यक्ति मिली है। पौरूषेय भावनाओं के रंग में रंगी, कर्मठता, लोकहित और राष्ट्रहित के भावोदधि में स्नात ये कविताएँ निराशा के सघन अंधकार में डूबे हुए भारतीयों को सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् का प्रकाश ग्रहण करने की प्रेरणा देती है–

fut xkjo dk fut Kku jg]
ge Hkh dN g] ;g /;ku jg
lc tk; vHkh ij eku jg
ej.kkÙkj xqf.tr xku jgA
dN gk u rtk fut lk/ku dk
uj gk u fujk'k djk eu dkAA

गुप्तजी की राष्ट्रीय चेतना संकीर्ण नहीं है। उसमें व्यापकता, उदात्तता तो है ही, एक सांस्कृतिक एवं मानवीय गरिमा बोध भी है, मनुष्यता की पहचान भी है और एक अखण्ड आत्मबोध भी है–

mlh mnkj dh lnk ltho dhfr xqtrh
rFkk mlh mnkj dk leLr lf"V iwtrh

v[k.M vkReHkko tk v lhe fo'o e Hkj
ogh eu"; g fd tk eu"; d fy, ejAA

अखण्ड आत्मभाव को असीम विश्व में भरने की आकांक्षा से पीड़ित गुप्तजी का कवि ''विश्व वेदना'' कषति में तो पूरी तरह अखिल मानवतावादी बन गया है। यह वह मानवतावाद है जो उसकी राष्ट्रीय चेतना की लिखावट में सांस्कृतिक रंग भी भरता है और अपनी मानसिकता को वैश्विक परिपार्श्व भी प्रदान करता है। ''साकेत'' महाकाव्य में यही राष्ट्रीय चेतना युग दर्पण में अपना नया या कहें कि सामयिक रूप दिखलाती है। ननिहाल से वापस आने पर शत्रुघ्न क्रोध से काँपते हुए जो कहते हैं वह राष्ट्रीय चेतना की विशद् और युगानुकूल व्यंजना ही है जिसमें स्वंतत्रता प्राप्ति के लिए क्रांति के कदम का औचित्य समर्थित है। राम के वनगमन के अवसर पर अयोध्यावासी यह कहकर राम के मार्ग में लेट जाते हैं–

jktk geu jke! rEgh dk g pukA
djk u re ;k gk;! ykder vu lukAA

''साकेत'' में राम–रावण युद्ध को भी राष्ट्रीय सांस्कृतिक रूप प्रदान किया गया है। तभी सीता को भारत–लक्ष्मी के रूप में और राक्षस–संस्कृति को विदेशी संस्कृति पुष्ट स्वातंत्र्य बोध देखिये–

^Hkkjr y{eh iMh jk{k lk d c/ku eA
fl/k ikj og foy[k jgh g viu eu eA** –साकेत

गांधी संस्कृति भारतीय संस्कृति का ही तो रूप है। ''साकेत'' में ही क्यों, गुप्तजी की अनेक कृतियों में गांधीवादी मानवता व संस्कृति चेतना का स्वर मुखरित हुआ है। सीता चरखा कातने की प्रेरणा देती हुई कहती है–

^re v/kuXu D;k jgk v'k"k le; eA
vkvk ge dkr] cu xku dh y; eAA** –साकेत

कहने की आवश्यकता नहीं है कि बाबू मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रीय चेतना के कवि हैं। उनके कृतित्त्व में कदम–कदम पर इसकी प्रतिध्वनि सुनाई देती है। राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के विकास में मैथिलीशरण गुप्तजी का योगदान अपूर्व है। उन्होंने नैतिक मूल्यों को राष्ट्रीय आधार दिया और राष्ट्रीय चेतना को समृद्ध सांस्कृतिक भूमिका पर प्रतिष्ठित किया। इस दृष्टि से उनका महत्व किसी राष्ट्रीय–संस्कृति पुरूष से कम नहीं है। उनकी राष्ट्रीय भावनाएँ वर्तमान परिवेश में भी हमें राह दिखा रही हैं, बशर्ते कि हम देखना चाहें।

lUnHk %

1. रामधारी सिंह दिनकर : काव्य की भूमिका, पृ. 26
2. भारतेन्दु ग्रंथावली : प्रेम–माधुरी शीर्षक कविता
3. भारतेन्दु ग्रंथावली, पृष्ठ 116
4. अज्ञेय : हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, पृ. 50
5. डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त : डॉ. नगेन्द्र द्वारा द्वारा संपादित हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ–472
6. डॉ. रामसकलराय : द्विवेदीयुग का काव्य, पृ.397
7. मैथिलीशरण गुप्त : यशोधरा, पृ. 21–22
8. श्रीधर पाठक : देहरादून, पृष्ठ 152
9. रामनरेश त्रिपाठी : स्वप्न, पृ.29
10. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, नवम् सर्ग से
11. वही, वही

12. डॉ. उमाकान्त : डॉ. नगेन्द्र द्वारा संपादित हिन्दी साहित्य का इतिहास, 533
13. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, अष्टम् सर्ग, पृष्ठ 166
14. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, द्वादश सर्ग, पृष्ठ 316
15. मैथिलीशरण गुप्त : यशोधरा, पृ. 21
16. मैथिलीशरण गुप्त : यशोधरा, पृ. 38
17. मैथिलीशरण गुप्त : हिडिम्बा से उद्धृत
18. मैथिलीशरण गुप्त : विष्णुप्रिया, पृष्ठ 50
19. नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य, पृ. 97
20. गुप्त : यशोधरा, पृ. 38
21. मैथिलीशरण गुप्त : विष्णुप्रिया, पृ.49
22. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, अष्टम सर्ग, पृष्ठ 143
23. डॉ. नगेन्द्र : साकेत एक अध्ययन, पृ. 114—115
24. गुप्तजी : साकेत, प्रथम सर्ग, पृष्ठ 7
25 मैथिलीशरण गुप्त : यशोधरा, पृ. 101
26. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ. 29
27. वही : साकेत, नवम् सर्ग, पृष्ठ 193

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 10-12

r|ylhnkl th dk dk'kh e fojk/k

CkkyÑ".k feJ*

lkjk'k% *यह अध्ययन तुलसीदास का काशी में विरोध को रेखांकित करता है।यह शोध पत्र अन्वेषणात्मक शोध प्रणाली पर आधारित है। इस अध्ययन में द्वितीयक स्त्रोतों का प्रयोग किया गया है। जो समाज के लिए उपयोगी हैं।*

e|[; 'kCn : धर्मग्रन्थ, संस्कार, सत्यम शिवम सुन्दरम आदि।

आज वह महापुरुष विश्व में अमरत्व को तो प्राप्त ही कर लिया है जिसने अपनी कृतियों पर संसार में समाज के लिए संस्कार रूपी महाग्रन्थ प्रदान कर दिया है। संसार की सीमाओं के अतिक्रमण से हट कर उनकी कृतियाँ हमारी विचारधारा एवं सारस्वत लक्ष्य को प्राप्त करती हैं उनको संसार में पूज्य बनाने के लिए यह प्रयास इतना पर्याप्त है कि उनके सांसारिक जीवन के बारे में कुछ जानना निरर्थक सा लगता है परन्तु मानव होने के नाते उनके जीवन के बारे में परिचय प्राप्त करने की उत्सुक्ता हमारे हृदय में उत्पन्न हुयी है। अध्येयता उनके साहित्य का वास्तविक मर्म तो ग्रहण कर ही रहा है। परन्तु जब तक उनके जीवन की प्रवृत्तियों से उनका परिचय प्राप्त न कर लिया जाय। आज ऐसा कौन भारतीय होगा जो उनके बारे मे जनाकारी न रखता हो फिर भी इस जिज्ञासु ने गोस्वामी तुलसीदास जी के बारे में अति गहनता से अध्ययन करके तुलसीदास का काशी में विरोध को उजागर करना ही हमारा परम उददेश्य है।

एक दिन इनकी मुलाकात एक विद्धान पंडित से हुयी और इनसे षास्त्रार्थ करने के लिए काशी मे डिढ़ोरा पिटवादिया तब काशी नरेश के यहाँ शास्त्रार्थ के लिए स्थान निश्चित किया गया शास्त्रार्थोपरान्त काशी नरेश ने हार जीत का निर्णय भगवान शंकर पर छोड़ दिया श्रीरामचरितमानस को सबसे नीचे रखकर सारे धर्मग्रन्थों को ऊपर रख दिया गया है। और शिव के गर्भग्रह ताला लगाकर बन्द कर दिया गया प्रातः जब देखा गया तो सारे धर्मग्रन्थ नीचे और मानस ऊपर रखी थी तथा पुष्पों से सत्यम शिवम सुन्दरम लिखा पाया गया तब काशी नरेश ने तुलसी से नतमस्तक होना पड़ा वहीं से कवि का सम्मान दिव्य गंध की तरह फैलने लगा कवि के बढ़ते हुए सम्मान का साक्ष्य कविता की निम्न पंक्तियाँ प्रमाणित करती है कि–

tkfr d l|tkfr d d|tkfr d iVkfx cIA [kk; Vd lcd fofnr ckr nuh lkAA
Ekkul opu dk; fd; iki lfr Hkk;A jkedk dgk; nkl nxkckt i|uh lkAA
jkeuke dk iHkkm ikm efgek irkiA Rkylh l tx ekfu;r egkefu lk AA
vfr gh vHkkxk vu|jkxr u jke inA e< ,rk c<k vpjt nf[k l|uh lkAA

कवितावली उत्तरकाण्ड 72 पद

अर्थात् वह पं. ब्राह्मण गोस्वमी तुलसीदास को प्रणाम करते हुये अपने राजमहल को गये तथा सभी विद्वान तुलसी को प्रणाम करते हुये अपने अपने स्थान को चले गये। परन्तु वह विद्वान व्यकित उस मानस को चुराने के लिए तुलसी की कुटिया गया लेकिन वहाँ क्या देखता है कि बाबा तुलसी कुटिया मे कुछ लिख रहा है और दो बालक सामने बैठे सुन रहे है। तथा वीर हनुमान गदा लिए हुए कुटिया के चारों ओर पहरा दे रहे है। वह विद्वान पंडित रातभर यही देखता रहा प्रातः तुलसीबाबा को प्रणाम कर के काशी नरेश के दरबार में गये और सारी बात बतायी तब काशी नरेश ने तुलसी को अपने दरबार में बुलाया और तुलसीदास मानस को सुना और तुलसी से अधिक प्रभावित हुए। तुलसी वहीं काशी में किसी गरीब ब्राह्मण के यहाँ रहते थे। तुलसी की अद्भुत कीर्ति से प्रभावित होकर एक बार अकबर ने तुलसी को अपने दरबार में बुलाया और अपने प्रभु का कोई चमत्कार करने के लिए कहा यह बात तुलसी को अच्छी नही लगी और ऐसा करने

*सहायक प्राध्यापक, ब्रह्मचर्य शिक्षा निकेतन जूनियर हाईस्कूल, कर्वी चित्रकूट, उ0प्र0

से मना कर दिया तब अकबर क्रोधित होकर तुलसी को बन्दी बनाकर जेल में डाल दिया और चालीस दिन तक उन्हें जेल मे रखा गया तुलसीदास दुःखित होकर महाबली हनुमान को याद किया और उन्हीं की याद में चालीस दिन में हनुमान चालीसा का निर्माण किया था तब हनुमान ने पूरी वानर सेना लेकर दिल्ली पहुँचे और पूरी दिल्ली को तहस नहस करना प्रारम्भ कर दिया तब अकबर को बताया गया कि यदि आप तुलसीदास को नही छोड़ेंगे बानर सेना पूरी दिल्ली को उजाड़ देंगें तभी प्रातःकाल अकबर तुलसीदास से क्षमा माँगी और बन्दीगृह से तुलसीदास आजाद कर दिया।

rqylhnkl dk Jh/kkeoUnkou esa inkiZ.k% अकबर के कारागार से रिहा होने के बाद तुलसीदास वहाँ से अपने मित्र नन्द दास से मिलने के लिए श्रीधाम वृन्दावन आये तब तुलसी की कीर्ति और बढ़ चुकी थी तभी मीरा बाई ने बाबा तुलसी को एक पत्र लिखती हैं। इसका उल्लेख lEor 1563 में बाबा बेनी माधवदास की कषति मूलगोसाई में मिलता है। ehjk th i= esa fy[krh gS –

LofLr Jh rqylh dqyHkw"k.k nw"k.k gj.k xkslkbZA Ckkjfga ckj iuke djgq vc gjgq lksd leqnkbZAA
?kj ds Lotu gekjs tsr lcUg mikf/k c<k;hA Lkk/kq lx vt Hktu djr ekfga nsr dys'k egkbZA
Ekjs ekrk firk ds le gks gfj HkDru lq[knk;hAA gedks dgk mfpr d fjcks gS lks fyf[k;s le>kbZA

पत्र प्राप्त होते ही पत्र को मस्तक से लगाकर श्रीराम के चरणों में रखते है और प्रातःकाल मीरा के पत्र का rqylh ckck tokc fy[krs gS&

tkds fiz; u jke cnsgh] rft, rkfg dksfV cSjh le] t|fi ije lusghA lks NkfM;s] rT;ks firk izgykn] foHkh"k.k c/kq Hkjr egrkjhA cfy xq: rT;ks dar czt cfurfUg] Hk;s eqn eaxy dkjhA ukrs usg jke ds efu;r lqân lq l0; tgka yksA vatu dgka vkf[k tsfg QwV] cgqrd dgka dgka ykA rqylh lks lc Hkkfr ije fgr iwT; izku rs I;kjkA rqylhnkl dk Jh/kkeoUnkou ls dk'kh ds fy, inkiZ.kA

श्रीधामवृन्दावन से तुलसीदास काशी के लिए निकल पडे तुलसीदास अपने जीवन का अधिक समय काशी में ही विताया हैं वहाँ उन्होंने तुलसीघाट पर स्थित तुलसीदास द्वारा स्थापित अखाडा, मानस और विनय पत्रिका का प्रणयन कक्ष, तुलसीदास द्वारा उपयोग में लायी जाने वाली नाव के अशेष अंग, मानस की 1704 की पाण्डुलिपि, उनकी चरणपादुकाएँ आदि से पता चलता है कि उनके जीवन का सर्वाधिक समय काशी अयोध्या, प्रयाग, चित्रकूट, हरिदवार, तथा मिथिला आदि स्थानों पर व्यतीत हुआ हैं।

Rkqylhnkl ds ledkyhu fo}kuksa }kjk dh x;h iz'kalk% काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान पं. रामनरेश त्रिपाठी जी और दार्शनिक श्री मधुसूदन सरस्वती जो तुलसी के समकालीन कवि है वे तुलसी की प्रशंसा में एक श्लोक लिखते है।

vkUundkuus âfLeu tzxeLrqylh r#%A dforkeatjh lL;]jke Hkzej Hkwf"krkA

इसी से पता चलता है कि तुलसी की ख्याति कितनी थी।

श्री प्रेमलता जी का जीवन चरित्र गुरु परमपरा के अन्तर्गत उल्लेख करता है कि सबसे पहले रामानन्द, सुरसुरान्न्द, माधवानन्द, गरीबानन्द, लक्ष्मीदास, गोपालदास, नरहरिदास, तुलसीदास जी शिष्य के रूप में आये हैं और नरहरिदास से ही तुलसीदास जी ने सूकर क्षेत्र में रामकथा को श्रवण किया था। कथा श्रवण करने के उपरान्त ही उनके मन में श्री राम भक्ति के प्रति आस्था का भाव जागृत हुआ था। गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित 25 ग्रन्थों का उल्लेख मिश्रबन्धुओं 1913 ने अपने विनोद, 1890 के नवरत्न काव्य में ग्रियर्सन द्वारा 21 ग्रन्थों के अलावा 4 ग्रन्थों को और बढ़ा दिया है।

तुलसी के जीवन के सम्बन्ध में रत्नावली दोहा संग्रह नाम की एक पुस्तिका मिली है जिसके आधार पर तुलसीदास के जीवन पर प्रकाश गहराई से पड़ता है। जो आज भी पं0 गोविन्दबल्लभ पन्त के पास सुरक्षित है। जिसका लिपि काल 1875 है। इसके द्वारा यह ज्ञात होता है। तुलसीदास काशी में ही निवास करने लगे तुलसी दास का अंतिम समय में सायं के समय उनके सरीर में अत्यन्त पीड़ा हुयी और वह बाहु पीड़ा से दुःखित होकर अपने आराध्य देव को पुकारने लगे।

इस प्रकार से उनका जीवन काशी में ही अनेक दुःखों का सहजता से भोगते हुये भगवान विश्वनाथ की शरण में राम कथा का रस पान करते कराते अस्सी गंग के तीर पर संवत् 1680 सन् 1623 में श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन पंच महाभूतों तत्वों का परित्याग कर इस लोक का गमन करते हुये भगवान के श्रीधाम को पधार गये और हम सबको संस्कार से ओत प्रोत के लिए आपने अपने अनेक ग्रन्थों को हम सब के लिए छोड़ गये।

Hko Hkkoxx rqylh udqy MI r Kku gfj yrA fp=dV ,d vk"kf/k fpror gkr I prAA

तुलसी तो आज भी अमर है लेकिन मानव होने के नाते उन्होंने भी देह छोड़ी है। जिसके लिए एक दोहा अत्यधिक प्रचलित है।

IEor Ikjg Ik vIh vIh xqx dk rhjA
Ikou 'kqDyk IIreh rqyIh rY;kS IjhjAA

इसी बात के साथ तुलसी की जीवन गाथा आप सब के सामने प्रस्तुत है। इसे पढ़ें और सब को बतायें कि तुलसी इसी राजापुर के है। कहीं और के नहीं है। इसमें जो अवशेष रह गया हो कृपया सुझाव अवश्य दें।

IUnHkZ %

1. भवानीदासकृत–तुलसी चरित प्रकाशन वर्ष–जून 1999 प्रकाशक–गीता प्रेस गोरखपुर पृ0 341, 3433, 345, 346, 349, प्रेस गोरखपुर, अर0का0 21/4,5,6
2. महाराजरघुराजसिहं कृति– रामरसिकावली। प्रकाशन वर्ष–2011 प्रकाशक चौखम्भा सुरभारती गीता प्रेस गोरखपुर पृ0 250
3. नाभादास कृत –भक्तमाल–। प्रकाशन वर्ष–1996 बीसवाँ संस्करण प्रकाशक– गीता प्रेस गोरखपुर सुन्दर का0 40/6,8,5,
4. प्रियादास कृत– भक्तमाल की टीका। प्रकाशन वर्ष 2008 द्वितीय संस्कारण प्रकाशक रामायण ट्रस्ट परिक्रमा मार्ग जानकी घाट आयोध्या पृ0 271
5. बाब वेंडी माधवदास कृत–गोसाई चरित। प्रकाशन वर्ष 2001 प्रकाशकगीता प्रेस गोरखपुर पृ0 74,76,78
6. कृष्णदत्त मिश्र कृत –गौतम चन्द्रिका। प्रकाशन वर्ष–1996 बीसवॉ संस्करण प्रकाशक– गीता प्रेस गोरखपुर सुन्दर का0 38/6,7,8,–22/3
7. दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता प्रकाशन वर्ष–1996 बीसवॉ संस्करण प्रकाशक– गीता प्रेस गोरखपुर सुन्दर काण्ड 6/3,8,7–41/1
8. मानस रहस्य– लेखक बैद्य जयराम दासजी प्रकाशन वर्ष–जून 1999 प्रकाशक–गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 341, 3433, 345, 346, 349, प्रेस गोरखपुर अर0का0 21/4,5,6,
9. बाल रामायणम्–लेखक–डॉ0 गंगा सागर राय प्रकाशन वर्ष–2011 प्रकाशक चौखम्भा सुरभारती गीता प्रेस गोरखपुर पृ0 250
10. रामचरित मानस–लेखक– गोस्वामी तुलसीदास प्रकाशन वर्ष–1996 बीसवॉ संस्करण प्रकाशक– गीता प्रेस गोरखपुर सुन्दर का0 40/6,8,5,
11. राम के मित्र सुग्रीव और विभीषण लेखक श्री राम किंकर जी महाराज प्रकाशन वर्ष 2008 द्वितीय संस्कारण प्रकाशक रामायण ट्रस्ट परिक्रमा मार्ग जानकी घाट आयोध्या, पृ0 271
12. ज्ञान के दीप जले लखेक स्वामी रामसुख दासजी महाराज प्रकाशन वर्ष 2001 प्रकाशकगीता प्रेस गोरखपुर पृ0 74,76,78 पूर्वत रामचरित मानस–लेखक– गोस्वामी तुलसीदास प्रकाशन वर्ष–1996 बीसवॉ संस्करण प्रकाशक– गीता प्रेस गोरखपुर सुन्दर का0 38/6,7,8,–22/3
13. मानस मंथन–लेखक शंकराचार्य जी महाराज प्रकाशन वर्ष 1972 प्रकाशक योग मन्दिरम दतिया म0प्र0, पृ0 7,9,11,14
14. पूर्वत रामचरित मानस–लेखक– गोस्वामी तुलसीदास प्रकाशन वर्ष–1996 बीसवाँ संस्करण प्रकाशक– गीता प्रेस गोरखपुर सुन्दर काण्ड 6/3,8,7, 41/1

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 13-15

fujkyk dh dfork e n’kie vkj jk"Vh;rk

lR; idk’k prqonh*

निराला के काव्य जगत में कहीं देश के गौरवपूर्ण इतिहास का प्रत्याख्यान है, तो कहीं उसके पराभव और पतनोन्मुख को लेकर गहरा क्षोभ। कहीं राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में विजयश्री हासिल करने के लिए एकता और एकात्मकता के महत्त्व का प्रकाशन है तो कहीं तथाकथित स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के राष्ट्रीय जीवन में व्याप्त मूल्यहीनता, चरित्र–संकर, सामान्य जन के उत्पीड़न शोषण आदि को लेकर मोहभंग की त्रासदी का रेखांकन। छायावादी कवियों में सर्वाधिक स्वतन्त्रताभिलाषी व्यक्तित्व निराला का रहा है। समाज और साहित्य दोनों को समानान्तर ढंग से रूढ़ियों एवं जड़ता से मुक्त करने का प्रयास निराला ने किया है। वेदान्त की क्रांतिकारी व्याख्या से लेकर किसान आंदोलन में सक्रिय साझेदारी निभाने वाले निराला की सी वस्तुगत चेतना और संवेदनात्मक गहराई समकालीन किसी दूसरे छायावादी कवियों में विरल है। देश और मातृभूमि के प्रति अपने गहरे अनुराग भाव को व्यंजित करने वाले उन्होंने अनेक गीत रचे हैं। उनकी सारी बंदनाओं में राष्ट्रवाद की सुख, समृद्धि की आकांक्षा और जनमानस को निरुज देखने की अभिलाषा व्यक्त हुई है। नये समाज, नये मनुष्य और स्वतंत्र चेतना मानस की आकांक्षा की अभिव्यक्ति की दृष्टि से प्रस्तुत गीत अविस्मरणीय है–

oj n oh.kkokfnuh oj nA@fi ; LorU=jo ve'r e= uo@Hkkjr e Hkj nA@dkV v/k mj d c/ku] Lrj@cgk tufu] T;kfre ; fu>j@dy"k&Hkn regj idk’k Hkj txextx dj nA@uoxfr] uo y;] rky&Nn uo]@uoy dB] uo tyn enjo@uHk d uo fogx on dk@uo ij uo Loj nA[1]

यह ’सरस्वती वंदना’ निराला के देश–विषयक गहरे ममत्व भाव को इस ढंग से अभिव्यक्त करती है कि परम्परित सरस्वती वंदनाओं की वस्तु एवं विचाराधारा से सर्वथा मिल इस स्वरूप और स्तर–निर्धारित एवं निश्चित होता है। वाणी की देवी से कवि रचना–कर्म में सफल मनोरथ होने के लिए कुछ नहीं मांगती, वह तो देश और देशवासियों के निमित्त ऐसा ज्ञान, चैतन्य और गति–शक्ति माँगता है, जिसके बल पर वह जन–जीवन में व्याप्त जड़ता, कालुष्य और भेद–बुद्धि का निरसन कर सके। निराला की यह वन्दना वन्दनाओं की परम्परा से अपनी अलग पहचान बनाती है। इसमें समष्टि की हितचिंता ही केन्द्र में है। भारत और भारती की वंदना में निराला ने अपने उत्कट देश–प्रेम और उदात्त सांस्कृतिक विवेक का परिचय दिया है–

Hkkjfr&t;] fot; djA@dud “kL; dey /kjA@ydk inry “krny]@xftrkfe lkxj&ty@/kkrk “kfp pj.k ;xy@Lro dj c) vFk >jA@r#&r.k&ou&yrk olu] vpy e [kfpr leu]@xxk T;kfrty&d.k@/koy /kkj gkj xyA@edV ’kHk fge r"kkj]@ik.k i.ko vkdkj@/ofur fn’kk, mnkjA@“kr e[k “kr jo e[kjA[2]

इस कविता में भारतभूमि की समृद्धि तथा ऐश्वर्य को अपनी सांस्कृति के दृष्टि से बड़ी कलात्मक के साथ उभारा गया है। भारतभूमि निरन्तर विजयिनी रही है। इसे पराभूत करने का अहंकार एक छलावा है। उसकी पराजय सम्भव ही नहीं है, क्योंकि स्थूल रूप से इसकी भौगोलिक सीमाओं को अधिकृत करने वाले भी भीतर ही भीतर इसकी उदारता और करुणा के समक्ष अभिभूत हो जाते रहे हैं और अंततः उसी के ही हो जाते रहे हैं। भारतीय संस्कृति और साधना में ऐसी शक्ति है कि वह सहज ही दूसरों को भी

*शोध छात्र, तेलुगु विभाग, का0 हि0 वि0 वि0, वाराणसी

अनुराग के रंग से रंजित कर देती रही है। उपर्युक्त गीत में निराला द्वारा भारतमाता की जो काव्य–मूर्ति रेखांकित की गयी है, वह अपने प्रभाव में अप्रितम है। उसके हाथों में स्वर्णिम धान की बाली और कमल पुष्प है। आशय यह है कि इस देश में सोने की खाने, हरी–भरी खेती और कमल का मादक सुगंध–संसार है। दूसरी व्यंजना यह है कि कनक सत्य, शस्य शिव और कमल सुंदर की भारतीय संस्कृति में अद्‌भुत परिकल्पना है। भारतभूमि सत्य, शिव और सुन्दर का समन्वय है। राष्ट्र के प्रति कवि का यह भक्तिविह्वल आत्मसर्मपण सुरुचिपूर्ण एवं कलात्मक शब्दबंध द्वारा बड़े रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है। राष्ट्र की परिकल्पना निराला के यहाँ केवल आध्यात्मिक और सांस्कृतिक रूप में ही न होकर भौतिक सुख–समृद्धि से परिपूर्ण रूप में भी है। उनके देश–प्रेम की परिणति विराट मानवतावाद में होती है। उन्हें इस बात का भी गर्व है कि वेदान्त की भूमि भारत ही है। वह भारत जिसके पास एक सुनहरा अतीत है, ऋषियों–महर्षियों की तपःपूत साधना है, जहाँ की गिरि कंदराएँ एवं निर्झर, ऋतुएँ एवं निसर्ग सभी अद्वितीय है, जिनका सौंदर्य अत्यन्त रमणीय किंतु प्रभाव में सात्विक है, जहाँ के साधनारत जीवन में सुकृतोच्चारण की अपूर्व महिमा है, जहाँ जड़–जघन्य और स्तन्य–वन्य की स्थिति नहीं, सब–कुछ चिन्मय है, ऐसे भारत के लिए निराला के मन में पूर्ण समादार भाव है, यह भारत ही उनकी श्रद्धा–भक्ति का एक मात्र केन्द्र है–

*Hkkjr gh thou /ku@T;kfre; ije je.k@lj&lfjrk&ou miou@ri% iqt fxfj&dnj@fu>j d Loj i"dj@fnd ikUrj ee e[kj@ekuo&ekuo& thouA**3

उपर्युक्त कविता में निराला ने भारत की अत्यन्त महिमामय तस्वीर अंकित है। संस्कृति और इतिहास के प्रति अत्यन्त भावात्मक एवं प्रशस्ति दृष्टिकोण अपनाया गया है। देश के गौरवगान से जुड़े इस तरह के गीतों में भारतीय इतिहास और संस्कृति की समृद्धिशीलता तथा आध्यात्मिक शक्तिमत्ता का बिम्बात्मक रेखांकन सोद्देश्य है। देश के अतीत और वर्तमान के साक्षात्कार से जिस ग्लानि और पीड़ा का जन्म होता है वह निराला काव्य शुरू में आनुभूतिक ढंग से व्यंजित है। इससे उबरने और राष्ट्र को स्वतंत्र बनाने की आकांक्षा निराला के गीतों में पूरी सजीवता के साथ चित्रित है। अतीत के पुण्य–स्मरण में कभी उन्हें जैमिनि–पतंजलि और व्यास का स्मरण होता है तो कभी राम–कृष्ण, भीम–अर्जुन और भीष्म जैसे नर–पुंगव का। इस संदर्भ में उनकी 'दिल्ली' शीर्षक कविता द्रष्टव्य है–

D;k ;g ogh n'k g@Hkhek tu vkfn dk dhfr&{k=@fpjdekj Hkh"e dk irkdk cãp;&nhIr@mMrh g vkt Hkh tgk d ok;e.My e@mTToy v/khj vkj fpj uohu@Jhe[k l Ñ".k d luk Fkk tgk Hkkjr u@xhrk&xhr flgukn@ee ok.kh thou lxke dh@lkFkd leUo; Kku de HkfDr ;kx dkA4

कविता में एक तरह से भारत के उत्थान और अवनति का इतिहास परिवर्तनशील कालचक्र के साथ उपस्थित है। महाभारत काल से लेकर आधुनिक काल तक के सांस्कृतिक उत्कर्ष और अपकर्ष की भारतीय इतिहास की यह तस्वीर सहृदय के भीतर एक तीखा अवसाद उत्पन्न करती है। इसमें भारत के समग्र ऐश्वर्य और वैभव के साथ उसकी विपन्नता और पराभव को शब्दबद्ध किया गया है।

भारत की पराधीनता और उसकी मुक्ति की समस्या को लेकर निराला शुरू से ही अत्यन्त संवेदनशील रहे हैं। इस संदर्भ में उनकी सचेष्टता इसी से प्रत्यक्ष होती है कि 'मातृभूमि' उनकी पहली कविता है। पराधीनता से मुक्ति का आह्वान सांकेतिक ढंग से चर्चित सारी कविताओं में है। शुरू की रचनाओं में आर्य–संस्कृति और हिन्दू राष्ट्रीयता पर उन्होंने देश–काल के दबाव में अधिक बल दिया है।

वस्तुतः निराला जिस राष्ट्रीयता का प्रसार और विकास देखना चाहते हैं, वह सर्वग्राही और सामासिक है। राष्ट्र की प्राकृतिक शोभा–सुषमा और उसकी निसर्गगत् भव्यता के जैसे विराट् इन्द्रधनुषी चित्र उन्होंने अंकित किये परिचायक हैं। राष्ट्र के लिए पूर्णरूपेण निवेदित निराला में राष्ट्रवादियों के सुखार्थ अपना सब–कुछ अर्पित करने और सभी तरह के कष्टों का वरण करने का भाव मिलता है। अपने समकालीनों में राष्ट्रीय गौरव और उसकी तेजस्विता की जैसी अभिव्यक्ति निराला में है, वह बहुत अंश तक

जयशंकर प्रसाद के नाट्य–साहित्य की स्मृति कराती है। उद्दाम राष्ट्र–प्रेम की सारी भंगिमाएं एवं स्वर निराला–साहित्य में सहज ही विद्यमान है। राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष को गति और शक्ति देने में निराला की देश–प्रेम से जुड़ी कविताओं और उनके गद्य–साहित्य का विशेष योगदान है। उनकी क्रांति की आकांक्षा, समाज में आमूल परिवर्तन और नवनिर्माण की साध के पीछे उनके विद्रोही व्यक्तित्व और सतेज पौरुष की विशिष्ट भूमिका है।

lUnHkZ %

1. राग–विराग, सं0 रा0 वि0 शर्मा, पृ0 86
2. राग–विराग, सं0 रा0 वि0 शर्मा, पृ0 88
3. अणिमा, पृ0 55
4. अनामिका, दिल्ली पृ0 58

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 16-20

ijk.kk e ifrikfnr HkfDr dh vo/kkj.kk

fi;dk jk;*

प्रायः चार लाख श्लोकों को समाहित करने वाले महापुराणों की संख्या 18 है। ये अष्टादश पुराण अधोलिखित श्लोक–

^^e}; Hk}; po c=;e o pr"V;eA
vukifYyx&dLdkfu ijk.kkfu ip{krAA

के अनुसार इस प्रकार है–(1) मत्स्य, (2) मारकण्डेय, (3) भविष्य, (4) भागवत, (5) ब्रह्माण्ड, (6) ब्रह्मवैवर्त, (7) ब्रह्म, (8) वामन, (9) वराह्, (10) विष्णु, (11) वायु, (12) अग्नि, (13) नारद, (14) पद्म, (15) लिंङ्ग,(16) गरूड् (17) कूर्म, और (18) स्कन्द। पद्मपुराण में इन पुराणों की सत्त्व, तम और रज–इन तीन गुणों के आधार पर विभक्त किया गया है, जिनमें विष्णु–विषयक पुराण सात्विक, शिव–विषयक तामस तथा ब्रह्मा विषयक राजस माने गये हैं। इनके अतिरिक्त 18 उपपुराणों का भी उल्लेख मिलता है। गरूण पुराण के अनुसार इनके नाम इस प्रकार हैं–(1) सनत्कुमार (2) नरसिंह, (3) स्कन्द, (4) शिवधर्म, (5) आश्चर्य, (6) नारदीप, (7) कापिल, (8) वामन, (9) औशनस, (10) ब्रह्माण्ड, (11) वारूण, (12) कालिका माहेश्वर, (13) माहेश्वर, (14) साम्ब, (15) सौर, (16) पाराशर, (17) मारीच और, (18) भार्गव इन नामों के विषय में पर्याप्त मतभेद है। देवी भागवत के अनुसार उपर्युक्त स्कन्द, वामन, ब्रह्माण्ड, मारीच और भार्गव के स्थान पर क्रमशः शिव, मानव, आदित्य, भागवत, और वासिष्ठ नाम मिलते हैं। कौन महापुराण है और कौन उपपुराण, यह भी विवाद का विषय है। यह समग्र पुराण साहित्य परम्परया वेद व्यास रचित माना जाता है। विषय–वस्तु विश्लेषण और व्याख्या, प्रभविष्णुता, धर्म–दर्शन, पूजा–पद्धित और आध्यात्मिक प्रेरणा और जन–सामान्य की प्रतीति आदि समस्त क्षेत्रों में भारतीय–पुराण–साहित्य अतुलनीय वैभवसम्पन्न है। इसलिए सम्भवतः ^^;fngkfLr rnU;= ;UugkfLr u rr Dofpr** का बोध किया गया है। हिन्दू–धर्म पूर्णतया पौराणिक आधार पर प्रतिष्ठित धर्म है। वेद मंत्रों में देवों की स्तुतिमात्र है, ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञादि के प्रसंग में यत्र–तत्र संक्षिप्त रूपेण कथाओं का भी उल्लेख है, परन्तु विस्तार पूर्वक एकत्र ही कथाख्यानोपाख्यानादि का संग्रह ही महर्षि वेदव्यास–प्रणीत पुराणों का उद्देश्य है। वेद के अतिसंक्षिप्त प्रसंग पुराणों में स्वतंन्त्रतया समुपवृहित हैं'–यही आधार पुराणों को वेदों से किञ्चत् पृथक स्वरूप देता है, परन्तु विषय–वर्णन की दृष्टि से उनका वेदवत् प्रामाण्य अभिमत है। उपासना–भाण्डार, मुक्ति–द्वार ज्ञानाकार, भक्ति–साधन और कर्म–प्रदीप पुराण ही हैं, जो भगवदवतारवैशिष्ट्य की वर्णन–गाथा से जीव को ईश्वर की शरण में समुपस्थापित करने में अत्यन्त सहयोगी ओर उपयोगी हैं। वेदार्थ–विस्तार के लिए, उनकी दुरूहता और तत्त्व साक्षात्कार के काठिन्य को सरलीकृत करने हेतु पुराणानुशीलन परमावश्यक है–

^^bfrgkl&ijk.kkH;k onkFkeicg;rA**[1]
fofo/k oklukfHkHkkr HkokVoh e ckjEckj Hkeek.k**

जीव के लिए पुराण सरल आलोकमार्ग है–

^^ijk.k i;kykpue**[2]

यही कारण है कि पितामह ने प्रथमतः सभी विद्याओं में पुराण–विद्या का स्मरण किया, पुनः वेद निर्गत हुए–

*शोधच्छात्रा, संस्कृत–विभाग, दी0द0उ0गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

^^iqjk.k lo'kkL=k.kka iFkea czge.kk Le`reA
vuUrja p oD=sH;ks osnkLrL; fofueZrk%AA*[3]

सर्वशास्त्रज्ञ भी पुराण–ज्ञानाभाव में विचक्षण नहीं हो सकता–

;ks osn prqjks osnku lkaxksifu"knks f}tA
iqjk.ka uSo tkukfr u p l L;kf}p{k.k%AA[4]

इसी तथ्य का समर्थन पद्मपुराण भी करता है–

cgq'kkL=s lEHkk;L; cgqu osnku lfoLrjeA
iqlk Jqrs iqjk.kL; u lE;x ;kfr n'kueAA[5]

धार्मिक–सन्देह निवृत्ति और आध्यात्मिक–परलोक मार्ग–प्रवृत्ति हेतु भी पुराणानुशीलन परम आवश्यक है। शास्त्रों में अप्रतर्क्य पुराण मानव–धर्मशास्त्र–सांगवेद, चिकित्सादि में पुराणों का प्रथम स्थान महाभारत में निर्दिष्ट है, क्योकि ये भगवदाज्ञारूप है–

iqjk.ka ekuoks /keZ% lkaxks osnf'pfdfRlreA
vkKk&fl)kfu pRokfj u gUrO;kfu gsrqfHk%AA[6]

धार्मिक–नैतिक–सामाजिक सद्व्यवहार में सौविध्य–हेतु पुराण हिन्दू–जाति–सर्वस्व भारतीय संस्कृति के पोषक–मानव समाज के उद्धारक एवं पथ–प्रदर्शक तथा आयूर्य–साहित्य के आधार स्तम्भ है। अतएव महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी विद्याओं की गणना में पुराणों का प्राथम्य दिखाया है–

iqjk.kU;k;ehekalk /keZ'kkL=kaxfefJrk%A
Okksnk% LFkkukfufo|kuka /keZL; p prqn'kAA[7]

इन पुराणों की प्रयोजनीयता तो स्पष्ट ही है– आचार्यवाद जीव गोस्वामी ने अपने ''तत्वसन्दर्भ'' में पुराणार्थ की वेदार्थ से महनीयता मानने में तीन कारण दिये हैं– (1) वैदिक साहित्य की पुष्पारता (2) वेदार्थ की दुराधिगमता, (3) वेदार्थनिर्णय में मुनियों का विरोध। पुराण इन्हीं जटिलताओं का निराश हैं। इनके लक्षणों का उपन्यास करना भी प्रासंगिक होगा।

मत्स्य, विष्णु, तथा ब्रह्माण्ड आदि महापुराणों में पुराण–पञ्चलक्षणों सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (सृष्टि का–विस्तार, लय तथा पुनः सृष्टि) सृष्टि की आदि वंशावली, मन्वन्तर और वंशानुचरित (सूर्य–चन्द्रादिवंशीय राजाओं का परिचय) की गणना की गई है–

lxZ'p ifrlxZ'p oa'kks eUoUrjkf.k pA
oa'kkuqpfjra pSo iqjk.ka i×p&y{k.keAA

परन्तु सूक्ष्म रूप से विचार करें तो पुराणों के वर्ण्य–विषय का मुख्य उद्देश्य आर्ष–धर्म, भारतीय–संस्कृति तथा ईश्वर में आस्था के मूल को सम्बलित करना था। वेदों की दुष्पारता और वेदार्थ की दुरधिगमता का सुन्दर हल प्रस्तुत करने के साथ ही साथ वैदिक दुरूह मंत्रों और शुष्क–स्मृति–श्लोकों से कहीं अधिक जनसामान्य के हृदय को अपने भक्ति–सम्पुटित मधुर–सरल–श्लोकों के द्वारा आकृष्ट करना भी पुराणों की भूयसी विशिष्टता है। इसलिए नारदीय पुराण में उन्हें वेदार्थों से अधिक माना गया है–

onkFkkZnf/kda eU;s iqjk.kkFkZ ojkuusA
onk% ifrf"Brk% lo iqjk.ks uk= la'k;%AA[8]

अशोष सरोवर से स्रोतस्विनियों की भाँति भगवन् से असंख्य अवतार निकलते हैं–

vorkjk g;la[;s;k gjs% lRofu/ks f}tk%A
;Fkk·fonkfluk% dqY;k% ljl% L;q% lgl'k%AA[9]

परन्तु कुल अवतारों की संख्या 24 मानी गयी है जिसे और संक्षिप्त करके 10 कर दिया गया है। पुराण इन्हीं अवतारों के लोकोत्तर शौर्य एवं सौन्दर्य के प्रति महती श्रद्धा दिखाते हैं। इस प्रकार पुराण भक्ति प्रचारक ग्रन्थ हैं–हिन्दू धर्म का अर्वाचीन रूप पुराण–प्रतिपादित ही है।

पुराण के अनुसार समाधि–सुख की भाँति भक्ति सुख की भी स्वतन्त्र पुरूषार्थता के कारण भक्तियोग भी परम पुरुषार्थरूपेण अभिप्रेत है। इसलिए जीवन्मुक्त अमलात्मा ज्ञानियों के लिए भी भक्ति आवश्यक रूप में प्रतिपादित की गई है–

vkRekjke'p eu;k% fuxzUFkk vI;q:ØeA
dqoZUR;gSrqdha HkfDrfeRFkEHkwrxq.kks gfj%AA[10]

कर्म तब तक कार्य है जब तक प्रभुकथा श्रवणादि में श्रद्धा न उत्पन्न हो जाय–

rkoRdekZf.k dqohZr u fufoZ|;srkorkA
eRdFkkJo.kknkS ok J)k ;koUu tk;rsAA[11]

सामान्यतया सभी पुराणों में भक्ति इस दुःखबहुल संसार से परमानन्द पूर्ण–स्थिति को ले जाने की एकमात्र साधन–स्वरूपा बतायी गयी है। इस तत्त्व का प्रतिपादन प्रत्येक पुराण में प्राप्य है, परन्तु श्रीमद्भागवत उनमें भक्ति का सर्वाङ्गीण विश्लेषण प्रस्तुत करने में अग्रणी है। उसके अनुसार प्रेमानुरागैकपूर्णपयोधि–रूप परमात्मा में संसक्त भक्ति से पृथक् कोई अन्य कल्याणकारी मार्ग दृष्टिगोचर नहीं होता है–

u ;|T;eku;kHkoR;k HkxoR;f[kykRefuA
In'kks·fLr f'ko% iUFkk ;ksfxuka cze fl);s**AA[12]

भगवत्भक्ति में शीघ्र परमानन्द सम्बन्ध–प्रभाव द्वारा पाप–प्रत्यूह का विनाश कर, पुनः अग्नि–पूत–सुवर्णेव निर्मल स्वकीय स्वाभाविक रूप की प्राप्ति कर गलितमलिनता वाला संस्कारीभक्त अपने अमलान्तःकरण में शाश्वती शान्ति की अनुभूति करता है–

Lk[;ckydks dks ifr igykn dks opu&[13] भक्ति साधना द्वारा परमात्मत्व को भी वशीभूत कर लेने वाले भक्त के लिए पुनः कुछ प्राप्य शेष नहीं रहता, अतः पुराणों में परमात्म–तत्व–प्रापण हेतु भक्ति से गरीयान् कोई अन्य साधन नहीं बताया गया है–

^^/kekFkZdke% fdk rL;] efDrLrL; dja fLFkrkA
leLr txrka eqya ;L; HkfDr% fLFkjk Rof;AA [14]

दुर्लभ मानवयोनि–जिसकी निमित्ति ब्रह्मा के भी मोद का कारण बनी। ब्राह्मण वचन को प्राप्त कर आत्मश्रेय के लिए प्रयत्न–शील न होने वाला मूढ़धी असद्–ग्रहण द्वारा आत्मघात ही करता है–

yC/ok dFkfpUuj tUeny Hk r=kfi i|LRo Jfr ikjn'kueA
;% LokReeDrks u ;rr e<</kh] lg;kRegk Lo fofugUR; lnxzgkrA[15]

श्रीमद्भागवत में इसी तथ्य की सम्पुष्टि उद्धव के प्रति भगवान कृष्ण के वचनों से, कृष्ण के प्रति नृप मुचुकुन्द के वचनों से तथा केवल्योपनिषद् की उक्तियों से होती है–

^^reodk tkukFk vkRekueU;kokpk foeUpFkke rL;o lrrA
bg pnonhFk lR;efLr uk pnonhUegrh foukf"V%AA** [16]

इसलिए पूर्ण एकात्मकता से भगवद्भजन ही करणीय है–वैयसिक शुकदेव का मन्तव्य है–

vdke% loZdkeks ok ek{kdke mnkj/kh%A
rhoz.k HkfDr;ksxu Hkt r i|:"ka ijeAA** [17]

श्रीमद्भागवत में वर्णित मुक्ति साधनों में निष्काम–कर्म, ज्ञान तथा भक्ति इन तीन की गणना की गयी है। इनमें कृपाणधारासमानत्व के कारण जनसामान्य द्वारा दुष्कर एवं दुष्प्राप्य है–ज्ञान तथा कष्टसाध्य है निष्काम–कर्मयोग, परन्तु भक्ति तो सबसे सुभग सुलभ और सरल प्रतीत होती है–

^;ksxkL=;ks e;k iksDrk u'.kka J;ks fof/kRlk;kA
Kkua deZ p HkfDr'p ukik;ks·U;ks·fLr dq=fprAA[18]

जाति और सम्प्रदाय के सकीर्ण बन्धनों से अबाधित भक्ति–मार्ग सर्वजन–सुलभ है–यही बात देवी–भागवत में भी द्रष्टव्य है–

ekxkZL=;ks e fo[;krk ek{k iklrks uxkf/ki%A
de;ksxks Kku;ksxks HkfDr;ksx'p lÙre%AA
=;k.kkel;;ks ;kX;% drq 'kD;ks·fLr loFkkA
lqyHkRokUekulRokRdk;fpÙk|ih·ukrAA

पौराणिक धर्म को पूर्णतया डिमोक्रैटिक रेलिजन कह कर डॉ0 रमापाण्डेय यह स्वीकारती हैं कि पुराणों की उदारता और सहिष्णुता ने एक आह्लादपूर्ण पर्यावरण समाज को दिखाया है। ईश्वरसाधना से श्वपच भी मोक्षाधिकारी हो जाता है–

pk.Mkyk&efuJ"B% fo".kHkDrks f} tkf/kd%A
fo".kHkfDr foghu'p f} tk·fi 'oipkf/kd%AA[20]

यह आराधना या भक्ति बिम्बों या प्रतीकों (मूर्तियों) से घनिष्टसम्बन्ध रखती है। चिन्तन की एकाग्रता के लिए भक्त एक माध्यम चाहता है और धीरे–धीरे यही माध्यम–इष्ट देव का प्रतीक उसके हृदय में दृढता से अंकित हो जाता है।, फिर तो चेतःसद्मनि स्थित उसी मनोहर आकृति का ध्यान करता हुआ वह साधना की क्रमशः उच्च, उच्चतर और उच्चतम स्थिति तक पहुँच जाता है। प्रकारान्तर से श्रीमद्भागवत् में भी इस बात का समर्थन है–

bfreR;fHk/kkuu eU=efrleefrldeA
;tr ;K i#"k l lE;Xn'kuu%i ekuAA[21]

भगवान् को वश में रखने के लिए न तो तप की आवश्यकता है, न वेदाध्ययन की, न ज्ञानोपार्जन की–न कर्मो के अनुष्ठान की ही यहाँ श्रेष्ठता है, अपितु भगवत्साधनार्थ भक्ति ही उत्कृष्ट साधन है–

u rikfelu on'p Kkuukfi u del.kkA
gfjfg lkg;r HkoR;k iek.k r= xkfidk%AA [28]

यद्यपि भगवद्भक्ति में जीवमात्र का अधिकार है, पशुपक्षियों में ज्ञान–साधनाभाव के कारण शास्त्रकार मनुष्य मात्र को ही भक्ति का प्रधान अधिकारी बताते हैं–

'kkL=kf/kdkjRokUeu";L;----------------------^^cknjk;.k 0;kl%cgel=

प्रगाढ़ भक्ति से सन्तुष्ट माधव सभी कार्यों का परित्याग कर एक ही भक्त के लिए अलौकिक कर्म कर बैठते हैं, असम्भव भी सम्भव कर देते हैं। भगवत्पादपद्मपरागसमासक्तचेता भक्त भावाम्बुधि को गोपद की भाँति पारकर परम–पद प्राप्त करता है–

lekfJrk ; iniYYolyo egRin i.; ;'kk ejkj%A
HkkokEcf/koR lin ij in in ;nfoink u r"kkeAA[23]

सर्वदाकल्याकारी भगवन्नाम का उच्चारण करते हुए, भगवन् के रूप का ध्यान करते हुए, लीला श्रवण करते हुए, यशः चिन्तन करते हुए उनमें ही आसक्त चिन्तन वाला भक्त जन्म–मरण–चक्र को अतिक्रान्त कर लेता है–

J.ou x.ku lLej;'p fpUr;u ukekfu :ikfu p exykfu rA
fØ;kl ;koPpkju.kkjfoUn;k% vkfo"Vprk u Hkok;dY;rAA[24]

सृष्टि के उद्भव विकास और लय की कथा कहते हुए पौराणिक आख्यान एक ही ईश्वर के तीन रूपों को जागतिक प्रपञ्च का करण मानते हैं। ये तीन रूप ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं, जो सृजन पालन और संहार के गुरूतर कार्यों का भार सम्भालते हैं। विख्यात है कि ये तीन देव–क्रमशः रज, सत्व और तमः गुणों के प्रतीक माने जाते हैं अतः ये गुण प्रधान मानकर तीन श्रेणियों में बाँटा गया है।

वस्तुतः प्रिय की प्रियतमा के प्रति प्रेम–प्रगाढ़ता अपनी दिशा जब ईश्वर की ओर उन्मुख कर देती है तब वही प्रेम भक्ति की तन्मयता में बदल जाता है। तुलसीदास की उक्ति–^^dkfefg ukfj fi;kfj ftfe----------fi; ykxg ekfg jke** की सार्थकता का प्रमाण्य भी यहाँ निहित है। फिर तो अपनी सभी दुरूक्त और दुष्कृत की शान्ति हेतु भक्त अपने एकमात्र आश्रय जनार्दन की ही शरण लेता है, क्योकि भगवान् की सृष्टि में भगवान् से पृथक् वह किसी को देखता ही नहीं। परमेश्वर के पादारविन्द के विरूद्ध ले जाने वाले अतुल ऐश्वर्य की कामना को भी वह अभिशाप समझता है, और उसके बदले वह ईश्वर के स्वरूप का प्रतिपादन करने वाले सज्जनों के संग की ही प्रवर इच्छा करता है। वामन पुराण में विष्णु की चुनी हुयी 108 उपाधियों का प्रवचन सरस्वती मुख से किया गया है। अतः यह ^^lkjLorL=k=** भी समझा जाता है–

eknfg ,;'o;leuRre RoRiknkjfoUnL; fo:)HkreA
Ro nio e nfg lrk p lx roLo:Ik&i:fr iknkukeAA [25]

पुराणों में मानववृत्त देवस्तुतियाँ अधिकांशतः उपलब्ध है; परन्तु देववृत्त देव स्तुतियाँ भी वहाँ कम नहीं हैं। मत्स्य–पुराण में ब्रह्मा द्वारा भगवान् वामन की स्तुति इस श्रेणी में आती है। इसी स्तोत्र में वह वामन की स्तुति 'जय जय' शब्दों के साथ करते हैं–

t;k/kh'k t;k'k"k t;loxjk gjA
tUeeR;q&tjk·rhr t;kuUr t;kP;qrAA

भगवान् की तरह भगवत्कथा भी रसमयी है। पद्म–पुराण के भागवत–महात्म्य वंश में इस तथ्य को बारम्बार अनेक प्रकार से प्रस्तुत किया गया है–

^^dFkkerjlkLokn d;'ky%'kkudk·cohr**
^^vio&jl:ik p dFkk r= Hkfo";fr**
^^lokdFkkjlegk furjk focRoeA [26]A

यह भक्तिरस अन्य रसों की भाँति क्षणिक आनन्ददायी नहीं न तो वह पानक आयुर्वेदीय रस ही है जो किञ्चित्काल के लिए शरीर को पुष्ट कर दे–यह तो सभी रसों का सारभूत सुधारस को भी महत्ता में, प्रभाव में, गुण में, अतिक्रान्त कर देने वाला है। इसके द्वारा प्रदत्त अमरत्व कल्पान्त में भी अटल और अपरिवर्तनीय है। बिना भगवत् प्रसादन किये जरामरणजन्मादि बन्धनों से मुक्ति नहीं होती है–

;koTtuk u J.kr Hkfofo".kHkfDr
Lkk{kkRlqlkjle'k"kjld lkjeA
Rkotjkej.ktUe'krkfHk?kkr
n% [kkfurkfu yHkr cgnqtkfuAA[27]

भक्तिरस पूर्ण पौराणिक स्तोत्रों की समालोचना करते हुए नलिनीकान्त जी अपने ग्रन्थ ^^fQykl Qh vkQ fgUnw lk/kuk** में पौराणिक युग को धर्म–प्रतिक्रियात्मक युग कहते हैं। डा0 रमा पाण्डे स्तुतियों के स्वरूप और प्रतिपाद्य पर विचार कर पौराणिक स्तोत्रों को यथार्थ और कल्पना का सुखद मिश्रण होने का निष्कर्ष देती है। पौराणिक स्तुतियाँ प्रायः देवों में–ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश और अन्य सामान्य देवों को तथा देवियों में–सरस्वती लक्ष्मी, शक्ति को, एवम् नदियों, पर्वतों एवं सामूहिक देवों को समर्पित हैं। इन समस्त स्तुत्य देवों की स्तुतियों में समृद्ध पुराणों का विस्तृत परिसर भक्ति की क्रीडास्थली है। रस का सागर है।

lUnHk %

1. आदिपर्व महा0भा0 1/267
2. श्रीकृष्ण मणि त्रिपाठी, समीक्षा भाग पृ0 2 (प्रस्तावना)
3. मत्स्य पु0 53/3
4. ब्रह्मकाण्ड प्रक्रिया 1/170
5. पद्मपुराण 4/105/113
6. महाभारत उद्धृत पुराण पर्यालोचनम् पृष्ठ 2
7. याज्ञवल्क्य स्मृति
8. नारदीय पु0 2/24/17
9. श्रीमद्भागवत गीता 1/3/26
10. श्रीमद्0 1/7/10
11. श्रीमद् भा0 11/20/9
12. श्रीमद् भा0 3/25/99
13. श्रीमद् भा0 7/7/36–37
14. विष्णु पु0 1/20/27
15. विवेकचूड़ामणि–4 (ब्रह्मनिष्ठा का महत्व)
16. कैवल्योपनिषद् 1/5
17. श्रीमद् भा0 2/3/10
18. श्रीमद् भा0 11/20
19. देवी भाग 7/37–23
20. बृहन्नारायण पृष्ठ 32/39
21. भा0 1/5/38
22. श्रीमद् भा0 2/18
23. श्रीमद् भा0 10/14/58
24. श्रीमद् भा0 10/2/37
25. गरूण पु0 3/26/20
26. पद्म पु0 पा0 ख0 1/3.3/7,4/80
27. पद्म पु0 पा0 सं0 85/33

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 21-23

tkfrck Qqys vkSj tkfr&ç’u

vfe"k oekZ*

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जाति–व्यवस्था के शोषक रूप की गहरी पहचान जोतिबा फुले के साहित्य में मिलती है। जाति–व्यवस्था की बुनियाद पर इतनी गहरी चोट करने वाले फुले संभवतः पहले आधुनिक भारतीय चिंतक हैं। उन्नीसवीं सदी के नवजागरण में तमाम सामाजिक–सांस्कृतिक–राजनीतिक मसलों पर नए ढंग से विचार हो रहे थे। जाति–व्यवस्था भी उन मसलों में से एक थी। अन्य समाज सुधारकों ने भी अपने–अपने ढंग से जातिवाद के मसले पर विचार किया है। लेकिन फुले के विचार इस मामले में सर्वाधिक क्रांतिकारी और महत्वपूर्ण हैं। 1855 ई. में फुले की पहली रचना 'तृतीय रत्न' का प्रकाशन हुआ। 'तृतीय रत्न' एक नाटक है, जिसमें एक माली कुनबी (पिछड़ी जाति) को एक ब्राह्मण जोशी किस तरह से ठगता है और धर्म के नाम पर उसकी अज्ञानता का लाभ उठाता है, इसे फुले ने विस्तार से और बड़े–ही नाटकीय ढंग से दिखाया है। नाटक के विषय को स्पष्ट करते हुए फुले ने स्वयं लिखा है– ''माली कुनबी के घर में उनका बच्चा अपनी माँ की कोख में जैसे–तैसे गर्भ को धारण कर ही रहा होता है कि एकाएक ब्राह्मण जोशी अपनी सवारी ले आता है और वह बड़े–बड़े आश्वासन देकर उस स्त्री को किस तरह भिखारी बना देता है, इसके संबंध में मैं यहाँ लिखने का प्रयास करूँगा।''[1]

फुले के लगभग संपूर्ण लेखन के बारे में एक बात कही जा सकती है कि उसमें ब्राह्मणों की धूर्तता और जातिवाद को टिकाए रहने की उनकी जालसाजियों पर सबसे ज्यादा लिखा गया है। फुले आम जनता (पिछड़ी और दलित जातियों के लोग) को बराबर ब्राह्मणों के फंदे से बचे रहने की सलाह देते हैं। अपने 'तृतीय रत्न' नाटक में भी फुले विदूषक के माध्यम से कहते हैं– ''ऐ मेरे सभी माली कुनबी भाइयों! तुम लोग इस संवाद को ध्यान से पढ़ोगे या सुनोगे तो निश्चित रूप से तुम लोग इस बात को अनुभव करोगे कि एक बार अपने घर पर डाका पड़ा, तब भी चल जाएगा, लेकिन इस ब्राह्मण जोशी पर भरोसा करने की बात अपने सपने में भी नहीं सोचनी चाहिए।''[2]

जोतिबा फुले ने 'ब्राह्मणों की चालाकी' नाम की एक छोटी–सी किताब लिखी है। इसमें भी, जैसा कि किताब के नाम से ही स्पष्ट है, ब्राह्मणों की धूर्तता और ठगी को विषय बनाया गया है। शूद्रों के घर बच्चे के पैदा होने से लेकर, शादी–व्याह, गृह–प्रवेश, सूर्य–चन्द्र ग्रहण या अन्य–अन्य धार्मिक कर्मकांडों से लेकर शूद्र की मृत्यु तक के अवसर पर ब्राह्मण–पंडा–पुरोहित उसे किस तरह लूटते हैं, यह इस छोटी–सी पुस्तक का मुख्य प्रतिपाद्य है।

1873 ई. में जोतिबा फुले की एक अत्यंत महत्वपूर्ण किताब आई– 'गुलामगीरी'। इस किताब में जोतिबा ने भारतीय शूद्रों–अतिशूद्रों (पिछड़े–दलित) की तुलना दक्षिण अमेरिकी और अफ्रीकी गुलामों से की है। जोतिबा ने भारतीय दलितों की स्थिति को कई मामलों में गुलामों से भी बदतर बताया है। अपनी इस किताब का उद्देश्य बताते हुए जोतिबा प्रस्तावना में लिखते हैं– ''सैकड़ों साल से आज तक शूद्रादि–अतिशूद्र (अछूत) समाज, जब से इस देश में ब्राह्मणों की सत्ता कायम हुई तब से लगातार जुल्म और शोषण के शिकार हैं। ये लोग हर तरह की यातनाओं और कठिनाइयों में अपने दिन गुजार रहे हैं। इसलिए इन लोगों को इन बातों की ओर ध्यान देना चाहिए और गंभीरता से सोचना चाहिए। ये लोग अपने आप को ब्राह्मण–पंडा–पुरोहितों की जुल्म–ज्यादतियों से कैसे मुक्त कर सकते हैं, यही आज हमारे लिए सबसे महत्वपूर्ण सवाल है। यही इस ग्रंथ का उद्देश्य है।''[3]

*असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल

धर्म के साथ भेदभाव और ऊँच–नीच वाली इस समाज व्यवस्था के गठजोड़ के लिए जोतिबा ब्राह्मणों को ही सीधे–सीधे जिम्मेदार ठहराते हैं। इस सामाजिक व्यवस्था में जिस एक वर्ग के स्वार्थ और हित सर्वाधिक सुरक्षित हैं, वह ब्राह्मणों का ही वर्ग है। जाहिर है ऐसे में इस व्यवस्था को बनाए–बचाए रखने की कोशिश भी यही वर्ग सबसे ज्यादा करता है। जोतिबा बहुत साफ–साफ ब्राह्मणों की इस जालसाजी का पर्दाफाश करते हैं। जोतिबा लिखते हैं– ''उन ब्राह्मणों ने अपना प्रभाव, अपना वर्चस्व इन लोगों (शूद्रादि–अतिशूद्रों) के दिलो–दिमाग पर कायम रखने के लिए, ताकि उनकी स्वार्थपूर्ति होती रहे, कई तरह के हथकंडे अपनाए और वे सभी इसमें कामयाब भी होते रहे।... ब्राह्मण–पुरोहितों ने इन पर अपना वर्चस्व कायम करने के लिए, इन्हें हमेशा–हमेशा के लिए अपना गुलाम बनाकर रखने के लिए, केवल अपने निजी हितों को ही मद्देनजर रखकर, एक से अधिक बनावटी ग्रन्थों की रचना करके कामयाबी हासिल की। उन नकली ग्रंथों में उन्होंने यह दिखाने की पूरी कोशिश की कि उन्हें जो विशेष अधिकार प्राप्त हैं, वे सब उन्हें ईश्वर द्वारा प्रदत्त हैं। इस तरह का झूठा प्रचार उस समय के अनपढ़ लोगों में किया गया और उस समय के शूद्रादि–अतिशूद्रों में मानसिक गुलामी के बीज बोए गए।''[4]

जाति–व्यवस्था को भारत में टिकाए रखने में हिन्दुओं के धार्मिक ग्रंथों की बड़ी भूमिका रही है। इन्हीं ग्रंथों की बातों को ईश्वरीय नियम बताकर जातिवाद को अभेद्य बनाया गया है। इस काम में भी सर्वाधिक मन लगाया ब्राह्मणों ने। जोतिबा इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं– ''अपनी इस चाल, विचारधारा को कामयाबी देने के लिए जातिभेद की फौलादी जहरीली दीवारें खड़ी करके, उन्होंने इसके समर्थन में अपने जाति–स्वार्थसिद्धि के कई ग्रंथ लिख डाले। उन्होंने इन ग्रंथों के माध्यम से अपनी बातों को अज्ञानी लोगों के दिलो–दिमाग पर पत्थर की लकीर की तरह लिख दिया।''[5] बाद में चलकर अंबेडकर ने भी जाति–व्यवस्था के टिके रहने में हिन्दू धर्म ग्रंथों की भूमिका पर विस्तार से लिखा। अंबेडकर का भी स्पष्ट मानना था कि धर्म ग्रंथों पर से आस्था समाप्त किए बगैर भारतीय समाज से जाति–व्यवस्था को समाप्त नहीं किया जा सकता।

जोतिबा 'गुलामगीरी' में हिन्दू देवी–देवताओं की उत्पत्ति के संबंध में मिलने वाली कथाओं के आधार पर उनकी उत्पत्ति की प्रक्रिया और परस्पर विरोधी बातों का माखौल उड़ाते हैं। इसी क्रम में ब्राह्मणों के ब्रह्मा के मुख और शूद्रों के ब्रह्मा के पैर से पैदा होने वाली बात का भी मजाक उड़ाते हैं। इसमें जोतिबा कहीं–कहीं तो बहुत ही कठोर भाषा (गाली–गलौज तक) का इस्तेमाल करते हैं। इतनी कठोरता के साथ ब्राह्मणवाद और हिन्दू धर्म के आडंबरों का विरोध शायद ही किसी और ने किया हो। अंबेडकर ने 'हिन्दू धर्म की पहेलियाँ' में जो बहुत–सारी बातें कही हैं, उनके बीज हमें जोतिबा के यहाँ मिल जाते हैं।

जोतिबा मनुवाद के कट्टर विरोधी थे। वे मनुवाद को पूरी तरह तथ्यहीन और निराधार बताते हैं। 'गुलामगीरी' में ही धोंडीराव के माध्यम से वे कहते हैं– ''इस बात से यह प्रमाणित होता है कि मनु ने अपनी संहिता में जो व्युत्पत्ति सिद्धांत प्रतिपादित किया है, वह एकदम तथ्यहीन, निराधार है। क्योंकि वह सिद्धांत सभी मानव समाज पर लागू नहीं होता।''[6] जाहिर है जोतिबा जब ब्राह्मणवाद या मनुवाद का विरोध करते हैं तो वह केवल प्रतिशोध या प्रतिक्रिया मात्र नहीं है, बल्कि वे ठोस बुद्धिवादी तर्कों के आधार पर अनुभव की जमीन पर अपनी बात को प्रमाणित करते हैं। मनुवाद का बहुत तीखा विरोध जोतिबा ने अपनी पहली ही रचना 'तृतीय रत्न' नाटक में भी किया है। उस नाटक में कुनबी पुरूष ब्राह्मण जोशी से कहता है– ''तुम ब्राह्मण लोग हमारे माँ–बाप को क्या बार–बार इस तरह से नहीं बताते थे कि अरे, तुमको पढ़ने–लिखने का अधिकार, वह कौन है तुम्हारा मनु या फनु, उसके ही कानून के अनुसार नहीं है?... लेकिन अब इस हिन्दुस्थान में अंग्रेज सरकार की .पा से हमारे कुछ माली–कुनबी ऐसे हो गए हैं (और भगवान ने चाहा तो एक दिन महार–मातंग भी हो जाएँगे) कि वे तुम्हारे मनु या फनु के कानून को कूड़ा–कर्कट के ढेर में डालने की परवाह नहीं करते...।''[7]

पिछड़ों–दलितों को ब्राह्मणों के चंगुल से मुक्ति दिलाने के लिए जोतिबा ने लेखन के साथ–साथ आंदोलनात्मक प्रयास भी किए। इसके लिए जोतिबा ने कुछ अन्य पिछड़ी जाति के लोगों के साथ मिलकर 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की। समाज के पहले वर्ष के रिपोर्ट में समाज की स्थापना और उसके

उद्देश्य के बारे में लिखा गया है– ''ब्राह्मण, पंडित, जोशी, उपाध्याय–पुरोहित आदि लोगों की दासता से शूद्र लोगों को मुक्त करने के लिए, जो अपने स्वार्थी (धर्म) ग्रंथों के द्वारा आज हजारों साल से शूद्र लोगों को नीच समझकर गफलत में लूटते आ रहे हैं। इसलिए उपदेश और ज्ञान के द्वारा उनको उनके सही अधिकार समझाने के लिए मतलब, धर्म और व्यवहार से संबंधित ब्राह्मणों के नकली और स्वार्थी ग्रंथों से उनको मुक्ति दिलाने के लिए कुछ जानकार शूद्र लोगों ने इस समाज की स्थापना दि. 24 सितंबर, 1873 को की है।''[8]

उपदेश आदि के जरिए शूद्रों–दलितों को सतर्क–सावधान करने के साथ–साथ सत्यशोधक समाज विवाह आदि में पंडा–पुरोहितों के बहिष्कार पर भी बल देता था और समाज की तरफ से इस तरह के विवाह की व्यवस्था भी की जाती थी। इसका भी पूरा विवरण समाज के वार्षिक रिपोर्ट में मौजूद है।[9]

जोतिबा शूद्रों–अतिशूद्रों के लिए शिक्षा की आवश्यकता को शिद्दत से महसूस कर रहे थे। पिछड़ों–दलितों के शोषण का एक बड़ा कारण था उनका अशिक्षित होना। अपनी रचनाओं में भी और सक्रिय प्रयासों में भी जोतिबा ने सर्वाधिक बल पिछड़ों–दलितों की शिक्षा पर दिया है ताकि ये शिक्षित होकर ब्राह्मणों की चालाकियों को समझ सकें और उससे मुक्त हो सकें। स्वयं फुले ने पिछड़ों–दलितों के लिए पाठशाला चलाए जिसमें उनकी पत्नी सावित्री बाई फुले भी शिक्षिका के तौर पर पढ़ाने का काम करती थीं। फुले ने हंटर शिक्षा आयोग को शिक्षा में सुधार के संबंध में 1882 में जो मेमोरेंडम सौंपा, उसमें भी उन्होंने पिछड़ों–दलितों की शिक्षा के संबंध में विस्तार से लिखा, उसकी अड़चनों को उजागर किया तथा उसकी संभावना एवं रूपरेखा भी आयोग के सामने रखी। इस मेमोरेंडम में जोतिबा ने शिक्षा विभाग में ब्राह्मणों के वर्चस्व की ओर ध्यान दिलाया और बताया कि ऐसी हालत में पिछड़ों–दलितों के लिए शिक्षा को सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। उन्होंने अंग्रेजी सरकार से शिक्षा विभाग से ब्राह्मणों के वर्चस्व को धीरे–धीरे समाप्त करने की अपील की ताकि अन्य जातियों के लोगों को भी उचित अवसर मिल सके।[10]

जोतिबा ने अपने मेमोरेंडम में दूसरी महत्वपूर्ण बात कही कि प्राइमरी पाठशालाओं के शिक्षक प्रशिक्षित हों और जहाँ तक संभव हो सके खेतिहर जातियों से हों, जो विद्यार्थियों से घुलमिल सकें और उनकी जरूरतों को ब्राह्मण शिक्षकों (जो गैर–ब्राह्मण बच्चों के प्रति एक दुराव का भाव रखते हैं) की तुलना में ज्यादा बेहतर ढंग से समझ सकें। इसके अलावा फुले ने महार, माँग आदि दलित जातियों के बच्चों के लिए अलग पाठशालाएँ खुलवाने की माँग भी रखी, क्योंकि जातिगत कारणों से इन्हें सामान्य पाठशालाओं में जाने की अनुमति नहीं दी जाती। यदि ये सामान्य पाठशालाओं में जाते भी हैं तो इनके साथ घृणा का व्यवहार किया जाता है।

इस प्रकार जोतिबा के पूरे चिंतन और सक्रिय प्रयासों को ध्यान में रखें तो हम देखते हैं कि उन्होंने अपना पूरा जीवन शूद्रों–अतिशूद्रों की दशा को सुधारने और उन्हें सम्मानजनक जीवन का अधिकार दिलाने के लिए समर्पित कर दिया। जातिवाद के खिलाफ मोर्चेबंदी में उनके क्रांतिकारी विचारों ने निश्चय ही ऐतिहासिक भूमिका अदा की है।

lUnHkZ %

1. महात्मा जोतिबाफुले रचनावली–1,संपा.– एल.जी. मेश्राम 'विमलकीर्ति', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ. 13
2. वही, पृ. 31–32
3. वही, पृ.135
4. वही, पृ.135–36
5. वही, पृ. 146
6. वही, पृ.150
7. वही, पृ. 45
8. वही, पृ. 241
9. देखें, वही, पृ. 242–250
10. देखें, वही, पृ. 275–76

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. III, No. III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 24-27

vk|kxhdj.k&uxjhdj.k d iHkko d QyLo:i xkeh.k lenk; dh fL=;k e jktufrd tkx:drk

Mk0 vkei dk'k ;kno*

परम्परागत ग्रामीण नेतृत्व में स्त्रियों की कोई सहभागिता नहीं थी। परन्तु वर्तमान समय में स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आई है। इस सम्बन्ध में जब उत्तरदाताओं से यह प्रश्न किया गया कि क्या स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आयी है ? तो अधिकतर उत्तरदाताओं का यह मत है कि वर्तमान समय में स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आई है। यह तथ्य निम्न सारिणी संख्या 6/5 से स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

lkfj.kh l[;k 6@5 Øekd&144
fL=;k e jktufrd tkx:drk vku l lEcfU/kr fL=;k e jktufrd tkx:drk vkbZ g

उत्तरदाता	हाँ	नहीं	ज्ञात नहीं	योग
उच्च जाति	58 (68.24)	27 (31.76)	– –	85 (100)
मध्यम जाति	90 (61.64)	56 (38.36)	– –	146 (100)
निम्न जाति	96 (56.80)	58 (34.32)	15 (8.88)	169 (100)
योग	244 (61.00)	141 (35.25)	15 (3.75)	400 (100)

उपरोक्त सारिणी संख्या 6/5 से यह तथ्य स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि उच्च जाति समूह के 85 उत्तरदाताओं में से 68.24% उत्तरदाता इस तथ्य को मानते हैं कि स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आई है जबकि 31.76% उत्तरदाता इस तथ्य को नहीं मानते हैं कि स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आई है।

मध्यम जाति समूह के 146 उत्तरदाताओं में से 61.64% उत्तरदाता इस तथ्य को मानते हैं कि स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आई है जबकि 38.36% उत्तरदाता इस तथ्य को नहीं मानते हैं कि स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आई है।

निम्न जाति समूह के 169 उत्तरदाताओं में से 56.80% उत्तरदाता इस तथ्य को मानते हैं कि स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आई है जबकि 34.32% उत्तरदाता इस तथ्य को नहीं मानते हैं कि स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आई है। 8.88% उत्तरदाता इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं।

इस प्रकार सारिणी संख्या 6/5 से स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि अधिकतर उत्तरदाता इस तथ्य को मानते है कि स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आयी है।

fL=;k e jktufrd tkx:drk vku d dkj.k% जब उत्तरदाताओं से यह प्रश्न किया गया कि स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आने के कारण क्या है ? तो अधिकतर उत्तरदाताओं का यह मत है कि स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आने के प्रमुख कारण के रूप में औद्योगीकरण–नगरीकरण उत्तरदायी

*प्रवक्ता, समाजशास्त्र, श्री विद्याधर तिवारी महिला महाविद्यालय, सुल्तानपुर, दरियावगंज, जौनपुर।

है। यह प्रश्न केवल उन उत्तरदाताओं से किया गया जो इस तथ्य को मानते हैं कि स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आयी है। यह तथ्य निम्न सारिणी संख्या 6/6 से स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

lkfj.kh l[;k 6@6 Øekd&145
fL=;k e jktufrd tkx:drk vku d dkj.k l lEcfU/kr ie[k dkj.k

उत्तरदाता	औद्योगीकरण–नगरीकरण	अन्य कारण	योग
	36	22	58
उच्च जाति	(62.07)	(37.93)	(100)
	58	32	90
मध्यम जाति	(64.44)	(35.56)	(100)
	63	33	96
निम्न जाति	(65.62)	(34.38)	(100)
	157	87	244
योग	(64.34)	(35.66)	(100)

उपर्युक्त सारिणी संख्या 6/6 से यह तथ्य स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि उच्च जाति समूह के 58 उत्तरदाताओं में से 62.07% उत्तरदाताओं ने स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आने के प्रमुख कारण के रूप में औद्योगीकरण–नगरीकरण है जबकि 37.93% उत्तरदाताओं ने स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आने के लिए अन्य कारकों को उत्तरदायी माना है।

मध्यम जाति समूह के 90 उत्तरदाताओं में से 64.44% उत्तरदाताओं ने स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आने के प्रमुख कारण के रूप में औद्योगीकरण–नगरीकरण माना है जबकि 35.56% उत्तरदाताओं ने स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आने के लिए अन्य कारकों को उत्तरदायी माना है।

निम्न जाति समूह के 96 उत्तरदाताओं में से 65.62% उत्तरदाताओं ने स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आने के प्रमुख कारण के रूप में औद्योगीकरण–नगरीकरण माना है जबकि 34.38% उत्तरदाताओं ने स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आने के लिए अन्य कारकों को उत्तरदायी माना है।

इस प्रकार सारिणी संख्या 6/6 से यह तथ्य स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि अधिकतर उत्तरदाताओं ने स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आने के लिए प्रमुख कारण के रूप में औद्योगीकरण–नगरीकरण को उत्तरदायी माना है।

fL=;k dk] puko e Hkkx yu l lEcfU/kr % परम्परागत ग्रामीण नेतृत्व में स्त्रियाँ चुनाव में भाग लेने की कोई सहभागिता नहीं थी। परन्तु वर्तमान समय में स्त्रियाँ चुनाव में भाग ले रही हैं। इस सम्बन्ध में जब उत्तरदाताओं से यह प्रश्न किया गया कि क्या स्त्रियाँ चुनाव में भाग ले रही हैं ? तो अधिकतर उत्तरदाताओं का यह मत हैं कि वर्तमान समय में स्त्रियाँ चुनाव में भाग ले रही हैं। यह तथ्य निम्न सारिणी संख्या 6/7 से स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

lkfj.kh l[;k 6@7 Øekd&146
fL=;k puko e Hkkx yu l lEcfU/kr fL=;k puko e Hkkx y jgh g

उत्तरदाता	हाँ	नहीं	ज्ञात नहीं	योग
	55	30	–	85
उच्च जाति	(64.71)	(35.29)	–	(100)
	87	59	–	146
मध्यम जाति	(59.59)	(40.41)	–	(100)
	100	63	6	169
निम्न जाति	(59.17)	(37.28)	(3.55)	(100)
	242	152	6	400
योग	(60.50)	(38.00)	(1.50)	(100)

सारिणी संख्या 6/7 से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि उच्च जाति समूह के 85 उत्तरदाताओं में से 64.71% उत्तरदाता इस तथ्य को मानते हैं कि स्त्रियाँ चुनाव में भाग ले रही हैं जबकि 35.29% उत्तरदाता इस तथ्य को नहीं मानते हैं कि स्त्रियाँ चुनाव में भाग ले रही हैं।

मध्यम जाति समूह के 146 उत्तरदाताओं में से 59.59% उत्तरदाता इस तथ्य को मानते हैं कि स्त्रियाँ का चुनाव में भाग ले रही हैं जबकि 40.41% उत्तरदाता इस तथ्य को नहीं मानते हैं कि स्त्रियाँ चुनाव में भाग ले रही हैं।

निम्न जाति समूह के 169 उत्तरदाताओं में से 59.17% उत्तरदाता इस तथ्य को मानते हैं कि स्त्रियाँ चुनाव में भाग ले रही हैं जबकि 37.28%उत्तरदाता इस तथ्य को नहीं मानते हैं कि स्त्रियाँ चुनाव में भाग ले रही है। 3.55% उत्तरदाता इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं।

इस प्रकार सारिणी संख्या 6/7 से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि अधिकतर उत्तरदाता इस तथ्य को मानते कि स्त्रियाँ का चुनाव में भाग ले रही हैं।

fL=;k dk pquko e: Hkkx y:u d: dkj.k % उत्तरदाताओं से जब यह प्रश्न किया गया कि स्त्रियाँ चुनाव में भाग लेने के कारण क्या हैं ? तो अधिकतर उत्तरदाताओं का यह मत है कि स्त्रियाँ चुनाव में भाग लेने के लिए प्रमुख कारण के रूप में औद्योगीकरण—नगरीकरण है। यह प्रश्न केवल उन उत्तरदाताओं से किया गया जो इस तथ्य को मानते हैं कि स्त्रियाँ चुनाव में भाग ले रही हैं। यह तथ्य निम्न सारिणी संख्या 6/8 से यह तथ्य स्पष्ट होता है।

lkfj.kh l[;k 6@8 Øekad&147

fL=;k pquko e: Hkkx y:u d: dkj.k l: lEcfU/kr i:e[k dkj.k

उत्तरदाता	औद्योगीकरण—नगरीकरण	अन्य कारण	योग
उच्च जाति	34 (61.82)	21 (38.18)	55 (100)
मध्यम जाति	52 (59.77)	35 (40.23)	87 (100)
निम्न जाति	58 (58.00)	42 (42.00)	100 (100)
योग	144 (59.50)	98 (40.49)	242 (100)

उपर्युक्त सारिणी संख्या 6/8 से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि उच्च जाति समूह के 55 उत्तरदाताओं में से 61.82% उत्तरदाताओं ने स्त्रियाँ चुनाव में भाग लेने के लिए प्रमुख कारण के रूप में औद्योगीकरण—नगरीकरण माना है जबकि 38.18% उत्तरदाताओं ने स्त्रियाँ चुनाव में भाग लेने के लिए अन्य कारकों को उत्तरदायी माना है।

मध्यम जाति समूह के 87 उत्तरदाताओं में से 59.77% उत्तरदाताओं ने स्त्रियाँ चुनाव में भाग लेने के लिए प्रमुख कारण के रूप में औद्योगीकरण—नगरीकरण माना है जबकि 40.23% उत्तरदाताओं ने स्त्रियाँ चुनाव में भाग लेने के लिए अन्य कारकों को उत्तरदायी माना है।

निम्न जाति समूह के 100 उत्तरदाताओं में से 58% उत्तरदाताओं ने स्त्रियाँ चुनाव में भाग लेने के लिए प्रमुख कारण के रूप में औद्योगीकरण—नगरीकरण माना है जबकि 42% उत्तरदाताओं ने स्त्रियाँ चुनाव में भाग लेने के लिए अन्य कारकों को उत्तरदायी माना है।

इस प्रकार सारिणी संख्या 6/8 से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि अधिकतर उत्तरदाताओं ने स्त्रियाँ चुनाव में भाग लेने के लिए प्रमुख कारण के रूप में औद्योगीकरण—नगरीकरण को उत्तरदायी माना है। उपर्युक्त उत्तरदाताओं के विचार के अनुसार हम कह सकते हैं कि ग्रामीण समुदाय के परम्परागत सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत ग्रामीण नेतृत्व में स्त्रियों की कोई सहभागिता नहीं थी। परन्तु वर्तमान समय में औद्योगीकरण—नगरीकरण के पश्चात् स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आई है। उच्च जाति समूह के

68.24 प्रतिशत उत्तरदाता, मध्यम जाति समूह के 61.64 प्रतिशत उत्तरदाता एवं निम्न जाति समूह के 56.80 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आई है। सम्पूर्ण उत्तरदाताओं में से 61 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आई है (सारिणी संख्या 6/5)।

वे उत्तरदाता जो यह मानते हैं कि वर्तमान समय में स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आयी है उनका मत है कि स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आने का प्रमुख कारण औद्योगीकरण–नगरीकरण है। इस प्रकार के सम्पूर्ण उत्तरदाताओं में से उच्च जाति समूह के 62.07 प्रतिशत उत्तरदाता, मध्यम जाति समूह के 64.44 प्रतिशत उत्तरदाता एवं निम्न जाति समूह 65.62 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आने का प्रमुख कारण औद्योगीकरण–नगरीकरण है। ऐसे सम्पूर्ण उत्तरदाताओं में से 64.34 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आने का प्रमुख कारण औद्योगीकरण–नगरीकरण है (सारिणी संख्या 6/6)।

ग्रामीण समुदाय के परम्परागत सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत ग्रामीण नेतृत्व में स्त्रियों को चुनाव में भाग लेने की कोई सहभागिता नहीं थी। परन्तु वर्तमान समय में औद्योगीकरण–नगरीकरण के पश्चात् स्त्रियाँ चुनाव में भाग ले रही हैं। उच्च जाति समूह के 64.71 प्रतिशत उत्तरदाता, मध्यम जाति समूह के 59.59 प्रतिशत उत्तरदाता एवं निम्न जाति समूह के 59.17 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि स्त्रियों का चुनाव में भाग ले रही हैं। सम्पूर्ण उत्तरदाताओं में से 60.80 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि स्त्रियों का चुनाव में भाग ले रही है (सारिणी संख्या 6/7)।

वे उत्तरदाता जो यह जानते हैं कि वर्तमान समय में स्त्रियों का चुनाव में भाग ले रही हैं उनका यह मत है कि स्त्रियों का चुनाव में भाग लेने का प्रमुख कारण औद्योगीकरण–नगरीकरण है। इस प्रकार के उत्तरदाताओं में से उच्च जाति समूह के 61.82 प्रतिशत उत्तरदाता, मध्यम जाति समूह के 59.77 प्रतिशत उत्तरदाता एवं निम्न जाति समूह के 58 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि स्त्रियों का चुनाव में भाग लेने का प्रमुख कारण औद्योगीकरण–नगरीकरण है ऐसे सम्पूर्ण उत्तरदाता यह मानते हैं कि स्त्रियों का चुनाव में भाग लेने का प्रमुख कारण औद्योगीकरण–नगरीकरण है (सारिणी संख्या 6/8)।

उपर्युक्त तथ्यगत विश्लेषणोपरान्त यह स्पष्ट होता है कि औद्योगीकरण–नगरीकरण के प्रभाव के फलस्वरूप ग्रामीण समुदाय के परम्परागत सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता नहीं थी। औद्योगीकरण–नगरीकरण के पश्चात् स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आने के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं ने स्पष्टतः इस तथ्य को स्वीकार किया है कि वर्तमान समय में स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आई है। स्त्रियों में राजनैतिक जागरूकता आने के कारण से सम्बन्धित उत्तरदाताओं ने औद्योगीकरण–नगरीकरण माना है।

ग्रामीण समुदाय के परम्परागत सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत स्त्रियों का चुनाव में कोई सहभागिता नहीं थी। औद्योगीकरण–नगरीकरण के पश्चात् स्त्रियों का चुनाव में भाग लेने के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं ने स्पष्टतः इस तथ्य को स्वीकार किया है कि वर्तमान समय में स्त्रियॉ चुनाव में भाग ले रही हैं। स्त्रियाँ चुनाव में भाग लेने के कारण से सम्बन्धित उत्तरदाताओं ने औद्योगीकरण–नगरीकरण को प्रमुख कारण माना है।

lUnHkZ

1. वील्स, ए0 आर0 % चेन्ज इन लीडरशिप ऑफ मैसूर विलेज, इन एन0 एम0 श्रीवास्तव (इ0डी0) इण्डियाज विलेजेज, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे 1955
2. बरटैन्ड एलवीन एल0 % रूरल सोसियोलॉजी, मैकग्रा हील बुक कं0, न्यूयार्क, 1958
3. बिटैली आन्द्रे % इण्डस्ट्रियल एण्ड सोशल चेन्जेज आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू देलही 1972
4. वोपेगामाज, ए0 एण्ड कुलाहली
5. आर0 एन0% कास्ट एण्ड आकुपेशन इन रूरल इण्डिया, रिजनल स्टडी इन अर्बनाइजेशन एण्ड सोशल चेन्ज, रूरल सोसियोलॉजी, भा0 39 न0 3, सितम्बर 1972

◆◆◆

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 28-32

^fgUnh lkfgR; dk Lo.kZdky % HkfDrdky*

ekuk ;kno*

इतिहास में जिसे 'स्वर्णयुग' की संज्ञा दी जाती है, वह आर्थिक और सांस्कृतिक समृद्धि से पूर्ण होता है और साहित्य के इतिहास का स्वर्णयुग तो काव्य सौन्दर्य से पूर्ण होता है, जीवन को अधिक गहराई से स्पर्श करने वाला भी होता है। जार्ज ग्रियर्सन ने इसी विशिष्टता के कारण 'भक्तिकाल' को 'स्वर्णयुग' उपमा से विभूषित किया, जो कि आज तक सर्वमान्य एवं प्रतिष्ठित है।

'भक्ति काव्य को हिन्दी कविता का स्वर्ण युग कहने का सीधा तात्पर्य होता है कि यहाँ काव्य की रचनात्मक क्षमता अपने श्रेष्ठतम रूप में है पर इस काव्य का एक अन्य स्तर पर जो वैशिष्ट्य है, उसकी ओर ध्यान नहीं जाता है। भक्ति–काव्य हिन्दी समाज की उदारतम चेतना का दस्तावेज है। 'कबीर–जायसी–सूर–तुलसी–मीरा इस युग की श्रेष्ठ कवि हैं। इसका निहितार्थ है कि यहाँ हिन्दू–मुसलमान, ब्राह्मण, दलित, पुरुष–स्त्री–समाज के सभी वर्गों का यह साझा रचना–कर्म है, भले वे वर्ग सामान्य तौर पर समाज में अपना अलगाव बनाए रखते हैं।'[1] यों हिन्दी जीवन की व्यापक समरसता का अन्यतम प्रमाण है हिन्दी भक्तिकाव्य'। तब आधुनिक युग में नये–नये प्रचलित 'दलित साहित्य' या कि 'स्त्री साहित्य' जैसे पद हिन्दी की अपनी परम्परा से बेमेल बैठते हैं। भक्तिकाव्य वस्तुतः हिन्दी समाज की अनेक रूढ़ियों के बावजूद उसकी प्रबल जीवनी शक्ति का गतिशील और उज्ज्वल साक्ष्य है। 'फिर यह भी संयोग से कुछ अधिक है कि ये पाँचों कवि मिलकर समूचे हिन्दी प्रदेश के विविध जनपदों अथवा बोली–क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं– पूर्व में भोजपुरी (कबीर) से लेकर अवधी (जायसी–तुलसीदास) होते हुए पश्चिम में राजस्थानी (मीराबाई) तक।'[2]

भक्तिकाव्य आर्यजाति के लिए कंचन की अपरिमित राशि से भी अधिक मूल्यवान सिद्ध हुआ। सूरसागर, रामचरितमानस, पद्मावत आदि ग्रन्थों में भावों के असंख्य मणिरत्न बिखरे हुए हैं। 'रामचरितमनस' आर्य–संस्कृति का प्रकाश स्तम्भ है। 'सूरसागर' शृंगार और वात्सल्य के मनोहर चित्रों का अपार श्रोत है। 'पद्मावत' में बजती हुई प्रेम की वंशी के स्वर और बहते हुए आँसू सहृदय के मर्म को एक ही भाव से स्पर्श करते हैं। कबीर के दोहों में दर्शन है, जीवन के व्यवहारिक तत्त्वों का विशद विश्लेषण है।

भावपक्ष और कलापक्ष दोनों दृष्टियों से भक्तिकाल की कविता अद्वितीय प्रमाणित होती है। 'सौष्ठव, लालित्य, चमत्कारिता और अलंकृति से पूर्ण भक्तिकाव्य स्वर्णयुग की ही संपदा है। इसी संदर्भ में डॉ0 श्यामसुन्दर दास का कथन अधिक सार्थक पूर्ण प्रतीत होता है– ''जिस युग में कबीर, जायसी, सूर, तुलसी जैसे सुप्रसिद्ध कवियों और महात्माओं की दिव्य वाणी उनके अंतःकरणों से निकलकर देश के कोने–कोने में फैली थी, उसे साहित्य के इतिहास में सामान्यतः भक्तियुग कहते हैं। निश्चय ही वह हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग था।''[3]

'भक्ति' शब्द का व्युत्पत्ति 'भज्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'भजना'। नारद के अनुसार वह 'परमप्रेम रूपा' और 'अमृत स्वरूपा' है जिसे प्राप्त कर मनुष्य सिद्ध, अमर, और तृप्त हो जाता है।''

lkRofLeu' ijeie :ik ve'r] Lo:ik p
;Yyc/kok ieku' fl)k Hkofr ve'rk] Hkofr rIrk HkofrA*

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र के अनुसर ईश्वर में परम अनुरक्ति ही भक्ति है– सा पुनरा वितरीश्वरे भक्तिः। 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने श्रद्धा और भक्ति नाम से एक महत्वपूर्ण निबंध लिखा है जिसमें उन्होंने

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, शहीद मंगल पाण्डेय राजकीय महिला स्नातकोत्तर कालेज, माधवपुरम, मेरठ(उ0प्र0)

भक्ति के स्वरूप का विश्लेषण किया है। वे कहते हैं कि श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। श्रद्धा को परिभाषित करते हुए उन्होंने कहा है कि महत्व की आनंदपूर्ण स्वीकृति का नाम श्रद्धा है। यद्यपि भक्ति का केन्द्रीय तत्त्व प्रेम ही है परन्तु प्रेम ऐकांतिता होती है, घनत्व होता है। जब प्रेम का समाजीकरण हो जाता है तो उसे भक्ति कहते हैं।'[5]

भक्ति का सर्वप्रथम उल्लेख 'श्वेताश्वेतर' उपनिषद में मिलता है। भक्ति को प्रतिष्ठित करने वाले दक्षिण आचार्यों के अलावा रामानंद, चैतन्य,देव एवं कबीर का भी महत्व अधिक है।

HkfDr nzkfoM+ Åi t+ yk, jkekuanA
izdV fd;k dchj u+ lIrnhi uo[k.MAA

भक्ति आन्दोलन के इस अचानक प्रसार को देखकर चकित होते हुए जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा है, –''बिजली की चमक के समान अचानक इस समस्त पुराने धार्मिक मतों के अंधकार के ऊपर एक नयी बात दिखाई दी है। कोई हिन्दू यह नही जानता कि यह बात कहां से आई और कोई भी इसके प्रादुर्भाव का कारण निश्चय नहीं कर सकता। जैसे यूरोप में संत थेरेसा का आंदोलन फैला था।''[6]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में स्पष्ट रूप से कहा है कि –''अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की भक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?''[7]

हिन्दी काव्य से यदि वैष्णव कवियों के काव्य को निकाल दिया जाए तो जो बचेगा, वह इतना हल्का होगा कि हम उस पर किसी प्रकार का गर्व न कर सकेंगे। लगभग 300 वर्षों की इस हृदय और मन की साधना के बल पर ही हिन्दी अपना सिर अन्य प्रान्तीय साहित्यों के ऊपर उठाए है। 'तुलसीदास, सूरदास, नंददास, मीरा, रसखान, हितहरिवंश, कबीर आदि में किसी पर भी संसार का कोई साहित्य गर्व कर सकता है। हमारे पास ये सब है ये वैष्णव कवि हिन्दी–भारती के कंठमाल है। यह साहित्य एकदम अनुपम और विलक्षण हैं। यह साहित्य काव्य–संबंधी, उदात्त दृष्टिकोण, काव्यसौष्ठव, भाव पक्ष तथा कलापक्ष, संगीतात्मकता, भारतीय सभ्यता और संस्कृति, काव्य रूपों की विविधता, लोकमंगल, लोकरंजन, भाषा आदि सभी बिन्दुओं से सर्वोपरि है।'[8]

dkO;&lEcU/kh nf"Vdks.k dh mnkÙkrk%& भक्तिकालीन साहित्यकार का काव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण उदात्तता से ओत–प्रोत है। भक्त कवियों ने अपनी वाणी का उपयोग न तो प्राकृत जन का गुणगान में किया और न किसी नरेश की प्रशंसा में लेखनी चलायी, बल्कि इनका काव्य आत्मप्रेरणा का प्रतिफलन है। अतः इनकी कविता का मुख्य उद्देश्य 'स्वामिनः सुखाय' न होकर 'स्वांतःसुखाय' अथवा सर्वजन सुखाय का द्योतक है। तभी तो कबीर की प्रशंसा में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को कहना पड़ा कि– ''इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीर ने ठीक मौके पर जनता के उस बड़े भाग को संभाला जो नाथपंथियों के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्ति रस से शून्य और शुष्क पड़ता जा रहा था।'[9]

'जनता की प्रवृत्ति भेद से अभेद की ओर हो चली थी। मुसलमान हिन्दुओं की रामकहानी सुनने को तैयार हो गये थे और हिन्दू मुसलमानों का दास्तान हमजा। ईश्वर तक पहुँचाने वाला मार्ग ढूँढ़ने की सलाह भी दोनों कभी–कभी साथ बैठकर करने लगे थे। इधर भक्तिमार्ग के आचार्य और महात्मा भगत्वप्रेम को सर्वोपरि ठहरा चुके थे और उधर सूफी–महात्मा मुसलमानों को 'इश्क–हकीकी' का सबक पढ़ाते आ रहे थे।[10] (जायसी ग्रंथावली भूमिका–1)।

'जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूष धारा, जो काल की कठोरता में दब गई थी, अवसर पाते ही लोकभाषा की सरसता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील कुंजों के बीच फैलकर मुरझाए मनो को सीचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठी, जिनमे ंसबसे ऊँची सुरीली और मधुर झंकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी।'[11] ये भक्त कवि सगुण उपासना का रास्ता साफ करने लगे। 'बाल्यकाल और यौवनकाल कितना मनोहर है, उनके बीच की नाना मनोरम–परिस्थितियों के विशद् चित्रण द्वारा सूरदास जी ने जीवन की जो रमणीयता सामने रखी, उससे गिरे हुए हृदय नाच उठे। 'वात्सल्य

और श्रृंगार के क्षेत्र का जितना अधिक उद्‌घाटन सूर ने बंद आँखों से किया, उतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का कोना–कोना वे झाँक आए। उक्त दोनों रसों के प्रवर्तक रतिभाव के भीतर की जितनी मानसिक वृत्तियों और दशाओं का अनुभव और प्रत्यक्षीकरण सूर कर सके, उतनी का और कोई नहीं। हिन्दी साहित्य में श्रृंगार का रसराजत्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया है तो सूर ने।'[12]

'प्रबन्धकार कवि की भावुकता का सबसे अधिक पता यह देखने (को मिलता है) से पता चल सकता है वह किसी आख्यान के अधिक मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान सका है या नहीं। रामकथा के भीतर ये स्थल अत्यन्त मर्मस्पर्शी है– राम का अयोध्या त्याग और पथिक के रूप में वनगमन, चित्रकूट में राम और भरत का मिलन शबरी का आतिथ्य लक्ष्मण को शक्ति लगने पर रामविलाप, भरत की प्रतीक्षा। इन स्थलों पर गोस्वामी जी ने अच्छी तरह पहचाना है, इनका उन्होंने अधिक विस्तृत और विशद्‌वर्णन किया है।'[13]

भक्ति कवियों का साहित्य निर्विकार तथा अनासक्त भावाभिव्यक्ति है, जिसमें सत्य, उत्साह, आनंद तथा युग–सृजनकारिणी प्रेरणा का सन्निवेश है।

Hkkoi{k rFkk dyki{k dk ef.kdkpu ;kx%& भक्तिकाल के काव्य में भाव पक्ष तथा कलापक्ष परस्पर इस प्रकार घुल–मिल गए है कि उन्हें एक–दूसरे से अलग करना सहज कार्य नहीं है। भक्तिकाव्य का अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष एक दूसरे का पोषक एवं संतुलित शक्ति का द्योतक है। कविता द्वारा तुलसीदास की शोभा नहीं बढ़ी अपितु तुलसीदास द्वारा कविता महिमा मंडित हुई है। सूर साहित्य भक्ति, कविता और संगीत का संगम है। कबीर, जायसी, मीरा, रसखान, हितहरिवंश, नंददास, नानक की रचनाओं पर हिन्दी साहित्य विश्व साहित्य के सुम्मख गर्व कर सकता है। 'भक्तिकालीन कृतियाँ विश्व जनीन एवं शाश्वत है। रीतिकालीन कविता में अलंकरण तथा प्रदर्शन की प्रवृत्तियाँ विद्यमान है। फलस्वरूप भावपक्ष शिथिल एवं कलापक्ष प्रौढ़ है।[14]

Hkkjrh; lLd`fr dk lE;d fu:i.k%& मध्यकालीन भारतीय संस्कृति के सम्यक् ज्ञान के लिए भक्तिकालीन साहित्य के अध्ययन के बिना अधूरा प्रतीत होता है। भारतीय धर्म, दर्शन, सभ्यता और संस्कृति, व्यवहार और विचार आदि भक्ति काव्य के अन्तर्गत पूर्णतः सुरक्षित है। इसके कलेवर में सगुण–निर्गुण, भक्ति–योग, दार्शनिकता–आध्यात्मिकता और आदर्श जीवन के भव्यचित्र समाहित है। 'तुलसी के रामचरितमानस्' को उत्तरी भारत में वही लोकप्रियता हासिल है, जो यूरोप में बाइबिल को। आधुनिक भारतीय धर्म एवं संस्कृति तुलसीदास द्वारा निर्मित है। उनका मानस नाता पुराण निगमागम का मूर्त रूप है। भक्तिकालीन काव्य में ऐसी धार्मिक भावनाओं का सन्निवेश है जिनका इस्लाम धर्म से कोई विरोध नहीं है। भक्तिकाल का समग्र साहित्य समन्वय का विराट् प्रयास है। इसमें भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्व समाहित है–

'fg; fujxu] u;ufUg lu jluk uke luke A
eug ijV liV ylr ryl h yfyr yykeAA*

भक्तिकालीन कवियों ने आदिकाल कवियों से ऊपर उठकर एक नवीन रूपों में राधा–कृष्ण का सामान्य रूप एवं संख्य भाव के दर्शन कराए हैं। तुलसी के राम और सीता तो अलौकिक और आदर्श व्यक्ति हैं ही सूर, नंददास आदि के राधा और कृष्ण भी रीतिकालीन राधाकृष्ण की भाँति असंयत नहीं है। अतः भक्तिकालीन काव्य तत्कालीन जनता का ही नहीं आधुनिक समाज का भी उन्नायक, प्रेरक तथा उद्धारक है। इसमें भारतीय संस्कृति और आदर्श के सशक्त एवं भव्यचित्र अंकित है। भक्तिकाव्य राम, श्याम, गिरधर, गोपाल, अलख निरंजन और एक ओंकार का स्मारक है जो आज भी हन्दि़ू जन–जीवन के लिए प्रातः स्मरणीय है।

lxhrkRedrk dk lfUuos'k%& काव्य में संगीतात्मकता के सन्निवेश के लिए जिस आत्माभिव्यंजना, तीव्रानुभूति, सहजस्फूर्ति और अन्तःप्रेरणा की आवश्यकता होती है। भक्तिकालीन कवियों में पर्याप्त मात्रा में थी। भक्तिकाल के काव्य में भाव और भाषा तथा काव्य और संगीत का मणि–कांचन योग है। आदिकालीन साहित्य में गीतकाव्य का सृजन पहले से हो चुका था, किन्तु संगीत का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम भक्तिकाव्य में हुआ, जो रीतिकाल में प्रायः विलुप्त हो गया।

सूर, तुलसी, कबीर, मीरा, नानक, नंददास आदि के पद भक्तिकाव्य के रसिकों तथा गायकों के हृदय और कंठों में आद्यावधि रहे हैं और आगे भी रहेंगे। सूर के पदों में संगीत की ध्वनि इतनी सुमधुर रीति से समाई है कि वे पद संगीत के जीते–जागते अवतार से हो गए है। मीरा का काव्य गीतकाव्य का एक आदर्श रूप प्रस्तुत करता है।

dk0; :iks dh fofo/krk& काव्य रूपों की विविधता की दृष्टि से आधुनिक काल निस्संदेह भक्तिकाल से श्रेष्ठतर है पर जहाँ तक आदिकाल और रीतिकाल का सवाल है, वे भक्तिकाल के सम्मुख इस विषय में न्यून है। भक्तिकाल में प्रबंधकाव्य, मुक्तककाव्य, सूक्तिकाव्य, गीतकाव्य, जीवनचरित, गद्यकाव्य, संगीतकाव्य और उपदेश–काव्य पर्याप्त मात्रा में लिखे गये हैं। अतः काव्यरूपों की विविधता की दृष्टि से भक्तिकाल काफी सम्पन्न है।

ykdexy rFkk ykdjatu dk lekof'kr i{/kkurk& निर्गुण संत कबीर ने धार्मिक क्षेत्र में हिन्दू–मुस्लिम जनता के मध्य एकता के लिए प्रयास किया–

tkfr&ikfr iNs ufga dkbZ
gfj dks Hkts lks gfj dks ikbZA

प्रेममार्गी सूफी कवि जायसी ने हिन्दू–मुस्लिम दोनों में सांस्कृतिक एकता का स्तुत्य प्रयत्न किया–

ekuq"k isze Hk,m cSdqBhA
ukfga r dkg Nkj Hkj eqBhAA
isze&iaFk tks igqps ikjkA
cgqfj u fey vkb ,fgNkjkAA

तुलसी के राम में शक्ति, शील और सौन्दर्य का विराट समावेश है। सूर के कृष्ण में सौन्दर्य का प्राधान्य है।

^tsfg befg xkofga onc/kq] tkfga /kjfga eqfu /;kuA
ofg lkb n'kjFk lqr Hkxr fgr] dkslyifr HkxokuAA*
^lkfHkr dj uouhr fy,]
?kqV:fu pyfr jsuq ru eafMr] eq[k nf/k yis fd,A*

तुलसी ने जहाँ मृतप्राय हिन्दू राष्ट्र की धमनियों में नवनिर्माण के नवल रक्त का संचार किया, वहाँ सूर ने जीवन में सौन्दर्य का प्रस्फुटन करके जीवन के प्रति आसक्ति तथा आस्था को प्रतिस्थापित किया। भक्तिकाव्य एक साथ मन, हृदय और आस्था के भूख को शांत करता है।

f'kYixr ofS'k"V;& भक्तिकालीन कवियों ने, बिंब, प्रतीक, अलंकार का प्रयोग कर भाषा को अत्यधिक चमत्कारपूर्ण बनाकर अपने काव्य में समावेशित किया है। संत कवियों में कबीर की भाषा में अवधी ब्रज, खड़ी बोली, पंजाबी आदि का समन्वित रूप मिलता है। जिसके प्रभाव के मूल्यांकन में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'पंचमेल' खिचड़ी की उपमा दे दी। 'वही इनकी भाषा में इतना आक्रोश व एक स्वस्थ दिशा सर्जक की दृष्टि के मूल्यांकन में हजारी प्रसाद द्विवेदी 'वाणी का डिक्टेटर' की उपमा से विभूषित करते हैं। वही सूफी कवि जायसी ने ठेठ अवधी का प्रयोग किया है। इनकी भाषा में अवधी के लोक प्रचलित मुहावरे एवं लोकोत्तियों का समावेश भी हुआ है। जायसी की भाषा की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि मुसलमान होते हुए भी उनकी भाषा में अरबी–फारसी की अपेक्षा संस्कृत के तत्सम एवं तद्‌भव शब्दों को वरीयता दी गयी है।

rqjdh] vjch] fgUnbZ] Hkk"kk tsfr vkfgA
tfg eg eksjx ise dj lcS ljkg gS rkfgA*

सूरदास की ब्रजभाषा परिनिष्ठित एवं साहित्यिक है तथा उसमें प्रत्येक मनोभाव को सफलतापूर्वक व्यक्त करने की क्षमता है। उनकी ब्रजभाषा अपनी कोमलता, सरसता, माधुर्य एवं पदलालित्य के कारण व्यापक काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। इनके पदों में अनूठी भाव व्यंजकता, वक्रता, लाक्षणिकता के कारण शैलीगत प्रौढ़ता दिखाई पड़ती है।

तुलसीदास ने अवधी एवं ब्रज दोनों भाषाओं का सफल प्रयोग अपने काव्यों में किया है। इनकी भाषा अवधी सूफी कवियों की तरह 'ठेठ अवधी' नहीं बल्कि 'संस्कृतनिष्ठ' अवधी है। इसके अलावा इन्होंने संस्कृत के महत्व को न ठुकराते हुए भी जन–भाषा को अधिक महत्व दी।

dk Hkk"kk dk lLd'r] i;e pkfg, lkpA
dke t vko dkejh] dk y dfj; dekpAA &तुलसीदास

भक्तिकालीन कवियों ने दोहा, चौपाई, कुण्डलियाँ, गीत, गेयपद, छप्पय, कवित्त आदि विविध रूपों को समावेशित कर भक्तिकाव्य को समृद्ध किया है। वह सिर्फ न केवल भारतीय साहित्य बल्कि विश्व साहित्य में भी प्रतिष्ठा बनाए हुए हैं।

इस प्रकार भावपक्ष और कलापक्ष दोनों दृष्टियों से भक्तिकालीन की कविता अद्वितीय प्रमाणित होती है। सौष्ठव, लालित्य, चमत्कारिता और अलंकृति से पूर्ण भक्ति काव्य स्वर्णयुग की ही सम्पदा है। इसकी प्रशंसा के सन्दर्भ में डॉ0 श्यामसुन्दर दास के कथन की पुनरावृत्ति किये बिना अधूरा प्रतीत होगी। अतः डॉ0 श्यामसुन्दर दास ने लिखा है– ''जिस युग में कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, जैसे सुप्रसिद्ध कवियों और महात्माओं की दिव्यवाणी उनके अंतःकरणों से निकलकर देश के कोने–कोने में फैली थी, उसे साहित्य के इतिहास में सामान्यतः भक्तियुग कहते हैं। निश्चय ही वह हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग था।''

lUnHk %

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी– भक्तिकाव्य यात्रा, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2003, पृ0 9
2. वहीं, पृ0 10
3. हृदयेश मिश्र एवं शिवलोचन पाण्डेय–हिन्दी साहित्य का इतिहास, भारती भवन प्रकाशन, पटना, संस्करण, 2006, पृ0 98
4. अमरनाथ–हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सस्करण–2012 पृ0 252
5. वही, पृ0 253
6. शिवकुमार मिश्र–भक्ति आंदोलन और भक्तिकाव्य– अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद–2005, पृ0 54
7. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, आठवाँ संस्करण–2012 पृ0 39
8. हृदयेश मिश्र एवं शिवलोचन पाण्डेय–हिन्दी साहित्य का इतिहास, भारती भवन प्रकाशन, पटना, संस्करण, 2006, पृ0 98
9. शिवकुमार मिश्र–भक्ति आंदोलन और भक्तिकाव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद–2005, पृ0 57
10. वही, पृ0 58
11. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, आठवाँ संस्करण–2002 पृ0 46
12. वही, पृ0 47
13. वही पृ0 67
14. हृदयेश मिश्र एवं शिवलोचन पाण्डेय–हिन्दी साहित्य का इतिहास, भारती भवन प्रकाशन, पटना, संस्करण, 2006 (विशेष तथ्यों का संकलन, विशेष आभार)

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 33-37

Ukklnh; lwDr esa lf`"V&mRifÙk fo"k;d nk'kZfud fl)kUr

chuk ;kno*

वेद परमात्मा द्वारा प्रदत्त वह दिव्य ज्ञान है, जिसमें मनुष्य के सभी कर्त्तव्य कर्मों का उपदेश है। संसार में जितना भी ज्ञान–विज्ञान फैला है, वह सब वेद से ही निःसृत हुआ है। ऋग्वेद वैदिक वाङ्मय का मुकुटमणि है। ऋग्वेद केवल देवस्तुतियों का संकलन मात्र नहीं है, अपितु इसमें अनेक लौकिक विषयों का भी समावेश है, जिनसे तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, दार्शनिक, आर्थिक और वैज्ञानिक परिस्थितियों का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होता है; साथ ही इसमें अनेक नाटक, आख्यान तथा संवादात्मक घटनाएँ हैं, जिनसे ऋषियों के मनोभावों का, नैतिकता, मनोवैज्ञानिकता तथा अद्भुत साहित्यिक सफलता का दिग्दर्शन होता है। प्रज्ञावान ऋषियों के लिए और क्या कहा जाए, जिन्होंने सृष्टि के प्रत्येक स्थान में एक परम शक्ति का दर्शन किया; जिनका अपना सर्वस्व जीवन उस मूलभूत शक्ति को जानने के लिए आतुर हो उठा। कभी–कभी संशय में पड़ जाते थे, तब यह दृष्ट जगत उन्हें रहस्य प्रतीत होता था। ऋषियों की भावुक प्रवृत्तियों ने उन्हें दार्शनिक बना दिया।

वेदों में सृष्टि के सम्बन्ध में नानाविध कल्पनाएँ हैं। सामान्यतः प्रजापति को विश्व का स्रष्टा कहा गया है। वह प्रजापति कभी इन्द्र के रूप में, कभी वायु, कभी सूर्य के रूप में स्तुत किया गया है। सृष्टि का रहस्य समझने के लिए ऋग्वेदकालीन सृष्टि–विषयक प्रमुख सूक्तों में नासदीय सूक्त[1] का विशेष महत्त्व है। 'नासत्' (न असत्) पद से शुरु होने के कारण यह सूक्त 'नासदीय–सूक्त' के नाम से विख्यात है। इसमें सृष्टि–विद्या अतीव गूढ़ एवं गम्भीर है। आदिकाल से ही सभी विचारकों ने इसका भेद जानने के लिये अपने–अपने ढंग से प्रयास किये हैं। वे सारे प्रयास एक दार्शनिक सरणि के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। नासदीय सूक्त सृष्टि–विद्या की कुञ्जी है। इसमें दृष्टिपात करने पर हमें सृष्टि–सम्बन्धी अनेक मतों के बीज उपलब्ध होते हैं। नासदीय सूक्त में वैदिक ऋषियों के सृष्टिविषयक दार्शनिक सिद्धान्तों को अधोलिखित सन्दर्भों में विवेचित किया जा सकता है–

uklnklhUuks lnklhÙknkuha uklhnzt_ks uks O;kseks ijks ;r~A
fdekojho% dqg dL; 'keZUuEHk% fdeklhn~xgua xHkhje~AA[2]

नासदीय सूक्त में सृष्टि के प्रारम्भ और उसके मूलभूत तत्त्व पर विचार किया गया है। इस सूक्त का सबसे ज्वलन्त दार्शनिक प्रश्न यह है कि इस सृष्टि के पूर्व क्या था। यह विचारणीय है कि जगत में व्याप्त प्रत्येक वस्तु के अन्तराल में कोई एक शक्ति अवश्य कार्य कर रही है। चूंकि वह रहस्यमय तत्त्व अप्रत्यक्ष है, अतएव भ्रामक है। उक्त सूक्त के सदसद्वाद मतानुसार इस सत् सृष्टि की उत्पत्ति असत् से हुई है। इसमें असत् को कारण तत्त्व और सत् को कार्य माना है। ऋग्वेद में दो युगों पूर्व्य युग और उत्तर युग में से पूर्व्य युग में असत् से सत् की उत्पत्ति बताई गई है।[3] ठीक यही बात नासदीय सूक्त में भी आई है, जिसमें सत् के बन्धु को असत् से प्राप्त करने की बात कही गई है।[4] ऋग्वेद के ही एक अन्य मन्त्र में सत् और असत् दोनों को परम व्योम में स्थित बताया गया है तथा वहीं दक्ष एवं अदिति के जन्म दर्शाये गये हैं।[5] नासदीय सूक्त के इसी सिद्धान्त ने सांख्य दर्शन का सूत्रपात किया; जिसका प्रमुख सिद्धान्त सत्कार्यवाद है। यह सूक्त विज्ञ आलोचकों की दृष्टि में ऋग्वेदीय ऋषियों की अलौकिक दार्शनिक चिन्तन धारा का मौलिक परिचायक है। इसमें सृष्टि की तत्त्वमीमांसीय समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। स्पष्ट है कि असत् द्वारा ही सत् की सृष्टि प्रमाणित होती है। यही सद् और असद् है।

*शोधच्छात्रा, संस्कृत–विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

नासदीय सूक्त में दूसरा सिद्धान्त रजोवाद है। रजस् को सृष्टि का उपादान कारण कहा गया है। सूक्त के प्रथम मन्त्र में रजस् की सत्ता का निषेध किया गया है। अन्यत्र कहा गया है कि सभी देवता जल में स्थित थे। सृष्टि की प्रक्रिया प्रारम्भ होने के समय सारे देवता नृत्य करने लगे। देवों के नृत्य से रेणु के गर्भ ऊपर उठे।[6] यह रेणु ही रजोरूप है तथा सृष्टि का उपादान कारण है। ऋग्वेद के अनुसार रजस् के दो भेद हैं– कृष्ण रजस् और शुक्ल रजस्।[7] कृष्णरजस् का सम्बन्ध मूल तत्त्व है तथा शुक्ल रजस् का इस विकसित जगत से है। ये दोनों एक–दूसरे को पुष्ट करते हैं तथा पूरक भी हैं। इन्हें दिन और रात के रूप में भी देखा जा सकता है। ये दोनों रजस् चक्रवत् घूमते रहते हैं। कृष्ण और शुक्ल रजस् दो रचनाओं का युग्म है। इनमें से जो कृष्ण है, वही दीप्ति नहीं होती और जो शुक्ल है, वह चमकती रहती है। इन दोनों का जन्म एक ही मातृ–पितृ तत्त्व से होता है। अतः ये दोनों बहनें हैं। जिससे ये दोनों का जन्म ग्रहण करती है, वही देव महत् देवत्व है तथा एक ही प्राण–तत्त्व से युक्त है।[8] वैदिक रजस् को गतितत्त्व भी कहा जाता है तथा इसके विपरीत दूसरा तत्त्व स्थिति है। स्थितितत्त्व का सम्बन्ध 'अज' से है और रजस् या गति का सम्बन्ध इस सृष्टि जगत् से। इनमें से अजतत्त्व अव्यय पुरूष है तथा रजस् अक्षर पुरूष से सम्बद्ध है। अतः अज तत्त्व से छः रजों का जन्म हुआ।[9]

व्योम समस्त पदार्थों का मूलतत्त्व है, क्योंकि इसी के आश्रय में सबका अस्तित्त्व है। ऋग्वेद में भी परमव्योम का अनेक बार उल्लेख हुआ है। इसे सारे देवों तथा वाक् के आश्रय के रूप में चित्रित किया गया है। यह अमृत है। इसका कभी क्षय नहीं होता। वस्तु व्योम के दो रूप हैं– परम व्योम तथा व्योम। परम व्योम अमर्त्य तथा व्योम मर्त्य है। परम व्योम देवी है तथा व्योम भौतिक तत्त्व है। परमव्योम में स्थित 'वाक्' को अमर्त्या वाक् कहते हैं। मनुष्यों की वाक् मर्त्या वाक् है तथा इसका सम्बन्ध मर्त्याकाश या व्योम से है, जो प्रलय में नष्ट हो जाता है तथा सृष्टि के समय पुनः उद्भूत होता है। अमृत वाक् को ही ''सहस्राक्षरा वाक्'' कहते हैं।[10]

परावरवाद की एक संज्ञा ''अपरवाद'' भी है। इसका सम्बन्ध दो सापेक्ष शब्दों–'पर' और 'अपर' से है। इन्हें कुछ और युग्मों के साथ समझा जा सकता है– पूर्ण और सापेक्ष, दिव्य और लौकिक, ऊर्ध्व तथा अधः और एक तथा बहुधा। परावरवाद की धारणा भी सृष्टि की मौलिक धारणा है। इसे ही नासदीय सूक्त में अवतस्तात् तथा परस्तात् कहा गया है।[11] विश्वरूपी वृक्ष की जड़ें ऊर्ध्व में स्थित है तथा इसकी शाखाएँ अधस्तात् हैं। गीता में इसे अश्वत्थ वृक्ष के रूप में प्रतिपादित किया गया है।[12] परमतत्त्व अन्तरजायमान है तथा अपरतत्त्व बहुधा विजायमान है। यही वैदिक परावरवाद है।

नासदीय सूक्त की प्रथम पंक्ति में ही आवरणवाद सिद्धान्त के बीज दृष्टिगत होते हैं। वहाँ विश्व के मापक के बारे में पूछा गया है, जो निर्मित होने वाले तत्त्वों का परिमाप बताता है। सृष्टि के रूप में आकार ग्रहण करने वाली सभी वस्तुएँ सीमित होती हैं। आवरण के द्वारा ही जायमान विश्व की मर्यादा तथा माप सुनिश्चित होती है। जितने भी उत्पन्न पदार्थ हैं, सबके पृथक्–पृथक् द्यावापृथ्वी हैं अर्थात् उनको जन्म देने वाले मातृ–पितृ तत्त्वों के युग्म पृथक् हैं। बिना द्यावापृथ्वी की उद्भावना के वैदिक सृष्टि–प्रक्रिया नहीं हो सकती। इन दोनों में भी पृथ्वी भौतिक सृष्टि का प्रतीक है, जो मर्त्य है और द्युलोक अव्यक्त स्रोत का प्रतीक है, जो अमृत है। पृथ्वी मातृस्वरूपा है तथा विशाल धरित्री है।[13] माता शब्द का अर्थ ही यह है कि जो माप करे। माता की कुक्षि ही इस बात का निश्चय करती है कि किसी भी उत्पन्न पदार्थ की सीमा और मर्यादा या माप क्या होगी। पिता वह अमृतत्त्व है, जिससे मर्त्य गर्भ माता के द्वारा जन्म लेता है।

आवरणवाद को माया के रूप में भी देखा जा सकता है। जिस शक्ति से सभी पदार्थों का मान या मापन होता है, वही माया है। परम व्योम का अधिष्ठातृस्वरूप इन्द्र बहुधा भावों को अपनी माया शक्ति से ही धारण करता है।[14] किसी भी उत्पन्न होने वाली वस्तु के लिये दो बातों का होना आवश्यक है– आकार एवं स्वरूप। आकार से केन्द्र या नाभि का निर्धारण होता है और स्वरूप से परिधि या मण्डल का। ऋग्वेद में ही प्रमा और प्रतिमा के बारे में जिज्ञासा की गई है।[15] नासदीय सूक्त के प्रथम मन्त्र में आया ''शर्मन्'' पद भी आवरण का ही द्योतक है, क्योंकि यह आश्रय का वाचक है और आश्रय में ही व्यक्ति वेष्ठित या सीमित रहता है।

अम्भोवाद वैदिक ऋषियों का एक मूलभूत दर्शन था। इसके अनुसार अथाह जलराशि ही इस सृष्टि का मूल स्रोत है। ऋग्वेद में जलों के लिये अम्भः, आपः, सलिलम्, समुद्रः, सोमः इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया गया है। जल का अर्थ है, वह स्थितिशील अवस्था, जिसमें सम्पूर्ण प्रकृति लीन थी और वह अभी व्यक्त रूप में नहीं आयी थी। उसी प्रकार की अव्यक्त कृष्ण या स्थितिशील व्यवस्था से गति या प्रकाश का जन्म होता है। वह प्रकाश ही अग्नि है, वही अग्नि की प्रथमजा है।[16] ऋग्वेद में अग्नि को गर्भ में धारण करने वाली जलराशि की चर्चा की गई है।[17] और भी ऐसे अनेक स्थल हैं, जिनमें जलों द्वारा गर्भ धारण करने का प्रसंग आया है।[18] अग्नि को ''अपांगर्भः'' कहा गया है। ऋग्वेद में ही अग्नि द्वारा जलों में प्रवेश करने की बात कही गई है।[19] एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि देवों ने सुन्दर अग्नि को जलों के अन्दर प्राप्त किया।[20] इस प्रकार इस सृष्टि के लिए जल मूल तत्त्व है। इसी को ''अम्भोवाद'' के नाम से जाना जाता है।[21] नासदीय सूक्त के प्रथम मन्त्र का चतुर्थ पाद इसी को निर्दिष्ट करता है।

नासदीय सूक्त का दूसरा मन्त्र अमृत मृत्युवाद इस सुप्रसिद्ध दार्शनिक सिद्धान्त को जन्म देता है। अमृत पद देवताओं का द्योतक है और मृत्यु तत्त्व भूतों का। एक ऊर्जा है, तो दूसरा द्रव्य या पदार्थ है, एक दैवी है तो दूसरा मानवीय। एक देश–कालातीत है तो दूसरा देशकालपरिच्छिन्न। एक स्थिति तत्त्व द्योतित करता है तो दूसरा गतितत्त्व को। इस सृष्टि में अमृत तत्त्व रस प्रधान है और मृत्युतत्त्व बलप्रधान।[22] मृत्यु और अमृत ये दोनों एक ही वृत्त के दो भाग हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि नासदीय सूक्त में अमृतमृत्युवाद का सिद्धान्त बीजरूप में विद्यमान है।

नासदीय सूक्त के छठें मन्त्र में देववाद की चर्चा आई है। हमें वहाँ एक ऐसी प्राक्कल्पना का भास मिलता है कि यह सृष्टि देवों द्वारा की गई है, किन्तु सम्भवतः इस परिकल्पना के मन में आते ही ऋषि ने इसका निराकरण इस प्रकार किया है कि देवता इस सृष्टि के बाद उत्पन्न हुए, अतः वे इसके रहस्य या आदिम स्रोत को नहीं जान सकते –

dks v)k osn d bg iz okpRdqr vktkrk dqr b;a foLf"V%A
vokZXnsok vL; foltZusukFkk dks osn ;r vkcHkwoAA

यह सृष्टि एक यज्ञ है। इस यज्ञ का निष्पादन देवों के बिना सम्भव नहीं है, यहाँ तक कि पुरूष सूक्त में देवता ही सृष्टि–यज्ञ का निष्पादन करते बताये गये है।[23] इस प्रकार यज्ञीय या सृष्टि–प्रक्रिया से उनकी पूर्णतः अभिज्ञतः प्रकट है। देवतत्त्व का निर्देश ऋग्वेद के प्रथम ऋचा में ही कर दिया गया है।[24] अग्नि में सभी देवों की सत्ता विद्यमान रहती है, क्योंकि उसी के मुख द्वारा वे सभी भोजन करते हैं। वह सभी देवों का आवाहन भी करता है। इस प्रकार अग्नि में सभी देवताओं की भावना प्रमाणित है। वह अग्नि प्रथम जन्म लेने वाला तथा प्रथम पूज्य है, अतः देवत्त्व निश्चित रूप से सृष्टि विद्या का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। देवतत्त्व वस्तुतः प्रकाश का द्योतक है, जो सभी स्थानों तथा सभी कालों में देदीप्यमान हैं। देवताओं की दिव्यता प्राणतत्त्व के रूप में है। यह प्राणतत्त्व देवताओं का भी आधार है। ऋग्वेद के ही एक मत्रांश द्वारा इनकी प्राणतत्त्वशीलता को प्रतिपादित किया गया है जहाँ सभी देवों में एक महत् असुरत्व की भावना की गई है।[25] ''असु'' प्राण को कहते हैं। यह सृष्टि भी प्राण बिना निष्प्राण है, अतः इसके मूल कारण के रूप में देवताओं की स्थिति सिद्ध है। इस प्रकार नासदीय सूक्त में हमें देववाद के मूल बिन्दु प्राप्त हो जाते है।

अहोरात्रवाद कालसिद्धान्त का ही एक रूप है, जिसके अनुसार काल को सृष्टि का प्रमुख कारण माना जाता है। अथर्ववेद में इस सिद्धान्त का भलीभांति प्रतिपादन किया गया है।[26] उसमें काल को सर्वातिशायी तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।[27] काल सर्वव्यापी है। दिन तथा रात उसके दो रूप हैं। इसके अन्य अनेक रूप भी हैं, जैसे– प्रकाश और अन्धकार, शुक्ल और कृष्ण, सोम और अग्नि, सृष्टि और प्रलय, जन्म और मृत्यु, स्वर्ग और पृथिवी इत्यादि। ऋग्वेद में अहोरात्र के लिए अहः पद का प्रयोग किया गया है।[28] गीता में भी इसका उल्लेख किया गया है। गीता में सहस्रों युगों को ब्रह्मा का एक दिन तथा सहस्रों युगों की ही उनकी एक रात बतायी गई है। अहः गति का प्रतीक है तथा रात्रि प्र.ति का। अहः जागरण है तथा रात्रि निद्रा है। अहः तथा रात्रि – ये दोनों महाकाल के प्रतीक हैं, जो इस सृष्टि के अणु–अणु में व्याप्त है। वह काल या समय के प्रत्येक क्षण में प्रविष्ट है। अहः सृष्टि का प्रतीक है तथा रात्रि या प्रकृति

प्रलय का। अहोरात्र का यह वैदिक सिद्धान्त भी नासदीय सूक्त के द्वितीय मन्त्र में ही उपलब्ध होता है, जिसमें सृष्टि के पूर्व रात्रि तथा दिन के प्रज्ञापक तत्त्व का अभाव प्रतिपादित किया गया है।

संशयवाद वैदिक दर्शन का बड़ा महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसके दो भेद किये जा सकते हैं– संशयवाद और ब्रह्मवाद। नासदीय सूक्त के छठें तथा सातवें मन्त्रों में संशयवाद को पर्याप्त आधार प्रदान किया गया है। उनमें ऋषि ने संशय उपस्थित करते हुए कहा है कि यहाँ वस्तुतः कौन जानता है और कौन कह सकता है कि यह सृष्टि कहाँ से जन्म ग्रहण करके आयी है? देव भी इस सृष्टि के बाद हुए हैं, अतः दूसरा कौन बता सकता है कि यह सृष्टि कहाँ से आई? संशयवाद का दूसरा पक्ष ब्रह्मवाद है। नासदीय सूक्त में ही इसके बीज हमें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाते हैं। यद्यपि उनमें स्पष्ट रूप से कहीं भी ''ब्रह्म'' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, तथापि वहाँ हमें अनेक तद्वाचक शब्द उपलब्ध हो जाते हैं। ऐसे शब्दों में द्वितीय मन्त्र के तृतीय पाद में आया ''तदेकम्'' पद है। इसके ही आगे आने वाला दूसरा पद ''तस्मात्'' भी परम तत्त्व को ही द्योतित करता हैं। पुनश्च तीसरे मन्त्र में आया ''आभु'' शब्द भी ब्रह्म के अर्थ में ही प्रयुक्त प्रतीत होता है। इसी मन्त्र के अन्तिम पद ''एकम्'' से भी ब्रह्म का ही निर्देश प्राप्त होता है। अन्ततः सातवें मन्त्र में ''अध्यक्ष'' शब्द का प्रयोग किया गया है जो परम व्योम में निवास करता है। इस प्रकार ऋषि ने संशय उठाकर उसका समाधान भी प्रस्तुत किया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि संशयवाद तथा ब्रह्मवाद, इन दोनों की आधारभूमि नासदीय सूक्त ही है।

सृष्टि का रहस्य ऐसा नहीं जिसको सरलता अथवा निश्चिता से बताया जा सके। इसकी दुर्विज्ञेयता ने वैदिक ऋषियों को यह कहने के लिए विवश कर दिया कि इस सृष्टि को कौन सही रूप में जानता है? देवता भी इस सृष्टि की अपेक्षा अर्वाचीन हैं। तब यह कौन जानता है कि यह कहाँ से उत्पन्न हुयी?[29] अन्तिम मन्त्र में ऋषि समाधान रूप में परमेश्वर में ही सृष्टि का कर्तृत्त्व देखता है। यह विविध रूपों वाली सृष्टि जहाँ से आयी है उसको उस परमेश्वर ने ही धारण किया था। परमेश्वर से भिन्न उसको धारण करने वाला कोई दूसरा सिद्ध नहीं हो सकता। इस सृष्टि का जो परमेश्वर है वह सर्वोच्च लोक में है। वही इस सृष्टि को निश्चित रूप से जानता है और वह नहीं जानता तो और कौन जान सकता है?[30] इस प्रकार हम देखते हैं कि इस सूक्त में भी सर्वोपरि एकदेव की ही प्रतिष्ठा हुई है।

नासदीय सूक्त एक ही नहीं, अनेकानेक दार्शनिक सिद्धान्तों का जन्म स्थान है। वैसे तो सभी दार्शनिक सिद्धान्त एक परम तत्त्व को स्वीकार करते हैं। उक्त सूक्त में बताया गया है कि सृष्टि के प्रारम्भ में अन्धकार ही अन्धकार था, उस समय न सत् था और न असत्, पृथिवी–पाताल इत्यादि कोई लोक नहीं थे। न अन्तरिक्ष था न व्योम, उस प्रारम्भिक दशा में आवरण करने वाला पदार्थ क्या था? वह आवरणकर्त्ता तत्त्व कहाँ था? उसका संरक्षक कौन था? उस समय ब्रह्माण्ड की क्या दशा थी? क्या गहन, गम्भीर वारि था? वहाँ न मृत्यु थी और न अमरता, न दिन था न रात और न दिन–रात का भेद करने वाला प्रकाश ही था; वहाँ केवल वह ब्रह्म तत्त्व ही प्राण से युक्त, किन्तु क्रिया से शून्य तथा माया के साथ मिश्रित, अन्वित एवं अविभक्त रूप में स्थित था। उस मायायुक्त ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं था और उससे परे भी कुछ नहीं था। सब उसी में समाविष्ट था और अपने तमस् रूप मूल कारण में विराजमान था। यह सारा जगत् जलमय था तब तप की महिमा से 'एक' तत्त्व प्रकट हुआ, उस 'एक' में काम उत्पन्न हुआ। यही सृष्टि का प्रथम बीज था।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नासदीय सूक्त दार्शनिक दृष्टि से ऋग्वेद का सर्वोच्च निर्दशन है। इसमें जितनी स्पष्टता के साथ तत्त्वों को विवेचित किया गया है, प्रायः वह अन्यत्र दुर्लभ है। यह विज्ञ आलोचकों की दृष्टि में ऋग्वेदीय ऋषियों की अलौकिक दार्शनिक चिन्तनधारा का मौलिक परिचायक हैं। वस्तुतः इसमें सृष्टि की तत्त्वमीमांसीय समीक्षा प्रस्तुत की गयी हैं।

lUnHkZ %

1. ऋग्वेद – 10.129
2. ऋग्वेद 10.129.1

3. देवानां पूर्व्यो युगेऽसतः सदजायत। वही, 10.72.2.
4. वही, 10.129.4.
5. असच्च सच्च परमे व्योमन्दक्षस्य जन्मन्नादितेरूपस्ये। वही, 10.5.7
6. यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिश्ठत्
   अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत।। ऋग्वेद 10.72.6
7. ऋग्वेद 6.9.1.
8. वही, 3.55.11
9. वि यस्तस्तम्भ शडिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम्। वही, 1.164.6.
10. सहस्राक्षरा परमे व्योमन्। वही, 1.164.41
11. वही, 10.129.5.
12. उर्ध्वमूलमधः शाखमृवत्थं प्राहुरव्ययम्।
    छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।। गीता।।15.1.
13. वाजसनेयी संहिता 23.10
14. ऋग्वेद 6.47.18.
15. कासीत्प्रमा प्रतिमा किं निदानय्। वही, 10.130.3.
16. ऋग्वेद 10.5.7
17. वही, 10.121.7.
18. वही, 10.82.5– 6.
19. वही, 3.5.3.
20. वैश्वानरो यास्वग्नि प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु। वही, 7.49.4.
21. वही, 3.1.3.
22. रसोबलं चेत्यमृतं च मृत्यूरसप्रधानान्यमष्तानि सृष्ट्याम्।
    बलप्रधानास्त्विह मृत्यवः स्युर्न मृत्यवः सन्त्यमृतातिरेकात्।। वही,
23. ऋग्वेद– 10.90.6–7
24. सर्वदेवत्योऽग्निः। शतपथ ब्राह्मण– 6.1.2.28।
25. महद्देवानामसुरत्वमेकम्। ऋग्वेद– 3.55.1।
26. इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान् विधश्तीश्च पुण्याः।
    सर्वाँल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः।। अथर्ववेद–19.54.2–5, 19.53.2,5,8।
27. ऋग्वेद– 6.9.1
28. सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
    रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।।गीता– 8.17
29. ऋग्वेद– 10.129.6
30. वही, 10.129.7

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 38-40

lokZn; ,oa vjktdrkokn % ,d rqyukRed v/;;u

lat; dqekj pkSgku*

अराजकतावाद राज्य के विरूद्ध प्रतिपादित एक विचार या दर्शन है, अराजकतावादियों का मानना है कि राज्य समाज के विकास के मार्ग में बाधक है, जब तक राज्य का अस्तित्व रहेगा तब तक आम जनता का कल्याण नहीं हो सकता। वह राज्य को पूँजीपतियों का पोषक तथा गरीबों के शोषण करने का साधन मानते हैं। प्रसिद्ध अराजकतावादी विचारक प्रोद्यो के अनुसार ''राज्य और पूँजीवादी समाज धनिकों का गरीबों के लिए षड्यंत्र है।''[1] उनके अनुसार राज्य न्याय, विवेक और ज्ञान के स्थान पर मनोवेगों का आधिपत्य स्थापित करता है।[2] उनका मानना है कि राज्य के पूर्ण विनाश के बाद व्यक्ति की आत्मोन्नति के मार्ग में कोई बाधा नहीं रहेगी एवं मनुष्य अपने स्वभाविक गुणों द्वारा अपना विकास कर सकेगा। सर्वोदय का भी आदर्श राज्यविहीन समरस समाज है। सर्वोदयी विचारकों ने राज्य की कई कारणों से आलोचना की है। गांधी के अनुसार ''राज्य केन्द्रित और संगठित रूप में हिंसा का प्रतीक है। व्यक्ति की आत्मा होती है परन्तु राज्य की आत्मा एक जड़ मशीन होती है, इसलिए इससे हिंसा कभी नहीं छुड़वायी जा सकती उसका अस्तित्व ही हिंसा पर निर्भर है।''[3] दादा धर्माधिकारी के शब्दों में –"It demands loyalty to it self in preferance to loyalty towards concience and humanity".[4]

इस संदर्भ में धीरेन्द्र मजुमदार का कहना है – "Its maintance a big administrative appartment and army at the expense of the tailors and producers and thus serve an agency for the exploitation of the people."[5]

इसी प्रकार विनोबा ने भी राज्य की जगह स्वराज्य का विचार दिया, क्योंकि यह राज्य को हिंसा एवं शोषण का प्रतीक मानते हैं –

"Rajya or government is one thing Swarajaya or self government is another. Government can be had through violence self government in impossible without non-violence. So the thoughtful do not desire government. They urge people to strive for self government. The following two lines from Sanskrit namely न त्वहं कामये राज्यम् "I do not desire to govern and" यतमेंहि स्वराज्ये "Let us strive for self government" become their negative and positive political slogans."[6]

परन्तु सर्वोदय को पूर्ण अराजकतावादी दर्शन नहीं कहा जा सकता बल्कि इसे नम्र अराजकता[7] ''एवं आध्यात्मिक अराजकतावाद की संज्ञा दी गयी है। सर्वोदय विचारधारा एक दबाव मुक्त सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना चाहती है। जहाँ लोग अपने विकास के लिए स्वयं मार्ग प्राप्त कर सके।'' इस व्यवस्था में सरकार का पूर्णतः अभाव नहीं होगा, बल्कि इसका प्रयोग रेल के डिबे में लगी खतरे की वैन की तरह संकटपूर्ण समय में होगा।''[8]

सर्वोदयी विचारधारा यह मानती है कि ''एक पूर्ण राज्यविहीन समाज का निर्माण मनुष्य की पहुँच से बाहर है। मनुष्य का यही प्रयास होना चाहिए कि वह राज्य की शक्ति और शासन के प्रभाव को कम से कम करने की कोशिश करें।''[9] राज्य को समाप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता धीरे–धीरे उनकी शक्ति तभी सूक्ष्म होगी जब इन समुदाय का पूर्ण नैतिक विकास हो जायेगा।''[10]

---

*शोध छात्र, दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

गांधी का कहना है कि ''आदर्श या अहिंसक समाज जिसे राज्यमुक्त समाज कह सकते हैं प्राप्त करना सभ्यता, संस्कृति का आदर्श है।......परन्तु जीवन में आदर्श की पूर्ण सिद्धि कभी नहीं होती।''[11] उन्होंने इस आदर्श के प्रतिक के रूप में 'रामराज्य' अर्थात् आदर्श समाज की अहिंसक रूपरेखा प्रस्तुत की जिसमें शुद्ध नैतिकता के आधर पर आम जनता की सत्ता सर्वोपरि होगी।''[12] ''इस अहिंसक राज्य में व्यक्ति के नैतिक उत्थान के लिए अधिक सम्भावनाएँ होती है। नैतिकता के विकास के साथ–साथ राज्य अपना कार्य कम करते जाते हैं। इसके कार्य धीरे–धीरे स्वाधीन संस्थाओं के द्वारा होने लगते हैं। राज्य की शक्ति विकेन्द्रित हो जाती है अतः राज्य में अराजकतावाद की स्थिति आ जाती है।''[13] इसी संदर्भ में विनोबा ने राज्य की जगह स्वराज्य का विचार दिया। उनके शब्दों में– ''स्वशासन, स्वराज्य अर्थात् हर एक को ऐसा लगे कि यह मेरा राज्य........स्वराज्य का अर्थ है आत्मशासन।''[14]

सर्वोदयी और पश्चिमी अराजकतावाद दोनों ही राज्यविहीन समाज व्यवस्था के समर्थक है परन्तु सर्वोदय में पूर्णतः अराजकतावाद का तादात्म्य असंभव है। दोनों विचारधाराओं में बुनियादी भिन्ताएँ हैं।
1. अराजकतावादी हिंसा के माध्यम से राज्य को समाप्त करना चाहते हैं जब कि सर्वोदय विचारधारा ''साध्य एवं साधन दोनों की पवित्रता का आग्रह करती है, क्योंकि इसका मानना है कि ''अशुद्ध साधन का परिणाम अशुद्ध होता है'' असत्य के आधार पर कोई सत्य तक नहीं पहुँच सकता सत्य आचरण के आधार पर ही सत्य तक पहुँचा जा सकता है।[15]
सर्वोदय का विचार क्रमिक शान्तिपूर्ण एवं अहिंसात्मक तरीके से राजनीतिक संस्थाओं को सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तित करना है।
2. अराजकतावादियों ने राज्य की समाप्ति के बाद किसी अन्य राजनीतिक संस्था का विचार नहीं दिया जबकि सर्वोदय दर्शन में राज्य के सम्पूर्ण ढांचे को परिवर्तित कर नवीन अहिंसात्मक राजनीतिक व्यवस्था का चित्रण है, जिसे गांधी ने ''रामराज्य'' और विनोबा ने ''ग्राम स्वराज्य'' के रूप में प्रस्तुत किया है अतः इस सन्दर्भ में अराजाकतावाद एक अपरिपक्व दर्शन है।
3. बाकुनिन और क्रोपातकिन आदि क्रान्तिकारी अराजकतावादी ''राज्य सम्पत्ति संगठित धर्म को मनुष्य में भौतिकता और नैतिक दुर्गुणों के विकास का कारण मानते हैं।''[16]

जबकि सर्वोदय विचारधारा धर्म को नैतिक उत्थान के लिए आवश्यक मानती है, इसमें धर्म की ''निरपेक्ष और शाश्वत नैतिकता के रूप में व्याख्या की गयी है।''[17]
इसलिये ''सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अकाम, अक्रोध, अलोभ और सर्वभूतिहितेरताः को धर्म माना गया है।''[18]
4. अराजकतावाद राज्य अथाव सरकार के किसी भी रूप में अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता और व्यक्ति को पूर्ण रूप से बन्धन मुक्त रखने के पक्ष में है जबकि सर्वोदय का आदर्श व्यक्ति को समाज के प्रति अपने कर्तव्य के प्रति सचेत करते हुए निष्ठापूर्ण निर्वाह के लिए प्रेरित करता है।''[19]
5. सर्वोदय की कुछ–कुछ विचारधारा शान्तिवादी अराजकतावाद से मिलती है। टालस्टाय ने राज्य तथा सम्पत्ति का नैतिक आधार पर विरोध किया था कि वह उन्हें ईसामसीह की शिक्षाओं के विरूद्ध समझता था।[20] ईसा का संदेश था कि बुराई का प्रतिरोध शक्ति से मत करो।[21] राज्य शक्ति पर आधारित है और अपनी मर्जी का पालन पुलिस तथा सेना की शक्ति द्वारा करता है।[22] परन्तु टालस्टाय ने भावी समाज का कोई विवरण नहीं दिया। लेकिन सर्वोदयी विचारक 'गांधी' ने अहिंसक राज्य और विनोबा ने सर्वोदयी समाज का रूप रेखा तय किया था और राज्य की शक्ति को कम करने के लिए सत्याग्रह जैसा शस्त्र विकसित किया क्योंकि उन्होंने स्वीकार किया कि पूर्ण राज्य विहीन समाज असंभव है।

हालाँकि सर्वोदय दर्शन में सभी अराजकतावादी विचारकों के कुछ अंश आ जाते हैं परन्तु दोनों विचारधाराओं में पूर्ण तादात्म्य संभव नहीं है। ''सर्वोदय अराजकतावाद की तरह दर्शनमात्र नहीं है।''[23] यह सकल्याणकारी उदात्तभावना से अभिप्रेरित अहिंसात्मक क्रान्ति द्वारा एक ऐसी समाज व्यवस्था की स्थापना का आग्रह करता है, जिसकी नींव प्रत्येक प्रकार के शोषण से मुक्त और समता, स्वतंत्रता और बन्धुत्व पर रखी गयी हैं।''[24]

lUnHk %

1. Bhattacharjee, N.C. "Is non violent state possible? Gandhian concept of state Dr. B.B. Majumdar culcutta M.C. Sarkar and some ltd. 1957, p. 32
2. कोकर, फ्रांसीस, ''आधुनिक राजनीतिक चिंतन अनुवाद नारायण यादवेन्दु, पृ0 205
3. गांधी : ''दि माडर्न रिव्यु'' 1935, पृ0 412
4. डॉ0 विश्वनाथ टंडन, ''सर्वोदय आफटर गांधी'' में दादा धर्माधिकारी का कथन, पृ0 124
5. धीरेन्द्र मजूमदार, ''शासन मुक्त समाज की ओर'', पृ0 11–12
6. Basant Nargolakar, "The Cread of Saint Vinoba", p. 162
7. डॉ0 विश्वनाथ टंडन – ''सर्वोदय आटर गांधी'', पृ0 123
8. धीरेन्द्र मजूमदार, ''दण्ड निरपेक्ष समाज रचना'', पृ0 20–21
9. विनोबा–भूदान से ग्रामदान, पृ0 44
10. विनोबा–भूदान से ग्रामदान, अध्याय–5
11. यंग इण्डिया 2/7/1931, पृ0 162
12. गांधी हरिजन 2/1/1937
13. गोपी नाथ धवन – पोलिटिकल, फिलासफी ऑफ महात्मा गांधी, पृ0 302
14. विनोबा – लोकनीति–36
15. हरिजन 3/7/1947, पृ0 232
16. कोकर, फ्रांसिस डब्ल्यू : आधुनिक रा0 चिंतन, पृ0 215 और 222
17. विनोबा चिंतन – अंक 55, 1970, पृ0 253
18. विनोबा चिंतन – अंक 40–41, 1969, पृ0 151
19. जे0पी0 सूद – ''आधुनिक राजनीतिक विचार'', पृ0 228
20. फ्रांसिस कोकर – आधुनिक राजनीतिक चिंतन, पृ0 236
21. जे0पी0 सूद – आधुनिक विचार, पृ0 150
22. दशरथ सिंह – गांधीवाद को विनोबा की देन, पृ0 427
23. नागेश्वर प्रसाद शुक्ल – सर्वोदय विचार और सिद्धान्त, पृ0 7
24. पूर्वोक्त

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 41-44

ik0 jkeLo:i pr|oinh dk 0;fDrÙo ,o dfrÙo

vej;'k d|ekj fl|g*

आधुनिक हिन्दी कविता के प्रमुख समीक्षक डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का जन्म छः मई सन् उन्नीस सौ इकतीस (06.05.1931) को उत्तर प्रदेश के कानपुर शहर में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी था। जन्मतिथि का उल्लेख डॉ. चतुर्वेदी ने अपनी आत्मकथात्मक कृति आलोचककथा में किया है।[1] मूल रूप से आप आगरा जिले के कछपुरा गाँव के निवासी थे। आपने लिखा भी है– ''मेरा जन्म कानपुर में हुआ 06 मई, 1931 को जहाँ मेरे पिता व्यवसाय में थे और आरम्भिक शिक्षा गाँव कछपुरा में हुई।'' पढ़े – लिखे और आधुनिक शिक्षा के असर तथा व्यवसाय से जुड़े होने के कारण परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक–ठाक थी। भारतीय नवजागरण के प्रभव के कारण उनका परिवार सनातनी ब्राह्मण होने के बाद भी किसी प्रकार के बाहरी कर्मकाण्डों और ढकोसलों से दूर था। अपने पितामह को याद करते हुए चतुर्वेदी जी ने कहा है– ''वे जिसे कहते हैं नयी रोशनी के, नये ख्याल के सुधारक थे, और इसीलिए मैंने उन्हें कभी पूजा– अराधना के लिए मंदिर में जाते नहीं देखा।''[2]

चतुर्वेदी जी की प्रारम्भिक शिक्षा अपने गाँव कछपुरा में ही हुई। आपने लिखा है ''हाईस्कूल तक अपने पितामह की देख–रेख में उसी गाँव में जहाँ हम लोग दीवट और लालटेन के सहारे रात में पढ़ते थे।''[3] सन् 1946 ई. में अध्ययन के लिए चतुर्वेदी जी पिता के पास कानपुर चले गये और वहीं क्राईस्ट चर्च कालेज से आपने बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। उच्च शिक्षा के लिए आप 1950 ई. में इलाहाबाद आ गये और 1952 में वहीं इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिन्दी विषय लेकर एम.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी से पास किये। सन् 1958 ई. में आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से ही डी.फिल् और 1972 ई. में डी.लिट् की भी उपाधि प्राप्त की। कुल मिलाकर यह चतुर्वेदी जी की शैक्षणिक उपलब्धियाँ रही हैं। इसके अलावा जो भी ज्ञानार्जन हुआ वह स्वाध्याय और गहन अध्ययन से।

1952 में एम.ए. कर लेने के उपरान्त प्रो. धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में 'आगरा जिले की बोली' विषय पर चतुर्वेदी जी ने शोध कार्य आरम्भ किया और अगले ही वर्ष सन् 1953 ई. में उनकी नियुक्ति इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापक के रूप में हो गयी इस घटना का उल्लेख करते हुए डॉ. चतुर्वेदी ने लिखा है– ''1953 का क्रिसमय का अवकाश था, अधिकतर साथी मित्र बाहर चले गये थे। मैं सायंकालीन 'शो' के लिए स्थानीय पैलेस सिनेमा गया हुआ था। प्रख्यात नाटककार आर्थर मिलर की रचना 'डेथ ऑफ ए सेल्समैन' पर बनी फिल्म सिर्फ उसी दिन के लिए लगी हुई थी। नाटक मेरा पढ़ा हुआ था, यह अतिरिक्त कारण था उस प्रदर्शन में पहुँचने का, अन्यथा फिल्म के कई संवाद समझने में कठिनाई होती थी, और तब बहुत बार दूसरों को हँसते देखकर उनके साथ हँसना होता था। पैलेस पहुँचने पर साइकिल रखने के बाद टिकट लेने पहुँचा। फिर यह देखा धीरेन्द्र जी पत्नी को नोट दे रहे हैं यह संकेत करते हुए कि तुम टिकट ले लो। मैं टिकट लेने ही जा रहा था तो डॉक्टर साहब से मैंने कहा कि लाइए मैं आपके टिकट भी ले लूँगा। उन्होंने वह नोट मुझे दे दिया। टिकट और बाकी पैसे देने जब मैं उनके पास पहुँचा तो सधन्यवाद टिकट और बाकी पैसे लेते हुए अपने सहज मंद स्वर में कहा– रजिस्ट्रार कार्यालय से तुम्हारी नियुक्ति का पत्र आ गया है। क्रिसमय अवकाश के बाद उमाशंकर जी से मिलकर अपना टाईम–टेबल ले लेना। आप मेरी इस आकस्मिक प्रसन्नता का अनुभव कर सकते हैं। xxxxxxx । मनचाही वृत्ति आप से आप मिल गयी। आज के परिवेश में जब इस पूरे प्रसंग को स्मरण करता हूँ तो परीकथा जैसा लगता है।''[4]

*वरिष्ठ शोध छात्र, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर, विश्वविद्यालय, गोरखपुर

यह घटना चतुर्वेदी जी ही नहीं आज के पढ़ने वाले हर उस युवक के लिए परीकथा है जो पढ़ाई पूरी करके आज के शासन व्यवस्था और अपनी अर्थ व्यवस्था के चक्कर में पिस रहा है। हजार रूपये भत्ते के लिए लाठी खा रहा है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में चतुर्वेदी जी धीरेन्द्र वर्मा के अतिरिक्त हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू के अन्य विद्वानों के भी सम्पर्क में आए जिनमें डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. रमाशंकर शुक्ल रसाल, पं. देवी प्रसाद शुक्ल, पं. उमाशंकर शुक्ल, व्रजेश्वर वर्मा, डॉ. उदयनारायण तिवारी, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डॉ. माता प्रसाद गुप्त, अकील रिजवी, रघुपति सहाय फिराक, प्रोत्र सतीशचंद्र देव आदि प्रमुख थे। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा जैसे मितभाषी और गम्भीर व्यक्तित्व के साथ डॉ. रामकुमार वर्मा के प्रभाव को स्वीकार करते हुए चतुर्वेदी जी ने लिखा है–

''रामकुमार जी का लहजा बिल्कुल दूसरा था– वे बराबर साहित्यकार लगते थे अपनी वेश–भूषा में औपचारिक प्रसंगों में सूट–टाई, अनौपचारिक रूप में धोती, कुर्ता, अपनी भाषा में समूचे रख–रखाव में भाषा विज्ञान और साहित्य का यह तालमेल जो एक तरह से हमारे विभाग का वैशिष्ट्य था जैसे जाने–अनजाने मेरे व्यक्तित्व में क्रमशः प्रविष्ट हो गया।''[5]

इलाहाबाद विश्वविद्यालय में चतुर्वेदी जी सन् 1954 से 1991 ई. तक अध्यापन कार्य किये। उनके निर्माण और विकास में इस विश्वविद्यालय और इसके वातावरण का बहुत योगदान है जिसे आप बार–बार स्वीकार करते हैं।

सामान्यतः डॉ. चतुर्वेदी अपने देश, अपनी भाषा, अपने परिवेश से प्रेम करने वाले दृढ़ एवं अध्ययनशील व्यक्तित्व के धनी थे। देश प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना उनकी संपूर्ण कृतियों में परिलक्षित होती है। राष्ट्रीयता का यह संस्कार बचपन से ही पड़ने लगा था, डॉ. चतुर्वेदी ने लिखा है–

''परिवार में खद्दर जिसे हमारे यहाँ गाढ़ा कहा जाता था, का चलन था। मैं पूरी तरह से खद्दर पहनने लगा। कपड़े की कमी के जमाने में, द्वितीय महायुद्ध के दिनों, खद्दर का कोटा बाँध दिया गया। खद्दर भण्डार के बोर्ड और नकद पर्ची पर लिखा था– 'जो कातें वे पहिने, जो पहिनें वे कातें'। गगगग स्वावलंबन के उस युग में मैंने खद्दर पहना। विश्वविद्यालय के आरंभिक वर्षों तक यह क्रम चला।''[6]

अपनी भाषा के प्रति प्रेम और उसे महत्व का अहसास चतुर्वेदी जी को क्राईस्ट चर्च कालेज में हुआ जब उनसे जैसे ठेठ गाँव के लड़के को उठाकर ऐसे कालेज में रख दिया गया जहाँ कक्षा में अंग्रेजी में ही पढ़ाई होती थी, कक्षा के बाहर लगभग नब्बे प्रतिशत अध्यापक अंग्रेजी बोलते थे। लड़के डराते थे कि प्रिंसिपल के पास मत जाना अंग्रेज है, केवल अंग्रेजी बोलता है। जो लड़के जाना चाहते थे वे परीक्षा की तैयारी की तरह अंग्रेजी में अपनी बातें रट के जाते थे। अंग्रेजी के इस तनाव को किसी तरह चतुर्वेदी जी ने झेला। अंग्रेजी की फोबिया और उससे होने वाली मानसिक यंत्रण तथा शर्मिंदगी के अनुभव ने हिंदी प्रेम को जगाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाया जिसका परिणाम हम देखते हैं कि उन्होंने अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम स्कूल से हटाकर हिंदी माध्यम स्कूल में रखा। देश के स्वतंत्र हो जाने के लगभग 65 वर्ष बाद भी क्या आज कोई साहित्यकार या राजनेता अपने बच्चों को हिंदी माध्यम से सरकारी स्कूल में पढ़ने भेजा है? देश स्वतंत्र भले हो गया अंग्रेज गए लेकिन अंग्रेजी भाषा और संस्कार तथा उपनिवेशवादी मानसिकता से हम आज भी मुक्त नहीं होने पाए हैं। इसके जिम्मेदार अंग्रेज नहीं हमारी हीन मानसिकता है। फॉदर मॉन्सिनियर एक्स्ट्रॉस का कथन जो सेंट जोसेफ कालेज से जुड़े थे, अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा के सम्बन्ध में है– ''मैं क्या करूँ? हिंदी क्षेत्र के अभिभावक ही बल दे रहे हैं कि पढ़ाई अंग्रेजी में हो। तुमने अच्छा किया जो बच्चों को सेंट जोसेफ से हटाकर भारत स्काउट स्कूल में दाखिला कराया, विशेष रूप से बच्चों का परीक्षाफल जब उत्तम कोटि में आ रहा था।''[7] यह कार्य वही कर सकता है जिसमें अपनी भाषा, देश और अस्मिता के प्रति गौरव का भाव हो।

चतुर्वेदी जी ने लिखा है– ''अजित का भाव था कि मैं भी उनके साथ इन घरों (इलाहाबाद के सहित्यिक परिवारों) में आना जाना रखूँ पर अपने संकोची स्वभाव के कारण संभव नहीं हो सका। मैं एकदम सामान्य विद्यार्थी की तरह विभाग और छात्रावास में रहता था। उस क्रम में जो मित्र बने सौ बने कहीं कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया। इसी प्रकार विख्यात प्रोफेसरों के घर आने–जाने में भी मेरी रूचि नहीं

रही।''[8] यह आपके संकोची स्वभाव का परिचायक है जिसका मतलब यह कत्तई नहीं कि आपके मन में साहित्यकारों या गुरूजनों के प्रति सम्मान या श्रद्धा नहीं थी। चतुर्वेदी जी को नयी–नयी पुस्तकें पढ़ने का शौक था जिसके लिए अक्सर नेमिचंद जैन की दुकान आधुनिक पुस्तक भंडार सिविल लाइन्स जाते रहते थे। जहाँ नेमिजी नयी से नयी पुस्तकें मँगाते और उन पर चर्चा होती थी। इसके साथ ही 'यूनिवर्सल बुक कम्पनी' और काफी हाउस भी पुस्तक और चर्चा के प्रमुख केन्द्र थे।

अपने शहर और परिवेश के प्रेम ने चतुर्वेदी जी को बाहर जाने से बार–बार रोका, उन्होंने लिखा है– '1960 के दशक में बंधुवर विद्या निवास मिश्र का अत्यंत स्नेहपूर्ण आग्रह कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्क ले (अमरीका) से आया कि मैं वहाँ नियुक्ति ले लूँ अतिथि प्राध्यापक के रूप में। बाद में ऐसा ही प्रस्ताव जापान के मित्र काजुहिको माचिदा का टोक्यो विश्वविद्यालय के लिए था। पत्नी की प्रबल इच्छा और प्रेरणा के बावजूद मैं ही अपना मन नहीं बना सका।'[9]

जिन बातों को चतुर्वेदी जी ने पसन्द किया उनका दृढ़ता से विरोध किया अपनी कलम और व्यवहार दोनों ही माध्यमों से जो उनके बौद्धिक आत्मविश्वास और ठसक भरे व्यक्तित्व का परिचायक है। इस सन्दर्भ में नामवर सिंह के 75वें वर्ष को मनाने के लिए चल रहे आयोजन की चर्चा प्रासंगिक होगी जिसका आपने बहिष्कार किया जिसका कारण डॉ. रामविलास शर्मा की मृत्यु के उपरान्त 'आलोचना' का बरसी अंक था। चतुर्वेदी जी ने आयोजकों से कहा– ''जो व्यक्ति अपने से बड़े का उसकी बरसी पर समझ–बूझकर खुला अपमान कर रहा हो तो उस समय उसका सम्मान किस भाषा से किया जाय।''[10]

चतुर्वेदी जी का जन्म एक पढ़े लिखे आधुनिक दृष्टि से सम्पन्न परिवार में हुआ था परिवार के इस वातावरण का प्रभाव निश्चय ही आने वाली पीढ़ियों पर पड़ा। डॉ. चतुर्वेदी के पितामह के पास पुस्तकों एवं पत्रिकाओं का बेजोड़ संग्रह था जिसमें बांग्ला, अंग्रेजी उपन्यासों के अनुवाद तथा हिन्दी की तिलस्मी, ऐय्यारी प्रधान कृतियां जैसे चंद्रकांता आदि तथा राजा लक्ष्मण सिंह का मेघदूत, मैथिलीशरण गुप्त की भारत भारती, सुंदलाल का, अंग्रेजी साहित्य का इतिहास, कुछ अंग्रेजी नाटकों का अनुवाद, तिलक, गांधी की जीवनी तथा कुछ क्रांतिकारियों के जीवन चरित थे। इनके अतिरिक्त कुछ विदेशी चरित्रों के वृत्त थे, जैसे नेपोलियन या ग्वीसवेथ। तिलक द्वारा विरचित गीता रहस्य तथा दयानन्द सरस्वती का सत्यार्थ प्रकाश आदि भी सम्मिलित थे। पुस्तकों के अतिरिक्त तत्कालीन प्रकाशित पत्रिकाएं तथा पत्र भी जिनमें– आज, संसार, लोकमान्य, विशाल भारत, सरस्वती, चांद, माधुरी, प्रभा, देशदूत, कल्याण, दीदी (बहन के लिए) शिशु (बचपन में) आदि दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक आते थे।

सामान्य मध्यवित्त खाते–पीते परिवार के सीमित साधनों के बीच पढ़ने–लिखने का यह लगाव असाधारण था। परिवार पर उन्नीसवीं शताब्दी के पुनर्जागरण के असर के रूप में इसे देखा जा सकता है। बचपन में घरेलू पुस्तकालय की देख–रेख, साफ–सफाई के क्रम एवं सानिध्य में पढ़ने की रूचि का विकास डॉ. चतुर्वेदी में हुआ। इसके अतिरिक्त शिक्षा–दीक्षा के क्रम में योग्य एवं सहृदय शिक्षकों से भेंट और उनके मार्गदर्शन ने डॉ. चतुर्वेदी के अध्ययनशील व्यक्तित्व के निर्माण में सहयोग प्रदान किया। आपने अपनी आत्मकथा (आलोचकथा) में बार–बार इसका उल्लेख किया है। हाईस्कूल के अध्यापक पं. राजबहादुर अवस्थी जिन्होंने सुझाव दिया था– ''लड़के को प्रथम श्रेणी लाना है, अच्छी तैयारी होनी चाहिए, इसलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' अच्छी तरह पढ़ा जाना चाहिए।'[11] अब हम सहज कल्पना कर सकते हैं कि जिस ग्रंथ को स्नातक और परास्नातक के विद्यार्थियों को पढ़ने और समझने में कठिनाई होती है उसे दसवीं कक्षा का विद्यार्थी पढ़ रहा है स्कूली शिक्षा के समय पढ़े गये इस ग्रंथ का प्रभाव हम डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के सम्पूर्ण लेखन में देख सकते हैं। इसके अतिरिक्त किशोरावस्था के समय में इनके यहाँ अनेक साहित्य प्रेमियों का आना–जाना लगा रहता था तथा काव्य पाठ आदि के आयोजन होते रहते थे, जिनमें सुने गये गीतों– 'आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे' (प्रवासी के गीत : नरेंद्र शर्मा) तथा पथिक (रामनरेश त्रिपाठी का राष्ट्रीय चेतना से युक्त काव्य) आदि का उनके किशोर मन पर अद्भुत प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त बच्चन की मधुशाला, मधुकलश आदि रचनाओं से परिचय भी इसी स्कूल अवस्था में ही हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि बचपन का यह परिवेश और इन

पुस्तकों का प्रभाव डॉ. चतुर्वेदी के साहित्यिक व्यक्तित्व और अभिरूचि के बनने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इलाहाबाद अध्ययन के दौरान ही चतुर्वेदी जी अजित कुमार, ओंकारनाथ श्रीवास्तव तथा कुछ अन्य मित्रों के सहयोग से पहला साहित्यिक क्लब बना 'साहित्यिकी' जिसकी बैठकें के.पी.यू.सी. के सभा कक्ष में होती थीं जिसमें विश्वविद्यालय के अध्यापकों को विशिष्ट अतिथि के रूप में बुलाया जाता था। यहीं शरतचंद्र के उपन्यास 'शेष प्रश्न' पर अपना निबंध चतुर्वेदी जी ने पढ़ा आगे शरत के उपन्यासों का क्रमबद्ध अध्ययन और उसके नारी पात्रों पर लिखना प्रारंभ हुआ जो 'सुमित्रा' में धारावाहिक रूप में छपा जो आज 'शरत के नारी पात्र' पुस्तक के रूप में भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित है (1955 ई.) यह चतुर्वेदी जी का पहला प्रकाशन है।

चतुर्वेदी जी इलाहाबाद की साहित्यिक संस्था 'परिमल' जिसकी स्थापना 1944 में हुई थी, से जुड़े थे। 'परिमल' की स्थिति के बारे में आपने लिखा है– ''परिमल अपने में एक विचित्र प्रकार की संस्था थी। व्यावहारिक दृष्टि से जितनी साधनहीन रचनात्मक दृष्टि से उतनी ही सम्पन्न। पखवारे में एक बैठक होती थी किसी सदस्य के घर या यूनिवर्सिटी रोड के जगाती रेस्तराँ जैसे किसी स्थान पर।''[11] परिमल में चतुर्वेदी जी विशुद्ध आलोचक थे क्योंकि गोष्ठियों में उन्हें न कविता पढ़नी होती न कहानी और न उपन्यास ही सुनाना होता। आलोचक होने के नाते गोष्ठियों में आपकी उपस्थिति नियमित थी और आप सबके स्नेह के अधिकारी भी थे।

चतुर्वेदी जी 1955 ई. में प्रकाशित अपनी प्रथम रचना 'शरत के नारी पात्र; से लेकर 2003 ई. अर्थात जीवन के अंतिम समय तक साहित्य की दुनिया में सक्रिय रहे। लगभग 55 वर्षों के लेखन और चिंतन में मानवीय मूल्यों और राष्ट्रीयता की चेतना से चतुर्वेदी जी संपृक्त रहे। चतुर्वेदी जी अपनी रचनाओं में जिस सांस्कृतिक चिंता को व्यक्त करते हैं वह केवल उनकी ही चिंता नहीं है बल्कि मशीनीकरण और वैश्वीकरण के इस युग में सामान्य मनुष्य की भी चिंता है।

I UnHk %

1. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, आलोचकथा, पृ0 17
2. वही, पृ0 15
3. वही, पृ0 17
4. रामस्वरूप चतुर्वेदी, आलोचकथा, पृ0 35
5. रामस्वरूप चतुर्वेदी, आलोचकथा, पृ0 24
6. वही, पृ0 17
7. रामस्वरूप चतुर्वेदी, आलोचकथा, पृ0 32
8. वही, पृ0 26
9. वही, पृ0 38
10. रामस्वरूप चतुर्वेदी, आलोचकथा, पृ0 38
11. रामस्वरूप चतुर्वेदी, आलोचकथा, पृ0 19

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 45-47

xhrk e Kku ;kx

{kek*

कृष्ण द्वैपायन महर्षि वेदव्यास विरचित 'श्रीमद्भगवद्गीता' आध्यात्मिक ज्ञान की एक अमूल्य निधि है। यह महाभारत के भीष्मपर्व का अङ्ग है, इसमें कुल अट्ठारह अध्याय तथा सात सौ श्लोक है। जिसमें एक श्लोक धृतराष्ट्र, चालीस सञ्जय, चौरासी अर्जुन और पाँच सौ पचहत्तर भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा प्रोक्त है। किन्तु महाभारत की कुछ प्रतियों में श्लोकों की संख्या सात सौ पैतालीस है। तदनुसार भगवान् श्रीकृष्ण के छह सौ बीस, अर्जुन के सत्तावन, सञ्जय के सडसठ और धृतराष्ट्र का एक श्लोक है। इसकी गणना प्रस्थानत्रयी के तीसरे प्रस्थान के रूप में की जाती है।

गीता, ज्ञान को ईश्वर की साधना का सर्वोत्तम साधन मानती है। उसके अनुसार मनुष्य में तीन गुण सत्त्व, रजस् और तमस् विद्यमान होते हैं। जब अनेक जन्मों के फलस्वरूप मनुष्य सत्त्व गुण प्रधान होता है, तब वह ज्ञानमार्ग को साधना के रूप में स्वीकार करता है। किन्तु मनुष्य को यह ज्ञानमार्ग भी भगवत् कृपा से ही प्राप्त होता है। विना भगवत्कृपा के मनुष्य ज्ञानरूपी साधना में लिप्त नहीं हो पाता है। गीता कहती है– 'nnkfe cf) ;kx r ;u ekei ;kfUr rA*[1]

ज्ञान का लक्षण क्या है? इस विषय पर भगवान् श्रीकृष्ण कहते है–

^;u HkrkU;'k"k.k n{;L;kReU;Fkk ef;A*[2]

अर्थात् जिस ज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण भूतों को निःशेषभाव से पहले अपने में और पीछे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मा में देखेगा।

ज्ञान सात्त्विक, राजसी और तामसी भेद से तीन प्रकार का होता है। जिसमें सात्त्विक ज्ञान सर्वोच्च कोटि का होता है, क्योंकि इसमें साधक अव्यक्त से लेकर स्थावरपर्यन्त समस्त भूतों को अपने अन्दर तथा अपने को समस्त भूतों में देखता है।

रजस् गुण प्रधान होने के कारण राजसी ज्ञान मध्यम कोटि का होता है। इसमें साधक अपने से पृथक् शरीर में अलग–अलग आत्मा होने का ज्ञान समझता है।

तामसी ज्ञान अत्यन्त तुच्छ और निम्न कोटि का होता है इसमें साधक किसी एक कार्य, शरीर में या शरीर से बाहर बाह्य वस्तुओं प्रतिमादि को ईश्वर समझ लेता है।

अब प्रश्न उठता है ज्ञान के गुण कौन–कौन से है? इसके उत्तर में गीता कहती है– ''मानहीनता, दम्भहीनता, अहिंसा, क्षमा, सरलता, आचार्य की उपासना, शौच, स्थिरता, मन का भली–भाँति निग्रह, इन्द्रियों के भोगों में वैराग्य, अहङ्कारहीनता, जन्म–मृत्यु, जरा–व्याधि, दुःखरूप दोष को बार–बार देखना, अनासक्ति, पुत्र–स्त्री–घर आदि में अलिप्तता तथा इष्ट और अनिष्ट की प्राप्तियों में सदा समचित्त रहना, मुझमें अनन्ययोग से अव्यभिचारिणी भक्ति, एकान्तदेश के सेवन करने का स्वभाव, जनसमुदाय में अप्रीति, अध्यात्मज्ञान में नित्य स्थिति और तत्त्वज्ञान के अर्थ का दर्शन यह सभी ज्ञान के गुण है इसके विपरीत जो कुछ है वह अज्ञान है।[3]

गीताशास्त्र सात्त्विक ज्ञान के प्रतिपादन पर बल देती है। अर्जुन को श्रीकृष्ण ज्ञान प्राप्त करने की पद्धति बताते हुए कहते हैं– ''उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों से सीख। वे तत्त्वदर्शी ज्ञानी दण्डवत् प्रणाम करने से, जिज्ञासु–भाव से प्रश्न करने से और सेवा करने से तुझे उसका उपदेश करेंगे।''[4] छान्दोग्योपनिषद्

*शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

में कहा गया है– ''आपकी कृपा से ही ऐसा सम्भव हुआ है किन्तु मैं आपके मुख से ज्ञान का उपदेश सुनना चाहता हूँ।''[5]

गुरु या ईश्वर में श्रद्धा और विश्वास के द्वारा मनुष्य शीघ्र ही तत्त्वज्ञान को प्राप्त करके जन्म और मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाता है। ज्ञान प्राप्त मनुष्य कैसा भी पापी हो, उसके सारे पापों का क्षय ज्ञान में उसी प्रकार हो जाता है। जिस प्रकार ईधन का अग्नि में।[6] 'किन्तु जिस मनुष्य को ज्ञान प्राप्त नहीं होता, वह सांसारिक भोग विलास में लिप्त होकर नरकगामी बनता है।

कठोपनिषद् में कहा गया है–

;nog rne= ;ne= rnfUogA
eR;k% l eR;eklukfr ; bg ukuo i';frA[7]

अर्थात् जो तत्त्व इस देहेन्द्रियसंघात में भासता है वही अन्यत्र देहादि से परे है और जो अन्यत्र है वही इसमें है। जो मनुष्य इस तत्त्व में नानात्त्व देखता है वह मृत्यु से मृत्यु को अर्थात् जन्म–मरण को प्राप्त होता है।

गीता, ज्ञान के साधन और फल दोनों रूपों की प्रशंसा करते हुए कहती है– 'द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है। क्योंकि सब कर्म पूर्णतया ज्ञान में समाप्त होते हैं।'[8]

ज्ञान के साधनों के विषय में गीता कहती है– ''जिस यज्ञ में अर्पण अर्थात्, स्रुवा आदि भी ब्रह्म है और हवन किये जाने योग्य द्रव्य भी ब्रह्म है तथा ब्रह्मरूप कर्त्ता के द्वारा ब्रह्मरूप अग्नि में आहुति देना रूप क्रिया भी ब्रह्म है– उस ब्रह्म कर्म में स्थित रहने वाले योगी द्वारा प्राप्त किये जाने योग्य फल भी ब्रह्म ही है। अन्य योगीजन परब्रह्म परमात्मारूप अग्नि में अभेद दर्शन रूप यज्ञ के द्वारा ही आत्मरूप यज्ञ का हवन किया करते है।''[9]

ज्ञानी मनुष्य का गुणगान करते हुए गीता कहती है कि जो मनुष्य ज्ञान की प्राप्ति कर लेता है वह प्रत्येक प्राणी में उस परमात्मा के दर्शन करता है, योनिगत भेद केवलनाममात्र के लिये रह जाता है। उसके लिये वासुदेव ही सर्वव्यापी है सर्वत्र उन्हीं की सत्ता है, उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है। गीता के शब्दों में –'ईश्वर में आस्था एवं भक्ति रखने वाले ज्ञानी मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ है। मैं उन्हें अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है।'[10]

सात्विक ज्ञान से जब मनुष्य का मन प्रतिबिम्बित हो जाता है तब उसके शरीर का स्वभाव भी समबुद्धिरूप परिणाम वाला हो जाता है। कहने का तात्पर्य है मनुष्य का मन किसी भी परिस्थिति में जैसे– दुःख–सुख, शीत–उष्ण और मान–अपमान इत्यादि में विचलित नहीं होता है क्योंकि वह संसार के सभी विषय भोगों को अनित्य और दुःखरूप समझता है। भगवान् कहते है– ''विषय और इन्द्रियों के सम्बन्ध में उत्पन्न होने वाले जो भोग है, वे दुःख की योनियाँ हैं और आदि–अन्त वाले हैं, इससे अर्जुन! बुद्धिमान पुरुष उनमें नहीं रमता।''[11]

संसार के जन्म–मृत्यु के चक्र से बाहर निकलने का एक मात्र साधन ज्ञान है इसके समान सुगम और पवित्र अन्य कोई मार्ग नहीं है।

^u fg Kkuu ln'k ifo=feg fo|rA*[12]

तत्त्वज्ञान को प्राप्त मनुष्य निरन्तर प्रसन्न रहता है, उसे न तो किसी प्रकार का शोक होता है न ही किसी वस्तु को पाने की इच्छा होती है। तात्पर्य यह है कि परमात्मा को जानने के बाद मनुष्य के लिये कुछ भी जानना शेष नहीं रहता है। वृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है– अहं ब्रह्मस्मि[13], जिसे ऐसा ज्ञान प्राप्त हो जाता है वह जीवनमुक्त हो जाता है।

गीता के ज्ञान का एकमात्र फल सच्चिदानन्दघन परमात्मा की प्राप्ति है। इसके ज्ञान को चार भागों में बाँट सकते है– (1) यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म है, जो कुछ दिखाई दे रहा है वह भी ब्रह्म ही है। (2) ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नही है, दृश्यमान जगत् ब्रह्म की माया है। माया ब्रह्म की ही शक्ति है। (3) जो कुछ प्रतीत होता है, वह सब मेरा ही स्वरूप है अर्थात् मैं ही हूँ। (4) यह संसार मायामय है, अनित्य है, वास्तव में है ही नहीं। केवल एक नित्य चेतन आत्मा, जो सभी के अन्दर विद्यमान है, वह मैं ही हूँ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गीता का ज्ञान केवल आत्मा और परमात्मा को जान लेना ही नहीं है। अपितु आत्मा और परमात्मा के बीच विद्यमान घनिष्ठ सम्बन्ध को जान लेना है। जो मनुष्य इस घनिष्ठ सम्बन्ध को भली–भाँति जान लेता है वही परमशान्ति को प्राप्त हो जाता है। किन्तु वर्तमान काल में ज्ञान के माध्यम से ईश्वर–साक्षात्कार करना सम्भव नहीं है क्योंकि ज्ञान के लिये काम, क्रोध और वासना आदि का दमन करना अति आवश्यक है। जो आधुनिक युग में किसी भी प्रकार से सम्भव प्रतीत नहीं होता है क्योंकि मनुष्य अपनी इच्छित वस्तु या लक्ष्य को पाने के लिये आँख बन्द करके दौड़ रहा है। इस अन्धाधुन्ध दौड़ में उसके लिये क्या सही है और क्या गलत। वह इसकी भी परवाह नहीं करता। अतः आधुनिक युग में ज्ञानमार्ग पूरी तरह चरितार्थ नहीं होता। इसलिये मनुष्य को ज्ञान के साथ–साथ कर्म और भक्तिमार्ग को भी अपनाना चाहिए।

सन्दर्भ :

1. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 10/10
2. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 4/35
3. अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
   आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः।।
   इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च।
   जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्।।
   असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
   नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु।।
   मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
   विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि।।
   अध्यायत्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
   एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।।– श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 13/7–11
4. तद्विद्धि प्राणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
   उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।– श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 4/34
5. छान्दोग्य उपनिषद, 4/4–9
6. यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
   ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथ।।– श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 4/37
7. कठोपनिषद् अध्याय 2/1/10
8. श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
   सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।– श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 4/33
9. ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्मागौ ब्रह्मणा हुतम्।
   ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।।
   दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
   ब्रह्माग्नावपरे यज्ञ यज्ञेनैवोपजुह्वति।।– श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 4/24–25
10. तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
   प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।– श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 7/17
11. ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
   आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।।– श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 5/22
12. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 4/38
13. वृहदारण्यकोपनिषद्–1.4–10

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 48-51

_Xosn esa ifr"Bkfir ewy Hkkfrd rÙoksa dk lUnHkZ esa vfnfr dk oSKkfud ,oa nk'kZfud foospu

ehuk ;kno*

वेद उस समुद्र की भाँति है जिसमें ऊपर से कुछ भी नहीं दिखलाई पड़ता। दिखाई देता है तो केवल जल, उसे भी यदि चखकर देखा जाये तो खारा। कौन प्रशंसा करेगा इस जल की, किन्तु यदि इसी समुद्र के अन्दर प्रवेश किया जाता है, उसमें डुबकी लगाई जाती है तो वहाँ का संसार ही कुछ अलग है। इसी खारे समुद्र में हमें मिलते हैं मूँगे, रत्न तथा मोती जिनको धारण करके व्यक्ति सुशोभित होता है, प्रतिष्ठित होता है और अन्दर प्रवेश करेंगे तो वहाँ मिलेंगे नाना प्रकार के जलचर। इसीलिए कहा गया है– वेद ज्ञान असीमित है, अनन्त है– vuUrk oS osnk%A[1]

ऋग्वेद दर्शन और विज्ञान का अभूतपूर्व ग्रन्थ है किन्तु ऋग्वेद की भाषा परोक्ष, प्रतीकात्मक एवं संकेतात्मक है तथा अलंकारों विशेषकर रूपकों से परिपूर्ण है। वेद के अपने प्रतीक हैं जिनका वेद की परिकल्पनाओं के प्रतिपादन में महत्त्वपूर्ण योगदान है। ऋग्वेद में भौतिक सत्ता को दो वर्गों में विभक्त किया गया है– प्रथम वर्ग जो अनादि, अजायमान एवं स्वयंभू है तथा द्वितीय वर्ग उत्पत्तिधर्मी एवं विनाशधर्मी है–

> uS p iztk p lnu% j;h.kka tkrL; p tk;ekuL; p {kkeA
> lr'p xkis Hkor'p Hkwjsnsok vfXu% /kkj;Unfo.kksnkeAA[2]

प्रस्तुत मन्त्र में भौतिक सत्ता को दो भागों में विभक्त किया गया है एक तो वह जो जन्म या उत्पत्तिविनाशधर्मी है और दूसरा वह जो सत् स्वरूप अनादि अनन्त है अर्थात् एक वर्ग खण्डनीय है तथा दूसरा वर्ग अखण्ड, स्वयंभू सत्ता वाला है।

प्रश्न होता है कि जगत् में क्या वास्तव में कोई ऐसी सत्ता है जो अखण्ड हो ? ये परिवर्तनशील जगत् भौतिक द्रव्यों से बना है। ऋग्वेद ने इस परिवर्तनशील भौतिक जगत् के मूल में एक मौलिक भौतिक सत्ता की कल्पना की है। यह मौलिक सत्ता खण्डनीय नहीं है। यह अखण्ड सत्त्व ही भौतिक जगत् का अन्ततम द्राव्यिक कारण है। इस मूल आद्या शक्ति से यह जगत् प्रस्फुटित होता है, इसी के आधार पर रहता है तथा कालान्तर में विखण्डित हो इसी में समा जाता है। ऋग्वेद ने इस तत्त्व को इसके वास्तविक गुणों के आधार पर अदिति प्रतीक से प्रतिष्ठत किया है। अदिति जगत् की आधारभूत मूल शक्ति है जिससे जगत् अधिष्ठाता सृष्टि की रचना करता है।

अदिति 'दा बन्धने' धातु से क्तिन् प्रत्यय करके 'दिति' शब्द से निष्पन्न होता है। दिति शब्द का अर्थ है – सीमाओं के बन्धन से बँधी। न. दिति त्र अदिति, अर्थात् सीमाओं के बन्धन से रहित देवता अदिति है; इसलिए ऋग्वेद में बन्धनों से मुक्ति के लिए 'अदिति' की उपासना की गयी है। अदिति शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से सिद्ध होती है। प्रथम निषेधार्थक 'अ' पूर्वक 'दा' धातु से न विद्यते खण्डनोयस्य[3] अर्थात् जो अखण्ड हो, स्वयं ही अन्ततम अवयव हो। दूसरी व्युत्पत्ति 'अद् भक्षणे' धातुपूर्वक इति शब्द से अदिति शब्द सिद्ध होता है जिसका तात्पर्य है कि भक्षण का यहाँ अन्त होता है। अदिति सबका भक्षण करती है, अदिति में सब समा जाते हैं किन्तु स्वयं अभक्ष्य है, घटकों से रहित, अवयवों से रहित है। अनादि परम्परा से प्रकृति ईश्वर के वश में है अर्थात् जगत् का उपादान कारण अनादि है तथा अन्तरहित भी है।

---

*शोधच्छात्रा, संस्कृत–विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

अदिति दक्ष की पुत्री थी तथा उससे देवता उत्पन्न हुए थे।[4] अदिति को देवताओं की माता कहा गया है, किन्तु सभी देवता उसके पुत्र नहीं थे। जो देवता अदिति के पुत्र हैं; वे आदित्य कहलाते हैं। आदित्यों की संख्या नियत नहीं है; कहीं पाँच, कहीं छः[5] (मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष तथा अंश) तो कहीं सात[6] (मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग तथा विवस्वान्) तो कहीं आठ। इनमें मार्तण्ड को और सम्मिलित किया गया है। वस्तुतः अदिति के आठ पुत्र थे। सात को उसने देवताओं में सम्मिलित कर दिया; आठवें पुत्र मार्तण्ड को अदिति ने सुदूर अन्तरिक्ष में प्रजा के जीवन–मृत्यु का विधान करने के लिए नियुक्त कर दिया। उत्तरवर्ती युग में यही मार्तण्ड सूर्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ऐतिहासिक लोग अदिति को देवमाता ही मानते हैं। स्कन्दस्वामी ने इस दर्शन भेद को इस प्रकार प्रकट किया है कि ऐतिहासिकों के मत में अदिति देवमाता है, नैरूक्तों के मत में अदीनता आदि गुण अदिति हैं तथा अध्यात्म पक्ष में अदिति प्रकृति है – vudkFkRo´p n'kuHknu dFke\ ,frgkfldkuk nokuk ekrk mP;rA u:Drkukenhukfnx.kkA v/;kRei{k iÑfrA[7] यास्क ने 'अदितिर्द्यौरदित्यन्तरिक्षम्' को उद्धृत किया है जिसके अनुसार प्रकृति ही अदिति है उसके ही विकृत रूप में द्यौ, अन्तरिक्ष, पिता, पुत्र, विश्वेदेवा आदि विविध नाम हैं। इस प्रकार यह मूल प्र.ति की महिमा–सामर्थ्य का वर्णन है कि यह विविध रूपों में प्रकट हो रही है – इत्यदितेर्विभूतिमाचष्टे।

vfnfr|kjfnfrjUrfj{kefnfrekrk l firk l i=A
fo'o nok vfnfr i´p tuk vfnfr tkrefnfr tfuRoeAA[8]

यदि हम किसी भौतिक पदार्थ के अनेक भाग करें तथा उन भागों में से एक भाग को लें। पुनः इस भाग के अनेक छोटे–छोटे भाग करें व पुनः एक छोटे भाग को लें। कुछ समय बाद पदार्थ की अव्यक्त अवस्था आरम्भ हो जाती है। विभाजन की यह प्रक्रिया तब तक निरन्तर जारी रहे जब तक कि एक ऐसी स्थिति न आ जाये कि अब जो भाग प्रस्तुत है वह विभाजन स्वीकार नहीं करता, जिसका कारण है कि शेष बचा भाग यौगिक नहीं है। यौगिक ही विभक्त हो सकता है उन अवयवों में जिनके संयोग से वह बना है। जो स्वयं इकाई है, अवयवों से रहित अन्ततम भाग है वह अखण्ड है, अदिति है। उसके विभक्त होने का हेतु विद्यमान नहीं है। विनाश का अर्थ है अवयवों का पृथक् होना जो असम्भव है, क्योंकि अखण्ड तत्त्व खण्डरहित है, अवयव रहित है। अखण्ड तत्त्व उत्पत्ति का विषय भी नहीं है। उत्पत्ति का अर्थ है अवयवों के संयोग का होना। अखण्ड के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु यौगिक है। किसी यौगिक के अवयवों का जब परस्पर संयोग होता है तब वह यौगिक सत्ता में आता है जिसे उसकी उत्पत्ति होना कहा जाता है। अखण्ड तत्त्व में अवयवों के संयोग की कल्पना नहीं हो सकती अर्थात् अखण्ड तत्त्व उत्पत्तिरहित है, आदिरहित है, अनादि है। इस प्रकार अदिति अनादि–अनन्त है।

ऋग्वेद कारण–कार्य सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। यह ऋग्वेद का स्थिर सिद्धान्त है कि ईश्वर जगत का रचयिता एवं निमित्त कारण है। जगत का उपादान कारण ईश्वर द्वारा अधिष्ठित एक आद्या स्वयंभू भौतिक सत्ता है जिसे अदिति नाम से सम्बोधित किया गया है। आदि मौलिक सत्ता होने से इसे यत्र–तत्र माता एवं देवी पदों से विभूषित किया गया है –

Û vor n0;fnfrA[9]

Û Ekkrk nokukefnfrjuhd ;KL; drcgrh foHkkfgA[10]

वैदिक ऋषियों की मीमांसा में ईश्वर का अस्तित्त्व एक स्वयंसिद्ध प्रतिज्ञा की तरह स्वीकार किया गया है। साथ ही यह भी स्वीकार किया गया है कि भौतिक जगत के उपादान कारण का होना एक अनिवार्य आवश्यकता है। जगत का उपादान कारण क्या है? इस जिज्ञासा को व्यक्त करते हुए कहा गया है कि –

fd fLonklhnf/k"BkuekjEHk.k drefRLoRdFkklhrA
;rk Hkfe tu;fUo'odek fo |kek.kkUefguk fo'op{kkAA[11]

fde fLor vklhr vf/k"Bku & कैसा था उपादान कारण ।

vkjEHk.k drer fLor & आरम्भ कैसे हुआ।

dFkk&vklhr~ & कैसा था वह मूल कारण

;r% Hkfe tu;u fo'odekZ & जिससे अप्रकाशित लोक उद्भूत करते हुए विश्वकर्मा (ईश्वर) ने

fo|ke~ vkS.kksZr~ efguk fo'op{kk% & सर्वद्रष्टा ने अपने महत्त्व से प्रकाशित लोकों को भी आच्छादित किया।

fda fLo}ua d m l o{k vkl ;rks |kokiFkoh fu"Vr{k%A

euh"k.kks eulk iPNrsn q r|n/;fr"BnHkqoukfu /kkj;uAA[12]

उपर्युक्त मन्त्र में वन से, वृक्ष से लोकों की रचना की बात एक रूपक है, वन समग्र उपादान कारण का तथा उसके वृक्ष, जितने प्रकार के हों, मूल कारण के वर्गों का द्योतक है। अतः मन्त्र में उपादान कारण की जिज्ञासा की गई है। यह स्वाभाविक निष्कर्ष है कि उपादान कारण के अभाव में जगत् रचना सम्भव नहीं है।

ईश्वर तथा अदिति दोनों सह–अस्तित्त्ववान् एवं नित्य हैं। अदिति संज्ञा मूल कारण, चरम भौतिक सत्, आद्य कारण की है। अदिति जगत् का उपादान कारण है, ईश्वर जगत का निमित्त कारण है। अदिति अचेतन, नित्य एवं अधिष्ठित है, ईश्वर भी नित्य अधिष्ठाता है –

vga Hkqo olqu% iO;Lifrjga /kukfu la t;kfe 'k'or%A[13]

ऋग्वेद के अनुसार अदिति मूल शक्ति है, ब्राह्मी अवस्था है। सृष्टियज्ञ अदिति से आरम्भ होता है, अदिति से शनैः–शनैः समस्त जगत् प्रादुर्भाव होता है। प्रलयकाल में उसी मूल शक्ति अदिति में विलीन होता है – ;Kks ok nsoH;% miØker rs nok u fdapuk'kDuqou~ drqa u iztkuLrs·cqoUufnfra Ro;se ;Ka izt kuker] ;k rFksR;cohrA lk ok oks oja o.kk bfr] o.kh'ofr-----A[14]

अर्थात् यज्ञ देवों के पास से चला गया। वे देव न ही कुछ कर सकें, न ही कुछ जान सकें। उन्होंने अदिति से प्रार्थना की तुम्हारे प्रसाद (कृपा) से हम यज्ञ को जानने में समर्थ होवें। उसने कहा – तथास्तु, किन्तु मैं एक वर का वरण करती हूँ, देवों ने कहा – वरण करो। अदिति ने यही वर माँगा कि यज्ञ मुझसे ही आरम्भ हो तथा मुझसे ही समाप्त हो। देवों ने कहा ऐसा ही होगा। इस कथा का सार यह है कि सृष्टि यज्ञ मूल शक्ति अदिति से आरम्भ होता है तथा उसी पर समाप्त होता है। देव मध्यवर्ती सत्ताएँ हैं। मूल शक्ति के प्रसाद से ही देव सृष्टि रचना में भाग लेने में समर्थ हैं। इसीलिए यज्ञों में आरम्भ की इष्टि में अदिति के लिए प्रथमतः चरू होता है तथा अन्त की इष्टि में भी अदिति के लिए चरू होता है।

वेदों पर अनेक भाष्य एवं लेख प्रकाशित हो चुके हैं। कुछ मत भी व्यक्त हुए हैं जिनके अनुसार वेदों में कोई क्रमबद्ध विषय नहीं है तथा दर्शन सम्बन्धी गम्भीर चर्चा नहीं है। इसका प्रमुख कारण यह है कि वेदों का रहस्य आज भी अज्ञात है। अतः सत्य तक पहुँचने के लिए संकेतों को दृष्टि से ओझल न करना परमावश्यक है। ऋग्वैदिक रूपक भाषा में मूल स्वरूप अदिति को माता, क्रियात्मक अवस्था आपः (माया) अथवा बृहती आपः को पुत्र या पुत्री तथा क्रियात्मक अवस्था के परिणाम को आपः का पुत्र अर्थात् अपां नपात् (अदिति का नाती) कहा गया है। नपात् का अर्थ है– नाती।

इस प्रकार ऋग्वेद के अनुसार मूल भौतिक सत्ता त्रिवर्गी है। इस त्रिवर्गी मूल तत्त्व के संघात, समुदाय, समष्टि रूप को अदिति प्रतीक से प्रतिष्ठित किया गया है। आदिकाल में जब त्रिवर्गी मूल सत्ता सृष्टि रचना हेतु क्रियाशील हो उठती है तो प्रकृति की उस अवस्था का प्रतीक आपः या माया कहा गया है। त्रिवर्गी मूल तत्त्व उद्वेलित हो परस्पर क्रिया–प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप विस्तार को प्राप्त होता है। प्रकृति की इस विस्तृत अवस्था में सृष्टि रचना के सर्वप्रथम यौगिकों (परिणामों) की उत्पत्ति होती है। इस अवस्था को बृहती आपः कहते हैं। बृहती से तात्पर्य विस्तृत, प्रशस्त से है। वैदिक द्रष्टाओं के अनुसार आपः से परवर्ती अवस्था बृहती आपः है। उपनिषद् एवं दर्शनकारों ने बृहती आपः को महत् तत्त्व कहा है। महत् का अर्थ भी प्रशस्त है।

lUnHkZ%

1. तैत्तिरीय ब्राह्मण – 3.10.11.3
2. ऋग्वेद – 1.96.7

3. निरुक्त – 2.11.6; छज्जूराम शास्त्री
4. ऋग्वेद – 10.72.5
5. वही – 2.27.1
6. वही – 10.72.9
7. निरुक्त – 4.22.2
8. ऋग्वेद – 1.89.10
9. वही – 2.40.6
10. वही – 1.113.19
11. वही – 10.81.2
12. वही – 10.81.4
13. वही – 10.81.1
14. ऐतरेय ब्राह्मण – 1.2.1

lgk;d xzUFk %

1. ऋग्वेद का सांस्कृतिक और ऐतिहासिक सार–पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ, राजस्थानी साहित्य संस्थान जोधपुर, 1992.
2. निरुक्तम्–छज्जूराम शास्त्री, मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन्स, दरियागंज नई दिल्ली, 2012.
3. वेदों का तुलनात्मक और समीक्षात्मक अध्ययन – डॉ० रघुवीर वेदालंकार, नाग प्रकाशन, दिल्ली–1981.
4. वेदभाष्यभूमिका संग्रह–आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी–1985.
5. वेदों की वर्णन शैलियाँ–डॉ० रामनाथ वेदालंकार, श्रद्धानन्द शोध संस्थान गुरुकुल कांगड़ी, 1976.
6. वैदिक देवता उद्भव और विकास–डॉ० गयाचरण त्रिपाठी, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली–1982.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 52-56

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में जलाशय

अखिलेश कुमार*

पृथ्वी पर जल विविध रूपों में उपलब्ध होता है तथापि भौगोलिक दृष्टि से सरोवरों और झीलों का बहुत महत्व है। यह दोनों जल के स्थिर रूप हैं। सरोवर तथा झीलें हमारे देश में प्राचीनकाल से अस्तित्व में रही हैं। इसके प्रमाण हमें प्राचीनकाल से ही प्राप्त होते हैं। विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में सरोवरों का उल्लेख प्राप्त होता है, इससे स्पष्ट होता है कि सरोवर प्राचीन काल में भी बनाये जाते थे, इन सरोवरों का स्वरूप एक पोखर तथा तालाब से लेकर विशाल झील तक विविध नामों के आधार पर ज्ञात होता है। वैदिक काल में आकार–प्रकार के अनुसार इन सरोवरों के ह्रद[1] पुष्करिणी[2] सर[3] अथवा सरसी आदि अनेक अभिधानों के अतिरिक्त श्यर्यणावत् नामक विशाल सरोवर का भी उल्लेख. ऋग्वेद[4]में मिलता है, इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में ही लोग सरोवरों और झीलों से परिचित थे, इसके साथ ही बाल्मीकि रामायण में पम्पा सरोवर का वर्णन मिलता है, जिससे पता चलता है कि रामायण काल में भी समाज सरोवरों से परिचित था। महाभारत में भी अनेक सरोवरों का उल्लेख प्राप्त होता है। महाकवि कालिदास जी ने भी अपने ग्रंथों में अनेक सरोवरों का वर्णन किया, जिनमें प्रमुख ''पुष्कर (त्रिपुष्कर), पम्पासरोवर, मानस सरोवर, पंचाप्सर सरोवर आदि का हैं। महाकवि बाणभट्ट ने ''अच्छोद सरोवर'' का वर्णन किया है जिससे यह सिद्ध होता है कि जलाशयों तथा झीलों का अस्तित्व प्राचीन काल से ही रहा है।

सरोवर (जलाशय)– संस्कृत साहित्य के प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद[5] तथा अथर्ववेद[6] के संदर्भों के आधार पर ज्ञात होता है कि, मनुष्यों द्वारा विस्तृत भूमि को खोदकर गहरे कृत्रिम जलाशय निर्मित किये जाते थे, जिन्हें खनित्रिम कहा गया है। ये जलाशय (खनित्रम) कृषि की सिंचाई में व्यवहृत होते थे। ऐसे कृत्रिम जलाशय (सरोवर) का ऋग्वेद के एक स्थल[7] पर स्पष्ट उल्लेख इस प्रकार से हुआ है जिसमें जल के लिए गहन जल से पूर्ण जलाशय बनाये जाने का वर्णन किया गया हैं। भूमि को गहरा खोदने के अतिरिक्त आधुनिक काल की भाँति प्रायः नीची भूमि अथवा नदियों के प्रवाह के विरुद्ध ऊँचा बाँध बनाकर भी कृत्रिम जलाशय या झीलें निर्मित होती थीं।

बुन्देलखण्ड के जलाशय– बुन्देलखण्ड में सरोवरों का अपना विशेष स्थान है। उसमें भी लोक कल्याण की भावना निहित है। इस क्षेत्र में जलाशयों को देवस्थान माना जाता है। यहाँ पर जलाशयों का निर्माण केवल मनोरंजन के लिए ही नहीं हुआ है बल्कि धार्मिक महत्व से प्रभावित होकर जलचर, थलचर एवं अनेक प्राणियों, जीव–जन्तुओं के सुखार्थ ही हुआ है, इस क्षेत्र के तालाबों के विषय में प्रसिद्ध हिन्दी लेखक पं. बनारसीदास व चतुर्वेदी जी ने लिखा था–विन्ध्य की प्रगति का वर्णन अधूरा ही रहेगा, यदि यहाँ के सरोवरों का जिक्र न किया जाए। वस्तुतः यहाँ के तालाब प्राकृतिक सौन्दर्य के मुख्य अंग हैं।

तालाबों के महत्व के विषय में पद्मपुराण के ''सृष्टि खण्ड'' में वर्णन है कि कर्म निष्ठ ब्राह्मणों ने महर्षि व्यास से पूछा– उन श्रेष्ठ कर्मों का वर्णन कीजिए, जिनसे संसार में कीर्ति और धर्म की प्राप्ति होती है। ''तब उन्होंने कहा– जिनके खुदवाये हुये तालाब, पोखरे में गौ एक मास या एक सप्ताह पानी पीकर तृप्त होती है, वह मनुष्य पवित्र होकर सम्पूर्ण देवताओं के द्वारा पूजित हो जाता है जो व्यक्ति तालाब (सरोवर) पोखरे का निर्माण कराकर उसका उत्सर्ग (प्रतिष्ठा) कर देता है, उसके जलदान से जो फल मिलता है वह अनन्त होता है। अनेक मेघों की वर्षा से सरोवरों के जल से छोटे–छोटे जितने छींटें उछलते हैं, उतने हजार वर्षों तक पोखरा बनवाने वाला मनुष्य स्वर्ग लोक का सुख भोगता है।

*प्रवक्ता, डी0ए0वी0 इन्टर कॉलेज, महोबा

संस्कृत के महाकवि कालिदास, भवभूति, भारवि तथा बाणभट्ट आदि महान संस्कृत साहित्यकारों ने जंगल के मध्य स्थित सरोवरों का बहुत सुन्दर वर्णन किया है, इसके पूर्व त्रिकालज्ञ महर्षियों द्वारा प्रणीत पुराणों में भी ऐसी रोचक तथा हृदयग्राही अनेक कथाएं मिलती हैं।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में चन्देल काल के पूर्व के जलाशयों के अस्तित्व की जानकारी नहीं मिलती है, किन्तु जब ऋग्वेद में जलाशयों के अस्तित्व का पता चलता है तो निश्चित है कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र में भी तालाबों का अस्तित्व रहा होगा। किन्तु तेरहवीं शताब्दी में इस क्षेत्र के प्रतापी शासक चंदेल थे। चन्देल शासकों के वैभव में किसी प्रकार की कमी नहीं थी। उनके शासन काल में इस क्षेत्र में तालाबों की इतनी अधिकता रही है कि गाँव के नाम भी उन्हीं के नाम पर हो गये जैसे बेलाताल, देवताल, आदि।

एक जनश्रुति प्रचलित है कि पाण्डवों ने अपने वनवास के अज्ञातवास काल में एक वर्ष शहडोल जिले के ''सोहागपुर'' नामक स्थान में निवास किया था और बीते दिनों की संख्या जानने के लिए प्रतिदिन एक तालाब खोदते थे तथा वर्ष भर में 360 तालाबों का निर्माण किया था। इस जन श्रुति का चाहे जो भी आधार हो किन्तु यह तो निर्विवाद है कि विन्ध्य क्षेत्र की अन्य तहसीलों की अपेक्षा सोहागपुर तहसील में तालाबों की संख्या सबसे अधिक है, इस क्षेत्र के बड़े–बड़े तालाबों का निर्माण प्रायः अकाल पीड़ितों को सहायता देने के लिये ही कराया गया है। रीवा का रानी तालाब, गोविन्द गढ़सरोवर आदि इसी के प्रतीक हैं।

प्राचीनकाल में दैवीय आपत्ति आ जाने पर राजागण अपनी प्रजा की सहायता करते थे। इसलिए अकाल के संकटकालीन परिस्थितियों में नये–नये काम खोल देते थे, कभी सड़क, कभी सरोवर और कभी–कभी राजप्रसादों का भी निर्माण कराया जाता था। जिससे जनता को काम मिल जाता था तथा ऐतिहासिक सरोवरों का निर्माण हो जाता था।

इस प्रकार तालाबों के महत्व को देखते हुए स्पष्ट होता है कि बुन्देलखण्ड के शासकों द्वारा बहुत से तालाबों का निर्माण कराया गयाथा,जिनमें से कुछ अपना अस्तित्व खो चुके हैं तथा कुछ अभी भी अपने अस्तित्व को बनाये रखे है, जिनका वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

fo'oukFk lkxj ¼xksfoUn x<+ ljksoj½ & गोविन्दगढ़ सरोवर का असली नाम विश्वनाथ सागर है। रीवा शासक महाराजा रघुराजसिंह ने अपने पूज्य पिता श्री महाराज विश्वनाथ सिंह के नाम पर विक्रमी सम्वत् 1910 में ''विश्वनाथ सागर'' नामक विशाल सरोवर का निर्माण कराया था।[8] कैमोर पर्वत तराई में दो पर्वत मालाओं को जोड़कर इस सरोवर का निर्माण कराया गया है। विश्वनाथ सागर के अधूरे कार्य को महाराज ''वेंकट रमणसिंह'' ने पूरा किया और उसकी सजावट तथा सुधार महाराज गुलाब सिंह ने कराया था।

:i lkxj&रीवा नगर से दक्षिण में 15 किमी0 की दूरी पर वेला गोविन्द गढ़ मार्ग पर मुकुन्द पुर नामक बस्ती है। यह इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। दिल्ली के बादशाह अकबर द्वितीय का जन्म इसी मुकुन्दपुर में हुआ था। किसी रूपवती नामक रानी के नाम पर रूप सागर ''नामक तालाब का निर्माण कराया था।[9] यह सरोवर कमल से ढ़का हुआ है। इस ऐतिहासिक रूप सागर को स्थानीय जन आज भी धोबी तालाब कहते हैं। यह तालाब छोटा होने पर भी सुन्दरता एवं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

jkuh rkykc ¼jhok½& रीवा नगर के बीच में रानी तालाब का निर्माण रीवा नरेश महाराजा भाव सिंह पटरानी अजब कुंवरि ने विक्रमी संवत 1750 के आस–पास कराया था।[10] महारानी अजबकुंवरि चित्तौड़ के श्रीराज सिंह की पुत्री थी। महाराज भावसिंह की उन्नीस रानियाँ थीं जिनमें महारानी अजब कुंवारि प्रमुख थी। रानी तालाब के चारों ओर विभिन्न देवताओं के मंदिर बने हुए हैं। तालाब के मध्य में एक मंदिर खण्डहर रूप में स्थित है। कहा जाता है कि तालाब निर्माण के समय में ही इस मंदिर का भी निर्माण हुआ था और शंकर जी की स्थापना की गयी थी। जो अब जीर्ण–शीर्ण अवस्था में है।

jke lkxj& रीवा नगर से लगा हुआ पूर्वी भाग में बदरॉव नामक गाँव में यह सरोवर स्थित है। इसका निर्माण रीवा के अखाड घाट के प्रसिद्ध सन्त महन्त श्री प्रेमदास महाराजा जी ने कराया था।[11]उसके उत्तरी किनारे पर मंदिर वनवाकर श्रीराम जानकी और हनुमान जी की स्थापना करायी थी। बाद में उसी गाँव

के निवासी पण्डित गंगा प्रसाद जी ने तालाब तथा मंदिर का जीर्णोद्धार करा दिया है। यह तालाब देखने में छोटा लगता है, किन्तु ऐतिहासिक महत्व रखता है।

jkuh rkykc ¼fljekSj½&रीवा जिले के सिरमौर तहसील के मुख्यालय से लगा हुआ उत्तर दिशा में आधा किमी की दूरी पर रानी तालाब स्थित है। रीवा नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह की छोटी महारानी ने इस तालाब का निर्माण कराया था।[12]

eydkorh rkykc&रीवा नगर से 30 कि0मी0 दूर पूर्वोत्तर में'' मनगवा'' नामक कस्बा है। उसके अग्निकोण में मलकावती रानी का बनवाया हुआ ''मलकावती तालाब'' है।[13]

इस तालाब को मलकपुर का तालाब भी कहते हैं। इस तालाब का क्षेत्रफल लगभग 100 एकड़ होगा। क्षेत्रफल की दृष्टि से गोविन्दगढ़ तालाब के बाद इस तालाब का दूसरा स्थान है।

lqUnj rkykc–रीवा नगर से 40 कि0मी0 दूर उत्तर दिशा में रीवा कटरा वायाक्योटी मार्ग पर क्योटी ग्राम के पश्चिम तथा प्रसिद्ध ऐतिहासिक क्योटी की गढ़ी के पूर्व आधा कि0मी0 की दूरी पर क्योटी ग्राम निवासी श्री सुन्दरलाल सेठ द्वारा तालाब खुदवाया गया था।[14] यह तालाब 17 एकड़ भूमि में फैला हुआ है। क्योटी ग्राम के वासियों के लिए यह तालाब बड़ा उपयोगी है।

j?kqoa'k rkykc&रघुवंश तालाब लगभग 500 वर्ष पूर्व लाल गाँव जिला रीवा के निवासी अगस्त्व गोत्रीय ब्राह्मण श्री रघुवंश प्रसाद पाण्डेय ने अपने गाँव ''लाल गाँव''में ही खुदवाया था।[15] पास पड़ोस के तालाबों में यह सबसे बड़ा तालाब है। इसके किनारों पर आम के वृक्ष लगे हैं। यह तालाब ''रघुवंश तालाब'' के नाम से प्रसिद्ध है।

txnso rkykc&सतना नगर के मध्य में ''जगदेव तालाब स्थित है। ग्राम बिधुई निवासी अंतरौल पाण्डेय श्री जगदेव जी ने 1867 ई. में जब सतना नगर बसाया था। उस समय तालाब खुदवाया था।[16] तालाब के दक्षिणी किनारे पर मंदिर बनवाकर भगवान शंकर की स्थापना की गयी थी। वर्तमान में यह तालाब अतिक्रमण का शिकार हो गया है तथा इसकी अवस्था पर प्रशासन भी ध्यान नहीं दे रहा है। जिससे इस तालाब का अस्तित्व खतरे में है।

/keZ lkxj ,oa yksdiky lkxj& धर्मसागर ''सरोवर पन्ना नगर के ईशान कोण में स्थित है। दक्षिण तथा पश्चिम की ओर मजबूत चौड़ा तट बन्ध बना है। पन्ना के जलाशयों में धर्म सागर अधिक प्रसिद्ध है। यह सरोवर धार्मिक कार्यों से जुड़ा है। उत्तर और पूर्व से जंगल लगा है। तालाब की मेंड़ पर मंदिर और भवन बने हैं। पन्ना के तालाबों का निर्माण प्रायः पन्ना के नरेशों ने ही कराया है।

''लोकपाल सागर'' तालाब का निर्माण पन्ना के राजा लोकपाल सिंह के ने कराया था।[17] लोकपाल सागर तालाब का पानी पन्ना के आस–पास कृषि के लिए सिंचाई के उपयोग में लिया जाता है।

pEir rky–इस सरोवर का निर्माण ओरछा के राजा चम्पत राय ने कराया था। छतरपुर जिले का महेवा ग्राम बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ के आस–पास की शोभा से मुग्ध होकर उपर्युक्त महाराजा ने इस स्थान पर अपनी राजधानी बनायी थी। उसी समय इस ताल का भी निर्माण कराया था।[18] यह तालाब बहुत अधिक गहरा है। सर्वदा जल तरंगे लहराती रहती हैं। यह तालाब जंगली पशु पक्षियों की सबसे अधिक सहायता करता है।

enu lkxj¼trkjk½& प्रसिद्ध चन्देलशाासक राजा मदन वर्मन ने इसे सरोवर का निर्माण कराया था।[19] मदन सागर का अपना अलग इतिहास है। बुन्देलखण्ड के सरोवरों में यह सर्वश्रेष्ठ है। मध्य झील में ''मदनभवन'' बना हुआहै। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है महाराजामदन वर्मन ने प्राकृतिक शोभा का आनंद लेने के लिए ही इस भवन का निर्माण कराया था।

enu lkxj ¼vgkj½&यह सरोवरटीकमगढ़ से 20 किमी0 और बल्देवगढ़ से 6 किमी की दूरी पर स्थित है।[20] मदन सागर अहार का ऐतिहासिक महत्व है। बुन्देलखण्ड में कई जैनतीर्थ है उनमें से एक ''अहार'' भी है। बरसात में अहार और लड़वारी ''गाँवों के बीच में स्थित तीनों तालाब अपनी–अपनी सीमा को लांघकर एक हो जाते हैं। उस समय की शोभा अवर्णनीय हो जाती है।

unuokjk rky&यह तालाब टीकमगढ़ से उत्तर की ओर करीब 40 किमी0 की दूरी पर स्थित है। इसका निर्माण ओरछा नरेश महाराज वीर सिंह देव (प्रथम) ने ही कराया है।[21] इस ताल का नाम (नदनवारा) गाँव के नाम पर ही रखा गया था। नदनवारा गाँव पहाड़ी के ऊपर बसा था। जिसके अवशेष आज भी पाये जाते हैं। तालाब के दोनों तरफ पर्वत शाखाएं खड़ी हुई हैं, जो पर्वत की शोभा को बढ़ाती हैं। यह तालाब बरगी नामक नदी को रोककर बनवाया गया है। इस तालाब का क्षेत्रफल करीब 25 किमी0 है।

ohj lkxj& बुन्देलखण्ड की रियासतों में ओरछा प्रमुख रियासत थी। यहाँ राजाओं में महाराज वीरसिंहदेव (प्रथम) बड़े प्रतापी हो गये। उन्होंने ही ''वीर सागर'' का निर्माण कराया था।[22] यह वीर सागर तालाब गिरिमालाओं के अधोभाग में स्थित है। इसके अगोर में ''वीरी सागर'' नामक गाँव बसा है। इस तालाब का क्षेत्रफल लगभग 6 वर्ग कि0मी0 होगा।

Xokky&rky& इस सरोवर का निर्माण ओरछा के नरेश महाराज विक्रमादित्य सिंह ने कराया था।[23] इस जलाशय के समीप बल्देवगढ़ नाम की नगरी बसी हुई है। इसी से लगा हुआ लक्ष्मन तालाब है। वर्षा के दिनों में इन दोनों तालाबों का पानी मिलकर एक हो जाता है। उस समय इन तालों की शोभा बढ़ जाती है। बल्देवगढ़ का प्रसिद्ध किला भी इन्हीं महाराजा विक्रमादित्य सिंह ने बनवाया था।

dhjr lkxj ¼egkck½ कीरत सागर तालाब ऐतिहासिक नगरी महोबा में स्थित है। जिसका निर्माण यहाँ के प्रसिद्ध राजा कीर्तिवर्मन ने.सं.–1060 ई. करवाया था।[24] ऐतिहासिक सांस्कृतिक कथाओं को समेटे कीर्तिसागर अपनी अथाह जलराशि को समाहित किये स्थापित है। यही वह सरोवर है जिसके किनारे चन्देल राजकुमारी चन्द्रावल को पाने के लिए युद्धरत पृथ्वीराज की सेना को परमाल के अजेय योद्धाओं ने पराजित किया था। इस ऐतिहासिक सरोवर के किनारे आज भी कजरी महोत्सव धूमधाम से मनाया जाता है।

enu lkxj& महोबा के चन्देल शासक मदन वर्मन द्वारा द्वारा बनवाया गया। इसका जलमग्न क्षेत्र 4 वर्ग किमी0 है। इसके मध्य में पाँच द्वीप रमणीय दृश्य प्रस्तुत करते हैं। जिन पर चन्देलकालीन स्मारक अतीत के सौन्दर्य की याद दिला रहे हैं, जो खकरा मठ के नाम से प्रसिद्ध है।

dY;k.k lkxj&महोबा के चन्देलशासक वीरवर्मन ने अपनी रानी कल्याण देवी के नाम पर इस सरोवर का निर्माण कराया था।[25]यह महोबा नगर से पूर्व में स्थित है। यह जलाशय विजय सागर और मदन सागर को जोड़ता है।

nljkiqj ljkoj&महोबा से बाँदा मार्ग पर किडारी रेलवे क्रासिंग के बाँई ओर दसरापुर सरोवर स्थित है, जिसका निर्माण आल्हा –ऊदल के पिता दस्यराज (दक्षराज) ने कराया था।[26] यह सरोवर महोबा से उत्तर दिशा में स्थित है।

jfgfy;k lkxj& महोबा के शासक राहिलदेव वर्मन ने 890 ई. में रहलिया सागर का निर्माण कराया था[27] जिसके किनारे पर रहलिया सूर्य मंदिर सुशोभित है।

fot; lkxj&महोबा नगर के पूर्व में लगभग 5 किलोमीटर की दूरी पर स्थित विजय सागर महोबा का विशालतम सरोवर है जो चारों ओर से पहाड़ियों एवं वनों से घिरा हुआ है। यह सरोवर बुन्देलखण्ड के रमणीय सरोवरों में एक है।

उपर्युक्त तालाबों के अतिरिक्त बहुत से तालाब हैं जिनका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं होगा। बुन्देलखण्ड के प्रत्येक ग्राम में कम से कम एक तालाब अवश्य पाया जाता है। जो पूरे गाँव को पानी उपलब्ध कराता था। इसी कारण तालाबों को इस क्षेत्र में बड़ी श्रद्धा के साथ पूजा जाता है। बुन्देलखण्ड में इन तालाबों के अलावा झाँसी जिले में, वक्शी का तालाब, राजाताल, टिकौली ताल, आतिया ताल, लक्ष्मीताल, शिवराव सागर, बरूवा सागर, ललितपुर जिले में गजोराताल, पिपरई ताल, तालवेहट, महरोनीताल, बक्सा का ताल, बेलाताल (महोबा में) दतिया जिले में सीता सागर, लक्ष्मण ताल, कर्ण सागर, राधा सागर, लाला का ताल, चरखारी में रत्नसागर, जैसागर, विजय सागर, विजावर में, गोराताल, भगवाताल कसार ताल, छतरपुर जिलमें ध्रुव सागर, द्रोणसागर, प्रताप सागर, निवारीताल आदि जलाशय बुन्देलखण्ड में पाये जाते हैं। जल ही जीवन इस सूक्ति को बुन्देलखण्ड के शासक भलीभाँति समझते थे। जल के बिना मनुष्यों

को भी प्राण धारण करना असम्भव होता है। पितरों का तर्पण, शौच, सुन्दर रूप और दुर्गन्ध का नाश आदि सब जल पर आधारित है। इसलिए वर्तमान समय में भी सम्पूर्ण शक्ति और धन लगाकर तालाब, वावली, कुँआ, पोखरा आदि का निर्माण कराना चाहिए। जो निर्जन प्रदेश में जलाशय बनवाता है उसे प्रतिदिन इतना पुण्य प्रतीत होता है कि वह एक एक दिन के पुण्य के बदले में एक–एक कल्प तक स्वर्ग लोक में निवास करता है।

जलाशयों के महत्व को देखते हुए ही बुन्देलखण्ड में तालाबों एवं कूपों की देव स्थान के रूप में पूजा की जाती थी तथा उन्हें देव स्थान माना जाता था, इसी कारण इन स्थानों पर लोग जूता–चप्पल उतार कर पैर रखते थे। अनेक ऐसे रीतिरिवाज प्राचीन काल से ही प्रचलित हैं जिससे कूप, जलाशयों एवं नदियों की पूजा की जाती है, इनके उपयोग को देखकर एवं महत्व जानकर इनके अस्तित्व को बनाये रखने के लिए इनकी पूजा का विधान किया गया होगा।

lUnHk %

1. ऋग्वेद 3.36.8, 3.45.3
2. वही 5.78.7
3. वही 7.103.2, 8.49.3–11
4. वही 8.7.29
5. वही 7.49.2
6. अथर्ववेद 1.6.4, 19.2.2
7. ऋग्वेद 9.100.5
8. शास्त्री आर.एस. (1998) विन्ध्य दर्शन प्रथम भाग पृ. 209, रीवा
9. वही पृ. 215
10. वही पृ. 216
11. वही पृ. 216
12. वही पृ. 216
13. वही पृ. 222.223
14. वही पृ. 232.233
15. वही पृ. 234
16. वही पृ. 239
17. वही पृ. 244. 245
18. वही पृ. 245.246
19. वही पृ. 246.247
20. वही पृ. 247.248
21. वही पृ. 249.250
22. वही पृ. 250.251
23. वही पृ. 251. 252
24. तिवारी आर.डी. (2000) (आल्हा महोत्सव) पृ. 55, महोबा
25. वही पृ. 55
26. वही पृ. 55
27. वही प. 56

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 57-60

’kj.kd|ekj fy|ckyj dh vkRedFkk e| vfHk0;Dr ekuo vf/kdkj

nhik Hk.Mkjh*

मानव अधिकारों के हनन की समस्या दुनिया के सभी समाजों में ऐतिहासिक रूप से पायी जाती रही है। इसी तरह भारतीय समाज में भी कई प्रकार के मानव अधिकारों का उल्लंघन पाया जाता रहा है, जिसमें यहां की सामाजिक व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, भारतीय समाज के संदर्भ में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कुछ सामाजिक वर्ग एवं संप्रदाय मानव अधिकारों के हनन के ज्यादा शिकार ऐतिहासिक काल से रहे हैं या यूं कहें वर्तमान में भी इस समस्या से बुरी तरह प्रभावित हैं, ऐसा ही एक सामाजिक वर्ग है दलित समाज, जिनका जाति, रंग, वर्ग आदि के आधार पर शोषण किया जाता रहा है। भारतीय संविधान में दलितों के मानवाधिकार का संपोषण किसी न किसी रूप में वर्णित है परंतु व्यावहारिक दृष्टि से आज भी दलित समाज का सामाजिक, आर्थिक स्थिति में कोई सुधार होता नहीं दिख रहा है। दलित सिर्फ प्रयोग की वस्तु बनकर रह गया है और समस्या का जो केन्द्र था वह जस का तस रह गया है।

ekuo vf/kdkj dk vFk ,o ifjHkk"kk समानता, स्वतन्त्रता व अस्मिता ऐसे नैसर्गिक मूल्य हैं जो प्रत्येक मानव के लिए आवश्यक हैं। किसी भी राज्य या समाज के स्वरूप का ज्ञान उसमें रहने वाले मनुष्य के अधिकारों से जाना जा सकता है। मानव अधिकार को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है–

– प्रसिद्ध विचारक और राजनीतिक विज्ञान के ज्ञाता प्रो० हेरोल्ड जे० लास्की मानव अधिकार को परिभाषित करते हुए कहते हैं, ''अधिकार सामाजिक जीवन की वे परिस्थितियां हैं, जिनकी अनुपस्थिति में मनुष्य अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता।''[1]

– अधिकारों को परिभाषित करते हुए बोसांके कहते हैं,''अधिकार वह माँग है जिसे समाज स्वीकार करता है और राज्य लागू करता है।''[2]

’ मानव अधिकारों का अर्थ सपष्ट करते हुए स्वामी विवेकानन्द कहते हैं,'' मानव अधिकार व्यावहारिक धरातल पर तभी प्रस्फुटित हो सकता है जब देश की रीढ़ समाज के निर्धनों, अस्पृश्यों एवं स्त्रियों की दशा में बदलाव आये और संपत्ति का न्यायपूर्ण वितरण सुनिश्चित हो, जिससे निर्धन और अधिक निर्धन और सम्पन्न, और अधिक सम्पन्न न बन सके और सभी गौरवपूर्ण जीवन जी सकें।''[3]

जब विश्वस्तर पर मानव अधिकारों का घोषणा पत्र तैयार हो रहा था उसी समय भारतीय संविधान निर्माताओं ने संविधान में मौलिक अधिकारों को सम्मिलित कर इन अधिकारों को आत्मसात किया। इन छः मौलिक अधिकारों का विस्तृत वर्णन संविधान के अनुच्छेद– 3 के अन्तर्गत धारा 14 से 32 तक किया गया है। ये मौलिक अधिकार निम्नलिखित हैं– (1) समानता का अधिकार, (2) स्वतन्त्रता का अधिकार,(3) शोषण से मुक्ति का अधिकार, (4) धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, (5) सांस्कृतिक एवं शिक्षा संबंधी अधिकार, (6) संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

अनुच्छेद–15 में उपबंध किया गया है, '' राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

---

*शोधार्थी, हिन्दी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

संविधान में सभी भारतीयों को समान रूप में सभी प्रकार के भौतिक अधिकार दिए गए हैं।''[4] अनुच्छेद–16 में स्पष्ट किया गया है, ''देश में व्याप्त असमानता व जाति धर्म के नाम पर अयोग्यता को समाप्त कर दिया गया। इसके अनुसार सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान किया गया तथा जाति, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर किसी राज्य नियोजन या पद के संबंध में अपात्र नहीं होगा या उससे विभेद नहीं किया जाएगा।''[5]

भारत में दलितों के मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए महात्मा ज्योतिबा फुले, रामास्वामी नायकर, डॉ० भीमराव अम्बेडकर आदि ने विविध प्रकार के सामाजिक व राजनीतिक आंदोलन चलाये।महात्मा ज्योतिबा फुले ने सत्यशोधक समाज की स्थापना की और समाज में सभी जाति व वर्ग के मानव को एक मानने की अपील की। भीमराव अम्बेडकर ने दलित वर्ग के मानव अधिकार को सुरक्षित व संवर्धित करने पर बल दिया। बाबा साहब ने मांग की दलितों को अलग प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए यह दलित राजनीति में सबसे सशक्त मांग थी। अंबेडकर के प्रयासों का ही यह परिणाम है कि दलितों के अधिकारों को भारतीय संविधान में जगह दी गई। यहां तक कि संविधान के मौलिक अधिकारों के जरिए भी दलितों के अधिकारों की रक्षा करने की कोशिश की गई।

nfyr lkfgR; vkj ekuo vf/kdkj% स्वतंत्र भारत में डॉ० भीमराव अम्बेडकर के अस्पृश्यता निवारण कानून तथा केंद्रीय सरकारों द्वारा दलितों की स्थिति को सुधारने के लिए जो कदम उठाए गए वे पर्याप्त तो थे लेकिन सदियों से चली आ रही दलितों के प्रति घृणात्मक भावना को सिर्फ उक्त कदमों द्वारा दूर करना संभव नहीं था क्यों कि उक्त संवैधानिक एवं कानूनी व्यवस्था को लागू करने वाला प्रशासनिक ढांचा सवर्णों के हाथ में ही था। इसलिए दलित लेखकों ने अपने लेखन के माध्यम से अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए सवर्णों का विरोध करना आरंभ कर दिया। दलित लेखकों में प्रसिद्ध मराठी के दलित लेखक शरणकुमार लिंबाले ने अंबेडकर के विचारों का आत्मसात किया। उनके मन में विचार उठने लगे थे कि, ''अन्याय, अत्याचार करने वालों पर भी अत्याचार करूँ, दलितों पर होने वाले अमानवीय क्रूर अत्याचारों के विरूद्ध विद्रोह करूँ। गुलाम को गुलामी का अहसास जब तक नहीं होता, तब तक वह विद्रोह नहीं करता।''[6] इन्हीं विचारों और अनुभूतियों से उनका व्यक्तित्व विकसित होने लगा।

दलित साहित्य को अधिक समृद्ध और गतिशील बनाने में दलित आत्मकथाओं का विशेष योगदान रहा है। आत्मकथाओं के माध्यम से दलित सहित्यकार दलितों की व्यथा–वेदना को प्रवाहपूर्ण अभिव्यक्ति के साथ–साथ दलित जीवन के सरोकारों को विस्तृत पटल पर उतारकर संपूर्ण समाज के समक्ष आत्मपरिचय की चुनौती खड़ी कर दी है। शरणकुमार लिंबाले ने अपनी आत्मकथा 'अक्करमाशी' में मनुवादी समाज की जाति–पाति के घिनौने रूप का विरोध किया जिसने समाज में ऐसी दरारें पैदा कर दी हैं कि दलित समाज में सम्मान से जी ही न सके। लेखक अपनी आत्मकथा में प्रश्न करते हुए कहते हैं, '' ऐसा क्या है हमारे स्पर्श में ? हमारे स्पर्श से पानी अपवित्र हो जाता है, श्मशान भूमि अपवित्र हो जाती है, होटल–ढाबा अपवित्र हो जाता है। ईश्वर, धर्म और मनुष्य भी अपवित्र हो जाता है ?''[7]

लेखक जाति और धर्म के नाम पर होने वाले शोषण को परिभाषित करते हुए कहते हैं नौकरी के दौरान जब उनका स्थानान्तरण 'लातूर' नामक कस्बे में हुआ तो उन्हें वहाँ केवल मकान इसलिए नहीं दिया क्योंकि प्रत्येक घर जातिवाद से ग्रसित था इस संदर्भ में लेखक कहते हैं, ''मुसलमान और महारों को हम घर किराये से देना नहीं चाहते– ऐसा स्पष्ट कहा जाता। इस शहर को क्या आग लगा दें ? इतना बड़ा शहर, पर मुझे एक कमरा तक नहीं मिल सकता ? प्रत्येक शहर जातिवादी। प्रत्येक गाँव जातिवादी। प्रत्येक मनुष्य जातिवादी। जाति ने यहाँ के लोगों को भीतर से इतना तोड़ दिया है कि कहीं पर 'मनुष्य' ही शेष नहीं है।''[8]

विभिन्न प्रकार के कानूनों के निर्माण होने तथा अधिकारों की प्राप्ति के बावजूद दलित–वर्ग सामाजिक अपमान व विषमता को झेलता रहा है। शरणकुमार लिंबाले की आत्मकथा प्रस्थापित समाज के प्रति विद्रोह है, लेकिन उसके साथ ही दलित–समाज के प्रति भी उसके मन में द्वंद्व है। लेखक अपनी आत्मकथा में सपष्ट करते हुए कहते हैं, '' गाँव, भाषा, माँ, पिता, धर्म जाति–इन सभी दृष्टियों से मैं खंडित

हूँ। गुमशुदा व्यक्तित्व लिये जीने वाला....... मेरे अस्तित्व को 'जारज' कहकर सतत् अपमानित किया गया है। ब्राह्मणों से लेकर शूद्रों तक सभी अपने खानदानी अभिमान और खानदानी अस्मिता लिये जीते हैं परंतु यहाँ मेरी अस्मिता पर ही बलात्कार हुआ है। बलात्कार स्त्री की तरह मेरा यह जीवन। यहाँ की नीति ने मेरे साथ एक अपराधी की तरह ही आचरण किया है। मेरे जन्म को ही यहाँ अनैतिक घोषित किया गया है।''[9]

प्राचीन काल से ही दलित महिलाओं का शोषण हो रहा है तथा इस भारतीय सामाजिक व्यवस्था में उनके मानव अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है, इन्हें समाज में सिर्फ इतना ही स्थान दिया गया जिससे उनकी सेवाओं का उपभोग उच्च जाति के लोग कर सकें। लेखक अपनी बहनों के भविष्य की चिंता करते हुए प्रश्न करते हैं, ''हम बच्चों का क्या होगा ? नागी, निरमी, वनी, सुनी, पमी इनके साथ शादी कौन करेगा? मैं तो पुरूष हूँ, किसी के साथ भी जी लूँगा, पर इन बहनों का क्या होगा ? क्या इनके विवाह होंगे ? मनुष्यों की बस्ती में क्या हमें स्वीकार किया जाएगा।''[10]

संविधान के अंतर्गत सभी को समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार आदि प्राप्त है परंतु सवर्णों द्वारा उनके अधिकारों का हनन किया जाता है। हिंदू समाज में जाति के आधार पर काम का बंटवारा किया जाता है। लेखक ने अपनी आत्मकथा में इस महत्वपूर्ण बात पर प्रकाश डाला है, ''गाँव के सारे गंदे काम दलितों के लिए होते हैं। गाँव की दीया–बत्ती करना, सवर्णों के यहाँ कोई जानवर मर गया हो तो उसे खींचकर ले जाना, काटना, चमड़ा उतारना और उसे बेचना। ये सारे काम दलितों के लिए ही क्यों ?''[11]

इस प्रकार के प्रश्न दिल दहला देती है। दलितों के साथ आज भी शैक्षणिक स्थानों पर भेदभाव किया जाता है। उन्हें किसी न किसी तरीके से उनकी जाति का एहसास दिलाया जाता है। अपनी आत्मकथा में लेखक कहते हैं, ''एक बार पाठशाला द्वारा आयोजित वन भोजन में गाँव के सवर्णों के साथ महार के लड़के भी शामिल थे। सवर्णों की रोटियाँ और सब्जियाँ बच गई थीं। शिक्षकों ने बची हुई सारी जूठन इकट्‌ठी करके हमें देने के लिए कहा। मैं, मारूति, उंब–या व परश्या बचे–खुचे अन्न की उस जूठन को लेकर अपने स्थान पर आने लगे। लडके–लडकियाँ मजा लेते हुए आगे निकल गये। पर हम सबके प्राण तो उस जूठन में ही अटक गये थे।''[12]

शरणकुमार लिंबाले गाँव की पाठशाला में जैसे–तैसे शिक्षा पा तो रहे थे साथ ही साथ घोर दरिद्रता का सामना भी कर रहे थे। अपनी आत्मकथा में सपष्ट करते हुए कहते हैं, ''जब स्कूल मारवाडी की कोठी में लगता तो मैं बैठक के नीचे बैठता। लडके–लड़कियाँ ऊपर बैठते। शिक्षक और ऊँची जगह पर बैठकर सवर्णों के लड़कों को गणित समझाते। हम नीचे जूतों की तरफ बैठे रहते। सभी और चप्पल और जूते। शिक्षक की चप्पलों को मैं छूता तक नहीं था। सोचता, चप्पलों को छूत लग जायेगी।''[13]

लेखक विषम परिस्थितियों में भी पढ़ने की कोशिश करता रहता है। अस्पृश्यता का यह जहर किस हद तक सवर्ण समुदाय के जीवन में घुल गया इसका वर्णन यहाँ 'अक्करमाशी' आत्मकथा में लेखक द्वारा परिलक्षित किया जा रहा है, '' सावन माह के कारण स्कूल तेली कोठी में लगता था। मैं पहली बार उस कोठी में गया था। लडकों में जाकर बैठ गया। उस कोठी के मालिक के लड़के महाद्या ने मुझे कहीं से देख लिया। वह भागता हुआ आया। मेरी स्लेट तथा पुस्तकें छीन ली और पूरी शक्ति से वह मुझे पीटने लगा। आँखों के सामने तारे चमकने लगे। सारे बच्चे मेरी तरफ देख रहे थे। शिक्षक आये। उन्होंने उन सबसे दूर, दरवाजे के पास बैठने के लिए मुझसे कहा। मैं उस स्थान पर अकेला बैठ गया।''[14]

आर्थिक रूप से पिछडे होने के कारण केवल पेट भरना दलितों का लक्ष्य होता है। यह भी एक बहुत बड़ी समस्या है। केवल भूख आदमी से सौ प्रकार के काम करवा लेती है। लेखक कहते हैं, ''शादी के घरों के सम्मुख मैं भूखा पेट लिये खड़ा होता– बस्ती के लिए कब बुलावा आयेगा। इसकी प्रतीक्षा करते हुए। शादी के घर का निमन्त्रण लेकर महार बस्ती में आता। 'खाने चलो' की आवाज देता। पूरी बस्ती निकलती। उस दिन सभी का चूल्हा बंद होता था। सबके सब निकलते।''[15]

'अक्करमाशी' आत्मकथा में दिखाया गया है कि लेखक ने अपने बचपन में कितनी गरीबी देखी है। इसमें स्पष्ट किया है, ''किस तरह लेखक को अपने पेट की चिन्ता के साथ ही मंसामाय और संतामाय के पेट भरने का भी सवाल था। इनके लिए जो भी मिले घर लाने की कोशिश करता रहता था। संतामाय गोबर के उपले बनाकर बेचा करती थी। ज्वार के दानों से भरे हुए ऐसे गोबर को संतामाय धोती। गोबर निकल जाता, दाने अलग हो जाते है। संतामाय उन दानों को सुखातीं। दाने सुखने के बाद हम घर लौटते। उन दानों को वह चक्की में खुद पीसती।''[16]

लेखक अपनी आत्मकथा के माध्यम से भारतीय संविधान की चौदहवीं धारा पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं;–''कानून के समक्ष सभी समान हैं;'ऐसा कहा गया है। परन्तु पर्सनल लॉ– इस मूलभूत अधिकार के विरोध में है। पर्सनल लॉ जायज–नाजायज में भेद करता है। जायज संतति को पिता की सम्पत्ति के सभी उत्तराधिकार प्राप्त हो जाते हैं, परंतु नाजायज संतति का क्या ? वह भी उसी पिता से जन्म लेता है न ! इसमें उसका क्या दोष ? किसी व्यक्ति को नाजायज घोषित कर, उसके अधिकारों को नकारना वास्तव में मानवता का गला घोंटना है''[17]

'अक्करमाशी' आत्मकथा एक और अन्याय–अत्याचार की यातनामय यादें अंकित करती है तो दूसरी और प्रस्थापित संस्कृति से प्रश्न पूछती है। यह आत्मकथा इशारा करती है कि यह व्यवस्था बदलनी चाहिए। डॉ० भीमराव अम्बेडकर के अथक प्रयासों के फलस्वरूप दलितों के अधिकारों ने संवैधानिक दर्जा तो प्राप्त किया, किंतु हिंदू सामाजिक–व्यवस्था के खिलाफ सवाल उठाने और बदलाव करने की कोशिशों को कभी छूट नहीं दी गई और ऐसे कार्यों को हमेशा समाज विरोधी समझा गया।वर्तमान समय में भी पिछडी हुई जातियों के मानव अधिकार सुरक्षित नहीं है अतः इस समस्या का हल तब तक नहीं निकल सकता जब तक शिक्षा, राजनीति, न्यायपालिका, नौकरशाही एवं मीडिया आदि क्षेत्रों में दलितों का प्रतिनिधित्व नहीं होगा।

lUnHk%

1. सैनी, रामसिंह, समकालीन परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकारों के विविध आयाम, दिल्ली, गगनदीप पब्लिकेशन्स, (2007), पृ. सं. 3
2. मिश्रा, महेन्द्र कुमार : भारत में मानवाधिकार, जयपुर, आ० बी० एस० ए० पब्लिशर्स, (2008), पृ. सं. 27
3. स्वामी विवेकानन्द, कम्पलीट वर्क्स, Vol. Vl (1968), पृ. सं. 381
4. भारती, रामविलास, बीसवीं सदी में दलित समाज, नई दिल्ली, अनामिका पब्लिशर्स, (2014), पृ. सं. 112
5. यथावत्, पृ. सं. 112
6. लिंबाले, शरणकुमार, 'अक्करमाशी', (अनुवादक–सूर्यनारायण रणसुभे), नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, (2009), पृ. सं. 10
7. यथावत्, पृ. सं. 131
8. यथावत्, पृ. सं. 124
9. यथावत्, पृं सं. आवरण पृष्ठ
10. यथावत्, पृ. सं. 111–112
11. यथावत्, उद्धृत, पृ. सं. 19
12. यथावत्, पृ. सं. 35
13. यथावत्, पृ. सं. 37
14. यथावत्, पृं. सं. 36
15. यथावत्, पृ. सं. 39–40
16. यथावत्, पृ. सं. 41
17. यथावत्, पृ. सं. 18

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 61-64

Hk.Myhdj.k dh ifØ;k vkj efDr] ckt+kj vkj ng d f=dk.k

MkW0 lqjfHk f=ikBh*

"स्वतंत्र विचार करने वाले लोग किसी भी तरह की सत्ता को रास नहीं आते। क्योंकि ये सत्ता की अनीति के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं और समय आने पर उसे उखाड़ फेंकने के लिए सड़कों पर उतर आने में भी ख़ौफ़ नहीं खाते। इसलिए सत्ता हमेशा लोगों की विचार शक्ति को दबाती या भटकाती (स्त्री के संदर्भ में) है। फिर भी लोगों को जाग्रत करने, चेतना सम्पन्न बनाने की मुहिम जारी रहती है। आज इस मुहिम को और तेज़, व्यापक व प्रभावी बनाने की ज़रूरत है। क्योंकि यदि लोगों में उचित–अनुचित को परख लेने की वैचारिक क्षमता नहीं रही तो उनका स्वतंत्र अस्तित्व भी किसी दिन ख़तरे में पड़ जाएगा।"[1]

भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया बहुआयामी है और इसे किसी एक परिभाषा के आधार पर नहीं समझा जा सकता। विभिन्न दृष्टिकोणों से जाँच–परख करके ही इसके सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं को स्पष्ट किया जा सकता है। सामान्यरूप से भूमण्डलीकरण का तात्पर्य है समस्त विश्व को एक–दूसरे के निकट लाकर वैश्विक स्तर पर सामाजिक जीवन, आर्थिक प्रगति और वैश्विकता की भावना को विकसित करना। औद्योगिक, वैज्ञानिक, तकनीकी प्रगति ने संचार माध्यमों को अत्याधुनिक रूपों में विकसित करके इस कार्य को आसान बनाया है। वैश्वीकरण (भूमण्डलीकरण) की प्रक्रिया सतही तौर पर देखने में जितनी सरल और हितकर प्रतीत होती है, अपने भीतरी रूपों में यह उतनी ही विविधतापूर्ण और जटिल है। इसलिए अलग–अलग दृष्टिकोण से इस प्रक्रिया के अलग–अलग अर्थ भी निकलते हैं।

भूमण्डलीकरण कई बड़ी प्रक्रियाओं को समेटे हुए है, और किस प्रक्रिया पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है, इससे इसकी परिभाषा भी बदल जाती है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक सभी संदर्भों में भूमण्डलीकरण की अलग–अलग परिभाषाएँ और भूमिका उजागर होती है। स्त्री अस्मिता और उनके अधिकारों के कई पक्षधर मानते हैं कि विभिन्न स्तरों पर महिलाओं पर भूमण्डलीकरण का प्रभाव भी भिन्न–भिन्न होता है। यह महिला समुदायों के साथ सामाजिक व्यवहार के नए मानक उत्पन्न करता है एवं उन्हें घर से बाहर गतिशीलता के अवसर प्रदान करता है। उन परिस्थितियों में जहाँ स्त्रियाँ पितृसत्तात्मक श्रम विभाजन के अन्तर्गत ज़्यादा शोषित रही है, वहाँ भूमण्डलीकरण के कुछ तत्त्व (पहलू) उनकी इन स्थितियों से स्वतंत्रता में सहायक सिद्ध हुए हैं। जबकि अनेक देशों में स्त्रियों को भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया से कई गंभीर हानियाँ हुई। भूमण्डलीकरण इस स्थिति के लिए ज़िम्मेदार है, या इसे बढ़ावा दे रहा है, यह बहस का मुद्दा है। बीजिंग+5 आउटकम डाक्युमेंट (यूएन रिपोर्ट) के अनुसार, 'ग्लोबलाइज़ेशन कुछ औरतों को अवसर उपलब्ध कराता है, लेकिन कई अन्यों को हाशिये पर फेंक देता है। रिपोर्ट के अनुसार लैंगिक समानता हेतु ऐसे समुदायों का मुख्यधारा में आना जरूरी है।' बेलेन्टाइन मोगडम का मानना है कि–'महिलाएँ भूमण्डलीकरण में भिन्न भूमिका अदा करती हैं, उन्हें इसके दुष्प्रभावों का ज़्यादा सामना करना पड़ता है और वे इन अव्यवस्थित आन्दोलनों की भूमि बन जाती हैं।'

"उत्तर–औपनिवेशिक परिवर्तन और भूमण्डलीय प्रक्रियाएँ इतने स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर नहीं हुआ करती, और न ही उनका स्त्री जीवन पर केवल निषेधात्मक प्रभाव ही पड़ता है। इसलिए

*पी0डी0एफ0, भारतीय भाषा केन्द्र, जे0एन0यू0, नई दिल्ली

भूमण्डलीकरण के ख़िलाफ़ एक तरफ़ा फ़ैसला देना जल्दबाज़ी का शिकार होना होगा। पूँजीवाद की ओर बढ़ते हुए तीसरी दुनिया के भूमण्डलीय आर्थिक प्रणाली वाले देशों में स्त्री की जो पहचान उभरती है, वह पश्चिम की नक़ल भर नहीं है। आधुनिक विमर्श में हिस्सेदारी कर रही स्त्री को एक सीमा तक अपना आलोचनात्मक रवैया बनाने में सफलता मिली है। परिणामतः स्त्री जीवन की नई भूमिकाएँ और इन भूमिकाओं से जनित स्त्री शक्ति के बावजूद व्यापक स्तर पर स्त्री को नई असमानता और असुरक्षा का सामना करना पड़ा है।"[2] कुछ विचारकों का मानना है कि विश्व की नई आर्थिक व्यवस्था से स्त्री भी लाभान्वित हुई है, तो कुछ के अनुसार भूमण्डलीकरण का स्त्री पर निषेधक प्रभाव पड़ा है। किन्तु यह बात तो तय है कि भूमण्डलीकरण ने स्त्री को प्रभावित किया है।

भूमण्डलीकरण ने न केवल पूँजी के प्रवाह हो उन्मुक्त किया है वरन् सांस्कृतिक सीमाओं को छिन्न–भिन्न कर दिया है। बाज़ारवादी नीति ने समस्त विश्व में एक जैसा उपभोक्ता वर्ग तैयार किया है ताकि उसे अपना माल ख़पाने में सुविधा हो और कम्पनियाँ अधिक से अधिक पूंजी कमा सकें। स्वतंत्र बाज़ार ने विज्ञापनों के माध्यम से समस्त विश्व को प्रभावित किया है। प्रत्येक देश की संस्कृति भी इससे प्रभावित हुई है। विज्ञापनों के माध्यम से उपभोक्तावाद हर कहीं अपने पाँव पसारता जा रहा है। हर कहीं विशिष्ट वर्ग पश्चिमी सुख–साधन का सामान जुटाने में समर्थ है। इस पर रोक लगाने का अर्थ है कि आपको मानवाधिकार और मानव–स्वतंत्रता का विरोधी मान लिया जाएगा। सेटेलाइट और साइबर स्पेस की दुनिया में कोई भी इन पर आधारित सूचना की बाढ़ को रोक पाने की स्थिति में नहीं है। पश्चिमी संस्कृति की सर्वव्यापकता के बावजूद कई स्थानों पर इसका विरोध हो रहा है। 'रूढ़िवादी मुस्लिम समाजों के अतिरिक्त स्वयं अमेरिका के कई भागों में इसका विरोध हो रहा है।'

"भूमण्डलीकरण ग़ैर पश्चिमी संस्कृतियों के लिए मारक साबित हो रहा है। जो समाज बहुसांस्कृतिकता से सम्पन्न थे, वे एकायामी होते जा रहे हैं। जो कुछ भी घट रहा है वह संवादधर्मिता नहीं है। वरन् पश्चिम का ग़ैर–पश्चिमी समाजों पर आरोपण है, आर्थिक साम्राज्यवाद है। एक तरह से आर्थिक, मानसिक, एवं विचारधारा का उपनिवेशीकरण है। "भूमण्डलीय स्टेज पर न तो चीनी ओपेरा देखने को मिलता है न ही अमेरिकी समाज लत मंगेशकर को सुनना चाहता है। न कोई मोरक्कन जूलिया राबर्ट्स या फिलीपीनी न्यू किड्स भी टी.वी. पर देखने को मिलता है। ब्राज़ीलियन शेक्सपियर की चर्चा नहीं की जाती, उसके नाटक नहीं खेले जाते। भारतीय टी.वी.चैनल सहारा मनोरंजन पर अंग्रेज़ लेखिका बार्बरा कार्टलैण्ड मुक़द्दमा दायर करती है; मगर भारत का कोई लेखक उसके लिखे का विरोध नहीं कर पाता। भूमण्डलीकरण स्टेज (अमेरिका) पर अगर उर्दू–हिंदी कविता का पाठ सुनने को मिलता है तो अप्रवासी भारतीयों के बीच। वास्तव में भूमण्डलीय मंच एक पश्चिमी मंच है। पश्चिमी सत्ता और नियंत्रण का सांस्कृतिक वैयक्तीकरण यदि यहाँ किसी ग़ैर–पश्चिमी व्यक्ति को यदा–कदा बोलने के लिए चुन लिया जाता है तो इसलिए कि वह पश्चिम के क़रीब है या पश्चिमी आदर्शों को बढ़ावा दे रहा होता है या फिर उनकी अच्छी नक़ल कर सकता है। जितनी भी ग़ैर–पश्चिमी निर्मितियाँ और कलाकृतियाँ हैं वे तब ही स्वीकारी जा सकती हैं जब उनमें पश्चिमी मानस को गुदगुदाने की संभावना हो।"[3] संस्कृतियों पर भूमण्डलीकरण का प्रभाव अत्यंत जटिल है। स्त्रियों के संदर्भ में इसका प्रभाव और भी संश्लिष्ट एवं जटिलतर है क्योंकि भूमण्डलीय संस्कृति स्थानीय संस्कृति को 'आच्छादित' करती है। अस्मिताओं को दबाती है, उनसे उनकी पहचान, परंपरा, उनके सवाल और उनकी स्वंत्रता छीनती है।

थामस फ्रीडमैन की प्रसिद्ध पुस्तक 'द लक्सेस एण्ड द ऑलिव ट्री' ग्लोबलाइजेषन से उपजने वाली भविष्य की समस्याओं की ओर संकेत करती है। हालाँकि स्त्री–पक्ष इसमें उपेक्षित है। भूमण्डलीकरण को स्पष्ट करते हुए फ्रीडमैन लक्सेस यानि एक क़ीमती मोटर कार और ऑलिव ट्री अर्थात् परम्परा और उसके मूल्यों को आमने–सामने रखते हैं। फ्रीडमैन के अनुसार भूमण्डलीकरण इसलिए अनिवार्य है कि प्रत्येक व्यक्ति पश्चिमी समृद्धि और औद्योगिक, वैज्ञानिक प्रगति से मिलने वाला दैहिक़ आराम चाहता है। सबको लक्सेस गाड़ी, घर में बिजली, पानी, साफ़–सुथरा बाथरूम और फ्रिज चाहिए। केवल अमेरिका की ही नहीं वरन् तीसरी दुनिया के ग़रीब देशों की भी यही कामना है। नए बाज़ार आधारभूत रूप से अमेरिका

के लिए लाभदायक ज़रूर हैं मगर लाभ के साथ ज़िम्मेदारी भी उठानी पड़ती है और अमेरिका द्वारा कमज़ोर राष्ट्रों को समय–समय पर संरक्षण एवं आर्थिक, सैनिक सहायता देकर इस जिम्मेदारी को बख़ूबी निभाया गया है! (थामस फ्रीडमैन, द लेक्सस एण्ड द ओलिव ट्री, पृ. 29–41)

सास्किया सॉसेन और सिन्थिया एनलोय जैसी नारी चिन्तक स्त्री पर भूमण्डलीकरण के प्रभावों को लेकर प्रारंभ से ही सशंकित रही हैं। पूंजी के निर्बाध प्रवाह, सुविधा भोगी मानसिकता, नवसाम्राज्यवादी–पूंजीवादी देशों एवं बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा अर्धविकसित कमज़ोर देशों एवं अस्मिताओं के संरक्षण देने के नाम पर उनका अतिरिक्त शोषण किया है। प्राकृतिक–संसाधनों की तरह बाज़ार के बीच स्त्री एक वस्तु, एक कामुक छवि बनकर रह गई है। 'पावर वूमेन' की आड़ में, पूंजी के खेल में, स्त्री कठपुतली बन गई है। और जटिल स्थिति यह है कि पूंजीवादी भूमण्डलीकरण की अवधारणा के अन्तर्गत उसके शोषण को उसकी मुक्ति कहकर प्रचारित किया जा रहा है। पिछले वर्षों में 'ब्यूटी मिथ' और मीडिया ने स्त्री की वैविध्यपूर्ण छवि को बुरी तरह कुचला है और स्त्री के नाम पर पश्चिमी स्त्री की श्रेष्ठता को प्रतिपादित किया है। चाल–ढाल, केश विन्यास, वस्त्र–सज्जा, त्वचा की रंगत– हर कहीं पश्चिमी प्रतिमान हावी हैं। सौन्दर्य उत्पादों की बढ़ती ख़पत को ध्यान में रखते हुए भारत जैसे विकासशील दक्षिण एशियाई देशों के बाज़ारों को हथियाने की ग़रज़ से इन क्षेत्रों की स्त्रियाँ विज्ञापनों में छाई हुई हैं। 'मर्द को और अधिक मर्द और स्त्री को और अधिक स्त्री' बनाकर पेश किया जा रहा है जो हर वक़्त अपने 'दिखने' को लेकर सतर्क हैं। स्थापित प्रतिमानों से इतर जीवन एवं विचार पद्धति अपनाने वाले मनुष्य को हीनताबोध का एहसास गहराई से कराया जा रहा है।

स्त्री की सफलता के पीछे उसकी रंगत और स्मार्ट 'दिखने' पर ज़ोर दिया जा रहा है। कोई स्त्री एक ख़ास ब्राण्ड के वस्त्र या कास्मेटिक प्रयोग करते ही आत्मविश्वस और गौरव की अनुभूति से भर उठती है तो कोई एक ख़ास परफ्यूम की महक़ से आकर्षित होकर किसी अनजान पुरुष से अचानक लिपट जाती है। मानो कामुकता ही जीवन और संबंधों का आधार है। यहाँ यथार्थ के नाम पर एक आभासी यथार्थ रचा जाता है। स्त्री–पत्रिकाओं में प्रचारित सौन्दर्य–पात्रता की एक बानगी देखिए–

"जिस देह की आप हक़दार हैं
उसे प्राप्त करें।' (वर्तमान में साईज ज़ीरो या एक्स्ट्रा स्मॉल)
आकर्षक देह बिना
यत्न के नहीं आती।'
अपनी प्राकृतिक–प्रतिभूतियों (असेट्स) का लाभ उठाइए।'
आप अपनी देह को फिर से नया आकार दे सकती हैं।' आप की झुर्रियाँ अब आपके नियंत्रण में हैं।"[4]

यहाँ उम्र के साथ आने वाले प्राकृतिक बदलावों को स्त्री के समक्ष बीमारी की तरह प्रस्तुत करके उसके मन में यह धारणा बैठाई जा रही है कि चिर युवा, गोरा, विशेष प्रकार के नाक–नक़्श, लम्बा, छरहरा होना ही स्त्री की कुल जमा पूंजी है। इसके विनष्ट होते ही वह निरर्थक, अनुपयोगी वस्तु है! इस उद्योग में अथाह पूंजी लगी हुई है। स्त्री को यौन बाज़ार में बेचा–ख़रीदा जाता है। पर्यटन उद्योगों के भीतर छोटे–छोटे पदों एवं सेवाओं के अतिरिक्त उसे यौन–सेवाएँ प्रदान करने के लिए भी घेरा जा रहा है।

ऐसे में स्त्री को अत्यंत सजग रहने की आवश्यकता है उसे ध्यान रखना होगा कि चकाचौंध और स्वतंत्रता के छद्म प्रचार में फँसकर कहीं वह "पूँजी की ललमुनिया" न बन जाए। 'सर्वाइल ऑफ द फिटेस्ट" के नारे को साकार करते बाज़ारवाद के इस युग में "पूँजी की तरह 'मजदूरों को तो अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज का फ्री वीजा मिला नहीं.... पर हाँ उनकी औरतें और लड़कियाँ अरब शेखों और हमारे अन्तर्राष्ट्रीय गिरोहों के बिकती चली जाने को स्वतंत्र हो गईं। उपभोक्तावाद क्षणवाद को बढ़ावा देता गया–'टू मिनट्स प्लीज़; 'फ़िल इट, षट इट, फॉरगेट इट' आदि के कैप्शन अंतरंग मानवीय संबंधों पर भी घटित होते दीखने लगे। यह उस समय हृदय हीन उपयोगिता का ही नया रूप था जो औरत को 'पानी के एक गिलास' और 'लदे हुए गर्भ' के सिवा कुद मानता ही नहीं था। और दलित कवयित्री सरूपारानी की पंक्ति नए–नए संदर्भों

में खुलती चली गई– घर में पुरुष अहंकार एक गाल पर थप्पड़ मारता है तो गली में वर्ण आधिपत्य दूसरे गाल पर।

आज भी ईंट–पर–ईंट पर–ईंट सिर पर और नौ महीने का बच्चा गर्भ में लादे बीच सड़क पर खड़ी मजदूर औरत का बिम्ब 'उत्पादन' और 'प्रजनन' का एक आदिम घाल–मेल हमारे सामने जगह–जगह खड़ा करता है।......उनके लिए कौन–सी सदी बदली, कौन–सा नया विज्ञान आया–यह सोचने की बात है।"[5]

भूमण्डलीकरण के दौर में "मध्यवर्गीय स्त्री की साँचे में ढाली छवियों को स्पष्ट करते हुए अनामिका लिखती हैं, "मध्यवर्गीय संदर्भ में 'भूमण्डलीकरण' कहते ही स्त्री के तीन रूप सामने उभरते हैं–(क) तरह–तरह के मेकअप से दबी ढँकी, बेहद दुबली, अक्षतयौवना वादी गुड़िया का; (ख) हॉर्लिक्स, मैगी, सॉस, तरह–तरह के साबुनों और शैम्पू, खिलौने, बिस्किट, फैंसी ड्रेस की टिकटें ख़रीदती सुपरबॉयर, सुपर ममी; का (ग) कम्प्यूटर ऑपरेटर, रिसेप्शनिस्ट, विमान, परिचारिका, सेल्स गर्ल, मॉडल, दूसरी हॉस्पिटेलिटी सर्विसेज में नियुक्त लड़कियों या लोअर डिवीज़नल क्लर्क, टाइपिस्ट, स्टेनो आदि का, जिनके सिर पर ठुँकी पड़ी है बस ही धक्का–मुक्की, सुबह से शाम से सुबह तक एक नए तरह की, पर उतनी ही नीरस अरचनात्मक कार्यावलि तरह–तरह की डाँट–फटकार या बॉस/गॉडफादर का यौन–दोहन, तज्जन्य अपराधबोध, कुण्ठाएँ अन्य विकृतियां, गृह–कलह, खण्डित मातृत्त्व, आदि कलंक।"[6] इस सब के बावजूद भूमण्डलीकरण की सर्वव्यापी, सर्वग्रासी, प्रक्रिया के फलस्वरूप स्त्री के लिए बने नए 'स्पेस' को रेखांकित करते हुए अनामिका आगे कहती हैं कि "पर जैसे बाढ़ की विभीषिका के साथ कुछ उपजाऊ मिट्टी की किनारे आ लगती है, भूमण्डलीकरण के मूलतः विनाशकारी वशीकरण मंत्र ने चाहते–न–चाहते स्त्रियों की अस्मिता का थोड़ा विकास भी कर डला है। निचले पदों पर ही सही, स्त्रियाँ रोजगार पा तो रही हैं; तरह–तरह की दुर्धर्ष स्थितियों से जूझने का आत्मविश्वास भी आ ही गया है, तरह–तरह के 'एक्सपोज़र' से।"[7]

चौतरफा दबाव, तनाव और संघर्ष के बावजूद अपने लिए थोड़े से पैसे और घर की चारदीवारी से कुछ देर बाहर की दुनिया में निकलकर जीवनसंघर्षों की आँच में पकी स्त्रियाँ "मुक्ति, बाज़ार और देह के त्रिकोणात्मक संबंध को समझकर ही अपनी मानवीय अस्मिता को बचाए रखने के लिए मानवीय विकल्पों की तलाश कर सकेंगी।"[8]

lUnHkZ %

1. सुरेश पण्डित, भूमण्डलीकरण के दौर में समाज और संस्कृति, पृ0 10
2. प्रभा खेतान, बाजार के बीच बाजार के खिलाफ, पृ0 10
3. वही, पृ0 13
4. सुधीश पचौरी, एक सुला क्षण/सौन्दर्य मिथक की द्वन्द्वात्मकता, पितृसत्ता के नये रूप, राजेन्द्र यादव, प्रभा खेतान, अभय कुमार दुबे (सम्पादक), पृ0 34
5. अनामिका, पूँजी की ललमुनिया, पितृसत्ता के नये रूप, राजेन्द्र यादव, प्रभा खेतान अभय कुमार दुबे (सम्पादक) पृ0 24
6. वही, पृ0 25
7. वही, पृ0 26
8. रोहिणी अग्रवाल, साहित्य की जमीन और स्त्री मन के उच्छ्वास, पृ0 105

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 65-70

ek{knkf;uh xxk fdruh eyh

iuhr dekj*

गंगा एक नदी मात्र नहीं है। भौगोलिक दृष्टि से गंगा हिमालय की गोद से निकला एक जल प्रवाह है, जो उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड तथा प. बंगाल के मैदानी भूभागों को हरा–भरा बनाता है, बृहत्तर रूप से गंगा देश के पांच राज्यों में बहने वाली नदियों का एक तन्त्र है, सामाजिक–धार्मिक रूप से गंगा एक सूत्र है, जो देश–विदेश के करोड़ों लोगों को आपस में जोड़े हुए है। सैलानियों के लिए गंगा मौजमस्ती का एक आकर्षण है, तो हिन्दू–सिख धर्मावलम्बियों के लिए गंगा वैतरणी है जिसमें तैरकर वे स्वर्ग पहुंचते हैं, ऐसा माना जाता है कि विश्व की सर्वाधिक पवित्र मानी जाने वाली गंगा नदी में लगभग 20 लाख लोग नित्यप्रति स्नान करते हैं। यह गंगा का एक स्वरूप है, जनसंख्या की वृद्धि से उपजे शहरीकरण, एवं औद्योगीकरण ने गंगा की अविरल धारा को इस सीमा तक छोटा एवं प्रदूषित कर दिया है कि अब इसी गंगा का जल न तो आचमन योग्य रह गया है और न स्नान करने योग्य।

एक समय था जब कहा जाता था कि गंगा जल वर्षों तक खराब नहीं होता, हरिद्वार एवं इससे ऊपर से लिए गए गंगा जल में यह विशिष्ट अभिलक्षण आज भी है। ऐसा माना जाता है कि लाखों लोगों के गंगा में स्नान करने तथा जीवाणुभोजियों के संयोजन से प्रत्यक्ष रूप से एक आत्म–शुद्धिकरण का प्रभाव उत्पन्न हुआ है जिससे पेचिस और हैजा जैसे जल प्रसारित रोगों के जीवाणु गंगा जल में मर जाते हैं और बड़े पैमाने पर इन रोगों से होने वाली महामारियाँ उत्पन्न नहीं होती। गंगा जल में घुली ऑक्सीजन को धारण करने की असाधारण क्षमता है। 1985 से पूर्व किए गए वैज्ञानिक शोधों से यह प्रमाणित हुआ कि वाराणसी से ऊर्ध्वाधर प्रवाह में जैव रासायनिक ऑक्सीजन की मांग तथा मल कोलीफार्म की मात्रा कम थी। पटना में गंगा के दाहिने तट से लिए गए जल के नमनों में ई कोली एवं फीकल स्ट्रेप्टोकोकी तथा विब्रियो कॉलेरी जीवाणुओं की मात्रा सोन नदी, गण्डक नदी तथा उसी क्षेत्र के कुओं से लिए गए जल के नमूनों से कम थी।

ये कल की बातें थी आज गंगा नदी की गणना विश्व की सर्वाधिक प्रदूषित नदियों में से एक के रूप में की जाती है। उत्तराखण्ड पर्यावरणीय संरक्षण एवं प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड के एक आकलन के अनुसार जल में मौजूद कोलीफॉर्म का स्तर पीने के प्रयोजनार्थ 50 से नीचे, स्नानार्थ 5000 से नीचे तथा खेतीबाड़ी हेतु 5000 से कम होना चाहिए, लेकिन पर्वतीय क्षेत्रों से उतरकर मैदान में उतरने के प्रथम बड़े शहर हरिद्वार में ही कोलीफार्म का स्तर 5500 से अधिक हैं प्रदूषण के रूपमें आज गंगा जल में घातक रसायनों, जीवाणुओं/रोगाणुओं, कभी भी अपक्षय न होने वाले पदार्थों (प्लास्टर ऑफ पेरिस, पोलीथिन), जल–मल सहित वह सब कुछ है जो मानवों, जलचरों तथा थलचरों के स्वास्थ्य तथा जीवित रहने की दशाओं के अनुरूप नहीं है।

xxk dk; ;ktuk ¼GAP½ % आर्थिक–सामाजिक–धार्मिक–सांस्कृतिक विरासत की प्रतीक मोक्षदायिनी गंगा को स्वच्छ एवं प्रदूषण मुक्त कराने के लिए गंगा में गिरने वाले गंदे पानी (सीवेज) का पर्यावरण मित्रवत तरीके से उपचार करने के उद्देश्य से युवा प्रधानमंत्री (स्व.) राजीव गांधी की पहल पर जून 1985 में गंगा कार्य योजना प्रारम्भ की गई। 1995 में इस परियोजना का नाम बदलकर राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना (NRCP) कर दिया गया। इसका तात्कालिक उद्देश्य देश की सभी बड़ी नदियों के चिह्नित प्रदूषित भागों में जल की गुणवत्ता में सुधार लाकर इन नदियों में स्नान करने के गुणवत्ता–स्तरों को सुधारा जा सके।

*शोध छात्र, भूगोल विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

गंगा कार्ययोजना– I के पहले चरण में केवल गंगा नदी के किनारे बसे शहरों में गंगा में गिरने वाले नालों के जल–मल को उपचारित करने की योजना थी। गंगा कार्ययोजना–II अप्रैल 1993 में अनुमोदित की गई, इसमें यमुना, दामोदर तथा गोमती नदी को भी शामिल कर लिया गया। दिसम्बर 1996 में इसे राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना (NRCP) में शामिल कर लिया गया। 2005–06 में महानन्दा नदी को भी इस योजना से जोड़ा गया। 2009 के अन्त तक राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना के अन्तर्गत 20 राज्यों के 164 कस्बो में 35 खण्ड आच्छादित थे।

गंगा कार्ययोजना–I, गंगा कार्ययोजना–II तथा राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना पर 1985 से अप्रैल 2007 तक रू0 247.52 करोड़ अवमुक्त किए गए जिसमें से रू 228.33 करोड़ ही खर्च किए जा सके ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–08 से 2011–12) में नदियों को स्वच्छ बनाने के लिए रू0 2100 करोड़ का परिव्यय निर्धारित किया गया। पिछले तीन वर्षो में रू0 782.93 करोड़ ही खर्च किए जा सके। अधिकांश धन जल–मल उपचार संयन्त्रों की स्थापना पर खर्च किया गया।

सर्वोच्च न्यायालय के 5 दिसम्बर, 2007 के एक आदेश के तहत योजना आयोग के तत्कालीन सदस्य डॉ0 किरीट एस0 पारिख के दिशा–निर्देशन में विशेषज्ञों के एक समूह ने नदियों के जल संरक्षण हेतु चलाई गई। परियोजना की सार्थकता का मूल्यांकन किया। इस मूल्यांकन में तकनीकी आधार पर पाया गया कि गंगा नदी के कई बिन्दुओं पर ऑक्सीजन की जैविक मांग में तो सुधार हुआ, लेकिन जल में कोलीफार्म की मात्रा कई गुना बढ़ गई, व्यावहारिक धरातल पर करोड़ों रूपए खर्च कर दिए जाने के बावजूद गंगा, यमुना गोमती, महानन्दा तथा दामोदर सहित इनकी सहायक नदियों में जल–प्रदूषण का स्तर उत्तरोत्तर बढ़ता गया। जलाचमन की बात तो छोड़ ही दी जाए। इन नदियों का जल स्नान योग्य भी नहीं रहा। गंगा की सहायक नदियों में बढ़ते प्रदूषण से इतर केवल गंगा के किनारे बसे प्रथम श्रेणी एवं द्वितीय श्रेणी के शहरों से क्रमशः 2900 एमएलडी तथा 1017 एमएलडी जल–मल प्रतिदिन निकलता है, जो गंगा में निकलने वाले कुल जल–मल (12000 एमएलडी) का मात्र 35 प्रतिशत ही है, इसमें से मात्र 3750 एमएलडी का ही उपचार हो पाता है।

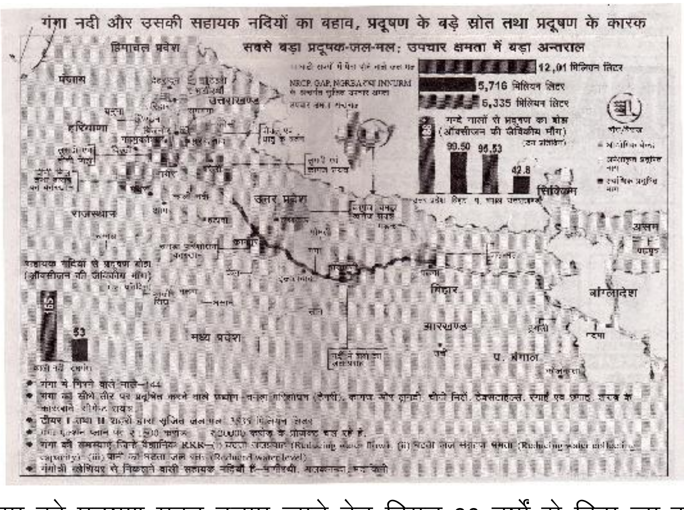

uekfe x|x|& गंगा को प्रदूषण मुक्त बनाए जाने हेतु विगत 30 वर्षों से किए जा रहे प्रयास मुख्य रूप से नदी के किनारे बसे बड़े शहरी केन्द्रों में जल–मल उपचार क्षमताओं के सृजन पर केन्द्रित रहे हैं। व्यावहारिक धरातल पर जल–मल उपचार की क्षमता आवश्यकता से काफी कम थी, जो सृजित भी हुई उसका एक अंश ही प्रयुक्त किया गया या बिलकुल भी नहीं किया गया। शहरी जल–मल (गन्दे नालों) का नदियों में गिरना तो समस्या का एक ही पहलू है। यदि नदियों के जल को प्राकृतिक दृष्टि से स्वच्छ, निर्मल एवं पीने व स्नान करने योग्य बनाना है, तो अनेक स्तरों पर हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता है।

केन्द्र की लोकतान्त्रिक गठबन्धन सरकार ने 13 मई 2015 को अतिमहत्वाकांक्षी 'नमामि गंगे' नामक एक कार्यक्रम को अनुमति प्रदान की। इस कायक्रम के अन्तर्गत रू0 200000 करोड़ की लागत से पांच वर्षों में 'स्वच्छ गंगा हेतु राष्ट्रीय मिशन' तथा राज्यों के इसके प्रतिपक्षी संगठनों यथा–राज्य कार्यक्रम प्रबन्धन समूहों द्वारा क्रियान्वित किया जाएगा। 'नमामि गंगे' प्रदूषण समाप्ति हेतु जैवोपचारण यथोचित यथास्थान उपचार/अभिनव प्रौद्योगिकियों का उपयोग/जल–मल उपचार संयन्त्रों/नदियों में गिरने वाले गंदे पानी के उपचार संयन्त्र, विद्यमान जल–मल उपचार संयन्त्रों की पुनर्स्थापना एवं पुनरूद्धार तथा नदियों में गिरने वाले जल–मल को निकासी बिन्दु पर ही रोकने जैसे उपायों द्वारा अवरोधन, विपथन तथा उपचार जैसे–विभिन्न हस्तक्षेपों से गंगा की धारा को निर्मल एवं स्वच्छ बनाना है। परियोजना के क्रियान्वयन में केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों, स्थानीय नगर निकायों तथा पंचायती राज संस्थों की सम्मिलित भूमिका है। विधिक स्तर पर राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण, केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड एवं राज्य प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड की सम्मिलित भूमिका है।

आने वाले वर्षो में गंगा में गंदगी, कचरा, जल–मल न गिराया जाए इसकी निगरानी करने के लिए केन्द्र सरकार गंगा ईको–टास्क बल की 4 बटालियन बनाने जा रही है।

xxk unh ?kkVh iccU/ku ;kstuk% भारत सरकार ने देश के सात प्रमुख भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (कानपुर, दिल्ली, मद्रास, बम्बई, खड़गपुर, गुवाहाटी और रूड़की) के कंसोर्टियम द्वारा गंगा के लिए एक व्यापक नदी घाटी प्रबन्ध योजना तैयार करने का करार किया है। यह योजना गंगा की पारिस्थितिकी के समग्र पुनरुद्धार तथा पारिस्थितिकीय विज्ञान स्वास्थ्य के सुधार हेतु पर्याप्त उपाय करने के उद्देश्यों के साथ तैयार की जा रही है। इस योजना की समग्रता को निम्नलिखित चार परिभाषित अवधारणाओं के संदर्भ में समझा जा सकता है। ये चारों गंगा नदी घाटी प्रबन्धन योजना के दृष्टि पत्र के संघटन हैं–

1. अवरिल धारा–जल का निरन्तर प्रवाह
2. निर्मल धारा–प्रदूषणरहित जल प्रवाह
3. भूपारिस्थितिकी संस्था
4. पारिस्थितिकी संस्था

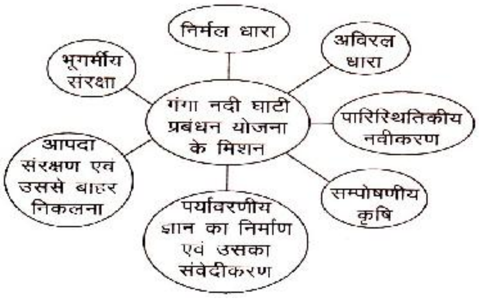

'kgjh ty&ey dk mipkj& उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड एवं पश्चिमी बंगाल प्रतिदिन लगभग 7300 मिलियन लिटर जल–मल (सीवेज) प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष तरीके से गंगा में गिरता है। इसका लगभग आधा गंगा नदी के तट पर बसे टीयर I तथा टीयर II शहरों–कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, पटना के गंदे नालों से गंगा नदी में गिरता है। इन पांच राज्यों में इस जल–मल में से केवल 3300 मिलियन लिटर जल–मल को उपचारित करने की क्षमता है (कुल जल–मल का लगभग 45 प्रतिशत) सृजित क्षमता का मात्र 35 प्रतिशत ही प्रयुक्त हो पा रहा है। अर्थात् गंगा में गिरने वाले कुल जल–मल का मात्र 15.75 प्रतिशत ही उपचारित हो पाता है। 84.25 प्रतिशत जल–मल बिना उपचारित हुए ही गंगा में गिरता है।

गंगा नदी में गिरने वाले जल–मल की उपर्युक्त आकलित मात्रा वास्तविक मात्रा से काफी कम हो सकती है, क्योंकि गंगा नदी के किनारे बसे शहरों–फर्रुखाबाद, कानपुर, इलाहाबाद, पटना के ऐसे अनेक शहरी इलाके हैं, जो जल–मल निकासी तन्त्र से जुड़े ही नहीं है। इन क्षेत्रों का जल–मल खुले नालों

से नदी में गिरता है। अधिकृत तौर पर इसका कोई लेखा–जोखा सरकारी–अर्द्ध–सरकारी निकायों के पास नहीं है।

जल–मल उपचार संयन्त्रों की स्थापना गंगा कार्य योजना/राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना का प्रमुख कार्य था। इसके तहत प्रतिदिन लगभग 1000 मिलियन जल–मल उपचार क्षमता का सृजन किया गया, लेकिन कानों में तेल डालकर सोई राज्य सरकारों तथा नगर निकायों द्वारा जल–मल उपचार संयन्त्रों का अनुरक्षण न किए जाने से यह क्षमता कागजों तक सिमटकर रह गई।

अब सरकार इस कार्य के लिए कम्पनियों की सेवाएं लेना चाहती है। गंगा नदी के तट पर बसे 118 शहरों में जल–मल उपचार का कार्य कम्पनियों से कराया जाएगा, जहाँ आवश्यकता होगी वहाँ जल–मल उपचार की अतिरिक्त क्षमता सृजित की जाएगी, विद्यमान जल–मल उपचार क्षमता का अनुकूलतम उपयोग सुनिश्चित किया जाएगा, चिह्नित कम्पनियाँ कम से कम 15 वर्षो तक सृजित उपचार सुविधा का परिचालन एवं अनुरक्षण करेंगी। अधोरचना हेतु सरकार वित्तीय सहायता देगी, लेकिन शेष निवेश, परिचालन एवं अनुरक्षण लागतें ओर पूर्व निर्धारित लाभ वार्षिक राजस्व से आएगा। सरकार को आशा है कि वार्षिक आधार पर भुगतान तथा गारन्टीशुदा प्रतिफल कम्पनियों को इस व्यवसाय से जोड़े रखेगा। कम्पनियाँ उपचारित जल–मल को बेचकर अतिरिक्त संसाधन जुटा सकेंगी।

xkeh.k ty&ey& लगभग 1650 गांव नदी के किनारे बसे हुए हैं, इन गांवों से निकलने वाला शत–प्रतिशत जल अनुचारित है। इन गांवों की आधी से अधिक जनसंख्या खुले में शौच करती है। बरसात के दौरान यह मल सीधे नदी में जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में निकलने वाले कचरे को जैविक उपचार विधि से वैकल्पिक दृष्टि से उपयोगी एवं पर्यावरणीय मित्रवत् बनाया जा सकता है। इस दृष्टि से पंजाब के एक गांव के धर्मगुरु बाबा बलवीर सिंह सीचेवाल द्वारा विकसित मॉडल कारगर सिद्ध हो सकता है। बाबा सीचेवाल को स्थानीय कालीबेन नदी को जनसहभागिता से स्वच्छ बनाने का श्रेय जाता है। सीचेवाल ने अपने अनुयायिओं को ठोस कचरे तथा गन्दे पानी को अलग–अलग करने के लिए प्रेरित किया, ठोस कचरे को कम्पोस्ट खाद बनाने के लिए प्रयुक्त किया गया, जबकि गन्दे पानी को ऑक्सीकरण तालाबों से उपचारित करके उसे फसलों की सिंचाई हेतु प्रयुक्त किया गया।

vk|kfxd dpjk& गंगा के किनारे ऐसी लगभग 764 औद्योगिक इकाइयाँ हैं, इनमें से अधिकांश उत्तर प्रदेश में है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में चीनी मिलें, कागज एवं लुग्दी मिलें, शराब बनाने वाली इकाइयाँ, रंग बनाने वाली इकाइयाँ, रंगाई–छपाई वाली इकाइयाँ कानपुर की चमड़ा बनाने वाली इकाइयाँ (टेनरीज) तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के सीमेन्ट के कारखाने प्रतिदिन हजारों लिटर अनुपचारित तरल कचरा गंगा में गिराते हैं। सरकार, न्यायालयों एवं राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण ने इन इकाइयों को सामूहिक कचरा उपचार संयन्त्र, एवं पर्यावरण मित्रवत उत्पादन की अत्याधुनिक तकनीक अपनाने तथा नदी में बिलकुल भी गंदा पानी न छोड़ने के निर्देश दिए है, लेकिन निर्देशों के दोषपूर्ण प्रत्यावर्तन एवं सरकारी निकायों की मिली भगत से समस्या का स्वरूप गम्भीर से गम्भीरतम होता जा रहा है।

rVh; lQkbi& भारतीय जनमानस की अजीब सी विडम्बना है। धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत लाखों लोग अपने पाप धोने के लिए गंगा में डुबकी लगाते हैं, गंगा जल का आचमन करते हैं, धार्मिक अनुष्ठानों के लिए गंगा जल को घरों में सुरक्षित रखते हैं, मरने वाले के मुख में गंगा जल की कुछ बूँदें डालकर उसके स्वर्ग में जाने की कामना करते हैं, तो दूसरी ओर ये ही लोग पूजा अर्चना की राख, फूल, कपड़े आदि गंगा में प्रवाहित कर स्वयं को धन्य समझते हैं। विगत कुछ वर्षो से उत्तर प्रदेश में गणेश चतुर्थी एवं दुर्गाष्टमी पर गणेश एवं दुर्गा की मूर्तियों (जो प्लास्टर ऑफ पेरिस तथा जहरीले घातक रंगों से बनी होती है) को गंगा में विसर्जित करने का चलन बढ़ गया है। समस्या का स्वरूप इतना विकराल हो गया कि माननीय उच्च न्यायालय को राज्य सरकार को आदेश देने के लिए बाध्य होना पड़ा कि किसी भी स्तर पर पर नदियों में मूर्तियों का विसर्जन न होने दिया जाए।

प्रत्येक छोटे–बड़े शहर में कपड़े धोने, पालतू पशुओं को नहलाने आदि के लिए नदियों को ही प्रयुक्त किया जाता है। इन समस्त कारणों से गंगा एवं उसकी सहायक नदियों का प्रदूषण बढ़ रहा है।

'koks dk fuLrkj.k& गंगा के किनारे बसे प्रत्येक शहर के मुख्य शमशान घाट गंगा तट पर ही हैं ग्रामीण क्षेत्रों में भी आसपास के क्षेत्रों के लोग मृत शवों का अन्तिम संस्कार गंगा तट पर करके मृतक की आत्मा की शान्ति के लिए उपक्रम करते हैं, शवों के निस्तारण हेतु आमतौर पर चिता जलाई जाती है। चिता की राख गंगा में बहाकर उसे प्रदूषित किया जाता है। बच्चों एवं अविवाहित लड़कियों/महिलाओं तथा निराश्रितों के शवों को सीधे गंगा में जल–प्रवाह कर दिया जाता है। धार्मिक भावनाओं के तहत ही मृत गायों/बन्दरों का भी जल–प्रवाह ही किया जाता है।

गंगा कार्य योजना में नदियों के किनारे बसे शहरों विशेष रूप से वाराणसी तथा इलाहाबाद जैसे धार्मिक शहरों में गैस/विद्युत शवदाह गृह बनाए जाने की योजना थी, लेकिन उसमें कोई विशेष प्रगति नहीं हो सकी।

'नमामि गंगे' कार्यक्रम के अन्तर्गत नवम्बर 2015 तक 100 गैसे/विद्युत शवदाह गृह स्थापित किए जाने की योजना थी, लेकिन इस दिशा में प्रगति असन्तोषजनक ही है।

lLohd`r ifj;kstuk,¡ & राष्ट्रीय गंगा नदी घार्टी प्राधिकरण (NGRBA) द्वारा गंगा नदी वाले राज्यों में नदी के किनारे स्थित 47 शहरों के लिए रू0 4607.82 करोड़ लागत का कुल 72 परियोजनाएं स्वीकृत की है। इन परियोजनाओं में जापान अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग निकाय (JICA) तथा विश्व बैंक की य0 2626.64 करोड़ की पूर्वी भारत प्रशान्त (EAP) अव्यव भी शामिल है। ये परियोजनाएं मल–व्ययन नेटवर्क बनाने, उपचार संयन्त्रों–पम्पिंग स्टेशनों विद्युत शवदाह गृहों–सामुदायिक शौचालयों का निर्माण करने एवं नदी के अग्रभाग का विकास करने से सम्बन्धित हैं, इन परियोजनाओं में विभिन्न राज्यों की हिस्सेदारी निम्नवत् है–

- उत्तर प्रदेश–रू0 1914.36 करोड़
- बिहार–रू0 1160.00 करोड़
- झारखण्ड–रू0 99.36 करोड़
- प.बंगाल–रू0 934.21 करोड़
- उत्तराखण्ड–रू0 251.21 करोड़
- गंगा नदी पर प्रदूषण अन्वेषण, आकलन एवं निगरानी (PIAS) गंगा नदी के लिए जलगुणवत्ता निगरानी (WQM) तथा पर्यावरण विनियामक का सुदृढ़ीकरण (SER-CPCB)–रू.0 198.48 करोड़
- गंगा ज्ञान केन्द्र की स्थापना–रू. 48.54 करोड़

xxk dh lgk;d ufn;k dk iznw"k.k & गंगा अपने आप में कोई एकल धारा नहीं है, बल्कि वह एक सम्पूर्ण नदी तन्त्र है, जो उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, पं. बंगाल तक फैला हुआ है, यमुना, गोमती, घाघरा, गण्डक, कोसी, चम्बल, सोन जैसी कुछ बड़ी नदियाँ जहाँ गंगा में मिलती हैं, तो रामगंगा, कालीनदी, कालीसिंध, बेतवा, धसान, केन आदि छोटी नदियाँ भी या तो गंगा में मिलती हैं या गंगा की सहायक नदियों में मिलकर गंगा नदी तन्त्र का निर्माण करती है। इन नदियों के किनारे पर अनेक छोटे–बड़े शहर बसे हैं, कल–कारखाने हैं, जिनका अनुपचारित द्रव कचरा इन नदियों के जल को प्रदूषित करता है। यह प्रदूषित जल जब गंगा में गिरता है, तो गंगा के प्रदूषण स्तर को कई गुना बढ़ा देता है। उदाहरणार्थ–गंगा की सबसे बड़ी सहायक नदी यमुना में राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली, औद्योगिक शहर यमुना नगर–फरीदाबाद–बल्लभगढ़ के शहरी क्षेत्रों का जल–मल कारखानों से निकला अनुपचारित द्रव कचरा यमुना के जल को इस सीमा तक प्रदूषित कर रहा है कि भगवान श्रीकृष्ण की जन्म एवं कार्यस्थली मथुरा तक आते–आते धार्मिक रूप से आज भी पूजी जाने वाली कालिन्दी का जल पूरी तरह से काला हो गया है। मथुरा, आगरा, इटावा के नाले भी यमुना में गिरते हैं। अलीगढ़ हाथरस के कारखानों से निकला जहरीला द्रव कचरा यमुना में गिरता है। कालीनदी का जल बुलन्दशहर एवं अलीगढ़ की चीनी मिलों द्वारा छोड़े गए अनुपचारित द्रव कचरे से काला हो गया है। लगभग यही स्थिति रामगंगा, गोमती, घाघरा की भी है।

'नमामि गंगे' कार्यक्रम की वास्तविक सफलता केवल गंगा में गिरने वाले अनुपचारित गन्दे जल को रोकने या उसे उपचारित करने में ही निहित नहीं है, बल्कि गंगा नदी तन्त्र की सभी नदियों को स्वच्छ

करने में निहित है। इस दृष्टि से गंगा नदी तन्त्र वाले सभी पांचों राज्यों के शहरी क्षेत्रों के जल–मल निकासी तन्त्र का स्वच्छ एवं पर्यावरण मित्रवत् तरीके से निस्तारण महत्वपूर्ण हो जाता है।

इतना ही नहीं इन राज्यों में स्थित कारखानों–बड़े, मध्यम, लघु एवं सूक्ष्म–प्रसंस्करण इकाइयों के लिए ऐसे कठोर विधिक प्रावधान करने होंगे, जो इनसे निकलने वाले घातक द्रव कचरे को उपचारित करके उसकी पुनर्शोधन करके उसे सिंचाई आदि कार्यो में प्रयुक्त करने लायक बनाएं। धर्मगुरुओं एवं प्रचारकों को विश्वास में लेकर जनमानस की भावनाओं को ठेस पहुँचाए बिना गंगा एवं उसकी सहायक नदियों को कचरे की पेटी बनने से रोकना होगा। धार्मिक कचरा सामग्री, मूर्तियों, शवों को नदियों में विसर्जित करने से रोकना होगा। अब समय आ गया है कि खुले में नदी तट पर चिता जलाए जाने की प्रथा का शत–प्रतिशत परित्याग कर विद्युत शवदाह गृह/गैस आधारित शवदाह गृह की व्यवस्था को अपना लिया जाए।

उद्यमियों तथा उद्योगपतियों को भी प्रेरित करना होगा कि वे 'लाभ को अधिकतम करने' की भावना से ऊपर उठकर ऐसी प्रौद्योगिकी को अपनाएं, जो पर्यावरण मित्रवत् हो तथा जल और वायु संसाधनों कों प्रदूषित न करें।

lUnHkZ %

1. आर0 सी0 तिवारी, भारत का भूगोल 2014, प्रवालिका पब्लिकेशन्स इलाहाबाद, पेज 79–96.
2. डॉ0 अल्का गौतम, भारत का वृहद भूगोल2013, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पेज 48–74, 75–99
3. डी0 आर0 खुल्लर, भूगोल 2009, टी0 एम0 एच0 प्रा0 लि0, नई दिल्ली, पेज 13.24–15.56
4. सविन्द्र सिंह, आपदा प्रबन्धन 2014, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।
5. अरविन्द कुमार, भारत का भूगोल (पेरियार) 2015, पेरियार प्रकाशन, दिल्ली, पेज 39–78
6. समकालीन भारत–1 (सामाजिक विज्ञान), एन0 सी0 ई0 आर0 टी0, नई दिल्ली।
7. आक्सफर्ड स्कूल एटलस (संस्करण–32)
8. नवीन राष्ट्रीय स्कूल एटलस 2014, इण्डियन बुक डिपो (मैप हाउस), नई दिल्ली।
9. एस0आर0, आधुनिक निबन्ध, प्रयाग पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।
10. प्रतियोगिता दर्पण अतिरिक्तांक 2014 (हिन्दी पत्रिका)
11. योजना, जून 2014, हिन्दी पत्रिका।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 71-75

Hkkjr esa tSo fofo/krk dk ,d laf{kIr voyksdu

vuwi dqekj flag*

जीवन की विविधता (जैव–विविधता) पृथ्वी पर मानव के अस्तित्व और स्थायित्व को मजबूती प्रदान करती है। समृद्ध जैव–विविधता अच्छा स्वास्थ्य, खाद्य सुरक्षा, आर्थिक विकास, आजीविका सुरक्षा और जलवायु की परिस्थितियों को सामान्य बनाए रखने का आधार है। भारत एक प्राकृतिक संसाधन संपन्न देश है, प्राचीनकाल से ही भारत प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के प्रति जागरूक एवं प्रतिबद्ध रहा है। जैव–विविधता प्राकृतिक संसाधनों का एक प्रमुख अंग है। पृथ्वी पर मानव, वनस्पतियों तथा अन्य सभी जीवों के समुच्चय–वैविध्य को जैव–विविधता के नाम से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रजातियों की एक–दूसरे से और प्रजाति के भीतर की आपसी भिन्नता तथा परिप्रणालियों में परस्पर भिन्नता शामिल है। पृथ्वी पर जैविक स्रोत मानव के आर्थिक एवं सामाजिक विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

जैव–विविधता शब्द का सबसे पहले प्रयोग 'वाल्टर जी. रासेन' ने 1986 में किया था। तब से यह शब्द जीव–विज्ञानियों एवं पर्यावरणविदों के लिए एक महत्वपूर्ण शब्द बन गया है। जैव–विविधता जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है जैव यानी जीवन तथा विविधता यानी भिन्नता अर्थात् इस पृथ्वी पर पाए जाने वाले जीवन के विभिन्न रूप चाहे वे पेड़–पौधें हों या जीव–जन्तु, जीवाणु, शैवाल, एक कोशकीय जीवों से लेकर फूल वाले पौधों तथा सभी जन्तुओं यानी जीवाणुओं से लेकर ह्वेल और हाथी तक सभी जैव–विविधता के अंग हैं। अर्थात् जीवन के विभिन्न प्रकार जो इस पृथ्वी पर हैं, वे सब जैव–विविधता में शामिल हैं।

किसी परिक्षेत्र या परितंत्र विशेष में प्राप्त जीवधारियों (जीव–जन्तु/पेड़–पौधे) की प्रजातियाँ, परितंत्रीय एवं आनुवंशिक विविधता को जैव–विविधता की संज्ञा दी गई है। प्रजातीय विविधता किसी चिह्नित इकाई में प्राप्त समस्त जीवधारियों/जीव–जंतुओं एवं वनस्पतियों, पुष्पीय पौधों, अपुष्पीय पौधों, बैक्टीरिया, वायरस इत्यादि की समस्त प्रजातियों की उपस्थिति का द्योतक है। जैव विविधता विभिन्न जीवनधारियों की आनुवंशिक संरचना में विविधता का सूचक है। जैव–विविधता के कुछ रूप इस प्रकार हैं–अल्फा जैव–विविधता के अंतर्गत वे सभी जीव–जन्तु एवं वनस्पतियां आती हैं जो किसी निश्चित/विशेष स्थान/आवास पर पाई जाती है। बीटा विविधता के अन्तर्गत किसी विशेष क्षेत्र के विभिन्न आवासों या स्थानों पर पाए जाने वाले सभी जीव–जन्तु एवं वनस्पतियों का विवरण दिया जाता है। गामा विविधता के अन्तर्गत एक भौगोलिक क्षेत्र के विभिन्न आवासों में पाए जाने वाले समस्त जीवधारियों का विवरण दिया जाता है। जैव–कृषि जैव–विविधता, स्थानिक जैव–विविधता, समावेशित जैव–विविधता एवं सूक्ष्म जैवीय विविधता इत्यादि।

जैव–विविधता के कारण धरती मनोहर और सुन्दर बनी हुई है। एक अनुमान के अनुसार, पृथ्वी पर 55 लाख प्रजातियों में से अब तक लगभग 17.5 लाख प्रजातियों को ही पहचाना जा सकता है, जिनमें से अधिकतर कीट हैं। मानव इतिहास में किसी–न–किसी समय लगभग 80,000 खाद्य वनस्पतियों का प्रयोग किया गया है, जिनमें से वृहत् स्तर पर लगभग 1500 ही उगाई गई हैं। आज केवल 10 से 20 प्रजातियों से ही विश्व की 80–90 प्रतिशत आवश्यकता पूरी हो रही है। लगभग 67–70 प्रतिशत आधुनिक औषधियाँ प्राकृतिक उत्पादों से बनाई जाती हैं। लकड़ी, ईधन, बाँस, घास, चारा, कागज, कॉस्मेटिक्स,

*शोध छात्र, भूगोल विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

परिधान और आवास सम्बन्धी सामग्री कुछ अन्य उत्पादन हैं, जिनके बिना हमारा जीवन कठिन हो जाता है। जैव–विविधता से पारिस्थितिकीय संतुलन भी बना रहता है।

जैव–विविधता, पृथ्वी की प्राकृतिक जैव सम्पदा है। यह मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति का मूल स्रोत होने के साथ–साथ, इस ग्रह की उत्तरजीविता के लिए भी अनिवार्य है। यह परितंत्रों के स्वास्थ्य का पैमाना है। जैव–विविधता जितनी व्यापक होगी, वहाँ स्वास्थ्य की उतनी ही परिपूर्णता विद्यमान होगी। जैव–विविधता के माध्यम से उपलब्ध अप्रत्यक्ष पारिस्थितिकीय प्रक्रियाओं में शामिल हैं–प्रकाशसंश्लेषण, वाष्पोत्सर्जन, वायुमंडलीय गैसें, जलचक्र का अनुरक्षण, रासायनिक एवं पोषक तत्वों का चक्रण, मृदा सृजन एवं अनुसंरक्षण, जलवायु नियंत्रण, अपशिष्ट, प्रबन्धन और कीट नियंत्रण आदि। अतः जैव–विविधता अपने आप में एक जीवन बीमा के समान है। विश्व में जैव–विविधता का वार्षिक योगदान लगभग 330 खरब डॉलर है।

26 दिसम्बर से 31 दिसम्बर, 2006 को मणिपुर और सिक्किम में आयोजित '14वीं बाल विज्ञान कांग्रेस' के उद्घाटन समारोह में जैव–विविधता की महत्ता के बारे में विचार व्यक्त करते हुए तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ0 ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम ने कहा था कि ''जैव–विविधता से परिपूर्ण हमारी धरती सदैव रचनात्मकता का संदेश देती है और इस रचनात्मकता से मानव नई खोजों, आविष्कारों और अनुसंधानों द्वारा विकास के मार्ग पर बढ़ता जाता है। इस प्रकार धरती की सुन्दर जैव–विविधता का मानवीय विकास से गहरा सम्बन्ध है। अतः जैव–विविधता संरक्षण से मानव न केवल प्रकृति का सम्मान करता है वरन् वह स्वयं भी अपने भविष्य को संवारता है।''

भारत जैव–विविधता और इससे सम्बन्धित न केवल पारम्परिक ज्ञान से सम्पन्न है, बल्कि हमारा देश जैव–विविधता के संरक्षण के प्रति जागरूकता में महत्वपूर्ण भूमिका भी निभा रहा है। अक्टूबर, 2012 में हम जैव–विविधता कन्वेंशन के पक्षकारों (सीओपी–11) के सम्मेलन की मेजबानी भी करने जा रहे हैं। जैव–विविधता कन्वेंशन के पक्षकारों में 192 देश सदस्य हैं। यह कन्वेंशन राष्ट्रों की उनके अपने–अपने जैविक संसाधनों में सम्प्रभुता की दृष्टि करने के साथ–साथ तीन मुख्य लक्ष्य भी निर्धारित करता है। ये हैं– जैव–विविधता का संरक्षण, इसके घटकों का सतत उपयोग तथा आनुवंशिक संसाधनों के उपयोग से मिलने वाले लाभों का उचित और समान रूप से वितरण।

भारत जैव–विविधता के धरोहर की सम्पन्नता में अग्रणी रहा है। हमारा देश दुनिया के उन 17 देशों में से एक है, जिन्हें बृहद्–वैविध्य सम्पन्न देश का दर्जा हासिल है। विश्व के 34 में से 4 हॉट–स्पॉट भारत में हैं। यहाँ की जैव–विविधता का लगभग 50 प्रतिशत भाग स्थानिक हैं अर्थात् केवल भारतीय भू–भाग में ही पाई जाती है। यहाँ पर जैव–विविधता के संरक्षण के लिए प्रयास किए जाते रहे हैं। यहाँ तक कि हमारे संविधान के अनुच्छेद 48(क) (छ) में पर्यावरण संरक्षण के निर्देश दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त भारत में इस बारे में स्पष्ट नीतियाँ, कार्यक्रम एवं परियोजनाएं हैं, जो जैव–विविधता के संरक्षण में सहायक हैं। इनमें से वन–संरक्षण अधिनियम, राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, राष्ट्रीय जैव–विविधता कार्ययोजना और राष्ट्रीय पर्यावरण नीति एवं जलवायु परिवर्तन से सम्बन्धित राष्ट्रीय कार्य योजना का उल्लेख किया जाना आज के संदर्भ में प्रासंगिक है।

भारत अपनी जैव–विविधता की समृद्ध विरासत के लिए प्रसिद्ध है। भारत के पास पूरे विश्व की भूमि का 2.4 प्रतिशत हिस्सा है। लेकिन यह क्षेत्र कुल जैव–विविधता के लगभग 7 से 8 प्रतिशत हिस्से को आश्रय प्रदान करता है। अभी तक भारत में लगभग 46,000 वनस्पति प्रजातियों की पहचान की जा चुकी है, जिनमें से लगभग 1,000 फल–फूल वाले पौधे 2,500 ब्रायोफाइट, 1000 प्रकार के पर्णांग (फर्न), 1600 प्रकार के शैवाल (लाइकेन), 2,300 प्रकार के शैवाल तथा 12,500 प्रकार के फफूँद पाए जाते हैं। इन आंकड़ों से पता चलता है कि पूरे विश्व के 7 प्रतिशत बिना फूल वाली वनस्पतियाँ व 6 प्रतिशत फल–फूल वाले पौधे भारत में पाए जाते हैं।

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में लगभग 77,000 जन्तुओं की प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इनमें 372 स्तनधारी प्रजातियाँ, 1228 प्रकार के पक्षी, 428 प्रकार के सरीसृप तथा

204 प्रकार के उभयचर, 2546 प्रकार की मछलियाँ तथा 5,000 से ज्यादा प्रावारचूर्ण यानी मोलस्क एवं 50,000 से ज्यादा कीटों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं। भारत में उगाई जाने वाली विभिन्न फसलों में भी असीम जैव–विविधता देखने को मिलती है। हमारे देश में जो फसलें उगाई जाती हैं, उनमें से 66 प्रजातियों व उनके जंगली सम्बन्धियों की लगभग 320 प्रजातियों का जन्म–स्थान भारत ही है।

जैव–विविधता के संरक्षण की ओर समूचे विश्व का ध्यान आकृष्ट हुआ है, संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने 1993 में 29 दिसम्बर को अंतर्राष्ट्रीय जैव–विविधता दिवस माना, क्योंकि इसी दिन बायोलॉजिकल डाइवर्सिटी कन्वेंशन लागू हुआ था। दिसम्बर, 2000 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 2 मई को अंतर्राष्ट्रीय जैव–विविधता दिवस माना। इसके पीछे कारण यह दिया गया कि दिसम्बर में कई देशों में अनेक छुट्टियाँ पड़ जाती हैं, इसलिए अंतर्राष्ट्रीय जैव–विविधता दिवस के आयोजन की तैयारियों में कठिनाई होगी। वर्तमान में संयुक्त राष्ट्र संघ घोषित 22 मई को जैव–विविधता इस समूचे विश्व में प्रतिवर्ष मनाया जाता है। इससे जैव–विविधता के संरक्षण के प्रति जागरूकता आई है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 2010 को जैव–विविधता वर्ष घोषित करके प्रकृति के नैसर्गिक संतुलन को बनाए रखने के लिए आह्वान किया था।

वर्ष 2011–20 को संयुक्त राष्ट्र जैव–विविधता दशक घोषित किया गया है। अलग–अलग वर्षों के लिए जैव–विविधता के थीम इस प्रकार हैं–

2002 वनों की जैव–विविधता को समर्पित
2003 जैव–विविधता एवं गरीबी उन्मूलन सतत विकास की चुनौतियाँ
2004 जैव–विविधता : सबके लिए भोजन, जल एवं स्वास्थ्य
2005 जैव–विविधता : हमारी बदलती दुनिया के लिए जीवन बीमा
2006 शुष्क भूमि में जैव–विविधता संरक्षण
2007 जैव–विविधता एवं जलवायु परिवर्तन
2008 जैव–विविधता एवं कृषि
2009 आक्रामक बाह्य प्रजातियाँ
2010 जैव–विविधता, विकास एवं गरीबी उन्मूलन
2011 जैव–विविधता एवं वन
2012 समुद्री जैव–विविधता

वर्ष 2012 के अंतर्राष्ट्रीय जैव–विविधता दिवस का विषय समुद्रीय जैव–विविधता है। तटीय और समुद्रीय जैव–विविधता आज विश्व के लाखों लोगों के अस्तित्व को बचाए रखने का आधार है। पृथ्वी की सतह के 71 प्रतिशत हिस्से पर महासागर है और यह 90 प्रतिशत से ज्यादा रहने योग्य जगह बनाता है। कुछ समुद्रीय प्रजातियाँ गायब हो रही हैं और कुछ का अस्तित्व संकट में है। समुद्रीय जैव–विविधता की आर्थिक एवं बाजार सम्बन्धी सम्भावनाओं को अभी तक ठीक से समझा नहीं जा सका है जबकि समुद्रीय विविधता की सम्भावनाएं कई गुना बढ़ गई हैं।

मानव के बार–बार समुद्रीय और तटीय पारिस्थितिक–तंत्र से लाभान्वित होते रहने के बावजूद, हमारी भूमि और महासागर पर आधारित गतिविधियों ने समुद्रीय पारिस्थितिक–तंत्र पर महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ा है। तटवर्ती शहरों और उद्योगों द्वारा अंधाधुंध कचरा बहाने और मछली तथा अन्य समुद्रीय उत्पादों का सीमा से अधिक दोहन प्रमुख चुनौतियाँ हैं। अतः तटीय और समुद्रीय पारिस्थितिक तंत्रों पर विपरीत असर डालने वाली जमीनी गतिविधियों को नियंत्रित किए जाने की जरूरत है। तटीय और समुद्रीय संरक्षित क्षेत्रों/रिजर्व या आरक्षित क्षेत्र को प्रोत्साहित किए जाने की आवश्यकता है।

जीवन के विभिन्न रूपों में मानव को सबसे बुद्धिमान जीव का खिताब हासिल है, लेकिन आज मनुष्य ही जीवन के विविध रूपों के साथ पृथ्वी ग्रह को हानि पहुँचा रहा है। आज मानवीय गतिविधियों के चलते पर्यावरण और जैव–विविधता सम्बन्धी अनेक समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। मानव ने विरासत में मिली बहुमूल्य–जैव विविधता को जाने–अनजाने बहुत नुकसान पहुँचाया है। विकास के लिए मानव ने पर्यावरण

और प्रकृति के महत्व को नजरअंदाज कर दिया है, अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए मानव ने प्रकृति का अंधाधुंध दोहन कर प्राकृतिक सम्पदा का अपव्यय किया, जिससे प्राकृतिक परिवेश में रहने वाले जीव भी प्रभावित हुए हैं। आज पृथ्वी पर घटती जैव–विविधता सभी के लिए चिंता का विषय है। विश्व स्तर पर मानवीय क्रियाकलापों सहित विभिन्न कारणों से जैव–विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। जैव–विविधता को होने वाली क्षति अपूरणीय है, जिससे हमारे स्वयं के अस्तित्व को भी खतरा है।

आज बहुत सी प्रजातियाँ विलुप्त होने के कगार पर खड़ी हैं। विलुप्ता वह स्थिति है, जब किसी प्रजाति विशेष का कोई भी सदस्य न बचा हो। एक बार विलुप्त हो जाने के बाद किसी प्रजाति को वापस लाने का कोई रास्ता नहीं है। जैव–विविधता की विलुप्तता में जलवायु का विशेष योगदान होता है। भूतलीय प्राकृतिक वासों में उष्णकटिबंधीय क्षेत्र विपुल जैव–विविधता वाले होते हैं, जबकि ध्रुवीय क्षेत्रों में प्रजातीय विविधता तुलनात्मक रूप से कम पाई जाती है। ऐसा माना जाता है कि त्वरित पर्यावरणीय परिवर्तनों के फलस्वरूप विलुप्तीकरण प्रमुख रूप से होता है। एक अनुमान के अनुसार इस धरती पर जीवध ारियों की जितनी भी प्रजातियाँ उतपन्न हुईं, उनका मात्र एक प्रतिशत आज इस धरती पर विद्यमान है।

जैव–विविधता को होने वाली क्षति का मुख्य कारण मानवीय कार्यकलाप हैं, जिनके कारण पर्यावास विखण्डन, अवक्रमण एव क्षति, आनुवंशिक विविधता में संकुचन, विजातीय प्रजातियों का अतिक्रमण, संसाधनों का अतिदोहन, प्रदूषण आदि की घटनाएं होती हैं। जैव–विविधता को होने वाली क्षति के परिणामस्वरूप प्राकृतिक सम्पदा को क्षति पहुँचती है।

असंतुलित विकास जैव–विविधता का दुश्मन है। छोटे–बड़े तालाबों को पाटने से जलीय विविधता खतरे में पड़ जाती है। जल–प्रदूषण हो या वायु–प्रदूषण इनके बढ़ने से जैव–विविधता घटती जाती है। नदियों एवं झीलों में प्रदूषण बढ़ने से वहाँ रह रहे संवेदी किस्म के प्राणी और वनस्पतियाँ विलुप्त हो जाती हैं केवल वे ही जीव बचते हैं, जिनमें प्रदूषण को सहने की क्षमता ज्यादा होती है। ऐसा ही वायु–प्रदूषण के साथ होता है, मिट्टी के प्रदूषण से जमीन के अन्दर रहने वाले केंचुए, बैक्टीरिया, अन्य प्रकार के कीट और शैवालों की संख्या एवं गुणात्मकता दोनों घट जाती हैं। जैव–विविधता पर मँडराते खतरे के कई कारणों में से एक कारण उस भूमि या स्थान का कम होना है, जहाँ ये वनस्पतियाँ उगती हैं अथवा ये जीव–जन्तु रहते हैं।

इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर (आईयूसीएन) की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि विश्व में जीव–जन्तुओं की 47,667 प्रजातियों में से एक–तिहाई से अधिक प्रजातियों यानी 17,291 प्रजातियों पर विलुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है। उनके द्वारा जारी की गई रेड लिस्ट के अनुसार, स्तनध ारी जीव–प्रजातियों की 21 प्रतिशत प्रजातियाँ, उभयचर जीवों की 30 प्रतिशत प्रजातियाँ और पक्षियों की 12 प्रतिशत प्रजातियाँ विलुप्त होने के खतरे का सामना कर रही हैं। वनस्पतियों की 70 प्रतिशत प्रजातियों के अलावा ताजे पानी में रहने वाले सरीसृपों की 37 प्रतिशत प्रजातियों और 1147 प्रकार की मछलियों पर भी विलुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है। इसी प्रकार भारत में मिलने वाले अनेक जीव जैसे गिद्ध, बाघ आदि भी विलुप्त के कगार पर हैं।

पूरी दुनिया यह समझ चुकी है कि जैव–विविधता का संरक्षण वर्तमान ही नहीं, बल्कि भावी पीढ़ी के अस्तित्व के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है। यह विचारणीय है कि आज के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न प्रजातियों और पारि–प्रणाली पर जितना खतरा है, उतना सम्भवतः पहले नहीं रहा था। वर्तमान में विश्व पटल पर से कई प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं तथा अनेक विलुप्त होने के कगार पर हैं इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि जैव–विविधता के संरक्षण के प्रति राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धता के प्रति जागरूकता से तेजी लाई जाए।

भारतीय संस्कृति में प्रकृति और जैव–विविधता संरक्षण की परम्परा प्राचीनकाल से रही है। गांधीजी का कहना था कि ''मैं केवल मानव जाति के बीच भाईचारे अथवा उसके साथ तादात्म्य की स्थापना नहीं करना चाहूँगा, बल्कि पृथ्वी पर रेंगने वाले जीवों सहित समस्त प्राणिजगत् के साथ तादात्म्य

स्थापित करना चाहता हूँ, क्योंकि हम सब एक ही ईश्वर की संतान हैं। इसलिए जीवन जितने रूपों में हैं, सब मूलतः एक ही हैं।''

भारत विश्व के उन कुछ देशों में से एक है, जो जैव–विविधता के क्षेत्र में संपूर्ण विश्व में अग्रणी है। विभिन्न कारणों से जीव–जंतुओं एवं वनस्पतियों की बहुत सारी प्रजातियाँ विश्व से विलुप्त होती जा रही है। अतः इन प्रजातियों के संरक्षण तथा उन्हें विलुप्त होने से बचाने के लिए विशेष कदम उठाने की आवश्यकता है।

अवैध शिकार के कारण मोर, बाघ, हिरण, भालू, गैंडे व शेर जैसे जीवों का अस्तित्व खतरे में है। जहाँ मोर पंखों के कारण हर साल हजारों मोरों को मार दिया जाता है, वहीं कस्तूरी के लिए कस्तूरी मृगों का अवैध शिकार किया जाता है। इतना ही नहीं विभिन्न प्रकार की भ्रांतियों के चलते उल्लुओं, बाघों एवं गैंडों जैसे अनेक जीवों को महज इसलिए मार दिया जाता है, ताकि उनके अंगों से बनी औषधियों के सेवन से स्वास्थ्य व सम्पत्ति प्राप्त हो सके। समाज से जब तक ऐसे अन्धविश्वास मिटाए नहीं जाते तब तक जैव–विविधता संरक्षण सम्बन्धी कोई भी अभियान सफल नहीं हो सकता। इसके लिए समाज में जागरूकता की आवश्यकता है, ताकि जनमानस अन्धविश्वासों व रूढ़ियों से ऊपर उठकर जैव–विविधता के महत्व को समझ सके। वास्तव में, मानव एवं अन्य प्राणियों का जीवन जैव–विविधता पर ही आधारित है। अतः हमारा यह दायित्व है कि हम जैव–विविधता के संरक्षण के लिए भरभूर प्रयास करें।

lUnHkZ %

1. सिंह, सविन्द्र, (2001), पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पेज–538–542।
2. गौतम, अल्का (2013), भारत का वृहद् भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ0 512।
3. तिवारी, आर0सी0 (2014), भारत का भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, पेज 602–623।
4. कुमार, अरविन्द (2016), भारत का भूगोल, पेरियार प्रकाशन, पटना, पृ0 310।
5. एन0सी0ई0आर0टी0, भारतः लोग और अर्थव्यवस्था, नई दिल्ली।
6. एन0सी0ई0आर0टी0, सामाजिक विज्ञान, समकालीन भारत–1, नई दिल्ली।
7. परीक्षा मंथन (हिन्दी पत्रिका), 2014, पर्यावरण विशेषांक, इलाहाबाद, उ0प्र0।
8. भूगोल और आप, हिन्दी पत्रिका, 2014।
9. एस0आर0, आधुनिक निबन्ध, प्रयाग पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद उ0प्र0।
10. प्रतियोगिता दर्पण अतिरिक्तांक 2014, हिन्दी पत्रिका, उपकार प्रकाशन।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 76-80

vkfMvk ukVdksa esa vkfnoklh thou

: i/kj xkekxks*

आदिवासी भारत के मूलनिवासी हैं। आदिवासी शब्द साधारणतः आदिम जाति, संवर्ग और उपवर्ग, ट्राइब का अर्थ प्रकाश करता है । विश्व के सभी देशों में आदिवासी रहते हैं। उनकी जीवनशैली अत्यंत विचित्र है। वे विभिन्न गोष्ठियों के हैं, सरल धर्म विश्वास और कार्यव्यापार लगभग समान हैं। प्रत्येक आदिवासी गोष्ठियों के सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान होती है। आदिवासी लोग उनके पूर्वजों की पूजा के साथ–साथ विभिन्न देवी–देवताओं की आराधना भी करते हैं। वे लोग भी प्रकृतिवाद, जीव–जड़वाद, जड़ात्मवाद आदि में विश्वास रखते हैं। उनकी आर्थनीतिक व्यवस्था भी सरल है, जो उनके खाद्य संग्रह, शिकार, खेती (पडुचास), पशुपालन आदि में सीमित हैं।

विश्व के सभी स्थानों के आदिवासियों के बीच जीवनशैली में समानताएं परिलक्षित होती है। जनजाति समाज तथा संस्कृति के प्रति दृष्टि देने से उनकी परम्परा, रीति–नीति, रहन–सहन, आचार–व्यवहार, प्रथा, मौलिक चिंतन, आदर्श, विचारधारा, विश्वास, त्योहार, लोक–संस्कृति, विधि और न्याय, अर्थनीतिक व्यवस्था, सामूहिक जीवन–प्रणाली आदि के माध्यम से आदिवासियों की जग–दृष्टि प्रतिफलित होता है। आदिवासी गोष्ठियों के बीच कुछ निर्दिष्ट लक्षण परिलक्षित होते हैं;– (क) ये मुख्यतः मातृप्रधान, मातृसत्तामक हैं, (ख) प्रकृति के उपासकों के रूप में परिचित हैं, (ग) शिकार, पशुपालन और कृषि तथा जंगल पर निर्भरशील हैं, (घ) नृत्य और संगीत में ये निपुण हैं, (ङ) इनकी भाषाओं की लिपि नहीं हैं (कुछ आदिवासी भाषाओं की लिपि हैं– अलिचिक– रघुनाथ मुर्मु, सऊरा– मांगेई गोमांगों), (च) युद्ध में प्रवीण। (कहीं–कहीं हिंस्र और द्वंद–प्रवण), (छ) प्राचीन देवी तथा वृक्ष और प्रस्तर पूजा में विश्वास, (ज) विभिन्न अंधविश्वासों में नर–बलि, मुर्गा काटकर जानी(माटी–देवता) को देना, शरीर में देवी–प्रकट होना आदि में विश्वास रखते हैं, (झ) ये अपने दल या गोष्ठी के लिए खुद ही नियम बनाते हैं और पालन करते हैं ।

उपर्युक्त वर्णित प्रसंग को दृष्टि में रखते हुए ओड़िआ नाटकों का मूल्यांकन करते हैं । ओड़िआ उपन्यासों में जैसे आदिवासी–जीवन का वर्णन हुआ है वैसे नाटकों में देखने को नहीं मिलता। संथाल, देशिया, कुइ, हो भाषा में पूर्णांग नाटक देखने को मिलता है, भले ही इसका कम प्रकाशन हुआ है। संथाल भाषा में कुछ नाटक प्रकाशित हुए हैं। ओड़िया नाटकों में आदिवासी भाषा का प्रयोग देखने को नहीं मिलता। कुछ चरित्रों के मुख में आदिवासी भाषा का व्यवहार देखने को मिलता है। कुछ क्षेत्रों में अपने ढंग से आदिवासी भाषा का प्रयोग चरित्रों प्रकाश करते हैं। कहीं कुछ क्षेत्रों में आदिवासी भाषा के साथ स्थानीय भाषा का मिश्रण देखने को मिलता है। तब प्रकाशित कुछ ओड़िया नाटकों में व्यवहृत भाषा है मिश्रित–आदिवासी भाषा।

आदिवासियों की विभिन्न प्रकारों की समस्या रही है। कुछ ही नाटकों में समस्या और समाधान का वर्णन है। उनकी नृत्य, संगीत, त्योहार, धर्म, पूजा–परम्परा आदि को कुछ मात्र में नाटकों में प्रदर्शन कर के कुछ ओड़िया–नाटकों को आदिवासी–नाटक कहा गया। आदिवासियों के बारे में किताबों में अध्ययन करके लिखना या नाटक प्रदर्शन करना अलग बात हैय पर नजदीक से आदिवासियों को देख कर, उनके जीवन शैली साथ खुद को जोड़ कर नाटक लिखना या प्रदर्शन करना दूसरी बात है। आदिवासियों के जीवन शैली को वर्णन करने के लिए संवेदनात्मक अनुभूति के साथ एक अतरंग भावना और आचरण आवश्यक है ।

*शोधार्थी, हिन्दी विभाग, हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद

आदिवासी जीवन शैली को आधार कर सभी नाटक नहीं लिख सकते इसलिए अंतरंग संपृक्ति की आवश्यकता है। प्रो० नीलाद्रि भूषण का कहना है– ''आदिवासी गोष्ठी हमारे समाज का एक महत्वपूर्ण अंग होने के नाते, उनकी जीवन शैली और समस्याओं को नाटकों के माध्यम से उपस्थापन करना नाट्यकार का सामाजिक दायित्व है। यह दर्शक के कौतूहल और जिज्ञासा को पूर्ण करने क साथ–साथ एक भिन्न वर्ग के जीवन को देखने का अवसर प्रदान करता है, जो वर्ग मुख्यधार के समाज से दूर रहा है। आदिवासी नाटक लिखने के लिए आदिवासी जीवनचर्या का साथ गहरा संबंध, संवेदनशील दृष्टि के साथ आदिवासी मानसिकता का अध्ययन। व्यापक अनुभव और विचारदृष्टि के अभाव में नाटक रचना एक व्यर्थ प्रयास होता है। आदिवासी जीवन पर आधारित नाटकों की सफलताएँ और विफलताएं इसी के आधार पर ही होता है ।''[1]

आधुनिक ओड़िया नाटक के प्रारम्भ में नाट्यकार संस्कार–चेतना पर अधिक महत्व दिये थे। इस समय की रचनाओं में आदिवासी प्रसंग का झलक कम ही देखने को मिलता है। इस युग के महान नाट्यकार रामशंकर राय की कांचनमाली, युगधर्म, लीलावती आदि महत्वपूर्ण नाटक हैं। 'लीलावती'(1912) में आदिवासियों की शिक्षा के बारे में वर्णन है। नायिका लीलावती अवहेलित जनजातियों की शिक्षा और स्वास्थ्य की उन्नति के लिए संघर्ष करती है। कंध जनजाति के उन्नति के लिए आवाज उठाती है। फिर भी इस नाटक के आदिवासी गौण चरित्र ही है ।

रामशंकर के बाद के रचनाकारों में आते हैं अश्विनी कुमार घोष। उनके 'सेवजी'(1918), और 'श्रीमंदिर'(1934) नाटक में आदिवासी जीवन प्रसंग है। आर्यों और अनार्यों का संगम स्थान है श्रीमंदिर। शवर राजा विश्वाबसु और उनकी कन्या ललिता नाटक में प्रमुख पात्र की भूमिका में हैं। नाट्यकार गांधीजी के अस्पृश्यता निवारण आंदोलन को समर्थन दे कर विद्यापति और ललिता की गंधर्व विवाह कराते हैं। जंगल के देवता नीलमाधव प्रतिष्ठित होते हैं सभ्य मानव के द्वारा निर्मित श्रीमंदिर में। यहाँ शबरों के देवता नीलमाधव, विश्वाबशु एवं ललिता आदिवासियों के धर्म–धारणा के केन्द्र बिन्दु हैं। आलोचक डॉ० मधुसूदन पति के मतानुसार श्रीमंदिर का निर्माण ऐतिहासिक है। जबकि विद्यापति–विश्वाबशु–नीलमाधव के किंवदंती के माध्यम से ऐतिहासिक नाटक रचना के लिए प्रयास किया गया है।

अश्विनी जी का दूसरा नाटक है 'सेवजी'। नाटक के प्रथम अंश में कुट्मंडल के राजा सोलांकी पार्वत्यांचल सरदार लाखा परस्पर विरोधी होने के बावजूद अंत में एक दूसरे के मित्र बनते हैं। आर्यों और अनार्यों के मिलन के बारे में इसमें वर्णन हुआ है। इस नाटक में पात्रों की भाषा आदिवासी भाषा न होकर संबलपुरी और हिन्दी का मिश्रित रूप है।

स्वतन्त्रता के पूर्व नाटकों में हैं ऐतिहासिक, पौराणिक और सामाजिक नाटक। शोषण, अत्याचार के साथ इसमें रोमांटिक कथा भी है। पर आदिवासी जन–जीवन पर कम ही लेखन हुआ है। पर्शुराम हरिचन्दन के नाटक 'विप्लवी कृतिवास' जो बानपुर पाइक विद्रोह पर आधारित है। इसमें कृतिवास के सहयोगी के रूप में कंध सर्दार लोचन एक महत्वपूर्ण पात्र है ।

स्वातंत्र्योत्तर काल में धनेश्वर पटनायक का नाटक 'आदिवासी' (1961) में केउंझर के खनिज–खदान का वर्णन है। इसमें खदान की समस्याओं के साथ–साथ आदिवासियों को ईसाई–धर्म में धर्मांतरण का चित्रण किया गया है। आदिवासी युवक परशु शहर से पढ़ाई करके गाँव को लौटते ही गाँव की विभिन्न अनहोनी घटनाओं और समस्याओं से रुबुरु होता है और संघर्ष करता है। इस नाटक के बारे में डॉ० हेमन्त कुमार दास का कहना है– ''संवाद के रूप में नाट्यकार ने जिस भाषा का प्रयोग किया है वह प्रभावशाली नहीं है। यह आदिवासी भाषा नहीं है बल्कि संबलपुरी भाषा की नजदीक जान पड़ती है। फिर भी आदिवासियों का जीवन, आक्रोश, सरलता, सत्य–निष्ठा, जिजीविषा आदि के माध्यम से चरित्र और घटनाओं का यथार्थ चित्रण हुआ है।''[2]

बलराम मिश्र ने आदिवासियों के जीवन पर लिखा है 'डुम्बा' (1962)। नाटक में कंध युवक दासु : एवं युवती संबारी के प्रेम, संघर्ष, मिलन, महाजन सोमनाथ का शोषण एवं कारावास के साथ कथा आगे बढ़ती है। इसमें कंध संप्रदाय की समस्याओं और अंतर्विरोध पर लेखक ने दृष्टि डालने का प्रयास किया

है। अक्षय महान्ति द्वारा लिखित एवं अभिनीत नाटक है 'संवित'(1969)। नाटक में सरल आदिवासी आज्ञाकारी मिट्का का चरित्र अत्यंत ही रोचक ढंग से दर्शाया गया है। जंगल में प्रसव वेदना से पीड़ित हो कर मृत्युवरण करने का दृश्य पाठक एवं दर्शकों को झकझोर देता है। आदिवासियों के स्वास्थ्य, विकास और सरकारी योजनाओं पर नाटक प्रश्न खड़ा करता है।

मन्मथ सत्पथी स्वातंत्र्योत्तर युग के एक सफल नाट्य लेखक के रूप में जाने जाते हैं। आदिवासियों की समस्याओं को महसूस करने के साथ–साथ समाधान करने के लिए प्रयास किए हैं। उनके द्वारा लिखित आदिवासी जीवन पर आधारित नाटकों में हैं य यौवनतीर्थ (1969), आज का मनुष्य(1972), यह कहानी नहीं है(1974), मैं चकरा बोल रहा हूँ(1992)।

'आज का मनुष्य' में आदिवासियों की समस्या को दिखाया गया है। आज का समाज आदिवासियों को किस प्रकार मुख्यधारा में शामिल न करके उन्हें कैसे उपभोग की वस्तु के रूप में शोषण करता है यह वर्णन है। इस नाटक की सफलता भूतपूर्व मुख्यमंत्री हरेकृष्ण महताव के कथन से स्पष्ट होता है – ''मन्मथ, तुम अच्छा काम कर रहे हो। कभी भी आदिवासियों को मत भूलना – वे हमारे राज्य के प्रथम अधिवासी हैं। उनकी कई समस्याएँ हैं। उन समस्याओं को नाटकों में चित्रित करके दर्शकों के दृष्टि आकर्षण करो।''[3]

शतपथी के 'यह कहानी नहीं है' नाटक आदिवासी जीवन पर आधारित रचना है । इसमें शहरी मनुष्य के बहुरूपी स्वभाव को देख कर आदिवासी युवती राधि कलाकार बनाने की आशा को त्याग देती है। नाट्यकरों ने आदिवासी जीवन की दयनीय यात्रा को मार्मिकता से वर्णन किया है। साथ ही भूख से लाचार आदिवासी किस प्रकार धर्मांतरण करता है इसका सजीव वर्णन है।

शतपथी जी ने 'यौवनतीर्थ' (1971) नाटक में आदिवासी इलाके में स्थित डाकबंगला द्वारा कथित सभ्य मनुष्य के मुखौटे को उधेड़ कर रख दिया है। 'मैं चकरा बोल रहा हूँ' नाटक को 2002 में ओड़िशा साहित्य अकादमी के लिए पुरस्कार मिलने का बाद राज्य सरकार ने चकरा को स्वतन्त्रता संग्रामी के रूप में घोषित किया था। इस नाटक में 'कंधमेली विद्रोह' का वर्णन है। कंध सर्दार दोहरा विशोइ और भतीजा चकरा विशोइ के संघर्ष का यथार्थ चित्रण हुआ है।

शिमिलिपाल अरण्य की पृष्ठभूमि पर रचित नाटक है 'आरण्यक'। नाटक के रचयिता हैं डॉ० पंचानन पात्र। उनका दूसरा नाटक है 'अशांत अरण्य'। शिमिलिपाल के आदिवासियों की सरलता, निष्कपटता, अशिक्षा आदि का फाइदा उठाकर किस प्रकार उन्हें ईसाई धमे में धर्मांतरण किया जा रहा है इसमें वर्णित है। भूत–प्रेत, डायन में अंधविश्वास करने वाले आदिवासियों को ईसाई धर्म ग्रहण करने से कैसे मुक्ति मिलेगी इसका यकीन दिलाया जाता है ।

मयूरभंज के आदिवासी और ईसाई धर्मान्तरण पर हृषिकेश पंडा द्वारा लिखित नाटक है 'भास्कोड़ागामा'। विभिन्न सरकारी योजनाओं के विकलांगता के कारण ईसाई मशीनरियाँ फाइदा उठा रही हैं। एस.पी. जब ईसाई धर्म के प्रचारक पलिमन को पूछ–ताछ करते हैं, तो पलिमान जवाब देता है– ''धर्म तो एक है। पापी की आत्मा को सही मार्ग पर प्रभु के चरण तक ले जाना हमारा कर्तव्य है ।''[4] फिर कई बीमारियों से ग्रसित आदिवासियों को कहता है– "जो लोग आरोग्य मोहत्सव में आ कर प्रभु ईसा मसीह के शरण लेंगे, वे सभी लोग बीमारियों से मुक्त हो जाएंगे। अंधे को दृष्टि शक्ति मिलेगी, अपाहिज चलने लगेगा, बहरा को सुनाई देगा, मूक भी बोलने लेगेगा।'' नाट्यकार पंडा मिशनरियाँ और सरकार पर व्यंग करते हैं।

आदिवासियों की विस्थापन की समस्या पर आधारित नाटक है 'अरण्य के आँसू'। सरकार शिल्प–कारखाना की प्रतिष्ठा के लिए जंगल साफ करके आदिवासियों को अपनी जमीन से विस्थापित करती है। उनकी समस्याएँ चरम–सीमा पर पहुँचती है। सरकार की प्रतिश्रुति सिर्फ एक जुमला बनकर रह जाती है। इस अन्याय के विरोध में आदिवासी विद्रोह करते हैं। सरकर क्रूरता के साथ उनके विद्रोह को दमन करते हैं। मिथ्या–आरोप लगा कर उन्हें जेल भेज देते हैं और उनके हाथ काट दिया जाता है। संकीर्ण मानसिकता और विस्थापन की समस्या का ज्वलंत उदाहरण 'अरण्य के आँसू' नाटक में देखने को मिलता है। इस नाटक में कलिंग[5] नगर में घटित सरकार की दमनलीला का झलक देखने को मिलता है।

शहीद लक्ष्मण नायक के जीवन पर आधारित नाटक है 'अभिमान'। नाट्यकार चंद्रशेखर नंद ने अंग्रेजो के शासन के विरुद्ध कोरापुट के आदिवासियों के स्वतन्त्रता आन्दोलन और शहीद लक्ष्मण नायक के योगदान के बारे में वर्णन किया है। मिथ्या–भियोग में लक्ष्मण नायक को बरहमपुर के कारागार में फाँसी दी जाती है। जबकि उनकी आवाज से प्रेरित होकर कई आदिवासी अंग्रेजों को खिलाफ लड़ते हैं। नाटक में 'भूमिया' भाषा का प्रयोग हुआ है।

केउंझर के भूयाँ विद्रोह पर आधारित नाटक है 'माछकांदना की आवाज' (1996)। नाटक में केउंझर के राजा धनंजय भंज के अन्याय के विरुद्ध नाट्यकार रति मिश्र ने वर्णन किया है। माछकांदना की नदी में निरीह आदिवासियों को बिना परिश्रमिक के बांध बांधने के लिए बाध्य किया जाता है। इस शोषण के विरुद्ध विप्लवी धरणीधर दृढ़ प्रतिवाद करता है। केउंझर भूयाँ विद्रोह उस समय की एक चर्चित घटना है, जिस के साथ फकीर मोहन सेनापति भी जुड़े थे। आदिवासी जन–जागरण, शोषकों के विरुद्ध में संग्राम इस नाटक की मुख्य कथावस्तु है। लोक–नाट्य की शैली में यह नाटक खूब प्रसिद्धि लाभ की है।

कोरापुट, रायगड़ा, मालकानगिरि, नारायणपाटना आदि नक्सल आन्दोलन जारी है। सरकार की तरफ से इन्हें दमन करने क लिए कोशिश के बावजूद भी यह थमने का नाम नहीं ले रहा है। आदिवासियों को इकट्ठा करके उनके हक के लिए लड़ने के लिए नक्सल उन्हें प्रेरित करते हैं। कालाबाजारी, मुनाफाखोर, राजनेता, पुलिस सभी आदिवासियों को ठगते हैं और उनका शोषण करते हैं। मजबूर होकर आदिवासी तीर–धनुष छोड़ कर बन्धूक उठाने के लिए मजबूर हो रहे हैं। आदिवासी इलाके में सरकारी योजना के नाम पर हो रहे हैं लुंठन के बारे में 'क्रांति' नाटक में जेपी का कहता है– 'देश को अगर सही दिशा में लेना है तो कानून व्यवस्था को सुधारना होगा। उसके बाद ही शासन में संस्कार संभव है। अगर ये काम सरकार के द्वारा नहीं होगा तब हजार–हजार शोषित मजदूर जनता इसका जवाब देंगे।'

आदिवासी युवक चौकीदारी नौकरी छोड़ कर आन्दोलन में भाग लेता है। जेपी को फाँसी पर लटकाने के दिन आदिवासी युवती तुलसी एक बच्चे को जन्म देती है। नाटक में नारायण साहू ने देशिया भाषा का प्रयोग किया है। शोषण और अत्याचार से पीड़ित अवहेलित सरल आदिवासी दुख–कष्ट में घर चलाने के लिए बाध्य हैं। कोई ये समझने की कोशिश नहीं करता कि समस्या की जड़ कहाँ है ।

कोरापुट के विस्थापन की समस्या पर आधारित नाटक है 'ककुआ'। नाट्यकार विजय शतपथी ने नक्सल आन्दोलन के साथ–साथ आदिवासियों के प्रतिवाद के स्वर को मुखरित किए हैं। जल–जंगल–जमीन की सुरक्षा के लिए शिबू माझी के नेतृत्व में आन्दोलन होता है। जंगल ध्वंस, विस्थापन का विरोध, आतंक राज जैसे समस्याओं पर यह नाटक केन्द्रित है।

विश्वजित दास के द्वारा रचित 'नया चाँद' में आदिवासी युवक सोनाराम एम.एल.ए बनने के बाद पहले अपना इलाका और अपने लोगों को भूल जाता है। मेघराज पर्वत को खनिज माफिया के हाथों में बेच कर आदिवासियों के पेट पर लात मारने का काम करता है। अगले निर्वाचन में सोनाराम हारता है। नाटक में राजनीतिक दृष्टिकोण से समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है।

उच्च वर्ग की नारी लोपमुद्रा के साथ आदिवासी युवक सहदेव के संपर्क पर आधारित नाटक है 'है भगत', इसके अलावा कलाहांडी के अनाहार मृत्यु पर सुबोध पटनायक का नाटक है 'अवरुद्ध उद्धव' (1994) कलाहांडी के आदिवासियों के दुःख दूर करने का अभिनय करते हैं राजनेता, पत्रकार तथा बुद्धिजीवी। कंध युवक उद्धव के दारिद्रय का माओनेता फायदा उठाते हैं। आदिवासियों के संघर्ष के परिणाम स्वरूप खून से लथ–पथ होता कलाहांडी।

आदिवासियों के हक के लिए और उन्हें मुख्य धारा में जोड़ने के लिए सुबोध पटनायक ने 'नाट्य चेतना' अनुष्ठान का स्थापना किए । इस अनुष्ठान में आदिवासियों की समस्या पर आधारित कुछ नाटक हैं– काठ, बलि, बनमानुष, टांगिया छाप, धुआँ, विष बाजार आदि।

जंगल में लकड़ी की कमी नहीं है। मंगलू गुलाम 'गोती'[6] है। पर उसकी पत्नी सुरेई लकड़ी बेच कर परिवार चलाती थी। दोनों पति–पत्नी गुलामी से मुक्त होने के लिए छुपकर सहर चले जाते हैं। पर वहाँ भी उन्हे संघर्ष करना पड़ता है। छत से गिरकर मंगलू की मौत हो जाती है। पति के शवदाह के लिए सुरेई को लकड़ी भी नसीब नहीं होती है। दारिद्रय से मुक्ति पाने के लिए जो आदिवासी शहर की ओर पलायन करते हैं वहाँ भी उनकी समस्याओं का समाधान नहीं होता है यह कथा 'काठ' नाटक में वर्णित

है। अंध–विश्वास पर आधारित नाटक है 'बलि'। पुल के निर्माण के लिए आदिवासी दंपति अपने शिशु–पुत्र को ओझा के हाथ में बेच देते हैं। ओझा, ठेकेदार अशिक्षित आदिवासियों का शोषण करते हैं और फायदा भी उठाते हैं। 'फूल' नाटक में फसल उपजाऊ करने के लिए भैंस का बलि देना 'धुआँ' नाटक में अभाव से पीड़ित हो कर शिशु को बेचना, 'विष बाजार' में आदिवासियों का अत्यधिक मद्यपान और 'मुर्गा लड़ाई' का खेल आदि वर्णन है।[7]

केउंझर के आदिवासी इलाके की घटना पर आधारित नाटक है 'पाशविक' (2013)। जिसमें पशु और मनुष्य के बीच का संबंध एक भालू के माध्यम से उजागर किया गया है। भालू आदिवासी के परिवार में एक सदस्य जैसा जीवन बिताता है। पर कानून की रखवालों के हाथों से भालू को चिड़िया खाना भेज दिया जाता है ।

आदिवासी भाषा में नाटक और ओड़िया नाटक में आदिवासी प्रसंग इन दोनों में अंतर है। आदिवासी भाषा या आदिवासी कथावस्तु पर आधारित नाटक में आदिवासी ही मुख्य नायक नायिका हैं। इसमें खल नायक के रूप में आते हैं साहूकार, ठेकेदार, व्यवसायी, ओझा और शिक्षित आदिवासी। अशिक्षा के साथ–साथ रोग–बीमारी और अंध–विश्वास भी उनकी प्रगति के रास्ते में बाधा बन कर आती है। संगीत, नृत्यु में मग्न आदिवासी शहर के सभ्य मनुष्य को पहचान नहीं पाता है। अंग्रेजो से भी भयंकर रूप से ये उन्हें प्रताड़ित और छलावा करते हैं। ये समाज शिक्षा और विकाश से कोसों दूर हैं। आज भी ओड़िया नाटकों में इन्हे करीब से जानने की कोशिश नहीं की गयी है ।[8]

ओड़िया नाटकों में आदिवासी कभी दूसरी जाति–संप्रदाय से प्रताड़ित होते हैं तो और कभी अपने ही लोगों से छले जाते हैं। उनकी कमजोरियाँ सामने दिखता है। जंगल, जमीन, देवता और ओझा इनकी जीवनचर्या को नियंत्रित करते हैं। साहूकार, जमीदार, ठेकेदार इनका शोषण करते हैं। प्रतिवाद का स्वर कम ही देखने को मिलता है। जिन नाटकों में प्रतिवाद का स्वर देखने को मिलता है वह केवल आदर्शवाद दृष्टिकोण तक ही सीमित है। प्रतिवाद की जगह पर कहीं–कहीं आत्मसमर्पण देखने को मिलता है।

रोग–बीमारी, दुःख को ये नियति मानते हैं। पर फिलहाल की माओ आंदोलन, नक्सल आंदोलन के द्वारा ये अपने को सचेत करने के लिए भी कोशिश किए हैं। प्रजा–कोर्ट में दोषी को दंड देने का विधान भी है। कुछ आदिवासी युवक शिक्षित होकर नौकरी, प्रशासन एवं राजनीति के क्षेत्र में भी सक्रिय होने, चिंतन में परिवर्तन लाने के लिए प्रयास किए हैं ।

ओड़िया में आदिवासी जीवन केन्द्रित नाटक कम ही लिखे गये हैं। कुछ नाटकों में कुछ आदिवासी चरित्र हैं। कुछ नाटकों में आदिवासी संगीत, नृत्य का वर्णन है। और कुछ नाटकों में आदिवासी कथा आंशिक रूप में है। कहीं आदिवासी भाषा का प्रयोग है तो और कहीं मिश्रित भाषा का प्रयोग हुआ है। विडम्बना यह है कि नाट्यकार और आलोचक ज्यादा संवेदनशील होकर उनके जीवन को देखने का प्रयास नहीं कर रहे हैं और न ही आदिवासियों के प्रति सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं। आदिवासियों की भाषा, संस्कृति की रक्षा के लिए एवं सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ उन्हे मुख्यधारा से जोड़ने के लिए आदिवासी नाट्यकरों को भी प्रयास करना होगा।

lUnHk %

1. ओड़िया नाटकों में आदिवासी जीवन और चरित्र, सं० प्रो. हरिचन्दन
2. ओड़िया नाटक की विकासधारा, (तृतीय खंड), डॉ० हेमन्त कुमार दास, साथीमहल प्रकाशन
3. मैं और मेरा नाट्य जीवन– मन्मथ सत्पथी, सं– प्रो० मुदाली, सुखदुःख पब्लिकेशन,
4. ओड़िशा की जनजाति : समाज, संस्कृति, भाषा और उन्नयन– प्रो. कृष्ण कुमार महान्ति, प्रो. नवकिशोर बेहुरा, पाठ्यपुस्तक प्रणयन संस्थान,
5. ओड़िया नाटकों में आदिवासी संस्कृति– प्रो. संघमित्रा मिश्र, सप्तर्षि पत्रिका संख्या 2013 –पृ–22
6. अश्विनी कुमार नाट्य मानस : नारायण साहू, किताब भवन प्रकाशन
7. ओड़िया साहित्य का इतिहास, डॉ. मायाधर मानसिंह, ग्रंथ मंदिर प्रकाशन
8.. ओड़िया साहित्य का इतिहास, डॉ. वेणुधर पाढ़ी, प्राची साहित्य प्रतिष्ठान

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 81-84

ued lR;kxzg vkSj egkRek xka/kh % ,d ,sfrgkfld v/;;u

MkW0 'k'kkad ik.Ms;*

सत्याग्रह का प्रयोग भारत के लिए कोई नया प्रयोग नहीं था। कई परिस्थितियों में इसका प्रयोग हुआ है, किन्तु इसकी मूल भावना सदा स्थिर रही है।[1] अभिप्राय यह कि सत्याग्रह अर्थात सत्य का आग्रह, हर काल परिस्थिति में इसी रूप में रहा है।

गाँधी जी के सामाजिक जीवन का प्रारम्भ सत्याग्रह अस्त्र प्रयोग से होता है। बाद में यही अस्त्र उनके राजनैतिक क्रिया कलापों में भी प्रयुक्त हुआ। सत्याग्रह में जो गुण अन्तर्निहित हैं – सत्य, अहिंसा व सहिष्णुता। यह तथ्य निर्विवाद है, कि गाँधी जी को इन तीनों गुणों से अत्यधिक लगाव था। 1920 में प्रारम्भ किये गये उनके असहयोग आन्दोलन को जब चौरी–चौरा[2] की एक घटना के कारण स्थगित करना पड़ा तो कारण बना हिंसा। अहिंसा का पुजारी हिंसा कैसे बर्दाश्त करता। गाँधी जी ने कहा था "I can sacrifice my life for the sake of Truth" यह सत्य गाँधी जी के लिए और कुछ नहीं अहिंसा था।

अहिंसा का सक्रिय सकारात्मक अंश है प्रेम[3], गाँधी जी ने कहा था – सत्य ईश्वर का सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाम है।[4] जूनियर लूथर ने कहा है –

''गाँधी इतिहास में प्रायः पहले ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने ईशु के प्रेम आदर्श को मात्र व्यक्तिगत परस्पर क्रिया से ऊपर बड़े पैमाने पर एक सशक्त एवं सफल सामाजिक बल के रूप में उठाया जो बौद्धिक और नैतिक तुष्टि मुझे बेन्यम और मिल के उपयोगितावाद, मार्क्स और लेनिन की क्रांतिकारी प्रणाली, हाब्स के सामाजिक संविदा सिद्धांत, रूसों के 'वापस पकृति को' के आशावाद, नीत्शे के 'सुपर मैन दर्शन' से न मिल पायी थी वह मुझे गाँधी के अहिंसक प्रतिरोधक सत्याग्रह दर्शन में मिला।'[5]

वस्तुतः 'सत्याग्रह' एक निर्भय अस्त्र है, जब कोई अहिंसा भावनिष्ठ व्यक्ति किसी काम का विरोध करता है। तब उसे सत्याग्रह का अवलम्बन करना पड़ता है। यही सत्याग्रह का स्वरूप है। सत्याग्रह का अलौकिक चमत्कार गत वर्ष सिर्फ भारतवर्ष ने ही नहीं, समूचे संसार ने आश्चर्य– चकित हो, आँखें फाड़–फाड़ के देखा।

सत्याग्रह के आधुनिक प्रणेता महात्मा गाँधी जी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 में हुआ था। गाँधी जी का सम्पूर्ण जीवन समाज की सेवा में समर्पित था, सत्याग्रह का प्रथम प्रयोग दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान 1914 में, गोरी सरकार द्वारा भारतीयों के खिलाफ बनाये गये काले कानून को रद्द करा कर किया था।[6]

भारत आने पर गुजरात प्रांत में अहमदाबाद जिले में साबरमती के किनारे 'साबरमती आश्रम' की स्थापना की अपने राजनैतिक गुरू गोपाल कृष्ण गोखले के निर्देशन में भारतीय राजनीति का अध्ययन प्रारम्भ किया। 1917 में चम्पारन में नील की खेती करने वाले किसानों पर यूरोपीय मालिकों द्वारा किये जा रहे अत्याचार के खिलाफ आन्दोलन में सफलता प्राप्त की। इन्ही दिनों रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गाँधी जी को महात्मा की उपाधि दी।[7]

खेड़ा किसानों पर कर का अधिक बोझ सरकार द्वार डाले जाने पर गाँधी जी ने किसानों का नेतृत्व करते हुए 1918 में 'कर नहीं दो' आन्दोलन चलाया।[8] 1918 में ही गाँधी जी ने अहमदाबाद के मिल मजदूरों की मजदूरी की वृद्धि के लिए आमरण अनशन किया, अनशन के चौथे दिन ही सरकार ने माँग मान ली।[9]

---

*भारत स्काउट और गाइड इण्टर, कालेज, इलाहाबाद।

गाँधी जी ने राजनीति में प्रवेश अंग्रेजी सरकार के सहयोगी के रूप में किया, किन्तु शीघ्र ही सबसे बड़े असहयोगी बनकर सामने आए, जिसके पीछे उत्तरदायी कारण थे – रौलट एक्ट[10] जलियावाला बाग हत्याकांड, खिलाफत समस्या आदि। गाँधी जी ने 1920 से 22 तक असहयोग आन्दोलन चलाया, 1920 में नवजीवन और यंग इंडिया समाचार – पत्रों की स्थापना की। 1924 में बेलगांव में हुए कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता की।

1928 में गाँधी जी 'साइमन कमीशन' व अन्य कारणों से पुनः सक्रिय राजनीति में उतरे और लार्ड इरविन के सम्मुख 11 सूत्री माँग प्रस्तुत की, किन्तु सरकार के असहयोग पूर्ण गतिविधियों के कारण 14 फरवरी, 1930 को साबरमती में कांग्रेस की बैठक में गाँधी जी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने का निश्चय किया गया, जिसमें सर्वप्रथम नमक सत्याग्रह के साथ सविनय अवज्ञा आन्दोलन का श्री गणेश किया।[11]

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के तहत नमक सत्याग्रह प्रथम आन्दोलन था आन्दोलन के प्रारम्भ में गाँधी जी ने वायसराय के सम्मुख अन्तिम चेतावनी भेजी, जिसमें सत्याग्रह का कार्यक्रम भी बनाया था। इस पर लार्ड इरविन ने धमकी देते हुए कहा था, 'यदि कानून भंग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तो भारत सरकार उसे रोकने में अपनी सारी शक्ति लगा देगी।'[12]

12 मार्च सन् 1930 को प्रातः 6.30 बजे अपने 79 स्वयं सेवकों के साथ गाँधी जी डाण्डी मार्च के लिये निकल पड़े। गाँधी जी के पीछे हजारों आदमियों का जुलूस था। गाँधी जी अपनी यात्रा के दौरान जिस गांव में ठहरते थे उसमें उत्तेजक भाषण देते थे, जिसमें नमक कर की समाप्ति तथा स्वयं सेवकों की भरती पर जोर देते थे।[13]

जब गाँधी जी 12 तारीख को निकले वहाँ पर इंग्लैंड, जर्मनी व अनेक देशों के संवाददाता, फोटोग्राफर, फिल्म बनाने वालों का जमावड़ा था।[14] महात्मा गाँधी जी का प्रथम पड़ाव आसलाली में हुआ। ग्रामवासियों ने जोरदार स्वागत किया और अपने भाषण में गाँधी जी ने कहा, 'नमक कर सबसे बड़ महसूल है, यदि मैं राजा होता तो कभी ऐसे कर न लगाता, मैं तम्बाकू आदि हानिकारक पदार्थों पर कर लगाता। अंग्रेजी सरकार ने सरदार पटेल को गिरफ्तार कर लिया है अब वह हमें भी गिरफ्तार करें, हमें इस संघर्ष में मौत तक के लिए तैयार रहना चाहिए। आप स्वयं सेवकों को तैयार कीजिए और नमक कर को मिट्टी में मिलाकर स्वराज्य की प्रथम मंजिल प्राप्त करें।[15]

13 मार्च को प्रातः 6 बजे गाँधी जी आसलाली से चल पड़े 8 बजे बरेजा पहुँचे, हजारों ग्रामवासियों, मुखियों, पटेलों ने गाँधी जी का स्वागत किया, आगवानी के लिए जनता गांव से एक मील पहले ही इन्तजार कर ही थी। यहाँ भाषण में गाँधी जी ने कहा, 'सरदार की गिरतारी से निराश न हों सभी खद्दर पहनें और जेल जाने के लिए तैयार हो जाएं।[16] ग्रामवासियों ने रूपयों की एक थैली गाँधी जी को भेंट की।[17] नवगांव में ही श्रीमती गाँधी जी ने गाँधी जी से भेंट की।

14 मार्च को जलगांव से चलकर मातार में डेरा डाला, आस पास के हजारों ग्रामवासी गाँधी जी के दर्शन के लिए जमा थे। यहाँ पर 3000 रूपये की एक थैली महात्मा जी को भेंट की गयी।[18] 15 मार्च को राष्ट्रीय सेना डाभर पहुँची। वहाँ पर लगभग 20 हजार लोगों ने बापू का स्वागत किया तथा अपने भाषण में बापू ने कहा, भारत ने पूर्ण स्वराज्य की शपथ ली है। आपके जोश को देख कर हमे ंयह लगता है कि हम गुलामी के बंधनों को तोड़ देंगे।' भाषण के समय लगभग 50000 लोग जमा हो चुके थे।[19]

16 मार्च को राष्ट्रीय सेना आनन्द पहुंची, यहाँ पर रेलगाड़ियाँ बापू के दर्शनार्थियों से भरी आ रही थी, सभा में 2000 लोगों ने भाग लिया, बापू ने भाषण में कहा, मैं चाहता हूँ कि आप लोग गुजरात को भारत का आदर्श बना दें।[20] यहाँ पटेलों और मुखियों ने इस्तीफे दिये और बापू को धन की एक थैली भेंट की।

19 मार्च को बापू रास पहुँचे। यहाँ 40 पटेलों ने त्यागपत्र दिये, त्यागपत्र में लिखा था, 'देश में स्वतंत्रता युद्ध आरम्भ हो चुका है इसलिए सरकार की नौकरी करना देशद्रोह है।[21] गाँधी जी ने अपने भाषण

में कहा, 6 अप्रैल को सभी नमक कर को रद्द कर दें क्योंकि 6 अप्रैल को ही 1919 में जलियावाला बाग में शहीदों के रक्त से धरती लाल हो गयी थी।[22]

20 मार्च को करेली में बापू ने कहा, 'सभी सरकारी नौकरी छोड दें तथा सरकारी नौकरों के साथ असहयोग करें।' 21 मार्च को गजेरा, नप्पा, बोरसद, रास में गाँधी जी ने जोरदार भाषण करते हुए कहा, 'मैं ब्रिटिश सरकार को भारत के लिए अभिशाप मानता हूँ।[23]

23 मार्च को बुआ ग्राम में बापू का पदार्पण हुआ तथा 25 मार्च को ट्रालसा पहुँचे। यहाँ भी सरकारी नौकरों ने इस्तीफे देकर बापू का स्वागत किया, बापू ने कहा, 'मेरे कुछ मुसलमान मित्र कह रहे हैं कि मैं उनके गांव से होकर नहीं आया। मैं कहता हूँ कि मैं जिस मार्ग से आया हूँ सभी ग्रामवासियों ने मुझे निमंत्रण दिया था, यदि आप का भी निमंत्रण मिलता तो मैं उधर भी आता। मेरे एक मुसलमान मित्र ने मुझे बुलाया है, मैं डाण्डी में उन्हीं के बंगले से सत्याग्रह आरम्भ करूंगा।[24]

26 मार्च को भरौंच में 20 हजार लोगों के मध्य भाषण में कहा – कि 'मुझे विश्वास है कि मेरा जन्म सरकार की इस पद्धति का नाश करने के लिए हुआ है' 27 मार्च को साजोद, 28 मार्च को बापू रायमा पहुचे जहाँ 50000 लोगों ने बापू का स्वागत किया, पटेलों व सरकारी कर्मचारियों ने इस्तीफे दिये। भाषण में बापू ने कहा कि, स्वागत के लिए इतना खर्च ठीक नही है, हम दरिद्र नारायण की सेवा में निकले हैं तो हमारे लिए इतना खर्च करना ठीक नही है, लज्जा की बात है।[25]

1 अप्रैल को हेलदाद से छापरामाटे पहुँचे। यहाँ पर 80000 लोगों ने सभी में भाग लिया, सूरत के 169 ककर्मचारियों तथा 68 पुलिस पटेलों ने त्यागपत्र दिया। 2 अप्रैल को डिंडोली पहुँच कर विलायती टाइम्स के संवाददाता मिस्टर पिटर्सन से मिले। 3 अप्रैल को नवसारी छावनी में पहुँचे यहाँ 50 हजार लोगों ने सभा में भाग लिया। 4 अप्रैल को जलालपुर[26] तथा बिजलपुर होते हुए 5 अप्रैल को डाण्डी पहुँचे। इस प्रकार 25 दिन में 40 ग्रामों से होते हुए डाण्डी पहुँचे।

6 अप्रैल के 6.30 बजे बापू नमक सत्याग्रह पर अपने स्वयं सेवकों के साथ निकले, जिसमें श्री तैयब जी, श्रीमती सरोजनी नायडू प्रमुख थीं। बापू ने सागर में स्नान करने के उपरान्त थोड़ी दूर चलकर समुद्र किनारे जमा प्राकृतिक नमक उठाया तथा नमक कानून का उल्लंघन किया।[27] इस पर मौजूद फोटोग्राफरों ने अपना काम प्रारम्भ कर दिया।

गाँधी जी के नमक सत्याग्रह के साथ ही सारे देश में नमक कानून का उल्लंघन प्रारम्भ हो गया, ' गाँधी जी ने नवजीवन के संवाददाता के साथ साक्षात्कार में कहा, बड़े ही शुभ समय में यह सप्ताह आरम्भ हुआ है। हमें अब इसमें और गति प्रदान करना है।[28]

अब भारत में हर आदमी नमक बना सकता है जो जेल जाने के लिए तैयार हो।[29] गाँधी जी ने 'आट' में जनता की सफलता पूर्वक अहिंसात्मक सत्याग्रह के लिए सराहना की। यहाँ गाँधी जी का स्वागत 'नमक चोर की जय'[30] शब्दों से किया गया। 5 मई को गाँधी जी को गिरफ्तार कर यरवदा जेल भेज दिया गया, जहाँ का इंस्पेक्टर जनरल मेजर डाइल था। गाँधी जी को गिरफ्तार करने में पूने के डिप्टी सुपरिंटेण्डेंट कोण्डले[31] साहब भी थे।

गाँधी जी के बाद तैयब जी फिर सरोजनी नायडू ने अध्यक्ष बन कर धरासने पर गिरफ्तार हुए। 5 जून को यंग इंडिया के साथ साक्षात्कार में गाँधी जी ने कहा, '5 जून को 165 वीर नवयुवक धरासने पर चढ़ाई के लिए निकले उनके पास लाठी तो क्या तकली भी न थी, फिर भी सरकारी पुलिस ने निहत्थों पर लाठी बरसायी।[32]

सम्पूर्ण भारत में भयंकर नमक सत्याग्रह प्रारम्भ हो गया, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश में नेहरू द्वय की गिरफ्तारी तथा मध्य प्रांत, बिहार, बंगाल में सुभाष बाबू के नेतृत्व में तथा अन्य प्रांतों में भी नमक सत्याग्रह का कार्य तेज हो गया।[33]

इसी बीच गोलमेज सम्मेलन के लिए कांग्रेस के साथ समझौते का प्रयास, श्री तेज बहादुर सप्रू, एम0आर0 जैकर तथा लार्ड इरविन से संधि का भरपूर प्रयास किया, किन्तु सफलता न मिली तथा गोलमेज

सम्मेलन सम्पन्न हुआ, महात्मा गाँधी जी के बिना गोलमेज सम्मेलन ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे बिना दूल्हे की बारात।[34]

गोलमेज सम्मेलन की समाप्ति के बाद सरकार का हृदय परिवर्तन हुआ और गाँधी जी समेत प्रमुख नेताओं को रिहा कर दिया गया तथा अथक प्रयासोपरान्त गाँधी इरविन समझौता सम्पन्न हुआ। इसी के साथ धीरे–धीरे आन्दोलन भी तिरोहित हो गया। 2 सितम्बर 1946 को गाँधी जी ने अन्तरिम सरकार को एक टिप्पणी भेजी जिसमें नमक कर को तत्काल निरस्त करने की अपील की परिणामस्वरूप 28 फरवरी 1947 को नमक कानून समाप्त कर दिया गया।[35]

वास्तव में नमक–सत्याग्रह भारत में अंग्रेजी सरकार के लिए एक अमोघ अस्त्र था, जिसके सामने अंग्रेजी सरकार नतमस्तक हो गयी, जबकि थामस वेबर व कुछ अन्य इतिहासकार इसकी सफलता में गाँधी को श्रेय नहीं देते हैं फिर भी ज्युडिथ ब्राउन, जे0बी0 कृपलानी व अनेक इतिहासकार महात्मा गाँधी जी के सत्याग्रह का महत्व स्वीकार करते हैं।

lUnHkZ %

1. कृपलानी जे0बी0, गाँधी हिज लाइफ थाट, पु0 12
2. असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ 1920 में हुआ किन्तु 1922 में चौरी–चौरा नामक स्थान पर गोरखपुर जिले में हिंसा हो गयी जिसमें लोगों ने पुलिस कर्मचारियों की जान ले ली तथा थाने में आग लगा दी।
3. गाँधी, एम0के0 कलेक्टेड स्पीच ऑफ गाँधी, पृ0 20
4. वही प0 21
5. यंग इंडिया, 5 जून, 1940 पृ0 5
6. गाँधी, एम0के0, सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका, पृ0 105
7. ग्रोवर बी0एल0 आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 40
8. वही पृ0 41
9. वही पृ0 40
10. रौलट एक्ट, जिसे काला कानून कहा गया था, इसे सर सिडनी रौलट की अध्यक्षता में बनाया गया था। इसके अंतर्गत किसी भी संदेहास्पद, व्यक्ति को सरकार जब चह चाहे बिना कारण बताए हिरासत में रख सकती थी।
11. ग्यारह सूत्रीय माँग में गाँधी जी की कर को कम करने, विदेशी व्यापार पर कमी तथा नमक कर की समाप्ति आदि महत्वपूर्ण माँगें थी।
12. यंग इंडिया, फरवरी 15, 1930, पृ0 6
13. वेबर थामस आन द साल्ट मार्च, पृ0 14
14. वही, पृ0 20
15. वही, पृ0 24
16. यंग इंडिया, 14 मार्च 1930, पृ0 2
17. वही, पृ0 2
18. वही, पृ0 2
19. वही, पृ0 2
20. यंग इंडिया, 15 मार्च पृ0 1
21. वही, पृ0 1
22. वही, पृ0 2
23. वही, पृ0 2
24. वही, पृ0 1
25. वेबर थामस आन द साल्ट मार्च, पृ0 35
26. वही, पृ0 36
27. कृपलानी जे0बी0 गाँधी हिज लाइफ एण्ड थाट, पृ0 35
28. वही, पृ0 36
29. वेबर थामस आन द साल्ट मार्च, पृ0 37
30. होम पोलिटिक 1930 फा0 नं0 2.47 / प्ट
31. यंग इंडिया 7 अप्रैल, पृ0 2
32. होम पोलिटिक 1930 फा0 नं0 247 / प्
33. कोण्डले साहब ने ही महात्मा गाँधी को 1922 ई0 में पूना में गिरतार किया था।
34. यंग इंडिया, 1930 अप्रैल, 18, पृ0 2
35. हरिजन, 1947 अप्रैल, 27, पृ0 2

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 85-88

fo’ukbZ lekt dk bfrgkl % ,d lkekU; ifjp;

fotæ ehuk*

---

fo’ukbZ lekt dk bfrgkl % राजस्थान की वीर प्रसूता भूमि में सिर्फ वीर ही नहीं, कई ऐसे संतों ने भी जन्म लिया जिन्होंने भक्ति, ईश्वर साधना, आत्मबोध के साथ ही तत्कालीन समाज में फैली बुराइयों को जड़ से समाप्त करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किये। इन संतों को उनके सुकृत्यों के कारण यहाँ की जनता ने भरपूर आदर दिया व इनकी लोक देवता के रूप में पूजा–अर्चना शुरू की। आम जनमानस में इनके प्रति दृढ़ निष्ठा ने सहस्रों साधारण स्तर के नर–नारियों को सद्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया है।

इनके जीवन–वृत्त से प्रेरित होकर इन लोक–देवों के अनुयायी बिना किसी छुआछुत, ऊँच–नीच, भेदभाव के एक स्थान पर एकत्रित होते हैं और जातीय व धार्मिक एकसूत्रता का अनुभव कर साम्प्रदायिक सौहार्द व समानता की मिशाल कायम करते हैं। इस प्रकार के स्थानीय लोक देवों में विश्वास करके अधिकांश जनता ने बिना धर्म सम्बन्धी दर्शन के शास्त्रार्थ में पड़े एकता, ध्यान और नैतिक जीवन के तत्त्वों को अपनाया।

विश्नोई समाज के प्रवर्तक के रूप में जाम्भोजी का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। उनके "सबद" में परमतत्त्व की विवेचना मिलती है जो अनुभव–प्रधान हो सकती है। संसार के मिथ्या होने पर भी उन्होंने समन्वय की प्रवृत्ति को प्रधानता प्रदान की। दान, तीर्थ आदि के सम्बन्ध में इनकी उपेक्षा करते हुए, 'शील–स्नान' को उत्तम बताया। पाखण्ड को अधर्म और पवित्र जीवन को धार्मिक बताया। विष्णु की भक्ति में अर्चन करने पर बल देते हुए कुरीतियों से बचने के उपाय भी उन्होंने सुझाये। प्रकृति संरक्षण पर इन्होंने सबसे ज्यादा जोर दिया। खेजड़ी को इन्होंने सबसे पवित्र माना है। समाज–सुधारक की भाँति जाम्भोजी ने विधवा विवाह पर भी बल दिया। अपनी शिक्षाओं में मुर्दों को दफन करना उन्होंने ठीक बताया।

उनके ये सभी अनुभव 29 (20,9) शिक्षा के नाम से जाने जाते हैं और इनका पालन करने वाले 'विष्णोई' (विश्नोई) नाम से सम्बोधित किये जाते हैं। इन मतावलम्बियों का अपने जीवन और विचारों का एक तरीका है जिससे वे स्वतः एक समाज बनाते हैं। इनको एक सूत्र में गठित करने का श्रेय जाम्भोजी (Jambhoji) को है। आज भी विष्णोई समाज, जिसमें अधिकांश संख्या में जाट हैं, अपने ढंग से स्वतन्त्र विचारधारा से जीवन जी रहे है और उनकी अपनी इकाई बनी हुई है ।

thou ifjp; % संत जाम्भोजी का जन्म 1451 ई0 में जोधपुर राज्य के अन्तर्गत नागौर परगने के पीपासर गाँव में हुआ था। जाति के वे पंवार राजपूत थे। इनके पिता का नाम लोहटजी था और उनकी माता हाँसा भाटी राजपूत कुल की थीं। अपने माता–पिता के इकलौते पुत्र जाम्भोजी बचपन से ही मननशील थे। जिससे वे कम बोलते थे। साधारणतः इस स्थिति को देखकर लोग इन्हें गूंगा कहते थे, परन्तु कभी–कभी वे ऐसी बात कर बैठते थे कि लोग आश्चर्यान्वित हो जाते थे। संभवतः अचंभित करतूतों से लोग इन्हें जाम्भोजी कहने लगे हों। बताया जाता है कि 7 वर्ष की उम्र से ही जाम्भोजी ने गायें चराना आरम्भ कर दिया था जो लगभग अपनी 16 वर्ष की आयु तक करते रहे। जब इनके माता–पिता की मृत्यु हो गयी तो वे घर छोड़कर चल दिये और सत्संग में अपना समय बिताने लगे। वे केवल मननशील ही नहीं वरन् उस युग की साम्प्रदायिक संकीर्णता, कुप्रथाओं एवं कुरीतियों के प्रति जागरूक भी थे। वे चाहते थे कि अन्ध–विश्वास और नैतिक पतन के वातावरण से सामाजिक दशा को सुधारा जाय और आत्मबोध के

---

*शोधार्थी, इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

द्वारा कल्याण के मार्ग को अपनाया जाय। उनकी शिक्षा–दीक्षा का व्यवस्थित न होना स्वाभाविक था, परन्तु गायें चराने के अवसर ने उन्हें एकान्तवास और मनन का समय दिया। जाम्भोजी की जीवन लीला तालवा गाँव में 1526 ई। 75 वर्ष की उम्र में समाप्त हुई। जाम्भोजी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त सबदवाणी और उनका नैतिक जीवन मध्ययुगीन धर्म सुधारक प्रवृत्ति के बलवान अंग है।

fo'ukbZ lekt dh mUufr ds fu;e % इस सम्बन्ध में एक कहावत बहुत प्रसिद्ध है, जो इस प्रकार है–

उन्नतीस धर्म की आखडी हिरदे धरियो जोय, जम्भोजी कृपा करी नाम विश्नोई होय।

1. प्रतिदिन प्रातरूकाल स्नान करना, 2. 30 दिन जनन–सूतक मानना, 3. 5 दिन रजस्वता स्त्री को गृह कार्यों से मुक्त रखना, 4. शील का पालन करना, 5. संतोष का धारण करना, 6. बाहरी एवं आन्तरिक शुद्धता एवं पवित्रता को बनाये रखना, 7. तीन समय संध्या उपासना करना, 8. संध्या के समय आरती करना, 9. निष्ठा एवं प्रेमपूर्वक हवन करना, 10. पानी, ईंधन व दूध को छान–बीन कर प्रयोग में लेना, 11.वाणी का संयम करना, 12. चोरी, निंदा, 13. अमावश्या के दिन व्रत करना, 14. विष्णु का भजन करना, 15. जीवों के प्रति दया का भाव रखना, 16. हरा वृक्ष नहीं काटना, 17. काम, क्रोध, मोह एवं लोभ का नाश करना, 18. रसोई अपने हाध से बनाना, 19. परोपकारी पशुओं की रक्षा करना, 20. नीले वस्त्र नहीं पहनना, 21. बैल को बधिया नहीं करवाना, 22. ईश्वर के गुणों के बारे में चिंतन करना, 23. दया एवं क्षमा को धारण करना, 24. मांस, 25. तम्बाकू, 26. भांग 27. मद्य तथा 28. नील का त्याग करना, 29. झूठ तथा वाद–विवाद का त्याग करना,

fo'ukbZ lEçnk; ,oa vU; /kekZsa ds fl)karksa esa lEcU/k % जाम्भोजी की शिक्षाओं पर अन्य धर्मों का प्रभाव स्पष्ट रुप से दृष्टगोचर होता है। उन्होंने जैन धर्म से अहिंसा एवं दया का सिद्धान्त तथा इस्लाम धर्म से मुर्दों को गाड़ना आदि सिद्धान्त ग्रहण किये हैं। उनकी शिक्षाओं पर वैष्णव सम्प्रदाय तथा नानकपंथ का भी बड़ा प्रभाव है। इस सम्प्रदाय में गुरु दीक्षा एवं डोली पाहल आदि संस्कार साधुओं द्वारा सम्पादित करवाये जाते हैं, जिनमें कुछ महन्त भी भाग लेते हैं। वे महन्त, स्थान विशेष की गद्दी के अधिकारी होते हैं, परन्तु थापन नामक वर्ग के लोग नामकरण, विवाह एवं अन्त्येष्टि आदि संस्कारों को सम्पादित करवाते हैं। चेतावनी लिखने एवं समारोहों के अवसरों पर गाने बजाने आदि कार्यों के लिए गायन अलग होते हैं। इस सम्प्रदाय में परस्पर मिलने पर अभिवादन के लिए 'नवम प्रणाम', तथा प्रतिवचन में' विष्णु नै जांभोजी नै' कहा जाता है।

fo'ukbZ lekt dk çÑfr ds çfr yxko % बिश्नोइयों के लिए पर्यावरण और वन्यजीवों की रक्षा करना उनका जीवन सिद्धांत है। यह बिश्नोइयों के गुरू जंभेश्वर द्वारा तय 29 जीवन–सिद्धांतों में से एक है। यह समाज राजस्थान में मुख्य रूप से पश्चिमी इलाके मारवाड़ में निवास करता है। मारवाड़ का ज्यादातर भाग रेगिस्तानी होने के कारण यहां वनों और वन्यजीवों की कमी है।

राजस्थान में एक कहावत प्रचलित है– 'सर साठे रुंख रहे तो भी सस्तो जाण', यानी सिर कटवा कर भी वृक्षों की रक्षा हो सके, तो इसे फायदे का सौदा ही समझिए। जोधपुर के खेजड़ली गांव में संवत् 1787 (सन् 1730) की भादवा सुदी दशमी, दिन मंगलवार को खेजड़ी के पेड़ों की रक्षा के लिए विश्नोई जाति के सैकड़ों लोगों की कुर्बानी की गाथा इसका ज्वलंत उदाहरण है।

खेजड़ली के बलिदान की गाथा रोमांचक और प्रेरणास्पद है। जोधपुर किले के निर्माण में काम आने वाली लकड़ियों की आपूर्ति के लिए वहां खेजड़ी के वृक्षों की कटाई का निर्णय लिया गया। इस पर खेजड़ली गांव के लोगों ने अपनी जान की कीमत पर भी वन की रक्षा करने का निश्चय किया। चौरासी गांवों को इस फैसले की सूचना दे दी गई। सैकड़ों की तादाद में लोग खेजड़ली गांव में इकट्ठे हो गए और पेड़ों को काटने से रोकने के लिए उनसे चिपक गए। लेकिन शासन ने इसकी परवाह नहीं की और जब बर्बरतापूर्वक पेड़ों को काटा जाने लगा उन पर चिपके हुए लोगों के शरीर के टुकड़े–टुकड़े होकर गिरने लगे। एक व्यक्ति के कटने पर तुरंत दूसरा व्यक्ति उसी पेड़ से चिपक जाता। इस बलिदान में अमृतादेवी और उनकी तीन पुत्रियां (अशु, रतनी एवं भगु बाई) हरावल नेतृत्व में रहीं। पुरुषों में सर्वप्रथम अणदोजी ने बलिदान दिया था और बाद में विरतो बणियाल, चावोजी, ऊदोजी, कान्होजी, किसनोजी,

दयाराम आदि पुरुषों और दामी, चामी आदि स्त्रियों ने अपने प्राण दिए। कुल मिला कर तीन सौ तिरसठ स्त्री–पुरुषों ने अपनी जान दे दी। जब इस घटना की सूचना जोधपुर के महाराजा को मिली तब जाकर उन्होंने पेड़ों की कटाई रुकवाई और भविष्य में वहां पेड़ न काटने के आदेश दिए। खेजड़ली के इन वीरों की स्मृति में यहां हर वर्ष भादवा सुदी दशमी को मेला लगता है, जिसमें हजारों की संख्या में लोग इकट्ठे होते हैं।

इस घटना का वर्णन करते हुए कवि गोकुजी ने खेजड़ली की साखी में लिखा है– 'ऊदो सार समाही आयो, सिर सौंपा रुंखा सट्टै / सिर सौंपा अर नहीं कंपा, मरण सूं मत को डरो।' वृक्षों के रक्षार्थ स्वेच्छा से प्राण देने की ऐसी अनेक घटनाएं हैं, जिन्हें 'खेजड़ली के खड़ाणे' से जाना जाता है। खेजड़ली के अप्रतिम बलिदान से पूर्व भी, राजस्थान की मरुभूमि के अनेक स्त्री–पुरुषों ने वनों की रक्षा के लिए स्वेच्छा से अपने प्राणों की आहुति दी थी। इतिहास के पन्नों में दफन हो चुके ये स्त्री–पुरुष जांभोजी के अनुयायी थे। जांभोजी ने संवत 1542 की कार्तिक वदी अष्टमी को विश्नोई धर्म का प्रवर्तन किया और अपने अनुयायियों को 'सबद वाणी' में उपदेश दिया कि वनों की रक्षा करें। जांभोजी के भक्त कवि ऊदोजी नैण ने विश्नोई धर्म के अनुयायियों के लिए उनतीस नियमों में वृक्षों की रक्षा पर जोर देते हुए लिखा– 'करै रुंख प्रतिपाल खेजड़ा रखत रखावै।' कवि वील्होजी ने 'बतीस आखड़ी' में 'राख दया घट माही, वृक्ष घावै नहीं' कह कर वृक्षों की कटाई को निषिद्ध बताया। जांभोजी के अनुयायियों ने अपने गांवों के चारों ओर ओरण में पेड़ लगाए और उनकी रक्षा की। विश्नोई समाज में वन और वन्य जीवों की रक्षा के लिए वह उत्सर्ग या बलिदान का जज्बा आज भी जिंदा है।

खेजड़ली में पेड़ों की रक्षा के लिए आत्मोत्सर्ग का ऐसा सामूहिक स्वैच्छिक अनुष्ठान विश्व भर में अनूठा और अद्वितीय है। इस बलिदान की गौरवमयी विरासत से प्रेरित होकर हर व्यक्ति को वन संरक्षण और संवर्धन के लिए संकल्पबद्ध होना चाहिए।

बिश्नोई समुदाय के एक व्यक्ति के पास निर्भय विचरण करते चिंकारा दूसरी तरफ स्थानीय लोग, खासकर पश्चिमी राजस्थान के बिश्नोई लोग चिंकारा के साथ परिवार के सदस्य की तरह व्यवहार करते हैं और उनसे बेइंतहा प्यार करते हैं। बिश्नोइयों के गांवों में हिरण और चिंकारा परिवार के बच्चों की भांति पाले जाते हैं। यूं भी बिश्नोइयों का वन्यजीवों और पर्यावरण के प्रति समर्पण अनुपम है। विश्नोई समाज हमेशा से ही पर्यावरण को लेकर सतर्क रहा है। इन्हीं की सतर्कता के कारण ही भारतीय सेना पर भी मुकदमा दर्ज करवाया गया। सीमा पर चल रहे सेना के युद्धाभ्यास के दौरान नीमला साजीतडा सैन्य क्षेत्र में सेना की '88 आर्म्ड वर्कशॉप मेस' से राजस्थान वन विभाग की टीम ने 25 नवम्बर को चिंकारा के तीन कटे सिर और कुछ पैरों सहित 15 किलो मांस बरामद किए। वन विभाग ने पांच सैन्यकर्मियों के खिलाफ वन्यजीव संरक्षण अधिनियम के तहत मुकदमा दर्ज किया। चिंकारा शिकार मामले में भी सलमान खान को सलाखों के पीछे पहुंचाने में बिश्नोई समाज की भूमिका अहम रही है। राजस्थान में ऐसा पहली बार नहीं हुआ है कि जब चिंकारा का शिकार सुर्खियों में आया है। वर्ष 1998 में भी अभिनेता सलमान खान जोधपुर में अपनी एक फिल्म की शूटिंग के दौरान चिंकारा का शिकार किया था। मामले में उन्हें निचली अदालत से पांच साल की सजा भी हो चुकी है। सलमान पर आरोप था कि सितंबर 1998 में 'हम साथ–साथ हैं' की शूटिंग के दौरान उन्होंने काले हिरण और चिंकारा के शिकार किए थे। निचली अदालत सलमान को 26 सितंबर की रात ककानी गांव में काले हिरण और 28 सितंबर की रात भावद गांव घोड़ा फार्म में दो चिंकारा के शिकार मामले में दोषी मानती है। इस मामले में सैफ अली खान, सोनाली बेंद्रे और तब्बू पर भी आरोप तय हो चुके हैं।

दरअसल, चिंकारा राजस्थान का राज्य पशु ही नहीं है बल्कि वन्यजीव संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत बाघ की तरह ही शेड्यूल 1 का वन्यजीव है और इसका शिकार करने पर सात वर्ष तक की जेल का प्रावधान है। फिर भी इनकी संख्या में तेज गिरावट देखी जा रही है। वर्ष 2009 में प्रदेश में 37,758 चिंकारा थे जो वर्ष 2010 में घटकर 34,970 ही रह गए। पश्चिमी राजस्थान में भी इनकी तादाद घट रही

है। थार के मरुस्थल में वर्ष 2009 में 3,076 चिंकारा थे जो अगले साल घटकर 2,743 रह गए। साफ जाहिर है कि बड़े पैमाने पर चिंकारा का शिकार किया जा रहा है।

इसी तरह का एक और उदाहरण इस समाज के पर्यावरण प्रेमी राणाराम बिश्नोई का है। जिन्होंने पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी के द्वारा राजनीति में आने के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। राणाराम बिश्नोई के लिए वृक्षों, वन्यजीवों और पर्यावरण से महत्वपूर्ण कुछ भी नहीं है। धन–दौलत और शान–शोहरत पर कोई ध्यान न देते हुए बस एक ही जुनून है पेड़–पौधों व वन्य जीवों की सेवा। राणाराम का ईश्वर में कोई विश्वास नहीं हैं। देवी–देवता, मंदिर व किस्मत जैसी अवधारणाओं से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। केवल गुरु जंभेस्वर (बिश्नोई संप्रदाय के सस्थापक) को ही अपना आदर्श मानते हैं, उन्हीं की शिक्षाओं पर चलते हैं। राणाराम जी, जहां पत्थर भी नहीं टिकते ऐसे रेगिस्तानी रेत के टीलों पर लाखों की संख्या में पेड़ लगा चुके हैं। इनके कार्य को राष्ट्रीय स्तर पर लाने की आवश्यकता है, ताकि दूसरे लोगों को भी इससे प्रेरणा मिले।

lUnHkZ %

1. बिश्नोई, श्रीकृष्णा (1991) बिश्नोई धर्म संस्कार, धोका–धोरा प्रकाशन, बीकानेर (Original from & The University of California, Digitized : 2 Feb 2007)
2. सहू, डॉ. बनवारी लाल – कुमार, डॉ. रोहतास – बिश्नोई, डॉ. छायारानी (स.) (2016) भगवद्ग रूप मीमांसा और गुरु जाम्भोजी, जाम्भाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर (राजस्थान)।
3. साहू, डॉ. बनवारी लाल (2016) बिश्नोई पंथ और साहित्य, जाम्भाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर (राजस्थान)।
4. साहू, डॉ. बनवारी लाल (2005) बिश्नोई लोकगीत : एक सांस्कृतिक मूल्यांकन, विकास प्रकाशन, बीकानेर।
5. बिश्नोई, डॉ. सहीराम (2014) संत जाम्भोजी तथा विश्नोई दर्शन, राजस्थानी ग्रंथगार।
6. जैन, पंकज. "द विश्नोई : एन इको–थियोलोजिकल "न्यू रीलिजियस मूवमेंट" इन द इंडियन डेजर्ट", (Published in the Journal of Vaishnava Studies, 19A1, August 2010)।
7. बिश्नोइज्मः एन इको धर्म ऑफ दी पीपुल हू आर रेडी टू सेक्रिफाइस देयर लीव्स टू सेव ट्री एंड वाइल्ड एनिमल्स .रिचर्ट, एलेक्सिस (यूनिवर्सिटी ऑफ ओट्टावा, कनाडा) : भट्टर कॉलेज जर्नल ऑफ मल्टी डिसिप्लिनरी स्टडीज, (ISSN 2249&3301), टवस। प्प्, 2013
8. चपल, क्रिस्टोफेर के., रिलिजिअस एनवायरमेंटलिज्मः थॉमस बेरी, द बिश्नोई, एंड सतीश कुमार, डायलॉग : ए जर्नल ऑफ थियोलोजी। वोल्यूम 50, नवंबर 4. विंटर 2011। दिसम्बर।
9. श्रीवास्तव, विनय कुमार। रिलिजन एंड एनवायरमेंटरू ए परस्पेक्टिव फ्रॉम द कम्युनिटी ऑफ विश्नोई, ह्युमन इकोलोजी स्पेशल इस्सू No. 10: 249-254 (2001)।
10। चन्दन कुमार गौतम एंड आनंद प्रेम रंजन, इकोसेंट्रीज्म इन इंडियारू एन इनक्रेडिबल मॉडल ऑफ पीसफुल रिलेशन विथ नेचर, यूनिवर्सल जर्नल ऑफ एनवायरमेंटल रिसर्च एंड टेक्लोनोजी। 2014 Volume 4, Issue 2: 90-99
11. Ishawaranad, SwamiA Shri JambhSagarA Hindu Press] Delhi (1949)।
12. Bishnoi, DrA Krishna LalA Vilho Ji Ki VaniA Sambhrathal Prakashan, Abubsahar, Sirsa (1993)
13. Ahmad, Meera: Bishnoi Religion and NatureA Unpublished Manuscript (2001)
14. Srivastav, VAKAA: Religious Renunciation of a Pastoral People A Oxford University Press, New Delhi (2000)।
15. Chandla, MA S. JJmabhoji - Messiah Of The Thar Deseart" Aurava Publications, Chandigarh 1998।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 89-93

fo".kq [kjs dk dkO; laxzg Þdky vkSj vof/k ds njfe;kuß esa lelkef;d Lianu

vt; ik.Ms;*

समकालीन हिन्दी कविता के परिदृश्य में 'विष्णु खरे' का विशेष महत्व है। उन्होंने हिन्दी जगत को अत्यंत गहरी विचारपरक कविताएँ दी हैं, विश्व साहित्य का गहन अध्ययन उनके सृजनात्मकता में पूरी रंगत के साथ दिखलाई पड़ता है। समकालीन कविता की अन्तर्वस्तु में एक नई जटिलता, प्रस्तुति में एक नई नाटकीयता और बोली में अपनापन संभव किया है। कविताओं को लिखते समय वे काव्यशास्त्रीय ज्ञान से दूरी बनाए रखने के पक्षधर हैं। हिन्दी कविता को समकालीन बनाने वाली विशेषताएँ जैसे– बौद्धिकता, आधुनिक संवेदनशीलता तथा बहुमुखी आधुनिकता इनकी कविताओं में व्याप्त हैं। भाव–बोध का पुनस्संगठन उनकी कविताओं का केन्द्रीय तत्व है। जितना ही कोई कवि भावबोध के पुनस्संगठन उसकी कविता की समकालीन प्रासंगिकता बढ़ती है।[1] इनके यहाँ आवेश या उत्तेजनापूर्ण विषयों पर भी कमाल की धैर्यवान और ठंडी ठहरी हुई प्रौढ़ शैली मिलती है, तनिक भी जल्दबाजी नहीं। अपनी राह पर अपने ही मूड में चलता हुआ फक्कड़ की तरह, परंतु आस–पास की वातावरण के प्रति सचेत। इसलिए कवि की कविता अपना एक सहज साँचा बनाती है और अपने असर का एक खास मिजाज तैयार करती है– झटका देकर फुस्स नहीं हो जाती, समझ के स्तर पर गहरा असर डालती है। इनकी कविताएँ अत्यंत मार्मिक संवेदनाओं को अपने में समेटे ऐसी कविता है जिनके सरोकार बहुत व्यापक है और उसमें समसामयिक स्पंदन भी है।

विष्णु खरे के काव्य संग्रह "काल और अवधि के दरमियान" की कविताएँ हमारे सम्मुख एक ऐसे संसार को खोलती है, जिसका उन्होंने न सिर्फ प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया है बल्कि यह संसार उनकी कविता करने की वजह भी है। 'शिविर में शिशु' कविता में साम्प्रदायिक दंगा (गोधरा कांड) के बाद उत्पन्न हुए स्थितियों को 'भीगे हुए सच' के रूप में बड़ी मार्मिकता और बारीकी से इन्होंने उभार कर सामने लाया है–

"एक चादर पर पन्द्रह शिशु लिटाए गए हैं/वे उन पैंतालीस में से हैं/ जो दंगों के बाद इन कुछ हफ्तों में/एक राहत शिविर में पैदा हुए हैं/............उन्हें पता नहीं है जिस घर और कुनबे के वे हैं/ उनके साथ क्या हुआ है/ और तुम यह नहीं कह सकते कि उनके पिता जिन्दा ही हों/ या घर के दूसरे मर्द/या कि उन्हें जन्म देने के बाद उनकी माँएँ भी बची या नहीं। चूँकि ये एक मुस्लिम राहत शिविर में पैदा हुए हैं। इसीलिए इन्हें मुसलमान शिशु कहा सकता है/ वर्ना इस फोटो से पता नहीं चल पा रहा है।"[2]

यह कविता सामान्य जन को संस्पर्शित और उद्वेलित करती दिखाई पड़ती है। सच है कि शिशुओं का संबंध किसी जाति, धर्म, भाषा से परे होता है फिर भी वह इन कुचक्र के पाटों मे पिस जाता है। हाल में ही दंगा तो नहीं, शिशुओं से संबंधित घटना गोरखपुर अस्पताल में भी हुई जिसमें राजनीति और अस्पताल प्रशासन के चलते लगभग पचास शिशुओं की मृत्यु हो जाती है। इस कविता में कवि अपने सच के प्रकटीकरण के लिए सीमा से परे होकर भी प्रतिबद्ध है।

स्थितियों के विकरालीकरण और अमानवीयता इनकी कविता "विनाशग्रस्त इलाके से एक सीधी रपट" में देखने को मिलती है– "खास तौर पर इन इम्पॉर्टेंट इमारतों के मलबे से लाशें ढूँढने में लगे हुए हैं/ जिनसे वे एक्सपर्ट तरीके से/नकदी जंजीरे अंगूठियाँ घड़ियाँ सैलफोन सोने के बटन क्रेडिट कार्ड

*शोधार्थी, हिन्दी विभाग, देव सिंह बिष्ट परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल।

डायरियाँ/और दूसरी एक्सपेंसिव चीजें नोच रहे हैं/ सुना है कि वे जिन्दा बचे लोगों को भी लूटने के लिए किल कर रहे हैं।"[3]

बिल्डिंग के गिर जाने की स्थिति के विकराल होने के बावजूद मानव–मानव को बचाने के बजाए उसके कीमती वस्तुओं को लेने के लिए नोच कर अमानवीयता की हद पार कर दिया है। इस कविता ने समाज की मानसिकता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

स्थानीयता और देशकाल बोध जैसे लक्षण 'स्वर्ण जयंती वर्ष में एक स्मृति' कविता में दिखाई पड़ते हैं– "जब अखबार में यह पढ़ा कि लाल किले में/इकट्ठा किए गए बच्चों को/ तीन बार जय हिन्द कहने के बावजूद/सारे वक्त खाने–पीने को कुछ मिला/तो मुझे 1947 के छिंदवाड़ा और 1997 की दिल्ली के बीच/पचास साल के बावजूद ऐसी समानता से विचित्र हुआ!............फिर पचास बरस पहले छिंदवाड़ा के छोटे तालाब के पास जो लाई हमने खाई थी/ वह अब आठ रूपए के प्लास्टिक में बिकती है/ उसे यहाँ लाई के नाम से पहचानता भी नहीं/ उसका राष्ट्रीय नाम अब पॉप कार्न है।"[4]

'पृथक छत्तीसगढ़ राज्य' कविता में भी स्थानीयता बोध है। इसी कविता में ही महानगरीय संवेदनशून्यता भी दिखाई पडती है–

"कोई जुड़ना नहीं चाहता अब सब विखंडन चाहते हैं/ जो स्वायत्त स्वतंत्र होना प्रतीत नहीं होता/दिल्ली में देखो कॉलोनियों के हर प्रवेश पर/लोहे के दरवाजे लग गए हैं/हर इमारत के गेट पर चौकीदार रोकता है एंट्री करवाता है/ रास्ते चुन दिए गए हैं चारदीवारियाँ खड़ी कर दी गई हैं।"[5]

इस संस्कृति में आदमी से आदमीयता गायब होती दिख रहीं है। एक–दूसरे के दुःख से किसी को भी कोई सरोकार नहीं, सभी संवेदनहीन हो गए हैं। 'स्वर्ण–जयंती वर्ष में एक स्मृति' और 'पृथक छत्तीसगढ़ राज्य' कविता देशकाल बोध के शर से बिधी हुई है। जाहिर है देर तक साथ कविता का रहेगा जो हमसे हमारी ही बोली या हमारी ही बात करेगी अर्थात् हमारे ही देशकाल की हो। किसी अपरिचित अजनबी काल्पनिक देशकाल की नहीं न देशकाल से परे किसी अनंत की।

'धार्मिक उन्माद' तो स्वस्थ समाज के लिए कैंसर की तरह हो गया है। किसी को भी जबरदस्ती कुछ भी कहने के लिए बाध्य किया जा सकता है। इनकी कविता 'चुनौती' में यह देखा जा सकता है–

"इस कस्बानुमा शहर की इस सड़क पर/सुबह घूमने जाने वाले मध्यवर्गीय सवर्ण पुरूषों में/ हरिओम पुकारने की प्रथा है/...... लेकिन ये हरिओम पुकारने वाले/उसे ऐसी आवाज में कहते हैं/जैसे कहीं कोई हादसा वारदात या हमला हो/ उसमें एक भय एक हौल पैदा करने वाली चुनौती रहती है दूसरों को देख वे उसे अतिरिक्त जोर से उच्चारते हैं/ उन्हें इस तरह जाँचते है कि उसका उसी तरह उत्तर नहीं दोगे। तो विरोधी अश्रद्धालु नास्तिक और राष्ट्रद्रोही तक समझे जाओगे।.......कि कहीं वे हरिओम कहने को अनिवार्य न बनवा डाले इस सड़क पर/और फिर इस शहर में/और अन्त में इस मुल्क में/"[6]

'गुंगमहल' कविता में भी अकबर के समय की घटना का वर्णन किया है जिसमें धर्म और संस्कृति के फेर में शिशुओं पर बुरा बर्ताव किया जाता है। 'वृन्दावन की विधवाएँ' कविता में भी अंधभक्ति और अंध आस्था को विष्णु खरे जी ने बड़े सुन्दर ढंग से दिखाया है।

आजकल तो तमाम ऊल–जलूल अनियोजित घोषणाओं जैसे–नोटबंदी, जीएसटी इत्यादि न जाने कितने प्रकार के नये करों, को थोपने का कार्य चल रहा है। इन साजिशों की शिकार केवल और केवल आम जनता ही हो रही है, शोषण उसी का हो रहा है। न जाने कितने प्रकार की वसूली चल रही है। कुछ ऐसी ही "लाइब्रेरी में तब्दीलियाँ" कविता में देखने को मिलता है, यहाँ अब तो सौ रूपये वार्षिक या दस रूपये के दैनिक प्रवेश शुल्क लिए जाने के कारण लाइब्रेरी में अब पाठक नहीं आना चाहता–

"किशोरों और नवजवानों की एक पूरी भीड़ होती थी यहाँ/जो जुलाई और फरवरी में बढ़ जाती थी/और कई बार खाली कुर्सी मिलना या चैन से पढ़ना दूभर हो जाता था/ किताबें लेने या जमा करने में दस–दस मिनट लग जाते थे/दो सौ रूपये वार्षिक या दस रूपये के दैनिक प्रवेश ने/ उनमें से अधिकांश को कहाँ भेज दिया है पता नहीं/.....अब एक आदमी बैठाल दिया गया है/ जिसका काम है

आने वालो के कार्ड चैक करना/जिसे वह रोबीली निर्ममता से करता है/ रोज अब भी बीसियों लड़के–लड़कियाँ ऐसे आते हैं/जिन्हें पुनर्व्यवस्थापन का पता नहीं होता/फीस बताए जाने पर वे ठिठक जाते हैं/ ये कब से हुआ पहलु तो ऐसा नहीं था।"[7]

अभी हाल में कुछ ऐसा सुनने को मिल रहा है कि अब भी अपने ग्राहकों से हर निःशुल्क होने वाले कार्य पर भी शुल्क वसूलेगा।

विष्णु खरे ने अपनी 'जिल्लत' कविता में हिजड़ों या किन्नर समाज के सच को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है और अनन्त विस्तार दिया है– "हीजड़ों में जो वर्ग–विभाजन रहा होगा क्या वह अब आत्यंतिक होता जा रहा है/इधर क्या हीजड़ों की माँग घट रही है/ क्या प्रतियोगी वेश्याओं ने उनका बाजार भी ले लिया है! जो भी हो साफ है/ कि हीजड़ों की गर्वीली लड़ाकू बिरादरी हर जगह संकट में है मैंने मुम्बई में भी लोखण्डवाला के पास/चौराहे पर उन्हें मोटरों–तिपहियों की सवारियों से पैसे माँगते देखा है। भारत के करोड़ों गरीबों मं हीजड़ों का शामिल हो जाना हैबतनाक है/कृकृकृऔर प्लेटफार्मों और लाल बत्तियों पर अपाहिजों की तरह/भीख माँगने पर मजबूर हुई/ देश का इतना पतन हुआ।"[8]

अभिधेयार्थ कहें तो यह सच है कि किन्नर समाज की स्थिति ठीक नहीं थी परंतु यह भी सच है कि अब किन्नर समाज का सरकारी कार्य में दखल हो रहा है, वे जन–प्रतिनिधि भी बने रहे हैं। विष्णु खरे का तब का नजरिया रहा होगा। यह बात और है कि इस समुदाय को लैंगिक असमानता के कारण भले ही सर्वसाधारण रूप से समाज में कुछ तबके स्वीकारते नहीं हैं, परन्तु उनका सम्मान करता है, भले ही कोई भी दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है जैसे–आध्यात्मिक या कुछ और। इस समाज के लोगों की संख्या सरकारी नौकरी में बढ़ रही है। यदि कुछ सम्मान गिरा है तो अपने कर्त्तव्यों से ही गिराया गया है। कहना ना होगा कि इसी कारण से उनकी कविता समूचे जिस्म से बोलती, समूचे जीवन को पकड़ती, मूर्त करती हुई कविता है।

निराला, मुक्तिबोध, शमशेर और रघुवीर सहाय के कविताओं में जो 'भीगा हुआ सच' है, उसे विष्णु खरे की कविताएँ आगे बढ़ती हैं। इनकी आस्वादन क्षमता तीव्र और विविध है। अत्यन्त व्यापक और उदार दृष्टि से "हर शहर में एक बदनाम औरत होती है" कविता में स्त्रियों की स्थिति को सौंदर्यबोध के साथ वर्णित करते हैं–

"जब कि सच तो यह है/ कि जो वह वाकई होती है उसके लिए/सुन्दर या खूबसूरत जैसे शब्द नाकाफी पड़ते हैं/आकर्षक उत्तेजक ऐन्द्रिककाम्या/सैक्सी वालॅप्चुआस मैन–ईटर टाइग्रेस–इन–बैड आदि सारे विशेषण/उसके वास्ते अपर्याप्त सिद्ध होते हैं/अक्सर तो उसे ऐसे नामों से पुकारा जाता है/लेकिन बेशक वह जादूगरनियों और टोहनियों सरीखी/बल्कि उनसे भी अधिक मारक और रहस्यमय/किसी अलग औरत–जात की तरह होती है/उसे देखकर एक साथ सम्मोहन और आतंक पैदा होते हैं।"[9]

इस कविता में विष्णु खरे अपने भावोच्छवासों के प्रति अद्‌भुत काव्य–संयम बरतते दिखाई देते हैं, वह चाहे जिस प्रकार का काव्य सौन्दर्य हो। स्त्रियों की दयनीय स्थिति को बयां करने के अतिरिक्त उनके पक्ष में खड़े होकर संवाद करने में कवि उक्त कविता में सहज औत्सुक्य है–

"जो अपनी पत्नियों को अपने साथ–साथ सोई देखकर/उन्हें और अपने को कोसते हैं/सोचते हैं यहाँ कभी वह औरत क्यों नहीं हो सकती थी/उसके सफल कहे जाने वाले कथित प्रेमियों के बारे में सोचते हैं/कि ऐसी सस्ती औरत ही स्वीकार कर पाती होगी इतने घटिया लोगों को/.......अगर हर फुर्सत में एक नई औरत को हासिल करना/अधिकांश मर्दों की चरम फंतासी है/तो बदनाम और भी यह क्यों न सोचे/ कि अलग–अलग या एक ही वक्फे में कई मर्दों की सोहबत भी एक शगल एक खेल एक लीला है/लेकिन यदि मर्द औरत का इस्तेमाल कर सकता है तो बदले में औरत उसका इस्तेमाल क्यों न करें/ कि अगर मर्द को हर दूसरे दिन एक नया जिस्म चाहिए तो औरत वह बदनाम हो या नेक बख्ता/वैसा ही चाहें तो वह उसका हक कैसे नहीं।"[10]

आधुनिक संवेदनाओं के बिम्ब प्रस्तुत करती हुई भाव–विचारों की मर्मस्पर्शी कविता है यह।

वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं के सहारे अपने विचारों को 'चमगादड़ें' कविता में दार्शनिक तरीके से रखते हुए विष्णु खरे कविता को लिखते हैं–

"अधिकांश असली सृष्टि तो रात में ही बाहर आती है कितनी है वह/कितने तरह के कीट पतंग परिन्दे चौपाए बहुपाए सरीसृप/तो क्या सारे राडारों और इन्फ्रा–रैड कैमरों के बावजूद/सिर्फ चमगादड़ें इस व्यापार को जान पाती रही होंगी/ लेकिन ऐसे जानने वालों को और जो उन्होंने जाना है/और जो उनका डीएनए ही बन गया है/ उसे हम कितना जान पाए हैं/ज्ञान की अन्य शाखाओं की तरह/प्राणिशास्त्र के ग्रन्थ भी दिन के संदर्भ में लिखे गए लगते हैं।"[11]

उक्त कविता में गजब की बौद्धिकता देखने को मिलती है, विज्ञान है तो साथ में चमगादड़ पर बात भी।

उन्होंने सड़कों, खेतों और किसानों की दयनीय स्थिति पर गंभीर भावबोध के साथ कविता 'मन्जर' लिखी– "उस सुनसान ऊभड़–खाभड़ सड़क पर जहाँ इतने मोड़ और स्पीड–ब्रेकर हैं/ और कितने गड्ढ़े कीचड़ के डबरे/वह एक खेत देखता है तजा हुआ–सा/ न जाने काहे की फसल थी/लेकिन अब आधी से ज्यादा खराब हो चुकी लगती है/ जो बची है उस पर धूल–भरा सूखता हरापन है/....और देर तक देखता रहा है–सोचता हुआ/कि क्या जो पहचाना–सा लगता है खींचता भी है/इस सारे नजारों में।"[12]

कामगारों की स्थिति पर भी "काम" कविता लिखा खरे जी ने, जिसको पढ़कर धूमिल की वो कविता याद आती है–"एक आदमी रोटी बेलता है/ एक आदमी रोटी खाता है/एक तीसरा आदमी भी है/जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है/ वह सिर्फ रोटी से खेलता है।"– इसी प्रकार का भाव–बोध 'काम' कविता में भी दिखता है– दिसम्बर की इस रात के पौने तीन बजे/कृकृऔर गाजियाबाद की दिशा से एक डीजल एंजिन सिग्नल के इन्तजार में/जमुना के दूसरे रेल पुल पर खड़ा सीत्कार कर रहा है/ ठंड से कितनी साफ हो जाती है आवाजें/कृकृ और जिसमें तुम्हें मेहनताना मिलेगा तुम वह काम कर रहे हो/जो दरअसल तुम्हारा अपना नहीं है दूसरों ने दिया है/ और जिसे जब तुम कर रहे हो तो उसे देने वाले सो रहे हैं/उन्हें पता और शायद पूर्वान्ह नहीं है/ कि किन–किन वक्तों में कैसे–कैसे तुम उसे पूरा कर रहे हो।"[13]

समकालीन कविता की प्रमुख विशेषता है कि विद्रोह करने या नारा बुलन्द करने के बजाए चुप्पी साधकर समझदारी से विरोध करना जैसा लक्षण "चुप्पी" कविता में देखने को मिलता है–

"तुम और चुप होते गए क्योंकि उनमें से कुछ/तो बिल्कुल तुम्हारी अपनी सी थी और कुछ को तुम जानते थे/ लेकिन बाकी बहुत अलग थी इतनी कि तुमने उन्हें सोचा तक न था/ वे तुम्हें और चुप करती चली गई/ और जब तुम मुँह बोलते तो सिर्फ साँस की आवाज आती/जिसे लेना कुछ कहने के लिए जरूरी होता है/लेकिन तुम चुप हो गए और सिर्फ देखते रहे/ लेकिन तुम पर और दूसरों पर चीजों का होना बन्द न हुआ।"[14]

इस प्रकार की चुप्पी पर सवाल खड़ा करता है कवि जैसे आज के दौर में मीडिया की चुप्पी पर सवाल खड़ा हो गया है। स्वस्थ लोकतन्त्र के लिए चुप्पी तोड़ना आवश्यक होता है। यही सभी लक्षण विष्णु खरे की कविताओं को समसामयिक बना देती हैं।

बिम्ब और प्रतीकों में व्यक्त आकाश–सी उड़ान और अतल समन्दर सी दृश्यात्मकता के कारण ये कविताएँ वर्तमान के जीते–जागते संदर्भ और दस्तावेज बन गयी है। कुंवर नारायण कहते हैं कि "विष्णु खरे जिस हद पर कविता को संभव बनाते हैं वहाँ गद्य और पद्य का अन्तर कोई माने नहीं रखता। वह यथार्थ की बेहद सख्त और कँकरीली जमीन है। उस पर चलते पाँव घायल और लहूलुहान हो जाते हैं। वे एक बेदर्द धरातल पर खड़े होकर हमें कविता के दर्द की याद दिलाते हैं। उनकी कविता की पहचान कविता की शर्तों पर नहीं, उसके अस्वीकार के तेवर से बनती है। "

रघुवीर सहाय कहते हैं कि "कहानी में कविता कहना विष्णु खरे की सबसे बड़ी शक्ति है........ उनके रचना–संसार की विविधता का पता हमें उनकी विविध शक्तियों के रूप में नहीं बल्कि इसी एक

शक्ति के द्वारा उनकी अनुभूति के विविध प्रयत्नों के रूप में मिलता है........हम इन कविताओं के दृश्यों को एक संपादित फिल्म की तरह देखते हैं और अगर हमें आज के शिल्प–जगत से परिचय है तो हम निःशब्द फिल्म के पीछे एक संगीत भी कल्पना में सुन सकते हैं। वास्तव में यह संगीत कविता की भाषा की झनकार से पैदा नहीं होता। विष्णु खरे की भाषा तो हमें रोमांटिक, रहस्यमय, गद्‌गद संसार में जाने से ठोकर मारकर बार–बार रोकती है।....... वे अपने चारों तरफ की एक–एक चीज को अपने कहीं ज्यादा नजदीक और जिन्दा महसूस करेंगें और यह आधुनिक कविता की एक दुर्लभ उपलब्धि होगी क्योंकि वह आधुनिक युग के खिलाफ होगी जहाँ हम हर चीज और हर व्यक्ति और हर घटना को उस वक्त एक इज्जत नहीं देते जब तक कि किसी वृहद योजना के अंतर्गत कोई दूसरे लोग उसका प्रदर्शन न करें। विष्णु खरे की वस्तु–योजना, अद्‌भुत धीरज और साहस के साथ, जो कि अपनी अनुभूति को संप्रेषित हो जाने तक बचाए रखने के लिए कवि को चाहिए, एक शान्त शक्ति वाली भाषा तैयार करती हैं।"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इनकी कविता पहले की कविता वाली नारेबाजी, बड़बोलेपन, शोर और उत्तेजना के अतिरेक, सबको कोसों दूर छोड़ आयी है। सीमित दायरा उन्हें पसन्द नहीं है चाहे वे कथ्य के हो या अभिव्यक्ति के। निजी से निजी और स्थानीयता की महक से भरे अनुभव की कविता इनका कथन है। दृष्टि से इनकी एकांगी या एक दिशागामी नहीं है बल्कि सच्चे मायने में प्रगतिशील है और संतुलित भी। अपने समय के समाज और देश की संपूर्ण धड़कन अपनी कविता में उपस्थित किया है। वह भी अपनी संपूर्ण रूप और विविध गति में। इन्होंने अपनी संवेदनात्मक तीक्ष्णता को गद्य में भी बचाए रखा है। इनकी संवेदना का एक छोर पीछे छूटी स्मृतियों से गहराई से जुड़ा है। यही कारण है कि उनकी कविता उस छूटी हुई दुनिया में हमें ले जाती है, जिसमें पुराने मुद्दे तैरते हैं, वे इनकी कविताओं को पढ़ते हुए हमें आभास होता है कि वे आम आदमी की आवाज बुलन्द करते हुए, उनके तथा पाठकों के दुखों में साझीदार होने के साथ–साथ संवेदनशील साथी बनते हैं ऐसे में इनकी सृजनात्मकता खतरों से बहुत दूर निकल जाती है।

lUnHkZ %

1. कुमार आशुतोष, समकालीन कविता और मार्क्सवाद, शिल्पायन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, संस्करण–2010 पृष्ठ संख्या–108
2. खरे विष्णु, काल और अवधि के दरमियान (काव्य संग्रह), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–9,10
3. खरे विष्णु, काल और अवधि के दरमियान (काव्य संग्रह), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–17
4. खरे विष्णु, काल और अवधि के दरमियान (काव्य संग्रह), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–20
5. खरे विष्णु, काल और अवधि के दरमियान (काव्य संग्रह), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–30
6. खरे विष्णु, काल और अवधि के दरमियान (काव्य संग्रह), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–40
7. खरे विष्णु, काल और अवधि के दरमियान (काव्य संग्रह), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–59
8. खरे विष्णु, काल और अवधि के दरमियान (काव्य संग्रह), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–71,72
9. खरे विष्णु, काल और अवधि के दरमियान (काव्य संग्रह), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–74
10. खरे विष्णु, काल और अवधि के दरमियान (काव्य संग्रह), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–75
11. खरे विष्णु, काल और अवधि के दरमियान (काव्य संग्रह), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–98
12. खरे विष्णु, काल और अवधि के दरमियान (काव्य संग्रह), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–112
13. खरे विष्णु, काल और अवधि के दरमियान (काव्य संग्रह), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–113
14. खरे विष्णु, काल और अवधि के दरमियान (काव्य संग्रह), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–119

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 94-97

Lkedkyhu dgkuh vkSj johUnz dkfy;k

jkt dqekj ekS;Z*

हिन्दी साहित्य में रवींद्र कालिया की ख्याति उपन्यासकार, कहानीकार और संस्मरण लेखक के अलावा एक ऐसे बेहतरीन संपादक के रूप में है, जो मृतप्रायपत्रिकाओं में भी जान फूंक देते हैं। रवींद्रकालिया हिंदी के उन गिने चुने संपादकों में से एक हैं– जिन्हें पाठकों की नब्ज और बाजार का खेल दोनों का पता है। 11 नवम्बर, 1939 को जालंधर मेंजन्मे रवीन्द्र कालिया हाल ही में भारतीय ज्ञान पीठ के निदेशक पद से सेवानिवृत्त हुए हैं, उन्होंने नया ज्ञानोदय के संपादन का दायित्व संभालते ही उसे हिंदी साहित्य की अनिवार्य पत्रिका बना दिया।

समकालीन साहित्य में कहानी सर्वाधिक प्रयोगशील और विश्वसनीय विधा है। संभवतः साहित्य की सबसे प्राचीन व नैसर्गिक विधा भी। प्रत्येक युग की परिस्थितियों के अनुकूल कथा रूपों का निर्माण और बर्ताव होता रहा है। मनुष्य के भावों, विचारों और स्थापनाओं को प्रकट करने वाली प्रत्येक रचनात्मक विधा का अपना कथा मूल अवश्य होता है। कविता, नाटक, उपन्यास आदिविभिन्न विधाओं में भी कहीं न कहीं एक कहानी अंतर्भूत होती है, जिससे पाठक अपने लिए कथानक गढ़ता है, जैसा कि नामवर सिंह अपनी ऊपर की स्थापना में भी स्पष्ट करते हैं। समकालीन साहित्य जगत में कहानी सर्वाधिक बरती जाने वाली विधा है। कथा कहने की अन्य विधाओं के बजाय कहानी से पाठक और सर्जक दोनों की अधिक आत्मीयता है। आधुनिक कहानी ने पाठकों के मानस में अपनी इस विश्वसनीयता को और पुख्ता किया है।

समकालीन कहानी जगत में साठोत्तरी कहानी आंदोलन के प्रणेताओं में से एक केतौर पर चर्चित रवींद्र कालिया हिंदी कहानी जगत में एक गंभीर दखल रखते हैं। आधुनिक कहानीकारों की कोई भी सूची बिना इनके उल्लेख के मुकम्मल नहीं कही जाती। पचास से भी अधिक चर्चित और महत्वपूर्ण कहानियों के लेखक रवींद्र कालिया की कहानियों में कथानक, पात्र, परिस्थिति और शिल्प का ऐसा अनूठा 'मिक्सचर' मिला जिसने पाठकों को कथा भाषा के इस जादूगर का मुरीद बना दिया। रवींद्र कालिया का संस्मरण गालिब छुटी शराब हिंदी में अपने ढंग का अनूठा संस्मरणात्मक गद्य है। न केवल अपने संस्मरणात्मक गद्य बल्कि अपनी कहानियों–उपान्यासों में बरती गई भाषा के चलते रवींद्र कालिया लगातार बहस तलब बने रहते हैं। उनकी कुछ के कहानियों को छोड़ दीजिए तो ज्यादातर चुप्पी को खंडित करने वाली कहानियाँ है। अपने दौर की सीमाओं को तोड़ती हुई। मौन या सन्नाटे के शिल्प को नकारती हुई कहानियाँ। चुप्पी मारे बैठे रहने वाले पात्र या सन्नाटे को कथानक का केंद्र बनाने वाले नई कहानी के दौर के प्रयोगों से कालिया की कहानी कला प्रभाव ग्रहण नहीं करती। इनकी कहानियों का मूल चरित्र है एक स्थायी प्रतिरोध, जो बहुत छोटे स्तर पर ही सही या भले ही टुकड़ों में आए पर कहानियों की रीढ़ बना रहता है। बहुत बड़े लंबे–चौड़े विषय या महान कथानक की रवींद्र कालिया ने कभी जरूरत महसूस नहीं की। साठ के बाद पैदा हुए गहरे राजनीतिक–सामाजिक मोहभंग से निर्मित वैचारिकी से इनकी अधिकांश कहानियाँ प्रभावित हैं, लेकिन गहरे व्यंग्य बोध के साथ ही निराशा या खीझ को कहीं भी इन्होंने अपना स्थायी भाव नहीं बनने दिया। इनकी कहानियों का स्वभाव भी इन्हीं की तरह बेफिक्र और खिलंदड़ है। वास्तव में कहानी न तो कोई आंदोलन बन सका और न ही विचारों के स्तर पर लड़ा जाने वाला कोई रचनात्मक संघर्ष। इसका कोई बड़ा और साझा मंच भी तैयार नहीं हो पाया क्योंकि इस पीढ़ी के कहानीकारों का

*हिन्दी विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर (म0 प्र0)

रचना शिल्प पर्याप्त विभिननता पूर्ण तथा केवल कुछ कहानीकारों और उनकी कहानियों के जरिए इस दौर को अ–कहानी का दौर कह दिया गया जो वस्तुतः यूरोप के एंटी–स्टोरी मूवमेंट काही हिंदी अनुवाद है। इसे वस्तुतः नई कहानी के विरोध में जन्मे एक और कहानी शिल्प के विकास के तौर पर लिया जाना चाहिए। नई कहानी के दौर में कथा शिल्प में आ चुके ठहराव को तोड़ने का काम अ–कहानी ने बखूबी किया। इस लिहाज से इसे मूलतः एक विशिष्ट कहानी रूप कहा जा सकता है। जैसा कि मधुरेश के हवाले से ऊपर भी कहा जा चुका है कि यह वस्तुतः हिंदी की साठोत्तरी कविता की तरह कहानी में वैचारिकता के क्षरण और राजनीति के निषेध दृष्टि का विकास था। रवींद्र कालिया और गंगा प्रसाद विमल इस आंदोलन के प्रमुख प्रवक्ताओं में से रहे हैं। मधुरेश का यह विश्लेषण तो ठीक है कि यह कथा रूप वस्तुतः नई कहानी की ही प्रविवित्तयों का विकास था, लेकिन यहाँ वैचारिकता और राजनीति के लोप की प्रवृत्तियों के अतिरंजित रूप में आने की बात स्वयं में अतिरंजित है। वस्तुतः एलन राब्ब ग्रिए और नताली सारात के नेतृत्व में फ्रांस में उठे अ–कहानी आंदोलन के पीछे जिस तरह की सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियाँ काम कर रही थी उसी तरह की निराशाजनक परिस्थितियों के गर्भ से हिंदी में भी अ–कहानी का जन्म हुआ। हिंदी कहानी के विकास का विश्लेषण करते हुए मधुरेश लिखते हैं ''फ्रांस में अ–कहानी का आंदोलन एक ओर यदि कथा विधा के स्वीकृत और पंरपरागत तत्वों के निषेध पर बल दे रहा था तो दूसरी ओर जीवन में किसी प्रकार के नैतिक और मूल्य परक हस्तक्षेप का भी विरोध कर रहा था। निबोधप्रयोगशीलता ही उसके लिए सबसे बड़ा रचनात्मक मूल्य थी। हिंदी की अ–कहानी इन परिस्थितियों के बावजूद भी व्यापक स्तर पर अपनी स्वीकार्यता नहीं निर्मित कर पाई और किसी बड़े कहानी आंदोलन रूप भी नहीं धारण कर पाई। इसलिए हिंदी की कहानी के संदर्भ में निर्बाध प्रयोग शीलता पदका प्रयोग नहीं किया जा सकता। हिंदी अकहानी की अपनी रचनात्मक सीमाएँ हैं और उनमें निर्बाध प्रयोगशीलता संभव भी नहीं है, इसलिए यहाँ प्रयोग तो खूब है लेकिन नियंत्रित रचनात्मक ढाँचे में।

रवींद्र कालिया की कहानियाँ वस्तुतः बहुपक्षीय यथार्थ खिलंदड़े और बेफ्रिक्र अंदाज में व्यक्त करती हैं। गंभीर बातों को भी हल्के तरीके से कह कर निकल लेना इनकी कहानियों की विशेषता है। इस कहकर निकल लेने को किसी तरह का रचनात्मक पलायन नहीं कहना चाहिए बल्कि कटु जीवनानुभवों, निरंतर चलने वालेघात–प्रतिघात, चाटुकारिता, असुरक्षा बोध के बीच पके हुए कहानीकार के अपने सिर के बोझ को उतारने की प्रक्रिया के तौर पर लिया जा सकता है। रवींद्रकालिया की लगभग प्रत्येक कहानी में एक स्थायी भाव है– जीवन संघर्ष। इनकी कहानियों के नायक, नायिकाएँ प्रतिनायक सभी एक झंझावाती जीवन संघर्ष से जूझ रहे हैं। लगातार और अहर्निश एक ही तरह की बोरडम वाली परिस्थितियों में पड़े रहने को अभिशप्त। लेकिन यह मजबूरी कभी इनकी कहानियों की कमजोरी नहीं बनने पाती। इनकी कहानियों में किसी बड़ी क्रांति की परिकल्पना नहीं है। रोजकमर्रा के जीवन में दैनंदिन गतिविधियों से दो–चार होते हुए एक स्थायी विद्रोही चेतना का बचे रहना इनकी कहानियों की विशेषता है। इसलिए इनके कथानायकों में कहीं पराजय बोध नहीं है। यही विशेषता इनकी कहानियों के नायक को नई कहानी के पराजित नायक से अलग करती है और एक नए कथा समय के सृजन का सहयात्री बनने की सामर्थ्य भी प्रदान करती है। रवींद्र कालिया के जीवन में कभी स्थायित्व नहीं रहा। आजीविका की समस्या में देश के कई शहरों की खाक इन्होंने छानी है, जैसा कि इनके संस्मरण गालिब छूटी शराब को पढ़ते हुए पता चलता है। इनकी खाना बदोशी ने इनके जीवनानुभवों के भौगोलिक परिदृश्य का भी विस्तार किया है। देश के विभिन्न हिस्सों में संघर्ष के दौरान बटोरा गया असंतोष इनकी कहानियों में व्यवस्था विरोध और सर्वहारा के प्रति अंतरगता के रूप में प्रकट होता है। महानगरीय जीवन में असुरक्षित आजीविका के बीच संघर्ष कर रहे लोगों के जीवन का गहरा असंतोष, तीव्र प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट होता है। सभी परंपरागत संरचनाओं को वे मानवीय स्वतंत्रता का विरोधी मानते हैं। इसलिए प्रत्येक स्थापित संरचना के खिलाफ इनकी कहानिनयों के पात्रमुखर हैं। कैरियर और आजीविका में गहरी असुरक्षा का शिकार व्यक्ति निजीसंबंधों में भी गहरी अविश्सनीयता के बीच जीता है। सभी पंरपरागत रिश्तों, माँ–पिता, पति–पत्नी, मित्र, प्रेमिका आदि में इनके पात्रों को किसी भी तरह के संतोष या सुरक्षा बोध का

अनुभव नहीं होता। न चाहते हुए भी उसके मन के किसी कोने–अंतरे में एक अविश्वास दबा–छिपा रहता है, जो कई बार अपनी पूर्णता में फूट पड़ता है। त्रास, एक प्रामाणिक झूझ, डरी हुई औरत नौ साल छोटी पत्नी जैसी कहानियाँ इन्हीं अविश्वसनीय होते जा रहे निजी संबंधों को लक्ष्य करके लिखी गई हैं। ये सभी कहानियाँ दांपत्य और प्रेम संबंधों के प्रभामंडल को तोड़ने का काम करती हैं। उनके पीछे की वास्तविकता और उनके क्रूर यथार्थ की पहचान करती हैं।

दैनिक या साप्ताहिक पत्र के कार्यालय में संपादक सर्वोच्च सत्ता होती है, जो अपनी सत्ता की हनक को लगातार बनाए रखना चाहता है। कहानी में संपादक का प्रतीक उसके केबिन को बनाया गया है, जिसके दरवाजे के खुलने–बंद होने से कर्मचारियों की घिग्घी बँध जाती है या घंटी बजते ही साँसे अटक जाती हैं। कहानी का नायक है भैंगा जिसने कई दतरों में काम किया है, और संभवतः अपनी न डरने वाली आदतों के कारण निकाला जाता रहा है। दतर के कई मोटे, छोटे, मँझले उपों के जैसा वह भी एक उप है। यह रवींद्र कालिया की कहानियों में मौजूद विद्रोही चेतना का प्रतिनिधि–पात्र है, जो दतर केसड़े वातावरण का खुला मखौल उड़ाता है। काला रजिस्टर या केबिन से असहजमहसूस करते हुए भी उनके प्रति इसके मन में गहरा प्रतिकार भी है। वस्तुतः भैंगा कोई एक पात्र नहीं बल्कि अपने समय की यथास्थिति विरोधी चेतना का टाइप है। ऐसा टाइप जिसका विकास होने की संभावनाएँ न के बराबर होते हुए भी कहानी की जकड़ बंद सीमा में से निकलकर वह हमारे पाठक मन में विस्तार पाता है। यह वस्तुतः अ–नायक होते हुए भी पाठक को नायक होने का बोध कराता है। कहानी के पात्र के बिन की जासूसी निगाहों से इस कदर डरे हुए हैं कि दतर में अन्य किसी भी मुद्दे पर बात नहीं करना चाहते। कथा नायक भैंगा इस परिवेश में खुद को घुटता हुआ महसूस करता है। भैंगे की यह घुटन वस्तुतः मध्यवर्गीय परिस्थितियों और मूल्यों के बीच जीने के लिए अभिशप्त व्यक्ति की घुटन है। यह घुटन कहानी के हर एक पात्र के अंदर है। दफ्तर का मोटा दफ्तर में जवाब नहीं देता जबकि उसकी बगल में बैठा दूसरा मोटा उप अपनी घुटन और ऊब मिटाने के लिए ''अक्सर पेशाब करने चला जाया करता था लेकिन जब से केबिन की निगाह में वह आया, तो एक परिपत्र जारी हो गया कि किसी भी कर्मचारी को अपनी कुर्सी छोड़ने से पहले कम से कम मँझले कद के व्यक्ति से इजाजत लेना जरूरी है। इस लफड़ेबाजी से बचने के लिए अब दूसरा मोटा उप अपनी हाजत मिटाने के लिए जेब से किशमिश या ड्राअर से पान निकालकर खाने लगता है भैंग इन परिस्थितियों का अभ्यस्त नहीं है। उसे के बिन की निजी स्पेस में इतनी दखलंदाजी बरदास्त नहीं होती। वैसे भी भैंगे ने कई दफ्तरों में काम किया था मगर सुबह–सुबह इतने उदास और डरे हुए चेहरे उसने कहीं नहीं देखे थे। उसे लगता कि हाल में किसी का शव रखा है और तमाम लोग मातम पुर्शी के लिए इकट्ठा हैं भैंगा मोटे और अन्य सहकर्मियों से सवाल भी करता है कि ''आखिर इस तरह 'उदास' और डल रहकर जिंदगी कैसे गुजारी जा सकती है। लेकिन हमेशा की तरह किसी की ओर से कोई जवाब नहीं आता। दरअसल दफ्तर में एकखास तरह की संसरशिप लागू है। ऐसी कोई भी बात जो संपादकीय नीति से इत्तेफाक न रखती हो या संपादक को व्यक्तिगत तौर पर पसंद न आए, उसे दफ्तर का कोई भी कर्मचारी नहीं कर सकता। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए दतर के बाहर भी। इसीलिए भैंगा केबिन और काले–रजिस्टर से बुरी तरह चिढ़ता था। वह काले–रजिस्टर की आमद से बेचैन हो जाता है, कागज पर माँ, बहन की गालियाँ लिखने लगता है। मोटा 'काले रजिस्टर' के हाल में घुसते ही असहज हो जाता है और शीर्षक की भाषा में कहता है– ''बेचैनी, उदासीनता, थकावट, सन्नाटा उर्फकाले रजिस्टर की आमद काला रजिस्टर का निगरानी तंत्रबड़ा व्यापक है। अपने मातहत हर कर्मचारी की छोटी–छोटी गतिविधियों को भी कालारजिस्टर नोट करता है। दतर में एक तरह का इंटेलिजेंस नेटवर्क सक्रिय है जो केबिन तक सूचनाओं को पहुँचाता है और केबिन काले रजिस्टर के जरिए स्पष्टीकरण माँगता रहता है। इस इंटेलिजेंस की बागडोर है कई सारी बुआओं, दफ्तरी चाटुकारों और छाया जी जैसी बेबिन–प्रेयसियों के हाथ में। इसीलिए जब भैंगा मँझले से बिना पूछे केबिन में जाकर लौटता है और मँझले उप से कुछ कहना चाहता है तो मँझला चिंतित हो जाता है, ''तुम अंदर कैसे चले गए? जाओ, अब यहाँ मत रूको। छाया जी देख लेंगी और काला रजिस्टर इसे कोई नया षडयंत्र समझेगा'' के बिन द्वारा थोपे गए इस

भयावह माहौल के खिलाफ भैंगे के मन में गहरी खीझ और क्रूर प्रतिक्रिया जन्म लेती है। वह काले रजिस्टर के नाम से चिढ़ने लगता है। एक दिन जब हाल में तीसरी बार काला रजिस्टर दाखिल होता है तो मँझला गहरी निराशा में डूबकर कहता है– ''यह काला रजिस्टर आज काम नहीं करने देगा तब भैंगे के अंदर का गुस्सा फूट पड़ता है। वह हताशा–निराशा के गर्त में नहीं डूबता बल्कि काले रजिस्टर पर अपने गुस्से को उसे नष्ट करने की बात करके उतारता है, ''इसे ड्राअर में बंद कर दो इसे खिड़की से नीचे फेक दो, इससे बलात्कार कर लोभैंगे का यह व्यवहार में बंद कर दो, इसे खिड़की से नीचे फेंक दो, इससे बलात्कार कर लोभैंगे का यह व्यवहार उसे समान परिस्थितियों में कार्य कर रहे उसके साथियों के बीच विशिष्टता प्रदान करता है, साथ ही कथा–नायक भी बनाता है। वस्तुतः भैंगे के अंदर स्थापित शक्ति–संरचनाओं के षडयंत्रों को समझने की शक्ति है। वह रोजमर्रा के जीवन की विसंगतियों से जूझता जरूर है लेकिन उसकी स्वतंत्रचेता आत्मा और क्रांतिधर्मी चेतना का पूर्ण पतन नहीं हुआ है।''

lUnHkZ %

1. नामवर सिंह, कहानी नई कहानी
2. मधुरेश, हिंदी कहानी विकास
3. इंद्रनाथ मदान, हिंदी कहानीः पहचान और परख
4. विजय मोहन सिंह, आज की कहानी
5. पुष्पपाल सिंह, समकालीन कहानीः नया परिप्रेक्ष्य
6. कहानीः स्वरूप और संवेदना
7. कहानी : नई कहानी

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 98-103

Hkkjr esa miHkksDrk laj{k.k&,d voyksdu

vf[kys'k dqekj ;kno*

lkjka'k % वर्तमान समय में बढ़ती प्रतिस्पर्धा, जमाखोरी और मिलावट की वस्तु की विक्री, अधिक दाम, गारण्टी के बाद सर्विस नहीं देना, इन घटनाओं से उपभोक्ता परेशान है। उभोक्ता संरक्षण के लिए भारत में कई कानून बने हैं, लेकिन उपभोक्ताओं को उनकी जानकारी न होना भारत में अशिक्षा, गरीबी भी उपभोक्ता संरक्षण में बाधा है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम का मूल उद्‌देश्य उपभोक्ताओं को त्वरित न्याय दिलाना है, परन्तु वास्तविकता यह कि उपभोक्ता मामले फोरम और आयोग में परिवादियों के विवाद वर्षों तक लम्बित रहते हैं या लम्बित रखने की दुष्प्रवृत्ति है। ग्रामीण एवं दूरस्थ इलाके अभी भी फोरम या आयोग की पहुँच बाहर है। समाज के अंतिम उपभोक्ता तक इसका लाभ पहुँचना ही इसका उद्देश्य है।

miHkksDrk laj{k.k dh ,sfrgkfld i"BHkwfe&

उपभोक्ता आन्दोलन का आरम्भ अमेरिका में रल्फ नाडेर द्वारा किया गया था। नाडेर आन्दोलन के फलस्वरूप 15 मार्च 1962 को अमेरिका कांग्रेस में तत्कालीन राष्ट्रपति जान एफ कनेडी द्वारा उपभोक्ता संरक्षण पर पेश विधेयक को अनुमोदित किया गया था, इसी कारण 15 को अन्तर्राष्ट्रीय उपभोक्ता दिवस के रूप में मनाया जाता है। अमेरिकी कांग्रेस में पारित विधेयक में चार विशेष प्रावधान थे।

1) उपभोक्ता सुरक्षा के अधिकार।
2) उपभोक्ता को सूचना प्राप्त करने का अधिकार।
3) उपभोक्ता को चुनाव करने का अधिकार।
4) उपभोक्ता को सुनवाई का अधिकार।

भारत में उपभोक्ता आन्दोलन को दिशा 1996 में जेआरडी टाटा के नेतृत्व में कुछ उद्योगपतियों द्वारा उपभोक्ता संरक्षण के तहत फेयर एशोसियशन की मुम्बई में स्थापना की गयी। स्वयंसेवी संगठन के रूप में ग्राहक की स्थापना वी0एम0 जोशी द्वारा 1974 में पुणे में की गई। अनेक राज्यों में उपभोक्ता कल्याण हेतु संस्थाओं का गठन हुआ।[1]

इस प्रकार उपभोक्ता आन्दोलन आगे बढ़ता रहा दिसम्बर 1986 को तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गाँधी की पहल पर उपभोक्ता संरक्षण विधेयक संसद ने पारित किया और राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षरित होने के बाद देश भर में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम लागू हुआ। इस अधिनियम में बाद में 1993 एवं 2002 में महत्वपूर्ण संशोधन किये गये। इन व्यापक संशोधनों के बाद यह सरल व सुगम हो गया इस अधिनियम के अधीन आदेशों का पालन न करने पर धारा 27 के अधीन कारावास व दण्ड तथा धारा 25 के अधीन कुर्की का प्रावधान किया गया है।[2]

उपभोक्ता संरक्षण कोई नया विचार नहीं है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख मिलता है, जैसा हमारे प्रधानमंत्री ने उपभोक्ता संरक्षण पर नयी दिल्ली में हाल ही में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में बताया था। उन्होंने ने बातया था, कि लगभग 2500 वर्ष पहले कौटिल्य के काल में भारत में उपलब्धि, आपूर्ति तथा वितरण हेतु समुचित कानून बनाने चाहिये ताकि उत्पादों की गुणवत्ता बनी रहे और माल/सेवायें उचित कीमत पर आम जनता को उपलब्ध हों।

*शोध छात्र, विधि संकाय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

भारत में उपभोक्ता–संरक्षण को राज्य का संविधानिक दायित्व माना गया है। संविधान की उद्देशिका में यह स्पष्ट उल्लेख है कि देश के सभी नागरिकों के लिये समान समाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक न्याय उपलब्ध हो। संविधान के अनुच्छेद 38 एवं 39 में उपबंधित प्रावधान भी सामाजिक एवं आर्थिक न्याय पर बल देते हैं। उपभोक्ता संरक्षण भी सामाजिक–आर्थिक समानता एवं न्याय से जुड़ा हुआ विषय है विशेषतः इसलिए कि भारत के अधिकांश लोग निर्धन, गरीब, साधनहीन तथा अपने अधिकारों के प्रति अनजान (ignorant) हैं।

miHkkDrk l j{k.k l lEcfU/kr vU; dkuu %

यद्यपि उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 पारित होने के पूर्व भी भारत में कतिपय कानून बनाये गये थे जिनका उद्देश्य उपभोक्ताओं को माल के निर्मातओं, विक्रेताओं के अनुचित व्यापारिक तौर–तरीकों से थे जिनका से संरक्षित करना था, लेकिन व्यापरिक विकास तथा बढ़ते हुये बाजार–वाद के कारण ये कानून अपर्याप्त साबित हुये। इस कानूनों में निम्नलिखित प्रमुख थे–

1. भारतीय दण्ड संहिता के छत धोखाधड़ी या कपट तथा अपमिश्रण आदि के प्रावधान;
2. औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1990
3. औषधि और चमत्कारिक उपचार (आक्षेपणीय विज्ञापन) अधिनियम,
4 औधधि (नियंत्रण) अधिनियम, 1950
5. आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1995 जो 1970 में संशोधित किया गया।
6. खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954
7. ट्रेडमार्क अधिनियम 1958 जिसे संशोधित करके 1999 में नवीन रूप दिया गया;
8. एकाधिकार एवं अवरोध व्यापारिक व्यवहार अधिनियम 1999 जिसे परिमार्जित करके प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2000 के रूप में लाया गया है।
9. अवक्रय अधिनियम 1972
10. काला बाजारी निवारण तथा आवाश्यक वस्तु परिरक्षण अधिनियम 1980;
11. माप–तौल मानक अधिनियम 1976
12. स्वापक औषधि तथा मनः चिकित्सीय पदार्थ अधिनियम 1985,
13. विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963

उपर्युक्त अधिनियमों के प्रवर्तन के बावजूद व्यापारिक वर्ग द्वारा स्वार्थवश तथा अधिक लाभ कमाने की लालसा में उपभोक्ताओं का येन–केन प्रकारेण शोषण किया जाता रहा। अतः इस हेतु एक व्यापक कानून बनाये जाने की आवश्यकता अनुभव की गई जिसके अन्तर्गत उपभोक्ता–मंचों स्थापित कर उपभोक्ताओं की समस्याओं तथा विवादों का त्वरित निपटारा किया जा सके।

उपभोक्ता कौन है–

कोई भी व्यक्ति दो प्रकार के उपभोक्ता हो सकता है।

(क) माल का उपभोक्ता तथा

(ख) सेवाओं का उपभोक्ता

जब कोई व्यक्ति कोई माल खरीदता है जैसे कि पंखा, फ्रिज, गैस का चूल्हा, टी0वी0 अथवा काई अन्य वस्तु, तो उपभोक्ता हो सकता है।

इसी प्रकार, जब कोई व्यक्ति कोई सेवा या सेवाएं भाड़े पर लेता है अथवा उनका सेवन करता है वह उपभोक्ता की श्रेणी में आ जाता है। जैसे कि मैं यदि बैंक में खाता खोलकर बैंक की सेवाएं प्राप्त करूँ, या अपना अथवा अपनी सम्पत्ति आदि का बीमा कराऊँ या किसी वाहक द्वारा अपना माल एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजूँ, या किसी अधिवक्ता डॉक्टर की सेवाएं प्राप्त करूँ, तो मैं उन सेवाओं का उपभोक्ता कहलाऊँगा।

यदि खरीदे गये माल में कुछ खराबी है जैसे कि फ्रिज ठीक काम नहीं करता या खरीदी गई घड़ी ठीक नहीं चलती, या टी0वी0 में खराबी के कारण उसमें चित्र या ध्वनि ठीक प्रकार नहीं आते तो यह एक उपभोक्ता का विवाद बन सकता है।

इसी प्रकार यदि प्रदान की गई सेवा में कोई कमी है तो भी उपभोक्ता को उसके लिये उपचार प्राप्त है। जैसे यदि बीमाकर्ता बीमा की शर्तों के अनुसार बीमा राशि प्रदान नहीं करता या अनुचित अत्यधिक बिल भेज देता है या रेलगाड़ी में उचित सुरक्षा व्यवस्था के अभाव के कारण किसी यात्री की मृत्यु हो जाती है ऐसी स्थितियों में सेवा की कमी मानी जाती है।[3]

miHkksDrk laj{k.k vf/kfu;e dh vko';drk%&

उपभोक्ता के हितों के संरक्षण हेतु अनेक कानून हैं, परन्तु कानूनों के पेचीदेगी तथा उपलब्ध कानूनों के प्रति अज्ञानता के चलते अधिकार उपभोक्ता उससे फायदा उठाने में असमर्थ रहते हैं। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 अन्य उपलब्ध कानूनों की तुलना में उपभोक्ता को अपेक्षाकृत कम खर्च में कानूनी सहायता उपलब्ध कराता है। उपभोक्ता उत्पादन की गुणवत्ता, भार, मानक आदि में पाये जाने वाले धोखे को अनदेखा कर देते हैं, क्योंकि उन्हें इन सबकी आदत सी हो जाती है। इसका कारण यह है कि या तो वे उपलब्ध कानून से अनभिज्ञ होते हैं या वे उपलब्ध कानून के महत्व एवं उपयोगिता को समझ नही पाते या समझना नहीं चाहते।

जहाँ पूर्णतः ईमानदारी हो, वहाँ ऐसे कानूनों की आवश्यकता नहीं पड़ती पर ऐसा होना असंभव है, क्योंकि उत्पादकों की ज्यादा मुनाफा की प्रवृत्ति, उन्हें उपभोक्ता के हितों को अनदेखा करने को उकसाती है। आजकल सरकारी तथा गैर–सरकारी संगठनों की ओर से कई ऐसी सेवाए उपलब्ध कराई जा रही हैं जिन्हें पूरी ईमानदारी के साथ परन्तु उपभोक्ताओं तक पहुँचाया जाना आवश्यक होता है। उदारणार्थ –आवागमन, शिक्षा, संचार, दूरसंचार, क्षेत्र आदि परन्तु प्रायः देखा जाता है कि पैसे कमाने की होड़ में ये आवश्यक सेवाएं भी उपभोक्ता तक पूरी ईमानदारी के साथ ही नहीं पहुँच पातीं, साथ ही वस्तुओं का उपमिश्रण, निकृष्ट, गुणवत्ता, अनुचित माप एवं भ्रमित करने वाले विज्ञापन आदि द्वारा उपभोक्ता को शोषित होने से रोकने हेतु इन सब पर अंकुश लगाना अनिवार्य समझा गया। सरकार के लिए दिशा निर्देश थे कि व्यापार नियमन किस तरह होना चाहिए और उपभोक्ता के हितों की रक्षा किस तरह होनी चाहिए।

miHkksDrk laj{k.k vf/kfu;e dh laoS/kkfudrk&

ज्ञातव्य है कि विश्व भारती गृह निर्माण को–ऑपरेटिव समिति बनाम भारत संघ[4] के वाद में उपभोक्ता संरक्षण की संवैधानिकता को कर्नाटक उच्च न्यायालय में याचिका द्वारा इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि यह अधिनियम संविधान के अनुच्छेद में 14 एवं 19 का उल्लंघन करता है। पिटीशनकर का तर्क था कि इससे संविधान के मूलभूत ढ़ांचे में हस्तक्षेप होता है क्योंकि इसके द्वारा संविधान द्वारा स्थापित न्यायालयों की श्रृंखला के समानांतर फोरम या आयोगों को स्थापना की गई है, जो पूर्णतः अवैध् ाानिक है। वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में यह दलील प्रस्तुत की गई कि यदि इस अधिनियम को वैधानिक मान भी लिया जाये, तब भी इसकी धारा 25 पूर्णतः असंवैधानिक है। इससे न्याय के नियम का उल्लंघन हुआ है क्योंकि अधिनियम में विवादों के अन्तरण हेतु कोई व्यवस्था नहीं दी गई है। अतः अधिनियम के अन्तर्गत राज्य आयोग को प्रदत्त शक्ति से संविधान के अनुच्छेद 226 एवं 227 का उल्लंघन होता है। उच्च न्यायालय में विनिश्चित किया कि केवल अधिनियम की धार 27 के परन्तुक को छोड़कर उक्त अधिनियम तथा धारा 25 पूर्णतः वैध है और इन्हें असंवैधानिक नहीं माना जा सकता है। इस निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील होने पर माननीय उच्चतम न्यायालय ने भी उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की संवैध् ाानिकता को उचित ठहराया तथा इसे असंवैधानिक मानने से इन्कार कर दिया क्योंकि इससे न्यायपालिका की स्वतन्त्रता किसी भी तरह से प्रभावित नहीं होती। न्यायालय ने अभिकथन किया कि वास्तव में देखा जाये तो इस अधिनियम के अधीन स्थापित फोरम तथा आयोग सिविल न्यायालय तथा अन्य प्राधिकरणों के पूरक हैं न कि विरोधक। तथापि इस निर्णय के अनुसरण में उपभोक्ता संरक्षण (संशोधन) अधिनियम 2002 द्वारा धारा 27 के परंतुक को विलोपित कर दिया गया।

ftyk Qksje] jkT; vk;ksx vkSj jk"Vªh; vk;ksx dh lajpuk% जिलाफोरम् राज्य आयोग एवं राष्ट्रीय आयोग गठन उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम में जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित त्रिस्तरीय

न्यायिक मशीनरी के माध्यम से उपभोक्ताओं की शिकायतों के शीघ्र और सस्ते निवारण के जरिये उनके हितों को बेहतर ढंग से संरक्षित करना चाहता है।

ftyk Qksje dh lajpuk&¼/kkjk 10½

क) एक ऐसा व्यक्ति जो जिला न्यायधीश या रह चुका है या होने योग्य है, इसका अध्यक्ष होगा।

ख) दो अन्य सदस्य होंगे जिनमें एक महिला होगी, जो निम्न अर्हता धारण करेगी।

1) पैतीस वर्ष से कम आयु की न हो।

2) मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि धारण करते हों।

3) योग्यता, सत्यनिष्ठा, और प्रतिष्ठा वाले व्यक्ति हो और जिनकी अर्थशास्त्र, विधि, वाणिज्य, लेखाकर्म, उद्योन या प्रशासन से सम्बन्धित समस्याओं के निस्तारण के पर्याप्त ज्ञान होगा और कम से कम 10 वर्ष का अनुभव होगा।[5]

jkT; vk;ksx dh lajpuk ¼/kkjk 16½

प्रत्येक राज्य आयोग में निम्नलिखित होंगे–

क) एक ऐसा व्यक्ति जो किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है जिसे राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जायेगा और जो उसका अध्यक्ष होगा।

ख) दो से न्यून नहीं और सदस्यों की ऐसी संख्या से अधिक नहीं, जैसा कि विहित किया गया है जिसमें एक महिला होगी।

ग) योग्यता सत्यनिष्ठा और प्रतिष्ठा वाले व्यक्ति को और जिनको अर्थशास्त्र, विधि, वाणिज्य, लेखाकर्म, उद्योग लोक कार्य या प्रशासन से सम्बन्धित समस्याओं के निस्तारण का पर्याप्त ज्ञान होगा। कम से कम 10 वर्ष का अनुभव होगा।

jk"Vªh; vk;ksx dh lajpuk ¼/kkjk 20½

राष्ट्रीय आयोग में निम्नलिखित व्यक्ति होंगे–

(क) वह व्यक्ति जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हो या रहा हो जिसे केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त किया जायेगा जो उसका अध्यक्ष होगा।

(ख) चार से कम नहीं और सदस्यों की संख्या से अधिक नहीं, जैसा कि विहित किया जाय और जिसमें एक महिला होगी, जो निम्नलिखित अर्हता धारण करेंगे अर्थात्

(1) पैतीस वर्ष से कम आयु का न हो।

(2) मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि धारण करता है।

(3) योग्यता, सत्यनिष्ठा और प्रतिष्ठा वाले व्यक्ति हों और जिनको अर्थशास्त्र, विधि, वाणिज्य, लेखाकर्म, उद्योग, लोककार्य या प्रशासन सम्बन्धित समस्याओं के निस्तारण का कम से कम 10 वर्ष का अनुभव होगा।

परन्तु सदस्यों के पचास प्रतिशत से अधिक न्यायिक पृष्ठभूमि धारण करने वाले व्यक्तियों में नहीं होंगे।[6]

जिला फोरम, राज्य आयोग तथा राष्ट्रीय आयोग की धन सम्बन्धी अधिकारिता में संशोधन (धारा 11, 17, तथा 21)–2002 के संशोधन अधिनियम के अनुसार जिला फोरम, राज्य आयोग तथा राष्ट्रीय उपयोग की धन सम्बन्धी अधिकारिता में निम्नलिखित संशोधन किये गये हैं–

	संशोधन से पूर्व (अधिकतम सीमा)	संशोधन के पश्चात् (अधिकतम सीमा)
क) जिला फोरम (धारा 11)	5 लाख रुपये तक	20 लाख रुपये तक
ख) राज्य आयोग (धारा 17)	20 लाख रुपये तक	बीस लाख रुपये से अधिक लेकिन एक करोड़ रुपये से कम
ग) राष्ट्रीय आयोग (धारा 21)	20 लाख रुपये से अधिक	एक करोड़ रुपये से अधिक

जिला फोरम की अधिकारिता सीमा 5 लाख रुपये से बढ़ाकर 20 लाख रुपये करने से और अधिक उपभोक्ता जिला फोरम का लाभ उठा सकेंगे तथा राज्य आयेग का बोझ भी कम हो जायेगा।[9]

राज्य आयोग की अधिकारिता सीमा बीस लाख रुपये से 1 करोड़ तक करने से राष्ट्रीय आयोग का बोझ काफी कम हो जायेगा।

अब राष्ट्रीय आयोग के पास परिवाद केवल एक करोड़ से अधिक धन सम्बन्धी विवादों के जायेंगे तथा राष्ट्रीय आयोग का क्षेत्र बहुधा अपील सम्बन्धी रह जायेगा तथा अपीलों के निपटारे में राष्ट्रीय आयोग के पास अधिक समय हो जायेगा।[7]

miHkksDrk laj{k.k vf/kfu;e] 1986 dh dfe;ka ,oa nks"k &

यह अधिनियम उपभोक्ता क्षेत्र में प्रथमतः लागू किया गया था, अतः इसमें कुछ दोष अथवा कमियाँ रह जाना स्वाभाविक था जिन्हें सुधार कर कालांतर में उपभोक्ता संरक्षण (संशोधन) अधिनियम, 1991 पारित किया गया।[8] मूल अधिनियम की कतिपय कमियां निम्नानुसार थीं–

(1) अधिनियम की धारा 2 (1) (c) को अधिक व्यापक बनाये जाने की आवश्यकता थी ताकि परिवाद की परिभाषा में बन्धित विक्रय सेवा संबंधी करार तथा वारंटी आदि का भी समावेश हो।

(2) केवल व्यथित उपभोक्ता के अलावा अन्य उपभोक्ता निवारण संगठनों को भी याचिका दायर करने की पात्रता हो।

(3) जनहित के महत्वपूर्ण उपभोक्ता प्रकरणों में जिला, राज्य एवं राष्ट्रीय उपभोक्ता मंचों को स्वप्रेरणा से प्रकरण का संज्ञान लेने की अधिकारिता होनी चाहिए।

(4) उपभोक्ता की परिभाषा अधिक व्यापक एवं विस्तृत किया जाना आवश्यक था।

(5) धारा 2 (1) (ब) के अन्तर्गत चिकित्सीय सेवाओं तथा गृह निर्माण सेवाओं का भी समावेश होना चाहिये।

(6) अधिनियम को अधिक क्रियाशील एवं प्रभावी बनाने के लिए एवं राज्य फोरम तथा राष्ट्रीय उपभोक्ता आयोग की शक्तियों को वर्द्धित किया जाना आवश्यक था ताकि उपभोक्ताओं को प्रतिदोष प्राप्ति में कठिनाइयों का सामना न करना पड़े।

(7) उपभोक्ताओं के अधिकारों संबंधी एक पृथक अध्याय होना चाहिए जिनके विषय में अधिनियम की धारा 6 में उल्लेख है।

(8) जिला फोरम अथवा राज्य आयोग की स्थापना हेतु केन्द्रीय सरकार की पूर्वानुमति प्राप्त करने की बाध्यता को समाप्त किया जाना चाहिए क्योंकि यह अनावश्यक था तथा उपभोक्ताओं को न्याय दिलाने में विलम्ब कारक था।

(9) यह उचित था कि अधिवक्ताओं को सामान्यतः पैरवी हेतु अनुमति न दी जाये परन्तु विशिष्ट प्रकरणों में उन्हें अपवाद स्वरूप इसकी अनुमति दिया जाना न्याय के हित में होगा।

(10) प्रायः यह अनुभव किया गया कि फोरम या राज्य आयोग के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में याचिका दायर की जाती थी और यहां तक कि प्रकरण इन फोरमों में विचाराधीन रहते हुए भी इनके संबंध में उच्च न्यायालय में याचिका फाइल करने की प्रवृत्ति पनप रही थी जिसके कारण व्यथित उपभोक्ता को व्यर्थ की परेशानी झेलनी पड़ती थी और न्याय–निर्णय में विलम्ब होता था। अतः यह सुझाव रखा गया कि जिला फोरम एवं राज्य आयोग की संविधान के अनुच्छेद 323 बी. में समाविष्ट करके इन पर उच्च न्यायालय की अधिकारिता को अपवर्जित कर दिया जाये।

fu"d"kZ % उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम को अधिक व्यापक तथा लोकोपयोगी बनाने की दिशा में इसमें किये गये सन् 2002 के संशोधन पर्याप्त रूप से प्रभावी सिद्ध हुए हैं फिर भी उचित उपभोक्ता शिक्षा के अभाव में इसके प्रति जन–जागृति अपेक्षाकृत नहीं हो सकी है।[9] भारत के दूरस्थ अंचलों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में अशिक्षा के कारण भी उपभोक्ता आंदोलन जन सामान्य तक नहीं पहुंच सका है। इसके प्रति उदासीनता का एक अन्य कारण देश में व्याप्त गरीबी और अज्ञानता भी है। यद्यपि इस अधिनियम का मूल उद्देश्य उपभोक्ताओं को त्वरित न्याय दिलाना है परन्तु वास्तविकता यह है कि अधिनियम के अन्तर्गत का मूल

उद्देश्य उपभोक्ताओं को त्वरित न्याय दिलाना है परन्तु वास्तविकता यह है कि अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित फोरम तथा आयोगों में परिवादियों के विवाद वर्षों तक लम्बित पड़े रहते हैं जिसके अनेक कारण हैं जिनमें फोरम/आयोग में सदस्यों की रिक्ति विरोधी पक्ष द्वारा प्रकरण स्थगित या लम्बित रखने की दुष्प्रवृत्ति आदि प्रमुख हैं। ग्रामीण एवं दूरस्थ इलाके अभी भी फोरम या आयोग की पहुँच के बाहर हैं।

अधिनियम को अधिक प्रभावी तथा करागर बनाने हेतु निम्नलिखित सुझाव उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं–

(1) संविधान के अनुच्छेद 21–। में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार माना गया है। इसमें उपभोक्ता शिक्षा का भी समावेश किया जाना चाहिए।

(2) शासकीय एवं गैर शासकीय स्तर पर स्वयं सेवी संगठनों द्वारा उपभोक्ता शिक्षा का प्रचार–प्रसार किया जाना चाहिये ताकि इस लाभकारी विधायन के प्रति जन–चेतना जाग्रत हो सके।

(3) उपभोक्ता फोरमों के दायरे को विस्तृत कर इसे दूरस्थ अंचलों तक पहुँचाया जाना अत्यावश्यक है।

वस्तु सेवा कर लागू होने उपभोक्ताओं को सीधे लाभ मिल रहा है अन्त में यह कहा जा सकता है कि उपभोक्ता संरक्षण का अंतिम लक्ष्य उपभोक्ता कल्याण ही होना चाहिए।

lUnHkZ

1. विकीपीडिया
2. विकीपीडिया
3. बेयर एक्ट, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986, ब्स। संस्करण 2009 पृ0 23.23
4. परांजपे, डा0 नावि0 अपकृत्य, विधि, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, द्वितीय संस्करण 2012, पृ0सं0 443
5. बांगिया, आर0के0, अपकृत्य विधि, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, संस्करण, 2013 अठरहवां, पृ0 351
6. ए0आई0आर0, 1999 कर्नाटक, 210
7. बेयर, एक्ट, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 पब्लिकेशन, संस्करण 2009, पृ. 9
8. बेयर, एक्ट, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 पब्लिकेशन, संस्करण 2009, पृ. 14
9. बांगिया, आर0के0, अपकृत्य विधि, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, इलाहाबाद लॉ एजेंसी पब्लिकेशन, संस्करण, 2013 अठरहवां, पृ0 375

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 104-107

thou eY;k dk jRu % dkV ek'ky

ik0 gdepn tk/ko*

स्वदेश दीपक का नाटक कोर्ट मार्शल हमारी समकालीन व्यवस्था के हर अंग में छिपे चेहरों का सीधा पर्दाफाश करता है, जो कानून, नियम, अनुशासन तथा व्यवस्था की आड़ में निम्न वर्ग का निर्मम शोषण करते रहते हैं। नाटक में (रामचंन्दर नामक) एक निम्न–वर्गीय जवान (सवार) का कोर्ट मार्शल किया जा रहा है। उसने एक जघन्य अपराध किया है – ''दस जून की रात को जवान रामचन्दर गार्ड डयूटी पर था। रात को नौ बजे रेजिमेंट के दो अफसर कैप्टन मोहन वर्मा और कैप्टन कपूर मोटर साईकल पर गार्ड चौकी के पास से गुजरे। जवान रामचन्दर ने सरकारी राईफल से उन पर गोल चला दी। कैप्टन मोहन वर्मा की हादसे की जगह पर ही मौत होई। कैप्टन कपूर गम्भीर रूप से घायल हो गया। कैप्टन कपूर बच गया, क्योंकि गोली उसके बाएँ कन्धे के पास लगी थी। अगर उसे एकदम मिलेट्री अस्पताल न पहुँचाया जाता, ऑपरेशन न होता तो उसकी भी मौत हो जाती, यकीनन मौत। डॉक्टरों की रिपोर्ट के मुताबिक अगर गोली दो इंच नीचे, हार्ट पर लगती तो कैप्टन कपूर के बच जाने का सवाल ही न था। इसका मतलब है कि जवान रामचन्दर इन दोनों अफसरों को कत्ल करने का पक्का इरादा कर चुका था। इंडियन आर्मी एकट 69 और इंडियन पिनल कोड की दफा 302 के तहत जवान रामचन्दर का जनरल कोर्ट मार्शल किया जा रहा है। जान बूझकर होशो–हवास में मर्डर करने, कत्ल करने पर कोर्ट मार्शल'' ।[1]

इस कोर्ट मार्शल के प्रीजाईडींग आफीसर हैं कर्नल सूरजसिंह जिनकी ख्याति रही है कि – ''कर्नल सूरजसिंह साहब कोर्ट मार्शल के प्रीजाईडींग अफसर हो और कोई बच जाए, ना मुमकिन दस कोर्ट मार्शल कर चुके हैं, दस आज तक कोई मुजरीम बच नहीं सका उनके हाथों से''[2] चश्मदीद गवाह के रूप में सुबेदार बलवान सिंह साथ ही इस हमले से बच निकले कैप्टन बी0 डी0 कपूर है। अन्य गवाह के रूप में डॉ0 कैप्टन गुप्ता, लैफ्टीनेंट कर्नल ब्रजेंन्द्र रावत आदि है। इन सबकी गवाही तथा जवान रामचन्दर के अपराध की स्वीकृति से स्पष्ट हुआ हत्या उसने ही की है।

नाटके के प्रारम्भिक दस–पन्द्रह मिनट में ही यह स्पष्ट हो जाता है। अतः स्पष्ट है कि वह हत्याचार है और उसे मौत की सजा मिल ही जाएगी। यहाँ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जवान रामचन्दर के कोर्ट मार्शल की सनसनीखेज तथा मेलोड्रेमिक कहानी प्रस्तुत करना नाटककार का उद्‌देश्य नहीं है बल्कि रामचन्दर जैसे होनहार अनुशासन प्रिय, डयूटी का पक्का, ईमानदार लेटिनेंट कर्नल ब्रजेन्द्र रावत के शब्दों में एन आईडियल सोल्जर को इतना संगीन जुर्म करने के लिए विवश करने वाले वे कौन से तत्व हैं उन्हें स्पष्ट कर समकालीन व्यवस्था में छिपे उन प्रवृत्तियों का पर्दाफाश करना है, जिनकी बदौलत हमारी प्रजातंत्रीय व्यवस्था भी सामंती–व्यवस्था की हमशक्ल बनती जा रही है। बचाव पक्ष की वकील विकास राय कहते भी हैं– ''सोचिए जरूर कि रामचन्दर ने गोली क्यों चलाई।'' क्यों किया खून। कई बार सच बिल्ली की तरह दुबककर किसी अन्धेरे कोने में छिप कर बैठा रहता है। ध्यान से देखे, सोचे तभी पता चल सकता है कि सत्य क्या है।........ सत्य वह सत्य जो आदमी की जान से भी अधिक मूल्यवान होता है।[3]

कैप्टन विकासराय इसी सत्य की खोज गवाहों के पुछ–ताछ के दौरान करता है। कैप्टन बी0 डी0 कपूर, सूबेदार बलवान सिंह, डॉ0 गुप्ता आदि के नकाब चीर कर उनके असली चेहर और उनके कारनामों को हमारे सामने रख देते हैं, जिसमें हम हमारी समकालीन उस शोषण–मूलक–व्यवस्था का

*रुख्मिणीताई कला व वाणिज्य, महिला महाविद्यालय, अमलनेर, जि0 जलगांव

साक्षात्कार करते हैं कि प्रजातंत्र, समाजवाद, वैज्ञानिक–विकास तथा आधुनिकता के निरन्तर रट के बावजूद–निम्न–वर्गीय जन–जीवन आज भी उत्पीड़ित, प्रताडित, दलित तथा शोषित, मात्र इसलिए है कि वह निम्न जातियों में पैदा होने वालों में से हैं।

mPp o.kh;ks }kjk fuEu oxZ dk 'kks"k.k % प्रजातांत्रिक – व्यवस्था स्वतंत्रता, समता और न्याय की नींव पर खड़ी होती है। इसीलिए हमारे संविधान ने तथा कथित उच्च वर्णियों के वे सभी जन्मसिद्ध अधिकार छीन लिये, जिनकी बदौलत वे निम्न–वर्ग को गुलाम बनाकर अपने अहं एवं सभी कामनाओं की तृप्ति के लिए उनका शोषण करते थे। आज निम्न–वर्ग को भी सम्मानित जीवन पाने का अधिकार है, लेनिक सिर्फ संविधान के कागजों में। यथार्थ इसके ठीक विपरीत है। व्यवस्था के हर ऊँचे पद पर अधिकतर ऊँचे लोग ही बैठे हैं। प्रजातन्त्र के उनहोंने मात्र मुखौटों के रूप में अपनाया है, उसके भीतर उनका असली चेहरा सामंती–संस्कारों से विकृत हुआ है। नाटक में कैप्टन बी0 डी0 कपूर तथा तथा कैप्टन मोहन वर्मा इन्ही के प्रतिनिधि है। प्रजातंन्त्रीय देश के रखवाले कैप्टन बी0 डी0 कपूर की धारणा है कि वंश महिला सर्वोपरि है। वे गर्व से कहते हैं ''पिछली चार पुश्तों से हमारे पुरखे राज कर रहे हैं। आई0 पी0 एस, आई0 एस, आर्मी, नेवी, एयर फोर्स, सब जगह अफसर हैं हमारे खानदान के लोग। वी बिलांग टू रूलिंग क्लास।[4] वे हिन्दी भाषी परिवार में पैदा हुए हैं, पढ़ाई भी हिन्दी भाषा में की है लेकिन हिन्दी में बोलना नहीं चाहते, क्यों कि ऑफिसर हमेशा अंग्रेजी में बात करते हैं। अंग्रेजो के समय से यह चल रहा है। उनकी धारणा हैं कि सभी तरह की योग्यताएँ उच्चवर्णियों तथा अफसरों में होती है। इसीलिए वे कहते हैं अब खानदानी लोग फौज में भरती नहीं होते। नीची जाति के लोगों को भरती किया जाएगा तो यही होगा। भूखे–नंगो को जब फौज में भरती किया जाए, भर पेट रोटी मिलने लगे तो उनका दिमाग फिरेगा कि नहीं।''[5] असल में उच्चवर्णियों का निम्न वर्ग के प्रति यह दृष्टिकोन उनकी–सत्ता और ऐश्वर्य के एकाधिकार व्यवस्था के टूट जाने की प्रतिक्रिया है।

नाटक में राचन्दर निम्न–वर्ग में पैदा हुआ हैं। लेकिन अपनी अर्जित योग्यता के बलपर मात्र फौज में भर्ती ही नहीं हुआ बल्कि एक आदर्श फौजी की छवि भी बना पाया है। वह एक अच्छा खिलाड़ी भी है। रेजिमेंट के रेजिंग डे के अवसर पर पांच हजार मीटर की दौड़ प्रतियोगिता में उसने प्रथम क्रम पाया था। इस दौड़ में उनकी गति से कमांडिग ऑफिसर कर्नल रावल इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उसे दूध और बादाम की अतिरिक्त खुराक लगाई तथा दौड़ की प्रैक्टिस के लिए पर्याप्त अवकाश प्रदान किया। उत्तरी कमान के खेल प्रतियोगिता के लिए यह तैयारी चल रही थी। इस प्रतियोगिता के पिछले विजेता कैप्टन बी0 डी0 कपूर थे। वे दुःखी थे कि क्रीड़ा क्षेत्र में प्राप्त उनकी खानदानी ऊँचाई पर कही रामचन्दर जैसा निम्न–वर्गीय न पहुंचे। इसलिए उन्होंने षढयंत्र रचाया सूबेदार बलवान सिंह के द्वारा रामचन्दर को अपना अर्दली बनने पर विवश किया और उसे अपने घर के किसी न किसी काम में उलझाया रखा ताकि वह दौड़ की प्रैक्टिस न कर सके। इतना ही नहीं इस दरमियान उसके आत्मविश्वास को तोड़ने के लिए उसे मानसिक रूप से उत्पीड़ित भी किया। वे तथा उनके मित्र कैप्टन वर्मा उसे चुहड़ा और भंगी कह–कह कर पुकारते, गाली देते, एक लायक फौजी से निजी नौकर जैसा काम करवाते ''बाजार से सामान लाओ बच्चों को स्कूल छोड़ने जाओ, खाना बनाओ, खाना लगाओ, मेम साहब के कपड़े प्रेस करो और साह बको हमेशा खुश रखो।''[6] इतना ही नहीं एक दिन तो रामचन्दर की योग्यता और आत्मसम्मान पर कैप्टन कपूर ने करारा आघात किया। ''एक दिन कैप्टन साहब के घर कुछ मेहमान आए हुए थे। ड्राइंगरूम में ही एक छोटी बच्ची ने पॉटी कर दी। कैप्टन साहब ने रामचन्दर को पॉटी साफ करने के लिए कहा।.......... रामचन्दर ने साहब की बच्ची की टट्टी उठाने से इन्कार कर दिया। कैप्टन कपूर ने सब मेहमानों के सामने उसे कहा–जात का चूहड़ा और टट्टी उठान में शर्म आती है। तुम्हारे पुरखें, पुश्तों से हम लोगों की टट्टी को टोकरी उठा रहे हैं।''[7] रामचन्दर ने शिकायत की तथा सी0 ओ0 तक जाने की धमकी दी, तभी सूबेदार बलवान सिंह ने उसे कैप्टन मेजर की गुलामी से मुक्त किया। कठिन परिश्रम कर मात्र दस दिन की प्रैक्टिस से रामचन्दर दौड़ प्रतियोगिता में कपूर को पराजित किया। इतना ही नहीं एशियाई प्रतियोगिता के लिए सेना के प्रतिनिधि के रूप में चुना गया। निम्न–वर्गीय आदमी की यह योग्यता सामंती–अहं पर लगातार

चोट करती चली गयी। इसलिए बौखलाऐ कैप्टन कपूर तथा कैप्टन मोहन वर्मा जब भी मौका मिलता रामचन्दर को जलील करते रहे। जब वह गार्ड ड्यूटी पर होता था, ये मोटर साइकल रोकते थे और उसे गाली देते। हत्या की रात भी वे मोटर साइकिल पर आये थे और उसकी आत्मा पर चोट कर कहा ''चिट्टे चुहड़े हराम की सट्ट तेरी माँ जरूरी किसी कपूर या वर्मा के साथ सोई होगी।''[8] हद से बढ़े इस उत्पीड़न से रामचन्दर का मानसिक सन्तुलन टुट गया और गुस्से में उसने गोली चला दी।

ukjh 'kks"k.k dk vadu % प्रजातंत्रीय – व्यवस्था में भी जिस तरह निम्न–जाति में पैदा हुआ लोगों का जीवन उत्पीड़ित–प्रताड़ित है, उसी तरह नारी का भी है, चाहे वह निम्न जाति की हो या उच्च जाति की। मिसेज कपूर समकालीन व्यवस्था में उत्पीड़ित प्रताड़ित नारी समाज की प्रतिनिधि है। वह कैप्टन कपूर की सांती अहं की निर्मम शिकार है। नाटक में एक रात का उल्लेख आया है– कैप्टन कपूर उस रात मैस से लौटा तो नशे में धुत था। ही वाज डैड ड्रंक। जब वह अपनी पत्नी के पास गया तो वह बिस्तर से उठ खड़ी हुई, उसने कपूर से कहा–मुझे मत छुओ। यू आर ड्रंक। यू आर स्टिकिंग। डोंट टच मी। लेकिन कैप्टन कपूर तो नशे के घोड़े पर सवार था। पत्नी का गाऊन फाड़ डाला और उसे कहा– ''आई हैव लाइसेन्स टु स्लीप विद यू। चुपचाप आ जाओ बिस्तर पर''[9] उसके प्रतिरोध करने पर कैप्टन कपूर ने ऐसे ट्रे से उसका सर फोड दिया था। वह बेहोश हो गयी थी। रामचंदर ने ही उसे अस्पताल पहुँचाया था। मिसेज कपुर उच्चवर्णीय है, उच्च विद्या–विभूषित है, लेकिन किसी की पत्नी है, इसीलिए उसके साथ किसी भी तरह की ज्यादती करने का लाइसेन्स मनुप्रणीत–व्यवस्था में पुरूष को था, प्रजातंत्रीय–व्यवस्था में पुरूष कैप्टन कपूर की है। इन यातनाओं से मुक्ति पाने के लिए पहले उन्होंने सी0 ओ0 को पुकारा बाद में अदालत को।

dkuwu vkSj U;k; O;oLFkkdh ycsh dk;Zokgh dk fp=.k % यद्यपि कहा जाता है प्रजातांत्रिक इस व्यवस्था में सबको समान अधिकार है। इसलिए कोई अपने अधिकार छीने, शोषण करे, तो उसका प्रतिकार करने के लिए संविधान में कई मार्ग, कई तरीके प्रदान किये हैं। इसके लिए विशिष्ट व्यवस्था का प्राविधान भी किया गया है। सरकारी वकील मेजर पुरी कहते भी हैं– ''रामचन्द्र के साथ जुल्म हुआ भी है तो ऐसे समाज में, जो कानून और नियमों पर टिका हो, विरोध करने के कई और तरीके हैं, बहुत से रास्ते हैं। समाज में निजी गुससे और प्रतिकार के लिए कभी कोई जगह नहीं होती, बिल्कुल नहीं होती। रामचंदर अपने कमांडिग अफसर से शिकायत कर सकता था आर्मी चीफ से शिकायत कर सकता था, सेना के सबसे बड़े कमांडर राष्ट्रपति से शिकायत कर सकता था।'' यही मार्ग मिसेज कपूर के लिए है। लेकिन कानून और नियमों से बँधा यह मार्ग एक प्रवंचना मात्र है। व्यवस्था के हर अंग में सांमन्ती प्रवृत्त्यिाँ कार्यरत हैं। इसलिए अधिकार–रक्षा के सभी संविधानिक रास्ते एक अन्तर्हीन निरर्थक यात्रा की भूलभुलैया बन जाते हैं। समाकलीन इस व्यवस्था पहलु को स्पष्ट करते हुए बचाव वकील राय कहते भी है– ''समाज ने, कानून ने व्यवस्था ने विरोध प्रकट करने लिए बना रखे ये रास्जे, मीलों लम्बे रास्ते इन रास्तों पर चलना शुरू किया जा सकता है। लेकिन प्रश्न तो यह है कि विरोध प्रकट करने के ये रास्ते क्या कहीं पहुँचते भी है? बिल्कुल नहीं पहुँचते। कभी नहीं पहुँचते। विरोध कोई नाटक नहीं कि अन्तिम अंक, लास्ट एक्ट तक पहुँचने की प्रतीक्षा करे। शक्तिशाली लोगों के विरोध को राजनैतिक विरोध कहा जाता है, जो उन्हें एक ही छलाँग में बिठा देता है सत्ता के बिल्कुल पास रखी कुर्सी पर। और कमजोर लोगों का विरोध। इसे विरोध नहीं विद्रोह का नाम दिया जाता है, जो उन्हें एक ही छलाँग में पहुँचा देता हैं, फांसी के तख्त तक। कानून और संविधान ने सबको बराबर का दर्जा, बराबर का अधिकार दे दिया। लेकिन बड़े आदमी ने छोटे आदमी को ऊँचे आदमी ने नीचे आदमी को यह अधिकार नहीं दिया। बिल्कुल नहीं दिया। बराबर की बात तो दूर, सोचने के स्तर पर भी मैं अपने से छोटे को बराबर कर अधिकार देने के लिए तैयार नहीं। हम तो आँख उठाकर अपनी और देखने को हक तक देने को तैयार नहीं इसका कारण वे सामन्ती प्रवृत्तियाँ, सोचने का सांमती तरीका युडल औ डेसीज, जिनसे हमें अभी तक आजादी नहीं मिली।''

lcrks vkSj xokgks dk v/kZ lR;ij fo'okl dj pyus okyh O;oLFkk % हमारी न्याय–व्यवस्था गवाह और सबुतों के अर्ध सत्य को पूर्ण सत्य मानकर न्याय देती है। एक तो गवाह–सबूतों की लम्बी

प्रक्रिया में न्याय पाने में इतना विलम्ब हो जाता है कि तदुपरांत प्राप्त न्याय अन्याय प्रतीत होता है। दूसरे गवाह–सबूतों को जुटाने में, उसे अपने पक्ष में साबित करने की चालाकी में जो सफल होता है, नयाय उसके पक्ष में हो जाता है। इसलिए चालाक अपराधी न्याय–व्यवस्था की कमियों का लाभ उठाकर बेदाग बच जाता है और सीधा–सच्चा आदमी अपराधी साबित हो जाता है। हमारी समकालीन न्याय–व्यवस्था में किसी कर्म को अपराध इसलिए घोषित किया जाता है कि कानून की धारा में वह दर्ज है। इसलिए यहाँ अपराधी–कर्म को उस आदमी द्वारा किया जाना साबित होता है या नहीं इस पर ही अधिक बल दिया जाता है, अपराध करने के लिए उकसाने वाली, विवश करने वाली, उसकी मानसिकता तथा उसके निर्माण में सहायक तथ्यों पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता, आलोच्य नाटक में समकालीन न्याय व्यवस्था के इस विसंगत पहलू को प्रस्तुत किया गया है। जवान रामचंदर ने दो अफसरों पर जानलेवा हमला किया, एक अफसर की हत्या की, यह साबित किया गया। इस दरमियान बचाव वकील ने उन सभी तथ्यों को उजागर किया, जिससे रामचंदर जैसा एक आदर्श जवान हत्या जैसे जधन्य अपराध करने पर विवश हुआ, लेकिन जजों ने उन तथ्यों पर ध्यान नहीं दिया। या यों कहें निर्धारित न्याय–प्रक्रिया की परिधि में उन तथ्यों को अनदेखा करने, उन्हें महत्वहीन समझने के लिए विवश होना पड़ा। रामचंदर को फाँसी की सजा दी जाती है। न्याय के नाम पर निर्दोषी–अपराधी की इस तरह जान लेने की विवशता कर्नल सूरत सिंह जैसा कडियल मर्द को भी भीतर से कचोटती है – पहली बार मुझे इस दिल दहला देने वाले सत्य का पता चला कि जब हम किसी की जान लेते है तो हमारे प्राणों का एक हिस्सा भी मर जाता है, मरने वाले के साथ।[11] रामचंदर ने अफसरों की हत्या की अपने आत्म सम्मान अपने व्यक्तित्व की रक्षा के लिए, अपनी आत्मा की रक्षा के लिए जबकि कोर्ट–कचहरी में आत्मा नहीं, प्रमाण काम करते है, आत्मा की हत्या अपराध नहीं, शरीर की हत्या अपराध है। इसलिए परोक्ष रूप में रामचंदर को इसलिए सजा मिली कि छोटा होकर भी उसने आत्मा को बचाने की कोशिश की। समकालीन न्याय–व्यवस्था की इस विसंगति पर व्यंग्य करते हुए विकास रॉय कहते हैं– ''सरकारी वकील ठीक कहते हैं। सवार रामचंदर को फाँसी की सजा मिलनी ही चाहिए। अपने देश की रक्षा की शपथ लेने के बावजूद उसने कर दिया इन्कार एक अफसर की बच्ची की गन्दगी उठाने से। अपने देश की शपथ लेने के बावजुद उसने हराम की सट्ट जैसी साधारण गाली खाने से कर दिया इन्कार अपने देश की रक्षा की शपथ लेने के बावजूद उसके अपने कान, अपनी आँखे बन्द करने से कर दिया। इन्कार। उसे दण्ड मिलना चाहिए। मृत्यु–दण्ड। उसे आर्मी एक्ट तथा इण्डियन पिनल कोड की दफा 302 के अनुसार हर हालत में दण्ड मिलना चाहिए। मृत्यु–दण्ड। बार–बार मृत्यु दण्ड''[12] कैप्टन विकासराय के इस व्यंग्य वचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस बिन्दु पर आकर न्याय–व्यवस्था भी शोषणमूलक–व्यवस्था का एक अंग बन जाती है।

इसप्रकार कोर्ट मार्शल नाटक में स्वदेश दीपक ने उच्च वर्णीयो का पर्दाफाश कर निम्न वर्ग कि त्रासदी, शोषण, उनपर होने वाले अन्याय तथा अत्याचार को जनता के समक्ष रखा है।

अंततः कहा जा सकता है कि कोर्ट मार्शल में जीवन व्यथिथ करते समय सामान्य जन को आने वाली हर समस्या उत्पीड़न अपमान, द्वेषभाव, आदि का अंकन हुआ है जिससे वर्तमान स्थिति में बदलाव आयेगा और भविष्य में कोई उच्च वर्णीय निम्न वर्ग का शोषण करने का साहस नहीं करेगा। सब को बराकर का हक, बराकर का अधिकार प्राप्त होगा।

lUnHkZ %

1. कोर्ट मार्शल, पृ0 23–24
2. कोर्ट मार्शल, पृ0 22
3. कोर्ट मार्शल, पृ0 42–43
4. कोर्ट मार्शल, पृ0 82
5. कोर्ट मार्शल, पृ0 82
6. वही, पृ0 76
7. वही, पृ0 48
8. वही, पृ0 89
9. वही, पृ0 64
10. वही, पृ0 91, 92
11. वही, पृ0 21
12. वही, पृ0 93

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 108-113

e/;n:'k dk dyk dUn: dk'kkEch

MkW0 dey:'k dqekj pk/kjh*

महाजनपद कालीन वत्स की राजधानी कौशाम्बी 25^0 20' 30" अक्षांश, 81^0 23' 12" देशान्तर पर अवस्थित है।[1] यह भारत की अत्यन्त प्राचीन एवं प्रमुख नगरों के रूप में जानी जाती रही है। यह नगर यमुना तट पर गंगा–यमुना के दोआब में स्थित था।

अपने अनूठे कला शैली की मूर्तियाँ, मृद्भाण्ड, चांदी–तांबे के सिक्के, मिट्टी व धातु की मुहरें, विभिन्न प्रकार के बहुमूल्य पत्थरों के मनके, धातु मूर्तियाँ एवं हाथी दाँत की वस्तुएं कलात्मक दृष्टि से कौशाम्बी कला की महत्ता पर प्रकाश डालती हैं। ध्यातव्य है कि कौशाम्बी की कला अपने में एक स्वतंत्र शैली थी जो उसे समकालीन अन्य महत्वपूर्ण कला केन्द्रों–मथुरा एवं सारनाथ से पृथक एवं विशिष्ट रूप में स्थापित करती है। यही नहीं कौशाम्बी की प्रस्तर एवं मृण्मूर्तियों का सांगोपांग विवेचन करने पर हमें उनके बीच एक गहरा अन्तर्सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। कम गहराई में उकेरी, साँचे से निर्मित, अत्यधिक आभूषणों से अलंकृत मृण्मूर्तियों के लगभग समरूप अंकन हमें पाषाण फलकों पर भी दिखलाई पड़ते है।[2] कौशाम्बी की कला में सर्वाधिक महत्वपूर्ण लघु कला कृतियाँ भी रही हैं। इसमें मुलायम पत्थर से उकेरी गयी शोभा एवं साज–सज्जा की वस्तुएं, मूल्यवान पत्थर मृण में सूक्ष्मता से निर्मित पशु–पक्षी आकृति वाले मनके, स्मृति चिन्ह एवं आभूषण जिन पर ग्रीक अलंकरण है जो उल्लेखनीय महत्व के हैं।

कौशाम्बी की सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ कला के विकास में अपना महत्वपूर्ण अवदान प्रदान करती रही है। व्यापार, वाणिज्य का उत्कीर्ण, नगरीककरण तथा भागवत, जैन एवं बौद्ध धर्मों का उत्थान एवं यक्ष पूजा जैसी कुछ स्थानीय परम्परायें उसके बहुमुखी कला के विकास में आधार शिला बने। कौशाम्बी की कला शैली का मूल आधार कतिपय स्थानीय तथ्यों में ही अन्तर्निहित है जो तथ्य मौर्यों के तुरन्त बाद प्रस्फुटित एवं विकासोन्मुख हुए।[3]

विषय वस्तु की दृष्टि से कौशाम्बी के स्थलों पर यक्षों की मूर्तियाँ, स्तूप, वेदिका, स्तम्भ एवं मृण्मूर्तियां प्राप्त है। इन सभी में कौशाम्बी का स्वतंत्र अस्तित्व परिलक्षित होता है। कौशाम्बी से प्राप्त कतिपय कला अभिप्राय उदाहरण के लिए भागवत धर्म सम्बन्धी ध्वज स्तम्भ मथुरा से पहले (मौर्यों के तुरन्त बाद) के काल के हैं।[4] कौशाम्बी के निकट मैनहाई में भी इसके अनुरूप साक्ष्य हैं।

गुप्त कला की संवेदनशील सजीव रचनाओं की पृष्ठभूमि कौशाम्बी की वे प्रतिमाएँ हैं, जिनमें इस प्रकार की सौन्दर्य अनुभूति के दर्शन होते हैं। मद्य–कुषाण काल की समृद्धि ने कौशाम्बी कला को प्रभावित किया। कौशाम्बी से प्राप्त 80ई0 की लाल बलुई पत्थर से निर्मित बुद्ध की प्रतिमा मथुरा के प्रभाव को स्पष्ट करती है। तदनन्तर हीनयान परम्परा के होते हुए भी बुद्ध की प्रतिमा के मांग को पूरा करने के लिए कौशाम्बी 150 वर्षों के प्रयास द्वारा अपनी शिल्पकला में 161 ई0 में बुद्ध मूर्तियों का निर्माण करने में सफल हुई। कौशाम्बी में पहले गांधार कला की बुद्ध मूर्तियों को स्वीकार किया तथा वेश–भूषा एवं संघटि की उस विधा को प्रारम्भ किया जो सारनाथ में अपनायी गयी और आगे चलकर गुप्त कला में परिवर्तित हुई। सारनाथ ने कौशाम्बी को ही अपना आधार बनाकर बुद्ध की भीगकर चिपके हुए वस्त्रों वाली मूर्ति का निर्माण किया। कौशाम्बी में उत्पन्न उभय स्कन्ध संघटि का चिपका हुआ रूप सारनाथ में कालान्तर में मान्य हुआ। यहां यह भी ध्यान देने योग्य है कि गुप्तकाल में कौशाम्बी की कला को बौद्ध मठ का संरक्षण प्राप्त था। इस प्रकार निष्कर्षतः यह स्पष्ट हो जाता है कि कौशाम्बी में कला की स्वतंत्र परम्परा के पोषण

*प्रवक्ता, शिवहर्ष उपाध्याय किसान इण्टर कालेज, बस्ती, उ0प्र0

हेतु वहां धन की कमी नहीं थी। साथ ही इस कला को राजा, व्यापारी एवं धार्मिक संस्थाओं (मठ, मन्दिर आदि) का संरक्षण प्राप्त था। इन अनुकूल परिस्थितियों में कौशाम्बी कला का उत्तरोत्तर विकास होता गया।[5]

कौशाम्बी की पुरातात्विक सम्पदाओं का अध्ययन एवं अनुशीलन, कौशाम्बी की कला के क्रमिक विकास एवं अनेक चरणों को स्पष्ट करता है।[6]

Lri ,o fogkj % यद्यपि कौशाम्बी में अनेक विहार एवं स्तूप का साहित्यिक स्रोतों से अभिज्ञान होता है तथापि उत्खननों में केवल घोषिताराम के अतिरिक्त अन्य के पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त नहीं हैं। उत्खनन में घोषिताराम के 16 संरचना कालों का अभिज्ञान होता है। यह चतुर्भुजाकार है। चतुर्दिक अलिन्दों के मध्य प्रांगण में एक विशाल एवं अनेक लघु स्तूप थे। अलिन्दों के पीछे भिक्षु कक्षों का निर्माण किया गया था, यही नहीं सम्पूर्ण विहार के चारो तरफ प्राचीर थी।[7] घोषिताराम के सर्वाधिक प्राचीन निर्माण स्तर में उत्तरी कृष्ण मार्जित भाण्ड प्राप्त हुए हैं।[8] अतः इसका आरम्भ ई0पू0 छठी–पांचवी शती में स्वीकार करना उचित होगा। लगभग ई0पू0 द्वितीय–प्रथम शताब्दी के पूर्वाद्ध में ध्वस्त सुरक्षा व्यवस्था के पुनर्निर्माण के अलावे अनेक नवीन संरचनाओं का निर्माण किया गया। कालान्तर में हूणों के आक्रमण के कारण घोषिताराम नष्ट–भ्रष्ट हो गया।

LrEHk % कौशाम्बी में प्रस्तर मूर्ति शिल्प की परम्परा का प्रारम्भ मौर्य युग से ज्ञात होता है। इस नगर में मौर्य कालीन ओपयुक्त दो प्रस्तर स्तम्भ स्थापित थे जिनमें से एक अपने मूल स्थान पर अवस्थित है।[9] जबकि दूसरा वर्तमान समय में इलाहाबाद के दुर्ग में स्थित है।

ofndk % ई0पू0 दूसरी शताब्दी में कौशाम्बी की विशिष्ट कलाकृतियों में एक अभिलेख सहित प्रस्तर वेदिका उल्लेखनीय है। यह वेदिका अब खंडित है किन्तु इस पर बनी एक स्त्री आकृति के वस्त्र, आभूषण, वेणी एवं मुद्रा आदि में भरहुत से काफी साम्य है। स्त्री के दाहिने हाथ में सम्भवतः कोई पुष्प है और अंकन से पूजा का भाव स्पष्ट होता है।[10] लक्ष्मी की दो छवियां कौशाम्बी के वेदिका स्तम्भों पर मिली हैं।[11] एक में उन्हें कमल पर खड़े हुए दिखलाया गया है, उनके हाथ में भी एक कमल है। दूसरी छवि में उन्हें गज सहित अंकित किया गया है। दूसरे वेदिका स्तम्भ पर बोधिवृक्ष तथा सिंह स्तम्भ के अंकन हैं।

इनके अतिरिक्त उत्खनन से पहले भी कौशाम्बी से विभिन्न वेदिका स्तम्भ प्राप्त हुए थे। ये स्तम्भ अब लखनऊ के संग्रहालय में स्थापित हैं। ऐसे एक (संख्या बी 731) भग्न है। तीसरे स्तम्भ पर बनी यक्ष की आकृति पूर्व परम्परा के अनुरूप है। इसके दाहिने हाथ में पुष्पगुच्छ है। बांया हाथ वक्ष पर है।[12] यक्षों से सम्बन्धित दो लेख इस स्थान की यक्ष पूजा की परम्परा को स्पष्ट करते हैं।

e.efrZ&f'kYi % कौशाम्बी भारत के उन विशिष्ट पुरातन स्थलों में से एक है जहां विभिन्न कालों की मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। मृण्मूर्ति परम्परा प्राक् मौर्य काल से आरम्भ होती है, यद्यपि इस काल की मृण्मूर्तियाँ अल्पसंख्या में प्राप्य है तथापि इनमें मानव आकृतियाँ सम्मिलित हैं।

शुंगकाल में मृण्मूर्ति शिल्प अत्यधिक लोकप्रिय हुई। इस काल में न केवल उनकी निर्माण शैली का विकास हुआ वरन उनमें पर्याप्त विविधता दिखायी देती है। शुंगकालीन कौशाम्बी मूर्ति शिल्पकला की सम्भवतः सर्वप्रमुख केन्द्र थी।[13] कौशाम्बी से प्राप्त शुंग युगीन मूर्तियां लौकिक एवं देवमूर्तियों के रूप में दो वर्गों में विभाजित की जा सकती है। इस काल की कतिपय मूर्तियाँ हस्तनिर्मित है।[14] शुंगकालीन मिट्टी के टिकरों में सबसे सुन्दर वे हैं जिन पर मिथुन या दम्पती मूर्तियां हैं। कौशाम्बी में शुंगकालीन मृण्मूर्तियों का जो कला सौष्ठव और दृश्यों की बहुलता पायी जाती है, वैसी अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। शुंग युग की पत्थर की मूर्तियाँ कौशाम्बी से बहुत कम मिली है, किन्तु उस समय की मृण्मूर्तियों का तो यहां कुवेर का भण्डार ही था और वे बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त हुई है। एक टिकरे पर ($4\frac{1}{2}$ इंच x $3\frac{1}{2}$ इंच) जो लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है, एक दम्पति बड़ी आसन्दी पर बैठे हैं जिनके तीन ओर बौलियों की वेदिका है और पाये खरादे हुए हैं। टिकरे की पृष्ठभूमि छोटे चौखुड़िया पुष्पों से भरी हुई है।[15]

कौशाम्बी से प्राप्त प्रयाग संग्रहालय में एक टीकरा है इंच ($2\frac{1}{4}$4 X $2\frac{1}{2}$ इंच) जिस पर

आपान गोष्ठी का दृश्य है। पुरूष और स्त्री आमने–सामने वेत्रासन पर बैठे हैं। स्त्री उठे हुए दाहिने हाथ में एक मधुपात्र लिये है, जिस पर ढक्कन है और वह बायें हाथ से पुरूष का आलिंगन कर रही है, पुरूष के दाहिने हाथ में छोटा चषक और बायें में वंशी है। दोनों की शिरोभूषा भरहुत के स्त्री–पुरूषों जैसी है।[16]

कौशाम्बी से मिला हुआ गोष्ठीयान, जिसमें लोग विहार और वन–भोजन के लिए जा रहे हैं, अपने ढंग का अपूर्व नमूना है। इस खिलौने की एक ही साँचे से निकाली हुई कई ढार मिली है जो भारत कला भवन वाराणसी में है। इस प्रकार के विहार को उद्यानिका कहा जाता था, जिससे निकला हुआ 'उजानी' शब्द गुजराती में अब भी प्रचलित है। गोष्ठी में चार पुरूष और दो स्त्रियाँ हैं। वे यान के दो पार्श्वों में तीन–तीन की पंक्ति में सुख से बैठे हैं। दाहिनी ओर की पंक्ति में पहले पुरूष के हाथ में सप्ततंत्री वीणा और कोण है। उसके बराबर एक दम्पती है जिसमें पुरूष स्त्री के अधर रस का पान कर रहा है। दूसरी ओर दम्पती स्त्री–पुरूष में स्त्री अपने पति की ओर मानमुद्रा में पीठ किये बैठी है। तीसरा व्यक्ति वेश और मुद्रा से विदूषक ज्ञात होता है। दोनों पंक्तियों के बीच में बड़े थाल में भोज्य पदार्थ रखे हैं जिनमें मूलियाँ साफ पहचानी जा सकती है, गोल सुहाल और गुंझियाँ और गोल मधुपात्र या ढक्कनदार सुराघट है। गोष्ठीयान में बढ़िया गलीचा बिछा है।[17] कौशाम्बी के एक खिलौने में ($3\frac{1}{2}$ इंच) दाहिने हाथ में लीला कमल लिए हुए एक स्त्री दिखाई गई है जिसका बांया हाथ कंधे की ओर कुछ झुके हुए मस्तक की ओर है।[18] यहीं से प्राप्त दूसरे खिलौने में ($5\frac{1}{2}$इंच) एक हँसतामुखी नर्तकी है। उसकी देहयष्टि का भार दाहिने पैर पर है, बाई जानु कुछ झुकी है और दोनों हाथ सामने की ओर आलिंगन मुद्रा में है। उसके मस्तक पर वेलित उष्णीश, ललाट पर मोतियों की दुहरी माला है, दाहिने कान में गोल कर्णवेष्टक है और बायें कान में ढोलनाकार झुमका है, गले में चपटा ग्रैवेयक और छाती पर मोतियों की माला है, हाथों में भारी कटक और कटि–प्रदेश में चपटे मनकों की चौड़ी मेखला है।[19]

कौशाम्बी से प्राप्त खिलौनों में एक स्त्री मूर्ति है जो आक्सफोर्ड के भारतीय संग्रहालय में सुरक्षित है। उसकी शिरोभूषा के बीच में कमल का फुल्ला और दोनों ओर निकलते हुए पार्श्वभागों में मांगलिक चिन्ह अंकित है जिनसे उसका दिव्यपद सूचित होता है।[20]

कौशाम्बी की एक टूटी हुई स्त्री मूर्ति की केश–भूषा में दाहिनी ओर पुष्करसज् और बांई ओर पांच मांगलिक चिन्ह हैं जिनमें अंकुश, परशु स्पष्ट है और दर्पण तथा शराब–संपुट या वर्धमान और विमानगृह कुछ ही स्फुट हैं। इसी प्रकार के केश और मांगलिक वेश वानगढ़ से प्राप्त शुंगकालीन खिलौने में पाये गये हैं (2 इंच, प्रथम शती ई0पू0) इतने दूर के क्षेत्र में व्याप्त यह किसी मातृ देवी की मूर्ति थी।[21]

मृण्मय मूर्तियों के इतिहास की एक विशेषता यह है कि प्रायः प्रत्येक युग में ही देश्य शैली की मूर्तियां ऐसी मिलती हैं जिन पर विदेशी प्रभाव अंकित है। उत्तर शुंग और आरम्भिक कुषाण काल की मूर्तियों का एक वर्ग ऐसा है जिस पर पहलव प्रभाव है, जो राजघाट, कौशाम्बी, मथुरा से मिला है। इसी वर्ग की कौशाम्बी और मथुरा से मिली कुछ मूर्तियां सपक्ष हैं। दूसरे वर्ग की कुछ स्त्री मूर्तियाँ बहुत बोझिल, प्रावार जैसी साड़ियाँ पहने हैं जिसने सारे शरीर और दोनों कंधों को और दोनों भुजाओं को ढँक रखा है।[22]

कुषाण काल में पाषाण मूर्तियों की अधिकता के कारण मृण्मूर्तियों की संख्या में ह्रास दिखलाई पड़ता है। इस काल में प्रथम बार अनेक सम्प्रदायों के देवी–देवताओं की पाषाण प्रतिमाओं का निर्माण हुआ।[23]

घोषिताराम के उत्खनन से कुवेर की मुखाकृति एवं चरण भाग मिला है। यहां यह भी उल्लेख्य है कि यह आकृति इस विहार में स्थापित हारीति के मन्दिर से प्राप्त हुई थी।[24] कुवेर–हारिति की संयुक्त मूर्तियाँ भी कौशाम्बी से प्राप्त हुई है। यहां से बोधिसत्व मैत्रेय की एक खण्डितावस्था में प्रतिमा प्राप्त हुई है। वे वर्णाभूषण एवं उत्तरीय धारण किये हुए है। उनकी दक्षिण भुजा कोहनी से मुड़कर अभयमुद्रा में है एवं बायीं भुजा से खण्डित कलश पकड़े हुए है।[25]

हारीति की कतिपय मूर्तियाँ कौशाम्बी से प्राप्त हुई है। इनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय मूर्ति घोषिताराम के उत्खनन से प्राप्त हुई थी जो राजलक्ष्मी तथा कुबेर के साथ मन्दिर में स्थापित थी।[26] मूर्ति विशाल आकार की है, देवी पीठिका पर भद्रासन में प्रदर्शित है। उनके सभी अंग स्पष्ट और सुडौल हैं तथा मुखमण्डल पर स्मित भाव व्यक्त होता है। उसके केश जूड़े में सज्जित है तथा वह कर्णाभूषण, केसूर, कंगन, मेखला और नूपुर से अलंकृत है। उनकी दोनों भुजाएं घुटनों पर स्थित है। कौशाम्बी के उत्खननकर्ता के अनुसार शक–पहलव वेश–भूषा में यह मूर्ति हारीति की है।[27] ये मूर्तियाँ नितम्बों पर आसीन है, ये कौशाम्बी से प्राप्त बुद्ध मूर्तियों में कुछ मथुरा की है एवं कुछ स्थानीय हैं। कालान्तर में कौशाम्बी के शिल्पी ने एक विशिष्ट एवं स्वतंत्र शैली का निर्माण किया जिसका कई शताब्दियों तक स्वरूप निखरता रहा।

कौशाम्बी के शिल्पी की कृतियों में तीन अन्य मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। तीनों मूर्तियाँ आसन मुद्रा में प्रदर्शित की गयी है। इनमें एक का मात्र दक्षिण जानु भाग शेष है।[28] द्वितीय मूर्ति की दक्षिण भुजा एवं शिरोभाग नष्ट हो गया है।[29] तृतीय मूर्ति सम्पूर्ण आकार में सुरक्षित है, किन्तु मुख्य भाग ध्वस्थ है।[30] इन तीनों मूर्तियों की पीठिका पर भद्रमद्य के शासन काल के लेख उत्टंकित है। यह भी उल्लेख्य है कि तीनों मूर्तियों पर संवत 83 अंकित है और इनमें से दो में भद्रमद्य का उल्लेख है। इन प्रतिमाओं की विशेषता यह है कि आसनस्थ बुद्ध के वस्त्रों में उभरी हुई धारियां प्रदर्शित की गयी हैं और उत्तरीय से उनके दोनों स्कन्ध आच्छादित हैं। ये विशेषताएं गंधार शैली की बुद्ध प्रतिमाओं में मिलती है।? अतः यह कहना सर्वथा उचित होगा कि कौशाम्बी की द्वितीय शताब्दी ई0 की इन मूर्तियों पर गांधार कला का प्रभाव परिलक्षित होता है, किन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि ये प्रभाव गंधार क्षेत्र से सीधा कौशाम्बी पर नहीं पड़ा। इसे भी कौशाम्बी के शिल्पी ने मथुरा से ही ग्रहण किया था।

घोषिताराम से बुद्ध की एक स्थानक मूर्ति प्राप्त हुई है।[32] जो मथुरा के विपरीत सारनाथ की कंचुकी सुसज्जित शिरोभूषा, वर्णाभूषण और हार धारण किये हुए हैं। उनकी दोनों भुजाएं घुटनों पर हैं। इनके दाहिने हाथ में सम्भवतः शिशु अंकित है।

गुप्तकाल के आरम्भ में मध्यदेश में अनेक कला केन्द्रों यथा मथुरा, राजघाट आदि में मूर्तियों के निर्माण की प्रक्रिया तीव्र हो गयी। साथ ही इसमें कलात्मकता में भी वृद्धि हुई। गुप्तकालीन मृण्मूर्तियां प्रायः खण्डित हैं और साँचे से निर्मित हैं। इनमें स्त्री मूर्तियों की संख्या अधिक है।

izLrj ewfrZ f'kYi % भारतीय मूर्ति शिल्प के इतिहास में ईसा की आरम्भिक शताब्दियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण रही हैं। इस काल में देवी–देवताओं की प्रस्तर मूर्तियों का बहुसंख्यक निर्माण होने लगा था। यह शक्ति आन्दोलन का प्रभाव था जिसकी प्रक्रिया कई शताब्दी पूर्व आरम्भ हो चुकी थी। इस काल में ब्राहमण तथा लोकप्रिय सम्प्रदायों के अतिरिक्त बौद्ध तथा जैन सम्प्रदायों में भी मूर्ति पूजा को महत्ता प्राप्त हुई। इसके परिणामस्वरूप इस काल में अधिकांश देव मूर्तियों का निर्माण हुआ। इसी का प्रतिफल है कि इस काल में वेदिका स्तम्भों और तोरणों के अतिरिक्त स्वतंत्र मूर्तियां विशेष रूप से देव मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। कौशाम्बी से प्राप्त मूर्तियों में बुद्ध, हारीति, तीर्थंकर, गणेश, नाग एवं शिव–पार्वती की प्रतिमाएं हैं।

कौशाम्बी अत्यन्त महत्वूपर्ण बौद्ध केन्द्र था अतः बुद्ध मूर्ति का निर्माण होते ही यहां उसकी मांग हुई, जिसकी पूर्ति के लिए कनिष्ठ के दूसरे वर्ष में ही मथुरा से बुद्ध की प्रतिमा का आयात किया गया।[33] इस स्थिति में मथुरा से बुद्ध की मूर्तियों को प्राप्त करना एक अनिवार्यता थी, किन्तु कौशाम्बी में भी कुशल शिल्पियों की कमी नहीं थी। उन्होंने मथुरा द्वारा स्थापित कलात्मक प्रतिमानों के आधार पर शीघ्र ही बुद्ध मूर्ति का निर्माण प्रारम्भ कर दिया, इसी कारण परम्परा के अधिक निकट है।[34] मूर्ति के सम्पूर्ण पृष्ठ भाग में प्रभामण्डल बनाया गया है। कुषाण युग की परम्परा में उसका किनारा सिंहनख से अलंकृत है। इसके सम्मुख बुद्ध की स्थानक आकृति है। इस आकृति की रचना भी सारनाथ मूर्तियों से प्रभावित प्रतीत होती है। बुद्ध के वस्त्र पारदर्शक हैं, मात्र वामस्कन्ध ही उत्तरीय से आच्छादित है। इस प्रकार उत्तरीय का ऊपरी शिरा यज्ञोपवीत के समान दिखाई दे रहा है। शरीर यष्टि की रचना की विशेषता यह है कि उनकी कटि में भंग प्रदर्शित किया गया है और ग्रीवा में भी किंचित भंग है। मूर्ति की शैली कुषाण युगीन मूर्तियों से पर्याप्त

विकसित है किन्तु प्रभा मण्डल का अलंकरण एवं वस्त्र विन्यास गुप्त युगीन नहीं है। ऐसी स्थिति में इसका समय कुषाण–गुप्त के क्रान्ति काल अर्थात् लगभग तीसर शताब्दी ई0 निर्धारित करना समीचीन होगा।

कौशाम्बी के उत्खनन में एक कुबेर तथा हारिति की प्रतिमा प्राप्त हुई है जो अवश्य ही किसी बौद्ध धार्मिक स्थल में स्थापित रही होगी।[34,35] यह प्रतिमा मथुरा के लाल चित्तीदार पत्थर की है अतः किसी सम्पन्न श्रद्धालु बौद्ध द्वारा इसकी स्थापना करायी गयी होगी। कौशाम्बी से प्राप्त यह प्रतिमा मथुरा मूर्तियों से तुलनीय है।[36] मथुरा मूर्तियों की भांति कुबेर एवं हारीति उत्कृटिकासन में है। कुवेर के वाम पार्श्व में आसीन हारीति के शिरो भाग के ऊपर छत्र है।[37] मथुरा के ही समान वह अपने बायें भुजा से एक शिशु को पकड़े है जो अपने एक हाथ से उसके स्तन को स्पर्श कर रहा है। हारीति के दक्षिण हाथ में पुष्प का गुच्छा है। वह ग्रयवेयक एवं हार धारण किये हुए है। कुवेर के दक्षिण हाथ में धन की थैली और बायें हाथ में मधु घट पकड़े है।[38] मूर्ति की पीठिका पर अलंकरण मथुरा मूर्ति के सदृश है।[39]

गुप्तकाल में कौशाम्बी कला उत्तरोत्तर विकासोन्मुख रही। कौशाम्बी से अनेक गुप्कालीन पाषाण प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। इनमें लौकिक एवं देवमूर्तियाँ सम्मिलित हैं। इन मूर्तियों की रचना शैली में तद्‌युगीन कला की विशिष्टतायें परिलक्षित होती हैं। इनके मुख की आकृति भरी हुई, स्वस्थ है तथा गुप्तकालीन आदर्श अनुरूप इनका ललाट चौड़ा, नेत्र लम्बे, धनुषाकार, सुडौल नासिका, भरे ओष्ठ तथा प्रभावशाली चिंबुक प्रदर्शित किया गया है। शारीरिक अनुपात भी आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया है। वक्ष और नितम्बों के मध्य क्षीण कटि मानव शरीर को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया है।

यहां यह भी ध्यानार्ह है कि गुप्तकालीन कला में जैसी केश–सज्जा की विविधता मिलती है वैसी अन्य कलाओं में अत्यन्त दुर्लभ है। केशों को आभूषणों अथवा पुष्प मालाओं से सुसज्जित किया गया है। शरीर के अलंकरण के लिए स्वल्प आभूषणों का प्रयोग गुप्त काल की अपनी विशेषता है। यह विशेषता कौशाम्बी के मूर्तियों में भी प्राप्त होती है। यहां की मूर्तियों में समस्त अवयवों का उपयोग दिखलाई पड़ता है। यद्यपि पूर्ण मूर्तियों की संख्या अल्प है तथापि उपलब्ध मूर्तियों के मुख–मण्डल, शरीर रचना, परिधान अलंकरण में इसका पर्याप्त ध्यान रखा गया है। कौशाम्बी के उत्खनन में मूर्तियों के बहुसंख्यक शिरोभाग प्राप्त हुए हैं।[40] इनमें से अधिकांश बोधिसत्व प्रतीत होते हैं। बोधिसत्वों की अनेक खण्डित मूर्तियाँ भी कौशाम्बी से मिली हैं। दुर्भाग्यवश एक भी बोधिसत्व मूर्ति पूर्ण नहीं है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संग्रहालय में चार खण्डित बोधिसत्व मूर्तियाँ हैं और ये सभी भंग हैं।[41] इन मूर्तियों की रचना शैली अत्यन्त परिष्कृत है। वे अल्प आभूषण धारण किये हुए हैं जो अत्यन्त सुरूचिपूर्ण है। एक शिरोभाग युक्त बोधिसत्व मूर्ति के कटि के नीचे का भाग तथा दोनों भुजाएं खण्डित हैं। वे अत्यन्त सुन्दर, जटामुकुट धारण किये हुए हैं। सम्मुख भाग में जटा से अर्द्धचन्द्र जैसा आकार निर्मित किया गया है।[42]

कौशाम्बी से बुद्ध की दो मूर्तियाँ और एक मूर्ति का शिरोभाग उपलब्ध हुआ है, इनमें एक मूर्ति भूमि स्पर्श मुद्रा में और दूसरी धर्म चक्र प्रवर्तन मुद्रा में है। प्रथम मूर्ति की भुजाएं किंचित खण्डित हैं किन्तु उनकी स्थिति स्पष्ट है। वे पद्‌मासन में आसीन हैं। उनके दोनों स्कन्ध पारदर्शक संघाटी से आच्छादित है। बायीं भुजा गोद में रखी है और दाहिनी भूमि को स्पर्श करती हुई दिखलायी गयी है। बुद्धासन पर नारी मूर्तियाँ अंकित हैं जो स्पष्ट रूप से मार की पुत्रियाँ हैं।[43] शस्त्र बल से बोधिसत्व को विचलित करने में असफल होने पर मार ने उन्हें पथभ्रष्ट करने के लिए अपनी पुत्रियों को भेजा था। बुद्ध की मुखाकृति निश्चय ही मथुरा से भिन्न है। बुद्ध के मुख मण्डल पर शिशु जैसा कोमल भाव व्यक्त होता है जो सारनाथ की कतिपय मूर्तियों में प्राप्त है। उल्लेखनीय है कि बुद्ध की यह भूमि स्पर्श मुद्रा सारनाथ कला में अत्यन्त लोकप्रिय थी।[44] किन्तु यह मुद्रा मथुरा में एक भी गुप्तकालीन मूर्ति में नहीं मिलती है।

गुप्तकाल की एक अन्य खण्डित प्रतिमा धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में है।[45] यह मूर्ति कटि के ऊपर लगभग सुरक्षित है। बुद्ध के दोनों कन्धे पारदर्शक संघाटी से आच्छादित है, किन्तु सारनाथ के विपरीत इस प्रतिमा में भुजाओं पर गहरी रेखाओं की संख्या द्वारा चुन्नटें प्रदर्शित की गयी है, साथ ही बुद्ध का मुख–मण्डल सारनाथ परम्परा के निकट कोमल भाव से युक्त है।[46]

lUnHkZ

1. शर्मा, जी0आर0, हिस्ट्री टू प्री हिस्ट्री, पृ0—5
2. कौशाम्बी की कला, इलाहाबाद संग्रहालय, फरवरी—मार्च 1994
3. मिश्र, रमानाथ, भारतीय मूर्तिकला का इतिहास, कौशाम्बी शैली, परिशिष्ट—2 पृ0—311
4. तत्रैव, पृ0—312
5. तत्रैव, पृ0—314
6. तत्रैव, पृ0—316
7. इण्डियन आर्कियोलाजिकल ए रिव्यू, 1955—56, पृ0—20
8. तत्रैव
9. अग्रवाल, वासुदेव शरण, स्टडीज इन इण्डियन आर्ट, पृ0—63
10. इण्डियन आर्कयालाजी ए रिव्यू, 1953—54, फलक 11ए, इसी फलक पर अन्य चित्र भी हैं, तत्रैव, 1954—55, पृ0—18, फलक 32ए तथा 33
11. तत्रैव, 1956—57, पृ0—29 फलक 37, 38
12. रमानाथ मिश्र, भारतीय मूर्तिकला, पृ0—67
13. वासुदेव शरण अग्रवाल का यह कथन उचित ही है कि शुंगकालीन मृण्मूर्तियों की विविधता कौशाम्बी के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं दिखाई देती। इण्डियन आर्ट, पृ0—311
14. मैक्वायर्स आफ आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, 74, प्लेट 29—बी 1, 43—बी—3, 47—ए, 3, 9 आदि।
15. वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय कला, पृ0 324
16. तत्रैव, चित्र 502
17. वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय कला, पृ0 325
18. तत्रैव
19. तत्रैव
20. तत्रैव, पृ0 325—26, चित्र 503
21. तत्रैव, पृ0 326
22. तत्रैव, पृ0 327
23. अग्रवाल, वासुदेवशरण, इण्डियन आर्ट, पृ0 216—18
24. हिस्ट्री टू प्री हिस्ट्री, पृ0—48, कुवेर के बौद्ध धर्म में प्रवेश की चर्चा अन्यत्र भी की गयी है।
25. टेराकोटाज इन इलाहाबाद म्यूजियम, पृ0—103, बोधिसत्व की मूर्तियाँ मथुरा कला में कुषाण युग में निर्मित होनी शुरू हो गयी थी।
26. शर्मा, जी0आर0 हिस्ट्री टू प्री हिस्ट्री, पृ0 48
27. शर्मा, जी0आर0, तत्रैव
28. स्टोन स्कल्पचर इन इलाहाबाद म्युजियम, पृ0 63—64, प्लेट—41
29. शर्मा, जी0आर0, हिस्ट्री टू प्री हिस्ट्री, पृ0—36
30. तत्रैव
31. कुमार स्वामी, हिस्ट्री आफ इण्डिया एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, प्लेट 24
32. इण्डियन आर्कियोलाजिकल ए रिव्यू, 1956—57, पृ0—29, प्लेट 37 ए
33. जर्नल आफ द यूनाइटेड प्राविन्सेज हिस्टारिकल सोसाइटी (दिसम्बर 1942) पृ0—52, कुषाण स्टडीज, पृ0 44
34. सारनाथ संग्रहालय, संख्या बी0 (बी0) 4.254, 34
35. मैक्वायर्स आफ आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, (रिपोर्ट—74) पृ076, प्लेट 49
36. जर्नल आफ यू0पी0 हिस्टारिकल सोसायटी, (9 जुलाई 1936), प्लेट 14.47, भारतीय कला, पृ0—320
37. जर्नल आफ दि यूनाइटेड प्राविंसेज हिस्टारिकल सोसायटी, 22 (1949) पृ0 191—92, संख्या 455, 908
38. मथुरा संग्रहालय संख्या 25—26
39. मथुरा की सन्दर्भ कला, पृ0 40
40. शर्मा, जी0आर0, हिस्ट्री टू प्री हिस्ट्री, पृ0 37—38
41. तत्रैव, पृ0 39,55
42. तत्रैव, पृ0—39
43. तत्रैव, पृ0—40
44. सारनाथ का इतिहास, पृ0 224
45. कौशाम्बी संग्रहालय, संख्या 407
46. कुमार स्वामी, हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, पृ0—60, 74, 85

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 114-120

Hkkjr e: i:pk;rh jkt O;oLFkk dk cnyrk Lo:i

fl;kyky ukx*

i:Lrkouk% भारत विश्व का सबसे बड़ा प्रजातांत्रिक राष्ट्र है। किसी भी प्रजातांत्रिक राष्ट्र की सफलता व सार्थकता, बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि प्रभुत्व शक्ति अधिकाधिक मात्रा में जनता में निहित हो, इस प्रभुत्व शक्ति का अधिक से अधिक विस्तार हो–बिखराव हो–विकेन्द्रीकरण हो–पंचायती राज व्यवस्था निश्चित ही इस दिशा में एक अनुकरणीय व प्रशंसनीय प्रयास है। यह व्यवस्था न केवल जनता व प्रतिनिधियों में लोकतांत्रिक चरित्र्य का सृजन करती है। नवीन नेतृत्व को उभार कर अवसर प्रदन करती है, वरन् जनता व जनप्रतिनिधियों को उस योग्य भी बनाती हैं कि वे उच्च स्तर पर लोकतांत्रिक शासन में भाग ले सकें। वास्तव में भारत प्रजातांत्रिक राष्ट्र होने के साथ ग्राम प्रधान राष्ट्र भी है। भारत की आत्मा गॉवों में ही निवास करती है और ग्रामों में पंचायतें ही व्यवस्था का आधार हैं।

73वें संविधान संशोधन के पूर्व पंचायती राज व्यवस्था और इसकी कार्य –प्रणाली में ग्राम सभा की भूमिका नगण्य थी पर 73वें संविधान संशोधन में ग्राम सभा को मान्यता एवं महत्व देकर भारतीय लोकतंत्र में एक नया आयाम जोडा है। ग्राम सभाओं का जीवंत होना केवल पंचायती राजव्यवस्था का ही नहीं अपितु भारतीय लोकतंत्र की सफलता में भी सहायक सिद्ध होगा आज लोकतंत्र में जिमेदारी, जवाबदेही, पारदर्शिता का स्थान गौण हैं, पर पंचायती राज व्यवस्था ने आज ग्राम सभाओं के खुले मंच पर आम आदमी की भागीदारी से जिम्मेदारी, जवाबदेही व पारदर्शिता को एक नये आयाम की ओर ले जाना शुरू कर दिया है।

i:phu Hkkjr e: i:pk;r O;oLFkk% भारत गाँवों का देश है। यहां कि अधिकांश जनता गाँवों में बसती हैं। 1991 के जनगणना के अनुसार 71 प्रतिशत जनता गाँवों में निवास करती है। यद्यापि प्राचीन काल से ही भारत नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों में विभाजित था। दोंनों क्षेत्रों की प्रशासनिक व्यवस्था अलग–अलग होती थी। रामायण काल में जनपद ग्राम का उल्लेख मिलता है। जो संभवतः पंचायत के ही नाम थे। मनु संहिता में राजा और गाँव के बीच प्रत्यक्ष संबंधों की चर्चा मिलती है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पता चलता है कि राज्य ग्रामीण जीवन में बहुत कम हस्तक्षेप करता था। बौद्ध काल में भी ग्राम परिषदों का उल्लेख मिलता है।

बौद्ध कालीन साहित्यों से पता चलता है कि साक्ष्य गणराज्य में ग्राम की अपनी सभायें होती थी। जिसका अधिवेशन ग्राम के सभागार में होता था। ग्राम सभा में शांन्ति–सुरक्षा लड़ाई–झगड़े अपराध तथा ग्राम भूमि की व्यवस्था आदि का निर्माण ग्राम पंचायतों के द्वारा ही किया जाता था। वैदिक काल में गाँव के प्रशासन का उत्तरदायित्व कर्मचारी का होता था। जिन्हें सलाह तथा सहायता देने के लिए बुजुर्गों की एक परिषद को ग्रामीण कहा जाता था। मौर्यकाल में भी ग्राम पंचायतों का उल्लेख मिलता है। इस काल में ग्राम सीमाएँ पहाड़, जंगल, तालाब, अथवा वृक्षों से निर्धारित की जाती थी।

इसी तरह की पंचायती राज व्यवस्था के बारे में राजा हर्षवर्द्धन के शिलालेखों से जानकारी उसके शासनकाल के बारे में होती थी। ईसवी शताब्दी में पूर्व में दक्षिण में पंचायतें पूर्ण अस्तित्व में थी। संपूर्ण शासन का कार्य भारत एक महासभा पर केन्द्रित होता था। जिसका आधार चुनाव प्रणाली होता था। शासन की प्रमुख श्रृखला के रुप में ज्ञात उस महासभा के सदस्यों को ग्रामीण लोगों द्वारा चुना जाता था।

*शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, बस्तर विश्वविद्यालय, जगदलपुर

महासभा के सदस्यों से विभिन्न समितियों का निर्माण होता था। न्यायिक प्रक्रिया का दायित्व उस काल में पंचायतों के पास ही होता था।

1- ofnd dky e i pk;r 0;oLFkk %& प्रारम्भिक आर्यों के काल में भी विकास की प्रमुख इकाई के रुप में ग्राम पंचायतें विद्यमान थी। 1500 ई. पू. से 3500 ई. पू. तक वेदों में राज्य के विभिन्न कर्मचारियों की भूमिका के अन्तर्गत पंचायतों का उल्लेख मिलता है। उस समय राज्य में तीन अधिकारी हुआ करते थे। सबसे पहले पुरोहित, दूसरा सेनापति, एवं तीसरा अधिकारी ग्रामीण होता था। ग्रामीणी ग्राम का अधिपति एवं पंचायत का प्रमुख होता था। ग्राम ग्रामीणी सैनिक आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करते थे। मुख्य भूमिका का निर्वहन करता था। ब्राम्हण भी ग्राम के मुखिया के रुप में अग्रणी था। जिसका उल्लेख मिलता है।

2- ck)dky e i pk;rh jkt 0;oLFkk %& बौद्धकाल (600 ई.से 400ई.पू.) में ग्रामों की शासन व्यवस्था सुनिश्चित और सुगठित थी। संपूर्ण जनपद के शासन की इकाई ग्राम थे। ग्राम के शासक को ग्राम योजक कहते थे। ग्राम योजक के उपर था। वह ग्राम के अभियोगों का निर्णय करता था। मद्यपान, जुआ, पशुहिंसा जैसी दूषित प्रवृत्तियों को निषिद्ध करने का अधिकार उसको प्राप्त था।

मादक वस्तुओं का क्रय–विक्रय उसकी आज्ञा या अनुमति पर ही सम्भव था। किन्तु इसका अर्थ वह नहीं था कि ग्रामयोजक अपने क्षेत्र में स्वेच्छाचारी शासन बन बैठता था। उसके कार्यों के विरुद्ध राजा के पास अपील की जा सकती थी। राज्यों को आवश्यकतानुसार ग्राम शासन में संशोधन करने तथा ग्राम योजक को अपदस्थ करने का अधिकार था।

कृषि और व्यापार पर भी ग्रामयोजक के माध्यम से विशेष ध्यान रखा जाता था। पहले समूह को ग्राम कहते थे। लेकिन इसके बाद बहुत से लोग जब एक स्थान पर बस जाते थे तो उनकी संपूर्ण बस्ती को ग्राम या गाँव कहा जाने लगा था। खेतों पर किसानों का अधिकार था। किसान ग्राम पंचायत की अनुमति के बिना अपने खेत दूसरे को नही बेच सकते थे। ग्राम पंचायतों को ग्राम सभा कहा जाता था और इसका मुखिया ग्राम योजक होता था। ग्राम योजक का चुनाव सभा द्वारा होता था। इस दौरान गाँव सभी दृष्टियों से छोटे रुप में पूर्व स्वावलम्बी प्रजातंत्र थे।

3- ek;dkyhu 'kklu e i pk;rh jkt %& चन्द्रगुप्त मौर्य (305 ई. पू. से 322 ई. पू. के महत्व) के शासन काल में स्थानीय के प्रबंधन में सुव्यवस्थित राज प्रणाली का उल्लेख तत्कालीन प्रधानमंत्री चन्द्रगुप्त के गुरु चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र नामक राजनीतिक ग्रन्थ में विवेचनात्मक शैली में किया है।

चन्द्रगुप्त के साम्राज्य में गाँव का शासन ग्राम सभा के द्वारा होता था। लेकिन इस समय ग्राम सभा की व्यवस्था पूर्वकालिक शासको में सर्वथा भिन्न थी। सरकार द्वारा उसकी नियुक्ति होती थी। एवं ग्राम अधिकारी (ग्रामिक) सरकारी अधिकारी समझा जाता था। ग्रामिक की सहायता के लिए ग्राम सभा होती थी। जिसके सदस्य वयोवृद्ध गाँव वालों के द्वारा चुने जाते थे।

4- xIrdkyhu 'kklu e i pk;rh jkt %& गुप्तकालीन साम्राज्य में भी ग्राम पंचायतों का उल्लेख मिलता है। शासन की सुविधा की दृष्टि से गुप्त साम्राज्य के प्रभाव निम्नांकित थे। सबसे बड़ा प्रान्त था। जिसको देश भक्ति कहते थे। प्रान्तीय शासन यागिक, योगपति, गोया, उपरीक महराज और स्थानीय कहलाते थे। प्रान्तों में छोटा विभाग प्रदेश और इससे छोटा विशम होता था जो जिले के समकक्ष था। विषयों के उपर विषपति, अथवा महाराज शासन करते थे। शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम होती थी। जिसका मुख्य अधिकारी ग्रामिक महत्तर अथवा भोजक होता था। पुण्यभूति वंश और काव्य कुंदज साम्राज्य के बारे में हर्ष चरित में पंचायते ही शासन व्यवस्था की उत्कृष्टता का उल्लेख मिलता है।

ऐसा माना जाता है कि उस दौरान स्थानीय शासन में नगर शासन का अस्तित्व नहीं था। अपितु अपने संपूर्ण प्रभाव से ग्राम पंचायतें ही शासन की बागडोर संभालती थी। तत्कालीन उत्कीर्ण लेखों के अनुसार ग्राम सभा का प्रमुख ग्रामिक होता था। जो एक सरकारी अधिकारी होता था। उसके अधीनस्थ कई कर्मचारियों की व्यवस्था होती थी ।

ग्रामिक के प्रमुख अधीनस्थ अधिकारियों में अस्टकुलधिकरण (आठ कुलों का निरीक्षक) भाण्डागाराधिकृत (भण्डार का अध्यक्ष) तलवाटक (गाँव का लेखा रखने वाला) अक्षपटलिक (कागज पत्रों का संरक्षक) दीवार या लेखक करणिन (रजिस्ट्रार) कृत या शासकीय (कागज पत्रों की पाणुलिपि बनाने वाला) होते थे।

5- jktiir dky e iipk;rh jkt % राजपुत काल में ग्राम पंचायतों का महत्व छट गया। उन पर भी सामन्तों का अधिकार सत्ता छा गयी ग्राम शासन में दक्षिण भारत जितना संगठित था। उतना उत्तर भारत नहीं था। राज्य के विशाल होने पर तत्कालीन शासन प्रान्तों जिलों अधिष्ठानों और ग्रामों में विभक्त होता था। इस वृद्वि से शासन पद्वति के आधार पर ही थी। परन्तु शासन के विकेन्द्रीकरण की भावना पर आध ाारित होने के कारण केन्द्रीय शक्ति को सदैव खतरा बना रहता था। सामंतगण बहुधा केन्द्र के स्वतंत्र होने की श्रेष्टा करते रहते थे।

6- fcfV'k dky e iipk;rh jkt % ब्रिटिश शासन काल में भारत की प्राचीन सुदृढ़ शासन प्रणाली से तहस नहस करने में सर्वप्रथम पंचायत व्यवस्था को चुना गया, परन्तु यह सुदृढ़ शासन प्रणाली टूटी नहीं और उसका स्वरुप बिरादरी ने ले लिया लेकिन बाद में विकास के मूल अंग्रेजों ने पंचायत के महत्व को समझा और सन् 1250 ई.ये सभी प्रांतों से ग्राम पंचायत अधिनियम पारितकर उसे अत्यल्प अधिकारी के साथ क्रियान्विते किया गया। अंग्रेजी शासन प्रणाली में पंचो का जनता द्वारा चुनाव न होकर वे सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते थे। उन्हे न्यायिक अधिकार थी, नहीं सौंपे गये थे। चूंकि पंचायती राज की स्थापना के मूल में अंग्रेजों का लक्ष्य कुछ भी रहा हो पर वे इसे शासन का सुदृढ़ संगठन अवश्य मानते थे। इसी तथ्य की वास्तविकता को सिद्व करने के लिए सन् 1907–08 ई. में ब्रिटिश सरकार द्वारा विकेन्द्रीकरण के लिए गठित रायल समिति की सन् 1909 में पेंश रिपोर्ट निम्न सुझाव थे।

1. पंचायतों को छोटे स्तर के सिविल तथा फौजदारी मुददों पर स्वयं हल करना चाहिए।
2. चयनित पंचायतों को ईधन एवं लकड़ी के साधानों पर अपना नियंत्रण रखना चाहिए।
3. ग्राम पंचायत का सफाई व्यवस्था निर्माण व्यवस्था का भार सौंप देना चाहिए ।

vk/kfud dky e iipk;rh jkt 'kklu i.kkyh % भारतीय नेताओं द्वारा 1885 में कांग्रेस के गठन से ही भारत में पंचायती राज शासन की मांग ब्रिटिश सरकार से किया जाता रहा। ग्रामीण पंचायतों को पुनः जीवित करने की मांग सर्वप्रथम 1909 में की गयी। सन् 1909 में कांग्रेस दल ने लाहौर में आयोजित अपने 24 वें अधिवेंशन में रखा गया। इसके बाद सन् 1913 में लाहौर में 28 वें कांग्रेस अधिवेशन में कांग्रेस को पुनः ग्राम पंचायत के गठन की मांग की। सन् 1915 में गांधी जी के दक्षिण अफ्रीक से लौटने के बाद पुरे देश में स्वदेशी का लहर दौड़ गयी। तब 14 फरवरी 1916 को मद्रस मिशनरी सम्मेलन में गांधी जी ने सर्वप्रथम ग्राम पंचायत का मांग उठाया उन्होंने एक ऐसी संस्था के गठन की मांग की जिसके माध्यम से जनता स्वयं अपने शासन को संचालित कर सकें।

cyorjk; egrk lfefr ifronu % समुदायिक विकास कार्यक्रम पर काफी खर्चा हो चुकने और इसकी सफलता के लम्बे चौड़े दावों के बाद इसकी जांच के लिए एक अध्ययन दल 1957 में नियुक्ति किया गया। इस अध्ययन दल के अध्यक्ष श्री बलवंतराय मेहता थे। अध्ययन दल को सौंपे गए कार्यो में एक कार्य जिसका कि दल को अध्ययन करना था। यह था, कि कार्य सम्पदन में अधिक तीव्रता लाने के उद्‌देश्य से कार्यक्रम का संगठनात्मक ढ़ांचा तथा कार्य करने के तरीके कहां तक उपयुक्त थे। इस दल ने सरकार को बताया की सामुदायिक विकास कार्यक्रम की बुनयादी त्रुटि यह है कि जनता का इसमें सहयोग नहीं मिला अध्ययन दल ने सुझाव दिया कि एक कार्यक्रम को जिसका कि लोगो के दिन–प्रतिदिन के जीवन से सम्बंध हैं, केवल उन लोगों के द्वारा ही कार्यान्वित किया जा सकता है। 'मेहता अध्ययन दल' ने 1957 के अंत में अपनी रिपोर्ट में यह सिफारिश की कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सफल बनाने हेतु पंचायती राज संस्थाओं तुरन्त शुरुआत की जानी चाहिए। अध्ययन दल ने इसे 'लोकतंत्रीय विकेन्द्रीकरण' का नाम दिया।

v'kksd esgrk eaMy % जनता पार्टी के सत्ता में आने के बाद 12 सितंबर 1977 को मंत्रिमण्डल सचिवालय ने पंचायती राज संस्थाओं की कार्यप्रणाली का अध्ययन करने एवं प्रचलित ढ़ांचे में आवश्यक परिर्वतन सुझाव हेतु एक उच्चस्तरीय समिति नियुक्त की। श्री अशोक मेहता इस समिति के अध्यक्ष थे। इस समिति ने अपने प्रतिवेदन में पंचायती राज संस्थाओ का एक नया प्रतिमान (मॉडल) सुझाया था। समिति के सिफारिश के पीछे मूल भावना यह थी कि सत्ता का विकेन्द्रीकरण कर उसे संस्थागत रुप प्रदान किया जाए। समिति द्वारा सुझाव गए पंचायती राज प्रतिमान (मॉडल) की प्रमुख विशेषतांए इस प्रकार है। प्रथम, जिला परिषद को मजबूत बनाया जाए तथा ग्राम पंचायत की जगह मण्डल पंचायत की स्थापना की जाए। अर्थात पंचायती राज संस्थाओं के संगठन के दो स्तर–जिला परिषद तथा मण्डल पंचायत हो। द्वितीय, जिले को विकेन्द्रीकरण की धुरी माना जाए तथा जिला परिषद को समस्त विकास कार्यो का केन्द्रबिन्दु बनाया जाए। जिला परिषद ही जिले का अर्थिक नियोजन कार्य करेंगी समस्त, समस्त विकास कार्यो में सामंजस्य स्थापित करेंगी। तृतीय, जिला परिषद के बाद मण्डल पंचायतों को विकास कार्यक्रम का आधारभूत संगठन बनाया जाना चाहिए। मण्डल पंचायतों का गठन कई गाँवों से मिलकर होगा। ये मण्डल पंचायतें 15,000–20,000 की जनसंख्या पर गठित की जाएगी। मण्डल पंचायतों को कार्यक्रम क्रियान्वयन की दृष्टि से धरातलीय संगठन के रुप में विकसित किया जाए। धीरे धीरे पंचायत समितियां समाप्त हो जाएगी और उनका स्थान मण्डल पंचायतें ले लेगी। चतुर्थ, पंचायती राज संस्थाएँ समिति प्रणाली के आधार पर अपने कार्यो का सम्पादन करें। पंचम, जिला कलेक्टर सहित जिला स्तर के सभी अधिकारी अंततः जिला परिषद के मातहत रखें जाएं। षट, इन संस्थाओं के निर्वाचनो में राजनीतिक दलों को खुले तौर से अपने चुनाव चिन्हों के आधार पर भाग लेने की स्वीकृति दी जाए सप्तम, न्याय पंचायतों को विकास पंचायतों के साथ नहीं मिलाया जाना चाहिए। यादि न्याय पंचायत की अध्यक्षता योग्य न्यायधीश करें और निर्वाचित न्याय पंचायतों को उनके साथ सम्बंध कर दिया जाए तो अधिक अच्छा होगा।

Mk- th-oh-ds-jko lfefr % 1985 में डॉ.जी.वी.के. राव समिति को गठित करके उसे ग्रामीण विकास तथा गरीबी के लिए प्रशासनिक व्यवस्था पर विचार करने का कार्य सौंपा गया। समिति ने चार सोपान वाली प्रणाली की सिफारिश की थी। जिसमें राज्य विकास परिषद जिला परिषद पंचायत समिति, मण्डल पंचायत तथा ग्राम सभा होगी। लेकिन इस समिति की सिफारिशों को भी लागू नही किया गया।

Mk- ,y- ,e- fla/koh lfefr % 1987 में डॉ.एल.एम. सिधंवी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन हुआ जिसे पंचायती राज संस्थाओं के कार्यों की समीक्षा करने तथा उसके सुधार करने के संबंध थे। सिफारिश करने का दायित्व सौंपा गया। इस समिति ने ग्राम पंचायत को अधिक जीवन ओर सक्षम बनाने के लिए गाँवों के पुनर्गठन की सिफारिश की तथा इन संस्थाओं को अधिक वित्तीय संसाधन सुलभ कराने का सुझाव दिया ।

ih-ds- Fkqxu lfefr % 1988 में पी.के.थुगन की अध्यक्षता में कार्मिक लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय की संसदीय सलाहकार समिति की एक उप–समिति का गठन किया गया। इस समिति को यह विचार करने का दायित्व सौंपा गया कि जिला स्तर की आयोजन के लिए जिले में किस प्रकार की राजनीति और प्रशासनिक संरचना की स्थापना की जाए। समिति ने यह सुझाव दिया कि पंचायती राज का संवैधानिक व्यवस्था की जानी चाहिए तथा इनका कार्यकाल पांच वर्ष होना चाहिए। इस समिति का मत था कि जिला परिषदों को केवल योजना और विकास से संबंधित होना चाहिए।

iapk;rh jkt mRrj p<ko % भारतीय संघ के अधिकांश राज्यों ने पंचायती राज संस्थाओं के गठन के लिए अधिनियम पारित किये। राजस्थान सबसे पहला राज्य था। जिसने अपने यहां पंचायती राज की स्थापना की। इस योजना का उद्घाटन 2 अक्टूबर 1959 को प्रधानमंत्री नेहरु द्वारा नागौर में किया गया। 1959 में ही आंध्रप्रदेश भी पंचायती राज व्यवस्था को अपने प्रान्त में लागू कर राजस्थान के साथ पहले

नम्बर पर आ गया। पंचायती राज संस्थाओं की संरचना विभिन्न राज्यों में अलग अलग रही। देश के 14 राज्यों/संघ शासित क्षेत्रों में एक स्तरीय प्रणाली थी।

i¡pk;rh jkt dk u;k ifreku ¼73ok lfo/kku l'kk/ku½ संविधान के 73 वें संशोधन द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को सांविधानिक मान्यता प्रदान की गई है। संविधान में नया अध्याय 9 जोड़ा गया, अध्याय 9 द्वारा संविधान में 16 अनुच्छेद और एक अनुसूचि–11वी अनुसूचि जोड़ी गयी है। 25 अप्रैल 1993 से 73वां संविधान संशोधन अधिनियम 1993 लागू किया गया है।

इसी के आधार पर वर्तमान भारत में त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था चल रही है। जो कि निम्नलिखित इस प्रकार है।

¼1½ xke Lrj ij xke i¡pk;r ½

प्रत्येक ग्राम पंचायत में न्यूनतम 10 वार्ड होंगे तथा पंचायत की जनसंख्या 1000 से अधिक होगी। प्रत्येक वार्ड की संख्या 20 से अधिक नहीं होगी। प्रत्येक वार्ड से एक पंच का चुनाव किया जायेगा। ग्राम पंचायत के गठन से सम्बंधित प्रवाधान अधिनियम के अनुछेच्द 12 में किया गया है।

¼2½ fodkl [k.M Lrj ij tuin i¡pk;r ½

प्रत्येक जनपद पंचायत को जनसंख्या के आधार पर अधिकतम 25 निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है। प्रत्येक क्षेत्र की जनसंख्या 5,000से अधिक तथा 50,000से कम होनी चाहिए।

¼3½ ftyk Lrj ij ftyk i¡pk;r :

जिला पंचायत के लिए निर्वाचन क्षेत्रों का विभाजन राज्य सरकार की अधिसूचना द्वारा जनसंख्या के आधार पर किया जाता है। निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या 50,000से कम तथा 5,00,000 से अधिक न हो जिले को न्यूनतम 10 तथा अधिकतम 35 निर्वाचन क्षेत्रों (वार्ड) में विभक्त किया जायेगा।

i¡pk;rh jkt dh miyfC/k;k¡ ,o leL;k,¡ ½

हमारे देश में पंचायती राज की शुरुआत को एक ऐतिहासिक घटना कहा गया है। पंचायती राज संस्थाओं से अधिक प्रशंसा बहुत ही कम संस्थाओं को प्राप्त हुई है। पं. नेहरु ने स्वयं कहा था कि "मैं पंचायती राज के प्रति पूर्णतः आशान्वित हूँ। मैं महसूस करता हूँ कि भारत के सन्दर्भ में यह बहुत कुछ मौलिक एवं क्रांतिकारी है। प्रो. रजनी कोठारी के अनुसार इन संस्थाओं ने नए स्थानीय नेताओं को जन्म दिया है जो आगे चलकर राज्य और केन्द्रीय सभाओं के निर्वाचित प्रतिनिधियों से अधीक शाक्तिशाली हो सकते हैं। कांग्रेस और अन्य दलों के राजनीतिज्ञ इन संस्थाओं को समझने लगे हैं। अब वे राज्य–विध ाानमण्डल के बजाय पंचायत समिति और जिला परिषदों को तरजीह देने लगे हैं। "वस्तुतःइन संस्थाओ ने देश के राजनीतिक, आधुनिकीकरण और समाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है तथा हमारी राजनीतिक व्यवस्था में जन हिस्सेदारी में वृद्धि करके गाँवों में जागरुकता उत्पन्न कर दी है। फिर भी यह तो कहना ही पड़ेगा कि पिछले 40 वर्षो का अनुभव विशेष उत्साहवर्द्धक नही रहा। ये संस्थाएँ ग्रामीण जनता में नयी आशा और विश्वास पैदा करने में असफल रही है। वस्तुतः जब तक ग्रामीण जनता में चेतना नहीं आती तब तक ये संस्थाएँ सफल नहीं हो सकती, किन्तु इसका यह तात्पर्य कदापि नही कि पंचायती राज–व्यवस्था असफल हो गयी है। कुछ राज्यों में तथा कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में इन संस्थाओं ने सराहनीय कार्य किया है। यह कार्य मुख्यतः नागरिक सुविधाओं के ही सम्बन्ध में हुआ है। पंचायती राज संस्थाओं के समक्ष कुछ नयी समस्याएं उत्पन्न हो गयी है, कुछ पहले ही थी, जिनका निराकरण करना आवश्यक हैं ये समस्याएं।

¼1½ lRrk dk fodsUnzhdj.k dh leL;k ½

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की सफलता की पहली शर्त सत्ता का स्थानीय संस्थाओं के हस्तान्तरण करना है। पंचायती राज संस्थाओं को स्वायत्त शासन की शक्तिशाली ईकाइयां बनाना था। यह तभी सम्भव है। जब प्रेरणा नीचे के स्तर से शुरु हो और उच्च स्तर केवल मार्ग निर्देशन करे। राज्य

सरकारें इन संस्थाओं को अपने आदेशों का पालन करने वाला एजेण्ट मात्र न समझे, इसके लिए नौकरशाही की मनोवृत्ति में परिवर्तन की आवश्यकता है।

¼2½ vf'k{kk ,oa fu/kZurk dh leL;k % अशिक्षा और ग्रामीणों की निर्धनता की विकट समस्या है। इसके कारण ग्रामीण नेतृत्व का विकास नहीं हो रहा है और वे अपने संकीर्ण दायरों से ऊपर नहीं उठ पाते हैं, किन्तु वर्तमान में शिक्षा की दिशा में शासन द्वारा किए गए कार्यो से हमारे उत्साह में वृद्वि हो रही है।

¼3½ nyxr jktuhfr % पंचायती राज की सफलता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा दलगत राजनीति है। पंचायतें राजनीति का अखाड़ा बनती जा रही है। पंचायतों में छोटी छोटी बातों को लेकर झगडे हुआ करते हैं, दलबन्दी होती है और बहुत सा समय लड़ने–झगड़ने में निकल जाता है। यदि हमारे राजनीतिक दल पंचायतों के चुनावों में हस्तक्षेप करना बंद कर दें, तो पंचायतों को गन्दी राजनीति के दलदल से निकाला जा सकता है।

(4½ /ku dh leL;k % धन की समस्या पंचायती राज संस्थाओं के सामने शुरु से ही रही है। इन संस्थाओं को स्वतंत्र अर्थिक स्रोत या तो दिए ही नही गए या फिर जो भी दिए गए वे अर्थशून्य है। परिणामतः शासकीय अनुदानों पर ही जीवित रहना पड़ता है। अतः आय के प्रर्याप्त एवं स्वतंत्र स्रोत पंचायती संस्थाओं को दिए जाने चाहिए, ताकि उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बन सकें। 73वें संविधान संशोधन द्वारा इस समस्या के निराकरण हेतु प्रावधान किये गये हैं।

इनके अतिरिक्त और भी कई समस्याएं है। कई समस्याएं है, राजनीतिक जागरुकता की कमी, विकास कार्यो की उपेक्षा, शासकीय अधिकारियों एवं निर्वाचित प्रतिनिधियों में सहयोग का अभाव आदि।

iapk;rh jkt dh lQyrk ds fy, lq>ko % भारत के लिए गांव अर्थिक समृद्धि का प्रतीक है और गाँवों का सर्वांगीण विकास पंचायतों की सफलता के द्वारा ही सम्भव है। पंचायतों की सफलता के लिए निम्नांकित सुझाव दिए जा सकते हैं–

(1) पंचायती राज संस्थाओं में व्याप्त गुटबन्दी को समाप्त करना होगा।

(2) पंचायतों के चुनावों में मतदान को अनिवार्य करना होगा और जो मतदाता चुनाव में भाग न ले उस पर कुछ दण्ड लगाया जाए, जो पचास रुपयों से अधिक न हो।

(3) पंचायतों की वित्तीय हालत सुधारनी होगी।

(4) अधिकारियों को पंचायतों के मित्र, दार्शनिक और पथ–प्रदर्शक रुप में कार्य करना चाहिए।

(5) पंचायतों के निर्वाचित प्रतिनिधियों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए और अंत में पंचायतों पर विश्वास करना होगा, वे गलतियां करेगी और हमारा दृष्टिकोण गलतियां करेंगी और हमारा दृष्टिकोण उनके प्रति उदार ही अपेक्षित है।

fu"d"kZ %

भारतीय लोकतंत्र पद्धति का मूल आधार पंचायती राज व्यवस्था रही है। भारत का परिवेश सदैव से ही ग्रामीण पृष्ठभूमि से सम्बंध रहा है। सभ्य समाज की स्थापना से ही पंचायती राज के आदर्श और मूल सिद्वांत उसकी चेतना में विकसित होते रहे है। इस व्यवस्था को अलग–अलग कालो में अलग–अलग नाम से पुकारा गया, लेकिन इन सारी व्यवस्थाओ में अपने आप सुलझाने की प्रवृत्ति निरंतर विकसित होती रही, सहकारिता और आत्मनिर्भरता या स्वावलंबन इस व्यवस्था का मूल मंत्र रहा है।

lUnHkZ %

1. बाजापेयी, अशोक– ''ग्राम विकास एवं पंचायती राज पंचायत, राज एंड रूरल डेवलपमेंट, सहिता प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997।

2. द्विवेदी, डॉ. राधेश्याम– म. प्र. पंचायती राज अधिनियम, 1993।

3. जैन, डॉ. पुखराज एवं डॉ. फड़िया बी.एल.– ''भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2003।

4. जैन, डॉ. पुखराज,– ''राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त,,।
5. कोठारी, डॉ. रजनी,– ''भारत में दलीय व्यवस्था और संसदीय लोकतंत्र,, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
6. नेहरू जवाहरलाल– ''सामुदायिक विकास व पंचायती राज,, 1965, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, दिल्ली
7. प्रसाद विष्णु, ''भारत में स्थानीय स्वायत्तता शासन प्रणाली,, ,1983।
8. रघुकुल तिलक– ''लोकतंत्र स्वरूप एवं समस्याएं''।
9. सिंह, आर. एल,– ''लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण, लोक प्रशासन, 1977 रतन प्रकाशन, आगरा।
10. शर्मा, डॉ. प्रभुदत्त,– ''ग्रामीण स्थानीय प्रशासन,, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1986।
11. शर्मा, विद्यासागर,– ''पंचायती राज भारत में पंचायती प्रणाली के महत्व, इतिहास और वर्तमान स्वरूप का विवेचन'', हिन्दुस्तान एकेडमी में, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद, 1963।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 121-124

iapk;rh jkT; O;oLFkk % jktuhfrd ,oa laoS/kkfud foe'kZ

lkuh ;kno*

भारत गाँवों का देश है। गाँवों की उन्नति और प्रगति पर ही देश की उन्नति और प्रगति निर्भर करती है। सत्ता का विकेन्द्रीकरण का प्रचलन भारतीय समाज में पुरातन काल से व्यवहार में प्रचलित रहा है। प्राचीन भारत में भी गांवों में सभा एवं समितियाँ होती थी जो स्थानीय विभेद के मुद्दो आपसी सहयोग से सुलझाती थी। प्राचीन काल से लेकर मध्यकालीन भारत एवं ब्रिटिश साम्राज्य के दौरान भी बड़े–बड़े साम्राज्यों (नंद, मौर्य, गुप्त, गुलाम, मुगल वंश आदि) के काल में ये ग्रामीण निकाय सम्राटों एवं बादशाहों द्वारा निश्चित करों की उगाही की सबसे छोटी इकाई के रूप में अस्तित्व में बने रहे।

गाँधी जी ने इसके विषय में कहा था कि ''यदि गाँव नष्ट होते हैं तो भारत नष्ट हो जायेगा, वह भारत नहीं होगा, विश्व में उसका सन्देश समाप्त हो जायेगा।'' ब्रिटिश शासन के समय 1882 का रिपन का संकल्प भारत में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के आधुनिक प्रारूप का द्योतक है। इसके तहत स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं की स्थापना करके प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण की सिफारिश की थी। इसकी दिशा में हाँव हाउस की अध्यक्षता में स्थापित विकेन्द्रीकरण पर रॉयल आयोग का प्रतिवेदन (1909) एवं 1919 का मोंटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार मील के पत्थर साबित हुए। 1882 से 1935 तक की विधायी एवं प्रशासकीय प्रतिवेदनों ने भारतीयों के लिए स्थानीय स्वशासन की विकेन्द्रीकृत व्यवस्था में सहभागिता सुनिश्चित कर दी।

भारत के संविधान निर्माता भी इस बात से पूर्णतः परिचित थे, अतः हमारी स्वाधीनता को साकार करने और उसे स्थायी बनाने के लिए ग्रामीण शासन व्यवस्था की ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया। हमारे संविधान में यह निर्देश दिया गया है कि ''राज्य ग्राम पंचायतों के निर्माण के लिए कदम उठाएगा और उन्हें इतनी शक्ति और अधिकार प्रदान करेगा जिससे कि वे (ग्राम–पंचायतें) स्वशासन की इकाई के रूप में कार्य कर सकें। संविधान सभा में सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर गहन विमर्श हुआ, जिसके परिणामस्वरूप गाँधी के ग्राम स्वराज की परिकल्पना के मद्देनजर राज्य संविधान में नीति निर्देशक सिद्धान्तों में अनुच्छेद 40 का प्रावधान रखा गया। इस अनुच्छेद के तहत राज्य सरकारों को प्रयास करना था कि ग्राम पंचायतों का गठन हो तथा इन ग्राम–पंचायतों को शक्तियाँ एवं सत्ता हस्तांतरित की जाय ताकि वे स्वशासन की इकाइयों के रूप में कार्य कर सकें।

प्रो0 रजनीकोठारी के अनुसार, ''राष्ट्रीय नेतृत्व का एक दूरदर्शितापूर्ण कार्य था पंचायती राज्य की स्थापना। इससे भारतीय राज–व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण हो रहा है और देश में एक–सी स्थानीय संस्था के निर्माण से उनकी एकता भी बढ़ रही है। इसकी शुरूवात करने का श्रेय जवाहरलाल नेहरू को है। पण्डित नेहरू का कहना था कि ''गावों के लोगों को अधिकार सौपना चाहिए उसको काम करने दो चाहे वे हजारो गलतियाँ करें। इससे घवराने की जरूरत नहीं। पंचायतों को अधिकार दो।''

भारतीय संविधान के भाग–9 के अनुसार समस्त ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायतों की स्थापना आवश्यक है। संवैधानिक पंचायतों की स्थापना 73वें संविधान संशोधन के बाद 1993 से प्रारम्भ हुई है। अध्याय 9 द्वारा संविधान में 16 अनुच्छेद और एक अनुसूची (XI) जोड़ी गयी। 73वां संविधान संशोधन 1993 अधिनियम के लागू होने के परिणामस्वरूप जम्मू–कश्मीर, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली और उत्तर प्रदेश को छोड़कर लगभग सभी राज्यों केन्द्र–शासित प्रदेशों ने अपने कानून बना लिए हैं। इसके अलावा सभी राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों में चुनाव सम्पन्न करा लिये। (धातव्य है कि 1957 में बलवन्त राय मेहता समिति

*शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

की सिफारिश पर 1959 में राजस्थान के नागौर जिले में प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने ग्राम पंचायत का औपचारिक उद्घाटन किया था।) परिणामस्वरूप देश में ग्राम स्तर पर 2,32,278 पंचायतों मध्यस्तर पर 6,022 पंचायतों और जिला स्तर पर 533 पंचायतों के चुनाव करवा लिये थे। ये पंचायतें सभी स्तर पर लगभग 29.2 लाख चुने गये प्रतिनिधियों द्वारा संचालित की जा रही है। इस प्रकार यह एक व्यापक प्रतिनिधि आधार है जो विश्व के किसी भी अन्य विकसित अथवा विकासशील देशों में विद्यमान नहीं है।

यद्यपि कालान्तर में प्रायः सभी ग्रामीण संस्थाओं का ह्रास हो गया, परन्तु सर्वानुमति व सर्वसहमति की परम्परा भारतीय जनमानस में आज भी स्थापित है तथा भारतीय ग्रामीण समाज में आज भी आम–तौर पर सामूहिक निर्णय सहिष्णुतापूर्वक किये जाने पर बल दिया जाता है। व्यवहारिक रूप से स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् के पहले एक–दो दशको में सम्पूर्ण भारतीय ग्रामीण जगत में केवल एक ही दल का वर्चस्व रहा तथा अन्य राजनीतिक दल महानगरों व बड़े शहरों तक सीमित रहे तथा अधिकांश छोटे कस्बों तक भी नहीं पहुँच पाये। इस वातावरण में कुछ विचारकों ने प्राचीन भारत की राजनीतिक परम्पराओं का उदाहरण देते हुए दलविहीन पंचायत राज व्यवस्था का आदर्श एक वैचारिक स्तर पर प्रतिपादित किया जिसको व्यावहारिक रूप में भी मान्यता मिली, क्योंकि कोई भी राजनीतिक दल भारत के लाखों ग्रामों में अपनी इकाई स्थापित करने में सक्षम नहीं था।

यहाँ संवैधानिक पंचायतों के बारे में राजनीतिक दलों की भूमिका पर व्यावहारिक व वैचारिक स्तर पर विश्लेषण पिछले पांच वर्षों की सीमित समयावधि व पिछले पांच दशकों के कुछ लम्बे समय के अनुभवों की कसौटी पर किया गया है। यहाँ यह भी स्पष्ट है कि राजनीति एक आधुनिक राजनीतिक अभिकरण है जिसकी स्थापना भारत एवं इग्लैण्ड में पिछले दो सौ वर्षों के दलीय विकास के प्रतिमान के अनुसार हुई है। इग्लैण्ड की भाँति भारतीय संविधान में राजनीतिक दलों को कोई मान्यता प्राप्त नहीं थी परन्तु हाल ही में हुए संवैधानिक संशोधनों के अन्तर्गत दल–बदल सम्बन्धित प्रावधानों के सन्दर्भ से कुछ अंशो में राजनीतिक मान्यता देने के आधार घोषित किये गये हैं। भारतीय शासन व्यवस्था में राजनीतिक दल निर्वाचन प्रक्रिया में शामिल होते हैं और पूर्ण बहुमत में आने पर शासन करते हैं तथा कुछ विशेष स्थिति में अल्पमत प्राप्त करने वाले दल भी शासन सत्ता के संचालन में शमिल हो सकते है। भारत मे यह विलक्षण स्थिति है कि प्रायः निर्वाचन आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त सभी दल किसी न किसी रूप में सत्तारूढ़, दल की पदवी प्राप्त कर चुके हैं, तथा ऐसे दलों का प्रायः सफाया हो चुका है, जो कि चुनावों में भाग नहीं लेते है, इसलिए सत्ता में भागीदारी से अपने–आप को दूर रखते हैं।

अंग्रेजी साम्राज्य से 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत के शासन की व्यवस्था जे0एल0 नेहरू जी के हाथ में आ गयी तथा उनके नेतृत्व में औद्योगिक विकास के दीर्घकालीन प्रयास प्रारम्भ कर दिये गये। इस प्रकार के आर्थिक नियोजन का प्रमुख उद्देश्य औद्योगीकरण को बढ़ावा देना था, जिससे महात्मा गाँधी के ग्रामीण भारत के सपनों का स्थान नगण्य था, परन्तु फिर भी भारत सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा 1953 में राष्ट्रीय विस्तार सेवा की शुरूवात किया। इस योजना की कमियों को दूर करने के लिए 1957 में बलवन्त राय मेहता समिति की सिफारिस पर, 1959 में राजस्थान के नागौर जिले में प्रधानमंत्री नेहरू ने ग्राम पंचायत का औपचारिक उद्घाटन किया। इस समिति की सिफारिशों पर अधिकतर राज्यों में ग्राम पंचायतों का गठन किया गया। गठन के प्रारम्भ में ही विभिन्न चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जिनसे प्रमुख, ग्राम पंचायतों का अनियमित चुनाव, पिछड़े और कमजोर लोगों (दलितो, महिलाओं, आदिवासियों आदि) की सहभागिता का अभाव संसाधन की कमी, राजनैतिक इच्छा शक्ति की कमी, आदि कुछ ऐसी चुनौतियाँ थी जिसने विकेन्द्रीकरण के प्रयास को पंगु बना दिया। 1960 के दशक में ही केन्द्रीकृत योजना के फलस्वरूप हरित क्रान्ति का सूत्रपात हुआ जो विकेन्द्रीकरण–सम्बन्धी उन प्रतिमानों के विरोध में आई, जिन पर पंचायती राज्य संस्थाएं आधारित थी। सत्तर के दशक के मध्य तक केन्द्र के साथ–साथ राज्यों में भी सरकारें पंचायती राज संस्थाओं के प्रति उदासीन दी गयी थी। इस दौरान विभिन्न राज्यों में पंचायती राज से सम्बन्धित विभिन्न संरचनाओं (द्वि–स्तरीय, त्रि–स्तरीय) के व्यवहार में होने के कारण भी उलझने बढ़ी।

1977 में जब जनता पार्टी की सरकार आई तो उसने अशोक मेहता समिति का गठन किया। इस समिति रिपोर्ट की सिफारिशें कई मामलों में परिवर्तनकारी थीं। मेहता समिति ने राजनैतिक दलों की पंचायती राज चुनाव मे भागीदारी की वकालत की। समिति ने पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के साथ–साथ कमजोर वर्गों के आरक्षण की भी वकालत की थी। साथ ही मेहता समिति ने संवैधानिक आधार पर लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की भी सिफारिश की। अशोक मेहता समिति की अनुशंसाओं के आलोक में कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश एवं पश्चिम बंगाल जैसे गैर–कांग्रेसी राज्य सरकारों ने पंचायतों को पुनर्गठित करने की दिशा में ठोस कदम उठाए। इसी बीच जनता पार्टी सरकार के विघटन ने अशोक मेहता समिति की सिफारिशों को क्रियान्वित करने की दिशा में एक प्रतिकूल वातावरण पैदा कर दिया।

जब केन्द्र में कांग्रेस की सरकार आई तो उसने 1983 में विकेन्द्रीकरण के निमित्त हनुमंतराव कार्यदल एवं सरकारिया आयोग, 1985 में जी0वी0के0 राव समिति, 1986 में एल0एम0 सिंघवी समिति तथा 1988 में थनगन समिति, आदि का गठन किया।

हनुमंतराव (1983) एवं जी0वी0के0 राव (1985) ने विकास कार्यक्रमों एवं प्रशासन वाली पंचायती राज व्यवस्था के एकीकरण की आवश्यकता पर बल दिया। एल0एम0 सिघंवी (1986) समिति ने सिफारिश दी कि पंचायती राज संस्थाएं ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के नियोजन एवं क्रियान्वयन सम्बन्धी भूमिका अदा करे। सिंघवी समिति ने विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को संवैधानिक आधार प्रदान करने का सुझाव भी दिया। जिलास्तरीय नियोजन के लिए, जिलों में किस प्रकार की राजनीतिक एवं प्रशासनिक सत्ता संरचना हो, 1988 में पी0के0 थनगन समिति का गठन किया गया। थनगन समिति ने पंचायती' राज संस्थाओं के नियमित चुनाव सुनिश्चित करने के लिए संवैधानिक प्रावधानों की सिफारिश की। इस समिति ने सिफारिश की कि जिला परिषद ही किसी जिले में एकमात्र विकास अभिकरण हो। 1988 में सरकारिया आयोग ने जिला परिषदों व नगर निगमों के उत्थान के लिए उनके नियमित चुनावों एवं सत्रों के लिए विधिक प्रावधान की वकालत की।

पी0वी0 नरसिंहा राव सरकार ने लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन विधेयकों को 1992 में अधिनियमों के रूप में पारित किया। 73वें तथा 74वें संविधान संशोधन में ग्रामीण तथा शहरी स्थानीय स्वशासी संस्थाओं सम्बन्धी शक्तियों एवं जिम्मेदारियों के हस्तान्तरण सम्बन्धी प्रावधान है। संशोधनों के तहत ग्रामीण स्वशासन के लिए तीन–स्तरीय पंचायती राज की व्यवस्था की गयी जो गांव, प्रखण्ड एवं जिला स्तर पर क्रमशः ग्राम पंचायत, पंचायत समिति एवं जिला परिषद के रूप में कार्य करेगी। 11वीं अनुसूची में पंचायती राज सम्बन्धी 29 विषाय है। 74वें संविधान संशोधन के तहत शहरी स्वशासन के महत्व के 18 विषय होंगे जो संविधान की 12वीं अनुसूची में वर्णित है।

विगत दो दशकों में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया से आम आदमी के जीवन में क्रांन्तिकारी परिवर्तन आया है। समाज में हाशिये पर खड़े लोग अब विकास की मुख्य धारा से जुड़ रहे हैं। स्थानीय स्वशासन के निकायों में महिला, अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिए दिए गए आरक्षण ने देश में एवं समावेशी विकास के दौर का सूत्रपात कर दिया है। बिहार, राजस्थान, उड़ीसा, बंगाल, केरल, उत्तराखण्ड, गुजरात, तमिलनाडु, कर्नाटक एवं आन्ध्रप्रदेश जैसे शीर्ष राज्य हैं, जहाँ स्थानीय संस्थाओं ने क्रान्तिकारी सफलता प्राप्त की है। 10वीं पंचवर्षीय योजना के समय में ही केरल की पंचायती राज व्यवस्था ने 'जन योजना' बनाई, इस दौरान आन्ध्रप्रदेश में जन्मभूमि कार्यक्रम बनाया गया। पश्चिम बंगाल में 'ग्राम संसद' ने नियोजनात्मक विकास का प्रारूप तैयार किया।

1996 में संसद द्वारा पारित पंचायत अधिनियम ने जनजातीय स्थानीय निकायों को स्थानीय स्वशासन का व्यापक क्षेत्राधिकार प्रदान किया। बिहार सरकार ने स्थानीय स्वशासन के निकायों में महिला आरक्षण को एक तिहाई से बढ़ाकर 50 प्रतिशत कर दिया जिससे महिलाओं का प्रभावी सशक्तीकरण हुआ है। केरल राज्य में स्थानीय निकायों में भागीदारी योजना को संस्थागत रूप दिया गया है। कर्नाटक में पब्लिक अफेयर्स सेंटर ने नागरिकता रिपोर्ट कार्ड के माध्यम से बंगलूरू नगर निगम द्वारा प्रेषित सेवाओं एवं उपभोक्ता सन्तुष्टि का मूल्यांकन किया।

राजस्थान में स्थानीय स्वशासन में पारदर्शिता के लिए मजदूर किसान शक्ति संगठन जन सुनवाई अभियान के दौरान लोग पंचायत पदाधिकारियों द्वारा किये गये कार्यों के सम्बन्ध में व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रमाण प्रस्तुत करते है। इसी संगठन द्वारा स्थानीय स्वशासन की इकाइयों द्वारा खर्च किये गये संसाधनों का सामाजिक अंकेक्षण भी किया जाता है।

स्थानीय स्वशासन के निकायों के समक्ष कुछ चुनौतियां भी है। नक्सलवाद प्रभावित क्षेत्रों में, जिसे 'रेड कारीडोर' भी कहा जाता है, स्थानीय स्वशासन कारगर रूप से कार्य नहीं कर पा रहा है। अभी भी पंचायती राज एवं नगरीय स्वशासन संस्थाओं की राज्य सरकारों पर आर्थिक निर्भरता बनी हुई है।

महात्मा गांधी रोजगार गारन्टी योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन एवं अन्य गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में क्रियान्वयन सम्बन्धी भ्रष्टाचारों का खुलासा सीएजी ने अपने पिछले प्रतिवेदनों में किया है। महानगरों में व्याप्त भ्रष्टाचार नगरीय स्वशासन का पर्याय बन चुका है। साथ ही नगरीय एवं ग्रामीण संस्थाओं सम्बन्धी योजनागत विकास समितियों के कार्यों के अस्पष्ट विभाजन ने भ्रष्टाचार की संभावनाओं की ओर बढ़ा दिया है।

कुछ चुनौतियों एवं समस्याओं को छोड़कर भारत में लोकतांन्त्रिक विकेन्द्रीकरण जनता के मन में साझेदारी एवं समावेशित विकास प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में सफल रहा है। भारत में सूचना के अधिकार (2005) तथा नागरिक समाज के घटकों की सतर्कता ने पारदर्शी स्थानीय स्वशासन का वातावरण तैयार किया है, जिससे स्वशासन अव सुशासन के लक्ष्य की ओर अग्रसर है। यदि पंचायतों एवं नगरीय निकाय, नौकरशाही एवं नागरिक समाज के गैर–सरकारी घटकों में उचित सामन्जस्य बनाने की निरन्तरता बनी रहती है तो लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के लक्ष्यों की उपलब्धि में सहजता का संचार होगा। यदि जन प्रतिनिधियों में सवल राजनीतिक इच्छा शक्ति हो तो ग्रामीण एवं नगरीय स्वशासन व्यवस्था भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के सबल आधार के रूप में गांधी के ग्राम स्वराज्य एवं अन्त्योदय के लक्ष्यों को प्राप्त करने से सफल होगी।

lUnHk %

1. Basu, D.D. Introduction to the constitution of India-6th Eddition New Delhi in India, 2005.
2. राठौड़, डॉ0 मधु : पंचायती राज और महिला विकास, पोक्टर, पब्लिशर्स, जयपुर 2010–पृ0 51–52
3. अग्रवाल, प्रमोद कुमार, भारत में पंचायती राज, ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2015 पृ0 115–106
4. पाल, डॉ0 सुधीर : आदिवासियों की पारम्परिक स्वशासन, व्यवस्था एवं पंचायती राज सन्दर्भ झारखण्ड, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007 पृ0 23
5. चौधरी, डॉ0 विश्वामित्र प्रसादः भारत में पंचायतीराज का उद्भव एवं विकास, पुष्पांजलि प्रकाशन, दिल्ली, 2009 पृ0 27
6. राज, एम0पी0: भारतीय शासन एवं राजनीति, कालेज बुक डिपो, जयपुर 1969, पृ0 540
7. ओम प्रकाश : प्राचीन भारत का इतिहास, विकास पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, पृ0 संख्या 264–65
8. अल्टेकर, ए0एस : प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ0 173–74
9. शर्मा डॉ0 के0के0 : भारत में पंचायतीराज, कालेज बुक डिपो, जयपुर 2019, पृ0 संख्या (111–116–17)
10. सईद, एस0एम0 : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेन्टर लखनऊ–2014, पृ09 (472–475)

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 125-128

NRrhlx<+ esa tutkfr;ksa dh laoS/kkfud fLFkfr;k¡

MkW- Hkkuq'oj yky lkgw*

Hkwfedk % स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद स्वाधीन भारत के संविधान में जनजातियों एवं पिछडे वर्ग के उत्थान के लिए आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, मान्यता एवं धर्म की स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता का आश्वासन दिया गया है। संविधान मे मूल अधिकारों का उल्लेख किया गया है जो नागरिकों को यह विश्वास दिलाते हैं कि धर्म, वर्ग, लिंग, जाति, प्रजाति एवं अन्य के आधार पर भेदभाव नहीं बरता जायेगा। इससे जनजातियों के प्रति अब तक बरते ये भेदभाव की समाप्ति होती है।

संविधान में नीति निर्देशक तत्वों का उल्लेख किया गया है जिसमें कहा गया है कि राज्य कमजोर वर्ग के लोगों विशेषकर अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के शैक्षणिक व आर्थिक हितों को बढ़ावा देगा तथा उन्हें सामाजिक अन्याय एवं शोषण से सुरक्षा प्रदान करेगा ।

संविधान में जनजातियों के लिए दो प्रकार की व्यवस्था की गई है – संरक्षी एवं विकासी प्रावधान (Protective and promotive provisions) संरक्षी प्रावधानों का उद्देश्य जनजातिय– हितों की सुरक्षा करना है और विकासी प्रावधानों का उद्देश्य उन्हें प्रगति के अवसर प्रदान करना है । इन दोनों प्रकार के प्रावधानों का उल्लेख करने वाले संविधान के अंश इस प्रकार से हैं :

1. संविधान के बारहवें भाग के 275 वें अनुच्छेद के अनुसार, केन्द्रीय सरकार राज्यों को जनजातीय कल्याण एवं उनके उचित प्रशासन के लिए विशेष धनराशि देगी ।
2. संविधान के पन्द्रहवें भाग के 325 वें अनुच्छेद में कहा गया है कि किसी को भी धर्म, प्रजाति, जाति एवं लिंग के आधार पर मताधिकार से वंचित नहीं किया जायेगा।
3. सोलहवें भाग के 330 व 332 वें अनुच्छेद में लोक सभा एवं राज्य विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए स्थान सुरक्षित किये गये हैं।
4. 335 वाँ अनुच्छेद आश्वासन देता है कि सरकार नौकरियों में इनके लिए स्थान सुरक्षित रखेगी।
5. 338 वें अनुच्छेद मे राष्ट्रपति द्वारा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी है। यह अधिकारी प्रतिवर्ष अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा।
6. पांचवीं अनुसूची में जनजातीय सलाहकार परिषद की नियुक्ति की व्यवस्था है जिसमें अधिकतम बीस सदस्य हो सकते हैं, जिनमें से तीन – चौथाई सदस्य राज्य विधान सभाओं के अनुसूचित जनजाजियों के होंगे।
7. अनुच्छेद 324 एवं 224 में राज्यपालों को जनजातियों के संदर्भ में विशेषाधिकार प्रदान किये गये हैं।
8. संविधान में कुछ अनुच्छेद ऐसे भी हैं जो मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ, असम, बिहार, झारखण्ड, ओडिसा आदि के जनजाति – क्षेत्रों के लिए विशेष सुविधाएँ देने से सम्बन्धित हैं।इन लोगों के लिए नौकरियों में प्रार्थना– पत्र देने एवं आयुसीमा में छुट दी गई है। शिक्षण संस्थाओं में भी इन्हें शुल्क से मुक्त किया गया है एवं कुछ स्थान इनके लिए सुरक्षित रखे गये हैं।
9. 93 वाँ संवैधाकि संशोधन 2005 – निजी शिक्षण संस्थानों (अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थानों को छोड़कर) में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों को आरक्षण का लाभ देना है।

संविधान में रखे गये विभिन्न प्रावधानों का उद्देश्य जनजातियों को देश के अन्य नागरिकों को समकक्ष लाना है। उन्हें देश की मुख्य जीवनधारा के साथ जोड़ना तथा एकीकरण करना है जिससे कि

*बस्तर विश्वविद्यालय, जगदलपुर

वे देश की आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवथा में भागीदार बन सके। पण्डित नेहरू भी जनजातियों के विकास में काफी रूचि रखते थे। वे नहीं चाहते थे कि उन पर कोई चीज थोपी जाय। उनका कहना था कि हमें उनकी कला एवं संस्कृति के विकास को बढावा देना चाहिए, उनके भू– अधिकरों का आदर करना चाहिए, उनमें स्वयं का शासन करने की क्षमता एवं मानवीय चरित्र का विकास करना चाहिए।

भारतीय संविधान के कुछ अनुच्छेद विशेष रूप से जनजातियों के उत्थान के लिए बनाए गए है तथा समाज के दूसरे लोगों द्वारा उनके उत्पीड़न से रक्षा प्रदान करते हैं। जनजातियों को संविधान द्वारा प्राप्त कुछ रक्षात्मक अधिकार इस प्रकार है।

1. शैक्षिक और सांस्कृतिक अधिकार (अनुच्छेद 15 (4),29, 46 और 350)
2. आर्थिक अधिकार (अनुच्छेद 23 और 24)
3. राजनैतिक अधिकार (अनुच्छेद 244 और 275)
4. आर्थिक अधिकार (अनुच्छेद 164 (1), 243, 330, 334 और 371)
5. रोजगार अधिकार (अनुच्छेद 15 (4), 16 (4) और 16 (4 I))

इसके अलावा भारतीय संविधान का पांचवी और छठवीं अनुसूची पूर्ण रूप से जनजातियों से संबंधित है।

1- tutkfr;ksa dk lkaLd`frd vkSj 'kSf{kd vf/kdkjksa dh j{kk% अनुच्छेद 15 (4) – इसमें कहा गया है कि सामाजिक और शैक्षिक पिछड़े वर्गों (जनजातियों सहित) आरक्षण प्रदान की जानी चाहिए। अनुसूचित जाति और जनजातियों के प्रवेश में न्यूनतम अंक में छूट के लिए राज्य को नियम बनाने का अधिकार प्रदान करता है।

निवेदिता जैन बनाम मध्य प्रदेश राज्य में, सुप्रीम कोर्ट ने राज्य सरकार के इस कार्यकारी आदेश की वैधता को सही ठहराया जिसमें राज्य के अनुसूचित जाति और जनजाति को पूर्व चिकित्सा महाविद्यालयों में प्रवेश पा सकें।

अनुच्छेद 29 – भारत के किसी भी क्षेत्र या भाग में रहने वाले नागरिक को अपनी विशेष भाषा, लिपि और अपनी संस्कृति की गारंटी देता है और इनके संरक्षण का अधिकार देता (भाषा, लिपि, संस्कृति)। अपने शैक्षिक संस्थानों के जरिए अल्पसंख्यक समुदाय अपनी भाषा, लिपि, संस्कृति को बनाए रख सकता है(अनुसूचित जनजातियों सहित)

अनुच्छेद 46 – यह राज्य को आज्ञा देता है कि कमजोर वर्ण के लोगों के आर्थिक लाभ और शिक्षा को बढ़ावा देने के लिये अनुसूचित जाति और जनजाति को सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषणों से रक्षा करता है।

अनुच्छेद 350 – संविधान हर व्यक्ति को अधिकार प्रदान करता है कि वह अपने शिकायत के निवारण के लिए प्रतिनिधि रख सकता है जो राज्य या देश के किसी भी अधिकारी को किसी भी भाषा में अभ्यावेदन प्रस्तुत कर सकता है।

2- Tkutkfr;ksa dk vkfFkZd vf/kdkj dh j{kk%

अनुच्छेद 244 – यह अनुसूचित क्षेत्रों और जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन से संबंधित है।

अनुच्छेद 275 – यह संविधान को शक्ति प्रदान करता है जो जन जातियों के कल्याण और विकास को बढ़ावा देने के लिए राज्यों को विशेष अनुदान प्रदान करता है और अनु–सूचित क्षेत्रों में प्रशासन का स्तर बढ़ावे के लिए प्रोत्साहित करता है।

3- tutkfr;ksa dk jktuSfrd fgrksa dh j{kk%

अनुच्छेद 164 (1) – छत्तीसगढ़ , मध्य प्रदेश, उड़ीसा आदि राज्यों को अनुसूचित जनजाति के लिए विशेष मंत्रालय बनाने का अधिकार प्रदान करता है।

अनुच्छेद 243, 330 और 334 – यह लोकसभा और पंचायतों में अनुसूचित जाति जनजाति के सीटों के आरक्षण से संबंधित है।

अनुच्छेद 371 – यह सिक्किम उत्तर – पूर्व राज्यों के विशेष प्रावधानों से संबंधित है।

एक महत्वपूर्ण निर्णय (3) में, सर्वोच्च न्यायलय के पांच न्यायधीशों के न्यायपीठ ने माना है कि यदि कोई व्यक्ति जो अनुसूचित जाति, जनजाति का उपभोग उसी राज्य में कर सकता है जहां से वह

संबंधित है परंतु दूसरे राज्य में वह इन विशेषाधिकारों का उपभोग नहीं कर सकता फिर भी अनुसूचित जाति। जनजाति का माना जाएगा। (अनुच्छेद 341 और 342)।

4- tutkfr;k dh jktxkj vf/kdkjk dh j{kk%

अनुच्छेद 15(4) – शैक्षिक संस्थानों में अनुसूचित जनजातियों को आरक्षण प्रदान करना ।

संविधान का पाँचवा और छठवाँ अनुसूची – संविधान के पांचवे अनुसूची में असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्यों को छोडकर अन्य सभी राज्यों में अनुसूचित क्षेत्र और अनुसूचित जनजातियों से संबंधित प्रशासन और नियंत्रण का प्रावधान है।

अनुच्छेद 244–। – संसद को शक्ति प्रदान करता कि वह कुछ क्षेत्रों में स्वायत्त राज्य बनाएगा जो असम के कुछ जनजातीय क्षेत्रों को मिलाकर बना हो और वहां स्थानीय विधायिका को बनाना या उन राज्यों में मंत्रिमंडल बनाना।

असम राज्य के आदिवासी क्षेत्रों का प्रशासन छठवीं अनुसूची के अनुसार होता है। यह उन क्षेत्रों को स्वायत्त जिला या स्वायत क्षेत्र बनाता है।

आयोग की स्थापना – भारत का संविधान में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोग कौन है इसकी परिभाषा नहीं दी गई है। फिर भी अनुच्छेद 341 के अनुसार राष्ट्रपति राज्य के राज्यपाल से परामर्श करके जाति, जनजाति को निर्दिष्ट या जाति और जनजाति के समूहों के स्थापना के उद्देश्यों को वर्णित करता है।

अनुच्छेद 330 – असम के स्वायत्त जिलों में जनजातियों सीटों के आरक्षण से संबंधित है।

अनुच्छेद 332 – सभी राज्यों (असम को छोडकर) के विधानसभा में अनुसूचित जाति और जनजातियों के लिए आरक्षित सीटों का प्रावधान करता है।

संविधान के 89वीं संशोधन, 2003 ने अनुच्छेद 338 को संशोधित करके नई 338 –। को जोड़ा गया जो अनुसूचित जनजातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग की स्थापना करने प्रावधान प्रदान करता है।

अनुसूचित जनजातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग–

यह आयोग एक चेयरमेन, उप– चेयरमेन व तीन अन्य से बना होता है। वे भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होते हैं।

vk;kx d dr0; %

(अ) सरकार के आदेश, कानून और संविधान के और जनजातियों के रक्षा संबंधी मामलों को जांच और करना और इस तरह के सुरक्षा उपयों के क का मूल्यांकन करना।

(इ) जनजातियों के अधिकारों सुरक्षा उपायों के संबंधित विशिष्ट शिकायतों की जांच करना

(ब) जनजातियों के सामाजिक आर्थिक विकास में सुझाव देना और भागीदारी करना।

ixfr vkj fodkl dk eY;kdu %

(क) इन सभी रक्षा उपायों के कार्य के रिपोर्ट राष्ट्रपति को सलाना देना और आयोग जब उचित समझे तब अन्य समय में भी रिपार्ट दे सकता है।

(ख) केन्द्र और राज्य को सिफारिश करता है कि कौन से उपायों को अपनाया जाए ताकि रक्षा उपायों का कार्यान्वयन प्रभावी ढंग से हो सके और जनजातियों का सामाजिक–आर्थिक विकास हो सके।

जनजातियों के प्रगति, विकास, कल्याण , रक्षा के कार्यों को राष्ट्रपति किसी प्रावधान, संसद द्वारा बनाए गए नियम या अन्य नियमों द्वारा मुक्त कर सकता है।

vulfpr tkfr@ tutkfr ¼ vR;kpkj fuokj.k ½ dkuu] 1989 %

अनुसूचित जाति / जनजाति (अत्याचार निवारण) कानून, 1989 एक कानून है जो अनुसूचित जातियों / जनजातियों पर अत्याचापर को रोकने के लिए भारतीय संसद द्वारा बनाई गई है। यह कानून पी ओ ए, एस सी / एस टी कानून, अत्याचार निवारण कानून या अत्याचार कानून के नाम से लोकप्रिय है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 17 छुआछूत करना और ऐसे सभी कार्यों को समाप्त करना चाहता है। यह वास्तव में सिद्धान्त का बयान है जो दलितों पर किए उत्पीड़न और निरादर को हटाने के उद्देश्यों के कियान्वयन पर बल देता है और उनके मौलिक, सामाजिक– आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक अधिकारों को सुनिश्चत करता है ।

यह भारतीय समाज को अन्धी और परम्परागत विश्वासों के तर्कहीन पालन से मुक्त करना चाहती है और पूर्वाग्रह मुक्त समाज स्थापित करना । इसलिए अस्पृश्यता कानून, 1955 बनाया गया। इन खामियों और कमियों ने सरकार को इस कानूनी प्रावधानों में परिवर्तन करने के लिए मजबूर किया। अनुसूचित जाति/जनजाति को सामाजिक आर्थिक स्थिति को बेहतर करने के लिए कई प्रयास और उपाय किए गए फिर भी उनकी स्थिति अपमान, निरादर और उत्पीड़न के विषय रहे हैं। अस्पृश्यता के विरोध में जब वे अपने अधिकारों पर जोर देते हैं तब उनके विरूद्ध लोग उन्हें डराने और धमकाने का प्रयास करते है। अनुसूचित जातियों/जनजातियों पर अत्याचार आज भी विद्यमान है ।

वर्तमान के कानून जैसे नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955 और भारतीय दंड संहिता अनुसूचित जाति और जनजाति पर अत्याचारों, अपराधों को रोकन में अपर्याप्त साबित हुआ है। संसद ने 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) कानून , 1989 और 1995 के नियम, बनाये गये। संसद में रहते हुए इस बिल में वस्तु और कारण के बयान संलग्न किया गया जो ''अनुसूचित जाति और जनजाति की सामाजिक आर्थिक विकास के कई प्रयास करने के बावजूद, उनकी स्थिति भेदपूर्ण है। ये कई नागरिक अधिकारों से वंचित हैं, वे कई अपराधों के अधीन है, अपमान, निरादन और उत्पीडन आदि के शिकार है। इन्होंने कई क्रूर घटनाओं का सामना किया है और अपने जान– माल से वंचित हुए है। विभिन्न ऐतिहासिक, सामाजिक और आर्थिक कारणों से उन पर कई बार भयानक अत्याचार हुए है।''

इस अधिनियम की प्रस्तावना इस प्रकार है : ''अनुसूचित जाति/जनजाति पर अत्याचारों अपराधों को रोकने के लिए, ऐसे अपराधों के परीक्षण हेतु विशेष न्यायालय का प्रबंध करना और ऐसे मामलों में शोषितों को सहायता और पुनर्वास के विषय इसके अंतर्गत है ।

''इस कानून के उद्देश्य हमें सरकार के नियम को दर्शाती है कि सरकार इन समुदायों को आत्मसम्मान के साथ समाज में जिनके लिये रक्षात्मक कोशिशें करती है तथा प्रभावशाली समुदायों के दबाव और हिंसा से मुक्त जीवन यापन कर सके। संज्ञेय और गैर क्षमायोग्य अपराधों के लिए प्रकट या गुप्त रूप में तथा इस प्रकार के अपराधों के लिए कडी सजा का प्रावधान करना।

अनुसूचित जाति/जनजाति (अत्याचार निवारण) कानून, 1989 कड़े प्रावधान के साथ (पूरे भारत में जम्मू और कश्मीर के अतिरिक्त) 9 सितम्बर, 1989 को शुरू हुआ। इस कानून का धारा 23(1) केन्द्र सरकार को अधिकार देता है इसके नियम बनाने के लिए एवं कार्यान्वित करने के लिए । इस धारा से प्राप्त शक्तियों द्वारा अनुसूचित जाति/जनजाति (अत्याचार निवारण) कानून 1995 बनाया गया था। (2) इस कानून के नियम 31 मार्च , 1995 अधिूसचित हुआ । इन कानून का उद्देश्य भारतीय समाज में दलितों का सामाजिक समावेश करना है।

vuqlwfpr tutkfr vkSj vU; ikjEifjd ou fuoklh ¼ou vf/kdkjksa dh ekU;rk½ dkuwu] 2006 ¼ भारत में 18 दिसम्बर, 2006 को स्वीकृत अनुसूचित जनजाति और अन्य पारम्परिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) कानून, 2006 वन कानूनों का एक प्रमुख टुकड़ा है। इसे वन अधिकारी कानून, जनजातीय अधिकार कानून, जनजातीय बिल और जनजातीय भूमि कानून के नामों से भी जाना जाता है। वनवासियों पर किए गए ऐतिहासिक अन्यायों कर निवारण करेगा, इन प्रावधानों से संरक्षण को प्रभावी और अधिक पारदर्शी बनाया जा सकेगा ।

lUnHkZ ¼

1. बस्तर का इतिहास – शरद चन्द्र व कविता गौड़
2. छ.ग. वृहद संदर्भ – उपकार प्रकाशन
3. छ.ग. स्टडी इन कल्चर – चन्द्र प्रकाशन
4. नाउ युवर स्टेट छ.ग. हरिहंत
5. छ.ग. दर्पण – डॉ. गौरी शर्मा
6. छ.ग. –मुस्कान प्रकाशन डी.सी. पटेल
7. अर्जुन हमर छ.ग. – विजय कुमार द्विवेदी
8. छ.ग सामान्य अध्ययन–हामिद खान

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 129-130

Hkkjr foHkktu dh =klnh vkj ^rel*

t;flg ;kno*

भीष्म साहनी के उपन्यास 'तमस' के आलोचना सांप्रदायिकता से जोड़कर देखती रही है। असल में सांप्रदायिकता एक ऐसी घातक मनोवृत्ति और सामाजिक प्रवृत्ति रही है जिसने दक्षिण एशिया के जन–जीवन को बिल्कुल तहस– नहस करके रख दिया है। सांम्प्रदायिकता एक जटिल समस्या है जिसका हल हम कभी–कभी सांप्रदायिकता के नजरिये से ही ढूढ़ने का प्रयास करते है। 'तमस'के पाठ में सांप्रदायिकता पर रूक जाना वैसी ही चूक होगी जैसी चूक मूराद अली को सांप्रदायिकता फैलाने वाले और नत्थू को सांप्रदायिकता के फैलाव में योगदान करने वाला मान लेने से होगी।

आज का समय 'तमस' के रचनाकाल से बदला हुआ है। शुरूआत कुछ काल्पनिक सवालों से करना चाहिए– सवाल यह है कि 'तमस' की रचना अगर विभाजन के समय या उसके तुरंत बाद हुई होती तो क्या उसका वही स्वरूप होता? ''तमस'' को उसके रचनाकाल में पढ़ने में 'समाज के सघंर्ष और पाठक के आस्वाद' का वही स्वर होता जो आज है ये सारे विचार काल्पनिक हैं और इससे निकलने वाले निष्कर्ष भी काल्पनिक हैं और इससे निकलने वाले निष्कर्ष भी कान्पनिक ही होंगे। परन्तु इसका महत्व कम नहीं होता । 'तमस' का प्रकाशन 1973 ई0 में हुआ। इसकी कथा 1945–46 की है। 1946 से होने वाले सांप्रदायिक दंगों ने भारतीय परिदृश्य को पूरी तरह बदल दिया है।

भारत से विभाजित होकर अस्तित्व में आये पाकिस्तान में विभाजन गहरी त्रासदी से सक्रिय थी। कश्मीर मुद्दे पर तनाव बने हुए थे। भारत और पाकिस्तान के मध्य कई प्रत्यक्ष और प्रच्छन्न युद्ध हो चुके थे। 1972 ई0 में बंगलादेश पाकिस्तान से अलग हो गया। भारत में भी दंगे लगातार हो रहे थे। विघटनकारी स्थितियाँ भयावह रूप धारण कर रही थी। उस भयावह दौर में तमस की रचना हुई।

आचार्य शुक्ल ने कहा था 'साहित्य' में युग परिवर्तन जनता की चित्रवृत्ति में बदलाव के साथ आता है। साहित्य में युग परिवर्तन जीवन में युग परिवर्तन से जुड़ा होता है। भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस' आचार्य शुक्ल के कथन के समीप आकर खड़ा होता है। 'तमस' में यह बात स्पष्ट रूप से सामने आती है कि एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में पाकिस्तान बने या न बने लेकिन बसावट में भारी अंतर आना तय है। 'तमस' में इतिहास की परिस्थिति– ''क्या बाते करते हो बाबूजी, अब यह ख्याल ही दिमाग से निकाल दो। अब हिन्दुओं के मुहल्ले में न तो कोई मुसलमान रहेगा और न मुसलमान के मुहल्ले मे कोई हिन्दू। इसे पत्थर की लकीर समझो। पाकिस्तान बने तो बने, अब मुहल्ले अलग–अलग होंगे, साफ बात है।'' कितने पाकिस्तान में भी इसी बात पर बल दिया गया है कि किस तरह में सियासी फायदे के लिए मजहब को नफरत में बदला जाता है। आजादी के समय से लेकर आज तक की परिस्थितयों की तरफ ध्यान दिया जाय तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि तत्कालीन समय मे ही सांप्रदायिक दंगों महात्मा गांधी की हत्या, चीन के साथ सीमा विवाद, 1984 में इंदिरा गांधी की हत्या, , बाद हुए सिख संहार, प्रच्छन्न ब्राहम्णवाद– जिसे अब हिन्दुओं के नाम से अधिक जाना जाता है की खोज में उपजे सांप्रदायिक और जातिवादी ध्रुवीकरण, बाबरी मस्जिद की शहादत तथा गुजरात मे हुए मुस्लिम संहार के राजनीतिक औजार के रूप में भयंकर इस्तेमाल, संघ परिवार के शासन में होने वामपंथियों के सहयोग से कॉंगेस का सतारूढ़ होना इन सारी परिस्थितियों के बीच 'तमस' को समाज की वास्तविकताओं में डिकोट करना तमस की साहित्यिक आलोचना का सरोकार होना चाहिए।

अभी 2005 मे जब अमन का सेतु के पाकिस्तान और भारत के बीच बनने और खुलने का समाचार आ रहा है तब ''तमस' में चली अमन की बस'' की याद स्वाभाविक है।

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, दी.द.उ.गो.वि.वि., गोरखपुर

मामला अभी तय नहीं हुआ था जबकि भोंपू
बजने की आवाज आयी। देवदत्त प्रधान की
कुर्सी के पास जाकर बोला, ''साहिबान, अमन की बस आ गयी है।''

(तमस)

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि तमस उपन्यास का रचनात्मक संगठन कलात्मक संधान की दृष्टि से प्रशंसनीय है इस में प्रयुक्त संवाद और नाटकीय तत्व प्रभाव कारी है आजादी के ठीक पहले सांप्रदायिकता की बैसाखियाँ लगाकर पाशविकता का जो नंगा नाच इस देश मे नाचा गया था, असका अन्तरंग चित्रण भीष्म साहनी ने इस उपन्यास मे किया है।

lUnHk %

1. सुमित सरकार– आधुनिक भारत 1985–1947, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली– संस्करण 2007।
2. कमलेश्वर– कितने पाकिस्तान, राजपाल एंड सन्ज दिल्ली 2013
3. डॉ नगेन्द्र– हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स नोएडा–2011
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल– हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रयाग पुस्तक सदन, इलाहाबाद –2009

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 131-134

fo|kifr dk dk0; oHko

Mk0 fodkl flag*

मैथिल कोकिल विद्यापति हिन्दी के उस आरम्भिक युग के कवि हैं, जबकि साहित्य–रचना के क्षेत्र में संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश का बोलबाला था और विचारी लोकभाषाएँ जनता तक ही सीमित रही आती थी। उस समय वही कवि समाज में आदृत होता था, जो संस्कृत, प्राकृत या अपभ्रंश में रचना करता था। क्योंकि लोकभाषा का कवि विद्वत्समाज में प्रतिष्ठा का अधिकारी नहीं होता था। यही कारण है कि अधिकांश कवि लोकभाषा को छोड़कर संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश में ही लिखा करते थे। कविवर विद्यापति ने भी इसी कारण अपनी कितनी ही रचनाएँ संस्कृत तथा अपभ्रंश भाषा में ही लिखी है। विद्यापति की संस्कृत रचनाओं में से 'शैवसर्वस्वसार', वर्षकृत्य, दुर्गा–भक्ति–तरंगिणी आदि कई ग्रंथ प्रसिद्ध है, ऐसे ही उनकी अपभ्रंश रचनाओं में से कीर्तिलता एवं कीर्ति–पताका प्रसिद्ध है। ऐसे ही हिन्दी में उनकी प्रसिद्धि का कारण उनकी 'पदावली' है, जिसमें बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक के भिन्न–भिन्न अवसरों पर लोक भाषा में लिखे गये उनके पदों एवं गीतों का संकलन किया गया है। ये गीत वास्तव में तत्कालीन हिन्दी भाषा के श्रृंगार है, हिन्दी के गीति–काव्य के प्रवर्त्तक है और इस बात के द्योतक है कि किस प्रकार हिन्दी लोक भाषा के रूप में उस समय निर्मित हो रही थी। तथा कैसे उसने धीरे–धीरे लोक–भाषा के क्षेत्र से निकल कर साहित्यिक भाषा के क्षेत्र पर अपना अधिकार स्थापित करने का प्रयास किया था।

विद्यापति के पद हिन्दी–गीति–काव्य के श्रृंगार है, उनमें जन–जीवन का स्वच्छंद हास–विलास, प्रेमी हृदयों का सुमधुर प्रेमालाप, युवक एवं युवतियों की मदोन्मत अठखेलियाँ रसिकों की आनन्दमयी क्रीड़ाएँ, स्वच्छंद जनमानस की भाव लहरियों का उन्मुक्त नर्त्तन, हृदय क्यारियों में हँसते हुए भाव–सुमनों की दिगदिगंत–व्यापिनी–आल्हादकारी सुरभि, भाव–विभोर मधुर–कण्ठों का मदोन्तमन्तगुंजन, सिहरन युक्त विकसित अंगों का स्पन्दन, जन–जन के प्रेम–विहल सुमधुर संगीत की उल्लासमयी ध्वनि आदि विद्यमान है।

निस्संदेह विद्यापति के ये पद लोक–साहित्य की पावन पयस्विनी को प्रवाहित करते हुए साहित्यिक पद–शैली का भी ऐसी भाव–मयी धारा प्रवाहित कर रहे है, जिनकी ओर सरस कवि हृदय का आकृष्ट होना अत्यन्त स्वाभाविक है और यही कारण है कि विद्यापति के पदों की यह भावधारा लगभग 400 वर्षों तक तो अविरल गति से प्रवाहित होती रही है। विद्यापति के ये पद तीन भागों में विभक्त किये जाते हैं।

1. प्रणय–लीला सम्बन्धी श्रृंगार के पद, 2–प्रार्थना सम्बन्धी भक्ति के पद, 3–तात्कालीन परिस्थितियों का चित्र अंकित करने वाले पद। इनमें से प्रणय–लीला सम्बन्धी पदों का ही बाहुल्य है। विद्यापति के काव्य–सौष्ठव को निम्न रूपों में देखा जा सकता है–

1- oLr|&o.kZu & विद्यापति ने अपने पदों युवक एवं युवतियों के अन्तर्गत का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए राधा और कृष्ण के माध्यम से उनकी प्रणय–लीलाओं का अत्यन्त प्रभावोत्पादक वर्णक किया है। यहाँ कवि युवावस्था में प्रस्फुटित अंगों के सौन्दर्य की सजीव झाँकी प्रस्तुत करता है, उनके मानस में उठने वाली भाव लहरियों के चित्र अंकित करता है, अपनी तीव्र अनुभूति के सहारे किशोरावस्था से लेकर युवावस्था तक मानव के मन, हृदय एवं अंगों में क्या–क्या स्वाभाविक परिवर्तन होते है, इनकी भावमयी नैसर्गिक झाँकी अंकित करता है।

*पी0डी0एफ0, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, का0हि0वि0वि0, वाराणसी

इन सभी गीतों में प्रमुख रूप से आकृष्ट करने वाले कवि के इस वस्तु वर्णन को हम छः शीर्षकों में विभक्त कर सकते है–

d&o;% lfU/k o.kZu % शैशव के उपरान्त जब, यौवनागमन होता है, तब किशोरियों के अंग प्रत्यंग एक अभूतपूर्व परिवर्तन होने लगता है। यह परिवर्तन सहसा नहीं होता है अपितु जैसे शिशिर के उपरान्त धीरे–धीरे बसंत के आगमन हेतु पहले वृक्षों में कोमल किसलय प्रस्फुटित होते है, लताओं में सुकुमार कलियों की छटा दिखाई देने लगती है, पवन में मंद–मंथर गति आने लगती है, पक्षियों के कलख में मधुरता की गुँज सुनाई पड़ने लगती है और चतुर्दिक धीरे–धीरे हास उल्लास स्फुरित होता हुआ दृष्टिगोचर होने लगता है। उसी प्रकार एक किशोरी के अंगों में यौवन के विकास का दर्शन एक साथ नहीं होता, उसमें भी धीरे–धीरे स्फुरण होता है। जैसे–

[ku [ku u;u dku vuqlj bA [ku [ku clu /kfy ru HkjbAA
[ku [ku nlu NVk NqV gklA [ku [ku v/kj vkxs xgq ckl AA
pm fd py, [ku [ku py enA eueFk&ikB ifgy vuqcU/kAA
fgjn; eqdqy gsfj&gsfj FkkjA [ku vkpy n, [ku gk; HkkjAA
ckyk lSlo rk#u HksVA y[k, u ikfjv tsB dusBAA

इस प्रकार के कितने ही मनोरम चित्र विद्यापति ने अंकित किये है, जिनमें सहज स्वाभाविक स्थिति के चित्रण के साथ–साथ कवि की प्रौढ़ प्रतिभा एवं सूक्ष्मानुभूति का सुन्दर सम्मिश्रण दिखाई देता है।

[k& u[k&f'k[k&o.kZu % अत्यंत प्राचीन काल से अंग–सौन्दर्य का चित्रण करने के लिए नख–शिख की परम्परा मिलती है। संस्कृत ,प्राकृत एवं अपभ्रंश सभी भाषाओं में यह वर्णन मिलता है। विद्यापति ने भी उसी परम्परा का पालन करते हुए अंग–सौन्दर्य के चित्रण के लिए नख–शिख का वर्णन किया है। निम्न पद में विद्यापति का नख–शिख वर्णन देखने को मिलता है–

ek/ko] dh dgc lqUnfj :iA
drd tru fofg vkfu lekjy] ns[kr u;u l:iA
iYyojkt pj.k ;qx "kksfHkr] xfr xtjktd vkuAA
dud dnfy ij flag lekjy] rkij es: lekuAA

x& l|% Lukrk&o.kZu % कवि के वस्तु–वर्णन में सद्यः स्नाता के रूप–चित्रण का बड़ा महत्व है। संस्कृत काव्य में तो ऐसे चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं, परन्तु हिन्दी में ऐसे चित्रणों का सूत्रपात करने वाले कवि विद्यापति ही है। कवि के इन चित्रणों में रमणीय उद्भावनाओं के साथ–साथ अद्भूत आकर्षण एवं अनुपम अभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं। कवि के ये वर्णन यौवन की मादकता, प्रेम की तल्लीनता, भावों की कोमलता तथा सहज आलंकारिकता से परिपूर्ण है, जिनमें तीव्रनुभूति एवं अलौकिक अभिव्यक्ति का सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है। एक गीत में कवि ने सरोवर में स्नान करके तुरंत निकली हुई सुन्दरी के अंग–सौन्दर्य की झलक प्रस्तुत करते हुए बताया है–सुन्दरी स्नान कर रही है उससे सद्यः स्नाता का सौन्दर्य इतना उद्दीपनकारक है कि देखते ही वह कामदेव के पंच बाणों से बेध देती है,

dkfefu dj, lukuA gsfj rfg ân; gu; iapckuAA
fpdqj xj, ty/kkjkA tfu eq[k&lfl Mj jkv, v/kkjkAA

?k& ç.k;&dsfy&fu:i.k % कविवर विद्यापति ने राधा और कृष्ण के माध्यम से तत्कालीन समाज में व्याप्त प्रणय–केलियों की बड़ी ही भावोन्मादमयी झाँकियाँ अंकित की है। इन झाँकियों में मानव हृदय के अन्तर्गत व्याप्त 'काम' अथवा मूल वासना का अत्यन्त सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है–

dqt Hkou l;ß fudfly j] jkdy fxj/kkjhAA
,dfg uxj cl ek/ko g] tfj dj cVekjhAA
NkaM dUg;k ekj vkpy j] QkVr uo lkjhAA

M& Lrqfr&o.kZu % विद्यापति ने अपने पदों में केवल काम–विलास में निरत नायक–नायिकाओं के रूप–सौन्दर्य एवं प्रणय–केलियों के ही चित्र अंकित नहीं किये है, अपितु कुछ ऐसे भी गीत लिखे है, जिनमें

तत्कालीन समाज का आस्तिकता, धार्मिक भावना, भक्ति आदि का भी वर्णन मिलता है। ऐसे गीतों में कवि के विभिन्न देवी–देवताओं की स्तुतिपरक पद आते हैं। इन पदों में कहीं शिव की, कहीं विष्णु की, कहीं कृष्ण की, कहीं दुर्गा की, कहीं सरस्वती की, कहीं जानकी की और कहीं गंगा की प्रार्थना की है। वैसे विद्यापति को शैव माना जाता है और शैव होते हुए भी उन्हें विभिन्न देवी–देवताओं का उपासक बताया गया है। विद्यापति ने सबसे सुन्दर चित्रण शिव का किया है, शंकर की प्रार्थना करते हुए कवि ने उनके स्वरूप की जो विलक्षण झाँकी प्रस्तुत की है, वह अत्यंत आकर्षण एवं प्रभावोत्पादक है। एक स्तुति में कवि शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप की मार्मिक झाँकी अंकित की है–

t; t; 'kdj f=i|jkfjA t; v/k i|#"k t;fr v/k ukfjAA
vk/k /koy ru vk/kk xkjkA vk/k lgt dp vk/k dBkjkAA

p& ;|n/k&o.ku % तत्कालीन साहित्य की वीरगाथामयी प्रकृति के अनुसार विद्यापति ने भी युद्ध का अत्यंत सजीव एवं चित्ताकर्षण वर्णन किया है, जिसमें ढोल एवं डंके का घनघोर घोष, रण भेरी का कोलाहल, शंखनाद आदि के साथ–साथ घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों का चिघाड़, तलवारों की खटखटाहट, शृंगालों की हू–हू ध्वनि तथा भूत–प्रेत एवं बेतालों के रूधिर पान, नृत्य–गान आदि का दृश्य अंकित हुआ है। इस युद्ध वर्णन की विशेषता यह है कि कवि ने लोक भाषा की सरल पदावली में ही युद्ध–क्षेत्र का बड़ा ही जीता–जागता चित्र अंकित कर दिया है। कवि के इस युद्ध–क्षेत्र के चित्र में उसके आश्रयदाता राजा शिवसिंह की वीरता, पराक्रमशीलता आदि को भली प्रकार से देखा जा सकता है।

2- Hkko ,o jl dk fu:i.k % विद्यापति के पदों में भावों की विविधता के साथ–साथ शृंगार का ही आधिक्य दृष्टिगोचर होता है। शृंगार को रसराज माना जाता है। इसके रसराजत्व का मूल कारण यह है कि इसमं अन्य सभी रसों से अधिक भावों का समावेश देखा जाता है और यह रस मानव जीवन की मूल भावना अथवा काम–भावना का ऐसा रंगीन चित्र अंकित करता है जिसे देखकर प्रत्येक मानव का हृदय तरंगति हुए बिना नहीं रहता। विद्यापति ने इसी मूल भावना को प्रस्तुत करने वाले शृंगार का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

शृंगार के दो भेद माने गये है जिनमें से पहला संयोग और दूसरा विप्रलम्भ शृंगार कहते हैं। विद्यापति ने शृंगार रस के दोनों भेदों का सांगोपांग वर्णन किया है।

विद्यापति अधिक तन्मय होकर संयोग पक्ष का अत्यंत मादक एवं मनमोहक वर्णन किया है। जिसमें कहीं रति क्रीड़ा की आनन्दमयी छवि है, तो कहीं स्पर्श सुख का भावोन्मादपूर्ण चित्रण है कहीं सुखद शय्या पर साथ–साथ शयन का मादक चित्रण है तो कहीं नखक्षत, दंतक्षत चुम्बन, परिरम्भण आदि विभिन्न काम–केलियों का मनोहारी चित्रण है, कही मान करने की शिक्षा दी गई है, कहीं मान–मोचन की विधियाँ बताई गई है, कहीं नदी, सरोवर या वन के काम–क्रीड़ाओं के चित्र अंकित किये गये है, तो कहीं शास्त्रोक्त विपरीत रीति का भी उल्लेख किया गया है। इस तरह विद्यापति ने संयोग काल से सम्बन्धित विविध व्यापारों, विभिन्न चेष्टाओं, अनेकानेक हाव–भावों, अगणित काम–क्रीड़ाओं आदि का उल्लेख अपने पदों में किया है।

शास्त्रीय दृष्टि से विरह विप्रलम्भ शृंगार के अंतरगत आता है। साहित्य–शास्त्र में विरह के चार भेद बताये गये हैं–पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण। विद्यापति ने इन चारों में से केवल मान तथा प्रवास सम्बन्धी विरह का ही वर्णन किया है। इनमें से भी प्रवास सम्बन्धी विरह अधिक मार्मिक है। वैसे भी विरह का यही भेद सबसे अधिक न्याय, पीड़ा एवं वेदना उत्पन्न करने वाला माना गया है। क्योंकि प्रवास के कारण प्रेमी के हृदय को दो प्रकार से दुख निरन्तर सताया करते हैं। एक तो वह प्रिय के अभाव से दुःखी रहता है, दूसरे प्रिय के दुःखों को अनुमान करके सदैव कष्ट झेला करता है। विद्यापति ने अपने विरह वर्णन में नायिका को प्रिय के अभाव में अत्यधिक दुःखी चित्रित किया है।

3- çÑfr&fp=.k % प्रकृति मानव की चिर सहचरी है। मानव के सम्पूर्ण दुख–सुख, आशा–आकांक्षा, आनन्द–उल्लास आदि में प्रकृति का बड़ा हाथ रहा है। इसलिए मानव आरम्भ से प्रकृति से प्रेरणा लेता आया है और उसने अपने हृदयोद्गारों में प्रकृति के मंजुल रूप की बड़ी ही मनोरम झाँकियाँ अंकित की

है। किन्तु प्राचीन कवि प्रकृति के स्वतंत्र एवं उन्मुक्त रूप के चित्रण में उतने लीन दिखाई नहीं देते, जितने कि उसके उद्दीपन रूप पर विमोहित हुए है। प्रायः सभी प्राचीन कवियों को प्रकृति भावों को उद्दीप्त करती हुई दिखाई दी। इसका कारण यह है कि साहित्य–शास्त्रों में प्रकृति को उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत स्थान दिया गया है। इसी कारण शास्त्राज्ञा का पालन करते हुए इन प्राचीन कवियों ने प्रकृति को कभी स्वच्छंद एवं स्वतंत्र रूप से देखने की चेष्टा नहीं की।

परन्तु विद्यापति ने अपने कुछ पदों में प्रकृति के स्वतंत्र एवं आलम्बन रूप का भी चित्रण किया है। इसलिए विद्यापति का प्रकृति चित्रण आलम्बन एवं उद्दीपन दोनों रूपों में मिलता है।

आलम्बन रूप में प्रकृति की मनोरम झाँकी अंकित करते हुए विद्यापति ने 'बसंत' का चमत्कारपूर्ण वर्णन किया है। 'बसंत' वर्णन के अंतर्गत कवि ने ऋतुराज के जन्म से लेकर उसकी राज्य–प्राप्ति तक का उल्लेख बड़ी सजीवता और कुशलता के साथ किया है।

ek?k ekl flfjiapeh xtkbfy uoe ekl iape g#vkbA
lHk [ku cjk ldy iD[k g fnudj mfnr lekbA
lkjg liu cfrl y[ku lg tuy yy fjrvkbAA

4- vydkj&fo/kku % विद्यापति की पदावली में सादृश्यमूलक अलंकारों का ही प्राधान्य है और ये सभी अलंकार भावों की विषद अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुए है, केवल भाषा की सजावट के लिए नहीं आये है। इनमें कवि की वाणी का सौन्दर्य मुखरित हुआ है, भावों की तरंगे प्रवाहित हुई है और कल्पना का मधुर स्वर गुन्जायमान हुआ है। विद्यापति का अलंकार विधान दृश्य–चित्रण एवं भाव–निरुपण में बड़ा ही सहायक सिद्ध हुआ है। विद्यापति ने बड़ी ही सुन्दर एवं सजीव 'उपमाओं' द्वारा दृश्य विधान किए है। जैसे–

एक बालिका तथा नवयुवती के क्रमशः विकसित उरोजों की स्थिति को कवि ने उपमा द्वारा कितनी सजीवता के साथ स्पष्ट कर दिया है– ^^igfy cnfj dp iu uojx**

इसके अतिरिक्त विद्यापति ने उत्प्रेक्षा, रूपक, रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकारों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है।

Hkk"kk & विद्यापति की 'पदावली' हिन्दी और बंगला की मध्यवर्तिनी मैथिली भाषा में लिखी है। विद्यापति की भाषा में सबसे बड़ी विशेषता उसकी 'कोमलकान्त पदावली' की है। यद्यपि जयदेव के 'गीत–गोविन्द की भाषा बड़ी ही ललित एवं कोमल मानी गई है और विद्यापति की पदावली को उसी से प्रभावित माना जाता है, फिर भी इसकी अपनी विशेषता है क्योंकि इसका पद–विन्यास, इसका शब्द चयन एवं इसकी वर्ण–मैत्री सर्वथा अद्भुत एवं अनुपम है। इसमें तत्कालीन लोकभाषा का माधुर्य विद्यमान है। वैसे मिट्ठा' के आधार पर आपने अपने पदों की रचना देशवाणी अर्थात लोक–भाषा में की।

भाषा के उक्त सौन्दर्य के अतिरिक्त उसमें लाक्षार्णकता एवं व्यंग्य का सृजन करने के लिए कवि ने लोकोत्तियों एवं मुहावरों का बड़ा ही सजीवन प्रयोग किया है। इनसे एक ओर तो भाषा में अर्थ–गाम्भीर्य की सृष्टि हुई है और दूसरी ओर अत्यधिक मात्रा में उक्ति चमत्कार उत्पन्न हो गया है। जैसे–'अवसर बहला रह पचताव', असमय आस न पूरम काम, 'कूप न आबए पथिक के पास' आदि।

lUnHkZ %

1. विद्यापति डॉ0, शिवप्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2010
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
3. विद्यापति–भूमिका।
4. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ0 रामकुमार वर्मा

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 135-138

[kMh cksyh fgUnh dfork ds fuekZ.k esa eSfFkyh'kj.k xqIr dk ;ksxnku

ine Hkw"k.k izrki flag*

साहित्य जगत में 'दद्दा' नाम से प्रसिद्ध राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त (1886–1964) का जन्म झांसी के चिरगांव में हुआ। इनकी शिक्षा घर पर ही हुई। ये भारतीय संस्कृति एवं वैष्णव परम्परा के प्रतिनिधि कवि हैं, जिन्होंने 50 वर्षों तक निरंतर काव्य सर्जना की। लगभग 40 ग्रंथ लिखें या रचे तथा खड़ी बोली को सरल, प्रवाहमय और सशक्त बनाया। इनकी मुख्य काव्य कृतियाँ हैं– भारत–भारती, पंचवटी, साकेत, यशोधरा, जयद्रथवध तथा जयभारत। साकेत पर इन्हें मंगला प्रसाद पारितोषिक भी मिला था। ये पद्म विभूषण के अलंकरण से सम्मानित भी हुए। 1952 से 1964 तक ये राज्य सभा के मनोनीत सदस्य भी रहे। ये तो मैथिलीशरण गुप्त का संक्षिप्त परिचय रहा।

हिन्दी साहित्य में खड़ी बोली में कविता लिखने की परम्परा तो आदिकाल से ही शुरू हो चुकी थी। नाथों–सिद्धों की भाषा भी खड़ी बोली थी। अमीर खुसरो को खड़ी बोली का पहला कवि माना जा सकता है। मनोरंजन काव्य के रचयिता खुसरो की रचनाओं में भले ही गहराई न हो, किन्तु भाषा की दृष्टि से वे महत्वपूर्ण हैं।

खड़ी बोली शब्द फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के बाद गिलक्राइस्ट द्वारा प्रयोग में लाया गया। सम्पूर्ण मध्यकाल में काव्य भाषा के पद पर ब्रजभाषा एवं अवधी छाई रही। यहाँ तक कि आधुनिक काल के प्रथम चरण भारतेन्दु युग में भी काव्यभाषा के पद पर ब्रजभाषा प्रतिष्ठित रही। यहां तक कि भारतेंदु युग के प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद ने भी खड़ी बोली में कविता लिखने का प्रयास किया और लिखा भी लेकिन लिखने के पश्चात् इस बात को उन्होंने स्वयं स्वीकार किया कि देखिए कितनी भौंड़ी कविता बन रही है। कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार है–

Hktu djks Jhd".k dks feydj ds lc yksxA
fl) gks,xk dke vkSj NqVsxk lc lksxAA

खड़ी बोली में कविता लिखने का श्रेय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को सबसे अधिक है, क्योंकि उनके प्रेरणा से ही मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', नाथूराम शंकर 'शर्मा' ने आदि ने खड़ी बोली हिन्दी में कविता लिखना प्रारम्भ किया। जिसमें सर्वाधिक योगदान मेरी दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त का है।

प्रारम्भ में तो मैथिलीशरण गुप्त 'वैश्योपकारक' में अपनी रचनाएं छपवाते थे, किन्तु सरस्वती में अपनी रचना को प्रकाशित कराने की तीव्र आकांक्षा उनके ह्रदय में थी। उन्होंने 'रसिकेन्द्र' उपनाम से ब्रजभाषा में लिखी कविता सरस्वती के लिए भेजी किंतु उनकी कविता को द्विवेदी जी ने सरस्वती में नहीं छापा और उन्हें पत्र लिखकर सूचित किया कि 'सरस्वती' में हम बोलचाल की भाषा में लिखी गई कविताएं ही छापते हैं, तथा यह भी लिखा कि 'रसिकेन्द्र' बनने का जमाना अब गया। गुप्त जी पर इन दोनों बातों का विशेष प्रभाव पड़ा। उन्होंने खड़ी बोली में कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया और 'उपनाम' से सदैव के लिए मुक्ति पा ली। तत्पश्चात् उन्होंने 'हेमन्त' नामक कविता सरस्वती के लिए खड़ी बोली में लिखकर भेजी, जो अनगढ़ एवं अस्त–व्यस्त थी, किंतु द्विवेदी जी ने उसका संशोधन करके सरस्वती में उसे छाप

*शोधछात्र, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

दिया। आचार्य द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त के गुरु एवं प्रेरक थे, इसीलिए उन्होंने अपने महाकाव्य साकेत में उनकी प्रेरणा को स्वीकार करते हुए श्लिष्ट शब्दों में यह स्वीकार किया–

^^djrs rqy lhnkl Hkh dSls ekul ukn\
egkohj dk ;fn mUgsa feyrk ugha iz lknA**

मैथिलीशरण गुप्त से पहले श्रीधर पाठक खड़ी बोली में काव्य रचना कर रहे थे। लेकिन इनकी खड़ी बोली में कहीं–कहीं ब्रजभाषा के क्रियापद हैं।

खड़ी बोली हिन्दी कविता के निर्माण में जहां तक राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के योगदान की बात है। उन्होंने खड़ी बोली के खड़ेपन, कर्कशता, तथा परुषत्व को दूर कर उसे मधुरता और कोमलता प्रदान की। खड़ी बोली को शुद्ध, परिष्कृत तथा काव्योचित बनाया। गुप्त जी ने अपने काव्य का सामंतवादी तथा सम्प्रदायवादी स्तरों से ऊपर उठाकर धर्मनिरपेक्ष, एकतावादी, राष्ट्रवादी, भारतीयता की उच्चतम स्थिति पर पहुँचाया। यही कारण है कि उनकी लिखी कविताएं आज भी समस्त भारत में सर्वाधिक लोकप्रिय है। क्योंकि उनकी भाषा सहज व सर्वमान्य है। स्वर्गीय अज्ञेय ने माना है–''ऐसे कवि भी आज कम हैं जो सोचते हैं कि ऐसी भाषा में लिखो जो पूरे देश के साथ तादात्म्य कर सके। मैं समझता हूँ कि गुप्त जी इस चीज को देखते थे और उनके काव्य में इसके अनुकूल बहुत कुछ है। यही कारण है कि वे (मैथिलीशरण गुप्त) 'भारत–भारती' के साथ पूरे देश के साथ जुड़ गए। 'भारत–भारती' में चलती सरल भाषा का प्रयोग किया गया है। जिसमें बोलचाल की सामान्य शब्दावली स्वतः ही आ गई। यही कारण है कि उस युग में 'भारत–भारती' इतनी अधिक लोकप्रिय हुई। ''हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी'' इस रचना की यह पंक्ति आज भी लगभग प्रत्येक व्यक्ति की ज़बान पर विद्यमान है।

गुप्त जी ने खड़ी बोली को काव्योपयोगी बनाकर सुघड़ रूप प्रदान किया, वास्तव में खड़ी बोली के स्वरूप निर्धारण में उनका योगदान अन्यतम है। 'भारत–भारती' के नवयुवकों का कंठहार बनी रही। बोलचाल के रूपों को इसमें स्थान मिला। जैसे लीजिए के स्थान पर 'लीजे' आदि। गुप्त जी ने दिखाई तथा दिखलाई दो प्रचलित रूपों में से दूसरे रूप को मान्यता दी, वैसे गुप्त जी ने आत्मने पद के रूप में 'दीखना' क्रिया का ही सर्वत्र प्रयोग किया है। पर संयुक्त क्रियाओं के प्रयोग में वह एकरूपता नहीं रख सके जैसे–

fn[kykbZ nsrs FksA
vkt o gh nh[krsA
iFk ge fn[kyk gjsA ¼lHkh mnkgj.k Hkkjr&Hkkjrh ls½
v0;; :i esa tSls&tSls] T;ksa&R;ksa dks iz;ksx fd, gSaA mnkgj.k&
lq;ksX; gksus ij nhid gks tkrk fu"iHk tSlsA
mls n[kdj mRrj dk eq[k gqvk 'kksHkkghu rSlsAA ¼ljLorh Hkkx&2½

वे क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष को उद्देश्य के लिंग, वचन और पुरूष के अनुसार रखते थे, जैसे– ge dkSu Fks] D;k gks x;s gSa vkSj D;k gksaxs vHkhA ¼Hkkjr&Hkkjrh½

गुप्त जी की काव्य भाषा में भावानुकूल भाषा का प्रयोग मिलता है। यही कारण है, जहां एक ओर कोमलकांत पदावली का प्रयोग करते हैं। वहीं दूसरी ओर परूष और कठोर शब्दावली भी है। कवि ने अपने काव्य में अनेक स्थलों पर चित्रमय भाषा का प्रयोग किया है। रूप चित्रण के लिए अप्रस्तुत योजना का सहारा लिया गया है। गुप्त जी ने संस्कृत शब्दावली के आधार पर अपनी काव्यभाषा को समृद्ध किया। कभी–कभी अप्रचलित कठिन शब्दों जैसे–त्वेष, आस्य, पिजगु आदि पर सामान्यतः सरल शब्दों का प्रयोग मिलता है।

iq"V gks ftlds vkykfdd vUu] uhj] lehj lsA
eSa leFkZ gqvk lHkh fof/k jg fujkx 'kjhj lsAA ¼jkx esa Hkkx ls½

ठौर, नेह, गह, निरोह, थिरता जैसे तद्भव और जोन, धाड़, कांख, छींटना, भरका, धड़ाम, जैसे प्रांतीय शब्द भी मिलते हैं।

विकास काल के उपरान्त 'साकेत' तथा यशोधरा के बाद उनकी भाषा निखरती चली गई। स्वयं मैथिलीशरण गुप्त इस बात को स्वीकार करते हैं कि हमारी प्रांतिक बोली में कभी–कभी ऐसे अर्थपूर्ण शब्द मिल जाते हैं, जिनके पर्याय हिन्दी में नहीं मिलते हैं ..... अपनी प्रांतीय भाषाआं से उपयुक्त शब्द ग्रहण करने में हमें क्यों संकोच होना चाहिए।' संज्ञा से 'क्रियारूप' बनाने की दृष्टि से कवि ने खड़ी बोली को समर्थ किया है। जैसे–अनुकूलना, व्यापना, संधान, निर्धारे, आदि। उन्होंने विराम चिन्हों के प्रयोग को व्यवस्थित किया। प्रश्नवाचक चिन्हों को सही जगह पर लगाया। उन्होंने स्थान–स्थान पर प्रचलित मुहावरों का प्रयोग किया। यही सब खूबियां गुप्त से पहले कवियों में अपेक्षाकृत कम थीं इस कारण से भी हम कह सकते हैं कि खड़ी बोली हिन्दी कविता की व्यवस्थित शुरूआत मैथिलीशरण गुप्त से होती है। गुप्त जी को लड़खड़ाती भाषा 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मिली उसको अपने सतत प्रयास से 'विष्णुप्रिया' तक परिमार्जित तथा सौष्ठवमय बना दिया। डॉ0 नगेन्द्र का इनके विषय में कहना है कि ''कवि को खड़ी बोली की प्रकृति का पूर्ण ज्ञान है तथा दूसरे द्विवेदी जी के चरणों में दीक्षा लेकर व्याकरण की त्रुटि करना सम्भव नहीं था। अतः उनकी भाषा सर्वत्र व्याकरण सम्मत है।''

भाषा को मंजने में शताब्दियां लग जाती हैं पर हिन्दी खड़ी बोली को गुप्त जी दिशा देने में, मुहावरे, तथा कहावतों से युक्त बनाने में आचार्य द्विवेदी की इच्छानुसार अकेले लगे रहे। जहां कहीं से उन्हें नया मिला उसे अपनाकर खड़ी बोली को व्यापक बनाया और उसका प्रचार–प्रसार किया।

'साकेत' खड़ी बोली में रचित दूसरा महाकाव्य है। मैथिलीशरण जी ने इस महाकाव्य की रचना करके खड़ी बोली को काव्य गरिमा प्रदान की तथा लोगों की इन आशंकाओं को सदा के लिए निर्मूल कर दिया कि खड़ी बोली में काव्य रचना नहीं हो सकती। साकेत में प्रयुक्त खड़ी बोली का उदाहरण–

^^lf[k uhy ueLlj ls mrjk ;g gal vgk! rjrk rjrkA
vc rkjd ekfDrd 'k"k ugha fudyk ftudks pjrk pjrkAA –साकेत मैथिलीशरण गुप्त

मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'भारत–भारती' खड़ी बोली का काव्य ग्रन्थ है। यह काव्य ग्रन्थ उस काल में अत्यन्त लोकप्रिय था। डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार ''भारत–भारती की लोकप्रियता खड़ी बोली की विजय पताका सिद्ध हुई।'' उस समय जिन लोगों को यह सन्देह था कि खड़ी बोली काव्य रचना के लिए उपयुक्त नहीं है। उनहें भी 'साकेत', 'जयद्रथवध', 'पंचवटी', 'भारत–भारती' आदि को पढ़कर अपनी धारण बदलनी पड़ी। यह ठीक है कि खड़ी बोली की प्रारम्भिक कविताओं में वह सुकुमारता और माधुर्य नहीं है। जो परम्परागत ब्रजभाषा काव्य में है, तथापित हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ब्रजभाषा लगभग 600 वर्षों तक 'काव्यभाषा' के पद पर प्रतिष्ठित रही, तब इन गुणों को अर्जित कर सकी। खड़ी बोली भी धीरे–धीरे काव्यभाषा के लिए उपयुक्त गुणों सुकुमारता, पद लालित्य एवं माधुर्य का विकास हो गया। जिसका प्रमाण छायावादी काव्य है। गुप्त जी के काव्य में तीनों युगों (भारतेन्दु, द्विवेदी और छायावाद) की अनुगूंज है।

काव्य भाषा का आदर्श रूप गुप्त जी ने प्रस्तुत किया और उसके फलस्वरूप ही गुप्त जी की भाषा द्विवेदी युग की आदर्श भाषा के रूप में स्वीकार की गई। फलतः खड़ी बोली हिन्दी कविता के विकास में यात्रा में गुप्त जी का अप्रतिम स्थान है, जिसकी ओर शांतिप्रिय द्विवेदी ने संकेत करते हुए लिखा था, ''किसी माला की प्रथम मरिण, उपवन में प्रथम पुष्प, गगन में प्रथम नक्षत्र का जो महत्वपूर्ण स्थान हो सकता है, वही वर्तमान हिन्दी कविता में गुप्त जी का है। वैसे गुप्त जी ने कथ्य को महत्व देते हुए स्वीकार किया है कि– jke! rqEgkjk pfjr Lo;a gh dkO; gSA
dksbZ dfo cu tk,] lgt lEHkkO; gSAA

फिर भी हिन्दी कविता के विकास पथ पर बढ़ते हुए उन्होंने काव्यभाषा के परिष्करण पर और साथ ही प्रांजलता तथा मधुरता पर भी ध्यान दिया। गुप्त जी द्विवेदी युग के ऐसे सर्वश्रेष्ठ कवि है जिन्होंने काव्यभाषा को मानक रूप प्रदान किया। युग पुरुष महात्मा गाँधी ने भी उनकी भाषा को बहुत आसन बताया।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद का कहना था– ''साहित्य के क्षेत्र में खड़ी बोली अथवा जनता की भाषा का काव्य में प्रयोग करके रोचकता लाने का श्रेय अधिकतर मैथिलीशरण गुप्त को ही है।''

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्त ने रीतिकालीन बंधी बंधाई परिपाटी को तोड़कर खड़ी बोली का प्रचार–प्रसार किया और खड़ी बोली हिन्दी कविता की व्यवस्थित शुरूआत भी की। मैथिलीशरण गुप्त ने खड़ी बोली हिन्दी कविता को लोकप्रिय बनाने के लिए हिंदी के चिरपरिचित 'हरिगीतिका' छन्द का चुनाव किया। गुप्त जी ने बड़े धैर्य के साथ अल्पव्यस्क खड़ी बोली को परिश्रमपूर्वक प्रौढ़–काव्य भाषा में रूपान्तरित कर दिया। इस प्रकार खड़ी बोली हिन्दी के काव्यभाषा के रूप में निर्माण में गुप्त जी ने एक मजदूर से लेकर कुशल कारीगर तक की भूमिका निभाई। इन्होंने उसके लिए कच्चा माल दोया ही नहीं, बल्कि उसके करीने से लगाया। भाषा का मंजने में शताब्दियां लग जाती हैं, पर हिन्दी खड़ी बोली को गुप्त जी ने अपने सामर्थ्य अनुसार मुहावरों और कहावतों से युक्त बनाया और जहाँ कहीं उन्हें नया मिला उसे अपनाकर खड़ी बोली को व्यापक बनाया और उसका प्रचार–प्रसार किया। इस प्रकार यह निःसंदेह रूप से कहा जा सकता है कि खड़ी बोली हिन्दी कविता की शुरूआत मैथिलीशरण गुप्त से मानी जाती है।

lUnHkZ %

1. कविता क्या है–विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, राजकमल प्रकाशन।
2. भारतीय स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद–प्रेमशंकर, वाणी प्रकाशन।
3. मैथिलीशरण–नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन।
4. आधुनिक हिन्दी काव्यलोचना के सौ बरस–प्रो0 पुष्पिता अवस्थी, राधाकृष्ण प्रकाशन।
5. साहित्य का एकान्त–अपूर्वानन्द, वाणी प्रकाशन।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 139-142

ekbZ % L=h&eqfä dk lathnk Loj

lkuy*

नब्बे के दशक में अपनी लेखनी से जिन महिला उपन्यासकारों ने अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करायी उनमें गीतांजलि श्री का उल्लेखनीय स्थान है। अब तक उनके चार उपन्यास–माई (सन् 1993 ई0), हमारा शहर उस बरस (1998 ई0), तिरोहित (2001 ई0), खाली जगह (2006 ई0) व पांच कहानी संग्रह–अनुगूँज (1991 ई0), वैराग्य (1999 ई0), मार्च, मां और साकुरा (2008 ई0), प्रतिनिधि कहानियाँ (2010 ई0), यहां हाथी रहते थे (2012 ई0) प्रकाशित हो चुके हैं। लेखिक के लेखन की खासियत यह है कि वे अपनी लेखनी को किसी 'वाद' में नहीं बाँधती हैं। उनकी रचनाएं व्यक्ति व समाज की अनके परतों को गहराई से परखती है और उन्हें अपनी कहानियों का विषय बनाती है। स्त्री जीवन के जिन कोनों –दबड़ों पर आम नजर नहीं टिकती है वहाँ भी लेखिका की सूक्ष्म दृष्टि जाती है। उनकी अधिकांश कहानियों व उपन्यासों की केन्द्रीय पात्र स्त्री रही हैं।

'माई' (1993 ई0) गीतांजलि श्री का ऐसा ही उपन्यास है जिसमें उन्होंने एक परिवार की तीन पीढ़ियों की कहानी कही है जहाँ माई केन्द्र में है।

यह उ0प्र0 का मध्यवर्गीय जमींदार परिवार है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में फलाफूला व पला–बढ़ा। इसी परिवार की तीन पीढ़ियों के इर्द–गिर्द 'माई' उपन्यास की कहानी चलती है। घर के बाहर रोबीले दादा हैं, घर के अंदर हुक्म चलाती दादी, बाबू (माई के पति), सुनैना और सुबोध (माई के बेटा–बेटी) और इन सभी की जरूरतों को पूरा करती माई। काम में मदद के लिए भोंदू और हरदेई।

यहाँ माई की कहानी नैरेट कर रही है, उसकी बेटी सुनैना। वह जितना माई को जान पाई उसी जानने को सुनैना ने अभिव्यक्त किया है। 'माई' उपन्यास 35 भागों में है। जिसमें नैरेटर सुनैना ने अपने बचपन से लेकर जवानी तक के जीवन को माई के केंद में रखकर साझा किया है।

उपन्यास का प्रारंभ होता है सुनैना के बचपन के दृश्यों से जहाँ रोबीले दादा, ठाठ करती दादी, दब्बू बाबू और सभी का हुक्म मानने वाली माई हैं। जैसा की हर पितृसत्तात्मक समाज में होता है, स्त्री को दोयम दर्जा ही मिलता है। वह चाहे जितना पढ़ी–लिखी हो, उसका पति, उसके सास–ससुर उसे गँवार ही समझते हैं– ''हालांकि बाबू ने क्लब में किसी से हँसकर कहा था कि इनसे क्या पूछना, पढ़े–लिखों से पूछिए, और हमने कभी माई से पूछा था तो वह बोली थी कि एफ0ए0 पास है।''[1]

गीतांजलि श्री ने माई के चरित्र को जिस रूप में ढाला है, उसे पढ़कर सतही पाठक उसे कमजोर और दब्बू भारतीय स्त्री ही समझेंगे लेकिन माई ही निरीहता और चुपचाप परिवार के सभी लोगों के आदेश का पालन करने के पीछे जो ताकत है उसे सजग पाठक ही समझ सकता है। हाँ, यह सच है कि वह दिन–भर चुपचाप दादा,दादी, बाबू और अपने छोटे बच्चों के खाने–पीने, रहन–सहन की व्यवस्था में ही लगी रहती। दादा और दाढ़ी चटोर तबीयत के बुजुर्ग थे, बाबू की भी खाने–पीने की अलग फेहरिस्त थी– ''जब हम जगते तो वह नहाई–धोई, साफ धोती पहने, रसोईघर में पराँठे सेंकती होती। मटर के, दाल के, आलू के, गोभी के, मूली के। दादा और दादी नाश्ता नहीं, सीधे पूरा भोजन ही करते थे। जो उनके लिए बनता, उसी में, से हमारे लिए स्कूल का टिफिन तैयार होता। लेकिन बाबू साहब कुछ हल्का लेते। पाँच अन्न–गेहूँ, मूँगफली, मसूर, चना और मूंग–साबुत भीगा ओर अखुआ निकला, मुट्ठी भर रोजना। माई उस पर नींबू और नमक छिड़कर बाबू को दे आती। साथ में एक बड़ा गिलास मट्ठे का'' ।[2]

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

दिन भर झुकी–झुकी वह एक सेवक की तरह सभी के आदेश का पालन करती थी। दादी के डाँटने पर, व्यंग्य करने पर भी माई के मुँह से चूँ भी नहीं निकलता था लेकिन जब बात सुबोध और सुनैना पर आती तब माई रक्षाकवच बनकर उनके सामने खड़ी हो जाती। सुबोध के पफ स्टाइल बाल काटकर, सिर घुटाने का आदेश जब दादा ने दिया। वह दादा जिससे पूरा घर खौफ खाता था तब माई ने ही दादा के सामने आकर सुबोध को जिल्लत से उबारा– ''सुबोध को बाहर के बरामदे में कुर्सी में चद्दर से बाँधकर अटाया गया और सिर का हुआ –''आपरेशन'। सुबोध का चेहरा गुस्से और कलाई से लाल जिल्लत से तन्नाता। मैंने जाकर माई को बताया था। वह कुछ बोली नहीं, हाथ से आटा धोया, आँचल से पोंछा, सिर पर पल्लू ताना और पर्दे के पीछे से आवाज देती हुई बढ़ी, ''सुबोध इधर आना। दादा बैठक में थे। माई आई, साफ बोली, 'हो गया, हाँ हो तो गया। बस करो। जाओ। और सुबोध की चादर अलग झाड़ उसे अंदर खींच ले गई।''[3]

अपनी जिल्लत को माई सहती थी लेकिन अपने बच्चों के लिए हर तरह से सीढ़ी का काम करती थी, उन्हें गड्ढे में गिरने से बचाने वाली सीढ़ी– ''जो मां बन सकता है वह अपवित्र कैसा? माई ने ज़िल्लत से उबार दिया। इसलिये माई ने कभी नहीं कहा कि आज चौके में न आओ, पूजा में न जाओ, पंगत में न खाओ। कुछ ऐसा ही था हमारा बचपन। बार–बार गड्ढे में गिरता और बार बार सीढ़ी से चढ आता। गड्ढे जिनमें गिरने से माई नहीं रोक पाती थी। इतने लोग हर तरफ से ढकेलने को उतारू, पर माई पीछे से आती, झट 'एक' सीढ़ी उतार देती, हमें उबारने के लिए, लडखड़ा के फिर उठ आने के लिए।''[4]

पितृसत्तात्मक व्यवस्था से संचालित इस परिवार में दादा, बाबू और सुबोध को जितनी स्वंतत्रता प्राप्त थी उतनी दादी, माई और सुनैना को नहीं थी। दादी तो खैर बुजुर्ग थी, वह अपना सारा रूआब माई पर जमाती थी। दरअसल, पाबंदियाँ की जाती थी तो माई और सुनैना पर। सुनैना के बड़े होते ही उसे इधर उधार जाने की सख्त मनाही हो गई– ''फाटक खुलने की आवाज हुई मेहमान का जायजा लेने के पहले ही दादा फौरन बोले, 'सुनैना' अंदर जाओ, कुछ चाय–नाश्ता भेजने को कहो।' मैंने अपने में औरत उस पल देख ली।'[5] लेकिन यहाँ भी माई सुनैना का बचपन उसे लौटाती है। बड़े होकर भी वह उसे एहसास नहीं होने देती कि वह बड़ी है। कई बार उसकी गलतियों को भी नजरअंदाज कर देती है– अपने बच्चों के लिए मां कम, दोस्त ज्यादा।

गीतांजलि श्री जितनी सूक्ष्मता से परंपराओं में पली बढ़ी लेकिन अंदर ही अंदर सुलगते एक मध्यवर्गीय स्त्री के मानस को परख लेती है उसी गहराई से वे पुरूषों की चाल को भी पाठकों के बीच साझा करती हैं। घर में स्त्री के लिए जहाँ तमाम तरह के रोक–टोक हैं वहीं पुरूषों के प्रेम –प्रसंग' सभी के सामने चल रहे हैं और इस बात की किसी को तकलीफ भी नहीं है। कहानी में प्रसंगवश एक हेडमिस्ट्रेस का उल्लेख आया है जो अपने बेटे के साथ दादा से मिलने आती है। वह एक दो बार और दादा से मिलने आयी। उसके बेटे में सुबोध और सुनैना को अपने ही घर के किसी सदस्य का अक्स दिखता है– ''बस कभी–कभी, यों ही, उस युवक का, उस औरत के पीछे–पीछे मुँह लटकाए जाना कौंध जाता है। उसके चेहरे पर किसी परिचित के चेहरे की पहचान थी क्या?हमारे घर का कोई उड़ता साया वहाँ चिपक गया क्या? हमारे यहाँ की नाक, या होंठ, या कुछ और?''[6]

कुछ यही प्रसंग सुबोध और सुनैना के पिता (बाबू) के साथ भी है। उनके भी किसी स्त्री के साथ गहरे प्रेम–प्रसंग रहे हैं। लेकिन उनके मन में किसी भी तरह का अपराधबोध नहीं है– ''फिर हमने उसकी बाँह पर नीले निशान देखे। क्या हुआ था मालूम नहीं तब भी पता था कि नहीं, बस हम भागते जा रहे थे, गेहूँ के ऊँचे खेत थे, क्लब में बाबू थे और पता नहीं कौन थे और वह औरत थी। ''बाबू, माई जा रही है।' बाबू लौटे थे। रात को माई का हाथ थामकर हम सोए थे। उसने घड़ी उतारकर बाबू के मुँह पर मारी– 'दे आओ यह भी उसे।' कभी हमने पूछा भाई कहाँ जा रही थीं तुम? वह बोली, कहीं नहीं, तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाती। हमें छोड़कर माई थी ही नहीं।''[7]

इन प्रसंगों के परिप्रेक्ष्य में यदि हम माई को देखे तो पाते हैं कि भूतकाल में विवाह से पूर्व उनके भी किसी के साथ स्नेहिल रिश्ते थे जिसके बारे में चर्चा कर दादी उसे प्रताड़ित करती थी – ''खोटा सिक्का

हमरा कपारे मढ़ दिहलन, हाँ नहीं त। बेचारा राजा। का केहू बोलेला ना त जानेला ना कि का खेल चलत रहे उहाँ? ना जाने कइसन मइल ..... उपरोहित क बेटा''....[8]

माई उपन्यास में 'परदा' एक रूपक के रूप में आया है। 'परदा' खुद के अंदर गहरी अर्थव्यंजना समेटे है। आमतौर पर 'परदा' उसे कहा जाता है जो घरेलू स्त्रियां पुरूषों से और घर में बड़ों से करती हैं। व्यावहारिक भाषा में समझे तो 'परदा' का अर्थ हुआ 'लिहाज करना', 'संकोच करना'। परदा करने की वजह से ही दादी माई को पंसद करती थी। दादी के किसी व्यंग्य का जवाब माई नहीं देती। खुद को शर्म, संकोच और दबाकर रखने वाले पर्दे में रहकर भी माई ने सुनैना को कभी पर्दे में रहने के संस्कार नहीं दिये। माई अपनी बेटी को जाने अनजाने स्वतंत्र रहने का पूरा मौका देती है।

''सब मुझे 'असली पर्दे' में बिठाने को बेकरार, वह जैसे भूल से ही मेरा पर्दा ठीक बँधने के पहले ही खिसका देती।''[9]

जो जीवन माई नहीं जी पायी वैसा जीवन उसने अपनी बेटी सुनैना को देना चाहा। आग तो माई के अंदर भी सुलगती थी। लेकिन उसने उसे बाहर नहीं आने दिया जबकि सुनैना की आग (पितृसत्तात्मक रिवायतों के प्रति विरोध) बाहर को निकली। उसने अपने जीवन के सभी महत्वपूर्ण निर्णय स्वयं लिये जिसमें उसके लिए ढाल बनी माई– ''वह कुछ न कहती। वह तो पर्दा करती थी। उसके पर्दे में लौ सुलगी होगी तो उसे उसने बाहर न बढ़ा भीतर खींच लिया होगा। यह भी तो फर्क था माई और मुझमें। उसकी आग अंदर को गई, मेरे बाहर को निकली। जले तो होंगे दोनों ही .....।''[10]

गीतांजलि श्री उन स्त्रीवादी लेखकों से अलग है जिनके स्त्री–पात्र पुरूषों का प्रत्यक्ष विरोध करते हैं। वे पुरूषों के विरूद्ध तत्काल एक्शन लेती हैं। लेकिन यहां यह बात ध्यान में रखने वाली है कि उनका तत्काल विद्रोह किसी ठोस परिणति को प्राप्त नहीं करता, यदि करता भी है तो यह लेखक का कागजी परिवर्तन है जिसकी परिणति उसकी महज कल्पना है जैसे कि ''चाक' उपन्यास में। मैत्रेयी पुष्पा ने 'चाक' में सारंग को धीरे–धीरे विद्रोही तेवर दिये हैं और जब वह ग्राम प्रधान के चुनाव के लिये खड़ी होती है। तब इसकी आखिरी परिणति क्या होगी, वह खुद भी नहीं जानती। वह इसकी कल्पना पाठकों पर छोड़ देती हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह एक झटके में नहीं हो सकता। इसकी जड़ें इतनी गहरी हैं कि पुरूषों के मानस में परिवर्तन आयेगा भी तो धीरे धीरे ही आयेगा।

गीतांजलि श्री के स्त्री पात्र धीरे–धीरे अंदर ही अंदर सुलगते हैं। वे प्रत्यक्षतः तो कुछ नहीं बोलते लेकिन अपनी अगली पीढ़ी के लिए सुरक्षा कवच बन कर रास्ता खाल देते हैं। जैसा माई ने अपनी बेटी सुनैना के लिए किया। सुनैना की पढ़ाई लिखाई से लेकर उसके सहजीवन (live in relationship) तक के निर्णय में माई ने कोई रोक–टोक नहीं की– ''तब माई ने फ़ॉर्म पर हस्ताक्षर कर दिए और मैं सबकी आंख बचाकर पीछे के दरवाजे से निकल गई, तार लाँघकर सुबोध का इंतजार करने लगी। सेंकेड डिविज़न, माई द्वारा बच्चों का सर्वनाश, ड्योढ़ी में प्रलापों के स्वर गूँजने लगे। माई के खिलाफ हवा सर्राने लगी। पर मैं डिग्री कॉलेज में विज्ञान की छात्रा बन गई।''[11]

जब सुबोध की दोस्त जूडिथ उसके साथ रहने आयी थी, तब भी माई ने उसका सहर्ष स्वागत किया– 'उसे जूडिथ का मिलनसार स्वभाव रास आया। जूडिथ माँगती चकला बेलन लाओ, मैं बनाउँ। माई खुश होकर उसके लिए तरह तरह के देशी पकवान बनाती।''[12]

लेखिका ने पुराने मूल्यों को नकारा नहीं है, कुछ पुराने मूल्य माई की अगली पीढ़ी तक संप्रेषित हो गये हैं। माई की कई बातें सुनैना में चाहे अनचाहे आ गयी थी। न चाहते हुए भी सुनैना सुबोध के लिए उसकी सफलता के लिए व्रत करती है–'बस यों ही हो गया वह 'व्रत' मुझसे। उसको देखकर मैं भी बेसब्र हो रही थी, बार–बार मन में उठ रहा था– हो जाए सुबोध का, हाय हो जाए सुबोध का। यही दुआ मन में दोहराते दोहराते एक सुबह कोई कौर मुँह में डालते डालते रुक गई कि मैं 'सह' लूं तो वह 'पा' लेगा। ऐसे ही शुरू हो गया। यह 'व्रत' और डाक से परिणाम की खबर आने तक चलता रहा।'[13]

लेखिका ने नैरेटर से खुद कहलवाया है– 'असर था। मुझ पर। माई का। पीढ़ियों की सार माईयों का जिन्होंने दूसरों के लिए 'सह' कर, उन्हें सफलता दिला के, वही अपनी सफलता जानी।''[14]

नैरेटर चाह कर भी माई, दादी, बुआ के वजूद को खुद से अलग नहीं कर पाती। तीनों में समानता–स्त्री–होने की है। तीनों पीढियों ने अपने–अपने संघर्ष देखे हैं और इसका असर उनके व्यक्तित्व पर दिखता है। नैरेटर माई जैसा नहीं बनाना चाहती, वह चाहकर भी माई जैसी नहीं बन सकती,यह सिफत नहीं है उसमें। माई को वह चाहे जितना दुर्बल, निरीह मानती हो लेकिन वह खुद को माई के बिना कमज़ोर पाती थी। खुद को उसके आगे नतमस्तक करती थी– ''फिर भी मैं माई, जो मेरा आदर्श नहीं, जो वह है जिसमें मैं लड़ती हूँ, जो वह है जो मुझे नहीं बनना, के आगे माथा टेक देती हूँ।''[15]

पर्याप्त स्वतंत्रता पाकर भी जिस तरह का खालीपन सुनैना खुद के अंदर महसूस करती है (माई के बिना) वह यही बताता है कि माई के अस्तित्त्व में जो ताकत है, वह सुनैना के अस्तित्व में नहीं है। इस संदर्भ में उपन्यास में खुले आकाश में इधर–उधर उड़ते पंछी का रूपक गहरी अर्थव्यंजना लिये हुए है– 'माई ने आकाश में एक पंछी दिखाया था जो एक ही जगह तीव्रगति से उड़ने की प्रक्रिया में लीन था। 'वह देखो' पंछी असीम अंबर में एक ही जग पंख फड़फड़ा रहा था। लग रहा था सारा आकाश उसी का है। पर तो क्या? खाली अंतहीन आकाश किस काम का? अनंत आकाश में बेमतलब घुमड़ती ताकत बेकार होगी पर दूर–दूर तक फैली कमजोरी में ताकत का असर हो सकता है, मुझे क्या पता था।'[16]

कुल मिलाकर 'माई' माई की अनकही कहानी है जिसे नैरेट किया है, सुनैना ने। पूरे उपन्यास का केन्द्र बिंदु माई है। उसी के इर्द–गिर्द पूरी कहानी चलती है। सुनैना और सुबोध के छुटपन से लेकर माई की मृत्यु तक। यह उपन्यास एक नया स्त्री–विमर्श भी प्रस्तुत करता है जो यह बताता है कि परिवर्तन धीरे–धीरे होता है। पितृसत्ता ने स्त्री को जो जकड़नें दी हैं, माई में छिपी 'रज्जो' को जिसने पर्दे में छिपा कर रखा, उससे मुक्ति धीरे–धीरे ही हो सकती है। इन वर्जनाओं के विरूद्ध तत्काल कड़ी प्रतिक्रिया स्थायी जीत दर्ज नहीं करा सकती। हमारी जीत हो इसके लिए हमें धीरे–धीरे संघर्ष करना होगा, धीरे–धीरे सुलगना होगा।

lUnHk %

1. गीतांजलि श्री, माई, राजकमल प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष–1993 ई0, पृ0सं0 19
2. वही, पृ0सं0 15
3. वही, पृ0सं0 37, 38
4. वही, पृ0सं056
5. वही, पृ0सं0 35
6. वही, पृ0सं0 35
7. वही, पृ0सं0 52
8. वही, पृ0सं0 35
9. वही, पृ0सं0 47
10. वही, पृ0सं0 19
11. वही, पृ0सं0 19
12. वही, पृ0सं0 76
13. वही, पृ0सं0 118
14. वही, पृ0सं0 19
15. वही, पृ0सं0 64
16. वही, पृ0सं0 64

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 143-146

ukxktqu dk dk0; e 0;X; nf"V

vfuy dqekj ik.M;*

नागार्जुन के काव्य में जीवन के प्रति आकांक्षा, सौदर्य–प्रेम, देश–प्रेम, सामाजिकता के प्रति उत्साह के विभिन्न चित्र मौजूद हैं। बाबा ने प्रकृति और नारी सौन्दर्य के जो बारीक चित्र उकेरे हैं, सृष्टि के जो संश्लिष्ट और प्रांजल बिम्ब प्रस्तुत किये हैं, देश–प्रेम और राष्ट्रीयता के जो गीत गाये हैं, दीन–हीन के प्रति जिस तरह की संवेदनशील अनूभूति को व्यक्त किए हैं, उन्हें किसी प्रकार भी सामाजिकता से विच्छिन्न नहीं कहा जा सकता। इनकी कविताओं में प्रकृति–साहचर्य, मानव–प्रेम, वैयक्तिक प्रणय, उच्च नैतिक आदर्श, देशभक्ति, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शोषण की चुनौतियाँ आदि काव्यलोक का बीहड़ क्षेत्र उपस्थित है। नागार्जुन की कविताओं में विश्वव्यापकता और मानवता की गहराई है यह गहराई उनकी गूढ़ता की वजह से आती है। नागार्जुन की हर एक कविता एक कहानी कहती है, उनकी कविता उस हर इन्सान की कहानी है, जहां देश है, एक समाज है, किसान, मजदूर, श्रमिक, दलित, आदिवासी, मछुआरा आदि की कहानी है। नागार्जुन गहरे अर्थों में समाज व देश के प्रहरी हैं, वह गाँव से लेकर शहरों, महानगरों तक अपने शब्द–भेदी शस्त्रों को लेकर उतरते हैं। जिस प्रकार कबीर ने अपने समय में फैले तमाम अन्ध–विश्वासों, कुरीतियों, बुराइयों, दुराचारों को मिटाने का प्रयास किया, गढ़ों और मठों को तोड़ने का प्रयास किया ठीक उसी प्रकार कालजयी बाबा नागार्जुन ने कबीर की चेतना के समकालीन रूप के धरातल का विस्तार किया है। कबीर हिन्दी के पहले बड़े कवि हैं, जिन्होंने जाति व्यवस्था के भेद–भाव की कड़ी आलोचना की है और व्यंग्य के माध्यम से समाज में फैली कुप्रथाओं का विरोध किया। इसीलिए डॉ0 नामवर सिंह ने 'नागार्जुन की प्रतिनिधि कविताएँ' के सम्पादन की भूमिका में बड़ी सहजतापूर्वक स्वीकार किया है कि ''कबीर के बाद हिन्दी कविता में नागार्जुन से बड़ा व्यंग्यकार अभी तक नहीं हुआ।''[1] वहीं डॉ हरिनारायण मिश्र कहते हैं, ''नागार्जुन की व्यंग्य रचना में कबीर की तल्खी, भारतेन्दु की करुणा और निराला की विनोद वक्रता का विलक्षण सामंजस्य है।''[2]

नागार्जुन ने अपने व्यंग्य में राजनीति को ज्यादा शब्द दिया है। अर्थात् व्यंग्य में राजनीतिक जैसी ज्यादा कविताएँ लिखी हैं, वैसी कविताएँ मेरा अनुमान है कि साहित्य जगत में अन्यत्र नहीं मिलेगा। बाबा के यहाँ व्यंग्य के साथ ही साथ विनोद प्रियता भी मिलती है जो उनके काव्य की अनूठी पहचान है। बाबा आसान से आसान भाषा में बड़ी से बड़ी बात कह जाते है। आजाद भारत देश में अधिकांश जनता भूख से पीड़ित है। उन्हें सुचारू रूप से दो वक्त की रूखी–सूखी रोटी भी नसीब नहीं होती। इस भयंकर भूखमरी की शिकार जनता यूं ही दम तोड़ देती है जिसके त्रासद स्थिति का यथार्थ चित्रण बाबा नागार्जुन व्यंग्य के रूप में करते हैं। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने समकालीन हिन्दी कविता में नागार्जुन के व्यंग्य के सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है – ''वे शिष्ट व्यंग्य भी करते हैं और कभी–कभी फूहड़ व्यंग्य भी। व्यंग्य करने में उनका मुकाबला कम कवि कर सकेंगे। वे भ्रष्ट व्यवस्था, पाखण्ड, शोषण, अन्धविश्वास आदि पर तिलमिलाने वाला व्यंग्य करते हैं। व्यंग्य की यह शक्ति नागार्जुन में कबीर जैसी है। दोनों का भाषा–बोध भी मिलता–जुलता है। नागार्जुन को जो जीवन्त भाषा मिली है वह जनता के बीच से ही मिल सकती है। कबीर को भी इसी तरह मिली थी, निराला को भी और प्रेमचन्द को भी।''[3]

>B eB dk lkty lQyk xhr u xk;x
nky Hkkr rjdkjh Hkkjir [kk;xA^^[4]

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

नागार्जुन की कविताएं अपने समय और परिवेश की समस्याओं, चिन्ताओं एवं संघर्षों से प्रत्यक्ष जुड़ाव तथा लोक–संस्कृति एवं लोकहृदय की गहरी पहचान से निर्मित है। बाबा का 'यात्रीपन' भारतीय मानस एवं विषय–वस्तु को सम्पूर्ण और सही रूप में समझने का एकमात्र साधन रहा है। कवि की पक्षधरता को बाबा शुद्ध रुप से विश्लेषित करते हैं जिसका ठीक–ठाक विश्लेषण डॉ अजय तिवारी करते हुए कहते हैं–''कवि की पक्षधरता अधिक गहन और व्यापक दायित्व बोध से मुक्त है। वे मामूली आदमी की उपेक्षा करने वाले कुलीनतावाद का विरोध तो करते ही हैं, मुख्य बात यह है कि नागार्जुन इस मानसिकता के नागार्जुन इस मानसिकता के सामाजिक आधार को भी देखते हैं। वे यह देखते है कि वर्ग विरोध वाले समाज में ऐसी मानसिकता के अनिवार्यतः उत्पन्न होती है। यह मानसिकता मणिमय आभूषणों की चमक–दमक का प्रतिबिंब है और कोढ़ी–कुढ़व तन को घृणा का पात्र समझती है। नागार्जुन दरिद्रता के कोढ़ को दूर करने के लिए जितने चिंतित हैं, उससे वे केवल अभिजात मानसिकता के विरोधी नहीं बनते, बल्कि इस मानसिकता को जन्म देने वाली समाज व्यवस्था के भी विरोधी बनते हैं।''[5]

नागार्जुन के काव्य में गतिशीलता, सक्रियता, और प्रतिबद्धता का आवरण जीवन्त रूप प्रतिध्वनित–प्रतिबिंबित है। उनके यहाँ व्यंग्य भी समाज की स्थिति का वर्णन करता है। जहाँ देश की दूषित राजनीति और ढ़ेरों सामाजिक कुरीतियाँ है। मनुष्य हर स्थिति में इस व्यवस्था से लड़ने को मजबूर है जहाँ उसे बार–बार ठोकर खानी पड़ती है। कवि उन धोखेबाजों पर तंज कसते हुए कहता है–

lius es Hkh lp u cksyuk] ojuk idMs tkvksxsA
Hks;k y[kuÅ] fnYyh igqpks] eqok&fel jh ikvksxsA
Ekky feysxk jsr ldks ;fn] xyk eqtj fdlkuks dk
ge ejHkqD[kksa ls D;k gksxk] pj.k xgks Jhekuks dkA^^[6]

नागार्जुन आधुनिक युग के वह कवि है जिनकी चेतना गहरे अर्थों में किसानी चेतना हैं, इसलिए सही अर्थों में नागार्जुन भारतीय सोंधी मिट्टी से बने आधुनिकतम कवि हैं। इनकी कविता में शोषण के कई रूप देखने को मिलता है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चेतना के धरातल पर बाबा हमेशा सजग रहते है। बाबा जनता से गहरा लगाव और जनसंघर्षों में अडिग आस्था रखते हुए और एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना करना चाहते है।

प्रभाकर माचवे कहते हैं– ''नागार्जुन की कविता ने एक जनकवि की रचना की भांति युग–जागरण में भी योग दिया, निश्चित रुप से दिया है। हिंदी कविता और आलोचना में फैले कुहासे को अंशतः दूर किया है। कविता के समझादार रसिक का मनः स्वास्थ्य बढ़ाया है। इस दृष्टि से हिंदी में ऐसे व्यंग्यकार और कुशल शब्दकार को पाकर अब हमें अन्य भारतीय भाषाओं की व्यंग्य–कविता के बराबर बैठने का हक हासिल होता है।''[7] इनकी कविता मूलतः प्रतिपक्ष की कविता है और वह व्यवस्था, तंत्र तथा सत्ता के मुखौटे पर आक्रमण करती है। इस सन्दर्भ में उनकी एक कविता 'आजादी के बाद' महात्मा गाँधी को केन्द्र में रखकर शासन चलाने का दावा करने वाले दल के दोहरे चरित्र को उद्घाटित करती है। नागार्जुन ने इस दोहरेपन पर लगातार प्रहार किया।

jkejkT; es vcdh jko.k uaxk gksdj ukpk gSA
lqjr 'kdy ogh gS Hkb;k] cnyk dsoy <kapk gSA
urkvksa dh uh;r cnyh] fQj rks viuh gh gkFkksA
Hkkjr ekrk ds xkyks ij dl dj iMk rekpk gSA^^[8]

आजादी के कई वर्शों के बाद भी लोगों में जात–पात और छुआ–छूत जैसी कुप्रथाओं की धारणा जस की तस बनी रही। जड़वत रुढ़ियाँ और अज्ञानता कुछ कम जरुर हुई लेकिन उनका प्रभाव आज भी देखा जा सकता है। कवि इसी रुढ़िवादी विचारों का विरोध करते हुए कहता है–

^^nqfu;k gels iNrh gS
rks vc rqe Hkh[k D;ks ekaxrs gks \
D;ks rqeus dkfV&dkfV tuks dk vNwr cuk j[kk gS \
,d czkg.k nwljs czkg.k dks viuh pkdjh es D;ks ?kqlus ugha nsrk \

Hkxh D;k ugh Mke dk Nvk gvk ikuh ihrk g \
io.tk d i.; dk rEgkjk tkn dgk pyk x;k \
nfu;k ge I iNrh gA^^9

शमशेर लिखते है–''मेरे कुछ प्रिय कवि, इनमें सबसे पहले, सबसे पहले, मेरे ध्यान में नागार्जुन आते हैं, क्यों ? मैं सोचता हूँ, तो ऐसा मालूम होता है कि इसकी वजह उनका खत और सच्चा सीधा व्यक्तित्व है, जिसके कण कण से अपने देश की मिट्टी का सोंधापन महसूस होता है।, इनमें कैसा गहरा–जैसा मानो पीढ़ियों–पीढ़ियों का अनुभव एक एक शब्द के प्रयोग में बोलता है। यह खास एहसास मुझे आज के किसी भी दूसरे कवि में नहीं मिलता और इस सहजता के साथ तो नही मिलता।''[10] कविता में बाबा नागार्जुन बार बार इन रुढ़ियों और कुप्रथाओं पर आक्रोषित होते है। मनुष्य का मनुष्य से प्रेम नहीं रह गया है। आपसी भाईचारा अब कही नही दिखता। यह सब देखकर बाबा की बेचैनी और बढ़ जाती है। वे कहते है–

^^re gyfI r gk
fprdcjh pknfu;k e [kk, gk
mudk n%[k g
u, vke dh etfj;k dk ikyk ekj x;k g
redk n%[k g
dk0;&I dyu nhed pkV x, gA*^11

स्पष्ट है कि नागार्जुन ने ऐसी कविताओं में अपनी दृष्टि व काव्य संवेदना का बखूबी परिचय दिया है। यह नागार्जुन की वह काव्य चेतना है जो श्रमजीवी किसान, मजदूर से बनती हैं। किसान के सपने उसकी फसल होती है, उसका खेत–खलियान और वृक्ष होता है। आम की मंजरियों को पाला मार जाने के कारण जो पीड़ा उसके मन में उत्पन्न होती है उसके सामने काव्य–संकलन को दीमक चाट जाने वाला दुःख कितना बनावटी लगता है। यहीं से उनकी जातीय भावना व राष्ट्रीय चेतना का भी पता चलता है। इस जातीय भावना में यदि जहाँ कहीं व्यंग्य बोध है तो वह भारत की इसी मजदूर, श्रमजीवी जनता का अपना नैसर्गिक गुण है। इस सन्दर्भ में 'हरिजन–गाथा' और 'हजार–हजार बाहों वाली' कविताएँ महत्वपूर्ण भूमिका में है। नागार्जुन ने अपने समय की समस्याओं से समझौता नहीं किया, बल्कि वे समस्याओं से उलझे, लड़े और उन समस्याओं को जन्म देने वाले लोगों पर पैनी नजर रखते हुए लोगो को आगाह किया। बाबा ने अपने व्यंग्य में राजनीति को सबसे ज्यादा शब्द दिया। वे देश की अव्यस्थित स्थिति को देखते ही बौखला उठते है। प्रजातंत्र के नाम पर हो रहे खेल की तरफ बाबा संकेत करते हुए 'प्रजातंत्र का होम' कविता में लिखते है–

I keUrk u dj fn;k itkrU= dk gke
yk'k cpu yx x, [kknh igu Mke
[kknh igu Mke yx x, yk'k cpu
Ekbd xjt] yx tknb yk'k cpu
bUnyky dh Nrjh vk<h JheUrk u
itkrU= dk gke dj fn;k I keUrk uA^^12

बाबा ने राजनीतिज्ञों का बनावटी चेहरा जन सामान्य के बीच लाकर रख दिया है। नागार्जुन राजनीति पर व्यंग्य करते हुए आगे कहते है–

tkfrokn MiMk g] jktuhfr eFkuhA
djuh vyx g] vyx g dFkuhA^^13

सामान्य भाषा और रचनाकार की भाषा में बहुत अंतर होता है। रचनाकार की भाषा उसके परिवेश से उपजी होती है। रचनाकार के भीतर समाज के प्रति जब तक आस्था और विश्वास पैदा नहीं होगा तब तक वह समाज का हित नही कर सकेगा। बाबा नागार्जुन जमीन से जुड़े कवि है जहां वे शब्दों के साथ खेलते ही नही है बल्कि जीते है। वे समाज से ही शब्दों की उर्जा ग्रहण करते है जिसके ताप से

भ्रष्ट लोगों के बीच खलबली मच जाती है। नामवर सिंह के अनुसार–''जो खुलापन है नागार्जुन का, भले ही वह बुद्ध के पथ पर चलते हुए या मार्क्स के पथ पर चलते हुए मिला हो या भले ही स्वयं संघर्ष करने वाली जनता के बीच प्रत्यक्ष अनुभवों से मिला हो, सब कुछ मिलाकर के नागार्जुन का एक ऐसा कांतिकारी व्यक्तित्व बना, जो अपी ही बनाई श्रृंखलाएँ हैं, उन्हें भी तोड़ करके आगे निकल जाने की क्षमता रखता है।''[14]

सही मायने में बाबा उस अमानवीयता के विरोधी है जहां पर मानवीय मूल्य की बलि चढ़ रही है। भ्रष्टाचार, अनैतिकता और समाज में फैली कुप्रथाओं को बाबा जड़ से उखाड़ फेंकना चाहते हैं। नागार्जुन के सन्दर्भ में राजेश जोशी का स्पष्ट मत है–''वहां सीधी सहज संप्रेषणीयता भी है और अद्‌भुत किस्म की नाटकीयता भी। उनके इस नाटक में व्यंग्य है, हँसी है, गुस्सा है, शरारत है, चुहल है। लकिन सारा कुछ बेहद जाग्रत राजनीतिक चेतना के साथ। उनकी हँसी महज हँसी नहीं है, वह बेहद साहस भरी हँसी है, जो अभिजात को छेड़ती है, जो अन्यायी का मजाक उड़ाती है। मजाक उड़ाने का, उस पर हँसने का साहस देती है। कई बार व्यंग्य का स्थान गुस्सा ले लेता है। वहां नागार्जुन बहुत मुखर और कुछ हद तक सरलीकृत भी होते हैं। लेकिन जब भी और दुनिया में जहां भी जन आंदोलन तेज हुए हैं पक्षधर कवियों में ऐसी मुखरता और सरलीकरण देखे जा सकते हैं।''[15] स्पष्ट है कि नागार्जुन की सबसे मत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उन्होंने अपने यथार्थवाद को निरन्तर ऊँचे धरातल पर पहुँचाया है। उनके राजनीतिक व्यंग्य बहुत स्पष्ट तथा पैने हैं। व्यंग्य रुप नागार्जुन का सबसे तेज धारदार हथियार है। इनके व्यंग्य पर विश्वम्भर लिखते हैं –''हरिश्चन्द्र युग के कुछ साहित्यकों को छोड़कर पिछले पचास वर्षों में नागार्जुन जैसी तीखी और सीधी चोटें करने वाला व्यंग्यकार हमारे साहित्य में नहीं हुआ। उनका व्यंग्य क्योंकि वस्तुस्थिति को सामने लाता है, अतः बड़ा ही प्रभावशाली होता है।''[16] बाबा ने अपनी कविताओं में लोकतंत्र के सभी स्तम्भों को सत्ता की चाटुकारिता करते हुए दिखाया है जिससे लोक हित की भावना का संकट दिखता है। इसी संकट से बाबा सभी लोगों को निकालना चाहते हैं। बाबा इस समाज के पहरुआ बनकर आते है और समाज को सही दिशा निर्देश देते हुए कविताओं में कभी व्यंग्य, तो कभी हास्य और कभी–कभी आक्रोश का सहारा लेते हुए रचनाकार और दिशानिर्देशक की हैसियत से सही गलत का भेद बताते है।

I UnHkZ %

1 प्रतिनिधि कविताएँ, डॉ0 नामवर सिंह, पृ0 6

2 समकालीन कविता में व्यंग्य विद्रूप, 'नई कविता' डॉ हरिनारायण मिश्र, पृ0 100

3 समकालीन हिन्दी कविता : विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ0 150

4 हजार हजार बाहों वाली, काव्यसंग्रह, नागार्जुन, पृ0 69

5 अजय तिवारी : नागार्जुन की कविता , पृ0 38

6 नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ, सम्पादक – नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1988, पृ0 77

7 सापेक्ष अंक 34, पृ0 28

8 नागार्जुन रचनावली – सं0 शोभाकान्त, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0 नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2003, पृ0 226

9 आजादी के बाद कविता नागार्जुन – चुनी हुई रचनाएं, भाग 2, पृ0 130

10 सापेक्ष अंक 34, पृ0 28

11 प्रगतिशील कविता में लोकतत्व, डॉ0 शशि शर्मा, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृ0सं0 122

12 नागार्जुन : खिचड़ी विपलव देखा हमने, पृ0 94

13 नागार्जुन : युगधारा, पृ0 93

14 सापेक्ष अंक 34, पृ0 29

15 वही, पृ 30

16 विश्वम्भर मानव : नयी कविता, पृ0 30

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 147-149

;'kiky dh dgkfu;ksa esa lkekftd leL;kvksa dk fp=.k

ve'rk flag*

कहानी एक ऐसी विधा है जो व्यक्ति एवं समाज की गम्भीर समस्याओं को संक्षेप में बेहतरीन ढंग से प्रस्तुत करने का सामर्थ्य रखती है। कहानीकार जीवन के किसी भी क्षेत्र–इतिहास, पुराण या वर्तमान समाज में से अपने पात्रों तथा कथ्य का चयन कर सकता है। आज अधिकांश कहानियों में ऐसे पात्रों का चित्रण किया जाता है जो हमारे यथार्थ जीवन के निकट होते हैं। ये पात्र हमें सदैव जाने पहचाने से लगते हैं क्योंकि ये समाज की किसी न किसी समस्या की ओर संकेत करते हैं। यशपाल भी एक ऐसे कहानीकार के रूप में हमारे सामने हैं जो अपनी कहानियों के माध्यम से समाज की विभिन्न समस्याओं को अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। उनमें प्रमुख रूप से आर्थिक चिन्तन, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य, धर्म सम्बन्धी, काम–प्रेम विषय आदि हैं।

यशपाल उन विशिष्ट साहित्यकारों में से हैं जो क्रान्तिकारी राजनीति से अपने जीवन से लम्बे समय तक संपृक्त रहे हैं। उनके विभिन्न उपन्यासों और कहानियों में राजनीतिक समस्याएं उजागर हुई हैं। राजनीति से संबंधित यशपाल की कहानियों में गैर–साम्यवादी शासन व्यवस्था के शोषक रूपों पर अधिकांश प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। 'राजा' कहानी के द्वारा उन्होंने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि दस्यु ही दक्षिणा के लोभी विद्वानों का आशीर्वाद पाकर राजस्व की प्रतिष्ठा पा गये। ''अन्न देना मौला का काम, न्याय करना राजा का काम था। मौला अन्न दे या न दे, राजा न्याय करेगा।''[1] एक ऐसे ही राजा का चित्रण 'शहनशाह का न्याय' कहानी में किया गया है। इस कहानी में जहांगीर के न्याय को व्यंग्य का रूपक बनाया गया है। धोबी के बैल को न्याय देने का ढोंग करते हुए शहनशाह इनसान के साथ अन्याय कर बैठता है और इस अन्याय के विरूद्ध शिकायत करना इंसान के लिए जुर्म है।

ज्ञातव्य है कि यशपाल के जीवनकाल की पहली राजनीतिक समस्या देश को पराधीनता से मुक्त कराने की थी। स्वतंत्रता आन्दोलन की समस्या को उन्होंने अपने कथा साहित्य में पुरजोर ढंग से उठाने का प्रयास किया है। 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का दृश्य यशपाल की कहानी 'खुदा की मदद' में स्पष्ट रूप में चित्रित हुआ है। ''खुदा की मदद'' कहानी में सन् 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का एक रोमांचकारी दृश्य देखने को मिलता है। भारतीय जनता अंग्रेज सरकार के अमानवीय अत्याचारों के विरूद्ध हिंसात्मक कदम उठाने लगती है– ''रिआया ने सरकार को जाने क्या समझ लिया था। पटवारियों, तहसीलदारों, जैलदारों की सब ज्यादतियों और जबरन जंगी चंदा वसूल किए जाने का बदला लेने के लिए देहातों में खाली हाथ या ढेला–पत्थर और लाठी ले लेकर उठ खड़े हुए। ज्यों–ज्यों जनता का विरोध बढ़ता जा रहा था सरकार सिपाहियों की खुशामद अधिक करने लगती थी।''[2]

शोषक और न्यायविहीन सत्ता में एक निरीह और अंधविश्वासी व्यक्ति किस प्रकार शोषण का शिकार बन जाता है। यह यशपाल की खुदा का खौफ कहानी में चित्रित है। इस कहानी में गरीब सिपाही थकने की फरियाद करने पर पीट दिया जाता है, किन्तु इस पर भी खुदा का खौफ के कारण विद्रोह करने की बात सोच भी नहीं सकता।

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

यशपाल ने अपनी कहानियों में राजनीति हीं नहीं आर्थिक समस्या को भी बड़ी ही गंभीरता के साथ उठाया है। उनका विचार है– ''जीवन का आधार भौतिक अथवा आर्थिक है।''[3] यह सत्य है अर्थ जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। इसलिए यशपाल ने अपनी कहानियों में अर्थ को महत्व दिया है। समाज में शोषित और शोषक इन दो वर्गों के बीच अर्थ के असामंजस्यपूर्ण वितरण की स्थिति से यशपाल भली–भांति परिचित थे। यही कारण है कि वह अपनी कहानियों में उक्त समस्या को बड़ी ही गम्भीरता के साथ चित्रित करते हैं।

पूँजीपति वर्ग मजदूरों की ताकत को कमजोर करने के लिए उन्हीं के वर्ग में से कुछ लोगों को अपने फायदे के लिए अपनी ताकत बचाने का प्रयत्न करता है। 'भवानी माता की जय' कहानी में ऐसी ही स्थिति की ओर संकेत करते हुए यशपाल ने लिखा है– ''पूँजीपति राक्षस अपने इंतजाम की कुल्हाड़ी में जिस लकड़ी का बेट डालकर समाज को काटता है, यह बेट समाज के ही वृक्ष का भाग है।''[4] प्रस्तुत कहानी में सिवान सिंह जो मिल मालिक के प्रति वफादार है, उसकी आँख तब खुलती है जब उसकी बेटी संघर्ष के दौरान मर जाती है।

यशपाल पूँजीपति वर्ग की चालाकी और मजदूर वर्ग की लाचारी को तो अपनी कहानी का माध्यम बनाते ही हैं साथ ही 'काम के अनुसार उचित दाम' जैसे अपने न्यायपरक विचार को भी वे 'सच्ची पूजा' जैसी कहानियों के माध्यम से पाठक वर्ग के सामने रखते हैं। कहानी का पात्र रघुवर दयाल मिश्र कहता है– ''सृष्टि में किसी भी जीव को उचित उत्पादक सेवा और संतुष्ट आहार का अवसर देना ही उसका सच्चा आदर और सच्ची पूजा है।''[5]

धार्मिक आडम्बर और अंधविश्वास को यशपाल ने शुरू से ही देखा और झेला था। उन्हें यह भली–भाँति मालूम था कि धार्मिक अंधविश्वास ही एक साधारण व्यक्ति के शोषण का कारण बनता है। इसीलिए उनकी कहानी का एक मुख्य विषय धर्म भी है। यह धार्मिक अंधविश्वास ही मानव के सामाजिक विकास को कैद कर देता है। जीवन को सहज ढंग से जीने के हिमायती यशपाल अपनी कहानियों में इस अंधविश्वास के तालों की कुंजी को खोलने का प्रयास करते हैं। अपने अज्ञातजन्य भय के कारण मनुष्य देवी–देवताओं पर विश्वास करता है। 'मन की पुकार' कहानी में इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है– ''मन की पुकार देवी के भय और भरोसे से प्रबल होती है।''[6]

मार्क्स की विचारधारा से जुड़े होने के कारण यशपाल भी धर्म को अफीम मानते हैं। इस विचार को उन्होंने अपनी 'मजहब' कहानी में चित्रित किया है– ''मजहब जनसमुदाय को अकर्मण्यता से गर्क कर देने वाला अफीम का नशा है।''[7]

अपनी कहानियों में यशपाल विभिन्न सामाजिक विसंगतियों का खुलकर चित्रण करते हैं। प्रेम–काम भी एक ऐसी ही सामाजिक विसंगति है जिसका वर्णन वे बड़े ही सहज ढंग से अपनी कहानियों में करते हैं। मधुरेश के अनुसार– ''यौन प्रसंगों के अंकन को लेकर यशपाल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे उन्हें सामाजिक अन्तर्विरोधों से जोड़कर देखते हैं। 'तुमने क्यों कहा था मैं सुंदर हूँ !' में यशपाल माया की अतृप्ति के कारणों को सामाजिक संरचना में ढूँढते हैं।''[8]

यशपाल जबरन थोपे हुए या मजबूरी या रोमानी प्रेम में विश्वास नहीं रखते थे, क्योंकि उन्हें मालूम था कि इससे उत्पन्न परिणाम विस्फोटक जितना बुरा हो सकता था। ''प्रेम और वासना जीवन की ऐसी सहज प्रवृत्तियाँ हैं, जिनकी अतृप्ति जीवन में कुण्ठा, निराशा, विसंगति को जन्म देती है। अतृप्त इच्छाएँ तृप्ति की कामना में नैतिक अनैतिक का बंधन तोड़ देती है। भैरवी भी इसी काम–विकृति की शिकार है। माहुल के संपर्क में आते ही उसका दमित काम अभिव्यक्ति के मार्ग खोजने लगता है।''[9]

यशपाल ने काम के पहलुओं को सफलतापूर्वक और प्रचुर मात्रा में चित्रित किया है। किन्तु प्रेम का उदात्त रूप उनकी कहानियों में नहीं मिलता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि यशपाल की कहानियों, अपनी प्रचुरता में विभिन्न सामाजिक विसंगतियों का चित्रण करते हुए चलती हैं। उनकी कहानियों में सामाजिक समस्याओं को तो अभिव्यक्ति मिली ही है साथ ही मनुष्य के सहज और सार्थक जीवन जीने के पक्ष को भी स्थान मिला है।

lUnHkZ %

1. खच्चर और आदमी (ज्ञानदान) : यशपाल, पृ0 85
2. यशपाल की कहानी : दृष्टि और रचना प्रक्रिया : डॉ0 रामनिवास शर्मा, पृ0 93, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली।
3. धर्मयुद्ध (भस्मावृत्त चिनगारी) : यशपाल, पृ0 6
4. ज्ञानदान (भस्मावृत्त चिनगारी) : यशपाल, पृ0 49
5. लैंप शेड (क0सं0) : यशपाल, पृ0 24
6. ओ भैरवी (क0सं0) : मन की पुकार : यशपाल, पृ0 60
7. मजहब : पिंजरे की उड़ान (क0सं0) : यशपाल, पृ0 120
8. हिन्दी कहानी का विकास : मधुरेश, पृ0 50, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद।
9. यशपाल की कहानी : दृष्टि और रचना प्रक्रिया, डॉ0 रामविलास शर्मा, पृ0 67, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 150-153

rkjlIrd ds dfo;ksa esa dqoj ukjk;.k % 'kks/ki.k fo'ys"k.k

jkt dqekj ik.Ms;*

आधुनिक हिन्दी कविता में ‘तारसप्तक’ एक बड़ा मंच बनकर सामने आया। इस महान कार्य को आकार देने का श्रेय अज्ञेय को जाता है। उन्होंने हिन्दी कविता के क्षेत्र में कई प्रयोग किए, जो वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टियों से थे। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के कारण ही समकालीन कविता में ‘प्रयोगवाद’ एक नई काव्यधारा के रूप में स्थापित हुआ।

सन् 1943 ई0 में सात चुने हुए कवियों की कविताओं को अज्ञेय ने ‘तारसप्तक’ शीर्षक से प्रकाशित किया। ये कवि इस प्रकार हैं– 1. अज्ञेय, 2. गजानन माधव मुक्तिबोध, 3. गिरिजा कुमार माथुर, 4. प्रभाकर माचवे, 5. नैमिचन्द्र जैन, 6. भारत भूषण अग्रवाल, 7. रामविलास शर्मा।

सन् 1951 ई0 में अज्ञेय ने ‘दूसरा सप्तक’ प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने– 1. भवानी प्रसाद मिश्र, 2. शकुन्तला माथुर, 3. हरिनारायण व्यास, 4. शमशेर बहादुर, 5. नरेश कुमार मेहता, 6. रघुवीर सहाय, 7. धर्मवीर भारती की कविताओं को स्थान दिया।

तीसरा सप्तक सन् 1959 ई0 में आता है। इस संग्रह में इन कवियों की कविताएं संकलित हैं– 1. प्रयागनारायण त्रिपाठी, 2. कीर्ति चौधरी, 3. मदन वात्स्यायन, 4. केदारनाथ सिंह, 5. कुँवरनारायण, 6. विजयदेव नारायण साही, 7. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना।

अज्ञेय ने सन् 1979 ई0 में चौथा सप्तक भी प्रकाशित किया। इसके अन्तर्गत उन्होंने– 1. अवधेश कुमार, 2. राजकुमार कुम्भज, 3. स्वदेश भारती, 4. नन्दकिशोर आचार्य, 5. सुमन राजे, 6. श्री रामवर्मा, 7. राजेन्द्र किशोर को चुना।

हम कह सकते हैं कि अज्ञेय ने सन् 1943 से लेकर 1979 ई0 के बीच समसामयिक कवियों को समय–समय पर ‘तारसप्तक’ के विभिन्न भागों के लिए चयनित किया। अज्ञेय ने कवियों का चुनाव बिना किसी पूर्वाग्रह के किया। इसका उदाहरण हमें पहले ही ‘तारसप्तक’ में दिखायी पड़ता है, जब वे डॉ0 रामविलास शर्मा को सम्मिलित करते हैं। डॉ0 शर्मा पक्के मार्क्सवादी व्यक्ति हैं, जबकि अज्ञये की आस्था किसी वाद में नहीं है। अज्ञेय की आस्था लोकतन्त्र में अवश्य है।

दूसरे सप्तक के कवियों का चुनाव बहुत उम्दा है। इसके सभी कवियों ने कवि के रूप में अच्छी ख्याति अर्जित की है। भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती ने हिन्दी कविता को एक नया आयाम दिया। भवानी प्रसाद मिश्र पक्के गाँधीवादी कवि हैं, उन्होंने स्वयं को गाँधी का बेटा कहा है। उनकी ख्याति प्राप्त कविताओं में– कमल के फूल, सतपुड़ा के जंगल, वाणी की दीनता, टूटने का सुख, गीत फरोश, कालजयी (खण्ड काव्य) आदि हैं। नरेश मेहता ने हिन्दी जगत को कई काव्य ग्रन्थ दिए हैं। काव्य संग्रह के साथ ही उन्होंने प्रबन्ध काव्य पर बहुत अच्छा कार्य किया है। ‘संशय की एक रात’, ‘महाप्रस्थान’, ‘प्रवाद पर्व’, ‘शबरी’ शीर्षक इनके प्रबन्ध काव्य हैं। ‘संशय की एक रात’ प्रभावशाली प्रबन्ध काव्य है। इसका कथानक रामकथा पर आधारित है, परन्तु इस पर आधुनिकता की छाप है। परम्परागत रामकथा से यह बहुत भिन्न है। इसका उल्लेख करते हुए डॉ0 रामदरश मिश्र ने लिखा है– “नरेश मेहता–कृत संशय की एक रात में राम के मन के संशय को चित्रित किया गया है। समुद्र में पुल बंध जाने पर राम का मन संशय से भर जाता है। वे सोचते हैं कि एक सीता के लिए इतना बड़ा नर–संहार क्यों किया जाय? फिर अपने सहयोगियों साथ विचार–विमर्श करने पर इस निष्कर्ष पर

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, शिब्ली नेशनल पी0जी0 कालेज, आज़मगढ़ (उ0प्र0)

पहुँचते हैं कि युद्ध किया जाय? युद्ध सीता के लिए नहीं, प्रजा के लिए हो।"[1] ऐसा प्रयोग करके नरेश मेहता इसे नया दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। नरेश मेहता के योगदान को देखते हुए ही उनकी कृति 'अरण्या' पर 1988 ई0 में साहित्य अकादमी पुरस्कार व उनके सम्पूर्ण साहित्य पर 1992 में ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया।

दूसरे सप्तक में सम्मिलित रघुवीर सहाय आधुनिक हिन्दी कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। सीढ़ियों पर धूप (1960 ई0), आत्महत्या के विरूद्ध (1967 ई0), हँसो हँसो जल्दी हँसो (1975 ई0), लोग भूल गए हैं (1982 ई0), कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ (1989 ई0), एक समय था आदि इनके महत्वपूर्ण काव्य संग्रह हैं। रघुवीर सहाय को साहित्य अकादमी जैसा प्रतिष्ठित पुरस्कार सन् 1984 ई0 में 'लोग भूल गये हैं' काव्य संग्रह के लिए प्राप्त हुआ। दूसरे सप्तक के एक प्रमुख कवि धर्मवीर भारती हैं। ये मूलतः प्रेम के कवि हैं। इनकी प्रमुख काव्य रचनाएॅ हैं– ठण्डा लोहा (1952 ई0), अंधायुग (1955 ई0), कनुप्रिया (सन् 1959 ई0), सात गीत वर्ष (1959 ई0), देशान्तर आदि। इनमें 'अंधायुग' गीति–नाट्य है। अन्धायुग महाभारत की कथा पर आश्रित है। 'कनुप्रिया' में राधाकृष्ण का प्रेम वर्णन है, परन्तु यह आध्यात्मिक दृष्टिकोण से नहीं रचा गया है। लेखक ने अपनी रूचि के अनुकूल वासना को इस काव्य में प्रमुखता दी है। डॉ0 गणपति चन्द्र गुप्त इस सम्बन्ध में लिखते हैं– "कनुप्रिया में राधा के परंपरागत चरित्र को नये रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। राधा–कृष्ण के वासनात्मक सम्बन्धों का चित्रण इसमें पूरी रूचि एवं सजीवता के साथ किया गया है। साथ ही दार्शनिक आवरण प्रदान करने के लिए राधा को कृष्ण की प्रेरक नारी–शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है।"[2]

अज्ञेय ने तीसरे सप्तक में भी बेजोड़ कवियों का चयन किया है। विजयदेव नारायण साही 'नयी कविता' में लघुमानव की प्रतिष्ठा करते हैं। साखी, मछलीघर, संवाद तुमसे आदि उनकी प्रमुख कविताएं हैं। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने काव्य रचना कर लोगों को प्रभावित किया है। उनकी प्रमुख कविताएं हैं– काफी हाउस में एक मेलोड्रामा, अहं से मेरे बड़े हो तुम, विगत प्यार, लिपटा रजाई में आदि। इसी सप्तक में केदारनाथ सिंह बहुत महत्वपूर्ण कवि हैं। उनके चर्चित काव्य संग्रह– 'अभी बिल्कुल अभी' (सन् 1960 ई0), 'जमीन पक रही है' (सन् 1980 ई0), 'अकाल में सारस' आदि हैं। उनकी चर्चित कविताएं बनारस, अनागत, फर्क नहीं पड़ता और बाघ (लम्बी कविता) हैं। केदारनाथ सिंह के योगदन का अनुमान इसी आधार पर लगाया जा सकता हे कि उन्हें साहित्य के कई प्रतिष्ठित पुरस्कार प्राप्त हुए। उनके काव्य 'अकाल में सारस' पर 1989 ई0 को साहित्य अकादमी मिला और 'उत्तरकबीर तथा अन्य कविताएँ' पर 1997 ई0 में व्यास सम्मान मिला। उनकी सफलता का एक कारण यह भी है कि उनकी कविताओं में बौधिकता है। डॉ0 बच्चन सिंह केदारनाथ सिंह के तकनीकी पक्ष का उद्घाटन करते हुए लिखते हैं– "केदार विशिष्ट शब्दार्थों के कवि हैं। उनकी कविता में शब्दार्थों की जो अद्वैतता है, स्पर्धा धर्मिता है, वह उसे विशिष्ट बनाती है। विशिष्ट इसलिए भी है कि तत्कालीन एकोन्मुखता को उसने वैविध्य और जीवन की समग्रता की ओर मोड़ा। सन् 1960 के बाद की कविताओं की दो दिशाएं थीं– देहगाथा की दिशा और बुर्जुआ लोकतन्त्र के विरोध की दिशा। एक में बजबजाहट थी तो दूसरे में बौद्धिक रूखाई। केदार ने कविता को उनसे मुक्त कर संवेदनात्मक बौधिकता से जोड़ा।"[3]

ठीक इसी परम्परा में कुँवर नारायण हमारे सामने आते हैं। कुँवर नारायण का जन्म 19 सितम्बर 1927 को फैजाबाद उ0प्र0 में हुआ। लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी विषय में एम0ए0 किया। ये बराबर पत्र–पत्रिकाओं के लिए लेख लिखते रहे। अनुवाद–कार्य भी किया। 1956–61 तक 'युग चेतना' पत्रिका के सम्पादक मण्डल में रहे। सन् 1995 ई0 में 'कोई दूसरा नहीं' काव्य पर साहित्य अकादमी और सन् 1995 ई0 में 'आत्मजयी' कृति पर 'व्यास' सम्मान प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त 1973 ई0 में प्रेमचन्द्र पुरस्कार, सन् 1988 ई0 में हिन्दी साहित्य में अपने विशेष योगदान के लिए हिन्दी संस्थान (उत्तर प्रदेश) से पुरस्कार ग्रहण किया। वैसे तो कुँवर नारायण ने कहानी, ललित निबन्ध और अनुवाद पर लेखन कार्य किया है, किन्तु उनकी पहचान प्रमुख रूप से एक कवि की है। उनकी प्रमुख कविताएँ, काव्य संग्रह इस प्रकार हैं– चक्रव्यूह (1956 ई0), तीसरा सप्तक (कुँवर नारायण की कविताएं) (सन् 1959), परिवेश : हम

तुम (1961 ई0), अपने सामने (1979 ई0), कोई दूसरा नहीं (1993 ई0), इन दिनों (2002 ई0), प्रबन्ध काव्य–आत्मजयी (सन् 1965 ई0), वाजश्रवा के बहाने (सन् 2008 ई0)।

'चक्रव्यूह' का मिथक महाभारत से लिया गया। वस्तुतः कुँवर नारायण ने पौराणिक कथानक के माध्यम से वर्तमान को व्यक्त करने की चेष्टा की है। चक्रव्यूह में अभिमन्यु विवश है। उसकी विवशता व्यक्त करते हुए डॉ0 बच्चन सिंह कहते हैं– "प्रश्न है कि जिसका प्रारब्ध गर्भ में ही निश्चित हो चुका है, वह अजित कैसे है? अगर उसकी अजेयता गर्भ में ही निश्चित है, जो फिर वह अभिमन्यु कैसे हो सकता है? अभिमन्यु तो लक्ष्य तक पहुँचने से पूर्व मारा जाता है। एक ओर प्रारब्धवादी होना और दूसरी ओर न होना एक साथ सम्भव नहीं है।"[4]

'तीसरा सप्तक' में कुँवर नारायण किसी राजनीतिक विचारधारा को साहित्य में सम्मिलित करने का विरोध करते हैं। उनके अनुसार रचना का मूल्यांकन साहित्यिक स्तर पर होना चाहिए, राजनीतिक स्तर पर नहीं। कवि को बिना किसी पक्षपात के अपनी लेखनी चलानी चाहिए, उसे तटस्थ होना चाहिए।

'परिवेश हम तुम' महत्वपूर्ण कृति है। इस पर प्रकाश डालते हुए डॉ0 बच्चन सिंह ने लिखा है– "'परिवेश : हम तुम' में आत्मान्वेषण की उतनी ललक तो नहीं है पर 'चक्रव्यूह' से निकलकर वह जीवन के सर्जनात्मक लक्ष्य की ओर संकेत करता है– 'कि या तो अ ब स की तरह बेसबब जीना है/या सुकरात की तरह जहर पीना है।' वह समूह के साथ रहने का किताबी दावा नहीं करता, पूरी इमानदारी से कहता है– "मैं समूह से विच्छिन्न हूँ/क्योंकि कुछ भिन्न हूँ।"[5]

'आत्मजयी' कुँवर नारायण की कालजयी कृति है। इस कृति पर उन्हें हिन्दी का प्रतिष्ठित 'व्यास' सम्मान प्राप्त हुआ है। आत्मजयी का कथानक 'कठोपनिषद्' के 'यम–नचिकेता' कहानी पर आधारित है, लेकिन इस कथा में लेखक ने पर्याप्त परिवर्तन करके इसे नव रूप प्रदान किया है। इस सम्बन्ध में कुँवर नारायण का कथन उल्लेखनीय है– "'कठोपनिषद' से लिये गये नचिकेता के कथानक में मैंने थोड़ा परिवर्तन किया है, लेकिन इतना नहीं कि आधार–कथा की वस्तुस्थितियां ही भिन्न हो गयी हों। कथा को आधुनिक ढंग से देखा गया है, पौराणिक दिव्य–कथा के रूप में नहीं।"[6]

कुँवर नारायण ने 'आत्मजयी' में पीढ़ियों के अन्तर (Generation-Gap) को वाजश्रवा और नचिकेता के बहाने बखूबी प्रस्तुत किया है। नचिकेता का दृष्टिकोण अपने पिता से भिन्न है। उसे लग रहा है कि उसके पिता उसकी बात नहीं समझ रहे हैं। वह कहता है–

ßvkg] rqe ugha le>rs firk] ugha le>uk pkg jgs]
fd ,d&,d 'khy ikus dks fy,
fdruh egku vkRekvksa us fdruk d"V lgk gS ------
lR;] ftls ge lc bruh vklkuh ls
viuh&viuh rjQ eku ysrs gSa] lnSo
foæksgh&lk jgk gSAÞ[7]

अतः स्पष्ट है कि नचिकेता सत्य को विद्रोही मानता है। वाजश्रवा और नचिकेता के वैचारिक द्वन्द्व पर प्रकाश डालते हुए डॉ0 रामदरश मिश्र लिखते हैं– "वाजश्रवा एक प्रकार से ठहरे हुए मूल्य की वाहक पीढ़ी का प्रतीक है, जो अपने सारे निर्णयों को आने वाली पीढ़ियों पर लादना चाहती है और नचिकेता? वह इस सारे आप्त सत्य के उत्तराधिकार और विवेकहीन निर्णय को अस्वीकार कर अपने विवेक और पीड़ा से सत्य की तलाश करने वाली और उसके लिए मृत्यु तक को वरण करने वाली प्रबुद्ध नयी चेतना का प्रतीक है।"[8]

स्वच्छन्द विचार का वाहक नचिकेता आत्मा को स्वायत्त मानता है। उसकी दृष्टि में आत्मा नियन्त्रण मुक्त है। वह कहता है–

ßlEiw.kZ fo'o&czãk.M
lgL=ksa oLrqxr vkHkkl
rsjs ckn Hkh tUe ysxs

r> ,d lKk nx
vkj r> viu vUrk d
iR;d vlUrk"k l
fQj 'k: gkuk iM ldrk gA[9]

नचिकेता आज के युवा के सदृश स्वयं की पहचान चाहता है। उसकी पहचान किसी अन्य के सन्दर्भ द्वारा न हो। उसका अस्तित्व स्वतन्त्र हो। वह कह रहा है–

ß---------- viu dk ge'kk d fy,
ljf{kr dj y
nljk d ljy vk'okluk vkj QgM igpkuk lA
eFku
e=h
eeRo
egRodk{kk,
D;kfd bud vUr rd vkdj Hkh
i.k ugh gvkA[10]

सब मिलाकर 'आत्मजयी' को एक सफल कृति कहा जा सकता है। इसमें बिम्बों–प्रतीकों का मिला–जुला रूप है। वे प्राचीन भी हैं और किसी अर्थ में नवीन भी। डॉ0 रामदरश मिश्र के शब्दों में इसे हम सरलता से समझ सकते हैं। उनके अनुसार, "'आत्मजयी' के बिम्ब मूलतः बौद्धिक हैं, वे जीवन से सीधे उठाये गये प्रतीत नहीं होते। जहाँ वे जीवन से लिये भी गये हैं, वहाँ वे किसी व्यापार या प्रसंग से विच्छिन्न होने के कारण और नचिकेता की एक विशेष प्रकार की वैचारिक अकुलाहट मात्र से जुड़े होने के कारण हमारे भीतर कोई जीवन नहीं उभारते, जीवन का बोध उभारते हैं।"[11]

कुँवर नारायण का तारसप्तक के कवियों में विशिष्ट स्थान है। उनमें वो सामर्थ्य है, जिसके कारण वे पौराणिक विषयवस्तु को आधुनिकता के साथ जोड़कर नये रूप में प्रस्तुत कर देते हैं। वे पुराने प्रसंगों के माध्यम से आधुनिक विसंगतियों एवं विद्रूपताओं पर प्रकाश डालते हैं। उनके इस रचना कौशल के कारण ही हिन्दी जगत उनका सदैव ऋणी रहेगा।

lUnHk %

1. डॉ0 नगेन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, तैतीसवां संस्करण, सन् 2006 ई0, पृ0सं0–643.
2. गुप्त, डॉ0 गणपति चन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास–द्वितीय खण्ड', लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, बारहवां संस्करण, सन् 2010,पृ0सं0–179.
3. सिंह, डॉ0 बच्चन, 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2009, पृ0सं0–444.
4. सिंह, डॉ0 बच्चन, 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास', लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 2007, पृ0सं0–292.
5. सिंह, डॉ0 बच्चन, 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2009, पृ0सं0–439.
6. नारायण, कुँवर, 'आत्मजयी', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, आठवाँ संस्करण सन् 1990 ई0, पृ0सं0–8.
7. नारायण, कुँवर, 'आत्मजयी', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, आठवाँ संस्करण सन् 1990, पृ0सं0–23.
8. डॉ0 नगेन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, तैतीसवां संस्करण सन् 2006 ई0, पृ0सं0–643.
9. नारायण, कुँवर, 'आत्मजयी', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, आठवां संस्करण सन् 1990 ई0, पृ0सं0–96.
10. नारायण, कुँवर, 'आत्मजयी', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, आठवां संस्करण सन् 1990 ई0, पृ0सं0–118.
11. डॉ0 नगेन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, तैतीसवां संस्करण सन् 2006 ई0, पृ0सं0–643.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 154-157

vuqlwfpr tkfr;ksa dh leL;k,¡ ,oa fu;ksX;rk,¡ ¼Hkkjrh; lanHkZ esa½

pUnzjke ehuk*

अनुसूचित जातियों की अनेक समस्याएँ है। इनका इतिहास उठाकर देखने से स्पष्ट हो जाता है कि इनकी प्रमुख समस्याएँ विभिन्न प्रकार के शोषण, प्रतिबन्ध निर्योग्यताएँ, प्रदत्त स्थिति तथा परम्परागत अपवित्र व्यवसाय आदि हैं। इनकी समस्याओं का विवेचन निम्नलिखित क्रम में किया जा सकता है–

/kkfeZd leL;k,¡% अनुसूचित जातियों की अनेक समस्याएँ ऐसी हैं जो धर्म से सम्बन्धित हैं। अनुसूचित जातियों हिन्दू धर्म की जाति व्यवस्था की संरचना में निम्नतम स्थान या श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं। अनुसूचित जातियों पर अनेक धार्मिक प्रतिबन्ध तथा निर्योग्यताएँ थोपी गई थीं जो धार्मिक समस्याओं के रूप में आज भी उग्र रूप धारण किए हुए हैं। ये जातियों तथा इनके सदस्य अपने जन्य, विवाह, मृत्यु आदि संस्कार उच्चतम जाति ब्रह्मण पुरोहित के द्वारा सम्पन्न करवाने में असमर्थ तथा अयोग्य थे। धार्मिक स्थलों–मन्दिरों, देवालयों, कीर्तन आदि में नहीं जा सकते थे। प्रार्थना–अर्चना करना तो दूर रहा, ये लोग भजन आदि तक सुन नहीं सकते थे। धार्मिक पुस्तकें पढ़ना तथा सुनना निषेध था। यज्ञोपवीत धारण करना वर्जित था। इनकी परछाईं मात्र के स्पर्श से द्विज जातियों के सदस्य अपवित्र हो जाते थे। वे तो स्नान आदि से पवित्र हो जाते थे परन्तु अस्पृश्य लोग जन्म–जंन्मान्तर तक पवित्र नहीं हो पते थे। उनकी सन्तानें भी अपवित्र पैदा होती थीं।

भीमराव अम्बेडकर ने निम्नलिखित शब्दों में उनकी धार्मिक समस्याओं का चित्रण किया है, ''लेकिन यह आठ करोड़ व्यक्तियों का अछूतापन, जन्य, मृत्यु आदि के अछूतेपन से बिल्कुल अलग है, यह स्थायी होता है। जो हिन्दू उनको छू लेते है वे स्नान इत्यादि करने से पवित्र हो सकते हैं, लेकिन ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो कि 'अछूत' को पवित्र कर सके। वे लोग अपवित्र ही जन्म लेते हैं। वे जीवनपर्यन्त अपवित्र बने रहकर मर भी जाते हैं, और वे जिन बच्चों को जन्म देते है वे बच्चे भी अपवित्रता का टीका माथे पर लगाए ही जन्म लेते हैं। यह एक स्थायी वंशानुगत कलंक है जो किसी भी प्रकार से हट नहीं सकता है।

lkekftd leL;k,¡ : अनुसूचित जातियों की अनेक सामाजिक समस्याएँ रहीं हैं। ये लोग अनेक सामाजिक निर्योग्यताओँ के शिकार थे। समाज में विभिन्न सुख–सुविधाओं को उपयोग करने में असमर्थ तथा अयोग्य थे जिनको अग्रलिखित उपशीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता हैँ–

1- lekt esa fuEu LFkku& अस्पृश्य जातियों की स्थिति भारतीय हिन्दूसमाज में सामाजिक संस्तरण में निम्नतम स्थान पर थी तथा शूद्र वर्ण के स्तर की जातियाँ अस्पृश्य जातियों से उच्च परन्तु वैश्य वर्ण के स्तर की जातियों से निम्न श्रेणी में स्थित थीं। केएम. पणिवक्कर ने समीक्षा करते हुए लिखा है, ''विचित्र बात तो यह है कि स्वयं अस्पृष्यों के अन्दर एक पृथक जाति का जैसा संगठन था। सवर्ण हिन्दुओं के समान उनमें भी बहुत उच्च तथा निम्न स्थिति वाली उप–जातियों का संस्तरण था, जो एक–दूसरे से श्रेष्ठ होने का दावा करती थीं।''

अनुसूचित जातियों की सामाजिक स्थिति निम्न होने के कारण उनसे उच्च जातियाँ घृणा करती थीं है यह निम्न स्थिति प्रदत्त थी। अर्थात् जो जिस अनुसूचित जाति में जन्म लेता था वह आजन्म उसी

*शोधार्थी, महात्मा ज्योति राव फूले विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

जाति का सदस्य रहता था। वह अपने परिश्रम, सच्चाई, कार्यकुशलता. आदि के द्वारा अपनी निम्न स्थिति से छुटकारा नहीं पा सकता था। उसकी समाज में परिस्थिति तथा भूमिका जन्म के कारण निश्चित को जाती थी जो प्रत्येक क्षेत्र में दयनीय, असमर्थ तथा अयोग्यताओं से पूर्ण होती थी।

2- lkekftd lEidZ ij çfrcU/k & अनुसूचित जातियों पर सामाजिक सम्पर्क के सन्दर्भ में अनेक निषेध थे। ये निषेध अनुसूचित जाति–विशेष के अनुसार अलग–अलग क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न थे। सबसे अधिक प्रतिबंध अनुसूचित जातियों में अस्पृश्य जाति तथा चमार जाति पर थे। जैसे–जिसे संस्तरण में निम्न से उच्च की और जाते हैं प्रतिबन्ध, असमर्थता तथा नियोंग्यताएँ कम होती चली जाती हैं। इन जातियों को उच्च तथा सवर्ण जातियों के साथ सामाजिक सम्पर्क करना प्रतिबन्धित था। मनुस्मृति में उल्लेख मिलता है, ''चाण्डालों अथवा अस्पृष्यों का विवाह तथा सम्पर्क अपने बराबर बलों के साथ ही हो एवं रात को इन्हें गाँव अथवा शहर में घूमने फिरने का अधिकार नहीं दिया जाए''।

धुयें ने बताया है कि महाराष्ट्र की अनुसूचित जाति 'महार' के लोगों के लिए यह आवश्यक था कि लोग घर से बाहर हर समय अपने गले में एक बर्तन लटकाए रखें जिससे जरूरत पड़ने पर यह उसमें थूक सके। कहीं भी जमीन पर थूकना उनके लिए निषेध था। वह ब्राहाण से दूर रहता था। इनकी ब्रह्मण पर छाया पड़ने से ब्रह्मण अपवित्र हो जाता था।

भारत के अनेक समाजों, ग्रामों, करों तथा बस्तियों में अनेक अनुसूचित जातियों के लोग अपनी गन्दी बस्तियों के बहर नहीं निकल सकते. थे। प्रातःकाल 9 बजे से पहले तथा सायं 3 बजे के बाद उनका सड़कों पर चलना मना था क्योंकि इस अवधि में शरीरै की परछाईं लम्बी बनती है जो सवर्णों पर पड़ने पर उन्हें अपवित्र कर देती थी। अनुसूचित जातियों के लोगों से बात करने, देखने, वस्त्र छूने से द्विज जातियों के लोग अपवित्र हो जाते थे।

3- iFkd cfLr;, rFkk vkokl & अनुसूचित जातियों गाम तथा नगर के बाहरतथा दूर नीचे के गन्दे स्थानों में रहती थीं। नगर तथा कस्बों में गन्दी बस्तियों के रूप में इन्हें आज भी देखा जा सकता है। इन निम्न बस्तियों की एक असमर्थता ये थी कि इन लोगों को स्वच्छ तथा साफ–सुथरे स्थलों पर अपनी झोपडियाँ बनाने का अधिकार नहीं था। इनको सवर्ण जाति की बस्तियों तथा मोहल्लों में प्रवेश तक की अनुमति नहीं थी, रहने का तो प्रश्च ही नहीं उठता है।

4- lkoZtfud m|kuk rFkk lfo/kkvka d mi;kx ij fu"k/k – अनेक अनुसूचित जातियों को पाठशाला आदि में प्रवेश निषेध था। सवर्ण जातियों के कुओं से यानी नहीं भर सकते थे। इन पर बस्ती के प्रमुख स्थलों में प्रवेश पर निषेध था। पक्के मकान नहीं बनवा सकते थे। तन पर वस्त्र पहिनने पर निषेध था। केवल कमर तक ही स्त्री–पुरुष वस्त्र धारण कर सकते थे। ऊपर का शरीर नग्न रहता था। दुकानों से समान नहीं खरीद सकते थे। मनुस्मृति के अनुसार, ''मृत व्यक्ति के वस्त्र या पुराने चिथड़े ही इनके वस्त्र हों, मिट्टी के टूटे हुए टुकड़े इनके बर्तन हों ये लोग लोहे के आभूषण पहनें और रात–दिन घूमते–फिरते रहें।'' तालाबों, कुओं, मन्दिरों, पाठशालाओं, धर्मशालाओं तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों का उपयोग करना इनके लिए प्रतिबन्धित था।

5- f'k{kk ij fu"k/k & लगभग सभी अनुसूचित जातियों पर शिक्षा प्राप्त करने का निषेध था। उनको शिक्षा प्राप्त करने की आज्ञा नहीं थी। इनकी सन्तानों के लिए पाठशाला, विद्यालय आदि में प्रवेश लेना, शिक्षा प्राप्त करना असम्भव था। उन्हें धर्म पर चलने का उपदेश दिया जाता था। पुस्तकों को पढ़ना या सुनना, देखना तथा छूना तक प्रतिबन्धित था। ये लोग निरक्षर होते थे।

6-eukjatu ij fu"k/k & अनुसूचित जातियों के लिए किसी भी प्रकार का मनोरंजन उपलब्ध नहीं था। इन जातियों के सदस्यों को चौपालों, मेलों, रामलीला, खेल–कूद, प्रतियोगिता, मल्ल–युद्ध, हाटों, बाजारों, कठपुतली का तमाशा आदि को देखना, शामिल होना, भाग लेना आदि का अधिकार नहीं था। कीर्तन आदि की ध्वनि की सीमा से भी इन्हें दूर रखा जाता था। .

7- ,d iFkd lekt & अनुसूचित जातियों एक पृथक् तथा अलग – थलग समाज के रूप में गाँव के किसी दूर कोने में जीवन असर करती थीं। अस्पृश्य जाति की स्थिति तो इतनी दयनीय थी कि कल्पना

करना भी मुश्किल है। के एम. पणिक्कर ने लिखा है, ''जाति व्यवस्था जब अपनी यौवनावस्था में क्रियाशील थी उस समय इन अस्पृश्यों की स्थिति कई प्रकार से दास्ता से भी खराब थी। दास तो कम–से–कम एक स्वामी के ही अधीन होता था और इसलिए उसके अपने स्वामी के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध होते थे। लेकिन अस्पृष्यों के परिवार पर तो गाँव भर की दासता का भार होता था।.

¼3½ vkfFkZd leL;k,¡ & जाति व्यवस्था के द्वारा अस्पृश्य जातियों का बहुत अधिक आर्थिक शोषण हुआ था। इनकी दयनीय आर्थिक स्थिति का स्पष्टीकरण निम्नलिखित बिन्दुओं से और स्पष्ट हो जाएगा–

1- lkfrcfU/kr O;olk; & जाति व्यवस्था के अन्तर्गत सवर्ण जातियों ने अच्छे, पवित्र, कम श्रम वाले व्यवसाय अपने और अपनी सन्तानों के लिए सुरक्षित कर रखे थे। अस्पृश्य जातियों तथा शूद्र वर्ण की जातियों को निम्न कोटि के व्यवसाय करने के लिए प्रतिबन्धित कर दिया था। व्यवसाय प्रदत्त होते थे। जो निम्न जाति में जन्म लेता था, आजन्म वह उसी जाति का व्यवसाय करता था। अस्पृश्य लोग सफाई करने, मल–मूत्र उठाने, मरे हुए पशुओं को उठाने आदि का कार्य करते थे। कुछ जातियाँ चमड़े का कार्य करती थीं। इनको अन्य कार्य करने नहीं दिया जाता था, जैसे–खेती करना, दुकानदारी करना, घरों में पानी भरना आदि। शूद्र वर्ण के स्तर की जातियाँ जो अनुसूचित जातियों में आती हैं वे उनसे कुछ अधिक स्वच्छ प्रकार के व्यवसाय करती थीं। परन्तु आर्थिक लाभ की दृष्टि से उनको पारिश्रमिक कोई विशेष नहीं मिलता था। ये लोग श्रमिक थे। भूमिहीन श्रमिकों के रूप में कार्य करते थे। बन्धुआ श्रमिक भी होते थे।

2- lEifÙk lEcU/kh çfrcU/k& सम्पत्ति नाम की इनके पास कोई वस्तु नहीं होती थी। इनकी आर्थिक स्थिति हमेशा भूखे–नंगे, दरिद्रतापूर्ण रही है। मकान नाम की कोई चीज इनके पास नहीं होती थी। बस्ती से दूर गन्दे स्थानों पर नाम मात्र की झोपडियों में गर्मी, सर्दी और बरसात में अपना जीवन व्यतीत करते थे। ये लोग सोना, चाँदी, पीतल, कांसा आदि धातु की वस्तुएँ अपने पास नहीं रख सकते थे। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि ब्राह्मण अपनी इच्छा से अपने शूद्र सेवक की सम्पत्ति जब्त कर सकता क्योंकि शूद्र को सम्पत्ति रखने का अधिकार नहीं था।

3- Hkkstu] oL= vkj vkokl dh leL;k,¡ – अस्पृश्य जातियों तथा शूद्र वर्ण के स्तर की जातियों को खाने को भर पेट भोजन भी नहीं मिल पता था। कठोर शारीरिक श्रम के बाद भी वे अपनी तथा परिवार की भोजन व्यवस्था भी नहीं कर पाते थे। ये लोग हमेशा भूखे–नंगे रहे थे। रूखी–सूखी रोटियों के लिए ये उच्च जातियों के आगे हमेशा हाथ फैलाए देखे जा सकते थे। फटे–पुराने–वस्त्र, चिथड़े, मृत शरीर से उतरे कपड़े इनको पहिनने को दिए जाते थे। आवास के नाम पर ये टूटी–फूटी झोपडियों में, गन्दे स्थानों में निवास करते थे।

¼4½ jktuhfrd leL;k,¡ & अनुसूचित जातियों को कोई राजनैतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। किसी भी झगड़े, चोरी, बेईमानी, दंगे फसाद में वे लोग गवाही नहीं है सकते थे। वे लोग पंच और सरपंच नहीं बन सकते थे। इनको मतदान करने का अधिकार स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहिले किसी भी काल में नहीं था। सामाजिक और राजनैतिक संगठनों में इनको किसी भी सार्वजनिक या प्रशासनिक पद पर नियुक्त नहीं किया जाता था। इनको किसी भी राजनैतिक क्रिया तथा कार्यों में भाग लेना निषिद्ध था। एक ही प्रकार के अपराध के लिए सवर्ण जाति के लोगों को जहाँ साधारण दण्ड या जुर्माना दिया जाता था, वहीं इनके लिए कठोर दण्ड तथा भारी जुर्माने की व्यवस्था थी। इनके पास किसी भी प्रकार के नागरिक अधिकार नहीं थे। राजनैतिक शासन में इनकी कोई भूमिका नहीं होती थी, जैसे–सुझाव देने, हस्तक्षेप करने, सुरक्षा तथा नौकरी प्राप्त करने आदि का कोई अधिकार नहीं था। इसके लिए ये अयोग्य तथा असमर्थ थे।

¼5½ vU; leL;k,¡ & स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत के संविधान के द्वारा इन अनुसूचित जातियों को अनेक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, शैक्षिक आदि अधिकार प्राप्त हो गए है। अधिकतर इनको सिद्धान्त तथा कानून के रूप में अनेक सुविधाएँ तथा अधिकार प्राप्त हो गए हैं परन्तु व्यवहार में अभी कुछ करना तथा होना शेष है। कानून द्वारा इनको सभी निर्योग्यताएँ, असमर्थताएँ तथा अयोग्यताएँ समाप्त घोषित कर अनुसूचित जातियों को दी गई है। लेकिन कुछ समस्याएँ उठ खडी हुई हैं। सरकार

द्वारा दो गई आर्थिक सुविधाएँ इन तक पूरी नहीं पहुँच माती हैं। बिचौलिये खा जाते हैं। अनेक क्षेत्रों में अभी भी अनुसूचित जातियों सवर्णो के डर के कारण अपनी पूर्व स्थिति में गौ, जीवन व्यतीत कर रही हैं। सवर्ण और अवर्ण में झगडे, मारपीट आगजनी, हत्याएँ, लूटमार आदि होती रहती हैं। जो अनुसूचित जातियों के परिवार के आरक्षण, आधिक सहायता, शिक्षा आदि के द्वारा ऊपर गये हैं, वे स्वयं अपनी जाति से अलग रहना पसन्द करते हैं। उनमें परस्पर सामाजिक दूरियाँ रहीं है। चुनाव के द्वारा जो अन्य जातियों के सदस्य राजनैतिक पदों को प्राप्त कर लेते हैं वे अपनी जाति के सदस्यों का ध्यान नहीं रखते हैं। दूसरी ओर सदियों से जो शोषण, इनका सवर्ण जाति के सदस्य कर रहे थे उनसे भी ये बदला लेने, झगड़ा करने व नीचा दिखाने का प्रयास करते हैं। इससे परस्पर तनाव तथा संघर्ष की स्थिति पैदा हो जाती है। अनुसूचित जातियों का उत्पात बहुत कम हुआ है। अभी इनका विकास होना शेष है।

सारांश में यही कहा जा सकता है कि अनुसूचित जातियों की अनेक सामाजिक निर्योग्यताएँ और असमर्थताएँ थीं जिनकी कल्पना करना भी बहुत कठिन कार्य है। वसे स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत के संविधान के द्वारा इन अनुसूचित जातियों को अनेक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, शैक्षिक आदि अधिकार प्राप्त हो गए हैं। एवं साथ ही अनुसूचित जातियों की समस्याएँ एवं निर्योग्यताओं में कमी आई हैं।

lUnHkZ%

1. अम्बेडकर, बी.आर., दि अनटचेबल्स हू वर दे एण्ड व्हाई दे बीकेम अनटचबेलस, अमृत बुक कम्पनी नई दिल्ली (1984)।
2. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के अधिकार सम्बन्धित कानून; उत्तराखण्ड राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण; उच्च न्यायालय परिसर, नैनीताल; (2014)।
3. भारद्वाज, अनिल, वेलफेयर ऑफ स्युडूल कास्ट इन इण्डिया; गांधी सोसियल अप्रोच। अम्बेडकर्स पालटिकल अप्रोच। कांस्टीटयूशनल सेफगार्ड। स्किम फॉर वेलफेयर ऑफ स्युडूल कास्ट। दीप एण्ड दीप पब्लिकेशिंग पी पी टी एल टी डी नई दिल्ली (2002)।
4. भारत का संविधान, भारत सरकार विधि और न्याय मंत्रालय (2010)।
5. गाँधी जी के आदर्श और ग्रामीण विकास– राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, (2006)।
6. आहूजा राम, ''भारतीय सामाजिक व्यवस्था'' रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली 1995।
7. अग्रवाल, सुनील कुमार– गाँधी और साम्प्रदायिक एकता– अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, (2009)।
8. अकतर, एम एण्ड डेलाजी आर फ्रोम स्टिगमा डु एशेसनः अनटचेबलटी, आईडेन्टीटी एण्ड पोलिटिक्स इन अर्ली एण्ड मोडर्न इण्डिया, म्यूजियम टसक्लूनेम प्रेस, कोपेन हेगन डेनमार्ग (2010)।
9. वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा, भारत में समाज संरचना और परिवर्तन पंचशील प्रकाशन फिल्म कॉलोनी, चौड़ा रास्ता, जयपुर 2014

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 158-161

ek;dkyhu Hkkjr esa m|ksx rFkk O;kikj

Mk0 foeyUn flg*

मौर्य कालीन अर्थ–व्यवस्था में उद्योग तथा व्यापार का विशेष महत्व था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा राधा कुमुद मुखर्जी द्वारा लिखित चन्द्रगुप्त और उसका काल नामक ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि मौर्य साम्राज्य का आर्थिक जीवन पर व्यापक नियंत्रण था। राज्य देश की कृषि उद्योग तथा व्यापार आदि को संगठित तथा नियंत्रित करता था। कृषि का बड़ा अंश सीधे राज्य के नियंत्रण में था और राज्य की अपनी भूमि में कृषि होती थी। कृषकों के कार्य में राज्य हस्तक्षेप नहीं करता था क्योंकि वे अपनी उपज का भाग राज्य को नियमानुसार देते थे। राज्य ही वनों, खानों, और ऊसर भूमि का स्वामी था। कुछ उद्योगों पर राज्य को एकाधिकार प्राप्त था, यथा खनिज धातुएं, नमक उत्पादन आदि। राज्य के सूती कपड़े, तेल चीनी आदि के अपने उद्योग भी थे।

मौर्य साम्राज्य अनेक उद्योगों का स्वामी था और धन के उत्पादन पर नियंत्रण रखता था। प्राग्यमौर्य काल में उद्योग मुख्यतः श्रेणियों तथा गृहपतियों के हाथ में था। परन्तु मौर्यों ने पहली और आखिरी बार सभी प्रमुख उद्योगों को राज्य के नियंत्रण एवं प्रबंधन मे ले लिया था। इस युग में आकर विविध प्रकार के व्यवसायों, शिल्पों और शिल्पकारों का विकास हो चुका था। अर्थशास्त्र में विविध प्रकार के व्यवसाय करने वालों का वर्णन मिलता है। इन व्यवसायों और उद्योगों पर राज्य की व्यवस्था और नियंत्रण तथा अधिकार रहता था। व्यवसाय तथा उद्योगों की व्यवस्था के लिए कौटिल्य ने विस्तार से विचार किया है। राज्य के विभिन्न विभागों के अध्यक्ष व्यवसायों और उद्योगों पर नियंत्रण ही नहीं रखते थे वरन् स्वयं ही विभिन्न उद्योगों को चलाते भी थे। मेगस्थनीज के विवरण के आधार पर डियोडोरस ने लिखा है कि प्रशासन शिल्पियों की शोषण से रक्षा करता था। कौटिल्य के अनुसार राज्य धनादि देकर उनकी सहायता करता था तथा उनसे कर नहीं लिए जाते थे। राज्य उद्योगों को अपने निजी नियंत्रण में रखता था और अपने कर्मचारियों की देख–रेख में उसको करवाता था। इसलिए राज्य कर्मचारियों की संख्या अब पहले से अधिक हो गयी तथा उनमें से प्रयेक को उत्पादन का एक–एक विभाग सौंप कर राजा देश की समृद्धि करने लगा। उदाहरण स्वरूप सूताध्यक्ष वस्त्र व्यवसाय, बुनकरों आदि की देख–रेख करता था, स्वर्णाध्यक्ष स्वर्ण की देख–रेख करता था।

मेगस्थनीज के अनुसार भारत के फैशन पसन्द लोग वस्त्रों पर विशेष ध्यान देते थे टीशियस ने लिखा है कि भारत में निर्मित चमकीले वस्त्र ईरान में बहुत पसन्द किये जाते थे। मौर्यकाल में सूती वस्त्र के निर्माण में विशेष प्रगति हुई थी और मदुरा, कलिंग, वंग, वत्स काशी तथा महिष्मती (महेश्वर) सूती वस्त्र निर्माण के प्रसिद्ध केन्द्र थे। निर्याकस ने लिखा है कि भारतीय पेड़ों पर उगने वाला मलमल सर्वाधिक सफेद तथा चमकीला होता था। राजा तथा समृद्ध लोग सोने के तारों से कढे डिजाइनों वाले रत्न जड़ित मलमल के वस्त्र पहनते थे।

ऊनी वस्त्रों के विषय में भी सूचना मिलती है। ऊन से बने वस्त्रों में विभिन्न प्रकार के कंवल, कालीन, एवं पर्दे दुसाले, ग्वालों द्वारा ओढ़ने वालो मोटे कम्बल, आसन तथा हाथियों, और बैलों आदि को उढ़ाए जाने वाले झूल वर्णित है। ऊनी वस्त्र अधिकांशतः भेड़ों के ऊन से बनाये जाते थे। हिरनों के ऊन से पर्दे एवं कालीन बुने जाते थे। अर्थशास्त्र से आसाम तथा बंगाल में निर्मित उत्कृष्ट दुकूलों का वर्णन प्राप्त होता है जिनका प्रयोग राजा भी करते थे। यूनानी लेखकों ने भारत के महीन तथा जरीदार वस्त्रों

*एम0ए0,पी0–एच0डी0, प्राचीन इतिहास, ग्राम–जगदीशपुर, पोस्ट–पूरेमाधव सिंह, जिला–प्रतापगढ़ (उ0प्र0)

का उल्लेख किया है वस्त्र उद्योग का अधिकारी सूताध्यक्ष था। इस उद्योग में पुरूष तथा स्त्री दोनों काम करते थे। मूलतः विधवा, असहाय, अपंग आदि स्त्रियां सूत काटने का कार्य करती थी और पुरूष बुनने का। इन्हें राज्य कोषागार से कच्चा माल दिया जाता था तथा तैयार माल विशिष्टता के आधार पर खरीदा जाता था। रंगाई और धुलाई का भी उद्योग इससे सम्बद्ध था। स्वर्णाध्यक्ष की देख–रेख में आभूषण बनाये जाते थे।

अर्थशास्त्र में चांदी की कारीगरी का व्यापक उल्लेख मिलता है। सरकार के कारखाने में पंचमार्क सिक्के बनते थे। डॉ0 परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार श्रेणियाँ भी इसे तैयार करती थी, तभी अलग–अलग चिन्ह के सिक्के प्राप्त हुए हैं आयुधों (शस्त्रास्त्रों) का निर्माण आयुधागाराध्यक्ष के देख–रेख में होता था। वही उसका लेखा–जोखा रखता था। धनी लोग रत्नों तथा हांथीदांत का आभूषण धारण करते थे। एरियन ने हाथीदांत के आभूषणों का उल्लेख किया है। मौर्य युग में लकड़ी का प्रयोग बड़ी मात्रा में प्रयोग होता था बढ़ई का व्यवसाय बहुत ही विकसित था। वन सम्पदा की अधिकता से नाव, नदी में नौ यात्रा क लिए बड़े–बड़े जहाज बनाये जाते थे। पाटलिपुत्र का काष्ठ निर्मित मौर्य राजप्रसाद काष्ठ उद्योग एवं विकसित स्थापत्य का प्रमाण प्रस्तुत करता है। वन सम्पदा पर भी सरकार का प्रभावी नियंत्रण था और वनों की सुरक्षा एवं संवर्धन के लिए कुप्याध्यक्ष संज्ञक एक पृथक अध्यक्ष नियुक्त किया गया था। वन उद्योगों में राज्य वनों से सम्पदा निकलवाती थी मौर्य काल में पत्थर पर पालिश का काम अपने चरमोत्कर्ष पर था मौर्यकाल प्रस्तर कला में अद्वितीय था। मौर्यों ने सुरा (मदिरा) उद्योग को भी राज्य के नियंत्रण में ले लिया था और इसके लिए सुराध्यक्ष के अधीन एक पृथक विभाग का सृजन किया गया था।

चर्म व्यवसाय का व्यापक ज्ञान अर्थशास्त्र से मिलता है। पशुओं के चमड़े, गाय, भैंस, बैल, भेड़, बकरी आदि के चर्म से जूते एवं अन्य वस्तुएं बनाई जाती थी। यह उद्योग निजी क्षेत्र में था नमक उद्योग लवणाध्यक्ष के अधीन राज्य के नियंत्रण में था निजी तौर पर नमक बनाने के लिए लाइसेन्स लेना पड़ता था। कुछ व्यक्तिगत व्यवसायों की भी जानकारी मिलती है। जैसे वैद्य, ज्योतिषी, लेखक आदि। कुम्भकार तथा पत्थर काटने वालों का भी व्यवसाय प्रचलित था। उद्योगों के विकास के लिए राज्य की ओर प्रर्याप्त व्यवस्था की गयी थी। मजदूरों के अवकाश के नियम बनाये गये थे। उद्योगों को दो श्रेणियों में बांटा गया था– 1 राजकीय (जो राजा की ओर से होता था)

2. संघ नियंत्रित (व्यक्तिगत जिसके लिए उद्योगपतियों का अपना संघ था) राजकीय उद्योगों में मजदूरी निश्चित थी। मौर्यकाल में व्यापार पर राज्य का पूर्ण नियंत्रण तथा अधिकार था। कौटिल्य के अनुसार व्यापार की देखभाल के लिए पण्याध्यक्ष अधिकारी थे जो सामान्य शासन व्यवस्था की देखभाल के साथ राज्य की आरे से भी व्यापार करते थे। कौटिल्य के मत में व्यापारी नाम मे ंन सही, किन्तु कर्म में चोर ही माने गये हैं, क्योंकि अनुचित लाभ से वे अपनी आय में वृद्धि करते थे। इसी कारण राज्य व्यापारियों को संदेह की दृष्टि से देखता था राज्य स्वयं व्यापार करता था, इसलिए व्यापारियों को व्यक्तिगत वाणिज्य की सुविधा कम थी। व्यापारियों की अपेक्षा राज्य अपनी वस्तुओं की विक्री परअधिक ध्यान रखता था।

राज्य की व्यापारिक नीति का मुख्य उद्‌देश्य था कि उसकी आय में अधिक से अधिक वृद्धि हो तथा साथ ही प्रजा को कम से कम मूल्य पर वस्तुएं प्राप्त हों।

व्यापार की उन्नति के लिए आवागमन की सुविधा का भी ध्यान रखा जाता था। मौर्य साम्राज्य में मार्गों का जाल बिछा था। मेगस्थनीज के अनुसार एक मार्ग उत्तर–पश्चिम की सीमा से पाटलिपुत्र तक था। सड़कों पर छायादार वृक्ष थे, सरायों की व्यवस्था थी तथा दूरी की सूचना के लिए पत्थर लगे हुए थे। इन सड़कों पर व्यापार बैलगाड़ी तथा पशुओं की सहायता से होता था।

कौटिल्य ने विदेशी व्यापार के प्रोत्साहन पर भी ध्यान दिया। इसके लिए आवश्यकता पड़ने पर चुंगी कम करने आज्ञा दी गयी है। राज्य की ओर से विदेशी बाजारों में देशी वस्तुओं के विक्रय के सभी प्रयन्त किये जाते थे। मौर्य–युग में समुद्र और नदी मार्गों की देख–भाल के लिए नवाध्यक्ष कि नियुक्ति

की गयी थी। वह जलमार्ग का उपयोग करने वालों से कर लिया करता था और उन्हें यातायात की सुविधायें सुलभ कराता था। मौर्य युग के लोग मछलियां, मोती और शंख निकाला करते थे।

अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि मौर्य युग में नदियों तथा समुद्र मार्ग से व्यापार होता था स्थल मार्गों की अपेक्षा समुद्र और नदियों द्वारा व्यापार में अधिक सुविधा उपलब्ध होती थी। उस युग में भारत के मोती पश्चिम के अनेक देशों में निर्यात किये जाते थे। उस समय समुद्र तट पर असंख्य पण्य पत्तन बाजार थे। चम्पा से समुद्र यात्राओं के लिए नावें चलती थी। समुद्री व्यापारियों का उल्लेख वायु–पुराण, भागवत पुराण तथा मारकण्डेय पुराण में हुआ है। गोकर्ना व्यापारी समुद्र के व्यापार में अधिक कुशल था।

पथिक, पथक और अन्य यात्रियों का उल्लेख पंतजलि ने किया है (पथक) निरन्तर चलने वाला था। पहली सदी ई0पू0 में मिश्र से प्रायः तीन महीने के भीतर जहाज भारत पहुंच जाते थे, भारतीय व्यापारी रोम और यूनान तक जाते थे और वहां के यात्री भारत आते थे। भारत के पश्चिमी तट पर स्थित बन्दरगाहों से यूनान मिश्र आदि देशों के लिए व्यापारी अपने पोतों पर सामान लादकर ले जाते थे तथा उन्हीं बन्दरगाहों पर पश्चिमी देशों से व्यापारी आते थे। रोसक द्वारावती, शूपरिक और भरूकच्छ ऐसे प्रसिद्ध बन्दरगाह थे। विभिन्न प्रकार के वस्त्र, आभूषण, विविध रत्न और मोती, सुगन्धित सामग्री, रोम और मिश्र जैसे पश्चिम के देशों में निर्यात होते थे तथा वहां से स्वर्ण–मुद्राएँ प्राप्त होती थी। रोम की अनेक स्वर्ण–मुद्राएँ दक्षिण के प्रदेशों से मिली हैं भारत में बने तलवार, भाले, धनुष–बाण इत्यादि यूनान, ईरान, मिश्र आदि देशों में भेजा जाता था।

मौर्य कालीन भारत में व्यापार बहुत उन्नत अवस्था में था राज्य–कर का एक बड़ा भाग व्यापारियों से आता था। मौर्य कालीन भारत का व्यापारिक सम्बन्ध सीरिया, मिश्र, यूनान तथा अन्य पश्चिमी देशों के साथ था। राजधानी में विदेशी लोग बड़ी संख्या में रहते थे, जिनके कामों की देख–रेख नगर पालिका के सदस्यों की एक विशेष समिति किया करती थी। ये सभी विदेशी राजनीतिज्ञ नहीं हो सकते। सम्भवतः इसमें कुछ व्यापारी थे। ई0पू0 पहली शताब्दी में ही भारत और रोम साम्राज्य के बीच सम्पर्क स्थापित हो चुका था इसके अतिरिक्त चीन, यूनानी जगत तथा लंका आदि देशों के साथ भारत का व्यापारिक संबन्ध था। उत्तरी भारत की नदियों की सुन्दर प्रणाली ने तुलनात्मक दृष्टि से याातायात को इस क्षेत्र में सरल बना दिया था। मौर्य सरकार जहाज बनवाती थी और व्यापारिक वस्तुओं को लाने–लेजाने के लिए उन्हें भाड़े पर देती थी। दक्षिण भारत में यातायात कठिन था, जहाँ बड़े–बड़े भू–भाग बिना सड़क के थे और सामान को गाड़ियों में कठिनाई के साथ पैठन और तगर से भरोच बन्दरगाह तक पहुंचाया जाता था।

मौर्य शासन व्यापार और वस्तुओं के उत्पादन कार्य का नियमन करता था। सामान्य रूप से सरकारी कर्मचारी सरकारी माल (राजपण्य) की बिक्री का प्रबन्ध करते थे, लेकिन उसके लिए गैर–सरकारी व्यापारियों के सहयोग की भी जरूरत पड़ती थी। मौर्य अर्थव्यवस्था की एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि खनन और धातुकर्म पर सरकार का एकाधिकार था। चन्द्रगुप्त के समय में पाटिलपुत्र संसार का सबसे बड़ा नगर था। अपरान्त में बुना हुआ कपड़ा भड़ौच से पश्चिम को निर्यात किया जाता होगा। मौर्यकाल मे मिट्‌टी के बर्तनों का व्यापार होता था तथा उच्च वर्ग के लोग कालेरंग की मिट्‌टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे। उस काल में एक सुसंगठित व्यवस्था के अनुसार व्यापार संबन्धी नियमों की ध्यान पूर्वक आयोजना की जाती थी। वाणिज्य प्रबंधक का यह कर्तव्य था कि वह व्यापारी को इतना मुनाफा न कमाने दें जिससे लोगों को हानि हो। मुनाफे का कुछ प्रतिशत व्यापारी को मिलता था और शेष भाग सरकारी कोष में जमा हो जाता था। यह राशि स्थानीय वस्तुओं की पांच प्रतिशत तथा विदेशी वस्तुओं की दस प्रतिशत होती थी। सरकार को अधिक धन की आवश्यकता पड़ने पर व्यापारी को अधिक कीमतें लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था।

ग्रीक स्रोतों के अनुसार कर से बचने वाले लोगों को मृत्युदण्ड दिया जाता था। इस काल में मुख्य राजपथ तथा नौ परिवहन के योग्य नदियां व्यापार मार्ग के लिए प्रयोग की जाती थी। पश्चिम और वर्मा के उत्तरी तट से समुद्री व्यापार था उस काल के सबसे महत्वपूर्ण मार्ग थे, उत्तर से दक्षिण पश्चिम मार्ग

(श्रीवस्ती से प्रतिष्ठान तक) उत्तर से दक्षिण–पूर्व को (श्रीवस्ती से राजगृह तक) और गंगा और यमुना नदियों की दिशा के साथ–साथ पूर्व–पश्चिम को जाने वाला मार्ग । राजस्थान के मरूस्थल की जानकारी थी। पश्चिमी तट पर भरूकच्छ (भड़ौच) बन्दरगाह का प्रायः जिक्र किया जाता है और पश्चिम में बबेरू (बेबिलोन) एक व्यापारिक केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध था।

उत्तर–पश्चिम (तक्षशिला के क्षेत्र में) से पाटलिपुत्र तक का राजपथ सबसे महत्वपूर्ण माना जाता था। यह युद्ध नीति तथा व्यापार दोनों दृष्टिकोंणों से महत्वपूर्ण था। समुद्री मार्ग के विकास के पहले यह पश्चिम से व्यापार के लिए मुख्य स्थल मार्ग था जो तक्षशिला विनिमय का केन्द्र था। अंतर्देशीय व्यापार के लिए भी इसे प्रायः इस्तेमाल किया जाता था।

lUnHkZ %

1. व्यापारिक मार्ग एवं देश– डॉ0 के0सी0 सहाय
2. भारतीय समाज– डॉ0 ए0आर0एन0 श्रीवास्तव
3. प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन– डॉ0 एम0पी0श्रीवास्तव
4. भारतीय इतिहास– रामशरण शर्मा
5. प्रारम्भिक भारत का आर्थिक सामाजिक इतिहास–रामशरण शर्मा
6. भारतीय संस्कृति एवं कला– डॉ0 हरिनारायण दूबे
7. भारतीय कला एवं पुरातत्व– डॉ0 एस0पी0राय
8. प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएं– डॉ0 कैलाश चन्द्र जैन
9. वैदिक इण्डिया, लुई रैना
10. भारत की प्राचीन मुद्रायें– डॉ0 आनन्द शंकर सिंह
11. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति– के0सी0 श्रीवास्तव

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 162-165

izrkix<+ ds izeq[k ,sfrgkfld LFky

MkW0 ih;w"k dkUr 'kekZ*

भगवान श्रीराम के राज्य कोशल के दक्षिणी उपान्त पर बसा तथा काशी एवं वत्स (कौशाम्बी) की सीमा से संलग्न प्रतापगढ़ जनपद पौराणिक, ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। यह प्रमुखतया पतित पावनी वैदिक नदी गंगा तथा पौराणिक नदी सई (स्यन्दिका) एवं बकुलाही[1] (बालुकिनी) से अभिसिंचित है। इसकी आदर्श भौगोलिक स्थिति के अन्तर्गत यह बुद्धकालीन श्रावस्ती से कौशाम्बी जाने वाले महत्वपूर्ण राजमार्ग के मध्य स्थित था जिससे यहाँ अनेक स्थलों को विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ।

यह जनपद जहाँ अयोध्या से चित्रकूट जाने वाले राम वनगमन मार्ग का साक्षी है वहीं महाभारत से जुड़े विविध आख्यान भी यहाँ के विविध स्थलों से जुड़े दिखाई पड़ते हैं। जनपद के कतिपय महत्वपूर्ण स्थलों का विवरण निम्नवत है–

fcgkj & जनपद मुख्यालय से लगभग 45 किमी० दक्षिण–पश्चिम में लाल गोपालगंज मार्ग पर बिहार बाजार के सन्निकट बकुलाही से जुड़ी चन्द्राकार झील के तट पर स्थित यह पुरास्थल लगभग 1.5 वर्ग किमी० में विस्तृत है। भारत के प्रथम सर्वेयर जनरल अलेक्जेण्डर कनिंघम ने इस स्थल की पहचान 'अयोमुख' से की है।[2] जहाँ पर भगवान बुद्ध ने वर्षावास किया था। सम्राट अशोक ने इस स्थल को पवित्र मानते हुए बुद्ध की स्मृति में यहाँ पर विशाल स्तूप तथा विहार बनवाया था। इस स्तूप में बुद्ध के केश एवं नख संरक्षित किये गये थे। यहाँ पर कुषाण शासकों द्वारा भी विहार बनवाये गये जिसे कनिंघम ने 'तुषारन विहार' नाम दिया। यहाँ के अष्टभुजी मंदिर में कुषाण कालीन स्त्री–पुरुषों की विशाल प्रतिमा प्राप्त होती है। सातवीं शती में चीनी यात्री ह्वेनसांग भी इस स्थल पर आया था। यहाँ टीले पर भग्नावशेष तथा पुरावशेष बिखरे मिलते हैं जिनमें उत्तरी काले चमकीले, लाल, लाल लेपित तथा धूसर एवं कृष्ण लेपित मृदभांड प्राप्त होते हैं। यहाँ से बड़ी संख्या में रिंग वेल (सोख्ता कूप) मिलते हैं जो यहाँ की जल निकास व्यवस्था को सूचित करते हैं।[3]

भगवान बुद्ध से जुड़े इस महत्वपूर्ण स्थल का खोदकर बुरी तरह से विध्वंस किया जा रहा है जिससे जिले से बुद्ध की पहचान के लुप्त होने का संकट आसन्न है।

jkdh & सांगीपुर से लगभग 10 किमी० पश्चिम में 2 वर्ग किमी० के क्षेत्र में विस्तृत यह टीला दूर से ही लोगों को आकर्षित करता है। लगभग 25 फीट ऊँचा यह विशाल टीला चतुर्दिक 20 फीट गहरी परिखा (खाई) से घिरा हुआ है जो उसकी सुरक्षा के लिए बनायी गयी होगी एवं उसके महत्व को सूचित करती है। परम्परानुसार इस स्थल को राजा विक्रमादित्य के बड़े भाई राजा भर्तृहरि द्वारा बसाया माना जाता है जो अपने भाई द्वारा छला गया था। एक जादुई मछली को निगलने से उसे तीनों लोकों की समस्त वस्तुओं का ज्ञान होने पर निराशा के कारण वह यहाँ आया और रांकी में अपना राज्य स्थापित किया। डब्ल्यू०ई०फोर्ब्स ने यहाँ उत्खनन भी करवाया था।[4] यहाँ से प्राप्त महत्वपूर्ण पुरावशेषों में कृष्ण लोहित मृदभाण्ड, उत्तरी काले चमकीले मृद्भाण्ड, मृण्मूर्तियाँ तथा हिन्द–यवन शासकों की मुद्रानिधि प्राप्त हुई है। फ्यूहरर के मतानुसार यह स्थल किसी समय विस्तृत एवं जनसंकुल नगर के रूप में विद्यमान था। वी०सी०शुक्ल[5] ने भौगोलिक सादृश्य के आधार पर इस पुरास्थल के बौद्धकालीन नगर 'आलवी' होने की संभावना व्यक्त की है जहाँ बुद्ध ने सोलहवाँ वर्षावास किया था।

---

*प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, एम०डी०पी०जी०कालेज, प्रतापगढ़

cy[kjukFk & यह पुरास्थल (यहियापुर) जनपद मुख्यालय से लगभग 18 किमी० पूर्व दिशा में पट्टी मार्ग में दीवानगंज के पास सई नदी के तट पर स्थित है। यहाँ पर प्रसिद्ध शिव मंदिर है जहाँ पर शिवरात्रि को विशाल मेला लगता है। यह बेलखरिया राजपूतों का गढ़ रहा है जिनके किले के अवशेष यहाँ से प्राप्त होते हैं जिन्होंने यहाँ पर पहले से स्थापित जीर्ण शिवलिंग का पुनरोद्धार कर मंदिर बनवाया था। पुरातात्विक अन्वेषण में यहाँ से बुद्धकालीन उत्तरी काले चमकीले मृदभाण्ड प्राप्त हुए हैं। फ्यूहरर[6] के अनुसार यहाँ के अवशेषों से प्रतीत होता है कि यहाँ पर पहले एक बौद्ध स्तूप भी था। कालान्तर में उसी के ऊपर मंदिर का निर्माण कराया गया। यहाँ प्रचलित एक मान्यता के अनुसार भगवान राम वनवास जाते समय यहाँ रुके थे तब यहाँ के राजा बेलनृपति ने उनकी सेवा की जिससे प्रसन्न होकर भगवान राम ने यहाँ शिवलिंग को स्थापित कर उसे राजा बेल का नाम प्रदान किया।

jkuhxat vtxjk & यह पुरास्थल मुख्यालय से 15 किमी० उत्तर–पश्चिम में लखनऊ राजमार्ग के निकट स्थित है। यहाँ के विशाल टीले डिहवा पर गाँव बसा है। परम्परा के अनुसार अगस्त्य ऋषि के राजा नहुष के इसी स्थल पर अजगर बन कर गिरने के कारण इस स्थल का नाम अजगरा पड़ा। यहाँ पर एक प्राचीन सरोवर स्थित है जिसके किनारे दो हजार साल पुरानी ईंटों की सीढ़ियाँ बनी मिलती है।[7] लोक परम्परानुसार यहीं पर पांडव युधिष्ठिर का यक्ष से संवाद हुआ था। सरोवर का जल पीने आये युधिष्ठिर ने यक्ष के प्रश्नों का उत्तर देकर बदले में अपने भाइयों को जीवित किया था। यहाँ से उत्तरी काले चमकीले, धूसर, लाल लेपित, कृष्ण लेपित, लाल मृदभाण्ड तथा प्रस्तर एवं मृण्मूर्तियाँ आदि पुरावशेष[8] प्राप्त हुए हैं। यहाँ से प्राप्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुरावशेषों में द्वितीय शती ई०पू० की ब्राह्मी लिपि में लिखे अभिलेख हैं।[9] एक अभिलेख राजा नहुष के शाप तथा उसके उद्धार का उल्लेख करता है। दूसरे अभिलेख में अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव तथा युधिष्ठिर का नामोल्लेख मिलता है जो कि भारत में पाण्डवों का नामोल्लेख करने वाला प्राचीनतम अभिलेख है। साथ ही कई अन्य अभिलेख भी प्राप्त होते हैं। इन अभिलेखों की प्राप्ति से यह पता चलता है कि दो हजार वर्ष पूर्व भी इस स्थल पर राजा नहुष और पाण्डवों की परम्परा लोक प्रचलित थी।

ikpksfl) & यह पुरास्थल जिला मुख्यालय से 5 किमी० दक्षिण–पश्चिम में लखनऊ मार्ग पर सुखपाल नगर के पश्चिम सई तथा शकरनी नदी के संगम पर स्थित है। लगभग 500 वर्ग मी० क्षेत्र में फैला यह टीला लगभग 20 फीट ऊँचा तथा तीन तरफ प्राचीर तथा परिखा[10] से घिरा है। टीले पर सोलहवीं शती का पंचोसिद्ध का ईंटों का मन्दिर मिलता है जिसकी दीवार पर नागरी लिपि में अंकित एक अभिलेख मिलता है जिसमें यहाँ पर द्वापर कालीन पांच राजकुमारों वीरबाहु, सुबाहु, भद्रबाहु, अलर्क और काशीराज के पुत्र के तपस्या कर सिद्धि प्राप्त करने की बात कही गयी है। तब से ही यह स्थान पांचोसि(के नाम से विख्यात है। अलर्क के नाम पर इस क्षेत्र का नाम अलर्कपुर कहा जाता है जो बाद में बिगड़कर अरोर हो गया। परम्परानुसार पाण्डव भी अज्ञातवास के समय एक रात के लिए यहाँ रुके थे। यह स्थल सोमवंशी राजाओं का प्रारम्भिक गढ़ कहा जाता है जो यहाँ पर प्रतिष्ठानपुर (झूंसी) से यहाँ आये थे। यहाँ उनका प्रथम राजा 1246 ई० में लखनसेन हुआ जिसने निकटवर्ती क्षेत्रों को विजित कर अपना राज्य विस्तार किया। टीले से प्रमुखतया लाल तथा कांचित पात्र) मृण्मूर्तियाँ और प्रस्तर मंदिर के भग्नावशेष प्राप्त होते हैं।[11]

g.Mkj & जिला मुख्यालय से 22 किमी० दक्षिण–पश्चिम में लखनऊ राजमार्ग पर लोनी नदी[12] के बायें तट पर स्थित यह पुरास्थल लगभग 500 वर्ग मी० के क्षेत्र में प्रसरित है। पुरास्थल के मध्य में एक छोटा टीला लगभग 10 मी० ऊँचा मिलता है जिसके स्तूप का अवशेष होने की संभावना है। परम्परानुसार राक्षसराज हाडवी ने हण्डौर की स्थापना की जिसे पाण्डव भीम ने हराकर उसकी कन्या हिडिम्बा से विवाह किया था। 12वीं शती तक यह भरों का मुख्य केन्द्र रहा। प्रथम सोमवंशी राजा लखनसेन ने 1258 ई० में यहाँ के भरों को हराकर अपना राज्य स्थापित किया और यही से अपने शासन का संचालन करने लगा। पुरास्थल पर एक प्राचीन ईंटों की समाधि मिलती है जिसे राजा हाण्डवी की समाधि कह कर पूजा जाता है।[13] यहाँ से उत्तरी काले चमकीले तथा लाल, धूसर आदि पात्र प्राप्त हुए हैं।[14]

ckjMhg & जनपद की पट्टी तहसील में चाँदा मार्ग पर स्थित यह स्थल मध्य पाषाण कालीन सूखी झील के तट पर स्थित है यहाँ से मध्य पाषाण कालीन लघु पाषाण उपकरण तथा कुषाण एवं पूर्व मध्यकालीन पात्र प्राप्त होते हैं। स्थानीय मान्यतानुसार यह स्थल महाभारत कालीन राजा विराट का किला कहा जाता है जहाँ अज्ञातवास के समय पाण्डवों ने शरण ली थी। यहाँ से 2 किमी० दूर शारदा नहर के सन्निकट एक विशाल झील के तट पर उ०प्र० राज्य पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित मध्य पाषाण कालीन पुरास्थल महदहा[15] स्थित है। यहाँ पर पाण्डव भीम द्वारा राजा विराट के साले कीचक का वध किए जाने की परम्परा प्रचलित है। यहाँ पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा कराये गये उत्खनन में मानव शवाधान, लघु पाषाण उपकरण, चूल्हे तथा आवासीय साक्ष्य प्राप्त हुए हैं।

pkgj tu & यह पुरास्थल रानीगंज तहसील में लच्छीपुर बाजार से 3 किमी० पश्चिम सई नदी के दाहिने तट पर 10 मी० ऊँचे टीले के रूप में स्थित है। आज समूचे टीले पर गाँव बसा है। टीले पर ही चौहरजन देवी का आधुनिक मंदिर है जिसे वाराही देवी भी कहा जाता है। मान्यता है कि इस मन्दिर का निर्माण 12वीं शती के आल्ह खण्ड के नायक वीर आल्हा–ऊदल द्वारा कराया गया था, की बात कही जाती है निकट ही एक पुराना कुँआ है जिसमें एक सुरंग बनी है जिसके द्वारा आल्हा एवं ऊदल प्रत्येक सुबह पहले माता चौहरजा को पुष्प अर्पित करने आते हैं। स्थल की पुरातनता की पुष्टि यहाँ मिलने वाले बुद्धकालीन उत्तरी काले चमकीले मृदभाण्ड तथा उससे भी प्राचीन कृष्ण लोहित पात्रों से होती है।[16]

xkjk dk l;Z efUnj & जनपद की सदर तहसील में मानधाता से 3 किमी० दक्षिण शिवपुर पंचायत में सूर्य मंदिर स्थित है। 1875 ई० में अपने भारत भ्रमण के समय अलेक्जेण्डर कनिंघम यहाँ आया था। उसने यहाँ उत्खनन भी कराया था और अत्यन्त भव्य सूर्य मंदिर के भग्नावशेष प्राप्त किये थे। इस मंदिर की योजना 48 फीट वर्गाकार है जिस पर 3 फीट ऊँचा एवं 21 फीट 8 इंच का घनाकार चबूतरा बनाया गया है। इस चबूतरे पर 5 फीट ऊँची जगती पर 11 फीट का वर्गाकार गर्भगृह अवस्थित है। जगती पर चढ़ने के लिए पूर्व एवं उत्तर दिशा की ओर सीढ़ियाँ बनायी गयी हैं। गर्भगृह में वर्तमान में शिवलिंग स्थापित है। चारों तरफ प्रस्तर मूर्तियाँ अलंकृत द्वार शाखायें, स्तम्भ आदि बिखरे हुए हैं।[17] यह स्थल बुरी तरह से अतिक्रमण का शिकार है।

यहाँ से 1 किमी० दूर बकुलाही नदी के बायें तट पर भयहरणनाथ[18] स्थित है। यहाँ पर 10वीं शती के एक मुखी शिवलिंग युक्त अर्वाचीन मंदिर स्थित है। इस स्थल के लिए प्रचलित परम्परानुसार लाक्षागृह से बच निकलने के बाद यहाँ आये पाण्डव निराश थे। यहाँ पर शिवलिंग की स्थापना एवं पूजन से उनके नैराश्य एवं भय का नाश होने से इस स्थल को भयहरणनाथ कहा जाने लगा। निकट ही पीपल वृक्ष के नीचे उमा–महेश्वर की एक अतीव सुन्दर प्रतिमा प्राप्त होती है।[19]

ekfudiqj & यह पुरास्थल जिला मुख्यालय से लगभग 60 किमी० दक्षिण–पश्चिम में कुण्डा तहसील में इलाहाबाद–लखनऊ मार्ग पर गंगा के बायें तट पर स्थित है। लगभग 2 वर्ग किमी० क्षेत्र में प्रसरित इस पुरास्थल से उत्तरी काले चमकीले, धूसर, कृष्ण लेपित, लाल तथा कांचलित पात्र प्राप्त हुए हैं। परम्परानुसार इस स्थल को कन्नौज के राजा बलदेव के पुत्र मानदेव के द्वारा बसाया कहा जाता है। कन्नौज के ही राठौर शासक जयचन्द के सौतेले भाई मानिकचन्द के समय में इसने अपना वर्तमान स्वरूप ग्रहण किया। इनके किले के अवशेष भी यहाँ से प्राप्त होते हैं। सल्तनत काल से ही यह दिल्ली के एक प्रमुख सूबे के रूप में स्थापित था। अलाउद्दीन खिलजी ने यहीं का सूबेदार रहते हुए मालवा तथा देवगिरि को विजित किया था और यहीं पर दिल्ली के सुल्तान अपने चाचा जलालुद्दीन का वध कर स्वयं को दिल्ली का सुल्तान घोषित किया था। उस समय मानिकपुर अचानक देश का सबसे महत्वपूर्ण स्थल बन गया था।[20] निकट ही खमसरा में जलालुद्दीन का मकबरा है। यहाँ के मुख्य स्मारक शाहाबाद में स्थित है जहाँ स्थानीय राजा अब्दुल कादिर द्वारा चालीस खम्बा, जामा मस्जिद, संगीन महल, रंगीन महल आदि बनवाये गये थे। शेरशाह सूरी की पुत्री बीबी सालेहा का विवाह स्थानीय शाह कासिम से हुआ था। दोनों का मकबरा भी यहाँ अवस्थित है। मुगल शासक शाहजहाँ द्वारा भी यहाँ एक छोटी मस्जिद बनवायी गयी थी और औरंगजेब भी एक दिन के लिए ईद मनाने यहाँ पर आया था।[21] आज यहाँ पर घने बसाव के

कारण और स्मारकों की देखरेख न होने के कारण उनका तेजी से क्षरण हो रहा है और वो ध्वस्त होते जा रहे हैं।

इन महत्वपूर्ण स्थलों की वजह से जनपद में पर्यटन की दृष्टि से अपार संभावनायें हैं किन्तु व्यवस्थित योजना के अभाव में जनपद प्रभावी रूप से पर्यटन के नक्शे पर अंकित नहीं हो पाया है। पुरास्थलों एवं स्मारकों के उचित रखरखाव, संरक्षण तथा प्रचार–प्रसार के द्वारा बड़ी संख्या में पर्यटकों को आकर्षित किया जा सकता है जिससे जनपद एवं जनपदवासियों की श्रीवृद्धि होगी।

lUnHkZ %

1. डॉ०पीयूष कान्त शर्मा द्वारा 'प्रतापगढ़ जिले में बकुलाही नदी घाटी का पुरातात्विक अध्ययन' नामक शोधपत्र काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में इण्डियन आर्कियोलॉजिकल सोसाइटी के अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार में दिनांक 06 नवंबर 2017 को प्रस्तुत शोधपत्र
2. कनिंघम एलेक्जेण्डर, 1968 आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट आफ टूर्स इन द गैजेटिक प्राविन्सेस 1875–76 एण्ड 1877–78, वाल्यूम–11, वाराणसी, पृ०67–68
3. शर्मा, पीयूष कान्त 2015 बिहार–एक बुद्धकालीन पुरातत्व, उन्मेष, वाराणसी, पृ०11–13
4. फोर्ब्स, डब्ल्यू०ई० 1877, रिपोर्ट आन द रेवेन्यू सेटेलमेन्ट आफ द प्रतापगढ़ डिस्ट्रिक्ट, प्राविन्स आफ अवध, लखनऊ, पृ०189–190
5. शुक्ल, विमल चन्द 1986, रांकी का टीला, पुरानुसंधान, इलाहाबाद–13–23
6. फ्यूहरर, ए० 1891, दि मॉन्यूमेंटल एन्टीक्विटीज एण्ड इन्स्क्रिप्शन्स इन द नार्थ वेस्ट प्रोविन्सेस एण्ड अवध, इलाहाबाद, पृ०314
7. शर्मा, पीयूष कान्त, 2011, प्राचीन भारत मे जलाशय, दिल्ली, पृ०144
8. शर्मा, पीयूष कान्त, 2012, अजगरा की मृण्मूर्तियाँ, विचार, लखनऊ, पृ०68–71
9. श्रीवास्तव, ओम प्रकाश, 2002, अजगरा अभिलेखों की पुनर्व्याख्या, संस्कृति संधान, अंक–15, वाराणसी, पृ०118–121
10. शर्मा, पीयूष कान्त, 2012, भारतीय नगर वास्तु का प्रमुख अंग परिखा, जर्नल ऑफ द गंगानाथ झा कैम्पस, इलाहाबाद, पृ०47–52
11. शर्मा, पीयूष कान्त, 2013, पांचोसिद्ध का पुरातत्व, आर्कियोलॉजिकल फाइण्डिंग्स फ्राम द होमलैण्ड आफ बुद्ध, दिल्ली, 260–262
12. शर्मा, पीयूष कान्त, 2018, प्रतापगढ़ के प्राकृतिक जल संसाधन एवं मानव संस्कृतियाँ, पुरा मीमांसा (आर्कियोलॉजी एण्ड ट्रेडीशन) – ए फेलिसिटेशन वॉल्यूम ऑफ प्रो०जे०एन०पाल, दिल्ली (प्रेस में)
13. चक्रवर्ती, डी०के०, 2001, आर्कियोलॉजिकल ज्योग्राफी आफ गंगाप्लेन, दिल्ली, पृ०259
14. इण्डियन आर्कियोलॉजी 1977–78, ए रिव्यू, पृ०57
15. शर्मा, जी०आर०, वी०डी०मिश्र और जे०एन०पाल 1980, एक्सकेवेशन्स ऐट महदहा, इलाहाबाद
16. इण्डियन आर्कियोलॉजी 1968–1969, ए रिव्यू, पृ०35
17. शर्मा, पीयूष कान्त 2018, गौरा का सूर्य मंदिर, कला वैभव, खैरागढ़, छत्तीसगढ़ ;प्रेस मेंद्ध
18. शर्मा, पीयूष कान्त 2015–16, उंचडीह का पुरातत्व, प्राग्धारा, लखनऊ, पृ०103–108
19. शर्मा, पीयूष कान्त 2016, गौरा के विशेष संदर्भ में उमा–महेश्वर प्रतिमा स्वरूप का अध्ययन, शोध धारा, जालौन, वाल्यूम–3, पृ०124–127
20. नेविल, एच०आर० 1904, प्रतापगढ़ ए गजेटियर, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ द यूनाइटेड प्राविन्स ऑफ आगरा एण्ड अवध, वा० XLVII, इलाहाबाद, पृ०193–194
21. गजेटियर ऑफ द प्राविन्स ऑफ अवध, वा०II, 1877, इलाहाबाद, पृ०460–462

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 166-170

^fdlku _.kxzLrrk vkSj vkRegR;k**

(आधुनिक हिन्दी साहित्य में किसान जीवन की अभिव्यक्तियाँ)

xkSjo ik.Ms;*

पिछले ढाई दशक के आर्थिक सुधारों के बाद हमारे देश की स्थिति आज यह है कि भारत में अमीरों की संख्या और सम्पत्ति देश के विकास दर की तुलना में कई गुना तेजी से बढ़ रही है। जबकि आजादी के सत्तर वर्ष के बाद भी देश की साठ प्रतिशत आबादी जो कि कृषि पर निर्भर है उसकी समस्याएँ दिनों–दिन भयावह रूप में हमारे सामने प्रकट हो रही हैं। गॉव की खेती से जुड़ी अधिकांश आबादी की जिन्दगी में पिछले कुछ वर्षों में त्रासद स्थिति बनी हुयी है जिसके भयावह रूप में हमारे सामने समय–समय पर प्रकट होते रहते हैं। वर्तमान समय में यह दृश्य कई रूपों देखा जा सकता है 1950–51 में सकल घरेलू उत्पाद (जी0डी0पी0) में कृषि का योगदान 55 प्रतिशत था, जो अब लगभग 12 प्रतिशत रह गया है। किसान खेती छोड़ने गाँव छोड़ने और मजदूर बनने को विवश हैं और साथ ही किसानों की आत्म–हत्याओं में लगातार वृद्धि हुयी है। पिछले एक दशक में एक करोड़ से अधिक किसानों ने खेती छोड़ दी है।

हमारे देश में किसानों की आत्महत्या की समस्या एक राष्ट्रीय समस्या का रूप धारण कर चुकी है। किसानों की आत्म–हत्या की खबरे प्रायः अखबार में छपती ही रहती हैं। यह हमें सोचने और विचार करने के लिए विवश करता है कि हम अपने देश की वास्तविक जमीन की परख करें आज देश में जो सुशासन और विकास की बात चलती रहती है, गली–गली, नुक्कड़–नुक्कड़, टी0वी0 और अखबारों में विकास का डंका जो बजता रहता है वास्तव में सबका साथ और सबका जमीनी विकास की अवधारणा की कसौटी क्या है? किसानों की बढ़ती आत्म हत्याओं का कारण और निवारण क्या है? देश की प्रगति एवं विकास में किसानो का महत्वपूर्ण योगदान है जबकि किसानों को ही अपनी जिंदगी में अपने परिवार के भरण–पोषण के लिए कर्ज आदि लेना पड़ता है और तमाम वह विसंगतियों पैदा हो रही हैं जिनसे उन्हें आत्महन्ता कदम उठाने को विवश होना पड़ता है। यह निश्चित रूप से गंभीर चिंता का विषय है।

हमारे समय के तमाम महत्वपूर्ण विद्वानों का मानना है कि नव–उदारवादी– अर्थव्यवस्था ने विकास का जो माडल प्रस्तुत किया है उसका सम्बन्ध अधिकतम 30 प्रतिशत लोगों से है, जिसकी क्रय शक्ति लगातार बढ़ती गयी। लेकिन जिन लोगों के पास क्रय शक्ति नहीं है उनके लिए बाजार आधारित विकास माडल कहीं से भी लाभकारी नहीं है।इस तरह यह नव–उदारवादी अर्थ–व्यवस्था कृषक और सामान्य जनविरोधी है। देश में ऐसे लोगों की संख्या सर्वाधिक है, जिनकी क्रय शक्ति सीमित है, यही हमारे देश का उत्पादक वर्ग भी है इसी कारण विकास के वर्तमान स्वरूप को राष्ट्रविरोधी और जनविरोधी अवधारणा के रूप में व्याख्यायित किया गया है।

भारत में किसान आत्महत्या 1990 के बाद पैदा हुई स्थिति हैं जिसमें प्रतिवर्ष दस हजार से अधिक किसानों के द्वारा आत्महत्या की रपटें दर्ज की जाती रही हैं भारतीय कृषि जीवन बहुत हद तक मानसून पर निर्भर है तथा मानसून की असफलता के कारण नकदी फसलें नष्ट होना किसानों द्वारा की गई आत्महत्याओं का मुख्य कारण माना जाता रहा हैं। मानसून की विफलता, सूखा, कीमतों में वृद्धि, ऋण का अत्यधिक बोझ आदि परिस्थितियाँ तरह–तरह की समस्याओं को जन्म देने वाली होती हैं। बैंको, महाजनों, निचौलियों, आदि के चक्र में फंसकर भारत के विभिन्न हिस्सों के किसानों ने आत्महत्याएँ की हैं।

---

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

सबसे पहले जब हम किसानों की ऋणग्रस्तता पर बात करते हैं तो हमें सन् 1936 में लिखा गया उपन्यास सम्राट प्रेमचंद का उपन्यास 'गोदान' याद आता है यह वह उपन्यास है जो भारतीय कृषक जीवन एवं उनकी नियति–परिणति का जीवंत दस्तावेज हैं, इसे महाकाव्यात्मक उपन्यास की संज्ञा दी गयी है। किसानों का शोषण किस–किस जगह पर और कैसे–कैसे होता है इन सबका चित्रण प्रेमचद्र ने 'गोदान' में होरी की कथा रचकर एक जीवंत दस्तावेज के रूप में संग्रहीत कर दिया है जिससे हम आज भी अपने समय के विचार ग्रहण कर सकते हैं क्योंकि परिस्थितियाँ भले ही पहले जैसे न रह गयी हो लेकिन किसानों की ऋणग्रस्तता और उनकी समस्याओं में कोई व्यापक सुधार आज भी देखने को नहीं मिल रहा है। यह आज भी उतना ही बड़ा सच है जिसकों हम 'गोदान' में भी देख सकते हैं और कथाकार संजीव द्वारा रचित उपन्यास ''फांस'' में भी इस तथ्य को समझ सकते हैं।

प्रेमचन्द ने अपने समय की समस्याओं को देखा एवं समझा था, 'गोदान' की रचना किसान जीवन की समस्याओं के चित्रण के लिए ही की गई है होरी कृषक, वर्ग की प्रतिनिधि पात्र है उसके जीवन की 'ट्रेजड़ी' हर किसान के जीवन को प्रस्तुत करती है। जब भारत में जमींदारी प्रथा थी तो किसान की गर्दन उनके पैरों तले दबी रहती थी। जमींदार, कारकुन पटवारी, सूदखोर महाजन आदि तो किसानों का शोषण करते ही थे, पुलिस, व्यापारी, धर्म के ठेकेदार, समाज के ठेकेदार भी उनका शोषण तरह–तरह से करते थे। और आज भी हम इन सबकों, अलग–अलग तरीके से शोषण करते हुए देख सकते हैं भले ही उसका परम्परित स्वरूप वैसा न हो लेकिन किसान आज भी उतना ही शोषित है इसे हम झुठला नहीं सकते हैं। यह कैसी विडम्बना है कि जो किसान सबके लिए अन्न उपजाता है वही खुद भूखा रहता है और अपनी जरूरतों के लिए कर्ज लेता है और जीवन भर उसी कर्ज में डूबा रहता है। वास्तव में किसान उसे अपनी नियति समझता है–

''छोटे–बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं। सम्पत्ति बड़ी तपस्या से मिलती, उन्होंने पूर्व जन्म से कर्म किये हैं उनका आनन्द भोग रहे हैं। हमने कुछ नही संचा तो भोगें क्या?''

यह कथन गोदान के नायक होरी का है जो अपने पुत्र गोबर को अपनी नियति को स्वीकार करने के लिए समझाते हुए कहता है वास्तव में यह नियतिवादी विडम्बना के दृश्य हम आज के समय में भी देख सकते हैं लेकिन उसके साथ ही साथ एक चेतना का विकास भी हुआ हैं, हमारी पीढ़ी भी समझने लगी है कि–''भगवान तो सबको बराबर बनाते हैं। यहाँ जिसके हाथ में लाठी है वह गरीबों को कुचलकर बड़ा आदमी बन जाता है।''

जिसके हाथ में लाठी है वह गरीबों को कुचलकर बड़ा आदमी बन जाता है।'' इस कथन के आलोक में हम अपने समय को भी देख सकते हैं। वास्तव में हमारे समय में जब विकास का डंका तेज स्वरों में बज रहा है लेकिन किसानों की ऋणग्रस्तता और उनकी आत्महत्याएँ बढ़ रही हैं जबकि अमीरों की संख्या में लगातार वृद्धि भी हो रही है। अमीर लगातार और धनी हो रहे हैं। जबकि गरीब, किसान और मजदूर आत्महत्या को विवश हैं तो हमें आत्म–मूल्यांकन की भी आवश्यकता है और प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना के महत्व को भी समझने की आवश्यकता है। अन्यथा आज भी किसान हल में जुते बैल की तरह की जिन्दगी जीने को विवश हैं। गोदान में होरी का भाई 'भोला' कहता है–

''कौन कहता है हम तुम आदमी हैं। हममें आदमियत कहाँ। आदमी वह है जिसके पास धन है, अख्तियार है, इल्म है। हम लोग तो बैल है और जुतने के लिए पैदा हुए हैं।''

किसानों की सबसे बड़ी समस्या है –ऋणग्रस्तता, गाँव के महाजन और साहूकार किसान की मजबूरी का लाभ उठाकर ऊँची दर पर ब्याज वसूल करते हैं। गोदान में भी यही समस्या हैं साहूकार की सूद की दर एक आना रूपया से लेकर दो आना रूपया तक है जो 75 प्रतिशत वार्षिक से 150 प्रतिशत तक जा पहुँचती है किन्तु किसान मजबूर हैं कर्ज लेने को विवश हैं; कभी खाद के लिए, कभी बीज के लिए, कभी बैल के लिए तो कभी लगान चुकाने के लिए तो कभी सामाजिक दण्ड की भरपाई के लिए, होरी कहता है–

''कितना चाहता हूँ कि किसी से एक पैसा कर्ज न लूं लेकिन, हर तरह का कष्ट उठाने पर भी गला नही छूटता।''

हिन्दी कविता में भी किसानों के जीवन से जुड़े संघर्षों के दृश्य पूरी जिम्मेदारी साथ कवियों ने दर्ज किया है। किसानों एवं खेतिहर–मजदूरों के जीवन के संकटों को कवियों ने समय–समय पर अभिव्यक्त किया है। भारतेन्दु युग में गद्य रचनाओं में निबंधों के माध्यम से ही सामाजिक जीवन की विसंगतियों को स्वर मिलने लगा था लेकिन किसान जीवन के स्पष्ट चित्र द्विवेदी युग की रचनाओं में देखने को मिलते हैं। प्रेमचन्द्र ने अपने उपन्यासों के माध्यम से किसान की समस्याओं को शब्दों में उकेरा और जीवंत–मार्मिक दृश्य प्रस्तुत किए तो महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने लेखों में किसान मजदूर, बैल, खेती आदि से जुड़ी विसंगतियों पर प्रकाश डाला। द्विवेदीयुग के सर्वश्रेष्ठ कवि 'मैथलीशरण गुप्त' ने भी अपनी कविताओं में किसानों का चित्र खींचा है।मैथलीशरण गुप्त जी ने अपनी इस कविता में किसानों के जीवन, संघर्ष एवं उनकी आशा, उम्मीद, जिजीविषा का चित्र बड़े ही अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है। गुप्त जी को अच्छी तरह से पता है कि 'हो जाए अच्छी भी फसल पर लाभ कृषकों को कहॉ? क्योंकि वे यह जुताई, बुआई, आदि महाजन से ऋण लेकर करते हैं और इस ऋण की भरपाई के लिए ''आता महाजन के यहाँ वह अन्न सारा अंत में। इस तरह किसान आधा पेट खाने को ही पाता है उसके पास कुछ भी शेष नहीं रहता है उसकी सारी मेहनत जाड़ा, गर्मी, बरसात में जो वह करता है वह व्यर्थ ही चली जाती है फिर भी किसान इस जीवन संघर्ष से पीछे नहीं हटता, ऐसे ही किसान का वर्णन गोदान में हुआ है गुप्त जी को लगता है वह कौन सा मोह है जो इन किसानों से इतना कठोर परिश्रम कराता है? लेकिन विडम्बना यही है कि इस कठोर परिश्रम के बावजूद उनके जीवन के अंधेरों में प्रकाश नहीं होता है उनका जीवन ऋणग्रस्त होता जाता है। और वह आत्मघात तक पहुॅचते है–

^^ekuk Hkou ls fHkUu mudk] nlјk gh ykd g@'kf'k l;l g fQj Hkh dgh] mue ugh vkykd gA**

किसान जीवन की विडम्बनाओं को हमारे समय के महत्वपूर्ण कवियों ने समय–समय पर इनके जीवन की त्रासदियों की अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति किया है। हिन्दी कविता में प्रगतिवाद का प्रारम्भ सन् 1936 ई0 में हुआ जिसमें शोषक वर्ग के प्रति घृणा और शोषितों के प्रति करूणा का भाव परिलक्षित होता हैं किसानों एवं मजदूरों की समस्याओं पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला गया है। आगे चलकर समकालीन कविता ने प्रमुखता से इस स्वर को उभारा है प्रगतिवादी कविता का मूल केन्द्र शोषण की चक्की में पिसने वाला किसान, मजदूर पीड़ित की दशा का सहानुभूति और कारूणिक चित्र प्रस्तुत किया है–

^^'okuk dk feyrk n/k] oL=@Hk[k ckyd vdykr gA@ek dh Nkrh ls fpid] fBBj@ tkM dh jkr fcrkr gA & दिनकर''

सामंती शोषण, लगान और ब्याज के चंगुल में फंसे किसान और उनकी बदहाली का यथार्थ चित्रण नागार्जुन की कविताओं मिलता है–

^cht ugh g cy ugh g o"kk fcu vdykr g@ugj jV c< x;k] [kr e ikuh ugh iVkr g@ ugh Hkfe e duvk Hkj Hkh nkuk mitk ikr g@fiNyk dt pdk u ld lkg dh f>Mdh ikr gA

इसी प्रकार 'मजदूर का जन्म' केदारनाथ अग्रवाल की एक बहुचर्चित कविता है। जिसमें कवि ने मजदूर के जन्म पर उसके परिवार–जन में जो प्रतिक्रिया होती है उसे दिखाने के साथ ही उसके जन्म की विडम्बनात्मक व्यंजनात्मक ध्वनियों को स्वर दिया है यह कविता भले ही मजदूर के लिए है लेकिन किसानों के एिल भी इसका उतना ही सारगर्भित अर्थ है–

lu y jh ljdkj!@d;ker<kuokyk vkj gvk!!@,d gFkkMokyk ?kj e vkj gvk!

– केदारनाथ अग्रवाल

इस कविता को आप ध्यान से पढ़े और समझें कि कवि ने किसी शिशु के जन्म की बात कहीं नहीं कही है, बल्कि मजदूर के जन्म की बात कही है। यह पंक्ति 'मजदूर का जन्म' भी 'अकाल और उसके

बाद' शीर्षक की तरह ही अर्थ व्यंजना से भरी हुयी है। हम जानते हैं जन्म के साथ ही कोई मजदूर, सेठ, मालिक, कलक्टर, नेता, शिक्षक, अपराधी आदि नहीं पैदा होता है, जन्म से तो वह महजएक शिशु होता है, इन्सान होता है लेकिन मजदूर के घर जन्म लेने वाला शिशु परिस्थितियों के कारण आगे चलकर हथौड़ा ही पकड़ता है और मजदूर ही बनता है। इसीलिए कवि 'मजदूर का जन्म' लिखता है। इसी तरह भारतीय किसान के घर पैदा हुआ शिशु भी कर्ज में जन्म लेता है और कर्ज में ही बड़ा होता है और कर्ज में ही अपना पूरा जीवन गुजार कर मृत्यु को प्राप्त कर लेता है। लेकिन फिर भी इन श्रमिकों कृषकों का जीवन संघर्ष बहुत व्यापक है जो अपना महत्व अलग से रखता है उसके अस्तित्व का गौरव मिटाये नहीं मिटता है उसका जमीनी संघर्ष सदैव मुखरित होता रहेगा।

कवि त्रिलोचन ने किसानों की बदहाली के कारणों की पड़ताल करते हुए यह तथ्य उजागर किया है कि इनकी बदहाली के पीछे सरकार की कृषिनीति, मौसम, बैंक ऋण, पूँजीपतियों का मनमाना ब्याज आदि तो है ही साथ ही किसान खुद भी कम जिम्मेदार नहीं है किसानो के विकास के बीच जो रोड़े हैं उनमें उनकी अशिक्षा, अज्ञानता, गरीबी और यथास्थितिवादी रवैया आदि भी जिम्मेदार हैं। त्रिलोचन की प्रसिद्ध कविता है 'उस जनपद का कवि हूँ' जिसमे ंइन कारणों को उजागर किया गया है–

^^ml tuin dk dfo g tks Hkw[kk&nq[kk g@uxk g vutku g@og mnklhu fcYdqy viuk l@viuk lekt l gA@ nfu;k dk liuk l vyx ugha ekurk@ mls dN Hkh ugha irk@nfu;k dgk ls dgk igqph@vc lekt esa o fopkj jg x;s ugha g ftudk <krk@pyk tk jgk og] viuk vkl cksrkA** –त्रिलोचन

'चला जा रहा वह, अपने आँसू बोता' यह पंक्तियाँ किसानों के जीवन संघर्ष को बहुत अच्छी तरह से अभिव्यंजित करने को सामर्थ्य से भरी हुयी हैं। त्रिलोचन को 'धरती' का कवि भी कहा जाता है।

सन् 1936 ई0 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई थी जिसकी अध्यक्षता प्रेमचन्द ने की थी। प्रेमचन्द ने उस समय सभी लेखकों को सम्बोधित करते हुए कहा था कि हमें अब सुंदरता की कसौटी को बदलना चाहिए। उन्होंने साहित्यकारों से श्रम, सौंदर्य और संघर्ष का साहित्य रचने को कहा। प्रेमचन्द के इन विचारों की अनुगूँज 'सर्वेश्वर दयाल सक्सेना' की कविओं में भी देखा जा सकता है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता ''भूख'' में यह स्वर स्पष्ट रूप से सुनाई देता है। श्रम में सौदर्य देखने वाले कवि ने बाज, साँप, बकरी, चीता, तोता आदि भूख से तड़पते पशुओं–पक्षियों की संघर्ष रूप मुद्राओं को प्रस्तुत करते हुए समग्र मानवता को कर्मवाद और श्रम का संदेश दिया। समाज में एक वर्ग ऐसा भी है जो दूसरों की मेहनत का फल स्वयं भोगता है वह कर्म नहीं करता है, किसानों के श्रम का फल भी किसान स्वयं नहीं खा पाते उसका उपभोग महाजन और पूंजीपति ही करते हैं।

किसान जीवन के संघर्ष को कवियों ने पशु–पक्षियों के संघर्ष से अभिव्यक्त किया और वातावरण के माध्यम से व्यंजित किया है तो साथ ही फसलों की संवेदना के माध्यम से भी उस मार्मिकता को अभिव्यक्त किया गया है। जिस तरह माखनलाल चतुर्वेदी ने प्रसिद्ध कविता 'पुण्प की अभिलाषा लिखी और जिसमें फूल की अभिलाषा को अभिव्यक्त किया गया उसी तरह कवि कैलाश बाजपेयी की 'गेहूँ' कविता में 'गेहूँ' किसानों को सम्बोधित करता हुआ अपनी बात कहता है :–

vkt esjs tUenkrk@eq gjk xg@n/k Hkjk@esjh ;g fourh g@tc esa id tkÅ@ vkj cu jkVh@ ;g esjh dk;k@esa fdlh 'kjhch@v?kk;s v¸;k'k dh @vkjr es u tkÅ@ fdlh QVgky Fkkd@iV dh@ tyrh HkVVh es@Lokgk gkrk gvk@rfLr dh@/ku xuxukÅ@ogh ek{k lgh@ek{k gkxk@ esjs lugjs fodkl dkA – कैलाशबाजपेयी

समकालीन कविता में किसानों के दुःख दर्द को समझने वाले कवियों में निलय उपाध्याय का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। निलय उपाध्याय के बारे में नंद किशोर नवल ने ठीक लिखा है कि ''निलय अपने ठाट में पूरे किसान कवि हैं, जो किसानी सरलता और तीक्षणता दोनों से स्वभाविक रूप से युक्त है।''

'मकई के खेत में : कुछ चित्र' नामक कविता में निलय जी ने मकई का मानवीकरण करते हुए लोकसंस्कृति का सुंदर चित्र खींचा है जो किसान संस्कृति का सुंदर अभिव्यंजना करती है– ^edbZ dk [ksr e@lqjt@fdlku dh ihB ij >qd x;k g@l/kq gkFkks@[kqih dh /kkj ryk'krh g@edbZ dh [kjkd [kkrh@?kkl@iqM+ ckgq Qlykdj@jkd yrs g /kqi@vkj gok gj ckj mUgs@nsj /kdsy nsrh gSA* – निलय उपाध्याय

निश्चित रूप से हमारे समय में किसानों के सामने जो समस्यायें हैं उनका कोई अंत समझ में नहीं आता है। समकालीन कविता के कवियों ने किसानों की इस त्रासद स्थिति को अच्छी तरह से समझा हैं वास्तव में प्रेमचन्द जब गोदान लिखते हैं और 'होरी' जैसा का 'किसान' प्रतिनिधि नायक को प्रस्तुत करते हैं और समय की हर विडम्बना के सामने उसे संघर्ष करते हुए दिखाते हैं, यही भारतीय संस्कृति की किसानी सभ्यता की अपनी विशेषता है कि भारतीय किसान संघर्ष करता है लेकिन वह 'आत्महत्या' जैसा कुकृत्य कभी नहीं करता है लेकिन आज किसानों की आत्महत्याओं की खबरों ने हमारे सामने कई सवाल खड़े कर दिये हैं। हमें अपने विकास और व्यवस्था दोनों को पुनः मूल्यांकित करने की आवश्यकता है। आखिर वह किसान जो संघर्ष को ही जीवन समझता था आज ऐसी विषम परिस्थितियाँ क्यों बन पड़ी हैं कि वह आजादी के 70 वर्षो के बाद भी आत्महत्या करने को विवश है। इसी संबंध में कवि 'हरीशचन्द्र पाण्डेय' की कविता ''किसान और आत्महत्या'' उल्लेखनीय हैः–

^^mUgs /kekZx|: vkSu crk;k Fkk iapkuksa e@vkRe gR;k djuk okyk lh/kk udZ tkrk g@rc Hkh mUgksaus vkRegR;k dh@D;k udZ ls Hkh cnrj gks xbZ Fkh mudh [ksrh@os D;ksa djrs vkRegR;k@--------------------------------------@ok firjksa dk _.k mrkjus dk fy, @Hkk"kk&Hkkxk dk ik;}hi uki Mkyrs g@viu gh _.kksa ds nyny es /kal x;s @ok vk:f.k ds 'kjhj dk gh eM+ cuk yrs Fk@feVVh dk@thou&n0; cpkus@Lo;a [ksr gks x;s@fdruk vklku g gR;k dk vkRegR;k dguk @vkj nqusZhr dks uhfrA –हरीशचन्द्र पाण्डेय

निश्चित रूप से कवि का यह प्रश्न उन्होंने क्यों की आत्महत्या? क्या नर्क से भी बदतर हो गयी थी/ उनकी खेती? बहुत ही विडम्बनात्मक है। निश्चित रूप से यह किसान थे जो अपने ही ऋणों के दलदल में जो फंसे तो उबर न पाये। लेकिन ये संघर्षशील योद्धा था पहाड़ तोड़कर जीवन रस खींच लेने वाले लड़ाके थे, इन किसानों की आत्महत्या क्या वास्तव में आत्महत्या है अथवा व्यवस्था द्वारा की गई सामूहिक हत्या है? यह विचारणीय है, कवि के ही शब्दों में – ''कितना आसान है हत्या को आत्महत्या कहना और दुर्नीत को नीति।''

lUnHkZ %

1. मजदूर बिगुल, मासिक समाचार पत्र, पूर्णांक 59, वर्ष 7, अंक4, जून 2017
2. सब लोग : मासिक पत्रिका, अप्रैल 2016
3. गोदान : प्रेमचन्द
4. मैथलीशरण गुप्तः कविता कोश
5. नागार्जुन : कविता कोश
6. केदारनाथ अग्रवाल की प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रका0
7. त्रिलोचन की प्रतिनिधि कविताएं
8. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताएं
9. गेहूँ, कैलाश बाजपेयी, 101 पर्यावरण परिस्थिकी कविताए, लोकभारती प्रकाशन
10. कसौटी; निलय उपाध्याय
11. हरीशचन्द्र पाण्डेय की चुनिंदा कविताएं, सहित्य भंडार

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 171-173

lqjsUnz oekZ ds ,sfrgkfld ukVd ,oa vk/kqfud laosnuk o leL;k,¡

MkW0 vkHkk xqIrk*

''साहित्य के सभी रूपों की यह अनिवार्य विशेषता होती है कि वह अपने देशकाल परिवेश को सच्चे रूप में चित्रित करे।'' .... डॉ0 सिद्व कुमार

सुरेन्द्र वर्मा अपने स्पना –विधान दोनों पक्षों में मूलतः समकालीन संदर्भों से जुड़े हुये साहित्यकार हैं। इन्होंने अपने नाटकों में जिस एकाग्रता और गहराई से समकालीन अनुभवों को व्यक्त किया है, वह हिन्दी नाटक के लिये सर्वथा अपरिचित है। उन्होंने समकालीन परिवेश व संदर्भ या इतिहास को अपने नाटकों का आधार बनाया है। यहॉ इतिहास को माध्यम बनाने से तात्पर्य उसको दोहराना नहीं बल्कि उसके भीतर आधुनिक संवेदना व समकालीन जीवन के सार्थक पहलुओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है। सुरेन्द्र वर्मा जैसा सजग व प्रबुद्व रचनाकार प्राचीनता के मोह से ग्रस्त नहीं हो सकता बल्कि प्राचीनता को अपने समय के ज्वलंत प्रश्नों की व्याख्या के लिये स्वीकार करता है। ''साहित्य इतिहास के समय से बंधता नहीं है, समय में इतिहास का विस्तार करता है युग को युग से अलग नहीं करता कई–कई युगों को एक साथ जोड़ता है।''[1] यहॉ वर्मा जी के एतिहासिक नाटकों को समसामयिक जीवन से संबंध का स्पष्टीकरण करना समीचीन होगा।

वर्मा जी का प्रथम नाट्य संग्रह 'तीन नाटक' नाम से सन् 1972 में राधाकृष्ण प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुआ जिसमें 'सेतुबंध', 'नायक खलनायक विदूषक' व 'द्रौपदी' के तीन लघु–नाटक संग्रहीत है 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक' सन् 1975 में राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली से ही प्रकाशित हुआ और 'आठवॉ सर्ग' सन् 1976 में इसके बाद 'छोटे सैयद बड़े सैयद' जो पहले 'हसन अली हुसैन अली' के नाम से पहले चर्चित रहा। इसका प्रकाशन नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली से सन् 1982 में हुआ। इसकी अगली कड़ी में एकांकी नाटक की तरह प्रतीत होता हुआ नाटक 'एक दूनी एक' सन 1986 में व 'शकुन्तला की ॲगूठी' सन् 1990 में प्रकाशित नाटक है। इन सभी नाटकों में से

'सेतुबंध', 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक', 'छोटे सैयद बड़े सैयद', 'एक दूनी एक', समकालीन दृश्यबंध के नाटक हैं।

'सेतुबंध' नाटक में प्रभावती के माध्यम से आज की पीढ़ी की विवाह संबधी मान्यता की ओर इंगित किया है। प्राचीन समय में माता–पिता के इच्छा से संतान विवाह कर लेती थी, परन्तु आज के समय में व्यक्ति अपनी इच्छा से जीवन साथी का चुनाव करना चाहता है क्योंकि उससे उसका जीवन प्रभावित होता है। साठोत्तरी नाटकों में यह प्राचीन वैवाहिक मान्यताओं का विरोध साफ–साफ दिखाई देता है। ''स्त्री अपनी इच्छा के प्रतिकूल विवाह नहीं करना चाहती क्योंकि वह अपना भला बुरा स्वयं समझती है। तो ये भी नहीं चाहती कि त्याग की आड़ में उसकी बलि दे दी जाये।''[2] ठीक यही स्थिति आज की बदलती पीढ़ी की भी है। '' इस मनोवैज्ञानिक नाटक में वर्मा जी ने नारी जीवन की विवशता, परवशता दैन्य और नारी मनोविज्ञान का अच्छा उद्घाटन किया है।''[3] इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता। ''पिता की महत्त्वाकांक्षाओं या हठवादिता पर आज भी न जाने कितनी प्रभावतियों की कोमल सुकुमार और मधुर अमूर्त

*अतिथि विद्वान (हिन्दी), शासकीय महाविद्यालय रामपुर बाघेलान, जिला–सतना (म0प्र0)

भावनाओं की बलि चढ़ा दी जाती है और न जाने कितनी कुमारिकाएँ अपने गले में फांसी का फंदा लटका लेती हैं।''[4]

इसके पश्चात् लेखक ने प्रवरसेन के माध्यम से आज के सजग बुद्विसम्पन्न अस्तित्ववादी मानव की छटपटाहट, पीड़ा व उलझन के प्रश्नों की अभिव्यक्ति दी है और व्यक्तिमन की यही छटपटाहट इस नाटक का विशेष पहलू है।

'नायक खलनायक विदूषक' पात्रों व संवादों के माध्यम से समसामयिक जीवन के कटुयथार्थ को अभिव्यक्त करता है, जिसमें देश के प्रतिभाशाली व्यक्तियों की प्रतिभा का सत्ताधारी वर्ग के समक्ष विलय हो जाता है उनकी इच्छाओं और प्रतिभाओं को सत्ताधारी शासकों के द्वारा कुचल दिया जाता है और वे जीवन को अपना नियामक नहीं बल्कि मजबूरी वश उन्हें स्वयं परिस्थितियों का नियामक बनना पड़ता है।

आलोच्य नाटक में कपिंजल (पात्र) के माध्यम से आज के युवा प्रतिभाशाली व्यक्ति की ओर इंगित किया गया है साथ ही उसका अपनी निर्धारित भूमिका के प्रति विद्रोह, आधुनिक युवा पीढ़ी की विद्रोही प्रवृत्ति उजागर करती है। कुमारभट्ट जीवन का भुक्तभोगी है उसने जीवन को जाना व समझा है कुमारभट्ट के संवादों द्वारा आज के सत्ताधारी वर्ग प्रधान समय में जीवन के कटु सत्य पर पड़े झूठ के आवरण को निपटता से हटाया गया है। वह पराजय बोध को स्वीकार करता हुआ कहता है कि ''जीवन हमारी इच्छानुसार नहीं चलता वह अपने इंगितों पर नचाता है हम जिस दिशा की ओर जाना चाहते हैं परिस्थितियॉ ठीक विपरीत दिशा में ढकेल देती है।''[5]

उक्त पात्र के माध्यम से नाटककार ने स्वतंत्र्योत्तर भारत के बौद्विक वर्ग, प्रतिभाशाली व्यक्तियों, साहित्यकारों, कलाकारों की दयनीय स्थिति को व्यक्त किया है जो न नौकरी पा सकते हैं और न ही मनचाहा जीवन जी सकते हैं। और कपिंजल के माध्यम से भारत के औसत प्रतिभाशाली व्यक्ति की मर्मव्यथा को व्यक्त किया है, जो अनचाहा, एक रस, नकली जीवन जीता है और दूसरों को प्रसन्न करते–करते स्वयं विदूषक जैसा हास्यास्पद बन जाता है। इस प्रकार भारत के आम आदमी को अपने ही जीवन के स्वरूप को निर्धारित करने का अधिकार नहीं रहता। अनचाहे जीवन को निरंतर ढोते रहना कितना कष्टप्रद होता है, नाटक में इसी को अभिव्यक्ति दी गई है।

वर्मा जी का तीसरा ऐतिहासिक नाटक 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक' में जिन समस्याओं व संवेदनाओं को उजागर किया है वे निश्चय ही मिथक के नए संदर्भों में समसामयिक व सार्वकालिक व्याख्या प्रस्तुत करती है। ''सारी संवेदनाएँ नितांत आधुनिक हैं वे जीवन के बारे में नए सिरे से सोचने के लिये मजबूर करती है। उनकी स्थिति चयन की ऐसी विशिष्ट भंगिमा है कि नाटककार को ब्रेख्त की तरह अपनी तरफ से न कहकर प्रेक्षक को सोचवाना नहीं पड़ता, प्रेक्षक स्वयं स्थिति देखकर पुनर्विचार के लिये बाध्य हो जाता है।''[6] इसमें स्त्री और पुरुष चेतना की सूक्ष्मता संवेदनाओं को कई स्तरों पर या आधुनिक धरातल पर इस उद्घाटित किया गया कि कैसे पति–पत्नि की इच्छा के विरूद्व परिस्थितियॉ परपुरुष को पति और पत्नी को पर पुरुष की विडम्बनापूर्ण परिणति तक ले जा सकती है। नपुंसक व्यक्ति के साथ बंधी नारी की विवशता समाज की जिस कुत्सित प्रथा की ओर संकेत करती है उस पर साहित्यकार ने शीलवती के कथन के माध्यम से प्रहार करने का प्रयास किया है ''नारीत्व की सार्थकता मातृत्व में नहीं का यह कथन है कि केवल पुरुष संयोग के सुख में है मातृत्व केवल एक गौण उत्पादन है, शैया पर नारी केवल भोग्या है, मातृत्व की आकांक्षिणी नहीं।''[7] नाटककार ने यहॉ कामभाव को धर्म से न जोड़कर आधुनिक भावबोधों को भी व्यक्त किया है।

वर्मा जी का चतुर्थ ऐतिहासिक नाटक 'आठवॉ सर्ग' में नाटककार ने कालिदास युगीन परिवेश के माध्यम से आधुनिक संदर्भों को व्यक्त करने की कोशिश की है। इस नाटक का परिवेश मोहन राकेश के नाटक 'लहरों के राजहंस' के परिवेश से मिलता–जुलता है। 'आठवॉ सर्ग' नाटक का प्रारंभ कालिदास की रचना 'आठवॉ सर्ग' के लिए मदनोत्सव पर सम्मान समारोह आयोजित किये जाने की सूचना से होता लेकिन काव्यपाठ के दौरान महादेव–पार्वती की विलास क्रीड़ाओं के वर्णन के साथ ही यह सम्मान समारोह

धर्म गुरू द्वारा कालिदास के अपमानित होने में परिणत हो जाता है इस पर कालिदास के निजी वैवाहिक जीवन की अनुभूति व अश्लीलता का आरोप लगा दिया जाता है।

इसमें नाटककार ने कालिदास के माध्यम से लेखक और शासन के आपसी संबंधों का उद्घाटन समकालीन दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। न्याय समिति का गठन, काव्य पर विचार करने के लिए ऐसे ऐसे सदस्यों का रखा जाना जिनका काव्य से नजदीक का भी संबंध नहीं है। यह स्थिति व्यंग्यपूर्ण होते हुए भी आज रचनाकारों की आपसी ईर्ष्या और कूटनीतिक चाल की ओर संकेत करती है। इसके अलावा चन्द्रगुप्त का यह कथन कि ''शायद तुम नहीं जानते कि तुम्हारे और मंजरी के ब्याह से ब्राम्हण और क्षत्रिय दोनों ही में असंतोष व्याप्त है और सेना के एक बड़े भाग में इसका बुरा प्रभाव पड़ा है।''[8] के माध्यम से आधुनिक समय में होने वाले अंतर्जातीय विवाह से समाज में व्याप्त असंतोष की ओर इंगित करता है। 'छोटे सैयद बड़े सैयद' जैसे विशाल फलक वाले ऐतिहासिक नाटकों में अनन्तर आने वाली घटनाओं एवं पात्रों की चरित्रगत विशेषताएँ आज भी उसी रूप में विद्यमान हैं बस केवल समय और व्यक्तियों का अंतर आ गया है नाटककार ने नाटक को आधुनिक संदर्भों में व्यक्त करने के लिये इतिहास को आधार बनाया है निर्देशक ब.ब. कारन्त के अनुसार – ''यह किसी सयम विशेष का ऐतिहासिक चित्रण मात्र ही नहीं है बल्कि इतिहास का आधुनिक चेतना के धरातल पर मूल्यांकन करने के साथ– साथ समसामयिक यथार्थ का ऐतिहासिक स्थितियों और पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत करने का एक सशक्त प्रयास है।''9 इसमें उत्तर मुगलकालीन परिवेश की व्यवस्था के अनेक छोटे–छोटे दृश्य हैं जो जनता की विवशता, यंत्रणाओं और सत्ता के दमन, शोषण, छल षड़यंत्र को विकृत मनः स्थितियों की क्रूरता व निर्ममता को और हिंसा–प्रतिहिंसा, स्वार्थपरायणता, घृणा व साम्प्रदायिकता से उत्पन्न विरूपता को सुरेन्द्र वर्मा ने इस ढ़ंग से प्रस्तुत किया है कि आज की राजनीति और समकालीन संदर्भ एवं समूची विसंगति और विडम्बना उजागर हो जाती है। राजनीति के हस्तक्षेप से उभरने वाले अंधेपन नौकरशाही बेकारी, गरीबी, रिश्वतखोरी, भृष्टाचार व अनैतिकता आदि को संकेतों द्वारा उभारने का प्रयत्न किया गया है।

इनका अंतिम नाटक 'कैद–ए–हयात' में गालिब के माध्यम से यह दिखाने की कोशिश की है कि यह किसी भी युग के युग–पुरूष या रचनाकार के जीवन का सत्य है। जो किसी भी रचनाक्रम परिपाटी तोड़ने वाले रचनाकार को झेलने पड़ते हैं, अपने सहकर्मियों के समाज के और स्वयं अपने बीच।

परवेज के माध्यम से नाटककार ने आज के ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति को इंगित किया है जिसमें कुछ कर डालने की ललक है। परन्तु उसका जीवन इतना व्यस्त हो जाता है कि उसे अपनी प्रतिभा को निखारने एवं चमकने का अवसर ही प्राप्त नहीं हो पाता।

वस्तुतः स्पष्ट हो जाता है कि सुरेन्द्र वर्मा के सभी ऐतिहासिक नाटकों में वे इतिहास के मोह से घिरे हुये नहीं बल्कि अपने–अपने विभिन्न रूपों में आधुनिक समय व समाज की अलग–अलग संवेदनाओं व समस्याओं को ही उजागर करते हैं।

lUnHkZ %

1. समसामयिक हिन्दी नाटक की संघर्ष चेतना – गिरीश रस्तोगी। पृ0 87
2. स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : सामाजिक क्षेत्र और व्यक्ति चेतना। जय श्री शुक्ला पृ0 80
3. समसामयिक हिन्दी नाटकः बहुआयामी व्यक्तित्व – सुन्दरलाल कथूरिया पृ0 77
4. समकालीन हिन्दी नाटक : सुन्दरलाल कथूरिया – पृ0 94
5. स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी नाटकः मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में– डॉ0 रीता कुमार पृ0 101
6. हिन्दी नाटक में आधुनिक प्रवृत्तियॉ – दमयन्ती श्रीवास्तव पृ0 92
7. सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक – सुरेन्द्र वर्मा पृ0 29
8. आठवॉ सर्ग – सुरेन्द्र वर्मा, पृ0 57
9. छोटे सैयद–बड़े सैयद – सुरेन्द्र वर्मा पृ0 7

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 174-176

^^n/kukFk flg d dFkk& lkfgR; e e/;ox dh Nfo;k**

vuqt dqekj ;kno*

दूधनाथ सिंह आधुनिक हिन्दी साहित्य में छठें दशक से लेकर अब तक एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में प्रतिष्ठित रहे हैं। इन्होंने एक उच्चकोटि के कहानीकार उपन्यासकार, संस्मरणकार और कवि के रूप में माँ सरस्वती के भण्डार में अपनी कालयजी कृतियों से विशेष श्रीवृद्धि की है। अब तक इनके मूल पांच कहानी–संग्रह तो बहुचर्चित हुए ही हैं, साथ ही दो उपन्यास 'निष्कासन' और 'आखिरी कलाम' भी बहुत लोकप्रिय हुए हैं।

किसी लेखक अथवा साहित्यकार के रचना कर्म को उसके व्यक्तिगत जीवन तथा अनुभवों से पृथक् करके नहीं परखा जा सकता है, क्योंकि रचनाकार के भाव एवं विचार उसके जीवन और उसके अनुभव से फूट कर निकलते है। रचनाकार के साहित्यिक सृजन को समझने के लिए वास्तविक जीवन की समझ होना जरूरी है। साहित्यकार के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब उसकी रचनाधार्मिता में दिखाई देता है। रचनाकार को जो कुछ दिखायी देता है, महसूस करता है, रचना की पृष्ठभूमि उसी से निर्मित होती है और वाणी उसे शब्दों द्वारा साहित्य में बदल देती है। कथाकार दूध नाथ सिंह की रचना–प्रक्रिया भी उनके अनुभवों का सकारात्मक रूप ही प्रदर्शित करती है। उनकी रचनाधार्मिता, चिन्तन की मौलिकता, दर्शन की गंभीरता, भारतीय सभ्यता और संस्कृति के गुरु–गम्भीर ज्ञान से इनकी आसक्ति और मोह–भावना से इनका लेखकीय व्यक्तित्व पूरी तरह से ओतप्रोत रहा है, इसमें दो मत नहीं हो सकते हैं।

दूधनाथ सिंह की कहानी–संसार में असफल प्रेम, विशेषतः दाम्पत्य प्रेम, मध्ययुगीन सामन्ती समाज की हिंसक मनोवृत्तियों से मुक्ति और व्यवस्था की विसंगतियों के विरूद्ध आक्रोश और घृणा के स्वर प्रबल है। इनके अब तक कुल पाँच कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इनका पहला कहानी संग्रह 'सपाट चेहरे वाला आदमी' (इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, द्वितीय संस्करण सन् 1990) प्रकाशित हुआ, इस संग्रह में कुल आठ कहानियाँ, रीछ दुःस्वप्न, सब ठीक हो जाएगा, प्रतिशोध, आईसबर्ग, कोरस, रक्तपा और सपाट चेहरे वाला आदमी संकलित हैं। डॉ0 विवेकीराय का मत है– ''इस संकलन की आठों कहानियाँ भारतीय–जीवन के आन्तरिक–के ऑस' के साक्षात्कार के घोषणा–पत्र के रूप में प्रकाशित हुई हैं। वास्तव में विसंगतियों और अन्तर्विरोधों के जिस विद्रोही स्वर को लेखक अपनी रचनाओं में अस्वीकार करता है, वे व्यापक प्रभाव में आन्तरिक से अधिक बाहरी–केऑस' के साक्षात्कार बन जाते हैं। यही कारण है कि दूधनाथ सिंह की कहानियों का मूल्यांकन विद्रोह के ही बिन्दु से आरम्भ करके ठीक–ठीक हो सकता है।''

'सुखान्त' (इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, चतुर्थ संस्करण सन् 1995) दूधनाथ सिंह जी के इस कहानी–संग्रह में संकलित कहानियाँ हैः– स्वर्गवासी, शिनाख्त उत्सव, विजेता, सुखान्त। दूधनाथ के इस कहानी संग्रह में अत्यन्त सहज और सरल भाषा–शैली में जीवन और जगत् के प्रति लेखकीय प्रतिक्रियाएँ देखने को मिलती है।

'प्रेम कथा का अन्त न कोई' (इलाहाबाद लोकभारती प्रकाशन, प्रथम, संस्करण सन् 1992) में प्रकाशित हुआ। इस कहानी संग्रह में कुल पाँच कहानियाँ हैः– वे इन्द्रधनुष, बिस्तर, मम्मी तुम उदास क्यों हो, सीखचों के भीतर, आज इतवार था। इस कहानी– संग्रह में 'कुछ बातों' शीर्षक भूमिका के दौरान दूधनाथ जी कहते हैं कि– ''ये कहानियाँ मेरे पिछले, उपर्युक्त संग्रहों से किसी भी माने में कमतर नहीं है।''

*शोधछात्र, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म0प्र0)

धर्मक्षेत्रे–कुरुक्षेत्रे (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण सन् 2001) में प्रकाशित हुई। इस कहानी संग्रह में कुल नौ कहानियाँ हैंः– (1) काशी नरेश से पूछो, रेत, दुर्गन्ध, सन्नाटा चाहिये, आखिरी छलाँग, वारिस, नपनी, वह लौटता नहीं, धर्म क्षेत्रे–कुरूक्षेत्रे। यह इनका चौथा कहानी संग्रह है।

'माई का शोकगीत' (नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन– प्रथम संस्करण, सन्– 1992) में प्रकाशित हुआ, इस संग्रह में संकलित पाँच कहानियाँ हैं– हुँकार, जार्ज मेकवान, गुप्तदान, लौटना, माई का शोकगीत। इनके इस कहानी–संग्रह में हिन्दी साहित्य की प्रगतिशील परम्परा और लोकोन्मुख भारतीय रचना–दृष्टि का सहज विस्तार हुआ है। इसके साथ–साथ इनकी 'नमो अंधकार' नामक एक लम्बी कहानी का प्रकाशन (नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रथम संस्करण सन् 1998) में हुआ।

दूधनाथ की कहानियों में कहीं–कहीं पर आर्थिक आयाम का चित्रण बड़ी सूक्ष्मता से दिखायी पड़ता है। जिसमें आज धन के लोभ के कारण ही हमारे देश के कितने ही बुद्धिमान, युवक और प्रौढ़ पुरुष अपना देश और जन्मभूमि छोड़कर विदेशों में धन कमाने के लिये जाते हैं, परन्तु उसमें नाम मात्र के लोगों को ही धन और सुख–आराम पाना नसीब हुआ करता है। इनकी कहानियाँ मध्यवर्गीय, निम्नवर्गीय और कहीं–कहीं उच्चवर्गीय परिवारों के पुरुषों की इसी अर्थलोलुपता का सूक्ष्म बखान भी करती है। पुरुष समाज द्वारा अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिये कई तरह के हथकंडे अपनाए जाते हैं। कहीं एक पति अपनी पत्नी द्वारा कमाये गये धन को हथिआता है तो कहीं एक पुत्र अपने पिता के धन के लिये कानूनी लड़ाई तक लड़ने को तैयार रहता है। साथ ही साथ इनकी कहानियों में वेश्यावृत्ति, भ्रष्टाचार, आर्थिक शोषण जैसी अनेक समस्याएँ उनकी कहानियों के मूल आधार बिन्दु है। इस प्रकार अर्थ की दृष्टि से ये कहानियाँ देशकाल और परिस्थितियों के अनुसार संगत कहीं जा सकती हैं।

राजनीतिक आयाम के अन्तर्गत राजनीतिक भ्रष्टाचार दूषित कानून व्यवस्था और दफ्तरशाही के विरूद्ध विद्रोह इनकी कहानियों में सब कहीं व्याप्त है। अपने पात्रों के माध्यम से इसके विरूद्ध प्रबल विद्रोह करते हुये देश की वर्षों से सोई हुई जनता को जगाने का एक सफल और सशक्त प्रयत्न किया है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी दूधनाथ की कहानियाँ सफल मानी जा सकती है क्योंकि अपनी कहानियों में उन्होंने समाज के चारों ओर व्याप्त अकेलापन, ऊब, व्यर्थता–बोध से पीड़ित व्यक्ति और उसके अन्तर्द्वन्दों, नारी–मनोविज्ञान, पुरूष–वर्चस्व, आह तोष, पुरूषों की कामलोलुपता, अनैतिक यौन–सम्बन्ध, युवापीढ़ी की यौन स्वतंत्रता, जीवन की त्रासदी के साथ यौन कुंठाओं का सार्थक अभिव्यक्ति की है। भारत में स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात .... पारिवारिक विघटन के उरेहन के सिवा पति–पत्नी के परस्पर सम्बन्धों का यथार्थ निरूपण करने वाली इनकी कहानियाँ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी अत्यन्त सफल ठहरती है।

सामाजिक आयाम के अन्तर्गत इनकी कहानियाँ समाज से ही शुरू होती है और समाज ही इन सभी कहानियों के केन्द्र में है– और समाज में ही इनका अन्त होता हैं। खण्डित पारिवारिक सम्बन्ध, नारी–उत्पीड़न, नयी पीढ़ी, एवं पुरानी पीढ़ी के मध्य वैचारिक मतभेद आदि विषयों को लेकर रचित इन कहानियों के पात्र समाज में ही रहनेवाले व्यक्ति ही कहे जा सकते है। कहानीकार के रूप में दूधनाथ सिंह ने समाज की इन जानी–पहचानी सच्चाई को भी अपनी कई कहानियों में वर्ण्य विषय बनाया है।

दूधनाथ सिंह ने कहानियों में जहाँ कथ्य के धरातल पर कथनी और करनी के अन्तर पर सदैव बल दिया है, ठीक उसी प्रकार शिल्प की कलाभूमि में शब्दों की योजना और उनके अनुसार आचरण करने की आवश्यकता को अपनाने का सदुपदेश दिया है। शैलियों के अन्तर्गत उन्होंने अन्तर्कथा शैली, पूर्वदीप्ति शैली, फंतासी भाषा के दृष्टिकोण से उनकी कहानियों में अवधी, पंजाबी, पूर्वी बंगला, बनारसी, भोजपुरी भाषाओं के साथ–साथ विभिन्न भाषाओं के शब्द विश्लेषण का भी प्रयोग अपनी कहानियों में किया है। दूधनाथ के कहानियों का अध्ययन करते समय इस बात की भी ध्यान रखा गया है कि उनकी कहानियों के कथ्य का अध्ययन किया जाता है वहीं पर शिल्प, शैली को भी जहाँ आवश्यक समझा गया है अध् ययन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन का विषय बनाया गया है। बिम्ब–विधान की दृष्टिकोण से उनकी कहानियों में, शब्दगत बिम्ब, रूपगत, ध्वन्यात्मक बिम्ब के साथ–साथ प्रतीक–योजना का सुन्दर चित्रण मिलता है।

दूधनाथ सिंह की कहानियाँ आलोचकों एवं शोधार्थियों को आकर्षित करती है। एक पाठक को सामाजिक यथार्थ से रूबरू कराते हुये जहां ये संवेदनाओं को उभारती है, वहीं एक शोधार्थी को कहानी में वर्णित सामाजिक समस्याओं के तह में जाने को मजबूर भी करती है। उनकी कहानियों की यह समकालीनता ही है, जो हमें दिन–प्रति दिन की घटनाओं जैसी ही लगती है। अतः शस्त्रीयता व व्यापक बौद्धिकता से दूर इनकी सहज कहानियाँ एवं उनका कथ्य शोध के लिये न सिर्फ, सरल है, आकर्षक है बल्कि प्रासंगिक भी है।

lUnHkZ %

1. डॉ0 अमरनाथ–हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2002
2. डॉ0 नगेन्द्र व हरदयाल– हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 2007
3. डॉ0 रामचन्द्र तिवारी– हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, अष्टम संस्करण, 2012
4. बच्चन सिंह–आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009।
5. मधुरेश–हिन्दी कहानी का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008
6. रामस्वरूप चतुर्वेदी–हिन्दी साहित्य और संवेदन का विकास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 177-181

/ke dh ykddY;k.kijd vk/kkj Hkfe % ck) /ke d lnHk e

Mk- edk'k dekj flg*

ए.एन. व्हाइटहेड का कथन है कि ''धर्म विश्वास की वह शक्ति है जो आन्तरिक भागों को स्वच्छ करता है। इसी कारण सच्चाई, बेधक सच्चाई ही प्राथमिक धार्मिक सद्गुण है। धर्म मनुष्य के अन्तर्जीवन की कला और उत्पत्ति है।''[1] यह आत्मविजय की संकल्पना से शान्ति तक पहुँचने का मार्ग है। पाप करने एवं दुःख भोगने के जीवन की अपेक्षा एक उच्चतर जीवन भी है। किसी मनुष्य की अच्छाई की मात्रा का परीक्षण इस बात से होता है कि वह किस सीमा तक अपनी प्राकृतिक दुर्बलताओं पर विजय पाने में सक्षम हुआ है। धर्म जीवन से बाहर ले जाने का मार्ग नहीं है, अपितु जीवन की ओर ले जाने का मार्ग है। सामान्यतया सभी धर्मों के प्रेरणास्रोत एक जैसे अर्थात् प्रेम तथा करूणा होते हैं। यद्यपि हमारी संस्कृतियाँ भिन्न है, फिर भी विभिन्न धार्मिक परम्पराएँ संचार साधनों के कारण एक–दूसरे के निकट आ रहे हैं। अतः हमारे पास एक–दूसरे से सीखने के लिए पर्याप्त अवसर है; क्योंकि सभी धार्मिक प्रणालियों का एकमात्र लक्ष्य लोक कल्याण है।

बौद्ध धर्म की मूल दृष्टि भी लोक कल्याण ही है। वह मानव की समस्याओं को सुलझाकर एक संतुष्टिपरक जीवन के निर्माण का प्रयास करता है। बौद्ध धर्म का केन्द्रीय सिद्धान्त है– चार आर्य सत्य का सिद्धान्त– दुःख, दुःख का कारण, दुःख निरोध एवं दुःख निरोध मार्ग। दुःख एक रोग की भाँति है, जो फल है। जिन बाहरी और भीतरी परिस्थितियों में दुःख पैदा होता है, वे उसका श्रोत अथवा कारण है। रोग रहित होना दुःख निरोध के समान है। रोग रहित होने हेतु उचित मार्ग का पालन आवश्यक है। यह विजय की तरह है, जो इस रोग का निवारण करता है। यह उल्लेखनीय है कि सुख–दुःख अपने कर्मों से उत्पन्न होते है। यदि हम अच्छा कर्म करेंगे तो परिणाम अच्छा होगा और यदि हम बुरा करेंगे तो परिणाम बुरा होगा। मनुष्य क्षण–प्रतिक्षण कर्म को अर्जित करता है। जब कोई सुप्रेरणा से बोलता है तो उसके फलस्वरूप तुरन्त मैत्री का वातावरण उत्पन्न होता है तथा यह कार्य चित्त को भी प्रभावित करता है। इससे भविष्य में सुख का संचार होता है। दुष्प्रेरणा से किए गए कार्य वैमनस्य का वातावरण पैदा करते हैं तथा इससे भविष्य में दुःख पैदा होता है। बुद्ध ने मनुष्य को यह समझाने का प्रयत्न किया कि आप स्वयं अपने स्वामी हैं तथा सब कुछ मनुष्य के स्वयं पर ही निर्भर है। उसके पुण्य या पाप कर्मों से ही क्रमशः सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं। दैनिक जीवन में यह धारणा अत्यन्त लाभकारी है, क्योंकि यदि एक बार हम कर्मों और उनके परिणामों के सम्बन्ध जान जाएंगे तो हम सदा सजग रहेंगे और स्वयं का निरीक्षण करते रहेंगे। बौद्ध धर्म के लोककल्याणपरक दृष्टि की आधारभूमि यही है।

बुद्ध ने सदैव प्रज्ञा और करुणा के संतुलन पर बल दिया है। अच्छी कल्पनाएँ तथा निर्मल चित्त को सदैव मिलाकर उपयोग करना चाहिए। मन और चित्त के समरसता से कार्य करने पर एक शान्तिपूर्ण और मैत्रीपूर्ण मानव समाज का निर्माण हो सकेगा। लोक कल्याण की भावना बौद्ध धर्म की मूल प्रवृत्ति है। दूसरे के सुख और परकल्याण के लिए एक विशिष्ट संकल्प की आवश्यकता होती है। इस संकल्प के विकास में करुणा की भावना होना अत्यन्त आवश्यक है। करूणा का भाव होने पर ही दूसरों के दुःख की चिन्ता तथा उस दिशा में कुछ कर पाने का लगन उत्पन्न होगा। बौद्ध धर्म में इस भाव के विकास हेतु अनेक संकल्पनाओं के अभ्यास पर बल दिया गया है। इनमें दो संकल्पनाओं का विशेष योगदान है– पारमिता अभ्यास और ब्रह्मविहार की भावना।

*असिस्टेन्ट प्रोफेसर, प्रा0भा0इति0सं0 एवं पुरातत्त्व विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, वाराणसी

पारमिताएँ पूर्णता की सूचक है। बोधिसत्व इनका अभ्यास कर बुद्धत्व को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है।[2] दूसरे शब्दों में पारमिता बुद्धपद की प्राप्ति का मार्ग है। यही उसकी आध्यात्मिक साधना है। इसकी संख्या दस और छ मिलती है। लेकिन छ पारमिताओं के अभ्यास को ज्यादा महत्त्व प्राप्त है। दानपारमिता प्रथम पारमिता है। सभी प्राणियों के लिए आत्मोसर्ग अर्थात अपना सर्वस्व दान ही दानपारमिता है। दान पारमिता का अभ्यास करते हुए बोधिसत्व के पास जो कुछ होता है, वह उसे देने के लिए तत्पर होता है। दान पारमिता का तात्पर्य उस प्रकार के दान से नहीं है, जिसमें लोग अपनी आय का एक अल्पांश देकर दानकर्ता होने का अनुभव करते हैं। बल्कि इसमें सभी प्राणियों के लिए फलसहित सर्वस्व त्याग करने वाले चित्त से दानपारमिता की पूर्णता बतायी गई है।[3] शीलपारमिता द्वितीय पारमिता है। शील बौद्ध साधना का आधार है। मद्य–मांस आदि से विरति, असत्य का त्याग, चोरी का त्याग, सभी प्राणियों के कल्याण में संलग्न, धर्म द्वारा से निश्चित मार्ग का अनुसरण ही शीलपारमिता कहलाता है। इसका पालन करते हुए बोधिसत्व काय और वचन से पूर्ण संयम रखता है।

क्षान्ति पारमिता तृतीय पारमिता है। चित्त अत्यन्त चंचल है। इसके नियंत्रण में अनेक बाधाएँ आती हैं और वह अपने निर्धारित मार्ग से हटने लगता है। साधक को त्याग और शील की रक्षा के लिए ऐसी शक्ति का अभ्यास करना चाहिए जो इन बाधाओं को दूर कर सके। क्रोध, लोभ, मोह, प्रतिग्रह, द्वेष आदि भाव चित्त को घेर कर उसे शुद्ध भावों की ओर अग्रसर नहीं होने देते। इनको दूर कर करने हेतु सहन शक्ति का विकास अत्यन्त आवश्यक है। इसी अभ्यास का नाम क्षान्ति है। क्षान्ति को क्रोध और द्वेष का प्रतिपक्षी माना गया है। शान्तिदेव का कथन है कि द्वेष के समान कोई पाप नहीं है और क्षान्ति के समान कोई तपस्या नहीं है।[4] बोधिसत्व क्षान्तिपारमिता का अभ्यास करते हुए दूसरे के अपराधों को क्षमा कर देता है। किसी भी अवस्था में मन में विकार नहीं आने देता, सभी बातों को सहन कर लेता है और उदिग्न नहीं होता। धम्मपद में बुद्ध ने चित्त की शान्ति हेतु सम्यक् रूपेण एकाग्रचित होने की आवश्यकता पर बल दिया है।[5]

वीर्यपारमिता चतुर्थ पारमिता है। बोधिसत्त्व उत्साह से युक्त होने के लिए जिस पारमिता का अभ्यास करता है, वह वीर्यपारमिता कहलाता है। मानव बिना उत्साह के कोई कार्य सम्पन्न नहीं कर सकता। इस पारमिता का अभ्यास करते हुए बोधिसत्त्व बहुश्रुत होने का प्रयास करता है। और सदा उसके लिए प्रयत्नशील भी रहता है। धम्मपद में उल्लेख है कि अधूरे और शिथिल तरीके से किया गया कार्य अशुद्ध व्रत और अपवित्र ब्रह्मचर्य का फल महान नहीं हो सकता।[6] आचार्य शान्तिदेव ने दानादि के प्रति किये जाने वाले उद्यम को ही इस पारमिता का प्रयास माना है।[7] ध्यान पारमिता पंचम पारमिता है। ध्यान का तात्पर्य विचार करना, कल्पना करना, गम्भीर विचार करना आदि किया जाता है। मन को शान्त करने के लिए बोधिसत्त्व ध्यान पारमिता का अभ्यास करता है। इसके लिए एकान्त की साधना उत्तम मानी जाती है। 'बोधिचर्यावतार' में कहा गया है कि मनुष्य ध्यान अथवा समाधि में लीन होकर क्लेशों का विनाश करता है।[8] प्रज्ञापारमिता छठी पारमिता है। षट्पारमिताओं में इसे बहुत महत्त्व दिया गया है। प्रज्ञा का तात्पर्य उस ज्ञान से है, जिससे संसार के वस्तुओं के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान तथा निर्वाण का साक्षात्कार होता है। अर्थात् प्रज्ञा से सभी प्रकार के अज्ञान का अन्त होता है। तथा मनुष्य को यह प्रतीति हो जाती है कि संसार मूल रूप से दुःख युक्त ही है। अतः वह संसार के वास्तविक स्वरूप का अनुभव करके समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है। बोधिचर्यावतार में उल्लेख है कि परमकारूणिक भगवान तथागत ने शील, समाधि के अभ्यास को प्रज्ञा की प्राप्ति के लिए ही बताया है, इसलिए दुःख की निवृत्ति की कामना रखने वाले को चाहिए कि वह प्रज्ञा को प्राप्त करे।[9]

बौद्ध धर्म के लोककल्याणपरक दृष्टि के विकास में ब्रह्मविहार की भावना का महत्वपूर्ण स्थान है। यह चित्तशुद्धि का उत्तम साधन है। जीवों के प्रति किस प्रकार सम्यक् व्यवहार करना चाहिए, इसका निदर्शन इसमें किया गया है। ब्रह्मविहारों (मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा) की भावना रखने वाला साधक सभी प्राणियों के हित और सुख की कामना करता है।[10] इस कामना से द्वेषभाव की निवृत्ति हो जाती

है तथा उसमें समभाव उत्पन्न हो जाता है। समभाव के कारण वह पक्षपात रहित हो जाता है और निरपेक्ष भाव से दूसरों के दुःख को दूर करने की चेष्टा करता है।

ब्रह्मविहारों में प्रथम स्थान मैत्री को प्राप्त है। सभी जीवों के प्रति स्नेह और सद्भावना की प्रवर्तना मैत्री कही जाती है। मैत्री की प्रवृत्ति परहित साधना के लिए है। समस्त प्राणियों का उपकार करना; द्वेष, द्रोह एवं क्रोध की भावना का परित्याग मैत्री भावना का लक्षण है। राग मैत्री भावना के अनुकूल प्रतीत होते हुए भी इसका प्रधान और निकटतम् शत्रु है। राग के उत्पन्न होने से मैत्री भावना का संकुचन होने लगता है, इसकी परिधि छोटी होने लगती है। मैत्री और राग में एक अन्तर यह है कि मैत्री में स्मृति निरन्तर बनी रहती है, फलतः विवेक भी जाग्रत बना रहता है, जबकि राग में विवेक एवं स्मृति का लोप हो जाता है। मेत्ता की अवधारणा का विकास उस समय हुआ, जब बुद्ध ने मेत्ता सुत्त का उपदेश पाँच सौ भिक्षुओं को दिया। इस कथा के अनुसार एक बार बुद्ध जेतवन विहार में थे तथा वर्षावास निकट आ गया। उन्होंने अपने साथ वाले पाँच सौ भिक्षुओं को बाहर उचित स्थान पर वर्षावास और ध्यान करने को कहा। वे हिमालय की तलहटी के एक गाँव में चले गए। वहाँ के निवासियों ने उनका स्वागत किया। भिक्षुओं ने एक बगीचे में रहने का निश्चय किया। वही पर कुछ देव भी रहते थे। प्रारम्भ में सब ठीक रहा; किन्तु जब देवों को पता चला कि ये पूरे वर्षा ऋतु यहाँ रहेंगे तो उन्होंने भिक्षुओं को परेशान करना आरम्भ कर दिया। अन्त में भिक्षु परेशान होकर बुद्ध के पास मार्गदर्शन के लिए गए। इस अवसर पर बुद्ध ने मेत्ता सुत्त का उपदेश दिया और निरन्तर उसका पालन करने को कहा। भिक्षुओं ने बुद्ध की आज्ञा मानते हुए पुनः उस गाँव में गए और बुद्ध द्वारा बताए गए मेत्ता सुत्त के अनुसार अभ्यास आरम्भ किया। इसके प्रभाव से देवों का मन शुद्ध हो गया तथा वे भिक्षुओं के रक्षक बन गए। अतः भिक्षुओं ने शान्ति से ध्यान का अभ्यास करते हुए वर्षावास किया तथा अर्हत् बन गए। बुद्ध द्वारा अपने शिष्यों को सिखाए गए प्रमुख नियम निम्नलिखित हैं–

1. शुभ कार्य के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति को आज्ञाकारी, विनीत और कुशल होना चाहिए।
2. उसे शान्त, सहायक, न्यून आवश्यकताओं के आधार पर जीविकानिर्वाह, इन्द्रियों पर नियंत्रण रखने वाला होना चाहिए।
3. उसे तनिक भी गलत कार्य नहीं करने चाहिए। उसका हृदय करूणा से पूर्ण होना चाहिए तथा सभी जीवों के हित के लिए कार्य करना चाहिए।
4. सभी प्राणियों, चाहे कमजोर हो या शक्तिशाली हो; बड़े हो या छोटे हो, नजदीक के हों या दूर के हों, के प्रति प्रसन्नचित्त रहना चाहिए।
5. किसी को धोखा नहीं देना चाहिए न ही अपना स्वरूप छिपाना चाहिए। क्रोध अथवा गलत भावना से किसी को नुकसान पहुँचाने का प्रयास नहीं करना चाहिए।
6. जिस प्रकार माँ अपने बच्चे की रक्षा के लिए स्वयं के खतरे की परवाह नहीं करती। उसी प्रकार अन्य प्राणियों के कल्याण के लिए साधक को प्रयास करना चाहिए।
7. संसार के सभी प्राणियों के प्रति बिना किसी वैर के असीम प्रेम रखना चाहिए।
8. इन्द्रिय भोग के प्रयास में गलत कार्यों को नहीं करना चाहिए।
9. जहाँ भी हो, जिस स्थिति में हो, खड़े हो, बैठे हो, जगे हो, इन प्रवृत्तियों के प्रति सचेत रहना चाहिए।[11]

मेत्ता का प्रत्यक्ष अर्थ मित्रता से है। किन्तु मित्रता शब्द से 'मेत्ता' शब्द का वास्तविक कार्य ध्वनित नहीं होता। कोई भी व्यक्ति मित्रता के आधार पर मेत्ता की अवधारणा नहीं समझ सकता। मेत्ता का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। यह केवल दो मित्रों का सम्बन्ध नहीं है, न ही किसी व्यक्ति विशेष के प्रति शुभ इच्छा है। यह किसी भी व्यक्ति का किसी के प्रति कर्म करके परिणाम में कुछ न प्राप्त करने की प्रवृत्ति से सम्बन्धित है। यह सर्वव्यापी करूणा से सम्बन्धित है और इसका सम्बन्ध केवल मानव–जाति से नही है, बल्कि सभी जीवों से है। इसका अभ्यास करने से व्यक्ति क्रोध से मुक्त हो जाता है तथा सभी प्राणियों के प्रति दयालु हो जाता है। विसुद्धिमग्ग के अनुसार मेता का मूल कार्य भ्रातृत्व को बढ़ावा देना है। यह बुरी

इच्छाओं की समाप्ति के रूप में प्रकट होता है। जब यह प्रभावी होता है तब अशुभ इच्छा समाप्त हो जाती है और जब यह अप्रभावी होता है, तब स्वार्थी मोहात्मक इच्छाएँ प्रकट होती है।[12] बुद्ध ने मेत्ता के लिए बारम्बार आग्रह किया है। उन्होंने व्यक्तियों को बिना हिचकिचाहट के अन्य के प्रति शुभ कार्य करने को कहा, क्योंकि इससे कर्त्ता को ही आनन्द प्राप्त होता है। बुद्ध के अनुसार मेत्ता के अभ्यास से व्यक्ति को निम्न लाभ होते हैं– (1) आनन्दमय निद्रा (2) आनन्दमय जाग्रण (3) बुरे स्वप्नों का अभाव (4) अग्नि, विष एवं हथियार से सुरक्षा (5) त्वरित एकाग्रता (6) शान्ति (7) शान्तिदायक मृत्य।[13] इस मेत्ता के अभ्यासकर्त्ता को अपने से आरम्भ करके सभी जीवों के प्रति बिना किसी जाति, लिंग, धर्म का ख्याल किए मेत्ता का अभ्यास करना चाहिए। उसे अपने को सम्पूर्ण संसार के साथ समन्वित कर देना चाहिए। उसमें अहं का विचार समाप्त हो जाता है। वह सभी प्रकार के विभेदों से ऊपर उठ जाता है।[14]

ब्रह्म विहार का दूसरा अंग करूणा है। बौद्ध धर्म की उत्पत्ति में इस भावना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बुद्ध ने करूणादृष्टि से वशीभूत होकर संसार के दुःखी प्राणियों को सुखी बनाने हेतु धर्म का उपदेश दिया है। पर–पीड़ा को देखकर द्रष्टा के हृदय में जो भाव उत्पन्न होता है और उसे दूर करने का जो संकल्प होता है, उसे करूणा कहते हैं। करूणा की भावना करने से साधक अथवा बोधिसत्त्व के चित्त का शुद्धिकरण हो जाता है। बुद्ध को बोधिवृक्ष के नीचे जब सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति हुई थी, उस समय उनके मन में धर्मोपदेश की प्रवृत्ति नहीं थी; किन्तु ब्रह्मा ने बुद्ध से प्रार्थना की कि लोगों के दुःख को समाप्त करने हेतु आप धर्मोपदेश करें। सदर्मपुण्डरीक सूत्र के तृतीत औपम्य परिवर्त में बुद्ध की करुणा व समदर्शिता का विशद वर्णन मिलता है। बुद्ध शारिपुत्र से कहते हैं कि ये प्राणी सुखों की प्राप्ति के लिए विविध रूप काम वासनाओं में लिप्त होकर नाना प्रकार के दुःखों का अनुभव करते हैं। वे असद्धर्मों के चक्कर में फसकर अपनी अभिष्टवस्तु की प्राप्ति के लिए एवं प्राप्त की हुई वस्तु की रक्षा के लिए अनेक प्रकार के दुःखों का अनुभव करते हैं। वे अप्रियों के संसर्ग और प्रियजनों के वियोग का दुःख अनुभव करते हैं। फिर भी किसी प्रकार मानसिक संत्रास का अनुभव नहीं करते। अतः वे न सावधान होते है, न उद्विग्न होते हैं और न वे इससे निकल भागने का मार्ग खोजते हैं। इस परिस्थिति में बुद्ध को लगता है कि वे इन जीवों पिता है। अतः इन प्राणियों की दुःख से रक्षा करने हेतु एवं बुद्धज्ञान का सुख देने हेतु बुद्ध प्रयत्न करते हैं। बुद्ध और बोधिसत्त्वों की समस्तचर्या दुःखान्वित जीवों के परित्राण के लिए होती है। वे अपने और पराए के दुःख में अन्तर नहीं करते। उनका मानना है कि जो दुःख हमें प्रिय नहीं है, वह निश्चित रूप से दूसरों के लिए प्रिय नहीं हो सकता। इस प्रकार बुद्ध और बोधिसत्त्वों का संकल्प और प्रयोग लोक कल्याणपरक होता है। वे सभी प्राणियों के सर्वदुःख समाप्ति के लिए प्रयत्नवान होते हैं। बोधिसत्व निर्वाणपद के अधिकारी होते हुए भी सर्वभूत दया से प्रेरित होकर प्राणी–जगत के उपकार के लिए अपने अधिकार का भी परित्याग करते हैं।

मुदिता ब्रह्मविहार का तीसरा अंग है।[15] मुदिता का अर्थ है हर्षयुक्त रहने अथवा होने की भावना। जो मुदिता की भावना करता है, वह दूसरों को सम्पन्न देखकर हर्षित है, उनसे ईर्ष्या–द्वेष नहीं करता। दूसरों की सम्पत्ति, पुण्य और गुणोत्कर्म को देखकर उसमें अप्रीति नहीं होती। बौद्ध धर्म का उदय भी इसी लक्ष्य को लेकर हुआ है। दूसरे प्राणियों के दुःख को समाप्त कर उसे सुखी बनाना ही बौद्ध धर्म का मूल उद्देश्य है। मुदिता की भावना की निष्पत्ति से अप्रेम का विनाश होता है। मुदिता में होने वाला प्रेम सांसारिक प्रेम से भिन्न होता है। सांसारिक प्रेम में हर्ष का जो उद्वेग होता है, उससे मुदिता का भावना का नुकसान पहुँचता है। मुदिता की भावना में होने वाला हर्ष प्रशान्त प्रवाह वाला व उद्वेग एवं क्षोभ से रहित होता है।

उपेक्षा ब्रह्मविहार का चतुर्थ अंग है।[16] इसमें समभाव की प्रधानता होती है। यह समभाव समस्त प्राणियों के प्रति रखी जाती है। इसमें प्रिय एवं अप्रिय का भेद नहीं देखा जाता। सबके प्रति उदासीन वृत्ति होती है। इसमें प्रतिकूलता और अनुकूलता दोनों ही विषयों को ग्रहण नहीं किया जाता। फलतः उपेक्षाभावना की निष्पत्ति होने से विहिंसा और अनुनय दोनों का उपशम हो जाता है। मैत्री, करूणा एवं मुदिता की भावना से अभ्यस्त योगी को ही उपेक्षा ब्रह्मविहार की भावना करनी चाहिए।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पारमिता अभ्यास एवं ब्रह्मविहार की भावना मानवचित्त के विशुद्धि के अद्‌भुत साधन है। इससे मानव के व्यक्तित्त्व के अकुशल तत्त्वों का परिष्कार होता है तथा एक निर्मल मानव का विकास होता है। वह मानव स्वयं अपने एवं संसार के अन्य व्यक्तियों के प्रति लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर कार्य करता है। इस प्रकार बौद्ध धर्म के लोक कल्याणात्मक दृष्टि से विकास के संदर्भ में पारमिता और ब्रह्मविहार की अवधारणा का केंद्रीय स्थान है।

I UnHk %

1. ए.एन.व्हाइटहेड, रिलीजन इन दि मेकिंग, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1926, पृष्ठ 15
2. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ, 1976 पृष्ठ 363 ; नरेन्द्र देव, बौद्ध धर्म दर्शन, पटना, 1956, पृष्ठ 190 ; रामशंकर त्रिपाठी, बौद्ध दर्शन प्रस्थान, सारनाथ, वाराणसी,1997, पृष्ठ 15
3. बोधिचर्यावतार, 5/10
4. बोधिचर्यावतार, 6/2
5. धम्मपद गाथा 43
6. धम्मपद गाथा 312
7. बोधिचर्यावतार, 7/2
8. उपर्युक्त, 8/4
9. बोधिचर्यावतार, 9/11
10. विशुद्धिमार्ग, प्रथम भाग, अनुदित – धर्मरक्षित, सारनाथ, वाराणसी,1956, पृष्ठ 263–283
11. सुत्तनिपात, 143.152 (मेत्ता–सुत्त), अनु. नारद महाथेर।
12. विशुद्धिमार्ग, उपर्युक्त, पृष्ठ 263–280
13. मिलिन्द प्रश्न (4.4.37) अनुदित जगदीश कश्यप (भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद्, श्रावस्ती, 1972), पृ. 242–245, जातक 540 (साम जातक)
14. नारद महाथेर, दि बुद्धा एण्ड हिज टिचिंग्स, ताइवान, 1998ए पृ. 372
15. विशुद्धिमार्ग, उपर्युक्त, पृष्ठ 282
16. उपर्युक्त, पृष्ठ 282–283

◆◆◆

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 182-186

vkfFkZd etcfj;ks dh djkg dh dgkuh % ^nksigj dk Hkkstu*

lat; flag*

'दोपहर का भोजन' अमरकान्त की ही नहीं,नई कहानी आन्दोलन की सर्वाधिक चर्चित कहानी है।1955 ई के कहानी विषेशांक में प्रकाशित यह कहानी प्रेमचन्द परम्परा की अद्वितीय रचना है जो अपने केन्द्रीय पात्र के माध्यम से दायित्वों का निर्वहन करना सिखाती है।मुझे यह कहानी सर्वाधिक प्रभावित करती है।इस कहानी में अभावग्रस्त मध्यवर्गीय परिवार की भूख और विवशता का बड़ा सशक्त और सहज चित्रण हुआ है। इनके पात्रों का सामाजिक परिवेश निम्न मध्यवर्ग का है। इस वर्ग की आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय होती है। यह वर्ग अभाव की जिन्दगी जीने के कारण भोजन, शिक्षा, आवास, आदि की व्यवस्था नहीं कर पाता है।यह कहानी निम्न मध्यवर्गीय परिवार की दुख भरे जीवन की करूण कथा को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है।यह कहानी उन तमाम लाचार,बेबस,अभावग्रस्त जीवन जीने वाले समाज का एक ऐसा बिम्ब हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है,जिन्हें दो वक्त की रोटी भी ठीक से नहीं मिल पाती। वे हमेशा अथक परिश्रम और संघर्ष करने के बावजूद अभावग्रस्तजीवन जीने को मजबूर हैं।इसमें कहानीकार ने निम्नवर्गीय जीवन की समस्याओं से संघर्ष करते और उसकी पीड़ा भोगते व्यक्ति की विवशता का मार्मिक चित्रण किया है। इस कहानी में एक निम्नवर्गीय नारी के माध्यम से विशेष मनःस्थिति का चित्रण हुआ है।

'दोपहर का भोजन' कहानी में नायिका सिद्धेश्वरी के द्वारा अभाव से भरी जिन्दगी में भाव जगाने का अद्‌भुत अंकन किया है। उसके भीतर करूणा, दुख और संवेदना को छिपाने की मर्मस्पर्शी कला है। कहानी की नायिका सिद्धेश्वरी अपने पति और बच्चों से घर की वास्तविक स्थिति को नहीं बताना चाहती। वह किसी भी कीमत पर घर के लोगों को दुखी नहीं देखना चाहती है इसीलिए वह अपने पति और बच्चों से एक दूसरे बड़ाई करती रहती है। विडम्बना यह है कि परिवार के सभी सदस्य घर की स्थिति से परिचित हैं।किन्तु एक–दूसरे के सामने सभी अन्जान बने रहते हैं।यहीं परिस्थिति,यहीं दुख,यहीं अघोषित क्षुधापूर्ति, यहीं दो रोटी नित्य खाने के लिए किया जा रहा संघर्ष और खुद भूखी रहकर अपने घर–परिवार को भोजन कराने वाली स्त्री इस कहानी की प्राण है। शुरूआत में ही कहानीकार उसके चरित्र के विषय लिखते है–"सिद्धेश्वरी ने खाना बनाने के बाद चूल्हे को बुझा दिया और दोनों घुटनों के बीच सिर रखकर शायद पैर की उंगलियाँ या जमीन पर चलते चींटे–चींटियों को देखने लगी।अचानक उसे मालूम हुआ कि बहुत देर से उसे प्यास लगी है।वह मतवाले की तरह उठी और गगरे से लोटा–भर पानी लेकर गट–गट चढ़ा गई। खाली पानी उसके कलेजे में लग गया और वह 'हाय राम'कह कर वहीं जमीन पर लेट गयी।''[1]

'दोपहर का भोजन' कहानी के केन्द्र में माँ है। वह अभाव भोगती ही नहीं,वह घर में सेतु भी बनी रहती है,वह सबको जोड़ने की कोशिश भी करती है,जो किसी भी तरह जिन्दा रहने के लिए भोजन करना चाहती है।सिद्धेश्वरी स्वयं भूखी रहकर परिवार वालों को भूखा नहीं रखना चाहती। इस कहानी में परिवार का प्रत्येक सदस्य अपना पेट भरने के लिए अनेक नायाब तरीके अपनाना चाहता है। "सिद्धेश्वरी ने खाने के लिए थाली सामने लाकर रख दी। कुल दो रोटियाँ,भर–कटोरा पनियाई दाल और चने की तली तरकारी।"[2]यहाँ भोजन की मात्रा एवं गुणवत्ता दंग कर देने वाली है।भूखा रहने पर लोटा– भर पानीलेकर गट–गट पिया जाना,अध–टूटे खटोले पर नंग–धड़ग बच्चे का सोना, लड़के द्वारा न बोले जाने पर मृत्यु होने का डर हर पल सताते रहना और लड़के के नाक के पास हाथ रख स्वास के आने जाने का पता

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

करना,परिवार के सदस्यों के गले तथा छाती की हड्डियों का दिखना,आँखों और होठों पर झुर्रियों का होना, छोटा बच्चा (प्रमोद) का रेवड़ी खाने का जिद,उम्र से पहले अधिक गम्भीर और उदास दिखाई पड़ना, मुंशी चन्द्रिका प्रसाद(पिता) के जूतों का खस–खस घसीटना और पैंतालीस की उम्र में पचपन का लगना। सिद्धेश्वरी द्वारा एक मोटी भद्दी जली रोटी का आधा भाग और एक लोटा पानी लेकर खाने को बैठती है, फिर भी वह प्रसन्न रहने के लिए नये–नये रास्ते ढूढ़ती रहती है। परिवार के अन्य सदस्य भी सिद्धेश्वरी से अपने भूख की पीड़ा छिपा कर पेट भरा रहने का एहसास कराते रहना तथा सिद्धेश्वरी द्वारा घर के सदस्यों को तीसरी रोटी खिलाने का जिद अपने आप में एक छलावा मात्र भर है।घर के सदस्य मुंशी जी पत्नी को पेट भरने का अहसास कराते हुए कहते है–''रोटी?रहने दो,पेट काफी भर चुका है, अन्न और नमकीन चीजों से तबीयत ऊब भी गई है।''[3]आज भी अभावग्रस्त परिवारों में प्रायः इस तरह के उपवास होते हैं।इन घरों में शाम की अपेक्षा दोपहर का भोजन ज्यादा जरुरी होता है। लेकिन जहाँ दोपहर के भोजन का यह हाल है कि एकाध रोटी खाकर और दो लोटा पानी पीकर उठ जाते हैं; वहाँ शाम के भोजन की क्या स्थिति होती होगी?

सिद्धेश्वरी के बच्चे शिक्षा लेने का प्रयास करते हैं लेकिन गरीबी की वजह से पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ती है।बड़ा लड़का इण्टर तक की शिक्षा ग्रहण कर एक स्थानीय समाचार पत्र में प्रूफरीडरी का काम सीखता है। मझला लड़का मोहन हाईस्कूल का प्राइवेट परीक्षा देने की तैयारी कर रहा है।प्रायः यह वर्ग माध्यमिक शिक्षा तक ही अध्ययन कर पाते हैं; लेकिन आगे की शिक्षा वह चाहकर भी प्राप्त नहीं कर पा रहा है। इस कहानी के पात्र 'जिन्दगी और जोंक' के पात्र रजुआ का ही अगला वशंज लगता है। दोनों कहानियों के पात्रों की आवश्यकता एक जैसी है–सिर्फ पेट भरना।यह तबका मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित है।समाज की जिन विद्रूप स्थितियों का चित्रण प्रेमचन्द ने किया है,उन्हीं जैसी अन्य विद्रूपताओं पर अमरकान्त ने कटाक्ष किया।

'दोपहर का भोजन' कहानी में ढहता हुआ जर्जर परिवार बार–बार मन को झकझोर देता है और सोचने पर मजबूर करता है कि यह सामाजिक असमानता कब तक ऐसी ही बनी रहेगी?इस तरह की आर्थिक विषमता किस प्रकार से एक निम्नमध्यवर्गीय परिवार के सम्मुख अजगरी मुँह खोले खड़ी है,जो परिवार के सभी सदस्य को समूचा निगल जाने को तैयार है।

'दोपहर का भोजन' कहानी मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक स्थितियों से उत्पन्न विपिन्नता को संवेदनशीलता के साथ चित्रित करती है। प्रो. रामचन्द कहते हैं कि–''भारतीय आमजन का दुःख,पीड़ा, संघर्ष, जिजीविषा और काल से होड़ लेता हुआ उसका अन्तर्मन सब कुछ अमरकान्त की संवेदना में गुंथा हुआ है। माला की एक–एक लड़ियों की तरह आम–जनता के दुःख,एक–एक दर्द उनके मन –मस्तिष्क में पिरोया हुआ है।''[4]अभावग्रस्त परिवार की यह कहानी अपने आप में पूरे परिवेश के आर्थिक सन्दर्भ को समेटे हुए है।सिद्धेश्वरी का दुख परकाष्ठा पर तब पहुँच जाता है,जब वह आधी रोटी और एक लोटा पानी को लेकर खाने को बैठती है–''उसने पहला ग्रास मुँह में रखा और तब न मालूम कहाँ से उसकी आँखों से टप–टप आँसू चूने लगे।''[5] भारतीय निम्नमध्यवर्गीय परिवार का आर्थिक ढांचा दिन–प्रतिदिन दुर्बल हो रहा है। 'दोपहर का भोजन' के संबंध में परमानन्द श्रीवास्तव लिखते हैं–''मध्यवर्गीय जीवन की आर्थिक विषमताओं तथा संघर्ष को अभिव्यक्त करने वाली अमरकांत की कहानियों में 'दोपहर का भोजन' विशेष रूप से उल्लेखनीय है । आर्थिक विवशताएँ किस प्रकार से एक मध्यवर्गीय परिवार के सम्मुख मुख खोले खड़ी है, जो परिवार के प्रत्येक सदस्य को समूचा निगल जाने को तैयार है। यह अमरकांत का अपना ढंग है कि वे सामाजिक जीवक की ट्रैजिक विडम्बनाओं को भी हल्के विनोद युक्त आघात से उद्‌घाटित करते हैं।''[6] 'दोपहर का भोजन' इन्हीं आर्थिक परिस्थितियों से जूझते परिवार की व्यथा–कथा है। वह अपनी दुर्बल आर्थिक स्थिति को छिपाने का प्रयास करती रहती है,किंतु अंत में स्वयं से पराजित हो जाने पर भी वह पूरे परिवार को झूठी सांत्वना देती है।वह अन्दर ही अन्दर घुटती और तिल–तिल मरती रहती है।इस तरह सिद्धेश्वरी दूसरों को शान्ति देकर स्वयं अशान्त रहती है।

'दोपहर का भोजन' कहानी की नायिका स्वयं की आवश्यकतओं को दमित करने वाली स्त्री है। जबकि वह चाहती तो भरपेट भोजन कर सकती थी, किन्तु उसे अपने पति और बेटों की चिन्ता पहले है; फिर स्वयं की। उसके हिस्से में एक जली रोटी आती है और उस पर भी वह आधी रोटी अपने सो रहे बेटे प्रमोद के लिए रख देती है। वह स्वयं का दुख–दर्द भले ही नही समझती लेकिन परिवार के सदस्यों, रिश्तेदारों का दुख–दर्द बखूबी समझती है। उदाहरणस्वरुप–''फूफा जी बीमार है,कोई समाचार नहीं आया।''[7] वह विपरीत परिस्थितियों में हताश–निराश नहीं होती। उसमें लोगों को प्रसन्न रखने, सकारात्मक उर्जा भरने की गजब की प्रतिभा है। वह अपने पति से बड़े लड़के राधे मोहन के विषय में कहती है– ''कह रहा था, कुछ दिनों में नौकरी लग जाएगी। हमेशा बाबूजी, बाबूजी किये रहता है। बोला–बाबूजी देवता के समान है।'' जब मुंशी जी यह सुनते हैं, तब कहते हैं–''बड़ा पागल है।'' सिद्धेश्वरी कहती है–''पागल नहीं है,बड़ा होशियार है। उस जमाने का कोई महात्मा है।''[8] कहानीकार ने सिद्धेश्वरी के माध्यम से मध्यवर्गीय स्त्री के केन्द्रीय चारित्रिक गुण 'समन्वय की भावना' तथा उनके संघर्षशील जीवन को रेखांकित किया है।जिसके अन्तर्गत ममता,स्नेह और भूख तीनों एक साथ संघर्ष करते हुए नज़र आते हैं,जो आजीवन अपने पारिवारिक एकता को बनाये रखने का प्रयास करती रहती है।

हमारे समाज में निम्नवर्गीय परिवार की स्थिति सिद्धेश्वरी के परिवार जैसी ही होती है। बच्चों के पास कपड़े के नाम पर एकाध फटा–पुराना कपड़ा, फटा–घिसा जूता–चप्पल ही नसीब में होता है। ये वर्ग अधिकतम माध्यमिक शिक्षा ही ले पाते हैं। भोजन के नाम पर एकाध रोटी तथा पीने के लिए पानी वह भी अशुद्ध, दवा के नाम पर घरेलु उपचार तथा घर के नाम पर टूटी–फूटी मड़ई या मिट्टी का घर विरासत में मिलता है। ऐसी परिस्थिति में भी वह भावनात्मक रुप से संबंधों को बिखरने नहीं दे रही है। उनकी यहीं जिजीविषा आज तक जीवित रखे हुए है।

अमरकान्त ने अधिकांश अपनी कहानियों का विषय निम्न मध्यवर्ग के परिवार को ही बनाया है। जहाँ स्त्री परिवार नामक संस्था को बड़ी मजबूती से बनाये रखने की भूमिका में दिखाई देती हैं। इस कहानी में मध्यवर्गीय स्त्री का प्रतिनिधित्व 'सिद्धेश्वरी' करती है; जहाँ क्षुधा–पूर्ति से ज्यादा चिन्ता, पारिवारिक रिश्ते के टूटने का संकट है। इस कहानी के माध्यम से अमरकान्त ने निम्न मध्यवर्गीय समाज की स्त्रियों के दुर्दशा पर प्रकाश डाला है तथा बाज़ारवादी व्यवस्था की क्रूरता में किस तरह वह परिवार को सम्हालने में पीस रही हैं; को सामने रखा है।

पूरी कहानी की केन्द्र बिन्दु एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार में स्त्रियों की अपने बच्चों के भविष्य तथा उनके स्वास्थ्य, शिक्षा और भोजन को लेकर उत्पन्न चिन्ता है। जिनके नसीब में दो वक़्त का भोजन भी बहुत सहज तरीके से उपलब्ध नहीं हो पाता।यहाँ अमरकान्त ने जिस तरीके से 'दोपहर का भोजन' का बिम्ब प्रस्तुत किया है वह वास्तव में उन तमाम निम्न मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक समस्या की तरफ संकेत करता है, जहाँ बेबसी, लाचारी और जेहालत भरे जीवन जीने के अलावा कुछ भी शेष नहीं है। जहाँ दो जून चूल्हा भी जल नहीं पाता। कवि धूमिल की प्रसिद्ध कविता 'किस्सा जनतंत्र' की इन पंक्तियों से आम आदमी की कारूणिक दशा का पता लगाया जा सकता है–''djNy@cVykgh l cfr;krh g vkj fpeVk@ro l epyrk g@pYgk dN ugh ckyrk@pipki tyrk g vkj tyrk g।''[9]

अमरकान्त ने 'दोपहर का भोजन' कहानी में परिवेश के माध्यम से मध्यवर्गीय पारिवारिक वातावरण को जीवंत कर दिया है–''सारा घर मक्खियों से भनभन कर रहा था।आँगन की अलगनी पर एक गंदी साड़ी टंगी थी, जिसमें पैबन्द लगे हुए थे।''[10] सिद्धेश्वरी का छः वर्षीय पुत्र (प्रमोद) कुपोषण के कारण सूखा रोग से ग्रस्त है। विश्व बैंक के एक सर्वे के अनुसार भारत में 47 प्रतिशत बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। मध्यवर्गीय समाज में जब शुद्ध पीने का पानी मयस्सर नहीं है तो खाने की बात बेमानी लगती है। समाज के इन्हीं समस्याओं को अमरकान्त ने अपने कहानी में सूक्ष्म संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है।

'दोपहर का भोजन' कहानी पात्रों के बीच संवादहीनता को प्रदर्शित करती है, जो आपस में कभी मिल ही नहीं पाते। अनवरत पात्रों के बीच संवादहीनता कुण्डली मारे बैठा रहता है, जो वातावरण को बोझिल करती है। हर पात्र अपने अकर्मण्यता और कमजोरी को छिपाने के लिए संवाद करने से बचता

है। लेकिन इस कम्युनिकेशन गैप को सिद्धेश्वरी हमेशा झूठ बोलकर ही भरने का काम करती है। वह अपने बेटों और पति की मानसिक स्थिति को समझती है और हर संभव प्रयासकरती है कि उनका तनाव घटे। वह बड़े भाई के सामने छोटे भाई की बड़ाई तथा पिता के सामने बेटों की झूठी तारीफ करती रहती है। वह चाहकर भी किसी से ठीक से सच नहीं पूछती और न ही जानने का कभी प्रयास भी करती थी–''वह चाहती थी कि सभी चीजें ठीक से पूछ ले,सभी चीजें सही से जान ले और दुनिया की हर चीज पर पहले की तरह धड़ल्ले से बात करे। पर उसकी हिम्मत नहीं होती थी। उसके दिल में जाने कैसा भय समाया . . . .[11] इसी तरह से सिद्धेश्वरी की दोपहरी चलती रहती थी, जो जिन्दगी को प्रतिम्बिबित करती रहती थी। अमरकान्त ने इस चरित्र के माध्यम से निम्न मध्यवर्गीय भारतीय समाज की दयनीय स्थिति की तस्वीर खींची है।

कहानी का शीर्षक 'दोपहर का भोजन' ही क्यों रखा गया ? यदि इस पर हम विचार करते हैं तो पाते है कि आज भी निम्न मध्यवर्गीय परिवार में सुबह नाश्ते का प्रावधान नहीं होता। लोग पेट–भर खाना खाकर ही घर से बाहर निकलते हैं। दोपहर का भोजन करने से उन्हें सुबह–शाम का नाश्ता करने से छुटकारा मिल जाता है। इस तरह से भोजन करने की उनकी बेबसी–लाचारी के हर पहलू की तह में जाकर ही इस कहानी की संवेदना व प्रासंगिकता को समझा जा सकता है। मधुरेश लिखते हैं–''दोपहर का भोजन में जिस निर्मम तटस्थता के साथ एक परिवार के माध्यम से समूचे निम्न मध्यवर्ग के पीड़क अभावों को अंकित करने की कोशिश की गई है, अपने समय की मूलधारा को अतिक्रमित कर पाने के कारण ही आज वह कहानी ऐतिहासिक महत्व की दावेदार बनी हुई है।''[12]

अमरकान्त के कहानियों की यह खास विषेशता है कि वे व्यंजनात्मक–लक्षणात्मक शब्दों के लम्बे–चौड़े पुल न बांध कर साफगोई और सहजता के साथ अपनी बात रखते हैं। अमरकांत प्रेमचन्द की तरह सरल, सीधी और सधी भाषा का प्रयोग करते हैं। उनकी कहानियाँ आम आदमी भी आसानी से पढ़कर समझ सकता है ।

'दोपहर का भोजन' कहानी में अमरकान्त ने सरल और आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है । अमरकांत की कहानियाँ बिना किसी आलंकारिक भाषा को धारण किए ग्रामीण बोलचाल की भाषा को धारण करती हैं, निम्नमध्यवर्गीय परिवार के संघर्शों को उनके वेदनागत स्रोतों के साथ उभारती हैं । अमरकान्त की कहानियों को पढ़ना मतलब आम–आदमी की जिन्दगी को पढ़ना । उस आदमी के जीवन के संघर्ष को पढ़ना जो वह इस समाज में रहने के लिए कर रहा है। अमरकान्त की कहानियों में आर्थिक संघर्ष का चित्रण है। जीवन की अभावग्रस्तता का वर्णन है, छोटे संवादो की रचना हुई है। कहानियों के शिल्प की यह एक विशेषता है, डायलाग शुरू होते हैं, सहसा समाप्त होकर कोई अर्थपूर्ण संकेत कहानी लेखक द्वारा दिए जाते हैं। 'दोपहर का भोजन' कहानी में अमरकांत ने अत्यन्त संक्षिप्त संवादों की रचना की है जो कि मार्मिक भी हैं। पूरी घटना का सच्चा चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। उदाहरणस्वरूप–''थाली में जब रोटी का केवल एक टुकड़ा शेष रह गया, तो सिद्धेश्वरी ने उठने का उपक्रम करते हुए प्रश्न किया "एक रोटी और लाती हूँ ?'' रामचन्द्र हाथ से मना करते हुए हड़बड़ाकर बोल पड़ा, "नहीं–नहीं, जरा भी नहीं। मेरा पेट पहले ही भर चुका है। मैं तो यह भी छोड़नेवाला हूँ। बस, अब नहीं।" 'सिद्धेश्वरी ने जिद की, "अच्छा, आधी ही सही।" रामचन्द्र बिगड़ उठा, "अधिक खिलाकर बीमार कर डालने की तबीयत है क्या? तुम लोग जरा भी नहीं सोचती हो। बस, अपनी जिद। भूख रहती तो क्या ले नहीं लेता?"[13] संवादों के माध्यम से परिवार की आर्थिक स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

'दोपहर का भोजन' कहानी जैसे पात्र केवल जीवन जीने के लिए जिए जा रहे हैं। वे लोग अपना कोई भविष्य निर्मित नहीं कर पा रहे हैं। इस कहानी के संदर्भ में प्रियंका सोनकर लिखती है–''दोपहर का भोजन मात्र यह एक कहानी नहीं है। यह गरीबी और भूख का खामोश आईना है। भूख से ज्यादा मूर्त और भूख से ज्यादा अमूर्त क्या हो सकता है? इस छोटी सी कहानी में 'भूख' बेजुबां बनी सब कुछ बयां कर जाती है। पूरे घर में इतने सदस्य होने के बावजूद जैसे सन्नाटा और मुर्देपन की स्थिति छायी हुई है। उदासीनता से पुता–ढंका घर, सन्नाटा–मौन–झूठी डकार–गृहस्थिन मौन। वह परिवार के परस्पर के

स्नेह भाव को बचाये रखने के मद्देनजर ही कभी मुखर हो लेती है।घर में हर चेहरा एक दूसरे से बचता है। कहानी का अंत अत्यन्त कारूणिक है जो पूरे युग–समाज की ट्रेजडी को प्रत्यक्ष कर देता है।''[14]

अमरकान्त की कहानियाँ जो धरती की पीड़ा और जनता के विराट सुख–दुख से एकाकार होकर लिखी जाती है, उनमें खुद–ब–खुद एक सीझी हुई करुणा अपना उदात्त कला–शिल्प और मार्मिक किस्म का शब्द–लाघव खोज लेती है। इन अभावग्रस्त परिवारों के प्रति समाज और सरकार को मिलकर उन्हें शिक्षा,रोजगार की सुविधा मुहैया कराये ताकि वह भी सम्मानपूर्वक जीवन जी सके। अन्त मे उपेन्द्र नाथ अश्क के शब्दों में–'जिन्दगी की पकड़ अमरकान्त की अचूक है और अभिव्यजना अत्यन्त सरल और उनकी कहानियाँ सरल, सोद्देश्य व प्रगतिशील, उच्चकोटि की हैं। वस्तुतः अमरकान्त की कहानियाँ जिस एक मूलभाव को बार–बार उभारती हैं, उसे हम जीने के लिए संघर्ष कह सकते हैं।''[15]

lUnHkZ %

1. प्रतिनिधि कहानियाँ, अमरकान्त, राजकमल प्रकाशन, पाँचवी आवृत्ति : 2013, पृ. 98
2. अमरकान्त की सम्पूर्ण कहानियाँ, सं. रवीन्द्र कालिया, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण : 2013 ,पृ.63
3. प्रतिनिधि कहानियाँ, अमरकान्त, राजकमल प्रकाशन, पाँचवी आवृत्ति : 2013, पृ.104
4. हिन्दी कहानी, इकाई–3, दोपहर का भोजन :अमरकान्त, अध्याय लेखक–प्रियंका सोनकर
5. अमरकान्तः एक मूल्यांकन, सं.रवीन्द्र कालिया,सामयिक बुक्स, प्रथम संस्करण, 2012, पृ.44
6. हिन्दी कहानी, इकाई –3,दोपहर का भोजन : अमरकान्त, अध्याय लेखक–प्रियंका सोनकर
7. अमरकान्तः एक मूल्यांकन,सं. रवीन्द्र कालिया, सामयिक बुक्स, प्रथम संस्करण, 2012, पृ. 43
8. अमरकान्त की सम्पूर्ण कहानियाँ, सं.रवीन्द्र कालिया, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण : 2013, पृ. 66
9. छायावादोतोत्तर काव्य–संग्रह, डॉ.राम नारायण शुक्ल, डॉ.श्रीनिवास पाण्डेय, संजय बुक सेन्टर, संस्करण : 2006, पृ.141
10. अमरकान्त : एक मूल्यांकन, सं.रवीन्द्र कालिया, सामयिक बुक्स, प्रथम संस्करण, 2012, पृ. 44
11. प्रतिनिधि कहानियाँ, अमरकान्त, राजकमल प्रकाशन, पाँचवी आवृत्ति : 2013, पृ.103
12. अमरकान्त : एक मूल्यांकन, सं.रवीन्द्र कालिया, सामयिक बुक्स, प्रथम संस्करण, 2012, पृ.36
13. अमरकान्तः एक मूल्यांकन, सं.रवीन्द्र कालिया, सामयिक बुक्स, प्रथम संस्करण, 2012, पृ. 40
14. हिन्दी कहानी, इकाई –3, दोपहर का भोजन : अमरकान्त, अध्याय लेखक–प्रियंका सोनकर
15. अमरकान्त : जीवन एवं साहित्य, डॉ. पूनम सिंह, समीक्षा प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2006, पृ. 269

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 187-191

lkEiznkf;drk dk ;FkkFkZ % dkydFkk

lquhy dqekj*

आज हमारे धार्मिक मूल्यों में महत्वपूर्ण परिवर्तन आ गया है। जिसके कारण विश्वभर में धार्मिक संघर्ष देखने को मिल रहा है। आज भारत जैसे धर्म निरपेक्ष राष्ट्र में भी धर्मान्धता फैलने लगी है। वास्तव में इस धर्मान्धता के परिणाम स्वरूप उपजी एक संकीर्ण मानसिकता है सांम्प्रदायिकता। इसके तहत हिंसा एवं आतंक आज अपनी चरम सीमा तक पहुँच गयी है। यूं तो विभिन्न धर्मों के बीच विरोध लम्बे समय से चलता आया है लेकिन हमारे देश में साम्प्रदायिकता अंग्रेजी शासन की देन है। 1857 के बाद से ही अंग्रेजों ने 'फूट डालो राज करो' की नीति के तहत सिक्खों और मुसलमानों में पृथक राष्ट्र बनाने की भावना को तूल दिया। जिसके परिणामस्वरूप असंख्य साम्प्रदायिक दंगे हुए और भारत–पाक का विभाजन हुआ। आगे चलकर 1984 का सिक्ख दंगा, अयोध्या में बाबरी मस्जिद विवाद, कश्मीर समस्या, गुजरात हत्या काण्ड आदि साम्प्रदायिक दंगे देखने को मिलते हैं। साम्प्रदायिकता हमारे देश की एक गंभीर समस्या बनी हुई है। इसी के कारण देश के तीन टुकड़े हो चुके फिर भी समस्या का कोई हल नहीं निकल सका है।

साम्प्रदायिकता के लिए अंग्रेजी में कम्यूनलिज्म (Communalism) शब्द प्रचलित है। साम्प्रदायिक आधार पर बंटे दो समुदायों के बीच झगड़े और मार– काट को साम्प्रदायिकता कहते हैं। साम्प्रदायिकता का सामान्य अर्थ – एक समुदाय द्वारा दुसरे समुदाय के सदस्यों और उनके धर्मों के विरुद्ध विरोध व हिंसा का प्रयोग करना। बाहर से एक राष्ट्र के रूप में दिखने वाला भारत अंदर ही अन्दर विघटित होता जा रहा है। विघटित करने वालों की अपनी दृष्टि है, विचारधारा है, और मानसिकता है। इसी कारण धर्म स्वार्थ लोलुप व्यक्तियों की सिद्धि का साधन बन गया है। इस सन्दर्भ में अभय कुमार दुबे का विचार समीचीन होगा ''साम्प्रदायिकता एक ऐसी विचारधारा है जो कभी खुद को साम्प्रदायिकता की संज्ञा देना पसन्द नहीं करती। वह धर्मनिरपेक्षता के खोखले दावों, शब्द वाद के झूठे ऐतिहासिक तथ्यों और लोकतंत्र का कानून सम्मत शासन से छिपी रहती है।''[1]

साम्प्रदायिकता को प्रश्रय देने के लिए पर्याप्त साधन राजनीतिक सत्ता के पास है। वे साम्प्रदायिक हिंसा को आधार बनाकर आसानी से सत्ता पर आसीन हो जाते हैं। साम्प्रदायिक दंगे ज्यादातर धार्मिक त्योहारों या जुलूसों के समय होते हैं। अनेक बार साम्प्रदायिक दंगे पूर्व नियोजित होते हैं। जिसमें किसी धार्मिक स्थल को नुकसान पहुँचाकर या अन्य बहाने से दंगे भड़का दिये जाते हैं। साम्प्रदायिक हिंसा में ज्यादातर ऐसे लोग शामिल होते हैं, जिन्हें क्षणिक आवेश दिलाया गया हो या भोली– भाली जनता को धर्म के नाम पर बहकाया गया हो। ऐसी हिंसा के शिकार ज्यादा निर्दोष और तमाशाबीन लोग होते हैं। साम्प्रदायिक दंगे का कोई चिन्हित नेता नहीं होता है। इसलिए दंगे को रोकना मुश्किल होता है। साम्प्रदायिकता को आधार बनाकर लिखे गये हिन्दी के महत्वपूर्ण उपन्यास यशपाल का 'झूठा सच' राही मसूम रजा का 'आधा गाँव', 'मंसूर–एहतेशाम', 'सूखा बरगद', भीष्म साहनी का 'तमस', रविन्द्र कालिया का 'खुदा सही सलामत है', विभूति नारायण का 'शहर में कर्फ्यू', अब्दुल विस्मिल्लाह का 'झीनी–झीनी–बीनी चदरिया', और 'मुखड़ा क्या देखें', असगर वजाहत का 'सात आसमान', परवेज अहमद की 'मिर्जाबाड़ी', भगवानदास मोरवाल का 'काला पहाड़' और कामतानाथ का 'कालकथा' आदि ने साम्प्रदायिकता के यथार्थ चित्रण में अपनी महती भूमिका निभायी है।

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, दी० द० उ० गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

महज विडम्बना नहीं है कि आजादी की लड़ाई के इतिहास में साम्प्रदायिकता का इतिहास भी शामिल रहा है। कामतानाथ ने इस जटिल संदर्भ को गहरी वैचारिक समझ के साथ कालकथा के मुख्य कथा प्रसंग से जोड़ना चाहा है। एक प्रसंग यह है कि बम्बई में ब्रिटेन के युवराज के स्वागत के विरोध में दंगा हो गया। यहूदी, पारसी, अंग्रेज एक थे। हिन्दू–मुसलमान एक थे। जिसके संदर्भ में कामतानाथ कालकथा में रेखांकित करते हैं ''पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार 17 नवम्बर को ब्रिटेन के युवराज बम्बई पधारे। कांग्रेस के आह्वान पर उस दिन पूरे देश में हड़ताल हुईं। बम्बई में कुछ ईसाई, पारसियों, यहूदियों और अंग्रेजों ने युवराज के स्वागत के बहिष्कार का विरोध किया। उन्होंने केवल अपनी दुकानें ही नहीं खोली बल्कि युवराज के स्वागत के लिए सड़कों पर निकल आये। नगर की अन्य बहुसंख्यक जनता हिन्दू और मुसलमानों ने उनका विरोध किया। उन्होंने अपनी दुकाने बन्द करने के लिए जोर देना शुरु किया और सड़कों पर आती–जाती ट्रैफिक जाम करने लगे। देखते– देखते पारसियों की टोपियाँ हवा में उछलने लगीं, शहर में दंगा हो गया। हिन्दुओ और मुसलमानों ने जमकर हिंसा में भाग लिया। अनेक पारसी और यहूदी हिंसा के शिकार हुए। दो पुलिस वालों की जाने गईं। कुछ पुलिस वाले घायल भी हुए।''[2]

दूसरा प्रसंग काकोरी ट्रेन डकैती के फाँसी सजायाफ्ता क्रांतिकारी कैदी अशफाक उल्ला खाँ ने फाँसी से पहले अगर अफसोस जताया तो इसका कि हिन्दू–मुस्लिम एकता का वह जज्बा नहीं रहा जो पहले हमारे देश में विद्यमान था। इस संदर्भ में अशफाक उल्ला खाँ ने गणेश शंकर विद्यार्थी को लिखे खत में मुल्क के नाम संदेश में कहा था ''मरते वक्त मुझे किसी तरह का गम नहीं है। अफसोस है तो बस इतना कि आज हिन्दू–मुस्लिम इत्तहाद का वह जज्बा, जो सन् इक्कीस में था, खुदा जाने कहाँ काफूर हो गया है। लेकिन मुझे भरोसा है कि जब तक आप जैसी शख्सियत के लोग जिन्दा हैं मुझे फिक्र करने की जरूरत नहीं है और मैं आराम से फाँसी के तख्ते पर चढ़ सकता हूँ।[3]

पीढ़ियों से साथ–साथ रहते चले आ रहे, एक दूसरे के गमी, खुशी के बराबर के हिस्सेदार पड़ोसी सहसा अविश्वास, शंका का भय के वातावरण में जीने लगते हैं। वैसे ये बीमारी गाँवों की अपेक्षा शहरों में ज्यादा तेजी से फैलती है। विडमबना यह है कि मोहल्ले के उम्रदराज जिन हुसैनी चाचा के नेतृत्व में विदेशी वस्त्रों की होली जलाने का अभियान चल रहा था। लोगों ने उन्हें विशेष सम्मान दिया था और जो जोश से प्रभातफेरियाँ निकालते थे। आज उन्हीं के ऊपर घृणाप्रेरित हिन्दू हमला बोल देते हैं। उनका घर फूंकने को तैयार हो जाते हैं। अकेले तेजशंकर उनके पक्ष में प्रतिरोध के लिए खड़ा होता है और कहता है ''जब तक मैं यहाँ हूँ, आप लोग दरवाजा नहीं तोड़ सकते। इसके लिए आप को मेरी लाश से गुजरना होगा।''[4] वे बच तो जाते हैं पर फिर मोहल्ले में नहीं रुकते, किसी नामालूम जगह पर चले जाते हैं।

इस दंगे में सैकड़ों लोगों के मारे जाने की खबर उन्माद की लहर में फैल जाती है। जबकि अगली सुबह अखबार में कुल खबर इतनी ही कि मौलबीगंज से रामलीला की झांकी निकालते समय असामाजिक तत्वों ने पथराव किया जिससे कुछ लोगों को चोटें आयी। पर असली खबर जो अखबार में नहीं है पर कामतानाथ की नजर में है– ''उसी शाम कुछ लोगों ने हुसैनी को सिर टीन का एक बक्सा रखे रेल की पटरी के किनारे–किनारे जाते हुए देखा। उसके पीछे–पीछे उसकी बकरी और उसके दो छोटे–छोटे बच्चे भी चल रहे थे। यह अंतिम बार था जब मुहल्ले में किसी ने हुसैनी को देखा।''[5]

यह वह इतिहास है जो बार–बार दुहराया जाता है। आजादी के पूर्व हमारे देश में मुसलमानों में कोई अलगाव नहीं था। एक साझी संस्कृति थी। दोनों धर्मों के लोग एक दूसरे के पर्व, त्यौहार, रश्म–रिवाज, खुशी–गम में बराबर के शरीक होते हैं। उनमें आपस में किसी भी तरह का विभेद नहीं था। लेकिन आजादी के समय कुछ चन्द मौकापरस्त नेताओं की वजह से देश के बंटवारे का प्रस्ताव रखा गया। जबकि भारत के अधिकांश मुसलमान इस प्रस्ताव से सहमत नहीं थे। क्योंकि वे इस देश को ही अपना मुल्क मानते हैं। वे किसी भी कीमत पर इसे छोड़कर जाने को तैयार नहीं थे। कामतानाथ के 'कालकथा' उपन्यास में खाजीखेड़ा के अब्दुलगली के चाचाजाद भाई तहफ्फुज अली खाँ विलायत से पढ़े लिखे हैं

और यहाँ लखनऊ में आकर वैरिस्टर (वकील) के रूप में काम करते हैं। इसके साथ ही मुस्लिम लीग से जुड़े हुए हैं। पाकिस्तान की मांग का प्रस्ताव पास हो जाने पर वे पाकिस्तान जाने को तैयार हो जाते हैं। वे चाहते है कि खानदान के सभी लोग चलें उसी के संदर्भ में वे गाजीखेड़ा आते हैं और अपने खानदान के सभी लोगों से इस देश को छोड़कर पाकिस्तान चलने के लिए कहते हैं। रायशुमारी के लिए परिवार के सभी सदस्य एक जगह जमा होते हैं और तहफ्फुज अपने परिवार वालों को समझाने की कोशिश करते हैं और कहते हैं ''मैं बहुत जल्द पाकिस्तान जा रहा हूँ। अब से वही मेरा मुल्क होगा। इसीलिए सोचा कि जाने से पहले आप लोगों से मिल लूँ। पता नहीं दोबारा कब मिलना हो। वैसे मेरी राय यह है कि आप सब लोग भी हमारे साथ पाकिस्तान चलें। हिन्दुस्तान अब मुसलमानों के लिए महफूज नहीं रह गया। उन्हें यहाँ दूसरे दर्जे का शहरी बनकर रहना पड़ेगा। कोई तआज्जुब नहीं, उनकी जमीन जायदाद भी छिन जाये। हिन्दुओं की हुकूमत होगी तो वह शहजोर भी होंगे। सरकार उन्हीं की सुनेगी। सरकार की बात एक बार छोड़ भी दे, तो पुलिस और छोटे अफसरान तो उनकी हिमायत करेंगे।[6]

लेकिन तहफ्फुज की बात का अब्दुल गनी पर कोई असर नहीं पड़ता है। वे पाकिस्तान के खिलाफ हैं और कहते हैं ''पाकिस्तान वाली बात मेरी समझ में नहीं आती। मैं कोई नन्हा पौधा नहीं हूँ जिसे अपनी जगह से उखाड़कर दूसरी जगह रोप दिया है। मेरा फैसला यह है कि मैं यहाँ से हिलने वाला नहीं हूँ। वहाँ जाकर बर्वादी ही होनी है। यहीं राय तुम लोगों को भी दूँगा। तहफ्फुज की बात दूसरी है। वह शुरु से ही मुस्लिम लीग से जुड़े रहे हैं। पाकिस्तान की तहरीक में इनका भी हाथ है। और जैसा कि मैं समझता हूँ जिन्ना साहब से राह–ओ–रस्म है इनकी। सो ये तो जायेंगे ही। जहाँ तक मेरी बात है मेरा फैसला बदलने वाला नहीं।''[7]

अब्दुलीगनी किसी भी कीमत पर अपने देश को छोड़कर जाने के लिए तैयार नहीं हैं। लेकिन अपने परिवार और बच्चों के सामने वे विवश हो जाते हैं और अपने परिवार के सदस्यों को समझाते हुए कहते हैं कि ''यह हवा फैलाई किसने है........ अच्छा–खासा मुल्क था। आराम से लोग रह रहे थे। छोटे–मोटे झगड़े तो हर जगह होते ही रहते हैं। एक ही कौम में, बल्कि एक ही घर, खानदान में होते रहते हैं। इसका इलाज सुलह–सफाई है कि बंटवारा? पाकिस्तान की माँग की किसने ? जिन्ना के बारे में तो मैंने सुना है कि उनको उर्दू भी नहीं आती, अरबी की बात छोड़िए। नमाज पढ़ने की भी खुदा जाने तमीज है उन्हें या नहीं। वह हमारे रहनुमा होंगे और बाकी जितने उलेमा हैं उन सबको दर–किनार कर दिया गया है।''[8]

अपने देश में मुसलमान आजादी से पूर्व कभी अपने आप को इस मुल्क में अपमानित महसूस नहीं करते थे लेकिन पाकिस्तान बनने का प्रस्ताव जैसे ही कैबिनेट मिशन के तहत पास होता है। हिन्दू और मुसलमानों के रिश्तों में दूरी आने लगती है। एक तरह दोनों घर में भाईचारा जैसा व्यवहार था। तभी पार्क में जाते समय जहाँ पर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की शाखा लगी है, अभी खत्म ही हुई थी, तभी एक स्वयं सेवक उसे देखते हुए बोला ''देख रहे हैं गुरु जी आप। यह कटुआ कहाँ से आ गया .... यहाँ कैसे घुस आए बड़े मियाँ ? .... 'गलती हुई क्या मुझसे कुछ?' उसने पूछा। गलती क्या देख नहीं रहे। शाखा लगी है यहाँ? यहाँ घुसने की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई? और अभी तक यहाँ बने कैसे हो तुम? पाकिस्तान क्यों नहीं गए?''[9]

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के लोगों ने घेरकर वाहिद को अपमानित किया। यहाँ तक की उसकी टोपी फेंक दिया और दाढ़ी पकड़ कर भी हिला दिया। यह शुक्र था कि रतन का लड़का श्रीकान्त समय पर आ गया नहीं तो ना जाने क्या होता। इस घटना के बाद वाहिद काफी भयभीत हो गया, उसे समझ में नहीं आ रहा था कि ऐसा तो पहले कभी नहीं होता था। लोग एक दूसरे के घरों में त्योहारों, शादी, खुशी–गम में बराबर शरीक होते थे और आज अपने ही लोग घृणा की नजर से क्यों देख रहे हैं। जो कि वह खुद पाकिस्तान जाने के पक्ष में नहीं था, लेकिन आज की घटना ने उसे झकझोर कर रख दिया। पहली बार उसे महसूस हुआ कि तहफ्फुज का बात सच हो निकली, वह सोचने लगा कि ''मुसलमान अब इस मुल्क में महफूज नहीं हैं। .... वह अकेला होता तो कुछ भी झेल लेता लेकिन उसकी पत्नी, शम्मो और निकहत? उन लोगों को भी गाहे–वगाहे अकेले–दुकेले निकलना पड़ता है। अगर उन लोगों के साथ किसी ने इस तरह की बदतमीजी की, तो क्या होगा? वह किसी फैसले पर नहीं पहुँच पा रहा था।''[10]

वाहिद के साथ आज की घटी घटना उसे अन्दर तक झकझोर कर रख देती है और अन्ततः वह पाकिस्तान जाने के लिए तैयार हो जाता है। क्या समझ रहे हैं ये लोग। वहाँ जाकर इन्हें क्या मिलेगा? जन्नत में भी इतने लोग पहुँच जाएं तो वहां भी मुश्किले खड़ी हो जाएंगी। पाकिस्तान तो इस दुनियाँ में बल्कि इस मुल्क की जमीन का एक टुकड़ा भर है। एक बार फिर उसने वहाँ जमी भीड़ पर अपनी निगाह दौड़ाई। किसी भी आँख में उसे उम्मीद की कोई किरण दिखाई नहीं दी। हाँ, खौफ का अँधेरा जरूर झलका उनमें। खौफ, जो मजहब के नाम पर पैदा किया गया था और जो खुदा जाने उन्हें कहाँ किस मंजिल पर पहुँचाएगा। उसे खुद अपने साथ घटे वाकिए याद आए। प्रिंसिपलशिप का चांस न मिलना। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के स्वयंसेवकों द्वारा बेइज्जत किया जाना। .... आखिर यह सूरत–ए–हाल कब तक रहेगी। एक न एक दिन बदलेगी ही। आखिर रतन जैसे लोग भी हैं। और गाँव में? अब्बा के करीब सभी दोस्त हिन्दू हैं।''[11]

अपने देश के अधिकांश मुसलिम परिवार अपना देश छोड़कर पाकिस्तान जा रहे थे, लेकिन कुछ ऐसे भी मुसलिम परिवार थे, जो अपने मुल्क को किसी भी दशा में छोड़कर जाने के लिए तैयार नहीं थे। उन्हें अपने देश के प्रति अगाध प्रेम और विश्वास था। 'कालकथा' उपन्यास में मुल्क के प्रति यह प्रेम और विश्वास एक साधारण से तांगे वाले में उस समय दिखाई देता है, जब वाहिद लखनऊ से पाकिस्तान जाने के लिए तैयार होता है। श्रीकान्त कुछ भयवश तांगे वाले से पूछता है कि आप नहीं जाएंगे पाकिस्तान, तो साधारण सा तांगे वाला व्यक्ति बड़ी सहजता से जबाब दे देता है। ''मेरे जायँ दुश्मन। हिन्दुस्तान मेरा मुल्क है। आठ पुस्तों से मेरा खानदान यहाँ रह रहा है। और खालिस मुसलमान हूँ मैं। उन लोगों में से नहीं हूँ जिनके दादा या परदादा किसी वजह से अपना मजहब बदलकर मुसलमान हुए हैं। मेरे दादा के परदादा, बल्कि उसके दो पुश्त पहले समझ लीजिए, बाबर के साथ अफगानिस्तान से आए थे। उसकी फौज में बड़े ओहदेदार थे। उसके बाद हमारे दादा, परदादा मुगल सल्तनत में मुलाजिम रहे। लेकिन फिर तो आप जानते ही हैं, अंग्रेजों के आने के बाद मुगल सल्तनत ही नहीं रही तो और किसी की क्या हैसियत होगी। अपना रोना किसके सामने जा कर रोयें। बस अपने हुनर पर भरोसा है। उसी की रोजी कमा रहा हूँ। अल्ला ताला की बेहरमानी से मुल्क आजाद हो रहा है तो मैं अपना मुल्क छोड़कर पाकिस्तान चला जाऊँ? तोबा कीजिए।[12]

अपने मुल्क को छोड़कर दूसरे मुल्क में जाकर बस जाना इतना आसान नहीं होता है। जो लोग अपने देश से प्यार करते हैं। यदि उन्हें किन्ही कारणों से अपने देश को छोड़कर जाना पड़े तो उन्हें जिस पीड़ा का सामना करना पड़ता है वह वही व्यक्ति समझ सकता है, जिसने इस पीड़ा को झेला हो। कामतानाथ के कालकथा उपन्यास में गाजीखेड़ा के अब्दुल गनी और उनका सारा परिवार पाकिस्तान जाने को तैयार हो जाता है। वे जाना नहीं चाहते हैं लेकिन अपने बीबी–बच्चों के सामने विवश हैं। अब्दुल गनी की इस विवशता को कामतानाथ रेखांकित करते हैं कि ''अब्दुल गनी की ज्यादातर रैयत हिन्दू थी। अहलकार भी हिन्दू थे। आसपास के गाँवों के कायस्थों, ठाकुरों आदि से उनका दोस्ताना सम्बन्ध था। मुंडन, छेदन, शादी–व्याह जैसे अवसरों पर ये लोग उनके यहाँ आमंत्रित होते थे। इसी तरह उन लोगों के यहाँ इस तरह के कार्यक्रमों में वह शामिल होते थे। आज ये सारे सम्बन्ध गुमनामी में दफन हो जाने थे। बीस–तीस सालों बाद कौन जानेगा कि अब्दुल गनी नाम का कोई शक्स गाजीखेड़ा में रहा करता था।''[13]

यह देश का दुर्भाग्य है कि साम्प्रदायिक समस्या देश के लिए चुनौती बनी हुई है। निजी स्वार्थ के चलते धर्म के ठेकेदार और राजनीतिक व्यवसायिक, राजनीतिक दल और राजनेता भारत की सघन बुनावट को छिन्न–भिन्न कर हिन्दू, मुसलमान के धागे को अलग करने की कोशिश करते आ रहे हैं। इसी कोशिश का भयानक दुष्परिणाम, जिसमें अंग्रेजों का भी हाथ था, देश को 1947 ई० में झेलना पड़ा। अन्त में देश का दो टुकड़ों में विभाजन हुआ। यह विभाजन केवल जमीन का विभाजन नहीं था बल्कि मानवता की चीड़फाड़ थी। जिसकी कसक आज भी लोगों के भीतर बनी हुई है। इस कसक को 'कालकथा' के भीतर देखा जा सकता है। देश की अधिकांश मुस्लिम आवादी पाकिस्तान जा रही थी। वहाँ से हिन्दू भारत आ रहे थे। दोनों सरहदों पर तनाव काफी हद तक बढ़ गया था। वर्षों तक हिन्दू–मुस्लिम जो एक साथ रहते आ रहे थे। आज की इस बदली स्थिति में एकाएक एक दूसरे के दुश्मन बन गए थे। चारों तरफ

मार–काट मची थी, हर आदमी दहशत में जी रहा था। यह दहशत कब मृत्यु में तब्दील हो जायेगी ये कोई नहीं जान रहा था। दोनों सरहदों से आने–जाने वाली ट्रेने भर–भर कर आ रही थी। तभी एकाएक घटना घटती है, जो सम्पूर्ण मानवता को शर्मशार करने वाली थी। इस घटना की विभीषिका के सन्दर्भ में कामतानाथ रेखांकित करते हैं ''पूरी गाड़ी लाशों से भरी थी। मिलिटरी के जवान उन्हें डिब्बों से बाहर खींचकर पटरी के किनारे डाल रहे थे। यह पाकिस्तान से आने वाली गाड़ी थी जिसमें सवार सिक्खों और, हिन्दुओं को रास्ते में गाड़ी रोककर कत्ल कर दिया गया था। अधिकांश के सिरों में बंधी पगड़ियाँ खुल गई थी। जूड़े की शक्ल में बंधे उनके बाल दिखाई दे रहे थे। सभी के कपड़े खून से लथपथ थे। कुछ लाशें डिब्बों के बाहर लटक रही थी। इक्का–दुक्का औरतों की लाशें भी थी।''[14]

यही स्थिति दिल्ली से लाहौर जाने वाली ट्रेन के साथ भी होता है। जिसमें भारत के अधिकांश क्षेत्रों से मुस्लिम परिवार अपने घर–परिवार को छोड़कर पाकिस्तान जा रहे थे। सभी लाहौर से आने वाली ट्रेन को देखकर डरे सहमें थे। तभी ट्रेन एकाएक रुक जाती है। इस आने वाली भयानक भयावहता के संदर्भ में कामतानाथ लिखते हैं ''लोग कुछ समझे, तब तक जैसे शुन्य से ही हाथ में नंगी तलवारें लिए सिर पर पगड़ियाँ बांधे, तहमद अथवा शलवार पहने नवजवान खिड़कियों के दरवाजे तोड़कर डिब्बों में घुस आए। दो एक के हाथों में बंदूके भी थी। लोग दहशत से अपनी जगह जम–से गए। कुछ ने घबराहट में खिड़की के बाहर छलांग लगा दी। लेकिन वहाँ भी जान बचने वाली नहीं थी। बाहर भी हाथों में तलवारें लिए लोग उनकी घात में खड़े थे। डिब्बे में मार–काट शुरु हो गई।''[15]

यह स्थिति दोनों तरफ भारत और पाकिस्तान में समान थी। पाकिस्तान से हिन्दुओं का भारत आना और भारत से मुसलमानों का पाकिस्तान जाना। यह कुछ बड़े सवाल थे जो वाहिद के मन में उठ रहे थे। यह वाहिद के ही मन में नहीं, लाखों हिन्दू–मुस्लिम जनमानस के सवाल थे, जिनका जबाब मौका परस्त राजनीतिक लोगों के पास नहीं थे। इन्हीं लोगों के वजह से आज हिन्दू–मुसलमान एक दूसरे से खौफ खा रहे थे। सदियों की गंगा–जमुनी संस्कृति कुछ चन्द फैसलों की वजह से आज लहू–लुहान हो रही थी। हजारो, लाखों लोग बेघर हो रहे थे, घर–बार छूट रहे थे, मकान जल रहे थे, मार–काट चल रही थी, लेकिन हमारे राजनेता इस नंगा नाच का तमाशा देख रहे थे और घड़ियाली आँसू बहा रहे थे। एक तरफ हम आजाद हो रहे थे तो दूसरी तरफ मानवता भष्म हो रही थी। यह कैसी आजादी थी। क्या आम जनमानस इसी आजादी का सपना देखा था। क्या सही मायने में आजादी मिली। यह सारे प्रश्नों के जबाब सदियों तक तलाशे जायेंगे लेकिन माकूल जबाब नहीं मिल पायेगा। सदियों तक हमारी पीढ़ियों के मन में सारे सवाल कौंधते रहेंगे और ये सारे सवाल अनुत्तरित रह जायेंगे।

lUnHkZ %

1. डॉ० एन० मोहनन, सं० समकालीन हिन्दी कहानी, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृ० 31
2. कामतानाथ, कालकथा भाग–एक, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2015, पृ० 329
3. कामतानाथ, कालकथा भाग–दो, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2015, पृ० 364
4. वही, पृ० 190
5. वही, पृ० 192
6. कामतानाथ, कालकथा भाग–चार, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2015, पृ० 252–253
7. वही, पृ० 253
8. वही, पृ० 284
9. वही, पृ० 269
10. वही, पृ० 272
11. वही, पृ० 304–305
12. वही, पृ० 312
13. वही, पृ० 291
14. वही, पृ० 323
15. वही, पृ० 324

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 192-196

’kkldh; ,o v’kkldh; fo|ky;k e dk;jr f’k{kdk dh lpuk lEi"k.k rduhdh ¼vkb-lh-Vh½ lk{kjrk dk v/;;u

fnu’k ’kkD;*

i:Lrkouk % वर्तमान सन्दर्भ की वैज्ञानिक विशिष्टता ने मानव जीवन के प्रत्येक पक्षों, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक, आर्थिक आदि को गहराई से प्रभावित करते हुए इसके आंतरिक सरंचना को बुनियादी आकार दिये है। प्राचीन समय में किसी भी प्रकार की सचूनाओं को एक व्यक्ति स्थान समूह से दूसरे व्यक्ति स्थान–समूह तक प्रसारित करने के लिए विविध सम्प्रेषण साधनों जैसे –ढोल, नगाड़ा, तीर–कमान, कबूतर एवं पशु–पक्षियों का सहारा लिया जाता था। समय के वैज्ञानिक प्रगति के परिणाम स्वरूप बहुत से सम्प्रेषण साधनों को आकर दिया गया जैसे–सेटेलाईट, रेडियों, कम्प्यूटर, इंटरनेट, टेलीविजन आदि जिससे आकाश, भूलोक तक शाब्दिक एवं अशाब्दिक दोनों रूपों में सूचनाओं को अग्रसरित कर व्यक्ति एवं समूह के सम्प्रेषण को प्रभावी बनाया है।

शिक्षा एवं शिक्षण प्रक्रिया में सम्प्रेषण का बुनियादी स्थान रहा है। शिक्षाशास्त्र का कोई भी भाग चाहे वह विधियों–प्रविधियों का हो, चाहे उद्‌देश्यों का हो, शिक्षण–प्रक्रिया का हो या शोध का बिना तकनीकी के निस्प्रभावी हो जाता है। सूचना सम्प्रेषण तकनीकी ने शिक्षा की पुरानी अवधारणाओ का आधुनिक सन्दर्भ मे परिवर्तित कर नवीन स्वरूप दिया है। छात्राध्यापकों की चाहे सैद्धान्तिक ज्ञान से संबन्धित समस्या हो, या उनके प्रयोगात्मक शिक्षण की कठिनाई दोनो के सहज आंतरिक जुड़ाव में तकनीकी अपनी केन्द्रीय भूमिका में होती है।

शिक्षा जगत के ढाँचागत जुड़ाव ने परम्परा के आधार पर अपने को जिस तरह अग्रसारित करती है, उसमें विज्ञान की अपनी मौलिक भूमिका भी गूथी रहती है। जो लोगो के विचार, हाव–भाव, जीवन निर्वहन के तरीकों तथा आपसी सम्प्रेषण में परीलक्षित होती है। सम्प्रेषण की केन्द्रीयता में लोग आपसी अंतः क्रिया कर समाज तथा विविध व्यवस्थाओं को प्रभावी आकार प्रदान करते है। सांस्कृतिक वातावरण सम्प्रेषण द्वारा ही आपसी जुड़ाव तथा अंतः क्रिया को प्रभावी बनाता है। तथा लोगों के बीच एकीकरण को सुनिश्चित करता है। तब समाज तथा समुदाय अपने आंतरिक गतिविधियों में बदलाव करते हुए उत्तरोत्तर प्रभावी एवं सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था को एक नयी पहचान देते हैं। जिससे एक समाज दूसरे समाज की तुलना में प्रगति करते रहता है।

yxhl ,o ohxy :

''सम्प्रेषण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत सचूनाओं, निर्देशों तथा निर्णयों द्वारा लोगों के विचारों, मतों तथा अभिवृत्तियों में परिवर्तन लाया जाता है।''

,Mxj My– ''सम्प्रेषण विचार – विनिमय के मुड (mood) में विचारों तथा भावनाओं को परस्पर जानने तथा समझने की प्रक्रिया है।''

lpuk lEi"k.k rduhdh dh f’k{kdk d fy; vko’;drk %

1. कक्षागत– शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, को प्रभावी बनाने में सचूना सम्प्रेषण तकनीकी की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। क्योंकि इससे विद्यार्थी स्मृति में विषय वस्तु की स्पष्ट समझ बनती है। जिससे वह स्वयं के रूचि आधारित क्षेत्र का चुनाव कर स्वयं का विकास करता है।

---

*व्याख्याता, शिक्षा अध्ययनशाला, बस्तर विश्वविद्यालय, जगदलपुर, छ.ग.

2. सूचना सम्प्रेषण तकनीकी की सहायता से शिक्षक छात्र के सैद्धांतिक ज्ञान को व्यवहारिक जीवन से जोड़कर बताता है। तथा नयी सचूनाओं को छात्र के सामने प्रस्तुत करता है। जिससे छात्र अपने उद्देश्यों तक पहुचने में सहजता का अनुभव करता हैं।

3. शैक्षिक परामर्श एवं निर्देशन में इसकी आवश्यकता उस समय प्रतीत होती है, जब कठिनाई अनुभव कर रहें छात्र के बीच जीवन–निर्माण की प्रक्रिया में अतिरेक क्षेत्रों को उसके सामने प्रस्तुत कर उसे मानसिक नैराश्य की स्थिति से उपर उठाती है।

4. व्यक्ति, समाज, समुदाय संस्था आदि के प्रभावी अंतः क्रिया की केन्द्रीयता में उच्चता की ओर अग्रसर होकर अपने विचार कार्य–तरीके, व्यवस्था, सुसंगठन आदि कोवैज्ञानिक दृष्टि देते हुए उस समय संदर्भ में दूसरे समाज, सस्ंथा आदि से गतिशील होकर अपनी पहचान एवं महत्व को रेखांकित करते हैं। प्रभावी अंतः क्रिया के विविध साधनों में ''सूचना सम्प्रेषण तकनीकी'' उस समय की खोजें, आविष्कार, अनुसंधान से गहरे रूप से जुड़कर समाज सस्ंथा को गतिशील करते हुए खोज एवं अनुसंधान का मार्ग प्रशस्त करती है, तथा लोगों के सभी पक्षों, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक आदि की प्रभावपर्णूता में अपनी सार्थकता एवं महत्व को बुनियादी रुप से युगों–युगों में प्रासंगिक बनाती है।

v/;;u dk mn~ns';%

1. शासकीय तथा गैर शासकीय विद्यालय के शिक्षकों की सचूना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता का अध्ययन करना।

2. शासकीय विद्यालय के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के मध्य सचूना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता के अन्तर का अध्ययन करना।

3. अशासकीय विद्यालय के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के मध्य सचूना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता के अन्तर का अध्ययन करना।

v/;;u dh ifjdYiuk,a%

1. शासकीय तथा अशासकीय विद्यालय के शिक्षकों की सचूना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता के मध्यमानों में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

2. शासकीय तथा अशासकीय विद्यालय के महिला तथा पुरुष शिक्षकों की सचूना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता के मध्यमानों कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

3. शासकीय विद्यालयों के महिला एव पुरुष शिक्षकों के मध्य सचूना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता के मध्यमानों में कोई अंतर नहीं होगा।

4. अशासकीय विद्यालयों के महिला एव पुरुष शिक्षकों के मध्य सचूना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता के मध्यमानों में कोई अंतर नहीं होगा।

'kks/k iz.kkyh% प्रयुक्त शोध में सर्वेक्षणात्मक विधि का प्रयोग किया गया है। वर्णनात्मक, सर्वेक्षण सबंधी अनुसंधान शिक्षा के क्षत्रे में सबसे अधिक व्यवहार में आता है। इसे सर्वे, स्टेट्स सर्वे और वर्णात्मक आदि विविध नामों से भी जाना जाता है।

tula[;k% जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए जगदलपुर शहर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय के 60–60 शिक्षकों (30 महिला एवं 30 पुरुष) का सोदेश्यपर्णू असंभाव्य एवं स्तरीकृत सभांव्य न्यादर्शन विधि द्वारा चयन किया गया।

प्रदत्त सारणी में न्यादर्श की व्याख्या की गई है –

lkj.kh Ø-1

Øe	fo|ky;	iq:"k	Efgyk	dqy l[;k	
1	शासकीय	15	15	30	
2	अशासकीय	15	15	30	
	dqy ;ksx	30	30	60	

inRrk d ldyu grq i;Dr midj.k% प्रस्तुत लघुशोध में शोधकर्ता द्वारा स्वनिर्मित कम्प्यूटर साक्षरता उपकरण का प्रयोग किया गया है।

lkf[;dh; fo'ys"k.k% शोध अध्ययन के उद्देश्यों एवं परिकल्पनाओं के अनुसार प्राप्त प्रदत्तों को समूह में वर्गीकृत किया गया तथा निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए प्राप्तांको को ज्ञात किया गया तत्पश्चात् मध्यमान, मानक विचलन व टी (t) मूल्य की गणना की गयी।

inRrk dk fo'ys"k.k% प्रदत्तों के विश्लेषण में एकत्रित आँकड़ों का सांख्यिकी विश्लेषण कर परिकल्पनाओं की पुष्टि सांख्यिकी विधियों से समूह मे अंतर तथा सार्थकता की जाँच 0.05 एवं 0.01 के सार्थकता स्तर पर की गयी है।

ifjdYiuk **H0 -1 :** शासकीय तथा अशासकीय विद्यालय के शिक्षकों की सचूना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता के मध्यमानों में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

Lkkj.kh Ø- 02

क्रं.	विद्यालय	शिक्षक	मध्यमान	मानक विचलन	SED	स्वतंत्रांश (df)	टी–मूल्य	परिणाम
1.	शासकीय	30	22.40	7.12	1.74	58	5.075	अस्वीकृत
2.	अशासकीय	30	31.30	6.43				

सारणी क्रं. 02 से स्पष्ट होता है कि शासकीय विद्यालय के शिक्षकों के सूचना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता का मध्यमान 22.40 एवं मानक विचलन 7.12 तथा अशासकीय विद्यालय के शिक्षकों के सचूना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता का मध्यमान 31.30 तथा मानक विचलन 6.43 है। शासकीय एवं अशासकीय शिक्षकों के मध्य प्राप्त टी–मूल्य का मान 5.075 है, जो 0.01 सार्थकता स्तर पर सारणीमान 2.66 से अधिक है अतः परिकल्पना ''शासकीय तथा अशासकीय विद्यालय के शिक्षकों की सूचना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।'' अस्वीकृत की जाती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शासकीय तथा अशासकीय विद्यालय के शिक्षकों की सूचना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता में सार्थक अंतर है।

ifjdYiuk **H0 -2 :** शासकीय तथा अशासकीय विद्यालय के महिला तथा पुरुष शिक्षकों की सूचना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता के मध्यमानों कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

क्रं.	लिंग	शिक्षक	मध्यमान	मानक विचलन	SED	स्वतंत्रांश (df)	टी–मूल्य	परिणाम
1.	पुरुष	30	27.37	8.58	2.10	58	.491	स्वीकृत
2.	महिला	30	26.33	7.67				

सारणी क्रं. 03 से स्पष्ट होता है कि शासकीय तथा अशासकीय विद्यालय के पुरुष शिक्षकों के सूचना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता का मध्यमान 27.37 एवं मानक विचलन 8.58 तथा शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय के महिला शिक्षकों के सूचना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता का मध्यमान 26.33 तथा मानक विचलन 7.67 है। महिला एवं पुरुष शिक्षकों के मध्य प्राप्त टी–मूल्य का मान .491 है, जो0.05 सार्थकता स्तर पर सारणीमान 1.96 से कम है अतः परिकल्पना ''शासकीय तथा अशासकीय विद्यालय के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की सूचना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।'' स्वीकृत की जाती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शासकीय तथा अशासकीय विद्यालय के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की सूचना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता में सार्थक अंतर नही है।

ifjdYiuk **H0 -3 :** शासकीय विद्यालयों के महिला एव पुरुष शिक्षकों के मध्य सचूना सम्प्रेषण तकनीकी

क्रं.	विद्यालय	शिक्षक	मध्यमान	मानक विचलन	SED	स्वतंत्रांश (df)	टी–मूल्य	परिणाम
1.	शासकीय	पुरुष 15	23.87	8.04	2.59	28	1.13	स्वीकृत
2.	शासकीय	महिला 15	20.93	5.99				

सारणी क्रं. 04 से स्पष्ट होता है कि शासकीय विद्यालय के पुरुष शिक्षकों के सूचना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता का मध्यमान 23.87 एवं मानक विचलन 8.04 तथा शासकीय विद्यालय के महिला शिक्षकों के सचूना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता का मध्यमान 20.93 तथा मानक विचलन 5.99 है। शासकीय विद्यालय के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के मध्य प्राप्त टी–मूल्य का मान .1.13 है, जो0.05 सार्थकता स्तर पर सारणीमान 2.04 से कम है अतः परिकल्पना ''शासकीय विद्यालय के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की सूचना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता के मध्यमानों में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।'' स्वीकृत की जाती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शासकीय विद्यालय के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की सूचना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

ifjdYiuk **H0 -4 :** अशासकीय विद्यालयों के महिला एव पुरुष शिक्षकों के मध्य सूचना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता के मध्यमानों में कोई अंतर नहीं होगा।

क्रं.	विद्यालय	शिक्षक	मध्यमान	मानक विचलन	SED	स्वतंत्रांश (df)	टी–मूल्य	परिणाम
1.	अशासकीय	पुरुष 15	30.87	7.864	2.38	28	.363	स्वीकृत
2.	अशासकीय	महिला 15	31.73	4.86				

सारणी क्रं. 05 से स्पष्ट होता है कि अशासकीय विद्यालय के पुरुष शिक्षकों के सूचना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता का मध्यमान 30.87 एवं मानक विचलन 7.864 तथा अशासकीय विद्यालय के महिला शिक्षकों के सचूना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता का मध्यमान 31.73 तथा मानक विचलन 4.86 है। अशासकीय विद्यालय के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के मध्य प्राप्त टी–मूल्य का मान .363 है, जो0.05 सार्थकता स्तर पर सारणीमान 2.04 से कम है अतः परिकल्पना ''अशासकीय विद्यालय के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की सूचना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता के मध्यमानों में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।'' स्वीकृत की जाती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अशासकीय विद्यालय के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की सूचना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

fu"d"kZ ,oa lq>ko % उपरोक्त अध्ययन के पश्चात हम कह सकते है कि शासकीय महाविद्यालय के शिक्षकों अशासकीय शिक्षकों की अपेक्षा सूचना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता में कमी पायी गयी है लेकिन पुरुष एवं महिला शिक्षकों की सूचना सम्प्रेषण तकनीकी में सार्थक अंतर नही पाया गया जिसके आधार पर हम कह सकते हैं कि पुरुष एवं महिला शिक्षकों की सूचना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता लगभग समान है सभी समान ज्ञान रखते है एवं शासकीय विद्यालय के महिला पुरुष एवं महिला शिक्षकों व अशासकीय पुरुष एवं महिला शिक्षकों की सूचना सम्प्रेषण तकनीकी में भी कोई सार्थक अंतर नही पाया गया।

अतः सूचना सम्प्रेषण तकनीकी साक्षरता की कमी को दूर करने के लिये शासकीय शिक्षकों हेतु समय समय पर विशेष कम्प्यूटर जागरुकता एवं साक्षरता संबंधी कार्यक्रम चलाये जाना चाहिये और ऐसे कार्यक्रमों में शामिल होने के लिये सभी शिक्षकों की अनिवार्यता होना चाहिये जिससे शासकीय शिक्षकों की सूचना सम्प्रेषण साक्षरता का स्तर बढ़ सके और वर्तमान में शिक्षण कार्य में सूचना सम्प्रेषण तकनीकी का उपयोग कर विद्यार्थियों को लाभान्वित किया जा सके।

lUnHkZ %

- बडे फोर्ड, डेंनिसे. (2004), ''चार्टर स्टेटमेन्ट ऑफ टेक्सोनॉमी एण्ड सिमेन्टिक्स स्पेशल इन्ट्रेस्ट''.
- सिंग, अर्जुन (2005), एनाग्यूरल एडरेस एट आई.सी.ड़ी ई. 2005 बाई मिनिस्टर ऑफ एच.आर.डी. गर्वेमेन्ट ऑफ इडिया।
- गोविन्दा, आर. एण्ड बिश्वल, के. (2006) ''मैपिंग लिस्ट्रेसी इन इण्डिया : हू आर द इलिस्ट्रेस एण्ड वेयर डू वी फाइन्ड देम?'' (यूनेस्को)।
- सासेन, शशीका (1991) द ग्लोबल सीटी : न्ययूार्क, लंदन, टोकियो, प्रिन्सटन यूर्निवर्सिटी प्रेस प्रिंन्टस।
- पॉवार, के.बी., तिवारी, एम.डी. दीक्षित, एच.पी. (2002) ''आई.सी.टी.इनेबल्ड एजूकेषन'' ए.आई.यू. नई दिल्ली।
- लू.किंग; फ्रिमैन, जॉन जी. (2011) – ''एन एनालिसिस ऑफ रीलेशनशिप बीटवीन इनफार्मेशन एण्ड कम्यूनिकेसन टेक्नोलॉजी (आई0सी0टी0) एण्ड सांइंटिफिक लिट्रेसी इन कनाडा एण्ड आस्ट्रेलिया'' जनरल आर्टिकल्स ; रिपोर्ट रिसर्च.
- यू एजूकेशनल रिव्यू (2009) वाल्यूम : 18 इसू: 2, पलीसर : वाडाविनिक्टो एडममर्सजालेक, पजेः 217–232, जनरल आर्टिकल्स; रिपोर्ट रिसर्च.
- सैमुअल ओलू अड्योयीन (2011) ''आई0सी0टी0 लिट्रेसी अमांग द स्टाफ ऑफ वेस्ट अफ्रिका यूनिवर्सिटी लाईब्रेरिजः ए कम्पटेटिव स्टडी ऑफ अग्लोफोन एण्ड फ्रैंकोफोन कंट्रीज'' जनरल आर्टिकल्स; रिपोर्ट रिसर्च.
- हेस्टरमैन, सॉड्रा (2011) : ''ए कानटेस्टेड स्पेसः द डायलॉग इंटेरेक्सन ऑफ आईसीटी, मल्टीलिट्रीसीस एण्ड अर्लि चाइल्ड हुड'' जनरल आर्टिकल्स ; रिपोर्ट रिसर्च.
- किंग, जांग हाई : जूंग,सनू , योंग ली, (2008) ''डीजाइन ऑफ कंटेन्टस फार आइसीटी लिट्रेसी इन–सर्विस ट्रेनिगं ऑफ टीचर्स इन कोरिया'' जनरल आर्टिकल्स ; रिपोर्ट रिसर्च.
- डमीराले, राजिया; करादेनीज, शीरीन (2010) ''द इफैक्ट आफ यूज ऑफ इनफार्मेशन एण्ड कम्यूनिकेशन टेक्नोलाजीज ऑन ऐलीमेट्री स्टूडेंट टिचर्स, पर्सक्राइबड इनफार्मेशन लिट्रेसी सेल्फ–इंफिसीयंसी'' जनरल आर्टिकल्स ; रिपोर्ट रिसर्च.
- जारेई, अब्बास (2011) ''यूनिवर्सिटी टीचर्स भ्यू ऑन द यूज ऑफ इनफार्मेशन कम्यूनिकेशन टेक्नालॉजी इन टीचिंग एण्ड टीचर्स'' जनरल आर्टिकल्स ; रिपोर्ट रिसर्च.
- रेकाबदर कोलई, सैयद मोरादी, अमुई, (2008) ''इवाल्यवूेसन ऑफ आईसीटी लिट्रेसी डीफरेंस इन ट्रेनिगं स्टूडेंट टीचर्स फार्म द भ्यू सैक्सूअल्टी'' जनरल आर्टिकल्स ; रिपोर्ट रिसर्च.
- सधेरा, कमलजीत क0 (2009) ''वल्यू एडिसन इन इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी एण्ड लिट्रेसी, एन इमपरिकल इन्वेस्टीगेसन'' जनरल आर्टिकल्स; रिपोर्ट रिसर्च.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 197-201

ikB; iLrd dh le> e xFkky; v/;;u dh Hkfedk dk v/;;u

ryUn dekj oek*

प्राचीन काल से साहित्य का महत्व स्थापित है, उस समय हस्तलिखित पुस्तकों का प्रयोग किया जाता था। कागज की जगह वट पत्र, मार्तड पत्र, भोज पत्र, ताम्र पत्र, एवं स्वर्ण तथा केतकी पत्र का उपयोग किया जाता था, साथ ही साथ पुस्तकों को जंजीरों से जकड़कर रखा जाता था। परन्तु वर्तमान समय में आकर्षक शैली में मुद्रित पुस्तक और उसका समूह उन्नति का एक आदर्श नमूना है।

संस्कृत साहित्य में पुस्तकालय के लिये ''सरस्वती भंडार'' शब्द का प्रयोग मिलता है, जिसका अर्थ है– पुस्तकागार, अर्थात् वह भवन जिसमें धर्म, विज्ञान तथा अन्य विषयों का संग्रह हो, जहाँ पुस्तकें नियमित रूप से तालिकायुक्त और सुश्रेणीबद्ध होकर आलमारी में अच्छी तरह सजी रहे एवं उसका उपयोग सरलतापूर्वक किया जा सके, उसी संग्रहित पुस्तक भवन को हम ''पुस्तकालय'' कहते हैं।

iLrkouk % ''पुस्तकालय'' वह स्थान है जहाँ विविध प्रकार के ज्ञान सूचनाओं, स्त्रोतों, सेवाओं आदि का संग्रह रहता है। पुस्तकालय शब्द अंग्रेजी के ''लाइब्रेरी'' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। लाइब्रेरी शब्द की उत्पत्ति लेटिन शब्द लाइवर से हुई है, जिसका अर्थ है–पुस्तक। पुस्तकालय का इतिहास लेखन प्रणाली, पुस्तकों और दस्तावेजों के स्वरूपों को संरक्षित रखने की पद्धतियों और प्रणालियों से जुड़ा है।

पुस्तकालय उस स्थान को कहते हैं जहाँ पर अध्ययन सामग्री संग्रहित रहती है और इस सामग्री की सुरक्षा की जाती है। वास्तव में पुस्तकालय की संकल्पना एक ऐसे बौद्धिक स्थल के रूप में की जानी चाहिये जहाँ शिक्षक, विद्यार्थी और निकटस्थ समुदाय के लोग ज्ञान के गहरे अर्थों और कल्पनाशीलता की तलाश में आएँ। किताबों के सूचीकरण और अन्य व्यवस्थाओं को वहाँ इस प्रकार विकसित किया जाना चाहिये कि बच्चे आत्म निर्भर रूप से पुस्तकालय का उपयोग कर सकें।

प्राचीनकाल में हमारे देश में नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला उज्जैन एवं अन्य विश्वविद्यालय शिक्षा के प्रमुख केन्द्र के रूप में स्थापित थे, उनकी ग्रंथालय की समृद्धि विश्वविख्यात थी। आज भी हम पुस्तकालय के बिना विद्यालय की कल्पना नहीं कर सकते। विद्यार्थियों के स्वाध्याय तथा अध्ययन के लिये साथी उत्पन्न करने में पुस्तकालय का महत्वपूर्ण स्थान है। पुस्तकालय द्वारा दी जाने वाली शिक्षा अनौपचारिक और असीमित होती है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार – विज्ञान संबंधी विषयों को पढ़ाने के लिये जो महत्व प्रयोगशाला का है, तकनीकी विषयों को पढ़ाने के लिये जो महत्व कार्यशाला का है वही महत्व पुस्तकालय का विद्यालय में बौद्धिक तथा साहित्यिक ज्ञान वृद्धि के लिये हैं।

वर्तमान समय में जबकि ज्ञान का विस्फोट हो रहा है, विद्यार्थियों के लिये ग्रंथालय की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। वर्तमान समय में विद्यालय के इस भाग की समुचित व्यवस्था एवं समीक्षा आवश्यक है क्योंकि बालक के लिये पुस्तकालय में पुस्तकों की उपलब्धता तथा प्रबंधन अगर सकारात्मक है तो बालक के अध्ययन आदत एवं स्वाध्याय का विकास समुचित रूप से हो सकेगा अन्यथा इसके विपरीत उसके अध्ययन आदत में बाधा आयेगी क्योंकि बालक कक्षा एक से उच्चतर माध्यमिक स्तर तक दैनिक जीवन का बहुत बड़ा भाग विद्यालय में ही गुजारता है। अतः ग्रंथालय की भूमिका महत्वपूर्ण है।

*व्याख्याता, शिक्षा अध्ययनशाला, बस्तर विश्वविद्यालय, जगदलपुर छ.ग.

जिसके लिये हमें ग्रंथालय के उपयोग का समय, पुस्तकों का रख–रखाव एवं पुस्तक चयन तथा पुस्तकों के निर्गमन पर ध्यान देना आवष्यक है, तभी हम विद्यार्थियों को लाभ पहुँचा सकते हैं।

’kks/k mn~ns’; %

1. छात्रों को स्वअध्ययन हेतु प्रेरणा देने में ग्रंथालय की भूमिका से परिचित कराना।
2. छात्रों को ग्रंथालय के माध्यम से उत्तम अध्ययन आदतों के निर्माण में सहायता प्रदान करना।

’kks/k iz’u %

1 विद्यालय का ग्रंथालय, विद्यालय में अपनी भूमिका किस हद तक निभा रहा है ?
2 क्या पाठ्य पुस्तक को समझने में विद्यालय पुस्तकालय अपनी भूमिका ठीक से निभा पा रहा है?

’kks/k ifjdYiuk,¡ %

H_{01} प्रायोगिक समूह एवं नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों के अध्यापन पूर्व परीक्षण में ग्रंथालय उपयोग पर सार्थक अंतर नहीं होगा।

H_{02} प्रायोगिक समूह एवं नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों के अध्यापन पूर्व परीक्षण में ग्रंथालय उपयोग के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक अंतर नहीं होगा।

H_{03} नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों में अध्यापन पूर्व एवं अध्यापन पश्चात् ग्रंथालय अध्ययन की भूमिका पर सार्थक अंतर नहीं होगा।

’kks/k fof/k %& प्रस्तुत शोध अध्ययन की प्रकृति वैज्ञानिक है, इसमें शोधकर्ता द्वारा प्रायोगिक अनुसंधान विधि से अनुसंधान कार्य को विधिवत सम्पन्न किया गया है।

U;kn’kZ %& प्रस्तुत अध्ययन में बिलासपुर जिले के तखतपुर विकासखण्ड अंतर्गत, प्राथमिक विद्यालय –272 एवं माध्यमिक विद्यालय –120 तथा हाईस्कूल एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के 45 विद्यालय शामिल है। जिसमें संकुल – छतौना अंतर्गत बी.एस.पी.उ.मा. विद्यालय हिर्रीमाइन्स में नियमित अध्ययनरत कक्षा–9वीं के 30.30 छात्र छात्राओं को शामिल किया गया है।

iz;qDr lkaf[;dh % प्रस्तुत लघु शोध में परिकल्पना की सार्थकता की जाँच हेतु निम्न सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया है– मध्यमान , प्रमाणिक विचलन एवं टी परीक्षण ।

vkadMksa dk fo’ys"k.k ,oa O;k[;k %

H_{01} प्रायोगिक समूह एवँ नियँत्रित समूह के विद्यार्थियों अध्यापन पूर्व परीक्षण में ग्रंथालय अध्ययन की भूमिका पर सार्थक अंतर नहीं होगा।

rkfydk &4-01

iz;ksfxd lewg ,oa fu;af=r lewg ds fo|kfFkZ;ksa dk xzaFkky; v/;;u dh iwoZ ijh{k.k dk lkaf[;dh; fo’ys"k.k

क्र.	समूह वितरण	विद्यार्थियों की संख्या N	मध्यमान M	प्रमाणिक विचलन S.D.	Df	't' का मान	सार्थकता
01	प्रायोगिक समूह	30	26.6	14.641	58	0.417	स्वीकृत
02	नियंत्रित समूह	30	25.4	12.32			

O;k[;k % t का सारणीकृत मान 0.01 पर = 2.59, 0.05 पर = 1.96 सारणी क्रमाँक 4.01 से ज्ञात होता है, कि प्रायोगिक समूह का मध्यमान (26.6), नियंत्रित समूह के मध्यमान (25.4) से अधिक है, ततपश्चात सार्थकता की जाँच हेतु t– परीक्षण किया गया, जिसमें गणना से प्राप्त ज का मान 0.417 प्राप्त हुआ। जो कि सार्थकता के स्तर 0.01 के सारणीमान से कम है।

rkfydk &4-01

ik;kfxd leg ,o fu;f=r leg d fo|kfFk;k dk xFkky; v/;;u d iol ikLrkdk dk n.M vkjs[k

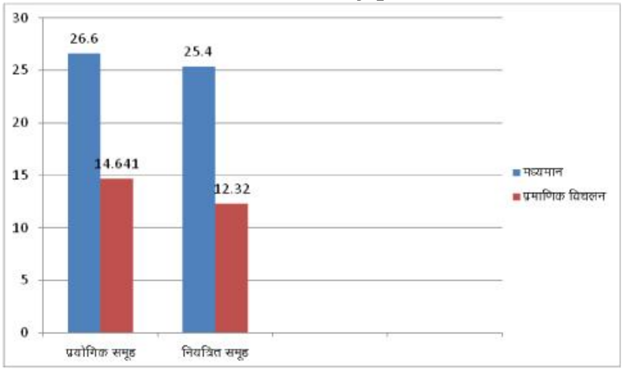

H_{02} प्रायोगिक समूह एवँ नियँत्रित समूह के विद्यार्थियों में अध्यापन पश्चात् ग्रंथालय अध्ययन की भूमिका पर सार्थक अंतर नहीं होगा।

rkfydk &4-02

ik;kfxd leg ,o fu;f=r leg d fo|kfFk;k dk xFkky; v/;;u d i'pkr ikLrkdk dk lkf[;dh; fo'y"k.k&

क्र.	समूह वितरण	विद्यार्थियों की संख्या N	मध्यमान M	प्रमाणिक विचलन S.D.	df	't' का मान	सार्थकता
01	प्रायोगिक समूह	30	53.36	10.425	58	6.736	अस्वीकृत
02	नियत्रित समूह	30	40.63	2.960			

0;k[;k& t का सारणीकृत मान :– 0.01 पर = 2.59, 0.05 पर = 1.96 सारणी क्रमाँक 4.02 से ज्ञात होता है,कि प्रायोगिक समूह का मध्यमान 10.425 है, एवँ नियँत्रित समूह का मध्यमान 2.960 से अधिक है। तत्पश्चात् सार्थकता की जाँच हेतु t परीक्षण किया गया, जिससे गणना से प्राप्त ज का मान 6.736 प्राप्त हुआ, जो कि सार्थकता के स्तर 0.01 के सारणीमान से अधिक है।

rkfydk &4-02

ik;kfxd leg ,o fu;f=r leg d fo|kfFk;k dk xFkky; v/;;u d i'pkr ikLrkdk dk n.M vkjs[k

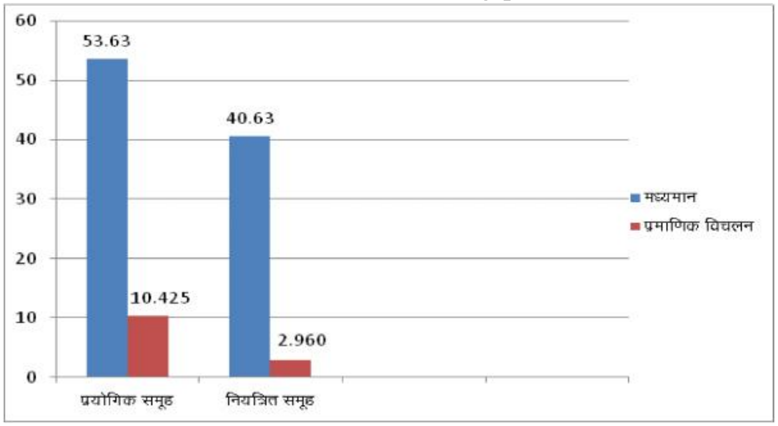

H_{03} नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों में अध्यापन पूर्व एवं अध्यापन पश्चात् ग्रंथालय अध्ययन की भूमिका पर सार्थक अंतर नहीं होगा।

rkfydk &4-03

fu;f=r leg d fo|kfFk;k e v/;kiu iol ,o v/;kiu i’pkr d ikIrkdk dk lkf[;dh; fo’yys"k.k&

क्र.	समूह वितरण	विद्यार्थियो की संख्या N	मध्यमान M	प्रमाणिक विचलन S.D.	df	't' का मान	सार्थकता
01	नियंत्रित	30	26.86	12.32	58	2.31	स्वीकृत
02	नियंत्रित		27.63	2.96			

0;k[;k& t का सारणीकृत मान :– 0.01 पर = 2.59, 0.05 पर = 1.96 सारणी क्रमाँक 4.03 से ज्ञात होता है,कि नियँत्रित समूह का अध्यापन पूर्व मध्यमान 26.86 है, एवँ अध्यापन पश्चात् मध्यमान 40.63 अधिक है। तत्पश्चात् सार्थकता की जाँच हेतु ज परीक्षण किया गया, जिससे गणना से प्राप्त t का मान 2.31 प्राप्त हुआ, जो कि सार्थकता के स्तर 0.01 के सारणीमान से कम है।

rkfydk &4-03

fu;f=r leg d fo|kfFk;k e v/;kiu iol ,o v/;kiu i’pkr d ikIrkdk dk n.M vkj[k

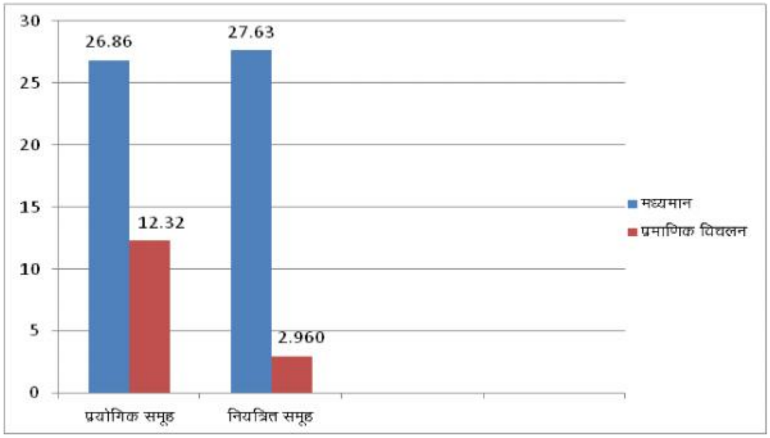

fu"d"k %

1. प्रायोगिक समूह एवं नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों के अध्यापन पूर्व परीक्षण में ग्रंथालय अध्ययन की भूमिका पर सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
2. प्रायोगिक समूह एवं नियँत्रित समूह के विद्यार्थियों के अध्यापन पश्चात् ग्रंथालय अध्ययन की भूमिका पर सार्थक अंतर पाया गया।
3. नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों में अध्यापन पूर्व एवँ अध्यापन पश्चात् ग्रंथालय अध्ययन की भूमिका पर सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

lUnHk %

1. भाम्बरी निशि, तिवारी प्रीति (2005) – "सी.बी.एस.ई.बोर्ड एवं राज्य शिक्षा बोर्ड छत्तीसगढ. द्वारा संचालित उच्चतर माध्यमिक पाठशालाओं में अध्ययनरत विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि एवं अध्ययन आदत का तुलनात्मक अध्ययन। रिसर्च डिजिट वॉल–1, इसू–1, जुलाई–सितम्बर–2006, पेज–37
2. भटनागर ,सुरेश (2005):– ''डेवलपमेंट ऑफ लर्नर एंड टीचिंग, लर्निंग प्रोसेस'', आर.लाल बुक डिपार्टमेंट मेरठ, पेज–486
3. जी.सी. पी. आई(1981)– ''शासकीय उच्चतर माध्यमिक षाला इलाहाबाद में ग्रंथालय भवन एवं उसकी स्थिति के बारें में अध्ययन''। रिसर्च एन.सी.ई.आर.टी.न्यू दिल्ली'' पेज–889

4. गालसासी, पी.जी.(1988)–''अध्ययन आदत कौशल पर माध्यमिक शालाओं का अध्ययन समय सारणी के आधार पर। (पूना) पी.एच.डी.एजूकेशन पूना यूनिवर्सिटी 5 वें सर्वे एजूकेशन रिसर्च एन.सी.ई.आर.टी. न्यू दिल्ली वॉल–2, पेज–1180

5. इंद्रिया ,जी.के.(1992)– ''अध्ययन कार्य एवं अध्ययन आदत शोध कार्य'' एम.फील. एजूकेशन श्री व्यंकेटश्वरा यूनिवर्सिटी 5वाँ सर्वे ऑफ एजूकेशन रिसर्च एन.सी.ई.आर.टी., न्यू दिल्ली,वॉल–2,पेज–886

6. कॉल, सी. एल. एण्ड गुप्ता, जे.के.(1990)– ''ने उच्चतर माध्यमिक शालाओं के पुस्तकालय का अध्ययन उसकी सुविधाओं एवं उपयोग पर किया गया था। (इन्डीपेंडेट स्टडी) ई.आर.आई.सी.फाउडेन्ड, 5वाँ सर्वे आर्फ एजूकेशन रिसर्च एन.सी.ई.आर.टी.,न्यू दिल्ली, वॉल–2, पेज–1183

7. मालाकार, उदयसिंह(2008):– ''पाठ्य सहगामी कियाओं के संदर्भ में विद्यार्थियों के व्यक्तित्व एवं शैक्षिक उपलब्धि का विश्लेशणात्मक अध्ययन''।

8. सेन, भारत कल्पना (1992)– ''माध्यमिक विद्यालयों में उच्च एवं निम्न क्षमता वाले बालक का उनके व्यवहारिक बुध्दि एवं उनकी अध्ययन आदत पर अध्ययन''। 5वाँ सर्वे ऑफ एजूकेशन रिसर्च एन.सी.ई.आर.टी., न्यू दिल्ली, वॉल–11, पेज–1915

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 202-204

e/;dkyhu fgUnh lkfgR; esa ukjh dh fLFkfr

fdju*

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में नारी के गरिमामय उदात्त स्वरूप और उसकी अवदशा का प्रस्फुटन हुआ है। मध्यकालीन कवियों ने अपनी वैराग्य भावना से प्रभावित होकर नारी की अवदशा का ही विशेष रूप से उल्लेख किया है। इस सम्बन्ध में डॉ0 उषा पाण्डेय का मत द्रष्टव्य है–''मध्ययुगीन कवियों द्वारा चित्रित नारी के सत् एवं असत् दोनों रूप उपलब्ध हैं। आदर्श तथा कल्पना के प्रति मोह के कारण उसकी आदि विशेषताओं को परिलक्षित कर कवि ने उसे सुन्दरी की संज्ञा दी और कभी उसकी दुर्बलता एवं दोषों पर खीझ कर उसे कुनारी कहा है। सत् एवं असत् आदर्श एवं यथार्थ की इन्हीं रेखाओं पर मध्ययुगीन कवि ने नारी का चित्रण किया है।''[1]

संत साहित्य में संत कवियों ने नारी की निन्दा अनेक प्रकार से की है। उन्होंने नारी को माया जाल में फंसाने वाली माना है। डॉ0 गजानन शर्मा के अनुसार, ''नारी माया जाल में फंसाने वाली मानी गई है, क्योंकि उसी से परिवार का विस्तार होता है और पुरुष की सहज स्वच्छन्दता वृत्ति पर रोक लगती है। घुमक्कड़, फक्कड़ और मनमौजी लोग ही जब नारी को इस कारण निन्दनीय ठहरा देते हैं तो सन्तजन हिन्हें प्रियतम परमात्मा से मिलन की लगन लगी हुई थी और जिनका मनपक्षी प्रत्येक क्षण विद्युद्वेग से उड़कर प्रिय के समीप पहुँच जाने की तीव्र अभिलाषा रखता था, क्यों न नारी को हेय समझते और इस प्रकार परम ज्योति से, संतों का मन विकर्षित करने के प्रयत्न में तत्पर रही थीं।[2] इतना ही नहीं निर्गुण संत कवियों ने नारी की निन्दा साधारण नागिन ही नहीं अपितु काली नागिन के सदृश बताते हुए की है–

dke.kh dkyh ukx.kh] rhU;w ykd e>kfj
jke lugh Åcjs] fo"kbZ [kk;s >kfjAA[3]

कृष्ण भक्ति काव्य में नारी को अग्नि के रूपक के रूप में प्रयोग किया गया है। इस सम्बन्ध में प्रियदास का कथन है कि स्त्री के पास पहुंचते ही मनुष्य का शान्त मन गर्म पानी की तरह खौलने लगता है।

uhj Bnz cUgh fudV] ;Fkk xje ºosa tkrA
fi;nkl R;kSa 'kkUreu frfj;k rhj fu'kkrAA[4]

प्रायः निर्गुण और सगुण भक्त साधकों ने नारी की निन्दा की है। इस सम्बन्ध में डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है–''केवल स्त्री जाति को ही इन सन्तों द्वारा हानि पहुँचती है। सभी युगों व देशों के निवृत्ति मार्गियों का यह नियम रहा है कि वे स्त्री धन की निन्दा करते आये हैं और इस प्रकार वैराग्य की उस भावना को जागृत करते रहे हैं जो निर्गुणियों को भी स्वीकार है। कबीर ने स्त्रियों को नरक का कुण्ड बताया है। पलटू को अस्सी वर्ष की स्त्री का विश्वास नहीं और यह बात खटकती है। दुःख की बात है कि स्त्रियों में इन लोगों ने केवल भोले भाव को ही देखा है, उनके आध्यात्मिक आदर्श की ओर से आँखें मूंद ली हैं, जिसे उन्होंने उस शाश्वत प्रेमी की भार्याएँ बनाकर स्वयं अपनाने का विचार किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि स्त्रियों को केवल यौन भाव वाले अंश को ही उन्होंने गर्हित माना है किन्तु स्त्रियों में केवल यही भाव सब कुछ नहीं है और न पुरुष ही इस भाव से रहित है।[5] यद्यपि नारियों की इतनी निन्दा करने के पश्चात् भी सन्त कवियों ने नारी के मातृत्व रूप की

*छात्रा, एम.फिल्. हिन्दी, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

प्रशंसा की है। इस सम्बन्ध में डॉ0 गजानन शर्मा का मत द्रष्टव्य है–''सन्तों ने नारी के मातृत्व रूप की सदा वन्दना की है। चाहे परिवार के झमेलों की व्यंजना करने के लिए ''माता'' को भी दो एक स्थलों पर साथ न देने वाले व्यक्तियों में गणना हो गयी हो किन्तु सन्तों का मस्तक माता के लिए सदा ही श्रद्धावनत रहा है और उसके हृदय में माता के सहज स्नेह–वात्सल्य के प्रति असीम कृतज्ञता का भाव उमड़ रहा है।''[6] प्रायः सन्तों व भक्तों के कथन इस बात के प्रमाण हैं कि मध्य युग में पुरुष विशेष रूप से परायी स्त्री में आसक्त था। निर्गुण व सगुण दोनों ही भक्ति धाराओं के कवियों ने इस कुकृत्य के प्रति विरोध प्रदर्शित किया है। कबीर दास जी के एक दोहे में इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है। कबीर दास जी का कथन है कि ''कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है जो परनारी के प्रति अनुरक्ति न रखता हो। पराई नारी में अनुरक्ति खाते समय खांड़ सी मीठी परन्तु अन्त में काल विष के समान प्राण हर लेने वाली होती है।

ijukjh ijlqnjh] fcjyk cpS dksbZA
[kkr ehBh [kkaM lh] vUr dkfy fo"k gksbZAA[7]

भक्तिकालीन कवियों ने स्त्रियों के लिए विशेष रूप से पातिव्रत धर्म का उल्लेख किया है। इस सम्बन्ध में डॉ0 उषा गुप्त के विचार द्रष्टव्य है–''जो स्त्रियां इस धर्म का अनुसरण करती हैं, वह स्त्रियों में शिरोमणि हैं। जो इस प्रथा से विचलित होती हैं, उनके समान निन्दनीय जगत में दूसरा कुछ नहीं। सूफी साहित्य स्त्रियों के पातिव्रत धर्म के सम्बन्ध में मुखर है।''[8]

मध्य युग में विशेष रूप से इन भक्त कवियों ने स्त्रियों के लिए भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। इस सम्बन्ध में डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल का मत है–''निगुर्णियों ने स्वयं माना है कि पुरुष भी स्त्री के लिए उसी प्रकार बन्धन स्वरूप है जिस प्रकार स्त्री पुरुषों के लिए हो सकती है। फिर भी यह उल्लेखनीय है कि उन्हें स्त्रियों के व्यक्तित्व से कोई दोष नहीं था क्योंकि उनके अनुसार वह भी पुरुष की ही भांति ईश्वर की सृष्टि हैं। इसके विपरीत स्त्रियों की इस बात के लिए उनका ऋणी होना चाहिए कि उन्होंने उनके लिए भी भक्ति का द्वार खोल दिया। निगुर्णियों में स्त्रियों को अपनी शिष्यायें थीं जो उच्च परिवारों की थीं। चरण दास की शिष्याएँ सहजोबाई, दयाबाई थीं, निर्गुण पंथ के परमोच्च रत्नों में से है। कबीर की स्त्री जिसका जो भी नाम रहा हो एक पूर्ण शिष्या का उदाहरणस्वरूप थीं।[9] कृष्ण भक्ति साहित्य में भी भक्तों में मीरा बाई ने स्त्री भक्ति का इतना ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत कीं कि उसके समक्ष इस प्रकार की समस्त संकुचित विचारधारायें छिन्न–भिन्न हो जाती हैं।[10]

मध्य युग में समय के अनवरत प्रवाह के कारण मुगल शासनकाल में नारी को मुख्य रूप से विलासिता के साधन के रूप में ही स्वीकार किया गया है और कविता भी श्रृंगारिक भावनाओं से ओत–प्रोत थी। अतः श्रृंगार की साम्राज्ञी नारी को एक बार फिर पुरुष की भोग्या मात्र बनना पड़ा। ''सूर की आराध्य राधा देव, घनानन्द के प्रांगण में घोर श्रृंगार की सृष्टि कर विलासिता की सामान्य राह चलती प्रेयसी बनकर वासनाजन्य भावों को विस्तार देने का साधन मात्र बन गयीं। भक्ति कालीन सौन्दर्य विलास के गृहों में आबद्ध हो गतिहीन हो गया।''[11] रीतिकालीन काव्य में श्रृंगारिकता की भावना प्रमुख है। इस सम्बन्ध में डॉ0 नगेन्द्र के कथनानुसार ''इन रीतिकालीन कवियों की श्रृंगारिक भावनाओं में किसी प्रकार की मानसिक ग्रन्थि न होकर शरीर सुख की वह साधन है जिसमें विलास के समस्त उपकरणों की संग्रह की ओर ही व्यक्ति की दृष्टि केन्द्रित रहती है। प्रेम को अतिन्द्रीय रूप देने अथवा वासना के उन्नयन का प्रचलन नहीं होता। यही कारण है कि संयोग के नग्न चित्रों तथा नायकों की घृष्टताओं के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत करते समय इन्होंने किसी प्रकार का संकोच नहीं किया है। उनकी निर्द्वन्द्विता पत्नियों के आसुओं से व्यक्त होने वाली निराशा और पीड़ा को ग्रहण नहीं कर पाती। वास्तव में नारी के प्रति इन कवियों की दृष्टि सामन्तीय ही रही। ये उसे पुरुष के समकक्ष समाज की चेतन इकाई अथवा पुरुष का अर्द्धांग न समझकर भोग्य सम्पत्ति के समान उसे भोग का मात्र उपकरण समझते हैं।''[12] इन सम्बन्ध में पंत की निम्नलिखित पंक्तियां इसका स्पष्ट उदाहरण हैं–

{kq/kk dkeo'k xr ;qxus i'kq&cy ls dj tu'kkflrA
thou ds midj.k&ln`'k ukjh Hkh dj yh vf/kÑfrAA[13]

डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार ''रीतिकाल के पुरुष को नारी विशेष की वैयक्तिक सत्ता से प्रेम नहीं था, उसके नारीत्व से ही प्रेम था।''[14] इस प्रकार नारी के प्रति भक्त कवियों की दृष्टि वैराग्य भावना से ओत–प्रोत है तो रीतिकाल में यह मनोविनोद तथा ऐन्द्रिक सुख प्राप्ति का सहज साधन। दोनों कालों में उसकी स्थिति का ह्रास हुआ और वह कवियों की सहानुभूति प्राप्त कर पूर्णरूपेण उनकी विवेचना तथा श्रद्धेय भावना का विषय बन सकी।[15]

l UnHkZ %

1. पाण्डेय, उषा. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना, पृ0 42
2. शर्मा, गजानन. भक्तिकालीन काव्य में नारी, पृ0 42.
3. कबीर ग्रन्थावली, पृ0 39; गुप्ता, आशा. मध्ययुगीन सगुण एवं निर्गुण हिन्दी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ0 132
4. अनुराग शतक, पृ0 158; गुप्ता, आशा. मध्ययुगीन सगुण एवं निर्गुण हिन्दी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ0 134
5. बड़थ्वाल, पीताम्बर दत्त, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ0 327
6. शर्मा, गजानन. भक्तिकालीन काव्य में नारी, पृ0 62
7. कबीर ग्रन्थावली, पृ0 39
8. गुप्ता, आशा. मध्ययुगीन सगुण एवं निर्गुण हिन्दी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ0 136
9. बड़थ्वाल, पीताम्बर दत्त. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ0 328
10. गुप्ता, आशा. मध्ययुगीन सगुण एवं निर्गुण हिन्दी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ0 138
11. चौधरी, नरेश. भारतीय नारी का स्वरूप, पृ0 18
12. सं0 डॉ0 नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 303–304
13. डॉ0 नगेन्द्र, रीति काव्य की भूमिका, पृ0 171
14. वही
15. चौधरी, नरेश. भारतीय नारी का स्वरूप, पृ0 18

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 205-207

Ñf"k vk/kkfjr vk; ,o a dj % fof/kd voyksdu

iq'ikr dqekj c?ksy*

i"BHkwfe % भारत में आयकर का इतिहास सन् 1860 से प्रारंभ होता है। सन् 1857 के सैनिक विद्रोह के परिणामस्वरूप हुई हानियों की पूर्ति हेतु सर जेम्स विल्सन ने कर लगाया। सन् 1860 से आयकर भारतीय कर व्यवस्था का स्थाई रूप बन गया। सन् 1886 में एक नया आयकर अधिनियम बनाया गया और यह सन् 1917 तक लागू रहा। तत्पश्चात 1918 में एक नया आयकर अधिनियम बनाया गया, इसके बाद सन् 1922 में एक नया आयकर अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम में भी अनेकों संशोधन किये गये, जिनमे परिणामस्रूप बहुत जटिल हो गया, इससे सरल व स्पष्ट करने हेतु सन् 1956 में भारतीय सरकार ने इसे विधि आयोग के सुपुर्द कर दिया। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार ने निर्धारितियों की कठिनाइयों तथा कर चोरी को न्यूनतम करने के लिये सुझाव देने हेतु एक कमेटी नियुक्त किया। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट सन् 1959 में दी। विधि आयोग और इस कमेटी की रिपोर्टों के आधार पर वर्तमान आयकर अधिनियम सितंबर 1961 में लोकसभा द्वारा पास किया गया। यह अधिनियम 1 अप्रैल 1962 से लागू किया गया। यह सम्पूर्ण भारत (जम्मू और काश्मीर सहित) में लागू होता है। इस अधिनियम में भी अनेक भार संशोधन हो चुका है और परिणामस्वरूप वर्तमान आयकर अधिनियम भी अत्यधिक जटिल हो गया। इसे सरल और स्पष्ट बनाने हेतु सुझाव देने के लिये जून 1977 में एक कमेटी की गई और कमेटी में अपने रिपोर्ट भी दे दी है, परन्तु अभी तक उसके सुझावों को पूरी तरह क्रियान्वित नहीं किया गया है।[1]

iLrkouk % धारा 2(1A) के अनुसार कृषि आय करने वाली उपज से जो आय होती है, वह कृषि आय कहलाती है। कृषि आय की परिभाषा को मुख्यतः तीन भागों में बांटा जा सकता है जो कि इस प्रकार हैं : d½ कोई किराया अथवा लगान जो ऐसी भूमि में से प्राप्त हो जो भारत में स्थित है तथा कृषि के कामों में लायी जाती है। [k½ ऐसी भूमि से आय जो कृषि क्रिया अथवा अपनी उपज को विक्रय योग्य बनाने वाली क्रिया करने से हो अथवा अपनी उपज को बेचने से हो। x½ खेत मे मकान से कोई आय।[2]

धारा 10 के अन्तर्गत कृषि आयकर से मुक्त है, परन्तु कर निर्धारण वर्ष 1974–75 से कृषि आय को अन्य आय पर लागू होने वाले कर दी दर से निर्धारण हेतु कुल आय शामिल किया जाता है। धारा 2(1) के अनुसार किराया या लगान कृषि आय के रूप उस समय माना जायेगा जबकि : (क) वह भूमि से प्राप्त हो, (ख) भूमि भारत में स्थित हो, (ग) भूमि का उपयोग कृषि के प्रयोजनों के लिये किया गया हो।[3]

mn~ns'; % प्रस्तुत शोध ''कृषि आय आयकर तथा इनका विधिक अवलोकन'' कर उद्देश्य निम्नलिखित है :

1. सरकारी योजनाओं तथा शासन द्वारा प्रस्तावित कृषि आय तथा कर संबंधित प्रयोजनों को कृषकों व आम नागरिकों तक पहुंचाना।
2. कृषकों को कृषि करों के छूटों में संबंधित योजनाओं को सउदाहरण पेश कर जागरूक बनाना।
3. देश के कृषिगत् व आर्थिक परिक्षेत्रा के मूलभूत ढांचों को नागरिकों व कृषकों में मनोवैज्ञानिक रूप से चिन्तन कराना।
4. कृषिगत उपज व कृषिगत फसलों की विशेष जानकारियां कृषकों को बतलाना।
5. देश के आर्थिक उन्नति के लिये आम नागरिकों में करों जैसे प्रावधानों को विभिन्न योजनाओं को बतलाना।

---

*शाध छात्र, विधि विभाग, मेट्स विश्वविद्यालय रायपुर, छ.ग.

df"k vk; d i dkj ,o dj nkf;Ro % कृषि आय के प्रकार एवं कर का दायित्व निम्न है :–

1- fdjk;k vFkok yxku % जब भूमि का स्वामी कृषि कार्य में उपयोग करने के लिये भूमि का अधिकार किसी अन्य व्यक्ति को देता है तो उसके बदले में उसे किराया अथवा लगान मिलता है, वह उसकी कृषि आय होती है।

2- df"k dk;k l vk; % कृषि कार्यों से आशय भूमि को जोतना, पानी देना, बीज बोना आदि से है। यदि भूमि पर कृषि कार्य नहीं किया गया है और भूमि से प्राप्त हुई है तो इसे कृषि आय नहीं कहा जा सकता। भूमि पर स्वतः जो पेड़–पौधे उग आते हैं, उनसे होने वाली आय कृषि आय नहीं कही जा सकती है, क्योंकि उनके पैदा करने में कृषि की कोई क्रिया नहीं की गई है।

3- inkokj dk cpu ;kX; cuku l vk; % किसान की उपज है, यदि वह उपज उसी रूप में बाजार में न बिक सके तो उसको बेचने योग्य बनाने के लिये जो कार्य किया जाता है, उससे जो आय होती है, वह कृषि आय कहलाती है। जैसे कि कृषकों को कृषि से तम्बाकू के हरे पत्ते प्राप्त होते हैं। वह उन्हें सुखाकर तथा बण्डल बनाकर बाजार में बेचता है। तम्बाकू के पत्ते सुखाने तथा बण्डल बनाने से जो आय होगी वह भी कृषि आय होगी।

4- mit cpu l vk; % किसान अथवा लगान प्राप्तकर्ता अपनी उपज को यदि नियमित रूप से दुकान लेकर भी बेचता है तो दुकान की आय कृषि आय कहलाती है।

5- [kr d edku l vk; % किसी खेत के मकान से आय को कृषि आय तब माना जाता है, जब उस मकान का स्वामी भूस्वामी अथवा भूमि का किरायेदार हो तथा चह मकान उसके उपयोग में है।

6- नर्सरी में उगाये गये छोटे पौधे या बीज से उत्पन्न किया गया छोटा पौधा बेचने से आय कृषि आय जानी जाती है।

अंशतः कृषि आय कभी कभी आय मिश्रित होती है, जो कृषि आय होती है, तथा अंशतः गैर कृषि (व्यापारिक) आय होती है। कर योग्य आय के अंश की गणना करने के लिये करदाता द्वारा की हुई ऐसी कृषि उपज का बाजार मूल्य घटा किया जायेगा, परन्तु इस संबंध में कृषि करने का कोई व्यय नहीं घटाया जायेगा।[4]

pk; d mRiknu rFkk fuek.k l vk; % भारत में चाय उगाकर एवं उसका निर्माण करके बेचने से होने वाली आय का 60% भाग कृषि मानी जाती है और 40% भाग व्यवसायिक आय मानी जाती है।

dkQh d mRiku ,o fuek.k l vk; %

1. करदाता द्वारा भारत में कॉफी उगाकर एवं उसको संशोधित करके बेचने से होने वाली आय को 75% भाग कृषि आय मानी जाती है और 60: भाग व्यवसायिक आय मानी जाती है।
2. करदाता द्वारा भारत में कॉफी उगाकर उसको संशोधित करके, भूनकर एवं पीसकर बेचने से होने वाली आय का 60% भाग कृषि आय मानी जाती है तथा 60% भाग व्यावसायिक आय मानी जाती है।

jcM d mRiknu vkj mlel fofufer yVDl ;k fluDl l vk; % करदाता और भारत में उगाई गई रबड़ से आय– करदाता और भारत में उगाई गई रबड़ से तथा उसके द्वारा निनिर्मित या प्रसंस्कृत अपकेन्द्रित लेटेक्स या सिनेक्स के विक्रय होने वाली आय का 65% भाग कृषि आय मानी जाती है और 35% भाग व्यावसायिक मानी जाती है।[5]

dj&nkf;Ro % कृषि आय पूर्णतया कर–मुक्त होती है, परन्तु एक व्यक्ति हिन्दू अविभाजित परिवार तथा व्यक्तियों के समुदाय की दशा में यदि उनकी गैर कृषि कर योग्य आय न्यूनतम कर–योग सीमा से अधिक हो और कृषि आय 6000 रू. से अधिक हो तो कृषि आय की अन्य ताय पर देय कर को ज्ञान करने के लिये कुछ आय में जोड़ा जाएगा और बाद में कृषि आय पर कर की छूट दी जाएगी।[6]

fofo/k voykdu % कृषि आय तथा कर संबंधी कई मामले पूर्व में आये हैं, जिसे न्यायिक निर्णयों द्वारा उच्चतम न्यायालय ने मामलों के निपटारे कर कई सरल निर्णय प्रस्तावित किये हैं, जिनमें से कुछ मामले इस प्रकार हैं :–

महाराजाधिराज सर कामेश्वर सिंह बनाम स्टेट ऑफ बिहार (1959) 37 आई.टी.आर. 388 एस. सी. के मामले में कहा गया कि कृषि के कार्यो में आने वाली भूमि के संबंध में प्रदेय किराया या लगान

की रकम के बकाये पर दिया जाने वाला ब्याज कृषि आय के रूप में नहीं माना जायेगा, क्योंकि इस परिस्थिति में भूमि इस प्रकार ब्याज से होने वाली आय कय प्रत्यक्ष स्त्रोत नहीं है। करदाता के द्वारा प्राप्त की गई ऐसी आय जिसे उसमें अपनी माफी की भूमि को पट्टा कर देने के द्वारा प्राप्त किया है, वह कृषि आय है, क्योंकि भूमि इस आशय का प्रत्यक्ष स्त्रोत है।

सी.आई.टी. बनाम के.एस. इमाम साहेब (1969) 71 आई.टी.आर. 742 (मद्रास) के मामले में कहा गया है कि नारियल के पेड़ से पट्टे से प्राप्त आय जो कि इन पेड़ों के फलों के उपभोग के संबंध में है, कृषि आय नहीं है, क्योंकि भूमि इसका प्रत्यक्ष स्त्रोत नहीं है।

बच्चा एफ.जदर बनाम सी.आई.आटी. (1955) 27 आई.टी.आर. (एस.सी.) के माले में न्यायालय ने तर्क दिया कि जहां एक करदाता किसी कम्पनी का अंशधारी है और लाभांश प्राप्त करता है, वहां लाभांश के रूप में प्राप्त रकम उसकी कृषि आय नहीं है, भले ही लाभांश का भुगतान कम्पनी की कृषि आय से किया गया हो।

सी.डब्ल्यू.टी. बनाम श्रीमती शीलादेवी (1970) 77 आई.टी.आर. 639 (पंजाब) के बाद के न्यायालय ने कहा कि उस भूमि को भी कृषि भूमि माना जाना चाहिए कृषि किये जाने योग्य है, अर्थात् जिस पर कृषि की जा सकती है। भले ही उस पर किसी भी समय कृषि न की गई हो।7

I |>ko % प्रांरभिक दशा में हम आत्मीय चिन्तन कर यह महसूस करते हैं कि कृषि, कृषि आय तथा इनसे संबधी करों के बारे में आम नागरिकों तथा कृषकों को कुछ भी जानकारियां नहीं है। इन लोगों से निम्न आधारों द्वारा आत्मीय चिन्तन करवाया जा सकता है :– 1- सरकार द्वारा संचालित योजनाओं को विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा तथा शिविरों के माध्यमों से करों व कृषि आय संबंधी योजनायें बतलाना होगा। 2- विज्ञापन चलचित्रों द्वारा लोगों व कृषकों में जागरूता लानी होगी। 3- पठन व पाठन सामग्रियों द्वारा लोगों में चेतना जागृत करनी होगी। 4- कृषि संबंधी क्रेडिट कार्ट्स अन्तव्यवसायी योजना, किसान ऋण योजना उपज फसल व उपकरण संबंधी जानकारियां प्रदान करनी होगी। 5- राज्य के छोटे छोटे ग्रामों व कस्बों में कृषि संबंधी मेला संचालित कर विद्वानों द्वारा मार्ग–दर्शन तथा निःशुल्क सेवायें प्रदान करवाने होंगे।

fu"d"kZ % वर्तमान भारत में हमारा भारत वर्ष कृषि आधारित राष्ट्र है, अर्थात् हमारे भारत वर्ष की विकास की गति का पहिया कृषि के आधारभूत ढाचों पर ही केन्द्रित है, परन्तु यह ढाचों को संजोए रखे हुए हाथ ही कमजोर है, इन हाथों को मजबूत करने हेतु इन किसानों को कृषि जैसे मसलों में विभिन्न जानकारी प्रदाय करनी होगी तथा निःशुल्क शिविरों द्वारा कृषि कर जैसे मानवीय दैत्य को इनके हृदय से हटाना होगा तथा इन्हें इसके लाभों से अवगत् कराना होगा तथा करों की उपयोगिता बतलाकर भारत में विकासक्रम को निरंतर बढ़ना होगा।

I UnHkZ %

1. खेर, कैलाश, 2008, आयकर विधि एवं धनकर विधि इलाहाबाद ला एजेसी पब्लिकेशन पी.सी. बनर्जी रोड, इलाहाबाद
2. मेहरोत्रा, एच.सी. और एस.पी. गोयल, 2011–12, आयकर विधि विधान एवं लेखे, तथा आयकर विधान एवं लेखे 52वां संस्कर, साहित्य भवन पब्लिकेशन हास्पीटल रोड, आगरा–3, पृ0 409
3. खेर, कैलाश, 2008, विधि विधान एवं लेखे, तथा आयकर विधान एवं लेखें 52वां संस्करण, साहित्य भवन पब्लिकेशन हास्पीटल रोड, आगरा–3, पृ0 6
4. मेहरोत्रा, एच.सी. और एस.पी. गोयल, 2013–14, आयकर एवं कर नियोजन एवं प्रबंध तथा 55वां संस्करण साहित्य भवन पब्लिकेशन हास्पीटल रोड, आगरा– 3, पृ0 470–471
5. मेहरोत्रा, एच.सी. और एस.पी. गोयल, 2012–14, विधान एवं लेखे, 53वां संस्करण, साहित्य भवन पब्लिकेशन हास्पीटल रोड, आगरा–3, पृ0 19
6. मेहरोत्रा, एच.सी. और एस.पी. गोयल, 2011–12, विधान एवं लेखे, 53वां संस्करण, साहित्य भवन पब्लिकेशन हास्पीटल रोड, आगरा–3, पृ0 417
7. राय, कैलाश, 2008, आयकर विधि तथा धनकर विधि इलाहाबाद जॉ एजेंसी पब्लिकेशन 10, सर.पी.सी. बनर्जी रोड इलाहाबाद, पृ0 5

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 1-5

The Birth and The Development of The Mythological Genre in The India Film Industry:1912-1931

Achal Vibhu Tripathi*

In 1913, when Dada Saheb Phalke produced and directed *Raja Harishchandra*, it was nothing short of a momentous event for it marked the birth of India's first feature film with a well-defined narrative structure.At the same time, one must not forget that before Phalke, many Indians including H. S. Bhatwadekar, Hiralal Sen and J.F. Madan had made short films, but these were topicals or newsreel films. Raja Harishchandra therefore qualifies not only as a truly narrative film but also as one belonging to a distinct genre, that is, mythological.

THE MYTHOLOGICAL NARRATIVES : Mythological films drew upon content from Puranic mythology. Moreover, it was not a coincidence that the early film industry chose the mythological narrative. Phalke belonged to a traditional Hindu family, his father being priest and a renowned Sanskrit scholar. Thus, from an early age, Phalke became familiar not only with the traditions of storytelling in Hindu mythology but also with the character of dramaturgy in Sanskrit plays. It is not surprising therefore that when he saw the *Life of Christ* in 1910, he could transpose the narrative contexts to the story of Krishna and Rama in Gokul and Ayodhya.[1] The die had thus been cast.

There was also other reasons why early filmmkers in India were attracted towards mythology. Mythological characters and plots were integral part of India's rich storytelling traditions and lay close to the heart of every Indian. Most of the performing arts were based on mythology. So, when mythological narratives came to be presented through a new medium (cinema), they encountered no problems in terms of their reception. Indeed, even the use of title cards was meaningless in those days as the majority of the cinema-going audience was not literate in the formal sense.The progression of a story could be best ensured if the narrative content was known to the Indian audiences. There was yet another reason for the deployment of mythology in early Indian cinema. Around the beginning of the twentieth century, Indian nationalists in addition to demanding self-rule[2] and swadeshi, had begun to search for and claim an indigenous past. Even Gandhi had metaphorically alluded to an indigenous and ideal form of governance as *Rama Rajya* in many of his writings.For many filmmakers of this period, filmmaking became an enterprise which included the creation of a swadeshi product for swadeshi audiences.

RAJA HARISCHANDRA : *Raja Harishchandra* was released in 1913 but prints of this film were destroyed motivating Phalke to remake it entirely in 1917 with the same cast and crew. Apart from Phalke's film on Harischandra, other companies of silent era also made a film on the same theme. These include Elphinstone Bioscope Calcutta's *Satyawadi Harishchandra* (1917)[3], Kohinoor Film Company's *Raja Harishchandra* (1924)[4] and Arya Film Company's R*aja Harishchandra* (1929)[5]. The narrative of this film draws upon the story from *Mahabharata*. The film tells the story of King Harishchandra and his

*Researcher, Department of History, University of Allahabad

uncompromising commitment to truth and duty. King Harishchandra and his Queen Taramati are devotees of Lord Shiva and have only one child - Rohidas. Once Harishchandra accidentally pollutes the sacrificial fire during *Yagna* performed by the sage Vishwamitra who forces the king to go into exile. Harischandra renounces his kingdom. In the process, the royal couple and their son face innumerable hardships. Towards the end when Taramati dies and is about to be cremated Shiva appears and saves the family from eventual doom. Shiva, declares Harishchandra as the living embodiment of truth and restores to him his former glory.

MOHINI BHASMASURA : *Mohini Bhasmasur* was the second film of Phalke.[6]The script of this film based on the story from Mahabharata. Film scholar Sharayu Phalke Summanwar provides the detail of this film's scripting:

Lord Shiva grants the demon Bhasmasura a boon that those he touches on the head will turn into ashes, whereupon the demon tries to destroy Lord Shiva himself by touching his head. Shiva then seeks Lord Vishnu's help to destroy Bhasmasura. Vishnu disguises himself as Mohini, an Apsara,who entices Bhasmasura with her charm. Mohini agrees to accept his hand only if he defeats her in a dance contest. During the course of the dance,she tricks Bhasmasura into touching his own head and he is thus reduced to ashes.[7]

A film on the same story also made by the Indian Film Company, Madras in 1926 and was called *Mohini Avatar*.

SATYVAN SAVITRI : This was the third film produced by Phalke. Later, films with the same narrative content were made by other production companies including Madan Theatre (*Savitri*, 1924)[8], United Picture Syndicate (*Savitri*, 1927)[9], Maharashtra Film Company (*Sati Savitri*, 1927)[10], Aryan Film Company (*Satywan Savitri*, 1931)[11]. However, only a mutilated print of *Sati Savitri* (1927), preserved by National Film Archives of India (NFAI) is available to us.

The story of *Sati Savitri* starts with the miraculous birth of Savitri. In another scene the child Satyavan is shown to survive a snakebite. This is quickly followed by a flashback shot showing King Dyumsena's downfall and his blinding by the enemies. The next scene depicts Savitri losing her heart to Satyavan in a forest and deciding to marry him, although she is aware that he is accursed to die within a year.However, Savitri has the blessings of the sage Narada who happens to visit his father, King Ashwapati's court. One day when Satyavan is in the forest for wood, a huge branch falls on him. Yama arrives to claim his soul and Savitri plead him to spare her husband.

The rest of the story is not available to us as the National Film Archives has preserved only a segment of the narrative. This notwithstanding, we can get the retrieve the remaining narrative from the film *Sukanya Savitri*.[12] In this film, the cause of Satyavan's death is attributed to a snake bite. Savitri starts following Yama and Yama asks her to choose a single wish which he may grant, except Satyavan's life. She therefore asks for the eyesight of her blind father–in–law, the dethroned king Dyumatsena. The wish granted, Yama prepares to leave. In the rest of the film she follows Yama untilhe brings back Satyavanto Life. In the end Yama yields and Satyavan is crowned king.

SAIRANDHARI : *Sairandhari*(1920) was the first film of the Maharashtra Film Company. It was directed by Baburao Painter. Some other film companies also made films on the same theme but captioned it differently. For example, the Indian Film Company of Madras, which made this film in in 1916 and called it *Keechak Vatham*. Incidentally, this was also the first silent movie from south India. Likewise, United Picture Syndicate made *Kichak Vadha* in 1928.

The script of this film is based on a dramatic episode from the great epic Mahabharata. The narrative begins from the thirteenth year of exiled Pandavas. For thirteen years. The

the Pandavas have worked in the Virat kingdom with proxy identities. Bheema works as a cook and Draupadi as Sairandhari works as domestic help for Virat's royal kin. Keechak, the brother of the Queen of Virat, lusts after Draupadi. When Bheema learns about it he becomes angry and decides to kill Keechak. He hides in a big liquor vessel in the store room, where Keechak is slated to meet Sairandhari. When Keechak arrives Bheema beheads him after a brief fight.[13]

LANKA DAHAN : *Lanka Dahan*can be called the first blockbuster film of the silent era. The film produced and directed by Phalke in 1917, was based on an episode from the great epic Ramayana. The narrative starts with an innocent Sita held captive by the king Ravana. Meanwhile, Lord Hanuman arrives Lanka in search of Sita andfinds her being tortured by Ravana and other female demons. Sita looks sad.Watching her thus, Lord Hanumana jumps from a tree and shows her the ring of Lord Rama,which she immediately recognises. Her face now glows with delight as she realizes that the messenger is a devotee of Lord Rama. Further sequences of this movie are missing, but as per the story of Ramayana, we know that lord Hanumana entered into the Ravana's garden and destroyed it. Then he is caught by Ravana's brother Meghnada, tied and produced before Ravana, who orders Lord Hanumana's tail to be set on fire. But when the demons try to do this, he reduces it to a such a small size that he can easily escape only to burn Ravana's empire except Vibhishana's palace and the Ashok Vatika.

SHRI KRISHNA JANMA : *Sri Krishna Janam* was produced by the Hindustan Film Company in 1918. It was directed by D.G. Phalke. Later Maharashtra Film Company (*Shree Krishna Avatar*,1923) made a film on the same subject. Some fragments of this film are preserved at the NFAI. The story of this film starts with a shot of Lord Vishnu rising from the waters of Ksheer Sagar on the back of the serpent Sesha Naga pledging that he would restore anarchy on Earth by facilitating the birth of Lord Krishna.[14] Subsequent shots show the birth of Lord Krishna in prison, followed by miracles performed by him as a child. In another scene Lord Krishna challenges the might of the cruel King Kamsa and ultimately kills him.In yet another scene, Phalke deployed his skills of trick photography to show multiple images of Lord Krishna teasing Kamsa from all sides finally leading to the latter's beheading.In a series gory sequences, the severed head is shown floating in the air, rejoining Kamsas body,separating again to reveal blood gushing out from the neck. Thus, Phalke mobilized his experience in trick photography to produce a desirable impact on the audiences.[15]

KALIYA MARDAN : *Kaliya Mardan* was produced by the Hindustan Film Company and was directed by Phalke. Phalke was inspired to make this film when his associate Gangadhar Pathak suggested him to see an American film called *Shielding Shadow* in Poona.[16]It was an adventure film about a deadly and destructive sea creature. Inspired, Phalke decided to make a film on a similar theme. He chose the Puranic narrative about the deadly serpent Kaliya who was tamed by Lord Krishna. The film begins with Krishna shown as a mischievous child stealing butter and subsequently tying up the hair of a sleeping woman with the beard of a man. Krishna also indulges in rasa with the gopis, making them dance to the music of his haunting flute. Towards the end of the film, Krishna is shown playing with his friends on the banks of the Yamuna, when their ball accidentally falls into the river. The river also the habitat of the deadly snake Kaliya, who has become the village folk. Krishna plunges into the water and engages Kaliya who finally capitulates. Shooting the last sequence must have been a big challenge to Phalke as he action took place underwater.

NALA DAMYANTI : *Nala Damyanti* was produced by the Madan Theatre Limited, in 1920. Seven years later, the Hindustan Cinema Company also made a film on the same subject.The story of this filmed is borrowed from Mahabharata. Nala and Damyanti love each other but Damayanti's beautyhas even made the gods turn into her suitors.Towards

the end of the film five gods are shown masquerading as Nala, all seeking Damyanti's hand in the swayamwar ceremony. However, Damyanti immediately recognises the real Nala and both are happily married.[17]

DHRUVA CHARITRA : *Dhruva Charitra* was produced by the Madan Theatre Limited, in 1921. This is a mythological film based on the Puranic legend of the boy Dhruva whose quest for eternal salvation was realized when he became the brightest star in the heavens (Dhruvatara). In the climax scene,the forest on fire turns into a garden of roses.

MAYA BAZAR (SUREKHA HARAN) : According to Dharamsey,the film *Surekha Haran* was released in 1921 and re-released as *Maya Bazaar* in 1925. This film was made by the Maharashtra Film Company under the direction of Baburao Painter.[18] The story of this film deals with an episode from the Mahabhatrata. Arjuna's wife Subhadra is assured by her brother Krishna that her son Abhimanyu would marry Vatsala,Balram's beautiful daughter. However, their maternal uncle Shakuni plays a wicked trick and persuades Balram to marry Vatsala to Duryodhan's son Lakshmana. But Krishna must keep his promise. He arranges to kidnap Vatsala by Bhima's son Ghatotkacha who subsequently masquerades as a woman awaiting her marriage with Lakshmana. When the spell finally wears off, Ghatokacha reveals his true identity. Balaram is incensed. The situation is salvaged by the appearance of the sage Naradawho informs that Krishna was none other than Lord Vishnu himself. In another scene, Ghatotkacha kills Abhimanyu,but Subhadra's touch revives him.We know from the story that Subhadra has the power to bring back to life two dead persons.She again uses her powers to resuscitate Ghatokacha when Abhimanyu kills him.The cousins finally reconcile and another character of Mahabharata Vidur is shownto leave for Dwarka to remind Krishna of his promise to Subhadra. According to Suresh Chabria(*Light of Asia:Indian Silent Cinema*) there is a short comic episode in which the general populace comes under Ghatotkacha's maya or magic spell. Following an announcement that a fair is being held in which old objects will be exchanged for new, a series of illusions presented on the screen appearing as utensils, valuables and garments which are then magically transformed and made to reappear and vanish in a bewitched manner.[19]

SUKANYA SAVITRI[20] : *Sukanya Savitri* was produced by the Kohinoor Film Company in 1922.This is the only film of Kohinoor preserved in the NFAI. In this film two mythological narratives of Sati Sukany and Sati Savitri are jointly presented.

The film starts with Sukanya's story, Sukanya inadvertently blinding the old Sage Chyavanwho is covered by an ant hill which has grown around him during his deep meditation. As an atonement her father King Shayathi makes her marry the sage whom she serves faithfully. At this time the demi-god Ashwini Kumar, attracted by Sukanya's beauty, follows her to their hut. Sukanya gets angry and the fire created by her anger reduces Ashwini Kumar to ashes. A further episode explains how she restores her husband's youth, but this fragment of film is missing.

In another surviving fragment of the film, we come across the story of Savitri and Satyavan. Savitri is married to poor Satyavan who has lost his kingdom. Satyawan dies after a snake bite in the forest. When Yama arrives to take him away he grants Savitri three wishes – restoration of her parents-in-law's eyesight,restoration of their royal glory and Satyavan's return to life. In the final sequence, the two stories combine as the youthful Chyavana and Sukanya arrive at Satyavan's parents' hut and Satyavan's father gets back his kingdom. Finally, as Satyavan is being crowned king by Chyavana, he Sage Narada arrives to bless everyone .

BHAKTA PRAHLAD : The theme of *Bhakta Prahlad* was drawn from the *Bhagvata Purana*. The first film on this story was made by the Patankar Union (Prahlad Charitra, 1916)[21]. In 1926 the Maharashtra Film Company and Hindustan Cinema Film Company

made films on the same theme. But only the film made by Hindustan Film Company is preserved at the NFAI.

Bhakta Prahlad is about the story of Prahlad's devotion to Lord Vishnu while his father Hiranyakashyapa is a demon. Hiranyakashyapa hates Lord Vishnu and views that latter as his enemy. Angry at his son's bhakti, Hiranyakashyapa tortures him and even tries to kill him many times.However, Prahlad who is forcibly dipped into boiling oil,trampled by an elephant and poisoned at the hand of his own mother, lives on. In the climactic stages of the film,Lord Vishnu emerges in his Narasimha Avatar and kills the demon Hiranyakashyapa.

MURALIWALA[22]: Directed by Baburao Painter, *Murliwala* was producedby the Maharashtra Film Company in 1927.The story starts with scenes of Krishna surrounded by cows and cowherds, playing the flute merrily. This is followed by shots of his dalliances with the gopis and Radha's mother-in-law, while Radha is shown as a married woman. According to Suresh Chabria, Krishna's story in the film is set in the Vaishnava mould. Thus, in one revealing sequence Krishna appears before Radha and urges her to look at him with the eyes of wisdom. "You will attain me when you know me to be omnipresent... so unless you learn to realise me in your husband Raman,you will not attain eternal happiness."

Around the climax of this film,Radha is able to see the vision of Krishna–as-Raman and Raman-as-Krishna, while Raman realises the divine nature of Krishna. Krishna enters the lake where Kaliya lives. He then reappears triumphantly after quelling the serpent king and the Radha and Raman along with whole village witnesses Krishna playing the flute on Kaliya's hood. Finally, Raman prostrates himself before Krishna as the cosmic and human drama come to an end.

References :

1. Summanwar, Sharayu Phalke, The Silent Film, India Connect (Pune), P.102
2. Jaikumar, Priya, Cinema at the End of Empire a Politics of Transition in Britain and india, P.205
3. Chabaria, Suresh(Ed). ,Light of Asia Indian Silent Cinema 1912-1931, Niyogi Books (Delhi ,2013), P. 139
4. Ibid, P. 168
5. Ibid, P. 242
6. Chabaria, Suresh(Ed).,Light of Asia Indian Silent Cinema 1912-1931, Niyogi Books (Delhi ,2013), P. 137
7. Summanwar, Sharayu Phalke, The Silent Film, India Connect (Pune) , P. 139
8. Chabaria, Suresh, (Ed.) Light of Asia Indian Silent Cinema 1912-1931, Niyogi Books (Delhi ,2013), P. 170
9. Ibid, P. 208
10. Ibid, P. 208
11. Ibid, P. 298
12. Ed. Chabaria, Suresh, ,Light of Asia Indian Silent Cinema 1912-1931, Niyogi Books (Delhi ,2013), P. 91
13. Rajad hyaksha,A. and P.Willemen (Ed.), Encyclopedia of Indian Cinema, Oxford University Press, (Delhi, 1998) P. 243
14. Chabaria, Suresh(Ed.) ,Light of Asia Indian Silent Cinema 1912-1931, Niyogi Books (Delhi ,2013), P. 73
15. Garga, B.D. , Silent Cinema in India A Pictorial Journey, Harper Colins pub. (Noida 2012) P. 57
16. Summanwar, Sharayu Phalke, The Silent Film, India Connect (Pune), P. 175
17. Garga, B.D. , Silent Cinema in India A Pictorial Journey, Harper Colins pub. (Noida 2012) P. 69
18. Chabaria, Suresh (Ed.) Light of Asia Indian Silent Cinema 1912-1931, Niyogi Books (Delhi ,2013), P. 88
19. Chabaria, Suresh (Ed.) Light of Asia Indian Silent Cinema 1912-1931, Niyogi Books (Delhi ,2013), P. 89-90
20. Ibid, P. 76
21. Chabaria, Suresh (Ed.) Light of Asia Indian Silent Cinema 1912-1931, Niyogi Books (Delhi ,2013), P. 139
22. Chabaria, Suresh (Ed.) Light of Asia Indian Silent Cinema 1912-1931, Niyogi Books (Delhi ,2013), P. 92

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 6-12

Emerging Relation between India and Sri Lanka in 21 Century

Jitendra Kumar Verma*

Abstract- *Sri Lanka is an island is centrally located in the Indian Ocean, South-East of Asia. A 62,627 sq. kms. Area of Sri Lanka is approximately half the area of Tamil Nadu state. A shallow sea Palk-Strait separates Sri Lanka from India. Bilateral relations between the Democratic Socialist Republic of Sri Lanka and the Republic of India have been generally friendly, but were controversially affected by the Sri Lankan Civil War and by the failure of Indian intervention during the war. India is the only neighbour of Sri Lanka, separated by the Palk Strait; both nations occupy a strategic position in South Asia and have sought to build a common security umbrella in the Indian Ocean. Historically and culturally, the two nations have been considerably close, with 70% of Sri Lankans continuing to follow Theravada Buddhism to this day. In recent years Sri Lanka has moved closer to China, especially in terms of naval agreements. India has signed the nuclear energy deal to improve relations.*

Introduction- India and Sri Lanka both countries is strategically very important. The island's position impart it a seminal importance for sea borne trade routes naval activities and piracy. Sri Lanka is located in what Prime Minister D.S. Senanayake called the "strategic highway." Sri Lanka has two natural harbours Colombo and Trincomalee. Sri Lanka and India are tied historically, culturally, religiously. In the history of Indo- Sri Lanka relations, we find many twists and turns which can be described as their love-hate relationship. Sri Lanka has been one of India's assertive neighbour. In the past, its desire to assert its identity in international relations and to search for its security marred India- Sri Lanka relations. In the bilateral relationship touched the rock bottom but never did they reach a point of breakdown of complete disruption. Both the countries have developed adequate strength to withstand the strength, stresses and strains is a notable feature of their bilateral relationship.

India and Sri Lanka love-hate relationship has seen many changes in the pattern of relationship marked by mutual differences, irritants, cooperation and friendship. India- Sri Lanka relationship can be marked by a sort of ambivalence an alternation between warmth, goodwill and cooperation on the one hand and fear, suspicion, political and territorial disputes on the other. In the decades of differences, three issues dominated the bilateral relations statelessness of India Tamils. Kachchativu and divergent security perceptions and policies of both the counties. The second phase of India- Sri Lanka relations was noteworthy for the resolution of bilateral problems of citizenship of Indian Tamils and Kachchtivu and demarcation of maritime boundaries.[1]

Early history- According to traditional Sri Lankan chronicles (such as the Dipavamsa), Buddhism was introduced into Sri Lanka in the 4th century BCE by Venerable Mahinda, the son of Indian Emperor Ashoka, during the reign of Sri Lanka's King DevanampiyaTissa. During this time, a sapling of the Bodhi Tree was brought to Sri Lanka and the first monasteries and Buddhist monuments were established. Among these, the Isurumuni-vihaara and the Vessagiri-vihaara remain important centers of worship. He is also credited with the

*Assistant Professor, Deptt. Of Defence and Strategic Studies, S.M.M.Town P.G. College, Ballia

construction of the Pathamaka-cetiya, the Jambukola-vihaara and the Hatthaalhaka-vihaara, and the refectory. The Pali Canon, having previously been preserved as an oral tradition, was first committed to writing in Sri Lanka around 30 BCE.[2]

Sri Lanka has the longest continuous history of Buddhism of any Buddhist nation, with the Sangha having existed in a largely unbroken lineage since its introduction in the 4th century. During periods of decline, the Sri Lankan monastic lineage was revived through contact with Myanmar and Thailand. Periods of Mahayana influence, as well as official neglect under colonial rule, created great challenges for Theravada Buddhist institutions in Sri Lanka, but repeated revivals and resurgences - most recently in the 19th century CE - have kept the Theravada tradition alive for over 2,600 years. For most of the Tamils in Sri Lanka, their ancestors were from India.[3]

Fishing disputes- There have been several alleged incidents of Sri Lankan Navy personnel firing on Indian fishermen fishing in the Palk Strait, where India and Sri Lanka are only separated by 12 nautical miles.Theissue is because of Indian fishermen using mechanised trawlers which deprives the Sri Lankan fishermen including Tamils of their catch and also damaging their fishing boats. The Sri Lankan government wants India to ban use of mechanized trawlers in the palk-strait region and the negotiations on the same are going on. So far no concrete agreement has been reached since India favors regulating these trawlers instead of banning them altogether. Anger amongst the Sri Lankan side is also because the use of mechanized trawlers is ecologically damaging. [4] Indian Government has always taken up the issue of safety of Indian fishermen on a priority basis with the Government of Sri Lanka. Presently there is no bona fide Indian fisherman in the Sri Lankan custody. A Joint Working Group (JWG) has been constituted to deal with the issues related to Indian fishermen straying in Sri Lankan territorial waters, work out modalities for prevention of use of force against them and the early release of confiscated boats and explore possibilities of working towards bilateral arrangements for licensed fishing. The JWG last met in Jan 2006. India officially protested against Sri Lanka Navy for its alleged involvement in attacks on Indian fishermen on January 12, 2011.[5] Even after the official protest, another fisherman was killed in a brutal manner on Jan 22, 2011. Over 730 fishermen have been killed in the last 30 years.

The apathetic attitude of the Indian government and the national media towards the alleged killing of Tamil Nadu fishermen by the Sri Lankan Navy is being strongly condemned.[6] Several Tamil Nadu politicians like Vaiko and Jayalalitha have condemned the federal government for not doing enough to stop the killing of Indian Tamil fishermen, and for offering training, equipment, and strategic cooperation for the Sri Lankan Navy.[7] In November 2014, Sri Lanka ordered capital punishment to Indian fishermen who were allegedly involved in drug supply or other kind of smuggling. Activists from India approached to Sri Lankan government through an appeal, where they stated the need to stregthen south asian regional cooperation for all such issues. It was appealed that though crime of any kind must get punishment, but capital punishment must be revoked in this case and in general from all over south asia. Prime Minister of Sri Lanka RanilWinckramsinghe during an interview to a television channel in March 2015 told 'if Indian fishermen will cross the sea boundary, Sri lankan navy can shoot them.' This remark sparked controversy over Sri Lanka - India relation. Externeal affairs minister of India raised the issue with meeting her counterpart in Sri Lanka, but the statement of PM of Sri Lanka was condemned by civil rights activists, even open letters were written to PMs of Sri Lanka and India to resolve the dispute and to apologize for statements as fishermen are not criminals.[8]

Kachchativu Problem and Maritime Boundary Dispute- Kachchativu is an uninhabited coral island about one square mile in area and located almost midway between India and Sri Lanka is Palk-Strait. It is barren, uninhabited and cactus-ridden place, which has no drinking

water facilities and hence remains uninhabited. The dispute emerged in 1967, when Sri Lanka extended its maritime boundary from 6 to 12 nautical miles.

Both India and Sri Lanka claimed the island on the basis of historical sketch. The Tamil Nadu government claimed Kacchchativu as belonging to RamanathapurSamastham which had been taken over by the Tamil Nadu government under the Zamindari Abolition Act. Sri Lanka also produced evidence to prove historical rights over the island when during the second world war it was used as a naval bombardment range under Ceylon defence regulations. On 26 june 1974, India and Sri Lanka signed an agreement, demarcating their maritime boundary in Palk strait upon Adams Bridge, and Kachchativu was conceded to Sri Lanka.[9] The 1976 maritime boundary agreement extended this boundary in Gulf of Mannar and the Bay of Bengal and gave each party a sovereign right over the continental shelf and the exclusive economic zones. Now Sri Lanka views Kachchativu matter settled and Kachchativu is no issue.

Development Cooperation- India is active in a number of areas of development activity in Sri Lanka. About one-sixth of the total development credit granted by GOI is made available to Sri Lanka.

Lines of credit: In the recent past three lines of credit were extended to Sri Lanka: US$ 100 million for capital goods, consumer durables, consultancy services and food items, US$ 31 million for supply of 300,000 MT of wheat and US$ 150 million for purchase of petroleum products. All of these lines of credit have been fully utilized. Another line of credit of US$ 100 million is now being made available for rehabilitation of the Colombo-Matararailway.A number of development projects are implemented under 'Aid to Sri Lanka' funds. In 2006-07, the budget for 'Aid to Sri Lanka' was Rs 28.2 Crs.Small.[10]

Development Projects: A MoU on Cooperation in Small Development Projects has been signed. Projects for providing fishing equipment to the fishermen in the East of Sri Lanka and solar energy aided computer education in 25 rural schools in Eastern Sri Lanka are under consideration.

Health Projects: India have supplied medical equipment to hospitals at Hambantota and Point Pedro, supplied 4 state of the art ambulances to the Central Province, implemented a cataract eye surgery programme for 1500 people in the Central Province and implemented a project of renovation of OT at Dickoya hospital and supplying equipment to it.The projects under consideration are Construction of a 150-bed hospital at Dickoya, upgradation of the hospital at Trincomalee and a US$ 7.5 million grant for setting up a Cancer Hospital in Colombo.[11]

Education Projects: Upgradation of the educational infrastructure of the schools in the Central province including teachers' training, setting up of 10 computer labs, setting up of 20 e-libraries (Nenasalas), Mahatma Gandhi scholarship scheme for +2 students and setting up of a vocational training centre in Puttalam.[12] India also contributes to the Ceylon Workers Education Trust that gives scholarships to the children of estate workers.

Training: A training programme for 465 Sri Lankan Police officers has been commenced in Dec 2005. Another 400 Sri Lankan Police personnel are being trained for the course of 'Maintenance of Public Order'.Indian governments have also showed interest in collaborating with their Sri Lankan counterparts on building tourism between the two countries based on shared religious heritage. Madhya Pradesh CM ShivrajChauhan in June 2013 stated he was working with Sri Lankan authorities to build a temple dedicated to the Hindu queen Sita in Nuwara Eliya.[13]

India's Key to Sri Lanka: Maritime Infrastructure Development- Indian Prime Minister NarendraModi's recent trip to Sri Lanka highlights New Delhi's reawakening to the strategic position that Sri Lanka holds in India's neighborhood. Since 2008, India has

watched as China built port facilities, highways, and other major infrastructure in Sri Lanka. People's Liberation Army (PLA) Navy warships have also paid port visits to Sri Lanka, even taking in Trincomalee, where India has been sensitive to any extraregional presence for decades. Most recently, in September and October 2014, New Delhi became unsettled at the sight of a conventional Chinese submarine and a tender ship openly paying port visits in Colombo on the way to counterpiracy patrols in the Gulf of Aden.

Despite the public nature of the docking and advance notice, Indian policymakers appeared to be taken by surprise and feared India had lost strategic ground to China regarding Sri Lanka. In essence, how did India go from once being offered the opportunity by Sri Lanka to develop Hambantota harbor to being caught off guard by Chinese submarine visits in its backyard?[14]

Shortly after the submarine episode, MaithripalaSirisena defeated MahindaRajapaksa in Sri Lanka's January 2015 presidential election and visited India for a successful summit with Modi in February. But despite this recent warming of relations, India should recognize the underlying factors-some of its own making and others independent-that have contributed to the perception that India's overall relationship with Sri Lanka has fallen behind Sri Lanka's relationship with China, given the latter's robust commercial activity. A better understanding of these factors will help New Delhi develop a comprehensive and less reactive approach to Indian Ocean security as new manifestations of China's engagement in the region lead observers to question India's preeminence in its own backyard.[15]

Nuclear Deals- Again, while Colombo did sign a civilian nuclear agreement with India, signaling it had overcome apprehensions raised by the Rajapaksa government over safety issues surrounding India's Koodankulam nuclear power project, which is located 250 km off the Lankan coast, within days of the president's return from his India trip, Sri Lanka's Power Minister PataliChampikaRanawaka announced that his country was exploring nuclear energy co-operation with Pakistan to improve "technical capacities and human capacities." Sri Lanka and Pakistan are scheduled to sign a civilian nuclear pact when Sirisena visits Pakistan end March.Sirisena "cannot be seen to be acting on India's orders," an Indian diplomat said, and hence, "the measured approach to foreign policy changes." Stressing the fact that his government "will not throw China out," the diplomat explained that Colombo "cannot afford to draw Beijing's ire as the latter has already invested huge amounts in projects."Importantly, Sri Lanka needs the funds that China is providing it with. Its postwar reconstruction needs, especially in infrastructure, is high.[16]

According to S I Keethaponcalan, a Sri Lankan academic teaching at Salisbury University in the United States, China is a more valuable partner for Sri Lanka than India is as India "can never match the kind of investments the Chinese have made in the island." Moreover, Sri Lanka and China have enjoyed close ties traditionally and China is regarded as a "reliable friend," he observed.Consequently, throwing out China is not an option for Sri Lanka.

What we can expect then is that Sri Lanka's relations with India and China "will become more balanced under Sirisena," Keethaponcalan said. The president is likely to achieve this by being "selective" with regard to the assistance his country receives from China. He could "avoid defense and security-related deals with China" and can be expected to "confine China primarily to the economic sector." In contrast, relations with India will be more "multi-dimensional," including security, political, economic and cultural engagement, he pointed out.

China's role in Sri Lanka will be determined not just by what role Colombo wants it to play but also by China's interests in Sri Lanka. "Beijing's interest in Sri Lanka is not just in

the market it provides for Chinese goods but in the strategic advantage it offers China through an influential presence there,"the diplomat said.[17]

Bilateral relation of Coast Guard and Navy - A gift from India to Sri Lanka has started a political storm in Tamil Nadu. The state's prominent political parties have launched a scathing attack on the Centre for gifting the Coast Guard vessel 'Varaha' to its neighboring country. "Centre seems to be helping the Lankan Army which continues trouble the Indian fishermen. I oppose this on behalf of the DMK," said former chief minister and party chief Karunanidhi, who is demanding the ship's recall.[18]

Dr S Ramadoss, the chief of the PattaliMakkalKatchi or PMK, was the first to raise this issue. He said the Centre's actions have always been detrimental to the interests of the state, and slammed the government's decision to help Sri Lanka, which he says, has never been loyal to India.He said the Lankans had earlier used this ship to "kill the Lankan Tamils", who he said, "would now deploy it to kill Indian fishermen".Vaiko, the chief of MDMK has called it "a betrayal by the Central Government". He claimed "the vessel is an evidence of the use of Indian Navy to finish off the Sea Tigers - the sea wing of the Liberation Tigers of Tamil Eelam or LTTE - by Sri Lankan Naval forces.[19]

During the previous regime of the UPA, the DMK had enough parliamentarians to pressure the central government to stop training to Lankan defence personnel in Tamil Nadu. The government, however, continued training them in other states. The ruling AIADMK has not spoken on this issue yet. The party with its 37 lawmakers in LokSabha is perceived to be a friend of the ruling BJP at the Centre.United Nations estimates that around 45,000 - 100,000 Lankan Tamil civilians may have been killed by the Lankan Army during the final phase of the war against the LTTE six years ago. Many political parties and rights organisations allege Sri Lanka had used weapons supplied by India to kill the Lankan Tamils.[20]

List of Agreements/MoUs signed between India and Sri Lanka during the State Visit of the President of Sri Lanka to India (February 16, 2015) ---

S. No.	Agreement/MoU	Details/Scope	Indian Signatory	Sri Lankan Signatory
1.	Agreement between Sri Lanka and India on Cooperation in the Peaceful Uses of Nuclear Energy.	The Agreement would facilitate cooperation in the transfer and exchange of knowledge and expertise, sharing of resources, capacity building and training of personnel in peaceful uses of nuclear energy including use of radioisotopes, nuclear safety, radiation safety, nuclear security, radioactive waste management and nuclear and radiological disaster mitigation and environmental protection.	Shri Ratan Kumar Sinha, Secretary, Department of Atomic Energy	Hon. PataliChampikaRanawaka, Minister of Power & Energy
2.	Programme of Cultural Cooperation between Sri Lanka and India for the years 2015 - 18	The Programme of Cultural Cooperation for 2015-18 seeks to enhance the level of cooperation in a wide variety of fields such as performing arts, visual arts, libraries, museums, archives & cultural documentation, archaeology, handicrafts, publications and professional exchanges	ShriRavindra Singh, Secretary, Ministry of Culture	H.E. SudharshanSeneviratne, High Commissioner of Sri Lanka in New Delhi

3.	MoU on the Establishment of Nalanda University	The MoU would enable Sri Lanka to participate in the Nalanda University Project.	Dr. S. Jaishankar Foreign Secretary	Ms. ChitranganeeWagiswara Secretary, Foreign Affairs
4.	Work-Plan 2014-2015 under the MoU on Cooperation in the field of Agriculture between India and Sri Lanka.	The Work Plan would facilitate bilateral cooperation in Agro Processing, Agricultural extension, horticulture, agricultural machinery, training in farm mechanization, livestock diseases, etc. between relevant institutes and organizations from both countries.	ShriAshishBahuguna, Secretary, Department of Agriculture &Cooperation	H.E. SudharshanSeneviratne, High Commissioner of Sri Lanka in New Delhi.

Source- February 16, 2015. [21]

Conclusion- Sri Lanka as a small state obsessed with insecurity has recognized India's pre eminence and managed to contain its foreign policy behavior within the security parameters of India. Its effort to overcome this insecurity through collective security, non- alignment and disarmament were unsuccessful particularly in view of India's drive for military pre-eminence and nuclear capability in the region. Geo-strategic development were unfavorable to Sri Lanka's Endeavour to adopt a policy of balancing external powers in the Indian Ocean as a guarantee of realizing this, it formed itself an integral part of the South Asia competition and ethnic conflict and the security dilemma have brought the India directly into the Sri Lanka foreign policy but economic interaction links them more together. With time Sri Lanka was able to change the old paradigm that aw India as a threat to Sri Lanka. Now a new shift in the perception has taken place the minds o f Sri Lankans that India is a valuable opportunity towards achieving Sri Lanka's progress.

maintaining good relations with neighbours is the first priority for any country. The credibility of country's global posture is undermined if it is seen as embroiled in conflits with its neighbours. India's sub-continent neighbours with the member countries of the South Asian Association for Regional Cooperation (SAARC). In fact India can be a good relation togeth er Sri Lanka. The Sri Lanka and India consituent as well as collectively represent a world of historical links, shared legancies, diversities. Which elaborately reflect in their ethnic,linguistic, religious and political fabric.

References :

1. Meenu Roy, "India and her sub-continent neighbours", Deep and Deep publications pvt.Ltd. Delhi, page-183.
2. "Second TN fisherman killed by Lankan Navy". Times Of India. 2011-01-22.
3. Ibid.
4. "Indian fisherman killed in Lankan firing". IndiaVoice.2011-01-13.
5. Ibid.
6. "Fishermen killings: May 17 seeks Pranab, SM Krishna resignation". TruthDive. 2011-01-24.
7. "Jaya slams Centre for defence cooperation with Lanka". indiatimes.com. TNN. 2 December 2013.
8. http://www.countercurrents.org/nitesh140315.html.
9. MeeMeenu Roy, "India and her sub-continent neighbours", Deep and Deep publications pvt.Ltd. Delhi, page-183.
10. http://www.countercurrents.org/nitesh140315.htm
11. The Times of India, News digest,july30, 2013.

12. http://www.activatedministries.org/projects/values-in-education-india
13. "New Mannar" - June 1, 2013.
14. https://en.wikipedia.org/wiki/India%E2%80%93Sri_Lanka_relations#Development_Cooperation
15. SamanKelegama, "China-Sri Lanka Economic Relations An Overview." China Report (2014) 50#2 pp: 131-149.
16. Krista Mahr and SanjeevMiglani, "India seals nuclear energy pact with Sri Lanka, hopes to push back Chinese influence," Reuters Feb. 16, 2015
17. The Hindu, Editorial News, Feb. 17, 2015.
18. Story First Published: September 01, 2015 01:13 IST
19. Ibid.
20. https://www.google.co.in/search?q=india+sri+lanka+coast+guard.
21. http://mea.gov.in/bilateral-documents.htm? dtl/24779/List+of+AgreementsMoUs +signed+ during+the+State+ Visit+of+the+ President+of+Sri+Lanka+to+India+February+16+2015

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 13-20

The Sixteenth century European Travel Accounts on Orissa

Mamata Nanda*

Abstract: *Since the early modern age, the travel writings covered a wide range of perspectives from pilgrims to the merchant, explorer and philosopher. Travel writing emerged as one of the early modern period's most popular and flexible genres. With its wide range of forms, it educated, entertained, inspired the national pride and facilitated commercial investment as well as contributed to the world's markets, trade routes, personalities and cultures. The travel literature on the voyage was so popular, overwhelming and important in the sixteenth century that it overshadowed other accounts. Within the primary accounts of travel other sub-genres flourished like, one of the most striking sub-genres of the early modern period were sets of instructions for the travellers to record their journey methodically. These 'methods' for travellers emerged in the late sixteenth century as an expression of the new naturalistic emphasis which dominated humanist, post-Aristotelian dialectics. These methods were applied to the Grand Tour, on colonial ventures and were often conceived as politically useful in both European and colonial settings.For this reason it is necessary to study these travel narrative against the context of sixteenth century Europe, so that these narrative can be seen as the channel for capitalism, commercialism and colonialism.*

Keywords: *Travel narratives, sixteenth century, Europe, Orissa, Trade and commerce*.

Writing and travel are always intimately connected. During the sixteenth century, writing and documentation became an essential and integral aspect of travelling. The general public was greatly interested in the stories of faraway places, and it was also an important way of attracting investment. The political or commercial sponsors wanted reports and maps from travellers, and the maps prepared by them were often kept in secret. But the real power of travel writing was in its independence of perspective, and the claim to have been there and have seen with one's own eyes[1].

The importance of travel literature lies not only in the information it contains but also in the form of literature it belongs to and the audience it addresses. It is not a mere experience sharing narrative rather it opens the new world and its culture to other. According to Joan Pau Rubiés, 'the description of peoples, their nature, customs, religion, forms of government and language is so embedded in the travel writing produced in Europe after the sixteenth century that one assumes ethnography to be essential to the genre'[2]. The documentation always played an important role in travel, particularly in overseas ventures. The language, images and figures were the medium of experience and expression in these narratives. These travel narratives serve as the guidebooks to many other travellers. For this reason, the merchants and mariners had long been instructed to records their movements carefully which could help those travellers who would follow their footsteps[3].

By recording their observations on other lands and peoples, the European travellers contributed to the growth of new, empirically informed discourse about both man and nature. They supplied the materials on which the cosmographers and historians build their intellectual edifices. Sometimes people travel to satisfy their intellectual needs like Bernier or naturalists like Joseph Banks or Alexander von Humbolt. But travelling for intellectual aims always supplied with systematic readings and carefully drawn instructions[4]. Every travel in medieval and early modern period contributed in enhancing human knowledge about and on the world.

*Ph.D Scholar,Department of Medieval & Modern History, Allahabad University, Allahabad (U.P.)

For this reason, all kinds of interested parties, including scientists, philosophers and sponsors issued instructions to the travellers about how to observe and how to write down their observations. The history of such instructions ran unbroken into the early twentieth century and contributed to the foundations of anthropology. But the travellers have not always followed the instructions, and they usually followed their instincts and opportunities rather than directions from home. At many times, it is travellers' eccentricities and extravagances, in the literal sense the wandering off, which attracted many readers to the genre of travel writing.

In travel writings, two particular modes of writing – forgery and parody are closely related because the lone traveller fetches the far-fetched facts from remote climes offer the perfect alibi for the forger and a tempting target for the parodist. The travel writing and the travel novel (literature) especially in its first-person, often shared a focus on the centrality of the self, a concern with the empirical detail and a movement through time and place in the sequential form. The relationship between these two genres remains close and often troubling. Though each form has long drawn on the conventions of the other, many readers still hope for a literal truthfulness from the travel writing which they do not expect from the novel[5].

The Age of Reformation and the quest of discoveries: The sixteenth century marks a watershed in the social, economic, cultural and the political formation of Europe. But it was, above all, a period of economic expansion in Europe because for the first time the world economy was integrated. During this period in the Western Europe, England, Spain and French had the most flourishing economy[6]. As the trade was connecting one nation to another, so what happened in one country was affecting the others. The European economy, which emerged in various parts of Europe were connected with an intricate network of economic and financial relationships.

During this period, the economic activities were affected by numerous factors like, political, diplomatic, military situation, dynastic arrangements and even by religion. But the voyages and discoveries which were undertaken by the Portuguese, Spanish, English, French and Dutch changed the European trade and economic life forever to come. The capitalism emerged in many fields, and it continued and accelerated in the sixteenth century. In the field of commerce, governments were involved in many ways; like encouraging the organisations of merchants; the association and investing of the government officials in the mercantile enterprises; and granting monopolies to the companies for the trade in the newly discovered lands. The sixteenth century witnessed both the rise of new economic powers as well as the decline of the old ones[7].

In the 16th century, two countries of Europe showed the unique and lasting development, more advanced than any other countries. These were England and the northern Low Countries which later on became Holland after its independence with the treaty of Westphalia in 1648 CE[8]. Towards the closing of the 16th century, the Dutch also engaged in organising major expeditions to the East Indies and this posed them against the Portuguese. But the areas of central, eastern and northern Europe did not involve in any significant extent because of the change in important trade routes, and their political atmosphere and religious wars diverted their energy away from economic activities[9].

The economic development of England was different from other European countries. Though England had links with the sea, the country did not participate in the great geographical discoveries like the Portuguese and Spaniards. By the end of the 16th century, the powerful English navy began its maritime trade, and it played the decisive role in the development of the country. Their victory over the Spanish Armada in the naval battle in 1588 CE, effectively marked the start of the decline of Spanish sea power and the emergence of British mercantile[10].

In the sixteenth century, travellers were on every continent except Australia. The description of peoples in their variety was one of the important aspects of these narratives. The travel writings proliferated after the Renaissance whether for the entertainment – by

depicting the curious customs of a different culture or for the philosophical issues – raised the existence of universal human traits. Though imperialism and colonialism created a corpus of descriptive accounts, all narratives were not created as a territorial imperialism or trade-related colonialism[11].

The alliance of medieval geography with the theology in creating maps was based on Old Testament. In these maps, Jerusalem was placed in the centre of the world[12]. The European continued to travel, trade and settle in the East and Southwest in greater numbers. By the end of the century there were many Portuguese, English and Holland men staying in Asia[13]. During this era of discovery, it is necessary to take into account the 'purpose' of the travel and the 'things' interested to European travellers in Orissa to analysis how through their culture and context they experienced and understood Orissa.

No European travellers came to Orissa by targeting it as their destination. Their travelling into Orissa was just an incident of their travelling within India, or it was a part of their travelling within India. In their travel to India, the European travellers mostly visited the coastal areas reasonably well known to them, like, those of Malabar, Kanara, Coromandel and Gujarat, while the visit of remote places like Orissa or Bengal depended on occasional expeditions.

The sixteenth century witness fewer travellers in comparison to the seventeenth century. One of the important aspects of these travel narratives is that, it paved ways for the commercialisation, capitalism and subsequently colonisation in Asia. For this reason, it is necessary to read the early European travel narratives, particularly of the sixteenth century, to understand how their information were later on used for colonisation with reference to particular region which opened that region for exploitation in the later period. The travellers who came to Orissa in the sixteenth century were Duarte Barbosa, Caesar Frederick, Ralph Fitch and John Huyghen Van Linschoten.

Duarte Barbosa (1500 - 18 CE): Duarte Barbosa, a Portuguese traveller, came to India at the beginning of 1500 CE and left an account of his travel which is considered as one of the earliest Portuguese records within a few years of their trade and settlement the Indian. The account of Barbosa translated into Spanish from the original Portuguese in 1524 CE and was titled as "Viage por Malabar y Costas de Africa, 1512: Letra del Siglo xvi" by Martin Centurion, ambassador of the community of Genoa. With the assistance of Diego Ribero, a Portuguese cosmographer and hydrographer to Charles V at Vittoria, Martin Centurion translated this breathtaking account.

This is not a mere travel account which is limited only to the experience of travel but a description of the countries. It also provides detail information on trade, supplies, and water of the various sea-ports and many other interesting historical accounts like, of Diu, the foundation of Portuguese fort in Calicut, their interruption of the Indian trade to Suez by capturing the Indian ships, the rise of Shah Ismail etc[14]. The similarities in the names of different places in Barbosa's account and the maps of Homann and Nuremberg of 1753 CE, shows how geography up to a recent period indebted to the Portuguese and Spaniards travels. The Portuguese were familiar with Arabic, so the names are correctly rendered into the European letters[15].

The Portuguese edition says that Barbosa was the cousin of the famous navigator Magellan, who was employed by Spain along with other to sail from San Lucar de Barrameda to Brazil and Straits on 21st September 1519 CE [16]. Barbosa has mentioned that he was a native of Lisbon and son of Diego Barbosa. During his youth, he travelled in the Indies and various countries in the coast. He has claimed that what he has seen and heard on various things are not only marvellous and stupendous but also not seen or heard by any of his ancestors. Apart from seeing personally and collecting trustworthy information, he also enquired about the customs and practices of Muslims, Christians and Gentiles to get more refined and unbiased information and knowledge about their society and culture. He finished his travel account in 1516 CE [17].

But M. S. Dames has mentioned that Barbosa was in the service of the Portuguese Government in India from 1500 to 1516 or 1517 CE[18]. About the appointment of Barbosa as *feitor* at Cananor in 1502 CE, Gaspar Correa has mentioned in his *Lendas da India*, that: 'Gil Fernandes had a nephew named Duarte Barbosa, who being with him in Cochin learnt the tongue of the Malabar so well that he spoke it better than the natives of the country'[19]. When the fleet of "the Albuquerque" came to India in 1503 CE, he was at Cananor, and he was appointed as the interpreter for D. Fransisco D'Alboquerque during his visit to the King of Cananor. When Correa came to India in 1512 CE, Duarte Barbosa's fame as a linguist was well established among the Portuguese[20]. In 1513 CE Correa printed one letter of Barbosa addressed to the King of Portugal, D. Manoel I, where Barbosa requested the King to appoint him as the head-writer in Cananor because he has the best knowledge of the language and the people[21]. Even the letter No.100 of D' Albuquerque to the King Dom Manoel I, dated 20th December 1514 CE, mentioned Duarte Barbosa was the interpreter of D' Albuquerque's attempt to convert the king of Cochin[22].

Barbosa has mentioned in his account that, India is present towards the north-west direction from the Cape of Good Hope. After travelling a distance of fifty leagues from the kingdom of Ulcinde, he reached the first Indian territory of Gujarat[23]. Barbosa entered India from the west side and he travelled towards eastern part and again returned from east, so Orissa is mentioned twice in his travel account[24]. He has mentioned that, 'again after passing the Marepeta along the coast toward the northeast of eastern India, the kingdom of Orissa commences'[25]. About his journey towards Orissa, he has mentioned that after passing the kingdom of Narsinga (Vijaynagar) by land route, the next kingdom was Orissa, which was surrounded by the kingdom of Bengal on one side and the kingdom of Dely (Bihar) on the other side[26]. This information of Barbosa implies that there was a land route connecting Vijayanagar and Orissa about which most of the contemporary sources are silent. Moreover, the information on the political geography of Orissa helps in identifying the political boundary of Orissa during this period.

When Barbosa came to Orissa, Prataparudradeva was the king, and he was in continuous war with Krishnadeva Raya. About this war, Barbosa has also mentioned, 'the king of Narsinga (Vijaynagar) was frequently at war with the *Gentile* king of Orissa, which was an interior country'[27]. He even mentioned about the reason of this war: 'the reason of the frequent war between the king of Vijayanagar and Orissa was that they both had occupied some portion of each other lands and to re-occupy it they are engaged in wars'[28].

About Orissa, Barbosa has mentioned that, 'Orissa was inhabited by the *Gentiles* means the Hindu, and the king was also a Hindu. He was very rich and powerful and was having many foot soldiers'[29]. Barbosa has said that because Orissa was an interior country, he could not collect much information on the customs of the people[30]. But he emphasised that very few Muslims were staying in Orissa, and mostly it was resided by the Hindus who were very good at fighting. Till 1568 CE Orissa was a Hindu kingdom and the few Muslims were the merchants or traders who were trading in Orissa. It was only after 1568 CE when the Afghans of Bengal occupied Orissa; the Muslim settlement started in Orissa.

Caesar Frederick (1563 – 81 CE): Caesar Frederick was a Venetian traveller who out of his curiosity and desire to see the East travelled to the East Indies in a ship named Gradaige of Venice which was bound to Cyprus. From there he moved to Tripoly and then to Alepo where he met some merchants of Armenia and Moores, who suggested him to come with them to Ormus[31]. From Ormus, he sailed to Goa in a ship which was shipping horses to India. From there, with a company of two horse merchants who were carrying three hundred Arabian horses, he went to Vijayanagar, the kingdom of Narsinga which was eight days journey from Goa by road[32]. He stayed in Vijayanagar for seven months and then returned to Goa and travelled different nearby places like Cochin, Coulam, Island of Zeilan, Negapatan, and then to Malacca.

Frederick did not come to Orissa purposely but by accident. His ship was going to Saint Tome from Malaca, but the winds were so contrary that they could not control the ship and after forty days lost in the sea, they reached a land closer to the kingdom of Orissa. So when they reached Orissa, many of them have already died for want of water and the rest were too sick. He sold his slave for half price on the coast of Orissa to save his life. According to Frederick, Orissa was a fair and strong kingdom where law and order were so strict that one person could travel with gold in his hands without any danger at all. The Hindu king ruled at Cuttack which was six days land journey from the shore. The king loved strangers, especially the merchants who had traffic in and out of his kingdom. He was wise enough not to take any custom or any gift from the merchants. The merchants paid a small amount as the port charge. Every year in the port of Orissa, twenty-five to thirty small and big ships landed which export rice, cloth, oyle of Zerzeline, butter, lacca, long pepper, ginger, Mirabolans dry and condite and other great sorts of herbs for the cloths which were collected from the woods[33]. Frederick mentioned that sixteen years before Orissa was conquered by the Sultan of Bengal and Patna who after the conquest, set customs for the merchants at twenty trade centres. But his tyranny did not last long because another tyranny, the Great Mughal king of Agra and Delhi occupied Orissa without any resistance.

According to Frederick, he spent eighteen years in East Indies that is from 1563 CE to 1581 CE. He further mentioned that the Mughals were already in possession of Orissa and sixteen years before the Bengal Sultan occupied Orissa. Orissa was occupied by Bengal in 1568 CE and adding sixteen years to this, means in 1584 CE which is not falling under the travel period of Caesar Frederick, whose travel end in 1581 CE. Again in 1592 CE, Orissa was completely occupied by Akbar. But in 1572 CE Orissa was first occupied by Munim Khan, who recognised the Raja of Khurda as the king of Orissa. So, Frederick must have come to Orissa between 1572 and 1580 CE. Many historians used to believe that the king about whom Frederick has mentioned, is Raja Mukundadeva, the last independent king of Orissa. But the narrative of Caesar Frederick indicates that it was Ramachandradeva of Khurda who was the king of Orissa during this time. But Cuttack was not his capital rather it was the capital of the Mughal *Subedar*. The confusion of Cuttack with the Raja of Orissa shows the obvious confusion of Frederick on the contemporary complexity in the political administration of Orissa. Frederick departed from Orissa to Bengal, which was one hundred seventy miles distant from Orissa towards the East[34].

Ralph Fitch (1588 – 91 CE): Ralph Fitch belongs to the group of those ‘pioneer Englishmen’ who came to India with the Royal messages in the last decade of the sixteenth century. Until the departure of Master Ralph Fitch for India and Far East in 1583 CE, many of his countrymen already penetrated to other distant lands[35]. In 1591CE, Fitch returned with a great news which resulted in Elizabeth’s granting a Charter for the second Levant Company. But sooner it was felt that the Levant Company was not enough for the trade. So on 24th September 1599CE eighty members met at Founders’ Hall to debate and resolve, where Fitch along with Eldred was present to inform and advice on various matters. Consequently, on the 31st December 1600CE Elizabeth granted the first Charter to the East India Company[36].

The travel of Ralph Fitch can be described as an exploration on trade because it was mainly concentrated on the sources of profitable items for trade. In that group which travels to India, Fitch was eminently fitted for the task by his education, native shrewdness and the power of clear, concise description. The leader of this enterprise was Newberie who was an experienced traveller and merchant. The other two members were Leedes and Story also cleaver tradesmen[37].

Ralph Fitch has said that in the year 1583CE, in the ship called *Tyger*, he with his companion sailed from London with a desire to see the countries of the East Indies[38] and on 5th November they reached Diu. When they reached Goa on November 20th, they were imprisoned by the Portuguese in charge of spying. Though nothing could prove against them, they remained in prison until 22nd December. They were set free under the surety of

2,000 duckats by Andreas Taborer, an English Jesuit whom Fitch and his companion paid 2,150 duckats back[39]. When Ralph Fitch and his companions arrived at the coast of India, the Mughal Empire under Akbar was at its zenith.

But during this period Orissa was not completely occupied by the Mughal, and it was a ground for the Mughal and Afghan conflict. Fitch went to Hughli in Bengal, which was called *Porto Piqueno* by the Portuguese. According to Fitch, 'Hijli, a port of Orissa was not far from *Porto Piqueno*. Orissa was a separate kingdom, and the king was a great friend to strangers. Afterwards, it was occupied by the Patan king (Bengal sultan) who was its neighbour, but he did not enjoy it long because Akbar conquered it. Orissa stands six-days journey from the southwestward of Satgaon. Orissa is famous for rice, cotton cloth and *Yerua*, a type of cloth made of grass, but feel like silk. From Orissa, these clothes were exported to different parts of India as well as to other countries. From the port of Hijli, every year many ships were laden with rice, cloth, sugar, long pepper, butter and other products and sailed to Negapatan, Sumatra, Malacca and other places'[40]. Ralph Fitch did not mention about other ports of Orissa like Pipli, Balasore, Ganjam and he confined himself at the port of Hijli and in collecting information only on those commercial commodities available there.

John Huyghen Van Linschoten (1583 – 91 CE): John Huyghen Van Linschoten born in 1563 CE in the province of Utrecht. From his young age, he had a strong interest in reading histories, and adventures. Gradually he developed a strong desire to see and travel into the strange lands. At the age of sixteen, he joined his brothers in Spain and remained in Seville. Six years later, along with one of his brothers, he joined the service in an Indian fleet. He was appointed in the service of Vincente de Fonseca, the newly appointed Archbishop of Goa who was also travelling on that ship. The fleet sailed for India on 8th April 1583CE and on 21st September it reached Goa. Here Linschoten remained with the Archbishop, while his brother returned to Portugal in February 1584CE. Linschoten stayed five years in Goa. A short time after his arrival, two English merchants, John Newbury and Ralph Fitch were brought there as prisoners by the Portuguese on suspicion of spying. It was suspected that they were sent by Don Antonio, Prior of Crato, the late pretender to the throne of Portugal.

In January 1587CE the Archbishop left for Portugal, to report to the king on Indian affairs. So, he left young Linschoten in his house and gave him the honourable and profitable employment. But in September 1588 CE the Archbishop died, a short time after his departure from Lisbon to India. With his death, Linschoten lost his job and was forced to return Europe. On 20th January 1589CE, he sailed for Cochin, and then stayed fourteen months in Malacca and on 2nd January 1592 he returned Lisbon[41].

After his returned, Linschoten compiled his voyage in his *Itinerario*. The State-General granted him a license on 8th October 1594CE to publish his work which was completed at the beginning of 1596 CE. The *second* part of Linschoten's *Itinerario* which was printed before the first part, contained information on routes to India, the Eastern Sea and the American coasts[42]. His *Itinerario* became one of the important travel guides to India. Later on when through different scientific works, the information on and about India and sea routes increased the knowledge about Indian, Linschoten's work could not compete with them in its information. But as a picture of Portuguese India at the end of the sixteenth century, it always retained all its interest[43].

In 1584CE, when his brother left for Lisbon, Linschoten remained in Goa to see and learn the manners and customs of Indian which he had been longed since his young age. He presented vivid information regarding the geography as well as the directional routes of different places in India. He has mentioned that, 'the coast of Coromandel begins from the cape of Negapatan and stretch towards the North and East until Musulepatan. From Musulepatan the coast runs towards the Northeast and from East to the kingdom of Orissa which stretch along the same coast into the river of Ganges and at the beginning of the kingdom of Bengal. The coast of Narsinga of Bisnagar and Orissa was commonly called Coromandel by the Portuguese'[44].

Linschoten further mentioned that, ‘in the kingdom of Narsinga or on the coast of Coromandel, there stands a Pagoda that is very great and exceedingly rich and hold a great esteem among the people. It receives many pilgrims and visitors from different parts of India. Every year they celebrate many fairs, feasts and processions. During the time of the procession, they use a Wagon or a Cart which is so great and heavy that three and four elephants can hardly pull it. In this Cart, many cables and ropes were hangings which all the county people both men and women of pure devotion pull and hale. In the upper part of this Cart stands a canopy where the idol sits and under it sits the King’s wives. By creating sweetest melodies with all instruments, the Cart drawn forth with great devotions and processions. There are some of them who with great zeal and pure devotion lay under the wheels of the Cart and let the Cart run over them, whereby they are all crushed to pieces and pressed to death. This death was considered as holy and the dead were called devout Martyrs. One of the chamber fellows of Linschoten who had seen it showed me. This custom is well known throughout India’[45].

No doubt the incident which is narrated by Linschoten is the Cart festival of Lord Jagannath at Puri in Orissa. But nowhere in his account Linschoten has mentioned about Orissa. Rather, he has said that this event occurred in the kingdom of Narsinga or on the coast of Coromandel. There might be three reasons for this; first, according to Linschoten the coast of Bisnagar and Orissa was commonly called Coromandel, so Linschoten preferred to call it an event happened on the coast of Coromandel. Second, the cart festival was so popular among the European travellers that many of them have mentioned about it in their accounts but like Barbosa, Linschoten could not differentiate between the people, culture and the regional boundary between Orissa and Bisnagar. Third, Linschoaten compiled his account after thirteen years of his travel, so he narrated what he could recall. So what Linschoten saw was the Cart festival of Puri, but it might have difficult on his part to recall the name of Puri or Orissa while compiling his travel accounts after thirteen years.

On the function and limitation of memory, Francis Bacon has said that memory is not history because history is a certain organised or inferential knowledge but memory is neither organised nor inferential. Even R. G. Collingwood has mentioned that, ‘a statement of memory is not a historical statement unless it is supported by evidence or based on evidence’[46]. So the historicity of Linschoaten’s account can be established through other contemporary evidence.

Conclusion: All the above travellers who came to Orissa, came for different purposes but all of their travel accounts contains information on ports, commercial products apart from political and cultural condition of Orissa. So their accounts can not but necessary to study against the context of sixteenth century Europe. Regarding the origin of the English Empire in India, Lord Curzon, the Viceroy of India has described in a single sentence in his speech delivered at a farewell banquet given to him by the Royal Societies’ Club on 7th November 1898 CE. He said that, ‘the casual stone which was thrown into the sea of chance by a handful of merchant adventurers, two hundred years ago had produced an ever-extending circle of ripples until at the present moment they embraced the limits and affected the destinies of the entire Asiatic continent’[47].

References :

1. Hulme, Peter and Youngs, Tim, 2002, ‘Introduction’, Hulme, Peter, Youngs, Tim (eds.), *The Cambridge Companion to Travel Writing*, Cambridge University Press, United Kingdom, p. 4.
2. Rubiés, Joan Pau, 2002, ‘Travel writing and ethnography’, Hulme, Peter, Youngs, Tim (eds.), *The Cambridge Campanion to Travel Writing*, Cambridge University Press, United Kingdom, p. 242.
3. Sherman, William H., 2002, ‘Stirrings and searching (1500 - 1720)’, Hulme, Peter, Youngs, Tim (eds.), *The Cambridge Campanion to Travel Writing*, Cambridge University Press, United Kingdom, p. 17.
4. Rubiés, Joan Pau, *Op.Cit.*, pp. 257 – 258.
5. Hulme, Peter and Youngs, Tim, *Op.Cit.*, pp. 5 – 6.
6. Sabillon, Carlos, 2008, *On the Causes of Economic Growth*, Algora Publishing, New York, p. 37.
7. Adams, Percy G., 1983, *Travel Literature and the Evolution of the Novel*, The University Press of Kentucky, Kentucky, p. 51.

8. Bracco, Giuseppe, 2002, 'European Expansion in the Sixteenth Century', Antonio Di Vittorio (ed.), *An Economic History of Europe: From Expansion to Development*, Routledge, New York, pp. 48 – 53.
9. Massa, Paola, 2002, 'The Economy in the fifteenth century: Preconditions for European Expansion', Antonio Di Vittorio (ed.), *An Economic History of Europe: From Expansion to Development*, Routledge, New York, pp. 19 – 22.
10. Bracco, Giuseppe, *Op.Cit.*, pp. 48 – 53.
11. Rubiés, Joan Pau, *Op.Cit.*, p. 243.
12. Webster, Hutton, 1920, *Modern European History*, D. C. Heath & Co. Publishers, Boston, p. 614.
13. Adams, Percy G., *Op.Cit.*, p. 51.
14. *A Description of the Coasts of East Africa and Malabar in the Beginning of the Sixteenth century*, London, The Hakluyt Society, 1815, Duarte Barbosa, trans. Henry E. J. Stanley, p. ii.
15. *Ibid*., p. ii.
16. *Ibid*., p. v.
17. *Ibid*., p. i.
18. *The Book of Duarte Barbosa* (An Account of the Countries bordering on the Indian Ocean and their Inhabitants completed about 1518 A. D.), Vol. I, London, The Hakluyt Society, 1918, ed. Mansel Longworth Dames, p. xxxiii.
19. Quoted. *Ibid.*, p. xxxvi.
20. *Ibid*., p. xxxvi.
21. *Ibid.*, p. xlii.
22. *Ibid*., p. xliii.
23. *A Description of the Coasts of East Africa and Malabar in the Beginning of the Sixteenth century*, *Op.Cit.*, p. 50.
24. But in 'The Kingdom of Otisa' it is ascertained by the editor that, Barbosa wrote a short account of Orissa in Vol. I published in 1918 and a comparatively fuller account of Orissa printed in Vol. II with notes by editor Mr. Dames - 'The Kingdom of Otisa', [Reprinted from *The Book of Duarte Barbosa* published as the *Works Issued by the Hakluyt Society* Vol. I (1918, p. 228) and Vol. II (1921, p. 131), London] in *OHRJ* (1953), Vol. II, No. 2, Appendix III, pp. 18 – 21, Duarte Barbosa.
25. In Stanley translation, Barbosa has came to Orissa twice in his journey, once when he was going towards Dely (Bihar) from Vijaynagar and second when he was going towards eastern parts or Choromandal through coast.
26. *A Description of the Coasts of East Africa and Malabar in the Beginning of the Sixteenth century*, *Op.Cit.*, p. 98.
27. *Ibid*., p. 96.
28. *Ibid*., p. 96.
29. In the '*The Book of Duarte Barbosa*', Mansel Longworth Dames has wrote that, the king of Orissa was a Moor but this cannot be possible because Orissa (Cuttack) was occupied by Muslim only in the year of 1568 CE.
30. If Barbosa would have come through the sea route then he would not have mentioned that Orissa was an interior country but as he came through land route and from Orissa he moved towards Bihar, it necessary to identify in which part of Orissa he travelled. He went through Orissa when he was travelling from Vijaynagar to Bihar.
31. **'**The Voyage of Master Caesar Fredericke unto the East Indies and beyond the Indies, Anno 1563', in Richard Hakluyt, ed., *The Principal Navigation, Voyages, Traffiques and Discoveries of the English Nation*, New York, , 1904, Vol. V, p. 366.
32. *Ibid.*, p. 381.
33. *Ibid.*, p. 409.
34. *Ibid.*, p. 410.
35. *Ibid.*, pp. 12 – 24.
36. *The First English Men in India*, London, Goorge Routledge & Sons, 1930, ed. J. Courtenay Locke, p. 6.
37. *Ralph Fitch: England's Pioneer to India and Burma*, London, T. Fisher Unwin, 1899, ed. J. Horton Ryley, p. 37.
38. *Ibid*.,, p. 48.
39. *Ibid*., p. 62.
40. *Ibid*., pp. 113 – 114. and *The First English Men in India*, *Op.Cit*., pp. 58 – 59.
41. *The Voyage of John Huyghen Van Linschoten to the East Indies*, Vol. I, London, Hakluyt Society, 1885, ed. Arthur Coke Burnell, pp. xxiii – xxviii.
42. *Ibid*., pp. xxix – xxx.
43. *Ibid*., p. xl.
44. *Ibid*., pp. 82 – 90.
45. *Ibid*., pp. 294 – 295.
46. Collingwood, R. G., op.cit., p. 252.
47. *Ralph Fitch: England's Pioneer to India and Burma*, *Op.Cit.*, p. viii.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 21-25

Psychological Impact of Stress on Human being by Noise Pollution

Sushil Kumar Singh*
Prakash Chandra Tewari**

Abstracts : *Stress in generally unstable status of mind. One way to understand the relationship between the environment and human behaviour is to analysis environmental condition of his surrounding i.e. site of optimal human functioning. The concept of stress has been used to specify environmental characteristics that may lead to physiological and psychological discomfort and result ill health. Through, environmental physiology we study of the physiological mechanisms that allow life to acclimatized or cope with and adapt to changes in temperature, humidity, atmospheric pressure, and other natural factors of their physical environment. Moreover, exercising subjects are generally more vulnerable to air pollution, such as noise which is defined as unwanted sound and noise pollution can be defined as intrusive noise that disrupts, distracts, or detracts from regular functioning. Noise is typically characterised by intensity (dBA), frequency, periodicity (continuous or intermittent) and duration (acute and chronic) another important characteristic include predictability of noise burst (random or fixed intervals). There is strong evidence that loud (usually >90 dBA), unpredictable noise exposure increase catecholamine, evaluated high blood pressure and increase heart rate and skin conductance. There are few data on noise and corticosteroids, respiration and muscle tensions. Psychological effects of noise pollution are distractions and annoyances which can be just as disruptive as physical and physiological effects on productivity. Studies have shown that worker productivity can be decreased after noise has been switched off depending on the length of time exposed. Higher frequency noise has been found to be more of a nuisance than lower frequency noise. For example, the low rumblings of traffic can be considered background noise although screechy noises from alarms or machinery are considered a call to action. Another example of the psychological effects of noise is that many field studies have shown that the stresses that humans face in day to day life add up to a greater combined effect than simply summing the individual stressors. A simple way of reducing or knocking down high-frequency noise is to add acoustic fiber glasses such as Silent fiber boards or Silent Ceiling Black acoustical tiles. This simple addition can relieve stress and headaches and improve productivity and happiness. The prospect of global warming also warrants a better assessment of how higher noise pollution may impact on the response of humans. Hence, this paper focuses on the salient aspects of the interaction between environmental stress and physiological response to noise with particular emphasis on humans.*

Key words: Catecholamine, Environmental Psychology, Noise, Noise Pollution, Stress

Introduction :

Noise pollution is generally defined as regular exposure to elevated sound levels that may lead to adverse effects in humans or other living organisms. According to the World Health Organization, sound levels less than 70 dB are not damaging to living organisms, regardless of how long or consistent the exposure is. Exposure for more than 8 hours to constant noise beyond 85 dB may be hazardous. If you work for 8 hours daily in close proximity to a busy road or highway, you are very likely exposed to traffic noise pollution around 85dB. By definition, noise pollution takes place when there is either excessive amount of noise or an unpleasant sound that causes temporary disruption in the natural balance. This definition is usually applicable to sounds or noises that are unnatural in either their volume or their production. Our environment is such that it has become difficult to escape

* Dr. Sushil Kumar Singh: Assistant Professor Department of Law, Shree Ram Swaroop Memorial University, Lucknow.
* Corresponding author- Dr Prakash Chandra Tewari, Head Department of Environmental Sciences, KNIPSS, Sultanpur.

noise. Even electrical appliances at home have a constant hum or beeping sound. By and large, lack of urban planning increases the exposure to unwanted sounds. This is why understanding noise pollution is necessary to curb it in time[1]. Most of us are very used to the sounds we hear in everyday life. Loud music, the television, people talking on their phone, the traffic and even pets barking in the middle of the night. All of these have become a part of the urban culture and rarely disturb us. However, when the sound of the television keeps you from sleeping all night or the traffic starts to give you a headache, it stops becoming just noise and start turning into noise pollution. For many of us, the concept of pollution is limited to nature and resources. However, noise that tends to disrupt the natural rhythm of life makes for one solid pollutant.

Causes of Noise Pollution : This type of pollution is so omnipresent in today's society that we often fail to even notice it anymore:

- Street traffic sounds from cars, buses, pedestrians, ambulances etc.
- Construction sounds like drilling or other heavy machinery in operation
- Airports, with constant elevated sounds from air traffic, i.e. planes taking off or landing
- Workplace sounds, often common in open-space offices
- Constant loud music in or near commercial venues
- Industrial sounds like fans, generators, compressor, mills
- Train stations traffic
- Household sounds, from the television set to music playing on the stereo or computer, vacuum cleaners, fans and coolers, washing machines, dishwashers, lawnmowers etc.
- Events involving fireworks, firecrackers, loudspeakers etc.
- Conflicts generate noise pollution through explosions, gunfire etc. The dysfunctions, in this case, are likely caused by the conflict and insecurity and less by the noise pollution in itself, although that compounds stress levels too.

1. Industrialization: Most of the industries use big machines which are capable of producing large amount of noise. Apart from that, various equipments like compressors, generators, exhaust fans, grinding mills also participate in producing big noise. Therefore, you must have seen workers in these factories and industries wearing ear plugs to minimize the effect of noise.

2. Poor Urban Planning: In most of the developing countries, poor urban planning also play a vital role. Congested houses, large families sharing small space, fight over parking, frequent fights over basic amenities leads to noise pollution which may disrupt the environment of society.

3. Social Events: Noise is at its peak in most of the social events. Whether it is marriage, parties, pub, disc or place of worship, people normally flout rules set by the local administration and create nuisance in the area. People play songs on full volume and dance till midnight which makes the condition of people living nearby pretty worse. In markets, you can see people selling clothes via making loud noise to attract the attention of people.

4. Transportation: Large number of vehicles on roads, aeroplanes flying over houses, underground trains produce heavy noise and people get it difficult to get accustomed to that. The high noise leads to a situation where in a normal person lose the ability to hear properly.

5. Construction Activities: Under construction activities like mining, construction of bridges, dams, buildings, stations, roads, flyovers take place in almost every part of the world. These construction activities take place every day as we need more buildings, bridges to accommodate more people and to reduce traffic congestion. The down point is that these construction equipments are too noisy.

6. Household Chores: We people are surrounded by gadgets and use them extensively in our daily life. Gadgets like TV, mobile, mixer grinder, pressure cooker, vacuum cleaners, washing machine and dryer, cooler, air conditioners are minor contributors to the amount of noise that is produced but it affects the quality of life of your neighbourhood in a bad way. While this form of pollution may seem harmless, it in fact has far reaching consequences. The adverse effects on the health of the environment are quite severe. Not only is the local wildlife affected by the pollution, humans also facing a number of problems due to it[2].

Human Diseases Caused by Noise Pollution

Whether we realize we are subjected to it or not, noise pollution can be hazardous to our health in various ways.

Hypertension is, in this case, a direct result of noise pollution caused elevated blood levels for a longer period of time.

Hearing loss can be directly caused by noise pollution, whether listening to loud music in your headphones or being exposed to loud drilling noises at work, heavy air or land traffic or separate incidents in which noise levels reach dangerous intervals, such as around140 dB for adult or 120 dB for children.

Sleep disturbances are usually caused by constant air or land traffic at night, and they are a serious condition in that they can affect everyday performance and lead to serious diseases.

Child development. Children appear to be more sensitive to noise pollution, and a number of noise-pollution-related diseases and dysfunctions are known to affect children, from hearing impairment to psychological and physical effects. Also, children who regularly use music players at high volumes are at risk of developing hearing dysfunctions. In 2001, it was estimated that 12.5% of American children between the ages of 6 to 19 years had impaired hearing in one or both ears

Various **cardiovascular dysfunctions** Elevated blood pressure caused by noise pollution, especially during the night, can lead to various cardiovascular diseases.

Dementia isn't necessarily caused by noise pollution, but its onset can be favored or compounded by noise pollution[3].

Psychological dysfunctions and noise annoyance. Noise annoyance is, in fact, a recognized name for an emotional reaction that can have an immediate impact.

Negative Effects of Noise Pollution : Many studies have been conducted to study the effects of noise pollution on health and wellness, and the results have shown that noise pollution can negatively impact you in the following ways:

Productivity: We all know that noise can be distracting, and research proves this. One study examined children exposed to airport noise and found that their reading ability and long-term memory was impaired. Those working in noisy office environments have also been found to be less cognitively motivated, and to have higher stress levels, according to a Cornell University study.

Health: Perhaps the most serious problem created by sound pollution is the impact it has on our health. Because sound pollution can trigger the body's stress response, one of its major health effects is chronic stress and the high levels of stress hormones that go with it. As a result, noise pollution has also been linked with health problems such as heart disease, high blood pressure, and stroke. It's also been linked with musculoskeletal problems, as a Cornell University study on office noise found that those working in noisy office environments can also be less likely to ergonomically adjust their workstations for comfort, which can contribute to physical problems. Noise pollution can also impact sleep quality by preventing sleep and disrupting sleep cycles. And, perhaps most significantly, because chronic stress can lower your immunity to all disease, noise pollution is a general threat to health and wellness[4].

Effects of Noise Pollution on Wildlife and Marine Life : Our oceans are no longer quiet. Thousands of oil drills, sonar's, seismic survey devices, coastal recreational watercraft and shipping vessels are now populating our waters, and that is a serious cause of noise pollution for marine life. Whales are among the most affected, as their hearing helps them orient themselves, feed and communicate. Noise pollution thus interferes with cetaceans' (whales and dolphins) feeding habits, reproductive patterns and migration routes, and can even cause haemorrhage and death. Other than marine life, land animals are also affected by noise pollution in the form of traffic, firecrackers etc., and birds are especially affected by the increased air traffic[1].

Social and Economic Costs of Noise Pollution : The World Health Organization estimates that one out of three people in Europe is harmed by traffic noise. More than the purely medical effects of noise pollution on the individual, there is a significant social and economic impact[5]. Since noise pollution leads to sleep disturbance, it affects the individual's work

performance during the day, it leads to hypertension and cardiovascular disease and costs the health system additional time and money, and it negatively affects school performance in children.

Tips for Avoiding Noise Pollution :

The cost of hearing aids in the US can range from $1,500 to $5,000. By comparison, a simple pair of ear plugs cost as little as $0.50 if bought in bulk. Being mindful of the noise around us and taking simple precautions such as ear plugs while mowing the lawn, and breaking up time exposed to noisy vacuums can help in the long run. Physiological effects from noise pollution adversely affect health such as heightened blood pressure and stress. Research has shown that industrial workers regularly exposed to high noise levels have higher cases of nausea, headaches, argumentativeness, and changes in mood and anxiety. Based on the chart above, is your local landscaper wearing ear protection? Noise doesn't just affect people during the day. Noise can affect sleep by causing restlessness and lowered REM. Studies of people that live near an airport report more stress headaches, increased blood pressure and overall being tense and edgy. Also, many studies have shown that children with chronic exposure to aircraft noise have reduced motivation and perform lower on standardized tests. It would be beneficial within a room to simply add a product like Silent Wrap to block out unwanted noises. Peace and serenity goes a long way to making the mind and body a happier place. Psychological effects of noise pollution are distractions and annoyances which can be just as disruptive as physical and physiological effects on productivity. Studies have shown that worker productivity can be decreased after noise has been switched off depending on the length of time exposed. Higher frequency noise has been found to be more of a nuisance than lower frequency noise. For example, the low rumblings of traffic can be considered background noise although screechy noises from alarms or machinery are considered a call to action. Another example of the psychological effects of noise is that many field studies have shown that the stresses that humans face in day to day life add up to a greater combined effect than simply summing the individual stressors. A simple way of reducing or knocking down high-frequency noise is to add acoustic fiber glasses such as Silent Fiber boards or Silent Ceiling Black acoustical tiles. This simple addition can relieve stress and headaches and improve productivity and happiness[7]. Noise pollution can be defined as intrusive noise that disrupts, distracts, or detracts from regular functioning. And while people mainly think of noise pollution as a problem of the big cities, with the competing sounds of more people in a smaller space, noise pollution can also be found in suburban neighbour hoods (in the form of leaf blowers, lawn mowers, and home construction) and even individual homes and offices at levels that can have a negative impact on your health and productivity[8-9].

- Wear earplugs whenever exposed to elevated noise levels
- Maintain a level of around 35 dB in your bedroom at night, and around 40 dB in your house during the day
- If possible, choose your residential area as far removed from heavy traffic as you can
- Avoid prolonged use of earphones, especially at elevated sound levels
- If possible, avoid jobs with regular exposure to elevated sound levels

Laws and regulations for noise pollutions : Noise though not defines in any statute, but it is included as an environmental pollutant in section (a) of the Air (Prevention and control of Pollution) Act 1981 and hence, recognised as a kind of air pollution too. A draft of Noise Pollution (Regulation and Control) Rule 1999 was published under notification of the government of India in the Ministry of Environment and Forest vide number S.O. 528(E), dated 28th June 1999 and copies of the Gazette were made available to the public on the 1st day of July 1999. Now, therefore in exercise of the power conferred by clause (ii) of sub section (2) of section 6 and section 25 of Environmental (Protection) Rule 1986, the central government hereby make the rule for the regulation of control of noise producing and generating sources as the Noise Pollution (Regulation and Control) Rule, 2000 on 14th of February. It was further Amendments under G.S.R. number S.O. 123 (E), dated the 14th February, 2000, S.O.1088 (E), dated the 11th October, 2002; S.O.1569 (E), dated the 19th

September, 2006; G.S.R. 158(E), dated the 9th March, 2009 and later on 11th January 2010 under SO50(E) the Noise Pollution (Regulation and Control) (Amendment) Rules, 2010.

Conclusion : Noise pollution may cause or contribute to the following adverse effects: anxiety, stress, nervousness, nausea, headache, emotional instability, argumentativeness, and sexual impotence, changes in mood, increase in social conflicts, neurosis, hysteria, and psychosis. Population studies have suggested associations between noise and mental-health indicators, such as rating of well-being, symptom profiles, the use of psychoactive drugs and sleeping pills, and mental-hospital admission rates. Children, the elderly, and those with underlying depression may be particularly vulnerable to these effects, because they may lack adequate coping mechanisms. Children in noisy environments find the noise annoying and report a diminished quality of life. Noise levels above 80 dB are associated with both an increase in aggressive behaviour and a decrease in behaviour helpful to others. The news media regularly report violent behaviour arising out of disputes over noise; in many cases these disputes ended in injury or death. The aforementioned effects of noise may help explain some of the dehumanization seen in the modern, congested, and noisy urban environment.

Acknowledgement : Authors are highly thankful to Honourable Vice Chancellor Shree Ram Swaroop Memorial University and Director Institute of Legal Studies Shree Ram Swaroop Memorial University, Lucknow for entire work conducted.

References:

1. Dara, S. S (2004). Environmental Chemistry and Pollution Control. S.Chand Publishers, New Delhi: 31-37.
2. Diwan, P and Diwan, P. (1998). Environmental Management, Law and Administration. Vanity Books International, New Delhi: 45-78.
3. Stansfeld Stephen A. and Matheson Mark P. (2003). Noise Pollution: Non-Auditory effect on health. British Medical Bulletin. 68(1):243-257.
4. Bernard J. Nebel and Richard, T. Wright. (1993). Environmental Science. Prentice Hall, New Jersey: 67-98.
5. Woods, R.I. (1976). Noise Control in Mechanical Services. Woods (Ed), Sound Attenuators Ltd & Sound Research Laboratories Ltd. Essex.
6. Gupta, S. and Ghatak C. (2011). Effect of noise assessment and its effect on human health in urban area. International Journal of Environmental Sciences. 1(7): 1954-1964.
7. Xin, P., Kawada, T., Yosiaki, S., Suzuki, S. (2000). Habituation of Sleep to Road Traffic Noise Assessed by Polygraphy and Rating Scale. Journal of Occupational Health, 42 :20-26.
8. Zannin, P.H.T,Calixto, A., Diniz, F., Ferreira, J.A. (2003). A survey of urban noise annoyance in a large Brazilian city: The importance of subjective analysis in conjunction with an objective analysis. Environmental Impact Assessment Review. 23: 245-255.
9. Babisch, W. (2000). Traffic Noise and Cardiovascular Disease: Epidemiological Review and Synthesis. Noise & Health, 2(8), pp 9-32.
10. Nelson, J. (2010). Stress and diabetes. WebMD Feature, MedicineNet.com. http://www.webmd.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 26-29

Chabahar Port and India's Security

Ranjeet Kumar Patel*

Chabahar port is located at the south eastern Iran along the Makran coast in the Gulf of Oman in the Sisten and Baluchistan province of Iran. Chabahar is Iran's closest and best access point to the Indian Ocean, and which is also the only oceanic port of Iran.The Chabahar deal and the India-Iran-Afghanistan trilateral dialogue that took place during Indian Prime Minister NarendraModi's May 2016 visit to Tehran have generated much debate. While there is a larger focus within the country on India's foreign policy push, it is also being viewed with much suspicion in Pakistan and with interest, in Iran and Afghanistan.India's larger objectives in reviving the relationship with Iran, its investment in Chabahar port and whether the latter is pursued as an alternative or competition to Pakistan's Gwadar port, are interesting questions to address.

Chabahar lies outside the Persian Gulf and can be easily accessed from India's western coast. In fact, the distance from New Delhi to Mumbai is more than the distance from India's Kandla port on western coast to Chabahar. It is located 45 nautical miles away from the port of Gwadar which is being built by China in Pakistan's Balochistan. Gwadar is the outlet to Indian Ocean from the proposed China-Pakistan Economic Corridor (CPEC) termed as a "game changer" in the region by both the Chinese and the Pakistanis. Gwadar provides tremendous strategic advantage to China, not only in its pursuit of encircling India, but also in the domination of Indian Ocean an unchallenged domain of India so far.

Another major geo-strategic factor that affected India's outreach to strategically important Afghanistan and oil and mineral rich Central Asian Republic (CAR) is the continuous reluctance of Pakistan to allow access to these landlocked regions through its territory, and which is the only over-land access available presently. This has not only hampered India's economic interests, but also its security concerns because of the lack of direct access to the terror-ridden nations in the region. Pakistan enjoyed a geo-strategic advantage in 'War on Terror' against Afghanistan, and hence, enjoyed American largesse despite enough evidence to prove its involvement in not only sheltering the terrorist leaders but perpetrating terror in South Asia, particularly India. The commissioning of Chabahar will not only provide India much needed access to Afghanistan and give boost to its connect-Central Asia policy but will also seize the strategic initiative back both from Pakistan and China. It will also act as an effective counter to China's "string of pearls" strategy in the Indian Ocean due to its location viz a vizGwadar. It will also help India to fight terror and extremism in the region jointly with the regional players thus isolating Pakistan. Pakistan rightly views India's so-called "expansive diplomacy" in the region as a threat whereas India looks at it as an opportunity for furtherance of its economic and strategic interests in the region.

The Chabahar port will also give boost to the strategic International North-South Transport Corridor (INSTC) by being its natural outlet to the Ocean. INTSC is an ambitious project to connect India to European and Central Asian markets through a network of ship, rail and land route. It will connect India to Russia via Iran and Azerbaijan. With India's access to CAR nations blocked by Pakistan INSTC will provide India the vital access to the Central Asian, Russian and European markets enabling India to compete with China. The aim behind INSTC is to cut transportation costs giving boost to better trading margins while competing in these markets. Compared to the current traditional sea route to Europe via the Suez Canal, Chabahar-INSTC is 40% shorter and reduces the cost of Indian trade to Europe

*Assistant Professor, M.D.PG.CollegePratapgarh.

by 30%. Moreover, international trade will be able to overcome the uncertainties of "Sea Politics" in the volatile Middle- East with the availability of an alternative. China's ambitious China-Pakistan Economic Corridor (CPEC) providing China international connectivity via Gwadar port passes through the most troubled areas in Pakistan and is vulnerable to many security challenges. The route from Chabahar to Afghanistan via Iran and the INSTC passes through relatively peaceful regions of Afghanistan thus, making Chabahar a natural winner viz a vizGwadar as a preferred port for the international trading community and earning a greater share of trade.

India's increased presence in the region would also enable her to become a significant player in the Middle-East. India's influence over Chabahar could be leveraged in many ways. India's energy security needs would also be addressed with the option of bypassing Pakistan. Turkmenistan- Afghanistan- Pakistan- India (TAPI) gas pipeline project can now be diverted directly from Afghanistan to India via Chabahar. So far India's gas imports are confined to Oman only. Undersea gas pipelines can also be laid to bring gas from Oman, Iran & CAR nations to Indian ports on western coast. It will to a great extent meet India's energy requirement so vital for her growth.Chabaharis a strategic port from the perspectives of India, Pakistan, Iran and Afghanistan. Other than the easy access from the western coasts of India, it plays several significant roles.

Source:-http://www.dailymail.co.uk/indiahome/indianews/article-3605422/Modi-inks-500m-deal-develop-Iran-s-Chabahar-port-open-India-s-trade-routes-Afghanistan-Europe-bypass-Pakistan.html

Importance of Chabahar :

1. India can save one third of its time to reach Central Asia by having an access to the port.
2. The link between Afghanistan and India could be built bypassing Pakistan, which could help in building up thealready set relationship between Kabul and New Delhi on security ties and economic interests.
3. If Iran builds Chabahar as a transit hub for immediate access to markets in northern regions of the Indian Ocean and Central Asia, it would help India in gaining access to those markets directly.
4. India's previous relationship with Iran with New Delhi being the second largest buyer of Iranian oil will work as to fasten the process.
5. Through Chabahar India can use the road access to four cities in Afghanistan Herat, Kandahar, Kabul and MazareSharif. This will help India further develop its trade with Afghanistan.
6. India can counter China-Pakistan economic corridor project.
7. Also, Chabahar port is suitably located to serve India's outreach in the region to Afghanistan and beyond as well as link with International North-South Transport Corridor (INSTC) to which India is one of the initial signatories.
8. It is located 76 nautical miles (less than 150km) west of the Pakistani port of Gwadar, being developed by China. This makes it ideal for keeping track of Chinese or Pakistani military activity based out of Gwadar.

Chabahar: Competitor for Gwadar?

There have been numerous concerns in Pakistan that India is using Chabahar to thwart Gwadar. Situated inthe Makaran coast, parallel to Chabahar, Gwadarbeing developed by China. If Chabahar functions in full swing, Gwadar would take a back seat. India taking the Chabahar port seriously can also reflect on the Sino-Indian relationship. Via Gwadar, China can monitor the US and Indian naval activity in the Persian Gulf and Arabian Sea while Pakistan as a proxy can control the energy routes from there.

Will a fully functional Chabahar port challenge Chinese investments in Gwadar? If China and Pakistan bear such perceptions, a competition (and perhaps even a dispute) between the two ports could commence in the future.To conclude, India is Iran's second largest crude oil importer after Beijing. Iran exported oil to India at a subsidised rate even during problematic times. Iran also wanted to help India during the Gujarat earthquake.India

unfortunately pursued a few strategies against Iran during the sanctions period. Under the pressure from the US, India even voted against Iran at the IAEA. India also backed out from the pipeline project.

India will develop and operate the Chabahar port. India Ports Global, a recently formed port project investment arm of the shipping ministry and a joint venture between the Jawaharlal Nehru Port Trust and the Kandla port, will invest $85 million in developing two container berths with a length of 640 meters and three multi-cargo berths.The contract is for 10 years and extendable. It will take 18 months to complete phase one of the port construction. The first two years of the contract are grace period which means India doesn't have to guarantee any cargo for the port.From the third year, India will facilitate 30,000 TEUs (Twenty Foot Equivalent) of cargo at the port. The quantum will rise to 2,50,000 TEUs by the 10th year.

The port was partially built by India in the 1990s. An initial pact to build the Chabahar port was first inked during the AtalBihari Vajpayee's government in 2003, but the deal slipped through during subsequent years.Negotiations only intensified after nuclear deal between P5 + 1 (the UN Security Council's five permanent members -- China, France, Russia, UK and US -- plus Germany) and Iran last year. But reaching the deal was far from smooth and differences cropped up over ownership as Tehran's Port Authority introduced role of private player in the process. After several rounds of negotiations between India's consortium of JNPT, Kandla Port Authority and Iranian authorities, the contract was deemed ready for signing.

An energy-hungry country like India has always been loyal to its partner, Iran, even under the sanctions. They imported crude from Iran despite the fact that they were under the United States harsh pressures and in the meantime Iran is of geopolitical interest for India that is in tight rivalry with Pakistan, even their geopolitical rivalries in the region have now stretched to the political scene in Afghanistan, and India could use the transit route through Afghanistan and Chabahar to reach the Central Asian markets and bypass Pakistan, so it is of paramount importance to India to work with Iran and to increase its economic and trade and transit interactions with Tehran.

In the meantime, because it has been always loyal to Iran and stood by Iran even when Iran was under the harshest sanctions of the United States and its allies, Iran is much interested to develop its ties with these states. One is Switzerland that you saw in a scarce meeting with Iranian Supreme Leader, Iranian Leader encouraged Switzerland to develop ties. It was a very scarce meeting between the Iranian Leader and a European president or leader.The same is true with regard to India. Iran has prioritized expanding relations with those states that stood by its side when it was under sanctions. That is why Iran is much interested to keep India in the development of its energy field Farzad B in the Persian Gulf and also the two sides can work more in order to confront the threat of drug trafficking that is posed in Afghanistan and also the terrorism and war that is waging across the region especially in Afghanistan that borders both countries.

Relationship between India and Iran have been cordial enough to sustain a very deep energy relationship, with India importing a fair amount of Iranian hydrocarbons, though India has reduced these imports in recent years due to US sanctions on Iran. At the same time, there are tension points between the two owing to India's desire to improve relations with the US. The US has been asking India and other countries not to rush into doing business with Iran as it was yet to work out a deal with Tehran on the latter's contentious nuclear programme.

The deal is significant for bilateral relations as it would signify that India is committed to supporting a major infrastructure project in Iran. The port will be used to ship crude oil and urea, saving India transportation costs. India intends to lease two berths at Chabahar for 10 years. The port will be developed through a special purpose vehicle (SPV) which will invest USD 85.21 million to convert the berths into a container terminal and a multi-purpose cargo terminal.

References :

1. http://southasiamonitor.org/detail.php?type=sl&nid=17173
2. http://www.insightsonindia.com/2015/06/03/indias-world-india-iran-deal-on-chabahar-port/
3. http://www.insightsonindia.com/2016/09/30/insights-daily-current-affairs-30-september-2016/
4. www.ipcs.org/print_articledetails.php?recNo=4960
5. www.ipcs.org/print_articledetails.php?recNo=5065
6. www.ipcs.org/print_articledetails.php?recNo=5087
7. www.thehindu.com/news/international/indiaschabaharportplanistocounterourgwadarportplanchinamedia/article8700691.ece
8. http://economictimes.indiatimes.com/news/politicsandnation/fivethingsaboutchabaharportandhowindiagainsfromit/articleshow/52400399.cms?prtpag…
9. http://pib.nic.in/newsite/mbErel.aspx?relid=147456
10. http://indianexpress.com/article/research/narendra-modi-iran-visit-chahbahar-port-deal-2817180/
11. http://www.ndtv.com/india-news/india-iran-strategic-chabahar-port-to-be-operational-by-december-2016-wii-give-access-to-afghanistan-765599
12. http://economictimes.indiatimes.com/news/economy/policy/india-iran-afghanistan-keen-on-expediting-pact-on-chabahar/articleshow/54571913.cms
13. http://www.deccanchronicle.com/nation/current-affairs/250716/chabahar-port-may-become-operational-in-15-2-years-govt.html
14. http://www.thehindu.com/news/international/indias-chabahar-port-plan-is-to-counter-our-gwadar-port-plan-china-media/article8700691.ece
15. http://www.bbc.com/news/world-asia-india-36356163

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 30-38

Intrinsic value of a Heritage Monument: A Study on Sun Temple Konark, Odisha

Santosh Kumar Dwivedi*
Dr. Md. Sabir Hussain**

Abstract: World Heritage properties are places that are important to, and belong to, everyone in the world, regardless of where they are located. They are an irreplaceable legacy that the global community has decided to protect for the future. There are presently 1052 world heritage sites among them 814 cultural, 203 natural, and 35 mixed properties, in 165 states parties. All properties inscribed on the World Heritage List must have adequate protection and management mechanisms in place. World Heritage Committee has been divided counties into five geographic zones, Africa, Arab States, Asia and the pacific, Europe and North America, and Latin America and the Caribbean. World heritage site treated as the prestige of the nation as well as it is a prime marketing tool for the tourism developments of the nation. World heritage site is not only promoted itself as a tourism product but also other facilities and services associated with the tourism industry those are being promoted along with the site. Sun temple Konark is internationally recognized and it is the only world heritage site in the state of Odisha. In this article our prime focuses on tourist attractions of the temple, which attracts the thousands of tourists every year. From the entrance gate to old sun temple and various sculpture, artifacts, scrollwork's, edifices and excellent artistic use of body languages of the figures and great artistic works.

Key Words: Artifact, Edifices, Scrollwork, Bhayala, Dupicha, Upana, Pabhaga, Barandi, Khura Prustha, Bada, Alasa Kanya, Deula, Natamandapa.

Introduction: Sun Temple Konark is grand sun temple built in 13th-century CE at Konark in Odisha, India. It is believed that Sun Temple at Konark was built by great king Narsimhadeva I of Eastern Ganga Dynasty in 1255 CE. World Heritage properties are places that are important to, and belong to, everyone in the world, regardless of where they are located. They are an irreplaceable legacy that the global community has decided to protect for the future. There are presently 1052 world heritage sites among them 814 cultural, 203 natural, and 35 mixed properties, in 165 states parties. It is said, this magnificent temple structure built to commemorate the king's military victories, greatness, and piety. The Sun Temple at Konark had long been a centre of sun worship; this type is very rare in other parts of India. The temple is visible grandeur in its size even in its present ruinous and eroded state and also its structural design concept. This is also very famous for excellence of its carving and decorations. Its enormous sanctuary tower which was tallest in the complex, collapsed in the 19th century.

Objective of the Study:

- To highlight the tourist attractions of the sun temple Konark
- To understand outstanding value of world heritage site
- To highlight various scrollwork, artifact, edifices, sculpture, figure, architectural design of the temple.

Methodology: The present study based on available secondary data collected from various books, magazines, journals, and published articles and from relevant websites from World Wide Web have been extensively referred.

*Research Scholar, Utkal University, Odisha
** Senior Faculty I.I.T.T.M. Bhubaneswar

Decoration of the Sun Temple Konark

1. Iconography: The Sun Temple Konark's walls fully filled with various attractive imaginary pictures of human's gods, semi-humans and animals. Most of them are repeatedly. There is every imaginary picture of them holding individual significance and these pictures have their own artistic values.

The Lions Sculpture at the Temple: Gajasingha at the eastern gate there is a pair of giant Gajasingha in front of the Natamandapa of the temple structure. Crouching lions pair could also have been carved as independent sculpture. Standing lion stand on its hind legs on a prostrate elephant. This kind of lion occupies the niches between consecutive pilasters on the bada of jagamohana. It also occupies at the first plinth from two sides of many corner pillars. These are in two category first one normal and second one terrible (Bhayala). The squatting lions are usually found at the neck of the temple structure, the Amala or the Sree on its back. At same location, another kind of the same icon name Dupicha Singha can also be found. It is placed at the corner (aligned with Kona Paga) and has its posterior split. There is another variant shown with one of its paws raised.

The Horse Sculpture at Sun Temple: During the restoration work of AD 1900-1906, two large warhorses which placed on pedestal construction that are stand near the southern compound wall. Almost same kind of sculptors which creates celestial beauties, such as the dancing musician in the pidha niches, being overlooked their anatomical accuracy. There are also created various masterpieces like warhorses where they opted for physiognomy accuracy. Seven Horse of the Sun's Chariot in the temple construction there are seven horses that placed in front of the temple have also received appreciations galore from art critics. Coomaraswamy says, ' but even this state of ruin the fragments speak for themselves the strenuous task of drawing the gigantic chariot they express a mood of sadness almost as profound as that of Javanese Mahisamardini.

The Elephant Sculpture at Sun Temple: The forests of the state Odisha were predominantly inhabited by elephants; in fact they were part of the life. It is believed that elephant was a beloved subject of Konark sculptors. One can fined them on the Upana of the temple structure, as also on the Muhanti of Pidhas, high above from the ground. When sun temple erected two sculpture were modeled on king's pet elephants.

The Snake Sculpture at Sun Temple:The snakes are found in profusion on Janghas of the first plinth and Bada of the Jagamohana at Konark Sun Temple. But such kind of images are conspicuously absent on the walls of Natamandapa. In opinion of Behera the snake worship was prevalent in Odisha. In the Shanti Parva of the Mahabharata, one-wheeled chariot of Suryadeva was drawn by Naga Padmanava; as per the Vishnu puran, four snakes in association with sage and Gandharva pulled Sun's chariot. Sun and snake jointly addressed universerally. Some scholars claim that Surya is an incarnation of Shiva, others believe that Surya and Narayana the same, which is why Surya is also called Suryanarayan. Seven hooded snake is a pet icon in Vaishnava temples, but not in Shiv temple.

2. Erotic Sculpture at Sun Temple Konark: The sculptor of Konark has depicted some of the phases that are in a sublime manner, imbuing them with tenderness, eagerness, innocence, and passion. There is used a term 'erotic' means sexual love. These images have earned the notoriety of obscenity. It is but natural that erotica is an enigmatic phenomenon, found on the walls of many Hindu temples in India, but at Konark, their presentation seems to be all-pervading. Konark has earned the soubriquet 'pornographic book on stone' because of the excessive use of erotic figures.

3. Scrollwork at Sun Temple: Scrollwork may be a rhythmic pattern presented to highlight a subject. Artists are influenced by nature, especially creepers and their tendrils. There are flowered or leafy creepers compromises the majority of scrollwork, living creature even abstract geometrical patterns have also been the subjects of scrolls.

4. The Mundi temples at Sun Temple: The mundi temples carved out of the walls are small temples in bas-relief. It is found at many locations which figurative work inside. This is three type of mundi temple in Konark temple. These temples bears distinct feature from

which their name are divided. These three are Kakhara Mundi, Pidha Mundi, Bajra Mundi. The Kritimukha, is also called 'Bho', its creations taken from Buddhist chaitya sculptures was originally used in the windows. And other beautiful pieces of sculpture found many applications but became famous in its placement on the Raha Paga of the Gandi portion in both the Rekha and Pidha Deulas.

5. Sculpture of Konark Temple Complex: The Temple of Narasinghdeva: The Sun Temple Konark complex built by Narasinghdeva I. The Bimana, the Jagmohana, and three Nisha are constituted a cluster five temples. These all are placed on a high plinth.

Khura Prustha (1st Plinth): East to west ward of the plinth including staircase, is 320'3". It is approximate 233' at widest spot. Taking into account the various bends and upsets along liken, the total length of the plinth work out to 1092 feet. Eastern side staircases attached seven horses. There are two wheels located on sidewall of this staircase, and behind horses. It is Panchangi Bada having a five element Pabhaga, a three element Bandhana, and a two element Barandi besides the Upana. There are five element of the Pabhaga consists Pada, Khura, Pata, Koni and Basanta. Bandhana have three elements including Pata, Noli, and Pata. Three bands combined width or height is 7.8". This leaves for lower Jangha 2'9" and for upper Jangha 3'10". It is considering the length of the plinth Bada (1092'). A number of Kakhara Mundis have been carved on flat surfaces and on pillars at lower Jangha. The corner pillar has two doors in Kakhara Mundi while others have one each. There is four images accommodate at lower Jangha and one Kakhara Mundi at centre. Two large U-shaped niches on southern and northern face of plinth.

At the upper Jangha imagery in has not followed the five figure pattern of the lower Jangha, and not in any Kakhara Mundi. Before the placing the various icons or Mundis in either the lower or upper Jangha, the whole surface is perforated like honeycomb, providing an ethereal background was created over such a large area. Between wheels number 5 and 6 there are two panels placed that deserve special mention. These panels famous as 'architect with wife' and 'selling of a giraffe' these two are not placed in Pidha Mundis but adorn two decorated canopies, which cannot be seen anywhere in the temples. Bandhana the three elements, notwithstanding the beautiful scrollwork on them, would have looked drab but for the intervention of pillars every few feet, creating a knot-like sculpture wherever the Bandhana crosses the pillars.

The Upana: It major part of the plinth that has not been brutally vandalized. Strip below the first steps of the three staircases, the Upana remains mostly intact. Gigantic wheels appear to be rolling on Upana is a foot-thick strip. There are appears like whole world elephants, are jostling, socializing, and perpetually on the move on this strip. Debala Mitra states that there are over 1700 elephants on the Upana. Behera puts the figure at around 1600. The sculptors have poured into these miniatures as much creative passion as they have into the larger images located above.

The Wheel: It is internationally popular the 24 wheels of Konark as beautifully balanced sculptures. The wheels are 9'9" in diameter with a 9" wide rim. Its spokes joining the hub with rim are 3'3" in length. The name of the important part of wheel according to Boner, Sarma and Das, are as Hub flange, Axle, the peg, circle at the end of axle, thin spoke, thick spoke, rectangular shape on thick spoke, the circle on Ara Pheni. All nine circles in each wheel, icons are placed one at the axle centre and eight on Ara Ganthi. It is believed that these nine circles have place of prominence. Outer rim bears more scrollwork; the wheel's hub flange has a lotus petal design. There is in wheel not an inch has been left without designed carving.

The icons categorized into four broad categories (i) Gods and Godness (16 icons), (ii) Alasa Kanya (18 icons), (iii) other social activities (43 icons), and (iv) Erotic sculpture (90 Icons), sum of the total 167 icons. Out of the 24 central knot, 15 have been destroyed. The name and locations are Lakshmi-wheela5, 17, and 21; Hiranyakashipu- wheel 3 and 7; and Krishna and Gopis- wheels 15 and 12. Out of the balance nine only six have divine presence (wheels3,5,7,15,17,21). Out of these sixteen divine images, seven could be identified.

Plinth Bada: Pabhaga: Banalata filled in the Pada areas between two beaded boarders. Lotus petals were used in the Khura. The Kumbha is a plain pitcher. The Pata is scrolled

with Patralata. Whereas the Kanthi is not bears scrollwork. Between two beaded boarders the Basanta again is filled with banalata. From Basanta a scrolled strip hangs with a locket bearing a Chaitya motive at its end.

Bandhana: Two Pata strips have Patralata scroll work while the Noli bears a string of beading on its tip. Human images (47 images) exist in the frames laid intermittently on the Bandhana, including Alasa Kanyas (27 image), social activities (11 image), and nine erotic sculptures. Most of these images have decayed due to weathering among these some are extremely damaged.

Sculpture on the Banandi of the Plinth: The plinth Bada's Barandi does not have any of the traditional significance. A broad Muhantis accommodated on 2'9" wide band, between which is a 9" wide depression. Honeycomb pattern are used at the depressed area and the Muhantis display various human activities. The sculptured panels of the Barandi are classified into three that have been recovered and inserted. There are erotic images and Alasa Kanyas are completely absent. The Barandi areas are seems reserved for war scenes. There are war related images 36, social activities related 5, and Gods related 2 images. Elephant, soldiers, and horses, images were primary actor of the war. There are also found images of camels. Bullock carts were used for logistics work and even by human a figure indicated such form. By manpower using simple machine like leverage applied by poles and ropes large boulders were moved. A king is leading his army on horseback in a figure. Pet motif of Odishan sculptors were ducks. Sculptors present ducks even in the midst of war. Inside a forest image, a tiger is seen with suckling cub and a deer with her calf just ahead, followed by another deer and a group of devotees in a trance while Krishna plays his magical flute future ahead.

Sculpture on the Kakhara Mundis of the Plinth: It is Kakhara Mundis that are integral part of the lower Jangha. Kakhara Mundis are a part of the sculptural pattern like the corner pillars, they also contains human activities in miniature. There is presence of women greatest being it social or erotic sculptures. Among the 182 sculptures that could be recovered, 18 sculptures belong to the social category, 36 sculptures to Alasa Kanya, and 128 to erotica.

Pidha Mundis of the Upper Jangha of Plinth: Recovered 182 Kkhara Mundis of the lower Jangha in this only 12 are Pidha Mundis in the upper Jangha. This covered entire height of the upper Jangha (46") and it is measure 26"×46". These all the Pidha Mundis are related royal activities. Between wheels 2 and 4 in the north Bada four of them are seen and the rest of them between wheels 19 and 24 in the north Bada.

Erotic sculpture in the lower and upper Janghas of the Plinth: Moving above plinth, we can see erotic sculptures in upper Jangha of Jagamohana, but its numbers is very low compared to the multitude of the erotic friezes on the first plinth. C. Ross Smith aptly states 'the art of love, which is an old art, is exhaustibly exploited, and if there is anything new to be said concerning love, if there is anything new to be said concerning love, if there are any more unanswered questions, then Konark is right place to go'. One can observe many scriptural aspects because there is knowledge of the fundamental truth, and socio-theosophical aspects of eroticism have.

Padma Prustha (2nd Plinth): There is a walking path 10-12 feet wide above the first plinth, meant for the circumambulation of the temple. Temple cluster is rises on the second plinth called the Padma Prustha; padma i.e. lotus, this is the Sun god's symbolic flower. There is a list of important sculpture of the Sun Temple which attracts tourists.

Table 1: List of some important sculpture and figure with its description

Serial No.	Description of the sculptures
1.	The tenor of the elephant world - free affectionate.
2.	Men and women walking along a forest path.
3.	Two men carrying their burden in slings in a different area, and three elephants seemingly in a hurry, moving
4.	The queen is seen carried in doli with her child in her lap in a royal procession.
5.	The king is shown hunting a deer elsewhere.

6. A couple with their merchandise loaded on bullock and an attendant at the toe, being confronted by two bandits on a forest path. Two elephants proceeding in bewilderment.
7. A royal cavalry is passing in the same sector elsewhere.
8. Foot soldier marching in a long line.
9. Soldier's provisions being carried in a big box.
10. An unconcerned rural woman moving with her provisions and three bullocks carrying the burden.
11. A group has camped in a forest to prepare lunch. Two big pots are placed on twin oven attended by three persons. The bullock that pulled the cartload of goods has been unyoked and is resting. A woman behind the cart is apparently giving instructions to someone. Three elephant with baby are arranging their own lunch without disturbing the party.
12. Three men trying to catch two elephants from a herd of four elephants and a calf.
13. In it are more men and a tame elephant. Long timber poles are used besides the lasso.
14. Two elephants trying to break a cage, presumably to free their captive brother.
15. An elephant is trying to break the head of one of the two cage operators.
16. They are tried in a line and being led to the accompaniment of trumpets and drums to the royal stable.
17. Royal cavalry marches ahead with flags fluttering.

Table 2: List of location and number of the friezes available

Gajasingha	102
Sarpadeva/devi	144
Lower Jangha (including Pidha Mundis)	592
Bandhana	47
Upper Jangha (including Pidha Mundis)	313
Barandi	43
Icons on wheel knots	167
Number of wheels	24
Total	**1432**

Being counting of friezes there are total number of friezes, including those that have been lost, could not have been less than 2,000. Most of them are beautifully crafted toys, arranged neatly in a 1092 ft- long showcase, and tell no great story.

6. The Superstructure: Going up the eastern staircase of the Jagamohana one is immediately confronted by the large entrance door. There was one such door on each side of the Jagamohana, sealed off during the restoration work of A.D. 1900-19006. By large stone wall southern door is covered, western door is now beyond reach, a small portion of the northern door is extant. The entrance door remains almost intact but some vandalism at the bottom. The door opening is 6'6" × 15', with an eight band frame on three sides it measures 16'6"×20'.

Navagraha Shila: Eastern doorframe on the top of this was Navagrah Shila's house, now kept in a hall. It is believed by Hindu mythology that nine particular planet condition the life support system on earth. These planets are collectively called Navagraha that are placed on the top of entrance doors of temple. All four doors at Konark originally had a set of Navagraha. At the eastern entrance this was carved out of a single stone slab.

Decoration of the Temple Bada: Three horizontal bands main role is to balance the innumerable vertical lines and sculptures, and thus create a magical pattern of the light and shade. It has been done superbly, but for the rude intrusion of two Kakhara Mundis. The Raha Paga, it may be seen was fully occupied by entrance door and its appurtenances. This is leave for the Anartha Paga and the Kona Paga for other sculptures.

Dikpalas and their Consorts: For the eight Dikpalas and their consorts the Anartha Paga is scripturally reserved. Inside a Kakhara Mundi while the Dikpala sat at the lower Jangha,

and his Shakti (consort) occupied a Pidha Mundi in the upper Jangha, right above. Central portion of the Anartha Paga is covered by a plain stone wall from top to bottom. All the eight Dikpalas protect the temple and its inhabitants from all eight cardinal direction of the compass. Carved in chlorite stone these Dikpalas reflect the super crafmanship of Kalinga sculptor. One kind of Dikpala Bartasaaruni available in Konark museum, other are in different museums.

Other Icons on the Jagamohana: Apart from many Dikpalas and their consort, who else could occupy the Kona Paga? The Kona Paga of the temple was perhaps adorned by the Ganga and Jamuna or Sarpa Deva/Devi. Between the principal Pagas vertical niches were carved adorned either by erotica or a Gajasingha besides one or two narrow pilasters. There is a repetitive pattern develops, which will be clear from seriatim identities given below in table.

Table 3 : In Series identities of figure and sculpture

South of eastern Raha Paga (Door)	
Between Raha Paga and Anartha Paga	Erotic
Between Anartha Paga and Kona Paga	Erotic
Between Raha Paga and Anartha Paga	Gajasingha
Between Anartha Paga and Kona Paga Bhayala	(Gajasingha)
One of the narrow pilaster containing two erotica in miniature	
North of eastern Raha Paga (Door)	
Between Raha Paga and Anartha Paga	Erotic
Between Anartha Paga and Kona Paga	Erotic
Between Raha Paga and Kona Paga	Obliterated
Between Anartha Paga and Kona Paga	Gajasingha
One narrow pilaster with one erotica in miniature and the other mutilated	
Side faces of the Raha Paga	
South east upper jangha	Homecoming
South east lower jangh	Gajasingha
North east upper Jangha	Unnatural sex act
North east lower Jangha	Gajasingha

Jagamohana Bada's available portions are display this pattern. Jagamohana's southern face was so badly mutilated that restorers in A.D. 1900 had to wall-off a major portion. There are few fragmented images that remain are covered by mesh of scaffolding. The manmade barrier exists on the south-west side of the Jagamohana, Gainthala, and a little of the broken Rekha Deula.

Parshwa Devata: Perhaps the three Parshwa Devatas are the best in Konark temple. Konark artisans executed filigree work on hard granite stone with unimaginable dexterity. There are various kinds of details available on eyebrows, ornaments, lips, and muslin-like self-designed garments are example of workmanship that has to be seen to believe. Debla Mitra writes 'Parshwadevata representing Surya are rather stiff in conformity with the canonical convention regarding hieratic deities. Engineer Manomohan Ganguly, with his usual inclination for canonical accuracy, measured two of these images. He found them conformant to the Sukra Niti, he quoted in his work.

7. Maga Brahmins: There is a section of Iranian priests those called the Maga entered India in the times of the Mahabharata period. Aryan Zoroastrian priests were called Maga Brahmins and they were worshippers of the Sun, who practiced astrology, statecraft medicine and mathematics. The Maga spread all over the world but in India found a congenial sanctuary. The Iranian Surya God wore a long coat with sacred griddle and knee-high boots. The Iranian Surya God was named Mundira Swami, this name found in both Vedic texts and ancient Indian texts from Khotam, there is also sun worship at Konark, like other Sun temples in India, had a Iranian roots. It is credit to Kalinga sculptor that he dispense with long coat and beard as the local environment required, but its figure retained the long boots and flowing ribbons, acknowledging the roots.

8. Nisha Deula: Nisha Deula name may be considered Disha Deula as they face three directions. Its small Pancharatha Pidha temples were made with two-storeyed for specific reason. The Parshwadevata should be located on the Tala Jangha according to a scripture, what remains of the broken Rekha Deula is its Pabhaga, a small area of the lower Jangha a little of the Bandhana, and a small portion of the upper Jangha. The height of the Pabhaga being 13'6", that height is equal to reach the seat of the Parshwadevata. There is thus required a two-storeyed mandapa. There is no evidence found that lower floor was ever utilized to house any deity. It is still looks similar to a mound of collapsed stone the structure of Rekha Deula. There is nothing remains other than sculptures on the wall of the three Nisha Deula and a few on the south-east side of the broken temple.

9. Ratnasinghasana: This piece displays superb craftsmanship measuring 11'×7'6"×4'8" and carved out from the hard granite. It is also in Panchratha structure, and it has four divisions on its Bada. At the Upana there is displaying as in case of the first plinth, the various activities of the elephant. Just above from it slight setback, is a three band Pabhaga-Pata, Kani and Pata, then came a single Jangha. Ratnasinghasana's bottom layer is a coarse application comprising large grains of sand besides lime and a curing agent. Total thickness of the plaster is 8mm (6mm thick and 2 mm topcoat).

10. Pidha Gandi of the Jagmohana: High above from the ground placed in niches these attractive Pidha Dancers in the temple. This temple architectural grandiosity may not afford the viewer a closer look.

Pidha Dancers: A musical band of the girls with a single male member is the multi- headed Bhairava are the Pidha dancers, it placed at fixed position on the Raha Paga of the lower Kanti. There are two dancers on the two ends of the pilaster. Others dancers with specific musical instruments have placed on the Anartha and Kona Pagas. The entire musicians except for the long-pipe player also dance to the musician. It is believed that Bhairava is an incarnation of Shiva, famous for dancing. According to most famous manuscript Suryasatak ordains that four types of musical instruments should be played during ovations to the Sun-drums, cymbals, flute, and veena. The Vishnu Puaran ordains the involvement nymphs, saints, Yaksha, Gandharvas, Nagas and Rakshasa in function. In Sun Temple Konark sculptor used seven types of the musical instruments. These are placed at the height 72" and 89.5' (location of the first and second Kanti from ground) respectively, instead of in front of the deity. Most of them big sculptures have been vandalized and even destroyed. Instruments featuring in the image like: (1) Dhola (2) Mrudanga (3) Jhanja (4) Kubji (5) Veena (6) Turi (7) Damaru. The placements of these musicians are at the upper and lower Kantis.

11. The Old Sun Temple: Identification controversy of the old Sun temple has been examined at length from architectural point of view. Presence of lotus in the scrollwork, plinth and doorsteps indicate that this was a Sun temple. Old and new temple has three Parshwadevata images. Southern and western Parshwadevata of the new temple at the foot Aruna the charioteer of the sun was seated with seven horses. A close look at the foot of the southern Surya temple old, Aruna and seven horses are absent, whereas they feature below the western Sun this is incongruous. It could have been as well been the principal deity in the sanctum Santorum.

Snake Pillars: Two snake pillars from the old temple and the new temple are depicted at the temple.

'Bho" or Bajra Mundi: There is an icon placed on the Bada below the empty Pitha of the western Parshwadevata in old temple. This is an icon from Konark temple and a famous icon from the Mukteshwar temple. It is still unclear what the Gandi of new temple was like as it has completely been destroyed, but many locket-like Bajra Mundis are available on its plinth.

Archaeological Variations of Pidha: The Parshawdevatas are always placed just above the Pabhaga. Same followed in the old temple. The presentation at down below is neither a Kakhara Mundi nor a Pidha Mundi. Between two parallel snake pillars there is placed rectangular Panchratha temple. It is Panchangi Bada with an icon placed in a Raha niche. There is eight Pidhas exist above the Bada and accommodated the bho. On the top a

Kakhara Mundi is placed above the Pidha without a Mastaka. A Parshwa Devata in standing pose placed on the top.

Alasa Kanya: In old sun temple slim images are found, they appear obese, particularly waist down. This is not reflecting the poor workmanship. The Alasa Kanya of the old temple appears like stiff toy with thick limbs in case of northern Parshwa Devata.

Erotic Image in Old Temple: Erotic images on old sun temple walls are also found. On the plinth platform border feature a number of erotic images. Two couples are placed inside Bajra Mundis and one pair inside a Kakhara Mundi. In this game of passion those participants involve are thin but not slim this style is also differs.

Other Images from the Old Sun Temple: The old temple is also filled with sculpture, such as erotic, scrollwork, architecture designs, human activities and gods and goddesses-baroque in full flow. It is an artistic gem in own right, it is smaller in scale and belongs to a different time period.

12. Sculptures of Natamandapa: Creation of Natamandapa at Konark is unique in its design and presentation. The high platform, the four broad staircases, one being of the Natamandapa type, and the iconography in its totality are without parallel. It is not even attached to the main temple; there is a gap of more than 120 feet. Kura nail and Basanta in the main temple these parts of the plinth called Upana. It is about 2'1" high. The second plinth with a height of 9'7" this is a Panchangi Bada. It depicts mostly human activities and a few Gajasingha on its two Janghas. The second plinth has an upset of 1' from the first. The third plinth is placed 11" from edge of the Barandi of the second plinth. This space is meant for the circumbulation of the Mandapa. Third plinth is short with a height of 4'5". It is a Triangi Bada with these small steps on each of the four sides. The mandapa Bada rises on the third plinth with an upset of 1'9". Unlike the plinth of the main temple, there is not even vestige of the scrollwork on the broad elements of the Upana, or the first plinth as one may call it. All four sides of the second plinth are shown in three paltes. Starting at the eastern face two broad walls will be seen one on the plinth and second on the parapet of the staircase.

Superstructure of Natamandapa: Just opposite to the expectations, the superstructure of the Natamandapa does not have any walls except only one is the north side in its traditional scene. One can find number of columns, which actually constitute the walls, and also a number of openings. The builders of Odishan temples perhaps preferred square columns or rectangular columns. In the superstructure of the Natamandapa they opted for round columns it is marvelous job, without separating the columns from the wall. The column in the structure every inches was covered in intricate scrollwork of with a line of dancing girl at bottom. At the foot of the banyan tree Chlorite lintel is lying and also the sculptured stone ceiling lying near them. Because of its vicinity to the Nata Mandapa, the broken door frame still lying under the banyan tree is popularly believed to be part of it, but that is not the case.

Conclusion: Sun Temple Konark is grand sun temple built in 13th-century CE at Konark in Odisha, India. It is believed that Sun Temple at Konark was built by great king Narsimhadeva I of Eastern Ganga Dynasty in 1255 CE. World Heritage properties are places that are important to, and belong to, everyone in the world, regardless of where they are located. The decoration of the temple is extremely attractive for the tourist. Various sculptures, artifacts, figures are attracting tourists from all corners of the world. The Sun Temple Konark's walls fully filled with various attractive imaginary pictures of human's gods, semi-humans and animals. The Sun Temple Konark is very attractive property in the list of world heritage sites. This property is prestige for the nation and single world heritage site of the state.

References:

1. Bahera, K. S. (1996). Konarak: The Heritage of Mankind. New Delhi, India: Aryan Books International.
2. Boner, A. Sharma, S. R., & Das, R. P. (1972). New Light on The Sun Temple Konarka: Four unpublished Manuscript relating to this temple (Varanasi Chaukhamba Sanskrit Series office) p.xxxvii.
3. Bahera, K. S. (1996). Konarak: The Heritage of Mankind. New Delhi, India: Aryan Books International.
4. Coomarasway, A. K. (1913). Art and Craft of India and Ceylon. London: T. N. Foulis.

5. Dev, A. (2016). The Sun Temple of Konark. New Delhi, India: Niyogi Books.
6. Fabri, C. L. (1974). History of the Art of Orissa, (p 151). New Delhi: Orient Longman.
7. Forgusson, J. (1876). History of Indian and Eastern Architecture. London: Johan Muurray.
8. Ganguly, M. (1912). Orissa and Her Remains: Ancient and Medieval. Culcutta: Thacker, Sping &Co.
9. Indian archaeology 1955-56 Review, (n.d.). Retrieved January 20, 2017, from http://www.asi.nic.in.
10. Mitra, D. (1986). Konark. New Delhi: Archaeological Survey of India.
11. Patra, B. (April 2006). Antiquity of Arkakshetra Konark. Orissa Review, Government of Odisha.
12. Smith, C. R. (1960). In Search of India. Philadelphia: Chilton CO. Book division.
13. Rath, S. S. & Rath, R. (2015). Krupasindhu Mishra: (Konark trans). Bhubaneswar: The Lark Books.
14. Sun Temple Konark. (n.d.). Retrieved June15, 2016, from http://www.wikipedia.com.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 39-44

Music and Emotion

Harsha Bandara Gamage*

Music listening is one of the most enigmatic of human behaviors. Most common behaviors have a recognizable utility that can be plausibly traced to the practical motives of survival and procreation. Moreover, in the array of seemingly odd behaviors, few behaviors match music for commandeering so much time, energy, and money. Music listening is one of the most popular leisure activities. Music is a ubiquitous companion to people's everyday lives.

Music is used frequently in psychological experiments that aim to change the emotional states of people. Those experiments use what is called a mood induction procedure (MIP). A lot of psychologists want to see how cognitive functions (e.g. working memory) or behaviors (e.g. task performance) are influenced by different emotions. And they use MIP's to get people to experience different emotions in the lab. These procedures can include music to change emotion.

Music is a profound act of human creation. Music can transform our ongoing psychological state in an instant, and potentially enhance psychological functioning across the lifespan. Whether it be classical music, hip-hop, jazz, Latin, opera, rock, reggae, dance or country music, people all over the world respond to music in characteristic positive ways and are highly motivated to innovate new musical experiences. The purported healing properties of music have been celebrated since the 6th century when the philosopher Pythagoras began prescribing music as a medicine to restore harmony to the human mind, body, and soul. While you might have a hard time convincing your doctor to write you a prescription for a Led Zeppelin record these days, we bet you can recall music that helped you through difficult times in your life, and we bet you know a song or two that remind you of the happiest moments in your life. At the same time, high quality science is needed to clarify the purported benefits of music listening. Research has highlighted the importance of music listening for younger adults and older adults3 in promoting quality of life and managing psychological distress.

Music is experienced in many different contexts and its significance for human behavior is not always obvious. Music plays an important role in many social contexts such as weddings, funerals, and parties, but its appeal cannot be fully explained by such functions. Music affects us in ways that are personal and require psychological explanation: music energizes, surprises, soothes, delights, and otherwise shapes our emotional states. Research in cognition and neuroscience supports the idea that pleasure and emotions are key motivations for listening to music. Not only does music activate "pleasure centers" in the brain (Blood and Zatorre 2001), it can communicate and induce a range of powerful emotions (Juslin and Sloboda 2001)

Music has the power to stimulate strong emotions within us, to the extent that it is probably rare not to be somehow emotionally affected by music. We all know what emotions are and experience them daily. Most of us also listen to music in order to experience emotions. The specific mechanisms through which music evokes emotions is a rich field of research, with a great number of unanswered questions. Why does sound talk to our emotional brain? Why do we perceive emotional information in musical features? Why do we feel the urge to move when hearing music? Through increasing scientific understanding of the universal as well as the individual principles behind music-evoked emotions, we will be able to better

*MPA (Sitar), Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University

understand the effects that music-listening can have and make better use of them in an informed manner.

However, we don't always listen to music to be moved. sometimes people use music for other effects. For example, many people listen to music to help them concentrate or do better in a demanding cognitive task. In spite of this, it is suspected that many of the cognitive benefits people experience from music listening actually stem from its effects on emotions, because positive affect can improve cognitive performance. So even though you might not be selecting for music that induces the "chills" effect but just something to help you get stuff done, the way that music strums your emotions may still be at the root of why it helps. Thorough understanding of the connections between the emotional and physiological effects of music listening and health requires more study because the context for the emotional effects of music listening on individuals are so varied. Large-scale data on listening, performance and context would be needed to identify bigger patterns in the connections between music, emotions, and cognitive performance.

Listeners are highly sensitive to the emotional aspects of music, and they have broadly convergent emotional interpretations of music. Results from a wide range of investigations over the past century suggest that the various attributes of music, such as intensity (loudness), tempo, dissonance, and pitch height, are strongly associated with emotional expressions. In particular, changes in any of these attributes are correlated with changes in emotional interpretation and affective experience. Such attributes contribute to an emotional code that may be employed by composers and performers to communicate emotions in music, or by speakers when they communicate emotions in their tone of voice. Some people listen to music to shift their mood, while others do so to alleviate feelings of depression, unhappiness, or emotional discomfort. We often regulate our mood by listening to our music of choice. People tend to listen to cheerful music when they want to improve their mood because specific qualities contained in that music amuse us and improve our emotional state.

One important cue is tempo. Melodies that are played at a slow tempo tend to evoke emotions with low energy such as sadness, whereas melodies that are played at a fast tempo tend to evoke emotions with high energy, such as anger or joy. To scientifically investigate the emotional significance of tempo, Hevner (1935) presented listeners with several pieces of classical music performed at slow (63-80 bpm) and fast (102-152) tempi. Listeners heard the performances and selected from a list of adjectives the terms that best described the character of each piece. Although the two versions of each piece were identical in all respects except tempo, the emotions implied by the two versions were strikingly different. The slow tempo performances were described using terms such as serene, calm, sad, tender, and dreamy, whereas those same pieces performed at a fast tempo were described using terms such as joyous, happy, exciting, and restless. The emotional connotations of tempo might have been learned through passive exposure to the conventions of Western tonal music, but it is also possible that they reflect natural correlations that exist between pace and emotional states. Indeed, there is strong scientific evidence that the emotional consequences of manipulating acoustic attributes such as intensity and pitch height are not restricted to Western listeners or Western music but appear to tap into universal links between the auditory system and emotional responses. This evidence has emerged from two lines of research.

One view considers music to contain a large number of "cues" that have referential properties, such that it is possible to identify various features that composers can use to communicate fairly specific emotional connotations. Cooke (1959) proposed that music consists of various melodic features and patterns that have recognizable emotional significance. He argued that composers draw on these features and patterns in order to capture the nuanced and dynamic emotions that they wish to express. In effect, music is viewed as a language of emotion, with melodic features signifying distinct emotions. Music may not only elicit new emotions, but connect listeners with other emotional sources. Music serves as a powerful cue to recall emotional memories back into awareness. Because

music is such a pervasive part of social life, present in weddings, funerals and religious ceremonies, it brings back emotional memories that are often already associated with it. Music is also processed by the lower, sensory levels of the brain, making it impervious to later memory distortions. Therefore creating a strong connection between emotion and music within memory makes it easier to recall one when prompted by the other. Music can also tap into empathy, inducing emotions that are assumed to be felt by the performer or composer. Listeners can become sad because they recognize that those emotions must have been felt by the composer, much as the viewer of a play can empathize for the actors.

Although psychologists have found that listening to music "lights up" whole areas of the brain associated with a complex range of emotions, as well as releasing the "happy neurotransmitter" dopamine, the exact reason why some pieces of music can move us to tears or make us shout for joy still remain, for the most part, a mystery... which is perhaps why the world's greatest composers and songwriters remain artists, and not scientists.

There are two types of emotions: perceived and felt. Perceived emotions concern what people perceive objectively, whereas felt emotions concern what people actually experience. It is possible to determine the affective aspects of a target's expression. We can usually recognize others' emotions using expressed cues including facial expression, tone of voice, and gestures. A similar process occurs when we listen to music, in that we recognize it as happy or sad using cues such as key, tempo, or volume. Conversely, we experience various emotions other than our objectively perceived emotion. When we look at an angry person, we can usually perceive that the person is angry, but we do not always experience anger ourselves; rather, we often experience fear in response to others' anger. Of course, when our experienced emotion is identical to our perceived emotion, then felt emotion and perceived emotion coincide.

Music can be utilized as a practical treatment psychologically and emotionally without subsequent damage. Studies have proven that music reduces mental and emotional problems and may also reduce physical pain. It is an effective therapy for pain. For example, it is used to remove chronic headaches. The National Institute of health carried out a study on 36 people and found out that music can help migraine and chronic headache sufferers to reduce the intensity, frequency, and duration of the headaches in a period between 3-6 months. Overall, music does have a positive effect on pain management. It also reduces the sensation and distress of both chronic pain, postoperative pain, and it is a way to reduce blood pressure. The American Society of Hypertension in New Orleans conducted and research and found out that, listening to just 30 minutes of classical, Celtic or raga music every day may significantly reduce high blood pressure.

Music is a common phenomenon that crosses all borders of nationality, race, and culture. A tool for arousing emotions and feelings, music is far more powerful than language. An increased interest in how the brain processes musical emotion can be attributed to the way in which it is described as a "language of emotion" across cultures. Be it within films, live orchestras, concerts or a simple home stereo, music can be so evocative and overwhelming that it can only be described as standing halfway between thought and phenomenon. Almost every moment in a person's life is continually underscored by music from our birth, to our wedding to our death, our celebrations, our wars and our victories. From casual listening at home, in a film or on TV, from an iPod as we move around or the sound of an ambulance racing by, a call to prayer, or just somebody at the door, music is there. Unlike eyes, ears can detect phenomena in any direction without having to be focused on it, giving distinct survival advantages throughout evolution. Vibration sense, sound sense, is ancient, visceral, and inextricably linked to old and deep emotional centers in the brain, a fact that allows composers to access and dialogue with their audience at a deep level.

With the present study, we investigated whether familiarity and aesthetic preferences in music have a role in determining the emotional involvement of the listener, and which of the two factors contributes the most to the recruitment of the limbic and reward centres of the brain. We aimed to do this by separating and individually analysing the role of these two factors in the enjoyment of music, therefore clarifying some of the questions raised by

previous studies, in which one or both of these factors were not satisfactorily controlled. Most studies investigating the psychological and neural basis for the impact of music on our emotions have focused on perception, induction, and recognition of basic emotions, such as happiness and sadness. For instance, converging evidence shows that acoustic features such as melody and tempo are relevant in determining the happy and sad emotional connotations of music. Happy music is usually characterized by fast tempo and major mode, while sadness in music is expressed by slow tempo and minor mode. It has been proposed that basic emotions are the immediate affective responses to music, likely mainly originating from the brainstem, which derive from the association or mimicking of acoustic cues present in the music with those residing in emotional (human or animal) vocalizations.

A slower emotional response is musical enjoyment, which refers to an aesthetic emotion originating from the appraisal of the acoustic and formal properties of the music. Enjoyment is strongly modulated by individual factors, such as familiarity with the music, personality, current mood, and taste. The aesthetic emotion of enjoyment leads to conscious judgements of liking, i.e., the positive or negative judgement about a musical piece, and hence, the degree of enjoyment can be measured by liking ratings. In some rare occasions in which musical enjoyment is particularly strong and intense, physiological responses, namely frissons also occur. Frissons can be measured with the polygraph. Those body changes, however, cannot be considered as the sole measure of musical enjoyment as they are triggered in only a small percentage of subjects (mainly musicians), typically with familiar music and in correspondence of abrupt harmonic or timbral variations, hence not just when listening to any favourite musical piece .

Studies of the link between music and emotion have primarily focused on listeners' sensitivity to emotion in the music of their own culture. This sensitivity may reflect listeners' enculturation to the conventions of their culture's tonal system. However, it may also reflect responses to psychophysical dimensions of sound that are independent of musical experience. A model of listeners' perception of emotion in music is proposed in which emotion in music is communicated through a combination of universal and cultural cues. Listeners may rely on either of these cues, or both, to arrive at an understanding of musically expressed emotion. The current study addressed the hypotheses derived from this model using a cross-cultural approach. The following questions were investigated: Can people identify the intended emotion in music from an unfamiliar tonal system? If they can, is their sensitivity to intended emotions associated with perceived changes in psychophysical dimensions of music? Thirty Western listeners rated the degree of joy, sadness, anger, and peace in 12 Hindustani raga excerpts (field recordings obtained in North India). In accordance with the raga-rasa system, each excerpt was intended to convey one of the four moods or "rasas" that corresponded to the four emotions rated by listeners. Listeners also provided ratings of four psychophysical variables: tempo, rhythmic complexity, melodic complexity, and pitch range. Listeners were sensitive to the intended emotion in ragas when that emotion was joy, sadness, or anger. Judgments of emotion were significantly related to judgments of psychophysical dimensions, and, in some cases, to instrument timbre. The findings suggest that listeners are sensitive to musically expressed emotion in an unfamiliar tonal system, and that this sensitivity is facilitated by psychophysical cues.

We examined liking for excerpts of unfamiliar music taken from a wide variety of genres. The excerpts varied in tempo (fast or slow) and mode (major or minor). Listeners provided liking ratings for each excerpt as well as ratings of their emotional responses (intensity, happiness, and sadness). We also measured personality and history of music lessons. In general, listeners tended to like music associated with stronger feelings and happy feelings, and to dislike music that evoked sad feelings. Mixed happy and sad feelings were evoked by music with inconsistent cues to happiness and sadness. Listeners who scored high on Agreeableness had more intense emotional responses to music in general, whereas stronger sad feelings were evoked among those who scored high on Agreeableness or Neuroticism. Listeners who liked music that made them feel sad tended to score high on Openness-to-Experience or low on Extraversion, whereas liking for music that evoked mixed

feelings was associated positively with music training. The results confirm that liking for music varies as a function of the emotions it evokes and individual differences in personality and music training.

some researchers have denied that music can evoke common "everyday emotions" (e.g., sadness, happiness, or anger; Kivy, 1990; Kone?ni, 2003; Scherer, 2003). Noy (1993) noted that "the emotion evoked by music are not identical with the emotion aroused by everyday interpersonal activity" (p. 126). As Eerola and Vuoskoski (2011) noted, although sadness is generally considered an unpleasant emotion, in the context of music, it may not be classified as unpleasant. That is, in the context of art, emotion-evoking processes may differ from those of day-to-day emotions. Therefore, as Scherer (2004) proposed when discussing the distinction between goal-oriented utilitarian emotion and esthetic emotion, the sadness that we experience while listening to sad music may differ from that experienced in daily life. As shown in Figure Figure2,2, we imagine that, although sadness experienced in daily life would be mapped in the displeasure area, sadness experienced via art would be mapped in the pleasure area. That is, the two types of sadness may diverge, although sadness is typically considered as a solely unpleasant emotion. In sum, we consider emotion experienced in response to music to be qualitatively different from emotion experienced in daily life; some earlier studies (Scherer and Zentner, 2001, 2008; Scherer, 2003; Zentner et al., 2008) also proposed that music may evoke music-specific emotions. The difference between the emotions evoked in daily life and music-induced emotions is the degree of directness attached to emotion-evoking stimuli. Emotion experienced in daily life is direct in nature because the stimuli that evoke the emotion could be threatening. However, music is a safe stimulus with no relationship to actual threat; therefore, emotion experienced through music is not direct in nature. The latter emotion is experienced via an essentially safe activity such as listening to music. We call this type of emotion "vicarious emotion."

As emotions evoked by music have no real threat attached, we suppose that a wide variety and intensity of emotions could be considered vicarious emotions. However, it might be difficult to apply the vicarious emotion hypothesis to particular emotions or deep sadness associated with non-musical influences; for example, where extremely intense sadness is related to a non-musical factor, such as the death of a close relative. With regard to listening to music, various types of sadness could be considered vicarious emotions because we assume that musically evoked sadness does not actually pose a threat, regardless of the intensity of that sadness.

Measuring both perceived and felt emotions, we clarified the phenomenon of enjoyment in listening to sad music. We hypothesized that sad music would be perceived as sad, but the experience of listening to sad music would evoke positive emotions in listeners. The results supported our hypothesis, in that although sad music was perceived as more tragic, listeners experienced less tragic emotion. Listeners also experienced romantic emotion; therefore, we could argue that sad music inspired ambivalent emotions in the listeners. Moreover, we suggest that the reason people experience ambivalent emotions when listening to sad music may be that the music generates vicarious emotions in listeners. That is, even if the music evokes a negative emotion, listeners are not faced with any real threat; therefore, the sadness that listeners feel has a pleasant, rather than an unpleasant, quality to it. This suggests that sadness is multifaceted, whereas it has previously been regarded as a solely unpleasant emotion.

References :

1. Frijda N. H. (1986). The Emotions. Cambridge: Cambridge University Press
2. Berlyne D. E. (1971). Aesthetics and Psychobiology. New York, NY: Appleton Century Crofts
3. Hevner K. (1936). Experimental studies of the elements of expression in music. Am. J. Psychol. 48, 246-268
4. Oatley K., Johnson-Laird P. N. (2014). Cognitive approaches to emotions. Trends Cogn. Sci. 18, 134-140

5. Balkwill, L.-L., and W. F. Thompson (1999). A cross-cultural investigation of the perception of emotion in music: Psychophysical and cultural cues. Music Perception, 17: 43-64.
6. Huron, D. (2005). The plural pleasures of music. In William Brunson and Johan Sundberg (eds.), Proceedings of the 2004 Music and Music Science Conference. Stockholm: Kungliga Musikho¨gskolan Fo¨rlaget, pp. 65-78.
7. Lundqvist, L.-O., F. Carlsson, P. Hilmersson, and P. N. Juslin (2009). Emotional responses to music: experience, expression, and physiology. Psychology of Music, 3/1: 61-90
8. Juslin PN, Sloboda JA (2001) Music and emotion: theory and research. New York: Oxford University Press. 504 p.
9. Juslin PN, Västfjäll D (2008) Emotional responses to music: The need to consider underlying mechanisms. Behavioral and Brain Sciences 31: 559-621.
10. Gabrielsson A (2010) Strong experiences with music. In: Juslin PN, Sloboda JA, editors. Handbook of Music and Emotion: Theory, Research, Applications. Oxford - New York: Oxford University Press. pp. 547-574.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 45-49

Socio-Political Analysis of Shukraneeti

Satrudra Prakash*

Abstract : *India has an ideal and unbroken tradition of socio-political theory, debate, and transformation. Indian societies have always been regulating and guiding its political affairs since its existence, at the same time, political conditions have also been affecting the Indian social structure. Both are interconnected deeply and existing as the subsidiary to each other. That is why; ancient India's entire Dharmshastra tradition not only described the rules for the government but also established the codes of conduct for the society and common people. After independence, we adopted the democratic government and left all other forms of governance, but ancient India's social structure is still affecting our modern democratic nation and sometimes it creates big problems before the society and humanity. From this point of view, the study and analysis of Shukraneeti are relevant and important for understanding the problems and their solutions.*

Keywords: *Indian, Shukraneeti, society, politics, democracy, Sanskrit, Socio-political*

Introduction : Indian history and its continuity show that there were a rich culture and mature civilization existing at its early time. Indus Valley civilization was the first sign of human creation in this region and it is coincident that we have only social, cultural and trade knowledge about that culture. We are still waiting for some concrete evidence about their political structure. It means at least we have the social knowledge about that culture. The second phase of the culture starts with Vedic culture. It was a culture, where Aryans started the new era of civilization. They were very aware of storing and preserving their knowledge, worship, experience, and philosophy. They preserved their knowledge into hymns and the collection of these hymns known as the *Vedas* that is also the first document in world history. Aryans were the nomad tribe and they moved to South Asian region from European or middle-east Asian region according to many historians and scholars. The favorable atmosphere and climate of Indian region attracted them and it became their first choice and they started living as the clan. In early time, there was no sign or distinction within their society. They were only living together without any distinction or governance on social or any basis. All were equal and their society was based on the basis of equality and interdependence. They were fighting on the two fronts: first was their own life existence, and the second front was the other clans or people that were already living. Combination of battle and companionship created social and political awareness among Aryans and they founded very strong substructure of Vedic culture. There is an origin-theory of kingship, based on upper mentioned point of view in *Shatapatha Brahmana.*[1] Though Aryans chose their King before the creation of social orders, both inventions became the base of their future society and polity. Seers of Vedic culture and post-Vedic period gave a shape to the society by the birth-based profession and it made their challenges very easy. Profession according to the social position was the marvelous invention of Aryan Seers. Polity, administration, army, war affairs, and governance were the profession of Second *Varna*

*Senior Research Scholar, School of Sanskrit and Indic Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi 110067

called *Kshatriya*[2] while *Braahmana* got the supreme command among all other *Varnas*.[3] This combination worked wonderfully and both communities ruled in *Aaryavarta* till the British colonial. That is why; it is very relevant to do an analysis of *Shukraneeti* which is known as the complete constitution of the monarchical state.

About the *Shukraneeti* : It is an important text of Ancient India's polity. Whenever the scholars study and analyze the roots of Indian polity, they never forget to cite *Shukraneeti.* It is also a platitude that the composer of this knowledge *Shukraacharya* was the preceptor of *Asura.* But it is only a platitude, not the complete reality. *Shukraacharya* was the great scholar and it is very much possible that he was not the *Braahmana* by birth. That is why; *Shukraacharya* heralded as the preceptor of *Non-Brahmanic* intellectual tradition by the mainstream intellectual tradition.

The great Epic *Mahaabharat* described the origin of *Neetishastra.* According to *Mahabharata,* when entire folk became corrupt, the moral of common people became damaged; a group of *Dev* went to Lord *Brahma* and asked him to provide some unique knowledge to protect the morality of the people. He created the new knowledge named *Neetishaastra* and gave it to Lord *Shiva* first. *Shiva* transferred it to *Indra* and he forwarded it to *Guru Brihaspati. Shukraacharya* got *Neetishastra* from *B[haspati* and summarized within 1000 *Shloka*. He also forwarded it to *Vaishampaayana.*[4] Here it is also mentionable that after three Gods, all other later bearers of *Neetishastra* are those, who are often not established within the mainstream *Brahmanist* tradition. Another point is also mentionable that the quantity of verses according to *Mahaabharat* is one thousand, but the internal evidence of *Shukraneeti* are clearly showing that there are 2200 *Shloka* in his work.[5] It is also mentionable that weapons and warfare described in *Shukraneeti,* are very advanced and modern. He quoted the gun, cannon, pistol, and gun power at several places in *Shukraneeti*.[6] These internal and contemporary evidence are showing that *Shukraacharya*, quoted in *Mahaabharat* is different from currently available *Shukraneeti*. The time of *Shukraneeti* is determined either the time when these weapons appear in Indian warfare history at first time or after these weapons.

The social approach of *Shukraneeti* : Before describing anything about the social approach of *Shukraacharya,* it is significant that this discussion will try to reveal the result of co-relation of social and political affairs. Though many scholars saying that sociology is the bigger canvas than politics but, it is also mentionable that, political step always divert the way of society and nation Favorable Social norms and traditions make politics easy. So, it is very necessary to discuss the socio-political aspect of *Shukraneeti* which is the important text of our past. It may be useful and can show us the path to our current social and political atmosphere.

From this point of view, social life described in *Shukraneeti* is very interesting. It was a very transition period where many ideas of social equality were influencing the society. Hindu concept of state and society had been falling from their positions. The supportive intellectuals were fighting for it by internally and externally. Influence of foreign invasion and culture were creating challenges before Hindu Social system that was based on birth based *Varna* and caste. So the creator of *Shukraneeti* defends this system by saying that no one would be *Braahmana, kshatriya, vaishya, Shudra* or *Mleccha* by their birth but the distinction takes place only by nature, and profession.[7] *Shukraneeti* described the characteristics of those professions, who were the determinant of *Varna* and caste position of a man.[8] It is the first thinking of the composer of *Shukraneeti*. But when he established all theories of government and society, and when he started the rule-making for civilians, he described the duties for people once again. He said, "The people belong from which *varna* and *ashrama* have to follow only professions described for that particular *varna* otherwise

they are punishable by the state".[9] In fact, *Shukraneeti* also strictly saying, "Duties and works derived by birth and caste position and followed by the forefathers of a man, have to follow by his next generation also. If the people violate this rule and do other professions, they should be punished by the king.[10] Lowest *varna (Shudra)* and women should never pursue the rituals, pilgrimage, chanting or prayer of god except for the service of their Master.[11]

Condition of Women : The condition of women in any community tells us the maturity and development of that particular society, it is a platitude. Let us consider the condition of women according to *Shukraneeti*.

4th sub-chapter of 4th chapter described the duties and rules of the woman. Only domestic responsibilities, works in the kitchen, making food, cleaning the home, feeding foods to all members and servants of the family and overall blind follower of the husband is the main duty for a woman.[12] She has no right to go beyond the decision of her husband.[13] Such kinds of very strict code of conducts are described in *Shukraneeti* for the wife of *Braahmana, Kshatriya, and Vaishya.*[14] The writer of *Shukraneeti* seems a little bit soft for other *varna/caste* women. The lower caste women should also follow the rules and norms like *Dvija* housewives, but *Shudra* women can also do agricultural and marketing by going outside of their homes.[15] *Shukraneeti* supports the scarification of the life of a wife with the dead body of her husband by burning herself. This custom is known as *Suttee Custom. Shukraneeti* described that after the death of husband it is the duty of a faithful wife to choose death with the dead body of her husband and burn herself or she should follow the path of widowhood.[16]

Shukraacharya followed the path which was created by the *Manusmriti* and other texts of *Dharma Shastra*. He claimed himself in *Shukraneeti*[17] that he has summarized those rules and norms which are already created by *Smriti* texts like *Manusmriti* etc. within twenty-two hundreds of *Shloka.* But the time period of *Shukraneeti* changed some vision of the writer. Islamic invasion and other contemporary foreign invasions and influences were affecting the culture and society. That is why; the citation of *Yavana, Mleccha* and other foreign communities also got a place in *Shukraneeti* when the composer of this text said, "All four *varna* are living with hybrid castes at a side and the *Yavana* are living also at another side. They acknowledge their own path which is different from *Veda.* If we consider about the inner society within Hindu culture, we find that *Shukraacharya* is looking liberal rather than his past tradition. *Manusmriti* described that a *Shudra* can never be promoted or protected by the state or king but *Shukraneeti* is saying that all *varna* and castes have the right to get protection and space for promotion from the state. When *Shukraneeti* explained the sixty-four arts[18] that place he said that leather-work is also an art and working caste is the art-bearers. So, the state should protect both.[19] It is the social condition of the time of *Shukraneeti.* Duties of a householder or house master have also described widely in some other places also.

Political Approach of *Shukraneeti* : There is a well established political tradition existing in the history of India in which we find a deep political debate, theories, and structural knowledge. Vedic Polity starts with councils but it became secondary and the rise of kingship replaced the representation of common people from government and polity. There are so many theories and hypothetical stories regarding the origin of kingship in *Shatapatha, Aitareya* etc. *Braahmana* texts, *Smriti* texts, *Mahaabharat, Arthashastra* even, in other various textual traditions.

Almost every Hindu tradition appreciated the monarchical form of government where all powers were centralized in the king and he was the supreme of all. An interesting fact is that the concept of nation was secondary than the king. The seven-element theory of state

(Saptaanga Raajya) is the fundamental theory of Hindu polity. This theory is the base of political discussion of *Shukraneeti* also. These seven elements of the state are king *(swami)*, ministers *(aamaatya)*, friends *(suhrit)*, treasury *(kosha)*, kingdom *(Rashtra)*, fort *(durga)* and army *(bala)*.[20] King is the supreme element of the state like the head of the body. If we mind the sequence of all these elements, we are seeing that state is situated in the fifth position. It means state was not the supreme power or element whereas; it was the king, a man who was established by the thinkers as the representative of all Gods.[21] *Manusmriti* clearly said that only the *Kshatriya* with *Yagyopaveet sanskaar* can be a king.[22] But there is no any such kind of qualification is mentioned in *Shukraneeti*. Protection of state, security of all citizens, proper functioning of all machinery of state is the main purpose of the king according to *Shukraneeti*.[23] King had the right to shift the responsibility of kingdom to his elder son as per the rule of *Dharma*.

Ministers and superintendents of divided departments were on the second position in the seven element theory of the state. Their qualification was based on their Family, characters, education, loyalty, honesty etc.[24] the elite and upper *varna* people were preferred for these posts. These qualifications by birth and intellectual position were not only for the ministers and administrators but also for judicial officers. Cases, disputes and all other property, wealth, land issues of the citizens listened in the court of the king. But if the king was unable to proceed, this responsibility was shifted to that man who was *Braahmana* by birth and well trained and educated by the mind. First, an eligible candidate for judiciary was *Braahmana* then *Kshatriya* and last was the *Vaishya* if first two were not found suitable.[25]

Last important aspect according to the modern political scene is *Rashtra* (Nation). This word has been using since Vedic literature. The meaning and criteria of *Raashtra* have also been changing since its usages. It was used for a clan or a little group of people in Vedic period. Post-Vedic literature used it for the kingdom but size and area of the kingdom were not described. *Shukraneeti* defined this term and said, *"LFkkoja t³~xe¥~pkfi jk"Vª'kCnsu xh;rs"*[26] means the word *'Rashtra'* denotes all living and non-living elements within a particular area. The person under who so far as the subject is called his *Raashtra*.[27] After that description, *Shukraneeti* deeply analyzed and determined the rules for the nation and its all property.

This is the social and political overview of *Shukraneeti*. We saw that both important aspects of the study are co-related with each other. The ancient Indi's political thinkers structured the society and divided it according to their political privilege and politics was controlling society according to social thinkers. This combination worked very well and a small group of people ruled over multitudinous communities. It was so successful that nobody rebelled against it. And this combination was secret of success of those people. We are studying these concepts in the 21st century where the democratic values and well shaped Indian constitution are ruling the nation. Now the nation has its unlimited power and sovereignty. But we are yet to achieve the goals determined in the preamble of the constitution. If we can follow this path and make our nation's mentality according to democratic values, they will trust in the democracy and constitution. If the state will take the responsibility to convey and make them aware of their duties towards the democracy and nation, it would be possible.

Reference:

1. Shatapath Brahman, 14.1.2.23
2 . Manusmriti, 1.89
3 . Ibid, 1.88
4 . Mahabharat, 12.59.81-85
5 . Shukraneeti, 4.7.423

6 . Shukraneeti, 4.7.334,336,342
7 . Shukraneeti, 1.38
8 . Shukraneeti, 1.40-44
9 . Shukraneeti, 4.4.3
10 . Shukraneeti 4.4.39
11. Shukraneeti, 4.4.5
12 . Shukraneeti, 4.4.5-31
13 . Shukraneeti, 4.4.30
14 . Shukraneeti, 4.4.26
15 . Ibid
16 . Shukraneeti, 4.4.28
17 . Shukraneeti 4.7.423
18 . Shukraneeti, 4.3.67-99
19 . Shukraneeti, 4.3.90
20 . Shukraneeti, 1.61
21 . Shukraneeti, 1.71-72 & Manusmriti, 7.4
22 . Manusmriti, 7.2
23 . Shukraneeti, 1.14,
24 . Shukraneeti, 2.7-9
25 . Shukraneeti, 4.5.14
26 . Shukraneeti, 4.3.1
27 . Shukraneeti, 4.3.2

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 50-54

Nidra as Important Pillar of Trayaupastambha : A Review

Dr. Piyush Kumar Tripathi*

Key Words : Nidra, Swapna, Trayaupastambha

Introduction : Sleep a universal behaviour is one of the most significant human behaviors occupying roughly one third of human life. It is well established that the phenomenon of sleep is one of the vital signs of good health. Without adequate and good sleep, one's ability to function is impaired. Significance of nidra is emphasized in Ayurvedic literature by considering it as one of the trayaupasthambha i.e one of the 3 basic physiological requirements for sustenance of life. Nidra (Sleep) is considered as one among the Trayopastambha1 and is needed for physical and mental equilibrium.The ancient authors have stated that happiness (Health) and sorrow (diseases), growth and wasting, strength and weakness, virility and impotence and the knowledge and ignorance as well as the existence of life and its cessation depend on the sleep.

Historical Review of Nidra : We get the references about Nidra from the period of veda. As we see for the word Nidra in the vedic era, we get some references of the Rigveda, Yajurveda etc. Nidra is mentioned with different synonyms in the different period of veda. As e.g. in Rugaveda it is mentioned as "Svapna". We can also get the reference about the Yoga Nidra through vedic era. Yoga Nidra is particularly said to be the sleep at of God Vishnu at the end of a Yuga. In other reference it is also mentioned that the Yoga Nidra is a great sleep of God Bramha during the period between the pralaya (destroy) and utpatti (To produce). In Skandapurana, benefits of Nidra are mentioned. It states that, the Nidra taken at proper time and in proper quantity increases the digestion power of the human being. Due to increase in the digestion power one can consume good quantity of food, which helps him to increase the power of body. The side effects of lack of nidra are also mentioned in Skandapurana. Due to lack of nidra digestion of food doesn't occurs in a proper way. Ultimately that person doesn't feels agnidipti (appetite) and because of poor food intake tej(power) doesn't increases. According to Manusmruti the Surya divides the ahoratra (whole day of human being) in two different parts. Out of which the ratra (night) is reserved for the nidra (sleep) and the day period is for doing karma (work). According to Chandakaushika Nidra is said to be the primary factor which holds up the life of all created beings. Mahabharata, the great epic of India history also mentioned the merits of nidra and demerits of keeping awake at nights. In this epic it is mentioned that, the persons who are willing for good health, should not indulge in keeping awake at nights, sleeping in day time, laziness, addiction of bad things and such other factors.

Nidra in Ayurveda Literature :

Definition of Nidra : According to Acharya Charaka2 sleep is nothing but a combined stage of tired mind and body. It means when the mind withdraw its attention from its work and the sense organs gets tired due to heavy work load then this combined stage leads into the sleep. Nidra (sleep) is nothing but a combined stage of tired mind and body3.It means when the mind withdraw its attention from its work and the sense organs get tired due to

*Associate Professor (M.D. (Ay.), Ph.D), Department of Kriya Sharir, R.K. Ayurveda Medical College & Hospital, Kashipur, Sathion, Azamgarh,Uttar Pradesh.

heavy work load then this in combined manner leads to the nidra (sleep). According to Ayurved there are three vital substances present in the body. These are - vata, pitta and kapha. These three regulates the body in normal condition and they may also cause diseases in their improper condition. Kapha plays an important role in the sleep of human being. Whenever there is rise in kapha or whenever naturally it has its sway then the sleep appearing at that time is called as normal sleep. It means that the kapha dosha and the tamasa guna of mind play an important role in the formation of the sleep. Following may be the reason for the urge of nidra (sleep) -

1. When kapha dosha4 get increased then it blocks the different systems of the body and this condition generally arises at night time, after meal. After taking meal, kapha dosha increases and due to this it blocks the working systems of the body. According to Ayurveda kapha normally shows its influence in the starting of the digestion, hence one can experience the effect of nidra (sleep) after taking meal. In this process our sense organs unable to do their proper work and ultimately this results in the nidra (sleep).

2. One can also experience the sway of sleep after doing heavy work5,6.In this procedure our whole system get tired (not taking in account the type of work whether it may be of physical or mental). Therefore the sense organs of the body unable to do their work. Hence due to tiredness, we can experience the effect of Nidra (sleep).

3. We get knowledge of our surrounding due to our sense organs. But if these sense organs get tired or if they become unable to do their work properly then body shows the symptoms of Nidra (sleep).In Amarkosha following are the synonyms mentioned for the Nidra. Sayana, Swapa, Svapna, Savesha. In Shabdaratnawali supti and swapha mentioned as synonyms for nidra.Aahara (diet), Shayan (Nidra) and Bramhacharya if indulge with good sense then they holds body as that of pillars which holds a house7.These three pillars hold the body as like the house supported by the pillars. Out of these Aahara (diet) is one the useful pillars of the life of human being. Aahara (diet) taken at proper time and in proper quantity maintains the health and power of man. Nidra is the second useful pillar amongst the trio, because it holds the key of life. It restores the energy and enhances the man to remain active and fresh the next day as he was in past. Nidra gives rest to sensory organs, the mind and to the body also. One should not suppress the adharniya vegas (natural urges) i.e. mutra, purisha, retasa, vata, jrumbha, kshudha, kshavathu, udgar, chardi, pipasa, bashpa, nidra and nishwasa.

Importance of Nidra : Acharya Charak8 and Vagbhata9,10,11 says that Sukha (happiness), dukha (unhappiness), pushti (good physique), karshya (emcitation), vrushta (sexual power), klibata (impotence), gyan (knowledge), and agyan (illiteracy), jivita (long life), ajivita (death) all these factors are depend on nidra. Samyak nidra gives us sukha, pushti, bala, vrushta, gyan and jivan. Asamyak nidra causes dukha, karshya, abala, klibata, agyan and ajivit. Acharya Charaka and Acharya Vagbhata mentioned merits and demerits of sleep. If someone has taken a good sleep in the night then he may remain happy and active the whole day. The sleep helps in building the body and general physique. But in the other hand if sleep not taken regularly then it may directly affect on the health. Also the next line of quote suggests the same thing through strength and disability. The strategy behind this is that the sleep not taken for 2 to 3 days or more affects mostly on the mind and the strength of the working organs. Thus it can cause adverse effect on the body i.e. it may cause general debility. Sleep can also effect on the sexual power of the human being as it helps in strengthening the body and ultimately helps in increasing the proper digestion of the diet and through this, it helps in converting the ahara rasa (digested food) upto the shukra dhatu. The sleep can also affect the life of man thoroughly as it may also cause death if not taken for so many periods. As per Acharya Bhavprakasha Jagaran causes rukshata (dryness) and decreases kapha

dosha and poison intoxication. Samyak nidra (the sleep taken at proper time i.e. in night) maintains dhatusamya. It also gives pushti, bala, utsaha and agnidipti.

Types of Nidra : Acharya Charaka12 mentioned 6 types of Nidra as

1. Tamobhava, 2. Shleshmasamdbhava, 3. Manasharira shrama sambhava, 4. Aagantuki, 5. Vyadhyanuvartini, 6. Ratriswabhavaprabhava.

These are -

1. Tamobhava : Nidra which appears due to the excess of tamoguna of mana (mind) called as tamobhava nidra.

2. Shleshma samudbhava : Nidra which appears due to the excess of kapha dosh then it is called sleshmasamudbhava nidra. According to Chakrapani this type of nidra appears in the day time along with the tamoguna.

3. Mana sharira shrama sambhava : Nidra which appears due to the tiredness of mana and sharira because of heavy work, then it is called as mana sharira shrama sambhava nidra. Mental and physical exertion brings about inactivity of the mind resulting in the dissociation of the mind and the sense organs from their objects which is responsible for nidra. But if there is excessive exertion, this may cause vitiation of vata leading to nidra lessness. Thus even through exertion is the causative factor for nidra excessive exertion is responsible for the aggregation of vata, which causes anidra. By nature, night serves as a causative factor for nidra . Nidra during day time is caused by tamas.

4. Aagantuki : Aagantuki type of nidra (sleep) is caused due to bhayagand, pralap etc. (serious disease) and as such it is in itself incurable. According to Acharya Chakrapani this type of nidra is called as ristabhuta i.e. the nidra (sleep), which indicates the death signs. As tamobhava nidra also indicates the symptoms of death along with the Aagantuki nidra but the difference between these two types is that, there is no reason for the Aagantuki nidra as like tamobhava nidra which have a reason in the form of increase in tamo guna of mind.

5. Vyadhyanuvartini (Complication of other diseases) : Nidra which appears due to diseases called vyadhyanuvartini nidra. Normally nidra appears due to the influence of kapha dosha hence whenever there is increase in kapha dosha more than its normal quantity then the sleep appears at that time. This type of sleep is indicative of vyadhi i.e. disease.

6. Ratri svabhava prabhava : Nidra which appears at the time of night called as ratri svabhava nidra. This is the normal type of nidra. It helps in maintaining the life of the human being hence also called as 'Bhutadhatri'. According to Acharya Chakrapani, nidra which helps in maintaining the life of human being healthy and happy is called as bhutadhatri. The word dhatri indicates, to take care or to hold up and the word bhuta is mentioned for the all created beings. Hence collectively the word bhutadhatri indicates human being or whichholds up the life without causing any symptoms or diseases.

Types of nidra according to Acharya Sushruta : Sushruta13 says that Nidra is the illusive energy of the god and it has its effect naturally over all created beings. The kind of nidra which sets in when the sensation carrying channels (strotasa) of the body are chocked by kapha dosha (shleshma), which bounds the quantity of tamo guna, is known as 'tamsi nidra'. This type of nidra produces unconsciousness at the time of death. A person having tamas temperament had nidra (sleep) both in day and night. The one of rajas temperament had nidra (sleep) either in the day or night. While nidra never visits to the eyelids of the man before the midnight to the persons of satvika temperament. The person with the deprived condition of the kapha dosha & aggrevated condition of vata dosha or suffering from any type of troubles, get very little nidra or absolutely no nidra. This type of nidra is called as 'vaikariki nidra'. Thoroughly Acharya Sushruta devides the nidra in 3 types.

1. Vaishnvi, 2. Vaikariki, 3. Tamsi

1. Vaishnavi Nidra : This type of nidra is said to be a normal one and it is the energy of god, which helps in maintaining the life of human being. It is similar to that ratri svabhava prabhava nidra said by Acharya Charaka.

2. Vaikariki Nidra : It appears due to the enfeebled kapha dosha and aggrevated vata dosha or due to any troubles of mana or sharira. According to Acharya Dalhana when there is heavy work load then there is increase in vata dosha ultimately decreasing the kapha dosha alongwith this the langhana (taking no food) also develops increase in vata dosha. Hence the nidra appearing in all these condition is called as "Vaikariki nidra."

3. Tamasi Nidra : The nidra which appears due to influence of tama guna, called as tamasi nidra. It produces unconsciousness at the time of death. This type of similar with the tamobhava nidra said by Acharya Charaka.

Rules of Nidra : Akal nidra (sleep taken at improper time), Atiprasanga nidra (excessive sleep), Nachsevita nidra (no sleep) these types of nidras (sleep) said as kala-ratri, which destroys aarogya and Ayusha of the individual. Para nidra gives sukha and Ayusha (sukhayushi). If someone take nidra (sleep) excluding night is said to be akale sevita nidra. Through the quote Acharya Charaka putforth, some basic condition about the Nidra mentioned in Ayurveda, which may create problems for healthy life.These are

1. Akale Sevita : Nidra (sleep) taken at improper time. As mentioned in Ayurvedic text proper time of nidra (sleep) is at night. The nidra (sleep) which was not taken at proper time (in night) causes various health related problems.

2. Atiprasongata sevita : Nidra (sleep) taken in too much quantity. Ayurveda mentioned specific time period for taking nidra (sleep) varying with different age groups. Excess of nidra (sleep) may cause problems as the persons may not feel fresh the whole day. Some persons may also feel the problem like laziness, not having any interest in doing any type of work or during the work they may also feel like getting nidra (sleep).

3. Nacha Sevita : Taking no nidra (sleep). This is the most fatal condition for the life of the human beings as it may cause the serious problems with the mental health. There may be any reason for arising of such situation like diseased condition, due to continuous work in the night shifts etc. In this particular quote of Acharya Vaghbhata, Acharya Hemadri mentioned his comment as asamyak yogarupa nidra is said to be apara nidra. These nidras are three types. One is akale sevita mithayogarupa, second is atiprasanga sevita atiyogarupa and third is nachasevita hinyogarupa. These three types of nidra are said to kalaratri which destroys sukha (happiness) and ayu (life).

Conclusion : The adventurers of Ayurveda have quoted Tridoshas as three pillars whereas Ahara (Diet), Nidra (Sleep) and Brahmacharya (Celibacy) as three factors which play an important role in the maintenance of Health and termed as "Upastambhas'. The ancient authors have stated that happiness (Health) and sorrow (Diseases), growth and wasting, strength and weakness, virility and impotence and the knowledge and ignorance as well as the existence of life and its cessation depend on the sleep.So one should follow the dietetics and behavioral regimen related to Trayaupastambha prescribed in Ayurveda.

References :

1. Chakrapani commentary on Agnivesha, Charaka Samhita with Ayurveda Dipika Commentary edited by Vaidya Yadavji Trikamji Acharya, Chaukambha Oriental, Varanasi.2007Reprint, sutra sthana 21/56, P - 119.
2. Agnivesha, Charaka Samhita with Ayurveda Dipika Commentary edited by Vaidya Yadavji Trikamji Acharya, Chaukambha Oriental, Varanasi.2007 Reprint,sutra sthana 21/35, P - 118
3. Atridev Gupt, Ashtang Sangraha Vol-1, Sutrasthana 9/17, Choukhambha Sanskrit Series, Varanasi 1993.

4. Vagbhata , Ashtanga sangraha, Saroja hindi vyakhya by Dr.Ravidatta Tripathi,Chaukambha Sanskrit pratishtana 2006 Reprint, sutrasthana 9/19-20 ,P- 197
5. Schutte - Rodin S, Clinical Guideline for the Evaluation and Management of Chronic Insomnia in Adults, Journal of Clinical Sleep Medicine. 2008 October 15; 4(5): 487-504. PMCID: PMC2576317 30.
6. Evelyn Mai and Daniel J. Buysse, Insomnia: Prevalence, Impact, Pathogenesis, Differential Diagnosis and Evaluation, Sleep Med Clin. Author manuscript; available in PMC 2009 January Published in final edited form as: Sleep Med Clin. 2008; 3(2): 167-174.
7. Vagbhata, Ashtanga Hridaya with vidyotini teeka of Kaviraj atrideva gupta , sutra sthana 7/64 Chaukambha publications Varanasi 2007 Reprint , ,P- 72 56
8. Harishchandra Singh Kushwaha, Charaka Samhita Vol-1, Sutrasthana 21/36, Reprint Edition 2011, Choukhambha Orientalia, Varanasi 2014.
9. Hemadri commentary on Vagbhata, Ashtanga Hridaya with Sarvanga Sundara teeka of Arunadatta and Ayurveda Rasayana teeka of Hemadri edited by Pandit Harisadashivashastri , sutra sthana 7/63, Chaukambha Surabharathi Prakashana Varanasi 2002, Pp 143-144
10. Vagbhata ,Ashtanga Sangraha,Saroja hindi vyakhya by Dr.Ravidatta Tripathi, sutrasthana 9/53-55,Chaukambha Sanskrit pratishtana Varanasi 2006 Reprint, P- 199 26.
11. Vagbhata, Ashtanga Sangraha,Saroja hindi vyakhya by Dr.Ravidatta Tripathi, sutrasthana 9/ 36Chaukambha Sanskrit pratishtana Varanasi 2006 Reprint, , P- 200
12. Agnivesha, Charaka Samhita with Ayurveda Dipika Commentary edited by Vaidya Yadavji Trikamji Acharya, sutra sthana 21/58,Chaukambha Oriental, Varanasi.2007 Reprint, P - 11
13. Sushruta, Sushrutasamhita (Nibandhasangraha commentary by Dalhanacharya), Yadavaji Trikamji, Varanasi: Chaukhamba Surbharati Prakashan; 2012Su. Sha. 4/55.

♦♦♦

Reg. No. : N-1316/2014-15
Journal No. : 48796
UGC Approved

ISSN 2394-2207
November 2017-April 2018
Vol. IV, No. I, Part-II
IIJ Impact Factor : 2.011

उन्मेष
Unmesh

An International Half Yearly
Peer Review
Refereed Research Journal
(Art & Humanities)

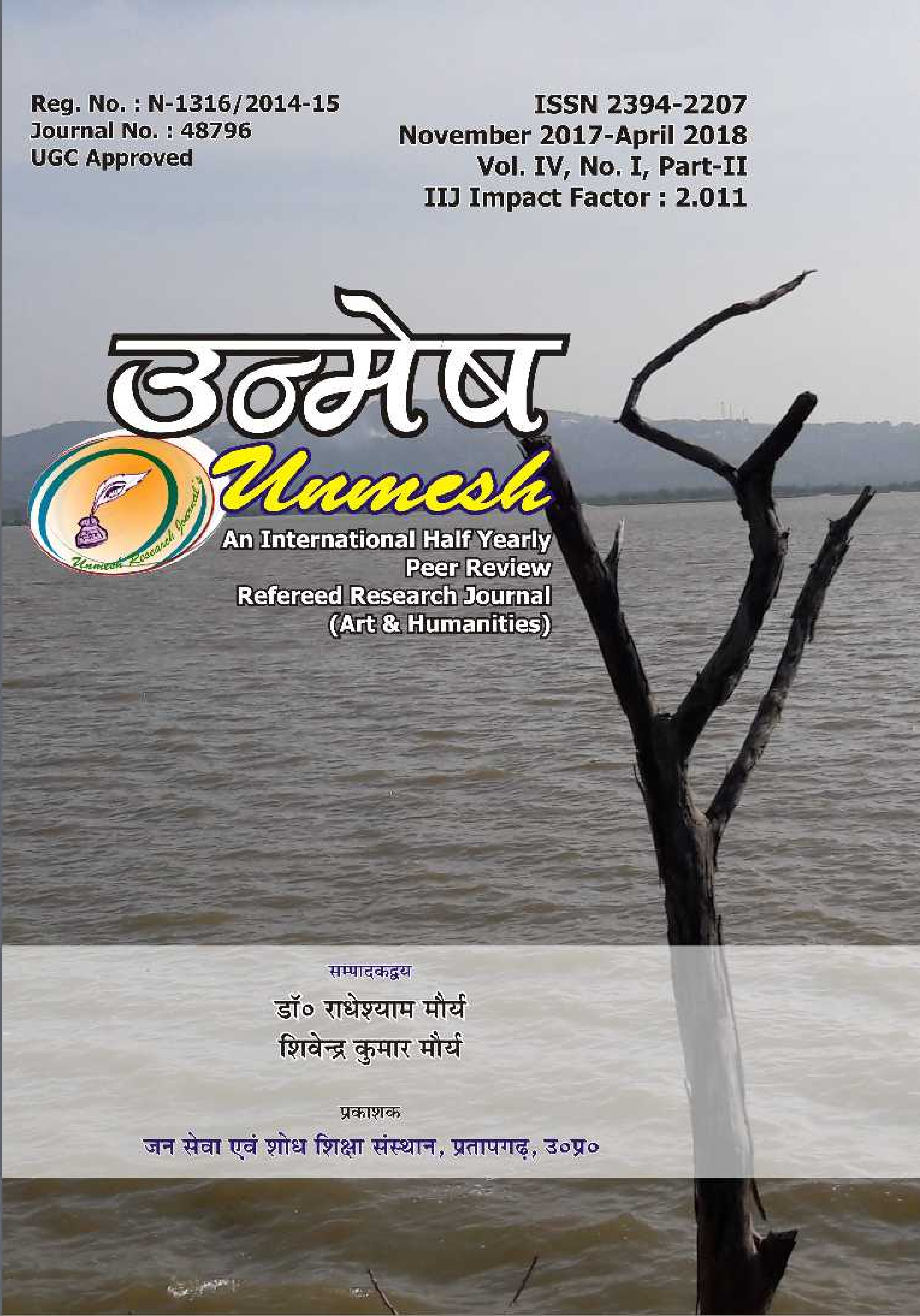

सम्पादकद्वय

डॉ० राधेश्याम मौर्य
शिवेन्द्र कुमार मौर्य

प्रकाशक
जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान, प्रतापगढ़, उ०प्र०

Reg. No. : N-1316/2014-15
Approved by UGC

ISSN : 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011

उन्मेष
Unmesh

An International Half Yearly Refereed Research Journal (Art & Humanities)

Vol. : IV **No. I, Part-II** **November, 2017-April, 2018**

सम्पादकद्वय

डॉ० राधेश्याम मौर्य

शिवेन्द्र कुमार मौर्य

सह-सम्पादक

डॉ० मनोहर लाल

प्रकाशक

जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान, प्रतापगढ़-२३०००१ (उ०प्र०)

laj{kd&eaMYk

M,0 pEik dqekjh flag] प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
MkW0 ch0,u0 flag] पूर्व निदेशक, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उ0प्र0
M,0 gjh'kpUæ tk;lokYk] पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, इविंग क्रिश्चियन महाविद्यालय, इलाहाबाद वि0वि0, उ0प्र0

lEiknd

M,0 jk/ks';ke ekS;Z] प्रवक्ता, जी0वी0आई0सी0, देल्हूपुर, प्रतापगढ़, उ0प्र0
f'koUnu dqekj ekS;Z] शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

lg&lEiknd

MkW0 euksgj yky] असि0 प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

lEiknd&e.MYk

MkW0 d`".k dqekj dkSf'kd % प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
MkW0 fgjks'kh lqlkdh % एसो0 प्रोफेसर, डिपार्टमेंट ऑफ सोशल एजूकेशन, हिरोशिमा विश्वविद्यालय, जापान
MkW0 vfuy dqekj ekS;Z % असि0 प्रोफेसर, विधि संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ0प्र0
MkW0 lehj dqekj ikBd % असि0 प्रोफेसर, डी0ए0वी0 पी0जी0 कॉलेज, वाराणसी, उ0प्र0
MkW0 jes'kdj dq'kokgk % असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
lUrks"k dqekj % विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, जक्खिनी, वाराणसी, उ0प्र0
fHk{kq Ýk lkelkd o..klu] विहाराधिपति, वॉट थाइ बुद्ध विहार, बैकाक, थाईलैंड

ijke'kZ&e.My

MkW0 izdk'k pUnz frokjh] विभागाध्यक्ष, पर्यावरण विभाग, कमला नेहरू इंस्टीट्यूट ऑफ फिजिक्स एण्ड सोशल साइंस, सुल्तानपुर (उ0प्र0)
MkW0 lanhi oekZ] असि0 प्रोफेसर, जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र
MkW0 eukst dqekj ekS;Z] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय, सूर्यमणि नगर, अगरतला
';keuUnu] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार
MkW0 izpsrl] असि0 प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, यूइंग क्रिश्चियन कालेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
rkf'kdk bZnkdk] शोध छात्रा, तुलनात्मक धर्म दर्शन विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
MkW0 vfer dqekj flag dq'kokgk] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, पंचशील डिग्री कॉलेज, मवईकला, हलियां, मिर्जापुर, उ0प्र0

ewY;kadu lfefr

MkW0 iznks"k jFk] असि0 प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, उड़ीसा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, उड़ीसा।
izkQslj ¼MkW0½ lk/;kjkuh 'kkD;] क्षेत्रीय उच्च शिक्षा अधिकारी एवं प्राचार्या राजकीय महाविद्यालय, समथर, झाँसी, उ0प्र0
MkW0 vfe"k oekZ] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल
MkW0 ';kek flag] असि0 प्रोफेसर, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, झूँसी, इलाहाबाद
MkW0 /kuth izlkn] असि0 प्रोफेसर, भाषा विज्ञान एवं भाषा प्रोद्यौगिकी, महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र
MkW0 bUnzthr fe=] असि0 प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, डी0ए0वी0पी0जी0 कॉलेज, बी0एच0यू0, वाराणसी
MkW0 jkts'k flag dq'kokgk] असि0 प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग, डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद
MkW0 jke jru ikloku] असि0 प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया।
MkW0 lqds'k ykgkj] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कल्याणी विश्वविद्यालय, कल्याणी, नदिया, पश्चिम बंगाल
uUnh iVkfn;k] असि0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग, डॉ0 हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश
MkW0 ih;w"kdkUr 'kekZ] एसो0 प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, एम0डी0पी0जी0 कॉलेज, प्रतापगढ़, उ0प्र0
MkW0 Kkukck f=acd <x] विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, कर्मवीर काका साहेब बाघ आर्ट्स, साइंस एण्ड कॉमर्स कॉलेज, पीपल गाँव (बी) नासिक, महाराष्ट्र
MkW0 vfu'k dqekj oekZ] असि0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, मड़ियाहूँ पी0जी0 कॉलेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर
MkW0 iadt flag] असि0 प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, बांदा, उ0प्र0
jke flag] असि0 प्रोफेसर, भूगोल विभाग, जवाहरलाल नेहरू पी0जी0 कॉलेज, एटा, आगरा, उ0प्र0

{k=h; lEikn d

f’kojke ek;] शोध छात्र, हिन्दी विभाग, डॉ0 हरि सिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश
l|’khy d|ekj] शोध छात्र, विधि विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद
i|epUn ek;] शोध छात्र, हिन्दी विभाग, केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, केरल

i|cU/k&lEikn d

Mk0 lhrk jke fl|g] एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग,
गणपत सहाय पी0जी0 कॉलेज, सुलतानपुर, उ0प्र0
vt; d|ekj ek;] शोध छात्र, तुलनात्मक धर्म दर्शन विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

vu|okn lgk;d

gfj’pUn d|’kokgk] पूर्व अतिथि प्रवक्ता, डी0ए0वी0पी0जी0 कॉलेज, बी0एच0यू0, वाराणसी
l|euyrk d|ekjh] शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

fof/k&ijke’k

Kku Ádk’k e©;l	:	पूर्व राज्य सूचनायुक्त, उ0प्र0
Mk0 vkn’k d|ekj	:	असि0 प्रोफेसर, विधि संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
lEikndh; lEidl	:	जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान, सी–23, आवास विकास कालोनी

प्रतापगढ़–230001 (उ0प्र0) भारत
मो0– 08004802456, 09415627372
ई–मेल : unmesh0110@gmail.com
shivendrakr.maurya@gmail.com

i|dk’kd % tu lok ,o ’kk/k f’k{kk lLFkku] प्रतापगढ़, उ0प्र0

e|æd % jkt xkfQDl] बी0एच0यू0 रोड, लंका, वाराणसी
ek0 % 09415842611@08081711954

uksV % सम्पादन, संचालन–पूर्णतः अवैतनिक/अव्यावसायिक/अनियतकालीन। उन्मेष में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं। लेखों एवं उद्धरणों से सम्बन्धित किसी भी वाद–विवाद के लिए लेखक की जिम्मेदारी स्वयं की होगी। सम्पादक, प्रकाशक एवं उन्मेष परिवार के किसी भी सदस्य की जिम्मेदारी नहीं होगी। किसी भी विवाद के लिए न्याय क्षेत्र इलाहाबाद उच्च न्यायालय होगा।

lEikndh;

प्रकृति के सम्बन्ध में लोगों द्वारा अज्ञानता प्रकट किये जाने पर मुझे आश्चर्य होता है। हमें प्रकृति को समझने तथा प्रकृति के प्रेम करने की क्रिया अवश्य सीखनी चाहिए। प्रकृति की रक्षा ही मानव जाति के भविष्य के विकास की कुंजी है, जिसकी रक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य और दायित्त्व है। पर्यावरण के ह्रास का सम्बन्ध विकास की प्रकृति तथा पर्यावरण संतुलन के प्रति मुनष्य की अज्ञानता है, मानव ने प्रकृति को निष्ठुरता से लूटा और पृथ्वी को उजाड़ बना दिया। मानव और उसका समाज पृथ्वी में दूर तक फैले हुए हरे–भरे सघन वनों के आवरण से वंचित कर रहा है। कुछ लोग लाभ कमाने, जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की प्राप्ति तथा मनोरंजन के लिए प्रकृति का विनाश कर रहे हैं। विशेषकर भारत में पर्यावरण जैव विविधता बहुत है, जो लोगों को अनेक संसाधन देती है और मनुष्य उसका अन्धाधुन्ध उपयोग कर रहा है; जिसका हमारे वातावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। परिणाम स्वरूप भूकम्प, सूनामी, बाढ़, सूखा तथा अनेक रोग जैसे एड्स, मधुमेह, डेंगू, हेपोटाइटिस आदि का उत्पन्न एवं विस्तार होना पृथ्वी पर परिवर्तन के संकेत हैं। आज आजादी के 68 वर्ष बाद भी भारत के 60 प्रतिशत घरों में शौचालय नहीं है, जिससे महिलाएं सुरक्षित नहीं हैं। सर्वप्रथम स्वच्छ भारत का सपना आजादी के बाद महात्मा गांधी द्वारा देखा गया था उनके अनुसार निर्मलता और स्वच्छता दोनों ही स्वास्थ्य और शान्तिपूर्ण जीवन का अनिवार्य भाग है। स्वच्छता के अभाव में नदियाँ, वायु, तालाब प्रदूषित हो रहे हैं, जिनका हमारे जीवन तथा रहन–सहन पर कुप्रभाव पड़ रहा है। आज मानव इस विकास की चकाचौंध में अपने अस्तित्त्व को स्वयं मिटा रहा है। आइये हम लोग मिलकर स्वच्छ भारत, प्रदूषण मुक्त भारत के निर्माण का संकल्प लें।

izÑfr gekjh lgpjh lcdh izk.kk/kkjA
bl ds fcu lEHko ugh thou dk m)kjAA
& ^f'ko*

MkW0 jk/ks';ke ekS;Z
f'kouUnu dqekj ekS;Z

उन्मेष
Unmesh - ISSN 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-II
November, 2017-April, 2018

vuqØef.kdk

- lkph dh dyk esa ekjfo t; vkSj lEcU/k — 1&2
  नीरज कुमार मिश्रा
- miHkksDrkokn vkSj ckcM lLÑfr — 3&6
  नम्रता
- rFkkxr dk ckS/kofo{k ¼lkfgR; ds ifjizs{; esa½ — 7&9
  नीरज कुमार मिश्रा
- iFkey{k.k lk/;kHkkoLo: ifopkj% — 10&12
  दुर्गेशपाठकः
- gs vekfu'kk mxyrk xxu ?ku vU/kdkj — 13&16
  संध्या सिंह
- dk'ky ,oa m|ferk fodkl esa fLdy bf.M;k fe'ku dh Hkwfedk dk v/;;u % lkuHknz ftyk ds lUnHkZ esa — 17&19
  नेहा कुमारी, प्रो0 इन्दिरा विश्नोई व डॉ0 अंशु शुक्ला
- fuely oekZ % dFkkHkk"kk vkSj ;FkkFkZoknh nf"V — 20&22
  डॉ0 नीलम कुमारी
- lkfy lkfgR; ds ijd lÙk % nhiok l ds lnHkZ esa — 23&25
  निलीमा मारोतराव गजभिय
- Ck/n dh uhfrd f'k{kk vkSj orZeku fLFkfr — 26&28
  रूपा वालदे
- lQh lkfgR; esa jgL;okn ¼tk;lh ds fo'k"k lUnHkZ esa½ — 29&32
  अखिलेश कुमार पाठक
- f'koefÙk dh dgkfu;ksa esa xzkekpy — 33&36
  डा0 अमर बहादुर सिंह
- eè;oxhZ; thou dk ;FkkFkZ % ^;gh lp gS* ds lUnHkZ esa — 37&41
  डॉ0 अमित कुमार सिंह कुशवाहा
- eS=s;h iq"ik dh dgkfu;ksa esa L=h — 42&45
  साजिदा खातून
- dsnkjukFk vxzoky dh dforkvksa esa 0;Dr xzkeh.k laonuk — 46&49
  पूनम सिंह
- Ekkuo vkSj lk'kq dh efDrnkrk % emnfg;k — 50&53
  महेन्द्र कुमार यादव
- xk¡oksa esa f'k{kk dh vy[k txkrk lo'f'k{kk vfHk;ku lc i<sa lc c<sa — 54&58
  श्याम प्रकाश मौर्य
- cxkYk dh Yk¨d lLÑfr ds lnÒZ esa ckmYk lÁnk; dh vo/kkj.kk v©j egÙo — 59&63
  अंकिता शाम्भवी वर्मा
- HkfDr dk0; vkSj jl[kku — 64&69
  निर्मला वर्मा
- ikfy dk0; lkfgR; % ,d ifjp; — 70&71
  फ्रासोमसाक वण्णसन

उन्मेष
Unmesh - ISSN 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-II
November, 2017-April, 2018

■ e/;Hkkjrh; vkfnoklh 72&75
पार्वती तिर्की

■ nfyr lekt d vkbu e fujkyk dk lkfgR;d fpru 76&80
हरिश्चन्द्र यादव व प्रो0 चन्दा बैन

■ vk/kfud ck/k dh okpd dfr % vU/kk;qx 81&84
मोना यादव

■ dF; ,o f'kYi dh nf"V l vf}rh; % vU/kk;qx 85&88
रत्नाकर यादव

■ ykd lkfgR; vkj vU; fo"k;k e vUrlEcU/k 89&92
दीपेश मिश्र

■ gB;¨xh dchj 93&98
डॉ0 बिपिन कुमार

■ /ke'kkL=k e n.M dk Lo:i 99&102
नागमणि त्रिपाठी

■ lkln vkn'k xke ;kstuk % ,d ifjp; 103&108
अंजली जायसवाल, डॉ0 अभिनव शर्मा

■ fgUnh lkfgR; dk fQYekUrj.k 109&112
राखीक्लेमन्ट

■ JhenHkxonxhrk'kkdjHkk"; e deZ rFkk lU;kl ekx 113&116
दीप्ति सिंह

■ ck) /ke d fodkl e vkuUn LFkfoj dk ;kxnku 117&120
विश्व दत्त

■ ^chlYkno jkl¨* e L=h Loj 121&126
सोनम सिंह

■ Qkl % ituhokn vFk0;oLFkk vkj fdlku vkRegR;k 127&130
संजय कुमार

■ MkO fooodh jk; % euck/k ekLVj dh Mk;jh d cgku ,d eY;kdu 131&136
डॉ0 सुनीता यादव

■ cnyrk ifjos'k vkj ipepn dh ikl fxdrk 137&141
डॉ० लल्लन यादव

■ ek/;fed Lrj d foKku ,o dyk oxZ d fo|kfFk;k d ekufld LokLF; dk rqyukRed v/;;u 142&144
डॉ. भूपाल सिंह

■ fgUnh dh fofHkUu ckfy;k e n'kie dh ,dkRedrk 145&151
शिवराम मौर्य

■ Hkkjgr Lri d f'kYikdu e lkUn;Z ck/k 152&155
कृष्ण देव पाण्डेय

■ eg#fUulk ijort d dFkk lkfgR; e ukjh pruk 156&159
डॉ. अभिलाषा शर्मा

■ n¨ lLÑfr;¨ dh vnÒr nkLrku % ikfjtkr 160&162
सुषमा

- Je.k lLÑfr d mi&lEink; 163&166
  डॉ0 अनिलेश कुमार सिंह
- ^mRrj in'k d lUnHk e egkRek xka/kh d f'k{kk n'ku dh mikn;rk* 167&170
  विनोद कुमार, कृष्ण कुमार यादव
- e/;dkyhu Hkkjrh; bfrgkl y[ku e iokxg 171&174
  डॉ. विनीत कुमार गुरू
- cnyr ehfM;k d ek;u % lk'ky ehfM;k 175&177
  मिथिलेश कुमार
- Ò¨t iijh Yk¨d xhrk e ukjh dh fLFkfr 178&182
  सुनीता कुमारी
- M,0 vEcMdj vkj mudk L=hoknh nf"Vdk.k 183&186
  राम विलास मौर्य
- miU;kl d vkykpuk fl)kUr dh t:jr 187&191
  सोनम मौर्या
- Hkkjrh; vFkO;oLFkk e i'kikyu ,o M;jh m|kx % ,d fo'y"k.k 192&198
  अशोक कुमार सिंह
- i#"k opLo dk [kf.Mr djrh gbl vkt dh vkj--- vkj--- vkjr 199&202
  डॉ0 सुनीता जैसल
- vkfnokl h ykd lxhr e fL=;k dh fgLlnkjh 203&204
  अनीता मीणा
- mÙkjk[k.M dh ufn;k dk fodkl grq iicU/ku 205&207
  डॉ0 एम0के0 उनियाल व डॉ0 शिवचन्द सिंह रावत
- 0;fDrRo d fodkl ,o ekuo thou e ;kx dk egRo 208&211
  डॉ0 धर्मेन्द्र कुमार वैश्य

■■■

उन्मेष
Unmesh - ISSN 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-II
November, 2017-April, 2018

- **Exclusive Travel Writers/Writing/Critiques in India: A Way Forward for Comprehensive Tourism Development in Compliance to World Travels** 1-10
  Abhishek Kumar Maurya, Siddharth Singh, Dr. Akhilesh Kumar Singh
- **Electric Load Estimation and Installation Process of Solar Roof Top Solar Power Plant at Residential House in Haryana** 11-14
  Harsh Kadyan
- **Morphometry using Remote Sensing and GIS Techniques in the Kopra Watershed of Sonar River Basin, M.P., India** 15-22
  Shashank Tripathi, Ajad & S.K. Tripathi
- **Digital Banking - An Indian Perspective** 23-28
  Surendra Kumar Verma
- **Gender Inequality in The Selected Plays of Vijay Tendulkar** 29-32
  Dr. Manisha
- **The Feminist Theory in Asia** 33-35
  Romee Maurya
- **Health Care Problems of Tribes in India: A Review Article** 36-37
  Km. Gayatri Maurya
- **Role of Adult Educators with the Changing Learning Contexts and Senior Citizens** 38-42
  Pushpa Kumari, Pawan Sahu, Geetanjali Baswani
- **Impact of Online Tourism on Consumer Perception: Indian Scenario** 43-47
  Dr. Krishna Behari Srivastava
- **The Curds of Caulif Lower** 48-50
  Parth

■■■

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 1-2

lkaph dh dyk esa ekjfot; vkSj lEcksf/k

uhjt dqekj feJk*

तथागत के जीवन की महान घटनाओं को अष्ट महाप्रातिहार्य के रूप में जाना जाता है। यह अष्टमहाप्रातिहार्य निम्नलिखित है– गर्भावक्रान्ति, अभिनिष्क्रमण, अभिसम्बोधन, धर्मचक्र प्रर्वतन महापरिनिर्वाण, श्रावस्ती में चमत्कार, सांकाश्य चमत्कार, वानर द्वारा मधुदान, व नलगिरि हस्तिदमन। इन सब में अभिसम्बोधन का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। सम्बोधि प्राप्ति की इस घटना के साथ मार पर विजय की घटना भी समाहित है। बुद्ध के द्वारा सम्बोधि प्राप्ति, सुजाता के द्वारा खीर का दान तथा बुद्ध के द्वारा मार विजय का वर्णन ललित विस्तर तथा निदान कथा में अत्यन्त रोचक रूप में प्राप्त होता है। ललित विस्तर में यह प्रसंग वर्णन है ''सुजाता ग्रामिक दुहिता बोधि सत्वस्य एवं च प्राणि दधाति। je&ee Hkkstu HkDRok] ckf/klRok·uUkjk lE; Dlacksf/k efHk lac/;rfrA[1] वही निदान कथा में बुद्ध के आसनग्रहण करने से लेकर मार विजय तक का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है ''बोधिसत्वों तिणं गहेत्वा बोधिमण्ड आरूम्ह दक्खिण दिसा भागे उत्तरा भिमुखो अट्ठासि।.... मारथो सनं....। अथमारो देव पुत्तो गिरिमेकलं नाम हत्थिं अभिरूहित्वा....। सक्को देवराजा अट्ठासि महा ब्रम्हा सेत छत्रं.... अगमासि। महा वस्सं पाषाण वस्सं... . पहरणवस्ल अंगार वस्सं वेसन्तर भावे.... धन महा पठवी सक्खीति मारपरिसं दिसा विदिसा पलायि.... पठमेया में पुब्बे निवासञाणं मज्झियामें दिव्यचक्खुं विसोधेत्वा पच्छिमया में पटिच्चजस मुप्पादे ञाणं ओतारेलि।[2]''

साँची की स्तूप सं0 1 के दक्षिणी तोरण द्वार के सम्मुख भाग में ऊपरी व निचले सिरदल के बीच पूर्वी स्तम्भ पर सुजाता के द्वारा खीर के दान का दृश्य अंकित है। सुजाता बाएँ हाथ में खीर तथा दाएँ हाथ में जल भरा कमण्डल लिए बोधिगृह के दाएँ ओर खड़ी है। उसके पीछे हाथ जोड़े उपासक हैं। बायीं ओर परिचारिका दोनों हाथों से एक थाल बोधिवृक्ष की ओर बढ़ा रही है। इसके बगल में हाथ जोड़े एक पुरूष खड़ा है। ऊपर सपक्ष विद्याधर पुष्प मालाएँ लिए आकाश से वृक्ष की ओर बढ़ रहे हैं। वृक्ष छत्र से आच्छादित है।[3]

पूर्वी तोरण द्वार के दक्षिणी स्तम्भ पर ऊपर से दूसरे फलक में संबोधि का विस्तृत दृश्य है। जहाँ बोधिवृक्ष की शाखाएँ बोधिमण्ड की खिड़कियों से निकल रही हैं। दोनों ओर वृक्ष है, वज्रासन पर त्रिरत्न अंकित है। आकाशचारी विद्याधर फूल, मालाएँ लिए व तश्तरियाँ लिए छत्र के आसपास खड़े हैं। बोधिमण्ड के दोनों ओर हाथ जोड़े उपासक खड़े हैं।[4] पश्चिमी तोरण द्वार के पृष्ठ भाग में नीचे की सिरदल पर भी संबोधि का विस्तृत अंकन है। बीच में बोधिमण्ड बना है। बोधिवृक्ष छत्र से आच्छादित है, बोधिमण्ड के नीचे आसन है। बोधिमण्ड के बायीं ओर मार सेना पराजित होकर भाग रही है। धनुष, बाण, ढ़ाल, वज्र, त्रिशूल, अंकुश लिए मार गण, पैदल, हाथी पर घोड़े पर भाग

*शोध छात्र, प्रा0 भा0 इ0 सं0 एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

 Unmesh-ISSN 2394-2207, *Vol. IV, No. I, Part-II, November, 2017-April, 2018*

रहे है। बोधिमण्ड के दाहिनी ओर विभिन्न विजय चिन्हों यथा त्रिरत्न, पताका वस्त्र आदि से युक्त देवतागण बुद्ध की उपासना कर रहे हैं। धनुष लिए रथ पर सवार व्यक्ति सम्भवतः भार है।[5]

उत्तरी तोरण द्वार के पृष्ठभाग में बीच के सिरदल पर भी यह दृश्य है। इसमें तोरण द्वार से निकल कर सुजाता खीर व जल लेकर वृक्ष की ओर बढ़ रही है। ऊपर आकाशचारी सपक्ष विद्याधर हैं। बायीं ओर सिरदल के बीच में छल के नीचे बैठा पुरूष मार हो सकता है। साथ में उसकी पत्नी, पुत्र, पुत्रियाँ हैं। अट्टहास करते उसके गण दूर दूर तक फैले हैं। मार अपने परिवार सहित बोधिमण्ड की ओर बढ़ रहा है। राक्षसों का सेनापति नाचते गाते साथियों के दायीं ओर अपने पुत्र समेत बैठा है। उसके दायीं ओर भागते राक्षस हैं।[6]

lUnHkZ %

1. ललित विस्तर, सं0 पी0 एल0 वैद्य0, अहमदाबाद, 1963 पृ0 सं0 294
2. निदानकथा, सं0 एन0 के0 भागवत, बम्बई, 1953, पृ0 सं0 91–94 तथा पृ0 सं0 118–22
3. सौजन्य से, अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ इण्डियन स्टडीज, एक्सेशन नं0 55 निगेटिव नं0 3.9
4. पूर्वोक्त, एक्सेशन नं0 34868, निगेटिव नं0 238.90
5. पूर्वोक्त, एक्सेशन नं0 64, निगेटिव नं0 3.34
6. पूर्वोक्त एक्सेशन नं0 7380, निगेटिव न 3.6

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 3-6

miHkkDrkokn vkSj ckM laLÑfr

ue!rk*

'भूमंडलीकरण' के नाम पर राष्ट्रों को यह गलतफहमी है कि यह समय विश्व की साझा संस्कृति का समय है, जिसमें वे अपनी क्षमता से योगदान देकर एक महान साझा विश्व की रचना कर रहे हैं, किन्तु हकीकत इसके विपरीत है। भूमंडलीकरण केवल लाभ और पूँजी पर आधारित अमेरिकी 'बाजारवाद' है जो साफ तौर पर विश्व को अमीर और गरीब देशों में बांटकर यह सुनिश्चित करता है कि गरीब, लाचार और असमर्थ लोगों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाए।

भूमंडलीकृत भारत का समाज एक ऐसे उपभोक्तावादी समाज के रूप में विकसित हो रहा है, जहाँ बाजारवाद भारतीयों की एक नई जीवन–शैली बनकर उभरा है। आलोचक पुष्पपाल सिंह के शब्दों में– ''उपभोक्तावाद तथा ब्रांडिड संस्कृति में भारत ही नहीं पूरा विश्व ढलता जा रहा है, भूमंडलीकरण के अर्थतन्त्र ने एक 'वैश्विक गाँव', 'ग्लोबल विलेज' ही नहीं बनाया एक 'वैश्विक सुपर बाजार' (ग्लोबल सुपर मार्केट) खड़ा कर दिया। पश्चिमी देशों के उत्पाद, माल (प्रोडक्ट) पूरी दुनिया में अधिकाधिक उपलब्ध हैं। इन उत्पादों के माध्यम से ही पश्चिम विशेषतः अमेरिका हमारे सांस्कृतिक मूल्यों में बदलाव ला रहा है।''[1] कथाकार निर्मल वर्मा इसका सांस्कृतिक विश्लेषण इस रूप में करते हैं– ''जब मैं प्रसिद्ध अमेरिका का नाम लेता हूँ तो वह दुनियाँ के एक भूखण्ड एवं देश के नाम के तौर पर उतना नहीं, जितना एक 'रूपक' के रूप में जिसकी पाखण्डी दुनिया अपनी सम्पन्नता, अपने चरमोत्कर्ष पर पाती है आज अमेरिका पश्चिमी सभ्यता के मूल्य बोध, आचार–विचार और नैतिक मान मर्यादाओं का प्रतीक है। एक ऐसा मैग्नेटिक फील्ड, जिसकी ओर पूर्व–पश्चिम के समस्त देश खिंचते चले जाते हैं। कहने को भूमण्डलीकरण की अवधारणा सम्पूर्ण दुनिया को अपने में समाहित करती है किन्तु कौन नहीं जानता कि इसकी चालक शक्ति का मूल स्रोत पश्चिमी सभ्यता के रथ के साथ जुड़ा है, जिसके दोनों पहिए–सार्वभौमिक और समानता के विकास के राजपथ पर एक साथ भागते हैं।''[2] भूमंडलीकरण की संस्कृति ने ही पिछली सदी को 'भोगवादी सदी' के रूप और संज्ञा से नवाजा। बहुराष्ट्रीय मल्टीनेशनल कंपनियों ने उदारीकरण खुला बाजार, मुक्त बाजारवादी उपभोक्तावाद को जन्म दिया। बाजार की यह व्यवस्था, बाजार का मनुष्य को लीलने का यह माया–प्रपंच भूमंडलीकरण अर्थ–व्यवस्था का आधार है।''[3]

इन कम्पनियों द्वारा बाजार की ऐसी स्थिति बन गई है कि पूरा विश्व योजनाबद्ध तरीके से इनके उत्पादों के आकर्षण में फँसकर उत्पादों का दास बनती चली जा रही है। बड़े पैमाने पर जन समुदाय के दैनिक जीवन को अपने उत्पादों के माध्यम से नियंत्रित करती जा रही है 'सुबह उठते ही बैड–टी के रूप में या टूथब्रश, टूथ पेस्ट के रूप में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उत्पाद हमें जीवन शुरू करने की राय देते हैं। फलस्वरूप ''देखते ही देखते छोटे शहरों के चौराहों पर बिकती दोगुने, घर–घर में समाचार पत्रों की तरह दातुनें फेंकने, फेरी वाले (हाकर्स) बिला गये हैं।''[4] अत्यन्त योजनाबद्ध रूप से पूरे विश्व में इस अवधारणा को प्रचारित–प्रसारित किया जा रहा है कि मुक्त बाजार और उदारीकण के द्वारा ही विकास किया जा सकता है। उपभोक्तावाद ने व्यक्ति को विज्ञापन और टी0वी0 के माध्यम से एक अंधी कभी न समाप्त होने वाली सपनों और लालसाओं की ओर धकेल दिया है।

उपभोक्ता वस्तुओं की बढ़ती लालसा को देखते हुए समाज वैज्ञानिक विश्वनाथन का मानना है कि खरीददारी वर्तमान भारत में अनावश्यक राष्ट्रीय खेल बन चुका है। वर्ष 1985–86 की तुलना में यदि

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

1995 के आँकड़ों की तुलना की जाए तो यह सिद्ध होता है कि आर्थिक सुधारों के बाद स्थायी उपभोक्ता मदों की खरीददारी में तेजी से वृद्धि हो रही है। साइकिल, स्कूटर, मोटर साइकिल से लेकर रेफ्रीजरेटर, कलर टी0वी0, वाशिंग मशीन जैसी सभी वस्तुएँ आम व्यक्ति के जीवन का अभिन्न हिस्सा बनती जा रही हैं। इन वस्तुओं की उपलब्धता केवल शहरी भारत में नहीं, बल्कि ग्रामीण भारत में भी तेजी से बढ़ रही है। टेलीविजन, वाशिंग मशीन या माइक्रोवेव ओवन के प्रति उपभोक्ताओं की माँग दस प्रतिशत की दर से बढ़ रही है तो ग्रामीण स्तर में यह आँकड़ा पच्चीस प्रतिशत अचम्भित करने वाला है।

rkfydk ¼Hkkjrh; ?kjksa esa LFkk;h miHkksDrk oLrqvksa dh miyC/krk[5]½

miHkksDrk oLrq,a	xzkeh.k Hkkjr		'kgjh Hkkjr		vf[ky Hkkjrh;	
	1985-86	1995-96	1985-86	1995-96	1984-85	1995-96
साइकिल	30.3	52.9	35.2	48.6	31.7	57.7
स्कूटर	0.6	2.1	6.1	15.9	2.1	6.0
मोटर साइकिल	0.7	1.9	2.6	5.6	1.2	2.9
प्रेशर कूकर	3.4	13.0	32.5	56.3	11.3	25.3
मिक्सी	0.6	3.1	10.9	30.1	34.4	10.8
रेफ्रिजरेटर	0.3	2.0	8.8	25.2	2.6	8.6
श्वेत श्याम टी.वी.	1.0	15.4	15.1	45.6	4.7	25.0
रंगीन टेलीविजन	0.1	0.5	1.4	10.9	0.4	3.5
वाशिंग मशीन	0.0	0.5	1.4	10.9	0.4	3.5

आज साइकिल, स्कूटर, फ्रिज आदि को छोड़कर लग्जरी वस्तुओं के प्रति आकर्षण भी समाज में तीव्र गति से बढ़ रहा है। भूमण्डलीकरण से पहले व्यक्ति बचत के लिए सोचता था। आज भारत भी 'अभी खरीदो, बाद में सोचो' संस्कृति की ओर बढ़ रहा है। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपभोक्तावादी और बाजारवादी संस्कृति का प्रभाव देखा जा सकता है। मानव जीवन के हर क्षेत्र में बाजारवाद की जड़ें मजबूत हो गई हैं और खरीददारी भारत में उन्माद का रूप ले चुका है जिसे हम इस तालिका द्वारा समझ सकते हैं–

rkfydk ¼Hkkjr esa ifrfnu [kjhnnkjh ¼la[;k esa½[6] ½

miHkksDrk oLrq	La[;k	miHkksDrk oLrq	La[;k
कार	2,416	सोना	1,918 कि0
बाइक	15,932	टी0वी0	22,740
स्कूटर	19,332	फ्रिज	9,589
वाशिंग मशीन	4,274	वायु टिकट	95,890
लैपटाप	1,183	विदेश भ्रमण करने वाले भारतीय	24,657
कम्प्यूटर	12,643		

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारतीय समाज तीव्र उपभोक्ता संस्कृति में ढल रहा है। उपभोक्तावाद मात्र वस्तुओं के खरीद और बिक्री तक सीमित नहीं हैं। टी0वी0 और इन्टरनेट के माध्यम से ऐसे मूल्यों को मध्यवर्गीय उपभोक्ता के मानस तक पहुँचाया जा रहा है जो उसके सांस्कृतिक मूल्यों के बिलकुल विपरीत है जो उसके जीवन मूल्यों को कुरूप और विकृत बनाते हैं। पुष्पपाल सिंह के शब्दों में– ''उपभोक्तावाद ने व्यक्ति को कभी न समाप्त होने वाली लालसा की ओर धकेल दिया है। आज एक नए प्रकार की भौतिकवादी संस्कृति का विकास हो चला है। इसी उपभोक्तावादी दृष्टि ने प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक उत्पाद को एक 'पण्य' (कमॉडिटी) का रूप दे दिया है।''[7] पूर्व प्रधानमंत्री एवं वित्तमंत्री मनमोहन सिंह ने बजट चर्चा में उपभोक्तावाद एवं बाजारवाद के लक्षण एवं चरित्र के विषय में कहा था– ''एक अभूतपूर्व युग का उदय हो रहा है, जिसमें बाजार कभी बन्द नहीं होते, चौबीसों घंटे बाजार काम करते

रहते हैं ये रोमांचक क्षण हैं इतिहास के मनोवैज्ञानिक जानते हैं कि जो कभी नहीं सोता है, उसके शरीर को कभी विश्राम नहीं मिलता। आखिरकार ऐसी स्थिति आ जाती है कि वह पागल हो जाता है, तो क्या हम एक पागल बाजार की ओर बढ़ रहे हैं, जो कभी नहीं सोता ? जिसके सोचने की क्षमता ही नहीं है ? जो मुनाफा और अधिक मुनाफा कमाने की ओर बढ़ रहा है।''[8] हम देखते हैं कि बाजारवाद में जीवन से सम्बन्धित हर वस्तु का उत्पादन केवल लाभ या मुनाफे की दृष्टि से ही किया जाता है और अपने लाभ के लिए व्यक्ति के प्रत्येक मूल्य को परिवर्तित करता है। मुनाफा केन्द्रित तन्त्र को स्थापित करने वाली विचारधारा, हर वस्तु या विचारधारा या संस्कृति को उत्पाद समझकर बिकाऊ माल बना देने की साजिश निरन्तर जारी रहता है।

आज बाजार और विज्ञापन द्वारा आरोपित मूल्य है 'गोरा' होना सुन्दरता का प्रतीक बन गया है, भारतीय सांस्कृतिक मूल्य की दृष्टि में सौन्दर्य एक आन्तरिक गुण माना जाता था, जो व्यक्ति के दृष्टि पर निर्भर करता था, आज गोरा होना सुन्दर होने की आवश्यक शर्त माना जाने लगा है। व्यक्ति को गोरा एवं सुन्दर बनाने का दावा करने वाली हजारों क्रीम बाजार में उपलब्ध हैं। जैसे फेस क्रीम, कोल्ड क्रीम, स्नो क्रीम आल पर्पज क्रीम, रिंकल फ्री क्रीम, गोरे होने की क्रीम, बच्चे को जन्म देने के पश्चात पेट में झुर्रियों के निशान–हटाने, गोरी रंगत को चमकाने, कील मुँहासे हटाने, फटी एड़ियों को बचाने, धूप से बचने की क्रीम, रात की क्रीम, दिन की क्रीम आदि कितने–कितने प्रकार की किस्में सैकड़ों क्रीमों के सैकड़ों ब्रांड बाजार में विज्ञापन के माध्यम से झूठ का प्रचार करते हुए बेची जा रही हैं। ऐसी–ऐसी क्रीम जिसके बारे में कभी सोचा नहीं जा सकता था, बाजार में उपलब्ध हैं। इस प्रकार का सौन्दर्य उद्योग प्रति वर्ष 7.8 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है, बाजार के चिंतकों का मत है कि 2007 तक इस व्यवसाय में 8.5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि देखी गयी है।[9]

वाई0 एण्ड ई0 स्टाइल मीडिया के प्रा0लि0 के निदेशक और 'हेड ऑपरेशन' यतन अहलुवालिया का कहना है कि 'सौन्दर्य व्यापार का अपना आकर्षण कभी नहीं खो सकता क्योंकि किसी भी समय मनुष्य सुन्दर ही दिखना चाहेगा, न कोई बाल कटाना छोड़ेगा न उन्हें रंगना और न अपने चेहरे–मोहरे को आकर्षण बनाना छोड़ेगा। केवल लुधियाना में हर दूसरे सप्ताह बाजार 'हेयर केयर' और 'स्किन केयर' का कम से कम एक उत्पाद बाजार में उतार दिया जाता है। पिछले कुछ ही महीने में कम से कम 200 उत्पाद बाजार में उतारे गये।

इस तरह हम देखते हैं विदेशी ब्रांडों से भारत का बाजार, मॉल, दुकानें भरी हुई हैं। मॉल्स ब्रांड संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए प्रतिदिन अपनी नयी–नयी शाखाएं खोल कर व्यक्ति को ब्रांड में बदल डालने की रणनीति पर चल रहा है। ब्रांड के सन्दर्भ में प्रभा खेतान ने टिप्पणी करते हुए लिखा है–

''ब्रांड से निर्मित होता हुआ व्यक्ति (उपभोक्ता) स्वयं में ब्रांड बन जाता है– एक भोगा जाता हुआ ब्रांड। इसी प्रवृत्ति को फैशन, रूचि, जीवन शैली कहा जाता है और उत्तर–आधुनिक समाज में इसी के आधार पर सामाजिक भिन्नताएं आधारित होती हैं, जो पहले के वर्गीय समाज और राजनीतिक पक्षधरता से भिन्न है।'' ब्रांड के माध्यम से निर्माता चाहता है कि उपभोक्ता के मन में ऐसी बाध्यता हो, ऐसा लगाव पैदा हो जाए कि उस ब्रांड को वह कभी छोंड़ न सके। .....जिस पलंग पर आप सोए हैं, जिस चादर को आप ओढ़ रहे हैं, जिस साबुन से आप हाथ धो रहे हैं और जो भोजन आप कर रहे हैं, सब जगह उस कंपनी का ब्रांड चिपका होगा। ......एक आदमी को किन–किन चीजों की जरूरत पड़ेगी वह क्या खाता है, कैसा जीता है! क्या पहनता है संक्षेप में आदमी की हर सांस पर ये कंपनिया अपनी मुहर लगाना चाहती हैं– यही इनका उद्‌देश्य है– आदमी के जीवन की दिशा निर्धारित करें। उसे कहाँ पहुँचना है, उस पर अंगुली रखें। आदमी जहाँ पहुँचना चाहता है वह केवल एक दुकान नहीं है, बल्कि उपभोक्ता की तीर्थस्थली है! शॉपिंग माल उसका मक्का–मदीना हैं, उसका गिरजाघर है! जहाँ उसके लिए दिन–प्रतिदिन और अधिक तकनीक प्रधान महंगी कला के रत्नों से जड़ित स्थान खोजे जा रहे हैं।''[10]

विभिन्न ब्रांड की वस्तुओं की भीड़ ने व्यक्ति को पूरी तरह भ्रमित और शंकित कर दिया है। बाज़ार में उपलब्ध विभिन्न ब्रांड की वस्तुओं और फैशन में इतनी तीव्र गति से बदलाव आता है कि कभी भी संतुष्ट

भरी उपलब्धता के शिखर पहुँचा ही नहीं जा सकता। फलतः व्यक्ति अवसाद, निराशा, हताशा भरा जीवन जीने को अभिशप्त हो जाता है। मध्यवर्ग आज असंख्य वस्तुओं के बीच उपभोक्ता बनकर खड़ा है। ब्रांड संस्कृति युवाओं में यह भावना भरती है कि कैसे दिखे, क्या खाए क्या पहने, साथ ही आत्मिक रूप से खोखला कर रही है। प्रभा खेतान के अनुसार– ''एक स्तर पर बड़ा प्रगतिशील है। जींस, पेप्सी, नाइक के जूते, हाथों में सैमसंग का मोबाइल यह भारत के युवाओं की हंसती–खेलती तस्वीर है मगर दूसरे स्तर पर जिनके सामने अंधकारपूर्ण भविष्य और गहरी खाई है। क्या गिर कर उठ पाएंगें।''[11] उपर्युक्त विश्लेषण यह दर्शाता है कि बाजारवाद किस प्रकार उपभोक्तावाद और ब्रांड संस्कृति को बढ़ावा देकर विषमतामूलक समाज, आपसी विद्वेष, अशांति और कुंठा जैसी प्रवृत्तियों को मानव जीवन का अंग बनाती जा रही है। आज व्यक्ति को आवश्यकता और उपभोग के मध्य संतुलन बनाकर चलने की जरूरत है। तभी इनके प्रभावों और खतरों से बचा जा सकता है।

lUnHk %

1. पुष्पपाल सिंह, भूमंडलीकरण और समकालीन हिन्दी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली–2012, पृ0 42
2. निर्मल वर्मा, भूमंडलीकरण के दौर में साहित्य की जातीय संस्कृति और व्यक्ति चेतना, वागर्थ, 58, फरवरी–2000
3. पुष्पपाल सिंह, भूमंडलीकरण और समकालीन हिन्दी उपन्यास, राधाकष्ष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2012, पृ0 42
4. वही, पृ0 43
5. अमित कुमार, भूमंडलीकरण और भारत परिदृश्य और विकल्प, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2010, पृ0 95–96
6. वही
7. पुष्पपाल सिंह, भूमंडलीकरण और समकालीन हिन्दी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2012, पृ0 44
8. वही, पृ0 43
9. वही, पृ0 43
10. प्रभा खेतान, ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली–2010, पृ0 32, 80, 81
11. वही, पृ0 78

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 7-9

rFkkxr dk ckf/ko`{k ¼lkfgR; ds ifjis{; e½

uhjt dqekj feJk*

ckf/ko`{k % बुद्ध के निरूपण हेतु प्रयुक्त प्रतीकों में बोधिवृक्ष का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है, जो उनके जीवन की विलक्षण घटना सम्बोधि प्राप्ति से सम्बन्धित है। वृक्ष पूजा की प्रमुखता व महानता का साक्ष्य हड़प्पा से प्राप्त पुरावशेषों से भी प्रमाणित है।[1] भारतीय साहित्य भी वृक्ष पूजा के विवरणों से भरा हुआ है। वृक्षों की पूजा को प्राकृत साहित्य में रूक्खमह द्वारा वर्णित किया गया है। महाभारत में हमें पवित्र वृक्ष का वर्णन प्राप्त होता है कि किसी ग्राम में जब एक वृक्ष ऐसा दिखायी पड़ता है, जो पत्तों से खूब छतनार तथा फलों से लदा हुआ हो तो वह वह अपने विशिष्ट लक्षणों से पूजने योग्य जान पड़ता है लोग उसे भली–भाँति पूजते हैं। वह उस क्षेत्र के लिए चैत्य समझा जाता है।[2] सम्भवतः इसी प्रकार जब कालान्तर में वृक्ष पूजा की मान्यता में वृद्धि हुई, उस वृक्ष को वेदिका से आच्छादित करने का कार्य प्रारम्भ हुआ। रामायण व महाभारत दोनों में ही पवित्र वृक्षों के चारों ओर बनी हुई वेदिकाओं का उल्लेख है।[3] वेदों तथा उपनिषदों में भी पवित्र वृक्ष हेतु वानस्पति अक्षय–वट, अश्वत्थ, आदि शब्द प्रयुक्त हुए है।[4] प्राचीन भारतीय आहत् मुद्राओं पर भी हमें वेदिका युक्त वृक्ष के अंकन प्राप्त होते हैं तथा इनमें से अधिकांश का सम्बन्ध बौद्ध राजाओं के साथ नहीं प्रतीत होता है। वृक्ष पूजा की इस परम्परा को न केवल ब्राह्मण अपितु जैन व बौद्ध परम्परा ने भी आत्मसात किया। रामायण के अयोध्याकाण्ड में सीता के द्वारा हरे पत्तों से युक्त वृक्ष की उपासना का सन्दर्भ प्राप्त होता है, जिसे सीता प्रणाम करती है तथा उसकी परिक्रमा करती है।[5] इसके अतिरिक्त महाभारत के आदिपर्व में वटवृक्ष की पवित्रता तथा इसके अधीन तपस्या का वर्णन प्राप्त होता है। जिसमें वालरिवल्य महर्षि का महावट वृक्ष की शाखा पर तपस्या करने का वर्णन है।[6] महाभारत में ही करंज वृक्ष पर निवास करने वाली देवी का वर्णन है। उसे पूजित करने तथा उसे विभिन्न पदार्थों का भोग लगाने का वर्णन है।[7] अनुशासन पर्व में वृक्षारोपण को महान कल्याणकारी दया उद्धारक बताया गया है। इसके अतिरिक्त नायाधम्म कहा में भी चैत्य वृक्ष की महत्ता वर्णित है।[9] रायपसेनियसुत्त में भी मनोहर चैत्य वृक्ष का वर्णन प्राप्त होता है। इसकी जड़े वज्र रत्नों से युक्त, मणि, रत्नों तथा अष्टमंगल, ध्वजा, से सुशोभित बतायी गयी है।[10] इसके अतिरिक्त जातक कथाओं में चैत्यवृक्ष अथवा बोधिवृक्ष की पवित्रता तथा उसके देवत्त्व के विभिन्न साक्ष्य प्राप्त होते हैं। यथा रूक्खधम्म जातक में[11] वृक्ष पूजा परम्परा के साक्ष्य प्राप्त होते है तथा बोधिसत्त्व को स्वयं वृक्ष देवता के रूप में उत्पन्न बताया गया है। बोधिवृक्ष पूजन परम्परा का वर्णन कुण्डक पूर्व जातक[12] में वर्णित किया गया है। साथ ही रूक्ख देवता को बलि अर्पित करने का भी वर्णन है। व्याघ्र जातक[13] में बोधिसत्त्व को एक अरण्य में वृक्ष देवता होकर उत्पन बताया गया है। पलास जातक[14] में बोधिसत्त्व को पलास देवता के रूप में उत्पन्न होता बताया गया है साथ ही साथ मंगल चिन्ह, माला, गन्ध, धूप से पूजा करने व प्रदक्षिणा करने की परम्परा का भी वर्णन है। पुचीमण्ड जातक[15] में बोधिसत्त्व का नीम वृक्ष के देवता के रूप में उत्पन्न होने का वर्णन है। महावण्णिज्ज जातक[16] में वृक्ष की शाखाओं द्वारा जल भोजन, रत्न, स्त्री, देने का वर्णन है। वैदिक परम्परा में अश्वत्थ वृक्ष में दिव्य गुणों व शक्तियों की कल्पना प्राप्त होती है। इस प्रसंग में कलिंग बोधिजातक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है जहाँ आनन्द के द्वारा बुद्ध के पवित्र प्रतीक की स्थापना करने के अनुरोध पर बुद्ध शारीरिक, परिभौगिक तथा उद्देशिक चेतियों का वर्णन करते हैं तथा इनमें से अपने जीवन काल में ही अपने प्रतीक

*शोध छात्र, प्रा0 भा0 इ0 सं0 एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

के रूप में महाबोधिरूक्ख की अनुशंसा करते हैं।[17] कला में तथागत के निरूपण हेतु अश्वत्थ वृक्ष को चुना गया है तथा उसी प्रकार पूर्व बुद्धों के प्रतीकात्मक अंकन हेतु पुण्डरीक, शिरीष, पाटलि और न्यग्रोध बोधि वृक्ष को स्वीकार किया। ''कुमार स्वामी के शब्दों में भरहुत कला में बोधिवृक्ष अश्वत्थ एक चैत्य वृक्ष है, जो बुद्ध के जन्म, जाति तथा बुद्धत्व लाभ के प्रतीकीकरण में प्रयुक्त हुआ है प्रतीक विधान की योजना में इसका साहचर्य छत्र, पादुका, धर्मचक्र, वज्रासन आदि के साथ मिलता है।[18]'' यह अश्वत्थ का ही वृक्ष था जिसके नीचे बोधिप्राप्ति हेतु तथागत ने साधना की थी।[19] बौद्धकला में बुद्ध के रूपांकन के प्रारम्भिक प्रयासों में संबोधि की घटना को निरुपित करने हेतु बोधिवृक्ष को चुना गया, साथ ही अन्य दृश्यांकनों, मारविजय आदि में भी अश्वत्थ वृक्ष बहुधा मिलता है। यहाँ तक बुद्ध प्रतिमा के निर्माण होने के पश्चात् भी बोधिवृक्ष का अंकन अनवरत रूप से होता रहा। ''दूसरी शती ई0 की कटरा केशव देव से प्राप्त बोधिसत्त्व–मूर्ति में अश्वत्थ, संबोधि की घटना का ही रूप प्रस्तुत करता है।''[20]

बुद्ध की सम्बोधि के साक्षी बोधगया के बोधिवृक्ष का वर्णन स्वयं ह्वेनसांग के द्वारा किया गया है। उसके अनुसार बोधिवृक्ष की ऊँचाई 40 से 50 हाथ थी। बुद्ध ने इसके नीचे सम्बोधि को प्राप्त किया था अतः इसे बोधिद्रुम कहा जाता था। सुगंधित जल व दूध के द्वारा इसका सिंचन व अभिषेक किया करते थे। अशोक की महिषी तिष्यरक्षिता तथा शशांक के द्वारा व अन्य विरोधीयों के कारण इस वृक्ष को हानि भी हुई। कनिंघम के अनुसार चूँकि पीपल का पेड़ शीघ्र तैयार हो जाता है तथा अल्पायु भी होता है। अतः इसके नए–नए रूपों तथा संस्करणों की एक लम्बी परम्परा रही है जो अशोक के समय से आज तक लगभग, बारह, पन्द्रह, अथवा बीस बार तैयार और नष्टगत हुई होगी।[21]

इस प्रकार भारत में प्राचीन काल से चली आ रही वृक्ष पूजा की परम्परा को शुंगकाल तक आते–आते बौद्ध धर्म द्वारा अंगीकार कर लिया गया। बौद्धशिल्पियों ने इस प्राचीन परम्परा को तथागत के जीवन दृश्यों के साथ इस भाँति समाहित किया कि यह बौद्ध कला का ही अभिन्न अंग बन गया। कला में इसकी पवित्रता व महत्ता के सूचक हैं बोधिवृक्ष की वन्दना, दर्शन, पूजन, प्रदक्षिणा करते जन समूह तथा छत्र, ध्वज, चामर, पुष्पों से सुसज्जित बोधिवृक्ष। सांची की कला में स्वयं अशोक की रानी तिष्यरक्षिता द्वारा बोधिवृक्ष पूजन करते हुए प्रदर्शित किया गया है।[22] भरहुत की कला में भी पाँच पूर्व बुद्धों का प्रतीकात्मक निरूपण उनके बोधिवृक्षों के रूप में उत्कीर्णित है। साथ में अंकित अभिलेखों के द्वारा भी इसकी पुष्टि होती है।

lUnHk %

1. मैके, अर्नेस्ट, अर्ली इंडस सिविलाइजेशन, लन्दन, 1935 पृ0 58–61
2. महाभारत, आदिपर्व (188/25), द्रष्टव्य, अग्रवाल, वासुदेव शरण प्राचीन भारतीय लोक धर्म, अहमदाबाद, 1964 पृ0 77
3. पूर्वोक्त
4. कुमार स्वामी, आनंद केटिश, एलीमेन्ट्स ऑफ बुद्धिस्ट आइकनोग्राफी, नई दिल्ली, 1979 पृ0 11
5. रामायण – 2 55, (24–26) सं0 पं0 राम पाण्डेय चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, पुनर्मुदित 2009
6. महाभारत, 1 30 (2), सं0 पी0 एस0 सुकंथांकर, पूना, 1940
7. पूर्वोक्त, 3 (230), (35–36)
8. पूर्वोक्त, (XIII) (58) (26)
9. नायाधम्मकहाओ, (I 25), सं0 एन0 पी0 वैद्य, पूना, 1940, पृ0 सं0 40
10. राजपसेनिय सुत्त, सं0 श्रीचन्द्र सुराणा, राजस्थान, 1982, पृ0 सं0 94–95
11. जातक अट्कथा–1 जातक सं0 74, अनु0 भदन्त आनन्द कौसल्यायन प्रयाग, प्रथम संस्करण, 2006 पृ0 सं0 422
12. पूर्वोक्त भाग–2 जातक सं0 109 पृ0 सं0 16
13. पूर्वोक्त, भाग–3 जातक सं0 272 प्रथम संस्करण–2007 पृ0 सं0 91
14. पूर्वोक्त, जातक सं0 307, पृ0 सं0 221
15. पूर्वोक्त, जातक सं0 311, पृ0 सं0 234

16. पूर्वोक्त, भाग–5, प्रथम संस्करण 2011, जातक सं0 493 पृ0 सं0 20
17. जातक स्टोरीस, सं0 ई0 बी0 कावेल (कैम्ब्रिज 1895) भारतीय संस्करण, 1990 भाग–4 पृ0 सं0 143
18. कुमार स्वामी, ए0 के0, हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट लंदन, 1927 पृ0 सं0 31 व 49
19. द बुद्ध चरित (13.115) अनु0 ई0 बी0 कावेल, आक्सफोर्ड, 1894, (भारतीय संस्करण, नई दिल्ली, 1977)
20. वाजपेयी, कृष्णदत्त, मथुरा, लखनऊ, 1955, फलक 20 तथा 13
21. कनिंघम, एलेक्जेण्डर, महाबोधि आर दि ग्रेट बुद्धिस्ट टेम्पुल अण्डर दि बोधि ट्री एट बोधिगया, लन्दन, 1892 पृ0 सं0 31।
22. मार्शल, ए गाइड टू साँची, कलकत्ता, 1918 फलक 7 बी
23. कनिंघम एलेक्जेण्डर, द स्तूप ऑफ भरहुत, लंदन, 1879 पृ0 सं0 45–47

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 10-12

iFkey{k.k lk/;kHkkoLo : ifopkj%

nqxs'kikBd%*

प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः इति नियमः।[1] तच्च प्रमाणं न्यायनये चतुर्विधम्। उक्तमपि प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि।[2] यद्यपि नैयायिकाः प्रमाणचतुष्ट्यं स्वीकुर्वन्ति, तथापि ते आनुमानिकपदेन प्रथिताः। तच्चानुमानं व्याप्तिज्ञानस्वरूपम्। सा च व्याप्तिः। साध्याभाववदवृतित्त्वरूपा इति पूर्वपक्षत्त्वेन रूपेण गङ्गेशोपाध्यायेन[3] उक्ता। तदर्थश्च साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः। पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यत्र सद्धेतौ लक्षणसमन्वयप्रकारश्च इत्थं साध्यो वह्निः, साध्याभावः वह्न्यभावः तदधिकरणं जलह्रदः तन्निरूपितवृत्तितामीनादौ वृतित्त्वाभावस्य धूमे सत्त्वात् लक्षणसमन्वयः, पर्वतो घूमवान् वह्नेः इत्यत्र असद्धेतौ नातिव्याप्तिः, साध्यो धूमः, साध्याभावः धूमाभावः तदधिकरणमयोगोलकः तन्निरूपितवृत्तिता एव वह्नौ वृतित्त्वाभावस्य अभावात् नातिव्याप्तिः।

अत्रेदं विचार्यते यत् लक्षणघटकसाध्याभावः किदृशः? इत्याकाङ्क्षायां यदि साध्यनिष्ठ–प्रतियोगिताकाभाव एव साध्याभावः स्वीक्रियते तदा पर्वतो वह्निमान् घूमात् इत्यत्र भवत्यव्याप्तिः। साध्यो वह्निः साध्याभावः समवायसम्बन्धेन वह्न्यभावः तदधिकरणं पर्वतः। यतोहि समावायेन वह्निः स्वावयवे तिष्ठति न तु पर्वतादौ, अतः पर्वतादौ समवायेन वह्न्यभावः तिष्ठत्येव तदधिकरणं पर्वतः तन्निरूपित वृत्तितैव घूमे वृत्तित्वाभावस्य अभावात् अव्याप्तिः। तद्वारणाय साध्यनिष्ठप्रतियोगितायां साध्यतावच्छदेक–सम्बन्धावच्छिन्नत्त्वं निवेश्यते। कृते च निवेशे नाव्याप्तिः। यतो हि अनुमितिविधेयतावच्छेदकसम्बन्धः एव साध्यातावच्छेकसम्बन्धो भवति। प्रकृते अनुमितिः पर्वतो वह्निमान् इति तत्र विधेयः वह्निः तदवच्छेदक–सम्बन्धः संयोगसम्बन्धः स एव साध्यतावच्छेदकसम्बधः। तथा च साध्यातावच्छेदकीभूतसंयोगसम्बन्धेनैव साध्यनिष्ठाप्रतियोगिता ग्राह्या। तथा च संयोगसम्बन्धावच्छिन्नवह्निनिष्ठप्रतियोगिताकाभावः संयोगेन वह्निर्नास्ति इत्याकारकाभावः तदधिकरणं न हि पर्वतादिकम् तत्र संयोगेन वह्नेः विद्यमानत्त्वात्। अपितु वह्न्यभावाधिकरणं जलह्रदादिकं तन्निरूपितावृत्तिता मीनादौ वृत्तित्त्वाभावस्य घूमे सत्त्वात् नाव्याप्तिः। परन्तु एवं लक्षणे कृते सति पुनः वह्निमान् धूमात् इत्यात्राव्याप्ति। तत्र साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न–साध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभावपदेन संयोगसमवायोभयसम्बन्धेन वह्न्यभावः धर्त्तुम् शक्यते। ,dlŸo·fi };ukLrhfr[4] रीत्या संयोगसम्बन्धेन वह्नेः पर्वते विद्यामानत्वेऽपि समवायसम्बन्धेनाभावात् वह्न्यभावा–धिकरणपर्वतनिरूपितवृत्तित्त्वस्यैव घूमे विद्यमानत्त्वात् वृतित्वाभावस्याभावात् अव्याप्तिः।

अतस्तद्वारणाय साध्यनिष्ठप्रतियोगितायां साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेतरसम्बन्धानवच्छिन्नत्त्वं निवेश्यते। कृते प्रवेशे नाव्याप्तिः। तथा हि साध्यतावच्छेदकसम्बन्धः संयोगसम्बन्धः तदितरसम्बन्धः समवायसम्बन्धः तेन सम्बन्धेनावच्छिन्नेयम् साध्यनिष्ठप्रतियोगिता अनवच्छिन्ना नास्ति। अतः नायमभावः लक्षणघटकः। वह्न्यभावा–धिकरणनिरूपितवृत्तित्त्वाभावमादाय लक्षणसमन्वयः। तथा च लक्षणस्वरूपं साध्यावच्छेदकसम्बन्धेतर–सम्बन्धानवच्छिन्नसाध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्नसाध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः। एवं लक्षणे कृते सति पुनः वह्निमान् धूमाद् इत्यत्र अव्याप्तिः। तत्र साध्याभावपदेन माहनसीयवह्निं मनसीकृत्य तत्तद्व्यक्तिर्नास्ति इत्याकारकाभावः तदधिकरणं पुनः पर्वतादिकं तन्निरूपितवृत्तिता एव धूमे वृत्तित्वाभावस्याभावात् अव्याप्तिः। अतः एतद्दोष निरासाय साध्यनिष्ठप्रतियोगितायां साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नत्वं निवेश्यते। तथा च नाव्याप्तिः।

यतो हि तत्तद्व्यक्त्यभावीया प्रतियोगिता साध्यतावच्छेदकीभूत वह्नित्त्वधर्मानवच्छिन्नत्त्वात् नायमभावः लक्षणघटकः अपितु संयोगसम्बन्धेन वह्न्यभाव एव तदधिकरणं नहि पर्वतादिकं अपितु जलह्रदादिकमेव

*शोधच्छात्रः, काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसीः, उ0प्र0

तन्निरूपितवृत्तित्त्वाभावस्य घूमे सत्वात् नाव्याप्तिः। परन्तु वह्निमान् घूमात् इत्यत्र अव्याप्तिस्तु दुरुद्धरैव। यतोहि साध्याभावपदेन संयोगसम्बन्धेन महानसीयवह्निर्नास्ति इत्याकारकाभावः धर्त्तुं शक्यते। तादृशाभाव–धिकरणं पर्वतादिकं तन्निरुपितवृत्तिता एव घूमे। वृतित्वाभावस्याभावदव्याप्तिः। यतोहि महानसीयवह्न्य–भावीयप्रतियोगितायाः साध्यताच्छेदकीभूतसंयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्वात् साध्यतावच्छेदकीभूतवह्नित्वा वच्छिन्नत्वात्।

अत एतादृशदोषपरिहाराय साध्यनिष्ठप्रतियोगितायाम् साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नत्वं निवेश्यते कृते च निवेशे नाव्याप्तिः। यतो हि महानसीय वह्न्यभावीयप्रतियोगितायाः महानसीयवह्नित्वावच्छिन्नत्वात् शुद्धवह्नित्वा नवच्छिन्नत्वाच्च नायमभावो लक्षणघटकः। अपितु शुद्धवह्न्यभाव एव तदधिकरण जलादिनिरूपितवृत्तित्वाभावमादायलक्षणसमन्वयः। तथा च लक्षणस्वरूपं साध्यतावच्छेद कसम्बन्धावच्छिन्न–साधतावच्छेदकसम्बन्धेतरसम्बन्धानवच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभा–वाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावोव्याप्तिः।

एवं लक्षणे कृतेऽपि महानसीयवह्न्यभावभादाय पर्वतो वन्हिमान् घूमात् इत्यत्राव्यप्तिः तादवस्थ्या। यतोहि महानसीयवह्न्यभावीया प्रतियोगिता महानसीयत्वावच्छिन्नत्वेऽपि साध्यतावच्छेदकी–भूतवह्नित्वावच्छिन्नत्वात्, संयोगसम्बन्धवच्छिन्नत्वाच्च। अतः महानसीयवह्न्यभावो लक्षणघटकः तदधिकरणं पर्वतादिकम् तन्निरूपितवृत्तित्वस्य घूमे सत्त्वात् अव्याप्तिः।

अतस्तद्वारणाय यद्यपि साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नत्वमित्यस्य साध्यतावच्छेदकव्यापकत्वमर्थः। तथा च लक्षणं साध्यतावच्छेदक व्यापकप्रतियोगिताकाभावाधिकरणनिरूपितवृतित्वाभावो व्याप्तिः। प्रकृते साध्यतावच्छे दकीभूतं वन्हित्वं सर्वेषु वह्निषु पर्वतीयवह्नावपि वर्तते परन्तु महानसीयवह्न्यभावीया प्रतियोगिता केवले महानसीयवह्नौ एव अतः साध्यतावच्छेदकव्यापकप्रतियोगिता न महानसीयवह्न्यभावीयाप्रतियोगिता अपितु वह्न्यभावीयप्रतियोगितैव तादृश प्रतियोगिताकाभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावस्य घूमे सत्वात् नाव्याप्तिः।

तथापि पर्वतो वह्निमान् घूमात् इत्यत्राव्याप्तिः। तथाहि साध्यो वह्निः साध्याभावः संयोगेन वह्निघटोभयाभावः। ''एकसत्वेऽपिद्वयंनास्ति'' इतिरीत्या पर्वते संयोगेन वह्नेः वर्तमानत्वेऽपि घटस्याभावात् वह्निघटोभयाभावो लक्षणघटकाभावः। इयञ्चोभयाभावीयाप्रतियोगिता साध्यतावच्छेदकीभूतवह्नित्वव्यापिका। तथाहि वान्हित्वं वह्नौ एव प्रतियोगिता तु वह्नौ घटे च वर्तेते। अतः व्यापिकाप्रतियोगिता जाता। तादृशप्रतियोगिताकाभावाधिकरणनिरूपितवृतित्वस्य घूमे सत्वेन वृत्तित्वाभावस्याभावात् अव्याप्तिः।

अतस्तद्वारणाय साध्यनिष्ठप्रतियोगितयां साध्यतावच्छेदकधर्मेतरधर्मानवच्छिन्नत्वं निवेश्यते। तथा कृते सति नाव्याप्तिः। यतो हि वन्हिघटोभयाभावीया प्रतियोगिता साध्यतावच्छेदकीभूतवन्हित्व–धर्मेतरजलत्वोभयत्वधर्मेणावच्छिन्ना अनवच्छिन्ना नास्ति। अतो नायमभावो लक्षणघटकाभावः। साध्याभावमादायलक्षणसमन्वयः।

एवं लक्षणेकृतेऽपि महानसीयवह्निमान् तज्ज्ञानत्वात् इत्यत्राव्याप्तिः।[5] अत्र साध्यतावच्छेदक–सम्बन्धः विषयितासम्बन्धः। यत्र यत्र महानसीयवह्निविषयकज्ञानत्वम् तत्र तत्र विषयिता सम्बन्धेन महानसीयवह्निरिति महानसीयवह्निविषयकज्ञाने उभयोः सत्वात् सद्धेतुत्वम्।

प्रकृते साध्याभावपदेन महानसीयो नास्ति वह्निर्नास्तीव्याकारकाभावोऽपि धर्तुं शक्यते। तादृशाभावा–धिकरणं महानसीयवह्निविषयकज्ञानम्। यतोहि विषयितासम्बन्धेन वह्निः वह्निविषयकज्ञाने तिष्ठति, महानसीयत्वञ्च महानसीयविषयकज्ञाने तिष्ठति। महानसीयविषयकज्ञाने विषयितासम्बधेन महानसीयं वह्निं वा न तिष्ठति। तदभावाधिकरणमहानसीयवह्निविषयकज्ञाननिरूपितवृत्तित्वस्य तज्ज्ञानत्त्वरूपहेतौ सत्त्वात् अव्याप्तिप्रसंगात। एतद्दोषदूषणाय साध्यनिष्ठप्रतियोगितायां साध्यतावच्छेदकीभूतं यावध्दर्मावच्छिन्नत्वं निवेश्यते तथा च नाव्याप्तिः। यतोहि महानसीयाभावीयाप्रतियोगिता विषययित्वसम्बन्धाव–च्छिन्नवह्न्यभावीयप्रतियोगिता वा साध्यतावच्छेदकीभूताः ये यावद्धर्माः महानसीयत्ववह्नित्त्वे एददुभयध–र्मावच्छिन्ना नास्ति। अतः नायमभावो लक्षणघटकः। महानसीयवह्न्यभावमादायलक्षणसमन्वयात् नाव्याप्तिः, यदि उच्यते तदा पर्वतो वह्निमान् धूर्मात् इत्यत्राव्याप्तिः। तथा ह्यत्र साध्यतावच्छेदकीभूतस्य वह्नित्त्वस्य एकविधत्त्वात् साध्यतावच्छेदकीभूतयावद्धर्माप्रसिद्ध्या प्रकृतलक्षणस्याव्याप्तिः।

अतस्तन्निरासाय प्रतियोगितायां साध्यतावच्छेदकव्यापकत्त्वं निवेश्यते, कृते च निवेशे नाप्रसद्ध–याव्याप्तिः। यतोहि यत्र–यत्र साध्यतावच्छेकता वह्नित्वे वर्तते तत्र–तत्र प्रतियोगितावच्छेदकता तिष्ठत्येव। तथा च साध्यतावच्छेदकताव्यापकप्रतियोगितापदेन वह्न्यभावीयप्रतियोगिता ग्रहितु शक्यते तादृशाभावाधि–करणजलहदनिरूपितवृत्तित्वाभावस्य घूमे सत्त्वात् नाव्याप्तिः। परन्तु विषयितासम्बन्धेन महानसीयवह्निमान् तज्ज्ञानत्वात् इत्यव्याप्तिः तादवस्थ्यम्, तथा ह्यत्र साध्याभावपदेन विषयितासम्बन्धेन वह्निमहानसीयाभावोऽपि धर्तुं शक्यते। महानसीयवहिनविषयकज्ञाने विषयितासम्बधेन महानसीयवह्न्येव तिष्ठति न तु वह्निः महानसीयम्।

अतस्तदभावाधिकरणमहानसीयवह्निविषयकज्ञाननिरूपितवृत्तित्त्वस्य तज्ज्ञात्वे सत्त्वात् अव्याप्तिः।

अतस्तद्दोषप्रहाणाय पर्याप्तिकल्पः स्वीक्रियते। तथा च लक्षणं साध्यतावच्छेदकतात्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकरूपवृत्तिप्रतियोगिताकाभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः। रूपवृत्तित्त्वञ्च प्रतियोगितायां स्वनिरूपितावच्छेदकतात्त्वाच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्याप्त्यनुयोगिता–वच्छेदकत्त्वसम्बन्धेन।[6] पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यत्रसमन्वयप्रकारश्चेत्थम्–साध्यो वह्निः, साध्यतावच्छेदकं वहिनत्त्वं, साध्यतावच्छेदकता वह्नित्त्वे पर्याप्तिसम्बन्धेन तिष्ठति, साध्यतावच्छेदकतानिष्ठायाः सांसर्गिकप्रतियोगितायाः अवच्छेदकीभूतं यत् साध्यतावच्छेदकतात्त्वं तदवच्छिन्ना या साध्यतावच्छेकनिष्ठा सांसार्गिकप्रतियोगिता तादृशप्रयोगितायाः पर्याप्तिसम्बन्धेन अनुयोगिवहिनत्वं अनुयोगितावच्छेदकं वह्नित्त्वगतैकत्वं तत्र महानसीयवह्निनास्तीत्यकारकाभावीयप्रतियोगिता न तिष्ठति। तथा हि स्वं वह्निनिष्ठावह्न्यभावीया प्रतियोगिता, तन्निरूपितावच्छेदकता वह्नित्त्वे पर्याप्तिसम्बन्धेन तिष्ठति। तादृशवह्नित्वनिष्ठायाः सासंर्गिकप्रतियोगितावच्छेदकीभूतप्रतियोगितावच्छेदकतात्वावच्छिन्ना या प्रतियोगितावाच्छेदकतानिष्ठा सांसर्गिकप्रतियोगिता तादृशप्रतियोगितानिरूपक पर्याप्तयनुयोगीवह्नित्वम् अनुयोगितावच्छेदकं वह्नित्वगतैकत्त्वे इति तादृशरूपवृत्तिप्रतियोगिताकाभावः वह्न्यभाव एव न तु महानसीयवह्न्यभावः। तादृशमहानसीयवह्न्यभावीया प्रतियोगिता स्वनिरूपितावच्छेदकतात्वावच्छिन प्रतियोगिताक पर्याप्त्यनुयोगितावच्छेकत्वसम्बन्धेन महानसीयत्ववह्नित्वगतद्वित्वे वर्त्तते। अतः रूपवृत्तिप्रतियोगिता न जाता। वह्न्यभावमादाय लक्षणसमन्वयः।

महानसीयवह्निमान् तज्ज्ञानत्वात् इत्यत्र साध्यतावच्छेदकतात्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्याप्त्य–नुयागितावच्छेदकीभूतमहानसीयत्त्वव–ह्नित्वगतद्वित्त्वे महानसीयवह्न्यभावीया प्रतियोगितैव तिष्ठति न तु वह्न्यभावीया महानसीयाभावीया वा प्रतियोगिता, यतोहि महानसीयाभावीयाप्रतियोगितावच्छेद–कतात्त्वावच्छिन्नप्रतियोगितापर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकं रूपं महानसीयत्त्वगतैकत्त्वम्। एवमेव वह्न्यभावीया–प्रतियोगिताऽपि वह्नित्वगतैकत्त्वेऽतः रूपवृत्तिप्रतियोगिता न जाता। अतः प्रत्येकभावो न लक्षणघटकः। यत्तु वह्निमहानसीयाभावमादायदोषः तदपि न समीचीनम्। द्वित्त्वस्य बुद्धिविशेषविषयत्त्वरूपत्वेन बुद्धिभेदेन भिन्नत्त्वात् ज्ञानभेदस्य च विषयताभेदकत्त्वात्। महानसीयवह्निमान् वह्निमहानसीयवान् इति ज्ञानयोः अस्ति किञ्चित् वैलक्षण्यम्। तथा हि महानसीयवह्निमान् इति ज्ञाने वह्नित्त्वं धर्मितावच्छेदकीकृत्य महानसीयत्त्वं भाषते, एवं धर्मिपारतन्त्रेण वह्नित्त्वेऽपि समानाधिकरणत्त्वसम्बधेन महानसीयत्त्वं भाषते। वह्निमहानसीयवान् इति ज्ञाने महानसीयत्त्वं धर्मितावच्छेदकीकृत्य वह्नित्त्वं भाषते एवञ्च महानसीयत्त्वे धर्मिपारतन्त्रेण सामाना–धिकरण्यसम्बन्धेन वह्नित्त्वं भाषते। तथा च वह्नित्त्वमहानसीयत्त्वगतद्वित्त्वापेक्षया महानसीयत्त्ववह्नि–त्वगतद्वित्त्वस्य भिन्नत्त्वात् रूपवृत्तिप्रतियोगिता नहि वह्निमहानसीयाभावीयाप्रतियोगिता अपि तु महानसीयवह्निन्यभावीयाप्रतियोगितैव तादृशप्रतियोगिताकाभावः महानसीयवह्न्यभावः तदधिकरणं नहि महानसीयवह्निविषयकज्ञानम् अपि तु घटपटादिकं तन्निरूपितवृत्तिता घटत्वादौ वृत्तित्वाभावस्य तज्ज्ञानत्त्वरूपहेतौ सत्वात् नाव्याप्तिः।

lUnHk %

1. न्या0 वा0
2. न्यायसूत्र
3. तत्त्वचिन्तामणिः
4. पारिभाषिकपदार्थसंग्रहः
5. पंचलक्षणीगंगा
6. व्याप्तिपंचकगंगाटीका

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 13-16

g] vekfu'kk mxyrk xxu ?ku v/kdkj

l/;k flag*

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' निराला अपने पत्र 'मतवाला' के प्रकाशन से बनते हैं, पत्र प्रकाशन कोई बड़ी बात तो थी नहीं तो निराला में ऐसा क्या था? तो वह है उनके विचार कि मतलवाला ऐसा पत्र होगा जिसमें जीवन और मृत्यु, अमृत और विष राग और विराग सभी विषयों पर रचनाएं प्रकाशित होगी वे लिखते हैं–

^vfe; xjy 'kf'k&lhdj jfodj jkx fojkx Hkjk l;kyk
ihrs g] tks lk/kd mudk I;kjk g] ;g erokykA*1

निराला का जीवन उनकी कविताओं की भाँति सदैव संघर्षरत रहा उनके जीवन से अभाव कभी गया ही नहीं लेकिन निराला कभी टूटते नहीं है जबकि 'राम की शक्ति पूजा' में राम की भाँति निराला भी लड़ते हुए संशय ग्रस्त हो जाते हैं, लेकिन ढूँढ़ते नहीं उनके राम पौराणिक राम न होकर सामान्य मानवीय गुणों से युक्त राम हैं, जो परिस्थितियों के विपरीत होने पर दुःखी भी होते हैं और रोते भी हैं क्योंकि रोना मानवीय होना है कमजोर होना नहीं, निराला लिखते हें–

^Òkfor u;uksa ls lty fxjs nks eqäk nYkA*2

राम के आँखों में आये आँसू से पहले निराला पूर्व परिस्थिति का पूर्ण विवेचन करते हैं, आप राम के आँसू को तब तक नहीं समझ सकते जब तक आप परिस्थिति को नहीं समझ लेते हैं। राम की शक्ति पूजा में राम और रावण का युद्ध समाप्त हुआ क्योंकि दिनांत हो गया, सभी अपने–अपने शिविरों में लौट गये। आज के युद्ध में रावण समूह ने विभिन्न विषम ब्यूहों की रचना की जिनको तोड़ना कठिन था। जिससे राम की वानरी सेना खिन्न और राम की ओर देख रही थी। सभी चिन्ताग्रस्त और विकल थे आज के युद्ध से, जिससे सभी समाधान हेतु एकत्र हुए, सभी राम की आज्ञा पाने को तत्पर थे लेकिन–

है अमानिशा, उगलता गगन घन अन्धकार।

[kks jgk fn'kk dk Kku LrC/k g] iou pkjAA3

राम को कुछ सूझ ही नहीं रहा क्योंकि अंधकार रूपी अत्याचारी शासन में दिशा का ज्ञान भी नहीं हो पा रहा क्योंकि पवन तक में स्तब्धता आ गयी है ऐसी स्थिति में राम के मन में संशय उठना मानवीय है–

^vÁfrgr xjt jgk ihNs vEcqf/k fo'kkYk
Ò/kj T;ksa /;ku eXu % dsoYk tYkrh e'kkYkA
fLFkj jk?koUæ dks fgYkk jgk fQj&fQj l}'k;
jg jg mBrk tx thou esa jko.k t; Ò;AA4

राम अपने पूरे युद्ध का पूर्वालोकन करते हैं जिसमें अभी तक एक भी शत्रु पराजित नहीं हुआ, लेकिन पराजित मन फिर भी हार न मानकर लड़ने को बार–बार विकल हो रहा। निराला जानते हैं कि राम का मन हार कर भी हार नहीं मानने को क्यों तैयार नहीं क्योंकि उनके मन के भीतर स्निग्ध धारा प्रेम की बह रही है जो हिंसा के विरुद्ध, शोषण और दमन के विरुद्ध उनमें शक्ति भरती है–

^,sls {k.k vU/kdkj ?ku esa tSls fo|qrA
tkxh i`Foh ru;k dqekfjdk Nfo vP;qr
ns[krs gq, fu"iYkd ;kn vk;k miouA

---

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

fong dk ÁFke Lug dk YkrkUrjkYk feYku
u;u¨ dk u;u¨ l s x¨iu fÁ; lEÒk"k.kA
iYkd¨ dk uo iYkd¨ ij ÁFke¨RFkku iru
dkir g, fdlYk; >jr ijkx lenk;A
xkr [kx uo thou ifjp; r# eYk; oYk;
T;¨fr% Áikr LoxÊ; Kkr Nfo iFke Loh;A
tkudh u;u deuh; ÁFke dEiu rjh;A[5]

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि संकटकालीन समय में स्मृति का सौन्दर्य बोध शक्ति और ऊर्जा प्रदान करता है, राम अपनी विषम परिस्थिति के बीच पृथ्वी तनया कुमारिका के प्रथमोत्थान पतन, मिलन एवं उस आनंद को याद कर रहे हैं जिसमें कांपते किसलयों के साथ–साथ तरुओं और मलय वलय तक की भी स्मृति शेष है, यह कोई सौन्दर्यबोध होना विलासी होना न होकर हृदयवान और सहज होना प्रदर्शित करता है। इस क्षण भर की स्मृति ने राम के मनोभावों में परिवर्तन कर देते हैं–

^flgjk ru {k.k Òj ÒYkk eu Ykgjk leLr
gj /kuÒx d¨ iuofj T;¨ mBk gLr
QVh fLefr lhrk /;ku Ykhu jke d s v/kj
fQj fo'o fot; Òkouk ân; e s vk;h ÒjA[6]

राम को उस महाशक्ति का आभास हुआ जो शत्रु दल को आच्छादित किए हुए सुरक्षा प्रदान कर रही थी, उनके सारे प्रयास असफल हो जाते सारे बाण बुझा गए, उस विभीषणता के कारण राम भावुक हो जाते हैं और मुक्ता दल गिर जाते हैं। राम की भावुकता चारपाई तोड़ने वाली या शीशी का गुलाब जल सुखाने वाली न होकर क्रियाशील करने वाली है, जो राम को यथार्थ से परिचित करा कर संघर्ष शक्ति प्रदान करती है। राम के साथ–साथ हनुमान विभीषण, जाम्वन्त और लक्ष्मण का भी व्यक्तित्व और सहयोग राम के व्यक्तित्व के लिए आवश्यक था। विभीषण राम के मुख पर आये विचार और भावना को समझकर कहते हैं–

^vkt Ále onu]
og ugÈ n[k dj ft l s lex s ohj okuj
ÒYYkd foxr Je g¨ ikr s thou futj
j?kohj rhj lc ogh r.k e s g s jf{kr
g s ogh o{k j.k d'kYk gLr cYk ogh vfer
g s ogh lfe"kkunu e?kukn ft r j.k
g s ogh ÒYYkifr okujUæ lxho Áeu
rkjk dekj Òh ogh egkcYk 'osr /khj
ÁfrÒV ogh ,d vcn le egkohj
g s ogh n{k lsuk uk;d g s ogh lej
fQj dl s vle; gvk mn; ;g Òko&Ágj\[8]

विभीषण का संवाद भी मनोविज्ञान के अनुसार परिस्थिति जन्य उत्पन्न है, राम के सामर्थ्य सम्पन्न होने पर भी चिन्ताकुल होने का क्या कारण हो सकता है जो रण से विमुख कर रहा है। राम कुछ क्षण तो मौन रहते हैं फिर वास्तविकता बताते हैं–

^vU;k; ft/kj] g s m/kj 'kfä dgr s NYk NYk
g¨ x, u;u] dN cn iu% <Ykd s nx tYkA[9]

राम अपने मनोभाव प्रकट कर सहज हो जाते हैं, जब मनुष्य दुःख में दुःखी और सुख में हंस नहीं सकता वह मनुष्य नहीं हैं राम दुःखी थे, दुःख का कारण था जिसे वे प्रकट कर देते हैं। कृत्रिमता आडम्बर की जननी है जो वास्तविकता को ही नहीं छिपाती बल्कि वह सत्य से दूरी बनाती है और डर लगातार साम्राज्य वृद्धि करता है। जाम्वन्त परिस्थिति को समझने वाले समझदार मंत्री एवं विचारवान सहयोगी तरह सलाह देते हैं वे राम से कहते हैं–

^j?koj fopfyr gkus dk ugha n[krk es dkj.k
g i#"k fl g re Òh ;g 'kfä dj¨ /kkj.k
vkjk/kku d¨ n<+ vkjk/ku ls n¨ mÙkj
re oj¨ fot; l;r Ák.k¨ ls Ák.k¨ ij
jko.k v'kq) g¨dj Òh ;fn dj ldk =Lr
r¨ fu'p; re g¨ fl) dj¨x mls /oLr
'kfä dh dj¨ e©fYkd dYiuk dj¨ itu
N¨M+ n¨ lej tc rd u fl f) g¨ j?kquanuA[10]

शक्ति की करो मौलिक कल्पना अर्थात् शक्ति कहीं बाहर नहीं वह आपके मन के भीतर आप में है। उस दृढ़ एवं जानने की देरी है शक्ति की कल्पना, अन्याय के विरुद्ध, शोषण के विरुद्ध पीड़ितों की रक्षा प्रेम और सौन्दर्य के लिए, राम तपस्या लीन हो जाते हैं, लेकिन जैसा लक्ष्य वैसा ही कठिन साधना भी करनी होती है राम समस्त कठिनाइयों बाधाओं को पार करते यहाँ पहुँचते जहाँ शक्ति प्रकट होती है और कहती हैं–

*g¨xh t; g¨xh t;] gs iq#"k¨Ùke uohu
dg egk'kfä jke ds cnu es gbZ YkhuA*[11]

शक्ति की जागृति अर्थात् राम का आत्मविश्वास लौट आया जो बार–बार हार कर भी लड़ने को तत्पर रहा, निराला का मन और राम का मन एकाकार हो जाता है लकिन राम की शक्ति लौट आती है वे विश्वास से भर जाते हैं लेकिन निराला लड़ते ही रहे, लड़ते ही रहे, निराला का मन 'सरोजस्मृति' में भी खुलता है जब वे कहते हैं–

^nq[k gh thou dh dFkk jgh@D;k dgw vkt t¨ ugha dghA[12]
r¨ ogha ^jke dh 'kfä iwtk* es jke dgrs gS&
^f/kd~ thou d¨ t¨ ikrk gh vk;k foj¨/k@
f/kd~ lk/ku] ftl ds fYk, lnk gh fd;k 'k¨/kAA[13]

राम और निराला का आत्मसंघर्ष अन्याय के प्रति न्याय का, घृणा के प्रति प्रेम का अन्धविश्वास के प्रति तर्क का संघर्ष था। निराला संघर्ष से अधिक प्रेम और सौन्दर्य दृष्टि होने के कारण जाने गये। 'वह तोड़ती पत्थर' शोषण के विरुद्ध तरु मालिका अट्टालिकाओं पर प्रहार करती कविता है जो पूँजीपति द्वारा शोषित जनता का स्वरूप स्पष्ट करती है लेकिन वह मात्र प्रगतिवादी या मार्क्सवादी कविता नहीं है वह केवल शोषण के विरुद्ध आज की कविता नहीं है उसमें है सौन्दर्य बोध है मानवीय करुणा, है उसमें है संघर्षरत आहत मन निराला लिखते हैं–

^';ke ru Òj c¡/kk ;©ou@ur u;u fÁ; deZ jr eu
xq# gFk©Mk gkFk@djrh ckj&ckj Ágkj
lkeus r# ekfYkdk vÍkfYkdk ÁdkjA[14]

इतना ही नहीं कविता अब आकार लेती हुई कविता बनती है जब लिखते हैं–

ns[krs ns[kk eq>s r¨ ,d ckj@ml Òou dh v¨j ns[kk fNérkj
ns[kdj d¨bZ ugha@ns[kk eq>s ml nf"V ls
t¨ ekj [kk j¨;h ugha@ltk lgt flrkj
lquh eSus og ugha t¨ Fkh lquh >dkj
,d {k.k ds ckn og dkih lq?kj
<Yd ekF¨ ls fxjs lhdj
Ykhu g¨rs deZ es fQj T;¨a dgk
es r¨M+rh iRFkjA[13]

निराला की कविता में आयी भावना और संघर्ष मानवीय संवेदना की अनुभूति की देन है उनकी सहृदयता की देन है वह किसी वाद या सिद्धान्त से नहीं आयी श्याम तन का सौन्दर्य कर्म सौन्दर्य है और

जो दृष्टि के बोल निराला ने सुने वह बजती असाध्य बीड़ा से न होकर सांसारिक संघर्ष की खटपट है जिसमें मनुष्य होना सबसे कठिन है। निराला का जीवन और कविता अलग न होकर एक–दूसरे से घुल–मिल से गये हैं। उनका काव्य ही उनका जीवन बिम्ब है और उनका जीवन काव्य बिम्ब[16] उनमें कहीं विरोधाभास या कथनी करनी में आसामंजस्य नहीं दिखाई पड़ता। उनको सांसारिक टूटन, नैराश्य और बाहरी हमलावार धक्के भीतर के गहरे मानवीय करुणा, प्रेम के समृद्ध स्त्रोत को कभी सुखा नहीं पाये, बल्कि उनकी जिजीविषा और क्षमता को और सुदृढ़ करते रहे। जिससे उनके काव्य में विविधता आती है जिससे वे 'बहुवस्तु स्पर्शिनी प्रतिभा'[17] के धनी थे जिसमें सहज ही संसार समाता गया और जीवन का स्नेह निर्झर बहता रहा, रेत ज्यों तन ही रह गया।

lUnÒ %

1. रागविराग, स्व0 रामविलास शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2014, पृ0 17
2. वही, पृ0 95
3. वही, पृ0 93
4. वही, पृ0 94
5. वही, पृ0 94
6. वही, पृ0 94
7. वही, पृ0 92
8. वही, पृ0 97–98
9. वही, पृ0 98
10. वही, पृ0 100
11. वही, पृ0 104
12. वही, पृ0 91
13. वही, पृ0 103
14. वही, पृ0 119
15. वही, पृ0 119
16. निराला आत्महन्ता आस्था, दूधनाथ सिंह, लोकभारती, संस्करण 2014, पृ0 31
17. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012, पृ0 488

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 17-19

dk’ky ,oa m|ferk fodkl esa fLdy bafM;k fe’ku dh Hkwfedk dk v/;;u % lkuHkæ ftyk ds lUnHkZ esa

uhgk dqekjh*] izks0 bfUnjk fo’uksbZ**] MkW0 vuq’kk ’kqDyk***

izLrkouk % भारतदेश विश्व की बड़ी अर्थव्यवस्था बनने की तैयारी में है। वित्तमंत्री ने केन्द्रीय बजट 2016–17 को पेश करते समय देश के कायाकल्प की बात की तथा सुझाया कि युवाओं में उद्यमिता विकास के द्वारा इस लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है।

अतः कौशल परिदृश्य को आकार देने के लिए सरकार ने जो पहला कदम उठाया–अलग से कौशल विकास एवं उद्यम मंत्रालय का गठन । रोजगार युक्त कौशल तथा उद्यमिता के विकास हेतु सरकार ने स्किल इंडिया मिशन 2015 का लक्ष्य 2022 तक देश मे 40 करोड़ युवाओं को कौशल प्रदान करना तय किया। देश मे 40 प्रतिशत लोगों को रोजगार देने वाले मझोले और छोटे उद्योग (SME-small & medium enterprise) सेक्टर को मदद देने के लिए पिछले साल सरकार ने प्रधानमंत्री मुद्रा योजना शुरु की। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का लक्ष्य युवाओं को मान्यता प्राप्त प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए वित्तीय प्रोत्साहन देना है। यह योजना मुख्यतः निम्नलिखित बिन्दुओं पर केन्द्रित है–

1. प्रमाणनप्रक्रिया में मानवीकरण को प्रोत्साहन तथा कौशल पंजीकरण व्यवस्था का सृजन ।
2. मौजूदा कार्यबल की उत्पादकता की बढ़ाना और देश की जरूरतों के अनुरूप प्रशिक्षण तथा प्रमाणन का समन्वयन करना।
3. युवाओं को कौशल प्रशिक्षण प्राप्त कर रोजगार योग्य बनाने और अपनी जीविका सुनिश्चित करने में सक्षम तथा प्रोत्साहित करना।
4. अधिकृत संस्थानों में कौशल प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे उम्मीदवारों को औसतन आठ हजार रु0 की प्रोत्साहन राशि देना।
5. युवाओं को कौशल प्रशिक्षण के लिए प्रोत्साहित कर उनकी रोजगार क्षमता तथा उत्पादकता बढ़ाने हेतु कौशल प्रमाणन को मौद्रिक पुरस्कार।

नवीनतम एशिया प्रशांत मानव विकास रिर्पोट में कहा गया है कि –भारतीय अर्थव्यवस्था केवल 140 मिलियन लोगों को रोजगार दे सकती है। विश्व बैंक के आकड़ों के अनुसार छोटे और मध्यम उद्यमों की श्रम तीव्रता बड़ी कम्पनियों की तुलना में चार गुना अधिक हैं। भारत की बुनियादी बातों की ओर रूख करने और खेती, असंगठित खुदरा, सूक्ष्म और लघु उद्यमों (जो देश में मौजूदा आजीविका में 99प्रतिशत का योगदान देते हैं) जैसे क्षेत्रों का संरक्षण करने की जरूरत है। 21वीं सदी में भारत को स्मार्ट शहरों की बजाय स्मार्ट गाँवों की अधिक आवश्यकता है।पिछले साल श्रम मंत्रालय की इकाई श्रम ब्यूरो द्वारा जारी ताजा सर्वेक्षण रिर्पोट में भी कहा गया है कि भारत में बेरोजगारी की दर 2013–14 में बढ़कर 4.9 प्रतिशत पहुॅच गयी है गौरतलब है कि 2012–13 में यह दर 4.7 प्रतिशत थी।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 68वें दौरे पर आधारित रिपोर्ट के मुताबित ईसाई समुदायों के लोगो में ग्रामीण इलाकों में बेरोजगारी 4.5 प्रतिशत और शहरी इलाकों में 5.9 प्रतिशत है, इसी तरह ग्रामीण इलाकों में सिक्खों में बेरोजगारी 1.3 प्रतिशत और हिन्दुओं में शहरों में 3.3 प्रतिशत है ग्रामीण इलाकों में

*शोध छात्रा, बसंत कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी
**प्रोफेसर,प्रसार शिक्षा विभाग महिला महाविद्यालय, वाराणसी
***असिस्टेन्ट प्रोफेसर, वसंत कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी

मुस्लिम पुरूष 49.9 प्रतिशत बेरोजगार है जबकि ग्रामीण इलाकों में मुस्लिम महिलायें 15.3 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में 10.5 प्रतिशत के पास ही रोजगार है। यह स्थिति तब है जब देश में बेरोजगारी में निपटने के लिए ढेरों कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इन कार्यक्रमों मे राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, समन्वित विकास कार्यक्रम,जवाहर रोजगार योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना प्रमुख है। लेकिन जिस तेजी से बेरोजगारी दर में वृध्दि हो रही है उससे साफ है कि बेरोजगारी से लड़ने के ठोस कार्यक्रम नहीं है। इस शाोध प्रपत्र में सरकारी प्रशिक्षण केन्द्रों से किसी भी प्रकार का कौशल प्राप्त कर रहे और प्राप्त कर चुके व्यक्तियों से उनका अनुभव जानने का प्रयास किया गया कि यह कार्यक्रम उनके कौशल विकास, रोजगार उन्नयन तथा उद्यमिता के विकास में कहा तक सहायक है,कार्यक्रम के लाभ व खामियों तथा इसे बेहतर बनाने के दिशा में सुझावों को भी जानने का प्रयास किया गया।

lkfj.kke ,o 0;k[;k& आकड़ा संकलन के पश्चात् यह जानकारी प्राप्त हुई कि प्रशिक्षार्थियों में अन्य पिछड़ा वर्ग की जनसंख्या सर्वाधिक 58प्रतिशत थी। 72प्रतिशत लोग ऐसे थे जो ग्रामीण पृष्ठभूमि के थे, प्रशिक्षार्थियों में पुरूषों–महिलाओं का अनुपात उचित था। 40प्रतिशत लोग खेती करने वाले थे, जो कि कौशल प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे, यह उनके के लिए एक अच्छी बात थी क्योंकि उनके खेती के बाद के खाली समय में वे अपने कौशल के द्वारा अर्थोपार्जन कर सकते/सकती हैं।

प्रशिक्षण कार्यक्रम के जागरूकता के सम्बन्ध में–

Ø0 l0	mÙkjk dk fooj.k	mÙkjnkrkvk dh l0	ifr'kr
1	हाँ	55	22%
2	नहीं	5	15%
3	थोड़ी–बहुत जानकारी है	22	22%
4	कभी इस तरफ ध्यान नहीं दिया	08	08%
	;kx	100	100%

किसी भी कार्यक्रम के सफलता के आंकने के लिए महत्वर्पूण बिन्दु यह है कि उस विशेष कार्यक्रम के सम्बन्ध में लोगों के जागरूकता का स्तर क्या है, अध्ययन से प्राप्त कि गई जानकारी के अनुसार 55% लोग पूर्णतः जागरूक थे परन्तु 8प्रतिशत लोग ऐसे भी थे जो कौशल विकास मिशन के सम्बन्ध में कोई जानकारी तो नहीं रखते थे परन्तु वे प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे या प्राप्त कर चुके थे।

जब उत्तरदाताओं से स्किल इंडिया मिशन में प्रदान की गई सुविधाओं के जागरूकता के सम्बन्ध में जानकारी ली गई तब 43% लोगों को ही लोन सुविधा की जानकारी थी, 27% लोगों को स्किल इंडिया में दी जा रही प्रशिक्षण सुविधा की जानकारी थी, केवल 12% लोग ऐसे थे जिन्हें ब्याज दर में छूट की जानकारी थी तथा 18% उत्तरदाता ऐसे भी थे जो कौशल विकास का प्रशिक्षण तो प्राप्त कर रहे थे परंतु उन लोगों को लोन, प्रशिक्षण व ब्याज दर के बारे में कोई जागरूकता नहीं थी।

कार्यक्रम के सम्बन्ध में उनके जागरूकता का सबसे बड़ा स्त्रोत न्यूज पेपर था जिसने लोगों को इस योजना तथा इसके द्वारा प्राप्त होने वाली सुविधाओं के बारे में जागरूकता प्रदान की थी।

स्किल इंडिया मिशन का उददेश्य लोगो को कौशल प्रदान करने के बाद उन्हे स्वयं का उद्यम स्थापित करने में मदद् भी देना है। उत्तरदाताओं से कौशल प्रशिक्षणोपरान्त जब स्वयं का उद्यम स्थापित करने के सम्बन्ध में पूछा गया तो उन्होने फण्ड की कमी, जोखिम वहन का अभाव,तकनीकी व श्रम की कमी, नवाचार की संस्कृति का अभाव,प्रेरणा की कमी,परिवार द्वारा सहयोग न मिलना ये सभी समस्याओं को बताया।

fu"d"k& भारत सरकार द्वारा युवाओं में कौशल एवं उद्यमिता विकास हेतु 'स्किल इंडिया मिशन ' कार्यक्रम बहुत ही उपयोगी व महत्वाकांक्षी योजना है उत्तरदाताओं की इस कार्यक्रम के सम्बन्ध में अभिवृत्ति सकारात्मक थी। कौशल विकास मिशन के भविष्यम्भावी लाभ के सन्दर्भ में उन्होंने कहा कि इस कार्यक्रम के द्वारा नवाचार पर आधारित उद्यमिता कि संस्कृति को बढ़ावा मिलेगा, अर्थव्यवस्था सशक्त होगी तथा इस महत्वाकांक्षी योजना द्वारा रोजगार कि समस्या, गरीबी उन्मूलन इत्यादि समस्या से निजात मिलेगी।

इस शोध अध्ययन द्वारा निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'स्किल इंडिया मिशन' अपने उददेश्यों को सफल करती एक प्रगतिशील योजना है। जिसमें व्याप्त कुछ कमियों को दूर किये जाने की आवश्यकता है जिससे कि यह कार्यक्रम निरन्तर प्रगति पथ पर अग्रसर हो तथा 'कुशल भारत,कौशल भारत' का सपना साकार हो।

lUnHk %

1. महूरकर उदय, 'कुशल भारत की अकुशलता', इंडिया टुडे, दिसम्बर (2016) पृ0सं0– 44,45
2. डॉ0 राजगढ़िया, "बेरोजगारी से लड़ने के लिए कौशल विकास पर जोर' ,कुरूक्षेत्र , अंक 06,अप्रैल (2016)
3. 'कौशल विकास : नई ऊंचाइयाँ' , योजना , मासिक पत्रिका, अक्टूबर (2015) पृं0सं0–8–10
4. 'रोजगार युक्त विकास की आवश्यकता' ,प्रतियोगिता दर्पण ,पंकज सिंह,सितम्बर (2016), पृ0सं0–92–95
5. 'कौशल एवं उद्यमिता विकास योजनायें ', समाज वैज्ञानिकी ,हिन्दी मासिक पत्रिका 20 वां अंक (2015), पृ0सं0 118–120
6. प्रतियोगिता दर्पण ,हिन्दी मासिक पत्रिका ,तृतीय अंक अगस्त(2005)"उजाले की तलाश में भटकता युवा वर्ग' पृ0 सं0–119
7. डॉ0 कोठारी मिलिन्द,'उद्यमिता विकास',कैलाश पुस्तक सदन,भोपाल,(2011),पृ0 सं0– 322
8. शुक्ल प्रो0 त्रिभुवननाथ प्रधान संपादक,'उद्यमिता विकास मध्यप्रदेश ग्रन्थ अकादमी भोपाल,मार्च,(2009),पृ0 सं0– 214
9. डॉ0 नायर, शशि किरण,सहायक प्राध्यापक अर्थशास्त्र 'विधार्थियों की बेरोजगारी एवं रोजगार प्राप्ति में समस्याएं–एक विश्लेषण',मार्च(2014),पृ0 सं0–84
10. डॉ0 प्रो जैन,राजेश भारत में उद्यमशील क्षेत्रों में महिलाओं की भूमिकाः एक चुनौती, सितम्बर (2011),पृ0 सं0– 30
11. "http;//www.skilldevelopment .gov.in>national

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 20-22

fuely oek % dFkkHkk"kk vkj ;FkkFkoknh nf"V

M,0 uhYke dekjh*

कथा साााहित्य का आधारभूत कार्य यथार्थ की प्रस्तुति करना है। यह यथार्थ को जानने और सम्प्रेषित करने का एक माध्यम है। अगर कोई व्यक्ति लेखन कर्म से जुड़ा है तो उसकी रचनाओं में यथार्थ का चित्रण ही उस लेखक की महत्वपूर्ण उपलब्धि होती है और यह यथार्थ चित्रण अधिक प्रभावी तभी होता है जब उसको प्रस्तुत करने का माध्यम, भाषा सशक्त हो। निर्मल वर्मा यथार्थ को बड़े हल्के–फुल्के ढंग से चित्रित करते हैं और बड़ी से बड़ी बात भी अत्यन्त सरल और भावात्मक भाषा में अभिव्यक्त कर देते हैं।

निर्मल वर्मा भाषा के मामले में बहुत ही सजग लेखक हैं। अत्यन्त मार्मिक क्षणों का चित्रण करते वक्त भी वे बिम्बों, उपमाओं, प्रतीकों का चित्रण बहुत सोच समझकर और सही रूप में करते हैं। मार्मिक संवेदन के चित्रण के समय वे भाषा के माध्यम से स्थिति को निरावरण कर यथार्थ को बेलौस रूप में प्रत्यक्ष कर देते हैं। प्रेम, वेदना, अकेलापन, मृत्युबोध, काम आदि के चित्रण भी वे एक नितान्त तटस्थ, लेकिन फिर भी एक सजग कलाकार और संवेदनशील व्यक्ति के रूप में व्यक्त करते हैं। इस दृष्टि से 'वे दिन' इसका सुन्दर उदाहरण है। इस उपन्यास की भाषा प्रेम और नियति के यथार्थ की भाषा का सुन्दर दृष्टान्त है। प्रेम जैसे संवेदन के साथ लगातार नियति का तीखा अहसास वे बनाये रखते हैं। प्रेम करते वक्त भी उनके पात्र यह नहीं भूलते कि किस वक्त उन्हें अलग हो जाना है। यथार्थ की नियति को स्वीकार करके वे चलते हैं। उनमें संवेदनीयता के साथ–साथ सख्त कठोरता भी है।

इन्दी, रायना से और रूक जाने को कहता है, खुद साथ चलने को कहता है, लेकिन रायना का एक ही प्रत्युत्तर रहता है– 'इट वुडण्ट हेल्प' वे दोनों जानते हैं कि अपने–अपने अकेलेपन को दूर करने की इस कोशिश के बाद उन्हें फिर अपने–अपने अँधेरे में ठिठुरना है और यह जानते हुए भी कि वे दोनों एक दूसरे के लिए अँधेरा है– जैसे वह मेरे लिए थी, मैं उसके लिए। 'तीन दिन, तीन वर्ष का समय कुछ भी मायने नहीं रखता– मगर हम सुलगते क्षण में अँधेरे के बीच उस ताप को पकड़ सकें, यह जानते हुए भी कि वह जीवित नहीं रहेगा और यह जानते हुए भी कि उसके बहने के बाद फिर दुबारा अपने–अपने अँधेरे में ठिठुरने लगेंगे।[1] इसी उपन्यास की एक पात्र है मारिया– जो पाठकों की बहुत सहानुभूति पाती है। उसका प्रेमी फ्रांज हमेशा के लिए बर्लिन जा रहा है। मारिया को वीजा नहीं मिला और फ्रांज सिर्फ वीजा पाने के लिए मारिया से शादी नहीं कर सकता। 'यह शायद वह सीमा थी, जिसके आगे कोई किसी की मदद नहीं कर सकता था। लगता था कोई बाहर का फन्दा है, जिसकी सब गांठें, सब सिरे दूसरे के हाथों में हैं जिन्हें हम देख नहीं सकते। पर नियति का स्वीकार है।[2]

'वे दिन' पूरी तरह से प्रेम और अकेलेपन के यथार्थ को, उसके उपयुक्त भाषा में प्रस्तुत करने वाला उपन्यास है। डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव ने लिखा है– 'निर्मल वर्मा के उपन्यास 'वे दिन' की भाषा उन ठोस व्यंजनाओं और अर्थों से संबंध रखती है, जिनके सहारे मनुष्य अपनी नियति का, अपने अनिवार्य अकेलेपन का, प्रेम की व्यथा और प्रेमहीनता के साथ तीखे अहसास का सामना करता है। उनकी संवेदनीयता गहरी है– साथ ही इतनी पैनी कि गद्य का टेक्सचर ही अपने कलात्मक रचाव के बावजूद सख्त कठोरता का आभास देता है।[3]

*सहायक प्रोफेसर (हिन्दी), काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही

निर्मल वर्मा की कहानियों में भी हमें प्रेम के यथार्थ के कई पहलू देखने को मिलते हैं। 'परिन्दे', 'अँधेरे में', 'पिछली गर्मियों में', 'तीसरा गवाह', 'लवर्स', 'अन्तर', 'वीक एण्ड', 'छुट्टियों के बाद' आदि में लेखक विभिन्न तरीकों से प्रेम के यथार्थ को निरूपित करते हैं। 'तीसरा गवाह' में रोहतगी कहता है– 'प्रेम, अगर ऐसी कोई चीज है तो बहुत महत्वहीन और आकस्मिक परिस्थितियों में आरम्भ होता है और उसका अन्त भी शायद बहुत ही छोटे और अर्थहीन कारणों से हो जाता है।[4] यहाँ निर्मल वर्मा ने ऐसे प्रेम संबंध के विच्छेद को दिखाया है जो नायक और नायिका के बीच आकस्मिक परिस्थिति में उत्पन्न होते हुए विवाह तक पहुँच जाता है, अन्त में कोर्ट–मैरिज के समय जब तीसरा गवाह समय पर नहीं पहुँच पाता है तो उनकी शादी टूट जाती है।

'अँधेरे में' नामक कहानी में बच्ची अपनी माँ को देखता है– 'उसकी साड़ी का आँचल हवा से उड़कर कंधे पर आ गिर था, अपने में बिलकुल खोई सी वह अपलक नीचे देख रही थी जहाँ उतराई के नीचे थी– वीरेन चाचा की कॉटेज, जो शाम के धुंधलके में बिलकुल सूनी और निर्जन दिखाई दे रही थी।[5] यहाँ लेखक ने प्रेम के एक दूसरे पक्ष का चित्रण किया है। इस कहानी में नायिका प्रेम किसी और से करती थी और शादी किसी और से हो जाती है, उसका अपना बच्चा है परिवार है फिर भी वह अपने प्रथम प्रेम को नहीं भूला पाती है।

कई घाव ऐसे होते हैं कि व्यक्ति चाहता है कि वे भरे नहीं और स्वयं उन्हें हरा रखने के लिए कुरेदता रहता है– 'परिन्दे' की लतिका अपने प्रेमी गिरीश की मौत को एक लम्बे अरसे बाद महसूस करती है– 'अब वैसा दर्द नहीं होता सिर्फ उसको याद करती है, जो पहले कभी होता था, तब उसे अपने पर ग्लानि होती है। वह फिर जान बूझकर उस घाव को कुरेदती है जो भरता जा रहा है, खुद बखुद उसकी कोशिशों के बावजूद भरता जा रहा है।[6] 'अन्तर' और 'छुट्टियों के बाद' में प्रेम के एक अलग पहलू को चित्रित किया गया है। इस तरह प्रेम को उन्होंने यथार्थ के साथ सुन्दर भाषा में निरूपित किया है जहाँ न यथार्थ पर भाषा हावी होकर उसे रोमेंटिसिज्म के नजदीक ले जाती है, और न यथार्थ भाषा पर हावी होकर उसकी गतिशीलता को कम करता है। दोनों का संबंध एक दूसरे पर आधारित रहकर भी एक निश्चित दूरी बनाये रखता चलता है जो उसकी सर्जनात्मकता को टिकाए रखती है।

निर्मल वर्मा ने व्यक्ति के अन्तर्मन की अनुभूतियों को उसके वैयक्तिक यथार्थ को ही अधिक महत्व दिया। यह व्यक्ति पिछले सभी व्यक्तियों से अलग है। जो समाज का अंग होते हुए भी, जैसे समाज से अलग है। वह सिर्फ स्वतन्त्र व्यक्ति है, जिसकी अपनी विशेष उलझने हैं, मूड्स है, अपना यथार्थ है और समस्यायें हैं। ऐसे व्यक्ति के संबंधों के यथार्थ को भी उन्होंने बहुत ही तीखे और बेलौस ढंग से निरूपित किया है। जैसे– 'मुझे लगा वे नींद में बोल रहे हैं, एक दूसरे के पास पहुँच रहे हैं, अँधेरे गड्ढों को लांघते हुए, जो बीच में खुल जाते हैं, अगर दो दिन भी तुम एक दूसरे के साथ न रहो। ऐसा हमेशा नहीं होता, सिर्फ कुछ रिश्तों में होता है, कुछ रिश्ते रेगिस्तान से होते हैं, जिन्हें हर रोज लांघना होता है।[7] पारिवारिक संबंधों के यथार्थ का उन्होंने बहुत सही चित्रण किया है। इन चित्रणों में हमें वे समाज से परिवार से जुड़े हुए और उन रिश्तों के खोखलेपन को बहुत नजदीक से जानने वाले व्यक्ति लगते हैं। उनकी भाषा भी ऐसे चित्रण के समय निहायत घरेलू और बोलचाल की भाषा हो जाती है। 'बीच बहस में' का बीमार वृद्ध जब अस्पताल में अपने बेटे पर चिल्लाता है, तो बिल्कुल अपनी असलियत पर आ जाता है। वह अंग्रेजों के समय में बाबू था, उस समय की जो भाषा थी– 'आई एम एशेम्ड आफ यू'। सुन लिया ना दुबारा कहूँ? आज की बात नहीं। आई हैव आलवेज बीन एषेम्ड आफ यू आल।[8] वृद्ध की बीमारी ने सभी रिश्तों को कूड़े की तरह बुहार दिया था, बेटों को पास लाने की बजाय और दूर कर दिया था और वे अपने पिता के जाने की ऐसी प्रतीक्षा कर रहे हैं, जैसे उनके बच्चे उनके आने की। यथार्थ के चित्रण को देखने के बाद कहा जा सकता है कि निर्मल वर्मा की भाषा सचमुच जी रहे आदमी की भाषा है, जिसमें अनुभव की उत्कट साझेदारी भी सम्भव है और बौद्धिक बहस भी।

विशिष्ट बात यह है कि निर्मल वर्मा की भाषा में संवेदनशीलता के साथ–साथ बौद्धिकता भी है। वह हमेशा एक सी सतह पर चलती है। उसमें लयबद्धता है। विषय के अनुसार कहीं–कहीं हल्के उतार–चढ़ाव भी है। उन्होंने अपने अनुभव शिल्प के योग्य भाषा की खोज की है। 'निर्मल वर्मा की भाषा उपलब्धि के दंश की नहीं, खोज और अनुभव की भाषा है।[9] भाषा के अलंकरण के लिए निर्मल वर्मा ने विशेषणों एवं उपमानों का प्रयोग किया है। उनके विशेषण काफी लम्बे एवं नये होते हैं, ये सभी विशेषण अधिकतर उनके बिम्बों में प्रयुक्त हुए हैं। कुछ ऐसे विशेषण और उपमाएं हैं जो उन्होंने किसी पात्र के सौन्दर्य या शरीर के वर्णन के समय दिये हैं– जैसे, शराबी के पैरों सा लड़खड़ाता साँस का प्रकम्पित स्वर मैली रूई के फाहों सी सफेद पुतलियाँ, चील की सी तेज आँखें, साफ उजला निस्पन्द चेहरा, आँखे स्थिर चमकती हुई लेकिन अजीब ठंडी, मैग्जीन के कवर सा चेहरा, कोमल पंखुड़ियों सी हथेलियाँ आदि। इनके अलावा प्रकृति के उपमान एवं विशेषण भी दृष्टव्य है– थकी–थकी सी चाँदनी, रूई के फाहों से उड़ते बादल, सड़कों का ठंडा परायापन, तितीरी धूप के मोतियों से झिलमिलाते सूखी रेती के कण, मोतियों सी चमकती वर्षा की बूँदे। खरगोश की तरह फुदकता धूप का यह बच्चा, कहीं थिगली सा पानी का एक हिस्सा आदि। ऐसे उपमान एवं विशेषणों से तो उनका कथा साहित्य भरा पड़ा है। कई जगह ऐसे उपमान काफी लम्बे और सुन्दर है– जैसे, 'वह एक उजला दिन था, सर्दियों में कभी–कभी अचानक ऐसे दिन आ जाते थे जब लगता, सर्दियाँ खत्म हो रही है। बीच का एक गर्म उज्ज्वल दिन पुरानी लिखी हुई कापी के बीच एक अनलिखा, कोरे पन्ने–सा सफेद और विस्मयकारी, वह अपने सा लगता।[10]

निष्कर्षतः निर्मल वर्मा की भाषा मिली–जुली भाषा है। उसमें हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, तत्सम एवं तद्भव शब्द मिलते हैं। लेकिन सच तो यह है कि उन्होंने अपने कथ्य के भावानुरूप भाषा की खोज कर उसे ही इस्तेमाल किया है।

I UnÒ %

1. निर्मल वर्मा, वे दिन, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, पृ. 181
2. वही, पृ. 62
3. डॉ. रेखा शर्मा, निर्मल वर्मा और सुरेश जोशी का कथासाहित्य, किताबघर नई दिल्ली, पृ. 178
4. निर्मल वर्मा, परिन्दे, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, पृ. 44
5. निर्मल वर्मा, मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल एण्ड सन्ज दिल्ली, पृ. 73
6. वही, पृ. 51
7. निर्मल वर्मा, एक चिथड़ा सुख, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, पृ. 103
8. निर्मल वर्मा, बीच बहस में, सम्भावना प्रकाशन हापुड़, पृ. 123
9. प्रभात कुमार त्रिपाठी, पूर्वग्रह, अंक जुलाई–अक्टूबर 1978, पृ. 47
10. निर्मल वर्मा, वे दिन, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, पृ. 55

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 23-25

Ikkfy lkfgR; ds iwjd lqÙk % nhiola ds lanHkZ esa

fuyhek ekjksrjko xtfHk;s*

पालि भाषा एवं साहित्य दोनों दृष्टि से महत्वपूर्ण है। आधुनिक भाषाओं में भी पालि भाषा का प्रभाव दिखाई पड़ता है। विश्व के बृहद साहित्य भंडार में पालि साहित्य का समावेश होता है। पालि साहित्य तिपिटक साहित्य, अट्ठकथा साहित्य, व्याकरण साहित्य, कोश साहित्य, टीका साहित्य, अनुटीका साहित्य इ. साहित्य भागों में व्याप्त है। इसीप्रकार वंस साहित्य भी पालि साहित्य का भाग है। इस वंस साहित्य का दीपवंस यह सर्वप्रथम ग्रंथ है।

दीपवंस की विषयवस्तु इस ग्रंथ के नाम से ही स्पष्ट होती है। इसलिये इस ग्रंथ के नाम का अर्थबोध होना अनिवार्य है। दीपवंस यह शब्द 'दीप' एवं 'वंस' इन दो शब्दों से मिलकर बना है। 'दीप' शब्द का अर्थ कोशकारों ने 'द्वीप' ऐसा स्पष्ट किया है और साथ ही 'वंस' शब्द का अर्थ – 'वंशपरंपरा'[2]. इतिहास इस तरह से स्पष्ट किया गया है। उपरोक्त स्पष्टीकरण से 'दीपवंस' यह ग्रंथ द्वीप के इतिहास को अर्थात यह ग्रंथ की स्थापना से लेकर चतुर्थ शताब्दी तक श्रीलंका का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। दीपवंसकार पालि साहित्य की निर्मिति, संरक्षण एवं विकास का भी क्रमिक ब्यौरा बयान करता है।

ikfy lqÙkksa dk egRo % भगवान बुद्ध ने 45 वर्षों तक जो धम्मोपदेश दिया है जिसे बुद्धवाणी भी कहा गया है। इसी बुद्धवाणी द्वारा पालि साहित्य का उगम हुआ है। भगवान बुद्ध यह एक कुशल मनोवैज्ञानिक भी थे। वे संबंधित व्यक्ति के मनोस्तर को भाँप कर उसके अनुकुल धम्मोपदेश दिया करते थे जिससे धम्म उस व्यक्ति को सहज बुद्धिगम्य होता था। कभी–कभी वे संबंधित व्यक्ती को उदाहरण देकर धम्मोपदेश दिया करते थे जैसे कासीभारद्वाज सुत्त[3] में कासीभारद्वाज नामक किसान को भगवान ने खेती से संबंधित उदाहरण देकर धम्मोपदेस दिया जिससे वो शीघ्र ही धम्म को ग्रहण कर सका। किसा गोतमी थेरी[4] को भगवान ने जन्म है तो मृत्यु अटल है इस सत्य की उसे प्रत्यक्षतः अनुभुति कराने के पश्चात ही, दुःखसागर के पार हो जाने उपरांत ही उसे धम्म का ज्ञान दिया। गर इस शोकसागर मे डूबी माता को भगवान प्रथम ही धम्म का ज्ञान देते तो वह उस मानसिक अवस्था में धम्म के ज्ञान को प्राप्त ही न कर पाती इसलिए इस कुशल मनोवैज्ञानिक ने उसे प्रथम जीवन के अटल सत्य का अनुभव स्वयं लेने दिया। पालि साहित्य के अध्ययन से ऐसे कितने उपासक–उपासिका, भिक्खु–भिक्खुणिओं के उदाहरण हमें ज्ञात होते है। भगवान बुद्ध का धम्म शीघ्र ही भारत में लोकप्रिय हो गया। इसका गर हम विश्लेषण करें तो हमें ज्ञात होता है भगवान बुद्ध की उपदिष्ट शैली और सुत्त का प्रभाव जनसामान्य पर त्वरित होता है जितने वे बुद्धधम्म की ओर आकृष्ट होते थे। बौद्ध धम्म न केवल भारत अपितु विश्वभर में भी शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया इसके पीछे भी भगवान बुद्ध और उनके भिक्खुसंघ के उपदेश शैली का ही स्पष्ट होता है।

nhiola esa of.kZr ikfy lqÙk % दीपवंस में भी ऐसे पालि सुत्तों का समावेश किया गया है जिनके द्वारा संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों का बौद्ध धम्म के प्रति श्रद्धाभाव जागृत हुआ और वे बौद्धधम्म के प्रति आकृष्ट हो गये। प्रस्तुत संशोधन पेपर दीपवंस में उद्धृत पालि सुत्त और उसके उपरांत संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों बौद्धधम्म के प्रति उत्पन्न श्रद्धाभाव का वर्णन किया गया है।

lezkV v'kksd dk cq) /kEe ds izfr J)kHkko % बौद्ध धम्म के विकास में सम्राट अशोक का योगदान अतुलनीय है। सम्राट अशोक के प्रयासों द्वारा ही बौद्ध धम्म विश्वभर में फैल गया। सम्राट अशोक के

*संशोधक छात्रा, राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज, नागपुर, विद्यापीठ, नागपुर

बौद्धधम्म में श्रद्धा उत्पन्न करने में न्यूग्रोध भ्रमण का महत्वपूर्ण योगदान है। न्यूग्रोध भ्रमण ने सम्राट अशोक को vlieknl lÙk का उपदेश दिया।[5] जिसके फलस्वरूप राजा बुद्ध, धम्म, संघ की ओर आकृष्ट हो गया। इसका वर्णन दीपवंसकार ने किया है –

^vTtio rEg lj.k mife]
c) p /kEe p lj.k p l?kA
lißUknkjk lg´krdTtuk]
ikldÙk ifVon;kfe rAA

fofo/k n'kksa esa ckS) /kEe dk izlkj J)kRikn % तृतीय संगीती के समय विभिन्न देशो में बौद्ध धम्म का प्रचार–प्रसार करने का महत्वपूर्ण निर्णय लिया गया। भिक्खुगणों को विभिन्न देशो में धम्मप्रचारार्थ भेजा गया। स्थविर रक्षित ने वेहास में vuerkfXXk; lÙk का उपदेश दिया और लोगों का बौद्धधम्म के प्रति श्रद्धाभाव जागृत किया।[6] इसी प्रकार अपरान्त राष्ट्र में धम्मरक्षित थेर ने vfXuLd/kkie lÙk का उपदेश दिया।[7] महाधर्मरक्षित ने महारठ् मे ukjndk';Ik tkrd का उपदेश दिया।[8] यवनक प्रदेश में महारक्षित स्थविर ने dkydkjkelÙk का उपदेश दिया।[9] उपरोक्त उपदेशों द्वारा वहाँ के जनता के मन मे बौद्ध धम्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई।

विश्वभर में बौद्धधम्म के विकास में सम्राट अशोक और भिक्खुसंघ इनका योगदान महत्वपूर्ण है। साथ ही में भिक्खुसंघ द्वारा उपदिष्ट पालि सुत्तो का भी जनसामान्य पर काफी परिणाम हुआ और वे बौद्धधम्म की ओर आकृष्ट हो गये।

Jhydk esa ckS) /kEe dh LFkkiuk % राजा देवानंपिय तिस्स श्रीलंका के राजा थे। तृतीय संगीति के फलस्वरूप स्थविर महिन्द और उनके भिक्खुगण को श्रीलंका में बौद्ध धम्म के प्रचार–प्रसार का कार्य सौंपा गया। राजा देवानंपिय तिस्स को स्थाविर महिन्द्र ने pGgfRFkinkie lÙk का उपदेश दिया।[10] इस धम्मोपदेस को सुनकर राजा चालिस हजार सैनिकों समवेत धम्म की शरण में आ गये। तत्पश्चात स्थविर महिन्द ने रानी अनुलादेवी एवं राजपरिवार की महिलाओं को isroRFkq] foekuoRFkq ,oa lPplä;Ùk का उपदेश दिया।[11] इस उपदेश के फलस्वरूप रानी अनुलादेवी स्त्रोतापतिफल में प्रतिष्ठित हो गयी।

उसी प्रकार स्थविर महिन्द ने जनसाधारण को nsonÙklÙk[12]] ckyif.MrlÙk[13]] vfXu&Ld/kkielÙk[14]]vkf'kfo'kkielÙk[15]]vuerfXx;lÙk[16]]pfj;fiVd[17]]xkse;if.MrlÙk[18]] /kEepDdioÙkulÙk[19] का उपदेश दिया। इन उपदेशों का श्रीलंका की जनता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा और जो जनता बौद्धधम्म से अनभिज्ञ थी उस जनता ने बौद्ध धम्म की सरण ग्रहण की। भारत से श्रीलंका में आगमनीत बौद्धधम्म श्रीलंका की भूमि में प्रस्थापित हो गया और यही बौद्धधम्म जब भारत में विलुप्त अवस्था में था तो श्रीलंका द्वारा भारत में पुनःर्जीवीत हो गया।

Jhydk esa ikfy lÙkksa dk iHkko % श्रीलंका में बौद्धधम्म की स्थापना स्थविर महिन्द द्वारा हुई। उनके महत्प्रयास से शीघ्र श्रीलंका बौद्धमय हो गया। श्रीलंका में बौद्धधम्म अपने उत्कर्ष की अवस्था को प्राप्त होने लगा। स्थविरों के उपदेशों से प्रभावित होकर राजा लोकोपयोगी कार्य करने लगे। राजा तिस्स ने देवस्थविर से fxykulÙk का उपदेश सुनकर रोगियों के लिय राज्य में औषध व्यवस्था की तथा रोगियों के लिये पाच आवासगृह बनवाये।[20] उसी प्रकार राजा सिरिनाग ने देवस्थविर द्वारा ही ^vU/kdfoUn lÙk* का उपदेश सुनकर उसके प्रभाव से नगर चारों द्वारों पर नित्य यागुदान की व्यवस्था कर दी। निश्चित ही भगवान बुद्ध द्वारा उपदिष्ट पालि सुत्त यह काफी प्रभावशाली थे। ऐसे सुत्तों का उपदेश देना एवं उन सुत्तों को सुनकर धम्म के प्रति श्रद्धाभाव जागृत होना इस भगवान बुद्ध के धम्मवाणी का प्रभाव हमे दीपवंस के साक्ष्यद्वारा ज्ञात होता है।

fu"d"kZ % भगवान बुद्ध को उनके अंतिम अवस्था के समय उनका दायाद नियुक्त करने को कहा गया था परंतु भगवान बुद्ध ने स्पष्ट शब्दों मे इसका विरोध किया। उन्होंने कहा था की उनके द्वारा उपदिष्ट 'धम्म' एवं 'विनय' ही उनके दायाद है। दीपवंस यह ग्रंथ इस इतिहास को कथन करता है की भगवान द्वारा उपदिष्ट धम्म और विनय को जिसे विभिन्न संगीतीयों द्वारा संग्रहीत करके पालि तिपिटक साहित्य

की निर्मिति की गयी गयी थी। कालांतर में इसी पालि साहित्य के सुत्तों द्वारा संबंधित व्यक्ति और व्यक्तिसमूहों पर सकारात्मक प्रभाव हुआ और उनका बौद्ध धम्म के प्रति श्रद्धाभाव जागृत हुआ। दीपवंस ऐसी श्रृंखला मे बौद्ध धम्म के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देनेवाले सम्राट अशोक का वर्णन प्रस्तुत करता है और उसके उपरांत विश्वभर में स्थापीत बौद्धधम्म, श्रीलंका में बौद्धधम्म का आगमन श्रीलंका में बौद्धधम्म की स्थापना एवं विकास का क्रमिक आलेख भी प्रस्तुत करता है । साथ ही में इन सब कार्य में पालि साहित्य के प्रेरक सुत्तों के योगदान का भी जतन दीपवंसकार ने किया है। हम कह सकते हैं कि भगवान बुद्ध की वाणी पालि सुत्तों द्वारा निरंतर गतिमान है और लोगों के मन मे बौद्धधम्म के प्रति श्रद्धाभाव जागृत कर रही है जिसका इतिहास साक्ष्य दीपवंस ग्रंथ है।

lUnHk %

1. कौसल्यापन, डॉ. भदन्त आनन्द, पालि हिन्दी कोश, सुगत प्रकाशन, नागपुर, प्र.सं. 1980, क्र.150
2. तत्रैव, पृ. 284
3. www.accesstoinsight.org
4. तत्रैव
5. शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, दीपवंस, बौद्ध आकर ग्रंथमाला, वाराणसी, प्र.स.1996, पृ.100
6. तत्रैव पृ. 124
7. तत्रैव
8. तत्रैव
9. तत्रैव, पृ. 126
10. तत्रैव, पृ. 162
11. तत्रैव, पृ. 168
12. तत्रैव, पृ. 170
13. तत्रैव, पृ. 172
14. तत्रैव, पृ. 186
15. तत्रैव, पृ. 186
16. तत्रैव, पृ. 192
17. तत्रैव,
18. तत्रैव
19. तत्रैव
20. तत्रैव, पृ. 312
21. तत्रैव, पृ. 314

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 26-28

Ckq/n dh uSfrd f'k{kk vkSj orZeku fLFkfr

: ik okyns*

आज विश्व में वैश्वीकरण और भौतिकवाद की तीव्रगति से प्रगति के कारण विश्व संस्कृति के नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का ह्रास, पतन और पराभव बड़ी तेजी से हो रहा है। पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण, सिनेमा, टेलीविजन, इंटरनेट और मोबाईल फोन के दुरूपयोग के कारण समाज में नग्नता, फूहड़पन, नशों का प्रचलन, हत्याओं व आत्महत्याओं की प्रवृत्ती, व्यभिचार, बलात्कार एवं अप्राकृतिक यौनाचार और चोरी डकैती आदि अनैतिक व पाप कर्मों का चलन तीव्रगति से बढ़ रहा है। इस अवस्था से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है।

आज विश्व समाज में नीतिशून्यता की स्थिति बढ़ती चली जा रही है। इस अनैतिक एवं दूषित वातावरण को धीरे–धीरे कम करके, सामान्य, एवं नैतिक वातावरण के सृजन के लिए बुध्द की नैतिक शिक्षा आवश्यक है। जिससे विश्वसमाज में बढ़ती हुई अनैतिकता एवं नीतिशून्यता को रोका जा सके, नितिशून्यता विश्व समाज का पतन और सत्यानाश कर देंगे।

महान सम्राट अशोक ने बौध्द धर्म एवं बुध्द की नैतिक शिक्षा की ओर अग्रसर होने के लिए सर्वप्रथम प्रबल इच्छा शक्ति को उत्पन्न किया था। उसके बाद मोग्गलीपुत्ततिस्स की अध्यक्षता में तृतीय बौध्द संगिति का आयोजन किया। बौध्द नीतिशास्त्र के नैतिक शिक्षा को शिला–लेखों और शिला स्तंभों पर उकरवाकर संपूर्ण भारत में प्रचारित किया था।

बुध्द की नैतिक शिक्षा मानव के विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। सम्राट अशोक ने शिलालेखों पर बुध्द की जिन गाथाओं को उकेरवाया था, उनमें से अधिकांश के गाथाएं धम्मपद और सुत्तनिपात से ली गई है। बुध्द के द्वारा प्रतिष्ठापित पंचशील के प्रथम शील में हिंसा से विरत रहकर अहिंसा के मूल्य का अनुशीलन एवं अभ्यास करने की बात कही है। बुध्द ने अनेक संदर्भों में अहिंसा का अनुमोदन किया।

आज भारत में हिंसा का बहुत बोलबाला है आज जब समाचार पत्र खोलेंगे, समाचार सुनने के लिए टेलीविजन और रेडियो का बटन दबाओ तो सुनाई पड़ेगा, उसने उसे गोली मार दी और अमुक व्यक्ति ने चाकू मार कर हत्या कर दी। किसी ने दहेज के लालच में बहु का गला दबाकर अथवा मिट्टी का तेल छिड़ककर हत्या कर दी आदि–आदि। कहने का तात्पर्य यह है कि आज मनुष्य कीड़े?–मकोड़े की तरह मार दिया जाता है। युध्दों में मनुष्य चीटियों की तरह मरते हैं। भारत में कश्मीर और नक्सलवादी क्षेत्रों में मनुष्य की हत्याएं अत्यंत चिंता का विषय है। कहीं भी मनुष्य और किसी भी अभिप्राय से मारा जाये अथवा उसकी हत्या की जाए, वह अनुचित, अनैतिक और पापकर्म होता है। इसको रोकने के लिए आवश्यक है, बुध्द की अहिंसा का अनुशीनलन–इस संदर्भ में बुध्द ने कहा है, ''प्राणियों की हिंसा करने से कोई श्रेष्ठ नहीं होता, सभी प्राणियों के हिंसा न करने से श्रेष्ठ कहलाता है।''[1] अहिंसा मूल्य का प्रतिपादन करते हुए बुध्द कहते है,

^^lCcs rlfUr n.MLl]
lCcs Hk;fUr ePpquksAA
vRrkua mie dRok]
u gu;s u ?kkr;sA**

*शोध छात्रा, पालि एवं प्राकृत विभाग, राष्ट्रसंत तुकड़ोजी महराज नागपुर विद्यापीठ, नागपुर, महाराष्ट्र।

सभी दण्ड से डरते हैं, सभी को मृत्यु से भय लगता है। इसलिए सभी को अपने जैसा समाज न किसी को मारे, न मरवाये।''[2]

इस प्रकार बुध्द ने धम्मपद की अनेक गाथाओं में अहिंसा की शिक्षा का प्रतिपादन किया है, जिसके अनुशीलन से हिंसा समाप्त की जा सकती है।

बुध्द नैतिक शिक्षा में सत्य को अत्याधिक महत्व प्रदान किया गया है और झूठ बोलने को पाप माना गया है। जब कोई व्यक्ति झूठ बोलता है, तो उसे छुपाने के लिए अनेक झूठ बोलने पडते है। यथार्थ यह है कि झूठ बोलने वाला व्यक्ति कोई भी पाप कर सकता है। इस संदर्भ में बुध्द कहते है, ''एक धर्म सत्य का अतिक्रमण कर जो झूठ बोलता है, परलोक की चिंता से रहित उस पुरूष के लिए कोई पाप ऐसा नहीं रह जाता, जो वह न कर सके''[3] चित्त को हमेशा सन्मार्ग पर लगाना चाहिये। झूठे मार्ग पर नहीं। इस संदर्भ में बुध्द का कथन अत्यंत सार्थक है, वे कहते हैं –

fnlh fnl ;Ur df;jk ojh ok iu ofjuk
fePNkif.kfgr fpRr ikfi;k u rrk djkA

''जितनी हानि शत्रु, शत्रु की या वैरी वैरी की करता है, उससे अधिक हानि झूठे मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।''[4]

मनुष्यों को हमेशा सत्य, प्रिय एवं आकर्षक वचन बोलने चाहिए, बुध्द कहते है, ''जो ऐसे सार्थक तथा सत्य वचन बोले, जिससे कुछ भी पीड़ा न होए, उसे मैं श्रेष्ठ कहता हूं।''

कटु वचन न बोलो, वाद, दुःखदायक होता है, उसके बदले में तुम्हे दंड मिलेगा। सत्य बोलने से समाज में सुख–शांति और अहिंसापूर्ण वातावरण बनता हैं।

आधुनिक भारत में चोरी, डकैती, रिश्वत और भ्रष्टाचार का साम्राज्य छाया हुआ है। जो लोग अनैतिक साधनों से धन का संग्रह करते हैं वे लोग चोरी डकैती, आदि करके पाप कर्म करते हैं। इस पाप कर्मों से मनुष्य का पतन तो होता ही है, इसके साथ देश का विकास अवरूध्द हो जाता है। इसलिए बुध्द ने परिग्रह के लिए मन किया है, वे चारी न करने के लिए कहते हैं।

''जो दीर्घ, ह्रस्व, मोटी या पतली शुभ अथवा अशुभ संसार में किसी भी बनाई गई वस्तु को नहीं लेता है, उसे मैं श्रेष्ठ कहता हूं।''

आज भारत में व्यभिचार, बलात्कार और अप्राकृतिक यौनाचार जैसे अनैतिक कर्मों का बोलबाला है। छोटी–छोटी बच्चियों के साथ बलात्कार करके उनकी हत्या कर दी जाती है। लड़कों के साथ अप्राकृतिक यौनाचार साधुओं के द्वारा किए जाते हैं। इस प्रकार के व्यभिचारों और यौनाचार न करने के लिए स्पष्ट रूप से बुध्द ने देसना दी है। शरीर की अनित्यता को बताते हुए बुध्द कहते हैं,

;k uh ^efu viRFkkfu vykcuo lkjnA*
dkikrdkfu vVBhfu rkfu fnLoku dk jfRrAA

शरदकाल की फेंकी गई लौकी की भांती या कबूतर की सी सफेद हो गई, उन हड्डियों को देखकर रति कैसी।'' शरीर के प्रति इस प्रकार की भावना रखने पर मनुष्यों को व्यभिचार, बलात्कार और अप्राकृतिक यौनाचार से मनुष्य को बचाया जा सकता है।

आधुनिक भारत में नैतिक एवं मानवीय मूल्यों के ह्रास, पतन, पराभव और अवमूल्यन का एक मुख्य कारण शराब तथा अन्य मादक द्रव्यों का सेवन हैं। पंचशील के पांचवे शील में शराब एवं अन्य मादक द्रव्यों सें विरत रहने का प्रावधान किया है। इस बात का प्रावधान अष्टांगिक मार्ग में सम्यक दृष्टि और सम्यक आजीविका के अंतर्गत किया है। बुध्द ने कहा की शराब पिने से शरीर की हानि, धन की हानि, सामाजिक प्रतिष्ठा की हानि होती है। इससे मनुष्य का मन असंतुलित विक्षित होता है और वह शुभ–अशुभ, नैतिक–अनैनिक, मंगल–अमंगल, और सही–गलत का निर्णय करने की शक्ति का ह्रास एवं पतन कर बैठता है। इससे अनेक प्रकार की बिमारियां और मनोरोग उत्पन्न हो जाते हैं। इनके नशे में व्यक्ति चोरी, हत्या, व्यभिचार, एवं बलात्कार जैसे जघन्य पाप कर देता है। इसलिए बुध्द ने शराब एवं अन्य मादक द्रव्यों से दूर रहने का उपदेश दिया है।

मनुष्य को नैतिक जीवन के लिए यह आवश्यक है कि वह पाप कर्मों को त्यागकर पुण्य कर्मों के करने में शीघ्रता करे, ऐसा करने से उसे संगति प्राप्त होगी। मनुष्य को शांत, दानी और नियत ब्रम्हचारी बनना चाहिये, ऐसा करने से जीवन नैतिक बनता है। जो व्यक्ति उद्योगी, संवेगवान हो, श्रध्दा आचार, वीर्य, विद्या, और आचरण में संयत जीवन व्यतीत करता है, वह नैतिक कहा जाता है।

आज भारतीय समाज में क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, कंजूसी, नशाखोरी आदि अनेक दुर्गुण व्याप्त है। जिससे मनुष्य और समाज का कल्याण नहीं हो पा रहा है। इसके लिए यह परमावश्यक है कि मनुष्य और भारत को समाज बौध्द नीतिशास्त्र की मूल्य योजना के अनुसार कर्म रूके, उस अवस्था में संपूर्ण भारत में मूल्यों के साम्राज्य की स्थापना हो जाएगी और चारों और सुख, शांति सशक्त, धार्मिक एवं नैतिक बन सकेगा। इस स्थिति में बुध्द की नैतिक शिक्षा से संपूर्ण भारत में प्रज्ञा, शील, मैत्री, करूणा की ध्वनि गुंजायमान होती रहेंगी।

lUnHk %

1. धम्मपद – 15 धम्मट्ठवग्गो
2. धम्मपद – 1 दण्डवग्गो
3. वहीं – 2
4. वहीं – 10 लोकवग्गो
5. वहीं – 10 चित्तवग्गो
6. वहीं – 26 ब्राम्हण वग्गो
7. वहीं – 5 दण्डवग्गो
8. वहीं – 26 ब्राम्हण वग्गो
9. वहीं – 4–5 निरयवग्गो
10. वहीं – 4 जरावग्गो
11. बुध्द को नीतिशास्त्र, डॉ0 धर्मकीर्ती, प्र 340, 41
12. बुध्द धम्म, बुध्दिवाद और आंबेडकर, डॉ. सुरेंद्र अज्ञात, पृ0 192–93
13. बुध्द तत्वज्ञान आणि प्रबोधन क्रांति – निरंजन पाटिल

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 29-32

lQh lkfgR; esa jgL;okn ¼tk;lh ds fo'ks"k lUnHkZ esa½

vf[kys'k dqekj ikBd*

प्राचीन काल से अब तक भारतवर्ष में चिंतन व मनन् की सुदीर्घ परम्परा की एक अनवरत् शृंखला अपने अविरल क्रम में तीव्र गति से बहती चली आई और यह परम्परा असंख्य विशेषताओं से युक्त एवं विशिष्ट साधनाओं, अनुभूतियों, प्रक्रियाओं से सुसज्जित है। साधना के इस पावन भूमि पर जहाँ एक ओर मानवता का कल्याण किया जाता है, वही वह अपने सत्य और सुन्दरतम स्वरूप को व्यंजित भी करताहै। अनेक अनुशासनों एवं पद्धतियों के स्त्रोत यहाँ के इतिहास में प्रस्तुत हैं, उन्हीं में से एक महत्वपूर्ण धारा रहस्य की भी रही है और यह रहस्य की प्रवृत्ति मानव जगत के मानस पटल की आज की प्रवृत्ति नहीं है, न ही किसी जाति, धर्म, राष्ट्र की सीमा से नितान्त अलग स्वरूप में अलौकिक व ह्रदयानुभूति है, जो असीम है, चितन्तर है। मानव की यह प्रवृत्ति उसे अलौकिकता की ओर ले जाती है तथा जीवन जगत् के विषयों से अलग कर अपने को जानने व समझने, चैतन्य होने को तथा स्वयं के अस्तित्व को जानने के लिए विवश कर देती है। रहस्यवाद का मूल लक्ष्य विशिष्ट अनुभूति के द्वारा सत्य, परम तत्व या ब्रह्म का साक्षात्कार करना है। यह अनुभूति सामान्य दृष्टिकोण के अनुभूति से अलग अपने आप में आनन्दमयी चेतना की अवस्था का नाम है।

जहाँ तक 'रहस्यवाद' शब्द ही प्रश्न है, वह रहस्य में 'वाद' (ISM) जोड़कर प्रयोग में लाया जाता रहा है। यहाँ पर वाद को एक रूप, विशेष विचार पर बल देना मात्र हैं। हिन्दी में रहस्यवाद बौद्धों, सिद्धों और नाथों के साहित्य को ग्रहण करते हुए भक्तिकाल और छायावाद में उपस्थित हुआ है। रहस्यवाद की लम्बी भारतीय परम्परा रही है, जो की वेदों उपनिषदों से होते हुए वर्तमान समय तक देखी जा सकती है। भारतीय साहित्य में विशेषकर भक्ति साहित्य में रहस्यवाद की एक सुदृढ़ परम्परा मिलती है।

सूफी साहित्य में रहस्यवाद अपने मिश्रित रूप में उपस्थित होता है। एक ओर वह अरब, ईरान, फारसी में रहस्यवाद से प्रभावित है, तो दूसरी ओर भारतीय रहस्यवाद से भी। कहीं–कहीं तो आलोचना का यह स्वर भी सुनाई पड़ता है कि सूफी काव्य में रहस्यवाद केवल फारसी भाषा की ही देन है यह तर्क निराधार ही लगता है। इसका कारण यह है कि सूफी कवि भारत में ही जन्मे और उन पर यहीं की सांस्कृतिक विचारधारा का प्रभाव पड़ा साथ ही फारसी का भी तो मिश्रित रूप में उनके काव्य में रहस्य की स्थिति स्वीकार करना अधिक तर्कसंगत होगा। सूफियों के काव्य पर यह भी आरोप लगाया जाता है कि उनकी उक्तियाँ पूर्णतः रहस्यवादी नहीं है, बल्कि आंशिक रहस्यवादी है। इसका उत्तर दिया जा सकता है कि आंशिक है तो किस तरह, किस स्तर पर और भी कोई कवि पूर्णरूपेण रहस्यवादी हो यह स्वीकार कैसे किया जा सकता है? क्योंकि उसकी स्थिति इस संसार में सैदव निरन्तर बनी रहती है। वह इस जगत की वस्तुओं से संचालित और प्रभावित होता ही रहता है। इसलिए कोई भी कवि चाहे वह दादू, रज्जब, शेख, नवी, शेख फरीद, कबीर आदि ही क्यों न हो। रहस्य की प्रवृत्ति सभी में आंशिक होती है, कोई भी कवि हमेशा रहस्यवादी बना नहीं रह सकता या सदैव रहस्यात्मक उक्तियाँ ही देता फिरे आवश्यक नहीं है। यह रहस्य की प्रवृत्ति सभी में है; जो कभी–कभी जग जाती है तथा कवि यथा प्रसंग अवसर पाकर उस प्रवृत्ति की उक्तियाँ देता है। इसलिए भारतीय सूफी कवियों को और उनके काव्य को अंशतः और पूर्णतः रहस्यवादी काव्य कहकर आरोपित नहीं किया जा सकता है।

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी।

सूफी कवि और उसका साहित्य अपनी तरह का मिश्रित रहस्यवाद को संप्रेषित करता है। वहीं किसी सीमा, कट्टरता या भेदात्मक नीति पर आधारित नहीं है। वह सत्य है सूफी साहित्य ने भारतीय भूमि की सांस्कृतिक परिस्थितियों से मेल बिठाया, समन्वय किया और सांस्कृतिक तत्व और आधार ग्रहण कर अभिव्यक्तियाँ दी।

सूफियों के रहस्यवाद के विषय में एक विद्वान का मत है –

''भारतीय रहस्यवाद और तसब्बुफ में अन्तर यह है कि प्रथम जगत त्याग की राय देता है और द्वितीय जगत् के बीच साधना है।''

यहाँ जगत् से तात्पर्य क्या है? क्या भारतीय रहस्यवाद जगत् का त्याग करके ही रहस्यवादी होगा? तभी उसे रहस्यवादी समझा जाये तो फिर हिन्दी के समस्त कवियों–कवयित्रियों को भारतीय रहस्यवादी कवि भी जगत में रहकर ही रहस्यवादी अभिव्यक्ति देता है। वह चाहे भारतीय हो या अन्य कोई भी। यह रहस्य की प्रवृत्ति त्याग पर आश्रित नहीं बल्कि व्यक्ति के परमात्मा से विशेष सम्बन्धों का अदृश्य सम्बन्ध है, जो साधना पद्धति पर आश्रित है। इसमें जगत् त्याग की क्या आवश्यकता है।?''[1]

''सूफियों का जो साहित्य रहस्यवादी कहा जाता है, वह केवल धर्म प्रचार के साथ आध्यात्मिक प्रेम की छटा लेकर चलता है। कहना अनुचित न होगा की शुद्ध रहस्यवाद किसी वाद अथवा धर्म मत का प्रचार नहीं करता। वह तो अपने लिए प्रिय लगने वाला और दूसरों को भी आनंदित करने वाला व्यक्तिगत अनन्य सम्बन्ध परमात्मा के साध पूर्णतः अपने आपको स्थापित करने का प्रयत्न करता है। इसी आधार पर सूफी साहित्य रहस्यवादी नहीं कहा जा सकता है। उसे हम रहस्यवादी साहित्य का फारसी रूप ही कह सकते।''[2]

उद्धरण स्पष्ट करता है कि सूफी साहित्य रहस्यवादी है ही नहीं। यह तर्क कहाँ तक स्वीकार्य और उचित है। केवल आक्षेप और आरोप से काम नहीं चल सकता। उसके प्रमाण भी चाहिए। सूफी साहित्य रहस्यवादी है। इसके साहित्य में प्रमाण मौजूद है। जायसी के काव्य में अनेक स्थलों पर देखा जा सकता है कि खासकर– पद्माकर के सन्दर्भ में कि वे किस तरह अपने रहस्य की अभिव्यक्ति देते हैं। यथा –

^^jfo lfl u[kr fnifg vkfg tkrhA**[3]

^^u;u tk n[kk dey ¼Hkk½ Fkk gl r tk n[kk gl FkkAA[4]

जायसी की अभिव्यक्तियों से स्पष्ट होता है कि वह अगोचर सत्ता की ओर जाते रहे हैं, जो अनंतलोकमयी है जिनके आलोक से संपूर्ण ज्योतिर्मय पदार्थ आलोकित हो साथ ही संसार के प्रत्येक पदार्थ को उसी मूल सत्ता का प्रतिबिम्ब मान रहे हैं। इसके अलावा जायसी पद्मावत में रहस्य की अभिव्यक्ति देते हुए कहते हैं कि यथा–

^^ijxV xir ldy jgk lk uko n[kk rg vkfg nlfj ufg tkoAA
dgdj mlh lÙkk dk ldr tk lHkh txg fo|eku gA
^fiÅ fgjn; eg HkV u gkbAA

कहकर प्रत्येक जीवात्मा के अद्वैत भाव के साथ विद्यमान उस परम सत्ता की ओर संकेत किया गया है। इस तरह जो उक्तियों से स्पष्ट होता है कि वह परम सत्ता के प्रतिबिम्ब को दर्शाकर उससे अपना और हम सब ईश्वर की सत्ता के सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। उन पर प्रतिबिम्बवाद, सर्वात्मवाद, अद्वैतवाद, पर्याप्त प्रभाव इस तरह स्पष्ट हो जाता है कि वह अपने काव्य में रहस्य को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं और काव्य एवं कवि भारतीय रहस्यवाद से प्रभावित रहस्यवादी कवि हैं।

इसके अतिरिक्त जायसी ने अपनी उक्तियों में परम सत्ता के अव्यक्त अगोचर स्थान की ओर भी संकेत किया है, जहाँ न सूर्य–चन्द्र न पवन (हवा) पहुँच सकते हैं, जहाँ साधना भी पहुँच नहीं सकता। जायसी ने पद्मावत में मोक्ष को भी दर्शाया है और स्पष्ट करते हुए एक बार उस अज्ञात के पास जो पहुँच जाता है। उसे पुनः इस संसार में नहीं आना पड़ता है साथ जायसी ने रहस्य को स्पष्ट करते हुए परम सत्ता के साधक–साधना में आये विघ्नों को भी वर्णित किया है। किस प्रकार जिज्ञासा उत्पन्न होने पर

साधक पागल हो जाता है। फिर भी ईश्वर की सत्ता में लीन होने लगता है। परन्तु यह पथ (मार्ग) इतना सरल नहीं कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है। जायसी ने आत्मा परमात्मा के मिलन की स्थिति की भी रोचक वर्णन किया है। जायसी ने भी अनेकानेक स्थितियों का रोचक वर्णन किया है और दर्शाया है कि साधक की जिज्ञासा साधना का महत्व प्रदर्शन, मिलन प्रत्यय, भौतिक विघ्न बाधा, वेदना की अनुभूति, सांसारिक विघ्न और रहस्य की ही विभिन्न स्थितियाँ हैं। इसके अतिरिक्त जायसी ने हठयोग, रसायनादि का भी प्रयोग किया है।

जायसी के विवेचन में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विवरण से स्पष्ट होता है कि रहस्य भी अथवा उनके साहित्य में रहस्य यत्र–तत्र बिखरा पड़ा है। वे ''लिखते हैं– ''रहस्यवाद का प्रभाव सूफियों में पूरा–पूरा हुआ।''

हिन्दी के कवियों में यदि कही रमणीय और सुन्दर अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी में जिनकी भावुकता बहुत उच्च कोटि की है।[5]

शुक्ल जी के इस विवरण से होता है कि जायसी से बहुत ही सुन्दर ढंग की रहस्यात्मक उक्तियाँ पद्मावत में दी है तथा वे सूफी रहस्यवादी कवि हैं।''

इतना ही नहीं शुक्ल जी घोषित करते हुए कहते हैं कि ''जायसी से पूर्व भी जो सूफी कवियों का काव्य है, वह भी रहस्यात्मक उक्तियों से भरा पड़ा है तथा हिन्दी के पुराने रहस्यवादी कवि है। सूफी के पद्मावत के ढंग के रहस्यवादपूर्ण प्रबंधों की परम्प्रा जायसी से पहले की है। मृगावती, मधुमालती आदि की रचना जायसी के पहले हो चुकी थी और उनके पीछे भी ऐसी रचनाओं की परम्परा चली आ रही है तथा सबमें रहस्यवाद मौजूद हैं। अतः हिन्दी के पुराने साहित्य में रहस्यवादी कवि सम्प्रदाय यदि कोई कहा जा सकता है तो इन कहानी कहने वाले मुसलमान कवियों को ही।।''[6]

अतः अपने आप स्पष्ट हो जाता है कि जायसी तथा अन्य कवियों रहस्यवादपूर्ण प्रबंधों में रहस्य की छटा है। जायसी उस रहस्य की सत्ता को प्रदर्शित करने हेतु फारसी की अपेक्षा भारतीय पद्धतियों और प्राकृतिक स्थलों का चुनाव करते हैं। वे रहस्य को दर्शाते हैं और स्पष्ट करते हैं कि यह उसी परमसत्ता का नूर है। रहस्यात्मक अनुभूतियों को तीन खण्डों में विभाजित किया जा सकता है। (1) पर्यान्तिक (चरम अनुभूति), (2) आन्तरालिक, (3) आरम्भिक। पर्यान्तिक दशा रहस्य की चरम दशा कहलाती है। इसकी स्थिति उपर्युक्त दो अवस्थाओं के बाद आती है, यह रहस्य की चर्मानुभूति हे। इस दशा का सूफियों के सन्दर्भ में उल्लेख करते हुए आचार्य रामपूर्ति त्रिपाठी लिखते हैं– ''सूफियों के यहाँ इस अवस्था को हाल या अहवाल की दशा कहा गया है।''[7]

भक्ति काल की सगुण और निर्गुण की दोनों उपधाराओं में रहस्यवाद का विभाजन स्वीकार्य है, क्योंकि दोनों धाराओं में रहस्य की स्थिति या साधना मार्ग को स्पष्ट करने में गुरु की महत्ता आवश्यक रहती है, सूफी काव्य में यह धारा पीरयानी के नाम से जानी जाती है। पीरयानी रहस्यानुभूति और पर्यान्तिक रहस्यानुभूति दोनों केवल एक ही है। परन्तु स्तर का अन्तर भावनात्मक हो सकता है। पर्यान्तिक रहस्यानुभूति पर साधक केवल शून्य हो जाता है, उसका वर्णन नहीं कर पाता है। वह फिर भी रहस्य के पहलू में ही उलझा रहता है, चाहे वह सूफी ही क्यों न हो। सभी उस परम प्रकाश को देख केवल चकित हो जाते हैं। आन्तरालिक अनुभूतियाँ रहस्य की रचनानुभूति के पूर्व की अवस्था है। जायसी के यहाँ दोनों समान रूप से प्राप्त होते हैं। जायसी के काव्य में भावनात्मक रहस्यवाद अधिक है, साधनात्मक की अपेक्षा। भावनात्मक रहस्य ही दोनों स्थितियाँ –

1. आत्मा और परमात्मा के बीच विभिन्न लौकिक सम्बन्धों के रूपकों से भावनात्मक उद्गार।

2. आत्मा और परमात्मा की भाँति परमात्मा और जगत से अभेद भावना। जायसी के काव्य में दूसरी स्थिति का अधिकाधिक उल्लेख मिलता है, क्योंकि जायसी परमात्मा आत्मा के साथ जगत् को भी समेट लेते हैं। इसका कारण यह है कि सूफी साधक इस संसार में चिर–सुन्दर प्रिय अथवा उस नूर की छाया मानते हैं और इश्क मिज़ाजी से इश्क हकीकी की ओर बढ़ते हैं। इस तरह जायसी का रहस्यवाद तथा अन्य सूफी कवियों का रहस्यवाद सांसारिकता को स्पष्ट करता है।

समग्रतः स्पष्ट किया जा सकता है कि सूफी काव्य–साधनों के काव्य में रहस्यात्मकता का समावेश हुआ है और उनकी काव्याभिव्यक्तियाँ रहस्यमयी हैं। इनके काव्य में वर्णित रहस्यवस्थाओं के विभिन्न स्तर पर तथा श्रेणियों में देखा जा सकता है। अद्वैतवाद या ब्रह्मवाद को सूफी काव्य ग्रहण करके चलता है यह उनकी उच्चकोटि के रहस्यवाद की प्रतिष्ठा है। रहस्य किसी भी काल के कवि की कविताओं में देख जा सकता है। यह कवि का अपना विचारमंथन, अनुभूति है, जो उसे इस ओर प्रवृत्त करती है। सूफी काव्य रहस्यवाद की प्रवृत्ति ग्रहण किये हुए हैं।

lUnHkZ %

1. सरस्वती संवाद, फरवरी 1961 (हिन्दी साहित्य का विशेषांक), इस्लाम साहित्य और तसहवुफ (सूफीमत)
2. लेख पृ0 63 (उद्धृत सूफी संत का उद्भव और विकास – प्रो0 जयबहादुर, पृ0 209),
3. (संपादक) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – जायसी ग्रंथावली, पृ0 24
4. वही, पृ0 40
5. वही, पृ 121
6. वही, पृ0 121, 122
7. आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी, रहस्यवाद, पृ0 68
8. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास
9. संपादक : संतोष चतुर्वेदी, भक्ति का आधुनिक सन्दर्भ
10. फरहत परवीन, आजकल मासिक पत्रिका, सूफी काव्य विशेषांक जून 2016

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 33-36

f’koefÙk dh dgkfu;k e xkekpy

Mk0 vej cgknj flg*

''गाँव और ग्राम्य जीवन उनके अंदर रचा–बसा है। ऐसा लगता है कि बाल्यावस्था से आज तक की कोई स्मृति उनके अंदर मरी नहीं है। वे आज भी पूरी संवेदना और जीवंतता के साथ उनके अंदर स्पंदित है। गाँव छोड़े उन्हें शायद चालीस बरस से ऊपर हो चुके हैं पर गाँव, उसके चरिष, घटनाएँ–ब्यौरे, खेत–खलिहान, पशु–पक्षी, कच्ची मेड़े–रास्ते, चौबारे–ओसारे, बाग–पेड़ आज भी पूरी शिद्दत के साथ उनके अंदर धड़कते हैं।''[1]

शैलेन्द्र सागर की ये पंक्तियाँ उस कथाकार के लिए है जिन्होंने आधुनिक हिन्दी कहानी की सरिता को; जिसका प्रवाह शहरी चकाचौंध, नागरीय बोध, कुण्ठा, संत्रास, जटिलताओं के मलवे से बोझिल होकर मन्द पड़ चुका था, उसे ग्रामीण वातावरण, जन–जीवन, संस्कृति, समाज और ग्रामीण यथार्थ आदि के करीब लाकर एक नया जीवन प्रवाह दिया। साथ ही कहानी की वह परम्परा जिसे प्रेमचन्द, रेणु जैसे कथाकारों ने ग्राम्य जीवन का साकार रूप देकर प्रज्वलित किया था, उसकी लौ को आधुनिकता के थपेड़ों के बीच जलाए रखने का भी महत्वपूर्ण कार्य किया। वे अन्य कोई नहीं अपने कथाकार शिवमूर्ति जी ही हैं। जिन्होंने कथा में गाँव को रचाने–बसाने का जोखिम लिया। इन्होंने अपनी महज सात कहानियों– 'कसाईबाड़ा' (1980), 'भरतनाट्यम्' (1981), 'सिरी उपमा जोग' (1984), 'तिरिया चरित्तर' (1987), 'केसर कस्तूरी' (1991), 'अकालदण्ड' (1992) तथा 'ख्वाजा! ओ मेरे पीर' द्वारा ग्रामीण जीवन का ऐसा वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया कि 'गाँव' उनकी कहानियों में एक जिंदा अहसास के रूप में उभरता है।

70–80 के दशक में एक ग्रामीण कथाकार के रूप में उभरे शिवमूर्त्ति जी ग्राम्य परिवेश के केवल भौतिक रूप से ही जुड़े नहीं थे बल्कि उनकी आत्मा उसके कण–कण, उसकी माटी, उसकी महक, उसके जन–जीवन में घुली–मिली थी। जिस कारण उनकी कहानियों में गाँव का ताना–बाना स्वतः ही बुनता चला गया है। इस संदर्भ में जरा हेमिंग्वे का कथन बिल्कुल सही प्रतीत होता है, ''कहानियों के आइडिया मेज पर बैठकर नहीं मिलते। लोगों के बीच जाकर मिलते हैं।''[2] शिवमूर्त्ति जी की तो यह खासी विशेषता रही है कि वे अपनी कहानियों को कल्पनात्मक धरातल पर प्रस्तुत न करके उसे यथार्थ के थाल में रख कर परोसते हैं। उनके स्वयं के कथनानुसार ''कल्पना तो केवल लता है। उसके लिए एक यथार्थ का आधार चाहिए, चाहे वो सूखा एक बाँस का डंडा ही क्यों न हो। उसी के सहारे कल्पना की लता ऊपर चढ़ सकती है।''[3] यह यथार्थ का धरातल शिवमूर्त्ति जी के लिए अन्य कुछ नहीं बल्कि उनका वही अपना ग्रामीण परिवेश है। जहाँ के रीति–रिवाज, राग–विराग, ईर्ष्या–द्वेष, भाषा–बोली, उनके जड़ों में धँसे संस्कार, वर्गवादी व्यवस्था, मूल्यहीन राजनीति एवं उसके बीच भटकती लाचार जिन्दगियाँ आदि के प्रत्येक रूप से वे परिचित थे। इसी के बल पर उन्होंने गाँव की ऐसी चित्रात्मक अभिव्यक्ति की कि उनके बिना कुछ कहे ही उनकी कहानियों के परिवेश, घटनाएँ, पात्र आदि तत्कालीन ग्रामीण व्यवस्था एवं समस्याओं को उसकी यथार्थता के साथ बयाँ कर जाते हैं। फिर चाहे 'अकालदण्ड' का अकालग्रस्त, भूख, अभाव, भ्रष्टाचार, शोषणयुक्त परिवेश तथा 'ख्वाजा! ओ मेरे पीर' का शिक्षा, बिजली आदि सुविधाओं से हीन परिवेश हों या 'कसाईबाड़ा', 'तिरिया चरित्तर', 'भरतनाट्यम्', 'सिरी उपमा जोग' की भ्रष्ट पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक तंष की घटनाएँ हों या फिर शनीचरी (कसाईबाड़ा), सुरजी (अकालदण्ड), विमली

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ0प्र0

(तिरिया चरित्तर), पतोहू (भरतनाट्यम्), केसर (केसर कस्तूर), कमला (सिरी उपमा जोग) जैसी दुःख झेलती स्त्री चरित्र हो या सिकेटरी (अकलदण्ड), परधान, लीडर, दरोगा (कसाईबाड़ा), बिसराम (तिरिया चरित्तर) जैसे संवेदनहीन, क्रूर, कपटी, सत्तालोभी पुरुष पात्र; सभी हमारे तत्कालीन समाज के वास्तविक रूप से ही हमें रूबरू कराते हैं।

ग्रामीण जीवन के यथार्थ पारखी होने के साथ ही शिवमूर्त्ति जी की अन्य विशेषता गाँव को प्रस्तुत करने का उनका सहज, सरल अंदाज अंतःसंबंधों की पहचान एवं गाँव से उनका आत्मीय लगाव भी रहा है, जो कहानियों में ऐसा ग्रामीण परिवेश निर्मित करता है कि सहज सुधी पाठक उस परिवेश में ही जी उठता है। उदाहरणस्वरूप 'अकालदण्ड' कहानी में किया गया अकाल के परिवेश का यह वर्णन– "पेड़ों के पत्ते सूखकर झड़ चुके हैं या मवेशियों के पेट में चले गए हैं और गाएँ भैंसें बिक चुकी हैं। जिन्होंने नहीं बेचा उन्हें अब कोई मुत में ले जाने को तैयार नहीं है। लेकिन बाँधकर रखें तो खिलाएँ क्या? तो गले से पगहा खोल कर हाँक दे रहे हैं लोग जाओ 'फिरी' कर दिया आज से। सुतंत्र हो। मरने के लिए सुतंत्र। नेह–नाता तोड़ो। चारे–पानी की खोज करते हुए मरो। लेकिन दूर जाकर। दुर्गंध से तो बचा दो गाँव को। इन फिरी हुए जानवरों को किसी भी ठूँठ पेड़ के नीचे पड़े पैर पटकते, पूँछ ऐंठते और आँखों के बड़े–बड़े कोयों से आँसू बहाते देखा जा सकता है। मरने का इंतजार करते जानवर।"[4] ऐसा चित्रात्मक वर्णन एक जमीन से कटा हुआ व्यक्ति नहीं कर सकता जिसे पढ़कर कोई भी पाठक उस दृश्य की कल्पना किए बिना नहीं रह सकता। इसके साथ ही मूर्त्ति जी की कहानियों में 'गाँव' केवल परिदृश्य भर ही निर्मित नहीं करता बल्कि वह संवेदनाओं का केन्द्रस्थल भी बन जाता है जिससे एक ग्रामीण की इच्छाएँ, आकांक्षाएँ जुड़ी होती हैं जिससे अलग हो पाने के कष्ट को 'तिरिया चरित्तर' कहानी की विमली द्वारा शिवमूर्त्ति जी जिस रूप में चित्रित करते हैं, वह अन्यत्र दुर्लभ है, "यह गाँव! यह देश! यह ढकुलाही, ये भीटें! कठ–जामुनों का जंगल! कल तक जिसे अपना समझती थी, आज हमेशा–हमेशा के लिए पराया कर दिया आपने बप्पा! अब कौन सवेरे आपको चाह बना कर देगा?

मेरा दुआर! मेरा मोहार! मेरी चक्की! सबसे नाता टूट रहा है! कौन उसकी बकरी को चारा देगा? रोज सवेरे उठते ही मैं तेरी दुआरी लीपती थी माई! उसे काहे छुड़ा दे रही है बिना कसूर?"[5] यह पीड़ा गाँव से जुड़े आत्मीय परिजन की ही हो सकती है, जो कहीं न कहीं शिवमूर्त्ति जी की अपनी ही पीड़ा है, जिसमें वे अपनी विशिष्टता के अनुरूप पूरे पाठक वर्ग को समेकित किए रहते हैं।

शिवमूर्त्ति जी एक सिद्धस्थ कथाकार होने के नाते ग्रामीण परिवेश के एक–एक रूप से वाकिफ थे। उन्होंने तत्कालीन ग्रामीण वातावरण एवं व्यवस्थाओं को ही नहीं उकेरा बल्कि ग्रामीण जीवन की जटिलताओं एवं विषमताओं को भी जिस गहनता के साथ सोच–परखकर अभिव्यक्ति दी, वह उनकी सोच और प्रतिबद्धता की ही परिचायक है। वे एक ऐसे बिन्दु पर खड़े थे जहाँ गाँव तथा शहर दोनों के आदर्श टूट–बिखर रहे थे। शहरी समाज की जटिलताएँ, समस्याएँ, संवेदनहीनता हमारे आदर्श भारतीय ग्रामीण समाज को दबोचने लगी थी। फलस्वरूप ग्रामीण समाज, परिवार, रिश्ते–नातों में भी टूटन–बिखराव आरम्भ हो गया था; लोगों की संवेदनाएँ मरने लगी थी। शिवमूर्त्ति जी ने गाँव के इसी बदलते परिवेश के मर्म को पकड़ा तथा उसकी गहराई में जाकर उसके परिवर्तनकारी रूप को हमारे समक्ष रखा। पारिवारिक–विघटन तो शहरों में आमतौर पर देखा जा सकता है किन्तु गाँवों में व्याप्त आदर्श परिवार व्यवस्था भी किस प्रकार चरमराकर टूट रही है, इसका वर्णन कहानीकार ने 'तिरिया चरित्तर' कहानी में बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है। कहानी की पात्र 'विमली', बाल–विवाह की शिकार एक संघर्षशील लड़की के रूप में हमारे सामने आती है, जो जी–तोड़ परिश्रम कर अपने परिवार का भरण–पोषण करती है किन्तु समाज में व्याप्त कुछ असामाजिक तत्वों के कारण उसके तथाकथित यौवन की सुरक्षा हेतु शीघ्र ही उसे ससुराल भेज दिया जाता है, जहाँ वह सुरक्षित रह सके। किन्तु त्रासदी तो तब होती है जब पिता तुल्य उसका ससुर ही उसका सम्मान भंग करता है, वहाँ परिवार व्यवस्था ध्वस्त होती जान पड़ती है। इस स्थिति को मूर्त्ति जी ने कलात्मक ढंग से चित्रित करते हुए लिखा है, "धोखा! छल! कहाँ–कहाँ से किन–किन खतरों से बचाती आयी थी वह पराई अमानत! कितने बीहड़? कितने जंगल? कितने जानवर? कितने शिकारी? और मुकाम

तक सुरक्षित पहुँचकर भी लुट गई वह! मेड़ ही खेत खा गई छल से!''[6] दूसरी ओर सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था में भी हो रहे परिवर्तन, नैतिक पतन एवं शोषक वर्ग के उद्‌भव को कहानीकार ने 'कसाईबाड़ा' के द्वारा चित्रित किया कि किस प्रकार गाँव की सुरक्षा के लिए नियुक्त किया गया परधान ही धोखे से अपने गाँव की लड़कियों को बेच डालता है तथा व्यवस्था के प्रतीक अन्य लोग– लीडर, दरोगा भी उसी स्वार्थलोलुपता में लिप्त रहकर भुक्तभोगी शनीचरी (जिसकी बेटी बेची गई) के साथ कसाईयों सा व्यवहार करते हैं और शनीचरी के पास सिवाय रोने, गिड़गिड़ाने के अलावा कोई रास्ता नहीं रह जाता। सारा गाँव उसके लिए कसाईबाड़ा बन जाता है। उसके इस दुःख को शिवमूर्त्ति जी ने गँवई लहजे में प्रस्तुत कर उसे सजीवता प्रदान की है, ''मोर बिटिया वापस कर दे बेईमनवाँ, मोर फूल ऐसी बिटिया गाय–बकरी की नाईं बेचिं के तिजोरी भरै वाले! तेरे अंग–अंग से कोढ़ फूट कै बदर–बदर चूई रे कोढ़िया.....।''[7] यहाँ मूर्त्ति जी ने पाठक का ध्यान गाँव में उत्पन्न हो रहे उस भीषण दंश की ओर भी केन्द्रित किया है कि जब समाज एवं परिवार को संरक्षण देने वाले लोग ही अपने लोगों का भक्षण करने लगेंगे तो बाह्य समाज की क्या दशा होगी?

संवेदना के धरातल पर भी शिवमूर्त्ति जी सूक्ष्म अन्वेषी हैं। अपनी इसी कला द्वारा उन्होंने गाँव के उस मर्म को पकड़ा, जो सहृदय पाठकों में करुणा का उद्रेक करता है। 'सिरी उपमा जोग' कहानी में उन्होंने इसी मर्म की ओर पाठकों का ध्यान केन्द्रित किया है कि किस प्रकार एक पत्नी अपने पति को सफल बनाने हेतु अपनी परवाह न करते हुए अपने गहने बेचकर, समस्त कार्यभार अपने कंधों पर लेकर अपने पति के लिए व्यवस्थाएँ करती है, वही पति जब शहर जाकर साहब बन जाता है तो दूसरी शादी कर उसी पत्नी को दीन–हीन जीवन व्यतीत करने को छोड़ देता है, पति के साहब बनने के बाद की स्थिति का वर्णन करते हुए शिवमूर्त्ति ने लिखा है, ''अब उन्हें पत्नी की देहाती ढंग से पहनी गयी साड़ी और घिसे–पिटे कपड़े चुभने लगे।..... उसके गंवारेपन के कारण वे अक्सर खींझ उठते और कभी–कभी तो रात में कहते उठ कर नहा लो और कपड़े बदलो, तब आ कर सोओ। भूसे जैसी गंध आ रही है तुम्हारे शरीर से।''[8] यहाँ कहानीकार ने संवेदना के उस मर्म को रेखांकित किया है। जहाँ हमारे ग्रामीण समाज के युवक शहर जाकर वहीं के रंग–ढंग अपना लेते हैं और गाँव से अपने आपको दरकिनार कर लेते हैं। 'भरतनाट्यम्' कहानी में भी शिवमूर्त्ति ने उस गँवई सोच, संस्कार, रूढ़िवादिता का ही वर्णन किया, जिसमें बेटा पाने की संस्कारवादी ललक खुलकर सामने आती है। जहाँ नायक के पिता बेटी पैदा होने के खिलाफ हैं। उनके यह रूढ़िवादी विचार उनके आक्रोशपूर्ण शब्दों में व्यक्त होते हैं, ''तीन–तीन बेटियाँ बियाने के बाद भी गर्मी कम नहीं हुई है, पलटन तैयार करने की कसम खाकर आई है मायके से। इस हरजाई की कोख में लड़का पल सकता है भला!''[9] यहाँ मूर्त्ति जी ने ग्रामीण समाज में व्याप्त भेदात्मक व्यवस्था को मार्मिक यथार्थ के रूप अभिव्यक्त किया है। इसी प्रकार 'केसर–कस्तूर' कहानी की केसर द्वारा भी उन्होंने हिन्दुस्तान की उन हजारों ग्रामीण लड़कियों को आकार दिया जो आज भी पुराने संस्कारों में जकड़ी है। जो बचपन में ब्याह कर परम्परा के नाम पर बलि चढ़ा दी जाती है और जीवन भर उस परम्परा के नाम पर रीतती–जीती रहती है। उनकी इसी वेदना तथा पीड़ा को कहानीकार ने केसर के इस गीत के माध्यम से व्यक्त किया है, ''मोछिया तोहार बप्पा 'हेठ' न होइहै/पगड़ी केहू ना उतारी, जी ई–ई।/टुटही मंड़इया मा जिनगी बितउबै,/नहीं जाबै आन की दुआरी जी–ई–ई।''[10] इन विवरणों द्वारा कहानीकार ने तत्कालीन ग्रामीण समाज की उस वास्तविक तस्वीर को प्रस्तुत किया है, जो आज भी तमाम संवेदनाओं, समस्याओं एवं विडम्बनाओं के साथ मौजूद है।

शिवमूर्त्ति जी का ग्रामीण जीवन पर सशक्त पकड़ होने का एक अन्य कारण उनकी सहज, सरल, गँवई भाषा भी है। जिसमें व्याप्त लोकोक्तियाँ, लोकगीत, मुहावरे, सम्प्रेषणीयता, चित्रात्मकता, संगीतात्मकता, सांकेतिकता, ध्वन्यात्मकता आदि गुण उनकी भाषा को स्वतः ही ग्रामीण परिवेश, घटनाओं एवं पात्रों के अनुकूल बना देते हैं, साथ ही उसे प्रस्तुत करने की उनकी विशिष्ट शैली तो बेजोड़ है, जो उनकी कहानियों में आंचलिकता के साथ–साथ गँवईपन की छौंक लगाती है जिससे साधारण से साधारण पाठक भी उसके अर्थ एवं केन्द्रित भावों को सहज ही समझ लेता है। शब्द चयन के संदर्भ में तो उनके कहने ही क्या हैं।

वे शब्दों का प्रयोग इतनी बारीकी से करते हैं कि वह अपने गँवईपन में भी कलात्मकता लिए हुए रहती है। उदाहरणस्वरूप– विमली की यौवनावस्था का चिषण करते हुए वे लिखते हैं, ''पके आम के पेड़ की रखवाली जैसा कठिन काम! कितनी निगाहें हैं, पके आम के पेड़ पर!''[11]

निःसंदेह शिवमूर्ति जी की कहानियों को देखते हुए यह कहना गलत नहीं होगा कि वे एक सशक्त ग्रामीण कथाकार हैं जिन्हें पढ़ते ही सामान्य पाठक वर्ग गाँव की उस भावभूमि में पहुँच जाता है जहाँ से वह गाँवों में व्याप्त हर उस दृश्य से साक्षात्कार कर लेता है जो तत्कालीन ग्रामीण समाज में अपनी अच्छाइयों एवं बुराइयों के साथ विद्यमान है।

lUnHkZ %

1. लमही, अक्टूबर–दिसम्बर, 2012, पृ0 167
2. वही, जनवरी–मार्च, 2010, पृ0 15
3. पाखी, जून, 2012, पृ0 38
4. केसर कस्तूरी (कहानी–संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, 2008, 'अकालदण्ड', पृ0 29
5. वही, 'तिरिया चरित्तर', पृ0 120
6. वही, 'तिरिया चरित्तर', पृ0 132
7. वही, 'कसाईबाड़ा', पृ0 7
8. वही, 'सिरी उपमा जोग', पृ0 64
9. वही, 'भरतनाट्यम्', पृ0 72
10. वही, 'केसर–कस्तूर', पृ0 164
11. वही, 'तिरिया–चरित्तर', पृ0 115

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 37-41

eè;oxhZ; thou dk ;FkkFkZ % ^;gh lp g* dk lUnHkZ esa

MkW0 vfer dqekj flag dq'kokgk*

भारतीय समाज व्यवस्था में मध्यवर्ग मानव समाज के विकास की वह रीढ़ है, जिसे अनदेखा करके उपभोक्तावादी सामाजिक, आर्थिक संस्कृति को विकसित नहीं किया जा सकता। भूमंडलीकरण के बाद सामाजिक व्यवस्था के बदलते यथार्थ को अपने लेखन के माध्यम से समाज के सामने रखना साहित्यकार का पहला उत्तरदायित्व है। सुप्रसिद्ध कथाकार मन्नू भण्डारी ने 'यही सच है' कहानी के माध्यम से शहरी मध्यवर्गीय परिवार के विखराव और उपभोक्तावादी संस्कृति के चक्रव्यूह में तामझाम में फसकर विखरते मानवीय मूल्यों का यथार्थ चित्रण किया है। मध्यवर्ग को आधार बनाकर साहित्यकारों ने अनेको साहित्य की रचना किया लेकिन सर्वसम्मति से मध्यवर्ग पर कोई निश्चित परिभाषा तय नहीं कर पाये। सामान्यतः मध्यवर्ग से तात्पर्य उस वर्ग से है जो निम्नवर्ग तथा उच्चवर्ग के मध्य स्थित होता है। जब हम 'मध्यवर्ग' शब्द पर विचार करते है, तो उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं पाते। मध्यवर्ग समाज की वह श्रेणीगत इकाई है जो समाज के विशेष वर्ग को रेखांकित करती है। मध्यवर्गपर विचार करते हुए, श्यामसुन्दर घोष ने लिखा है– ''यह वर्ग समाज का वह निचला हिस्सा है जो समाज को अनुप्रस्थ ढंग से विभाजित करने पर बनता है और जिसमें कमोवेश कर एक ही रुतबे या ओहदे के लोग सम्मिलित होते हैं। जिनकी विशेष आर्थिक और सामाजिक स्थिति और प्रवृत्ति होती है जो बहुधा उनकी आय, व्यवसाय, शिक्षा और वंश परम्परा से निर्धारित होती है।''[1]

मध्यवर्ग के अन्तर्गत उद्योग और व्यापार के मंझली स्थिति के उद्यमकर्त्ता जैसे शिल्पी, छोटे दुकानदार, किसान एवं वेतनभोगी आदि को सम्मिलित किया जाता है। यह पूँजीवादी मध्यवर्गसामंती मध्यवर्ग का ही विकसित रूप है। इसको व्याख्यायित करते हुए इन्द्रनाथ मदान लिखते हैं– ''मध्यवर्ग सामंती वर्ग में व्यापारी और क्लर्कों का वर्ग है, जो पूँजीवाद के उत्थान के साथ–साथ धनी और सत्ताधारी हो ग्या है। इसे मूलरूप से मध्यवर्ग इसलिए कहा गया क्योंकि यह सामंती समाज में उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग के बीच में उठा। निम्न वर्ग तथा अभिजात वर्ग के बीच एक नया वर्ग उठ खड़ा हुआ है यह वर्ग है डॉक्टर, वकील और प्रोफेसर तथा अच्छे पदों पर नियुक्त सरकारी अपफसरों का। उच्च, केन्द्रीय और निम्न मध्यवर्ग को उनकी आय और पद के द्वारा ही समझा जा सकता है।''[2] मध्यवर्ग समाज की गतिशील इकाई है। अतः स्वरूप में परिवर्तन होते रहना स्वाभाविक है। मध्यवर्गका उदय फ्रांस और इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांतियों के परिणाम स्वरूप हुआ और धीरे–धीरे इसका विस्तार सम्पूर्ण विश्व में हुआ। चूँकि प्रत्येक देश के मध्यवर्ग का उदय वहाँ की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों के आधार पर होता है। अतः किसी एक देश का मध्यवर्ग किसी अन्य देश के मध्यवर्ग से भिन्न प्रकार का होता है। भारत में जिन परिस्थितियों में मध्यवर्ग का उदय हुआ वह अमेरिका, यूरोप आदि अन्य देशों से भिन्न थीं। यह भारत की सामंतवादी व्यवस्था में जमींदार और किसान के बीच व्यावसायिक और प्रशासनिक वर्ग के रूप में मौजूद था। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में पूँजीवाद का ही विकसित रूप मध्यवर्ग है।

भारत में आधुनिक मध्यवर्ग का उदय अंग्रेजों के आगमन के बाद हुआ। अंग्रजों ने आधुनिक मध्यवर्ग के उदय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनके आगमन के कारण भारत में सामाजिक, आर्थिक स्थितियों तथा रहन–सहन की प्रणालियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। जिसके परिणाम स्वरूप शिक्षित, प्रबन्धक तथा प्रशासनिक वर्ग का उदय हुआ जो पाश्चात्य सामाजिक मूल्यों से अत्यधिक प्रभावित हुआ। मध्यवर्ग के शिक्षितों तथा बौद्धिकों ने भारतीय समाज में व्याप्त रूढ़ियों और मान्यताओं का विरोध किया।

*पूर्व शोध छात्र, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

स्वातंत्रोत्तर भारतीय सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों में तेजी से बदलाव हुए। वैश्विक बाजारीकरण के परिणाम स्वरूप मध्यवर्ग पर अत्यधिक जिम्मेदारी का बोझ बढ़ा। अत्यन्त व्यस्तता के कारण व्यक्ति आक्रोश तथा मानसिक तनाव जैसे विकारों से ग्रस्त रहने लगा। मानसिक तनाव और उसकी थकान को मिटाने के लिए व्यक्ति को स्वरूपगत लघु तथा कम समय में अधिक मानसिक शांति पा सके, ऐसे मनोरंजन की आवश्यकता महसूस हुई। आधुनिक नवीन साहित्यिक विधाओं में 'कहानी' ने इस जरूरत को पूरा करने का दायित्व बखूबी निभाया।

आधुनिक भारत में हुए सामाजिक, आर्थिक परिवर्तनों का प्रभाव सर्वाधिक मध्यवर्ग पर पड़ा। अतः इस दौर के साहित्यकारों ने मध्यवर्गीय जीवन की त्रासदी, अकेलापन, अजनबीपन, बेरोजगारी, पारिवारिक विघटन, यौन वर्जनाओं एवं कुण्ठाओं को अपने साहित्य का प्रमुख विषय बनाया। भूमंडलीकरण के कारण शहरी मध्यवर्गपर पड़ने वाले प्रभाव को आधर बनाते हुए मन्नू भण्डारी ने 'यही सच है' कहानी की रचना की। इस कहानी के माध्यम से शहरी मध्यवर्गीय जीवनशैली में होने वाले बदलावों की तस्वीर को उकेरा गया है। वास्तव में 'यही सच है' कहानी में शहरी जीवन के मूल्यों और विचारों के टूटने और विखरने का यथार्थ चित्रण किया गया है। व्यक्ति के जीवन में जो कुछ कोमल है, मानवीय है, वह सब नष्ट हो जाने की व्यथा ही इस कहानी का केन्द्र बिन्दु है।

मन्नू भण्डारी की बहुचर्चित कहानी 'यही सच है' नई कहानी आन्दोलन की कहानी है। जितने पैनेपन के साथ उन्होंने उपन्यासों के राजनीतिक, सामाजिक यथार्थ को उभारा है उतनी ही गहराइ से 'यही सच है' में मध्यवर्गीय जीवन के पारिवारिक संबंधों के विखराव एवं मानवीय मूल्यों के टकराव को चित्रित किया है। 'यही सच है' को आधर बनाकर निर्मित की गई फिल्म 'रजनीगन्धा' की सफलता से इस कहानी की प्रसिद्ध का अन्दाजा लगया जा सकता है। मन्नू भण्डारी की लोकप्रियता का कारण उनमें अपने आस–पास की जिन्दगी के बारे में उनका दृष्टिकोण एवं व्यवस्था की गहरी समझ है। अपनी सृजनात्मक प्रेरणा का आधार बताते हुए वे लिखती हैं– ''पुरुष लेखकों की प्रेरणा तो उनकी प्रेमिकाएँ होती हैं, लेकिन मेरा वैसा कुछ नहीं। बस आस–पास की घटना व्यक्ति अथवा माहौल ही लिखने को प्रेरित करता है।''[3] मध्यवर्गीय परिवार से सम्बन्ध होने के कारण मन्नू जी को इस पृष्ठभूमि से सम्बन्धित आचार–विचार एवं सामाजिक रहन–सहन का सूक्ष्म ज्ञान था। मध्यवर्गीय समाज की अनेक समस्याओं से संघर्ष करते हुए ही उन्होंने स्वयं को स्थापित किया।

'यही सच है' कहानी के माध्यम से उन्होंने नितान्त नवीन रूप से प्रेम के स्वरूप को प्रस्तुत किया है। उन्होंने परम्परागत आदर्शों की ओट न लेकर वर्तमान चुनौती को स्वीकार करते हुए प्रेम की व्याख्या की है। इस कहानी पर विचार करते हुए वंशीधर मिश्र लिखते हैं– 'यही सच है' में यद्यपि पुराने प्रेम त्रिकोण को ही उठाया गया है लेकिन इसके पीछे दृष्टि नवीन है। इसमें प्रेम का स्वरूप नितान्त नया और आधुनिक है। शाश्वत न होकर क्षणिक, वायवी न होकर वास्तविक है और अशरीरी न होकर शारीरिक है।''[4] छायावादी प्रेम दृष्टि के विपरीत 'यही सच है' का प्रेम शहरी मध्यवर्गीय दृष्टि का प्रेम है। समाज के घेरे में चाहे वह पुरुष हो चाहे स्त्री विरोधी मनःस्थितियों के घात–प्रतिघात से ही अपने भावात्मक जीवन को जीता है।

डायरी के कुछ पन्नों के रूप में प्रस्तुत इस कहानी की नायिका दीपा के जीवन की सबसे बड़ी समस्या अपनी दिशा तय करना है। यह समस्या अकेले दीपा की ही नहीं मध्यवर्गीय जीवन जीने वाले प्रत्येक व्यक्ति की समस्या है। मध्यवर्ग के शिक्षित परिवार में दीपा अपने माता–पिता के साथ पटना में रहती थी। वहीं 18 साल की उम्र में उसे निशीथ से प्यार हो जाता है, किन्तु वह उसे ठुकरा देता है। इसी दौरान उसके पिता की मृत्यु हो जाती है। वह इस असहनीय दुःख से मुक्त भी नहीं हो पाती कि उसके भइया–भाभी अपने कर्त्तव्यों को नकारते हुए उसकी जिम्मेदारी उठाने से मना कर देते हैं। मानवीय मूल्यों एवं नैतिकता को तार–तार कर देने वाली इस घटना के सम्बन्ध में इरा आलोचना करती हुई दीपा से कहती है कि– ''भई, कमाल के लोग हैं, बहन को भी नहीं निभा सके।''[5]

पारिवारिक विघटन मध्यवर्गीय जीवन की एक अहम समस्या है। मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन में पारिवारिक रिस्ते–नाते की भावना का महत्त्व अधिक होता है। लेकिन वैश्वीकरण से उत्पन्न परिस्थितियों

ने मानव जीवन के इन मूल्यों को हासिए पर डाल दिया। सम्बन्धों में आई संवेदनहीनता से दीपा आहत हो उठती है और वह पटना से अनुसंधान करने कानपुर आ जाती है। दीपा के माध्यम से लेखिका ने मध्यवर्गीय समाज में व्याप्त अकेलापन, निराशा एवं घुटन जैसी समस्याओं को उजागर किया है। समाज में संबंधों का इस सवंदेनहीनता तक पहुँच जाना मनुष्यता के लिए खतरनाक है।

कानपुर में अनुसंधान के दौरान दीपा की मुलाकात संजय से होती है। उनका यह परिचय ही धीरे–धीरे गहरे प्रेम में तब्दील हो जाता है। किन्तु, संजय, निशीथ को लेकर कभी–कभी सशंकित हो उठता है। दीपा, संजय की मनःस्थिति समझ जाती है। वह उसे विश्वास दिलाती हुई कहती है– ''विश्वास करो संजय, तुम्हारा मेरा प्यार ही सच है, निशीथ का प्यार तो मात्र छल था, भ्रम था, झूठ था।'' आज के युग में प्रेम का स्वरूप भी बदला है। पहले की स्त्रियाँ एकनिष्ठ प्रेम करती थीं, चाहे उन्हें कितनी ही यातना या कष्ट क्यों न झेलना पड़े, किन्तु आधुनिक नारी ने इस परम्परावादी जंजीर को तोड़ा है। वह भी पुरुषों के समान एक रास्ता बन्द होने पर दूसरा रास्ता खोज लेती है। यही सच है मन्नू भण्डारी ने भी दीपा के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। निशीथ जब दीपा को ठुकरा देता है तो वह संजय को अपना जीवन साथी चुन लेती है। इतना ही नहीं वह निशीथ से घृणा करने लगती है। यद्यपि पुरुष सत्तात्मक समाज में पुरुष द्वारा नारी के प्रेम को ठुकरा देना, उसकी संवेदनाओं को तार–तार कर देना सदैव की प्रवृत्ति रही है। यहाँ अध्कितर स्त्रियाँ शोषित और कुण्ठित होकर नीरसता पूर्ण जीवन ढ़ोने को मजबूर होती हैं। किन्तु दीपा एक मध्यवर्गीय स्त्री होने के साथ शिक्षित और बौद्धिक भी है। वह अपने जीवन की दिशा खुद तय करती है। उसकी इसी विशेषता से प्रभावित होकर कमलेश्वर लिखते हैं– ''दीपा अपने नितांत प्रमाणिक संदर्भों और प्रसंगें से जुड़ी हुई है।''[7]

वैश्वीकरण की उपभोक्तावादी संस्कृति ने मानवीय मूल्यों और नैतिक आदर्शों को अपने स्थान पर नहीं रहने दिया है। परिणाम स्वरूप सामाजिक संस्कृति का ह्रास तीव्र गति से हो रहा है। 'यही सच है'– में संस्कृति का ह्रास तब दिखता है जब दीपा के लिए कलकत्ता से इन्टरव्यू का बुलावा आता है। इन्टरव्यू को लेकर दीपा डरती है तो संजय इन्टरव्यू में होने वाले भ्रष्टाचार का पर्दाफास करता हुआ कहता है– ''देखो, आजकल ये इन्टरव्यू आदि तो सब दिखावा मात्र होते हैं। वहां किसी जान–पहचान वाले से इन्फ्रलूएंस डलवाना जा कर।''[8] बढ़ते बाजारीकरण के कारण भ्रष्टाचार की जड़े अधिक मजबूत हुई हैं। आज की संस्कृति में व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा और उसके मूल्यबोध दाँव पर लगे हैं। ऐसी सामाजिक व्यवस्था के कारण ही व्यक्ति हर जगह असुरक्षित महसूस करता है।

वैश्विक स्तर पर बढ़ते व्यापारीकरण के कारण व्यक्ति का जीवन अस्त–व्यस्त हो गया। उसकी व्यस्ततायें पहले की अपेक्षा कई गुना बढ़ चुकी हैं। इस व्यापारिक चक्रव्यूह में फंसकर व्यक्ति तनावपूर्ण जीवन जीने को मजबूर हुआ है। परिणाम स्वरूप घर और ऑफिस दोनों जगह लड़ाई–झगड़ों की बढ़ोत्तरी हुई। संजय भी ऑफिस के झगड़ों से परेशान है। वह दीपा से इस दुःख को साझा करते हुए कहता है कि ''तुम्हें यह जॉब मिल जाए तो सच मैं भी अपना तबादला कलकत्ता ही करवा लूँ, हेड ऑफिस में। यहाँ की रोज की किचकिच से तो मेरा मन ऊब गया है।''[9]

मध्यवर्ग का जीवन सदैव ही संघर्षमय रहा है। उसकी बिडम्बना यह है कि जो वह स्वप्न देखता है, वह उच्चवर्गीय समाज के होते हैं, जिनके टूटकर विखरने की पूरी सम्भावना रहती है। मन्नू भण्डारी ने दीपा की इसी मनोदशा का कितना स्वाभाविक और सटीक वर्णन किया है– ''बार–बार मैं यह मान लेती हूँ कि मुझे नौकरी मिल गई और मैं संजय के साथ वहाँ रहने लगी हूँ। सच, कितनी सुन्दर कल्पना है, कितनी मादक! पर इन्टरव्यू का भय मादकता में भरे इस स्वप्न जाल को छिन्न–भिन्न कर देता है––– ।''[10]

उच्च वर्ग को पाने तथा निम्न वर्ग को त्यागने की छटपटाहट ही इस वर्ग को परिवर्तनशील, सृजनशील और संघर्षशील बनाती है। यही कारण है कि एक तरफ मध्यवर्ग बौद्धिक क्रांति और सामाजिक परिवर्तन का नेतृत्वकर्ता है तो दूसरी तरफ अपनी सुविधाओं, लाभ और सामाजिक पद–प्रतिष्ठा के प्रति सजग और सचेत भी रहता है।

भूमण्डलीकरण पूँजीवाद का ही विकसित रूप है जिसके कारण व्यक्ति की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों में बुनियादी बदलाव आया है। जिसका प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति और वर्ग पर पड़ा है।

व्यक्ति के मन में सामाजिक हैसियत की लालसा उत्पन्न हुई। उसी पद–प्रतिष्ठा को पाने की जद्दो–जहद में व्यक्ति कभी–कभी स्वयं के आत्मसम्मान तक को ठेस पहुँचा जाता है और न चाहते हुए भी मनमर्जी के कार्य कर जाता है। कुछ इसी तरह का वाक़या कलकत्ता में दीपा और निशीथ के पुनः मिलने पर होता है। दीपा निशीथ से नफरत करती है। अतः निशीथ की मदद नहीं लेना चाहती। वह उसका विरोध करना चाहती है। वह सोचती है– ''जब वह मेज के पास आकर खड़ा हुआ, तो क्यों नहीं मैंने कह दिया कि माफ कीजिए, मैं आप को पहचानती नहीं। सच मुझे उसे साफ–साफ मना कर देना चाहिए था कि मैं उसकी सूरत भी नहीं देखना चाहती – मैं उससे नफरत करती हूँ।''[11] किन्तु चाहकर भी दीपा ऐसा नहीं कर पाती। पुरानी यादों को हवा देते हए निशीथ उससे मिलता भी है और उसकी मदद भी करता है।

आधुनिक काल में नवजागरण की मध्यवर्गीय बौद्धिक प्रवृत्तियों के साथ ही व्यक्ति का जीवन संघर्ष बढ़ा है। इसका एक कारण मध्यवर्गीय आबादी में हुई बेतहासा वृद्धि है। इसमें व्यक्ति की रोजगारिक क्षमता, तो घटीं ही, साथ ही बेरोजगारों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है। मन्नू भण्डारी मध्यवर्गीय स्त्री होने के नाते इन समस्याओं से लगतार लड़ती रही हैं। अतः बेरोजगारी की समस्या पर प्रश्न उठाते हुए लिखती हैं– ''डेढ़ सौ की नौकरी तक के लिए खुद मिनिस्टर सिफ़ारिश करने पहुँच जाते हैं, फिर यह तो तीन सौ का जॉब है।''[12] मन्नू भण्डारी की इसी पृष्ठभूमि को रेखांकित करते हुए गुलाब राव हाड़े लिखते हैं– ''मन्नू कालीन समाज का मतलब उस समाज से है जिसमें मन्नू जी उत्पन्न हुई हैं, पत्नी–बड़ी तथा रचना धर्मिता का निर्वाह करते हुए, उससे जूझती रहीं और अब भी जूझ रही हैं।''[13]

भारतीय मध्यवर्ग समाज का 'अहं' सर्वोपरि होता है। संघर्षों और समस्याओं से जूझते हुए भी वह अपने स्वाभिमान के साथ समझौता नहीं करता। इन्हीं मध्यवर्गीय प्रवृत्तियों से युक्त दीपा भी अपने अहं के साथ समझौता नहीं करती। कलकत्ता में इन्टरव्यू के लिए दीपा निशीथ के साथ टैक्सी में जाती है तो टैक्सी का भाड़ा निशीथ दे देता है। लेकिन दीपा को यह बात अच्छी नहीं लग्ती। वह पश्चाताप करती हुई कहती है– ''टैक्सी के पैसे मुझे देने चाहिए थे। पर अब क्या हो सकता था? चुपचाप हम दोनों अन्दर जाते हैं। मैं अपने आप को सबकी नजरों से ऐसे बचाकर चलती हूँ, मानों मैंने कोई अपराध कर डाला हो।''[14]

भौतिकतावादी युग के व्यक्तित्व की प्रमुख प्रवृत्ति उसकी द्वन्द्वात्मकता है। आज के युग में वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति द्वन्द्व की स्थिति में रहता है किन्तु मध्यवर्गीय व्यक्ति की कल्पनाओं और वास्तविक स्थिति दोनों में अन्तर के कारण वह लगातार द्वन्द्वात्मक स्थितियों से जूझ रहा है चाहे वह सामाजिक या आर्थिक स्थिति हो, चाहे किसी पर विश्वास करने की। आज हर तरह से व्यक्ति असुरक्षित महसूस करता है। इसी प्रकार दीपा भी लगातार द्वन्द्वात्मक स्थिति से संघर्ष करती रहती है। कलकत्ता में दीपा निशीथ को अपने और संजय के प्रेम सम्बन्ध के बारे में बार–बार बताने का प्रयास करती है किन्तु वह सफल नहीं हो पाती और अपनी द्वन्द्वात्मक स्थिति पर खीझ उठती है– ''कोई है जो मुझे कचोटे डाल रहा है। क्यों नहीं मैं बता देती कि नौकरी के बाद मैं संजय से विवाह करूँगी, मैं संजय से प्रेम करती हूँ, वह भी मुझसे प्रेम करता है! वह बहुत अच्छा है, बहुत ही! वह मुझे तुम्हारी तरह धोखा नहीं देगा।''[15] किन्तु वह मौन ही रहती है कुछ भी नहीं बोल पाती। अपनी इस बेबसी पर वह लाचार दिखती है। उसकी आँखें छलछला जाती हैं किन्तु वह निशीथ का विरोध नहीं कर पाती। बल्कि निशीथ से मिलने के बाद दीपा को ऐसा लगने लगता है कि उसका सच्चा प्यार तो निशीथ है। जिस संबंध को टूटा हुआ जानकर वह भूल चुकी थी। उसकी जड़ें तो उसके हृदय की अतल गहराइयों में अभी तक जमी हुई हैं। संजय से प्रेम के सम्बन्ध के बारे में वह कहती है कि– ''निशीथ के चले जाने के बाद मेरे जीवन में ऐसी विराट शून्यता आ गई थी, एक खोखलापन आ गया था, तुमने उसकी पूर्ति की। तुम पूरक थे, मैं गलती से तुम्हें प्रियतम समझ बैठी।''[16] दीपा के रिस्ते में कभी ठहराव तो कभी विखराव नजर आता है। वह लगातार इस द्वन्द्वात्मक अवस्था से संघर्ष करती रहती है। यह सच सिर्फ दीपा का ही नहीं बल्कि हर मध्यवर्गीय व्यक्ति की यही मनःस्थिति है।

दीपा के कलकत्ता में रहने पर निशीथ उसकी हर सम्भव मदद करता है। किन्तु कलकत्ता में रहने से लेकर दीपा के कानपुर चले आने तक वह अपने और दीपा के प्रेम के सम्बन्ध में मौन ही बना रहता है। दीपा उसके प्रेम प्रस्ताव का इन्तजार करती रहती है। किन्तु, जब वह कुछ नहीं कहता तो दीपा एक बार फिर टूटकर विखर जाती है। एक बार फिर वह अकेली तनहा और अवसाद से ग्रसित हो जाती है।

उसकी 'किं कर्त्तव्य–विमूढ़ः' वाली स्थिति हो जाती है। वह समझ नहीं पाती कि– ''कहाँ जाऊँ? लगता है जैसे मेरी राहें भटक गई हैं, मंजिल खो गई है। मैं स्वयं नहीं जानती, आखिर मुझे जाना कहाँ है। फिर भी निरुद्देश्य चलती रहती हूँ।''[17] इतना तनाव, इतना विखराव, और अवसाद शायद यही मध्यवर्गीय जीवन का सच है। यही संघर्ष व्यक्ति को समाज में जीना सिखा देता है। दीपा भी सामाजिक अनुभवों से सीख चुकी है। वह अब समझ गई है कि निशीथ उसके जीवन का झूठ है और संजय सच। वह जब संजय से मिलती है तो वह उससे लिपट जाती है, और तब महसूस करती है कि– ''यह स्पर्श, यह सुख, यह क्षण ही सत्य है, वह सब झूठ था, मिथ्या था, भ्रम था।''[18] अतः मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ और 'यही सच है' का सच दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों ही समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो समाज को विकसित करने के उत्तरदायित्व के निर्वहन करते हैं।

lUnHkZ %

1. भारतीय मध्यवर्ग– श्याम सुन्दर घोष, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, सितम्बर–1982– पृ– 2
2. प्रेमचन्द : एक विवेचन– इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन दिल्ली– 1964, पृ– 170
3. कथाकार मन्नू भण्डारी– अनीता राजुरकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस– 1987
4. http//hdl- handle- net/10603/7403
5. यही सच है, एक दुनिया : समानान्तर – राजेन्द्र यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली – प्रथम संस्करण 1993, पृ– 235
6. वही– पृ– 235
7. नई कहानी की भूमिका– कमलेश्वर, अक्षर प्रकाशन दिल्ली– 1966, पृ– 18
8. एक दुनिया समान्तर – राजेन्द्र यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण – 1993, पृ– 233
9. वही पृ– 232–233,
10. वही पृ– 235,
11. वही पृ– 237
12. एक दुनिया समानान्तर– राजेन्द्र यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण – 1993, पृ– 238
13. मन्नू भण्डारी का कथा साहित्य– गुलाब राव हाड़े, विद्या बिहार कानपुर– 1987, पृ– 165,
14. वही, पृ– 240,
15. वही, पृ– 242,
16. वही, पृ– 245,
17. वही, पृ– 247,
18. वही, पृ– 248

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 42-45

eS=s;h iq"ik dh dgkfu;ksa esa L=h

lkftnk [kkrwu*

मैत्रेयी पुष्पा वर्तमान युग की एक सशक्त लेखिका हैं। उन्होंने हिन्दी साहित्य को जितने सशक्त उपन्यास दिये हैं उतनी ही सशक्त कहानियाँ भी। चाहे उपन्यास हो या कहानी मैत्रेयी पुष्पा का स्त्री विमर्श के कोष को समृद्ध बनाने में अद्वितीय योगदान है। अपनी कहानियों के माध्यम से भी वह इसी आधी दुनिया को उसके मनुष्य होने का दर्जा दिलाने की लड़ाई लड़ती हैं। स्त्री विमर्श ने हजारों वर्षों से चले आ रहे पितृसत्तात्मक विमर्श सिद्धान्तों, प्रतिमानों को चुनौती दी है, क्योंकि वे सिद्धान्त पुरूष द्वारा निर्मित है। स्त्री विमर्श ने ही पितृसत्तात्मक सिद्धान्तों में निहित उन प्रचंड अन्तर्विरोधों, विरोधाभासों को सामने रखा है जो स्त्री विरोधी हैं। पुरूष कभी भी स्त्री विमर्श को खुले मन से स्वीकृति नहीं देता। स्त्री विमर्श सीधे लेखिकाओं के ज्वलन्त अनुभवों के द्वारा ही सामने आ सका है।

देखा जाय तो पारिवारिक स्तर पर स्त्री का शोषण उसके जन्म से अथवा जन्म के पूर्व से ही कन्या भ्रूण हत्या के माध्यम से शुरू हो जाता है। स्त्री को परिवार के सन्तुलन के लिए बेटी, बहन, माता, पत्नी, बहु आदि कई रूपों में अपने अनेक दायित्वों का निर्वहन करते हुए उसे अपने सुखों की आहुति देनी पड़ती है। दूसरों की सुख सुविधाओं की चिंता करते हुए वह स्वयं शोषण का शिकार होती रहती है। उसकी इच्छाओं और मान्यताओं को भी उसी तरह दोयम दर्जा ही मिलता है।

मैत्रेयी पुष्पा की कहानी 'तुम किसी हो बिन्नी?' कन्या भ्रूण हत्या से सम्बन्धित कहानी है। बिन्नी की माँ आरती को पुत्र जन्म से लगाव है। पढ़ी–लिखी तथा शहरी वातावरण में जीवन निर्वाह करने वाली आधुनिक स्त्री आरती अपने वैचारिक स्तर पर परम्परागत ही है। पुत्र प्राप्ति के मोह ने उसे इतना अन्धा बना दिया है कि वह अपनी कितनी ही बेटियों को भ्रूण में ही खत्म कर चुकी है'' क्या हुआ बुआ?''...... ''पेट में ही मार डाला तेरी बहन को और क्या हुआ। एक बार नहीं, दूसरी बार, तीसरी बार, तेरी बहनें....।''[1]

मैत्रेयी अपनी कहानियों के माध्यम से यह स्थिति व्यक्त करने से चूकती नहीं कि स्त्री जन्म को हेय मानने वाली स्त्रियों की संख्या भी कम नहीं है। हम स्त्री मुक्ति की बात करते हैं मगर परम्परा की पोषक स्त्रियाँ ही स्त्री को उभरने नहीं देतीं।

'बेटी' कहानी में लेखिका ने बड़े ही मार्मिक ढंग से बेटा–बेटी को लेकर किये जाने वाले अन्याय का चित्रण किया है। 'मुन्नी' के माता–पिता तो पाँच बेटों की पढ़ाई के खर्च का निर्वहन तो आराम से कर लेते हैं लेकिन अपनी बेटी मुन्नी को पढ़ाने के लिए उनके घर में अकाल पड़ा है। मुन्नी भी इस बात से और शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे इस भेदभाव से अनभिज्ञ नहीं है। इसलिए वह इसका विरोध भी करती है, परन्तु उसकी माँ उसे दो वाक्यों में ही चुप करा देती है। ''चुप होती है कि नहीं? बहुत जबान चल गयी है तेरी। तू लड़कों की बराबरी करती है। बेटे तो बुढ़ापे की लाठी है हमारी, हमें सहारा देंगे। तू पराये घर का दलिद्दर तेरी कमाई नहीं खानी हमें.... कह दिया कान खोलकर सुन ले।[2] माता–पिता बेटों की उन्नति के लिए कर्जा तक लेने से नहीं चूकते लेकिन आर्थिक स्थिति से सम्पन्न होने के बावजूद वह बेटी को पढ़ाना नहीं चाहते।

स्त्री को प्रत्येक स्थिति में समझौता करने का पहला पाठ परिवार वाले ही सीखाते हैं। एक स्त्री को ही कभी ससुराल वालों की मान मर्यादा के लिए दबना पड़ता है तो कभी मायके वालों की प्रतिष्ठा के लिए। सबकी प्रतिष्ठा का निर्वाह करते हुए वह दम तोड़े तो वह आदर्श भारतीय नारी कहलाती है। लेकिन जब कोई विवाहित स्त्री ससुराल वालों के अन्याय से पीड़ित होकर घर वापस आती है तो परिवार

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

के अन्य सदस्य यहाँ तक कि उसके माता–पिता भी उसे समझौता करके वापस लौटने के लिए बाध्य करते हैं। इस स्थिति को मैत्रेयी पुष्पा की कहानी 'रास' में देखा जा सकता है। ससुर के व्यभिचार से क्रोधित होकर जैमन्ती कभी भी ससुराल न जाने का इरादा करके मायके वापस आ जाती है और वहाँ की एक–एक बात अपनी माँ को बता देती है। सारी बातें सुनकर माँ तो पहले ससुर को हजारों गालियाँ देती है लेकिन फिर उससे भी तीखी बात जैमन्ती को समझौता करने के लिए सुनाती है ''रंडी वो ही गीत बचा था। जवानी दिखा रही थी। वो मरद–मानस की जात, रोक बाँध तो करता ही। ऊपर से सतवंती बनने का सौक चढ़ा था तुझे। अरे, घर की बात घर में ही दब जाती। भरी थाली में लात मारकर आई है हमारे बुढ़ापे में खाक डालने। रमला के संग चली जा सुधी। चाचा है माफी माँग लेगे।''[3] परम्परागत विचारों वाली माँ को अपनी प्रतिष्ठा की चिंता है, पुरूषसत्तात्मक व्यवस्था की चिंता है जिसके लिए वह स्वयं भी दबती है और बेटी को भी दबने और समझौता करने की सीख देती है।

स्त्री जाति का बहुत बड़ा वर्ग दाम्पत्य शोषण एवं विवाहोत्तर पारिवारिक अन्याय एवं अत्याचार का शिकार है। वस्तुतः पुरूष के बिना स्त्री और स्त्री के बिना पुरूष की कल्पना अधूरी है। पत्नी गृहस्थी का मेरूदण्ड है लेकिन पुरूष अपनी पत्नी को केवल पैर की जूती ही मानता है। और यदि उनमें सन्तानहीनता का दोष हो तब तो उसकी स्थिति और भी दयनीय हो जाती है। यदि स्त्री किसी कारणवश सन्तान को जन्म नहीं दे पाती तो फिर पूरा परिवार उसका अपमान करता है, उसके दाम्पत्य जीवन में दरार आ जाती है पति पूरा दोष स्त्री को देते हुए उसके साथ अमानवीय व्यवहार करने लगता है। 'भँवर' कहानी में इस स्थिति को देखा जा सकता है। विरमा का पति केशव शराब के नशे में रोज उसकी पिटाई करता है क्योंकि वह दूसरे बच्चे को जन्म नहीं दे पायी। वह बाँझ नहीं थी उसने एक बालक को जन्म दिया था लेकिन न जाने उसे कौन सा रोग लगा था और दूसरी सन्तान न हो पाने के कारण वह हमेशा उसे मारता–पीटता और भला–बुरा कहता– ''महीने भर का होकर ही चला गया और मिटी कोख पर पत्थर सरका गया कि दुबारा अँकुआ न फूट सका।[4] कई बार तो विरमा की कोई गलती न होते हुए भी उसका पति उसे पीटता है। विरमा याद करती है ''सोचा न समझा, बे–रोक पिट डाल। लात घूँसे बरसाता रहा। देखा ही नहीं कि ठोर–कुठौर कहाँ चोट लगेगी। वह जमीन पर पड़ी फड़फड़ाती रही–पंख नुची गौरैया सी। बहुत तड़पी थी। रोती कलपती रही, पर बैरी का मन पसीजा ही कहाँ? मार–पीटकर बाहर निकल गया।''[5]

पितृसत्तात्मक समाज में कदम–कदम पर ऐसे तीखे विरोधाभास मौजूद हैं जिनके कारण पुरूष वर्चस्व समाज स्त्रियों के प्रति पक्षपातपूर्ण हिंसक एवं उत्पीड़नकारी ही रहा है। हमारा समाज स्त्रियों के लिए विवाह अत्यन्त आवश्यक मानता है। समाज का हर परिवार अपने पुत्र को अच्छी से अच्छी शिक्षा देने के लिए चिन्तित रहता है और वहीं बेटी के विवाह को ही अपना लक्ष्य समझता है। इस सन्दर्भ में मैत्रेयी पुष्पा के विचार हैं– ''ऐसा विधान पुरूषों ने पुरूषों के लिए नहीं बनाया। उसको अपनी अविवाहित देह अपराध नहीं लगती। वह अनब्याहा रहकर तिरस्कार नहीं आदर पाता है। ब्रह्मचारी कहलाता, पूज्य हो जाता है। कुँआरे रहने से उसके आत्मविश्वास को लोग श्रद्धा से देखते है। वह सांसारिकता से निकलकर सार्थकता खोजने का निमित्त माना जाता है। लोग गर्व से देखते हुए उस पुरूष की ओर इशारा करते हैं उसने विवाह नहीं किया, जबकि अविवाहित स्त्री की ओर देखते ही दया की धारा खोल देते हैं चच, च्च, बेचारी का विवाह नहीं हो गया।''[6]

विवाह प्रथा के सन्दर्भ में रमणिका गुप्ता के विचार हैं ''औरत को गुलाम बनाने की मुहिम का सफल पड़ाव है विवाह की प्रथा। तभी से औरत में हीन भावना, पति के प्रति समर्पण, उसके प्रति वफादारी स्वयं को दासी और उसे स्वामी मानने की भावना भर दी गई और इन सब मर्यादाओं के चाहे–अनचाहे उल्लंघन को ही स्त्री का अपराध मानना शुरू कर दिया गया।''[7]

हमारे समाज में कई माता–पिता इस विवाह विधान को पूरा करने के लिए अपनी बेटी का जीवन स्वाहा कर डालते हैं। लड़की का विवाह तुरन्त करना माता–पिता अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं किन्तु उचित पात्र खोजने में कभी तत्परता नहीं दिखाते। पिता या घर का अन्य मुखिया लड़की के संरक्षण का भार दूसरों पर सौंपकर मुक्त होना चाहता है, जिसके लिए वह किसी से भी उसका विवाह कर देते हैं।

'केतकी' कहानी में केतकी के पिता अपनी अति सुन्दर बेटी का विवाह तीन बच्चों के पिता विधुर श्रीगोपाल से करना चाहते हैं किन्तु अपनी बेटी की खुशियों के लिए उसे अन्तर्जातीय विवाह करने की अनुमति नहीं देते बल्कि उस विधुर के पास अपनी बेटी का रिश्ता भेजते हैं ''हमारे समाज में पुरूष चाहे जितनी उम्र लाँघ जाये, पत्नी के रूप में कुँआरी कन्या उसे मिल ही जाती है। केतकी, का विवाह प्रस्ताव भी पण्डित जी के लिए आया था। एक तो अति दरिद्र में जन्मी थी केतकी ऊपर से अपने ही बालसखा चन्दन के प्रति समीपता उसे बदनाम किये दे रही थी। जातियों की रूढ़ियों से जकड़ा हमारा समाज हरिजन युवक चन्दन से विवाह की अनुमति केतकी को कभी नहीं दे सकता था।....... इसलिए डरे–सहमे केतकी के पिता अपनी रूपसी बेटी का रिश्ता विधुर श्रीगोपाल के घर ले जा पहुँचे।''[8]

बेटी के विवाह की चिन्ता से ग्रस्त 'गोमा हँसती है' कहानी के विपन्न माँ बाप गोमा का विवाह, कुरूप किड्डा से कर देते हैं। बेटी का विवाह करते वक्त वह यह नहीं देखते कि लड़का लायक है या नहीं, कुरूप है या सुन्दर है, अमीर है या गरीब। उनका मात्र एक लक्ष्य यही रहता है कि बेटी का ब्याह कर बोझ हल्का करें। उनकी इसी मानसिकता को गोमा हँसती है कहानी की कलबत्तिया चाची के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। ''मैं मानती हूँ कि बेमेल रिश्ते की बात चलाई है मैंने पर बैयरवानी हूँ, करमजली के लिए इतना तो कह ही सकती हूँ कि इस खूँटा बँध जाय। क्या पता कौन कसाई मोल देकर हाँक ले जायेगा? किड्डा जैसा हीरा कहाँ मिलेगा?''[9] आर्थिक विपन्नता के कारण रूपवती गोमा का विवाह कुरूप और एक आँख वाले किड्डा के साथ कर दिया जाता है। भ्रष्ट समाज व्यवस्था की इस विडम्बना का मैत्रेयी पुष्पा ने बड़ा ही यथार्थ चित्र अपनी कहानियों के माध्यम से चित्रित किया है।

दहेज प्रथा की समस्या को 'साँप सीढ़ी' कहानी में दर्शाया गया है। इस कहानी में रज्जो के पिता दाऊ अपनी बेटी को इसलिए सुशिक्षित करते हैं ताकि पढ़े–लिखे लड़के के साथ विवाह करेंगे। वह सोचते हैं कि पढ़ा–लिखा लड़का सामाजिक रूढ़ियों का विरोध करेगा वह सोचते है कि आखिर ऐसी प्रथा है क्यों ''चार अक्षर पढ़ी–बेटी के लिए पढ़ा लिखा लड़का और अपने ही बराबर खेती देखें तो नकद दहेज का रेट दो लाख। दाऊ की समझ में न आता कि लोग बाग लाखों रूपया माँगते क्यों हैं? माँगकर धनी होना चाहते हैं, या उनकी गुजर बसर नहीं चलती? या कि बेटी के पिता के लिए यह कड़ी सजा जरूरी है कि कोई बेटी पैदा करना न चाहे फिर....।[10] वे अपनी बेटी के लए इस प्रथा का विरोध करते हुए एक परिवार ढूँढ भी लेते हैं, लेकिन फिर विवाह के अवसर पर उन्हें धोखा मिलता है। रज्जों का ससुर ऐन वक्त पर उनके दरवाजे पर नंगा हो जाता है और कहने लगा ''एक लाख के बिना भाँवर नहीं पड़ेगी और पचास हजार के बिना विदा नहीं होगी।''[11]

भारतीय समाज में वैधव्य की स्थिति एक अभिशाप है। समाज ऐसी स्त्रियों को किसी भी प्रकार के अधिकार नहीं देता। विधवा स्त्रियों का जीवन दुःख करूणा तथा यातनामय बन जाता है। पति की मृत्यु, स्त्री को नितान्त असहाय और पराश्रित बना देती है। 'पगला गई है भागवती' कहानी में मैत्रेयी पुष्पा ने एक विधवा के अभिशप्त जीवन का चित्रण बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है। भागवती का पति उसके बचपन में ही मर गया था और उसको विस्मित देखकर उसे किसी जानने वाले ने उसे थप्पड़ मारा और कहा ''आँसू काढ़ करमजली। आदमी नहीं रहै और तें उजबक सी हेर रही...। तब से आज तक उसका तन, उनका मन, सम्पूर्ण अस्तित्व विधवा है। होस–उमंग पहनना, ओढ़ना, सजना सँवरना उसके लिए वर्जित है। औरतें उसे सगुन–सात, मंगल–कार्यों से बचाती है। सुबह–सबेरे उसका किसी के आगे पड़ जाना अशुभ है। यह बातें भागो जानती है। वह स्वयं भी देख बचकर निकलती है।''[12]

एक स्त्री अपना आर्थिक और सामाजिक अधिकार तो पति की मृत्यु के साथ ही खो देती है और विधवा हो जाने के बाद तो अपनी सन्तान पर भी उसका कोई अधिकार नहीं रह जाता। वह सिर्फ घर की एक नौकरानी बन कर रह जाती है। 'बहेलिये' कहानी की गिरिजा की माँ विधवा होने के कारण अपनी बेटियों के लिए एक अच्छा वर चुनने का अधिकार भी खो देती है एवं गिरिजा और उसकी माँ पर उसका चाचा अत्याचार ही करता रहता है। लेकिन माँ के द्वारा विरोध किये जाने पर भी घर वाले अनसुनी ही कर जाते हैं। ''पर इतनी सोच कि चाचा भतीजी का ब्याह तो कर रहा है। तू अकेली रांड विधवा कैसे ब्याह करेगी? मरद की उमर नहीं देखी जाती री।''[13]

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री केवल पुरूष के शोषण का शिकार नहीं होती बल्कि इस व्यवस्था की पोषक स्त्री भी उसके साथ अमानवीय अत्याचार करती है। स्त्री का शोषण करने वाली कभी स्वयं उसकी जननी, सास, जेठानी, भाभी, ननद आदि ही होती है। 'तुम कैसी हो बिन्नी?' कहानी में एक माँ द्वारा उसकी पुत्री पर किये शोषण की कहानी है। आरती पुत्र प्राप्ति की लालसा में इतनी अंधी हो गयी कि अपनी तीसरी जन्मी पुत्री को कभी अपना दूध भी नहीं पिलाया और छोटी–छोटी गलती पर भी हमेशा उसे मारती पीटती रहती ''ढीठ कहीं की। कंजरिया! थप्पड़ों की दर्दीली बौछार! मम्मी के हाथ जब चोट से झनझना उठे तो बिन्नी की नरम बाँह पर उन्होंने मांस काटकर ले जाने वाली चिकोटी गाढ़ दी.... चीखों भरा रूदन घर में फैल गया पड़ोसी भी जान गये वही तीसरी पिट रही होगी।[14]

'बारहवीं रात' कहानी की सीता अपनी सास के अत्याचार के कारण ही मर जाती है। सास के द्वारा किये गये अत्याचार का चित्रण मैत्रेयी पुष्पा ने ससुर के माध्यम से प्रस्तुत किया है। ''बहू की खातीर दो पइसा खर्च कर दिये तो आसमान उठा लिया सिर पर! कि तुम माल–मिठाई उड़वा रहे हो बहू को, कि दूध अस्नान करा रहे हो। ऐसा किया होता तो अभागिन का गर्भ न गिरता। पहला गर्भ खण्डित हुआ और वे उसे भरपेट रोटी तक नहीं दे रही थी, साली कर्कशा!''[15]

इस पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री का शोषण और उसके साथ अत्याचार सिर्फ पुरूष ही नहीं करता बल्कि स्त्री भी उसी प्रकार उसके साथ अन्याय करती है जैसा कि एक पुरूष। अगर गौर किया जाय तो यह तथ्य सामने आता है कि मैत्रेयी पुष्पा ने भी स्त्री शोषण के लिए केवल पुरूष को ही नहीं बल्कि कुछ हद तक स्त्री को भी जिम्मेदार माना है। जब तक स्त्री स्वयं इस खोखली व्यवस्था की मान्यताओं से मुक्त नहीं होगी तब तक स्त्री की मुक्ति प्रश्नचिह्न बनकर ही रहेगी और स्त्री की इसी तरह उपेक्षा होती रहेगी।

lUnHkZ %

1. मैत्रेयी पुष्पा – ललमनियाँ, 'तुम किसकी हो बिन्नी?' पृष्ठ – 122
2. मैत्रेयी पुष्पा – चिन्हार, पृष्ठ 21
3. मैत्रेयी पुष्पा – गोमा हँसती है, पृष्ठ 129
4. मैत्रेयी पुष्पा – चिन्हार (भँवर), पृष्ठ 102
5. मैत्रेयी पुष्पा – वही, पृ0 98
6. मैत्रेयी पुष्पा – सुनो मालिक सुनो, पृष्ठ – 41
7. रमणिका गुप्ता – स्त्री विमर्शः कलम और कुदाल के बहाने, पृष्ठ 45
8. मैत्रेयी पुष्पा – चिन्हार, (केतकी), पृष्ठ 126
9. मैत्रेयी पुष्पा – गोमा हँसती है, पृष्ठ 153–154
10. मैत्रेयी पुष्पा – गोमा हँसती है (साँप सीढ़ी), पृष्ठ 82
11. मैत्रेयी पुष्पा – वही, पृष्ठ 82
12. मैत्रेयी पुष्पा – ललमनियाँ (पगला गयी है भागवती), पृष्ठ 97
13. मैत्रेयी पुष्पा – चिन्हार (बहेलिये), पृष्ठ 37
14. मैत्रेयी पुष्पा – ललमनियाँ (तुम किसको हो बिन्नी?) पृष्ठ 138
15. मैत्रेयी पुष्पा – गोमा हँसती है (बारहवीं रात), पृष्ठ 140

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 46-49

dnkjukFk vxoky dh dforkvk e 0;Dr xkeh.k lonuk

iue flg*

भारतीय समाज मूलतः कृषि समाज है और यहाँ की आबादी का अधिकांश भाग खेती पर निर्भर करता है। यहां की संस्कृति, नीति, संस्कार, व आम चेतना मुख्यतः कृषि समाज की है। किसानों को भारत की राष्ट्रीय सांस्कृतिक विरासत का असली हकदार कहना गलत न होगा। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। औद्योगीकरण, शहरीकरण, बाजारवाद और भूमंडलीकरण के भँवर तथा नवउदारवादी सरकारी नीतियों ने किसान को अप्रतिष्ठित एवं दोयम दर्जे पर पहुँचा दिया है। आज हमारे देश में सबसे ज्यादा खराब स्थिति किसानों की ही है।

साहित्यकार सामाजिक यथार्थ का ही पुनर्सृजन करता है, इसलिए किसी न किसी रूप में साहित्य में सामाजिक यथार्थ उपस्थित रहा है। भारतीय किसानों की जो दयनीय दशा है, उसका भी अत्यंत सजीव एवं यथार्थ चित्रण हिन्दी साहित्य में उपलब्ध है। हिंदी में किसान जीवन की कविता की परम्परा पुरानी है। कबीर, सूर, तुलसी से लेकर लगभग हर युग के कवियों ने किसानी संवेदना की कविताएं लिखी है।

केन के कवि केदार हिंदी के उन कवियों में से हैं जिन्हें बनावट छू भी नहीं पाई है। व्यक्तित्व और कविता दोनों के संदर्भ में बनावटीपन ने रंचमात्र भी उनका स्पर्श नहीं किया है। स्वयं को सूर, तुलसी, कबीर की परंपरा से जोड़ते हुए जब वे अपने को जीवन का भाष्यकार कहते हैं तो व संयोगिक नहीं है। वहाँ उनका स्वभाव मिलता है। उनकी कविता इसी स्वभाव का विस्तार है जिसके एक सिरे पर जन और जीवन है तो दूसरे सिरे पर वह सब जो जनजीवन को प्रभावित करता है। वे स्वयं की तुलना एक किसान से करते हैं और कहते हैं– 'कविता को मैंने जीवन जोतकर किसान की तरह बोया और काटा है।'

केदार जी गहरी जीवन–आस्था के कवि हैं। संपूर्ण जीवन उनकी काव्य भूमि है। व्यक्ति, समाज, नगर, गाँव, प्रकृति, पुरुष, सत्, असत्, अपना–पराया, सब कुछ कवि मन को प्रभावित करता है। केदार जी ने सचेत किसान एवं श्रमजीवियों के सुख–दुःख, आशा–निराशा, अभाव–पीड़ा को काव्य का विषय बनाया है।

केदरनाथ अग्रवाल किसानों के प्रति प्रतिबद्ध कवि हैं। वे एक ऐसे जनवादी कवि हैं जो जनवाद के आधार पर जनता की भूमिका तय करते हैं। उनका जनता पर अटूट विश्वास है। जन सामान्य के यथार्थ की सबसे प्रखर अभिव्यक्ति कवि ने अपने कविता में मेहनतकश जनता के माध्यम से किया है। खासकर किसान जीवन की सभी झांकियों के वास्तविक चित्र उनकी कविताओं में देखे जा सकते है। किसान उनकी कविताओं में अपनी जीवंत दुनिया के साथ मौजूद है।

किसान जीवन के कवि केदार जी ने ग्रामीण जीवन एवं कृषक जीवन के यथार्थ को पूरी जीवंतता के साथ प्रस्तुत किया है। 'युग की गंगा' में गांव की समस्याओं, अव्यवस्थाओं पर कवि ने प्रकाश डाला है–

^mlh ijkru pDdh dk dd'k ekVk Loj @vU/kdkj d vUrukn lk lu iMrk g@xk;] cy] HkM] cdjh] i'kvk d ny e@e[k eu";k dk lekt [kk;k jgrk g@lM /kj dh xkcj dh cnc l ncdj@egd ftnxh d xyk dh ej tkrh g @------] Øk/k rdjkj }"k l dkrj@vkt xke dh ncy /kjrh ?kcjkrh gA**1

किसान का सम्पूर्ण जीवन उसकी समस्त आशाएं–आकांक्षाएँ, उसके सुख–दुःख, सब कुछ उसकी धरती से ही जुड़े रहते हैं। वे रात–दिन एक करके अपनी अथक परिश्रम से सर्दी, गर्मी एवं बरसात की

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

परवाह किये बिना धरती को उपजाऊ बनाते हैं तथा अपने परिवार के साथ–साथ सम्पूर्ण देश के लिये भी फसल उपजाते हैं। इसलिए केदार इस धरती पर सबसे ज्यादा अधिकार किसान का ही मानते हैं, वही धरती के सच्चे हकदार वह लिखते हैं कि–

^^;g /kjrh gS ml fdlku dh@tks feV~Vh dk iq.k ikj[kh@tks feV~Vh ds lax lkFk gh@ridj] xydj@thdj] ejdj@[kik jgk gS] thou viuk]@ns[k jgk gS feV~Vh esa lkus dk lius------------@;g /kjrh gS ml fdlku dhAA**2

किसान निःस्वार्थ भाव से सम्पूर्ण देश के लिए अन्न उपजाता है पर समाज द्वारा सबसे अधिक ठगा जाता है। केदार जी भारत के इसी किसान पर कविता लिखते हुए इन्हें असली भारत पुत्र कहते हैं। इतने शोषण, मेहनत एवं ठगे जाने के बावजूद उनमें सच्चापन बरकरार रहता है, केदार जी को इन किसानों पर बहुत गर्व है वे भारत के अभिमान हैं–

^^esa rqe ij dfork fy[krk gw¡@dfo;ksa esa rqedks ydj vkxs c<+rk gw¡@vly Hkkjr iq= rqEgha gks@vly Hkkjr iq= rqEgha gks@esa dgrk gw¡A^^3

केदार जी की मूल संवेदना ग्राम्य जन की है, उसमें किसान भी है, श्रमिक भी हैं। नेता पूँजीपति और महाजन की तिकड़ी के विरूद्ध किसान और श्रमिक वर्ग का जीवन उन्हें गहराई तक छू जाता है। गाँव का महाजन कितना छल–कपट वाला होता है जो अपनी चिकनी चुपड़ी मीठी–मीठी बातों से मजबूर गरीब किसान को अपने चंगुल में फंसा लेता है। एक बार जो किसान उसके कर्ज जाल में फँसता है तो फँसता ही चला जाता है। कई पीढ़ी तक वह ऋण से उबर नहीं पाता। निम्नांकित कविता में केदार जी ने इस विषय को अत्यंत सजीवता के साथ प्रस्तुत किया हैं–

^^og lekt ds =Lr {k= dk eLr egktu@ukxeq[kh iq:"d lEifŸk dh Fkyh [kksys thHk fudkys ckr cukrk d:.kk ?kksys@C;kt Lrqfr ls ckrs jgk gS :lk;k iqlk@lfn;ksa igys ls gkrk vk;k gS ,slk@lMs+ yiVs gS dtZ dh xkeh.kksa dks@efDr vHkh rd ugha feyh gS bu nkuksa dkA^^4

जिस महाजन के स्वभाव को बताने के लिए मुंशी प्रेमचंद जी समूचा उपन्यास लिख डालते हैं। केदार जी उक्त एक बिंब में कह डालते हैं। केदार जी को प्रेमचंद की परंपरा का रचनाकार माना जाता हैं। जिनकी सहृदयता गद्य साहित्य में प्रेमचंद जी ने किसानों के प्रति दिखाई है लगभग उतनी ही सहृदयता केदार जी के काव्य में किसानों के प्रति दिखायी देती है।

बाँदा केदार जी का कार्यक्षेत्र रहा है। वहाँ के लोगों की गरीबी, लाचारी को उन्होंने बहुत करीब से देखा है। लाचार ग्रामीणों को न्यायालय में न्याय नहीं मिल पाता। ग्रामीणों का यह दर्द केदार जी कविताओं में व्यक्त है–

^^;g cka¡nk gS@lqn[kksj] vk<+r okyksa dh bl uxjh esa @U;k; ;gka ij vU;k;ksa ij fot; u ikrk@lR; rjy gksdj dkjk vlR; jg tkrk@U;k;ky; dh M;ks<+h ij ncdj ej tkrkA**5

केदार जी की कविता को हम भारतीय किसान की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति कह सकते है। उनका यह किसान यदि एक ओर हट्टे–कट्टे हाड़ो वाला, चौड़ी–चकली छाती वाला है तो दूसरी और पैतृक सम्पत्ति के रूप में घर के मलबे, टूटी खटिया, परती पड़ी हुई थोड़ी सी भूमि, दरकी गोरसी जैसे नगण्य वस्तुओं का मालिक है। मसलन–

^^tc cki ejk rc ;g ik;k@Hkw[kk fdlku ds csVs u@?kj dk eyck] VwVh [kfV;k dqN gkFk Hkwfe og Hkh ijrh@cl ;gh ugha tks Hkw[k feyh@lw[kh xqUuh cki ls vf/kd feyh@vc iqV [kyk, fQjrk gS@pkSMk esa g cks;s fQjrk gSA**6

केदार औद्योगिक नगर की बुनियाद गाँव के महाजन की हकीकत, ऊब और विघटन, भूखे किसान के बेटे की पैतृक सम्पत्ति और बुदेलखंड के दैनंदिन जीवन का नक्शा बहुत अच्छी तरह पहचानते है।

केदार जी किसान का ऐसा सजीव और यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं जो केदार जी अपनी खरी पहचान का नमूना है। केदार जी ने कोरस शैली में बड़े ही शानदार गीत लिखे हैं। उसमें भी जीवन किसान की वास्तविक छवि अंकित है–

^^gekj gkFk e gy g@gekj gkFk e cy g@fd ge c t j dk rkMx@fcuk rkM u NkMx**A[7]

केदार जी मेहनतकश वर्ग के पक्षधर हैं। उनके प्रति उनकी विशेष सहानुभूति है–

^^NkV gkFk@fd lkuh djr@cht u;k ck;k djr gA @vku oky oHko d fnu@mxyh l Vk;k djr gA**[8]

केदार ग्रामीण जीवन के दुःख–दर्द को भलीभाँति जानते हैं। ग्रामीण महिलाएँ किस प्रकार जीवन भर गरीबी का दंश झेलती है। इसका मार्मिक चित्रण इस कविता में देखने को मिलता है–

^^ink gb xjhch e]@ikyh xb xjhck e]@;kgh xb xjhch e]@ekrk gb xjhch e@gfl;k fy;k xjhch e@[kjih xgh xjhch e@Nkyh ?kkl xjhch e@c<<h gb xjhch e@VVh jh< xjhch l]@vk/kh mBh xjhch l@nhid c>k xjhch l!!![9]

तुलसीदास ने कलियुग के विपक्ष में जिस रामराज्य की कल्पना की थी, उस रामराज्य में केदार जी ने आग लगने की बात की है। तुलसी रामराज्य की जो छवि प्रस्तुत करते है वह रामराज्य कभी आया ही नहीं। इसके विपरीत एक ऐसा राज्य मिला जहाँ मेहनत करनेवाले किसान भूख से तड़पते रहते है और किसानों का रक्त चूसनेवाले जमींदार, मिल मालिक खा–खा कर पेट बड़ा करते जा रहे है। गरीब का शोषण कर अमीर और अमीर बनता जा रहा है। ऐसे रामराज्य में केदार जी आग लगाने की बात करते है–

^^vkx yx bl jke&jkt e@<kyd e<rh g vehj dh@peMh ctrh g xjhc dh^^[10]

जनवादी कवि होने के कारण केदारनाथ अग्रवाल ने अपनी कविताओं में ग्रामीण प्रकृति को अधिक महत्व दिया है, जिनमें सर्वत्र किसान विद्यमान है। उन्होंने अपनी कविताओं में प्रकृति का साक्षात्कार किसान जीवन से जुड़ी हुई विविध संवेदनाओं से किया है। यह प्रकृति किसान के श्रम से ही परिवर्तित एवं परिवर्द्धित होता है। प्रकृति में वसंत का आगमन भी किसान द्वारा बोई गई सरसों के पीले फूलों के माध्यम से व्यक्त होता है। गुलाबी रंग के फूलों से सजे मुरैठा की तरह दिखने वाला चने का पौधा किसान के श्रम की गरिमा को उद्घोषित करता है। चौड़े खेतों में लाखों की अगणित संख्या में गेहूँ सर उठाकर फागुन की हवा के झोंके से बिना डरे डटकर लहराता है। ये सब किसान के पसीने से सिंचित है। केदारनाथ अग्रवाल की कई कविताओं में किसान का श्रम एवं कर्म अत्यन्त जीवन्त रूप में प्रतिबिम्बित होता है। 'कटुई का गीत', खेतिहार', छोटे हाथ, किसान से, आदि उनकी कुछ ऐसी ही कविताएँ है। प्रकृति की सुन्दरता किसानों के श्रम एवं कर्म से ही बरकरार है।

खेत ओर किसान एक ही सिक्के के दो पहलू है। एक के बिना दूसरे का कोई मोल नहीं है। खेत को उपजाऊ बनाने वाला किसान होता है। और किसान के जीविकोपार्जन का मूल आधार खेत ही है। केदार जी ने खेत और किसान का सम्बन्ध राधा और कृष्ण के जैसा माना है। वह अपने एक कविता में खेत को राधा के रूप में और किसान को कृष्ण के रूप में प्रतिष्ठित किया है–

^^vkleku dh vk<uh vk<@/kkuh igu@Qly ?k?kfj;k@jk/kk cudj /kjrh ukph@ukpk g le[k@d"kd lokfj;k^^[11]

सरकार किसानों के लिए न जाने कितनी विकास–योजनायें बनाती आ रही हैं, पर सच्चाई तो यह है कि वे सारी नीतियाँ न तो किसानों की जमीनी हकीकत से जुड़ी है और न उनकी बुनियादी समस्याओं से। ये सब राजनीतिक हथियार है, जो बनते तो है किसानें के लिए पर उनका फायदा राजनीतिक दल उठाते हैं जिसे दिखाकर वोट बटोरा जाता है। वास्तव में किसानों का भला कोई नहीं चाहता। पहले जमींदार उन्हें लूटते थे अब योजनाओं की आड़ में चेहरे बदलती सरकारे उन्हें लूट रहे है। इसीलिए भारतीय किसान कर्ज में ही डूबा रहता है फिर अंत में निरुपाय एवं त्रस्त होकर आत्महत्या कर लेता है। वास्तव में इन योजनाओं का मूल उद्देश्य किसानों को ऋण के नीचे दबाकर रखने का एक षडयंत्र मात्र है। इस षडयंत्र का स्पष्टरूप केदार जी की निम्नलिखित पंक्तियों में मौजूद है, जहाँ वह कहते हैं कि–

^^ipo"kh; ;kstuk dh jh< _.k dh J[kyk g@iV Hkkjro"k dk g vkj pkd Mkyjh g@lf/k;k0;kikj dh vieku dh dV xfFk;k g@gkFk ;x d lkjFkh g] HkkX;&j[kk pkdjh gA^^[12]

केदार जी जानते हैं कि किसान भोले, रूढ़िवादी और परम्परावादी होते हैं। किसानों को इस समस्या से मुक्त कराने के लिए उन्होंने कविता के माध्यम से जागरूकता भरने की भरपूर कोशिश की है। वे किसानों को परिवर्तन के लिए प्रेरित करते हैं–

^^dkVk] dkVk] dkVk djch@ lkbr vkj d|lkbr D;k g|@ thou l| c< lkbr D;k g|@ekjk] ekjk] ekj| gf l ;k@fg|lk vkj vfg|lk D;k g|@ thou l| c< fg|lk D;k g|A**[13]

इसी प्रकार देश के बहुतातीत किसानों की त्रासदी की पीड़ा को समझते हुए उन्होंने सम्बोधित करते हुए कहा कि हमारे ऊपर चाहे जितने ही अत्याचार क्यों न हो लेकिन हम हार नहीं मानेंगे। हम अपनी धरती माँ को गुलामी की जंजीर से मुक्त करायेंगे, इस मिट्टी में हमारे पुरखों की आत्मा बसी हैं। इसके वैभव की रक्षा के लिए चाहे खून ही क्यों न बहाना पड़े। इसकी अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है–

^^i|j[kk d| gMMh d| gy dk@vkx| vkt c<k;| tk@oHko d| lu| [krk dh@Nkrh phj fn[kk;| tk--------@viuk lkjk [ku i lhuk@lk&lk ckj p|vk;| tk@vktknh dh gj rM|iu dk]@ckjEckj ftyk;| tkAA^^[14]

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में किसान जीवन को समग्रता से देखा जा सकता है। उनकी कविता में किसानों का दुःख–दर्द भी है, उनके आवेग भी है, उनका उत्साह भी है एवं मेहनत की कला से युक्त चेतना भी है। उनकी कविता मूलतः किसानों की अदम्य जिजीविषा एवं उनके अथक श्रम को चित्रित करती है। उन्होंने किसान जीवन के यथार्थ के लगभग सभी पहलुओं को अपनी कविताओं में सफल रूप से प्रतिष्ठित किया है। किसानों के श्रम व कर्म का जीवन्त रूप उनकी कविताओं में देखने को मिलता है। अतः केदारनाथ जी की कविताओं में भारतीय किसान जीवन का सम्पूर्ण चित्र उपलब्ध है।

lUnHk %

1. केदारनाथ अग्रवाल, युग की गंगा, साहित्य भण्डार प्रकाशन, पृ0 50
2. केदारनाथ अग्रवाल, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल पैपर बैक्स, पृ0 30
3. केदारनाथ अग्रवाल, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल पैपर बैक्स, पृ0 96–97
4. केदारनाथ अग्रवाल, फूल नहीं रंग बोलते है, साहित्य भण्डार, पृ0 84
5. केदारनाथ अग्रवाल, फूल नहीं रंग बोलते है, साहित्य भण्डार पृ0 87
6. केदारनाथ अग्रवाल, फूल नहीं रंग बोलते है, साहित्य भण्डार पृ0 174
7. केदारनाथ अग्रवाल, युग की गंगा, साहित्य भण्डार पृ0 52–53
8. केदारनाथ अग्रवाल, गुलमेहंदी, साहित्य भण्डार पृ0 133
9. रामविलास शर्मा, प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 161–162
10. केदारनाथ अग्रवाल, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल पैपर बैक्स, पृ0 61
11. केदारनाथ अग्रवाल, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल पैपर बैक्स, पृ0 45
12. केदारनाथ अग्रवाल, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल पैपर बैक्स, पृ0 65
13. केदारनाथ अग्रवाल, युग की गंगा, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 44
14. केदारनाथ अग्रवाल, गुलमेहंदी, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, पृ0 160

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 50-53

Ekkuo vkSj Ik'kq dh eqfDrnkrk % eqnZfg;k

egUn dqekj ;kno*

'मुर्दहिया' प्रो0 तुलसीराम की एक बहुध्वन्यात्मक आत्मकथा है। मुर्दहिया केवल लेखक की आत्मकथा नहीं बल्कि आजमगढ़ जिले के धरमपुर की दलित बस्ती के उन तमाम लोगों की आत्मकथा है जो गरीबी, भुखमरी, अज्ञानता तथा अशिक्षा के हजारों दुःख दर्द लिए मुर्दहिया में विलीन हो गये। लेखक को पूर्ण विश्वास है कि ''यदि उनमें से किसी की भी आत्मकथा लिखी जाती तो उसका शीर्षक 'मुर्दहिया' ही होता।''[1]

मुर्दहिया व्यक्ति केन्द्रित आत्मकथा होने के साथ ही साथ अपने सम्पूर्ण वातावरण को समेटे हुए है। लेखक ने अपने को लोकजीवन से जोड़ते हुए स्वीकार किया है– ''जमाना चाहे जो भी हो, मेरे जैसा कोई अदना जब भी पैदा होता है, वह अपने इर्द–गिर्द घूमते लोक जीवन का हिस्सा बन ही जाता है। यही कारण है कि लोक जीवन हमेशा मेरा पीछा करता रहा।''[2]

मृत्यु, जीवन का अन्त नहीं बल्कि एक नए जीवन का आरम्भ है। मुर्दहिया में ही धरमपुर की दलित बस्ती के लोगों की जीवन लीला समाप्त हो जाती थी। लेखक के शब्दों में देखिए–''मुर्दहिया मानव और पशु में फर्क नहीं करती थी। वह दोनों की मुक्तिदाता थी।''[3]

यह मुक्ति भी दो प्रकार की है। एक तो जीवन से मुक्ति तथा दूसरी सांसारिक मायामोह से मुक्ति और ज्ञान की प्राप्ति। दूसरी मुक्ति पर हिन्दी साहित्य के फक्कड़ कवि कबीर ज्यादा बल देते हैं। हिन्दी साहित्य के अधिकांश कवि इसी मुक्ति पर जोर देते हुए अपनी ज्ञान साधना करते हैं।

इस आत्मकथा में चित्रित लोकचरित्र–जोगी बाबा, नटिनिया, पग्गल बाबा, बंकिया डोम, हिंगुहारा, चुड़िहारा, पटहारा, कपड़हारा मदारी, बाइस्कोप वाला, आदि अपनी व्यावसायिक संगीत ध्वनियों से अभावग्रस्त जिन्दगी जीने वाले दलित बच्चों का एक तरफ मनोरंजन करते हैं तथा दूसरी तरफ उन्हें जीने की कला भी सिखाते हैं। बचपन की इतनी सारी स्मृतियों को संजोकर रखने के लिए लेखक की याददाश्त का कायल होना पड़ेगा। प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक चौथीराम यादव ने ठीक ही लिखा है कि ''लोक जीवन का जितना व्यापक परिवेश और उसके विविध लोकरंग–लोकगीत, लोकसंगीत, लोकनृत्य आदि मुर्दहिया में देखने को मिलते है उतने तो ग्रामीण जीवन के महान आख्याता प्रेमचन्द के कथा साहित्य में भी नहीं मिलते।''[4]

आज के इस दौर में आत्मकथा को आत्मकथा ही नहीं बल्कि आत्मकथात्मक उपन्यास भी कहा जाता है। इस आत्मकथा में उपन्यास के साथ इतिहास की भी रोचकता है। क्या कारण है कि साहित्य की एक विधा कच्चे ढांचे में टूट रही है तो उसका दूसरे में समावेश हो जा रहा है? लेखक ने अपनी आत्मकथा में आत्मवृतान्त के बहाने धरमपुर की दलित बस्ती का सन् 1949 से 1964 तक का संक्षिप्त इतिहास भी प्रस्तुत किया है। महात्मा गांधी कहा करते थे कि 'अच्छे साध्य को प्राप्त करने के लिए अच्छे साधन की आवश्यकता होती है। लेखक के पास न तो अच्छे साधन थे और न तो अच्छे साध्य का उद्देश्य। वह तो बस अपने परिवार द्वारा चिट्ठी पढ़ने के लायक बनाया जा रहा था। ज्ञान–पिपासा जिज्ञासु हृदय में कभी शान्त नहीं होती। वह बढ़ती उम्र के साथ बढ़ती जाती है। जब गांव में जेदीचाचा द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की चर्चा हो रही थी तभी बालक तुलसीराम की इच्छा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को पढ़ने व जानने की भी हो रही थी।

*प्रवक्ता, डा0 गणेश कृष्ण जेतली इण्टर कालेज, अकबरपुर, अम्बेडकर नगर, उ0प्र0

धरमपुर की दलित बस्ती में कोई भी व्यक्ति पढ़ा–लिखा नहीं था। लेखक ने अपने परिवार की वास्तविक स्थिति को व्यक्त करते हुए लिखा है– '' इस तरह हमारा परिवार संयुक्त रूप से बृहद होने के साथ–साथ वास्तव में एक अजायबघर ही था, जिसमें भूत–प्रेत, देवी–देवता, सम्पन्नता–विपन्नता, शकुन–अपशकुन, मान–अपमान, न्याय–अन्याय, सत्य–असत्य, ईर्ष्या–द्वेष, सुख–दुख आदि सब कुछ था किन्तु शिक्षा कभी नहीं थी।''[5]

लेखक ने अपनी आत्मकथा में कई मार्मिक व्यंग्य भी लिखे हैं। एक देखिए–''जिस तरह उस जमाने में सवर्ण घरों की कन्याएं विवाह के बाद विदा होकर डोली में बैठकर ससुराल जाते समय रोती–चिल्लाती तथा रूदन गायकी करती रहती थी, ये सूअर भी वैसे मानव कंधो पर काड़ी में बंधे तथा उल्टे लटके हुए रास्ते भर चिल्लाते रहते थे।''[6]

भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। भारत का किसान गाँवों में रहता है। गाँवों की गरीबी, बाढ़, सूखा तथा अन्य प्राकृतिक आपदाएं हमेशा लोकगीतों के सामने लाचार नजर आती है। लेखक के गाँव धरमपुर की दलित बस्ती का नजारा कुछ ऐसा ही था। लोक संस्कृति में जन्मा लेखक आज जब उस संस्कृति से दूर है तो उसे बहुत पीड़ा हो रही है। मुर्दहिया के लोकजीवन की पचास–साठ साल पहले की यादें उसे टीस रही हैं।भूमंडलीकरण के इस अंधे दौर का दुष्परिणाम यह हुआ कि मुर्दहिया पूर्ण रूप से उजड़ चुकी है।

वहां का लोकजीवन, लोकसंगीत, लोकनृत्य तथा मौज–मस्ती सब कुछ गायब हो चुका है। लेखक अपनी संयमित विचारधारा से जमींदारी प्रथा पर एक व्यंग्य किया है, ''प्रतिदिन सूर्योदय से एक दो–घंटे पहले ही मुर्गों की बांग पर दलित काम पर चले जाते थे और शाम तक श्रम करते रहते थे।''[7]

किसी भी समाज में जब अच्छाई का प्रवेश होता है तो लोग बुरी आदतों को छोड़ते चले जाते हैं। वह दूसरी बात है कि उस बुरी आदत को वे किस सीमा तक छोड़ पाते हैं। भारतीय हिन्दू समाज में 'रामचरितमानस' का एक महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्यिक कृति होने के साथ–साथ यह एक धार्मिक ग्रन्थ भी है। लेखक ने बड़ी सहजता के साथ लिखा है कि ''पहले जब भी कुएं पर बैठकी होती लोग हमेशा लगातार गांजा पीते रहते तथा मुझे स्वयं रस्सी की गांठ जला–जलाकर चिलम भरनी पड़ती थी, किन्तु रामायण (रामचरितमानस) बाचने वाला वह पहला दिन एक ऐसा दिन था, जब किसी ने भी गांजा नहीं पिया।''[8] पहले भारतदेश के गांवों के आस–पास ही गिद्ध साही, मरखऊकी जैसे पक्षी व प्राणी रहते थे। अब ये वहां से एकदम विलुप्त हो चुके हैं।

अज्ञानता और अंधविश्वास के चलते लोग किसी भी अंग से विकलांग व्यक्ति को अपशकुन की श्रेणी में गिनते थे। बालक तुलसीराम भी इस श्रेणी में गिने जाते थे। इन्हें देखते ही रामचरन यादव ने कहा, ''आज कौनो काम न होई। ई कनवा सम्हने पड़ि गयल।' उस जमाने में अंधविश्वास के आगे मानवता हारती रहती थी। बालक तुलसीराम ने पोखरे में नहाने जाने की बात इन्हें बता दी। इतना सुनते ही उन्होंने उसी शेरपुर कुटी की रामलीला के ऋषि परशुराम की तरह रौद्र मुद्रा में चाटा तानते हुए आदेश दिया :'जल्दी से भाग चमार कहीं क। बड़कन लोगन के पोखरा में तू नहइबे।''[9]

इतना सुनते ही लेखक के मन में प्रतिरोध की दुर्भावना उमड़ पड़ी थी कि यदि क्षमता होती तो बदला जरूर लेता, हकीकत में सब कुछ असम्भव था। लेखक को इस घटना के दो दशक बाद जब महाकवि शूद्रक का सदाबहार नाटक 'मृच्छकटिकम्' (मिट्टी की गाड़ी) के आठवें अंक को पढ़ने का मौका मिला तो सारी दुर्भावना हमेशा के लिए समाप्त हो गयी। नाटक का एक पात्र शकार जब बौद्ध भिक्षु को देखता है तो अनिष्ट होने की कल्पना से क्रोधित होकर कहता है– ''जिस तालाब को राजा ने कुत्तों तथा सियारों के पानी पीने के लिए खुदवाया था, उसमें तुम अपनी दुर्गन्धित काया तथा गन्दे–चीवर को धोकर आ रहे हो? अन्ततोगत्वा बौद्ध भिक्षु सबके कल्याण की बात कहते हुए चला जाता है किन्तु उसकी हर बात को वे गाली ही समझते हैं।''[10]

इस नाटक को पढ़ने के बाद लेखक का आक्रोश हमेशा के लिए शान्त हो गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि रामचरन भैया मेरे आधुनिक शकार थे तथा सदियों पूर्व लिखे उस नाटक का वह बौद्ध भिक्षु मैं ही था।

लेखक की स्वीकारोक्ति है कि ''वैसी दुर्घटनाएं बदले की भावना से नहीं, बल्कि वैचारिक चेतना से रोकी जा सकती है।''

पूर्वी उ0प्र0 की सामाजिक–आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक स्थिति पश्चिमी उ0प्र0 से किंचित भिन्न है। अवैध प्रेम–प्रसंग पर बारहगावा की पंचायत के निर्णय अपमानजनक दण्ड प्रक्रिया के बावजूद काफी उदार थे। जबकि हरियाणा की खाप पंचायत में प्रेमी युगल को आज भी जिन्दा जला दिया जाता है। प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक चौथीराम यादव ने ठीक ही लिखा है कि यहां न तो दलितों और स्त्रियों का उतना अधिक उत्पीड़न है और न ही सवर्णों और अवर्णो के बीच उतनी गहरी खाईं। अतः यदि तुलसीराम के सवर्ण अध्यापक और सवर्ण सहपाठी एक दलित बालक की नैसर्गिक प्रतिभा का सम्मान करते हैं तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। बालक तुलसीराम से प्रोफेसर बने तुलसीराम जी बड़े गर्व के साथ यह स्वीकार करते हैं कि ''आज जब मैं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के एक बड़े सेन्टर का प्रोफेसर एवं अध्यक्ष बन चुका हूं तो यह स्वीकार करने में गर्व होता है कि इसके पीछे मेरी प्रेरणा के असली जनक वे तीन गरीब मजदूर थे, जिन्होंने मुझे छोटी उम्र में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की तरफ अनजाने में ही खींचा था। इनमें एक थे सोवियत संघ में 'समोही खेती' वाले मुन्नर चाचा, दूसरे डांगे को 'डंगरिया' कहने वाले सोनई तथा तीसरे थे, दढ़ियल जेदी चाचा।''[11]

हालांकि ब्राह्मण जमींदारों को यह चिन्ता जरूर सताने लगी थी कि इसी तरह दलितों के बच्चे पढ़–लिखकर आगे बढ़ते रहेंगे तो उनकी हरवाही कौन करेगा? उनसे अपने कुलदीपकों का और अपमान नहीं देखा जा रहा था। उन्होंने प्रचारित किया कि ज्यादा पढ़ने से बच्चे पागल हो जाते हैं। ब्राह्मण टोला का यह शिष्ट प्रचार दलित बस्ती में अंधविश्वास के रूप में छा गया। लेखक जब बचपन में अंग्रेजी बोलता था तो आस–पास के लोग यही कहते थे कि अब ई पगला जाई। उन्हें क्या पता कि पागलपन का भूत कुछ और पाने के लिए सिर पर सवार था। जिस तरह कपिल वस्तु से भागकर सिद्धार्थ ज्ञान प्राप्ति होने के बाद गौतम बुद्ध के रूप में जाने जाते हैं उसी तरह धरमपुर से भागकर तुलसी ज्ञान प्राप्ति होने के बाद प्रो0 तुलसीराम के रूप में आज जाने जाते हैं।

लेखक ने धरमपुर के अकाल–पीड़ित लोकजीवन में दलित बस्ती की अभावग्रस्त जिन्दगी के अनेक मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए हैं। भयंकर बरसात से जो समस्या उत्पन्न हो गयी थी उसका वर्णन देखिए– ''लगातार पानी बरसते रहने से सबकी झोंपड़ियों या खपरैल के घरों की बड़ेरों या छज्जों से अनेक जगहों पर पानी चूने लगता था। रात भर लोग एक पतेली या पतेला इधर तो दूसरा उधर कही लोटा किसी तरफ तो कोई थाली कहीं और रखकर टपकते हुए पानी को भर–भरकर घरों से बाहर फेकते रहते थे। प्रकृति की यह करतूत उस गरीबी में भिगों–भिगोंकर मारती थी।''[12]

इसी से मिलता–जुलता वर्णन संस्कृत कविता की दूसरी धारा के बौद्ध कवि योगेश्वर की कविता में मिलता हैं जिसमें घोर बरसात के दिनों में मुसीबत में पड़ी आदिवासी गृहिणी की व्याकुलता का बड़ा ही यथार्थ चित्र खींचा गया है। ऐसी गृहिणी जो– ''सत्तू के गीला हो जाने की चिन्ता करती है, रोते हुए बच्चों को चुप कराती है, घर में चू रहे पानी को खपड़े से बाहर फेंककर जमीन पर बिछी तृण–सैया की रक्षा करती है, सिर के ऊपर टूटे–फूटे सूप को रखकर, जर्जर हो गए घर में व्याकुल गृहिणी उस घोर बरसात में क्या–क्या नहीं कर रही है।''[13]

जाड़े के दिनों में जब बच्चे ठंड से ठिठुरते हैं तो दऊ–दऊ घाम करा, सुगवा सलाम करा, तोहरे बलकवन के जड़वत हो आदि प्रार्थना गीत गाते हैं। निः संदेह अब हम यह कह सकते हैं कि मानवीय संवेदनाओं को कुरेदने वाली आत्मकथा है 'मुर्दहिया'। मुर्दहिया में मानव हृदय की सम्पूर्ण भावनाओं का समावेश हुआ है जो मानव दिलों पर छा जाती है। ज्ञान प्राप्ति के लिए लेखक घर से भागकर आजमगढ़ गया। वहां उसे फाकाकशी करनी पड़ी। तब उसे समझ में आया कि ज्ञान प्राप्त करना कोई आसान काम

नही हैं। ज्ञान को पाने के लिए वैरागी होना पड़ता है। मैंने भी अपने गुरूओं से विद्यार्थी जीवन के पाँच लक्षण सुने हैं–

^^dkd&p"Vk odk /;kue] 'oku funk rFkSo pA
vYikgkjh] x`gR;kxh] fo|kFkhZ iap y{k.keAA**

लेखक को मुर्दहिया से बिछुड़ने का दुःख है वह इन शब्दों में रोता है– ''चेचक से जिस दांई आंख की रोशनी चली जाने के कारण लोग मुझे देखकर रास्ता बदल देते थे, उससे भी उतनी ही जलधारा फूट पड़ी थी जितनी कि रोशनी वाली आंख से।''[14]

इन्ही बातों को ध्यान में रखते हुए चौथीराम यादव ने ठीक ही लिखा है कि ''मुर्दहिया रोती हुई संवेदनाओं की आत्मकथा है जिसे पढ़ते समय लेखक के बार–बार रोने का अहसास होता है। इसकी पराकाष्ठा मुर्दहिया के बिछुड़ने के दुःख में होती है जब लेखक की गैर रोशनी वाली आंख से भी उतनी ही अश्रुधारा फूट पड़ी थी जितनी कि रोशनी वाली से। आक्रोश का होना एक बात है और उसे सृजनशीलता में बदलकर मानवीय संवेदनाओं के व्यापक परिप्रेक्ष्य में एक सकारात्मक दिशा देना बिल्कुल दूसरी बात।''[15]

अर्थगर्भित भाव व्यंजना मुर्दहिया की सहज भाषा की प्रमुख विशेषता है। पूर्वांचल के ग्रामीण जीवन में बोले जाने वाले न जाने कितने मृतप्राय शब्दों को लेखक ने पुनर्जीवित किया है जिसका प्रयोग शिष्ट साहित्य में वर्जित है। काव्यशास्त्र के विचारकों ने ऐसे गंवारूं शब्दों के प्रयोग से बचने के सख्त निर्देश दिए हैं क्योंकि उनके अनुसार ग्राम्य शब्दों के प्रयोग से रसबोध और सौंदर्यबोध दोनों में बाधा पड़ती है। लेखक ने अपनी आत्मकथा में पूर्वांचल के अधिकांश जन प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। निष्कर्ष यह है कि बुद्ध, अम्बेडकर और मार्क्स के सुचिंतित विचारों और ग्रामीण जीवन के संघर्षपूर्ण अनुभवों के रासायनिक घोल से लिखी गई आत्मकथा है 'मुर्दहिया'। जो धरमपुर की दलित बस्ती का 'लोकेल' भी है और वहां के लोकजीवन की प्राणधारा भी आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि धरमपूर गांव में आने–जाने वाले सारे रास्ते मुर्दहिया से होकर ही गुजरते हैं हिन्दू समाज के लिए जो महत्व मणिकर्णिका का है, धरमपुर की दलित बस्ती के लिए वही महत्व मुर्दहिया का है। अस्सी चौराहे की जो केन्द्रीयता काशी का अस्सी में है वही केन्द्रीयता इस आत्मकथा में मुर्दहिया की है। यह आत्मकथा पूर्वांचल के ग्रामीण जीवन की सामाजिक–आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति का रिपोर्ताज भी है।

lUnHkZ %

1. मुर्दहिया, भूमिका, 5।
2. वही, 5।
3. वही, 5।
4. चौथीराम यादव : उत्तरशती के विमर्श : हाशिये का समाज, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014 पृ0–94
5. मुर्दहिया पृ0–21
6. वही पृ0–20
7. वही पृ0–65
8. वही पृ0–78
9. वही पृ0–83
10. डी.डी. कोसम्बी द्वारा संपादित सुभाषित रत्नकोष, दीन ब्रज्या, श्लोक–9
11. मुर्दहिया पृ0–93
12. वही पृ0–100
13. डी.डी. कोसम्बी द्वारा संपादित सुभाषित रत्नकोष, दीन ब्रज्या, श्लोक–6
14. मुर्दहिया पृ0–163
15. चौथीराम यादव : उत्तरशती के विमर्श हाशिये का समाज, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014 पृ0–97

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 54-58

xkWo esa f'k{kk dh vy[k txkrk loZf'k{kk vfHk;ku lc i<s lc c<s

';ke izdk'k ekS;Z*

शिक्षा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बदलाव का सबसे महत्त्वपूर्ण माध्यम है और समतामूलक समाज के निर्माण में भी इसकी अहम भूमिका होती है। इक्कीसवीं सदी में आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए सुशिक्षित जनता का सुसंगत ज्ञान, विचार और कौशल से युक्त होना अत्यन्त आवश्यक है। भारत के लिए तो यह बात विशेष रूप से सत्य है जहाँ 10 से 24 आयु वर्ग के लोगों की संख्या दुनिया में सबसे अधिक है। यही वे लोग है जो देश के भविष्य की बुनियाद रखते हैं। इतना ही नहीं, भारत की 70 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है, इसलिए शिक्षा सम्बन्धी किसी भी नीति का केन्द्र बिन्दु ग्रामीण क्षेत्रों को बनाना चाहिए।

izkFkfed f'k{kk ds izfr Hkkjr dh opucn)rk : राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के लागू होने के बाद भारत में प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने के लिए अनेक कार्यक्रम प्रारम्भ हुए। इन प्रयासों को 1980 और 1990 के दशकों में योजनाओं और कार्यक्रमों के माध्यम से और तेज किया गया। जिसमें ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड, शिक्षाकर्मी परियोजना, आंध्र प्रदेश प्राथमिक शिक्षा परियोजना, बिहार शिक्षा परियोजना, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परियोजना, महिला समाख्या, लोक जुंबिश परियोजना, जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना और सर्व शिक्षा अभियान आदि शमिल है। सर्व शिक्षा अभियान देशभर में प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने के लिए राज्य सरकारों की भागीदारी से संचालित और केन्द्र द्वारा प्रायोजित एक प्रमुख कार्यक्रम है। 2009 में बच्चों के निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के आधिकार सम्बन्धी अधिनियम के पारित होने से इसे और बल मिला। यह अधिनियम 1 अप्रैल, 2010 से लागू हुआ और इससे देश में 6 से 14 साल के आयु वर्ग के अन्तर्गत आने वाले प्रत्येक बच्चे को मुफ्त और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने का कानूनी अधिकार प्राप्त हो गया। सर्वशिक्षा अभियान के मानदण्डों को शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के मानदण्डों के अनुरूप बनाया गया ताकि अधिनियम को लागू करने में राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों की मदद की जा सके।

सर्वशिक्षा अभियान के समग्र लक्ष्यों में शिक्षा को सबकी पहुँच के दायरे में लाना और शिक्षा पूरी कराना, शिक्षा के क्षेत्र में लिंग और सामाजिक श्रेणी सम्बन्धी अन्तर को पाटना और बच्चों के सीखने के स्तर में वृद्धि करना जैसी बातें शामिल थीं। सर्वशिक्षा अभियान में कई तरह के उपाय शामिल थे जिनमें अन्य बातों के अलावा नए स्कूल खोलना, स्कूल भवनों का निर्माण, उनमें अतिरिक्त कमरों, शौचालयों व पीने के पानी की सुविधा, शिक्षकों और समय–समय पर उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करना, शैक्षिक संसाधनों में मदद देना, पाठ्यपुस्तकों की व्यवस्था तथा बच्चों के सीखने की प्रक्रिया में सहायता देना शामिल है। सर्व शिक्षा अभियान को भारत के सभी जिलों में लागू किया गया और इसमें प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्र और राज्य सरकारों की तमाम पहलों के विकेन्द्रित नियोजन और कार्यान्वयन के लिए व्यापक विस्तार वाला समेकित ढांचा उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई। सर्व शिक्षा अभियान देश में अकेला सबसे बड़ा और समग्र कार्यक्रम था जिसमें प्राथमिक

*असि0 टीचर, पी0एम0वी0 मल्हूपुर, मानधाता, प्रतापगढ़

शिक्षा के अनेक पहलुओं पर ध्यान दिया गया था। इसमें 10 लाख से अधिक प्राथमिक स्कूलों, शिक्षा गारण्टी योजना केन्द्रों और वैकल्पिक व अभिनव शिक्षा केन्द्रों को शामिल करते हुए 20 करोड़ बच्चों को इसके दायरे में लिया गया था।

i`kFkfed Lrj ij i`xfr % पिछले दशक में भारत ने शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा को सबकी पहुँच के दायरे में लाने के लिए शानदार प्रगति की है। आज 14.6 लाख प्राथमिक स्कूलों में पढ़ने वाले 19.67 करोड़ बच्चे सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत आते हैं। सर्व शिक्षा अभियान का विस्तार मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में हुआ है जहाँ देश के कुल प्राथमिक विद्यालयों में से 85.4 प्रतिशत विद्यालय स्थित हैं। देश में प्राथमिक स्तर पर प्रवेश लेने वाले कुल बच्चों में से 74.5 प्रतिशत बच्चे इन्हीं ग्रामीण विद्यालयों में पढ़ते हैं। इस तरह यह बात स्पष्ट है कि प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में जो पहल की गई है उसका सबसे अधिक प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों में पड़ा है।

अनेक राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में प्रमुख शैक्षिक संकेतकों में बहुत तेजी से प्रगति हुई है। समेकित जिला सूचना शिक्षा प्रणाली (यूडीआईएसई) 2015—16 के अनुसार प्राथमिक स्तर पर सकल प्रवेश दर 99.21 प्रतिशत और उच्च प्राथमिक स्तर पर 92.81 प्रतिशत रही जो प्राथमिक स्तर पर लगभग सभी बच्चों के स्कूल में प्रवेश लेने को प्रदर्शित करता है। विद्यार्थियों और शिक्षकों का अनुपात जो 2009—10 में 32 था, 2015—16 में सुधर कर 25 हो गया। यूडीआईएसई 2015—16 के अनुसार प्राथमिक स्तर पर स्कूली शिक्षा अधूरी छोड़ने वाले बच्चों की औसत वार्षिक दर 2009—10 के 6.76 प्रतिशत से घटकर 2014—15 में 4.13 प्रतिशत रह गई। यूडीआईएसई 2015—16 के अनुसार प्राथमिक स्तर से उच्च प्राथमिक स्तर पर जाने वाले बच्चों की दर जो 2009—10 में 85. 17 प्रतिशत थी, 2014—15 में बढ़कर 90.14 प्रतिशत हो गई। स्कूलों में प्राथमिक स्तर पर लिंग सम्बन्धी संतुलन को प्रदर्शित करने वाला लिंग समानता सूचकांक प्राथमिक स्तर पर 2014—15 में 0.93 प्रतिशत और उच्च प्राथमिक स्तर पर 0.95 प्रतिशत पर पहुँच गया था।

इनमें कोई संदेह नहीं कि कार्यक्रम के अन्तर्गत राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों द्वारा किए गए प्रयासों में स्कूलों तक पहुँच तो बढ़ी है लेकिन इन स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता को लेकर चिन्ताएं व्यक्त की जाती रही हैं। यह प्रश्न भी उठा है कि क्या ये बच्चे कुछ सीख भी पा रहे हैं, या नहीं। देश की भावी पीढ़ी के लिए इसके जबरदस्त परिणाम हो सकते हैं क्योंकि इन्हीं बच्चों को बड़े होकर राष्ट्र के विकास की दिशा तय करनी है।

gky dh igy %शिक्षा को गुणवत्तापूर्ण बनाने की आवश्यकता के महत्त्व को समझते हुए केन्द्र सरकार ने राज्य सरकारों के सहयोग से बच्चों के सीखने के स्तर में सुधार के लिए कई पहल की है। इनमें से प्रमुख इस प्रकार हैः

^i<s Hkkjr] c<s Hkkjr* % विभिन्न अनुसंधान और अध्ययनों से यह बात साबित हो गई है कि पहली और दूसरी कक्षा बच्चों की शिक्षा के दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चरण हैं जिनमें बच्चों को भाषा और अंकों के माध्यम से सीखने की दुनिया से परिचित कराया जाता है। जो बच्चे इन दो कक्षाओं में सीखने में असफल हो जाते हैं वे पढ़ाई में पिछड़ जाते हैं और उनके लिए अन्य विषयों को पढ़ने—समझने में मुश्किलें आती है। इसलिए शुरूआत में पढ़ना लिखना और समझना तथा गणित का ज्ञान देश में प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए अत्यन्त आवश्यक है। सर्वशिक्षा अभियान के तहत एक राष्ट्रव्यापी उप—कार्यक्रम 'पढ़े भारत, बढ़े भारत' अगस्त 2014 में शुरू किया गया । जिसका उद्देश्य पढ़ने लिखने के साथ—साथ उसे समझने में बच्चों की रूचि जगाना और बनाए रखना तथा अपने भौतिक और सामाजिक जगत से सम्बन्धित गणित में उनकी स्वाभाविक व सकारात्मक रूचि जगाकर उसे बनाए रखना था। यह कार्यक्रम इस पूर्वशर्त पर आधारित है कि पुस्तकों में बच्चों की उद्देश्यपूर्ण और सामाजिक दृष्टि से प्रासंगिक दिलचस्पी के साथ—साथ उसके मुद्रित सामग्री को पढ़ने—लिखने सम्बन्धी विभिन्न गतिविधियों में सक्रिय और उद्देश्यपूर्ण तरीके से

जुड़ने की जरूरत होती है। इस पहल के तहत राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों ने पूरक अधिगम सामग्री तैयार करने और पढ़ने की जगहों के विकास तथा बच्चों के लिए एक्टिविटी किट बनाने जैसे कई कदम उठाए है। जिससे उन्हें सक्रिय रूप से और उद्देश्यपूर्ण तरीके से पढ़ाई से जोड़े रखा जा सकता है। यह पहल बच्चों में विस्तृत आधारभूत कौशलों के विकास में मदद करके उच्च स्तर की क्षमताओं के सृजन की मजबूत बुनियाद डालने के उद्देश्य से की गई है।

एक कमी यह अनुभव की गई कि प्रत्येक कक्षा के अन्त में अध्यापकों और बच्चों के लिए कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं किए गए हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए, शिक्षा के अधिकार सम्बन्धी केन्द्रीय कानून में 20 फरवरी, 2017 को संशोधन किया गया और प्रत्येक कक्षा में प्रत्येक विषय के लिए सीखने का परिणाम निर्धारित किया गया। इसी के अनुसार प्रत्येक कक्षा में भाषाओं (हिन्दी, अंग्रजी और उर्दू), गणित, पर्यावरण अध्ययन, विज्ञान और सामाजिक विज्ञान में प्राथमिक स्तर के सीखने के परिणामों का अन्तिम रूप से निर्धारण कर दिया गया और सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों के साथ इन्हें साझा किया गया। इनसे शिक्षकों और माता–पिता को यह सुनिश्चित करने का मौका मिलेगा कि बच्चे वांछित कौशल सही–सही हासिल कर पा रहे हैं। इससे जरूरत पड़ने पर सुधारात्मक कदम उठाकर सभी विद्यार्थियों को सक्षम बनाने के लिए सीखने के अवसर उपलब्ध कराने में भी मदद मिलेगी।

सीखने के परिणामों के आधार पर 2017–18 में देश के सभी 36 राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों के 700 जिलों में सरकार और सहायता प्राप्त स्कूलों में कक्षा 3,5 और 8 के बच्चों के राष्ट्रीय उपलब्धि का सर्वेक्षण किया गया। इसमें 1,10,000 स्कूलों के 20 लाख से अधिक विद्यार्थियों के सीखने के स्तर का आकलन किया गया। विद्यार्थियों के सीखने सम्बन्धी उपलब्धियों का यह शायद सबसे बड़ा सैंपल सर्वेक्षण था। आंकड़ों के प्रारम्भिक विश्लेषण से पता चला कि सीखने की प्रक्रिया के निष्पादन में ग्रामीण और शहरी बच्चे एक समान स्तर पर पाए गए। विश्लेषण के आधार पर जिलावार और राज्यवार रिपोर्ट कार्ड तैयार किए गए जिन्हें सार्वजनिक सन्दर्भ के लिए वेबसाइट पर रखा गयाहै। जिला स्तर के रिपोर्टकार्ड से बच्चों के सीखने से सम्बन्धित कक्षावार और विषयवार जानकारी मिलती है। इससे यह भी पता चलता है कि जिले में कहाँ पर सुधार की जरूरत है और कहाँ नीति/शिक्षाशास्त्रीय हस्तक्षेप की आवश्यकता है। इससे शिक्षा की गुणवता में सुधार की अचूक कार्यनीति बनाने के लिए उपयोगी जानकारी भी प्राप्त होती है। राज्य सम्बन्धी रिपोर्टकार्ड से परखे जा चुके सभी मानदण्डों पर सीखने के परिणामों का पता चलता है जिसके आधार पर अधिकारी शिक्षकों के प्रशिक्षण और नीतिगत उपायों की कमजोरियों और कमियों को दूर कर सकती है। इन रिपोर्टकार्डों के विस्तृत विश्लेषण से शैक्षिक नीतियां बनाने, नियोजन और राष्ट्रीय, राज्य, जिला और कक्षा स्तर पर बच्चों के अधिगम के स्तर में सुधार के लिए महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है। शिक्षक किसी भी शैक्षिक प्रणाली की धुरी हैं और कक्षा में क्या हो रहा है, इसका निर्धारण करने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण घटक है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के अनुसार सभी सेवारत शिक्षकों के पास कुछ न कुछ व्यावसायिक योग्यता होनी चाहिए। ऐसे सभी शिक्षक (लगभग 13 लाख) से योग्यताएं हासिल कर सकें इसके लिए राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान को दो साल का ऑनलाइन पाठ्यक्रम शुरू करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। इस पाठ्यक्रम के लिए अध्ययन सामग्री संस्थान ने स्वयं शिक्षा नीति से तैयार की है और स्वयं प्लेटफार्म पर ऑडियो/वीडियों व्याख्यान, मुद्रणीय सामग्री/डाउनलोड की जा सकने वाली पाठ्य सामग्री के रूप में अपलोड की है। शंकाओं और जिज्ञासाओं के समाधान के लिए ऑनलाइन चर्चाओं के साथ–साथ परीक्षा और क्विज के जरिए अपना मूल्यांकन खुद करने के भी इंतजाम किए गए है। इस समूची प्रक्रिया को बड़ा आसान और इंटरऐक्टिव बना दिया गया है ताकि शिक्षक पाठ्यक्रम में वांछित कौशल प्राप्त

करने के लिए पूरा प्रयास कर सकें और बाद में यही कौशल उन्हें अपनी शिक्षण सम्बन्धी जिम्मेदारियों को कारगर तरीके से पूरा करने में मदद् कर सके। सम्भवतः यह बड़ी भारी तादाद में शिक्षकों को व्यावसायिक कौशल से युक्त करने की दिशा में उठाया गया सबसे बड़ा कदम है और यह हमारे देश के शिक्षकों, खासतौर पर ग्रामीण इलाकों के शिक्षकों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षण कौशल से युक्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

केन्द्र सरकार ने 2017 से स्वच्छ विद्यालय पुरस्कार की भी शुरूआत की है जिसका उद्देश्य बच्चों को साफ–सफाई के बारे में जागरूक बनाना और उन्हें स्वच्छता की आदतों व तौर–तरीकों को अपनाने के लिए प्रेरित करना है। इससे बच्चों को स्कूली शिक्षा पूरी करने में तो मदद मिलेगी ही, गन्दगी की वजह से होने वाली बीमारियां कम करने तथा उन्हें भविष्य का जिम्मेदार नागरिक बनाने में भी मदद मिलेगी। पुरस्कार की शुरूआत के पहले ही साल में 2.5 लाख से अधिक सरकारी स्कूलों ने प्रतियोगिता में ऑनलाइन हिस्सा लिया और इसमें से 91 प्रतिशत स्कूल ग्रामीण क्षेत्रों से थे। इन स्कूलों का समग्र स्वच्छता, पीने के पानी की व्यवस्था, शौचालय और कक्षाओं में सफाई का ध्यान में रखते हुए निरीक्षण किया गया। जिला और राज्य स्तर पर कड़ी चयन परीक्षा से गुजरने के बाद 712 स्कूलों को राष्ट्रीय पुरस्कारों के लिए चुना गया। इनमें से 126 स्कूल ग्रामीण क्षेत्रों के थे। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ग्रामीण क्षेत्रों के स्कूल शहरी स्कूलों से जरा भी पीछे नहीं है और राष्ट्रीय स्तर के उत्कृष्टतम स्कूलों को कड़ी टक्कर दे सकते हैं

vkx: dk jkLrk % केन्द्र सरकार ने अब फैसला किया है कि वह स्कूली शिक्षा पर पूरी समग्रता से विचार करेगी और प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक व वरिष्ठ माध्यमिक जैसे खण्डों में विभाजित कर इसे नहीं देखा जाएगा। वर्ष 2018–19से 'समग्र शिक्षा अभियान' नाम की केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना शुरू की गई है जिसका उद्देश्य पूर्व विद्यालय स्तर से उच्च माध्यमिक स्तर तक गुणवत्तापूर्ण समावेशी और समतामूलक शिक्षा उपलब्ध कराना है। इसमें ऐसी व्यवस्था की गई है जिससे कि प्रत्येक विद्यार्थी सुचारू रूप से लगातार शैक्षिक प्रगति कर सके और स्कूली शिक्षा के विभिन्न स्तरों को बिना किसी बाधा के पूरा करें।

इस कार्यक्रम में स्कूल प्रशासन, शिक्षकों और छात्रों को टेक्नोलॉजी के जरिए समन्वित करते हुए सभी स्तरों पर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। स्कूली शिक्षा के कार्य निष्पादन में आमूल परिवर्तन के जरिए सुधार करने का लक्ष्य रखा गया है जिसके लिए स्कूलों को और अधिक कारगर बनाने और उनकी संस्थागत क्षमता को बनाए रखने के उपाय करने का प्रावधान किया गया है। इस कार्यक्रम का मुख्य जोर देश के शैक्षिक रूप से पिछड़े इलाकों का खासतौर पर ध्यान रखते हुए राज्यों को शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए प्रोत्साहित करना है। कार्यक्रम में विशेष जरूरतों वाले बच्चों, बालिकाओं और उपेक्षित समुदायों का विशेष ध्यान रखते हुए एक ऐसे बदलाव की शुरूआत की गई है जो समतामूलक और समावेशी है।

इस समन्वित दृष्टिकोण से सेवाकालीन और सेवा–पूर्व शिक्षक प्रशिक्षण एवं शिक्षा की दिशा में नई डिजिटल पहल के माध्यम से डिजिटल अधिगम सामग्री, अभिनव शिक्षण कौशल और क्षमता सृजन आदि के उपाय खोजने में मदद मिलेगी। इससे स्कूली शिक्षा के सभी स्तरों पर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की बुनियाद मजबूत होगी। इसमें टेक्नोलॉजी का फायदा उठाया जा सकेगा और देश के तमाम राज्यों, केन्द्र शासित प्रदेशों और समाज के सभी वर्गों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक लोगों की पहुँच का दायरा विस्तृत होगा।

शिक्षित समाज किसी राष्ट्र के विकास की अनिवार्य पूर्व–शर्त है। जैसे–जैसे नौजवान भारत प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हो रहा है, इसकी भावी पीढ़ी के लिए उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा के माध्यम से एक मजबूत बुनियाद रखें जाने की जरूरत है। सरकार द्वारा की गई विभिन्न पहल निश्चय ही ग्रामीण भारत को अधिकार–सम्पन्न बनाने के लिए सही दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

lUnHkZ %

1. कुरूक्षेत्र, मासिक पत्रिका जून 2018 पृष्ठ सं0 –25, 26।
2. योजना, मासिक पत्रिका जून–2018 पृष्ठ सं0–18
3. विज्ञान प्रगति मासिक पत्रिका जून–2018 पृष्ठ सं0–21
4. भूमण्डलीय मानव सुरक्षा–डॉ0 अरूण कुमार दीक्षित पृष्ठ सं0–28
5. चौहान, डॉ0 श्याम सुन्दर सिंह 2015 सबके लिए स्वच्छताः बेहतर स्वास्थ्य की गारण्टी, पृष्ठ–80,82
6. प्रतियोगिता दर्पण, सितम्बर, 2016 पृष्ठ सं0–12, 14
7. कुरूक्षेत्र मासिक पत्रिका मई, 2016 पृष्ठ सं0–20–21

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 59-63

caxkYk dh Yk¨d laLÑfr ds lanHkZ esa ckmYk laÁnk; dh vo/kkj.kk v©j egÙo

vfdrk 'kkEHkoh oekZ*

'The true madman is God.' – बाउल अभिव्यक्ति

बाउल शब्द का अर्थ है वातुल, वातग्रस्त, उन्मादी, पागल। बाउल वे अध्यात्मिक पथ के साधक हैं जो ईश्वर के प्रेमोन्माद से सराबोर रहते हैं, वे ईश्वर के ऐसे पागल प्रेमी हैं, जो स्वयं उनके हृदय में निवास करते हैं। वे साधक एक प्रकार से ग्रामीण गायक होते हैं जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर गायन करते, भिक्षाटन करते और भजन गाते–बजाते भ्रमण करते हैं। उनके गीत भावनात्मक और प्रतीकात्मक होते हैं, जो गँवई भाषा में ही होते हैं और उनके गीतों में प्रयुक्त प्रतीक आदि भी आंचलिक। ये प्रतीक स्थानीय और आध्यात्मिक अनुभवों से अर्जित किये गए होते हैं।

'बाउल' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'वातुल'(अर्थात् 'पागल') शब्द से मानी जाती है। इसके अलावा इसका सम्बन्ध 'औल'शब्द से भी जोड़ा जाता है, जिसे अरबी के 'औलिया' से जोड़कर देखा जा सकता है, जिसका अर्थ है 'मित्र', 'बंधु' या'भक्त'।

बाउल सामान्य लोगों द्वारा विक्षिप्त समझे जाते हैं, जिनकी आध्यात्मिक साधनाएँ सामान्य धार्मिक क्रिया–कलापों के विपरीत होती हैं, किन्तु बाउल स्वयं को जिस अर्थ में पागल समझतेहैं, उसका आशय आध्यात्मिक है। उसका निक्षेप ईश्वरोन्माद है, जिसका बाउलों द्वारा बेहद सम्मान किया जाता है। यह दिव्य विक्षिप्तता कई साधना मार्गों द्वारा अर्जित की जा सकती है, यथा–शैव, शाक्त, वैष्णव, सहजिया, सूफी आदि। इसकी साधना पद्धति मायने नहीं रखती बल्कि इसका वास्तविक उद्देश्य दिव्य उन्माद की उस स्थिति को अर्जित करना है जिसके माध्यम से 'मोनेर मानुष' (मन का मनुष्य) मिल सके। साधना के विविध तरीके होने के बावजूद इनकी मुख्य धार्मिक प्रवृत्ति अत्यंत स्वच्छंद होती है। आचार्य क्षितिमोहन सेन और कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बाउल गीतों के उन पक्षों को महत्ता दी है जहाँ अनंत के रहस्य को सीमित ढाँचे द्वारा सुन्दर और सुभेद्य रूपों में समझाया जाता है और मनुष्य के हृदय की वेदना के साथ 'मोनेर मानुष' को एकीकृत किये जाने पर ज़ोर दिया जाता है।

बाउल संप्रदाय की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता होती है कि यह उन्हीं सीमित लोगों से गहन रूप में जुड़ा होता है जो इस संप्रदाय के दीक्षित अथवा अनुयायी हों। अपने तौर–तरीकों, रिवाजों, आचार–विचार, रहन–सहन व अभ्यास में भी वे विशिष्ट होते हैं, वे सामान्य धार्मिक रीतियों के गुलाम नहीं होते। अपनी यौगिक साधना का अभ्यास वे गुप्त रूप से गुरु के निर्देशन में करते हैं। इसके अन्तर्गत मानव–देह में निहित परम सत्य के संधान पर जोर दिया जाता है। बाउल संप्रदाय का दर्शन यह बतलाता है कि प्रत्येक मानव देह में ईश्वर का निवास है। मानव देह अपने आप में एक मन्दिर है, उस रहस्यमय मंदिर में ईश्वर स्वयं को आत्मा के समक्ष प्रकट करते हैं और इसका भेद उन्हीं को ज्ञात होता है जो उसे भली–भाँति समझते हैं।

आत्मा की मुक्ति बाउल संप्रदाय की एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है। वे ऐसे समस्त धर्माचारों को नकारते हैं जिसमें आत्मा की प्रकृतिक धर्मनिष्ठता, एक तरफ अर्थहीन कर्मकांडों, बाह्याडंबरों और

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

दूसरी तरफ पांडित्य प्रदर्शन के छलावे से दबी होती है। इसी कारण से बाउल अपने पथ को 'उल्टा पथ' और अपने आध्यात्मिक अभ्यास की प्रक्रिया को 'वर्तमान के विपरीत गमन' के रूप में देखते हैं। बाउलों को मुक्ति का यह मनुभव एक ऐसे आह्लादपूर्ण क्षण में होता है जब 'सर्वोच्च सत्ता' और 'स्व' का रहस्यमय 'एकीकरण' हो जाता है। एकीकरण' या अद्वैत(Tawhid/तौहीद) वह प्रक्रिया है जिसमें मानवीय गुणों की समाप्ति के पश्चात् दिव्य गुणों का आगमन हो, जिसमें मनुष्य का अन्तिम चरण पुनः उसके पहले चरण में रूपान्तरित हो जाये और वह ऐसा बन जाये जैसा कि वह अपने अस्तित्व से भी पहले था।(The Idea of Personality in Sufism, p. 13)

बाउलों ने यद्यपि वैदिक निदर्शन, वैदिक कर्मकाण्ड और ईश्वर आदि का विरोध किया है, किन्तु उनका दर्शन मूल रूप से वेदों पर ही आधारित है। उनके अनुसार वेदों के सारतत्व को बिना बौद्धिक युक्ति के महसूस किया जाना चाहिए। बाउलों में रहस्यवाद की अवधारणा अन्य संप्रदायों के समान नहीं है। गीत–संगीत और नृत्य के द्वारा वे एक अद्भुत किस्म की दिव्य ऊर्जा का अनुभव करते हैं जो कहलाता 'भाव' है, इसी 'भाव' के अंतिम चरण में 'समाधि' की प्राप्ति होती है किन्तु उनकी यह समाधि भी क्षणिक होती है जिसमें वे शारीरिक और मानसिक रूप से जाग्रत होते हैं। यह कुछ विशेष अर्थों में उस भाव जैसा है जो क्षणिक आह्लाद का कारक होता है, इसे चैतन्य महाप्रभु ने भी पुरी के मंदिर में 'नाम–कीर्तन' करते समय महसूस किया था।

बाउलों पर वैष्णव सहजिया का बहुत प्रभाव लक्षित होता है जो राधा और कृष्ण के शाश्वत प्रेम और दर्शन पर आधारित है। राधा यहाँ परम पुरुष कृष्ण के प्रेम की अनंत शक्ति का रूपान्तरण है। इसी प्रकार बौद्ध धर्म की तांत्रिक शाखा का प्रभाव भी बाउलों पर दृष्टगोचर होता है। इसके अन्तर्गत परमानन्द की प्राप्ति हेतु यौन गतिविधियों का अभ्यास योगसाधना के माध्यम से किया जाता है। इस अवस्था को 'बोधिचित्त' कहते हैं जो 'रज' और वीर्य के एकीकरण की प्रक्रिया द्वारा प्राप्त होता है। बोधिचित्त की उत्पत्ति की प्रक्रिया में प्रकृति के पाँच तत्वों, यथा– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुऔर आकाश तत्व की प्राप्ति होती है। अतः यह ब्रह्मांड के परमतत्त्व के रूप में द्योतित होता है। यह विचार किया जा सकता है कि बाउलों का यह 'उल्टा पथ' और साधना पद्धति समस्त आध्यात्म–विद्या सम्बन्धी आचारों और यौगिक आशयों के साथ मध्यकालीन संतो द्वारा प्रचारित किया गया और अपनाया गया। यह भी मालूम होता है कि 'सूफी' जिनका प्रभाव बाउलों पर व्यापक रूप में देखा जा सकता है, वे भी इस उल्टे पथ के वैसे ही साधक थे, जैसे–स्वयं बाउल।

बाउल संप्रदाय में 'मोनेर मानुष' की अवधारणा मिलती है जिसका प्रयोग बाउल गीतों में बहुधा देखने को मिलता है। इस 'मोनेर मानुष' का निवास स्थल मानव देह है और इसका आसन मानव हृदय। काव्य रूप में 'मोनेर मानुष' को सर्वश्रेष्ठ प्रिय/प्रेयसी के रूप में वर्णित किया जाता है जहाँ कवि स्वयं उसका पागल प्रेमी होता है। बाउल गीतों में सर्वत्र 'मोनेर मानुष' के प्रति विरह जन्य वेदना और उससे मिलन की उत्कट इच्छा अभिव्यक्त की गई है। इसका संबंध वास्तव में अपने अंदर निहित परम सत्य अथवा सहज सत्य की पहचान करने से है। हमारा प्रिय हमारे अंदर दिव्य–व्यक्तित्व के रूप में विराजमान है और मानव–हृदय उसका प्रेमी है, इसे ज्ञान के अभाव में हम बहुधा अलग करके देखते हैं। सूफियों और बाउलों ने सच्चे प्रेम पर सर्वाधिक जोर दिया है। सच्चे प्रेम से प्राप्त परमानंद के माध्यम से भक्त'फ़ना' की स्थिति अर्जित कर लेता है। प्रेम की अग्नि प्रज्ज्वलित होते ही सारी विषय वासनाओं का गट्ठर जिनसे 'अहं' की मिथ्या चेतना जाग्रत हुई थी, वह राख होने लगती है। इससे हृदय को आन्तरिक कष्ट महसूस होता है और 'मैं' रूपी बर्फ पिघलकर आँसुओं के रूप में बहने लगता है। इसके फलस्वरूप मनुष्य का 'मैं' और उसके अंदर निहित 'वह' दोनों का एकीकरण हो जाता है। यही वह सत्य है जिसे'मंसूर हल्लाज'(Halls) ने अपनी रहस्यमयी भाव–समाधि के रूप में महसूस किया था और उससे प्रेरित होकर उन्होंने संसार में 'अनल हक' अर्थात् 'मैं और सत्य दोनों एक हैं', की घोषणा की थी। इसे बौद्धिक युक्ति अथवा तर्क से नहीं,

बल्कि प्रेम के चरमानंद के माध्यम से ही महसूस किया जा सकता है जिसमें सत्य स्वयं को प्रेमी के समक्ष आप ही प्रकट करता है : कि 'कोई अज्ञात है जो उसके भीतर गुप्त रूप से विद्यमान है'–

r¨ekj e¨uj e¨) vkj ,d e¨u vkN x¨
rfe e¨u fe'kkv¨ '¨b e¨uj lkF¨
ngj ek> vkN j ekU"k
MkdY¨ dFkk d;--- –हारामणि, पृ0 2

बाउलों की विशिष्टता यह है कि गीत–संगीत, कीर्तन–नृत्य के माध्यम से ही वे अपनी साधना और जीवनचर्या का यापन करते हैं। जीवन का सत्य रहस्यमय ढंग से बाउल गीतों में निहित होता है, जिसमें मुख्य भाव एक झीने कलात्मक आवरण से ढँका होता है। ये गीत सामान्य विलासी जीवन के प्रति उदासीनता का स्पर्श लिए होते हैं जिसमें सर्वश्रेष्ठ प्रिय, मोनेर मानुष से मिलने की अगाध पीड़ा और निष्ठा का भाव निहित होता है। शुरूआती दौर में बाउल गीतकारों ने स्वयं को'साईं' (संकेत रूप में गोसाईं) की संज्ञा दी थी। यह ऐसे गुरु का पद है जिनकी दिव्य आभा के अभाव में यह ब्रह्मांड अंधकारमय है। ईश्वर अथवा गुरू को साईं कहा जाता है अथवा स्वयं गीतकर्ता भी साईं कहलाता है। जैसा कि श्रीरामकृष्ण देव परमहंस ने कहा है–''वे लोग ठाकुर–पूजन, मूर्ति पूजन, यह सब पसन्द नहीं करते–जीता जागता आदमी चाहते हैं। इसलिए उनके दर्जे के आदमियों को कर्ताभजा कहते हैं। कर्ताभजा अर्थात् जो लोक कर्ता को गुरु को ईश्वर समझते और इसी भाव से उनकी पूजा करते हैं।''(श्रीराम कृष्ण वचनामृत, प्रथम भाग, इक्कीसवाँ संस्करण, पृ0सं0 592)।

गोसाईं शब्द का उद्भव वैष्णव धर्म से हुआ है और यह अत्यंत गरिमामय संज्ञा है जिसे हम बाउल गीतों में सर्वथा देख सकते हैं। बाउल गीतों अथवा बाउलों द्वारा प्रयुक्त जी जाने वाली भाषा संध्या भाषा अथवा प्रतीकात्मक भाषा है। प्रसिद्ध बाउल अध्येता विद्वान डॉ0 शशि भूषण दास गुप्ता ने 'संध्या भाषा' को दो भागों में बाँटा है, यथा–विशिष्ट तकनीकी शब्दावली और पहेली या बुझौवल, जिन्हें विश्लेषित करने से बेहद मनोरंजक और असंगत अर्थ प्राप्त होते हैं। ये गीत ज्यादातर पहेली रूप में पूछे जाते हैं जिसमें गीतकार पूछता है–'कोई इसका रहस्य जानता है?'। कभी–कभी इन गीतों का प्रयोग विभिन्न चरणों के अभ्यस्त और अनभ्यस्त बाउलों के बीच भेद करने के उद्देश्य से किया जाता है। इसमें गायक पहेली को सुलझाने की चुनौती देता है, यह एक तरह के मौखिक द्वन्द्व (पल्ला) का अंश होता है जिसमें अन्य दीक्षित गायक/बाउल को उसका अर्थ समझाना होता है। किसी सामान्य व्यक्ति के समझने हेतु उसके संकेत बता दिये जाते हैं, जिसके माध्यम से गीत का अभिप्राय समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए यादु बिन्दु का एक गीत (अनूदित)–

gYkokg D;k reu viuh efr [k¨ nh g\
re viuh gh Òfe dh n[kÒkYk ugÈ djr
N% fpfM;¨ dk leg] pkoYk d¨ pxk
tk jgk gA
t¨ rEgkj vx¨ d enku e iddj lugY¨
g, F¨A
ekuo&ng dh bl oÒo'kkYkh l;r Òfe e
fdlkuh djr g,
reu bu QlYk¨ d¨ mitk;k Fkk---

(यहाँ चिड़ियों के समूह का आशय 6 शत्रुओं, से है–क्रोध, काम वासना, लालच, अज्ञानता, अहंकार, ईर्ष्या है।

बाउलों द्वारा प्रयुक्त वाद्य यंत्रों में गोपी यंत्र या एकतारा प्रमुख है (लौकी को धूप में सुखाकर बनाया गया वाद्य यंत्र) इसके अलावा ढोलक, दोतारा, डुबकी, गुबगुबी, नगाड़ा (जो उनके कमर से बंधा हुआ होता है) इत्यादि अन्य वाद्य हैं। उनके पैरों में नुपूर बंधा होता है जो डुबकी पर पड़ती

लयात्मक थापों के द्वारा अद्भुत धुन और स्वर समता की सृष्टि करता है। बाउल गीतों का उदात्त आशय होता है, उसकी शैली अभिव्यंजनात्मक होती है। बाउल मन की शुद्धि पर जोर देते हैं जिससे कि उसमें त्याग और समर्पण की भावना जन्म ले सके–

l lkj e ogh ^,d* g
ft l ge ugÈ tkur
Y¨fdu og pEcdh; 'kfä d lkFk
ÁdV g¨rk gA
tc ge mldh rYkk'k g¨rh g
rc uch v©j vYkh dke ugÈ vkr]
efnj] efLtn] bckjr vFkghu Ykxr gA
ml ^dYkek* v©j jhfr&fjokt¨ l d¨b okLrk ugÈ g¨rkA
og ^ihj¨* dk ^ihj* g
og lcl 'k) g
og lokf/kd U;k; i.k g
og lcl nYkÒ g
og lkb ge lce jgrk g
Y¨fdu ge og ugÈ feYkrk
D;¨fd og gekjh Kku&lhek l ij g
og eu";Ro dh fn0;rk e lekfgr g
ge lce og okl djrk gA –अज्ञात

अद्वैतवाद का सार और वेदों का प्रभाव भी बाउल गीतों में बहुधा परिलक्षित होता है। सुप्रसिद्ध बाउल 'लालन फकीर' के अनुसार प्रेममय ईश्वर एक रहस्य की सृष्टि करता है और साधक या भक्त को साधना के माध्यम से जीवन की परीक्षा देकर उस रहस्य तक पहुँचना होता है। 'लालन फकीर' द्वारा रचित एक ऐसे ही रहस्मय पद (अनूदित) का उदाहरण है–

n[k¨] pæek v©j l;A
rhu¨[2] v¨j l f?kj cxhp e
vnÒr :i l f[kY¨ g
Vgfu;k[3] dkV nh xb g
fQj Òh QYk[4] o{k l YkVd g
N% 'kB[5] bl n'; d n'kd g
Áee; b'oj viuh fn0; vkÒk l
;g jgL; jprk g
vxj d¨b QYk¨ d¨ Ákl r djrk g
r¨ og QYk¨[6] d¨ Ákl r dju e l{ke g¨xk
o QYk t¨ vur e f[kY¨ gA
YkkYku dgr g ^v¨g] ejh ckr luk]
e bu lÒh dk jgL; tkuu vk;k gA**

1. पुरुष और प्रकृति, 2. तीन धमनियाँ–इड़ा, पिंगला, सुषम्ना, 3. माया, 4. इच्छाएँ/कामनाएँ, 5. क्रोध, ईर्ष्या, अहंकार, कामवासना, लालसा, लोलुपता, 6. ईश्वर/ईश्वरत्व।

बाउल मुख्यतया अपने अद्भुत और विरागमय सुंदर गीतों के लिए जाने जाते हैं, विशेष तौर पर 19वीं शताब्दी के बाद से उनके प्रभाव में बहुत वृद्धि हुई है। उसी समय से बाउल गीतों और 'बाउल कौन होते हैं' की अवधारणा पर सभ्य, सुशिक्षित बंगालियों और यूरो–अमेरिकनों, बुद्धिजीवी

वर्ग द्वारा महत्त्वपूर्ण ढंग से विचार किया जाने लगा। मूल रूप में बाउलों को बंगाली, भारतीय, हिन्दू, मुस्लिम, अभौतिकवादी या धर्मनिरपेक्ष संतों के रूप में विशुद्ध देशज धरोहर का धारक माना गया है।

बाउल स्वयं को 'खेपा' (अर्थात विक्षिप्त) कहते हैं, अर्थात् जिनकी तंत्रिका तंत्र समुचित रूप से कार्य न करती हों, जिसके कारण वे सभी प्रकार के सामाजिक रीति–रिवाजों और आचार–व्यवहारों की अवहेलना करते हैं। 'खेपा' अर्थात् सत्‌चित्–आनंद, उच्च रूप में रहस्मय पूर्ण जाग्रत, सचेत, दिव्य–आभा से परिपूर्ण, सांसारिक वासनाओं से विरक्त और ईश्वरत्व से उच्च रूप में संबद्ध, इस स्थिति का ढोंग नहीं किया जा सकता। यह पद सभी को नहीं मिलता बल्कि, वह अवधूत जो सभी परिस्थितियों में समान भाव से रहते हुए साधना के पथ पर अग्रसर हो, उन्हें प्राप्त होता है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर बाउल दर्शन से गहन रूप में प्रभावित थे।'नाबनी दास' (खेपा बाउल) ने उन्हें सर्वाधिक प्रभावित किया था, उन्होंने ही रवीन्द्रनाथ टैगोर को 'रवि बाउल' की संज्ञा प्रदान की। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बाउलों के तात्विक विचार और सत्यान्वेषण की भावना की गहन प्रशंसा की है और कहा है कि इन बाउलों का एक दर्शन है जिसे वे स्वयं शारीरिक दर्शन से जोड़कर देखते हैं, परन्तु उसे गुप्त रखते हैं... यह गूढ़ सत्य इन सहज, विनम्र प्रकृति के मनुष्यों के लिए तो सुलभ है किन्तु उन्हें नहीं जो अहंकारी और अभिमानी हों।

बाउलों के अध्ययन का महत्त्व अब केवल दक्षिण–एशियाई संदर्भों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि हाल ही के कुछ वर्षों में बाउलों की भूमिका का दक्षिण–एशियाई आध्यात्मिकता और लोक संस्कृति के परिचायक या प्रतिनिधि के बतौर गहन रूप में प्रसार हुआ है। वर्तमान समय की बात करें, तो बाउल गायक सतत् रूप में सांस्कृतिक–भ्रमण कार्यक्रमों, सरकार द्वारा प्रायोजित भारतीय उत्सवों, बहुधा सांस्कृतिक कार्यशालाओं, संगीत–समारोहों और संगीत, नृत्य, काव्य–गोष्ठी, नाटक, योग–ध्यान आदि पर आधारित अंतर–सांस्कृतिक सम्मेलनों में भाग लेते हैं। बाउल सम्राट माने जाने वाले 'पूर्णदास बाउल' का अमेरिकी संस्कृति पर बेहद गहरा प्रभाव है।'बॉब डिलेन' के एक एल्बम के मुखपृष्ठ पर उनकी छवि विद्यमान है, इसके अलावा'गिन्स बर्ग' द्वारा अपनी कविता में बाउल गीत का समर्थन बाउल संस्कृति की व्यापकता, उसकी समृद्धि और महत्व को वैश्विक स्तर पर रेखांकित करता है।

I UnHk! %

1. Openshaw, Jeanne, 'Seeking Bouls of Bengal : University of Cambridge Oriental Publication, Cambridge, U.K.
2. गुप्त, श्री महेन्द्रनाथ, श्री रामकृष्ण वचनामृत, प्रथम भाग, रामकृष्ण मठ, नागपुर, इक्कीसवाँ संस्करण
3. Dasgupta, Shashibhusan, 'Obscure Religius Cults', Sarswati Printing Press, Maujur, Delhi 3rd Edition, 1969
4. Bandyopadhyay, Pranab, 'Bouls of Bengal : Firma KLM Avt. Ltd. Calcutta 1989, First Edition, 1989
5. Das, Sandra Trishula, 'Vaishnava Bauls of Birbhum Bengal' Sutra Journal, a curated on art, culture and Dharma, Dec. 2015, Source, Internet

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 64-69

HkfDr dkO; vkSj jl[kku

fueZyk oekZ*

जीवन के सामाजिक और सांस्कृतिक पक्षों को धर्म और राजनीति ने हमेशा प्रभावित किया है। भारतीय भाषाओं में ही नहीं बल्कि दुनिया भर की भाषाओं की रचना भूमि धर्म और राजनीति से अछूती नहीं है। भारतीय साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले संस्.त का आदिकाव्य रामायण और महाभारत राम और कृष्ण के चरित्रों के आख्यान के साथ ही धर्म और राजनीति को भी प्रस्तुत करते हैं। हिंदी साहित्य के विकास क्रम में भी सिद्धो और नाथों की परम्परा जहां एक तरफ धर्म और भक्ति से संबंधित है वहीं रासो ग्रंथ राजनीति और प्रेम से संबंधित है। तब सवाल उठता है कि ऐसी कौन सी बात है हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में जिससे साहित्य के भीतर धर्म और राजनीति अपनी जगह क़ायम करती रही हैं? हिंदी साहित्य में भक्ति धारा के उदय और उसके सक्रिय होने की अनेक व्याख्याएं दी जा सकती है, लेकिन इन व्याख्याओं के प्रसंग में एक ज़रूरी सवाल यह है कि हिंदी साहित्य के भीतर एक निश्चित समय में ही भक्ति की जो धारा ज्यादा सक्रिय दिखाई देती है उसके पीछे क्या कारण है? एक निश्चित दौर में भक्ति काव्य की सक्रियता ज्यादा दिखाई देती है तो उसकी अलग अलग धाराओं को क्या धर्म और राजनीति के बदलते संदर्भों के रूप में देखा जा सकता है? और यदि देखा जा सकता है तो कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा और रसखान की कविता का क्या महत्व है? ज़ाहिर है कि इसे समझने के लिए भारतीय जीवन और उसकी सामाजिक संरचना के साथ राजनैतिक भूमिका को भी समझना ज़रूरी है और तब साहित्य में उसके ठीक–ठीक प्रभाव को रेखांकित किया जा सकता है।

भक्ति काव्य के महत्व को इस बात से ही स्वीकार किया जा सकता है कि हिंदी आलोचना के शुरुआती दौर से लेकर आज तक भक्ति काव्य को बार–बार नए सिरे से देखने और उसे समझने की भी कोशिश होती रही है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य को परिभाषित करते हुए 'जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब' की बात करते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी 'लोकचिंता की अपेक्षा में' साहित्य को देखने की सिफारिश करते हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी आचार्य शुक्ल के शब्द जनता और आचार्य द्विवेदी के शब्द लोक की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि " यों द्विवेदी की चिन्ता समाज के पिछड़े वर्ग की ओर अधिक है। तब यह भी स्वाभाविक है कि आचार्य शुक्ल के मानक कवि जनता में प्रिय कवि तुलसी हैं, जब कि द्विवेदी के मानक कवि लोक में प्रिय कवि कबीर हैं।"[1] (हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास पृष्ठ 31) हिंदी साहित्य के अध्ययन के क्रम में हम देखते हैं कि 'जनता' और लोक का जो द्वंद है वह शिष्ट और लोक साहित्य का भी द्वंद्व है भाषा और भाव का भी द्वंद्व है, राजनीति और धर्म का भी द्वंद्व है। जनता अपने आप में ही ज़्यादा राजनैतिक अर्थ व्यक्त करता है जबकि 'लोक' ज्यादा परंपरागत और धार्मिक अर्थ रखता है। जब हम कबीर को पढ़ते हैं तो उनकी बानियों में प्रेम और भक्ति गहराई से परिलक्षित होती है और गोस्वामी तुलसीदास के यहां भक्ति और मर्यादा दिखाई देती है। जबकि दोनों के आराध्य राम हैं। एक ही चरित्र का दो कवियों की रचनाओं में अलग–अलग विस्तार तात्कालिक समाज और संस्कृति का विस्तार है। यही नहीं तुलसीदास और मीरा लगभग समकालीन हैं और भक्ति धारा में दोनों का अपना अलग अलग महत्व है। लेकिन ये

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

दोनों रचनाकार अलग–अलग चरित्रों को, अलग–अलग भाषाओं में अलग अलग रूपों में अपनी भक्ति को ज़ाहिर करते हैं। एक के आराध्य राम हैं जो त्रेता के हैं और एक के आराध्य कृष्ण हैं जो द्वापर के हैं। जबकि ये दोनों रचनाकार धर्म के अनुसार कलियुग के हैं। तब यह निश्चित है कि मध्यकालीन साहित्य के भीतर जो अनेक धाराएं प्रवाहित होती हैं वह भारतीय जीवन और उसके सामाजिक–सांस्कृतिक विभिन्नताओं को रेखांकित करती है। जहां वीर, शृंगार, भक्ति काव्य इतिहास और मिथकों के साथ मिलकर अनेक जीवन चरित्रों को लोकोन्मुखी बनाते हैं। साहित्य की धारा में दोनों महाकाव्यों के चरित्रों का यह विकास भारतीय समाज के राजनैतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक स्वरूप में आये परिवर्तन के फलस्वरूप दिखाई देते हैं। अगर भारतीय इतिहास के मध्यकाल पर ग़ौर किया जाय तो राजनैतिक संघर्षों ने मध्यकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक संरचना को भी प्रभावित किया। ऐसा देखा भी जाता है कि सत्ता अपनी इच्छाशक्ति की पूर्ति हेतु सामाजिक सरंचना को बदलने और उसे तोड़ने की भी पूरी कोशिश करती है। मध्यकाल को लेकर भी ये बातें कही जा सकती है क्योंकि सामन्तवादी व्यवस्था के दायरे में अनेक नई ऐसे में राजनीतिक परिवर्तन के बाद हिंदुस्तान के सामाजिक और सांस्कृतिक संघर्षों ने कविता के लिए एक अलग रचना भूमि प्रस्तुत की जिसमें जनता के दुःख और उसके विडम्बनाओं को प्रमुखता से रेखांकित करने का प्रयास किया गया। जब समाज और राजनीति के संघर्षों के बीच आख्यान, स्मृति और संस्कृति के चिन्ह जैसे गायब हो रहे हों और धार्मिक तथा सांस्कृतिक विरासत के छीन जाने की बातें की जा रही हो तो एक साधारण मनुष्य के भीतर भी ग़म और गुस्से की आंच तेज़ हो जाती है। यह ग़म और गुस्सा कबीर और सूर में ज्यादा दिखाई देता है। सगुन और निर्गुण ब्रह्म की उपासना को लेकर मध्यकालीन कवियों की वाणियां उस दौर के धार्मिक संघर्षों के संकेत के रूप में देखी जा सकती है।

हिंदी साहित्य की निरंतरता में काव्य की धाराएं टूटती, जुड़ती और बहुत कुछ अपने साथ लेकर आगे बढ़ती रही। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के विचार में स्वाभाविक चिंतन प्रक्रिया का परिणाम भक्ति साहित्य है उक्ति भी इस तरफ रेखांकित करती है। इन सब परिस्थितियों में भक्त कवियों ने राम और कृष्ण के जीवन को लोक के संदर्भ में पुनः सृजत करने कोशिश की। रामायण और महाभारत के आख्यानों में वर्णित राम और कृष्ण के चरित्रों को विपरीत सामाजिक और राजनैतिक परिस्थियों मन लोक जीवन के अनुरूप पुनः सृजित किया जाने लगा। आदिकाव्य रामायण में वाल्मीकि ने मनुष्य को ईश्वर रूप में राम को सृजित किया है जबकि हिंदी भक्ति काव्य ईश्वर को मनुष्य के रूप में सृजित कर रहा था। कृष्ण भक्ति काव्य में भी महाभारत के कृष्ण की जगह भागवत महापुराण के कृष्ण को महत्व दिया गया और कृष्ण भक्ति काव्य धारा की एक लंबी परम्परा ने साहित्य में अपनी जगह कायम की। विद्यापति, सूरदास, मीरा की भांति ही रसखान भी कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा के एक महत्वपूर्ण कवि हैं जिनका अध्ययन काव्य शिल्प और भाषा के लिहाज़ से जितना महत्वपूर्ण है उससे कहीं ज़्यादा एक नए राजनैतिक और सांस्ःतिक संघर्षों के फलस्वरूप बनती हुई समाज के भीतर तैयार एक नई संस्कृति के लिहाज से भी महत्वपूर्ण है। इसमें कोई शक नहीं कि रसखान की कविता श्रृंगारिक है किंतु कविता के भीतर रसखान ने जिस ब्रह्म अर्थात कृष्ण का चित्रण किया है वह हिंदी कृष्ण काव्य परम्परा के अन्य कवियों से एकदम अलग और विशिष्ट है। ऐसे में यह यह सवाल उठना लाजिम है कि रसखान से पूर्व कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा की विकास की प्रक्रिया क्या थी? पंद्रहवीं शताब्दी में कृष्ण का हिंदी काव्य में राम से ज्यादा लोकव्यापी होने का क्या कारण था?

भारतीय साधना, संस्कृति और साहित्य को कृष्ण के विलक्षण चरित्र ने जितना प्रभावित किया है उतना किसी और के व्यक्तित्व ने नहीं किया। कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा की तरह कृष्णाख्यान की भी लंबी परम्परा है। ऋग्वेद के अंगीरस के रूप में वर्णित कृष्ण पौराणिक आख्यानों और महाकाव्यों होते हुए विष्णु के अवतार के रूप में रूप में भारतीय अध्यात्म और साधना के क्षेत्र में आते हैं। हिंदी कृष्ण भक्ति काव्य में कृष्ण की रासलीला एवं गोपियों के प्रेम का जो वर्णन मिलता है वह

लगभग नवीं शताब्दी में रचित भागवत पुराण में उल्लिखित है। इसमें गोपियों के साथ ही कृष्ण की एक विशेष आराधिका गोपबाला का उल्लेख हुआ है जो कि ब्रह्मवैवर्त पुराण में गोपियों में सर्वाधिक प्रभावशालिनी राधा के रूप में चित्रित हुई है। समय के साथ कृष्ण का व्यक्तित्व परिवर्तित, विकसित और विकृत होता गया और हिंदी काव्य के भीतर जनसाधारण के आकर्षण का केन्द्र बन गया। हरिवंश और विष्णु पुराण में कृष्ण के श्रृंगारी और ग्रामीण केलीक्रीड़ा का माधुर्य मिलता है जिसे मध्यकालीन हिंदी साहित्य ने लोकोन्मुखी बनाया। सातवीं आठवीं शताब्दी तक दक्षिण भारत में कृष्ण भक्ति का प्रचार ज़ोरो पर हुआ। अलवार संतों ने कृष्ण भक्ति के गीत गाए। हाल ने लोक प्रचलित कृष्ण गाथाओं का संग्रह करवाया। बारहवीं शताब्दी के हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण में राधा– कृष्ण के दो पद उधृत किये गए हैं। इसी समय कृष्ण संबंधी नाटक लिखे गए। आगे चलकर जो रचनाएं काव्य प्रबंध और नाट्य रूपों में हुई उसमें गीति भावना प्रधान रही। जब हिंदी के रूप, भाव और भाषा में जो परिवर्तन आये उसने कृष्ण भक्ति के लिए पर्याप्त जगह दी। जयदेव का गीतगोविन्द राधा–माधव के उद्दाम श्रृंगार का वर्णन किया। हिंदी में कृष्ण काव्य का आरम्भ करने वाले विद्यापति जयदेव से अधिक प्रभावित लगते हैं। विद्यापति के काव्य के संदर्भ में यह भी जानना ज़रूरी है कि विद्यापति की रचना में कृष्ण के शृंगारी भाव को ही व्यक्त किया है जहां भक्ति का अभाव है। कृष्ण भक्ति से संबंधित अनेक सम्प्रदाय बने जो पूर्ववर्ती आचार्यों ने अपने अपने सम्प्रदाय की स्थापना की। निम्बार्क, चैतन्य, वल्लभ और राधावल्लभ प्रमुख हैं। पुष्टि मार्ग अंतर्गत अष्टछाप के कवियों ने कृष्णभक्ति के प्रसार एवं प्रचार में अमूल्य योगदान दिया।

हिंदी में कृष्ण काव्य में सरसता और प्राणों का संचार करने का श्रेय सूरदास को है। महात्मा सूरदास के द्वारा कृष्ण काव्य को अत्यंत लोकप्रियता मिली।

uufu fujf[k L;ke Lo : iA
ják ?kV&?kV 0;kfi lkÃ tkfr :i vuiAA

कृष्णभक्ति धारा की लोकप्रियता इस बात से समझी जा सकती है कि रामकाव्य के सबसे बड़े कवि गोस्वामी तुलसीदास ने भी कृष्ण गीतावली की रचना की। राजस्थान के मीराबाई ने कृष्णभक्ति धारा में दाम्पत्य भाव का प्रसार किया। सुदामा चरित के प्रसिद्ध लेखक नरोत्तमदास, नंददास से लेकर अकबर के दरबार के कवियों में गंग, रहीम, रसखान और आगे चलकर रीति काव्य के कवियों ने राधा कृष्ण के शृंगार को अपने काव्य का मूल आधार बनाया। भक्ति और शृंगार के समन्वय से कृष्णभक्ति धारा हिंदी साहित्य में न सिर्फ लोकप्रिय हुई बल्कि भारतीय धर्म साधना के क्षेत्र में शंकराचार्य के अद्वैतवाद और मायावाद का खंडन करके लोक जीवन में भक्ति का प्रचार किया। संस्कृत काव्यों में राधा कृष्ण के प्रेम को अलौकिक आख्यान को हिंदी भक्त कवियों ने लौकिक धरातल पर उतरकर जनता के बीच करीहन के लोकरंजन का चरित्र प्रस्तुत किया। कविता में भाव, भाषा और संगीत को लोकचित्त के अनुसार स्वर दिया। रसखान इन कवियों में भाव, भाषा और संगीत के तौर पर एक महत्वपूर्ण कवि हैं। हिंदुस्तान में पिछले कुछ वर्षों से हिन्दू– मुस्लिम समाज को लेकर मीडिया और राजनीति में जो बहसें चल रही हैं वें भारतीय समाज की मिलीजुली संस्:ति और उसके चिंतन को आज ज्यादा महत्वपूर्ण बना दिया है। पिछले दो तीन दशकों ने एक लोकतांत्रिक देश में धर्म और राजनीति ने भारतीय समाज का जो रूप सामने खड़ा किया उसने हिन्दुतान के पिछले एक हज़ार सालों के इतिहास और उसके दर्शन को समझने की ज़रूरत को बढ़ा दिया है। ऐसे में भारतीय काव्य परम्परा में तमाम कवियों की तरह रसखान भी हमारे समय के एक महत्वपूर्ण कवि के रूप में उपस्थित होते हैं। जिस धर्म और सम्प्रदाय को केंद्र में रखकर ये बहसें ज़ारी हैं उसके महत्व और भारतीय चिंतन में उसकी जरूरत को रसखान के संदर्भ में ठीक ठीक समझा जा सकता है। खुसरो, जायसी, रहीम, रसखान से लेकर नज़ीर, मीर, ग़ालिब और आधुनिक कवियों में इक़बाल, फ़ैज़, गुलज़ार तक हिंदुस्तान की काव्य परम्परा के महत्वपूर्ण कवि हैं। ये कवि अपने समय में तो महत्वपूर्ण स्थान रखते ही हैं समकालीन बहसों और विमर्शों ने और भी महत्वपूर्ण

बना दिया है। मसलन रसखान की कविता हिंदी भक्ति काव्य की कृष्ण परम्परा और भारतीय दर्शन की मिली जुली चिंतन भक्ति धारा को भी रेखांकित करती है। संस्कृत काव्य शास्त्र में काव्य रचना को ब्रह्म के आनन्द के रूप में स्वीकार किया गया है। रसखान अपनी कविता में ब्रह्म का आनन्द हेतु प्रेम का आश्रय लेते हैं और कृष्ण भक्ति में सांसारिक जीवन जीने की बात करते हैं।

'^vkuUn vuHko gk r uÇg] fcu çe tx tkuA
d og fo"k;kuUn d] cãkuUn c[kkuAA**[2]

रसखान की कविता जीवन और जगत से वैराग की बात नहीं करती बल्कि इसी संसार में रहते हुए और कृष्ण भक्ति में डूबने की बात करती है। जिस ब्रह्म को शिव और ब्रह्मा से लेकर तमाम देव स्तुति करते हैं उसको प्राप्त करने के लिए कहीं और क्यों जाना?

^^'kdj l l j tkfg Hk t pr jkuu è;ku e èke c<koA
ud fg; e tk vkorgh egk tM e< j l[kku dgkoAA
tk ij lnj nocèk uÇg okjr çku vckj yxkoA
rkfg vghj dh Nkgfj;k NfN;k Hkfj NkN i ukp upkoAA**[3]

रसखान की भक्ति प्रेम और श्रृंगार के साथ मिलकर माधुर्य भाव का एहसास कराती है। वे मानते हैं कि प्रेम सब धर्मों का सार है। वेद, पुराण, शास्त्र और कुरान पढ़कर भी अगर प्रेम नहीं उपजा तो जीवन व्यर्थ है।

^^Jfr] ijku] vkxe] Lefrfg] çe lcÇg dk lkjA
çe fcuk uÇg mit fg;] çe cht vdokjAA**[4]

भारतीय धर्म दर्शन में मोक्ष की कल्पना है। पर रसखान तो कृष्ण भक्ति में इतने रमे हुए हैं कि उन्हें मोक्ष की लालसा नहीं है। वह तो मनुष्य की तरह कृष्ण के ब्रज में ही रहना चाहते है।

^^ekul gk rk ogh jl[kku] clk fefy xkdy xko d XokjuA
tk il gk rk dgk cl ejk] pjk fur un dh èku e>kjuA
ikgu gk rk ogh fxfj dk] tk èk;k dj N= ijnj èkkjuA
tk [kx gk rk cljk djk fefy dkÇynhdy dnEc dh MkjuAA**[5]

रसखान का मानना है कि शास्त्र पढ़कर पंडित हुआ जा सकता है और कुरान को पढ़कर मौलवी भी। अगर वेद, पुराण और कुरान पढ़कर प्रेम को नहीं समझा तो जीना व्यर्थ है।

^^'kkL=u if< ifMr Hk,] d ekych djkuA
t, çe tkU;k ugÈ fdgk] fd;k jl[kkuAA**[6]

रसखान की कविता में कृष्ण प्रेम उत्सव की तरह है। रीतिकाल के दरबारी ढंग पर कविता करते हुए भी रसखान भक्ति के भाव को आधार बनाया। रसखान ने प्रेम के केंद्र में कृष्ण के सौंदर्य की परिधि निर्मित की है। डॉ कृष्णदत्त पालिवाल ने रसखान के संदर्भ में लिखते हुए कहा कि "मूल बात तो यह है कि जब तब रीतिकालीन ढंग का वर्णन तो किया पर मन सात्विक भक्ति भावना के अनन्य प्रेम संसार में ही सुख का अनुभव करता है। कहना न होगा कि रसखान के राधा–कृष्ण निकुंज बिहारी श्यामा श्याम कम हैं, ब्रज बिहारी, गोचारण भाव के राधा कृष्ण ज्यादा हैं।''[7]

शंकराचार्य ने ब्रह्म और जीव को अद्वैत माना था। भारतीय काव्य परम्परा में शंकर के इस दर्शन को कबीर आदि कवियों ने आगे बढ़ाया और ब्रह्म से प्रेम भाव रखने की बात कही। सूफी कवियों ने भी ब्रह्म की प्राप्ति के लिए प्रेम को आधार बनाया। रसखान प्रेम के अद्वैत में भी द्वैत को बनाये रखना चाहते है। आनंद की प्राप्ति तो द्वैत में ही सम्भव है अद्वैत में तो अस्तित्व का ही त्याग है। इसलिए ब्रह्म से वह लौकिक प्रेम की बात करते है।

^^[kyr Qkx lgkx Hkjh vujkxÇg ykyu dk èkfj dA
ekjr dde dlfj d fipdkfju e jx dk Hkfj dAA

xjr yky xyky yyh eu ekfguh ekt feVk djh dA
tkr pyh jl[kkfu vyh eneLr euk eu dk gfj dAA**8

रसखान के कविता में जो भारतीय लोक जीवन दिखाई देता है उसमें कृष्ण का भाव भारतीय समाज को एक करता है। वह लोक जीवन की चित्त को श्रीकृष्ण में विसर्जित करने का भाव है। उनकी कविता में न तो सगुण–निर्गुण का द्वन्द्व है और न ही योग–कर्मकांड है। विद्यानिवास मिश्र रसखान के बारे में लिखते हैं कि "रसखान का संसार देखने में छोटा है, ब्रज के कुछ हजार गोप गोपियों का संसार है। पर वस्तुतः बड़ा विस्तृत है क्योंकि वह खुला हुआ है, क्योंकि कहीं बीच में कोई ओट या दीवार नहीं है।"[9]

रसखान ने कृष्ण को नर भी माना और ब्रह्म भी। वे कहते हैं कि कृष्ण तत्वतः ब्रह्म ही हैं जिनकी स्तुति सभी करते हैं।

ll xul egl fnul] ljlg tkfg fujrj xkoA
tkfg vukfn vur v[k.M] vNn vHkn lcn crkoAA
ukjn l ld 0;kl jg] ifpgkj r ifu ikj u ikoA
rkfg vghj dh Nkgfj;k] NfN;k Hkfj NkN i ukp upkoAA

रसखान की कविता कृष्ण के विविध रूप और केली क्रीड़ा का ही दर्शन नहीं कराती बल्कि उसके प्रेम और भक्ति की प्यास भी जगाती है। मध्यकालीन साहित्य और कला को सबसे ज्यादा प्रभावित करने वाला कृष्ण का व्यक्तित्व गीत और संगीत से लोक चित्त में उतरता है। रसखान जीव और ब्रह्म के बीच किसी तीसरे की जगह नहीं देना चाहते। कृष्ण के प्रति यह प्रेम रसखान की भक्ति भावना को पूरे कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा में विशिष्ट बनाता है।

dkUg Hk; cl ckljh d] vc dku l[kh gedk pfggA
fufl |kl jg ;g vkl yxh] ;g lkfru lklr dk lfggA
ftu ekfg fy;k euekgu dk] *jl[kkfu* l D;k u gek nfggA
fefy vkok lc dg Hkkx pyk] vc rk ct t e ckljh jfggAA

डॉ कृष्णचन्द्र वर्मा रसखान के बारे में लिखते हैं कि "प्रेम की ऐसी भावना रसखान के ही बुते की बात थी। मानना पड़ेगा कि स्वच्छन्द वृत्ति वाले कवियों में रसखान की सी भावना लेकर चलने वाला दूसरा कवि नहीं है।"[10]

हिंदी साहित्य के इतिहास में सम्प्रदाय निरपेक्ष कवि विरले हैं। उन विरले कवियों में माधुर्य भक्ति के उपासक रसखान ने रस के शास्त्रीय बोध से अनभिज्ञ रहते हुए भी भक्ति में प्रेम और शृंगार का भाव कविता में उपस्थित किया है वह सौन्दर्यानुभूति की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

**dkg dk ek[ku pkf[k x;k v# dkg dk nek ngh ekjdk;kA
dkg dk phj y #[k p<;k v# dkg dk xtekjk Ngjk;kA
ekul ug cjt jl[kkfu l tkfu;l jkt bUg ?kj vk;kA
vko jh c> t lkefr lk ;g Nkgjk tk;k fd eo ex;kAA**11

कहना न होगा कि वर्तमान समय में मध्यकालीन इतिहास, कला और साहित्य को लेकर जो बातें की जा रही हैं भारतीय समाज और उसकी संस्कृति को फिर से समझने की ज़रूरत है। कृष्णदत्त पालिवाल के शब्दों में कहें तो "हिन्दुतान में हिन्दू–मुस्लिम रिश्तों को लेकर जो बहस चलती है रसखान उसके उत्तर बनकर सामने आए हैं। उन्होंने धर्म, जाति, सम्प्रदाय से ऊपर उठकर मनुष्य को प्रेमतत्व का एहसास कराया। और तब एहसास कराया जब हिन्दू बहुत जनता पर मुस्लिम सुल्तानों का हुक्म चलता है। लेकिन सुल्तानों का कोई हुक्म रसखान पर नहीं चलता। हुक्म चलता है उनपर कृष्ण का।"[12]

भारतीय धर्म साधना के क्षेत्र में जगत को नश्वर माना गया है। जीवन को सांसारिकता के मोह बंधन से मुक्ति के लिए ब्रह्म स्तुति और साधना के लिए अनेक आचार्यों ने दार्शनिक मतों को

रखा है। भक्ति काव्य धारा के अनेक कवियों ने इन मतों को आधार बनाकर अपनी कविता की। इसी क्रम में हम देखते हैं कि सगुण निर्गुण का द्वंद्व, ब्रह्म जीव का द्वंद्व, जीवन और माया का द्वंद्व जैसी बातें भक्ति काव्य धारा में किसी न किसी रूप में आई है। रसखान का पूरा काव्य न सिर्फ़ कृष्ण भक्ति काव्य धारा में बल्कि सम्पूर्ण भक्ति काव्य धारा में सम्प्रदाय वाद से अलग अपना स्वर रचता है। रसखान के यहां कृष्ण से प्रेम ही आनंद की प्राप्ति है। ब्रह्म संसार से अमूर्त कोई शक्ति नहीं बल्कि इसी संसार में कृष्ण रूपी नर का रूप है। उससे प्रेम के लिए बार बार जन्म लेना हो तो भी रसखान लेना चाहते हैं। जहां हम देखते हैं कि जायसी जीव को ब्रह्म में ही विलीन कर देते हैं (छार उठाय लीन्ह एक मूंठी। दीन्ह उड़ाइ पिरिथिमी झूठी।।) वहीं रसखान प्रेम को जीवन और जगत से जोड़ कर रखते हैं।

I UnHk! %

1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, पृ 39
2. रसखान रचनावली, संपादक विद्यानिवास मिश्र, सत्यदेव मिश्र, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 88
3. वही, पृ. 27
4. वही, पृ. 88
5. वही, पृ. 29
6. वही, पृ. 88
7. भक्ति काव्य से साक्षात्कार, कृष्ण दत्त पालीवाल, भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ 274
8. रसखान रचनावली, पृ.28
9. वही, पृ. 121
10. रीतिस्वछंद काव्यधारा, कृष्ण चंद्र वर्मा, पृष्ठ 115
11. रसखान रचनावली, पृ. 69
12. भक्ति काव्य से साक्षात्कार, कृष्ण दत्त पालीवाल, पृ. 274

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No.70-71

ikfy dkO; lkfgR; % ,d ifjp;

Ýklkelkd o..klu*

पालि साहित्य के अन्तर्गत सम्पूर्ण त्रिपिटक (बुद्ध–वचन) ही सर्वोत्तम काव्य है। पालि काव्य भगवान् बुद्ध का वह शाश्वत और अनन्त सौन्दर्यमय काव्य है, जिसका जीवन में साक्षात्कार कर लेने पर मनुष्य के लिए जरा और मरण की नहीं रह जाते। अथर्वेद के अनुसार–

^^noL; i'; dkO;: u eekj u th;frA**[1]

अर्थात् जो पवित्र सौन्दर्य हिमगिरि में नहीं है, जो निष्पापता उषा में नहीं है, जो गहनता महा समुद्र में नहीं है। संक्षेप में हम यह कह सकते है कि जो काव्यत्व विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं है, वह ज्ञानी (बुद्ध) की चर्चा में है, तथागत के ईर्यापथ में है, सम्यक् सम्बुद्ध के शब्दों में है। पालि त्रिपिटक से ज्ञात होता है कि बुद्ध के शिष्यों में स्थविर वंगीश एक कवि ही थे ओर कहा गया है कि उन्हें अर्थ भासित हुआ करते थे। थेर और थेरीगाथाओं में सुन्दर प्रकृति–काव्य और गीति–काव्य हैं।

पालि काव्य साहित्य के विवेचन से ज्ञात होता है कि पालि काव्य संस्कृत काव्य की अपेक्षा कम उन्नत है। कहने का तात्पर्य यह है कि त्रिपिटक–गत काव्य या काव्यत्व से नहीं होता, बल्कि काव्य–शिल्पियों की उन रचनाओं से होता है, जो उन्होंने बौद्ध विषयों को आधार मानकर उत्तर–काल में पालि भाषा में की है। इस प्रकार की रचनाएँ प्रधानतः लंका और अंशतः बर्मा में 10वीं–15वीं शताब्दी[2] तक और उसके बाद तक भी होती रहीं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन रचनाओं की विषय–वस्तु त्रिपिटक से ही ली गई है।

पालि काव्य–ग्रन्थ अल्प है और उनमें भी किसी महनीय काव्य–परम्परा का प्रवर्तन नहीं मिलता। इस काव्य में कला के उस सृजनात्मक सौन्दर्य एवं कल्पना के दर्षन यहा नहीं होते, जो किसी साहित्य को विषेषता प्रदान किया करते हैं। सम्भवतः इसका कारण यह भी हो सकता है कि कल्पनात्मक मनोरोगों के प्रदर्शन को स्थविरवादी बौद्ध परम्परा ने आरम्भ से ही अपनी साधना का अंग नहीं बनाया है। स्वयं तथागत–भाषित सूत्रान्त गम्भीर, गम्भीरार्थ और शून्यता से प्रतिसंयुक्त हैं। उनको काव्य का रूप देना या संगीत की तरह गाना निषिद्ध है। कवि–कष्त कविताओं और सामान्यतः काव्य को यहां भिक्षु–संघ के लिए एक अनागत–भय बताया गया है।

काव्य और काव्य–शास्त्र दोनों ही बौद्ध साधकों के लिए अध्ययन के क्षेत्र के बाहर हैं। इसलिए काव्य प्रतिभा को पालि परम्परा में अधिक प्रोत्साहन नहीं मिल सका है। भाषा की दृष्टि से भी पालि के इस काव्य–साहित्य का अधिक महत्त्व नहीं है। पालि साहित्य के प्राचीन मौलिकता के स्थान पर यह साहित्य संस्कृतापेक्षी अधिक हो गया है। अतः पालि साहित्य के इतिहास में उसके काव्य–साहित्य का विवेचन एक गौण स्थान का ही अधिकारी हो सकता है।

ikfy dkO;&xzUFk % विषय की दृष्टि से पालि काव्य–ग्रन्थ को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, यथा– 1. वर्णनात्मक काव्य–ग्रन्थ, 2. पालि काव्य–आख्यान।

यह भेद सिर्फ विषय के बाह्य स्वरूप का है। प्रवृत्ति और शैली तो सब जगह एक–सी ही है– नैतिक आदर्शवाद और नीरस इतिवृत्तात्तमक शैली। लेकिन कहीं–कहीं रसात्मकता के भी पर्याप्त दर्शन होते हैं। मुख्य वर्णनात्मक काव्य–ग्रन्थ निम्नलिखित है– (I) अनातगवंस, (II) तेलकटाहगाथा, (III) जिनालंकार, (IV) जिनचरित, (V) पज्जमधु, (VI) सद्धम्मोपायन, (VII) पंचगतिदीपन, (VIII) लोकप्पदीपसार या लोकदीपसार।

*शोध छात्र, पालि एवं थेरवाद विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

1- vukrxol[3] % अनागतवंस भविष्य में उत्पन्न होने वाले भगवान् बुद्ध के मैत्रेय के जीवन–इतिहास के रूप में लिखा गया है। इसमें बुद्ध और सारिपुत्र के संवाद वर्णन किया गया है।

डॉ. विमलाचरण लाहा के अनुसार– अनागतवंस का यह संस्करण पालि त्रिपिटक के अनागत भय सूत्रों और उन सूत्रों, जिनमें दस भावी बुद्धों का निर्देश हुआ है, के पूरक रूप में लिखा गया है,[4] ऐसा ज्ञात होता है। इसका वास्तविक स्वरूप अभी बहुत कुछ अनिश्चित है।

2- rydVkgxkFkk[5] % बौद्ध अनुश्रुतियों के अनुसार कल्याणमित्र नामक भिक्षु के द्वारा लिखी गई गाथा ही तेलकटाहगाथा है, जिसका अर्थ है खौलते हुए तेल की कड़ाही में लिखे गये पालि श्लोक या पालि गाथा। इसमें 98 गाथाएँ है, जो 9 वर्गों में विभक्त है। जो निम्नलिखित है– (i) रतनत्तय (बुद्ध, धर्म और संघ), (ii) मरणास्सति (मरण की अनुस्मृति), (iii) अनिच्चलक्खण (अनित्यता का लक्षण), (iv) दुक्खलक्खण (v) अनत्तलक्खण (अनात्म का लक्षण), (vi) असुभ लक्खण, (vii) दुच्चरित–आदीनवा (दुराचार के दुष्परिणाम), (viii) चतुरारक्खा (चार आरक्षाएँ), (ix) पटिच्चसमुप्पाद (प्रतीत्यसमुत्पाद)।

तेलकटाहागाथा के विषय–सूची से ज्ञात होता है कि बौद्ध धर्म के सभी महत्त्वपूर्ण विषय इन गाथाओं में है। जिसमें संसार की अनित्यता, जीवन की असारता और वैराग्य की महत्त पर गम्भीर विचार किया गया है।

3- ftukydkj % जिनालंकार की रचना 12वीं शताब्दी में बुद्धरक्षित नामक भिक्षु के द्वारा हुई। इसमें भगवान् बुद्ध के जीवन से लेकर ज्ञान की प्राप्ति तक का वर्णन 250 गाथाओं के माध्यम से किया गया है। इस ग्रन्थ की मुख्य विशेषता उसकी कृत्रिम शैली, पौराणिक अतिरंजनामयी वर्णन–प्रणाली एवं विद्वत्ता–प्रदर्शक प्रवृत्ति ही है।

4- ftupfjr[6] % जिनचरित में 472 गाथाएँ हसे जसे भगवान् बुद्ध के जीवन साथ–साथ उनके उपदेशों का भी वर्णन है, जिसका शास्ता ने बोधिप्राप्त होने के बाद सम्पर्ण जम्बूदीप में 45 वर्ष तक दिया था।

5- iTte/k[7] % पज्जमधु में कुल 104 गाथाओं का वर्णन है, जिसमें प्रथम 69 गाथाओं में बुद्ध के सुन्दरता का वर्णन है और षेष 35 गाथाओं में उनके ज्ञान और संघ की चर्चा की गई है।

6- l)Eekik;u[8] % इसमें 629 गाथाएँ है, जिसमें भगवान् बुद्ध के सभी मौलिक सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है, जिसे अत्यन्त प्रभावशाली और मननशील ढंग से कवि ने उपस्थित किया है। इस ग्रन्थ को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, जो निम्नलिखित है– (i) दुराचार के दुष्परिणाम, (ii) सदाचार के सुपरिणाम।

7- ipxfrnhiu[9] % इसमें 114 गाथाएँ है, जिसमें मनुष्य के पाँच गतियों (योनियों) का वर्णन है। वर्णन अत्यन्त सरल और स्वाभाविक एवं प्रसादगुणमय होते हुए भी यह रचना अत्यन्त साधारण कोटि की ही मानी जा सकती है।

8- ykdlinhlkj[10] ;k ykdnhilkj % इस ग्रन्थ की विषय–वस्तु पंचगतिदीपन के समान ही है। इसमें पाँच प्रकार के गतियों (योनियों) के अतिरिक्त, नैतिक उपदेशों का भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

LkUnHk %

1. अथर्ववेद।
2. पालि साहित्य का इतिहास, भरत सिंह उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद–1986।
3. मिनयेक द्वारा जर्नल ऑफ पालि टेक्स सोसायटी–1886।
4. हिस्ट्री ऑफ पालि लिटरेचर, पृ0 612।
5. ई. आर. गुणरत्न द्वारा जर्नल ऑफ पालि टेक्स सोसायटी–1884।
6. डब्ल्यू. एच. डी. राउज द्वारा जर्नल ऑफ पालि टेक्स सोसायटी–1904–05।
7. गुणरत्न द्वारा जर्नल ऑफ पालि टेक्स सोसायटी–1887, पृ0 01–16।
8. रिचार्ड मॉरिस द्वारा जर्नल ऑफ पालि टेक्स सोसायटी–1887, पृ0 35–98।
9. लियोन फियर द्वारा जर्नल ऑफ पालि टेक्स सोसायटी–1884, पृ0 152–161।
10. दि पालि लिटरेचर ऑफ बरमा, लेखक– मेबिल बोड, पृ0 36।

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No.72-75

e/;Hkkjrh; vkfnoklh

ikoZrh frdhZ*

भारतीय उपमहाद्वीप कई हजार वर्षों से आदिम पुरखों का निवास स्थल रहा है। युगों से उनकी आदिम सांस्कृतिक परम्परा रही, स्वायत्त समाज व्यवस्था ''पड़हा'' स्वशासन व्यवस्था रही थी। ''धुमकुड़िया'' (कुडुख आदिवासी), ''घोटुल'' (मुड़िया), ''गितिः ओड़ा'' (मुंडा आदिवासी) आदि जैसे आदिवासी समाज के शिक्षण संस्थान रहे थे। जहाँ युवक–युवतियाँ आदिम सामाजिक जीवन की शिक्षा ग्रहण करते थे, जिसमें नृत्य–गीत, वाद्य यंत्र बनाना, उस वाद्य यन्त्र को बजाना सीखना से लेकर हर उस चीज़ की शिक्षा दी जाती थी, जिससे युवक–युवती आगे चल कर बुजुर्गों का स्थान ग्रहण कर आदिम समाज व्यवस्था को चलने की जिम्मेदारी निभा सकें। किसी बाह्य की दखलंदाजी से दूर आदिम साम्यवादी संस्कृति अपने स्वाभाविक विकास में प्रकृति की सहजीविता में पुष्पित पल्लवित हो रही थी। नगाड़े और मांदर की थाप में आदिम पदचाप प्रकृति से अपना संवाद स्थापित कर रही थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आने के बाद आदिम और प्रकृति का रागात्मक संवाद टूटता है। 1767 में ब्रिटिश उपनिवेशवादी शक्तियों के पास मध्यभारत (उड़ीसा, बंगाल, छत्तीसगढ़, बिहार) की दीवानी सौंपी जाती है। भू–राजस्व की नई नीतियाँ लागू किये जाते हैं। इन वर्चस्वकारी संस्कृतियों का प्रभाव आदिमों के स्वशासन व्यवस्था पर पड़ती है, जिस भूमि को स्वयं तैयार किया और जिस भूमि पर वर्षों खेती करते आ रहे थे। आदिमों को उन पर कर चुकाना पड़ रहा था। कर न चुका पाने की स्थिति में भूमि से अलग कर दिया। आदिम भूमि स्वामित्व के अधिकार से वंचित कर दिए गए और साथ ही आदिवासी भूमि शोषक जागीरदार–जमींदार को हस्तांतरित कर दी गयी। खुद के बनाये खेत पर आदिवासी मजदूरी करने को विवश कर दिए गए। परम्परागत आदिम भू–व्यवस्था टूटती है। साथ ही आदिम संस्कृति सांस्कृतिक उपनिवेश का भी शिकार बनती है। कंपनी के जबरन थोपे जाने वाले विनियमन नीतियों ने आदिम व्याकुलता को जन्म दिया।

आदिम जीवन में अनाधिकृत रूप से प्रवेश होता है–महाजन, जमींदार, जेल, कचहरी, बन्दूक इत्यादि। भूमि कर न चुका पाने में अत्याचारी जागीरदार–जमींदार शोषण में नये तरीके अख़्तियार करते हैं। जिनमें बेठ–बेगारी और मन चाहा मजदूरी करना सम्मिलित है। वर्णन मिलता है कि जागीरदार को घोड़े चाहिए तो उसका दाम आदिवासी चुकाता, जागीरदार को सैर करना हो तो पालकी का भार आदिवासी उठाता, अत्याचारी के घर के कामों में जो खर्चे होते थे वह भी आदिवासी को ही चुकाना पड़ता था। राजाओं का भार उठाने के संदर्भ में एक कुडुख आदिवासी गीत है जिसमें बहन भाई से कह रही कि वह राजा की पाली का भार उठाने न जाये–''नीन भईया सन्नी भईया/बेल भरिया अम्बोय काला'' अर्थात् तुम भाई छोटे भाई/राजा का भर उठाने मत जाओ। इसी तरह बेगारी में फंसे एक कोल की व्यथा एक मुंडारी गीत में व्यक्त की गयी है–

^^mQ! Vgyq, dh rjg cqxkjh djr&djrs ejs dU/kks ls [kku cg jgk gSA@ jkr&fnu] tc ns[kks rc] tehankj dk vkneh e>s rqx djrk gS] @ij'kku djrk gS vkj eSa djkg mBrk gSA@mQ ,sls gS ejh gkyr!@ejs ikl ?kj ugha] e>s [kq'kh dgka feyxh\@mQ!**

आदिवासी भू–प्रणाली विखण्डन के बाद धीरे–धीरे सामाजिक प्रणाली का भी विघटन शुरू होता है। फलतः शोषण का हिंसात्मक प्रतिरोध स्वाभाविक था। 19वीं–20वीं सदियों में आदिवासियों के अनेक विद्रोह हुए। 1789 से 1831–1832 के बीच मुंडाओं के अनेक प्रतिरक्षात्मक संघर्ष हुए। आदिवासी असंतोष ने 1831–1832 के कोल विद्रोह को सुलगाया, जिसमें हो, मुंडा, उराँवों ने सहयोग दिया। भूमि–बिखराव और

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

नैतिक मूल्यों की पुनःस्थापना के लिए सरदार विद्रोह छेड़े गए। भूमि के लिए यह ''मुल्की लड़ाई'' चालीस वर्षों तक चली। जिसके तीन चरण थे, भूमि आन्दोलन 1858–1881, पुराने मूल्यों की पुनः स्थापना 1880–1890 और रानजीतिक आन्दोलन 1890–1895। इन सारे आन्दोलनों का आधार भूमि समस्या ही था। 1891 में संरक्षित वन के सीमांकन के खिलाफ बिरसा मुंडा ने आवाज़ उठाया था। महाश्वेता देवी की किताब ''अरण्येर अधिकार'' मुंडा समाज की आदिम चिंता को ही रेखांकित करती है। बांग्ला 'अरण्येर अधिकार' का हिन्दी में परिमार्जित परिवर्धित ''जंगल के दावेदार'' उपन्यास बाहरी द्वारा जंगल पहाड़ में रमी मुंडारी दुनिया को उखाड़े जाने की समस्या को दर्शाती है। मुंडारी दुनिया की पुनःस्थापना के लिए धानी (उपन्यास का पात्र) संथाल हूल में भी लड़ने जाता है–''1855 साल में छियालीस बरस का धानी मुंडा चला गया था, बारसाइत होकर भागनदिही के मैदान में, सिधू और कानू संथालों के दल से मिलने।'' संथालों के ''दामिन–इ–कोह'' जीवन में दिकुओं के प्रवेश ने 1855–56 के संथाल हूल की ज्वाला भड़कायी। सारी लड़ाई में जीत बन्दूक की हुई। परन्तु संथाल, कोल, सरदार, खरूआ के संघर्ष प्रमाणित करते हैं–''पराजित का नाम मनुष्य का रक्त में, बेगारी में, अभाव में, भूख में, शोषण में, धान के पौधे की तरह रोपा रहता है–वह काले आदमी की हर गान में, स्मृति में, घाटो के फीके, नीरस स्वाद में, नंगे मुंडा शिशु की विवर्ण चमड़ी में, मुंडा माता के फूले पेट में और महाजन के धन के बोरे को एक बार ढोने की मेहनत में।''

युद्धोपरान्त पूंजीवादी लोकतंत्र की विकास परियोजनाओं का आदिवासी इलाकों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। प्राकृतिक संसाधन समृद्धता की वजह से आदिवासियों को विस्थापन का दंश झेलना पड़ा। अपनी आदिवासी जमीन पर संसाधन समृद्धता का अफसोस महाश्वेता देवी के उपन्यास ''चोट्टि मुंडा और उसका तीर'' में भी बखूबी झलकती है। पूर्ति मुंडा (उपन्यास का पात्र) जहाँ जाता, जंगल साफ कर रहने का प्रबन्ध करता, मिट्टी से कुछ न कुछ निकलता है। कभी अभ्रक, कोयला, प्रस्तर युग के हथियार और अंग्रेज, बिहारी, बंगाली आदि उसे उसके ठिकाने से हटा देते। जंगल में रहने वाला मुंडा की चिंता तब और बढ़ जाती है। जब मछली पकड़ते हुए जाल में वह बालू के साथ सोने के कुछ कण देखता है– ''सोना देखकर पता नहीं वे लोग क्या करें! यह पहाड़–जंगल–नदी सब बरबाद हो जायेंगे...'' सोने से ज्यादा कीमती प्रकृति के प्रति पूर्ति मुंडा की चिंता स्वाभाविक है। ब्रिटिश समय में शुरू हुई उपनिवेशवाद की प्रक्रिया रूकी नहीं। औद्योगिक विकास परियोजनाओं से फिर से आदिवासी अपनी सामूहिक एवं निजी भूमि से बेदखली का शिकार हुए। वन अधिनियम, वन्य प्राणी संरक्षण अधिनियम और भू अधिग्रहण अधिनियम जैसे अधिनियमों ने आदिवासी हितों के खिलाफ काम किया। रमेश शरण ने ''विस्थापन की विभीषिका'' लेख में लिखा है–

''20वीं शताब्दी के शुरूआत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गरीबी एवं भुखमरी से मुक्ति के लिए देश में विकास नई रणनीति बनी जिसे नेहरू–महालनोविस मॉडल के नाम से जाना जाता है। इस नीति के अन्तर्गत बड़े बाँधों, बड़ी औद्योगिक परियोजनाओं विशेषकर पूंजीगत वस्तुओं में भारी विनियोग की परिकल्पना की गई जिससे कि भविष्य में उपयोग की वस्तुएँ उपलब्ध हो सके। इसके लिए बहुत बड़े पैमाने पर भूमि का अधिग्रहण हुआ। झारखण्ड जैसे क्षेत्र में जहाँ खनिज की बहुलता थी, बड़े पैमाने पर औद्योगिकीकरण की योजनाएँ बनी। भारी अभियंत्रण निगम, भारतीय उर्वरक निगम, मेकन, बोकारो स्टील, युरेनियम कारपोरेशन, कोयला, लौह आयस्क खनन आदि परियोजनाएँ शुरू की गई। दामोदर घाटी निगम, मयूराक्षी जैसे बड़े बाँधों की शुरूआत भी हुई। नेहरू जी ने इसे 'भारत के नए मंदिरों' की संज्ञा दी। ऐसा भी कहा गया है कि देश के हित में विस्थापन रूपी बलिदान आवश्यक है।''

लेकिन जब विकास के फल केवल कुछ लोगों के हाथ में केन्द्रित होने लगे एवं बलिदान केवल आदिवासियों, दलितों एवं पिछड़ो को करना पड़ा तो इस विकास की प्रक्रिया से लोगों का मोहभंग हुआ एवं कोयलाकारो, नेतरहाट, कोयला परियोजनाओं, स्वर्णरेखा, बहुउद्देश्यी योजनाओं आदि का व्यापक जनविरोध का प्रारंभ हुआ।''

इन परियोजनाओं का सांस्कृतिक दुष्प्रभाव भी पड़ा। आदिवासी स्वशासन परम्परा दुष्प्रभावित हो रही थी। 1973 की मूल प्रोजेक्ट रिपोर्ट के अनुसार कोयलकारो परियोजनाओं प्रभावित क्षेत्र (गुमला, राँची) में 152 सरना स्थल (आदिवासी पूजा स्थल) और 300 से अधिक सांसगदिरि (पुरखों की धरोहर) हैं, किसानों की भूमि और वन भूमि है। पुरखा धरोहर और पैतृक भूमि के प्रतिरक्षात्मक संघर्ष 2 फरवरी 2001 में निहत्थी भीड़ को पुलिस ने गोलियों से जवाब दिया।

जादूगोड़ा झारखण्ड के पूर्वी सिंहभूम में स्थित भारत का पहला और प्रमुख यूरेनियम खान है। 1967 से यूरेनियम खनन का कार्य शुरू किया गया। जादूगोड़ा का पूर्व नाम ''जाड़ागोडा'' था। 'जाड़ा' का अर्थ एक वृक्ष ''जिससे औषधि तैयार की जाती है'' और ''गोड़ा'' का अर्थ 'मैदानी क्षेत्र', यूरेनियम परिशोधन प्रक्रिया के दौरान परमाणु पारिशोधन केन्द्र हैदराबाद से बहुत बड़ी मात्रा में यूरेनियम माइन्स का अवशिष्ट जादूगोड़ा लाकर आदिवासी गाँव के बीच बने टेलिंग पोंड में उत्सर्जन से रेडियोधर्मी विकिरण के दंश की वजह से ''जाड़ागोड़ा'' का नाम ''जादूगोड़ा' पड़ा। रेडियो एक्टिव विकिरण से बच्चे विकलांगता, पुरुष नपुंसकता और स्त्रियाँ गर्भ धारण न कर पाना और बार–बार गर्भपात का शिकार हो रहीं थीं। आस–पास के आदिवासी इन बिमारियों को 'भूतहा' प्रभाव मानने लगे थे और उस जगह को जादूगोड़ा कहने लगे। इसके अलावा कैंसर, टीबी, श्वास रोग, त्वचा रोग, मंदबुद्धि आदि बीमारियाँ इस क्षेत्र में देखने को मिल रही है। असुरक्षित टेलिंग पोंड का पानी धानों के खेतों में मिलकर फसलों को जहर करता हुआ पशुओं और मनुष्यों को मौत का आहार परोसने लगी। जादूगोड़ा में पेड़ों से लदी पहाड़ियाँ और आदिवासियों के कई सरना स्थल और मसना पवित्र स्थल जहर में घुल गई।

पूंजीवादी विकास 'जनहित के लिए विकास' के नाम पर आदिवासी मानवाधिकार का हनन करते हुए न जाने किस ''विकास'' को परिभाषित कर रही थी। यह अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न है कि यह आर्थिक या सामाजिक विकास किसका है? मूल रूप में विकास की अवधारणा क्या होनी चाहिए? किसी भी समाज का विकास उसके सामाजिक–सांस्कृतिक गठन और उसमें निहित मूल्यों के अनुसार होना चाहिए। विकास की शर्तें क्या होनी चाहिए–संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का रेड इंडियन लोगों पर हिंसा? जनकल्याण की धारणा, तमाम विकास की अवधारणा में आदिवासी समाज की जरूरतें कहाँ हैं? क्या यह विकास कोयलकारों योजना में एक पूरे आदिवासी गाँव के डूब जाने के खतरे में या विस्थापन से जूझते उस आदिवासी जन भीड़ की प्रतिरक्षात्मक संघर्ष में है? ब्रिटिश उपनिवेशवाद की जगह आंतरिक उपनिवेश का प्रादुर्भाव आदिम इलाकों में हुआ, जिसे रामदयाल मुंडा की एक कविता अपने शब्दों में परिभाषित करती है – ^^xhykeh@pkfy;k cnyrh gS@mlds vr ugh gkrk@fons'kh dk Hkkxk;k geus@[kn d xhyke cu cBA**

झारखण्ड के इन औद्योगिक योजनाओं का कुप्रभाव आदिवासी सामाजिक–आर्थिक जीवन पर पड़ा। इन उद्योगों का अपेक्षित लाभ यहाँ के लोगों को नहीं प्राप्त हो सका। कोयला खनन, लोहा एवं इस्पात नदियों का जल आदि बाहर की समस्याओं के समाधान उपभोग के लिए बने। दामोदर घाटी परियेजना का एक उद्देश्य पश्चिम बंगाल को बाढ़ से बचाना था, किन्तु पूरा डूब क्षेत्र झारखण्ड में रखा गया। इससे मिलने वाली सिंचाई से बंगाल लाभान्वित रहा। विकास परियोजनाओं ने आम जनता के विकास को नाकारा। विस्थापन किसी भी दृष्टि से विकास की शर्तों में शामिल नहीं होती है। अंग्रेजी हुकूमत के समय से लेकर आदिवासी प्रतिरोध और प्रतिवाद की कहानियां जो तिलका मांझी से लेकर बिरसा मुंडा झारखण्ड आन्दोलन से लेकर झारखण्ड अलग राज्य के स्थापना के लिए किये गए संघर्ष के उद्देश्य थे–समतामूलक शोषकविहीन राज्य की स्थापना। ऐसा न हो सका। अभी भी हाथियों की सुरक्षा के नाम पर सिरसि–पालकोट–सारंडा वाइल्ड लाइफ कॉरिडोर का निर्माण प्रक्रियाधीन है। इस कॉरिडोर के निर्माण के लिए राज्य में पलामू प्रमंडल के लातेहार जिले के अलावा गुमला, खूंटी और पश्चिमी सिंहभूमि जिले के 214 गाँवों को चिन्हित किया गया है। कॉरिडेर निर्माण के लिए चिन्हित गाँवों में बहुसंख्या आदिवासी बहुल है। योजना के तहत गाँवों को खाली कराने का कार्य प्रगति पर है, जिस वजह से निर्माण के खिलाफ विरोध की सुगबुगाहट भी हो रही है। कुडुख आदिवासी कथानुसार सिरसि क्षेत्र की विशिष्टता कुडुख गीतों में कुछ इस प्रकार मिलती है –

''सिरसिता नाले नू भईया बहिन रहचर/गुचा हरो बेद्दागे कालोत/बरा हरो बेछागे कालोत/ककड़ो ही लाता गंगेला ही खाइड/असानिम नम्हैं पुरखर रहचर'' अर्थात् सिरसि खेत में भाई–बहन रहते थे/चलो ढूँढने जाते हैं/आओ ढूँढने जाते हैं/केकड़ा का गुफा गंगेला का झुण्ड/वही हमारे पूर्वज रहते। इस कुडुख कथा को मानने वाले गुमला, रांची, खूंटी, सिमडेगा इत्यादि जिले के आदिवासी गांवों के लोग अभी भी पुरखों की याद में सिरसि जाते हैं। आदिवासियों की संस्कृति एक ऐसी संस्कृति है जो स्त्री–पुरुष समानता, श्रम समानता, पर्यावरणानुकूल संस्कृति का आदर्श है। रोहतासगढ़ 'सिनगी दई' की संघर्ष कथा, डोम्बारी बुरु में हुए बिरसा संघर्ष में महिलाओं की सहभागिता स्त्रियों के सशक्त अस्तित्व को प्रस्तुत करती

है। 1954 में प्रकाशित फणीश्वरनाथ रेणु ने अपने उपन्यास ''मैला आँचल'' में पूर्णिया की सीमा रेखा में आने वाले दक्खिन में संथाल परगना के आदिवासी जीवन का भी रेखाचित्र खींचा है। संथालों के जमीनी संघर्ष में स्त्रियों के युद्ध में शामिल होने को लेकर बहुत ही दिलचस्प बात लिखी है कि संथालिनों को युद्ध के लिए तैयार होने में ''जूड़े में फूल खोंसने जितना समय लगता है'' स्त्रियों का ऐसा समाज और कहाँ मिलेगा। स्त्री–पुरुष के साथ युद्ध भी करते हैं। नृत्य भी साथ करते हैं। नृत्य–गीत आदिवासी संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। नृत्य–गीत के संन्दर्भ में 'मुंडा आदिवासी कहावत है–''सेन गे सुसन काजि गे दुरंड'' अर्थात् चलना ही नृत्य और बोलना ही संगीत है। यह कहावत नृत्य–गीत प्रियता को दर्शाती है। झारखण्ड आदिवासी के नृत्य–गीत के सन्दर्भ में देखा जाये तो प्रायः गीतों और नृत्यों में सामूहिकता विशेष है। 'मैला आंचल' उपन्यास में फणीश्वरनाथ रेणु ने संथाल आदिवासी नृत्य के बारे में दर्शाया है– 'संथाली नाच देखते समय होस गुम हो जाता है। जूड़े में सादे फूलों के गुच्छे, कसमकस देह, उजले दांत की पाँती की चमक! सफेद आँचल! जब झुमुर–झुमुर कर नाचने लगती हैं–तो मन करता है, नाच में उतर पड़ें'' जंगल के जानवरों संग इतना अपनापन वाला समाज और कहाँ होगा। इस सन्दर्भ में हिन्दी पट्टी के समकालीन कवि विनोद कुमार शक्ल की कविता 'जंगल के दिन भर के सन्नाटे में' प्रस्तुत है :–

^^,d vkfnokLh yM+dh@egqok churs churs@,d ck?k ns[krh g@tSls taxy e@,d ck?k fn[krk g@vkfnokLh yM+dh dk ck?k@mlh rjg ns[krk g@tSls taxy es ,d vkfnokLh yM+dh fn[k tkrh g@taxy ds i{kh fn[k tkrs g@frryh fn[k tkrh g@vkSj ck?k igys dh rjg@lq[kh ifRr;ksa ij@tHkkbZ ysdj ilj tkrk gA@,d vdsyh vkfnokLh yM+dh dks@?kus taxy tkrs gq, Mj ugha yxrk@ck?k 'ksj ls Mj ugha yxrk@ij egqok ysdj xkne ds cktkj tkus ls@Mj yxrk gA**

यह बाजार पूंजीवादी विकास से उत्पन्न हुई, जो आदिम क्षेत्र में उस आदिम संस्कृति के दायरे में नहीं आती। रेड इंडियन्स आदिवासियों के पुरखों की मान्यता अनुसार यह धरती केवल मनुष्यों की नहीं है। यह धरती जंगल, पहाड़–पर्वतों, नदियों, पशु–पक्षियों की भी उतनी ही है जितनी मनुष्यें की हैं विकास के नए मॉडल की आवश्यकता है। विकास का पूंजीवदी मॉडल धरती को नहीं बचा सकता। विकास वह जो धरती को बचा सके। अंतिम ध्येय 'सर्वोदय' सभी का कल्याण, जो सभी के अच्छे हितों को समान रूप से प्रोन्नत करता हो, यहाँ तक कि सबसे कमजोर लोगों के लिए भी और तभी यह सुन्दर मानवीय जीवन के लिए औचित्य खड़ा कर सकता है।

lUnHkZ %

1. झारखंड एन्साइक्लोपीडिया (बिरूर–बरू के आसपास)–खंड 2– संपादक : रणेन्द्र, सुधीर पाल, आवृत्ति संस्करण 2014
2. झारखंड एन्साइक्लोपीडिया (श्वेत श्याम तस्वीर)–खंड 3– संपादक : सुधीर पाल, आवृत्ति संस्करण 2014
3. झारखंड एन्साइक्लोपीडिया (मांदर की धमक और गुलईंची की खूशबू)–खंड 4– संपादक : रणेन्द्र, आवृत्ति संस्करण 2014
4. बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन–कुमार सुरेश सिंह, संस्करण 2008
5. जंगल के दावेदार–महाश्वेता देवी, आठवां संस्करण 2016
6. चोटि्ट मुंडा और उसका तीर–महाश्वेता देवी, प्रथम हिन्दी संस्करण 1981
7. मैला आंचल – फणीश्वरनाथ रेणु, चालीसवां संस्करण 2017
8. कलम को तीर होने दो, संपादक : रमणिका गुप्ता, प्रथम संस्करण 2015
9. प्रतिनिधि कविताएँ–विनोद कुमार शुक्ल, पहला संस्करण 2013
10. चला अखड़ा खुलका डड़डीं–बसन्ती कुमारी कुजूर, वर्ष 1992
11. लील–खो–रआ–खेखेल–डब्ल्यू0जी0 आर्थर, द्वितीय संस्करण 2015
12. m.livehindustan.com_sunday.oct.222017
13. The Oraons of Chota Nagpur - S.C. Roy

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No.76-80

nfyr lekt ds vkbZus esa fujkyk dk lkfgfR;d fpUru

gfj'pUnz ;kno*
lkk0 pUnk csu**

निराला मानवीय संवेदना के आधार पर दलित समाज के उत्थान के पक्षधर थे, इसी नाते अमानवीय वर्ण–व्यवस्था के खिलाफ थे। निराला ने समझ लिया था कि एक दिन दलित समाज की सहनशीलता ही उनका प्रमुख हथियार बनकर विद्रोह करेगा और अपने अधिकारों की मांग भी करेंगे। ''शूद्र शक्तियों से यथार्थ भारतीयता की किरणें फूटेंगी। वे ही भविष्य के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं, और ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि दृप्त जातियाँ शूद्र। खुदाई सजा ऐसी ही होती है। चिरकाल तक लड़कर ब्राह्मण–क्षत्रिय पस्त हो गए हैं...उनका कार्य अब जातियां करेगी जो अब तक सेवा करती आयी हैं। भारत तभी तक पराधीन है जब तक वे नहीं जागतीं। उनका कर्म क्षेत्र में उतरना ही भारत का स्वाधीन होना है।''[1] शूद्रों के प्रति निराला का यह मत नितांत मौलिक है और शूद्र संबंधी निराला की यह विचारधारा उनकी अनेक कविताओं का आधार बनी हैं। जिसमें निराला ने समकालीन छायावादी कवि यथार्थ को त्याग कर कल्पना–लोक में विचरण कर रहे थे तब ऐसे समय में कवि निराला की कविताओं का केन्द्र दलितजन था। कविता में निराला ने समाज के नग्न यथार्थ का चित्रण किया है। कवि ने मूक जीवन के माध्यम से संसार के लोगों की दलित के प्रति स्वार्थपरता और क्रूरता का वर्णन किया है। कविता समाज में दलितों के बुरी अवस्था का चित्रण एवं उनकी सहनशक्ति की असीमता की घोषणा के साथ आरम्भ होती है–

**lgtkrs gks@mRihM+u dh ØhMk lnk fujadq'k uXu] @ân; rqEgkjk nqcZy gksrk HkXu] @vfUre vk'kk ds dkuksa esa@Li'nr ge&lcls iq.kks esa @viu mj dh rIr O;Fkk,¡@{kh.k d.B dh d#.k dFkk,¡ @dg tkrs gks @vkj txr dh vkj rkddj @nq[k ân; dk {kksHk R;kxdj]@lg tkrs gks^^[2]

कवि के हृदय में सहानुभूति तो है लेकिन अभी तक उसका स्वरूप ठोस रूप ग्रहण नहीं कर पाया है। इसलिए कवि दीन को संघर्ष करने की प्रेरणा देने की बजाय उसे दुःखों का भय दिखलाकर दूर ही रहने की सलाह देता है–

**;gks dh er vkuk@mRihM+u dk jkT;] nq[k gh nq[k @;gka gS lnk mBkuk^^[3]

दीन–दलित को सचेत करने की प्रक्रिया में कवि समाज के इस नियम की ओर भी इशारा करता है कि यहां जो क्रूर है, वही शूर है। शक्तिशाली जो भी कार्य करता है उसको समाज सहर्ष स्वीकार करता है।

कविता दीन के अशांतिमय जीवन की भाग्यवादी घोषणा के साथ समाप्त हो जाती है। यहां तक आते–आते वाचक अपने जैसे तमाम भुक्त भोगियों को साथ लेकर वक्तव्य देता है–

**;gha esjk] budk] lcdk thou]@fnol dk fdj.kksTToy mRFkku@jkf= dh lqfIr] iru]@ fnol dh deZ&dqfVy re HkzkfUr]@jkf= dk eksg] Lolu Hkh HkzkfUr]@lnk v'kkfUr^^[4]

यहाँ कवि का दृष्टिकोण कर्म पर आधारित न होकर भाग्यवादी हो गया है। असहाय दीन यह

*शोधार्थी, हिन्दी विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) 470003
**शोध निर्देशक, हिन्दी विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) 470003

तो समझ गया है कि उसका शोषण हो रहा है, किन्तु वह इस असहायावस्था से उबरने का कोई प्रयास करता हुआ दिखलाई नहीं देता। मुक्ति का प्रयास, सवर्णों के प्रति विरोध–विद्रोह कहीं नहीं है। दीन के प्रति करुणा की चेतना तो हैं लेकिन वह भी सुसुप्तावस्था में।

कविता के आरम्भ में कवि ने 'कर्ण' और 'अखिल विश्व' का अद्वैत बतलाया है। लेकिन यह समझ में नहीं आता है कि अगर यही कर्ण समस्त सृष्टि का नियन्ता है तो यह इतना विवश क्यों है? विरोध करना तो दूर वह अपने बचाव की स्थिति में भी नहीं हैं–

**chr x;s fdrus fnu&fdrus ekl! @iMs g,, lgrs gks vR;kpkj @in&in ij lfn;ksa ds in&iagkj(@cnys es] in esa dkeyrk ykrs]@fdUrq gk;] o s rqEgsa uhp gh gs dg tkrsA^^5

'महाराज शिवाजी का पत्र' नामक कविता राष्ट्रीय उद्‌बोधन गीत है। स्वार्थान्ध राजा जयसिंह को विभिन्न उदाहरणों के द्वारा सही रास्ता दिखलाने का प्रयास शिवाजी ने किया है। प्रस्तुत लम्बी कविता में निराला ने राष्ट्र की उन्नति के लिए दलितोद्धार की अपनी शर्त को स्थापित किया है। जैसे कि हम पहले भी स्पष्ट कर आए हैं कि– ''निराला की स्पष्ट मान्यता थी कि राष्ट्र के विकास के लिए जो नितांत पद दलित, शोषित एवं हीन हैं, उनको उठाना होगा। जिससे वे अन्य वर्गों के समान हो सके और तभी सर्वजन विकास की रूपरेखा संभव हो सकती है इसी सिद्धांत से परिचालित होकर प्रकृति पुरातन एवं जीर्ण पौधों को रस प्रदान करती है, यही सिद्धांत भारत की स्वतंत्रता की अनिवार्य उपलब्धि है।''[6]

कवि ने राष्ट्रीय एकता एवं समृद्धि के लिए सवर्ण और निम्न जातियों की एकता की आह्‌वान किया है–

**0;fDrxr Hksn u@Nhu yh gekjh 'kfDrA @dkcqu&fod"k.k&Hkko@ tkjh jgsxk ;fn @blh rjg vkil esaA^^7

यदि यह असमानता का भाव समाज में और अधिक दिन तक विद्यमान रहा तो संभव है कि यह महान भारतीय संस्कृति एक दिन समाप्त हो जाए इसलिए निम्न जातियों के लिए उच्च जातियों की यह घृणा समाप्त होनी चाहिए–

**uhpks ds lkFk ;fn@mPp tkfr;ksa dh ?k.kk @}U} dyg oeuL;]@{kqn mfe;ksa dh rjg @VDdjs yrs jgs rks@fu'p; gs @oxZ mu rjaxksa dk @vkj ?kV tk,xk@{kqnz ls {kqnrj gksdj feV tk;sxhA^^8

कुसुम का रूपक बांधकर कवि निराला ने 'रास्ते के फूल से' नामक कविता में प्रतीकात्मक रूप से दलितों की हीनावस्था का चित्रण किया है। आज शूद्रों का समाज में वही स्थान है जो कि एक सूखे हुए, धूल में मिले हुए फूल का होता है। दलित कुसुम धूल में नजर गड़ाये रहता है और सभी पथिकों के सामने करुणा की झोली फैलाये रहता है–

**>kyh d#.kk dh fHk{kk dh]@nfyr dqlqe! D;ksa dgks] @/kfy esa utj xMk;s gks Qwyk;s **9

जिस लता में कुसुम खिला था वह आंधी से टूट गई है। सवर्णों ने वर्ण–व्यवस्था में अपनी सुविधानुसार परिवर्तन किए हैं और प्रत्येक काल में उनकी व्याख्या में आया परिवर्तन शूद्रों की दशा को और अधिक दयनीक बनाता गया है।

गोस्वामी तुलसीदास को विषय बनाकर लिखी गई कविता 'तुलसीदास' में निराला ने तत्कालीन भारतीय समाज में शूद्रों की दशा का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसीदास के प्रादुर्भाव को हिन्दी काव्य के क्षेत्र में एक चमत्कार माना है।[10] आचार्य शुक्ल के इस सामान्य से दिखने वाले कथन में तुलसीदास के व्यक्तित्व की अनेक सूक्ष्म अभिव्यंजनाएं छिपी हैं। तुलसीदास की प्रतिभा बहुमुखी थी। तुलसीदास ने तत्कालीन समाज की सीमाओं को वर्ण–व्यवस्था का पक्षधर होने के बावजूद पहचाना था।

मुसलमानों के सम्पर्क में आने के बाद हिन्दुओं की जाति–वर्ण व्यवस्था और अधिक कठोर हो गई। ''हिन्दू समाज व्यवस्था का शिथिलायमान ढांचा अवधानपूर्वक कसा जाने लगा। फक्कड़ और अक्खड़ निर्गुणियों के वाचनिक आक्रमणों के बावजूद जाति–पांति की स्मृति–प्रतिपादित प्रथा कठोर हो उठी''।[11] मुसलमानों ने हिन्दुओं को पराजित करके उन्हें अपनी दासता को स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया था। ऐसे में भारत सांस्कृतिक पतन के गर्त में चला गया। क्षत्रिय जब अपनी रक्षा नहीं कर सकते थे तो वे अन्य वर्णों की रक्षा कैसे करते। सवर्णों ने अपनी पक्षधरता त्याग दी। शूद्र जस के तस खड़े मार खाते रहे। अपने काव्य में इनका कई स्थानों पर तुलसीदास ने यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया।

'तुलसीदास' नामक लम्बी कविता में निराला ने मध्यकालीन समाज की नई तस्वीर प्रस्तुत की है। मध्यकाल में समाज का जो पतन हुआ और पतन में शूद्रों पर जो अत्याचार हुए, वह इस कथा की पृष्ठभूमि है।''[12] ''कवि ने तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और शूद्रों, द्विजों के भेदभाव का चित्रण किया है। तत्कालीन समाज में क्षत्रियों का बल नष्ट हो चुका था। उनमें केवल मिथ्या गर्व ही शेष रह गया था। द्विज चाटुकार हो गए थे। शूद्रों की अवस्था बड़ी शोचनीय थी।''[13] मध्यकालीन समाज की यही मूल चिंता होनी चाहिए थी, जिसको निराला के अलावा कोई अन्य कवि नहीं पहचान सका।

शूद्र का जीवन पशु के समान है। कवि को इस तथ्य का पूर्ण अहसास है। ''कवि को मूक पशुओं के समाज द्विजों द्वारा ग्रसे जाने वाले शूद्रों की यातना की अनुभूति बड़ी तीखी थी। वर्ण–व्यवस्था की भेदभाव की नीति निराला को व्यथित कर रही थी।''[14] इस व्यथा का उन्होंने कविता में उद्घाटन किया है–

**o 'k"k&'okl] i'k] ed&Hkk"k]@ikr igkj vc grk'okl(@lkpr dHkh] vktU; xkl f}tx.k d @gkuk gh mudk /ke ije]@o o.kkJe] j f}t mÙke@o pj.k&pj.k cl] o.kkJe j{k.k dA^^[15]

निराला ने यहाँ शूद्रों के जीवन का इतना यथार्थ वर्णन किया है कि कोई भी उनकी संवेदना को सतही नहीं कह सकता। सदियों से दबाये जाने के बाद जिस अवस्था को शूद्रों ने अपना 'परम धर्म' स्वीकार कर लिया है, वह केवल सतही सहानुभूति के माध्यम से अभिव्यक्त नहीं की जा सकती। शूद्रों की जो भाग्यवादी दृष्टि निर्मित हो गई है, उसको निराला ने यहां स्पष्ट किया है।

शूद्रों के लिए मंदिर में प्रवेश की समस्या हिन्दू समाज की एक बहुत बड़ी समस्या है। 'पश्चिमीय जन' अर्थात् निम्न कुल उत्पन्न व्यक्ति सदैव मंदिर से बाहर ही खड़ा रहा है– ''पश्चिमीय के लिए सदा ही निषेध रहा मंदिर में।[16]

कविता के अन्त में जब स्वामी जी जीने लगते हैं तो कहते हैं कि ''मैं वहीं हूँ जो बाहर खड़ा है''[17] यही समानता का संदेश है जो निराला इस कविता के माध्यम से देना चाहते थे।

'संत कवि रविदास जी के प्रति' में भी निराला का शूद्रों के प्रति दृष्टिकोण पता चलता है। जाति को गौरव मानकर कर्म और ज्ञान के महत्व को स्वीकार किया है–

^^de d vH;kl e] vfojr cg@Kku&xxk e] leTToy pedkj] @pj.k Ndj dj jgk e ueLdkjA**[18]

संत रविदास के पैर छूने से ही यह सिद्ध हो जाता है कि निराला जाति को ज्ञान और कर्म के सामने कितना हेय मानते थे।

कवि की यथार्थपरक दृष्टि मनोरम दृश्यों को छोड़कर सामान्य दृश्यों तथा निम्न समझे जाने वाले लोगों पर टिकी है। 'प्राचीन कथा और पौराणिक सन्दर्भ के समकक्ष तत्कालीन स्थितियों को रखकर कवि ने यहां बड़े गहरे व्यंग्य की सृष्टि की है।[19] कवि ने रामराज के यथार्थ को आज से जोड़ते हुए भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग की सच्चाई को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है। एक शूद्र स्त्री के प्रति निराला की करुणा सपाट गद्यात्मकता के भीतर से उभर कर सामने आयी है–

^^eu n[kk] cMk eyk@eu mldk lekt l @pkV [kk;h gb og jketh d jkt l @'knk dk feyk ugh@ftul dN Hkh dgh @<k<l c/kk;k eu ehB&ehB 'kCn dgdj @n[krh jgh og vklvk dh vk[kk jg jgdjA**[20]

प्रथम और द्वितीय पंक्ति में जहां शूद्र स्त्री के हृदय के विक्षोभ को अभिव्यक्ति मिली है, वही शेष पंक्तियों में सूक्ष्म व्यंग्य की सृष्टि करके हिन्दुओं की समस्त धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता पर प्रहार किया गया है।

गोड़इत बदलू अहीर के दरवाजे पर आकर डिप्टी साहब के आने की सूचना देता है। बदलू डरकर दबकर उसे देखता है। गोड़इत शासक और शासित के बीच मध्यस्थता का काम करता है। वह इस बात को स्वीकार भी करता है–

**tehnkj ds gS ge@ekfyd dk Hkyk tgka ogka gS gekjk Hkyk^^[21]

इस कविता के दूसरे पक्ष में किसान और छोटे–छोटे काम करने वाले वर्गों का एक साथ उठ खड़े होना दिखलाया गया है। प्रचलित बेगारी और मुफ्तखोरी का जमकर विरोध दिखाया गया है। बदलू को गुस्सा आ जाता है और वह गोड़इत की नाक पर एक धूंसा लगाया है। गोड़इत जमीन चूमने लगता है–

^^tedj cnyw us cnek'k dk nq[kk] fQj@mBk Øks/k ls Hkjdj @vkj ,d ?kwalk rkudj ukd ij fn;kA@xksMbr iwaN tu Fkk] @tehu pweu yxkA**[22]

किसानों में शोषण के विरुद्ध चेतना तो थी परन्तु कोई पहल करने वाला चाहिए था। बदलू के द्वारा पहल होते ही कुम्हार, तेली, चमार, नाई, कहार, इत्यादि दलित जातियों के लोग भी उसकी तरफ आकर खड़े हो गए। ''दरअसल यह निराला का युग बोध है, वे युगचेता बनकर जन–मानस को कर्म चेतना दे रहे हैं। युग का नेतृत्व अब तक उन्होंने नहीं किया था, वे अब तक मानव की सार्थकता मनुष्यत्व की कर्म चेतना और मानवीय उत्थान की सैद्धान्तिकता को व्यवहार में ला रहे थे।''[23]

जिससे निराला के काव्य में दलित–चेतना के विश्लेषण में दलितों के आक्रोश की संक्षेप में चर्चा करना अपरिहार्य है। कवि का मन दलितों के ऊपर होने वाले अत्याचारों को देखकर सभ्य समाज के खिलाफ विद्रोह करता है। रामविलास शर्मा कवि की विद्रोही चेतना की कविताओं के विषय में कहते हैं कि ''सामाजिक रचनाओं में दलित–वर्ग के प्रति उन्होंने भावुक सहानुभूति प्रकट की तो साथ ही सामाजिक ढांचा बदलने के लिए विप्लव और क्रांति की मांग भी की।''[24] विद्रोही संवेदना की रचनाओं में 'बादल–राग' कविता विशेष उल्लेखनीय है। 'बादल' निराला के सर्वाधिक प्रिय विषयों में से एक हैं।

''बादल का कवि के रचनात्मक व्यक्तित्व से गहरा संबंध है और वे इसको अपने अनेकानेक भावों और विचारों के प्रकाशन का एक बहुआयामी साधन बना लेते हैं।''[25] छठी कविता में विप्लवी बादल को दलित जनों के लिए कल्याणकारी बताया गया है। वह दलितों में स्वर्णिम भविष्य की आशा का संचार करता है। इसमें कवि यह बताता है कि यह बादल परिवेश की आवश्यकताओं की देन है। यह समाज के धनाढ्य वर्ग पर कहर बन कर टूटता है लेकिन दलित वर्ग के लिए नयी आशा तथा जीवन का प्रतीक है– ^^gSlrs gSa NksVs ikS/ks y?kqHkkj@'kL; vikj]@fgy&fgy@f[ky&f[ky]@gkFk fgykrs]@rq>s cqykrs@ folyo&jo ls NksVs gh gSa 'kksHkk ikrsA**[26]

उसके गर्जन से पूरी पृथ्वी कांप उठती है लेकिन वह (दलित) दुःख से तप्त धरती पर विप्लव का जलधर बुलाता है जिसकी ओर नरकंकाल आशा भरी दृष्टि से निहारती हैं। वह जनता को विश्वास दिलाता है कि आतंक का सहारा लेने पर भी धनी वर्ग विप्लवी बादल के वज्र–गर्जन से सिहर उठता है।''[27] किसान अधीर भाव से उसे बुलाता है–

^^th.kZ ckgq] gS 'kh.kZ 'kjhj]@rq>s cqykrk d"kd v/khj]@,s folyo ds ohjA @pwl fy;k gS mldk lkj] @gkM&ek= gh gS vk/kkj]@,s thou ds ikjkokjA**[28]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि निराला विद्रोह के कवि हैं। दुःख के सागर में डूबे हुए दलित को वह केवल सक्रिय होने के लिए ही नहीं कहते अपितु स्वयं भी अन्याय के खिलाफ बिगुल बजाते हैं। दलितों के जीवन में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता को सबसे पहले निराला ही रेखांकित करते हैं। निराला काव्य पर विहंगम दृष्टि डालने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इसमें दलित वर्ग की पक्षधरता का कवि का संकल्प आदि से अन्त तक विद्यमान है। कवि दलितों की यथार्थ स्थिति का चित्रण करके

उनमें जागृति लाने का कार्य भी बखूबी करता है। कवि सामाजिक अलगाव के कारणों की पहचान करता है। उन कारणो का गहराई से विश्लेषण करता है तथा फिर उन्हें दूर करने का प्रयास करता है। दलित की पक्षधरता कवि की लेखन प्रक्रिया का अविभाज्य अंग है। निस्संदेह निराला का काव्य अनेक विरोधाभासों को अपने अन्दर समेटे हुए है इसलिए उनका काव्य सार्थक है। गहरे अन्तर्विरोधों के बावजूद निराला एक क्षण के लिए भी दलित वर्ग से दूर नहीं हुए हैं। अपनी कविताओं में कवि शोषक शक्तियों पर भरसक आक्रमण करने की मुद्रा में है। इसके लिए कवि दलितों के संगठन की आवश्यकता पर विशेष बल देता है।

lUnHkZ %

1. निराला रचनावली, भाग 2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 123–124
2. निराला रचनावली, भाग 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 136
3. वही, पृष्ठ 137
4. वही
5. निराला साहित्य में युगीन समस्याएं, सरोज मार्कण्डेय, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 84
6. निराला रचनावली, भाग 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 114
7. निराला रचनावली, भाग 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 167
8. वही, पृष्ठ 167–168
9. वही
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आ. रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, नई दिल्ली, पृष्ठ 129
11. तुलसी काव्या मीमांसा, उदयभानु सिंह, पृष्ठ 228
12. निराला, रामविलास शर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 87
13. क्रांतिकारी कवि निराला, बच्चन सिंह, वाराणसी प्रकाशन, विश्वविद्यालय नवीन प्रकाशन संस्करण, 1999, पृष्ठ 147
14. निराला साहित्य में सामाजिक चेतना, सुरेश चंद शर्मा, सार्थक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 120
15. निराला, रचनावली, भाग 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 287
16. निराला, रचनावली, भाग 2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 107
17. वही, पृष्ठ 108
18. वही, पृष्ठ 83
19. आत्महंता आस्था, दूधनाथ सिंह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 250
20. निराला, रचनावली, भाग 2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 72
21. वही, पृष्ठ 201
22. वही, पृष्ठ 202
23. निराला काव्य में मानवीय चेतना, रमेशदत्त मिश्र, के.एल. पचौरी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 201
24. निराला, रामविलास शर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 47
25. निराला आलोचकों की दृष्टि में, सं. वचनदेव कुमार, बिहार ग्रन्थ कुटीर, पटना, पृष्ठ 87
26. निराला, रचनावली, भाग 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 129
27. वही, पृष्ठ 135
28. निराला, रामविलास शर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 140

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IJJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No.81-84

vk/kqfud cks/k dh okpd d`fr % vU/kk;qx

eksuk ;kno*

आधुनिक शब्द के सामान्यतः तीन अर्थ हैं– समय सापेक्ष नए का वाचक और एक विशिष्ट दृष्टिकोण या जीवन दर्शन का वाचक। हमारी दृष्टि में आधुनिक शब्द को व्यापक एवं गत्यात्मक अर्थ में लेना चाहिए। आधुनिकता समय से उतनी जुड़ी हुई नहीं है, जितना कि दृष्टिकोण से हैं, यथार्थ से है। अंधायुग आधुनिक बोध की वाचक कृति है। इसकी कथा पुराण कथा है। अन्धायुग महाभारत के कथानक पर आधारित एक काव्यरूपक है। कथा का प्रारम्भ महाभारत के 18वें दिन की संध्या से प्रभाषतीर्थ में कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक घटना को ग्रहण किया है। 'कवि ने पौराणिक आख्यान के माध्यम से आधुनिक युग की अनास्था, संत्रास, कुंठा और अन्य विसंगतियों को अंकित किया है। द्वितीय विश्व युद्ध से उत्पन्न विभीषिका ने विश्व मानव के समक्ष उत्पन्न युद्ध के संकट पर गम्भीरता से विचार करने की जरूरत महसूस करता है।[1] धृतराष्ट्र का अन्धापन एक तरह से सम्पूर्ण सत्ता और युग के अंधेपन का द्योतक बन जाती हैं। अन्धापन कई रूपों में दिखाई पड़ता है, ममता, मोह, मर्यादा और अधिकार सभी का अंधापन। प्रजा पर मर्यादाएँ तथा अस्थाएँ थोपी जाती है, उनमें कोई स्वयं की निर्णय शक्ति नहीं है। वैयक्तिक स्नेह और स्वार्थ से शासक प्रत्येक स्थिति में अंधेपन का परिचय देता है।

''अन्धायुग के कृष्ण अनासक्त है, इसलिए उनमें इतिहास को चुनौती देने की क्षमता है और नक्षत्रों की दिशा बदल देने की ताकत है।''[2] ज्योतिषी याचक के शब्द में–

tc dksbZ Hkh euq"; @vukLDr gksdj pqukSrh nsrk gS bfrgkl dks@ml fnu u{k=ksa dh fn'kk cny tkrh gS@fu;fr ugha gS iwoZ fu/kkZfjr&@ml dks gj {k.k ekuo fu.kZ; cukrk feVkrk gSA

धर्मवीर भारती ने 'अन्धायुग' में आज के विसंगति पूर्ण जीवन की पृष्ठभूमि में समाज एवं मानव मन में व्याप्त युद्धोत्तर कुण्ठा, पराजय, प्रतिशोध निराशा, रक्तपात ध्वंस, कुरूपता, विकृति, अधःपतन, कुंठाजनित, बर्बरता, विवेकहीनता, त्रास, द्वंद्व, अंधस्वार्थपरता, भयानक टूटन, विघटन के साथ–साथ विघटित मानव–मूल्यों की अस्त व्यस्त खंडित परम्परा जीर्ण–शीर्ण होती हुई मर्यादाओं और भौतिक द्वन्द्वों के संदर्भ में नयी भावात्मक अनुभूतियों का यथार्थ किन्तु सशक्त चित्रण हुआ है।

आधुनिक युग की समस्याओं और द्वन्द्वात्मक स्थितियों की अभिव्यक्ति में धर्मवीर भारती ने महाभारत युद्ध की घटनाओं–प्रसंगों और पात्रों को जरिया बनाकर एक ओर तो ऐतिहासिकता की रक्षा की है और दूसरी ओर इन्हीं सब के द्वारा ऐसे चित्र प्रस्तुत किये है, जो आधुनिक जीवन की विसंगतियों को उद्घाटित करते हुए इसे आधुनिक बोध का गीतिनाट्यात्मक प्रबंध प्रमाणित करते हैं। कवि ने प्रारम्भ में ही संकेत दे दिया है कि– ''युद्धोपरान्त यह अन्धा युग अवतरित हुआ जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत है। कथा ज्योति की हैं अंधों के

ek/;e lsA''[3]
;q)ksijkUr
;g vU/kk;qx vorfjr gqvk
ftlesa fLFkfr;k¡] euksofÙk;k¡ lc fod`r gSa

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, शहीद मंगल पाण्डेय राजकीय महिला स्नातकोत्तर कालेज, माधवपुरम् मेरठ, उ0प्र0, (सम्बद्ध– चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, उ0प्र0)

;g dFkk mUgh vU/kk dh g

;k dFkk T;kfr dh g vU/kk d ek/;e lA**4

अन्धायुग 1954 ई0 में लिखा गया था, जब विश्व की शक्तियाँ दो गुटों में बट चुकी थी, द्वितीय विश्व युद्ध की प्रलयकारी स्थिति अभी भी शेष थी और तीसरे विश्व युद्ध की भावी विभीषिका से त्रस्त थी। यह तनावपूर्ण समय था और व्यक्ति इस तनाव के क्षणों में न केवल अपने को महसूस कर रहा था बल्कि करणीय और अकरणीय द्वन्द्व में भी पड़ा हुआ था। जिस प्रकार महाभारत युद्ध के बाद भय, कुंठा, निराशा और निरर्थकता का वातावरण बन गया था। ठीक वैसे ही स्थिति द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् आधुनिक युग थी। इन्हीं मूल्यों और मर्यादाओं का अन्वेषण अंधायुग की मौलिक समस्या है और इसी निरूपण में आधुनिक बोध उजागर होता है। 'इस कथा को चुनने का मूल प्रयोजन युद्धजन्य वर्तमान–कालीनता की प्रासंगिकता देना है, किन्तु इसकी उपलब्धि केवल वर्तमानता के कारण नहीं हैं बल्कि जब–जब युद्ध होगा, ऐसी ही अवसादपूर्ण त्रासद स्थितियाँ उत्पन्न होंगी और विघटित मूल्यों के संदर्भ में मनुष्य को नए मूल्यों की तलाश करनी होगी।'[5]

^^;g jDr ikr dc rd lekIr gkuk gA

nkuk i{kk dk [kkuk gh [kkuk gA**6

अन्धायुग के अन्तर्गत पात्रों को प्रतीकत्व प्रदान करके उन्हें आधुनिक युग के संदर्भ में विवेचित और मूल्यांकित किया गया है। यही कारण है कि अंधायुग के कृष्ण केवल प्रभु अथवा परब्रह्म नहीं बल्कि वे देवत्व और दानत्व की संधि रेखा पर खड़े है इसलिए वे एक आधुनिक युग बोध में सत्य की रक्षा भी करते हैं। 'कृष्ण के व्यक्तित्व में निहित दूसरों का दुःख भोगने की धारणा के पीछे कहीं ईसा मसीह का चरित्र झलकता है तो अधिकतर श्रीमद्भागवत् में वर्णित विराट् लीला–रूप है, और फिर पांडवों के प्रति सारी सहानुभूति के कृष्ण का अपने को बार–बार गांधारी के रूप में घोषित करना है।'[7] कवि मानों यों कष्ण जीवन के रहस्य को खोल कर भी उसे और गहरा कर देता है–

^gfj d jgL;e; thou dh

g tjk vyx ;g NkVh lh

ejh vkLFkk dh ixMMhA*

आधुनिक युगबोध में सत्य और असत्य का कोई निरपेक्ष निर्णय संभव ही नहीं है। इसी से आधुनिक युगबोध जटिल हो गया है। आज सभी सिद्धान्त, सभी आदर्श, व्यर्थ और खोखले प्रमाणित हो चुके है। आज का आधुनिक मानव इन बातों को समझ गया है। धर्मवीर भारती ने इस नग्न यथार्थ को उद्घाटित किया है, जो कृति को आधुनिक बोध से जोड़ता है।

अन्धायुग में कृष्ण अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए परिस्थितियाँ पाप–पुण्य, सत्य–असत्य, मर्यादा, अमर्यादा के समस्त दायित्वों का स्वयं वहन करते हैं। उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे कभी अपनी प्रतिज्ञा तोड़ते हैं। कभी मर्यादा को छोड़ देते हैं और कभी छल और असत्य को अपनाकर अंत में गांधारी के शाप को भी स्वीकार कर लेते है। 'व्यक्ति रूप में कृष्ण सबकी ईर्ष्या और आक्रोश के कारण हैं, पर जिन जीवन–मूल्यों का संदर्भ कृष्ण उपस्थित करते है वह काम्य है। कृष्ण ने आदर्श और यथार्थ को जिस समन्वित रूप में लिया है, उसे व्यक्त करने के लिए यह कलात्मक द्वैत ही रचना के स्तर पर एक मात्र उपाय है।'[8] ये सारी स्थितियाँ कृति को आधुनिक बोध से जोड़ती है।

e;kZnk;qDr vkpj.k e

fur uru l'tu e

fuHk;rk d@lkgl d@eerk d@jl d@{k.k e

thfor vkj lfØ; gk mBxk e ckj&ckjA

अन्धायुग में आधुनिकता को स्पष्टतः देखा जा सकता है। धर्मवीर भारती ने यह संकेत भी कर दिया है कि यह युद्ध केवल बाहर ही नहीं भीतर भी होता है। अस्तित्व बोध अपनी पहचान की खोज, निरर्थकता का बोध अकेलेपन की अनुभूति और कितनी ही अवांछित स्थितियाँ जिनका निरुपण ' अन्धायुग'

में हुआ है, कृति को आधुनिक बोध से जोड़ देती है। ' अन्धायुग' का केन्द्रीय चरित्र कृष्ण नहीं अश्वत्थामा है। युद्ध में व्यक्ति बर्बर हो जाता है। अश्वत्थामा ऐसी बर्बरता और विभीषिका से पीड़ित है। अश्वत्थामा का ब्रह्माशस्त्र आधुनिक युग के परमाणु अस्त्रों का बोध कराता है। अंत में तो वह किंकर्तव्यविमूढ़ भी हो जाता है। अश्वत्थामा की पशुता और बर्बरता आधुनिक जीवन में भी विद्यमान है। जो अतीत के दो आणविक महायुद्धों की देन है। युद्ध में मानव मूल्यों का क्षरण इस सीमा तक हो जाता है कि अवश्वत्थामा पाण्डव पुत्रों का वध करने से भी नहीं चूकता। अश्वत्थामा के द्वारा ब्रह्माशास्त्र का संधान कर देने पर व्यास द्वारा ही उसे धिक्कारना वर्तमान संदर्भों में परमाणु अस्त्रों द्वारा की जा सकने वाली विनाशलीला का बोध कराती है–

e g 0;kl
Kkr D;k rEg g ifj.kke bl czãk'kkL= dk
;fn y{; fl) gvk vk uj i'k
Rkk vkx vku okyh rd
iFoh ij jle; ouLifr ugh gkxh
f'k'k ink gkx fodykx d.BkxLr
lkjh eu"; tkfr ckuh gk tk,xhA**

धर्मवीर भारती ने जो कृष्ण के चरित्र को इतिहास नियंता व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया, वह दोनों आचरण की मर्यादा को स्वीकारोक्ति हैं। चरम हताशा एक ओर और आस्था को दूसरी ओर रूपायित करने वाले इन विरोधी चरित्रों की टकराहट में महाभारत का एक सूक्ष्म रूप जैसे अंतर्निहित है। यह टकराहट फिर विलीन होती है कृष्ण के व्यक्तित्व की विराट परिकल्पना में–

vVBkjg fnuk d bl Hkh'k.k lxke e
dkb ugh doy e gh ejk g djkMk ckj
v'oRFkkek d vxk l
jDr] iho] Lo cudj cgxk
e gh ;x ;xkrj rdA

आधुनिक शासन तंत्र की अराजकता और अव्यवस्था किसी से छिपी हुई नहीं है। युद्ध के उपरान्त युधिष्ठिर की जो मनःस्थिति दिखाई गयी है और प्रहरियों का जो वार्तालाप दिखाया गया है, वह आधुनिक बोध को स्पष्ट कर देता हैं। प्रहरियों के वार्तालाप में व्यंग्य, बिडम्बना और परिपक्व वेदना विद्यमान है वास्तव में यह प्रहरियों की निजी वेदना नहीं है, बल्कि आधुनिक मनुष्य की पीड़ा है। व्यर्थता, अकेलापन, अजनबीपन और अपरिचय जैसी स्थितियों को अन्धायुग में बखूबी से देखा जा सकता है। ये प्रहरी कौरव के राजमहल के गलियारे में टहलने वाले प्रहरी मात्र नहीं है बल्कि प्रतीक है। आज भी प्रत्येक मनुष्य के भीतर एक शून्यता है, सूना गलियारा है, अंधकार है, जिसमें उदासी और निरर्थकता टहलते रहते हैं। 'अन्ध ाायुग' 1954 ई0 में रचा गया है। आज भी इसे पढ़ने से आज विद्यमान समस्याओं की ओर संकेत मिलते है। साहित्य सृजन की समस्या, युद्धों की समस्या, शासन संचालन की समस्या, तटस्थता की समस्या, भाई–भतीजावाद की समस्या तथा जनता की दासवृत्ति की समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट करता है। आज विश्व के कोने–कोने से सत्ता के प्रति विद्रोह के समाचार मिलते है। कभी छात्रों का आन्दोलन, कभी मजदूरों का जनता कही सुखी नहीं। पूँजीवादी देशों में यदि शोषण है, तो साम्यवादी देशों में विचार–स्वातंत्र्य का अपहरण पिछले शासन को ही जनता अच्छा मानती है। नये को रोती है जनता जैसे पहले थी वैसी ही अब है। उसकी स्थिति में अब सुधार नहीं हुए है। धमवीर भारती ने 'अन्धायुग' में प्रहरियों के माध्यम से इस आधुनिक समस्या को चरितार्थ किया है–

ge tl igy Fk oSl gh vc Hkh g
"kkld cny
fLFkfr;k fcYdy oSlh g

bl l: rk igy: dgh ’kkl d vPN: Fk:
v:/k: Fk*------
y:fdu o: ’kkl u djr: FkA

यह कृति आधुनिक इसलिए भी है कि आज के जीवन के सच को आज के ही सन्दर्भ में देखने का प्रयास किया है। वास्तव में धर्मवीर भारती ने अतीत से कथावस्तु को लेकर अन्धायुग के शरीर का निर्माण किया है और इस सृजन में कवि ने तत्कालीन आधुनिक बोध को व्यक्त करने में सफल प्रयास किया है। अधर्म और अमर्यादा के चक्र में मर्यादित बुद्धि निष्क्रिय हो जाती है। युद्ध की अन्तिम परिणति पूरी मानवता को ध्वस्त कर देती है।

vfUre ifj.kfr e:
nkuk: t tj djr: g:
i{k pkg: lR; dk gk:
vFkok vlR; dkA

l UnHk: %

1. डॉ0 विश्वम्भर मानव व रामकिशोर शर्मा, आधुनिक कवि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 248
2. वही, पृ0 249
3. धर्मवीर भारती, अंधायुग, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 1
4. वही, पृ0 2
5. बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 311
6. धर्मवीर भारती, अंधायुग, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 3
7. रामस्वरूप चतुर्वेदी, नयी कविता : एक साक्ष्य, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 97
8. वही, पृ0 98

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 85-88

dF; ,o f'kYi dh n`f"V ls vf}rh; % vU/kk;qx

jRukdj ;kno*

'अन्धा युग' कविता है, नाटक या कि दृश्य काव्य है, यह प्रश्न उतना महत्वपूर्ण और संगत नहीं जितना यह कि उसके रचना–विधान का वैशिष्ट्य क्या है? यह विधान यदि परम्परागत माध्यमों और उनके वर्गीकरण के सन्दर्भ में संश्लिष्ट है तो जाहिर हैं कि वह रचनाकार के मन में उमड़ते–घुमड़ते बुनियादी सवालों और भाषा तथा संवेदना के जटिलतर होते संबंधों के साथ उभरा है।'[1] वृत्त के स्तर पर भी महाभारत कालीन कथानक और उसके समकालीन झंकृति यहाँ एक साथ जुड़ी है। कई बार लग सकता हैं कि वास्तविक महाभारत की स्थिति अब है, व्यास के महाभारत में तो शायद उसका काल्पनिक वर्णन भरा था।

अन्धा युग एक गीति नाट्य है। दूसरे शब्दों में यह वृतांत संवादों वाला नाटक की कथावस्तु प्रख्यात होती है।

ukVd [;kroÙk L;kr~ ipl f/k lefUore~ –साहित्यदर्पण

धर्मवीर भारती ने भी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रख्यात कथावस्तु चुनी, जैसा कि उनके निदेश–गतकथन से स्पष्ट है– 'इस दृश्य काव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया हैं, उसके सफल निर्वाह के लिए महाभारत के उत्तरार्द्ध की घटनाओं का आश्रय ग्रहण किया गया है।[2] अधिकतर कथावस्तु प्रख्यात हैं, केवल कुछ ही तत्व उत्पाद्य है– कुछ स्वकल्पित पात्र और कुछ स्वकल्पित घटनाएँ। प्राचीन पद्धति भी इसकी अनुमति देती है।

'अन्धा युग' धर्मवीर भारती द्वारा रचित एक गीति नाट्य है। जो सन् 1954 ई0 में प्रकाशित हुआ। इसका कथानक महाभारत युद्ध के अठारहवे दिन की संध्या से लेकर प्रभास तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु तक के कालखंड पर आधारित है। अंन्धा युग में कुल पाँच अंक है– 1. कौरव नगरी, 2. पशु का उदय, 3. अश्वत्थामा का अर्द्धसत्य, 4. गान्धारी का शाप, 5. विजय : एक क्रमिक आत्महत्या।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि इस नाटक की अधिकांश कथावस्तु प्रख्यात है, इतिहास सम्पत व पुराण प्रसिद्ध हैं। महाभारत में अश्वत्थामा, गांधारी धृतराष्ट्र, विदुर, कृष्ण, बलराम, युयुत्सु, व्यास, कृपाचार्य और कृत वर्मा का स्पष्ट उल्लेख हैं। अन्धायुग के सन्दर्भ में धर्मवीर भारती का कथन सही प्रतीत होता है– 'वाह्य घटनाओं की अपेक्षा साहित्यकार का ध्यान सामाजिक व्यवस्था द्वारा उद्भूत जटिल रागात्मक स्थितियों और उनसे उत्पन्न होने वाली विषमताओं, विकृतियों तथा असन्तुलन पर केन्द्रित रहता है, और वह उन्हीं का परिहार एवं परिष्कार करता है। कभी वह उसके लिए तात्कालिक नाम स्थिति और पृष्ठ भूमि ग्रहण करता है, कभी वह उसी को पौराणिक और काल्पनिक देशकाल और पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। कभी वह उसके लिए अप्रस्तुत, प्रतीकों एवं सकेंतो का आश्रय लेता हैं। साहित्यकार अपने स्तर पर, अपने ढंग से संस्कृति की विराट प्रक्रिया में योग देता हैं। रसानुभूति और सौन्दर्य बोध उसके माध्यम है, और युग, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार जैसी जटिलताएँ होती है, वैसी ही सूक्ष्म तथा अप्रत्यक्ष रीति से वह अपना कार्य करता है।

अंन्धा युग का लक्ष्य है– मानव मूल्य की प्रतिस्थापना से मानव भविष्य को सुरक्षित बनाने की घोषणा। इसके लिए कवि को संघर्ष और विरोध के रास्ते से जाना पड़ता है; उसे अन्धे अमानुषिक और निष्क्रिय लोगों से टक्कर लेनी हैं, और कार्य सिद्धि करनी है। बीज, अर्थ प्रकृति, आरम्भ, कार्यावस्था और

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, एस0डी0पी0जी0 कॉलेज, मुजफ्फरनगर (उ0 प्र0), (संबद्ध : चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)

मुख–संन्धि के दर्शन स्थापना में ही हो जाते हैं– जब कि मानव मूल्य के लिए प्रतीक कृष्ण को ही भविष्य का रक्षक कहा जाता है :

^;q)ksijkUr@;g vU/kk ;qx vorfjr gqvk@ft lesa fLFkfr ;k] eukso`fÙk ;k] vkRek,¡ lc foÑr g¨@g] ,d iryh Mksjh e;kZnk dhA*[3]

इस प्रकार अन्धों के माध्यम से ज्योति की कथा को सूचना में बीज आरम्भ और मुख की स्थिति हैं। जब याचक यह बताता हैं कि कृष्ण के मैदान में आते ही नक्षत्रों की गति बदल गयी हैं, तब यत्न कार्यावस्था और बिन्दु अर्थ प्रकृति का दर्शन होता है।

^^Lkgl k ,d 0;fDr@,sl k vk;k tks lkjs@Uk{k=ks dh xfr ls T;knk 'kfDr'kkyh Fkk@mlus j.kHkwfe es@fo"kknxzLr vtqZu ls dgk@eSa gw¡ ijkRij@tks dgrk gw¡ djks@lR; thrsxkA**

जब किसी ड्रामा का पर्दा उठता है और दर्शक गणमंच पर नाटक का प्रारम्भिक व्यापार देखने समझने के लिए आतुर हो उठते हैं। तभी नाटककार के सामने दो महत्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं। प्रथम दर्शक का समूचा ध्यान वह किस प्रकार अपने नाटक के प्रति खीच ले, दूसरे वह किस तरह नाटकों की पृष्ठभूमि को दर्शक आशानी से समझ सकें।

lÙkk gksxh mudh@ftudh iwath gksxh@;q)ksijkUr@;g vU/kk ;qx vorfjr gqvkA

'अन्धा युग' में चरित्रों को कवि ने पुराण–कथा और प्रतीक के बीच की स्थिति में विकसित किया है, इसीलिए वे कथा और विचार से एक साथ जुड़े हैं। कृष्ण, अश्वत्थामा, युयुत्सु, माता गान्धारी एक स्तर पर कथानक को आगे बढ़ाते है।[5] और दूसरे स्तर पर साथ–साथ ही अपने प्रतीक मूल्य खोलते चलते हैं। अंधा युग का केन्द्रीय पात्र अश्वत्थामा है, जो जो प्रतिहिंसा एवं घृणा की साकार प्रतिमूर्ति है। गान्धारी 'कृष्ण' के देवत्व को नकारती हैं और उन्हें शाप देती हैं, जिसे वे संहर्ष अंगीकार कर लेते हैं।

अश्वत्थामा का ब्रह्माशास्त्र आधुनिक युग के परमाणु अस्त्रों का बोध कराता हैं। अन्धा युग का परिवेश सत्य, मर्यादा एवं दायित्वों के प्रश्न को उभारता हैं। 'अंधा युग के प्रमुख पात्र अश्वत्थामा और गान्धारी विघटन से त्रस्त निराशा से कुंठित, अन्तः संघर्ष से ग्रस्त एवं मर्यादा हीन जीवनधारा के प्रतिरूप बनकर उपस्थित हुए हैं। युयुत्सु न्याय का पक्ष लेकर भी पश्चाताप की अग्नि में झुलसता हैं और ग्लानि एवं क्षोभ से आत्महत्या कर लेता है।

eSa gw¡ 0;kl@Kkr D;k rqEgsa gS ifj.kke bl czãkL= dk@;fn ;g y{; fl) gqvk vks uji'kq-----@lkjh euq"; tkfr ckWuh gks tk,xhA

युद्ध में मर्यादाएँ टूट जाती है, विवेक पराजित होता है और अंधेपन की विजय होती है। द्वितीय विश्वयुद्ध ने समूचे मानव समाज में गति हीनता भर दी थी उसी को दूर करने का प्रयास कवि ने अन्धायुग के माध्यम से किया है। अश्वत्थामा जीवन के कठोर और क्रूरतम यथार्थ में जीता है। मानव मूल्यों की स्खलन कैसी भयानक प्रतिहिंसा और विकृति को जन्म देता हैं यह चित्रण इस चरित्र के माध्यम से किया गया है–

Eksa ;g rqEgkjk v'oRFkkek@“kk'k gw¡ vHkh rd @Tkkls jkxh eqns d¨@e¡[k es 'kk"k jgrk@xnk dQ@ckl h Fkkd@“kk'k gw¡ vHkh rd eSA

रचना की स्वायत्त दुनिया में पाप–पुण्य की सापेक्ष स्थिति उतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं जितनी की चरित्रों की अपनी–अपनी नियति लब्ध करने की यात्रा। हर चरित्र की मानवीय विशिष्टता यहीं समझी जा सकती हैं। इन नियति यात्राओं का अंकन अपने में जितना पूर्ण हैं समग्र रचना का स्वरूप उतना ही सुगठित होगा। इस दृष्टि से 'अन्धायुग' के चरित्र नाटकीय संघर्ष और काव्यात्मक संवेदनशीलता को साथ–साथ वहन करते हैं। और उनमें से किसी को सहसा अच्छा या बुरा कहना कोई अर्थ नहीं रखता। युयुत्सु का अंकन व्यक्तिगत नैतिक निर्णय और उसके सामाजिक मूल्यांकन के बीच शाश्वत विषमता की स्थिति को प्रदर्शित करता है।

'मरणासन्न कृष्ण का अंतिम साक्ष्य और वसीयत आने वाले कलियुग के मानवीय इतिहास का प्रेरणा वाक्य है, जहाँ अपने दायित्व का निर्वाह ही अपनी नियति लब्ध करने का एक मात्र उपाय हैं।[7] यहाँ कृष्ण की वाणी में ईसा और आधुनिक इतिहास की व्याख्या का स्वर मिला है।

irk ugha@iHkq gS ;k ugha@fdrq mls fnu ;g fl) gqvk@tc dksbZ Hkh euq";------ @fu;fr ugha gS iwoZ fu/kkZfjr@mldks gj {k.k ekuo fu.kZ; cukrk feVkrk gSA

यह व्याख्या अध्यात्म के ऊपर इतिहास की शक्ति विकसित करती हैं। निराला के आध्यात्मिक स्तर के अंन्धकार और मुक्तिबोध के सामाजिक अँन्धेरे की समस्याओं को वह समकालीन जीवन के किसी बिन्दु पर जोड़ती है, प्रभु, महापुरुष, और इतिहास का अंतर संबन्ध यो समझने पर कृष्ण या कि ईसा, मार्क्स और गाँधी जैसे व्यक्तित्व का अवतरण स्पष्ट होता है।

अन्धायुग की भाषा अपनी सरलता, टोन के उतार–चढ़ाव, लय, क्रियात्मक आदि के कारण नाटकीय स्थितियों का जो बिंब प्रस्तुत करती है, उससे यथार्थ का नवीन पक्ष उद्घाटित होता है। यथार्थ के नवीन पक्ष या नया यथार्थ के चित्रण के फलस्वरूप कला में सृजन की समस्या उठाती है।[8]

अन्धायुग की सर्जनात्मकता हमें अभिभूत न करके चिंतापरक बनाती है। अन्धायुग अभिव्यंजना शिल्प की दषष्टि से अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है। अभिव्यंजना शिल्प में सर्वाधिक महत्व भाषा का होता हैं। इस दषष्टि से एक दृश्य काव्य या नाटक में अथवा एक रेडियों नाटक में जिस प्रकार की चित्र भाषा एवं ध्वनि प्रभाव से युक्त शब्दावली अपेक्षित होती है। वह अन्धायुग में देखने को मिलती हैं।[9]

अन्धायुग में जिस शब्दावली को सर्वाधिक महत्व दिया गया है, वह संस्कृत शब्दावली ही हैं, फिर भी भाषा में साधारणता भी है, सरलता भी है, और स्थान–स्थान पर उर्दू व अंग्रेंजी शब्द भी देखने को मिलते है। बोल–चाल की शब्दावली भी बड़ी उदारता के साथ प्रयुक्त की गयी है। खुदा, फर्क, पोशाके, नफरत, जख्म आदि उर्दू तथा स्टेटविंग विग्स आदि अंग्रेजी के शब्द अन्धायुग में देखने को मिलता है। व्यवहारिक बनाने के लिए और सर्व जनसुलभ रूप देने के उद्देश्य से स्थान–स्थान पर तद्भव और समतुकांत शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। जैसे– नित, बरस, सपने, पाप व हरी–भरी, अस्त व्यस्त, धारा–उपधाराएँ आदि को लिया जा सकता है।

अन्धायुग में शब्द शक्तियों का प्रयोग भी बड़ी कुशलता के साथ किया गया है। प्रमुख रूप से लक्षणा शब्द शक्ति और वक्रोक्ति के विविध प्रयोग विशेष महत्व रखते हैं। कथा गायन आदि प्रसंगों में अभिधा का सशक्त प्रभाव देखा जा सकता हैं। प्रचलित सुन्दर मुहावरों का प्रयोग किया गया हैं। ध्वनि–प्रयोग और व्यंजनात्मक प्रयोग हो अन्धायुग के प्राणतत्व हैं।

cksys vo/kwu ds fy, {k.k esa iHkq@thfor vkj lfØ; gks mMqxk esa ckj&ckjA

अन्धा युग की भाषा में विशिष्टता लाने के उद्देश्य से वक्रोक्ति के भिन्न–भिन्न रूपों में स्वाभाविक प्रयोग किया है :

lc fot;h Fks ysfdu fo'okl /oLrA@Fks l=/kkj [kqn Ñ".k fdUrq Fks 'kkixzLrAA*

इन पंक्तियों में नाद सौन्दर्य और वर्णविन्यास वक्रता दोनों को रखा जा सकता हैं, सर्वनामों का भी बहुत प्रयोग इस कृति की भाषा की विशेषता है।

og tks lekVks dk vkf/kiR; FkkA@;g tks vuqHkfr feyh gS] D;k og vkLFkk gS \

अन्धा युग में अपेक्षित वातारण प्रस्तुत करने में भी भाषा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। वास्तव में वातावरण–निर्माण कवि ने उस भाषा के द्वारा किया है, जो जीवन के ही समान भंगिमा धारण किये हुए है।

विविध शैलियों के प्रयोग के कारण भी यह कृति नाट्य भाषा का आकर्षक रूप प्रस्तुत करती है। व्यंग्य शैली, विवरणात्मक शैली, सूक्ति शैली और विचारात्मक शैंली के उदाहरण मिलते हैं। अन्धायुग की भाषा अनेक विशेषताओं से युक्त है। वह भावानुकूल, प्रसंगानुकूल, मनोभावों के अभिव्यंजन में सफल अपनी चित्रात्मक, वक्रता प्रधान, व्यंजना प्रधान और लाक्षणिकता युक्त सौन्दर्य के कारण विशिष्ट बन गयी है।

'कनुप्रिया की भांति ही धर्मवीर भारती की कृति 'अन्धायुग' भी उल्लेखनीय एवं विशिष्ट कृति हें, फर्क इतना हैं कि कनुप्रिया राग संबन्धों की वैचारिक पृष्ठभूमि पर खड़ी है और अंन्धायुग पौराणिक आख्यान के सहारे समसामयिक जीवन के संकट का प्रतिबोधक है।'[10] दोनों की समस्याएँ तत्वतः भिन्न नहीं हैं भिन्न हैं तो केवल बिन्दु तक पहुँचने का माध्यम। कनुप्रिया केवल काव्य हैं, किन्तु अन्धायुग एक साथ ही नाटक भी है और काव्य भी। अतः इसे गीतिनाट्य कहना अधिक तर्कसंगत है। अतः 'अन्धायुग' के अंतिम कथा गायन का इशारा इसी ओर है :

ij ,d rRo gS cht : i fLFkfr euq eSa@ lkgl eSa Lora=rk eSa] uwru l tu eSa@ dFkk T;kfr dh gS vU/kk dS ek/;e lsA

lUnHkZ %

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी, नयी कविताएँ : एक साक्ष्य, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 96
2. वही, पृ0 97
3. धर्मवीर भारत–अन्धायुग, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 2
4. वही, पृ0 3
5. डॉ0 विश्वम्भर मानव व रामकिशोर शर्मा, आधुनिक कवि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 248
6. वही, पृ0 249
7. बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 312
8. वही, पृ0 313
9. रामस्वरूप चतुर्वेदी, काव्य भाषा पर तीन निबंन्ध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 57
10. डॉ0 विश्वम्भर मानव व रामकिशोर शर्मा, आधुनिक कवि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 249

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 89-92

ykd lkfgR; vkj vU; fo"k;k e vUr lEcU/k

nhi'k feJ*

लोक साहित्य की परम्परा उतनी ही पुरानी है जितनी पुरानी मनुष्य जाति। मनुष्य का उद्‌भव ईश्वर की कृति का फल माना जाए तो लोकसाहित्य उसी फल का एक अंश मात्र है। मानव स्वभावतः समूह प्रियसी होता है। यही कारण है कि वह जहाँ भी, जिस समाज में रहता है, लोक–संसाधनों से बंधा होता है। जो लोकवार्ता और लोक साहित्य के उद्‌भव का कारण बनते है। लोकमानस के लोक साहित्य का सीधा सम्बन्ध है। लोक साहित्य के द्वारा हम लोकमानस को वाणी प्रदान करते है। लोक साहित्य से ही हमें समाज की विकास यात्रा सम्बन्धी सूत्रों का ज्ञान प्राप्त होता है।

लोक की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए व्यक्तित्वहीन अभिव्यक्ति को लोकसाहित्य कहा जा सकता है, लोक–साहित्य प्रधानतः मौलिक एवं परम्परागत होती है। लोक साहित्य अत्यंत प्राचीन है। ऋग्वेद में अनेक गाथाएँ उपलब्ध होता है जो उस समय गायी जाती थी, शतपथ ब्राह्मण ओर ऐतरेय ब्राह्मण में ऐसी गाथाएँ प्राप्त होती है जिनमें अश्वमेध यज्ञ करने वाले राजा के उदात्त चरित्र का संचित वर्णन किया गया है, एक समय था जब संसार के समस्त देशों में मनुष्य प्रकृति देवी का उपासक था तथा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था, उस समय उसका आचार, विचार, रहन–सहन सरल, सहज तथा स्वाभाविक था। वह आडम्बर और कृत्रिमता से कोसों दूर रहता था। वह स्वभाविकता की गोद में पला हुआ जीव था। तब उस युग का साहित्य भी कितना सरल, स्वच्छंद एवं स्वभाविक होता था। वह साहित्य उतना ही स्वभाविक था जितना जंगल में खिलने वाला फूल, उतना ही स्वच्छंद था जितना आकाश में विचरने वाली चिड़ियाँ, उतना ही सरल तथा पवित्र था जितना की गंगा की निर्मल धारा। उस समयके साहित्य का जो अंश आज अवशिष्ट तथा सुरक्षित रह गया है वही हमें लोक साहित्य के रूप में उपलब्ध होता है।[1]

'साहित्य' शब्द के पूर्व 'लोक' अभिधान लगाने के बाद उसका अर्थ होगा– लोक का साहित्य। 'लोक' का अर्थ 'जनता' द्वारा लिया जाता है। इसलिए लोकसाहित्य का बोध ऐसे साहित्य से होता है, जिसकी रचना जनता द्वारा की जाती है। जिस साहित्य की रचना जनसमूह द्वारा की जाती हो, उसे ही 'लोक साहित्य' कहते हैं। लोकसाहित्य को परिभाषित कई विद्वानों ने अपने–अपने मतों के माध्यम से किया हैं–

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में–

''ऐसा मान लिया जा सकता है कि जो चीजें लोकचित्त से सीधे उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आन्दोलित, चालित और प्रभावित करती है, वे ही लोकसाहित्य, लोकशिल्प, लोकनाट्‌य, लोककथानक आदि नामों से पुकारी जा सकती हैं।''[2]

लोक साहित्य को डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय ने सुप्रसिद्ध पाश्चात्य लोकवार्ता 'विशारद 'ग्रिम' के नाम से उल्लेख करते हुए 'जनता का जनता के लिये रचा गया 'जनकाव्य कहकर लोकसाहित्य की परिभाषा निर्धारित करने का प्रयास किया–

''सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली अपनी सहजावस्था में वर्तमान में जो निरक्षर जनता है, उसकी आशा–निराशा, हर्ष–विषाद, जीवन–मरण, लाभ–हानि, सुख–दुःख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है, उसे 'लोक–साहित्य' कहते हैं। इस प्रकार लोक साहित्य जनता का वह साहित्य है जो जनता द्वारा जनता के लिये लिखा गया हो।''[3]

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

लोक–साहित्य का विस्तार जीवन के विस्तार में समाहित है। हमारे जीवन और प्रकृति में जैसे–जैसे बदलाव आता है, लोक–साहित्य उसी के अनुरूप नये–नये आयाम ग्रहण करता है। लोक–साहित्य में लोक जीवन के सभी पक्षों की अभिव्यक्ति होती है। इसीलिए लोक–साहित्य और अन्य समाजशास्त्रों व विज्ञानों में घनिष्ठ सम्बन्ध देखने को मिलता है। लोक साहित्य का कुछ विषयों से सम्बन्ध निम्नलिखित है–

1- i|jkrRo vk|j yk|d lkfgR; %

पुरातत्व का कार्य प्रागैतिहासिक काल के पुरावशेषों के आधार पर प्रामाणिक इतिहास का विवरण प्रस्तुत करना। अनेक स्थानों पर उत्खनन में प्राप्त अवशेषों के आधार पर किसी प्रदेश की प्राचीन संस्कृति और जीवन पर प्रकाश डालना और उसकी ऐतिहासिकता को प्रमाणिकता देना पुरातत्व का प्रमुख कार्य है। इसी प्रकार के प्रागैतिहासिक काल और उससे भी पुराने आदिम युगीन जीवन और संस्कृति के संकेत लोक साहित्य में भी निहित रहते हैं। लोक साहित्य की कथाएँ, गाथाएँ जिन तथ्यों को अपने में समाहित किये हुये हैं उनको आधार मानकर पुरातत्व–वेत्ता अनुसंधान कार्य करते हैं और अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक निष्कर्षों तक पहुँचते है। अतः लोक–साहित्य पर पुरात्त्ववेत्ता को निर्भर रहना पड़ता है।

इस सन्दर्भ में डॉ0 शंकर लाल यादव का अपनी पुस्तक 'हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य' में विचार है कि– ''विश्व और मानव की रहस्यमयी पहेली को सुलझाने के लिए उसके प्राचीनतम रूपों की खोज के लिए और उसके यथार्थ स्वरूप को जानने के लिए जहाँ इतिहास के पृष्ठ मूक हैं, शिलालेख और ताम्रपत्र मलिन हो गये हैं, वहाँ इस तमसाच्छन्न स्थिति में लोक–साहित्य की दिशा–निर्देश करता हैं''[4]

/keZ'kkL= vk|j yk|d lkfgR; % हमारी आस्था लोक–विश्वास और पारम्परिक मान्यताओं की भूमि पर ही धर्म का अस्तित्व आरुढ़ पाया जाता है। लोक–साहित्य जहाँ मानव के अतीत की जीवन–चर्चा और लोक–विश्वासों तथा परम्पराओं एवं रीति–रिवाजों को वाणी देता हैं वहीं धर्मशास्त्र इनमें पारिव्याप्त हमारी धार्मिक आस्थाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। लोकगीतों में देवी–देवताओं, अवतारी महापुरुषों का वर्णन प्रायः देखने को मिलता है। शीतला माता, गंगा माता, काली, शिव, राम, कृष्ण सूर्य आदि का वर्णन अत्यधिक मात्रा में देखने को मिलता है।

जैसे–

^^xkMok n%[k by| j| MMok fijby|] dc l| t| ckuh ge Bk<A
vj| gkyh gkyh mxk , vfnrey] vj?k fn[kkmAA**

लोक–विश्वास के आधार पर ही गाँव की स्त्रियाँ चेचक निकलने पर शीतला माता को मनाने के लिए देवी–गीत गाती हुई, 'धार' चढ़ाती हैं।

^^uhfe;k d| Mkjh eb;k Mky|yh fgMkyok fd >|yh >|yh ukA
eb|;k ekjh xko|yh fxfr;k gk| fd >|yh >|yh ukAA
>|yr >|yr eb|;k fd yxyh fi;fl;k gk| fd pfy Hkbyh| ukA
vkfg efyfu;k d| v[klok| gk| fd pfy u Hkbyh| ukAA**

डॉ कृष्णदेव उपाध्याय ने लिखा है कि – ''यद्यपि नयी सभ्यता तथा शिक्षा की चकाचौंध के कारण हमारी प्राचीन धारणाओं और विश्वासों में परिवर्तन होने लगा है परन्तु लोक–संस्कृति की सरिता आज भी अक्षुण्ण गति से प्रवाहित हो रही हैं। ग्रामीण स्त्रियाँ आज भी उसी प्रकार से व्रत रखती हैं और अपनी अभीष्ट कामनाओं की सिद्धि के लिए देवताओं की पूजा करती हैं जिस प्रकार से प्राचीन काल में की जाती थी। पुरुष वर्ग भी अपनी धार्मिक भावनाओं और विधि–विधानों को सँजोकर धाती के समान सुरक्षित रखे हुए हैं। यही कारण है कि भातरवर्ष में अनेक राजनीतिक उथल–पुथल हुए, अनेक क्रान्तियाँ हुई परन्तु हमारी धार्मिक विचारधारा में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। फलतः लोक–साहित्य में जनता के धार्मिक जीवन का सजीव चित्रण अंकित किया गया है।''[5]

Hkkxksy vk|j yk|d&lkfgR; % लोक–साहित्य की विभिन्न विधाएँ जिस क्षेत्र या जनपद से जुड़ी होती हैं वहाँ की बहुत–सी भौगोलिक जानकारी भी उनके माध्यम से मिलती है। यथा– उस क्षेत्र या जनपद

की अनेक नदियों, नगरों, प्रदेशों, राज्यों की राजधानियों तथा व्यावसायिक केन्द्रों आदि का ज्ञान लोक–साहित्य से हमें सहज ही हो जाता है। अनेक गाथाओं में ऐसे बहुत से वनों, मार्गों तथा नगरों या उपनगरों का उल्लेख मिलता है, जो आज विलुप्त हो चुके हैं। लोक–साहित्य के माध्यम से भूगोल का शोधकर्त्ता नयी सामग्री का संकलन कर सकता है। भोजपुरी लोक–गीतों में गंगा, जमुना, सरजू, सोन और तमसा नदियों के पर्याप्त उल्लेख मिलते हैं। नगरों में काशी, प्रयागराज, पटना, कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, अयोध्या, जनकपुरी और कामरूप आदि स्थानों की चर्चा प्रायः देखने को मिलती है। 'आल्हा' नामक लोक गाथा में महोबा, नैनागढ़, कजरीवन तथा दिल्ली आदि का वर्णन मिलता है। स्थान–विषयक जानकारी देने वाली लोकगीत की कुछ पंक्तियाँ –

^^Hkkstiqj dh gfFk;k flxkjy vkoyh]
cukjl dh f>Uugkl thA
vjs] dklh dh jktk fcvkgu vkoyh]
gkFkh poj Hkk[kk iku thA
cjh&cjh rkfg cjtk dou nqygk]
fcjnkou tku tkgh gh
vkfg fcjnkou no cjflgh]
Hkhfx tbgh puu rkgkj,A

इस भोजपुरी लोकगीत में उल्लेखित स्थानों से यह संकेतित होता है कि भूगोल और लोक साहित्य में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध हैं।[6]

Hkk"kk&foKku vkj ykd lkfgR; % भाषा–विज्ञान में भाषा का सर्वांगीण और सम्यक् अध्ययन और विवेचन होता है। यह भाषा चाहे विशिष्ट हो या सामान्य, साहित्यिक हो या असाहित्यिक, लिखित हो या अलिखित सभी का अध्ययन भाषा–विज्ञान के अन्तर्गत होता है।

भाषा का विकास बोलियों से होता है। बोलियों का आदिम एवं मूल रूप विभिन्न जातियों, वर्गों एवं समुदायों तथा क्षेत्रों के लोक–साहित्य में सहज ही सुरक्षित देखा जा सकता है। भाषा–विज्ञान, लोक–साहित्य की सहायता से भाषा–सम्बन्धी अनेक समस्याओं का समाधान ढूँढ़ सकता है। लोक–शैली में प्रयुक्त विभिन्न शब्दों की निरूक्ति का पता लगाने पर भाषा विषयक अन्य जटिलताओं को भी सुलझाया जा सकता है। लोक–बोली में प्रयुक्त हजारों अर्थवान अभिव्यक्तियों, क्रियाओं, पारिभाषिक शब्दों, कहावतों, मुहावरों आदि से भाषा का भण्डार समृद्ध किया जा सकता है। भाषा के अतीतकाल तक जाने के लिए लोक–बोलियों में प्रचुर सामग्री मिल जाती है। इससे भाषा–विज्ञान के लिए लोक–साहित्य की उपादेयता स्वतः सिद्ध है।

''हिन्दी बिना जनपदों की बोलियों को साथ लिये उन्नति कर ही नहीं सकती। भाषा की दृष्टि से जनपदों में, गाँवों में बेहिसाब मसाला भरा पड़ा है।''[7]

lekt'kkL= vkj ykd lkfgR; % समाजशास्त्र वर्तमान समाज में रहने वाली विभिन्न जातियों व समुदायों की सामाजिक प्रथाओं और रीति–रिवाजों तथा विविध परम्पराओं का अध्ययन प्रस्तुत करता है। इस अध्ययन–क्रम में यदा–कदा वह अपने अतीत की ओर भी झाँकता है। परन्तु अतीत के जीवन की जानकारी का जितना सशक्त स्रोत लोक–साहित्य है, उतना समाजशास्त्र नहीं। विभिन्न सामाजिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, देवी–देवताओं, धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं और लोक–व्यवहार की विविध बातों का वर्णन लोक–साहित्य की भूमि पर व्यापक रूप में उपलब्ध होता हैं।

''लोक–साहित्य में जन–जीवन का जितना सच्चा और स्वभाविक वर्णन उपलब्ध होता है, उतना अन्यत्र नहीं। सच तो यह है कि यदि किसी समाज का वास्तविक चित्र देखना ही है तो उसके लोक–साहित्य का अध्ययन करना चाहिये। इन लोक–गीतों, गाथाओं और कथाओं में मनुष्यों के रहन–सहन, आचार–विचार, खान–पान और रीति–रिवाजों का सच्चा चित्र देखने को मिलता है।''[8]

समाजशास्त्र के विद्यार्थी के लिए अत्यन्त उपयोग सामग्री लोक साहित्य में उपलब्ध होता है। आदि जातियों,, जन–जातियों, के रीति–रिवाजों, प्रथाओं आदि को ठीक से समझने के लिए लोक–साहित्य का सहारा लेना आवश्यक है, क्योंकि उनमें ये सारी चीजें उपलब्ध होती हैं जो अन्यत्र दुर्लभ है।

समग्रताः से विचार करने पर लोक–साहित्य का लोक जीवन तथा अन्य विषयों से सम्बन्ध प्रगाढ़ है, ये स्पष्ट हो जाता है कि सभी विषय कहीं न कहीं लोक साहित्य के समअंगी है तथा सभी शास्त्रों में लोकसाहित्य की एक भूमिका है। लोकजीवन में लोक साहित्य का अत्यन्त ही महत्व है। इसके संरक्षण एवं अनुशीलन के द्वारा साहित्य का विकास किया जा सकता है। साहित्य में धर्म, समाज, भूगोल, पुरातत्व तथा भाषा–विज्ञान का अपना एक सुदृढ़ स्थान है। अतः लोक साहित्य जनता के हृदय का उद्गार है।

लोक साहित्य कहीं–कहीं अन्य विषयों को जानने और समझने की मजबूत भूमिका है।

lUnHkZ %

1. लोक साहित्य की रूप–रेखा, डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, प्रस्तावना, पृ0सं0 3–28
2. विचार और वितर्क (निबन्ध–संग्रह), पृ0 206, प्रयाग 1954
3. लोक साहित्य की भूमिका– डॉ0 कृष्ण देव उपाध्याय
4. डॉ0 शंकर लाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, पृ0 43
5. डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी 'लोकगीत', भाग–1, पृ0 368
6. लोक–साहित्य के विविध आयाम, डॉ0 परवीन निज़ाम अंसारी, प्रथम संस्करण, 2016
7. डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल, पृथ्वीपृत्र, पृ0 150
8. लोक–साहित्य की भूमिका, डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, पृ0 323

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 93-98

gB;¨xh dchj

M,0 fcfiu d|ekj*

कबीर हिन्दुओं, मुसलमानों, सिक्खों आदि सभी को समान रूप से प्रिय थे। वे मानव धर्म के प्रवर्तक तथा 'समाज–सुधारक' के रूप में मान्य हैं। वे हिन्दू और मुसलमान दोनों को समान रूप से प्रिय थे, इसका आभास हमें तब होता है जब उनकी मृत्यु के बाद उनके हिन्दू–मुस्लिम अनुयायियों में शव के जलाने तथा दफनाने के प्रश्न को लेकर विवाद उत्पन्न हुआ। उनकी उदात्तता के कारण सिक्खों ने अपने धर्मग्रन्थ 'गुरुग्रन्थ साहिब' में उनकी रचनाओं को स्थान दिया। उनके विचारों की उदारता को देखकर पाश्चात्य विद्वानों ने उन्हें ईसाई–धर्म से प्रभावित घोषित किया और कहा कि उनके उपदेश बाइबिल के निकट हैं। स्पष्ट है कि पाश्चात्य विद्वान भी कबीर की महानता को स्वीकार करते हैं। कबीर का व्यक्तित्व बहुआयामी है। कबीर की कविताओं का अवलोकन करने से यह स्पष्ट पता चलता है कि वे हठयोगी, कवि, सुधारक, रहस्यवादी, दर्शनिक और भक्त हैं।

हठयोग कबीर की साधना पद्धति में नाथपंथियों से आया था। हठयोग में कुण्डलिनी को जागृत किया जाता है। यही कुण्डलिनी षटचक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार चक्र तक पहुँचती है। सहस्रार चक्र में जीवात्मा को पहुँचा देना ही योगी का चरम लक्ष्य होता है। योगस्वरोदय में बताया गया है कि हठयोग में आसन, प्राणायाम और धौति आदि षट्कर्म का विधान है इससे नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं। इसमें यह भी बताया गया है कि नासिका के अग्र भाग में दृष्टि निबर्द्ध कर आकाश में कोटि सूर्य के प्रकाश को स्मरण करना चाहिए और श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण रंगों का ध्यान करना चाहिए। ऐसा करने से साधक चिरायु होता है और हठात् ज्योतिर्मय होकर पार ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। इस योग को इसीलिए हठयोग कहा जाता है।[1]

कबीर योगसाधना में मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हैं। वे सिद्धि इत्यादि के प्रदर्शन और बाह्य आडम्बरों का पूर्ण विरोध करते हैं–

vo/k| t¨xh tx F© U;kjkA
e|æk fujfr l|jfr dfj l¦xh] ukn u "kM| /kkjkAA
cl| xxu e| n|uh u n|[©] p|rfu p©dh c|BkAA
pf<+ vdkl vkl u ufg| NkM|] ihol egkjl ehBkAA
ijxV dFkk ekg| t¨xh] fnYk e| nj iu t¨o|A
lgL= bdhl N% l| /kkxk] fugpYk ukd| iko|AA
cgk vfxu e| dk;k tkj|] f=dqVh lxe tkx|A
dg| dchj l¨b| t¨xLoj] lgt l|fu Y;© YkkxAA[2]

नाथ पंथी जो कि श्रृंगी आदि धारण करते थे और अपने को अवधू कहते थे, कबीर उसको बाह्याडम्बर कहते हैं–हे अवधू! योगी संसार से विलक्षण है। यह मुद्रा श्रृंगी आदि बाह्य उपकरणों को महत्त्व नहीं देता है। ध्यान, योग से प्राप्त निरति की अवस्था ही इसकी मुद्रा है और सुरति की श्रृंगी है। इसकी श्रृंगी का नाद अथवा नाद श्रवण ज्ञान और साधन से प्राप्त स्वरूप स्थिति की चैतन्य धारा को काटता नहीं। यह योगी ध्यान योग और गगन योग में प्रतिष्ठित रहता है और संसार की विषम वासनाओं की ओर

*असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

ध्यान भी नहीं देता है। वह चैतन्य की चौकी पर अर्थात् अपने स्वरूप में ही अवस्थित रहता है। शून्य शिखर पर एक बार चढ़कर वहाँ से अपना आसन नहीं छोड़ता है अर्थात् इस अवस्था से नीचे संसार की ओर नहीं आता है। वहीं पर अवस्थित रहकर यह योगी ब्रह्म–रन्ध्र से टपकने वाले अमृत रस का पान करता रहता है। प्रकट रूप में कंधा पहने रहता है पर अन्दर से वह योगी है। अर्थात् वेश तो बनाये हुए है : वस्तुतः उसकी अन्तरात्मा वेश आदि से पृथक् एवं विरक्त है। यह अवधू अपने हृदय के दर्पण में उस परम तत्त्व के बिम्ब को देखता रहता है। इक्कीस हजार और छः सौ स्वासों रूपी धागों को निश्चल होकर कुम्भव प्राणायाम के नाके में पिरोता रहता है। अर्थात् अपनी प्राणवायु को सूक्ष्म बनाकर नासिका के अन्दर ही कुम्भव अवस्था के भीतर ही संचरण कराता रहता है। वह ज्ञान की अग्नि में अपने शरीर अर्थात् विषम–वासनाओं को भस्म करता रहता है। यह त्रिकुटी अर्थात् त्रिवेणी अवस्था ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचकर निरन्तर परम चैतन्य का साक्षात्कार करता रहता है। यही उसका जानना है। कबीर कहते हैं कि वही वास्तव में सब योगियों में श्रेष्ठ है, वही उसका स्वामी है, जो सहज और शून्य में अपना ध्यान निरन्तर लगाये रहता है। इस प्रकार कबीर कायायोग की अपेक्षा ध्यानयोग और ज्ञानयोग को अधिक महत्त्व देते हैं। कायायोग की सार्थकता ही ध्यानयोग और ज्ञानयोग के साधन बनने में है।

कबीर की योग साधना में जिन तत्त्वों की प्रधानता है वे हैं–पिण्ड, अनाहतनाद का अनुसंधान, ब्रह्माण्ड के ऐक्य की भावना, वायु–साधना, नाड़ी–साधना, मुद्राएँ, षट्चक्र, ब्रह्मरन्ध्र, कुण्डलिनी जागरण, सुरति–निरति, सहज की प्रवृत्ति।

fi.M ½ नाथ–सम्प्रदाय में मान्यता है कि परम शिव की सिसृक्षा शक्ति (सृष्टि करने की इच्छा शक्ति) से ही पिण्ड की उत्पत्ति होती है। यह सिसृक्षा शक्ति पाँच अवस्था को (क) निजा (स्फुरित होने की पूर्ववर्ती अवस्था), (ख) स्फुरण, (ग) स्पन्दित, (घ) सूक्ष्म–अहन्ता (अलगाव का भाव), (ङ) चेतनाशील से होकर गुजरती है। ये अवस्थाएँ क्रमशः परा, अपरा, सूक्ष्मा और कुण्डली कही जाती हैं। इन अवस्थाओं में शिव क्रमशः परम, शून्य, निरंजन और परमात्मा के नाम से प्रसिद्ध होते हैं। यही परमात्मा और कुण्डलिनी–शिव और शक्ति–प्रथम दो सूक्ष्म तत्त्व हैं जिनसे अत्यन्त सूक्ष्म 'पर पिण्ड' की उत्पत्ति हुई है। इस पर–पिण्ड से आद्य–पिण्ड, आद्य–पिण्ड से साकारपिण्ड, साकार पिण्ड से महासागर पिण्ड और महासागर पिण्ड से प्राकृत–पिण्ड और अन्त में गर्भ–पिण्ड उत्पन्न है। ये क्रमशः स्थूल से स्थूलतर हो जाते हैं। अंतिम पिण्ड से यह स्थूल शरीर उत्पन्न हुआ है। पं0 गोपीनाथ कविराज ने सिद्ध–सिद्धान्त संग्रह की भूमिका में छः पिण्ड बताये हैं[3]–

1. पर या आद्य–पिण्ड
2. साकार–पिण्ड
3. महासागर पिण्ड
4. प्राकृत–पिण्ड
5. अवलोकन–पिण्ड
6. गर्भ–पिण्ड

कबीर स्थूल शरीर को ही पिण्ड कहते हैं। उनके अनुसार पिण्ड अखिल ब्रह्माण्ड का लघुरूप है।

fi.M&cãk.M dk ,D; dh Òkouk ½ कबीर के अनुसार पिण्ड, ब्रह्माण्ड का लघु प्रतिरूप। योगी का प्रमुख लक्ष्य होता है कि वह ब्रह्म से ऐक्य स्थापित कर सके। मध्यकालीन चिन्तन धारा में यह धारणा व्याप्त थी कि मानव शरीर अथवा पिण्ड में नाड़ियों और नाड़ी चक्रों रूपी नदियाँ और पर्वतमालाएँ आदि विद्यमान हैं। जिनका प्रसार बाह्य ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त है जिससे साधक को परमसत्य को ढूढ़ सकने की प्रेरणा मिलती है। कबीर इस परमसत्य को अपने भीतर ढूँढने की बात करते हैं–

^dk;k e/¨ d¨fV rhjFk] dk;k e/¨ dk'khA
dk;k e/¨ d¡oYkkifr] dk;k e/¨ od¡.Bokl hAA[4]

जब सभी तीर्थ इस पिण्ड के अन्दर हैं तो जगह–जगह भटकने की क्या जरूरत है? योगी काया शुद्धि के बाद परमतत्त्व का दर्शन कर लेता है और अपने ज्ञान के माध्यम से वह परमतत्व से ऐक्य स्थापित कर लेता है। यही सभी जीव का लक्ष्य है। जब तक जीव (पिण्ड) को अज्ञान रहता है तब तक वह इस संसार में भटकता रहता है। इस तरह कबीर पिण्ड (शरीर) और परमतत्त्व (ब्रह्माण्ड) के ऐक्य की बात करते हैं।

ok;q&lk/kuk % कबीर की योग–साधना में वायु–साधना एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। कबीर पाँच प्रकार की वायु का संकेत करते हैं–

^igYkh [k¨t¨ i¡p ckb] ckb 0;¡n Y¨ xxu lekbA*[5]

वायु–साधना में योगी ईड़ा और पिंगला नाड़ियों को रोककर सुषुम्ना मार्ग से प्राणवायु को संचारित करता है। योग साधना के लिए यह आवश्यक है कि साधक ऊर्ध्ववायु को दशम–द्वार अथवा ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाए। कबीर का कथन है कि पवन के द्वारा योगी–शरीर में स्थित छः चक्रों का भेदन किया जाता है जिससे शून्य में सुरति लग जाती है–

^mYkV¡ iou pØ "kV c/kk] lqfu lqjfr Y© YkkxhA*[6]

कबीर द्वारा वायु–साधना पर अधिक जोर देने का मुख्य कारण यही है कि इससे साधक को अपने हृदय की थाह मिल सकती है, जिससे अनभिज्ञ रहकर कोई भी साधना सफल नहीं हो पाती।

^iou eFkkuh ân; <<¨] rc ikoS eu BkoA*[7]

ukMh&lk/kuk % शरीर में तीन ऐसी चीजें हैं जो कि परम शक्तिशाली हैं लेकिन यह चंचल होने के कारण मनुष्यों के काम नहीं आ रही है। ये हैं–(1) बिंदु, (2) वायु, (3) मन। यदि बिन्दु को ऊर्ध्वमुख किया जा सके तो बाकी दो भी स्थिर हो जाते हैं। इसके लिए आवश्यक है नाड़ियों को शुद्ध किया जाय। हठयोग में षट्कर्म द्वारा यही कार्य किया जाता है। धौति है, बस्ति है, नेति है, त्राटक है, नौलि है, कपालभाति– इन्हीं को षटकर्म कहते हैं।8 नाड़ी शुद्ध होने से बिन्दु स्थिर होता है। सुषुम्ना का मार्ग साफ हो जाता है, प्राण और मन क्रमशः अचंचल हो जाते हैं। प्रबुद्ध कुण्डली परमेश्वरी सहस्रार चक्र में स्थित परमतत्त्व के साथ समरस हो जाती है और योगी अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

सन्त साहित्य में पाँच नाड़ियों का उल्लेख मिलता है जो निम्न हैं–

1. इड़ा (सूर्य)
2. पिंगला (चंद्र)
3. सुषुम्ना (अग्नि)
4. वज्रा
5. ब्रह्मनाड़ी

योग साधना में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना की विशेष मान्यता है। इन तीन नाड़ियों के संगम स्थल को 'त्रिवेणी संगम' कहा गया है। कबीर कहते हैं ये तीन नाड़ियाँ मनुष्य के अन्दर चन्द्र, सूर्य और अग्नि के रूप में विद्यमान रहती हैं–

^pUn lqj n¨b HkkBh dhUgÈ] lq"kfeu fpxok Ykkxh jA*

vukgrukn % अनाहतनाद से तात्पर्य अन्तर्मुखी नाद से है। हम जो भी सामाजिक उपयोग की भाषाा कर्णेन्द्रिय से सुनते हैं वह 'आहतनाद' है। आहतनाद देश से परिवद्ध होता है। यह शब्द ध्वनि दो वस्तुओं के टकराने से उत्पन्न होती है। लौकिक जीवन में हम 'आहतनाद' की भाषा के माध्यम से व्यवहार करते हैं। जब साधक अन्तर्मुखी साधना में लीन हो जाता है तो उसे आहतनाद नहीं सुनाई देते हैं। साधना में लीन साधक अपनी चित्तवृत्ति को एकाग्र कर लेता है। तब उसे 'अनाहत नाद' सुनाई पड़ने लगता है। 'अनाहत' शब्द देश–काल के बन्धनों से मुक्त होता है। अनाहत नाद का केन्द्र 'अनाहत चक्र' होता है। 'अनाहत चक्र' में लीन साधक अपनी अन्तर्मुखी साधना के द्वारा 'शब्द ब्रह्म' का अनुभव करता है जो समग्र विश्व में अखण्ड रूप से व्याप्त है। कबीर के पदों में अनाहत शब्द के महत्त्व का उल्लेख मिल जाता है–

^mYkV iou pØ"kV o/kk] e#nM lji ijkA
xxu xjft eu lfu lekuk] ckt vugn rjkAA[9]

"kVpØ % हठयोगी प्राण वायु का निरोध करके कुण्डली को उद्‌बुद्ध करता है। उद्‌बुद्ध कुण्डलनी षटचक्रों को भेद करती हुई सातवें और अंतिम चक्र सहसार चक्र में ब्रह्म से मिलती है। ये छः चक्र सुषुम्ना के मार्ग में स्थित होते हैं। ये षट्‌चक्र निम्न हैं–

¼1½ eYkk/kkj pØ % इसका विशेष महत्त्व है। यह सबसे नीचे का चक्र है। यह गुदा और लिंग के मध्य स्थित है। यह षट्‌चक्र भेदन साधना का प्रथम सोपान है। इसी क्रम में योग साधक अपनी योगपूत दृष्टि से जीव के निवास की कल्पना करता है।

¼2½ Lokf/k"Bku pØ % यह नाभि के पास स्थित है। इसका आकार छः दलों के कमल का है।

¼3½ ef.kijd pØ % यह नाभि मूल में स्थित है।

¼4½ vukgr pØ %यह हृदय के पास स्थित है। कबीर ने इसे ब्रह्मा का क्रीड़ास्थल घोषित किया है।

¼5½ fo'k)k[; pØ % यह कंठ स्थान में स्थित है। इसका आकार सोलह दल के पद्म के समान है। इस चक्र को कबीर ने परमात्मा से मिलने का माध्यम बताया है।

¼6½ vkKk pØ % यह दोनों भौहों के मध्य स्थित है। इसके सिर्फ दो ही दल हैं। यह सुप्रसिद्ध योग नाड़ियाँ–इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना का मिलन स्थल है; जिसे कबीर त्रिवेणी और त्रिकुटी कहते हैं। उपर्युक्त छः चक्रों के बाद मस्तक में शून्य चक्र विद्यमान है, उसी स्थान पर कबीर ने सहस्रार चक्र की कल्पना की है। इन चक्रों में दल होते हैं। जिसे कॅवल (कमल) भी कहते हैं। कबीर ने षट्‌चक्रों और कँवल का अपने योग साधना में संकेत दिया है–

^"kV pØ doYk c/kk] tkfj mtkjk dhUgkA
dke Ø¨/k Yk¨Ò e¨g] gkfd L;kot nhUgkAA[10]

cã jU/k % इसे सहस्रार चक्र, शून्यमण्डल, ब्रह्मस्थान, औंधाकुँआ, निर्वाणचक्र इत्यादि नामों से भी अभिहित किया जाता है। इसमें शक्ति की सहस्र किरणें हैं। कुण्डलिनी की उर्ध्वयात्रा यहीं पर समाप्त होती है। मनमौजी कबीर ब्रह्मरन्ध्र को शून्य कहते हैं।

d.MfYkuh tkxj.k % कुण्डलिनी को हठयोग में स्थान प्राप्त है। यह एक शक्ति है। यह मूलाधार चक्र में स्थित है। यह सुषुम्ना का द्वार अवरुद्ध किये हुए साढ़े तीन वलयों में परिवर्तित किये हुए सर्पिणी की भाँति सोई हुई है। कबीर ने कुण्डलिनी को सिर्पणी, नागिन आदि नामों से अभिहित किया है–

^lfi.kh rÅij ugÈ cfYk;kA
ftu cãk] fo".k] egkno NfYk;kA*[11]

योगी विशेष यौगिक प्रक्रिया के माध्यम से इसी कुण्डलिनी को जागृति करता है। कुण्डलिनी जागरण के बाद योगी उर्ध्वमुखी हो जाता है। कुण्डलिनी के उन्मुख होते ही मन की बिखरी हुई वृत्तियाँ भी अंतर्मुखी हो जाती हैं। उनके केन्द्रीकरण से एक दिव्य ज्योति का आलोक उठता है और मन पूर्ण शांति का अनुभव करने लगता है। कबीर ने कुण्डलिनी और माया में साम्य परिलक्षित किया है।

lqjfr&fujfr % सुरति की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है। मतभेद होने के बावजूद सभी विद्वान इस बात से सहमत हैं कि सुरति अन्तर्मुखी चित्तवृत्ति ही है। जब सांसारिक विशयों की तरफ प्रवाहित चित्तवृत्ति ईश्वरोन्मुखी हो जाती है तो उसे 'सुरति' कहते हैं। 'निरति' का तात्पर्य पूर्णतन्मयता की स्थिति से है। कुछ विद्वान निरति को वैराग्यवृत्ति का द्योतक स्वीकार करते हैं। कबीर ने सुरति और निरति का एक साथ प्रयोग किया है जिससे उपर्युक्त आशय की ही पुष्टि होती है–

^lqjfr lekuh fujfr e] fujfr jgh fuj/kkjA
lqjfr fujfr ijpk Ò;k] rc [kY¨ L;Ò nqvkjAA[12]

कबीर के सुरति–निरति को व्यष्टि शक्ति और समष्टि शक्ति के रूप में मान्यता दी है। इसका मूल पिण्ड–ब्रह्माण्ड की भावना में समाहित है। कबीर का सुरति–निरति साधना का मूल लक्ष्य आजपा–जाप,

लेख–अलेख तथा आपा–आप के परस्पर अभेद हो जाना है। इस सुरति–निरति योग की प्रक्रिया के प्रधान बिन्दु जप, ध्यान और विचार हैं। सुरति–निरति के सम्मिलन का परिणाम 'महासुख' होता है।

lgt dh Áo̊fÙk % कबीर की सहज साधना से तात्पर्य सहज भाव से विषयों का त्याग और अनासक्त जीवन को सहज साधना के रूप में अपनाना। सहज तत्त्व की आराधना सर्वप्रथम सिद्धों की साधना पद्धति में मिलती है। सरहपाद ने इस बात का समर्थन किया था कि मानव की जो सहज आवश्यकतायें हैं, उन्हें सहज रूप से पूरा होने देना चाहिए। कालान्तर में इसका गलत असर पड़ा और सिद्धों में स्त्री–पुरुष को मद्य–मैथुन की छूट दी गयी। नाथ योगियों ने इस प्रकार की साधना का विरोध किया। उन्होंने संयम पर बल दिया। कबीर ने ईष्वर को सहज रूप में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने ईष्वर से जीव के एकाकार को सहजानंद माना–

^lgt&lgt lc x;] lr&for&dkfeuh&dkeA
ftUg lgt fof"k;k rth] lgt dgh tl¨bA*

कबीर की सहज साधना बहुत ही विलक्षण है। इसमें समस्त भौतिक गुणों का विलयन हो जाता है और अन्त में शब्द के साथ एकाकार होकर साधक राममय हो जाता है। इस स्थिति में साधक पर वियोग और संयोग, धूप और छाँव, दिन और रात की विषमतामूलक स्थिति का कोई प्रभाव नहीं रहता। सहजानंद को प्राप्त योगी को संसार में फिर लौटकर आने की आवश्यकता नहीं होती है–

^cgfj ge dkgd© vkofgxA
foNj ip rÙk dh jpuk] rc ge jkefg ikofgxA
fijFkh dk xu ikuh l¨[kk] ikuh r t feYkkofgxA
r t iou fefYk iou lcn fefYk] lgt lekf/k YkxkokfgxA*[13]

इस तरह कबीर साहित्य का अवलोकन करने से यह स्पष्ट है कि उनकी अनोखी साधना पद्धति में पिण्ड, पिण्ड ब्रह्माण्ड की ऐक्य भावना, वायु साधना, नाड़ी साधना, कुण्डलिनी जागरण, षट्चक्र, ब्रहमरन्ध्र, सहज समाधि की स्थिति आदि हठयोग के तत्त्व विद्यमान हैं। इन सभी का लक्ष्य ज्ञान प्राप्ति और परमतत्त्व की प्राप्ति है।

lUnHkZ %

1. नाथ सम्प्रदाय, ले0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 123, 124
2. कबीर–ग्रन्थावली, सं0–डॉ0 माता प्रसाद गुप्त, पृ0 185
3. नाथ सम्प्रदाय, ले0–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 107
4. कबीर, सं0–विजयेन्द्र स्नातक, पृ0 193
5. वही, पृ0 194
6. कबीर, सं0–विजयेन्द्र स्नातक, पृ0 194
7. वही, पृ. 194
8. नाथ–सम्प्रदाय, ले0–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 125
9. कबीर–मीमांसा, ले0–डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, पृ0 2 (परिशिष्ट)
10. कबीर ग्रंथावली, सं0–डॉ0 भगवत् स्वरूप मिश्र, पृ0 322
11. कबीर, विजयेन्द्र स्नातक, पृ0 196
12. कबीर ग्रन्थावली, सं0–डॉ0 भगवत स्वरूप मिश्र, पृ0 97
13. कबीर–वाणी–सुधा, ले0–डॉ0 पारसनाथ तिवारी, पृ0 91–92

lanHkZ xzaFk %

1. नाथ सम्प्रदाय : लेखक–पं0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक–लोक भारती प्रकाशक, 15–ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–1, संस्करण–1996 ई0
2. कबीर ग्रन्थावली : सम्पादक–डॉ0 श्याम सुन्दर दास, प्रकाशक–नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, तिथि–सं0 2045 वि, संस्करण–सोलहवाँ

3. कबीर : लेखक–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक–राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पटना, तिथि–आठवीं आवृत्ति 2000 ई0
4. कबीर–मीमांसा : लेखक–रामचन्द्र तिवारी, प्रकाशक– लोकभारती प्रकाशक–15–ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–1, तिथि–2000 ई0
5. कबीर : संपादक– डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक, प्रकाशक–राधाकृष्ण प्रकाशक, 4–14 रूपनगर, दिल्ली, संस्करण–1965 ई0
6. कबीर ग्रन्थावली : सम्पादक–डॉ0 भगवत् स्वरूप मिश्र, प्रकाशक– विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा–2, पंचम संस्करण–2005
7. कबीर ग्रन्थावली : सम्पादक–डॉ0 माता प्रसाद गुप्त, प्रकाशक–साहित्य भवन प्रा0लि0 जीरो रोड, इलाहाबाद–211003, पंचम संस्करण–2008
8. कबीर–वाणी सुधा : लेखक– डॉ0 पारसनाथ तिवारी, प्रकाशक– राका प्रकाशक, 40ए, मोतीलाल नेहरू मार्ग, इलाहाबाद, संस्करण–1972 ई0

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 99-102

/kel'kkL=k e n.M dk Lo:i

Ukkxef.k f=ikBh*

वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ होने के कारण समस्त विद्याओं का मूल है तथा शिक्षा, कल्प, व्याकरण, दर्शन, ज्योतिष, संगीत, स्मृतिग्रन्थ, धर्मशास्त्र आदि सभी शास्त्रों का उद्गम वेद से ही हुआ है। अतः सभी शास्त्रों का आधार वेद होने के कारण न्याय का स्रोत भी वेद को ही माना गया है। दण्ड तथा प्रायश्चित उसी न्यायव्यवस्था की आत्मा है। 'न्याय' शब्द अपना एक व्यापक अर्थ रखता है–^fu;eu b;r bfr* अर्थात् जो नियम से चले या जिसे नियम से चलाया जाय वह 'न्याय' है। अपि च ^uh;Ur ikl;Ur foof{krkFkk% ;ufr* अर्थात् जिसके द्वारा अभिलषित अर्थ की प्राप्ति हो, या जो विवक्षितार्थ की ओर ले जाय वही 'न्याय' है। किसी भी देश में शान्ति व्यवस्था बनाये व प्रजा को कर्त्तव्य पालन करने के लिए जागरूक रखने की सबसे महत्त्वपूर्ण व्यवस्था न्यायव्यवस्था ही है। न्यायप्राप्ति से सन्तोष होता है, सन्तोष से व्यवस्था स्थापित होती है व व्यवस्था से धर्म की प्राप्ति होती है। इस प्रकार जो धर्म की ओर ले जाय वही न्याय है।

n.M dh mRifÿk%&न्यायव्यवस्था में राजा सर्वोपरि होता है। अनेक ग्रन्थों में राजा, स्वामी या शासक की आवश्यकता पर विशेष बल दिया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण (1.14) में आया है कि देवों ने राजा के न रहने पर अपनी दुर्दशा देखी और तभी एक मत से उसका चुनाव किया। इससे यह स्पष्ट होता है कि सामरिक आवश्यकताओं ने राजा, स्वामित्व या नृपत्व को जन्म दिया। मनुस्मृति (7.3) व शुक्रनीतिसार (1.71) में लिखा है– ''जब सभी भय से आकुल हो इधर–उधर दौड़ने लगे और विश्व में कोई स्वामी नहीं था तब विधाता ने इस विश्व की रक्षा के लिए राजा का प्रणयन किया।''[1]

मनु ने ekRL; U;k; ('जिस प्रकार बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को निगल जाती है, उसी प्रकार बलवान् लोग दुर्बल लोगों को दबा बैठता है', या ''जिसकी लाठी उसकी भैंस'' वाले सिद्धान्त) की ओर भी संकेत किया है।[2] इस मात्स्य न्याय की ओर संकेत कौटिल्य, व्यास तथा अन्य लोगों ने भी की है। कौटिल्य ने कहा है–'जब दण्ड का उचित प्रयोग नहीं होता तब मात्स्य न्याय की दशा उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि दण्डधर के अभाव में बलवान् दुर्बल को खा जाता है'–

n.M% vi.khrk fg ekRL;U;k;enHkko;frA
cyh;kucyk fg xlr n.M/kjkHkkoAA[3]

कौटिल्य ने यह भी कहा है कि मात्स्य न्याय से अभिभूत होकर लोगों ने वैवस्वत मनु को अपना राजा बनाया।[4] यही बात रामायण में (मत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्ति परस्परम्, अयोध्याकाण्ड 67.31), महाभारत (शान्तिपर्व 15.30 एवं 67.16), मत्स्यपुराण (225.9) आदि बहुत से ग्रन्थों में दण्ड की प्रशस्तियाँ गायी गयी है तथा राजा को दण्डधर की उपाधि दी गयी है। मत्स्यपुराण (225.17), अग्निपुराण (226.16) तथा शान्तिपर्व (15.8) में वर्णन है कि दण्ड नाम इसलिए पड़ा क्योंकि यह अनियन्त्रित लोगो को दबाता है और अभद्र तथा अनीतिमान् को दण्डित करता है।[5] दण्ड को मनु तथा याज्ञवल्क्य ने देवत्व की स्थिति प्रदान की है। दण्ड सब पर राज्य करता है, सब की रक्षा करता है तथा यह न्याय के रक्षकों के सो जाने पर भी जगा रहता है। मनु ने मनुस्मृति 7.18 में यह स्पष्ट किया है कि बुद्धिमान् लोग इसे ही धर्म कहते है। स्पष्ट है; राज्य की इच्छा एवं दण्ड–शक्ति व्यक्ति एवं राष्ट्र को धर्म की सीमाओं के भीतर रखती है,

*शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

आज्ञा के उलंघन पर दण्ड देती है तथा सबका कल्याण करती है। मनुस्मृति (7.13) में कहा गया है कि देव, दानव, गन्धर्व, राक्षस तथा नागगण भी मानवों के आनन्द के योग्य हो जाते है क्यों कि वे दण्ड से दबा दिये जाते है। इस प्रकार दण्ड महत्ता के साथ–साथ दण्ड प्रयोग के सीमांकन का भी शास्त्रों में उल्लेख किया गया है– दण्ड का प्रयोग सीमा के भीतर ही होना चाहिए। न तो इसे अति कठिन होना चाहिए और न ही अति कोमल, प्रत्युत इसे अपराध के अनुसार होना चाहिए–

r! n!'kdkyk! "kfä! p fo|k pko{; rŸor%A
;Fkkgr% l!ç.k;!Uuj!'oU;k;ofr!'k!AA[6]

देश, काल, दण्डशक्ति और विद्या (जिस अपराध के लिए जो दण्ड उचित हो उसका ज्ञान) का ठीक–ठीक विचार कर अन्यायवर्ती (अपराधी) व्यक्तियों को शास्त्रानुसार दण्ड प्रयोग का उल्लेख प्राप्त होता है।

यद्यपि दण्ड की उत्पत्ति के विषय में स्मृति ग्रन्थों एवं धर्मशास्त्रों में अनेक कथाएँ प्राप्त होती है परन्तु मनुस्मृति ¼lIre v/;k;½ ,o! egkHkkjr ¼'kkfUr io! 56-13-33½ में 'मानव जाति की प्रारम्भिक स्थिति अत्यन्त पवित्र स्वभाव, दोष रहित कर्म तथा सत्व प्रकृति थी। तब न तो किसी राजा की स्थिति थी न राज्य था, न दण्ड था न ही दण्डी था। सभी लोग धर्म के द्वारा ही एक दूसरे की रक्षा करते थे', इस प्रकार का वर्णन है–

u jkT;! u p jktklhr! u n.Mk! u p nkf.Md%A
Lo;e!o çtk% lok! j{kfUrLe ijLije!AA[7]

किन्तु कालान्तर में तामस गुणों का प्राबल्य बढ़ने लगा, मनुष्य समाज अपनी आदिम सत्व प्रकृति से च्युत हो गया और मात्स्य न्याय छा गया। इसी अवस्था में राजा, राज्य एवं दण्ड प्रक्रिया का आरम्भ हुआ।

n.M dh ifjHkk"kk%&धर्म, जाति, और सम्प्रदायगत संस्कारों का द्योतक तथा वैयक्तिक और सामाजिक रक्षा के उपायों का प्रतीक दण्ड है। दण्ड राज्य शक्ति का प्रतीक है जो सारी प्रजाओं का शासक, रक्षक तथा सभी के सोते हुये रहने पर भी जागनेवाला है। अर्थात् दण्ड वह साधन है जिसके द्वारा आन्वीक्षिकी, त्रयी (तीनों वेदों) एवं वार्ता का रक्षण अथवा योगक्षेम होता है। जिसमें दण्ड–नियमों की व्याख्या होती है वह दण्डनीति है इसी के द्वारा अलब्ध की प्राप्ति होती है, लब्ध का परिरक्षण होता है, रक्षित का अभिवर्धन होता है और अभिवर्धित (वृद्धि को प्राप्त हुई सम्पत्ति) का उचित स्थानों पर प्रतिपादन होता है। राजा, राज्य, क्षत्र की शक्ति एवं सम्प्रभुता का द्योतक तथा किसी अपराधी को उसके द्वारा किये गये अपराध के निमित्त उस अपराध दमन हेतु दी गयी सजा दण्ड कहलाती है–n.Mk! neukfnR;kgLr!uknkUrkUne;!rA[8]

आयुर्वेद शास्त्र के अनुकूल औषधि का सेवन रोगी के समस्त वात, पित्त, कफ की विकृति को नष्ट करने में जिस प्रकार समर्थवान् होता है उसी प्रकार दण्ड प्रजा के दोषों को नष्ट करने में या दूर करने में समर्थवान् होता है।[9] लेकिन वह दण्ड न तो अधिक कठोर और न ही अधिक कोमल होना चाहिए। शुक्र के अनुसार जिस उपाय से मनुष्य दुराचार से निवृत्त तथा सदाचार में प्रवृत्त किया जाता है उसे दण्ड कहते हैं और जिससे दुराचार दमन किया जाता है उस उपाय या साधन का नाम भी दण्ड है। उक्त है–

fuofŸkj!lnkpkjkn! neu! n.Mr'p rr!A
;!u l!UnE;r! tUr!#ik;k! n.M ,o l%AA[10]

इस व्याख्या से दण्ड के दो रूप ज्ञात होते हैं– पहला जो अपराध एवं अप्रिय कार्य को भविष्य में न करने की प्रेरणा देता है तथा दूसरा यह है कि जो अपराधी को दण्डित करता है व अपराध के शिकार उस अपकारित को उचित न्याय दिलाता है। इस दण्ड के नियमों को दण्डनीति इसलिए कहा गया है क्योंकि 'नीति' का अर्थ है 'ले चलना' अर्थात् जो दण्ड की ओर ले चले वह दण्डनीति कहा गया है। मत्स्यपुराण, अग्निपुराण तथा महाभारत के शान्तिपर्व में कहा गया है कि 'दण्ड' नाम इसलिए पड़ा क्योंकि

यह अनियन्त्रित लोगों को दबाता है तथा अभद्र और अनीतिमान लोगों को दण्डित करता है। यह दण्ड उत्तम साहस, मध्यम साहस तथा अधम साहस के रुप में तीन, तथा कही–कही वाग्दण्ड, धिग्दण्ड, अर्थदण्ड एवं वधदण्ड के रुप में चार प्रकार का कहा गया है।

fu"ifÙk%& ^n.M;fr vuufr n.M%] ;}k nkE;fr 'kkUr djkR;uufr*A ne धातु से M iR;; ('ञमन्तात् डः' उणादि 1.113) करने पर दम्+ड n.M शब्द की निष्पत्ति होती है। अपि च ^n.M;R; ijk& f/kueuufr* अर्थ में दण्ड शब्द से भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय करने पर भी (दण्ड+घञ्) दण्ड शब्द की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार दण्ड का शाब्दिक अर्थ है– किसी अपराधी को उसके अपराध दमन के निमित्त दी गयी सजा। शुक्रनीति[11] एवं कामन्दक[12] के अनुसार 'दण्ड' शब्द की व्युत्पत्ति 'दम्' घातु से हुई है जिसका अर्थ नियन्त्रण या शासन है। इसी कारण राजा को दण्ड का प्रतिरूप कहा जाता है क्योंकि नियन्त्रण राजा में केन्द्रित है।

n.M dk i;kstu%&^i;kstueufí';eUnks·fi u iorZr* अर्थात् बिना किसी उद्देश्य के मन्द व्यक्ति भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता है, अतः दण्ड का भी प्रयोजन अवश्य ही सिद्ध होता है। सभी ग्रन्थों एवं धर्मशास्त्रों का अभिप्राय सम्पूर्ण प्राणियों का रक्षण तथा अभिवर्द्धन कर उनको समुचित मार्गदर्शन देना राजा का परम कर्त्तव्य माना है। उन सभी प्राणियों को अनुशासित करने एवं कर्त्तव्याकर्त्तव्यबोध कराने के लिए स्मृति ग्रन्थों में सप्तांग का वर्णन करते हुये राजा का सर्वोच्च स्थान निर्धारित किया गया है। राज्य और प्रजा की रक्षा करना तथा प्रजाओं के सभी प्रकार के दुःखों को वारण कर उनका रंजन करना राजा का प्रमुख कर्त्तव्य है। राजा को इस स्थिति को ध्यान में रखकर ही अपनी नीति अपनानी चाहिये तथा साम, दाम, दण्ड, और भेद इन सभी उपायों का प्रयोग कर सिद्धि प्राप्त करना चाहिए। महाभारत के शान्तिपर्व (68.1–4) के अनुसार शास्त्रप्रणेताओं ने राजा के लिए प्रजा–रक्षण सबसे बड़ा धर्म माना है। इसी को मनुस्मषति में लिखा गया है कि– प्रजाओं का पालन करना ही राजा अथवा क्षत्रिय का सर्वश्रेष्ठ धर्म है, क्योंकि प्रजापालन द्वारा शास्त्रोक्त फल को भोगनेवाला राजा धर्म से युक्त होता है।[13] कालिदास ने भी कहा है– सभी वर्णों तथा वर्णाश्रमों का रक्षा करना राजा का धर्म है।[14] प्रजा–रक्षण का तात्पर्य है चोरों, डाकुओं आदि के भीतरी आक्रमणों तथा बाहरी शत्रुओं से प्राण एवं सम्पत्ति की रक्षा करना। गौतम (10. 7–8,11.9–10) का कहना है कि राजा का विशिष्ट उत्तरदायित्व है सम्पूर्ण प्राणियों का रक्षा करना, न्यायोचित दण्ड देना, शास्त्रों में विहित नियमों के अनुसार वर्णाश्रम की रक्षण तथा पथभ्रष्ट लोगों को सन्मार्ग दिखाना है। इसप्रकार राजा का प्रमुख कर्त्तव्य है– (1) प्रजा का रक्षण अथवा पालन, (2) वर्णाश्रम व धर्म का नियम व पालन, (3) दुष्टों को दण्डित करना एवं (4) उचित न्याय करना।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि दण्ड का अभिप्राय सजा मात्र नहीं है अपितु अव्यवस्था व अराजकता को दूर कर व्यवस्था स्थापित करना और मनुष्यों की उच्छृंखलता को मर्यादित करके सच्चे अर्थों में स्वतन्त्रता को कायम रखना ही 'दण्ड' का प्रयोजन व अभिप्राय है। दण्ड का मूल तत्त्व दम और मर्यादा है तथा मानव समाज की स्थिति दण्ड पर ही निर्भर होती है क्योंकि समाज के निर्माण का अभिप्राय ही यह है कि मनुष्यों के कर्म और स्वेच्छाचारिता मर्यादित हो। विश्व में सामाजिक व्यवस्था के रक्षण में दण्ड व्यवस्था का अस्तित्व है। मनु ने भी कहा है– सभी लोग दण्ड के भय से ही नियमित होकर अपने–अपने कार्य में प्रवष्त होते है। (बिना दण्ड के) स्वभाव से ही शुद्ध मनुष्य दुर्लभ है। दण्ड के भय से ही सम्पूर्ण संसार अपने–अपने धनादि को भोगने के लिए समर्थवान् होता है।[15] देश, काल, दण्डशक्ति और विद्या (जिस अपराध के लिए जो दण्ड उचित हो उसका ज्ञान) का ठीक–ठीक विचार कर अन्यायवर्ती (अपराधी) व्यक्तियों को शास्त्रानुसार दण्ड का प्रावधान है। कामन्दकनीति में कहा गया है कि लोक तथा शास्त्र के अनुसार यथाविधि दण्ड का प्रणयन करना चाहिए। जिस दण्ड प्रणयन से प्रजा उद्विग्न न हो, उससे राजा को श्री की प्राप्ति होती है तथा अपराधियों के अपराध का निर्णय करके दोष के अनुरूप यथा दण्डविधान से राष्ट्र की भी सुरक्षा होती है।[16] अपि च मनु का कथन है कि–यदि राजा आलस्य छोड़कर दण्ड के योग्य अपराधियों को दण्ड नहीं देता है तो बलवान् लोग दुर्बलों को वैसे पकाने लगते है जैसे मछलियों को लोहे के छड़ से छेद कर पकाते है।[17] नारद स्मृति में भी उक्त है– दण्ड पालन के अभाव से ब्राह्मण

ब्राह्मण्य को छोड देता है और क्षत्रिय क्षात्र धर्म को नहीं रखता, बलवान् लोग दुर्बल लोगों को शूल में मत्स्य को मारने की तरह मार देते है। अतः सुष्ठुपूर्वक राज्य में शान्ति तथा प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए शास्त्रोक्त उचित दण्ड का प्रावधान है–

ckã.;k ckã.kk tákr {kf=;% {k=er l t rA
'ky eRL;kfUuok\uh;% ncyku cyokUujk%AA[18]

अन्यथा अतेजस्वी तथा असंयमित आत्मा वालों से दुर्धर (कठिनता से धारण करने योग्य) दण्ड धर्म से भ्रष्ट (अनुचित दण्ड प्रयोग करने वाले) राजा को बान्धव सहित समूल नष्ट कर देता है।[19]

इसप्रकार निष्पक्ष न्याय करना तथा अपराधी को दण्ड देना राजा का प्रमुख कार्य है। कौटिल्य (1.19) ने लिखा है कि दिन के दूसरे भाग में राजा को पौर–जानपदों (नगरवासियों एवं ग्रामवासियों) के झगड़ों को निपटाना चाहिए। मनु ने (8.1–3 में) लिखा है कि लोगों के झगड़ों को निपटाने की इच्छा से राजा को ब्राह्मण एवं मन्त्रियों के साथ न्याय–सभा में प्रवेश करना चाहिए तथा प्रतिदिन झगड़ों के कारणों को तय करना चाहिए। याज्ञवल्क्य स्मृति के टीकाकार विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा में कहा है कि प्रजा–रक्षण राजा का सर्वोच्च कर्त्तव्य है, यह कर्त्तव्य बिना अपराधियों को दण्डित किये पूर्ण नहीं हो सकता, अतः राजा को न्याय एवं दण्ड का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। मेधातिथि ने (मनु–8.1 में) कहा है कि लौकिक एवं अलौकिक (अदृष्ट) कष्टों को दूर करना ही प्रजा–रक्षण तथा (मनु–8.12 में) न्याय एवं दण्ड का उचित प्रयोग ही धर्म है क्योंकि जब न्याय होता है तो धर्म के शरीर से उसे वेधने वाला अधर्म नाम का बाण निकल जाता है। इसी प्रसंग में याज्ञवल्क्य का कथन है कि जो राजा दण्डनीय व्यक्तियों को शास्त्रानुसार सम्यक् दण्ड देता है तथा वधयोग्य व्यक्तियों को मारता है वह अधिक दक्षिणा वाले यज्ञों का फल प्राप्त करता है।[20]

lUnHkZ%

1. अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात्। रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः।। मनुस्मृति, 7.3
2. यदि न प्रणयेद्राजा दण्डं दण्ड्येष्वतन्द्रितः। शूले मत्स्यानिवापक्ष्यन्दुर्बलान्बलवत्तराः।। मनुस्मृति, 7.20
3. कौ0, 1.04
4. मात्स्य न्यायाभिभूताः प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे। कौ0, 1.13
5. यस्माददान्तान्दमयत्यशिष्टान्दण्डयत्यपि। दमनाद् दण्डनाच्चैव तस्माद् दण्डं विर्दुबुधाः।। शान्तिपर्व0, 15.8
6. मनुस्मृति, 7.16
7. महाभारत, शान्तिपर्व, 56.13.33
8. गौतमस्मृति, 11/128
9. चिकित्सागम इव दोषविशुद्धिहेतुर्दण्डः– नीतिवाक्यामष्तम्।
10. शुक्रनीति, 4.1.43
11. शुक्रनीति, 1.157
12. दमो दण्ड इति ख्यातस्तात्थ्याद्दण्डोमहीपति– कामन्दक, 2.15
13. क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम्। निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते।। मनुस्मृति, 7.144
14. नष्पस्य वर्णाश्रमपालनं यत्स एव धर्मो मनुना प्रणीतः– रघुवंश, 14.67
15. सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्नरः। दण्डस्य हि भयात्सर्वं जगद्भोगाय कल्पते।। मनुस्मृति, 7.22
16. लोक शास्त्रानुगो नेयो दण्डोष्नुद्विजनः श्रिये। उद्वेजनादधर्मः स्यात्तस्माद् ध्वंसो महीपतेः।। कामन्दक।
17. मनुस्मृति, 7.20
18. नारदस्मृति, 4.15
19. दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभिः। धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम्।। मनुस्मृति, 7.28
20. यो दण्ड्यान्दण्डयेद्राजा सम्यग्वध्यांश्च घातयेत्। इष्टंस्यात्क्रतुभिस्तेन समाप्तवरदक्षिणैः।। याज्ञ0, 1.359

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 103-108

lkaln vkn'kZ xzke ;kstuk % ,d ifjp;

vatyh tk;loky*

MkW0 vfHkuo 'kekZ**

lkjka'k% *भारत की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर आधारित है। गाँवों के विकास को दृष्टिगत रखते हुए केन्द्र सरकार द्वारा सांसद आदर्श ग्राम योजना की शुरूआत 11 अक्टूबर 2014 को की गई। केन्द्र स्तर पर सांसद आदर्श ग्राम योजना प्रथम ऐसी योजना है, जो सांसदों के माध्यम से गांव के विकास एवं उन्नयन की बात करती है। इस योजना का मुख्य उद्‌देश्य प्रत्येक गांव का विश्लेषण करने के उपरांत वहां की आवश्यकतानुरूप विकास प्रक्रिया की रूपरेखा तैयार करना एवं सारगर्भित परिणाम को अंजाम देना है। इस योजना में सांसद की मुख्य भूमिका है, तथा प्रत्येक सांसद एम0पी0 लैड्स (MPLADS) या अन्य लाभार्थीपरक योजनाओं का समन्वयीकरण कर एवं गाँववासी के व्यवहारों को विकास के अनुकूल परिवर्तित कर, विकास के मार्ग पर अग्रसर करने का सार्थक प्रयत्न करेगा। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि गाँव की बदहाल स्थिति के लिए जितनी जिम्मेदार हमारी शासन /प्रशासन व्यवस्था है, उतनी ही जिम्मेदार हमारी रूढ़ीवादी परम्परायें है। इसलिए नये विचारों को समाहित किये सांसद आदर्श ग्राम योजना विकल्प के तौर पर हमारे सामने प्रस्तुत हुई है।*

izLrkouk% मानव एक विवेकशील प्राणी है और अपने विवेक के आधार पर ही नित्य नये परिवर्तन करना उसकी अभिरूचि बनती जा रही है। इस अभिरूचि का ही परिणाम है कि मानव उपयोगी अनेकानेक वस्तुओं का अविष्कार हुआ है, और शायद इसी मानक के आधार पर विश्व में देशों का विभाजन हो रहा है, कि कौन से राष्ट्र तकनीकी रूप से सक्षम है और कौन से नहीं? प्रायः देखा गया है कि तकनीकी रूप से समृद्ध राष्ट्र आर्थिक रूप से समृद्ध होते है, हालांकि यह आवश्यक शर्त नहीं है।

आर्थिक रूप से समृद्ध राष्ट्र विकास की मूल धारणा की जननी है और इसी आधार पर विकसित राष्ट्र, विकासशील राष्ट्र और पिछड़ा राष्ट्र को वर्गीकृत किया गया। परिवर्तन संसार का नियम है, इसलिए विकास की अवधारणा में नित्य नये आयाम जुड़ते चले गये और विकास की परिभाषा बहुआयामी होती चली गयी। अब यह केवल आर्थिक सम्प्रत्यय से ही सम्बन्धित नहीं है। इसमें सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक, प्रशासनिक, पर्यावरणीय विकास की बात भी सन्निहित होने लगी है। विकासशील राष्ट्र विकास के पथ पर अग्रसर है, भारत भी इससे अछूता नहीं है। वर्तमान में भारत का मुख्य चुनावी मुद्‌दा विकास ही रहा है। प्रत्येक राजनेता मत प्राप्त करने हेतु विकास के रथ को आगे बढ़ाने की सान्तवना दिला रहा है। तात्कालिक केन्द्रीय सरकार भाजपा को भी इसी मुद्‌दे के सहारे अप्रत्याशित जीत हासिल हुई। चूंकि भारतीय गणवेश एक कृषि प्रधान है और हमारी अर्थव्यवस्था का भी मुख्य स्रोत रहा है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि गाँवों का समुचित विकास किया जाये। समय–समय पर गाँवों के विकास के लिए अनेक योजनाएँ बनी। परन्तु यह निराशा भरे शब्दों में कहना पड़ेगा कि गाँवों का विकास होना अभी भी शेष हैं। इस समस्या को ध्यान में रखते हुए तात्कालिक प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी जी द्वारा 11 अक्टूबर 2014 में जयप्रकाश नारायण जी के जन्म दिवस के अवसर पर एक नई योजना लागू की गई, जिसका नाम है सांसद आदर्श ग्राम योजना। इस योजना के माध्यम से यह आशा व्यक्त की गई कि प्रत्येक

*शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

**एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

सांसद अपने निर्वाचित संसदीय क्षेत्र के एक गांव को गोद लेगा तथा एक अभिभावक की तरह उस गांव का जीर्णोद्धार करेगा। इस योजना में गोद शब्द को इसलिए सम्मिलित किया गया है क्योंकि गोद शब्द से अपनत्व का अहसास होता है। यदि यह भावना गांव से जुड़ गई तो प्रत्येक सांसद गांव के विकास हेतु सर्वोत्तम विकल्प तलाश करेगा।

lkaln vkn'kZ xzke ;kstuk % एक संक्षिप्त परिचय : तात्कालिक केन्द्रिय सरकार द्वारा गावों के सम्पूर्णतम एवं सतत् विकास हेतु सांसद आदर्श ग्राम योजना (SAGY) को 11 अक्टूबर 2014 को लांच किया गया।SAGY के दिशा निर्देशानुसार प्रत्येक सांसद अपने संसदीय क्षेत्र के किसी भी गांव का चयन कर सकता है। बशर्ते वह उसका गांव अथवा ससुराल का गांव न हो। गांव का चयन करने हेतु संख्याबल का मानदण्ड भी लागू किया गया है। मैदानी क्षेत्रों में 3000–5000 एवं पहाड़ी इलाकों के लिए 1000 से 3000 तक की जनसंख्या को निर्धारित किया गया है।SAGY के अनुसार गांव का चयन गांव के पिछड़ेपन के आधार पर किया जाना चाहिए, जिससे उसका पुनरूद्धार हो सके। सांसद आदर्श ग्राम योजना एक चरणबद्ध कार्यक्रम है जिसमें 2016 तक प्रत्येक सांसद एक–एक गांव विकसित करेंगे, फिर 2019 तक दो और गांवों को विकसित करेंगे। तत्पश्चात् 2019 से 2024 तक नये 5 गांव को विकसित करेंगे। इस प्रकार हम आशा कर सकते हैं कि 6433 आदर्श ग्राम 2024 तक बन जाऐंगे।

सांसद की भूमिका मार्गदर्शकदाता, सुगमकर्ता, सुविधा प्रदाता, उत्प्रेरक, निर्देशक के रूप में होगी। अपने संसदीय क्षेत्र के ही गांव का चयन करना है तो सांसद की जवाबदेही भी तय होगी। सांसद की भूमिका यहीं पर समाप्त नहीं होती बल्कि SAGY के माध्यम से स्थायित्व की भी व्यवस्था की गई है। प्रत्येक सांसद का यह कर्तव्य होगा कि अवधि उपरान्त भी वह अपना महत्वपूर्ण निर्देशन, नेतृत्व और मार्गदर्शन निरंतर जारी रखे। चयन के पश्चात् गांव विकास कार्यक्रम (VDP) की बात आती है।

इस सन्दर्भ में सांसद की भूमिका एक शिक्षक की भाँति होगी जिस प्रकार एक शिक्षक अपने विद्यार्थी को ज्ञान देने से पहले विद्यार्थी के पूर्व ज्ञान की जाँच करता है, जिससे सुगमतापूर्वक वहीं से नये ज्ञान को जोड़ा जा सके। ठीक उसी प्रकार सांसद अपने चयनित गांव की स्थिति का विश्लेषण करेगा और उसी आधार पर उस गांव के विकास की जरूरतों को तय करेगा। तत्पश्चात् वहीं से नवीन विकास की धारा को जोड़ेगा। प्रत्येक सांसद 'ग्राम विकास योजना' का निर्धारण स्थानीय लोगों की सहायता से तथा स्थानीय संदर्भ में संभावनाओं और जरूरतों के आधार पर तैयार करेगा, जिससे प्रत्येक गरीब परिवार को गरीबी से उबारने में मदद मिल सकें। इस योजना के माध्यम से सांसद गांव वालों को संगठित और क्रियान्वयन के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व के लिए प्रेरित करेगा।

;kstuk dk;Z eqY; fcUnq % सांसद की सहायता हेतु जिला अधिकारी लोगों की वरीयता प्राप्त आवश्यकताओं के आधार पर ग्राम विकास योजना का प्रारूप तैयार करने के लिए एक कार्य समूह का गठन करेंगे। जिसमें सरकारी अधिकारी और बाहरी व्यावसायिक / विशेषज्ञ शामिल होंगे।

इस योजना की विशेष बाते हैं कि लाभार्थियों को प्राप्तकर्ता और सरकार को प्रदाता नहीं माना गया है। प्रधानमंत्री ने आग्रह किया और कहा कि ये 'विकास' आपूर्ति पर आधारित मॉडल के बजाय मांग और जरूरत तथा जनता की भागीदारी पर आधारित होना चाहिए। इस योजना का उद्देश्य गांव के लोगों को इतना सामर्थ्यवान बनाना है कि वह अपने लिए सर्वोत्तम विकास का चयन कर सके और उन विकल्पों के चयन के लिए उन्हें अवसर प्राप्त हो सके। एक आदर्श ग्राम में ग्राम पंचायत, नागरिक, समाज और सरकारी मशीनरी में लोगों को दृष्टिकोण साझा करने की पहल करनी होगी। उनकी अपनी क्षमताओं और उपलब्ध संसाधनों का हर संभव सर्वोत्तम उपयोग विधिवत् तरीके से सांसद द्वारा समर्थित होना चाहिए।

इस योजना के माध्यम से ऐसा आदर्श ग्राम विकसित करने की संकल्पना की गयी है। जिससे आस–पास के गांव भी विकास के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित हो और इस प्रकार रचनात्मक प्रतिस्पर्धा शुरू हो सके।

;kstuk ,oa lokZaxh.k fodkl % सांसद आदर्श ग्राम योजना की आत्मा गाँधी जी की ग्राम स्वराज की अवधारणा में सन्निहित है। इसका निहितार्थ है कि गांव को स्वयं इतना सक्षम कर दिया जाये कि अन्य

पर निर्भरता न रहे। यह आत्मनिर्भरता सम्पूर्ण क्षेत्रों में होनी चाहिए। इसी विचार से प्रेरित सांसद आदर्श ग्राम योजना न केवल बुनियादी सुविधाओं के विकास की तरफ ध्यान देती है बल्कि राष्ट्रीय स्वाभिमान, राष्ट्रभक्ति, एकता, आत्म विश्वास जैसे मूल्यों का विकास करना भी एक महत्त्वपूर्ण एजेंडा है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य सर्वांगीण विकास के साथ सुनियोजित विकास करना है। इसमें गांव में कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता, पर्यावरण, आजीविका इत्यादि जैसे विभिन्न क्षेत्रों का समेकित विकास करने की परिकल्पना की गई है। इसका उद्देश्य न केवल वास्तविक अवसंरचना और बुनियादी सुविधाएँ प्रदान करना है, बल्कि जीवन स्तर में सुधार करना, सामाजिक पूंजी को बढ़ावा देना और सामुदायिक सौहार्द की भावना विकसित करना भी है।

इस योजना के अन्तर्गत ग्रामवासी—स्वयं अपने गांव के विकास की योजना बनाएंगे और कार्यकलाप एवं उपलब्धि के लक्ष्य निर्धारित करेंगे। सांसद की भूमिका सुगमकर्ता के रूप में होगी। चूंकि प्रत्येक गांव के विकास का मॉडल वहाँ के स्थानीय स्तर के अनुसार होगा इसलिए यह ऊपर से लादा हुआ मॉडल नहीं होगा जबकि प्रत्येक सांसद अपने निर्वाचन क्षेत्र के चयनित गांव का प्रतिनिधि होने के नाते वहाँ की समस्या से वाकिफ होगा एवं समुचित समाधान का विकल्प तलाश करेगा।

सांसद द्वारा गोद लिए गांव में बुनियादी सुविधाओं के विकास के तहत गांव में स्कूल, हॉस्पिटल, पुस्तकालय, व्यायाम और खेल के लिए मैदान जैसी सुविधाओं का विकास कराया जाएगा। साथ ही लोगों को ई—साक्षर करने की भी योजना है तथा हिंसा और अपराध मुक्त गांव बनाया जाएगा। गांव के हर घर व सभी सार्वजनिक स्थानों पर शौचालय का निर्माण कराया जाएगा। इसके अतिरिक्त सामाजिक भागीदारी को बढ़ाने का प्रयास किया जाएगा। इसमें यह प्रावधान किया गया है कि ग्रामीण अपने संसाधन के आधार पर विभिन्न सामाजिक कार्यक्रमों का आयोजन करेंगे। हर गांव अपना जन्मदिन मनाएगा। इसके तहत गांव के बाहर रहने वाले किसी व्यक्ति को बुलाकर उसका सम्मान किया जाए और गांव के बुजुर्ग का भी सम्मान हो। यदि गांव का कोई स्वतंत्रता सेनानी या शहीद हो तो उसके बारे में बच्चों को जागरूक किया जाए। उन्हें अभास कराया जाए कि पूरा गांव उनके साथ है। इन सभी कार्यक्रमों के आयोजन के लिए सांसद को जिम्मेदार बनाया गया है। गांव में संचालित विकास से सम्बन्धित विभिन्न योजनाओं के समन्वयीकरण की जिम्मेदारी भी सांसद की होगी।

पूर्व में संचालित विकास से सम्बन्धित योजनाओं द्वारा शीघ्र विकास का लक्ष्य रखते हुए केवल मूलभूत सुविधाओं पर ध्यान दिया गया था। परन्तु सांसद आदर्श ग्राम योजना के माध्यम से मूलभूत सुविधाओं के साथ मद्यपान, जातिवाद, दहेजप्रथा, सांप्रदायिकता, महिलाओं के साथ भेदभाव जैसी सामाजिक बुराईयों को दूर करने का भी प्रयास किया जायेगा। आदर्श ग्राम योजना के माध्यम से ग्राम पंचायत में सुशासन लोने का प्रयास किया जाएगा। इसके जरिए मजबूत और जवाबदेह ग्राम पंचातयों और ग्रामसभाओं के माध्यम से स्थानीय लोकतंत्र की स्थापना करने का प्रयास किया जाएगा। ग्राम पंचायत में रहने वाले सभी नागरिकों के पास 'यू आई डी' कार्ड होगा। ई—शासन के तहत समयबद्ध रूप से विकास को बढ़ावा देने की योजना है। पारदर्शी शासन हेतु विभिन्न योजनाओं के बारे में ग्राम पंचायत की सार्वजनिक स्थलों की दीवारों पर स्थानीय भाषा में योजना और समस्या के निस्तारण की तिथि अंकित करनी होगी। किस मद में कितनी राशि का बजट है और कितना खर्च हुआ है, इसे दिवार पर लिखना होगा। जवाबदेही सुनिश्चित करेन हेतु गांव में शिकायत निवारण केंद्र बनाया जाएगा। जहाँ ग्रामवासी के शिकायत करने पर उसका निवारण लिखित उत्तर के साथ तीन सप्ताह के भीतर करना होगा। इसी तरह पशुधन विकास के साथ ही बागवानी को बढ़ावा देने के लिए कार्यक्रम चलाए जाएंगे। जैविक खेती, मृदा स्वास्थ्य कार्ड, पर्यावरण विकास, रोड साइड पौधारोपण, बिजली की व्यवस्था की जाएगी।

इस योजना के जरिए लोगों में स्वच्छता सम्बन्धी आदतों का विकास किया जाएगा। अंत्योदय के सिद्धान्त के अनुसार गांव में सबसे निर्धन और कमजोर व्यक्तियों को सक्षम बनाना, रोजगार के लिए नये विकल्प तैयार करना आदि लक्ष्य को पूर्ण किया जायेगा। सांसद आदर्श ग्राम योजना के माध्यम से सामाजिक सुरक्षा का भी प्रावधान किया गया है। इसके तहत ग्राम पंचायत के हर पात्र व्यक्ति को पेंशन

देने की भी व्यवस्था की जाएगी। इसमें वृद्धावस्था, विकलांगता व विधवाओं के लिए मिलने वाले पेंशन शामिल होगी। स्वास्थ्य के लिए स्वास्थ्य बीमा योजना और अनाज के लिए पी0डी0एस0 की सुविधा होगी। विस्तृत एवं त्वरित विकास को मद्देनजर रखते हुए तत्कालिक प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने राज्य के विधायकों को भी इस योजना से जुड़ने का प्रस्ताव दिया है। उन्होंने कहा है कि यदि राज्य भी विधायकों के लिए अगर कोई स्कीम बनाता है, और विधायक के नेतृत्व में आदर्श ग्राम बनते हैं तो हर साल छः–सात हजार गांव और जुड़ जाएंगे। अगर एक ब्लॉक में 10 गांवों को गोद लेकर विकास किया जाता है तो दो साल के अंदर भारत के गांव की तस्वीर अलग तरह की ही होगी। इस प्रकार का व्यापक दृष्टिकोण निश्चित रूप से प्रशंसनीय है। यदि ऐसा संभव होता है तो गांव भी विकास के उन पहलुओं से अछूता नहीं रहेगा जो स्थिति वर्तमान में है।

dk;Zuhfr % किसी योजना के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु संभावित कार्यनीति भी निर्धारित की जाती है जिससे परिणामों की प्राप्ति एक तय समय सीमा में मिल सकें। इसी प्रकार सांसद आदर्श ग्राम योजना के अन्तर्गत आदर्श ग्राम बनाने के लिए तीन चरणों में कार्य किया जाएगा। इसके तहत ऐसे काम जिन्हें चंद दिनों में पूरा किया जा सकता है, उन्हें पहले चरण में तीन माह के अन्दर पूरा किया जाएगा। इसके तहत गांव की सफाई और हरा–भरा बनाने का काम, स्कूल और आंगनबाड़ी में गांव के सौ फीसदी बच्चों का नामांकन, सबको स्वास्थ्य सुविधा देने की प्रक्रिया आदि को शामिल किया जाएगा।

इसके बाद मध्यम अवधि वाले कार्य यथा ऐसे काम जिन्हें पूरा होने में एक साल का वक्त लगेगा, उन्हें दूसरे चरण में शुरू किया जाएगा। इस चरण के दौरान विशेषकर व्यक्तिगत, मानव, सामाजिक, आर्थिक, पर्यावरणीय, विकास और सुशासन की सभी श्रेणियों से सम्बन्धित जितने भी कार्यकलाप संभव हो, उतने कार्यकलाप चलाए जाने चाहिए। इसी के साथ स्थिति का विश्लेषण भी कराया जाना चाहिए, जो कि दूसरे चरण का पहला कार्यकलाप है। इसके अन्तर्गत चयनित गांव के लिए कार्य नीति का निर्धारण निम्नलिखित माध्यम से किया जाएगा–

¼i½ csl ykbu losZ % इसके दो प्रयोजन है– पहला, विकास के विभिन्न क्षेत्रों में विद्यमान परिदृश्य के ब्यौरों का निर्धारण करना जिससे इसके लिए सुधारों को समुचित रूप से चिन्हित किया जा सके।

दूसरा भविष्य में होने वाले आर्थिक और मानव विकास की संभावनाओं के साथ–साथ अवसंरचनाओं, सुविधाओं और सेवाओं में कमियों और खामियों के मूल आंकड़े उपलब्ध कराना। इस कार्य को किसी विशेषज्ञता प्राप्त एजेंसी के माध्यम से कराया जाना चाहिए।

¼ii½ fLFkfr dk Hkkxhnkjhiw.kZ fo'ys"k.k % इसे प्रशिक्षित सहायक कर्ताओं को शामिल करते हुए स्थानीय समुदाय के माध्यम से कराया जाना चाहिए। प्रशिक्षण की व्यवस्था राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान (एन.आइ.आर.डी.) करेगा। भागीदारीपूर्ण विश्लेषण के मुख्य तरीके इस प्रकार हैः–

क. सोशल मैप

ख. संसाधन मैपिंग

ग. नीड्स मैट्रिक्स।

स्थिति विश्लेषण के माध्यम से एकत्रित किए गए आंकड़े जिआई एस प्लेटफार्म पर अंकित किए जाएंगे।

इसके बाद लंबी अवधि तक चलने वाले कार्यों को अंतिम चरणों में शामिल किया जाएगा। जिसमें सांसद निरंतर अपना मार्गदर्शन जारी रखेगा।

foÙkh; lalk/ku % किसी योजना के समुगतापूर्वक संचालन के लिए धनराशि की अत्यन्त आवश्यकता होती है। धन के अभाव में कोई भी कार्ययोजना की संकल्पना करना भी स्वप्न है। हालांकि सांसद आदर्श ग्राम योजना के लिए अलग से कोई फण्ड की व्यवस्था नहीं की गई है। जबकि यह निर्धारित किया गया है कि सांसद आदर्श ग्राम योजना के लिए फण्ड कहां–कहां से एकत्रित किए जा सकते हैं–

1. इस योजनाओं के लिए राशि अन्य योजनाओं जैसे इन्दिरा आवास–योजना, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, महात्मा गांधी रोजगार गांरटी योजना और अन्य योजनाओं से एकत्रित की जा सकती है।

2. संसद के सदस्यों को लोकल एरिया के विकास (डच्स्।वै) के लिए जो राशि प्राप्त होती है, उसका इस्तेमाल भी इसमें किया जा सकता है।

3. ग्राम पंचायत का स्वयं का जो रेवेन्यू है उसका इस्तेमाल भी इस योजना के अंतर्गत किया जा सकता है।

4. 'कॉर्पोरेट सोशल रेस्पॉन्सिबिलिटी फंड' का उपयोग इस योजना के अंतर्गत किया जा सकता है।

5. समुदाय अंशदान एवं स्वयं सहायता के सहयोग पर जोर देना।

6. राज्य एवं केन्द्र सहायता अनुदान

इन सभी माध्यमों से धनराशि एकत्र कर SAGY के उद्देश्यों की पूर्ति की जा सकती है।

fuxjkuh r= ½ धनराशि की व्यवस्था के साथ ही क्रियाशील निगरानी तंत्र की व्यवस्था करनी पड़ती है, क्योंकि कोई भी योजना बिना निगरानी तंत्र के शनैः–शनैः धूमिल पड़ने लगती है। इसी कारण को ध्यान में रखते हुए सांसद आदर्श ग्राम योजना में निगरानी का भी प्रावधान किया गया है। नोडल मंत्रालय के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर ग्रामीण विकास मंत्रालय की भूमिका अहम् होगी। दो राष्ट्रीय समितियां कार्यान्वयन का निरीक्षण करेगी। एक समिति के अध्यक्ष ग्रामीण विकास मंत्री होंगे और उसमें योजना कार्यक्रम कार्यान्वयन और निर्णयानुसार अन्य प्रमुख मंत्रालयों के प्रभारी मंत्री शामिल होंगे। दूसरी समिति के अध्यक्ष ग्रामीण विकास सचिव होंगे तथा इसमें अन्य मंत्रालयों/विभागों के प्रतिनिधि शामिल होंगे जैसे पंचायती राज, भूमि संसाधन, महिला एवं बाल विकास, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण, स्कूली शिक्षा, सूक्ष्म लघु और मध्यम उद्यम, पेयजल आपूर्ति और स्वच्छता, विद्युत, नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा, दूरसंचार, सूचना प्रौद्योगिकी, जल संसाधन, सामाजिक न्याय और अधिकारिता, जनजतीय कार्य, पर्यावरण वन और जलवायु, परिवर्तन, कृषि, खेलकूद और युवा कार्य, अन्य संगत मंत्रालय।

आवश्यकतानुसार समिति अतिरिक्त रूप से प्रमुख विषय–विशिष्ट क्षेत्रों के विशेषज्ञों को सहयोजित कर सकती है। संविदा आधार पर कार्यरत तीन संसाधन व्यक्तियों वाला छोटा, संकेन्द्रित, अधिक प्रभावी सचिवालय इस समिति की सहायता करेगा।

राज्य स्तर पर भी निगरानी तंत्र की व्यवस्था की गई है। क्योंकि विकास से संबंधित महत्वपूर्ण योजनाएँ जो राज्य अथवा केन्द्र के माध्यम से संचालित हो रही है उनकी भिन्नता को देखते हुए राज्य के मुख्य सचिव की अध्यक्षता में अधिकार प्राप्त समिति गठित की जानी चाहिए। जिसमें संगत विभागों के प्रतिनिधि शामिल होंगे और आवश्यकता पड़ने पर इसमें विशेषज्ञों को भी शामिल किया जाएगा। जिसमें सिविल सोसाइटी के कम से कम दो प्रतिनिधि होंगे। राज्य के ग्रामीण विकास विभाग के सचिव संयोजक–सदस्य होंगे। इस राज्य स्तरीय समिति के कार्य में सहायता के लिए दो पूर्णकालिक संसाधन व्यक्ति अनुबंध– आधार पर तैनात किए जा सकते हैं। कम से कम एक तिमाही में एक बार इस समिति की बैठक होगी।

जिला स्तर पर जिलाधिकारी सांसद आदर्श ग्राम योजना के कार्यान्वयन के लिए नोडल अधिकारी होगा। जिलाधिकारी संबंधित भागीदारी विभागों के प्रतिनिधियों के साथ मासिक समीक्षा बैठक करेगा। संबंधित संसद सदस्य इन समीक्षा बैठकों की अध्यक्षता करेंगे। संबंधित ग्राम पंचायतों के मुखिया भी इन मासिक बैठकों में आमंत्रित किए जाएंगे।

स्थानीय निगरानी हेतु जिलाधिकारी प्रत्येक ग्राम पंचायत के लिए पर्याप्त वरीयता वाले सक्षम प्रभारी अधिकारी नियुक्त करेगा, जो स्थानीय स्तर पर कर्यान्वयन का समन्वय करेगा और कार्यान्वयन के लिए पूर्णतः जिम्मेदार एवं जवाबदेह होगा। जिलाधिकारी प्रधानमंत्री ग्राम विकास फेलोशिप (पीएमआरजीएफ) और राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एम आर एल एम) के जिला मिशन प्रबंधन एकाकों के निर्धारित व्यक्तियों यदि वहाँ तैनात है, को सक्रियतापूर्वक इस योजना में शामिल करेगा।

पदसोपानिक व्यवस्था के क्रम में केन्द्र के बाद राज्य, तत्पश्चात् जिला स्तर की भूमिका निर्धारित की गई है। इसके साथ ही ग्राम पंचायत की भूमिका भी तय की गई है। ग्राम विकास योजना में निर्धारित वास्तविक और वित्तीय लक्ष्यों के संदर्भों में प्रत्येक तिमाही में प्रत्येक कार्यकलाप के अंतर्गत आउटपुटों

का आंकलन किया जाएगा। इसके अतिरिक्त 12वीं पंचवर्षीय योजना के प्रमुख निगरानी योग्य संकेतकों का उपयुक्त रूप से उपयोग किया जाएगा। इन सबके अतिरिक्त वेब–आधारित निगरानी प्रणाली के माध्यम से संसद सदस्य और अन्य प्रमुख स्टेकहोल्डरों को अपने सुझाव/टिप्पणियाँ देने तथा प्रश्न पूछने या शिकायत दर्ज करने के लिए इंटरफेस की सुविधा उपलब्ध होगी और कार्यान्वयन कर्ता प्राधिकरणों को तुरंत इन सभी का जवाब देना आवश्यक होगा। इसके अलावा ग्राम स्तरीय विकास के सर्वोत्तम कार्यों का वीडियों तथा प्रिंट माध्यमों से प्रचार–प्रसार की व्यवस्था की गई है। जिससे अन्य गाँव उनके कार्यकलापों का अनुसरण करें।

इस योजना की एक विशेष बात यह भी है कि प्रोत्साहन के लिए सर्वोत्तम कार्य पुरस्कार की व्यवस्था की गई है जैसेः–

1. सर्वोत्तम कार्य,
2. सर्वोत्तम प्रभारी अधिकारी,
3. सर्वोत्तम जिलाधिकारी,
4. सर्वोत्तम आदर्श ग्राम।

lUnHkZ %

1. कुरूक्षेत्र, जून 2015, अंकः 08, PN. 17.20।
2. प्रधानमंत्री ने सांसद आदर्श ग्राम योजना की शुरूआत की
www.narendramodi.in?Pm-launches-saa....(11.10.2014)
3. सांसद आदर्श ग्राम योजना/ Sansad adarsh gram...../- Deepawali
www.deepwali-co.in>Sansad-adarsh gr....(10 May 2016)
4. प्रधानमंत्री ने सांसद आदर्श ग्राम योजना की .....–PMIndia
www.pmindiagov.in>news_updates>i--- (11 Oct 2014)
5. Sansad Adarsh Gram Yojana (SAGY)
www.Saanjhi.gov.in>guidelines-hindi (11 Oct.2014)
6. SanSad Adarsh gram Yojna-Pradhan mantri Yojna
www.Pradhanmantri Yojna.org>SaanSad...(3 Aug 2016)

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 109-112

fgUnh lkfgR; dk fQYekUrj.k

jk[khDyeUV*

lkjka'k% *दृश्य–श्रव्य माध्यमों का विशिष्ट प्रभाव जनता पर होता है। माध्यमों की खबरें अधिक तीव्र गति से संचरित होकर श्रोतादर्शक तक पहुँचती है। मनुष्य दिन–प्रतिदिन किसी न किसी संचार–साधन का प्रयोग करता आ रहा है। उनमें से एक है सिनेमा। सिनेमा आज एक सशक्त कलात्मक माध्यम बन गया है। सिनेमा और साहित्य दोनों अलग–अलग विधाएँ हैं। लेकिन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध बहुत गहरा है। सिनेमा एक सामूहिक कला होने के कारण तीव्र गति से अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचने में सक्षम है। साहित्य पर आधारित फिल्मों से पढ़ने, सुनने और सोचने वाले विषयों को देखने का अवसर भी मिलता है। एक में सामाजिक समस्याओं का परिचय पढ़ने से मिलता हैतो दूसरी में देखने से मिलता है। दोनों का उद्देश्य समाज की अच्छाइयों और बुराइयों को प्रस्तुत करना ही है। किशोर से लेकर प्रौढ़ तक,गरीब से लेकर अमीर तक इससे लाभ उठाते हैं। साहित्यिक .तियों पर फिल्म बनाना आसान कार्य नहीं है। फिर भी देशी–विदेशी भाषाओं के बहुचर्चित रचनाओं पर फिल्में बनी हैं।हिन्दी में भी सुप्रसिद्ध साहित्यकारों की रचनाओं पर फिल्में बनी हैं। वे सब चाहे सफल हो या नहीं,लेकिनएक नई दृष्टि जरूर पैदा की है।*

lwdr 'kCn% उपन्यास, कहानी, दर्शक, दृश्य–श्रव्य माध्यम, नाटक, फिल्मान्तरण, मनोरंजन, साहित्य, सिनेमा।

Hkwfedk% साहित्य और सिनेमा का अटूट सम्बन्ध है। साहित्य मानव जीवन के विविध उतार–चढ़ाओं का रचनात्मक इतिहास है तो उसका दृश्यात्मक प्रस्तुति या पुनर्रचना ही सिनेमा में होता है। दोनों का समावेश 'फिल्मान्तरण' में मिलता है। सिनेमा जनसंचार का एक सशक्त कलात्मक माध्यम है। इसमें लेखन, अभिनय, नाट्य, संगीत, नृत्य, शिल्प आदि अन्य तमाम कलाओं का सन्निवेश होता हैं। अतरू सिनेमा एक कला मात्र नहीं अन्य कलाओं का समूह भी है। इसलिए साहित्यकारों एवं निर्देशकों ने सिनेमा की ओर आकृष्ट होकर इसके माध्यम से एक नया आयाम ढूढ़ने का प्रयास किया। साहित्य पर आधारित फिल्में सिनेमा को एक नयी दशा एवं दिशा प्रदान की।" हिन्दी साहित्य में उन्माद रचनाएँ मौजूद हैं। इन रचनाओं का फिल्मान्तरण होगा तो शायद उस साहित्य के उद्देश्य को विशाल वर्ग तक पहुँचा सकते हैं। सिनेमा के पास प्रभावित करने की क्षमता है। दृश्य–श्रव्य,मनोरंजन तथा प्रभावित करने का विशेष श्रेय चलचित्र जगत को जाता है।"[1]

सिनेमा और साहित्य का सम्बन्ध बहुत पहले मूक सिनेमा के युग में ही शुरु हो गया था। साहित्य और सिनेमा दोनों कलात्मक विधाएँ हैं। फिर भी आस्वादन, तकनीकी और प्रेषणीयता में अन्तर हैं। साहित्य एकान्तिक अनुभव है तो सिनेमा एक सामूहिक अनुभव है। पाठक का कल्पना जगत, विचार जगत एवं भाव जगत का विस्तार सिनेमा में रूपाकार बनकर सामने आता है।दोनों का उद्देश्य समाज की अच्छाइयों और बुराइयों को प्रस्तुत करना ही है। दोनों में समानताएँ होते हुए भी अभिव्यक्ति का माध्यम भिन्न हैं। एक में सामाजिक समस्याओं का परिचय पढ़ने से मिलता है, दूसरी में देखने से मिलता है। साहित्य कलम से लिखा गया है तो सिनेमा मूलतः कैमरे से लिखा गया साहित्य होता है। सिनेमा की भाषा कैमरा की भाषा है।

साहित्य का फिल्मान्तरण करना आसान कार्य नहीं है। यह एक विशेष एवं चुनौतीपूर्ण प्रक्रिया है। फिर भी देशी–विदेशी भाषाओं के चर्चित साहित्यिक रचनाओं को विशाल समूह तक पहुँचने का प्रयास

---

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालटि, केरल

फिल्मकारों ने किया। साहित्यकारों ने भी सिनेमा जगत को अमर रचनाएँ प्रदान की। हिन्दी से ज्यादा फिल्में तेलुगु, तमिल और मलयालम में बनती हैं। हिन्दी में बनी ज्यादतर फिल्में बंगला, उर्दू, कन्नड़, उड़िया, संस्कृत, अंग्रेजी आदि के साहित्य पर आधारित हैं। हिन्दी साहित्य में इतनी विशाल साहित्यिक रचनाएँ होते हुए भी इसके प्रति फिल्मकारों की इतनी उतासीनता क्यों है? और क्यों बहुत कम मात्रा में हमारे यहाँ हिन्दी साहित्यिक कृतियों का फिल्मांकन हुआ है?– ये सोचने की बात हैं।

fgUnh lkfgR; vkSj flusek % साहित्य और अन्य कला माध्यमों की अपेक्षा मानवीय संवेदनाओं को जगाकर जनसामान्य को सचेत करने में फिल्म का योगदान महत्वपूर्ण है। "फिल्म जनसंचार का अत्यन्त प्रभावशाली माध्यम है,जो लोगों की मनेवृत्ति तथा विचार धारा को बदलने में,मानवीय संवेदनाओं को जगाने में तथा जनसामान्य को सचेत करने में प्रभावकारी सिद्ध हो सकता है।"[2] फिल्म का चित्रित रूप सदा वर्तमान काल में प्रकट होने के कारण इसमें दर्शक को प्रभावित करने की शक्ति अधिक है। केवल पढ़ने,सुनने और सोचने वाले विषयों को देखने से दर्शक पुलकित हो उठते हैं। यह एक नया अनुभव बन जाता है। "साहित्य का आनन्द केवल पठन या श्रवण से प्राप्त किया जाता है,किन्तु सिनेमा दृश्य माध्यम होने से दर्शक के मन मस्तिष्क को बाँधकर रखता है।"[3]

कोई भी लिखित साहित्य टी.वी. या फिल्म में प्रस्तुत करने के लिए उसमें नये माध्यमें की संरचनात्मक जरूरतों के आधार पर थोड़ा–बहुत परिवर्तन करने की आवश्यकता है। मूल रचना के साथ न्याय करना एक महत्वपूर्ण बात है। साहित्य में चित्रित घटनाओं, दृश्यों आदि को फिल्म में निर्देशित करने के लिए साहित्य कृति का बखूबी अध्ययन करना आवश्यक है। उसके बाद समयानुकूल उसे तोड़–मरोड़कर प्रस्तुत करना है। इसके लिए फिल्मान्तरकार या निर्देशक को साहित्य की संवेदनाओं के साथ चित्रकार की समझ और छायाकार की आँखें होना चाहिए।

साहित्य के पास कथाओं के विपुल भंडार है। फिल्म भी आखिर कथा पर चलती है। दोनों अन्योन्याश्रित है। कथावस्तु, चरित्र, इतिहास, गीत, लक्ष्य, दृश्य–श्रव्य, चित्र आदि निधियों के बल पर साहित्य, सिनेमा पर आधिपत्य रखता है। साहित्यकार रचना को व्याख्यायित करते हुए प्रभावित करने का प्रयास करते हैं, लेकिन मूल रचना की विवरणात्मकता सिनेमा को कमजोर बनाते हैं। इसलिए मूल रचना के व्याख्यात्मक प्रसंगों को संक्षिप्त करके माध्यमगत तत्वों के अनुसार प्रस्तुत करना आवश्यक है।

साहित्य में मौन के लिए भी भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। लेकिन सिनेमा में संगीत, दृश्य–ध्वनि, प्रकाश आदि के माध्यम से एक ही क्षण में अनेक बातों को अभिव्यक्ति कर सकते हैं। ये सब साहित्य ने सिनेमा को देकर सिनेमा की जरूरतों को पूरा कर दिया। साहित्य का सिनेमा में रूपान्तरण करना एक सामान्य घटना नहीं है, यह एक विशेष प्रक्रिया है। "सिनेमा ने कभी साहित्य को नहीं दिया जबकि सिनेमा की जरूरतें साहित्य ने पूरी की। इस प्रकार साहित्य का सिनेमा में रूपान्तरण सामान्य घटना न होकर विशेष प्रक्रिया है।"[4]

प्रेमचंद, भगवतीचरण वर्मा, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, मोहन राकेश, कमलेश्वर, रेणु, मन्नू भंडारी, मुक्ति बोध, विनोद शुक्ल, कुसुम अंसल, विजयदान देथा, धर्मवीर भारती, राजेन्द्र यादव आदि रचनाकारों के साथ अनेक कवि, शायर और लेखकों ने फिल्मों को संवाद, पटकथा और गीत दिये हैं। उनमें आनन्द बक्षी, शैलेन्द्र, हरिवंश राय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, भरत व्यास, इंदिवर, नीरज, संतोष आनन्द, राजेन्द्र कृष्ण, हसरत जयपुरी, गोपाल सिंह नेपाली, जावेद अख्तर, गुलजार आदि शामिल हैं। फिल्म निर्देशकों में नानू भाई, त्रिलोक जेटली, कृष्ण चोपड़ा, गुलजार, प्रेम कपूर, ऋषिकेश मुखर्जी, शिशिर मिश्र, बासु चाटर्जी, केदार शर्मा, गोविन्द निहलानी, श्याम बनेगल, मणि कौल, यश चोपडा, रमेश गुप्ता, अवतार कौल जैसे लोगों ने अपने महत्वपूर्ण योगदान से प्रेश्रकों को मनोरंजित एवं प्रबोधित करने का सफल कार्य किया।

उपलब्ध सामग्रियों के अनुसार कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य .तियों पर बनी फिल्मों की संख्या पचास से ज्यादा नहीं हैं। लेकिन हिन्दी साहित्य .तियों के अलावा हिन्दी फिल्म निर्देशकों ने बंगला (मसाल, आनन्द मठ, काबूली वाला, सौतेला भाई, साहब बीवी और गुलाम, एक अधूरी पहानी, उपहार, देवदास, सुजाता, हजार चौरासी का माँ जैसै), उर्दू (एक चादर मैला सी, उमराव जान, दस्तक, अचानक, सराय के

बाहर), मराठी (दो रास्ते, निशान्त, भूमिका, चक्र, आक्रोश, होली, पार्टी), उड़िया (मृगया), कन्नड़ (दीक्षा), गुजराती (सरस्वती चन्द्र), संस्कृत (उत्सव), अंग्रेजी (गाइड, जुनून, मकबूल, राही), रूसी (नीचा नगर, गरम कोट, फिर सुबह होगी) आदि के साहित्यिक .तियों पर हिन्दी में फिल्म बनाई हैं।

उपलब्धि के अनुसार यहाँ हिन्दी साहित्य पर बनी फिलेमों की सूची दी हैं। यह अन्तिम सूची नहीं है। फिर भी इससे हिन्दी साहित्य पर बनी फिल्में, उसके मूल रचना, रचनाकार, निर्देशक की जानकारी मिलेंगे।

fgUnh miU;klksa dk fQYekUrj.k%

फिल्म	उपन्यास	उपन्यासकार	निर्देशक
सेवासदन	सेवासदन	प्रेमचंद	नानू भाई
रंगभूमि	रंगभूमि	प्रेमचंद	भवानी प्रोडक्शन
गोदान	गोदान	प्रेमचंद	त्रिलोक जेटली
गबन	गबन	प्रेमचंद	कृष्ण चोपड़ा
डाक बंगला	डाक बंगला	कमलेश्वर	गिरीश रंजन
आँधी	काली आँधी	कमलेश्वर	गुलजार
मौसम	आगामी अतीत	कमलेश्वर	गुलजार
बदनाम बस्ती	एक सड़क सत्तावन गलियाँ	कमलेश्वर	प्रेम कपूर
रंग बिरंगी	पति पतिनी और वह	कमलेश्वर	ऋषिकेश मुखर्जी
समय की धारा	आपका बंटी	मन्नू भंडारी	शिशिर मिश्र
सारा आकाश	सारा आकाश	राजेन्द्र यादव	बासु चाटर्जी
चित्रलेखा	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	केदार शर्मा
तमस	तमस	भीष्म साहनी	गोविन्द निहलानी
सूरज का सातवाँ घोड़ा	सूरज का सातवाँ घोड़ा	धर्मवीर भारती	श्याम बनेगल
नौकर का कमीज	नौकर का कमीज	विनोद कुमार शुक्ल	बासु भट्टाचार्य
धर्म पुत्र	धर्म पुत्र	चतुर्सेन शास्त्री	यश चोपड़ा
त्याग पत्र	त्याग पत्र	जैनेंद्र	रमेश गुप्ता
सत्ताईस डाउन	अठारह सूरज के पौधे	रमेश बक्षी	अवतार कौल
पंचवटी	एक और पंचवटी	कुसुम अंसल	बासु भट्टाचार्य

fgUnh dgkfu;ksa dk fQYekUrj.k

fQYe	dgkuh	dgkuhdkj	funs'kd
हीरा मोती	दो बैलों की कथा	प्रेमचंद	कृष्ण चोपड़ा
शतरंज के खलाड़ी	शतरंज के खिलाड़ी	प्रेमचंद	सत्यजित राय
सद्गति	सद्गति	प्रेमचंद	सत्यजित राय
उसकी रोटी	उसकी रोटी	मोहन राकेश	ममि कौल
फिर भी	तलाश	कमलेश्वर	शिवेन्द्र शर्मा
रजनी गंधा	यही सच है	मन्नू भंडारी	बासु चाटर्जी
जीना यहाँ	जीना यहाँ	मन्नू भंडारी	बासु चाटर्जी
स्वामी	स्वामी	मन्नू भंडारी	बासु चाटर्जी
दुविधा	दुविधा	विजयदान देथा	मणि कौल
माया दर्पण	माया दर्पण	निर्मल वर्मा	कुमार साहिनी
उसने कहा था	उसने कहा था	चन्द्रधरशर्मा गुलेरी	मोनी भट्टाचार्य
तीसरी कसम	मारे गए गुलफाम तीसरी कसम	फणीशरनाथ रेणु	फणीशरनाथ रेणु बासु भट्टाचार्य
सतह से उठता आदमी	सतह से उठता आदमी	मुक्ति बोध	मणि कौशल

पतंग	पतंग	संजय सहाय	गौतम घोष
अनवर	फालगुन की एक कथा	प्रियंवद	प्रियंवद मनीश झा
मोहनदास	मोहनदास	उदयप्रकाश	मजहर कामराज
अतिथि तुम कब आओगे	अतिथि तुम कब आओगे	शरत जोशी	अश्विनी कुमार

fgUnh ukVdk d fQYekUrj.k

fQYe	ukVd	ukVddkj	funs'kd
आषाढ़ का एक दिन	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	मणि कौल
चरणदास का चोर	चरणदास का चोर	हबीब तनवीर	श्याम बनेगल

fu"d"k % इन सभी का सफल और सार्थक फिल्मान्तरण हो या नहीं, फिर भी फिल्माकारों ने इस माध्यम को समसामायिक जीवन और आधुनिक साहित्य से जोड़ने का प्रयास तो जरूर किया। फिल्म की नयी तकनीक, अछूती कथाएँ, नवीन बिम्बात्मक शुद्ध भाषा की खोज आदि के द्वारा अनेक साहित्यिक रचनाओं का फिल्मान्तरण हुए हैं। फिल्म देखने से,उनके गीत,अभिनय और दृश्य से प्रेक्षक को उन रचनाओं का दृश्यात्मक अनुभव जरूर मिली हैं। साहित्यकार की महान रचना भी फिल्मान्तरण में सफल होने की जरूरत नहीं है। इसलिए फिल्मान्तरकार के लिए विशेष अभ्यास की आवश्यकता है। यह फिल्म के हिट बनाने में सहायक होता है। कई रचनाकारों और उनकी रचनाओं को अधिक ख्याति मिलने के लिए फिल्मान्तरण अत्यधिक सहायक बनी। मूल रचनाओं को और अधिक तार्किक, सूक्ष्म और सत्य बनाने में फिल्मान्तरण का योगदान अविस्मरणीय है।" सिनेमा को जीवित रखने के लिए हमेशा साहित्य की आवश्यकता रही है और आज भी है तथा आनेवाले समय में भी रहेगी।"[5]

lUnHk %

1. डॉ. गवली कल्पना, साहित्य और भारतीय सिनेमा का अन्तः संबन्ध सीमाएं, संभावनाएं, 2013 सं. भारद्वाज शैलजा, साहित्य और सिनेमा बदलते परिदृश्य में संभावनाएँ और चुनौतियाँ, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, पृ. सं. 83
2. डॉ. रावठी एस. जशवंत, कथा साहित्य की सिनेमा में देन, 2013 सं. भारद्वाज शैलजा, साहित्य और सिनेमा बदलते परिदृश्य में संभावनाएँ और चुनौतियाँ, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, पृ.सं. 132
3. कुंदे पुरुषोत्तमय 2015, साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, पृ.सं. 328
4. डॉ. गवलीकल्पना, साहित्य और भारतीय सिनेमा का अन्तरूसंबन्ध सीमाएं, संभावनाएं, 2013 सं. भारद्वाज शैलजा, साहित्य और सिनेमा बदलते परिदृश्य में संभावनाएँ और चुनौतियाँ, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, पृ. सं. 82
5. डॉ. मिश्र राजेन्द्र, साहित्य और सिनेमा के अन्तःसंबन्ध, 2013 सं. भारद्वाज शैलजा, साहित्य और सिनेमा बदलते परिदृश्य में संभावनाएँ और चुनौतियाँ, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, पृ.सं. 247

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 113-116

JhenHkxonxhrk'kkdjHkk"; esa deZ rFkk lU;kl ekxZ

nhfIr flag*

lU;kl% deZ;kx'p fu%J s;ldjkoqHkkSA
r;kLrqdeZlaU;klkr~ deZ;kxkfof'k";rsAA

समस्त व्यवहारों में कर्म की अपेक्षा ज्ञान को श्रेष्ठ बताया गया है।जिसने ज्ञान पूर्वक ब्रह्मज्ञान का साक्षात्कार कर लिया है, उसे कर्म बन्धन में पड़ने की आवश्यकता ही नहीं है। कर्म बन्धन तथा ज्ञान मुक्ति का हेतु होता है, अतः ज्ञानी व्यक्ति को कर्मों का त्याग करके ज्ञान द्वारा मुक्त हो जाना चाहिए किन्तु जगत का कोई भी प्राणी एक क्षण भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। अतः इस द्वन्द्व स्थिति में पड़े हुए अर्जुन द्वारा कृष्ण से पूछे जाने पर कि संन्यास (कर्मसन्यास) तथा कर्मयोग (निष्काम बुद्धि से मृत्यु पर्यन्त कर्म करते जाना) में श्रेष्ठतम क्या है? श्रीकृष्ण स्पष्ट कहते हैं कि कर्मयोग श्रेष्ठ है। ऐसे ही निष्काम कर्म की ओर प्रवृत्त करती श्रीमद्भगवद्गीता में अध्यात्म तथा कर्म का अपूर्व समन्वय है। ज्ञान, कर्म तथा उपासना तथा भक्ति द्वारा परम तत्त्व प्राप्ति के मार्ग को बताया गया है। गीता का प्रारम्भ जीवन के उस क्रान्तिकारी, द्वन्दात्मक तथा संशययुक्त अवसर से होता है, जब अर्जुन कर्तव्य– अकर्तव्य के निर्णय में उलझ जाते हैं। भारतीय दर्शन में इसी दृष्टि को ध्यान में रखते हुए अभ्युदय तथा निःश्रेयस दोनों को महत्त्व दिया गया है। अभ्युदय केवल भौतिक पदार्थों का संग्रह ही नहीं अपितु कर्तव्य पूर्वक किया गया कर्म है, जिससे आत्मिक शान्ति तथा सुख प्राप्त होता है। गीता का उद्घोष है कि– अशान्तस्य कुतः सुखम् अर्थात् सांसारिक जीवन में रहते हुए सुख वहीं है जहाँ शान्ति हो, जहाँ शान्ति नहीं वहाँ सुख की कल्पना भी व्यर्थ है। यह तथ्य सर्वसाधारण के अनुभव से भी प्रमाणित होता है। स्वभावतः प्रत्येक प्राणी निरन्तर कर्म में प्रवृत्त रहता है। यह कर्म ही अप्राप्त से प्राप्त की ओर अग्रसर कराता है। किसी वस्तु का उपादान, विकार, संस्कार कर्म द्वारा ही सिद्ध है, किन्तु यह कर्म भी भावना पूर्वक होता है। अतः शास्त्र कर्त्तव्य तथा अकर्तव्य के संबन्ध में व्यवस्था करता है–

rLekPNkL=a çek.ka rs dk;kZdk;ZO;ofLFkrkSA
KkRok 'kkL=fo/kkuksäa deZ drqZfegkgZflAA

सांसारिकता में बंधा मनुष्य अपने स्वार्थ के वशीभूत होता हुआ अपने कर्त्तव्यकर्म से विमुख हो जाता है तथा शास्त्र द्वारा निर्देशित कर्मों के विरुद्ध आचरण करता है, अतः वह "कामरत" कहा जाता है। इस प्रकार न तो वह सांसारिक सुख को ही पाता है न ही पारलौकिक सुख को ही। सत्त्व, रज तथा तम इस त्रिगुणात्मकता से नियन्त्रित होता हुआ निष्पक्ष तथा यथार्थ निर्णय नहीं ले पाता है। अतः ऐसे व्यक्ति को शास्त्र का आश्रय लेना चाहिए। शास्त्र कार्याकार्य का विधान तथा निषेध करते हैं अतः इन्हें धर्मशास्त्र भी कहा जाता है। आचार्य शंकर धर्म की परिभाषा देते हुए कहते हैं–

'kkjhja okfpda ekula p deZ JqfrLe`frfl) /keZ[;%AA

अर्थात् श्रुति तथा स्मृति से सिद्ध कायिक, वाचिक तथा मानसिक कर्म का नाम ही धर्म है। धर्म तथा अधर्म का अधिकारी कौन है? इसका निर्णय प्राणी की त्रिगुणात्मक वृत्तियों पर निर्भर होता है। जिस प्रकार की वृत्ति या प्रवृत्ति का वह प्राणी होगा, उसकी बुद्धि, भावना, श्रद्धा तथा कर्म उसी प्रकार के होंगे तथा कर्मों के अनुरूप ही उसे फल की भी प्राप्ति होगी।

*विशिष्ट संस्कृताध्ययनकेन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली– ११००६७

de.k% l-rL;kg% lkfRodl fuely QyEkA
jtlLr Qy n[keKku rel% QyEkAA

सत्व कर्म यथा यज्ञादि कर्म, दान, अहिंसा, सत्यादि का आचरण करने वाले मनुष्य द्वारा किये गये कर्मों का फल सुखकर होता है किन्तु तामस प्रवृत्ति के कारण अविद्या या अज्ञानता पूर्वक किया गया दुराचारी या अहितकर कर्म सदा ही अशान्ति तथा दुःख का कारण होता है। अतः जीवन के मुख्य लक्ष्य (मोक्ष) के लिए नियत कर्म करना आवश्यक है। किसी भी परिस्थिति में कर्मणे का पूर्णतः त्याग तो सम्भव नहीं किन्तु जो व्यक्ति कर्म फल का त्याग कर देता है, त्यागी कहलाता है। कर्म न करने से कर्म करना श्रेष्ठ कहा गया है। कर्म अनेक प्रकार के होते हैं। कर्म को प्रसंगानुकूल विभाजित किया जा सकता है–

– साधन के आधार पर– मानसिक, वाचिक तथा कायिक।
– गुण के आधार पर– सात्विक, राजस तथा तामस।
– वेदान्तिक के आधार पर– प्रारब्ध, संचित, क्रियमाण।
– वैज्ञानिक आधा– कर्म, अकर्म् तथा विकर्म।
– हेतु के आधार पर– नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा निषिद्ध।

आचार्य शंकर ने कर्मों का विभाजन गुण तथा कर्मों के आधार पर करते हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य तथा शुद्र के रूप में किया है। ब्राह्मण का सत्व यथा शम, दह, तपादि कर्म है, क्षत्रिय जिसमें सत्व कर्म गौण हो जाता है तथा रज प्रधान यथा शूरवीरता, तेज आदि कर्म है, वैश्य जिसमें रजोगुण प्रधान तथा तमोगुण अप्रधान होता है तथा ये .षि आदि कर्म करते हैं तथा शूद्र में रजोगुण गौण तथा तमोगुण प्रधान होता है, वह केवल सेवादि कर्म करता है। आश्रम के आधार पर भी कर्मो का विभाजन शंकराचार्य ने किया है। इसका पालन न करना प्रत्यवाय अर्थात् दोष का श्रवण् होता है– LokJ;fofgr de& vu"Bku çR;ok;Jo.kkRk।

इनमें प्रथम तीन (ब्रह्मचारी, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ) द्वारा अपने धर्म पालन करने से अभ्युदय की प्राप्ति तथा सन्यास की अवस्था में किये गये कर्म से निःश्रेयस की प्राप्ति होती है, कारण कि प्रथम तीन कर्मफल प्रधान हैं जबकि चतुर्थ कर्मत्याग की अवस्था है–

io J; vkJfe.k i.;ykdHkkt% ifjf'k";ek.k% ifjokMoke'RoHkkdA

प्रत्येक वर्ण द्वारा कुछ सामान्य तथा विशेष कर्मों का सम्पादन किया जाता है। मनुष्य कुछ कर्म अपने वर्ण या श्रेणी के अनुसार अवश्य करणीय होते उन्हें असाधारण धर्म कहते हैं, यथा वानप्रस्थ तथा परिव्राजक के तप और कर्मत्याग। जबकि कुछ कर्म उत्कर्ष हेतु सभी के द्वारा किया जाता, जिससे सुख–शान्ति मिलती है, उसे साधारण धर्म कहते हैं यथा– यज्ञादि कर्म। इनका त्याग कभी भी नहीं करना चाहिए।

धर्म ही वह पृष्ठभूमि है जो अभ्युदय से निःश्रेयस तक का मार्ग प्रशस्त करता है। धर्म न केवल मन की शान्ति तथा सुख का कारण होता है अपितु वह चित्त भी निर्मल बना देता है जिससे निष्काम कर्म की ओर प्रवृत्ति होती है, साधन चतुष्ट्य(विवेक, वैराग्यश, षट्सम्पत्ति तथा मुमुक्षत्व) से सम्पन्न हो जाता तथा निर्मल चित्त श्रवणादि द्वारा ब्रह्मैक्य ज्ञान में सम्भव हो पाता है। शंकराचार्य ने धर्म जिज्ञासा के बाद ब्रह्मजिज्ञासा को सम्भव नहीं अपितु साधन चतुष्टय के पश्चात् ही सम्भव माना है। क्योंकि धर्माचरण या धर्म जिज्ञासा कर्म की अपेक्षा रखता है जबकि ब्रह्म जिज्ञासा में कर्म नहीं अपितु शुद्धचित्त की अपेक्षा होती है– ;Fkkä lk/ku liÙ;uÙrj cãftKklk drÙ;kA

साधन चतुष्ट्य ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के बाह्य साधन हैं तथा श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन आन्तरिक साधन हैं। इनसे परिष्.त हुआ चित्त ब्रह्म ज्ञान में साक्षात् ही साधन सिद्ध होता है। याज्ञवल्क्य भी मैत्रेयी को आत्मज्ञान की शिक्षा देते हुए कहते हैं कि आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय तथा मननीय है, इसका ज्ञान हो जाने पर सर्व ज्ञेय हो जाता है –आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो ३३३..विज्ञानेनेदं सर्वविदितम्। शंकराचर्य का मत है कि केवल श्रवण मात्र से ही ब्रह्म ज्ञान सम्भव नहीं है। श्रवण के पश्चात् मनन तथा निदिध्यासन भी आवश्यक है। मनन तथा निदिध्यासन उस लवण के समान हैं जो ब्रह्मज्ञान की

प्रवृत्ति को सिद्ध करने में आवश्यक साधन सिद्ध होते हैं। जिस प्रकार धान को तब तक कूटा जाता है जब तक कि चावल प्रकट न हो जाए उसी प्रकार श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन की भी बार–बार आवृत्ति की जाने पर ही ये ब्रह्मसाक्षात्कार में अपरोक्ष साधन होते हैं, क्योंकि ये दर्शनपर्यवसायी हैं– çR;;koffUk% drO;k n'kui;kofl rRokn"kEkA

शंकराचार्य का मत है कि ज्ञान(मोक्ष) न तो केवल कर्म से प्राप्त होता है ज्ञान कर्म समुच्चय से . न केवलेभ्यः कर्मभ्यो न च ज्ञानकर्मभ्यां समुच्चिताभ्यां निःश्रेयसप्राप्तिः। क्योंकि कर्म से अविद्या का नाश नहीं होता अपितु विद्या से अविद्या का नाश होता है। कैवल्य के लिए ज्ञान की अपेक्षा रहती है, ज्ञान कर्म समुच्चय की नहीं। ज्ञान तथा ज्ञान–कर्मसमुच्चय दोनों के हेतु स्वरूप तथा फल में अन्तर होने से – हेतुस्वरूपफलविशेषत् । ज्ञान पूर्वक कैवल्य की प्राप्ति हो जाने पर कर्मफल की इच्छा नहीं रह जाती है। कर्म केवल परोक्ष रूप से सहायक होता है, जो निष्काम कर्म से शुद्ध हुए चित्त को ज्ञान प्राप्ति में प्रवृत्त कराता है। तात्पर्य है कि जिस प्रकार योग्यतावश अश्व को हल खींचने में नियुक्त नहीं किया जाता अपितु रथ खीचने मे नियुक्त किया जाता है उसी प्रकार आश्रम कर्म विद्या से फलसिद्धि अपेक्षित नहीं है अपितु आश्रम कर्म से विद्या तथा विद्या से मुक्ति है। मण्डन मिश्र ज्ञान कर्म समुच्चय से मोक्ष मानते हैं जबकि सुरेश्वराचार्य शंकर का समर्थन करते हुए कर्मसंन्यास से मुक्ति मानते है। अतः चित्त शुद्धि के लिए निष्काम कर्म करना चाहिए–

'k)·;eku: r| rfPpÙkeh'ojkfi:r de:fHk%A

o:jkX;: cã ykdknk: O;uoR;; l|fue:dE?kAA

निष्काम पूर्वक किया गया कर्म ही मोक्ष ज्ञान में सक्षम है। ऐसी स्थिति होने पर अर्जुन १८वें अध्याय में पुनः संशययुक्त हो जाते हैं कि संन्यास में तो व्यक्ति द्वारा कर्मों का त्याग कर दिया जाता है, पुनः संन्यास तथा त्याग में क्या अन्तर है। श्रीकृष्ण कहते हैं–

dkE;kuk: de:.kk: U;kl: lU;kl: do;k: fon%A

lo:deQyR;kxçkgR;kxfop{k.kk%AA

कुछ विद्वान संन्यास तथा त्याग को यद्यपि भिन्न–भिन्न मानते हैं। उनके मत में कर्मफल की इच्छा से किया गया त्यागअर्थात् अश्वमेधादि सकाम कर्मों का त्याग ही संन्यास हैतथा कर्मफल का सर्वथा त्याग अर्थात् संपूर्ण नित्य–नैमित्तिक कर्मों का त्याग करना त्याग। किन्तु काम्य कर्मों का त्याग हो या समस्त कर्मों का त्याग दोनों शब्दों का अर्थ तो मात्र त्याग ही है, यह घट–पट के सदृश भेद जातीय वाले नहीं हैं– ;fn dkE;de:ifjR;kx% QyR;kxk ok vFkk: oä0;% loFkk vfi R;kxek=: lU;klR;kx'kCn;k% ,d% vFkk: u ?kViV 'kCnk: bo tkR;UrjHk:rkFkk:AA

संन्यास शब्द से तात्पर्य मात्र विवाह न करने, बाल–बच्चों का त्याग करके भगवा वस्त्र धारण करना ही नहीं है, क्योंकि विवाह न करने पर भी भीष्मपितामह मरते दम तक राज्य कार्यों में उद्योग करते रहे, श्रीमद्शंकराचार्य ने ब्रह्मचर्य के बाद ही सन्यास ले लिया। सन्यासी भी यज्ञ, दान तथा तप से मुक्त नहीं हो सकता अतः महत्त्व केवल कर्म त्याग करके सन्यासी होने से नहीं अपितु निष्कामभाव से कर्म करना श्रेयस्कर है।अतः गीता में वर्णित कर्मयोग पूर्व तथा संन्यास उत्तर भाग नहीं अपितु दोनों की ही स्वतन्त्र सत्ता है– ykd:·fLeu f}fo/kk fu"Bk i:jk çkä k e;ku?kA

Kku;kxu lk[;kuk de:;kxu ;kxhuke·

अर्थात् संन्यास तथा कर्म का अपना–अपना महत्त्व है। व्यक्ति गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी निष्काम पूर्वक कर्म कर सकते हैं तथा संन्यासी जीवन में भी निष्काम भाव से ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष का साक्षात्कार कर सकते हैं। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि निष्काम से तात्त्पर्य कर्मशून्यता नहीं अपितु कर्मफल त्याग पूर्वक की गई प्रवृत्ति से है। क्योंकि निष्कर्मभाव का तात्त्पर्य यदि कर्मशून्यता लिया जाए तो आत्मरूपनिष्ठ ज्ञानयोग की प्राप्ति संभव नहीं है– नैष्कर्म्यं निष्कर्मभावं कर्मशून्यतां ज्ञानयोगेन निष्ठां निष्क्रियात्मस्वरूपेण एव अवस्थानम् इति यावत्, पुरूषो न अश्नुते न प्राप्नोति इत्यर्थः।

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीताशांकरभाष्य में कर्म तथा संन्यास दोनों को ही मोक्ष की दृष्टि से उत्तम माना गया है– ,dka lka[;a p ;ksxa p ;% i';fr l i';frA

लोकव्यवहार में भी यदि निष्काम भाव से कर्म तथा संन्यास मार्ग अंगीकार किया जाये तो दोनों ही श्रेष्ठ हैं। अतः निष्काम भाव से ही कर्म करने का अधिकार है। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्। निष्कामभाव से किए गये कर्म का फल बताती हुए श्रुति कहती है–

> dqoZUuosg dekZf.k ftthfo"ksPNra lek%A
> ,oa Rof; ukU;Fksrks·fLr u deZ fyI;rs uj%AA

lUnHkZ %

çkFkfed lzksr %

1. श्रीमद्भगवद्गीताशांकरभाष्य, हिन्दी अनुवाद सहित, श्रीकृष्णदास गोयन्दका, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ०१०.
2. श्रीमद्भगवद्गीता (तत्त्व विवेचनी), गीताप्रेस, गोरखपुर, १९९३.
3. ईशोपनिषद् (शांकरभाष्य सहित), गीताप्रेस, गोरखपुर, १९९५.
4. श्रीन्मद्भगवद्गीता (सारार्थवर्षिणी टीका सहित), सं. नारायणगोस्वामी, श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा, १९९७

f}rh;d lzksr %

1. गीतोक्त संन्यास या सांख्य योग का स्वरूप, गीताप्रेस, गोरखपुर।
2. गीतारहस्य(कर्मयोगशास्त्र), अनु. माधवराज जी सप्रे. नारायण सेठ, तिलक मन्दिर, पूना, १९९2।
3. अद्वैतवेदान्त का ऐतिहासिक विवेचन, हृदय नारायण मिश्र, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2०११.
4. भारतीय दर्शन, उमेश मिश्र, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, १९९०।
5. भगवद्गीता, राजगोपालाचारी, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, १९९६।
6. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, एम. हिरियान्ना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली. १९६५।
7. श्रीमद्भगवद्गीता– एक अध्ययन, गुरूदत्त, शाश्वत संस्कृति परिषद्, नई दिल्ली, १९९६.
8. भारतीय दर्शन (ऐतिहासिक एवं समीक्षात्मक विवेचन), न.कि. देवराज, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, १९८३.
9. The Gospel of selfless action or the Gita according to Gandhiji, Mahadeo Desai,Navjiwan publishing house, Ahemdabaad- 1956-
10. Discourses of the Gita, Aurbindo Ghosh, NawjIvan publishing house, Ahemadabad,1958-
11. श्रीमद्भगवद्गीता ५/2
12. श्रीमद्भगवद्गीता 2/६६
13. श्रीमद्भगवद्गीता १६/2४
14. ब्रह्मसूत्र १/१/४
15. श्रीमद्भगवद्गीता १४/१६
16. श्रीमद्भगवद्गीताशांकरभाष्य ४/१३
17. ब्र.शां. भा. 2/४/2०
18. ब्रह्मसूत्रशंकरभाष्य १/१/१
19. बृह्दारण्यकोपनिषद् 2/४/५
20. ब्र.सू.श.भा.४/१/१
21. ब्र.सू.शां.भा. १८/६७
22. ईशोपनिषद्शांकरभाष्य १८
23. ब्र.सू.शां.भा ३/४/2६
24. नैष्कर्म्यसिद्धि, प्रथम अध्याय
25. गीता १८/2
26. श्रीमद्भगवद्गीताशांकरभाष्य १८/2
27. गीता रहस्य, गीता कर्मयोगशास्त्र, पृ. ३१७
28. गीता ३/३
29. श्रीमद्भगवद्गीताशांकरभाष्य ३/४
30. गीता ५/५
31. ईशोपनिषद् 2

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 117-120

cks) /kel ds fodkl esa vkuUn LFkfoj dk ;ksxnku

fo'o nÙk*

vkuUnRFksj % अनेक जन्मों तक भव–संसरण करते हुए आयुष्मान आनंद ने कपिलवस्तु के शाक्यकुल में भगवान गौतम बुद्ध के सगे चाचा अमितोदन के यहां जन्मे। आनंद के पिता अमितोदन, शुद्धोदन के छोटे भाई थे। इसलिये यह संभव है कि आनंद भगवान से छोटे और महानाम से बड़े थे। इनके जन्म के समय परिवार तथा सगे–संबंधियों के मध्य बड़ा ही हर्षोल्लास का वातावरण था इसलिए इनका नामकरण 'आनन्द' किया गया। भगवान बुद्ध के बोधि प्राप्ति के दूसरे साल आनंद की प्रव्रज्या हुई। उनके साथ भद्दिय, भग्गु, किंबिल, अनुरूद्ध और देवदत्त तथा उपालि भी प्रव्रजित हुये थे[1]।

बुद्धत्व के पच्चीस वर्ष बाद तक भगवान बुद्ध के उपस्थाक समय–समय पर बदलते रहे। भिक्षु उपस्थाकों में नागसमाल, नागित, उपवान और सुनक्खत्त थे। श्रामणेर उपस्थाकों में चुन्द, सागत, राध और मेधिय थे। जब भगवान पचपन वर्ष के हो गये तो उन्होंने कहा कि अब मैं वृद्ध हो गया हूं और चाहता हूं कि कोई स्थाई उपस्थाक मेरे साथ रहे। उनका कहना था कि उनके कोई कोई उपस्थाक कुछ कहने पर कुछ समझ लेते हैं। ऐसी अवस्था में भगवान को स्वाभाविक तौर से स्थाई उपस्थाक की आवश्यकता अनुभव हुई। सभी प्रधान शिष्यों ने अपने को भगवान की सेवा में प्रस्तुत किया किन्तु भगवान ने सभी का प्रतिक्षेप किया। केवल आनंद ही बचे थे और वे चुपचाप बैठे थे। जब उनसे पूछा गया कि वे अपने आप को सेवा के लिये क्यों प्रस्तुत नहीं करते तो उनका उत्तर था कि भगवान को उचित लगेगा तो वे स्वयं आज्ञा देंगे[2]।

जब भगवान ने आनंद को अपना उपस्थाक बन सकने की अनुमति दी तो आनंद ने स्वीकार किया किन्तु इससे पहले उन्होंने भगवान से कुछ शर्तें रखी। वे शर्तें थीं (1) भगवान अपने लिये मिला भोजन या वस्त्र उन्हें कभी नहीं देंगे। (2) उन्हें अपनी गंधकुटी में सोने का अधिकार नहीं देंगे। (3) भगवान द्वारा स्वीकार किये गये निमंत्रण में उन्हें साथ ले चलने का आग्रह नहीं करेंगे। ऐसा न करने से, आनंद का सोचना था कि कुछ लोग कहेंगे कि आनंद खाने के लिये, चीवर के लिये अथवा निवास के लिये ही भगवान की सेवा करते है। दूसरी शर्तें थी। (4) आनंद भगवान की ओर से कोई निमंत्रण स्वीकार कर लेगें तो उसे भगवान को स्वीकार करना पड़ेगा। (5) दूर से आये हुये लोगों को वह बुद्ध दर्शन करा सकेंगे। (6) वह जब चाहे तब बुद्ध के सामने अपनी कठिनाई उपस्थित कर सकेंगे। (7) यदि भगवान ने आनंद की अनुपस्थिति में कोई उपदेश किसी को दिया होगा, तो वह उन्हें पुनः दोहराना होगा। आनंद का कहना था कि यदि उसे ये सुविधायें नहीं दी जायेंगी तो पूछने वाले पूछेंगे कि आखिर भगवान की सेवा में रहने का क्या फल है ? यदि उसे ये अनुकूलतायें प्राप्त होगी तभी लोग उसका विश्वास करेंगे और समझेंगे कि भगवान भी उसे महत्व देतें हैं। बुद्ध ने आनंद की सारी शर्तें स्वीकार की।

तब से पच्चीस साल तक आनंद भगवान की सेवा करते रहे, छाया की तरह उनके पीछे–पीछे रहे[3]। भगवान को पानी लाकर देना, दतून देना, उनके पैर धुलाना आदि सारे काम आनंद स्वयं अपने हाथ से करते थे, जहां भी भगवान को जाना होता, वहां हर जगह उनके साथ जाते। यदि श्रद्धावान उपासकगण या उपासिकायें तथागत को या भिक्षुओं को दान (भोजन) देना चाहती थी तो अक्सर वे अपनी समस्याओं के संबंध में आनंद से ही परामर्श करती थी। आनंद भी हमेशा उनका मार्गदर्शन करते थे। इस संबंध में अंधकविन्द ब्राह्मण और रोज मल्ल का नाम लिया जा सकता है। एक बार किसी जमींदार ने भगवान से

*शोध छात्र, पालि एवं बौद्ध अध्ययन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पूछा कि वह किस तरह धर्म का गौरव कर सकता है ? भगवान बुद्ध का उत्तर था कि यदि उसे धर्म को गौरवान्वित करना है तो वह आनंद का गौरव करे, आनंद धर्मभण्डागारिक जो थे[4]।

भिक्षुणी संघ की स्थापना कराने में आनंद का ही विशेष योगदान रहा[5]। इसके लिये उन्होंने ही भगवान प्रेरित ही नहीं किया था बल्कि मजबूर भी किया था। कपिलवत्थु में जब महाप्रजापति गौतमी ने स्त्रियों के लिये प्रवर्जित होने की अनुमति चाही, तो भगवान ने इसे अस्वीकार कर दिया। सैकड़ों शाक्य स्त्रियों को साथ लेकर उसने वैशाली तक भगवान का पीछा किया। रोती हुई, उदास, सूजे पैरोंवाली स्त्रियों को आनंद ने कूटागारशाला के बाहर खड़ी देखा। उनसे सारी कथा जान, आनंद भगवान के पास गये और उनकी प्रार्थना स्वीकार करने की याचना की। आनंद ने तीन बार आग्रह किया : भगवान ने तीनों बार इंकार किया। तब आनंद को लगा कि क्यों न मैं दूसरी प्रकार से भगवान की अनुज्ञा प्राप्त करूं। उन्होंने भगवान से कहा–

''भन्ते ! क्या तथागत प्रवेदित, धर्म में, घर से बेघर प्रव्रजित हो, स्त्रियाँ स्त्रोतापति–फल, सकृतागामि–फल, अनागामि–फल तथा अर्हत्व को साक्षात् कर सकती हैं ?''

''साक्षात् कर सकती है, आनंद।''

''भन्ते ! यदि साक्षात करने योग्य है तो, जो अभिभाविका हैं, पोषिका हैं, क्षीरदायिका हैं, जननी के मरने पर उन्होंने भगवान को दूध पिलाया। भन्ते ! अच्छा हो यदि स्त्रियों को प्रव्रज्या की अनुज्ञा मिले।'' आठ शर्तों पर भगवान ने अनुज्ञा दे दी[6]। यदि आनंद स्त्रियों के लिये प्रवर्जित होने की अनुमति न लेते तो शायद बौद्ध धर्म का इतिहास दूसरा ही होता।

एक बार भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं की सभा में आनंद की विशेषतायें बताते हुए उन्हें पांच बातों में प्रमुख होने की उपाधि दी थी। भगवान का कहना था, ''आनंद प्रत्युत्पन्न–मति है, अच्छे व्यवहारवाला है, धारणा शक्तिवाला है और अपने निश्चय पर दृढ़ रहने वाला है[7]।'' भगवान के प्रवचनों को ठीक जैसे का तैसा याद रखने की सामर्थ्य से युक्त होने का कारण आनंद धम्मभण्डागारिक पदवी से विभूषित हुये। भगवान आगे भिक्षुओं को, आनंद की प्रशंसा करते हुये कहते हैं, ''भिक्षुओं ! जो बुद्ध अतीत काल में हुये उन सब के उपस्थाक इतने ही उत्तम थे जैसा कि मेरा उपस्थाक आनंद। भिक्षुओं ! जो बुद्ध भविष्य में होंगे उनका भी उपस्थाक इसी प्रकार का उत्तम होगा जैसा मेरा आनंद ! भिक्षुओं ! आनंद पण्डित है, मेधावी है। वह यह जानता है कि किस समय भिक्षुओं को तथागत के दर्शन कराने चाहिये, इसी प्रकार वह जानता है कि किस समय ''भिक्षुणियों'' उपासक, उपासिकाओं को तथागत के दर्शन कराने चाहिए। आनंद जानता है कि यह काल राजाओं का, मंत्रियों का, तैर्थिकों का तथा तीर्थक श्रावकों का है।'' भगवान आनंद के गुणों का बखान करते समय यहीं नहीं रूकते हैं। वे आगे कहते हैं ''भिक्षुओं, आनंद में ये चार अद्भुत विशेषताएँ हैं (1) जो भिक्षु समूह आनंद के दर्शनार्थ जाता है वह उसके दर्शन से संतुष्ट होता है, उसके उपदेश से संतुष्ट होता है। वह उसका उपदेश कितना ही सुने उसकी इच्छा पूरी नहीं होती। (2) इसी प्रकार भिक्षुणी परिषद। (3) उपासक (4) और उपासिका परिषद।'' कहा जाता है कि उन्हें भगवान बुद्ध के द्वारा कही गई हर बात याद रहती थी। सुत्तपिटक के प्रथम पांच निकायों में प्रत्येक सुत्त, 'एवं मे सुतं– ऐसा मैंने सुना' से आरंभ होता है। यह 'मैंने' शब्द आनंद के लिये आया है। उन्होंने अकेले भगवान बुद्ध से ही 82 हजार धर्म पर्याय सीखे थे और 2 हजार सीखे थे अपने साथी स्थविर भिक्षुओं से[8]।

तथागत द्वारा उपदेशित धर्म को शुद्ध रूप में चिरस्थायी रखने के लिए स्वयं तथागत ने यह आदेश दिया था– *ये वो मया धम्मा अभिञ्ञा देसिता, तत्थ सब्बेहेव सग्गम्म समागम्म, अत्थेन अत्थं व्यञ्जनेन व्यञ्जनं सग्डायितब्बं, न विवदितब्बं, यथयिदं ब्रह्मचरियं अध्दनियं अस्स चिरट्ठितिकं* अर्थात जिन धर्मों को मैंने स्वयं अभिज्ञात करके तुम्हें उपदेशित किया है, तुम सब मिलकर बिना विवाद किये अर्थ और व्यजंन सहित उनका संगायन करो जिससे कि यह धर्माचरण चिरस्थायी हो[9]।

अतः भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात देर–सवेर बुद्धवाणी का संगायन, संपादन तो होता ही; पर उसे इतना शीघ्र आयोजित किये जाने का एक विशेष कारण उपस्थित हुआ।

उस समय आयुष्मान महाकस्सप पांच सौ भिक्षुओं के भिक्षु–संघ के साथ पावा और कुसीनारा के बीच जा रहे थे। विश्राम हेतु वे मार्ग से हट कर एक वक्ष के नीचे बैठ गये। एक आजीवक कुसीनारा से मंदार पुष्प ले, पावा की ओर जा रहा था। आयुष्मान महाकस्सप ने उससे पूछा– ''आवुस! क्या तुम हमारे शास्ता को भी जानते हो ?''

''हां, आयुष्मान! जानता हूं; श्रमण गोतम को परिनिर्वृत हुए आज एक सप्ताह हो गया। मैंने यह मंदार पुष्प वहीं से पाया है।''

यह सुन वहां जो अवीतराग भिक्षु थे, उनमें से कोई–कोई बांह पकड़कर रोते, पीटते, कटे पेड़ के समान धराशायी होते और कहते 'भगवान बहुत जल्दी परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये[10]।' उस परिषद में सुभद्द नामक एक वृद्ध भिक्षु बैठा था। वह बुढ़ापे में प्रव्रजित हुआ था। बड़ा प्रसन्न हुआ। अपने कपड़े उछाल–उछाल कर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने लगा। उसने भिक्षुओं से कहा– ''आवुसो! शोक मत करो, मत रोओ। हम बिल्कुल मुक्त हो गये उन महाश्रमण से। उनके ऐसे आदेशों से सदा पीड़ित रहा करते थे कि – ''यह उचित है, यह अनुचित है। वह गृहस्थों को मात्र पांच शील पालन के लिए कहते थे और हम गृहत्यागियों के लिए दो सौ शील! अब बुद्ध के चले जाने से मुक्त हो गये। अब हमारी जो इच्छा होगी वह करेंगे, जो इच्छा नहीं होगी वह नहीं करेंगे''। सुदूरदर्शी महास्थविर महाकस्सप ने भिक्षु सुभद्द के इन अभद्र शब्दों को सुन कर तत्क्षण यह निर्णय किया कि लोक–कल्याणार्थ बुद्ध–वाणी को चिरकाल तक अविकल रूप में सुरक्षित रखने के लिए शीघ्र ही संगायन का आयोजन करना चाहिए। अन्यथा इस प्रकार के अपरिपक्व स्वार्थी लोग इसमें से अपनी अनचाही बातें निकाल देंगे और मनचाही इसमें जोड़ देंगे।

भगवान ने कहा, ''आनंद ! संघ चाहे तो मेरे पश्चात छोटे मोटे नियमों में परिवर्तन कर सकता है।'' आनंद जानते थे कि छोटे मोटे नियम कौन से हैं ? इसलिये उन्होंने पूछने की जरूरत नहीं समझी। प्रथम संगीति के अवसर पर जब वह प्रश्न उठा तो महाकाश्यप ने किसी भी नियम में परिवर्तन करना अस्वीकार कर दिया। भगवान एक जगह पर आनंद से कहते हैं, ''छननस्स आनंद, भिक्खुनो ममच्येन ब्रह्मदण्डोति'' ''आनंद ! मेरे बाद छन्न भिक्षु को ब्रह्मदण्ड देना।'' ब्रह्मदण्ड आनंद के लिये नया शब्द था। इसलिये इसके बारे में उन्होंने भगवान से पूछा और भगवान ने उन्हें समझाया।

भगवान बुद्ध का परिनिर्वाण आनंद के लिये एक बहुत ही बड़ा आघात था। आनंद को अर्हत न होने के बावजूद पांच सौ भिक्षुओं की प्रथम संगीति का संगीतिकारक चुना गया। भगवान के धर्म का पारायण करने के लिये स्वयं महाकाश्यप द्वारा वे चुने गये थे। संगीति में उनके लिये एक आसन खाली रखा गया था। रात भर वे अर्हत पद प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहे और अंत में वे सफल हुये। उस संगीति में महाकाश्यप ने आनंद से धर्म के बारे में और उपालि से विनय के बारे में प्रश्न पूछे थे[11]। आनंद पर जो दोष लगाये गये थे, (1) उन्होंने बुद्ध से यह नहीं पूछा था कि छोटे मोटे नियम कौन–कौन से हैं ? (2) उन्होंने भगवान का स्नान कराने का वस्त्र पैर में दबा कर निचोड़ा था। (3) स्त्रियों को ही प्रथम, बुद्ध के शरीर के दर्शन कराये। (4) भिक्षुणी संघ की स्थापना के लिये उन्होंने प्रयास किया।

इन बातों के बारे में आनंद को समाधान था कि इन बातों के करने या न करने में मैंने कोई दोष नहीं देखा। किन्तु अपने साथियों के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिये उन्होंने उक्त बातों को 'अपराध' के रूप में स्वीकार कर लिया था। ऐसे उदार थे 'विदेह–मुनि' आनंद।

अपने जीवन का अंतिम काल उन्होंने साथियों को उपदेश देने में और उनको उत्साहित करने में ही बिताया। उन्होंने लम्बी आयु पाई थी। वे एक सौ बीस वर्ष जीये। अंतिम दिनों में आनंद देहत्याग की कामना से ही मगध से वैशाली जा रहे थे, यह बात अजातशत्रु ने सुनी। परिचारक वर्ग के साथ उसने रोहिणी नदी तक आनंद का पीछा किया। वैशाली के प्रमुखों ने भी सुना कि आनंद वैशाली आ रहे हैं, वे उनके स्वागत के लिये निकले। आनंद ने दोनों में से किसी भी एक पक्ष को अप्रसन्न नहीं करना चाहा। दोनों पक्ष रोहिणी नदी के दोनों किनारों पर उपस्थित थे। आनंद नदी के बीचों बीच थे। वहां वे तेजोकसिण ध्यान भावना में निमग्न हुये। उनके शरीर से आग की ज्वाला निकली और आनंद परिनिवृत्त हो गये।

मगध तथा वैशाली के लोगों ने आनंद के शरीरावशेष दो बराबर हिस्सों में बाँट लिये और अपने–अपने राज्यों की सीमा में स्तूप बनवाये[12]।

lUnHkZ %

1. भगवान बुद्ध के उपस्थाक–आनन्द, गोयनका, स. ना., 2017, इगतपुरी : विपश्यना विशोधन विन्याास पृ0 2
2. वही, पृ0 3
3. थेरगाथा, सम्पादित एवं अनुवादित, शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, 2003, बौद्ध भारती, वाराणसी, पृ0 193
4. मज्झिमनिकायपालि, सम्पादित एवं अनुवादित, शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, 2003, बौद्ध भारती, वाराणसी, पृ0 558
5. मज्झिमनिकायपालि अट्ठकथा, सम्पादित एवं अनुवादित, शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, 2003, बौद्ध भारती, वाराणसी, पृ0 672
6. मज्झिमनिकायपालि अट्ठकथा, सम्पादित एवं अनुवादित, शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, 2003, बौद्ध भारती, वाराणसी, पृ0 674
7. अंगुत्तरनिकायपालि–1, सम्पादित एवं अनुवादित, शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, 2003, बौद्ध भारती, वाराणसी, पृ0 37
8. थेरगाथा, सम्पादित एवं अनुवादित, शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, 2003, बौद्ध भारती, वाराणसी, पृ0 190
9. दीघनिकायपालि–2, सम्पादित एवं अनुवादित, शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, 2003, बौद्ध भारती, वाराणसी, पृ0 232
10. दी0नि0 महापरिनिब्बानसुत्त, अनु. धर्मरक्षित, भिक्षु, 2016, ज्ञानमण्डल लिमिटेड : वाराणसी, पृ0 187
11. विनय पिटक, अनु. सांकृत्यायन, राहुल, 2010, गौतम बुक सेन्टर : दिल्ली, पृ0 543
12. भगवान बुद्ध के उपस्थाक–आनन्द, गोयनका, स. ना., 2017, इगतपुरी : विपश्यना विशोधन विन्याास, पृ0 194

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 121-126

^chlYknso jkl¨* esa L=h Loj

l¨ue flag*

बीसलदेव रासो में राजमती जैसे चरित्र का सृजन नरपति नाल्ह की उपलब्धि है। तत्कालीन सामंती परिवेश में राजमती के चरित्र की कल्पना करना और उसे मूर्त रूप में प्रस्तुत करना निश्चित ही साहस भरा काम है। 'बीसलदेव रासो' जैसे छोटे ग्रंथ में राजपरिवार की स्त्री की मुक्ति की कामना, उसकी सीमाएँ और उसके बंधन को नाल्ह ने विस्तार से प्रस्तुत किया है। नाल्ह की यह कृति इस मामले में विशेष उल्लेखनीय है कि हिन्दी साहित्य के आदिकाल व मध्यकाल के किसी भी काव्य, महाकाव्य में स्त्री इतने मुखर रूप में नहीं दिखाई देती है। मध्यकाल में सूरदास की गोपियों के यहाँ ऊद्धव प्रसंग में यह मुखरता दिखाई देती है, लेकिन गोपियाँ भी लोक–लाज से बँधी हुई हैं और उस बंधन का अंततः निर्वाह ही करती हैं। वे अपने काल का अतिक्रमण अवश्य करती हैं, लेकिन सीमा का उल्लंघन नहीं कर पाती हैं। रासो काव्य परम्परा का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'पृथ्वीराजरासो' है, जहाँ अन्य रासो–प्रबन्धों की अपेक्षा काव्य–सौंदर्य अपने उत्कृष्ट रूप में मिलता है। इच्छिनी विवाह, शशिव्रता का गंधर्व विवाह, संयोगिता स्वयंवर, शशिव्रता की वयः संधि का वर्णन आदि उसे उत्कृष्ट कोटि की रचना की श्रेणी में रखते हैं। यह भी देखे जाने योग्य बात है कि वहाँ स्त्री पात्र में स्त्री अस्तित्त्व और उनकी मुक्ति की कामना का स्वर दबा हुआ है। 'पृथ्वीराजरासो' के किसी भी स्त्री पात्र में राजमती जैसी मुखतरा नहीं दिखती है। 'पृथ्वीराजरासो' में स्त्री पात्रों की भरमार है लेकिन स्त्री जीवन की तमाम विसंगतियों का उजागर किसी भी पात्र के माध्यम से नहीं होता। कवि चंद नीयत परिपाटी के अनुसार स्त्री के सौंदर्य पक्ष पर ही आकर्षित हुए हैं। स्त्री जीवन के अन्य पक्षों के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं है।

बीसलदेव रासो के पाठ में राजमती राजा के प्रवास से पूर्व तो रानी के दर्प–अभिमान से भरी दिखती है, लेकिन उसका मुखर रूप पाठ के दूसरे हिस्से में सामने आता है, जहाँ वह बीसलदेव के जाने के बाद अपनी विरह दशा और मुक्ति के लिए विशेष रूप से मुखरित हो उठती है। नाल्ह ने स्त्री के मुक्ति–प्रसंग को काव्य का आधार बनाया है। राजमती जिस प्रकार सामंती व्यवस्था पर विरोध दर्ज करती है, वह उल्लेखनीय है। 'बीसलदेव रासो' इसी सन्दर्भ में स्त्री की मुक्ति का काव्य कहा जा सकता है। बीसलदेव रासो की राजमती के माध्यम से नाल्ह ने एक स्त्री के अंतर्मन को खोलने का प्रयास किया है। जिस काल में नाल्ह ने इस कृति की रचना की, उस समय उनके समानांतर काव्य रचना में प्रवृत्त अन्य कवियों को देखने से पता चलता है कि वे कवि दरबारी संस्कृति में राजा के पराक्रम, युद्ध कौशल, सौंदर्य निरूपण का वर्णन बढ़ा–चढ़ा कर करने में व्यस्त थे। जहाँ सभी रचनाकारों का आधार पुरुष रहे, वहाँ एक स्त्री के जीवन को काव्य की आधारवस्तु बनाना नाल्ह को आदिकालीन रचनाकारों की श्रेणी से अलग खड़ा करता है। नाल्ह के जीवन के विषय में ठीक–ठीक जानकारी नहीं मिलती लेकिन उनके काव्य को देख कर यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि वे चारण परम्परा के अंतर्गत आने वाले रचनाकारों की श्रेणी में निश्चित ही नहीं है। वे भले भाट हों, लेकिन दरबारी चारणों से ज्यादा प्रशंसा के पात्र हैं।

नाल्ह के रचना–विवेक और वर्ण्य–विषय के अंतर्गत पुरुष के समानांतर स्त्री को समुचित स्थान प्राप्त हुआ है, नाल्ह के काव्य में राजमती की साहसिकता ही उसका सुन्दरतम पक्ष है। नाल्ह ने राजमती को पुरुष के समकक्ष संवादी एवं प्रतिनिधि पात्र की तरह प्रस्तुत किया। बन्धनयुक्त सामंती मध्यकालीन परिवेश में राजमती जैसे स्त्री चरित्र का सृजन करना नाल्ह के स्त्री संबंधी संतुलित दृष्टिकोण का परिचायक है।

*शोध छात्रा, भारतीय भाषा केन्द्र, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

यहाँ स्त्री का कथन ही रचनाकार की स्त्री विषयक दृष्टि पर प्रकाश डालता है, राजमती जहाँ भी अपना मत व्यक्त करती है, वह लोगों को जबान की तेज लगती है। ''इतना दुःख झेलने के बाद भी जबान की कैंची न गयी और न हुई तनिक भी भोथर।''[1] पति के दंभ का प्रतिकार करना, उसके बारे में सही–सही बात कहना जबान की कैंची कैसे हो सकती है। स्वतंत्रता की चाह मानव स्वभाव की सहज प्रवृत्ति है। राजमती की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को कैंची कहना कहीं से भी उचित प्रतीत नहीं होता है। राजमती हजारो वर्षों से दबाई गई स्त्रियों का प्रतिनिधि स्वर है। स्त्री के जिन मूलभूत अधिकारों का हनन पुरुष समाज करता आया है। राजमती के स्वर में उन अधिकारों की चाह सुनाई देती है–

cfx e;k dj r ?kfj pkfYkA dfB.k i;kgj NkfM Nb BkfeAA
fl[kj r /kjrh jgb uhE;kA v/kYkk!vlj! vlrh! vprhAA
,d lj¨ ?kjh vkouA vL=h xYkh jkt ck/;¨ ljk lrAA[2]

बीसलदेव को सम्बोधित करते हुए राजमती कहती है कि तुम्हारा ज्ञान किस प्रकार का है? ऐसा ज्ञान तो आग लगा देने लायक है। तुम्हारी मंदबुद्धि के कारण मेरा यौवन बीतता जा रहा है। मेरे पयोधरों ने प्राण त्याग दिये। मेरी कठिन विषम परिस्थिति तुम्हारे समझ में क्यों नहीं आती है। राम ने अपनी पत्नी से मिलन के लिए सेतु का निर्माण करवाया। लेकिन तुम्हें मिलन की कोई आकांक्षा ही नहीं है। न तुम्हें एक स्त्री के वास्तविक सुख के विषय में कोई ज्ञान है। आदिकाल में जब रचनाकार राजाओं के धन–वैभव और विवाह बाहुल्य आदि का वर्णन बढ़ा–चढ़ा कर एक ही स्वर में कर रहे थे उस समय में नाल्ह ने अपने काव्य में स्त्री स्वर को स्थान दिया।,

मध्यकाल में संयुक्त परिवार की संरचना थी। उस काल में बहु–विवाह प्रचलन में था। राजा के द्वारा हरण की गई या जीती गई स्त्रियों में जो स्त्री बुद्धि–कौशल में, राजनीतिक रूप से दक्ष और विभिन्न कलाओं में प्रवीण होती थी वही राजा की पत्नी का स्थान पाती थी। बीसलदेव की साठ रानियों के बाद भी राजमती से उसका विवाह इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। ये रानियाँ परस्पर राजा का सानिध्य पाने के लिए प्रतिस्पर्धा किया करती थीं। बीसलदेव जब उड़ीसा से वापस अपने राज्य आने के लिए उड़ीसा–नरेश से अनुमति माँगता है तो उड़ीसा नरेश बीसदलेव के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखते हैं।

jfg jfg Á/kku r th er¨ tkbA n¨rh djkm Fkj¨ g C;kgAA
,d x¨jh nth lkeYkh! jkb Òrhth u;.k lrkjAA
cnu nckM nodhA Fkkj¨ C;kg d: xxk db ikjAA[3]

उड़ीसा नरेश वस्तु की भाँति गोरी, साँवली स्त्रियों का प्रलोभन बीसलदेव को देता है। वह कहता है– मैं सबसे अच्छी और योग्य स्त्री से तुम्हारा विवाह करा दूँगा। बीसलदेव उसे अपनी अन्य साठ रानियों के बारे में बताता है। जो रूप–सौंदर्य, धन–धान्य से परिपूर्ण हैं। दोनों काव्यों में स्त्री माता–पुत्री, पत्नी आदि रूपों में उपस्थित है।

राजमती चातुर्य कला में भी प्रवीण है, उसे जब यह आभास हो जाता है कि उसके द्वारा कही गयी बातें बीसलदेव के मन के अनुकूल नहीं हैं तथा उनके मध्य कलह की स्थिति उत्पन्न हो सकती है तो वह दूसरी बातें कहकर बीसलदेव को रिझाने का प्रयास करती है। वह राजा से कहती है–

tue gom Fkkjm ek: db nlA jkt dofj vfr :i vllAA
:i uhj¨ieh enuhA vkNkdkiM >h.kb YkdAA
YkYk;kxh ?ku doYkhA vfgj?k ckYkk] fueYk nrAA[4]

राजमती अपने रूप–सौंदर्य का वर्णन करने हुए कहती है– हे प्रिय! मैं जानती थी कि आप जैसे वीर–योद्धा मेरे सौभाग्य रथ के सारथी बनेंगे, इसीलिए मैंने आपके अनुकूल सौंदर्य पाने के लिए जगन्नाथ जी से प्रार्थना की थी। मेरा यह रूप–सौंदर्य आपके ही लिए है, मेरा यह रूप संसार में अनन्य है, निरूपम है। यह मेरा खिला हुआ गौर वर्ण, पतली कमर, लाल सुन्दर मेरे अंग हैं। मेरी अलकें नागिन की भाँति हैं। मेरे लाल अधरों के बीच दाड़िम की भाँति मेरी दंत–पंक्तियाँ है। यह अनुपम–सौंदर्य आपके भोगन के लिए है। इस सौन्दर्य की उपेक्षा कर परदेश जाना उचित नहीं है। राजमती के रूप में सौंदर्य का बीसलदेव अपमान

करता है तथा रूकने के लिए तैयार नहीं होता है। राजमती के द्वारा उसके रूप–सौंदर्य का यह वर्णन एक प्रश्न खड़ा करता है कि स्त्रियाँ स्वयं को किस रूप में देखना चाहती है? वह प्रियतम को रोकने के लिए रूप का सहारा ही क्यों लेती है? क्या स्त्रियाँ पुरुषों द्वारा निर्धारित किये गये सौंदर्य प्रतिमानों एवं सौंदर्य हेतु प्रयुक्त उपमानों से अलग सौंदर्य की कोई व्याख्या करेंगी। स्त्रियों के लिए सौंदर्य के सभी उपमानों और दैहिक संरचना की समस्त कसौटियों को पुरुष ही तय करता आया है। स्त्री के प्रत्येक अंग यथा, कच, कुच, नितम्ब, अधर, नेत्र, कटि आदि कैसे होने चाहिए। स्त्री अपनी दृष्टि सौंदर्य के आधार पर अपना मूल्यांकन करना चाहेगी तो निश्चित रूप से वह अपने शारीरिक सौंदर्य के साथ गुणों को भी महत्त्वपूर्ण मानते हुए उन्हें सामने रखेगी। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि स्त्री के सौंदर्य का महत्त्व नहीं है। यहाँ समस्या सौंदर्य से नहीं, सौंदर्य के मानदण्डों से है। स्त्री सौंदर्य को आजतक पुरुषों की दृष्टि से देखा–समझा गया है। स्त्री सौंदर्य के सारे प्रतिमान पुरुषों ने गढ़ें हैं और समस्या यह है कि स्त्रियों ने अपने शरीर को स्वयं पुरुषों की दृष्टि से देखा है। वह उस दृष्टि के प्रति अनुकूलित हो चुकी है। पुरुष उसे उपयोग की वस्तु मानता आया है अतः स्त्री खुद भी देह को वस्तु ही मानती है और देह को सजाने–संवारने का उपक्रम करती आई है। राजमती भी यहाँ बीसलदेव के समक्ष अपने गुणों को उजागर नहीं करती अपितु अपने रूप–सौंदर्य ही का सहारा लेती है। किन्तु इन सारे उपक्रमों के बाद भी वह बीसलदेव के निर्णय से स्तब्ध रह जाती है। वह राजा से विनती भी करती है लेकिन बीसलदेव पर इस पश्चातापपूर्ण निवेदन का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। राजमती को बीसलदेव की धन–लोलुप प्रवृत्ति अच्छी नहीं लगती, वह इस बात से परिचित थी कि उसके पिता राजा भोज ने उसके विवाह में दहेजस्वरूप अनेक राज्य, गढ़ सोना–चांदी और हीरे–रत्न का भण्डार उसे अर्पित किया था लेकिन सारा धन–वैभव पाकर भी बीसलदेव संतुष्ट नहीं है।

n:l ekYkkfxj gom gk mNkgA jkt dqoj d¨ gom fookgAA
pUnu dkB dk ekMgkA lkuk dh pkjh] ekrh dh ekyAA
ibgyb Qjb jk; nMkbpkA vkyhlj lk nb dMkyAA[5]

वैभव व समृद्धि की चाह करना राजधर्म है एक राजा होने के नाते यह कार्य वीरोचित ढंग से होना चाहिए। बीसलदेव तो लोभ का संवरण कर राज्य छोड़ रहा है। उसे चिंता है कि यह बात जब दूर–दूर के राज्यों में प्रसारित होगी तो बीसलदेव की कितनी बदनामी होगी। उसका कुल कलंकित होगा साथ ही उसके पिता राजा भोज का भी अपमान होगा। दोनों कुलों के लाज का विचार कर राजा के हठ को रोकने के लिए वह पुनः उसे समझाने का प्रयत्न करती हुयी कहती है–

jfg jfg jko vkyxh r tkbA ekgjh xbyh r djg iBkbAA
tkbl ihgj vki.kbA vkf.kl vjFk ub njc HkMkjAA
vkf.kl ghjk ikFkjhA ekMo ljlhg vkf.k l /kkjAA[6]

आप एक राजा हैं, आपके लिए सेवक की तरह दूसरे राज्य में जाकर कार्य करना शोभा नहीं देगा। यदि आपको हीरे–रत्नादि आदि का भण्डार चाहिए तो आप मुझे जैसलमेर भेज दीजिए। मैं वहाँ से वैभवयुक्त राज्य लाकर आपको सौंप दूँगी। बीसलदेव अपने लोभ का त्याग नहीं कर पाता है। राजा के इस व्यवहार से राजमती अपने पति के प्रति उपेक्षा भाव से भर जाती है। वह सीता व नागमती की भाँति बीसलदेव के साथ प्रवास पर जाने का प्रयत्न भी करती है लेकिन बीसलदेव उसे साथ ले जाने से मना कर देता है। वह कहता है–

xfgYkh g] L=h r¨gb Nbl ok;A vL=h; Y¨ d¨bl mYkfx tkbl\
xfgYkh eU/kmr ckoYkhA pn D; dMb <kdk.km tkbA
jru fNik;¨ D; jgbl\ vkxg ckpk dh gh.k¨ Nb ijC;¨ jkbAA[7]

हे नारि! तू बड़ी भोली है, जैसे चाँद को कचरे से नहीं छुपाया जा सकता है, वैसे ही रत्न को भी कहीं नहीं छिपाया जा सकता है। तुम भी चाँद व रत्न के समान हो। पूरब के लोग बहुत हीन स्वभाव के हैं, मैं तुम्हारी रक्षा सभी के नजरों से किस भाँति कर सकूँगा। मैं वहाँ धन–संचय के लिए जा रहा हूँ। ऐसे में किसी स्त्री की जिम्मेदारी का निर्वहन मैं किस भाँति कर पाऊँगा। स्त्री होकर तुम्हारा वहाँ जाना

ठीक नहीं है। रामकथा में ऐसे प्रसंग में सीता के साथ जाने की याचना को राम बड़े धैर्यपूर्वक सुनते हैं व साथ लेकर जाते हैं लेकिन राजमती अपने पति के लिए उपेक्षिता है। बीसलदेव को पत्नी के दु:ख की कोई चिंता नहीं है। बीसलदेव के इस कटु व्यवहार से राजमती आक्रोशित हो जाती है, वह कहती है यदि स्वामी को पति–धर्म का पालन नहीं करना है तो मैं भी पत्नी–धर्म से विमुख होना चाहती हूँ।

e /k.kh! Fkkjh eYgh vkIA t¨x.kh g¨b Io cu ckIAA
db rki rig okjk.kIhA db tkb Òjo im.k iMkbAA
db iMo iFk Ip:A db tk; Iol xx&nokjAA[8]

राजमती को अपने पति की अनुपस्थिति में राजसी सुख, वैभव की कोई आकांक्षा नहीं है। वह योगिनी की भाँति जीवन व्यतीत करना चाहती है। वह रोषपूर्ण वाणी में कहती है, मैं वाराणसी में जाकर तप करूँ या भैरव का नाम लेकर पहाड़ से नीचे कूद जाऊँ (क्योंकि ऐसी मान्यता थी कि भैरव का नाम लेकर पहाड़ पर से कूद जाने से मोक्ष मिलेगा) या पांडवों के पथ का अनुसरण करते हुए हिमालय की ओर प्रस्थान करूँ। पति की अनुपस्थिति में एक स्त्री का राज–परिवार में रहना कठिन होगा। मैं लोगों के द्वारा कई अपयशों की भागी बनाई जाऊँगी। राजा के चले जाने के बाद उसका कलंक लोग मुझे देंगे। मैं ऐसा स्त्री जीवन जीने के पक्ष में नहीं हूँ। परिवार के विरुद्ध राजमहल छोड़ने का ऐसा साहस मीरा से भी पहले राजमती में दीखता है।

मैं कुलीन कन्या हूँ। शील सदाचार की श्रृंखला में बँधी हूँ। इसलिए चोर की भाँति इस यौवन की रक्षा कर रही हूँ। यहाँ राजमती की विवशता है कि वह एक कुलीन राजपरिवार से जुड़े होने के कारण अपनी इच्छा का दमन करती है। यौनिक शुचिता का निर्वहन केवल राजमती ही नहीं कर रही अपितु बीसलदेव की अन्य 60 रानियाँ भी कर रही हैं लेकिन वह राजमती की तरह मुखर नहीं है। वह कहती है, मैं जिस प्रकार अपने यौवन की रक्षा कर रही हूँ, इसका अपराध पग–पग पर तुम्हें लग रहा है। इस जन्म में तो तुम चाकर ही हुए लेकिन मुझे जो कष्ट तुम्हारे कारण हो रहा इससे तुम अगले जन्म में काले सर्प होंगे। विवाह के पश्चात राजमती का एक मात्र अवलंब उसका पति ही है। राजमती अभी संतानहीन है, इसका भी उसे बहुत क्षोभ है। एक स्त्री के लिए इससे बड़ा कष्ट क्या हो सकता है कि एक तो उसका यौवन बीतता चला जा रहा है, और दूसरा वह नि:सन्तान है। राजमती को भान है कि संतानहीन होना स्त्री का दोष नहीं है। वह लोगों की वंचना का पूर्वानुमान कर दुखी होती है। इसी क्रम में वह ईश्वर को भी उलाहनें देती है। उससे प्रश्न करती है–

vL=h; tue dkb nh;© g¨! egIA voj tue Fkkj ?kMk g¨ ujIAA
Ikug u fIjth gfj.kYkhA Ijg u fIjth /kh.k xkbAA
ou [kM dkYkh d¨bYkhA cbIrh vc db pi dh MkYkhAA[10]

राजमती बीसलदेव द्वारा परित्यक्त किये जाने से इतनी विचलित है कि वह अपने अस्तित्व को ही नकारती है। स्वयं के स्त्री होने का वह महेश को उलाहना देती है कि मुझे स्त्री का जन्म क्यूँ दिया? देने के लिए आपके पास और भी बहुतेरे जन्म थे। आपने मुझे जंगल का जंतु क्यों नहीं बनाया। धौरी गाय ही क्यों नहीं बनाया। यदि वनखंड की काली कोयल ही बनाया होता तो आम और चंपा की डाली पर तो बैठती, अंगूर और वीजोरी के फल तो खाती! स्त्री जन्म की अपनी विडम्बनाएं हैं, जिस कारण राजमती अपना विरोध मुखर स्वर में व्यक्त करती है। राजमती का यह कथन इस ओर भी संकेत करता है कि किन अपरिहार्य कारणों से स्त्री स्वयं के अस्तित्व पर ही प्रश्न करने को विवश है। छः सौ वर्ष के बाद भी स्त्री के अस्तित्व का यह प्रश्न अपनी पूर्वस्थिति में ज्यों का त्यों बना हुआ है। घर–परिवार व सामाजिक स्थितियाँ तब से लेकर आज के दशक तक ऐसे प्रश्नों के लिए कारक रहीं हैं। ''नारी के प्रति पुरुष–मात्र का दृष्टिकोण उस युग में (और आज भी) कैसा था वह 'अग्नि–परीक्षा' वाले प्रसंग में राम के व्यवहार द्वारा स्वयंभू ने भली–भाँति प्रकट कर दिया है। पुष्पकविमान पर चढ़ाकर सीता कोशलनगरी में लाई जाती हैं। उनके शुभागमन का एक ओर भव्य वातावरण और दूसरी ओर उस वातावरण में राम का ओछा व्यवहार! इस विरोध के द्वारा स्वयंभू ने प्रसंग को अत्यंत मार्मिक और प्रभावशाली बना दिया है। यह है सीता के शुभागमन का वातावरण–

ipDd&foek.¨ pfM; v.kjk,] ifjfe; foT tkgj&l?kk,
d¨'kYk&.k;fj ijkb; tkofg] fn.kef.k xm vRFk&o.kg¨rkofg
tRFkg¨ fi;;e.k f.k0okfl;] r moo.kg¨ eT> vkokfl;
dgfo fo?k.k Òk.k .kg mXxm] vfg&eg lTt.k&Yk¨m lekxm
fn..kb rjg exYk ?k¨flm] iÍ.k f.kjols l ifjv¨flm
lh; ibV.k f.koÎ ojkl.¨] lkl.k&no, t ft.k&lkl.¨
ijelfj i<e&lekxe Òfr f.kgkfYk; gYk&gj.k
fl;&iD[kg¨ fnol ifgYYk, pn&Y¨g .k lk;j.kAA**[11]

पति के द्वारा निर्वासित किये जाने पर सीता को राजमहल में जगह नहीं दी जाती। इतने दिनों के बाद भी वापस आने पर उनके साथ यह पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया जाता है। उपवन में उन्हें रात भर के लिए छोड़ दिया जाता है। पति राजमहल में और वह बाहर उपवन में आसमान के नीचे। इसमें उनका मात्र इतना ही दोष दिखाई देता है कि वह स्त्री थी। स्त्रियाँ उस काल में भी ऐसे व्यवहार के प्रति अनुकूलित हो चुकी थीं। राजमती स्थान–स्थान पर अपने कुल, अपने वर्ग के बेड़ियों की चर्चा करती है। एक राजा की स्त्री होना एक सामान्य स्त्री के जीवन से ज्यादा कठिन था। आम जनजीवन, श्रमिक वर्ग में साहचर्य की भावना राजपरिवार से कहीं ज्यादा विद्यमान होती है क्योंकि वहाँ सामूहिकता ज्यादा होती है। राजपरिवार की स्त्री के शील, सभ्यता का आवरण सामान्य स्त्री की तुलना में ज्यादा कठोर है। तभी राजमती कहती है–

v¨B.k Yk¨oMh dkVrh >kMA [¨r dekrh tkV T;AA
eb dkb flj th mfYkxk.kk ?kfj&ukfjAA[12]

यदि परमात्मा ने मुझे नारी ही बनाया तो राजा की रानी क्यों बनाया। मुझे राजा की रानी न बनाकर आंजनी (जाटनी) बनाते तो मैं अपने पति के साथ खेत में जाकर काम कर सकती थी। लोमपटी (एक प्रकार का वस्त्र) पहनकर भी हम प्रसन्न रहते। राजा के हृदय में जो लोभ है, उसका भुगतान उनकी स्त्री होने के नाते मुझे भी करना पड़ रहा है। वह सामान्य पुरुष की स्त्री होने में नहीं करना पड़ता। मैं अपने पति के साथ सुख–पूर्वक जीवन व्यतीत कर पाती। राजमती के इस कथन के सन्दर्भ में नामवर सिंह लिखते हैं–

''कितनी बड़ी विवशता! किसी राजा की रानी होना कितना बड़ा अभिशाप है। मुक्त जीवन की कितनी बड़ी लालसा राजमती के इस कथन में निहित हैं। मध्ययुग की किसी भी रानी में ऐसी उन्मुक्त आकांक्षा नहीं दिखाई पड़ती।''[13]

स्त्री के चरित्र की डोर उसके यश–अपयश का निर्णय किस भाँति पुरुष से जुड़ा होता है। यह राजमती की सखियों के कथन से पता चलता है। लाख प्रयत्न के बाद भी वह अपयश की भागी बना ही दी जाती है। उसकी सखियाँ कहती हैं–

ip l[kh cbBh Nb vkbA ^^fux.kh! x.k g¨b r¨ fÁo D; tkb\A
QYk ixj t xkg tbA[14]

बीसलदेव को जाने से रोकने में जब राजमती असफल होती है तो उसकी सखियाँ उसे ताना देने के स्वर में कहती हैं–अगर स्त्री गुणवती हो तो उसका पति उसे भला क्यों छोड़ कर जाए, स्त्री यदि चाहे तो वह अपने पति को आसानी से वश में रख सकती है। पुरुष तो फूल की भाँति है जिसे पगड़ी में हमेशा छुपाकर रखना चाहिए लेकिन राजमती तुम यह भी करने में असफल रही अर्थात् तुम्हारे में ही कोई दोष है। राजमती इस लांछन को स्वीकार नहीं करती यह सुनकर वह रोष से भर जाती है तथा अपने सखियों को उत्तर देती है–

Fkkjm vkpYk c/;¨ ukg d tkb\A ^^jkb ugÈ] l[kh! Òbl ihMkjAA[15]

पति को आँचल में भला किस भाँति बाँधा जा सकता है। मैंने पर्याप्त अनुनय–विनय करके राजा को समझाने का प्रयत्न किया लेकिन यदि स्वामी ही मूर्ख हो तो स्त्री का उस पर क्या वश हो सकता है। मैं तो अपने ओर से निर्दोष हूँ। मेरे पति राजा नहीं हैं, वह तो भैंस को चराने वाले एक महिपाल हैं।

उन्हें भैंसों की परख है, मेरे यौवन व श्रृंगार का मूल्य वह क्या जानेंगे। राजमती ऐसे अनेक स्थलों पर बीसलदेव के बुद्धि–विवेक पर प्रश्न करती है। वह राजा भोज की पुत्री है तथा आसाधारण ज्ञान वाली स्त्री है। बुद्धि कौशल तथा अनेक मामलों में बीसलदेव से आगे है, इसका परिचय वह बीसलदेव को प्रथम मिलन में ही देती है जहाँ वह बताती है–

> ijc nsl d ijC;k Yk¨dA iku QwYkk r.km r; Ykgb Ò¨xAA
> d.k lpb d;dl Ò[kbA vfr pr;jkbl jktk xB XokY¨jAA
> x¨jMh tslYkesj dhA Ò¨x¨ Yk¨d n{k.k d nslAA[16]

''पूरब देश के लोग बड़े कुत्सित होते हैं। उन्हें खाने के लिए पान और फूल भी नहीं मिलते हैं। वे इतने नीच विचार वाले लोभी होते हैं कि कण तो जमा करते हैं और स्वयं भूसी खाते हैं। ग्वालियर के लोग भी चतुर होते हैं। जैसलमेर की नारियाँ सुंदरी और कमनीय होती हैं तथा अजमेरगढ़ के पुरुष बड़े वीर–योद्धा व भले होते हैं। ऐसे कथनों से बीसलदेव को आगाह भी करना चाहती हैं कि उड़ीसा जाने से पूर्व वह सभी भौगोलिक स्थितियाँ व परेदश के लोगों के विषय में भलीभाँति जान ले फिर वहाँ जाने का यत्न करे।''

राजमती के ऐसे खरे वचनों से पूरा 'बीसलदेव रासो' भरा पड़ा है। मध्ययुग में राजमती वाकई अपने इन वचनों से पाठकों को आश्चर्य में डाल देती है। इक्कीसवीं सदी में भी ऐसी खरे जबान की स्त्री कम पाई जाती हैं। वह प्रायः अपने लोक–लाज की सीमा तोड़ नहीं पाती। राजमती बिना किसी भय के अपनी सारी बात कहती है। वह किसी भी आरोप का स्पष्ट शब्दों में निषेध करती है। नाल्ह ने अपने काव्य में राजमती का पात्र अनुकरणीय बनाया है, परवर्ती रचनाकारों की भी कोई भी नायिका राजमती के आस–पास दिखाई नहीं देती है। 'पउमचरिउ' की सीता 'पद्मावत' की नागमती, 'पृथ्वीराज रासो' की समस्त नायिकाएँ कोई भी राजमती के समान आत्मसम्मान के तेज से दीप्त नहीं है।

नाल्ह की इस रचना में उन्होंने जिस प्रकार देश–काल में वर्जनाओं को तोड़ते हुए एक स्त्री के मन में स्वातंत्र्य और उसके मनोभावों को जैसी अभिव्यक्ति दी है, इसका उदाहरण परवर्ती रचनाकारों के यहाँ नहीं मिलता है। नागमती के विरह–वर्णन में वह रतनसेन को याद करती है उसके आने की प्रतीक्षा करती है लेकिन वहाँ नागमती अपने यौवन अपने शरीर की चर्चा नहीं कर पाती। प्रेम में, विरह में देह की महत्ता को जिस प्रकार नाल्ह ने स्वीकार किया है वह अपने आप में विलक्षण है।

lUnÒ %

1. नामवर सिंह, हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2010, पृ0 234
2. सत्यजीवन वर्मा (संपा0), बीसलदेव रासो, काशी नागरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन, सातवाँ संस्करण संवत 2047, पृ0 75
3. वही, पृ0 80
4. वही, पृ0 28
5. वही, पृ0 16
6. वही, पृ0 28
7. वही, पृ0 34
8. वही, पृ0 36
9. वही, पृ0 75
10. वही, पृ0 57
11. नामवर सिंह, हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2010, पृ0 169
12. सत्यजीवन वर्मा (संपा0), बीसलदेव रासो, काशी नागरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन, सातवाँ संस्करण संवत 2047, पृ0 68
13. नामवर सिंह, हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2010, पृ0 233
14. सत्यजीवन वर्मा (संपा0), बीसलदेव रासो, काशी नागरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन, सातवाँ संस्करण संवत 2047, पृ0 30
15. वही, पृ0 30
16. वही, पृ0 27

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 127-130

Qkl % ithoknh vFk0;oLFkk vkj fdlku vkRegR;k

Lkt; dekj*

प्रेमचंदोत्तर युग के उपन्यासकारों में संजीव का विशिष्ट स्थान रहा है। कथाकार संजीव अन्वेषी लेखक के तरह किसानों की जिंदगी को आधार मानकर 'फांस' उपन्यास लिखा। उन्होंने अपने लेखन की शुरूआत 'किशनगढ के अहेरी (1981) उपन्यास से की थी फिर सर्कस (1984) से लेकर 'रह गई दिशाएँ इसी पार' 2013 तक लिखते रहें हैं। उनकी लेखन की सबसे बडी ताकत यह है कि किसी विषय पर वे मुकम्मल ढंग से लिखते हैं जिसमें हर विचार चिंतन और विषय को अलग से व्यक्त किया हैं। उन्होने अपनी रचनाओं में एक ऐसे लेखक की छवि गढी हैं जो अपने अंतर्वस्तु में दोहराव से बचता है। उन्होंने जिस विषय को आधार माना उसे एक ही साथ एक ही जगह पर पूर्णतः लिखने की कोशिश की है। महान् उपन्यासकार प्रेमचंद के बाद संजीव ने ही इस भूमंडलीकरण और बाजारवाद के युग में भरतीय किसान का यथार्थ को सबके सामने रखने की पुरजोर कोशिश की है।ख्यातिलब्ध कथाकार संजीव ने अपने समय और समाज के झंझावातों से जूझने के लिए कलम को अपना हथियार बनाया है।

'सावधान नीचे आग है' 'धार' 'पाँव तले की दूब' 'जंगल जहाँ शुरू होता है' जैसे उपन्यासों की रचना करने वाले संजीव आज साहित्य जगत में एक महत्वपूर्ण लेखक के रूप में सामने आते हैं। उनके लेखन का सरोकार संसार के सबसे कमजोर तबके के साथ जुडता है,साथ ही उनके साहित्य में भारतीय कृषक की करूण गाथा एवं उनकी गँवई समाज एवं कृषक संस्कृति का यथार्थ चित्र परिलक्षित होता है, जिसे भूमंडलीकरण और बाजारवाद के प्रभाव से अछूता नहीं समझा जा सकता। उपन्यसकार संजीव ने अपने उपन्यास 'फांस' के माध्यम से कृषक जीवन की दारूण स्थितियों पर प्रकाश डालते हुए वर्तमान कृषक समाज की सर्वाधिक गंभीर समस्या 'आत्महत्या' को पूरे संजीदगी के साथ उजागर किया है। एक लंबे समय के बाद सात्यि में किसानों की आत्महत्या को, उसके लिए देश की शासन व्यवस्था को संजीव ने पूरी ईमानदारी के साथ विश्लेषित किया है, साथ ही भूमंडलीकरण के इस युग में कृषकों की भयाभह परिस्थितियों के लिए जिम्मेदार कारणों पर प्रकाश डालते हुए इसकी गंभीर आलोचना प्रस्तुत की है।

भारत गाँवों का देश है, जहॉ की 75% आबादी गाँवों में निवास करती है। ग्रामीण समाज का आर्थिक आधार कषि एवं पशुधन है। आश्चर्य की बात यह है कि साहित्य में प्रेमचंद कृत 'गोदान' के बाद संजीव ने ही 'फांस' उपन्यास में कृषकों की समस्याओं का विश्लेषण करते हुए उन समस्याओं से निराकरण का प्रयास किया है। संजीव ने कष्षक समाज के उन सभी पहलुओं को भी देखने की पुरजोर कोशिश की है, जो साहित्य में लंबे समय से अछूता रहा है।

उपन्यास का आरंभ यवतमाल जिले के वनगाँव से होता है। पहाडी की ढलानों पर बसे इस गॉव के लोगों को कई तरह के मुसीबतों का सामना अनायास ही करना पडता है। बारिश का लाभ भी किसानों को नहीं मिल पाती और पानी पहाडों से रिस–रिसकर नीचे ढुलक जाता है। नीचे सवर्णों की बस्ती है और बारिश का पूरा लाभ ये सवर्ण जाति के लोग ही उठाते हैं। यह ठीक वैसा ही है, जैसा कि सरकार द्वारा कृषकों को दी जानेवाली सुविधाओं का आधे से ज्यादा हिस्सा उच्च्य पदों पर आसीन अधिकारियों एवं सवर्ण जातियों के खातें में जाता है।

उपन्यास के आरंभ में ही उपन्यासकार ने निम्नलिखित कथन के माध्यम से पूरे तंत्र पर सवालिया निशान खडा किया है– उपन्यास के शुरूआत में एक किसान शेतकरी के फाँसी लगा लेने की घटना

*शोधार्थी, हिन्दी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

वनगाँव में फैली। लेखक ने बताया है कि ''आज क्या घर, क्या मंदिर, क्या मस्जिद, क्या साहूकार की दुकान, सर्वत्र उसी की चर्चा है– ''कौन था, क्यों फाँसी लगायी .... ? अरे आदमी था भाई, शेतकरी दो–दो बार फसल मारी गई, कर्ज लिया, न दे पाया, मार लिया खुद को, सो वही लोग लाश को चीड–फाडकर 'अन्त्येष्टि' मनाकर भूलने लगेंगे।[1] एक ऐसा किसान जो जीते जी व्यवस्था का मार को प्रतिदिन झेल रहा है, वह आत्महत्या करते ही रातों–रात किसी फिल्मस्टार के तरह 'हाई लाइट' हो जाता है। आत्महत्या का एक बडा कारण 'कर्ज' है। भारतीय किसान का जीवन कर्ज में ही व्यतीत होता है उसी में जन्म लेना, जीना और फिर मर जाना। इस विडम्बनापूर्ण स्थिति के तत्व सामाजिक एवं आर्थिक संरचना में ही मौजूद होते हैं। हर साल न जाने कितने कृषक आत्महत्या करते हैं। नेशनल क्राईम रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) द्वारा प्रस्तुत आँकडों के अनुसार 1995 के बाद हमारे देश में अभी तक लगभग 10 लाख किसानों ने आत्महत्या की है।

यह सर्वविदित है कि पूरे देश का मेरूदण्ड कृषक है। किन्तु नगरीकरण की प्रवृति, पूँजीवादी सत्तातंत्र की विकास योजनाओं एवं औद्योगीकरण की प्रवषति से खासकर भूमंडलीकरण और बाजारवाद के प्रभाव से कृषकों का स्थिति में भूचाल–सा आ गया है। समकालीन परिवेश में यह विषय और ही ज्वलंत हो चुका है। देशी–विदेशी कंपनियों के लुभावने विज्ञापन के जाल में फंसा कृषक चतुर्दिक शोषण का शिकार हो रहा है। और ये कंपनियाँ उतना ही आपूर्ति करती है, जितना से इनकी ग्राहक बचा रहे। परिणामस्वरूप किसानों को आत्महत्या करनी पडती है।

उपन्यास के प्रमुख पात्र शिबू (शिवशंकर) की बडी बेटी 'सरस्वती' और छोटी बेटी 'कला' के संवाद से पता चलता है कि 'कॉरपोरेट' (बाजारवाद) भूमंडलीकरण किसानों की आत्महत्या के लिए जिम्मेदार है। आज का किसान अपनी नियति व प्रकृति दोनों से अपरिचित दिखते हैं। शिबू का परिवार प्रेमचंद कृत 'गोदान' का होरी का परिवार दोनों एक समान है। दोनों की पारिवारिक स्थितियाँ एक–सी लगती है। शिबू बताता है कि उसके पिता जाते–जाते भी कैसे–कैसे तो दो एकड खेत जोड गये थे। एक एकड ऊँचास पर ज्वार, कापूस (कपास) के लिए और एक निचास पर धान–गेहूँ के लिए दो बैल भी– लालू और माकडू। विडम्बना यह है कि शिबू खेती के लिए हल्या भैंसा का भी सहारा लेते हैं। एक दिन कीचड वाले खेत में 'लालू' गिरा फिर उठ न पाया। ऐसे में किसान किसानी छोडकर मजदूर बनते हैं या आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाते हैं। खुद शिबू की छोटी बेटी कहती है– ''तुम ही नहीं, इस देश के सौ में से चालीस शेतकरी आज ही खेती छोड दें, अगर उसके पास कोई दूसरा चारा हो। 80 लाख ने तो किसानी छोड़ भी दी।''[2]

सन् 1995 के बाद हुई आत्महत्याओं में सर्वाधिक महाराष्ट्र की है और उसमें भी कपास किसानों की सबसे अधिक है। पिछले कुछ वर्षों में लगभग एक करोड किसानों ने किसानी छोड इी है। पूरे विश्व में होनेवाले कपास उत्पादन का एक चौथाई भारत के हिस्से आता है, उल्लेखनीय है कि चीन दुनियॉ का सर्वाधिक कपास पैदा करने वाला देश है, चीन की तुलना में भारत बहुत कम कपास का उत्पादन करता है, जबकि जमीन (कृषि करने योग्य भूमि) अधिक है। वहाँ के कृषकों की अपेक्षा भारत के कष्षकों की स्थिति बहुत ही निम्नस्तरीय है। कम कपास उत्पादन और कृषकों की बदहाली से संबंधित भारतीय आँकडें चिंतनीय हैं। कारणों की पड़ताल करनी होगी कि इसी कपास की खेती करने वाला चीनी किसान लगातार समृद्ध होता जा रहा है और भारतीय किसान खासकर महाराष्ट्र के किसानों के लिए यही कपास फॉसी का फंदा बनता जा रहा है।

वर्तमान समय में देश में एक सांप्रदायिक हिंसा में लितने लोग मारे जाते हैं उससे कहीं ज्यादा कृषकों ने आत्महत्या कर ली है। किन्तु जितनी तीव्रता से सांप्रदायिक दंगों से हुई हिंसा केन्द्र में आ जाती है, उतनी ही तीव्रता से कृषकों की आत्महत्या को प्रकाश में नहीं लाया जाता। एक फिल्मस्टार से जुडी नई–नई खबरें अखवार, रेडियों, टेलीविजन, के माध्यम से प्रसारित होती रहती है। किन्तु बडी संख्या में हुए कृषक आत्महत्या की जानकारी किसी को नहीं होती और केन्द्र में बैठे सफेदपोश की छवि पर कोई आँच तक नहीं आती। उदाहरण के लिए निम्न उपन्यास की कुछ पंक्तियाँ निम्नवत है–

किसान, कवि की आत्महत्या कोई खबर नहीं बन पाती। खबर बनती है मुंबई से चल रही 'लेक्मी फैशन वीक' की प्रतियोगिता पाँच सौ बारह खबरिया चैनल जुटे हैं उसे कवर करने को। मात्र 512.....''

'कृषक आत्महत्या' एक बडी समस्या होते हुए भी ज्वलंत मुद्‌दा क्यों नहीं बनने पाता ? एक सशक्त को समूल खत्म करने के बजाय सिर्फ आर्थिक पैकेज के छलावे के सहारे इस समस्या को जिन्दा रखा जाता है। लेखक बताता है कि –''किसान के नाम पर अरबों रूपये लूटना है तो कृषक आत्महत्या, अपनी चीनी मिल लगााने का बहाना ढूँढना है तो कृषक आत्महत्या, ऐसा लगता है कि मानो कृषक आत्महत्या, भूमंडलीकरण और बाजारवाद के इस युग में एक फैशन–सा हो गया है। कृषक आत्महत्या की तो .... ।''[3] और इसी तरह से कृषि के विकास के लिए तथा कथित विकासवादी आर्थिक नीतियाँ भी चलती रहती है, जो कृषि विकास को लगातार हाशिए पर धकेलती जा रही है। आज के बाजारवादी परिवेश और महाजनी व्यवस्था के चंगुल में फँसे किसानों की आवाजें कहाँ दर्ज होती हैं, ऐसी स्थिति में जबकि पेट में भूख हो तो कृषक कोई भी अपराध कर सकता है तथा उसके अपराधों की सजा कठोर से कठोर होती है। इसी सजा का नाम है– ''आत्महत्या'' या यूँ कहें कि सत्तातंत्र द्वारा कराई जा रही हत्या।

आज भूमंडलीकरण और बाजारवाद के युग में किसानों की नियति को तथा उनसे जुडे ज्वलंत प्रश्नों को केन्द्र में रखकर लिखा गया प्रख्यात उपन्यासकार संजीव का नवीनत्तम् उपन्यास ''फांस'' किसानों का संपूर्ण जीवन की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पेचीदगियों की सूक्ष्म पड़ताल करता है। संजीव का यह उपन्यास सामाजिक संरचना की तमााम जटिलताओं के बीच खेतिहर किसानों की त्रासदीपूर्ण हकीकतों को परत–दर–परत भेदते हुए सभ्यता व विकास के नाम पर जारी नीतियों की समीक्षा करता है। किसानों का कर्षि–कार्य के लिए दिए जाने वाले बीज व खाद तथा अन्य सुविधाएँ शुरूआती दिनों में तो लाभान्वित करती है किन्तु दूसरे तीसरे प्रयोग के बाद उन कृषि–नीतियों के असली चेहरे बेनकाब होने लगते हैं। तब शुरू होता है एक आंदोलन और उसके फलस्वरूप छा जाती है एक नीरवता। लाखों किसानों की हत्या व आत्महत्या के बाद पूरा देश फिर से अपने उन्हीं कामों में शामिल हो जाता है। भूमंडलीकरण और बाजारवाद के इस युग की आँधी की दौड में योजनाएँ भी ऐसी बनती है, जिनका सीधा संबंध उच्च वर्गीय लोगों से ही होता है। कृषकों की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति किए बिना ही 'मेक इन इंडिया' व 'डिजिटल इंडिया' जैसे कार्यक्रमों का निर्माण तथा उनकी यथास्थिति को समझे बिना ही दिल्ली की AC में बैठकर गाँवों के कायाकल्प की योजना बनाने वाली हमारी सरकार का कच्चा चिट्‌ठा खोलने वाला 'फांस' अपने आप में एक अनूठा, अनुपम् व बेजोड उपन्यास है। उदाहरण देखिए – ''दिल्ली में ही बैठकर क्यो बना ली सरकारों ने हमारे गाँव के कायाकल्प की योजना? क्यों जगाये सपने, बीटी बीज की तरह बाँझ सपने ? मर गये लोग। हमसे पूछते, हम बताते, बड़े नहीं छोटे–छोटे सपने चाहिए हमारे गाँवों को। हवाई नहीं धरती के।''

एक ऐसी आशंका जो हमारे परिवारजनों के मृत्यु के बाद ठीक से शोक मनाने तक का अवसर नहीं देती, तुरंत शुरू हो जाती है नेताओं और दलालों की स्वार्थसिद्धि की प्रक्रिया, जिसे इस उपन्यास में घटित होने वाली हर आत्महत्या के बाद पसरे बेचैन ठंडेपन में महसूस किया जा सकता है। बैंक का कर्ज चुकाने में अपनी जिंदगी की पूरी कमाई लुटा देने के बाद प्रकृति व व्यवस्था की मार झेलते किसानों की आत्महत्या सिर्फ इसी आधार पर सरकारी दस्तावेजों में किसान–आत्महत्या के रूप में नहीं दर्ज होती कि उसके विरूद्ध कर्ज की कोई रकम बाँकी नहीं है। मृत्यु के बाद सारी उर्जा पात्र–अपात्र निर्धारण प्रक्रिया से जुडने में ही खर्च हो जाती है और आश्चर्य की बात यह है कि अम्बेडकरवादियों के गढ़ में माओवादियों की उपस्थिति के बावजूद कृषक आत्महत्याओं के गहरे मातम के साये में डांसवार चलते हैं और बड़े–बड़े नेता इस तरह की रंगीनियों का हिस्सा बनते हैं। एक आश्चर्य की बात यह भी है कि कभी कोई सवर्ण आत्महत्या नहीं करता। हमेशा समाज के हाशिये पर जीवन–यापन कर रहा दलित मजदूर शोषित समुदाय ही आत्महत्या करता है, जिनका अपना संपूर्ण जीवनकाल में एक मजदूर से अधिक कुछ भी नहीं रह पाता। वर्तमान पूँजीवादी दौर में विजय माल्या और नीरव मोदी जैसे लोग बैंक का कर्ज लेकर भाग जाते हैं और

हमारी सत्ता व्यवस्था किसानों और मजदूरों से उस कर्ज की भरपायी कराती है, और इसी की आपूर्ति के लिए सारी योजनाएँ बनाई जा रही है। इसका विश्लेषण भी 'फाँस' उपन्यास में बखूबी किया गया है।

भारत के महाराष्ट्र प्रान्त की कृषि समस्या कपास के साथ–साथ गन्ने की खेती से भी जुड़ी हुई है। गन्ने की खेती तो चीनी मिल मालिकों की आंतरिक उठा–पटक की भेंट चढ जाती है। इस उठा–पटक का विश्लेषण इस उपन्यास में विस्तार से किया गया है। संजीव ने यह बताने का प्रयास किया है कि असल राजनीति और उसका अर्थशास्त्र में समाज के कुछ वर्गों के हाथ में है, जो यह तय करता है कि रस्सी कब गले की टाई होगी और कब फाँसी का फंदा। यह सरासर लोकतांत्रिक मूल्यों में कमी और बाजारवाद तथा पूँजीवाद के सामाजिक व्यवहार में बढते हस्तक्षेप के कारण हुई है। किसानों की समस्याओं का हल निकालने की बात तो दूर उनकी उपलब्धियों को भी हथिया लेने में इन पूँजीपतियों को जरा भी संकोच नहीं। उपन्यासकार एक जगह कहता है– ''ये फिल्म वाले, ये धरम वाले, ये कॉरपोरेट वाले, ये विल्डर्स और दूसरे पैसे वाले सेठ देश की सारी लाभ देने वाली जमीन खरीद ही चुके हैं। आने वाले दिनों में खेती भी कॉरपोरेट घराने वाले करेंगे, किसान का नाम ही मिट जायेगा। ओले शायद हमें बख्श दें, टिड्डियाँ हमें बख्श दें मगर ये टिड्डियों से भी खतरनाक है। ये लोग कुछ भी नहीं छोडते।''[4]

किसानों की एक और समस्या समस्या उत्तम कोटि की बीज व सिंचाई व्यवस्था को उपन्यासकार संजीव ने उठाया है जिसमें उत्तम बीज व जल ये दो चीजें, कृषि–कार्य का महत्वपूर्ण उपयोगी वस्तुएँ हैं, जिससे कृषि–कार्य सुगम व सुंदर तरीके से किया जा सकता है। साथ ही इसे प्राथमिक आवश्यकता भी माना गया है। जबकि इसके नाम पर कृषकों को सिर्फ घोटाले ही मिले हैं। संजीव ने स्वदेशी बीज व स्वदेशी खाद के उपभोग पर भी बल दिया है, इतना ही नहीं, कृषि–कार्य की सुगमता के लिए सिंचाई व्यवस्था को भी उत्तम माना है। कर्ज देने वाली एजेंसियों को बेनकाब करते हुए उसे पूरी तरह से खारिज कर दिया है एवं इनकी जगह कृषक सहकारिता पर जोर दिया है। 'मन्थन' जैसे संगठन की स्थापना के द्वारा किसान आत्महत्या को रोकने के लिए साहित्य एवं प्रचार सामग्री पर विशेष जोर दिया है, ताकि कृषकों का आत्मबल बढ़े और वह समस्या से रू–ब–रू हो सके। सरकार द्वारा क्रियान्वित की गई योजनाओं को लागू किया जाय वो भी हवा–हवाई नहीं, जुम्लेबाजी और बातों में नहीं, ठोस रूप में जमीन पर। साथ ही भारतीय लोकतंत्र में उनके लिए भी कुछ विशेष नियम बनाये जाये, जिससे वे अपनी कृषक जीवन को बखूबी निभा सके, वह भी पूरे निर्भरता व उल्लासमय तरीके से।

स्पष्ट है कि आज के पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के दौर में किसान एक कठपुतली मात्र बनकर रह गया है जो कभी प्रकृति का तो कभी राजनेताओं का तो कभी बिचौलियों का दंश झेलते–झेलते अपनी भाग्य का फैसला स्वंय कर बैठता है और आत्महत्या के लिए मजबूर हो जाता है। शासन, प्रशासन और सत्तातंत्र अपनी फायदे के लिए तमाम तरह की राहत का मरहम पट्टी लगाना चाहता है जो किसानों के लिए दिवास्वप्न बनकर रह जाता है।

lUnHk %

1. फाँस, संजीव, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, प्रथम संस्करण 2015, नई दिल्ली, पृ0 14
2. वही, 17
3. वही, 53
4. वही, 203

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 131-136

MkW0 foosdh jk; % euck/k ekLVj dh Mk;jh ds cgkus ,d eY;kadu

MkW0 lquhrk ;kno*

कालचक्र का प्रवाह निरन्तर गतिशील रहा है कालचक्र के इस परिवर्तन के साथ साहित्य में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। हिन्दी साहित्य का उद्‌भव काव्य से होता है लेकिन कविता का भाव एवं भाषा को समझना लोक जन के लिए दुरूह था। हिन्दी साहित्य की यह अविरल परम्परा रीतिकाल तक चलती है। जनमानस के भावों एवं विचारों को सही मायने में समझना या समझाना गद्य में ही सम्भव हुआ जिसका विकास आधुनिक काल में होता है। भारतेन्दु जी हिन्दी गद्य के जन्मदाता हैं जिन्होंने गद्य की सभी अर्वाचीन विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई। निबन्ध भी आधुनिक काल की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। इसमें कठिन नियम की आवश्यकता नहीं होती है। विचारों का क्रम आवश्यक है। निबन्ध लेखन परिष्कृत मस्तिक की देन है। निबन्ध आकार से लघु या दीर्घ हो सकते हैं, विषय का बन्धन नहीं होता है। निबन्ध लिखने के लिए निबन्धकार को विभिन्न परिवेशों, सामाजिक स्थितियों , सामयिक स्थितियों से परिचित होना अनिवार्य होता है।

हिन्दी साहित्य में निबन्ध विधा का प्रारम्भ पाश्चात्य प्रभाव से होता है। हिन्दी निबन्ध की शुरूआत भारतेन्दु युग से माना जाता है। इस काल में निबन्धों में वैयक्तिकता के साथ सामाजिकता भी रही है। साथ ही साथ युगीन चेतना भी प्रतिबिम्बित है। बाद में द्विवेदी युग के निबन्धों में विचारों की प्रधानता और गम्भीरता रही है। इन निबन्धों में ज्ञान की संचयात्मकता और उपदेशात्मकता अधिक रही है। इसकी अपेक्षा भारतेन्दु युगीन निबन्धों में पर्याप्त मौलिकता रही है। शुक्ल युग के निबन्धों में विषय और व्यक्ति का समन्वय रहा है। वैयक्तिकता और भावात्मकता एवं व्यंग्यात्मकता के दर्शन भी स्थान–स्थान पर होते हैं। इस युग के निबन्धों में विषय वैविध्य, गम्भीरता, सूक्ष्मता, भाषा की प्रौढ़ता, सरसता, शैली की विशिष्टता की दृष्टि से इस युग के निबन्ध सर्वोत्कृष्ट है। शुक्लोत्तर युग में निबन्ध अनेक दृष्टिकोण से विकसित है। इस युग के निबन्धों में रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज, डायरी आदि विधाएँ भी सम्मिलित कर दी गई। साथ ही ललित निबन्धों में कल्पनाशीलता, भावप्रवणता , ज्ञान और पांडित्य प्रचुर मात्रा में दिखाई देता है। जिसको हजारी प्रसाद द्विवेदी , विद्यानिवास मिश्र, कुवेरनाथ राय, कृष्णनाथ, विवेकी राय आदि रचनाकारों ने हिन्दी ललित निबन्ध को विकसित किया है। इस परम्परा के निबन्धों के सम्बन्ध में विवेकी राय ने लिखा है, ''स्वातंत्र्योत्तर काल के सर्जनात्मक भाषा शिल्प और स्वतंत्र साहित्यिक प्रतिमान से जुड़ी हिन्दी ललित निबन्ध की रेखाचित्र, संस्मरण, व्यंग्य और रिपोर्ताज आदि विविध आधुनिक उपविधाओं में सम्प्रति संतोषजनक कलागत प्रौढ़ता लक्षित हो रही है। इनमें विद्रोह, संघर्ष, मोहभंग, विसंगतियाँ, टूटन, विघटन, मुखौटाबाद और अवसरवाद के साथ प्रजातांत्रिक अपेक्षाओं का स्वर भी आत्मीयता के साथ मुखरित होता चलता है।''[1] इस प्रकार ललित निबन्ध में लेखक खरी और कटु बातों को भी हास्य और व्यंग्य शैली में इस तरह कहता है कि पाठक हँसता तो है पर उसके मन में सामाजिक बुराइयों के प्रति घृणा भी उत्पन्न होती है। लेखक अपने विनोदी स्वभाव को व्यंग्यात्मक और चुटीली उक्तियों में अथवा तदनुरूप परिस्थितियों के चित्रण में प्रदर्शित करता है। सामाजिक बुराइयों पर चोट करता हुआ भी लेखक उपदेशात्मक पद्धति नहीं अपनाता। अपने विषय में लिखे गये निबन्ध व्यक्तित्व का सम्यक प्रकाशन सहज

*प्रवक्ता, हिन्दी, राजकीय बालिका इण्टर कॉलेज, लालगंज

ही होता है। अपने जीवन की घटनाओं का वर्णन भी कथा का रूप ग्रहण कर लेता है। किन्तु अपने जीवन का कोरा ऐतिहासिक वृत्त––वर्णन शुद्ध ललित निबन्ध नहीं कहलाता है। उसमें भावात्मकता और शैलीगत सौन्दर्य होने पर ही उसे शुद्ध ललित निबन्ध की संज्ञा से पारिभाषित किया जा सकता है।

इन निबन्धकारों ने लोकजीवन और लोक संस्कृति का चित्रण करते हुए लोक जीवन और वैचारिकता तथा अभिव्यंजना को प्रखर और ललित बनाया। इस परम्परा में विवेकी राय अग्रणी रहे हैं। वे मानते हैं कि ''उनका निबन्धकार कथाकार का पूरक है। गाँव से जुड़ी विसंगतियों की पीड़ा जब हल्की होती है तो वह निबन्धों या कहानियों को जन्म देती हैं।''[2] 'फिर बैतलवा डाल', 'नया गाँवनामा, 'मनबोध मास्टर की डायरी', ' यह आम रास्ता नहीं है', जगत तपोवन से कियो' आदि श्री राय के ललित निबन्ध –संकलन हैं। इनमें संकलित निबन्ध निश्चय ही आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कुबेरनाथ राय, विद्या निवास मिश्र आदि के ललित निबन्धों से पष्थक और स्वतंत्र पहचान बनाने में समर्थ डॉ0 राय के ललित निबन्धों में शाश्वत प्रश्नों से उलझने का उत्साह कम है अपने परिवेश की 'ठेठ' समस्याओं से टकराने का साहस अधिक मुखर है। विवेकी राय ग्रामीण जीवन के शिप्लकार रहे हैं वास्तव में उनकी पहचान विशेषकर ललित निबन्धकार के रूप में अधिक उभरकर आती है। उन्होंने स्वात्रंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन की बदलती सामयिकता की पहचान को शब्द चित्रमूलक विशिष्ट असरदार शिल्प में बाँधा है। उनके निबन्धों में अपने जनपद की महक , लोक जीवन की संगीत, संघर्ष सब एक साथ विद्यमान है। लेखक का उसके परिवेश से प्रभावित होना लाजिमी है। गाँव में ही जन्मे, पले बढ़े और गाँव में ही उनको शिक्षा प्राप्त होने के साथ ही गाँव के प्राइमरी स्कूल में मास्टरी करने के कारण जीवन का ज्यादा समय गाँव में ही बीता है। इसलिए उनके सम्पूर्ण रचना के केन्द्र में गाँव है। ग्राम्य जीवन के विविध पक्षों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक दृष्टियों से आये उतार चढ़ावों को मानव जीवन की विविध परिस्थितियों को बड़ी सजीवता, सहजता व नवीनता के साथ उद्घाटित किया है। श्री राय ने सर्वथा ग्रामीण जीवन के अपने अनुभवों को आधार बनाकर सष्जन कर्म किया है, '' समग्र रूप में मेरे लेखन की पृष्ठभूमि ग्राम जीवन है। वास्तव में वही मेरा जीवन भी है।''[3] इस प्रकार उनके निबन्धों में गाँव की वह विरल गन्ध है जिसकी पहचान अब क्रमशः दुर्लभ होती जा रही है। उनका विश्वास है कि जब तक लोक कलाएं, लोक पर्व मेले, ठेले, लोकगीत आदि जीवित रहेंगें तब तक गाँव नहीं मरेगा। उन्होंने ग्राम जीवन की कतिपय असंगतियों के लिए गाँव के सामाजिक परिवेश में वैयक्तिकता और अहं केन्द्रीयता के प्रसार को भी उत्तरदायी माना है।

उनके निबन्धों में ग्राम जीवन से सम्बन्धित सभी कोणों के साथ, परिवर्तन , मूल्यसंक्रमण , नये आर्थिक कार्यक्रम, आधुनिकता, नागरीकरण आदि के प्रभावों ने समाज और व्यक्ति की सांस्कृतिक चेतना को बहुत झकझोरा है तथा बाहर–भीतर के जटिल टकराव की स्थिति को उभारा है। उसमें धरती से जुड़े लोक–जीवन के अंतरंग भावोद्वेग, लहराती आसमानी संवेदनाएँ और विविध अन्तर्विरोध के पारहीन सिलसिले हैं अपने कथ्य को व्यंजित करने के लिए अपने निबन्धों में पात्रों और स्थितियों को इस ढंग से प्रस्तुत है किया है कि उनकी उपस्थिति मात्र से आधुनिक सभ्यता का सारा खोखलापन नग्न रूप में मूर्त हो उठता है। उनके पात्र शासन तंत्र और व्यवस्था के सारे दावों और घोषणाओं के सामने प्रश्न बनकर खड़े हो जाते हैं विवेकी राय के अब तक कुल तेरह निबन्ध संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इन सभी निबन्ध संग्रहों में 'मनबोध मास्टर की डायरी' लेखक की सर्जनात्क शक्ति का उल्लेखनीय परिचायक है। इसके निबन्धों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि निबन्धकार की दृष्टि ग्राम्य जीवन के बदलते जीवन मूल्यों एवं परिवर्तित सामाजिक भावनाओं की ओर विशेष रूप से लगी हुई है। आत्मकथात्मक शैली के डायरी के लेखन में तत्कालीन ग्रामीण परिवेश, शिक्षा व्यवस्था और सामाजिक विसंगतियों का जैसे दस्तावेज प्रस्तुत किया हो। मास्टर की डायरी वेदना, दुःख, दुर्गति और आख्यानों के कारण एक ओर तो वह अपने समय के ग्राम्य भारत की सामयिक चिन्ताओं को चिन्हित करने के कारण आंचलिक पत्रकारिता की कोटि में आती है और दूसरी ओर वह सामयिकता अथवा समकालीनता के ऊपर उठकर सार्वकालिक साहित्यिक सृजन के रूप में प्रस्तुत तथा प्रशंसनीय हुई। उसके भीतर फीचर रिपोर्ताज ही नहीं, कहानी, ललित

निबन्ध , रेखाचित्र, संस्मरण, हास्य–व्यंग्य और यात्रावृत्त आदि गद्य की सशक्त विधाओं का समावेश है। एक लेखक के रूप में विवेकी राय की उक्त उपलब्धि व्यक्तिगत होते हुए भी ध्यानाकर्षक है, डायरियों का प्रकाशन प्रति सप्ताह होता था और नियमित रूप से स्तरीय रचना उपलब्ध करानी पड़ती थी। इससे लेखन का एक गहरा संस्कार बना। इसके विषय में लेखक ने अपने एक महत्वपूर्ण निबन्ध 'मेरा लेखक' में बहुत ध्यानाकर्षक रूप से संकेत दिया है, ''सन् 1957 के बाद बारह–चौदह वर्षों तक जमकर अपने इर्द–गिर्द के धरती पुत्रों को अपने , अपने भदेस को अपने एक विशेष नियमित लेखन (मनबोध मास्टर की डायरी) में उतारता रहा । उन दिनों मैं गाँव के पास एक इण्टर कॉलेज में प्राध्यापक का कार्य किया करता था। गाँवों और खेतों के रास्ते साइकिल से वहाँ जाने में एक घण्टा लगता था। यह एक घण्टा मेरे लिए बहुत महत्वपूर्ण होता था। साल के अधिकांश दिनों में पैदल का ही रास्ता होता था, विशेषकर बरसात में। इस घर से विद्यालय तक की यात्रा में बहुत कुछ अनुभव होता (चिन्तन भी) और वह अवकाश वाले रविवार के दिन चारपाई डालकर लिखा जाता। उन दिनों एक रचना एक सिलसिले में पूरी हो जाती थी। बीच–बीच में एक–दो बार कई बार व्यवधान होता तो भी रचना पूरी हो जाती। एक विचित्र प्रकार का अनुभव होता कि एक सम्पूर्ण रचना एक बार में ही मन के भीतर बादल की भाँति छा जाती और वह कागज पर पूरा–पूरा बरस कर ही रहती। ऐसा भी नहीं कि लिखते समय ही यह ज्ञात हो जाता है कि अन्त कैसे होगा या भीतर कौन–कौन से दृश्य या घटनाक्रम आयेंगें। सब कुछ भीतर ही निर्विकल्प ज्ञान की भाँति स्थित रहता और एक झोंके की भाँति आता। ऐसा भी लगता कि भीतर सही–सटीक रचना की पहचान का एक पैमाना है। साथ ही सम्पूर्ण रूप से उपयुक्त अन्त वाला कोई एक बिन्दु है। रचना में यह पैमाना और यह बिन्दु जब तक पकड़ में आकर नहीं बैठता तब तक रचना के साथ संघर्ष चलता और अन्त में वह तृप्तिदायक स्थिति आती तो रचनाकार को कितना हार्दिक आह्लाद होता, कहा नहीं जा सकता। बहुत कम स्थितियाँ ऐसी आती कि दुबारा लिखना पड़ता अथवा पृथक साफ करना पड़ता। प्रायः वह प्रथम बार में ही प्रेस कापी तैयार हो जाती। इस प्रकार नियमित और साप्ताहिक स्तम्भ 'मनबोध मास्टर की डायरी' का लेखन चलता था। रविवार यदि फँस जाता तो सोमवार को अवकाश लेकर यह कार्य पूर्ण होता। उस बारह–चौदह वर्षों के लेखन ने मेरी रचना प्रक्रिया को बहुत प्रभावित किया जो बाधाओं से खण्डित नहीं होती। यदि ऐसा नहीं होता तो मेरे जैसा परिवार और परिस्थितियों मे उलझा आदमी कुछ भी लिख पाता।'' इतना लम्बा उद्धरण होते हुए भी इसे इसलिए उद्धृत करना पड़ा कि बिना इसके 'मनबोध मास्टर की डायरी' की रचना स्थिति को ठीक से नहीं समझा जा सकता। 'मनबोध मास्टर की डायरी' की उक्त सृजन प्रक्रिया बहुत ही मर्मस्पर्शी है। इसमें रचनाकार ने अपने देखे –भोगे सत्य को डायरियों में उतारा है। गाँव के रास्ते से होता, एक गाँव से दूसरे गाँव स्थित कॉलेज तक जाता कच्चा रास्ता, मिलते–जुलते गाँव के लोग, देखी सुनी जाती गाँव की स्थितियों और ये सारे चिन्तन –अनुभव में उतरते प्रमाणिक विषय डायरियों के पन्नों में गद्य की विविध विधाओं विशेषकर ललित निबन्ध के रूप में उतरती थी।

''विवेकी राय की मूल चिन्ता ग्राम्य जीवन और सम्बन्धित मूल्य है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गाँवों की बदलती स्थिति एवं तदनुसार बदलते भाव, विचार की चिन्ता इस निबन्धों में अभिव्यक्त हुई। परम्परा से भारतीय गाँव जीवन की अपनी एक स्वयंपूर्ण व्यवस्था थी जिससे गाँव अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताएं पूर्ण करने में सक्षम था। गाँवों में भाईचारे की भावना, एकता और सौहार्द्रता थी। अंग्रेजी सत्ता के विस्तार के परिणाम स्वरूप धीरे–धीरे व्यवस्था खोखली बनती गई। ग्रामीण कुटीर उद्योगों पर सबसे बड़ा आघात हुआ, जिससे गाँव की अर्थव्यवस्था चरमरा उठी। स्वतंत्रता के बाद विकास योजनाओं के परिणाम स्वरूप कृषि–औद्योगीकरण का सिलसिला शुरू हुआ। कल कारखानों के कारण गाँव के लोग शहरों की ओर भागने लगे जिससे संयुक्त परिवार टूटने लगे। आजाादी के बाद ग्राम जीवन को प्रभावित और परिवर्तित करने वाले नये–नये आयाम खुलते गए। लोगों की मानसिकता बदलती गई। राजनीति और आर्थिक क्षेत्र में ग्राम जीवन की उपेक्षा होने लगी। 'मास्टरों की मौज' निबन्ध में राजनैतिक कुप्रभाव के कारण बिगड़ते हुए, संघर्ष का अखाड़ा बनते जा रहे गाँवों की चिन्ता व्यक्त की गई है। इससे बैरभाव, ईर्ष्या, तिकड़मी गाँव में बढ़ती गई और भाईचारा समाप्त होता जा रहा है, अनेक दल और गुट बन रहे हैं। इस स्थिति

को लेखक ने व्यक्त करते हुए कहा है,'' बाहर से बातचीत होती है पर भीतर के पैंतरे अजीब हैं। चोरी में सरदारी में और रखवाली में पार्टी बन्दी। एक दूसरे के दरवाजे पर जाने में भी हेठी ? अब तो इन्सान के चेहरों में जानवरों और जन्तुओं का आभास मिलने लगा है।''[5]

'अवकाश के दिन' निबन्ध में नौकरी के बहाने बाहर जाकर बीस–पच्चीस वर्षों बाद अवकाश प्राप्त करके लौटने वाले गाँव शिक्षितों की स्थिति को स्पष्ट किया गया है। उनके स्मृति पटल पर पुराना माहौल रहता है। इतने वर्षों के अन्तराल में ग्रामीण जीवन में आये हुए परिवर्तन, संकुचित मनोवषत्ति को देखकर बेचैन हो जाते हैं, इसी कसक को व्यक्त करते हुए अवकाश प्राप्त एक व्यक्ति कहता है गाँव में ''कहीं ऐसा स्थान नहीं जहाँ जाकर दो घड़ी बैठूँ। कोई ऐसा आदमी नहीं जिससे खुले मन से दो बातें हों। पूरी उदासी, बीहड़ सुनसान, गहरी मनहूसी और दमघोंटू एकांत।''[6] 'गँवई जनजीवन की स्थिति विचित्र–सी बन गयी है, गाँव के एम0एल0ए0 शहर में रहकर गाँवों का कारोबार चलाते हैं, जमींदार का बेटा आवश्यकता न होते हुए भी नौकरी के लिए शहर जाता है, किसान अपने काम में लीन रहते हैं, ऐसी स्थिति में अवकाश प्राप्त व्यक्ति को गाँव में रहना मुश्किल हो जाता है। इस निबन्ध में अवकाश प्राप्त मास्टर जी का गाँव के पंडित के पास जाना, पंडित जी द्वारा उनके मुकदमे की कहानी उन्हें सुनाना, मास्टर जी का सभापति के यहाँ जाना, वहाँ बैठे दो–तीन आदमी द्वारा चकबन्दी में हड़प की गई जमीन के लिए न्याय माँगने की चर्चा करते हुए दिखाई देना, वहाँ से मास्टर जी का मठ में जाना, मठ के महंतों का गाँजे की चिलम फूँकते देखना, गाँव के अन्य लोगों का कोर्ट कचहरी की झंझटों में उलझना, घरेलू मामलों में उनका अटकना, गाँव के नेता द्वारा वोट जुटाने की तिकड़मी में पड़ना, गाँव के कमजोर लोगों की जमीन हड़पना, अध्यापकों का गाँव की पार्टियों में जुटे रहना, मास्टरों का भैंस की सेवा में लगे रहना आदि घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत निबन्ध में क, ख, ग, घ, च , छ आदि व्यक्तियों द्वारा लेखक ने ग्रामीण जीवन की आन्तरिक पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। स्पष्ट है कि इस स्थिति में गाँव वालों के पास किसी से बात करने या सुख–दुःख की चर्चा करने के लिए समय नहीं मिलता है।

आजादी के बाद मोहभंग की स्थितियों ने भारतीय जीवन को अत्यन्त जटिल कर दिया। नई नीति और वैज्ञानिक उपलब्धियों ने मनुष्य को एकाकी बना दिया। इस समाज बनाम भीड़ से कटी वैयक्तिक चेतना की स्थिति ने पाखण्डपूर्ण मुखौटावादी स्वरूप को स्पष्ट किया । नए विकास के साथ नगर सम्पर्क और नागरीकरण की स्थितियाँ जैसे–जैसे बढ़ती गई वैसे–वैसे गाँव का सामाजिक ढाँचा परिवर्तित होता गया। नगर की चपेट में सर्वप्रथम गाँव की परम्परागत समाज संरचना ध्वस्त हुई और चतुर्मुखी टूटन के आयाम उभरते गए। परिस्थितियों के दबाव से नए मूल्य भी रेखांकित होते गये। गाँव अपने 'समूह भाव' से ढलता गया और एकाकीपन की ओर झुकता गया। डॉ0 विवेक राय के अनुसार, '' धर्म के स्थान पर अर्थ, भाईचारा के स्थान पर पार्टीबन्दी और प्रतिष्ठा के नाम नंगई आदि के भाव गाँव के नए समाजबोध के रूप में उभरे हैं। आर्थिक विकास, उद्योग और यंत्र प्रसार होने से सुरक्षित मानवीय मूल्यों का भविष्य अंधकाराछन्न हो जाना सम्भावित प्रतीत होता है।''[7] स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में इन नव परिवर्तित स्थितियों और नए सामाजिक मूल्यों को विवेकी राय ने अपने निबन्धों में अत्यन्त समर्थता के साथ चित्रित करते हुए पुराने स्वस्थ, शान्त, एकता प्रिय, ग्राम जीवन के मूल्यों के प्रति आस्था दिखाते हैं। 'सत्यनारायण की पूजा' निबन्ध में भारतीय ग्रामीण जन–जीवन में सत्यनारायण की पूजा का विशेष महत्व स्पष्ट करते हुए आज इसमें आ रही उदासीनता को मूल्यसंक्रमण के रूप में चित्रित किया गया है। इस पूजन कार्य से ग्रामवासी सुख, आनन्द और अभिलाषा की पूर्ति का अनुभव करते हैं, सदाचरण, श्रद्धाभाव, विवेक, नये मांगलिक कार्य की अपेक्षा रखते हैं, परन्तु आज पूजा के समय उदासीनता, निरूत्साह, अविश्वास दिखाया जाता है, यह मूल्य संक्रमण का ही परिणाम है,'' हम ठीक तुंग ध्वज की तरह आज सब कुछ खोकर हाय–हाय नहीं कर रहे हैं? सत्य के अपमान का और नारायण को ठुकराने का अभिशाप क्या हमारे सामने नहीं है? हमारा जीवन टूट गया है। हम खुलकर हँसते नहीं। सुख–शान्ति का पता नहीं। दुर्भाग्य, अविश्वास, भूख , छल और मृत्यु की गरम शलाकाओं से तन–मन छन–छना रहे हैं।''[8] इस प्रकार मूल्य संक्रमण का परिणाम है हम स्थिति ने मनुष्य को आत्मकेन्द्रित बनाकर पूरे ग्रामीण समाज को खोखला

बना दिया है। जीवन के पुराने मूल्य ध्वस्त होने से गाँव की पुरानी आत्मा मर चुकी है। ग्रामीण जीवन की सांस्कृतिक, पारिवारिक, धार्मिक धरोहर मूल्य संक्रमण के कारण डाँवाडोल हो रही है। गँवई जीवन हर मोड़ पर परिवर्तित हो रहा है जो ग्रामीण जीवन के लिए घातक सिद्ध हो रहा है।।

नये समाज की संरचना मे ं गाँव अब बृहत्तर भारतीय समाज का एक अंग बनकर विकसित हो रहे हैं। इस विकास के साथ–साथ ग्रामीण जीवन में लड़ाई –झगड़े और बैर–विरोध का विषाक्त अखाड़ा आज के गाँव का श्रृंगार बन रहा है। आज गाँवों में तो बिजली पहुँची परन्तु अव्यवस्था का अन्धकार बढ़ गया। सड़कों ने गाँवों को नगरों से जोड़ना शुरू किया परन्तु इससे ग्रामवासियों के जीवन में मंगल घड़ियाँ नहीं आयीं। नई कृषि व्यवसाय ने गाँवों के भाग्यवाद को चुनौती दी मगर आन्तरिक स्तर पर ग्रामीणों द्वारा इसे स्वीकारा नहीं जा रहा है। आज गँवई जीवन की परम्परायें खण्डित होने लगी हैं, दिन भर ताश–चौसर में मशगूल गाँव के निठल्ले लोग कामकाज में जुड़ गए हैं, ग्रामीण जीवन में आए बदलावों के कारण ग्राम मानस में तनाव बढ़ता गया। ग्राम जीवन की इन सभी स्थितियों को विवेकी राय ने अपने निबन्धों में सम्मिलित करने का प्रयास किया है। डॉ0 वाय0बी0 धुमाल के मतानुसार, '' सातवें–आठवें दशक का ग्राम जीवन अपने पूर्व जीवन से काफी बदला हुआ नजर आता है। कृषि का औद्योगीकरण, ग्रामों का शहरीकरण जिसके परिणाम स्वरूप उनकी विकृतियाँ भी गाँव और कस्बे के जीवन में घर कर गई हैं।''[9] यही तथ्य विवेकी राय के निबन्धों में देखने को मिलता है। ' कोई एक आहट' निबन्ध में आधुनिकता के कारण सभी क्षेत्रों में विकसित नए रूप, परिवर्तन आदि से परम्परागत धारणाओं में अनेक बार टकराहट उत्पन्न हो रही है। विकास के साथ ग्राम जीवन में अनेक समस्याएँ उभर रही हैं, अशांति फैल रही है। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए लेखक ने अभिव्यक्त किया है, '' पता चले चाहे न चले पर यह आँधी, यह जमाने की रफ्तार एक –एक चीज को घिस रही है। चिकना और चमकदार कर रही है अथवा नष्ट कर रही है। यही बेचैनी है। यही छटपटाहट है। ही दुःख है। यही संघर्ष है। यही विकास है। यही अशान्ति है। यही द्वन्द्व है। यही परेशानी का कारण है। भीतर ही भीतर उबल रहा हूँ, जल रहा हूँ पर कुछ हाथ आता नहीं।''[10] परिवर्तन की आँधी ने ग्रामीण जन–जीवन में अशान्ति और द्वन्द्व का निर्माण किया है। यही गँवई जीवन का अंतरंग उद्वेग है।

भारतीय संस्कृति मूलतः कृषि संस्कृति है, जिसकी पृष्ठभूमि सनातन ग्राम जीवन है। संस्कृति का सम्बन्ध ईश्वर, धर्म, अध्यात्मक, नैतिकता आदि से। संस्कृति नई वैज्ञानिक, भौतिकवादी उपलब्धियों की उपस्थिति में अब पुराकाल सी प्रेरणा उत्तेजना प्रदान करने वाली नहीं रही। व्यक्ति के जीवन में आमूल–चूल परिवर्तित हो गया है। यदि संस्कृति का स्रोत ग्राम जीवन है, तो सभ्यता का स्रोत नागर जीवन है। विज्ञान के वैभव व वरदान से गरिमाशाली प्रसारशील नगर गाँवों पर तीव्र गति से छाटे चले जा रहे हैं और उनकी चपेट में ग्राम टूटते जा रहे हैं। सांस्कृतिक अवमूल्यन के नये आयाम गाँवों के नागरीकरण के परिप्रेक्ष्य में उद्घाटित हो रहे हैं। अविकसित ग्राम इकाइयों में जहाँ आधुनिकता का प्रकाश नहीं पहुँचा है अथवा अर्द्धशिक्षित गाँवों में जहाँ पुरातनता के संस्कार पूर्णतः धुल नहीं गए हैं वहाँ प्राचीन भारतीय संस्कृति के दर्शन होते हैं आधुनिकता और यांत्रिक जीवन के प्रभाव के बावजूद भी ग्राम जीवन में ऐसे अनेक पहलू हैं जो ग्राम जीवन का अस्तित्व बनाने में समर्थ रहे हैं। 'मँहगाई भत्ते की ढोल' में गँवई जीवन में ले और विवाह आदि को धूमधाम से मनाने की परम्परा को स्पष्ट किया गया है। विवाह के पंडाल लाउडस्पीकर, बैंड ये तीन बातें अनिवार्य मानी जाती हैं। अपनी–अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार नाच–गाने की पार्टियाँ तय की जाती हैं। बैंड के साथ नचनियाँ होना प्रतिष्ठिा माना जाता है। यह सब ग्रामीण संस्कृति का अंग है। प्रस्तुत निबन्ध में मास्टर जी के भाई कालूपुर में मुखदेव जी के साथ अपने बेटे के लिए बैंड निश्चित करते समय चली चर्चा में कहते हैं, '' बिना नचनियाँ के आजकल बजनियाँ किस काम के? अब जमाना गया कि डफड़ा पीटते और धुधुका बजाते बारात चली थी। अब हर बारात में बैंड चाहिए। नयी फिल्म आयी नहीं कि उसकी धुन बैंड वालों ने लोक लिया।''[11] यहाँ ग्रामीण जन–जीवन में विवाह निमित गाने–बजाने की सांस्कृतिक परम्परा की ताजी गंध स्पष्ट होती है।

ग्राम जीवन में भजन–कीर्तन, लोकगीत, लोकनृत्य आदि मनोरंजन के साधन माने जाते हैं। इसी से गँवईं जीवन की पहचान होती है। लोकगीतों में ग्रामीण जन–जीवन का स्पन्दन होता है। ग्रामांचलिक जन–जीवन का समूचा वैभव इन गीतों प्रस्फुटित होता है। परम्परा के रूप में गाये जाने वाले लोकगीतों के रचयिताओं का कोई परिचय नहीं होता है, लोकगीतों के माध्यम से ग्राम मन की सुखात्मक–दुःखात्मक भावनाएं स्पष्ट होती है। इन गीतों का उद्देश्य मनोरंजन और श्रम परिहार है। विवेकी राय में अपने निबन्धों में इन लोकगीतों को रेखांकित करने का सफल प्रयास किया है। 'आज कमरा गाता है' निबन्ध में गणेश राय द्वारा गाया गया रामकृष्ण सम्बन्धी भक्ति का गीत लोकमानस का स्पष्ट रूप प्रस्तुत करता है–

^^e nf[k;k “kj.k rEgkjh]
ejh ir jk[kk fxj/kkjhA**12

''मास्टर कमल' निबन्ध में मास्टर कमल का जीवन, वेदना, दुख, दुर्गति और असंतोष का चित्रण है। आदर्शवादी भावनाओं का पोषक व समय की मार के कारण निराश दिखाई पड़ता है। कमल मास्टर गरीबी के कारण आत्महत्या कर लेता है। निबन्धकार के शब्दों में शिक्षा व्यवस्था की दुर्दशा का चित्रण ग्राम जीवन की आर्थिक समस्या और अभावग्रस्ता की ओर संकेत करती ये लोकगीत–

^^dkxt e M< lk] ikdV e vLlhA
fcdrh ckt kj e] Qk lh dh jLlhA**13

इस प्रकार इन लोकगीतों के माध्यम से ग्रामात्मा की सुगन्ध से ग्रामीण जन–जीवन की संस्कृति, परम्परा, आर्थिक दीनता, बेबसी तथा भारतीय संस्कृति में जो कुछ भी शिव और सुन्दर है, वह सहज रूप से अभिव्यक्त हुआ है।

अन्ततः विवेकी राय ने 'मनबोध मास्टर की डायरी' में संकलित निबन्धों 'मास्टरों की मौज, ' आज कमरा गाता है, '' अवकाश के दिन, ' कोई एक आहट' 'मास्टर कमल' सत्यनारायण की कथा 'मँहगाई भत्ते की ढोल में अध्यापक जीवन और शिक्षा व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में पूरे ग्रामीण समाज का बारीकी से सर्वेक्षण कर अपने चिन्तन को गँवई पृष्ठभूमि पर रखकर विस्तृत और व्यापक बनाया है। उनके निबन्धों में ग्रामीण चेतना के दर्शन होते हैं। ग्राम्य जन–जीवन के विविध पहलुओं को अपने निबन्धों में चित्रित किया है। ग्रामीण जनजीवन में स्थित मूल्य संक्रमण और आर्थिक सामाजिक तनाव उनके निबन्धों के केद्र में रहा है। बदलती सामयिकता की पहचान सभ्यता का खोखलापन, लोक जीवन के अंतरंग भावोद्वेग और विविध अन्तर्विरोध आदि को उद्घाटित करने में सफलता प्राप्त किया है।

lUnHk %

1. विवेकी राय, आस्था और चिन्तन, पृ0 18
2. विवेकी राय, आम रास्ता नहीं है, पृ0101
3. विवेकी राय, आम रास्ता नहीं है, पृ0 99
4. मनबोध मास्टर की डायरी, भूमिका
5. विवेकी राय मनबोध मास्टर की डायरी, मास्टरों की मौज, पृ0 42
6. विवेकी राय मनबोध मास्टर की डायरी, अवकाश के दिन, पृ0 44
7. विवेकी राय स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य और ग्राम जीवन, पृ0 137
8. मनबोध मास्टर की डायरी, सत्यनारायण की पूजा, पृ0 97
9. वाय0वी0 धुमाल, साठोत्तरी हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवष्त्ति मूलक तुलनात्मक अध्ययन पृ0 205
10. मनबोध मास्टर की डायरी, कोई एक आहट, पृ0 70
11. मनबोध मास्टर की डायरी,मँहगाई भत्ते की ढोल, पृ0 77
12. मनबोध मास्टर की डायरी, आज कमरा गाता है, पृ0 7
13. मनबोध मास्टर की डायरी, मास्टर कमल, पृ0 89

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 137-141

cnyrk ifjo’k vkj iepn dh iklfxdrk

MkW yYyu ;kno*

कथा साहित्य की दुनिया में प्रेमचंद निस्संदेह रूप से एक युगान्तकारी कार्य का सूत्रपात किया। इसलिए हम उन्हें एक युग प्रवर्तक कथाकार कह सकते हैं। प्रेमचंद जी का यह कथन है, ''साहित्य जीवन की आलोचना है।'' इस तरह उन्होंने एक पूरे युग की सोच, उसकी कथादृष्टि, उसके असामान्य पात्रों के असाधारण कारनामों से टकराने के खतरों को उठाया और उसे सफलतापूर्वक चुनौती दी। egkdfo l;dkUr f=ikBh ^^fujkyk** ने प्रेमचंद की आँखों के विषय में बैसवाड़ी में कहा था ''आँखि कौनों के पास आय तो यहि के पास आय।'' निराला ने उनकी खूबसूरती उनकी आँखों की बनावट में ही देखी थी। प्रेमचंद में बाहरी सौंदर्य के साथ–साथ उनकी दृष्टि में नवीन सौंदर्य भी था। 'निराला' ने उनकी आँखों में बाह्य एवं आंतरिक सौंदर्य के दर्शन किये थे। उनकी आँखों में सत्य, शिव और सुंदर का समुद्र लहराता था, नवजागरण की पहली ज्वाला उनकी कृति ^^lktoru** में देखी जा सकती है, जिसे तत्कालीन ब्रिटिश सरकार जब्त करके जला दिया था। तब प्रेमचंद 'नवाबराय' थे और कलम के सिपाही के रूप में देश की स्वतंत्रता के लिए क्रांतिकारी आंदोलन में सक्रिय भाग ले रहे थे।

प्रेमचंद ने जीवन के यथार्थ को किनारे बैठकर नहीं देखा था बल्कि यथार्थ को उन्होंने स्वयं भोगा था। आजीवन वे अभावों की चक्की में पिसते रहे। उन्होंने आम आदमी को जीवन की सच्चाइयों से संघर्ष करते हुए देखा था। उनके पास यही दृष्टि थी, जो रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, चिकित्सा और रोजगार के अभाव से पीड़ित, दमित–शोषित जन–जीवन को अपने कथा साहित्य का विषय बनाया। काव्य साहित्य में जिस तरह का युगान्तकारी कार्य आधुनिक साहित्य के निर्माता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने किया और जिसे बाद में महाप्राण 'निराला' ने उसे आगे बढ़ाया। कुछ उसी तेवर के क्रांतिकारी कदम प्रेमचंद ने कथा साहित्य में उठाये। यह अपने–अपने अंदाज में परम्परा पर प्रहार था।

प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों को पढ़ते हुए पाठक यह महसूस करता है कि यह उसकी अपनी कहानी है। वह चौंकता है – अरे, प्रेमचंद तो हमारे गाँव, हमारे घर, हमारे मन की बातें कह रहे हैं। आज भी जब सरेबाजार महीनों किसी को उतरी ओढ़े, श्राद्ध के लिए पैसा माँगते देखता है, नौकरी के लालच में पुत्र को अपने नौकरी पेशा पिता का गला दबाते देखता है, माँ के द्वारा अपनी बेटी की मरण–कामना करते देखता है, किसी किसान के अपने ही खेत पर मजदूर बनते और मजदूर को कर्ज के बोझ से दबकर आत्महत्या करते अथवा अपने गाँव में किसी दादी–नानी और किसी बूढ़ी–पुरनिया को घिसटते–पीटते और कटते देखता है तो उसे लगता है होरी, धनियां, गोबर, गूदड़–चौधरी, डपट, सिंह, घीसू, माधव, हल्कू जोखू – गंगी, भैरो, जईफ, खाला, जहूरन इतनी लम्बी उम्र कैसे पा गये ? बूढ़ी काकी आज भी जीवित है। प्रेमचंद के प्राण अब नहीं पर उनके पात्र जिनमें उनकी आत्मा बसती, यत्र–तत्र–सर्वत्र पर अपनी नियति पर माथ धुनते मिल जाते हैं। उन्होंने गरीबी, चोरी, रिश्वतखोरी, बलात्कार, अत्याचार और असमानता और शोषण–दोहन के जो दृश्य देखे–दिखाए थे, वे आज भी मलिन नहीं हुए हैं। यही सब प्रेमचंद के कथा साहित्य को कालजयी बनाता है।

प्रेमचंद का साहित्य में सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने भाषा का एक ऐसा परिमार्जित रूप हमारे सामने रखा, जो सर्वग्राह्य हो गया। प्रेमचंद जी ने एक ही भाषा शास्त्र और व्याकरण में लिखी, बोली और समझी जाने वाली खड़ी बोली हिन्दी के दो रूपों उर्दू और हिन्दी को एक दूसरे के निकट लाये। प्रेमचंद

*प्रवक्ता, हिन्दी, माँ कमला महाविद्यालय, तेजपुर, सुलतानपुर, आजमगढ़

के इस महान भाषा कार्य से ना जाने कितने अरबी, संस्कृत और लिपि से जुड़े लोग हिन्दी की ओर मुखातिब हुए और भारतीय संस्कृति और देवनागरी लिपि में लिखने वाले लोग, उर्दू के ओर प्रवृत्त हुए राष्ट्रीय एकता के विकास में यह एक सकारात्मक कदम है और इसका श्रेय प्रेमचंद को देने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। प्रेमचंद अकेले ऐसे साहित्यकार हैं जो हिन्दी उर्दू दोनों में समादृत हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने प्रेमचंद के साहित्यिक योगदान पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि – ''भारतवर्ष अगर बड़ा होगा तो उसकी भाषा (हिन्दी) भी अवश्य बड़ी होगी। इस भाषा को समर्थ बनाने के लिए बड़ी साधना शक्ति और तपस्या की आवश्यकता है। इस कठिन साधना का मार्ग अनेक महान लेखकों ने प्रस्तुत किया। प्रेमचंद का स्थान उसमें सबसे ऊँचा है।'' प्रेमचंद का मात्र इतना ही योगदान नहीं है अपितु वे एक स्वतंत्रता सेनानी, सच्चे समाज सुधारक, साम्प्रादायिक सद्भाव के अटूट मिसाल, क्रांतिकारी और संगठनकर्ता भी थे।

इसी को लक्ष्य करके गजानन माधव मुक्तिबोध कहते हैं कि – ''प्रेमचंद उत्तानशील भारतीय सामाजिक क्रांति के प्रथम और महान कलाकार थे।''[1] प्रेमचंद समाज के अंतर्विरोधों और विचारों की रचनात्मक ऊर्जा व वर्तमान प्रासंगिकता तथा विगत अर्थवत्ता को नकारा नहीं जा सकता। आज जब राष्ट्रीय आंदोलन की एक पूर्णतः पृथक्कृत तस्वीर प्रस्तुत की जा रही है, जो राष्ट्रीय आंदोलन को विभिन्न वर्गीय धाराओं के महज योगफल से ज्यादा मानने को तैयार आती है। इस समय में राष्ट्रीय आंदोलन की इस जटिल अन्तःक्रिया को समझने में प्रेमचंद को पढ़ना आवश्यक है। राष्ट्रवाद, स्वराज्य तथा साम्प्रदायिकता जैसे मुद्दों पर प्रेमचंद मानवतावादी दृष्टि से विचार करते हैं।

प्रेमचंद आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य के ऐसे कलाकार हैं जो अपने युग से लेकर आजतक निरंतर प्रासंगिक और सबसे पठनीय है। वे अपने युग के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों, उनके घात–परिघातों और उनके बीच बनते–बिगड़ते सामाजिक सम्बन्धों और मानवीय मूल्यों की आहट और शोषण के विविध चक्रों की पहचान करते हुए स्वाधीनता आन्दोलन की वकालत करने के साथ ही साथ समतामूलक समाज की स्थापना करना ही प्रेमचंद की प्रासंगिकता है।

विगत सौ वर्षों से प्रासंगिक बने रहना या साहित्य के गलियारों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराना किसी कठिन परीक्षा से गुजरना है। प्रेमचंद इसीलिए प्रासंगिक हैं कि अपनी वैचारिकता, अपने सरोकारों और उद्देश्यों के प्रति कठोर निष्ठा व नजरिया रखते रहे। प्रासंगिक वही लेखक या कवि होता है जो अपनी माटी से जुड़ा हुआ हो, अपने इतिहास से जुड़कर एक सुनहरे भविष्य की कामना या कल्पना को साकार करने का लक्ष्य रखता हो। प्रेमचंद समाज में व्याप्त कुरीतियों जैसे भ्रष्टाचार, छुआछूत, दलित, पीड़ित, स्त्री और सामन्ती, पूँजीवादी, पुरोहितों, स्त्री शोषण की चक्की में पिस रहे किसानों, मजदूरों को अपने कथा साहित्य में वाणी दी है। किसानों की दयनीय स्थिति का जो उन्होंने दस्तावेज प्रस्तुत किया है जिसकी परिणति आज भी किसानों में देखने को मिलती है। वे दहेज प्रथा के विरोधी थे। विधवा विवाह के समर्थक थे। स्त्री की स्वतंत्रता के पक्षधर थे। वे समाज की जिन कुरीतियों से संघर्ष कर रहे थे। वह आज भी समाज की कोढ़ बनी हुई है। आज देश में स्त्रियों के साथ अत्याचार, बलात्कार के साथ स्त्री के अस्मिता के साथ जो खिलवाड़ हो रहा है उसकी अनुगूँज बहुत पहले ही प्रेमचंद के कथा साहित्य में सुनायी पड़ती है। प्रेमचंद ने इन्हीं कुरीतियों के साथ–साथ साम्प्रदायिकता के खतरों से बहुत पहले आगाह कर दिया था, जिस समस्या से आज पूरा देश संघर्ष कर रहा है। यही वह कारण है कि प्रेमचंद आज भी प्रासंगिक हैं और कल भी रहेंगे। आने वाली पीढ़ियां भी उनसे प्रेरित होती रहेंगी।

प्रेमचंद एक ऐसी राष्ट्रीयता की बात करते हैं, जहाँ हिन्दू–मुस्लिक में भेद–भाव की कोई गुंजाइश नहीं है। उन्हीं के शब्दों में, ''साम्प्रदायिकता सदैव संस्कृति की दुहाई दिया करती है अब न कहीं हिन्दू संस्कृति है न मुस्लिम संस्कृति न कोई अन्य संस्कृति।''[2] प्रेमचंद धर्म और राष्ट्रीयता को दो रूपों में देखते हैं। उनके दृष्टि से राष्ट्रीयता हिन्दू धर्म ही नहीं है जबकि उस समय की सम्प्रदायवादी राजनीति का परिप्रेक्ष्य बिल्कुल अलग था।

प्रेमचंद की आरम्भिक कहानियों को देखा जाय तो यह स्पष्ट है कि उनमें देशप्रेम और आदर्शवाद की अधिकता है। 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' 'रानी सारंधा' और 'राजा हरदौल की कहानी, बुंदेलखंड के राजपूतों की कहानियाँ एक विशेष प्रकार के देशप्रेम, आत्मबलिदान, देशगौरव आदि भावनाओं से प्रेरित हैं। इन कहानियों द्वारा प्रेमचंद किसी जातिवाद या अंध राष्ट्रवाद का प्रचार नहीं कर रहे थे, बल्कि जनता के भीतर त्याग और बलिदान की भावना भर रहे थे। 1917 की रूसी क्रंति के बाद प्रेमचंद के दृष्टिकोण में एक व्यापक परिवर्तन आया और उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन के तरफ अपना रूख अपनाया। इसी को लक्ष्य करके MkWE ukeoj flag ने लिखा है, ''प्रेमचंद इस स्वाधीनता को अत्यंत व्यापक रूप में देखते थे और समझते थे कि यह मुक्ति, राष्ट्रीय मुक्ति–राजनीतिक थी, आर्थिक थी और उससे कहीं ज्यादा उस दौर में मानसिक मुक्ति थी, समस्त वैचारिक मुक्ति।''[3] भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में स्वराज्य का प्रश्न एक महत्वपूर्ण प्रश्न था। प्रेमचंद इस प्रश्न को बाह्य परिधि तक सीमित नहीं थे, जैसा कि तत्युगीन राजनेता थे, जबकि प्रेमचंद ने स्वराज्य की बनावट और बुनावट को परखा था तभी तो इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे जो 'गबन' के देवीदीन का यह कथन उधर ही इशारा करता है – ''साहब सच बताओ'' जब तुम सुराज का नाम लेते हो तो उसका कौन सा रूप तुम्हारी आँखों के सामने आता है? तुम भी बड़ी–बड़ी तलब लोगे, तुम भी अँग्रेजों की तरह बंगलों में रहोगे अंग्रेजी ठाट–बाट बनाए घूमोगे? इस सुराज से देश का क्या कल्याण होगा?''[4] इतना ही नहीं प्रेमचंद स्वराज्य को एक मौलिक अधिकार के`रूप में प्रस्तुत करते हैं। इसे वे साफ शब्दों में कहते हैं ''अपने प्राकृतिक साधनों पर अपना अधिकार, अपनी प्राकृतिक उपजों पर अपना नियंत्रण, अपनी पैदावार पर अपनी इच्छानुसार मूल्य लेने का स्वत्व – यही उनकी सबसे बड़ी, सबसे पहली मांग है। यह मांग स्वराज्य का अंग नहीं, स्वराजय इसी मांग का अंग है।कृ स्वराज्य का अर्थ केवल आर्थिक स्वराज्य है।''[5] वास्तव में प्रेमचंद के 'सुराज' और राष्ट्रीय आंदोलन के 'स्वराज्य' के स्वरूप में एक व्यापक अंतर था और वह था वर्गीय हित की दषष्टि। प्रेमचंद के यहाँ यह दषष्टि किसानों के लिए थी न कि राष्ट्रीय आंदोलन में उच्च वर्गों के लिए थी। स्वराज्य के सन्दर्भ में प्रेमचंद मूलतः शोषण तंत्र की समाप्ति की बात करते हैं क्योंकि जब तक यह शोषण तंत्र बना रहेगा तब तक सत्ता का स्वरूप बदल सकता है किन्तु उसका चरित्र नहीं बदल सकता अर्थात जॉन की तगह गोविंद के आने से भी कोई अन्तर नहीं पड़ेगा।

प्रेमचंद का 'बलराज' एक नवीन आदर्श को अपनाता है, जिसके अनुसार प्रत्येक मनुष्य को मनुष्य की तरह रहने का अधिकार मिलना चाहिए। वह केवल सिद्धान्त की घोषणा नहीं करता, वरन् उसको व्यवहार में लाता है। खाना खाते समय माँ द्वारा केवल उसको ही 'कटोरा भर के दूध देने पर उसकी प्रतिक्रिया है ''जो हमसे अधिक काम करता है, उसे हमसे अधिक खाना चाहिए।''[5] उसको यह स्वीकार नहीं है कि उसका हलवाहा दूध न पिये और वह कटोरा भर कर दूध पिये। प्रेमचंद की प्रासंगिकता पूँजीवादी और गाँधीवादी तरीके से संघर्ष करने में नहीं है बल्कि उनके महलों की ईंट हिला देने वाली है। वे शोषक वर्ग के नहीं शोषित वर्ग के पक्षधर थे। वे नहीं चाहते थे कि 'सवासेर गेहूँ' का शंकर, 'पूस की रात' का 'हल्कू' और 'गोदान' के होरी की दासतामूलक जीवन कायम रहे। अगर ऐसा होता है तो उनके चरित्रों का अटल विश्वास है कि, ''दरिद्रों के बीच उनसे लड़ने के लिए हथियार बांधना पड़ेगा। उनके पंजों का शिकार बनना देवतापन नहीं जड़ता है।'' इसी जड़ता से संघर्ष और निवारण करने वाले कलाकार या लेखक की दृष्टि प्रासंगिक होती है।

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों और कहानियों में राष्ट्रीय आंदोलन के सम्पूर्ण पहलुओं के समर्थन में एक योद्धा की तरह खड़े हैं। प्रेमचंद राष्ट्रीय आंदोलन में यहाँ तक की अपने बलिदान के लिए भी तैयार थे। जिसकी सूचना 1930 में 'विशाल भारत' में देते हैं, ''मेरी अभिलाषाएँ बहुत सीमित हैं। इस समय सबसे बड़ी अभिलाषा यही है कि हम अपने स्वतंत्रता संग्राम में सफल हों।'' एक अभिलाषा यह भी है कि ''हाँ, यह जरूर चाहता हूँ कि दो–चार उच्च कोटि की रचनाएं छोड़ जाऊँ, लेकिन उनका उद्देश्य भी स्वतंत्रता प्राप्ति ही हो।''[6] इससे यह साफ है कि प्रेमचंद भारत की राष्ट्रीय और मानवीय संवेदना के लेखक थे। उनके सम्पूर्ण साहित्य समतामूलक समाज की एक मजबूत कड़ी है। कर्मभूमि' का 'अमर' इस्लाम तथा

हिन्दुत्व में कोई भेद–भाव नहीं मानता है। 'न्याय' कहानी का पात्र न धर्म को स्वीकार करता है न ईश्वर को। वह मानवता का उपासक है। प्रेमचंद की साहित्य साधना का उद्देश्य समाज में समता, सामंजस्य और विभिन्नता में एकता स्थापित करना है।

प्रेमचंद के समय भारत की भौगोलिक और राजनीतिक स्थितियां आज के समय से बिल्कुल भिन्न थीं। देश अंग्रेजी हुकुमत का गुलाम था और देश का विभाजन भी हो जाएगा, ऐसा किसी ने कल्पना भी नहीं किया था। उस दौर में हिन्दी साहित्य में तिलिस्मी/ऐय्यारी जैसे चंद्रकांता और भक्ति साहित्य की टीकाएँ लोगों के जेहन पर छायी हुई थीं। ऐसे विपरीत समय में प्रेमचंद का उर्दू को तिलांजलि देकर हिन्दी साहित्य में लौटना एक साहस भरा कदम था। उन्होंने हिन्दी कथा लेखन को सशक्त और समष्द्धशाली ही नहीं बनाया बल्कि उस भाषा को, खड़ी बोली हिन्दी को, गद्य की भाषा का वह स्वरूप प्रदान किया, जिसमें आज हम पढ़ते, लिखते और बोलते हैं। हिन्दी साहित्य के जिस पथ का वह निर्माण किये हैं, जिस पर हिन्दी कथा साहित्य की यात्रा आज भी जारी है, कल भी जारी रहेगी।

प्रेमचंद का कथा साहित्य आज भी प्रासंगिक है। क्योंकि सर्वप्रथम उन्होंने अपने कथा साहित्य में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं को उठाया। प्रेमचंद ने एक नई रोशनी में समाज को देखने की कोशिश की, जिससे आधुनिक हिन्दी साहित्य की नई धारा प्रवाहित होती है। वे अपने कथा–साहित्य में जाति, धर्म, संप्रदाय से ऊपर उठकर एक धार्मिक सौहार्द का वातावरण निर्मित किया, जो आगे चलकर स्वतंत्रता आंदोलन का हथियार बना। वे भारतीय संस्कृति के मूल्यों के संवाहक थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति के मूल्यों को एक धागे में पिरोने का काम किया। उन्होंने भारत की एक नई तस्वीर देश और समाज के सामने रखी जो राम–राज्य की कल्पना से बिल्कुल अलग–थलग थी। इसमें सुख–दुःख, दया–ईर्ष्या, वैमनस्य, प्रेम–घृणा सब के सब अपने चटक रंगों के साथ समाज के सम्मुख उपस्थित थे। उन्होंने पुराने मूल्यों की अवधारणा को खंडित कर नवीन यथार्थवादी मूल्यों पर अपने कथा–साहित्य को गढ़ा। प्रेमचंद पूँजीवादी ताकतों के मल्टीनेशनल कंपनियों द्वारा थोपे जा रहे भौतिकता के इस दौर में स्मरणीय हैं। प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य में सत्ता, संस्कृति, स्त्री, किसान, मजदूर आंदोलनों को पुरजोर उठाया है। प्रेमचंद ने समाज में जिस शोषित, पीड़ित ग्राम्य समाज की वकालत की है। वे परिस्थितियां आज भी समाज में व्याप्त हैं। ऐसे समय में प्रेमचंद का साहित्य आज समाज में एक मिशाल के समान है।

प्रेमचंद के साहित्य में सर्वहारा समुदाय का दर्द बड़ी बारीकी से द्वंद्वात्मक रूप में चित्रित है। उपन्यास सम्राट की पदवी से प्रेमचंद विभूषित नहीं हैं बल्कि उपन्यास सम्राट उपाधि ही विभूषित होती है। इनके कथा–साहित्य का तमाम भाषाओं में अनुवाद होने के कारण आज भी हिन्दी के सबसे अधिक पढ़े जाने वाले कथाकार हैं। प्रेमचंद शुरू से अब तक लोकप्रिय हैं। यही कारण है कि वे आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं और बने रहेंगे। बूढ़ी काकियां और बड़े भाई का अपने कथा–साहित्य में चित्रण किया है। वे आज भी समाज में देखी जा रहीं हैं। वे अपने साहित्य में केवल जनसंघर्ष की बात नहीं उठाते वरन् सामाजिक मेल–जोल की, कुरीतियों से उठने की, भौतिकता से मोहभंग की सृजनात्मक कथा लिखते हुए सौहार्द पर भी जोर देते हैं। उनके पात्र वर्ग–संघर्ष ही नहीं करते, वे वर्ग के अन्तर पर जोर देते हैं। प्रेमचंद ने भारतीय समाज में मौजूद लगभग सभी समस्याओं और कुरीतियों पर जबरदस्त प्रहार किया है।

प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानी ''नमक का दारोगा'' कब की लिखी हुई कहानी है लेकिन आज भी समाज में भरे हुए नमक के दरोगाओं को हम प्रतिदिन देखते हैं और उस कहानी के प्रभाव को सराहते हैं। आज होरी की हत्या हो रही है और न जानें कितने होरी आत्महत्या भी कर रहे हैं। आज भी धनिया अपने लिए नहीं लड़ रही है। पुत्र और पति के लिए लोगों से लड़ रही है। इस सच्चाई को झुठलाया नहीं जा सकता कि प्रेमचंद की प्रासंगिकता भारत के रग–रग में सन्निहित है और आग में घी का काम किया है। भूमंडलीकरण, बाजारवाद तथा आर्थिक उदारीकरण ने। प्रेमचंद का कथा–साहितय पढ़कर यह तथ्य उभरकर आता है कि तत्कालीन सामाजिक यथार्थ की रस्सी के आलम्ब से धीरे–धीरे समसामयिक परिधि में पहुँचते–पहुँचते उसका चेहरा क्रूर और भयंकर हो जाता है। भौतिकतावादी चकाचौंध में

जीवन–मूल्य और मानवीयमूल्य जैसे शब्दों की आँखें चौंधिया गयी हैं या कह सकते हैं कि कहीं–कहीं टिमटिमा रही है। अगर हम 'गबन' के कथानायक की बात करें तो पायेंगे कि आज हर दिशा में अंतराष्ट्रीय स्तर पर गबन की आँधी चल रही है और गबन करने वाला व्यक्ति ऊँचे–ऊँचे आसनों पर आसीन है। तब एक चन्द्रहार गबन का क्या जिक्र किया जाए ! गबन आज भी पूरी तरह कायम है।

आज प्रेमचंद का सूरदास अपने लिए जल, जमीन और जंगल की लड़ाई लड़ रहा है और अपराधी के नाम पर सरेआम मार दिया जाता है। ''प्रायश्चित'' जैसी कहानियां हमारे समाज के उन अंधविश्वासों पर प्रहार करती हैं जो आज समाज की कोढ़ बनी हुई हैं। ''निर्मला'' उपन्यास की निर्मला आज भी भारतीय समाज में ठुकराते और धकियाते मिल जाती हैं। ''सेवासदन'' में नारी की पराधीनता मुख्य समस्या है, जो अन्य समस्याओं को जन्म देता है। जैसे– दहेज, पति द्वारा अत्याचार, वेश्यागमन इत्यादि। ''वरदान'' में आर्थिक निर्बलता के कारण असफल प्रेम का चित्रण है। प्रेमिका बृजरानी का विवाह प्रताप से न होकर धनी चरित्रहीन कमलाचरण से होता है और शीघ्र ही विधवा होना पड़ता है। प्रेमचंद ने अपने उपन्यास ''कर्मभूमि'' में ग्रामीण और शहरी जीवन में राजनीतिक चेतना का विश्लेषण किया है। इसमें उन्होंने आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक और रानैतिक समस्याओं को उठाया है। ''मंदिर'' कहानी में अछूतों के प्रवेश पर निषेध, बाह्मणों और महन्तों के अमानुषिक व्यवहार, जनता में अंधविश्वास, नारी शोषण, किसानों की दीन–हीन दशा, सरकारी कर्मचारियों द्वारा उनका दमन, पूँजीपतियों द्वारा उनके शोषण का चित्रण किया गया है। ''गोदान'' उपन्यास ग्रामीण और शहरी जीवन का आख्यान है। गाँव की विभिन्न रूढ़ियों और परम्पराओं, अहंकार, मिथ्या भावनाएँ एवं स्वार्थ परायणता चित्रित हुआ है। इन सारी समस्याओं से आज भी किसान जूझ रहा है। अगर किसान जमींदारों और महाजनों से शोषित होता है तो शहर में मजदूर उद्योगपतियों से शोषित होता है। उपर्युक्त तथ्यों से यह तथ्य उभरकर आता है कि प्रेमचंद एक महान लेखक थे। उन्होंने अपने कथा–साहित्य में शोषितों, पीड़ितों की आवाज उठायी है। उनके सभी कथानक मानवीय भावनाओं से ओत–प्रोत हैं।

प्रेमचंद ने जिस तरह से अपने कथा–साहित्य में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक और पारिवारिक समस्याओं को समेटा है, वह अपने आप में एक जीवन्त मिसाल है। चाहे वह सेवासदन, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, कर्मभूमि और गोदान जैसे उपन्यास हों या उनकी कहानियों में ईदगाह, बड़े भाई साहब, पूस की रात, कफन, दूध का दाम, बेटों वाली विधवा, मंदिर, इत्यादि कहानियां इसका ज्वलंत उदाहरण हैं। इन समस्याओं को परखते हुए vkpk;l gtkjh i lkn ^f}onh* th ने ठीक ही लिखा है कि – ''अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार–व्यवहार, भाषा–भाव, रहन–सहन, आशा–आकांक्षा, दुःख–सुख और सूझबूझ को जानना चाहते हैं तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता।'' प्रेमचंद आज भी इसीलिए ज्यादा पढ़े जाते हैं कि उनकी बातें सहज हैं, सरल हैं, उनकी भाषा आसान है और उनका प्रभाव अपनी शैली की छाप छोड़ता है। प्रेमचंद पाठक को भटकने से बचाते हैं और सीधे पाठक को पात्रों के बीच खड़ा कर देते हैं, जिसका निर्णायक खुद पाठक होता है। ''पंचपरमेश्वर'' गांव–गांव में बैठे हुए हैं और पाठक उनके बीच मौजूद है। यही प्रेमचंद सीधे–सीधे अपने कथा–साहित्य को जनता से जोड़ते हैं और जनता का लोकप्रिय लेखक बनते हैं।

lUnHkZ %

1. 'मेरी माँ ने मुझे प्रेमचंद का भक्त बनाया''; गजानन माधव मुक्तिबोध, प्रेमचंद जीवन, दृष्टि और संवेदना–सं० कृष्ण कुमार सिंह, कुमार निर्मलेंदु, 2005, संकल्प बलिया, पृ० 20,
2. 'प्रेमचंद के विचार'; भाग–1, पृ०सं० 393
3. 'प्रेमचंद और भारतीय कथा साहित्य में भारतीयता की समस्या''; डॉ० नामवर सिंह, नामवर संचयिता, सं० नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, 2003, पृ०सं० 257,
4. 'गबन–प्रेमचंद', राजस्थान पीपुल्स पब्लिकेशिंग हाउस, पृ०सं० 130–131,
5. 'प्रेमाश्रम', उपन्यास से।
6. 1930 में ''विशाल भारत'', प्रेमचंद के लेख से।

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 142-144

ek/;fed Lrj ds foKku ,oa dyk oxZ ds fo|kfFkZ;ksa ds ekufld LokLF; dk rqyukRed v/;;u

MkW- Hkwiky flag*

Hkwfedk % वर्तमान समय आधुनिकता और भौतिकता का युग है, जिसमें बालक या व्यक्ति की प्रबल आकंक्षा रहती है कि वह समय को अपने अनुरूप परिचालित कर सके। इसमें वातावरण और परिस्थितियों का परिवर्तन एक बहु आयामी कारक है जिससे बालक या व्यक्तियों का जीवन अधिक गतिशील और जटिल होता जा रहा है और उसे अत्यधिक समस्याओं और बाधाओं का सामना करना पड़ता है। ये समस्याएँ और जटिलताएं बालक के मानसिक स्वास्थ्य को अत्यधिक प्रभावित करती हैं। प्रस्तुत अध्ययन माध्यमिक स्तर के बालकों की इन्हीं समस्याओं के अध्ययन का एक प्रयास है। माध्यमिक स्तर के बालक और बालिकाएं कार्यशील जनसंख्या के रूप में अपनी भागीदारी सबसे ज्यादा प्रस्तुत करते हैं। इसलिए उनके मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन अत्यधिक आवश्यक प्रतीत होता है। मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन कर उनकी जटिलताओं को कम करने का प्रयास किया जा सकता है और उन्हे देश की मुख्य धारा में अधिक सहयोगी के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इसी सन्दर्भ मे LVsUt नामक मनोवैज्ञानिक का विचार है कि – मानसिक स्वास्थ्य का सम्बन्ध एक ऐसे व्यवहार से होता है जो व्यक्ति को सामाजिक परिस्थतियों से अनुकूलन करना सिखाता है और जो व्यक्ति को अपने जीवन के साथ पर्याप्त रूप से मुकाबला करने की अनुमति देता है। dkyZefuxj महोदय का कथन है कि – मानसिक प्रसन्नता प्रभावशीलता के साथ वातावरण एवं उसके प्रत्येक दूसरे व्यक्ति के साथ समायोजन है। मानसिक रूप से स्वास्थ्य व्यक्ति सन्तुलित मनोदषा, सतर्क वुद्धि सामाजिक रूप से सामान्य व्यवहार तथा प्रसन्नचित बनाये रखने की क्षमता है।

मानसिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्ति में आत्म मूल्यांकन, आत्म विश्वास, समायोजनशीलता, जीवन लक्ष्य का चुनाव, संवेगात्मक स्थिरता, लैंकिग परिपक्वता, समझदारी तथा उपलब्धि हेतु प्रयत्नशीलता और गुणों का समावेश रहता है।

अतः उपर्युक्त कारणों एवं लाभों के आधार पर बालक एवं बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन आवश्यक प्रतीत होता है।

'kks/k v/;;u ds mn~ns'; %

प्रस्तुत शोध कार्य में निम्नांकित उद्देश्यों को आधार बनाकर अध्ययन किया गया है–

1. माध्यमिक स्तर पर बालक एवं बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर पर कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन करना।

v/;;u gsrq ifjdYiuk %

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नांकित कल्पनाऐं कल्पित की गयी है।

1. माध्यमिक स्तर पर बालक एवं बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर नहीं है।
2. माध्यमिक स्तर पर कला वर्ग एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर नही है।

'kks/k vfHkdYi % प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु माध्यमिक स्तर (कक्षा 11 वीं तथा कक्षा 12 वीं) के कुल 50 विद्यार्थियों का प्रतिचयन यादृच्छिक विधि से किया गया। जिसमें 25 बालक तथा 25 बालिकाओं का चयन

*असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं विभागध्यक्ष, शिक्षक–प्रशिक्षण विभाग पी0बी0पी0जी0, कॉलेज–प्रतापगढ़।

किया गया। जिसमें 25 विज्ञान और 25 कला वर्ग के विद्यार्थियों को शामिल किया गया। इस प्रकार अध्ययन हेतु 2X2 द्विकारक अभिकल्प स्वतन्त्र समूह प्रविधि से प्रतिचयन किया गया। विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य के अध्ययन हेतु ,l0 txnh'k और ,0d0 JhokLro द्वारा निर्मित मानसिक स्वास्थ्य मापनी अनुसूची का प्रयोग किया गया।

fo'y"k.k ,o 0;k[;k % शोध अध्ययन हेतु प्रयुक्त मानसिक स्वास्थ्य मापनी का प्रयोग कर प्रयोगकर्ता ने प्रयोज्यों से ऑकड़ों को प्राप्त किया जिसमें प्रयोज्य को प्रतिउत्तर करने के लिए चार आयामी विकल्प प्राप्त हुए। जिसमें सकारात्मक प्रतिउत्तर के लिए 4,3,2,1 तथा नकारात्मक प्रतिउत्तर के लिए 1,2,3,4 अंक प्राप्त हुए। प्रयोगकर्ता ने अंकन मापनी की सहायता से प्राप्त अभिमतों को आंकड़ों में परिवर्तित कर निम्नांकित तालिकाओं में प्रस्तुत किया है–

rkfydk l[;k&1

ckyd ,o ckfydkvk d ekufld LokLF; dk v/;;u

चर	सं0	मध्यमान	मानक विचलन	माध्य अन्तर	मानक त्रुटि	टी0 अनुपात मान
बालक	25	97.6	9.33	8.40	3.161	2.657
बालिका	25	89.2	12.76			

df= 0.05 स्वतन्त्रांश स्तर 2.01 पर सार्थक

rkfydk dh 0;k[;k % प्रस्तुत तालिका के अध्ययन से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के बालक–बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य के अध्ययन में बालक वर्ग से प्राप्त आंकड़ों का मध्यमान 97.6 तथा मानक विचलन 9.33 प्राप्त हुआ जबकि बालिका वर्ग से प्राप्त आंकड़ों का मध्यमान 89.2 और मानक विचलन 12.76 प्राप्त हुआ है। दोनों प्राप्तांकों का विश्लेषण करने पर मानक त्रुटि 3.161 तथा माध्य अन्तर 8.40 और टी0 अनुपात मान 2.657 प्राप्त हुआ जो कि पूर्व निर्धारित स्वतंत्राशमान 98 के 0.05 सार्थकता स्तरमान 2.01 से अधिक है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि माध्यमिक स्तर के बालक एवं बालिका के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर है। प्राप्तांकों के मध्यमानों का विश्लेषण करने पर भी बालक वर्ग के प्राप्तांकों का मध्यमान बालिका वर्ग के प्राप्तांकों के मध्यमान से उच्च स्तर का पाया गया है जिससे स्पष्ट है कि बालक वर्ग का मानसिक स्वास्थ्य बालिका वर्ग के मानसिक स्वास्थ्य से उच्च स्तर का है। जिसके प्रमुख कारकों में पारिवारिक व सामाजिक वातावरण, शारीरिक व मानसिक सुदृढ़ता तथा स्वयं के प्रति धनात्मक विचार रखना आदि प्रमुख है।

rkfydk u0&02

dyk ,o foKku oxZ d fo|kfFk;k d ekufld LokLF; dk v/;;u

चर	सं0	मध्यमान	मानक विचलन	माध्य अन्तर	मानक त्रुटि	टी0 अनुपात मान
कला वर्ग	25	84.20	12.65	7.17	3.318	2.161
विज्ञान वर्ग	25	91.37	10.74			

df= 48 के 0.05 सार्थकता स्तरमान 2.01 पर सार्थक

rkfydk dh 0;k[;k % प्रस्तुत तालिका सं0 2 के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मानसिक स्वास्थ्य के अध्ययन में कला वर्ग के विद्यार्थियों से प्राप्त आंकाड़ों का मध्यमान 84.20 तथा मानक विचलन 12.65 प्राप्त हुआ जबकि विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के प्राप्त आंकड़ों का मध्यमान 91.37 तथा मानक विचलन 10.74 प्राप्त हुआ। दोनों वर्गों से प्राप्त मानकों का विश्लेषण करने पर माध्य अन्तर 7.17 तथा मानक त्रुटि 3.318 प्राप्त हुआ। जिसके आधार पर टी0 अनुपात मान 2.161 प्राप्त हुआ। जो कि स्वतन्त्रांश मान 48 के 0.05 सधिकता स्तर मान 2.01 से अधिक पाया गया। जिसके आधार पर शून्य पारिकल्पना अस्वीकृति हो जाती है और स्पष्ट हो जाता है कि विज्ञान और कला वर्ग के विद्यार्थियों में सार्थक अन्तर है। मध्यमान मानों के आधार पर तुलना करने पर भी विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान 91.37 तथा कला वर्ग के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान 84.20 प्राप्त हुआ जिसमें विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों का मध्यमान उच्च स्तर का पाया गया। प्राप्त परिणाम के सम्भावित कारणो में मानसिक व बौद्धिक स्तर में

असमानता, अध्ययन की प्रवृत्ति और सहयोगी वातावरण सीखने की परिस्थितियाँ और अभिरूचियाँ भी प्रमुख हो सकती हैं।

ifj.kke o fu"d"k% माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य के अध्ययन में प्राप्त परिणामों के आधार निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि बालकों का मानसिक स्वास्थ्य बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य से उच्च स्तर का होता है। उसी प्रकार माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के बालकों का मानसिक स्वास्थ्य कला वर्ग के विद्यार्थियों से उच्च स्तर का पाया गया। इस प्रकार बालिकाओं और कला वर्ग के विद्यार्थियों में सामाजिक व पारिवारिक सुदृढ़ता, कैरियर के लिए उचित अवसरों की उपलब्धिता और सामाजिक और शासकीय सहयोग के माध्यम से उनके मानसिक स्वास्थ्य में सुधार लाया जा सकता है।

lUnHkZ%

1- LVªsat ¼1965½ एबनार्मल साइकोलॉजी टाटा मैक्ग्राँ पब्लिकेशन्स कम्पनी, पृ0स0 440–442
2- eSfuxj d0,0 ¼1945½ ह्युमन माइंड न्यूयार्क लिटररी गिल्ड ऑफ अमेरिका, पृ0सं0 1231–1233
3- xqIrk ,l0ih0 ¼2009½ उच्च शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
4- ik.Ms; d0ih0 ¼2007½ शैक्षिक अनुसंधान विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
5- jk; ikjlukFk ¼2004½ अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन्स, रांगेव राघव मार्ग आगरा।
6- dfiy ,p0d0 ¼1966½ सांख्यिकीय के मूलतत्व, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 145-151

fgUnh dh fofHkUu ckfy;k esa ns'kizse dh ,dkRedrk

f'kojke ek;Z*

हिन्दी भाषा के अन्तर्गत 5 उपभाषाएँ तथा 18 बोलियाँ पाई जाती हैं। ये बोलियाँ भले ही भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में प्रचलित हैं लेकिन इन सभी बोलियों के मध्य भावों एवं विचारों को लेकर एकात्मता की स्थिति पायी जाती है। इन सभी बोलियों में लगभग एक तरह के सामाजिक, सांस्कृतिक राष्ट्रीय देशप्रेम की भावना व्यक्त हुई है।

हिन्दी की विभिन्न बोलियों के लोक साहित्य में अगर हम देशप्रेम की भावना के आधार पर एकात्मता सिद्ध करना चाहें, तो हम पाते हैं, कि हिन्दी की लगभग सभी बोलियों के लोकसाहित्य में देश के प्रति लगाव एवं उनका अपनी धरती के प्रति प्रेम लगभग एक रूप में प्राप्त होता है। क्षेत्र एवं बोली के अलग– अलग होने पर भी भावों एवं विचारों में अनोखी एकता दिखाई देती है। भारत में प्राचीन काल से जो देशप्रेम के भाव विकसित हुए उनका आधार राजनीतिक, आर्थिक, नहीं अपितु संस्कृति ही थी। ''भारतवासी अपने देश पर अभिमान तो करते हैं। किन्तु इस कारण नहीं कि वह वीरों की भूमि तथा समृद्ध था, अपितु इसलिए की उसकी संस्कृति महान थी वह आध्यात्म की कर्मभूमि थी देवता जहाँ देह धरकर प्रकट होने के लिए लालायित रहते थे।''[1]

किसी भी समाज में घटित होने वाली सामाजिक, तथा राजनीतिक घटनाएँ जैसा प्रभाव शिष्ट साहित्य पर डालती हैं, ठीक उसी प्रकार का प्रभाव लोक साहित्य पर डालती हैं। जिस प्रकार शिष्ट साहित्य में राष्ट्र प्रेम एवं सामाजिक तथा राजनीतिक घटनाएँ दिखाई पड़ती हैं। उसी प्रकार की अभिव्यक्ति लोक साहित्य में भी देखने को मिलती है।

भले ही लोक साहित्य सभ्य समाज से दूर रहकर लिखा जाता है लेकिन लोक साहित्य भी अपने सामाजिक राजनीतिक राष्ट्रीय प्रेम, की भावना को अपनी लोक मिठास के साथ लोक भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती हुई अपनी सशक्त उपस्थित समाज के सामने रखती है।

लोक साहित्य पर प्रायः यह आरोप लगाया जाता है कि इसमें ऐतिहासिकता का अभाव होता है। अगर इसे मान भी लिया जाय तो भी लोक साहित्य का महत्व कम नहीं होता। क्योंकि ये साहित्य निष्कपटता एवं सहजता पूवर्क अपने, भावों एवं विचारों को साहित्य में व्यक्त करता है। लोकगीतों में अपनी जन्मभूमि के प्रति प्रेम राष्ट्र के प्रतिप्रेम और जन जागृति के सम्बन्ध में भी गीत प्राप्त होते हैं जो कि अत्यन्त स्वाभाविक एवं सुलझी हुई भावाव्यक्ति होती है। एक ग्रामीण कहावत है– उत्तम खेती मध्यम बान अधम नौकरी भीख निदान। वास्तव में ग्रामीण जनों की इस प्रकार की आस्था उनका धरती प्रेम ही व्यक्त करती है। ऐसी भावनाएँ हमें सभ्य साहित्य में इस प्रकार मिलती हैं। (जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपिगरीयसी)

जिस भूमि पर व्यक्ति का जन्म जोता है। जिस पर लोट–पोट कर बड़ा होता है। जिस धरती से उसकी सभी आवश्यकताएँ पूरी होती है। उससे लगाव होना स्वाभाविक है। धरती माता के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति हिन्दी की लोक बोलियों में निम्न प्रकार से मिलती है।

बुन्देलीगीत– धरती माता तैन काजर दए, अत्यत प्रसिद्ध धरा गीत है–

/kjrh ekrk rSu dktj n;s@ lSnjq Hkj ybZ ekax@ igj gfj;yk Bk<h HkbZ@ rSu ekg fy, lS lkj vtc gS@ efgek rkjh**---------[2]

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

इसी प्रकार से बघेली में भी कुछ गीत हैं, जो कि लगभग इसी प्रकार की भावना धरती माँ के प्रति व्यक्त करते दिखाई पड़ते हैं।

मोर धरती माता हो/हँसि–हँसि सींचौं तोरि मेड़ हो/हरियर धरती देख के भैया/मेरी अंखिया जुड़ान हो/भाई भतीजा मिल सींचन लगि हैं........./धनियां बहिन मुस्काहिं मोर धरती माता[3]

अर्थात् हे पृथ्वी माता! तू तो मेरी माँ है। मेड़ तक तेरी सिंचाई करूँगा तेरी हरीतिमा देखकर मेरी आँखें को बहुत खुशी मिलती है। मैं अपने भाई –भतीजों के साथ सिंचाई करूँगा और प्रसन्नता से मेरी पत्नी, बहिन मुस्कारायें पृथ्वी के प्रति ऐसा प्रगाढ़ प्रेम राष्ट्र प्रेम का ही द्योतक है।

भारत की शस्य श्यामला भूमि को देखकर इस भूमि के प्रति किसको अनुराग नहीं होगा यहाँ के जंगल, पहाड़, नदियाँ एवं विभिन्न ऋतुओं के विभिन्न दृश्यों को देखकर इस धरा से अनुराग होना स्वाभाविक है।

अवधी का यह लोक साहित्य जो गंगा, यमुना, की गोद में बैठ कर पला बढ़ा हो उसकी तो बात की निराली होगी अवधी का लोकमानस अपनी धरती को हरा भरा देखकर बहुत प्रसन्न होता है। एक लोकगीत में इसकी प्रसन्नता इस प्रकार व्यक्त हुई है–

/kjrh ifgu puj /kkuh x t c l ;kuh ykx gkA
vjgj Qyh eVj Qykuh] l j l k p<h tokuh gkA
gfj;j dpu rhj rjkb deh u ,dk ikbA
lk> lcj eM&eM lcdm dj fn[kkbA
fu>j xg ekx ikuh cMh l ;kuh ykx gkA

भोजपुरी लोकसाहित्य में भी अपनी धरती माता के प्रति और अपने देश के प्रति विशेष अनुराग देखने को मिलता है। भोजपुरी का लोक साहित्य कहता है हमारे देश की अलग पहचान है। इसकी तरह कोई दूसरा देश इस जहाँ में नहीं है।

भोजपुरी के एक लोकगीत में धरती के प्रति एवं देश के प्रति प्रेम इस प्रकार व्यक्त हुआ है–

ih;j l j l k gfj;j xg t l ygxk pkyh gkA
fig& fig cky ekj i ihgk dk;y dj fBBkyh gkA
oru d ekVh pnu tblu vyfx bdfj ifgpku
gej nlok egku] gej nlok egkuA

मुगलों के शासन काल में किस प्रकार इस देश में अशान्ति एवं दुर्व्यवस्था रही किस–किस प्रकार के कष्टों का सामना जनता को करना पड़ा तथा तुर्कों की विषय लोलुपता तथा स्वेच्छाचारिता की गूँज–इन लोक गीतों में खूब सुनाई पड़ती है।

अवधी के लोग गीत में अभिव्यक्ति मुगल सरदार की लोलुपता से कुसुमादेवी किस प्रकार अपने सतीत्व की रक्षा करती है। और अपनी ओजस्विता को प्रकट किया था। यह गाँवों में आज भी बड़े उत्साह के साथ गाया जाता है। सती कुसुम देवी का गान इन गीतों में अमर है। मिर्जानामक किसी तुर्क सरदार की कुदृष्टि कुसुमादेवी के लावण्य मण्डित शरीर पर पड़ी वह उसे पाने के लिए वेचैन हो उठा। मिर्जा ने सती कुसुमा के पिता को कैदखाने की काली कोठरी में डाल दिया और कुसुमा को जबरदस्ती पालकी में बैठाकर अपने स्थान को ले चला। रास्ते में कुसुमा देवी ने राजा से प्रार्थना की उसे उसके पिता द्वारा बनवाये तालाब में पानी पीनी की आज्ञा दी जाये। जब वह तालाब के किनारे पानी पीने के लिए लायी गयी तो तब उसने जल में कूद कर आत्महत्या कर ली इस प्रकार पापी मिर्जा के कलुषित हाथों से अपने को छुड़ा लिया–

इस गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है–

rfu;d Mkfy;k Fkekvk fej tok]-
ckck d lxjok egok /kkbr gkukA
ckck d lxjok lUnj cf<;y ifu;k]

gej lxjok ifu;k ih;k gk ukAA
rkgjk lxjok fej tk fur mfB gkbgk]
ckck d lxjok njyHk gkbb gk ukA
,d ?kV fi;yh] nlj ?kV fi;yh
frlj e xb g rjkb gk ukAA
jkb&jkb tkykok Mykoi jk tk fej tkAA
Qkfl vkoi ?kkf?k;k lofj;k gk ukA
egok iVdk n d jko jk tk fej tkA
ekj eg dfj[kk yxcy gk ukAA
flj i ixfM;k ckf/k gl Hk;k ckck][4]

बुन्देलखण्ड में भी स्वतंत्रता से पूर्व मुगलों का शासन था मुगलों की क्रूर एवं पक्षपात पूर्ण शासन व्यवस्था से जनमानस में इनके प्रति घृणा की भावना देखने को मिलती अनेक लोक गीतों में मुगलों की स्त्रियों के प्रति कुदृष्टि एवं मुगलों से युद्ध आदि की जानकारी मिलती है। इस दृष्टि से बुन्देली गीत अधिक महत्व पूर्ण सिद्ध होते हैं। मानों गुजरी कथा का धनसिंह कथा काव्य के अतिरिक्त मुक्तक गीत इन भावनाओं से युक्त मिलेंगे। बुन्देली गीतों में बाहनें भाइयों के लिए कुछ गीत इसी आशय से गाती है कि दोहनी का दूध पीकर मुगल से लड़ने जाओ–

NkVh ekVh nkguh n/k Hkjh
ij mQur tk;
vkb n/k dk ih d chju
yju exy l tk;
cyl;k yÅ chju dhA[5]

बघेल खण्ड के लोकगीतों में मुगलकालीन युद्ध वर्णनों का प्रायः अभाव है। लेकिन यहाँ के लोक गीतों में तत्कालीन सामंतों एवं जमीदारों द्वारा जिस प्रकार का अत्याचार किया गया उसका मुखर वर्णन मिलता है। यहाँ का लोक जनमानस भी अपनी अस्मिता पवित्रता एवं अपने आत्मसम्मान के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए तत्पर दिखाई पड़ता है।

बघेलखण्ड के एक लोक गीत में इसी अपनी लोक संस्कृति तथा आत्मसम्मान को बचा लेनी की इच्छा प्रकट हुई है।

xBvk d cMr dgkok cfM xbuh
fd cf< xb lUnj /kfu;k gk jke
eg ek vxkNh /kb d jko jk t irok
i dk xfr gkbx lUnj /kfu;m gk jke
eg ek vxkNh /kb d gl j dgjok
fd ekj dydkfu jkf[kl cfguh gekj--**[6]

बघेलखण्ड की लोक साहित्य में अपनी संस्कृति और आत्मसम्मान को बचा लेने की जो तत्परता दिखाई पड़ती है वही तत्परता राष्ट्रीयता को पुष्ट बनाती है। क्योंकि –

^^lLdfr ij vfHkeku gh jk"Vh; Hkkouk dk i"Vk cukrk gA**[7]

भोजपुरी, लोकसाहित्य का अक्षय भंडार है। भोजपुरी जीवन का प्रतिनिधित्व वहाँ का लोक साहित्य ही करता है। मुगल शासक के बारे में जिस प्रकार की भावना अवधी, बघेली, बुन्देली में मिलती है। ठीक उसी प्रकार के प्रतिकार की भावना भोजपुरी में दिखाई पड़ती है यहाँ का लोकमानस मुगल शासन के अत्याचार एवं दुराचार से दुःखी है उनका दुःख लोक साहित्य में व्यक्त हुआ है।

इस प्रकार हिन्दी के विभिन्न बोलियों के लोकसाहित्य में मुगलों के प्रति जो भाव एवं विचार हैं एक समान रूप से व्यक्त हुए हैं। चाहे वह लोग साहित्य बघेली, बुन्देली, भोजपुरी, अवधी किसी का भी हो सभी मुगलों द्वारा किये गये अत्याचार उनके द्वारा किये गये युद्ध एवं भारतीय जनता के प्रति किये गये कुत्सित व्यवहार को व्यक्त करने वाले हैं।

भोजपुरी लोक क्षेत्र जो अपनी वीरता एवं वीरों के लिए विख्यात है। इस क्षेत्र में अनेक वीरता पूर्ण कहानियाँ गीतों में गाई जाती हैं। जिसमें 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से सम्बन्धित गीत भी है।

बाबू कुँवर सिंह जिस पराक्रम के साथ अंग्रेजों से युद्ध किया वह इतिहास में प्रसिद्ध है। भोजपुरी के गीतों में इनके बाहुबल की कहानी सुन कर आज भी हम रोमांचित हो जाते हैं–

^^fyf[k fyf[k ifr;k d Hkt yu d oj f l g]
, l u vej f l g Hkk; gk jkeAA
peMk d VkMok nk l gk dkV fd
Nrjh d /kje u l k; gk jkeAA
ckc d vj f l g Hkkb vejf l g]
nkuk v i u g] Hkk; gk jkeAA
cfr;k d dkj.k l ckc d ojf l g]
fQjxh l j< c<k; gk jkeAA
nkuk i j l tc l tyd gk dEi]
dk gyokj e jg gk; gk jkeAA
yk[k xkyk rg d xfu d gk efjgk]
NkM cjgjok d jkt gk jkeAA[8]

अवधी क्षेत्र भी 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से अछूता नहीं रहा जौनपुर के कोइरीपुर गाँव के पास चाँदा नामक एक गाँव है। जहाँ सन् 1857 ई. में सिपाही विद्रोह अंग्रेजी फौजों के साथ हुआ था। अब भी इस गाँव के आस–पास इस युद्ध के सम्बन्ध में लोक गीत गये जाते हैं। जिसकी एक कड़ी इस प्रकार है–

**dky dkdj fo l uok]
pkn xkM ck fu l uok**[9]

बघेली जनता में भी अंग्रेजों के प्रति घृणा एवं आश्चर्य दोनों हैं, एक लोक गीत का तात्पर्य इस प्रकार है–

;k vx th jktu n[kk gk
rky&rky d vUu dk cp
vkj /kvk r pyko jy
xfyu&xfyu ek Fkkuk cuke
cap 'kgj ek t y
bu i pu l d l thrc
dfBu ftnxh Hkb xyA
;k vx th jktu dk n[kkA[10]

यहाँ का लोक मानस अंग्रेजों को आश्चर्य से देखता है और सोचता है कि ये अंग्रेजों का कैसा राज्य है। ये तो धुँआ से रेल चलाते हैं। इन लोगों ने गालियों में थाने बना दिये शहरों में जेल बना दिये। एक ओर आश्चर्य और दूसरी ओर इन्हें अपने देश के लिए चिंता है। कि भारत इनसे कैसे जीतेगा? आज जो यह जीवन मरण का प्रश्न बन गया है। लोकमानस के ऐसे प्रगतिपूर्ण विचार इस बात के साक्षी है कि बघेली जनता अपने देश के उसकी आन एवं मर्यादा की रक्षा के लिए तत्पर है देश के शत्रु के प्रति बघेली लोक मानस में आक्रोश के भाव है।

अंग्रेजी शासन में महँगाई, बेरोजगारी, गरीबी से भोजपुरी जनमानस भी व्यथित है। अंग्रेजी शासन की आलोचना करता भोजपुरी का एक गीत इस प्रकार है–

i jnf l ;k d ub;k MxMe gk y A
n 'k xjhch d Hkkj yny ck]
fcp&e>/kkjok e Mxex Mk yAA1AA
ckMk vkdky jkx n l ok e ckV]
foi rh d ckny xMxM ck yAA2AA
n [kok d ufn ;k vxe t y ifu ;k]
t y e d gmok lu lu Mk yAA3AA
l k l d eygok eby erokyok]
fcurh dbyk ij dN vk u ck yAA4AA
i jnf l ;k d ub;k Mx ex gk y A
vc rk j ub;k uk cfpg fonf l ;k]
^^jke uke l r** vc ufn ;k e gk yAA5AA
i jnf l ;k d ub;k MxMe Mk yAAVdA**[11]

कोई आदमी कहता है कि ए विदेशी, तुम्हारी नाव डगडम हो रही है। देश के गरीबी के भार से वह भारी हो गयी है। और कभी भी मजधार में डूब सकती है।

देश में अकाल एवं रोग फैले हुए हैं। और विपत्ति का बादल गड़गड़ करता हुआ गरज रहा है।

दुःख रूपी नदी में अथाह जल भरा हुआ है। और अत्याचार की हवा सन–सन कर रही है। शासक रूपी मल्लाह मतवाला है। और वह जनता की प्रार्थना पर कुछ नहीं बोलता।

ए विदेशी अब तुम्हारी नाव नहीं बच सकती, नदी के बीच में ही राम नाम सत, होना चाहता है। अर्थात् नाव डूबना चाहती है।

महात्मा गाँधी द्वारा स्वदेशी अपनाने तथा चरखा चलाकर सूतकात कर वस्त्र पहनने की जो अपील देशवासियों से की जाती है। इसका प्रभाव भी लोक जनमानस पर पड़ता है। जो लोक साहित्य के माध्यम से हमारे सामने आता है।

लोक जनमानस अपने देश को स्वतंत्र कराने के लिए वह चरखा चलाने एवं सूत कातने के लिए तैयार है। वह किसी भी प्रकार से अपने देश को स्वतंत्र करा लेना चाहता है। बघेली लोकगीतों में चरखा युद्ध आदि के वर्णन उपलब्ध होते हैं।

इस प्रकार का एक गीत है जिसमें नायिका कहती है–

n x d iou r y] gM iou l n j
n x pUnu pj [kok vk j x t vkofj
pfd x g d iou r y gM iou l n j
VfV x g pUnu pj [kok] <g x t vkokfj
pfd tbgh l kjh mefj ;k] f l ikfg ;k ufg vk ,A[12]

गीत की नयिका का पति दीर्घकाल से युद्ध स्थल पर गया प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त चरखा शब्द का प्रयोग इस बात का प्रमाण है कि इस समय तक ग्रामीण वर्ग भी चरखा आदि से परिचित हो गया था।

भोजपुरी गीत में भी चरखा चलाने एवं देश दशा सम्बन्धी लोकगीत प्राप्त होते है। भोजपुरी के एक गीत में भावज देवर से कहती है

xk/kh d vkby tekuk ^noj t y [kkuk vc xby]
tc l ri l jdkj cgknj] Hkkjr ej fcunkukAA
noj t y [kkuk
gkFk gFkdfM ;k ckxkMok e cfM ;kA
n l ok Hkfj gkby fnokukAA2AA

bTtr jkf[k yg Hkkjr Hkb;k]
pj[kk pykog eI rkukAA3AA
noj ty [kkuk
deyk ljkftuh] fot; d y{eh
dke dbyh ejnkukAA4AA[13]

कोई भावज अपने देवर से कहती है कि अब महात्मा गाँधी का जमाना आ गया है। देश सेवा के लिए जेल जाने के लिए तैयार हो जाये। जब से देश पर सरकार बहादुर का राज्य हुआ है तब से, भारत अन्न की कमी से मर रहा है।

अब देश भक्तों के हाथ में हथकड़ी है। और पैरों में बेड़ी है। सारा देश, देश सेवा के लिए पागल हो रहा है। ए देवर अब तुम भारत माता की लाज रख लो और मस्त (मग्न) होकर चरखा चलाओं।

दूसरे चरखा गीत में कोई स्त्री अपने पति से कहती है कि हम अपने देश को स्वतंत्र कराने के लिए स्वराज लाने के लिए चरखा कातूँगी। आप मुझे एक चरखा ला दें।

vc ge dkrfc pj[kok fi;k efr tkg fonlok
ge dkfrfc pj[kk Itu rgyko
fefyg ,gh I IjktokAAAA
vc ge dkrfc pj[kok] fi;k efr tkg fonlok
ge dkrfc pj[kk Itu rg ykoA
fefyg ,gh I IjktokAAAAAA
gkbg Ijkt rc I[k fefyg
dfV tkbg Ic d dy lokAA2AA
nlok ykt jg pj[kk I
xk/kh d ekuk lu lokAA3AA
dgrkj xk/kh th fd pj[kk pykog]
,gh I gfVg dy lokAA4AA[14]

जब स्वराज मिलेगा तभी देसवासियों को सुख मिलेगा और सब लोगों का क्लेश दूर हो जायेगा।

महात्मा गाँधी का सन्देश मान जाओ। देश की लाज चरखे से ही रहेगी। और इसी से ही स्वराज्य की प्राप्ति होगी।।

महात्मा गाँधी कहते हैं कि चरखा चलावो इसी से सब देशवासियों का कष्ट दूर होगा।

इस प्रकार हिन्दी भाषा की विभिन्न बोलियों के लोक साहित्य में जहाँ एक ओर मातृभूमि के प्रति प्रेम की एकात्मता दिखाई पड़ती हैं, वही दूसरी ओर मुगल शासन के अत्याचार एवं दुराचार की टीस भी समान रूप से सुनाई पड़ती है। जो भावना मुगलों के प्रति है लगभग वही भावना अंग्रेजों के प्रति भी पायी जाती है।

1857 की क्रान्ति से हिन्दी की बोलियों का लोक साहित्य अछूता नहीं रहा 1857 की क्रान्ति यदि भोजपुरी लोक साहित्य एवं लोकमानस को उद्वेलित करती है। तो अवधी, बघेली, बुन्देली में भी 1857 के क्रांति की सशक्त आवाज सुनाई पड़ती है।

महात्मा गाँधी का स्वदेशी आन्दोलन चरखा चलाने का आह्वान यदि बघेलखण्ड को अपनी ओर आकर्षित करता है तो भोजपुरी अवधी बुन्देलखण्ड का लोक मानस भी चरखा कातने के लिए तैयार मिलता है।

हिन्दी की विभिन्न बोलियाँ का लोकसाहित्य भले ही भिन्न–भिन्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करती है। लेकिन भावों एवं विचारों के अभिव्यक्ति के मामले में इनके मध्य एकात्म की स्थिति पायी जाती है।

जो भारतीय संस्कृति की मूल विशेषता ''अनेकता में एकता'' को सत्य प्रमाणित करती है। भले की भारत में अनेक बोलियाँ एवं भाषाएँ पायी जाती हैं। लेकिन इनकी मूल भावना एक ही होती है।

क्योंकि भारत का लोकमानस एक दूसरे से भावनात्मक रूप से जुड़ा है।

lUnHk %

1. डॉ. कविता त्यागी, कौरवी प्रदेश की लोकसंस्कृति, प्रकाशन राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 45
2. डॉ. (श्रीमती) विनोद तिवारी, लोक गीतों का तुलनात्मक अध्ययन, प्रकाशक साहित्य वाणी, पृ. 38
3. डॉ. (श्रीमती) विनोद तिवारी, लोक गीतों का तुलनात्मक अध्ययन, प्रकाशक साहित्य वाणी, पृ. 227
4. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, प्रकाशक साहित्य भवन प्राइवेट लि., पृ. 247
5. डॉ. (श्रीमती) विनोद तिवारी, लोक गीतों का तुलनात्मक अध्ययन, प्रकाशक साहित्य वाणी, पृ. 228
6. डॉ. (श्रीमती) विनोद तिवारी, लोक गीतों का तुलनात्मक अध्ययन, प्रकाशक साहित्य वाणी, पृ. 229
7. डॉ. कविता त्यागी, कौरवी प्रदेश की लोकसंस्कृति, प्रकाशन राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 46
8. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, प्रकाशक साहित्य भवन प्राइवेट लि., पृ. 248
9. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, प्रकाशक साहित्य भवन प्राइवेट लि., पृ. 246
10. डॉ. (श्रीमती) विनोद तिवारी, लोक गीतों का तुलनात्मक अध्ययन, प्रकाशक साहित्य वाणी, पृ. 233–34
11. पं. कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी ग्राम गीत प्रकाश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ. 383–384
12. डॉ. (श्रीमती) विनोद तिवारी, लोक गीतों का तुलनात्मक अध्ययन, प्रकाशक साहित्य वाणी, पृ. 235
13. पं. कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी ग्राम गीत प्रकाश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ. 381
14. पं. कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी ग्राम गीत प्रकाश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ. 382

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 152-155

Hkjgqr Lrwi ds f'kYikdu esa lkSUn;Z cks/k

—".k nso ik.Ms;*

बौद्ध स्तूप और बौद्ध कलाकृतियों के लिए प्रसिद्ध भरहुत भारत के हृदयस्थल के रूप में प्रसिद्ध मध्यप्रदेश राज्य के सतना जिले में स्थित है। प्राचीन समय में यह श्रावस्ती और कौशाम्बी को चेदि जनपद और दक्षिणी कोसल से मिलाने वाले पूर्वी राजपथ के मध्य–भाग में स्थित था। पूर्व में मगध से सोनघाटी होकर जाने वाले मार्ग एवं पश्चिम की ओर मालवा जाने वाले मार्ग में स्थित होने से इसका व्यापारिक एवं सांस्कृतिक महत्व काफी था एवं यह एक धार्मिक केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध था । कनिंघम के अनुसार भरहुत का प्राचीन नाम सम्भवतः 'बगुद' था।

भरहुत स्तूप का निर्माण सम्भवतः ईटों से मौर्य शासक अशोक के समय में हुआ था।[1] शुंग काल में इसका विकास, विस्तार एवं साज–सज्जा हुई तथा इसे पत्थर की पट्टिकाओं से सम्वर्द्धित कर दिया गया। भरहुत स्तूप की वेदिका पर ब्राह्मी लिपि और प्राकृत भाषा में लेख खुदे हैं, इन लेखों का समय शुंगकालीन (ई.पू. द्वितीय शती) है। इन लेखों से यह पता चलता है कि स्तूप के निर्माण में अनेक दानदाताओं ने सहयोग दिया था। स्तूप के पूर्वी तोरण द्वार पर राजा धनभूति का नाम मिलता है, जिससे यह स्पष्ट है कि पूर्वी तोरण का निर्माण शुंगों के शासनकाल में धनभूति ने करवाया था।[2]

भरहुत स्तूप का स्वरूप 'घण्टाकार' था।[3] स्तूप को चारों ओर से घेरने वाली पाषाण वेदिका बनी थी। इस पाषाण वेदिका में प्रवेश के लिए चार तोरणद्वार थे। वेदिका में अनुमानतः 80 स्तम्भ थे। इन स्तम्भों पर उष्णीष लगे थे तथा दो स्तम्भों के बीच तीन–तीन पत्थर लगे थे जिन्हें सूचियाँ कहा जाता है। इस वेदिका के प्रत्येक अंश पर ही बौद्ध कथाओं, यक्ष आदि देव–योनियों तथा बेल–बूटेदार अलंकरणों का अंकन है।

इस महत्वपूर्ण स्थल की खोज सर अलेक्जेंडर कनिंघम ने 1873–74 ई. में की थी।[4] वर्तमान में यह स्तूप पूर्णतः नष्ट हो गया है तथा इसके अवशेष अपने मूल स्थान पर नही हैं। कनिंघम तथा उसके सहायक जे.डी. बेगलर को स्तूप के मूल स्थान तथा उसके समीप स्थित भटवारा एवं पटौरा नामक ग्रामों से वेदिका, स्तम्भ, तोरणद्वार, उष्णीष आदि के अवशेष प्राप्त हुए थे, जो अब ब्रिटिश संग्रहालय, लंदन तथा राष्ट्रीय संग्रहालय, कोलकाता में संग्रहीत हैं।[5] स्तूप की कुछ सामग्री रामवन संग्रहालय, सतना, भारत कला भवन, वाराणसी तथा प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय, मुम्बई में विद्यमान हैं।[6]

भरहुत के शिल्पांकन बौद्ध धर्म की हीनयान शाखा से सम्बन्धित है, जिसमें बुद्ध की प्रतिमा नहीं बनती थी। वेदिका स्तम्भ और तोरण पट्टों को बौद्ध प्रतीकों और आख्यानों से उत्कीर्ण किया गया हैं। इसमें बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित विविध दृश्यों को छत्र, बोधिवृक्ष, पादुका, पदचिन्ह, भिक्षापात्र और स्तूप आदि प्रतीकों के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है। इसके अतिरिक्त भरहुत मूर्तिशिल्प जातकों, ऐतिहासिक घटनाओं, लोकधर्मो में पूजित देवी–देवताओं, स्त्री–पुरुष, पशु आकृतियों, वृक्षों एवं वनस्पतियों के दृश्यों हेतु प्रसिद्ध है। वास्तविक रूप से अगर देखा जाय तो भरहुत स्तूप के मूर्तिशिल्प, भारतीय जन–जीवन का जीवन्त प्रतिरूप प्रतीत होता है।[7]

भरहुत स्तूप के मूर्तिशिल्प में बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित चार प्रमुख घटनाओं, जन्म, ज्ञान प्राप्ति, प्रथम उपदेश (धर्मचक्र प्रवर्तन) तथा मृत्यु (महापरिनिर्वाण) का प्रभावपूर्ण ढंग से का अंकन किया गया है।

*शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, डॉ. हरी सिंह गौर वि.वि. सागर (म.प्र.)

इनमें जन्म के दृश्य में एक घेरे के भीतर चौकी पर माया देवी लेटी हैं, उनके समीप एक श्वेत हाथी अंकित है, मानों वो उनके उदर में प्रवेश करने जा रहा है। पास ही परिचारिकाएँ बैठी हैं। ज्ञान प्राप्ति के लिए चबूतरे पर पीपल का वृक्ष बना है, जिसकी लोग पूजा कर रहे हैं। धर्म–चक्रप्रवर्तन के लिए चबूतरे पर चक्र की आकृति बनायी गयी हैं। इसकी पूजा करते हुए लोगों को दिखाया गया है। महापरिनिर्वाण के लिए चबूतरें पर स्तूप की आकृति बनी है।[8] इसके अतिरिक्त बुद्ध के जीवन की चार गौण घटनाओं–महाभिनिष्क्रमण, चक्रमपथ, तुषित स्वर्ण, श्रावस्ती का वर्षावास आदि का अंकन भी भरहुत की मूर्तिकला के दृश्यों में हुआ है।[9]

भरहुत स्तूप की वेदिका में जातकों का भी शिल्पांकन प्राप्त होता है। जातको में बुद्ध के पूर्व जन्मों का कथात्मक वर्णन है।[10] भरहुत स्तूप में शिल्पांकित जातको को तीन शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है–

1. मानवीय रूप से सम्बन्धित जातक में महादेव जातक सुजात जातक, बेस्सन्तर जातक, मिगपोतक जातक, महाजन जातक महाबोधि जातक, दसरथ जातक, छम्मसाटक जातक।
2. पशुयोनि से सम्बन्धित जातक में महाकपि जातक, लटुकिक जातक, गज जातक, छदन्त जातक, रूढ जातक।
3. पक्षियों से सम्बन्धित जातक में हंस जातक, कुक्कुट जातक, सम्मोदमान जातक।

बेस्सन्तर जातक में बेसंतर नामक दानी राजकुमार ने दान में अपना सब कुछ देकर अपनी पत्नी और पुत्र का भी दान कर दिया था इनके पास वर्षा कराने वाला एक हाथी था, जिसका दान करने, उसको प्रजा द्वारा अपदस्थ तथा फिर राजा बनायें जाने की कथा मिलती है। दशरथ जातक में काशी के राजा ब्रह्मदत्त को दशरथ माना गया है, क्योंकि उसकी कन्या का नाम सीता था। कथानक में राम, लक्ष्मण, भरत आदि का उल्लेख है। प्रायः सभी जातक प्रदर्शन का मूक उपदेश था सात्विक जीवन तथा अहिंसा।[11]

ऐतिहासिक घटनाओं के शिल्पांकन में भी भरहुत के कलाकार अग्रणी थे। ऐतिहासिक दृश्यों में कोसल नरेश प्रसेनजित को बुद्ध का दर्शन एवं वंदन करते दिखाया गया हे। एक अन्य दृश्य में मगध नरेश अजातशत्रु को लम्बे जूलूस के आगे दिखाया गया है, हस्तिरोही ये सम्राट हाथी से उतरकर अंजुलि बाँधकर वज्रासन (बुद्ध) की वंदना कर रहा है। यहाँ से प्राप्त शिला लेख में अजातशत्रु भगवतों वन्दते, उत्कीर्ण हैं।[12] एक अन्य ऐतिहासिक दृश्य में बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् उनके धातु अवशेषों को लेकर शाक्यों एवं मल्लों के मध्य संघर्ष को दिखाया गया है। इस दृश्य में एक हाथी पर कसे आसन पर लगे छत्र के नीचे फूल का पात्र रखा है तथा दोनों ओर गणराज्यों की सेनाएँ खड़ी है।[13]

भरहुत के शिल्पांकन में लोक जीवन से सम्बन्धित यक्ष एवं यक्षिणियों को भी उत्कीर्ण किया गया है। यक्ष यदि महाकाय, महौज्स और विकट आकृति वाले जीव थे तो यक्षिणियाँ दिव्य सौन्दर्य की स्वामिनी थी।[14] भारतीय इतिहास में यक्ष और यक्षी की मूर्तियाँ मौर्य काल से ही मिलने लगती है। मथुरा के परखम से प्राप्त यक्ष तथा पटना के दीदारगंज से प्राप्त चाँवरग्राहिणी यक्षी की मूर्ति प्रसिद्ध है।[15] भरहुत के महास्तूप में यक्ष–यक्षिणियों के अंकन से ऐसा लगता है कि भरहुत के कलाकर इनके उपासक थे। वेदिका स्तम्भों और तोरण द्वारों पर इन यक्ष एवं यक्षियों का अंकन उनके नाम सहित प्राप्त होता है यथा – कुबेर यक्ष, सुपावाव यक्ष, अजकालक यक्ष, सुचिलोम यक्ष, चन्द्रा यक्षी, सुदर्शना यक्षी इसके अतिरिक्त स्त्री देवताओं में सिरिमा देवता, चुलकोका देवता, महाकोका देवता इत्यादि का अंकन भी भरहुत के मूर्तिशिल्प को मनमोहक एवं सुन्दर बनाता है। इन यक्ष एवं यक्षियों का आकार छोटा और चपटा है, पैर तथा भुजाएँ भाव–भंगिमा युक्त हैं। वस्त्र पतले, सिलवटदार, कमर में फेंटा बँधा, धोती नीचे घुटने तक पहने हैं। इनके कमर से लटकते वस्त्रों का कोर दोनों पैरों के बीच आधार को छूता है। यक्षिणियों की मूर्तियाँ आकर्षक, अलंकरण युक्त एवं प्रभावी ढंग से उत्कीर्ण है जो मन को अन्यथा ही मोह लेती हैं। इनका चेहरा गोल, उन्नत उरोज, बढ़ी–बढ़ी आँखें, पतली कमर गहरी नाभि, मांसल जांघे और पुष्ट पैर का अंकन अद्वितीय है। इनके हाथों और पैरों की भावभंगिमा अद्वितीय है। सभी यक्षी मूर्तियाँ आभूषणों से युक्त हैं जिसमें

ग्रामीण संस्कृति की छाप दिखायी पड़ती है। इनके पैरों में छल्लेदार कड़े, बाहों में चूड़ियाँ, भुजबंध, कानों में कुण्डल सुशोभित हैं। भरहुत से ही शालभंजिका मुद्रा में एक यक्षी की मूर्ति मिली है जो लहरदार पेड़ से सटकर खड़ी है तथा हाथों से टहनी पकड़े हुए है।[16] भरहुत स्तूप में पुरूषों को भी गलाबन्द, कुण्डल, कड़ा पहने दिखाया गया है।

यक्षों के समान नाग भी प्राचीन लोक जीवन के धार्मिक विश्वासों के एक महत्वपूर्ण अंग थे। भरहुत के शिल्पांकन में नागों के कई दृश्य अंकित हैं। एक दृश्य में एरापत नाग को सपरिवार 'बोधिवृक्ष की पूजा' करते हुए प्रदर्शित किया गया है, यहाँ एक लेख उत्कीर्ण है, 'एरापतो नाग भगवतों वंदते।' इसके अतिरिक्त भरहुत के दृश्यों में मुचलिन्द, नाग चक्रवाक नाग तथा नागराजा वरुण को उनकी पत्नी विमला तथा कन्या इरंदती के साथ शिल्पकार ने शिल्पांकित किया है।[17]

भरहुत के शिल्पांकन में विद्याधर किन्नर एवं सुपर्ण भी प्रदर्शित हैं। गजलक्ष्मी की सुन्दर मूर्ति को बनाकर कलाकार ने सहज ही मन मोह लिया है। श्री लक्ष्मी मातृत्व और समृद्धि की देवी है। यहाँ लक्ष्मी वस्त्राभूषण धारण किये हुए कमल पर खड़ी हैं। दो हाथी घड़े से लक्ष्मी जी का जलाभिषेक कर रहे हैं।

भरहुत के मूर्ति शिल्पांकन में अनेक पशु–पक्षियों का अंकन भी प्राप्त हुआ है। इनमें कुछ अपने स्वाभाविक रूप में है और कुछ समन्वित। पशुओं में सिंह, गज, अश्व, वाराह, मृग, श्रृंगाल, श्वान और पक्षियों में हंस, कुक्कुट, काक, लट्वा तथा मयूर उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ मत्स्य, मगरमच्छ, गिलहरी एवं केकड़ा का सुन्दर ढंग से अंकन हुआ है। पशुओं से सम्बन्धित दृश्यों में वानरों के अनेक रोचक संदर्भ भरहुत में अंकित है जो हास्य पूर्ण दृश्य प्रस्तुत करते हैं। वेदिका के एक वृत्ताकार फलक में एक बन्दर हाथ में चिमटा लेकर खड़ा है और सामने बैठे किसी व्यक्ति का दाँत पकड़कर खींच रहा हैं दूसरे स्थान पर बन्दर द्वारा हाथियों के नचाने का दृश्य अंकित है। इस दृश्य में बन्दर ही वादक है और उन्हीं का झुण्ड दर्शक।[18]

वृक्षों और लताओं का सुन्दर शिल्पांकन भरहुत को मनोहारी रूप प्रदान करता है। वृक्षों को विविध दृश्यों से सजाया गया है। वृक्षों से वस्त्र, अलंकरण, जल, भोजन और स्त्रियाँ निकलती हुई दिखायी गयी है, संभवतः यह कल्पवृक्ष रहा होगा जो सभी की इच्छाओं को पूरा करता है। महावणिज जातक और रामायण के किष्किंधा कांड में कल्पवृक्ष का वर्णन है।[19] भरहुत के मूर्तिशिल्प में पीपल, आम, कटहल, केला, वट, उदुम्बर, पाटलि, शाल, शिरिष का सुन्दरता के साथ अंकन है। कमल पुष्प और अंगूर जैसी लताएँ भरहुत मूर्तियों को प्रभावपूर्ण स्थान दिलाती हैं। कमल पुष्प पूर्ण एवं अर्द्ध दोनों रूपों में उत्कीर्ण मिला है। जहाँ पीपल का वृक्ष बुद्ध के प्रतीक रूप में अंकित है, वहीं अलग–अलग सात वृक्ष सरल मानसी बुद्धों के द्योतक है।[20]

इस तरह हम ऐसा कह सकते हैं कि भरहुत के शिल्पांकन से शुंगकालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के अनेक पक्षों पर प्रकाश पड़ता है। कलाकारों ने तत्कालीन समय में प्रचलित लोक जीवन के विविध रूपों को भरहुत के शिल्पांकन में उतार दिया है। समाज के रहन–सहन, वस्त्रों के पहनने के ढंग एवं आभूषणों के प्रयोग, उत्सवों, शारीरिक सौन्दर्य उच्च एवं कुलीन व्यक्तियों के रहन–सहन, भवनों को भरहुत के कलाकारों ने सजीव रूप में चित्रित किया है। ग्राम्य जीवन से संबंधित दृश्यों में लुहार, नाई, सुनार, जुलाहे तथा उनके द्वारा बनाये जाने वाले रथ, बैलगाड़ी, नाव आदि का अंकन भी भरहुत मूर्तिशिल्प में प्राप्त होता है।

निष्कर्ष रूप में कहें तो भारतीय कला के इतिहास में भरहुत शिल्प का महत्वपूर्ण स्थान है। यह भारतीय मूर्तिकला को सुशोभित एवं अलंकृत करती है। यहाँ की प्रतिमाएँ भारतीय विरासत एवं संस्कृति को एक नया आयाम प्रदान करती है तथा सौन्दर्य के नये–नये प्रतिमान गढ़ती है और बौद्ध मूर्तिशिल्प, सौन्दर्य का गौरवशाली स्वरूप प्रस्तुत करती है।

lUnHkZ %

1. स्मिथ, वी.ए., अशोका, द क्लारेन्डन, प्रेस, आक्सफोर्ड, लंदन, 1920, पृ. 113
2. प्रताप, रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2016, पृ. 467

3. उपाध्याय, उदय नारायण एवं गौतम तिवारी, भारतीय स्थापत्य एवं कला, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2015, पृ. 68
4. अग्रवाल, पृथ्वीकुमार, प्राचीन भारतीय कला एवं वास्तु, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2014, पृ. 141
5. उपाध्याय, उदय नारायण, पूर्वोक्त, पृ. 67
6. श्रीवास्तव, के.सी., प्राचीन भारत का इतिहास, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2004–05, पृ. 303–304
7. उपाध्याय, उदय नारायण, पूर्वोक्त, पृ. 71
8. सहाय, शिवस्वरूप, भारतीय कला, स्टूडेन्ट्स फ्रेन्ड्स, इलाहाबाद, 2015–16, पृ. 34
9. वही, पृ. 34
10. मिश्र, रमानाथ, भरहुत, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1971, पृ 13
11. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2008, पृ. 59
12. राय, उदय नारायण, भारतीय कला, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006, पृ. 111
13. सहाय, शिवस्वरूप, पूर्वोक्त, पृ. 35–36
14. मिश्र, रमानाथ, पूर्वोक्त, पृ. 25
15. अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1966, पृ. 122
16. सहाय, शिवस्वरूप, पूर्वोक्त, 35
17. मिश्र, रमानाथ, पूर्वोक्त, पृ 29–30
18. सहाय, शिवस्वरूप, पूर्वोक्त, पृ 38
19. वाल्मीकि, रामायण, किष्किन्धा काण्ड, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1960, पृ. 43
20. सहाय, शिवस्वरूप, पूर्वोक्त, पृ. 37

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 156-159

eg#fUulk ijost+ ds dFkk lkfgR; esa ukjh psruk

Mk- vfHkyk"kk 'kekZ*

भारतीय समाज की प्राचीन परम्पराओं और थोपे गये नियमों के बीच फसी छटपटाती स्त्री का उद्धार करने के लिये स्वतंत्रता के पहले से ही अनेक प्रकार के प्रयत्न प्रारंभ हो गये थे। अनमेल विवाह, बालविवाह, सती प्रथा आदि का विरोध ऐसे ही प्रयत्न थे। अनेक समाज सुधारकों ने विधवा विवाह तथा नारी शिक्षा का समर्थन किया। अनेक आंदोलनों के बावजूद इस दिशा में तब तक कोई विशेष प्रगति नहीं हुई, जब तक कि नारी ने स्वयं अपनी इच्छा से प्रगति की दिशा में कदम नहीं बढ़ाए। इस प्रकार मध्यवर्गीय तमाम अन्तर्विरोधों को झेलती नारी, पुरूष की छत्रछाया से मुक्त होना चाहती है, पर मुक्त नहीं हो पाती। कारण वह संघर्षशीलता इनके पात्रों में नहीं है, जो नया रास्ता खोज सके फिर भी नारी के हृदय के दर्द, पीड़ा, कुंठा और वेदनाओं को मानवीय स्तर पर अनुभव कर अभिव्यक्ति दी। स्वयं उन्हीं के शब्दों में कहा गया है कि ''परिस्थितियों से विद्रोह कर नारी आखिर जाये कहाँ–कहाँ। इस पुरूष प्रधान समाज में नारी इतनी जकड़ी हुई है कि विद्रोह की सोच ही नहीं सकती।''[1]

स्वतंत्रता के बाद से तो नारी जागृति की प्रबल लहर सी आई वह अधिकारों की माँग करने लगी, किन्तु अब भी यह जाग्रति इतनी नहीं है जितनी उसे सहज रूप में अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिये चाहिए। वह कुछ नया अपनाने में अभी भी झिझकती है और पुराने को पूर्ण रूप से त्यागने में हिचकती है। इतना होने पर भी यह निश्चित है कि अब नारी अपनी परम्पराओं को समाप्त करने को लालायित पिछले एक दो दशकों से पुरूषों के समान ही आज नारी हर क्षेत्र में चाहे वह नौकरी का हो अथवा विवाह समानता के अधिकारों की माँग कर रही है। इस नवीन चेतना में अगर वह सफल हो गई तो शायद मातृ सत्तात्मक समाज के आगमन की शुरूआत होगी।

यह सच है कि साहित्यकार समाज का एक सदस्य है। समाज में घटित घटनाओं को लेकर रचनाएं करता है। इसी संदर्भ में लेखिका मेहरुन्निसा परवेज़ ने भी अपने आस–पास की घटनाओं को कथा साहित्य की वस्तु बनायी। समाज में अनेक प्रकार की अनावश्यक रूढ़ियाँ और अंधविश्वास आज भी फैली हुई है। उनके कारण अनेक असहाय नारियों के जीवन बरबाद हो रहे हैं। सामान्य रूप से हर लड़की विवाह होने के बाद ससुराल जाती है और नई बहू के आने के बाद उस घर में कोई दुर्घटना या किसी को कुछ हो जाता है तो उसका जिम्मेदार लोग उस लड़की को मानेंगे। मेहरुन्निसा परवेज़ ने इन्हीं सभी सामाजिक विडंबनाओं को अपने कथा साहित्य में जागरण लाने की दिशा में प्रस्तुत किया है। अगर समाज में दुर्भाग्य से किसी स्त्री पर अत्याचार हो जाता है तो उसे फिर उसके परिवार वाले भी नहीं अपनाते। लोग उसे समाज से भ्रष्ट मानते हैं और अलग रखते हैं।

इस संदर्भ में मेहरुन्निसा परवेज़ के कथा साहित्य अधिक प्रासंगिक है। इनके कथा साहित्य में नारी चेतना की स्थिति को बखूबी ढंग से दर्शाया गया है। 'उसका घर' उपन्यास में रेश्मा माँ के विरूद्ध हिन्दू लड़के से प्रेम करती थी और उसके बच्चे की कुंवारी माँ बनती है। रेशमा ईसाई धर्म की लड़की थी। उसकी माँ ईसाई धर्म के लड़के से विवाह करना चाहती है। इन सबके बावजूद रेशमा प्रेम विवाह ही करती है। रेश्मा देव के साथ अपना जीवन बिताना चाहती है। वह कभी–कभी माँ को बताये बिना देव के पास चली जाती थी और परिवार में किसी को पता नहीं होता कि वह देव के पास गई है। ऐलमा को पत्र

*हिन्दी विभाग, शासकीय महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर, मध्यप्रदेश

लिखकर बाहर जाती रहती है। वह लिखती थी कि ''दीदी में देव के पास जा रही हूं दोनों समय के भोजन पर मेरा इंतजार न करना।''[2] इस प्रकार कभी–कभी ऐलमा, देव और रेश्मा के बारे में सोचती है। रेश्मा के भाग्य पर तरसती है। उसे रेश्मा के भाग्य पर ईर्ष्या होती है, उसमें चेतना को देखकर वह सहम जाती है।

यदि हम वैदिक युग की की बात करें तो इस युग की स्त्री समाज में परिवार में एक सम्मानीय स्थिति प्राप्त कर, पुरूष के तरह ही अपने को बराबरी का हकदार समझती थी। लेकिन कुछ दिन पूर्व तक अपनी तमाम विवशताओं में पशुवत नारकीय जीवन की यंत्रणा पाती रही है। चार दीवारी की घुटन में संसार के खुलेपन की ताजी हवा को सिर्फ महसूसती रही है। उसे देखने का साहस नहीं कर पायी थी। जैसे–जैसे युग बदलने लगा उसी के अनुरूप सामाजिक और व्यक्तिगत मान्यताओं की पुरानी हवेली चरमराकर गिरने लगी और नये युग धर्म के साथ घुटती स्त्री पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने हेतु दोनों बाहें फैलाये मुक्त आकाश की ओर देख तेज कदमों से आगे बढ़ने लगी यह धारा महानगरों से होती हुई नगर, उपनगर, गांव तक अब स्पष्ट देखने को मिलती है।

मेहरुन्निसा परवेज़ के 'कोरजा' उपन्यास में रन्नों भी कुंवारी माँ बनने वाली थी। विवाह के मंडप में ही वह चक्कर खाकर गिर पड़ती है उसकी माँ रब्बो कहती है कि ''नस्सो इसे दिन चढ़े हैं। दोनों एक दम खुलकर साथ रहते थे मेरी ही जिद पर यह विवाह जल्दी हो रहा है। वरना इन दोनों को तो कोई चिंता ही नहीं थी, क्या जमाना आ गया है।''[3] जमाने के साथ रब्बो भी बदल गई है। जो बेटी का कुंवारी माँ बनने पर समर्थन करती हैं। इनका मानना है कि आदिवासी समाज में लड़कियों का विवाह छोटी उम्र में कर देते हैं, लेकिन उनमें भी परिवर्तन आ गया है। आज वे लड़कियां विवाह के विषय में अपना निर्णय स्पष्ट करने को वे लड़कियां अग्रसर हैं।

'ओढ़ना' कहानी में एक वेश्या नारी जीवन का चित्रण मिलता है। कहानी की पात्र रानी धंधे पर बैठने के विरूद्ध स्कूल के मास्टर भैरव से विवाह करना चाहती है। वह अपने निर्णय को स्पष्ट कह देती है। ''मैं चेतन के लिये या और किसी के लिये नहीं बैठूंगी कहे देती हूं।''[4] इस प्रकार घर में होने वाले षडयंत्र को जानकर वह भैरव के पास चली जाती है। भैरव के पास जाना उनकी जाति में मृत्यु को आमंत्रित करना ही था। ऐसी स्थिति में भी अपने को सुरक्षा पाने के लिये भैरव के घर चली जाती है। कभी–कभी असुंदरता भी नारी के लिये श्राप बन जाती है।

'सूकी बयड़ी' कहानी में थोरा काली थी, उसकी बहिन होरा रूपवती है। दोंनों का विवाह एक ही घर में होता है थोरा को बच्चे पैदा नहीं हुये, इसलिए उसका पति मोहनी को अपने घर ले आया। पति कहता है कि ''कोठरी खाली कर दे तू माँ की कोठरी में चली जा। मोहनी रहेगी इसमें समझी?...थोरा कोठरी नहीं खाली करना चाहती वह कहती है कि मैं कोई पेट में आंटी राखूं राखे तेरी प्यारी। जा चले जा कोठरी में खाली नी करूं। म्हारे बापू ने ब्याह कराया है। फेरे लेकर लाया है ब्याह वाली हूं। म्हारी इज्जत है।''[5] पति मोहनी के प्रेमी के हाथों से मर जाता है तब भी वह मोहनी की रक्षा करने में सफल होती है। पुलिस के जांच पड़ताल में घर आने पर वह कहती है कि ''कोण नी मारा। हाट से अई रिया थो तो बाघ झपटी गया। वह पहाड़ी से लुढ़की गयो और मरी गयो।''[6] पुलिस मोहनी को देखकर पूछने पर वह उसे अपनी बहिन कहकर विषय को टाल देती है सारे गांव में उसकी प्रशंसा करते हैं। इस कहानी में नारी चेतना के साथ दूसरी नारी की रक्षा करती है, जो उसकी समझदारी को दर्शाता है। स्त्रियां अब तक सामाजिक दृष्टि से पुरूषों की संपत्ति मानी जाती थी। वे अपने पति के शोषण और अत्याचार को चुपचाप सहन करती थीं। लेकिन आज स्त्रियों के संरक्षण के नियम बन गये हैं। वे आत्मनिर्भर हो गई हैं। उन्हें हर क्षेत्र में पुरूष के समान अधिकार प्राप्त है। इसी कारण वे पति के द्वारा अनाचार किये जाने की स्थिति में कभी भी पति को त्याग सकती हैं।

मेहरुन्निसा परवेज़ ने अपने कथा साहित्य में स्त्रियों को प्रगतिशील बनाने का हर संभव प्रयास किया है। 'सूकी बयड़ी' कहानी में नारी प्रगतिशील दिखाई देती है। 'जगार' कहानी में नारी पुरूष के प्राप्त होने से उसकी स्थिति में परिवर्तन दिखाई देता है। 'बीच का दरवाजा' 'अयोध्या से वापसी' 'कोई नहीं' शनाख्त आदि कहानियों में नारी आत्मनिर्भर होकर पति को छोड़ देती है। लेखिका अपने कथा साहित्य

में नारी को आत्मनिर्भर बनाकर जीने की लालसा पैदा करती है। उनके कथा साहित्य में नारी जितनी परम्परागत दिखाई देती है उतना ही अन्याय को दूर करने में आगे रहती है।

देखा जाय तो प्राचीन समय में हमारे समाज में नारी की स्थिति सामान्यतः पुरूष पर निर्भर करती थी। पुरूष ही नारी के भाग्य का विधाता था। नारी सिर्फ पुरूषों के हाथों की कठपुतली मात्र थी। वह मूक बघिर बनी सारी यातनाएं सहती थी, परंतु समाज से लड़ने की हिम्मत नहीं जुटा पाती। इस संबंध में लेखिका कहती है कि ''पुरूष प्रधान समाज की रूढ़िगत सामाजिक मृगमरीचिका से नारी युगों से विभिन्न रूपों स्तरों पर छली गई है। और छलावों के कारण आज भी उसकी इच्छाओं की पिपासा अतृप्त है। उसे सामाजिक न्याय के स्तर पर माता, बहिन और भाभी का पाठ रटटू तोते की भांति जबरन पढ़ाया गया और सामाजिक बंधन के पिंजड़े में कैदकर पुरूष ने अपनी इच्छानुसार मनमाने ढंग से उसके तन मन का भरपूर शोषण किया।''[7] लेखिका का मानना है कि क्या इस पुरूष प्रधान समाज में नारी यूं ही ठगी जायेगी? क्या स्वतंत्र भारत की नारी यूं ही पिंजड़े में कैद पंछी की तरह खुले आसमान में उड़ने की कल्पना करती ही रहेगी? क्या इस देश की नारी यूं ही अपाहिजों की भांति रेंगती रहेगी? क्या शोषण की शिकार नारी की करूण पुकार हमारे समाज को कभी सुनाई नहीं देगी? इन समस्त प्रश्नों को हल करने का प्रयास मेहरुन्निसा परवेज़ ने अपनी लेखनी के माध्यम से किया है।

सही मायने में लेखिका ने नारी जीवन की वास्तविक जटिलताओं से सीधा साक्षात्कार करने वाले उनके कृतित्व में संवेदनात्मक स्तर पर जीवन के तथ्य को खोजा। आधुनिक नारी जीवन के अनुभवों और वेदनाओं को समेटे उनकी रचनाएं सामाजिक आग्रह के साथ मानवता से जुड़ती हैं। इसलिए उनके यहां मानव न्याय संवेदन की धारा प्राकृतिक रूप में विद्यमान रही है। परंपरा को ऐतिहासिक अनिवार्यता मानने वाली इनकी रचनाओं में परम्पराबोध भी साथ–साथ चलता है।

प्राचीनकाल से नारी पर होते हुए अन्याय को पुरूष द्वारा धोखा खाती नारी अपनी लाचारी के कारण बेबस है। वह अपनी नियति के सहारे जीवन गुजारती है। मेहरुन्निसा परवेज़ के कथा साहित्य की नायिकाएं अपने जीवन के लिये संघर्ष कर रही हैं। रोती बिलखती हैं। टूटती जुड़ती हैं। नारियों की समस्याओं को लेकर लेखिका ने हर पहलू पर प्रकाश डाला है। साहित्यकार भी ऐसे ही समाज से उत्पन्न होता है, अपने परिवेश पर उसकी कड़ी नज़र रहती है। सच्चाई को उसी रूप में प्रस्तुत करना ही उसका कर्त्तव्य होता है। मेहरुन्निसा परवेज़ एक प्रतिभा सम्पन्न कलाकार हैं। समाज से संघर्ष करना चुनौती प्राप्त करना महिला कथाकारों के लिये एक परीक्षा है। उसमें सफल वे होते हैं जो उससे जूझने की क्षमता रखते हैं उनमें मेहरुन्निसा परवेज़ का नाम सर्वोपरि है। इस प्रकार हिन्दी कथा साहित्य में मेहरुन्निसा परवेज़ का सशक्त ईमानदार और संघर्षशील व्यक्तित्व अपनी सृजनात्मक महत्व के कारण सदा स्मरण रहेगा।

इसी तरह नैतिक सामाजिक मूल्यों के संघर्ष में ही सामाजिक समस्याओं का निर्माण होता है। सामाजिक विघटन के कारण सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इसमें समूह में रहने वाले व्यक्ति के सामाजिक संबंध टूट जाते हैं और विघटन होता है। जिस समय व्यक्ति, दल, समुदाय इस पर कोई नियंत्रण नहीं रह जाता उस समय विघटन हो जाता है। समाज में परस्पर मतैक्य जब नहीं रहता, समूह का एकत्रित रहने का उद्देश्य इन मतांतरों से संकुचित हो जाता है उस वक्त समाज जीवन अस्थिर हो जाता है। लेखिका ने समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं को अपने कथा साहित्य में प्रस्तुत किया है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि मेहरुन्निसा परवेज़ का कथा साहित्य लगभग नारी समस्या एवं चेतना पर केन्द्रित हैं। दाम्पत्य संबंधों में परिलक्षित तनाव, अनमेल विवाह, अविवाहित युवतियों की समस्यायें, अर्थाभाव के कारण पारिवारिक जीवन में उत्पन्न समस्यायें आदि को लक्ष्य करके मेहरुन्निसा परवेज़ ने अपने कथा साहित्य की रचना की है। इन्होंने बचपन से नारी समस्याओं को देखा। इसीलिए अपने कथा साहित्य में नारी विषयों को प्रमुखता दी है। जीवन के विविध उतार–चढ़ाव को अपने कथा साहित्य में उद्घाटित किया इसी संबंध में सुप्रसिद्ध विद्वान लक्ष्मण सहाय के विचार हैं कि ''मेहरुन्निसा परवेज़ ऐसी ईमानदार कथा लेखिका हैं जिन्होंने अपने इर्द–गिर्द नारी के जीवन का भीगा आंचल देखा और उसकी जघन्य पीड़ा को महसूस कर उसकी जीवन्त अनुभूति के यथार्थ को रचनात्मक अभिव्यक्ति

दे डाली और सतत दे रही हैं।''[8] लेखिका का भी जीवन विभिन्न स्थानों में व्यतीत हुआ परंतु नारी को उन्होंने प्रत्येक जगह पिंजरे में कैद पाया। उनकी दृष्टि में नारी हर जगह आज जरूरत का सामान बनकर रह गई, जिसे जब चाहा उपयोग किया और छोड़ दिया। आज की नारी किस कदर अपमान और शोषण की शिकार है इसकी पीड़ा को समझने वाला कोई नहीं है। आज की नारी मूक बधिर बनी सारी यातनायें सहती है, परंतु इस समाज से लड़ने की हिम्मत नहीं जुटा पाती। इनका मानना है कि भारत जैसे पवित्र देश में जहाँ नारी की पूजा की जाती थी, वहाँ पूजा न सही, बस थोड़ा सा सम्मान ही नारी को मिल जाये तो इनका उद्देश्य सार्थक हो जायेगा।

lUnHkZ %

1. समकालीन हिन्दी कथा लेखिका, डॉ. रामकली सराफ, अनुराग प्रकाशन वाराणसी, संस्करण 1988, पृ. 13
2. कोरजा, मेहरुन्निसा परवेज, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, संस्करण 1977, पृ. 18
3. ओढ़ना, सोने का बेसर, मेहरुन्निसा परवेज, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण1991, पृ. 87
4. सूकी बयड़ी, समर, मेहरुन्निसा परवेज, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, पृ. 143
5. सूकी बयड़ी, समर, मेहरुन्निसा परवेज, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, पृ. 144
6. सूकी बयड़ी, समर, मेहरुन्निसा परवेज, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, पृ. 148
7. आरजू के फूल, टहनियों पर धूप, मेहरुन्निसा परवेज़, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1977, पृ. 121
8. वागर्थ, भारतीय भाषा परिषद की मासिक पत्रिका, लक्ष्मण सहाय (अपने अपने लोग), पृ. 31

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 160-162

दो संस्कृतियों की अद्भुत दास्तान : पारिजात

सुषमा*

नासिरा शर्मा का बहुप्रतिष्ठित, बहुप्रशंसित एवं वर्ष 2016 में साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत उपन्यास 'पारिजात' केवल एक रूपक ही नहीं बल्कि नए–पुराने रिश्तों की दास्तान है। नई सदी के नएपन को व्याख्यायित करने वाले विषयों में एक बड़ा अंश उन पात्रों का है जो अकेलेपन, अजनबीपन, उखड़ेपन तथा जुड़ न पाने वाली प्रवृत्तियों में अपनी भाषा खोजते हैं। ऐसे विषयों पर कुछ प्रभाव तो निश्चय ही विदेशी विचार दर्शन के भी हैं। इस कथा का केन्द्र लखनऊ शहर है। लखनऊ का जीवन द्वन्द्वात्मकता से भरा हुआ है। एक ओर तो उसके पास उदात्त मानवीय मूल्यों की विरासत है, दूसरी ओर वर्तमान जीवन व्यवस्था की विसंगतियाँ। लेखिका ने इस द्वन्द्व को बड़ी सजगता एवं गम्भीरता के साथ उकेरा है। यह उपन्यास भारत की मिली–जुली संस्कृति का परिचायक तथा भारत की आदिम संस्कृति का महाआख्यान है। इस उत्तर आधुनिक समय में पाश्चात्य संस्कृति, उपभोगतावाद तथा बाजारवाद लोगों को किस कदर अपनी गिरत में ले रहा है इसका जीता–जागता प्रमाण रोहन है। जाति, धर्म, नस्ल, भाषा के आधार पर हो रहा लोगों का शोषण हमारे सोच–विचार पर प्रश्न खड़ा करता है। धर्म और राजनीति के साथ–साथ आज बाजार का हस्तक्षेप भी मानव जीवन में बढ़ गया है। आज हमारे जीवन की बहुत सारी चीजों को बाजार तय करने लगा है। रोहन प्रतिभा सम्पन्न एवं आर्थिक रूप से भी सम्पन्न है। आज की युवा पीढ़ी पाश्चात्य संस्कृति से इतना प्रभावित है कि अपना देश अपनी संस्कृति, सभ्यता एवं संस्कार को भूलकर विदेश में ही बस जाता है। रोहन भी वही सपना लेकर विदेश जाता है वहाँ पढ़ाई पूरी करने के बाद अच्छी नौकरी करते हुए एक अंग्रेज लड़की ऐलेसन से शादी कर घर बसा लेता है। रोहन ऐलेसन से बेपनाह मोहब्बत करता है। वही ऐलेसन उसकी जिन्दगी में तूफान खड़ा कर देगी उसका सब कुछ उससे छीन लेगी उसे विश्वास नहीं होता। वह कहता है कि ''दिन में दस बार 'आई लव यू' कहने वाली एकायक इतनी बदल कैसे गई?''[1] ऐलेसन ने जो कुछ किया ''कहते हैं, यह सब कुछ कारपोरेट वर्ल्ड में अपोजिट ग्रुप ने करवाया।''[2] इससे पता चलता है कि कारपोरेट वर्ल्ड में रिश्तों की क्या अहमियत है। घर में मामूली झगड़े को लेकर ऐलेसन ने रोहन पर ऐसे अमानवीय और घिनौने आरोप लगाये कि वह समाज में मुँह दिखाने लायक नहीं रहा। ऐलेसन ने सोच समझकर पूरी रणनीति के साथ रोहन से शादी की थी। शादी के बाद उसके बदलते व्यवहार को देख वह बहुत कुछ समझौता करता है और स्वयं को तसल्ली देता है कि ''शायद हम दोनों के सोचने का अपना संस्कार था। वे शादी से पहले हर तरह का शौक पूरा कर लेते हैं और हम शादी के बाद अपनी सारी इच्छाओं को पूरा करना चाहते हैं। उसे मेरे महँगे सामान खरीदने पर एतराज़ था, मगर मेरी वह ज़रूरत था। तभी मैं तीन बड़ी कम्पनियों के इतने बड़े ओहदे पर रहा। कॉरपोरेट वर्ल्ड की कुछ मजबूरियाँ होती हैं। उसे यह सब पता था, मगर जाने क्यों वह चाहती थी कि मैं जो कमाऊँ, बैंक में पैसे डालूँ और एक जोड़े से काम चलाऊँ?''[3] कहीं न कहीं एलेसन पहले से ही योजना बनाकर चल रही थी तभी तो झूठे आरोप लगाकर रोहन को लॉकअप में डलवाकर ''बेटे को नानी के साथ भेज उसने रोहन का सारा पैसा और जेवर बैंक से निकाले और फर्नीचर, फ्रिज, वाशिंग मशीन सभी कुछ लंदन बुक कर वह भी दो सप्ताह बाद चली गई।''[4] ऐलेसन के इन व्यवहार से ऐसा लगता

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

है कि पश्चिम के लोगों को इंसान से ज्यादा इन मशीनों से और पैसे से प्यार है इंसान और इंसानी रिश्ते कोई मायने नहीं रखते। वहीं दूसरी तरफ रोहन की जिन्दगी उजड़ गई उसकी माँ प्रभा दत्त बेटे रोहन, बहू और पोते टेसू (पारिजात) के रिश्ते को बिखरते देख सदमे से उबर नहीं पाती और दुनिया ही छोड़कर चली जाती है। रोहन जैसे ही भारतीययुवा कितना भी विदेशी बनने का दम्भ भरे लेकिन भारतीय संस्कार उसकी रगों में कूट—कूट कर भरा हुआ है इसीलिए रोहन कभी भी ऐलेसन नहीं बन सका। हम आधुनिकता की इस भाग—दौड़ में चमक—दमक में इतने मस्त हो गए है कि न ही हम अपनी पुरानी सभ्यता, संस्कृति एवं ऐतिहासिक धरोहरों को संजोये रख पा रहे हैं न ही नए को ठीक ढंग से अपना पा रहे हैं।

ऐलेसन रोहन पर आरोप दर आरोप लगाती गई और उसे साबित करने के लिए वह किसी भी हद तक चली गई। उसने उस पर अपने ही नन्हें बच्चे टेसू के गुप्तांगों से खेलने का भी आरोप लगाया जबकि वह खुद 'लेसबियन' थी इसका पता रोहन को ''उस रात से पहले शक भी नहीं कर सकता था कि घर और बाहर ऐलेसन की बढ़ती औरतों से दोस्ती वास्तव में उसकी जिंदगी को किधर खींच रही है।''[5] इस तरह देखें तो लेसबियन हमारी नेशनल स्तर की समस्या होती जा रही है। लेखिका ने इस बढ़ रही नयी समस्या की ओर भी ध्यान दिलाकर हमें सोचने पर मजबूर किया है। सदियों से हो रहे जुल्म और अत्याचार से स्त्रियों को बचाने, उन्हें उनका अधिकार और हक दिलाने के लिए जो कानून बनाये गए उनके असली हकदार को जिन्हें इसकी सख्त जरूरत है वे बेचारे तो अनभिज्ञ हैं उन्हें तो पता भी नहीं कि ऐसा कानूनी हक है वे तो सदियों से चुपचाप जुल्म सहती आ रही है और जिन्हें इसकी जरूरत नहीं वह किस तरह गलत इस्तेमाल कर रहा है। सदियों से हो रहे महिलाओं के जुल्म, अत्याचार व शोषण की दास्तान तो बहुत लिखी—पढ़ी गई लेकिन यह उपन्यास पुरुष पर हो रहे अत्याचार और शोषण की भी दास्तान है। एक माँ की अपनी संतान के लिए हो रही तड़प और पीड़ा को तो बहुत बार बयां किया गया लेकिन यह उपन्यास अपने संतान के लिए पल—पल तड़पते पिता के दुःख दर्द की भी दास्तान है। इस उपन्यास की कथा के केन्द्र में लखनऊ शहर है वहाँ की आबो—हवा, शानो—शौकत, नवाबशाही, फनकारी का अद्भुत वर्णन किया गया है। पुराने फ़न गजलें, नौहे, मर्सिया के उस्ताद लोगों के प्रति कितनी उदासीनता है हर जगह उनसे डिग्री माँगी जाती है उनकी कलाकारी नहीं देखी जाती। आज स्थिति ठीक उसके विपरीत है डिग्री है पर ज्ञान नहीं। आज हमारे देश में शिक्षित युवाओं को बेरोजगारी की मार किस कदर झेलनी पड़ रही है इसका उदाहरण सफ़ीर का यह कथन काफी है— ''अंग्रेजी में एम0ए0 करने के बाद जनाब नौकरी ठीक मिली नहीं, मैंने भी लात मारी और कभी किताबत कर ली, कभी अनुवाद कर दिया, कभी ट्यूशन।''[6] आज धर्म के नाम पर इंसान कितना बँट गया है वह इंसान को ही दुश्मन समझ लेता है। पहले इंसान की जिन्दगी में धर्म का दखल इतना नहीं था। अपने अधिकार और नैतिक मूल्यों एवं सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रति सभी एक थे। लेखिका ने प्रह्लाद दत्त, प्रभा दत्त, नुसरतजहाँ, जुल्फ़िकार अली और बशारत हुसैन और फिरदौस जहाँ के माध्यम से भारतीय संस्कृति की जो मिसाल पेश की है वह काबिले तारीफ है और हमें पीछे मुड़कर सोचने—समझने को मजबूर करता है। पति काज़िम की मृत्यु के बाद रूही और रोहन की पारिवारिक सहमति के साथ शादी कराकर लेखिका ने लव—जेहाद को भी करारा जवाब दिया है। ईद, बकरीद, मोहर्रम, होली, दीवाली, दशहरे का त्योहार आपसी मेले—मिलाप और भाईचारे का संदेश देता है। अपनी इच्छाओं के पूरे होने पर न केवल मुस्लिम बल्कि हिन्दू भी दरगाह पर चादर चढ़ाते हैं। आज की सबसे बड़ी समस्या आतंकवाद है, आतंकवाद की जड़ कहीं न कहीं अन्याय है चाहे वह आर्थिक, सामाजिक या नैतिक किसी भी प्रकार का हो सकता है। हम देख रहे हैं कि नस्ल भेद किस कदर बढ़ता जा रहा है। कभी आस्ट्रेलिया में कभी अमेरिका में भारतीयों या अन्य देशवासियों पर हमले दिन—प्रतिदिन बढ़ते ही जा रहे हैं। नस्ल, भाषा, रंग को लेकर भेदभाव की खाई बढ़ती ही जा रही है।

नासिरा शर्मा का यह उपन्यास उनके अब तक के लेखन का चरमबिन्दु है, जिसमें उनके विचार, भाषा, संवेदना बहुत ही सजीवता के साथ साकार हुए हैं। इनकी क़िस्सागोई पाठक को शुरू से अंत तक बाँधे रखती है। लेकिन बीच—बीच में गजलें, नौहे और मर्सिया का पढ़ा जाना तथा हुसैनी ब्राह्मणों के

इतिहास में गहनता से डूबना कथा की गतिशीलता में अवरोध उत्पन्न करते हैं। लेखिका इनसानी रिश्तों के बीच से ही देखकाल के पेचीदा रास्तों से गजरती हुई पाठक को उन चरित्रों के मन की गहरी थाह लेने के साथ–साथ उनमें रिश्तों की अहमियत को भी जगाती है।

lUnHk %

1. 'पारिजात' उपन्यास, नासिरा शर्मा, किताबघर प्रकाशन, तृतीय पेपरबैक संस्करा, अप्रैल 2017, पृ0 130
2. वही, पृ0 133
3. वही, पृ0 244
4. वही, पृ0 299
5. वही, पृ0 314
6. वही, पृ0 233

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 163-166

Je.k laLÑfr ds mi&lEiznk;

MkW0 vfuys'k dqekj flag*

छठी शताब्दी ई0पू0 के प्रथम चरण तक तो श्रमण संस्कृति और जैन संस्कृति दोनों को एक समझी जाती थी, तत्कालीन बुद्ध के कारण इसकी एक धारा बौद्ध धर्म के रूप में प्रवाहित हो चली और कालान्तर में जैन तथा बौद्ध दोनों ही श्रमण संस्कृति शब्द से व्यवहृत होने लगें। पालि साहित्य में श्रमणों के चार प्रकार बताये गये हैं– मेग्गाजिन, मग्गदोसिन, मम्गजीविन और मग्दासिन। इनमें पारस्परिक मतभेद उत्पन्न होने के कारण अनेक दर्शनिक सम्प्रदाय उठ खड़े हुए जिन्हें बुद्ध ने 'दिट्ठि' संज्ञा दी।[1] इन सभी विवादों का संकलन वासढ़ प्रकार की मिथ्या दृष्टियों (मिच्द्दादादिट्ठ) में किया गया है। जैन साहित्य में इन्हीं दृष्टियों को विस्तार से 363 श्रेणियों में विभक्त कर समझाने का प्रयत्न किया गया है[2]। ठाणांग में श्रमणों के पाँच भेद निर्दिष्ट है– निगण्ठ (जैन), सक्क (बौद्ध), तापस, गेरू और परिण्वानक[3]। सुत्तनिपात में इनके तीन भेद मिलते हैं– तित्थिय, आजीविक और निगण्ठ। इन्हें बाद में सील कहा गया है।[4]

बुद्ध कालीन धार्मिक स्थिति की जानकारी के लिए त्रिपिटक में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। ब्रह्मजालसुत्त (दीर्घ निकाय) में तत्कालीन प्रचलित प्रायः सभी श्रमण सम्प्रदायों को द्वासट्ठि मिच्छा दिट्ठिगतानि के अन्तर्गत आंकलन कर दिया गया है। इनमें बौद्ध की अतिरिक्त पूरण कस्सप, मक्खलि गोशाल, अजितकेशकम्बली, पकुधच्चायन, संजय वेलटिठ पुत तथा निगण्ठनातपुत। त्रिपिटक में इन सभी आचार्यों को ''सड़धी चेव गणी च, गणाचरियों च आतो, यसस्सो, तिथकरो, साधुसम्मतों, बहुजनस्य, रत्तज्जू, चिरपब्बजिलों, अद्धगतों, वचोनुपत्तों'' कहा गया है। इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि बुद्ध सबसे कम अवस्था के तीर्थ कर थे। सामञ्अकल–सुत्त में उक्त सभी तीर्थकरों के सिद्धान्तों का वर्णन मिलता है। परन्तु समीक्षात्मक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि संकलयिता को उन सिद्धान्तों का समुचित ज्ञान नहीं था।[5]

संयुक्त निकाय में श्रमण में छः प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है। बुद्ध के समकालीन जो छः शास्ता, संधी गणी, गणाचार्य और तीर्थंकर थे उनका वर्णन संक्षेप में दिया गया है। उनके नाम थे अजितकेशकम्बली, पूरन–कश्यप, पकुधच्चायन, मक्खलि गोशाल, संजयवेलष्ठिपुत, निगंठनापुत्त।[6] श्रमण संस्कृति के पुरस्कर्ता महावीर तथा उनके समकालीन शाक्यपुत्त बुद्ध तो थे ही किन्तु लगभग छठी शताब्दी में रचित निरीथ चूर्णि में श्रमणों में निग्रन्थ, शाक्य, तापस, गैरिक, आजीविक की गणना की गई है।[7] श्रमण परम्परा की अनेक शाखायें रही हैं और आज भी मौजूद हैं। जैन, बौद्ध, आजीविक आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है[8]। जी0सी0, पाण्डे ने श्रमण ट्रेडिशन में इनका उल्लेख किया है– ''Apart from the sakyaputriyas and the Nigganthas the Ajivikas were the most important Sraman sect in the sixth century BC and it was a sect which continued to survive for centuries. There is also no doubt that this sect already existed as an old sect in the days of Budha and Mahavira."[9]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है। कि छठी शताब्दी ई0पू0 में भारत वर्ष में श्रमण के सात सम्प्रदाय उपलब्ध थे।

पूरण कस्सप– का मत है कि कुछ भी करने से पाप अथवा पुण्य नहीं होता अर्थात् इस मत को पाप को प्रोत्साहन समझना ठीक न होगा। यह वस्तुतः पुरूष के अकर्तव्य तथा असंगता का सिद्धान्त है जो कि सांख्य तथा वेदान्त दोनों को ही स्वीकार है। ईशोपनिषद में अतएव कहा है ''न कर्म लिप्यते नरे''।

*अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, के0जी0के0 कॉलेज, मुरादाबाद,उ0प्र0

सूयगडंग में भी एक सदृश अकारकवाद का उल्लेख है जिसे शीलॉक ने सांख्य से अभिन्न माना है।[10] इस तीर्थकर के अनुसार हिंसा, परस्त्रीगमन, चोरी आदि दुष्कर्मों में कोई पाप नहीं। इसलिए इसका मत अक्रियावाद की श्रेणी में आता है।[11] नलिनाक्ष दत्त ने भी यही स्वीकारा है।[12] यह दर्शन कुछ ऐसा वैचित्रय लिए हुए हैं कि उसे प्राचीन भारतीय दर्शनों के साथ संगत नहीं किया जा सकता। संयुक्त एवं अंगुत्तर निकाय में पूरण कस्सप को 'अहेतुवादिन' कहा गया है।[13]

यह अहेतुवाद साम० फल सुत्त में मक्खनि गोशाल के साथ संयोजित किया गया है। बुद्ध घोष ने पूरन की जीवनी का कुछ अंश दिया है– किसी दास के घर इसने अपने जन्म से सौ की संख्या को पूरा किया। अतः स्खलन होने पर भी उसे दण्डित नहीं किया जाता फिर भी वह किसी कारण से असन्तुष्ट हो गया और वस्त्रादि त्याग का नग्न विचरण करने लगा।[14] धम्मपद अटटकथा के अनुसार भगवान बुद्ध का प्रभाव असह्य हो जाने के कारण पूरण ने नदी में डूबकर प्राणान्त कर दिया था।[15]

id/kdPpk;u& काच्यायन का मत है कि तत्व–''पृथ्वी, अप, तेज, वायु सुख, दुःख और जीवन'' अकृत, अनिर्मित, अवध्य और कुटस्थ है।[16] इसलिए इसे अकृततावाद कहा गया है। शीलॉक ने इसकी भी गणना अक्रियावाद में की है।[17] यह मत अशंतः वैशेषिक और अंशतः सांख्य का स्मरण दिलाता है। प्रश्नोपनिषद् में एक कम्बन्धी–कात्यायन का उल्लेख आता है किन्तु पिप्पलाद से उसे जो उपदेश मिला, उसका इस सप्तकायवाद अथवा अक्रियावाद से कुछ भी सम्बन्ध नहीं हैं।[18] ब्रह्मजालसुत्त में भी इसे अक्रियावाद अथवा उच्छेदवाद कहा गया है। बुद्ध घोष ने पकुध को उष्ण जल ही उपयोग करने वाला बताया है।[19]

lt;oyfVB iRr%& संजय अज्ञानवाद अथवा अनिश्चिततावाद का प्रर्वत्तक था। इसके अनुसार परलोक अयोनिज प्राणी, शुभाशुभ कर्मों के फल आदि विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर संजय के अनुसार, अस्ति, नास्ति, आस्ति–नास्ति एवं अवक्तव्य' के रूप में दिया जा सकता' है।[20] ब्रह्मजालसुत्त में इस मत को अमराविक्षेपकों का मत कहा गया है। सूयगडंग की व्याख्या में शीलांग का कहना है– ''तत को वेत्ती त्यस्यार्थों न कस्य चिठिशिष्टं ज्ञानमस्ती योइतीन्द्रियान जीवादीन भोत्स्यते। न च तैर्ज्ञातैः किंचित्फलमस्ति।[21] कहा गया है कि सारिपुत्त और मोग्गल्लान बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के पूर्व संजय के शिष्य थे।[22] मोग्गल्लान और संजय को जैन साहित्य में जैन मुनि बताया गया है।[23] कुछेक विद्वानों ने जैन सिद्धान्त के स्याद्वाद का मूल आधार संजय के अज्ञानवाद को माना, पर यह उनकी भूल है। संजय के सिद्धान्त में अनिश्चित्तता बनी रहती है, जबकि स्याद्वाद एक निश्चित दृष्टिकोण को उपस्थित करता है। जैनों ने इसीलिए उसके सिद्धान्त की कटु आलोचना की है।[24] संजय के चतुष्कोटि विनिमुक्तता के सिद्धान्त के पूर्व भी जैनों में स्याद्वाद के बीज दिखाई देते हैं।[25]

vftrd'kdEcyh%& अजितकेशकम्बली के मत में न दान है, न दृष्टि, न हुत, न सुकृत और न दृष्कृत कर्म का फल विपाक है, न इहलोक है, न परलोक, न श्रमण–ब्राह्मण है, जिन्होंने अभिज्ञा बल से इहलोक परलोक का साक्षात्कार किया है। मनुष्य चातुर्महाभूतिक है। जब वह काल (मृत्यु) को प्राप्त करता है, तब पृथिवी पृथिवी–काम को अनुपगमन करती है।[26] इसलिए इसके मत को जड़वाद अथवा उच्क्षेदवाद की संज्ञा दी गई है।[27] सामंफलसुत में अजितकेशकम्बली नाम के आचार्य का उच्छेदवाद उल्लिखित है। बौद्ध और जैन ग्रन्थों में एक और भौतिकवाद विचारक पायासि–पएसि का उल्लेख आता है जो कि आत्मा की सत्ता को प्रत्यक्ष की कसौटी पर जांचना चाहता था।[28] इसकी तुलना चार्वाक से की जा सकती है। सूयगडांग में इसकी गणना ''तं जीवं तं शरीर'' (तज्जी वतच्दरी राकारकवादी) के रूप में की गई है।[29]

मक्खलि गोसाल– जैन साहित्य के अनुसार मक्खलि मूलतः पार्श्वनाथ और महावीर का अनुयायी था। दोनों के सिद्धान्तों में समानता है। जैसे छः अभिजातियों में विश्वास जो कि निगण्ठ में लेस्याओं के नाम से जाना जाता है सत्व, प्राण, भूत और जीव इन चारों पदों का सहप्रयोग, एकेन्द्रिय, द्वादिन्द्रिय आदि जीवों का वर्गीकरण और सिद्धों की सर्वज्ञता में विश्वास। बाद में मतभेद होने पर उसने अपना पृथक संघ स्थापित कर लिया।[30] बुद्ध घोष नियति, संगति और भाव को पृथक–पृथक मानते हैं। उन्होंने संगति की व्याख्या की है– संगतीति छन्नमपि जातीनं तत्थ–तथ्य गमनं।[31] सामञ्ञफलसुत्त के अनुसार वह बिना हेतु और प्रत्यय के सभी तत्वों की शुद्धि मानता था इसलिए उसके सिद्धान्त की गणना नियतिवाद में कर दी गयी।

मज्झिम निकाय[32] में इसे अहेतुकदिट्ठि अथवा अकिरियादिट्ठि तथा दर्शन सार में अज्ञानवाद के नाम से अभिहित किया है। शीलांक ने अक्रियावाद के भेद–प्रभेदों में इसकी गणना की है।

बुद्ध गोसाल को अत्यन्त खतरनाक मानते रहे।[33] मक्खलि नामकरण के सन्दर्भ में बुद्धघोष का कहना है कि– मक्खलि एक दास था। उसके मालिक ने एक तेल भरा बर्तन देकर कहा 'गिर नहीं जाना' (माक्खलि)। फिर भी असावधानीवश वह गिर गया। फलतः उसका नाम मक्खलि हो गया। गौशाला में जन्म होने के कारण उसे गौसाल या गोसाल कहा जाता है।[34] उसे पाणिनि ने मस्करिन और उवासगदसाओं ने मक्खलि पुत्त कहा है।

गोसाल के अनुयायी आजीविक अथवा आजीवक कहलाते थे। उनका नियतिवाद प्रारब्ध कर्मों पर निर्भर था। पुरूषार्थ की वहाँ अपेक्षा नहीं थी। पतंजलि ने उन्हीं को लक्ष्य कर लिखा है– मा कृत मा कमीर्णि शान्ति पर्वः श्रोयसी––मस्करी परिवाजकः। इस सम्प्रदाय का आस्तित्व लगभग वारहवी शताब्दी तक रहा है। बाद में सम्भवतः दिगम्बर जैनों में अन्मर्भूत हो गया।[35]

egkohj rFkk c)& श्रमण परम्परा के अनेक सम्प्रदाय रहे हैं किन्तु वर्तमान में केवल दो शाखायें ही दृष्टिगोचर होती हैं– जैन तथा बौद्ध। जैन तथा बौद्ध परम्परायें अन्य परम्पराओं के समान धर्म एवं दर्शन के रूप में विकसित हुई। ये न तो वेद को प्रमाण मानते हैं और न ही ईश्वर को जगत का कर्ता। कर्म सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं और संसार में सत्व (जीव) अपर्नपूर्वकृत कर्मों के कारण एक गति से दूसरी गति में जन्म एवं मरण प्राप्त करता हुआ नाना दुःखों को भोगता रहता है। संसार में जो भी कुछ विचित्रता है वह प्राणियों के कर्मों के फलस्वरूप ही है। सत्व इन कर्मों से मुक्त हो जाता है तो उसका जन्म–मरण के द्वारा संसार में भटकना समाप्त हो जाता है। दोनों समकालीन थे। दोनों का प्रचार स्थल प्रायः पूर्वी उत्तर प्रदेश और विहार था। दोनों मानवतावादी थे। दोनों ने जाति वाद एवं कर्म काण्ड को महत्व न देकर आन्तरिक विशुद्धि और सदाचार पर बल दिया। महावीर के पावन प्रवचन गणिपिटक (जैन आगम) के रूप में विश्रुत है तो बुद्ध का संकलन त्रिपिटक (बौद्धागम) के रूप में प्रसिद्ध है।

इसके अतिरिक्त दोनों में अन्य समानता भी पायी जाती है। दोनों ने सांसारिक जीवन में दुःख की सर्वव्यापकता को स्वीकार करते हैं और दुःख मुक्ति का आदर्श रखते हैं। दोनों में आध्यात्मिक प्रगति के विभिन्न स्तरों की कल्पना की है। बौद्ध धर्म में इनको क्रमशः स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी एवं अहर्त कहा जाता है तो जैन धर्म में वीत्राग एवं अरिहन्त जीवन का प्रायः इसी रूप में वर्णन है और इसे नैतिक जीवन का परम साध्य माना गया है। दोनों में आचार विषयक समानता भी पाया जाता है। बौद्ध का शील जैन व्रतों से सहज ही तुलनीय है।

अहिंसा के सम्बन्ध में दोनों में किंचित दृष्टिभेद अवश्य था और तत्वमीमांसा के मौलिक अन्तर के कारण दोनों की ध्यान पद्धतियों में भी असमानतायें थी। जैन काम क्लेश और कठोरता पर बल देता था तो बौद्ध अतिवर्जना और मध्यम मार्ग को। दोनों में पुण्य–पाप की अवधारणा समान है। दोनों सदाचरण को ही जीवन में उच्चता–नीचता का प्रतिमान मानते हैं और ब्राह्मण की जन्मानुसार नहीं अपितु कर्मानुसारी परिभाषा प्रस्तुत करते हैं। साथ ही दोनों में आदर्श भिक्षु याति के गुण प्रायः समान हैं।

उपर्युक्त सम्प्रदायों के अतिरिक्त कुछ छोटे–मोटे शास्त्र और भी थे जो अपने मतों का प्रर्वतन समाज में कर रहे थे। कहीं बायसठ दार्शनिक मत का प्रसंग मिलता है। तो कहीं बुद्धकालीन मतमतान्तरों की संख्या 363 बताई गई है।

lUnHkZ

1. सुत्त निपात्त, शिक्षु धर्मरत्न, सारनाथ–1961, 1, 5, 2, 4–12
2. सूत्र कृतांग, निर्मुक्ति आगमोदय समिति, बम्बई–1917, 1–1–11
3. ठाणांग, पृ0–949
4. सुत निपात्त, 2–14–6
5. भागचन्द्र जैन, जेनिज्म इन बुद्धिष्ट लिटरेचर, पार्श्वनाथ शोध संस्थान, वाराणसी–1961 प्रथम अध्याय
6. आचार्य नरेन्द्र देव ; बौद्ध धर्म दर्शन, मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन ,वाराणसी–1956, पृ0–3, 4

7. सौभाग्यमलजैन– श्रमण संस्कृति परम्परायें तथा आधुनिक युगबोध, पृ0–127
8. मोहन लाल मेहता– जैन धर्म दर्शन, पार्श्वनाथ शोध संस्थान, वाराणसी–1966 पृ0–104
9. जी0सी0 पाण्डे– श्रमण ट्रेडीशन, सम्मति ज्ञान पीठ, आगरा–1959, पृ0–33, 34
10. सूयगडांग, आगमादय समिति वीर सं0–2442, 1–1–13
11. दीघ निकाय– भाग–1,भिक्षु जगदीश काश्यप नालन्दा–1958, पृ0–52
12. अर्ली मोनास्टिक बुद्धिज्म ; भाग–1, पृ035
13. संयुक्त निकाय,भाग–3, पृ0–67, अगुंत्तर निकाय–भाग 5, भिक्षु जगदीश काश्यप, नालन्दा प्रकाशन–1954, 126
14. दीर्घ निकाय,अट्टकथा–भाग–1, पृ0–142
15. धम्मपंद, दिव्या वे दान, प्रतिहार्य सूत्र अवद्यकिशारे नारायण महाबोधी ग्रन्थमाला वि0सं01995
16. दीर्घ अट्टकथा–भाग–1, भिक्षु धर्मरक्षित, सारनाथ 1957, पृ0166
17. सूयगडांग, 1–1–15 –16
18. जी0सी0 पाण्डे;बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास,हिन्दी साहित्य प्रकाशन, लखनऊ–1963, पृ036
19. दीघ अट्टकथा, भाग–1, पृ0144
20. दीघ निकाय, भाग–1, पृ051
21. सूयगडांग, 1–2–16, 42
22. विनयपिटक भाग–1, भिक्षु जगदीश काश्यप, नालन्दा 1956–58, पृ0–42, 171 थेरगाथा–17–2
23. अमितगाही श्रावकाचार–6
24. अष्ट सहस्री– पृ0–129
25. भागचन्द्र जैन; रयुडीमेन्टस ऑफ अनेकान्तवाद इन पालि लिटरेचर नागपुर युनिवर्सिटी जरनल,1968.
26. आचार्य नरेन्द्र देव ; बौद्ध धर्म दर्शन, पृ04
27. दीर्घ निकाय भा–1, पृ04
28. जी0सी0 पाण्डेय ; बौद्ध धर्म के विकास का विकास, हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ–1963, पृ032
29. सूयगडांग, 1–11 पर
30. भीव संग्रह, 176–179
31. वैशम, हिस्टरी एण्ड डाक्टियन्स आवचि आजीविक्स, पृ0–1
32. मज्झिम निकाय, भाग–1, राहुल सांकृत्यायन, सारनाथ–1964, पृ0513 मिलिन्दपुत्र, पृ04–5
33. अंगत्तर निकाय भाग–1, भदन्त आनन्द कौसल, महाबोधी सभा, कलकत्ता, पृ0289
34. दीर्घ निकाय अट्टकथा ,भाग–1, पृ0166
35. भाग चन्द्र जैन ; बौद्ध संस्कृति का इतिहास, पार्श्वनाथ शोध संस्थान, वाराणसी–1971, पृ05

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 167-170

^mRrj izns'k ds lUnHkZ esa egkRek xk¡/kh ds f'k{kk n'kZu dh mikns;rk*

fouksn dqekj*
Ñ".k dqekj ;kno**

izLrkouk % मोहनदास करमचन्द गाँधी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 को काठियावाड़ के पोरबन्दर नामक स्थान पर सम्पन्न गुजराती परिवार में हुआ था। इनके पिता करमचन्द गाँधी राजकोट में दीवान थे तथा इनकी माता पुतलीबाई अत्यन्त धार्मिक विचारों वाली महिला थी। 12 वर्ष की अवस्था में गांधी जी का विवाह कस्तूरबा से कर दिया गया जो गांधी जी से 6 वर्ष बड़ी थी। मोहनदास करमचन्द गांधी जिनको सम्पूर्ण भारत में राष्ट्रपिता के रूप में सम्बोधित किया जाता है। गांधी जो आधुनिक भारत के महानतम व्यक्ति थे वे केवल राजनीतिज्ञ ही नहीं वरन एक सन्त, विचारक एवं शिक्षाविद भी थे। गांधी जी शिक्षा को व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार मानते थे और मनुष्य की किसी भी प्रकार की भौतिक अथवा आध्यात्मिक उन्नति के लिए इसे उतना ही आवश्यक मानते थे जितना कि बच्चे के शारीरिक विकास के लिए माँ का दूध।

उत्तर प्रदेश एक विकासशील राज्य की श्रेणी में होते हुए भी अपार मानव संसाधन, व्यापक उपजाऊ कृषि भूमि एंव अन्य संसाधनों से भरा हुआ है। यदि उत्तर प्रदेश की शैक्षिक स्थिति पर नजर डाले तो वर्तमान में उत्तर प्रदेश की कुल साक्षरता दर में केवल 67.7 प्रतिशत पुरुष एवं 57.2 प्रतिशत महिला साक्षर है, जो उ0प्र0 को विकासशील राज्य की श्रेणी में रखने के लिए पर्याप्त है। क्योंकि यहां कि कुल साक्षरता दर भारत के औसत साक्षरता दर 73 प्रतिशत से कम है। शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है जो किसी प्रान्त या देश को पूर्ण विकसित बना सकता है। जहाँ तक उत्तर प्रदेश का प्रश्न है तो उत्तर प्रदेश के शैक्षिक रिपोर्ट 2013 के अनुसार उ0प्र0 में स्कूलों की कुल संख्या 221653 है, जबकि इनमें केवल 69.78 प्रतिशत। स्कूल या तो सरकारी हैं या सरकार द्वारा सहायता प्राप्त हैं।[2] यदि उत्तर प्रदेश की जनसंख्या के हिसाब से देखा जाय तो यह संख्या कम है। वहीं यदि हम दूसरी तरफ उच्च शिक्षा की बात करें तो AISHE 2017–18 के सर्वे के अनुसार उत्तर प्रदेश में कुल विश्वविद्यालयों की संख्या 76 है। जबकि इससे जनसंख्या में कम, राजस्थान में 79, गुजरात में 65, कर्नाटक में 60 एवं तमिलनाडु में 58 विश्वविद्यालय हैं। उपरोक्त संख्या यह दर्शाता है कि सबसे वृहद् जनसंख्या वाला राज्य होने के बावजूद भी उत्तर प्रदेश में उच्च शिक्षा के उतने संस्थान नही हैं, जितने कि इस राज्य को आवश्यकता है। उपर्युक्त सर्वे के अनुसार सामान्य तौर पर यह कहा जा सकता है कि उत्तर प्रदेश का जिस प्रकार शैक्षिक विकास होना चाहिए उस प्रकार का नहीं हुआ। अब प्रश्न उठता है कि इस शैक्षिक विकास नहीं होने के पीछे कौन–कौन से कारण हैं? तो हम सामान्य तौर पर सबसे बड़े कारण के रूप में गरीबी और बेरोजगारी को जिम्मेवार ठहराते हैं। लेकिन हम यदि इसके मूल कारणों का गहन परीक्षण करें तो हम पाते हैं कि इसके पीछे मूलरूप से सबसे बड़ा कारण यह है कि शिक्षा में रोजगार देने की क्षमता का कम होना। इसके पीछे कहीं न कहीं हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली ही जिम्मेदार है। क्योंकि हमारी शिक्षा प्रणाली में वर्तमान समय तक उन छात्रों की संख्या अधिक है, जो शिक्षा केवल उपाधि (डिग्री) लेने के लिए पाते हैं।

*असि0 प्रोफेसर, बी0एड0 विभाग, आर0आर0पी0जी0 कालेज, अमेठी।
**असि0 प्रोफेसर, शिक्षक शिक्षा विभाग, सी0सी0एस0पी0जी0 कॉलेज हेंवरा, सैफई, इटावा।

शिक्षा के सन्दर्भ में महात्मा गांधी के अनुसार–''शिक्षा का बेरोजगारी के विरूद्ध एक बीमा होना चाहिए।''[4] यदि हम इस हिसाब से देखें तो हमारे देश एवं उत्तर प्रदेश में बढ़ती बेरोजगारी हमें यह स्पष्ट बता रही है कि हमारे प्रान्त का शैक्षिक विकास उस प्रकार नहीं हो रहा है, जैसा कि यहां आदर्श रूप में अपनाया गया था। आज उत्तर प्रदेश में अपराध दिन प्रतिदिन बढ़ते चले जा रहे हैं। यदि हम राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो की ओर से दिनांक–30 नवम्बर 2017 को जारी किये गये आंकड़ो पर गौर करें तो हम पाते हैं कि वर्ष 2016–17 के दौरान सर्वाधिक अपराध उ0प्र0 में हुए जिसमें हत्या कि 4884 घटनायें, महिला के विरूद्ध अपराध के 49262 मामले, दंगों के 61947 मामले प्रमुख हैं।[5] हत्या, दंगा तथा महिलाओं के विरूद्ध अपराध में उ0प्र0 आज सबसे ऊपर है। एक तरफ तो बेतहासा बेरोजगारी बढ़ रही है जो अप्रत्यक्ष रूप से गरीबी को बढ़ावा दे रही है। आज के उत्तर प्रदेश की परम्परागत शिक्षा प्रणाली इन दोनों पक्षों से लड़ने में पिछड़ गई है। यदि हम वर्तमान समय में एक ऐसी शिक्षा प्रणाली पर विचार करें जो उपरोक्त समस्याओं का समाधान कर सकें तो वह प्रणाली मेरे विचार में गांधीवादी शिक्षा प्रणाली होगी।

f'k{kk dk ifr egkRek xka/kh dk fopkj %

महात्मा गांधी आधुनिक राष्ट्र के जनक तथा गांधीवाद के प्रवर्तक थे, गांधीवाद या यूं कहिए गांधी जी के विचारों का व्यवस्थित रूप गांधी जी के कुछ सिद्धान्तों पर निश्चित किया जा सकता है। यह विचारधारा भौतिकवाद तथा अध्यात्मवाद के एक सुन्दर एवं संतुलित सम्मिश्रण का प्रतिनिधित्व करती है। यह उस दिशा में एक सशक्त प्रयास है अतः इस विचाराधारा के अनुसार मनुष्य के भौतिक विकास का मुख्य लक्ष्य उसका आध्यात्मिक और नैतिक विकास करना है जो बेहतर शिक्षा के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

महात्मा गांधी जी ने शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहा है कि–''सच्ची शिक्षा वही है जो बालकों की आध्यात्मिक, बौद्धिक और शारीरिक क्षमताओं को उनके अन्दर से बाहर प्रकट एवं उत्तेजित करती है।''[6] महात्मा गांधी जी की यही परिभाषा शिक्षा के उनके उद्देश्यों के रूप में उभर कर सामने आती है। गांधी जी ने दो उद्देश्य निर्धारित किये हैं प्रथम तात्कालिक उद्देश्य एवं दूसरा अन्तिम उद्देश्य, तात्कालिक उद्देश्य के अन्तर्गत इन्होंने शारीरिक विकास, नैतिक एवं चारित्रिक विकास, मानसिक एवं बौद्धिक विकास, जीविकोपार्जन का उद्देश्य, संस्कृति का उद्देश्य, पूर्ण विकास का उद्देश्य तथा मुक्ति का उद्देश्य रखा। जबकि अन्तिम उद्देश्य में इन्होंने बताया कि शिक्षा के दौरान व्यक्ति वास्तविकता के अनुभव के साथ–साथ ईश्वरीय एवं आत्मज्ञान को प्राप्त कर सके।[8] उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उन्होंने वर्धा शिक्षा योजना का निर्माण किया, जिसमें उन्होंने बेसिक शिक्षा के रूप में शिक्षा का व्यापक दृष्टिकोण देश के सामने रखा, जिसके 7 प्रमुख बिन्दु इस प्रकार थे–

1. 7 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाय।
2. शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा हो।
3. सम्पूर्ण शिक्षा किसी आधारभूत शिक्षा अथवा उद्योग पर आधारित हो।
4. शिक्षा का चुनाव बच्चों की योग्यता और क्षेत्रीय आवश्यकताओं के आधार पर किया जाय।
5. बच्चों द्वारा निर्मित वस्तुओं का उपयोग हो।
6. बच्चों की शिक्षा इस प्रकार दी जाय कि उससे बच्चे जीविकोपार्जन कर सकें।
7. शिल्पों की शिक्षा में आर्थिक महत्व के साथ–साथ उसके सामाजिक एवं वैज्ञानिक महत्व को स्थान दिया जाय।
8. गांधी जी ने उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर अपने बेसिक शिक्षा के मूल उद्देश्यों को भी बताया जो इस प्रकार थे–
9. 1. शारीरिक एवं मानसिक विकास, 2. सर्वोदय समाज की स्थापना, 3. सांस्कृतिक विकास, 4. चारित्रिक एवं नैतिक विकास, 5. व्यावसायिक विकास, 6. नागरिकता का विकास, 7. आध्यात्मिक विकास।[9]

महात्मा गांधी के शिक्षा का पाठ्यक्रम सबसे अधिक उपयोगिता के सिद्धान्त पर आधारित है। उनके अनुसार शिक्षा ऐसी हो जिसका उपयोग छात्र जीवन पर्यन्त करते रहें। उपयोगिता के सिद्धान्त को उन्होंने पाठ्यक्रम में सर्वोच्च स्थान पर रखा है। महात्मा गांधी के अनुसार पाठ्यक्रम के अन्तर्गत हस्तकलायें, भाषा, विज्ञान, गणित, सामाजिक अध्ययन, शारीरिक शिक्षा, नैतिक शिक्षा, धार्मिक शिक्षा एवं ललित कलाएं प्रमुख विषय थे। गांधी जी ने हमेशा शिक्षा के विषयों में सह सम्बन्ध की वकालत की है। उन्होंने पाठ्यक्रम को लचीला बनाने की भी वकालत की है। गांधी जी के शिक्षण विधियों में क्रिया विधि, स्वानुभव विधि एवं चिन्तन मनन विधि प्रमुख विधियां थी। उन्होंने छात्रों एवं शिक्षकों दोनों के लिए अनुशासन का एक विशेष रूप सामने रखा यह रूप स्व अनुशासन एवं मुक्तयानुशासन, अनुशासन का मिश्रित रूप था। गांधी जी का ऐसा मानना था कि जितनी नैतिकता गरीबों में होती है उतना अमीरों में नही। अतः गांधी जी ने नैतिक शिक्षा की पुरजोर वकालत की है और आज दुनिया के सभी लोग गांधी दर्शन को मार्क्स के ऊपर रखने के लिए तैयार हैं।

mRrj izns'k dk lUnHkZ esa xk/khoknh f'k{kk n'ku% महात्मा गांधी ने बेसिक शिक्षा के दो सर्व प्रमुख उद्देश्य बताये पहला शारीरिक एवं दूसरा मानसिक विकास। यदि आज के दौर में उत्तर प्रदेश की बात करें तो इसकी परम आश्यकता है क्योंकि आज का उत्तर प्रदेश अपने शिक्षा प्रणाली में शारीरिक एवं मानसिक विकास को उस रूप में सम्मिलित नहीं किया है जिस रूप में उसे होना चाहिए। आज उत्तर प्रदेश में 'मिड डे मील' की व्यवस्था तो स्कूलो में हो गयी है। लेकिन उसकी खामियां आज जग जाहिर है। सरकार और समाज दोनों को चाहिए कि वह मिलकर इस प्रकार कि खामियों को दूर करें।

महात्मा गांधी ने शिक्षा के माध्यम से एक सर्वोदय समाज की स्थापना की बात की इसे दूसरे शब्दों में या आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो गांधी जी ने मूलरूप से ऐसी शिक्षा की बात की जो समावेशी विकास को बढ़ावा दे। लेकिन वर्तमान में उपाधि अर्जित करने वाली शिक्षा प्रणाली में समावेशी विकास की कल्पना एक मजाक बन कर रह गयी है।

महात्मा गांधी जी अपने शिक्षा प्रणाली में चरित्र निर्माण पर सबसे अधिक बल दिया है। आज हमारी शिक्षा प्रणाली में चारित्रिक मूल्यों का कहीं न कहीं हरण हुआ है। जिसका परिणाम हम आज उत्तर प्रदेश में बढ़ते अपराध के रूप में देख रहे हैं। यहां होने वाले अपराध की प्रकषति पर यदि गौर किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि कहीं न कही हम मानवों के चरित्र निर्माण में कमजोर रहे हैं। हमे पूर्णरूप से गांधी जी के शैक्षिक विचारों पर चलते हुए एक ऐसी शिक्षा प्रणाली निर्मित करनी होगी ताकि मनुष्यों का वास्तविक रूप में चारित्रिक विकास हो पाये। यही एक ऐसा माध्यम है जिससे हम अपराध को कम कर सकेंगे।

महात्मा गांधी जी की शिक्षा प्रणाली में व्यावसायिक शिक्षा पर भी व्यापक बल दिया गया है। उत्तर प्रदेश वृहद् मानव संसाधनों एवं अपार प्राकृतिक संसाधनों के बावजूद विकासशील राज्य की श्रेणी में आता है। इसके पीछे सबसे बड़ा कारण यह है कि हमारी शिक्षा प्रणाली में जीविकोपार्जन की शक्ति काफी कमजोर हो गयी है। आज हमारे विद्यालयों से हस्तशिल्प शिक्षा गायब हो चुकी है। साथ ही हम उस प्रकार की कौशल आधारित शिक्षा नहीं दे पा रहे हैं जिससे हमारे मानव, मानव संसाधन बन पायें। यही वह कारण है जिसके कारण उत्तर प्रदेश में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या सर्वाधिक है।

उत्तर प्रदेश में वर्तमान बढ़लते समय के परिप्रेक्ष्य में पुनः गांधी जी की व्यावसायिक शिक्षा प्रणाली को आधुनिक रूप देकर अपनाना होगा, हमें आज अपने प्रान्त में व्याप्त बेरोजगारी तथा उससे जनित समस्याओं के समाधान के लिए अपने विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों को व्यावसायिक रूप में ढालना होगा कि प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करने के बाद एक बेहतर रोजगार प्राप्त कर सके अथवा स्वयं ही रोजगार के अवसर का निर्माण कर सके।

महात्मा गांधी जी ने बेसिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षा को सांस्कृतिक विकास एवं नागरिक निर्माण का आधार बताया है। वर्तमान उत्तर प्रदेश में ये दोनों पक्ष कमजोर हो रहे हैं जिसका प्रमाण हमें उत्तर प्रदेश में होने वाले जातीय एवं धार्मिक दंगों के रूप में देखने को मिलता है जिसके मामलों की संख्या वर्ष

2016 में 61974 को पार कर गयी है। इसके आलवां महिलाओं के विरूद्ध होने वाले अपराधों की संख्या 49262 दर्ज की गयी हैं। इन आंकड़ों को देखने के बाद हम सोचने पर विवश हो जाते हैं कि क्या हमने एक बेहतर नागरिक निर्माण की दिशा में कार्य किया है? अथवा क्या हमारी शिक्षा प्रणाली में हमारी गंगा, जमुनी संस्कृति कमजोर नहीं हुई है?

आज उत्तर प्रदेश में यह महती आवश्यकता है कि हम अपने शिक्षा प्रणाली में उन मूल्यों पर और अधिक बल दें जिससे हम न केवल अपनी संस्कषति की रक्षा कर सकें अपितु प्रान्त के लिए एक कुशल नागरिक का निर्माण कर सकें।

fu"d"k % शिक्षा के सन्दर्भ में उपर्युक्त विश्लेषण के बाद स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि उत्तर प्रदेश के विकासशील राज्य की श्रेणी में बने रहने के पीछे सबसे बड़ा तत्व यहां की वर्तमान दयनीय शैक्षिक स्थिति है। आज भी उत्तर प्रदेश में साक्षरता दर उस स्तर पर नहीं पहुंच पायी है जिस स्तर पर इसे होना चाहिए। दूसरी तरफ शिक्षा का वह गुणात्मक विकास नहीं हो पाया है जिसके बल पर यह कहा जा सकता है कि उत्तर प्रदेश नैतिक रूप से एक समृद्ध राज्य है क्योंकि उपरोक्त वर्तमान आंकड़े बतातें है कि भारत में सर्वाधिक अपराध उत्तर प्रदेश में ही हो रहे हैं।

यदि हम इन सब पर विस्तार पूर्वक तार्किक दृष्टि डालें तो हम पाते हैं कि इसका सबसे बड़ा मूल कारण है शिक्षा में रोजगार देने की क्षमता का कम होना अधिकांश तर्क शास्त्रियों ने यह सिद्ध किया है कि बेरोजगारी सबसे अधिक अपराध को बढ़ावा देती है। यदि हम बेरोजगारी तथा अपराध दोनों को समाप्त करने के लिए शैक्षिक विचाराधारा को ढूंढे तो वह महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन में हमें मिलेगा क्योंकि गांधी जी ने एक ऐसी शिक्षा पद्धति पर बल दिया जो कि बालकों को शारीरिक एवं मानसिक रूप से शक्तिशाली ही नहीं बनाता है अपितु उसे अपने पैरों पर खड़ा होने की भी राह बतलाता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि गांधी जी की शिक्षा पद्धति एक ऐसी शिक्षा पद्धति थी जिसमें सभी के लिए एक समान विकास के अवसर प्राप्त हो सकेंगे। हमारे विचार में यदि उत्तर प्रदेश में महात्मा गांधी के शिक्षा पद्धति को अपनाया जाता है तो उत्तर प्रदेश पूर्ण शैक्षिक विकास की ओर अग्रसर होगा।

lUnHk %

1. लाल, रमन बिहारी (2010–11) : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्धान्त, रस्तोगी पब्लिकेशन्स शिवाजी रोड, मेरठ। पृष्ठ सं0–321–322
2. प्रतियोगिता दर्पण अतिरिक्तांक (2018) : भारतीय अर्थव्यवस्था, उपकार प्रकाशन आगरा। पृष्ठ सं0–96
3. http://www.educationinnovations.org
4. AISHE 2017-18 : http//www.aishe.nic.in
5. http://www.navbharattimes.indiatimes.com.30nov.2017
6. मदान, पूनम (2013) : उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा। पृष्ठ सं0–208
7. वही, पृ0 208–209
8. वही, पृ0 210
9. वही, पृ0 211

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 171-174

e/;dkyhu Hkkjrh; bfrgkl ys[ku esa iwokZxzg

Mk- fouhr dqekj xq:*

Ikjka'k% *मध्यकालीन भारतीय इतिहास का आशय बारहवीं सदी से सत्रहवीं सदी तक के इतिहास से है। प्रस्तुत शोधपत्र में मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन में पूर्वाग्रह का विश्लेषण किया जा रहा है। इस संदर्भ में मूल ग्रंथों एवं द्वितीयक ग्रंथों पर विचार किया गया है। वास्तव में मध्ययुगीन इतिहास को समझने के लिए मध्ययुगीन इतिहास लेखन को समझना आवश्यक है तथा मध्ययुगीन इतिहास लेखन में निहित पूर्वाग्रहों को समझना भी आवश्यक है।*

मध्यकालीन भारतीय इतिहास का आशय बारहवीं सदी से सत्रहवीं सदी तक के इतिहास से है। मध्यकालीन इतिहास को दो भागों में बाँटा जाता है। सल्तनतकाल एवं मुगलकाल। मध्य युग में कई ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना की गई परंतु तत्कालीन इतिहास लेखन पर पूर्वाग्रहों का प्रभाव रहा। प्रस्तुत शोधपत्र में मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन में पूर्वाग्रह का विश्लेषण किया जा रहा है। इस संदर्भ में मूल ग्रंथों एवं द्वितीयक ग्रंथों पर विचार किया जा रहा है।

मध्यकालीन भारत को समझते समय मध्यकालीन इतिहास लेखन पद्धति को पूरी तरह समझना बहुत आवश्यक है। एक मध्यकालीन इतिहासकार धार्मिक वातावरण में शिक्षा पाता था। मदरसे के अंदाज और तरीके उसकी जिन्दगी का एक अंग बन जाते थे। इस बात ने उनके लिखने के तरीके पर बहुत प्रभाव डाला। उनके शब्द और शब्दावली धार्मिक रंग में डूबी होती थी। इसलिए उस जमाने का इतिहासकार अपने बादशाह की फौज को ''लश्कर ए इस्लाम '' और दुश्मन की फौज को ''लश्कर ए कुफ्र'' लिखता है। इसी तरह अपनी फौज में मरने वालों को '' शहीद '' की उपाधि देता है और दुश्मन की फौज में मरने वालों को '' जहन्नुम '' भेज देता है। जब यह तरीका हिन्दुस्तान के माहौल में अपनाया गया तब इसके परिणाम गलत निकले क्योंकि यहाँ के लोग भिन्न भिन्न धर्मों को मानने वाले थे। एक ऐसा लेखक जिसे इस तरीके का ज्ञान न हो वह पूरे मध्यकालीन इतिहास को ''कुफ्र '' और ''इस्लाम'' की लड़ाई समझता है।[1]

सल्तनतकालीन लेखकों में मिन्हाज उल सिराज ने तबकात ए नासिरी को लिखा था। मिन्हाज स्वभाव से साम्प्रदायिक था। उसने मंगोलों व रणथंबौर के हिन्दुओं के लिए समान रूप से काफिर शब्द का प्रयोग किया है। सुल्तान नासिरूद्दीन के इनके विरूद्ध युद्धों को जिहाद (धर्म युद्ध) कहा है।[2] वास्तव में मिन्हाज एक कट्टर मुल्ला था। वह किसी भी व्यक्ति को जो रूढ़िवादी इस्लामी परम्परा से अलग विचार प्रकट करता था, उसकी कटु आलोचना करता है। इसका प्रभाव उसके इतिहास लेखन पर भी पड़ा है।[3] जियाउद्दीन बरनी देश की बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा का घोर विरोधी था। फतवा ए जहांदारी तथा तारीख ए फिरोजशाही में उसने यह समझाने का प्रयास किया है कि हिन्दुओं को पूर्ण रूप से दरिद्र बना दिया जाए।[4] वह कहीं–कहीं पूर्वाग्रह से प्रेरित होकर घटनाओं की विवेचना करता है। सुल्तान ने जब हिन्दू मुखिया वर्ग के खिलाफ उपाय अपनाए तो बरनी ने इसे बड़े अतिशयोक्तिपूर्ण तरीके से पेश करते हुए कहा कि हिन्दू जिनका कृषि पर एकाधिकार था, इतने दरिद्र हो गए थे कि उनके घरों में सोना या चांदी का कोई चिन्ह भी नहीं रह गया। ऐसे में खूतों और मुकद्दमों की पत्नियाँ मुसलमान घरों में काम की खोज में जातीं और वहाँ काम करतीं तथा मजदूरी प्राप्त करतीं थीं।[5] वह एक अच्छे मुस्लिम शासक के गुणों को बयान करता है। उसकी राय में एक आदर्श मुस्लिम शासक वह है जो मूर्ति पूजा और काफिरों के निशान

---

*अतिथि प्राध्यापक – इतिहास, शासकीय महाविद्यालय बिजावर, जिला– छतरपुर (म.प्र.)

तक मिटा दे।[6] वस्तुतः हिन्दुओं को तहस–नहस करने तथा उनके विनाश पर इतना जोर उससे पूर्व किसी भी इतिहासकार ने नहीं दिया। हिन्दुओं के विरूद्ध उसकी नाराजगी का कारण उसका मुल्लापन ही नहीं था, वरन वह देखता थाा कि आर्थिक शक्ति, विशेषतया राजस्व विभाग में हिन्दुओं के पास थी।[7] इसी तरह राजसी रचना होने के कारण अमीर खुसरो की खजाइन उल फतूह में अलाउद्दीन खिलजी की आलोचना नहीं कर सकता था। इस कारण कई महत्त्वपूर्ण घटनाओं का, जो सुल्तान के विरूद्ध थीं उनका उसने उल्लेख नहीं किया है।[8] इसी तरह फतूह उस सलातीन के लेखन में भी इस्लामी आदर्श उपस्थित करता है। भारत में इस्लाम के प्रसार और मुसलमानों की उपलब्धियों पर वह गौरवान्वित होता है। वह चाहता था कि दिल्ली के सुल्तान इस्लाम धर्म के आदर्शों पर चलें। जो इसके अनुकूल चलते हैं वह उनकी सराहना करता है तथा जो गैर मुसलमानों के प्रति उदारता दिखाते हैं उन्हें वह इस्लाम द्रोही समझता है।[9] इसी तरह शम्से सिराज अफीफ धार्मिक था। अतः उसके विवरणों में धार्मिक प्रभाव स्पष्ट है। वह सुल्तान फीरोज तुगलक एवं उसकी असहिष्णुता को धार्मिक दृष्टि से उचित और तार्किक ठहराता है और उसे एक आदर्श मुस्लिम सुल्तान के रूप में प्रस्तुत करता है।[10]

मुहम्मद तुगलक को वर्तमान में सनकी सुल्तान माना जाने लगा है। वस्तुतः मुहम्मद तुगलक की वर्तमान छवि निर्मित करने में समकालीन इतिहासकारों का बड़ा योगदान रहा है। बरनी, इसामी, इब्ने बतूता जैसे समकालीन लेखक मुहम्मद बिन तुगलक के प्रति पूर्वाग्रहग्रस्त हैं। उदाहरण के लिए बरनी एक रूढ़िवादी सुन्नी मुसलमान है जबकि धर्म के मामले में मुहम्मद बिन तुगलक की दृष्टि उदार थी। अतः बरनी की दृष्टि मुहम्मद बिन तुगलक के प्रति कठोर है। इसामी को भी तुगलक से शिकायत है। इसी तरह इब्ने बतूता को मुहम्मद बिन तुगलक ने दंडित किया था। यही वजह है कि समकालीन इतिहासकारों ने अपने लेखन में जहां तहां तथ्यों को तोड़ा मरोड़ा है। उनके लेखन को प्रामाणिक तस्वीर मानकर आधुनिक काल में कुछ ब्रिटिश तथा भारतीय विद्वानों ने भी अपने लेखन में उसे तरजीह दी। इस प्रकार मुहम्मद बिन तुगलक के व्यक्तित्व का एक विशिष्ट चरित्र उपस्थित हुआ।[11]

मुगलकालीन इतिहास में भारतीयों के प्रति वैमनस्य की पराकाष्ठा बदायूंनी की सर्वप्रमुख कृति ''मुन्तखब उत तवारीख '' में लिखे गए इस कथन में देखने को मिलती है – हिजरी सन् 998 में राजा टोडरमल और राजा भगवानदास जो कि पीछे लाहौर में ही रह गए थे जल्दी से नरकवास और यंत्रणाघर पहुंच गए (अर्थात मर गए) तथा सबसे निचले गड्डो में जाकर सांपों और बिच्छुओं का भोजन हो गए। अल्लाह उन दोनों को खूब चोट पहंचाए।[12] जहाँ बदायूंनी अकबर को पसन्द नहीं करता था वहीं अबुल फजल अकबर को अत्यधिक पसंद करता था। एक इतिहासकार के रूप में अबुलफजल की सबसे गंभीर त्रुटि उसकी व्यक्तिपरकता थी जो उतनी ही तीव्र थी जितनी बरनी या बदायूंनी की व्यक्तिपरकता। वह अपने संरक्षक के प्रति उनके निकृष्ट पूर्वाग्रह के रूप में व्यक्त हुई। अकबर, जो उनकी दृष्टि में हमेशा सही था क्योंकि वह कभी गलती नहीं कर सकता था, के हर कदम को उचित ठहराने और उसकी प्रशंसा करने में उन्होनें अपनी समस्त बुद्धि, विवेक, शालीनता और आत्म नियंत्रण खो दिया। शत्रु चाहे कोई राजपूत शासक हो या मुसलमान शासक उसके विरूद्ध अकबर के सैन्य अभियानों के उद्देश्यों को हमेशा उचित तथा प्रशंसनीय माना गया।[13]

वस्तुतः मुस्लिम इतिहास लेखन में हिन्दू नजरिया का कोई स्थान नहीं है। उनकी कला, स्थापत्य साहित्य और मूर्तिकला को घृणित माना गया है। हिन्दुओं के अनुष्ठानों, प्रथाओं और धर्म को समझने का प्रयास ही नहीं किया गया। नतीजा यह है कि यह इतिहास लेखन हमें सीमित जानकारी देता है जिससे समूचे काल तथा उसके मनोभावों को समझने में मदद नहीं मिलती। वास्तव में प्रारंभ से ही इतिहास लेखन में वस्तुपरकता का अभाव रहा तथा इसमें दो दुर्बलताएँ थीं जिन्होनें इसके असर को प्रभावित किया। पहली दुर्बलता तो यह थी कि इतिहासकार राजा के कर्मचारी थे अतः अपने मालिक के चरित्र व शासन को गौरव मंडित करना उनका कर्त्तव्य था और दूसरी दुर्बलता यह थी कि उनमें अधिकांश मुसलमान थे और हिन्दुओं के प्रति उनका रूख प्रतिकूल और शत्रुतापूर्ण था।[15]

यदि द्वितीयक ग्रंथों पर विचार करें तो स्पष्ट होता है कि परम्परागत इतिहास लेखन (साम्राज्यवादी एवं राष्ट्रवादी) में किसी भी शासक की नीतियों एवं उसके कार्यों को उसके मस्तिष्क, जीवन दृष्टि तथा उसके निजी व्यक्तित्व का प्रतिफल मान लिया जाता था। उसी प्रकार शासकों के व्यक्तित्व के मूल्याँकन में फारसी ग्रंथों को समकालीन लेखन के रूप में अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था।[16] इसीलिए हमें मध्यकालीन भारतीय इतिहास के आधुनिक विश्लेषण में मतभेद देखने को मिलते हैं। श्री हरबंस मुखिया के अनुसार इससे भी ज्यादा दिलेर और सोचा विचारा प्रयास इलियट और डाऊसन के आठ जिल्दों वाले ग्रंथ '' ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया एज टोल्ड वाय इट्स ओन हिस्टारियन्स '' ने किया। यह मध्यकालीन भारत के फारसी में लिखे गए इतिहास ग्रंथों के अंशों का अनुवाद था। इन अंशों के चयन में पाठक की कल्पना शक्ति के लिए कुछ बचा ही नहीं, ये अनुदित अंश हमेशा ही साम्प्रदायिक भावनाओं को उकसाते रहे।[17] इसी तरह मध्यकालीन भारतीय इतिहास के आधुनिक लेखों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि जहाँ सर यदुनाथ सरकार ने अपनी कृति ''फाल ऑफ दि मुगल एम्पायर'' में औरंगजेब की नीतियों तथा कार्यों की आलोचना की है। दूसरी ओर फारूखी महोदय ने अपनी कृत ''औरंगजेब एण्ड हिज टायम्स'' में औरंगजेब की नीतियों और कार्यों के औचित्य को सिद्ध करने का प्रयास किया है।[18] मुगल साम्राज्य के पतन में औरंगजेब के उत्तरदायित्व को लेकर इतिहासकारों के धर्मगत पूर्वाग्रह को हम निम्न कथन द्वारा समझ सकते हैं– सर जदुनाथ सरकार के विचार में मुगल साम्राज्य को भंग करने के लिए अकेला औरंगजेब जिम्मेदार था क्योंकि उसने हिन्दुओं को अपना विरोधी बना लिया था और साम्राज्य का इतना विस्तार कर लिया था कि वह स्वयं अपने ही बोझ से गिर गया। आई. एच. कुरैशी के विचार में अकबर की उदार नीतियों और उसके द्वारा हिन्दुओं को उच्च पदों पर आसीन करने से जो नुकसान हुआ उसकी क्षतिपूर्ति करने का औरंगजेब ने व्यर्थ ही प्रयास किया। किसी मुस्लिम राज्य में मजबूती से सत्ता मुसलमानों के हाथ में रहनी चाहिए। औरंगजेब के शासन के परवर्ती भाग में हिन्दुओं की संख्या पहले की तुलना में बढ़ गई।[19] इसी क्रम में श्रीराम शर्मा मुगल साम्राज्य के पतन के संबंध में बड़े विचित्र ख्याल रखते हैं। उन्होंने शायद औरंगजेब के वाक्य ''कि सारे झगड़े की जड़ मैं हूँ।'' को आधार बनाकर सारी खराबियों की जिम्मेदारी उस पर थोप दी है। औरंगजेब की हर नीति शर्माजी को पतन का कारण नजर आती है।[20] वास्तव में अगर एक बार कोई यह स्वीकार कर लेता है कि अकबर की उदार धार्मिक नीति स्वयं उसके उदार दृष्टिकोण का प्रतिफलन थी तो मिसाल के बतौर यह निष्कर्ष भी अनिवार्य हो जाता है कि औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति उसकी कट्टर प्रवृत्ति का परिणाम थी। इस तरह नीतियों संबंधी चर्चा में उदारता और कट्टरता संबंधी धारणाओं का प्रवेश हो जाता है जबकि वे महज इस या उस शासक की उदार या कट्टर प्रवृत्ति मात्र का नतीजा न होकर राजनीतिक परिस्थिति की बाध्यताओं का और हर अलग अलग प्रपंच के पीछे क्रियाशील गुटों और तबकों की प्रतिबद्धताओं के संतुलन का नतीजा होती हैं।[21]

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि सल्तनत कालीन इतिहास लेखन में मिन्हाज उल सिराज, जियाउद्दीन बरनी, शम्स ए सिराज अफीफ आदि ने सल्तनत काल के वर्णन में जहां तहां उनके पूर्वाग्रह प्राप्त होते हैं। इसी तरह यदि मुगलकालीन इतिहास लेखन पर ध्यान दें तो पाते हैं कि जहां अबुल फजल अकबर के पक्ष में पूर्वाग्रह ग्रस्त है तो वहीं बदायूंनी अकबर के विरोध में पूर्वाग्रह ग्रस्त हैं। इसी तरह मध्यकालीन भारत के द्वितीयक ग्रंथों में भी पूर्वागह प्राप्त होते हैं। सर यदुनाथ सरकार ने जहां औरंगजेब की नीतियों एवं कार्यों ण्की आलोचना की है वहीं फारूकी महोदय ने औरंगजेब की नीतियों और कार्यों का औचित्य सिद्ध करने का प्रयास किया है। इसी तरह मुगल साम्राज्य के पतन में औरंगजेब के उत्तरदायित्व को लेकर इतिहासकारों में पूर्वाग्रह सामने आते हैं। अतः मध्यकालीन भारतीय इतिहास को समझने के लिए इन इतिहासकारों के पूर्वाग्रहों को समझना अत्यंत आवश्यक है तभी मध्यकालीन भारत की वस्तुनिष्ठ तस्वीर सामने आ सकती है।

lUnHkZ %

1. वर्मा, हरिश्चन्द्र, मध्यकालीन भारत भाग (2), दिल्ली, 2015 पृ. 685
2. राधेशरण, इतिहास और इतिहास लेखन, भोपाल, 2003 पृ.213

3. हरिशंकर, मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन, वाराणसी, 1997, पृ.31
4. राधेशरण, पूर्वोल्लिखित, पृ. 218
5. सिंह, रहीस, मध्यकालीन भारत, दिल्ली सल्तनत, दिल्ली 2012, पृ. 264
6. अली, मुबारक, इतिहासकार का मतान्तर, दिल्ली, 2010, पृ.94
7. हरिशंकर, पूर्वोल्लिखित, पृ. 106
8. वही, पृ. 51
9. वही, पृ. 85
10. राधेशरण, पूर्वोल्लिखित, पृ. 222
11. सिंह, मणिकांत, भारतीय इतिहास एक विश्लेषण, इलाहाबाद, 2006, पृ. 88
12. श्रीवास्तव, बी. के., इतिहास लेखन, अवधारणा विधाएँ एवं साधन, आगरा, 2005, पृ. 102
13. श्रीधरन. ई., इतिहास लेख एक पाठ्य पुस्तक, हैदराबाद 2011, पृ. 336
14. अली, मुबारक, पूर्वोल्लिखित, पृ. 95
15. वही, पृ. 93
16. सिंह, मणिकांत, पूर्वोल्लिखित, पृ. 78
17. मुखिया, हरबंस, मध्यकालीन भारत नए आयाम, दिल्ली, 2011, पृ. 43
18. श्रीवास्तव, बी. के., पूर्वोल्लिखित, पृ. 101
19. वही, पृ. 102
20. वर्मा, हरिश्चन्द्र, पूर्वोल्लिखित, पृ. 690
21. थापर रोमिला, इतिहास की पुनर्व्याख्या, दिल्ली, 2004, पृ. 109

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 175-177

cnyrs ehfM;k ds ek;us % lks'ky ehfM;k

fefFkys'k dqekj*

भारत जैसे लोकतंत्र में मीडिया को चौथे स्तम्भ का दर्जा मिला है। मीडिया का काम है कि देश में हो रही घटनाओं, समस्याओं, तथा सत्ता में काबिज लोग क्या सोच और लिख रहें हैं, उसको उस जनमानस तक पहुँचाना है जिसने उन्हें चुनकर वहाँ तक पहुँचाया है और जनता से जुड़ी समस्याओं को उनके चुने प्रत्याशियों को अवगत कराना क्योंकि मीडिया को अधिकार भी प्राप्त है कि राजनीतिज्ञ जहाँ भी जाते हैं वह उनको फालो कर सकते हैं । मीडिया को यह आजादी तो मिली परन्तु साधनों की कमी के कारण यह संगठित रूप से स्थापित करने में समय लगा और आर्थिक संकटों से उबरने के लिए कार्पोरेट का सहारा लेना लाजमी था जिससे मीडिया में कार्पोरेट की घुसपैठ हुई। अब जिस मीडिया का कार्य लोगों के लिए एक संकल्प (मिशन) के रूप में था वह अब व्यवसाय के रूप में तबदील होता रहा जिस मीडिया को शुद्ध और सच्चे सामाचारों द्वारा सत्ता और जनता के बीच सेतु का काम करना चाहिए था वह निर्णय करने में लगा गया। देश या जनहित को छोड़कर मामला खुद की टीआरपी बढ़ाने और निजी स्वार्थ का हो गया। ऐसे में जब इंटरनेट क्रान्ति हुई तब सोशल मीडिया के द्वारा जब जन पत्रकारिता आयी और अपने उद्देश्य से विमुख मुख्य मीडिया के लिए चुनौती बन गयी क्योंकि लोग यदि किसी भी मीडिया को देखते और पढ़ते हैं तो उसका कारण सिर्फ भरोसा होता है। सोशल मीडिया आज विश्व में ऐसा माध्यम बन चुका जिस पर लोग धीर–धीरे भरोसा करने लगे हैं और आज यह क्रान्ति का सबसे बड़े मंच के रूप में उभरकर आया है। जिसका प्रमुख उदाहारण, अन्ना हजारे आन्दोलन, निर्भया कांड, रोहित वेमुल्ला, गुजरात कांड, गौरी लंकेश तथा हाल ही उना काण्ड ,कठुआ काण्ड में देखा जा सकता है। 21वीं सदी के पहले दशक में इस मीडिया ने पत्रकारिता को सिर्फ प्रिंट या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के सीमाबद्ध, संपादित व प्रायोजित सूचनात्मक विषय को न सिर्फ पीछे छोड़ा है, बल्कि आमजनमानस को अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के साथ स्वसंपादित व स्वप्रेषित तथा बहुपक्षीय संवाद स्थापित करने का मौका दिया है। सोशल मीडिया लोगों में जनचेतना फैलाने और जागरूक करने का कार्य बहुत ही बड़े स्तर पर कर रहा है जो समाज सदियों से हाशिए में रहा है। जिसे पारंपरिक मीडिया की मदद भी नहीं मिलती थी आज वही हाशिए के लोग वर्तमान में बेबांकी से सोशल मीडिया पर खुल कर लिख–पढ़ रहे हैं। पहले पारंपरिक मीडिया द्वारा जितना बताया जाता था लोग उतना ही जानते थे लेकिन आज के समय में जो बाते मीडिया को नहीं पता चलती हैं वह सोशल मीडिया में आ जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं की आज पारंपरिक मीडिया भी सोशल मीडिया को फालो कर रहा है। आज सोशल मीडिया ने सबको रिपोर्टर, एडिटर, तथा मीडियाकर्मी का दर्जा खुद में ही दे दिया हैं। फेसबुक और सोशल मीडिया के साथ आई तुरंत रिपोर्टिंग की सुविधा, जिसमे किसी भी समाचार के छपने का इन्तजार करने की जरुरत नहीं है। आजकल रिपोर्ट सीधा घटना स्थल से सोशल मीडिया (फेसबुक लाइव) के जरिये आम जनमानस तक तुरंत पहुच जाता है यह नागरिक पत्रकारिता किसी भी देश के सम्पूर्ण व्यवस्था को बदलने की ताकत रखती है। यही कारण है कि मुख्य धारा के मीडिया के लगभग सभी माध्यमों ने अपने ई–संस्करण बनाए हुए है। तकनीकी क्रान्ति के इस दौर में यह अनुमान लगाना कि आने वाला मीडिया का क्या स्वरूप होगा, बहुत ही मुश्किल है। सोशल मीडिया ने हमारे समाज को वैश्विक समाज बनाने की शक्ति प्रदान की है। यह पहला अवसर है,

*शोध छात्र, पत्रकारिता एवं जनसम्प्रेषण विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जब आम लोगों को पूरी दुनिया तक अपनी बात पहुंचाने व पूरी दुनिया की बात सुनने की एक असीम शक्ति मिली है। आज सोशल मीडिया का जनहित के मुद्दे उठाने में प्रयोग किया जा रहा है ताकि सिस्टम पर दो तरफा दबाव बन सके। जो अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं इंटरनेट आधारित तकनीक के गर्भ से निकला है। इस मीडिया ने मुख्य धारा की मीडिया के परिदृश्य को पूरी तरह से बदल कर रख दिया है। वैसे भी यह जगत परिवर्तनों का साक्षी रहा है। और यह परिवर्तन संचार माध्यमों में भी तकनीक के रूप में समय–समय से आता रहा है। पर मीडिया में हुआ परिवर्तन अपने साथ ही बहुत बड़े परिवर्तन करने की शक्ति को भी साथ लाया है। इसकी केमेस्ट्री में पूर्णतः लोकतंत्र ही समाहित है। जहां इसने लोगों को लोगों से साझा करने के असीमित मौके दिए है। इसे मुख्य धारा की मीडिया जैसे समाचार पत्र, टेलीविजन चौनलों और रेडियो के एकतरफा संचार के विकल्प के रूप में भी देखा जा रहा है। इसमें लोगों की हिस्सेदारी पर मुख्य धारा की मीडिया के गेटकीपर की तरह कोई रोक नहीं है और न ही लोगों को इसके लिए भुगतान करने की जरूरत है। आज सोशल मीडिया जनमत को बनाने या प्रभावित करने का एक उपयोगी और कारगर हथियार बन कर उभर चुका है। एक परिभाषा के अनुसार, सोशल मीडिया से जड़े वेबसाइट्स आपको जानकारी देने के साथ– साथ इन्टरेक्ट भी करती है। यह इन्टरेक्ट काफी सामान्य होता है जैसे रीडर से कमेंट मांगना या आर्टिकल के लिए वोट मांगना, क्रिया–प्रतिक्रिया करना, इसके आलावा विज्ञापन के द्वारा संपर्क स्थापित करते हुये संवादात्मक प्रक्रिया अपनाना आदि । इसके साथ ही लेखक को अपनी बात कहने की स्वतंत्रता के साथ पाठक से खुलकर उसकी क्रिया और प्रतिक्रिया पाने का अवसर भी इस मीडिया में शामिल है। क्योंकि इसके साथ और इसके बीच में वैश्विक मानव जीवन है, जिसके आपसी जुड़ाव के माध्यम के रूप में सोशल नेटवर्किंग साइट्स है। इस मीडिया ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का दायरा काफी सरल, व्यापक, और आसान बनाया है। आज यह एक शोध का विषय बन गया है और कई उच्च शिक्षण संस्थानों में शोधार्थी इसे दलितों ,वंचितों ,आदिवासियों और देश में घटित हो रहे मुद्दे से इसे जोड़कर इस पर शोध भी कर रहे है । बहुतायत संख्या में सोशल साइट्स के द्वारा मार्शल मैक्लुहान ने जो परिकल्पना विकसित की थी बिलकुल वैसा ही आज सम्पूर्ण संसार संचार के वैश्विक गाँव में तब्दील हो रहा है। इंटरनेट यूजर्स की संख्या दिनोंदिन बढ़ रही हैं। 2G, 3G, 4G के उपयोगकर्ताओं को उनके सुविधा अनुसार ऑफर देकर एंड्राइड फोन पर इन्टरनेट यूज को सरल बना दिया हैं, इस बीच एप्स डाउनलोड की प्रक्रिया में हर महीने लाखों एप्स स्टोर होते हैं। इन्टरनेट पर सोशल साइट्स के यूजर्स सामाजिक गतिविधियों में इतने सक्रिय हैं कि इनकी आबादी देश की संख्या के अनुरूप बढ़ रही है। हर नए माध्यम और अविष्कार की तरह सोशल मीडिया परीक्षण के दौर से ही गुजर रहा है। आज के समय में सोशल मीडिया के प्रभाव और महत्व को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। सोशल मीडिया हमारे राजनीतिक और सामाजिक जीवन के क्षेत्रों और आयाम में हस्तक्षेप कर चुका है एवं यथास्थिति बदलने में सोशल मीडिया की भूमिका निर्णायक होती जा रही है। 11 जुलाई 2014 को दिल्ली स्थित राष्ट्रीय मीडिया केंद्र में सभी मंत्रालयों के अधिकारियों का सोशल मीडिया के इस्तेमाल के लिए उन्मुखीकरण कार्यशाला का आयोजन किया गया था। ये घटनाएं भारत में मीडिया के स्तर पर बदलती नीति की तरफ इशारा करती हैं। नीतियों में यह बदलाव केवल सरकार के स्तर पर लिया गया फैसला नहीं है, बल्कि एक नए माध्यम के तौर पर सोशल मीडिया को स्थापित करने का यह राजनीतिक फैसला है। राजनीतिक तौर पर वर्चस्व कायम रखना और समय के अनुसार माध्यम का चुनाव एवं उसका विस्तार एक दूसरे से जुड़े होते हैं। सोशल मीडिया का दायरा आज पूरी दुनिया में फैला हुआ है। जनसंख्या की एक बड़ी जमात सोशल मीडिया का इस तरह आदि हो चुका है कि उसके दिन की शुरूआत से और रात में बिस्तर में जाने तक सोशल मीडिया का उपयोग करना लोगों की आदत बन चुकी है। आज हर मसला जहाँ सोशल मीडिया पर बड़ी ही तेजी से लोगों के बीच पहुंचता है, उतनी ही तेजी से उसकी प्रतिक्रिया भी मिनटों में सामने आ जाती है। आज लोगों को किसी भी खबर के लिए किसी भी नियमित अखबार या निश्चित समय का इंतजार करने की दरकार नहीं होती है और ना ही अपनी बात लोगों तक पहुँचाने के लिए किसी बड़े स्रोत को खोजना पड़ता है। जो भी विचार हो, जो भी खबर हो वो सोशल मीडिया

पर मिनटों में लोगों तक पहुंचती है या पहुंचाती है। सोशल मीडिया या सोशल नेटवर्किंग में फेसबुक, ट्विटर, ब्लॉग, मैसेंजर और गूगल प्लस इत्यादि स्रोत आते हैं। इन सभी स्रोतों के जरिये जितने सकारात्मक पहलू हमारे सामने आते हैं, उतने ही नकारात्मक पहलू भी मिलते हैं।

lUnHkZ %

1. कुमार, राकेश. (21 श्रनदम2016). सोशल नेटवर्किंग– कल और आज. नई दिल्ली : RIGI Publication-
2. द्विवेदी, संजय (संपा). (2013). सोशल नेटवर्किंग. नए समय का संवाद. दिल्ली : यश पब्लिकेशन. प्रथम संस्करण.
3. गुप्ता, श्रवण कुमार. (2013, मई). सोशल मीडिया. योजना, अंक VII, पेज क्रमांक 25.
4. नंदिनी, सी. (2013, मई). सामाजिक सक्रियता का एक नया चेहरा 'फेसबुक'. योजना, अंक VII. पेज क्रमांक 21.http://en-wikipedia-org/wiki/Social_networking_service

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 178-182

Ò¨t i|jh Yk¨d xhrk| e| ukjh dh fLFkfr

l|uhrk d|ekjh*

भारतीय समाज में नारी को करूणा की सागर, सेवा की मूर्ति के रूप में देखा जा सकता है जो अपने परिवार एवं राष्ट्र के हित के लिए अपना सब कुछ न्योछावर करने को तत्पर रहती है। नारी माता, पत्नी, बेटी तथा बहू के रूप में प्राचीन काल से ही सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक दायित्वों का निर्वाह करती चली आ रही है।

भोजपुरी साहित्य में लोकगीत की मौखिक परम्परा रही है इसे वाचिक परम्परा भी कहा जाता है। लोकगीत की असली लोकरागिनी नारी ही है। इन गीतों के माध्यम से अपने जीवन की कथा, सुख–दुःख तथा ह्रदय की भावनाओं को व्यक्त करती आ रही है। नारी पुरुष समाज का वह अंग है जिसके अभाव में पुरुष के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती। भारतीय संस्कृति में रामायण, महाभारत काल से ही हर धार्मिक अनुष्ठान में पुरुष के साथ नारी की उपस्थिति अनिवार्य रही है। अतः हम कह सकते हैं कि नारी भारतीय लोक–संस्कृति की प्राण है और पुरुष उसका शरीर। दोनों एक–दूसरे के अभाव में अधूरे है।

एक स्त्री को माता के रूप में सबसे अधिक सम्मान प्राप्त है, माँ परिवार की नींव होती है तो पिता उसकी छत होता है। वह परिवार के आधार को मजबूत बनाए रखती ताकि परिवार टूट कर बिखर न जाए। वह एक अच्छी गृहिणी के रूप में पति द्वारा बाहर से कमाकर लाए गए पैसे से परिवार का भरण–पोषण करती है उनकी सेवा करती है तथा माता–पिता दोनों अपने बच्चों को उनके पैरों पर खड़ा होने में उनकी सहायता करते हैं, जीवन की हर परिस्थिति से लड़ने के लिए उनको मजबूत बनाते हैं तथा अपना और अपने देश का नाम रौशन करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करते हैं।

इतना सब कुछ करने के बावजूद भारतीय समाज में नारी की स्थिति बहुत सम्मान जनक नहीं पायी जाती है आज भी भोजपुरी समाज में नारी को बेटी के रूप में बोझ समझा जाता है। भोजपुरी क्षेत्र के परिवारों में जहाँ बेटे के जन्म पर नाच–गाना होता है, छठी–बरहीं मनायी जाती है, वही बेटी के जन्म पर घर में अन्धेरा छा जाता है, परिवार के सभी सदस्य निराश हो जाते हैं और इधर माता को भी बेटी जनने के कारण सास–ननद तथा पड़ोसियों के ताने सुनने पड़ते हैं। पिता की पगड़ी झुक जाती है उनको लगता है कि समाज में उनका सम्मान कम हो जाता है। ऐसी स्थिति में माँ दुःखी हो जाती है और समाज एवं परिवार के साथ–साथ स्वयं माँ भी अपनी बेटी को कोसती है उसे भी लगता है कि बेटी का जन्म लेना उसके परिवार और पति को दुःख और लज्जा से भर देता है। एक बेटी की माँ होकर स्वयं को गर्वान्वित महसूस न करके हीनताबोध से ग्रस्त हो जाती है और इस गीत के माध्यम से कहती है–

tkg| ge tfurh f/k;ok dk|[kh j| tufeg|]
fifgrk| e| efjp >jkb| jA
efjp d| >kd| >|d| f/k;ok efj j| tbfr] NfV
tkbr| x:ok l|rki jA[1]

भोजपुरी परिवारों में बेटी का जन्म लेना और माता–पिता का दुःखी होना शायद एक हद तक सही भी है जो परिवार आर्थिक रूप से सम्पन्न नहीं है वो किसी तरह बेटी की परवरिश तो कर देते हैं

*शोध छात्रा, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

परन्तु उसकी शादी कैसे करें? दहेज की माँग के कारण उसके सुखी जीवन की चिन्ता बनी रहती है। साथ ही लड़कियों की सुरक्षा भी उनकी परेशानी का एक कारण है। जब तक बेटी बड़ी नहीं हो जाती उसकी शादी नहीं हो जाती माता–पिता को हमेशा यहीं डर बना रहता है कि कहीं उनकी बेटी के साथ कोई ऊँच–नीच न हो जाय उनकों बदनामी का डर हमेशा सताता रहता है। उस दम्पत्ति की स्थिति और खराब रहती है जो आर्थिक रूप से कमजोर भी हैं और उनकी दो या दो से अधिक बेटियाँ है।

लेकिन यह भी जरूरी नहीं है कि भोजपुरी क्षेत्र के हर परिवार में बेटी के जन्म का स्वागत नहीं किया जाता है बदलते परिवेश में शिक्षित दम्पत्ति और सम्पन्न परिवार में बेटे के साथ कम से कम एक बेटी की अपेक्षा जरूर की जाती है। भोजपुरी क्षेत्र की यह धारणा भी है कि कन्यादान से पिता की जांघ पवित्र हो जाती है। इस कारण भी बेटी का जन्म अभिनन्दनीय माना जाता है। एक माँ की भी कामना होती है कि उसे पुत्री प्राप्त हो जिसका कन्यादान कर वह पुण्य की भागीं बने।

इस मान्यता के कारण जिस दम्पत्ति की बेटी नहीं होती वह दूसरे की बेटी का कन्यादान करके पुण्य प्राप्त कर अपना जीवन सफल बनाते हैं।

माँ के लिए बेटी–बेटा एक ही कोख में जनमी संताने होती है इसलिए वह बेटी से भी उतना ही प्यार करती है जितना अपने बेटे से। जब बेटी अपनी किलकारियों से बाललीलाओं से माँ–बाप के ह्रदय को आनन्दित करती है, उस समय माँ–बाप कुछ समय के लिए ही सही अपने दुःखों को भुला देते हैं। एक गीत में हँसते–खेलते बेटी को देखकर माँ कहती है–

tc ekjh cVh [¨Ykr [kkr vbYkÈ
vj fnYk d njn gfj Y¨YkÈ j YkYkuok
lkl uufn;k d tho tfj tkYkk
vj vkiu ÁÒ tho tMokb j YkYkuok[2]

वर्तमान समय में सरकार द्वारा बेटियों को बचाने उनको शिक्षित करने एवं आर्थिक सक्षमता के लिए कई प्रकार की योजनाएँ चलाई हैं। अक्षम परिवारों को आर्थिक सहायता दी जाती है और उनकी निःशुल्क शिक्षा का भी प्रावधान किया गया है ताकि गरीब परिवार के लोग भी अपनी बेटियों को पढ़ा सकें।

शिक्षित एवं सम्पन्न परिवार के लोग बेटे के साथ बेटी को भी अच्छी शिक्षा प्रदान करने लगे है किन्तु अभी भी भोजपुरी क्षेत्र के लोग गाँव के स्कूल कालेज तक बेटी को पढ़ा कर घर बैठा देते हैं जबकि बेटे को उच्च शिक्षा एवं नौकरी के लिए बड़े–बड़े शहरों में भेज देते हैं अभी भी भारतीय समाज में बेटी–बेटे में भेद–भाव व्याप्त है। बेटी को शहर में न भेजने के दो कारण है एक तो अगर परिवार आर्थिक रूप से सम्पन्न न हो तो उसको उच्च शिक्षा दिलाने के बजाय उसके दहेज के लिए पैसा इकट्ठा करना होता है तथा दूसरा कारण शहरों में बेटी की सुरक्षा का होता है।

जैसे–जैसे बेटी बढ़ती है माता–पिता की उसके प्रति जिम्मेदारी भी बढ़ जाती है, खासकर माँ को विशेष ध्यान देना होता है बेटी के अन्दर अच्छे संस्कार डालना उसे घर परिवार चलाने का गुर सिखाना माँ की जिम्मेदारी होती है। गाँव में अक्सर यह सुनने को मिलता है कि– "लइकी त भूत के तरे बढ़ेलीं।" कहने का मतलब की लड़कियाँ तेजी से बढ़ती है। एक गीत में बढ़ती बेटी को बांस के करील की उपाधि दी गई है–

clok d tfj;k l fudY¨ dfjYkok
vj clok d tho d tokYk j YkYkuok
ekbl d x¨fn;k e tueYk fcfV;ok
vj ekbl d tho dk tokYk j YkYkuok[3]

बड़ी होने के साथ ही बेटी अपने पूरे परिवार का दायित्व संभालती है, वह माता–पिता, दादी–दादा की सेवा करती है, छोटे–बड़े भाई–बहनों की देख–रेख करती है और घर की पूरी गृहस्थी चलाने के साथ ही सिलाई–कढ़ाई, गीत–गाने आदि सीखती है।

इधर माता–पिता को बेटी के विवाह की चिन्ता सताने लगती है, घर में बेटी की शादी की बात चलने लगती है। भोजपुरी क्षेत्र के लोग अधिकतर किसान या मजदूर होते है, किसान अपने खेत में अन्न पैदा कर

उसे बेच कर अपने परिवार का भरण–पोषण करता है, जबकि मजदूर किसानों के खेत में काम करके या कोई दूसरी मजदूरी करके अपना परिवार चलाता है। ऐसे किसान जिनके यहाँ सिर्फ इतना ही अन्न पैदा होता है जितना की वह साल भर के लिए खाने के लिए रखकर बाकी अन्न को बेचकर अपनी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते है, भला वह कहाँ से दहेज के लिए पैसा इकट्ठा करें? ऐसी परिस्थिति में उसे या तो अपने खेत गिरवी रखने पड़ते है या खेत बेचना पड़ता है ऐसे में भला उस पिता की क्या दशा होगी जिसको अपनी बेटी तो बिदा करना ही है साथ ही उसे अपनी आय के साधन पैतृक सम्पत्ति को भी बेचना पड़ता है। एक गीत में दहेज की चिन्ता के कारण पिता की मनोदशा का वर्णन किया गया है–

l¨b xbY© r¨rk j|] l¨b| xbYk e|uk
vj| l¨b xbY© n|l l|lkj j| YkYkuok|
,d ukfg| l|rY© cVh d ckck

. . . .[4]

जिस पिता के पास बेटी ब्याहने के लिए पर्याप्त आर्थिक संसाधन न हो उसे अपना जीवन ही नहीं बल्कि पूरा गाँव ही नीरस लगता है। एक गीत में पिता को गरीबी के कारण पूरा संसार ही सूखा और बेजान मालूम पड़ता है–

/kuok| l|[kkbYk , cVh @ /kku d| fd;fj;k g¨
iuok| cjb;k d| n|dku @ xxk l|[kbYkh , cVh teuk l|[kbYkÈ g¨
lf[k xbYkÈ unh d l|okj @ cVh d| ckck d| euok| l|[kkbYk g¨
vc cVh jfgg| d|ckj[5]

पिता चाहे कितना ही गरीब क्यों न हो अगर घर में बेटी है तो उसे कोई भी जतन करके बेटी को ब्याहना ही है। एक गीत में बेटी को ऐसा लगता है कि उसके पिता नीम के पेड़ के नीचे निश्चिन्त सोये हैं, बेटी उनको चेताते हुए कहती है–

^^tkfg ?kj dfu;k d|okjh] l¨ dbl| l¨o| fujÒnA**

लेकिन बेटी के पिता तो आँख बन्द करके दहेज के लिए सोच रहे थे वह कहते हैं–

d|N| cVh l¨b|Ykk] d|N| cVh tkxhYkk] d|N| j| ng|tok d l¨p[6]

जब घर में बेटी की शादी की बात चलती है, जो उसके मन में भी अनेक प्रकार की बातें उठने लगती है वो शादी के अनेक सपने सजाती है, अच्छे घर–वर के लिए अनेक प्रकार के व्रत–उपवास करती है। बड़े बुजुर्ग भी जब कुँआरी लड़की को आशीर्वाद देते है तो यहीं कहते है कि– ''तोहके खूब बढ़िया घर–वर मिले'' एक गीत में बेटी अपने पिता से सुन्दर वर खोजने के लिए कहती है–

cu ibl| [k¨ftgk ;| ckck pÙnu YkdfM;k] n|l ibl| [k¨ftgk ;| ckck d|vj dÙg|;kA[7]

देखा जाए तो यातना की शिकार सिर्फ स्वी ही नहीं होती है कहीं न कहीं पुरुष को भी पीड़ा के दंश को झेलना पड़ता है क्योंकि पुरुष एक पति ही नहीं भाई और पिता भी है। परिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए मानसिक कष्ट झेलता है। स्त्री–पुरुष में फर्क यही है कि वह गीत के माध्यम से अपने दुःखों को व्यक्त करती चली आ रही है जबकि पुरुष अन्दर ही अन्दर घुटता रहता है।

बेटी, बहन ससुराल में सुखी एवं समृद्ध रहे इसके लिए पिता, भाई उसे हर प्रकार के दुःखों से दूर रखना चाहते हैं यहाँ तक कि अगर बेटी के साथ कोई अनहोनी हो जाती है या वह विधवा होकर मायके में रहने लगती है तो उस समय घर की स्वियाँ ही उसे तानें मारती है उसे यातना देती है, जबकि पिता, भाई के मन में अपनी बेटी, बहन को दुःखों से छुटकारा दिलाने के प्रति कितनी छटपटाहट रहती है और दुःखों को दूर न कर पाने पर वे खुद को कितने विवश व लाचार समझते हैं। लेकिन यह बात भी सही है कि स्त्रियों के सुखी जीवन के पैमाने पुरुष द्वारा ही बनाए जाते हैं।

शादी तय हो जाने के बाद लड़की अत्यन्त भावुक हो जाती है, एक तरफ तो उसे अपना मायका हमेशा के लिए छोड़ना पड़ता है जहाँ वह बचपन से खेलती–खाती आ रही थी, निश्चिन्त होकर पूरे परिवार का ख्याल करती थी। वहीं दूसरी तरफ उसे ससुराल जाकर नए जीवन की शुरूआत करनी है, उस

अपरिचित नए घर में पूरे परिवार की जिम्मेदारी सँभालनी हैं और पति के साथ रहने के लिए अनेक सपने सजाने है। बेटी अपने पिता के दुःख को हल्का करने के लिए कहती है हे पिता जी आप छायादार मंडप बनवाइएगा तब पिता कहते है–

dgri r , cVh N"k ihVcrÈ] dgri r l|: t vYk¨Ik[8]

फिर बेटी कहती है– ''मेरे पिताजी। क्यों छत बनवायेंगे और क्यों सूरज को अलोप करेंगे? आज की रात आपके मंडप में रहूँगी, कल तो अपने सुंदर वर के साथ चली जाऊगी।''

जिस दिन बेटी घर में पैदा होती है परिवार में निराशा छा जाती है घर अन्धकारमय हो जाता है और जब उसी बेटी के पिता के दरवाजे पर बारात आती है उसी घर में चारों तरफ उजाला हो जाता है। पिता के दुःख तकलीफ दूर हो जाते हैं।

पिता, भाई, बेटी के बारात की पूरी तैयारी के साथ स्वागत करते हैं और हर सम्भव प्रयास करते है कि कहीं उनके स्वागत में कोई कमी न रह जाय ताकि उनकी बेटी–बहन को ससुराल में कोई ताना न मारे। बेटी के साथ विवाह के मण्डप में बैठकर पिता हर रस्म के साथ उसे पति को सौंप देता है। पिता पुत्री के इस भाव को एक गीत में बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है–

बेटी अपने पिता से कहती है–

dFk|vu d Nfr;k ckck dbY¨ ckMk @ gEe: /kudkjr ckMk

तब पिता जी कहते हैं–

ctj: d Nfr;k dbY¨ ckMh @ r¨g: /kudkjr ckMh[9]

बेटी की विदाई के समय पूरा परिवार दुःखी हो जाता है सबका मन छटपता कर रह जाता है, पर उसे ससुराल जाने से कोई रोक नहीं पाता। एक गीत में बेटी के विदाई का बड़ा मार्मिक वर्णन किया गया है– eb;k t: f/k;ok b: i¨ I Ykh tbl: ?kho xkxj g¨

ckck t: f/k;ok fudkY©Y© tbl: tYk ekNj g¨[10]

ढेर सारे दहेज के साथ जब बहू ससुराल में आती है तो बड़े प्यार से उसका स्वागत किया जाता है। सास–ननद और पति की उससे ढेर सारी अपेक्षाएँ होती है और उनकीं मांग में बहू के पिता की तरफ से कोई कमी हो जाती है तो वे बहू को ताने मारना भी शुरू कर देते हैं। इधर पिता को बेटी के ससुराल जाने पर चिन्ता होती है। एक गीत में पिता अपनी बेटी को सीख देते हुए कहते है–

IÈdh d c<fu;k| ;: cVh fI jguok| /© d: Ikbgk

g¨r fÒu|I gjk g¨ cVh j I¨b;k ?kj cgfjgA[11]

बेटी अपने पिता से ससुराल के लोगों द्वारा दहेज की कमी पर ताने मारने पर कहती है–

v|xuk cV¨jr ;: ckck u;uok| p|, v|f I ;k

xkMh r ngYkk g¨ ckck Mkbcjok ugh g¨A

I I|j d: e|guok g¨ ckck I gYk u tkYkkA

जब तक बहू नयी रहती है ससुराल में उसका खूब ध्यान रखा जाता है उसकी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है पर जैसे–जैसे दिन बीतता जाता है बहू का मान–सम्मान कम होता जाता है, काम के प्रति उसकी जिम्मेदारी बढ़ा दी जाती है। सुबह से लेकर रात तक वह काम करती रहती है और उस दौरान उससे कोई गलती हो जाती है तो सास उसको प्रताड़ित भी करती है और कभी–कभी उसके पति से उसकी शिकायत करती है।

पहले लड़कियों का विवाह कम उम्र में बिना पढ़ाए–लिखाए कर दिया जाता था। वह अशिक्षित होने के कारण पूरी तरह से पति पर निर्भर रहती थी। अगर पति बाहर कमाने वाला है तो शादी के कुछ दिन बाद ही पत्नी को छोड़कर परदेश चला जाता है। जिससे वह परिवार का भरण–पोषण कर सके। वह परदेश से जो पैसे भेजता है वह पत्नी को न मिलकर सास–ननद के हाथ में जाता है ओर बहू को आवश्यकता की पूर्ति के लिए सास पर निर्भर रहना पड़ता है, ऐसी परिस्थिति में ना ही वह पति के साथ रह पाती है न ही उसे पैसे मिलते है, तब वह पैसे को कोसते हुए कहती है–

i#c l vkbl jfYk;k ifNe l vkbl tgft;k
fi;k d Ykkfn Y"bl xbl g"
jfYk;k g"bl xbl e"j lofr;k fi; d Ykkfn Y"bl xbl g"
jfYk;k u cjh tgft;k u cjh mgl iblol cjh g"
nlok&nlok Òjeko gl iblol cjh g"[12]

अब भोजपुरी क्षेत्र की लड़कियाँ भी पढ़–लिखकर घर से बाहर जाकर नौकरी करने लगी है। पहले की अपेक्षा अब ससुराल में उनकी और अधिक जिम्मेदारी बढ़ गई है वह अपने परिवार की सेवा भी करती है और पति के साथ घर चलाने में आर्थिक रूप से उसकी मदद भी करती है और जो औरतें कम पढ़ी–लिखी रहती है वह सिलाई, कढाई, पेटिंग, पार्लर सीख कर घर में ही प्रशिक्षण केन्द्र खोलकर आत्मनिर्भर बनने की कोशिश करती है। अब स्त्रियाँ सास–ननद के ताने न सुनकर अपने समझादारी एवं सूझ–बूझ से पारिवारिक, सामाजिक तथा आर्थिक दायित्वों का अच्छे ढंग से निर्वाह करने की कोशिश कर रही है। अब वह सिर्फ परिवार की सेवा ही नहीं करती बल्कि वह परिवार के विकास के लिए योगदान भी देती हैं, समाज में अपने परिवार को प्रतिष्ठित करने की कोशिश भी करती है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि लोकगीतों में नारी का पूर्ण वर्चस्व निहित है। प्राचीन काल से ही वह इन गीतों के माध्यम से सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक समन्वय स्थापित करती आ रही हैं। इन लोकगीतों के माध्यम से भोजपुरी संस्कृति की विभिन्न विशेषताओं व गुणों का पता चलता है। भोजपुरी संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह परिवार प्रथा की पोषक हैं इसलिए इन गीतों में परिवारिक सम्बन्धों का गंभीर वर्णन मिलता है। नारी जीवन की सार्थकता उसके मातृत्व में मानी जाती है, एक माँ ही है जो संयुक्त परिवारों में अपने बच्चों को एक निगाह से देखती है। माता के रूप में स्त्री को देवी का स्थान प्राप्त है, पत्नी के रूप में वह जीवन संगिनी है जो पति के हर सुख–दुःख को बाँटती है, बहन के रूप में नारी भाई के लिए अपना सर्वस्व त्यागने के लिए तत्पर रहती है हमेशा भाई की रक्षा की कामना करती है और बेटी के रूप में नारी माता–पिता को सुख देने वाली तथा निःस्वार्थ भाव से सेवा करने वाली है।

lUnÒ %

1. डा0 कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी ग्रामगीत, भाग–2, पृ0 131.
2. तद्भव पत्रिका, पृ0 20.
3. वही।
4. वही, पृ0 24.
5. वही, पृ0 24.
6. डा0 कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी लोकगीत, भाग–2, पृ0 34.
7. स्वयं द्वारा संग्रहीत, गीत गाने वालीं, उषा पाण्डेय (नादो) बिहार।
8. स्वयं द्वारा संग्रहीत, गीत गाने वालीं, किरन देवी (शेरवाँ)।
9. तद्भव पत्रिका, पृ0 27.
10. स्वयं द्वारा संग्रहित, गीत गाने वालीं, कुमारी देवी (मिरजापुर)।
11. स्वयं द्वारा संग्रहित, गीत गाने वालीं, उषा पाण्डेय (नादो) बिहार।
12. रामनरेश त्रिपाठी– ग्राम साहित्य, पृ0 47, भोजपुरी और जनपदीय अध्ययन, अंतरानुशासनात्मक (अभिविन्यास) कार्यशाला– 07–21 अगस्त 2015.

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 183-186

M,0 vEcMdj vkj mudk L=hoknh nf"Vdk.k

jke foykl ek;k*

बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने प्रारम्भ से ही स्त्री शिक्षा और स्वतंत्रता की पुरजोर वकालत की थी। वह स्त्री सम्मान और अस्मिता के सशक्त पक्षधर थे। स्त्रियों की सही दिशा में उन्नति और प्रगति हो, यह उनका उद्देश्य भी था। इस विचारधारा को आगे बढ़ाने में उनकी इंग्लैंड, और अमेरिका की यात्रा ने भरपूर सहयोग दिया। विद्यार्थी जीवन में अमेरिका प्रवास के दौरान बाबा साहेब ने अपने सहकारी जाधव पोपईकर को पत्र लिखा था कि – ''माँ–बाप बच्चे को जन्म देते हैं, कर्म नहीं, यह कहना गलत है। बच्चे को, उनके मन को माँ–बाप ही एक आकार देते हैं। लड़कों के साथ लड़कियों को भी शिक्षा दी जाए तो अपनी प्रगति जोरदार होगी। इसलिए आपको नजदीकी रिश्तेदारों में यह विचार तेजी से फैलाना चाहिए।''[1]

डॉ. अम्बेडकर ने स्त्री शिक्षा का प्रारम्भ अपने ही घर से किया। उन्होंने अपनी पत्नी रमाबाई को सतत प्रोत्साहित कर पढ़ना–लिखना सिखाया और जब बाबा साहेब विदेश में थे, तब वे उन्हें पत्र लिखकर भेजने भी लगी थीं। 25 दिसम्बर 1927 का दिन भारतीय इतिहास का एक अविस्मरणीय दिन बन गया जब परिवर्तनकारी डॉ. अम्बेडकर ने अन्याय और शोषण को जन्म देने वाली 'मनुस्मृति' को सार्वजनिक रूप से जलाया। उस दिन से स्त्रियों और शूद्रों जो सदियों से मूक थे, उनके पैरों में पड़ी बेड़ियाँ ढीली पड़ने लगीं। 12 अक्टूबर, 1929 को पूणे के पार्वती मंदिर में दलित स्त्रियों के प्रवेश हेतु आन्दोलन किया जिसमें उनके साथ नानाबाई कांबले और हजारों–हजार स्त्रियों ने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। साथ ही उनका तो साफ–साफ ये मानना ही था कि सामाजिक क्रांति में स्त्री को भी सहयोगी होना चाहिए। समाज में पुरुष और स्त्री के समान सहभागिता को अनिवार्य मानते हुए उन्होंने कहा था कि – ''मैं समाज की उन्नति का अनुमान इस बात से लगाता हूँ कि उस समाज में महिलाओं की कितनी प्रगति हुई है। नारी की उन्नति के बिना समाज एवं राष्ट्र की उन्नति असंभव है।''[2] बाबा साहेब परिवार निर्माण एवं समाज निर्माण में स्त्री की अहम भूमिका को स्वीकारते थे और देखा जाय तो यह एक तरह से सच भी है क्योंकि किसी भी परिवार एवं समाज के निर्माण में वहाँ की आधी आबादी कही जाने वाली स्त्रियों की बराबरी के हिस्सेदारी के बिना उसका निर्माण मुकम्मल कैसे हो सकता है? शायद ऐसे ही तमाम सवालों पर विचार करते हुए उन्होंने कहा था कि – ''नारी शिक्षा पुरुष शिक्षा से भी अधिक आवश्यक है। वह राष्ट्र के भावी निर्माताओं का निर्माण करने में महती भूमिका निभाती है, किन्तु मनु जैसे स्मृतिकारों ने नारी को मूक पशु की तरह रखने के लिए उन्हें शिक्षा से वंचित रखने की राष्ट्रघाती नीति अपनाई।''[3]

स्त्री प्रगति को समाज की प्रगति का मापदंड मानने वाले बाबा साहेब ने एक स्त्री सभा को संबोधित करते हुए कहा था कि –''नारी राष्ट्र की निर्मात्री है। राष्ट्र का हर नागरिक उसकी गोद में पलता है। नारी को जागृत किए बिना राष्ट्र का विकास असंभव है।''[4] उन्होंने स्त्री को शिक्षा दिलाने और राष्ट्रीय उन्नति में भागीदार बनने का आह्वान किया। बाबा साहेब ने मिलिंद कॉलेज औरंगाबाद की माली हालत ठीक न होते हुए भी, मात्र चार छात्राओं के लिए खुलावाया था। 28 जुलाई 1928 को बंबई विधान परिषद् में कामकाजी स्त्रियों को प्रसूति अवकाश के लिए बिल पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि 'महिलाओं को प्रसूति अवकाश प्रदान करना राष्ट्रीय हित में एक महत्वपूर्ण कदम है राष्ट्र की निर्मात्री को प्रसूतावस्था में विश्राम देने और उसे सुनिश्चित करने का दायित्व सरकार का है।' बाबा साहेब के इन विचारों से सम्पूर्ण सदन प्रभावित हुआ और यह विधेयक सर्वसम्मति से पास हो गया।

*शोध छात्र, बौद्ध अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

स्त्री–मुक्ति के वाहक डॉ. अम्बेडकर ने 'स्वतंत्रता', 'समानता' और 'स्वाभिमान' से जीवन जीने की शिक्षा देते हुए दो मूलमंत्र दिए जिनमें प्रथम है – शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो तथा दूसरा है जो उन्होंने बुद्ध से लिया था 'अत्त दीपो भव' अर्थात अपना दीपक स्वयं बनो। इन्हीं दो मूल मंत्रों में स्त्री–मुक्ति की सारी बातें निहित हैं। उन्होंने भारतीय स्त्री में चेतना जगाने और उनको मानवाधिकार दिलाने के लिए आजीवन संघर्ष किया।

भारतीय समाज में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी हिंदू स्त्रियों की दुर्दशा शूद्रों जैसी ही थी। स्त्रियों की सुरक्षा और सम्मान के लिए हिंदू धर्म में कोई विधि–विधान नहीं था। वे सम्पत्ति के अधिकार से भी वंचित थीं। जब हिंदू पुरुष अपनी पत्नियों को छोड़ देते थे, जब अधिकतम चार–पांच रुपए गुजारे भत्ते के लिए दिया जाता था। ऐसी स्त्रियाँ स्वयं तो दुखी रहती ही थीं, उनके माता–पिता या अभिभावक भी कष्ट उठाते थे। बाबा साहेब ने उनके चौमुखी विकास के लिए वैधानिक अधिकार दिलाने के उद्देश्य से 'विधि मंत्री' के रूप में सन् 1951 में 'हिंदू कोड बिल' तैयार किया। जिसमें 9 भाग, 139 धाराए, 7 अनुसूचियाँ थीं। जिसके अन्तर्गत स्त्रियों को सम्पत्ति में समान अधिकार, विधवाओं का पुनर्विवाह अधिकार, महिलाओं को भी तलाक अधिकार, राजनीतिक अधिकार, बहुपत्नी विवाह का अंत, दत्तक अधिकार, उत्तराधिकारी, निर्बल तथा साधनहीन परिवार के सदस्यों का भरण–पोषण आदि–आदि मुख्य प्रस्ताव थे।

बाबा साहब खासकर हिंदू स्त्री जिसमें सवर्ण तथा दलित दोनों आती हैं की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन चाहते थे। उनकी दयनीय स्थिति सुधारने हेतु एक ऐसा कानून बनाना चाहते थे जो विशुद्ध रूप से उनकी सामाजिक, आर्थिक, कानूनी स्थिति सुधारने में कारगर हो। इसलिए उन्होंने सौ फीसदी औरतों के हक में 'हिंदू कोड बिन' बनाया। 'हिंदू कोड बिल' और डॉ. अम्बेडकर दोनों को ही कट्टर पंथियों का भयंकर विरोध सहना पड़ा। इसके विरोध में बाबा साहब को कई बार व्यक्तिगत अपमान झेलना पड़ा। उनके घर पर पत्थर तक बरसाये गये और संसद में भी उनका बहिष्कार किया गया। बड़े उद्देश्य को ध्यान में रखकर बनाए गए 'हिंदू कोड बिल' का सरदार पटेल सहित अन्य कट्टरपंथियों ने भरपूर विरोध किया। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने तो इस्तीफा दे देने की भी धमकी दे दी। 'हिंदू कोड बिल' जो हिंदू परम्परा पर आधारित सामाजिक विषमता, भेदभाव और क्रूरतापूर्ण मान्यताओं, रीतियों और नियमों को खत्म करने के उद्देश्य से बनाया गया था। उसको पास कराने के लिए डॉ. अम्बेडकर के साथ–साथ अनेक दलित गैर–दलित महिलाओं ने भी भारतीय स्त्रियों की सामाजिक व आर्थिक लड़ाई लड़ी। 'हिंदू कोड बिल' पर दुर्गाबाई देशमुख, लोकसभा की सदस्य श्रीमती पदमजी नायडू, राजश्री, चंद्रकला, उर्मिला मेहता, मिसेस मिठान, महिला कांग्रेस की मंत्री कुमारी मुकुल और उनके महिला जत्थे ने डॉ. अंबेडकर के साथ गांव–गांव, नगर–नगर घूमकर सभा और जनसभाओं में स्त्रियों की सामाजिक, आर्थिक दुर्दशा के चित्र खींचे।

बाबा साहेब और उनके महिला साथियों द्वारा आयोजित हिंदू कोड बिल चर्चा सभाओं में कट्टर पंथियों द्वारा सीधा हमला कर दिया जाता था, और चर्चा सभाओं को जबरदस्ती बंद करा दिया जाता था। और तो और उस समय के अखबार भी 'हिंदू कोड बिल' के खिलाफ अनेक भड़काऊ लेख छाप रहे थे। उस समय देश का माहौल डॉ. अंबेडकर और उनकी महिला साथियों के खिलाफ विषाक्त हो गया था, परन्तु इन लोगों ने हिम्मत नहीं हारी डटे रहे। आखिर में जब 'हिंदू कोड बिल' संसद में पास न हो सका तो 28 सितम्बर 1951 को विरोध स्वरूप बाबा साहेब ने कानून–मन्त्री के पद से त्यागपत्र दे दिया।

बाबा साहेब स्त्रियों की उन्नति के लिए जितने प्रगतिशील कदम उठाते उतना ही कट्टर पंथियों द्वारा उनको पीछे खींचने की कोशिश होती रहती। कोड बिल जैसे प्रगतिशील कदम से चिढ़कर कट्टरपंथियों ने डॉ. अम्बेडकर के खिलाफ चारों तरफ वैमनस्य, घृणा और तनाव का जाल बिछा दिया। पुरुष–प्रधान संस्कृति पर प्रहार करते हुए इस बिल ने स्त्रियों को पुरुषों के बराबर कानूनी अधिकार देकर उनको गौरान्वित महसूस कराया था। इस बिल की वजह से हिंदू स्त्री को विवाह, तलाक आदि में पुरुषों जैसा ही हक दिया गया था।

'हिंदू कोड बिल' के अनुसार किसी भी जाति की लड़की या लड़का का विवाह होना अवैध नहीं था। हिंदू कोड के अनुसार पत्नी और पति एक समय में एक ही विवाह कर सकते थे। अगर कोई पति अपनी पहली पत्नी के रहते और पत्नी अपने पहले पति के रहते विवाह करते हैं तो उन्हें कानूनी दण्ड मिलेगा। 'हिंदू कोड बिल' में पति के मर जाने पर हिंदू स्त्री को पति की सम्पत्ति में उसकी सन्तान के बराबर हिस्सा देने का नियम बनाया। हिंदू धर्म शास्त्रों में विधवा के लिए दूसरा विवाह का कोई विधान नही था और न ही जायदाद में उसे कोई हिस्सा मिलता था। 'हिंदू कोड बिल' की वजह से पिता की मृत्यु के बाद पुत्री को भी भाईयों के बराबर जायदाद का वारिस बना दिया गया था। इसी प्रकार गोद लेने का अधिकार अपने कुल में से पैदा हुए बच्चे का ही प्राप्त था, किन्तु बिल के अनुसार किसी भी हिंदू परिवार में जन्मी लड़की या लड़के को गोद लिया जा सकता था और वह लड़का या लड़की चाहे जिस किसी भी हिंदू जाति के हों, गोद लिए जाने वाले की जायदाद के वारिस बन जाते। दिलचस्प बात ये थी कि अब न सिर्फ लड़का ही दत्तक बन सकता था बल्कि लड़की भी दत्तक ली जा सकती थी। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'हिदू कोड बिल' ने हिंदुओं के पुराने धर्मगढ़ को ध्वस्त करके रख दिया था।'[5]

'हिंदू कोड बिल' को पास करवाने के लिए बाबा साहेब ने अथक प्रयास किए क्योंकि वह जानते थे कि जातिप्रथा को बनाए रखने में स्त्रियों की स्थिति महत्वपूर्ण है। इसलिए हिंदू समाज उन्हें किसी भी तरह की स्वतंत्रता देने के पक्ष में नहीं है। अगर वह ऐसा करने देता है, तो जाति–व्यवस्था पूरी तरह से तहस–नहस हो सकती है। उनका मानना था कि स्त्रियाँ जातिवाद की प्रवेश द्वार हैं। इसलिए ब्राह्मणवाद उन पर अपना कब्जा जमाए हुए है क्योंकि वह जानता है कि स्त्रियों को अपने अधीन बनाये रखकर ही ऊँच–नीच पर आधारित जाति–व्यवस्था कायम रह सकती है। इस तरह 'हिंदू कोड बिल' स्त्रियों को पारम्परिक बंधनों से मुक्ति दिलाने की ओर उठाया गया एक ऐसा कदम था जो अंत में हिंदू समाज को जाति और जेंडर के कारण पैदा हुई असमानता से मुक्त करा सकता था। कुछ लोगों को इसमें खामियाँ दिख सकती हैं। 'हिंदू कोड बिल' की अपनी सीमाएँ भी हो सकती हैं। उन सीमाओं, खामियों को बाबा साहेब के देश–काल, परिस्थितियों और उसे बनाने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही उसकी आलोचना की जानी चाहिए न कि हवा–हवाई और सुनी–सुनाई बातों से।

बाबा साहेब समाज में स्त्रियों को समानता, स्वतंत्रता और हक–अधिकार प्राप्त कर, उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होते देखना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने संविधान लिखकर स्त्रियों (मूक समाज) के पुरुषों के समान सारे हक–अधिकारों की वकालत की। उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16, 21, 23, 39, 40, 42, 44, 51, 325 और 326 में स्त्रियों को समानता, स्वतंत्रता तथा उनके समाजिक, राजनीतिक अधिकारों के बारे में पुरुषों के समान दर्जा दिया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि बाबा साहेब सम्पूर्ण स्त्री जाति के प्रति कितना समर्पित थे। वर्तमान समय में स्त्रियों को पुरुषों के समान जो शैक्षणिक, आर्थिक, सामाजिक और जो अधिकार प्राप्त हैं इसका श्रेय बाबा साहेब को जाता है। डॉ. अम्बेडकर के संघर्षों के फलस्वरूप जो अधिकार प्राप्त हुए हैं उसे पूरी स्त्री जाति को जानना व समझना चाहिए और मैं समझता हूँ कि बाबा साहेब ने आधी आबादी कही जाने वाली स्त्री जाति को जो राष्ट्र का भी आधा हिस्सा है, उसे चेतनशील बनाया उसके हकों के लिए तमाम आन्दोलन भी किए।

इसके साथ ही यह सच है कि आज गाँव की पंचायतों से लेकर देश के सर्वोच्च पद पर स्त्री मौजूद हैं, लेकिन इसे देश की सभी स्त्रियों की प्रगति मान लेना ठीक उसी प्रकार होगा जैसे किसी प्यूरीफायर के छने पानी को देखकर गंगा नदी के पानी को पूरी तरह स्वच्छ मान लिया जाए। अब भी एक बड़ा सवाल हमारे समाने मुँह बाये खड़ा है कि डॉ. अम्बेडकर ने जिस बराबरी का सपना देखा था क्या वह आज पूरी तरह से मुकम्मल हो पाया है? क्या जाति की खांई समाज से पूरी तरह मिट पाई है? क्या हमारे समाज से ऊँच–नीच की दरार पट पाई है? क्या रोटी बेटी का संबंध हमारे समाज में मुकम्मल हो पाया है? आखिर क्यों आज भी बहुसंख्यक परिवारों में पुरुष घर का मुखिया बना बैठा हुआ है आज भी वहाँ स्त्री को आर्थिक अधिकार नहीं है, भले ही वह कमाऊ स्त्री ही क्यों न हो? आज भी स्त्रियों का एक बड़ा प्रतिशत साक्षर है फिर भी क्या वह अंधविश्वास से पूरी तरह उबर पाया है? आज भी ग्रामीण

अथवा मध्यवर्गीय शहरी युवतियाँ मनचाहे युवक से विवाह नहीं कर पाती हैं। क्या यह सच नहीं कि आज भी प्रेमी–युगलों को खाप पंचायत जैसी अमानवीय संस्थाएं मौत के घाट उतारने में कोई कुताही नहीं बरतती? आज भी पुत्र की लालसा में पुत्रियाँ पैदा करते हुए संतानों की संख्या बढ़ाने अन्यथा कन्या भ्रूण को मारने के उदाहरण भी समाज में बहुत से मिल जाएंगे। दहेज–प्रथा जैसे तमाम प्रकरणों में पढ़े–लिखे तथा सवर्ण वर्ग की स्त्रियाँ भी दलितों–सा जीवन जीने को विवश हैं। ऐसे तमाम सवालों के चलते ही आज भी डॉ. अम्बेडकर उतने ही प्रासांगिक बने हुए हैं, जितने कि पहले थे और तब तक बने रहेंगे जब तक उनका बराबरी का सपना मुकम्मल नहीं हो जाता। आज हमारे लिए यह अनिवार्य हो गया है कि हम बाबा साहेब के संघर्षों से प्रेरणा लेकर अपने हक–अधिकार के लिए लड़ें और 'फासीवादी, साम्प्रदायिक ताकतों' को मुंहतोड़ जवाब दें। और साथ ही 'महिला आरक्षण बिल' को भी पास करवाएं जो अब तक संसद में पेंडिंग पड़ा हुआ है। उन स्त्रियों को भी चेतनशील बनाए, जिन्हें अपने हक–अधिकार के बारे में कुछ भी नहीं पता क्योंकि यहाँ बिना लड़े कुछ नहीं मिलने वाला। इसलिए हमें बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के उस नारे को जमीन पर उतारकर संघर्ष करना होगा, जो उन्होंने बहुत पहले दिया था कि शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो...

lUnHkZ %

1. दलित नारी एक विमर्श, संकलन – डॉ. मंजू सुमन, संपा.–ज्ञानेन्द्र रावत, पृ. संख्या 33 डॉ. अम्बेडकर की उद्धृत पंक्तियाँ।
2. हिंदू नारी का उत्थान और पतन – डॉ. अम्बेडकर, दलित स्त्रीवाद–संपा. संजीव चंदन, अनीता भारती, पृ. संख्या – 34–35.
3. दलित नारी एक विमर्श, संकलन – डॉ. मंजू सुमन, संपा.–ज्ञानेन्द्र रावत, पृ. संख्या 33अम्बेडकर की उद्धृत पंक्तियाँ।
4. बाबा साहेब ने कहा था, आनंद साहित्य सदन, अलीगढ़, पृ. संख्या – 59 / दस स्पोक अम्बेडकर– संपा. भगवान दास, खंड–3.
5. हिंदू कोड बिल और बाबा साहेब का संघर्ष – सोहन लाल शास्त्री,दलित स्त्रीवाद–संपा. संजीव चंदन, अनीता भारती, पृ. संख्या – 54.
6. डॉ. अम्बेडकर का स्त्री विमर्श – डॉ. (सुश्री) शरद सिंह तथा गुलाबचंद।
7. भारतीय नारी के उद्धारक डॉ. बी. आर. अम्बेडकर – डॉ. कुसुम मेधवाल।
8. डॉ. अम्बेडकर :लाईफ ऐण्ड मिशन – धनंजय कीर।
9. स्त्री मुक्ति और महिला आन्दोलन – गीता श्री।
10. सामाजिक न्याय के पुरस्कर्ता डॉ. भीमराव अम्बेडकर – डॉ. ब्रजलाल वर्मा।
11. अभिमूक नायक, दिसम्बर 2004 सम्मान की आवाज विशेषांक।

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 187-191

miU;kl d: vkykspuk fl)kUr dh t:jr

Ikue ek;k*

साहित्य रूपों का विकास समाज विकास से जुड़ा हुआ है। इसीलिए साहित्य रूपों की संरचना का उस सामाजिक संरचना से गहरा सम्बन्ध होता है, जिसमें साहित्य के रूप पैदा होते हैं। प्रत्येक साहित्य–रूप का एक विचारधारात्मक आधार भी होता है जो सामाजिक विकास की विशेष अवस्था में व्याप्त विचारधारा से प्रेरित और प्रभावित होता है। महाकाव्य का जन्म सामन्ती दौर से पहले के जनपदीय समाजों में हुआ था और उसका विकास सामन्ती समाजों में होता रहा। ऐसे सामाजिक आधार के कारण ही महाकाव्यों की संरचना में एक ओर जनपदीय समाजों का खुलापन मिलता है तो दूसरी ओर सामन्ती समाजों की सांस्कृतिक और विचारधारात्मक परिणतियों की अभिव्यक्ति भी। सामन्ती समाज व्यवस्था के अन्त के साथ दुनिया भर में महाकाव्यों का युग समाप्त होता दिखाई देता है। बाद के समय के महाकाव्य केवल पुराने महाकाव्यों की स्मृतियों की अभिव्यक्ति ही हैं। यही कारण है कि आधुनिक काल में महाकाव्यों की रचना सम्भव नहीं हुई। महाकाव्य एक स्तर पर अपने समय और समाज के मनुष्य की स्थिति, नियति की पहचान और अभिव्यक्ति के प्रयत्न करते थे। आधुनिक काल में यह काम उपन्यास के माध्यम से होने लगा। इसीलिए उपन्यास को आधुनिक काल का महाकाव्य भी कहा जाता है। उपन्यास साहित्य का उदय और विकास समाज में आधुनिकता और पूँजीवाद के चलते औद्योगिकीकरण के परिणामस्वरूप मध्यवर्ग के उदय होने से तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक संबंधों के बदलने से हुआ है। उपन्यास के उद्भव के समय से लेकर अस्मितामूलक दौर तक यात्रा की प्रक्रिया व उपन्यास के स्वरूप में कथ्य एवं शिल्पगत बहुत सारेबदलाव आये हैं क्योंकि पहले हाशिए के समाज का हस्तक्षेप, उसकी अभिव्यक्ति ऐसी नहीं होती थी जैसी अब होती है। जैसा कि विदित है कि साहित्य की किसी भी विधा चाहे वह उपन्यास ही क्यों न हो, के उद्भव एवं विकास के साथ–साथ उसकी आलोचना का भी उद्भव एवं विकास माना जाता है। इसलिए उपन्यास आलोचना के इतिहास को भी देखने की जरूरत है। इसके साथ ही यह भी देखना होगा कि जब उपन्यास का जन्म तथा उसका विकास हो रहा था तो उस समय उपन्यास आलोचना का स्वरूप कैसा था? आलोचकों का उपन्यास के प्रति क्या नजरिया था? उनके द्वारा दिये गये मत क्या उपन्यास आलोचना के ऐतिहासिक विकास–क्रम को कड़ीबद्ध करने में सहायक होंगे? इन्ही प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए उपन्यास पर कुछ आलोचकों के मतों को देखना आवश्यक हो जाता है। हिंदी में उपन्यास की आलोचना का आरम्भ बालकृष्ण भट्ट के 'हिंदी प्रदीप' के सन् 1883 ई. में प्रकाशित 'उपन्यास' शीर्षक निबंध से माना जाता है। बालकृष्ण भट्ट अपने इस निबंध में लिखते हैं ''नोबेल के ढंग का गद्य काव्य लिखने का तरीका हमारी प्राचीन संस्कृत लिखावट में न था कुछ–कुछ इस क्रम का लेख चम्पू है पर चम्पू निरा गद्य काव्य नहीं है...अंग्रेजी नोबेल के ठीक–ठीक क्रम का कादम्बरी आख्यान है जिस्में सांगोपांग गुण उपन्यास के मिलते हैं,.'' बालकृष्ण भट्ट के इस मत से एक संभावना दिखाई देती है कि उपन्यास लेखन की भारतीय परम्परा रही है। इसके बाद 1899 ई. में 'हिंदी प्रदीप' में ही काशीप्रसाद जायसवाल का एक लेख 'हिंदी उपन्यास लेखकों को उलाहना' के नाम से छपा। जिसमें उन्होंने लिखा है कि ''उपन्यास लिखना कोई बुरी बात नहीं है . यदि ''उपन्यास'' लिखा जाय तो . उपन्यास से संसार का जितना हित और उपकार साधन हो सकता है उतना और किसी प्रकार की पुस्तक से होना कठिन है . इससे मनुष्य घोर पापी से देवता में परिणत हो सकता है।'' काशीप्रसाद की इस बात को नकारा

*शोध छात्रा, भारतीय भाषा केन्द्र, जेएनयू, नई दिल्ली

नहीं जा सकता कि उपन्यास विधा में समाज के यथार्थ को जितना अच्छे से अभिव्यक्त किया जा सकता है उतना किसी और विधा में नहीं। इसके अलावा प्रेमचन्द का उपन्यास को लेकर मानना है कि ''वही उपन्यास उच्चकोटि के समझे जाते हैं, जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो। उसे आप 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' कह सकते हैं। आदर्श को सजीव बनाने ही के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है। उपन्यासकार की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की सृष्टि है, जो अपने सदविचार से पाठक को मोहित कर लें। जिस उपन्यास के चरित्रों में यह गुण नहीं है, वह दो कौड़ी का है।'' यहाँ पर प्रेमचन्द जिस आदर्श को स्थापित कर रहे हैं, वह कौन–सा आदर्श था? वह आदर्श कितना उपयोगी था? प्रेमचन्द के इस आदर्श के कारण क्या यथार्थ का वास्तविक रूप उसमें खो नहीं जायेगा?

दूसरी तरफ उपन्यास के औचित्य पर बात करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यह लिखा है – ''उपन्यास का तो जन्म ही समाज की यथार्थ परिस्थितियों के भीतर से हुआ है। उपन्यास किसी देश की साहित्यिक विचारों की प्रगति को समझने के उत्तम साधन माने जाते हैं, क्योंकि जीवन की यथार्थताएँ ही उपन्यास को आगे बढ़ाती हैं।...इसीलिए उपन्यास के अध्ययन का मतलब होना चाहिए कि जाति या समाज के बढ़ते हुए विचारों और निरन्तर उत्पन्न होती रहने वाली जीवन की यथार्थ परिस्थितियों से सम्पर्क स्थापित करते रहने के प्रयत्नों का अध्ययन।'' हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उपन्यास के औचित्य की बात करते हुए उसके विकास क्रम में सहयोग दिया है। लेकिन क्या इतनी महत्वपूर्ण विधा जो समाज के यथार्थ को अपने अन्दर समाहित कर पाने की अकूत क्षमता एवं संभावनाएँ रखती हो उसे समझने के लिए भी एक सुव्यवस्थित तौर–तरीका नहीं होना चाहिए? इसी कड़ी में आचार्य नलिन विलोचन शर्मा अपनी पुस्तक 'हिन्दी उपन्यास और प्रेमचन्द' में उपन्यास के बारे में लिखा है – ''हिन्दी उपन्यास का इतिहास किसी भी देश के उपन्यास की तरह हिन्दी भाषी क्षेत्र की सभ्यता और संस्कृति के नवीन रूप से विकास का साहित्यिक प्रतिफलन है।...हमारे उपन्यास यदि आज पश्चिमी उपन्यासों के समकक्ष नहीं सिद्ध होते, तो मुख्यतरू इसलिए कि हमारी वर्तमान सभ्यता अपेक्षयरू आज भी कम जटिल और उलझी हुई है।'' नलिन विलोचन शर्मा के द्वारा सुझाया यह बिन्दु उपन्यास के उदय और विकास की अवधारणा को समझने में महत्वपूर्ण साबित हो सकता है। 19वीं सदी के लगभग अन्त में 1897 ई. में अम्बिकादत्त व्यास की 'गद्य–काव्य मीमांसा' पुस्तक छपी। बीसवीं सदी के आरम्भ में माधवप्रसाद मिश्र का एक लेख 'उपन्यास और समालोचक' 'सुदर्शन' पत्रिका में छपा। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' का एक लेख 'समालोचक' पत्रिका में 'हिंदी के उपन्यास लेखकों के नाम' से छपा। 1910 ई. में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का 'उपन्यास' नाम से एक निबन्ध प्रकाशित हुआ। उसके बाद महावीर प्रसाद द्विवेदी, निराला, जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय, निर्मल वर्मा और नामवर सिंह ने उपन्यास लेखन पर आलोचनात्मक निबंध लिखा।

आगे चलकर आलोचक नेमिचन्द्र जैन की 'अधूरे साक्षात्कार' पुस्तक सामने आती है। जिसमें वह अपनी इस पुस्तक में मूल रूप से यह स्थापना दी है कि ''अपनी समस्त विविधता और क्षमता तथा उपलब्धि के बावजूद, समग्र रूप से आधुनिक हिन्दी उपन्यास यही प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है कि हमारे लेखक जीवन का सामना पूरा और अन्त तक नहीं करते। इसीलिए इतनी सारी .तियों में प्रस्तुत सत्य के साथ विभिन्न साक्षात्कार अन्ततरू अपर्याप्त और अधूरे रह गये हैं . अनुभूति की गहराई की दृष्टि से भी और कलात्मक–सौन्दर्यमूलक सम्पूर्णता की .ष्टि से भी।'' नेमिचन्द्र जैन की इस स्थापना से एक प्रश्न उठता है कि क्या एक महत्वपूर्ण और मुकम्मल रचना वह है जो महज सम्पूर्ण जीवन का ब्यौरा प्रस्तुत करने में समर्थ है लेकिन जीवन जिस सत्य के आधार पर नियंत्रित हो रहा है उस सत्य को पकड़ने में असमर्थ? या फिर वह रचना महत्वपूर्ण है जो पूरे जीवन का ब्यौरा तो प्रस्तुत करने में असमर्थ है लेकिन जीवन जिस सत्य के आधार पर नियंत्रित हो रहा है उस सत्य को पकड़ने में समर्थ है? मेरी समझ से वह रचना महत्वपूर्ण होगी जो बारीकी से जीवन के उस सत्य को पकड़ने में सक्षम है जिससे जीवन नियंत्रित हो रहा है। इसके अलावा एक उपन्यास अपने अन्दर समाज के किस हिस्से के जीवन के सत्य को तथा जीवन के उस सत्य को नियंत्रित करने वाले सत्य को किस प्रकार अभिव्यक्त कर रहा है क्या ये महत्व नहीं रखता? इस पर गंभीरपूर्ण सोचने की जरूरत है।

इसी कड़ी में उपन्यास आलोचना के बारे में राजेन्द्र यादव का विचार है ''मेरा विश्वास है कि काव्य–समीक्षा के समृद्ध होने का कारण यह है कि वहाँ पुरानी .तियों का बार–बार नए दृष्टिकोण से विश्लेषण–विवेचन हुआ है, व्याख्याएँ और पुनर्व्याख्याएँ हुई हैं। 'जुही की कली' 'राम की शक्ति पूजा' से लेकर 'असाध्य–वीणा' और 'अन्धेरे में' या 'ब्रह्म राक्षस' तक। कथा–समीक्षा में प्रायः ऐसा कम हुआ है। वहाँ उपन्यासों के अन्दर और बाहर की दुनियाओं की समीक्षाएँ तो बहुत हैं, मगर स्वयं उपन्यास की कला और बाहरी भीतरी यथार्थ के संबंधों की अन्तरूक्रियाओं की पड़ताल या स्वरूप की पहचान कम है।'' राजेन्द्र यादव की इस राय से असहमत नहीं हुआ जा सकता कि कृति के नये दृष्टिकोण से विश्लेषण–विवेचन के द्वारा हुई व्याख्याओं और पुनर्व्याख्याओं से आलोचना समृद्ध होती है। लेकिन क्या आलोचना का दायित्व केवल नये दृष्टिकोण से कृति की व्याख्या कर आलोचना को समृद्ध करना ही है बजाय इसके कि कृति को व्याख्यायित करने के लिए नये दृष्टिकोण के अन्तर्गत सिद्धान्तों को गढ़ना, उन सिद्धान्तों को आधार बनाकर .ति की पुनर्व्याख्या करना? वहीं अगर दूसरी तरफ देखें कि क्या उपन्यास की कला और बाहरी भीतरी यथार्थ के संबंधों की अन्तरूक्रियाओं की पड़ताल या स्वरूप की पहचान कर लेना ही आलोचना का दायित्व है? क्या उपन्यास में अभिव्यक्त यथार्थ और बाहरी यथार्थ के संबंध की अन्तरक्रिया की जाँच–पड़ताल के लिए आलोचना के सिद्धान्तों को गढ़ने का काम महत्वपूर्ण नहीं है? क्या साहित्य की किसी भी विधा का अध्ययन, मूल्यांकन व उसकी आलोचना हेतु सिद्धान्तों की जरूरत नहीं होती ? अगर होती है तो आलोचना का क्या दायित्व होगा? इन प्रश्नों पर भी आज विचार करने की जरूरत है।

उपन्यास आलोचना के स्वरूप को देखकर लगता है कि उपन्यास के उदय एवं विकास के आधार पर उपन्यास आलोचना के विकास क्रम के स्वरूप में भी बदलाव आता गया। जिस तरह पहले के उपन्यासतिलिस्म एवं ऐय्यारी मूलक, आदर्शमूलक, परम्परामूलक, यथार्थमूलक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, आँचलिक आदि प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर लिखे गये,उसी तरह ऐसे उपन्यासों का अध्ययन एवं मूल्यांकन के निमित्त ऐसी ही तमाम परम्परावादी, यथार्थवादी, मनोविश्लेषणात्मक, आदि पद्धतियों का निर्माण भी किया गया। लेकिन पद्धतियाँ उपन्यासों का सम्पूर्णता में अध्ययन और मूल्यांकन करने में नाकाम रहीं। तब आलोचना के अन्दर समाजशास्त्रीय पद्धति और द्वंद्वात्मक भौतिकवादी या मार्क्सवादी पद्धति का जन्म हुआ, जो कुछ हद तक उपन्यासो का अध्ययन, मूल्यांकन करने में सक्षम रहीं। फिर जैसे–जैसे समाज के हाशिए के लोगों के अन्दर चेतना का विकास होना शुरू हुआ, उन्हें उनके गुलाम होने का एहसास शुरू हुआ तो 20वीं शताब्दी के नवें और दसवें दशक में उपन्यास विधा में भी अस्मितामूलक प्रवृत्ति ने स्थान बनाना शुरू किया और आज के दौर में साहित्य के क्षेत्र में विभिन्न अस्मिताओं की ही प्रमुखता दिखाई दे रही है।इतिहास में यह भी देखने को मिला है कि वर्चस्ववादी साहित्य ने अपने अन्दर हाशिए के लोगों – दलितों, स्त्रियों, आदिवासियों को जगह तक नहीं दिया। इतिहास गवाह है कि गैरबराबरी पर आधारित वर्चस्ववादी संस्कृति के तिलिस्म ने या फिर कह सकते हैं इन ब्राह्मणवादियों व मनुवादियों ने राजनीति को अपने कब्जे में करके दलितों, स्त्रियों, आदिवासियों, मजदूरों, किसानों का शोषण, उत्पीड़न कर उनके हक–अधिकार को छीनकर, उन्हें समाज के हाशिए पर ढकेल दिया। आज का उपन्यास साहित्य अपने अन्दर समाज की अनेक अस्मिताओं को दर्ज कर रहा है। हाशिए पर ढकेली गई आवाजों को, उनके शोषण, उत्पीड़न को, उनके द्वारा किए जा रहे संघर्षों को, तरजीह दे रहा है। आज हाशिए का दलित, स्त्री, आदिवासी साहित्य (उपन्यास साहित्य भी) की विकासमान धारा इसी वर्चस्ववादी संस्.ति के तिलिस्म को तोड़ती हुई तथा राजनीतिक चिंताओं एवं आकांक्षाओं को सही जगह पर लाने की कोशिश करती हुई जान पड़ती है।

इस साहित्य को सम्पूर्णता में अध्ययन एवं मूल्यांकन करने कीअब जरूरत है। प्रश्न उठता है कि क्या इन अस्मितामूलक उपन्यासों को पूर्व निर्धारित उपन्यास आलोचना की पद्धतियों से जाँचा–परखा जा सकता है? क्या उन पद्धतियों को आधार बनाकर इन अस्मितामूलक उपन्यासों का मूल्यांकन करना इन रचनाओं के साथ न्याय हो पायेगा? उदाहरण के तौर पर अगर हम गीतांजलि श्री का 'तिरोहित', अलका सरावगी का 'शेष कादम्बरी', मैत्रेयी पुष्पा का 'विजन', अनामिका का 'अवान्तर कथा' और मधु काँकरिया

का 'खुले गगन के लाल सितारे' को ही लें तो पाते हैं कि इनके उपन्यासों में वह स्त्री–विमर्श है जो कुलीनतावादी साहित्य धारा में नहीं दिखाई देता है। स्त्री अस्मिता के भिन्न धरातलों की पड़ताल करते ये उपन्यास भारतीय समाज में स्त्री प्रश्न का कोलाज–सा रचते दिखाई देते हैं। इन महिला उपन्यासकारों का सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा है – 'स्त्री–विमर्श' को पुरुष एजेंडे से मुक्त कराना। यदि ऐसे उपन्यासों का सम्पूर्णता में अध्ययन तथा मूल्यांकन करने में परम्परावादी, ऐतिहासिक पद्धति का प्रयोग करें, तो यह पाया जाता है कि ये पद्धतियाँ इनमें मूल तत्व के रूप में परम्परा तथा ऐतिहासिकता को खोजने लगती हैं। इस प्रकार की अध्ययन पद्धति इन उपन्यासों के साथ न्याय न करके, इनके महत्व को न समझते हुए इनको अनुपयोगी घोषित कर देती हैं। ऐसी पद्धति रचना का अध्ययन, मूल्यांकन एवं जाँचने–परखने का सही पद्धति नहीं हो सकती है। इसी तरह से अब अगर हम समाजशास्त्रीय और मार्क्सवादी पद्धति का इन उपन्यासों पर प्रयोग करते हैं तो पाते हैं कि समाजशास्त्रीय अध्ययन पद्धति में अभी तक स्त्रीवादी पक्ष की तरफ से कोई सक्षम दृष्टिकोण सामने नहीं आया है इसलिए यह पद्धति भी इन उपन्यासों का पूर्णता में अध्ययन, मूल्यांकन करने में अक्षम है। क्योंकि सामाजिक स्थिति और मूल्य चेतना के अन्तर के कारण पुरुष कथाकारों के उपन्यासों में स्त्री को जिस रूप में देखा और चित्रित किया जाता है, उससे भिन्न . ष्टिकोण स्त्री कथाकारों के उपन्यासों में मिल सकता है। 'हजार चौरासी की माँ' जैसा उपन्यास और द्रौपदी जैसी कहानी महाश्वेता देवी ही लिख सकती हैं। समाजशास्त्रीय पद्धति अभी तक इस दृष्टिकोण से अधूरी है।

इसी तरह मार्क्सवादी पद्धति को लें तो हम देखते हैं कि यह दृष्टि अपने सैद्धान्तिक व व्यावहारिक धरातल के रूप में अभी तक जितनी पद्धतियों का विकास हुआ उनमें से अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक पद्धति के रूप में सामने आती है। यह पद्धति ऐतिहासिक द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को केन्द्र में रखकर समाज में व्याप्त गैरबराबरी के चलते शोषित वर्ग अपने हक और हकूक को पाने के लिए और समाज में समाजवाद को स्थापित करने के लिए उस सत्ताधारी वर्ग के खिलाफ में जो संघर्ष करता है, उस वर्ग संघर्ष को तरजीह देती है। यह सच है कि ऐतिहासिक भौतिकवाद ऐतिहासिक विकास के नियामक सिद्धान्त या बुनियादी कारक को आर्थिक आधार में देखता है। लेकिन कुछ लोग इस मार्क्सवादी पद्धति को गलत तरीके से समझते हुए, इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि मार्क्सवादी पद्धति अपने आधार के अन्तर्गत केवल आर्थिक प्रक्रिया का यांत्रिक और निष्क्रिय परिणाम मानता है जिसके कारण अस्मितामूलक साहित्य की उपेक्षा की जाती है। मार्क्सवाद से भिन्न मत रखने वाले सबाल्टर्नवादी यह मानते हैं कि ''औपनिवेशिक भारत में और अन्यत्र भी प्रभुत्व केवल आर्थिक दबाव के बलबूते पर कायम नहीं रहता है। निम्नजन को उनकी गौणता का अहसास विविध प्रसंगों में रोजमर्रा तौर पर भी कराया जाता है।'' इस तरह से एक दूसरी पद्धति का जन्म होता है जिसे अब इतिहास अध्ययन की 'सबाल्टर्न' (निम्नवर्गीय प्रसंग) पद्धति के रूप में जाना जाता है। इटली के मार्क्सवादी विचारक एंतोनियो ग्राम्शी ने प्रभुत्वकारी वर्ग के समानान्तर 'सबाल्टर्न' की परिकल्पना की थी। ''सबाल्टर्न' या 'निम्नवर्गीय' शब्दावली से हमारी मुराद हर प्रकार के प्रभुत्व और मातहती के दर्जे को। चाहे वह आर्थिक या सांस्कृतिक शक्ति, बाहुबल या सेना, या फिर वर्ण, जाति या लिंग की 'श्रेष्ठता' के आधार पर हो . इतिहास में दर्शाने की थी।'' ये लोग भारत जैसे पारम्परिक एवं बहुलवादी संरचना वाले समाज को समझने में इस दृष्टि को अधिक कारगर इसलिए मानते हैं कि यह अभिजन और निम्नजन को दो अलग–अलग पटरियों पर न ढकेलकर उन दोनों के पारस्परिक संबंध, आश्रय और द्वंद्व के माध्यम से सामाजिक विकास की प्रक्रिया को दर्ज करती है।

सबाल्टर्न इतिहासकारों की ये बातें अपनी जगह पर सही हो सकती हैं लेकिन उन्हें एंगेल्स के इस विचार को भी ध्यान में रखना चाहिए कि ''राजनीतिक, वैधानिक, दार्शनिक, धार्मिक, साहित्यिक और कलात्मक विकास आर्थिक विकास पर निर्भर करता है। किंतु वे आपस में एक दूसरे को और आर्थिक आधार को भी प्रभावित करते हैं। ऐसा नहीं है कि आर्थिक तत्व ही अकेला सक्रिय तत्व है और अन्य सब कुछ उसका निष्क्रिय परिणाम है, बल्कि आर्थिक आधार के साथ उनकी यह अंतरूक्रिया ही है जो अंतिम विश्लेषण में हमेशा निर्णायक साबित होती है।'' इन सारी बातों से एक रास्ता खुलता हुआ जरूर दिखाई

देता है। वह यह कि इस मार्क्सवादी पद्धति का दायरा बढ़ाकर अधिकांश 21वीं सदी के दौर के उपन्यासों का व अस्मितामूलक उपन्यासों का सम्पूर्णता में अध्ययन एवं मूल्यांकन करने की तरफ बढ़ने की कोशिश हो सकती है। जिसमें समाजशास्त्रीय अध्ययन पद्धति के तहत उपन्यास में अभिव्यक्त उत्पीड़न का समाजशास्त्रीय अध्ययन होगा और सबाल्टर्न हिस्टोरियोग्राफी पद्धति के तहत अस्मिताओं का गहराई से अध्ययन भी होगा। इस तरह से उपन्यास आलोचना की पद्धति को विकसित करने की एक नई संभावना दिखाई देती है।

lUnHkZ %

1. बालकृष्ण भट्ट और आधुनिक हिन्दी का आरम्भ, अभिषेक रौशन, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम संस्करण–2009, पृष्ठ संख्या–210–211
2. वही, पृष्ठ संख्या–215
3. कुछ विचार, प्रेमचन्द, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, लोकभारती संस्करण–2008, पृष्ठ संख्या–50–51
4. साहित्य–सहचर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–1982, पृष्ठ संख्या–83
5. आचार्य श्री नलिन विलोचन शर्मा की आलोचना साधना, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद, अयन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्कारण–2003, पृष्ठ संख्या–90
6. अधूरे साक्षात्कार, नेमिचन्द्र जैन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,तृतीय संस्करण–2002, पृष्ठ संख्या–87.
7. उपन्यासरू स्वरूप और संवेदना, राजेन्द्र यादव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–2007, पृष्ठ संख्या–09, भूमिका
8. निम्नवर्गीय प्रसंग भाग–1, संपा. शाहिद अमीन और ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्कगण–1995, पृष्ठ संख्या–10
9. वही, पृष्ठ संख्या–10
10. कला और साहित्य चिंतनरू कार्ल मार्क्स, (अनु.) गोरख पाण्डेय, (संपा.) नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1991, पृष्ठ संख्या–32

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 192-198

Hkkjrh; vFkZO;oLFkk esa i'kqikyu ,oa Ms;jh m|ksx % ,d fo'ys"k.k

v'kksd dqekj flag*

भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुपालन और डेयरी उद्योग का महत्वपूर्ण स्थान है। राष्ट्रीय जी0डी0पी0 मे पशुपालन व डेयरी उद्योग का योगदान लगभग 4.35 प्रतिशत है, जो कृषि सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 27 प्रतिशत है। देश के लगभग 6 करोड़ परिवार गाय–भैंस पालते हैं, जिसका प्रमुख उद्देश्य दुग्ध उत्पादन है। भारत दुग्ध उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर, मत्स्य उत्पादन में द्वितीय, अण्डा उत्पादन में तृतीय तथा मांस उत्पादन में सातवें स्थान पर है। गाय–भैंस जैसे बोवाइन की आबादी के मामले में भारत प्रथम स्थान पर है, जो विश्व के कुल पशुधन आबादी का लगभग 15 प्रतिशत है। इस समय देश में पशुओं व मुर्गियों की 169 पंजीकृत नस्ले हैं, जिसमें पशुधन में गाय की 41, भैंस की 13, बकरी की 28, भेड़ की 42, घोड़े की 7, ऊँट व सुअर की 7 तथा गधे व याक की 1–1 और कुक्कुट समुदाय में मुर्गी की 18 एवं बत्तक व गीज की 1–1 पंजीकृत नस्ले हैं।[1] इस समय देश में कुल पशुधन की संख्या–512.05 मिलियन है, जिसमें 199.1 मिलियन गाय, 105.3 मिलियन भैंस, 145.5 मिलियन बकरी, 76.1 मिलियन भेड़ तथा 11.1 मिलियन शूकर की संख्या है। इसके अतिरिक्त कुल कुक्कुटों (च्वनसजतल) की संख्या 729.2 मिलियन है।[2]

कृषि व पशुपालन में एक पूरक सम्बन्ध है, जिसमें कृषि लागत का एक भाग गोबर की खाद तथा पशुशक्ति पशुओं से प्राप्त होता है, जबकि दूसरी तरफ पशुओं के लिए आहार व विछावन फसलों से प्राप्त होता है। देश में छोटे, सीमान्त तथा भूमिहीन किसानों की पूरी अर्थव्यवस्था छोटे पशुओं जैस–भेंड, बकरी, शूकर तथा मुर्गीपालन पर निर्भर है। देश की 70 प्रतिशत आबादी कृषि व पशुपालन पर निर्भर है। छोटे व सीमान्त किसानों के पास कुल कृषि भूमि का 30 प्रतिशत जोत है, इसमें 70 प्रतिशत किसान पशुपालन व्यवसाय से जुड़े है, जिनके पास कुल पशुधन का 80 प्रतिशत भाग मौजूद है।

i'kq/ku mRiknu % इस समय पशुधन क्षेत्र से उत्पादन का मूल्य वर्तमान मूल्यों पर लगभग 733054 करोड़ रूपये है जो कृषि तथा सम्बन्ध क्षेत्र से उत्पादन मूल्य का लगभग 28.7 प्रतिशत है।[3] स्थिर मूल्य पर पशुधन से उत्पादन का मूल्य कुल कृषि तथा सम्बन्ध क्षेत्र से उत्पादन के मूल्य का लगभग 27.8 प्रतिशत है।[4] कृषि का देश के सकल घरेलू उत्पाद (जी0डी0पी0) में 18 प्रतिशत योगदान है, जिसका एक तिहाई पशुक्षेत्र से आता है और आने वाले वर्षों में पशुधन क्षेत्र का योगदान और तेजी से बढ़ेगा।[5]

n/k dk mRiknu % आज भारत विश्व में दूध का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। पशुधन की उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए सरकार द्वारा विभिन्न उपाय किए गए है, जिनके फलस्वरूप दुग्ध उत्पादन 10वीं योजना के अन्त (2006–07) में 102.6 मिलियन टन से काफी आगे बढ़कर 11वीं योजना के अन्त (2011–12) में 127.9 मिलियन टन के स्तर पर पहुँच गया। 2014–15 तथा 2015–16 के दौरान दूध का उत्पादन 146.3 मिलियन टन और 155.5 मिलियन टन है और वार्षिक विकास दर क्रमशः 6.27 प्रतिशत व 6.28 प्रतिशत है। 2015–16 में दूध की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 377 ग्राम प्रतिदिन है। 1985–86 से 2015–16 तक दूध का उत्पादन तथा प्रतिवर्ष संगत विकास दर (प्रतिशत) निम्नलिखित तालिका में दर्शायी गयी है:–

*प्रवक्ता (कृषि) शिवहर्ष उपाध्याय किसान इ0का0, बस्ती, उ0प्र0

nqX/k dk mRiknu ,oa lrr fodkl nj ifr'kr ¼1985&86 ls 2015&16 rd½[6]

o"kZ	nqX/k mRiknu ¼fefy;u Vu esa½	ifro"kZ mRiknu dh o`f) nj ¼ifr'kr esa½
1985—86	44.0	7.85
1990—91	53.9	4.5
1995—96	66.2	4.56
2000—01	80.6	4.35
2005—06	97.1	4.09
2010—11	121.8	6.09
2011—12	127.9	5.01
2012—13	132.4	3.52
2013—14	137.7	3.97
2014—15	146.3	6.27
2015—16	155.5	6.28

nqX/k dh vkSlr mRiknu nj % 2015—16 के दौरान विभिन्न प्रजातियों से राष्ट्रीय स्तर पर प्रति पशु प्रतिदिन दूध का औसत उत्पादन निम्न प्रकार से रहा है[7]—

Øe la0	iztkfr	vkSlr mRiknu ¼fdxzk@fnu½
1	विदेशी गाय	11.21
2	संकर गाय	7.33
3	देशी गाय	3.41
4	नाट—डिस्क्रिप्ट गाय	2.16
5	भैंस	5.76
6	नान डिस्क्रिप्ट भैंस	3.80
7	बकरी	0.45

2015—16 के दौरान कुल दूध उत्पादन का 49 प्रतिशत हिस्सा भैंस से, 27 प्रतिशत विदेश गाय से, 21 प्रतिशत देशी गाय से तथा 03 प्रतिशत हिस्सा बकरी से प्राप्त हुआ है।[8]

v.Mk mRiknu% भारत में कुक्कुट उत्पादन में पिछले चार दशक में अत्यधिक वृद्धि हुई है। 10वीं योजना तथा 11वीं योजना के अन्त में अण्डों का उत्पादन क्रमशः 50.7 बिलियन तथा 66.45 बिलियन था। वर्तमान में अण्डा उत्पादन 82.92 बिलियन है। वर्तमान में प्रति व्यक्ति अण्डे की उपलब्धता 63 अण्डे प्रतिवर्ष है।[9]

Åu rFkk ehV dk mRiknu % देश मे 1985—86 में ऊन का उत्पादन 39.11 मिलियन किग्रा था जो 2015—16 में बढ़कर 43.6 मिलियन किग्रा हो गया है। इसी प्रकार 2005—06 में मीट का उत्पाद 2.3 मिलियन टन था जो 2015—16 में बढ़कर 7.0 मिलियन टन हो गया है।[10]

jk"Vªh; i'kq/ku fe'ku % वित्तीय वर्ष 2014—15 में शुरू किया गया राष्ट्रीय पशुधन मिशन पशुधन उत्पादन में मात्रात्मक और गुणात्मक सुधार सुनिश्चित करने के लिए काम कर रहा है। यह मिशन पशुधन क्षेत्र के सतत विकास के उद्देश्य से तैयार किया गया है, जो गुणवत्ता युक्त फीड और चारा की उपलब्धता में सुधार करने पर केन्द्रित है। देश के सभी राज्यों में एन0एल0एम0 लागू किया गया है।

,u0,y0,e0 dk mn~ns'; %

1. पोन्ट्री सहित पशुधन क्षेत्र का सतत विकास।
2. गुणवत्ता युक्त चारे की उपलब्धता में वृद्धि करने के लिए बीज प्रोद्योगिकी संवर्धन विस्तार, पोस्ट फसल प्रबन्धन तथा प्रसंस्करण को शामिल करना।
3. किसानों की सक्रिय भागीदारी और डेयरी / किसान सहकारी समितियों, बीज निगमों और निजी क्षेत्र के उद्यमों के सहयोग से प्रभावी बीज उत्पादन श्रृंखला (न्यूक्लियस—ब्रीडर—फाउन्डेशन—प्रमाणित बीज) के माध्यम से गुणवत्ता युक्त चारा व चारे के बीज के उत्पादन में तेजी लाने के लिए।

4. सतत पशुधन विकास के लिए चल रहे योजना कार्यक्रमों और हित धारकों के बीच अभिसरण व तालमेल स्थापित करना।
5. पशुपोषण और पशुधन उत्पादन में चिन्ता के प्राथमिक क्षेत्रों में लागू अनुसंधान को बढ़ावा देना।
6. उत्पादन लागत को कम करने व पशुधन क्षेत्र के उत्पादन में सुधार के लिए तकनीकों के कौशल आधारित प्रशिक्षण व प्रसार को बढ़ावा देना।
7. किसानों / किसानों के समूह / सहकारी समितियों आदि के सहयोग से पशुधन की स्वदेशी नस्लों के संरक्षण व स्वदेशी उन्नयन के लिए पहल को बढ़ावा देना।
8. छोटे और सीमांत किसानों / पशुधन मालिकों और सहकारी समितियों / उत्पादकों की कम्पनियों के समूह के गठन को प्रोत्साहित करना।
9. विपणन, प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन के लिए आधारभूत संरचनाओं का विकास करना।
10. किसानों के लिए पशुधन बीमा, सहित जोखिम प्रबन्धन उपायों को बढ़ावा देना।
11. पशु रोगों, पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए गतिविधियों को बढ़ावा देना।
12. पशुपालन से सम्बन्धित टिकाऊ प्रथाओं, नस्ल संरक्षण में समुदाय की भागीदारी और राज्यों के लिए संसाधन मानचित्र बनाने के लिए समुदाय की भागीदारी को प्रोत्साहित करना।

राष्ट्रीय पशुधन मिशन चार उप मिशनों में आयोजित किया गया है–

(i) i'k/ku fodkl ij mife'ku% पशुधन विकास पर उपमिशन में समग्र दृष्टिकोण के साथ पशुधन और भैंस के अलावा कुक्कुट सहित पशुधन प्रजातियों के समग्र विकास के लिए चिन्ता को दूर करने के लिए गतिविधियाँ शामिल है।

(ii) mRrj&iwohZ {ks=k esa 'kwdj fodkl ij mife'ku% पहली बार एन0एल0एम0 के अन्तर्गत पूर्वोत्तर क्षेत्र में शूकर विकास सम्बन्धी एक उपमिशन का प्रावधान किया गया है, जिसमें भारत सरकार राज्य शूकर पालन फार्मो और जर्मप्लाजम के आयात हेतु सहायता प्रदान कर रही है।

योजना का उद्देश्य जन समुदाय को लाभ पहुँचाना है और इसे आजीविका से जोड़ा गया है, और यह पूर्वोत्तर क्षेत्र के आठ राज्यों में प्रोटीनयुक्त भोजन उपलब्ध कराने में योगदान कर रहा है।

(iii) vkgkj vkSj pkjk fodkl ij mife'ku% यह उपमिशन पशुधन और चारा संसाधनों की कमी की समस्याओं को दूर करने के लिए डिजाइन किया गया है, ताकि पशुधन क्षेत्र को भारत के लिए एक प्रतिस्पर्धी उद्यम बना दिया जा सके और इसके निर्यात का उपयोग भी किया जा सके। उपमिशन विशेष रूप से चारे के उत्पादन व उत्पादकता दोनों को बढ़ाने पर ध्यान केन्द्रित कर रहा है।

(iv) dkS'ky fodkl] izkS|kfxdh gLrkarj.k vkSj foLrkj ij mi fe'ku% यह उपमिशन किसानों, शोधकर्ताओं और विस्तार श्रमिकों आदि के सहयोग से फ्रंटलाइन क्षेत्र प्रदर्शन सहित प्रौद्योगिकी को विकसित, अपनाने या अनुकूलित करने के लिए एक मंच प्रदान कर रहा है।[11]

एन0एल0एम0 के अन्तर्गत विगत तीन वर्षो में उधमशीलता विकास एवं रोजगार सृजन के तहत 32,981 लाभाार्थियों की सहायता की गयी है। ग्रामीण घरेलू कुक्कुट विकास के तहत 3.68 लाख लाभार्थियों का वित्तपोषण किया गया है। 64 लाख पशुओं का बीमा किया गया, 3.00 लाख बकरियों व 9.80 लाख शूकरो को स्वास्थ्य सहायता दी गयी। 41 कुक्कुट / भेड़ / बकरी / शूकर प्रजनन फार्मों की सहायता की गयी। 54930 चारा कटाई यंत्र विकसित किए गये। 96321 क्विंटल बीज वितरित किए गये। 3823 साइलेज यूनिटों की स्थापना की गयी। 519 पशुधन मेलों के आयोजन को सहायता दी गयी, 223 पशुधन किसान समूह और 121 किसान फील्ड स्कूल स्थापित किए गये, तथा 8420 किसानों को प्रदर्शनी दौरों के तहत कवर किया गया।[12]

jk"Vªh; xksdqy fe'ku% केन्द्र सरकार ने 28 जुलाई 2014 को स्वदेशी गायों के संरक्षण और नस्लों के विकास को वैज्ञानिक तरीके से प्रोत्साहित करने के लिए राष्ट्रीय गोकुल मिशन की शुरूआत की। यह मिशन राष्ट्रीय पशु प्रजनन एवं डेयरी विकास कार्यक्रम पर केन्द्रित परियोजना है।

jk"Vªh; xksdqy fe'ku dk mn~ns'; %

* स्वदेशी नस्लों का विकास और संरक्षण।
* स्वदेशी पशु नस्लों के लिए नस्ल सुधार कार्यक्रम शुरू करना ताकि अनुवांशिक सुधार और पशुओं की संख्या में वृद्धि की जा सके।
* दूध उत्पादन व उत्पादकता को बढ़ाने के लिए।
* नान–डेसक्रिप्ट पशुओं का गिर, साहीवाल, राठी, देउनी, थारपारकर, रेडसिन्धी और अन्य कुलीन स्वदेशी नस्लों के जरिए अपग्रेडेशन करना।
* प्राकृतिक सेवाओं के लिए उच्च आनुवांशिक योग्यता वाले सांडो का वितरण।

xksdqy xzke% मिशन के तहत स्वदेशी पशु केन्द्रो या गोकुल ग्राम की स्थापना स्वदेशी नस्लों के प्रजनन इलाकों में की गयी। गोकुल ग्राम की सथापना पी0पी0पी0 माडल के तहत की जा रही है। गोकुल ग्राम किसानों के लिए प्रशिक्षण केन्द्र में आधुनिक सुविधा प्रदान करेगा। मेट्रोपोलियन गोकुल ग्राम का केन्द्र शहरी पशुओं के उन्नयन पर होगा। 1000 पशुओं की क्षमता वाले इन ग्रामों में उत्पादक और अनुत्पादक पशुओं का अनुपात 60:40 का होगा। ये गोकुल ग्राम पशुओं के पोषण सम्बन्धी जरूरतों को पूरा करने के लिए चारा उत्पादित करेंगे। गोकुल ग्राम एक संस्थान होगा जो दूध, जैविक खाद, केचुआ खाद, मूत्र डिस्टिलेट, घरेलू खपत के लिए बायोगैस से बिजली का उत्पादन तथा पशु उत्पादों की बिक्री के जरिए आर्थिक संसाधन पैदा करेगा। नस्लों को बीमारी मुक्त रखने के लिए पशुओं को एफ0एम0डी0, टी0बी0 और ब्रूसीलोसिस जैसी बीमारियों से बचाने के लिए नियमित जांच की जायेगी। इसके अतिरिक्त गोकुल ग्राम में एक डिस्पेंसरी और ए0आई0 केन्द्र भी होगा। इस समय देश के 13 राज्यों में 20 गोकुल ग्राम स्वीकृत किए गए है। स्वदेशी नस्लों के संरक्षण के लिए देश में दो राष्ट्रीय कामधेनु ब्रीडिंग केन्द्र भी स्थापित किए गये है, पहला दक्षिणी क्षेत्र में चिन्तल देवी, नेल्लोर में और दूसरा इटारसी होरांगाबाद में।[13]

'osr Økafr % श्वेत क्रान्ति जिसे आपरेशन लड के नाम से जाना जाता है, 1970 में लांच किया गया था। यह भारत के राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड (एन0डी0डी0बी0) द्वारा एक पहल थी और यह दुनिया का सबसे बड़ा डेयरी विकास कार्यक्रम था। इसने भारत को दूध की कमी वाले देश से दुनिया के सबसे बड़े दूध उत्पादकों में बदल दिया। आपरेशन लड ए0एम0यू0एल0 के अध्यक्ष और संस्थापक वर्गीस कुरिएन द्वारा स्थापित प्रयोगात्मक पैटर्न पर आधारित था, जिसे एन0डी0डी0बी0 के अध्यक्ष का नाम दिया गया था और आपरेशन लड के वास्तुकार के रूप में भी मान्यता प्राप्त थी। वर्गीस कुरियन श्वेत क्रान्ति के जनक थे। उन्होंने अमूल, भारत में सबसे बड़ी दूध उत्पादक कम्पनियों में से एक की स्थापना की। कुरियन अपने दोस्त एच0एम0 दलाया के साथ भैंस दूध से दूध पाउडर और संघनित दूध बनाने की प्रक्रिया का आविष्कार किया। भारत में श्वेत क्रान्ति के तीन चरण थे–प्रथम चरण जुलाई 1970 में 10 राज्यों में 18 मिल्क शेड में डेयरी सहकारी समितियों की स्थापना के उद्देश्य से शुरू हुआ था। उन्हें चार सर्वश्रेष्ठ मेट्रोपोलिटन बाजारों से जोड़ा जाना था। इस चरण के अन्त तक 15000 किसानों को कवर करने वाले 13000 गांव डेयरी सहकारी समितियाँ थीं। श्वेत क्रान्ति का दूसरा चरण जो 1979 में शुरू हुआ, इसका उद्देश्य चरण के डिजाइन और कर्नाटक, राजस्थान और मध्यप्रदेश में सहायक डेयरी विकास कार्यक्रमों पर निर्माण करना था। इस चरण के अन्त तक 1985 में 136 दूध शेड, 34500 गांव डेयरी सहकारी समिति और 36 लाख से ज्यादा सदस्य थे। श्वेत क्रान्ति का तीसरा चरण 1985 में शुरू हुआ। इस चरण ने दीर्घकालिक स्थपित्व के लिए डेयरी क्षेत्रों की उत्पादकता और दक्षता में सुधार करके पिछले दो चरणों के लाभ को मजबूत करने पर जोर दिया। यह चरण 1996 में समाप्त हुआ और उस समय तक 73300 डेयरी सहकारी समिति और 9.4 मिलियन से अधिक किसान सदस्य थे।

श्वेतक्रान्ति ने भारत में दूध ठोस पदार्थों के आयात को समाप्त कर दिया और भारत ने कई विदेशी देशों को दूध पाउडर निर्यात करना शुरू कर दिया। डेयरी उद्योग और बुनियादी ढाँचे का आधुनिकीकरण और विस्तार हुआ। लगभग 10 मिलियन किसान डेयरी फार्मिंग से अपनी कमाई कमाते है। क्रास–ब्रीडिंग के कारण दुग्ध पशुओं के आनुवांशिक सुधार में वृद्धि हुई है। ''आपरेशन लड की तृतीय चरण के शुरूआत

में 200 करोड रूपये के निवेश पर प्रतिवर्ष ग्रामीण अर्थव्यवस्था को 24000 करोड रूपये की प्राप्ति हुई। विश्व की कोई भी वृहद विकास योजना लागत एवं प्राप्ति की दृष्टि से इतनी सफल सिद्ध नहीं हो पाई।''[14]

i'kqikyu o Ms;jh fodkl dk u;k vk;ke%

uLy iathdj.k% नस्ल पंजीकरण अपने देश के अपार पशु आनुवांशिक संसाधन तथा उनसे सम्बन्धित ज्ञान एवं सूचना का प्रलेखन करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है, जिससे कि हम अपने आनुवांशिक संसाधनों की एक इंवेंटरी तैयार कर सकें एवं इन संसाधनों का आनुवांशिक सुधार, संरक्षण एवं सतत उपयोग हो सकें। आई0सी0ए0आर0 ने ज्ञात विशेषताओं के साथ मूल्यवान संप्रभु आनुवांशिक संसाधन की एक प्रामाणिक राष्ट्रीय प्रलेखन प्रणाली की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए पशु आनुवांशिक संसाधन राष्ट्रीय ब्यूरो, करनाल में पशु नस्लों के पंजीकरण के लिए सन् 2007 में एक प्रक्रिया की शुरूआत की। प्रक्रिया की शुरूआत में देश में उपस्थित पशुधन तथा मुर्गी की कुल 129 देशी नस्लों को एक साथ पंजीकृत किया गया। आज इस प्रक्रिया के तत यह संख्या बढ़कर कुल 169 हो गयी है। आज भी देश का लगभग 54 प्रतिशत पशुधन का नस्ल चिन्हीकरण होना बाकी है।[15]

i'kqikyu cqfu;knh lajpuk fodkl fuf/k% पशुपालन योजनाओं का लाभ सीधे किसानों के घर तक पहुँचाने के लिए सरकार द्वारा एक नई योजना ''नेशनल मिशन आन बोवाइन प्रोडक्टीविटी'' अर्थात– ''गौपशु उत्पादकता राष्ट्रीय मिशन'' को शुरू किया गया है। इस योजना में ब्रीडिंग इनपुट के द्वारा गाय व भैंस की संख्या बढ़ाने हेतु आनुवांशिक अपग्रेडेशन के लिए सरकार द्वारा 825 करोड रूपये खर्च किए जा रहे है। दुग्ध उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि करके डेयरी कारोबार को लाभकारी बनाने के लिए यह योजना अपने उद्देश्य में काफी सफल रही है। सरकार ने पिछले बजट में नाबार्ड के साथ डेयरी प्रसंस्करण और आधार संरचना विकास निधि को 10,881 करोड़ रूपये के कोष के साथ स्थापित किया था। इस वर्ष सरकार ने 2450 करोड रूपये के प्रावधान के साथ पशुपालन क्षेत्र की बुनियादी आवश्यकताओं को फाइनेंस करने के लिए एक पशुपालन बुनियादी संरचना विकास निधि (ए0एच0आई0डी0एफ0) की स्थापना की है। साथ ही डेयरी किसानों की कार्यशील पूँजी की आवश्यकता को पूरा करने के लिए मत्स्यपालक और पशुपालक किसानों को किसान क्रेडिट कार्ड की सुविधा भी सरकार द्वारा बढ़ा दी गयी है। यह निधि पशुधन क्षेत्र में स्वरोजगार की अधिकाधिक संभावनाओं को बढ़ाने वाली है।[16]

i'kq/ku chek ;kstuk% पशुधन बीमा योजना 10वीं पंचवर्षीय योजना के वर्ष 2005–06 तथा 2006–07 और 11वीं पंचवर्षीय योजना के वर्ष 2007–08 में प्रयोग के तौर पर देश के 100 चयनित जिलों में क्रियान्वित की गयी थी। अब यह योजना देश के सभी 716 जिलों में नियमित रूप से चलाई जा रही है। बीमित पशु की मृत्यु हो जाने पर बीमा कम्पनियों से उसके मूल्य का कुछ हिस्सा प्राप्त हो जाता है, जिससे होने वाले नुकसान की कुछ हद तक भरपाई हो सकती है। इस प्रकार यह योजना पशुपालकों की आजीविका सुरक्षित रखने में सहायक होती है। बीमा के प्रीमियम राशि के 50 प्रतिशत तक अनुदान प्राप्त होता है। अनुदान का लाभ अधिकतम दो पशु प्रति लाभार्थी को अधिकतम तीन वर्षो की बीमा पॉलिसी के लिए मिलता है।[17]

bZ&i'kq gkV iksVZy% देश में पहली बार राष्ट्रीय बोवाइन उत्पादकता मिशन के अन्तर्गत 26 नवम्बर 2016 को ई–पशुहाट पोर्टल (www.pashuhaat.gov.in) स्थापित किया गया। यह पोर्टल गोपशुओं की देशी नस्लों के लिए ब्रीडर व किसानों को जोड़ने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इस पोर्टल के द्वारा किसानों को देशी नस्लों की नस्लवार सूचना प्राप्त होती है। इसमें पशु आहार और चारे की उपलब्धता के लिए पूरी जानकारी भी दी गयी है। किसानों की सुविधा के लिए पशु खरीद और बिक्री के लिए यह आनलाइन पोर्टल तैयार किया गया है। इससे किसान एवं प्रजनक देशी नस्ल की गाय और भैंसो को खरीद एवं बेच सकेंगे। इस ई–मार्केट से किसान हिमीकृत सीमेन और भ्रूण भी खरीद सकते है। इस पोर्टल पर देश में उपलब्ध जर्मप्लाज्म की सारी सूचना अपलोड कर दी गई है। इस पोर्टल के द्वारा देशी नस्लों के संरक्षण संवर्धन एवं विकास को एक नई दिशा मिल रही है।[18]

Hkz.k vUrj.k izkS|kfxdh% पशुपालन, डेयरी तथा मत्स्यपालन विभाग ने राज्यों के साथ मिलकर राष्ट्रीय बोवाइन उत्पादकता मिशन नामक योजना के अधीन एक व्यापक भ्रूण अंतरण प्रौद्योगिकी कार्यक्रम चलाया है। यह कार्यक्रम देशभर में 2–10 अक्टूबर 2017 के दौरान 440 भ्रूण अंतरण किए जाने के प्रस्ताव के साथ शुरू हुआ। यह कार्यक्रम देशी नस्लों के संरक्षण तथा विकास के उद्देश्य से कार्यान्वित किया जा रहा है। इसके प्रयोग से एक किसान को 5–6 गुना अधिक पशु संतति प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार पैदा हुए बछड़े उच्च आनुवांशिक गुणवत्ता वाले तथा रोगमुक्त होंगे। इस कार्यक्रम को देशभर में 12 ई0टी0टी0 केन्द्रों में चलाया जा रहा है। इसके अन्तर्गत देशी बोवाइनों के उच्च आनुवांशिक गुणवत्ता वाले सरोगेट भ्रूणो को निम्न आनुवांशिक गुणवत्ता वाले गो पशुओं में अंतरित किया जा रहा है। इस कार्यक्रम के तहत देशी नस्लों जैसे साहीवाल, गिर, रेडसिंधी, अंगोल, देउनी तथा वेचुर के भ्रूणों को अंतरित करने का प्रस्ताव है। इस कार्यक्रम से उत्पन्न उच्च गुणवत्ता वाले बछड़ो का उपयोग वीर्य केन्द्रों पर वीर्य उत्पादन के लिए किया जायेगा।

इसके अतिरिक्त देश में अक्टूबर 2016 में शुरू किया गया इस्ट्रस सिन्क्रोनाइजेशन द्वारा पहली बार 124000 पशुओं का देशी नस्लों के उच्च गुणवत्ता वाले वीर्य से कृत्रिम गर्भाधान किया गया। इन सभी पशुओं को यू0आई0डी0 द्वारा चिन्हित किया गया तथा इनको डाटाबेस पर रजिस्टर भी किया गया। इससे देशभर में 41353 बछड़े–बछिया उत्पन्न हुए।[19]

i'k/ku lathouh% यह एक पशु कल्याण कार्यक्रम है। इसमें दुधारू पशुओं के लिए यू0आई0डी0 पहचान और एक राष्ट्रीय डाटाबेस के साथ–साथ पशु स्वास्थ्य कार्ड (नकुल स्वास्थ्य पत्र) के प्रावधान को शामिल किया गया है। इस योजना के तहत यू0आई0डी0 के जरिये 8.5 करोड दुधारू पशुओं की पहचान की गयी है और उनका आकड़ा आई0एन0ए0पी0एच0 के डाटाबेस में दर्ज किया जायेगा। यह पशुओं के रोगों के प्रसार के नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगा। इसके साथ ही पुशओं और पशुधन उत्पादों के व्यापार में वृद्धि को भी बढ़ावा मिलेगा।[20]

देश में डेयरी विकास के लिए तीन महत्वूपर्ण योजनाएँ चलायी जा रही है– राष्ट्रीय डेयरी परियोजना–1 (N.D.P.-I), राष्ट्रीय डेयरी विकास कार्यक्रम (N.P.D.D.) तथा डेयरी उद्यमिता विकास योजना। एन0डी0पी0–1 को राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड द्वारा राज्य सरकार के माध्यम से सहकारी दुग्ध संगठनों/दुग्ध फेडरेशन द्वारा लागू किया जा रहा है। इसके दो उद्देश्य है– पहला, दुधारू पशुओं की उत्पादकता बढ़ाना तथा इसके द्वारा दूध की तेजी बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए दूध उत्पादन में वृद्धि करना और दूसरा, ग्रामीण दूध उत्पादकों को संगठित दूध प्रसंस्करण क्षेत्र की व्यापक पहुँच उपलब्ध कराना। इसके अन्तर्गत ग्रामीण स्तर पर बड़ी संख्या में बल्क मिल्क चिलर तथा आटोमेटिक मिल्क कलेक्शन यूनिट्स स्थापित की गयी है, जिससे 33000 से ज्यादा गांवो के दूध उत्पादकों को सीधे लाभ पहुँचा है।

डेयरी उद्यमिता विकास योजना को नाबार्ड द्वारा राज्य सरकार के माध्यम से जिले के राष्ट्रीयकृत बैंको द्वारा लागू किया जा रहा है। इसके तहत डेयरी उद्यमियों को डेयरी के स्थापना तथा विकास के लिए आसान शर्तों पर ऋण उपलब्ध कराया जाता है। वर्ष 2014–17 के दौरान इसके अन्तर्गत 82 हजार से अधिक उद्यमियों को लगभग 512 करोड़ रूपये के ऋण उपलब्ध कराये गये।

pqukSfr;k% दुग्ध उत्पादन में आत्म निर्भरता के बावजूद देश में मिलावटी व सिन्थेटिक दूध का व्यापार लोगों की जान को जोखिम में डाल रहा है। दूध में मिलावट किए जाने वाले पदार्थों में यूरिया, स्टार्च, दूषित पानी, कास्टिक सोडा, रिफाइण्ड तेल, हाईड्रोजनपराक्साइड, ग्लूकोज व डिर्टेजेन्ट शामिल है। ये सभी मिलावटी पदार्थ न केवल दूध की पौष्टिकता को कम करते हैं, बल्कि हमारे शरीर के आन्तरिक अंगो पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है। इस समस्या के समाधान हेतु सी0एस0आई0आर0 की पिलानी स्थित प्रयोगशाला केन्द्रीय इलेक्ट्रानिकी अभियान्त्रिकी अनुसंधान संस्थान ने भारत सरकार के ''मेक–इन–इण्डिया'' कार्यक्रम के तहत दो ऐसे उपकरणों का विकास किया है, जो दुग्ध उत्पादक औद्योगिक इकाईयों, डेयरियों और घरेलू स्तर पर दूध में मिलावट का पता लगा सकेंगे। इन उपकरणों के नाम क्रमशः क्षीर ऐनालाइजर तथा क्षीर टेस्टर है। क्षीर ऐनालाइजर टेबल टाप वर्जन है, जो डेयरी प्रौद्योगिकी इकाईयों के लिए उपयोगी है। इससे जांच करने के लिए दूध को एक गिलास में रखकर एनालाइजर से स्कैन किया जाता है। दूध शुद्ध होने पर इसमें हरे

रंग की एल0ई0डी0 जल उठती है जबकि दूध अशुद्ध होने पर लाल रंग की। इसके द्वारा 40–45 सेकेण्ड में दूध की शुद्धता की जांच हो जाती है। इसकी लागत लगभग 70 हजार से एक लाख रूपये की बीच आयेगी। इसी प्रकार घरेलू स्तर पर उपयोग के लिए क्षीर टेस्टर का विकास किया गया है, जिसकी लागत लगभग 10 हजार रूपये होगी। गुजरात के सूरत में स्थित मैसर्स एल्पाइन टेक्नोलॉजी तथा राजस्थान में स्थित कम्पनी राजस्थान इलेक्ट्रानिक इण्डिया लि0 इनका व्यापारिक उत्पादन कर रही है।[21]

आजकल पशुओं में दूध की मात्रा बढ़ाने के लिए उनमें आक्सीटोसिन इंजेक्शन लगाने के मामले सामने आते रहते है। इससे डेयरी मालिक तथा पशुपालक तो फल फूल रहे है, परन्तु उपभोक्ता की सेहत पर इसका प्रतिकूल असर पड़ रहा है। इस इंजेक्शन का प्रयोग करने से पशुओं के गर्भाशय में बार–बार संकुचन होता है, तथा दूध दुहते समय पशु को अनावश्यक रूप से दर्द होती है, गाय/भैंस के जनन क्षमता घट जाती है, और अन्ततः वह बाँझ भी हो जाती हैं। भारत सरकार ने आक्सीटोसिन के नकारात्मक प्रभाव को स्वीकार किया और इसको भ्क्तनह के रूप में अनुसूचित करते हुए इसको बिना चिकित्सीय परामर्श के बेचने तथा खरीदने पर रोक लगा दी है। यह विशेष रूप से पशु क्रूरता अधिनियम, 1960 की धारा 12 तथा खाद्य एवं औषधि अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 के तहत प्रतिबंधित कर दिया है।[22] पशुपालकों को समय–समय पर आक्सीटोसिन के प्रयोग के लिए उचित परामर्श देकर इसके दुरूपयोग को कम किया जा सकता है।

fu"d"k% खाद्य सुरक्षा की चुनौतियों से जूझ रहे सम्पूर्ण विश्व के लिए पशुपालन एवं डेयरी एक महत्वपूर्ण विकल्प है। भारत जैसे देश के लिए जहाँ कृषि और पशुपालन की आवश्यक दशा मौजूद है, वहां डेयरी उद्योग को विश्वस्तरीय बनाया जा सकता है। इसके अलावा एक बड़ी कार्यशील आबादी के लिए यह रोजगार का बेहतर विकल्प साबित हो सकता है। इसके लिए जरूरी है कि एक बेहतर नीति और निगरानी–तंत्र के साथ इसके विकास के प्रयास किए जाए।

lUnHk%

1. राष्ट्रीय पशु आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो (NBAGR) करनाल।
2. 19वीं पशुधन संगणना (2012)।
3. केन्द्रीय सांख्यिकी कार्यालय रिपोर्ट 2014–15.
4. केन्द्रीय सांख्यिकी कार्यालय रिपोर्ट 2014–15.
5. आर्थिक सर्वेक्षण वर्ष 2015–16
6. वार्षिक रिपोर्ट 2016–17, पशुपालन, दुग्ध विज्ञान और मत्स्य विभाग, कृषि व किसान कल्याण मंत्रालय भारत सरकार।
7. वही।
8. वही।
9. वही।
10. वही।
11. पशुपालन, दुग्ध विज्ञान और मत्स्य विभाग कृषि व किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार।
13. प्रेस इंफार्मेशन ब्यूरो, भारत सरकार, कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय 13, जुलाई, 2017
13. प्रेस इंफार्मेशन ब्यूरो, भारत सरकार, कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय 10, मार्च, 2018
14. विश्व बैंक रिपोर्ट, 1998
15. प्रेस इंफार्मेशन ब्यूरो, भारत सरकार, कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय 10, जनवरी, 2018
16. प्रेस इंफार्मेशन ब्यूरो, भारत सरकार, कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय 10, मार्च, 2018
17. पशुपालन, दुग्ध विज्ञान और मत्स्य विभाग कृषि व किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार।
18. पशुपालन, दुग्ध विज्ञान और मत्स्य विभाग कृषि व किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार।
19. प्रेस इंफार्मेशन ब्यूरो, भारत सरकार, कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय 17, जनवरी, 2018
20. प्रेस इंफार्मेशन ब्यूरो, भारत सरकार, कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय 02, जनवरी, 2017
21. कुरू क्षेत्र, जनवरी 2017
22. www.timesofindia.com.

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 199-202

i#"k opLo dk [kf.Mr djrh gbZ vkt dh vkSj--- vkSj--- vkSjr

MkW0 lquhrk tSly*

हमारे हिन्दू पुराण में नारी को देवी, दुर्गा, काली का दर्जा दिया गया है। समाज में ये माता–बहन और पुत्री का रूप निभाती है। इन्हें पुरूषों की पत्नी के रूप में अ़र्द्धांगिनी तक माना गया है पुराण में यहाँ तक कह दिया गया है कि नारी के बिना वह घर भूतों का डेरा होता है लेकिन प्राचीन काल सें नारी पुरूष वर्चस्व के नीचे दबती चली आ रही है कभी वह सीता बन कर कभी वह सती बनकर अपना अस्तीत्व मिटाती चली आ रही है। लेकिन 1857 ई0 के क्रांति के बाद स्त्रियों को जब सें अपने अस्तित्व के होने का अहसास हुआ तब से उन्होंने अपने अधिकारों को पाने के लिए पुरूष सत्ता के खिलाफ अपनी लेखनी को अपना हथियार बनाया और अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से हर स्त्री को सचेत करने का काम करने लगी।

इन्हीं आत्मकथाओं में प्रसिद्ध लेखिका कृष्णा अग्निहोत्री जी की आत्मकथा का दूसरा खण्ड और... और... औरत में, हमें पुरूष वर्चस्व समाज में स्त्री किस प्रकार आज भी जकड़ी हुई है, इसका बोध कराता है। परिवार में उपेक्षित हुई कृष्णा अग्निहोत्री जी कहती है कि–''बालपन में प्रताड़नाएं, माँ की मार उस सत्य पर धुंधलके के चादर डाल देती थी। मैं एक अत्यंत दुबकी, झुकी, नरम लड़की बन घर में व्यस्त दिखने का प्रयास करने लगती थी, पर एहसास एकत्रित होते रहे।''[1]

किसी व्यक्ति का जीवन स्तर एक स्तर पर जिया गया जीवन नहीं होता है। वह परिवार में यदि एक प्रकार का जीवन जीता है तो समाज में उसका दूसरा रूप दिखाई देता है। इस पुस्तक के आरम्भ में लेखिका के बाल्यकाल के कुछ ऐसे चित्र मिलते हैं जिससे पता चलता है कि बचपन से लेकर होश सम्भालने तक किन–किन कारणों से लेखिका को लघुता ग्रंथि का शिकार होना पड़ता है और इसी के परिणाम स्वरूप ऐसे बोल्ड व्यक्तित्व का विकास हो सका, किसी भी व्यक्ति को समझने के लिए उसके मूलभूत कारणों को जानने की जरूरत है, लेखिका के प्रति माँ का उपेक्षित व्यवहार तथा भाई–बहनों को सम्भालने की जिम्मेदारी तथा पुरूष सत्तात्मक समाज में पुरूष का दो तीन पत्नियों को रखने वाला रिवाज और लेखिका का सबके प्रति मित्रवत व्यवहार तथा भावुक व्यक्तित्व, ये सब बातें लेखिका को विचलित कर देती है। लेखिका बचपन में अपनी माँ से उपेक्षित होती है। इसका कारण यही हो सकता है कि समाज में लड़कों को अधिक महत्व देता है क्योंकि लड़कियों को दूसरे के घर जाना होता है। समाज का यही सोच लेखिका को दुःखी बनाता है।

इस पूरे पुस्तक में लेखिका को अपनों के द्वारा धोखा, बदनामी ही मिलती है। लेखिका ने दो बार विवाह कर संतुलित एवं संस्कारबद्ध जीवन जीने की उम्मीद की थी। लेकिन लेखिका के नसीब में यह सब नहीं था उसे किसी का प्यार नहीं मिलता है वह चाहे लेखिका की माँ हो या आई0 पी0 एस0 पति या दूसरा पति, लेकिन इस पुस्तक में लेखिका का त्याग अपनों के लिए झलकता रहता है। कृष्णा जी अपने पति के बारे में कहती है कि ''अग्निहोत्री जी को खाने –पीने का हमेशा शौक था, इसलिए सुबह से रात्रि तक के भोजन प्रबन्ध हेतु चपरासी के साथ लगकर नये– नये व्यंजन बनाने पड़ते थे, मीठे के वे शौकिन थे। इसलिए कई मीठी चीजें मैने पूछ कर बनाना सीखा''[2] लेखिका के जीवन में किसी का प्यार आता है तो वह क्षण भर के लिए ही रहता है। फिर उसे वही अपमान, पीड़ा, धोखे से होकर गुजरना पड़ता हैं।

*पूर्व शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ0प्र0

यह धोखा अपनों द्वारा ही मिलते हैं। लेखिका के दोनों पति धोखेबाज है। लेखिका के इतने त्याग के बाद भी लेखिका के पति ने इनका परवाह नहीं किया, जिससे दुखी होकर लेखिका ने पुरूषों पर विश्वास करना छोड़ दिया क्योंकि इनके कारण वह अपने आप को हमेशा पीड़ित ही पाती है। हमेशा लेखिका का मित्रवत व्यवहार बना रहता है जिससे वह जहाँ जाती है वहाँ अपने प्यार से सबको अपना बना लेती है और उनके बिछुड़ने का गम भी लेखिका को होता है। इसके पीछे उनका किसी के प्रति अत्यधिक भावुक छवि का होना है। किसी की बहन नहीं है, किसी कि दोस्त नहीं है, वहाँ उसकी कमियों को पूरा करने के लिए लेखिका किसी की बहन, दोस्त तक बन जाती है। इसी भावुक छवि के कारण कृष्णा जी सबसे समझौता करती है। चाहे वह उनके पति हो या फिर और कोई लेकिन लेखिका के पति समझौते के बिलकुल खिलाफ दिखाई देते हैं, यहाँ पुरूषों के चरित्र का खुलासा होता है जो अपनी पत्नी को आसानी से धोखा देते हुए बदनाम करते है। लेखिका जो पत्नी है, अपमान, पीड़ा सब भूलकर समझौता करने के लिए हमेशा तत्पर रहती है। कृष्णा जी स्वयं कहती है कि ''जब मैं झुकी या टूटी तो कहूँगी प्रेम से ही मारी गयी'' ।[3]

लेखिका की आत्मक़था में उसके व्यक्तित्व के पारिवारिक तथा सामाजिक अनेक पक्ष के सजीव चित्र उभरते हैं। जीवन में होने वाले छोटे–छोटे अनुभव, घुटन, पीड़ा, आदि को लेखिका ने बड़े सुन्दर ढंग से अभिव्यक्ति प्रदान की है। यहाँ तक की उसने जीवन में जो शारीरिक, मानसिक यातनाएं भोगी है, उसका चि़त्रण भी बेबाकी से किया है। लेखिका ने समाज के रूढ़िवादी परम्पराओं का भी वर्णन अपने आत्मकथा में बड़े ही निडरता से किया है। एक अकेली स्त्री को पाने के लिए ये पुरुष हमेशा तैयार खड़े रहते है। किसी का उसके शरीर पर, तो किसी का उसके पैसा , सम्पत्ति पर नजर रहता है। जिसे लेखिका ने स्वयं समाज में झेला और समझा है, लेखिका ऐसे पुरूषों से सर्तक हो चुकी है। लेकिन एक अकेली स्त्री को समाज में बड़ी से बड़ी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। जिससे वह अंजान रहती है। जिसके कारण उसे किसी पुरूष का सहारा लेना पड़ता है। चाहे वह रिश्ते में उसका भाई, पुत्र या मित्र हो, लेखिका भी मंजुल, महेश आदि का सहारा लेने के लिए मजबूर दिखायी देती है।

यहां लेखिका स्वयं कहती हैं कि ''पुरूषसत्तात्मक समाज में विपरीत परिस्थितियों में जीने की विवश स्त्री को कैसी विकट स्थितियों का सामना करना पड़ता है। कैसा है यह समाज जो एक समय बाद स्त्री को भी पुरूष व्यवस्था का हिस्सा बना देता है।''[4] कृष्णाजी ने ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया था जहाँ स्त्री को मर्यादा में रहने के लिए बंधन सर्वोपरि थे, लेकिन अत्यधिक अत्याचार, अपमान, पीड़ा से दुखी होकर उन बन्धनों को लेखिका ने तोड़ना शुरू किया। लेखिका हमेशा प्यार की खोज में रहती है। जहाँ प्यार मिला लेखिका वही की होकर रह जाती है। लेखिका के जीवन में कई पुरूषों का आगमन होता है, जो अपने आप को एक हितैषी के रूप में लेखिका के सामने प्रस्तुत करते है। लेकिन लेखिका इन स्वार्थी पुरूषों से सतर्क होकर अपने आप को बचाने में लगी रहती है क्योंकि लेखिका पहले ही दो पुरूषों से धोखा खा चुकी है। लेखिका अब इन पुरूषों की गंदी मानसिकता को जान चुकी है। लेखिका के जीवन में जो भी घटनायें घटी उसे लेखिका ने देखा, समझा तथा उसे ज्यों का त्यों अपनी आत्मकथा में रख दिया।

कृष्णा अग्निहोत्री जी कहती हैं कि ''मैंने अपनी आप बीती को बिल्कुल तटस्थ मुद्रा के साथ अभिव्यक्त किया है....... मेरे मरघट, मधुबन नहीं बने परन्तु यही जलती भावनाओं के शव जिन्दगी की ओर खींच ले जाते हैं और एक प्रश्न उभरता है– हम क्यों नही मानव बने रह सकतें है?''[5] कुल मिलाकर लेखिका की आत्मकथा में तटस्थ दृष्टि से जीवनानुभव चित्रित है और मानवता के कल्याण की बात कही गयी है तथा सामाजिक परम्परा में पति ही सब कुछ होता है। चाहे वह जैसा भी हो बुरा या अच्छा इस रूढ़िवादी सोच को लेखिका ने अपनी लेखनी से तोड़ा है और उसे अपने जीवन में लागू भी किया, जो हमें इस आत्मकथा के माध्यम से देखने को मिलता है। जो स्त्री के हित के लिए सर्वोपरि स्थान रखता है। अतः इसे एक महत्वपूर्ण आत्मकथा की संज्ञा दी जा सकती है।

कृष्णा अग्निहोत्री जी ने अपनी आत्मकथा में अपने विश्वास, अविश्वास, साहस और भय मूल्यों, नैतिकता और जीवन रहस्यों को खोलने में जरा भी संकोच नहीं किया है। कृष्णा जी स्वयं अपने कठिन संघर्षों के माध्यम से ंसमाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त करती है। उन्हें अपनों तथा किसी से कोई सहायता

प्राप्त नहीं होता है। उसके बुरे समय में सब उसका साथ छोड़ देते हैं। लेकिन लेखिका पूरे पुस्तक में अपने आप को अकेली ही पाती है। एक तरफ लेखिका की बेटी निहार अपने माँ के विरोध में है कि वह बोल्ड लेखन न करे। निहार मर्यादा में रहने वाली, पति की सेवा करने वाली उन स्त्रियों की तरह है जो अपना घर जोड़ने में लगी रहती है। लेकिन लेखिका अपने आप को अपनी बेटी से हट कर पाती है। वह एक बोल्ड लेखिका है जो अत्याचारों का विरोध करती है।

कृष्णा जी जब खण्डवा के मकान में रहने के लिए गयी तो उन्होंने दो किरायेदार अपने मकान में रहने के लिए रखा, कांता और इन्द्रजीत। कांता गठीले शरीर की गोरी व आकर्षक सिंधी महिला थी। उसके चार बच्चे थे। उसके घर के बाहर कुछ बदचलन सेठों के कार लगे रहते थे। वह अपनी बड़ी बेटी पिंकी का सौदा एक रहीसजादे अनिल के साथ करती है लेकिन वह भाग कर कृष्णा के पास जाती है और कांपते हुए स्वर में उस लड़के के साथ न जाने का जिद्द करती है लड़का कृष्णा को सब बातें बता देता है कि किस प्रकार उसकी माँ ने 10 हजार रूपये में उसका सौदा उसके साथ किया है और इसकी माँ भी कॉल गर्ल है। बड़े–बडे सेठों के साथ बाहर जाती है। इस समाज में स्त्रियों की स्थिति और भी शोचनीय हो जाती है कि उन्हें अपना पेट भरने के लिए अपना जिस्म तक भी बेचना पड़ता है और बदनामी अलग से झेलनी पड़ती है। जों हमें कृष्णा की आत्मकथा में स्त्री पात्रों में देखने को मिलता है। कृष्णा जी स्वयं कहती हैं कि ''बचपन में रिश्तेदारों ने शोषण किया, जवानी में पति ने, और शेष जो हुआ सो हुआ ही। बुढ़ापे में इतना बड़ा डंक व दंश मिला कि मेरा पूरा व्यक्तित्व गड़बड़ा गया। बस इस जिन्दगी में चंद पाठक व चंद व्यक्तियों की सहानभूति या प्रशंसा के सिवा और कुछ नहीं मिला।''[6]

कृष्णा की नजरों में औरत के कई रूप है उनका लेखन रूप एकदम निर्भिक है। वह अत्याचार के छोटे–छोटे तंज को तोड़ने में अग्रणी है। उत्पीड़ित स्त्री को देखती है तो जलने लगती है लेकिन जीवन में आनन्द आता है तो उसे भोग नहीं पाती है।

उनमें यह कहने की साहस है कि ''यदि औरत कारणवश सील तोड़ती है तो उन्हें बुरा नहीं लगता है कोई पुरूष सौदा करके उन्हें नहीं पा सका है, वो उच्छृंखलता या व्यभिचार को गलत मानती है। प्यार उनके लिए एक अलग ही अनुभूति है।''[7]

लेखिका को किसी प्रकार का लोभ नहीं हैं। उसे लिखने का शौक है। जब वह कोई पुस्तक लिखती है तो उसे पैसे के लिए नहीं लिखती है। वह उन परम्पराओं को तोड़ने के लिए लिखती है, जिससे स्त्रियाँ हमेशा मानसिक और शारीरिक रूप से आहत होती आ रही है तथा उन पुरूषों की सोच को बदलना है जो नारी को एक भोग की वस्तु मानते है और बाद में अपनी स्वार्थ की पूर्ति होने के बाद अकेला, बेसहारा छोड़ देते है। लेखिका ऐसे पुरूषों की शिकार होती है। जिसका उसे हमेशा दुःख रहता है।

लेखिका इस पुस्तक में अपनी लेखनी के द्वारा स्त्री समाज को उन पुरूषों के मुखौटों से परिचित कराती है। जो स्त्री को हमेशा पीड़ित, अपमानित तथा धोखा देते हैं और स्त्रियाँ इसे अपना पति धर्म समझकर पुरूष की सेवा में दिन–रात तत्पर रहती है। ऐसी ही स्त्रियों के सोच को लेखिका बदलना चाहती है कि वह स्वयं रूढ़िवादी परम्परा को तोड़कर अपना जीवन खुद अपनी इच्छा पर चलकर जिये, यही लेखिका की माँग इस पुस्तक में दिखाई देती है। वैसे तो लेखिका के जीवन में संभ्रांत लोग, राजनीतिक, साहित्यिक व्यक्तित्व का प्रवेश रहा उनकी गतिविधियॉ, तेवर का अवसर लेखिका को मिला भी लेकिन लेखिका की अनुभूतियाँ सिमटी एवं छटपटाती पिजड़े में कैद ही रही, जिसके कारण वह तड़पती रहती है लेकिन कुछ कह नही पाती हैं।

लेखिका किसी स्त्री के दुःख को देखती है तो उसके दुःख को कभी नजर अंदाज नहीं करती है क्योंकि ''ये पीड़ायें घातक है वह हर स्त्री से यही कहती है, इसे हमें दूर फेंकना चाहिए।''[8] लेखिका की संवेदना ही दूसरे के दुःख–सुख में रिस्ता बनाने के लिए हमेशा प्रेरित करती है।

लेखिका आज जो कुछ लिख रही है वह किसी सम्पर्क से नहीं है उसके पीछे लेखिका की मेहनत है। लेखिका की आत्मकथा में केवल रहस्य या अश्लील प्रेमकथाएं ही नहीं मिलती, बल्कि अर्थ, संयम, दैनन्दिन की अनिवार्य आवश्यकताओं का भी संघर्ष है।

लेखिका स्वयं कहती है कि ''मैं तो बस एक दर्शक औरत थी जो समय को छलांग लगाते देखती रह गई। एक हाथ में अतीत, दूसरे में भविष्य और बीच में वर्तमान जीवन रूपी नदी का प्रवाह बहते हुए दूर–दूर से रो ।नियों के आ वासनों पर यहॅा तक बढ़ते आएं। भले ही वह हमें मिले या न मिले''।[9] इस प्रकार लेखिका ने अपनी आत्मकथा में रूढ़िवादी परम्परा तथा पुरूष वर्चस्व को खण्डित करने की बात कही है। जो स्त्री मुक्ति के लिए जरूरी ठहरती हुई सशक्तिकरण के मार्ग तक पहुँचाती है।

lUnHkZ %

1. लगता नहीं है दिल मेरा– कृष्णा अग्निहोत्री प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली, 2007, पृ0 109
2. वही, पृ0 120
3. वही, पृ0 161, 162
4. वही, पृ0 129
5. और... और... औरत कृष्णा अग्निहोत्री, समायिक बुक्स, जटवाड़ा दरियागंज, नई दिल्ली, 2011, पृ0 10
6. वही, पृ0 22, 23
7. वही, पृ0 120
8. वही, पृ0 130
9. वही, पृ0 134

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 203-204

vkfnoklh ykd lxhr e fL=;k dh fgLlnkjh

vuhrk eh.kk*

lkjk'k % प्रारम्भ में जब मनुष्य धरती पर अवतरित हुआ तो वह रिक्त पृष्ठ की भाँति होगा फिर निरन्तर जीवन की गति बढ़ती गई। मनुष्य ने धरती पर अपनी जगह निर्धारित करने के लिए परिवार जैसी संस्था विकसित की तब यह संस्था और उसकी इच्छाएँ साथ–साथ अपना आकार बढ़ाती रही। उन इच्छाओं की संतुष्टि या पूर्ति हेतु उसने तरह–तरह के जतन कर उन्हें अपने जीवन और संघर्ष के साथ सीधे जोड़ा। वह घर बनाने, उदर भरण के साधन तथा इच्छा और मन–आत्मा को तृप्त करने के लिए अलग–अलग कोशिशों से उनकी कई धुनें, बोली, भाषा और गीतों को गुनगुनाने में सक्रिय रहा। आदिवासी लोक में साहित्य सहित विविध कला माध्यमों का विकास तथाकथित मुख्यधारा से पहले हो चुका या लेकिन वहाँ साहित्य सृजन की परम्परा मूलतः मौखिक रही। जंगलों से खदेड़ दिए जाने के बाद भी आदिवासी समाज ने इस परम्परा को अनवरत जारी रखा।

ldrk{kj % स्त्री–पुरूष भेद, आचरण पद्धति, रूढ़ि, परम्परा, मन–प्रवृत्ति, लोक गीत, सुड्डा, हैला, ख्याल, उच्छांटा, रसिया।

iLrkouk % आदिवासियों का जीवन अनेक कलाओं से युक्त है उनकी चित्रकला, संगीतकला, नृत्य, गायन आदि कलाएँ प्रशंसनीय है, उनका अपना समृद्ध लोक साहित्य है जो लोक कथाओं, लोकगीतों तथा लोकोक्तियों से सुसज्जित है। एक आदिम जनजाति का अपना विशेष तथा परम्परागत लोक–साहित्य है जो विविधताओं से परिपूर्ण है। इनके लोकगीत परम्परा से गाये जाने वाले गीत हैं। प्रत्येक गीत के पीछे श्रद्धालु मन–प्रवृत्ति, आचरण पद्धति, सामाजिक संक्रमण, ईश्वर–परस्ती, अंधविश्वास, रूढ़ि परम्परा, संस्कृति होने वाले नवीन बदलाव, शहरीकरण, स्त्री–पुरूष भेद, रिश्तों–नातों से संबंधित अनेक बातें दिखाई देती हैं। इनके गीतों का उद्‌देश्य अनन्य भाव से शरणागत होना और निष्काम कर्म करना है। इन लोकगीतों में आदिवासियों के मन के प्रतिबिम्ब साफ देखे जा सकते हैं।

वर्तमान में मीणा आदिवासी बहुल क्षेत्र पूर्वी राजस्थान में एक लोकगीत "सुड्डा" खासा चर्चा में है। हालांकि लोकगीत इस क्षेत्र में भी बाकी दुनिया की तरह सदियों से गाए जा रहे हैं। इनके कई रूप है। जैसे :– हैला, ख्याल, पद, रसिया, उच्छांटा और कन्हैया। यों तो क्षेत्र की सभी जातियाँ इन गीतों को सुनती, समझती है लेकिन इन पर पकड़ कुछ खेतिहर जातियों जैसे :– मीणा और गुर्जर की रही है। गुर्जरों ने विशेषकर "रसिया" गीतों को विकसित किया और मीणाओं ने "पद" और "उच्छांटा" को।

"उच्छांटा" गीत मीणाओं के प्राचीनतम ज्ञात गीत है। मीणाओं के संस्कृतिकरण के बाद इन्हें सभा या ऊंची आवाज पर गाँव में गाने पर पाबंदी लगा दी गई क्योंकि सामाजिक दशाओं के साथ ये मानव के उन भावों का भी प्रतिनिधित्व करते हैं जिन्हें तथाकथित सभ्य समाज अश्लीलता कहता है। "सुड्डा" लोकगीतों का चलन नया है, इन्हें केवल महिलाएँ गा रही हैं। ये पुरूषों के गीतों जैसे – हैला ख्याल, पद, रसिया आदि का मिश्रित रूप है। इनमें गाई जा रही कथाएँ अधिकतर रामायण, महाभारत और अन्य मिथिकीय प्रसंगों से गढ़ी गई है। छोटी कथाएँ और बीच के कुछ–कुछ प्रसंग लोक से लिए जाते हैं।

एक तथ्य यह भी है कि "सुड्डा" गीतों की शुरूआत पुरूषों ने की थी लेकिन वे महिलाओं के गीतों की तरह चर्चित नहीं हो सके इसलिए पुरूषों ने इसे गाना बंद कर इसका विरोध करना आरम्भ कर

*शोध छात्रा, संगीत विभाग, जानकी देवी बजाज कला महाविद्यालय, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

दिया जिसका प्रमुख कारण यह रहा कि धार्मिक कथाओं के अतिरिक्त सामाजिक समस्याओं जैसे – शराबखोरी, दहेज, पत्नी त्याग, बाल–विवाह आदि विषयों को इन गीतों में सम्मिलित किया जाने लगा। लोक संगीत में "सुड्डा" को एक क्रांति की तरह देखा जा सकता है। "सुड्डा" गीतों में पहले मीणा स्त्रियों को इस तरह गाते–नाचते नहीं देखा गया है। बुजुर्ग बताते हैं कि करीब सौ वर्ष पहले "उच्छांटा" गीतों को "कूदने के गीत" कहा जाता था लेकिन संस्कृतिकरण के बाद इनका नामकरण "उच्छांटा" मतलब जिनके साथ "छाँटा" यानि दूरी बरतनी चाहिए, हो गया। नुक्तों (मृत्युभोज), मेलों, शादी–ब्याह और रात्रि के साथ मनोरंजन के लिए ये गीत खूब गाए जाते थे। मुख्यधारा के सवर्ण समाज के गीतों को अपनी भाषा और लय के साथ अपनाया गया इसी तरह तैयार हुए हैं गीत "पद"। ये "पद" उस दौरान चले सुध ाार आन्दोलन, जो असल में आदिवासियों का धर्मांतरण था। अपने साथ रामायण, महाभारत और अन्य मिथकों वाली कथाएँ लाए इन कथाओं वाले सांमती समाज में स्त्री के खुलकर नाचने–गाने पर एक तरह से पाबंदी थी। यही स्थिति बाद में मीणा महिलाओं की भी होती चली गई।

आजादी के वर्षों बाद शिक्षा के थोड़े प्रसार के बाद जब पुरूषों की बंदिशों में थोड़ी ढील पड़ी और मीणा महिलाओं ने फिर गाना–बजाना चाहा तो उनके पास फिर वे ही अपने "उच्छांटा" गीत थे, जिन्हें वे अब भी प्रत्यक्ष में गा नहीं सकती थी। इसलिए वे अपनी प्रकृति के प्रतिकूल दुर्गा, सीता, राम इत्यादि के गीत गाने लगी। हिन्दू हो चुके पुरूषों ने इस पर कोई मनाही भी नहीं की । इन्हीं गीतों से इन महिलाओं ने "रामरसिया" गाना शुरू किया। इसके माध्यम से स्त्री मंच तक पहुँची लेकिन इसमें यह शर्त थी कि उन्हें मंच पर सावधान की मुद्रा में गाना होता था, वे मंच पर नाच नहीं सकती थी। "सुड्डा" गीत इस स्थिति से एक कदम आगे है। हालांकि घूँघट अब भी रखना होता है पर अब कई महिलाएँ एक साथ मंच पर उन्मुक्त होकर नाच सकती हैं। इस तरह उन्मुक्त होकर नाचना ही अब पुरूषों को चुभने लगा है जबकि गाँव की महिलाएँ लोक गायिकाओं को "सेलिब्रिटी" के रूप में देख रही हैं।

mnns'; % इस अध्ययन के माध्यम से सभ्य समाज और आदिवासी समाज की स्थिति का परिचय कराने के साथ–साथ सभ्य समाज का आदिवासियों पर पड़ने वाले प्रभाव को साझा करना है। जो आदिवासी प्रारम्भ से ही किसी प्रकार का भेद नहीं समझते थे और एक समानता सभी (स्त्री–पुरूष) के बीच मानी जाती रही उस पर सभ्य समाज की रूढ़ियों ने अत्यधिक प्रभाव डाला जिसके कारण वर्तमान में इनकी और अधिक दयनिय स्थिति होती प्रतीत होती है। इनके संघर्ष और जीवन के प्रतिबिम्ब को उजागर कर सही दिशा की ओर अग्रसर करने का प्रयास इस शोध के माध्यम से किया जाना है।

fu"d"k % हालांकि यह सत्य है कि आदिवासी सभ्य समाज से भिन्न रहा है और अपनी सभ्यता और संस्कृति के कारण अलग होने के साथ ही निम्न भी समझा जाता है परन्तु आज इन्हीं की संस्कृति एक समाज की त्रुटियों सुधारने के लिए उपयोगी सिद्ध हो रही है क्योंकि इनकी लोक सभ्यता और संस्कृति समाज में व्याप्त कुरीतियों का विरोध करने में कारगर सिद्ध होती नजर आती है। कभी–कभी अशिक्षित, असभ्य आदिवासी अपने लोकसंगीत के माध्यम से ऐसे संदेश भी देते है कि सभ्य समाज भी उन पर विचार करने को मजबूर हो जाता है।

lUnHk %

1. श्रीवास भँवरलाल, 2018, संपादकीय, कला समय, पृ. 1
2. Bhaskar. Com, 2012,"कन्हैया दंगल में श्रोता भाव विभोर" (Bhaskar.Com India limited)
3. मीणा डॉ. केदार प्रसाद, 2012,"सुड्डा और स्वाभिमान" जनसत्ता, पृ. 1,3
4. सिंह डॉ. जय श्री, 2012,"आदिवासी लोकगीतों में जीवन दर्शन" अरावली उद्‌घोष, पृ. 17,18
5. गामीत श्री अनिल पी., 2013, "आदिवासी गामीत समाज और संस्कृति " अरावली उद्‌घोष, पृ. 36,41
6. राजस्थान में आदिवासियों की स्थिति विकिपीडिया/इन्टरनेट
7. स्थानिय आदिवासी लोक संगीत के लोक कलाकारों के द्वारा बताया गया इतिहास का सार (साक्षात्कार के माध्यम से)
8. बैफलावत प्रभूनारायण आदिवासी लोकनृत्य के लोककलाकार का साक्षात्कार

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 205-207

mÙkjk[k.M dh ufn;ksa dk fodkl gsrq izcU/ku

Mk0 ,e0 dh0 mfu;ky*
Mk0 f'kopUn flag jkor**

भौगोलिक दृष्टि से उत्तराखण्ड एक हिमालयी राज्य है, क्योंकि इसका अधिकांश भाग हिमालय में ही स्थित है। राज्य के अन्तर्गत जहाँ उच्च हिमालय की बर्फीली पहाड़ियाँ सम्मिलित हैं तो वहीं इसका अधिकांश भाग मध्य हिमालय की ऊँची–नीची पहाड़ियों से बना है। शिवालिक श्रेणियाँ राज्य के दक्षिणी हिस्से में पड़ती हैं। राज्य के उत्तर में उच्च हिमालय स्थित होने के कारण यहाँ सदा बर्फ से आच्छादित चोटियाँ व गहरी घाटियाँ हैं। ये बर्फीली घाटियाँ यहाँ विशाल हिमनदों का निर्माण करती हैं, जिनके कारण इन हिमनदों से जीवनदायिनी सदानीरा नदियाँ बहती हैं। ये नदियाँ सिर्फ इस राज्य को ही नहीं बल्कि देश के अधिकांश भाग को अपना मृदु व शीतल जल उपलब्ध कराती हैं। इन नदियों के कारण ही उपजाऊ मैदानी भाग का निर्माण हुआ है। इन पवित्र नदियों में गंगा, यमुना, अलकनन्दा, मन्दाकिनी, पिण्डर, सरयू, रामगंगा आदि सम्मिलित हैं। प्राचीन काल से ही ऐतिहासिक ग्रन्थों में इनका उल्लेख अलकनंदा, भागीरथी, यमुना, सरस्वती, नंदा, अपरनंदा, अश्वरथा, तमसा, जाह्नवी, मालिनी, शैलोदा, मंदाकिनी आदि के रूप में हुआ है।[1] इन नदियों से जहाँ वर्ष भर जल की आपूर्ति होती है वहीं इनकी घाटियों ने आवागमन हेतु मार्ग भी दिया है। उत्तराखण्ड में आवागमन नदियों की घाटियों से ही संभव हुआ है। इस कारण इन नदियों की घाटियों से ही यहाँ अनेक जनसमूहों का समय–समय पर आगमन हुआ। विभिन्न जनसमूहों के निरन्तर यहाँ बसने से यह क्षेत्र आबाद होता रहा। इस तरह उत्तराखण्ड में मानव समूहों की बसायत में नदियों का अहम योगदान रहा है। यही नहीं नदियों के जल का महत्त्व इस क्षेत्र के लिए केवल पीने के पानी की आपूर्ति के लिए ही नहीं रहा है, अपितु पनचक्की, सिंचाई, मछलियों का शिकार आदि के लिए भी नदियों की उपयोगिता प्राचीन काल से रही है, किन्तु इसके साथ ही यह भी सत्य है कि पहाड़ की जवानी व पहाड़ का पानी यहाँ रूकता नहीं है, अपितु बहकर मैदानी भागों की ओर चला जाता है। अतः यहाँ के पानी को यहाँ के विकास हेतु पूर्ण उपयोग में लाने के लिए इसका उचित प्रबन्धन आवश्यक है, जिससे इसका समुचित उपयोग किया जा सके। इसके लिए आवश्यक है कि नदियों पर छोटे–छोटे बाँध बनाये जायें, हाईड्रम द्वारा नदियों के पानी को सिंचाई व पीने हेतु खेतों व गाँवों तक पहुँचाया जाये साथ ही नवीन तकनीकी द्वारा नदियों के जल का अनेक प्रकार से उपयोग किया जा सकता है, तभी इन नदियों के जल का विकास हेतु उचित प्रबन्धन हो सकेगा। यद्यपि केन्द्र सरकार द्वारा जल संसाधन, नदी विकास और गंगा संरक्षण मंत्रालय देश के जल संसाधनों के विकास और विनियमन हेतु नीतियों और कार्यक्रमों का निर्धारण करता है,[2] परन्तु फिर भी उत्तराखण्ड की नदियों के जल का उचित प्रबन्धन नहीं हो सका है।

मानव ही नहीं अपितु समस्त जीव–जन्तुओं के जीवन हेतु जल अत्यंत आवश्यक है। जल बिना जीवन ही संभव नहीं है। अतः अपनी उत्पत्ति से ही मानव व अन्य जीवधारी, वनस्पतियों आदि के लिए जल आवश्यक रहा है। यही नहीं केवल जीवन के लिए ही जल आवश्यक नहीं है, बल्कि जल का मानव जीवन में अनेक प्रकार से उपयोग होता रहा है। पृथ्वी पर जल के अनेक रूप विद्यमान हैं, इनमें सागरीय जल, भूगर्भीय जल, नदियों से उपलब्ध जल, कुओं का जल, तालाब आदि से प्राप्त जल, वर्षा का जल

*एसोसिएट प्रोफेसर, सैन्य विज्ञान, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोपेश्वर, चमोली, उत्तराखण्ड
**असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोपेश्वर, चमोली, उत्तराखण्ड

आदि जल के अनेक स्वरूप हैं। जल के इन विविध स्रोतों में से नदियों के जल का अपना विशिष्ट महत्त्व है। उत्तराखण्ड एक हिमालयी राज्य होने के कारण यहाँ की नदियाँ वर्ष भर जल से भरी रहती हैं, इसलिए इनके जल का उपयोग वर्ष भर होता रहता है। यद्यपि उत्तराखण्ड के बारे में सदियों से यह धारणा प्रचलित रही है कि पहाड़ का पानी तथा पहाड़ की जवानी कभी पहाड़ के काम नहीं आती है। वास्तव में इस उक्ति की सार्थकता इस कारण थी कि पहाड़ में कभी भी खेती फायदे का सौदा नहीं रही है। इसीलिए पहाड़ में कहा जाता है कि ''खेती खसम सेती'' ।[3] यहाँ की जमीन ऊबड़–खाबड़, पथरीली होने के कारण इसमें कोई फसल बहुत अच्छी नहीं होती है। लोग खेती सिर्फ इसलिए करते हैं कि उन्हें लगता है कि जमीन को बंजर छोड़ना अशुभ होता है, वरना मेहनत की दृष्टि से देखा जाय तो खेती से लागत भी नहीं मिलती है। इसलिए खेती केवल उन लोगों का व्यवसाय रह जाता है जो और कार्य नहीं कर सकते थे। ऐसी स्थिति में पुरूष वर्ग तो रोजगार हेतु पलायन कर जाता और वृद्ध, महिलाएँ व बच्चे ही ऐसे बच जाते थे जो कि घर में रह जाते अतः खेती करना उनके लिए एक प्रकार समय व्यतीत करना अर्थात कुछ न करने से बेहतर था। इस कारण आजीविका हेतु यहाँ के पुरूष वर्ग को बाहर मैदानी भागों की ओर पलायन करना पड़ता था, ऐसी स्थिति में युवावस्था में प्रवेश करते ही पुरूष वर्ग मैदान की ओर पलायन कर जाता था।

fodkl gr ufn;k d ty d fofo/k mi;kx % प्राचीन काल से ही उत्तराखण्ड की नदियों के जल का उपयोग पनचक्की, मत्स्य पालन, सिंचाई आदि विविध रूपों में होता रहा है, परन्तु विकास के इस भौतिकवादी युग में नदियों के जल का उपयोग और भी बढ़ गया है। वर्तमान समय में उत्तराखण्ड की नदियों के जल से बिजली उत्पादन हेतु अनेक बाँध बनाये जा रहे हैं। उत्तराखण्ड में शायद ही आज कोई ऐसी नदी होगी जिस पर कोई छोटा–मोटा बाँध न बन रहा हो। यद्यपि आज विकास हेतु इन बाँधों की उत्तराखण्ड के विकास हेतु सख्त जरूरत है, किन्तु यहाँ के पर्यावरण एवं हिमालय की बनावट को देखते हुए भूस्खलन, भूकंप आदि से बचने के लिए बड़े बाँधों के स्थान पर छोटे बाँधों का निर्माण किया जाना चाहिए।

fl pkb gr mi;kx % यद्यपि उत्तराखण्ड से निकलने वाली प्रमुख नदियाँ गंगा, यमुना तथा इनकी सहायक नदियाँ हैं, किन्तु जहाँ तक सिंचाई के लिए इन नदियों के जल के उपयोग की बात रही है तो इनका जल यहाँ सिंचाई के उपयोग के लिए न के बराबर काम में आता है। इसका कारण संभवतः यह है कि ये नदियाँ यहाँ गहरी घाटियों में बहती हैं, जबकि पहाड़ी भाग होने के कारण यहाँ खेती पहाड़ी ढालों पर की जाती है, जहाँ नहरें निकालना आसान नहीं है। नदियों की घाटी में कहीं–कहीं समतल मैदानों में जो खेती की जाती है तो वे समतल मैदान नदी के किनारों से ऊँचे पड जाते हैं। वर्तमान में हाईड्रम योजना के द्वारा कई क्षेत्रों में सिंचाई की व्यवस्था की जाने लगी है। यद्यपि प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों में इन प्रमुख नदियों से नहरें निकाल कर राज्य के मैदानी क्षेत्र, उत्तर प्रदेश एवं हरियाणा आदि प्रदेशों में सिंचाई की जाती है, किन्तु राज्य के पर्वतीय क्षेत्र में सिंचाई हेतु इन नदियों की कोई उपयोगिता नहीं रही है। मैदानी क्षेत्रों की कुछ प्रमुख नहरें इस प्रकार हैं–

Åijh xxk ugj : यह राज्य की सबसे पुरानी नहर है, जिसका निर्माण ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में 1842 से 1854 ई0 के बीच किया गया था।[3] इस नहर से कानपुर तक सिंचाई की जाती है।

'kkjnk ugj : इस नहर का निर्माण 1928 ई0 में किया गया था। यह नहर चंपावत जिले के बनवसा से आरम्भ होती है तथा उत्तराखण्ड के चंपावत एवं उधमसिंह नगर जिलों के साथ–साथ उत्तर प्रदेश को भी सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराती है।[4]

jkexxk ugj : पौड़ी गढ़वाल जनपद के कालागढ़ से रामगंगा नदी से नहरों की एक लम्बी श्रृंखला निकाली गई है। इनसे उत्तराखण्ड तथा उत्तर प्रदेश के कई जिलों में सिंचाई की जाती है।

fc tyh cukus e mi;kx % उत्तराखण्ड से ही भारत की दो महत्त्वपूर्ण नदियाँ गंगा एवं यमुना निकलती हैं तथा इन दोनों के साथ ही इनकी कई सहायक नदियाँ भी हैं। ये सभी छोटी–बड़ी नदी यहाँ कई झरने प्रपात बनाती हुई, पहाड़ों को काटती हुई बड़े वेग से मैदानी भागों की ओर बहती हैं, किन्तु अधिकांशतः इन नदियों का जल यहाँ के जनमानस के उपयोग में नहीं आता है। क्योंकि सामान्यतया ये नदियाँ गहरी घाटियों से गुजरती हैं, जिससे इनसे नहरें निकालना भी आसान हीं है तथा न ही इनका जल ऊँची पहाड़ियों पर पीने के लिए उपयोग में लाया जा सकता है, इस कारण इनका जल पहाड़ के लिए अनुपयोगी ही रहता था, यद्यपि अब हाईड्रम योजना या पम्पिंग द्वारा इन नदियों के जल को सिंचाई अथवा

पीने के लिए प्रयोग में लाया जा रहा है, परन्तु तब भी अधिकांश नदियों के जल का सदुपयोग नहीं हो पा रहा है। इसलिए इन नदियों पर बाँध बनाकर इससे बिजली पैदा की जा सकती है। यद्यपि उत्तराखण्ड की नदियों पर आज अनेक जल विद्युत परियोजनाएँ संचालित हैं, परन्तु इनमें अधिकांश परियोजनाएँ बड़ी नदियों पर ही बनाई जा रही हैं। छोटी नदियों के लिए अब भी विद्युत परियोजनाएँ तैयार नहीं की गई हैं। यदि इन छोटी नदियों पर लघु विद्युत परियोजनाएँ संचालित की जाएं तो इन नदियों के जल का विद्युत उत्पादन में उपयोग तो होगा ही साथ ही यहाँ के बेरोजगारों को रोजगार भी प्राप्त होगा। छोटी विद्युत परियोजनाओं से इस क्षेत्र के पर्यावरण को भी नुकसान नहीं होगा।

ihus dk ty gsrq mi;ksx % उत्तराखण्ड की नदियों का जल अक्सर यहाँ के जनसामान्य के काम नहीं आता है। यह क्षेत्र गंगा, यमुना, टोंस, शारदा, कोसी आदि नदियों का उद्‌गम स्थल होने के बावजूद भी पीने के पानी को तरस रहा है। अतः इसे बिडंबना ही कहा जायेगा कि आज पहाड़ के सैकड़ों गाँव पीने के पानी के अभाव में पलायन करने को मजबूर हैं। पहाड़ों से पलायन का एक बड़ा कारण पीने के पानी की समस्या भी है। अतः पंपिग द्वारा या अन्य वैज्ञानिक तरीकों से नदियों के जल को गाँवों में पीने के लिए पहुँचाया जा सकता है। यद्यपि इस पर व्यय ज्यादा होगा, किन्तु पहाड़ों के विकास के लिए तथा यहाँ से पलायन को रोकने के लिए यह जरूरी है।

jkf¶Vax gsrq mi;ksx % उत्तराखण्ड की नदियाँ पहाड़ों में बड़े वेग से बहती हैं, किन्तु घाटियों में उतरने के बाद इनकी गति कम हो जाती है, अतः समतल क्षेत्रों में इन नदियों में राफ्टिंग की जा सकती है। यद्यपि आज ऋषिकेश, व्यासी आदि स्थानों पर राफ्टिंग की जा रही है तथा इससे स्थानीय युवाओं के साथ ही सरकार को भी पर्याप्त आय प्राप्त हो रही है, किन्तु इसी प्रकार राफ्टिंग को अन्य क्षेत्रों में भी व्यवसाय के रूप में अपनाया जा सकता है, जिससे स्थानीय युवाओं को रोजगार मिल सके तथा सरकार को भी राजस्व की प्राप्ति हो सके। राफ्टिंग के लिए उपयुक्त स्थानों में बागेश्वर, श्रीनगर, उत्तरकाशी आदि भी महत्त्वपूर्ण हैं।

i;ZVu gsrq mi;ksx % नदियाँ प्रकृति की अद्भुत देन हैं और पहाड़ों में इनका नजारा सचमुच ही विस्मयकारी होता है, कहीं ये सुन्दर जल प्रपात बनाती हुई गिरती हैं तो कहीं गहरी घाटियों में गह्वर स्वर लिए कल–कल करती हुई आगे बढ़ती हैं। समतल मैदानों में इनका जल जितना शाँत होता है, पहाड़ी ढलानों पर ये उतनी ही गर्जना करती हुई बड़े वेग से बहती हैं। अतः ये दृश्य प्रकृति का अद्भुत नजारा पेश करती हैं। अतः इन नदियों का पर्यटन के लिए उपयोग किया जा सकता है। जगह–जगह पर सड़कों के किनारे नदियों के सुन्दर दृश्य को देखने के लिए पार्किंग स्थल बनाये जा सकते हैं, जहाँ पर खड़े होकर पर्यटक इन नजारों का आनंद ले सकें।

ukSdk;u gsrq mi;ksx % श्रीनगर, बागेश्वर, उत्तरकाशी में पहले भी नौकाएँ उपयोग में लायी जाती थी। यद्यपि तब इनका उपयोग नदी को पार करने में किया जाता था। क्योंकि तब पुल नहीं थे और यदि रस्सियों के पुल बनाये भी जाते थे तो वे एक ऋतु से दूसरी ऋतु तक नष्ट हो जाते थे, इसलिए तब बरसात के अलावा अधिकांशतः नौकाएँ ही आर–पार जाने हेतु उपयोग में लायी जाती थी। यद्यपि अब सरकार द्वारा बड़े–बड़े पुलों का निर्माण किया जा रहा है, अतः आवागमन हेतु नौकाओं की आवश्यकता नहीं है, किन्तु आज नौकायन का उपयोग साहसिक पर्यटन के रूप में किया जा सकता है। इससे कई लोगों को रोजगार भी प्राप्त होगा तथा लोग साहसिक पर्यटन का आनंद भी ले सकेंगे।

इस प्रकार विभिन्न तरीकों से उत्तराखण्ड की नदियों के जल का उचित प्रबन्धन हो सकता है, जिससे इस क्षेत्र का विकास भी होगा तथा यहाँ के युवाओं को रोजगार भी प्राप्त हो सकेगा।

lUnHkZ

1. चातक, गोविंद, भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भः मध्य हिमालय, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996, पृ0 12
2. भारत 2017, वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ0 756
3. रतूड़ी, हरिकृष्ण, गढ़वाल का इतिहास, भागीरथी प्रकाशन गष्ह, टिहरी, 1995, पृ0 49
4. बलोदी, राजेन्द्र प्रसाद, उत्तराखण्ड समग्र ज्ञानकोश, विनसर पब्लिशिंग कं0 देहरादून–उत्तराखण्ड, 2015, पृ0 100
5. बलोदी, राजेन्द्र प्रसाद, उपरोक्त, पृ0–101

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 208-211

O;fDrRo dk fodkl ,oa ekuo thou esa ;ksx dk egRo

MkW0 /keZsUnz dqekj oekZ;*

^;qT; rs vuqu bfr ;ksx%*

Hkwfedk % योग भारत की प्राचीन परम्परा का एक अमूल्य उपहार है यह दिमाग और शरीर की एकता का प्रतीक है, मनुष्य और प्रकृति के बीच सामंजस्य है, विचार, संयम और पूर्ति प्रदान करने वाला है तथा स्वास्थ्य और भलाई के लिए एक समग्र दृष्टिकोण को भी प्रदानकरने वाला है। यह व्यायाम के बारे में नहीं है, लेकिन अपने भीतर एकता की भावना, दुनिया और प्रकृति की खोज के विषय में है। हमारी बदलती जीवन शैली में यह चेतना बनकर हमें जलवायु परिवर्तन से निपटने में मदद कर सकता है।

पूर्व वैदिक काल में एवं इसके बाद पंतजलि काल तक योग की मौजूदगी के ऐतिहासिक साक्ष्य देखे गये। मुख्य स्रोत, जिनसे हम इस अवधि के दौरान योग की प्रथाओं तथा सम्बन्धी साहित्य के बारे में सूचना प्राप्त करते हैं–वेद, उपनिषद, स्मषतियां, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, महाकाव्यों के उपदेश, पुराण इत्यादि।

''योग अतीत के गर्भ में प्रसुप्त कोई कपोल–कथा नहीं है। यह वर्तमान की सर्वाधिक विरात है। यह वर्तमान युग की अनिवार्य आवश्यकता है और आने वाले युग की संस्कषति है।''

भारत ही विश्व का एक मात्र ऐसा देश है जहां पर योग का जन्म हुआ। भारत की इस पावन धरती पर ही योग ने विभिन्न ऊंचाइयों को छुआ है एवं योग के क्षेत्र में पूरे विश्व में नये आयामों को स्थापित कर भारत का गौरव बढ़ाया है। वैदिक काल के दौरान सूर्य को सबसे अधिक महत्व दिया गया। हो सकता है कि इस प्रभाव की वजह से आगे चलकर 'सूर्य नमस्कार' की प्रथा का आविष्कार किया गया हो। 800 ई– से 1700 ई0 के बीच की अवधि में महान आचार्यत्रयी–आदि शंकराचार्य श्री रामानुजाचार्य तथा मध्वाचार्य के उपदेश इस दौरान प्रमुख थे। अब समकालीन युग में स्वास्थ्य के परिरक्षण, अनुरक्षण एवं संवर्धन के लिए योग में हर किसी को आस्था है।

;ksx dk vFkZ ,oa ifjHkk"kk % 'योग' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'युज' धातु से हुई है जिसका अर्थ होता है– जोड़ना या मिलाना। अतः योग का शाब्दिक अर्थ है– जोड़ना या मिलाना। अतः योग का शाब्दिक अर्थ है–जोड़ना, संयोग करना अथवा मिलाना। इस प्रकार शरीर, मन और आत्मा की समस्त शक्तियों को परमात्मा से संयोजित करना ही योग है। योग मनुष्य को स्वयं से परिचित कराने की कला है। व्यक्ति साधक है तथा योग साधना। साधक साधना द्वारा अपने व्यक्तित्व का विकास करता है।

iratfy ;ksxn'kZu ds vuqlkj % ''योगः चित्तवृत्ति निरोधः''

''चित्त की वृत्तियों को पूर्णतया रोक देना योग कहलाता है।''

osnksa ds vuqlkj % योग एक ऐसी विधि है जिसे अपनाकर व्यक्ति अपने व्यकितत्व का सर्वांगीण विकास कर सकता है तथा अपनी जीवात्मा को परमात्मा के साथ संयोजित कर सकता है।''

cq) /keZ ds vuqlkj % ''कुशल चितैकग्गता योगः'' अर्थात्, कुशल चित्त की एकाग्रता योग है।

;ksxh Jh vjfoUn ds vuqlkj % ''योग शक्ति के शारीरिक मानसिक, भावनात्मक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक सभी स्तरों का पूर्णरूप से विकास का साधन है।''

*असि0प्रोफेसर, शिक्षक–शिक्षा विभाग, आर0आर0पी0जी0 कॉलेज, अमेठी।

fu"d"kZ % हम कह सकते हैं कि योग प्रत्येक व्यक्ति के दुःखों का नाश करने वाला तथा सुख प्रदान करने वाला है साथ ही मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास करने वाला है। इसके अतिरिक्त मृत्यु (दुःख) से मुक्ति पाने और अमृत (आनन्द) को प्राप्त करने का साधन योग है। योग के द्वारा व्यक्तित्व का योग का महत्वपूर्ण योगदान है।

0;fDrRo dk vFkZ ,oa ifjHkk"kk % व्यक्तित्व शब्द अंग्रेजी के Personality 'शब्द' का हिन्दी रूपान्तर है। Personality शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'Persona' शब्द से हुयी है जिसका अर्थ है–कृत्रिम चेहरा अथवा नकाब या मुखौटा, जिसे अभिनेता अपने मुंह पर दर्शकों को यह जताने के लिए धारण कर लिया करते हैं कि वे नाटक में किसी नायक अथवा खलनायक की भूमिका अदा कर रहे हैं इससे यह स्पष्ट होता है कि व्यक्तित्व उन तत्वाकृतियों और विशेषताओं का समग्र बाह्य स्वरूप है जो बाहर से दूसरों को दिखाई पड़ता है।

;ksx dk egRo % योग के द्वारा हर व्यक्ति की उन्नति और आत्म विकास होता है। भले ही वह किसी भी जाति धर्म, वर्ण, भाषा, लिंग देश और समाज का हो। योग का हमारे व्यक्तित्व के विकास की दर्षष्टि से निम्नलिखित महत्व है–

1½ 'kkjhfjd fodkl % योग का उद्देश्य व्यक्ति का शारीरिक विकास करना है यौगिक क्रियाओं में मानवीय शरीर के सभी अंग भाग लेते हैं जिसने उनका विकास होता है।

2½ ekufld fodkl % योग के द्वारा व्यक्ति के मानसिक विकास में भी अत्यधिक सहायता मिलती है। जब व्यक्ति अपने दैनिक कार्यों से थककर मानसिक रूप से पूरी तरह निढाल या शिथिल हो जाता है तो ऐसे समय में आरामदायक आसन जैसे–मकरासन, शवासन आदि के द्वारा वह अपने मस्तिष्क को पुनः तरोताजा बना लेता है। मानसिक तनाव व चिन्ता से मुक्ति दिलाने में योग बहुत उपयोगी है। ध्यानात्मक आसनों जैसे–स्वस्तिकासन, बज्रासन, सिद्धासन, दंडासन, सुधासन, वीरासन आदि को करके व्यक्ति मन को शान्त व तनावमुक्त कर सकता है।

3½ lkekftd fodkl % योग व्यक्ति को ऊंच–नीच व अमीर–गरीब की गहरी पर्त से निकाल कर एक श्रेष्ठ इंसान बनने में सहायता देता है। योग में जब विभिन्न समूहों व जातियों के व्यक्ति आपस में मिलते हैं तो उनमें सामाजिकता की भावना पैदा होती है।

4½ laosxkRed fodkl % मनुष्य आज अनेक समस्याओं व परेशानियों से घिरा हुआ है एवं इस कारण से उसके स्वभाव में चिड़चिड़ापन व क्रोध पैदा होना स्वाभाविक है। परन्तु योग ऐसे व्यक्तियों को संवेगात्मक रूप से इतना मजबूत व परिपक्व बना देता है कि उन पर इन बातों का कोई प्रभव नहीं पड़ता तथा विकट परिस्थितियों में भी अपने संवेगों पर पूर्ण नियंत्रण रखते हुए जीवन व्यतीत करता है।

5½ laosxkRed fodkl % एक अच्छे चरित्र का मालिक है परमात्मा के ज्यादा निकट होता है, जबकि चारित्रिक अवगुणों से मुक्त व्यक्ति परमात्मा के ज्यादा निकट होता है, जबकि चारित्रिक अवगुणें से युक्त व्यक्ति परमात्मा से कोषों दूर होता है तथा वह व्यर्थ के झगड़ों व तनाव में ही अपना अमूल्य जीवन गवा देता है। योग में ध्यानात्मक आसनों के द्वारा व्यक्ति में अच्छे चारित्रिक गुणों का विकास होता है।

6½ v/;kfRed fodkl % योग का मुख्य उद्देश्य है–व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास करना यौगिक क्रियाएं व विभिन्न आसन जैसे ध्यानात्मक आसन, अर्द्धपद्रआसन, पद्मानसन,सुधासन, बज्रासन आदि व्यक्ति को गहन ध्यान की तरफ ले जाते हैं तथा इस स्थिति में व्यक्ति स्वयं को परमात्मा के अधिक समीप पाता है।

7½ vuq'kklukRed fodkl % योग शरीर की इन्द्रियों तथा मन को अनुशासनबद्ध करता है।

8½ lkaLÑfrd fodkl % सांस्कृतिक धरोहर की सुरक्षा, पोषण विकास तथा हस्तान्तरण में योग बहुत सहायक होता है। योग अच्छे संस्कार डालने तथा सुसंस्कष्त बनाने की दिशा में भी सकारात्मक बनाने की दिशा में भी सकारात्मक योगदान देता है।

9½ ,dkxzrk fpRr dk fodkl %

10½ jk"Vªh;rk dk fodkl :

fu"d"kZr % हम कह सकते हैं कि ''योग व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक सभी स्तर का पूर्णरूप से विकास का साधन है।'' इसके अतिरिक्त योग के अन्य महत्वपूर्ण कार्य है व्यक्तित्व का समुचित विकास होता है। योग एवं ध्यान के द्वारा चित्त शान्त रहता है। योग व्यक्ति को उसकी जिम्मेदारी का एहसास कराता है। योग के द्वारा स्मरण शक्ति का विकास होता है।

;ksx dk ekuo thou esa egRo : योग विद्या प्राचीन पूर्व वैदिक भारतीय परम्पराओं में से एक है जो शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक अभ्यास का सर्वोत्तम अनुशासन है। सार्वभौमिक चेतना के साथ व्यक्तित्व चेतना का मिलन ही योग है चिकित्सा शोधों ने भी योग से होने वाले कई शारीरिक एवं मानसिक लाभों को प्रकट किया है। योग का मानव जीवन पर निम्नलिखित महत्व है–

1- ;ksx dk lekt dks fy, egRo % प्रत्येक व्यक्ति महसूस करता है वह एक सुखी एवं सफल व्यक्ति बने। हमारी प्रसन्नता और उन्नति हमारी अभिवषत्ति, चिन्तन और व्यवहार के प्रतिमान पर आधारित है। योग समाज एवं व्यक्ति को विश्वास दिलाता है कि अगर हम जीवन और चिन्तन की स्वस्थ अभिवषत्तियों और आदतों को अपनाते हैं तो हमारा जीवन इसके माध्यम से आनन्दमयी एवं प्रभावी जीवन हो सकता है।

2- ;ksx dk fpfdRlh; egRo % यौगिक सिद्धांतों और पद्धतियों का उपचार के लिए उपयोग 'योग चिकित्सा' कहलाता है। चिकित्सीय अध्ययनों ने स्पष्टतापूर्वक गम्भीर रोगों जैस अस्थमा, आर्थराइटिस, पीठ दर्द, हृदय रोग, पेट संबंधी रोग, श्वसन, मोटापा, हाइवरटेंशन, श्वसन एवं ब्रोंकाइटिस के उपचार में यौगिक अभ्यासों की महत्ता को स्वीकार्य किया है जिससे इन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

3- ;ksx ,oa ekufld LokLF; % अंग अवयवों की थोड़ी सी विकषति मानव के लिए तनाव का कारण बनता है। नियमित योगाभ्यास (आसन, प्राजायाम, ध्यान, षटकर्म) एवं मुद्रा ऐसा पैकेज है जिसे अपनाकर हर कोई अपने शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थ्य को बनाये रख सकता है। अतः योग के माध्यम से व्यक्ति अपने मानसिक स्वास्थ्य को सकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है।

4- ;ksx dk f'k{kd ds thou esa egRo %

1. योग स्मृति और सीखने की क्षमता में वृद्धिकारक हैं।
2. योग मानसिक सचुलन बाये रखने में सहायक है।
3. योग, चिन्ता, तनाव एवं मनोविकारों को दूर करता है।
4. संवेगात्मक संतुलन में योग की भूमिका।
5. कार्य में कुशलता।

5- ;ksx dk fo|kFkhZ thou esa egRo % अनुशासित जीवन शैली, शान्त वातावरण तथ नियमित योगाभ्यास, ध्यान आदि ऐसे कारक हैं जो सभी मानसिक क्षमताओं के लिए लाभकारी होते हैं। योग बालकों में आन्तरिक शान्ति प्रदान करता है, जिससे उनकी रचनात्मकता में वृद्धि होती है।

fu"d"kZ % योग उन सबके लिए है, जो आत्मा व परमात्मा को नहीं जिनमें वह सब जानने की बौद्धिक क्षमता भी नहीं है अथवा जो इसमें विश्वास नहीं करते या जो घर गष्हस्थी में पूरी तरह रम गये हैं।

शरीर मन और आत्मा का उपयोग जीवन में वैसे ही होना चाहिए जैसे वीणा में तारों का होता है। तारों का संतुलन ही वीणा की मधुरता है। जीवन में भी यही नियम लाग होता है। योगदर्शन में शरीर, चित्त (मन, बुद्धि एवं अहंकार) और आत्मा का योग माना गया है। चित्त, उसके अंगों तथा उसकी वृत्तियों का आंकलन, बुद्धि को तुरन्त नहीं हो पाता। चित्त के अस्तित्व का ज्ञान प्राप्त करना, उसके अंगों का विश्लेषण करना तथा उस पर काबू पाना आसान नही है। जिस प्रकार रेशम की लच्छियों की धीरे–धीरे और हल्के हाथ से सुलझाना पड़ता है उसी प्रकार चित्त को भी बहुत कोमलता से खोलना पड़ता है अन्यथा उलझन और भी बढ़ सकती है। चित्त तक पहुंचने की यह यात्रा बाहर से शुरू होती है। योगासन बाह्य शरीर से आंतरिक पन तक पहुंचने का मार्ग आसान कर देते हैं।

योगासन में शरीर पर आने वाले अलग–अलग खिचावों से शरीर का बाह्य स्थूल कवच ढीला पड़ जाता है और मन तक पहुंचने का मार्ग खुल जाता है। शरीर और मन का सीधा संबंध है। शरीर प्रत्येक बदलती छाया मन पर पड़ती है। शरीर खुल जाने पर मन भी खुल जाता है। वर्तमान में भारतीय योगगुरू स्वामी रामदेव योगासन व प्राणायाम के क्षेत्र में विशेष योगदान है। योग शिविरों के माध्यम से भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी इसे पहुंचाने का कार्य किया जा रहा है। योग की लाभ महत्वा देखते हुए माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र दामोदर मोदी ने 2014 में 21 जून को अन्तर्राष्टीय योग दिवस घोषित कराया गया।

lUnHkZ %

1. मिततल, आर.एन. एवं परिहार : शैक्षिक संगठन, स्वास्थ्य शिक्षा एवं शिक्षण ए.जे.एस. (2011) तकनीकी, आर. लाल बुक डिपों, मेरठ
2. शर्मा. आर.ए. (2013) : शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक मूल आधार, आर. लाल बुक डिपो।
3. पाल, एस.के. गुप्त, लक्ष्मी : शिक्षा मनोविज्ञान, न्यू कैलाश प्रकाशन, नारायण एवं मदन मोहन (2013) इलाहाबाद।
4. जैन, विजय कुमार, योगासन द्वारा रोगोपचार, न्यू साधना पॉकेट, बुक्स नई दिल्ली।
5. अन्तर्राष्टीय योग दिवस, सामान्य योग अभ्यास क्रम, स्कूल शिक्षा विभाग, मध्य प्रदेश भोपाल।
6. www.dainikbhakar.com, Dr. Naveen Joshi, June 21, 2015, 12:02pm/ST.
7. www.webduniya.com, Anirudhh Joshi ‘Shatayu’.
8. www.mea.gov.in, Dr. Ishwa, V. Vasawaraddi, April 24, 2015.
9. www.wikipedia.org, From: Mukt Gyankosh Wikipedia.

***

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 1-10

Exclusive Travel Writers/Writing/Critiques in India: A Way forward for Comprehensive Tourism Development in Compliance to World Travels

Abhishek Kumar Maurya*
Siddharth Singh **
Dr. Akhilesh Kumar Singh***

Abstract : *Tourism as an industry is a collective representation of different subsidiaries/ activities cGangtokombined together. Currently, at a steady growth rate of 4.5% annually worldwide; tourism can be a second option of overall sustainable development for any country. Here in India it's growing at a much higher rate in comparison to other countries of this region due to different policy changes by central & state governments. Private players are playing a major role of increasing foreign tourists inflow & accommodation building in different parts of India. After 2002 tourism policy & it's further implementations in coming years efficiently; now the time is appropriate for including other aspects of modern communication means in tourism specially media in lucrative/forthcoming manners.*

Culturally & Naturally, India as a destination has all to offer for any world-class tourism demand. It has the capacity of catering demands of various classes of tourists including different age-groups. Media can be a vital factor through its different channels (electronic, print & social) in combining all this diversity to such an extent to showcase & represent it professionally.

Focused area of this research paper is chiefly identifying the potential individuals who can be incorporated further for developing them to such professional travel writers of world calibre. At the same; other independent travel bloggers/writers of India are also documented in this research paper for further assistance & development of a national level travel guidebook. Intended future course of this initial paper writing is to develop an international level online discussion forum of numbers of travel writers including travel enthusiasts of India competing with National Geography & Lonely Planet. Major takeaways of this study could be promoting India as we prefer to promote globally, publish & monitor worldwide tourism movement further in due course of time.

Keywords: Travel &tourism, tourism industry, travel writing, global tourism

Introduction : "The one land that all men desire to see and having seen once, by even a glimpse, would not five the glimpse for all the shows of all the rest of the globe combined." -Mark Twain on India

India is a journey of mind and soul, It is a journey of the five senses, It is a journey of self-discovery, It is a journey of self-fulfilment.

*Research Scholar, Centre for Mountain Tourism and Hospitality Studies, HNB Garhwal University (A Central University), Srinagar Garhwal

**Research Scholar, Department of History of Art & Tourism Administration, Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi (U.P).

*** Assistant Professor, Department of Tourim, Sikkim University (A Central University), Gangtok-India

-National Tourism Policy 2002, Ministry of Tourism, India.

A national policy on tourism highlighting the importance of the sector and the objectives of tourism development in the country was presented in the Parliament in 1982. The policy was formulated in an environment of a closed economy with rigid licensing procedures...The policy also did not lay adequate emphasis on domestic tourism and the need for product development."

In this meeting the earlier Prime Minister of India, Shri Atal Bihari Vajpayee had stated: "Tourism is a major engine of economic growth in most parts of the world. Several countries have transformed their economies using the tourism potential the fullest...Tourism has great capacity to create large scale employment of diverse kind-from the most specialised to the unskilled and all of us know that generation of massive productive employment opportunities is what India needs the most."

There are numeral tourist destinations spread all around India with enormous potential for dealing the experiences assorted tourists of Domestic & International vault of diverse ranks. From the soaring Himalayan range in upper north to the southern tip of sea & beaches, backwaters etc., eastern region combined with lower hill ranges of seven sisters & Sikkim to ancient historical places of West Bengal and Orissa incorporating different indigenous population of varied nature. Western part showcases a unique experience with desert of Thar in Rajasthan as princely grandeur; concurrently vibrant culture of Gujrat, including colours of Punjab and Haryana. Plains of Ganga & Yamuna rivers has lively populated cities of varied nature to serene beauty of countryside lifestyle- a combination of primitive & modernity blended in mystical traits and composed.

Madhya Pradesh, Jharkhand, Chhattisgarh including parts of Orissa, Andhra Pradesh & Maharashtra blended; much with numerous National Parks & Wildlife Sanctuaries with lower mountains of Vindhyachal & Satpura ranges offers a peculiar experience of immaculate beauty shared with various Historical Places, Hill Stations, Lively Cities & many Waterfalls.

Further towards south commence Cyber cities of Hyderabad & Bangalore counting Business Capital Mumbai in Maharashtra. All these vivacious cities broaden as a business basket of diverse nature including majestic Temple Architecture of Tamilnadu, Andhra Pradesh and Karnataka. Down south stunning Kerala, Karnataka & Tamilnadu showcases a different experience all together with different low ranges of Cardamom, Nilgiri Hills, varied Waterfalls, Hill stations, Beaches of Goa, Pudduchery, and other states.

Two poles apart Islands Andaman & Nicobar and Lakshadweep add another feather to the beauty of India. Sea shoreline around the entire southern part gives it altogether a complete package to allure tourists approximately of the entire temperament.

Cultural aspect incorporating historical background provides a unique platform for India with its regional & local diversity to lure both domestic and international tourists separately. It's diverse Cuisine, Handicrafts & Handloom, Health & Medical Treatment, Yoga, Education, Music, Dance; Ornaments etc. tempt tourists to have a soulful experience.

Tourism stands on 5 A's as Accommodation, Accessibility/Approachability, Amenities, Activities, Availability. India currently growing at a rate of 7% is amongst the fastest growing economy of the world. Infrastructure development plays a key role in tourism as it stimulates Amenity, Activity & Approachability. At the same it provides private players to invest in Accommodation & other important essentials in periphery of tourism industry that heighten local population to actively participate in tourism. Multiplier effect of tourism provides a common platform from each stratum of economical background's individuals to have equal opportunity to participate in sustainable tourism activity. As tourism being the least environmental hazardous activity sustain not only environment but deals with another aspect of sustainability as social & cultural traits enhancement & preservation.

Tourism in my view is a unique phenomenon that has inherited people from ancient time when they used to be wanderers, somewhere in history they moulded their character to live in groups & established societies, cities, towns' etc. but that soothing disposition of meeting new individuals & seeing new places always remained in-between to enthuse them to travel. There have been numerous well known international travellers as Marco Polo, Christopher Columbus, Ibn Battuta, Amerigo Vespucci, Xuanzang(Hsuan Tsang), Ferdinand Magellan, Herodotus, Vasco De Gama, Captain James Cook, Faxian, I-tsing, Al Beruni, Megasthenes, Abdul Razzak, Rahul Sankrityayan etc; those who engaged this world by new discoveries & enlighten the commoners with new intellectual awakenings & knowledge that created this beautiful world of ours with new scientific advancement, Social & Cultural development etc. They combined the world with their understanding that currently make world a global village.

In India travel developed in accordance to pilgrimage in ancient time. The drastic change and mass pilgrimage movement regional & intraregional started mainly due to Buddhism in most part of Asia. Later as after the World War-II the transportation means all around the world changed it drastically with technological advancement & new discoveries. Main focus on tourism in India started after second half of independence after 80's or chiefly to say after 90's when India moved out of closed economy to liberalization. Indian Tourism Policy- 2002 draws a unique document for this sector that transformed it into an industry here.

Objectives : This initiative research paper is to augment, highlight and outline a new dimension of tourism business in collaboration about 'travel writing.' Initial documentation in this research paper is about current status of tourism business in India to highlight its prospect in compliance to changing business dynamics with different sectors augmenting through various media channels. Main theme of this research paper is to document different potential travel writers/authors who can write professionally about Indian Travel Experiences in compliance to world's travel writing. Prospect of this research paper is to compile a data base through these travel writers including other industrial experts/ government authorities/ experts from other countries travel professional in collaboration to develop a travel guide book & travel forum in compliance to international standard in India.

Methodology- A descriptive methodology has been applied to collect meaningful qualitative and qualitative data through various secondary data sources available.

Statistical Incorporation : Indian tourism industry is economically imperative and is increasing speedily. The World Travel & Tourism Council intended that tourism generated 8.31 lakh crore (US$120 billion) or 6.3% of the nation's GDP in 2015 and provided 37.315 million jobs, 8.7% of its overall employment. The sector is predicted to grow at an average annual rate of 7.5% to 18.36 lakh crore (US$270 billion) by 2025 (7.2% of GDP). With its multiplier effect tourism activities is able to provide on average 11 jobs per RS. 1 lakh invested is in comparison to other industry is highest. In October 2015, India's medical tourism with compliance to health tourism sector was estimated to be worth US$3 billion. This combined Medical & Health tourism is projected to grow to $7-8 billion by 2020. In 2014, 184,298 foreign patients specifically accordance to Medical Treatments traveled to India.

About 88.90 lakh (8.89 million) foreign tourists visited India in 2016 compared to 80.27 lakh (8.027 million) in 2015, recording an increase of 10.7%. Domestic tourist visits to all States and Union Territories numbered 1,036.35 million in 2012, an increase of 16.5% from 2011. In 2014, Tamil Nadu, Maharashtra and Uttar Pradesh were the most admired states for domestic tourists. National Capital Delhi, Business Capital- Mumbai, One amongst the four metro- Chennai, Agra and Pink City- Jaipur have been the five most visited cities of

India by international tourists during the year 2015. Worldwide, Delhi is ranked at 28 by the number of international tourist arrivals, while Mumbai is listed at 30, Chennai at 43, Agra at 45, Jaipur at 52 and Kolkata at 90.

The Travel & Tourism Competitiveness Report 2015 lists India 52nd out of 141 countries largely. The description lines the price competitiveness of India's tourism sector 8th out of 141 countries. This report mentions, India has quite good Air Transport (listed 35th), chiefly given the country's phase of development, and reasonable land transport infrastructure (listed 50th). India also scores elevated on natural and cultural resources (listed 12th). Other dimensions of its travel infrastructure stay somewhat underdeveloped however yet to increase its overall infrastructure standard to international level. The nation has lesser numbers of hotel rooms (Accommodation) per capita availability to its international assessment. The World Tourism Organization accessed that India's receipts from tourism during 2012 listed 16th in the world and 7th among Asian region and Pacific countries.

The Ministry of Tourism designs National policies for the development and promotion of tourism in compliance to international standard. In the process, the Ministry consults and collaborates with various stakeholders in the sector counting different Central Ministries/ Agencies, State Governments, Union Territories and the representatives of the private sector. Strenuous efforts are being made to promote new forms of tourism such as Rural/Village, Cruise, Medical/Health and eco-tourism; incorporating other important forms as- Adventure, Niche, Shopping, Virtual, Heritage Sustenance, Highway etc. The Ministry also maintains the Incredible India campaign.

Despite the wealthy Cultural and Natural heritage which India possesses, different security issues and crime - especially aligned with female visitors, form certain trouble that has swamped the Indian tourism industry.

E-Tourist Visa (Incorporated Dimension of New Developments in India) : In order to enhance tourism activities, the Indian Government determined to implement a new visa policy, helping visitors to acquire a visa on arrival at 16 designated International Airports by obtaining an Electronic Travel Authorization online previous to arrival without the necessitate to visit an Indian consulate or visa centre. As an outcome of this, 56,477 tourists arrived on E-Tourist Visa for the duration of the month of October, 2015, as compared to 2,705 during the month of October, 2014 pointing to a steady growth of International tourist's arrival. During January-October, 2015 a total of 2,58,182 tourist arrived on e-Tourist Visa as compared to 21,995 during January-October, 2014 registering a growth of 1073.8%. The competence will be made available to citizens of about 180 countries in several phases. On 27 November 2014, India introduced its visa on arrival enabled by ETA facility for different tourists and business visitors, to citizens of following countries - Australia, Brazil, Cambodia, Cook Islands, Djibouti, Fiji, Finland, Germany, Indonesia, Israel, Japan, Jordan, Kenya, Kiribati, Laos, Luxembourg, Marshall Islands, Mauritius, Mexico, Micronesia, Myanmar, Nauru, New Zealand, Niue Island, Norway, Oman, Palau, Palestine, Papua New Guinea, Philippines, Russia, Samoa, Singapore, Solomon Islands,South,Korea,Thailand,Tonga,Tuvalu, UAE, Ukraine, USA, Vanuatu and Vietnam.

The facility was extended to China, Macau and Hong Kong on 30 July 2015. This facility of Visa-on-Arrival was further extended to citizens of Andorra, Argentina, Armenia, Aruba, Belgium, Bolivia, Colombia, Cuba, East Timor, Guatemala, Hungary, Ireland, Jamaica, Malta, Malaysia, Mongolia, Monaco, Mozambique, the Netherlands, Panama, Peru, Poland, Portugal, Seychelles, Slovenia, Spain, Saint Lucia, Saint Vincent and the Grenadines, Surinam, Sweden, Taiwan, Tanzania, Turks and Caicos Islands, the United Kingdom, Uruguay and Venezuela on 15 August 2015.

The Visa-on-Arrival requires a visitor to apply online on a secure Government of India website, minimum 4 to 30 days before the date of actual travel date. If approved, the

traveler must print and carry the approved visa with other travel documents. The Visa allows holders of Electronic Travel Authorization (ETA) to enter and stay in accordance to their travel plan in India for 30 days. The ETA can be obtained twice in a single calendar year. In April 2015 the proposal was renamed to e-Tourist Visa in order to shun confusion.

Theme Dimensions : Professional Media/Journalism/Travel Writing is emerging as a new concept in India somehow in accordance to tourism industry requirements capturing/ expressing experiences that individuals encompass while travelling. There are numbers of talented travel writers who are blogging/writing scripts on social networking sites/sharing trips photos/handling personal websites. Various national/international TV channels, TV Programmes, Episodes are telecasted as well to promote/inform tourism & tourists about India.

Documentation part is still lacking at par to overall International Standard that efficiently focuses and explain the thorough details in lucid and entertaining manner. It calls traveller attention easily and provide them sufficient information, encourage them to engage in tourism activity.

Here is the compilation of few individual writers those are writing professionally about it, with the help of tourism Professionals/Professors/Industry Experts/Hoteliers/Tourist Guides/Locals, they can be trained & qualified to write chiefly focussing on the products USP, destination lucrative parts & enhancement with creative input, can qualify and compile a unique Traveller Guide Book of International Standard.

Another aspect of this writing will surely enhance the familiarity of these National to International Travel Writers amongst each other in such a manner that will increase the cultural understanding, familiarization of different social traits & habits, new developments, different tourism advancement schemes and moreover will form an unanimity of different countries to work in similar direction of International Sustainable Tourism standard.

Concepts of UNWTO in future course will surely be easy, as to provide clear cut future direction through these travel writers working separately beyond the academician's capacity. They can create new avenues for future course as their feedback from destination travelling will make them work in such a direction that lower income group travel practitioners can be profited most out of any tourism activity.

Indian Travel Writers Initial Documentation from Web

Shivya Nath : Shivya Nath is a young female travel writer to inspire other young women to travel independently and be innovative. That is precisely she does through her award-winning blog called 'The Shooting Star'. In 2013, she acknowledged the title of 'Best Travel Blogger' at the Indian Blogger Awards for expressing her expertise and guidelines on how to travel like a local on the long term with tremendous enthusiasm. She shows a unique liking of wandering around and in scripting about off-the-beaten-path destinations. Shivaya who quit the corporate life to turn into a full time traveler and makes a source of revenue out of it, her life narrative and adventures are of the most appealing type.

Anuradha Goyal : Professionally blogging since 2004, Anuradha Goyal has been giving out precious information about her two prime passions-travelling and reading. Her reviews are all documented under the blog called AnuReviews, and her travelling stories are planned on her different blog called Inditales. She gives various important details of practical information about travelling around India, including different Walking Trails for travelling in some of the major Indian cities, she even shares a quantity of stories related to international travels. Anuradha Goyal is also the author of The Mouse Charmers - Digital Pioneers of India.

Karthik Reddy : Completing his Masters in Business Administration in 2012, Karthik Reddy decided to depart his comfort zone and travel instead. He started his own travel blog, Romancing The Planet, to share different travel stories, provide invaluable advice and publish some of his desired travel shots. He has a unique understanding of what happiness means

that essentially revolves around his love for different world cuisines, comparing new cultures and get-together new people avenues. And eventually, it is through travelling that Karthik Reddy experiences all these different cultures, and finds his own contentment.

Lakshmi Sharath : Lakshmi Sharath is an individual many would consider a multi-talented World traveler. On top of being a media professional, she is a full time traveler, blogger, travel writer and also a photographer. In her incredible blog 'A travel blog of an Indian Backpacker', Lakshmi Sharath shares her varied worldwide experiences and travels inside India. In 2008, her blog was chosen India's best travel blog of the year. In 2014, she even managed it to the international travel panorama by being featured as one of the 100 travelers to follow on social media.

Parnashree Devi : Parnashree Devi is a travel blogger from Assam who is presently based in Delhi. She initiated 'My Travel Diary' a couple of years ago, largely to share her travel stories. Travelling has always been an enthusiasm for her. She explores remote corners of the world where she interacts with local people, savors the local cuisine and explores about different ways of life and cultures. She showcases through her blog, she can inspire others to pack their baggage and travel out of their console zones.

Arnab Maity : Arnab Maity's blog has a striking story. It started as a way to compose his mother, who was the one to pass on her passion for travelling to him, travelling virtually through equally words and pictures. Arnab Maity aspired to illustrate the world that travelling can be inexpensive, that operational people can travel too, and finally that people you meet have some of the most incredible stories to share and priceless insights to offer.

Sankara : Sankara is by far one of the top Indian travel bloggers - and he is not just a common type of travel blogger, a biking blogger who has been featured in many peak media outlets. Focused in adventure travels, Sankara has the aptitude to show the beauty of the world in words and pictures. BE ON THE ROAD, he also writes about vegetarian cuisine, wildlife holidays, and exclusive cultures for Indians. This is an important blog for those looking to travel economically and efficiently, and particularly for those wishing to travel around India.

Shalu Sharma : Shalu Sharma writes chiefly about the domestic travelling in India. Being a housewife from Bihar, she prefers to travel & document her travel experiences whenever gets appropriate time. Her writing mostly focuses on sightseeing, cuisine, cultural aspect etc. of India. Essentially she documents invaluable travel experiences with numbers of information about local suitability that helps traveller allot while travelling these places. She writes also about spaces of interest, best times to visit, what to bring with you, vaccination requirements and everything.

Siddhartha Joshi : Siddhartha Joshi is one of India's most successful and followed travel bloggers who strongly believes in the supremacy of travelling to break barriers down, make people more forbearing and more accepting of others. He lives for human moments, as it is through the various interactions with the locals he meets along the way that he finds his contentment. Through 'The Wanderer', he wishes to share his passion for nation and travelling. Siddharth Joshi has a great liking about the world, that one day it will be easy for any individual to travel it freely.

Deepak Patel : Deepak Patel is a fervent travel blogger and technology lover. It is his tech tendencies that his blog, Travel N Thrill, was initiated. What he loves the most in travelling is exploring and documenting ancient places of dimensions, and it is his experiences of these chronological places that he wishes to convey in his blog. Understanding scriptures together with gazing at ancient architecture which are reflections of a rich Indian cultural heritage are his enthusiasm. The blog is thus the wonderful platform for history and culture lovers to increase an in-depth considerate of the most fascinating Indian destinations.

Ankita Sinha : Ankita Sinha has stylish adventure blogs, Anki On The Move, where she manages to delightfully convey what she feels about certain spaces. She in past has conducted Pan Indian traveler meet ups across cities to bring like-minded people together. She has bagged many awards for her immaculate travel writing and is a well known adventure travel writer. For those who in search of an adrenaline rush, her blog should be a reference, as Ankita Sinha surely shows you how to indulge in tremendous adventure sports, including mountaineering, cliff jumping and more.

Thommen Jose : Thommen Jose is the intelligence behind the responsible travel blog called Wanderink. The published blog posts promote eco-tourism as the writer believes that any travel to a natural habitat should be done in a way that environment remains protected & sustainability intact. It efficiently focuses on the challenges that local people face, and what travelers could do to understand local culture and traditions enhanced. Thommen Jose is concerned about development issues, and is keen to hoist awareness among the travel community.

Venkat Ganesh:'India Backpack Motorbike' chronicles and experiences of Venkat Ganesh, before and since, he quit his job to travel was mesmerized by the spiritualist beauty of motherland, India. The blog is Venkat's attempt at sharing his travels without a plan to unidentified destinations, being misadventures where none exist, making feeble attempts at soaking himself in the local culture and in common trying to unlearn, learn and relearn. Breaking the shackles of the old understanding of psychological bubble travelers and taking the road less travelled, 'India Backpack Motorbike' will manipulate and inspire you to hit the road. If one is on a mission to travel across India on Motorbike then check out his blog India Backpack Motorbike.

Sudha Ganapathi : Sudha Ganapathi being a photographer, editor liking different aspect of classical dance form a cultural experience is undoubtedly an individual travel writer to be mentioned here prominently. 'My favourite Things' is Sudha's blog about travel, books, photography, and design. During the course of her travels, Sudha has been to spaces which have featured in paintings like Canaletto's 'A view of Greenwich from River Thames' near London or Constable Countryin Suffolk, United Kingdom, where John Constable painted his most famous landscapes. She also been to places featured in movies and also visited places stimulated by photographs.

Prasad NP : "Running the rat race, scheming to swim with the sharks." Wondering what is missing in rat race after conquering the corner office is what Prasad realized and encouraged him to travel around India. Designated for Indian Blogger Award, Prasad's blog is about the places he visits, is about what he has discovered. His blog desi Traveler, You will not find too many tips or exotic places, in this blog but you will find profusion of places that families visit and enjoy going together. Sometimes Prasad writes about unaccompanied travelling but majorly focuses on something that can be enjoyed by a family.

Niranjan Das : 'Tales of a Nomad' is Niranjan's personal travel blog where he writes about the places he traversed throughout, roads he trod on, and the images he captured. It also has articles on long bike rides, treacherous treks, leisure holidays, backpacking vacations and enthralling train journeys.

He has travelled mostly all over India and little overseas adventure in Mauritius, Malaysia. His article on Hoysala temple architecture & paraphernalia of Somnathpur grabbed notice and was published in The Hindu newspaper. His travelogue has been published in different travel magazines and websites.

Neelima Vallangi : Neelima is an offbeat and adventure travel enthusiast. She does not travel to the usual destinations and wishes to unknot the lesser known places in India. Neelima has trekked widely in the Himalayas, Western Ghats. Her trip to Ladakh in 2008

turned her into an irreversible travel aficionado and has been travelling since then. 'Travel with Neelima' is a blog about her adventures, off beat places that she has travelled, few guides and a whole lot of photo-essays.

Mridula Dwivedi : The person behind 'Travel Tales from India', Mridula Dwivedi has a fervour for travel. Her blog was privileged as the 'best travel Indi blog' at the India Weblog Awards in 2007. It has also been highly praised by the BBC and the Guardian. Along with her job as an Assistant Professor of Human Resource Management at Gurgaon, she also writes to GoNOMAD.

Joshi Daniel : Joshi is a freelance photographer from India who is enthusiastic about creating human constituent in images out of faces through his photography since he believes that every face has a story to tell. Spellbound by various cultures, lifestyle and traditions, his photo blog was included in the '20 Most Outstanding Photo blogs' in the 2012 Photo blog Awards. In 2008, Joshi started his photo blog to showcase the 'images of people'.

Kiran Keswani : Kiran is an architect resident of Bangalore, India. Her blog has some glitter photographs from streets of India. Kiran being a profession street or lively photographer captures mostly about the architecture of different cities and its people, she provides perspective tinged with beauty in admiration.

Her photo-essay on 'Rakhi Bazaar' and the blog "Indian Bazaars" is quite a candy floss and has some really intriguing photography. Kiran photo-essays and captures Indian Bazaar's in a way of seeing life in the streets with myriad prospective. Her article on 'In the mind of a child' is quite popular among her readers.

Indrani Ghose : Indrani Ghose is a freelance travel writer shares different aspect of travelling easily. She has been published in an international book and her article on Eco-tour has been published in a national magazine. The article was scripted on her trip to Peechavaram, a mangrove forest in the shores of Tamil Nadu. Rabindranath Tagore is recognized worldwide for literature, Indrani's article on Doodles by Rabindranath Tagore is quite an eye catcher.

Dheeraj Sharma :A software project manager by profession, Dheeraj Sharma is acquainted with the appetite of diving into unknown destinations and testing his limits to garner more out of travel. Considering himself as a pious worshipper or to say awe bound of Leh-Ladakh, Dheeraj has successfully explored some of the off-beat destinations on wheels and has shared their memories with various travelers. His passion to delve into unknown destinations and discover their splendor has lured him to document one of the most popular travel blogs, 'Devil on Wheels'.

Charukesi : Charukesi writes on travel, cuisine, books, arts and culture. Charukesi Ramadurai is a freelance writer and journalist from India and has travelled extensively through Asia, Europe, Africa and Australia. Charukesi first travelled abroad at the age of 26 to Thailand. Since then, she has been to 19 countries. She has an authoritative writing skill to write about different facet of traveling to captivate others at the same to draw a desired out line about travelling.

Bhushavali Natarajan : Her blog has been selected as one of the top 30 blogs by diverse organizations. Travellin around the less travelled roads is her main passion. She has travelled to USA as its being her favorite destination. She has travelled all around India with few oversees adventures in France, Germany and Australia. Bhushavali loves travelling and her taste in travel is the paths untraded in all kinds, may it be nature or heritage or rural tourism. Her travel writing gives a different dimension to travel enthusiasts.

Arun Bhat : Arun Bhat's tremendous travel writing has been published in countries like USA & Japan. Extensively touring India, he has captured fascinating imagery of the country's landscapes and heritage sites. A Bangalore based Software Engineer; he presents himself as a famous freelance travel writer who has been published in Mumbai Mirror, Landscape Magazine and many others.

Arti : Arti simply enjoys traveling to spiritual destinations in India and documents the experiences in her blog diary. Filled in awe with the travel destination she writes flawlessly about the different aspects of travel including cuisine etc. and much more, her blog aims to help those who wish to plan a trip or simply want to know more. She has an acute understanding of travel activities & writes in compliance to tourism industry. In 'My Yatra Diary', Arti narrates her vists to places of pilgrimage in India.

Anuradha Shankar : Anuradha is housewife, mother, traveller, bookworm, and aspiring freelance writer. Her blog 'Wandering Mind' is all about her travels. She was on a road to be a scientist when life took a sudden turn. Now travelling and writing is her lifelong dream which gives her travel writing a conceptual understanding of objectivity. Her visit to Kashi made her realise the heart and identity of Indian culture tingled with spirituality & science. She started blogging about Kashi and that's how Kasha Yatra documented. 'Wandering mind' is the blog where Anuradha re-discovered her lifelong vision and joy of writing.

Aravind GJ : 'Travel and Treks' is the voyage of Aravind through various parts of India. With tinsel pictures and picturesque landscape photography, Aravind writes about his journeys and adventures through dissimilar parts of India. His article on Madhugiri trek is quite an attention grabber who initiates a discussion about his defeat during his first attempt but finally conquers the trek in his second attempt. Aravind's article on jeep safari through Leech waterfall is quite adventurous with some excellent images. His travel writing is more about showcasing various colors of nature.

Ankita Sinha : Ankita Sinha is one of the cheerful and stylish travelers in India. She is the one, who believes in discovering and exploring the corners of the globes rather than adding names to her travel list. Her esteem towards exploration and adventure has allured her to 7 countries, covering 12 international destinations. However, the most striking facet of her traveling is that she has travelled to all these destinations within 2 years, she has been invited by Visit Britain, Visit Scotland, Canada Tourism, Thailand Tourism and several other international brands.

Anita Bora : Anita Bora is a travel author behind the blog 'Just a Little Something'. It was freshly decorated in this list of top travel blogs and magazines in India. Anita is one restless and wandering spirit and has gone scuba diving in Lakshadweep and trekking through Himalayas.

She has visited and lived across India with places like Guwahati, Shillong, Mumbai, Bangalore and an overseas adventure trip in Australia. Anita has craved her passion for writing, photography, diving, cycling and wine. Her writing root mainly involves travel, technology, trends, and culture.

Anil Purohit : Anil is a talented Indian blogger who has been included in Travel Blog awards. His pictures narrate absorbing stories. Anil shifted from Goa to Mumbai for his livelihood. He loves wildlife camping, trekking, photography, travelling, writing and more. The traveller's collection was built over a period of five years on breaks from work. Featured in DNA India, Anil is more of a wanderer than a photographer.

Rajesh Prabhu : Rajesh being an enthusiastic traveler, young in spirit, he aims to make people aware that there is much more than Taj Mahal in India to be seen. He chiefly focuses his writing about the different aspects of India. It contains some insightful details like history and importance. He is in his initial stage of travel where documentation is done to incorporate other dimension of travel activities. His knowledge about destination gives it a facet to incorporate more in accordance to tourism industry. Occasionally, he also writes about the culture, festivals of India in his blog named as "My India Travel". Concentrating more of people aspect provides us to incorporate people aspect of tourism industry to initiate a host angle to tourism activity.

Ajay Jain : Ajay began his rendezvous with travel in 2007 as a travel blog writer and photographer. His portal Kunzum is amongst the popular and dependable tourism information websites in India. The expert's appealing style of writing, exciting stories along with captivating images and videos has got the site many passionate followers.

Independent Input : In accordance to conceptual incorporation & dealing with the core theme of this initial paper writing; these few individual travel writers from India are selected on random basis chiefly concentrating on available online details, writing skills and there visibility on Online documentation of Destination/Tourism Development/Travel Enhancement/ Sprit Building for Travelling etc.

Undoubtedly there are various other Archeological, Historical & Cultural writers those are enhancing other dimensions of tourism industry subsequently; they further can be incorporated in this initial list in accordance of ours overall tourism development through travel writing.

There are numerous academicians who have overall understanding of different facets of tourism industry; they can be initiated to have a wider input to these initial writers in accordance to Ministry of Tourism, UNWTO, WTTC, IATA, PATA, IATO,TAAI, FHRAI etc. & with technical inputs, this incorporation can enhance these initial writing/ writers to another prospect of tourism industry in India.

References:

1. National Tourism Policy-2002, Ministry of Tourism, India.
2. Bhatia, A.K. (2003) Tourism Development: Principles and Practices. New Delhi: Sterling Publishers.
3. Sarkar, Arun Kumar (1998) Action Plan and Priorities in Tourism Development. New Delhi: Kanishka Publishers.
4. Sharma, Shashi Prabha (2004). Tourism Education: Principles, Theories and Practices. New Delhi:Kaniska Publishers
5. Richard, Swedberg. (2000) "The social science view of Entrepreneurship" New Delhi: Oxford University Press
6. Tourism Education: An Emerging Essential: Edited by: D.S. Bhardwaj, Krishan K. Kamra, Manjula Chaudhary, Ravi Bhushan Kumar, S.S.Published by Kanishka Publishers & Distributors, New Delhi (2006)
7. Gupta, Shalini (2012). Media & Tourism Centrum Press New Delhi - 110002
8. https://the-shooting-star.com
9. https://www.anureviews.com
10. https://www.romancingtheplanet.com
11. https://www.lakshmisharath.com
12. https://www.traveldiaryparnashree.com
13. https://www.arnabmaity.com
14. https://www.brenontheroad.com
15. https://www.shalusharma.com
16. https://www.siddharthajoshi.com
17. https://www.travelnthrill.com
18. https://www.indiblogger.in/ankionthemove
19. http://www.wanderink.com/about-wanderink
20. http://www.indiabackpackmotorbike.com/blog
21. https://sudhagee.com
22. http://desitraveler.com
23. http://www.talesofanomad.com
24. http://www.travelwithneelima.com
25. http://traveltalesfromindia.in
26. https://joshidaniel.com
27. http://indianbazaars.blogspot.in
28. http://isharethese.com
29. http://devilonwheels.com/contact-us
30. http://travel.bhushavali.com
31. http://www.paintedstork.com/index
32. http://www.myyatradiary.com
33. http://www.awanderingmind.in
34. http://www.inditales.com
35. http://aravindgj.blogspot.in
36. http://www.anitabora.com/blog
37. http://myindiantravel.blogspot.in
38. http://kunzum.com
39. http://tourism.gov.in (Ministry of Tourism)
40. http://www.incredibleindia.com

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 11-14

Electric Load Estimation and Installation Process of Solar Roof Top Solar Power Plant at Residential House in Haryana

Harsh Kadyan*

Abstract : *Energy is one of the main inputs for the financial development of any country. In the case of the developing countries like India, the energy area assumes a vital importance in view of the ever-increasing energy needs requiring big investments to meet them. For lowering value and growing efficiency, then use energy conservation, management and audit and shifting towards new energy sources like solar photovoltaic's technology is must also at the residential level in India. In the present study we estimate the total electricity consumption of residential house in Haryana state and planning and design of solar power plant on roof top.*

Introduction : In the past years, there was once a sharp amplify in both energy consumption and population, whilst the traditional power sources had been depleting fast with the upward push in price so; the attention is being paid to renewable electricity sources that consider more and extra pleasing choice energy. Solar energy, which is copious consider with wind electricity the high-quality preference as low cost energy sources in many applications. The solar has produced free energy for billions of years the place the photo voltaic radiation that intercepted by the Earth is a big amount of energy reach to around 1.8 ×1011MW[1]. There are a lot of renewable electricity sources such as wave, biomass, wind, solar and geothermal energy can be used for generation of electricity, but the Photovoltaic power has turn out to be increasingly essential as a renewable source due to the fact it is environmental friendly, non-polluting, not noisy, free in its availability, requiring little maintenance compared to other resources and convenient to expand. Therefore, these advantages make PV era beautiful for many applications, mainly in household and commercial sector in most of the growing countries.

Now a days, photo voltaic powered appliances are in fashion; from cell telephone charger to mega power plants photo voltaic energy is being utilized. Solar energy is suitable for mid-sized residential facility or small sized business facility .There are especially 3 sorts of solar machine configurations.

i. Off grid solar systems, ii. On grid Solar Systems, iii. Hybrid Solar Systems.

Off Grid Solar System : An off grid solar system is the one where main supply of power is solar power only. In this system, the major supply of energy is solar energy, the extra power is saved into battery bank, to be used in night time time. The off grid solar system includes of Solar Inverter, Battery Bank and Solar Panels.

On grid solar power plant : On grid solar structures are mostly installed in medium as properly as giant commercial units and are very popular in industrial sector. On Grid solar structures are properly perfect for any facility that has un-interrupted grid power. As this kind of solar structures only use solar power as most important source and grid as reference, there is no storing mechanism in the system. The extra energy is fed back into the grid, which is calculated at the end of every month by means of Net Metering, Feed in Tariff or Power Purchase agreement, whichever is applicable.

*Research Scholar, Centre of Excellence for Energy and Environmental Studies (CEEES), Deenbandhu Chhotu Ram University of Science & Technology, Murthal, (Sonepat), Haryana

The hybrid solar systems : The hybrid photo voltaic systems 'as the name suggests' is the mix of off grid and on grid solar systems. They use photo voltaic electricity as most important supply of power and meanwhile they save excess power into the battery bank. When battery bank are completely charged, the extra energy is then fed into the grid for net metering.

Material and method : The methodology adopted for this study follows:

Electric load estimation of house - Roof top area measurement - Planning and design of power plant - Installation and commissioning - Results and conclusions.

Electric load estimation: According to the layout of the house, we can analyze the consumption of the electricity in 24 hours by means of the lights and the main equipment's like fridge, fans, etc. The daily utilization design makes handy to understand the utilization of power in a specific day. The age of every equipment facts are collected to recognize the equipment age and their performance through the design. The average unit consumption of this residence is 540.5 units per month. From the above electric load calculations, it is found that the average units consumed per month is 540 units .if we are going for 5 Kw photovoltaic solar power plant on roof top then the average monthly units are 550-600 units production per month.

Roof top area and material required: For our requirement, approximately 50 square meter area is required on the roof top,that is available at the roof top of the owners house. The material requirement is in accordance to the specifications of our requirement of 5 kw solar power plant is as:

1 SPV modules for a total capacity of 5 kwp as per specifications : The total solar PV array capacity should not be less than 5 kwp and should comprise of polycrystalline of minimum 200 Wp and above wattage. Module capacity less than minimum 200 watts should not be supplied. The module type must be qualified as per IEC 61215/IS 14286 latest edition for Crystalline Silicon PV Module. SPV module conversion efficiency should be equal to or greater than 13 - 14 % under STC. Modules must qualify to IEC 61730 Part I and II for safety qualification testing.

The module shall be provided with a junction box with either provision of external screw terminal connection or sealed type and with arrangement for provision of by-pass diode. The box shall have hinged, weather proof lid with captive screws and cable gland entry points or may be of sealed type and IP65 rated

2 SPV module mounting structure suitable for accommodating 5 KWp capacity SPV modules including foundation as per specifications on roof of building : Wherever required, suitable number of PV panel structures shall be provided. Structures shall be of flat-plate design either I or L sections. Structural material shall be corrosion resistant and electrolytic compatible with the materials used in the module frame, its fasteners, and nuts and bolts. Galvanizing should meet ASTM A-123 hot dipped galvanizing or equivalent which provides at least spraying thickness of 70 microns on steel as per IS5905, if steel frame is used. Aluminum frame structures with adequate strength and in accordance with relevant BIS/ international standards can also be used. Structures shall be supplied complete with all members to be compatible for allowing easy installation at the rooftop site

3 PCUs/MPPT invertor as per specifications 1 No. / Set : The PCUs required shall be of 5 KVA Hybrid with provision for battery back-up, should convert DC power produced by SPV modules in to AC power and adjust the voltage & frequency levels to suit the local grid conditions. The 5 KVA Hybrid PCU with battery back- up shall feed power to the lighting / dedicated loads.

Common Technical Specification:

Control Type: Voltage source, microprocessor assisted, output regulation

Output voltage: 1 phase, 230 V ac (+12.5 %, - 20 % V ac)

Frequency: 50 Hz (+3 Hz, -3 Hz) **Continuous rating:** 5 KVA inverter

Nominal Power: 5 KVA, Total Harmonic Distortion: less than 3%, Operating temperature Range: 0 to 55 deg C.

Housing cabinet: PCU to be housed in suitable switch cabinet, Within IP 20 degree protection

4 Array Junction Boxes(1 Set) and Main Junction Boxes (1 Set) : The junction boxes are to be provided in the PV yard for termination of connecting cables. The J. Boxes shall be made of FRP/Powder Coated Aluminum with full dust, water & vermin proof arrangement. All wires/cables must be terminated through cable lugs. The J.Bs shall be such that input & output termination can be made through suitable cable glands. Made of FRP or cast aluminum/ copper. Copper bus bars/terminal blocks housed in the junction box with suitable termination threads Conforming to IP65 standards and IEC 62208 Hinged door with EPDM rubber gasket to prevent water entry. Single compression cable glands. Provision of earthing

5 Data logging systems with remote monitoring as per specification (1 Set) : Basically, this unit should perform the following. 1) Measurement and/or recording of energy parameters. 2) Simple data logger to record the energy data on a pre determined interval basis. 3) Measurement & continuous acquisition of ambient air temperature, wind speed, solar radiation, PV module temperature, PCU output voltage and current, output frequency. 4) Operating state monitoring and failure indication. 5) Representation of monitored data in graphics mode or in tabulation mode. 6) Controlling & monitoring the entire power system through remote terminal.

6 DC Distribution units as per Specifications (1 Set) : DC Distribution panel to receive the DC output from the array field with analog measurement meter for voltage, current and power from different MJBs so as to check any failure in the array field. DC DPBs shall have sheet from enclosure of dust & vermin proof. The bus bars are to made of copper of desired size. Suitable capacity MCBs be provided for controlling the DC power output to the PCU along with necessary surge arrestors.

7 AC Distribution units as per Specifications (1 Set) : AC Distribution Panel Board (DPB) shall control the AC power from PCU, and should have necessary surge arrestors. Requirement/specifications of DCDB and ACDB may be changed as per site conditions. An ACDB to be provided at the cable terminating point emanating from 5 KVA PCU for interconnection control of dedicated electrical loads.

8 Cables requirement as per design (mtrs) : Only FRLS copper wires of appropriate size and of reputed make shall have to be used. All connections are to be made through suitable cable/lug/terminals; crimped properly & with use of Cable Glands. All cable/wires are to be marked in proper manner by good quality ferule or by other means so that the cable can be easily identified. Any change in cabling schedule/sizes if desired by the bidder/ supplier be got approved after citing appropriate reasons, All cable schedules/layout drawings have to be got approved from 'he purchaser prior to installation. All cable tests and measurement methods should confirm to IEC 60189.

9 Fire extinguisher with sand buckets : Portable fire extinguishers in the control room for fire caused by electrical short circuits and Sand buckets in the control room.

10 Lightning arrester complete set as per Specification 1 set : There shall be the required number of suitable lightning arrestors installed in the array field. Lightning protection shall be provided by the use of metal oxide resistors and suitable earthing such that induced transients find an alternate route to earth. Protection shall meet the safety rules as per Indian Electricity Act.

11 Earthing complete set as per Specification 3 Set : Each array structure of the PV yard should be grounded properly. In addition the lighting arrester/masts should also be provided inside the array field. Provision should be kept be provided inside the array field.

Provision should be kept for shorting and grounding of the PV array at the time of maintenance work. All metal casing/shielding of the plant should be thoroughly grounded in accordance with Indian electricity Act./IE Rules. Earth resistance should be tested in presence of the representative of NRHM after earthing by calibrated earth tester. PCU ACDB & DCDB should be earthed properly.

12 Battery Bank as per specifications : The battery cells shall have high ampere hour efficiency so as to quickly pick up the charge of the order 95%. High watt hour efficiency of at least 85%. The batteries shall be solar photo voltaic batteries of Tubular Gel type, low maintenance, lead Acid and made of hard rubber container. Storage batteries should conform IEC 61427 / IS 1651 / IS 133369 as per specifications. The batteries shall use 2 / 12V cells and battery capacity is to be designed at C10 rate with end cell cut off voltage of 1.85 V / cell. Battery terminal shall be provided with covers. Batteries shall be provided with micro porous vent plugs with floats.

Installation and commissioning: The following points will be take care during installations.

a. Determination of true south at the site; b. Array tilt angle to the horizontal, with permitted tolerance; c. Details with drawings for fixing the modules; d. Details with drawings of fixing the junction/terminal boxes; e. Interconnection details inside the junction/terminal boxes; f. Structure installation details and drawings; g. Electrical grounding (earthing); h. Inter-panel/Inter-row distances with allowed tolerances; and i. Safety precautions to be taken.

The array structure shall support SPV modules at a given orientation and absorb and transfer the mechanical loads to the rooftop columns properly. All nuts and bolts shall be of very good quality stainless steel. After the array formation the d.c wires will pass through the dcdb .after dcdb d.c wires directly connected to invertor/pcu .The work of pcu/inverter is to convert the dc current into ac current which is feed to the main distribution of the house through the acdb protection device. Now the solar grid is used by the house first and if requirement is high then house used conventional electric grid or secondary source like batteries or electric generator.

Results: After the installation of 5kw solar power plant at owners house approximate energy consumption of the house is fulfilled by the solar power plant at the day time and night time by the storage batteries and conventional grid some times.

Future scope: calculations of the average monthly and yearly output of the power plant and also calculate the payback period of the solar photovoltaic power plant.

References :

1. Renewable energy sources & conservation technology-N.K.Bansal
2. Energy conservation in electrical system national conference on recent trends in engineering & technology organized by agnel polytechnic, vashi in association with iie zenith - 2009
3. Financial and economic aspects of energy saving within the framework of the csrc approach" workshop: "transnational energy saving networks"14 december 2005 vilnius, Lithuania
4. Energy Saving Opportunities for Transformers Hans De Keulenaer Outokumpu Tara Mines Energy Efficient Motors & Transformers Workshop

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 15-22

Morphometry using Remote Sensing and GIS Techniques in the Kopra Watershed of Sonar River Basin, M.P., India

Shashank Tripathi*, Ajad & S.K. Tripathi*****

Abstract : *The study area is a part of Sonar river basin in the Madhya Pradesh, India. It covers an area of 1011.36 km2. The drainage pattern of the watershed is delineated using Geo-coded FCC bands 2, 3, 4 of LandSAT 8 (Dated- 04 April 2018) on 1:50,000 scale and Survey of India toposheets as reference. The morphometric parameters are computed using ArcGIS 10.3 software. The drainage pattern of the study area is dendritic and some part of the study area is trellis pattern with stream orders ranging from I to III orders. Drainage density ranges from 0-13 km/km2 suggesting coarse to moderate drainage texture. The change in values of stream length ratio indicates their late youth stage of geomorphic development. The values of bifurcation ratio ranging from 0.726 to 3.025 indicate that the Bewash watershed fall under normal basin category. The values of form factor and circulatory ratio, suggest that the Bewash watershed is elongated. It is concluded that remote sensing and GIS have been proved to be efficient tools in drainage delineation and updation. In the present study these updated drainages have been used for the morphometric analysis.*

Introduction : Water, one of the vital natural resources for agricultural, is becoming deficient because of over-exploitation, poor groundwater recharge, immoderate use etc. Therefore, the study of morphometric characteristics assumes greater significance in developing the surface and groundwater resources more particularly in Central India. (Sahu, et.al, 2017)
Development of a drainage system and the flowing pattern over space and time are influenced by several variables (Horton 1945; Leopold and Maddock 1953; Abrahams 1984).

"Morphometry is the measurement and mathematical analysis of the configuration of the earth's surface, shape and dimension of its landforms" (Agarwal 1998; Obi Reddy et al. 2002). The morphometric analysis is done successfully through measurement of linear, aerial, relief, gradient of channel network and contributing ground slope of the basin (Nautiyal 1994; Nag and Chakraborty, 2003; Magesh et al. 2012).

A widely acknowledged principle of morphometry is that drainage basin morphology reflects various geological and geomorphological processes over time, as indicated by various morphometric studies (Horton 1945; Strahler 1952, 1964; Muller 1968; Shreve 1969; Evans 1972, 1984; Ohmori 1993; Cox 1994; Oguchi 1997; Hurtrez et al. 1999). It is well established that the influence of drainage morphometry is very significant in understanding the landform processes, soil physical properties and erosional characteristics.

The Geomorphic characteristics of a drainage basin are important for hydrological investigations involving the assessment of groundwater potential, watershed management and, environmental assessment. (Tiwari and Tripathi, 2018)

Drainage provides a basic to understand initial gradient, variation in rock resistance, structural control, geological and geomorphologic history of the drainage basin or watershed.

Evaluation of morphometric parameters requires the analysis of various drainage parameters such as ordering of the various streams, measurement of basin area and perimeter, length of drainage channels, drainage density (Dd), bifurcation ratio (Rb), stream length ratio

*Dept. of Physical Sciences, MGCGV, Chitrakoot, Satna, M.P., 485334
**Dept. of Physical Sciences, MGCGV, Chitrakoot, Satna, M.P., 485334
***Dept. of Energy & Environment, MGCGV, Chitrakoot, Satna, M.P., 485334

(RL), and relief ratio (Rh) (Rai et. al, 2017). Therefore, the present study aims at the morphometric analysis on watershed using Remote Sensing and GIS.

Study Area : The Kopra watershed is a part of Sonar river basin in the Madhya Pradesh (Fig. 1). Kopra watershed area is lie between 79°02'13.716" to 79°32'51.376"E longitudes and 23°25'41.757" to 24°02'55.932"N latitudes. The study area has Medium relief and steep slopes. Drainage Pattern of the study area shows parallel drainage pattern mostly in the WS-ES direction i.e. the major stream direction besides these each major stream shows the dendritic pattern. In some places it shows trellis pattern. These tributaries entered the main river at approx. 90° angle causing trellis like pattern. Generally it is found in granitic terrain. Parallel drainage depicts the structural control in the area. Bewash River is the tributary of Sonar River. Major rock types found in the study area are Granite gneiss, basic dyke and Quartzite (Granitoid Complex). Typical tropical climate prevails in the catchment for the better part of the year. Generally dry, except during the monsoon months. Generally, the study area experiences two seasons: dry (Dec wet (June-Nov). The study area receives about 880.0 mm rainfall annually. The Temperature of the area varies to 38° C. The elevation varies between 320 m in the North-East to 420 m above sea level in the center of the watershed at ridge, above 580 m above mean sea level at South-West.

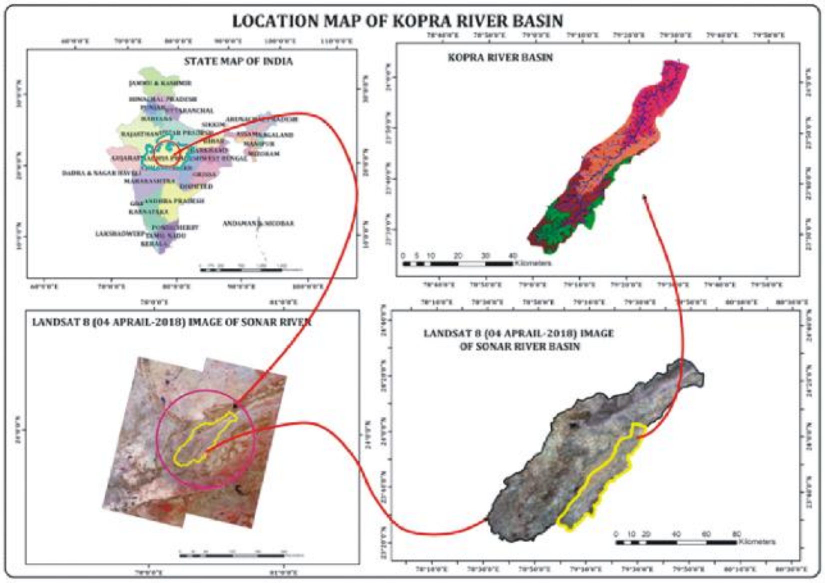

Fig. 1 Location Map of the Study Area

Methods of Investigation : The base map of the Kopra watershed a part of Sonar River basin was prepared based on Survey of India Topographic Maps on a 1:50,000 scale and also with LandSAT 8 (Dated- 04 April 2018) and SRTM (Shuttle Radar Topographic Mission, USGS) data. Global Mapper 15 was used for delineating the study area and exporting the information to DEM format. The SRTM DEM data was imported to ArcGIS 10.3, based on these data slope, aspect and contour map for the watershed was prepared. The drainage network of the watershed was prepared from Survey of India toposheets through ArcGIS 10.3 software. Based on the drainage order, the channels were classified according to drainage order following Strahler (1964). Watershed parameters, such as, area, perimeter, length, stream length, and stream order was also calculated. Later, these parameters were used to determine other influence factors, such as bifurcation ratio, Stream length ratio, stream frequency, drainage density, elongation ratio, circulatory ratio, form factor. Table 1 provides a list of the main parameters and, where appropriate, the formulae used to calculate them.

Table No. 1 Formulae adopted for Computation of Morphometric Parameters

S.N.	Morphometric Parameters	Formula	Reference
1	Stream order	Hierarchical rank	Strahler (1964)
2	Stream length (Lu)	Length of the stream	Horton (1945)
3	Mean stream length (Lsm)	Lsm =? Lu / Nu Where, Lsm = Mean stream length Lu = Total stream length of order 'u' Nu = Total no. of stream segments of order 'u'	Strahler (1964)
4	Stream length ratio (RL)	RL = Lu / Lu 1 Where, RL = Stream length ratio Lu = The total stream length of the order 'u' Lu 1 = The total stream length of its next lower order	Horton (1945)
5	Bifurcation ratio (Rb)	Rb = Nu / Nu + 1 Where, Rb = Bifurcation ratio Nu = Total no. of stream segments of order 'u' Nu + 1 = Number of segments of the next higher order	Schumn (1956)
6	Mean bifurcation ratio (Rbm)	Rbm = Average of bifurcation ratios of all orders	Strahler (1957)
7	Total Reliefs (in Meter)	Maximum Height-minimum Height	
8	Relief ratio (Rh)	Rh = H / Lb Where, Rh = Relief ratio H = Total relief (Relative relief) of the basin (km) Lb = Basin length	Schumm (1956)
9	Elongation ratio (Re)	Re = 2 / Lb Where, Re = Elongation ratio Lb = Basin length	Schumn (1956)
10	Drainage density (D)	D = Lu / A Where, D = Drainage density Lu = Total stream length of all orders A = Area of the basin (km^2)	Horton (1932)
11	Length of overland flow (Lg)	Lg = 1 / D * 2 Where, Lg = Length of overland flow D = Drainage density	Horton (1945)
12	Stream frequency (Fs)	Fs = Nu / A Where, Fs = Stream frequency Nu = Total no. of streams of all orders A = Area of the basin (km^2)	Horton (1932)
13	Texture Ratio (Rt)	Rt = Nu / P Where, Rt = Drainage texture Nu = Total no. of streams of all orders P = Perimeter (km)	Horton (1945)
14	Form factor (Rf)	Rf = A / Lb^2 Where, Rf = Form factor A = Area of the basin (km^2) Lb^2 = Square of basin length	Horton (1932)
15	Circularity ratio (Rc)	Rc = 4 * Pi * A / P^2 Where, Rc = Circularity ratio Pi = 'Pi' value i.e., 3.14 A = Area of the basin (km^2) P^2 = Square of the perimeter (km)	Miller (1953)

Table No. 2 Stream Parameter of Bewash Watershed

S.N.	**1**	**2**	**3**
Stream Order	I	II	III
Number of Stream	80	26	52
Length of Stream (Km.)	215.5648	71.2574	98.0375

Table No.3 Calculation of different Morphometric Parameters of Bewash Watershed

Watershed Name		Bewash Watershed
Area (Sq. Km.)		1011.36
Mean Stream Length in Km. (Lsm)	I	2.6946
	II	2.7407
	III	1.8853
Stream Length ratio (RL)	II/I	0.3305
	III/II	1.3758
Bifurcation Ratio (Rb)	I/II	3.02515
	II/III	0.7268
Mean Bifurcation Ratio (Rbm)		1.875975
Perimeter (P) in Km.		1980
Basin Length (Lb)		85.8728
Total Reliefs (meters)		260
Relief Ratio (Rh)		0.0030
Elongation Ratio (Re)		0.0232
Drainage Density (D) (Km/Sq. Km.)		0.3805
Length of overland flow (Lg)		1.3140
Stream Frequency (Fs)		0.1562
Texture Ratio (Rt)		0.0797
Form Factor (Rf)		0.1371
Circulatory Ratio (Rc)		0.0032

Morphometry : According to Clarke (1966), "Morphometry is the measurement and mathematical analysis of the configuration of the earth surface, shape and dimensions of its landforms". The morphometric analysis is carried out through measurement of linear, areal and relief aspects of the basin and slope contribution (Nag and Chakraborty, 2003).

The measurement of various morphometric parameters namely - stream order, stream length (Lu), mean stream length (Lsm), stream length ratio (RL), bifurcation ratio (Rb) mean bifurcation ratio (Rbm), relief ratio (Rh) drainage density (D), stream frequency (Fs) drainage fexture (Rt), form factor (Rf), circulatory ratio (Rc), elongation ratio (Re) length of overland flow (Lg) has been carried out and the data are presented in Table 3.

In the current study, the remote sensing data has been used for updation of drainages and the updated drainages have been used for morphometric analysis.

Stream Order : tHe designated stream order is the first step in the drainage basin analysis. In the present study, ranking of streams has been carried out based on the method proposed by Strahler (1964). The order-wise stream numbers, area and stream length of the Bewash watershed is presented in table 2. In this watershed I to IIIrd order streams existed. It is noticed that the maximum frequency is in case of first

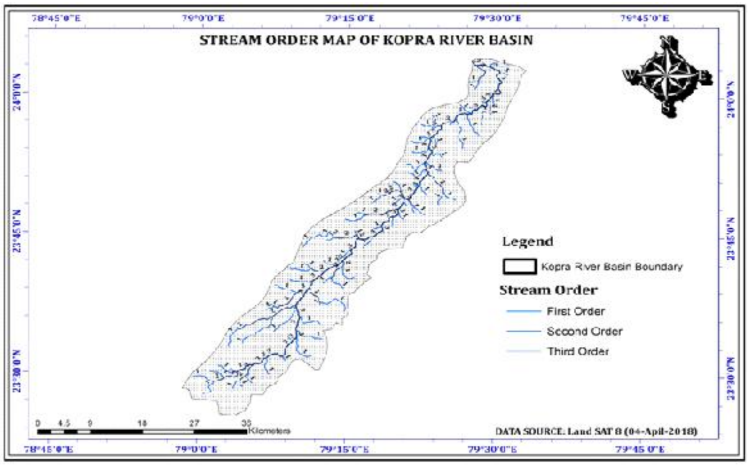

Fig. 2 Stream Order Map of the Study Area

order streams. It is also observed that there is a decrease in stream frequency as the stream order increases.

Stream Length : Stream length is measured from mouth of a river to drainage divide with the help of ArcGIS 10.3 software. This has been computed based on the law proposed by Horton (1945) for the study area. Generally, the total length of stream segments is maximum in first order streams and decreases as the stream order increases in the present case.

Mean Stream Length : "Mean stream length (Lsm) is a characteristic property related to the drainage network components and its associated basin surfaces" (Strahler, 1964). This has been calculated by dividing the total stream length of order (u) by the number of streams of segments in the order. The mean stream length is presented in Table 3. It is seen that, Lsm values exhibit variation from 1.8853 to 2.6946.

Stream Length Ratio : "Stream length ratio (RL) is the ratio of the mean length of the one order to the next lower order of the stream segments". The RL values are presented in Table 3. The stream length ratio between the streams of different orders of the study area shows a change in watershed. Stream length ratio of the study area between 0.3305 to 1.3758. This change might be attributed to variation in slope and topography, indicating the late youth stage of geomorphic development in the streams of the study area (Singh and Singh, 1997 and Vittala et al., 2004).

Bifurcation Ratio : According to Schumn (1956), "the term bifurcation ratio may be defined as the ratio of the number of the stream segments of given order to the number of segments of the next higher orders". Bifurcation ratio shows a small range of variation for different regions or for different environments except where the powerful geological control dominates (Strahler, 1957). The Rb values of study area (Table 3) indicate Rb values are not same from one order to next order. These differences are depending upon the geological and lithological development of the drainage basin (Strahler, 1964). In the study area, the higher values of Rb indicate a strong structural control in the drainage pattern whereas the lower values indicate that the watershed is less affected by structural disturbances (Stahler, 1964; Nag, 1998; Vittala et al., 2004 and Chopra et al., 2005).

The Rb value in the study area range from 0.7268 to 3.02515 indicating that watershed is falling under the normal basin category. (Strahler, 1957)

Relief Aspect : Relief is the elevation difference between the highest and lowest point on the valley floor of the region. The relief measurements like relief ratio, basin length and total relief have been carried out and the data are presented in Table 3.

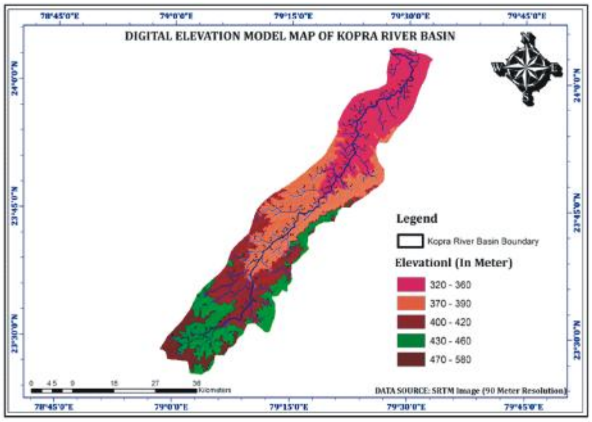

Fig. 3 DEM Map of the Study Area

Relief Ratio : "The maximum relief to horizontal distance along the longest dimension of the basin parallel to the principal drainage line is termed as relief ratio" (Schumn, 1956). Relief ratio has direct relationship between the relief and channel gradient. The relief ratio normally increases with decreasing drainage area and size of the watersheds of a given drainage basin (Gottaschalk, 1964).

In the study area, the value of relief ratio is 0.0030. It is observed that the Rh values increase with decreasing drainage area and size of a given drainage basin as proposed by Gottaschalk (1964).

Aerial Aspect : Aerial aspects include different morphometric parameters, like drainage density, texture ratio, stream frequency, form factor, circulatory ratio, elongation ratio and length of the overland flow. The values of these parameters are presented in Table 3 and discussed and interpreted.

Elongation Ratio : Elongation ratio is the ratio between the diameter of the circle of the same area as the drainage basin and the maximum length of the basin. The elongation ratio value of the study area is 0.0232. The elongation ratio values generally exhibit variation from 0.6 to 1.0 over a wide variety of climatic and geologic types. In case of Bewash watershed the elongation ratio is >0.02 indicating geologically controlled.

Drainage Density : "Drainage density is defined as the total length of streams of all orders per drainage area. Density factor is related to climate, type of rocks, relief, infiltration capacity, vegetation cover, surface roughness and run-off intensity index. Of these, surface roughness has no significant correlation with drainage density. The drainage density indicates the closeness of spacing of channels" (Horton, 1932).

The drainage density in the study area shows 0.3805 km.per km2 suggesting low drainage densities. This low drainage density of the study area suggests that it has highly permeable sub-soil and coarse drainage texture.

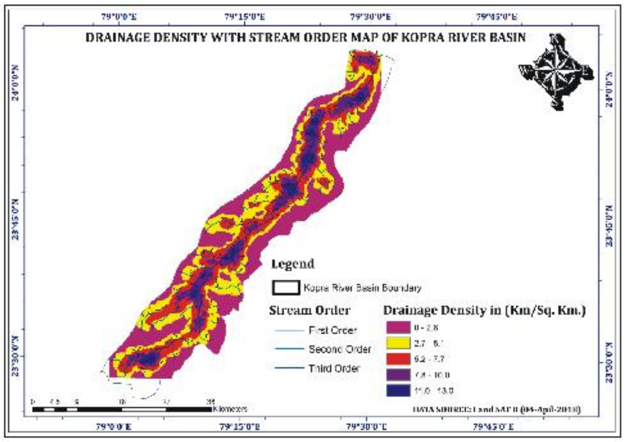

Fig. 4 Drainage Density Map of the Study Area

Length of overland Flow : "The length of overland flow (Lg) approximately equals to half of reciprocal of drainage density" (Horton, 1945). It is the length of water over the ground before it gets concentrated into definite stream channels. This factor basically relates inversely to the average slope of the channel and is quite synonymous with the length of the sheet flow to the large degree. The Lg value of the study area is 1.3140. The value of Lg is low in case of Bewash watershed indicating high relief.

Stream Frequency : "The total number of stream segments of all orders per unit area is known as stream frequency" (Horton, 1932). Hopefully, it is possible to have basins of same drainage density differing stream frequency and basins of the same stream frequency differing in drainage density.

The Fs value of the study area is presented in Table 3. Fs value of the study area is 0.1562. It is also seen that the drainage density value of the study area exhibits +ve correlation with the stream frequency suggesting that there is an increase in stream population with respect to increasing drainage density.

Drainage Texture Ratio : "Drainage texture is the total number of stream segments of all orders per perimeter of that area" (Horton, 1945). It is one of the important concepts of geomorphology which means that the relative spacing of drainage lines. Drainage lines are numerous over impermeable areas than permeable areas. According to Horton (1945), infiltration capacity as the single important factors which influences drainage texture and considered drainage texture which includes drainage density and stream frequency. The value of drainage texture ratio of the study area 0.0797. According to Smith (1950), five different drainage textures have been classified based on the drainage density. The drainage density less than 2

indicates very coarse, between 2 and 4 is related to coarse, between 4 and 6 is moderate, between 6 and 8 is fine and greater than 8 is very fine drainage texture. The Kopra watershed has low value of Rt indicating very coarse drainage texture.

Form Factor : "Form factor may be defined as the ratio of the area of the basin and square of basin length" (Horton, 1932). The value of form factor would always be greater than 0.78 for a perfectly circular basin. Smaller the value of form factor, more elongated will be the basin. Rf values of the study area is presented in Table 2. It is noted that the Rf value of watershed is 0.1371. The value of Rf (0.1371) in Kopra watershed indicate that Kopra sub-circular and elongated.

Circulatory Ratio : The circulatory ratio is mainly concerned with the length and frequency of streams, geological structures, land use/land cover, climate, relief and slope of the basin. It is the ratio of the area of the basins to the area of circle having the same circumference as the perimeter of the basin.

In the study area, the Rc value is 0.0032 suggesting that Kopra watershed is more or less circular in shape and is characterized by the high to moderate relief and the drainage system was structurally controlled.

Conclusion : Remote sensing and GIS techniques have proved to be efficient tools in drainage delineation and their updation. These updated drainages have been used for the morphometric analysis. The morphometric analysis was carried out through measurement of linear, areal and relief aspects of basins. The morphometric analysis of the drainage networks of the study area show dendritic and some part of the study area shows trellis pattern. The variation in stream length ratio might be due to change in slope and topography. The bifurcation ratio in the watershed indicates normal basin category and the presence of high drainage density. The value of stream frequency indicates +ve correlation with increasing stream population with respect to increasing drainage density. The values of form factor and circulatory ratio suggest that Pahuj watershed is elongated. Elongation ratio indicates that the study area fully geologic controlled.

References :

1. Abrahams AD (1984), Channel Networks: a Geomorphological Perspective. Water Resour Res, vol. 20, pp.161-168.
2. Agarwal CS (1998), Study of drainage pattern through aerial data in Naugarh area of Varanasi district U.P. J Indian Soc Remote Sens, vol. 24, no.4, pp.169-175.
3. Chopra R, Raman Deep Dhiman and Sharma PK (2005), Morphometric analysis of sub-watersheds in Gurudaspur district, Punjab using Remote Sensing and GIS techniques. J Indian Soc of Remote Sensing vol. 33, no.4, pp.531-539.
4. Clarke JI (1966), Morphometry from Maps, Essays in Geomorphology, Elsevier Publ. Co., New York. pp 235-274.
5. Cox RT (1994), Analysis of drainage-basin symmetry as a rapid technique to identify areas of possible quaternary tilt-block tectonics: an example from the Mississippi embayment. Geol Soc Am Bull, vol. 106, pp. 571-581.
6. Evans IS (1972), General geomorphometry, derivatives of altitude, and descriptive statistics. In: Chorley RJ (ed) Spatial analysis in geomorphology. Harper and Row, New York, pp 17-90.
7. Evans IS (1984), Correlation structures and factor analysis in the investigation of data dimensionality: statistical properties of the Wessex land surface, England. In: Proceedings of the Int. Symposium on Spatial Data Handling, Zurich., vol.1, Geographisches Institut, Universitat Zurich-Irchel. pp 98-116.
8. Gottschalk LC (1964), Reservior sedimentation in: VT Chow (ed) Hand book of Applied Hydrology. McGraw Hill Book Company, New York. Section 7-1.
9. Horton RE (1932), Drainage basin characteristics. Trans Am Geophys Union, vol.13, pp. 350-361.

10. Horton RE (1945), Erosional Development of Streams and their drainage basins; Hydrophysical approach to Quantitative Morphology. Geol Soc Am Bull vol. 56 pp. 275- 370.
11. Hurtrez JE, Sol C, Lucazeau F (1999) Effect of drainage area on hypsometry from an analysis of small-scale drainage basins in the Siwalik hills (central Nepal). Earth Surf Process Landform, vol.24, pp. 799-808.
12. Leopold LB, Maddock T (1953), The Hydraulic Geometry of Stream channels and some physiographic implications. USGS professional paper, vol. 252, pp.1-57.
13. Magesh NS, Chandrasekar N, Kaliraj S (2012), A GIS based Automated extraction tool for the Analysis of basin Morphometry. Bonfring Int J Ind Eng Manag Sci, vol. 2, no.1, pp.32-35.
14. Muller JE (1968), An introduction to the hydraulic and topographic sinuosity indexes. Ann Assoc Am Geogr, vol.58, pp.371-385.
15. Nag SK (1998), Morphometric analysis using remote sensing techniques in the Chaka sub-basin, Purulia district, West Bengal. J Indian Soc Remote Sensing, vol. 26, no.1&2, pp. 69-76.
16. Nag SK and Chakraborty S (2003), Influences of rock types and structures in the development of drainage network in hard rock area. J Indian Soc Remote Sensing vol. 31, no.1, pp. 25-35.
17. Nautiyal MD (1994), Morphometric Analysis of Drainage basin using Aerial Photographs, a case study of Khairkuli basin, District Dehradun, U.P. J Indian Soc Remote Sens, vol. 22, no.4, pp. 251-261.
18. Obi Reddy GE, Maji AK, Gajbhiye KS (2002), GIS for morphometric analysis of drainage basins. GIS lndia, vol. 4, no.11, pp. 9-14.
19. Oguchi T (1997) Drainage Density and Relative Relief in Humid Steep Mountains with frequent slope failure. Earth Surf Process Landf , vol.22, pp.107-120.
20. Ohmori H (1993), Changes in the Hypsometric Curve through Mountain building resulting from concurrent tectonics and denudation. Geomorphology, vol. 8, pp. 263-277.
21. Rai PK, Mohan K, Mishra S, Ahmad A and Mishra VN (2017), A GIS-based Approach in drainage Morphometric Analysis of Kanhar River Basin, India. Appl Water Sci, vol.7, pp. 217-231.
22. Sahu Nishu, Obi Reddy GP, Kumar Nirmal, Nagaraju MSS, Srivastava R and Singh SK (2017), Morphometric Analysis in Basaltic Terrain of Central India using GIS techniques; A case study. Appl Water Sci, vol. 7, pp. 2493-2499.
23. Schumn SA (1956), Evolution of drainage systems and slopes in Badlands at Perth Amboy. New Jersey. Geol Soc Am Bull, vol. 67, pp.597-646.
24. Singh S and Singh MC (1997) Morphometric analysis of Kanhar river basin. National Geographical J of India, vol. 43, no.1, pp.31-43.
25. Smith KG (1950), Standards for grading textures of erosional topography. Am J. Sci, vol. 248, pp. 655-668.
26. Shreve RW (1969), Stream lengths and basin areas in Topologically Random Channel networks. J Geol, vol. 77, pp. 397-414.
27. Strahler AN (1952), Hypsometric analysis of erosional topography. Bull Geol Soc Am, vol.63, no.11, pp. 1117-1142.
28. Strahler AN (1957), Quantitative analysis of watershed Geomorphology. Trans Am Geophys Union, vol. 38, pp.913-920.
29. Strahler AN (1964), Quantitative Geomorphology of Drainage basin and Channel networks. In: VT Chow (ed), Handbook of Applied Hydrology, McGraw Hill Book Company, New York, Section 4.
30. Tiwari Atul and Tripathi, SK (2018), Morphometric Evaluation of Barwa Tal Watershed a part of Jhansi district, U.P.; A GIS Approach. International J. of Current Advanced Research, vol. 7, no. 3, pp. 10453-10457.
31. Vittala SS, Govindaiah S and Honne Gowda H (2004), Morphometric analysis of sub-watersheds in the Pawagada area of Tumkur district, South India, using remote sensing and GIS techniques. J Indian Soc of Remote Sensing, vol. 32, no.4, pp. 351-362.

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 23-28

Digital Banking - An Indian Perspective

Surendra Kumar Verma*

Abstract : *Digital Banking may be viewed as adoption of various existing and emerging technologies by the banks, in concert with associated changes in internal operations as well as external relationships for providing superior customer services and experiences effectively and efficiently. In a present day banking is not only done by bank branches but it also done through branchless mode and this branchless banking is called digital banking. Digital banking is done through online or Internet, by cards and trailer machine. This paper discuss about the digital banking transaction in India and for this we collect data form secondary sources from the FY 2011-12 to FY 2016-17 and we also discuss the legal aspects and fraud in virtual banking in India. The paper concludes that all types of virtual transaction are increases year to year, but frauds are also increases in the same way. The paper also gives some suggestion for the betterment of the digital banking services.*

Introduction : The new innovative digital technologies and futuristic thought processes have given birth to whole new businesses and social dimensions. Projects such as Make in India and Digital India are now the buzzwords to a bright and sustainable industrial and financial progress of our nation. As part of its impetus for DIGITAL TRANSFORMATION in India, Government also encourages technology adoption / upgradation while providing connectivity with high speed bandwidth to every nook and corner of the country. This has exposed the full potential of the hitherto untapped market in India. Latest technology and service offerings in the new age Digital Payments space by the Banks, such as Unified Payments Infrastructure (UPI) including BHIM (Bharat Interface for Money) which is a Mobile App developed by National Payments Corporation of India (NPCI), Bharat Bill Payment System (BPSS), mobile money, e-wallets, payment aggregation etc. Information Technology has become a necessary tool in today's organizations. Banks today operate in a highly globalized, liberalized, privatized and a competitive environment. In order to survive in this environment banks have to use IT. These developments have created a new type of economy, which may be called the 'digital economy'. It is increasingly playing a significant role in improving the services in the banking industry. Indian banking industry has witnessed a tremendous development due to sweeping changes that are taking place in the information technology. The knowledge about financial transaction through online till lacking due to financial literacy among major portion customer based in India and only less than 25% of his total population in performing online transactions at present day.

What is digital banking?

Digital banking is a system where all the transactions of the bank are done online and there are no physical branches of the banks or branchless banking. It is the latest technological Breakthrough to provide the customers the ease of banking while on the go i.e. they don't have to personally walk into any bank branch and can operate ones account or other services online only. A digital bank represents a virtual process that includes online banking and beyond. As an

*Guest faculty ITS (MGKVP), MTTM MGKVP varanasi (up) India

end-to-end platform, digital banking must encompass the front end that consumers see, the back end that bankers see through their servers and admin control panels and the middleware that connects these nodes. Ultimately, a digital bank should facilitate all functional levels of banking on all service delivery platforms. In other words, it should have all the same functions as a head office, branch office, online service, bank cards, ATM and point of sale machines. Many types of bank account can be accessed virtually like checking accounts, savings accounts, viewing account statement, certificates of deposits, etc. thus, users mostly use virtual banks for many services like-checking the account balance, transfer funds, bill payments, etc. also, there is no banking hours and thus customers can operate their accounts at any time of the day. This is in a simpler, cheaper way at all the time irrespective of the clients. This is done through the growth and development of technology. Many banks also allow opening new accounts online. As there are no physical operations, so these banks have less overhead costs and can thus pass these savings to customers in form of higher rates of interest on savings, waiving off bank account fees.

In a simple word the digital banking offers following services-

1. Answering routine queries
2. Electronic fund transfer (EFT)
3. Electronic clearing system (ECS)
4. Debit and Credit cards
5. E - Ticket
6. Investment through electronic mode
7. Bill payment
8. Recharging your prepaid phone
9. E - shopping

The origin of digital banking in India is not so old. In 1991 when the new industrial policy and LPG (liberalization, privatization and globalization) policy is came then the economy is open for all over the world, market the entry of foreign bank they brought new technology with them, so this is the big challenge of India to compete with their new Technology and need of differentiation in products and services are felt. Thus in India, ICICI bank was the first bank which offered virtual based delivery channel, by kicking off its online services in 1960. Other private sector banks like Citibank, IndusInd bank and HDFC and Times bank (now part of HDFC bank) started offering internet services in 1999. State bank of India launched its services in July 2001. Other public sector banks like bank of Baroda, Allahabad bank, syndicate bank and bank of India, also rolled its services during the same time. Banks in India currently offers "Fully Transactional Websites" to their customers.

Objectives of the study-

The main objective of this study is are as under-

1- To know about the digital banking in India.

2- To evaluate the present status of the digital banking in India.

3- To find out the challenges and problems of the digital banking.

Research Methodology-

The study covers wide area of working of digital and various consequences while implementing the virtual banking services. For the purpose of effective analysis secondary sources hide books, journals, website and other government publication some part of the data analyzed and presented in the form of percentage.

Review of related literature-

Denial (1999), in his research paper, described e-banking as the newest delivery channel offered by the retail banks in many developing countries. The objective of the study was to analyze the current provision of electronic services of major retail banking organization in the

UK. The researcher through a questionnaire found that 25% banks in the UK were those already providing e-banking services, 50% banks were testing or developing such services while 25% were not prove accessibility and services at lower price.

Durkin and howcroft (2003) evaluated that the banker-customer relationship was improved through mobile, phone and internet banking. The authors found that new technology has made the banks very competitive and profitable and internet has played a key role in it. Perception of bankers and customers regarding the use of internet was examined. They pointed out that as consumer usage of remote bank delivery channels increases, relationship will become more important. Further, the combination of traditional and new delivery channels, if followed, can help to improve their productivity and profitability.

Calisir and Gumussoy (2008) compare the consumer perception of internet banking and other banking channels and report that internet banking, ATM and phone banking substitute each other.

Agwu (2008) opines that mobile phones are the most convenient mode to provide mass marketing of banking services as these devices have higher rate of acceptance and penetration even among less educated sections of people. In fact there are predictions that banking services through mobile devices could suitably replace brick and mortar branch banking in future.

Shukla and shukla (2011) stated that E-banking offers a higher level of convenience for convenience for managing one's finances even from one's bedroom. However, it continues to present challenges to financial security and personal privacy. Customers are advised not to share personal information like PIN numbers, password etc. with anyone, including employees of the bank; change ATM PIN and online login and transaction passwords on a regular basis; ensure that the logged in session is properly signed out.

Bahl, Sarita, (2012) determined that security and privacy issues are the big issue in e-banking. If security and privacy issues resolved, the future of electronic banking can be very prosperous.

Present scenario of digital banking in India-

According to the IAMAI (internet and Mobile Association of India) and IMRB International report on "Internet in India 2015", explain that India is the second highest user of internet, overtaking the US, with the 402 million users of Internet in December 2015 and its users has increased by 49% as compared to last year. China has the largest internet user base, with over 600 million users.

With the increase in the internet uses in India, the E-banking is also increases, we can say that people prefer virtual or branchless mode to do their banking activities, with this they can save their time, money and energy. The introduction of payment banks, small finance banks, and different types of payment modes like mobile wallet and prepaid cash cards have given a positive boost to the payment industry of India. The fast growth of internet penetration, smart phone, and e-commerce is complementing the card culture. E-transactions both by credit and debit cards is growing rapidly. In the last five years, India witnessed a multifold increase in the number of debit and credit card holders. From FY 2011 to FY 2015, the total number of debit cards issued grew at compound annual growth rate (GAGR) of 20.7%. In just one year of the NDA government (2014-2015), this number grew by more than 40% due to their ambitious Jan Dham Yogana. Similarly, world line Indian Card payment report 2104-15 highlights the credit cards base showing 9.8% growth last year and that 3% of digital transactions are done by alternative methods like mobile wallets and prepaid cash cards. Due to this, in India paperless transactions are increases as compare to transaction through bank branches and cheques, at the end of FY 2015, the reserve bank of India (RBI) revealed that in FY 2015, paper base transactions cleared though cheques amounted to 85 lakh crore (US$1.33

Trillion) while paperless transactions like Electronic Clearing System (ECS), debit and credit card payments, electronic fund transfer, card transactions, mobile transactions and prepaid instruments amounted to 92 lakh crore (US$1.43 Trillion). In a period of 18 months, prepaid payment Instruments (PPI) contributed to more than 40% of all Immediate Payment service (IMPS) transactions between banks and nonbanks connected to IMPS switch. This may be explained by this figure-

Volume (Million)					
Year	RTGS	Retail Electronic Clearing (ECS,NEFT,IMPS)	Cards (debit, Credit)	Prepaid Payment Instruments (m-Wallets, PPI cards, Paper Vouchers)	Mobile Banking
2015-16	98.4	3,141.5	10,038.7	748.0	389.5
2014-15	92.8	1,687.4	8,424.0	314.5	171.9
2013-14	81.1	1,108.3	7,219.1	133.6	94.7
2012-13	68.5	694.1	6,174.5	66.9	53.3
2011-12	55.1	512.4	5,731.6	30.6	25.6

Source: RBI data and Dun & Bradstreet Research

Table no. - 1 transaction through digital banking in India

Transaction through virtual banking type	No. of transaction (in million) year		Growth in %
	2011-12	2014-15	
ATM	5086.17	6459.43	27%
CREDIT CARD	320.42	615.42	92.07%
DEBIT CARD	540.23	808.13	49.59%
MOBILE BANKING	25.55	171.12	559.75%

Sources; Reserve Bank of India statistical data/ww.RBi.org.in

From this table it is observed that all types of virtual banking transaction is growing but high rate of growth is occurred in Mobile Banking because of the high use of smartphone in India. With the FY 2014-15 NEFT is 927.55 million and RTGS is 92.75 million. In India the State Bank of India (SBI) holds the majority of E-transactions. "At the SBI, about 69% of daily transactions happen through alternative channels, including the internet, ATM and mobile banking. It is observed that it is rising every year with more young people becoming our customers, said by Sunil Srivastava, deputy managing director (corporate strategy and new businesses), SBI. Many analysts think that E-payments networks have the potential to save at least 1% of GDP per year over paper based systems via high velocity, lower cost, and minimized friction.

Legal aspects of digital banking-

Digital banking is a popular and convenient method of doing online banking transactions. Till date there is no dedicated Virtual banking laws in India but the Reserve Bank of India (RBI) has issued some guidelines in this regard and issue time to time circular for this. The Indian government enacted the Information Technology Act, 2000, with effect from the 17th October 2000. To examine different aspects of Internet Baking RBI set up a committee on Internet Banking. The committee had focused on three major areas of Internet banking, Technology and secutity issues, letal issues and regulatory and supervisory issues. RBI had

accepted the suggestions and recommendations of the Working committee and accordingly issued guidelines to banks to implement internet banking in India. Dr. K.C. chakrabarty Committee including members from IIM, IDRBT, IIT and Reserve Bank prepared the IT vision Document- 2011-17,which provides an indicative road map i.e. guidelines to enhance the usage of It in the banking sector. A multi-layered security architecture comprising firewalls, filtering routers, encryption and digital certification ensures that customers account information is protected from unauthorized access. However, virtual banking guidelines in India by RBI are not sufficient to make the banks follow robust and required cyber security procedures. This means that Internet banking risks in India is high and even RBI acknowledged risks of virtual banking in India. Despite this position, banks in India are ignoring the cyber security due diligence requirements prescribed by RBI.The consumer protection Act is application to banking also in cases of frequent failure of ATM machine, non-compliance of security which results in hacking, and exuberant charges levied by bank for fund transfer, etc. Though these are covered under RBI circular, they should be brought within the purview of the legislation, which will be convenient to customer.

Challenges and opportunity in digital banking-

Challenges- Digital banking faces following challenges in the present year-

1- Less awareness about the virtual banking, is first and foremost challenge of the virtual banking, because in India banks are not proper able to explain the benefits and facilities of virtual banking and don't have any interest to explain the new technology of doing branchless banking.

2- The second is the security issue, because in India most of the people do not opt virtual or online banking because of the security concern. So it's a big challenge for marketers to make consumers satisfied regarding their security concerns, which may further increase the branchless banking use.

3- In India people do not have 100% trust on branchless transaction, they always think whether the transactions are successful or not, so this is also the big challenge for the virtual banking.

4- In India the literacy rate and awareness about the computer or internet operation is not up to mark means do not have 100%, so it challenge the use of banking.

Opportunities-

1- In the above stud we see India keeps second rank in internet uses, so this is the big opportunity and banking industry should enhance this opportunity to attract more internet users to adopt virtual banking services.

2- The use of virtual or branchless banking is beneficial for the banks because it reduces the cost of making various paper record, improves customer relation, increases the geographical reach of the bank etc. the benefits of virtual banking have become opportunities for the banks to manage their banking business a better way.

3- In India government always apply new scheme for this type of transaction and various government institutions like RBI, SEBI, IRDA and various other market players have taken a number of initiatives on financial education. They have prepared a school curriculum along with various topics including internet banking, banking product and services, net banking to educate the school students, college students, working executives, middle income group, home markets, retired personnel, self-help groups etc.

Digital Banking - a boon or bane

Going by the deep penetration within a relatively lesser turnaround time, state-of-the-art digital payment systems are now poised to take quantum leaps in this new era that is largely driven by the ubiquitous Internet. These disruptive dynamics and revenue models are literally

the new game changers - causing tangible and tactical shifts across major verticals. E-commerce and M-commerce success is largely attributed to the phenomenal growth of various digital payment technologies such as card payments, electronic fund transfers, payment gateways, ePayments, smart cards, mobile money wallets etc. Pivotal to embracing such new age payment systems are the people, technologies, and processes that have together created vast, robust and dependable networks and seamless systems that guarantee humongous transactional volumes at breakneck speed, with dependable security and counterchecks built around them.

Conclusion and suggestions-

From the above discussion it is inferred that India is the highly growing developing country and attract the global market as whole and launch new techniques and technology for the fast development of the county. Digital banking is one of the important reforms in Indian Banking industries the high growth of E-transactions in India is beneficial not only for the customer but also for the banks. Digital banking in India is an early stage due to the various challenges such as less awareness among the customer due to less literacy rate of India, security risk, cyber risk, and does not having the strong law for the E-transactions. But it is also true the government is always making efforts to make virtual transaction more safe and reliable. The effective use of virtual banking transactions can be achieved only by educating the rural masses through appropriate mechanism must be systematically followed and implemented by the apex bodies which are dealing with these types of services among all types of customer. To increase the digital transaction in country it is very important to make a better technology for this and also make good governance for regulation of digital banking. This make higher conformity in digital transaction, and increases the customers believe in digital banking.

References :

1. www.wikipedia.com
2. www.timesofindia.Indiatimes.com
3. www.ijsrp.org
4. www.rbi.org.in
5. www.indianresearchjournals.com
6. www.ictpc.blogspot.in
7. www.Investorswords.com/19244/virtual-bank.html
8. www.economictimes.Indiatimes.com
9. www.shodhganga.infibnet.ac.in
10. www.Businesstoday.in
11. RBI annual report and circulars
12. www.bsinesseconomics.in
13. The journal of internet banking and commerce

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 29-32

Gender Inequality in The Selected Plays of Vijay Tendulkar

Dr. Manisha*

With the twentieth century growing faster, it is time to review the major Indian writers writingin native languages-Tendulkar, Sarkar and others, whose ideas are presented through forceful. The plays of Vijay Tendulkar selected for the study seem to project in bright light the confinements of women in general and Indian woman in particular. At the same time, these plays depict the ways through which woman can have their independence. Tendulkar's plays represent the contemporary Indian woman's struggle to define and attain an autonomous selfhood. His female protagonists are at great pains to free themselves from the traditional constraints. The social and cultural change in the post-independence India has made woman somehow conscious of the need to define herself, her place in society and her surroundings. Through his plays, Tendulkar depicts the portrayal of the predicament of middleclass Indian women, their inner conflict and quest for identity. He highlights the issues pertaining to man woman relationship, marriage, sex and their exploitation. His female characters are not against the entire social system and values but they are not ready to accept them as they are. They are modern, strong and take bold decision to survive in the patriarchal society. In his writings, he has emphasised the issues of patriarchy, inter-caste marriage, family bond, female-male bond. He has portrayed his women protagonist as victims of biology, gender concept, domestic violence and circumstances English translations and have forced people to think over it.

Discriminatory attitude towards men and women have existed for generations affect the lives of both genders. Although the constitution of India has granted men and women equal rights, gender disparity still remains. Before nineteenth century, woman was treated as slave and second rate citizen. In spite of the introduction of democratic practice in all walks of life in modern society in the twentieth century, it is difficult to eradicate gender discrimination and oppressions. In support of the struggle of liberation and getting her deserving place in social, moral and economic arena of discriminating and unjustified male dominated system. Many novelists such as Mulk Raj Anand, Anita Desai, Kamala Das, Nayantara Sehgal, Shashi Deshpande and many play wrights such as Vijay Tendulkar have voiced their concerns on these serious issues. Vijay Tendulkar is ranked with great playwrights like Badal Sarcar, Girish Karnard and Mohan Rakesh.He has powerfully articulated the socio-political situations in his plays. He has expressed it by saying : As an individual or rather as a social being, I feel deeply involved in the existing state of my society (because I am affected by it though not immediately in some cases or not as much as some others are) and in my way brood over it. Once in a way I even do something to relieve myself of the tension and anxiety and agitation produced by this brooding. I participated in a protest meeting or dharma or mocha or a satyagragh. I align myself with some civil liberty organization...

As writer, I find myself persistently inquisitive nonconformist, ruthless, cold and brutal as compared to other committed and human...

As a social being, I am against all exploitation and I passionately feel that all exploitation must end...

As a writer, I feel fascinated by the violent exploiter and exploited relationship and obsessively delve into it instead of taking a position against it. That takes me to a point where I feel that the relationship is external fact of life however cruel, will never end. Not that, I relish this thought while it grips me but I cannot shake it off. (Tendulkar 92).

*Assistant Professor, Department of English, Government College, Jassia

Viay Tendulkar emerged as a rebel against the established values of a fundamentally Orthodox society with the production of successful novels .He has become an important spokesperson for the suppressed women. Many of his plays present the position of women in the contemporary modern society. Plays like Kamala, Silence! The Court is in Session ,The Vultures and His Fifth Women bitterly criticises the status of women in the patriarchal society .His women characters are in the course of play gain knowledge, strive to gain freedom and dignity and the so called modern men's true colours are brought to forefront.

Vijay Tendulkar chooses the title "Silence! The Court is in Session" to make a powerful comment on a society with a heavy patriarchal bias that makes justice impossible. In this play we find how Leela Benare became the victim of sadism of his male counterparts. She is a woman, who is modern, independent, free-thinking, who loves life, but happens to fall in love with a man who loves only her body and gets impregnated by him. Through this most powerful play, Tendulkar exposes the hypocrisy the male chauvinists. Though the frustrated male members try to subjugate women to prove their power in social hierarchy, Miss.Benare desperately fights against the oppressive power structure. The play further shows how law operates in silencing the voice of women. Miss.Benare is presented as an extraordinary and crucial character in the play. She is a young middle class woman of thirty four years, who is working as a teacher to earn her livelihood. Her admiration for her profession is shown when she says to Samant:

I never had been behind with my lesion! Exercises corrected on time too ,not a bit of room for disapproval ,I don't give an inch of it to anyone! (Silence...4).

Benare wants to be free from patriarchal dominance and conservative norms of the society. She displays self-determinations, self-assertiveness and cynicism but is also receptive to the conventional norms of integrity. Tendulkar throws light on the character of Benare, through the conversation Benare and Samant.

Balu Rokde, Ponkshe, Karik and Samant want to rehearse the drama, a mock-trial and also find it as an opportunity to dig up Benara's past life. They form a group to torture Benare. She is charged as a licentious woman, who is always ready to sell her body. She is even charged to share an illicit relationship with her maternal uncle. She explains the way in which she was abused by her own maternal uncle at the age of just fourteen. Benare says:

Why, I was hardly fourteen! I didn't even know what sin was, Ididn't! I insisted on marriage. So I could live my beautiful lovely dreams openly...But all of them -my mother too-were against it, and my brave man turned trial and ran. (Silence... 74).

When she remembers her uncle she says: Life is a poisonous snake that bites itself. Life is a betrayal,life is a fraud. Life is a drug. Life is drudgery...Life is a dreadful thing... (Silence...75).

Benare studied and became a teacher. In spite of previous failure in a love with her maternal uncle, she fell in love with Prof.Damle, who was a married man and wanted to satisfy his bodily thrust. She was discharged from her school due to her pregnancy without marriage. Mr.Nane Saheb Shinde, the chairman of the education society failed to drop an enquiry against her. According to Benare: Again I fell in love. As a grown woman, I throw all my heart into it. I thought this will be different. This love is intelligent. It is love for an unusual intellect. It is not love at all-it is worship! But it was the same mistake. I offered up my body on the altar of my worship. And my intellectual god took the offering and went his way. He didn't want my mind, or my devotion- he didn't care about them! He was not a God. He was a man. For him, everything was the body, for the body? That is all (Silence... 73-74).

She pleaded in front of Rokde and Ponkshe for marrying her but the proposal was shorn of by them. Here Tendulkar picturises the unjust male dominating society. The court allows Prof.Damle to enjoy his married life and does not accuse him to exploit and abuse the life of a woman. Benare is accused in the court without the presence of Prof.Damle. This depicts the condemnation on the Indian society and the prejudices it carries against women.

Benare has always kept her professional life away from her personal life as she wants to be loyal to her profession. It is evident from her statement: just put my whole life into

working with the children... I loved it, I taught them well... Emotion is something people talk about with sentiment. It was obvious to me. I was living through it. It was burning through me. Buy do you know? I did not teach any of this to those tender; young souls. I swallowed the poison, but did not let the drop of it touch them. I taught them beauty. I taught them purity. I cried inside and made them laugh. I was cracking up with despair and I taught them hope. (Silence... 75-76).

The judge, Mr.Kashikar orders Benare to abort her child. According to him, to have the child without marriage is against the tradition of Indian culture. She screamed to this: No! No! No! I won't let you do it. I won't let it happen, I won't let it happen. (Silence...76).

The court of law, the magistrate and the judge who are supposed to be the honourable men, protectors and guardians of law and justice, fail in their duty to protect the innocent girl. In contrast the judge, Mr.Kashikar orders Benare to abort her child. According to him, to have the child without marriage is against the tradition of Indian culture. The judgement to Benare seems to be absurd. Though Benare shows her opposition in the beginning of the play, at the end she begins to realise her inability. She remains silent instead of attacking those vultures of patriarchy. She is made to feel handicapped only because she is a woman. Benare is a prey of male chauvinism, used simply to gratify the quench for bodily thirst and deserted at the end of her own destiny. She represents all the women in India. who are suppressed, oppressed and marginalised. The play dwells on an extremely sensitive, social and political issue, namely, the conflict between the male chauvinists and an individual woman. Tendulkar as a best dramatist introduces a play within -the play in the form of' mock-trial, which helps him satirises the male dominated society.

Tendulkar depicts the male chauvinism in his novel Kamala. The entire activity in Sarita's day-to-day schedule is based on furthering Jaisingh as her own commonsense dictates. When Sarita dutifully answers the numerous calls in her most courteous manner, like a trained telephone operator and makes a note of the details, Kakasaheb advises: How many are you going to write down? If it's any one important, they'll tell you their names. If they don't, you can happily assume they're not important. (Kamala3).

Sarita's reply to these sensible words shows how Jaisingh dominates her even in trivial matters. So that he may utilise her like a servant. "That's the way you see it. My husband sees it differently. If I say they didn't tell their names he gets angry with me for not seeking".(Tendulkar 3) . Sarita is important to him only because she provides him domestic comforts like preparing his bath, making tea for him and washing his clothes. He does not consider it important enough to speak to her or inform her of his dangerous plan of buying Kamala. Sarita is repulsed by his heartless act of buying Kamala but she is able to show her opposition only in bed by not responding to his sexual advances.

Sarita's dialogue with Jaisingh proves that she is trying to find a way out from her slavery after he bought Kamala. She wilfully refuses to accompany him to the party just because he compels her authoritatively to comply with his demand. She is angry with him at the manner in which he has disposed of Kamala without any concern for her feelings or wishes. She protests mildly in the following manner:

JAISINGH. Don,t you want to come to the party?
SARITA. No.
JAISINGH. You don't to come, why?
SARITA. That's my will.
JAISINGH. (Rather surprised) Your will?
SARITA. Aren't I allowed to have will of my own?

JAISINGH. (Sarcastically) Never noticed any signs of it before. If you didn't want to come, you could atleast have told me earlier. They wouldn't have accepted for both of us.

SARITA. Did you ask me?
JAISINGH. Of course! I left a message with Kamalabai.
SARITA. That isn't called asking.
JAISINGH.You could have phoned me back.
SARITA.You could have waited till I come on the phone.
JAISINGH. I was busy.
SARITA. Ididn't like phoning you.

JAISINGH. What's special about your feeling today...? (Kamala 45).

When Sarita is explaining her feelings to kakasaheeb, Jaisingh does not wait for her reply. Kamala is a naive villager who believes that she has been bought by Jaisingh and that she would have to live with him and serve him for the rest of her life. Sarita is upset at the shabby treatment meted out by Jaisingh . Jaisingh would not allow Kamala to bathe or change her clothes, though the latter is ashamed of her shabby appearance at the press conference. As he wants to present Kamala as shabby and pathetic in the press conference, he doesn't bother about her. His manner of talking to Kamala and dealing with her is in no way different from that of medieval lord.

JAISINGH. Kamala, we will have to go together. If I go alone' they will be angry.

They'll ask where is Kamala?

KAMALA. Tell them, she had a long journey. She is ill. Really tell them that.

JAISINGH. You will have to come Kamala.

KAMALA. I'm your servant, master. But I won't come today. I'll come tomorrow, or day after. As soon as I'm well...

JAISINGH .Kamala, you won't obey me?

KAMALA. How can that be? You are Kamala's master.

JAISINGH. I order you to come there with me, today.

(Kamala is silent) (Kamala 20).

Jaisingh is adamant in sending Kamala to orphanage, while Sarita wants Kamala to stay in their house. He ignores Sarita and says: ' It's I who take decisions in this house and no one else. Do you understand? Chalo Kamala... (Kamala 42).

Kamalabai , the servant is the third woman character, who is exploited by Jaisingh. Though Saritha is socially superior her life is not different from that of Kamalabai. Jaisingh has no concern for the feelings of both. He feels that it is their duty to serve him, no matter what they feel about his order to them. He is very rude to Kamalabai, mocks at her and calls her "stupid" in an ungentle manly manner. He is also highly authoritative as it is obviously seen in the following dialogue: JAISINGH. Kamalabai, tea for Kakasaheb.

KAKASAHEB. I'll have my tea with Saita. Why trouble Kamalabai three times? JAISINGH. What trouble? It's no trouble that's what Kamalabai is here for. We pay that (Kamala 36). Jaisingh's dominating attitude as one of the male character is nothing unusual in theIndian society. Every married man treats his wife in more or less the same manner. Tendulkar's view of this situation is expressed through Kakasaheb's words to Sarita, "Look Sarita, Jaisingh is no different from other men. He's not unusual. You're wrong to think he is a bad man". (Kamala 46).

Tendulkar reflects the actualities of life and tries to reawaken awareness of the permanent realities of contemporary Indian life through his novels. His plays are satire on today's society and the position of women in such a society. He offers no solutions but conveys the message that women must awaken to their rights.

References :

1. Dhawan,R.K.ed.Indian literature Today Vol.1 Drama and Fiction. New Delhi: Prestige Books. 1994.
2. Tendulkar,Vijay. Five Plays. New Delhi:Oxford University Press, 1992.
3. Tendulkar,Vijay. A Testament in Indian Literature. No. 147, Jan-Feb, pp.92.
4. http://www.123helpme.com/view.asp?id=93074
5. http://literarism.blogspot.in/2012/02/silence-court-is in session.html?m=1
6. Beaviour, Simone, D. The Second Sex. New York: Vintage Book. 1949.
7. Chakravarti, Uma. Conceptualising Brahmanical Patriarchy in Early India:
8. Gender, Caste, Class and State. Economic and Political Weekly, Vol.28, No. 14 1993.
9. Lodge, D & Nigel, W. (Ed.). Modern Critism and Theory: A Reader (third ed.). ew York & London: Routledge. 2008.

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 33-35

The Feminist Theory in Asia

Romee Maurya*

Abstract: *The feminist theory in Asia has found its supporters in some great thinkers such as Uma Narayan, Chandra Talpade Mohanty, Leila Ahmed, Gayatri Chakravorty Spivak and Trinh T. Minh-ha.*

Key words : Third-World feminist, Westernization, Radical feminist philosopher ,Third World countries.

Uma Narayan is a well acclaimed feminist scholar of Indian origin. She is the author of *'Dislocating Cultures: Identities, Traditions and Third World Feminism'* which is considered to be an important book on Third World Feminism.

Narayan describes the challenges of defining oneself intellectually and politically as a Third-World feminist. She argues that feminist perspectives are not 'foreign' to Third-World national contexts. However, she says that the mainstream feminists have always projected us as occupying a suspect location and they view their perspectives as suspiciously tainted and problematic products of our "Westernization".[1]

She confesses that having lived on and off in India and other Western countries makes her situation problematic when she tries to call herself as a Third World feminist. However, she asserts that one can be called as a Third World feminist even if he/she is not living/ confined only within the borders of Third World countries:

Calling myself a "Third-World feminist" is problematic only when the term is understood narrowly, to refer exclusively to feminists living and functioning within Third-World countries, as it sometimes is. But, like many terms, "Third-World feminist" has a number of current usages. Some feminists of communities of color in Western contexts have also applied the term "Third World" to themselves, their communities, and their politics, to call political attention to similarities in the locations of, and problems faced by, their communities and communities in Third World countries. As a feminist of color living in the United States, I continue to be a "Third-World feminist" in this broader sense of the term.[2]

Thus, Narayan makes clear that one can be called a Third World feminist even by living physically/geographically in non Third World countries. She gives three personal reasons in *Dislocating Cultures* to be called herself as a Third World feminist:

First, having lived the first quarter-century of my life in Third-World countries, and having come of age politically in such contexts, a significant part of my sensibilities and political horizons are indelibly shaped by Third World national realities. Second, this essay is an attempt to explicate the ways in which the concerns and analyses of Third-World feminists are rooted in and responsive to the problems women face within their national contexts, and to argue that they are not simpleminded emulations of Western feminist political concerns. I need to speak "as an insider" to make my point, even as I attempt to complicate the sense of what it is to inhabit a culture. Finally, though calling myself a Third-World feminist is subject to qualification and meditation, it is no more so than many labels one might attach to oneself-no more so than calling myself an Indian, a feminist, or a woman, for that matter, since all these identities are not simple givens but open to complex ways of being inhabited,

*Research Scholar, Department of Sociology, Raja Shrikrishna P.G. College, Jaunpur, U.P.

and do not guarantee many specific experiences or concerns, even as they shape one's life in powerful ways.[3]

Narayan is very critical of Western feminism for its portrayal of Third World feminism as a copy of the West. She counters the contention of Western or First World feminists that Third World feminism has originated from the so called modernist West. She says that "for many Third World feminists, our feminist consciousness is not a hot-house bloom grown in the alien atmosphere of "foreign" ideas, but has its roots much closer to home".[4] Third World feminist issues are not "foreign imports" or "Westernized agendas", as Narayan claims. They are rooted in the respective cultures of Third World countries and the life experiences of Third World women. She argues that "Third-World feminism is not a mindless mimicking of "Western agendas" in one clear and simple sense-that, for instance, Indian feminism is clearly a response to issues specifically confronting many *Indian* women".[5]

She provides an historical account of why Third World feminists are charged of 'Westernization'. For Narayan, colonialism has played an important role in shaping a contrast picture of both the Western culture as well as the indigenous cultures of the Third World countries. The pictures of different cultures and cultural values were idealized and totalized constructions. Therefore, though Western countries were actively and extensively engaged in colonization and slavery, they projected their culture as superior being based on the ideas of liberty and equality. On the other hand, the culture of Third World countries, for example India was portrayed as inferior and "often problematically equated with aspects of upper-caste Hindu culture, ignoring the actual cultural and religious diversity of the Indian population".[6] The West equated upper-caste Hindu religious culture as Indian culture which was nothing but a distortion of reality. Western culture was considered to be progressive and open while Third World colonized cultures were often seen as inert and static cultures paralyzed by tradition and on the verge of decline.

Women of both the cultures are situated in a juxtaposed cultural setting. "Views of gender, and of norms and practices affecting women, were seen as central to this contrast."[7]Women's 'roles' and 'culture specific values' were used to polarize women on the basis of their race and nationality. Third World women were represented as 'colonized women'. The practices of veiling, polygamy, sati, dowry murder and child marriage etc. became the points of negotiation and conflict between the two cultures. "The figure of the colonized woman became a representation of the oppressiveness of the entire "cultural tradition" of the colony."[8]

Here, Narayan has problems with the Western feminists' misrepresentation of these anti-woman practices which they deliberately generalize as 'Third World traditions' and 'Third World cultural practices'. She asserts that "while Western cultural contexts are represented both as spaces of historical change and internal complexity, Third-World contexts tend to be portrayed as places where "time stands still" and where "one culture rules all."[9] This failure on the part of Western feminists to address the cultural specific contexts of Third World women produces two distinct contrasts between how Western women and women of the Third World are very often represented by feminists of the First World. She explains that

First, largely as a result of critiques of mainstream Western feminism by feminists of color, there is a great deal more caution about generalizing about categories such as "American women" or "European women" without attending to specificities such as class, race, ethnicity, sexual orientation, and religion. However, this lesson of caution about generalization is often quickly forgotten when it comes to "Third-World women"….The second difference is that problems that affect particular groups of Third-World women are more often assumed to be primarily, if not entirely, results of an imagined and unitary complex

called "their Traditions/ Religions/ Cultures"-where these terms are represented as virtually synonymous with each other. As a result, problems that have very little to do with traditions, religions, or culture are represented as if they are the effects of this imagined complex, reinforcing "ethnic" stereotypes and completely misrepresenting the real nature of these problems."[10]

It is in this context that Narayan gives a particular example of the misrepresentation of the practice of *Sati* in India by Mary Daly, an American Radical feminist philosopher. In her book *Gyn/Ecology: The Metaethics of Radical Feminism*, Daly has written a chapter on *Indian Sutee* in which she represents Sati as a 'Hindu practice' which is "endorsed by all versions of Hinduism and engaged in by all Hindus".[11] Though Narayan credits Daly for criticizing discussions of *Sati* by Western scholars, she shows how Western feminism is often influenced by colonial views of the Third World. Daly's colonialist assumption becomes obvious when she states that Third World nations are culturally stagnant unlike the progressive West which leads her to the history of cultural practices in India.

Narayan is against the portrayal of Third World women as victims of their particular culture and their subsequent 'death by culture' because Western feminists differently invoke culture when they explain different forms of violence against Third World women.[12] She states:

... there is a marked tendency to proffer "cultural explanations" for problems within communities of color within Western contexts more readily than there is to proffer "cultural explanations" for similar problems within mainstream Western communities. For instance, female-headed households, teenage motherhood, and welfare dependency have been attributed to "cultural pathologies" within the African American community while "white culture" is seldom indicted for these same problems when they occur in white communities.[13]

References :

1. See Uma Narayan, *Dislocating Cultures: Identities, Traditions and Third-World Feminism*, New York, Routledge, 1997.
2. Ibid., pp. 3-4.
3. Ibid., pp. 4-5.
4. Ibid., p. 6.
5. Ibid., p. 13.
6. Ibid., p. 15.
7. Ibid., p. 14.
8. Ibid., p. 17.
9. Ibid., p. 50.
10. Ibid., p. 50.
11. Ibid., p. 52.
12. Ibid., pp. 84-85.
13. Ibid., pp. 87-88.

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 36-37

Health Care Problems of Tribes in India: A Review Article

Km. Gayatri Maurya*

Abstract : *Generally tribe is a human social group who lives separately in hard areas like forest,hilly or pleatue region in different parts of the country.They are far away from the development. Basically they survive in very primitive stage. Means of their livelihood are mostly food gathering, nomadic herding,animal husbandry and primitive agriculture.Tribal health is influenced by their beliefs,culture, customs and values. The article presents a review of problems of health care of tribal people in India and tries to give some remedial measures for the betterment of the health of tribes of India.*

Health can be regarded as a state of physical mental and social well-being.Health is function of not only medical care but also of the overall aspects of the development like social, economical, political and educational etc.In our country there is a marked progress in the field of diagnostic, curative and preventive health,there are still people living in isolation and unpolluted surroundings far away from civilization with their traditional values and customs,beliefs and myths. According to 2011 census there is 8.61% total tribes in India.Major tribes in India are Gond,Santhol,Ho,Uraon etc. The health status of tribal population is very low due to primitive based livelihood,low level of poverty,extreme economic and educational backwardness, lower level of technology, unhygienic environment leads tribal health problems. The tribal people in India have their own traditional medicine system still they suffer from many distinct health problems because of their own life style, food habits, beliefs, traditional and socio-economic, and socio cultural activities. Studies by scholars indicates that there is a need to do scientific study of traditional tribal medicine and healing system and combine them with modern allopathic system to make available and affordable health care for tribal people.

Disease burden among the tribles : The health and nutrition problem in tribal people is common like other part in India. Conventionaldisease mostly occur in them due to interventions of disease causing agents,directly,some other reason also result ill health among them.

Communicable disease : The communicable disease spread through direct contact on indirect agent like breathing,sputum, stool,saliva,urine etc. There are many communicable disease found in the tribles of Indialikewisetuberculosis, hepatitis, sexually transmitted disease(STD),malaria, filaria,diarrhea, cough, jaundice etc. which is spreading due to lack of sanitation, care and unhygienic practices.

Non Communicable disease (NCD) : A non-communicable disease is a medical condition which is not caused by infection and mostly considered chronic disease(last for long periods) like asthma, diabetes, Alzheimer's ,cancer, stroke, chronic lung disease, and heart disease etc. Tribe's nutritionalbehaviors are very deficient in vitamin A, Calcium, Vitamin C, riboflavin and animal protein.Micronutrient deficiency in them leads to nutritional disorders and diarrhea.

Women health : Women health and maternal health among tribal people is very severe like counter part of the country due to higher level of illiteracy, lack of awareness,lack of nutrition and economical weaknesses too.Tribal women are generally engaged in hard work, labor practices even in their pregnancy and ill health which leads many complications for their

*Asst. Professor, Dept. of Geography, B.S. College, Lohardaga, Ranchi

health and maternal healthcare. Anemia,leucorrhea, weaknesses are mostly found in women and child in both tribal and rural part of India. Maternal mortality rate infant mortality rate is also higher in the tribal and rural areas of the poor states like Jharkhand, Odisha, Chhattisgarh, Rajasthan, Haryana, Jammu and Kashmir etc.

Generic Disorders : Generic disorder is caused mostly by abnormality in gene especially sickle cell disease,G6PD deficiency etc. are the example of generic disorders.Sickle cell disease (SCD) is a group of blood disorders typically inherited from a person's parents. The most common type is known as sickle cell anemia (SCA). It results in an abnormality in the oxygen-carrying protein hemoglobin found in red blood cells.G6PD deficiency is a genetic disorder that most often affects males. It happens when the body doesn't have enough of an enzyme called glucose-6-phosphate dehydrogenase (G6PD). G6PD helps red blood cells work. It also protects them from substances in the blood harms health.

Conclusion

It is known that health is one of the most important parameter of the development for a Nation or society. Since tribal group of India has a remarkable figure in demography and economical development of the country so it becomes very essential to look after the problems of tribal health especially women and maternal health. Tribal people of India has very severe health condition they are suffering from many communicable, non-communicable diseases though they have their own traditional health care system but it is not very helpful for cure of the all type of diseases. Traditional health care system of the tribal group is disappearing day by day because of the modern world influence. Thus it becomes very necessary for the developer and planners to run health awareness program, tribal health awareness programs, to enhance status of their education and health education to strengthen the health of the tribal people. It's also very necessary to combine traditional health care system and the modern allopathic system to reduce the health care problems of the tribal people of India.

References :

1. Naidu, K.V. (2015) "Tribals Health Care Problems in India: An Overview," International journal of multidisciplinary Advanced Research Trends, vol.II, No.2 (3), October, Page no.49-52., Accessed from www.ijmart.in/priveousissues/Sep-2015/7.pdf date10/04/2017.
2. World Bank Report (1994) Social Determinants of Women Health.
3. World Bank Report (2008) Health Status of Tribal Women Govt. of India.

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 38-42

Role of Adult Educators with the Changing Learning Contexts and Senior Citizens

Pushpa Kumari*, Pawan Sahu, Geetanjali Baswani*****

Abstract : *Adult educators are people with specialized knowledge, skills or interests in specific fields, practicing the profession of facilitating the learning of adult learners. Adult learners usually attend by choice and are thus highly motivated. Also, being custodian of culture and traditional knowledge, they bring years of experience to the classroom, which makes teaching these learners rewarding and satisfying. Adults have preconceived notions about education, learning styles and subject matter. Adult learners possess different needs, interests, expertise and experiences (Knowles, 1980). This necessitates adult educators to modify their roles and methods in response to meet the learner's diverse individual characteristics. Adult educators need to adapt their philosophy and roles to facilitate adult learners' transformative and experiential learning.*

This paper overviewed the policies for older people (60+) in India and discussed whether the training of the adult educators enable them to utilize innovative methods to deliver the content in an effective and efficient manner by creating and managing appropriate learning context with older learners.

Content Analysis done using secondary data collected from Ministry of Statistics and Programme Implementation (Govt. of India), Policy documents for the aged, and from the institutions facilitating older people (India).

This analytical study highlighted the lacunas and the strengths of the training of adult educators and the changing role of adult educators with the changing learning contexts for the older people realizing the concept of productive ageing and empowered citizenship. This will assist the policy-makers to relook into the existing policies.

Keywords: Adult Educator, Elderly Policy, Senior citizen, National Policy, HelpAge India.

Introduction : Adult educators are people with specialized knowledge, skills or interests in specific fields, and they practice the profession of facilitating the learning of adult learners. Adult learners usually attend by choice and are thus highly motivated. Also, being custodian of culture and traditional knowledge, they bring years of experience to the classroom, which makes teaching these learners rewarding and satisfying. Adult Learners are characterized by their need to know, self-concept, role of their experience, readiness to learn, orientation to learning and motivation. Adults have preconceived notions about education, learning styles and subject matter. Adult learners possess different needs, interests, expertise and experiences (Knowles, 1980). This necessitates adult educators to modify their roles and methods in response to meet the learner's diverse individual characteristics. They need to adapt their

*Doctoral Student in Adult Education, Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalya, Sagar, Madhya Pradesh, India PIN- 470003.

**Doctoral Student in Adult Education, Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalya, Sagar, Madhya Pradesh, India PIN- 470003. 7999567435

***Doctoral Student in Adult Education, Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalya, Sagar, Madhya Pradesh, India PIN- 470003.

philosophy and roles to facilitate adult learners' transformative and experiential learning. Hull (1993) claimed that learning occurs only when learners are able to connect information to their own frame of reference, which is supposed to reflect their inner world of memory, experience, and response.

Objectives of the study :

In the light of the above, this paper attempted,

- to give an overview of the policies for older people (60+) in India;
- to discuss whether the training of the adult educators enable them to utilize innovative methods to deliver the content in an effective and efficient manner by creating and managing appropriate learning context with older learners.

Methodology : Content Analysis was done of the secondary data collected from Ministry of Statistics and Programme Implementation (Govt. of India), Policy documents for the aged, and from the institutions facilitating for and assisting older people (India).

National Policy Statement-1999 & 2011 for the Aged : Elderly or old age consists of ages nearing or surpassing the average life span of human beings. A person of age 60 years or above is defined 'senior citizen' or 'elderly' in the policy. Government of India adopted 'National Policy on Older Persons' in January, 1999. It was a step in the right direction in pursuance of the UN General Assembly Resolution 47/5 to observe 1999 as International Year of Older Persons and in keeping with the assurances to older persons contained in the Constitution. Elderly of 60+ year olds are rightly considered as important human resource with rich experiences; assuring physical & financial security, health care, shelter and dignified life in their last phase, especially for the elderly women, and rural poor; and realises the need for supportive action by the government.

According to National policy for senior citizens (2011), media plays crucial role in highlighting the changing situation of older persons and identifies emerging issues and areas of action. The ADHAAR Unique identity number will be offered for senior citizens across the country assisting the implementation of schemes of Government of India, thereby changing their lives.

Some salient provisions present in both 1999 and 2011 policies are as follows:

- It is a national concern to assure older persons not to live unprotected, ignored or marginalized, by strengthening their legitimate place in society to live.
- In India, family is the most cherished social institution, so the concept of "Ageing in Place? or ageing in own home is promoted.
- Provide income security and homecare services, old age pension and access to healthcare insurance schemes and other programmes and services to facilitate and sustain dignity in old age.
- Being a signatory to the Madrid Plan of Action and Barrier Free Framework, it will work towards an inclusive, barrier-free and age-friendly society.
- Visualizes extending support for financial security, health care, shelter, welfare and other needs of older persons, provide protection against abuse and exploitation, make available opportunities for development of the potential of older persons, seek their participation to provide services so that they can improve the quality of their lives.
- Recognizes the need for affirmative action in favour of elderly. Special attention is necessary for older females so that they do not become victims of triple neglect and discrimination on account of gender, widowhood and age.
- Views the life cycle as a continuum; considers 60+ as a phase when the individual should have the choices and the opportunities to lead an active, creative, productive and satisfying life.

- The Policy values an age-integrated society; endeavours to strengthen intergenerational bonds, facilitate two way flows and interactions.
- Recognizes that older persons, too, are a resource and hence employment in income generating activities after superannuation will be encouraged..
- To promote long term savings instruments and credit activities to reach both rural and urban areas, assuring savings attractive enough to take care of the likely erosion in purchasing power.
- Recognizes that larger budgetary allocations from the State will be needed and the rural and urban poor will be given special attention. However, individuals, families, communities and institutions of civil society have to join hands as partners.
- To advise States to implement the Maintenance and Welfare of Parents and Senior Citizens Act, 2007 and set up Tribunals so that elderly parents unable to maintain themselves are not abandoned and neglected.
- States will set up homes with assisted living facilities for abandoned senior citizens in every district of the country and there will be adequate budgetary support.

Education : By developing information and educational material, specially relevant to the lives of older people widely disseminated using mass media and non-formal communication channels. Access of older persons to libraries of universities, research institutions and cultural centres will be facilitated. This enhances interactions of older persons with educational institutions, so as to strengthen intergenerational bonds and mutually supporting relationships by incorporating material in educational curriculum at all stages.

Non-Governmental Organizations : The National Policy recognizes the NGO sector (Trusts, charities, religious and other endowments) as a very important institutional mechanism to complement the endeavours of the State in providing services to the aged and so are encouraged and supported. Networking, exchange of information and interactions among NGOs is facilitated. Also, provides opportunities for orientation and training of Adult Educators. For providing services on a sustainable basis, the grant-in-aid policy provides incentives to encourage NGOs to become independent from government funding.

Research : Research activities to have rich database on older persons are required to be strengthened. Funding support is provided to the centers for gerontological studies, research projects and resource centers, utilizing the professional knowledge of superannuated scientists. Professional associations of gerontologists will be assisted to strengthen research activity, disseminate research findings and provide a platform for dialogue, discussion, debate and exchange of information.

From the table 01, it can be seen that there is an increase in number of elderly persons from 71 million in 2001 to 118 million in 2016. The proportion of the older people (60 years and above) are set to more than double from 71 million in 2001 to 173 million in 2026 - an increase in their share to the total population from 6.9 to 12.4 percent.

Institution involved with Elderly people : Government has planned and mentioned a number of provisions and facilities. But we found only one non-governmental initiate running as HelpAge India, which was established in the 1978 in Delhi. The founder member was Philip Jackson. Later on, in 1986-87, taken over by the Madan Mohan Sabherwal succeeding John F Pearson.

With the rapid increase in elder population, there is a growing concerns to ensure life with economic & social security and dignity. For this various programs are run, namely Mobile health services, Livelihood support, Active ageing centres, Old age homes, Elder helplines, Advocacy etc.

Elders are supported in various ways-

a) Impacting elder policies and laws

For the inclusion of concerns and rights of senior citizens in the policies of the government, HelpAge India works with civil society, the judiciary, legislators and the government.

b) Empowering elder lives and lifestyles : HelpAge India has launched an AdvantAge program to empower senior citizens in living active and healthy lives with 3 powerful tools. AdvantAge Card providing cost benefits in shopping to 1.5 lakh members at over 4000 retailers across 200 plus towns and cities. AdvantAge Groups encouraging elders to adopt healthy living practices. AdvantAge centres, based on groups of 5/6 members volunteering to serve the community through socially useful productive work, thereby keeping themselves active and mentally engaged.

Though over the last few decades the focus has primarily been on the destitute elder, ensuring that the underprivileged elderly are reached through its various services in the areas of financial, health and emotional security, there is now a growing focus on the disadvantaged urban elder as well. HelpAge is also slowly moving from Welfare to Development services for the elderly in urban & rural areas.

Volunteers : HelpAge India welcomes all committed people, young or old, to come and volunteer to reach out to more and more needy elderly. Both in normal times and in times of natural disasters, volunteers have an active role to play. Professionals or students, the retired or the serving, all can help in carrying out Programs or Advocacy work.

Volunteers are given an orientation of the various programs being run and specific instructions regarding the work to be done by the volunteer. So, what we feel is that the volunteers joining from different backgrounds and disciplines should also be trained to meet the individual differences of the older person.

Conclusion : The phenomenon of population ageing is becoming a major concern for the policy makers all over the world, both for developed and developing countries. Our country too is not immune to this demographic change. The changing demographic profile has thrown many new challenges in the social, economic and political domains. The rapid socioeconomic transformation has affected various aspects of Society. Industrialisation, urbanisation and migration of population have brought the concept of nuclear family, as a result of which a section of the family, primarily the elders, are confronting the problems of financial and physical support. There is an emerging need to pay greater attention to ageing related issues and to promote holistic policies and programmes for dealing with ageing society.

We have volunteers whom we referred as adult educators and they are in direct contact with the elderly people assisting them as per the provision and the policies planned for them. The training of the volunteers do equip them with innovative methods to some extent to carry out the task assigned in an effective and efficient manner by creating and managing appropriate learning context with older learners using non-formal and informal modes of learning.

Table 01: Growth in ageing population (in Millions)

Year	Male	Female	Total	Growth Rate (rounded)
2001	34.94	35.75	70.69	
2006	40.75	42.83	83.58	15%
2011	48.14	50.33	98.47	18%
2016	58.11	59.99	118.10	20%
2021	70.60	72.65	143.24	21%
2026	84.62	88.56	173.18	21%

[**Source:** Ministry of Statistics and Programme implementation (2016), Elderly in India]

References:

1. A report on Elder Abuse & Crime in India. (2011). A Report Accessed from https://www.helpageindia.org/wp-content/themes/helpageindia/pdf/ElderAbuseCrimeIndia11.pdf on 23rd Jan 2018 at 07:07 am
2. Elder Abuse in India. (2012). A HelpAge India Report. Accessed from https://www.helpageindia.org/wp-content/themes/helpageindia/pdf/ElderAbuseIndia12.pdf on 23rd Jan 2018 at 05:02 am
3. Elder Abuse in India. (2014). A HelpAge India Report. Accessed from https://www.helpageindia.or g/wp-content/themes/helpageindia/pdf/elderabuseindia14.pdf on 22th Jan 2018 at 02:05 pm
4. Elder Abuse: The Indian Youth Speaks Out. (2015). A HelpAge India Research Report. Accessed from https://www.helpageindia.org/wp-content/themes/helpageindia/pdf/elder-abuse-indian-youth15.pdf on 22th Jan 2018 at 04:28 pm
5. Global AgeWatch Index Insight report. (2013). Accessed form https://www.helpageindia.org/wp-content/themes/helpageindia/pdf/GlobalAgewatchIndex13.pdf on 27th Jan 2018 at 03:15 pm
6. HelpAge India. (2008). The Social Pension in India: A Participatory Study on the Poverty Reduction Impact And Role of Monitoring Groups. Accessed from https://www.helpageindia.org/wp-content/themes /helpageindia/pdf/Non-Cont-Pens.pdf on 25th Jan 2018 at 10:49 am
7. HelpAge India. (2014). State Of Elderly In India. Accessed from https://www.helpageindia.org/wp-content/themes/helpageindia/pdf/state-elderly-india-2014.pdf on 25th Jan 2018 at 11:35 am
8. HelpAge India. (2015).Annual Report. Accessed form https://www.helpageindia.org/wp-content/themes/helpageindia/pdf/annual-report-2014-15.pdf on 26th Jan 2018 at 01:50 am
9. HelpAge India. (2016).Annual Report. Accessed form https://www.helpageindia.org/wp-content/themes/helpageindia/pdf/Annual-Report-2015-16.pdf on 26th Jan 2018 at 02:45 am
10. HelpAge India. (2016).Annual Report. Accessed form https://www.helpageindia.org/wp-content/uploads/2017/11/Annual-Report-2016-2017.pdf on 26th Jan 2018 at 12:45 pm
11. HelpAge India.(2014). Annual Report. Accessed from https://www.helpageindia.org/wp-content/themes/helpageindia/pdf/annual-report-13-14.pdf on 26th Jan 2018 at 01:35 am
12. Ministry of statistics and programme implementation. (2016). Elderly in India. Accessed from http://mospi.nic.in/sites/default/files/publication_reports/ElderlyinIndia_2016.pdf on 24 Jul 2017 at 09:39 pm
13. National Institute of Rural Development & Panchayati Raj. (n.d.). Policy for the Aged: Opportunities and Challenges. Accessed from http://www.nird.org.in/nird_docs/PolicyfortheAged.pdf on 23 Jul 2017 02:57 pm
14. National Policy for Senior Citizens. (2011). Accessed from http://socialjustice.nic.in/writereaddata/UploadFile/dnpsc.pdf on 15 Jul 2017 at 11:26 pm
15. Report On Elder Abuse In India. (2010). A Report Accessed from https://www.helpageindia.org/wp-content/themes/helpageindia/pdf/ElderAbuseIndia10.pdf on 24th Jan 2018 at 09:37 am

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 43-47

Impact of Online Tourism on Consumer Perception: Indian Scenario

Dr. Krishna Behari Srivastava*

Abstract : *The online tourism has a major impact on tourism industry both for providers and customer. Now a day's use of Internet has become very common and the popularity of social media has been growing over time such huge and extensive trend has significantly impacted the tourism industry. It is obvious that technology plays an important role in all stages of the purchasing process. Tourism is an industry based on the information. Available and based on a series of information that are collected through a numerous set of channels like the Internet, informational brochures, etc. The use of Internet and other information communication technologies leads to a new era of tourism economy. It includes social networking sites, blogs, micro blogs, consumer review sites, content community sites etc. integrating information and communication technology (such as mobile and web-based technologies), social interaction, and the construction of words, pictures, videos and audio. It is actually more than a new way to communicate, but refers to an entire online environment built on people's contributions and interactions. The study concludes with general directions for online tourism and its impact over perception of consumer behavior.*

Keywords: Online Tourism, Tourism Industry, E-business.

Introduction : Internet is one of the latest technological developments for the transfer of information and technology. As today's individuals are much more concerned about time and money internet has became one of the cheapest source for everything to them. Especially in the tourism market, tourism goods and services have found fertile Ground in the internet due to their specific characteristics.

The word "tour" is a combination of Latin word 'tornare' and the Greek 'tornos' which means 'a lathe or circle; the movement around a central point or axis.' The suffix -ism means 'an action or process; typical behavior or quality' whereas the suffix-ist denotes one that performs a given action. Hence, tour is similar to a circle where a tourist undergoes a journey by leaving a place and then returning at the starting point. Over the years, tourism industry has become one of the rising service sectors with major contribution towards economic growth both in developing as well as developed economies.

Tourism stands as one of the key services developed on the Internet. The services offered via the Internet are almost all those offered by classical travel agencies, booking and buying tickets to ensure modification and entertainment. However, internet offers additional services such as travel feedback from people who have experienced specific problems such as visa, transportation etc. Online travel magazines, compare tickets prices, travel guides, calculations for exchange rate, international travel and new addresses markets travel books and chat-rooms.

The advantages of tourism business via the internet for tourists are huge. The volume of free instruction is very large, and this instruction is available any time from any place. The person who is well acquainted and versed with the concept can find very good deals and discounts. Moreover, the direct sale saves consumer money that would be paid to the intermediate. We believe to be the most important theoretical dimensions of tourism on consumer perception research: decision-making, ethics, motivations, self-concept and personality, assumption, attitudes, perceptions, achievement and trust and loyalty.

* Associate Professor (Commerce) SPM College, Allahabad

Tourism Industry in India: Current Scenario : Tourism industry has a wide scope in our economy. Travel and tourism is one of the world's largest and fastest growing industries. The GDP of the tourism sector has grown up to 29% between 1990 and 2011. Moreover, the indicator for this sector's annual rate of growth is expected to be 7.7% in the coming decade. Out of 181 countries, India's travel and tourism industry secured 5th rank in growth expectation and 14th rank in considering the size of the industry. Research confirms the recovery in Travel & Tourism in 2010 (WTTC), with the industry's direct contribution to global GDP increasing by 3.3% directly assigns 1.9% of GDP in the year 2011 and the recovery is forecast to establish further by 4.5% creating an direct additional 3 million jobs in the industry. Taking into account its advanced economic impacts, Travel & Tourism's total economic contribution in the year 2011 is expected to account for 9.1% of global GDP along with 258 million jobs. From 1996 to 2008, foreign tourist landing in India grew from 2.29 million to 5.37 million, a 134% increase. In that same period, foreign gain from tourism grew from $2.83 billion to $11.74 billion, more than a three-fold increase. During the global economic decline in 2009, the number of foreign tourist's arrivals declined 3.3% from the previous year's figures. However, during that same period, private tourism increased 15.5% from the previous year. In India, as compared to business travel spending whose contribution is 26.2% , holiday travel spending generated 73.8% of direct Travel and Tourism GDP in 2011. The same are awaited to rise by 7.6% pa in 2022 for both liberty and business travel spending. Private travel spending has also generated almost 5 times more revenue that of international tourism receipts. The indirect contribution from travel and tourism industry is divided into: Supply Chain (44.8%), Investment (7.3%) and Government Collective (1.5%) with a total collection of 53.7% of the total contribution (WTTC, 2012). The arrival of high-tech companies and domestic jobs has essentially changed the Indian tourism industry. Domestic tourism has become a priority as expendable income rises and the middle class expands.

Digital Revolution: E-Tourism : Internet has brought about an innovation in every sphere of life. It has given business (whether big or small) an equal connection to expand by reaching out to a wide range of consumer all over the world. By increasing this world wide acknowledgment, it has raised the competitiveness of the agency that has become more innovational and aggressive in providing new and better services to the consumer. Be it a service sector; Information & Communication Technology (ICT) are getting the part of every industry and Tourism Industry is not a barring to it. E-Tourism communicates a new way of doing business. It defines faster and access global markets with minimum costs for new trade.

Buhalis (2003) suggests that e-tourism reflects the digitization of all processes and value chains in the tourism, travel, accommodation and catering industries. At the strategic level, it includes e-commerce and applies Information & Communication Technology (ICTs) for increase the ability and influence of the tourism organization.

The growth in number of Internet users who wants to access tourism-related information and the increasing demand for new travel background has opened huge connection for developing countries. ICTs also helps national tourism provider to develop, manage and sell their contribution worldwide. The rearrangement of the tourism market together with productive use of ICTs could admit developing countries to build their own brand images, develop new products, assist their tourism resources and expand their consumer base to eventually increase tourism foreign earnings and provide to local development United Nations Conference on Trade and Development (UNCTAD, 2005). Development in online travel is noted world-wide with online travel sales increasing in the U.S., Europe and Asia. As consumers continue to use the web for travel and accommodation resources, there is a need to analyze the business-to-consumer online environment and the argument facing the continued agreement and use of web by the consumers. Even the tendency of tourism industry is towards the understanding of the consumer

needs, preferences and practice, like all industries. E-Tourism is a growing sector. Most of the tourism industries are involved in developing their internet services for broaden more business and hence revenues. It has also increase the scope for business growth in all geographical, marketing and functional senses. E-tourism companies can now be said as powerful 'travel supermarkets' as they provide combined travel solutions and a whole range of value added services. Role of classical tour operators is being exposed by the dynamic packaging of new online aspirant in tourism industry.

Indian Tourists will be examined for SQ dimensions on six variables namely: Communication (to analyze as to how the company feedback to the consumer), Service Customization (this aspect will consider as to whether the site express its services to its consumer to make them feel special), Availability (to determine the ease in chance of good options every time by the website), Promotional Deals (to study the promotional offers/ deals advance by the company to its customers), Value for Money (to check whether the company provides full value for money in terms of whole package vis-à-vis travel agents and other competitors) and Cancellation or Refund Policy. An in-depth analysis and knowledge of consumer (tourists) will help in this industry to understand its tourists and concurrently ways to remove those barriers which act as a difficulty for online travel commitments.

Importance of E-Tourism : Oorni and Klein (2003) undertook two experiments to compare customer search attitude electronically and through conventional markets in travel and tourism industry. They examined the effect of Internet and electric markets on consumer search in travel and tourism industry. They diagnose that same forces promote customer search in traditional markets act in electronic markets as well. They further librated that locating expected sellers and suitable goods in electronic markets seems to be more difficult than has been previously believed. Although the information can be accessed quickly, provided the sources are identified. Identified the expected sellers with suitable contribution on internet seems to be less profitable than previously expected. They identified barriers to search and the topmost barrier to search as rated by the suspect was unavailability of Information, difficult to locate the expected sellers, restoration due to technical fault as well as flaws in the site design.

Sahadev and Islam (2005) highlighted that the use of internet for the purpose of communicating and transacting with customers has been growing rapidly in the worldwide tourism industry. Moreover, the internet usage also varies across countries, even within a country there are large variations among different enterprises.

Tejada and Linan (2009) in their study explored the major global factors that have an impact on the forces of demand and supply of the tourism industry. They enlisted Internet and decreased cost of air travel in affecting the supply side of this industry. And on the other hand, increasing income, changing lifestyles and development of newer tourist sites have been evaluated as factors leading to higher demand. They concluded that tourism industry is facing many new challenges in the form of intense competition and increasing costs. The same can be resolved only if the entire value chain is restructured and the service package is of good quality with much more value.

Qirici, Theodhori and Elmazi (2011) indicated the importance of information technology in context of changing consumer needs and thereby corresponding by delivering appropriate products to the targeted segments. Internet enabled tourism businesses to improve their flexibility, interactivity, efficiency and competitiveness. A key issue for all tourism industry is how to evolve their community from old economy to a new one. They pinpointed that it should be implemented in a manner to create value. The existing body of research on travel behavior can therefore best be seen as fragmented due to:

1) Individual studies repeat one or a few consumer behavior concepts imitated from marketing and general management fields and applying them to tourism.

2) Frequent study observe the same effect (e.g. satisfaction???loyalty), but the results cannot be compared due to differences in the research contexts based on tourist types or destinations, thereby hindering generalization.
3) Quantitative approaches dominate CB research but the use of experimental designs that quantify the effects of independent stimuli on behavioral responses remains in its infancy, leading often to inaccurate anxiety issue; and
4) Some study use long-term and/or comprehensive approach to understand the behavior or processes being investigated.

Data & Analysis On India Tourism : According to 'India Tourism Statistics for 2015', the USA has emerged as the largest entering opening market for India contributed 15.12% of the total tourists landing. Concurrently the Indian Nationals' takeoff saw an increase of 0.8% with 20.38 million Indians flying to the other country. These statistics release by the Union Ministry of Tourism onward with Bureau of Immigration, Government of India, show the positive aims of tourism industry inbound as well as outbound in the country.

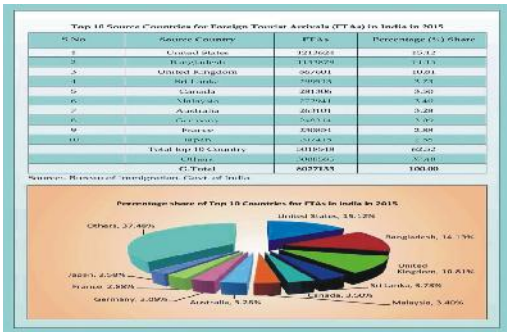

Top 10 Source Countries for Foreign Tourist Arrivals (FTAs) in India in 2015

S.No	Source Country	FTAs	Percentage (%) Share
1	United States	[illegible]	15.12
2	Bangladesh	[illegible]	[illegible]
3	United Kingdom	[illegible]	10.81
4	Sri Lanka	[illegible]	[illegible]
5	Canada	281306	3.50
6	Malaysia	272941	3.40
7	Australia	263101	3.28
8	Germany	[illegible]	[illegible]
9	France	[illegible]	2.88
10	Japan	[illegible]	[illegible]
	Total top 10 Country	[illegible]	[illegible]
	Others	[illegible]	[illegible]
	G.Total	8027133	100.00

Source:- Bureau of Immigration, Govt. of India

Source: -Bureau of Immigration, Govt. of India

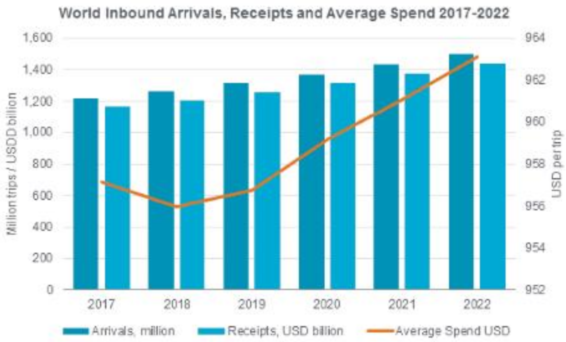

Travel and tourism go on to live on track, exceeding the world economy, with return set to grow by 3.7% and entering the receipts at a durable rate of 4.1% over 2017, correlated to global GDP at 3.5%.

Sources: - Ministry of Tourism, Govt. of India

There is a conversion about internet user from using it as an information source to a channel that can be used for buying product. Although it is crucial to use internet as an information connection, but it is also important to selling goods and services for travel and tourism industry area. (Walle, 1996). The nature of travel and tourism industry is appropriate efficiency in connection and message conversion (Seaton and Bennett, 1996). In this sense many destination management organizations and tourism industry try to increase communicational events through internet and websites (Legoherel et al., 2000).

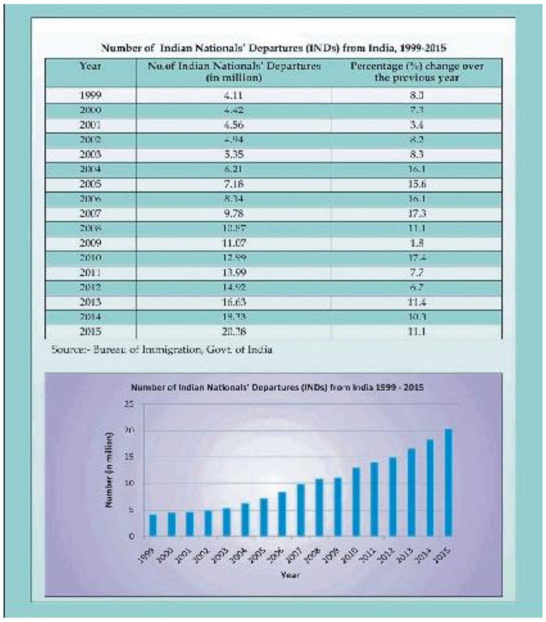

Number of Indian Nationals' Departures (INDs) from India, 1999-2015

Year	No.of Indian Nationals' Departures (in million)	Percentage (%) change over the previous year
1999	4.11	8.3
2000	4.42	7.3
2001	4.56	3.4
2002	4.94	8.2
2003	5.35	8.3
2004	6.21	16.1
2005	7.16	15.6
2006	8.34	16.1
2007	9.78	17.3
2008	10.87	11.1
2009	11.07	1.8
2010	12.99	17.4
2011	13.99	7.7
2012	14.92	6.7
2013	16.63	11.4
2014	18.33	10.3
2015	20.38	11.1

Source:- Bureau of Immigration, Govt. of India

Source:-Bureau of Immigration, Govt. of India

Conclusion : Tourism has been one of the most important economic exercises impartial of geographical areas of the countries. Several countries enjoy the advantage of good looking areas that attract the tourist from all over the world. The changing on analytical figure of internet customer over the last few decade recommended that the evolving of internet and linked with the systems will finally adopted by the large mass of driving public and, therefore the internet will be mediated the primary source for driving information.

References :

1. Ekiz, H. E., Guneren, E. and Ozturen, A. (2005). KKTC konaklamaendustrisinde internetpazarlamasi: arzvetalepboyutlari, PI: PazarlamaveIletisimKulturuDergisi, 4(12), 4-14.
2. Cheung, C. M. K., Zhu, L., Kwong, T., and Chan, W. W. G., and Limayem, M.,(2003), "Online Consumer Behavior: A Review and Agenda for Future Research",16th Bled eCommerce Conference - eTransformation(June).
3. Choi, J., & Lee, K. (2003). Risk perception and e-shopping: A cross-cultural study.Journal of Fashion Marketing and Management, 7(1), 49-64.
4. Clyde, S. W., &Landfried, T. (1995). Our town: A distributed, multi-media system for travel andtourism.
5. Corbitt, B. J., Thanasankit, T., & Yi, H. (2003). Trust and e-commerce: a study of consumerperceptions. Electronic commerce research and applications, 2(3), 203-215.
6. Cyr, D., Kindra, G. S., & Dash, S. (2008). Website design, trust, satisfaction and e-loyalty: theIndian experience. Online Information Review, 32(6), 773-790.
7. Dash, S., &Saji, K. B. (2008). The role of consumer self-efficacy and website social-presence incustomers' adoption of B2C online shopping: an empirical study in the Indian context.Journal of International Consumer Marketing, 20(2), 33-48.

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 48-50

The Curds of Caulif Lower

Parth*

Cauliflower (Brassicas oleracea var. botrytis) is the most popular vegetable among Cole crops. It has small, thick stem, bearing whorl of leaves and branched tap root system. The main growing point develops into shortened shoot system whose apices make up the convex surface of curd,so the curd is a 'prefloral fleshy apical meristem'. The eatable part, i.e curd is generally white in colour and may be enclosed by inner leaves before it's exposure. Curd colour varies with the variety and environment.

The word "cauliflower" derives from the Italian Caoli Fiori, meaning"cabbage flower". The ultimate origin of the name is from the Latin word caulis (cabbage) and flos (flower).

Cauliflower originated in the island of Cyprus from where it moved to other areas like Syria, Turkey, Egypt, Spain and northwestern Europe.

Cauliflower form a compact head of undeveloped white flower buds called the "Curd". A tight encasing of heavy green leaves surrounds these buds. These leaves protect the cauliflower from the sun and prevent the development of chlorophyll;no chlorophyll gives this vegetable it's creamy colouring.

In India cauliflower was introduced by Dr. Jemson in 1822.

Cauliflower

- Scientific Classification-
- Kingdom- Plantae
- Division- Magnoliophyta
- Class- Magnoliopsida
- Order- Brassicales
- Family- Brassicaceae
- Genus- Brassica
- Species- B. oleracea
- Binomial name- Brassicas oleracea
- Chromosome number- 2n=18.

Temperature affects vegetative, cursing and reproductive phases of cauliflower. It can grow at an average temperature of 5?-8? to 25?-28?. During vegetative growth,some varieties may stand temperature as low as -10? and as high as 40? for a few days. The optimum temperature for growth of young plants is around 23? and 17-20? in later stage. In temperate region, growth of young seedlings may cease when temperature is slightly above 0?, while early varieties in plains and other tropical regions can grow well up to 35?, they are capable of forming curds at around 30?. Different varieties require specific temperature for curd development. If the temperature is higher, crop continues to grow vegetatively and if lower,it only forms small curds. For desirable curd development,plants must pass the juvenile phase and may attain certain optimum growth. This period varies from variety to variety and group to group. Higher or lower temperature for a particular variety or large fluctuation in temperature at the time of curd development may cause some disorder. This crop is sensitive

*Research Scholar, Department of Horticulture, Post Graduate College Ghazipur
(Veer Bahadur Singh Purvanchal University, Jaunpur; Uttar Pradesh)

to high acidity, puts good growth with soil reaction of 6.5 pH. However, soil with a pH of 5.5 to 6.5 is optimum.

Cultivation : Cauliflower is propagated through seed. Healthy nursery is very important to raise a good crop. Time of sowing depends upon cultivar and temperature requirement for curd formation. The nursery of the September maturity group needs special care because temperature is not very confused at that time. The width of beds of this group should not be more than 60 cm. so that water can easily percolate up to the middle portion from the border channel, made in between beds. Nursery should be covered with sirkis to protect young seedlings from dry and hot winds. The channel may be filled with water every evening. The nursery of October and November maturity groups needs protection from heavy downpour. Wherefore, seedling should be raised in plastic tunnels. The nursery of December and January is comparatively easy to raise because of the favorable climatic conditions during that period. Raised nursery beds (15 cm.) should be prepare to facilitate v proper drainage.The nursery bed should be thoroughly prepared by adding well-rotten farmyard manure or compost @ of kg/meter square. They should be treated with 0.3% solution of Captain of Thiram (5 liters/meter square). Seeds can be down immediately after the treatment. Treating nursery beds with formalin may be avoided due to its adverse effect on seedlings in the initial stage.

Before sowing, seeds should be treated with Captan or Thiram (3g./kg.) or Bavistin (2g/kg.) to get rid of fungal disease. However to control seed -born disease hot water treatment at 50? for 30 minutes is the only remedy.

About 450-700 g. Seed for early types and 300 to 500 g. for mid and late types is sufficient to raise crop for a hectare. The seeds are sown in furrow 7 to 8 cm. apart. After sowing cover the seed with a mixture of fine soil and sieved farmyard manure and cover the beds with dry grass before watering. In the initial stage, the watering should be done by cane and afterward through channels. The grass cover should be removed as soon as the seedlings start emerging. The drenching of nursery with Captan or Thiram (0.2%) prevents post emergence damping off.

Transplanting : The seedlings are ready 3-6weeks after sowing. In early maturity, 5-6 weeks old seedlings and in mid season and late types 3 to 4 weeks old seedling should be transplanted. The seedlings of September and October group are transplanted in early July and August respectively. The mid season variety are transplanted in September - October, while late, snow ball types during first week of November in North Indian plains.

The transplanting distance varies according to variety and time of planting. Transplanting of September group is recommended on ridges at a spacing of 60 cm. × 30cm. For mid season and late varieties, a planting distance of 60 cm. × 40 cm. is ideal.In tropical areas, a dose of 60 to 150 kg. N, 50 to 80 kg. P, 60 to 120 kg. K along with 40 to 70 tonnes farmyard manure/ha. is recommended. In Northern and Central India, application of 150 kg. N and 60 kg. P is recommended. Half of N and whole of P and K should be applied as a badal dose and the rest of N in 2 or 3 spit doses. Weekly spraying of 1 to 2 % Urea 20 days after transplanting is advised for good growth.Dipping of cauliflower seedling roots at transplanting in IBA (1mg/litre)+starter solution of ammonium sulphate and super phosphate (1:2) induces earliness increasing curd yield. Combined foliar spraying of GA(100mg/litre), NAA (120 mg/litre) and Mo (2 gm./litre) enhances the total yield. Similar increase in yield may be obtained by spraying of GA(50 mg/litre) and Urea (1gm./litre).

Aftercare : Cauliflower is a very sensitive crop and any check in its growth at any stage results in buttoning. Trust formato on after first irrigation is more common in heavy soil, hindering water and air penetration to the roots thereby afdeling adversely its growth. During the rainy season, when the crop is raised on dishes,adequate earthing-up are not exposed. Application of N along with earthing-up is more useful. Hoeing and weeding operation

should not be deep to avoid in jury to the shallow root system. The weed problem is very serious in this crop because of wider spacing, frequent irrigation and high fertility. Per planning application of stoop or Basaline (Fluchloralin)@ 2.0 to 3.0kg/ha. helps to control weeds. Application of weedicide supplement with one or two hand wedding is enough to keep the crop weed-free.

Irrigation : First irrigation is given just after transplanting of the seedlings. The number and frequency of irrigation depend upon whether soil type and variety. However optimum water supply is must both during growth and curd formation stages. For early and mid season group, irrigation depends upon intensity of the mansoon. As ridge planting is recommended in both the groups, irrigation is given in furrows. However 5 to 8 irrigation are generally required for cauliflower crop. Heavy irrigation results in water stagnation which is very harmful to crop.

Harvesting and Post Harvest Management : Cauliflower is harvested when curds are compact, attain proper size and retain original colour. Delayed harvesting results in non-marketable, loose and discoloured curds. Medium sized, white and compact curds are mostly preferred in the market. The plant is cut well below the curd with sharp cutting knife,sickle or khurpi, the trimming of leaves depends upon the mode of packing and transportation. When packing is done in crotes, most of the leaves are removed leaving small portion of the stalk close to the curd surface. While transporting in gunny bags, the inner leaves covering the curd surface are left intact and outer leaves are removed. In loose transportation more number of leaves are retained and trimmed only after their unloading in the market.

The yield varies greatly depending upon the variety and time of maturity. The early maturing variety have an average yield of 60 to 100 q/ha. However, mid and late varieties yield 250 to 300 q/ha.

Blanching is a method to protect the curds from attaining yellow colour after their direct exposure to sun. This is quite common in early-mid season variety having spreading and open plant types. The blanching may be done by placing the leaf on the curd or tying the tips of leaves immediately after the curd exposure. But precautions must be taken while following the practice,because of covering or tying for a longer period results in the elongation of florets and loose curds with poor market value. Most of the late types commonly known as snowball type have self-blanched habit.

References :

1. Vegetable Crops. New India Publishing. 1 January 2007. p. 209. ISBN 978-81-89422-41-7.
2. "cauliflower". WordReference.com Dictionary of English. Retrieved 4 June 2018.
3. "Cauliflower: definition". Reference.com. 2006. Retrieved 22 November 2008.
4. Crisp, P. (1982). "The use of an evolutionary scheme for cauliflowers in screening of genetic resources". Euphytica. 31 (3): 725. doi:10.1007/BF00039211.
5. Swarup, V.; Chatterjee, S.S. (1972). "Origin and genetic improvement of Indian cauliflower". Economic Botany. 26 (4): 381-393. doi:10.1007/BF02860710.
6. Farnham, M. (2007). "Vegetable Cultivar Descriptions for North America:Cauliflower". Retrieved 2007-09-19.
7. Dickson, M.H.; Lee C.Y.; Blamble A.E. (1988). "Orange-curd high carotene cauliflower inbreds, NY 156, NY 163, and NY 165". HortScience. 23: 778-779.
8. Chiu, L.; Prior, R.L.; Wu, X.; Li, L. (July 16, 2005). "Toward Identification of the Candidate Gene Controlling Anthocyanin Accumulation in Purple Cauliflower (Brassica oleracea L. var. botrytis)". American Society of Plant Biologists Annual Meeting. p. 628.

♦ ♦ ♦

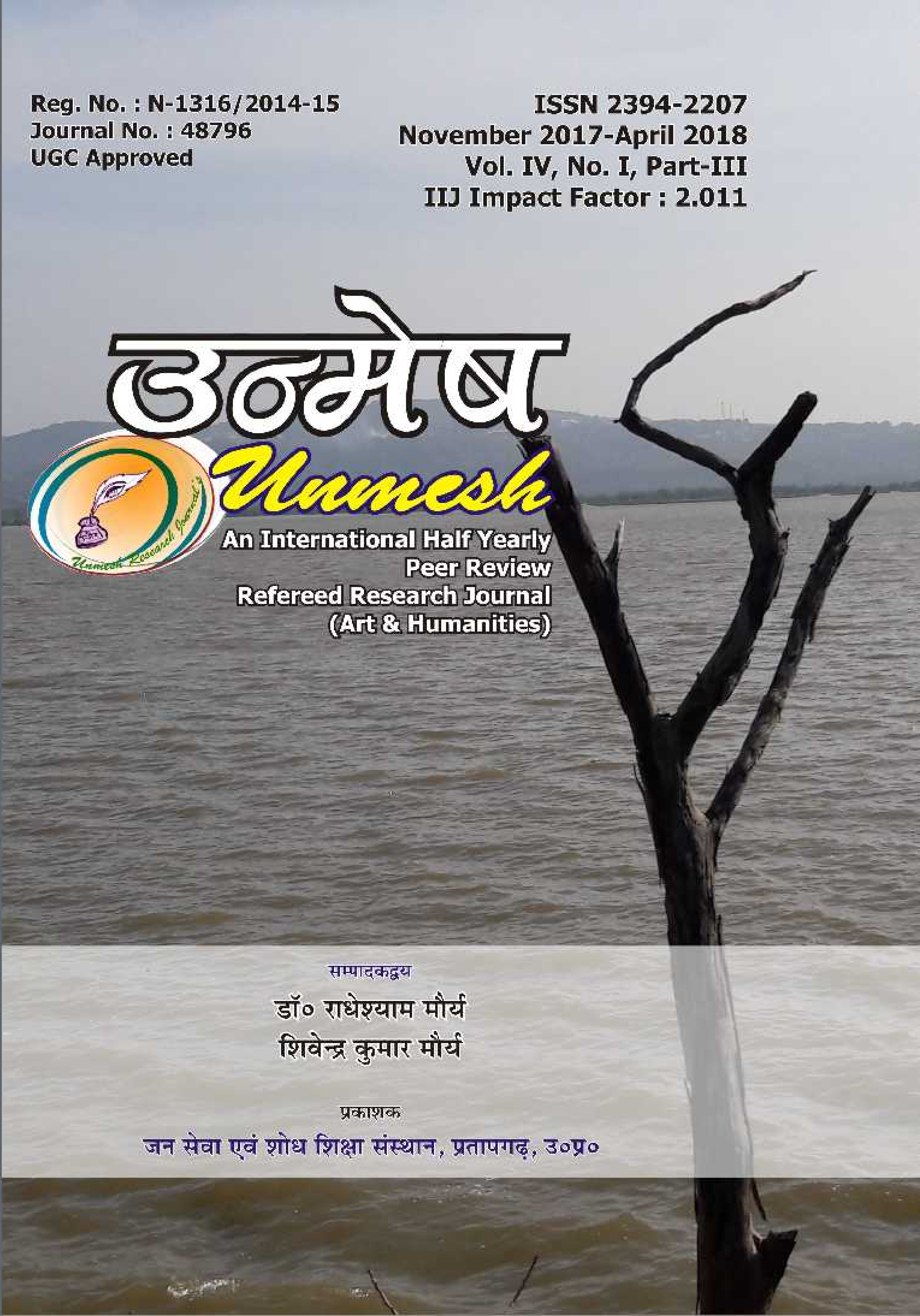

Reg. No. : N-1316/2014-15
Journal No. : 48796
UGC Approved

ISSN 2394-2207
November 2017-April 2018
Vol. IV, No. I, Part-III
IIJ Impact Factor : 2.011

उन्मेष
Unmesh

An International Half Yearly
Peer Review
Refereed Research Journal
(Art & Humanities)

सम्पादकद्वय

डॉ० राधेश्याम मौर्य
शिवेन्द्र कुमार मौर्य

प्रकाशक

जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान, प्रतापगढ़, उ०प्र०

Reg. No. : N-1316/2014-15
Approved by UGC

ISSN : 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011

उन्मेष

Unmesh

An International Half Yearly Refereed Research Journal (Art & Humanities)

Vol. : IV **No. I, Part-III** **November, 2017-April, 2018**

सम्पादकद्वय

डॉ० राधेश्याम मौर्य

शिवेन्द्र कुमार मौर्य

सह-सम्पादक

डॉ० मनोहर लाल

प्रकाशक

जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान, प्रतापगढ़-२३०००१ (उ०प्र०)

l aj{kd&eMYk

M,0 pEik d`ekjh fl ag] प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

MkW0 ch0,u0 fl ag] पूर्व निदेशक, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उ0प्र0

M,0 gjh'kpUæ tk; loky] पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, इविंग क्रिश्चियन महाविद्यालय, इलाहाबाद वि0वि0, उ0प्र0

lEiknd

M,0 jk/ks';ke ek;] प्रवक्ता, जी0वी0आई0सी0, देल्हूपुर, प्रतापगढ़, उ0प्र0

f'koUn d`ekj ek;] शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

lg&lEiknd

MkW0 eukgj yky] असि0 प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

lEiknd&e.MYk

MkW0 d".k d`ekj dkf'kd ¼ प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

MkW0 fgjks'kh llkdh ¼ एसो0 प्रोफेसर, डिपार्टमेंट ऑफ सोशल एजूकेशन, हिरोशिमा विश्वविद्यालय, जापान

MkW0 vfuy d`ekj ek; ¼ असि0 प्रोफेसर, विधि संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ0प्र0

MkW0 lehj d`ekj ikBd ¼ असि0 प्रोफेसर, डी0ए0वी0 पी0जी0 कॉलेज, वाराणसी, उ0प्र0

MkW0 jek'kadj d`'kokgk ¼ असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

lUrks"k d`ekj ¼ विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, जक्खिनी, वाराणसी, उ0प्र0

fHk{kq Ýklkelkd o..klu] विहाराधिपति, वॉट थाइ बुद्ध विहार, बैकाक, थाईलैंड

ijke'k&e.My

MkW0 iadk'k pUn frokjh] विभागाध्यक्ष, पर्यावरण विभाग, कमला नेहरू इंस्टीट्यूट ऑफ फिजिक्स एण्ड सोशल साइंस, सुल्तानपुर (उ0प्र0)

MkW0 lanhi oek] असि0 प्रोफेसर, जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

MkW0 eukst d`ekj ek;] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय, सूर्यमणि नगर, अगरतला

';keuUnu] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

MkW0 iapkfr l] असि0 प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, यूइंग क्रिश्चियन कालेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

rkf'kdk bZnkdk] शोध छात्रा, तुलनात्मक धर्म दर्शन विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

MkW0 vfer d`ekj fl ag d`'kokgk] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, पंचशील डिग्री कॉलेज, मवईकला, हलियां, मिर्जापुर, उ0प्र0

eY;kadu lfefr

MkW0 iznhi"k jFk] असि0 प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, उड़ीसा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, उड़ीसा।

ikQlj ¼MkW0½ l/;kjkuh 'kkD;] क्षेत्रीय उच्च शिक्षा अधिकारी एवं प्राचार्या राजकीय महाविद्यालय, समथर, झाँसी, उ0प्र0

MkW0 vfe"k oek] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल

MkW0 ';kek fl ag] असि0 प्रोफेसर, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, झूँसी, इलाहाबाद

MkW0 /kuth iz lkn] असि0 प्रोफेसर, भाषा विज्ञान एवं भाषा प्रोद्यौगिकी, महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

MkW0 bnzthr fe=] असि0 प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, डी0ए0वी0पी0जी0 कॉलेज, बी0एच0यू0, वाराणसी

MkW0 jktsa'k fl ag d`'kokgk] असि0 प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग, डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद

MkW0 jke jru ikloku] असि0 प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया।

MkW0 lqdsa'k ykgkj] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कल्याणी विश्वविद्यालय, कल्याणी, नदिया, पश्चिम बंगाल

unhi iVkfn;k] असि0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग, डॉ0 हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश

MkW0 ih;w"kdkUr 'kek] एसो0 प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, एम0डी0पी0जी0 कॉलेज, प्रतापगढ़, उ0प्र0

MkW0 Kkukck f=cd <x] विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, कर्मवीर काका साहेब बाघ आर्ट्स, साइंस एण्ड कॉमर्स कॉलेज, पीपल गाँव (बी) नासिक, महाराष्ट्र

MkW0 vfu'k d`ekj oek] असि0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, मड़ियाहूँ पी0जी0 कॉलेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर

MkW0 iznhi fl ag] असि0 प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, बांदा, उ0प्र0

jke fl ag] असि0 प्रोफेसर, भूगोल विभाग, जवाहरलाल नेहरू पी0जी0 कॉलेज, एटा, आगरा, उ0प्र0

{k=h; lEiknd

f'kojke ek;] शोध छात्र, हिन्दी विभाग, डॉ0 हरि सिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश

l'khy dekj] शोध छात्र, विधि विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

iepUn ek;] शोध छात्र, हिन्दी विभाग, केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, केरल

icU/k&lEiknd

Mk0 lhrk jke flg] एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग,
गणपत सहाय पी0जी0 कॉलेज, सुलतानपुर, उ0प्र0

vt; dekj ek;] शोध छात्र, तुलनात्मक धर्म दर्शन विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

vuokn lgk;d

gfj'pUn d'kokgk] पूर्व अतिथि प्रवक्ता, डी0ए0वी0पी0जी0 कॉलेज, बी0एच0यू0, वाराणसी

leuyrk dekjh] शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

fof/k&ijke'k

Kku Ádk'k e©;l	:	पूर्व राज्य सूचनायुक्त, उ0प्र0
Mk0 vkn'k dekj	:	असि0 प्रोफेसर, विधि संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
lEikndh; lEidl	:	जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान, सी–23, आवास विकास कालोनी प्रतापगढ़–230001 (उ0प्र0) भारत

मो0– 08004802456, 09415627372
ई–मेल : unmesh0110@gmail.com
shivendrakr.maurya@gmail.com

idk'kd % tu lok ,o 'kk/k f'k{kk lLFkku] प्रतापगढ़, उ0प्र0

eæd % jkt xkfQDl] बी0एच0यू0 रोड, लंका, वाराणसी
ek0 % 09415842611@08081711954

uksV % सम्पादन, संचालन–पूर्णतः अवैतनिक/अव्यावसायिक/अनियतकालीन। उन्मेष में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं। लेखों एवं उद्धरणों से सम्बन्धित किसी भी वाद–विवाद के लिए लेखक की जिम्मेदारी स्वयं की होगी। सम्पादक, प्रकाशक एवं उन्मेष परिवार के किसी भी सदस्य की जिम्मेदारी नहीं होगी। किसी भी विवाद के लिए न्याय क्षेत्र इलाहाबाद उच्च न्यायालय होगा।

lEikndh;

प्रकृति के सम्बन्ध में लोगों द्वारा अज्ञानता प्रकट किये जाने पर मुझे आश्चर्य होता है। हमें प्रकृति को समझने तथा प्रकृति के प्रेम करने की क्रिया अवश्य सीखनी चाहिए। प्रकृति की रक्षा ही मानव जाति के भविष्य के विकास की कुंजी है, जिसकी रक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य और दायित्त्व है। पर्यावरण के ह्रास का सम्बन्ध विकास की प्रकृति तथा पर्यावरण संतुलन के प्रति मुनष्य की अज्ञानता है, मानव ने प्रकृति को निष्ठुरता से लूटा और पृथ्वी को उजाड़ बना दिया। मानव और उसका समाज पृथ्वी में दूर तक फैले हुए हरे–भरे सघन वनों के आवरण से वंचित कर रहा है। कुछ लोग लाभ कमाने, जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की प्राप्ति तथा मनोरंजन के लिए प्रकृति का विनाश कर रहे हैं। विशेषकर भारत में पर्यावरण जैव विविधता बहुत है, जो लोगों को अनेक संसाधन देती है और मनुष्य उसका अन्धाधुन्ध उपयोग कर रहा है; जिसका हमारे वातावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। परिणाम स्वरूप भूकम्प, सूनामी, बाढ़, सूखा तथा अनेक रोग जैसे एड्स, मधुमेह, डेंगू, हेपोटाइटिस आदि का उत्पन्न एवं विस्तार होना पृथ्वी पर परिवर्तन के संकेत हैं। आज आजादी के 68 वर्ष बाद भी भारत के 60 प्रतिशत घरों में शौचालय नहीं है, जिससे महिलाएं सुरक्षित नहीं हैं। सर्वप्रथम स्वच्छ भारत का सपना आजादी के बाद महात्मा गांधी द्वारा देखा गया था उनके अनुसार निर्मलता और स्वच्छता दोनों ही स्वास्थ्य और शान्तिपूर्ण जीवन का अनिवार्य भाग है। स्वच्छता के अभाव में नदियाँ, वायु, तालाब प्रदूषित हो रहे हैं, जिनका हमारे जीवन तथा रहन–सहन पर कुप्रभाव पड़ रहा है। आज मानव इस विकास की चकाचौंध में अपने अस्तित्त्व को स्वयं मिटा रहा है। आइये हम लोग मिलकर स्वच्छ भारत, प्रदूषण मुक्त भारत के निर्माण का संकल्प लें।

iÑfr gekjh lgpjh lcdh ik.kk/kkjA
bl d fcu lHko ugh thou dk m)kjAA
& ^f'ko*

Mk0 jk/k';ke ek;
f'koUn dqekj ek;

उन्मेष
Unmesh - ISSN 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018

vuØef.kdk

■ ubl jk"Vªh; tuli[;k uhfr 15 Qjojh] 2000 — 1&3
प्रीति द्विवेदी

■ jkepfjreku l vkSj ykdukVd rRy lhnkl — 4&7
डॉ० शालिनी सिंह

■ tudfo dsnkjukFk vxzoky — 8&11
विनय कान्त मिश्र

■ nfyr thou dh leL;k,¡ ,oa nfyr dgkuh — 12&15
अंजलि कुमारी

■ lkfgR; dk lekt'kkL=h; ,d v/;;u — 16&21
बबिता कुमारी

■ Tkhou eqfDr % jkekuqt vkSj 'kadjkpk;Z ds lanHkZ esa — 22&24
दीपनारायण पाण्डेय, डॉ० किस्मत कुमार

■ lkfgR; ,oa lekt ds e/; vUrlZEcU/k — 25&29
डॉ० अभिलाषा कुमारी

■ ukV; lk/kuk ,oa ekguyky egrks ^fo;ksxh* — 30&33
डॉ० अन्तिमा कुमारी

■ fgUnh nfyr vkykspuk ds {ks= esa MkW0 ekrk iz lkn dk ;ksxnku — 34&37
डॉ० ममता कुमारी

■ f'koizlkn tu lgk; ds dFkkrj x| lkfgR; dh fo'ks"krk,¡ — 38&42
डॉ० प्रिया आनंद

■ ekguyky egrks ^fo;ksxh* dh dkO; izof̀Ùk;k¡ — 43&44
डॉ० रश्मि रेखा

■ cPpu dk dkO; esa lef"V eyd ize — 45&49
डॉ० रूपेश कुमार झा

■ L=h foe'kZ ,oa izepUn ;qxhu miU;kl — 50&53
डॉ० सुप्रिता शालिनी

■ Lkkekftd U;k; ,oa nfyr lkfgR; — 54&58
डॉ० विवेक रंजन

■ lapkj ek/;e dk :i esa fgUnh — 59&63
जूली कुमारी

■ egkRek xka/kh dk PkEikj.k lR;kxzg n'ku % jk"Vª fuekZ.k dk vfHkuo iz;ksx
MkW- Hkkouk f=osnh — 64&68

■ fgUnh nfyr vkRedFkkvksa dk lekt'kkL=h; fo'ys"k.k — 69&73
लक्की कुमारी

■ fojkV O;fäRo ds ekuo egkRek ^ekgu jkds'k* — 74&76
मनोज कुमार यादव

■ fiz;] by;ksDVªkfud ehfM;k vkSj tuekul — 77&79
पल्लवी कुमारी

उन्मेष
Unmesh - ISSN 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018

- f’koiitu lgk; d dFkrj x| lkfgR; dk lonukRed i{k — 80&84
  रश्मि प्रिया
- fgUnh lkfgfR;d i=dkfjrk % mnHko vkj fodkl — 85&89
  शालिनी कुमारी
- tr lkj d xhrk dk fo’y"k.kkRed v/;;u — 90&92
  डॉ० शशिकला कुमारी
- L=h&foe’k ,o fgUnh miU;kl — 93&96
  श्वेता कुमारी
- jkT; }kjk 0;olk; dk fu;eu o fu;=.k % ,d uohu fo’y"k.k — 97&101
  शुभांगी
- i;ktueyd fgUnh dh miyfC/k;k — 102&105
  वेद प्रकाश ओझा
- lknf"kr gkrk i;koj.k — 106&110
  डॉ० अरविन्द कुमार द्विवेदी
- fo/kk d :i e i= lkfgR; — 111&115
  विनय कुमार
- eyk vkpy e xkeh.k jktuhfr — 116&118
  डॉ० ज्ञानेंद्र कुमार
- çepn d liuk dk Hkkjr — 119&122
  दीक्षा गुप्ता
- j.k d miU;kl e lkLÑfrd ifjo’k % vkt d lUnHk e — 123&127
  प्रीतम रजक
- cká&Hkhrj nkuk d vrjre l xtjrh thor dgkfu;k& i#"k y[kdk d fo’k"k lnHk e — 128&132
  अनामिका यादव
- nfyr lkfgR; e L=h foe’k — 133&136
  डॉ० गायत्री सिंह
- ’k[kj ,d thouh % 0;fDr dh ,d u;h igpku — 137&139
  डॉ० रेणु गुप्ता
- dcU/k dh dFkk vkj ukxktu — 140&142
  डॉ० सोनी
- MkO f’konkl ik.M; d dk0; e iekuHkfr — 143&146
  अविनाश कुमार
- ckck lkgc MkO Hkhejko vEcMdj dk vkfFkd fpUru % ,d vè;;u — 147&151
  डॉ० उर्मिला कुमारी
- ’kkfr’kuk d efDrnkrk % tkfrck Qy — 152&154
  डॉ० अवधेश कुमार
- Hkkjrh; ukjh vkj mudk lEeku — 155&157
  डॉ० सतीशचन्द

- xhfrdk0; dh ijEijk — 158&159
  उषा कुमारी
- vkpk;l gtkjh iizlkn f}onh dk fuca/kkssa ij johanz&iHkko — 160&162
  डॉ0 आलोक प्रखर
- L=h vfLerk dk oSpkfjd lU?k"kZ vkSj dof;=h dkR;k;uh — 163&165
  यशवन्त कुमार
- lk'ky ehfM;k % lkfgfR;d vfHk0;fDr dk ep — 166&170
  डॉ0 रामाशंकर कुशवाहा
- dcjukFk jk; % ,d vifre 0;fDrRo — 171&176
  वीरेन्द्र कुमार दूबे
- ^pnuuh* Nrhlx<h ykSd dk çsek[;ku — 177&180
  ऋतु रानी
- deys'oj dh dgkfu;ksa dk oSpkfjd&jktuhfrd i{k — 181&185
  रामएकबाल कुशवाहा
- Tkxnh'k iizlkn vkSj lekftd vkanksyu — 186&188
  डॉ0 हरेन्द्र सिंह
- fgUnh nfyr dgkfu;ksa esa L=h psruk — 189&192
  अविनाश रंजन
- jsfM;ks foKkiu fd iktlfxdrk — 193&194
  डॉ0 जलेन्द्र कुमार सिंह
- iHkk [krku ds miU;klksa esa L=h&lU?k"kZ ds fofo/k :i — 195&198
  डॉ0 नूतन कुमारी
- lkj.k ftyk ds vuqlfpr tkfr;ksa esa lkekftd ifjorZu % ,d Hkkkxkfyd fo'ys"k.k — 199&200
  धनंजय कुमार आजाद
- rqylh ckck dh dforkbZ vkSj vkpk;Z jkepUnz 'kqDy dh leh{kk nf"V — 203&206
  रोहित सिंह
- L=hoknh bfrgkl nf"V vkSj fgUnh lkfgR; dk vk/kk bfrgkl % ,d eY;kadu — 207&211
  प्रकाश कुमार पोद्दार
- iHkk [krku ds miU;klksa esa L=h&psruk — 212&216
  डॉ0 रवि रंजन
- vt; ukofj;k ds miU;kl ^m/kj ds ykx* esa nfyrksa dh fLFkfr — 217&218
  राम आसरे सरोज
- cqfdx i{.kkyh dk mnHko vkSj fodkl — 219&221
  अजय कुमार
- tkrd pk.Mkyksa ds lEcU/k esa tkudkjh nsus okys lcls le) lzkr — 222&227
  डॉ0 संजय कुमार तिवारी
- Hkhe vdsyk dk lanHkZ vkSj fo|k lkxj ukfV;ky dh lkLd`frd nf"V — 228&234
  मानवेन्द्र प्रताप सिंह

उन्मेष
Unmesh - ISSN 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018

- jktUn ;kno ,o lekrj dgkuh vknkyu — 235&239
  प्रीति श्रीवास्तव
- 21oh lnh e x# jfonkl d fopkjk dh iklfxdrk — 240&241
  शालिनी
- Hkkjro"k e ukjh dh lkekftd fLFkfr e ifjorlu — 242&244
  डॉ0 सन्तोष कुमार सिंह
- Hkkjr e xkeh.k cjkstxkjh dk ifjek.k % ,d v/;;u — 245&250
  डॉ0 राजेश कुमार वर्णवाल
- orleku lekt d fodkl e lLÑfr dk iHkko — 251&253
  डॉ0 किशोरी लाल
- fl/k lH;rk d iljkrkfRod LFkyk e uxjhdj.k dk fodkl — 254&258
  डॉ0 राम नारायण रजक
- ioe/;dky Hkkjr e 'knk d ifr 0;ogkj d fo'k"k lnHk e — 259&260
  डॉ० उमेश प्रसाद रजक
- çk0 j ,o çk0 xndj —r lLdj.kk dk vfHkKku'kkdUrye 0;k[;k&fookn dh leh{kk — 261&265
  डॉ0 बालकृष्ण शर्मा
- tEe&d'ehj e vkrdokn&'kkfUr ,o lj{kk e ck/kd — 266&268
  डॉ0 आलोक रंजन यादव
- df"k mRiknu vkj fdlku dY;k.k — 269&272
  डॉ0 अमर नाथ
- Ekgknoh oek dk /kkfed lkfgR;d ,o lkLdfrd i"BHkfe — 273&274
  डॉ0 मनराज
- Nk;kokn dh çe[k çofÙk;k — 275&278
  डॉ0 अभिषेक रंजन
- lkdfr d ldekj dfo lfe=kuUnu ir — 279&282
  अजीता प्रियदर्शिनी
- egf"k n;kuUn ljLorh d nk'kfud fopkjk dk fo'y"k.k — 283&285
  डॉ0 आरती देवी
- o'kf"kd rFkk pkokd n'ku dk vUr%dj.k — 286&287
  अजय कुमार सिंह
- xkre c) d fHk{kkik= dk o'kkyh l iotu — 288&292
  पिंकु कुमार चौधरी
- Lokeh n;kuUn ljLorh — 293&295
  डॉ0 साधना जायसवाल
- jkgrkl d vk/;kfRed tkxj.k e fo"od lukpk;l dk vonku — 296&299
  ज्ञान्ति कुमारी

उन्मेष
Unmesh - ISSN 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018

- cLrh tuin ¼m0 iz0½ esa tula[;k o`f) ,oa forj.k dk
  ,d HkkSxksfyd v/;;u — 300&306
  अरविन्द कुमार मौर्य, डॉ0 बिजेंन्द्र सिंह
- xksiky flag usikyh ds xhrksa esa L=h psruk — 307&310
  एकता जायसवाल
- vk/;kfRed ukjhokn — 311&315
  इन्दु श्रीवास्तव
- NkSVkukxiqj esa tutkrh; la?k"kZ % dkj.k vkSj vk;ke — 316&318
  डॉ0 भारती झा
- d`f"ktU; m|ksxksa ds mRiknksa dk fo'ys"k.k
  ukS[kk iz[k.M ¼jksgrkl ftyk½ ds lUnHkZ esa — 319&321
  संजीव कुमार
- Hkkstiqjh ftyk esa f'kf{kr csjkstxkj efgykvksa dh fLFkfr dk fo'ys"k.k — 322&323
  स्नेह कीर्ति
- xqlrdkyhu f'k{kk] lkfgR; ,oe foKku — 324&327
  डॉ0 शाहबाज वारिस खाँ
- T;ksfr"k'kkL= esa jksx fopkj % ,d v/;;u — 328&331
  डॉ0 मनीष कुमार
- Hkkstiqj dh le`) ukV~;&ijEijk — 332&335
  डॉ० आनन्द कुमार
- izkÑr Hkk"kk ,oa lkfgR; dk oSf'k"V~; — 336&340
  डॉ0 किरन देवी
- dchj ds dkO; esa L=h thou — 341&344
  शिव कुमार
- —"kd thou dh =klnh vkSj dfo ukxktZqu — 345&347
  डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह
- efgyk dFkk ys£u vkSj L=h thou dk ;FkkFkZ — 348&351
  विजय कुमार रंजन
- oSfnd dkyhu laLFkk,¡ lHkk vkSj lfefr dk voyksdu — 352&354
  डॉ0 अनिल कुमार यादव
- xzkeh.k fo/kokvksa dh lkekftd Lohd`fr % ,d
  lekt euksoSKkfud v/;;u — 355&357
  हंस राज

उन्मेष
Unmesh - ISSN 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018

- **Hazards of Climate Change on Health, Coastal Life and Livelihood : Policy Appraisal in India** **1-5**
  Swati
- **Socio-Economic conditions of Labourers of Sugar Cane Works In Eastern Uttar Pradesh** **6-10**
  Dr. Vivek Kumar Singh
- **Impact of Water Pollutants on Phytoplanktons Diversity and Productvity in Ponds at Bhadohi** **11-14**
  Piyush Mishra
- **Sustainable Development and Poverty : A Sociological Study** **15-20**
  Dr. Sita Ram Singh, Prof. Mohammad Salim
- **Effects of Seed Germination at Harvesting Times and Storage on Seed hardness of Different varieties in Okra (Abelmoschus esculentus L.)** **21-26**
  Kailash Ram
- **Comparative Analysis of Literacy in Patna Division** **27-30**
  Dr. Satyendra Singh Chandra
- **Impact of Change in Govenment's Monetary Policy on Indian Economy** **31-33**
  Dr. Shatrudhan Prasad
- **Plastic waste management in India** **34-38**
  Tripuresh Nath Tiwari
- ***Failed Diplomacy:* St Lubin's Mission to Maratha Court** **39-43**
  Brijesh Kumar Shukla

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 1-3

ubl jk"Vh; tul[;k uhfr 15 Qjojh 2000

ihfr f}onh*

Ikjka'k% *केन्द्र सरकार ने 15 फरवरी वर्ष 2000 को नई राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषणा की। यह नीति डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में गठित विशेष दल की रिपोर्ट पर आधारित है। सरकार ने सार्वजनिक बहस के बाद इसे अन्तिम रूप दे दिया है। वर्ष 1976 के बाद यह दूसरी जनसंख्या नीति है। इस नीति का तात्कालिक लक्ष्य गर्भनिरोधक सम्बन्धी आवश्यकताओं, स्वास्थ्य बुनियादी सुविधाओं, स्वास्थ्य देखभाल के लिये स्वीकृत सेवाएं उपलब्ध कराना है। इसका मध्यावधि लक्ष्य 2010 तक समग्र प्रजनन दर तक पहुंचना है जो अन्ततः परिचालन, कार्य–नीतियों के सशक्त कार्यान्वयन द्वारा सम्भव होगा। इसका दीर्घकालिक लक्ष्य 2045 तक जनसंख्या स्थिरीकरण को प्राप्त करना है और यह सतत् आर्थिक विकास, सामाजिक विकास और पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकताओं के अनुकूल होगा। यह अध्ययन पूर्व के अध्ययनों से अलग है तथा अध्ययन विषय एवं समाज के लिए महत्वपूर्ण हैं।*

eq[; 'kCn% राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000, सीमित परिवार, शिशु मृत्यु दर, मातृत्वहित लाभ योजना आदि।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 के उद्देश्यों और लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये प्रोत्साहन और भावनात्मक कदम इस प्रकार है– ♦ सीमित परिवार मानदण्डों के प्रचुर प्रसार से शिशु मृत्यु दर में कमी लाने तथा जन्म दर और प्राथमिक शिक्षा के बाद साक्षरता के विकास में उत्कृष्ट कार्य करने के लिए पंचायत और जिला परिषदों को पुरस्कृत और सम्मानित किया जाये। ♦ बालिका के जीवन एवं उसके देख–रेख को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से महिला एवं बाल विकास द्वारा चलाई जा रही बालिका समृद्धि योजना जारी रहेगी जन्म क्रम में पहली और दूसरी बालिका के जन्म पर 500 रुपये का नगद प्रोत्साहन भी दिया जाता है। ग्रामीण विकास विभाग द्वारा चलाई जा रही मातृत्वहित लाभ योजना जारी रहेगी। 19 वर्ष की आयु के बाद माँ बनने वाली महिलाओं को प्रथम या द्वितीय बच्चे के जन्म के लिये 500 रुपये का नगद प्रोत्साहन स्वरूप दिया जायेगा। इस प्रकार नगद पुरस्कार को भविष्य में प्रस्तुत पूर्व जाँच प्रशिक्षित जन्म परिचारिकाओं संस्थागत प्रसूति जन्म के पंजीकरण एवं बी.सी.जी. रोग प्रतिरक्षण को ध्यान में रखकर दिया जायेगा। ♦ परिवार कल्याण सम्बन्धित स्वास्थ्य बीमा योजना स्थापित की जायेगी। गरीबी की रेखा के नीचे के ऐसे दम्पतियों को जिनके दो से अधिक बच्चे जीवित न हो द्वारा नसबन्दी कराने पर वे (अपने बच्चे के साथ) स्वास्थ्य बीमा (अस्पताल में भर्ती होने पर) अन्तर्गत 5000 रुपये तक के बीमें के पात्र हो जायेंगे और नसबन्दी कराने वाले ऐसे दम्पतियों को निजी दुर्घटना बीमा के दायरे में भी रखा जायेगा।♦ गरीबी रेखा के नीचे के दम्पति की जो शादी की वैध आयु के बाद ही विवाह करते हैं, विवाह का पंजीकरण कराते हैं और उनकी पत्नी की आयु 21 वर्ष होने पर पहला बच्चा होता है वे जीवित परिवार के मानदण्ड अपनाते हैं तथा द्वितीय बच्चे के जन्म के बाद टार्मेनल तरीके अपनाते हैं उन्हें पुरस्कृत किया जायेगा। ♦ ग्रामीण स्तर पर ऐसे स्वयं सेवी समूह जो सामुदायिक स्तर पर स्वयं सहायता देखरेख सेवा में प्रदान करते हैं ऐसे समूह की आय स्रोत गतिविधियों के लिए एक आवर्ती विधि की स्थापना की जायेगी। ♦ ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में क्रेचेज और बाल देखरेख केन्द्र स्थापित किये जायेंगे इससे भुगतान आधारित रोजगारों में महिलाओं की भागीदारी में सहायता तथा प्रोत्साहन मिलेगा। ♦ विविध प्रसूति स्थलों पर व्यापक और पसंद की ग्राह्यता के अनुरूप गर्भनिरोधक मुहैया कराए जायेंगे तथा साथ ही उन्हें परामर्श सेवाएं भी प्रदान की जायेगी ताकि उन्हें अपनाने वाले स्वैच्छिक रूप से सूचना देते हुए अपनी सहमति दे सके। ♦ सुरक्षित

*पूर्व शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार

गर्भपात का स्थिरीकरण और विस्तृत की सुविधा। ♦ पहलगामी समाजीकरण योजनाओं के माध्यम से उत्पाद और सेवाओं को ग्राह्य बनाया जायेगा। ♦ ग्रामीण स्तर पर लघु उद्यमियों को आसान क्षण उपलब्ध कराया जायेगा और उन्हें एम्बुलेंस के लिये प्रोत्साहित किया जायेगा ताकि वे रेफरल ट्रांसफार्मेशन के लिये मौजूद वस्तुओं में सहायक बन सके। ♦ लड़कियों के लिय व्यावसायिक प्रशिक्षण योजनाओं की वृद्धि को प्रोत्साहित किया जायेगा ताकि उन्हें स्वरोजगार मिल सके। ♦ बाल विवाह निरोधक अधिनियम 1976 को सख्ती से लागू किया जायेगा। ♦ प्रसूति पूर्व डायग्नोस्टिक टेक्निक्स एक्ट 1994 को सख्ती से लागू किया जायेगा। ♦ ए.एन.एम. की गतिशीलता सुनिश्चित करने के लिये आसान ऋणों में वृद्धि।♦ 1971 के जनगणना स्तरों पर 42वें संविधान संशोधन के द्वारा लोक सभा के प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ाने पर रोक लगा दी गई है। जनसंख्या के आधार पर यह रोक 2001 तक वैध थी। इसका उद्देश्य राज्य सरकारों के लिये एक प्रोत्साहन का काम करना था ताकि वे किसी तरीके से निर्भीक होकर जनसंख्या नसबन्दी के लिये इस कार्यसूची को अपना सके। इस रोक को 2026 तक और बढ़ाने की आवश्यकता है।

इस नीति में वर्ष 2010 तक प्रजनन दर यथास्थिति तथा जनसंख्या को 2045 तक स्थिर करने का लक्ष्य रखा गया है। उसके अलावा इस नीति में बाल–विवाह निरोधक कानून तथा बच्चे के जन्म से पूर्व उसके लिंग का पता लगाने वाली प्री–नेटल डाइग्नोस्टिक टेक्निक एक्ट को भी सख्ती से लागू करने का निश्चय किया गया है। बंध्याकरण और नसबन्दी द्वारा विसंक्रमण के लक्ष्यों को पूरा करने की अपनी पुरानी नीति त्याग कर पूरे परिवार की शिक्षा स्वास्थ्य तथा मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति पर विशेष ध्यान दिया गया है। इस नीति के तहत प्रत्येक गाँव में साज सामान से युक्त एक प्रसूतिशाला (मैटर्निटी छत) जिसमें जच्चा–बच्चा के लिए प्रसव किट मूल–चिकित्सा सामग्री तथा दवाईयाँ उपलब्ध होगी बनाने का प्रावधान है।

नयी जनसंख्या नीति एक व्यापक दस्तावेज है, जिसके पूर्णतः क्रियान्वयन के लिए विभिन्न स्तरों पर समाज के सभी वर्गों का सहयोग अपेक्षित है। अतः आवश्यक है कि इसको पूर्ण रूप से निश्चित संकल्प के साथ लागू किया जाय।

इस प्रकार नवीन जनसंख्या नीति के छोटे परिवार एवं सुखद और उज्जवल भविष्य की कल्पना की गई है।

ekrRo LokLF; dk;Øe % पिछले दशकों में देश में आबादी की जीवन प्रत्याशा में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। सन् 1961 में यह 41 वर्ष थी, जो बढ़कर इस समय 65 वर्ष हो गयी है। हालांकि अभी भी प्रति वर्ष देश में गर्भावस्था सम्बन्धी कारणों से एक लाख महिलाओं की मौत हो जाती है। देश में एक लाख गर्भवती महिलाओं में से 407 महिलाओं की मौत (S.R.S., I.G.I. 1998) हो जाती है इसके मुख्य कारण है हैमरेज (प्रसव व प्रसवोत्तर) गर्भावस्था के दौरान तनाव, एनीमिया, तेजदर्द, प्रसूतिदोष ;प्रसव के बाद संक्रमण और असुरक्षित गर्भपात।

मातृत्व स्वास्थ्य कार्यक्रम जो प्रजनन तथा बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम का एक अभिन्न अंग है का उद्देश्य विभिन्न उपायों के जरिये सन् 2010 तक मातृत्व मृत्युदर को 100 से कम करना है ये उपाय आवश्यक प्रसूति सम्बन्धी सेवाएँ हैं, जिनका उद्देश्य सभी गर्भवती महिलाओं का शुरू में ही पंजीकरण ताकि किसी भी परेशानी या जटिलता की स्थिति में आवश्यक उपाय किये जा सकें। गर्भावस्था के दौरान और प्रसव के बाद तीन–तीन बार गर्भवती महिला की जाँच आदि भी इन उपायों में शामिल हैं। इसके अलावा प्राथमिक स्वास्थ्य में सुधार के लिए केन्द्रों व स्वास्थ्य केन्द्रों में चौबीस घंटे प्रजनन सुविधायें उपलब्ध कराना, सुदुर क्षेत्रों और आर.सी.एच. (R.C.H.) शिविरों में स्वच्छ व सुरक्षित प्रसव के लिये दाइयों को प्रशिक्षित करना भी शामिल हैं।

tuuh lqj{kk ;kstuk % राष्ट्रीय मातृत्व भत्ता योजना 15 अगस्त 1995 से प्रभावी है। इसका उद्देश्य संभावित माताओं को बेहतर भोजन के रूप में मातृत्व देखभाल उपलब्ध कराना है। इसके तहत बी.पी. एल. परिवारों के अन्तर्गत आने वाली 19 वर्ष या उससे अधिक आयु की गर्भवती महिलाओं को बच्चे के जन्म पर 500 रुपये की वित्तीय मदद दी जाती है। यह मदद केवल पहले दो बच्चों के जन्म पर ही उपलब्ध है। सौ फीसदी केन्द्रीय मदद वाली यह योजना वर्ष 2001–2002 में ग्रामीण विकास मंत्रालय से

लेकर परिवार कल्याण विभाग के हवाले कर दी गई। चूँकि इस योजना का प्रस्ताव से पहले गर्भवती महिला की जाँच और प्रसव के बाद महिला की देखभाल से कोई सम्बन्ध नहीं है इसलिए मातृत्व तथा नवजात शिशु मृत्यु दर को कम करने में इसका कोई प्रभाव नहीं है। इसकी वजह से एन.एस.बी.एस. में सुधार की और ज्यादा आवश्यकता महसूस की गई।

जननी सुरक्षा योजना मौजूदा राष्ट्रीय मातृत्व भत्ता योजना को सुधारने की दृष्टि से प्रस्तावित की गई है। इसका उद्देश्य गर्भवती महिलाओं को एक एकीकृत प्रसूति सेवा उपलब्ध कराना है। इसमें प्रसव पूर्व देख–रेख बच्चे का जन्म तथा प्रसव के बाद देख–रेख शामिल है। एन.एम.बी.एस. (N.M.B.S.) की ही तरह यह भी सौ फीसदी केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित योजना है, जो माँ और बच्चे दोनों के स्वास्थ्य पर केन्द्रित है।

इस योजना में ज्यादा जोर बी.पी.एल. (B.P.L.) परिवार की महिलाओं के लिये प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों सी.एच.सी. (C.H.C.), एफ.आर.यू. (F.R.U.) और अन्य स्वास्थ्य संस्थानों में और खास तौर पर कम उपलब्धि वाले राज्यों में प्रसव सुविधाओं को बढ़ावा देने पर दिया गया है क्योंकि इन राज्यों में स्वास्थ्य सेवा तक इनकी पहुँच मुश्किल होती है।

oUnekrje~ ;kstuk% सन् 1998 (एस.आर.एस., आर.जी.आई. के मुताबिक) प्रसव के दौरान एक लाख माताओं में से 407 की मृत्यु हुई, इनमें से अधिकतर मौते गर्भावस्था के दौरान उत्पन्न जटिलताओं, जैसे– हैमरेज, एनीमिया, तनाव, प्रसव पीड़ा, असुरक्षित गर्भपात इत्यादि के कारण होती है अगर इन जटिलताओं की पहचान और उनका उपचार समय पर हो जाए तो इन महिलाओं की जान बचायी जा सकती है इसी को ध्यान में रखते हुए वन्देमातरम् योजना 9 फरवरी 2004 को शुरू की गई। यह योजना भारतीय प्रसूति तथा स्त्री रोग सोसायटी परिसंघ के साथ सरकारी–निजी सहभागिता में शुरू की गई। यह परिसंघ मातृत्व मृत्युदर को कम करने और गर्भावस्था तथा प्रसव के दौरान महिलाओं के स्वास्थ्य में सुधार के लिये चलाये जाने वाले राष्ट्रीय प्रयास में स्वैच्छिक भागीदारी करता है। इस योजना के अन्तर्गत गर्भवती महिलाओं की प्रसव में पहले निःशुल्क जाँच की जाती है तथा परिवार नियोजन के बारे मे सलाह दी जाती है। यह सुविधा सरकारी और निजी चिकित्सकों द्वारा अपने अस्पतालों और क्लीनिकों में हर महीने की एक तयशुदा तारीख को दी जाती है।

इस प्रकार परिवार कल्याण सम्बन्धी कार्यक्रमों को जन–जन तक पहुंचाने के लिये अनेक कार्यक्रम कार्यान्वित किये जा रहे हैं। निष्कर्षतः जनसंख्या पर नियंत्रण रखना हम सबके हित में है यदि हमने इसका मार्ग अवरुद्ध नहीं किया तो हमारे लिये समस्या के द्वार खुल जायेंगे तथा इसका हमारे जीवन स्तर, शिक्षा स्वास्थ्य, आवास, रोजगार, यातायात, पर्यावरण इत्यादि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और आत्मनिर्भर होने की बात दिवास्वप्न प्रतीत होगी। सरकार को चाहिए वह जनसंख्या नियंत्रण के उपाय देश के सभी नागरिकों पर निष्पक्ष रुप से तथा कठोरता के साथ लागू करे, तभी देश में एक आदर्श संतुलन की स्थिति पैदा की जा सकती है।

lUnHkZ%

1. Bahadur, K.P. (1977): "Population Crisis in India" New Delhi, National Publishing House, pp. 45-47.
2. Arora, G. (1983) : "Socio-Economic Determinats of Fertility", The Journal of Family Welfare, Vol. XXIX, No. 3, p. 39.
3. Strangeland in Des Pandey (ed.) : "Social Demography", vishwavidyalaya Prakashan, 1979, p. 103.
4. Smith, Adam (1937) : "Wealth of Nations", Cannan (ed.), Modern Library, New York, pp. 79-80.
5. Godwin, (1793) : "Enquiry Concernin Political Justic and its influence on Moral and Happiness", In Hansraj (ed.), 'Population Studies', (vth ed.) Surjeet Publications, Delhi, (1989), p. 134.
6. Des Pandey, N.S. (1979) : "Social Demography", Vishwavidyalaya Prakashan, p. 145.
7. Aaj : Varanasi, Feb. 15, 2000.

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 4-7

jkepfjrekul vkj ykduk;d rylhnkl

MkO 'kkfyuh flg*

किसी कृति का मूल्यांकन इस दृष्टि से किया जाता है कि उसने साहित्य को कहाँ तक बढ़ाया या उसने समाज को बढ़ाने में कहाँ तक सहयोग किया। यह दोनों दृष्टि ही एक चिन्तन के दो पहलू है। इसमें मात्र तकनीकी अन्तर है। वैसे किसी भी रचना का मूल्यांकन, अपने आने वाले समय में समाज के उत्थान और पतन की दृष्टि में रखकर किया जाता है। साहित्य और समाज में कोई आधारभूत अन्तर नहीं होता है। भले ही कोई रचना स्वतः सुखाय या बहुजन हिताय लिखी जाय जब यह कषतिकार से पष्थक होती है तो पाठक अपने–अपने जीवन का उत्थान करें अथवा उसके प्रभाव में अपनी सामर्थ्य को बिसार दे। ऐसे उपेक्षित लोग कही समाज के प्रति विद्रोही बन जाते है और अव्यवहारिक आचरण करने लगते है। इसलिए लेखक को तटस्थ ओर वर्गवाद से अपने को अलग रखना चाहिए।

संसार की कोई भी वस्तु स्थायी और चिरंतन नहीं है। प्रत्येक वस्तु और परिस्थिति तथा विचारधारा में परिवर्तन होता रहता है। इसलिए जो विचार तथ्य और घटनायें आज के लए सत्य है, वह कल के लिए उपयोगी हो यह सम्भव नहीं। हो सकता है कल उसकी आवश्यकता नहीं हो। इसिलए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है सभी पुराने खराब नही होते और सभी नये अच्छे नहीं होते। रचनाकार को विशेष सतर्क और जाग्रत रहना होता है। रचना तो लेखक की मनोगत सृष्टि होता है।

रामचरितमानस का उत्तर भारत में नहीं अन्यत्र भी जहाँ कहीं इसका पाठ होता है तुलसी की मान्यताओं की जोरदार स्थापना होती है। यह सामंती व्यवस्था के पोषक और लोकतंत्र के विरोधी हैं। वह नहीं चाहते थे कि सामान्य जनमानस का महत्व बढ़े, वह किसी ऐसे व्यक्ति के बढ़त के प्रति आस्थावान थे जो उनका स्वयं अपना हो इसलिए यह बात सरस्वती के माध्यम से कहलवाने से हैं –

dhUg ikÑfr tu xu ekukA flj /kfu fxjk ykfx ifNrkukA[1]

यह चौपाई साफ तौर पर कह रही है कि तुलसी लोकतंत्र विरोधी और सामंती व्यवस्था के रखवाले हैं जो तुलसीदास रामचरितमानस में स्त्री को जगत जननी स्वीकार करे हैं वहीं दूसरी जगह कहते हैं –

dr fof/k l'th tx ukfj ekghA ijk/khu liug l[k ukghA[2]

जिस संसार में स्त्री की आबादी आधी है, उसके अभावम में सृष्टि की कल्पना ही नहीं हो सकती, समकालीन साहित्य और समाज में स्त्री विमर्श एक मुद्दा बना हुआ है। वहाँ महारानी मैना सती जिसको तुलसी ने जगत माता कहा! शिव को सौंपते समय वह कहती हैं कि –

ukFk mek eu iku le xg fdedjh djgA
geg ldy vijk/k vc gkb il Uu c# ngAA[3]

जहाँ स्त्री–पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है, प्रत्येक कार्य में बराबर की उनकी साझेदारी है। चाहे वह विज्ञान का क्षेत्र हो अथवा राजनीति का, किन्तु तुलसी पार्वती के मुख से कहलवाते हैं कि –

vc ekfg vkiu fdddfj tkuhA tnfi lgt tM ukfj v[kkuhAA
i.ke th e iNk lkb dggA tk ek ij ilUu iHk vggAA[4]

आँख मूदकर किसी तथ्य को मान लेती है? कौन सी स्वाभिमानी स्त्री होगी जो तुलसी का खण्डन नहीं करेगा?

*असिस्टेंट प्रोफसर (हिन्दी), अखिलभाग्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रानापार, गोरखपुर

राम जनकपुर जाते समय गौतम मुनि के आश्रम में एक पत्थर की स्त्री को देखते हैं जिसका कारण मुनि विश्वामित्र से पूछते हैं। मुनि कहते हैं यह श्रापित नारी है जो आपका चरण स्पर्श मात्र चाह रही है। जिससे वह जीवित हो उठती है जिसे तुलसीदास ने लिखा –

t ijfl efuchfurk] ygh xfr jgh tk ikrdebA[5]

यहाँ बेचारी अहल्या को पातकी कहा गया ''उसे छलने वाले चन्द्र तथा इन्द्र दोनों देवताओं द्वारा ठगा या मुनि माँ किसी भी अवज्ञा का पात्र नहीं बना। तब दोनों देवताओं द्वारा वंचिता अबला एकमात्र अहल्या की क्यों पाषाण बनने पर मजबूर हुई'' क्या समाज इस घटना के लिए उत्तरदायी नहीं है, क्या गौतम और इन्द्र इस अपराध के भागी नहीं है? अगर ऐसा है तो यहाँ समाज की स्त्रियों के प्रति कैसी सोच रही है यह कहा नहीं जा सकता है।

पुनः तुलसी लिखते हैं कि स्त्री सुन्दर पुरुष को देखते ही पिघल जाती है कामातुर हो जाती है। चाहे वह उसका भाई हो अथवा पुत्र–पिता चाहे जो भी हो।

Hkkrk firk i= mjxkjhA i#"k eukgj fuj[kr ukjhAA
gkb fody ld eufg u jkdhA ftfe jfoefu no jfofg fcykdhAA[8]

क्या पुरुष स्त्री को देखकर मोहित नहीं होते? क्या पुरुष निष्काम हैं उसके मन में स्त्री के प्रति आकर्षण नहीं होता अगर ऐसा है तो एक तरफा स्त्री पर आरोप लगाने का क्या मतलब है।

सीता हरण के पश्चात् राम सीता को खोजते हुए शबरी के आश्रम में जाते हैं जहाँ शबरी राम के सामने अपने को दैन्य स्थिति में प्रस्तुत करती है –

dfg fof/k vLrfr djk rEgkjhA v/ke txr e tMxr ukjhAA
v/ke r v/ke v/ke vfr ukjhA frUg eg e efr en v/kkjhAA[9]

अब जिसके दिलों दिमाग में यही बात बैठी हुई है कि नीच और छोटा हूँ वह अपनी उन्नति के विषय में क्या कभी सोच भी सकता है? आगे तुलसी के आराध्य राम स्वयं यह कहते हैं कि –

jkf[kv ukfj tnfi mj ekghA tcrh lkL= u'ifg cl ukghAA[10]

अगर स्त्री को बहुत निकट रखा जाय तब भी उसका विश्वास नहीं करना चाहिए। मनुष्य के जो मधुर सम्बन्ध होते हैं वह है पति–पत्नी का सम्बन्ध मनुष्य अपनी स्त्री पर विश्वास नहीं करें तो करेगा किस पर?

राम नारद से कहते हैं कि नारद तुम मेरे प्रिय हो इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि स्त्रियाँ अवगुणों की खान और बराबर पीड़ा देने वाली हैं इसलिए मैंने तुम्हें विवाह नहीं करने दिया –

voxu eu lyin ienk lc n[k [kkfuA
rk r dhUg fuokju efu e ;g ft; tkfuAA

अगर ऐसी बात है और यह सत्य है तो राम ने स्वयं क्यों विवाह किया?

स्त्रियों के प्रति तुलसीदास की दृष्टि इसमें भी निम्न है, वह कहते हैं –

egkof"V pfy QfV fdvkjhA ftfe Lor= Hk, fcxjfg ukjhAA[12]

इस पर मनुस्मृति के श्लोकां की छाया है। जिसका अर्थ है कि वह कुआरी रहती है तो पिता रक्षा करता है युवती होने पर पति रक्षा करता है वृद्धावस्था में पुत्र रक्षा करता है वह किसी भी अवस्था में स्वतंत्र नहीं है। जिस देश की स्त्रियाँ परतंत्रता में रहेगी क्या वह देश विकसित और समुन्नत बन सकता है?? अगर किसी तरह से स्त्रियाँ स्वतंत्र हो जाय तो समुद्र स्त्रियों के विषय में कहता है कि –

<ky xokj ln il ukjhA ldy rkMuk d vf/kdkjhAA[13]

अब ढोल तो निर्जीव है किन्तु गवार, शूद्र, पशु और नारी क्या इनमें सम्वेदना और चेतना नहीं होती। दुनिया में जितने समाज पाये हैं उनमें एक दूसरे समाज के प्रति कुछ न कुछ हीन भावनाएँ पायी ही जाती है। समाज में वर्ग वहिन मनुष्य की गणना अर्थ के आधार पर होती है। अर्थात् समाज में कोई न कोई एक मानक है जिसे समाज में रहने वालों को एक दृष्टि से नहीं देखा जाता है।

उत्तर आधुनिकता और लोकतंत्र इसका हिमायती नहीं है। वह प्रत्येक वस्तु और पदार्थ का समान महत्व रखता है। ''वास्तव में उत्तर आधुनिकता की विचारधारा वह है जो आधुनिकता के साथ जुड़े हुए सम्पूर्ण सामाजिक स्वरूपों को ध्वस्त करता है।[14]

तुलसीदास की कृति में रामचरितमानस में ब्राह्मण शाही के निहित स्वार्थो का काफी हाथ है। उन्हें ब्राह्मण शाही के ढहते हुए वर्चस्व से जो मार्मिक वेदना हुयी वह है –

cknfg lnk f}tUg luA ge rEgrs dNq ?kkfVAA
tkufg cãq lks foizoj] vkf[k n[kkofg MkfVAA[15]

यह दोहा जनतंत्र का धुर विरोधी है क्या संसार में कही ईश्वर या जो प्राकृतिक शक्ति है मात्र ब्राह्मणों के लिए ही बनी है। क्या ब्राह्मण और शूद्र की जाति संरचना मनुष्य कृत और समाज द्वारा अनुमोदित नहीं है? अगर ऐसा है तो कोई किसी से किसी विषय के जानकार सज्जन से अपने ज्ञान की तुलना या संशय दूर करना चाहता है तो क्या वह उसकी आँख दिखा रहा है?

तुलसीदास ने सामान्य जनता के मन पर शासन करने के लिए नारद जो ब्राह्मण है, उनसे भगवान को ही श्राप दिलवा देते हैं। जिससे भगवान को राम के रूप में आना पड़ता है तथा स्त्री वियोग को सहन करना पड़ता है।

ब्राह्मण के श्राप में या ब्राह्मण इतना सामार्थ्यवान है तो फिर ईश्वर की आवश्यकता ही क्या है। इसकी महत्ता किसलिए जो स्वयं मनुष्यों जैसा आचरण व्यवहार करता है तो मनुष्य–मनुष्य और ईश्वर मनुष्य में क्या अन्तर है।

''रामचरितमानस में पग–पग पर ब्राह्मणों का उल्लेख है, लेकिन क्षत्रियों का उल्लेख जातिगत दृष्टि से कितनी बार है, वैश्यों का तो प्रायः है ही नहीं, शूद्रों की जहाँ कहीं भी उल्लेख हुआ है, वहाँ साथ ही यह घोषणा भी है कि वे नीच जाति के हैं।'' ब्राह्मणों के लिए राम के मुख से तुलसी ने कहला दिया –

lkir rkMr i#"k dgrkA fciz iwT; vl xkofg lrkAA
iwft; fciz 'khy xq.k ghukA lwn u xqu xu X;ku iohukAA[16]

यहाँ ब्राह्मण जाति का कितना स्वार्थ छिपा हुआ है। यह समाज हित विरोधी चौपाई क्या समाज में प्रगति के मार्ग को प्रशस्त कर सकती है क्या किसी अब्राह्मण का इससे कल्याण हो सकता है या नहीं? क्या ज्ञान वंश और परम्परा पर आधारित होता है क्या ब्राह्मण कुल में जन्म भर लेने से आदमी पवित्र हो सकता है? अगर ऐसा है तो क्या रावण महर्षि पुलस्त का वंशज नहीं था क्या पुलस्त मुनि ब्राह्मण नहीं थे। ब्राह्मण हर प्रकार से पूज्य है तो राम ने रावण को क्यों मारा? क्यों लक्ष्मण और परशुराम सम्वाद में राम ने परशुराम से कहा ''विप्रवंश के अस प्रभुताई। अभय होई जो तुमही डेराई'' अगर वह परशुराम से युद्ध नहीं कर सकते थे तो रावण से क्यों युद्ध किए?

तुलसीदास ने लिखा ब्राह्मण की निन्दा करने वाला सदैव नरक भोगता है। कौवे का शरीर धारण करता है –

f}t fuUnd cgq ujd Hkksx dfjA tx tueb ckul ljhj /kfjAA[17]

इसमें यह सन्देह बिल्कुल ही नहीं कि रामचरितमानस में ब्राह्मणों के वर्चस्व के स्थापित किया गया है।

भारतीय साहित्य में रामचरितमानस का सबसे अधिक प्रचार–प्रसार हुआ है। इसके पाठकों को धर्म, श्रद्धा, अंध–विश्वास और स्वर्ग नरक की घटनाएँ घेरती है। जिसका आज के समय में कोई प्रासंगिकता नहीं है। जब से मनुष्य ने होश सम्भाला है तब से ''इतिहास में ऐसा एक भी राजा का वर्णन नहीं मिलता जिसने संसार पर एकछत्र राज्य किया हो अब संसार में अनेक भाग अविकसित हैं। जहाँ कोई राज्य व्यवस्था सम्भव नहीं है। बेचारे सिकन्दर ने विश्वविजय होने का सपना देखा था, पर एशिया महाद्वीप भी नहीं जीत पाया। इतिहास के साक्ष्य के विरुद्ध तुलसी ने मानस में इतना बड़ा झूठ बोला है, उन्हें एक ऐसे राजा का नाम मालूम था जिसने सारे संसार के राजाओं को जीत अपने अधीन कर लिया था।[18] तुलसी तो भक्ति के आवेश में लिखते चले गये और उनके अनुयायी उसमें अपना विवेक बल प्रयुक्त किये बिना सब कुछ स्वीकार कर लिए। जो सामान्य जन के विकास का मार्ग अविरुद्ध करता है और लोकतंत्र की प्रतिष्ठा मानने से ही इन्कार कर देता है।

तुलसी ने स्त्री और शूद्रों को लेकर जो भी बातें कहीं हैं, वह समाज में एक विद्वेष को ही पैदा करता है। किन्तु उत्तर–आधुनिकता इसको चुनौती देती है। जिस प्रकार से रामचरितमानस एक सामंती दिमाक् की उपज है, उसी प्रकार उत्तर आधुनिकता भी एक विचारधारा है। किन्तु रामचरितमानस स्त्री और

शूद्रों को हीन भावना से ग्रसित करता है और ''उत्तर आधुनिकता उनके इस आधुनिक कला''[19] विधि व्यवस्था का अगला कदम है। यह उभरती हुई संस्कृति को अपने परिवेश में लाती है। आज का मनुष्य वैश्विक धरातल से देखने और सोचने लगा है आज के समाज में न तो कोई बड़ा है न तो कोई छोटा है। मनुष्य समाज के एक पूरक अंग के रूप में है। स्त्रियों को किसी भी कार्य में किसी प्रकार की कोई रोक–टोक नहीं है। आज के समय और परिदृश्य को देखकर कहा जाता है कि तुलसीदास की दृष्टि मात्र परम्परावादी है। उन्होंने स्वतंत्र रूप से न तो किसी को सोचने के लिए कोई मार्ग दिया न ही स्त्री और शूद्रों के उत्थान के लिए कोई उपाय जो लोकतंत्र की हत्या करता है।

एक जगह वह स्त्री को सर्वश्रेष्ठ स्वीकारते हैं और दूसरी जगह दीन, हीन, अशुद्ध तक कह डालते हैं। उन्होंने यह नहीं सोचा जिस वाणी और बुद्धि के प्रभाव से मैं स्त्री को अधम, मूर्ख कह रहा हूँ मेरा भी पालन–पोषण किसी स्त्री कि गर्भ में हुआ है। क्योंकि उनके पास ऐसी दृष्टि नहीं थी। सीता को उन्होंने बड़ा माना शायद वह उनके इष्टदेव की पत्नी थी नहीं होती तो उन्हें भी अधम कह देते। यह अन्ध श्रद्धा नही ंतो और क्या? कोल–भील, किरात को अछूत तक कह डाला और उन्होंने उनको मुर्ख तक कहलवा दिया फिर उनका यह सिद्धान्त कैसे सत्य माना जाय कि सीया राममय सब जग जानी करहू प्रनाम जोरि जुग पानी इसकी सार्थकता यहाँ संदिग्ध हो जाती है।

भक्ति भाव और अन्ध श्रद्धा से जीवन का सत्य नहीं झलकता इसमें पड़े रहकर उससे बाहर नहीं निकला जा सकता है। उसके लिए स्वस्थ चिन्तन और वैज्ञानिक दृष्टि होनी चाहिए।

lUnHkZ %

1. तुलसीदास, रामचरितमानस – बालकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर– 20–4
2. तुलसीदास, रामचरितमानस – बालकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर– 125–3
3. तुलसीदास, रामचरितमानस – बालकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर– 125
4. तुलसीदास, रामचरितमानस – बालकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर– 143–2,3
5. तुलसीदास, रामचरितमानस – बालकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर– 356–2 छंद
6. सं0 विश्वनाथ– हिन्दू समाज के पथ भ्रष्टक तुलसीदास विजय प्रकाशन दिल्ली, प्रथमि संस्करण, पृ0 63
7. तुलसीदास, रामचरितमानस – अरण्यकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर–9
8. तुलसीदास, रामचरितमानस – अरण्यकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर– 62–1–2
9. तुलसीदास, रामचरितमानस – अरण्यकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर– 28–4
10. तुलसीदास, रामचरितमानस – अरण्यकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर–65–1–5
11. तुलसीदास, रामचरितमानस – अरण्यकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर–58
12. तुलसीदास, रामचरितमानस – किष्किंधाकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर–14–4
13. तुलसीदास, रामचरितमानस – सुन्दरकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर–62–3
14. एस0एल0 दोषी, एम0एम0 त्रिवेदी, उच्चतर समाज शास्त्रीय सिद्धान्त रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण 2011, पृ0 392
15. तुलसीदास, रामचरितमानस – उत्तरकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर– 157
16. सं0 विश्वनाथ – हिन्दू समाज के पथ भ्रष्टक तुलसीदास, विजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ0 84–85
17. तुलसीदास रामचरितमानस – अरण्यकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर– 40–1
18. सं0 विश्वनाथ – हिन्दू समाज के पथ भ्रष्टक तुलसीदास, विजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ0 135
19. वही, पृ0 391

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 8-11

tudfo dsnkjukFk vxzoky

fou; dkUr feJ*

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में आद्योपांत प्रकृति के भिन्न–भिन्न स्वरूप विद्यमान हैं। केदार भले ही रामविलास शर्मा से तर्क करें लेकिन अंत में वह रामविलास शर्मा द्वारा उद्‌घाटित कमजोरियों पर दृष्टि डालते हैं और कविता में रचनात्मक सुधार लाते हैं। नामवर सिंह लिखते है,"सबसे बडा आश्चर्य तो यह है कि पत्रों में रामविलास शर्मा ने प्रशंसा से अधिक केदार जी की कविताओं की निर्मम आलोचना की है– यहाँ तक कि कुछ कविताओं की धज्जियाँ उड़ा दी हैं। कहीं–कहीं केदार जी ने अपने बचाव में बहस भी की है लेकिन अंततः अपनी भूलें स्वीकर कर ली हैं।"[1] केदार ने भूलों को सुधारा है तभी तो वह एक बड़े कवि बन सके। भूलों को सुधार कर ही व्यक्ति आगे बढ़ता है। व्यक्ति या साहित्यकार अपनी ऐतिहासिक भूलों को नहीं दुहराता है।

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं, "बेसुध होकर कायांतरण या रूपांतरण केदारनाथ अग्रवाल की प्रधान प्रवृत्ति है, यह प्रवृत्ति संवेदन रूप है। इसलिए वह शिल्प या प्रणाली भी है। यह है तन्मयता एव तल्लीनता की स्थिति। यह स्थिति सौन्दर्यानुभूति की है। द्रवित होकर चित्त की तदाकार परिणति होती है। जैसे धातु ताप से द्रवित होकर किसी सांचे में ढल जाये। तदाकार अर्थात प्रिय के आकार में परिणति 'मैं भी हो गई लाल' या 'जानत तुम्हहिं होई जाई' वाली बात समझिए। केदारनाथ अग्रवाल के यहाँ तदाकर की स्थितियाँ पर्याप्त हैं। यहॉ तक कि मरने के बाद भी प्रिय देश की मिट्टी, हवा, फसल में रूपांतरित होकर मैं उसी में लीन रहूँगा– यह भावना कवि को मरण की कल्पना में भी शांति, संतोष देती है।... केदार के यहाँ प्रकृति मनुष्य के लिए अमर होने के साधन है। यहाँ ढॉचा भक्ति का ही है केवल इष्ट बदल गया है। इष्ट का रूप मानवता ने ले लिया है। व्यापक सकर्मक देश–प्रेम ने। यहॉ देश–प्रेम एवं प्रकृति प्रेम मानवता प्रेम के लिए पर्याय हैं। जैसे साधक इष्टमय होकर परम पद या अमरता पाता था वैसे मनुष्य देश प्रेम, प्रकृति प्रेम में देशमय–प्रकृतिमय होकर अमरता प्राप्त करता है यानि मृत्यु के चंगुल से मुक्त हो जाता है। धार्मिक साधना वैयक्तिक थी। यह साधना सामाजिक–ऐतिहासिक है। अतः इसमें आत्मस्थ होना नहीं – वाह्यस्थ भी होना पड़ता है आत्मस्थ होने के साथ–साथ। इसमें स्वांतःसुखाय बहुजन सुखाय बन गया है।"[2] बिल्कुल तुलसी के रामचरितमानस की तरह तमाम आपत्तियों के बावजूद तुलसी का रामचरितमानस बहुजन हिताय है। कबीर की कविता का सरोकार प्रश्नों के उधेड़बुन से है। और तुलसी की कविता का साक्षात्कार प्रश्नों की तर्कपरक व्यवस्था से है।

केदार की कविताओं में प्रेम का सहज चित्रण है। उन्मुक्त 'हे मेरी तुम' पत्नी प्रेम की जीवंतता को स्फुटित करता है। जहाँ केदार ही नहीं वरन प्रगतिशील कवियों के यहाँ प्रेम की स्वच्छन्दता दिखलाई पड़ती है। "प्रगतिशील कवि जहाँ स्वच्छंद प्रेम का चित्रण करता है, वहाँ भीसंयम और स्वस्थ मनोवृत्ति का परिचय देता है। स्फूर्तिदायक प्रथम परिचय का एक चित्र त्रिलोचन के कुंठाहीन हृदय में देखिए–

;k gh dN eldjkdj reu@ifjp; dh og xkB yxk nh@Fkk iFk ij e Hkyk&Hkyk@Qy mif{kr dkÃ Qyk@tku dku ygj Fkh ml fnu@reu viuh ;kn txk nh@dHkh&dHkh ;k gk tkrk g@xhr dgÈ dkÃ xkrk g@xt fdlh mj e mBrh g@reu

---

*पूर्व शोध छात्र, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ

ogh èkkj mexk nhA@ tMrk gS thou dh ihMk@fuLrjx ik"kk.kh ØhMk@ rqeu vutku og ihMk@Nfo ds 'kj ls nj Hkxk nhA

प्रगतिशील कवि का प्रेम इतना स्वस्थ और स्फूर्तिदायक इसलिए है कि वह प्रेम को संपूर्ण जीवन का अंग समझकर अनुभव करता है। प्रयोगवादी कवि की तरह वह संपूर्ण जीवन से प्रेम–संबंध को काटकर देखने का आदी नहीं हैं। जिस तरह उसके प्रेम संबंध को सामाजिकता सुधारती चलती है, उसी तरह उसका प्रेम संबंध सामाजिक भावना को भी बल देता है।"[3]

केदारनाथ अग्रवाल का भी प्रेम अकुंठ है। सामाजिक परंपरा को पुष्ट करता है– उसका प्रेम। उनकी बौद्धिकता यथार्थपरक है। उनका प्रेम उनके रचनात्मक धरातल को ऊँचाई प्रदान करता है। जीवन में प्रेम सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य है। माँ, पिता, भाई, बहन सभी के संबंधों को पारिवारिक स्तर पर पुष्ट करके सामाजिक सरोकारों को गहराई प्रदान करता है। प्रेम का जितना महत्व है उतना ही महत्व जीवन का भी है। जीवन का अंतिम सच है मृत्यु। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं, "जीवन से प्रेम करने वाले मृत्यु पर अवश्य विचार करते हैं। ग़ालिब, रवीन्द्रनाथ, निराला, प्रसाद आदि की भांति केदार की कविताओं में भी मृत्यु के विविध उल्लेख हैं। केदार मरना नहीं चाहते। लेकिन मृत्यु तो अवश्यम्भावी है। तब कवि मृत्यु के बावजूद जीवित रहने के तरीके सोचता है। केदार की एक कविता मुझे काफी असमंजस में डालती है। कविता अच्छी लगती है। थोड़ा बहुत समझ में भी आती है। लेकिन उसके अन्य पाठ बहुत दूर तक ले जाते हैं।

ugÈ vk;k tgk¡ dkÃ uR; djus@ogk¡ tkvks dky dh xgjkb;ksa esa@esa gksdj l;kj djuk@ugÈ vk;k tgk¡ dkÃ nhi èkjus@og, tkvks re dh ?kkfV;ksa esaA[14]

कवि अपरिचित भूमि पर रचना–प्रवृत्त होना चाहिता है। 'जहाँ न जाए रवि, वहाँ जाए कवि" वाली बात। मुक्त होकर प्यार करने अर्थात जहाँ स्वच्छन्दता हो, कोई अड़चन न हो वहाँ जा कर प्रेम करने की सलाह केदार देते हैं। "काल की गहराइयों में' – काल में गहराई आना गूढतम अव्यक्त संवेदनात्मकता का प्रतीक है। गहरा स्पर्श बोध है काल के प्रति। वहाँ आज तक जहाँ किसी ने नृत्य नहीं किया। नृत्य आधुनिक युग के मध्यम वर्ग के आपाधापी का प्रतीक है।तीन–पॉच की नाच मध्यम क्यान उच्च 'वर्ग सभी की पूँजीवादी हृदय हीनता के दुष्चरित को उद्‌घाटित करती है।' नहीं आया जहाँ कोई दीप धरने' में दीप पूँजीवादी वर्ग सामंती वर्ग का प्रतीक बनती है। दीप नहीं धरने में कवि केदार का अपना तर्क है। फिर केदार वहाँ जाने की सलाह देते हैं जहाँ मौन तम की घाटियों में ज्योति की झंकार हो अर्थात सर्वहारा वर्ग का गहरा सामाजिक स्पर्श हो। जहॉ की मिट्टी किसान, शोषित, पीड़ित की महक को सोंधेपन के साथ महकाती है।

जहाँ केदारनाथ अग्रवाल सहित सभी प्रगतिशील कवियों ने सामाजिकता–संस्कृति को दिलचस्पी के साथ उगाहा है यहीं अज्ञेय जैसे प्रयोग वादी कवि 'जिजीविषा' की तलाश में रह जाते हैं। उनकी एक कविता है –vFkk gekjk@ftruk gS] lkxj esa ugÈ@gekjh eNyh esa gS@ lHkh fn'kk esa lkxj ftldks ?ksj jgk gSA[5]

अज्ञेय की कविता का 'मछली' प्रिय प्रतीक है। मछली" अर्थात अस्तित्व। मछली अर्थात जिजीविषा। जल के बाहर निकाल ली गई मछली तड़पती, ऐठती और हाँफती। क्या चहती है वह जीना। मुक्ति। यह मुक्ति और जीने की लालसा ही अज्ञेय की काव्य की सही जमीन है।" [6] इसके बरक्स केदार की कविताओं में प्रकृति का सामाजिक सरोकार है।

सन 1942 के आस–पास अज्ञेय और उनके सहयोगियों के संरक्षण में उक्त दोनों काव्य–धाराओं का विरोध करते हुए प्रयोगवादी काव्य–प्रवृत्ति का उदय हुआ। प्रयोगवादी काव्य में अतिशय बौद्धिकता विकृत सौंदर्यबोध, पलायन, अंतर्मुखी यथार्थ चेतना, असामाजिक अंहवादी,पराजय, निष्क्रियता, विद्रूप श्रृंगार, आत्मबोध,

घुटन, कुंठा, पीड़ा, मृत्युबोध आदि प्रवृत्तियों का स्वर मुखरित है। "प्रगतिशील कवि का आशा में दीप्ति होती है। प्रयोगवादी कवि की तरह वह दुःख या सुख कुछ भी अकेले–अकेले नहीं झेलना चाहता।

vkt eSa vdsyk g¡@vdsys jgk ugÈ tkrk@thou feyk gS ;g@jru feyk gS ;g èkjy eSa fd Qsy eS@feyk gS rks feyk gS ;g@ekSy&rksy blds@vdsys dgk ugÈ tkrkA vkS[kh èkkj fnu dh@vdsys cgk ugÈ tkrk\

यही सामाजिकता प्रगतिशील कवि में वास्तविक देश प्रेम जगाती है। अंहलीन प्रयोगशील कवियों का ध्यान शायद ही कभी देश प्रेम के गीत लिखने की ओर जाता हो, क्यों कि वे देश प्रेम को पुरानी चीज समझते हैं। उनके विचार से यह पूर्ववर्ती राष्ट्रीय जागरण वाले युग की भावना है और अब उसकी कोई आवश्यकता नहीं है।"[7] जबकि निराला और केदार के यहाँ राष्ट्रीयता के मुद्दे को बार–बार कविता में उठाया गया है।

"केदार किसान के प्राकृतिक परिवेश के कवि हैं। इस परिवेश में मनुष्य के श्रम की उपज शामिल है।"[8] केदार जीवट और जीवन के कवि हैं। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं, "केदार जीवन दूसरों से संपर्क में पाते हैं। यह लोकसत्ता में अपनी सत्ता को पाना है। इस संपृक्ति से व्याप्ति निर्मित होती है। केदार के लिए चूमना, अलिंगन करना, मिलना, जीवन का लक्षण और प्रमाण है। कविता में केदार कवि–मित्रों से असंपृक्तत रहने पर उदासी, निराशा और ऊब का बयान करते हैं। किसी साहित्यिक मित्र या कबि के आगमन पर उल्लसित हो जाते हैं। बिल्कुल उसी उत्तेजना और तल्लीनता के साथ जैसे प्रिया के मिलन से–

मित्र की प्रतीक्षा का सादृश्य विधान अभूतपूर्व है। श्रम–सौंदर्य की चेतना के बिना यह उपमा नहीं प्रस्तुत की जा सकती। यहाँ प्रतीक्षा, आतुरता उस सुखद अनुभूति के लिए है जो मिलने पर सार्थकता प्रदान करेगी। यहाँ प्रियता का आधार श्रम एवं लोक मंगल है। ऐसे लोक का मंगल जिसमें खेतिहर भी है। जिस लोक मंगल में श्रमिक का मंगल भी है। खेतिहर की बादल–प्रतीक्षा में कितनी आतुरता होती है। यह देश–प्रेमी समझते हैं। सूरज भी प्रकाश, कर्मठता,श्रम और मंगल का प्रतीक है। खेतिहर श्रमिक के लिए बादल और सूरज दोनों उसके श्रम को सार्थक बनाने वाले हैं। वे प्रिय हैं। यह निठल्लों का प्रेम नहीं। जन कवि की प्रिय–मिलन की उत्कंठा है। केदार की यह उक्ति आत्माभिव्यक्ति है, अतिशयोक्ति नहीं।"[9] केदार में जीवन उत्सव है। इस उत्सव में किसान–संस्कृति का अद्भुत सामंजस्य है। मजदूरों के सच का बयान है–

Þtks thou dh èkwy pkVdj cMk gqvk g¶@rwQkuksa ls yMk vkSj fQj [kM+k gqvk g¶]@ftlus lksus dks [kksnk&@ykgk ekMk g¶]@tks jfo ds jFk dk ?kksM+k g¶]@og tu ekjs ugÈ ejsxk] ugÈ ejsxk &@ugÈ ejsxkA@tks thou dh vkx tykdj cuk g¶]@QkSykfnh ik;s Qsyk, ukx cuk g¶]@ftlus 'kks"k.k dks rksM+k]@'kklu dks ekM+k g¶]@tks ;qx ds jFk dk ?kksM+k g¶]@og tu ekjs ugÈ ejsxk&@ugÈ ejsxkA@dgus dh vko';drk ugÈ fd vkèkqfud ;qx eas Jfed tu dh vuÜojrk dk ;g@vk[;ku ftruk vkstLoh g¶ mruk gh çHkko'kkyhAß[10]

इस प्रकार केदार ने रामविलास शर्मा से सीखा– पत्रों से, बातों में। निराला की छवि दोनों मित्रों के सीखने की प्रक्रिया में सहायक होती है। नये कवियों के नएपन से रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल को थोड़ा सा परहेज है, फिर भी केदार की कविताएँ किसान संस्कृति को समेटे हुए, अकुंठ प्रेम का दस्तावेज हैं ।

lUnHkZ %

1. संपादक नामवर सिंह , आलोचना, सहस्त्राब्दी, अंक, जुलाई–सितंबर 2000, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0 9

2. संपादक अकिंचन, गूंज, अंक 9–11, श्रीनिवासपूरी, नयी दिल्ली, पृ0 सं0 65।

3. नामवर सिंह, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तिया, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवीन संस्करण1998, पृ0 सं0 78।
4. संपादक अकिंचन, गूंज, लेखक डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी, (रचना समाधि अमरता का तर्क, जनकवि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य शिल्प और रचना विधान पर), पृ0 सं0 65–66।
5. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, आधुनिक हिन्दी कविता (प्रसाद से अज्ञेय) राजकमल प्रकाशन ईदिल्ली , प्रथम सस्करण, 1977, पृ0 सं0 20।
6. वही, पृ0 सं0 120।
7. नामवरसिंह , आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तिया, पृ0 सं0 79।
8. रामविलास शर्मा, प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 स58।
9. संपादक अकिंचन, गूंज, पृ सं0 68।
10. संपादक नामवरसिंह , आलोचना, अंक, जुलाई–सितंबर 2000, पृ0 सं0 70।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 12-15

nfyr thou dh leL;k,¡ ,oa nfyr dgkuh

vatfy dqekjh*

दलित साहित्यकार कहानियों को दलितों के जीवन की समस्याओं से जोड़कर उनके व्यक्तिगत और सामाजिक कर्तव्यों के प्रति उन्मुख किया है। दलित कहानीकारों ने दलितों के जीवन को आत्मसात किया है अपने अन्दर समाहित किया है। दलित कहानी का दायरा सीमित नहीं विस्तृत है। जिसे निम्नांकित उद्धरण में देखा जा सकता है– ''बैल की खाल'' ओम प्रकाश वाल्मीकि की प्रसिद्ध कहानी है। इस कहानी में दलितों की दीनता और उसके ऊपर सवर्णों का आक्रोश दिखाई पड़ता है। भूरे और काले निम्न जाति के हैं। उन्हें समाज में जीवन यापन करने के लिए अपनी जातिगत कार्यों को सम्पादित करना है। इस कार्य में विलम्ब होने से सवर्णों के आक्रोश का शिकार होना पड़ता है। फिर भी वह अपनी–जातिगत कर्मों को मेहनत और ईमानदारी के साथ करता है। ''गांव के दक्षिण–पश्चिम छोर से होकर बहता नाला बरसात को छोड़कर पूरे साल सूखा ही पड़ा रहता था। इसी नाले में उन्होंने बैल को लाकर डाल दिया। वे दोनों काफी थक गए थे। दो घड़ी बैठकर सुस्ताने लगे। काले ने जेब से आखिरी बची बीड़ी निकाली जिसे दोनों साझे रूप से पीने लगे। उनके पीछे–पीछे गांव के चार–पांच कुत्ते भी आ रहे थे जो बैल के आसपास मंडरा रहे थे। भूरे का पूरा ध्यान कुतों पर टिका था। कहीं कोई मुह न मार दे। काले ने बैल के पैरों से रस्सी खोलकर अलग की।

भूरे का छुटक छुरी–चाकू लेकर आ गया था उसके हाथ से छुरी–चाकू लेते हुए भूरे ने कहा, ''छुटकूतू घर जा... हम यहां से सीधे शहर जाएंगे। आने में देर हो जागी...सौदा–सुलफ बी वहीं से लेते आवेंगे।''

काले ने भूरे के हाथ से छुरी लेकर उसकी धार पर उंगली फिराई। धार कुछ कम थी। नाले में पड़े एक पत्थर पर छुरी को घिसकर धार तेज करने लगा।

भूरे ने बैल के मुंह से शुरू करके पेट और पीठ तक एक लंबा चीरा लगाया। वे खाल उतारने में सिद्धहस्त थे। कैसा भी जानवर हो, उसे केले की तरह छील देते थे। खाल इस खूबी से उतारते थे कि उसमें कहीं भी जरा सा नुक्स नहीं आ पाता था। यदि खाल जरा भी कहीं से कट–फट जाए तो उसके दाम कम हो जाते थे। ये कला उन्होंने अपने बाप से सीखी थी।''[1]

'अम्मा' कहानी शीर्षक के माध्यम से ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने द्वारा किए जा रहे कर्मों के प्रति अपनी आस्था दिखाई है। वह उस कर्म में अपनी संतान को भी आवृत नहीं करना चाहती है। दलितों की दास्तान उनकी जीवनी से ही परिलक्षित होता है। उसके जातिगत कर्मों से पता चलता है। दलित कहानी का आधार स्तंभ भी यही है जो कहानी को सीमा में बांधता है। ''बेट्टे बिसन....तैनने और तेरे जातकों (बच्चे) ने सरम आवे ....इसीलिए तो पढ़ाया–लिखाया। थारे सबसे हाथ से झाड़ू–टोकरा छुड़ाया. ...मेरे बाद इस घर की कोई बहू–बेट्टी ठिकानों में नही ....सिरफ इसलिए कि तुम सब लोग इज्जत से जीना सिक्खो। ऐसा कोई काम न करो जिससे सिर नीच्चा को....कहीं कमी रह गई है बेट्टे, जो तेरा मुकेश जूठन पर मुंह मारने गया, वह भी नौकर की तरह, उसके बच्चों को संभालने, इज्जत से उसे ब्याह के घर ले आता....भले ही दो जातकों की मां है। मेरा दिल खुश हो जाता। अपनी बहूत बना के रखती...पर यो तो ठीक ना है, अच्छा नी करा उन्ने...''अम्मा का गला भर्रा गया। वह रोने लगी।

*शोध–छात्रा, हिन्दी, बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

जब आंसू रुके तो फिर बोली ''तेरे बाप रिटायर हुए तो जो पैसे मिले थे, उनसे सरदारों का कर्जा उतार दिया। इब तो जिंदगानी थारे ही भरोसे है...जिब किरणलता अपने जातकों कू लेके आवे है तो उसके खाली हाथ पे रखने के लिए तो मेरे पास कुछ होना चाहिए। कब तक तेरे से मांगेगी...ना बेट्टे...उस सुख की खातिर मुझे काम करना पड़ रहा है। झील उग आई थी, जिसमें छोटी–छोटी लहरें उठ रही थीं। जैसे तमाम जख्म फिर से हरे हो गए हो।अम्मा का टूटा–फूटा कनस्तर और झाड़ू दीवार के सहारे टिका मुँह चिढ़ा रहा था।''[2]

आज का साहित्य जीवन का यथार्थ रूप है। इसके कारण कहानी में पूर्ण रोचकता और सत्यनिष्ठा दिखाई पड़ती है। दलित कहानी दलितों द्वारा लिखा गया दलितों की दास्तान है। दलित साहित्यकार उनकी वेदना को विश्व पटल पर लाकर खड़ा करते है। अजय नावरिया ने ''एस धम्मो संनतनों'' कहानी में एक नहीं कई जातियों का जिक्र किया है इसमें सभी जातियों को एक श्रेणी में आबद्ध होकंर जीवन जीना है– ''काश खून से खून को पहचाना होता। इस पीपल की कैसी दुर्दशा होती तब? और वह पतंग....नहीं, तब वह लहकता लाल पतंगा होती। सब स्वाहा। वेद, पुराण, मनुस्मृति, व्यासस्मृति, गीता, रामचरितमानस ...धूँ–धूँ–धूँ। अरे पकड़ो–पकड़ो। जंगल में बनी इस कुटिया से यह कौन अय्याश, तुंदियल, राजकुमारियों को भोगने वाला शिखाधारी महल की ओर भागा जाता है? यह तो जाति का जन्मदाता कोई मनुष्य है। अरे ये हुजूम? कहां बढ़ा जा रहा है ये? राजमहल की तरफ? ये कौन है? अरे! ये तो चौहानजी हैं, जोशी जी हैं, यादव जी हैं, वाल्मीकि जी हैं, कबीर के सूर्य को ग्रहण लगाने वाले आलोचक और समर्थक भी, पांडयेजी और मरहम आजमी साहब भी। अरे ये तो, मैं हूँ, मैं ही हूँ, हाँ मैं भी हूँ.....मैं भी। सबके हाथों में मशाल है। सब लहकते पतंगे हैं। हर पतंगे में लाल रंग है, नीला भी साथ–साथ वे अलग हो ही कैसे सकते हैं। जनभाषा में नारे हवा में तैर रहे हैं। एस धम्मो सनंतनो....एस धम्मो सनंतनो ....एस धम्मो सनंतनो। राहुल–राहुल। दादा जी।

''उठ जाइए, अब, आंखे बन्द किए क्यों पड़े हो।'' दूर कहीं से एक आवाज धीरे–धीरे तैरती आ रही है। क्या नीलिमा ...हा नीलिमा एस धम्म सनंतनो।''[3]

दलित साहित्यकार मोहनदास नैमिशराय ने अपनी साहित्य साधना की श्रृंखला में ऊँच जाति के निम्न कर्मों पर प्रकाश डाला है। वह महाशूद्र की श्रेणी में आ जाता है। एक ब्राह्मण जो ऊँचे कर्मों को सम्पादित करने में जातिगत पेशा से जुड़ा हुआ रहता है। परन्तु वह श्मशान घाट में लाश जलाने में लीन हो जाता है। उसे अपनी ही जाति के घरों में प्रवेश प्रतिबंधित कर दिया जाता है। यह आश्चर्य की बात है कि कर्म के आधार पर जातियों में आबद्ध होने के लिए बाध्य किया गया है आचार्य जी को– ''अभी भी मुरदा नहीं आया?''

आचार्य जी के पूछने से पहले ही उसने नां में सर हिला दिया। यह सप्ताह बहुत बुरा बीता है। आगे का भी कुछ पता नहीं।

''वह तो हैई आचार्य जी, लगता है कुछ गिरह–विरह है हम पर।''

'हाँ, बुरे दिन आए लगते हैं।'' आचार्य जी ने नन्दू की बात का समर्थन किया।

''नन्दू, मुझे देखने लगा। आचार्य जी के चेहरे पर गहरी काली छाया उतर आई थी। उसे लगा, उनका रंग एकदम काला पड़ गया है। ''क्या ब्राह्मणों में भी उंच नीच होती है? वहां भी धुआ–धूत है?'' नन्दू ने बड़े आश्चर्य भरे स्वर में पूछा। आचार्य जी चारों ओर बहुत से चेहरे मंडराने लगे। ये अपने चेहरे लगते थे, लेकिन उन पर घृणा, उपेक्षा और तिरस्कार बिखरा हुआ था। उन्होंने अपन एक हाथ नन्दू के कन्धे पर रख दिया– ''हमें कहा जाता है महा ब्रह्मण...पर इसका अर्थ जानते हो नन्दू....महाशूद्र।''

नन्दू ने अपने कन्धे पर रखे हुए हाथ के स्पर्श को महसूस किया। कितना अनत्व था उसमें। उसने अपने एक हाथ से कन्धे पर रखे आचार्य जी के हाथ को दबाया और बड़ी तृप्ति भरी आंखों से उन्हें देखने लगा।''[4]

दलित अपने जीवन को सीमित दायरे में जी रहा है। वह अपनी विवशता के लिए स्वयं जिम्मेवार है। दलितों के जीवन की समस्याएँ निरंतर उसके अन्दर आक्रोश पैदा करता है। वह किसी तरह अपने जीवन रूपी गाड़ी को आगे बढ़ाता है। फिर उसी गाड़ी को उसके बच्चे खीचने के लिए तैयार हो, जाते

है। मिन्नी अपनी जिन्दगी जीने के लिए अपने पिता का कर्ज किसी की मजदूरी कर चुकता करती है। मिन्नी उसे अक्सर कहा करती है– ''आप कहीं और नौकरी क्यों नहीं देखते, हजार–बारह सौ ही क्यों न मिलें, हम गुजारा कर लेंगे। पेट काटकर पांडे का उधार भी चुकता कर देंगे। आप क्यों पांडे के यहां चिपके हैं? बाबूजी का कर्ज ऐसे कभी चुकता नहीं हो पाएगा।'' मिन्नी कभी भी पांडेबाबा का नाम इज्जत से नहीं लेती। चिढ़ती है वह उनसे। हमेशा भी कोशिश कर रहा था लेकिन चाहिए वह दें नहीं पा रहा था। मिन्नी के साथ वह भी अपना दुख बांटते हुए कहता– ''कोशिश क्या करूँ? सारा वक्त स्टेशन पर ही खत्म हो जाता है। कभी–कभी सूद की रकम लाने के लिए भी बाबा मुझे ही भेज देते हैं। क्या बताऊँ इतना बुरा लगता है न इस काम में... मैं भी अब और बाबा का बंधुआ मजदूर नहीं रहना चाहता। तंग आ गया हूँ। अब वे भी अपनी जबान से मुकर रहे हैं। उन्होंने कहा था – ''तुम 'हाल्ट' पर टिकट काटना और वेतन के रूप में आठ सौ रूपए महीने दूंगा। लेकिन अपने पिताजी का उधार चुकता भी तुम्हें ही करना होगा। इसलिए यह काम दे रहा हूँ।''[5]

दलितों की आत्म वेदना उसके अन्दर के उत्साह को समाप्त कर देता है। दलित अपनी बेवशी और लाचारी से रचनाकार की दृष्टि अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। सुदीप के पिता को अपनी ही सन्तान के उपर विश्वास नहीं है। वह अपनी वेदना के आक्रान्त है कि कहीं उसे धोखा तो नहीं दिया जा रहा है। कहीं उसे छला तो नहीं जा रहा है। कई बार सुदीप उनकी वेदना को समाप्त कर उनके अन्दर विश्वास जगाने का प्रयास करता है। परन्तु वह शंका के दायरे से मुक्त नहीं होता। अन्ततः वह अपने पुत्र की गिनती पर विश्वास हो जाता है– पिताजी ने उसके हाथ से रूपए ऐसे छीने, जैसे सुदीप उन्हें मूर्ख बना रहा है। वे रूपए गिनने का प्रयास करने लगे लेकिन बीस पर जाकर अटक गए। सुदीप ने उनकी मदद की। सौ होने पर पिताजी की ओर देखा। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था। उन्होंने फिर एक से गिनना शुरू कर दिया। बीस पर अटक गए। उलट–पलटकर रूपयों को देख रहे थे, जैसे कुछ उनमें कम हैं। सुदीप ने फिर गिनकर दिखाए। पिताजी को यकीन ही नहीं आ रहा था। सुदीप ने हर बार उनकी शंका का समाधान किया, हर प्रकार से। आखिर पिताजी को विश्वास हो गया। सुदीप ठीक कह रहा है, पच्चीस चौका सौ ही होते है। झूठ–सच सामने था।

पिताजी के हृदय में जैसे अतीत जलने लगा था। उनका विश्वास, जिसे पिछले तीस–पैंतीस सालों से वे अपने सीने में लगाए चौधरी के गुणगान करते नहीं अघाते थे, आज अचानक कांच की तरफ चटककर उनके रोम–रोम में समा गया था। उनकी आंखों में एक अजीब सी वितृष्णा पनप रही थी, जिसे पराजय नहीं कहा जा सकता था, बल्कि विश्वास में छले जाने की गहन पीड़ा ही कहा जाएगा।''[6]

बदबू सूरजपाल चौहान की चर्चित कहानी है। इस कहानी में संतोष की शादी होती है। वह अपनी शादी के बाद ससुराल का अनुभव प्राप्त करती है। इसके पहले वह अपने पितागृह के अनुभवों से जुड़ी हुई थी। संतोष के ससुराल वाले के नीचे कार्यों को करने में महारथ हासिल है। उसकी माँ सास पाखाना साफ कर अपने परिवार का भरन पोषण करती है। हर रोज संतोष का भाई आता है। परन्तु संतोष का दुखी मन अपनी दास्तान अपने के सम्मुख व्यक्त नहीं कर पाता है– ''एक रोज उसके बड़े भइया उससे मिलने आए। भइया को देखकर वह उनसे गले लगकर रोई जरूर थी, लेकिन किसी भी तरह की बात नहीं की और न उसने दूर कस्बे में रहे अपने माता–पिता के विषय में कुछ पूछा ही। भइया बार–बार उससे बात करने की कोशिश करते, लेकिन संतोष उनकी किसी बात का कोई उतर नहीं दे रही थी। बस, वह गुमसुम बनी रही। इसी दौरान उसकी सास में उसके भइया के लिए खाना लगाया। एक कटोरी में दाल, दूसरी में आलू की सब्जी, तीसरी, कटोरी में भिंडी की सब्जी और थाली में रोटियाँ के साथ दो–तीन तरह का आचार था। संतोष के भइया खुशी–खुशी स्वाद लेकर खाए जा रहे थे। वह मन–ही–मन सोच रहे थे – ''संतोष के ससुराल वाले रहते झोपड़ पट्टी में हैं लेकिन खाने–पीने में कतई कोताही नहीं बरतते, इतनी तरह की सब्जियाँ तो एक साथ उसके सामने आज तक किसी ने नहीं परोसी।''[6]

भइया संतोष को देख–देखकर मंद–मंद मुस्करा रहे थे– यह सोचकर कि उसकी बहन ससुराल में खाने–पीने के मामले मं तनिक भी दुखी नहीं है। भला दुखी भी क्यों होगी? जिसके घर में इतने प्रकार की सब्जियाँ एक साथ बनती हो, उसके क्या कहने। अब संतोष पति और सास के सामने कैसे बताए कि यह सब वह और उसकी सास मोहल्ले के पखाने साफ करने के बदले जुटाकर लाई हैं। वह उस समय मौन–व्रत धारण करके रह गई।''[7]

आलोक कुमार सातपुते द्वारा रचित कहानी 'साहब की जात' निश्चित तौर पर जाति की सीमाओं में आबद्ध है। सुखी अनी जाति बेरादरी में ब्याय रचा चुकी है। परन्तु वह अब अपनी साहब की बातों में आकर दूसरी शादी रचाने को तैयार है। यहां दलित समस्याएँ दलितों के मानसिक पिछड़ेपन से जुड़ी हुई है। वह अपनी सुख चैन के लिए अपनी वैवाहिक जीवन से अलग हटकर मार्ग बनाना चाहती है– ''सुखी को महाराज की बातों दम नजर आया। रात में ही तो मुहल्ले के सारे बेरोजगा लड़के उसे घेर लिये थे। चाचा का लड़का साला दसवीं पास भी नहीं है, और बाबू बनना चाह रहा था। कह रहा था, ''भैय्या हमको भूलना मत....। शहर में हम तुम्हारे साथ हीह रहेंगे। मामा का लड़का चपरासी बनने का ख्वाहिशमंद था। वह भी उसी के साथ शहर में रहना चाह रहा है। हूँ– मानो धर न हुआ, धरमशाल हो गई। सुखी अपने में खोया हुआ था कि उसे फिर से महाराज की आवाज सुनाई पड़ी ''तैं हूँ यदि अपन जात में बिहाव कर लेबे त तोर तरक्की नीं हो सकय....तैं ह उहींये बने सन दूरी संग, बिहाव कर लेबे।''

महाराज ने अगला दांव फेंका।

''लेनि ये मन तो मोला जात बाहर कर दिहीं। सूखी ने आशंका व्यक्त की। ''मै। ह तोला बतात तो हव के ब तैं साहब मन के जात म शामिल हो गे हस...।'' महाराज ने उसकी आंशका दूर की।

घटनाओं में परिवर्तन हो रहा है। सुखी साहब की जात में शामिल हो गया है। उसने दूसरी जाति की लड़की से लव मैरिज कर ली। वह क्लब भी जाने लगा है। उधर गजेन्द्र महाराज उसे अपना मानसिक गुलाम बनाए रखने की अपनी सफलता पर मुग्ध हैं मन्नू के हृदय में रोज–रोज जरत्यों का जनम होता है, टीसे करवटें बदलती हैं। वह अपने को एक हारा हुआ विजेता मानने लगता है। हरिजन मोहल्ले में एक बोझिल सा सन्नाटा पसरा हुआ रहता है। मन्नू अपने बित्ते भर के लड़के द्वारा सिखाए गए रिश्तों के गतिगत में उलझा हुआ है।''[8]

राजमणि शर्मा ने कई प्रसंगों का उल्लेख किया है। जो कथा–साहित्य से जुड़ी हुई है। आज साहित्य क्षेत्र में दलित आन्दोलन का बोल बाला है। दलित साहित्यकार दलित साहित्यकार दलितों की संवेदना और उसकी गहरी पीड़ा को रेखांकित करने में अपनी कलम की ईमानदारी को व्यक्त करते है। दलित कहानियों में लोक की सम्वेदना व्यक्त होती है। जिसमें दलित जीवन आत्मसात हो गया है। दलितों का जीवन दलित साहित्यकार की संवेदना का आधार स्तम्भ बनकर सामने आया है।

अन्त के पूर्व एक बात और ! हमें अब यह भूल जाने की जरूरत है कि कथा साहित्य दूसरी–तीसरी श्रेणी का साहित्य है। आज कथा–साहित्य जीवन जगत का आख्यान बनकर साहित्य में सर्वोच्च स्थान का अधिकारी है, इसलिए अब कथा–साहित्य केवल अनुभव है जो गहन–संवेदना संपृक्त है। इसमें अपने समय का गहरा साक्षात्कार है, ऐसे समय का ऐसा साक्षात्कार जो कल भी या आज भी है, कल भी रहेगा, जो इतिहास बने।

lUnHkZ %

1. बैल की खाल, ओमप्रकाश वाल्मीकि, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2013, पृ0 28
2. अम्मा, ओमप्रकाश वाल्मीकि, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2013, पृ0 12
3. एस धम्म सनंतनो, अजय नागरिया, संपादन– रमणिका गुप्ता, यश पब्लिकेशन्स, गांधी नगर, 2010, पृ0 59
4. महाशूद्र, मोहनदास नैमिशराय, संपादक– रमणिका गुप्ता, यश पब्लिकेशन्स, गांधी नगर, 2010, पृ0 82
5. मुक्ति, दुरूत विश्वास, संपादक–रमणिका गुप्ता, यश पब्लिकेशन्स, गांधीनगर, 2010, पृ0 9
6. पच्चीस चौका डेढ़ सौ, ओम प्रकाश वाल्मीकि, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2013, पृ0 108
7. बदबू, सूरजपाल चौहान, संपादक– रमणिका गुप्ता, यश पब्लिकेशन्स, गांधी नगर, 2010, पृ0 23
8. साहब की जात, आलोक कुमार सातपुते, संपादन– रमणिका गुप्ता, यश पब्लिकेशन्स, गांधीनगर– 2010, पृ0 24

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 16-21

lkfgR; dk lekt'kkL= % ,d v/;;u

cfcrk dqekjh*

साहित्य बहुत हद तक समाज को प्रभावित करती है। भौतिकता के चकाचौंध, भोग और जातिगत–सांप्रदायिक द्वेष के विरुद्ध सजग करते हुए अपने पाठक को अपने समाज को अध्यात्म और संस्कृति की लोकमंगलकारी दृष्टि की ओर मोड़ता है। साहित्य को यदि एक हद तक अपने आप में बंद आत्मनिर्भर रचना माना जाए, तो बल मूलतः उसकी आंतरिक संरचना के संदर्भ पर होगा–यानि बिंब–विधान, चरित्रांकन, कथानक की द्वंद्वात्मकता, लय, भाषा आदि संबंधी विचार पर। समाज का हस्तक्षेप ऐसी स्थिति में अधिक–से–अधिक पृष्ठभूमि के रूप में हो सकता है। साहित्य की आंतरिक विशेषताओं पर आधारित आलोचना में अक्सर ऐसे प्रयास का विरोध होता है, जिसमें कृति–केंद्र के बाहर से उसे आलोकित करने का दावा किया गया है। समाजशास्त्रीय चिंतन इस प्रकार की आलोचना को बाहर की वस्तु प्रतीत हो सकता है और होता रहा है। समाशास्त्रीय चिंतन की विशेष प्रासंगिकता साहित्य के प्रति मनोवैज्ञानिक दृष्टि में भी नहीं होती। इस दृष्टि में भी साहित्यिक रचना को विशिष्ट वैयक्तिक तथ्य के रूप में देखा–परखा जाता है। साहित्य के समाजशास्त्र की पुष्टि हेतु इन पंक्तियों को देखा जा सकता है।

''साहित्य जादू की छड़ी नहीं है कि घुमाई और मनवांछित फल प्राप्त हो गया। यह अपना प्रभाव दिखाने में समय लेता है। साहित्य पाठक के अंतर्मन में गहरे उतरकर उसकी मानसिकता को प्रभावित करता है, और उनकी सोच का निर्माण करता है। रचनाकार अपनी अर्जित मनीषा और ईश–प्रदत्त प्रतिभा से जिस प्रकार के भावी समाज का सपना देखता है, उसे वह अपनी रचनाओं में टुकड़ा–टुकड़ा ढालता रहता है। पाठक भी इस सपने को टुकड़ों में ही ग्रहण करता है, लेकिन जब ये टुकड़े पाठक की चेतना में समाहित हो जाते हैं, तो उसका मन–मस्तिष्क इन टुकड़ों को जोड़कर एक पूरा चित्र बना लेता है। इसी प्रक्रिया से साहित्य पाठक की सोच का निर्माण करता है। दुर्भाग्यवश वर्त्तमान लेखक शाश्वत सत्यों के स्थान पर कालिक सत्यों के पीछे चल रहा है। कालिक सत्य भी सत्य होते हैं लेकिन वे सदैव सत्य नहीं रहते। शाश्वत सत्य अपरिवर्तनीय होते हैं। आज अमरीका विश्व का सबसे शक्तिशाली राष्ट्र है, यह सत्य है, लेकिन यह शाश्वत सत्य नहीं है, क्योंकि कुछ समय पहले अमरीका इतना शक्तिशाली राष्ट्र नहीं था और हो सकता है कि वह भविष्य में सबसे शक्तिशाली राष्ट्र न रहे। यही कालिक सत्य है। भूख, निद्रा, यौन, विचारशीलता आदि मानव की नैसर्गिक आवश्यकताएँ हैं, यह शाश्वत सत्य है। आदिमयुग से लेकर आज तक ये मानव की आवश्यकताएँ रही हैं और जब तक मानव रहेगा, ये आवश्यकताएँ भी बनी रहेंगी।''[1]

साहित्य के समाजशास्त्र विषय को मोटे तौर पर दो रूपों में समझा जा सकता है। इनमें से अधिक लोकप्रिय और परंपरागत सिद्धांत साहित्य को समाज का दर्पण मानता है। साहित्य का 'दर्पण–बिंब' वाला दृष्टिकोण साहित्य को दस्तावेज के रूप में देखता–समझता है। इस दृष्टिकोण से साहित्य, सामाजिक संरचना के विभिन्न पक्षों, संबंधों, प्रवृत्तियों, संघर्षों यानी समाज की पूरी बनावट का सीधा प्रतिबिंब है। इस प्रतिबिंबधर्मी दृष्टि के विरूद्ध प्रायः तर्क दिया जाता है कि इसमें साहित्य को सूचनाओं के संग्रह के रूप में इस्तेमाल करने का खतरा पैदा होता है, जबकि वास्तविक स्थिति यह है कि महान लेखक सामाजिक जगत का सीधे–सीधे वर्णनात्मक भाषा में चित्रण करने में कभी प्रवृत्त नहीं होता।

* W/0 जय कुमार सिंह,क्वार्टर न. G/106/F, रेलवे कॉलोनी, ईमली रोड, मुजफ्फरपुर

साहित्य समाज का सतही प्रतिबिंब भर प्रस्तुत न करके लेखकीय आशय के रूप में मूल्यों को भी प्रतिबिंबित करता है। वस्तुतः मूल्यों के स्तर पर ही साहित्य, समाजशास्त्रीय सामग्री को सुदृढ़ और प्रकाशित करता है। समाजशास्त्री का दायित्व निर्वहन करने की भूमिका में भी इसे देखा जा सकता है। विशेषतः साहित्य के समाजशास्त्र को इन पंक्तियों के द्वारा समझा जा सकता है––

''साहित्य का बुनियादी सरोकार मनुष्य की संवेदनशीलता को जगाना है। संवेदनशीलता ही है जो मनुष्य को पशु से अलगाती है और उसे दूसरे मनुष्य की ओर आकर्षित करती है। उनके साथ मोहपाश में बाँधकर उसके सुख–दुख का भागीदार बनाती है। यह भागीदारी मोह लिप्त भी हो सकती है, मर्यादापूरक भी लेकिन भागीदारी से ही समाज बनता है, परिचालित होता है। साहित्य अपने पाठकों को जितना अधिक संवेदनशील बनायेगा, उतना ही बेहतर समाज निर्मित होता चला जायेगा। यथार्थ के नाम पर पाठक की मानसिकता की कुंठाओं से ओत–प्रोत करना साहित्य का धर्म नहीं है। संकुचित, सांप्रदायिक, क्षेत्रीय या जातिगत सोच को लेकर रचा गया साहित्य समाज का हित नहीं करता अपितु उसे रसातल की ओर ले जाता है। इसलिए जरूरी है कि साहित्यकार पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर अपने समय के समाज का तटस्थ भाव से नाड़ी–परीक्षण करे और अपनी रचनाओं में समाज का दर्पण बनने की क्षमता ही नहीं लाए, अपितु उसे समाज को आईना दिखाने की क्षमता से भी विभूषित करे। जरूरी है कि साहित्यकार अपने समय की चुनौतियों को जाने समझे, उनका विश्लेषण करे और अपनी रचना के माध्यम से पाठक को उन चुनौतियों का मुकाबला करने की प्रेरणा देते हुए उसे अपने विवेकानुसार दिशा–संकेत भी दे।''[2]

समाज के पुनर्जागरण की खातिर साहित्य का विशेष महत्व है। समाज को नई दिशा देने का समाज में नई जागृति पैदा करने में साहित्य का उल्लेखनीय कार्य है। साहित्य और इसके समाज को मिलाकर ही साहित्य के समाजशास्त्र का निर्माण हुआ है। साहित्य के मूलकथ्य को समझने के लिए इसके समाजशास्त्र को जानना जरूरी है। साहित्य और समाज के बारे में निःसंदेह कहा जा सकता है कि साहित्य की समझ के लिए जिस प्रकार समाज की समझ जरूरी है, उसी प्रकार पूरे साहित्यिक साक्ष्य के अभाव में, समाज का विद्यार्थी समाज की पूर्णता से बेखबर रहेगा। आज के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समाजीकरण के तरीके, समाज के परिवर्तन की प्रक्रिया और संरचना जैसे–जैसे अधिक जटिल होती जायेगी, वैसे–वैसे केवल प्रतिबिंब के रूप में साहित्य का विश्लेषण करना अधिकाधिक कठिन होता जायेगा। साहित्य के समाजशास्त्र के तथ्यों को इन पंक्तियों से पुष्टता मिलती है–

''लेखक रावले ने अपने काल्पनिक आवास अब्बे ऑफ झेलम के प्रवेश द्वार पर लिख रखा था कि लेखकों को उसमें प्रवेश करने का अधिकार नहीं है, क्योंकि वे लोग मनुष्य के मन की शांति भंग कर देते हैं। यह बात बहुत पहले लिखी गई थी किंतु आज भी वह उतनी ही सत्य है। लेखकों का काम ही होता है, पाठकों के मन की शांति भंग कर देना। हजार वाचिक उक्तियों की अपेक्षा छपे हुए अक्षरों की शक्ति बहुत अधिक होती है। देश और काल की दृष्टि से भी उसकी व्यापकता और स्थायित्व बहुत अधिक होता है। जो लोग कलम लेकर काम–काज करते हैं उनके ध्यान में यह बात हर समय नहीं रहती है, ध्यान में बनी रहे, इसका कोई उपाय भी नहीं है। जो मानसिक शांति मनुष्य और उसकी चिंतन–धारा को पंगु बना देती है, उसके मन को बद्ध जलाशह में परिणत कर देती है, उस जड़, निर्विकार शांति के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए ही तो लेखकों का जन्म हुआ है। जिनके पास सचमुच की शक्ति होती है, उन्हें इससे डर क्यों लगेगा? लेखकों का तो धर्म होता है, मनुष्य के मन के जंजाल को दूर कर सत्य और सौंदर्य की प्रतिष्ठा करना। इस स्थिति में अगर यह समाज में अप्रिय हो जाने के भय अथवा उसकी पुस्तकों की बिक्री कम हो जायेगी, इस भय से लोग जो चाहते हैं, वही परोसने लगे, समाज के विरुद्ध अथवा प्रचलित संस्कारों के विरुद्ध एक शब्द भी न कहे, तब वह एक लेखक के रूप में निम्न स्तर का ठहरेगा।''[3]

साहित्य के समाजशास्त्रीय स्वरूप को जानने हेतु साहित्य और समाज की पृष्ठभूमि को जानना होगा। साहित्य और समाजशास्त्र पूर्णतः भिन्न विषय नहीं हैं, बल्कि हमारी समाज विषयक समझ में वे एक–दूसरे के पूरक हैं। ऐतिहासिक, दृष्टि से उनकी प्रवृत्ति अलग रहने की रही है। आज धर्म, शिक्षा,

राजनीति, सामाजिक परिवर्तन यहाँ तक कि विचारधारा जैसे अनिश्चित क्षेत्र तक के भी पर्याप्त समाजशास्त्रीय अध्ययन उपलब्ध हैं। तथापि, सच कहा जाए तो कोई ऐसा प्रतिष्ठित ज्ञान निकाय नहीं है, जिसे साहित्य का समाजशास्त्र कहा जा सके। यह भी दुर्भाग्यपूर्ण है कि जो थोड़ी बहुत जानकारी और शोध उपलब्ध है, वह गुणात्मक दृष्टि से सर्वथा संदिग्ध है। उसमें वैज्ञानिक नियमबद्धता का अभाव है। उसकी सामाजिक अंतर्दृष्टि अत्यंत साधारण है, और उसमें अक्सर साहित्यिक पाठ्य पुस्तकों और सामाजिक इतिहास के बीच बेहद स्थूल सह संबंध का समावेश मिलता है। साहित्य के समाजशास्त्र को समझने के लिए इन तथ्यों को देखा जा सकता है।

''साहित्य की परिव्याप्ति में भाषा का योगदान' अन्योन्याश्रित रूप में अपने निहित अर्थ के साथ बिखरा हुआ है। हिंदी साहित्य के प्रारम्भिक काल से ही रचनाकार समकालीन यथार्थ से प्रेरणा लेकर सर्वकालिकता अर्जित करने के लिए चिन्तित रहे हैं। इसके साथ–साथ उनकी चिन्ता सांस्कृतिक पक्ष को समृद्ध बनाने की भी रही है। रचनाकारों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे दिक् और काल में होनेवाली घटनाओं की द्वन्द्वात्मकता को जानें और इसे जानने के दौरान वे इतिहास, संस्कृति, कला, रचना और भाषा के आधार–हिन्दुओं को जानने की कोशिश करें। इसी तरह समर्थ लेखन के लिए जरूरी होता है कि वह भाषा की समृद्धि का भी प्रमाण बने। समाज, इतिहास, उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और परम्पराओं को जाने बिना जिससे काल का प्रवाह आगे बढ़ता है, साहित्य का अध्ययन अधूरा रहता है। जब तक साहित्य से समग्र रूप से परिचित नहीं होंगे, हम भविष्य की रूपरेखा बना नहीं सकेंगे और हमारे अतीत तथा वर्तमान के बीच एक खाई बनी रहेगी।''[4]

साहित्य के समाजशास्त्र को समझने के पहले समाजशास्त्र को जानना आवश्यक है। तो निःसंदेह कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र का संबंध उन प्रक्रियाओं से भी हैं, जिनसे समाज परिवर्तित होता है– क्रमशः या क्रांतिकारी रूप में, या फिर एक प्रकार की समाज–व्यवस्था से दूसरे प्रकार की समाज व्यवस्था में उदाहरण के लिए सामंतवाद से पूँजीवाद में। वह इन परिवर्तनों से सामाजिक संरचना पर पड़ने वाले प्रभावों का भी अध्ययन करता है। सामाजिक प्रक्रियाओं में छोटे पैमाने पर होने वाले आंतरिक परिवर्तनों का संकेत भी मिलता है। ठीक समाजशास्त्र की ही तरह, साहित्य का मुख्य सरोकार होता है– मनुष्य का सामाजिक जगत, उस जगत के प्रति उसकी अनुकूलता और उसे बदलने की इच्छा। उपन्यास औद्योगिक समाज की प्रमुख साहित्यिक विद्या है। अतः उसमें परिवार, राजनीति तथा शासन के साथ मनुष्य के संबंधों के सामाजिक जगत के पुनः सृजन का ईमानदार प्रयास दिखाई पड़ता है। साहित्य के समाजशास्त्र को इन पंक्तियों से स्पष्टता मिलती है–––

''भाषा के योगदान के परिप्रेक्ष्य में 'उपयोगी साहित्य' की समीचीनता को 'शास्त्र' नाम से हट कर किया गया है। प्राचीन भारतीय शास्त्र अर्थात् उपयोगी साहित्य के अन्तर्गत दर्शन, तन्त्र, स्मृति, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, गणित, भौतिकी, रसायन, आयुर्वेद, ज्योतिष, संगीत और साहित्यशास्त्र' आदि अनेक विषयों पर लिखे गये अनेकानेक ग्रन्थ चिन्तन की गरिमा और गम्भीरता प्रमाणित करते हैं। इस विपुल उपयोगी साहित्य में लालित्य और शैली का चमत्कार भी कहीं–कहीं अवश्य मिलता है, परन्तु उसे रचयिता की स्वभावगत विवशता ही कहना चाहिए।''[5]

साहित्य वह विद्या है, जो सामाजिक जीवन की सतह में गहरे प्रवेश करके उन स्थितियों का उद्घाटन करता है, जिनमें स्त्री–पुरूष समाज का अनुभव भाव के स्तर पर करते हैं। रिचर्ड होगार्ट के अनुसार, 'पूरे साहित्यिक साक्ष्य के अभाव में समाज का विद्यार्थी समाज की पूर्णता से बेखबर रहेगा। अतः साहित्य से समाज को तथा समाज से साहित्य का एक गहरा संबंध है। दोनों एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। एक के बिना दूसरे का कोई वजूद नहीं रह जाता है। यह कहना न्यायोचित होगा कि मूल्यों के स्तर पर ही साहित्य विशुद्ध समाजशास्त्रीय सामग्री को सुदृढ़ और प्रकाशित करता है। खास करके यह बात विशेष रूप से ऐसे साहित्य में दिखाई पड़ती है, जो विषय रूप में स्वयं अपना चुनाव करता है। महान साहित्य

और उसके उत्पादन में संलग्न सामाजिक वर्ग दोनों की वास्तविक अर्थवत्ता प्रामाणिक मूल्यों की खोज और उनके लिए दोनों के द्वारा किए जाने वाले संघर्ष में निहित रहती है– प्रमाणिक मानव–समाज के ऐसे मूल्यों जिसमें मानवी आवश्यकताओं आकांक्षाओं और अपेक्षाओं का माध्यम पारस्परिक सामाजिक क्रियाएँ होती हैं, विशेष साहित्य के समाजशास्त्र को इन तथ्यों के द्वारा समझा जा सकता है–

''हिन्दी भाषा का तो विकास ही जीवन की अत्यंत यथार्थ और कठोर परिस्थितियों की माँग का प्रतिफलन है। इस लोक–भाषा ने जिस भक्तिकाव्य के माध्यम से उन्नति की वह वास्तव में एक जीवनव्यापी मिशन था। वह एक महान सन्देश लेकर आया था, जिसकी तात्कालिक व्यावहारिक उपयोगिता कदाचित् उसके शाश्वत सौन्दर्य और रसानन्द की अपेक्षा कहीं अधिक थी। यह कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा आदि कवियों की कोमल संवेदनशीलता का परिणाम है कि उनकी कृतियाँ सामयिकता की आवश्यकता को पूरा करके इतनी ऊपर उठ गयी कि वे आज शुद्ध काव्यानन्द का विषय बनी हुई।''[6]

साहित्य के किसी भी व्यवहारिक समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य अनिवार्यतः उस 'अर्थ के मर्म' की पहचान होना चाहिए, जो विभिन्न पक्षों को अभिव्यक्त करता है, जो सामाजिक वर्गों व्यवसाय, प्रेम, धर्म, प्रकृति और कला के सदृश विविधतापूर्ण होते हैं। लॉवेन्थल ने अपनी रचनाओं में दिखाया है कि सर्वान्ते के नायक डॉन क्विग्जोज को समाजशास्त्रीय ढंग से भावों और व्यवहार की एक ऐसी संरचना के रूप में कैसे समझा जा सकता है, जो वैयक्तिक असुरक्षा की पराकाष्ठा का संकेत देती है। साहित्य इन तमाम बातों को अपने अंदर समेटे रहती है। और सामाजिक तारतम्यता और उनकी जीवंत चित्रण करने का काम साहित्य के द्वारा किया जाता है, तभी तो साहित्य को दर्पण भी कहा गया है, जो अपने समाज की छवि को दिखाने का काम करती है। साहित्य के समाशास्त्र को जानने हेतु इन पंक्तियों को देखा जा सकता है–

''मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में इसका भी प्रमाण मिलता है कि जब काव्य जीवनव्यापी प्रयोजनशीलता से विच्छिन्न हो जाता है और कवि, कोश और काव्य की सीमित परिधि की भाषा में ही, अपना कृतित्व ढूँढ़ने लगते हैं, तब काव्य किस प्रकार निम्न धरातल पर उतर आता है। रीतिकाल के कवि यदि काव्यशास्त्र को भलीभाँति हृदयगम करने की योग्यता प्राप्त कर लेते, तो भी उनकी रचनाओं में वह जीवन–शक्ति नहीं आ सकती थी, जो शास्त्रीय अध्ययन और चिन्तन से उपलब्ध होती है। आधुनिक काल में हिन्दी साहित्य पुनः समाज के नव–निर्माण की आकांक्षा से प्रेरणा पाकर अग्रसर हुआ।''[7]

साहित्य मनुष्य की चिंता, आशा, और आकंक्षाओं को चित्रित करने के कारण, संभवतः सामाजिक शक्तियों के प्रति मानवी प्रतिक्रिया का सबसे अधिक प्रभावी सामाजिक मापक होता है। निःसंदेह यह कहा जा सकता है, साहित्य सामाजिक मूल्यों और अनुभवों को उस रूप में प्रतिबिम्बित करेगा। महान लेखक सीधे–सीधे सामाजिक जगत का वर्णनात्मक भाषा में चित्रण करने में प्रवृत्त नहीं होता, इसमें कहा जा सकता है कि लेखक का कार्य स्पष्टतः अधिक कठिन होता है। साहित्य के समाजशास्त्र को ये पंक्तियों के द्वारा स्पष्टता मिलती है–––

''साहित्य के समाजशास्त्र संबंधी दृष्टिकोण को मोटे तौर पर दो रूपों में समझा जा सकता है। इनमें से जो दृष्टिकोण बहुत अधिक लोकप्रिय है, वह साहित्य का महत्व दस्तावेज के रूप में स्वीकार करता है। उसका तर्क है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य के प्रति इस 'दर्पण बिंब' वाले दृष्टिकोण का लंबा और विशिष्ट इतिहास है। फ्रांसीसी दार्शनिक लुई द बोनाल (1754–80) उन आरंभिक लेखकों में से थे जिनका कहना था कि किसी राष्ट्र के साहित्य को ध्यान से पढ़कर यह बताया जा सकता है कि उसकी जनता किस प्रकार की थी। स्तौंदल ने अपने एक प्रख्यात अनुच्छेद में लिखा था कि उपन्यास 'राजमार्ग से नीचे की ओर यात्रा करने वाला दर्पण है। कभी वह गगन की नीलिमा को प्रतिबिम्बित करता है और कभी डबरे की कीचड़ को। इस दृष्टिकोण के अनुसार, साहित्य सामाजिक संरचना के विविध पक्षों का, पारिवारिक संबंधों का वर्गगत संघर्षों और संभवतः परस्पर विलग प्रवृत्तियों और आबादी की बनावट का सीधा प्रतिबिम्ब है। साहित्य के समाजशास्त्र के एक अन्य प्रतिष्ठित लेखक ने कहा हैः यह साहित्य

के समाजशास्त्रियों की जिम्मेदारी है कि वह लेखक के काल्पनिक पात्रों के अनुभव और स्थितियों का संबंध उस ऐतिहासिक वातावरण से जोड़े जिससे वे लिए गए हैं।''[8]

सामाजिक स्थितियाँ उनकी रचनाओं में अंतःप्रवेश करके संरचना और विषयवस्तु पर हावी हो जाता है और तब रचना का महत्व विशुद्ध रूप में सामयिक रह जाता है। साहित्य के समाजशास्त्र को जानने के लिए इन पंक्तियों को देखा जा सकता है–

''साहित्यिक समाजशास्त्र के प्रति दूसरा दृष्टिकोण साहित्यिक रचना की बजाय स्वयं उत्पादन पक्ष पर, विशेषकर लेखक की सामाजिक स्थिति पर अधिक बल देता है। इस क्षेत्र के एक अधिकारी विद्वान फ्रांसीसी समाजशास्त्री रॉबर्ट एस्कारपिट का ध्यान केवल इस पक्ष पर रहा है। विचार–विमर्श का केन्द्र साहित्यिक पाठ के बजाय संरक्षण और उत्पादन की लागत हो जाती है। अतः मध्ययुगीन दरबारों से अठारहवीं शताब्दी के अभिजात वर्ग तक, आश्रयदाता के साथ लेखक के प्रायः अस्पष्ट और घृणित संबंधों की काफी तफसील से खोज की जाती है। सस्ते प्रकाशन और व्यापक खपत वाले बाजारों के उदय के कारण संरक्षण तंत्र का स्थान प्रकाशकों और पुस्तक विक्रेताओं की निरंकुशता ने ले लिया। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक विशिष्ट मध्यवर्गीय पाठक समुदाय के उदय ने भी लेखक की निर्भरता की स्थिति को व्यावसायिकता की स्थिति में बदलने में मदद की। जर्मन समाजशास्त्री कार्ल मैनहाइम के अनुसार, उपन्यास के उदय के लिए– जो अपने उत्कृष्ट रूप में मध्यवर्गीय साहित्यिक विधा है– और आधुनिक 'बोध' या आधुनिक मनोविज्ञान के उदय के लिए संस्कृति के इस क्रमिक लोकतंत्रीकरण का विशेष महत्व है।''[9]

साहित्य के समाजशास्त्र के बारे में गहराई से अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि महान साहित्य मानवीय अनुभव में ज्यादा गहरे पैठता है, क्योंकि उसमें केवल वैयक्तिक दृष्टांतों को नहीं, बल्कि सतही ब्यौरों के नीचे गहरे और अधिक दीर्घकालिक आंदोलनों को देखने की क्षमता होती है। इससे जनसंस्कृति, लोक संस्कृति आदि के समाजशास्त्र की प्रकृति के आगे प्रश्नचिन्ह लग जाता है क्योंकि इस दृष्टिकोण के अनुसार इनमें न तो भावी पीढ़ियों के लिए कोई संदेश होता है, न ही मनुष्य की सामाजिक और मानवीय स्थिति में गहरी अंतर्दृष्टि होती है। साहित्य के समाजशास्त्र को इन तथ्यों के द्वारा समझा जा सकता है–

''समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण में समाज से लेखक के बढ़ते हुए अलगाव और परिणामतः साहित्यिक शैली और विषय पर पड़ने वाले प्रभाव पर निरंतर बल दिया जाता रहा है। इस सामाजिक विखंडन का संबंध अक्सर अठारहवीं शताब्दी के उत्तरकाल में आश्रयदाता के पतन से और उन्मुक्त संचरणशील बुद्धिजीवी वर्ग के सदस्य के रूप में लेखक के उभर कर आने से जोड़ा जाता है। तर्क दिया जाता है कि पूर्व औद्योगिक समाज में लेखक और उसके पाठक के बीच अपेक्षाकृत अधिक तालमेल था। पेरीक्लीज के एथेन्स में इस्कलस, सोफोक्लीज और यूरोपिदीज समाज के न्यूनाधिक अभिन्न अंग थे। उन्हें किसी अलग वर्ग का सदस्य नहीं समझा जाता था। दूसरी ओर, ऑगस्टकालीन रोम में होरेस और वर्जिल द्वारा शासन के गुणगान को संरक्षण की प्रथा के प्रत्यक्ष प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है। रोम और एथेन्स के पतन के साथ लेखक का मुख्य अवलंब दरबारी संरक्षण हो गया– उदाहरण के लिए पुनर्जागरणकालीन इटली और सत्रहवीं–अठारहवीं शताब्दी के फ्रांस में। रईसों के संरक्षण ने ले लिया। जरूरतमंद लेखक खाने और पैसे के लिए एक दूसरे से होड़ करने लगे। लेखकीय प्रतिक्रिया स्पष्ट रूप से संरक्षण और पूर्व–औद्योगिक और आरंभिक व्यापारिक समाज के सीमित पाठक वर्ग से निर्धारित होती थी।''[10]

साहित्य के समाजशास्त्र का इतिहास विशिष्ट किंतु अनिश्चित है। आजकल किसी भी विषय के इतिहास को, विशेषकर यदि वह उन्नीसवीं शताब्दी से पहले का हो, एक हद तक अप्रासंगिक और निष्फल बौद्धिक मानने का चलन हो गया है, यानी पांडित्य का ऐसा प्रदर्शन जिसका तात्कालिक समस्याओं से

कोई संबंध नहीं है। साहित्य और समाज संबंधी किसी सिद्धांत को ऐसी धारा के रूप में रेखांकित किया जा सकता है, जिसका प्रभाव वर्तमान रचनाओं पर भी निरंतर पड़ रहा है।

lUnHk%

1. आजकल, साहित्य और संस्कृति का मासिक, पत्रिका वर्ष–68, अंक–8, दिसम्बर–2012, पृष्ठ संख्या–7
2. उपरिवत, पृष्ठ संख्या–8
3. आजकल, साहित्य और संस्कृति का मासिक, पत्रिका– वर्ष–69, अंक–3, जुलाई–2103, पृष्ठ संख्या–22.
4. सम्मेलन पत्रिका (त्रैमासिक) उत्तरशती विशेषांक खंड–2 एवं अञ्चल श्रद्धा–अनुष्ठानांक–संपादक–डॉ0 परमेश्वर दत्त शर्मा, पृष्ठ संख्या–34.
5. उपरिवत, पृष्ठ संख्या–38
6. उपरिवत, पृष्ठ संख्या–39
7. उपरिवत, पृष्ठ संख्या–39
8. साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन, संपादक–निर्मला जैन, द्वितीय संस्करण–1992, पृष्ठ संख्या–3
9. उपरिवत, पृष्ठ संख्या–7
10. उपरिवत, पृष्ठ संख्या–8

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 22-24

Tkhou eqfDr % jkekuqt vkSj 'kadjkpk;Z ds lanHkZ esa

nhiukjk;.k ik.Ms;*] MkW0 fdLer dqekj**

भारतीय दर्शन एक विशाल समुद्र के समान है। इसमें से समय–समय पर अनेक वादरूपी रत्नों का अविर्भाव हुआ है। शंकराचार्य के ब्रह्मद्वैतवाद का निरूपण किया जा चुका है। इसके पश्चात् भक्तिमार्गीय वैष्णव दर्शन आते हैं। जैसे रामानुजाचार्य तथा रामानन्दाचार्य का विशिष्टाऽद्वैतवाद। महाप्रभु चैतन्य का अचिन्त्य भेदाऽभेदवाद आदि अनेक वादों की ज्ञान–सरणि प्रवाहित हुई है। इन सभी वादों का मुख्य प्रयोजन दृश्यमान जगत तथा जड़–चेतन पदार्थों का निरूपण करते हुए, आत्मा का यथार्थ ज्ञान करा देना है। यही इन सब दर्शनों का परम प्रयोजन है। इसलिए ब्रह्म, जीव तथा जगत ये तीनों सत्य हैं या मिथ्या है? जीव एवं ब्रह्म में भेद है या अभेद है? मुक्त दशा में आत्मा का स्वरूप क्या है? आदि प्रश्नों को लेकर, दर्शनों की विविध्ज्ञ धराएं प्रवाहित हुई हैं। इन्हीं धाराओं के कारण इन दर्शनों के लेकर, दर्शनों की विविध धराएं प्रवाहित हुई हैं। इन्हीं धाराओं के कारण इन दर्शनों के अन्तिम फल और मुक्ति और उसके उपायों में भेद होना भी स्वाभाविक है, अतः अब साधन भेद के कारण भक्तिमार्गीय दर्शनों का दिग्दर्शन कराते हैं–

रामानुज मत में – अपने से भिन्न चेतन् (जीव) और अचेतन (जगत) से विशिष्ट, ब्रह्म एक ही तत्त्व है; इसका प्रतिपादन करने से यह मत विशिष्टाद्वैत कहलाता है।[1] श्री रामानुजाचार्य इसी मत के परिपोषक और समर्थक हैं। इनके मत में श्री विष्णु ही परब्रह्म तत्त्व हैं। वे लक्ष्मी के स्वामी हैं। विष्णु के सर्वोत्तम होने से जीव और जगत उनके आश्रित होकर रहते हैं। इसलिए उनका विष्णु से भेद है। भेद होने पर परब्रह्म इनमें प्रविष्ट हैं। परन्तु यहां भेद शांकर मत के समान व्यावहारिक न होकर पारमार्थिक है। अर्थात जगत मिथ्या न होकर सत्य है।

रामानुज के अनुसार तीन ही मुख्य पदार्थ हैं : (क) विष्णु (ईश्वर), (ख) चेतन जीव और (ग) अचेतन जगत। इस प्रकार ईश्वर, चित् जीव और अचित् जड़ वर्ग, ये तीन ही प्रधान तत्त्व हैं। इनमें हरि ही ईश्वर हैं। चित् नाम जीवों का है। और अचित् दृश्यमान् जड़ वर्ग है। इन तीनों तत्त्वों में समस्त विश्व समाया हुआ है।[2] किन्तु जड़ और ईश्वर का, जीव–ईश्वर का तथा जड़ और जीवका परस्पर एक दूसरे से भेद है।

फिर शरीर धारण करना पड़ेगा। परन्तु उसे बाध्यकारी कर्मों को करते रहना चाहिए, क्योंकि उनको न करने से वह पाप का भागी बनेगा, जिससे प्रायश्चित स्वरूप दुःखपूर्ण अनुभव भोगने के लिए उसे फिर शरीर धारण करना पड़ेगा।''[1]

डॉ॰ अशोक कुमार लाड न्याय दर्शनानुसार विभिन्न मतों के आलोक में मोक्ष को परिभाषित करते हुए कहते हैं –

''न्याय रत्नाकर के अनुसार मोक्ष वर्तमान शरीर का विनाश और भविष्य में शरीर का न उत्पन्न होना है। पार्थसारथी मिश्र कहते हैं कि कुमारिल के अनुसार मोक्ष 'प्रपंच सम्बन्ध विलय' अर्थात व्यावहारिक जगत के सभी सम्बन्धें की समाप्ति है।''[2]

'अर्थसंग्रह' में उल्लेख है कि ईश्वरार्पण बुद्धि से याग (कर्म) करने पर मोक्ष मिलता है।

^^bZ'ojkiZ.kcq) ;k fØ;ek.kLrq fuJs; lgrq%A**

---

*शोधछात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार
**पी॰एच॰डी॰ जैन कॉलेज, दर्शनशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार

योगवासिष्ठ के अनुसार, सब इच्छाओं से अलग होने पर जो चित्त का क्षीण हो जाना है, उसे ही तत्त्वज्ञानी मोक्ष कहते हैं। जगत को भ्रम समझकर सब विषयों को नीरस समझ कर वासनारहित होकर स्थित होने का नाम निर्वाण (मोक्ष) है।

^ldyk'kkLolilDr ;RLo;i pir l% {k;%A l ek{k ukEuk dfFkrLrÙoKjkRenf'kfHk%AA
TkxnHkkei ifjKk; ;nok luekflreA foj lk'k"k fo"k;i rf) fuokl.keP;rAA**[3]

योगवासिष्ठ भी दो प्रकार के मोक्ष का वर्णन करता है – सदेहमुक्ति एवं विदेहमुक्ति। सदेहमुक्त की मृत्यु के पश्चात् विदेहमुक्ति हो जाती है। शरीर के नष्ट हो जाने पर फिर जन्म होने की संभावना ना हो, उस प्रकार की मुक्ति को विदेहमुक्ति कहते हैं। जैसे चलती हुई और स्थिर वायु में जरा भी भेद नहीं है, ठीक वैसे ही संदेह और विदेहमुक्ति में कोई विशेष भेद नहीं हैं।

^u eukxfi Hknk·fLr lngknge[Dr;k%A
lLiUnk·l;Fko·LiUnk ok;jo ;Fkkfuy%AA[4]

जीवन्मुक्तों के लक्षणों का वर्णन करते हुए योगवासिष्ठ का कथन है कि जिस अन्तर्मुखी वृत्ति वाले को सुखों से सुख और दुःखों से दुःख का अनुभव नहीं होता, वह मुक्त कहलाता है। वह परिपूर्ण मन वाला, अपने मान में रहने वाला, मौनी और शत्राुओं के मध्य में भी अचल रहने वाला है। वह काम रूपी कीचड़ से स्पृष्ट नहीं होता, उसका भ्रमरूपी बन्धन कट चुका है, वह द्वंद्व, दोष और भय से मुक्त है, और संसार सागर से पार हो चुका है।

^u l[kk; l[k ;L; n%[k n%[kk; ;L; ukA
vUre[kerfuR;l l eDr bfr dF;rAA
fuLi"V dke idkdf'NUucU/kfu tHke%A
}} nk"k Hk;kUeDrLrh.kl lkj lkxj%AA**[5]

अद्वैत वेदान्त के प्रतिपादक शंकराचार्य का कथन है कि पारमार्थिक सत्य यह है कि जीव न कभी बन्धन में पड़ता है और न कभी मोक्ष को प्राप्त करता है। बन्ध और मोक्ष कल्पित हैं – जैसे रात्रि और दिवस सूर्य में नहीं होता, किन्तु (पृथ्वी रूपा उपाधि को लेकर) यह दृष्टि दोष है। इसी प्रकार यदि जन्म मरण रूप बन्ध नहीं है, तो फिर मोक्ष भी नहीं है।

^cU/kk tUekR;;kRek ;fn u iujHkr rfg ek{kk·fi ukLrhrA
;}nkf=kfnu ok u Hkofr rj.kk fdUr nXnk"k ,"k%AA[6]

शंकराचार्य के अनुसार, जीव का मोक्ष स्वयं के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान में, अर्थात् यह अनुभव करने में निहित है कि उसका ब्रह्म से नितान्त अभेद है। अन्य शब्दों में मुमुक्षु पुरूष के लिए आत्म तत्त्व के ज्ञान को छोड़कर संसार बन्धन से छूटने का और कोई मार्ग नहीं है।

^-----ukU;k·fLr iUFkk HkocU/keDrfoluk LorÙokoxe ee{kk%AA[7]

ब्रह्मसूत्र भाष्य में 1:1:4 में मोक्ष के स्वरूप का वर्णन करते हुए शंकराचार्य कहते हैं कि यह परमार्थ है, कूटस्थ नित्य है, आकाश के समान सर्वव्यापी है, सभी विकारों से शून्य है, नित्य तृप्त है, अवयवों से रहित है, स्वभाव से स्वयंप्रकाश है। वह ऐसी स्थिति है जहां तक पाप और पुण्य अपने फल सहित त्रिकाल में भी नहीं पहुंच सकते।

^bn r ikjekfFkd dVLFk fuR; 0;keoRlo0;kfi lofØ;kjfgr fuR;rlr fujo;o Lo;T;kfr% LoHkkoe ;= /kek/kek lg dk;.k dky=; p ukikorrA**[8]

'विवके चूड़ामणि' में आचार्य शंकर यह उल्लेख करते हैं कि मोक्ष का प्रथम हेतु अनित्य वस्तुओं में अत्यन्त वैराग्य होना कहा गया है, तदन्तर शम, दम, तितिक्षा और सम्पूर्ण आसक्तियुक्त कर्मों का सर्वथा त्याग है। तदुपरान्त मुनि को श्रवण, मनन और चिरकाल तक नित्य, निरन्तर आत्म तत्त्व का ध्यान करना चाहिए। त बवह विद्वान परम निर्विकल्पावस्था को प्रापत होकर सुख को पाता है।

^ek{kL; grq% iFkek fux|r oSjkX;eR;UrefuR; oLr"kA
rr% 'ke'pkfi nefLrfr{kk U;kl% iLlDrkf[ky deZ.kk Hk'keAA

rr% JfrLrUeuu lrÙoè;ku fpj fuR; fujrj eu%A
rrk·fodYi ijeR; fo}kfugo fuok.kl[k lePNfrAA[9]

मोक्ष प्राप्ति के सम्बन्ध में शकराचार्य का स्पष्ट अभिमत है कि मोक्ष न योग से सिद्ध होता है, ना सांख्य से, न कर्म से और न विद्या से। वह केवल ब्रह्मात्मैक्य बोध से ही होता है।

^^u ;kxu u lk[;u de.kk uk u fo|;kA
cãkReSdRock/ku ek{k% fl) ;fr ukU;FkkA**[10]

शंकराचार्य जीवन्मुक्ति के कट्टर समर्थक हैं। वेदान्तियों में केवल अद्वैती ही ऐसे हैं जो जीवन्मुक्ति के सम्प्रत्ययन में विश्वास करते हैं, और दृढ़तापूर्वक उसे प्रतिपादित करते हैं। 'अद्वैत परिशुद्धि' नामक ग्रन्थ में स्पष्ट उल्लेख है कि हृदय स्थित काम जब पूरी तरह से समाप्त हो जाते हैं तो मनुष्य अमृत हो जाता है। यहां (जीवनकाल में ही) ब्रह्म को प्राप्त होता हैं। यह भी जीवन्मुक्ति श्रुति है

'^;nk lo ieP;Ur dkek ;·L; âfnfJrk%A
vFk eR;k·erk HkoR;= cã le'uqrAA[11]

उपदेश साहस्री में आदि शंकराचार्य जी ने जीवन्मुक्त तत्त्वज्ञानी के स्वभाव का विवेचन करते हुए कहा है कि तत्त्वज्ञानी का न कोई शत्रु होता है न मित्र। तत्त्वज्ञानी का शत्रु–मित्र भाव से उसी प्रकार विरोध है, जिस प्रकार अग्नि और शीतल जल का।

^^vkReku lo.Hkk rLFkefe=k pkReuk·fi ;%A
lk';fUuPNR; lk uu 'khrhdr foHkkoleAA**[12]

शुद्धाद्वैत वेदान्त के प्रतिपादक आचार्य वल्लभ का कथन है कि –

'दो मार्गों पर चलने वाले मुमुक्षुओं के अनुकूल दो प्रकार के मोक्ष होते हैं। मर्यादा मार्ग पर चलने वाला भक्त अक्षर ब्रह्म को ही परम तत्त्व के रूप में जानता है। वह अक्षर ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करता है और शरीर त्याग के पश्चात क्रमिक मुक्ति को (विदेह मुक्ति) प्राप्त करता है। वे कहते हैं कि यह सब केवल मर्यादा मार्गी के विषय में ही सत्य है, पुष्टिमार्गी के विषय में नहीं। पुष्टिमार्गी शरीर तयाग किये बिना पूर्ण पुरूषोत्तम में लय को प्राप्त हो जाते हैं। उसके पश्चात पुरूषोत्तम कृपा करके उन्हें अपने शरीर से बाहर निकालते हैं, उन्हें दिव्य रूप प्रदान करते हैं और उन्हें अपनी नित्य लीला या रासलीला में सम्मिलित होने की अनुमति प्रदान करते हैं। ईश्वर के साथ उसकी लीला में सम्मिलित होना और भजनानन्द का उपभोग करना सर्वोच्च मोक्ष है।''[13]

lUnHk %

1. ''द्वयोर्भावः द्विता, द्वितैव द्वैतम्, भेद इत्यर्थः। न द्वैतमद्वैतम्– अभेदः। विशिष्टस्याद्वैतं विशिष्टाऽद्वैतम्।''
2. ईश्वरश्चिद्रचिच्चेति पदार्थत्रितयं हरिः। ईश्वरश्चिदिति प्रोक्ता जीवाः, अचिद्विदं जगत्।।
3. योगवासिष्ठ – 5.73.36, 6/1.42.51, स्रोत–योगवासिष्ठ और उसके सिद्धान्त, डॉ. भीखनलाल आत्रोय, श्रीकृष्ण जन्म स्थान सेवा संस्थान, मथुरा, 1989, पृ. 384
4. वही, 2.4.5, पृ. 386
5. वही – 6/2.169.1, 5.74.34, पृ 483, 486
6. शतश्लोकी – 24, आचार्य शंकर, व्या.– श्री आनन्द गिरि, श्री कृष्णानन्द सागर, प्रत्यभिज्ञा प्रकाशन, वाराणसी, 1987, पृ. 56
7. विवेच चूड़ामणि – 224, आचार्य शंकर, पृ. 56
8. ब्रह्मसूत्रा शांकरभाष्य – 1.1.4, स्रोत–भारतीय दर्शन में मोक्ष चिन्तन, डॉ. अशोक कुमार लाड, पृ. 158
9. विवके चूड़ामणि– 71, 72, आचार्य शंकर, पृ. 16
10. वही– 58, पृ. 13
11. टद्वैत परिशुद्धिः – 31.4, श्री काशिकानन्द गिरि, आनन्दवन शोध संस्थान, बम्बई, 1995, पृ. 184
12. उपदेश साहस्री– 1.14.32, शंकराचार्य, व्या. – डॉ. मायावती, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1991, पृ. 163
13. भारतीय दर्शन में मोक्ष चिन्तन, डॉ. अशोक कुमार लाड, पृ. 194, 195क

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 25-29

lkfgR; ,oa lekt dk e/; vUr%lEcU/k

MkW0 vfHkyk"kk dqekjh*

साहित्य और समाज दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। निःसंदेह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार समाज की अन्य संस्थाओं का निर्माण समाज करता है, और समाज का निर्माण ये संस्थाएँ करती हैं। ठीक उसी प्रकार साहित्य का निर्माण समाज करता है, और समाज का निर्माण साहित्य करता है। जहाँ तक साहित्य के समाजशास्त्र की बातें हैं, तो यह कहना न्यायोचित होगा कि साहित्य के समाजशास्त्र का मुख्य संबंध साहित्यिक उत्पादन के साधनों, वितरण और एक खास समाज में विनिमय से है। किताब कैसे प्रकाशित होती है, लेखकों की सामाजिक स्थिति क्या है, पाठकों की संख्या कितनी है, शिक्षा का स्तर क्या है, आदि बातों का लेखा–जोखा को इसमें समाहित किया गया है। साहित्य का अपना समाज होता है, उसे लेखक, आलोचक और पाठक के अन्तःक्रियात्मक संबंधों में समझा जा सकता है। साहित्य को समझने के लिए उसके ये ही तीन घटक हैं। लेखक साहित्य का स्रष्टा है। साहित्य में उसके व्यक्तित्व का प्रतिफलन होता है। अतः साहित्य को समझने के लिए लेखक के व्यक्तित्व को रूपायित करने वाले तत्वों का विश्लेषण जरूरी है। इन तथ्यों में उसके वर्ग, वित्तीय समस्याओं, संरक्षण, समकालीन स्थितियों आदि के विवेचन पर खास जोर देता है। इन तथ्यों की पुष्टि हेतु बच्चन सिंह की कृति साहित्य का समाजशास्त्र के इस अंश को देखा जा सकता है।

''अमरीकी समाजशास्त्र की तरह साहित्य का समाजशास्त्र भी मूल्य मुक्त है। मूल्यमुक्तता की दिशा में आलोचना के अन्य सिद्धान्त भी कार्य कर रहे हैं। साहित्य को परिभाषित करते हुए स्कारपिट खुद कहता है कि ''कोई कृति जो प्रकार्यात्मक नहीं है, अपने आप में साध्य है, जो सांस्कृतिक और प्रयोजनातीत जरूरतों को पूरा करती है, साहित्य है। तारीफ तो यह कि न वह कहीं साहित्य की स्वयं साध्यता की व्याख्या करता है और न प्रयोजनतीत की। अतः उसका सारा विवेचन बहुत कुछ आँकड़ा, ग्राफ और डॉक्यूमेंट्स बन कर रह जाता है।''[1]

धर्म, दर्शन और राजनीति की तरह साहित्य भी संस्था के रूप में समाज में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। साहित्य का अपना समाज होता है। साहित्य आदमी को इन्सान बनाने तथा बेहतर समाज के निर्माण में योग देने की दिशा में यह अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, और निभाता है। साहित्य का समाजशास्त्र घटिया दर्जे की रचनाओं के लिए ज्यादा उपयोगी है, यही नहीं घटिया दर्जे की रचनाओं से ही उसके अभिप्राय की पुष्टि में मदद मिलती है। साहित्य अपने देशकाल की सीमाओं का अतिक्रमण करता हुआ अन्यान्य कालों के लिए प्रासंगिक और प्रिय होता है। इन तथ्यों की पुष्टि इन पंक्तियों के द्वारा होती हैं–

''सच्चाई यह है कि वस्तुतः साहित्य और समाजशास्त्र को देखने के अलग–अलग ढंग है, और यदि समाजशास्त्र एक ओर महत्वपूर्ण एवं पूर्णरूपेण चरितार्थ कलाकृतियों में अनुभव की संलिष्टता को पहचानने में हमारी मदद करता है, तो दूसरी ओर वह लम्बे दौर में वैयक्तित्व रचनाशीलता के हमारे बोध को नष्ट करने की ओर उन्मुख हो सकता है। इसलिए समीक्षा समाजशास्त्र का लाभ तभी ले सकती है, जबकि वह इस संबंध में जागरूक रहे कि हर महत्वपूर्ण लेखक और महत्वपूर्ण पुस्तक संभावनाओं को बदल कर और उनके संबंध में हमें नये सिरे से चेता कर परिवेश को एक गहरे और वास्तविक अर्थ में

*ग्राम–बैगना, पो.– पिंडौली, भाया–कटरा, जिला–मुजफ्फरपुर

रूपान्तरित करती है। पर देखा यह गया है कि 'साहित्य का समाजशास्त्र' में साहित्य का सर्जनात्मक साक्ष्य नष्ट हो जाता है।''[2]

सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में उठी हुई। हलचल साहित्य की विभिन्न विधाओं में प्रत्यक्षतः अथवा परोक्षतः अभिव्यक्त होती है। बदली हुई परिस्थितियाँ हमारी भावसत्ता और विचारसारिणी में एक तनाव पैदा करती हैं, और उनके अनुरूप चिंतन और लेखन की दिशा बदलती है। इसकी पुष्टि विश्व साहित्य और इतिहास को देखने से होता है। समाज की पृष्ठभूमि, सामाजिक परिवेश और वातवरण का साहित्य पर विशेष प्रभाव पड़ता है। उस समय और वातावरण से प्रभावित होकर साहित्य की रचना होती है। उस साहित्य के समाजशास्त्र में एक अहम कड़ी लेखकों की होती है। लेखक का साहित्य के समाजशास्त्र के निर्माण में अहम भूमिका है। साहित्य के समाजशास्त्र में जो भूमिका पाठक वर्ग का है वही लेखक और आलोचक का है। साहित्य जनमानस को भी प्रभावित करती है। इन सभी को मिश्रित करने से साहित्य के समाजशास्त्र का निर्माण होता है। चूँकि समाजशास्त्र आधुनिक युग का नया विषय है, मार्क्सवादी विचारधारा के कारण इस पर और जोर दिया जाने लगा, इसलिए आज के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन आवश्यक है। साहित्य का समाजशास्त्र को समझने हेतु इन तथ्यों की पुष्टि हेतु बच्चन सिंह के इन पंक्तियों पर गौर करने की जरूरत है।

''शास्त्र और काव्य की सत्ताएँ अलग–अलग हैं। विश्व में जैसा विषय होता है, शास्त्र उसका वैसा ही स्वरूप–विवेचन करता है। इसमें कल्पना नहीं होती, तर्क होता है, मीमांसा होती है। काव्य में विषय का निबंधन कल्पना–जन्य होता है। इसलिए उसका रूपान्तरण हो जाता है। कवि के कल्पना लोक में जैसा प्रतीत हुआ, वैसा ही उसने चित्रण किया। वाल्मीकि आकाश को 'नीलोत्पलधुति' कहते हैं। यह आकाश का प्रतिभास है, बिंब है। कवि वर्णित सत्य और विषयगत सत्य में तादात्म्य न होकर संवाद होता है। आज के समाजशास्त्रीय अध्ययन में काव्य की संरचना और सत्य तथा समाज की संरचना और सत्य के बीच संवाद (करेस्पांडेंस) ढूँढ़ा जाता है।''[3]

साहित्य के समाजशास्त्र को लेकर विभिन्न विचारकों का अलग–अलग मत है। विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से इसे परिभाषित करने का काम किया है। काव्य और समाज के संबंधों पर विचार, उनकी स्थिति को साहित्य के समाजशास्त्र के अंतर्गत समाहित किया गया है। अनुभूत, विश्वदृष्टि और बाहर के विश्व–प्रपंच में तारतम्यता ढूँढ़ना आलोचक का काम है। इसे अधिक स्पष्टता हेतु 'साहित्य का समाजशास्त्र' के इन पंक्तियों को देखा जा सकता है–

''व्यक्तिगत जीवनी की उपयोगिता से पूर्णतः अस्वीकार्य नहीं है। जीवनी की प्रासंगिकता विचारणीय हो सकती है। पर इसे सावधानी से पढ़ना चाहिए। उससे कुछ सूचनाएँ और लेखकीय मान्यताएँ मिल सकती हैं। किन्तु उसे नहीं भूलना चाहिए कि जब उसका सरोकार गहरे विश्लेषण से हो, तब जीवनी व्याख्या का आंशिक तथा गौण स्तर होगी। आधारभूत स्तर हैं, कृतियों तथा सामाजिक वर्गों में मेल खाती विश्वदृष्टियों के बीच की संबंध–भावना।''[4]

समाज और साहित्य का अविच्छिन्न संबंध है। ये परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। भारतीय साहित्य की दुनिया पिछले तीन–चार दशकों में बहुत बदल गई है, क्योंकि इस साहित्य की दुनिया जिस समाज से जुड़ी है वह समाज भी इस बीच बहुत बदल गया है। साहित्य के समाजशास्त्र में साहित्यिक रचना एक सामाजिक कर्म है, और कृति एक सामाजिक उत्पादन, लेकिन साहित्य की रचना व्यक्ति करता है, इसलिए समाज से साहित्य के संबंध को समझने के लिए समाज से रचनाकार व्यक्ति के ठोस ऐतिहासिक संबंध की समझ आवश्यक है। इस तथ्य की पुष्टि हेतु दलित साहित्य का समाजशास्त्र के इन पंक्तियों को देखा जा सकता है–

''समाज और साहित्य के अंतःसंबंध को समझने के क्रम में प्रायः विधेयवादी सिद्धांत की चर्चा की जाती है। विधेयवादी सिद्धांत के अनुसार, समाज और साहित्य के बीच कार्य–कारण संबंध माना जाता है। इसी सिद्धांत के अंतर्गत क्रांतिकारी नारी मादाम स्तेल ने साहित्य की उत्पत्ति में समाज की भूमिका और समाज पर साहित्य के प्रभाव का विवेचन किया था।

साहित्य मनुष्य के समूचे जीवन से संबंध है। आर्थिक जीवन के अलावा मनुष्य एक प्राणी के रूप में भी अपना जीवन बिताता है। साहित्य में उसकी बहुत–सी आदिम भावनाएँ प्रतिफलित होती हैं, जो उसे प्राणिमात्र से जोड़ती है। साहित्य विचारधारा मात्र नहीं है। उसमें मनुष्य का इन्द्रियबोध, उसकी भावनाएँ, आन्तरिक प्रेरणाएँ भी व्यंजित होती हैं। साहित्य का यह पक्ष स्थायी होता है। सवाल उठता है, कि साहित्य का मूल्यांकन उसके स्थायी पक्ष के आधार पर होगा या अस्थायी पक्ष के आधार पर या दोनों पक्षों के आधार पर। समाजशास्त्र एक पद्धति हैं– समग्र पद्धति नहीं। साहित्य के समाजशास्त्र को अधिक स्पष्टता प्रदान करने हेतु इन पंक्तियों को देखा जा सकता है– ''मुक्तिबोध ने समाज और साहित्य के जटिल स्वरूप को बखूबी समझा है, उन्होंने लिखा– साहित्य का अध्ययन एक प्रकार से मानव सत्ता का अध्ययन हैं, अतएव जो लोग केवल ऊपरी तौर पर साहित्य का ऐतिहासिक विहंगावलोकन अथवा समाजशास्त्रीय निरीक्षण कर चुकने में ही अपनी इति कर्त्तव्यता समझते हैं, वे एक पक्षीय अतिरेक करते हैं। ऐसे व्यक्ति साहित्य के ऐतिहासिक अथवा समाजशास्त्रीय परिवेश की बात करके चुप हो जाते हैं। आवश्यकता तो इस बात की है कि आलोचना में ऐतिहासिक समाजशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक–सौंदर्यात्मक विवेचना की संपूर्ण एकात्मकता रहे।'' इसी सन्दर्भ में मुक्तिबोध आगे लिखते हैं– ''किसी भी साहित्य को तीन तरह से देखा जाना चाहिए। एक तो वह किन स्रोतों से उद्‌गत होता है अर्थात् किन वास्तविकताओं के परिणामस्वरूप वह साहित्य उत्पन्न हुआ है। दूसरे उसका कलात्मक प्रभाव क्या है और तीसरे, उसकी अंतः प्रकृति रूप रचना कैसी है। इस तीसरे प्रश्न को बिना पहले प्रश्न से मिलाए हम दूसरे सवाल का जवाब नहीं दे सकते। मुक्तिबोध के उक्त कथन में– साहित्य के सामाजिक उद्‌गम, उसकी कलात्मक एकता और रूप रचना का विवेचन इन तीन पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है जो समाज और साहित्य के संबंध को समझने में सहायक है।''[6]

समाज तथा साहित्य के अन्योन्याश्रित संबंध को विश्लेषित करते हुए ही साहित्य के समाजशास्त्र का निर्माण हुआ है। समाज और साहित्य के संबंध का दर्पणवादी दृष्टिकोण भी खूब प्रचलित हुआ है, जिसमें साहित्य अगर दर्पण है, तो उस साहित्यरूपी दर्पण में समाज को प्रतिबिम्बित किया जाता है। इसमें समाज के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के लिए साहित्य के अंतर्वस्तु के विश्लेषण को पर्याप्त माना गया। दर्पणवादी दृष्टिकोण की एक सीमा यह है कि इसमें रचनाकार की चेतना की क्रियाशीलता की उपेक्षा होती है। लेखक सामाजिक यथार्थ को रचना में प्रतिबिम्बित ही नहीं करता, वह उसकी पुनर्रचना भी करता है। साहित्य किसी भी सामाजिक परिवेश को प्रभावित करने में सफल हुई है, और वह प्राभावोत्पादक रही भी है। ठीक उसी तरह समाज से भी साहित्य प्रभावित हुई है। इन सभी बिन्दुओं के गणन–अध्ययन हेतु ही साहित्य के समाजशास्त्र का निर्माण भी हुआ। जिस समाजशास्त्र में साहित्य और समाज को केन्द्र में रखकर इसका विश्लेषण किया जाए। इस तथ्य की पुष्टि हेतु दलित साहित्य के समाजशास्त्र के इन पंक्तियों को देखा जा सकता है– ''आज के विचारक निर्विवाद रूप से यह मानते हैं कि रचना के हर स्तर पर अर्थात् उसकी अंतर्वस्तु संरचना, शिल्प और भाषा में समाज की अभिव्यक्ति होती है। परंतु समाज और साहित्य के अंतर्संबंध को निरुपित करते समय अत्यंत सावधानी की अपेक्षा होती है। इस संदर्भ में आर्नाल्ड हाउजेर ने समाज से साहित्य को जोड़ते समय सादृश्य का सहारा लेने के बारे में सावधान करते हुए लिखा था कि सांस्कृतिक संरचनाओं की समाजशास्त्रीय व्याख्या के दौरान सादृश्य की खोज से ज्यादा आसान लेकिन खतरनाक कोई और बात नहीं होती। किसी काल की कला की विभिन्न शैलियों से उस काल की प्रमुख सामाजिक संरचनाओं का संबंध जोड़ लेना आसान है। ''[7]

साहित्य का उद्देश्य क्या है? साहित्य करता क्या है तथा साहित्यकार का दायित्व क्या है? तो बेहिचक यह कहना न्यायोचित होगा कि साहित्य केवल साहित्यिक जानकारी नहीं देता, बल्कि यह समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाज मनोविज्ञान, इतिहास, दर्शन इत्यादि ज्ञान के विषयों की जानकारी देता है। साहित्य अपने माध्यम से समाज के प्रत्येक तथ्य को रेखांकित करती है। साहित्य अपने समाजशास्त्र में समसामयिक को समेटे रहती है। जो समाज के भिन्न–भिन्न रूपों को समेटकर अपने आप में केंद्रित किए रहता है। साहित्य के समाजशास्त्रीय स्वरूप को श्यौराजसिंह बेचैन के इन पंक्तियों को पढ़ने से स्पष्ट होता है–

''हिन्दी साहित्य का चरित्र वस्तुगत दृष्टि से राष्ट्रीय स्वरूप का नहीं था। जिस तरह राजनीतिक व्यवस्था में लोकतंत्र था समाज में वर्ण भेदी अलोकतंत्र पनप रहा था। उसी के अनुसार वर्णवर्चस्व का साहित्य वर्चस्व भी बना। वह द्विज साहित्य था। इस एक वर्णीय कलंक को धोने के लिए कुछ नवाब जमींदार घरानों के मुस्लिम लेखक इसमें जोड़ लिए थे। सांप्रदायिक सद्भाव के नाम पर, जाति सद्भाव की आवश्यकता नहीं समझी गई। परंतु सर्वणता साहित्य पर हावी थी। किसी वर्ण विशेष का साहित्य देश की सांस्कृतिक बहुलता को प्रकट नहीं कर पा रहा था। विशेषकर समाजिक न्याय से वंचित स्वरों को दबा दिया गया था।''[8]

साहित्य और समाजशास्त्र पूर्णतः भिन्न विषय नहीं है। यह कहना ज्यादा उचित होगा कि समाज विषयक हमारी समझ में वे एक–दूसरे के पूरक हैं। साहित्य का वास्ता काफी हद तक उन्हीं सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक संरचनाओं से पड़ता है, जिनसे समाजशास्त्र का। इन दोनों में अन्तर के तौर पर यह देखने को मिलता है कि कलात्मक रचना के रूप में साहित्य केवल वर्णन या वस्तुगत चित्रण विश्लेषण से आगे बढ़कर सामाजिक जीवन की गहराई में प्रवेश करता है। मनुष्य जिन स्थितियों का अनुभव भाव–स्तर पर करता है, उनका उद्घाटन साहित्यकार वस्तु स्तर पर करता है। साहित्य की समझ के लिए जिस प्रकार समाज की समझ जरूरी है, उसी प्रकार, उसी अनुरूप साहित्य की रचना की जाती है। इस तथ्य की पुष्टि हेतु, साहित्य के समाजशास्त्र को समझने हेतु इन पंक्तियों को देखा जा सकता है– ''जिस सवर्ण साहित्य को समाज का दर्पण बताया गया उसकी व्यापकता बहुत संकुचित थी। वह साहित्य भी सामंतों का था। वह दर्पण भी उन्हीं के चेहरों का था। हिंदू साहित्य का दर्पण स्पृश्यों, सवर्णों, पंडितों का था कुजातों, शूद्रों अछूतों का वह नहीं था। यह कहना ज्यादा श्रेयष्कर होगा कि साहित्य भारत का दर्पण भी है, अल्ट्रासाउण्ड भी है– जहाँ साहित्य में व्यापक लोक जीवन, लोक शब्दावली लोक संस्कृति आ रही है तथा उस समाज की झलक, उसका चरित्रांकन करने में समर्थ हो रही है।''[9]

साहित्य को एक सामाजिक तथ्य के रूप में स्वीकार करना श्रेयष्कर होगा। जिनके अनुसार समाजशास्त्र की ही तरह साहित्य का मुख्य सरोकार मनुष्य का सामाजिक जगत होता है। किसी भी लेखन में लेखक का सामाजिक व्यवहार उसके कथानक और पात्रों के चयन में तथा प्रतीक और अलंकार आदि के माध्यम से प्रकट होता है। समाजशास्त्र भी समाज में मनुष्य की स्थिति और गति दोनों का वस्तुगत अध्ययन करता है। सामाजिक संस्थाओं और सामाजिक प्रक्रियाओं के माध्यम से सामाजिक स्थिरता और गतिशीलता के अध्ययन से समाजशास्त्रीय चिंतन का गहरा संबंध है। समाजशास्त्रीय चिंतन की विशेष प्रासंगिकता साहित्य के प्रति मनोवैज्ञानिक दृष्टि में भी नहीं होती। इस दृष्टि में भी साहित्यिक रचना को विशिष्ट वैयक्तिक तथ्य के रूप में देखा–परखा जाता है। इस आलोचना का मुख्य सरोकार विशिष्ट–मनोवैज्ञानिक स्थितियों के साथ साहित्य–सर्जना का संबंध स्थापित करना या इनके आलोक में कृति की व्याख्या करना होता है। समाजशास्त्र को इन पंक्तियों के द्वारा अधिक स्पष्टता मिलती है–––

''समय के समान समाज भी स्थिर नहीं है। पल–पल परिवर्तनशील है। हर युग की सामाजिक परिस्थितियाँ, आशाएँ, आकांक्षाएँ, विभिषिकाएँ, दूसरे युग से भिन्न रही हैं। सामाजिक दृष्टि से मनुष्य के विकास की गाथा साहित्य रचना के लिए उर्वरा पृष्ठभूमि का काम करती रही है। साहित्यकार इस पृष्ठभूमि में से गौरवपूर्ण घटनाओं एवं अनुकरणीय व्यक्तित्वों के हवाले चुनकर अपने समय के समाज के लिए गर्वानुभूति तलाश करता है और अपना आदर्श निर्धारित करने के लिए आवश्यक संकेत भी मुहैया करता है। यह प्रक्रिया भी शाश्वत प्रक्रिया है। ऐसे काव्यों को रचना स्वाधीनता–प्राप्ति के वर्षों बाद ही संभव थी, अतः वे काव्य स्वतंत्रता प्राप्ति के वर्षों के बाद ही रचे गए।''[10]

साहित्य बहुत हद तक समाज को प्रभावित करती है। भौतिकता के चकाचौंध, भोग और जातिगत–सांप्रदायिक द्वेष के विरूद्ध सजग करते हुए अपने पाठक को अपने समाज को अध्यात्म और संस्कृति की लोकमंगलकारी दृष्टि की ओर मोड़ता है। साहित्य को यदि एक हद तक अपने आप में बंद आत्मनिर्भर रचना माना जाए, तो बल मूलतः उसकी आंतरिक संरचना के संदर्भ पर होगा–यानि बिंब–विध ाान, चरित्रांकन, कथानक की द्वंद्वात्मकता, लय, भाषा आदि संबंधी विचार पर। समाज का हस्तक्षेप ऐसी

स्थिति में अधिक–से–अधिक पृष्ठभूमि के रूप में हो सकता है। साहित्य की आंतरिक विशेषताओं पर आधारित आलोचना में अक्सर ऐसे प्रयास का विरोध होता है, जिसमें कृति–केंद्र के बाहर से उसे आलोकित करने का दावा किया गया है। समाजशास्त्रीय चिंतन इस प्रकार की आलोचना को बाहर की वस्तु प्रतीत हो सकता है और होता रहा है। समाशास्त्रीय चिंतन की विशेष प्रासंगिकता साहित्य के प्रति मनोवैज्ञानिक दृष्टि में भी नहीं होती। इस दृष्टि में भी साहित्यिक रचना को विशिष्ट वैयक्तिक तथ्य के रूप में देखा–परखा जाता है।

lUnHkZ

1. साहित्य का समाशास्त्र, डॉ0 बच्चन सिंह, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण– 2007, पृष्ठ संख्या–6
2. उपरिवत पृष्ठ संख्या–7
3. उपरिवत पृष्ठ संख्या–87
4. उपरिवत पृष्ठ संख्या–91
5. दलित साहित्य का समाजशास्त्र, निरंजन कुमार, अनामिका पब्लिशर्स, प्रथम संस्करण–2010, पृष्ठ संख्या–77
6. उपरिवत पृष्ठ संख्या–79
7. उपरिवत पृष्ठ संख्या–78
8. आजकल, साहित्य और संस्कृति का मासिक, पत्रिका, वर्ष–69 अंक–5, सितम्बर–2013, पृष्ठ संख्या–31.
9. उपरिवत पृष्ठ संख्या–32.
10. आजकल, साहित्य और संस्कृति का मासिक, पत्रिका वर्ष–68, अंक–8, दिसम्बर–2012, पृष्ठ संख्या–7

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 30-33

ukV~; lk/kuk ,oa ekguyky egrks ^fo;ksxh*

MkW vfUrek dqekjh*

विश्व की सभ्य संस्कृतियों में प्राचीन साहित्यिक विधा के रूप में नाटक मौजूद है। यह साहित्य की प्राचीनतम विधा है। भारत में काव्यशास्त्र पर भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' प्राचीनतम ग्रन्थ है। यह संस्कृत के प्राचीन साहित्य की सबसे समृद्ध विधा है। 'नाटक' साहित्य की वह विधा है जिसका परीक्षण रंगमंच पर होता है और रंगमंच युग विशेष की जनरुचि और तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था के आधार पर निर्मित होता है। नाटक का स्वरू प्रत्येक युग में परिवर्तित होता रहता है। स्वरूप बदलने की वजह से उसके लक्षण भी बदलते रहते हैं किन्तु मूल तत्व बने रहते हैं।

रंगमंचीय गत्यात्मकता ही नाटक का मूल मर्म है। इसकी भाषा हरकत की भाषा होती है। अभिनय के लिये प्रयोग किये जाने वाले शब्द या वाक्य तभी सार्थक होते हैं, जब वे कायिक, वाचिक सात्विक एवं आहार्य अभिनय को प्रेरित करते हैं। नाट्यवस्तु को रूपायित करते हुए नाटककार अभिनय गर्भित संवाद, दृश्यबंध, दृश्य–सज्जा, प्रकाश–व्यवस्था, ध्वनि–प्रभाव आदि के समुचित संयोजन को ध्यान मेंर खते हुए पात्रों की अवस्थाओं को क्रियात्मक रूप देता है। साहित्य की दूसरी विधाओं में रचनाकार वर्णनात्मक, चित्रात्मक एवं संगीतात्मक भाषा के जरिए विषयवस्तु को प्रकट करता है, किन्तु नाटक में अभिनय के जरिए विषयवस्तु को प्रत्यक्ष घटित होते हुए दिखलाया जाता है। इसी अर्थ में नाटक, साहित्य की अन्य विधाओं से भिन्न है।

इंद्रिय ग्राह्यता के आधार पर काव्य के दो भेद माने गये हैं– श्रव्य और दृश्य। इसमें दृश्य काव्य के दो भेद है– रूपक तथा उपरूपक। रूपक की व्युत्पत्ति है– 'तदरूपारोपात् तु रूपम' अर्थात् रूप का आरोप होने के कारण इस रूपक कहते हैं। इसके दस भेद है। जिनमें से नाटक भी एक है। लेकिन सामान्य व्यवहार में रूपक और नाटक को पर्याय समझा जाता है। भारतीय काव्यशास्त्र के आदिग्रन्थ भरत कृत 'नाट्यशास्त्र' में भी रूपक के लिए नाटक शब्द का प्रयोग हुआ है।

दशरूपक के अनुसार ''नाटक'' शब्द की उत्पत्ति 'नट' धातु से मानी गयी है। 'नट अवस्यंदने' कहकर दशरूपककार ने बताया है कि अवस्यंदन का अर्थ सात्विक अभिनय से है और वह नृत्य से भिन्न है।[1] पश्चिमी में नाटक का पयार्य 'ड्रामा' शब्द के मूल में ग्रीक शब्द 'ड्रोवा' है, जिसका अर्थ एक्शन या किया गया कार्य है। अर्थात् भूतकाल में किया गया कार्य अभिनेताओं द्वारा मंच पर अनुकृत होकर नाटक बनता है। अंग्रेजी शब्द 'ड्रामा' में 'क्रियाओं' के अनुसरण पर जोर दिया गया है तथा संस्कृत शब्द नाटक में अवस्थाओं के अनुकरण पर। अनुकरण का अस्तित्व दोनों स्थितियों में है। अतः कह सकते हैं कि मूलतः नाटक अनुकरणात्मक विधा है।

नाटक का स्वरूप प्रकट करते हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने लिखा है– ''नाटक शब्द का अर्थ है 'नट' लोगों की क्रिया। नट वह है जो विधा के प्रभाव से अपने एवं किसी वस्तु के फेरे या स्वयं दृष्टिरोजन के अर्थ फिरे। दृश्य काव्य की संज्ञा रूपक है। रूपक में नाटक ही सबसे मुख्य है। इस रूपक मात्र को नाटक कहते हैं।'[2]

बाबू गुलाबराय के अनुसार– ''नाटक में जीवन की अनुकृति को शब्दगत संकेतों में संकुचित करके उसका सजीव पात्रों द्वारा एक चलते–फिरते सप्राण रूप से अंकित किया जाता है। नाटक जीवन की सांकेतिक अनुकृति ही नहीं वरन सजीव प्रतिलिपि है।''[3]

*एम.ए., पीएच.डी. (हिन्दी), बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

स्पष्टतः हम कह सकते हैं कि अभिनय प्रधान किसी विशेष उद्देश्य से लिखा गया कथात्मक वार्तालाप नृत्य, संगीत, चरित्र–चित्रण एवं भावों से परिपूर्ण विषय नाटक का सार्थक रूप होता है।

मानव सृष्टि के आरंभ से ही नाटक का बीज निहित था। कौतूहल की वृत्ति मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति है। आदिकाल में जब आदि मानव भौतिक साधनों की उपलब्धि के लिए इधर–उधर जंगलों में घूमता रहा होगा उसमें जिज्ञासा की प्रवृत्ति रही होगी और फिर वह अपने अनुभवों का वर्णन अपने बाल–बच्चों को सुना कर उनमें भी वृत्ति को जागृत करता है। परिणामस्वरूप बचपन से अनुकरण का भाव जगाकर फिर उससे अभिनय की मूल प्रेरणा की उत्पत्ति हुई। अभिनय के इस प्रारंभिक रूप में गीत और नृत्य बाद में सम्मिलित किये गये। यहीं गीत और नृत्य विकसित होते–होते नाटक की अवस्था में पहुँचे।

बहुतेरे समीक्षकों ने जाति, समाज या राष्ट्र रक्षा की भावना को भी नाटक को जन्म देने वाली प्रवृत्ति माना है। इसके अतिरिक्त नाटक को जन्म देने वाली प्रमुख प्रवृत्ति आत्म–विस्तार भी माना जा सकता है। मानव अपना सुख–दुःख, आशा–निराशा दूसरों पर प्रकट करके या दूसरों को सुनाकर आत्म–विस्तार ही तो करता है। अतः आत्म–विस्तार भी नाटक को जन्म देने वाली प्रवृत्ति है।

विभिन्न विद्वानों ने नाटकों की उत्पत्ति के संबंध में अपने–अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। भारतीय विद्वानों में भरतमुनि 'नाट्यशास्त्र' के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। इन्होंने नाटक की उत्पत्ति का आधार 'दैवी' माना है। इनके मतानुसार–लोगों ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वे उन्हें आनंद प्राप्ति का कोई साधन है। ब्रह्मा ने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार करके पंचम् नाट्यवेद का निर्माण किया। जिसने संसार ऋग्वेद से, गीत सामवेद से, अभिनय कला यजुर्वेद से, रस अर्थववेद से लिया। इसमें बाद में शंकर जी ने तांडव और पार्वतीजी ने कोमल लास्य नृत्य जोड़ा। ब्रह्मा ने नटों को शिक्षा और फिर जनता के विनोद तथा आध्यात्मिक और लौकिक मनोरंजन के लिए भरतमुनि को नाटक ले जाने का उत्तरदायित्व दिया गया।''[4]

श्रीपति ने नाटक की उत्पत्ति प्राणी जगत के साथ मानी है, उनके अनुसार– ''भारतीय धर्म ग्रन्थों के अनुसार सृष्टि का आरंभ ''एकोहं बहुस्याम'' के आधार पर हुआ है। ब्रह्मा एक से अनेक रूपों में विकसित हुआ, इस प्रकार प्राणी जगत का विस्तार हुआ। आत्म–विस्तार की भावना भी नाटक की उत्पत्ति के मूल स्रोतों में से है। उसी से मानव सृष्टि का विकास हुआ। फलतः ग्राम, नगर, राष्ट्र और समाज बने। इसके अतिरिक्त अपने भावों के प्रकाशन तथा दूसरों के ग्रहण करने की प्रवृत्ति मानव में जन्मजात है। परिणामतया मानव को आत्माभिव्यंजना से अतीव आनंद प्राप्त हुआ, जिससे नाटक की प्रेरणा जागृत है।''[5]

सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है कि भरत प्रणीत अनुकीर्तन का अर्थ अनुकरण है। इस प्रकार नाटक मानव की समस्त भाव योजना का अनुकरण सिद्ध होता है, और अनुकरण जो मानव की जन्मजात प्रवृत्ति है, ने नाटक को जन्म दिया है।

मानव जीवन से नाटक का गहरा संबंध है। साहित्य की अन्य विधाओं की भॉति मात्र कल्पना के लिए यहाँ स्थान कम है। यह जीवन के संघर्ष को प्रदर्शित करता है। यह संघर्ष हमारे जीवन, नीति–नियमों, संस्कारों, मान्यताओं आदि से संबंधित है। अतः नाटकों में अभीनित संघर्षपूर्ण स्थितियों से साधारणीकृत हुआ ह्रदय संघर्षजन्य दंश से मुक्त होकर खुश हो जाता है। सामाजिक जीवन की सफलता अभिव्यक्ति का नाटक एक प्रमुख साधन है। फलतः नाटक से हम सामाजिक मूल्यों की परख अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक कर सकते हैं।

विभिन्न भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने नाटक की परिभाषा अपने–अपने शब्दों में दी है। भारतीय नाट्य मिमांसकों में भरत मुनि सर्वप्रथम एवं सर्वश्रेष्ठ हैं। इनके 'नाट्यशास्त्र' में स्वयं ब्रह्मा जी नाटक की परिभाषा देते हुए कहते हैं– 'त्रैलोकस्य स्यास्य सर्वस्य नाट्य भावानुकीर्तनम' अर्थात् यह पंचम वेद नाट्य सम्पूर्ण त्रिलोक के भागों का अनुकरण है।''[6]

अभिनवगुप्त– ''अनुकीर्तन का अर्थ अनुसरण नहीं, अपितु वे इसका अर्थ साधारणीकरण के रूप में स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि अनुकरण क्रिया का हो सकता है, पदार्थ का नहीं और अनुभवों का भी अनुकरण असंभव है।''[7]

बाबू गुलाब राय के मतानुसार– ''नाटक में जीवन की अनकृति को शब्दगत संकेतों में संकुचित करके उसको सजीव पात्रों द्वारा एक चलते–फिरते सप्राण के रूप में अंकित किया जाता है। नाटक जीवन की सांकेतिक अनुकृति नहीं वरन् सजीव प्रतिलिपि है।''[8]

पाश्चात्य विद्वान विलियम आर्कर के अनुसार– ''नाटक मनुष्य की आकांक्षाओं का प्रतिरूप, जो जीवन को एक वृत्त प्रदान करती है, जिनमें हमारा जीवन रंगमंच पर कष्टों के विरुद्ध मित्रों अथवा आकांक्षाओं के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए अवतरित होता है।''[9]

अरस्तु ने नाटक की परिभाषा देते हुए कहा है– ''ट्रैजेडी उस व्यापार का अनुकरण जिसमें गम्भीरता और पूर्णता हो, जिसकी भाषा में प्रत्येक प्रकार के कलात्मक अलंकारों से सुसज्जित हो और जिसमें अनेक विभाषाएँ भी पाई जाती हो, जिसकी शैली वर्णनात्मक न होकर दृश्यात्मक हो, जो करुणा और भय का प्रदर्शन करके इन मनोविकारों का उचित परिष्कार कर सके।''[10]

प्रायः सभी विद्वानों ने नाटक को आनंद का हेतु माना है और उसे जीवन के लिए आनंददायी स्वीकार किया है। मनुष्य समाज में रहकर जो देखता है, उसे ग्रहण करता है और व्यक्त करता है। ये नाटक के अनुकरण और अभिव्यक्ति है जिसके माध्यम से मानव को यह संदेश दिया जाता है कि कहीं वह पुरानी रूढ़ियों के गड्ढों में फॅसकर अपने वर्तमान को न भूल जाए। अतः भरतमुनि से लेकर शेक्सपीयर तक सभी विद्वानों ने माना है कि नाटक हम उसी को कह सकते हैं, जिसका मूल आनंद को और उस आनंद में लोक मंगल व कल्याण की भावना निहित हो। वास्तव में सही अर्थो में नाटक का स्पष्ट व स्वच्छ स्वरूप वह है, जो समाज को एक नई दिशा प्रदान करे।

नाट्य रचना और रंगमंचीय प्रदर्शनों का एक लंबा इतिहास संस्कृत साहित्य में रहा है। परन्तु मध्य युग आते–आते प्रेक्षागृहों और नाट्य प्रदर्शनों का क्रमशः ह्रास होता गया। याज्ञवल्क्य स्मृति और स्मृति में नटों के प्रति हेय भावना व्यक्त किये जाने के कारण रंगकर्मियों और अभिनेताओं की प्रतिष्ठा कम हुई। विदेशी आक्रमणकारियों ने भी राज प्रसादों से जुड़ी हई रंगशालाओं को तहस–नहस कर दिया। 11वीं–12वीं शताब्दी पहुँचने तक नाट्य–लेखन, रंगभूमि के जीवित संदर्भ से कट गया। मध्ययुग के उत्तरार्द्ध में हिन्दी में कुछ ऐसे नाटक लिखे गये जिनकी मूल प्रवृत्ति तो काव्यपरक है, परन्तु संवाद–शैली में रचे जाने के कारण उन्हें नाटक की संज्ञा दे दी गयी है। 'आनंद रघुनंदन' (महाराज विश्वनाथ), रामायण महानाटक (प्राणचंद चौहान) आदि ऐसे ही नाटक की श्रेणी में आते हैं।

मध्ययुग में पूरे भारत में लोकधर्मी नाट्य परंपराएँ अनेक नाम रूपों में व्याप्त रही हैं। बिहार में 'कीर्तनिया' और 'अंकिया', बंगाल में 'जात्रा', मध्य भारत और राजस्थान में 'ख्याल', गुजरात में 'भवाई', उत्तर भारत में 'लीला', 'रास' और 'नौटंकी' नाम से तथा दक्षिण भारत में 'यक्षगान' नाम से किसी न किसी रूप लोक–नाट्य परंपरा लगातार जीवित रही है। भारत में प्रथम रंगशाला 'रंगहाउस' नाम से अंग्रेजों द्वारा 1776 ई. में कलकत्ता में स्थापित की गई। फिर कलकत्ता थिएटर की स्थापना के पश्चात् 'अभिज्ञान शकुंतलम' का 1789 ई. में अंग्रेजी में अभिनय किया गया।

हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटक भारतेन्दु बाबू के पिता श्री गोपालचंद (गिरधरदास) द्वारा लिखित नाटक 'नहुष' (1859 ई.) को माना जाता रहा है, किन्तु इस संबंध में डॉ. अमरनाथ लिखते हैं कि ''इधर काठमांडू में रचित कृष्ण चरितोपाख्यान' नाटक की सूचना मिली है। यह नाटक भागवत पुराण के दशम स्कंध की कथा पर आधारित है। इसकी रचना सन् 1835 में या इसके कुछ वर्ष पूर्व हुई होगी क्योंकि यह काठमांडू में रथयात्रा के वार्षिक समारोह के अवसर पर ब्रिटिश रेसिडेंसी के तत्वावधान में पहले सितम्बर से 17 सितम्बर 1835 तक खेला गया था। इसका मंगलाचरण तथा अन्य स्तुतियाँ तो संस्कृत में है किन्तु गद्यभाग खड़ी वाली हिन्दी में है।''[11]

लोक–नाट्य की परंपरा भारतीय समाज में बराबर एक पतली धार की तरह चलती रही, किन्तु साहित्यिक नाटक की परम्परा हिन्दी में भारतेन्दु बाबू से ही प्रारंभ होती है। नाट्य–वस्तु एवं शैली शिल्प

की दृष्टि से हिन्दी नाटक के आधुनिक मौलिक स्वरूप का विकास भारतेन्दु बाबू के नाट्य प्रयोगों में ही प्रतिफलित हुआ।

lUnHkZ %

1. हिन्दी नाटकों में नैतिक चेतना का विकास, डॉ. रामाश्रय रत्नेश, पृ.19.
2. भारतेन्दु नाटकावली, भाग–2, परिशिष्ट, पृ. 421–422.
3. प्रसाद के नाटक तथा रंगमंच, सुषमा पाल मल्होत्रा, पृ. 01.
4. हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव, श्रीपति शर्मा, पृ. 02.
5. वही.
6. हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा, भूमिका से.
7. हिन्दी अभिनव भारती, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 190–191.
8. प्रसाद के नाटक तथा रंगमंच, सुषमा पाल मल्होत्रा, पृ. 09.
9. हिन्दी नाटकों में नैतिक चेतना का विकास, डॉ. रामाश्रय रत्नेश, पृ. 20.
10. वही.
11. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 203.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 34-37

fgnh nfyr vkykpuk d {k= e MkO ekrk i:lkn dk ;kxnku

MkO eerk dekjh*

'आलोचना' 'लोच्' धातु से बना है–आ+लोच्+अन+आ– आलोचना। लोच् का अर्थ है देखना। इसीलिए किसी वस्तु या कृति की सम्यक् व्याख्या अथवा उसका मूल्यांकन आदि करना ही आलोचना है। नित्य व्यावहारिक जीवन में किसी न किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा कार्यकलाप की समीक्षा में हमारी सहज प्रवृति होती हैं। किन्तु संस्कारों, चिंतन क्षमता एवं सामाजिक अवधारणा प्रभृति अन्य व्यक्तिगत विशेषताओं के परिणामस्वरूप हमारी प्रतिक्रियाओं में प्रायः अंतर रहता है। इसी प्रकार साहित्य की आलोचना भी प्रतिक्रियाओं की देन है, किंतु ये प्रतिक्रियाएँ उच्छृंखल न होकर एक प्रकार के वैज्ञानिक संयम से अनुशासित रहती है। 'आलोचना' के लिए 'समीक्षा' शब्द भी प्रयुक्त होता है।[1]

साहित्य यदि जीवन की व्याख्या है तो आलोचना साहित्य की व्याख्या और उसका मूल्यांकन है। यह भी धारणा है कि आलोचना से कृति ही नहीं, जीवन को भी समझने में मदद मिलती है। आलोचना का संसार तीन चीजों के मेल से बनता है– (1) साहित्य सिद्धान्त (2) व्यावहारिक आलोचना और (3) साहित्येतिहास या सांस्कृतिक इतिहास।

हिन्दी में आलोचना शब्द अंग्रेजी के 'क्रिटिसिज्म' का पर्याय है, जिसका अर्थ है – मूल्यांकन या निर्णय करना। साहित्य की सवोत्तम बातों को जानना और समाज को उनका ज्ञान करना आलोचना का उद्देश्य माना जाता है। इसका उद्देश्य यह खोज निकालना है कि कवि या लेखक में मनुष्य के हृदय के किस रूप ने अपना सौंदर्य बिखेरा है।[2]

अलोचना एक प्रकार से काव्य–शास्त्र है। काव्य–शास्त्र को यहाँ व्यापक अर्थ में लेना होगा। काव्य का व्यापक अर्थ सृजन है, फिर चाहे वह कविता हो, आख्यान हो, नाटक हो या निबन्ध। आलोचना इस सब विधाओं का तत्त्वान्वेषण करती है और एक स्तर तक जाकर हर विधा के लिए उसकी उत्कृष्टता के कतिपय सिद्धान्त या मानक रच देती है। यदि आचार्य शुक्ल 'साधारणीकरण' या 'लोकमंगल' जैसे शब्दों का उपयोग करे हैं, तो स्पष्ट है कि सृजन का लोकाभिमुखी और लोक–ग्राह्य होना आवश्यक है। यही लोकग्राह्मता उसकी उत्कृष्टता का प्रमाण है, जो हम कबीर और तुलसी दोनों में पाते हैं। आलोचना की बीजभूमि तो सृजन ही है और सृजन् अपनी समस्त मानवीय, सामाजिक और कलात्मक प्रेरणाएँ अपने ही पर्यावरण से लेता है। पर्यावरण में मनुष्य और प्रकृति तो विराट रूप से उपस्थित हैं लेकिन मनुष्य और प्रकृति अनेक छवियाँ अनेक प्रतीक और बिम्ब भी रचते हैं।[3]

समकालीन परिदृश्य की विभावनाओं को दलित एवं नारी विमर्श ने यथार्थनुभूति के स्तर पर उजागर करके वाल्मीकि से लेकर 1980 तक के साहित्य पर सवालिये निशान लगाये हैं।

दलित आलोचना का मार्ग प्रशस्त करने के लिए डॉ. धर्मवीर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समग्र हिन्दी आलोचना की पड़ताल करते हैं। ऐसे संक्रमणकालीन समय में अब तक की आलोचना का बौनापन साफ नजर आता है। या यों कहें कि कला एवं सौंन्दर्य के नाम भाषित नजाकत के द्वारा नारियों एवं दलितों का ही शोषण किया है।[4]

हिन्दी में दलित साहित्य की चर्चा और उस पर उठे विवादों ने हिन्दी साहित्य को ही कटघरे में खड़ा कर दिया है। जहाँ एक ओर हिन्दी साहित्य के मठाधीश, समीक्षक, आलोचक, दलित साहित्य के

*एम.ए. (हिन्दी), पीएच.डी., पंखाटोली, मुजफ्फरपुर

अस्तित्व को ही नकार रहे हैं, वही कुछ लोग यह सिद्ध करने का प्रयास भी कर रहे हैं कि दलित साहित्य के लिए दलित होना जरूरी नहीं है। उकना कहना है कि हिन्दी में दलित समस्याओं पर लिखने वालों की एक लम्बी परम्परा है। ऐसी ही एक चर्चा के दौरान कथाकार काशीनाथ सिंह ने अपने एक अध्यक्षीय भाषण में टिप्पणी की थी, ''घोड़े पर लिखने के लिए घोड़ा होना जरूरी नहीं है।'' विद्वान कथाकार का यह तर्क किस सोच को उजागर करता है? घोड़े को देखकर उसके बाह्य अंगों, उसकी दुलकी चाल, उसके पुट्ठों, उसकी हिनहिनाहट पर ही लिखेंगे। लेकिन दिन–भर का थका–हारा, जब वह अस्तबल में भूखा–प्यासा खूँटे से बंधा होगा, तब अपे मालिक के प्रति उसके मन में क्या भाव उठ रहे होंगे, उसकी अन्तःपीड़ा क्या होगी, इसे आप कैसे समझ पाएँगे? मालिक का कौन–सा रूप और चेहरा उसकी कल्पना में होगा, इसे सिर्फ घोड़ा ही जानता है।[5]

ब्राह्मणवादी सत्ता–संस्कृति और ब्राह्मणेतर दार्शनिकी, वैचारिकी के उल्लेख्य, महत्व ओर विचार–विश्लेषण के उपरांत एक सोचनीय प्रश्न यह उठता है कि क्या इतिहास में कभी शूद्र सत्ता–संस्कृति की पगध्वनि ही नहीं बल्कि उसका वर्चस्व भी रहा है। इसके बारे में लगातार इतिहासकारों, दलित चिंतकों और विद्वानों ने कई प्रकार से शोध करने की कोशिश की है। रामायण के शम्बूक और महाभारत में एकलव्य का उदाहरण लगातार ऐसा अहसास कराते हैं कि निश्चित रूप से वैदिक संस्कृति के प्रतिरोधस्वरूप इतिहास में ऐसी युगाांतकारी परिघटनाएं हुई होंगी जिनका उल्लेख आमतौर पर या तो नहीं मिलता है और अगर मिलता भी है तो वह बहुत ही क्षीण रूप में। इसके अतिरिक्त ऐसे कई प्रश्न उठते हैं जब लगता है कि ब्राह्मण समुदाय को शूद्र समुदाय के बारे में इतने सख्त कानून बनाने पड़े होंगे जिससे उनकी हालत बुरी होती चली गई। क्या इतिहास में शूद्र कभी शक्तिशाली या वर्चस्व में मौजूद रहा है? क्या इसीलिए सख्त नियमों को बनाकर न केवल उन्हें सता से दूर किया गया बल्कि समाज से हमेशा के लिए बहिष्कृत कर दिया गया। इसके अतिरिक्त उन्हें अमानवीयता की हद तक अछूत का दर्जा देकर गांव, शहर और नगरों में आने का प्रतिबंध लगा दिया। इन प्रश्नों पर अब सकारात्मक रूप से विचार होना चाहिए।''[6]

दलित साहित्य के सम्बन्ध में प्रायः यह प्रश्न उठाया जाता है कि दलित साहित्य केवल दलितों द्वारा लिखे साहित्य को क्यों कहा जाता है? प्रेमचंद या अमृतलाल नागर के लिखे साहित्य को दलित साहित्य क्यों नहीं माना जाता? इसका उत्तर यह है कि दलित साहित्य स्वानुभूति का साहित्य है, यह भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति करता है। गैर दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य सहानुभूति का साहितय होता है, वह स्वयं भुक्तभोगी नहीं बल्कि दलित की पीड़ाा को देखकर अनुभव कर उसे लिखते हैं। श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं कि ''प्रेमचंद ने दलित चेतना की कई कहानियाँ लिखी हैं, सद्गति, ठाकुर का कुआँ, दूध का दाम आदि लेकिन अन्तिम दौर की कहानी 'कफन' तक आते–आते वे गांधीवादी आदर्शों, सामन्तों मूल्यों, वर्णव्यवस्था के पक्षधर दिखाई पड़ते हैं।'' एक स्थान पर वे और कहते हैं– ''अमृतलाल नागर का उपन्यास 'नाच्यो बहुत गोपाल' हैं इसमें उन्हीं पुरानी परम्पराओं और मान्यताओं की गिरत में फंसकर तमाम औपन्यासिक गुणों के बावजूद एक बनावटी तथ्य में वह बदल जाता है। यानी एक बाहरी व्यक्ति का दृष्टिकोण दूर से देखकर लिखा गया यथार्थ, जो दलितों के साथ एकाकार होने, संस्कारों को लड़ने और उनके साथ साधारणीकरण करने की स्थिति से रोकता है। फिर भी ऐसे गैर–दलित साहित्यकारों का हम स्वागत करते हैं जिन्होंने दलितों की समस्याओं पर लेखनी चलाई है।[7]

दलित साहित्य का आज भी कुछ लोग विरोध करते दिखाई पड़ते है। दलित साहित्य के सम्बन्ध में प्रसिद्ध कथाकार साहित्यकार श्री कमलेश्वर जी के द्वारा दूसरी दुनियां के यथार्थ 'दलित कहानियाँ' में निम्न बातें जो भूमिका में कही गई है, उसे पढ़कर लोगों की शंका का निवारण हो जाना चाहिए, जिसमें उन्होंने कहा है– ''हिन्दी में अभी दलित साहित्य को अवधारणा का ही सवाल उठाया जा रहा है, यह एक साजिश और भूल है। इस मामले को उलझाया क्यों जा रहा है? सीधा उत्तर है– नदी है, तो पानी है, फिर चाहे वह नदी बारिश में ही दिखाई देती हो। उसी तरह यदि देश में दलित हैं तो दलित साहित्य भी है। फिर चाहे उसे दलित साहित्य की कसौटी पर रखकर खारिज किया जाये या मंजूर किया जाए। यानी यह भी अकाट्य सत्य है कि हिन्दी में दलित साहित्य मौजूद है, और इससे भी इन्कार नहीं

किया जा सकता कि सदियों से जो प्रताड़ित तिरस्कृत, शोषित ओर बहिष्कृत रहे हैं, यह साहित्य उनका है। उन्हीं द्वारा लिखित है और इस साहित्य का मूल स्वर प्रतिरोधी और प्रतिवादी है।''

सामान्यतः 'दलित' का अर्थ अनु.जाति, अनु. जनजाति और विमुक्त जातियाँ ही लगाया जाता है, इसीलिए इस प्रकार के प्रश्न उठाये जाते हैं। 'दलित' शब्द का अर्थ बड़ा व्यापक है। इसमें दबाये गये अपमानित, पीड़ित, उपेक्षित, शोषित सभी आते हैं। इसमें स्त्रियों ओर शूद्र वर्ग में आनेवाली पिछड़ी जातियाँ और अति पिछड़ी जातियां भी हैं जो दलितों की भांति शिक्षा, सम्पत्ति एकत्र करने से वंचित है। और आपमान–जनक जीवन जीने को विवश हैं। मनुस्मृति में विस्तार से इसका वर्णन है। शूद्रों की भांति स्त्रियों को भी अपमानजनक जीवन व्यतीत करने को व्यवस्था बनाई गई है। इन्हें 'दोयम' दर्जे का स्थान समाज में प्राप्त है। स्त्री को बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था में दूसरों के अधीन रहना बताया गया है। प्राचीन काल में जहाँ उसे वेद पढ़ने की मनाही थी, वहीं विधवा होने पर जल मरने या अभिशप्त जीवन जीने की लाचारी। उसके लिये पतिव्रता होना आवश्यक था। विधवा शादी नहीं कर सकती थी। विधुर के लिए कोई बन्धन नहीं था। आज भी भ्रूण परीक्षण, दहजे कम होने पर जला देना आम बात हो गई है। इसलिए हिन्दू व्यवस्था से उपेति और अपमानित स्त्री जाति को उसमें चाहे वेश्याएँ हों या देवदासियाँ या ईट के भट्टों पर यौन पीड़ित मजदूरिनें उपेक्षित पीड़ित सभी, दलित की सीमा में आते हैं।[8]

दलितों की नई पीढ़ी शिक्षित हुई है। उनमें स्वाभिमान जागा है। इसलिए अपमानजनक स्थिति से निकलने का वह प्रयास कर रहा है। डॉक्टर अम्बेडकर के शिक्षित बनों, संगठित हो, संघर्ष करो, के साथ ही मनु–स्मृति आधारित भेद–भाव के विरुद्ध वह उठ खड़ा हो गया है। इसका समाधान वह बौद्ध धम्र को अपनाने में देख रहा है। इस सम्बन्ध में अनेक लोकगीत लिखे गये हैं जो आगे 'गुलमिया अब ना करबै हो' में मिलेगा। अधिकांश लोकगीत दलिों के भूत और वर्तमान जीवन के निकट है। दलित साहित्य भी दलितों, शोषितों वंचितों और पीड़ित स्त्रियों का साहित्य है। जिसमें समाज से अपमानित, शोषकों से पीड़ित दबे–कुचले लोग हैं, इसके साथ स्त्रियां भी हैं जिनको समाज में बराबरी का स्थान प्राप्त नहीं है। दलित साहित्य इनकी मजबूरियों को जहां समाज के सामने रखता है वही उनको जाग्रत करके उन्हें समता के लिए संघर्ष करने को भी प्रेरित करता है। स्त्रियां भी रूढ़िवादी व्यवस्था से तंग आकर उसे तोड़ने और समानता के लिए लड़ रही है। यह विषय दलित साहित्य के अंग हैं।[9]

दलित शब्द के साथ जब साहित्य जड़ जाता है तो उसका अर्थ ही बदल जाता है। वह नकार का साहित्य बन जाता है, किन्तु उसका नकार, व्यवस्था अर्थात् उन मूल्यों विश्वासों और मान्यताओं के प्रति है जो समाज और राष्ट्र के हित में अनौचित्य पूर्ण और अनुपयोगी है। चूंकि वे अनुपयोगी हैं और अशुभ हैं, इसलिए उनका कोई मूल्य नहीं है। मूल्य केवल वही शुभ हैं जो समाज में समता स्वतन्त्रता और भ्रातृत्व को बढ़ावा देते हैं यह मूल्य राष्ट्र के लिए कल्याणकारी हैं। दलित साहित्य इन्हीं शुभ मूल्यों का समर्थक है ंवह ऐसे किसी विचार का समर्थन नहीं करता, जो हिंसा, अलगाववाद या असमानता को जन्म देता है या पोषण करता है। इसलिए उसका अन्तिम लक्ष्य भारतीय समाज और राष्ट्र को हिन्दुत्व के हिंसक और मानवीय शिंकजे से मुक्त कर, उनमें प्रज्ञा, करूणा और शील गुणों से युक्त संस्कृति का विकास करना है ताकि समानता मूलक समाज और राष्ट्र का निर्माण हो सके।[10]

संविधान में आरक्षण का अर्थ है अनुसूचित जातियों अनुसूचित जनजातियों, समाज के निर्बल, कमजोर, उपेक्षित, अभावग्रस्त, शोषित लोगों को, जिन्हें दबाया गया है, उन्हें कानून के द्वारा ऐसे अवसर प्रदान करना जिससे वे भी देश की मूलधारा में सम्मिलित हो सकें।

lUnHkZ %

1. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, पांचवां संस्करण, नई दिल्ली, 2018, पृ.सं. 66–67

2. हिंदी साहित्यकोश ज्ञानकोश, संपा. राधावल्लभ त्रिपाटी, जवरीमल्ल पारख, अवधेश प्रधान, अवधेश कुमार सिंह, अवधेश प्रसाद सिंह, भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता, 2019,पृ.सं. 518

3. आलोचना–समय और साहित्य, रमेश दवे, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, पृ.सं. 38

4. हिन्दी कथा साहित्य में दलित विमर्श, संपा. डॉ. दिलीप मेहरा, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2011, भूमिका से

5. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकशन, दिल्ली, 2001, पृ. सं.–X

6. सत्ता संस्कृति और दलित सौंदर्यशास्त्र, सूरज बड़त्या, भारतीय दलित अध्ययन संस्थान, दिल्ली, 2012, पृ. सं.–57–58

7. दलित साहित्य में प्रमुख विधाएँ, माताप्रसाद, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ.सं. 5–6

8. दलित साहित्य दशा और दिशा, माताप्रसाद, भारतीय दलित साहित्य अकादमी, दिल्ली, 2003, पृ.सं. 3–5

9. लोकगीतों में वेदना और विद्रोह के स्वर, माता प्रसाद, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007 पृ.सं. 20

10. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माताप्रसाद, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ.सं. 18

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 38-42

f'koiwtu lgk; dk dFksrj x| lkfgR; dh fo'ks"krk,¡

MkW0 fiz;k vkuan*

शिवपूजन सहाय बहुपढ़ित गद्यकार हैं। शिवपूजन सहाय को शिवजी के नाम से भी जाना जाता है। शिवजी की रचना लम्बी और सोद्देश्यपूर्ण हैं। एक समय में उन्होंने बिहार के रचनाकारों का प्रतिनिधित्व किया। जिस प्रकार 20वीं शताब्दी के आरम्भ में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी भाषा और साहित्य के परिमार्जन के लिए एक आन्दोलन चलाकर बहुत से विद्वानों तथा लेखकों को परिष्कृत किया ठीक वैसे ही आचार्य शिवपूजन सहाय ने बिहार के साहित्यकारों को परिमार्जित और परिनिष्ठित किया।

हिन्दी गद्य–साहित्य को आचार्य शिवपूजन सहाय ने एक नवीन दिशा ही है। खासकर आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, डायरी और अग्रलेख जैसी कथेतर गद्य–विधाओं को उन्होंने कथा–साहित्य की प्रमुख विधा कहानी, उपन्यास, कविता और नाटक के समतुल्य लाकर खड़ा कर दिया।

शिवपूजन सहाय ने कथेतर गद्य–साहित्य की प्रवृत्तियों एवं विशेषताओं का कई अर्थों में निर्माण भी किया है। शिवजी के कालजयी व्यक्तित्व पर उनके सुपुत्र ने लिखा है– ''कुछ लेखक ऐसे होते हैं जो अपने समय में तो महत्वपूर्ण होते ही हैं, समय जैसे–जैसे आगे जाता है, वैसे उनके महत्व के नये रूपों की खोज शुरू होती है। उनका नये सिरे से आविष्कार किया जाता है, नये सिरे से उनको पढ़ा जाता है। आचार्य शिवपूजन सहाय एक ऐसे लेखक थे जिन्हें आप हिन्दी नवजागरण के स्तंभों में गिन सकते हैं। हिन्दी नवजागरण संज्ञा का प्रयोग जिस तरह किया गया है, जिस अर्थ में किया गया है– उस पर जो विवाद है, सब अपनी जगह है। पर बीसवीं शताब्दी के एकदम आरंभ के वर्षों का वह हिंदी नवजागरण बहुत व्याख्या की जरुरत नहीं रखता जिसमें प्रेमचंद, निराला, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, शिवूपजन सहाय जैसे लेखकों की एक अपनी ठोस निश्चित जमीन थी। वे हिंदी नवजागरण के बहुत सारे रूपों को अपने लेखन से चरितार्थ करने वाले लेखक थे। एक बहुत सीमित अर्थ में साहित्यकार स्वभाव के लेखक वे न थे। कवि, कथाकार से बड़ा व्यक्तित्व लेकर और भिन्न प्रकार का व्यक्तित्व लेकर वे आये थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का स्मरण हम उनकी संपादन कला के लिए करते हैं, पर उनके लिए भी साहित्य का अर्थ था व्यापक अर्थों में साहित्य। उन्होंने साहित्य की बड़ी परिभाषा की, जिसमें बड़ा जीवन समाया हुआ है और जिसमें लेखक की और अनुभव की बहुत सारी प्रणालियाँ एक साथ सक्रिय होती है। वास्तव में, ये वे लेखक थे जो अपनी बड़ी जीवनीशक्ति के लिए बराबर याद किये जायेंगे।''[1]

शिवपूजन सहाय के निधन के लगभग पचास वर्षों के पश्चात् 'मंगलमूर्ति' जी ने उनकी संपूर्ण रचना–राशि को साहित्य– समग्र के दस खण्डों के माध्यम से समेटने का सराहनीय प्रयास किया। ये साहित्यिक सामग्रियाँ उनके मूल्यवान साहित्यिक रिक्थ को समेटने का एक प्रयास है– ''व्यापक अर्थों में साहित्य से शिवपूजन सहाय का सरोकार था। उनकी जीवन–निष्ठा थी साहित्य के प्रति। वे साहित्य को एक मूल्य की तरह जी रहे थे अपने जीवन में। उनके जीवन के विषय में हम पढ़ते हैं कि वे आरा से कलकत्ता और कलकत्ता से बनारस भटकते रहे और फिर बार–बार अपनी जड़ों में लौटते रहे। जहाँ भी रहे ठेठ हिंदी का जो देशज ठाठ है उसे सजीव रखते हुए, चरम कठिनाइयों में भी वही विनोद–व्यंग्य की एक अद्भुत प्रवृत्ति लिये हुए जिसे हम अपनी साहित्यिक परम्परा में पहचानते हैं, कबीर की वाणी में सुनते हैं, भारतेन्दु की वाणी में सुनते हैं, जिसे चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के यहाँ भी अपने ढंग से देखते हैं– 'कछुआ

---

*सी/0 पूनम मिश्रा, रामदयालु, नगर, हाजीपुर रोड, नियर, जेनिथ पेट्रोल पम्प, मुजफ्फरपुर, पिन–842002

धर्म का लेखक' और फिर निराला की 'कुल्ली भाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' जैसी कृतियाँ जो एक नये तरह का ठेठ देशज हिंदी गद्य उपन्यास के रूप में संभव करती हैं और उपन्यास का एक नया मॉडल भी संभव करती हैं।''[2]

शिवपूजन सहाय के साहित्य–समग्र के दस खण्ड एक ऐसी महागाथा के रूप में है जिसमें एक पूरा युग एक रचनाकार के जीवन और उसके रचना संसार के दर्पण में प्रतिबिंबित दिखाई पड़ता है– ''आचार्य शिवपूजन सहाय में हम बराबर दो विशेषताएँ देखते हैं : एक उनकी गहरी वैष्णवता और एक उनके भीतर का, एक खास तरह का प्रगतिशील सोचने का ढंग, जो है उनके मन में। पहले प्रगतिवाद बहुत आसानी से उनकी समझ में नहीं आया था – शंका की थी उन्होंने, पर बाद के दिनों में उन्होंने स्वीकार किया कि जो प्रगतिशील साहित्य आ रहा है, जो प्रगतिशील लेखक आ रहे हैं, वे महत्वपूर्ण हैं और उनकी ओर ध्यान देने की जरूरत है। स्पष्ट है कि इस वैष्णवता और प्रगतिशीलता में विरोध नहीं है। ये दोनों कहीं अभिन्न हैं।''[3]

संस्मरण शिवपूजन सहाय के सृजन–शिल्प का मुख्य उपकरण है। वह उनके कथा–साहित्य का भी केन्द्रीय तत्व है। 'देहाती दुनिया' अथवा 'कहानी का प्लॉट' या उनकी कुछेक और कहानियों में भी संस्मरण ही उनका केन्द्रीय दृष्टि–बिन्दु है। दूसरे शब्दों में उनके सम्पूर्ण रचना संसार में, बल्कि बहुत सारे निबन्धों और टिप्पणियों में, यहाँ तक कि कई सम्पादकीय वक्तव्यों में भी, संस्मरण का यह केन्द्रीय तत्व बार–बार झलक उठता है जैसे संस्मरण ही उनके संपूर्ण साहित्य गायन का वादी स्वर हो। निश्चय ही, अपनी विपुलता और विविधता में शिवजी का संस्मरण–साहित्य उनके साहित्यिक जीवन का एक संचित एवं सुरक्षित मधुकोष है।

संस्मरण एवं व्यंग्य–संस्मरण गद्य साहित्य की एक अत्यंत जीवन्त विधा है। संस्मरण का मूल आधार लेखक की स्मृति होती है, जो किसी घटना, व्यक्ति या स्थिति पर आधारित होती है। संस्मरण रेखाचित्र से मिलती–जुलती विधा है, जिसके लिए अंग्रेजी शब्द है 'मेमोयर्स' किन्तु एक स्वतंत्र विधा के रूप में हिन्दी साहित्य में इसकी पहचान स्थापित है। महादेवी वर्मा के अनुसार–संस्मरण लेखक की स्मृति से संबंध रखता है और स्मृति में वही अंकित रह जाता है जिसने उसके भाव या बोध को कभी गहराई में उद्वेलित किया हो।

शिवपूजन सहाय के गद्य साहित्य की प्रवृत्तियों में संस्मरण का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके संस्मरणों में कहीं–कहीं व्यंग्यों का भी सुन्दर समायोजन प्राप्त होता है। जिन क्षणों, दृश्यों या भावनाओं को व्यक्ति बोझिल या बहुत सुसंस्कृत ढंग से नहीं व्यक्त कर पाता है वहाँ वह व्यंग्यों का सहारा लेता है। यह प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य के अन्य अनेक लेखकों तथा विद्वानों में भी पाई जाती है। शिवपूजन सहाय के संस्मरणों तथा व्यंग्यों में प्रमुख हैं– 'मेरा जीवन', 'स्मृति शेष', 'जीवनियाँ', 'दो घड़ी' – संकलित व्यंग्य टिप्पणियाँ आदि।''[4]

शिवपूजन जी के साहित्य में संस्मरण एक ऐसा सोता की तरह है जो उनकी सृजन भूमि में अक्सर फूट ही पड़ता है। उनके संस्मरणों में जहाँ जीवन की विविधता को भी व्यक्त किया गया है, वहाँ भी एक सूत्रता का बोध होता है। अपने दादा को मैंने नहीं देखा था। मेरी दादी का मायका नारायणपुर मेरे गाँव से दो कोस उत्तर–पूरब में है। मेरे बूढ़े पुरोहित इसी कारण मेरी दादी को 'नारायणी' नाम से पुकरा करते थे। उनकी देखा–देखी जब मैं भी उसको उसी नाम से पुकारता था तब मेरी माता बहुत हँसती थी।''[5]

स्वाभाविकता और सरलता शिवपूजन सहाय जी के गद्य साहित्य की अनुपम विशेषता तथा प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति उनके संस्मरणों में भी सर्वत्र दृष्टिगत होती है। अपने अतीत के यादों के चित्र इस प्रकार उन्होंने उकेरे हैं कि वह दृश्य पाठक के सामने सजीव हो उठता है। शर्माजी ने कान के पास मुँह ले जाकर कहा– ''मेरा विद्यार्थी है, शुरू से उर्दू–फारसी पढ़ता था, अब मैट्रिक में आकर हिन्दी पढ़ने लगा है, कुछ पूछिए।'' बाबू शिवनन्दन सहाय कुर्सी पर बैठे–ही–बैठे हँसते–हँसते हिलने लगे। पूछा, ''गोसाईजी की रामायण तुमने पढ़ी है?'' शर्माजी बोले, ''जो पूछते हैं सो जोर से बतलाओ।''[6]

शिवपूजन सहाय जी के संस्मरणों में ऐसे चरित्रों और उनके ऐसे प्रभावोत्पादक अनुबिंब खींचने वाले दिवंगत हिन्दी–सेवकों के चित्र हर जगह दिखाई देंगे। शिवजी बहुत दिनों तक 'मतवाला'– मण्डल से जुड़े रहे। उन्हीं दिनों को याद करते हुए उन्होंने निराला जी के बारे में लिखा है। अपनी हल्की–फुल्की प्रवृत्ति के साथ ही विषय को शब्द रूप देने वाले शिवजी निराला के बारे में लिखते हैं– ''निराला जी 'मतवाला' – मण्डल के सर्वप्रिय एवं सर्वाधिक सम्मान्य सदस्य थे। नं0 23 शंकर घोष लेनवाले मकान के ऊपर के तल्ले में रामकृष्ण–मिशन और विवेकानन्द–सोसाइटी का एक शाखा–कार्यालय था। उसके लिए सेठजी ने दो कमरे भाड़े पर उठा दिये थे। मुंशीजी उनसे हँसी मजाक में कह देते थे– ''महाराज! आपको पाकर हमलोगों ने 'आकाश–कुसुम' तोड़ लिया है। हम लोगों के सिवा इस संसार में 'गूलर का फूल' किसी ने न देखा होगा।'' निरालाजी आँखों में मुस्कुराकर मुंशीजी के विनोद का रस लेते।''[7]

डॉ0 नामवर सिंह हिन्दी साहित्य जगत के प्रखर आलोचक के रूप में जाने जाते हैं। सम्भवतः शिवपूजन सहाय जी की काव्य–कला ने उन्हें काफी प्रभावित किया था। डॉ0 नामवर सिंह ने शिवजी के बारे में लिखा है– ''डॉ0 नामवर सिंह ने अपनी भूमिका 'एक और शिवपूजन सहाय' में एक प्रकार से इस बात की ओर स्पष्ट संकेत किया है कि लेखक शिवपूजन सहाय के व्यक्तित्व के अनेक पक्ष हैं और संभवतः उन सबको मिला देने के बाद भी लेखक का व्यक्तित्व उनके योग से कहीं अधिक बड़ा है। यों तो आज भी कुछ लोग उनको आँचलिक कथा–साहित्य का प्रणेता मानते हैं, कुछ उनके संस्मरण–लेखन के गंभीर प्रशंसक हैं, कुछ दूसरे लोग उनको एक अप्रतिम गद्य–लेखक और शैलीकार मानते हैं, तो कुछ के लिए वे मूलतः एक जागरूक और प्रखर पत्रकार हैं, और कुछ लोग तो उनके अवदान को श्रेष्ठ सम्पादन और कुशल प्रूफ–पठन तक ही सीमित मानते रहे हैं। उनके अधिकांश समकालीन समानधर्माओं में भी उनके प्रति, उनके पवित्र निष्कलुष, अतिशय धर्मनिष्ठ जीवन के प्रति एक गहरा श्रद्धा–भाव ही रहा, जो उनके साहित्यिक अवदान से कहीं अधिक उनके चरित्र और व्यक्तित्व को महत्व देता था। संभव है, उनके जीवनकाल में ऐसा सोचना अपरिहार्य रहा हो, क्योंकि वह सारा श्रद्धा–भाव मेरी इन आँखों में भी निरंतर उनके सानिध्य में रहते हुए बराबर देखा–परखा। लेकिन आज जब उनको गुजरे लगभग आधी सदी बीत चुकी है और उनकी स्थूल काया में उनको देखने वाले ज्यादातर लोग भी अब गुजर चुके है, या गुजरने वाले हैं, तब तो आज और कल की पीढ़ियाँ उनकी असली तस्वीर समग्र के इन पृष्ठों में संगृहित उनके साहित्यिक अवदान में ही देख सकती हैं, और निश्चय ही इन्हीं पृष्ठों, वाक्यों और शब्दों में उस सम्पूर्ण शिवपूजन सहाय के दर्शन हो सकते हैं, जो वह सब तो थे ही, जो लोग सोचते रहे, किंतु उन सबसे अधिक भी वे अपने युगीन साहित्य और संस्कृति के एक अत्यंत सशक्त प्रतीक–पुरुष थे।''[8]

कहानी साहित्य की ऐसी विधा है जिसमें कथाकार अपनी बातों को कम शब्दों में अधिक प्रभावी ढंग से व्यक्त कर सकता है। शिवपूजन सहाय जी की कहानियों में इस प्रवृत्ति का यथेष्ट विकास हुआ है। कहानियों के माध्यम से शिक्षा देने की प्रवृत्ति भी उनके कथेतर साहित्य की विशेषता है– ''शिवजी के प्रारंभिक सृजन–जीवन में ही उनकी एक पहली कहानी 'राव से रंक' पंडित ईश्वरीप्रसाद शर्मा–संपादित पत्रिका मनोरंजन (फरवरी, 1913) में प्रकाशित हुई थी, जिसे उन्होंने–अपने पहले कहानी–संग्रह 'महिला–महत्व' में नहीं सम्मिलित किया था। यह कहानी यहाँ समग्र–1 में संकलित है। इस कहानी को हम एक बालोपयोगी कहानी के प्रारूप की तरह देख सकते हैं– ''किसी देश में एक महाप्रतापी राजा रहता था।'' कहानी इसी तरह शुरू होती है, यद्यपि आगे इसकी शैली में अभी विषयानुकूल वह परिपक्वता अथवा उपयुक्तता नहीं दिखाई देती, जो कुछ वर्षों बाद की उनकी अधिक प्रौढ़ बालोपयोगी कृतियों–भीष्म, अर्जुन–आदि से देखी जा सकती है, लेकिन बालकों और किशोरों के लिए प्रेरणा–प्रद पुस्तकों और रचनाओं के लेखन के प्रति उनके रूझान का एक स्पष्ट संकेत उस पहली अपरिपक्व रचना में भी लक्षित हो जाता है।''[9]

शिवपूजन सहाय जी ने प्रारम्भ में बालोपयोगी कहानियों को ही अपनी कथेतर साहित्य का विषय बनाया। बाल सुलभ कहानियाँ लिखने में उनकी प्रवृत्ति अधिक रमी– ''उनकी दो और बालोपयोगी पुस्तकें 1960 के दशक में पटना से प्रकाशित हुई थीं– 'अमर सेनानी कुंवर सिंह' तथा 'खूंटा पंडित' – जिनमें पहली 1962 में उनके जीवनकाल में प्रकाशित उनकी अंतिम कृति थीं, और दूसरी उनके निधनोपरांत मेरे द्वारा

संकलित होकर 1992 में पटना से ही प्रकाशित हुई थी। रचनावली–4 में 'बाबू कुँवर सिंह' शीर्षक मथुराप्रसाद दीक्षित– लिखित जीवनी (1921) के लिखा उसी शीर्षक का उनका लंबा महत्वपूर्ण परिशिष्ट भी यहाँ संकलित की गई हैं और उसी में प्रकाशित उनके पाँच शब्दचित्र भी थे, जो उनके अपने गाँव के वास्तविक चरित्रों पर आधारित थे और जीवन के अंतिम वर्षों की श्रेष्ठ रचनाओं के रूप में हिंदी–जगत में उनकी विशेष अभ्यर्थना हुई थी। उनके ये सभी पांच शब्द–चित्र समग्र–1 में कथा–साहित्य के अंतर्गत संगृहित हुए हैं। यह आकस्मिक नहीं था कि जीवन के अंतिम चरण में वे फिर एक बार कथा–लेखन की ओर अपने उसी सपरिचित ग्रामीण परिवेश में लौटे, कुछ वैसे ही चरित्रों की ओर जो उनके प्रसिद्ध उपन्यास देहाती दुनिया और उनके ग्राम्यांचल को चित्रित करने वाली दूसरी पुस्तक, ग्राम–सुधार के वास्तविक ग्रामवासी थे। यहाँ खूँटा पंडित में भी जो तीन चरित्र चित्रित हुए हैं, वे भी 'महेस पांडे' और 'लोकनाथ पंडित' जैसे वास्तविक ग्रामवासियों की ही रूपाकृतियाँ हैं। 'आँखों देखा, कानों सुना' – यह शिवजी के रचना–शिल्प का मूलाधार है– कथा–रचना और संस्मरण–लेखन में ही नहीं, बल्कि प्रायः उनके संपूर्ण लेखन में।''[10]

यहाँ शिवपूजन सहाय जी की साहित्य साधना की प्रवृत्ति गॉवो तथा गाँव से जुड़ी हुई वस्तुओं से जुड़ी है। गाँव से जुड़ी तथा भारत के किसानों और उनके वातावरण के चित्रण में शिवजी की प्रवृत्ति खूब रमी है। गाय को भारत में प्राचीन काल से ही पूज्य मानकर उसके लिए 'अधन्या' कहा गया है। देश के विकास के साथ ही देशवासियों की मानसिकता भी बदली, उनके सोच–समझ का पश्चिमीकरण हुआ और बहुत सी पुरानी बाते पीछे छूट गयी। किन्तु गाँवों में आज भी गाय की सेवा उसी पवित्र भावना से की जाती है। इसी प्रवृत्ति से जुड़ा है शिवजी का यह प्रस्तुत सन्दर्भ– ''भारतीय संस्कृति के सम्पोषक महाकवि कालिदास ने अपने सुप्रसिद्ध महाकाव्य 'रघुवंश के द्वितीय सर्ग में गाय की सेवा शुश्रूषा का बड़ा सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन किया है। महाराज दिलीप प्रातःकाल ही महर्षि वशिष्ठजी की 'नन्दिनी' गाय को वन में चराने के लिए ले जाते थे। उसकी देह सहलाते–खुजाते। उसके तन पर मच्छर या डॉस न बैठने देते। जिधर जाना चाहती, उधर ही स्वच्छन्ता से जाने देते, रोक–टोक भी नहीं करते थे। किसी झाड़ी में घुसती तो भी उसका पीछा न छोड़ते। कंटीली लताओं से उनकी जुल्फें बिखर जाती थीं। तब भी उसकी सेवा में तत्पर ही रहते थे।''[11]

शिवपूजन सहाय के कथेतर साहित्य की प्रवृत्तियों के अध्ययन के पश्चात् निष्कर्षतः इन बिन्दुओं को देखा जा सकता है–

- शिवपूजन सहाय को हिंदी नवजागरण स्तंभों में गिन सकते हैं।
- बीसवीं शताब्दी के आरम्भ के वर्षों का वह हिंदी नवजागरण बहुत व्याख्या की जरूरत नहीं रखता।
- एक बहुत सीमित अर्थ में साहित्यकार स्वभाव के लेखक शिवजी न थे।
- वास्तव में, ये वे लेखक थे जो अपनी बड़ी जीवनीशक्ति के लिए बराबर याद किये जायेंगे।
- ये साहित्यिक सामग्रियाँ शिवपूजन सहाय जी के मूल्यवान साहित्यिक रिक्त को समेटने का एक प्रयास है।
- शिवपूजन सहाय साहित्य को एक मूल्य की तरह जी रहे थे।
- व्यापक अर्थों में साहित्य से शिवपूजन सहाय का सरोकार था।
- शिवपूजन सहाय के साहित्य–समग्र के दस खण्ड एक महागाथा के रूप में हैं।
- संस्मरण शिवपूजन सहाय के सृजन–शिल्प का मुख्य उपकरण है।
- संस्मरण उनके कथा–साहित्य का भी केन्द्रीय तत्व है।
- शिवपूजन सहाय की प्रवृत्तियों में संस्मरण का महत्वपूर्ण स्थान है।
- कहानियों के माध्यम से शिक्षा देने की प्रवृत्ति अधिक रही है।
- पत्रकारिता के लिए जो सच्चाई, बेवाकी और निडरता की जरुरत होती है वे सभी प्रवृत्तियाँ शिवजी में विद्यमान थीं।

- शिवजी का हस्तलेख तो सुधड़ था ही, वे सुधर गद्य–शिल्पी भी थे।
- हास्य–व्यंग्य की प्रवृत्ति शिवजी के गद्य की विशेषता है।
- जीवन के छोटे–से–छोटे विषय पर भी शिवजी की लेखनी खूब दौड़ी।
- अपने मूल रूप में डायरी निजी दस्तावेज होती है।
- शिवपूजन सहाय जी की डायरी न सिर्फ अपनी बल्कि तत्कालीन घटनाओं और समस्याओं का भी दस्तावेज है।
- गांवों की समस्याओं पर निरन्तर आन्दोलन करते रहने की आवश्यकता है।
- डाक का मूल्य और महत्व गाँव में ही मालूम होता है।
- पत्र साहित्य तैयार करने योग्य मेरे वे पत्र हैं जो तीसरी प्यारी पत्नी को लिखे गये थे।
- पत्रों में शिवपूजन सहाय जी की स्पष्टवादिता, खुलापन, कृत्रिमता से दूरी तथा सहजता की प्रवृत्ति स्पष्ट होती है।
- पत्र–लेखन भी एक सुन्दर कला है।
- शिवजी के पत्र भी उनके गद्यात्मक प्रवृत्ति को ही स्पष्ट करते हैं।
- शिवपूजन सहाय जी के कथेतर गद्य–साहित्य की एक अन्यतम प्रमुख प्रवृत्ति आंचलिकता है।
- हिन्दी साहित्य के विद्वानों पर लिखते हुए इनके गद्य में उदारता तथा सम्मान की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है शिवपूजन सहाय ने कथेतर गद्य साहित्य को एक सार्थक दिशा दी है। शिवजी कथेतर साहित्य कई मामलों में कथा साहित्य की मुख्य विधाओं से महत्वपूर्ण है।

lUnHk %

1. शिवपूजन सहाय, साहित्य–समग्र–1, संपादक–मंगलमूर्ति अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2011, पृ0 17.
2. शिवपूजन सहाय, साहित्य–समग्र 2, संपादक–मंगलमूर्ति, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2011, पृ0 26.
3. शिवपूजन सहाय, साहित्य समग्र 5, संपादक– मंगलमूर्ति, अनामिका पब्लिशर्स, खण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2011, पृ0 11–12.
4. शिवपूजन सहाय, साहित्य–समग्र – 3, संपादक–मंगलमूर्ति, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2011, पृ0 17.
5. शिवपूजन सहाय, साहित्य समग्र 4, संपादक–मंगमूर्ति, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2011, पृ0 13 (प्रस्तावना).
6. शिवपूजन सहाय, साहित्य–समग्र 4, संपादक–मंगलमूर्ति, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2011, पृ0 24.
7. शिवपूजन सहाय, साहित्य समग्र 6, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2011, पृ0 132.
8. शिवपूजन सहाय, साहित्य समग्र–10, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2011, पृ0 22–23.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 43-44

ekguyky egrk ^fo;kxh* dh dk0; iof`Ùk;k¡

Mk0 jf'e j[kk*

मानव जीवन के विकास गाथा में काव्य का प्रादुर्भाव मनुष्य जाति के लगातार संस्कारिक होते जाने और संप्रेषणीयता के क्रम में गहन से गहनतर तथा निरन्तर, सुगठित होते जाने का परिणाम है। मनुष्य की संवेदनाओं को सार्थक अभिव्यक्ति नाट्यशास्त्र और इसकी विधाओं से मिली जहाँ से काव्यशास्त्र ने स्वयं के लिए आवश्यक अवयव ग्रहण किये। इन अवयवों की वजह से ही निवेदन गहन से गहनतर होते चले गये। काव्यशास्त्र के आधारभूत अवयव कविता को समझने और कविता के माध्यम से विचारगत संप्रेषणीयता को समझाने के लिए भी मूल रहे हैं।

हिन्दी साहित्य को मुख्य रूप से जिन दो विधाओं में विभाजित किया गया है वह है– गद्य और पद्य। आधुनिक हिन्दी पद्य का इतिहास लगभग 800 वर्ष प्राचीन है और इसका आरंभ तेरहवीं शताब्दी से समझा जाता है। अन्य भाषाओं की तरह हिन्दी कविता भी आरंभ में इतिवृत्तात्मक थी। आर्थात् किसी कहानी को लय के साथ छंद में बॉधकर अलंकारों से सजाकर प्रस्तुत किया जाता था। भारतीय साहित्य के सभी प्राचीन ग्रन्थ कविता के रूप में ही लिखे गये है। इसका एक कारण यह था कि लय और छंद की वजह से कविता को याद कर लेना आसान था। जिस समय दस्तावेजों की अनेक प्रतियाँ बनाना आसान नहीं था क्योंकि छापेखाने का आविष्कार नहीं हुआ था उस समय दस्तावेजों की अनेक प्रतियॉ बनाना आसान नहीं था क्योंकि छापेखाने का आविष्कार नहीं हुआ था उस समय महत्वपूर्ण बातों को याद रखने के लिए यह एक उत्तमसाधन था। यही कारण है कि उस समय साहित्य के साथ–साथ विज्ञान, राजनीति और आयुर्वेद को भी पद्य (कविता) में ही लिखा गया। भारत की प्राचीनतम कविताएँ ऋग्वेद में हैं जिनमें प्रकृति की प्रशस्ति में लिखे गये छंदों का सुंदर संकलन है। जीवन के विभिन्न अन्य विषयों को भी इन कविताओं में स्थान दिया गया है।

सामान्यतः काव्य या कविता का अर्थ सृष्टि या रचना है– 'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीयति' में इस संसार को काव्य के संज्ञा से अभिहित जगत् देवता, ईश्वर का काव्य है। कलांतर में काव्य शब्द का अर्थ परिवर्तित होता गया। इसी प्रवृत्ति में इस शब्द का अर्थ हुआ– एक संत अथवा कवि के गुण से संपन्न संत, दार्शनिक अथवा कवि से उद्भुत वस्तु1 और एक समय काव्य उस अर्थ में रूढ़ हो गया जिसे साहित्य अथवा साहित्य की विशिष्ट विधा 'कविता' (काव्य, पोयट्री, शायरी) कहा जाता है। पद्य, काव्य या कविता साहित्य की वह विधा है जिसमें किसी कहानी या मनोभाग को कलात्मक रूप से किसी भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। यह वह वाक्य रचना है जिससे चित्त किसी मनोवेग से पूर्ण हो अर्थात् वह जिसमें चुने हुए शब्दों के द्वारा कल्पना और मनोवेगों का प्रभाव डाला जाता है। 'रमणीय' अर्थ के प्रतिपादक शब्द को 'रसगंगाधर' में 'काव्य' कहा गया है। 'अर्थ की रमणीयता' के अन्तर्गत शब्द की रमणीयता(शब्दालंकार) भी समझ कर इस लक्षण को लाग स्वीकार करते हैं। परन्तु 'अर्थ की रमणीयता' कई प्रकार की हो सकती है। इस कारण यह लक्षण बहुत स्पष्ट नहीं है। साहित्य दर्पणाकार आचार्य विश्वनाथ का लक्षण ही सबसे सटीक जान पड़ता है। उनके अनुसार 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है।' रस अर्थात् मनोवेगों का सुखद संसार ही काव्य की आत्मा है।

काव्य या कविता क्या है इस संबंध में भारतीय साहित्य में आलोचकों की बहुत ही समृद्ध परंपरा रही है– आचार्य विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ आचार्य श्रीपति, भामह, पंडित अम्बिकादत्त व्यास आदि संस्कृत के विद्वानों से लेकर आधुनिक युग में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, महावीर प्रसाद द्विवेदी, जयशंकर

*कल्याणी कॉम्पलेक्स, एक्जिविसन रोड, पटना

प्रसाद महादेवी वर्मा आदि अनेकानेक प्रबुद्ध कवियों ने कविता का स्वरूप करते हुए अपने–अपने विचार व्यक्त किये हैं। विद्वानों के मतानुसार मानव हृदय अनन्त रूपात्मक जगत् के नामा रूपों, व्यापारों में भटकता रहता है किन्तु जब मानव अहं की भावना का परित्याग करके विशुद्ध अनुभूति मात्र रह जाता है तब वह मुक्त हृदय हो जाता है। हृदय की इस मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता मानव को स्वार्थ संबंधों के सकीर्ण घेरे से ऊपर उठाती है और शेष सृष्टि से रागात्मक संबंध जोड़ने में सहायक होती है।

भरत मुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' कदाचित् सबसे प्राचीन ग्रन्थ है, जिसमें काव्य के एक विशिष्ट रूप 'नाटक' की उत्तमता का निर्देश किया गया है, जिससे काव्य के लक्षण अथवा स्वरूप का कुछ संकेत हो जाता है– ''मृदुललित पदार्थं गूढ़शब्दार्थहीनं जनपद सुखभोग्यं युक्तिमनृत्ययोज्यम्। बहुकृतरसमार्गं सन्धि सन्धानयुक्तं सा भवति शुभ काव्य नाटकं प्रेक्षकाणाम्।।[2] काव्य मात्र का स्वरूप निर्धारित करने में इससे यह संकेत मिलता है कि काव्य सरल और ललित, सार्थक पदों से युक्त, गूढ़ शब्दों से विहीन और सरस होना चाहिए।

आ.भामह और रुद्रट ने शब्दार्थ को सहित रहने पर ही काव्य की संज्ञा दी है।[3] आचार्य विश्वनाथ ने रसयुक्त वाक्य को ही काव्य की संज्ञा दी है– वाक्यं रसात्मकं काव्यं।[4]

आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी के अनुसार ''काव्य तो प्रकृत मानव अनुभूतियों का नैसर्गिक कल्पना के सहारे ऐसा सौन्दर्यमय चित्रण है, जो मनुष्य मात्र में स्वभावतः अनुरूप भावोच्छ्वास और सौन्दर्य संवेदन उत्पन्न करता है।''[6] कविता की परिभाषा देते हुए आ. महावीर प्र. द्विवेदी जी लिखते हैं– ''अंतःकरण की वृत्तियों के चित्र का नाम कविता है। नाना प्रकार के विकारों के योग से उत्पन्न हुए मनोभाव जब मन में नहीं समाते, तब वे आप ही आप मुखमार्ग से निकलने लगते है, तब वे आप ही आप मुखमार्ग से निकलने लगते हैं, अर्थात् मनोभाव शब्द का रूप धारण करते हैं। वही कविता है।''[7]

आ. शुक्ल के अनुसार ''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है, हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जी शब्द विधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग के समकक्ष मानते हैं।''[8]

पाश्चात्य विद्वान कॉलरिज ने कहा है कि उत्तम शब्द उत्तम क्रम में कविता होती है। टी.एस. इलियट ने कवि और कविता पर विचार करते हुए लिखा है– ''प्रत्येक कवि को लगता है कि उसकी कुछ सामाजिक उपयोगिता है। लेकिन मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि उसे धर्मविज्ञान, उपदेशक, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री या अन्य किसी रूप में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। वह कुछ भी कर सकता है, किन्तु तब वह कविता लिखता है तब उसे कविता ही लिखना चाहिए– कविता, जो कविता के रूप में मान्य हो, न किसी अन्य रूप में।''[9]

इस प्रकार काव्य की अनेक परिभाषाएॅ दी गई है। ये परिभाषाएँ प्राचीन और आधुनिक हिन्दी काव्य के लिए सही ठहरती है। काव्य सिद्ध चित्त को अलौकिक आनंदानुभूति कराता है, तो हृदय के तार झंकृत हो उठते हैं। काव्य में सत्यं शिवं सुंदरम की भावना भी निहित होती है। जिस काव्य में यह सब कुछ पाया जाता है वह उत्तम काव्य माना जाता है।

I UnHk´ %

1. संस्कृत–इंग्लिश डिक्शनरी, सर मोनियर विलियम्स, 1974 का पुनर्मुद्रण, पृ. 280.
2. नाट्यशास्त्र (गायकवाड सीरीज) 16 / 128.
3. शब्दार्थौ सहितौं काव्यम्–काव्यालंकार 1 / 16 तथा रूद्र काव्यालंकार 2 / 1.
4. विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, प्रथम परिच्छेद.
5. जयशंकर प्रसाद, काव्य कला तथा निबंध.
6. हिन्दी काव्य समीक्षा के प्रतिमान, डॉ. महेश तिवारी, पृ. 72.
7. वही, पृ. 18.
8. वही, पृ. 39.
9. आलोचना का नया पाठ, गोपेश्वर सिंह, पृ. 167, किताबघर प्रकाशन 4855–56 / 24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 45-49

cPpu ds dkO; esa lef"V ewyd izse

MkW0 :is'k dqekj >k*

हरिवंशराय बच्चन का व्यष्टिमूलक प्रेम आगे चलकर समष्टिमूलक प्रेम बन जाता है। मानव जीवन में प्रेम के कई रूप हैं। मनुष्य जन्म के साथ ही वात्सल्यरस से ओत–प्रोत होता है। वात्सल्य के बाद किशोरावस्था से आरंभ होकर युवावस्था से गुजरते हुए प्रेम का संयोग–वियोग पक्ष व्यष्टिमूलक अवधारणाओं से ओत–प्रोत होता है। गृहस्थ जीवन में ही मनुष्य व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश करता है। मनुष्य के चार पुरुषार्थ हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मूलतः व्यष्टि से समष्टि की यात्रा है। हरिवंश राय बच्चन के व्यष्टि मूलक प्रेम का प्रभाव परवर्ती काव्य पर भी पड़ा है। हर पीढ़ी के बाद की पीढ़ी पुरानी चीजों का कुछ ग्रहण और कुछ छोड़ते हुए नयी राह बनाती है। लेकिन कुछ ऐसे युग पुरुष होते हैं जिनकी राह पर पीढ़ी दर पीढ़ी चलती है।

हरिवंश राय बच्चन ने मधुशाला और मदिरालय के माध्यम से जीवन की जटिलताओं के विश्लेषण का प्रयास किया है। मधुशाला जब पहली बार प्रकाशित हुई तो शराब की प्रशंसा के लिए कई लोगों ने उनकी आलोचना की। बच्चन की आत्मकथा के अनुसार, महात्मा गांधी ने मधुशाला का पाठ सुनकर कहा कि मधुशाला की आलोचना ठीक नहीं है। मधुशाला की रचना के कारण ही कविवर बच्चन को ''हालावाद का पुरोधा'' भी कहा जाता है।

हरिवंशराय बच्चन अपने समय के अत्यंत लोकप्रिय और समर्थ कवि थे। बच्चनजी की प्रतिभा नैसर्गिक है। बावजूद इसके बच्चनजी सांसारिक वातावरण में एक सफल कवि बनने की प्रेरणा दी। इनकी सफलता में संघर्ष का मार्ग भरा पड़ा रहा। बच्चन ने जीवन को अत्यंत नजदीक से महसूस किया। जीवन और मरण के प्रकृतिगत सिद्धांत को जो व्यक्ति आत्मसार्त कर लेता है उसे जीने की राह मिल जाती है। जीवन–मरण, हानि–लाभ, यश–अपयश के बारे में लोक प्रसिद्ध है कि ये चीजें मनुष्य के वश की बात नहीं है। माया का संसार में मनुष्य अनिश्चित को निश्चित मानकर मोह–पाश में बंधा रहता है।

प्रेम मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति है। वह जीवन का मूल मंत्र भी है, मनुष्यता का प्राण तत्व भी। प्रेम जब समष्टिमूलक होता है, तो पूरा ब्रह्माण्ड उसमें समाहित हो सकता है और जब वह व्यष्टिमूलक होता है, तो व्यक्ति विशेष के प्रति रागत्व का संगीत बन जाता है। बच्चन के व्यक्तित्व के विशेष पक्ष अदम्य साहस है। बच्चन तिल–तिलकर जल–जलकर अपने को बनाया। संघर्षों से जूझ–जूझकर वह सुख के इस उच्चतम कगार पर पहुँचे हैं– वह एक स्थान लिखते हैं–

^^o.kZ cukbZ nkrh eu pkV djs rks ?ku 'kjek,]
Hkhrj Hkhrj tku jgk gS tgkW dqlqe ydj rqe vk,A**

उनके जीवन में आशा निराशा का बराबर संघर्ष चलता रहा और इस अदम्य साहस के बल पर ही वह हर घाव सहकर गिरते पड़ते हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ गितिकार कहलाए। हिन्दी के उत्तर छायावादी काव्य के कवि हैं डॉ. हरिवंशराय बच्चन एक सशक्त हस्ताक्षर हैं जिनका काव्य भाव और भाषा के दुर्लभ संयोग का उदाहरण है। काव्य शिल्प की दृष्टि से बच्चन की काव्य की महत्वपूर्ण विशेषता है उसकी सहज प्रेषणीयता। बच्चन के काव्य में शिल्प के संधान का तात्पर्य है भाषा, बिम्ब, प्रतीक, अलंकार, छंद आदि तत्वों की परीक्षा जो स्वतः उनकी कविता की अभिव्यक्ति के साथ उनकी रचना–प्रक्रिया में प्रकट हो गए हैं।

*ग्राम+पोस्ट+थाना– घटहो, जिला– समस्तीपुर, पिन– 848114

कविता मूलतः एक सृष्टि है जिसका साधन है भाषा। कवि अपनी नवीनतम भावनाओं को एक व्यवस्था और सिलसिला देता है और इसके लिए जिस आधार की जरुरत पड़ती है वह आधार उसका शिल्प कहलाता है। इस प्रकार कविता के दो स्पष्ट रूप होते हैं भाव पक्ष और कला पक्ष। कवि अपने भावों को व्यक्त करने के लिए अलंकार आदि साधनों का सहारा लेता एवं उन्हें सजा संवारकर व्यक्त करना चाहता है, उसका यह कार्य शिल्प बन जाता है। बच्चन बहुत हद तक वह स्वाभिमानी कवि हैं। अपनी उपलब्धियों के साथ अपने अहं, अपने अभिमान को अपने ही हाथों की कुल्हाड़ी से तराश कर वह स्वाभिमान की इस सतह पर पहुँच सके हैं। वह झुक नहीं सकते–झुकने की कला में दीक्षित भी नहीं–होने की कामना भी नहीं। उन्होंने सदैव स्नेह भरे जीवन का स्वागत किया है। उन्हें निकट से निकटतर जानने वाले महसूस करते हैं कि उनमें सरलता इतनी है कि वह स्नेह के दो अक्षरों पर आसानी से उपलब्ध हो सकता है–^^rqe ân; dk }kj [kksyks@vkj ftàk dB rky] d: ugh@rqe ik.k d: nks ckj ckykA**

परन्तु यह अक्खड़ता उनके स्वभाव की बाहरी सतह है। भीतरी बच्चन एकदम निष्कलुष और निष्कपट है। विनम्र, दूसरों का सुख–दुख बाँटने को आकुल से–

^^ns eu dk migkj lHkh dk]@ys py eu dk Hkkj vdsykA**

कविवर बच्चन ने आरम्भ से ही एक ऐसी आत्मीयतापूर्ण, निराली शैली विकसित की, जिससे कि उनका श्रोता या पाठक, तन्मयता के क्षणों में, सुनने या पढ़ने के बजाय, खुद ही कुछ कहता हुआ–सा अनुभव करने लगता है। छायावादी युग में वैयक्तिकता थी लेकिन कवि का मन सामाजिक वर्जनाओं से घिरा था। ''यही कारण है कि उनमें मिलन की अनुभूतियाँ कम है विरह का रुदन अधिक।... इन्हीं सामाजिक वर्जनाओं के कारण ही प्रेमी और प्रेमिका दोनों में से किसी के भी स्थूल अंगों या बाह्य चेष्टाओं का निरुपण किये बिना ही हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं को साकार रूप में प्रस्तुत कर देना छायावादी कला का सबसे बड़ा जादू है।''[1]

लेकिन बच्चनजी इस मायाजाल से बाहर आकर पूरे साहस के साथ जीवन से जुड़े कटु सत्य को कहते हैं क्योंकि उन्हें मालूम हो चुका है कि सत्य का उद्‌घोष बड़े साहस का काम करता है, इसीलिए वह साहस के साथ युगीन यथार्थ की अभिव्यक्ति करते हैं। वह अपनी बात शिष्टता के मखमली आवरण में लपेटकर नहीं, बल्कि सामाजिक वर्जनाओं को चुनौती देते हुए करते हैं। बच्चन इन वर्जनाओं को किसी भी रूप में स्वीकार नहीं करते हैं।

छायावाद हिन्दी कविता के एक विशेषयुग में पूर्ववर्ती युग के विरोध में प्रस्फुटित एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण, एक विशेष दार्शनिक अनुभूति एवं एक विशेष शैली है, जिसमें लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक का और अलौकिक प्रेम के माध्यम से लौकिक अनुभूतियों का चित्रण होता है। जिसमें प्रकृति को मानवी रूप में प्रस्तुत किया जाता है और जिसमें गीतितत्वों की प्रमुखता होती है। छायावादी कवियों की प्रत्येक अनुभूति में पूर्णतया वैयक्तिकता है। उनकी प्रवृत्ति सामान्य को विशेष बनाकर प्रस्तुत करने की रही। वह 'मैं' तक सीमित सा लगता है, परन्तु वास्तव में इस 'मैं' में ही वह समष्टि को समेटे हुए है। कविवर बच्चन के काव्य की भावुकता पराकष्ठा पर पहॅुंची हुई दिखाई देती है। कहीं–कहीं वह भावुकता इतनी अप्राकृतिक और असाधारण हो गयी है कि उसका साधारणीकरण तक असंभव हो गया है। बच्चन ने स्थूल को सूक्ष्म रूप में व्यंजित करने के लिए कल्पना की ऐसी ऊँची उड़ान भरी है कि वह सहज ग्राह्य नहीं है। अतिकल्पना के कारण चित्रोपमता विश्रृंखल–सी हो जाती है और उसमें क्रमबद्धता भी नहीं रह पाती है। छायावादी काव्य प्राचीन शास्त्रीय शैली से हटकर स्वच्छन्द भावों का प्रकाशन करता है। भाषा छंद और अलंकारों में स्वतंत्र प्रयोग इसी प्रवृत्ति के कारण दिखाई पड़ते हैं। काव्य में सर्वत्र प्रकृति की संवेदनाशीलता दिखाई पड़ती है। इसने मनुष्य और प्रकृति में एकात्मकता स्थापित की है। इस युग की कविता में प्रकृति का मानवीकरण हुआ है।

छायावादी काव्य बड़ा ही कलात्मक है। इसकी तीन शैलीगत विशेषताएँ हैं–प्रतीकात्मकता, गीतात्मकता और स्वच्छन्दता। काव्य प्रत्येक मनुष्य के अन्दर संस्कारों का समावेश करता है। और सभी

के अन्दर स्नेह और मधुराई का विकास करता है। सौन्दर्य की दृष्टि प्रदान करता है। काव्यगत सौन्दर्य को जीवन में उतारकर ही हम सभी मनुष्य सभ्यता की सीढ़ी पर चढ़ते चले जा रहे हैं। सौन्दर्य को देखकर आनन्द प्राप्त करना सहृदय का काम है और सौन्दर्य की सृष्टि और उससे प्राप्त आनन्द को सर्वसुलभ बनाना कवि का काम है। कवि स्वच्छन्द होते हैं, वे बन्धन में नहीं रह सकते हैं, इसीलिए तो नवीन रचनाएँ करने की शक्ति उनमें होती है। उनको वश में करने के लिए बल नहीं, हृदय चाहिए। काव्य सौन्दर्य की सृष्टि है। कवि सौन्दर्य का द्रष्टा और स्रष्टा है। जहाँ छायावादी कवि मौन दृष्टि की भाषा को ही स्वीकार कर रह जाता है वहीं 'बच्चन' का प्रेम सरल, स्पष्ट सहज तथा मन को विमुग्ध कर देने वाला है। इनके काव्य में व्यक्त मिलन का उल्लास एवं विरह–व्यथा लौकिक है, अलौकिक नहीं। श्री–विश्वंभर मानव के अनुसार, 'बच्चनजी' पूरे हिन्दी साहित्य में पहले कवि हैं जिन्होंने सशक्त रूप से लौकिक जीवन और प्रेम को सुंदर तथा ग्राह्य कहा है। 'बच्चन' ने संयोग और वियोग की स्थितियों को 'नॉर्मल' ढंग से व्यक्त किया है। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है।

नारी–पुरुष का संबंध एक नैसर्गिक वरदान है। यह प्रेम–व्यापार कोई अपराध न होकर सृष्टि की माँग है– ^^ge fdlh d gkFk e lk/ku cu g@lf"V dh dN ekx ijh gk jgh g@ge ugh vijk/k dkb dj jg gA**2

बच्चन हृदय के सहज अभियंत्रित उद्गारों को अश्लील नहीं मानते और संसार की कटु आलोचनाओं की भी परवाह नहीं करते। आरंभिक काव्य में 'बच्चन' जी 'पंत' जी की शब्दावली से प्रभावित हुए, परंतु यह प्रभाव शिल्प और शब्दों तक ही सीमित रहा, भाव–जगत में वह स्वतंत्र ही रहे। सरलता और सहजता उनके शिल्प का केंद्रीय गुण हैं–

^^Hkkok l ,lk i.k ân;] ckr Hkh ejh lk/kkj.k]@mj l mBdj e[k rd vkr]@ckr cu tkrh xk;uA**

बच्चन की भाषा साहित्यिक होते हुए भी बोलचाल की भाषा के अधिक निकट है। उनकी भाषा छायावादी काव्य की भाषा के समान अलंकृत नहीं हैं; अपितु सहज, रसभीनी, अर्थकल्पित और व्यथामथित भाषा है। उर्दू काव्य–चेतना के निकट होने के कारण उनकी शैली में हिन्दी–उर्दू शब्दों का मिश्रण है, पर वह खटकता नहीं है। उनकी कला में बौद्धिक, सजावट, ज्ञान और दर्शन का आरोप नहीं है; भावना का स्वाभाविक आवेग पाठक को सहज ही तन्मय कर लेता है। उनकी कविता विशुद्ध रूप से भावना की अभिव्यसक्ति है और उसमें मोहक संगीत है। खड़ी बोली को लोक बोध के स्तर पर प्रतिष्ठित करने में इतनी बड़ी सफलता किसी अन्य हिंदी कवि को नहीं मिली है।

टी.एस. इलियट के समान 'बच्चन' जी का भी मत है कि कवि की प्रत्येक पंक्ति, प्रत्येक कविता, उसका सारा काव्य सर्प की काया के समान सुसंबद्ध होना चाहिए आदि से अंत तक समग्र गतिमय प्रत्येक अंश परिपूर्ण की ओर परिपूर्ण प्रत्येक अंश को प्रस्फुरणशील रखें। अपनी कविता के संबंध में वह लिखते हैं 'मेरी रचनाओं का जन्म मेरे अनुभवों में हुआ है– मैंने अनुभवों की परिधि व्यापक रखी है, मैंने उनके अंदर कल्पना को भी जगह दी है।'

जहाँ छायावादी कवि मौन दृष्टि की भाषा को ही स्वीकार कर रहा है–

^^e fNikuk tkurk rk tx e> lk/k le>rk]@'k= ejk cu x;k g Ny&jfgr 0;ogkj ejk!@dg jgk tx okluke; gk jgk mnxkj ejkA**3

इस प्रकार छायावाद की भावभूमि जहाँ संकोच और शील के आवरण में आधुनिक होने से वंचित रही। वहीं उसने उसे खोखला बना दिया। ''अनुभूति की ईमानदारी मूल्यों की मर्यादा को निखारती है। किसी भी रचना के लिए अनुभूति की ईमानदारी मूल्यों की मर्यादा को निखारती है। किसी भी रचना के लिए अनुभूति की गहराई और ईमानदारी अपेक्षित है न कि आवरण की झूठी मर्यादा और उसकी संकीर्णता।''4

कविवर बच्चन की कविता में बुद्धिमूलक यथार्थवादी दृष्टि तो है साथ ही उसमें अनुभूति की सच्चाई भी है। वह अनुभूति एक क्षण की हो, या एक समूचे काल की, किसी सामान्य व्यक्ति का हो या

विशिष्ट पुरुष की, आशा की हो या निराशा की। यही अनुभूति कवि की सबसे बड़ी सफलता होती है। ''ईमानदारी बौद्धिक चेतना का वह स्तर होता है, जिस पर वस्तुओं की वास्तविकता का सही अनुभव होता है वैसे यह एक साहित्येतर नैतिक मूल्य है, फिर भी इसके आधार पर साहित्य का मूल्यांकन प्रासंगिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि अन्ततः काव्य कृति भी मानव कृति है और किसी न किसी मानव मूल्य को व्यक्त करती है।''[5]

डॉ. नामवर सिंह का कहना है कि ''इस बार ईमानदारी 'विद्रोह' का पर्याय बनकर प्रकट हुई, जिसमें ईमानदारी का मतलब था साहस। साहस आत्मान्वेषण का नहीं और न आत्मसाक्षात्कार का बल्कि साहस अप्रिय से अप्रिय वास्तविकता से साक्षात्कार का। इस दौर के कवियों का ख्याल है कि सत्य कहीं सात पर्दे के अन्दर छिपा हुआ रहस्य नहीं है, जिसे खोजने के लिए प्रामाणिक अनुभूति की आवश्यकता हो। उनके अनुसार सम्राट स्वयं नंगा है और यदि कोई आवश्यकता है, तो सिर्फ उसे नंगा कहने की, जिसके लिए साहस केवल साहस जरुरी है और इसी साहस का नाम आज ईमानदारी है।''[6]

थोड़ा ऑखों में काजल आंजने की कला सीखो। ध्यान से आंजो आंखों को। प्रेम से आंजो आंखों को और तुम अपने भीतर ही उसे देख लोगे। और उसे देखना ही जीवन को कृतार्थ करना है। बिना देखे मत जाना। निर्णय जगने दो, संकल्प प्रगाढ़ होने दो कि इस बार जानकार ही जायेंगे। और मजा यह है कि जो जानकर गया उसे फिर लौटकर नहीं आना पड़ता। पाठ सीख लिया तो फिरपाठशाला में लौटने की जरुरत नहीं रह जाती– ^^vkt fy;k r>dk D;k&@dkxy&lk u;uk e]@gj liuk rjh eugkj fy,@vkrk gA**[7]

बुद्ध सो पूछोगे तो वे कहेंगे, ध्यान से आंज लो आंखों को। दूलनदास से पूछोगे तो दूलनदास कहेंगे, प्रेम से आंज लो आंखों को। मगर प्रेम का दूसरा पहलू ध्यान है। जिसने प्रेम से आंजा, ध्यान से अंज गयी आंखें। और ध्यान का दूसरा पहलू प्रेम है। तुम एक को ले आओ, दूसरा अपने आप आ जाता है। प्रेम–रंग–रस ओढ़ चदरिया। ओढ़ लो प्रेम के रंग–रस में 'रंगी गयी' चादर और परमात्मा तुम्हारा है। और जीवन का साम्राज्य तुम्हारा है और अस्तित्व की शाश्वतता तुम्हारी है। इस संपूर्ण जगत की सारी संपदा, इस जगत की अनंत–संपदा तुम्हारी है। तुम सम्राट होने को पैदा हुए हो, क्यों भिखारी बने बैठे हो? जरा प्रेम से ऑखें अंज जाए कि ध्यान से, कि फिर तुम्हें हर जगह वही दिखाई पड़ने लगेगा। फूल–फूल में, पत्ती–पत्ती में कॉटे–कॉटे में, पत्थर–पत्थर में तुम्हें उसी का दर्शन होने लगेगा। जरा सोचो जिस दिन तुम्हें परमात्मा सब तरफ दिखाई पड़ने लगे, जिस दिन तुम परमात्मा से घिर कर जीने लगो, कैसा होगा वह आनंद! कैसी होगी वह मस्ती, कैसी होगी वह मादकता! उस मादकता का नाम ही आनंद है, सच्चिदानंद है। वह तुम्हारा स्वरूप सिद्ध अधिकार है। उसे बिना पाए नहीं जाना है, उसे पाना है। उसे तुम पा सकते हो। वह तुम्हें मिला ही हुआ है, सिर्फ देखना है; सिर्फ लौटकर पहचानना है। बस प्रत्यभिज्ञा मात्र, पहचान मात्र और क्रांति घटित हो जाती है। प्रेम–रंग–रस–ओढ़ चदरिया। छायावाद के प्रभाव के चलते छायावादोत्तर काव्य में भी सौन्दर्य, प्रेम और समसामयिक प्रवृत्तियों के प्रति सजगता का भाव मिलता है पर सौन्दर्य बोध के चलते उनकी काव्य रचना में अलंकारिक अभिव्यक्ति का प्रभाव दिखाई देता है। स्पष्टतः अलंकार काव्य के शोभापरक तत्व हैं। इनका काम काव्य को और सुन्दर बना देना है। सभी अलंकार प्रस्तुत से भिन्न अप्रस्तुत रूप में ही हुआ करता है। अतः मुख्यतः अलंकार को अप्रस्तुत के रूप में स्वीकार किया गया है। पंडित रामदहिन मिश्र ने लिखा है– ''अप्रस्तुत योजना बाहर से लाई जाने वाली सारी वस्तुओं को ग्रहण करती है चाहे अप्रस्तुत का कैसा भी रूप क्यों न हो। अप्रस्तुत विशेष हो, विशेषण हो, क्रिया हो इसके भीतर सब समा जाते हैं।''

बच्चन के काव्य का मूल सौन्दर्य उनकी अप्रस्तुत–रचना पर आधारित है उनके प्रायः सभी अप्रस्तुत सौन्दर्यगर्भित है। भाव की मुखरता के साथ–साथ बच्चन के अलंकार काव्य को भी सौन्दर्यमय बना जाते हैं। उनके आलंकारिक प्रयोग रूढ़िगत भी है और रूढ़िमुक्त भी।

बच्चन भाषा के अन्वेषी कलाकार हैं। उनकी अनुभूतियों ने भाषा की लगाम अपने हाथ में रखी है। इस दृष्टि से वे कुछ–कुछ कबीर की तरह अक्खड़ मस्त–मौला, भावुक प्रतीत होते हैं। उनकी भाषा में इतनी लचक है कि उसे तनते या झुकते तनिक भी देर नहीं लगती। इसका एक मनोवैज्ञानिक कारण भी ढूँढ़ा जा सकता है। बच्चन का प्रारंभिक जीवन अभावों, संघर्षों और प्रेम–व्यापार की असफलताओं का इतिहास है, इस टूटन ने ही उन्हें जिन्दगी जीने की ताकत दी है और इसलिए उनकी कविता का रुख–कभी दर्दीला लगता है तो कभी उसके तेवर में आक्रामकता के दर्शन होते हैं। बच्चन साहसी प्रेमी है। अतः उनकी कविता की भाषा भी खुलकर पाठकों से वार्तालाप करती नजर आती है। बच्चन की काव्य–भाषा में तत्सम शब्द पर्याप्त प्रयुक्त हुए हैं। उन्होंने प्रचलित और भावोद्बोधक तत्सम शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। विशेषकर प्रकृति–चित्र और विचार चित्रों में सांस्कृतिक एवं मिथकीय शब्दावलियो के प्रयोग में तत्सम चित्रों की बहुलता मिलती है–

> ^^vxf.kr dj&fdj.kks ls ftldk ih] [kx ikxy gks xkrs(
> ifr iHkkr es i.k idfr e[kfjr gksrh e/kq'kkykA**8
> ^^uXu] ru] r#] iYyo] [kx oUn] uXu g
> ';key&ru vkdk'k]
> uXu jfo] 'kf'k] rkjd] uhgkj] uXu ckny]
> fo|qr] okrkl A**9
> ^^lhfer tx dk lhfer J.k es]
> lhekghu r"kk Fkh eu es]
> rq>s viuk y; pkgk Fkk] /;s; i.k;&
> vfHkl kj ugh FkkA**10

बच्चन के काव्य में तद्भव शब्दों की प्रयोग–भूमि बहुत विस्तृत है सारे काव्य का मूल ढाँचा तद्भव शब्दों पर ही खड़ा है। कविता की शुरू होती है पर अचानक तद्भव शब्द आकर कविता को नयेपन से भर देते है और पाठक के रसबोध को ताजा कर देते हैं।

lUnHkZ %

1. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त, पृ. 79–80.
2. बच्चन रचनावली संवर्द्धित संस्करण, अजीत कुमार, मिलन–यामिनी (मध्य भाग), राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1–बी, नेताजी, सुभाषा मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, पहला संस्करण, 2017, भाग–2, पृ.56.
3. वही, मधुकलश (कवि की वासना), भाग–1, पृ. 129.
4. नयी कविता के प्रतिमान लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ. 80.
5. नयी कविता : उद्भव और विकास, डॉ. रामवचन राय, पृ. 209.
6. कविता के नये प्रतिमान, डॉ. नामवर सिंह, पृ. 191.
7. प्रेम–रंग–रस ओढ़ चदरिया, ओशो, संस्करण–2012, प्रकाशक–डायमंड, पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि., पृ.30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज–II, नई दिल्ली–110020, पृ. 324.
8. बच्चन रचनावली संवर्द्धित संस्करण, अजीत कुमार, मधुशाला, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1–बी., नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, पहला संस्करण, 2017, भाग–1, पृ. 50.
9. वही, मधुबाला, भाग–1, पृ. 104.
10. वही, निशा–निमंत्रण, भाग–1, पृ. 185.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 50-53

L=h foe'k ,o iepn ;xhu miU;kl

MkO lfirk 'kkfyuh*

किसी भी भाषा में 'कथा' कहने या सुनने की परम्परा कितनी आदिम है, इसका कोई उपलब्ध साक्ष्य नहीं है किन्तु अनुमानतः मनुष्य में जब से भाषा का ज्ञान हुआ, जब से उसने बोलना और समझना सीखा 'कथा' का इतिहास भी उतना ही पुराना है। जबकि आदिम की खोपड़ियों के अध्ययन में यह पाया कि पुरापाषण युग के मनुष्यों ने 'कथा' कहना और सुनना सीख लिया था। ''भारतीय परम्परा में भगवान शिव सबसे पुराने 'कथक' (कथा कहनेवाले के लिए इस शब्द का प्रयोग 'कथा सरित्सागर' में हुआ है) माने जाते हैं। वे नयी–नयी कथाओं के जनक के रूप में प्रसिद्ध हैं। महाकवि सोमदेव रचित 'कथा सरित्सागर' के आरम्भ में पार्वती शिव से ऐसी कथा सुनाने का अनुरोध करती हैं जो किसी ने न सुनी हो और जो किसी और को न आती हो। कथा ऐसी हो कि मन लगा रहे। बड़ी भी हो। इतनी बड़ी की कहते सुनते गणनातीत समय निकल जाए।''[1]

साहित्य की विधाओं में उपन्यास नवीन विधा है, पहली सहस्राब्दी में उपन्यास का किसी भी भाषा में कोई अस्तित्व नहीं था। तेरहवीं शताब्दी में यूरोप में मुद्रण–यन्त्र का आविष्कार हुआ, अतः सत्रहवीं शताब्दी के आस–पास ही यूरोप में 'उपन्यास' विधा के रूप में अस्तित्व में आ सका। चूँकि किसी भी कथा का उपन्यास में परिणत होने के लिए उसका लिखित अस्तित्व होना अनिवार्य होता है और हिन्दी में ऐसी परिस्थितियाँ उन्नीसवीं सदी में ही संभव हो सकीं। गोपाल राय लिखते हैं–

''हिन्दी क्षेत्र में श्रोतावर्ग के पाठकवर्ग में परिणत होने की प्रक्रिया उन्नीसवीं सदी में आरम्भ हुई। प्रशासनिक और धार्मिक कारणों से हिन्दी क्षेत्र में मुद्रण का आरम्भ उन्नीसवीं सदी में हुआ। उपलब्ध सूचनाओं के अनुसार 1667 ई0 में रोम से प्रकाशित अथानासी किर्चेरी कृत चाइना..... इलस्ट्रेटा नामक लैटिन किताब में सर्वप्रथम देवनागरी लिपि मुद्रित हुई थी। 1745–58 के बीच शूल्त्स का बाइबिल का हिन्दी अनुवाद हाल (Halle) में छपा। 1800 ई0 में पादरी विलियम कैरे ने श्रीरामपुर में प्रेस की स्थापना की और हिन्दी सहित अन्य भारतीय भाषाओं में बाइबिल के अनुवाद प्रकाशित किए।''[2]

साहित्य में स्त्रियों पर लिखने की परम्परा पुरानी है। जब से साहित्य सृजन का आरम्भ हुआ है तभी से स्त्रियों के पक्ष–विपक्ष में भी मत व्यक्त किये जाते रहे हैं। यद्यपि की प्राचीन धर्म ग्रन्थों में नारी को अनेक प्रकार से प्रताड़ित किया गया है, उसे सामाजिक बुराई के रूप में स्वीकार किया गया है। हद तो तब हो जाती है, जब तुलसी जैसे लोकनायक भी यह कहते हैं कि –ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी सकल ताड़ना के अधिकारी। स्त्रियों की पहचान, उसके दुख का चित्रण प्रेमचन्द युग से शुरु होता है जिसके नायक स्वयं प्रेमचन्द हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों में स्त्री विमर्श के बारे में मधुरेश लिखते हैं–

''प्रेमचन्द वेश्यावृत्ति की समस्या को एक सामाजिक समस्या के रूप में अंकित करते हैं। हिंदू समाज मं आर्य समाज की इस दौर में पर्याप्त क्रान्तिकारी भूमिका थी। स्त्री की शिक्षा, बाल–विवाह का विरोध और विधवाओं के पुनर्विवाह का सवाल उसके मुख्य एजेंडे पर थे। दूसरी ओर पहले विश्व युद्ध के शरु होते–होते महात्मा गांधी अफ्रीका से लौट अए थे। प्रेमचंद वेश्यावृत्ति की समस्या को अशिक्षा और दहेज से जोड़कर देखते हैं। इसी कारण समाज में अधिकांश अनमेल विवाह होते हैं, जो स्त्री के जीवन को भयानक यातना में बदल देते हैं।''[3]

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में 'सेवासदन' मील का पत्थर साबित हुआ जिसने हिन्दी उपन्यास की दशा और दिशा दोनों ही बदल दी। सेवासदन में नारी समस्या को इतने विस्तृत फलक पर उठाया गया

*ग्राम+पोस्ट+थाना– घटहो, जिला– समस्तीपुर, पिन– 848114

है कि भारतीय समाज में स्त्री से जुड़ी प्रत्येक समस्या का चित्रण इसमें स्पष्ट होता है। उपन्यास की नायिका सुमन के माध्यम से भारतीय समाज के अनेक प्रश्नों को – यथा वेश्यावृति, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा आदि एक साथ उठाया गया है। 'सेवासदन' के संबंध में डॉ. म0ह0 राजूरकर लिखते हैं–

''उपन्यास की नायिका सुमन प्रतिष्ठित परिवार में पली हुई स्वरूपवान और अभिमानी नवयुवती है, पिता को रिश्वतखोरी के अपराध में जेल हो जाने के कारण पराश्रित हो जाती है और फलतः उसके मामाजी उसका विवाह अयोग्य वर गजाधर के साथ कर देते हैं। गजाधर सुमन के समान न तो गुणवान है, न बुद्धिमान और न रूपवान। गजाधर एक 75 रूपया तनखा पानेवाला साधारण नौकर है, जो सुमन की उम्र के साथ मेल नहीं खाता, हर सूरत से सुमन के सम्मुख फीका पड़ा हुआ है। सुमन के रूप पर गजाधर मुग्ध है, किन्तु बड़े घर की बेटी एक दरिद्र वातावरण में कैसे निभ सकती है? सगर्वा प्रकृति की सुमन पास–पड़ोस में अपने अमीराना व्यक्तित्व के कारण काफी प्रसिद्ध हो जाती है, पर प्रत्यक्ष जिन्दगी में अभावों की उपस्थिति ने उसके मूल अहं को अधिकाधिक जागृत किया– यहाँ तक कि उसका प्रत्येक व्यवहार पति की सीमित शान्ति को चुनौती देने लगता है। दोनों के बीच तनावों की स्थिति इतनी नाजुक हो जाती है कि दोनों की सहनशक्ति टूटने के स्तर तक पहुँच जाती है। बीच–बीच में सुमन के मानस पर पारंपरिक आदर्शों का प्रभाव पड़ता रहता है, वह अपने–आप को रोकने का प्रयत्न भी करती है किन्तु कृत्रिम बन्धनों से मुक्ति पाने की उसकी कामना इतनी बलवती है कि अन्त में सुमन भोलीबाई वेश्या का आश्रय ले लेती है। भारतीय परिवार में पली हुई लड़की वेश्या व्यवसाय की ओर क्यों आकर्षित हुई? क्या सुमन गजाधर के कमजोर व्यक्तित्व से मुक्त नहीं होना चाहती? यहाँ पत्नी का पति के पवित्र प्रभाव से मुक्त होना नहीं है, बल्कि एक मानिनी स्त्री का अनमेल पुरुष व्यक्तित्व से छुटकारा पाना है।''[4]

अनमेल विवाह तथा दहेज जैसी कुप्रथा के कारण स्त्रियों का जीवन कैसे कष्ट में पड़ता है इसका सजीव चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यास 'निर्मला' में दृष्टिगत होता है। पैसों के अभाव में 'निर्मला' उपन्यास की निर्मला का विवाह चालीस वर्ष की आयुवाले मुंशी तोताराम से कर दी जाती है। यह स्त्री की कैसी त्रासदी है कि जिस उम्र का आदमी उसका पिता है उसी उम्र के आदमी को उसका पति बना दिया जाता है। 'निर्मला' के बारे में प्रेमचन्द लिखते हैं–

''निर्मला को न जाने क्यों तोताराम के पास बैठने और हँसने–बोलने में संकोच होता था, कदाचित् यह कारण था कि अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था, जिसके सामने वह सिर झुकाकर, देह चुराकर निकलती थी, अब उसी अवस्था का एक आदमी उसका पति था। वह उसे प्रेम की वस्तु नहीं, सम्मान की वस्तु समझती थी। उनसे भागती फिरती, उनको देखते ही उसकी प्रफुल्लता पलायन कर जाती थी।''[5]

भारतीय समाज और परिवार स्त्री को एक वस्तु समझता रहा है जिसे अपनी इच्छा से जब जहाँ चााहों एक स्थान से दूसरे स्थान स्थानांतरित कर दो। उसमें उस स्त्री या लड़की की इच्छा–अनिच्छा के बारे में कोई नहीं सोचता। 'निर्मला उपन्यास की निर्मला की भी यही मनोस्थिति है। वह अपने से तीन गुने उम्र के आदमी के साथ खींची–खींची रहती है, वह अपने पति के प्रणय को घृणा से देखती है। जो बातें एक युवक के मुख से सुनकर उसका हृदय प्रफुल्लित हो जाता वही बातें मुंशीजी के मुख से सुनकर उसे हृदयाघात लगता। प्रेमचंद लिखते हैं–

''वकील साहब अपने प्रेम–प्रदर्शन में कोई कसर नहीं रखते थे, लेकिन निर्मला को इन बातों से घृणा होती थी। वही बातें, जिन्हें किसी युवक के मुख से सुनकर उसका हृदय प्रेम से उन्मत्त हो जाता, वकील साहब के मुँह से निकलकर उसके हृदय पर शेर के समान आघात करती थीं। उनमें रस न था, उल्लास न था, उन्माद न था, हृदय न था, केवल बनावट थी, धोखा था और शुष्क निरस शब्दाडम्बर। उसे इत्र और तेल बुरा न लगता, सैर–तमाशे बुरे न लगते, बनाव–सिंगार भी बुरा न लगता, बुरा लगता था, तो केवल तोताराम के पास बैठना। वह अपना रूप और यौवन उन्हें न दिखाना चाहती थी, क्योंकि वहाँ देखने वाली आँखें न थीं। वह उन्हें इन रसों का आस्वादन लेने योग्य न समझती थी। कली प्रभात–समीर के स्पर्श से खिलती है। दोनों में समान–सा रस है। निर्मला के लिए वह प्रभात–समीर कहाँ था।''[6]

'निर्मला' उपन्यास में एक तरफ तरूण–स्त्री के हृदय की आशाएँ और आकांक्षाएँ हैं जिसकी परवाह किये बिना उसके अभिभावक उसे एक वृद्धावस्था में पदार्पण कर रहे व्यक्ति के साथ जोड़ देते हैं। ऐसी स्थिति में नारी–हृदय की जो दशा होती है, उसका सफल चित्रण 'निर्मला' में हुआ है। क्या गहने, कपड़े और धन से ही स्त्री खुश हो सकती है? आखिर समाज स्त्री की वेदना को क्यों नहीं समझता, उसकी सारी भावनाओं, आकांक्षाओं को परम्पराओं की वेदी पर क्यों न्योछावर कर देता है। प्रेमचन्द ने निर्मला की मनोदशा को इन शब्दों में व्यक्त किया है–

''निर्मला जब वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर आइने के सामने खड़ी होती और उसमें अपने सौन्दर्य की सुषमापूर्ण आभा देखती, तो उसका हृदय एक सतृष्ण कामना से तड़प उठता था। उस वक्त उसके हृदय में एक ज्वाला सी उठती। मन में आता इस घर में आग लगा दूँ। अपनी माता पर क्रोध आता, पर सबसे अधिक क्रोध बेचारे निर अपराध तोताराम पर आता। वह सदैव इस ताप से जला करती। बांका सवार टट्टू पर सवार होना कब पसन्द करेगा, चाहे उसे पैदल ही क्यों न चलना पड़े? निर्मला की दशा उसी बांके सवार की–सी थी। वह उस पर सवार होकर उड़ना चाहती थी, उस उल्लासमयी विद्युत गति का आनन्द उठाना चाहती थी, टट्टू के हिनहिनाने और कनौतियाँ खड़ी करने से क्या आशा होती? सम्भव था कि बच्चों के साथ हँसने–खेलने से वह अपनी दशा को थोड़ी देर के लिए भूल जाती, कुछ मन हरा हो जाता, लेकिन रूक्मिणी देवी लड़कों को उसके पास फटकने तक न देतीं, मानों वह कोई पिशाचिनी है, जो उन्हें निगल जायेगी।''[7]

प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों में स्त्री विमर्श वृहद पैमाने पर दृष्टिगत होता है। इस युग के अनेक कथाकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से स्त्रीवर्ग की पीड़ा को स्वर प्रदान किया है, प्रेमचन्द इसके नेतृत्वकर्ता हैं। अनमेल विवाह तत्कालीन समाज के लिए बहुत बड़ा अभिशाप था। यह अनमेलता उम्र, रहन–सहन का पैमाना, सूरत, शिरत आदि प्रत्येक स्तर पर था। 'सेवासदन' की सुमन का विवाह एक दोहाजू गजाधर के साथ कर दिया जाता है। यह अनमेलता कितने स्तरों पर दृष्टिगत होती है इसे हम प्रेमचंद में प्रस्तुत उद्धरण में देख सकते हैं–

'' 'सेवासदन' की सुमन सुंदर और चंचला भी है। विवाह के बाद उसे गजाधर प्रसाद के यहाँ सुख नहीं मिला। अपने पिता के यहाँ वह आराम का जीवन व्यतीत करती थी, परन्तु पति के यहाँ उसे सारा काम करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त छोटी–छोटी बातों में भी पति द्वारा छेड़–छाड़ होती थी। परिणामस्वरूप, उसमें असंतोष की भावना उत्पन्न होती गयी। आस–पास के वातावरण तथा सुमन के असंतोष के कारण गजाधर प्रसाद को पत्नी पर संदेह होने लगा। प्रेमचन्द लिखते हैं– 'गजाधर प्रसाद की दशा उस मनुष्य की सी थी, जो चोरों के बीच अशर्फियों की थैली लिए बैठा हो।'' इसलिए वह सुमन को सुभद्रा के यहाँ जाने से रोकता है। उसे चिक के पास खड़ा होने से मना करता है। परन्तु मना करने पर भी वह (सुमन) सुभद्रा और पद्मसिंह के यहाँ जाना बंद नहीं करती और एक दिन रात में देर से लौटती है। गजाधर प्रसाद को सन्देह हो जाता है पद्मसिंह सुमन पर आकृष्ट है। यह संदेह उसकी हीनभावना के कारण है, फिर भी वह सुमन को अपने घर से निकाल देता है।''[8]

अनमेल विवाह का एक दुष्परिणाम यह होता है कि चूँकि पति–पत्नी से उम्र में ज्यादा होता है और पत्नी रूप–गुण में उससे अधिक होती है इसलिए पति हीनभावना से ग्रसित हो जाता है, जिसका खामियाजा भी पत्नी को ही भुगतना पड़ता है, उसपर (पत्नी) संदेह किया जाता है, उसके प्रत्येक कार्यकलाप पर रोक–टोक शुरू हो जाता है, मतलब वह पराधीनता की बेड़ियों में जगड़ दी जाती है। 'निर्मला' उपन्यास की निर्मला पर भी उसके पति मुंशीजी अपने ही ज्येष्ठ पुत्र के साथ शंका की दृष्टि से देखते हैं। निर्मला इस शक के कारण कैसी दोहरी जिन्दगी जी रही है उस व्यथा को प्रेमचंद ने इन शब्दों में व्यक्त किया है–

''निर्मला किवाड़ों को हटाकर कमरे में चली आयी और मंसाराम का हाथ पकड़ कर सजल नेत्रों से विनय–मधुर स्वर में बोली–मेरे कहने से चलकर थोड़ा–सा खा लो। तुम न आओगे तो मैं भी जाकर सो रहूँगी। दो ही कौर खा लेना, क्या मुझे रात–भर भूखों मारना चाहते हो? मंसाराम सोच में पड़ गया। अभी भोजन नहीं किया, मेरे ही इन्तजार में बैठी रहीं, यह स्नेह, वात्सल्य और विनय की देवी हैं या ईर्ष्या और अमंगल की मायाविनी मूर्ति? उसे अपनी माता का स्मरण हो आया। जब वह रूठ जाता था, तो वे

भी इसी तरह मनाने आया करती थीं और जब तक वह न जाता था, वहाँ से न उठती थीं। वह इस विनय को अस्वीकार न कर सका। बोला—मेरे लिए आपको इतना कष्ट हुआ, इसका मुझे खेद है। मैं जानता की आप मेरे इन्तजार में भूखी बैठी हैं, तो तभी खा आया होता। निर्मला ने तिरस्कार भाव से कहा— यह तुम कैसे समझ सकते थे कि तुम भूखे रहोगे और मैं खाकर सो रहूँगी? क्या विमाता का नाता होने ही से मैं ऐसी स्वार्थिनी हो जाऊँगी। सहसा मर्दाने कमरे में मुंशीजी के खाँसने की आवाज आयी। ऐसा मालूम हुआ कि वह मंसाराम के कमरे की ओर आ रह हैं? निर्मला के चेहरे का रंग उड़ गया। वह तुरन्त कमरे से निकल आयी और भीतर जाने का मौका न पाकर कठोर स्वर में बोली— मैं लौंडी नहीं हूँ कि इतनी रात तक किसी के लिए रसोई के द्वार पर बैठी रहूँ। जिसे न खाना हो वह पहले ही कह दिया करे।''[9]

प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में उपन्यासकारों ने विविध प्रकार से स्त्री विमर्श की अवधारणा को दृढ़ किया है, किन्तु इस समय के अधिकांश उपन्यासकार स्त्री की परम्परागत स्थिति को नकार नहीं पाते हैं, उसे (स्त्री) प्रेम, क्षमा, दया तथा त्याग की मूर्ति के रूप में स्थापित करना सबका अभिष्ट प्रतीत होता है, जो स्त्री के आमूलचूल परिवर्तन में बँधा है। यहाँ प्रेमचन्द के उपन्यास 'कायाकल्प' के बारे में यह उद्धरण द्रष्टव्य है—

''प्रेमचन्द का यह विचार था कि पति अगर किसी कारण से रूठ जाए या पत्नी का अपमान करे तो स्त्री के मन में दुर्भाव न आना चाहिए। 'कायाकल्प' उपन्यास में इसका चित्रण किया गया है। बूढ़े राजा विशाल सिंह अपनी छठी पत्नी मनोरमा पर संदेह करते हैं कि उसने उनकी पाँचवीं पत्नी रूक्मिणी को विष दे दिया है। परिणामस्वरूप, वे उससे घृणा करने लगते हैं जबकि पहले उसके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते थे। उनका एकमात्र नाती जो उनके राज्य का उत्तराधिकारी है, पाँच वर्षों से लापता था, अतः वे पुत्र—प्राप्ति की इच्छा से सातवें विवाह की तैयारी करते हैं। निरपराध मनोरमा का महल, सवारी, सजावट के सामान, सभी नई रानी के लिए ले लिए जाते हैं। महल के उस भाग में उसे रहना पड़ता है जहाँ पहले महरियाँ रहती थीं। परंतु मनोरमा को पति के प्रति कोई शिकायत नहीं है। भाई द्वारा पूछे जाने पर — ''वह तुम्हें ठोकरे मारते हैं और तुम उनके पाँव सहलाती हो, क्या समझती हो कि तुम्हारी इस भक्ति से राजा साहब फिर तुमसे खुश हो जायेंगे।'' मनोरमा उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखकर कहती है— ''अगर ऐसा समझती हूँ, तो क्या कोई बुराई करती हूँ? उनकी खुशी की परवाह नहीं, तो फिर किसकी खुशी की परवाह करूँगी? जो स्त्री अपने पति से दिल में कीना रखे, उसे विष खाकर प्राण दे देने चाहिए। हमारा धर्म कीना रखना नहीं, क्षमा करना है।''[10]

प्रेमचन्द अपने उपन्यास 'कायाकल्प' में जहाँ नारी के पारम्परिक धर्म को निभाते हुए दिखाते हैं वही 'सेवासदन' में सुमन के माध्यम से स्त्री के विद्रोही रूप को प्रकट करते हैं। 'सेवासदन' की मूल समस्या है दहेज प्रथा, पति द्वारा पत्नी की उपेक्षा, अविश्वास तथा समाज की उपेक्षा। हिन्दी उपन्यास के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ कि पति की उपेक्षा एवं तिरस्कार से वेश्यावृत्ति अपनाने वाली 'सुमन' के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई है।

I UnHk %

1. उपन्यास की संरचना, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2012, पृ0 17.
2. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009, पृ0—14.
3. हिन्दी उपन्यास का विकास, मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2014, पृ0—35.
4. 'सेवासदन' : मुक्त चेतना का प्रारम्भिक उन्मेष, डॉ. भ.ह. राजूरकर, प्रेमचंद, संपादक— सत्येन्द्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ0—17—18.
5. निर्मला, प्रेमचन्द, मनोज पॉकेट बुक्स, दिल्ली, पृ0—29.
6. वही, पृ0 29.
7. वही, पृ0 30.
8. प्रेमचन्दयुगीन भारतीय समाज, डॉ. इन्द्रमोहन कुमार सिन्हा, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2000, पृ0 253.
9. निर्मला, प्रेमचन्द, मनोज पॉकेट बुक्स, दिल्ली, पृ0 50—51.
10. प्रेमचन्दयुगीन भारतीय समाज, डॉ. इन्द्रमोहन कुमार सिन्हा, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2000, पृ0 237.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 54-58

Lkkekftd U;k; ,oa nfyr lkfgR;

MkW0 fooasd jatu*

दलित समाज जातिभेद, ऊँच–नीच और अस्पृश्यता का शिकार रहा है। उसने भयानक अलगाववाद का दंश झेला है। सदियों की दासता का सन्ताप भोगा है, और अन्याय की पीड़ा सही है। इसलिये दलित साहित्य जातिभेद, ऊँच–नीच और अस्पृश्यता का विरोधी है। वह अलगाववाद का नहीं, समता का समर्थक है। वह हर प्रकार की गुलामी और अन्याय को नापसंद करता है और मानव–स्वतंत्रता तथा सामाजिक न्याय का पक्ष लेता है। वह जाति और वर्ण की व्यवस्था के विरूद्ध सम्पूर्ण सामाजिक परिवर्तन की चेतना का साहित्य है। जो लोग दलित साहित्य पर अलगाववादी होने और सामाजिक विघटन करने का आरोप लगाते हैं, वे दलित साहित्य की अवधारणा को लेकर न सिर्फ भ्रमित है, बल्कि उसकी गलत व्याख्या भी करते हैं। दलित साहित्य की अवधारणा को रेखांकित करने हेतु इस संदर्भ को देखा जा सकता है।

''डॉ0 अम्बेदकर ने गांवों को भारतीय गणतन्त्र की अवधारणा का शत्रु माना था। उनके अनुसार, हिन्दुओं की ब्राह्मणवादी और पूंजीवादी व्यवस्था का जन्म भारतीय गांवों में ही होता है। वह कहते हैं कि भारतीय गांव हिन्दू व्यवस्था के कारखाने हैं। उनमें ब्राह्मणवाद सामन्तवाद और पूंजीवाद की साक्षात जीवन्त अवस्थाएं देखी जा सकती हैं। उनमें स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के लिए कोई स्थान नहीं है। डॉ0 अम्बेदकर का मत है कि भारतीय गांव द्विजों के लिए तो स्वर्ग या गणतंत्र हो सकते हैं, परन्तु दलितों के लिये तो वे नरक ही हैं। अतः दलित साहित्य भी गांवों के विकास और ग्राम पंचायत व्यवस्था का न केवल विरोधी है, बल्कि उनके विनाश में ही ब्राह्मणवाद, समाजवाद, और पूंजीवाद का अन्त मानता है। दलित कवि हो, दलित लेखक हों, दलित विचारक हों, सबों द्वारा अपनी पीड़ा अपनी भोगे हुए यथार्थ का चित्रण प्रस्तुत किया गया है।''[1]

हिन्दी दलित साहित्य ने मुख्य उर्जा और चेतना डॉ0 अम्बेदकर के दर्शन से प्राप्त की हैं, पर डॉ0 अम्बेदकर उसके जनक नहीं हैं। हिन्दी में दलित साहित्य का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितना कि हिन्दी साहित्य का इतिहास। सिद्ध कवियों और गोरखनाथ की वर्णव्यवस्था विरोधी चेतना मध्यकालीन दलित सन्तों में क्रांति रूप में प्रस्फुटित हुई, जिसकी समान्तर विचारधारा की परम्परा का विकास ही हिन्दी दलित कविता का मूर्त रूप है। उन्नीस सौ के दशकों में उत्तर प्रदेश में हिन्दी दलित कविता स्वामी अछूतानन्द के आदि हिन्दू आन्दोलन का अंग बनीं और शंकरानन्द जैसे कई अच्छे कवि इस आंदोलन ने दिये। स्वामी अछूतानन्द के समय में ही डॉ0 अम्बेदकर के दलित मुक्ति के आंदोलन ने सम्पूर्ण देश को उद्वेलित कर दिया था। स्वामी जी इस आन्दोलन के समर्थक थे, और उसे उन्होंने अपना आशीर्वाद भी दिया था। डॉ0 अम्बेदकर के चिन्तन ने दलित वर्गों को गहराई से प्रभावित किया, क्योंकि उनके चिन्तन ने दलित अस्मिता और स्वाधीनता के जो सवाल उठाये थे, वे एकदम विचारोत्तेजक और क्रांतिकारी थे। दलित साहित्य की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए इस संदर्भ को देखा जा सकता है–

''दलित साहित्य के राजनैतिक सरोकार नहीं है, ऐसा कहना सचमुच गलत होगा। अब सम्पूर्ण भारतीय साहित्य के भरपूर राजनैतिक सरोकार हैं, और हिन्दी साहित्य का एक काफी बड़ा हिस्सा विशिष्ट राजनैतिक सरोकारों की ही अभिव्यक्ति का साहित्य है तो दलित साहित्य भी उससे अछूता कैसे रह सकता है? दलित साहित्य न तो वामपंथी है, और न दक्षिण पंथी, वामपंथी राजनीति से उसकी सहमति उस स्तर

*यादव नगर लेन नं. 01, भगवानपुर चौक रेवा रोड, मुजफ्फरपुर

तक तो अवश्य है, जिस स्तर तक वह दलितों, मजदूरों और सर्वहारा के शोषण के विरूद्ध है, पर व्यवस्था–परिवर्तन के लिए जिन तरीकों को वह मानता है, उनसे दलित साहित्य का मतभेद है। दलित साहित्य लोकतन्त्र और अहिंसा–आधारित राजनीति का समर्थक है। वह सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक न्याय की राजनीति का पक्षधर है, परन्तु राष्ट्र और राष्ट्रवाद की सीमाओं से मुक्ति के बावजूद वह भारत विरोधी राजनीति का आलोचक है। वह उस राजनीति की भी आलोचना करता है, जो हिन्दू या किसी भी धर्म के राज की अवधारणा से जुड़ी है और धर्म निरपेक्ष मूल्यों को ध्वस्त करती है। राजनीति के क्षेत्र में भी दलित साहित्य डॉ0 अम्बेडकर की मान्यताओं का ही समर्थन करता है।''[2]

जाति के ही व्यवस्था ने करोड़ों अछूतों, अन्त्यजों और दास श्रेणी के लोगों को जन्म दिया, जो अत्यन्त कठोर और गंदा काम करने के लिए बाध्य किए गए, जिन्हें स्पर्श करना तो दूर उनकी छाया भी अमंगल समझी गयी। उन्हें समान मानव अधिकार प्राप्त नहीं थे। शिक्षा के द्वार उनके लिए बन्द थे और वे स्वतन्त्र और सम्मानित व्यवसाय नहीं कर सकते थे। यही नहीं, यदि कोई अछूत इस स्थिति से मुक्त होकर मानवीय स्वतंत्रता का उपभोग करना चाहता था, तो उसे न केवल अपमानित और प्रताड़ित किया जाता था, बल्कि सामाजिक बहिष्कार के क्रूरतम दण्ड से भी दण्डित किया जाता था। यह स्थिति क्यों थी? इसे डॉ0 अम्बेडकर ने इस प्रकार विश्लेषित किया है– ''पहली बात जो नहीं भूलनी चाहिए, यह है, कि सछूतों और अछूतों के बीच कठोर विभाजन है। प्रत्येक गांव में सछूत और अछूत दो भाग है। सछूत गांव के भीतर रहते हैं, जबकि अछूत गांव के बाहर बस्तियाँ बनाकर रहते हैं। इन बस्तियों को महारबाड़ा मगवाड़ा चमरौटी आदि नामों से पुकारा जाता है। दोनों गांवों में कोई समानता नहीं है। दूसरी चीज यह ध्यान देने की है, कि सछूत अथवा अछूत किसी भी अर्थ में व्यष्टि नहीं है, क्योंकि उनके व्यवसाय, उनकेसम्बन्ध, उनके देवता और उनकी राजनीति सब उनके वर्ग तय करते हैं, जिसमें वे जन्म लेते हैं। सछूत और अछूत की मुलाकात एक व्यक्ति से व्यक्ति की नहीं, बल्कि ऐसे होती है, जैसे वे दो भिन्न राज्यों की दो भिन्न कौमें हो। तीसरी चीज यह विचारणीय है कि सछूतों और अछूतों के बीच सम्बन्ध पूर्व निर्धारित है, और प्रतिष्ठा का विषय है। यह उस आचार संहिता के कारण है, जो अछूतों पर सछूतों द्वारा लादी गयी है। यह संहिता अछूतों को हीन व्यक्ति का दर्जा देती हैं, और सछूतों को उच्च शक्ति की प्रतिष्ठा प्रदान करती है। इस संहिता द्वारा अछूतों को गांव में समान मानवाधिकारों का उपयोग करने से प्रतिबंधित किया जाता है, तथा उसका उल्लंघन दण्डनीय अपराध निश्चित किया गया है। मुख्यतः दलित साहित्य की अवधारणा को इन पंक्तियों के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

''दलित साहित्य स्त्री सवालों को लेकर अत्यन्त संवेदनशील है। हिन्दू धर्मशास्त्र स्त्री को शूद्र के समकक्ष ही मानते हैं। शूद्र की तरह स्त्री को भी धर्मशास्त्रों ने शिक्षा ग्रहण करने और संस्कृत बोलने का अधिकार नहीं दिया है, किन्तु भारतीय समाज में स्त्री, पिछड़े वर्गों की स्त्री और दलित स्त्री के समाजशास्त्र न तो एक जैसे है, और नही उनके बीच समता के सम्बन्ध है। दलित स्त्री द्विज और पिछड़े, दोनों वर्गों की स्त्रियों के लिये अस्पृश्य है, और उसके साथ ही वही व्यवहार किया जाता है, जो एक दलित अछूत के साथ किया जाता है। वास्तव में यह गैर दलित स्त्रियाँ ही हैं, जो जाति और अस्पृश्यता के संस्कारों को सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। दलित साहित्य ब्राह्मणवादी मानकिता वाली इन द्विज और पिछड़ी जातियों की स्त्रियों का कदाचित समर्थन नहीं करती है और इन स्त्रियों के हाथों में राजनैतिक सत्ता दिये जाने के भी पक्ष में नहीं है, किन्तु स्त्री–मुक्ति के सवालों का दलित साहित्य समर्थन करता है और किसी भी स्तर से किये गये स्त्री–शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष उसका अभीष्ट है। निष्कर्ष के तौर पर यह कहना अतिशयोक्ति न होगा, कि न तो दलितवाद न मध्यमार्गी राजनीति, न दक्षिणपंथ और न वामपंथ दलित लेखक की विचारधारा है। दलित सवालों पर अम्बेडकर चिन्तन की स्थापना ही दलित साहित्य की मुख्य अवधारणा है।''[3]

दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है। अपनी जीवन–संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनका उसी की अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला का नहीं बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है। इसलिये कहना न होगा कि वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है। इस अवधारणा को लेकर गैर दलित लेखकों की आपत्ति यह है कि दलित साहित्य,

पर गैर दलितों का लेखन दलित साहित्य क्यों नहीं है? या यह कि दलित समस्या पर सिर्फ दलित ही लिख सकता है, गैर दलित नहीं? आपत्ति निराधार नहीं है। ऐसा कोई प्रतिबन्ध नही है कि दलित समाज पर गैर दलित नहीं लिख सकते। जरूर लिख सकते है, उन्होंने लिखा भी है और लिख भी रहे है। पर, सवाल अनुभूतियों और चिन्तन का है। दलित जीवन की पीड़ा की जैसी अनुभूतियाँ एक दलित को होती है, वैसी अनुभूतियाँ एक सवर्ण को नहीं हो सकती। मार्क्स, गांधी या उदारवादी हिन्दू विचारधारा से प्रभावित सवर्ण लेखक की दलित पीड़ा या सवालों के साथ सह–अनुभूति हो सकती है, और उसी आधार पर वह अपने

समाधान भी प्रस्तुत कर सकता है, जैसा कि प्रेमचन्द, निराला, गिरिराज किशोर, नागार्जुन, अमृतलाल नागर और डॉ0 जगदीश गुप्त आदि ने प्रस्तुत किये हैं, किन्तु वह दलित साहित्य का अंग इसलिये नहीं बन सकते, क्योंकि दलित चेतना इन विचारधाराओं को पूरी तरह नकारती है। इन तथ्यों की पुष्टि हेतु इस संदर्भ को देखा जा सकता है.....

''आधुनिक दलित–विमर्श तीसरे तरह का जागरण है। आत्मकथाएँ, उपन्यास, कविता और जनान्दोलन के द्वारा यह बात सामने लायी गई कि इस देश में मनुष्य, मनुष्य को किसी सीमा तक हीन समझता है। यह एक वैचारिक आंदोलन है। इसमें पुरानी परम्पराओं का उल्लेख, संतो का स्मरण या डॉ0 अम्बेदकर का पूजन केवल माध्यम है। इसमें आजादी के बाद तक के दलित चिंतन का आधुनिक विमर्श से सीधा वास्ता नहीं है। यह दलित विमर्श मुख्य रूप से उन पढ़े–लिखे लोगों का कमाया हुआ सच है, जिन्हे डॉ0 अम्बेडकर और बाबू जगजीवन राम के कारण आरक्षण मिला, शिक्षा तथा नौकरी मिली और बराबरी वाले समाज में बराबर उठने बैठने की महिमा मिली। मैं जहां तक जानती हूँ बाबू जगजीवन राम ने शिक्षा से अधिक प्रतिष्ठा के पदों पर आरक्षित लोगों को बिठाने का आरक्षण तय किया। बड़े सरकारी पद, विधानसभा से लेकर राज्यसभा तक प्रवेश का कोटा, राज्यपाल का पद, विदेशी शिक्षा आदि सब कुछ बाबू जगजीवन राम ने ही सोचा था। रविदास, दलित साहित्य अकामदी और आक्रामक दलित–विमर्श जैसे सारे मुहावरें बाबू जगजीवन राम की भाषा के अर्थोतर उपाय हैं। इन उपायों का एक बिन्दु बाबू जगजीवन राम की उपेक्षा और डॉ0 अम्बेडकर के पूजन से भी सम्बद्ध है। मैं रैदास सम्बन्धी चेतना से भी पच्चीस साल से सम्बन्धित हूँ और 'अम्बेडकर एवार्डी' के रूप में डॉ0 अम्बेडकर से जुड़े वाद, सिद्धान्त का दर्शन की गम्भीरता से भी हल्का फुल्का वास्ता रखता हूँ।''[4]

डॉ0 अम्बेडकर स्वयं दलित थे। उन्होंने ही दलित में जन्मजात ब्राह्मणवादी वर्ण–व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह की भावना उत्पन्न की। इसके विपरीत आर्यसमाज और कांग्रेस के गांधीवादी नेतृत्व ने अछूतोद्धार की बातें तो कीं किंतु हिंदू समाज में व्याप्त वर्ण–व्यवस्था को जड़ से उखाड़ फेंकने का क्रांतिकारी आह्वान नहीं किया। इन पंक्तियों की स्पष्टता हेतु इस संदर्भ को देखा जा सकता है–

''वार्षिक पत्रिका 'दलित साहित्य' के सन् 2004 के अंक की चर्चा करना चाहूँगी। पिछले कई वर्षों से इन पत्रिका के वार्षिक संकलन प्रकाशित हो रहे हैं, जिनमें ज्यादातर दलित लेखकों की रचनाएँ छपती हैं। ये लेखक सवर्णों द्वारा लिखी उन रचनाओं को नकारते हैं, जिनमें दलित जीवन का चित्रण होता हैं, क्योंकि इनके मतानुसार दलितों के संबंध में सिर्फ दलित ही लिख सकता है। इस अंक में भी इस विचार के पोषक कई लेख हैं, जैसे अंगनेलाल अपने लेख– ''डॉ0 अम्बेडकर के चिंतन से प्रस्फुटित हिंदी दलित साहित्य के स्वर में लिखते हैं– ''दलित साहित्य की जीवंत और अनुभूत धारा तो उसी के मन में प्रस्फुटित हो सकती है जो दलित समाज में उत्पन्न हुआ हो। परंतु इन बहसों से अलग रहकर इस पत्रिका की रचनाओं पर अगर दृष्टि डाले तो कई महत्वपूर्ण रचनाएॅ सामने आती हैं, जो दलित विमर्श और दलित चेतना को समझने में विशेष मदद दे सकती है।''[5]

दलित साहित्य की पुस्तकों की समीक्षा पढ़कर प्रतीत होता है कि इस देश के विकास में दलितों को न्याय और समानता नहीं देकर एक अपराध कर रहे हैं। डॉ0 भीमराव अंबेडकर का भारतीय संविधान और दर्शन इस पत्रिका को पढ़कर मुझे बार–बार याद आता है, और लगता है कि ब्राह्मण और उसके म्लेच्छ के बीच यह दलित साहित्य वार्षिकी एक रचनात्मक और तर्कसंगत विचार सेतु बनाएगी। दलित साहित्य के विविध आयाम इस संचयन में दिए गए हैं, उससे यह भी प्रमाणित होता है कि दलित चेतना को

जान–बूझकर नकारने का भद्रलोक का प्रयास अब बेमानी है, क्योंकि साहित्य का केन्द्र मनुष्य है और समानता उसकी प्रकृति है। इन बिन्दुओं की स्पष्टता हेतु इस संदर्भ को देखा जा सकता है–

''दलित साहित्य और दलित चिंतन की दिशा में गंभीर काम करने की कोशिश में निकल रही यह दलित वार्षिकी अपने सातवें अंक (वर्ष–2005) के साथ उपस्थित है। मराठी, पंजाबी मलयालम भाषा के साथ–साथ हिन्दी, दलित साहित्य की चिंता करके अनेक लेख इस अंक में है। प्रेमचंद का विरोध और उनके प्रति हमदर्दी रखते हुए लेख भी यहां हैं, तो धर्मवीर का पक्ष लेते लेख भी। जाति–व्यवस्था करते लेख भी यहां काफी मात्रा में हैं। चिंतन के साथ–साथ लेखन को भी यहां स्थान दिया गया है। बलवीर माधोपुरी की आत्मकथा के अंश यहां हैं, तो सूरजपाल चौहान, मुसाफिर बैठा, राजेश कुमार बौद्ध आदि की कविताएँ। एक–दो कविताओं को छोड़कर बाकी कविताएं सामान्य है। यही हाल अंक की कहानियों का है। मुकेश मानस, पूरन सिंह, कालीचरण प्रेमी, महेश कुमार केसरी 'राज' की कहानियाँ थोड़ी ठीक है। मुकेश मानस की कहानी वैसे दलितों के प्रति अत्याचार की कहानी न होकर पुलिसिया आंतक की कहानी अधिक है।''[6]

बाबा साहब अंबेडकर के विचारों से ओत–प्रोत जोतिबाराव फूले की क्रांति से ओत–प्रोत और महामना बुद्ध के दर्शन से ओत–प्रोत दलित साहित्य की एक अपनी अलग पहचान है, सम्मान है, अभिमान है। दलित साहित्य की वार्षिकी हिन्दी भाषा में प्रकाशित करने का जो बीड़ा दलित साहित्य के सुप्रसिद्ध साहित्यकार विद्वान जयप्रकाश कर्दम ने उठाया है। वह एक ऐतिहासिक कदम है। वैसे दलित साहित्य की आंधी तो मराठी साहित्य आकाश से चली, किंतु मराठी भाषा में दलित साहित्य की वार्षिकी कभी निकली या नहीं, या अभी निकल रही है या नहीं। हिन्दी भाषा में दलित साहित्य की वार्षिकी संपादित ग्रंथ निकालना अपने आप में अनुकरणीय कदम है। महान साहित्यकार जयप्रकाश कर्दम ने यह अनुकरणीय काम किया है। बहुजन समाज को एक नहीं अनेक जयप्रकाश कर्दम चाहिए। वर्ष 1999 में दलित साहित्य वार्षिकी का संपादन और प्रकाशन प्रारंभ किया गया। तब से आज तक दलित साहित्य वार्षिकी जिस ताव और तेवर को लेकर संपादित और प्रकाशित हुआ उसे देखकर और पढ़कर किसी भी विद्वान साहित्यकार को यह भ्रम अनायास पैदा हो सकता है, कि इतना प्रौढ़ विचारों से संपन्न साहित्य संगत एक–ब–एक किस तरह बन सका। इन तथ्यों की पुष्टि हेतु इस संदर्भ को देखा जा सकता है–

''दलित साहित्य 2002 के संपादकीय विद्वान संपादक जयप्रकाश कर्दम ने बाबा साहेब अंबेडकर के जीवनोपयोगी दो सबसे महत्वपूर्ण बातों पर दिशा–निर्देश दिया है। अपने महत्वपूर्ण संपादकीय में उन्होंने लिखा है– ''धर्मांतरण एक महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य उपाय है किंतु एकमात्र उपाय नहीं है। यह मान लेना बहुत बड़ी भूल होगी कि धर्मांतरण करने मात्र से दल–दल में फंसे दलितों की सारी समस्याओं का समाधान हो जाएगा, तथा वे प्रगति और विकास के पथ पर सरपट दौड़ना शुरू कर देंगे। धर्मातरण तभी कारगर होगा, जब उनकी आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ होगी, शिक्षा का प्रसार होगा, तथा राजनीतिक चेतना विकसित होगी। इनमें से किसी एक के भी अभाव में दलित वह नहीं पा सकते, जो वह चाहते हैं, या जो उनका लक्ष्य है। धर्मांतरण अभियान चलाने वाले या धार्मिक क्रांति का आह्वान करने वाले इस बात पर विशेष गौर करें धर्मांतरण अभियान के साथ–साथ वे दलितों में शिक्षा का अभियान जरूर चलायें। शिक्षा ही उनमें वह चेतना पैदा करेगी कि वे अपने घर और दिमाग में जड़ से समाये बैठे हिंदू देवी–देवताओं और विश्वासों को त्याग सकें। हिंदुत्व से मुक्ति और प्रगति के लिए ऐसा किया जाना जरूरी है। यदि ऐसा नहीं किया जाता है, तो बुद्ध और अंबेडकर उनके दिमाग में बहुत देर तक नहीं ठहर सकेंगे। उनके बेदखल होने के खतरे हमेशा बने रहेंगे।''[7]

साहित्य एक गरिमा का क्षेत्र है। न्याय, नैतिकता और ईमानदारी की सर्वाधिक अपेक्षा इसी क्षेत्र से है। राजनीति और धर्म आदि हर ओर से जब समाज का विश्वास उठने लगता है, उस समय में भी साहित्य ही समाज को संवेदनशील बनाए रखा है। मानवीय मूल्यों को जिंदा रखता है तथा समाज में उसके प्रति आस्था और विश्वास का संचार करता है। कहा जा सकता है कि मानवीय मूल्यों का सबसे बड़ा संरक्षक या पहरेदार यदि कोई है, तो वह साहित्य ही है। इसलिए साहित्यकारों से यह अपेक्षा है और यह उनका नैतिक दायित्व भी है कि वे अपनी कथनी और करनी यानी लेखन और आचरण में समानता रखें। जितना अच्छा वे लिखेंगे, वैसा ही यदि अपना आचरण भी रखेंगे, तो समाज को ज्यादा अच्छी शिक्षा

व प्रेरणा वे दे सकेंगे। संपादक जयप्रकाश कर्दम ने जो विचार व्यक्त किया है, उस पर किसी तरह की बहस की जरूरत नहीं, क्योंकि नैतिकता ही बहुजनों की पूंजी है, और किसी की कुछ हो या न हो। दलित समाज और उनके साहित्य संस्कृति के बारे में यह आंदोलन संकट में पड़ जाए, यह तो घोर चिंता की बात है। साहित्य दीर्घकाल तक जिंदा रहता है प्रकाशित होने पर। जबकि दलित साहित्य की स्थिति यह है, कि कुछ अपवादों को छोड़कर लेखकों की रचनाकारों को इतना सामर्थ्य नहीं है कि अपने बूते वे अपनी रचनाओं को प्रकाशित कर सकें। यदि किसी तरह वे ऐसा कर भी लें जैसा कि अभी तक होता आया है कि दलित लेखकों ने अपने प्रोविडेन्ट फंड से पैसा निकालकर या किसी अन्य तरह से जोड़–तोड़ करके अपनी पुस्तकें छपवाई है, तो उनको न प्रचार मिलता है न ग्राहक। इन बिन्दुओं को रेखांकित करने हेतु इस संदर्भ को देखा जा सकता है–

''यहां दलित साहित्य के पाठकों और लेखकों दोनां को इस बिंदु पर गंभीरता से विचार करना है कि वे दलित साहित्य के प्रकाशन खासकर दलित साहित्य वार्षिकी के प्रकाशन के लिए सामूहिक जिम्मेदारी के पाठक और साहित्यकार इस संकट से जानकार न हो। दलित साहित्य वार्षिकी के प्रत्येक अंक में संपादक को चाहिए कि प्रकाशन से आसन्न संकट को दर्शाते हुए सामूहिक जिम्मेदारी लेने की कवायद पाठकों और साहित्यकारों को करते रहे। कर्दम जी का पत्र मिलने के पहले स्वयं मैं अनभिज्ञ था, कि दलित साहित्य वार्षिकी का प्रकाशन इतना संकट ग्रस्त हो चुका है। दिल्ली यात्रा के दौरान श्रद्धेय विमल थोराट के वार्ता के क्रम में यह संकेत दिया था, कि दलित साहित्य वार्षिकी का संपादन और प्रकाशन 'दलेस' लेने की स्थिति में है। विमल थोराट की उपरोक्त वार्ता से मैं आह्लादित हुआ कि 'दलेस' यानी दलित लेखक संघ की जैसी साहित्यिक संस्था के जिम्मे दलित साहित्य वार्षिकी का प्रकाशन सामूहिक जिम्मेदारी के विकास का प्रमाण साबित होगा। दलित साहित्य के प्रकाशन की कठिनाइयों पर जयप्रकाश कर्दम ने बराबर कलम चलाई। वर्ष 2001 की दलित साहित्य वार्षिकी की संपादकीय में उन्होंने साफ कहा कि – इतना तय है कि आज की तारीख में केवल ग्राहकों से चंदा के आधार पर कोई दलित पत्रिका नहीं चल सकती। यदि ऐसा हो सकता तो दलित पत्रिकाएं बंद ही क्यों होती। दलित पत्रिकाओं को विज्ञापन भी प्रायः नहीं मिलते हैं। ऐसे में त्रैमासिक पत्रिका भी नियमित रूप से निकालना निश्चित रूप से जीवटता का काम हैं ऐसे प्रयासों की प्रशंसा की जानी चाहिए। डॉ0 विमल कीर्ति, तुलसीराम, बुद्धशरण हंस, कंवल भारती यदि अपने अनुभव बताएं कि उनकी पत्रिकाएँ क्यों निकल पाईं। उनके सामने किस–किस तरह की और क्या–क्या दिक्कतें आई, तथा उनसे कैसे पार पाया जाए।''[8]

दलित साहित्य के प्रति साहित्यिक मठाधीशों की धारणा है कि इसमे शिल्प सौन्दर्य और साहित्य के शास्त्रीय मानदंड विकसित नहीं है, जिस कारण इसे हिंदी साहित्य के भंडार में नहीं रखा जा सकता। यह मठाधीशों का दंभ ही है। हिंदी में रचा जा रहा दलित लेखन अपना साहित्यिक मुकाम बनाता जा रहा है।

lUnHkZ %

1. उत्तर प्रदेश दलित साहित्य विशेषांक : वर्ष–30, अंक–1, सितम्बर–अक्टूबर 2002, पृ0सं0–13 ।
2. उत्तर प्रदेश दलित साहित्य विशेषांक : वर्ष–30, अंक–1, सितम्बर–अक्टूबर 2002, पृ0सं0–14 ।
3. उत्तर प्रदेश दलित साहित्य विशेषांक : वर्ष–30, अंक–1, सितम्बर–अक्टूबर 2002, पृ0सं0–14 ।
4. उत्तर प्रदेश दलित साहित्य विशेषांक : वर्ष–30, अंक–1, सितम्बर–अक्टूबर 2002, पृ0सं0–16 ।
5. दलित अभिव्यक्ति संवाद और प्रतिवाद डॉ0 जयप्रकाश कर्दम : संपादक : रूपचन्द्र गौतम : प्रकाशक : नटराज प्रकाशन प्रथम संस्करण : 2007 : पृसं0–258 ।
6. दलित अभिव्यक्ति संवाद और प्रतिवाद डॉ0 जयप्रकाश कर्दम : संपादक : रूपचन्द्र गौतम : प्रकाशक : नटराज प्रकाशन प्रथम संस्करण : 2007 : पृ0सं0–266 ।
7. दलित अभिव्यक्ति संवाद और प्रतिवाद डॉ0 जयप्रकाश कर्दम : संपादक : रूपचन्द्र गौतम : प्रकाशक : नटराज प्रकाशन प्रथम संस्करण : 2007 : पृ0सं0–211 ।
8. दलित अभिव्यक्ति संवाद और प्रतिवाद डॉ0 जयप्रकाश कर्दम : संपादक : रूपचन्द्र गौतम : प्रकाशक : नटराज प्रकाशन प्रथम संस्करण : 2007 : पृ0सं0–215

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 59-63

lapkj ek/;e ds :i esa fgUnh

tqyh dqekjh*

संचार के बिना जीवन संभव नहीं है। मानव सभ्यता के विकास में संचार की बसे महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। संचार दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच सूचनाओं, विचारों और भावनाओं का आदान–प्रदान है। इस तरह संचार एक प्रक्रिया है जिसमें कई तत्व शामिल हैं। संचार के कई प्रकार है जिनमें मौखिक और अमौखिक संचार के अलावा अंतःवैयक्तिक, समूह संचार और जनसंचार प्रमुख हैं।

जनसंचार कई मामलों में संचार के अन्य रूपों से अलग हैं। जनसंचार सूचना, शिक्षा और मनोरंजन के अलावा एजेंडा तय करने का भी करता है। भारत में जनसंचार के विभिन्न माध्यमों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। जनसंचार माध्यमों का लोगों पर सकारात्मक के साथ–साथ नकारात्मक प्रभाव भी पड़ता है। इन नकारात्मक प्रभावों के प्रति लोगों का सचेत होना बहुत जरूरी है।

लक्ष्मेंद्र चोपड़ा का मत हे कि ''आधुनिक जनसंचार माध्यम ऐसे व्यक्तियों के बीच सामान्य सहमति का निर्माण करते हैं, जो आमतौर पर परस्पर आमने–सामने नहीं मिलते हैं। समाज में सामान्य सहमति के निर्माण की प्रौद्योगिकीय प्रक्रिया के कारण जन+संचार माध्यम समाज की संस्कृति को भी प्रभावित करते हैं। वस्तुतः जनसंचार माध्यम संदेश उत्पादन तथा वितरण की प्रक्रिया में एक बड़े सामाजिक समूह को मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित करते हैं, जिसके कारण समूह की संस्कृति के भौतिक तथा अभौतिक दोनों ही प्रारूपों पर सकारात्मक अथवा नकारात्मक परिवर्तन हो सकते हैं।''[1]

आज के संचार प्रधान समाज में जनसंचार माध्यमों के बिना जीवन की कल्पना नहीं किया जा सकता। हमारी जीवन–शैली पर संचार माध्यमों का जबरदस्त असर है। अखबार पढ़े बिना हमारी सुबह नहीं होती। जो अखबार नहीं पढ़ते वे रोजमर्रा की खबरों के लिए रेडियों या टी.वी. पर निर्भर रहते है। हमारी महानगरीय युवा पीढ़ी समाचारों और सूचनाओं के आदान–प्रदान कि लिए इंटरनेट का उपयोग करने लगी है। खरीद–फरोख्त के हमारे फैसलों तक पर विज्ञापनों का असर साफ देखा जा सकता है। यहॉ तक की शादी–ब्याह के लिए भी लोगों की अखबार या इंटरनेट के मैट्रिमोनियल पर निर्भरता बढ़ने लगी है। टिकट बुक कराने और टेलीफोन का बिल जमा कराने से लेकर सूचनाओं के आदान–प्रदान के लिए इंटरनेट का इस्तेमाल बढ़ा हैं।

जनसंचार का समाजशास्त्र में लक्ष्मेंद्र चोपड़ा ने यह लिखा है कि ''आधुनिक जनसंचार माध्यम की विभिन्न विद्याओं, पत्रकारिता, रेडियों, टेलीविजन, तथा इंटरनेट इत्यादि के लक्षित पाठक/श्रोता/दर्शक समूह अर्थात मॉस आडियंस मूलतः द्वितीयक समाज के ही सदस्य हैं। समाजशास्त्रियों ने आडियंस को एकत्र औपचारिक भीड़ के रूप में परिभाषित किया है। लेकिन मीडियांस को औपचारिक भीड़ कहना गलत होगा। मीडिया आडियंस उन व्यक्तियों का एकत्रीकरण है, जो जनसंचार माध्यम से उसके लक्षित पाठक/श्रोता/दर्शक के रूप में सम्बद्ध होते हैं। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि वे एक ही स्थान पर एकत्र हों अथवा एक ही समय में उस जनसंचार माध्यम का उपयोग कर रहे हों''[2]

जनसंचार का सबसे लोकप्रिय और प्रभावशाली माध्यम सिनेमा हालॉकि यह जनसंचार के माध्यमों की तरह सीधे तौर पर सूचना देने के अन्य नहीं करता, लेकिन परोक्ष रूप में सूचना, ज्ञान और संदेश देने का काम करता है। सिनेमा को मनोरंजन के एक सशक्त माध्यम के तौर पर देशा जाता रहा है।

---

*शोध–छात्रा, हिन्दी, बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

लक्ष्मेंद्र चोपड़ा ने यह कहा है कि ''जनसंचार माध्यम या मॉस मीडिया का तात्पर्य ऐसी तकनीक अथवा उपकरण से है, जिसके द्वारा समान संदेश, लगभग एक ही समय में बहुत से व्यक्तियों के बीच पहुंचाया जा सके। सामाजिक जनसंचार शास्त्री जे. कार्नर के मत में, ''जन संचार संदेश के बड़े पैमाने पर उत्पादन तथा वृहद् स्तर पर विषमवर्गीय जन समूहों में द्रुतगामी वितरण करने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में जिन उपकरणों अथवा तकनीक का उपयोग किया जाता है, उन्हें जन संचार माध्यम कहा जाता है।''[3]

तीसरी दुनिया के समाज वैज्ञानिकों ने जनसंचार के समाजशास्त्र को समृद्ध बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। हिन्दी के कई समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं ने भी इस विषय पर उपयोगी सामग्री प्रकाशित है। इन पत्रिकाओं ने विदूर, पहल, हंस, कथादेश, वागर्थ उल्लेखनीय हैं। लेकिन जनसंचार के समाजशास्त्र विषय पर हिंदी में पुस्तक रूप में सामग्री का अभाव है। यह पुस्तक इसी कमी को पूरा करने की दिशा में एक विनम्र प्रयास है।

प्रेस, रेडियों, टेलीविजन, सिनेमा, तथा इंटरनेट, जनसंचार के माध्यम माने जाते हैं। इनमें हम वह मुद्रित सामग्री भी शामिल कर सकते हैं जो समाज के बड़े वर्ग तक पहुंचती है। ये समस्त माध्यम दूर–दूर फैले विषमवर्गीय श्रोताओं, दर्शको व पाठकों को बीच विशिष्ट तकनीक तथा उपकरणों जैसे प्रिंटिंग मशीन, टेपरिकार्डर्स, कैमेरा, ट्रांसमीटर्स कम्प्यूटर्स, प्रसारण सेटेलाइट्रस द्वारा संदेशों का प्रचार–प्रसारण करते है।

लक्ष्मेंद्र चोपड़ा का मत है कि ''आधुनिक जनसंचार माध्यम जनमत निर्माण व इसकी अभिव्यक्ति के मुख्य अभिकरण है। प्रतिदिन मुद्रण जनसंचार माध्यम विभिन्न प्रकाशनों के माध्यम से समसामयिक घटनाओं व नीतियों के संबंध में सामग्री प्रकाशित करते हैं। प्रकाशित तथ्य, सूचनाएँ, विश्लेषण पाठकों के विचारों को प्रभावित करते हैं। सामाजिक तथा असामाजिक गतिविधियों को प्रकाशित कर प्रचलित नैतिक मूल्यों, नियम, कानूनों का दबाव बनाते है। इस प्रक्रिया द्वारा एक निश्चित दिशा में जनमत का निर्माण होता है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यम रेडियों व टेलीविजन समाजिक नियंत्रण के महत्त्वपूर्ण अभिकर्ता हैं। जनमत के निर्माण में रेडियों सबसे सस्ता तथा तेज गति तात्कालिक अभिकर्ता है। समाज वैज्ञानिक रेमंड विलियम्स ने रेडियों को भौगोलिक शक्तियों जनसंचार माध्यम है जो किसी भी क्षेत्र में बिना बिजली के ट्रांजिस्टर के रूप में बैटरी द्वारा संदेश पहुँचा सकता हैं।''[4]

जनसंचार माध्यम स्वयं भी सामाजिक संस्थानों के रूप में नयी मान्यताओं तथा मूल्यों का प्रचार–प्रसार कर पुनर्सामाजीकरण करते हैं। इस प्रक्रिया में पूर्व प्रचलित सांस्कृतिक, अभिवृत्तियों, रीत–नीति तथा मूल्यों में परिवर्तन होता है। परिवर्तन की यह प्रक्रिया हमेशा समाज के लिये कल्याणकारी हो यह आवश्यक नहीं है, अवमूल्यन की स्थिति में विसमाजीकरण भी हो सकता है। जन संचार माध्यम न सिर्फ सामाजिक परिवर्तन के लिये महत्त्वपूर्ण हैं, बल्कि सामूहिक विवेक द्वारा सामाजिक विधटन रोकने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। सीधा अर्थ यह है कि जनसंचार माध्यम सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन के अपने सामाजिक उत्तरदायित्व की अवहेलना नहीं कर सकते।

''भारत में परंपरा से संगीत, नृत्य, नाटिका, लोकरंग मंच, गीत, लोकनृत्य एवं लोककला संचार के माध्यम रहे हैं। इन माध्यमों के प्रस्तुतीकरण का स्वरूप काफी रोचक होता है, जो दर्शकों को मंत्र मुग्ध कर देता है। जनमाध्यम के प्रति अपने व्यापक आकर्षण और लाखों निरक्षर लोगों के गहनतम संवेगों को छूने के अपने गुण की दृष्टि से गीत और नाटक का माध्यक अद्वितीय होता है। इसके अलावा महत्त्वपूर्ण माधमों में नृथ्य का स्थान श्रेष्ठ है। कथकलि (केरल), भरत नाट्यम, तमिलनाडु, मणिपुर कथक, उत्तर भारत–रामलीला, रासलीला, भवाई, नौटंकी, जत्रा, तमाशा, कठपुतली आदि। एक तरफ यदि एक जनमाध्यम लोक कलाकार के लिए विशाल दर्शक समूह जुटा सकते है तो दूसरी तरफ पारस्परिक माध्यम जनमाध्यमों के विषय वस्तु को समृद्ध करने के साथ–साथ संचार में व्यापाक प्रसार हुआ।''[5]

आज प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रोनिक, मीडिया, सिनेमा, तथा चैनलों की चकाचौंध ने तो हिन्दी के एक नया बाजार दिया है और हिन्दी के कारण न जाने कितने लोगों को रोजगार मिला हुआ है। हिन्दी के बढ़ते

दायरे का अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता हैं कि अंग्रेजी वर्चस्व वाले चैनल हिन्दी की तरफ तीव्र गति से बढ़ने लगे हैं। धर्म, दर्शन, अध्यात्म, बड़ो के लिए, बच्चों के लिए हर तरह के मनोरंजक व जानकारी+परक कार्यक्रम आपको हिंदी में मिल जाऍगे। डिस्कवरी चैनल हो या अन्य तमाम चैनल अंग्रेजी या किसी दूसरी भाषा में कार्यक्रम भी 'डब' करके या जैसे भी हो, हिन्दी के लोगों तक हिन्दी में पहॅुचते हैं और तो विदेशी लोगों द्वारा उत्पादों के प्रचार से सम्बंधित और कार्यक्रम भी 'डब' करके हिन्दी में ही प्रस्तुत किये जाते हैं। एक बात तो यह माननी ही पड़ेगी कि इस देश में जब भी अपनी बात वृहद पैमाने पर या जन–जन तक पहुँचनी होगी तो हिंदी का सहारा लेना ही पड़ेगा और चौंबीसों घण्टों चलने वाले इन चैनलों ने यह रहस्य समझ लिया है। एक से–बढ़कर–एक तेज तर्रार चैनल देश–दुनिया के कोने–कोने की हर पल की खबरें हिंदी में दे रहे हैं।

कैलाश नाथ पाण्डेय का मत है कि ''कुल मिलाकर संचार आज सभी के लिए एक मूलभूत सामाजिक अवश्यकता बन गया हे। वस्तुतः संचार एक सहज प्रवृति है। समस्त प्राणी जगत संचार की एक लम्बी नैसर्गिक श्रृंखला से जुड़ा हुआ है अर्थात् ऐसा कोई भी क्षण नहीं होता, जब हम संचार की प्रक्रिया से न गुजर रहे हों। मस्तिष्क विज्ञानियों का कहना है कि हमारे शरीर की लाखों कोशिकाएँ भी लगातार एक–दूसरे से संचार करती रहती है और जिस क्षण यह संचांर प्रक्रिया बंद हो जाती है, उसी क्षण हम मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं। मृत्यु का दूसरा नाम संप्रेषणहीनता अथवा संचार शून्यता है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि अमेरिका का हर व्यक्ति अपनी जाग्रतावस्था का सत्तर प्रतिशत संचार जैसे–सुनने, बोलने, पढ़ने और लिखने में व्यतीत करता है। संचार का सामान्य अर्थ है– विचारों मतों–अभिमतों, धारणाओं–अवधारणाओं, अनुभावों–अनुभूतियों का आदान–प्रदान।''[6]

जनसंचार के दायरे में उच्च श्रेणी से लेकर साधारण जनता तक की होती है। इसका संदेश सभी वर्ग, लिंग, धर्म और रंग के लिए होता है। यह दूरदराज के क्षेत्रों में रहने वाले लोगों से लकर शहरी क्षेत्रों के लोगों तक–सभी को समान और सामान्य रूप में सूचना देने कार्य करता है। यह समाज में नए जनमत, नई जागृति, राष्ट्रीयता बोध तो पैदा करता ही है, सुसुप्त समाज में सृजनशीलता, रचनात्मकता और त्वरित निर्णय लेने की क्षमता पैदा करता है। यह सामाजिक कुंठा और जड़ता को तोड़कर देश के नवयुवकों को नए सामाजिक–विकास की मशाल थमाता है। जनसंचार को यदि विभिन्न माध्यमों–मौखिक एवं मुद्रित शब्द, दृश्य–श्रव्य साधन, प्रचार सामग्री, चलचित्र, रेडियों दूरदर्शन आदि सभी इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों की संरचना और उनके प्रयोग का 'विज्ञान' मान लिया जाए तो 'जनसंपर्क' उस कला को कहेंगे, जिसकी सहायता से जनसंचार के माध्यमों का इस्तेमाल करकें पब्लिसिटी या प्रचार के लक्ष्यों में अधिक–से–अधिक सफलता प्राप्त की जा सकती है।

डॉ0 राधेश्याम शर्मा का मत है कि ''संचार और उसके साधनों–माध्यमो से हमारा रिश्ता आदिम है, किन्तु पिछले कुछ सालों से अर्थात जब से सूचना का विस्फोट, रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर, इंटरनेट, तथा उपग्रहों का फैलाव और जनसंचार टेक्नोलॉजी का विकास तीव्र गति से–पूरी दुनिया को ताल ठोकते हुआ है–तब से यह शब्द हमारे और नजदीक आ गया है। इसके माध्यमों दुर्लभ सूचनाएँ बह रही हैं। महीना मिनट में तब्दील हो गया है। ऐसा लगता है, जैसे हमारे देश में हालिया जन्मा है, पर आपको मुझे गर्व हो रहा है कि जनसंचार भी अब एक विज्ञान की स्थिति को प्राप्त हो गया है, क्योंकि इनके परिणाम तथा तथ्य विज्ञानों की तरह पहले से ही निश्चित किए जाते हैं, तभी तो जनसंपर्क को जनमत निर्माण की इंजीनियरी या अभियांत्रिकी कहते है।''[7]

जनसंपर्क शब्द संस्कृत के ''पृच्'' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है– मिलना, मेल बढ़ाना। इस तरह ''सम्'' और ''पर्क'' ('पृच्' से बनी क्रियार्थक संज्ञा) से 'सम्पर्क' बना और उससे कलांतर में 'जन सम्पर्क' की निर्मित हुई। जनसंचार माध्यमों ने गॉव से लेकर शहर तक एक नया समाजिक वतावरण तैयार किया है। गॉव के अनपढ़ मजदूर अब अपने आधिकारों के प्रति सचेष्ट हुआ है। शहर का कामगार अपने हक–हुकूक की रक्षा के लिए हड़ताल तालाबंदी, आमरण, अनशन जैसे लोकतांत्रिक तरिके से अपना रहा

है। जनसंचार माध्यमों ने लड़के–लड़कियों की शिक्षा आदि में भेद न करने का जहाँ संदेश दिया है, औद्योगिक क्षेत्रों में गंदी बस्तियों की बसाहट, प्रदूषित जल की निकासी और पर्यावरण संबंधी जागरूकता पर भी बल दिया है। सच तो यह है कि इन संचार माध्यमों ने धार्मिक–पौराणिक कार्यक्रम कृषि दर्शन खेलकूद, सामाजिक, घटनाक्रम कृषि दर्शन खेलकूद, सामाजिक, घटनाक्रम, सरकारी योजनाओं, बच्चों तथा महिलाओं के लिए शैक्षिक प्रस्तुत का नयी सामाजिक दृष्टिकोण, आस्था और मूल्यों में बदलाव आया है।

डॉ0 चन्द्रकुमार ने लिखा है कि ''संचार एक प्रक्रिया हैं, तंत्र नहीं। संचार एक मूलभत वैयक्तिक एवं सामाजिक आवश्यकता तथा सार्वभौमिक मानवाधिकार है। संचार के बिना जीवन में सम्पूर्णता नहीं हो सकती है।''[8]

भावों का संचरण 'संचार' और संवाद मनुष्य ही सहज प्रवृति हैं। सभी जानते हैं, गॉवों के निरंतर नष्ट होने और शहरों के बेहयाई के साथ पसरते जाने के बावजूद भारत मूलतः गॅवई देश है, अतः जिसका रिश्ता आज भी गॉवों से है, वे जानते हैं कि तमाम तरह की विसंगतियों विद्रूपताओं, घृण, एतराज, राग द्वेष के बावजूद गॉव का शीराजा, नागरिकशास्त्र या समाजशास्त्र इन्हीं संवादों और विचारों के परस्पर, संचार के कारण पुख्ता या सदृढ़ रूप में संधरित है। संचार जीवन का मूल तत्व है। इसके बिना जीवन वेस्वाद, बेरंग और संवादाहित मनुष्य पशु से भी बदतर या साक्षात मृत्यु हैं, जीवित शव है। संवादों के महत्त्व को इतने से ही जाना जा सकता है कि जब भी किसी को किसी तरह की सजा दी जाती है, अंग्रेजों के समय में यही सजा कालापानी थी।

कैलाशनाथ पाण्डेय लिखते हैं कि ''इधर सूचना तकनीक के विस्फोटी समय में हिन्दी को सशक्त संचार भाषा के रूप में नया उभार और रूप मिला है। वस्तुतः इलेक्टॉनिक संचार माध्यमों के विकास की कल्पना भाषा के बिना नहीं की जा सकती। इस दृष्टि से भाषा का विकास भी संचार माध्यमों के विकास के साथ होता चलता है, जिससे नए–नए अर्थ, नई–नई शैलियाँ भाषा के कोष में जुड़ती है। इलेक्टॉनिक संचार माध्यमों ने दिक–काल की सीमाओं को पार कर लिया है। जिस गति से इनका विकास हो रहा हे, उस गति से हिन्दी का आधुनिककीकरण भी हो रहा है, जिसकी प्रकृति त्रिदिशीय है– लोकवादी, राष्ट्रीयता वादी और अन्तर्राष्ट्रीयता। रेडियों, दूरदर्शन कम्प्यूटर, इंटरनेट, दूरसंचार माध्यमों–टेलीग्राम, टेलीप्रिंटर, फैक्स, टेलीफोन, विज्ञापन तथा जनसंचार भाषा के रूप में हिन्दी को जनसंचार भाषा का मुकम्मल रूप दिया है।''[9]

रेडियो जनसंचार का ऐसा माध्यम और प्रभावी है जो एक ही समय में स्थान दूरी को लांध कर विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँच जाता है। यह ध्वनि तरंगों तक माध्यम है। इस 'दृश्यरहित' नेत्र राहित अथवा 'अंधा माध्यम' भी कहा जाता है। इसे अन्धा माध्यम इसलिए कहते हैं कि क्योंकि संचारक और सूचना प्राप्तकर्ता–दोनों ही एक दूसरे को नहीं देख सकते। यहॉ अन्धापन दोतरफा होता है, जबकि फिल्म अथवा टेलीविजन रेडियों मस्तिष्क की आँख न कि शारीरिक नेत्र को छुता है। यह एकल इन्द्रिय माध्यम हैं, क्योंकि यह कानो को ही छूता है और इसलिए इसे नितांत श्रव्य माध्म कहा जाता है। रेडियों के माध्यम से शब्दों की महायात्रा की शुरूआत का लंबा, किन्तु दिलचस्प इतिहास है। विभिन्न देशों के अनेक वैज्ञानिकों यथा–ब्रिटेन के सर ओलिवर लॉज, तत्कालिक सोवित संघ के अलक्जेन्डर पापोव, फ्रांस एडार्ड ब्रानले और इटली के अगस्टों रिकी ने इस दिशा में समय–समय पर प्रयास किया, किन्तु अमेरिका के मर्रे शहर के निवासी नाथन बी. स्टब्लफील्ड ने सन् 1892 में शब्दों का सीधा प्रसारण पहली बार किया, लेकिन डॉ. बी. ब्रजमोहन गुप्त के अनुसार सही मायने में दुनिया का पहला विज्ञापित प्रसारण 23 दिसम्बर 1906 को कनाडा मूं भौतिकी के प्रोफेसर रेजीनाल्ड आब्रे फेसनडेन द्वारा 420 फुट ऊँचे खंभे के माध्यम से हुआ।

कैलाश नाथ पाण्डेय ने यह परिभाषित किया है कि ''सूचना संचार का वट वृक्ष 'कम्प्यूटर' हिन्दी में गणक, संगणक, विचारशील मशीन, इलेक्टॉनिक मस्तिष्क, शब्द–विश्लेषक तथा संख्या विश्लेषक आदि नामों से जाना जाता है। डिजिटल कम्प्यूटर एनॅलॉग कम्प्यूटर, मिनी कम्प्यूटर, सुपर कम्प्यूटर, होम

कम्प्यूटर लैपटॉप कम्प्यूटर, पाम टॉप कम्प्यूटर, पसर्नल कम्प्यूटर आदि इसके मुख्य प्रकार हैं। कम्प्यूटर आज के विज्ञान की अचंभित कर देने वाली विशिष्ट और उपयोगी उपलब्धि है। सच तो यह है कि सूचना प्रौद्योगिकी या तकनीक अपने विकास के लम्बे सफर के बाद आज इस मुकाम पर पहुँच गई है, जहॉ इसके विस्तार के लिए दुनिया छोटी पड़ती जा रही है, जहॉ इसके विस्तार के लिए दुनिया छोटी पड़ती जा रही है। दूसरे शब्दों में सूचना क्रांति ने पूरी दुनिया को समेट कर 'ग्लोबल विलेज' ''अर्थात् गॉव में बदली दुनिया की'' आवधारण को साकार कर दिया है। सूचना जगत में इस नयी क्रांति का सूत्रपात करने में टेलीफोन, फैक्स, रेडियों, टेलीविजन, कम्प्यूटर, प्रिंटर, सेल्युलर फोन, पेपर, ई–मेल, मल्टी मीडिया, रही है। इनमें कम्प्यूटर अपनी सर्वश्रेष्ट भूमिका में है। कम्प्यूटर के बिना इस पूरे सूचना तंत्र की संकल्पना अधूरी है।''[10]
निष्कर्ष के तौर परहम कह सकते है कि जनसंचार आज बड़े व्यापक स्तर कर हमारे सामने उपस्थित है। भारत के अलावा पूरे विश्व में जनसंचार एक अस्त्र की भूमिका निभा रही है। जनसंचार के माध्यम से आज विदेशी का खबर घर बैठे देख पा रहे हैं। यह जनसंचार की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

lUnHk %

1. जनसंचार का समाजशास्त्र, लक्ष्मेंद्र चोपड़ा आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा) 2002 पृष्ठ–37
2. जनसंचार का समाजशास्त्र, लक्ष्मेंद्र चोपड़ा आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा) 2002 पृष्ठ–42
3. जनसंचार का समाजशास्त्र, लक्ष्मेंद्र चोपड़ा आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा) 2002 पृष्ठ–37
4. जनसंचार का समाजशास्त्र, लक्ष्मेंद्र चोपड़ा आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा) 2002 पृष्ठ–71–72
5. जनसंचार माध्यमों में हिन्दी–चन्द्र कुमार, पृष्ठ–08
6. प्रयोजनमूलक हिन्दी की नयी भूमिका, कैलाश नाथ पाण्डेय, लोक+भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014 पृष्ठ–300
7. जनसंचार, सं. डॉ0 राधेश्याम शर्मा (डॉ राजेन्द्र का लेख) पृष्ठ–287
8. जनसंचार माध्यमों हिन्दी– डॉ चन्द्र कुमार, क्सासिकब पब्लिलिंग कम्पनी दिल्ली, 200
9. प्रयोजनमूलक हिन्दी की नयी भूमिका, कैलाशनाथ पाण्डेय लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014 पृष्ठ–309
10. प्रयोजनमूलक हिन्दी की नयी भूमिका, कैलाशनाथ पाण्डेय लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014 पृष्ठ–326

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 64-68

egkRek xk/kh dk PkEikj.k lR;kxg n'ku % jk"V fuek.k dk vfHkuo i;kx

Mk- Hkkouk f=osnh*

चम्पारण आन्दोलन 20वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन की महानतम घटना है। इस घटना ने विश्व साम्राज्यवाद, विस्तारवाद तथा उपनिवेशवाद की तत्कालीन व्यवस्था का न केवल एक ठोस प्रतिकार किया बल्कि स्वदेशी, स्वराज्य और स्वावलम्बन की आधारशिला रखी।

मनुष्य के जीवन में क्षण का बहुत महत्व है। यह एक क्षण ही होता है जबकि मनुष्य अपनी समस्त अध्यात्मिक शक्तियों को केन्द्रीभूत कर मन, बुद्धि, चेतना के विभिन्न सोपानों को पार करता हुआ सर्वोच्च चेतना से जुड़ता है। आत्म साक्षात्कार करता है। मनुष्य का यह उदात्तीकरण उसे 'मानव' से 'महामानव' बनाता है। यह महामानव ही सार्वभौम कल्याण एवं सामाजिक राष्ट्रीय उत्थान तथा विश्व शान्ति और बन्धुत्व का दिग्दर्शक एवं राष्ट्र निर्माता होता है। भारतीय राश्ट्रीय जागरण एवं सामाजिक पुर्ननिर्माण के पुरोधा मोहन दास करमचन्द्र गांधी के चितंन को इसी अर्थ में पढ़ा, समझा और विश्लेषित किया जा सकता है।

मानव सभ्यता की यात्रा में क्षण ही इतिहास निर्माण करता है। यद्यपि इस क्षण की प्राप्ति के पूर्व तथा बाद में भी इतिहास बनने और बनाये रखने का सतत् क्रम चलता रहता है। आधुनिक भारत के इतिहास के इन्ही महत्वपूर्ण क्षणों में प्रमुख है महात्मा गांधी का चम्पारण आन्दोलन जिसने भारत में स्वाधीनता, स्वदेशी तथा आत्मनिर्भर भारत का बीजारोपण किया। महात्मा गांधी के चितंन का विश्व व्यापी प्रभाव काल खण्ड की सीमाओं से परे हैं। आज गांधीवाद अकादमिक अध्ययन, शोध एवं अनुसंधान की अत्यंत महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक विषय–वस्तु है। इसी के साथ गाँधीवादी मानव जीवन का सर्वोच्च आदर्श है, एक सहज जीवन पद्धति है। महात्मा गांधी के चम्पारण सत्याग्रह पर विद्वानों ने बहुत कुछ लिखा है। चम्पारण सत्याग्रह की विवेचना कई सन्दर्भों में की जा सकती है, उदारणतः यह बिटिश उपनिवेशवाद तथा सम्राज्यवाद के प्रति गांधी के नेतृत्व में भारत की मुखर आवाज थी। इस आन्दोलन ने स्वराज्य एवं स्वदेशी के भाव को जनमानस के हदय में दृढ़ता से जागृत किया। चम्पारण सत्याग्रह ने भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन की परवर्ती घटनाओं पर निर्णायक प्रभाव डाला।

चम्पारण आन्दोलन का विशेष महत्व इस कारण से भी है कि इस आन्दोलन का वाहक बिहार के चम्पारण जिले का शोषित किसान था। सम्पूर्ण विश्व की शोषक, वंचित व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाने वाला शोषित समाज का व्यक्ति किसान, मजदूर तथा वह आम नागरिक होता है, जो किसी भी देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। यही लोग प्रत्येक राष्ट्र के निर्माण की नींव के पत्थर होते हैं, जिनके बिना सृजन, राष्ट्रीय नव निर्माण एवं राष्ट्र का विकास असम्भव है। गाँधी के नेतृत्व में होने वाले आन्दोलनों को अध्ययन किया जाये तो यही बात सम्पुष्ट होती है।

इसी प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के सम्पूर्ण मार्क्सवादी चितंन को भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। गाँधी और मार्क्स में साम्यता इस अर्थ में देखी जा सकती है कि दोनों ही विचारक सर्वहारा वर्ग (गरीब, कृषक, मजदूर) द्वारा सत्याग्रह और क्रान्ति की आधारशिला रखते हैं। यद्यपि गाँधी और काल मार्क्स के चितंन में आकाश–पाताल का अन्तर है। गाँधी ने मन, वचन और कर्म से प्रत्येक परिस्थिति में सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलकर नये समाज की स्थापना का समर्थन किया। इसके विपरीत कार्ल मार्क्स ने सर्वहारा वर्ग द्वारा रक्तपात पूर्ण क्रान्ति के माध्यम से शोषित पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त करने की वकालत की है। कार्ल मार्क्स इस तथ्य को समझ नहीं सके कि हिंसा से किसी भी समाज का निर्माण नहीं किया जा सकता। हिंसा शांति, मैत्री और सृजन की विरोधी है।

*एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, वाराणसी

गाँधी का सत्याग्रह साधन भी है और साध्य भी जबकि कार्ल मार्क्स की सर्वहारा की क्रान्ति साधन मात्र है। गाँधी ने स्वयं को स्थानीय जनता की समस्याओं से जोड़ने का प्रयास किया। चम्पारण किसान आन्दोलन, आहमदाबाद के टेक्सटाइल्स मजदूरों की समस्या तथा खेड़ा के कृषकों की समस्यायें गाँधी जी के प्रयासों से ठोस सकारात्मक परिणाम प्राप्त कर सकी थी। गाँधी ने 1916 में स्पष्ट कहा था कि कृषकों के द्वारा ही हम पराधीनता से मुक्ति प्राप्त कर सकते है।

जॉक पुषादास ने चम्पारण आन्दोलन का विस्तृत अध्ययन एवं विश्लेषण किया है। उनके अनुसार इस आन्दोलन का सूत्रधार गाँधी जी से प्रभावित कोई बुद्धजीवी नहीं बल्कि चम्पारण के गरीब किसान, स्थानीय महाजन और व्यापारी, स्कूल अध्यापक तथा वे सभी ग्रामीण जो तिनकठिया से पीड़ित थे, इस आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। गाँधी के चम्पारण सत्याग्रह से पूरे देश का ध्यान इस शोषक व्यवस्था पर गया और अतंतः यह प्रथा समाप्त हुयी। सुमित सरकार की पुस्तक 'आधुनिक भारत' में उल्लेख मिलता है कि गाँधी प्रतिदिन अशिक्षित जनसमुदाय को भारत प्राचीन स्वर्णयुग के स्वप्न दिखाकर उनका मन बदलने का प्रयास किया करते थे। चम्पारण के रैयतो ने गाँधी की तुलना राक्षसी व्यवस्था का अन्त करने वाले युगपुरुष श्री रामचन्द्र जी से की थी। एक रैयत ने जाँच समिति के सम्मुख अपनी भावनाएं व्यक्त करते हुए कहा था कि, 'अब गाँधी जी आ गये हैं तो काश्तकारों को राक्षस निलहों का कोई भय नहीं है।

दक्षिण अफ्रीका में गाँधी की छवि एक आदर्शवादी और विशिष्ट नेतृत्व क्षमता वाले व्यक्ति की थी, राजेश कुमार अपने शोध पत्र 'Peasents Perception of Gandhi's Champaran 1917-18 में लिखते हैं कि गाँधी की भारतीय आध्यामिक मूल्यों में दृढ़ आस्था थी वे भारत को 'The Land of Deliverance' अर्थात एक ऐसे देश के रूप में देखते है जहाँ जनसेवा मनुष्य की मुक्ति या मोझ के प्रमुख मार्गों में से एक हैं।

1915 में जब गाँधी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तो उन्होंने अनुभव किया कि उनके सपनों का भारत कहीं लुप्त हो गया है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने न केवल राजानितिक, आर्थिक और सामाजिक स्तर पर भारत को ध्वस्त किया था बल्कि पराधीनता ने भारत के सनातन सांस्कृतिक मूल्यों एवं परम्पराओं का भी क्षरण किया था। इन परिस्थितियों में गाँधी के नेतृत्व में उत्तरी बिहार के चम्पारण जिले का प्रथम सत्याग्रह आन्दोलन स्थानीय लोगों के मनोबल को ऊँचा करते हुए सामाजिक एकता की दिशा में अग्रसर होता है। बिहार प्रांत के चम्पारण जिले के साहूकार राजकुमार शुक्ला के अनुरोध करने पर चम्पारण के कृषकों से तत्कालीन ब्रिटिश सरकार द्वारा बलपूर्वक नील की खेती करवायें जाने तथा इसके परिणाम स्वरूप कृषि योग्य भूमि के खराब हो जाने के विषय पर वस्तुस्थिति को समझने तथा कृषिकों पर हो रहे अत्याचार से उनको मुक्ति दिलाने के उदेश्य से महात्मा गाँधी ने ब्रज किशोर प्रसाद, राजेन्द्र प्रसाद, नारायण सिन्हा तथा राम नाथवी प्रसाद सहित अपने कई सहयोगियों के साथ 10 अप्रैल, 1917 को चम्पारण जिले की यात्रा की।

राजकुमार शुक्ल की भूमिका इस आन्दोलन में परदे के पीछे खड़े सूत्रधार की थी उन्होंने ही गाँधी जी के मना करने बावजूद बारम्बार उनके पीछे पड़कर उन्हे चम्पारण आने एवं गरीब किसानों के लिए आवाज उठाने के लिए अवरोध किया था। गणेश शंकर विद्यार्थी की प्रेरणा से राजकुमार शुक्ल चम्पारण के किसानों की समस्या लेकर गाँधी जी से मिलने गुजरात के साबरमती आश्रम गये थे। लेकिन तब गाँधी पुणे की यात्रा पर थे और दोनों की मुलाकात नहीं हो सकी। पुनः 26 से 30 दिसम्बर 1916 तक समपन्न होने वाले भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 31 वें वार्षिक अधिवेशन लखनऊ में राजकुमार शुक्ल ने चम्पारण के निलहों से उत्पीड़ित रेयतों के प्रतिनिधि के रूप में गाँधी से मिलकर प्रार्थना की कि, 'निलहों के जुल्म से चम्पारण के रेयतों को बचाइये, चम्पारण चलकर अपनी आँखो से रैयतों की दुर्दशा देखिए। गाँधी की ओर से कोई सकारात्मक संकेत न मिलने पर पुनः एक बार राजकुमार शुक्ल ने 27 फरवरी 1917 को एक मार्मिक पत्र गाँधी को लिखा। इसके बाद गाँधी जी की मुलाकात राजकुमार शुक्ल से अप्रैल 1917 में कोलकता (पूर्व नाम कलकत्ता) में हुयी। यहाँ गाँधी ने चम्पारण जाने का निर्णय कर लिया।

अपनी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' के पाँचवे भाग के बारहवें अध्याय 'नील का दाग' में गाँधी जी ने लिखा है कि, 'लखनऊ कांग्रेस में जाने से पहले मैं चम्पारण का नाम तक नही जानता था। नील की खेती होती है इसका तो ख्याल भी न के बराबर था। इसके कारण हजारों किसानों को कष्ट भोगना पड़ता है। इसकी मुझे कोई जानकारी नही थी। राजकुमार शुक्ल नाम के चम्पारण के एक किसान ने वहाँ मेरा पीछा पकड़ा, वकील बाबू (ब्रज किशोर प्रसाद बिहार प्रसिद्ध वकील तथा जयप्रकाश नारायण के

ससुर) आपको सब हाल बतायेगें, यह कहकर वे मेरा पीछा करते जाते और मुझे अपने यहाँ आने का निमंत्रण देते जाते। इस सन्दर्भ में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए गाँधी ने कहा था कि अनपढ़ दृढ़ निश्चयों किसान के उन्हें जीत लिया था।

इस प्रकार चम्पारण पहुँचने पर गाँधी जी ने यह अनुभव किया कि चम्पारण समाज की अशिक्षा तथा अज्ञानता उनके शोषण का प्रमुख कारण है। गाँधी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि 'बिहार के बारे में जैसे–जैसे जानकारी बढ़ी मेरा यकीन पक्का हो गया कि गाँवों में स्थानीय बदलाव लाने के लिए ग्रामीण समाज को शिक्षित करना होगा। काश्तकारों की हालत दयनीय थी, वे अपने बच्चों को कुछ आने पैसों के लिए सुबह से रात तक नील की खेती में लगा देते थे।अतः महात्मा गांधी ने सर्वप्रथम वहाँ के समाज को शिक्षित जागरूक एवं आत्म निर्भर बनाने का निर्णय लिया तथा इस दिशा में कई सकारात्म कदम उठाये गये। चम्पारण आन्दोलन में महात्मा गाँधी के दबाव पर तत्कालीन ब्रिटिश सरकार द्वारा चम्पारण कृषि समिति का गठन किया गया। इस समिति द्वारा कुछ माह पश्चात चम्पारण कषषि विधेयक पारित किया गया। यह विधेयक किसानों को उनकी कृषि पर उनका स्वयं का नियंत्रण स्थापित करने तथा शोषक व्यवस्था को समाप्त करने में सफल रहा। इतिहासकार डॉ0 मृदुला मुर्खर्जी ने चम्पारण के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि, चम्पारण आन्दोलन बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह भारत में गाँधी का प्रथम राजनीतिक कार्य था। इसे गाँधी ने देश के दूरस्थ इलाके में अत्यंत शोषित समाज के लिए संचालित किया था।

चम्पारण आन्दोलन ने महात्मा गाँधी को भारतीय स्वाधिनता संग्राम के प्रमुख संवाहक के रूप में स्थापित किया। इस आन्दोलन में गांधी जी ने स्पष्ट रूप से यह दिखाया कि आत्मबल और साहस दो ऐसे मानवीय सद्‌गुण है जो शोषण मुक्त समाज की स्थापना करने में अपनी श्रेष्ठ भूमिका निभाते हैं। चम्पारण आन्दोलन के आरम्भिक चरण में जब जिला मजिस्ट्रेट ने गांधी जी को चम्पारण जिले से वापस जाने का नोटिस जारी किया था तो उन्होंने स्पष्ट कहा था कि 'मैं यहाँ मानवता और राष्ट्रीय सेवा प्रदान करने के लिए आया हूँ। चम्पारण मेरा घर है और मैं यहाँ के पीड़ित लोगों के लिए काम करूगाँ। मैं अभी इस जिले से नही जा सकता।' स्पष्ट है कि चम्पारण सत्याग्रह भारतीय स्वाधीनता संग्राम में नये युग का सूत्रपात करता है। इसके दूरगामी सकारात्मक परिणाम स्वाधीनोत्तर भारत में भी देखे जा सकते हैं। महात्मा गाँधी के नेतष्त्व में 1917 का चम्पारण आन्दोलन प्रथम नागरिक आन्दोलन था। चम्पारण आन्दोलन आमजनता के लिए एक प्रशिक्षण कार्यक्रम भी था। चम्पारण की जनता ने गाँधी के अहिंसात्मक प्रतिरोध को अपना समर्थन दिया।

चम्पारण सत्याग्रह का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि महात्मा गांधी भारतीय राष्ट्र की स्वाधीनता के साथ–साथ जब स्वावलम्बी एवं आत्म निर्भर भारत की चर्चा करते हैं इस ग्रामीण भारत के सशक्तिकरण एवं विकास पर विशेष बल देते हैं। अपनी पुस्तक हिन्द स्वराज में गांधी जी राम राज्य की स्थापना उल्लेख करते हैं। गाँधी का रामराज्य गाँव ों के विकास, स्वावलम्बी, शिक्षित तथा शोषण मुक्त समाज पर आधारित है। महात्मा गांधी का चम्पारण सत्याग्रह रामराज्य की पृष्ठभूमि तैयार करता है।

गांधी जी का दृढ़ विश्वास था कि किसी भी राष्ट्र के विकास के आधार स्तम्भ है – शिक्षा, स्त्री–पुरुष समानता, जाति के आधार भेदभाव का निषेध, सामाजिक सद्‌भाव एवं स्वावलम्बी समाज, चम्पारण में गांधी जी ने इन्हीं उदेश्यों के लिए कार्य करना प्रारम्भ किया। परवर्ती इतिहास में महात्मा गांधी के आन्दोलनों में यह बात प्रमुखता से दृष्टिगोचर होती है कि राजनीतिक स्वाधीनता, सामाजिक स्वाधीनता तथा स्वावलंबन के बिना अपूर्ण है। महात्मा गांधी ने चम्पारण में स्कूलों का निर्माण, चम्पारण की जनता को स्वच्छता एवं सफाई के प्रति जागरूक करना तथा स्त्रियों एवं अन्य छोटी जातियों के प्रति सामाजिक भेदभाव को समाप्त करने के लिए सामाजिक जागरूकता का प्रयास किया गया।

उन्होंने भारतीय आन्दोलन को मात्र राजनीतिक स्वाधीनता की प्राप्ति तक सीमित न रखते हुए उसे सत्य, अहिंसा तथा स्वावलम्बन पर आधारित भारतीय समाज के पुनर्निर्माण का बिगुल बजाया। गाँधी सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के विनाशकारी प्रभावों से परिचित थे। उन्होंने भारत में ब्रिटिश सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के 50 प्रभावों का अनुभव किया था। संस्कृतिक साम्राज्यवाद किसी भी राष्ट्र के निवासियों में वैचारिक जड़ता, सांस्कृतिक विरासत से विमुखता तथा साम्राज्यवादी विस्तार वाले देश की थोपी गयी शिक्षा एवं संस्कृति को सहर्ष स्वीकार कर लेने की मनोवृत्ति से ग्रस्त होता है। सांस्कृतिक साम्राज्यवादी नीतियों को आगे बढ़ाने वाले देश कभी भी उनके उपनिवेशों में निवास करने वाली जनता के हृदय तथा मस्तिष्क को स्वतन्त्र विचार करने का अवसर नही देते।

औपनिवेषिक शक्तियों का असिंहक प्रतिरोध तथा शिक्षा एवं आर्थिक स्वावलम्बन अपनाकर स्वतन्त्र एवं सशक्त समाज का निर्माण किया जा सकता है।

चम्पारण सत्याग्रह का स्त्रीवादी संदर्भ भी महत्वपूर्ण है। गाँधी ने अनुभव किया था कि भारतीय समाज की दुर्दशा का एक प्रमुख कारण स्त्रियों की अशिक्षा तथा उनके प्रति सामाजिक भेदभाव है। यह सामाजिक भेदभाव सामाजिक न्याय तथा स्त्री सशक्तिकरण की प्राप्ति के मार्ग की बड़ी बाधा है। गाँधी भारत को आत्मनिर्भर एवं सशक्त राष्ट्र के रूप में देखना चाहते थे। वे राष्ट्र के निर्माण एवं विकास में स्त्री व पुरुष दोनों की समान भागीदारी सुनिश्चित करते हैं।

चम्पारण आन्दोलन का आलोचनात्मक पक्ष भी है, गाँधी चम्पारण समस्या का स्थायी हल चाहते थे। इसीलिए उन्होने स्थानीय ग्रामीणों को शिक्षित तथा स्वावलम्बी बनाने के लिए कई रचनात्मक कार्य प्रारंम्भ किये थे। उन्होंने राजेन्द्र प्रसाद के सम्मुख अपने विचार स्पष्ट रूप से रखे थे और कहा था कि, 'समस्या का एकमात्र हल रैयतों को शिक्षित करना और उनके एवं निलहों के बीच निरंतर मध्यस्थता की प्रक्रिया है। लेकिन इस प्रकार के उपाय चंपारण में बहुत सफलतापूर्वक क्रियान्वित नहीं हो सके थे। गाँधी ने चम्पारण समस्या के समाधान के पश्चात् चम्पारण छोड़ते समय पन्द्रह स्वयंसेवकों को वहाँ गाँव के कल्याण के लिए स्थानीय लोगों के साथ मिल जुलकर कार्य करने के लिए छोड़ा था, लेकिन धीरे–धीरे ग्रामीण समाज की निष्क्रियता के कारण स्वंयसेवकों ने गाँव छोड़ना प्रारम्भ कर दिया और मई 1918 तक ग्राम स्तर के मात्र तीन कार्यकर्ता शेष रह गये थे। आत्मनिर्भर राष्ट्र एक संप्रभु राष्ट्र होता है जो अपने आन्तरिक एवं बाह्य मामलों में पूर्ण स्वतंत्र होता है। आर्थिक संदर्भ में आत्मनिर्भर राष्ट्र का अभिप्राय है अपने मानव संसाधन तकनीक ज्ञान द्वारा इस प्रकार शिक्षित और प्रशिक्षित किया जाय कि वे अपने राष्ट्र में उपलब्ध संसाधनों का बेहतर प्रयोग करके देश का आर्थिक विकास करने में योगदान दें। इसके साथ ही अपने राष्ट्र के उत्पादनों को विश्व अर्थव्यवस्था में मजबूती से न्योयोचित स्थान दिला सके। आत्मनिर्भर राश्ट्र की नीतियाँ उस देश की सनातन परम्पराओं एवं मूल्यों पर आधारित होती है। सच्चे अर्थों में आत्मनिर्भर राष्ट्र अपनी राष्ट्रीय संप्रभुता की सुरक्षा एवं गरिमा एवं अन्तर्राष्ट्रवाद में विश्वास करता है।

गाँधी आर्थिक विकास को मात्र औद्योगिक विकास एवं शहरी करण से नहीं मापते। उनका विश्वास था कि मात्र उद्योग धंधो पर आधारित विकास में एक बड़ा वर्ग कमजोर एवं शोषित की स्थिति में रहता है। उन्होंने आत्मनिर्भर राष्ट्र के विकास के लिए एक वैकल्पिक मॉडल प्रस्तुत किया था। गाँधी के चिन्तन में वैकल्पिक का विकास माडल गाँवों के विकास एवं सशक्तिकरण पर आधारित है। इसकी झलक चम्पराण आन्दोलन से स्पष्ट दिखाई देती है। गाँधी की इच्छा थी कि स्वाधीन भारत में केन्द्रीय स्तर से लेकर गाँवों के स्तर तक शासन की शक्तियों का विकेन्द्रीकरण हो गाँव के स्तर पर स्थानीय नागरिकों को अपने विषयों पर स्वयं निर्णय लेने का अधिकार हो। गाँव में छोटे–छोटे कुटीर उद्योग धन्धों की स्थापना की जाय जिससे कि गाँव स्वावलम्बी बन सके।

गाँधी की वैश्विक दृष्टि सत्य और अहिंसा पर आधारित एक ऐसे विश्व की कल्पना पर आधारित थी जहाँ व्यक्ति का नैतिक उत्थान परम आवश्यक तत्व है गाँधी का स्वराज्य राजनीतिक स्वाधीनता के घोषणा पत्र से आगे व्यापक दषष्टिकोण पर आधरित है। उनका स्वावलम्बी राष्ट्र कृषि पर आधारित गाँवों को स्वावलम्बी बनाने के लिए सतत प्रयत्नशील है। अपनी आत्म कथा में गाँधी लिखते है कि, 'मेरे आदर्श गाँव में मनुष्य बुद्धिमान होंगे, स्त्री और पुरुष दोनों ही आजाद दुनिया में अपने बलपूर्वक खड़े होने के योग्य होंगे'। गाँधी के आत्मनिर्भर भारत का सिद्धांत मानवतावाद एवं सार्वभौम कल्याण पर आधारित है। इस सर्न्दभ में यदि हम चम्पारण आन्दोलन पर दृष्टि डालें तब गाँधी के इस आन्दोलन की व्याख्या मात्र एक राजनीतिक घटनाक्रम के रूप में नहीं की जा सकती है। चम्पारण आन्दोलन शोषक व्यवस्था की समाप्ति तथा स्वावलम्बी भारत के दर्शन को भारत में पुनः स्थापित करने का शिलान्यास था।

स्पष्ट है कि महात्मा गांधी के लिए चम्पारण सत्याग्रह भारतीय स्वाधीनता संग्राम में गांधी जी की निर्णायक भूमिका का सूत्रपात था। चम्पारण सत्याग्रह स्वराज्य और स्वदेशी तथा आत्म निर्णय के अधिकार की प्रतिष्ठा करता है। इसकी उपादेयता सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक है। इक्कीसवीं शताब्दी के उन्नीसवें वर्ष में भारत महात्मा गांधी की 150वीं जयन्ती मना रहा है वर्तमान में भारत सरकार ने आत्म निर्भर तथा सशक्त भारत के निर्माण की प्रतिबद्धता को अपनी नीतियों एवं कार्यक्रमों का प्रधान लक्ष्य निर्धारित किया है। आत्म निर्भर भारत की प्रेरणा चम्पारण सत्याग्रह तथा परवर्ती स्वाधीनता संग्राम में गाँधी के आन्दोलनों से मिलती है।

भारतीय पुनरुत्थान एवं पुर्नजागरण के उषाकाल में (15 अप्रैल, 1917) आरंभ होने वाले इस चम्पारण आन्दोलन की प्रासंगिकता वर्तमान सन्दर्भ में भी है। वैश्वीकरण, उदारवाद तथा बाजारोन्मुख

अर्थव्यवस्था ने विश्व में साम्राज्यवाद एवं विस्तारवाद को एक नया आवरण तथा नया रंग दिया है। भूमंडलीकरण एवं बाजारवाद पर आधारित आर्थिक नीतियों ने वर्तमान विश्व के सम्मुख गंभीर चुनौतियां उत्पन्न की है। पूँजीवाद के विकृत रूप को बढ़ाने वाली इस व्यवस्था ने गरीब और अमीर के बीच की खाई को चौड़ा किया है। यह भेद समतामूलक समाज की स्थापना में साधक है। इस विषम परिस्थिति में गाँधी का चम्पारण सत्याग्रह और उनके नेतृत्व में स्वाधीनता आन्दोलन में सम्पन्न अन्य आन्दोलन सभी के लिए प्रेरणादायी हैं क्योंकि ये श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों की स्थापना पर बल देते हैं, सत्य अहिंसा, स्वावलम्बन आत्मनिर्भरता, समता, परस्पर सहयोग तथा समवेत कल्याण भाव को आत्मसात किये बिना विश्व में चिरस्थायी शान्ति निष्कर्ष एवं मैत्री की स्थापना नहीं की जा सकती।

गाँधी के नेतृत्व में चम्पारण आन्दोलन से प्रारंम्भ हुयी स्वाधीनता, स्वावलम्बन तथा सामाजिक पुनर्जागरण एवं पुनर्निर्माण की यह यात्रा स्वाधीनता आन्दोलन में कई नये स्वर्णिम अध्याय जोड़ती है। इसमें खेड़ा सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन तथा भारत छोड़ो आन्दोलन प्रमुख है। इस पूरे परिदृश्य में गाँधी एक ऐसे महापुरुष तथा राष्ट्रीय जागरण के पुरोधा के रूप में हमारे सम्मुख आतें हैं जिनके बिना आधुनिक स्वाधीन भारत की कहानी मूर्त रूप नहीं ले सकती थी। चम्पारण आन्दोलन में गाँधी के कुशल नेतृत्व से प्राप्त ऐतिहासिक परिणाम से प्रभावित होकर बंग कवि रविन्द्र नाथ टैगोर ने उन्हें 'महात्मा' के संबोधन से अलंकृत किया था।

भारतीय संविधान के निर्माताओं ने गाँधी दर्शन को संविधान की मूल आत्मा के रूप में आत्मसात किया है। गाँधी के चिंतन के अनुकरणीय पक्ष सत्य, अहिंसा, सामाजिक न्याय की प्राप्ति, विकेन्द्रीकृत राजनीतिक व्यवस्था, अस्पृश्यता का निषेध, लैंगिक एवं जातिगत भेदभाव का विरोध, विश्व बन्धुत्व एवं विश्व शान्ति भारतीय संविधान में समाविष्ट है। भारतीय मनीषा के अग्रदूत महात्मा गाँधी सदैव अपने अविस्मरणीय योगदान के लिए अमर रहेंगे।

lUnHkZ %

1. कौलेश्वर राय, 'आधुनिक भारत', किताब महल, इलाहाबाद, 1984.
2. प्रो0 के एल कमल, 'भारतीय राजनीतिक चिन्तन', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2012.
3. बिपिन चन्द्र, 'भारत का स्वतंत्रता संघर्ष', हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, 1990.
4. सुमित सरकार, 'आधुनिक भारत', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002.
5. डॉ0 गणेश प्रसाद बरनवाल, 'स्वाधीनता संग्राम से सत्ता–हस्तान्तरण', आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1999.
6. Bipan Chandra, '*Peasantry and National Integration in Contemporary India' in Nationalism and Colonialism in Modern India*, New Delhi 1979.
7. B.B. Chaudhuri, '*Growth of Commercial Agriculture and its Impact on the Peasant Economy'*, IESHR, vol. VII, No.2, Sage Publications, New Delhi, 1970.
8. D.N. Dhanagare, '*Peasant Movements in India 1920-1950'*, Oxford University Press, New Delhi, 1983.
9. Dr. Sarvepalli Radhakrishnan, '*Mahatma Gandhi: Essays & Reflections'*,Jaico Publishing House, Mumbai 1957.
10. Gail Omvedt, *Caste, Agrarian Relations and Agrarian Conflicts*, Sociological Bulletin, Vol.29, No.2, Sage Publications, retrieved from http://www.jstor.com/stable/23619174, 1980.
11. Judith M. Brown, '*Gandhi's Rise to Power: in Indian Politics 1915-1922*', Cambridge University Press, Yew York, 1972.
12. K.K.Datta, '*History of the freedom Movement in Bihar'*, Vol.I Patna : Government of Bihar, Patna, 1957.
13. M.H. Siddiqui, '*Agrarian Unrest in North India'*,The United Provinces, Delhi 1978.
14. M.K. Gandhi, '*Hind Swaraj'*, Navajivan Publishing House, Ahmedabad1938.
15. M.K. Gandhi, '*Gandhi se Mahatma Gandhi Tak*', Parag Prakashan, New Delhi 2015.
16. Rajendra Prasad, '*Mahatma Gandhi and Bihar: Some reminiscences'*, Hind Kibats Bombay,1949; *Satyagraha in Champaran*, Bombay, 1974.
17. R.K. Prabhu, U.R. Rao, '*Mahatma Gandhi ke Vichaar'*, National Book Trust, New Delhi 2002.
18. S.K.Mittal and Kapil Kumar, '*Anti-Feudal and Anti-Colonnial Struggles of Oudh Peasantry in Early 1920s'*, Social Scientist, Vol.8, No12, retrieved from https://www.jstor.org/stable/3516732, 1980.
19. P.C. Roychudhury, '*Bihar District Gazetters, Champaran', Patna*, 1960.
20. Thomas Weber, '*Conflict Resolution and Gandhian Ethics'*, Publication N. Vasudevan for The Gandhi Peace Foundation, New Delhi, 1991.

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 69-73

fgUnh nfyr vkRedFkkvk dk lekt'kkL=h; foospu

yDdh dqekjh*

धर्म का आडंबर रचने वाले वाणी को उन्होंने खूब माँजा, चमकाया तलवार की धार की तरह तेज भी किया पर दूसरों को बोलने नहीं दिया। अगर समाज के दलित पिछड़े, भुक्तभोगी बोलने लगते, तो फिर इनकी कौन सुनता? उनकी तो सोच और नीति ही थी, बस ये केवल और केवल चुपचाप सुनने और सहने के लिए पैदा हुए हैं। अपने ही तर्क को खुद ही काटना, फिर प्रतिपादित करना और फिर खंडित करना यानि बौद्धिक विलास के लिए थी उनकी बहस, उनके तर्क, उनका चिन्तन। उसमें जन नहीं था तो जनकल्याण कैसे होता? अगर जनकल्याण की भावना रहती तो समाज के दबे–कुचले की स्थिति आज ऐसी न होती। जिस नारकीय जीवन को ये भोग रहे हैं उसकी पुष्टि इन पंक्तियों के द्वारा देखी जा सकती है।.......

''उच्च जाति के हिन्दु हमेशा हमें गाली देते हैं, क्योंकि हम मानव मलमूत्र छूते हैं। इसीलिये वे हमें स्पर्श नहीं करते तथा हमसे घृणा करते हैं। मुसलमान, दयालु हैं तथा उन्हें हमें छूने में कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु हिन्दु तथा गैर भंगी निम्न जातियां हम लोगों से घृणा करती हैं। वे हमें अछूत कहती हैं, यह शब्द हमारे लिए प्रयुक्त किया जाता है। हम अछूत हैं। भंगी दासों से भी हीन हैं, क्योंकि एक दास अपने मालिक तथा कार्य को बदल सकता है, तथा वह हमेशा के लिए स्वतंत्र भी हो सकता है। किन्तु भंगी अपनी दुर्दशा को नहीं सुधार सकता। वह सामाजिक गतिविधियों एवं क्रिया कलापों से बहिष्कृत है।''[1]

हिन्दूवादी धर्म के ठेकेदारों ने ब्राह्मणी व्यवस्था को बनाए रखने हेतु दलितों को हीन भावना से ग्रसित करने का तिकड़म रचते रहे। दूसरों को न सुनना, न बोलने देना या दुर्वासा की तरह शाप देना या चाणक्य की तरह चोटी खोलकर वंश की नाश करने की कसम खाना या परशुराम की तरह अपने को श्रेष्ठ समझकर क्षत्रियों का इक्कीस बार बध करना, यह सब तो ब्राह्मणीय प्रवृत्तियाँ हैं, जो अपने को श्रेष्ठ समझने या अपना वर्चस्व कायम करने के लिए मनुवादी व्यवस्था की मददगार होती रही है। मनुवादी सोच ने प्रत्येक स्तर पर चाहे वह सामाजिक व्यवस्था हो या आर्थिक उनका शोषण करना था। शास्त्र के निर्माता भी वही थे, शास्त्र के ज्ञाता भी वही थे, बाकी पिछड़ों और दलितों को तो उनके बनाए गए नियमों का पालन करना ही उनका सबसे बड़ा धर्म भी था, और कर्त्तव्य भी। इसी नियम, धर्म और परंपरा के नाम पर समाज में इनका शोषण, दमन और उत्पीड़न होता रहा। इनको सामाजिक स्तर पर इतना दीन–हीन बनाया गया था, जिसकी एक झलक 'एक भंगी कुलपति की अनकही कहानी' में देखा जा सकता है..........

''मिडिल स्कूल में हमने दूसरी भाषा के रूप में संस्कृत विषय लिया था। मिडिल स्कूल में संस्कृत का अध्यापक एक ब्राह्मण जाति का था। उसका नाम मधा दत्त श्रीमाली था। वह एक बहुत सख्त तथा कट्टरपंथी ब्राह्मण था। वह भंगी छात्रों से विशेष रूप से नफरत करता था। वह कक्षा में प्रतिदिन हमें बेंत से पीटा करता था। इस शिक्षक ने भंगी विद्यार्थियों के जीवन में एक छाप छोड़ दी थी। स्कूलों के घंटो में यह अध्यापक हमें प्रत्यक्ष रूप से गाली देता था। यह शिक्षक न तो कभी हमारी कापियों को छूता था तथा न ही उसने कभी हमसे कविता पढ़ने को कहता अथवा अपवित्र होने के भय से हमसे कोई प्रश्न ही पूछता। जब हम को स्कूल में प्यास लगती थी, तो हम पृथक खड़े हो जाते थे। स्कूल का चपरासी अथवा कोई ऊँची जाति का लड़का मेहरबानी करके हमारे हाथों में पानी डाल देता था। कठोर रूप से पीटे जाने के भय से हमने कभी भी अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने का साहस नहीं किया।''[2]

दलित समाज हजारों साल से दबा–कुचला रहा है। शोषित, अपमानित, उत्पीड़ित, और अवहेलित रहा है। जिस कारण न तो उसके अंदर अपना स्वाभिमान बचा न ही स्वगौरव रहा। उसके पास न साहस

*शोध छात्रा, हिन्दी, W/0 अमित कुमार, सर गणेश दत्त नगर, गली सं. 04, भगवानपुर, मुजफ्फरपुर, बिहार, पिन– 842001

था, न स्वविवेक था। वह पूरी तरह से खण्ड–खण्ड और बिखंडित हो चुका था। चाहे धर्म का क्षेत्र हो, राजनीति की बाते हों, संस्कृति या परंपरा हो, सबमें वह दूसरों के द्वारा ही परिचालित और हाँका जाता रहा है। एक अनुसरणकर्त्ता की भाँति दलित वर्ग मनुवादी विचारधारा के सरंक्षकों के इशारे पर नाचता रहा। और ये धर्म के रक्षक अपने स्वार्थ पूर्त्ति हेतु केवल उनका दमन उत्पीड़न, और शोषण करते रहे। इनके शोषण का ही परिणाम था, कि उनकी जिन्दगी पशुओं से भी बदतर हो गई। इसकी वानगी कौसल्या बैसंत्री की आत्मकथा दोहरा अभिशाप में देखा जा सकता है........

''महार लोगों की संख्या बस्ती में ज्यादा थी। कुछ महार लोग नागपुर के एम्प्रेस और मॉडेल मिल में काम करते थे। यह टाटा की कपड़े की मिल थी। औरतें और मर्द दोनों ही मिल में काम करते थे। कुछ आदमी–औरतें बीड़ी बनाते कुछ औरतें बस्ती के बाहर ईसाई, पारसी, ऐंग्लो इंडियन के घरों में झाड़ू–पोछा, खाना बनाना, बच्चे संभालना वगैरह का काम करती थीं। उनकी औरतें फुरसत के समय बाँस की टोकरियाँ, सूप वगैरह बनाकर बेचती थी। जिस दिन पैसा मिलता था, उस दिन लोग खूब शराब पीते, बढ़िया खाना खाते थे। सारा पैसा एक ही दिन में खाने–पीने में उड़ा देते थे।''[3]

दलित समाज के साथ सदियों से दोयम दर्जे की नीति अपनाने वाले योगी धर्मांध पंडितों ने इनकी जिन्दगी को बेवस कर दिया। आखिर ऐसा क्यों हैं? कि इनके पेट में रोटी नहीं, तन पर कपड़ा नहीं, सिर पर छत नहीं। ये दलित खाइयों, खन्दकों में बसने का नदियों–नालों का पानी पीने को अभिशप्त हैं। इनके बीमारी के लिए दवाई नहीं, इनके बच्चे के लिए विद्यालय नहीं।

बस्ती में छोटे बच्चों की मृत्यु ज्यादा होती थी। बीमारी की हालत में भी माँ–बाप उसे घर में किसी बड़े व्यक्ति के (जैसे सास या ससुर) के भरोसे छोड़कर जाते थे, क्योंकि काम पर न जाने से उन्हें पैसे नहीं मिलते और खाने के लाले पड़ते थे। बड़ा व्यक्ति घर में न हो तो बड़ी लड़की या बड़ा लड़का इनकी देखभाल करते थे। कभी घर में बच्चों की देखभाल करने वाला कोई न हो तो उस बच्चे को अपने साथ जहाँ काम करते वहाँ ले जाते थे और पास ही किसी पेड़ या किसी बड़े घर की छाया में कपड़ा बिछाकर लिटाते। बच्चा टट्टी–पेशाब में सारा दिन पड़ा रहता था। शाम को माँ आने पर ही उसको साफ करती थी। छः–सात साल की लड़कियाँ माँ–बाप के काम पर झाड़ू–बर्त्तन, साफ–सफाई करती थीं। रेंगने वाला बच्चा हो, तो उसके पाँव में लम्बी रस्सी बाँधकर उसका एक सिरा किसी खाट से बाँध देते थे, और आसपास कुछ खाना कटोरी में रख देते थे, या मुरमुरे जमीन पर ही डाल देते थे।''[4]

हिन्दू ग्रंथों और धर्मशास्त्रों के द्वारा दलितों के मन में यह बैठा दिया गया था, इनका जन्म उच्च वर्ण की सेवा करने के लिए ही हुआ है। यहाँ की वर्ण–व्यवस्था और जाति प्रथा द्वारा हमेशा यह सिखाया जाता रहा कि उनका काम केवल उच्च जाति समाज का भरण–पोषण, उनके आदेश का पालन करना, उनके लिए अपने जीवन का हर पल समर्पित कर देना ही उनका कर्म है, उनका धर्म है, उनका फर्ज है। चाहे इसके बदले उनकी जीवन जीने की शैली पशुओं, जानवरों से ही ज्यादा बदतर क्यों न हो जाए। ब्राह्मणवादियों की मानसिकता यही थी, कि चाहे जिस स्तर से हो, जिस तिकड़म से हो, इनसे अपने स्वार्थ की सिद्धि करनी है। इसके लिए समयानुसार इनके द्वारा अलग–अलग तरीके अपनाए गए हैं। कभी पूर्वजों की परंपरा को निभाने की सीख दी जाती, तो कभी धर्म का भय दिखलाया जाता। कहीं दबाव की राजनीतिक की जाती, तो कहीं प्यार के दो शब्द बोलकर सहानुभूति दिखाकर वश में कर लिया जाता। इसी का परिणाम इनके नारकीय जीवन की छवि प्रस्तुत करती है, जो दोहरा अभिशाप के इन पंक्तियाँ में देखा जा सकता है।....

''बच्चे को ज्यादा बीमार होने पर ही डॉक्टर के पास ले जाते थे। कभी नगरपालिका के दवाखाने में या सरकारी अस्पताल में। घर में भी झाड़–फूँक करनेवाले से तंत्र–मंत्र, टोने–टोटके वगैरह कराते थे। लोग भूत–प्रेतों पर ज्यादा विश्वास रखते थे। जादू–टोने पर भी करते थे। ऐसे जाूद–टोने, टोटके करनेवाले कुछ लोग बस्ती में ही थे। खसरा, चेचक, टाइफाइड को देवी का प्रकोप मानकर वे शीतला माता की पूजा करते थे। बस्ती में माता का मंदिर था। चेचक और खसरा होने पर बीमार के घर के लोग सुबह–शाम माता के मंदिर में नीम की पत्तियाँ और पानी चढ़ाकर आते थे। सुबह–शाम नहाकर गीले कपड़ों में ही वे माता देवी के मंदिर जाते थे।''[5]

सनातन धर्म में केवल ब्राह्मणों का ही वर्चस्व था, उन्हीं की ठेकेदारी थी। जहाँ धर्म के नाम पर कुचक्र चलाया गया, जिसके तहत एक बहुत बड़ा बहुसंख्यक हिन्दू दलित समाज अपनी धार्मिक आस्था

और विश्वास का अपनी पूरी आजादी के साथ निर्वाह नहीं कर सकता था। ब्राह्मणवाद की कट्टरता का परिचय इस बात से मिलता है, कि एकमात्र ब्राह्मण को ही धर्म का सर्वेसर्वा और धर्म का उपयोग करनेवाला बताया गया। जैसे जनेऊ धारण करना, मंदिरों में पुजारी के रूप में ब्राह्मण का ही रहना। धर्म का एक ब्राह्मणवादी और मनुवादी स्वरूप कई एक जगह उजागर होता है। जहाँ उनकी मान्यता है, धर्म केवल ब्राह्मण के लिए होता है।

''आषाढ़–पूर्णिमा के दिन मंदिर में बहुत बड़ी पुजा होती थी। देवी पर बकरे–मुर्गों की बलि दी जाती थी। नारियल–गुड़ भी चढ़ाया जाता था। बच्चों के झुंड प्रसाद लेने के लिए वहाँ जम जाते थे। बलि के प्राणी का मांस घर में लाकर और पकाकर खाते थे। अब अधिकांश महार बौद्ध हो गए है और उन्होंने इस अंधविश्वास और काल्पनिक देवी–देवताओं को पूजना छोड़ दिया है। माता के मंदिर की जगह अब यहाँ बौद्ध मंदिर बन गया है। बस्ती में माँ–बाप को काम से फुरसत हीं नहीं मिलती थी। इसलिए छोटे बच्चे नंगे बदन घूमते–खेलते रहते थे मिट्टी में। किसी की नाक बह रही होती तो किसी की आंखें कीचड़ से भरी रहती। दो–तीन वर्ष के बच्चे तो नंगे ही रहते। थोड़े बच्चे कमीज और चड्डी पहनते थे। गुल्ली–डंडा या कंचों का खेल आँगन में खेलते रहते। इमली के बीज या शरीफ के बीजों से भी खेलते थे। कुछ इसाई भिक्षुणियाँ बक्से में दवाईयाँ लेकर हते में दो दिन बस्ती में आती थीं। ये भिक्षुणियाँ फ्रांस के किसी चर्च की ओर से भारत आई थीं। फ्रेंच बोलती थीं परन्तु वे मराठी और हिन्दी भी बोल लेती थीं।''[6]

हिन्दूवादी ब्राह्मणवाद के प्रबल समर्थक सदियों से चली आ रही समाज की परम्परावादी सोच की कैद में दलितों को जकड़ करके रखा। इस कारण से दलित समाज पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा, तथा वे सहज विकास से कोसों दुर रहे। इन मनुवादी विचारधारा के लोगों के द्वारा इतने प्रतिबन्ध इतनी वर्जनाएँ लागू की गईं कि उसके भीतर लोगों में कितने ही गुण और क्षमता होने के बावजूद उन्हें अभिव्यक्त करने के सारे अवसर बंद कर दिए जाते। इस वजह से कितनी ही प्रतिभाएँ काल कवलित होती चली गई। एक षडयंत्र के द्वारा ब्राह्मणवादियों ने इन्हें कभी अपनी प्रतिभा और ज्ञान को विकसित नहीं होने दिया, कहीं गुरू भक्ति के नाम पर एकलव्य की अँगूठा कटवा लिया गया, तो कहीं इाम्ब्क ऋषि को काल कवलित करा दी गई। इनका तो एक ही मकसद था, एक ही लक्ष्य था दलित समाज को प्रत्येक स्तर पर दबाकर रखा जाए, उसके लिए कोई भी षडयंत्र, करना पड़े। ब्राह्मणवादी षडयंत्र रचकर हमेशा सफल भी होते, तभी तो इसका परिणाम दलित दुर्दशा के रूप में आज भी देखने को मिलता है, जिसका स्पष्ट उदाहरण मुर्दहिया के इन पंक्तियों में देखा जा सकता है....

''गाँव में चेचक की महामारी आई। मेरे ऊपर उसका गहरा प्रकोप पड़ा। चेचक से मैं मरणासन्न हो गया। घर में स्थानीय ग्रामीण देवी–देवताओं की पूजा शुरू हो गई। उस समय गाँव में दलितों के अलग देवी देवता होते थे, जिनकी पूजा सवर्ण नहीं करते थे। हमारे गाँव में भी 'चमरिया माई' और 'डीह बाबा' दो ऐसे ही देवी–देवता थे, जिनकी पूजा दलित करते थे। गाँव के दक्षिण–पश्चिम कोण की दिशा में थोड़ी दूर पर दौलताबाद नामक एक दूसरा–गाँव था, जिसके बाहर एक सुनसान जगह पर बहुत पुराना पीपल का विशाल पेड़ था। घर वालों के अनुसार वह भूत उसी पेड़ पर रहता था।''[7]

दलित आत्मकथा के द्वारा केवल व्यक्ति की नहीं अपितु पूरे समाज को बदलने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। चूँकि यह एक समाज द्वारा दूसरे समाज के बहिष्कार, दमन और पीड़ा से उपजा हुआ वह कृति है, जिसे स्वयं भोगा गया और जो भोगा गया, उसे ही कमलबद्ध किया गया है। इस लेखनी में आत्मकथात्मक दो बार प्रताड़ित हुआ है। एक बार जब उसने पीड़ा को भोगा। दूसरी बार, पुनः एक–एक चीज एक–एक तथ्य और बिन्दु को अपने मानस–पटल पर लाकर उन तमाम नीजता को समाज के सामने रखना एक अदम्य साहस का काम है। जो दलित लेखकों ने आत्मवृत्ति को प्रकट किया, यह बन्द कमरों में कैद एक बड़ी आबादी के मुक्ति द्वार खोलने का औजार बन सकता है। मानव में मानव का रिश्ता ही समाज में व्यक्ति का स्तर निर्धारित करता है। भारतीय संस्कृति ने इसे जन्म से जोड़कर दो स्तरों का निर्माण कर दिया है। मनु के वर्ण–विभाजन के षडयंत्र के पीछे की मानसिकता के जड़ में दलितों और पिछड़ों को सभी अधिकारों से जैसे धन अर्जन, शिक्षा या पेशे चुनने के अधिकार से भी वंचित कर दिया गया था,

ताकि वे उच्च वर्ग की सेवा करते रहें। इसी कारण इनकी जीवन नारकीय और अभिशप्त होती गई, इन तथ्यों की पुष्टि हेतु हम डॉ. तुलसीराम की आत्मकथा मुर्दहिया के इन पंक्ति को देख सकते हैं............

''मेरे गाँव में मेरे अलावा कई अन्य व्यक्ति भी अपशकुन की श्रेणी में आते थे। एक थे करीब अस्सी वर्ष के बूढ़े ब्राह्मण जंगू पांडे। वे जीवनपर्यन्त कुँआरे रह गए थे। उनका अपना कोई नहीं था। शाम के समय वे अक्सर घूमते हुए दलित बस्ती में आ जाते थे। उनके आते ही विभिन्न परिवारों में खलबली मच जाती थी। नई–नई बहुओं को लोग घर के अंदर ही रहने के लिए हिदायत देते रहते थे। लोगों का मानना था कि जंगू पांडे की निगाह पड़ते ही बहुओं का अनिष्ट हो जाएगा। किसी काम से जाते हुए यदि पांडे का सामना किसी से हो जाता, तो वह लौटकर घर वापस आ जाता और थोड़ी देर तक ठहरकर अपशकुन मिटाता, फिर काम पर जाता। यद्यपि जंगू पांडे और वह पंडिताइन बेहद शराफत से बातें करते थे, फिर भी उन मान्यताओं के चलते वे बिना किसी कारण अपमानित होते रहते थे।''[8]

जहाँ बुद्धिजीवी वर्ग, अगड़ा एवं विकसित वर्ग में प्रतिस्पर्धा की भावना होती है। यह किसी भी मनुष्य और समाज के विकास में एक बहुत बड़ा प्रेरक तत्व होता है, और उसके विकास में एक तरह की संजीवनी का ही कार्य करती है। एक मनुष्य का दूसरे से आगे निकलने का होड़ उस पूरे समाज को विकास की ओर ले जाता है। लेकिन इन विकास के पुरोधा मनुवादियों की सोच रखनेवाले ने दलित समाज को जड़ एवं प्रगतिहीन बना कर रख दिया। इनको विकास के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह सामाजिक विकास हो, शैक्षिक विकास हो, आर्थिक विकास हो, आध्यात्मिक विकास हो, या साहित्य संगीत और कला का क्षेत्र हो, सबसे अवरूद्ध और वंचित करके रख दियां इनके मन में हीन भावना भर दी गई, जिससे इनका पूरा समाज कुंठाग्रस्त हो गया। और इनकी जिंदगी इनकी दिनचर्या किसी भी तरह पेट भर लेने की थीं उसके बाद इनको कुछ भी सोचने की, समझने की सामर्थ्य नहीं रह गई थी। अगर इसके आगे ये सोचते विकास करते, तो इन हिन्दुवादी संकीर्ण मानसिकता विचारधारा वाले समाज की सेवा कौन करता, फिर इनके स्वार्थ की सिद्धि कैसे होती? अपने हित के लिए इन्होंने पूरे दलित समाज को पशुता की जिंदगी जीने को विवश कर दिया, इसकी एक झलक 'मुर्दहिया' के इस अंश को देखने से प्रतीत होती है....

''बारहगांवा के चौधरी के समक्ष जो समस्याएँ लाई जाती, उनमें दो मामले बड़े विचित्र ढंग से सुलझाए जाते थे। इनमें से एक मामला होता था किसी युवती का गांव के किसी अन्य व्यक्ति के साथ यौन संबंध या उसका बिन विवाह गर्भवती हो जाना तथा दूसरा था किसी चमार द्वारा मरे हुए पशु (गाय, बैल या भैंस) का मांस खाया जाना। मरे हुए पशु का मांस खाने का संदर्भ में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि आजादी के पूर्व हमारे क्षेत्र के सभी चमार गाय, बैल तथा भैंस मर जाने का उसका मांस खा जाते थे। मेरी बुढ़िया दादी अकसर मुझे सोते समय अपनी युवा अवस्था के अनेक संस्करण सुनाया करती थीं, जो अत्यंत रोचक एवं चमत्कारक हुआ करते थे। दादी के ये संस्करण उसकी शतकीय उम्र को देखते हुए संभवतः सन् 1860 या 70 के दशक के मालूम पड़ते हैं। एक ऐसे ही संस्करण में दादी ने बताया कि जब वह ब्याह कर हमारे गांव आई तो देखा कि गांव में किसी की गाय, भैंस या बैल मर जाता तो पास स्थित जंगल में ले जाकर उसका चमड़ा निकाला जाता फिर उसके बाद गंड़ासे और कुल्हाड़ियों से काट–काटकर उसका मांस सारे दलित बांस से बनी टोकरियों में भरकर घर लाते। मांस काटने का काम प्रायः महिलाएँ करती थीं । दादी यह भी बताती कि जिस समय कोई चमार पुरुष मरे हुए जानवर का चमड़ा निकालना शुरू करता, अचानक सैकड़ों की संख्या में वहाँ गिद्ध मंडराने लगते तथा दर्जनों कुत्ते आकर भौंकने लगते थे। कुछ सियार भी चक्कर मारते किन्तु कुत्तों और महिलाओं की उपस्थिति को देखते हुए वे पास नहीं आ पाते। मरे पशु के मांस में बंदरबाट में महिलाओं के साथ कुत्तों और गिद्धों में उग्र होड़ मच जाती थी। दादी भी इस होड़ में शामिल हुआ करती थी।''[9]

सदियों से दलितों के द्वारा ऊँची जाति वालों के प्रति सलाम बजाने की प्रथा, सम्मान जताने की उत्कंठा की प्रवृत्ति ही एक को ऊँचा तो दूसरा वर्ग दासता की प्रवृत्ति की ओर उन्मुख होता रहा। सलाम बजाने की प्रथा परंपरा के नाम पर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्वतः हस्तांतरित होती रहा, चूंकि उनके बाबा इस प्रथा को निभाए, फिर पिता निभाए, आज पोते की बारी है, तो वह अपने पूर्वजों के द्वारा किए गए परंपरा को कैसे छोड़ देता? इसी परंपरा, रस्मो–रिवाज को निभाने की मनसा और उत्कंठा ने उसे दासता की बेड़ियों से निकलने ही नहीं दिया। दूसरी ओर जो ब्राह्मणवादियों का वर्ग था, उनके द्वारा उन्हें

धर्म का वास्ता देकर, परंपरा की दुहाई देकर, तो कहीं अंधविश्वास के उलझन में उलझाकर, तो कहीं दबाव और तानाशाही प्रवृत्ति अपनाकर पूरे दलित समाज की जिंदगी को पाश्विकता भरी जिंदगी में तब्दील कर दिया। इसका एक झलक डा. तुलसीराम के आत्मकथा 'मुर्दहिया' में देखा जा सकता है।

''पुजैया के दूसरे दिन दलित बस्ती के सभी लोग मिलकर एक बहुत बड़ा सूअर खरीदकर लाते थे और उसकी बलि चढ़ाई जाती थी। सूअर खरीदने की प्रक्रिया बड़ी रोचक होती थी। सूअर पालने वाले दूर–दूर के गाँवों में रहते थे। साधारणतया दलितों में पासी जाति के लोग सूअर पालते थे। हमारे गांव में कोई पासी नहीं रहता था। कभी–कभी सूअर घंटों भागता रहता था। दौड़ भी उतनी देर जारी रहती थी। अंततः उसे घेरकर मुश्किल से काबू में किया जाता था।''[10]

समाज के बुद्धिजीवी और विद्वान कहे जाने वाले वर्ग में जो वर्णवादी व्यवस्था के पक्षधर थे, उनकी दलितों के प्रति नजरिया अमानवीय थी। वे यह नहीं चाहते थे कि समतामूलक समाज की स्थापना की जाए । समाजशास्त्र को जानने से पहले समाज को जान लेना जरूरी है। समाज मतलब कि समानता से उपजा या कि समानता से पैदा हुआ। यानी कि समानता पर आधारित एक ऐसा समूह कि जिसे भीतर जीवन में रहन–सहन में और क्रियाकलापों में एकरूपता हो। लेकिन जब समाज का एक वर्ग विशेष इस एकरूपता को न लाने की तिकड़म रचता रहेगा, तो समानता की बात असंभव है। आज तक दबी–कुचली और शोषित मानवता को ठगने की कृति की जाती रही है। जाति व्यवस्था कोई आसमान से टपकी चीज नहीं है, बल्कि यह ब्राह्मणों द्वारा बनाई गई है और सदियों से इस व्यवस्था को बनाकर इसमें उलझाकर इनका आज तक हुआ मात्र शोषण, दमन और उत्पीड़न। समाज का एक वर्ग जो दुःख तकलीफ सहन करने को बाध्य है वह इसी समाज के ब्राह्मणवादी विचारधारा की देन है।

सन्दर्भ :

1. एक भंगी कुलपति की अनकही कहानी : प्रो. श्याम लाल प्रकाशक : मैसर्स यूनिवर्सिटी बुक हाउस, प्रा. लि. प्रथम संस्करणः 2004, पृष्ठ संख्या–9
2. एक भंगी कुलपति की अनकही कहानी : प्रो. श्याम लाल प्रकाशक : मैसर्स यूनिवर्सिटी बुक हाउस, प्रा. लि. प्रथम संस्करणः 2004, पृष्ठ संख्या–17
3. दोहरा अभिशाप : कौसल्या बैसंत्री, परमेश्वरी प्रकाशन, संस्करणः 2012, पृष्ठ संख्या–31
4. दोहरा अभिशाप : कौसल्या बैसंत्री, परमेश्वरी प्रकाशन, संस्करणः 2012, पृष्ठ संख्या–32
5. दोहरा अभिशाप : कौसल्या बैसंत्री, परमेश्वरी प्रकाशन, संस्करणः 2012, पृष्ठ संख्या–33
6. दोहरा अभिशाप : कौसल्या बैसंत्री, परमेश्वरी प्रकाशन, संस्करणः 2012, पृष्ठ संख्या–35
7. मुर्दहिया, डॉ. तुलसीराम, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण : 210, पृष्ठ संख्या–11
8. मुर्दहिया, डॉ. तुलसीराम, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण : 210, पृष्ठ संख्या–12
9. मुर्दहिया, डॉ. तुलसीराम, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण : 210, पृष्ठ संख्या–15
10. मुर्दहिया, डॉ. तुलसीराम, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण : 210, पृष्ठ संख्या–19

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 74-76

fojkV 0;fäRo dk elhgk ^ekgu jkds'k*

euk t d[ekj ;kno*

मोहन राकेश का जन्म अमृतसर में 8 जनवरी, 1925 को हुआ। इनके बचपन का नाम 'मदन मोहन गुगलानी' था। जो बाद में बदलकर 'मोहन राकेश' हो गया। इनके पिता 'करम चन्द्र गुगलानी' थे। इनके दादा जी एवं पिता जी बल्लभ सम्प्रदाय से जुड़े थे। इनके पिता जी वकील थे, जो कला, संगीत तथा साहित्य में भी रुचि रखते थे। इनकी माता जी धार्मिक विचारों की थीं। इस तरह मोहन राकेश को साहित्यिक माहौल परिवार से ही प्राप्त हुआ। जब इनकी उम्र 16 साल की थी तभी इनके पिता जी का देहान्त हो गया। परिवार की सारी जिम्मेदारी इनके कंधे पर आ गई। मंडी वाली गली में इनका घर था जो बाजार में स्थित था। इसलिए हमेशा शोर होता रहता था। घर में भी लड़ाई–झगड़ा को लेकर अशान्ति का माहौल था। जिससे इनका बालपन बेचैन हो जाता था। जिसका प्रभाव इनकी रचनाओं में भी दिखाई देता है। अपने बालपन के बारे में उल्लेख करते हैं कि "वह जीवन की कल्पना ही कुछ ऐसी थी, जैसे चारों ओर बुने हुए मकड़ी के जाले के अन्दर थोड़ी सी खाली जगह थी, जहाँ हम रह रहे थे, जरा भी हिलने–डुलने से उस जाले में फँस जाने की संभावना थी। अतः सुरक्षा इसी में थी कि अपने कोने में यथासंभव निश्चेष्ट रहा जाए। साहस खतरे का विषय था। जीवन का कोई भी प्रयत्न खतरे का विषय था। डिबिया में बन्द कीड़े की तरह जीना ही जीने का एक रास्ता था।"[1]

मोहन राकेश बहुत पहले से एक प्रतिभावान विद्यार्थी थे। उन्होंने सोलह वर्ष की आयु में ही शास्त्रीय परीक्षा (संस्कृत में स्नातक कला) उत्तीर्ण की, इसके बाद अंग्रेजी से स्नातक। उसके बाद वे लाहौर को प्रस्थान किए और उन्होंने वहाँ के ओरियण्टल कॉलेज में परास्नातक (संस्कृत) में नामांकन करा लिया। वहाँ उन्हें मुक्त परिवेश मिला और उनमें जीवन को समझने की भावात्मक सोच उत्पन्न हुई। स्वंय राकेश के शब्दों में–''सोलह साल की उम्र में जिंदगी ने एक चौखटे में फिट कर दिया था। जैसे भी हो अपने को उस चौखटे के आकार में ढालना था।"[2] घर का बड़ा बेटा होने के कारण जर्द मुखड़े वाले पुत्र पर अपनी माता जी बच्चन कौर तथा छोटे भाई की देख–भाल की जिम्मेदारी आ पड़ी। मोहन राकेश एक ओर नियम की माँग में तो, दूसरी ओर जीवन तथा विकास करने की उम्मीद में जी रहे थे। लेकिन अन्दर–बाहर की चंचलता इतनी ज्यादा बढ़ गई थी कि उनका कहीं मन ही नहीं लगता था। जीवन में विभिन्न समस्याओं से जूझते हुए सन् 1952 ई0 में पंजाब यूनिवर्सिटी से एम0 ए0 की परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण किए। वे क्रमशः हिन्दू कॉलेज अमृतसर तथा ओरियण्टल कॉलेज लाहौर से अध्ययन करते हुए संस्कृत तथा हिन्दी विषय से परास्नातक हुए थे।

मोहन राकेश के जीवन को जिस हृदय विदारक घटना ने सबसे ज्यादा प्रभावित किया, उसमें सबसे प्रमुख थी– उनके पिता का असामयिक निधन। परिवार पर दुःखों का पहाड़ टूट पड़ा था और रूम मालिक का बड़ा पुत्र बकाए किराए के लिए धमकियां दे रहा था कि जब तक किराया चुकता नहीं हो जाता, तब तक वह लाश को उठने नहीं देगा। बाजार में सीना ठोकते हुए वह कहा था–"मैं मुर्दा नहीं उठने दूँगा। जब तक किराया अदा नहीं किया जाता, मैं किसी को हाथ नहीं लगाने दूँगा।"[3] सोलह वर्षीय राकेश के लिए यह हृदयविदारक घटना थी, जिसकी कचोट जीवन पर्यंत बनी रही। स्वयं राकेश के शब्दों में–"वह चला गया तो अंधेरे में बहुत देर खामोशी छायी रही। जितने लोग जमा थे, वे एक–एक करके खिसक गये। पर सुबह वे लौट आये। शव–यात्रा में कोई बाधा नहीं पड़ी। माँ के हाथों की चूड़ियाँ तब तक बेच दी गई थी। किराया अदा कर दिया गया था।"[4]

*शोध–छात्र, हिन्दी विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची

मोहन राकेश व्यक्तित्व के धनी लेखक थे। वे एक अभिलाषी एवं बिंदास साहित्य सृजनकर्ता थे। मोहन राकेश के आन्तरिक व्यक्तित्व को उनकी पहली दोनों पत्नियाँ समझ नहीं पायीं। परन्तु उनकी तीसरी पत्नी अनीता औलक के लिए भी उनके आन्तरिक व्यक्तित्व को समझ पाना थोड़ा कठिन तो था परन्तु उनकी पत्नी ने अपने स्नेह के कारण उस परिस्थिति में ज्यादातर सफलता प्राप्त कर लिया था। राकेश अपने बचपन से ही अभाव, दुःख एवं तनाव आदि को करीब से महसूस किया था। शायद यही कारण रहा होगा कि वे अपने बाहरी व्यक्तित्व के जितने सम्पन्न थे उतने ही अपने अन्दर मन में बैचेनी एवं संत्रास को दबाए हुए थे। उनके व्यक्तित्व का एक हिस्सा भावनामय और दूसरा चिन्तनशील गुणों से परिपूर्ण था। राकेश के व्यक्तित्व को शब्दों की सीमा में बाँधना कठिन काम है। उनके अन्तर्मन का कष्ट, तकलीफ कभी भी उनके मुखड़े पर नजर नहीं आती थी। मोहन राकेश बाह्य रूप से जितने सहज, सरल महसूस होते थे, उतने अन्दर से अपने व्यावहारिक जीवन में नहीं थे।

साहित्य से जुड़ा व्यक्ति सामान्यतः समाज एवं परम्परा आदि के विरोध में खड़ा हो जाता है, जिसके फलस्वरूप उसकी कृतियों में इन सबका लक्षण दिखाई देता है। मोहन राकेश भी इस परिस्थिति से स्वयं को अलग नहीं रख पाए, यह धारणा उनके सम्पूर्ण जीवन–रेखा को जानने के बाद सत्य सिद्ध हो जाती है। बचपन में जब उन्हें किसी से मिलने–जुलने तथा किसी अन्य कार्य के लिए मना किया जाता तो उनके मन में विद्रोह की भावना उत्पन्न होती थी। उनके निजी जीवन के विद्रोह के चिन्ह् उनके उपन्यास–साहित्य में हमें मिलते हैं। मोहन राकेश के मिजाज की एक अन्य विशेषता यह थी कि वे एक ही तरह की जिन्दगी को हमेशा जीना नहीं चाहते थे। प्रत्येक दिन कुछ अलग सोचकर नए रूप में जिन्दगी का आनंद प्राप्त करते थे। स्वयं उन्हीं के शब्दों में–"इसमें क्या सार्थकता है कि आदमी एक ही जिए हुए दिन को बार–बार जिए फिर–फिर से उसी तरह, उसी क्रम से और उसी दायरे में। वही बातें करे– या वे नहीं तो वैसी ही। उसी तरह से। उसी तरह हैरानी जाहिर करें। उसी तरह बैठें। उसी तरह उठें और उसी तरह मुँह उठाए। कल की तरह आज भी बस के क्यू में आ खड़ा हो?"[5]

मोहन राकेश जिस प्रकार जिन्दादिल थे, उसी प्रकार आत्मसम्मानी भी थे, आत्मसम्मान उनके रग–रग में बसा था। जब उन्हें लगता है कि इस स्थिति में उनके स्वाभिमान को धक्का लग सकता है तो वे उस स्थिति से अलग हो जाते थे। उन्होंने अर्थ से अधिक आत्मसम्मान को महत्वपूर्ण माना वे आत्मसम्मान से परिपूर्ण थे। यही वजह थी कि वे अपने ऊपर हमेशा गर्व करते थे। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी वे हौसला बनाए रखे। गिरिश रस्तोगी के शब्दों में –"राकेश में एक जबरदस्त अहं हमेशा रहा है। वह कभी उपेक्षित नहीं रहना चाहते थे। सेंसिटिव भी इतना ज्यादा कि कोई भी घात बहुत ज्यादा हर्ट कर जाये। ऊपरी सहानुभूति से ही चिढ़ नहीं थी, उस हद तक सहानुभूति से भी जो उसकी अपनी पर्सनेलिटी को दबा दे। कोई आदमी अगर घटिया है तो रग–रग दुखने लगेगी। यह 'एक्स्ट्रा' आर्डिनरी स्वभाव और व्यक्तित्त्व ही उसका निजी व्यक्तित्व है।"[6]

मोहन राकेश को बनावटीपन एवं कृत्रिमता से सख्त नफरत थी। वे एक भावुक प्राणी थे। मोहन राकेश अपने दोस्तों, रिश्तेदारों, माता–पिता, पत्नी सहित परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति बहुत भावुक थे। जिसकी जानकारी उनके व्यवहार द्वारा हमें पता चलता है। वे अपनी ममतामयी माँ से बहुत प्रेम करते थे। जब उनकी माताजी का देहावसान हुआ, तो वे अंदर से बहुत टूट गए। अनेक बार माँ को याद करके उनको रोते हुए देखा गया था। वे पत्नी अनीता के बिना अपने होने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। मोहन राकेश ने अपने जीवन में लेखन के अलावा अपने मित्रों का महत्व स्वीकार किया है। वे अपने मित्रों के लिए जीते थे। वे हमेशा दोस्तों के बीच जमे रहते, चाहे काफी हाऊस हो या घर, दिल्ली हो या बम्बई उनको कई बार लगा कि उन्होंने दोस्तों का चुनाव समझदारी से नहीं किया है। फिर भी कोई मित्र कुछ कह दिया तो वे अपना सब कुछ लुटाने के लिए तैयार हो जाते थे। दोस्त के रूप में उनकी दयालुता एवं मिलनसार व्यक्तित्व का वर्णन उनके मित्रों में कमलेश्वर, भारती एवं राजेन्द्र यादव जैसे अनेक समकालीन लेखकों ने भी किया है।

मोहन राकेश के स्वभाव, रूचि–शौक में हमें बहुत सा अजीब दास्तान मिलता है। घुमक्कड़ी, हाजिरजवाब, मजाकिया एवं चिन्तनशील बातचीत उनके प्रिय शौक थे। उनके स्वभाव में जहाँ एक ओर ईमानदारी, भावुकता, स्नेह था, तो वहीं दूसरी ओर अहंकार, जिद, स्वच्छन्दता आदि गुण भी थे। मोहन

राकेश को प्रकृति से बहुत जुड़ाव था। कश्मीर, शिमला, कन्याकुमारी आदि प्राकृतिक स्थल उनके लिए आकर्षण के केन्द्र रहे। "यह (कन्याकुमारी) और यहाँ का वातावरण दोनों मुझे इस तरह प्रभावित कर रहे हैं कि बार–बार इच्छा होती है कि यहाँ एक छोटा–सा घर बना लूँ कुछ वैसा ही जैसा कि मैं कल्पना कर रहा हूँ और उसमें रहने लगूँ। साल में छः आठ महीने घूमा करूँ या अन्यत्र कहीं रहा करूँ, जीवन के प्रवाह के बीच और शेष समय यहाँ आ जाया करूँ, जीवन से जो कुछ ग्रहण किया हो उसे अपने में समाकर देखने के लिए मनन और चिन्तन के लिए।"[7]

मोहन राकेश ने एक संवेदनषील लेखक होने के बावजूद किसी भी प्रकार के बंधन को स्वीकार नहीं किया। वे अपने जीवन को अपने तरीके से जीना पसंद करते थे। इसलिए वे किसी तरह का समझौता नहीं चाहते थे। डा. गिरीष रस्तोगी के षब्दों में – "राकेष की संवेदनशीलता में संदेह की कोई गुंजाइष नहीं है लेकिन साथ ही उनका व्यक्तित्व और स्वभाव सामान्य से बिल्कुल भिन्न है 'भीड़ के बीच एकाकी' व्यक्तित्व की संज्ञा उन्हें इसलिए दी गयी अर्थात् भीड़ से बिल्कुल अलग सा दिखने वाला भी और सारे समूह के बीच भी अकेलापन की यातना से लड़ता हुआ व्यक्ति।"[8] वे फिल्म कंपनी में अपने लेखन से सर्वप्रथम त्यागपत्र देकर नौकरी की तलाश अपनी जेब में इस्तीफा लेकर करते थे। डी0ए0वी0 कालेज जालंधर, बिशप काटन स्कूल शिमला या सारिका पत्रिका का वातानुकूलित ऑफिस। कहीं भी कार्य करने में लेखक का मन ज्यादा दिन तक नहीं लगा। सन् 1962 में सारिका पत्रिका के संपादन का दायित्व ग्रहण किया परन्तु एक वर्ष में ही सन 1963 में राकेश ने यहाँ की नौकरी से भी इस्तीफा दे दिया। इस तरह से लेखक ने अपने आजाद जीवन में कोई रुकावट पैदा न हो, इस कारण से उन्होंने नौकरी के बड़े से बड़े पदों से इस्तीफा दे दिया। मोहन राकेष का पूरा जीवन अनेक प्रकार की घटनाओं, असमानताओं, आडम्बरों आदि से बहुत प्रभावित हुआ। पिता की मष्त्यु के बाद लेखक की सबसे बड़ी सहयोगी उनकी माँ थीं। अपने जीवन में अनेक प्रकार की घटने वाली घटनाओं से वे कभी विचलित नहीं हुयें, परन्तु उनकी माँ की मृत्यु के बाद वे पूरी तरह अपने आप को अकेला एवं असहाय महसूस करने लगें। माँ की मृत्यु के बाद केवल तीन महीनें में ही सन् 3 दिसंबर, 1972 को इनका निधन हो गया। इनकी इस संसार से चिरविदाई से यह दिन हिन्दी साहित्य में सबसे मनहूस दिन साबित हुआ और भारत का चमकता हुआ यह सितारा हमेषा–हमेशा के लिए दुनिया की नजरों से ओझिल हो गया।

निष्कर्षतः हम कह सकतें हैं कि मोहन राकेश के जीवन में अनेक प्रकार की स्थितियों, परिस्थितियों, आडम्बरों, विडम्बनाओं एवं सुख–दुःख आदि ने अपना असर छोड़ा, जिसके कारण उनके व्यक्तित्व पर वृहत्तर परिवर्तन हुआ। एक सामान्य मानव की तरह जीवन में हार मान लेना, घबरा जाना राकेश के व्यक्तित्व में बिल्कुल न था, वे तो एक संघर्षशील मनुष्य की भाँति जीवन के हर क्षण का, हर पल का आनंद प्राप्त करते थे और जीवन की सभी तकलीफों का सामना कर सम्मान के साथ जीवन जीते थे। मस्तमौला जीवन, स्वाभिमानी, आत्मसम्मानी, ईमानदारी, भावुकता, अहं, नूतन की जिजीविषा, लेखनी के लिए तल्लीनता, आदि विशेषताओं के द्वारा राकेश के व्यक्तित्व में एक अद्भुत ताजगी भी दिखाई पड़ती है। राकेश के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को उन्हीं के शब्दों में समझ सकतें हैं–"मैं एक असंभव व्यक्ति हूँ उसके साथ मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि मैं बहुत ईमानदार आदमी हूँ।"[9]

lUnHk %

1. सारिका, मार्च 1973, पृ0–9
2. परिवेश–मोहन राकेश, पृ0–16
3. वहीं, पृ0–10
4. वहीं, पृ0–2
5. मोहन राकेश की डायरी–मोहन राकेश, पृ0–268
6. नाटककार मोहन राकेश–डॉ0 गिरीश रस्तोगी, पृ0–43
7. मोहन राकेश की डायरी–मोहन राकेश, पृ0–22
8. मोहन राकेश और उनके नाटक–डॉ0 गिरीश रस्तोगी, पृ0–19
9. आधुनिक नाटक का मसीहा मोहन राकेश–डॉ0 गोविन्द चातक, पृ0–27

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 77-79

fiV] byDVkfud ehfM;k vkj tuekul

iYyoh dqekjh*

प्रिंट मीडिया का अर्थ है– यदि किसी सूचना या संदेश को लिखित माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने में प्रिंट मीडिया का बहुत ही बड़ा योगदान है। प्रिंट मीडिया के माध्यम समाचार–पत्र और पत्रिकाएँ हैं।

प्रिंट मीडिया, मीडिया का एक महत्वपूर्ण भाग है जिसने इतिहास के सभी पहलुओं को दर्शाने में मदद की है। जर्मनी के गुटेनबर्ग में खुले पहले छापाखाना ने संचार के क्षेत्र में क्रांति ला दी। जब तक लोगों का परिचय इंटरनेट से नहीं हुआ था, तब तक प्रिंट मीडिया ही संचार का सर्वोत्तम माध्यम था। मैग्जीन, जर्नल, दैनिक अखबार को प्रिंट मीडिया के अंतर्गत रखा जाता है। भारत में मीडिया का विकास तीन चरणों में हुआ। पहले दौर की नींव उन्नीसवी सदी में उस समय पड़ी जब औपनिवेशिक आधुनिकता के संसर्ग और औपनिवेशिक हुकूमत के खिलाफ असंतोष की अंतर्विरोधी छाया में हमारे सार्वजनिक जीवन की रूपरेखा बन रही थी। इस प्रक्रिया के तहत मीडिया दो ध्रुवों में बँट गया। उसका एक हिस्सा औपनिवेशिक शासन का समर्थक निकला और दूसरे हिस्से ने स्वतंत्रता का झण्डा बुलंद करने वालों का साथ दिया। भारत समेत विश्वभर में क्रांतियों, आंदोलनों और अभियानों आदि में प्रिंट मीडिया ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत में पहला अखबार 1780 में जेम्स ऑगस्टस हिक्की ने 'बंगाल गजट' के नाम से प्रकाशित किया था। इसके बाद तो भारत में संचार के क्षेत्र में क्रांति सी आ गई और एक के बाद एक कई अखबार प्रकाशित हुए।

प्रिंट मीडिया का मुख्य कार्य जनमानस में नव–संचार, सजीवता, जागरण, नवस्फूर्ति, सक्रियता और गतिमयता के संदेश का प्रचार प्रसार करना था। पत्रकारिता के उद्देश्यों के बारे में राष्ट्रपति महात्मा गाँधी ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किया था– ''पत्रकारिता का पहला उद्देश्य जनता की इच्छाओं और विचारों को समझना तथा उन्हें व्यक्त करना है। दूसरा उद्देश्य जनता में वांछनीय भावनाओं को जागृत करना तथा तीसरा जनता सार्वजनिक दोषों को निर्भीकतापूर्वक प्रकट करना है।''[1] प्रिंटिंग प्रेस यानी मुद्रणालय (छापाखाना) तकनीक सर्वप्रथम जोहान गुटनबर्ग द्वारा 1440 में विकसित की गई थी। 19वीं सदी के मध्य भाग में आकर जब प्रौद्योगिकियों, परिवहन और साक्षरता में और आगे विकास हुआ तभी समाचार–पत्र जन–जन तक पहुँचने लगे। देश के विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को एक जैसे समाचार, पढ़ने या सुनने को मिलने लगे। ऐसा कहा जाता है कि इसी के फलस्वरूप देश के विभिन्न भागों में रहने वाले लोग परस्पर जुड़े हुए महसूस करने लगे और उनमें 'हम की भावना' विकसित हो गई।

समाज को बदलना पत्रकारिता का ही उत्तरदायित्व है। महादेवी वर्मा की मान्यता है– ''पत्रकारिता एक रचनाशील विधा है। इसके बगैर समाज को बदलना असंभव है। अतः पत्रकारों को अपने दायित्व और कर्तव्यों का निर्वाह निष्ठापूर्वक करना चाहिए क्योंकि उन्हीं के पैरों के छालों से इतिहास लिखा जायेगा।''[2]

पत्रकारिता के इतिहास को सिलसिलेवार ढंग से देखा जाए तो पुरातन से लेकर आधुनिक स्तर तक के सफर में इसका एक नया रूप निखर कर सामने आया है। हिन्दी पत्रकारिता अपने जन्म के संघर्षशील समय और सीमित साधनों से गुजरती हुई आज वैश्विक स्तर को छू रही है। ''यहाँ 1907 में इलाहाबाद से प्रकाशित उर्दू साप्ताहिक 'स्वराज' का उल्लेख प्रासंगिक होगा, जो कुल ढाई वर्ष प्रकाशित

---

*शोध छात्रा, हिन्दी, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

हुआ। 75 अंक निकले। आठ सम्पादक हुए और उन सभी को कुल मिलाकर एक सौ पच्चीस वर्ष की कैद और काला पानी की सजा हुई। जौ की दो सूखी रोटी, एक गिलास पानी और हमेशा जेल जाने की तैयारी का आभास सम्पादक पद की योग्यता के रूप में विज्ञापित किया जाता था, फिर भी 'स्वराज' के लिए सम्पादकों का टोटा नहीं पड़ा।''[3] ''यह कहना असंगत न होगा कि अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार करने का मादा भारतीय समाज में काफी हद तक पत्रकारिता ने पैदा किया।''[4]

जनमानस में जागरूकता लाने के लिए जो भी संसाधन हमारे यहाँ है। वह निश्चय ही अंग्रेजों से प्राप्त हुआ है। चाहे समाचारपत्र हों या रेडियो, टेलीविजन या इंटरनेट, सभी माध्यम पश्चिम से ही आए। हमने शुरूआत में उन्हें उसी रूप में अपनाया लेकिन धीरे–धीरे वे हमारी सांस्कृतिक विरासत के अंग बनते चले गए। चाहे फिल्में हो या टी.वी. सीरियल, एक समय के बाद वे भारतीय नाट्य परंपरा से परिचालित होने लगते हैं। इसलिए आज के जनसंचार माध्यमों का खाका भले ही पश्चिमी हो, लेकिन उनकी विषयवस्तु और रंगरूप भारतीय ही हैं। चूंकि उसकी भूमिका भी कहीं अधिक बढ़ चली है, इसलिए जहाँ वह शासक वर्ग के लिए राष्ट्र निर्माण की दिशा तय करता है, वहीं जनता की भागीदारी भी सुनिश्चित करता है।

संचार साधनों में आज के दौर में विज्ञापनों ने तो ऐसी धूम मचा रखी है कि प्रत्येक समाचार–पत्र में, टी.वी. चैनलों पर, इंटरनेट पर, पत्र–पत्रिकाओं के कोने–कोने में इन्होंने अपना घर बना रखा है और वह भी ऐसी विभिन्नता के साथ कि आप चाह कर भी अपना ध्यान इनसे हटा नही सकते। वैश्वीकरण के दौर और संचार माध्यमों में अत्यधिक वृद्धि के कारण इसने दिन दुगुनी और रात चौगुनी तरक्की की है।

''आज विज्ञापन हमारे जीवन की दिनचर्चा का एक अभिन्न अंग बन गया है। व्यवसाय में उत्तरोतर विकास, अपने उत्पाद मांग को बाजार में बनाए रखने, नई वस्तु का परिचय जन–मान्य तक प्रचलित करने, विक्रय में वृद्धि करने तथा विज्ञापन की आवश्यकता अनुभव की जाती है।''[5] वैश्विक स्तर से आज विज्ञापनों के प्रत्येक पहलू को आधार बना आज विभिन्न प्रकार के विज्ञापन बाजार की शोभा बने हुए है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भारत में पिछले 15–20 वर्षों में घर–घर पहुँच गया है फिर चाहे वह शहर हो या ग्रामीण क्षेत्र। इन शहरों और कस्बों में केबल टी.वी. से सैकड़ों चैनल दिखाए जाते हैं। एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार भारत के कम से कम 80 प्रतिशत परिवारों के पास अपने टेलीविजन सेट हैं और मेट्रों शहरों में रहने वाले दो तिहाई लोगों ने अपने घरों में केवल शहर से दूर–दराज के क्षेत्रों में भी लगातार डी.टी.एच– डायरेक्ट टू होम सर्विस का विस्तार हो रहा है।

इससे फायदा ये हुआ है कि हजारों मील दूर की गतिविधियों की जीवंत जानकारी पलभर में मिल जाती है। रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, इंटरनेट व मल्टीमीडिया इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के अवयव हैं। नई पत्रकारिता में केवल समाचार प्रसारित करना एकमात्र उद्देश्य नहीं है, बल्कि मनोरंजन, विचार–विश्लेषण, समीक्षा, साक्षात्कार, घटना विश्लेषण, विज्ञापन और किसी न किसी सीमा तक समाज को प्रभावित करना भी इसके उद्देश्यों में निहित है।

निष्कर्ष यह है प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति कायम रखी है। समाज की हरएक सच्चाई को जनता तक पहुंचाने में इसकी अहम भूमिका है। प्रिंट से आरंभ हुई यह विधा अब रेडियो, टी.वी. तथा इन्टरनेट पर भी पूरी तरह से स्थापित हो चुकी है। आज की पत्रकारिता में सफल होने के लिए समाचार बोध के साथ–साथ फीचर बोध भी जरूरी समझा जाने लगा है।

सचित्र रंग–बिरंगे नजारे बिखेरने वाले दिलकश शैली में लिखे गए फीचर तथा किसी विशिष्ट तथ्य को नाटकीय ढंग से प्रभावात्मक आवाज, ध्वनि एवं चित्रों के माध्यम से प्रसारित फीचर अब हर रोज पढ़े और देखे जाते हैं। इससे फीचर की बढ़ती महत्ता का पता चलता है। और तो और ज्ञानवर्द्धन एवं मनोरंजन करने के साथ–साथ यह विधा अब रोजगार के अवसर के रूप में भी उभरकर आ रही है। अतः

स्पष्ट है कि प्रिंट से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने अपनी कार्यशैली से जनमानस को चैतन्य किया है। जिसका भविष्य उज्जवल और संभावनाओं से ओतप्रोत है।

lUnHkZ %

1. पत्रकारिता का सामाजिक दायित्व, हिन्दी पत्रकारिता का विकास, एन.सी.पन्त, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1994, पृ.सं. 267
2. पत्रकारिता और सामाजिक दायित्व, पत्रकारिता के सिद्धांत, डॉ. रमेशचंद्र त्रिपाठी, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1995, पृ.सं. 255
3. भारतीय पत्रकारिता कोश, खण्ड दो, श्रीधर विजय दत्त, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.सं. 489
4. भारतीय पत्रकारिता कोश, खण्ड दो श्रीधर विजय दत्त, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.सं. 487
5. हिन्दी भाषा प्रयोजनमूलकता एवं आयाम, डॉ. देवेन्द्र कुमार, डॉ. हरमोहन लाल सूद, वागीश प्रकाशन, जालंधर 2010, पृ.सं. 180

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 80-84

f'koiitu lgk; d dFkrj x| lkfgR; dk lonukRed i{k

jf'e fiz;k*

हिन्दी में कथेतर गद्य का प्रयोग नया है। लघु गद्य विधाओं की समृद्धि में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। साहित्य में कहानी, उपन्यास और नाटक जैसी प्रमुख गद्य विधाओं से हटकर गद्य की लघु विधाओं में जो प्रयोग हो रहे हैं, उनकी संरचना अभी स्थिर नहीं हुई है। आत्मकथा में जीवनी, जीवन्त में संस्मरण, डायरी आदि का मिश्रण होता रहता है। हिन्दी के गद्य साहित्य का आविर्भाव प्राचीन काल में हुआ था। परन्तु निश्चित समय के विषय में बड़ा मतभेद है। कारण, प्राचीन गद्यग्रन्थ दुर्लभ हैं। प्राचीन हस्तलेखों की बहुत बड़ी राशि आज भी देश भर में जहाँ–तहाँ बिखरी पड़ी है। जो पुरानी पोशियाँ कहीं–कहीं संग्रहालयों में पड़ी हुई है। उनमें से भी अधिकांश का निरीक्षण–परीक्षण और अध्ययन इस मुद्रण युग में नहीं हो रहा है। अनेक प्राचीन संस्कृत–ग्रन्थों में गद्य का रूप मिलता है। फिर संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य से पूर्णतः प्रभावित हिन्दी में गद्य का अभाव मानना तर्कसंगत नहीं है।

हिन्दी गद्य साहित्य का इतिहास बहुत विस्तृत है। वर्तमान युग में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज होने लगी है। विभिन्न सरकारी साहित्यसेवी संस्थाओं का ध्यान भी इधर आकृष्ट हुआ है। कुछ साहित्यिक प्रतिष्ठानों और शोध–संस्थानों की ओर से यह काम व्यवस्थित रूप से हो रहा है। खोज के विवरण भी प्रकाशित होते रहते हैं। हिन्दी गद्य संबंधी रचना प्राप्त हुए। उसकी रचना के समय का कोई निश्चित प्रमाण नहीं है जिससे इसके रचनाकाल पर संदेह किया जाता रहा है। हिन्दी में जो बचे–खुचे पुराने गद्य–ग्रन्थ मिले हैं। वे गोरखनाथी पंथ के साम्प्रदायिक ग्रंथ हैं और उनका समय लगभग चौदहवीं–पन्द्रहवीं शती अनुमित है। उनकी भाषा में प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के शब्द पाये जाते हैं। विद्वानों ने भाषा को ब्रजभाषा–गद्य का पुराना रूप माना है। हिन्दी भाषा की वकालत करते हुए मंगलमूर्ति ने कुछ इस प्रकार कहा है– ''हिन्दी एक ऐसी भाषा है, जिसका प्राचीन साहित्य बहुत उन्नत और समृद्ध तथा आधुनिक साहित्य बहुत विस्तृत और प्रगतिशील है। इसकी लिपि देवनागरी भी वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण एवं निर्दोष मानी जाती है। इसकी सरलता या सुगमता की बराबरी करनेवाली कोई दूसरी भाषा नहीं है।''[1]

कथेत्तर गद्य साहित्य का प्रयोग हिन्दी में नया है। हिन्दी साहित्य के इस विपुल संसार में आचार्य शिवपूजन सहाय ने इस नयापन को आगे बढ़ाने का काम किया। निबंध, आत्मकथा, डायरी, संस्मरण आदि कथेत्तर साहित्य की विधाओं में अपनी रचना प्रस्तुत की। उनकी रचनाओं में हमेशा एक नया प्रयोग दिखता है। आचार्य जी साहित्यकार के साथ–साथ एक सजग पत्रकार भी थे। उनका साहित्यिक निबंधों का एक संग्रह 'हिन्दी भाषा और साहित्य नाम से प्रकाशित हुआ था। जो समस्त साहित्यिक रचनाओं खासकर निबंध विधा के क्षेत्र में एक नवीन दृष्टि है। हिन्दी भाषा और साहित्य संग्रह की परिचर्चा में अनेक संपादकीय टिप्पणियाँ की गई– ''हिन्दी भाषा और साहित्य आचार्य शिवपूजन सहाय के महत्वपूर्ण साहित्यिक निबंधों का संकलन है। यह संकलन उनकी समस्त साहित्यिक रचनाओं, लेखों, अग्रलेखों, भाषणों, संपादकीय टिप्पणियों एवं समीक्षाओं में से चुनकर तैयार किया गया है। विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रसंगों में लिखी गई शिवजी की ऐसी रचनाएँ पत्र–पत्रिकाओं में समय–समय पर प्रकाशित होती रही और पुस्तकाकार में संकलित नहीं हो पाई, यद्यपि उनमें शाश्वत महत्व की ऐसी रचनाओं का एक बहुत बड़ा समुच्चय विकीर्ण था। जिनमें साहित्यिक निबंध की विधागत अन्विति सहज ही परिलक्षित होती थी।

*शोध–छात्रा हिन्दी, बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

हिन्दी भाषा और साहित्य से संबद्ध ऐसी सभी रचनाओं को संकलित करना इसीलिए समीचीन प्रतीत हुआ। पुस्तक का शीर्षक इसी की ओर इंगित करता है। आचार्य शिवपूजन सहाय ने एक से बढ़कर एक साहित्यिक निबंधों की रचना की जो सिर्फ एक निबंध ही नहीं अपितु वह निबंधों का प्रतिनिधित्व करता है।

आचार्य शिवपूजन सहाय ने एक अनेक महत्वपूर्ण निबंधों की रचना की। जिसमें कुछ निबंध संकलित हुए तथा कुछ असंकलित भी रहे। आचार्य जी के एक से बढ़कर एक महत्वपूर्ण निबंध है। उनके संकलित और असंकलित निबंधों का संग्रह कर आचार्य शिवपूजन सहाय के कनिष्ठ पुत्र डॉ0 मंगलमूर्ति ने शिवपूजन सहाय साहित्य समग्र खण्डः3 में संपादित किया। आचार्य जी द्वारा लिखे गये महत्वपूर्ण निबंधों की नवीन विवेचना की वे एक ऐसे लेखक थे जिन्होंने हिन्दी नवजागरण में अपने को स्थापित किया। बीसवीं शताब्दी के एकदम आरंभ के वर्षों का वह हिंदी नवजागरण बहुत व्याख्या की जरूरत नहीं रखता जिसमें प्रेमचंद, निराला, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, शिवपूजन सहाय जैसे लेखकों की एक अपनी ठोस निश्चित जमीन थी। वे हिन्दी नवजागरण के बहुत सारे पक्षों को अपने लेखन से चरितार्थ करने वाले लेखक थे। उनसे साहित्य का शायद ही कोई पहलू अनछूआ रहा हो। साहित्य में प्रयोग की परम्परा पुरानी है। साहित्य अनेक विधाओं में विकसित हुई। जिसमें कुछ पारंपरिक रूप में चली और कुछ नये रूप में सामने आईं। आज कहानी, उपन्यास और नाटक जैसी प्रमुख गद्य विधाओं से हटकर गद्य की लघु विधाओं में जो प्रयोग हो रहे हैं उनकी संरचना अभी स्थिर नहीं हुई है। आत्मकथा से जीवनी, जीवन्त में संस्मरण, डायरी आदि मिश्रित रूप में आते रहते हैं। कथेतर साहित्य में इसे नये रूप में देखा जा सकता है।

आचार्यजी ने संस्मरण, आत्मकथा, जीवनी और डायरी जैसी गद्य की लघु विधाओं में उच्च स्तरीय लेखन किया है। ''संस्मरण शिवपूजन सहाय के सृजन–शिल्प का मुख्य उपकरण है। वह उनके कथा–साहित्य का भी केंद्रीय तत्व है। 'देहाती दुनिया' अथवा 'कहानी का प्लाट' या उनकी कुछेक और कहानियों में भी संस्मरण ही उनका केंद्रीय दृष्टि–बिंदु है। उनके संपूर्ण रचना संसार में, बल्कि बहुत सारे निबंधों और टिप्पणियों में, यहां तक कि कई संपादकीय वक्तव्यों में भी, संस्मरण का यह केंद्रीय तत्व बार–बार झलक उठता है, जैसे संस्मरण ही उनके संपूर्ण साहित्य–गायन का वादी स्वर हो''[2]

पंडित रामप्रकाशजी के घर पर एक बार उनके गुरु परमहंसजी आये थे। मेरे माता–पिता ने बड़ी भक्ति से परमहंसजी के दर्शन किये थे। मेरे एक चाचा ने परमहंसजी से प्रार्थना की थी। मेरे पिताजी संकोचवश कुछ निवेदन न कर सके। किन्तु चाचाजी की प्रार्थना सुनकर परमहंसजी ने कहा कि शिवजी की अराधना करने से संतानोत्पत्ति होगी।

पंडित रामयत्न पाण्डेय ने काशी में रहकर विश्वनाथजी की और देवघर में रहकर वैद्यनाथजी की कई महीने तक अराधना की। यह शिवाराधना परमहंसजी के आदेशानुसार हुआ। पूजा की पूर्णाहुति के बाद चाचाजी को परमहंसजी को बुलाया और अपने अग्निहोत्र–कुण्ड से दिव्य विभूति दी। उसी के प्रताप से मेरी मृत वत्सा माता सन्तानवती हुई।

मेरे जन्म का संवाद परमहंसजी के पास वही चाचाजी ले गये। उन्होंने नामकरण करके जो भविष्यवाणी की थी वह सफल हो गई। परमहंसजी के आशीर्वाद की चर्चा मेरी माता बराबर किया करती थी। पिताजी और चाचाजी भी कभी–कभी परमहंसजी के उपकार का स्मरण कर लेते थे।

तपस्या का प्रभाव अमर होता है। परमहंसजी के अग्निहोत्र–कुण्ड के चुटकी–भर भस्म से एक मृतवत्सा की कोख फलवती हो गई। उस दिव्य विभूति के एक–एक कण में जो अद्‌भुत शक्ति थी वही मेरे जीवन–निर्माण में सहायक सिद्ध हुई। मेरे मन में ईश्वर भक्ति का बीज उसकी शक्ति ने बोया। उसी शक्ति ने मुझे सुखी–यशस्वी बनाया।''[3]

शिवपूजन सहाय हिन्दी के ऐसे लेखक थे जिन्होंने हिन्दी साहित्य को केन्द्रीय दृष्टि दी। उनका सम्पूर्ण रचना–संसार 'ग्रामीण–भारतीयता' का प्रक्षेपण है। उनकी रचनाएँ साहित्य की विभिन्न विधाओं को समृद्ध किया है। उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन में एक जगह खुद भी स्वीकारा है– 'प्राचीनता को मैं छोड़ नहीं सकता और नवीनता मुझसे एक कदम आगे बढ़ नहीं सकती'। उनमें एक और ग्रामीण भारतीयता दूसरी

ओर प्राचीनता और नवीनता का अद्‌भुत समन्वय है। अपनी आत्मकथा में शिवपूजन सहाय ने लिखा है कि जब वे 1910 में मैट्रिक में पहुँचे, उसी साल से पहले–पहल उन्होंने विधिवत हिन्दी पढ़ना शुरू किया। उससे पहले उनका हिन्दी का अभ्यास रामचरितमानस के नियमित पाठ तक सीमित था और स्कूल में वे बराबर उर्दू–फारसी ही पढ़ते आये थे। उन दिनों हिन्दी पढ़ने वाले छात्रों की संख्या उसी तरह इक्की–दुक्की हुआ करती थी जैसे आज के दिन उर्दू–फारसी या संस्कृत पढ़ने वालों की हो गई। लेकिन स्कूल की पढ़ाई के अलावा उनका सारा समय हिन्दी की पत्र–पत्रिकाओं और पुस्तकों को पढ़ने में लग रहा था। शिवपूजन सहाय का आरा (बिहार) से गहरा संबंध था।

शिवपूजन सहाय के रचनाओं की भाषा प्रारंभिक दौड़ में अलंकृत और संश्लिष्ट रही है। अपने साहित्यिक जीवन का प्रारंभ उन्होंने भाषा–शैली की साधना में की। वे भाषा के प्रति बहुत सजग थे। इसे इस प्रकार देखा जा सकता है– ''शिवपूजन सहाय के साहित्यिक जीवन का प्रारंभ हम 1910 से मान लें तो अगले 10 वर्ष उनके लिए भाषा–शैली के साधना के वर्ष थे। इस दशक में उन्होंने जितने भी आदर्शमूलक अथवा लतीत निबंध या गल्प लिखे वे सभी उनकी भाषा–साधना के प्रारंभिक चरण के रूप में देखे जा सकते हैं। उनकी ये रचनाएँ शिक्षा (पटना), लक्ष्मी (गया), मनोरंजन एवं साहित्य पत्रिका (आरा) जैसी शुद्ध साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं जो सभी प्रादेशिक स्तर की ही पत्रिकाएँ थीं। इन पत्रिकाओं के सम्पादक भी (लक्ष्मी के संपादक लाला भगवानदीन को छोड़कर, जो उत्तर प्रदेश के थे) सभी आरा के थे। मनोरंजन के सम्पादक पंडित ईश्वरी प्रसाद शर्मा तो इनके सखा–सहपाठी और शिक्षक–सहकर्मी ही नहीं, सर्वतोभावेन साहित्यिक अभिभावक भी थे।''[4]

आचार्य शिवपूजन सहायक साहित्य के सजग–प्रहरी थे। साहित्य–सेवा उनके संस्कार में रचा–बसा था। डायरी लेखन उनके दैनिक आदतों में शामिल था जिसे उनके कनिष्ठ पुत्र सह संपादक मंगलमूर्ति ने साहित्य समग्र (साहित्य–समग्र शिवपूजन सहाय) में संकलित किया है। आचार्यजी की साहित्यिक रचनाधर्मिता कुछ इस तरह है – ''शिवपूजन सहाय हिंदी के संभवतः एकमात्र ऐसे लेखक हैं– और विश्व साहित्य में भी ऐसे लेखक बिरले ही होंगे, जिन्होंने अपने सृजनात्मक जीवन के लगभग पचास वर्षों तक नियमित रूप से प्रतिदिन डायरी लिखने का अभ्यास बनाये रखा। अपने छात्र जीवन में उनका यह अभ्यास संभवतः 1906 में प्रारंभ हो चुका था, यद्यपि बाद में अपने बहुत सारे प्रारंभिक आलेखों और पत्रों के साथ उन्होंने अपनी शुरू की। उन डायरियों को भी जला डाला था।

'होली में सभ्यता का नाश' को शिवपूजन सहाय ने अपनी सबसे पहली प्रकाशित रचना बताया है, जो पंडित सकलनारायण शर्मा– संपादित एवं खड्‌ग विलास प्रेस, पटना से प्रकाशित पत्रिका 'शिक्षा' में फरवरी, 1912 में छपी थी। यही समय था जब वे आरा की नागरी प्रचारिणी सभा में वहाँ के साहित्यकारों के नियमित सम्पर्क में आ चुके थे। और इन्हीं दिनों कुछ समय के लिए वे कचहरी की मुलाजिमा के सिलसिले में बनारस भी रहे थे और वहां के प्रमुख साहित्यकारों के सम्पर्क में पहली बार आये थे। बाद में 1914 से 1920–21 तक वे स्कूल शिक्षक रहे और इसी दूसरे दशक में एक अत्यंत प्रतिभाशाली उदीयमान लेखक के रूप में वे सम्पूर्ण हिंदी जगत में ख्यात हो गये। उनकी 'मुंडमाल' कहानी 1916 में ही लिखी जा चुकी थी और अगस्त 1923 में जब 'मतवाला' निकला तो उसके प्रथमांक के अग्रलेख ''आत्म–परिचय' के कारण संपूर्ण हिन्दी जगत में उनकी अप्रतिम शैली की धूम मच गई। साल लगते–लगते जब दुलारे लाल ने उन्हें प्रेमचंद की 'रंगभूमि' संपादित करने के लिए ही तो पुस्तक प्रकाशित होते ही फरवरी 1925 में उसकी प्रति भेंट करते हुए स्वयं प्रेमचंद ने उनको लिखे एक पत्र में इन शब्दों में अपनी कृतज्ञता जताई–लीजिए जिस पुस्तक पर अपने कई–महीने दिमागरेजी की थी वह आपका एहसान अदा करती हुई आपकी खिदमत में जाती है और आपसे विनती करती है कि मुझे दो–चार घंटों के लिए एकांत का समय दीजिए।''[5]

आचार्य शिवपूजन सहाय की साहित्यिक कृतियाँ सिर्फ साहित्य–रचना ही नहीं है वरन् एक जीवंत दस्तावेज है। डायरी–लेखन की आदत उनमें शुरू से रही है। डायरी के साथ–साथ अपनी दिनचर्या लिखना भी उन्हें पसंद था। 'प्रत्यहं प्रत्यवेक्षित नरश्चरितमात्यमनः' नाम से उनके विचार को देखा जा सकता है– ''रात की एकान्त शान्ति में डायरी लिखते समय यह भावना मन में उठी कि नित्य–नित्य की

दिनचर्या लिखने से क्या लाभ। बहुत सोचने पर अन्दर से आवाई आई कि दिनचर्या से मनुष्य के जीवन की परख होती है। यदि सच्चाई के साथ दिनचर्या लिखी जाय तो मनुष्य–जीवन के अनेक रहस्यों का उद्घाटन हो सकता है। किन्तु दिनचर्या लिखने पर अपने अनुभवों और विचार कृत्रिम न हों। आखिर क्या प्रमाण है कि मेरे अनुभव मनगढ़ंत नहीं है– मेरे विचार बनावटी नहीं हैं? बस प्रमाण के साक्षी राम हैं। हे प्रभों! जीवन में जो सच्चाई का अंश हो उसे दुनियाँ में रहने देना, असत्य का अंश तो कभी टिकाऊ होता ही नहीं।''[6]

10 खण्डों में प्रकाशित आचार्य शिवपूजन सहाय का सम्पूर्ण साहित्य का संपादन उनके पुत्र मंगलमूर्त्ति ने किया। साहित्य का सातवाँ खण्ड डायरी–दो के रूप में प्रकाशित हुआ जिसमें पहला भाग 'जीवन–दर्पण' (1956–1963) तथा दूसरा 'आत्म–नन्दिनी' (विचार डायरी) है। उनकी डायरी के अन्तर्गत विभिन्न वर्षों में महत्वपूर्ण 'स्मरण–पत्र' के रूप में है वे किसी लघुकथा से कम नहीं है। अपनी बात को रखने की गजब की शैली थी। शिवजी में– ''1. मेरी बड़ी बहन की बड़ी बेटी 'चन्द्रकली' अपने दोनों पुत्रों (मदनजी और गोपालजी) तथा अपनी छोटी पुत्री के साथ मुझे देखने के लिए आई। उसकी शादी मदरिहा गांव में हुई है। जब मेरे बड़े बहनोई जीवित थे तब मैं वहाँ शादी ठीक करने गया था। पुरानी बातें याद हो आई।

उनके हर एक संस्मरण–पत्र में एक संदेश है– ''1. पहली अप्रैल (मूर्ख दिवस) के उपलक्ष्य में विनोद शर्मा के अभिनन्दनग्रन्थ का एक मुद्रित पत्रक मिला था, जिसे 'सरस्वती' सम्पादक पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी ने प्रचारित किया था। इस पर एक लेख दिल्ली के साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' में छपा, जिसके लेखक थे पंडित किशोरीदास वाजपेयी। ऐसे व्यंग्य विनोदों से साहित्यिक आनन्द की वृद्धि होती है।''[7]

आचार्यजी के हर एक विचार प्रसंग अत्यंत महत्वपूर्ण हैं जिसकी कुछ सूचियाँ निम्न है–

1. पटना के हिन्दी पुस्तक प्रकाशकों में एक भी ईमानदार होता तो हिन्दी साहित्य सेवियों की दशा दयनीय न होती। ईमान खो देने पर जो उन्नति नजर आती है वह चार दिन की चाँदनी है। कभी न कभी पाप का घड़ा भरकर फूटता ही है।
2. 'सौजन्य' और गायिका के स्थान पर 'सौजन्यता' और 'गायकी आज भी कुछ लोग लिख देते हैं। संस्कृत का नियम जाने बिना शुद्ध हिन्दी लिखना कठिन है। किन्तु हिन्दी तो परम स्वतंत्र भाषा है।
3. कलकत्ता में हिन्दी विरोधी आन्दोलन चलाने वाला अखिल भारतीय भाषा सम्मेलन होने जा रहा है। देशद्रोही विद्वानों का दल प्रभु की ईच्छा से ही एकत्रित हो रहा है। यह देश का दुर्भाग्य है। द्वेशवश भाषा समस्या का संकट।
4. बिहार के साहित्यिक इतिहास की प्रस्तावना को दुहराने लगा तो अनेक स्थलों में काफी हेर–फेर कर देना पड़ा। शशिनाथ जी से लिखवाया। बिहार के साहित्यिक इतिहास की संकलित सामग्री का संपादन किया। उक्त इतिहास के प्रथम प्राचीन खण्ड को बजरंगजी साफ उतारते हैं।
5. डायरी रोज लिखनी चाहिए। भगवत्कृपा से ही यह नियम निबहता है। रुग्णावस्था में मन अशान्त रहने पर यह काम ठीक नहीं होता। परन्तु अशान्ति के क्षणों में ईश्वर–प्रार्थना की भावना भी अंकित हो जाये तो शुभ ही है। डायरी ही नवीन–दर्पण होती है। यदि सारा जीवन ईश्वर की प्रार्थना से ओत–प्रोत हो तो अनावश्यक बातें लिखने से लाभ ही क्या। संसार के हितार्थ मनोरंजक बातें लिखना व्यर्थ है।
6. अब जीवन का एकमात्र लक्ष्य है साहित्यिक इतिहास को पूरा करना। भगवान ने इस शुभ कर्म में सन् 1915 ई0 से ही लगा दिया यथा नियुक्तिऽस्मि तथा करोमि।
7. हिन्दी में मुतखोर सम्पादक बहुसंख्यक है। सभी यही लिखते हैं कि आपके (मेरे) ही भरोसे पत्र प्रकाशित करने जा रहा हूँ। न जाने ऐसे लोगों के पत्र निकालने से हिन्दी का गौरव कैसे बढ़ेगा।
8. परोपकार ही सबसे बड़ा पुण्य और धर्म है। परोपकार करने की शक्ति मुझमें नहीं है। परोपकार कर ने योग्य धन भी नहीं है। परोपकार करके उसे भूल जाना चाहिए। मैं लिख देता हूँ तो उसका महत्व घट जाता है। दिनचर्या में जो कुछ लिखता हूँ, अपने जीवन के संस्मरण के रूप में जिससे अपने जीवन की प्रगति का अन्दाज मिलता चले।

9. लज्जा का विषय है कि अँगरेजी में सभी पदाधिकारी बोल सकते हैं और हिन्दी में नहीं। अँगरेजियत इस तरह नसों में पैठ गई है कि अँगरेज ही पूर्वज मालूम पड़ते हैं। अँगरेजों की शारीरिक सन्तान यहाँ कोई नहीं; पर मानसिक और सांस्कृतिक सन्तानें बहुत हैं। मुसलमानी शासन का अंत होने पर कुछ वर्षों तक भाषा की गुलामी इसी तरह रही।
10. सूर्योपासकों की संख्या कनिष्ठिकाधिष्ठित मात्र रह गई है। इस युग में, इसी से सूर्य का ताप अत्यंत असह्य हो रहा है।
11. मन में भाव उठा कि रमता योगी बन संतों के समाज में मिल जाऊँ और भारत भ्रमण करके देशाटन वर्णन लिखूँ। यात्रा वृत्तांत बहुत रोचक होगा। साहित्यिक भूगोल लिखने के लिए तो प्रत्यक्ष अनुभव अत्यावश्यक है। सन्तमण्डली के साथ पर्यटन करने में कोई खर्च नहीं है।
12. साहित्य की रचना करनेवालो में शील और चरित्र की आवश्यकता है। सुशील और सच्चरित्र तथा श्रद्धालु साहित्यसेवी का रचा हुआ साहित्य ही लोकोपकारक हो सकता है। चरित्रहीन को रचा साहित्य क्षणभंगुर होता है।
13. हिन्दी संसार की जनता अभी मूढ़ ही अधिक है। जनसाधारण में अभी साहित्यिक चेतना नहीं जगी है। लोग साहित्य के सच्चे अनुरागी नहीं हैं। हिन्दी के प्रति श्रद्धाभक्ति भी कम है। जो कुछ है वह दिखाऊ और बनावटी है। उसमें तत्व–तथ्य कम है।
14. गंगातट पर गन्दगी फैलानेवालों को गंगा स्थान का पुण्य नहीं प्राप्त होता। जो गंगातट की गंदगी साफ करने में स्वयं परिश्रम करता–कराता है वही गंगास्नान का सारा पुण्य प्राप्त कर लेता है।
15. संस्कृत भाषा और संस्कृत–साहित्य का जो रसिक और अनुरागी तथा ज्ञाता नहीं है वह विद्वान ही नहीं है। विद्वता की जड़ या नींव संस्कृत में ही है। संस्कृत सचमुच देवभाषा–सी पावनी है।

इस तरह स्पष्ट है कि शिवपूजन सहाय ने हिन्दी के कथेतर साहित्य को एक महत्वपूर्ण आयाम दिया। उनके एक–एक शब्द हिन्दी साहित्य के विरासत हैं। आज और कल की पीढ़ियाँ उनके संपूर्ण कथेतर रचनाकर्म की असली तस्वीर उनकी साहित्यिक अवदानो में देख सकती है। उनके कथेतर गद्य साहित्य प्रयोग और तथ्य की दृष्टि से सिर्फ नवीन ही नहीं प्रासंगिक भी रहेंगे।

I UnHk %

1. हिन्दी भाषा और साहित्य, शिवपूजन सहाय समग्र–3, संपादक–मंगलमूर्त्ति, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा) लिमिटेड,, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण–2011, पृ0 30.
2. प्रस्तावना से, संपादक– मंगलमूर्त्ति, शिवपूजन सहाय, साहित्य समग्रः 2, संस्करण–2011, पृ0 11.
3. माता का अंचल, बचपनः 1893 – शिवपूजन सहाय साहित्य समग्रः 2, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा) लिमिटेड, संस्करण–2011, नई दिल्ली, पृ0 23–24.
4. प्रस्तावना से, विभूति की कहानियाँ, शिवपूजन सहाय साहित्य समग्रः 01, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, संस्करण–2011, पृ0 28.
5. प्रस्तावना से, संपादक– मंगलमूर्त्ति, शिवपूजन सहाय, साहित्य समग्रः खण्ड – 06, संपादक– मंगलमूर्त्ति, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा) लिमिटेड, संस्करण–2011.
6. प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्यरितमात्यमनः, संपादक–मंगलमूर्त्ति, शिवपूजन सहाय साहित्य समग्र–6, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा) लिमिटेड, संस्करण–2011.
7. जनवरी 1916, 'जीवन–दर्पण', (डायरी 1916–1955), शिवपूजन सहाय साहित्य समग्र–6, संपादक–मंगलमूर्त्ति, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा) लिमिटेड, संस्करण–2011, नई दिल्ली, पृ0 19.
8. उज्ज्वल प्रभा, शिवपूजन सहाय साहित्य, समग्र–1, संपादक–मंगलमूर्त्ति, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा) लिमिटेड, संस्करण–2011, नई दिल्ली, पृ0 56.
9. कवियों और लेखकों का गाँव, शिवपूजन सहाय, साहित्य समग्र–1, संपादक–मंगलमूर्त्ति, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा) लिमिटेड, संस्करण–2011, नई दिल्ली, पृ0 353.
10. हस्तलिखित, आचार्य शिवपूजन सहाय साहित्य समग्र–7, संपादक–मंगलमूर्त्ति, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा) लिमिटेड, संस्करण–2011, पृ0 36.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 85-89

fgUnh lkfgfR;d i=dkfjrk % mnHko vkSj fodkl

'kkfyuh dqekjh*

हिन्दी पत्रकारिता का आरंभ 'उदन्त मार्तण्ड' के प्रकाशन के साथ माना जाता है। हिन्दी पत्रकारिता आरंभ में साहित्यिक पत्रकारिता हीं थी। आगे चलकर इसे लघु पत्रिका का नाम दिया गया। लघु पत्रिका का आंदोलन चला। साहित्यिक पत्रकारिता का दो रूप प्रमुख रूप से सामने आया। एक सर्जनात्मक और दूसरा शोधपरक। समय–समय पर पत्रकारिता का स्वरूप बदलता रहा। आजकल जिसे पत्रकारिता कहते हैं वह शुद्ध रूप से व्यावसायिक कर्म है। साहित्यिक पत्रकारिता से ही निकलकर इस पत्रकारिता का व्यापक कैनवास बन गया। हिन्दी पत्रकारिता के विकास क्रम को विद्वानों ने विशेष कालावधि का नामकरण कर रेखांकित किया है। हिन्दी पत्रकारिता के आरंभिक समय को आदियुग की संज्ञा दी गई है। यह समय पंडित युगल किशोर शुक्ल के पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' के प्रकाशन 30 मई 1826 ई0 से शुरू होकर 1867 ई0 तक माना गया है। 1868 ई0 से 1874 ई0 तक के समय को भारतेन्दु युग की संज्ञा दी गई है। 1885 से 1905 तक 20 वर्षों का हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास राष्ट्रीय चेतना का युग रहा है। इस समय को मालवीय युग की संज्ञा दी गई है। कहा जाता है मालवीय जी ने महावीर प्रसाद द्विवेदी को पत्र लिखकर शुरुआत की। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 1903 ई0 में 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादन की जिम्मेवारी ली। लगभग दो दशक तक द्विवेदी जी ने हिन्दी भाषा और साहित्यिक पत्रकारिता का परिष्कार एवं परिमार्जन किया।

1920 ई0 से आजादी तक (1947 ई0 तक) हिन्दी पत्रकारिता बहुत दूर तक महात्मा गाँधी से प्रभावित रही। इस समय को गाँधी युग के नाम से जानते हैं। तिलक युग की क्रांतिकारिता एवं सिद्धान्त को गाँधीजी ने एक नया मोड़ दिया। इस समय में शिवप्रसाद गुप्त, बाबूराव विष्णु पराड़कर, गणेश शंकर विद्यार्थी, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, लक्ष्मण नारायण गर्दे, माधवराव सप्रे, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रेमचन्द, शिवपूजन सहाय जैसे महान साहित्यकारों ने अपनी साहित्यिक पत्रकारिता के माध्यम से देश की स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त किया। आजादी के बाद की पत्रकारिता को स्वातंत्रयोत्तर युग के नाम से जानते हैं।

इस तरह हिन्दी पत्रकारिता के अब तक 186 वर्ष पूरे हो चुके हैं। इस बीच में पत्रकारिता ने कई पड़ाव देखे हैं। इस अध्याय में हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता के उद्भव और विकास का शोधपरक मूल्यांकन प्रस्तुत है।

साहित्यिक पत्रकारिता के बारे में रघुवीर सहाय ने लिखा है ''साहित्यिक पत्रकारिता का अर्थ जो विद्वान् साहित्य के क्षेत्र में पत्रकारिता लगाये उनसे मैं दो शब्द कहना चाहता हूँ। एक दूसरे को लिखी चिट्ठियों के संग्रह और प्रकाशन को पत्रकारिता नहीं कहते। यह गतिविधि शायद पत्रों से संबंध रखती है यही सोचकर इसे पत्रकारिता कहा जाता होगा। अन्यथा इसमें कुछ कृतित्व नहीं है। पत्र लेखकों का कृतित्व नहीं व्यक्तित्व है जिसके प्रकाशन का औचित्य तभी है जब वह व्यक्तित्व दूसरों के जानने योग्य क्षेत्र में प्रकाशमान हो। तभी संपादक का भी कुछ योगदान पत्रों के चयन में हो सकता है। साक्षात्कार नामक विधा के प्रति हिन्दी के विराट संसार में व्यापक मोह के विषय में भी मेरा यही आशय है।[1]

हिन्दी पत्रकारिता का आरंभ साहित्यिक पत्रकारिता के ही रूप में होता है। आगे चलकर इसे लघु पत्रिका भी कहा गया। लघु पत्रिका नाम से आन्दोलन भी चला। जैसे–जैसे पत्रकारिता का विकास

*ग्राम+पोस्ट– चिंतामनपुर, जिला– पूर्वी चम्पारण, (बिहार)

हुआ, हिन्दी लघु पत्रिकाओं में शोधपरक चिंतन का बाहुल्य दिखने लगा। हिंदी की प्रथम लघु पत्रिका के रूप में किस पत्रिका का नाम लिया जाये? अनेक विद्वानों में इस संदर्भ में एकमत नहीं है। 'भारतेन्दु मुकुर' नाम की लगभग 80 पृष्ठ की पुस्तिका हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की ओर से प्रेमोपहार के रूप में प्रकाशित की गई है जिसमें लिखा है– ''संवत् 1823 में बुलंदशहर जुनार, कानपुर, लखनऊ, सहारनपुर, मसूरी, हरिद्वार, लाहौर, अमृतसर, दिल्ली और आगरा का भारतेंदु ने पर्यटन किया। इस यात्रा के बाद ही बड़ी द्रुतगति में अपने साहित्यिक समारंभों की ओर ये अभिमुख हुए संवत् 1834 में। 15 अगस्त, 1867 में हिंदी की पहली साहित्यिक मासिक पत्रिका 'कविवचन–सुधा' प्रकाशित की।[2]

श्री गोपी जनबल्लभाय नम: से ''कविवचन सुधा'' के प्रथम पृष्ठ का आरंभ हुआ। 'कविवचन सुध ा' के संबंध में बालमुकुंद गुप्त ने लिखा है कि ''पाक्षिक होकर राजनीति संबंधी और दूसरे लेख स्वाधीनता भाव से प्रकाशित करने लगी तो बड़ा आंदोलन मचा। भारतेंदु आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त किये गये थे, तथापि वह निडर होकर लिखते रहे और सर्वसाधारण में उनके पत्र का आदर होने लगा। उस समय हिंदी भाषा प्रेमी बहुत कम थे, तो भी हरिश्चन्द्र के ललित लेखों ने लोगों के जी में ऐसी जगह कर ली थी कि, 'कविवचन सुधा' के हर नंबर के लिये लोगों को टकटकी लगाये रहना पड़ता था।''[3]

डॉ0 साताप्ता लहू चव्हाण के अनुसार हिन्दी पत्रकारिता का आरंभिककाल संघर्षपूर्ण रहा। 'बंगदूत' का अनुगमन करते हुए 'प्रजामित्र' (1834), राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद द्वारा संपादित 'बनारस अखबार' (1845), तारा मोहन का 'सुधाकर' (1850), लाला सदासुखलाल का 'बुद्धिप्रकाश' (1852), शिवनारायण का 'सर्वहितकारक' (1855), राजा लक्ष्मण सिंह का 'प्रजा हितैषी' (1861), भारतीय स्वतंत्रता के प्रथम संग्राम अर्थात् सन् 1857 के पश्चात् हिंदी पत्रकारिता का एक विशिष्ट रूप परिलक्षित होता है। मनसुखराम द्वारा संपादित 'धर्मप्रकाश' (1859), गणेशलाल द्वारा संपादित 'सूरज प्रकाश' (1861), गुलाबशंकर द्वारा संपादित 'तत्वबोधिनी' (1865), वंशीधर द्वारा संपादित 'भारत खण्ड मित्र' (1866), मुंशी सदासुखलाल द्वारा संपादित 'वृतांत दर्पण' (1868), शिवप्रसाद सिंह द्वारा संपादित 'मंगल समाचार' (1869), पंडित बुद्धिवल्लभ पंत द्वारा संपादित 'अल्मोडा अखबार' (1871), सूरजप्रसाद द्वारा संपादित 'आर्यभास्कर' (1896), प्रयागदूत (1871), रूद्रदत्त शर्मा द्वारा संपादित 'प्रेमपत्र' (1872), साधुराम जगन्नाथ वैध द्वारा संपादित 'प्रयोग मित्र' (1887), हरिश्चन्द्र (भारतेंदु) का 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (1873), बालकृष्ण भट्‌ट द्वारा संपादित 'हिंदी प्रदीप' (1877), भारतेंदु द्वारा संपादित 'बालबोधिनी' (1874), चंद्रशेखर गौड द्वारा संपादित 'बुद्धिप्रकाश' (1888), कृपाराम का 'ब्रह्मवर्त' (1890), बालेश्वर प्रसाद, लक्ष्मीशंकर मिश्र द्वारा संपादित 'काशी पत्रिका' (1876), मधुसूदन धर्मपाल द्वारा संपादित 'आर्यमित्र' (1898) लखनऊ से 'भारत दीपिका' (1881), बदरीनारायण द्वारा संपादित 'आनंद कादम्बिनी (1881), देवकीनंदन त्रिपाठी द्वारा संपादित 'प्रयाग समाचार' (1882), मदनमोहन मालवीय द्वारा संपादित 'हिंदोस्थान' (1885), श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा संपादित 'भारत भगिनी' (1888), रामनारायण द्वारा संपादित, 'विद्या प्रकाश', (1891), रामदीन सिंह द्वारा संपादित 'ब्राह्मण' (1887), बनवारी लाल द्वारा संपादित 'सरस्वती प्रकाश' (1890), गोपालराय गहमरी द्वारा संपादित 'भारत भूषण' (1893), कृष्णबलदेव वर्मा द्वारा संपादित 'विद्या विनोद' (1897), (1894) में 'भारतजीवन' (1890) में बंकटेश्वर समाचार, (1895) में नागरी प्रचारिणी पत्रिका, किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा संपादित 'उपन्यास' (1898) और (1900) में 'सरस्वती' जैसे कालजयी पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई। हिंदी पत्र–पत्रिकाओं का प्रारंभिक दृष्टिकोण राष्ट्रीय भावनाओं से ओत–प्रोत दृष्टिगोचर होता है।

राष्ट्रीयत्व और कवित्व को इन पत्रिकाओं ने अविभाज्य माना है। प्रारंभिक काल की पत्रिकाओं ने व्यापक राष्ट्रीय चेतना और शाश्वत मूल्यों को विद्रोह के स्तर पर स्थापित करने की चेष्टा की है। शुद्ध साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं के विकास की नींव प्रारंभिक काल में ही मजबूत होती हुई नजर आती है। पं0 लक्ष्मीशंकर मिश्र, अम्बिका दत्त व्यास, बाबूराय कृष्ण वर्मा, दामोदर विष्णू सप्रे, किशोरीलाल गोस्वामी, हरेकृष्ण दास, देवकीनंदन खत्री, सदासुख लाल, राजा लक्ष्मण सिंह, केशवराम भट्‌ट, रामदीन सिंह और महिला पत्रकार हेमंत कुमारी आदि प्रमुख पत्रकारों ने इस युग में 'काशी पत्रिका', 'वैष्णव पत्रिका', 'भारतजीवन', 'मित्र', 'भाषा चंद्रिका', 'उपन्यास लहरी', एवं 'सुदर्शन', 'बुद्धि प्रकाश', प्रजा हितैषी 'बिहार

बंधु', 'क्षत्रिय पत्रिका', सुगृहिणी' आदि पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से जनसेवा का महत्त्वपूर्ण कार्य किया हुआ परिलक्षित होता है।''[4]

साहित्यिक पत्रकारिता का प्रस्थान बिंदू है 'कविवचन सुधा'। ''कविवचन सुधा का प्रकाशन हरिश्चन्द्र ने 15 अगस्त 1867 को काशी से किया। कविता पर केन्द्रित इस मासिक पत्र में भारतेन्दु ने हिन्दी के नए और पुराने श्रेष्ठ कवियों की रचनाओं का प्रकाशन किया। 'कविवचन सुधा' ने प्रवेशांक में अपनी दिशा का संकेत कर दिया था–

^^[ky tuu lk lTtu n[kh efr gkfg] gfjin efr jgA
vi/kel NV] LoRo fut Hkkjr xg] lc n[k cgAA
c/k rtfg eRlfj ukfj uj le gkfg] tx vkun ygA
rft xke dfork] ldfotu dh ve`rokuh lc dgAA**

उपरोक्त काव्य पंक्तियों में 'स्वत्व निज भारत गहै' और 'नारि नर सम होंहि' जैसे स्पष्टोक्तियॉं उनके सोच की दर्पण हैं।

'कविवचन सुधा' की बानगी इस टिप्पणी से मिलती है– ''यह बात सिद्ध है कि पश्चिमोत्तर देश की कदापि उन्नति नहीं होगी, जब तक यहाँ की स्त्रियों की भी शिक्षा न होगी क्योंकि यदि पुरूष विद्वान् होंगे और उनकी स्त्रियॉं मूर्खा तो उनमें आपस में कभी स्नेह न होगा और नित्य कलह होगी।'' भारतेन्दु स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन देते थे। पत्रकारिता पर पाबन्दियों का शिकंजा कसे जाने के बावजूद 'कविवचन सुधा', जो केवल साहित्यिक पत्रिका नहीं थी, ने साहित्य, समाचार, यात्रा, ज्ञान विज्ञान आदि पक्षों का सम्पादन–कौशल के साथ भली भांति निर्वाह किया। यह पत्रिका लोकप्रिय हुई, फिर उसकी आवृति मासिक से पाक्षिक और साप्ताहिक हो गई। धर्म, राजनीति और समाजनीति विषयक लेख भी इसमें प्रकाशित होते रहे।''[5]

भारतेन्दु का 'कविवचन सुधा' से रिश्ता कुछ इस तरह टूटा। ''आठ वर्ष तक 'कविवचन सुधा' का सम्पादन प्रकाशन करने के बाद भारतेन्दु ने अपने मित्र चिंतामणि के कहने पर पत्रिका उन्हें सौंप दी। मानसेवी दंडाधिकारी का पद त्याग दिया और ॲंगरेज अफसरों से मिलना तक छोड़ दिया। 'कविवचन–सुधा' से भी नाता तोड़ लिया। कृतघ्नता की पराकाष्ठा कि सन् 1883 में जब भारतेन्दु का निधन हुआ, तब इस शोक समाचार और श्रद्धांजलि तक को 'कविवचन सुधा' में स्थान नहीं मिला। सन् 1886 में यह पत्रिका हो गई।''[6]

मैगजीन ने हिन्दी भाषा और साहित्यिक पत्रकारिता को समृद्ध किया। ''15 अक्टूबर, 1873 को काशी से प्रकाशित 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' के सम्पादक और प्रकाशक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स्वयं थे। इसका मुद्रण मेडिकल हाल प्रेस से होता था। इसके मुख्य पृष्ठ पर नाम और विवरण ॲंगरेजी में छपा करता था। इसका कागज एवं छपाई उतम थी। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' के मुख पृष्ठ पर लिखा रहता था कि वह 'कविवचन सुधा' से सम्बद्ध है। इस पत्र ने हिन्दी भाषा और हिन्दी पत्रकारिता का उन्नयन किया।

पत्रिका का प्रथम अंक 24 पृष्ठों का प्रकाशित हुआ। हर अंक में ॲंगरेजी भाषा के तीन से छह पृष्ठ रहते थे। इनमें सामयिक मुद्दों का विश्लेषण होता था। प्रत्येक पृष्ठ में दो कालम होते थे। एक पृष्ठ की लंबाई 27 से.मी. और चौड़ाई 21 से.मी थी। वार्षिक शुल्क छह रूपये अग्रिम लिया जाता था। प्रत्येक माह की 15 तारीख को पत्रिका प्रकाशित होती थी। इसमें साहित्य, विज्ञान, राजनीति, धर्म, पुरातत्व, इतिहास आदि विषयों पर लेखों के साथ ही कविताऍं, हास्य–व्यंग्य आदि सामग्री भी रहती थी। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' के अंकों में शतरंज के चित्र और चालों के प्रकाशन से इस बात की पुष्टि होती है कि रूचिकर समाचारों का ध्यान रखा जाता था। सरकार मैगजीन की 100 प्रतियॉं खरीदती थी। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', 'कविवचन सुधा' से भी अधिक लोकप्रिय हो गई थी। भारतेन्दु अपने लेखकों को सहायक सम्पादकों की संज्ञा देते थे। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' के आठ अंक निकले, जिनमें कुल 113 रचनाऍं प्रकाशित हुई।''

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता के मील स्तंभ थे। उन्होंने अपनी पत्रिकाओं के माध्यम से न सिर्फ हिन्दी भाषा की वकालत की, बल्कि स्त्री शिक्षा पर विशेष रूप से बल दिया। भारतीय

पत्रकारिता कोश के अनुसार ''भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने महसूस किया कि स्त्रियों के लिए अलग से एक स्त्री शिक्षापयोगी मासिक पत्रिका होनी चाहिए। इसी सोच को कार्य रूप प्रदान करते हुए उन्होंने जनवरी 1874 में 'बाला बोधिनी' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया। यह डिमाई साइज की आठ पृष्ठों की पत्रिका थी। ''बाला बोधिनी'' के प्रथम अंक में सम्पादक ने आग्रह किया – ''मैं तुम लोगों से हाथ जोड़कर और ऑचल खोलकर यही मॉगती हूँ कि जो कभी कोई भली बुरी कड़ी नरम कहनी अनकहनी कहूँ उसे मुझे अपनी समझकर क्षमा करना क्योंकि मैं जो कुछ कहूँगी सो तुम्हारे हित की 'बाला बोधिनी' हिन्दी भाषा में स्त्रियों पर केन्द्रित पहली पत्रिका थी।''[8]

भारतेन्दु युग की पत्रकारिता और हिन्दी पत्रकारिता के विकास में भारतेन्दु युग की भूमिका के बारे में सीमा शर्मा ने लिखा है– '' भारतेन्दु युग में सत्ता अंग्रेज शासकों के हाथ में थी, लेकिन भारतीय धर्म और संस्कृति की रक्षा, राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक मूल्यों के उन्नयन का प्रश्न हिन्दी भाषा का विकास, स्वदेश प्रेम, जाति प्रेम को आधार बनाकर पत्र–पत्रिकाऍ प्रकाशित हुई। विदेशी शासन के बावजूद भी साढ़े तीन सौ से अधिक पत्र निकाले गये। भले ही अधिकांशतः पत्र पत्रिकाओं को विदेशी शासकों का कोपभाजन बनना पड़ा।

तलवार से लड़ी गई 1857 ई0 की स्वतंत्रता की लड़ाई में भारतीय योद्धा कई कारणों से अंग्रेज से पराजित हो गया। लेकिन कलम के सिपाही प्रतिकूल परिस्थितियों में रहते हुए भी पूरी दृढ़ता, निडरता, लगन के साथ विदेशी सत्ता से लड़ते रहे।''[10]

हिन्दी पत्रकारिता को रचनात्मक मंच प्रदान करने का काम 'बिहार बंधु' ने किया। 'बिहार बंधु' बिहार का पहला हिंदी पत्र माना जाता है। 'बिहार बंधु' ने साहित्यिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक आदि विभिन्न क्षेत्रों में बिहार की जनता को शिक्षित सांस्कारिक कर जागरूक करने का दायित्व निभाया। बिहार बंधु के प्रकाशन को लेकर आरंभ में कुछ भ्रांतियॉ रही हैं। इन भ्रांतियों को दूर करते हुए कुमारी छवि ने लिखा है, ''बिहार बंधु' का प्रकाशन वर्ष 1873 ई0 ही है। भ्रान्तियों को प्रश्रय उन लोगों ने दिया है जो इसके अंकों को देख नहीं पाये हैं और अनुमान या अन्यत्र से प्राप्त सूचनाओं के आधार जिन्होंने अपना निर्णय घोषित किया है। इस सम्बन्ध में दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि 1874 ई0 में यह कलकत्ता से पटना स्थानान्तरित हुआ। पटना आने के बाद भी बिहार बंधु का संबंध कलकत्ता से बना रहा। 'बिहार बंधु' की फाइल से जो सूचना प्राप्त होती है, उससे यह भी स्पष्ट होता है कि इसके प्रथम सम्पादक मुंशी हसन अली ही थे।''[11]

हिन्दी की साहित्यिक पत्रिकाओं में 'हिन्दी प्रदीप' का अविस्मरणीय स्थान है। 1875 ई0 में इलाहाबाद में हिन्दी वधिनी सभा की स्थापना हुई। 'हिन्दी प्रदीप' की स्थापना हिन्दी प्रचार के उद्देश्य से हुई। इस पत्र के सम्पादक बालकृष्ण भट्ट थे जो कायस्थ पाठशाला में संस्कृत के अध्यापक थे। 'हिन्दी प्रदीप' के मुख्य पृष्ठ पर विद्या, नाटक, इतिहास, समाचारावली परिहास, साहित्य, दर्शन, राजसम्बन्धी इत्यादि के विषय में लिखा रहता था। पत्र के मुख्य पृष्ठ पर यह भी अंकित रहता था कि ''हर महीने की पहली को छपता है।'' विजय दत्त श्रीधर ने लिखा है ''सितम्बर 1877 में 'हिन्दी प्रदीप' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसमें विचारोत्तेजक लेख और आलोचनात्मक टिप्पणियॉ प्रकाशित होती थी।। सात महीने बाद सन् 1878 का वनक्युलर प्रेस एकट पारित हो गया, जिसके अंतर्गत फिरंगी सरकार ने भारतीय भाषाओं को समाचार पत्रों पर अंकुश लगाने का अधिकार हासिल कर लिया। 'हिन्दी प्रदीप' के सम्पादक और व्यवस्था को जिला मजिस्ट्रेट की अदालत में चक्कर काटने पड़े। जिन छात्रों के उत्साह से 'हिन्दी प्रदीप' का आरंभ हुआ था, वे भी कन्नी काटने लगे। अन्ततः हिन्दी वर्धिनी सभा ने 'प्रदीप' को बन्द करने का निर्णय ले लिया, तब बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी प्रदीप' की पूरी जिम्मेदारी स्वयं सम्हाल ली।''[12]

भट्टजी का हिन्दी पत्रकारिता और गद्य साहित्य के निर्माण में ऐतिहासिक अवदान है। हिन्दी के प्रचार–प्रसार तथा राष्ट्रीय चेतना को बलवती बनाने के साहित्यिक अनुष्ठान में भट्ट जी ने विकट आर्थिक कठिनाईयों और विघ्न–बाधाओं का जिस त्याग–बलिदान एवं निष्ठा से सामना किया, वह असाधारण और अभूतपूर्व हैं।

भट्ट जी के ये निबन्ध साहित्यिक दृष्टि से तो उच्चकोटि के हैं ही, राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना की मार्मिक अभिव्यक्ति के विचार से पठनीय और माननीय है। हिन्दी में निबन्ध साहित्य के उच्च अध्ययन–अनुशीलन की तथा जन–मन को प्रभावित करने की इसमें असाधारण क्षमता है।''[13]

दुर्गा प्रसाद मिश्र ने छोटूलाल मिश्र के सहयोग से 'भारत मित्र' का प्रकाशन 17 मई 1878 को आरंभ किया। 'भारत मित्र' शुरू में दो पन्नों का छपता था। 'भारतमित्र' का प्रकाशन पाक्षिक पत्र के रूप में हुआ। प्रवेशांक में 'भारतमित्र' ने नीति वक्तव्य में कहा – ''समाचारपत्रों से जो उपकार होता है, वो बंबई और बंगाले को देखने से साफ जान पड़ेगा, इसलिए इस विषय में बहोत लिखने का कुछ प्रयोजन नहीं है, क्योंकि जहॉ तक जिस देश में जिस भाषा में और जिस समाज में समाचार पत्र का चलन नहीं है तब तक उसकी उन्नति की आशा भी दुराशा मात्र है, कारण ये वो चीज है कि जिस घर में कोठड़ी भीतर बैठ के सारी दुनिया को हथेली पर देख लो अर्थात् भूमण्डल में जहॉ जो कुछ विशेष बात होती है वो इसी के द्वारा प्रकाश होती है और अपना दुःख सुख प्रधान राज्याधिकारियों को सुनाने और प्रार्थना करने का ये ही मुख्य उपाय है यदि समाचार पत्र नहीं होय तो राजा को अपने प्रजा का कुछ हाल नहीं मालूम हो सके ऐसी देशा में राज्य शासन भी अच्छी तरह से नहीं हो सकता इसीलिए प्रजाहितैषी राजा लोग समाचारपत्रों को स्वाधीनता दे के उत्साहित करते हैं।''[14]

lUnHk %

1. हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता समस्याएँ, उपलब्धियाँ तथा संभावनाएँ, श्री रघुवीर सहाय, हिन्दुस्तानी, सन् 2002, अंक–2 पृष्ठ–33 ।
2. भारतेन्दु–मुकुर, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की ओर से वर्ष 1950 में प्रकाशित, पृ0–1 ।
3. भारतेन्दु–मुकुर, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की ओर से वर्ष 1950 में प्रकाशित, पृष्ठ–43 ।
4. हिन्दी पत्र– पत्रिकाएँ : विकास के विभिन्न चरण, डॉ0 सातापा लहू चव्हाण, हिन्दुस्तानी, अंक–4, सन्–2007, पृष्ठ–36–37 ।
5. भारतीय पत्रकारिता कोश, खण्ड–एक, विजय दत्त श्रीधर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–181–182 ।
6. भारतीय पत्रकारिता कोश, खण्ड–एक, विजय दत्त श्रीधर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–184 ।
7. भारतीय पत्रकारिता कोश, खण्ड–एक, विजय दत्त श्रीधर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–209 ।
8. भारतीय पत्रकारिता कोश, खण्ड–एक, विजय दत्त श्रीधर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–210–11 ।
9. भारतीय पत्रकारिता कोश, खण्ड–एक, विजय दत्त श्रीधर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,पृष्ठ–211–213 ।
10. हिन्दी पत्रकारिता के विकास में भारतेन्दु युग की भूमिका सीमा शर्मा, हिन्दुस्तानी, अंक–4 वर्ष–2008 पृष्ठ–99 ।
11. हिन्दी पत्रकारिता और 'बिहार बन्धु', कुमारी छवि, हिन्दी पत्रकारिता की विरासत, संकल्प प्रकाशन, पटना, जनवरी, 1998 पृष्ठ–25 ।
12. भारतीय पत्रकारिता कोश, खण्ड–एक, विजयदत्त श्रीधर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–227 ।
13. पण्डित बालकृष्ण भट्ट का 'हिन्दी प्रदीप', डॉ0 लक्ष्मी शंकर व्यास, हिन्दुस्तानी, अंक–2, सन्–2001, पृष्ठ–32–33।
14. भारतीय पत्रकारिता कोश, खण्ड–एक, विजयदत्त श्रीधर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–237 ।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 90-92

tar lkj d xhrk dk fo'y"k.kkRed v/;;u

Mk0 'kf'kdyk dqekjh*

जंतसार या जंतसर जांत चलाते समय गाया जाने वाला गीत है। आटा पीसने का काम जब तक घरों के जांत पर होता था, तब तक जंतसार भोर या दोपहर में घर–घर से सुनाई पड़ता था। जंतसार दरअसल समाज और घर से उपेक्षित, प्रताड़ित नारी की पीड़ा व्यक्त करने के माध्यम थे। जंतसार लय प्रधान गीत है। यह छोटे आख्यानों के लंबे विवरणों का लोकगीत है। जंतसार में लोक गाथाओं को भी स्थान दिया गया है। आज कल जांत का प्रयोग कम हो गया है कुछ त्योहारों में जांत का पीसा अनाज का ही प्रयोग महिलायें करती है। 'जतंसार' शब्द यन्त्रशाला का अपभ्रशं रूप है जिसका अर्थ है वह शाला या घर जहाँ आटा का यन्त्र रखा गया हो। यही 'यन्त्रशाला' शब्द बिगड़ते–बिगड़ते जँतसार के रूप में विद्यमान है।

चक्की, चूल्हा और चरखा देहातों में पहले घर–घर होते थे। चक्की में आटा पीस लिया, चूल्हे पर रोटियाँ पका लीं। यदि इन कामों से अवकाश मिला तो चरखे पर कपड़ों के लिए सूत तैयार कर लिया। बस इन तीन चकारों की बदौलत देहात के लोग बहुत ही सुखी और स्वतंत्र थे। स्त्रियाँ चक्की पीसती थीं। इससे उनका स्वास्थ्य ठीक रहता था और उनके बच्चे ह्रष्टपुष्ट होते थे। चक्की पीसते समय वे जो गीत गाती थीं, उससे जीवन की धारा शुद्ध होती थी। समय का सदुपयोग होता था, परिश्रम करने की आदत बनी रहती थी और पैसे की बचत भी होती थी। परन्तु अब देहातों में भी आटा पीसने का काम, चक्की के स्थान पर मशीनें लेती जा रही हैं। ये मशीनें हमारे आटे को पीसने के साथ ही साथ 'जाँत के गीतों' को भी पीसती चली जा रही हैं। ये गीत हमारे घरों में सचरित्रता के रक्षक, स्त्रियों के सदाचार के पोषक और शुद्धता के स्त्रोत हैं।[1] यहाँ दिए गए जंतसार भोजपुरी भाषा में हैं।

dkg d yxoy gjh vkekok bfefy;k]
dkg d yxoky cqlokjh gk AA 1AA
dkg d dby gjh gejk xouok]
dkg d pyy ijn'k gk AA 2AA
[kk; d yxoyh /kfu;k vkekok bfefy;k]
dkV gh d yxouh cqlokjh gk AA 3AA
Hkxr d dbyh /kfu;k rkgjk xouok]
vkgh l pyyh ijn'k gk AA 4AA
[kkbl u ygq gjh vkekok bfefy;k]
dkfV u ygq cqlokjh gk AA 5AA
Hkxr u ygq gfj gejk xouok]
rc fQj tbg ijn'k gk AA 6AA
lkHkok cbBy jktk lkHkk gk c<brk
cbBy nr vlhl gk AA 7AA
fonl r tbg jktk gqlr&[kyr]
vfxyh jbfu;k tbg thr gk AA 8AA

*पूर्व शोध–छात्रा, हिन्दी विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

efp;k cbBy rqgq vkek gks c<+f;fru]
vkiu vlhl ekjs nqgq gks AA 9AA
jke jlkb;k e: Hkmth gks c<+f;fru]
vkiu vlhl eksd nqg gks AA 10AA
gqlr [ksyr vkbfc vkek rkgjs vlhlok]
ckck d: vlhe ju thfr gks AA 11AA[2]

पत्नी पूछ रही है– हे प्रियतम ! आपने आम और इमली के वृक्ष और सघन बाँस की कोठ किसलिए लगाया और किस हेतु मुझसे विवाह किया। पति ने उत्तर दिया खाने के लिये मैंने आम और इमली के पेड़ लगाये और काटने के लिये बाँस की कोठी लगाई। हे धनि! मैंने लड़ाई लड़ने के हेतु तुम से विवाह किया और उसी लिए विदेश भी जा रहा हूँ।

पति वहाँ से पिता के पास गया और कहा हे सभा के मध्य में बैठे हुए पूज्य पिता! आप अपना आशीर्वाद मुझे दीजिए। मैं रण में जा रहा हूँ। पिता ने आशीर्वाद देकर कहा हे पुत्र। हंसते–खेलते जाओ, इस बार संग्राम तुम जीत कर आना। फिर वह अपनी माता के पास जाकर कहा– मचिया पर बैठी हुई हे मेरी पूज्य माता! मुझे आशीर्वाद दो। माता ने आशीर्वाद देकर कहा– हे पुत्र! इस बार संग्राम जीत कर आना। फिर उसने अपनी भाभी के पास जाकर आशीर्वाद लिया। माँ तुम्हारे आशीर्वाद से हंसते–खेलते आऊँगा और पिताजी के आशीर्वाद से संग्राम जीत लूँगा।

इस गीत में वीर रस के साथ करुण रस का बहुत सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है। महिलायें इस गीत को चक्की चलाते समय गाकर अपनी करुण स्मृतियों के भाव चित्रित करती हैं।

>hu&>hu xkgqok ckqls db Myfj;k
uunh HkÅft;k xkgqok ihls ekjs jke AA 1AA
jkts r vko nqojk nqb js flifg;k
vktq dbls vby vdsy ekjs jke AA 2AA
dbls ds Hkhts nqojk rkj js iufg;k
dbls rxok rkj Hkhts ekjs jke AA 3AA
flr;u Hkhts Hkmth ekj js iufg;k
gfjuk fldjok rxok Hkhts ekj jke AA 4AA
nqg u crkbZ ekd nqojk js xksl b;kq
rkfg NkfM+ drgh uk tbfc ekjs jke AA 5AA
dgobq ejy dgokq cgoy
dgokq fpYgkfj;k eM+jkb ekjs jke AA 6AA
Åpos ejyh [kyos cgoyh
ljxs fpYgfj;k eM+jkb ekjs jke AA 7AA
cu es puu djk ydMh cVkjyh
fprok dbyh rb;kj ekjs jke AA 8AA
tkgq tkgq nqoj vfx;k ys vkogq
lkeh ds vfx;k ge nfc ekjs jke AA 9AA
tks jmokq gkbZ lkeh lr ds fcvgqrk
vqpjk vfxfu;k mitkbZ ekjs jke AA 10AA
vqpjk HkkHkfd mBky lfr;k Hkle Hkbyh
nqojk eyys nuks gkFk ekjs jke AA 11AA
tks ge turh HkÅth nxok debc
dkgs ds efjrh lx Hkb;k ekjs jke AA 12AA

पतला–पतला गेहूँ है और बाँस की डलिया है। ननद और भौजाई दोनों गेहूँ पीस रही हैं भौजाई ने कहा– हे देवर रोज तो तुम दोनों साथी साथ आते थे, आज अकेले कैसे आये। तुम्हारा जूता कैसे भींग गया और तुम्हारा तेगा कैसे भींगा हुआ है। देवर ने कहा– हे भावज शीत से तो मेरे जूते भीगे हैं और हरिण के शिकार से मेरा तेगा भीगा है।

भावज ने कहा–मैं तुमको छोड़ कर कहीं नही जाऊँगी। हे मेरे देवर तुमने मेरे स्वामी को कहाँ मारा, कहाँ फेंका और अब किस स्थान पर उनके शव के ऊपर चील्ह मंडरा रही हैं, यह मुझे बता दो। देवर ने कहा मैं ऊँचे पर्वत पर उन्हें मारा और नीचे खंदक में गिरा दिया। वहीं आकाश में चील्ह मँडरा रही हैं। भावज ने वन में जाकर चन्दन की लकड़ी इकट्ठा करके चिता तैयार की और देवर से कहा– हे देवर तुम जाओं, कहीं से आग ले आओ। मैं अपने स्वामी का अग्नि–संस्कार करूँगी। देवर चला गया। चिता पर बैठ कर भावज ने कहा– हे मेरे स्वामी अगर आप सत्य के स्वामी हों, तो मेरे आँचल से आग निकले। धक–धक कर आँचल से आग निकल पड़ी और उससे सती भस्म हो गई। देवर जब आग लेकर वापस आया, तो दोनो हाथ मलकर कहने लगा। हे भावज! अगर मैं जनता कि तुम इस तरह से छल करोगी, तो मैं क्यों अपने सगे भाई को मारता।

महिलायें जाँत पर आटा पीसने बैठती हैं, तब अपनी मनोव्यथा मानो गाकर ही भुलाना चाहती हैं। इसी से जँतसार में स्त्री जीवन की सारी वेदनाएँ, सारी यातनाएँ जो गृहस्थी में उन्हें भोगनी पड़ती हैं वर्णित हैं।

आज की रेडी टू इट वाली जिन्दगी में भले ही यह अटपटा लगता है, लेकिन कुछ दशक पहले तक गाँव की औरतों की जिन्दगी काफी मेहनत मशक्कत करने वाली थी। घर लीपने से लेकर अनाज तैयार करने तक का सारा काम घर की स्त्रियों के जिम्मे ही होता था। ऐसे में अपनी थकावट दूर करने तथा मन की व्यथा को कुछ हद तक गीतों के माध्यम से निकालती थीं। इन गीतों में अक्सर घरेलू जीवन के संघर्ष तथा सामाजिक समस्याओं का जिक्र होता था। यह बात अलग है कि शारीरिक श्रम उनके स्वास्थ्य के लिए काफी हद तक फायदेमंद ही साबित होता था। चक्की पीसना इन कामों में एक बहुत ही महत्वपूर्ण काम था। इसे वह अक्सर दोपहर के समय जब घर के सभी लोग आराम कर रहे होते तब करती थी।[4] काम के साथ जो गीत वह गाती रहती थीं। उन्हें जंतसार कहा जाता है।

lUnHk %

1. भोजपुरी लोकसाहित्य ; डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी पृ0 186।
2. भोजपुरी लोकगीत भाग–3; डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय एवं डॉ0 रविशंकर उपाध्याय, भोजपुरी अकादमी पटना, पृ0 316।
3. भोजपुरी लोकगीत में करूण रस; श्री दुर्गा शंकर प्रसाद सिंह हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ0 226–227।
4. अक्षर शिल्पी ; अमृत लाल वेगड़, जनवरी–मार्च 2011, पृ0 68।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 93-96

L=h&foe'k ,o fgUnh miU;kl

'ork dqekjh*

हिन्दी उपन्यासों की विशेषता 'स्त्री विमर्श' की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। विभिन्न उपन्यासों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से स्त्री की दशा का चित्रण कर अपने मानवीय दृष्टि का परिचय दिया है। कभी उपन्यासकार स्वयं तथा कभी अपने पात्रों के माध्यम से इस सत्य को उद्घाटित करता है।

''यमुना एक अन्य स्थान पर हमारी समाज व्यवस्था और न्याय व्यवस्था पर चोट करती हुई न्यायालय से कहती है, ''पुरुष स्त्रियों पर सदैव अत्याचार करते हैं, कहीं नहीं सुना कि अमुक स्त्री ने अमुक पुरुष के प्रति ऐसा ही अन्याय किया परन्तु पुरुषों का यह साधारण व्यवसाय है– स्त्रियों पर आक्रमण करना। जो अत्याचारी है वह मारा गया। कहा जाता है कि न्याय के लिए न्यायालय सदैव प्रस्तुत रहता है : परन्तु अपराध हो जाने पर ही विचार करना उसका काम है। उस न्याय का अर्थ है किसी को दंड देना। किन्तु उसके नियम उस आपत्ति से नहीं बचा सकते।''

पुरुषों के अत्याचार की शिकार स्त्रियाँ अपने पतियों, पिताओं आदि द्वारा अस्वीकृत हो जाती हैं और असुरक्षा तथा पाप की जिन्दगी जीने के लिए छोड़ दी जाती हैं। वे यहाँ से वहाँ भटकती–फिरती हैं। 'कंकाल' में ऐसी स्त्रियों की अच्छी खासी संख्या है।''[1]

हिन्दी उपन्यासों में केवल स्त्री के उत्पीड़न, शोषण और सामाजिक उपेक्षाओं की चर्चा ही नहीं की गयी है बल्कि स्त्री स्वतंत्रता तथा स्वाधीनता की पुरजोर वकालत भी की गयी है। 'अप्सरा' उपन्यास में निराला एक अभिजातकुलीन युवक तथा एक वेश्यापुत्री के प्रेम और विवाह का अंकन कर समाज को एक क्रान्तिकारी सन्देश देते हैं। इसी प्रकार प्रसाद ने 'तितली' उपन्यास में अन्तर्जातीय विववाह दिखाकर स्त्रियों को विवाह के सन्दर्भ में स्वयं निर्णय लेने का अधिकार देते हैं। 'तितली' उपन्यास के सन्दर्भ में गोपाल राय का कथन द्रष्टव्य है–''शैला और इन्द्रदेव का विवाह, हिन्दी उपन्यास में सम्भवतः पहली बार, अन्तरराष्ट्रीय विवाह का उदाहरण प्रस्तुत करता है।''[2]

हिंदी उपन्यासों के माध्यम से दहेज–प्रथा का विरोध तो किया ही गया है साथ ही यह भी वर्णित किया गया है कि दहेज प्रथा के कारण कैसे घर–तबाह और बर्बाद हो जाते हैं। स्त्रियों का अनमेल विवाह जिस का दण्ड स्त्री को उम्र भर भुगतना पड़ता है, का भी प्रमुख कारण दहेज ही है। दहेज के कारण ही 'निर्मला' और 'सुमन' का विवाह दोहाजू और अधेड़ उम्र के व्यक्तियों के साथ कर दिया जाता है। उपन्यासकारों ने ऐसे विवाहों के कारण स्त्री की क्या दुर्गति होती है, का वर्णन कर समाज को ऐसा अन्याय स्त्रियों के प्रति नहीं करने का पुरजोर वकालत करते हैं। इस सन्दर्भ में मधुरेश का उद्धरण द्रष्टव्य है–

'' 'निर्मला' और 'सेवासदन' के कथा–विन्यास में उसके आरम्भिक विकास में एक आश्चर्यजनक समानता दिखाई देती है। जो स्थिति सुमन को वेश्यावृति के नरक में धकेलती है, पिता के आकस्मिक गिरफ्तारी के परिणामस्वरूप परिवार की आय की समाप्ति, वही निर्मला को अनमेल विवाह के लिए विवश करती है। दोनों का परिणाम स्त्री को ही भुगतना होता है। प्रेमचन्द दहेज प्रथा के दुष्परिणामों को विस्तारपूर्वक अंकित करते हैं, वे इस समस्या के निदान के लिए, युवाओं द्वारा पहल करने के महत्व को रेखांकित करते हैं। उनकी पहल के अभाव में इस सर्वग्रासी प्रथा का उन्मूलन असंभव है। निराला की उपन्यासों की तरह वे स्त्री के प्रेम–विवाह के पक्षकार भले ही न हों, लेकिन वे कन्या की योग्यता के अनुरूप ही वर के पक्ष में हैं। इस समस्या

*शोध–छात्रा, हिन्दी, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, (बिहार)–843146

को वे स्त्री–शिक्षा और उसकी आर्थिक दासता से जोड़कर देखते हैं। बाद में भुवन की सद्बुद्धि से निर्मला की छोटी बहन कृष्णा का विवाह उसके भाई के साथ बिना किसी दहेज के ही सम्पन्न होता है। सुधा के माध्यम से प्रेमचंद भारतीय समाज में नारी मुक्ति आंदोलन की आहट सुनते दिखाई देते हैं।''[3]

'स्त्री विमर्श' की दृष्टि से हिंदी उपन्यासों का वैशिष्ट्य यह है कि इन उपन्यासों में स्त्री–जीवन से जुड़े प्रत्येक समस्या का चित्रण किया गया है जिन समस्याओं को समाज स्त्रियों की नियति के रूप में स्वीकार करता है, उसे भी समाज द्वारा स्त्रियों पर थोपा गया बताकर इन उपन्यासकारों ने स्त्री के पक्ष को सुदृढ़ किया है। प्रेमचन्द के उपन्यास 'प्रतिज्ञा' में एक विधवा के दर्द का अंकन है। किस प्रकार पति की मृत्यु के बाद उस विधवा को पति के धन से वंचित किया जाता है और फिर कैसे शुरू होती है उसकी त्रासदी। लेकिन इन सबसे बढ़कर जो इस उपन्यास का महत्व है वह है– स्त्री द्वारा वेश्यावृत्ति या आत्महत्या नहीं करके स्वालंबित होना। जो स्त्रियों के लिए नया संदेश है। मधुरेश लिखते हैं–

''प्रेमचंद 'प्रतिज्ञा' में सामाजिक निषेधों के निहितार्थ को समझने का प्रयास करते हैं। पुरुष वर्चस्व वाले समाज में पति की मृत्यु के बाद, स्त्री कितनी असुरक्षित और असहाय होती है– पूर्णा को इसका अनुभव वसंतकुमार के आकस्मिक निधन के बाद ही होता है। कमला प्रसाद के यहाँ आश्रय लेने पर ही उसके आगे उसके सनातमन हिंदू आदर्शों का अर्थ खुलता दिखाई देता है। उनकी कुदृष्टि से बचने के लिए जैसे आत्मघात के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है। प्रेमचन्द अपने उपन्यासों में इस स्थिति के कई विकल्प प्रस्तुत करते दिखाई देते हैं। आर्थिक पराधीनता के कारण या तो वह वेश्या बन सकती है या फिर आत्महत्या कर सकती है। निर्मला और सुमन के रूप में यह दोनों विकल्प वे प्रस्तुत कर चुके थे। सुमित्रा के माध्यम से प्रेमचंद पूर्णा को एक नई दिशा का संकेत देते हैं। सुमित्रा पर नारी मुक्ति आन्दोलन का प्रभाव स्पष्ट है। वह पूर्णा के आगे आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होने का सुझाव रखती है और पुरुषों की लम्पटता से बचाव के लिए अंग्रेज स्त्रियों का उदाहरण उसके सामने रखती है। इस आत्मविश्वास को हासिल करके ही स्त्री सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार पा सकती है। इस प्रकार प्रेमा, पूर्णा और सुमित्रा–भारतीय समाज में स्त्री के सम्मानपूर्वक जीने के अधिकार की दिशा में बढ़ते हुए इस सामूहिक प्रतिज्ञा–पत्र पर अपने हस्ताक्षर करती हैं।''[4]

स्त्री–जीवन के विभिन्न पक्षों के अंकन की दृष्टि से प्रेमचंद युग के उपन्यासकार काफी सजग दिखाई देते हैं। समाज में स्त्रियों के प्रति यह आम धारणा है कि वे गहनों और कपड़ों की लोभी होती हैं और स्त्रियाँ खाने–पहनने से अधिक नहीं सोच पाती हैं, इसलिए किसी प्रभावी निर्णय को लेने में उनकी बुद्धि सक्षम नहीं होती। समाज के इस मिथक को झूठा साबित करते हैं प्रेमचंद अपने 'गबन', उपन्यास की नायिका जालपा के माध्यम से। जालपा को शुरू में गहनों के प्रति अधिक आकर्षित अंकित किय गया है, किन्तु जैसे ही उसे घर की वास्तविकता का पता चलता है वह सेवा और त्याग की मूर्ति बन जाती है। यह स्त्री को समाज के उच्च पद पर बैठाने का सार्थक प्रयास है। इस संबंध में रामदरश मिश्र का उद्धरण द्रष्टव्य है–

''मध्यवर्गीय नारी की मनोकांक्षा उसमें मूर्तिमान हो उठी है इसलिए वह बार–बार हार के लिए पति से कहती है, किन्तु मध्यवर्गीय नारीत्व के साथ–साथ उसमें चिरन्तन नारीत्व भी वर्तमान है जो वर्गीय संस्कारों के नीचे सोया हुआ है। पति की सुख–सुविधाओं में शरीक होकर आनन्द करना नववधुओं के लिए बड़ा सहज व्यापार है, किन्तु जब उसे घर की असलियत मालूम पड़ती है, तो वे वास्तविकता के अनुरूप अपने को बना लेने में सबसे आगे होती हैं और सारा सुख–विलास छोड़कर सेवा–त्याग–तपस्या में लीन हो जाती हैं। जालपा तभी तक हार के लिए जिद्द करती है जब तक जानती है कि उसका पति पैसेवाला है। जब उसे वास्तविकता का बोध होता है, तो अपने सारे गहने बेचकर पति की इज्जत बचाती है और सेवा त्याग से न केवल अपने घर को, बल्कि समाज को भी प्रकाशित करती है। जालपा में मध्यवर्गीय नारी की युवती सुलभ आकांक्षा (आभूषण प्रेम, भोग–विलास की प्रवृति, ऊँचे समाज की नारियों से मिलने–जुलने और उनसे स्पर्धा करने की इच्छा, यानी ऊपरी चमक–दमक को ही जीवन–मूल्य मान लेने की आसक्ति) के साथ नारी की समस्त पीड़ा, अभाव, सत्यनिष्ठा, निश्चयशक्ति, सेवा– त्याग और सहानुभूति है। रमानाथ सत्य से असत्य पर पहुँचता है, जालपा असत्य से सीधे सत्य तक पहुँचती है।''[5]

हिंदी उपन्यासों के माध्यम से उपन्यासकारों ने स्त्री–अधिकारों के प्रति न सिर्फ समाज को जागृत किया बल्कि स्त्री में भी चेतना का संचार किया। 'कंकाल' उपन्यास में जयशंकर प्रसाद जहाँ विभिन्न कथनों के माध्यम से स्त्री शोषण का चित्र प्रस्तुत करते हैं, तो 'तितली' के माध्यम से भारतीय नारी के सौन्दर्य और शक्ति की महिमा व्याख्यायित करते हैं। इस उपन्यास के सन्दर्भ में रामदरश मिश्र का उद्धरण द्रष्टव्य है–

''लेखक ने तितली के माध्यम से भारतीय नारी के सौन्दर्य और शक्ति की महिमा का आख्यान किया है इसके लिए ही उसने शैला और इन्द्रदेव के प्रणय की सृष्टि की है। शैला इन्द्रदेव को चाहती हुई भी उसे अपना नहीं पाती, वह अपने स्वातन्त्र्य की खोज में लगी हुई उस सूत्र को नहीं समझ पाती जो उसे दूसरों से जोड़कर बड़ा बनाता है। इसलिए इन्द्रदेव और उसमें एक मौन फासला बनता जाता है और वह चाहे अनचाहे रूप में वटसन की ओर झुकने लगती है। वह आर्थिक रूप में निर्भर होने के लिए तथा स्वतंत्र व्यक्तित्व बनाए रखने के लिए अस्पताल खोलती है, बैंक खोलती है लेकिन वह स्वतंत्रता उसे आत्मसुख नहीं दे पाती। वह भीतर–भीतर एक खालीपन लिये सामाजिक यश–सम्पन्नता के विस्तार में भटकती रहती है। तितली और शैल का अन्तर भारत और पश्चिम की स्त्रियों का अन्तर है।''[6]

'स्त्री विमर्श' की दृष्टि से हिंदी उपन्यासों का महत्व तब अधिक बढ़ जाता है, जब साहित्य और समाज में मार्क्सवाद का समावेश होता है। मार्क्सवाद स्त्री–स्वतंत्रता का अधिक पक्षधर है। प्रेमचंद्र, प्रसाद, निराला, उग्र आदि उपन्यासकारों ने स्त्रियों के अधिकारों की बात तो की किन्तु परम्परागत मोह को भी छोड़ नहीं सकें। यशपाल ने अपने उपन्यासों में 'स्त्री विमर्श' का जो चित्रण किया वह अधिक क्रान्तिकारी है। इस सन्दर्भ में गोपाल राय का कथन द्रष्टव्य है–

''यशपाल ने अपने उपन्यासों में स्त्री–पुरुष संबंध की परम्परागत संहिता को जबर्दस्त चुनौती दी है। वस्तुतः यह चुनौती सन् बीस के दशक में ही उपन्यास के माध्यम से व्यक्त होने लगी थी, जिसे जैनेन्द्र और अज्ञेय ने और भी जोरदार ढंग से मुखरित किया था। यशपाल ने और आगे जाकर स्त्री के मुक्त प्रेम और काम संबंध का समर्थन किया है। यशपाल प्रेम और काम–व्यापार को एक जीवशास्त्रीय क्रिया मानते हैं और उसमें पुरुष की अधिकार भावना को चुनौती देते हैं। दादा कामरेड की शैल काम विषयक किसी भी परम्परागत नैतिक मूल्य को स्वीकार नहीं करती। वह एक साथ कई व्यक्तियों से प्रेम करने में कोई अनैतिकता नहीं देखती. ....। देशद्रोही में भी यश्पाल खतून, डॉ. खन्ना, राजदुलारी, राज चन्दा आदि के संबंधों के चित्रण द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि पुरुष द्वारा नारी पर आरोपित 'पतिव्रता' का मूल्य और 'सतीत्व' की धारणा एक साजिश है। स्त्री को एक ही व्यक्ति के उपभोग की वस्तु मानने की परम्परागत अवधारणा को यशपाल स्वीकार नहीं करते। पार्टी कामरेड में भी नारी विषयक इसी सोच का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार यशपाल ने नारी विषयक अपने क्रान्तिकारी प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है।''[7]

जैनेन्द्र कुमार रचित 'त्याग–पत्र' हिंदी उपन्यासों में 'स्त्री विमर्श' की दृष्टि से अप्रतिम रचना है। प्रस्तुत उपन्यास की नायिका पति द्वारा त्याग दिये जाने पर न तो वेश्यावृत्ति को अपनाती है और न ही आत्महत्या करती है। दूसरी ओर आत्मपीड़न का रास्ता अपनाते हुए भी एकपतिव्रत का नियम भी तोड़ती है जो समाज के लिए एक सन्देश है। 'स्त्री विमर्श' के सन्दर्भ में 'त्यागपत्र' के वैशिष्ट्य को वन्दना वीथिका इन शब्दों में व्यक्त करती हैं–

''हिन्दी के यशस्वी उपन्यासकार लिखित ''त्याग–पत्र'' वस्तुतः नारी जीवन की एक भीषण त्रासदी है। ऐसी त्रासदी जो नारी–जीवन में युगों–युगों से घटित होती आ रही है। एक निरीह सीधी–सादी बहन, बेटी, ननद, बुआ, पत्नी और माता का विषम परिस्थितियों के थपेड़ों से अनवरत आहट होते हुए अन्त में समाज के एक जीवन्त नरक–वेश्यालय में पहुँचकर गलित कोढ़ का शिकार हो जाना एक लोमहर्षक त्रासदी नहीं तो और क्या है? तभी तो हिन्दी के सुप्रसिद्ध समालोचक प्रो. शिव नारायण श्रीवास्तव ने इनके नारी पात्रों के सन्दर्भ में ठीक ही लिखा है कि जैनेन्द्र के ''नारी पात्र बाहर से चाहे जो भी लगे किन्तु उनके अन्तरात्मा में जब हम प्रवेश करते हैं तो वहाँ एक ज्वाला–सी जलती पाते हैं। यह ऐसी ज्वाला है जो दूसरों को शीतल रखने का प्रयास करती है। सामाजिक एवं परिस्थितिजन्य विषमताओं को मूक भाव से सहन करती हुई ये स्त्रियाँ स्वयं शून्य होती हुई चली जाती हैं।''[8]

'स्त्री विमर्श' की दृष्टि से विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों का वैशिष्ट्य महत्वपूर्ण है। इन्होंने स्त्री–जीवन से जुड़ी प्रत्येक त्रासदी का अंकन कर समाज को जागृत करने का प्रयास किया है। साथ ही नारी महिमा को भी प्रमुखता से व्यक्त करते हैं। इनके उपन्यासों में नारी परम्परागत नारी संहिता को ठुकराने, आर्थिक स्वतंत्रता, स्वयं जीवनसाथी चुनने या अविवाहित रहने जैसे विकल्पों का चयन करने का हिम्मत देते हैं। इनके उपन्यासों के सन्दर्भ में गोपाल राय लिखते हैं–

''नारी नियति की बहुआयामी त्रासदी ही उनके उपन्यासों का केन्द्रीय कथ्य है। उनके उपन्यासों में नारी कहीं परित्यक्ता होने की, कहीं विधवा होने की, कहीं माता–पिता द्वारा तिलक–दहेज न जुटा पाने की स्थिति में मनोकूल पति न पाने की, कहीं विवाह के बाद मनमाना दहेज न पाने पर घर से निकाल दिये जाने या हत्या कर दिये जाने की, कहीं बचपन में किसी को यौन वासना का शिकार होकर जिन्दगी–भर मानसिक पीड़ा झेलने की, कहीं विवाह के बाद गुंडों द्वारा बलात्कार की शिकार हो जाने पर पूरे समाज की घृणा का पात्र बनने, अपनी ही मानसिक कुंठा से ग्रस्त हो जाने और पति के मन में गाँठ पड़ जाने की त्रासदी की शिकार है।''[9]

'''कोई तो' का केन्द्रीय विषय पढ़ी–लिखी मध्यवर्गीय लड़की की नियति है, जो धर्म, जाति, यौन शुचिता, पुरुष प्रभुत्व, सड़ी–गली न्याय व्यवस्था, पुरुष की अनुदार और भोगवादी दृष्टि, स्त्री की शारीरिक कमजोरी और साहसहीनता, गर्भधारण की विवशता आदि से नियंत्रित परम्परागत नारी संहिता से परिचारित होती है। प्रासंगिक रूप से बलात्कार की शिकार स्त्रियों की समस्या भी 'कोई तो' में उठाई गई है। उपन्यास का मुख्य स्वर चुनौती का है कि आधुनिक नारी में पारम्परिक नारी संहिता को ठुकराने, आर्थिक स्वतंत्रता के साथ–साथ स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने, अपना जीवनसाथी स्वयं चुनने या अविवाहित जीवन व्यतीत करने तथा पुरुष मानसिकता को चुनौती देने का साहस होना चाहिए।''[10]

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में महिला लेखिकाओं के आगमन ने 'स्त्री विमर्श' की दृष्टि से हिंदी उपन्यासों के वैशिष्ट्य को स्थापित तो किया ही स्त्रियों में आत्मविश्वास को भी जागृत किया, विभिन्न स्वावलम्बी नायिकाओं का चित्रण कर महिलाओं को जीवन जीने के नये रास्ते दिखाये।

lUnHkZ %

1. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001,, पृ0 67.
2. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ0 151.
3. हिन्दी उपन्यास का विकास, मधुरेश, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, 1995, पृ0 43.
4. वही, पृ0 44–45.
5. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ0 50.
6. वही, पृ0 71.
7. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ0 184–185.
8. हिन्दी के गौरवशाली उपन्यास, वन्दना वीथिका दरअसल प्रकाशन, पटना, 1998, पृ0 45.
9. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ0 234.
10. वही, पृ0 235.
11. आपका बंटी, मन्नू भण्डारी हिंदी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना (से उद्धृत), पृ0 35.
12. मित्रो मरजानी–कृष्णा सोबती–साढ़ोत्तर हिंदी उपन्यास प्रतिपाद्य और शिल्प से उद्धृत, पृ0 59.
13. नावें–शशि प्रभा शास्त्री–हिन्दी की समकालीन महिला उपन्यासकार, पृ0 31.
14. अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में नारी समस्याएँ, डॉ. श्रीमती अर्चना झा, मदर टेरेसा एडुकेशन ट्रस्ट, पटना, 2009, पृ0 63–64.
15. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ0 388.
16. वही, पृ0 384.
17. वही, पृ0 384.
18. अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा, पृ0 93.
19. इदन्नमम–मैत्रेयी पुष्पा, पृ0 93.

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 97-101

jkT; }kjk O;olk; dk fu;eu o fu;=.k % ,d uohu fo'y"k.k

'kHkkxh*

Lkkjka'k % *यह अध्ययन राज्य द्वारा व्यवसाय का नियमन व नियंत्रण : एक नवीन विश्लेषण को रेखांकित करता है। वर्तमान दौर आर्थिक उदारीकरण का दौर है। सरकार ने आवश्यक वस्तुओं की आसानी से पूर्ति एवं वितरण तथा उपभोक्ताओं को प्राप्त विभिन्न वस्तुओं की गुणवत्ता, किस्म, उत्पादन, वितरण तथा उनके मूल्यों पर नियंत्रण के लिए विभिन्न अधिनियमों को समय–समय पर पारित किया है। उसे सुनियोजित ढंग से संचालित भी किया है, जिससे उपभोक्ताओं को संरक्षण एवं सुरक्षा आसानी से प्रदान की जा सके। सरकार ने समय–समय पर अनेक नियम बनाये है। यह अध्ययन पूर्व के अध्ययनों से अलग है तथा अध्ययन विषय एवं समाज के लिए महत्वपूर्ण हैं।*

eq[; 'kCn % उपभोक्ता, सामुदायिक स्वास्थ्य, खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम 1954, बुनियादी आवश्यकता आदि ।

वर्तमान दौर आर्थिक उदारीकरण का दौर है तथा खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम 1954 महत्वपूर्ण हैं। खाद्य जीवन के निर्वाह के लिए बुनियादी आवश्यकताओं में से एक है। शुद्ध ताजा और स्वस्थ आहार, लोगों के स्वास्थ्य के लिए बहुत जरूरी है। यह कहने में कोई आश्चर्य नहीं कि सामुदायिक स्वास्थ्य राष्ट्रीय धन है। परन्तु बड़े पैमाने पर खाद्य सामग्री में हो रही मिलावट पर नियंत्रण करने के लिए एक व्यापक कानून के रूप में कठोर उपाय करना समय की जरूरत बन गयी। इस तरह के विरोधी सामाजिक बुराइयों की जांच करने के लिए तथा उपभोक्ताओं को राहत प्रदान करने के उद्देष्य से सरकार ने संसद में खाद्य अपमिश्रण रोकथाम विधेयक लागू किया।

भारत के अनेकों राज्यों में खाद्य सामग्री मिलावट की रोकथाम के लिए कानून मौजूद हैं। लेकिन राज्यों में मय आपसी सहमति के बिना अलग–अलग समय में पारित होने के कारण असफल रहा। वर्ष 1937 में केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड द्वारा नियुक्त समिति की अनुशंसा पर यह महसूस किया गया कि पूरे देश के लिए एक केन्द्रीय कानून होना चाहिए। वर्तमान में खाद्य सामग्री और अन्य सामान में मिलावट का विषय संविधान की समवर्ती सूची (तष्तीय) में शामिल है। अतः केन्द्र सरकार के लिए यह सम्भव हो गया कि वे इस विषय पर एक अखिल भारतीय कानून का निर्माण करे। केन्द्रीय कानून उन राज्यों पर भी लागू होगा जहां पहले से इस अनुबंध में स्थानीय कानून मौजूद है। तथा उन राज्यों को भी अपने घेरे में लेंगे जहां पर इस तरह के कानून का कोई अस्तित्व वर्तमान में मौजूद नहीं है।

इसके साथ ही इस कानून के तह् दो अतिरिक्त प्रावधान भी किये गये–

1. केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला की व्यवस्था जहां विवादित मामलों में भोजन के नमूने को अंतिम राय के लिए भेजा जाएगा।
2. अधिनियम के प्रशासन से उत्पन्न होने वाले मामलों पर सलाह देने के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों के प्रतिनिधियों से मिलकर एक केन्द्रीय समिति का गठन।

खाद्य अपमिश्रण रोकथाम विधेयक खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम 1954 के रूप में 01 जून 1955 को दोनों सदनों द्वारा पारित हुआ तथा 29 सितम्बर को राष्ट्रपति ने स्वीकृति प्रदान किया।

*शोध छात्रा, वाणिज्य एवं व्यवसाय प्रशासन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उ0प्र0

mnn’; %

1. जहरीला तथा हानिकारक खाद्य पदार्थों से जनता की रक्षा करना।
2. घटिया पदार्थों की बिक्री पर रोक/अंकुश लगाना।
3. केन्द्रीय धोखाधड़ी प्रथा को नष्ट कर उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना।

e[; iko/kku % कोई भी खाद्य सामग्री को मिलावटी माना जाएगा यदि–

1. एक विक्रेता द्वारा बेचा गया पदार्थ, क्रेता द्वारा मांगी गयी सामग्री की प्रकृति पदार्थ या गुणवत्ता का नहीं हो तथा उनके हितों के प्रतिकूल हों।
2. समग्री (खाद्य पदार्थ) में कोई अन्य पदार्थ मौजूद हो तो पदार्थ की गुणवत्ता को प्रभावित करता है।
3. समग्री में कोई सस्ता पदार्थ प्रतिस्थापित किया गया हो जो उसकी गुणवत्ता को प्रभावित करता हो।
4. समग्री का निर्माण, संवेदन या रख रखाव किसी दूषित या हानिकारक वातावरण में किया गया हो जिससे वे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक बन गया है।
5. अगर खाद्य सामग्री का निर्माण किसी भी गंदी, बदबूदार, विघटित, सड़ा हुआ या मानव उपभोग के लिए अन्यथा उपयोगी न हो।
6. अगर खाद्य सामग्री रोग ग्रस्त पशु से प्राप्त किया गया है।
7. सामग्री में हानिकारक या जहरीला अन्य घटक मौजूद हो जो मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो।
8. सामग्री का रख रखाव किसी ऐसे डब्बे या वस्तु में किया गया जो जहरीला या हानिकारक हो।
9. सामग्री में निर्धारित किसी अन्य ढंग की मौजूदगी तथा निर्धारित की मात्रा से ज्यादा की मौजूदगी।
10. सामग्री में किसी भी निषिद्ध परिरतक या निर्धारित सीमा से अधिक संरक्षण मौजूद हो।
11. अगर सामग्री किसी भी जगह या देश के उत्पादन होने काझूठा दावा करता हो।
12. सामग्री को किसी गलत नाम से बेचा जाता हो।
13. सामग्री का लेप, पाउडर या पॉलिस उसकी क्षतिग्रस्त या किसी तथ्य को छुपाता हो या पॉलिस, लोपन इस उद्देश्य से किया गया हो कि अधिक से अधिक मूल्य कमाया जाए।
14. लेबल पर झूठा दावा किया गया हो।
15. पैकेज पर युक्त लेबल भ्रामक या गलत हो या किसी भी बयान, डिजाइन या उपकरण सामग्री के बारे में या उसमें निहित पदार्थ के घटक भ्रामक हो।
16. सामग्री के पैकेज पर निर्माता के रूप में किसी काल्पनिक व्यक्ति या कम्पनी का नाम अंगीकृत हो।
17. अधिनियम या नियमों की आवश्यकताओं के अधीन लेबल का निर्माण नहीं किया गया हो।
18. लेबल अगर झूठा घोषणा करता है कि सामग्री में किसी भी प्रकार की कृत्रिम रंग सुगंध या रासायनिक परित्लक नहीं है।
19. लेबल पर सभी सामग्री का सम्मिश्रण ग्राहक को स्पष्ट किया जाना चाहिए।
20. पदार्थ को पकाने में कार्बाइड गैस के उपयोग को निषेध करता है।

इस विधि के अन्तर्गत दण्ड का प्रावधान किया गया है जिसके तहत् अपराधी को 3 माह से तीन साल तक की कारावास तथा 1000रू0 तक का जुर्माना लगाया जा सकता है।

vko’;d oLr| vf/kfu;e&1955 % उपभोक्ताओं के लिए आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धता को सुनिश्चित करने तथा उन्हें बेईमान व्यापारियों के शोषण से सुरक्षित रखने का प्रयास करते हुए भारत सरकार ने स्वयं को आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 हथियार में सुसज्जित किया है।

mnns'; % आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 में आवश्यक वस्तु घोषित की गई है वस्तुओं के उत्पादन का विनियमन और नियंत्रण, वितरण तथा मूल्य निर्धारित करने की व्यवस्था किया गया है ताकि आपूर्तियों को बनाये रखने अथवा उन्हें वृद्धि करने तथा उचित मूल्यों, समय वितरण तथा उपलब्धता सुनिश्चित किया जा सके।

आवश्यक वस्तु अधिनिमय 1955 के उपबन्धों के प्रवर्तन और कार्यान्वयन कराने की जिम्मेदारी राज्य सरकारों और संघ राज्य प्रशासनों की है।

अतः खाद्यान्न, खाद्य तेल, मिट्टी का तेल चीनी तथा चीनी उत्पाद के वितरण तथा गुणवत्ता पर नियंत्रण रखने के लिए भारत सरकार ने राज्य सरकारों को अनेक आदेश जारी किये हैं तथा केन्द्र सरकार, केन्द्रीय कानून को राज्यों में लागू करवाने के लिए राज्य सरकारों पर नजर रखता है ताकि अधिनियम का विनियमन सही और पूर्ण रूप से किया जा सके।

vko';d oLrq dh lwph % निम्नलिखित वस्तुओं को आवश्यक वस्तु की सूची में अधिनियम के तहत् रखा गया है–

1. मवेशी चारा, तेलीय केक।
2. कोयला, कोक सहित अन्य व्युत्पन्न पदार्थ।
3. आटोमोबाइल के सामान सहित अन्य घटक।
4. कपास तथा ऊनी वस्त्र।
5. दवाएं।
6. खाद्य पदार्थ सहित खाद्य तिलहन तथा तेल।
7. लेगा इस्पात सहित लोहा तथा इस्पात विनिर्मित उत्पाद।
8. कागज सहित अखबारी कागज, पेपर बोर्ड तथा पुआल बोर्ड।
9. पेट्रोलियम तथा पेट्रोलियम उत्पाद।
10. कच्चा कपास, कपास का बींज
11. कच्चा जूट।

आवश्यक वस्तुओं की सूची की वस्तुओं के उत्पादन तथा आपूर्ति के संदर्भ में तथा इन वस्तुओं को प्रशासित करने वाले संबंधित मंत्रालयों तथा विभागों के परामर्श से आर्थिक उदारीकरण को देखते हुए समय–समय पर समीक्षा की जाती है। ऐसी समीताओं के जरिए वर्तमान में आवश्यक वस्तुओं की संख्या कम करके सात कर दिया गया है। केन्द्रीय सरकार को भी जनहित में राज्य सरकारों की परामर्श से किसी आवश्यक वस्तु को जोड़ने हटाने तथा संशोधित करने का अधिकार दिया गया है।

n.M %

- सरकार द्वारा कोई भी सम्पत्ति जब्त करना।
- कम से कम तीन साल या अधिक से अधिक सात वर्ष की सजा हो सकती है।
- 1 वर्ष की सजा के साथ आर्थिक दण्ड भी हो सकता है।

0;kikj o 0;kogkfjd fpUg vf/kfu;e&1958 % भारत में ट्रेडमार्क के पंजीकरण हेतु इस अधिनियम को पारित किया गया। किसी भी निर्माता द्वारा अपनी वस्तु की पहचान एवं उसका नाम याद रखने के लिए कोई चिन्ह या नाम शब्द दिया जाए या इनके सम्मिश्रण से कोई चिन्ह या नाम बनाकर अपनी वस्तु पर छाप देता है तो उसे ब्राण्ड कहा जाता है, परन्तु जब उसकी ब्राण्ड का पंजीकरण इस अधिनियम के अन्तर्गत करा लिया जाता है तो वही ब्राण्ड ट्रेड–मार्क बन जाती है इसके निर्माता या विक्रेता को लाभ होता है। इस प्रकार के ट्रेडमार्क की नकल कोई और नहीं कर सकता इसका प्रयोग करने का एकमात्र अधिकार पंजीकरण कराने वाले को मिल जाता है।

इस अधिनियम के अन्तर्गत ट्रेडमार्क के पंजीकरण का कार्य पेटेण्ट डिजाइन्स ट्रेडमार्क महानिदेशक, बम्बई के द्वारा किया जाता है जो इस अधिनियम के ट्रेडमार्क रजिस्ट्रार कहलाता है इसकी तीन षाखा कलकत्ता, मद्रास व नई दिल्ली में है।

V'Mekdl dk dk;l% एक ट्रेडमार्क स्रोत या माल की मूल पहचान के उद्देश्य से कार्य करता है। ट्रेडमार्क निम्नलिखित चार कार्य करता हैः–

1. यह उत्पाद की पहचान है।
2. यह इसकी गुणवत्ता की गारंटी करने का प्रस्ताव है।
3. यह उत्पाद का विज्ञापन करता है।
4. यह जनता विशेष रूप से उपभोक्ताओं को या ऐसे माल की संभावित उपभोक्ताओं के मन में उत्पाद की एक छवि बनाता है।

ckV ,oa eki vf/kfu;e&1976% इस अधिनियम का उद्देश्य तौल एवं माप के मान को स्थापित तोल व माप तथा अन्य वस्तुयें माध्यम से बेची या वितरित की जा सके। अन्तर्राज्यीय व्यापार या वाणिज्य को नियमित करना एवं इसके कार्यों को करना है। इस अधिनियम के मुख्य तत्व निम्नलिखित हैंः–

rkSy ,oa eki dk iHkkoks dk fu/kkZfjr djuk% बाट एवं माप की प्रत्येक इकाई मौट्रिक इकाई मैट्रिक प्रणाली पर आधारित होगी तथा इस अधिनियम के अन्तर्गत इस कार्य के लिए मीटर, किलोग्राम, एम्पीयर, कैलविन आदि को प्रयोग में लाया जाता है।

xSj&eku ckV] eki ;k vad dk iz;kx rFkk mudk cukus ij izfrca/k% गैर–मान के बाट व माप के प्रयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। साथ ही ऐसे बाट व माप बनाने पर रोक भी लगा दी गयी है। कोई भी व्यक्ति किसी भी वस्तु के बेचने के लिए मूल्य गैर–मान के बाट एवं माप में नहीं बता सकता न वस्तुओं पर इस प्रकार का तथ्य अंकित की कर सकता है न ही इसका कैश मेमो, बिल या बीजक आदि बना सकता है। यदि कोई परम्परा, रीति या तरीका ऐसा है जिसमें मान से कम या अधिक वस्तु की मांग की जाती है या वस्तु की सुपुर्दगी की जाती है तो इस प्रकार की मांग या सुपुर्दगी व्यर्थ होगी।

यदि कोई व्यक्ति बाट, माप या अंक को बनाता, बेंचता या वितरित करता है या उनकी मरम्मत करता है तो उसको इस प्रकार की वितरण विक्रय या मरम्मत का लेखा–जोखा रखना अनिवार्य है।

iHkkoksa o midj.kksa dk lR;kiu% प्रत्येक मान पर प्रमाणित होने पर मोहर लगवाना आवश्यक है। यह मोहर निर्धारित अधिकरण द्वारा निर्धारित शुल्क लगायी जायेगी। यदि किसी माप या मान पर मोहर नहीं लगी है तो उसका प्रयोग वर्जित है। सभी प्रयोग में आने वाले मापों व बाटों पर एक निश्चित समय के बाद मोहर लगवाना अनिवार्य है।

ljdkjh vf/kdkfj;ksa dk vf/kdkj% इस अधिनियम के अन्तर्गत नियुक्त अधिकारी या उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति किसी भी ऐसे स्थान पर उचित समय में कर सकता है तथा तौल, माप या उससे सम्बन्धित रिकार्ड को अपने कब्जे में ले सकता है। जहां पर इस अधिनियम के अन्तर्गत दण्डनीय कार्य किये जाने की संभावना हो। इस प्रकार का यदि कोई भी अप्रमाणित तौल का माप पाये जायेंगे जिसको केन्द्रीय सरकार जब्त कर सकती है।

n.M% धारा 50 के अनुसार यदि कोई भी व्यक्ति निर्धारित मान के मापों व बांटों का उपयोग नहीं करता तो उसको इस प्रकार का कार्य पहली बार करने पर छः माह की सजा या एक हजार रूपये का आर्थिक दण्ड या दोनों दिया जा सकता है परन्तु द्वितीय व बाद के अपराधों पर दो वर्ष तक की सजा व जुर्माना अधिनियम की धारा 51 के अनुसार यदि कोई व्यक्ति बाटों व मापों को बनाते समय मान का ध्यान नहीं रखता है तो उसे दो वर्ष तक की सजा या 5000 रूपये तक का आर्थिक दण्ड या दोनों दिया जा सकता है।

miHkksDrk laj{k.k vf/kfu;e 1986% उपभोक्ता संरक्षण एक प्रकार का सरकारी नियंत्रण है जो उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करता है।

ifjp;% आज ग्राहक जमाखोरों, कालाबाजारी, मिलावट बिना मानकों की वस्तुओं की बिक्री गारंटी के बाद सर्विस नहीं देना, कम नाम–तौल इत्यादि संकटों से घिरा हुआ है। ग्राहक संरक्षण के लिए विभिन्न कानून बने हैं, उसके फलस्वरूप ग्राहक आज सरकार पर निर्भर हो गया है। जो उन लोग गैर कानूनी काम कर रहे हैं जैसे– जमाखोरी, कालाबाजारी, मिलावटखोरी उन्हें राजनैतिक संरक्षण प्राप्त होता है।

ग्राहक चूंकि हर जगह संगठित नहीं है। इसलिए हर जगह ठगा जाता है। ग्राहक आंदोलन की शुरूआत यहीं से होती है ग्राहक को जागना होगा व स्वयं का संरक्षण करना होगा।

उपभोक्ता आंदोलन की षुरूआत अमेरिका में रल्प माडरे द्वारा किया गया था। माडरे ने आंदोलन के फलस्वरूप 15 मार्च 1962 में अमेरिका कांग्रेस के तत्कालीन राष्ट्रपति जॉन एफ कनेडी द्वारा उपभोक्ता संरक्षण पर पेश विधेयक को अनुमोदित किया था। इसी कारण 15 मार्च को अंतर्राष्ट्रीय उपभोक्ता दिवस के रूप में मनाया जाता है। अमेरिकी कांग्रेस में पारित विधेयक में चार विशेष प्रावधान थे।

1. उपभोक्ता सुरक्षा के अधिकार
2. उपभोक्ता के सूचना प्राप्त करने का अधिकार
3. उपभोक्ता के चुनाव करने का अधिकार
4. उपभोक्ता को सुनवाई का अधिकार

अमेरिकी कांग्रेस ने इन अधिकारों को व्यापकता प्रदान करने के लिए चार और अधिकार बाद में जोड़े हैं।

1. उपभोक्ताशील का अधिकार
2. हानि प्राप्त करने का अधिकार
3. स्वच्छ वातावरण का अधिकार
4. मूलभूत आवश्यकताएं जैसे भोजन, वस्त्र तथा आवास प्राप्त करने का अधिकार

lUnHkZ

1. शर्मा, तुलसीराम एवं जैन सुभाषचन्द, बाजार व्यवस्था, साहित्य भवन, आगरा, 1979
2. देसाई, एस0एस0 एन0, इकनामिक हिस्ट्री आफ इंडिया।
3. पुणेकर,एस0डी0, इकनामिक रिव्यूलूशन इन इंडिया, हिमालिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
4. फिक्स, जार्ज, मार्केटिंग सिस्टम एवं इन्ट्रोडक्टरी एनालिसिस, हार्पर एण्ड रो, न्यूर्याक, 1967
5. फिलिप्स एण्ड डंकन, मार्केटिंग प्रिंसिपल एण्ड मैथड्स
6. विरला इंस्टीट्यूट आफ साइंस्टिफिक रिसर्च, स्टेट इन फूडग्रेन, 1980
7. वुल, विक्टरवी, मार्केटिंग मैनेजमेन्ट, इन एक्शन, माग्राहिल, न्यूर्याक, 1966
8. ब्रमसन कोनार्ड एण्ड एलवर्ट हेनरी, दी सोशल डायनामिक आफ मार्केटिंग रनैडम हाउस, न्यूयार्क, 1971
9. वैब्विसटम, फ्रीडरिक, सोशल आसपेक्ट आफ मार्केटिंग प्रैन्टिस हाल, 1974
10. ब्रुष जेबाकर एण्ड जायेल वी0 हेन्स, मार्केटिंग चैनल्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन, रीडिन्ग आन डिस्ट्रीब्यूशन कानसेप्ट एण्ड प्रैक्टिस, कोलम्बस ओहियो ग्रिड, 1973
11. भण्डारी एण्ड बोरा एन0एन0, इंडियन डिस्ट्रीब्यूशन सिस्टम रोल आफ प्राइवेट ट्रेड।
12. ममोरिया, सी0वी0 और जोशी आर0 एल0, प्रिंसिपल एण्ड प्रैक्टिस ऑफ मार्केटिंग इन इंडिया, किताब महल, इलाहाबाद, 1979
13. मोरिस, जार्ज पी0 एण्ड फ्रे0 राबर्ट डब्लू, करेंट मार्केटिंग न्य, काउफील्ड प्रेस, सैनफ्रांसिस्को, 1973
14. मोर्स एस0, दी प्रैक्टिकल एप्रोच टू मार्केटिंग, मैनेजमेन्ट, मैग्राहिल।
15. मैगी, जे0एफ0, फिजिकल डिस्ट्रीब्यूशन सिस्टम, मैग्राहिल, न्यूयार्क, 1967
16. माथुर, एस0पी0, कोआपरेटिव मार्केटिंग इन यू0पी0, 1980
17. सक्सेना, के0के0, इव्यूलूशन आफ कोआपरेटिव थाट, सोम्या पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, मुम्बई, 1974
18. मैसन एण्ड रथ, मार्केटिंग एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन
19. सिंह, वी0वी0, एन इव्यूलूशन आफ फेयर प्राइस शाप, आक्सफोर्ड, एण्ड आई0वी0एच0 पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 1972

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 102-105

i;kstueyd fgUnh dh miyfC/k;k

on idk'k vk>k*

प्रयोजमूलक हिन्दी से तात्पर्य हिन्दी के उस स्वरूप से है जो विज्ञान, तकनीकी, विधि, संचार एवं अन्याय गतिविधियों में प्रयुक्त होती है। इस 'कामकाजी हिन्दी' भी कहा जाता है। प्रयोजनमूलक हिन्दी आज भारत के बहुत बड़े फलक और धरातल पर प्रयुक्त हो रही है। केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच संवादों का पुल बनाने में आज इसकी महती भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। आज इसने कम्प्यूटर, टेलेक्सतार, इलेक्ट्रॉनिक, टेली प्रिंटर, दूरदर्शन, रेडियों, अखबार, डाक, फिल्म और विज्ञापन आदि जनसंचार के माध्यमों को अपनी गिरत में ले लिया हैं। शेयर बाजार, रेल, हवाई जहाज, बीमा उद्योग, बैंक आदि औद्योगिक उपक्रम, रक्षा, सेना, इन्जीनियरिंग आदि प्रौद्योगिकी संस्थान तकनीकी और वैज्ञानिक क्षेत्र, आयुर्विज्ञान, कृषि, चिकित्सा, शिक्षा, विश्वविद्यालय, सरकारी और अर्द्धसरकारी कार्यालय आदि कोई भी क्षेत्र हिन्दी से अछूता नहीं रहा गया है।

दंगल झाल्टे ने लिख है कि ''प्रयोजनमूलक हिन्दी की सबसे बड़ी समस्या हैः विज्ञान और तकनीक से सम्बंधित अत्यंत दुरूह पारिभाषिक शब्दावली। वास्तव में कोई शब्द सरल या कठिन नहीं होता। शब्द या तो परिचित होता है या अपरिचित। परिचित शब्द (प्रचलित शब्द) आसान या सरल लगता है, इसके विपरीत अपरिचित शब्द कठिन या दुरूह लगता है। भौतिक, रसायन, गणित विधि, अंतिरिक्ष, कम्प्यूटर तथ मानविकी से सम्बंधित लाखों नये शब्दों का निर्माण वैज्ञानिक और तकनीकी शबदावली आयोग ने किया है। किन्तु समस्या उनके प्रचलन की है। विशुद्ध विज्ञान और टेक्नोलॉजी से सम्बंधित ये परिभाषिक शब्द प्रचलित नहीं थे इसलिए दुरुह या कठीन लगते हैं और उचित मात्रा में प्रचलित नहीं हो पा रहे हें। अतः विज्ञान और टेक्नोलॉजी से सम्बंधित पारिभाषिक शब्दावली को विषय वस्तु एवं संदर्भानुसार अधिक मात्रा में प्रचलित करने के लिए सधन प्रयास किये जाने की आवश्यकता है।''[1]

प्रयोजनमूलक हिन्दी के क्षेत्र में संस्थन की विशेषज्ञता को ध्यान में रखकर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने सन् 1998–99 में, संस्थन को स्नातक स्तर के प्रयोजनमूलक हिन्दी पाठ्यक्रम के पुनर्गठन एवं संशोधन का कार्य सौंपा जिसे संस्थान ने पूरा किया तथा पाठ्यक्रम को अधतन रूप प्रदान किया। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने प्रयोजमूलक हिन्दी के शिक्षण को उच्च शिक्षा में आवश्य विकल्प के रूप में स्वीकार कर लिया है और अब भारत के कई विश्वविद्यालयों में व्यवसायोन्मुख तथा प्रयोजनमूलक के रूप में स्वीकार कर लिया है और अब भारत के कई विश्वविद्यालयों में व्यवसायोंन्मुख तथा प्रयोजनममूलक हिन्दी के पाठ्यक्रम चल रहे हैं।

डॉ0 माया सिंह, डॉ0 सिद्धेश्वर काश्यप का मत है कि ''प्रत्येक राष्ट्र की राष्ट्रीयता, अस्मिता, एकता, अखण्डता, सभ्यता, संस्कृति, परंपरा, जीवन मूल्य, विचार, दर्शन, अध्यात्म समाजिक और सत्तात्मक उपलब्धियों का सुरक्षात्मक आभिव्यक्ति की भाषा ही राष्ट्रभाषा होती है और यही भाषा जब सत्ता और प्रशासन, वाणिज्य और व्यापार शिक्षा और जनसंचार का माध्यम बन जाती है तो प्रयोजनमूलक भाषा कहलाती है।''[2]

भाषा की यही प्रयोजनमूलकता और सोद्येश्लता है। हिन्दी की प्रयोजनीयता भी उक्त संदर्भ में ही प्रमाणित होती है। प्रयोजनमूलक हिन्दी व्यापारिक शैक्षणिक, वाणिज्यिक, प्रशासनिक, कार्यालयी, शास्त्रीय, सामाजिक जनसंचारिक उपलब्धियों को वाणीबद्ध करने में सक्षम है। इसका उदेद्श्य इनके कार्य संपादन ही

*शोध–छात्र, हिन्दी, बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

नहीं सम्प्रभुता, एकता और अखण्डता, भाषायी अपृथकता राष्ट्रीयता, भाषा की शाब्दिक विविधता के द्वारा उन्नति और समृद्धि की अक्षुण्णता और सुरक्षा भी है।

डॉ0 माया सिंह, सिद्धेश्वर काश्यप ने लिखा है कि "हिन्दी के प्रयोजनमूलक स्वरूप के विकास की जाँच पड़ताल के लिए उसे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रख कर देखने की आवश्यकता है। भारतीय भाषाओं के विकास और उससे सम्बद्ध भारतीय समाज के विकास की वर्तमान स्थिति को इतिहास के संदर्भो में विशेष रूप में ब्रिटिश शासन काल के संदर्भ में देखने पर कई बातें उभरकर सामने आती हैं। आधुनिक भारतीय नवजागरण भारतीय समाज में जिस सुधार और विकास की चेतना से पूर्ण मुक्ति की आकांक्षी का सूत्रिपात करता है उसकी वाहक भारतीय भाषाएँ ही बनती हैं। हिन्दी भाषा इस दिशा में बड़ी ही व्यापक और महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस काल में राष्ट्रभाषा का प्रश्न राष्ट्रीय एकता और स्वाधीनता के प्रश्न के साथ मिलकर एकाकार हो जाता है।"[3]

प्रयोजनमूलक हिन्दी की संकल्पना को स्पष्ट करतें हुए डॉ0 मोटूरि सत्यानारायण ने लिखा है– भाषा सामान्य सम्प्रेषण का माध्यम बनाने के साथ–साथ विभिन्न क्षेत्रों मानवीय गतिविधियों के विविध रजिस्टरों या शैलियों के रूप में कार्य करती है। वस्तुतः प्रयोजनमूलक भाषा का वह तथ्यपरक अर्जित सविशेष रूप है जिसका प्रयोग किसी प्रयोजन विशेष अथवा सविशेष रूप हैं जिसका प्रयोग किसी प्रयोजन विशेष अथवा कार्य विशेष के सन्दर्भ में होता है। प्रयोग के आधार पर भाषा के दो रूप माने जा सकते हैं। पहला जिसका प्रयोग सामान्य जन–जीवन में दैनिक कार्यों के संदर्भ में होता है और जिसका अभ्यास या ज्ञान कोई व्यक्ति सामान्य जीवन के परिवेश से ही प्राप्त कर लेता है, और दूसरा रूप है– जिसका प्रयोग सामान्य जीवन के संदर्भों से भिन्न किन्ही विशेष कार्यों के संदर्भों में होता है और जिस अभ्यास या ज्ञान विशेष द्वारा प्राप्त किया जाता है। इसी के दूसरे रूप को प्रयोजनमूलक भाषा कहेंगे।

प्रयोजनमूलक हिन्दी के चरित्र को स्पष्ट करते हुए डॉ0 प्रभात लिखते है कि "कामकाजी भाषा सम्पत्यय का आधार बनाती है। वह अनुभव के अंश निकाल देती है अतः वहॉ तथ्य और सिद्यांत ही रह जाते है। कामकाजी भाषा सम्प्रत्यय तथ्य और सिद्यांत के समन्वय के साथ परिणामोन्मुखी काम करती है।"[4]

बारहवीं शती में रामानुजाचार्त्र द्वारा वैष्णवी मठ की स्थापना तथा सोलहवीं शती में चैतन्य महाप्रभु के आगमान से हिन्दी कीर्तन परम्परा उत्कल में लोकप्रिय होने लगी। वृंदावन और ब्रजभाषा उत्कल में प्रचलित होने लगी। पन्द्रहवीं शती के रामानंद पट्‌टनायक ने संस्कृत के साथ ब्रज बहुत सी रचनाएं लिखी। प्रयोजनमूलक के विविध रूप ही उनके विविध प्रयोग क्षेत्रों की और संकेत करते हैं। संक्षेप में प्रयोजनमूलक हिन्दी का स्वरूप एवं व्यवहार क्षेत्र यही हैं। दूसरे शब्दों में प्रयोजनमूलक हिन्दी एक और केन्द्र व राज्य शासन के पत्र व्यवहार, विधान मंडल की कार्यवाही, संसदीय विधियां, कार्यालयीन पत्रचार, सरकारी संकल्पों, अधि सूचना, प्रेस, विज्ञातियाँ, आयोग समितियाँ, अभिकरण मसौदे, निविदा, फार्मस, लायसेंस, परमिट, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली, विधि बैंकिंग सेवा तथा डाक–तार आदि में प्रयुक्त होती है।

"प्रयोजनमूलक हिंदी, अंग्रेजी शब्द 'फंक्शनल हिंदी' का पर्याय है। अगर शब्दार्थ की दृष्टि से देखे तो प्रयोजन मूलक हिन्दी का अर्थ हुआ– ऐसी विशेष हिन्दी जिसका उपयोग किसी विशेष प्रयोजन के लिए ही किया जाए। इस कामकाजी हिन्दी अथवा व्यवहारिक हिन्दी भी कहा जाता हे। श्री रमाप्रसन्न नायक आदि विद्वान इस प्रयोजनमूलक के बजाय व्यावहारिक हिन्दी कहना उचित समझते हैं।"[5]

अतः व्यावहारिक हिन्दी की तुलना में प्रयोजनमूलक हिन्दी सम्बोधन अधिक संदर्भ–संगत, अर्थगर्मित, लक्ष्यभेदी, स्पष्ट तथा सरल है। बहरहाल आज प्रयोजनमूलक हिन्दी शब्द अंग्रेजी शब्द 'फंक्शनल लैंग्वेज' के पर्याय के रूप में प्रचलित और सर्व स्वीकृत हो चुका है। अब प्रश्न यह उठता है कि आखिरकार इस प्रयोजनमूलक हिन्दी से तात्पर्य क्या है, मोटूरी सत्यानारायण ने प्रयोजनमूलक हिन्दी के स्वरूप एवं कार्य क्षेत्र को स्पष्ट करते हुए लिखा है जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोग में लाई जाने वाली हिन्दी ही 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' है।

'उर्दू' के बाद 'हिन्दी' के लिए 'हिन्दुस्तानी शब्द का बहुत अधिक प्रचार हुआ। यह शब्द मूलतः विशेषण है। अधिकांश विद्वानों के मत ने अनुसार यह हमारी भाषा के लिए यूरोपियन विद्वानों द्वारा सत्रहवीं

शती में दिया गया शब्द है। किन्तु इससे पूर्व सोलहवीं शती में शब्द का जन्म हुआ था, प्रचलन 17वीं शती में हुआ। सन् 1715 में डच पादरी जे. केटलीर द्वारा लिखित हिन्दी व्याकरण तथा सन् 1800 में फोर्ट विलियम कॉलेज के जॉन गिलक्राईस्ट ने इस शब्द का प्रयोग किया अठारहवीं शती में हिन्दी–उर्दू के मिले–जुले रूप को हिन्दुस्तानी कहा जाने लगा। 1893 में हिन्दी समर्थकों ने हिन्दी शब्द पर बल दिया। दूसरी और गांधी जी ने हिन्दुस्तानी शब्द को बहुत महत्व दिया। इसके साथ हिन्दुस्तानी शब्द का प्रचलन हिन्दुस्तानी' को उर्दू रूप से अलग करने तथा भारतीयकरण के हेतु हुआ।

दंगल झाल्टे ने यह लिखा है कि ''विश्व में मानव सभ्यता, संस्कृति और ज्ञान–विज्ञान की उन्नत धरोहर की अक्षुण्ण रखने में भारत वर्ष का योगदान रहा है उसमें भाषिक दायित्वों के निर्वाहस्वरूप भारतीय भाषाओं की समन्वक हिन्दी भाषा की उह्म् भूमिका है। हिन्दी एक मात्र ऐसी भाषा है जिसने भारतीय कला, ज्ञान, तथा संस्कृति को न केवल सधन सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान की हैं बल्कि उनकी अनुरक्षा करते हुए उन्हें नित्य गत्यात्मक भी बनाएं रखा है। आंतरिक संरचना की सौंदर्य–शीलता, भाव–भंगिमाओं की गहणता, अभिव्यक्ति की तीव्रता एवं शैलियों की विविधता को समेटे हिन्दी साहित्य अनेक उन्नत रूपों में प्रवाहमान है। परन्तु आधुनिक युग में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अभूतपूर्व प्रस्फुटन एवं फैलाव के कारण हिंदी भाषा की उपादेयता और प्रयोजनमूलकता अनेक नये क्षेत्रों में स्वयं सिद्ध होने के फलस्वरूप उसके नये प्रयुक्ति रूप भी उभरकर सामने आये हैं। जिनमें 'प्रयोजनमूलक' हिंदी सर्वोपरि माना जा सकता है।''[6]

प्रयोजनमूलक हिंदी और व्यावहारिक हिन्दी को प्रायः एक मानकर बहुत बड़ी गलती की जाती है। वस्तुतः दोनों में स्पष्ट अन्तर और भेद है। व्यावहारिक हिन्दी का सीधा सम्बंध मुख्यतः बोलचाल तथा जीवन के सामान्य व्यवहार आदि से है। इन क्षेत्रों में सामान्यतः आपसी बातचीन, दैंनदिन व्यवहार, यातायात सब्जी–मंडी, बाजार पर्यटन, सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवहार, व्यापार तथा साहित्य के अनेकविध अंग आदि का समावेश किया जा सकता है। अतः व्यावहारिक हिन्दी से स्पष्ट तात्पर्य है कि रोजमर्रा के दैनिक जीवन और जगत की कार्य–सिद्धी हेतु माध्यम के रूप प्रयुक्त ऐसी हिन्दी जिसमें विशिष्ट भाषिक संगठन और प्रयुक्ति–स्तर की अपेक्षा उसके व्यवहारिक प्रयोग पर अधिक बल रहता है। व्यावहारिक हिन्दी का प्रयोग क्षेत्र सीमित है और साथ–ही–साथ उसमें भाषा की वैज्ञानिकता संदिग्ध बनी रहती है।

दंगल झाल्टे का मत है कि ''प्रयोजनमूलक हिन्दी की दूसरी अहम विशेषता है उसकी वैज्ञानिकता स्पष्ट किया जा चुका है कि प्रयोजनमूलक हिन्दी प्रायोगिक या अनु प्रयुक्त भाषा विज्ञान के अन्तर्गत एक विशिष्ट अध्ययन क्षेत्र है। किसी भी विषय के तर्क–संगत, कार्य–कारण भाव से युक्त विशिष्ट ज्ञान पर आश्रित प्रवृति को वैज्ञानिक कहा जा सकता है। इस दृष्टि से प्रयोजनमूलक हिन्दी सम्बंधित विषय वस्तु को विशिष्ट तर्क कार्य–कारण सम्बंधों पर आश्रित नियमों के अनुसार विश्लेषित कर रूपायित करती है। प्रयोजनमूलक हिन्दी की अध्ययन तथा विश्लेषण प्रक्रिया विज्ञान की विश्लेषण एवं अध्ययन प्रक्रिया से भी अत्यधिक निकटता रखती है। प्रयोजनमूलक हिंदी का मुख्य आधार पारिभाषिक शब्दावली और तकनीकी प्रवृति है। जिन्हें विज्ञान के नियमों के अनुसार सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक कहा जा सकता है।''[7]

यहां पर सामान्य भाषा एवं प्रयोजनमूलक भाषा के बीच का अतंर स्पष्ट कर देने साहित्य और साहित्येतर भाषाओं के प्रयोग एवं व्यावहार क्षेत्र का अन्तर स्पष्ट हो जाएगा। स्वरूपतः सामान्य भाषा और प्रयोजनमूलक भाषा एक होती है, परन्तु उनकी शब्दावली अलग–अलग होती है। सामान्य भाषा के शब्द और विशिष्ट भाषा के शब्द भिन्न–भिन्न होते है, दोनों भाषाओं की वाक्य संरचना में भी अंतर होता है। सामान्य भाषा में बहुत कम प्रयोग किए जाने वाले शब्दों का जमावड़ा विशिष्ट भाषा में होता है। यथा कर्मणि प्रयोग, सहायक क्रियाओं का प्रयोग तथा उपसर्ग बहुल शब्द इनके अलावा सामान्य भाषा की अभिव्यक्ति शैली कभी लाक्षणिक, व्यंजनापूर्ण, आलंकारिक हास्य विनोदमयी होती है परन्तु इनके ठीक विपरीत प्रयोजनमूलक भाषा की अभिव्यक्ति शैली वाच्यार्थ प्रधान, गंभीर, अलंकार आदि से विरहित, सीधी, सरल एकार्थक की साथिका होती हैं। वह वैद्यानिकता कार्यालयीन औपचारिकता तथा भाषिक मानक से परिचालित होती और सावधान नहीं रहती। वस्तुतः सामान्य भाषा का पहला चरण है और प्रयोजनमूलक की भाषा उसका अगला कदम अर्थात प्रयोजनमूलक सीखने के पूर्व व्यक्ति को भाषा के सामान्य रूप से परिचित होना आवश्यक हैं।

दंगल झाल्टे के शब्दों में ''प्रयोजनमूलक हिन्दी का प्रयुक्ति–क्षेत्र तथा व्यप्ति प्रशासन परिचालन, प्रौद्योगिकी तथा ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र तक फैली हुई है। प्रयोजनमूलक हिन्दी ही संकल्पना उसके अनुप्रयुक्त रूप को विशिष्ट भाषिक संरचना, परिभाषिक शब्दावली तथा सामाजिक संदर्भो के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिकता प्रदान करती है। प्रयोजनमूलक हिन्दी भाषा के समस्त मानक रूपों की अपने में समेट हुए होती है जिसमें अनिवार्यतः स्पष्टता, एकरूपता, सुनिश्चित्ता एवं औचित्य का निर्वहण किया जाता है। प्रयोजनपरक हिन्दी को अपनी विशिष्ट प्रयोजनमपरक तकनीकी शब्दावली तथा पदावली होती है, जो सरकारी कार्यालय, मानविकी, तन्त्रज्ञान, विज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान तथा कम्प्यूटर आदि सभी ज्ञान एवं विद्या शाखाओं को सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान करती है। अतः स्पष्ट है कि व्यावहारिक हिन्दी की अपेक्षा प्रयोजनमूलक हिन्दी अधिक प्रयोजनीय, तर्क संगत, वैज्ञानिकता तथा सार्थक मानी जा सकती है। इसीलिए उसकी व्याप्ति, अर्थक्ता तथा मूल्यवत्ता स्वयंसिद्ध है।''[8]

निष्कर्षतःहम कह सकते है कि 'प्रयोजनमूलक हिंदी आज व्यापक स्तर पर पहुँच गया है। जो हमारे बहुत ही गर्व की बात है। भारत के कई राज्यों में यह कामकाज की भाषा बन गयी है। विज्ञान, इंजीनियरिंग, चिकित्सा, सूचना, प्रौद्योगिकी, कृषि, फिल्म, बैंक, बीमा, विधि, सम्बंधी इत्यादि में कार्य कर रही है। प्रयोजनमूलक हिंदी ही संस्कार राष्ट्रीय अस्मिता, एकता, अखण्डता, की प्रतिष्ठता के लिए संघर्ष कर रही है।'

lUnHkZ %

1. प्रयोजनमूलक हिन्दी : सिद्धांत और प्रयोग, दंगल झाल्टे वाणी प्रकाशन, 2011 पृष्ठ–46
2. प्रयोजनमूलक हिन्दी के विविध आयाम, डॉ0 माया सिंह, डॉ0 सिद्धेश्वर काश्यप, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2002 पृष्ठ–37
3. वहीं पृष्ठ–30
4. अनुवादः सोच और संस्कार, डॉ0 प्रभात, संपादक डॉ0 सोहन शर्मा, पृष्ठ–29
5. डॉ0 रमाप्रसन्न नायकः प्रयोजनमूलक हिन्दी, संपादक डॉ0 रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, पृष्ठ–24
6. प्रयोजनमूलक हिन्दीः सिद्धांत और प्रयोग, दंगल झाल्टे, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, 2011 पृष्ठ–37
7. वही पृष्ठ–43–44
8. वही पृष्ठ–39

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 106-110

Iknf"kr gkrk i;koj.k

MkW0 vjfoUn dqekj f}osnh*

प्रदूषण पर्यावरण में दूषक पदार्थों के प्रवेश के कारण प्राकृतिक संतुलन में पैदा होने वाले दोष को कहते हैं। प्रदूषक पर्यावरण को और जीव–जन्तुओं को नुकसान पहुंचाते हैं। प्रदूषण का अर्थ है – ष्हवा, पानी, मिट्टी आदि का अवांछित द्रव्यों से दूषित होना, जिसका सजीवों पर प्रत्यक्ष रूप से विपरीत प्रभाव पड़ता है तथा पारिस्थितिक तंत्र को नुकसान द्वारा अन्य अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ते हैं। वर्तमान समय में पर्यावरणीय अवनयन का यह एक प्रमुख कारण है।

प्रकृति द्वारा निर्मित वस्तुओं के अवशेष को जब मानव निर्मित वस्तुओं के अवशेष के साथ मिला दिया जाता है तब दूषक पदार्थों का निर्माण होता है। दूषक पदार्थों का पुनर्चक्रण नही किया जा सकता है।

किसी भी कार्य को पूर्ण करने के पश्चात् अवशेषों को पष्थक रखने से इनका पुनःचक्रण वस्तु का वस्तु एवं ऊर्जा में किया जाता है।

पृथ्वी का वातावरण स्तरीय है। पृथ्वी के नजदीक लगभग 50 km ऊँचाई पर स्ट्रेटोस्फीयर है जिसमें ओजोन स्तर होता है। यह स्तर सूर्यप्रकाश की पराबैंगनी (UV) किरणों को शोषित कर उसे पृथ्वी तक पहुंचने से रोकता है। आज ओजोन स्तर का तेजी से विघटन हो रहा है, वातावरण में स्थित क्लोरोफ्लोरो कार्बन (CFC) गैस के कारण ओजोन स्तर का विघटन हो रहा है।

यह सर्वप्रथम 1980 के वर्श में नोट किया गया की ओजोन स्तर का विघटन संपूर्ण पृथ्वी के चारों ओर हो रहा है। दक्षिण ध्रुव विस्तारों में ओजोन स्तर का विघटन 40%–50% हुआ है। इस विशाल घटना को ओजोन छिद्र (ओजोन होल) कहतें है। मानव आवास वाले विस्तारों में भी ओजोन छिद्रों के फैलने की संभावना हो सकता है।

आधुनिक परमाणु, औद्योगिक, श्वेत एवं हरित–क्रान्ति के युग की अनेक उपलब्धियों के साथ–साथ आज के मानव को प्रदूषण जैसी विकराल समस्या का सामना करना पड़ रहा है। वायु जिसमें हम साँस लेते हैं, जल, जो जीवन का भौतिक आधार है एवं भोजन जो ऊर्जा का स्रोत है– ये सभी प्रदूषित हो गए हैं। प्रसिद्ध पर्यावरण वैज्ञानिक इ.पी. ओडम (E-P- Odum) ने प्रदूषण (pollution) को निम्न शब्दों में परिभाषित किया हैं।

Pollution शब्द के ग्रीक मूल का शाब्दिक अर्थ है defilement अर्थात दूषित करना, भ्रष्ट करना। प्रदूषणकारी वस्तु या तत्व को प्रदूषक (pollutant) कहते हैं। कोई भी उपयोगी तत्व गलत मात्रा में गलत स्थान पर होने से वह प्रदूषक हो सकता है। उदाहरणार्थ, जीवधारियों के लिये नाइट्रोजन एवं फास्फोरस आवश्यक तत्व है। इनके उर्वरक के रूप में उपयोग से फसल–उत्पादन तो बढ़ता है किन्तु जब ये अधिक मात्रा में किसी–न–किसी तरह से नदी या झील के जल में पहुँच जाते हैं तो अत्यधिक काई पैदा होने लगती है। आवश्यकता से अधिक शैवालों के पूरे जलाशय में एवं जल–सतह पर जमा होने से जल–प्रदूषण होने की स्थिति बन जाती है। प्रदूषक सदैव व्यर्थ पदार्थ के रूप में ही नहीं होते। कभी–कभी एक स्थिति को सुधारने वाले तत्व का उपयोग दूसरी स्थिति के लिये प्रदूषणकारी हो सकता है। प्रदूषक पदार्थ प्राकृतिक इकोतंत्र से तथा मनुष्य द्वारा की जाने वाली कृषि एवं औद्योगिक गतिविधियों के कारण उत्पन्न होते हैं।

*भूगोल विभाग, लक्ष्मी नारायण पी0जी0 कॉलेज पखईपुर (कुशमौर), मऊ

ok;q iznw"k.k % वायु प्रदूषण अर्थात हवा में ऐसे अवांछित गैसों, धूल के कणों आदि की उपस्थिति, जो लोगों तथा प्रकृति दोनों के लिए खतरे का कारण बन जाए। दूसरे शब्दों में कहें तो प्रदूषण अर्थात दूषित होना या गन्दा होना। वायु का अवांछित रूप से गन्दा होना अर्थात वायु प्रदूषण है। वायु में ऐसे बाह्य तत्वों की उपस्थिति जो मनुष्य के स्वास्थ्य अथवा कल्याण हेतु हानिकारक हो, ऐसी स्थिति को वायु प्रदूषण कहते हैं।

fp= %&1 ok;q iznw"k.k L=ksr %&**hindimeaning.com**

dkj.k % वायु प्रदूषण के कुछ सामान्य कारण हैं–

- वाहनों से निकलने वाला धुआँ।
- औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाला धुँआ तथा रसायन।
- आणविक संयत्रों से निकलने वाली गैसें तथा धूल–कण।
- जंगलों में पेड़ पौधें के जलने से, कोयले के जलने से तथा तेल शोधन कारखानों आदि से निकलने वाला धुआँ।
- ज्वाला मुखी विस्फोट(जलवाश्प So^2)

çHkko % वायु प्रदूषण हमारे वातावरण तथा हमारे ऊपर अनेक प्रभाव डालता है। उनमें से कुछ निम्नलिखित है–

(1) हवा में अवांछित गैसों की उपस्थिति से मनुष्य, पशुओं तथा पक्षियों को गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इससे दमा, सर्दी–खाँसी, अँधापन, श्रव का कमजोर होना, त्वचा रोग जैसी बीमारियाँ पैदा होती हैं। लंबे समय के बाद इससे जननिक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और अपनी चरमसीमा पर यह घातक भी हो सकती है।

(2) वायु प्रदूषण से सर्दियों में कोहरा छाया रहता है, इससे प्राकृतिक दृश्यता में कमी आती है तथा आँखों में जलन होती है ।

(3) ओजोन परत, हमारी पृथ्वी के चारों ओर एक सुरक्षात्मक गैस की परत है। जो हमें सूर्य से आनेवाली हानिकारक अल्ट्रावायलेट किरणों से बचाती है। वायु प्रदूषण के कारण जीन अपरिवर्तन, अनुवाशंकीय तथा त्वचा कैंसर के खतरे बढ़ जाते हैं।

(4) वायु प्रदूषण के कारण पृथ्वी का तापमान बढ़ता है, क्योंकि सूर्य से आने वाली गर्मी के कारण पर्यावरण में कार्बन डाइ आक्साइड, मीथेन तथा नाइट्रस आक्साइड का प्रभाव कम नहीं होता है, जो कि हानिकारक है।

(5) वायु प्रदूषित क्षेत्रों में जब बरसात होती है तो वर्षा में विभिन्न प्रकार की गैसें एवं विषैले पदार्थ घुलकर धरती पर आ जाते हैं,जिसे 'अम्ल वर्षा' कहा जाता है

ok;q iznw"k.k dh jksdFkke dk mik; % वायु–प्रदूषणों को रोकने एवं नियंत्रित करने हेतु दो प्रकार के उपाय किये जा सकते हैः–

- प्रदूषक पदार्थों की हानिकारक गैसों को पष्थक कर वायुमण्डल में विसर्जित करने के अलावा अन्य विधि से निष्कासित किया जा सकता है।

- प्रदूषकों को अहानिकारक गैसों पदार्थों में परिवर्तित कर फिर उन्हें वायुमण्डल में मिलने दिया जाय।
- प्रदूषक पदार्थों के पृथक्करण हेतु अनेक विधियाँ अपनाई जाती है। जैसे– छानकर (fillterring), निःसादन (stelling), घोलकर या अधिषोशण (absorption) ।

वायु प्रदूषण के नियंत्रण हेतु निम्न सामान्य उपाय किये जा सकते हैं–

- घरेलू कार्यों के लिये धुआँ रहित ईंधनों के उपयोग को बढ़ावा देना।
- मोटरकार जैसे वाहनों के धुएँ निकलने की नली पर उपयुक्त फिल्टर तथा पृचज्वलक (afterburner) का उपयोग।
- चिमनियों से निकलने वाले धुएँ का निष्कासन स्थल पर ही उपचारित करने का प्रयास ताकि प्रदूषक पदार्थ वायु में मिलने से पहले पृथक हो जाएँ।
- जन–चेतना एवं शासकीय प्रयास।

ty iznw"k.k% जल समस्त प्राणियों के जीवन का आधार है। आधुनिक मानव सभ्यता के विकास के साथ जल प्रदूषण की गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई है। औद्योगीकरण के कारण शहरीकरण की प्रवृत्ति दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। जो पहले गांव हुआ हुआ करते थे, वे अब विभिन्न उद्योगों की स्थापना के बाद शहरों में तब्दील हो रहे हैं।

शहरों में अत्यधिक आबादी होने के कारण फ्लैट निर्माण की प्रवृत्ति बढ़ रही है, ताकि एक फ्लैट में तीन से छह परिवार आसानी से रह सकें। इन फ्लैटों में कम स्थान पर पानी की आवश्यकता अधिक होती है और वहां के भूमिगत जल भंडार पर दवाब बढ़ रहा है। डीप बोरिंग निर्माण करते हुए वहां के भूमिगत जल का दोहन किया जा रहा है।उद्योगों के अत्यधिक निर्माण से उनसे निकलने वाले दूषित जल, बचे हुए, रसायन कचरा आदि को नालियों के रास्ते नदी में बहा दिया जाता है। फ्लैट में रहने वाले लोगों के दैनिक क्रियाकलापों से उत्पन्न कचरे को नदी किनारे फेंका जाता है, जिससे नदियों का जल प्रदूषित होता है। षहर के समीप रहने वाली बस्तियों में उचित शौचालय की व्यवस्था नहीं होती, या होती भी है तो यह सुचारू रूप से कार्य नहीं कर पाती है, जिससे वहां लोग प्रायः नदी या तालाब किनारे की जमीन या नालियों का प्रयोग शौच के लिए करते हैं। बारिश में यह सारी गंदगी नदियों या तालाबों में जा मिलती है।

जहाज अपनी साफ–सफाई के पश्चात् गंदगी को प्रायःसमुद्र के पानी में डाल देते हैं। कभी–कभी किसी दुर्घटनावष जहाज डूब जाता है तो उसमें मौजूद रासायनिक पदार्थ, तेल आदि समुद्र के पानी में मिल जाते हैं और लंबे समय तक उसमें रहने वाले जीव–जंतुओं के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते रहते हैं।

fp= %&2 ty iznw"k.k L=ksr %& **https://hindihaat.com/**

जल दूषित हो जाने के कारण कुछ जीव तत्काल मर जाते हैं और जल को और अधिक प्रदूषित कर देते हैं। दूषित जल में रहने वाले जलीय जीवों का सेवन करने से मनुष्य भी बीमार पड़ते हैं। विकसित देश प्रायः अपने देष की गंदगी व ई–कचरा को समुद्र में डाल देते हैं, जिससे जल बुरी तरह से दूशित होता है।

प्रारंभ में जब तकनीक का विकास नहीं हुआ था, तब लोग प्रकृति व पर्यावरण से सामंजस्य बैठकर जीवनयापन करते थे, परंतु तकनीकी विकास एवं औद्योगीकरण के कारण आधुनिक मनुष्य में आगे बढ़ने की होड़ उत्पन्न हो गई। इस होड़ में मनुष्य को केवल अपना स्वार्थ दिखाई पड़ रहा है।

किसान खेतों में विभिन्न प्रकार के रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करते हैं, ताकि उनकी फसल अच्छी हो, फसल में कीड़े न लगें, इसलिए कीटनाशकों का भी छिड़काव किया जाता है। वर्षा के पानी के साथ ये सभी रासायनिक तत्व तालाब और नदी–नालों में चले जाते हैं और वहां के जल को प्रदूषित करते हैं।

उद्योग अपनी गंदगी को सीधे तौर पर नदियों–नालों में डालते ही हैं, साथ ही उनके धुएं की निकासी सही तरीके से नहीं की जाती है, जिससे धुएं का तैलीय अंष आस–पास के संचित जल भंडार के ऊपर एक काली परत के रूप में जमा रहता है और जल को प्रदूषित करता है।

Hkfe inw"k.k % भूमि प्रदूषण से अभिप्राय जमीन पर जहरीले, अवांछित और अनुपयोगी पदार्थों के भूमि में विसर्जित करने से है, क्योंकि इससे भूमि का निम्नीकरण होता है तथा मिट्टी की गुणवत्ता प्रभावित होती है। लोगों की भूमि के प्रति बढ़ती लापरवाही के कारण भूमि प्रदूषण तेजी से बढ़ रहा है।

fp= %&1 Hkfe inw"k.k] L=kr %& **https://gyanapp.in/**

dkj.k % भूमि प्रदूषण के मुख्य कारण हैं–

- कृशि में उर्वरकों, रसायनों तथा कीटनाशकों का अधिक प्रयोग।
- औद्योगिक इकाईयों, खानों तथा खादानों द्वारा निकले ठोस कचरे का विसर्जन।
- भवनों, सड़कों आदि के निर्माण में ठोस कचरे का विसर्जन।
- कागज तथा चीनी मिलों से निकलने वाले पदार्थों का निपटान, जो मिट्टी द्वारा अवशोषित नहीं हो पाते।
- प्लास्टिक की थैलियों का अधिक उपयोग, जो जमीन में दबकर नहीं गलती।

çHkko % भूमि प्रदूषण के निम्नलिखित हानिकारक प्रभाव हैः

- कृषि योग्य भूमि की कमी।
- भोज्य पदार्थों के स्रोतों को दूषित करने के कारण स्वास्थ्य के लिए हानिकारक।
- भूस्खलन से होने वाली हानियाँ।
- जल तथा वायु प्रदूषण में वृद्धि ।

/ofu inw"k.k % अनियंत्रित, अत्यधिक तीव्र एवं असहनीय ध्वनि को ध्वनि प्रदूषण कहते हैं। ध्वनि प्रदूषण की तीव्रता को 'डेसिबल इकाई' में मापा जाता है।

dkj.k %

- शहरों एवं गाँवों में किसी भी त्योहार व उत्सव में, राजनैतिक दलों के चुनाव प्रचार व रैली में लाउडस्पीकरों का अनियंत्रित इस्तेमाल/प्रयोग।
- अनियंत्रित वाहनों के विस्तार के कारण उनके इंजन एवं हार्न के कारण।
- औद्योगिक क्षेत्रों में उच्च ध्वनि क्षमता के पावर सायरन, हॉर्न तथा मषीनों के द्वारा होने वाले शोर।
- जनरेटरों एवं डीजल पम्पों आदि से ध्वनि प्रदूषण।

çHkko %

- ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव से श्रवण षक्ति का कमजोर होना, सिरदर्द, चिड़चिड़ापन, उच्चरक्तचाप अथवा स्नायविक, मनोवैज्ञानिक दोश उत्पन्न होने लगते हैं। लंबे समय तक ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव से स्वाभाविक परेशानियाँ बढ़ जाती है।
- ध्वनि प्रदूषण से हृदय गति बढ़ जाती है जिससे रक्तचाप, सिरदर्द एवं अनिद्रा जैसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

- नवजात शिशुओं के स्वास्थ्य पर ध्वनि प्रदूषण का बुरा प्रभाव पड़ता है तथा इससे कई प्रकार की शारीरिक विकृतियां उत्पन्न हो जाती हैं। गैस्ट्रिक, अल्सर और दमा जैसे शारीरिक रोगों तथा थकान एवं चिड़चिड़ापन जैसे मनोविकारों का कारण भी ध्वनि प्रदूषण ही है।

i;kZoj.k iznw"k.k ij fu;a=.k% पर्यावरण प्रदूषण पर नियंत्रण पाने के लिए सर्वप्रथम जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगानी होगी, ताकि आवास के लिए वनों की कटाई न हो। खाद्य पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि हो, इसके लिए रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के स्थान पर जैविक खाद का इस्तेमाल करना होगा। कूड़े–कचरे को पुनः प्रयोग करना होगा, जिससे यह पृथ्वी कूड़े–कचरे का ढेर बनने से बच जाएगी।

कारखानों से निकलने वाले गंदे पानी को सीधे नदी–नाले में न डालकर, उनकी सफाई करते हुए नदियों में बहाना होगा। यातायात के विभिन्न साधनों का प्रयोग जागरुकता के साथ करना होगा। अनावश्यक रूप से हॉर्न का प्रयोग नहीं करना चाहिए, जब जरूरत न हो तब इंजन को बंद करना एवं नियमित रूप से गाड़ी के साइलेंसर की जांच करवानी होगी, ताकि धुएं के अत्यधिक प्रसार को नियंत्रित किया जा सके।

उद्योगपतियों को अपने स्वार्थ को छोड़ उद्योगों की चिमनियों को ऊंचा करना होगा तथा उद्योगों को प्रदूषण नियंत्रण के नियमों का पालन करना होगा। हिंसक क्रियाकलापों पर रोक लगानी होगी। सबसे जरूरी बात यह कि लोगों को पर्यावरण संबंधी संपूर्ण जानकारी प्रदान करते हुए जागरुक बनाना होगा, तभी प्रदूषण पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

प्रदूषण चाहे किसी भी प्रकार का क्यों न हो, हर हाल में मानव एवं समस्त जीवधारियों के अलावा जड़–पदार्थों को भी नुकसान पहुंचाती है।

i;kZoj.k iznw"k.k jksdu dk mik;% पर्यावरण की सुरक्षा से ही प्रदूषण की समस्या को सुलझाया जा सकता है। पर्यावरण शब्द दो शब्दों के मेल से बना है–परि और आवरण । 'परि' शब्द का अर्थ है बाहरी तथा आवरण का अर्थ है कवच अर्थात पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है बाहरी कवच, जो नुकसानदायक तत्वों से वातावरण की रक्षा करता है। यदि हम अपने पर्यावरण को ही असुरक्षित कर दें तो हमारी रक्षा कौन करेगा?

इस समस्या पर यदि हम आज मंथन नहीं करेंगे तो प्रकृति संतुलन स्थापित करने के लिए स्वयं कोई भयंकर कदम उठाएगी और हम मनुष्यों को प्रदूषण का भयंकर परिणाम भुगतना होगा। प्रदूषण से बचने के लिए हमें अत्यधिक पेड़ लगाने होंगे। प्रकृति में मौजूद प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन करने से बचना होगा। हमें प्लास्टिक की चीजों के इस्तेमाल से परहेज करना होगा। कूड़े–कचरे को इधर–उधर नहीं फेंकना होगा।

हमें ऐसी तकनीक का विकास करना होगा, जिससे यातायात के साधनों द्वारा प्रदूषण न फैले। सबसे अहम बात यह है कि हम मनुष्यों को अपनी पृथ्वी को बचाने के लिए सकारात्मक सोच रखनी होगी तथा निःस्वार्थ होकर पर्यावरण प्रदूषण से बचने के लिए कार्य करना होगा। हमें मन में यह ध्येय रखकर कार्य करना होगा कि हम स्वयं अपने आपको, अपने परिवार, को देश को और इस पृथ्वी को सुरक्षित कर रहे हैं।

fu"d"kZ ,oa lq>ko% पर्यावरण को प्रदूषित करने में यदि हम मानवीय गतिविधियों को ही जिम्मेदार मानते हैं तो प्रदूषित पर्यावरण के दुष्परिणामों से प्रकृति को बचाने के लिये प्रकृति संरक्षण के उपाय भी मनुष्य को ही करने होंगे। इस हेतु जल, वायु एवं मृदा प्रदूषण के कारण एवं प्रभाव के साथ पिछले पृष्ठों में उनके नियंत्रण एवं रोकथाम के उपायों पर भी चर्चा की गई है। इसी तरह अध्याय–3 में वनों का प्रबन्धन एवं प्रकृति संरक्षण के राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय प्रयासों का भी विस्तार से वितरण दिया गया है। इन सभी प्रयासों में प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं की जिम्मेदारी के अलावा उसे राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर किये जा रहे प्रयासों में भी यथाशक्ति सहायता देनी चाहिए।

lUnHkZ%

1. hindivivek.org
2. hindi.indiawaterportal.org
3. sites.google.com
4. hindimeaning.com
5. hindihaat.com
6. gyanapp.in

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 111-115

fo/kk ds :i esa i= lkfgR;

fou; dqekj*

भारतेंदु युग में अनेक नवीन विधाओं का उद्भव हुआ अथवा पुरानी विधाओं का नवीनीकरण हुआ । नवीन विधाओं का जन्म तत्कालीन स्वाधीनता की चेतना का परिणाम था। भारत स्वतंत्र होने के साथ ही अभिव्यक्ति के नए–नए माध्यम तलाशने लगा। भारत को 1947 में आजादी मिली। कानूनी रूप से भारत की स्वयं की सत्ता और संविधान लागू हुए । हम स्वाधीन तो 1947 में हुए लेकिन साहित्य का जनतंत्रीकरण भारतेंदु से ही प्रारंभ हो जाता है क्योंकि इच्छित यथार्थ साहित्य में ही आ सकता था। निबंध, नाटक, उपन्यास, कहानी , यात्रा – संस्मरण, डायरी, पत्र इत्यादि सभी विधाओं का जन्म हिंदी साहित्य की श्री वृद्धि में सहायक होता है । डॉ. नित्यानंद तिवारी लिखते हैं , शिक्षा संस्कार रुचि और व्यक्तिगत विशेषता के कारण रचनाकार अपने वक्तव्य की अभिव्यक्ति के लिए प्रचलित विधाओं में से किसी को चुन लेता है । कई बार वह अपनी पसंद की विधा को भी अपर्याप्त पाता है इसलिए उसे तोड़ता और विकसित करता है। कभी–कभी अपने वक्तव्य को व्यक्त करने के लिए नया प्रयोग भी करता है। प्रयोग की इस प्रक्रिया में नई विधा अस्तित्व में आ जाती है । किंतु नई विधा का विकास या पुरानी विधाओं के रूप में परिवर्तन पूरी तरह रचनाकार के प्रयोग पर निर्भर नहीं है । असल में उसकी प्रतिभा युगीन वास्तविकता और समूह चित्त को आत्मसात कर लेती है । नई विधाओं के उद्भव और पूर्व प्रचलित विधाओं में परिवर्तन तब होता है जब ऐतिहासिक कारणों से आए जीवन में बदलाव और रचनाकार की प्रतिभा का मेल बैठ जाता है।'[1] कारण स्पष्ट है कि इसके मूल में बदलती हुई मानसिकता थी और पत्र साहित्य भी इस बदलती हुई मानसिकता का परिणाम था।

साहित्य के जनतंत्रीकरण की प्रक्रिया में पत्र य साहित्य की स्वतंत्र विधा के रूप में सशक्त हुआ। आधुनिक युग में चित्तवृत्ति बदली। कविता की परंपरा के समानांतर साहित्य जगत में अन्यान्य विधाओं की भी प्रतिष्ठा हुई । आज लगभग एक सौ वर्ष बीत चुके हैं । अब तक कई विधाओं का प्रणयन हो चुका है। सभी विधाओं की समृद्ध परंपरा भी मिलती है 100 वर्षों का समय कम नहीं होता। इन्हीं 100 वर्षों में रूस में समाजवाद आया और एक तरह से वह असफल भी हो गया। 100 वर्षों के दौरान दुनिया ने दो विश्वयुद्ध देखे। पिछले 100 वर्षों में गांधी जैसे महामानव ने जन्म लिया। हिटलर की तानाशाही से विश्व आक्रांत हुआ। पिछले 100 वर्षों में ही साहित्य की नवीन विधाओं का जन्म हुआ। श्गद्यं कवीनां निकसम्वदन्तिश वाली कहावत आधुनिक युग में चरितार्थ हुई। श्गद्य के समृद्ध होने के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल आधुनिक काल को गद्य काल भी कहते हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं, 'संस्कृत में जहां कहा गया है कि गद्य रचना कवियों के लिए भी कसौटी है तो वहां भाव शायद रहा होगा कि चिंतन तो व्यवस्थित गद्य में ही किया जा सकता है और व्यवस्थित चिंतन कवि के लिए कठिन कर्म सदैव रहा है, अतः गद्य लिखना कवियों के लिए कसौटी भी है और चुनौती भी है। यहां इस समूची व्याख्या में यह अंतर्निहित है कि गद्य मुख्यतः बोलने के लिए है,और उसे लिखना अपनी कुछ निजी समस्याएं खड़ी करना है। यह भी संकेत है कि भाव प्रवणता कविता की विशेषता है तो चिंतनशीलता गद्य की, और कविता के अनुभव का आस्वाद विशिष्ट जन समुदाय के लिए है जबकि गद्य के मूल जनतांत्रिक स्वरूप की ओर संकेत करती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास लेखन में आधुनिक काल को गद्य काल कहा था । यह रोचक विडंबना है कि हिंदी साहित्य के संदर्भ में इस नामकरण के औचित्य का एक प्रमुख कारक जनतांत्रिक इतिहासकार के बाद उदित होता है ।'[2] वस्तुतः यह

---

*...

गद्य की विस्तृत पहुंच है । गद्य की भाषा साधारण जन समाज से सहज संप्रेषित होती है। किसानों से, मजदूरों से , वे सीधी भाषा में साक्षात्कार करते हैं। गद्य –जीवन के सहज बोलचाल की भाषा है। भाषा का अनिवार्य संबंध बोलचाल से था , फिर क्रमशः गद्य बोलचाल के लिए रहा और कविता विशेष अवसरों व उत्सवों की भाषा बन गई । मंच पर कविता जमने लगी और व्यापक जनसमुदाय में गद्य तथा दो आत्मीयों में पत्र। नितांत वैयक्तिक।

डॉ कैलाश चंद्र भाटिया के अनुसार , 'किसी भी व्यक्ति साहित्यकार का सहज रुप उसके द्वारा लिखे गए पत्रों में दिखा जा सकता है। किसी भी बात को , संदेश को एक व्यक्ति के पास से दूसरे व्यक्ति तक पहुंचाने का माध्यम पत्र है फिर वह चाहते कितनी दूर रहता हो। पत्र वह लिखित संदेश है जो किसी दूसरे आदमी अथवा विरोधी व्यक्ति के पास किसी माध्यम से भेजा जाता है। व्यक्ति के महत्व के अनुसार पत्र भी महत्वपूर्ण हो जाता है। कभी–कभी पत्र के महत्व के कारण पत्र लेखक ही नहीं पत्र पाने वाला भी धन्य हो उठता है। प्रतिभा संपन्न व्यक्तियों के पत्र साहित्य की अक्षय निधि बन जाते हैं। यही कारण है कि अब साहित्य की नवीन विधाओं में श्पत्र साहित्यश विशिष्ट अंग बन गया है।'[3] ऐसा नहीं है कि प्राचीन काल में प्रतिभा संपन्न व्यक्तियों की कमी थी, उनकी बहुतायत थी ,लेकिन पत्र नेमुद्रण कला के परिणाम स्वरुप आधुनिक स्वरूप ग्रहण किया ।

दरअसल आधुनिक युग में गद्य के आविर्भाव के मूल में मुद्रण कला है। प्रेस की स्थापना और विकास के साथ ही साथ गद्य की नई–नई विधाओं का आविर्भाव हुआ और विकास भी। रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं ,'आधुनिक काल में गधे के आविर्भाव के पीछे मुद्रण कला का आरंभ एक बाहरी कारक है ,वस्तुतः तो आधुनिक युग की वर्धमान बौद्धिक और विश्लेषण मूलक वृत्ति गद्य के विकास का अधिक बुनियादी कारण है। इस दृष्टि से आचार्य शुक्ल का आधुनिक काल को गद्य काल कहना सिर्फ बाह्य प्रयोग के आधार पर ही नहीं आंतरिक के आधार पर उतना ही उपयुक्त है, यद्यपि कि नामकर्त्ता पहले सांकेतिक जनतांत्रिक वृत्ति ही की तरह स्वयं इस दूसरे काल के प्रति बहुत सजग नहीं जान पड़ता। बौद्धिक दृष्टिकोण और जनतंत्र के प्रति ललक मिलकर हिंदी भाषी जन के मन में , जैसे कि अन्य कई भारतीय भाषा क्षेत्रों के मन में,राष्ट्रीयता की प्रबल भावना उद्दीप्त करते है। राष्ट्रीयता की इस भावना के संचार के लिए भी गद्य की आवश्यकता आधुनिक काल में उभरकर सामने आई।' [4]

स्वतंत्रता की लड़ाई में भारत का किसान लड़ा लड़ा था। शोषण की चक्की में पिस रही जनता के मन का प्रगटीकरण था – 'स्वतंत्रता आंदोलनश। लोग एक–दूसरे से बोलचाल भी बोलचाल की भाषा में ही जुड़ सकते थे। लोगों का भावनात्मक स्तर पर जुड़ाव हुआ। फल स्वरुप गद्य की भाषा ,स्वतंत्रता की भाषा का पर्याय बन गयी। आवश्यकता के फल स्वरुप गद्य की भाषा का आविर्भाव हुआ और शनैरू शनैरू उसने श्रेष्ठता का स्वरूप अख्तियार कर लिय। रामस्वरूप चतुर्वेदी का मत है कि षाद्य का श्रेष्ठ रूप वह है जहां वह अपने लिए है, किसी अन्य माध्यम के हित में उसका प्रयोग नहीं किया जा रह। पर हुआ ऐसा बहुत कम है। प्रायः तो महत्वपूर्ण होते हुए भी गद्य, सामान्य जन की तरह ,पिछले समय से उपेक्षित रहा है। हमारे साहित्य में उसकी स्थिति बहुत कुछ नकारात्मक विभावन की है। कविता स्वतः संपूर्ण या की संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न रही है। कविता में कुछ और नहीं लिखा गया ,कविता स्वयं लिखी जाती है। गद्य का दर्जा वैसा नहीं रहा। गद्य में उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध ,समीक्षा और कुछ हटकर पत्रकारिता के रूप चलते हैं ,पर इन से स्वतंत्र और निरपेक्ष गद्य को स्वीकार नहीं किया गय।'[5] कुछ प्रायः उपेक्षित रहे या किसी की चर्चा हुई भी तो बहुत कम। डायरी ,रिपोर्ताज ,संस्मरण और पत्रों पर चर्चा कम हुई है। इनकी परंपरा उतनी समृद्धि नहीं रही है ,फिर भी जितना है ,सशक्त है।

साहित्यिक विधाओं का संबंध उनकी संस्कृति से होता है। दोनों का संबंध इतना घनिष्ट होता है कि एक के अभाव में दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती। 'संस्कृति मनुष्य की आत्म–चेतना का प्रदर्शन नहीं ,उस सामूहिक मनीषा की उत्पत्ति है, जो व्यक्ति को एक स्तर पर दूसरे व्यक्ति से और दूसरे स्तर पर विश्व से जोड़ती है।'[6] आगे निर्मल वर्मा लिखते हैं , 'संस्कृति का यह भारतीय स्वरूप पश्चिम की सांस्कृतिक धारा से नितांत भिन्न है। यूरोपीय संस्कृति का आविर्भाव ही व्यक्ति की विकसित आत्म चेतना द्वारा संभव हो पाया

है। इस आधार पर अकेले व्यक्ति ने यथार्थ का एक निजी,स्वायत्त दर्शन सृजित किया है–एक ऐसा दर्शन जिसकी जड़ें ,उसके व्यक्तिगत अनुभव में निहित है। दूसरे शब्दों में पश्चिमी संस्कृति का प्रादुर्भाव एक ऐसी खंडित चेतना में हुआ है ,जहां मनुष्य अपने को प्रकृति, विश्व और दूसरे मनुष्य से बिल्कुल अलग पाता है और उसे अनुभव होता है कि इस अलगाव और विभाजन को महज धार्मिक आस्था या परंपरा द्वारा नहीं पाटा जा सकता। मध्य–युग के बाद यूरोपीय व्यक्ति को पहली बार यह महसूस हुआ कि धर्म और परंपरा उसे सहारा और सांत्वना तो दे सकते हैं किंतु उसके अंदरूनी मर्म की गहरी परतों में नहीं पैठ सकते ,जहां वह संपूर्ण रूप से स्वतंत्र है और अपनी स्वतंत्रता में संपूर्ण रूप से अकेला है। अतः यूरोप में वैयक्तिक चेतना और धार्मिक विश्वासों के बीच एक चौड़ी खाई खुलती गई ,अपनी चेतना में मनुष्य अकेला और निसहाय पड़ता गया यजबकि दूसरी तरफ धर्म जीवन–धारा से कटकर केवल चर्च की एकाधिकार श्संपत्तिश बन कर रह गया ,जिसके सामने व्यक्ति घुटने टेक कर अपनी पीड़ा से छुटकारा तो पा सकता था, किंतु इस धरती पर संपूर्ण जीवन की उपलब्धि नहीं।'[7] धरती पर संपूर्ण जीवन की उपलब्धि तो एक समेकित समाज में ही संभव है। वैयक्तिकता की हद को पार कर व्यक्ति समाज के सहयोगात्मक इकाई के रूप में कार्य करेगा तभी समाज और व्यक्ति दोनों की उपलब्धि है।

संस्कृति की जड़े परंपरा में गहरे रूप में धंसी होती है। ष्समाज की जड़े अतीत में होती हैं ,वह वर्तमान में जीता है और भविष्य उसके लिए चिंता और प्रावधान का विषय होता है। परंपराएं अतीत को वर्तमान और वर्तमान को भविष्य से जोड़ती है। उन के माध्यम से सामाजिक जीवन को निरंतरता मिलती है और उसका स्वरूप निर्धारित होता है। परंपराएं हर समाज और उसके विभिन्न समुदायों और समूह की आत्म–छवि का अविभाज्य अंग होती है और जीवन के अनेक क्षेत्रों में उनका दिशानिर्देश करती हैं। परंपराओं का मूल्य केवल प्रतीकात्मक नहीं होता उनसे महत्वपूर्ण प्रकार्य –जुड़े होते हैं वे समाज के समाकलन में सहायक होती है और उसे आस्था का आधार देकर जीवन के लक्ष्य और मूल्य निर्धारित करती है। दुनिया में शायद ही कोई ऐसा समाज हो जो पूरी तरह से अपने परंपराओं से कटा हो।'[8]

परंपरा किसी भी समाज या देश के विकास के लिए कितनी सार्थक है इसकी निर्भरता इस बात पर है कि उसके आधार प्रतिमान मानदंड क्या है ? यदि इसका संबंध सभी जातीय–अस्मिता से है तो इसकी प्रासंगिकता एवं सार्थकता असंदिग्ध है। परंपराओं का महत्व इस वैज्ञानिक युग में भी कम नहीं हुआ है– क्योंकि विश्व के किसी भी देश के जातीय आंदोलनों के उभार में परंपरा की विशेष भूमिका होती है। हम यह भी कह सकते हैं कि जब इन परंपराओं पर आघात या उसके अंत की कोशिश की जाती है तो इसकी प्रतिक्रिया में जातीय आंदोलन भरते हैं। वेद पुराण आदि के आधार पर हम अपनी परंपरा को विकसित करते हैं लेकिन यह ध्यान देने योग्य है कि क्या वेद ,उपनिषद आदि में अपने समय के यथार्थ अंकन है अथवा क्या उसमें समाज के सभी पक्षों का यथार्थ अंकन है। रेडफील्ड मिल्टन सिंगर ने श्महानश और श्लघुश परंपराओं की अवधारणाएं विकसित की है। 'रॉबर्ट और उनके अंतःसंबंधों के आधार पर भारत की जटिल सांस्कृतिक प्रक्रियाओं को समझने के प्रयत्नों को प्रोत्साहित किया है। दार्शनिक चिंतन के आधार पर प्राचीन भारत के मनीषियों ने मूल्यों और आदर्श समाज–व्यवस्था की जो परिकल्पना विकसित की है ,वही महान परंपरा का आधार है। इसके प्रतिमानों को साक्षर समाज के एक बड़े भाग ने आंशिक रूप से अपनाया। समकालीन संप्रेषण के साधनों ने इनका प्रसार किया और उसके कुछ अंश क्षेत्रीय और स्थानीय संस्कृतियों ने भी आत्मसात किए। जीवन–दर्शन , मूल्यों और सामाजिक व्यवस्था में इस तरह ,कुछ एकरूपता आई ,किंतु इससे जातीय ,स्थानीय और क्षेत्रीय संस्कृतियां अभीभूत नहीं हुई, उन्होंने अपनी अस्मिता की रक्षा की और अपने विशेषता सूचक चिन्हों को बचाए रखा। लोकाचार और अलौकिक परंपराएं बलवती सिद्ध हुई। उनके लघु परंपराओं के अनेक तत्व महान परंपरा में प्रतिष्ठित हुए। जो परंपरा विकसित हुई ,उसमें दोनों के तत्व थे।'[9] परम्पराओं का महत्व सिर्फ सामाजिक नहीं होता वरन उसका संबंध समाज के साहित्य से भी होता है। किसी भी साहित्यिक विधा की अपनी परंपरा होती है। एक निरंतरता उस विधा को सशक्त बनाती है।

यदि पत्रों की निरंतरता को बरकरार रखा जाए तो भारतेंदु युग से लेकर आज तक के ऐतिहासिक ,सामाजिक ,राजनैतिक ,आर्थिक विकास या रात का दिग्दर्शन हो जाएगा। जिस तरह कविता ,कहानी,

निबंध ,उपन्यास आदि साहित्यिक विधाओं में तत्युगीन समाज परिलक्षित होता है उसी प्रकार पत्रों में व्यक्तियों की दृष्टि सामाजिक–सांस्कृतिक घटनाओं का जीवंत दस्तावेज होती है। ष्पत्रों के माध्यम से लेखक का निजी जीवन ही उद्घाटित नहीं होता वरन बहुत से साहित्यिक गुत्थियां सुलझती हैं ,साथ ही साहित्य की प्रवृत्तियां स्पष्ट होती है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में राजनैतिक ,सामाजिक ,साहित्यिक आदि ख्याति प्राप्त व्यक्ति के पत्र पठनीय होते हैं और उनका संग्रह किया जाता है। पत्रों के संग्रहकर्ता वरिष्ठ साहित्यकार पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी का कथन है–श्जीवन चरित्र में पत्रों का बड़ा महत्व है। शरीर के रक्त–मांस का जो स्थान है ,वही स्थान जीवन चरित्रों में छोटे–छोटे किस्से कहानियों तथा पत्रों का है।'[10]

'गद्य–साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपने वैयक्तिकता, अनौपचारिक ,हार्दिकता आदि विशेषताओं के कारण पत्र को विशेष महत्व प्राप्त है। यद्यपि पत्र–लेखन मनुष्य की लिए सहज व अनिवार्य क्रिया है,किन्तु जब किसी व्यक्ति की पत्र उसके व्यक्तित्व की गरिमा के कारण मानव समाज को प्रभावित करते हैं, तब वे महत्वपूर्ण हो उठते हैं। ऐसे ही पत्र प्रकाश में आकर साहित्य के स्थाई संपत्ति बन जाते है।'[11]

'हमारे व्यक्तिगत संबंधों की नीव पत्राचार सुदृढ़ करता है। आत्मीय जनों से वार्तालाप और पत्र–व्यवहार करने से हमें अपूर्व आनंद की अनुभूति होती है। जिस प्रकार हरे–भरे पत्तों अर्थात पत्तों के बिना तरुवर शुष्क और नीरस लगता है ,उसी प्रकार स्वजनों के प्रेम पूर्ण पत्रों के बिना जीवन सूना–सूना और खोया–खोया सा जान पड़ता है। जीवन के निपट एकान्तता को दूर करने तथा सुह्रदय मित्रों के सानिध्य का सुख लाभ करने के लिए एकमात्र उपाय पत्र लेखन ही है।'[12] रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं,ष साहित्यकारों के जीवन क्रम में पत्र ऐसा गद्य है जो साहित्य की तरह लिखा नहीं जाता पर साहित्य का अंग हो जाता है।'[13]

वियोगी हरि ,रामशंकर द्विवेदी के नाम २२–३–१६६८ को लिखे पत्र में विचार व्यक्त करते हैं ,ष्पत्रों में अजेय शक्ति होती है ,यदि हम अपना ह्रदय उनमें उड़ेल सकें। जितने भी भाई मुझे मिले ,वह सभी पत्रों की देन है। गुरुदेव रविंद्र नाथ के चरणों की धुली भी पत्रों की ही बदौलत मिली।'[14] कमल कुंजारी लिखते हैं,ष संवेदनशील व्यक्तियों के पत्र केवल कागज के टुकड़े नहीं होते ,उनमें भावनाओं का स्पंदन होता है ह्रदय की धड़कनें होती हैं। गुरुदेव टैगोर की श्छिन्न पत्रावली में जैसा उनका ह्रदय धड़कता है वैसा गोरा में नही।'[15]

डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी गालिब के पत्रों का महत्व तो बताते ही हैं साथ ही पत्रों की साहित्यिकता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं , 'गालिब के लिए श्पाती आधा मिलनश नहीं ,मिलन है। लिखते हैं यश्मैं इस तन्हाई में सिर्फ खुतूत भरोसे जीता हूं या ने जिसका खत आया मैंने जाना कि वह शख्स तशरीफ लाया। उनके पत्रों में दृश्यता भरी होती है। वह पत्र क्या लिखते हैं ,बातें करते हैं। पत्र की विधा की सीमाएं तोड़कर। मानो वह शख्स उनके सामने है और वह बतिया रहे हैं। वह पत्र शुरू करते हुए देश की सीमाएं लांग कर सीधे उस व्यक्ति के पास पहुंचते हैं,जिसे पत्र लिख रहे हैं ,सर्जना की तरह एक माया लोक रचते हैं।

कोई जरा युसूफ मिर्जा को बुलाइयो। लो साहब वे आए। मियां मैंने कल खत तुमको भेजा है ,मगर तुम्हारे एक सवाल का जवाब रह गया है। अब सुन लो।

चूँकि पत्र लेखक लिख नहीं रहा है बातें कर रहा है इसलिए श्सुन लोश। 'पढ़ लो' नहीं।

इससे ज्यादा उदाहरण देने की जरूरत नहीं। गालिब का लगभग प्रत्येक पत्र इसका उदाहरण है।

पत्र को साहित्यिक विधा माना जा सकता है। इसका सबसे अकाट्य तर्क गालिब के पत्र है। गालिब के पत्र बहुत दूर तक गालिब की कविता की व्याख्या भी है। जो लोग रचना और रचनाकार के जीवन की अंतः सूत्रता को नकारते हैं उन्हें गालिब की कविता और उनके पत्रों को ध्यान से पढ़ना चाहिए। अतः सूत्र का स्वीकार करने वालों को तो और ज्यादा। ष16पत्रों में रचनाकार का व्यक्तित्व परिलक्षित होता है। पत्र पर धूल लगने की बाद भी संवेदना के स्तर पर मनुष्य की काल्पनिकता को यथार्थ से वाकिफ कराते हैं।पत्रों में रचनाकार का व्यक्तित्व परिलक्षित होता है। पत्र पर धूल लगने की बाद भी संवेदना के स्तर पर मनुष्य की काल्पनिकता को यथार्थ से वाकिफ कराते हैं। संवेदना का दस्तावेज पत्र होते हैं। चिट्ठियां साहित्य की बहुमूल्य धरोहर हैं। अच्छे साहित्यिक पत्रों में प्रायः उच्च कोटि की साहित्यिक सृजनशीलता और सौंदर्य देखने को मिलता है। पत्र लेखन एक कला है। वह दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच संचार का स्रोत है। इसकी भाषा सरल होनी चाहिए।

lUnHkZ %

1. डॉ नित्यानन्द तिवारी – साहित्य का स्वरूप, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1985,भाद्र 1907, पृ. स40।
2. राम स्वरूप चतुर्वेदी– हिन्दी गद्यः विन्यास और विकास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण,1996, पृ स44।
3. डॉ कैलाश चन्द्र भाटिया, रचना भाटया– साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ, तक्षशिला प्रकाशन,दिल्ली6, सस्करण 1996, पृ. स.104
4. राम स्वरूप चतुर्वेदी– हिन्दी गद्यः विन्यास और विकास, पृ. सं12।
5. वही, पृ स 14।
6. निर्मल वर्मा, स. नन्द किशोर आचार्य, पत्थर और बहता पानी– संस्कृति, चितन, वाग्देवी प्रकाशन,बीकानेर, प्रथम सस्करण, 2000, पृ. स.11
7. वही, पृ स. 11
8. श्यामा चरण दुबे–– समय और सस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996, पृ स20।
9. वही, पृ रा26।
10. डॉ कैलाश चन्द्र भाटिया, रचना भाटिया– साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ, पू स. 104।
11. सपादक डॉ हरवश लाल शमार्रू हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (चतुर्दश भाग) (वि227) पृ. स 507
12. डॉ कमल पुजाणी– हिन्दी पत्र साहित्य, 4983 (शोध प्रबध) कृष्णा ब्रदर्स, महात्मागाधी मार्ग अजमेर,राजस्थान, पृ स 12।
13. रामस्वरूप चतुर्वेदी– हिन्दी गद्य विन्यास और विकास, पृ. स.176।
14. डॉ कमल पुजाणी– हिन्दी का पत्र साहित्य, पृ. स.12।
15. वही पृ0स02।
16. आजकल, दिसबर 4997, डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, गिरनी थी हमपे ... सपादक, प्रतापसिंह बिष्ट, प्रकाशनविभाग, पटियाला हाउस, पृ. स.11।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 116-118

eyk vkpy e xkeh.k jktuhfr

Mk0 Kkun dekj*

मैला आँचल का रचनाकाल 1954 है। इसका कथानक 1946 से आरंभ होकर गांधी की हत्या के बाद तक का है इस संक्रमणकाल की ग्रामीण मानसिकता को इस कृति में अभिव्यक्ति मिली है। रेणु पर एक ओर नई स्थितियों का दबाव है तो दूसरी ओर परंपरा का मोह। शताब्दियों से एकरस जीवन पर नए युग की पहली चोट बहुत मार्मिक हो उठी है। रेणु का गांव प्रेमचंद का गांव नहीं है। यहां पुरातन जड़ता और नवीन गत्यात्मकता की टकराअट है विभिन्न राजनीतिक आंदोलनों के अंतर्विरोध हैं, बिरादरीवाद की कड़वाहट है, इनके बीच बजती हुई लोक–संस्कृति की शहनाई है। रेणु का यथार्थ–बोध भिन्न है नई स्थितियों के दबाव के कारण। प्रेमचंद के लिए आदर्शवाद बड़ी चीज थी क्योंकि देश की अजादी के लिए आदर्शों की जरूरत होती है। रेणु पर आदर्शों का बोझ नही है। रेणु नये तरह के यथार्थवादी है, गांव के काले पक्षों को भी सामने लाते हैं। ग्रामीण जीवन में व्याप्त प्रदोषों जैसे जातीय वैमनस्य, धार्मिक पाखंड, वर्गीय शोषण आदि को चित्रित करते हैं। रेणु के शब्दों में ''इसमें फूल भी हैं शूल भी, धूल भी है, गुलाब भी, कीचड़ भी है, चंदन भी, सुंदरता भी है, कुरूपता भी– मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।''[1]

मैला आँचल में राजनीति की अनेक परतें व अनेक स्तर चित्रित हुए हैं। गांव के लोग अपनी राजनीति करते हैं, एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या भाव पालते हैं और वे एक दूसरे को पछाड़ने में लगे रहते हैं। उपन्यास के प्रारंभ में ही गांव के लोगों की मानसिक स्थिति का पता चल जाता है। सरकारी इनाम पाने के लोभ से जेल से छुटकर आये सुराजी बालदेव को बांधकर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अधिकारी के सामने पेश करना यादव टोली के निवासियों की कमीनगी का परिचायक है। गांव का तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद अपने कमिनेपन में निर्धन ग्रामीणों से भी बढ़ा हुआ है डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अधिकारी और कर्मचारियों को 'मिलिट्री वाले' समझने से उसके मानसिक स्तर का पता चलता है उसकी कमीनगी इस बात से व्यक्त होती है कि वह उन्हें अनुकूल बनाने के लिए घी, बासमती चावल और खस्सी ले जाता है, पर उसका सारा खर्च गांववालों से वसूलता है। जब यह पता चलता है कि 'साहब' मिलिट्री वाला नहीं है और गांव में मलेरिया सेंटर खुलने वाला है, तब छिपा हुआ अपर क्लास 'साहब' के सामने पहुंचकर सलाम की होड़ में एक दूसरे से आगे निकल जाना चाहता है। यह घटनाक्रम गांव वालों की आपसी स्पर्धा की सूचना देता है।

गांव के लोगों में जातिगत वैमनस्य देखने को मिलता है। प्रेमचंद के उपन्यासों में वर्ग चेतना मिलती है लेकिन जाति नही। गोदान में भी जाति का प्रसंग आया है लेकिन शोषक वर्गों को उभारने के लिए। रेणु का जातिवाद के कई रूप देखने को मिलते हैं दंगा फसाद, दंभ व्याभिचार, राजनीति, पंचायत, बंटा हुआ गांव आदि। मेरीगंज एक बड़ा गांव है। बारहो बरन के लोग रहते हैं। राजपुतों और कायस्थों में पुश्तैनी मन–मुटाव और झगड़े होते आए हैं। ब्राह्मण इन दोनों के बीच दुश्मनी को बढ़ाने और स्वयं तीसरी शक्ति का कर्त्तव्य पूरा करते रहे हैं। कुछ दिनों से यादवों के दल ने भी जोर पकड़ा है। लेकिन जनेऊ लेने के बाद भी राजपुतों ने यदुवंशी क्षत्रिय को मान्यता नहीं दी उल्टे वे समय–समय पर यदुवंशियों के क्षत्रित्व को व्यंग्य के बाणों से उभारते रहे हैं। ब्राह्मण टोली के पण्डित कायस्थों के खिलाफ हमेशा राजपूतों को चढ़ाते रहते हैं। कायस्थ टोली के लोगों से राजपूतों की अनबन हो जाने पर ब्राह्मण टोली के पण्डित उन्हें (चढ़ाते हुए) समझाते हैं, ''जब–जब धर्म की हानि हुई है, राजपूतों ने ही उनकी रक्षा की है। घोर

*सहायक प्राध्यापक (हिंदी), दयाल सिंह कॉलेज (प्रातः), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110003.

कलिकाल उपस्थित है, राजपूत अपनी वीरता से धर्म को बचा लें।''[2] इस प्रकार अपने से समर्थ दो जातियों को परस्पर लड़ाकर ब्राह्मण अपनी बौद्धिक धूर्तता से अपनी जातीय सुरक्षा के प्रयत्न में लगे रहते हैं। प्रत्येक जाति का संपंन और समर्थ व्यक्ति अपने नेतृत्व को स्थापित करना चाहता है और साथ ही वह दूसरों के विकास में अवरोध भी उत्पन्न करता चलता है। जोतखीजी, खेलावन यादव, ठाकुर राम, किरपाल सिंह, विश्वनाथ प्रसाद मल्लिक मेरीगंज के जातीय नेता हैं। हरगौरी कहता है, ''अरेभाई, सभी काशी चले जाओगे? पत्तल चाटने के लिए भी तो कुछ लोग रह जाओ। जेल क्या गए, पंडित जमाहिरलाल हो गए। कांग्रेस आफिस में भोलटियरी करते थे, अब अंधों में काना बनकर यहां लीडरी छांटने आया है। स्वयं सेवक न घोड़ा का दुम!''[3] वास्तव में मैला आँचल के मेरीगंज गांव के माध्यम से पूरे बिहार की जाति व्यवस्था का एक चित्र आंखों के सामने उभर आता है। आज जो जातिगत हिंसा की भयंकर स्थिति है वह कहीं न कहीं जातिगत उच्चता बोध में निहित है। बिहार में 'गुमट टोली' निम्न जातियों का बोधक शब्द है, लेकिन 1954 में ही यादवों ने इतनी सामाजिक सत्ता हासिल कर ली थी कि उन्हें अब 'गुमट टोली' कहने की हिम्मत कोई नहीं करता। लेकिन जो अन्य निम्न समझी जाने वाली जातियां स्वयं को क्षत्रिय मानती हैं, जो उनकी जाति नामों से जाहिर होता है– गहलोत छत्री टोली, कुर्म छत्री टोली, धनुकधारी छत्री टोली, कुशवाहा छत्री टोली आदि। कथित उच्च जातियां तो कथित निम्न जातियों को 'निम्न' कहती ही हैं, स्वयं निम्न समझी या कही जाने वाली जातियों में भी अपनी जाति को अन्य जाति से उच्च समझने की भावना प्रबल रूप से विद्यमान है और ये जातियां समाज से उपेक्षित होकर भी आपस में एकता या सामाजिक व्यवहार नहीं रखती। गांव में अस्पताल बनने की प्रसन्नता में महंथ साहब भंडारा खोलते है। गांव भर को दावत खिलाई जाएगी। इस सामूहिक भोज को ब्राह्मण नकार देने की बात करते हैं वहीं सिपैहिला टोली के लोगों ने भी मीनमेख निकालकर बखेड़ा करने की आशंका है। वे ग्वाले लोगों (यादव जाति) के साथ एक पंगत में नहीं खाएंगे। जातिगत उच्चता बोध की भावना कहां तक है इसे रेणु के शब्दों से समझा जा सकता है, ''फुलिया अब जात–समाज से नहीं डरती। वह तंत्रिम छत्री नहीं, वह असल बुंदेला छत्री की स्त्री है। आंगन में अपने से पकाकर खाती है। ... मां का छुआ भी नहीं खाती!''[4]

जातिगत विद्वेष की भावना भोज जैसे अवसरों पर हींपरिलक्षित नहीं होती, बल्कि पंचों और पंचायत के स्तर तक व्याप्त दिखलाई पड़ती है। पंचायत में भी जातिगत भाव पैदा हुआ है। यादव और राजपूतों में वहां भी एक–दूसरे को होशियारी के साथ नीचा दिखलाने के लिए चालें चली जाती हैं। यादव टोली के लोग कायस्थ और राजपूतों का विश्वास नहीं करते। सिंघजी यादव टोली के 'बदमाशों' का सीना तानकर चलना बर्दाशत नहीं कर सकते। इतना ही नहीं यहां के लोग बाहर से आए डॉ. प्रशांसकी जाति की टोह भी लेना चाहते हैं। डॉ. प्रशांत शुद्ध और उदात्त मानवीयता से प्रेरित हो मेरीगंज में आए हैं। लेकिन लोग उनकी भी जाति जानने के इच्छुक हैं। क्योंकि उनकी दृष्टि में जाति चीज बहुत बड़ी है। फुलिया के प्रसंग को लेकर जब पंचायत होती है तब ब्राह्मण लोग राजपूतों से यह उपेक्षा करते हैं कि वे ब्राह्मणों का साथ दें। अगर राजपूत ऐसा नहीं करते तो वे ग्वालों को भी राजपूत मान लेंगे अर्थात् इस तरह राजपूतों के सामाजिक स्तर को नीचा गिरा देंगे।

मेरीगंज में एक बूढ़े जोतखी जी हैं। चेतना और जागृति की किसी वस्तु को ज्योतिखी जी फूटी आंख नहीं देख पाते। भविष्य की चिंता बतलाकर अपना उल्लू सीधा करना और ग्रामीणों में भय को बनाए रखना ही जैसा इनका कर्त्तव्य है। गांव में 'इसपिताल' खुला है। जोतखी जी की दृष्टि में यह अशुभ लक्षण है। उन्हें शंका है कि अब कुओं में दवा डालकर हैजा फैलाया जाएगा। वास्तव में अशिक्षितों और भोले–भाले ग्रामीणों के बीच एक वर्ग अपने पाखंड प्रसार के द्वारा अपना उल्लू सीधा करना चाहता है। इस वर्ग के लोगों की भविष्यवाणियों में कभी कोई आस्था या रचनात्मकता का स्वर नहीं होता। महंत के चेले रामदास को भी जनता लछमी पर आंख रखने वाला लंपट ही समझती है लेकिन यही महंत जब रात के सपने की बात कहकर जनता को गांव में खुल रहे अस्पताल के पक्ष में कर लेता है व साथ ही गांववासियों के लिए भंडारे की घोषणा कर देता है तो गांव वालों का नजरिया उसके प्रति बदल जाता है। पूड़ी–जलेबी और

दही–चीनी के भंडारे से जनमत बदल जाता है। दूसरी ओर लरसिंघदास जब आचार गुरू का संदेश लेकर मेरीगंज में आता है जो मेरीगंज मठ पर केवल एक रात रहने के बाद उस पर महंथी का मोह सवार हो जाता है उसकी नजर मेरीगंज मठ की विशाल संपत्ति पर जाती हैं वह उसको हथियाने के लिए तिकड़में करता है– महंथ (रामदास) के विरूद्ध लेकिन अंततः सफल नहीं हो पाता।

बावनदास के प्रति बालदेव के मन में एक दमित ईर्ष्या का भाव है जो उपयुक्त अवसर पर प्रकट हो जाता है। उसके मन में कहीं–न–कहीं मिनिस्टर बनने की एक क्षिण आकांक्षा भी दुबकी पड़ी है। उसके सामने जयमंगल बाबू का उदाहरण है जो निरक्षर, मूर्ख, गरीब और 'छोटी जाति' का होने पर भी मिनिस्टर बन गये हैं। क्या बालदेव भी मिनिस्टर नहीं बन सकता? बालदेव बावनदास के नाम लिखी गांधी जी की चिट्ठियों को देखकर नेहरू जी बावनदास को मंत्री बना देंगे। बालदेव का कालीचरण से भी विरोध होता है। बालदेव को कीर्तन तो पसंद है लेकिन अखाड़ा और कुश्ती को वह अच्छी चीज नहीं समझता, क्योंकि उससे हिंसा को बल मिलता है।

तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद अपनी मीठी बोली और काइयांपन से गांव वालों को मूर्ख बनाता रहता है। वह पंचायत में कालीचरण को अपने साथ बिठाता है और हंस–हंसकर बातें करता है। तहसीलदार पहले संतालों को 'बाहरी' आदमी सिद्ध करता है और फिर कालीचरण को इस बात के लिए राजीकर लेता है कि, यदि गांव के बाहर का कोई आदमी हम पर हमला करे तो उसका मुकाबला सभी को मिलकर करना होगा। वह मेरीगंज के रैयतों को बीहन के लिए उदारतापूर्वक अनाज देकर उनके मन में भी यह भाव पैदा कर देता है कि संताल 'बाहरी' आदमी है। दरअसल तहसीलदार का स्वार्थ इसी में है कि वह जमीन के लिए संघर्ष करने वालों में फूट डाल दे। तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद द्वारा किसानों की जमीन–वापसी उनका अंतिम तिकड़म है। रेणु यहां विश्वनाथ प्रसाद का हृदय परिवर्तन नहीं दिखलाते।

बेटी के बेटा को सामाजिक मान्यता दिलाने के लिए वह ऐसा करता है।

'मैला आँचल' में राजनीति जीवन की पृष्ठभूमि के रूप में ही है जो पात्रों के व्यक्तित्व को और भी उभारती है। नेमिचंद्र जैन के शब्दों में, ''यह भी कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि राजनीतिक मतवादों और वर्गगत संघर्ष के प्रस्तुतीकरण में लेखक ने बडे भारी आत्मसंयमसे काम लिया है, और यद्यपि उसकी अपनी निजी सहानुभूति की दिशा करीब–करीब स्पष्ट है, तो भी उसने किसी भी विचारधारा को अथवा अपने किसी संस्थागत पक्षपात को अपने जीवनबोध और सौंदर्यबोध पर हावी नहीं होने दिया है।''[5]

lUnHkZ %

1. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2003, पृ. 5
2. वही, पृ. 15
3. वही, पृ. 19
4. वही, पृ. 168
5. नेमिचन्द्र जैन, अधूरे साक्षात्कार, पृ. 38

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 119-122

çepn d liuk dk Hkkjr

nh{kk xqIrk*

प्रेमचंद एक नाम नहीं है, बल्कि वे अपने आप में एक जीता जगाता भारत हैं। ऐसे तो प्रेमचंद के कई नाम हैं– उपन्यास सम्राट, कथाकार, नाटककार, निबंधकार आदि–आदि। इन सबके बावजूद प्रेमचंद एक ऐसी काया थे जिनका प्रत्येक साँस भारत को ही समर्पित था। समाज सुधारक या देशभक्त तो बहुत हुए, जो अतुलनीय हैं परन्तु प्रेमचंद एक ऐसे व्यक्ति थे जिनमें समाज सुधारक, देशभक्त, सेवक, समाजशास्त्री आदि सभी रूपों को देखा जा सकता था। प्रेमचंद भारत की आजादी के लिए मैदान में नहीं उतरे थे बल्कि अपनी लेखनी के माध्यम से शिक्षित वर्गों को जगाने का भरपूर प्रयास करते रहे थे। कोई भी देश तबतक अवनति, शोषण, उत्पीड़न और गुलामी की जंजीरों से मुक्त नहीं हो सकता है, जबतक उस देश का शिक्षित युवा वर्ग अपनी वर्तमान परिस्थितियों से संतुष्ट है। प्रेमचंद उसी संतुष्टी कारक प्रवृत्ति को अपनी रचनाओं में तोड़ते हैं। प्रेमचंद भारत के प्रत्येक कोने में सबसे ज्यादा पढ़े जाने वाले लेखकों में गिने जाते हैं। वर्तमान में हिंदी भाषा के साहित्य की चर्चा बिना प्रेमचंद के नहीं हो सकती है। प्रेमचंद एक विरासत हैं, जिनसे आगे आने वाली सभी पीढ़ी प्रेरणा लेती रहेगी।

प्रेमचंद की साहित्यिक चेतना ही उनकी सच्ची मानवता का प्रतीक है। यही करण है कि आज प्रेमचंद की 140 वीं जयंती पर हम उनके सपनों के भारत की बात कर रहे हैं। हिंदी साहित्य जगत में प्रेमचंद के आगमन के पूर्व हिंदी कथा साहित्य सूना पड़ा था, ऐसा नहीं है कि हिंदी कथा साहित्य में कभी कुछ लिखा ही नहीं गया बल्कि भारतेंदु युग में यानी 19 वीं शताब्दी में अनुवाद के रूप में तथा स्वतंत्र रूप से रचनाएँ हुई पर वह प्रारंभिक दौर था, उस समय गद्य में मनोरंजन का ही समावेश था, उसमें गंभीरता नहीं थी। गद्य को परिपक्व अवस्था में प्रेमचंद ने ही प्रकट किया। मुंशी प्रेमचंद की लेखनी ने साहित्य को सामाजिक सरोकारों से जोड़ा और साहित्य की दुनिया में एक नया दृष्टिकोण पैदा किया। प्रेमचंद का साहित्य सेवा के प्रति यह पहला कदम था।

प्रेमचंद अपने साहित्य में जिस लोक की रचना करते हैं, वह काल्पनिक नहीं है बल्कि यथार्थवादी है। यदि 20 वीं शताब्दी के भारत को जानना हो तो प्रेमचंद की रचनाओं को ही पढ़ना चाहिए। उनकी रचनाओं में भारत की सामाजिक, राजनितिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक चित्र का वर्णन मिलता है। उनके उपन्यासों तथा कहानियों में भारत का कण–कण समाहित है। कोई भी महान और प्रासंगिक लेखक अपने युग की पृष्ठभूमि की उपेक्षा नहीं करता है। प्रेमचंद एक युगप्रवर्तक लेखक हैं, जो अपने युग की पृष्ठभूमि को धरातल की तरह अपनाकर अपनी रचना के धागे पिरोते जाते हैं। वे एक कालजयी रचनाकार हैं, जो अपने रचनाओं (जैसे– सेवासदन,प्रेमाश्रम, रंगभूमि, निर्मला, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि, गोदान) के कारण सदैव जीवित रहेंगे।

भारत प्रेमचंद के रग–रग में बसा हुआ है। उनका सम्पूर्ण जीवन भारत–माता की सेवा में समर्पित रहा था। वे गुलाम भारत को सिर्फ स्वतंत्र ही नहीं देखना चाहते थे बल्कि वे भारत को सामाजिक, राजनितिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टियों से उन्नत और समृद्ध देखना चाहते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी लेखनी में सदैव भारत की युगीन पृष्ठभूमि का वर्णन किया और भारत की उन्नति के मुख्य बिन्दुओं को पाठक के समक्ष उजागर करने का उत्तम कार्य किया। एक कालजयी रचनाकार की

---

*शोधार्थी, हिंदी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय

यह खासियत होती है कि वह पाठक को समस्या के मूल में ले जाकर विचार करने के लिए छोड़ दे। प्रेमचंद की रचनाएँ इसका साक्षात् प्रमाण हैं। प्रेमचंद ने स्वयं लिखा है कि– "साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है, तो साहित्यकार के लिए उससे विचलित रहना असंभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश बंधुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और इस तीव्र विकलता में वह रो उठता है, पर उसके रुदन में भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है।"[1]

प्रेमचंद के सपनों का भारत राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी के सपनों के भारत से कुछ खास अलग नहीं था। वे गांधी जी के आदर्शवाद से बहुत प्रभावित थे जिसका असर उनकी रचनाओं में निःसंदेह दिखाई पड़ता है। उनके उपन्यास 'कर्मभूमि' में आदर्शवाद और अहिंसा जगह–जगह दिखाई पड़ती है। इस उपन्यास का पात्र अमरकांत आदर्शवाद का ही प्रतिनिधित्व करता है। वह समाज के पिछड़े, दलित और शोषित लोगों के अधिकारों की लड़ाई अहिंसात्मक ढंग से ही लड़ता है। प्रेमचंद स्वयं अहिंसा के पुजारी थे, यही कारण है कि उनके रचना संसार के चरित्र भी इसी भावना से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं।

भारतीय समाज विभिन्न कुरीतियों, अन्धविश्वास, बाह्याडम्बर, छुआछूत का पोषक बना हुआ था। यह समस्या आज भी वर्तमान है। प्रेमचंद का मानना था कि भारत तबतक गुलामी से मुक्त नहीं हो सकता तथा विदेशी ताकतों से एकजुट होकर लड़ नहीं सकता, जब तक वह अपने समाज में फैली बुराइयों और कुरीतियों में जकड़ा है। लेखक ने 'असरारे मआविद' में धर्मस्थलों की पतितावस्था का वर्णन किया है। धार्मिक पाखंड का अनावरण प्रेमचंद अपने लगभग सभी उपन्यासों जैसे कर्मभूमि, प्रेमा, गोदान में करते हैं। पण्डे–पुजारियों की विलासितापूर्ण और अमर्यादित जिन्दगी की तस्वीर प्रेमा' उपन्यास में देखने को मिलता हैं। प्रेमचंद इसी के साथ विधवाओं की दुरावस्था का भी चित्रण करते हैं। विधवा हो जाने पर एक स्त्री की दशा बहुत दयनीय हो जाती है। उसे सभी साज–श्रृंगार, बाल गूंथने, रंगीन साड़ी पहनने, पान खाने आदि से वंचित कर दिया जाता है। घर की बहू–बेटियां विधवाओं से दूरी बना लेती हैं। प्रेमचंद ने एक विधवा की बुरी दशा का संकेत एक बाल विधवा रामकली के माध्यम से कराते हुए कहा है– "आखिर हम भी तो आदमी हैं, हमारी भी तो जवानी है। दूसरों का राग–रंग, हँसी चुहल देख–देख अपने मन में भी भावना होती है। जब भूख लगे और खाना न मिले तो हारकर चोरी करनी पड़ती है।"[2] इस तरह प्रेमचंद भारत की विधवा को संबल देते हैं ताकि वे भी एक मनुष्य की भांति अपना जीवन जी सके। इतना ही नहीं प्रेमचंद तो विधवाओं के पुनर्विवाह की बात भी करते हैं। विधवा होना कोई पाप नहीं होता है, न ही कोई स्त्री अपनी मर्जी से विधवा होती है, फिर भी उसे ही दोष दिया जाता है। हमारा समाज विधवाओं को पुनर्विवाह की इजाजत नहीं देता है, पर हाँ वही समाज के नियामक उन विधवाओं का शोषण अवश्य करते हैं। प्रेमचंद अपने लेखनी के द्वारा समाज के उन नियामकों को चेतावनी दे रहे हैं कि यदि समाज की नैतिक मर्यादाओं की रक्षा करनी है तो विधवाओं को भी एक मानवोचित अधिकार मिलना चाहिए।

प्रेमचंद ने भारतीय समाज के ताने–बाने को बहुत करीब से देखा था। वे समाज के प्रत्येक नागरिक को उसके अधिकारों के साथ सुरक्षित देखना चाहते थे। उन्हें समाज के जिस भी वर्ग में अन्याय, दुराचार, पाखण्ड और ढोंग का बोलबाला दिखता है, वे उसका विरोध अवश्य करते हैं। प्रेमचंद ने जहाँ एक ओर धार्मिक पाखंड का बड़े साहस के साथ विद्रोह किया। वहीं वे बेबाकी से सामाजिक बुराइयों का भी पर्दाफाश करते हैं। भारतीय समाज में जाति–पांती का बहुत बोलबाला है। यह समस्या आज से 140 वर्ष पूर्व भी व्याप्त थी, आज भी हैं। प्रेमचंद ने ऐसे समाज की कल्पना नहीं की थी। जहाँ आज भी जाति–पांती के नाम पर खून बहाए जाते हैं। जहाँ एक लड़का और लड़की अपनी पसंद से दूसरे जाति में विवाह नहीं कर सकता है। प्रेमचंद ने अपने उपन्यास कर्मभूमि में अमरकांत के माध्यम से जगह–जगह जाति–पांती का विरोध करवाया है। उनकी कहानी 'सद्गति' और 'ठाकुर का कुआँ' एक जीता–जागता उदहारण प्रस्तुत करती है।

हमारे समाज का एक ऐसा वर्ग जो सदैव उपेक्षित ही रहा है, वह है– वेश्या समाज। इस समाज को पालने वाला वही सभ्य समाज है जो इज्जत और मान–सम्मान की दुहाई देता है। फिर भी वेश्या

समाज को ही अपने उपजने की गाली और उपेक्षा अकेली सहनी पड़ती है। कोई भी स्त्री अपनी इच्छा से वेश्या–जीवन को नहीं अपनाती है बल्कि परिस्थितियों से विवश होकर वेश्या बनती है। प्रेमचंद की सहृदयता इस समाज (वेश्या समाज) के साथ पूरी है। वे समझते हैं कि हमारे समाज में स्त्रियों की दशा कितनी सोचनीय है। उनका 'सेवासदन' उपन्यास वेश्या समाज पर गंभीरता से विचार करती है।उपन्यास की केंद्र बिंदु सुमन को परिस्थितियों से विवश होकर वेश्या बनना पड़ता है। सुमन के पिता एक ईमानदार और नेक व्यक्ति थे। वे अपनी बेटी की शादी के लिए दहेज जमा नहीं कर पाते हैं, इसीलिए जीवन में पहली बार रिश्वत लेने की गलती करते हैं और जेल चले जाते हैं। पिता के जेल जाने के बाद सुमन का विवाह एक दुहाजू लड़के से हो जाता है जो उसे बहुत सताता है तथा परिस्थितियों के वशीभूत होकर वह वेश्या बन जाती है। जिस समाज में लड़की आत्मनिर्भर नहीं हो तथा उसकी इच्छा–अनिच्छा की परवाह न की जाती हो, तो ऐसे समाज में एक लड़की अपने पति से सताए जाने के बाद वेश्या नहीं बनेगी तो क्या बनेगी। बड़े ही आश्चर्य की बात तो यह है कि जो समाज एक स्त्री को वेश्या बनने के लिए मजबूर करता है वही समाज उसे घृणित समाज' कहकर उसे बहिष्कृत भी करता है। इतना ही नहीं हमारे प्रेमचंद ने समाज के कोढ़ दहेज प्रथा का भी विरोध किया हैं, जिसके कारण समाज में अनमेल विवाह जैसी प्रथा फलती–फूलती है। वे दहेज प्रथा का बार–बार विरोध करते दिखाई देते हैं चाहे वह 'निर्मला' उपन्यास हो या 'सेवासदन'। प्रेमचंद बार–बार भारतीय समाज को चेताते हैं कि वह स्त्रियों के साथ अमानवीय व्यवहार न करें। स्त्री को भी मान–सम्मान मिले। उनकी इच्छाओं का भी मान रखना चाहिए। तभी एक समाज पूरी तरह प्रगति कर पायेगा। इसी संदर्भ में रामविलाश शर्मा जी का कथन द्रष्टव्य है– "दहेज, अनमेल विवाह और वेश्या की देहरी। मानो इस विवाह प्रथा और वेश्यावृति में कोई अन्योन्याश्रय सम्बन्ध हो कि एक होगी तो दूसरी होगी ही। और जिस समाज में कन्या के विवाह का मतलब कन्याविक्रय हो, उससे वेश्यावृति कौन उठा सकता है?"[3]

समाज की प्रगति के लिए शिक्षा उसी दिए की भांति होता है जिसके प्रकाश तले व्यक्ति अँधेरे में राहें तलाशते हुए आगे बढ़ता जाता है। पुरुष हो या स्त्री, दोनों का शिक्षित होना एक विकसित समाज की खासियत होती है। स्त्री शिक्षा के प्रति हमारा समाज आज भी पूरी तरह से सहमत नहीं हो पाया है। आज भी स्त्री घर की रसोई तक ही सीमित मानी जाती है। प्रेमचंद के समय में स्त्रियों की दशा और भी बुरी थी। उस समय स्त्रियों को विलासिता की वस्तु समझी जाती थी, परन्तु प्रेमचंद इस बात का विरोध करते हैं। वे अपने उपन्यासों में स्त्रियों को शिक्षित करने पर जोड़ देते हैं, वे स्त्रियों को स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेते हुए प्रस्तुत करते हैं। कर्मभूमि की 'सुखदा' एक शिक्षित महिला है, जो स्वयं को एक इन्सान समझती है। वह समाज के दलित तबकों के लोगों के पक्ष में आन्दोलन भी करती है। लेखक 'सुखदा' और 'मुन्नी' जैसे चरित्रों के माध्यम से समाज को यह बताना चाहते हैं कि शिक्षित महिला होने से हमारा समाज और देश चौगुनी प्रगति करेगा।

प्रेमचंद एक ऐसी शिक्षा पद्धति के समर्थक थे जिससे वास्तव में लोग शिक्षित हो सके। वे शिक्षा के व्यावसायीकरण के विरुद्ध थे, जो अंग्रेज अपने फायदे के लिए कर रहे थे। प्रेमचंद के समय में भारत एक गुलाम देश था। वहाँ ज्यादातर लोग शिक्षा से वंचित थे। अंग्रेजों ने भारत पर ज्यादा समय तक शासन करने के लिए जिस शिक्षा नीति का प्रचार–प्रसार किया वह थी "मैकाले शिक्षा नीति"। मैकाले शिक्षा नीति का एक मात्र उद्देश्य था क्लर्क बनाना । यह शिक्षा नीति सही मायने में किसी को शिक्षित नहीं कर रही थी बल्कि साल–दर–साल 'क्लर्क उत्पाद' कर रही थी। दुर्भाग्यवश यह शिक्षा नीति आज भी हमारे देश में जड़ जमाए हुए है। प्रेमचंद अपने 'कर्मभूमि' उपन्यास के आरम्भ में ही शिक्षा के व्यवसायीकरण की प्रवृत्ति को प्रस्तुत करते हैं। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर भारतीय शिक्षित नहीं हो रहे हैं बल्कि नव–उपनिवेशवाद के संरक्षक बन रहे हैं। वर्तमान समय में शिक्षा एक व्यवसाय का रूप धारण कर चुकी है। आज नर्सरी में भी बच्चे का दाखिला करवाने के लिए एक लाख रूपये का डोनेशन देना पड़ता है। इतना ही नहीं, उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए भी योग्यता से अधिक पैसे' को महत्त्व दिया जाता है। आज की वर्तमान परिस्थितियों ने सरकारी स्कूलों को गरीब तबकों का तथा अंग्रेजी माध्यम के प्राइवेट स्कूलों को अमीरों का स्कूल बना

दिया है। इसके लिए कौन जिम्मेदार है? यह हमें अपने भाग–दौड़ भरी जिंदगी से थोड़ा रुक कर सोचने की जरूरत है। क्या ऐसा भारत प्रेमचंद चाहते थे– नहीं। वे तो ऐसी शिक्षा चाहते थे जिसमें कोई भेदभाव न हो, जहाँ सभी बच्चों को एक सामान शिक्षा प्राप्त हो, जहाँ अमीर और गरीब, जाति–पांति का भेदभाव न हो तथा सभी एक जैसी शिक्षा ग्रहण करते हो।

प्रेमचंद भारतीय समाज के रोम–रोम में बसे कालाबाजारी, घूसखोरी, भ्रष्टाचार और धोखेधड़ी का भी अनावरण अपने रचनाओं में करते हैं। यह कालाबाजारी, घूसखोरी, भ्रष्टाचार और धोखेधड़ी जैसी कुवृत्तियाँ किसी भी समाज को दीमक की तरह अंदर–ही–अंदर चाट कर नष्ट कर देंगी। वे 'कर्मभूमि' में समरकांत जैसे चरित्र को प्रस्तुत कर कालाबाजारी और सूदखोरों की कलई खोलते हैं। जो गरीबों का पैसा हजम कर लेते हैं और स्वयं अमीर बन जाते हैं। ऐसे लोग समाज को धीरे–धीरे बुराई, दुराचार, भ्रष्टाचार और अनैतिकता के दलदल की ओर लेकर चले जाते हैं। 'सेवासदन' में सुमन के पिता समाज की अनैतिकता और भ्रष्टाचार के शिकार बन जाते हैं तथा उन्हें पहली बार जिन्दगी में मजबूरीवश रिश्वत लेना पड़ता है। प्रेमचंद एक ऐसा भारत चाहते थे जो इन सभी बुराइयों से मुक्त हो, जहाँ किसी बेकसूर को अपनी ईमानदारी से समझौता न करना पड़े, जहाँ किसी व्यक्ति को भूखा न मरना पड़े।

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है कि प्रेमचंद के सपनों का भारत अभी बनना शेष है। ऐसा नहीं है कि आज भी भारत उसी जगह पर है जहाँ प्रेमचंद सन् 1936 ई0 में छोड़कर गए थे, बल्कि भारत आजादी के बाद आत्मनिर्भर बना है, शिक्षा के भी क्षेत्र में प्रगति हुई है, महिलाएं आज पुरुषों से कन्धा मिलाकर चल रही हैं, बिजली की भी व्यवस्था गाँवों में हो रही है, इंटरनेट के आने से दूर–दराज के क्षेत्रों में भी शिक्षा का प्रकाश फैला है। प्रगति तो हो ही रहा है परन्तु आजादी के इतने वर्ष बाद भी देश को उन आशाओं के शिखर को छूना बाकी है जो प्रेमचंद जैसे सभी देशभक्त चाहते हैं। भारतीय समाज में जड़ जमाए बैठी जाति प्रथा, दहेज प्रथा, असमानता, लिंग भेद, पर्यावरण के प्रति सचेत न होना, अनेकता, भ्रष्टाचार आदि ऐसी समस्याएं हैं जिनपर विचार करने की जरूरत है। तभी प्रेमचंद के सपनों के भारत की परिकल्पना पूरी हो पायेगी।

lUnHk %

1. कुछ विचार जीवन में साहित्य का स्थान, प्रेमचंद–लेख, पृष्ठ संख्या–95
2. प्रेमा; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2006, पृ0 31
3. प्रेमचंद और उनका युगः रामविलाश शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 38

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 123-127

j.kq ds miU;klksa esa lkaLÑfrd ifjos'k % vkt ds lUnHkZ esa

çhre jtd*

संस्कृत शब्द का सम्बन्ध संस्कार से है जिसका अर्थ है – संसोधन करना या उत्तम बनाना। संस्कृति का दायरा बहुत विस्तृत है। सागर की तरह संस्कृति अपने में कला, साहित्य, धर्म, दर्शन, रीति–रिवाज, लोक व्यवहार, संस्कार, ज्ञान–विज्ञान, शिक्षा आदि समेट लेता है। मनुष्य का संस्कार ही संस्कृति की उत्पत्ति है। संस्कृति एक पीढ़ीगत दौलत की तरह है जो विरासत के रूप में पूर्वर्ती पीढ़ी से वर्तमान पीढ़ी को सौप दिया जाता है। संस्कृति का मूल उद्देश्य समाज या मनुष्य को सभ्य बनाना है। धर्म, रीति–रिवाज, लोकव्यवहार, संस्कार आदि को संस्कृति ही संचालन करती है। इसलिए समाज में संस्कृति का रहना बहुत जरुरी है। संस्कृति का एक पहलू लोक संस्कृति भी है। भारतीय संस्कृति को विशाल बनाने में लोक संस्कृति का भी अहम योगदान है, डॉ.रामदरश मिश्र लिखते हैं– "लोक से अभिप्राय मनुष्य समाज के उस वर्ग से है जो अभिजात संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित है। इसी लोक की संस्कृति का नाम लोक संस्कृति है।"[1]

भारत में गाँव की संस्कृति की अलग ही विशेषता होती है। प्रत्येक गाँववासियों का अपना आचार–विचार, रहन–सहन, खान–पान, नियम, उत्सव–त्योहार, नाच–गान आदि होता है। इन गाँवों या अंचल विशेष को लेकर लिखे गए हिंदी उपन्यासों में मैला आँचल अपना अलग ही महत्व रखता है।

आँचलिक उपन्यासों में नागाजुर्न के 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'दुःखमोचन', 'वरुण के बेटे', 'उग्रतारा' प्रमुख है। जिसमे विशेष कर काशी अंचल के जन–जीवन का मार्मिक चित्रण हुआ है। इसी क्रम में आगे डॉ. रांगेय राघव, शैलेष मटियानी, डॉ. रामदरश मिश्र, राही मासूम रजा आदि लेखकों ने अपना योगदान दिया। आँचलिक उपन्यासों में रेणु का एक विशेष स्थान है। इन्होंने ने ग्रामीण जीवन के विकास योजनाओं, जमींदारी उन्मूलन, नेताओं के वायदे आदि को उतार कर रख दिया। इसके अतिरिक्त पशु, पक्षी, जानवरों, खेत खलियानों, प्राकृतिक परिवर्तनों का सजीव चित्रण भी किया है। साथ ही अलग–अलग गाँवों, लोगों के रीति–रिवाज, अन्धविश्वास, जात–पांत का आडम्बर, सामाजिक आर्थिक विषमता, पर्व, उत्सव, त्यौहार, अंधश्रधा को भी यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है।

रेणु के उपन्यासों में लोक संस्कृति के प्रति गहरा लगाव रहा है। सूरज पालीवाल लिखते हैं– "ग्रामीण जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म घटनाओं और उनमें अन्तर्निहित अमानवीयताओं का रेणु ने जिस बारीकी से वर्णन किया है वह वास्तव में उनकी निष्ठा और आस्था का प्रतीक है।"[2] मेला हमारे सांस्कृतिक जीवन का एक अभिन्न अंग है। मेलों में हम विभिन्न संस्कृतियों को मिलते हुए देखते हैं। गाँवों में मेलों का एक अलग ही महत्व होता है। अलग–अलग पर्वों–त्योहारों में मेले आयोजित किये जाते हैं। रेणु ने मैला आँचल उपन्यास में रामनगर मेला, रातेहट मेला, लालबाग मेला तथा परतीः परिकथा में सोनपुर का मेला, पशुपति मेला, बदरियाँ घाट का मेला से गाँव के लोगों का परम्परा और संस्कृति का अच्छा परिचय दिया है। आज के दौर में लोगों का मेलों के प्रति आकर्षण खत्म होते जा रहा है। लोग मेलों की भीड़ से बच कर खुद को असामाजिक बनाते जा रहा है। प्रायः मेलों में आज गुंडागर्दी, लड़कियों से छेड़खानी आम बात हो गयी है। अब मेलों में बाजारीकरण आ गया है, जहाँ चारो ओर चमकदार–चकाचौंध वस्तुओं की सजावट रहती है। समय के साथ मेलों का अर्थ भी बदल गया है। मेले की तरह त्यौहार भी भारतीय लोक जीवन का

*शोधार्थी,हिंदी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय

अंग है। भारतवर्ष में वर्ष भर में अनेक त्योहार मनाएँ जाते हैं जो भारतीयों के आचार–विचार, रहन–सहन, खान–पान आदि का परिचायक है। प्रत्येक त्यौहार के पीछे कोई न कोई पौराणिक आख्यान होता ही है। भारतीय त्योहारों में होली, दीपावली, दशहरा का विशेष महत्व है। रेणु के उपन्यासों में विशेषकर होली और श्याम चकेवा का विशेष रूप से उल्लेख है। होली श्रृंगार रस का पर्व है। रेणु जिस अंचल के हैं वहाँ होली अत्यंत आँचलिक और पारम्परिक रूप से मनाई जाती है। इस अवसर पर सामूहिक गीत ढोलक व नगाड़े की थाप पर गाये जाते हैं। रेणु स्वयं होली के सन्दर्भ में लिखते हैं – "मँहगी पड़े या अकाल हो, पर्व त्योहार तो मनाना ही होगा। और होली ? फागुन महीने की हवा ही बावरी होती है। आसिन–कार्तिक के मैलेरिया और कालाआजार से टूटे हुए शारीर में फागुन की हवा संजीवनी फूंक देती है। रोने–कराहने के लिए बाकी ग्यारह महीने तो हैं ही, फागुन भर तो हँस लो, गा लो। जो जिये सो खैले फाग। दूसरे पर्व त्यौहार तो टाल भी दिया जा सकता है। दीवाली में एक–दो दीप जला दिए, बस छुट्टी। लेकिन होली तो मुर्दा दिलों को भी गुदगुदी लगाकर जिलाती है। बौरे हुए आम के बाग से हवा आकर बच्चे–बूढ़ों को मतवाला बना जाती है।"[3] होली का आनंद जितना ससुराल में है उतना नैहार में भी है, मैला आँचल में रेणु ने इसे बहुत बारीकी से चित्रित किया है। होली पर्व कैसे दिलों में गुदगुदी पैदा करती है इसे उन्होंने प्रशांत के माध्यम से दिखाया है जो होली आते ही प्रेम के स्वप्नलोक में खो जाता है। होली के साथ–साथ सिखा पर्व का भी उल्लेख किया है। जो साल के पहले दिन मनाया जाता है। उसी प्रकार शामा चकेवा पर्व का बहुत विस्तृत वर्णन किया है जो मैथिल क्षेत्र में मनाया जाता है। यह कुमारी लड़कियों का त्यौहार है। इसमें मिट्टी के शामा चकेवा के पुतलों को बनाया जाता है। रेणु ने इस त्यौहार का बड़ा मनमोहक चित्रण किया है – "पूर्णिया से दो रात पहले से शामा–चराई की रात शुरू होती है। घर–घर से डालियाँ ले कर आती है लड़कियाँ। डालियों में चावल, फल, फूल, पान–सुपारी के साथ पंक्षियों के पुतले। लम्बी पूंछ वाली खंजन, पूंछ पर सिंदूरी रंग का टीकावाला पंछी, ललमुनियाँ। बिनरा......वृन्दावन ! जहाँ, शामा–चकेवा की जोड़ी चरेगी। छोटे–छोटे कीड़े–पतंगे, बरसता के जन्मे। असली कीड़े पतंग नहीं, मिट्टी के ही। वृन्दावन में चुगला आग लगा देगा। जली अधजली चिड़ियाँ वृन्दावन की आग को अपने छोटे–छोटे डैने से बुझावेगी। धान, दही, दूध और मिट्टी के ढ़ेले खिला कर, लडकियाँ बिदा करेगी शामा–चकेवा को–'जहाँ की पंछी तहाँ उड़ी जा, अगले साल फिर से आ'।"[4] इस तरह रेणु ने अपने उपन्यासों भारतीय मेलों, त्यौहारों का सजीव वर्णन किया है। मेलों और त्यौहारों का भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान है। इन मेलों में दूर–दूर के लोग एक दूसरे से मिलते जुलते है, गाना गाते हैं, जिससे लोग अपने दैनिक यांत्रिकता को भुला देते हैं। परंतु समकालीन समय में ग्रामीणों की मानसिकता बहुत बदल गयी है। समकालीन समय में ऐसे त्योहारों का स्वरूप पूर्ण रूप से बदल चूका है। आज जहाँ धन वहाँ त्योहार हो गया है। आज लोगों के पास समय कम है। कई लोग तो होली जैसे त्योहार में होली के नृत्य, गीत टी. वी. में देख कर खुश हो जाते हैं।

आँचलिक उपन्यासों में लोककथा, लोकनाटक, लोकगीत, लोकनृत्य का अलग ही महत्व होता है। लोककथा निरंतर एक कान से दूसरे कान, एक मुख से दूसरे मुख सदा बहती रहती है। आदिकाल से ही मानव अपने पारंपरिक लोक कथा को लेकर चल रही है जिसमें विभिन्न संस्कृतियों, सामाजिक आचरण आदि का उल्लेख रहता है। रेणु ने अपने उपन्यासों में लोक कथाओं का बारीकी से वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त लिखते हैं – "लोक कथाओं के साथ भारतीय ग्रामीण जीवन की युगीन ट्रेजडी को 'रेणु' ने इतनी कलात्मकता के साथ गूँथ दिया है कि मैला आँचल का शिल्प महाकाव्यात्मक हो उठा है।"[5] मैला आँचल में बूढी भैरों की माँ मेरीगंज के नामकरण से जुड़ी मेरी की कथा को नवविवाहिता वधू को अत्यंत लोककथात्मक शैली में सुनाती है – "गाँव की सबसे बूढी भैरों की माँ यदि आज रहती तो सुना देती – अहा हा ! परी की तरह थी साहेब की मेम, इन्द्रासन की परी की तरह।"[6] गाँव के लोगों का अधिकत्तर कार्यों में लोक विश्वासों का बड़ा महत्व होता है। उनका सम्पूर्ण जीवन ही लोक विश्वास से भरा होता है। जो उसे जीवन के आखिरी पड़ाव तक जकड़ कर रखता है। जिसका मूल कारण अज्ञानता और अशिक्षा है जिसके कारण लोगों में अन्धविश्वास भरा पड़ा है, जो कहीं

न कहीं लोक कथाओं के माध्यम से बहती चली आ रही है। रेणु ने अपने उपन्यासों में इसका बहुत बारीकी से वर्णन किया है। मेरीगंज गाँव में जब हैजा फैला हुआ था तब मठ का एक साधू बीमारी के चपेट में आ गया, फिर महंत साहब और रामचरण भी। दोनों स्वर्ग सिधार गए। गाँव के लोगों ने इनके मृत्यु को चिलम में बीजक जलने का परिणाम मान लिया। अन्धविश्वासों और मिथ्या कथनों के कारण कभी–कभी गाँववासियों को प्राण भी त्यागना पड़ता था। गाँव में विधवा पार्वती की माँ को सभी लोग डायन मानने लगे थे – "पारवती की माँ थीं। डायन है। तीन कुल में एक को भी नहीं छोड़ा। सबको खा गई। पहले भतार को, इसके बाद देबर–देबरानी, बेटा–बेटी सबको खा गई, अब एक नाती है उसको भी चबा रही है।"[7] डॉ. प्रशांत को भी मेरीगंज के लोकविश्वासों से जूझना पड़ता है। जब वह पार्वती के घर गणेश के इलाज के लिए जाती है तो लोग कहते हैं – "इस डाक्टर को काल ने घेरा है शायद।"[8] गाँव में अन्धविश्वास इतना ज्यादा है कि लोग हैजा और मलेरिया जैसे रोग को डॉ. प्रशांत की चिकित्सा का परिणाम मानते हैं। जतेखी काका कहते हैं – "डाक्टर लोग ही रोग फैलाते हैं, सुई भोंक कर देह में जहर दे देते हैं, आदमी हमेशा के लिए कमजोर हो जाता है, हैजा के समय कूपों में दवा डाल देते हैं, गाँव–का–गाँव हैजा से समाप्त हो जाता है। कालाबुखार का नाम पहले लोगों ने सुना था ? पूरब मुलुक कमरू कमिच्छा हासाम से कालाबुखार वालो का लहु शीशी में बंद करके यही लोग ले आए थे। आजकल घर पर काला बुखार फैला रहता है।"[9] जब गाँव में हैजा फैलता है तो इसी अन्धविश्वास के कारण कोई सुई नहीं लगवाने जाता है। रेणु अपने परतीःपरिकथा उपन्यास में भी चिरई चुनमुन की कथा का वर्णन किया है – "कोसका मैया का नैहर ! पश्चिम–तिरहौत राज। ससुराल–पुरब। कोसका मैया की सास की बड़ी झगडाही। जिला–जवार, टोला–परोपट्टा में मशहूर। और दोनों ननदों की क्या पूछिए ! गुनमंती और जोगमंती। तीनों मिलकर जब गालियाँ देने लगी तो लगता की भाड में मकई के दाने भुने जा रहे हैं : फडर्र–र्र–र्र। कोखजली, पुतखौकी, भतारखौकी, बाँझ ! कोसी मैया के कान के पास झाँझ झनक उठते।"[10] यहाँ कोसिका मैया का तात्पर्य कोसी नदी से है। इसी तरह अनेक लोक कथाओं से 'परतीः परिकथा' उपन्यास बहुत आकर्षक बनता है। डॉ. उषा डोगरा लिखते हैं – "लोककथा, लोक विश्वास, लोक रीति और परंपरा प्राप्त प्रवादों के आधार पर किसी प्रदेश के सांस्ःतिक जीवन की आधुनिक कथा को रूपायित करने का जैसा कौराल 'परतीः परिकथा' में दिखाई पड़ता है, वैसा अन्यत्र किसी भी आँचलिक उपन्यास में नहीं है।"[11] यह सब लोक कथाएँ हमारी संस्कृति विरासत के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचती रहती है। वर्तमान समय में लोक कथाओं का कोई विशेष महत्त्व नहीं रह गया है। लोग जैसे–जैसे शिक्षित और समझदार होते जा रहे हैं उनका अंधविश्वासों से भरोसा उठता जा रहा है, यह एक प्रकार से ठीक भी है परन्तु वह लोक कथा जिससे हमारी संस्कृति जुड़ी हुई है जो कोई न कोई शिक्षा समाज में जरुर देता है ऐसे लोक कथाओं का खो जाना हमारी संस्कृति के लिए ही खतरा है।

रेणु ने अपने उपन्यासों में लोक संस्कृति को अभिव्यक्त करने के लिए लोकगीतों का अच्छा प्रयोग किया है। लोकगीतों के माध्यम से हमें गाँवों की संस्कृति का ज्ञान होता है। इन लोकगीतों में हमारे संस्कृति का मार्मिक इतिहास सुरक्षित तो है ही साथ ही साथ दैनिक कार्यों में भी लोकगीतों का प्रयोग होते रहता है। गाँव की स्त्रियाँ दैनिक कार्य करते हुए जैसे झाड़ु लगाते हुए, गाय–भैसों की सेवा करते हुए, दूध दुहते समय लोकगीत गाती है। स्त्रियों के साथ–साथ पुरुष भी हल चलाते वक्त, मजदूरी करते वक्त, धान काटते वक्त, संगीत के लय के साथ लोकगीत का आनन्द उठाते है। गाँवों के लोग अशिक्षित होने के बाउजुद भी संवेदनशील तथा धर्म के प्रति ईमानदार होते हैं। इन लोगों का दुःख–दर्द, हर्ष–विषाद हम इनके लोकगीतों में देख सकते हैं। डॉ. गोपाल लिखते हैं – "हर काम के लिए अलग–अलग गीत और नृत्य ही ग्रामीणों के शोषण–जर्जर, दुःखपूरित जीवन को संतुलन प्रदान करते हैं। हिंदी उपन्यास में रेणु ने पहली बार इस यथार्थ को प्रभावी रूप में प्रस्तुत किया है।"[12] मैला आँचल में कमली अविवाहित है, उसके संग कोई सहेली या भाभी भी नहीं है जिसके संग वह आपना दुःख बाँटे। लेखक ने कमली और डाक्टर के बीच आलिंगन के प्रसंग को विद्यापति के पंक्तियों द्वारा चित्रित किया है – "अधरक मधु जब चखान कान्ह, तोहर शपत हम किछु यदि जाति।"[13] डॉ. प्रशांत इन गीतों को सुन कर मोहित होता है और सोचता है

– "कोमल गीतों की पंक्तियाँ ! अपभ्रंश शब्द भी कितने मधुर लगते हैं ! ....पिया भइले डुमरी के फूल रे पियवा भयले। .....चाँद बयरि भेल बादल, मछली बयरि महाजाल, तिरिया बयरि दुहु लोचन–हिरदए के भेद बलाए। भोंमरा–भोंमरी रोई–रोई कजरा दहायल, धामे तिलक बदि गेला।......चान के उगयत देखल सजती गे .... लट धोए गइली हम बाबा की पोखरिया–पोखरि में चान केलि करे।"[14] भारत में होली त्योहार का बड़ा महत्व है। इस अवसर पर फगुआ, जोगीड़ा, भडौवा, जैसे लोकगीत गाँवों के लोगों द्वारा गाए जाते हैं। रेणु ने मैला आँचल में 'बुरा ना मानो होली है' गीत की आड़ में तत्कालीन राजनीतिक विसंगतियों का बहुत निर्मम वर्णन किया है –

Þgksyh g ! dkb cjk u ekus gksyh g !
cjlk e xï tc vkr g Hkj
cx gtkjk mle djr g Vj ol gh jkt vkt dkxl dk g
yhMj cu g lHkh dy d xhnM -------tkxh th lj --------jj ---A
tkxh th] rky u VV
tkxh th] rd f/kuk f/ku !
p[kk dkrk] [knnj iguk] jg gkFk e >kyh
fnu ngkM djk Mdrh cky ljkth ckyh--------
tkxh ft lj -----jj -----Aß[15]

इसी प्रकार रेणु एक और गीत के माध्यम से स्वर्ण और ऊँची जातियों के पुरुषों के द्वारा निम्न जाती की स्त्रियों के साथ काम संबंधों, उनकी अस्पृश्यता की अनैतिकता का पर्दा फाश कर मेरीगंज की सामाजिक स्थिति का वर्णन करते हैं –

Þvj gk cMcd cHkuk] vj gk cMcd cHkuk]
pEek yo e tkr ugh j tk,A
lifr&ekmfu;k yk, Mkefu;k ekx fi;kl l ifu;k
dvk d ikuh u ik, cpkjh] nkMy deyk d fdufj;k]
lkgh Mkefu;k tc cuyh ufVfu;k] vk[kh d ekj fiifu;k
fnu Hkj itk ij vklk yxk d ikFkh&ijku cpfu;k
jkr d rrekVkyh d xfy;u e tkr[kh th irjk xxfu;k
Hkdvk cHkuk] pEek yo e tkr ugh j tk,Aß[16]

रेणु ने मैला आँचल के लोकगीतों में राष्ट्रीय चेतना के प्रवेश के परिणाम स्वरूप आनेवाला परिवर्तन को रेखांकित किया है। उसी तरह 'परती: परिकथा' में जितेन्द्र ताजमनी के प्रेम में जितेन्द्र की विरहदशा का अंकन, उसके द्वारा गुनगुनाई जा रही गीत को एक ही कड़ी के माध्यम से प्रस्तुत करने में रेणु सफल रहा हैं – "बैराग जोग कठिन उधो–ओ–ओ, हम ना क ड र ड ब हो ! हूँ–हूँ–अं य हूँ–हूँ–हूँ–ऊँ–ऊँ।"[17]

इस प्रकार रेणु का उपन्यास लोकगीतों की –दृष्टि से विराट रूप से समृद्ध है। जीवन के हर एक स्थिति के चित्रण के लिए उनके पास लोकगीतों का भंडार है। समकालीन समय में नई पीढ़ी के बच्चों को किस्सों, कहानी पर विश्वास नहीं। वे इन सब में समय देने से बचते हैं। पहले सावन के महीने में स्त्रियाँ एक जगह इकट्टे हो कर गीत गाती थी जो हमारी लोक संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है वहीं आज कल की स्त्रियों को गीत सुनने में कोई रूचि ही नहीं है। गाँवों में अब गीत, गाना ढोल बजावा, अलग–अलग पूजा त्यौहारों में गीत गाना कम होते जा रहा हैं, लोग जितना आधुनिक और टेक्नोलॉजी की तरफ बढ़ रहे हैं उतना ही इन सब चीजों से दूर होते जा रहे हैं। जो हमारे संस्कृति का एक अभिन्न हिस्सा है। आज लोग भूलते जा रहे हैं की लोकगीत अंचल की जनता की भावना और अनुभूतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी के कारण ग्रामीण लोग अपने दुःख विषादों को भूलकर आनंदित हो उठते हैं। इसी कारण रेणु ने अपने उपन्यासों में लोकगीत का उपयोग अंचल की समग्र सांस्ःतिक धरोहर को पूरी समग्रता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

lUnHkZ %

1. मिश्र, डॉ. रामदरश, समकालीन साहित्य चिंतन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1995, पृष्ठ. सं.–38
2. पालीवाल, सूरज, फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों का कथा–संसार, कुसुमांजलि प्रकाशन, जोधपुर, प्रथम संस्करण – 1991, पृष्ठ. सं.– 53
3. रेणु, फनीश्वरनाथ, मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवा संस्करण–2008, पृष्ठ. सं.–112
4. रेणु, फनीश्वरनाथ, परतीः परिकथा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण–2009, पृष्ठ. सं. – 115–116
5. गुप्त, डॉ. शांति स्वरूप, हिंदी उपन्यास महाकाव्य के स्वर, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–1978, पृष्ठ. सं.–19
6. रेणु, फनीश्वरनाथ, मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवा संस्करण–2008, पृष्ठ. सं.–12
7. वही, पृष्ठ. सं.–96
8. वही, पृष्ठ. सं. – 99
9. वही, पृष्ठ. सं.–18
10. रेणु, फनीश्वरनाथ, परतीः परिकथा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण–2009, पृष्ठ. सं.–10
11. डोगरा, डॉ. उषा, हिंदी के आँचलिक उपन्यासों का लोकतात्त्विक विमर्श, अनुभव प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण–1984, पृष्ठ. सं.–186–187
12. डॉ. गोपाल, 'समीक्षा' अंक–3, वर्ष–22, अक्तूबर–दिसम्बर, 1998, लेख–मैला आँचल चन्दन भी कीचड़ भी, पृष्ठ. सं.–29
13. रेणु, फनीश्वरनाथ, मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवा संस्करण–2008, पृष्ठ. सं.–213
14. वही, पृष्ठ. सं.–83–84
15. वही, पृष्ठ. सं.–125
16. वही, पृष्ठ. सं.–126
17. रेणु, फनीश्वरनाथ, परतीः परिकथा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण– 2009, पृष्ठ. सं.–333

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 128-132

cká&Hkhrj nkuk d vrjre l xtjrh thor dgkfu;k&i#"k y[kdk d fo'k"k lnHk e

vukfedk ;kno*

किसी भी रचनाकार के पास संवेदनात्मक दृष्टि, विचारों की व्यापकता और साथ ही सामाजिक नैतिक जिम्मेदारी का होना जरूरी होता है। भले ही कहानी को मनोरंजन एवं कल्पना का पर्याय माना जाता हो लेकिन उसमें तर्कपूर्ण अंतर्दृष्टि, अनुभूतियों, समसामयिक परिस्थितियों का मिश्रण हैं। आधुनिक कहानियों में इतिहास और परम्परा को इतर रखकर समाज मे विद्यमान सजीव यथार्थता पर जोर देती हैं। भौतिक बदलाव के साथ ही साथ संवेदना के स्तर पर प्रचुर परिवर्तन परिलक्षित होता है, जिसमें महिला–पुरुष पात्रों के सशक्त बदलाव पर अधिक बल है।

समकालीन कहानीकारों में स्वयं प्रकाश बहुत सधे हुए लेखन के लिए जाने जाते हैं। इनकी बेबाक अभिव्यक्ति, विस्तृत सोच से कहानी प्रभावशाली है। 'नैंसी का धूड़ा' कहानी में नायक से ये कहलवाते हैं– ''वह यह समझा कि दुनिया का सबसे बलिष्ठ, सबसे प्रभावशाली और मस्त कोई प्राणी हैं, तो वह सांड है, जिसका डकारना एक विजय–घोष हैं, और जिसके लिए अच्छे–अच्छे रास्ता छोड़ देते हैं। उसने तय किया कि बड़ा होकर सांड ही बनेगा।''[1] जीवन की लाचारियों से उपजी मनःस्थिति विवशता उसे अंदर तक झकझोर देती हैं। बढ़ती भूख की समस्या और असंगठित जीवन ने विचारों की प्रवर्तनीयता को चैलेंज करती दिखाई हैं। इन्हीं की कहानी 'अगले जन्म' में महिलाओं की बदलती जिंदगी के साथ अपरिवर्तनीयता को बखूबी व्यक्त किया है। इस कहानी की स्त्री पात्र सुमि रौशनी की तरफ देखना भी नहीं चाहती क्योंकि उसके अंतर्मन में प्रश्नों को अँधेरी विवशता बैठ गयी है–''हे भगवान यह क्या है? यह क्यों है?? क्या और कोई तरीका नहीं हो सकता था? वह मन ही मन मानने लगी की उसे इतना बेपर्द, इतना रियाँ, इतना बेशर्म न होना पड़े।''[2] इसी कहनी में आगे का वाक्यांश बेहद मार्मिक और सच्चाई से लवरेज है जिसमे तार्किक प्रश्न भी किये गए हैं–''लाज, शर्म, हया, पर्दा ये सारे शब्द अब और यह बेमानी हो गए थे। माना की यह सिर्फ औरते ही थीं, पर इससे क्या? क्या मर्द मर्दो के सामने इतनी ही सहजता से नंगे हो जाते हैं?..... . ये मटके की तरह फूले पेट, पेट पर चमड़ी फटने से बनी सफेद धारियां, पतली– पतली टंगे और बिखरे बाल।... केवल देह! .... क्या यही देह पुरुष को आकर्षित कर उन्मत्त बनाती हैं? कोई यह देख ले तो वह स्त्री को कभी कमनीय न माने। .... दिमाग से सारी कविता एकदम रफूचक्क्र हो जाये, इसलिए प्रसूतिगृह में प्रवेश वर्जित रखा हैं?'[3] जिस प्रसव को/मातृत्व भावना को अभी तक अमरता के जिस रूप प्रकट किया रहा उसके पीछे की पीड़ा, शारीरिक बेडौलता उसकी सच्चाई को नजरअंदाज किया जाता रहा उसे अब मानवीय यौन कहे मशीनीकरण के तहत परिभाषित किया जाने लगा। और यह सत्य भी है हमारे समाज का एक वर्ग हमेशा कमनीय रूप में देखने का आदि है। समय के बदलाव के साथ स्त्रियों की पीड़ा से सहानुभूति तो कोई रख भी ले लेकिन उसके दर्द और सच्चाई का साक्षी नहीं बनना चाहता।

रवीन्द्र कालिया की कहानी 'नौ साल छोटी पत्नी' की आरम्भ की ये पंक्तियाँ जीवन की मानसिकता की परते खोलती नजर आती है – ''कुशल दबे पांव इस तरह घर में घुसा था, जैसे घर उसका अपना न हो और खासी आने पर वह गली में जाकर इस तरह जी भरकर खांस आया था, जैसे मदन को

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

नसीहत करने का मौका न देने के लिए वह प्रायः के बाहर जाकर खाँसा करता हैं। फिर उसने सोचा की वह शायद अपने अचानक आ जाने से तृप्त को चौंकाना चाहता हैं।'[4]

कहानी के अगले हिस्से में ''पहले तो कुशल के जी में आया कि तृप्ति को चुप करवाया जाये और इसी बहाने प्यार भी किया जाये,परन्तु उसने महसूस किया कि बिना सिगरेट के कश खींचे प्यार नहीं किया जा सकता, भावुक तो बिलकुल नहीं हुआ जा सकता। कुशल जानता है कि तृप्ती भावुकता रहित प्यार को स्वीकार नहीं करेंगी।''[5] अर्थात जो प्रेम पहले पूरी सहजता से अंतर्मन से उपजता था। अब वह किसी उद्दीपन के बिना सम्भव नहीं। प्यार के समकक्ष बताकर उसकी पक्ष–विपक्ष रूपी विश्लेषण को और तुच्छ दोनों रूप प्रस्तुत किया है। जिस भावना को कोमलता को स्त्री का गुण माना जाता था अब उसे कमी–कमजोरी के रूप में रूपायित किया जाने लगा है। कुल मिलाकर अब मनुष्य प्रैक्टिकल होने लगा हैं। हर संबंध में भावुकता की जगह बौद्धिक सोच ने ले लिया हैं।

रवीन्द्र कालिया के 'जीवन के सफर में राही' नामक लेख में मोनालिसा को एक पूर्ण स्त्री मानते हुए कहते हैं–''मुस्कान अपने में ही एक सामाजिक क्रिया है, इसलिए ऐसे सामाजिक संदर्भ में ही व्याख्यायित किया जा सकता हैं। शायद यही कारण हैं कि मोनालिजा आत्मकेंद्रित नहीं हैं। अतीत, वर्तमान भविष्य– इन तीनों तक इसकी पहुँच है। व्यक्ति के संदर्भ में यदि वह आलंबन है तो परिवेश के संदर्भ में आश्रय। मोनालिजा में अद्‌भुत चौकन्नापन हैं। उसकी नजर से कोई बच नहीं सकता। आप उसे कही से भी, किसी भी कोण से देखेंगे तो उसे अपनी ओर देखते ही पाएंगे।''[6] चूँकि साहित्य आधार जीवन हैं, जो सम्पूर्ण रूप से सजीवता और यथार्थता का उदाहरण है, इसलिए यथार्थ सिर्फ युग का ही नहीं होता बल्कि क्षण–भर का भी हो सकता है जो आज की कहानियों में स्पष्ट दिखता हैं।

शेखर जोशी की दाज्यू कहानी से– ''मनुष्य की भावनायें बड़ी विचित्र होती हैं। निर्जन, एकांत स्थान में निस्संग होने पर भी कभी–कभी आदमी एकाकी अनुभव नहीं करता है, इस एकाकीपन में भी सबकुछ कितना निकट है, कितना अपना हैं। परन्तु इसके विपरीत कभी–कभी सैकड़ों नर –नारियों के बीच जनरवमय वातावरण में रहकर भी सूनेपन की अनुभूति होती हैं। लगता है, जो हैं वह पराया है, कितना अपनत्वहीन, पर यह अकारण ही नहीं होता। इस एकाकीपन की। अनुभूति, इस अलगाव की जड़े होती हैं– विछोह या विरक्ति की किसी कथा के मूल में।''[7] यहाँ कहने का आशय यह है कि आज की कहानियों में सबकुछ अपनत्वहीन जैसा लगता है फिर वातावरण को अपनेपन का अहसास दिलाने के लिए अनुभवपूर्ण – अनुभूति का आभास होने लगता हैं। कहानी के पात्र जगदीश बाबू का एकाकीपन तब दूर होता हैं जब उसे निकट ही स्थित किसी गाँव के विषय में जानकारी मिलती हैं। इन्हीं की किसी अन्य कहानी में एकांत को स्पष्ट और गहरे अर्थ में किया है– ''घर में कभी एकांत में उनके साथ बैठने पर गंभीर संकोच होने लगता हैं। लगता है जैसे उनके सभी स्वप्नों पर पानी फेरकर मैंने उनके साथ विश्वासघात किया हैं। पहले सामाजिक अव्यवस्था के प्रति, समृद्ध मित्रों के प्रति, सफलता की सीढ़ी पर पहुंचे हुए संबंधियों के प्रति, सभी के प्रति उसके मन में रोष पीएलए हुआ था। बातों–बातों में अपने अच्छे समय में उन लोगो के प्रति किये गए उपकारों की आवृति करते और तब कभी अनजाने ही वृद्ध पिता की बातों पर क्रोध हो आता था।''[8] लेकिन यह क्रोध पल–भर में दया में तब्दील हो जाता था। शेखर जोशी एकदम ठंडी सी भाषा का प्रयोग करते हैं। इसकी पृष्ठभूमि में पिता के प्रश्नवाचक चेहरे का स्वरुप दिखाई देता हैं। जिसमे लाचारी और विवशता की स्पष्ट झलक दिखाई देती हैं। सफलता और असफलता के द्वंद्व की कहानी हैं यह।

राजेश जोशी की कहानी 'कपिल का पेड़' में इसकी स्त्री पात्र आनि को दृष्टि में रखकर मानवीकरण तथा नए उपमानों को प्रभावात्मक शैली में अभिव्यक्त किया गया है। ''नौ साल या शायद इससे भी कुछ पहले से कपिल एक पेड़ तलाश रहा था। एक अपना पेड़ एकदम निजी, एक दिन गुस्से और उदासी से भरा हआ वह घर से निकल आया। बाहर आकर उसने कहा– घर में पेड़ की गंध नहीं रही , दरवाजे अब हथेलियों की तरह नहीं खुलते और खिड़कियों के पास मेरे लिए एक भी शब्द नहीं बचा!''[9] यह कहानी एक अंतहीन की तलाश की परते खोलती नजर आती हैं। एक ऐसी खोज जो एकाकीपन और मानसिक कुंठा के कारण कभी समाप्त नहीं होती। आधुनिक चेतना एक प्रकार की

सुसुप्तावस्था में चली गयी हैं। ऐसी कहानी में कपिल आगे कहता है– "प्रेम आदमी की सनातन इच्छा है लेकिन क्या वास्तव में प्रेम किया जा सकता है? एक–एकदम का, सचमुच का प्रेम? नहीं पार्टनर, ईश्वर करने जैसी मूर्खता तो सम्भव है, लेकिन दो व्यक्तियों के बीच प्रेम हो या पेड़ कैसे सम्भव है? मुझे तो लगता है प्रेम और पेड़ दोनों की ही जड़ों को मुद्रा–राक्षस खाये जा रहा है।''[10] उपर्युक्त दोनों ही पैराग्राफ से एक बात तो साफ हो जाती है और वह है कपिल की पेड़ के प्रति आस्था और प्रत्येक चीज को पेड़ जोड़कर देखने का नजरिया, सूक्ष्म–स्थूल दोनों का विरोधाभास रूप परिलक्षित हो रहा है।

राजेश जी की अधिकतर कहानियों में एक लिजलिजी सहानुभूति के साथ–साथ और उसके बगैर दोनों का ही इस्तेमाल बखूबी किया हैं। इनकी कहानियों में संतुष्टि की भी एक उथली सीमा निर्धारित होती हैं। जिस प्रकार यहाँ प्रेम और पेड़ को एक समान माना गया है ठीक उसी तरह हिंदी साहित्य के प्रगतिशील लेखकों की अभिव्यक्ति 'जहाँ लिखा है प्रेम वहाँ लिख दो सड़क' वाला भाव प्रदर्शित हो रहा है। इन घटनाओं में पत्नी या प्रेमिका की भावुकता को पागलपन की संज्ञा दे दिया है और मर–मर कर जिन्दा रहने या बेहया सा जीवन व्यक्त हुआ है जबकि इधर बीच बौद्धिक तर्कपूर्ण मनःस्थिति मजबूत होती दिखाई देती हैं। भावुकता को चेतना का अपव्यय मानकर इसको और शून्य स्थिति उत्पन्न कर रहा है। आधुनिक कहानियों में हल्की सी अनास्था भी रिश्तों को अस्त–व्यस्त कर देती है लेकिन आज के कहानीकार भावुकता के स्थान पर तर्क को ज्यादा महत्त्व दिया हैं। आज का समय संचार, अविष्कार का समय है और आधुनिक यथार्थ – ज्ञान भी मानव चेतना में नहीं इंटरनेट में बस्ता है। घर में पेड़ की गंध वाकया में रिश्तों की खुशबू और खुशहाली की कमी की व्यथा को दिखाया गया हैं।

संजीव की 'प्रेरणास्रोत' नामक कहानी स्त्री–पुरुष के अंतर्मन के आवरण को हटाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। लेखक का एक वाक्य 'स्मृतियों का कबाड़खाना भी अजीब होता है' जीवन के सूक्ष्म भेद उसकी कड़वाहट, विवशता को अभिव्यक्ति करती हैं। साथ ही असंतुष्टि का भाव प्रकट करती है। स्मृतियों के इन्हीं व्यापकताओं को अग्रलिखित वाक्य स्पष्ट करता है– ''उसे सना भी, देखा भी, पर यह सुनना सुनना नहीं, देखना देखना नहीं और जानना जानना नहीं था। सारा कुछ जैसे चिलमन की ओट में होता रहा, मेरा बिलकल करीब, बिलकल बगल में। हम दोनों ही एक–दूसरे के अहसासों में तैरते रहे, मगर चिलमन न उसने हटाई, न मैंने, और आज आहटों के शेष होते ही चिलमन को करते देखता हूँ तो सारा मंजर वीरान हैं।''[11]

इनकी कहानियों में प्रेम–प्रसंग भावना की गहराई लिए हुए है लेकिन उपमान एकदम जमीनी स्तर का है। ग्रामीण स्त्री–जीवन की श्रमिक भागीदारिता, गरीबी, प्रत्येक स्तर का आभाव दिखाई देता है। इन सबके बावजूद स्त्री पात्र का बेबाकीपन, उसकी निडरता उसे सुंदरता के प्रत्येक मानदंड से ओत–प्रोत कर देता है। लेकिन इस कहानी का पुरुष पात्र नायिका के रूप की यथार्थपरक एवं तिरस्कारपूर्ण नजरिये से देखता है और सिर्फ स्त्री के बाहरी वेश–भूषा का विवरण करता है– ''वह पूरी ढिठाई से मेरे सामने कड़ी थी। यही पहला मौका था, जब मई उसे देख सका भर– नजर। वक्त की मार से मलिन हो चुकी गोराई, लंबी कद–काठी , भावहीन भरे चेहरे में जड़ी बुझते अंगार –सी आँखे। उम्र चालीस के आसपास चेहरे पर एक–आध माता के दाग के दंशा मोठे–सोते देहाती कपड़े, जो रेह में धोते रहने से पिले पड़ रहे थे और अस्त–व्यस्त रूखे बालों के बीच लुप्त होती हुई सिन्दूरी रेखा। मुझे वह एक हद तक उजड्ड, फूहड़ और गवारूँ लगी थी।''[12]

इसी कहानी में नायक आगे कहता हैं– ''अनुताप अंतःस्राव–सा रिसता रहता आठों पहर। मेरी स्थिति पागल प्रेमी–सी हो गयी। मैं अकेले में उसे सम्बोधित करते हुए रोता, श्तुमने मेरे द्वारा गर्दे हुए हर सच को झूठ में बदलने से रोका और मेरी उम्मीदों से भी आगे निकलती गयी। एक बार फिर मेरी गाढ़ी हुई उम्मीद को सच में बदल जाओ। तुम्हें उसराहते की उड़ती चिरपिपासित रेह की सौगंध, अब तुम्हे कभी खोने नहीं दूंगा।''[13] जबकि कोई भी पुरुष अपने स्वार्थ के लिए भले ही स्त्री के आगे झुक जाये लेकिन सिद्धांतः वह नहीं झुकना चाहता। प्रेम भाव के रहते भी वह तार्किक परिच्छेदों को ज्यादा महत्त्व देता हैं। लेकिन उपरोक्त पैराग्राफ में वह स्त्री पात्र द्वारा एक सत्य को स्थापित करने की प्रेरणा लेता है और ख्वाब

रुपी उम्मीद को दोबारा शुरू करने की गुहार लगता है, वो भी यह स्थिति प्रौढ़ावस्था की है। इस कहानी का अंत ही घोर आशावादी और जीवंतता का उदाहरण पेश करती है–'तुमने तो मुझे पुनर्जीवित कर दिया जंगली बहूँ।'

संजीव की ही कहानी 'मानपात्र' में विवाह की बाध्यता को चुनौती दी गयी है। स्त्री–विमर्श की अवधारणा के तहत विवाह प्रथा को सामाजिक व मानसिक बंधन माना जाता है। वही चीज इस कहानी में तार्किक संवाद के माध्यम से व्यक्त हुआ है– ''वह विवाह प्रथा, जो किसी को बीहड़ और बंजर बना दे उसे मई जूती की नोंक पे रखती हूँ।, थूकती हूँ , महानता के उन चोचलों पर कला के नाम पर चलाये जा रहे तमाम ढकोसलों पर। आय हेट! आय हेट!! आय हेट ऑल सच हीनियस हिपोक्रेशीज, दीज मेल एंड फीमेल शोवनीवंस!

'पागल न बनो बेटी! जरा सोचो, तुम्हारी सामाजिक सुरक्षा का क्या होगा?' 'सुरक्षा। ......? यह तुम बोल रही हो माँ ऊंचे–नीचे पांव? च्च! च्च!! इतनी फिक्र! नाहक बली हई जा रही हो माँ! जब जिसके साथ जी आएगा, रह लुंगी, जिसके साथ मन करेगा, सो लूंगी। मुझे अहसास हो गया है कि देह ही ठोस सत्य है, बाकि कला, प्रतिभा, सृजन देह की ऊर्जा का विस्तार।''[14] विवाह स्वयं में एक सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया हैं जिसमे किसी भी समाज के मानक, नियम–कानून, अनुशासन, पारिवारिक नियंत्रण और कुछ हद तक शोषण भी विद्यमान हैं। जिसे इस कहानी में नकार कर स्वतंत्रता की उद्घोषणा की गयी हैं।

शिवमूर्ति की 'केशर कस्तूरी' में यौन संबंधों को बिल्कुल धरातल पर दिखाया गया है– ''इस तरह के छिटपुट यौन–संबंधों को मैं गंभीरता से नहीं लेता। इसे मेरा दमित पुंसत्व कहिये या लिबरल आउटलुक। मैं पाप–पुण्य, जायज–नाजायज, पवित्र–अपवित्र और सतीत्व–असतीत्व के मानदंडों से भी सहमत नहीं हैं। मांगकर रोटी खा ली या तुष्टि पा ली, एक ही बात हैं।''[15] शिवमूर्ति जी मूलतः ग्रामीण रचनाकार हैं। इनकी रचना में प्रत्यक्ष वर्णित घटनाएं और संवेदना का चार्म स्तर दिखाई देता हैं। आज के समय में यौन संबंधों की सहजता को लेखक स्वीकार करता है। यौन अब पहले की तरह हौवा नहीं रह गया हैं।

राजेंद्र यादव की 'टूटना' कहानी से– ''गाड़ी चली, खुला–लीना के नाम पांच हजार का एकाउंट – पेयी चेक था। पहली चीज किशोर के दिमाग में टकराई, सिर्फ पांच हजार! फिर लगा, यह पांच हजार रुपयों का नहीं, पांच हजार अविश्वासों का चेक है, जिस आदमी के साथ तुम जा रही हो, उसके साथ कभी भूखी मरने लगो तो इन रुपयों से काम चला लेना।''[16] स्त्री–पुरुष संबंधों के बनते – बिगड़ते जटिल संरचनाओं को यहाँ अत्यंत सूक्ष्म तरीके से व्यक्त किया गया हैं। संबंधों की इस जटिलता को भावना की जगह अर्थ से सरल बनाने की प्रक्रिया जारी हैं।

किशोर की अंतर्दशा लीना के संदर्भ में–''हेयर–स्टाइल, मैचिंग–सेन्स हर चीज का चुनाव और स्तर–सभी में कुछ ऐसी नफासत और आभिजात्य रहता कि लगता वह किशोर से बहुत दूर चली गयी है–अप्राप्य और दुर्लभ हो उठी है। उसे अपना–आप बहुत ही छोटा अकिंचन महसूस होने लगता– वह खुद ही मानो अनधिकारी, गैर और अजनबी बनकर उसे ठगा–सा देखता रह जाता। उस क्षण उसे लीना के सौंदर्य और सौंदर्य–बोध पर गर्व–मिश्रित संतोष जरूर होता लेकिन पीछे कहीं रीढ़ के भीतर आशंकित भय सुरसुराया करता–सचमच वह लीना के लायक नहीं हैं।''[17] पुरुष–लेखकों द्वारा स्त्री मन की स्थितियां और कहानी के नायक पात्रों को बड़े ही कुशलता से व्यक्त हैं। इस आधुनिक युग की कहानियों में जहाँ नायिका के अंतर्तम की बातें ज्यादा अभिव्यक्त हुई हैं वहीं नायक के मन के साथ–साथ ऊपरी आवरण और आधुनिकता में फिट बैठने की प्रतिस्पर्धा हैं।

लीना का कथन–"देखो किशोर आज से–बल्कि इसी क्षण से हम साथ नहीं रहेंगे। न तुम अंधे हो, न बहरे। तुम सिर्फ इन्फीरियारिटी– काम्प्लेक्स के मारे हुए हो। इसलिए तुम्हें मेरी वह बात वह नहीं लगती, जो होती हैं। इसके पीछे और बातें दिखती हैं। मैं समझती थी कि मैनर्स, बातचीत, उठाने–बैठने के तौर–तरीके और व्यव्हार ऐसी चीजें है, जिन्हें बहुत जल्दी बदला जा सकता है। सीखा और भुलाया

जा सकता है। लेकिन इस काम्प्लेक्स का कोई इलाज ही नहीं। .. तुम्हें मेरे हंसने बोलने–चलने – सबमें शेखी और दिखावा लगता हैं।''[18] एक पत्नी की अन्तः दशा अपने बेबाक शब्दों में दिखाई देती हैं। इस शदी में थोड़ा सा बदलाव ये स्पष्ट हैं कि कहानियों की स्त्री पात्र पूर्ण स्वतंत्र है और अपने फैसले खुद लेती हैं। इस संदर्भ में राजेंद्र जी अपने समय के आगे की चीज हैं। इनकी कहानियों में न भावात्मकता और न ही बौद्धिकता है बल्कि एक प्रकार की विवेकसाधना प्रकट होती है।

कहानीकार कमलेश्वर के अनुसार–मानव सभ्यताओं के नीचे यदि कहानी के खम्भे और आधार स्तम्भ न होते तो वे भरभराकर गिर चुकी होती। कहानियों ने ही उन्हें लुप्त होने से बचाया हैं।' चूंकि कहानी का विकास मानव सभ्यता के विकास से ही माना जाता हैं इसलिए कहानी अपनी उपादेयता हर युग में बनाये रखती हैं। इसका महत्त्व प्रत्येक समय में यथार्थता को बनाये रखने में है।

lUnHkZ %

1. चयन सम्पादन 'हिमांशु पंड्या, स्वयं प्रकाश की चुनिंदा कहानियां, साहित्य भंडार प्रकाशन इलाहबाद, प्रथम संस्करण 2014.पृष्ठ संख्या 97
2. वहीं, पृष्ठ संख्या 112
3. वहीं, पृष्ठ संख्या 113
4. रवींद्र कालिया, नौ साल छोटी पत्नी, साहित्य भंडार प्रकाशन इलाहबाद, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 53
5. वही, पृष्ठ संख्या 62
6. वही, पृष्ठ संख्या 43–44
7. शेखर जोशी, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 1994, पृष्ठ संख्या
8. वही, पृष्ठ संख्या 107
9. राजेश जोशी, प्रतिनिधि कहानियाँ , साहित्य भंडार प्रकाशन इलाहबाद, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या 67
10. वही , पृ0 68
11. संजीव, 10 प्रतिनिधि कहानियां, किताबघर प्रकाशन दिल्ली, छात्र संस्करण 2012, पृ0 71
12. वही, पृ0 71
13. वही, पृ0 85
14. वही, पृ0 151
15. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृ0 77
16. चयन सम्पादन 'शैलेश मटियानी, राजेंद्र की प्रतिनिधि कहानियां, साहित्य भंडार प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2003, पृ0 137
17. वही, पृ0 143
18. वहीं, पृ0 148

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 133-136

nfyr lkfgR; e: L=h foe'k

MkW xk;=h flag*

भारतीय समाज में दलितों के प्रति भेदभाव की भावना प्राचीन काल से रही है। लेकिन स्त्रियों के प्रति भी समाज में भेदभाव बनी रही है। नारी में भी दलित नरियों की स्थिति बहुत खराब रही है। उनके साथ हरेक स्तर पर भेदभाव होता रहा है। समाज में उनका स्थान एकदम निम्न दर्जे का रहा है। डॉ. कुसुम मेघवाल ने 'दलित नारी : कल और आजकल एक विवेचन' में लिखा है कि– ''बाबा साहेब जिस समाज में थे, उस दलित समाज की नारियों की स्थिति तो और भी दयनीय थी। भारतीय समाज में उसका स्थान तीसरे दर्जे का था दलित पुरुष भी जबरिया थोपी गई हिंदू नारी शोषण मानसिकता के कारण दलित महिलाओं का शोषण करने को मजबूत हुए। दलित नारी के मात्र कर्तव्य ही कर्तव्य निर्धारित थे, अधिकार उसके हिस्से में नहीं आए थे, जिससे वह अपने व्यक्तित्व का स्वतंत्र रूप से विकास कर सके। 1920 में जब डॉ. अम्बेडकर ने अपने आंदोलनों का शुभारंभ किया, तो महिलाएँ हिम्मत करके आगे आई और साहस बटोर कर अपनी पीड़ा को मंच पर व्यक्त करने लगीं। वे स्वागत गीत भी गाने लगीं और बाबा साहेब द्वारा दिए गए वक्तव्यों को आगे आम जनता तक फैलाने लगीं। डॉ. अम्बेडकर के साथ उस समय जिन महिलाओं ने सक्रिय रूप से काम किया, उनमें बेणुबाई भटकर और रंगूबाई शुभरकर के नाम उल्लेखनीय हैं।''[1]

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति दलितों के समान ही रही है। समानता का भाव स्त्री–पुरूष संबंध में कहीं भी नजर नहीं आती है। यद्यपि नारी को पजूने का ढ़ोंग यहाँ होता रहा है परन्तु उनके मानवाधिकार को भारतीय समाज देने से घबराता रहा है। नारियों में दलित स्त्रियों की स्थिति और भी विकट रही है। डॉ. रामा पांचाल ने इस संदर्भ में लिखा है कि– ''देश में दलित महिलाओं की दशा एवं दिशा दोनों ही शोचनीय है। भारतीय समाज में गुंडे प्रत्येक राज्य में प्रतिवर्ष पांच दलित महिलाओं की हत्या, यौन शोषण करने के बाद, सिगरेट से जला–जलाकर और रेजन ब्लेड से उनके बदन को काट देते हैं। जिसकी रिपोर्ट कहीं भी दर्ज नहीं होती है। देश में गैर सरकारी संगठन पुलिस में रिपोर्ट कराने पर अवश्य बल देते हैं, किंतु स्वर्ण जाति के अपराधी के विरुद्ध कार्यवाही नही करने के लिए वह पुलिस पर दबाव भी डालते हैं।''[2]

दलित स्त्रियाँ दोहरी त्रासदी झेलने को मजबूरी रहती हैं। एक तरफ दलित जाति से होने के कारण जातीय भेदभाव एवं उत्पीड़न का शिकार होती हैं। वहीं दूसरी तरफ लिंग भेद संबंधी भेदभाव व अत्याचार सहने को अभिशप्त रहती हैं। डॉ. रजन रानी 'मीनु' 'हिन्दी दलित कहानियों में नारी' में लिखी हैं कि– ''दलित स्त्री मात्र होने की त्रासदी नहीं झेलतीं, बल्कि उसका दलित जाति से होने के कारण वह लिंग भेद और जाति भेद सहते हुए, दोहरे–तिहरे आक्रमण झेलती है। एक पुरुष प्रधान समाज होने के कारण वह अपने ही समाज के पुरूषों की दृष्टि में भी दूसरे दर्जे की प्राणी है, जो उनके अनुसार कम बुद्धि की है। इस कारण उसे अपनों में ही उपेक्षा तथा प्रताड़ना मिलती है। दूसरी ओर गैर दलित समाज उसे दो तरह से कमजोर पाता है। एक तो वह स्त्री है, दूसरे फिर वह दलित जाति से होती है।''[3]

दलित, पिछड़ी महिलाओं की दुर्दशा एवं समाज में निम्न दर्जा के पीछे हिन्दू–धर्म को जिम्मेवार मानते हुए डॉ. विमल कीर्ति 'दलित नारी : समस्याएँ एवं उत्थान का रास्ता' पुस्तक में स्पष्ट करते हैं कि–''दलित और पिछड़ी जातियों की गुलामी का कारण हिन्दू धर्म है और इस तथाकथित हिंदू धर्म को

---

*एम.ए.(हिन्दी),पीएच.डी.,बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

पैदा करने वाला पुरोहित वर्ग है। दलित नारी दलित और पिछड़ी जातियों का ही अंग है। जब दलित और पिछड़ी जातियाँ ही हिंदू धर्म में, समाज में गुलाम बन गई, तो दलित महिलाएँ भी स्वाभाविक तौर पर गुलाम बन गई। यदि दलित समाज नहीं होता, दलित जातियां नहीं होती, पिछड़ी जातियां नहीं होती, तो दलित महिलाएँ भी दलित नहीं होतीं। मतलब दलित महिलाओं के पिछड़ेपन का संबंध दलित समाज के पिछड़ेपन के साथ जुड़ा है, हिंदू समाज की जाति–व्यवस्था और अछूतापन के साथ जुड़ा हुआ है। जिस प्रकार हिन्दू धर्म ने दलित समाज को गुलाम बनाया, उसी प्रकार हिंदू धर्म ने दलित महिलाओं को भी गुलाम बनाया है। इसलिए दलित महिलाओं की सभी समस्याएँ हिंदू धर्म द्वारा निर्मित हैं, हिन्दू समाज द्वारा निमित हैं।''[4]

प्राचीन काल के प्रारंभिक दौर में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों की तरह थी। लेकिन कालांतर में धर्म के आडंबरयुक्त तत्वों के समावेशन ने स्त्रियों की स्थिति को निम्न दर्जे पर ला खड़ा किया। हिन्दू, इस्लाम, बौद्ध सभी धर्मों ने स्त्रियों की स्थिति को सुधारने का कोई महत्वपूर्ण प्रयास नहीं किया। दलित स्त्रियों की स्थिति बद् से बद्तर होती चली गई जातीय एवं लैंगिक भेदभाव ने दलित स्त्रियों को निम्न दर्जे का नागरिक बना दिया। दयाराम सिंह ने अपनी पुस्तक 'दलित नारी : तब अब और आगे' में लिखते हैं कि–''प्राचीन भारतीय समाज में दलित महिलाओं की प्रतिष्ठा अपने चरम पर थी। किंतु वैदिक युग में जब आर्यों का साम्राज्य भारत भर में छा गया, तब उनकी स्थिति में व्यापक गिरावट आई। बौद्धकाल में उसने फिर से अपने अतीत की प्रतिष्ठा को पाया, किन्तु यह हर्ष लम्बे समय तक कायम नही रह पाया। ब्राह्मणवादी कुटिल प्रपंचों के कारण बौद्धधर्म पतन का शिकार हुआ और दलित समाज फिर से सामाजिक कुरीतियों और अमानवीय व्यवहारों की जंजीर में जकड़ लिया गया। दलित नारी की स्थिति फिर से बद्तर होने लगी। इस्लामिक साम्राज्य के समय दलित महिला की स्थिति तो हेय हो गई। वह तिहारी मार झेलती हुई अपने परिवार के मूक तपस्विनी की भाँति पालन–पोषण करती रही। वह मानसिक, शारीरिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शोषण का शिकार होती रही।''[5]

पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंतर्गत दलित एवं स्त्री का संघर्ष और अधिक बढ़ जाता है। दोनों शोषण के शिकार होते हैं। इसमें से दलित स्त्री के दोहरी एवं तिहरी शोषण को शिकार होना होता है। डॉ. रंजन तिवारी ने 'इक्कीसवीं सदी का दलित आंदोलन साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार' में लिखते हैं कि– ''वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में जहाँ दलित और स्त्री दोनों प्रताड़ित हैं, दलित स्त्री का संघर्ष दोहरा तिहरा हो जाता है, उसका संघर्ष एक ओर तो मनुवादी व्यवस्था से है तो दूसरी ओर पितृसत्तात्मक व्यवस्था से इसी तथ्य को मराठी के यशस्वी साहित्यकार, विचारक 'बाबूराव बागुल' इन शब्दों में व्यक्त करते हैं। आज यहाँ अस्पृश्यता को नकारने वाली भीमस्मृति और अस्पृश्यता का पालन करने वाली मनुस्मृति एक ही सभागृह और एक ही घर में साथ–साथ राज करती है। दलित पुरुषों की मानसिकता एक ओर दलित होने के नाते शोषित प्रताड़ित की है तो पुरूष होने के नाते स्त्री से उसकी अपेक्षाएँ पारम्परिक आदर्श हिन्दू नारी की रही है। अतः दलित स्त्री एक ओर पुरूष वर्चस्व की शिकार बनी तो दूसरी ओर स्वर्ण मानसिकता की। उस पर लिंग भेद और जाति भेद दोनों ही वजह से अत्याचार हुए। इसके कारण दलित स्त्री ने जो कुछ सहा उसकी रचनात्मक अभिव्यक्तियाँ सामने आनी चाहिये थीं किन्तु यदि इस दिशा में यदि निराश होना पड़ता है तो कारणों की पड़ताल भी आवश्यक है।''[6]

दलित एवं महिला भारतीय पितृसत्तात्मक व्यवस्था में शोषित है। लेकिन दलित साहित्यकारों ने दलितों पर हुए अत्याचार एवं शोषण को ही अपने साहित्य का मुख्य आधार बनाया है। महिलाओं से होनेवाली भेदभावों पर बचकर निकलने की प्रवृति दलित साहित्यकारों में दिखती है। डॉ. रंजन तिवारी लिखते हैं कि– ''दलित साहित्य आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका पर अभी तक दलित बुद्धिजीवी वर्ग की चुप्पी बल्कि कतराकर निकल जाने की प्रवृति के कुछ पीछे कुछ समाजैतिहासिक तथा मनोवैज्ञानिक कारण हैं जिन्हें दर्शाने का साहस 'मोहनदास नैमिशराय' ने किया है उनके अनुसार इसका एक कारण तो दलित आन्दोलन में महिलाओं की न्यूनतम भागीदारी के कारण यह मुद्दा दलन, दमन और शोषण के लिए

प्रतिपक्षी को जिम्मेदार ठहराने की प्रवृति इतनी हावी है कि अन्य पहलुओं की तरफ ध्यान ही नहीं जाता और तीसरा असुविधाजनक आन्तरिक सवालों से कतराने की नवजागरणकालीन प्रविधि का इस्तेमाल इस समय भी हो रहा है क्योंकि स्त्रियों की स्थिति पर बात करना, खुद दलित पुरुषों के लिये सहूलियत भरा मामला नही है, इसलिये इसका विमर्श के केन्द्र में न आ पाना स्वाभाविक है।''[7]

दलित महिलाओ की आजादी को लेकर यह भ्रम फैलाया जाता है कि उन सबको बाहर आने–जाने, कार्य करने, शादी करने आदि की स्वतंत्रता है। लेकिन इसके आर में दलित महिलाओं की मजबूरी को छुपाया जाता है। वस्तुतः उनकी स्वतंत्रता मजबूरी के कारण है। अनिता भारती, 'दलित स्त्री : विमर्श का अछूता मुद्दा' नामक लेख में लिखती हैं कि– ''दलित स्त्रियों की आजादी को लेकर, ब्राह्मणवादी भारतीय समाज में तरह–तरह की भ्रान्तियाँ है। मसलन वे गैर दलित स्त्रियों की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र होती है। वे बेधड़क कमाने बाहर जा सकती हैं। वे अनेक विवाह कर सकती हैं। यह भ्रान्ति आज की नहीं सदियों पुरानी है। यह बात अंशतः ठीक है कि दलित महिलाएँ बाहर कमाने जाती हैं, लेकिन यह बात भी उतनी ही सच है कि वह कमाने अपने शौक व स्वतंत्रता के कारण नहीं बल्कि मजबूरी से जाती हैं। देखना यह है कि क्या कमाऊ दलित स्त्री द्वारा कमाये गये धन पर उसका अपना वास्तविक अधिकार है भी या नहीं? कड़वी सच्चाई यह है कि उसकी मेहनत की कमाई उसका पति छीन लेता है।''[8]

दलित महिलाओं में संघर्ष की कहानी को नूतन विश्लेषण के माध्यम से डॉ. हरगोबिन्द पुरी, दलित साहित्यकार ओम प्रकाश वाल्मीकि : एक समग्र मूल्यांकन में लिखते हैं कि–''सामाजिक शोषण के विस्तृत आयामों के वर्तुल चक्रव्यूह में फंसा दलित अपनी परिस्थिति पर आंसू बहा रहा है। दलित महिलाओं का आंदोलन एक नये जमीन की तलाश में भटकता नजर आ रहा है यह आंदोलन समग्र महिला समुदाय के मुक्ति आंदोलन का हिस्सा होने के साथ–साथ दलित समाज में पितृसत्ता का प्रश्न उठाता है। दलित महिलाओं की त्रासदी यह है कि उन्हें एक गाल पर ब्राह्मणवादी का तो दूसरे गाल पर पितृसत्ता का थप्पड़–बजाना पड़ता है। इस प्रकार एक ही समय में दलित महिला दो से चार यातनाओं से दो–चार होती हुई, आर्थिक संशोधन जुटाने में देह तपा डालती हैं।''[9]

दलित शोषण के साथ–साथ दलित महिला शोषण एक विमर्श की मांग करता है। यह शोषण मौलिक, शारीरिक एवं अन्य प्रकार के भी होते हैं। दलित महिलाएँ विवशता में सबकुछ बर्दाश्त करती हैं। डॉ. हरगोबिन्द पुरी इसको अपनी पुस्तक 'दलित साहित्यकार डॉ. ओमप्रकाश वाल्मीकि : एक समग्र मूल्यांकन' में लिखा है कि– ''दलित शोषण के जितने भी रास्ते ईजाद किये गये है वे सभी रास्ते आधी दूरी तक चलकर थक जाते हैं। उन रास्तों को समेटते हुए उनके बीच से ही एक और रास्ता निकलता है जो अत्यधिक वीभत्स, घृणित, रोंगटे खड़े कर देने वाला और घुटन–फिसलन से युक्त है। यही रास्ता दलित महिला शोषण के यौनिक एवं शारीरिक दंश पर जाकर समाप्त होता है। एक ऐसी व्यथा–कथा जो किसी से नहीं कही जा सकती, सिर्फ अन्दर ही अन्दर बरबस याद आती हैं, कुढ़ती हैं, अश्रु विगलित करती है और आंखों के रास्ते आत्मा में जाकर सुख जाती है। जिसका प्रकटीकरण उतना ही भयावह है जितना गोपनीयकरण। इस दोहरे संघर्ष से जूझती दलित महिला अपनी ही अस्मत को अपनी ही आंखों से चुपचाप लुटती दिखती है, जहाँ चीख–चिल्लाहट का अन्तहीन निःशब्दता है, कंटकाकीर्ण सामाजिकता का अश्लील चेहरा भी। हर समाज दलित महिला को भोगने की मानसिक कसमकश से ग्रस्त है, कारण कि यह पथ काफी सरल और प्रतिकारहीन आभासित होता है।''[10]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय पितृसत्तात्मक व्यवस्था में दलितों की दशा दयनीय तो है ही साथ–ही–साथ दलित महिलाओं की स्थिति अत्यंत ही चिन्ताजनक है। लेकिन दलित साहित्य में दलित महिलाओं के शोषण को विमर्श के केन्द्र में लाने का प्रयास अभी प्रारंभिक दौर में है। दलित स्त्रियों को दलित साहित्य के विमर्श के केन्द्र में लाने का कुछ गंभीर प्रयास अवश्य हुए हैं लेकिन वे पर्याप्त नहीं है। भविष्य में और भी प्रयास करने की आवश्यकता है।

lUnHk' %

1. डॉ. कुसुम मेघवाल, दलित नारी : कल आज और कल एक विवेचन, 'दलित नारी एक विमर्श', संपादक– ज्ञानेन्द्र, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 26
2. डॉ. रमा पांचाल, भारतीय समाज में नारी और दलित नारी की स्थिति, 'दलित नारी एक विमर्श', सं. ज्ञानेन्द्र, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 48
3. डॉ. रजतरानी 'मीनु', हिंदी दलित कहानियों में नारी, 'दलित नारी एक विमर्श' सं. ज्ञानेन्द्र, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 95
4. डॉ. विमलकीर्ति, दलित नारी : समस्याएँ और उत्थान का रास्ता, दलित नारी एक विमर्श', सं. ज्ञानेन्द्र, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 107
5. दयाराम सिंह, दलित नारी : तब अब और आगे? 'दलित नारी एक विमर्श,' सं. ज्ञानेन्द्र, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 233
6. डॉ रंजन तिवारी, 'इक्कीसवीं सदी का दलित आंदोलन साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, सं. डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2010, पृ. 140
7. डॉ रंजन तिवारी, 'इक्कीसवीं सदी का दलित आंदोलन साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, सं. डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2010, पृ. 141
8. अनिता भारती, दलित स्त्री : विमर्श का अछूता मुद्दा (लेख) वार्षिक पत्रिका, 'बया' अंकः 1, वर्ष : 1, दिसम्बर, 2006, पृ. 31
9. डॉ. हरगोबिन्द पुरी, दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि : समग्र मूल्यांकन, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 98
10. डॉ. हरगोबिन्द पुरी, दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि : समग्र मूल्यांकन, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 145

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 137-139

'k[kj ,d thouh % O;fDr dh ,d u;h igpku

Mk0 j.k xIrk*

आधुनिक हिन्दी साहित्य में अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता सर्वविदित है। चाहे कवि या चिंतक के रूप में देखें या उपन्यासकार अथवा कथाकार के रूप में—उनका बहुमुखी रचनाकर्म, उनकी परवर्ती पीढ़ी के लिए 'सत्यान्वेषण' का मार्ग प्रशस्त करती है। इनका रचनाकर्म किसी एक विधा तक सीमित नहीं रहा, बल्कि एक साथ कई विधाओं में इनकी अभिव्यक्ति के स्वर सामने आये है। प्रयोगवाद को कोई वाद न मानने वाले, अज्ञेय का कवि—व्यक्तित्व जिस आधुनिकतावादी भाव—बोध की उपज है, उसमें जीवन की अनुभूति और जीवन का रस है। उनके काव्य में जो अर्जित अनुभूति है, वही घनीभूत संवेदना उनके उपन्यासों में भी दिखती है। उनके तीनों उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' (भाग—1,1941), 'शेखर एक जीवनी' (भाग—2, 1944), 'नदी के द्वीप' (1952) और 'अपने—अपने अजनबीं' (1961)—मानवीय व्यक्तित्व और मानव—जीवन की परिपूर्णता की ओर क्रमिक यात्रा है। इस औपन्यासिक यात्रा में सबसे पहला पड़ाव है—'शेखर एक जीवनी'।

'शेखर एक जीवनी' हिन्दी उपन्यास में शिल्प और कथ्य की दृष्टि से एक नवीन रचनात्मक दृष्टि का परिचायक है। हिन्दी में किसी भी उपन्यास के नायक के चरित्र, विशेषकर उसके बाल्यावस्था से लेकर किशोरावस्था तक का, इतना सूक्ष्म मनोविश्लेषण नहीं हुआ है, जितना शेखर का हुआ है। मनोविज्ञान—सम्मत कार्य—कारण परंपरा के रूप में अथवा फ्रायड, एडलर आदि मनोवैज्ञानिकों के विश्लेषण के रूप में, शेखर का सृजन, आदि से अंत तक अद्‌वितीय प्रयोग है। इसका कारण स्पष्ट है कि रचनात्मक साहित्य और सृजनात्मक साहित्य में अंतर है। रचना अथवा निर्माण एक योजनाबद्ध, बुद्धि सम्मत प्रक्रिया है, जिसके पीछे बहिर्मुखी वृत्ति की प्रेरणा रहती है। लेकिन सृजन आत्म—साक्षात्कार के क्षणों की अनिवार्य प्रक्रिया है, जिसमें वृत्ति अंतर्मुखी हो जाती है। सृजन प्रक्रिया अज्ञेय 'शेखर एक जीवनी' की भूमिका में स्पष्ट करते है, जब कहते है कि ''शेखर घनीभूत वेदना की केवल एक रात में देखे हुए टपेपवद को शब्दबद्ध करने का प्रयत्न है।'' तब यह पता चलता है कि 'घोर यातना व्यक्ति को दृष्टा बना देती है।' यही दृष्टि (टपेपवद) या दर्शन लेखक की स्वानुभूति की सच्चाई को प्रभावशाली बनाता है। उद्देश्य की दृष्टि से भले ही 'व्यक्ति स्वातंत्रय की खोज' ही 'शेखर' का मुख्य उद्देश्य कहा जाता रहा है, पर समाज यहाँ गौण होते हुए भी नगण्य नहीं है, सीधे अर्थ में कहें तो 'शेखर एक जीवनी' समाज से प्रभावित, जीवन के भीतर से जीवन का साक्षात्कार है।

विषय वस्तु की दृष्टि से देखें तो आंतरिक चेतना से युक्त 'शेखर एक जीवनी' का कथानक किशोर मानसिकता, जीवन में विद्रोह और रागात्मक संवेदना का सम्मिश्रण है। चुकि 'शेखर एक जीवनी' पारंपरिक पद्धति पर लिखा गया कोई घटना प्रधान उपन्यास नहीं है, इसलिए इसके कथानक में आदि, मध्य और अंत पर विचार नहीं किया जा सकता। यह तो 'निस्संदेह एक व्यक्ति का अभिन्नतम निजी दस्तावेज (a record of personal suffering) है। इसमें महत्व कथानक का न होकर उसे व्यक्ति का है, जिसके 'युग संघर्ष का प्रतिबिंब' पूरे कथानक में दिखाता है। संपूर्ण उपन्यास (दो खंड) को आठ भाग में विभक्त किया गया है। ये भाग इस प्रकार है—प्रथम खंड में 'उषा और ईश्वर', 'बीज और अंकुर', 'प्रकृति और पुरूष' तथा 'पुरूष और परिस्थिति। इसी प्रकार द्‌वितीय खंड में 'पुरूष और परिस्थिति', 'बंधन और जिज्ञासा',

*असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजा नरेन्द्र लाल खान महिला महाविद्‌यालय (स्वायत्त), मिदनापुर, पं. बंगाल

'राशि और शेखर' तथा 'धागे, रस्यिाँ, गूंझर'। प्रथम खंड के कथानक को ही द्वितीय खंड में विकसित किया गया है। कथानक का आरंभ एक वैचारिक पृष्ठभूमि के साथ होता है, एक आतंक का साक्षात्कार कराता है–फाँसी। वस्तुतः शेखर मृत्यु को जीवन की सिद्धि मानकर भय के क्षणों में भी एक द्वंद्व के बीच अपने जीवन का प्रत्यवलोकन कर रहा है। वह अपने अतीत को दोबारा जी रहा है–''मैं अपने जीवन का प्रत्यवलोकन कर रहा हूँ, उसमें अतीत को दोबारा जी रहा हूँ। मैं तो सदा आगे ही देखता रहा, अपनी जीवन–यात्रा के अंतिम पड़ाव पर पहुँचकर पीछे देख रहा हूँ कि कहाँ से चलकर किधर–किधर भूल–भटक कर, कैसे–कैसे विचित्र अनुभव प्राप्त करके यहाँ तक आया हूँ। और तब दिखता है कि मेरी भटकन में भी एक प्रेरणा थी, जिसमें अंतिम विजय का अंकुर था।''

इस तरह 'लैश बैंक' में चलने वाली उपन्यास की कथा द्वारा शेखर की उन तमाम स्मृतियों को विश्लेषित किया गया है, जो उसके व्यक्तित्व का निर्माण करने में सहायक रही हैं। पहला खंड ''उषा और ईश्वर'' में शेखर और उसके शिशु–मानस की विविध जिज्ञासाएँ है, जो सहजात प्रेरणाओं से उदित होते है। उनकी अनेक जिज्ञासाओं को ईश्वर के नाम पर दबा दिया जाता है। किसी के जन्म–मरण और इसी प्रकार की अन्य बातों का स्पष्टीकरण न कर शेखर की जिज्ञासा को ईश्वर के नाम पर दबाने की प्रतिक्रियास्वरूप ही वह और भी शंकाशील हो उठता है। ये जिज्ञासाएँ और पूरे परिवार में रहते हुए विभिन्न प्रकार के अनुभव, उनके बाल–मन की उर्वर मनोभूमि में अंकुरित होती हैं। इस खंड के अंत में उसका स्वप्न उसकी कुंठित और दबी काम–भावना के अंकुरित होने की सूचना दे देता है। तीसरा खंड है–'प्रकृति और पुरुष' जहाँ शेखर नारी–पुरूष के पारस्परिक संबंधों के रहस्य को जान लेता है। उसे शारदा और शांति से प्यार का अनुभव होता है। खंड के अंत में उसे लगता है–''दुनिया शेखर के आगे खुल गई। वह सब कुछ समझ गया, जो अस्पष्ट संकेत उसने देखे थे।''....''उस दिन उसने सिर उठाकर देखा कि वह समुद्र पार कर आया है कि वह संपूर्ण है, मुक्त है और पुरूष है।''

चौथा खंड है–'पुरुष और परिस्थिति'। इसमें शेखर घर से निकल कर समाज के खुले संपर्क में आता है। होस्टल में रहते हुए उसे विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ता है..... लेकिन उसकी चुटियाँ कहाँ हैं? जनेव कहाँ है? वह अपनी पूजा पाठ कब और कहाँ करता है?'' तब वह ब्राह्मणों के छुआछुत की रूढिवादिता से विद्रोह करता है। एक अछूत स्त्री को मरते हुए देखकर दुखी होता है। उसे लगता है–''उसके हत्यारे थे–ब्राह्मण, जिन्होंने उसके पास आने का छूत से बचने के लिए, स्वयं उस पार जाकर उसे पत्थरों से मारा होगा.... ब्राह्मण...वही ब्राह्मण शेखर है।'' उसी क्षण वह दूसरे होस्टल में चला जाता है, जो अछूतों के लिए था। खंड के अंत में वह मद्रास छोड़कर चल पड़ता है–रूढ़िवादियों के चरम विरोध ाों के भीतर से अपना मार्ग बनाता हुआ। अंत में लिखा गया है–''अब परिस्थिति से उसका संग्राम उस उच्छिष्ट की मानलीला, अब किसी दूसरे युद्ध–मुख पर होगी''। इसी के अनुसार दूसरे भाग के पहले खंड का नाम पुनः 'पुरूष और परिस्थिति' है। अब वह दक्षिण भारत से उत्तर भारत में आकर संघर्ष करता है। 'बंधन और जिज्ञासा'' में शेखर के जेल–जीवन का चित्रण है। बाहर शशि का अनिच्छित विवाह हो गया है और वह कुछ न कर सका। अततः उसे शशि की दशा जानने की जिज्ञासा है–जो मानव–मन की चिरंतन–प्रक्रिया है। ततीय खंड 'शशि और शेखर' में शेखर पूर्णतया दिग्भ्रांत हो जाता है। जब वह आत्महत्या की मानसिकता में होता है, तब शशि उसके बिखराव को दूर करती है, उसे दिशा देती है। चतुर्थ खंड है–''धागे, रस्सियाँ, गुंझर,'' जो शिक्षा, सभ्यता और संस्कार की बड़ी गाँठों (Complexes) का प्रतीक है। उपन्यास के अंत में अपने को मिटाकर शशि, खेशर का निर्माण करना चाहती है। शशि के समर्पण में, वेदना में, उत्सर्ग में, शेखर को अपने अहं और राग की संगति मिल जाती है। शशि की वेदना उसे वह दृष्टि देती है, जिससे आत्मसाक्षात्कार क क्षणों में द्रष्टा बन अपने टपेपवद को स्वतंत्र और ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करता है। अतः यही है 'शेखर एक जीवनी' का कथानक, जिसका केन्द्रीय भाव है–'व्यक्ति स्वातंत्रय की खोज'। शेखर स्वतंत्रकामी है, बचपन से ही उसमें व्यक्तित्व की भावना अर्थात अहं भाव आम बच्चों की अपेक्षा अधिक है, लेकिन वह घोर व्यक्तिवादी नहीं है। वह तोते को उन्मुक्त कर अत्यंत प्रसन्न होता है'–''शेखर ने देखा, उसके संसार के अलावा एक और संसार है, जिसमें पक्षी रहते हैं..... जिसमें सोचने

की या खेलने की अबाध स्वतंत्रता है, जिसका एकमात्र नियम है–''वही होओ, जो कि तुम हो।'' उसके चरित्र के विषय में अज्ञेय स्वयं ही 'भूमिका' में कहते हैं–''शेखर कोई बड़ा आदमी नहीं है, वह अच्छा भी आदमी नहीं है। लेकिन वह मानवता के संचित अनुभव के प्रकाश में ईमानदारी से अपने को पहचानने की कोशिश कर रहा है।....कौन जाने आज के युग में जब हम, आप सभी संश्लिष्ट चरित्र है, तब आप पायेंगे कि आपके भीतर भी कहीं एक शेखर है, जो बड़ा नहीं, अच्छा भी नहीं, लेकिन जागरूक और स्वतंत्र और ईमानदार है, घोर ईमानदार।''

वस्तुतः नये मूल्यों और जीवन–दृष्टि का आधार, साहित्यकार का अनुभव और यथार्थ है। जब वे किसी अपराधी या यौन–विकृत व्यक्ति को नैतिक तौर पर पतित मानव को, साहित्य में चित्रित करते हैं तो वे पाठकों से दंड या करूणा की अपेक्षा नहीं करते, बल्कि चिंतन और बोध की मांग करते हैं। किसी हद तक नीति और समाज की चर्चा करते हुए नये मूल्यों के अन्वेषण का प्रयत्न करते हैं। अतः इसी सत्यान्वेषण की प्रक्रिया में शेखर की रचना होती है। शेखर ही नहीं, बल्कि अज्ञेय के तीनों उपन्यास में आधुनिकतावादी चेतना से युक्त व्यक्ति मन की अंतर्गुहाओं को तलाशते हैं क्योंकि आधुनिकता की सबसे बड़ी देन 'व्यक्ति–बोध' है। परंतु उद्देश्य की दृष्टि से देखें तो व्यक्ति–स्वातंत्रय के अलावा एक ओर क्रांतिकारियों की देशभक्तिपूर्ण भावनाएं दिखती है, तो दूसरी ओर संपादकों–प्रकाशकों के शोषण का चित्रण हुआ है। अछूत भावना का प्रतिरोध और स्त्री–जीवन की विषम सामाजिक स्थिति, जैसी कई स्थितियाँ भी उजागर करती हुई 'शेखर की कथा एक खास और विशिष्ट अर्थ में सामाजिक भी है, क्योंकि व्यक्ति ही समाज की इकाई है। व्यक्ति के माध्यम से समाज की समग्रता को देखना सर्वथा प्रासंगिक भी है। बाह्य यथार्थ से मनुष्य का संघर्ष सर्वथा चलता रहता है, पर उससे भी कुछ सूक्ष्म, कुछ गहरा यथार्थ होता है, जिससे मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। अज्ञेय के उपन्यासों में इसी 'यथार्थ' को अधिक महत्व दिया गया है। अतः शेखर के जीवन की कहानी निश्चित ही उसके स्वातंत्रय की खोज से सम्बद्ध है, परंतु इस खोज–यात्रा में समाज के सारे पड़ाव उसे संपूर्णता प्रदान करते हैं, तभी तो शेखर स्वयं कहता है–''और जीवन–यात्रा के पथ में जो पहाड़, तराइयाँ, नदी–नाले, झाड़–झंखाड़, आँधी–पानी आये उन सब में मेरे और केवल मेरे संबंध में एक ऐक्य था, जिसका ध्येय था किसी विशेष काल में, विशेष परिस्थिति में, विशेष स्थान पर, विशेष साधनों और उपायों से मेरे जीवन का विशेष रूप से समापन, जिससे उसे अपनी सिद्धि, अपन सफलता और अपनी संपूर्णता प्राप्त हो जाये....।''

यद्यपि उपन्यासकर के रूप में अज्ञेय अस्तित्ववादी और मनोविश्लेषणवादी ही रहे हैं, फिर भी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जितना सफल उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' है, उतना अन्य उपन्यास नहीं। प्रेमचंद की भविष्यवाणी कि 'भावी उपन्यास चरित्र–प्रधान होगा'' ''शेखर एक जीवनी'' में चरितार्थ होती है। पहली बार एक व्यक्ति पूरे उपन्यास का विषय बनता है। यद्यपि शेखर अपने समाज और परिवेश की देन है, लेकिन पूरे कथानक में समाज 'बैकग्रांउड' का काम करता है और दृष्टिपथ पर हमेशा शेखर का चरित्र विद्यमान रहता है। शेखर का चरित्र समस्त हिंदी उपन्यास में अलग एवं विशिष्ट है। शेखर के ही शब्दों में कहें तो ''अब मैं अधूरा हूँ पर मुझ में कुछ भी न्यूनता नहीं है, अपूर्ण हूँ, पर मेरी संपूर्णता के लिए कुछ भी जोड़ने का स्थान नहीं है।''

lgk;d xzUFk %

1. शेखर एक जीवनी (उपन्यास), अज्ञेय, (भाग–1) नेशनल पब्लिशिंग हाउस, संस्करण 2008, पृ0 24
2. शेखर एक जीवनी (उपन्यास), अज्ञेय, (भाग–2) नेशनल पब्लिशिंग हाउस, संस्करण 2008, पृ0 71
3. हिंदी का गद्य साहित्य, डॉ. रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, संस्करण : 2007, पृ0 209
4. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, संस्करण 2003, पृ0 36

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 140-142

dcU/k dh dFkk vkj ukxktZu

MkW0 lkuh*

रामायण के अरण्यकांड में अशिप्त कबन्ध का वृत्तांत मिलता है।[1] यह केवल धड़धारण करने वाले एक ऐसे राक्षस की कथा है जो वन में राम–लक्ष्मण को जकड़ लेता है। पेट में धँसे हुए मस्तक वाले उस भयानक और विचित्र राक्षस की ग्रीवा नहीं है। वह कबंध–मात्र हैं।[2] उनकी भुजाएँ लंबी है जिनसे वह विभिन्न जीव–जंतुओं को पकड़ता है।[3] सीताहरण के बाद वन में भटकते हुए राम–लक्ष्मण उसकी पकड़ में आकर विवश हो जाते हैं।[4] दोनों भाई उसकी भुजाओं को काट देते हैं।[5] इसके बाद कबंध का दाह–संस्कार होता है[6] और उसे अग्निस्वरूप निर्मल रूप की प्राप्ति होती है।[7]

वाल्मीकि ने कबन्ध की रूपगत विकृति के विषय में दो बातें कहीं हैं। उन्होंने ऋषि स्थूला शिरा के शाप और इन्द्र के कोप के कारण उसकी दुर्गति का उल्लेख किया है। कबन्ध ने अपने राक्षसी रूप से स्थूलशिरा को त्रस्त और क्रुद्ध कर दिया था, अतः उसे ऋषि ने शाप दे दिया था।[8] स्थूलशिरा ने राम–लक्ष्मण के द्वारा उसकी भुजाओं को काटे जाने और जलाने के बाद उसे पहले वाले शोभन रूप प्राप्त करने का नियमन देकर शापमुक्ति का उपाय भी बतलाया था।[9] यह प्रसंग राक्षस के कबन्धत्व को स्पष्ट नहीं करता है। इन्द्र से उलझने के कारण वह वज्राहत होकर भी मरा नहीं था। वज्र के प्रहार ने उसे विकलांग बना दिया था। उसके मस्तक और जघन शरीर में प्रविष्ट हो गए थे। इंद्र ने प्रार्थना करने पर खाने–पीने की सुविधा के लिए उसके हाथों को योजनव्यापी तथा पेट में तीक्ष्ण दाँतों वाला मुख बना दिया था। इस तरह वह जीव–जंतुओं को पकड़कर खाने लगा। वाल्मीकि का यह दूसरा वृत्तांत ही कबन्ध की रूप–विकृति की व्याख्या करता है–

^^bR;qDRok cf)ekLFkk; j.k 'kØe/k"k;eA
rL;k ckgqie|äu ot;k.k 'krioZ.kkA
lfD/kuh p f'kjJpSo 'kjhjs lEizosf'kreA
l e;k pkP;ekuLrq lu uku;n ;el{knueAA
firkegopLr lR;a rnfLRofr eekczohRr A
vukgkj% dFka 'käks HkXu lfDFkf'kjkseq[k%AA
ot;s.kkfHkgr% dky;a [kLnh/kifi thforeA
l ,oeqDr% 'kØks e cky;a ;ks tukek;rkAA
rnk pkL;a p e d{kk rh{.kn"Vedyi;rA
lkvg Hkq tkH;ka nh?kkH;ka lf{kR;kfLeu oupjkuAA**[10]

इन्द्र ने स्थूलशिरा की तरह ही कहा था कि राम–लक्ष्मण जब बाँरे काट देंगे तब कबन्धा स्वर्ग चला जाएगा।[11] शापमुक्ति की इस कथा में राम–द्वारा दाह–संस्कार की बात अनुल्लिखित है, किन्तु यहाँ मूलतः स्थूलशिरा के द्वारा निर्दिष्ट शापमोचनगत उपाय ही वर्णित हुआ है।

'महाभारत' के 'रामोपाख्यान' का किमाकार और भयावह कबंध विश्वावसु नाम का गंधर्व है जिसे ब्रह्मशाप के कारण राक्षसत्व प्राप्त हो गया है।[12] 'अध्यात्म रामायण' एवम् 'आनन्द रामायण' के मुताबिक वह गंधर्वराज है जो अष्टावक्र के शापवश राक्षस बनता है और इन्द्र के वज्र–प्रहार के कारण उसके पेट में सिर–पैर समाज जाते हैं।[13]

*एम.ए., पीएच.डी. (हिन्दी), बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

तुलसीदास की कबन्ध–कथा अत्यंत संक्षिप्त है। सीता–हरण के बाद राम–लक्ष्मण उनकी खोज में घूम रहे हैं। उन्हें मार्ग में कबन्ध मिलता है। दुर्वासा ने उसे शाप दे रखा है। वह राम–लक्ष्मण को जकड़ता नहीं है, किन्तु प्रभु के दर्शन से उसका पाप कट जाता है। पूर्ववृत्त के विपरीत यहाँ दर्वासा के शाप की बात कही गई है और इंद्र–द्वारा कबन्ध की दुर्गति का प्रसंग अनुल्लिखित है। तुलसीदास ने उसकी भुजाओं के कटने की भी चर्चा की है–

^^vkor iFk dc/k fuikrkA@rfg lc dgh lki d ckrkAA@njcklk ekfg fnUgh lkikA@iHkq in if[k feVk lk ikikA**[14]

'मानस' में कबन्ध को 'महाभारत', 'अध्यात्म रामायण' और आनन्द रामायण की तरह 'गंधर्व' माना गया है।[15] राम से मिलने के पश्चात् वह अभिशापमुक्त होकर सद्गति की प्राप्ति करता है।[16]
केशवदास ने इंद्र के शापवश गंधर्व कबन्ध के राक्षस होने और राम–द्वारा उसके उद्धार का उल्लेख किया है।[17] 'रामचंद्रिका' के इस संदर्भ में कोई नवीनता नहीं है।

नागार्जुन ने कबन्ध की परंपरागत कथा में मौलिक स्वर का संयोजन किया है। पूर्वागत वृत्तांत का सारांश यही है कि वनवास–क्रम में राम ने कबंध नामक जिस राक्षस का उद्धार किया था उसका मस्तक चिट से समाया हुआ था। त्रेता युग में राम–लक्ष्मण ने बाँहों को काटकर उस अभिशप्त प्राणी को मुक्ति दिलाई थी, किन्तु वह अभी भी पूर्वस्थिति में विद्यमान है। उसकी पुरनी विवशता में कोई बदलाव नहीं आया है। नागार्जुन की यह उद्भावना पुरानी कथा को आधुनिक संदर्भ प्रदान करती है। कबन्ध का निम्नलिखित उद्गार उसके चरित्र के नये पहलू उजागर करता है–

^^iV gh iV g@Mkyrk fQjrk g@ekFk dh Vkg e&@tku dc rd HkVduk iMxk@e rk dc/k gA@pyr&pyr dkB gk x, ij@dki&dki mBr g efyu yke'k gkFk@Bl iM x;k g :yh Ropk dk Li'k&ck/k@e> ugh feyxk@D;k dkb n'kjFkuUnu\@=rk D;k lpep xtj x;k \@e D;k HkVdrk jgxk vkdYi\@iV gh iV g@e rk dc/k nA**[18]

नागार्जुन का कबन्ध उदरपोषण के लिए डोलता हुआ एक चिंतनहीन व्यक्ति का 'मिथक' है। त्रेता का यह भूखा जीवन आज तक भटक रहा है। इसे किसी राम की प्रतीक्षा है। यह केवल क्षुधा के वशीभूत है। विचारहीनता इसकी वास्तविकता है। नागार्जुन ने इसके व्यक्तित्व के अधूरेपन को वाणी दी है। कविता के कबंध की यह आत्मस्वीकृति वस्तुतः आधुनिक युग का विडंबना को व्यक्त करती है।

आधुनिक समाज टूटन का शिकार है। उसकी समग्रता समाप्त हो गई है। उसका स्वरूप खंडित हो चुका है। उसकी तमाम गतिविधियाँ पेट की चिंता से प्रेरित हैं। लोग पशुता के सबसे निचले स्तर पर घिसट रहे हैं। उनके जीवन में विचारों के लिए कोई जगह नहीं है। उन्हें केवल भूख की आदिम और मूल प्रवृत्ति (प्देजपदबज) संचालित कर रही है। नागार्जुन ने व्यक्ति और समाज के इसी विघटन एवम् अभाव को प्रस्तुत कविता का विषय बनाया है। उनका कबन्ध 'पेट ही पेट है' जो आधुनिक युग के एकांगी और पाशविक यथार्थ को व्यंजित करता है। इस दृष्टि से उसका चरित्र कथागत पात्रत्व के परे जाकर 'मिथक' हो गया है।

lUnHk %

1. वाल्मीकि, 'रामायण', अरण्य कांड, सर्ग 69–73, गीताप्रेस, गोरखपुर, तृतीय संस्करण, संवत् 2033.
2. ''आसेदतुश्र्च तद्रक्षस्तावुभौ प्रमुखे स्थितम्।
विवृद्धमशिरोग्रीवं कबन्धमुररेमुखम्।।''– वही, 69/27.
3. वही, 69/31–31
4. वही, 69/35–36
5. वही, 70/8
6. वही, 72/1
7. वही, 72/4

8. वही, 71/3–5
9. वही, 71/6–7
10. वही, 71/10–14
11. वही, 71/16
12 (क) व्यास, 'महाभारत', वन पर्व, 279/29, द्वितीय खंड, पृ. 1731, गीताप्रेस, गोरखपुर, पाँचवा संस्करण, संवत् 2045 वि.।
(ख) वही, 279/42, पृ. 1732
13. डॉ. कामिल बुल्के, 'रामकथा : उत्पत्ति और विकास', पृ. 431, हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, सन् 1962 ई.।
14. 'श्रीरामचरितमानस', अरण्यकांड, मूल गुटका, पृ. 433, गीता प्रेस, गोरखपुर, बाईसवाँ संस्करण, संवत 2011 वि.।
15. श्री सुनु गंधर्व कहउँ मैं तोही।– राम कबन्ध को 'गन्धर्व' कहते हैं। वही, पृ. 433।
16. ''रघुपति चरण कमल सिरू नाई। गयउ गमन आपनि यति पाई।''– वही, पृ. 434।
17. डॉ. कामिल बुल्के, ''रामकथा : उत्पति और विकास', पृ. 431।
18. 'कबन्ध', नागार्जुन रचनावली, 1, पृ. 365, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पहला संस्करण, सन् 2003 ई.।

– 'कवि नागार्जुन की प्रबन्धधर्मिता' शीर्षक शोध–कार्य का अंश–विशेष

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 143-146

MkW0 f'konkl ik.Ms; ds dkO; esa izsekuqHkwfr

vfouk'k dqekj*

प्रेम एक शाश्वत जीवन मूल्य है। यह सृष्टि परमात्मा के व्यापक प्रेम की ही परिणति है। प्रेम में आत्मा से आत्मा का मिलन होता है। यह एक नैसर्गिक गुण है जो संसार के समस्त प्राणियों में पाया जाता है। बिना प्रेम के सृजन संभव नहीं है। रचना मानुषिक सृष्टि होती है। उसमें अनेक मनोभावों की विविध रूपात्मक अभिव्यक्ति होती है, लेकिन सब का गंतव्य प्रेम ही होता है। संसार के अन्य प्राणियों से मनुष्य का प्रेम कुछ अधिक व्यापक और सृजनात्मक होता है। प्रेम–भावना बूँद को समुद्र बना देती है, यह संवेदना को गति देती है और ज्ञान को ग्रहण योग्य बनाती है। प्रेम मूलतः लौकिक अनुभूति है वस्तुतः यह एक का एक के प्रति 'संपूर्ण समर्पण' होता है किन्तु एक के प्रति सच्चा प्रेम अन्य अनेक के प्रति भी सच्चा हो सकता है। रघुवीर सहाय ने लिखा है– 'यदि आप एक से प्रेम कर सकते हैं तो दो से भी कर सकते हैं, अन्य अनेक से भी कर सकते हैं।'त्रिलोचन की बड़ी प्रसिद्ध पंक्ति हैः–

'मुझे जगत जीवन का प्रेमी बना रहा है प्यार तुम्हारा।'

लोक में प्रायः विपरीत लिंग के प्रति सहज जैविक आकर्षण से प्रेम प्रारंभ होता है। इसका एक दैहिक धरातल भी होता है।दिनकर जी ने लिखा हैः–

'पहले प्रेम स्पर्श होता है, तदनन्तर चिन्तन भी
प्रणय प्रथम मिट्टी कठोर है, तब वायव्य गगन भी।'

प्रेम पहले शारीरिक स्तर पर घटित होता है इसमें देह के प्रति आकर्षण होता है किन्तु कालान्तर में लौकिक प्रेम ही आध्यात्मिक प्रेम में परिणत हो जाता है।

प्रेम का आधार है राग। पश्चिम में भौतिकवादी प्रेम को वासना ही समझते हैं किन्तु हमारे यहाँ प्रेम को महान पुरूषार्थ के रूप में देखा गया है। प्रेमापुमर्थो महान्, प्रेम ही परम पुरूषार्थ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रेम को लोभ से अलग किया है। लोभ सामान्य होता है, वह भौतिक गुण है। अधिक से अधिक संसाधनों को अपना बना लेने की प्रवृति लोभ है, किन्तु प्रेम या प्रीति अत्यधिक विशिष्ट के प्रति होती है।

प्रेम मनुष्यता का मूलमंत्र है। यह मुनष्य की सर्वाधिक प्रखर शक्ति है, उसका वैशिष्ट्य है। मानव सभ्यता के विकास में प्रेम की अनिवार्य भूमिका है। 'वाचस्पत्य कोश' के अनुसार ''प्रेम भाववाचक संज्ञा है और इसकी व्युत्पत्ति प्रिय से हुई है, इसका प्रयोग सौहार्द, स्नेह एवं हर्ष के अर्थ में होता है।''[1] अमरकोश के अनुसार भी उपयुक्त अर्थ मान्य है– ''प्रेमा न प्रियता हार्द हर्षो प्रेम स्नेहोऽथदोहदम्।''[2]

''शुक्ल जी प्रेम को हृदय के बीच का संबंध मानते हैं। प्रेम रूप में एवं एतद्विषयक व्यक्तिगत अभिरूचि का भी विशेष महत्त्व है। रूप का लोभ दर्शन के लिए व्याकुल कर सकता है। प्रेम में प्रिय की स्वीकृति की आकांक्षा भी रहती है। प्रेम में उभय पक्ष में तुल्यानुराग का उन्होंने विशेष महत्त्व माना है, किन्तु एकपक्षीय प्रेम की प्रतिष्ठा एवं उसका अस्तित्व भी उन्हें मान्य है।''[3]

डॉ0 नगेन्द्र का मत है कि ''प्रेम में जो तीव्रता पायी जाती है वह आत्म–विस्तार द्वारा सुख की अनुभूति होती है। उन्होंने सामान्यतः प्रेम को दो ही वर्गो में रखा है, प्रथम मानव–प्रेम जिसमें लौकिकता होती है और द्वितीय पारलौकिक दिव्य प्रेम जिसमें ऐन्द्रिकता या भोग–वृति नहीं होती। वह द्वितीय को ही सर्वोपरि मानते है।''[4]

*शोध–छात्र, हिन्दी, बी.आर.ए.बिहार विश्वद्यालय, मुजफ्फरपुर

प्रेम से संबद्ध उपर्युक्त चर्चा के उपरान्त जब हम डॉ0 शिवदास पाण्डेय की कविता पर ध्यान देते हैं तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पाण्डेय जी प्रेमी हैं, इसलिए कवि हैं। प्रेम करने की उनकी गहरी क्षमता ने ही उन्हें प्रभावशाली कविताएँ लिखने की शक्ति दी है। उनकी प्रेमानुभूति निजी है, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति जिस रूप में हुई है वह सबको अपनी लगती है इसका कारण है कवि की सहृदयता और निश्चल भावुकता। कवि तो स्वभावतः प्रेमी होते ही है, पाण्डेय जी की कविताओं में भी लौकिक और आध यात्मिक सौन्दर्य बोध विशिष्ट आकर्षण का विषय बना है। 'नदी प्यासी' डॉ0 शिवदास पाण्डेय की पहली काव्य कृति है। जिसमें उनकी प्रारंभिक प्रेम कविताएँ संकलित है। इसमें वियोगी की प्रेम की एक संवेदना को अभिव्यक्ति निम्न प्रकार से की गयी हैः–

^^;kn rEgkjh vc Hkh vk tkrh gA@chr pqdh oks fnu cgkj dh@ihr l;kj dh e/kq dh xku@oh.kk dh mj&rkj VVrh@Hkwy x;s lxhr iqjkus**[5]

प्यार की उपेक्षा कवि को सहनीय नहीं है। ऐसे लोग जो प्यार की उपेक्षा करें, आलोचना करें, भर्त्सना करें, ऐसे लोगों पर डॉ0 शिवदास पाण्डेय सीधा प्रहार करते हैं, और कहते हैं कि ऐसे लोगों के बदनाम करने से प्रेम का मूल्य कम नहीं हो जाता। प्यार की उपेक्षा भले कोई करें प्यार तो ऐसा कोश है, आंनद का, जिसे सब अपने पास रखना चाहते है। पाण्डेय जी लिखते हैंः–

^^l;kj cnuke lgh l;kj dks lc pkgsA@l;kj dks iqd ugh l;kj dks iq[k fey@l;kj dks 'kU; ugh l;kj dks vad fey@l;kj dks xhr fey l;kj dks ehr fey@l;kj dks rki vxj l;kj dks 'khr fey@l;kj dh gS [kf'k;k] l;kj dh gh vkgs&@l;kj cnuke lgh] l;kj dks lc pkgs**[6]

विप्रलम्भ शृंगार की कविता 'तुम मुझे प्यार करो' में भी वियोगी प्रेमी अपने को जंगल में दौड़ कर थक चुका एक मृग की स्थिति में पाता है और वैसी स्थिति में प्रेमिका की स्मृति एक शीतल छाया सी लगती है और वह पुकार उठते हैंः–

^^rqe eq>s l;kj djks&eq>s vPNk yxrk gSA@l;kl h&unh& lh ejh vk[kks dks@rirh /kwi ls rik ihuk@ejh cgdh gbZ jkgks ejh BaM yxh pkgks dks@Fkdh exh& lh lefiir@rqjh Nkgks es thuk@eq>s vPNk yxrk g& rqe eq>s l;kj djksA**[7]

कोई भी कवि जब अपने अन्तःकरण में अथवा अन्तस्थल में प्रवेश करता है तो वैसी स्थिति में उत्पन्न होनेवाले प्रेम की ऊँचाई और गहराई बढ़ जाती है, अर्न्तमन विकसित हो जाता है। प्रेमिका के साथ प्रेमी का उर्वशी पुरूरवा की कामकेलि भूमि गन्धमादन पहुँचना और वहाँ अपने को उर्वशी पुरूरवा में रूपान्तरित कर लेना इसी भाव बोध की कविता है जिसकी झलक रवीन्द्रनाथ टैगोर में देखी जा सकती है। किन्तु टैगोर जहाँ रहस्य के संसार में प्रवेश कर जाते है, शिवदास पाण्डेय प्रेम के संसार में अपना ध्वज फहराते दिखते है–

^^fy[k fn;k rqeu] ysfdu fy[k fn;k] ^iq: jok*@tkM+ fn;k rc eus Hkh ogh ^mo'kh*@,d iRFkj dh pknj ij@,d xqQk dh xku es @vkj yxk tSl@ge nkuks xU/keknu ij gSA**[8]

जब देवता प्रेम में पागल हो जाते हैं और अपनी सीमाओं को तोड़ देता है तो आदमी प्यार में कोई खता कर दें यह कोई असाधारण बात नहीं है, अस्वाभाविक भी नहीं। शिवदास पाण्डेय को अपनी खामियों के साथ भी प्यार करने पर अपनी ईमानदारी में कोई कमी नजर नहीं आती, लगता है वे देवताओं से तो अच्छे अवश्य है नीचे की पंक्तियों में यह भाव सौन्दर्य देखा जा सकता हैः–

^^Qwy pEik] peyh] tqgh dh f[kyh@xU/k dk Tokj vk;k] cgk] fQj cgk@'kkjnk jg xbZ mj&clh mo'kh@l;kj rqedks fd;k y{eh dh rjg----@l;kj eus fd;k vkneh dh rjgA**[9]

'सच है क्या' एक प्रेम कविता है। कभी–कभी प्रेम में ऐसा होता है प्रेमी अथवा प्रेमिका द्वारा प्यार के क्षणों में उच्चारित शब्द अपने ही साथी के मन को विरोधाभाषी लगने लगती है, विश्वास नहीं होता

कि मेरा देवता और मेरे प्राण जैसे संबोधन उस प्रेमिका के हो सकते है जो बदले हुए समय में इतनी असंवेदनशील हो गयी है। कवि के हृदय में इस असहाय और निर्दोष प्रेमी के प्रति सांत्वना के भाव पैदा होते है, किन्तु वह द्वन्द्व में है, ऐसा क्यों हुआ–

^^reu e> l;kj fd;k Fkk] lp g D;k!@[ky vkleku d : igy pnko d uhp@ /kMduk dh jy dh rjg rth l pyrh 'kke l@cQhy unh d ry dh rjg /khj&/khj tyrh&xyrh jkr rd@vkpy dh vkV e dkbl fn;k fNik;@ gok d >kdk e ejk bUr tkj fd;k Fkk&lp g D;k!**10

अन्यतम गीतकार डॉ0 शिवदास पाण्डेय ने प्रेम के खुले आकाश पर दृष्टि डाली है और उसे अपनी रचनाओं की मूल चेतना के रूप में स्वीकार किया है। इनके गीतों में स्वाद से ज्यादा खुशबू है। वह खुशबू तो धरती–आकाश के बीच अन्तरिक्ष के फैलाव पर प्रवाहित हो रही है। इनके गीतों में एक ओर प्रेम का अल्हड़ स्वर है तो दूसरी ओर उसमें सागर की गहराई है। स्मृति सजग गीतकार का यह समकालीन भाव–प्रसार सहज ही देखने योग्य है–

^^dk;y Fkh xhr dbl jkr xbl cu@lcg cth efUnj l e=k dh /ku@ vUnjeu xuxu dN] ckgj dN B<@nh[krk u dkbl] dN ctrk :u>u@[kf'k;k d xkyk ij vkl nk l;kj d&@gj&gj iUkk ij Qy gjflxkj dA**11

पाण्डेय जी के प्रेमगीतों में बेपनाह दर्द है। इस दर्द के कई रूप और कई रंग है। प्रेम का मार्ग जितना ही सरल और सीधा है वासना से मुक्ति का मार्ग उतना ही उबड़–खाबड़ और जटिल है। यही वजह है कि अधिकांश कवि यहाँ दम तोड़ते नजर आते हैं, क्योंकि वे जहर को अमृत नहीं बना पाते। पाण्डेय जी ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है–

^^re r"kk dh f'k[kk nhi Fkh Lo.k dh@e>dk ekye D;k dku D;k ty x;k@ T;kfr Fkh dke dh] d.M Fkh ;K dh@ dkbl ij ty x;k] dkbl iy&iy x;k@gke eu l fd; gkFk tyrk Hkh D;k] @l;l ij pknuh dk vlj gk x;k&@ik.k] rj tgj Hkh xtc dj x;k@dkbl thvk ejk] e vej gk x;kA**12

'गान झरने लगे' गीत 'ज्वार–ज्वार महासागर' के गीतों की भूमिका जैसी रचना है जिसमें प्यार के गीतों के साधक तत्वों की और उनके प्रभावों की चर्चा है। प्रेमगीत वे नहीं लिख सकते जो मन–से–मन का मिलन तथा उसका प्रवाहित होना नहीं समझ पाते। प्रेमी और प्रेमिका ऐसे दो तत्व हैं जो गीतों की आत्मा बनकर उभरते हैं और दोनों मिलकर स्वर्ग जैसे दृश्य का सृजन करते हैं। प्रेम का एक आदर्श स्वरूप है जो इस रचना में दर्शनीय है–

^^ge [kM g tM ey l]@py l 'kh'k l nk c/k efnjk dh rjg l&@xku>ju yx fu>jk dh rjgA@lkFk ge D;k g,] lkr lj gk x;] @xku>ju yx fu>jk dh rjgAA**13

शिवदास पाण्डेय जब प्रेम के गीत लिखते हैं तो वे लोकाश्रित हो जाते हैं, किसी दूसरे लोक में प्रवेश कर जाते हैं, और आशा करने लगते हैं कि उनका लोकगीत होने की अनुभूति है। उसका आनंद श्रोता और पाठक अवश्य उठाते हैं किन्तु शायद पाण्डेय जी का प्रेम और उनका प्रेमी दोनों अपने पाठकलोक से क्षुब्ध है, बहुत क्षुब्ध है। यह आधुनिक सभ्यता का चारित्रिक दोष है जो प्रेम के लिए लिखे गए मंत्र और पुण्यश्लोक को महसूस नहीं कर पाता। कवि कहता है कि क्षुब्ध की भाषा तथा उसका कथ्य दर्शनीय है–

^^l;kj chekj fdlh ik.k dh eYgkj&nok@ykx crky cu Hkjoh lukus yx&@l;kj ,d 'kCn fy[kk uke rj D;k elu@ykx crkc e> n[k eLdjku yxA**14

कवि की अदम्य इच्छा के विपरीत लगता है वह प्रेमिका के अपने घर में होने की खुशी से वंचित रह गया, अगर ऐसा नहीं हुआ होता तो यह छोटा सा घर इन्द्रालय हो गया होता क्योंकि इन्द्रालय होने

के लिए उर्वशी–मेनका का होना जरूरी है और कभी नहीं मुरझाने वाले फूलों को खिलने के लिए प्यार की मिट्टी चाहिए और समर्पण की खाद–

^^rqe dHkh ,d fnu tks ejs ?kj pyks]@Qwy [kqn vk ls cjlu yxsA @yky ekFks ij fcfn;k yxk yks vxj]@pkn Hkh n[kus dk rjlu yxsA**[15]

दुनिया में जो प्यार है वह वास्तविक नहीं है, दिखावटी है, सच्चाई से परे है, मनोरंजन का दूसरा रूप है। जो प्रेम कवि को नहीं भाता है उसे वे स्वीकार नहीं करते हैं। प्रेम के ऐसे विद्यालय में किसी गुरु का शिष्य बनने में उनकी आत्मा तैयार नहीं है। गुरु तो वह है जो अपने शिष्य के कानों में कोई मंत्र फूँक दे और उसका असर जीवन भर बना रहे और मन कहीं दूसरी दिशा में भटके नहीं सामने के मायावी आकर्षणों में अटके नहीं–

^^ea= dkuks es rqeus fiyk D;k fn;k]@yk[k dkbZ fudkys fudyrk ugha@gkB ij ejs dkjs ;s D;k fy[k fn;k] @yk[k dkbZ feVk;s gS feVrk ughAA[16]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि डॉ0 शिवदास पाण्डेय की काव्य–साधना के दो महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं– एक–शाश्वत प्रेम और दूसरा–सामाजिक दबाव। प्रेम और सामाजिक व्यवस्था की विभिन्न स्थितियों, संवेदनाओं, आसंगों पर केन्द्रित हैं। इनकी सभी कविताओं में प्रेम की संवेदना बहुत व्यापक है। है तो यह पुरुष और नारी के बीच का प्रेम किन्तु इस प्रेम के ऊपर किसी अध्यात्म, किसी सिद्धांत, किसी वाद या प्रतिवाद का प्रभाव नहीं है। पुरुष और नारी के बीच आकर्षण इनकी मुख्य संवेदना है। यह आकर्षण बिल्कुल प्राकृतिक है। यही कारण है कि जिस प्रकार सूर की संवेदनाएँ कृष्ण के प्रति उनके प्रेम पर आधारित हैं, ठीक उसी प्रकार उससे भिन्न मानव जीवन के अन्तर्गत एक पुरुष और एक नारी के बीच आकर्षण जिसे सांसारिक कहकर टाल दिया जाता है, उसमें पाण्डेय जी का कवि अमरता के तत्त्व ढूँढ़ता होता है। पुरुष और नारी के बीच जो आकर्षण है, कवि मानता है कि उसमें भी वही आनन्द है जो सूर, मीरां, जायसी या महादेवी के प्रेम काव्यों में दृष्टिगत होता है।

lUnHkZ %

1. 'वाचस्पत्यम्', सम्पादक– तारानाथ भट्टाचार्य, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1970, पृ0 45
2. पंडित विश्वनाथ झा, 'अमरकोश प्रथम काण्डम्', मोतीलाल बनारसी दास प्रा0 लि0, पटना–2000, पृ0 246
3. रामचन्द्र शुक्ल, 'चिन्तामणि' (भाग–1), इण्डियन प्रेस इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, 1940, पृ0 94
4. विचार और विवेचन, सम्पादक– डॉ0 नागेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ0 45
5. डॉ0 शिवदास पाण्डेय, 'नदी प्यासी', ईस्ट इण्डिया प्रकाशन, पटना, 1982, पृ0 22
6. डॉ0 शिवदास पाण्डेय, 'सागर मथा कितनी बार', प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, 1992, पृ0 39
7. डॉ0 शिवदास पाण्डेय, 'नदी प्यासी', ईस्ट इण्डिया प्रकाशन, पटना, 1982, पृ0 38
8. डॉ0 शिवदास पाण्डेय, 'डर से न लिखी कभी डायरी', पंचशक्ति प्रकाशन, मुज0 2011, पृ0 17
9. डॉ0 शिवदास पाण्डेय, 'ज्वार–ज्वार महासागर', पंचशक्ति प्रकाशन, मुज0 2001, पृ0 69
10. डॉ0 शिवदास पाण्डेय, 'सागर मथा कितनी बार', प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 1992, पृ0 15,
11. डॉ0 शिवदास पाण्डेय, 'ज्वार–ज्वार महासागर', पंचशक्ति प्रकाशन, मुजफ्फपुर, 2001, पृ0 1–2
12. डॉ0 शिवदास पाण्डेय, 'अँजुरी में सप्तसागर', समीक्षा प्रकाशन, मुजफ्फपुर, 2008, पृ0 57
13. डॉ0 शिवदास पाण्डेय, 'ज्वार–ज्वार महासागर', पंचशक्ति प्रकाशन, मुजफ्फपुर, 2001, पृ0 भूमिका से
14. डॉ0 शिवदास पाण्डेय, 'ज्वार–ज्वार महासागर', पंचशक्ति प्रकाशन, मुजफ्फपुर, 2001, पृ0 87
15. डॉ0 शिवदास पाण्डेय, 'ज्वार–ज्वार महासागर', पंचशक्ति प्रकाशन, मुजफ्फपुर, 2001, पृ0 112
16. डॉ0 शिवदास पाण्डेय, 'अँजुरी में सप्तसागर', पंचशक्ति प्रकाशन, मुजफ्फपुर, 2008, पृ0 29

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 147-151

ckck lkgsc MkW Hkhejko vEcsMdj dk vkfFkZd fpUru % ,d vè;;u

MkW mfeZyk dqekjh*

'बाबा साहेब डा. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड II के मुख्य सम्पादक कन्हैया लाल चंचरीक ने अपने सम्पादकीय में लिखा है :

बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर को क्रान्ति द्रष्टा, समाज, वैज्ञानिक, विधिवेता और लोकनायक के रूप में अधिक जाना जाता है, जबकि वे मूलतः एक शिखर अर्थनीतिज्ञ थे।[1]

सचमुच आज सब अनुभव करते है कि उनके समाजसेवा और राजनीति में सक्रिय रहने के कारण अर्थशास्त्र जगत ने एक विश्व स्तर का अर्थशास्त्री खो दिया है। बाबा साहेब अपने युग के उग्र पंक्ति के अर्थशास्त्रियों में एक थे। अमरिका और यूरोप के विश्वविद्यालयो में उनकी अधिकांश उच्च शिक्षा अर्थशास्त्र के शोध–अध्येता के रूप में ही हुई थी। भारत सरकार के पूर्व कल्याण मंत्री बलवंत सिंह रामूवालिया ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि 'उनके (डा. अम्बेडकर के) आर्थिक विषयों पर शोध–प्रबन्ध भारत की वर्तमान आर्थिक नीतियों के परिप्रेक्ष्य में देखें जाने चाहिए जो आर्थिक क्रान्ति में मील के पत्थर सिद्ध होंगे।[2]

25 नवम्बर, 1950 में संविधन सभा में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर द्वारा दिये गये भाषण में उनकी आर्थिक चिन्तन और आर्थिक समानता की छटपटाहट जो एक चेतावनी के रूप में स्पष्ट होती है। 26 जनवरी, 1950 में हम अन्तर्विरोधों के जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति में हम समानता प्राप्त करेंगे और हमारे सामाजिक और आर्थिक जीवन में असमानता होगी। राजनीति में हम एक आदमी एक वोट, एक वोट एक कीमत के सिद्धान्त को पाने जा रहे हैं। हम सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में अपने सामाजिक एवं आर्थिक ढ़ाचे के अन्तर्गत एक आदमी, एक कीमत के सिद्धान्त को अस्वीकार करते रहेंगे।

प्रतिरोधों के इस जीवन को हम कब तक वहन करते रहेंगे। हम अपने सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में कब तक समानता को नकारते रहेंगे।

अगर यह असमानता की स्थिति लगातार बनी रही तो राजनैतिक स्वंत्रता खतरे में पड़ जायगी। जितनी जल्दी हो सके इस अन्तर्विरोधों को खत्म करना होगा, वरना वे लोग जो इस असमानता को भोग रहे हैं, राजनैतिक लोकतंत्रा के ढ़ाचे का जिसे संविधान सभा ने बड़ी मेहनत से बनाया है, उड़ाकर रख देगे।

डॉ0 अम्बेडकर के आर्थिक विचारों के स्रोत उनके कुछ महत्वपूर्ण शोध–प्रबन्ध हैं। इनके अतिरिक्त बम्बई (मुम्बई) विधान–मंडल में बजट एवं विभिन्न विधेयकों पर चर्चा के दौरान उन्होंने बहस में भाग लेते हुए जो विचार व्यक्त किये हैं उनमें भी उनके आर्थिक विचारों की झलक मिलती है। उनके जिस शोध–प्रबन्धें में उनके आर्थिक विचार निहित है उनमें कुछ प्रमुख शोध–प्रबन्ध इस प्रकार है।

(क) ईष्ट इंडिया कम्पनी का प्रशासन और वित्त प्रबन्ध (1915)

(ख) भारत में छोटी जोतों की समस्या और उसका निवारण (1918)

(ग) रुपये की समस्या (1923)भारतीय मुद्रा एवं बैकिंग का इतिहास (1947)

(घ) ब्रिटिश भारत में प्रान्तीय वित्त व्यवस्था का विकास (1925)

*पूर्व शोध छात्रा, अम्बेडकर विचार एवं समाज कार्य, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि डॉ0 अम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा डॉ0 अम्बेडकर के सम्पूर्ण वाड़मय को हिन्दी, तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनुदित करके कई खण्डों में प्रकाशित किया गया है और जो प्रकाशित अंश है, उनहें भी प्रकाशित करने की योजना है। ऊपर जिन शोध–प्रबन्ध का उल्लेख किया गया है उनमें से ईष्ट इंडिया का प्रशासन और वित्त प्रबन्ध ''तथा'' ब्रिटिश भारत में प्रान्तीय वित्त व्यवस्था का विकास बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड़मय के खण्ड II में, संकलित है, भारत में छोटी जोतों की समस्या और उसका निवारण खण्ड–2 में समाविष्ट है तथा ''रूपये की समस्या'' भारतीय मुद्रा एवं बैकिंग का इतिहास ''खण्ड–12 में संकलित है। बजट एवं विभिन्न विधेयकों पर चर्चाएं'' खण्ड–3 में समाविष्ट हैं।

ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रशासन और वित्त प्रबंध'' नामक शोध प्रबन्ध 15 मई 1915 को एम0ए0 उपाधि हेतु आंशिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रेषित शोध–प्रबन्ध है। शीर्षक से ही स्पष्ट है कि इस शोध–प्रबन्ध में ईष्ट– इंडिया कम्पनी के प्रशासन और वित्त का अध्ययन किया गया है। ब्रिटिश भारत में प्रान्तीय वित्त व्यवस्था का विकास'' नामक शोध–प्रबन्ध साम्राज्वादी वित्त व्यवस्था के प्रांतीय विकेन्द्रीकरण का अध्ययन है। उपर्युक्त दोनों शोध–प्रबन्ध मुगलों के बाद गुलाम भारत के क्रामिक वित प्रशासन पर प्रकाश डालते हैं।

भारत में छोटी जोतों की समस्या और उसका निवारण'' शीर्षक शोध–प्रबन्ध में डॉ0 अम्बेडकर ने यह प्रतिपादित किया है कि भारत में छोटी जोत की समस्या बुनियादी समस्या नहीं है, बल्कि यह एक मूल समस्या से निकली हुई समस्या है, अर्थात सामाजिक अर्थव्यवस्था में असामंजस्य की समस्या।।'' उनका स्पष्ट मानना है कि ''छोटे खेत जमीन पर भारी दबाव के कारण नजर आते है। ''[2] उनका तर्क है कि जनता का बहुत बड़ा भाग अपनी जीवीका के लिए केवल कृषि पर निर्भर है। स्वाभाविक है कि जब लोगों के पास कृषि पर निर्भर है। स्वाभाविक है कि जब लोगों के पास कृषि के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं तो वे जमीन का छोटे से छोटा टुकड़ा हासिल करने के लिए हर संभव प्रयास करेंगे। लोग जमीन के छोटे टुकड़ों पर इसलिए खेती करते हैं, क्योंकि उनके पास यही एक मात्र लाभदायक वस्तु है। यदि उनके पास करने के लिए अन्य कोई लाभकारी काम होता, तो वे जैसा डॉ0 अम्बेडकर बतलाते हैं, छोटे टुकड़ों को भी तरजीह न देते।

पुनः डॉ0 अम्बेडकर आगे बतलाते हैं कि य़द्यपि हमारी खेतिहर जनता छोटे से खेत पर भी पैदावार के लिए अधिक से अधिक लगना चाहती है, तथापित उनमेंसे बड़ा भाग निश्चित रूप से निठल्ला रह जाता है, और निठल्ला मजदूर देश का अर्थ व्यवस्था पर प्रतिकूल असर डालता है। यहाँ डॉ0 अम्बेडकर ने निठल्ला मजदूर और निठल्ली पूंजी में जो अन्तर किया है वह उल्लेखनीय है। वे कहते है, ''पूंजी होती है, परंतु मजदूर रहता है। अर्थात जब पूंजी निठल्ली हो तो वह कमाती नहीं, परन्तु वह कुछ खाती नहीं। परन्तु मजदूर कमाए चाहे न कमाए, पर वह जीवित रहने के लिए खाता अवश्य है। इसलिए निठल्ला मजदूर एक बहुत बड़ी मुसीबत या विपत्ति बन जाता है।[3] वे आगे लिखते हैं कि '' निठल्ला मजदूर एक नासूर की तरह होता है, जो देश की महत्वपूर्ण वस्तुएँ चट कर जाता हैं। वह हमारे राष्ट्रीय लाभांश में वृद्धि करने की जगह जो कुछ थोड़ा बहुत लाभांश होता भी है, उसे भी नष्ट कर जाता है। इसलिए निठल्ले मजदूर का एक महत्वपूर्ण असर होता है –

राष्ट्रीय लाभांश का ह्रास।[4] डॉ0 अम्बेडकर का दृढ़ विश्वास है कि निठल्ले श्रमिकों के कारण हमारा देश बिना पूंजी का हो गया है, और पंजी तथा पूंजीगत सामानों के अभाव में जोतों का आकार बढ़ाया नहीं जा सकता। जब तक पशुओं और औजारों की संख्या में वृद्धि न हो, तब तक बड़े आकार के जोत उत्पादक नहीं हो सकते। इसलिए डॉ0 अम्बेडकर ने स्पष्ट घोषणा की कि जोत उत्पादक नहीं हो सकता। इसलिए डॉ0 अम्बेडकर ने स्पष्ट घोषणा की कि।

''भारत में कृषि की खामियों को दूर करने के लिए बुनियादी तौर पर जोतों का आकार बढ़ाने की जरूरत नही, बल्कि पूंजी और पूंजीगत सामान बढ़ाने की जरूरत है।'' इसकेलिए उनकी दृष्टि में कृषि का औद्योगिकरण सबसे कारगार उपाय है। जैसे उन्होंने स्वयं कहा है कि–

''औद्योगिकरण की सम्पूर्ण प्रभाव यह पड़ेगा कि जमीन पर दबाव कम होगा और पंजी तथा पूंजीगत सामान बढ़ने से जोतों का आकार बढ़ाने का आर्थिक आवश्यकता पैदा हो जाएगी। केवल इतना ही नहीं, औद्योगिकरण भूमि का महत्व कम कर देगा और इसलिए उसके उप–विभाजन और विखण्डीकरण के कम अवसर मिलेगे। औद्योगिकरण एक स्वाभाविक और जोरदार उपाय है और उसे–तरजीह दी जानी चाहिए। कानून बनाकर हम जो दिखावटी लाभकारी जाते बना सकेंगे, उसमें कई बुराइयों निहित है, परन्तु औद्योगिकरण से लाभ की दृष्टि से बड़े आकार की लाभकारी जोतें स्वयं सामने आ जाएगी।''[5]

डॉ0 अम्बेडकर ने ईष्ट इंडिया कम्पनी का प्रशासन और वित्त प्रबन्ध तथा ब्रिटिश भारत में प्रान्तीय वित्त व्यवस्था का विकास विषय पर गहन शोध किया। इस शोध का उद्देश्य तात्कालीन समस्याएं थी, साथ ही यह स्पष्ट है कि अच्छा प्रशासन अच्छे वित्त पर निर्भर करता है, क्योंकि ''वित्त समग्र प्रशासकीय तंत्रा का इंधन है''[6] । भारत द्वारा ब्रिटिश भारत से अच्छे प्रशसन की मांग के फलस्वरूप बाबा साहेब का शोध शासकीय प्रबन्ध में एक मील का पत्थर साबित होता है। इसी शोध के आधार पर बाबा साहेब '' साम्राज्यवादी वित्त के प्रान्तीय विकेन्द्रीकरण'' का पक्षधर कहे गये। उनका स्पष्ट मत था कि राजस्व के श्रोतों का विभाजन केवल पर्याप्तता के विचार द्वारा ही शासित होना चाहिए।'' यह कराधन की क्षमता की समस्या है। इस सन्दर्भ में प्रो0 सैलिंगमैन का विचार है कि–

''समस्या वस्तुतः बहुत महत्वपूर्ण है। योजना भले ही कितनी भी सुविचारित क्यों न हो अथवा न्याय के मूल सिद्धान्तों के समान कितनी ही पूर्णता लिए क्यों न हो परन्तु यदि कराधन व्यवस्था प्रशासकीय दृष्टि से कार्य नहीं करती है तो यह योजना असफलता के गर्त्त में डूब जाऐगी।''[7]

बाबा साहेब के उक्त शोध पर प्रो. एडविन आर0 ए0 सैलिंग मैन की टिप्पणी'' आधुनिक लोकतंत्र के तहत बढ़े हुए सरकारी क्रियाकलाप के अन्तर्गत कराधन के बढ़ते बोझ पर विकास के कारण इन विभिन्न प्रकार के सरकारों में बोझा की समान रूप से बॉटने की समस्या बलवती होती जा रही है। मानवीय अम्बेडकर जिसे निर्देशन, निर्दिष्ट, राजस्व तथा आंशिक राजस्व कहते हैं, वह सभी देशों द्वारा अपनाए गये तरीकों की पसन्द को लक्षित करते हैं। तीन मूल योजनाओं में से एक का निर्वाह करना आवश्यक है।शक्ति के सापेक्ष स्तर के आधार पर केन्द्रीय, प्रान्तीय सरकार द्वारा या प्रान्तीय सरकार द्वारा या प्रान्तीय सरकार केन्द्रीय सरकार द्वारा चलाई जायेगी। [8]''

विभिन्न देशों में राज्य अथवा प्रांतीय करों का एक भाग संघीय सरकार को दिये जाने के अनेक उदाहरण मौजूद हैं तथा केन्द्रीय संघीय सरकारों के करों में राज्य अथवा प्रान्तीय सरकारों की भागीदारी के भी अनेक उदाहरण मौजूद हैं। इस चर्चा में माननीय अम्बेडकर के योगदान का महत्व उनके अपने देश के तथ्यों के वस्तुपरक वर्णन और मनोरंजक विकास के निष्पक्ष विश्लेषण में निहित हैं। यह शिक्षा दूसरे देशों में भी लागू होती है।

आर्थिक दर्शन में डॉ0 अम्बेडकर ने अपनी कृतियों में सरकार की तत्कालीन कर नीति, जैसे : अत्यधिक भूमि लगान, नमक कर, ब्रिटिश तथा भारतीय उत्पादन पर असमान कस्टम ड्यूटी, जागीरदारी तथा जमीन्दारी तथा जमीन्दारी व्यवस्था द्वारा किसानों का घोर आर्थिक शोषण तथा अंग्रेजों एवं भारतीय सरकारी अधिकारियों के बारे में भारी अन्तर की कड़ी आलोचना की।

मुद्रा तथा बैकिंग के सम्बन्ध में बाबा साहेब अम्बेडकर के विचार मौलिक है और उनकी मौलिकता की गुणवत्ता पर पता लगाने के लिए उनका गहन अध्ययन आवश्यक है। हर शास्त्र में मुद्रा तथा बैंकिंग के सवाल अत्यधिक कठिन तथा विकट रूप धारण करते हैं। अर्थशास्त्र के विभिन्न भागों में जैसे उपभोग, उत्पादन, वितरण में मात्र सिद्धांत की आवश्कयता होती है। सिद्धान्त गलत हो या सही हो इसके प्रति सिद्धांत की आवश्यकता होती है। सिद्धांत गलत हो या सही हो इसके प्रति लोगों में अरुचि तथा विमुखता रहती है, क्योंकि व्यवहारिक जगत में इसका तात्कालिक तथा प्रभावशाली परिणाम परिलक्षित नहीं होता है। परन्तु मुद्रा तथा बैंकिंग के क्षेत्र में जो भी विचार प्रतिपादित किये जाते हैं वे लोगों के व्यवहारिक जीवन से सम्बद्ध रहते हैं। इस क्षेत्र में डॉ0 अम्बेडकर ने विस्तृत अध्ययन किया है और अपने विचारों को विशद रूप से अभिव्यक्त किया है। अपने लेखों के द्वारा वे उस समय की सरकार को बराबर सुझाव और सलाह

देते रहे हैं। जिनका अध्ययन करना अति आवश्यक है। डॉ0 अम्बेडकर साहेब का मानना था कि मानव जाति के मुद्रा तथा बैकिंग के सवालों पर न्यायिक दृष्टि से ही विचार नहीं किया बल्कि व्यवहारिक तथा प्रायोगिक दृष्टि से भी सुझाव दिया। यह कोई आवश्यक नहीं कि किसी भी अर्थशास्त्री के विचार मुद्रा तथा बैकिंग के क्षेत्रा में एक समान हो, मतभेद होगा ही क्योंकि अर्थ तंत्रा के उद्देश्य सरकार तथा अर्थशास्त्राी अलग–अलग समझाते हैं।

पंडित नेहरू और डॉ0 अम्बेडकर दोनों ही राजकीय समाजवाद में विश्वास रखते थे। डॉ0 अम्बेडकर के शब्दों में समस्या यह है कि अधिनायकवाद के बिना राजकीय समाजवाद तथा संसदीय लोकतंत्रा के साथ राजकीय समाजवाद कैसे रहे? इसका केवल यही हल दिखता है कि संसदीय लोकतंत्रा तथा संवैधनिक कानूनों द्वारा राजकीय समाजवाद अपनाया जाए जिसे संसदीय बहुमत द्वारा निलंबित, संशोधित अथवा समाप्त करना सम्भव होगा। इस प्रकार समाजवाद लाने संसदीय लोकतंत्र को स्थापित करने और अधिनायकवाद से बचने के हमारे तीनों उद्देश्यों की पूर्ति हो सकेगी।

डॉ0 अम्बेडकर ने राज्य शक्ति की सृजनात्मक भूमिका पर जोर दिया। ऐसे राज्य का उपयोग जमींदारों और पूंजीपतियों के निहित स्वार्थों को अनुशासित करने और उनके सामाजिक–आर्थिक आधार को समाप्त करने में किया जा सकता है। इनके अधिकारों को सीमित किये बगैर स्वतंत्राता का आम जनता तक नहीं पहुँचायी जा सकती। अतः बाबा साहेब ने कहा एक आर्थिक व्यवस्था में जिसमें खासी मजदूर उत्पादनरत होकर समय–समय पर किसी न किसी के नियम बनाने पड़ेंगे ताकि मजदूरों को काम मिल सके और उद्योग चलता रहे। अन्यथा जीवन असंभव हो जायेगा। राजकीय नियंत्रण से स्वतंत्रता का मतलब होगा व्यक्तिगत मालिकों की तानाशाही।

डॉ0 अम्बेडकर के मस्तिष्क में राजकीय समाजवाद की रूपरेखा स्पष्ट थी। अपनी रूपरेखा को उन्होंने राष्ट्र के समक्ष प्रस्तावित भी किया था।

1. सभी प्रमुख उद्योग सरकारी नियंत्रण में होंगे तथा सरकार द्वारा ही चलाए जायेंगे।
2. वे उद्योग भी जो प्रमुख नहीं है किन्तु आधारभूत है सरकार अथवा सरकारी उद्यमों द्वारा चलाए जायेंगे।
3. बीमा केवल सरकार के हाथ में होगी तथा प्रत्येक व्यस्क व्यक्ति को जीवन बीमा पॉलिसी लेनी आवश्क होगी।
4. कृषि राजकीय उद्योग घोषित होगी।
5. सरकार सभी बड़े एवं प्रमुख उद्योगों, बीमा कम्पनियों एवं कृषि भूमि का उनके मालिकों को डिबेन्चर्स के रूप में मुआवजा देकर राष्ट्रीकरण करेगी।
6. कृषि उद्योग निम्न प्रकार से चलाया जायगा।

(क) सरकार द्वारा अधिग्रहित भूमि को उचित आकार के पफार्मो में विभाजित करके ग्रामीणों में परिवार–समूह को ईकाई मानकर उत्पादन करने हेतु निम्न शर्तों पर आवंटित किया जायेगा।

(ख) फार्म पर सामूहिक खेती होगी।

(ग) फार्म पर सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार उत्पादन किया जाएगा।

(घ) किराएदारी (Tenancy) कर आदि देने के वाद बचे उत्पादन को निर्धरित तरीके से आपस में बाँटा जाएगा।

(1) भूमि सभी लोगों में जाति ध्र्म आदि के बगैर भेद के इस प्रकार बाँटी जायेगी कि न तो कोई जमीनदार होगा न किराएदार और नहीं भूमिहीन मजदूर।

(2) पानी, उपकरण पशु, खाद तथा बीज आदि उपलब्ध कराना सरकार का कर्त्तव्य होगा।

गांधी जी और बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर के विचारों में आमतौर पर एकता और समानता नहीं थी, उनके विचार एक दूसरे के प्रतिकूल माने जाते थे। यदि गांधी जी एक ध्रुव पर खड़े थे तो बाबा साहेब संभवतः बिल्कुल ही विपरीत ध्रुव पर थे, परन्तु दोनों का उद्देश्य मूलतः और अन्तत्वोगत्वा एक ही था देश का आर्थिक स्थिति का सुधार करना।

निष्कर्षतः डॉ0 अम्बेडकर ने अपनी पूर्ण योग्यता जिसे उन्होंने विदेशों के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों से अर्जित कर भारत लौटे थे। तथा वहाँ अपने पढ़ाई के क्रम में भारत के आर्थिक समस्याओं पर शोध प्रस्तुत किया था, जिसमें फ्ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रशासन और वित्त प्रबंध्न तथा रुपये की समस्या थी। जिसके आधर पर तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने भारत में रिजर्व बैंक की स्थापना की थी। बाबा साहेब ने देश के सामने कृषकों की छोटी जोतों पर तथा भारतीय जनसंख्या के आलोक में रोजगारों की कमी पर ध्यान आकृष्ट करते हुए बताया था कि भारत की मूल समस्याओं में निठल्लेपन की समस्या प्रमुख है।

उसके निदान के लिए देश में उद्योगों को बढ़ावा देने तथा राजकीय समाजवाद का सुझाव दिया था। जिससे निठल्ले लोग को समस्या तथा छोटे किसानों को अधिक उत्पादन व उचित मूल्य प्राप्ति का सुझाव अन्तर्निहित था।

lUnHk %

1. बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड़मय : खंड–II प्रकाशन डा. भीम राव अम्बेडकर फाउन्डेशन, नई दिल्ली पृ.265
2. वही, पृष्ठ–267
3. वही, पृष्ठ–268
4. वही, पृष्ठ–268
5. वही, पृष्ठ–271
6. वही, खण्ड–2 पृ.–313
7. बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड़मय : खण्ड–11– पृष्ठ–313
8. बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड़मय : खण्ड–11– पृष्ठ–314
9. डॉ. अम्बेडकर का आर्थिक दर्शन एस.आर. दारापुरी के आलेख से साभार

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 152-154

'kæksfr'kksnks ds efDrnkrk % tksfrck Qqys

MkW0 vo/ks'k dqekj*

भारतीय इतिहास में कुछ ऐसी सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियाँ रही हैं जिनके बलपर करोड़ों मनुष्यों के साथ अमानवीय व्यवहार, अन्याय एवं अत्याचार किया गया है। बहुत से वर्ग अनेक कठिनाईयों में पिसते रहे हैं। भारतीय इतिहास में बहुत कम ऐसे समाज सुधारक हुए, जिन्होंने उनकी यथार्थ समस्याओं की ओर ध्यान दिया। अधिकांश सुधारकों ने उनकी समस्याओं को उपेक्षा की दृष्टि से देखा और उनकी कठिनाईयों को दूर करने के लिए आवश्यक प्रयत्न नहीं किया। लेकिन कुछ समाज–सुधारकों ने उन दलित वर्गो की वास्तविक समस्याओं को ठीक–ठीक समझा, जो यथार्थतः "अर्द्ध–मानव का जीवन व्यतीत कर रहे थे"। उन्होंने उनको उँचा उठाने के लिए एक विशेष दृष्टिकोण अपनाया। जिसमें सक एक जोतिबा फुले भी थे, जिन्होंने अपने अथक परिश्रम से मानव–अधिकारों को सामान्य लोगों के लिए सुलभ बनाया।

पुष्यमित्र शुंग के सत्तापलट के बाद ब्राह्मणवाद की स्थापना और प्रभुत्व के लिए ब्राह्मणवादियों ने बौद्ध धर्म को अपने आक्रमण का प्रमुख लक्ष्य बनाया और उस पर बाहर और अन्दर दोनों ओर से कमजोर एवं निष्प्रभावी बनाने की भरपूर कोशिश की गई। डॉ. अम्बेडकर ने कहा है कि पुष्यमित्रा ने अपने राज्यारोहण के बाद बौद्धों और बौद्धधर्म के विरुद्ध अधिक जोर–शोर से कटुतापूर्वक सताने का आन्दोलन छेड़ दिया था। बाह्न तीर बौद्ध धर्म को किस निर्दयता से कुचला गया, इसका अनमान पुष्यमित्र की उस घोषणा से लगाया जा सकता है जिसमें उन्होंने प्रत्येक बौद्ध भिक्षु के कटे हुए सिर लाने वाले व्यक्ति को एक सौ स्वर्ण मुद्राएँ पुरस्कार में देने की बातें की थीं। बौद्ध धर्मग्रथ आर्य–श्री मंजू मूलकल्प, दिव्यावदान एवं तिब्बती लेखक तारानाथ के विवरणों से प्रतीत होता है कि पुष्यमित्र शुंग ने बौद्ध विहारों और स्तूपों को व्यापाक पैमाने पर आक्रमण कर नष्ट करवाया था। बौद्ध विहारों और स्तूपों पर हुए विनाशकारी आक्रमणों में हजारों बौद्ध भिक्षु मारे गये होंगे, हजारों विकलांग हुए होंगे और हजारों अपनी प्राण रक्षा के लिए बाध्य हुए होंगे। आक्रमण से बचने के लिए हजारों बौद्ध भिक्षुओं ने सीमावर्ती राज्यों श्रीलंका, वर्मा, नेपाल और तिब्बत आदि में भागकर शरण ली होगी। बौद्ध धर्म विरोधी आक्रमण और अमानवीय उत्पीड़न को देख कर आम गृहस्थों लिया होगा बौद्ध धर्मानुयायी अपने धन, जन और प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए ब्राह्मण धर्म में ही वापस लौट जाना स्वीकार कर लिया होगा। इस प्रकार बौद्ध धर्म पर हुए बाह्य ब्राह्मणवादी आक्रमणों ने उसे और उनके अनुयायियों को क्षत–विक्षत कर बिल्कुल कमजोर और निष्प्रभावी बना दिया तथा ब्राह्मणवाद के विस्तार का निर्विघ्न मार्ग प्रशस्त कर दिया।[2]

प्राचीन कालीन ऋग्वेद के पुरूष–सूक्त में कहा गया है कि संसार की समृद्धि के लिए ब्रह्मा ने अपने मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य एवं चरणों से शूद्र पैदा किया अर्थात् ब्रह्मा ने मानव जात को चार वर्णो में विभाजित किया। इस विभाग को वर्ण–व्यवस्था के रूप में महान् आदर्श माना जाता है। प्रत्येक वर्ण का कार्य क्षेत्र अलग–अलग है। यही कारण है कि हिन्दू विचारकों ने इस व्यवस्था को श्रम–विभाजन (Division of Labour) का प्रमुख आदर्श माना है। इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य न्याय एवं एकता बताया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना–अपना कार्य करने का अवसर दिया जाता था। प्रत्येक वर्ण–कर्तव्य पालन में संलग्न रहकर लाभान्वित होता था।[3] इस तरह से समाज को बाट दिया गया था।

*पूर्व शोध छात्र, इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

मनुस्मृति और बौद्ध ग्रन्थों के उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि अस्पृश्य जातियों का आर्थिक जीवन बड़ा ही संकटमय था। वे लोग आर्थिक विकास के विभिन्न चरणों में थे। आर्यों के आक्रमण और सत्ता हस्तगत किये जाने के कारण उनका स्वभाविक आर्थिक विकास अवरूद्ध हो चुका था और वे पिछड़े हुए आर्थिक जीवन स्तर से रहने के लिए विवश थे। मनुस्मृति से स्पष्ट है कि चांडालों और श्वपाकों की सम्पत्ति सिर्फ कुत्ते और गधे थे। वे पहले तो शिकारी या बहेलिये के कार्य में संलग्न थे, किन्तु उनका जनजातीय जीवन तोड़कर उन्हें ब्राह्मणवादी व्यवस्था में शव ढोने, शव जलाने, सड़कों पर झाड़ू लगाने और राजाज्ञा से अपराध्यिों को मृत्यु दंड देने जैसे कार्यों में लगाये गये थे। उन्हें किसी उत्पीड़न कार्य में नहीं लगाया गया था। वे मुर्दों या मृत्यु दंड पाये अपराधियों के शरीर पर के कपड़ उतार कर पहनते थे, लोहे धतु के गहने पहनते थे और टूटे–फूटे बर्तनों में भोजन करते थे। मृत्यु दंड पाये अपराधियों के बिस्तरे का वे उपयोग करते थे। उनका आर्थिक जीवन बड़ा दयनीय था। निषाद, मेद, अन्ध्र, मृदगु, चंचु आदि लोग शिकारी अवस्था में जीवन बसर कर रहे थे। निषाद मछली पकड़ने का कार्य करते थे और अन्य जातियों के लोग जंगली जानवरों का शिकार कर आजीविका चलाते थे। किन्तु कई अछूत जातियाँ शिल्कार और व्यावसायिक थीं। धिग्वण, कारवर और चर्मकार लोग चर्म–शिल्प के कार्यों से अपनी आजीविका चलाते थे। सूत रथकार थे। सूत और आयोगब जातियाँ लकड़ी शिल्प का कार्य करती थीं। संभवतः वे कृषि औजारों और घर के लिए लकड़ी और औजारों को बनाते होंगे। पांडु–सोपाक बेंत शिल्प से बनी वस्तुएँ बनाते थे। कृषि और घरों में काम आने वाले सूप, डलिया, चटाईयाँ आदि बनाकर वे आजीविका का पालन–पोषण करते होंगे। मार्गव और कैवर्त लोग नाविक थे। वे मछली पकड़ने, बने मालों को जल रास्ते से एक जगह से दूसरे जगह ले जाने, लोगों को नदी, नाले आदि पार कराने के कार्यो को करते होंगे। वेणजाति के लोग ढोल बजाने के कार्य करते थे। संभवतः वे धार्मिक कार्यों और विवाह आदि अवसरों पर ढोल बजाते होंगे, जैसे कि डोम और चमार जाति के लोग अभी भी ये कार्य करते हैं। मगध लोग जंगलों की चीजें लाकर बेचते एवं स्थानीय व्यवसाय में लगे हुए थे, संभवतः इसीलिए व्यवसाय से जुड़े होने के बाद भी ब्राह्मणों को उनसे घृणा थी।

प्राचीन काल में, जब वर्ण–व्यवस्था बहुत अवनति की ओर चली गयी, तब विभिन्न प्रकार की बुराईयों ने मनुष्य के उपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और जब वैदिक समाज व्यवस्था नष्ट–भ्रष्ट हो गई, तब कुछ महान पुरुषों ने सामाजिक–धार्मिक सुधारों के लिए बहुत ही प्रभावशाली आन्दोलन किये। महावीर और बुद्ध जैसे महर्षियों ने परम्परावादी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठायी। उन्होंने "मानव की एकता और भ्रातृत्व" पर बल दिया। सम्पूर्ण हिन्दू धर्म के प्रति उन्होंने एक सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया, ब्राह्मणवाद के विरूद्ध आन्दोलन किये और ब्राह्मणों की अनुचित प्रभुसत्ता के महल को इन मानव प्रेमियों ने हिला दिया। अन्य शब्दों में उनके इन कुशल कार्यो से उन सभी दीन एवं असहाय वर्गो को सान्त्वना एवं बल मिला, जो हिन्दू समाज व्यवस्था से दुःखी थे।

दार्शनिक एवं धार्मिक क्षेत्र में जैन धर्म का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है, किन्तु बौद्ध धर्म की तुलना में जैन धर्म का सामाजिक आन्दोलन अधिक सक्रिय नहीं रहा। बौद्ध धर्म का उद्‌देश्य उस समाज वर्तमान हिन्दू हठधर्म एवं सामाजिक अन्याय का अन्त करना था। मानव स्वरूप के अनुरूप बुद्ध ने जाति–व्यवस्था के बंधनों को तोड़ डाला और समस्त मानवता के लिए समता का पाठ पढ़ाया।

वस्तुतः मनुस्मृति एवं अन्य सभी ब्राह्मण धर्म–ग्रन्थां में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता, ब्राह्मणवादी संस्कृति और वर्ण जाति व्यवस्था का पुनर्स्थापना के लिए पुरजोर कोशिश की गई है। ब्राह्मणवादी प्रतिक्रांति के परिणाम स्वरूप मगध साम्राज्य पर ब्राह्मणवादियों का प्रभुत्व स्थापित हुआ और उसके बाद बौद्ध–धर्म एवं उसके अनुयायियों पर चारों ओर से ब्राह्मणवादी प्रभाव एवं प्रभुत्व स्थापित किये जाने लगे। इसी क्रम में शूद्रों, वर्ण संकरों या अछूत लोगों एवं स्त्रियों के प्रति भी कठोर प्रतिबन्ध लगाये गये, क्योंकि वे लोग भी अपने हित में बौद्ध धर्म और मोर्य शासन व्यवस्था के समर्थक बने हुए थे। शक और कुषाण शासक अवश्य ही वर्ण व्यवस्था के पोषक नहीं थे, इसलिए शूद्रों और अछूतों को थोड़ी राहत अवश्य मिली होगी, किन्तु सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तरों पर ब्राह्मणवादी प्रभुत्व के कारण जो व्यवस्था विकसित हुई, उसका

चतुर्दिक विकास गुप्तयुग में दिखलाई पड़ा और 'ब्राह्मणवाद का सवर्ण–युग आया। यही कारण है कि परवर्ती काल में ब्राह्मणवादी ग्रन्थों में न सिर्फ अछूत जातियों की संख्या में वृद्धि दिखलाई पड़ती है, बल्कि उनके प्रति घृणा, अमानवीय उत्पीड़न और अस्पृश्यता के ठोस रूप भी सामने आये हैं। डी.डी. कोसाम्बी ने ठीक ही कहा है कि "ब्राह्मणवादियों की संकीर्णता, अवैज्ञानिकता, गुप्त ज्ञान, अंध–विश्वास एवं स्वार्थ लोलुपता आदि के कारण सम्राट अशोक और उनके उत्तराधिकारियों द्वारा सभी भारतीय लोगों के लिए प्रवर्तित 'धम्म' और क्रांतिकारी बौद्ध धर्म का स्वरूप ही बदल गया। शूद्रों, स्त्रियों और अछूत लोगों को जाति बन्धन तथा उँच–नीच के अलगाव की कठोरता में ब्राह्मण धर्म–ग्रन्थों एवं संस्कृति ने उस सीमा तक जकड़ दिया कि महात्मा बुद्ध और सम्राट अशोक के सर्वमान्य न्याय, समानता, भाईचारा आदि को लागू करने की संभावना ही समाप्त हो गई।

उन्नीसवीं सदीं में हुआ सांस्कृतिक–वैचारिक संघर्ष दो मोर्चों पर चला था। एक तरफ तो वह पारस्परिक संस्कृति के प्रतिगामी तत्वों से जूझ रहा था, दूसरी तरफ इसका मुकाबला सत्य और संरक्षित औपनिवेशिक संस्कृति और विचारधारा से था। शुरुआती दौर की सुधार की कोशिशें भारतीय संस्कृति की रूढ़ियों को दूर करने के लिए की गई थी। धर्मिक क्षेत्र में सुधारवादी आन्दोलन मूर्तिपूजा, बहुदेववाद और पुजारियों के एकाधिकार को खत्म करने और धर्मिक कर्मकाण्ड के सरलीकरण के लिए संघर्ष किया। ये मुद्दे न सिर्फ धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थे, क्योंकि धर्म की समाज पर काफी मजबूत पकड़ थी। इस संघर्ष से लोगों को धर्मभीरूता के जाल से मुक्त कराया और पुजारियों द्वारा किए जा रहे शोषण को खत्म कराया। रानाडे, दयानन्द और विवेकानन्द ने भी तत्कालीन जाति–व्यवस्था का विरोध किया। जहाँ सुधारवादी आमतौर पर इस व्यवस्था को खत्मे के पक्ष में थे, वहीं ये लोग चर्तुवर्ण को बनाए रखने के समर्थ थे। उत्पादन एवं निर्माण के काम में लगे बहुसंख्यक अर्जक निरादर व दरिद्रता की आग में झुलस कर मर रहे हैं इनके कष्टों का अनुभव तो दूर की बात बल्कि जानकारी भी नहीं है कि ये अर्जक निरादृत और दरिद्रता के शिकार इसी वर्ण व्यवस्था के चलते भोग रहे है। समता नैसर्गिक है और इसी से ही विकास होगा। यह बात किसी भी उच्चवर्गीय लोगों के द्वारा न सोचा गया, न ही समझाया गया। आधुनिक भारत में शूद्रातिशूद्रों के उत्थान के विभिन्न आयामों में एकमात्र दलित शूद्र अतिशूद्र को सम्मानजनक स्थिति में पहुँचाने के लिए जोतिबा फुले जीवन पर्यन्त संघर्ष करते रहे।

जोतिबा फुले के क्रांतिकारी एवं प्रगतिशील विचार परिस्थितियों के दबाव, उनके कटु अनुभवों, निष्कर्षाधारित चिंतन एवं शोध जन्य विचारों के उपज है। इसे उनके साहित्यों, रचनाओं और क्रिया–कलापों में देखा और समझा जा सकता है। 1848 ई0 के आस–पास के वर्ष दुनिया के लिए आशा की किरण है। एक ओर मार्क्स एवं एंगेल्स आर्थिक क्रांति के विषय में अध्ययन कर लिख रहे थे, वहीं जोतिबा फुले सांस्कृतिक और सामाजिक क्रांति के विषय में न मात्र लिख रहे थे, बल्कि रचना और संघर्ष के द्वारा क्रांति की मजबूत नींव डाल रहे थे।

lUnHk %

1. बर्नाफ एल : इंट्रोडक्शन आल हिस्टरी ऑन बुद्धिज्म, इण्डिया दूसरा संस्करण पृ–338
2. डॉ विलक्षण रविदास : अछूत जातियाँ और बौद्ध धर्म 2009, पृ– 184
3 पी0एल0 नराखू :द एसन्स आफ बुद्धिज्म 1958 पृ– 117
4. हरि नरके : महात्मा फुले : साहित्य और विचार 1993 पृ– 80
5. कोसाम्बी दामोदर धर्मानन्द : प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता – 1992 पृ0– 214

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 155-157

Hkkjrh; ukjh vkj mudk lEeku

Mk0 lrh'kpUn*

भारतीय महिलाओं में आत्म सम्मान का अध्ययन, विशेष रूप से ग्रामीण महिलाओं के परिप्रेक्ष्य में अत्यंत महत्वूपर्ण है। यह मानव संसाधन से सम्बंध रखने वाली किसी भी राष्ट्रीय नीति का महत्वपूर्ण अंग है। एक आम धारणा है कि गाँव की महिलाओं को वह सुविधाएँ प्राप्त नहीं है जिनके द्वारा वह अपनी क्षमाताओं का पूरा लाभ उठा सकें। वह पुरूषों की बराबरी नहीं कर सकती, इसलिए नहीं कि उनमें क्षमता नहीं हैं बलिक इसलिए कि उन्हें उचित अवसर और साधन प्राप्त नहीं है। वह आर्थिक एवं सांस्कृतिक धारा से कट कर रह जाती है। वैज्ञानिक ढंग से किया गया शोध इस आम धारणा की पुष्टि करता है। पुरुष और महिलाएँ अपनी अधिकांश मानसिक और सामाजिक विशेषताओं के अनुसार एक दूसरे से भिन्न हैं, हर व्यस्क व्यक्ति के सामने उसकी स्त्रियोचित या पुरुषोचित पहचान होती है जो उसके व्यवहार को एक दिशा प्रदान करती है। हर व्यक्ति को एक पहचान के साथ आत्मसात करता है। इस प्रक्रिया के दौरान उसका सामना उन सीमाओं से होता है जो उसकी सभ्यता उसके लिए निर्धारित करती है। उचित विचार, मनोवृत्तियाँ और व्यवहार। जो किसी सभ्यता से पुरुषों और महिलाओं के साथ जोड़े जाते हैं वास्तव में वह स्त्री एवं पुरुषोचित गुण हैं जो समाज द्वारा तय किये जाते हैं। कुछ समय पहले तक ही महिलाओं से अपेक्षा की जाती थी कि वह पुरूषों से दबकर रहेंगी और पुरूष उनपर हावी रहेंगे। सच तो यह है कि सही अपेक्षा आज भी है। ऐसी महिलाऍं जो अपना अस्तित्व मनवाने का प्रयास करें और मर्दों के मुंह लगें, पुरुषों से मुकाबला करे, उनके समकक्ष पहुँचने या उनसे अनसे आगे निकलने का प्रयत्न करे तो उसे पसन्द नहीं किया जाता। लोग उसकी खिल्ली उड़ाते हैं।

मनु के बनाए नियमों को लागू करना है तो स्त्री के प्रति तिरस्कार, घनघोर घृणा नारी तू महाठगिनी है, तू नरक का द्वार है' कहने के साथ–साथ उसके अस्तित्व को खारिज करना होगा, नहीं तो पितृसत्ता स्त्री पर आधिपत्य कैसे जमा सकेगी? बलात्कार संबंधी पहले से मौजूद सामाजिक नैतिक मान्यताओं को और बर्बर बनाए जाने की यह पहल है।[1]

पितृसत्ता एक व्यवस्था के रूप में किस प्रकार से काम करती है इस बात को समझने के लिए विचाराधरा का बहुत अधिक महत्व है। विचारधारा की यह अहमियत हमें गर्डालर्नर द्वारा उठाए गए एक क्रेंद्रीय मुद्दे की ओर ले जाते हैं : पितृसत्ता की व्यवस्था को सदियों तक अक्षुण्ण बनाए रखने में महिलाओं का सहयोग। विचाराधारा के तौर पर पितृसत्ता की व्यवस्था के दो पहलू हैं : एक, यह सहमत उत्पन्न करती है : महिलाएं पितृसत्ता के बने रहने में 'सहायता' देती हैं, क्योंकि वह पुरूष वर्चस्व की विचारधाराओं को आत्मसात करने के माध्यम से उसके प्रति अपनी सहमति प्रदान करती है। सहयोग या मिलीभगत को सहमति के रूप में कई तरीकों से प्राप्त किया जाता रहा हैः उत्पादक संसाधनों तक पहुंच का न होना और परिवार के पुरूष मुखिया पर आर्थिक निर्भरता, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है : उच्च वर्गों की अनुकरणशील और निर्भर महिलाआं को मिलने वाले विशेषाधिकार और सम्मान पुरुष श्रेष्ठता और/या भिन्न कार्यक्षेत्रों की विचारधाराएं और पितृसत्ताओं की विचारधाराओं और रीति–रिवाजों के विरोध की स्थिति में बल प्रयोग या बल प्रयोग का भय वगैरह। इस प्रकार सहयोग या सहमति एक तरह से उगलवा ली जाती थी, न कि स्वेच्छा से दी जाती थी क्योंकि भौतिक संरचनाओं में महिलाओं को पराश्रित पात्र

*पूर्व शोध छात्र, इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

के रूप में बाहर निकाल दिया जाता था। इसलिए यह अवश्य समझा जाना चाहिए कि पितृसत्ता महज एक वैचारिक व्यवस्था नहीं है बल्कि उसका एक भौतिक आधार भी है। इस प्रकार, एक बार महिलाओं को वंचित कर देने से उनका सहयोग प्राप्त करना आसान हो जाता है क्योंकि जो व्यवस्था का अनुकरण करने लगती हैं उन्हें न केवल वर्गीय सुविधाएं मिलने लगती हैं बल्कि मान–सम्मान के तमगों से भी नवाजा जाता है। इस प्रकार जो स्त्रियां पितृसत्ता के कायदे–कानूनों और तौर तरीकों को अपना सहयोग या सहमति नहीं देती हैं उन्हें पथभ्रष्ट करार दे दिया जाता है और उन्हें उनके पुरुषों के भौतिक संसाधनों के उपभोग से बेदखल किया जा सकता है। इस प्रकार सम्मानित और पथभ्रष्ट के बीच विभाजन महिलाओं को एक–दूसरे से काट देता है। इस प्रकार सम्मानित और पथभ्रस्ट के बीच विभाजन महिलाओं को एक –दूसरे से काट देता है जबकि वह पहले सही वर्गों के स्तर पर बंटी हुई भी हो सकती है। संपतिशाली वर्गो के स्त्री–पुरुषों के समूह में स्त्रियों की एक और तरीके से भी पुरस्कृत किया जाता है। पैतृकवादी वर्चस्व के तहत स्त्री और पुरुषों के परस्पर दयित्व इस प्रकार काम करते हैं कि स्त्री की यौन, आर्थिक, राजनीतिक और बौद्धिक अधीनता के बदले में उन्हें निचले वर्गों के स्त्री और पुरुषों का शोषण करने की शक्ति में पुरुषों की हिस्सेदारी मिल जाती है। एक विशेष वर्ग के स्त्री–पुरुषों के साक्षा पहलुओं और उनके बीच मूलभूत असमानताओं को एक जेंडर वर्कशॉल में सरल लेकिन बेहद सटीक बिंबों के जरिए एक ग्रामीण महिला ने बड़ अच्छे से अभिव्यक्त किया था :– हमारे परिवारों में पुरुष सूर्य की तरह हैं, उनका प्रकाश उनका अपना होता है क्योंकि वह संसाधनों के मालिक हैं, उनके पास आय है, घूमने फिरने और अपने निर्णय लेने की आजादी है। महिलाएं उपग्रहों की तरह हैं जिनके पास अपना कोई प्रकाश नहीं होता। वह केवल तभी प्रकाशित होती हैं, जब और यदि सूर्य की रोशनी उन तक पहुंचती है।''[2] दूसरे शब्दों में केवल तभी जब वे व्यवस्था के अनुकरण करें और पितृसत्ताओं की जरूरतों की पूर्ति करें।

वैसे तो महिला अधीनीकरण और स्त्री यौनिकता पर नियंत्रण पितृवंशात्मक उत्तराधिकार की देन है और अनेक जगहों पर प्रचलित है लेकिन जातिशुद्धता कायम रखने के लिए वह दक्षिण एशिया में बहुत ही कठोर रूप में प्रभावी है। हालांकि, प्रारंभ में जाति व्यवस्था हिंदू समाज का ही विशिष्ट भाग थी लेकिन बाद में इस क्षेत्र में ईसाई और मुस्लिम समुदायों में भी यह काफी मजबूत हो गइ। ब्राह्मणवादी पितृसत्ता नियमों और संस्थाओं का एक ऐसा समूह है जिसमें जाति और जेंडर एक दूसरे से संबंधित हैं और परस्पर एक दूसरे को आकार प्रदान करते हैं और जहां जातियों के बीच की सीमाएं बनाए रखने के लिए महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है। इस ढांचें के पितृसत्तात्मक नियम सुनिश्चत करते हैं कि जाति व्यवस्था को बंद सजाती यौन विवाह संबंधों के जातिक्रम का उल्लंघन किए बिना बनाए रखा जा सकता है। महिलाओं के लिए ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक कानून के जातीय समूहों के अनुरूप एक–दूसरे से भिन्न होते हैं, जिसमें महिलाओं की यौनिकता पर सबसे कठोर नियंत्रण उंची जातियों में पाया जाता है। ब्राह्मणवादी पितृसत्ता के कायदे–काननू अकसर शास्त्राों से लिए जाते हैं, विशेषकर उच्च जातियों को विचारधारात्मक आधार प्रदान करते हैं लेकिन कई बार उन्हें निचली जातियों द्वारा भी आत्मसात कर लिया जाता है, विशेषकर जब वह जाति सामाजिक क्रम में उपर उठने की आकांक्षा रखने लगती है। जैसे श्रेणीबद्ध असमानताएं जाति व्यवस्था की विशेषता हैं वैसे ही, श्रेणीबद्ध पितृसत्ताएं दक्षिण एशिया में स्त्रियों के अधीनीकरण की विशिष्टता है। इस क्षेत्र में जिस नियंत्रण प्रक्रिया के जरिए जाति और जेंडर श्रेणीक्रम को पुनर्स्थापित किया गया वह त्रिस्तरीय थी : पहला उपकरण विचारधारा थी। इसे महिलाओं ने पतिव्रता पत्नी सुलभ कर्तव्यपरायणता के रूप में आत्मसात कर लिया, जिससे महिलाओं में पतिव्रता और और कर्तव्यपरायणता की आकांक्षा उत्पन्न होती है। दूसरे, शास्त्राों या क्षेत्रीय व्यवहार में उल्लिखित कानून और रीति रिवाज थे। और तीसरा तत्व स्वयं राज्य था, प्रारंभिक काल में भी और निकट अतीत में भी। दक्षिण एशिया में पितृसत्तात्मक शक्ति और जातिक्रम को बनाए रखने में महिलाओं को सहयोगी बनाने के लिए सबसे प्रभावी तरीका परोपकारी पैतृकवाद का रहा है जिसमें आज्ञाकारी स्त्रियों को कुछ विशेष अधिकार और सुविधाएं प्रदान की गई, उन्हें सुरक्षा और सम्मान का वह स्तर दिया गया जो कई बार पूजा के स्तर तक चला जाता था। ब्राह्मणवादी पितृसत्ता के सांस्कृतिक मॉडलों में, माइथोलॉजी के जरिए महिलाओं का इस प्रकार

समाजीकरण किया गया कि वह अपने सबलीकरण के लिए अपनी शुचिता और कर्तव्यपरायणता में विश्वास करने लगे। बलिदान और निष्क्रिय स्वीकृति की विचारधारा, अर्थात पतिव्रत स्त्री के लक्षणों के जरिए महिलाएं मानने लगीं कि उनका परिष्कार भी हो रहा है और उन्हें विशेष शक्ति भी प्राप्त हो रहा है।इसके बाद महिलाएं मानने लगी कि उनके भीतर एक भिन्न और विशिष्ट शक्ति है, एक श्रेष्ठ और आध्यात्मिक शक्ति जो चमत्कार भी कर सकती है। पैतृकवाद और स्त्रीत्व के सांस्कृतिक मॉडलों के अधीनीकरण के विचार को पूरी तरह धुंधला दिया. इस तरह यह काफी आसान हो गया कि महिलाओं के जीवन को निर्धारित करने वाली पितृसत्तात्मक संरचनाओं में ही महिलाओं का सहयोग लिया जाने लगे।[3]

भारतीय महिलाओं के बारे में नयी दृष्टि का उदय होने पर काफी शिक्षित महिलाएं भारतीय नारी की सामाजिक दशाओं को सुधारने की दृष्टि से रचनात्मक कार्य के लिए आगे आयीं। परंतु, अधिकांश उत्साहपूर्ण प्रयास बड़े शहरों में केंद्रिंत रहे। लेडी अबाला बोस उन अग्रणी महिलाओं में से थी जिन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों में सूदूर कोनों तक सहायता के लिए हाथ बढ़ाया। लड़कियों के लिए पहले तीन विद्यालय तो 1919 में कलकत्ता में ही स्थापित किये गये थे, परंतु 1921 ऐ उनकी गतिविधि –'नारी शिक्षा समिति' के माध्यम से गांवों की ओर फैलती गयी।[4]

महिलाओं की व्यक्तिगत रूचियों, विशिष्ट योग्यताओं, सामाजिक परिस्थितियों, आकांक्षओं और स्त्रियोचित गुणों को देख कर ही उनके लिए ऐसे अवसर उपलब्ध कराने चाहिए जिनसे उनके व्यक्तित्व का पूरा विकास हो सके। हाँ यदि हम यह सोंचे कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हमें वर्तमान मान्यताओं और स्त्री–पुरुष कर्त्तय विभाजन व्यवस्था को पूर्णतया बदल देना है तो यह उचित नहीं होगा। महिलाओं के लिए जीवन के हर क्षेत्र में पुरूषों का मुकाबला करना संभव भी नहीं है। जिन कार्यो के लिए अधिक जैविक उर्जा की आवश्यकता होती है वहाँ उनका काम कर पाना लगभग असंभव है। महिलाओं के आत्मसम्मान में वृद्धि के लिए आवासीय घरेलू और सामाजिक–सांस्कृतिक ढांचे पर अधिक ध्यान देना होगा। महिलाओं में पुरुषों के साथ अनुचित स्पर्द्धा की भावना नहीं पनपनी चाहिए।[5] पुरूषों और स्त्रियों दोनों को अपनी अपनी योग्यताओं को विकसित करने का पूरा अधिकार है। इनका उपयोग करने और इनसे लाभ उठाने का अधिकार भी दोनों को है परन्त यह विकास का उपयोग अपनी–अपनी जगह रहकर होना चाहिए। होड़ में एक दूसरे से आगे बढ़ने या एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए नहीं। मूल मुद्दा यहाँ यह है कि लिंग के आधार पर कोई पक्षपात पूर्ण व्यवहार नहीं होना चाहिए। दोनों की क्षमाताओं को ध्यान में रखते हुए , दोनों को समान अवसर मिलना चाहिए। दोनों की क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए, दोनों को समान अवसर मिलना चाहिए ताकि वह अपने जीवन के लक्ष्य के अनुसार शिक्षा तथा व्यवसाय का चयन कर सकें। सर्वेक्षण द्वारा नागरिक, अर्द्ध नागरिक एवं ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं की रूत्रियों का पता लगाना और उनके अनुसार सुविधाएँ और साधन उपलब्ध कराना चाहिए। अपनी योग्यता एवं रूचि के अनुसार जब कोई काम करेंगी तो उनके अन्दर कुछ कर सकने की भावना जागृत होगी, इससे उनके आत्म सम्मान में निश्चय ही वृद्धि होगी।

lUnHkZ %

1. दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, विमल थोरात, संस्करण 2010, पृ0 66
2. नारीवादी राजनीतिक संघर्ष एवं मुद्‌दे, साधना आर्य, निवेदिता मेमन, संस्करण 2016, पृ0 6
3. भारतीय पुनर्जागरण में महिलाएँ, सुशीला नैयर, कमला मनकेकर, संस्करण, 2012, पृ0 119
4. साहित्योसिक में स्त्री विमर्श, शिवचंद्र, संस्करण 2010, पृ0 473, 11
5. भारतीय परम्परा, आधुनिकता और स्त्री विमर्श, प्रो0 चम्पा सिंह, मित्तल एण्ड संस, संस्करण 2016, पृ0 74

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 158-159

xhfrdkO; dh ijEijk

m"kk dqekjh*

संवेदना से पूर्व वह रसात्मक काव्य जिसमें संगीत तथा लय सहज रूप से विराजित हो उसे गीतिकाव्य कहते हैं।

राजनाथ शर्मा के अनुसार– कविता की मुख्य प्रेरणा आत्मानुभूति जब मधुर शब्दों द्वारा स्वाभाविक गीतिमय और गेय स्वर लहरी के साथ प्रकट होती है, उसे 'गीति' कहा जाता है।

कृष्ण नारायण 'मागध' के अनुसार संवेदना एकान्तता का समाहित रूप में धार्मिक प्रभाव डालने वाला, परिस्थिति विशेष में वैयक्तिक अनुभूतियों का पूर्ण किन्तु संक्षिप्त भावावेश, सुरलय और लयात्मक चित्रण ही गीतिकाव्य कहलाता है।[1]

महादेवी वर्मा के कथनानुसार– ''सुख–दुख की भावावेशमयी अवस्था, विशेषकर गिने चुने शब्दों में स्वर साधन के उपयुक्त चित्रण देना भी गीत है।''[2]

डॉ. कामेश्वर प्रसाद के अनुसार वैयक्तिक भावावेश आदि तीव्र अनुभूतियों से प्रेरित भाव स्निग्ध हृदय जब भाषा–धुन पर निजी रागात्मकता की प्रत्यंचा के सहारे सुर ताल–लय से युक्त स्वर बाण का संधान करता है, तब गीति या प्रगीति का जन्म होता है।''[3]

राजनाथ शर्मा के अनुसार– ''कविता की मुख्य प्रेरणा आत्मानुभूति जब मधुर शब्दों द्वारा स्वाभाविक गीतिमय और गेय स्वर लहरी में तीव्रता के साथ प्रकट होती है, तो उसे गीति कहा जाता है।''[4]

सभी विद्वानों के मतों के आधार पर संवेदनापूर्ण रसात्मक काव्य जो संगीत तथा लय से निबद्ध हो, गीतिकाव्य कहलाता है। गीतिकाव्य का संबंध हृदय के उद्‌गार से है। भावना के साथ भाषा की सरलता मधुर और रंजकपूर्ण होनी चाहिए।

गीतिकाव्य में भावों की अभिव्यक्ति तीव्र होनी चाहिए, जिससे इसका प्रभाव अधिक पड़े। साथ ही हमें इसके भावों का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है जिससे इसके भाव अविच्छिन्न और अस्पष्ट न हो।

गीति काव्य परम्परा– गीति परंपरा सामाजिक सुख–दुख के भावों का मिश्रित रूप है। जीवन के सुख–दुख मिलन–विरह, उतार–चढ़ाव आदि भावनाएँ सहज रूप से व्यक्त होते हैं गीति परम्परा में। इसका जन्म हृदय से होता है न कि बुद्धि से। इसमें भावाभिव्यक्ति स्वाभाविक और हृदय से होता है। जैसे–

lkujk ufg;s x<yd xguk gej xs]
djs Ns jxM+ xs ukA
dgfy;s xf<+ ns MVdj dkM+k]
cfFk;k cqy;dh ,fjx Nk;Mk]
lkujk xf<+;s y yk;s dxuk gej xs
djs Ns jxM+ xs ukA
dgfu;s xf<+ ns pUngkj
gqlqyh ekdMh udlkgkj
lkujk xf<+;s ys ys fVdok ge xs
djs Ns jxM+ xs ukA

* शोध–छात्रा, संगीत विभाग, बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

n[k lkujk d pr jkb]
ifgu y, yyd x<okb
lkujk Hkkfx ijy njHkxk lgj x
djN jxM x uk

उपर्युक्त गीत में नायिका के हृदय से उत्पन्न सहज भाव दृष्टिगत होता है।

cM j tru ge fl rk cVh ik lyk]
lgk j?kok'kh uu tk,A
feyh fy; tyh fy; lf[k g cfgfu;k]
vc lhrk trh l ljkjhAA
vkx vkx j?kcj ikN&ikN Mkfy;k]
rkd fiN yNeu HkkbA

साहित्य गीति का प्राचीन रूप वेदों से ही प्राप्त होता है। वेद काल में आर्य प्रकृति के काफी निकट थे। सामवेद सम्पूर्णतः गीतों का संग्रह है। वाल्मीकीय रामायण में भी गेय तत्व दृष्टिगत होते हैं। लव–कुश भी इसका गान किया करते थे। कालिदास का 'मेघदूत' संस्कृत साहित्य में प्रथम ऐसा काव्य है, जिसे गीतिकाव्य की संज्ञा दी गई है। उनके नाटक में भी गेय काव्य की प्रधानता है।

बौद्ध साहित्य में थेरी गाथाओं का वर्णन मिलता है जो गेयता की दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गाथा का वास्तविक अर्थ गीत ही होता है। ठीक इसी प्रकार जैन साहित्य भी गेय काव्य प्राप्त होते हैं। अपभ्रंश के सिद्ध कवियों को गीति–काव्य का महत्वपूर्ण स्थान देने का श्रेय जाता है। सिद्ध कवियों को गीतियाँ 'चर्यापद' के नाम से जाना जाता है। 'चर्यापदों' में वैदिक साहित्य तथा बौद्ध साहित्य के तुलना में गीतितत्व अधिक है। कवियों की गीति शैली ही संस्कृत और अपभ्रंश की दो धाराओं से आम हिन्दी में गीतिकाव्य का प्रकटीकरण होता है। प्रथम शैली भागवतकार, क्षेमेन्द्र, जयदेव, विद्यापति आदि को भी प्रभावित करती है और द्वितीय शैली सिद्धों नाथों तथा संत कवियों में प्रस्फुटित होती है।

वैष्णव भक्त कवियों को साहित्य परम्परा में रामकाव्य और कृष्णकाव्य में गीतों का उत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है। अष्टछाप के कवियों के साथ–साथ तुलसीदास, मीराबाई आदि कवियों ने भक्तिगेय काव्य की परम्परा को पोषित किया। सुन्दरदास, कबीरदास, दादु इत्यादि भक्त कवियों ने लोगों के भावों को अपने गीत मे ंसमाहित कर काव्य में अभिव्यक्त किया ।

वेदों से भी प्राचीन है गीति काव्य परम्परा। गीति–परम्परा साहित्यिक रूप में विकसित हुई यह परम्परा आज भी सततृ विकास की ओर अग्रसर है। गीति परम्परा में रचनाकार अपने हृदय से उत्पन्न सहज भाव को अपनी रचना में पिरोकर प्रस्तुत करते हैं।

lUnHk %

1. मागध कृष्ण नारायण प्रसाद, साहित्य : युग और धारा, पृ. 533
2. मीरा संगीत अंक, पृ. 14
3. शर्मा कामेश्वर, बोध और व्याख्या, पृ. 273
4. शर्मा राजनाथ, साहित्यिक निबन्ध, पृ. 680

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 160-162

vkpk;Z gtkjh izlkn f}osnh ds fucU/kksa ij johUnz&izHkko

MkW0 vkyksd iz[kj*

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी निबंधाई दुनिया के गौरव गिरि–श्रृंग हैं। वे एक साथ इतिहास लेखक, शोधक, समीक्षक, निबंधकार, उपन्यासकार–सब कुछ थे। मगर उनकी साहित्यिक प्रतिभा का प्रकाश जिस रूप में सर्वाधिक तरंगदैर्घ्य के साथ चमका है– वह है उनका मानवतावादी निबंधकार रूप। हिंदी साहित्य के साथ–साथ संस्कृत, ज्योतिष, धर्म, दर्शन आदि के भी वे प्रकाण्ड पंडित थे।

बंगला भाषा का भी उन्होंने गहरा अनुशीलन किया था। तपोभूमि विश्वनीड़ शांतिनिकेतन में वे 1930 से 1950 तक रहे, जहाँ उन्हें कई स्वनामधन्य कृती–पुरूषों का अंतरंग सान्निध्य मिला तथा उनकी मरछुआई भाव–ऊर्जा पुनर्नवा हो उठी।

आचार्य द्विवेदी की पांडित्य–प्रज्ञा ने भारतीय ज्ञानसिंधु में जी भरकर डुबकी लगायी है। आचार्य क्षितिमोहन सेन के सान्निध्य में रहकर उन्होंने संत–काव्य का गहरा अध्ययन किया था। उसका छक–छक कर रसपान किया था। इसीलिए उनके निबंधों में भारतीय धर्म–साधना का उज्ज्वल आलोक दिखाई पड़ता है। संस्कृति उनके निबंध–लेखन की स्वकीय पहचान है जो उनके निबंधों में बहुवर्णी प्रकाश बन झिलमिलाता रहता है। प्राचीन ऋषियों की आत्मा उनके मन–मानस पर छाया रहता है। विश्वभारती शांतिनिकेतन में करीब बारह वर्ष तक द्विवेदी जी को महामानव रवींद्र तथा अपने समय के श्रेष्ठ मनीषी तथा तत्वचिंतक के स्नेह–सान्निध्य में रहने का सौभाग्य मिला था। उस महान् गुरू के संसर्ग–सान्निध्य से ही द्विवेदी जी का वैदुष्य जागा था। उनके अज्ञानता का तिमिर भागा था। कविवर रवींद्रनाथ ने आचार्य द्विवेदी के अंतसलोक को किस कदर प्रेरित–प्रभावित किया था। यह उन्हीं के शब्दों में सुन सकते हैं– "मुझे कविगुरू के आश्रम में बीस वर्षों तक रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आरंभ के लगभग बारह वर्षों तक मैंने उनकी छाया में रहने का सुअवसर प्राप्त किया है। इन दिनों मैंने उन्हें निकट से, बहुत निकट से देखने का अवसर पाया है। मैं साहित्य का विद्यार्थी रहा हूँ। मुझे साहित्य में अधिक रूचि रही है। यथाशक्ति और यथाबुद्धि मैं उनके लिखे साहित्य को पढ़ने और समझने का प्रयत्न करता रहा। कभी–कभी उनसे पूछने का साहस किया और उनका स्नेह इतना अधिक था कि कभी–कभी मैं जो बातें करता था वह बहस के स्तर तक पहुँच जाती थी। इस प्रकार का व्यवहार धृष्ठता नही ंतो क्या थी? लेकिन मैंने न उन्हें कभी अप्रसन्न होते देखा, न उन्हें बाल–बुद्धि के तर्कों की उपेक्षा करते देखा। बड़े धैर्य और प्रेम के साथ वे सारी बातें सुनते थे और आशय को ठीक पकड़कर समझा देते थे। जब मैं उनसे मिलकर लौटता था तब–तब ऐसा लगता था कि मैं कुछ ऊपर उठा हूँ। उनकी स्नेहसिक्त, सरस परिहासपूर्ण बातचीत सदा मेरे भीतर के उत्तम को जाग्रत और सतेज बनाती थी। मेरे भीतर जो छोटापन है, संकीर्णता है, अल्पज्ञता है, वह इस समय दब जाती थी। वे महान् गुरु थे–महान् गुरू, जिनके सम्पर्क में आने पर शिष्य का देवत्व जागता है। उन्होंने अपने साहित्य में जो कुछ लिखा है, वही उनका जीवन था"[1]

हिंदी के सौभाग्य–पुरूष आचार्य द्विवेदी को रवींद्रनाथ के सपनों के विश्वनीड़ में बीस वर्षों तक वैदिक और साहित्यिक कलरव करने का सौभाग्य मिला था। खुद महामानव रवींद्र को कहना पड़ा था कि 'वे तो विश्वभारती के भाग्य से यहाँ आ गये हैं।' आचार्य द्विवेदी रवींद्रनाथ के बहुमुखी प्रतिभा से इतने अभिभूत थे कि उनकी दृष्टि में कविवर रवींद्रनाथ की साहित्यिक कृतियाँ तो महत्वपूर्ण थी हीं, मगर उनका व्यक्तिगत जीवन भी उसी प्रकार प्रेरक एवं महान् था। भारतीय राजनीति के क्षितिज पर उन्हें महात्मा गाँधी के सिवा दूसरा कोई और नेता नहीं दिखता जिसने कविगुरू रवींद्रनाथ के समान पराधीन देशवासियों

*मिरजानहाट उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, भागलपुर

के भीतर नवीन अपराजेय आत्मबल का संचार किया हो। जो भी उनके नजदीक आता है वह पहले से अपने आप को और अधिक परिष्कृत—सुसंस्कृत पाता है। वे कहते हैं, उनके पास क्षण—भर भी बैठना परम सौभाग्य का विषय था— "उनका जीवन बहुत ही संयमित और प्रेरणादायक था। उनके निकट जानेवाले को सदा यह अनुभव होता था कि वह पहले से अधिक परिष्कृत और अधिक बड़ा होकर लौट रहा है। बड़ा आदमी वह होता है जिसके सम्पर्क में आनेवाले का अपना देवत्व जाग उठता है। रवींद्रनाथ ऐसे ही महान् पुरूष थे। उनके पास क्षण—भर भी बैठना परम सौभाग्य का विषय था। सदा उनसे नयी प्रेरणा और नया संदेश मिलता था। वे विधाता के भेजे हुए परिपूर्ण मनुष्य थे। वे सच्चे अर्थों में 'गुरू' थे।"[2]

गुरूदेव के विद्यातीर्थ शांतिनिकेतन का आचार्य—श्री के मन—मंदिर में पावनता कैसा भाव अक्षत था, यह उनके 'गुरूदेव का शांतिनिकेतन' शीर्षक निबंध में द्रष्टव्य है:— "देश में ऐसे सैकड़ों विद्यालय हैं जहाँ अध्यापक विद्यार्थियों को अनेक प्रकार की जानकारियाँ दिया करते हैं। शांतिनिकेतन उनसे भिन्न हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार 'रामचरितमानस' सैकड़ों पौराणिक कहानियों से भिन्न है। ......शांतिनिकेतन कविवर रवींद्रनाथ के काव्यों की भाँति ही निपुणभाव से निबद्ध और सुचिन्तित योजना पर आधारित है।"[3]

शांतिनिकेतन की स्थापना गुरूदेव ने विश्व—जीवन को मनुष्यता का प्रेमपाठ पढ़ाने के लिए किया था। अपनी उदात्त मंगलेच्छा की परिपूर्ति के निमित्त किया था। मनुष्यत्व की प्राप्ति के लिए उन्होंने यह संकल्प—व्रत ठाना था। स्वार्थ—बंध को खोलने और परमार्थ—भाव के सृजन के लिए ही उन्होंने इस पारमार्थिक शांतिनिकेतन की स्थापना की थी। यही उनका मूल ध्येय था। आश्रम रूप में शांतिनिकेतन की स्थापना उनके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने बहुत पहले ही कर दी थी। मगर गुरूवर ने मनुष्य की मनुष्यता को जगाने पर बल दिया। अपने पिता की तरह शिक्षा को वे धर्मव्रत मानते थे यह व्रत केवल पढ़ाई घोट लेने और परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने का नाम नहीं है। वे उसी निबंध में आगे लिखते हैं— "बालकों के अध्ययन का काल व्रत—पालन का काल है। मनुष्यत्व की प्राप्ति स्वार्थ नहीं, परमार्थ है, यह बात हमारे पितृ—पितामहों को मालूम थी। इस मनुष्यत्व की प्राप्ति की आधारभूत शिक्षा को वे ब्रह्मचर्य व्रत कहते थे। यह व्रत केवल पढ़ाई घोट लेने और परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने का नाम नहीं है। ......दुनिया में बहुत—सी चीजें खरीद—बिक्री की सामग्री हैं, किंतु धर्म इससे भिन्न हैं वह कुछ पण्य द्रव्य नहीं है। इसे एक ओर से मंगलेच्छा के साथ दान करना होता है और दूसरी ओर से विनीत भक्ति के साथ ग्रहण करना होता है। इसीलिए प्राचीन भारत की शिक्षा पण्य द्रव्य नहीं थी, आजकल जो लोग शिक्षा देते हैं वे शिक्षक हैं, लेकिन उन दिनों जो लोग शिक्षा देते थे वे गुरु होते थे। वे लोग शिक्षा के साथ एक ऐसी वस्तु देते थे जो गुरू और शिष्य के आध्यात्मिक सम्बंध से भिन्न किसी प्रकार का देना—पावना हो ही नहीं सकती। विद्यार्थियों के साथ इस प्रकार के पारमार्थिक सम्बंध की स्थापनपा ही शांतिनिकेतन विद्यालय का मुख्य उद्देश्य है।"[4] रवींद्रनाथ मनुष्यत्व को उद्बुद्ध करनेवाली जीवंत—शिक्षा के परम आग्रही थे। वे भारतवर्ष में वास्तविक शिक्षा का प्रचलन चाहते थे जो मानव को यांत्रिक जड़ता से मुक्त करा सके। इसीलिए वे देश को प्राणहीन—शिक्षा के भार से मुक्त कराना चाहते थे। वे परीक्षा की गुलामी से, विदेशी भाव—भाषा की नकल वृत्ति से तथा रटंत विद्या वृत्ति से शिक्षा को दूर रखना चाहते थे। इसी बात को उन्होंने अपने रचना—कर्म में बड़ी प्रमुखता से रखा है। आचार्य द्विवेदी अपने निबंधों में लिखते हैं— "निर्जीव जीवन से भयंकर भार और कुछ नहीं। इस बात का पूरा ध्यान रहे कि शांतिनिकेतन की शिक्षा निर्जीव न बनने पाये।"[5]

रवींद्रनाथ ने अध्ययन—अध्यापन को एक पवित्र कर्म माना और अध्यापन को व्रत के रूप में ग्रहण करने की बात कही। उन्होंने बाह्यानुशासन पर नहीं, आत्मानुशासन, आत्मसंयम और आत्मत्याग पर जोर दिया। क्योंकि रवींद्रनाथ इस बात से पूर्ण परिचित थे कि बिना स्वयं त्याग के और संयम के विद्यार्थियों को दिया हुआ सारा उपदेश निष्फल हो जाएगा और आश्रम की उज्ज्वलता म्लान होती रहेगी। इसीलिए अध्यापकों द्वारा छींटे गए कल्याण—भाव तभी सार्थक एवं उपयोगी होंगे जब शिक्षक खुद भीतर के अनुशासन व आत्मसंयम की पवित्रवाणी सुनेंगे।

आचार्य द्विवेदी के निबंधों पर रवींद्रनाथ के महिमामयी व्यक्तित्व की छाप बरबस बनी रहती हैं। वे लिखते हैं—"रवींद्रनाथ पारस थे। जो भी उनके सम्पर्क में आया, वह धन्य हो गया।"6 शांतिनिकेतन की सघन शीतल छाया में ही आचार्य द्विवेदी का मानवतावाद और मनुष्यत्वबोध अँखुआता है और उनके

जीवन–दर्शन और साहित्य के छंद में 'मानव' आ जाता है। साहित्य को वे मनुष्य की उपयोगिता की दृष्टि से देखने के पक्षपाती हैं। वे 'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है' शीर्षक निबंध में लिखते हैं–"मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हैं। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदुःखकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।"[7]

रवींद्रनाथ के मानवतावादी रूप पर प्रकाश डालते हुए आचार्य द्विवेदी कहते हैं; वे मात्र कल्पना–विलासी कवि नहीं थे। मनुष्य की वेदना उन्हें आहत करती थी। मनुष्य को वे इसलिए बड़ा मानते थे कि उसमें दया–माया–ममता है। प्रीति है। 'मृत्युंजय रवींद्रनाथ' शीर्षक में वे लिखते हैं– "संवत् 2004 में सावन के महीने में कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर हमें सदा के लिए छोड़कर चले गये थे। वे उन महापुरुषों में थे, जिनकी वाणी किसी विशेष देश या सम्प्रदाय के लिए नहीं होती, बल्कि जो समूची मनुष्यता के उत्कर्ष के लिए सबको मार्ग बताती हुई दीपक की भाँति जलती रहती है। अपने जीवन–काल में उन्होंने नाना–भाव से मनुष्य की संकीर्णता को शिथिल करने के लिए इस पर बार–बार आघात किया था। देश का, जाति का, राष्ट्र का और धर्म का अभिमान मनुष्य को संकीर्ण–से–संकीर्णतर बनाते जा रहे हैं।"[8]

शांतिनिकेतन की सप्तपर्णी और शिरीष की सघन शीतल छाया में बैठकर आचार्य द्विवेदी ने कविगुरू रवींद्रनाथ से मानवतावाद का विश्व–पाठ पढ़ा है। साहित्य जो अपने लिए रचा और लिखा जाता है उस साहित्य का उनकी दृष्टि में कोई मोल नहीं है। मनुष्यता की सर्वांगीण उन्नति ही उनके साहित्य का प्रधान लक्ष्य है। 'अशोक के फूल' शीर्षक निबंध में उन्होंने मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा का लोहा माना है। वे लिखते हैंः– "मनुष्य की जीवनी–शक्ति बड़ी निर्मम है, वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है। न जाने कितने धर्माचारों, विश्वासों, उत्सवों और व्रतों को धोती–बहाती यह जीवन–धारा आगे बढ़ी है। संघर्षों से मनुष्य ने नयी शक्ति पायी है। हमारे सामने समाज का आज जो रूप है, वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है। देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बाद की बात है। सबकुछ में मिलावट है, सब कुछ अविशुद्ध है। शुद्ध है केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा।"[9] 'सारे मानव–समाज को सुंदर बनाने की साधना का नाम ही साहित्य है।' मनुष्यता ही साहित्य का लक्ष्य है जिस साहित्य से यह उद्देश्य सिद्ध नहीं होता उसे साहित्य कहने में उन्हें संकोच होता है। उनका मानवतावाद राष्ट्रीयता के संकीर्ण साँचे में नहीं अँटता। वे लिखते हैं– "इस देश में हिंदू हैं, मुसलमान हैं, स्पृश्य हैं, अस्पृश्य हैं, संस्कृत है, फारसी है– विरोधों और संघर्षों की विराटवाहिनी है; पर सबके ऊपर मनुष्य है....।"[10]

आचार्य द्विवेदी की दृष्टि में आज के तरूण साहित्यकारों के कंधों पर बहुत बड़ी जिम्मेवारी आ गयी है– सिर्फ लिखने के लिए न लिखा जाए; मगर जो कुछ लिखा जाए वह महान् उद्देश्यों को ध्यान में रखकर लिखा जाए। संसार में नयी ज्योति जलाने के लिए लिखा जाए। जिसमें मनुष्यता सबसे ऊँचे आसन पर विराजती हो। डंके की चोट पर वे साहित्य का वास्तविक लक्ष्य घोषित करते कहते हैं– "मैं दृढ़ता के साथ कहना चाहता हूँ कि मनुष्य को अज्ञान, मोह, कुसंस्कार और परमुखापेक्षिता से बचाना ही साहित्य का वास्तविक लक्ष्य है। इससे छोटे लक्ष्य की बात मुझे अच्छी नहीं लगती।"[11] बहरहाल जो हो कुल मिलाकर यही बात सिद्ध होता है कि आचार्य द्विवेदी की प्रज्ञाचक्षु में महामानव रवींद्रनाथ की विश्व–दृष्टि का तेज–बल है। उसकी रोशनाई है। रवींद्रनाथ की स्नेह–छाया में ही उनके सांस्कृतिक स्वप्न का भारत अँखुआया है।

lUnHkZ %

1. सम्पादक मुकुंद द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, खण्ड–8, पृष्ठ 279–280, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. उपरिवत् पृष्ठ 271
3. उपरिवत् पृष्ठ 414–415
4. उपरिवत् पृष्ठ 415
5. उपरिवत् पृष्ठ 417
6. उपरिवत् पृष्ठ 278
7. उपरिवत् खण्ड 10, पृष्ठ 25
8. उपरिवत् खण्ड 8, पृष्ठ 299
9. उपरिवत् खण्ड 9, पृष्ठ 23
10. उपरिवत् खण्ड 9, पृष्ठ 30
11. उपरिवत् खण्ड 10, पृष्ठ 44

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 163-165

L=h vfLerk dk oSpkfjd l?k"kZ vkSj dof;=h dkR;k;uh

;'koUr dqekj*

आज उत्तर आधुनिकता के दौर में सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिककर्मी के साथ हिन्दी कविता जगत् में बहुचर्चित एवं प्रतिष्ठित कवयित्री कात्यायनी का नाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कविता के रसातल से ऊपर उठकर उसके विषय वस्तु को राजनीतिक सरोकारों से जोड़ते हुए कात्यायनी ने अपने लेखन में वैचारिक निबन्धों के माध्यम से जन जागरण का कार्य किया है। इनके यह साहित्यिक निबन्ध इसलिए अधिक महत्त्वपूर्ण हैं कि उनमें जीवन की सच्चाई, अपने समाज का युगबोध व गरीब, मेहनतकश मजदूरों के साथ संसार की आखिरी गुलाम स्त्री की अस्मितामूलक प्रश्नों का पूरा संसार है। कात्यायनी ने उन सामाजिक मानदण्डों पर हस्तक्षेप किया है जो स्त्री की स्वंतत्रता के ढांचों में रूकावट बना हुआ है। आज समकालीन स्री ं विमर्श को लेकर कात्यायनी की दृष्टि बहुआयामी है। वर्तमान समाज में स्त्री की जो भयावह स्थिति है उसके वास्तविक स्वरूप के ढ़ाँचों और गढ़ों को तोड़ती हुई कात्यायनी की रचना संसार अत्यंत प्रखर है।

कात्यायनी स्त्री लेखन के इसी वास्तविक स्वरूप के बारे में अपना विचार व्यक्त करती हैं कि ''मेरी यह पक्की धारणा है कि स्त्री–लेखन में भी स्त्री–जीवन की वास्तविक सच्चाईयों और चुनौतियाँ अभी आ सकती हैं जब हम अपने सामाजिक सरोकारों के हिसाब से किसी न किसी रूप में 'एक्टिविस्ट' हों और साथ ही, गृहस्थी से लेकर सड़क–ऑफिस–दफ्तर तक, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक और अपनी मान्यताओं के प्रति ईमानदार औरत के रूप में लगातार 'एसर्ट' करने का– अपनी उपास्थिति दर्ज कराने का, जोखिम उठाते रहते हों और उसका ख्यामियाजा भुगतते रहते हों।''[1] कात्यायनी ने इसी स्त्री के अभिव्यक्ति के खतरों को समझते हुए स्त्री के भीतर स्त्री अधिकारों की जागरूकता के प्रति सामाजिक एक्टिविस्ट का खतरा मोल लेने के लिए भी प्रतिबद्ध दिखती हैं। पुरुष सत्तात्मक समाज कभी नहीं चाहता है कि स्त्री के दुनिया घर की चौखट के बाहर एक सामाजिक, राजनीतिक कर्मी के रूप में हो। कात्यायनी ने इसे चुनौती देते हुए घर की दहलीज से निकलकर समाज में पुरूषस्वामित्व के ठेकेदारों को आईना दिखाया है। कात्यायनी ने स्त्री के खिलाफ उन साजिशों को पर्दाफाश करते हुए लिखती हैं ''एक स्त्री है, वह अपनी कहानियों–कविताओं–लेखों में पुरुषसत्तात्मक, समाज के मूल्यों–मान्यताओं पर प्रचण्ड चोटे करती है, राजनीतिक रूप से व्यवस्था–विरोधी रचनाएँ लिखती है, उसकी रचनाएँ पत्र–पत्रिकाओं में छपती है, पुस्तकें छपती है, वह गोष्ठियों में जाती है– प्रायः वहाँ तक उसकी अपनी दुनिया में सबकुछ लगभग ठीक–ठाक चलता रहता है, स्वजन–परिजन खुश और गौरवान्वित ही महसूस करते हैं। उनका अपना मान बघ्ता है। जैसे ही वह स्त्री अपनी ही विद्रोही पात्रों के जीवन के निकट जाने की कोशिश करती है, अध्ययन–कक्ष और गोष्ठी–कक्षों से बाहर सामाजिक–राजनीतिक सक्रियताओं में जाती है और रोजमर्रे की जिन्दगी में स्त्री की पहचान व निर्णय लेने के अधिकार को मूल्यों–मान्यताओं–संस्कारों के स्तर पर लागू करने की कोशिश करती है, वैसे ही युद्ध का असली मोर्चा के सामने आ जाता है।''[2] पुरुष सत्तात्मक समाज एक स्त्री में लेखन व उसकी वैचारिकी का उसके सामाजिक मुद्दों तक सिमट कर देखना चाहता है जो स्त्री जीवन की समस्याओं से किसी भी रूप में जुड़ी होती है। जैसे ही वह थोड़ी सी सामाजिक होकर भीड़ का हिस्सा होना चाहती है कि उसे अयोग्य घोषित कर दिया जाता है। उसकी तमाम कोशिशें उसके संस्कारों की चेपट में आकर घर की दहलीज पर आपना दम तोड़ने के लिए विवश होती है। इसके बावजूद

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

वह संघर्ष का हर कोना झांकने के लिए तत्पर और प्रयत्नशील रहती है। आज की स्त्री अपने वैचारिक लेखों के माध्यम से उन प्राचीन, मिथकों, मानदण्डों को चुनौती देती है जो उसे बुरी स्थिति में लाने के लिए जिम्मेदार होते हैं। आज हिन्दी पत्रकारिता में स्त्रियों ने अपनी जगह बनाई है और पहले की अपेक्षा वह सामाजिक हैसियत की गुलामी से निकलकर मनुष्य बनने की प्रक्रिया के करीब है। कात्यायनी ने 'दुर्ग द्वार पर दस्तक' में इस दुर्ग के स्खलन के बारे में लिखा है कि ''हिन्दी पत्रकारिता में स्रीन आज हाशिए पर है। स्थिति को मैं यूँ रखना चाहूँगी कि स्रीस् आज हिन्दी पत्रकारिता के दुर्ग के बंद द्वार के बाहर की ओर भी दस्तक दे रही है और भीतर की ओर से भी। यानी पूरे समाज में बाजार की शक्तियाँ और उपभोक्ता सांस्ःतिक के दबाव के विरुद्ध उसकी नई चेतना और प्रतिरोध के प्रस्फोटों का दबाव दुर्ग के द्वार पर बाहर से पड़ रहा है और पत्रकारिता की दुनिया में जो स्त्रियाँ सक्रिय हैं, उनका दबाव भीतर से पड़ रहा है। हिन्दी पत्रकारिता की दुनिया में आज स्त्री की उपस्थिति पहले से मुखर और प्रकट है।''[3] आज सामाजिक मुक्ति और स्त्री मुक्ति के प्रश्न को नई दिशा देने के लिए जरूरी है कि साहित्यिक दुनिया और कविता के साथ जरूरी मुद्दों पर बहस हो और इन बहसों और प्रश्नों को विस्तार देने के लिए प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं का भी सहारा लेना अनिवार्य है। नारी उत्पीड़न के मामले जनता तक पहुँचने चाहिए उसका विस्तार स्त्री मन के करीब होना चाहिए जिससे उनके भीतर जन जागरण का कार्य और जागरूकता लायी जा सके। प्रतिष्ठित स्त्री की सामाजिक स्थिति पर प्रश्न तो खड़ा करती है लेकिन उसकी सीमा उसके यौन मुक्ति तक ही दम तोड़ देती है। स्त्री के नागरिकता का प्रश्न उसे मनुष्य समझे जाने का प्रश्न, साथ ही उसकी सामाजिक, आर्थिक स्थिति का प्रश्न वहाँ से गायब रहता है। हमारे समाज की स्त्रियाँ शिक्षित व स्वाबलम्बी बने इसके लिए कोई भी समाजवाद की पुनर्व्याख्या करने के लिए तैयार नहीं है जहाँ एक स्त्री का जीवन ही समानता के साथ शुरू हो। कात्यायनी लिखती हैं कि ''स्त्री की दोयम दर्ज की सामाजिक स्थिति का प्रश्न, जनवादी अधिकार का प्रश्न है, नागरिक अधिकार का प्रश्न है और मानवाधिकार का प्रश्न भी है। जहाँ उसे आमतौर पर एक इन्सान का दर्जा नहीं दिया जाता, जहाँ उसे उपभोग और खरीद–फरोख्त और नुमाइश के चीज के रूप में ही मान्यता, पहचान की प्रसिद्धि पाने की गुंजाइश है।''[4] यह कोई नया प्रश्न नहीं है कि पुरुष मानसिकता का निजी स्वामित्व एक स्त्री की देह को सीमा को कैद किए हुए है। वह परिवार व समाज की नजर में पुरुष स्वामित्व के खिलाफ अगर यौन मुक्ति के प्रश्न को दासता के रूप में उठाना भी चाहे तो उसे तुरन्त असामाजिक घोषित कर दिया जाता है।

आज के दौर में स्त्री विमर्शकार इस मुद्दे को भी खुली चुनौती देता है कि वह इस गुलाम बनाये जाने वाले संस्कार का निषेध करती है वह मुक्ति के लिए यौन–मुक्ति को भी जायज ठहराती है। क्योंकि इसी के पास अन्ततः खोने के लिए देह और जंजीरे के सिवा कुछ नहीं बचता है। कात्यायनी स्त्री के इस दोहरे शाप के सम्बन्ध में लिखती हैं कि ''एक स्त्री जब महज देह नहीं होती है, तो पुरुष सत्तात्मक समाज के लिए चुड़ैल और प्रेतनी होती है। जब वह सोचती है तो नतीजे तक पहुंचने के पहले ही खतरनाक घोषित कर दी जाती है। जब वह सवाल उठाती है तो उसे पागल करार दे दिया जाता है।...... सोचा जाये तो इस महायुद्ध में खोने के लिए स्त्री के पास भी ज्यादा कुछ नहीं है, कुछ विभ्रम हैं, कुछ आरोपित मिथक हैं और भौतिक आत्मिक बन्धनों के कुछ जंजीरे हैं। इसलिए यह अनायास नहीं कि उसकी मुक्ति की यह लड़ाई से जड़ चुकी है। जिनके पास भी खोने के लिए जंजीरों के सिवा और कुछ भी नहीं हैं।''[5] स्त्री हाशिये का शिकार होने के साथ घर और बाहर उसकी हैसियत सिर्फ और सिर्फ एक वस्तु की ही है। जिसे माल के रूप में कहीं से खरीदा व बेचा जा सकता है। पूंजीपति वर्ग स्त्री का शोषण पूंजी के गद्दरों से सजे बिस्तरों पर करते है और अन्ततः वही स्त्री इनके शौक का हिस्सा बनकर रह जाती है। किन्तु उसकी यह दशा समाज में आर्थिक रूप से कमजोर होने से है।

स्त्री के इस यौन–शोषण व उसकी विवशता के बारे में कात्यायनी लिखती हैं कि ''औरत का यौन–शोषण मात्र इसी आधार पर नहीं होता कि औरत औरत है। यह इसलिए संभव हो सका है कि उसकी सामाजिक हैसियत घर–बाहर–सर्वत्र दूसरे दर्जे की नागरिक की है और इस सामाजिक हैसियत का ताल्लुक उसके आर्थिक शोषण से है। औरत का श्रम पूरी दुनिया में मर्द के श्रम से सस्ता है। इसी समानुपातिक संबंध में मध्यवर्ग की औरत भी मध्य वर्ग के पुरुष से अधिक शोषित है। उच्च वर्गों के औरतों

की नागरिकता भी दोयम दर्जे की है, हालाँकि अपनी वर्ग–स्थिति के कारण वे नारी–मुक्ति–संघर्ष के सही झंड़े के नीचे कदापि संगठित नहीं होगीं।''[6] अपने इसी वर्ग स्थिति के कारण स्त्री–मुक्ति की आकांक्षा कुछ हद तक धूमिल होती नजर आती हैं। शायद इसलिए कि बुर्जुआ वर्ग, उच्च मध्यम वर्ग के साथ निम्न मध्यम वर्ग की स्त्रियों की समस्याएँ लगभग समान है फिर उनमें अनेक रूपों में भिन्नता पायी जाती हैं उच्च–मध्यवर्ग की स्त्रियों की समस्याएँ घर के भीतर बन्द कमरों में कैद हैं पर निम्न मध्यम वर्ग और गरीब स्त्रियों के हीन दशा परिवार, समाज, घर से बाहर की भी है। उसे उन सामाजिक दंशों का भी सामना करना पड़ता है जिनका सम्बन्ध पूंजीपति वर्ग की स्त्रियों के करीब भी नहीं होता है। ऐसी पूंजीवादी व्यवस्था में स्त्री अपने जनवादी अधिकार के प्रति सक्रिय है। कात्यायनी इन अधिकारों की प्राप्ति और नारी उत्पीड़न से मुक्ति के लिए बातों को उत्तरदायी मानती हैं उनमें वे कहती हैं– औरत आज पूंजीवाद, जनवाद के दायरे में अपने जनवादी अधिकार के प्रति सक्रिय है। कात्यायनी इन अधिकारों के प्राप्ति और नारी उत्पीड़न से मुक्ति के लिए निम्न बातों को उत्तरदायी मानती हैं उनमें वे कहती हैं ''औरत आज पूंजीवाद जनवाद के दायरे में अपने जनवादी अधिकार प्राप्त नहीं कर सकती। बहुत कठिन लड़ाई लड़कर वह पहले से प्राप्त स्थिति को कायम रख सकती है, बघ्ते यौन उत्पीड़न की मानसिकता से अपनी रक्षा कर सकती है और कुछ थोड़े–बहुत और अधिकार हासिल कर रह सकती हे। नारी–मुक्ति का संघर्ष नारी समुदाय का जनवाद का संघर्ष, अपना सही परिप्रेक्ष्य तभी हासिल कर सकेगा जब वह यौन–उत्पीड़न के प्रश्न को पूंजीवाद समाज में कायम अपना सामाजिक हैसियत से जोड़ कर देखेगा और पूंजीवाद के विरुद्ध समाजवादी क्रान्ति के 'फेमवर्क' में खुद को संगठित करेगा।''[7] इस तरह हम समझते है कि पितृसत्तात्मक समाज की जड़ों को तभी समाप्त किया जा सकेगा जब स्त्री अपनी सामाजिक हैसियत को पूंजीवादी व्यवस्था से निकालकर खुद को आर्थिक रूप से मजबूत और सक्रिय बना ले। स्त्री को सामाजिक और आर्थिक अधिकार का प्रश्न बुर्जुआ समाजवाद का प्रश्न नहीं वह केवल उन्हें इस सदी में उत्पाद का कच्चा माल समझता है, और उसकी हैसियत पूंजीवाद के सामने महज क्रय–विक्रय वाले वस्तु की है। स्त्री की नाटकीय स्थिति हमारे भारतीय समाज में बुर्जुआ समाज से कम नहीं है। यहाँ भी एक स्त्री का शोषण उसके शारीरिक बनावट और ढांचों पर टिका हुआ है जहाँ उसकी जगह परिवार और घर में रसोईघार और बन्द कमरे के भीतर बेड तक ही सीमित है। ऐसे हालात उत्पन्न हो रहे हैं जहाँ पति–पत्नी के बीच तमाम तनाव और पारिवारिक विघटन की समस्या उत्पन्न हो रही है। पुरुष समाज एक स्त्री को उसकी सम्पूर्णता में नहीं देखना चाहता बल्कि उसके शरीर को खण्ड–खण्ड करके उसका मूल्यांकन करता है।

lUnHkZ :

1. कुछ जीवंत कुछ ज्वलंत, कात्यायनी, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, संस्करण 2006, पृ0 139
2. वही, पृ0सं0 139
3. दुर्गद्वार पर दस्तक, कात्यायनी, परिकल्पना, लखनऊ, संस्करण, 2004, पृ0 65
4. कुछ जीवंत कुछ ज्वलंत, कात्यायनी, पृ0सं0 141
5. वही, पृ0सं0 140
6. दुर्ग द्वार पर दस्तक, कात्यायनी, पृ0सं0 37
7. वही, पृ0सं0 39

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 166-170

lks'ky ehfM;k % lkfgfR;d vfHkO;fDr dk eap

MkW0 jkes'kdj d`'kokgk*

भारतीय सामाजिक संरचना में कई स्तर हैं। लेखन कला विकसित होने से लेकर आज तक का साहित्य उस संरचना और उसके विभिन्न स्तर को अलग–अलग समय में अलग–अलग तरीके से प्रस्तुत करता रहा है। आज उस संरचना को विमर्शों ने और अध्कि व्यापक बना दिया है। भूमंडलीकरण, औद्योगीकरण और उदारीकरण के साथ संचार क्रांति ने इस प्रकार के विमर्शों को मंच प्रदान कर उनके फलक को और अधिक विस्तार देने का काम किया है। सोशल मीडिया उसी संचार क्रांति की देन है। इसने एक ऐसी संरचना को विकसित किया है जो सालों से चली आ रही संसाधन केंद्रित संरचना को तोड़ने का कार्य कर रही है। सोशल मीडिया के कारण लेखन के क्षेत्र में 'केन्द्र से परिधि की ओर जो विकेन्द्रीकरण हो रहा है वह क्षेत्रीयता या स्थनीय संदर्भ तक पहुंच रहा है। इसी कारण मेकलुहान ने भी कहा है कि जो ग्लोबल है वह लोकल भी है।'[1] 'ग्लोबल और लोकल' की अवधरणा को साकार करने में इस माध्यम की महत्वपूर्ण भूमिका है।

साहित्य समाज का दर्पण है। जो समाज समाज में घटित होता है वही उसमें अभिव्यक्त होता है। समस्या यह है कि साहित्य के दो रूप रहे हैं– एक किताबी ज्ञान रखने वालों को साहित्य और दूसरा व्यावहारिक[2] ज्ञान रखने वालों का साहित्य। भारतीय परिदृश्य में देखें तो यहां वर्ण व्यवस्था लागू थी। किताबी ज्ञान सबको मिलता नहीं था। जो किताबी ज्ञान रखने वाले थे उन लोगों ने व्यावहारिक ज्ञान की सदैव उपेक्षा की। क्योंकि उन्हें उनके किताबी ज्ञान के खतरे में पड़ जाने का अंदेशा था। यही कारण है कि आज जब व्यवहारिक ज्ञान अकादमियों की दहलीज पर पहुंचा है तो साहित्य के इतिहास का पुनर्लेखन करने से लेकर तमाम अन्य तरह की चर्चाएं शुरू हो गई हैं। मुख्यधारा के साहित्य पर कई आरोप भी लगने लगे हैं। जैसे कि मुख्य धारा का सहित्य समाजिक ज्ञान, भाषा आदि लोक से लेता है लेकिन उसके लेखन को अपने बराबर नहीं मानता। यह कुछ ऐसा है जैसे कोई संतान अपनी जड़ों को नकार रहा हो। दूसरा जिन लोगों ने श्रम और त्याग करके समाज को बेहतर बनाने की तरफ कदम बढ़ाया, जिन लोगों के पास अनुभव का भंडार था, जिनके विचार मात्र को शामिल करने से मानवता और बेहतर होती, उनकी लेखनी को 'छंदशास्त्र के पैमाने पर खरा नहीं उतरने वाली' कहकर नकार दिया गया।

मुख्यधारा के साहित्य का एक पहलू और है जिसपर चर्चा होती है। समय–समय पर उस पर जातिवादी और वर्णवादी होने का आरोप लगता रहा है। उसका मूल कारण है संसाधनों पर समाज के बहुत सीमित वर्ग का कब्जा और व्यक्तिवादी/जातिवादी/वर्णवादी हित के लिए उसका दुरुपयोग। ऐसे में संचार क्रांति उन आवाजों को आगे ले जाने का मौका देती है जो संसाधन के अभाव या वर्ण–भेद के कारण दबाई जाती रही हैं। सोशल मीडिया अभिव्यक्ति के दायरे को और अधिक विस्तृत करने और बिना किसी भेदभाव के सबको मौका देने का जरिया हो गया है। आज संचार माध्यमों के कारगा ही सामान्य से सामान्य व्यक्ति को अभिव्यक्ति का मंच उपलब्ध हो रहा है। 'अब दलित, जनजातियां, दमित और प्रताड़ित समाज समलैंगिक स्त्री–पुरुष, कहने का तात्पर्य है, वे लोग जिनकी कोई आवज या पहचान नहीं थी। अपनी आवाज और पहचान के साथ उठ खड़े हुए हैं।[3]' इनको शोसलमीडिया अभिव्यक्ति के लिए निर्भीक और स्वतंत्र मंच प्रदान कर रहा है। जहां किसी प्रकार का भेद–भाव नहीं है। जो अधिकांश समाजों में सदियों से होता रहा है। इस मंच ने लेखक और पाठक के बीच के

*हिन्दी विभाग, दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली

बिचौलिये को खत्म कर दिया है। अब लेखक को आलोचक से उसकी रचना और उसकी भाषा के लिए कोई प्रमाण पत्र लेना जरूरी नहीं है। रामचंद्र शुक्ल की बहुचर्चित पुस्तक 'हिंदी साहित्य का इतिहास' पढ़ते हुए यह ज्ञात होता है कि अनुभव से ओतप्रोत संत साहित्य को वह अपने इतिहास में इसलिए महत्व कम देते हैं क्योंकि उनकी रचना में भाषा और शिल्प की 'अनगढ़ता'[4] है। जबकि यह अनगढ़ता नहीं 'स्वभाविकता' है। भाव की दृष्टि से वे रचनाएं अन्य रचनाओं की तुलना में अधिक सशक्त हैं। ऐसे में शोसल मीडिया ने 'आचार्य शुक्ल के चश्मे का महत्व' समाप्त तो नहीं, लेकिन कम जरूर कर दिया है। अब छोटे से छोटे वर्ग/जाति/समूह को भी अपनी बात कहने के लि, किसी खास 'आलोचकीय चश्मे' का सहारा नहीं लेना है।

तेजी से बढ़े बाजारीकरण ने कुछ चीजों को मृत घोषित कर दिया था। खासकर मनोरंजन और रचनात्मकता के क्षेत्र में सिनेमाई संस्कृति[5], जिसमें चकाचौंध तो भरपूर है, लेकिन स्थिरता नहीं है, ने 'लोक' को बहुत नुकसान पुहंचाया था। लेकिन आज सोशसल मीडिया 'लोक और समाज की बढ़ती दूरी' को कम कर रहा है। यह 'विरचन' का दौर है जहां पुराने फॉर्म को तोड़ा जा रहा है। यह सर्व स्वीकृत है कि लोक का निर्माण और संरक्षण, छोटी जातियां और दबे–कुचले समूह ही करते रहे हैं। उन्हें कभी ग्लेबल होने का मौका ही नहीं मिला, क्योंकि वे श्रमिक थे, निर्माण कर्ता थे। सीधे लोग थे। छल–छद्म और व्यापार नहीं जानते थे। कला का भी व्यापार हो सकता है, यह उनकी कल्पना से परे था। क्योंकि वे लोग प्रकृति पूजक थे और कला को प्रकृति की देन मानते थे। उनकी उस सोच में किसी भी तरह के मुनाफे और व्यापार के लिए कोई जगह नहीं थी। जबकि उपभोग करने वाला संसाधन संपन्न था। उसने उनकी प्रतिभा और विचार को मनोरंजन से ऊपर नहीं माना। जब लोक को 'फोक' के रूप में वैश्विक मान्यता मिलने लगी तब वही तुच्छ मानने वाला वर्ग उनकी रचनाशीलता को अपना बनाकर प्रस्तुत किया, उसका व्यापार शुरू कर दिया। व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो इस क्रम में श्रमिक रचनकार फिर से ठगा गया। उसकी निर्मिति बाजार का हिस्सा बन गई, मुनाफा कोई और खा गया और वह केवल पूजक ही रह गया। लेकिन अब वर्चुअल दुनिया ने उस मिथ को तोड़ दिया है, जहां श्रमिक को उसके अवदान से बेदखल करना नामुमकिन है। उसी बाजार की दुनिया ने उसे प्रामाणिक होना सिखाया। आज उसके अवदान को कोई छद्म से अपना नहीं सकता। अब वह सृजक और श्रमिक दोनों है। उसे दोनों होने का श्रेय दिलवाने में इस सोशल मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण है।

पहले जागरुकता और साक्षरता के अभाव में उसकी प्रतिभा को सामाजिक मान्यता नहीं मिल पाती थी। मान्यता देने वाले भी खास वर्ग के लोग थे। आज यह मिथ भी टूट रहा है। वह खुद ही लेखक, पाठक और आलोचक है। उसकी रचना ही उसकी समझ और कर्म का प्रमाण है। यह बात दावे के साथ इसलि, कही जा सकती है कि इसके बारे में दुनिया भर में लोग काम कर रहे हैं। 'द थर्ड वेव' के लेखक 'ऑल्विन टॉफलर' ने दुनिया के कई देशों और समाजों का अध्ययन कर यह प्रामाणित करने का प्रयास किया है कि 'अब दलित, अल्पसंख्यक समूहों को नकारा नहीं जा सकता।'[6] अब तक जो संख्या बल में कम थे वे सत्ता चलाते रहे हैं। उदाहरण के लिए 'भारतीय राजनीति में 25 प्रतिशत वोट पाने वाले 75 प्रतिशत पर शासन करते हैं और इसे बहुमत की सरकार' कहते हैं। जबकि व्यावहारिक तौर पर यह सही नहीं है। 25 प्रतिशत वोट पाकर शासन करना अर्थात् अल्प मत द्वारा बहुमत पर शासन करना हुआ। सोशल मीडिया में इस प्रकार के मिथ टूट रहे हैं। आज वोट देने वाल अपनी क़लम के प्रयोग से हिसाब मांग रहा है। विभिन्न विधाओं में अपनी आवाज को लोगों तक पहुंचा रहा है।

सोशल मीडिया में उनकी भी अभिव्यक्ति के लिए जगह है जिनकी आवाज को कभी कोई मंच ही नहीं मिला था। कभी किसी पूर्वग्रह या फिर शिल्प, शैली या विधगत कसौटियों पर खरी न उतरने का हवाला देकर उनकी 'रचना को रचना ही नहीं' माना गया। आज सोशल मीडिया ने ऐसे क़लमकारों को सीधे पाठक से जोड़ दिया है। अब उन्हें अपने को रचनाकार साबित करने के लिए किसी बिचौलिए की जरूरत नहीं। बल्कि अब उनके अभिव्यक्ति कौशल और भाषा के कारण उन्हें लोग पढ़ते और समझते हैं। एक ऐसा तबका, जो आपने आप को साहित्य का संरक्षक और वाहक मानता है, जो किसी को

साहित्यकार होने न होने का तमगा देता है, किसी न किसी रूप में बिचौलिए की भूमिका निभाता है, वे आज संस्थाओं तक सिमट कर रह गए हैं। अब उनकी महत्त इतनी ही बची है कि वह किसी आयोजन में शामिल होकर अपनी कुंद बुद्धि का औने–पौने प्रदर्शन करें, कुछ शब्दों का जंजाल बुने और अपने को ज्ञानी मान लें और कुछ नामुराद किस्म के मुरीद उनकी इस लफाजी पर ताली बजाकर उनके सही होने पर मुंहर लगा दें। ऐसे में यदि यह कहा जाय कि 'सोशल मीडिया ने साहित्य की अभिव्यक्ति को केवल नया मंच ही नहीं दिया है बल्कि साहित्य का लोकतंत्रीकरण कर दिया है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। संचारक्रांति के विकास में अभिव्यक्ति के जो माध्यम उभरे हैं, उसमें सोशल मीडिया प्रमुख है। वह एक सशक्त माध्य के रूप में विधागत संरचना के दायरे को और अध्कि व्यापक कर नए प्रकार का शिल्प और भाषा गढ़ने के कार्य में क़लमकारों की मदद कर रही है। हम ऐसा इसलि, कह रहे हैं क्योंकि नई पीढ़ी इस बदलाव को स्वीकार कर रही है। उससे प्रेरणा लेकर वह भी निर्माण में सहयोग कर रही। 'इस पर साहित्यिक अभिव्यक्तियों का दायरा दिन–ब–दिन बढ़ता जा रहा है तो उसका कारण है तीव्र संवेदना और कल्पना का विकास, जिसका रचना में बहुत महत्व है। विषय को जानने समझने का व्यक्ति का नजरिया और उसे लोगों तक पहुंचाने की छटपटाहट।' संजीदा व्यक्ति जाता है कि संवेदनहीन समाज उन्नति नहीं विनाश की तरपफ जाता है। नई पीढ़ी में आ रहे तमाम भटकावों के बीच उनका 'संवेदनशील' होना सभ्यता के नजरिए से एक अच्छा संकेत है। इस संवेदना के स्वरूप में थोड़ा बिखराव जरूर है लेकिन कुछ मानवीय कमजोरियों को छोड़ दें तो बहुत निराश होने वाली बात नहीं दिखाई देती। संवेदना के स्वरूप के बारे में रमेश कुंतल मेघ लिखते हैं, 'तीव्र संवेदना ही आंतरिक चेतना और बाहरी दुनिया के बीच का संपर्क बिंदु है। तीव्र संवेदना की असमतलता ही कल्पना को नियोजित करती है और यह भी स्पष्ट करती है कि कल्पना क्यों विभिन्न दिशा, पकड़ती हैं और क्यों भिन्न कलाएं होती हैं– शब्दों की कला, स्वरों की कला, रंगों की कला। तीव्र संवेदना सृजन की प्रतिकात्मक या अंतर्मुखी चरण का भौतिक सिंद्धांत है तथा कल्पना स्वरूप अवधारणा है।'[7] अब तक इन संवेदनाओं के प्रस्तुति का दायरा सीमित था या कहें कि इनके होने के बाद भी सार्वजनिक करने का अवसर नहीं मिलता था। उसका नुकशान यह था कि आवेग अभिव्यक्ति के अभाव में कुंठा में बदल जाता था। आज उसको सामाजिक करने के लि, सोशल मीडिया का मंच मिल गया है। अब वह 'संवेदना और कल्पना' कुंठा के बजाय रचनाशील वृत्ति में बदल गई है।

विविधता से भरपूर भारतीय संरचना में हर वर्ग की अपनी संरचना होती है। उस संरचना में रीति–रिवाज, रूढ़ियां, परंपरा,, मान्यताएं और सपने होते हैं। मानव जिस संरचना में रहता है उसी की गतिविधियों का हिस्सा बनता है। यहीं से उसकी सृजनात्मकता शुरू होती है। इस प्रक्रिया को प्रसिद्ध विद्वान हार्टमान नाकम के एक विश्लेषण से समझा जा सकता है। उन्होंने एक अन्य प्रक्रिया को विश्लेषित करते हुए लिखा हैः 'शरीर सांस लेता है, दौड़ता है, पाचन करता है, लेकिन यह प्रेम भी करता है, स्वप्न देखता है तथा इतिहास लिखता है। अतः मस्तिष्क और शरीर को सृजनात्मक दृष्टि से अलग–अलग नहीं रखा जा सकता।'[8] जिस प्रकार 'मस्तिष्क और शरीर' को सृजनात्मक रूप से अलग नहीं रखा जा सकता, उसी प्रकार 'किसी भी वर्ग की संरचना और उसमें रहने वाले व्यक्ति' को अलग नहीं समझा जा सकता। यह बात कोरी कल्पना नहीं है बल्कि वैज्ञानिक सत्य है। अस्मिता को कल्पना से जोड़ा गया है। लेकिन अस्मिताएं काल्पनिक कम, वर्ग संरचना के अनुभव की उपज हैं। कहीं–कहीं नेत्रों के आधर पर भी सृजन को देखा जाता है। क्योंकि दृश्य कलाओं के अंतर्गत 'चित्र से लेकर टेलीविजन तक' और दृश्य विज्ञानों में 'प्रिज़्म से लेकर टेलीस्कोप तक' का आविष्कार हुआ है। साहित्य में जिस सौंदर्य को व्यक्त किया जाता है वह रूप का ही संसार है। वह भी कहीं न कहीं संवेदना से जुड़ता है। ऐसे ही जुड़कर संवेदनाएं घनीभूत होती हैं और पिफर उनको अभिव्यक्त करने के लिए माध्यम की जरूरत पड़ती है। सोशल मीडिया मंच उपलब्ध करवाकर उसे विस्तार देने का कार्य कर रहा है।

कुछ लोगों का यह मानना है कि सामाजिक मीडिया पर सबकुछ सही नहीं है। यह तथ्यात्मक बात है और इसे स्वीकार किया जाना चाहि,। लेकिन 'वहां सबकुछ गलत नहीं है। बहुत लोग अच्छा लिखते

हैं। जानकारियां देते हैं। सीमित साध्न में पत्रिकाएं निकालते हैं।' पत्रिका के साथ जुड़कर या स्वतंत्र रूप से लेखन करने वालों में ऐसे लोगों की संख्या काफी है जिन्हें अपने को साबित करने का मौका कहीं अन्यत्र नहीं मिलता। जो किसी संस्थान के सिपहसालार या प्रमाणपत्रधरी नहीं हैं। उन्हें सोशल मीडिया ने मंच दिया है। यहां लिखने वालों को किसी संपादक के हां और ना करने का इंतजार नहीं करना होता बल्कि अपनी प्रतिभा को किसी सांचे में ढालकर प्रस्तुत करने की चिंता करनी होती है। वह कर रहे हैं और बेहतर कर रहे हैं। वैसे भी सबकुछ कहीं अच्छा नहीं होता। जहां मनुष्य होता है वहां सिक्के के दोनों पहलू साथ रहे हैं, हैं और आगे भी रहेंगे।

साहित्यिक समाज में एक समय अनेक कारणों से लोग 'लघु पत्रिकाएं' निकालते थे। इसका कारण था संसाधनों का अभाव, प्रभुता और वर्चस्व। लेकिन आज उन 'लघु पत्रिकाओं' की जगह 'इंटरनेट पर निकलने वाली' पत्रिकाओं ने ले लिया है। वहां लघु जैसा कुछ नहीं है। पत्रिका का स्वरूप उपलब्ध सामग्री के आधर पर निर्धारित होता है और उनकी आज संख्या बहुत हो गयी है। उनमें विविधता है। अनेक विषयों को आधार बनाकर निकाली जा रही हैं। पत्रिकाओं का अधिक संख्या में निकलने का मतलब है अधिक से अधिक लेखकों को छपने का मौका मिलना। इसका एक फायदा यह भी है कि समान्य से सामान्य लेखक को भी छपने का मौका मिल जाता है। वह उद्‌गारों को व्यक्त करता है और सीखता है। लेखन कला को समृद्ध करता है। ऐसे मंचों पर कलमकारों को तमाम तरह से प्रोत्साहन भी मिल रहा है। लोगों से प्रतिक्रिया पाकर उत्साहित कलमकार अपनी क्षमता अनुसार अपने को तराशने का प्रयास कर रहा है।

इस विकेंद्रीकरण का एक लाभ और है। कृत्रिम चकाचौंध में देशज वृत्ति खत्म हो रही थी। तेजी से बढ़ रहे बाजार में सिर्फ पैसा और प्रचार हावी हो गया था। ऐसे में उन लोगों के लिए सोशल मीडिया संजीवनी की भांति है जो किसी न किसी रूप में अपना विचार समाज तक पहुंचाना चाहते हैं। सीमित संसाधन और समय सीमा में उसका विस्तार बहुत सहज तरीके से होता है। सामाजिक दृष्टि से इसका अपना महत्व है। 'ब्लॉग' लेखन इसी का हिस्सा है। पत्रिकाओं के समानांतर कविता और लघुकथाओं को लेकर स्वतंत्र ब्लॉग लिखने वालों की संख्या भी कम नहीं है। उसका कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति ब्लॉग बनाने और लिखने के लिए स्वतंत्र है। उस पर ना किसी प्रकार का नियंत्रण है और ना ही किसी की रोक टोक। ना ही किसी से अनुमति लेना है और ना ही किसी की सिफारिश करना है। ऐसे में अनेकानेक रूपों में अभिव्यक्तियां हो रही हैं। 'हाशिए का समाज और उसका साहित्य' सोशल मीडिया से जुड़कर अपने को और अधिक विस्तार देने में सक्षम हुआ है। उसकी पहुंच बढ़ी है। पाठक बढ़े हैं। इससे वर्ग–गत जागरुकता बढ़ी है और लोग 'अपने समाज' और उसकी समस्याओं' को लेकर एकजुट होने लगे हैं।

इस माध्यम पर यह आरोप भी लगता रहा है कि यहां प्रकाशित साहित्य अल्पकालिक होता है। चूंकि यह छपकर स्थयित्व ग्रहण नहीं कर पाता और न ही सर्वजन तक सुलभ हो पाता है इसलि, यह साहित्य है ही नहीं। लेकिन विज्ञान यह मानता है कि संरक्षण की दृष्टि से तकनीकि माध्यम सबसे अधि ाक सुरक्षित हैं। पहुंच और उपलब्धता की दृष्टि से भी आसान है। साथ ही उसमें भाषा और भाव की दृष्टि से नीत नए प्रयोग हो रहे हैं और नई पीढ़ी तक आसानी से पहुंच रहे हैं। यह माध्यम नई पीढ़ी में बहुत लोकप्रिय है। इसमें बदलाव की बयार सबसे पहले चलती है। प्रेमचंद ने लिखा है 'यदि आप को लगने लगे कि नई पीढ़ी भटक गई है तो आप बूढ़े हो गए हैं।' अर्थात् इसे नकारने की नहीं बल्कि इस पर विचार करने की जरूरत है। यह बदलाव है। बदलाओं को आसानी से स्वीकार करना मुश्किल होता है। लेकिन सोशल मीडिया पर लेखन की सीमा बढ़ रही है। यह उम्मीद है कि समय के साथ इसकी स्वीकार्यता और भी बढ़ेगी।

lUnHkZ %

1. डॉ. राजेन्द्र मिश्र– भविष्य का साहित्य, पृ. 136।
2. इसे ही आज लोक साहित्य की संज्ञा दी गई है।

3. डॉ. राजेन्द्र मिश्र– भविष्य का साहित्य, पृ. 136।
4. अर्थात् वह शास्त्रीय नियमों पर खरी नहीं उतरती।
5. हालांकि यहां भी वही हुआ है। कुछ ही जाति और वर्ग के लोग इस पेशे में आये। भारतीय संस्कृति की विविधता फिल्मी दुनिया में केवल चित्रों तक ही सीमित है। कह सकते हैं कि यह गढ़ा गया। सीमित किया गया। उसमें लोक कलाकारों को जगह ही नहीं दी गई। कलात्मक प्रस्तुति में उनको बिल्कुल शामिल नहीं किया गया, जैसे कि हालीवुड की फिल्मों में किया जाता है।
6. William morrow and company, INC, Newyark, 1980, pg.40.
7. अथातो सौंदर्य जिज्ञासा, पृ. 113 ।
8. हार्टमान– आर्ट और मीडिया, पृ. 81 ।
9. जातिगत या वर्गगत एकजुटता बढ़ी है। अपना समाज अर्थात् किसी एक जाति का समाज।

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 171-176

d|c|jukFk jk; % ,d vi|fre O;fDrRo

ohj|Un| d|ekj nc*

26 मार्च सन् 1933ई0 रविवार तदनुसार चैत्र अमावस्या संवत् 1990 विक्रमाब्द को उत्तर–प्रदेश के गाजीपुर जनपद में जमनिया क्षेत्र के मतसा गांव में वत्स गोत्री किसान ब्राह्मण कुल में माता लक्ष्मी देवी एवं पिता पं0 बैकुण्ठनाथ राय की प्रथम सन्तान के रूप में श्री कुबेरनाथ राय का जन्म हुआ। प्रमाण पत्रों एवं पुस्तकों पर इनकी जन्मतिथि 3 जनवरी सन् 1935 अंकित है। प्रपितामह पलकधारी राय के स्वामी रामाचारी से दीक्षित होने के उपरान्त परिवार चार पीढ़ियों से रामानुज सम्प्रदाय में है। प्रपितामह के पिता बाबू दीपनारायण राय का समय इस परिवार का स्वर्णयुग था। इन्हीं के नाम पर पूरे खानदान का नाम गांव–जवार में अब तक प्रचलित और सम्मानित है। वे उस समय के एक बड़े संयुक्त परिवार के मुखिया थे। कुबेरनाथ जी के बाबा अल्पवय में ही स्वर्गवासी हो गये थे। उनसे छोटे बाबू लालजी राय घर पर रहते थे, दूसरे बाबू मुन्नी राय मिडिल पास कर प्राइमरी स्कूल में अध्यापक थे। चौथे पं0 बटुकदेव शर्मा मिडिल पास करने के उपरान्त अंग्रेजी पढ़ने हेतु गाजीपुर से बक्सर चले गये। वहीं पहले क्रान्तिकारियों का, फिर कांग्रेसियों का साथ हो गया तथा इन्होंने वहीं जीवनभर अविवाहित रहकर देश सेवा का व्रत लिया तथा आजादी मिलने के पहले 36 वर्ष तक घर नहीं आये। वे 'देश', 'तरुण–भारत', 'लोकसंग्रह', 'प्रणवीर', 'राष्ट्रीय भाषा' आदि अनेक पत्रों का सम्पादन करके कलम के माध्यम से देश की सेवा करते रहे। इन चारों भाइयों का परिवार संयुक्त था। कुबेरनाथ जी के बाबा स्व0 पं0 इन्द्रासन राय को छोड़कर अन्य लोगों को कोई सन्तान नहीं थी। बस कुबेरनाथ जी के पिता श्री बैकुण्ठनाथ राय ही लड़का होकर पैदा हुये, शेष 5–6 लड़कियाँ ही घर में थीं। बैकुण्ठ राय जी से तीन पुत्र एवं तीन पुत्रियाँ पैदा हुये जिसमें कुबेरनाथ राय सबसे बड़े, तदुपरान्त नागानन्द वात्स्यायन, फिर तीन लड़कियाँ तथा सबसे छोटे शम्भू नारायण राय हैं। शिक्षित परिवार होने के नाते जब भी गांव में साधू–सन्त आते, लोग इन्हीं के यहाँ भेज देते थे। ये लोग यही बात, कथा–कहानी आदि सुनाया करते थे। घर में दादी और माँ भी बहुत सी लोक कथायें कहती थीं जिन्हें सारे बच्चे मन लगाकर सुनते थे। इनमें से कितनों का समावेश कुबेरनाथ जी ने अपने लेखन में किया है।

श्री नागानन्द वात्स्यायन के अनुसार– ''पिताजी सन्ध्या समय किसी–न–किसी धार्मिक ग्रन्थ का सस्वर पाठ ठाकुर जी के यहाँ करते थे और घर के सभी लोग श्रद्धापूर्वक सुनते थे। बचपन से ही हम दोनों (स्वयं और कुबेरनाथ जी) को संस्कृत और हिन्दी के प्रार्थना–पद कंठस्थ करा दिये गये थे। ब्रिटिश शासन द्वारा जब्त 'भारत भारती', 'आनन्दमठ' उपन्यास जो शर्मा जी द्वारा घर भेज दिया गया था, हम लोग बचपन में कोठे पर चढ़कर कई बार पढ़ चुके थे। 'सरस्वती', 'माधुरी', विशाल–भारत' आदि की पुरानी प्रतियाँ जो पिताजी शर्मा जी के यहाँ से लाये थे हम लोग बचपन में ही पढ़ गये थे। घर पर प्रतिदिन 'आज' या 'संसार' या शर्मा जी जिस पत्र के सम्पादक होते थे वह आया करता था जिसे पढ़ने के लिये आस–पास के गाँव के लोग भी आते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि घर की आर्थिक स्थिति पहले से हीनतर होते हुये भी घर की शैक्षणिक और सामाजिक स्थिति उत्तरोत्तर बाढ़ पर थी। भैया (कुबेरनाथ राय) अपनी पढ़ाई में कुशाग्र थे और आस–पास ख्यात होते गये।''[1]

*शोध–छात्र, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दतिया, मध्य प्रदेश

कुबेरनाथ राय की प्रारम्भिक शिक्षा अपने गाँव मतसा के प्राइमरी स्कूल एवं ढढ़नी के मिडिल स्कूल में तथा हाईस्कूल श्री शिवपूजन इण्टर कॉलेज मलसा में कृषि विज्ञान से और इण्टरमीडिएट क्वीन्स कॉलेज वाराणसी से विज्ञान वर्ग में हुयी। बी0ए0 की पढ़ायी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य, दर्शन एवं गणित लेकर पूरी की। एम0ए0 अंग्रेजी साहित्य से कलकत्ता विश्वविद्यालय से पास किया और वहीं से हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की 'साहित्य रत्न' परीक्षा भी पास की थी। प्रारम्भ से ही ये पढ़ने में मेधावी थे। प्राइमरी, मिडिल एवं हाईस्कूल की परीक्षा में ये स्कालरशिप होल्डर रहे। मिडिल एवं हाईस्कूल की परीक्षा में मेरिट लिस्ट में भी नाम था। इनका अध्ययन इतना विशाल एवं गहन होता था कि लोग दंग रह जाते थे। शिवपूजन इण्टर कॉलेज, मलसा के पुस्तकालय की कोई पुस्तक बिना इनके पढ़े बची नहीं थी। काशी और कलकत्ता प्रवास के समय तो एक से एक पुस्तकालय उपलब्ध थे।

इनका विवाह 12–13 वर्ष की अवस्था में पश्चिम बंगाल के मालदा जिले के एक गांव के बड़े किसान श्री वीरभंजन पाण्डेय की पुत्री महारानी देवी से हुआ था। न चाहते हुये भी पारिवारिक अनुशासन में बँधे होने के नाते ये मना न कर सके। संयुक्त परिवार की अवधारणा और जिम्मेदारी का निर्वहन जीवनभर करते रहे। सन्तान के रूप में एकमात्र पुत्र कोशलेन्द्र कुमार की ही प्राप्ति हुयी जिन्हें अपराजिता और अनन्तविजय दो सन्ततियाँ हैं।

एम0ए0 पास करने के उपरान्त विक्रम विद्यालय, हाबड़ा (पं0 बंगाल) में कुछ दिन अंग्रेजी के अध्यापक रहे। फिर 1959ई0 में नलबारी कॉलेज, नलबारी (आसाम) में अंग्रेजी के व्याख्याता नियुक्त हुये जहाँ उन्होंने अपने जीवन के 29 साल अंग्रेजी व्याख्याता और विभागाध्यक्ष के रूप में बिताये। सेवा निवृत्ति के उपरान्त असम छोड़कर गाजीपुर, उत्तर–प्रदेश वापस आकर स्वामी सहजानन्द महाविद्यालय, गाजीपुर में आप नौ साल तक प्राचार्य पद पर कार्य करके 30 जून 1995 को सेवामुक्त हुये।

श्री जितेन्द्र राय, अध्यक्ष राजनीतिक शास्त्र विभाग, स्वामी सहजानन्द महाविद्यालय कहते हैं– ''कुबेरनाथ राय के व्यक्तिगत जीवन और प्राचार्य के रूप में उनके कार्यकाल में कुछ उल्लेखनीय नहीं है। अध्यापक के रूप में अपने असम प्रवास के दौरान उन्होंने अपने जीवन की श्रेष्ठ रचनायें दी। साहित्य सृजन के इस महायज्ञ में उन्होंने अपने पारिवारिक और सामाजिक जीवन की आहुति दे दी थी। पत्नी और परिवार से दूर उनकी युवास्था निपट एकान्त में बीती। अपने एकमात्र पुत्र की शिक्षा–दीक्षा की उचित व्यवस्था भी वे नहीं कर पाये। यह एकान्तवास उनके साहित्य सृजन के लिए रास तो आया, किन्तु उन्हें इसका भारी मूल्य चुकाना पड़ा। धीरे–धीरे एकान्त सेवा उनका स्वभाव बन गया। अपने निबन्ध ''गं गं गच्छति गंगा'' में उन्होंने लिखा है– 'मेरा स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि एकान्त में मुझे सुख मिलता है। एकान्त मेरा वासी है।'

उनके सम्पूर्ण जीवन–दर्शन एवं साहित्य पर इस आत्मनिर्वासन और एकांतिकता की गहरी छाप है किन्तु उन्होंने निर्वासित यक्ष की भाँति गगनचारी मेघ से प्रिया को प्रणय निवेदन में अपनी शक्ति और क्षमता का अपव्यय नहीं किया। आत्मनिर्वासन के इस विष को शिव की तरह आत्मसात कर उन्होंने सदियों से उपेक्षित और पीड़ित सामान्यजन तथा ग्रामीण एवं जनजातीय समाज के दुःखों, आवेगों तथा उनकी अपेक्षाओं को अपने लेखन में रेखांकित किया तथा उन्हें आधुनिक अभिजन के सांस्कृतिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया। आत्मपीड़न का ऐसा उदात्त वैश्वीकरण हिन्दी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है।

दो दशकों से अधिक की उनकी प्राध्यापकीय सेवा असमय में होने के कारण उत्तर–प्रदेश में संयोजन के लिए अस्वीकृत कर दी गयी। स्वामी सहजानन्द महाविद्यालय, गाजीपुर में लगभग दस वर्ष की सेवा के उपरान्त वे घर गये तो पारिवारिक खेती–बारी के अतिरिक्त उनके पास आजीविका के लिए विशेष कुछ नहीं था, किन्तु उनके जीवन और चिन्तन पर इन विपरीत परिस्थितियों का कोई विशेष प्रभाव परिलक्षित नहीं हुआ। वस्तुतः उनमें कोई भौतिक महत्वाकांक्षा थी ही नहीं। संस्कार और आचरण में वे गांधीवादी थे जिसके आदर्शवाद ने उन्हें अभाव के दंश से बचाया और अपनी साहित्य साधना को उन्होंने व्यक्तिगत जीवन से सदैव ऊपर रखा। असम की गौड़ीय संस्कृति में 'एडजस्ट' हो चुके थे, अतः गाजीपुर

आना उनका दूसरा निर्वासन था जिसमें वे कभी 'एडजस्ट' नहीं हो सके। परिणामतः न केवल उनके साहित्य सृजन की अविराम गति भंग हुयी, बल्कि जीवन के बहुत सारे खट्टे–मीठे अनुभव भी प्राचार्य के रूप में उन्हें बटोरने पड़े जिससे उनके सहज साहित्यिक मन को बड़ी ठेस पहुँची।

प्राचार्य के रूप में कुबेरनाथ राय का जीवन दरअसल सामाजिक जीवन की वास्तविकता के साथ उनके उदात्त साहित्यिक मन के घात–प्रतिघात की कथामात्र है। वस्तुतः वह प्राचार्य जैसे किसी पद के लिए बने ही नहीं थे। ललित साहित्य की मनोरम उपत्यकाओं में विचरणशील उनका सहज, स्वाभाविक मन जब जीवन और समाज की वास्तविकताओं से टकराता था तो उन्हें गहरी ठेस लगती थी। महाविद्यालय के प्रशासनिक समस्याओं की जटिलता से वे अक्सर दुःखी और असंयत हो उठते थे। वास्तविकताओं से टकराने और उन्हें दिशा दे पाने की सामर्थ्य उन्होंने अर्जित ही नहीं की थी। उनकी चाह एक घटना विहीन जीवन की थी, अतः अपना यह कार्यकाल उन्होनें भविष्य में साहित्य सृजन की तैयारी के रूप में ही व्यतीत किया। सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं का अनुभव उन्हें प्राचार्य के रूप में ही मिला था। यदि उन्हें समय मिला होता तो उनका लेखन निश्चय ही सामाजिक सन्दर्भों से अपेक्षाकृत अधिक सम्पृक्त हुआ होता।

कुबेरनाथ राय का दार्शनिक चिन्तन परमसत्ता के वैश्विक और परावैश्विक रूपों के बीच मानवीय चेतना की विस्तार यात्रा है। सामाजिक विसंगतियों में अस्तित्व के लिए संघर्षरत सामान्यजन की असहायता से वे आत्मिक रूप से परिचित थे। उनकी मान्यता थी कि चरम पीड़ा के क्षणों में मनुष्यों को स्वविवेक की अपर्याप्तता का एहसास होता है। हताशा की स्थिति मनुष्य को उस संत्रास की स्थिति में ले जाती है जिधर अस्तित्ववाद संकेत करता है। परन्तु कुबेरनाथ राय के लिए मनुष्य की यह स्थिति दुर्निवार नहीं है।

इसीलिए लोकजीवन में विभिन्न उपासना पद्धतियों को उन्होंने अत्यधिक महत्व देकर रेखांकित किया है। गंगातीर के सामान्यजन से लेकर असम की जनजातियों तक प्रचलित नदी, वन, पर्वत और देवी–देवताओं की उपासना पद्धतियों का ललित और सूक्ष्म विवरण उन्होंने अपने लेखन में प्रस्तुत किया है। आध्यात्मिक जीवन में राम उनके आराध्य थे। समाज की टूटती मर्यादाओं एवं विघटित होते हुये मूल्यों का समाधान उन्हें राम के मर्यादा पुरुषोत्तम स्वरूप में प्राप्त हुआ था। रामकथा पर उनका गहन चिन्तन, पथभ्रष्ट भारतीय संस्कृति को मर्यादा की उस पृष्ठभूमि से जोड़ने का प्रयास था जहाँ उनके आराध्य राम दृढ़तापूर्वक खड़े हैं।

कुबेरनाथ जी का सांस्कृतिक चिन्तन उनकी सामान्य बातचीत में भी अभिव्यंजित होता रहता था। भारतीय संस्कृति को वे आर्य तथा आर्येतर संस्कृतियों का समन्वय मानते थे। इसके विकास में वे किरात और निषाद संस्कृतियों के योगदान का गम्भीर रेखांकन करते थे। असम के लम्बे प्रवास के कारण वहाँ के जनजातीय जीवन से उनका लगाव था और उन्होंने बड़ी सूक्ष्मता से उसका समाजशास्त्रीय अध्ययन किया। आर्येतर भाषाओं से हिन्दी में आयातित शब्दों का वे बड़ा सूक्ष्म एवं प्रामाणिक विवरण देते थे। शब्दों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में उनकी प्रतिभा अत्यन्त उर्वर एवं सूक्ष्मग्राही थी। सामान्य बातचीत में भी वे प्रायः शब्दों पर ठहर जाते थे और उसकी व्युत्पत्ति तथा भारत के विभिन्न क्षेत्रों में उनके भिन्न–भिन्न प्रकार के प्रयोगों आदि की विद्वत्तपूर्ण मीमांसा में खो जाते थे। इस दृष्टि से भी हिन्दी साहित्य को उनका अवदान अति विशिष्ट है। उन्होंने बताया कि संस्कृत के विधिवत शास्त्रीय अध्ययन का अवसर उन्हें कभी नहीं मिला। हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवादों के माध्यम से ही उन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया था, किन्तु जिस अधिकार के साथ वे बात–चीत या लेखन में संस्कृत का प्रयोग करते थे, वह चकित करने वाले था।

कुबेरनाथ राय की राजनीतिक विचारधारा एक सुनिश्चित प्रतिबद्धता के बाहर नहीं जाती थी। राजनीतिक चिंतन में वे पूर्णतः गाँधीवादी थे। समाज में व्याप्त आर्थिक–सामाजिक विसंगतियों से वे अत्यन्त क्षुब्ध रहते थे। नैतिक मूल्यों के निरन्तर क्षरण के एहसास ने उनमें खिन्नता का भाव भर दिया था।

सामाजिक–राजनीतिक विसंगतियाँ उनके भीतर तीव्र आक्रोश उत्पन्न करती थीं। अन्तर का क्रोध और हाहाकार उन्हें राजनीतिक विचारधारा के क्षेत्र में डॉ0 राम मनोहर लोहिया तक ले गया। दलित और पीड़ित मानवता के लिए डॉ0 लोहिया के संघर्षो को वह बड़े मनोयोग से याद करते थे। पर इसके आगे मार्क्सवाद की सीमारेखा पर पहुँचकर वे प्रत्यावर्तित हो जाते थे क्योंकि मार्क्सवादी दर्शन में परमसत्ता का अस्वीकार है। यह दर्शन उनकी मानसिक – सांस्कृतिक संरचना के पूर्णतः प्रतिकूल था।

विचार एवं लेखन में उनकी भंगिमा कभी–कभी अहंवादी लगती है। सामाजिक–राजनीतिक गतिविधियाँ उनकी प्रकृति के प्रतिकूल पड़ती थी। साहित्यिक गुटवादियों से वे आजीवन दूर रहने का प्रयास करते रहे। उनकी मान्यता थी कि लेखन के लिए एकान्त आवश्यक है और मोर्चे तथा संस्थाएँ एकान्त को खण्डित करते हैं। अतः गाजीपुर आगमन के उपरान्त अनेक साहित्यिक महारथियों ने उन्हे विभिन्न आयोजनों में सम्मिलित करने का प्रयास किया किन्तु वे विनम्रतापूर्वक सबसे विरत रहे।

वैचारिक स्तर पर समझौता उनके लिए असम्भव था। अपने निपट अकेलेपन में उन्होंने जो जीवन–दृष्टि विकसित की थी उसके प्रति वे आजीवन प्रतिबद्ध रहे। किसी स्थापना को नकारने में उन्हें एक क्षण भी देर नहीं लगती थी। कभी–कभी यह दम्भ जैसा प्रतीत होता था। पर यह वास्तविकता नहीं थी। वस्तुतः यह अस्वीकृति उनकी एकान्त साहित्यिक साधना और गाँधीवादी जीवन पद्धति से अर्जित वैचारिक आत्मनिर्भरता और महत्वाकांक्षा विहीन जीवन का परिणाम थी। महत्वाकांक्षा को वे मानवीय जीवन एवं मूल्यों के पतन का कारण मानते थे। हिन्दी साहित्य के उनके महत्वपूर्ण अवदान के मूल में उनकी यह महत्वाकांक्षा रहित गाँधीवादी जीवन दर्शन है और यही उनके अप्रतिमता का राज भी है। उनके लेखन में जो 'यूनीफार्म इक्सीलेन्स' है वह अन्यत्र दुर्लभ है और यही उनकी साहित्य–साधना की सिद्धावस्था है।''[2]

डॉ0 रामनारायण राय, रीडर अर्थशास्त्र विभाग, स्वामी सहजानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर के अनुसार – ''कुबेर नाथ राय जी ज्योतिषशास्त्र के बहुत अच्छे जानकार थे, यह बात बहुत कम लोगों को ज्ञात है। वे सामान्यतः इसे किसी को जानने देना भी नहीं चाहते थे। वे कहते थे कि इससे मेरी परेशानी बढ़ जायेगी। लोग मुझे इसी में उलझाये रखेंगे। मुझे इसका कोई आर्थिक लाभ तो लेना नहीं है, उल्टे लिखने–पढ़ने में व्यवधान उत्पन्न होगा। जो लोग उनके निकट थे उनके लिए इससे कोई परहेज नहीं था।''[3]

आषाढ़ मास का दिन था। बेहद तपन और उमस थी। शाम को बिजली गायब थी। मैं कालेज परिसर में ही टहल रहा था। अँधेरा छा गया था। प्राचार्य जी (कुबेरनाथ राय) भारी उमस और अँधेरे के कारण बाहर ही चारपाई पर बैठे थे। मुझे देखकर आवाज लगाली ''डॉक्टर साहब! आइए।'' पास आने पर उन्होंने चारपाई पर बैठाया, बोले आज बेहद गर्मी है। बिजली भी चली गयी है। मैने पूछा, क्यों, इस समय इतनी गर्मी क्यों पड़ती है? आसमान साफ था और आकाश में पूरा नक्षत्र–मण्डल जगमगा रहा था।

उन्होंने ऊपर उँगली उठा कर कहा– देखिये हम लोगों के माथे से थोड़ा पश्चिम और उत्तर ये जो छः सात तारे विशेषरूप से चमक रहे हैं, वह मृगशिरा है। उससे थोड़ा दक्षिण जो सात आठ चमकीले तारों का समूह है वह वृश्चिक नक्षत्र है। है न वृश्चिक जैसी आकृति? इस समय सूर्य का संरचरण इसी नक्षत्र में है। इसी से हमारे यहाँ कहा जाता है कि मृगडाह (मृगशिरा) खूब तपता है।'' फिर देर तक मुझे नक्षत्रों की चाल और उनकी गणना समझाते रहे। जितनी जानकारी उनकी पुस्तकीय ज्योतिष की थी उतनी ही जानकारी आकाश में संचरण करने वाले तारों और ग्रहों की भी थी।

भविष्य में लेखन की सुविधा के लिए संघ, संस्था या पत्र–पत्रिकाओं के सम्पादकीय विभाग से जुड़ने के लिए चेष्टा न करना जिससे महाविद्यालय से सेवामुक्त होने के बाद लेखन के साथ–साथ आर्थिक स्रोत भी कायम रहे, बच्चों के सहारे के लिए मिली विभिन्न पुरस्कार राशियों एवं बचतों को

सावधि ब्याज पर लगाना, ये सारे निर्णय यह अनुमान लगाने के लिए हमें सूत्र देते हैं कि उन्होंने ज्योतिष गणना से अनुमान लगा लिया था कि निकट भविष्य में ही उनकी जीवन–यात्रा समाप्त होने वाली है। इसीलिए सेवा मुक्ति के बाद भी कोई लम्बी योजना बनाना अनावश्यक है।''

श्री राजेन्द्र प्रसाद, आकाशवाणी गुवाहाटी लिखते हैं – ''हिन्दी में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, आचार्य चतुरसेन शास्त्री तथा डॉ0 भगवतशरण उपाध्याय जैसे दो–चार बहु–आयामी ज्ञान सम्पन्नों को छोड़कर कुबेरनाथ राय जैसा ज्ञान के विस्तार और उसकी गहराई दोनों में सीमातिक्रमणकारी शायद ही कोई अन्य हो। किन्तु जहाँ पुर्वोक्त महामनीषियों ने अपनी प्रतिभा के अभिव्यक्ति को भी बहुत बड़ा क्षेत्र विस्तार (कहानी, उपन्यास, इतिहास, आलोचना आदि में) दिया। वही कुबेरनाथ राय ने थोड़ी सी स्फुट कविताओं को छोड़कर अपनी मेधा के सम्पूर्ण ताप और प्रकाश को ललित निबन्ध के आतिशी शीशे (कान्वेक्स लेन्स) तक ही सीमित रखा जिससे हिन्दी के साहित्य पटल पर अभूतपूर्व सौन्दर्य फोकस में आकर रूपायित हुआ। यह रूप हिन्दी में पहले कभी नहीं देखा गया था।''[4]

पहली बार की मुलाकात में मुझे बड़ी शर्म आयी जब विद्यार्थी जीवन का उल्लेख करते ही उन्होंने मुझे तत्काल पहचान लिया जबकि मैं उनके लिए ऐसा न कर सका। परन्तु उनके आत्मगोपन के सहज स्वभाव, बाहर से साधारण दिखने वाले व्यक्तित्व और लगभग पूर्ण अहंकार रहितता के बावजूद कुछ मिनटों की बातचीत से ही यह अनुभव हो गया कि मेरे अस्तित्व के सम्मुख एक प्रतिभा सुमेरू खड़ा हैं। एक ऐसा प्रतिभा सुमेरू जिसके भेदक ज्ञान, आप्यायिनी कल्पना शीलता, अध्ययन की शीतल शान्त किन्तु गहरी त्रिवेणी बहती हुयी मेरी ओर आ रही है।

श्री राय की साहित्यिकता का उत्स उनकी प्रच्छन्न आध्यात्मिकता में ही ढूढ़ पाना सम्भव है। वैसे उनका अध्ययन अपार विस्तीर्णता और अथाह गम्भीरता दोनों आयामों को समेटता है। गुवाहाटी में ही एक चर्चा के दौरान पता चला कि चीनी और जापानी साहित्य को छोड़कर शेष विश्व के साहित्य (अंग्रेजी अनुवादों के माध्यम से ही सही) का उन्हें घनिष्ठ परिचय प्राप्त था।''

प्रसिद्ध ललित निबन्धकार पं0 विद्यानिवास मिश्र ने 23.11.93 के नवभारत टाइम्स में अपने सम्पादकीय में लिखा था– ''कुबेरनाथ राय का जीवन अत्यन्त सादगीपूर्ण साधक का जीवन रहा है। भौतिक जीवन की चकाचौंध उन्हें कभी आकृष्ट नहीं कर पायी। अपने बारे में उनका यह कथन बड़ा सटीक है कि ''मेरे जीवन में कुछ भी ऐसा उग्र, उत्तेजक, रोमांटिक, अद्भुत या विशिष्ट नहीं जो कहने लायक हो। पूर्वी उत्तर–प्रदेश के एक अर्द्ध–अभावग्रस्त सवर्ण किसान परिवार के शिक्षित और उत्तरदायित्व चेतना सम्पन्न युवक की जो नियति होती है जैसा जीवन होता है, वैसा ही हमारा जीवन है। यही सहजता उनके चिन्तन को बरकरार रखे हुये है। साथ ही लेखन के प्रति एक निर्लिप्तता भी उनमें दिखती है जो स्वीकार करती है कि, 'मैंने क्या लिखा, मेरे भीतर के अन्तर्यामी पुरुष ने लिखवाया। अन्यथा इस भोजपुरी देहाती से वह थोड़े ही लिखा जाता।' इसलिए कुबेरनाथ राय की रचनायात्रा स्थूल से सूक्ष्म की ओर रही है। उनके निबन्ध सांस्कृतिक गवेषणा और लालित्य चेतना के अद्भुत संगम है। उन्हें पढ़ते हुये लगता है कि जैसे हम सभ्यता की खोज यात्रा से गुजर रहे हैं।''[5] निदेशक भारतीय भाषा परिषद कलकत्ता डॉ0 प्रभाकर श्रोत्रिय कहते हैं – ''हिन्दी की ललित निबन्ध परम्परा के एकनिष्ठ प्रतिनिधि थे कुबेरनाथ राय। उन्होंने आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के फक्कड़ अन्दाज और खुलेपन के बदले अपनी निजी शास्त्रीय किस्म की रसज्ञता की राह चुनी। भारतीय संस्कृति के पण्डित और मर्मज्ञ कुबेरनाथ राय जी ने जो भी लिखा वह गहरी आस्था और निष्ठा से लिखा। सांस्कृतिक समय बोध उनमें प्रभूत ज्ञान और अन्तः प्रज्ञा से पुष्ट हुआ। यो ज्ञान के स्थानान्तरण के बावजूद उनकी विषय सीमा थी, परन्तु वैसी विगलित रस लोलुपता नहीं, जो आज ललित–निबन्धों में अक्सर दिखायी देती है। अनेक दृष्टि से कुबेरनाथ जी का अवदान विशिष्ट और किसी सीमा तक अद्वितीय रहा।''

अस्तु श्री राय के जीवन वृत्त के साथ–साथ उनके समग्र लेखन एवं विभिन्न विद्वानों के उनके प्रति विचारों को देखने के बाद यह कहना बिल्कुल भी अतिशयोक्ति नहीं होगा कि ऐसा अप्रतिम व्यक्तित्व अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

lUnHkZ %

1. निवेदिता : कुबेरनाथ राय, विशेषांक, 1997, पृ0 16
2. निवेदिता : कुबेरनाथ राय, विशेषांक 1997, पृ0 344
3.. निवेदिता (1997), कुबेरनाथ राय विशेषांक, स्वामी सहजानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर, पृ0 54
4. त्रेता का वृहत्तसाम, कुबेरनाथ राय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण 2008, पृ0 68
5. वही, पृ0 76

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 177-180

^pinuh* Nrhlx<h ykd dk çek[;ku

_r; jkuh*

'प्रेम' मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इसीलिए प्रेम को आधार बनाकर दुनिया में अनेक कथाएं रची गईं हैं। भारत में भी 'प्रेमाख्यान' की सत्ता प्राचीन काल से विद्यमान है। यहाँ का लोक समाज अपनी आस्था और आदर्श के अनुरूप आख्यानों को गढ़ता आया है, जो 'गान' से लेकर 'नृत्य' और'नाट्य' तक की एक लम्बी यात्रा करते हैं। संस्कृत साहित्य में 'पुरुरवा–उर्वशी', 'नल–दमयंती', 'दुष्यंत–शकुन्तला', 'उषा–अनिरुद्ध', 'कृष्ण–राधा आदि इसके प्रमाण हैं। अपभ्रंश में भी लोकगाथात्मक प्रेमाख्यान अधिक मिलते हैं। धीरे–धीरे लोकसमाज में प्रेमाख्यान लोकगाथाओं की एकपरम्परा विकसित होती चली गई। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि "अभीरों के आगमन के साथ लोक प्रेमाख्यान की रचना की एक परम्परा विकसित हुई।"[1] हमें 'लोक' की भूमि पर 'प्रेम' के इस रूप को गहराई से समझने–समझाने की जरूरत है। आज भी 'ढोलादृमारू', 'लोरिकदृचंदा', 'सोहिनीदृमहिवाल', 'हीर–रांझा' आदि अनेक प्रेम आख्यान लोक समाज में गाये और मंचित किये जाते हैं। इसका अर्थ यह भी है कि ये मूलतः लोकगान शैलियों के रूप में प्रचलित रहे हैं।

सामान्यतः लोक आख्यानों में मुखरित इतिहास या ऐतिहासिक तथ्य बड़े ही मार्मिक और मनोरंजक होते हैं। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार– "लिजेन्ड (आख्यान) लोककथाओं का वह प्रकार हैं जिसके कथानक में तथ्य घटना और परम्परा दोनों का समन्वय पाया जाता है।"[2] डॉ. दिनेश्वर प्रसाद का भी कुछ–कुछ ऐसा ही मत है। उनके अनुसार–" आख्यान लोक कथा का एक भेद है और सत्य पर आधारित रहता है। आख्यान का आधार लोक साहित्य के अध्येताओं की दृष्टि से भी सत्य होता है। इसे विकृत इतिहास कहना इसी बात का प्रमाण है और यह इंगित करता है कि इसके मूल में कोई ऐतिहासिक घटना रहती है, जो कालांतर में अतिरंजित हो जाती है।"[3] इस विश्लेषण के उपरांत हम कह सकते हैं कि आख्यान लोक की वह रचना है, जिसमें इतिहास और कल्पना का समावेश है।

आज भी आख्यान, गाथाओं के रंगमंच का अस्तित्व उसका लोक–जीवन से जुड़े रहने के कारण ही है। क्योंकि इनमें चरित्र और लोकदेवताओं के साथ क्षेत्र विशेष की स्थानीय सांस्कृतिक/परम्पराओं का भी समावेश है। इस संदर्भ में छत्तीसगढ़ी लोक आख्यान भी अलग नहीं हैं। यहाँ इन गाथा गायकों की प्रमुख जातियाँ देवार, राऊत, परधान आदि हैं। कुछ जनजातियों की अपनी विशिष्ट गाथाएं भी हैं, जैसे– गोंड जनजाति की गाथा 'लिंगोपेन', बैगा जनजाति की गाथा 'नंगा बैगा' तथा अगरिया जनजाति की गाथा लोहासुर या लोगुंडी राजा की गाथा। ये गाथाएँ छत्तीसगढ़ की ऐतिहासिक धरोहर हैं। क्योंकि इन गाथाओं में हमें मध्ययुगीन स्थितियों का चित्रण भी देखने को मिलता है। छत्तीसगढ़ में प्रचलितइन गाथाओं की प्रवृति और विषय को देखते हुए तीन भागों में बांट सकते हैं– 1. प्रेम–प्रधान गाथाएँ, 2. धार्मिक एवं पौराणिक तथा 3. वीरगाथाएँ।

प्रेम–प्रधान गाथाओं के अंतर्गत 'लोरिक–चंदा' की गाथा, जिससे 'चंदैनी' के नाम से जाना जाता है, अधिक प्रचलित है। इसकी कथा एक विवाहित राजकुमारी चंदा और वीर नायक लोरिक के प्रेम संबंधों के कारण पारिवारिक विरोध, सामाजिक तिरस्कार, संघर्षों और चुनौतियों का सामना करते हुए बच निकालने की घटनाओं के इर्द–गिर्द घूमती है। "छत्तीसगढ़ी गद्य में इसकी कथा को सर्वप्रथम सन 1890 में श्री हीरालाल काव्योपाध्याय ने चंदा के कहानी के नाम से प्रकाशित किया था। वही वेरियर एल्विन

---

*शोध छात्रा, हिंदी विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय

ने सन 1946 में लोकगाथा के छत्तीसगढ़ी रूप को अंग्रेजी में अनुवाद करके अपने ग्रंथ 'फोक सांग्स ऑफ छत्तीसगढ़' में उद्भूत किया है।"[4]

वेरियर एल्विन के अनुसार चंदैनी बावनवीर की पत्नी थी। बावनवीर वीर होते हुए भी शिवशाप के कारण नपुंसक हो जाता है, तो चंदैनी उसे छोड़कर अपने नैहर जाने लगती है। रास्ते में बंठवा उसका मार्ग रोककर बलात उसे अपनी पत्नी बनाने को उद्धत होता है, तब लोरिक उसकी रक्षा करता है। लोरिक की वीरता से प्रभावित होकर चंदैनी उसे प्यार करने लगती है। धीरे–धीरे दोनों का प्यार परवान चढ़ता है। लोरिक चंदैनी को लेकर हरदी भाग जाता है किन्तु रास्ते में चंदैनी का पति बावनवीर लोरिक को युद्ध के लिए ललकारता है। लोरिक भी वीर, पराक्रमी और पौरुष संपन्न पुरुष है। वह अपने पराक्रम के बल पर जीत जाता है और चंदा को लेकर आगे बढ़ता है। पराजित बावनवीर चिढ़कर कोलों को भड़कता है और लोरिक पर आक्रमण करा देता है। लोरिक यहां भी विजयी होता है।

लोरिक हरदी पहुंचता है। हरदी का सहुआ राजा लोरिक की वीरता और शौर्य से प्रभावित होकर अपना आधा राज्य उसे दे देता है। लोरिक–चंदैनी सुखपूर्वक रहने लगते हैं। बाद में 'चनरइसा' नामक वीर पुत्र का जन्म होता है। इस तरह इस प्रेमाख्यान लोकगाथा का अंत होता है। प्रसिद्ध लोक मर्मज्ञ रामहृदय तिवारी इस गाथा को "दो मानवीय प्राणों के प्यार की तलाश की अतृप्त आकांशा मानते हैं।"[5] वहीं रमाकांत श्रीवास्तव कहते हैं कि "समाज विवाहित स्त्री और पुरुष के प्रेम प्रसंग को अच्छे नजरिए से नहीं देखता, लेकिन लोरिक–चंदा की गाथा में रूढ़ियाँ टूटती हुई दिखती हैंद्य इसमें हम विवाहितों के परिपक्व प्रेम से परिचित होते हैं।"[6]

'चंदैनी' के सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह 'रामायण' से अधिक खंडों व छंदों वाली रचना है। इस गाथा को अहीरों की जातीय धरोहर से जोड़ा जाता रहा है। कुछ विद्वान इसे वीराख्यानक लोकगाथा के रूप में भी स्वीकारते हैं। लोरिक वीर होते हुए भी सामान्य यदुवंशियों के युद्ध कौशल का प्रतीक है। उसके रूप और गुण से सम्मोहित राजकुमारी चंदा अपने पति और घर को त्यागकर प्रेम की ओर अग्रसित होती है। वास्तव में इन दोनों के मिलन में जो द्वंद और बंधन है, उसे पुरुषार्थ से काटने का प्रयास इस लोकगाथा का गंतव्य है। यह लोक गाथा जितनी प्रसिद्ध छत्तीसगढ़ के अंचलों में है, उतनी ही भोजपुरी, अवधि, मैथिली, मगही, में भी है। यही नहीं इसके गाए जाने के संकेत गुजरात, बंगाल और महाराष्ट्र में भी मिलते हैं। भोजपुरी और उसके आस–पास के अंचलों में इस गाथा का नामकरण नायक के नाम से होने के कारण इसे यहां 'लोरिक' या 'लोरिकायन' के नाम से जानते हैं। जबकि छत्तीसगढ़ में यही गाथा नायिका प्रधान होने से 'चंदैनी' के नाम से प्रसिद्ध है। सूफी प्रेमाख्यानों की भी यही विशेषता है कि रचना का नामकरण नायिका के नाम पर हुआ है।

लोरिक–चंदा की यह लोकगाथा साहित्यिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। मध्ययुगीन कवियों ने इस लोक कथा के आधार पर ही कई साहित्यिक कृतियों की रचना की। इस दृष्टि से अवधी बोली में रचित मुल्ला दाउद की कृति 'चंदायन' सूफी प्रेमाख्यान का पहला काव्य है। इसका रचनाकाल विवादग्रस्त है। माताप्रसाद गुप्त इसका मूलनाम 'लोर कहा' या लोर कथा' मानते हैं। लेकिन इसका 'चंदायन' नाम ही अधिक प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त इस गाथा के आधार पर "दौलत काजी कृत 'सती मयना उ लोर चंद्रानी', गवासी कृत 'मैना सतवंती', साधन रचित 'मैनासत', हमीदी कृत 'इस्मत्नाम' भी रची गई।"[7]

कवि मुल्ला दाउद डलमऊ (उ.प्र.) के रहने वाले थे। उन्होंने अपने यहां की लोक प्रचलित गाथा चनैनी के आधार पर ही 'चंदायन' की रचना की। लोरिक चंदा की यह कथा, दाउद के समय भी काफी प्रचलित रही होगी, इसका अनुमान हमें इस बात से होता है कि "उसका उल्लेख मैथिल कवि ज्योतिरीश्वर शेखराचार्य की सुप्रसिद्ध रचना वर्णरत्नाकर, जिसका समय चौदहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध समझा जाता है, सुप्रसिद्ध रचना वर्णरत्नाकर में 'लोरिकनाच्यो' के रूप में हुआ है।"[8] इसके अतिरिक्त दाउद लिखते हैंदृ "यह सम्पूर्ण आख्यान ईश्वरीय सत्य है। पढ़ने में मनोरंजक है, प्रेमियों को आनंद भरे चिंतन की सामग्री देने वाला है, ...इसकी कथा प्रसिद्ध लोरिक व चांदा की है।"[9] अतः स्पष्ट है कि चंदायन की कथा लोक जीवन में प्रचलित कथा का ही साहित्यिक रूप है।

लोक में विविध नामों से प्रसिद्ध लोरिक चंदा की इन सभी कथाओं का बाह्य रूप एक–सा है। केवल कुछ आंतरिक घटनाओं के रूप में भिन्नता है। कहीं यह सुखांत है, कहीं दुखांत है। पात्रों और स्थानों के नाम में भी थोड़ा बहुत बदलाव दिखाई पड़ता है। जैसे भोजपुरी रूप में चनवा का सिलहर (बंगाल) से लौटकर अपने पिता के घर गउरा आना वर्णित है। छतीसगढ़ी रूप में भी यह मिलता है, परन्तु कुछ विभिन्नताएं हैं। इसमें चनैनी का अपने पिता के घर से पति वीर बावन के घर लौटना वर्णित है। अन्य रूपों में यह वर्णन नहीं है। भोजपुरी रूप में चनैनी को मार्ग में रोककर बाठवा अपनी पत्नी बनाना चाहता है, परन्तु वह किसी तरह अपने पिता के घर पहुंच जाती है। बाठवा गउरा में आकर उसको कष्ट देता है, राजा सहदेव भी उससे डरता है। मंजरी के बुलाने पर लोरिक पहुंचता है और बाठवा को मार भगाता है। छत्तीसगढ़ रूप में यह कथा वर्णित है, परन्तु उसमें थोड़ा अंतर है। महुआ (बाठवा) मार्ग में चनैनी को छेड़ता है। लोरिक वहां आकर उसको मार भगता है। लोरिक की वीरता देखकर वह मोहित हो जाती है और लोरिक को अपने महल में बुलाती है। शेष अन्य रूपों में वह वर्णन नहीं मिलता। लोरिक चंदा की इस गाथा का भोजपुरी रूप सुखांत है। इसमें लोरिक अंत में मंजरी और घनवा के साथ आनंद से जीवन व्यतीत करते हैं। मैथिली रूप में भी सुखांत है परन्तु उसमें गउरा लौटना वर्णित नहीं है। छतीसगढ़ी रूप में लोरिक अपनी पत्नी व घर की दशा से दुखित होकर सदा के लिए बाहर चला जाता है। इस लोक गाथा का बंगाली रूप भी मिलता है। इसका हैदराबादी रूप छत्तीसगढ़ी से अधिक साम्य रखता है।

इसकी ऐतिहासिकता पर भी विद्वानों ने अपना पक्ष रखा है। "राहुल सांस्कृत्यायन ने लोरिक को एक प्राचीनकालीन भारत का नायक माना है जिसका राज्य गंगा नदी के उत्तर में स्थित था, जो गोंडा के समीप था। उसने श्रास्वती के राजा के पास युद्ध में लड़ने हेतु दस हजार मल्ल भेजे थे। यह युद्ध वर्तमान सहेठ–महेठ के आस–पास हुआ था।"[10] जबकि डॉ. सोमनाथ यादव इस लोक गाथा के सूत्र छत्तीसगढ़ की ऐतिहासिकता में देखते हैं। उनका मानना है कि इसकी मूलकथा और घटना–प्रसंग छत्तीसगढ़ के ही है। वे लिखते हैं "मैं जब इस लोकगाथा के संकलन–संपादन के मध्य अन्वेषण–यात्रा में संलग्न था, तब लोकगाथा गायकों के अतिरिक्त लोकसाहित्य–मर्मज्ञों, लोककलाकारों ने यह राय दी कि रायपुर जिलांतर्गत आरंग एवं रींवा और उसके मध्य की लीलाभूमि "लोरिक चंदा" के प्रेम प्रसंग की साक्षी है..... चंदैनी से पता चलता है कि रींवा लोरिक का मूल गाँव था या कम से कम इस गाँव से उसका गहरा सम्बन्ध था। चंदैनी का एक टुकड़ा ही इसका प्रमाण है– 'बारह पाली गढ़ गौरा, सोलह पाली दीवाना के खोरध अस्सीपाली पाटन, चार पाली गढ़ पिपही के खोर।"[11] अतः मान सकते हैं कि लोरिक– चंदा निश्चित रूप से कोई ऐतिहासिक पात्र रहे होंगे। क्योंकि स्थान, नाम में निहित घटना–कथा ही जनश्रुति और लोककथा बनकर लोकमानस में प्रचलित और प्रतिष्ठित होती है। हाँ, इतना जरुर है कि उसे क्षेत्रीय प्रभावों, मान्यताओं, कल्पना, बुद्धि आदि से कुछ–कुछ अलौकिक बनाया गया हो।

'चंदैनी' गाथा के प्रस्तुति पक्ष पर बात करें तो छत्तीसगढ़ में इसे प्रायः दो लोग मिलकर गाते हैं। एक प्रमुख गायक होता है और दूसरा उसके स्वर (राग) में स्वर मिलाने वाला रागी कहलाता है। इसका कार्य लोकगाथा में हुकृति देने वाले की तरह होता है। अंतर बस यह है कि इस लोकगाथा का रागी पूरी गाथा जानने के कारण एक ओर जहाँ प्रमुख गायक के आधे भाग अर्थात 'अर्धाली' को उठता है, वहीं हुकृति और उत्सुकता के द्वारा श्रोता वर्ग को भाव और कथा समझाने में महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाता है।

'चंदैनी' में महाकाव्यों की तरह मंगलाचरण की भी परम्परा होती है। गाथा का आरम्भ सरस्वती वंदना से किया जाता है। इसके बाद गाथा गायक गुरु जी,लोक देता को याद करता है। फिर वह आत्मनिवेदन का आश्रय–ग्रहण करता है। लोरिक–चंदा की सुरम्य प्रणय गाथा को सूखे मीठे गुड़ अथवा गन्ने के रस की तरह अत्यंत मीठा एवं सरस स्वीकारता है। उसके बाद वह गाथाओं की विशिष्टता को सूत्रपात के रूप में प्रस्तुत करता है। उसके द्वारा प्रयुक्त उपमान केवल आंचलिक और मौलिक ही नहीं, अपितु लोक से रचे–बसे भी हैं। इस सारी पृष्ठभूमि के बाद गाथाकार कथा की शुरुआत बड़े ही सहज, सरल तरीके से प्रस्तुत करता है। चूँकि यह लोक द्वारा, लोक के लिए प्रस्तुत है, इसीलिए इसमें कोई स्थिर नियम नहीं हैं। छत्तीसगढ़ के ही अलग–अलग हिस्सों में इसकी गाथा की प्रस्तुति प्रक्रिया में थोड़ा बहुत हेर–फेर मिल जाएगा।

व्यावहारिक रूप में देखा जाय तो लोक में रचे बसे कलाकार ही महान परम्पराओं को जीवन्त बनाये रखने में सक्षम हैं। चंदेनी के लोक कलाकारों ने आज भी इसे जीवित रखा है। इस क्षेत्र में दाऊ रामचंद्र देशमुख का नाम सबसे पहले आता है। वे छत्तीसगढ़ी कला, संस्कृति की ओर समर्पित रहे। उन्होंने चंदैनी गोंडा शुरू किया। चिंतादास बंजारे भी चंदैनी गायक हैं। उन्होंने चंदैनी नाम से चंदैनी पार्टी बनाकर इस लोक गाथा को पूरे देश में गाया है। खुमान साव भी चंदैनी के उम्दा कलाकार हैं। इन सभी लोगों की मेहनत और समर्पण ने चंदैनी को बनाये रखा। चंदैनी को आधार बनाकर उनको नाटक के रूप में खेलने वाले हबीब तनवीर साहब को भूलना संभव नहीं। उन्होंने इसे सोन–सागर नाम से प्रस्तुत किया। इस प्रस्तुति में चंदैनी के प्रसिद्ध गायक रमई की विशेष भूमिका रही। "चंदा अउ लोरिक के है ये प्रेम कहानी / हमर देश के चंदैनी..."[12] जैसे चंदैनी के गीतों द्वारा रमई कथा को आगे बढ़ाते हैं। वास्तव में यह प्रयोग किसी रंगकर्मी द्वारा इससे पहले नहीं देखा गया था। लोक से कथासूत्र उठाते हुए तनवीर ने इस गाथा में एक बार फिर प्राण फूंक दिए।

'चंदैनी' का लोक स्वरूप विविधता लिए हुए भी लोक समाज को एक सूत्र में बांधे हुए है और यह सूत्र है अपनी परम्परा, संस्कति से जुड़े रहने का। इसमें ऐतिहासिकता और कल्पना का एक साथ सामंजस्य है। आज के इस प्रगतिशील दौर में भी जब प्रेमी हृदय समाज के कठोरदृप्रतिबंध तोड़ते हुए दहल जाते हैं। तब उस घोर सामंतवादी दौर में लोरिक और चंदा ने सहज और उत्कृष्ट प्रेम पर दृढ़ रहते हुए जाति, समाज, धर्म और स्तर के बंधन काटे थे। इस गाथा का एक साहित्यिक संसार भी है जिसमें हिंदी के सूफी कवियों के योगदान सराहनीय हैं। लोरिक चंदा एक ऐसा लोक महाकाव्य है जिसे प्रेम और पुरुषार्थ की प्रतिभा के रूप में छत्तीसगढ़ी जन प्रतिष्ठित किये हुए हैं। इसीलिए वे आज आदर्श प्रेमी हैं और गीत बनकर लोगों के हृदय में राज कर रहे हैं। धीरे–धीरे व्यावसायिकता के चलते इसकी कथा में बदलाव आया और इसे मंचों पर भी मनचाहे ढंग से प्रस्तुत किया जाता रहा है। आज आधुनिकता की दौड़ में इससे लोक धरोहर को हम भूलते जा रहे हैं।

lUnHkZ %

1. डॉ. कपिल तिवारी, रंगभूमि, आदिवासी लोक कला एवं तुलसी, साहित्य अकादमी, भोपाल, पृष्ठ–11
2. डॉ. आदित्य प्रसाद सिन्हा, 'हो और मुंडा जनजाति में आख्यान' चौमासा, अंक 75 पृष्ठ–173
3. डॉ. आदित्य प्रसाद सिन्हा, 'हो और मुंडा जनजाति में आख्यान' चौमासा, अंक 75 पृष्ठ–173
4. डॉ. सोमनाथ यादव, छत्तीसगढ़ की लोकगाथा–लोरिक चंदा, http://www-Suhai&bilasa-blogspot-com
5. राजकुमार सोनी, लोरिक चंदा (छत्तीसगढ़), तहलका, http://www-tehelkahindi-com
6. राजकुमार सोनी, लोरिक चंदा (छत्तीसगढ़), तहलका, http://www-tehelkahindi-com
7. रीता दूबे, 'चंदायन के विविध पाठरू अतीत वर्तमान सम्बन्धों की खोज', जन्कृति अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका, अंक 33, जनवरी 2018,
8. सं. परमेश्वरी लाल गुप्त, चन्दायन, हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, पृष्ठ–58
9. डॉ.बैकुण्ठ राय, भारतीय प्रेमाख्यान काव्य परम्परा और दाउद कृत चांदायन, साहित्य रत्नाकार, पृष्ठ– 36
10. निरंजन महावर, 'छतीसगढ़ में प्रचलित गाथाएँ, चौमासा, अंक –75 , पृष्ठ–106
11. डॉ. सोमनाथ यादव, छत्तीसगढ़ की लोकगाथा– लोरिक चंदा, http://www-suhai&bilasa-blogspot-com
12. महावीर अग्रवाल, हबीब तनवीर का रंग– संसार, श्री प्रकशन, दुर्ग, पृष्ठ– 163

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 181-185

dey'oj dh dgkfu;ksa dk oSpkfjd&jktuhfrd i{k

jke,dcky d|'kokgk*

स्वतंत्रता के बाद साहित्यिक विचार विमर्श की केन्द्रीय विधा के रूप में कहानी की प्रतिष्ठा बढ़ी और नयी कहानी ने इसके लिए एक मुकम्मल जमीन तैयार किया। इसके साथ ही साहित्य को देखने–समझने का नजरिया भी काफी कुछ बदल गया। इस दौर में साहित्य को विश्लेषित करने के लिए साहित्य–शास्त्र से अधिक समाजशास्त्र को महत्वपूर्ण माना जाने लगा और जिस किसी साहित्य समीक्षक ने साहित्यालोचन की परम्परागत पद्धति से ही अपने को बांधे रखा, वह इस बदले हुए साहित्य के साथ न्याय नहीं कर पाया। साहित्य विश्लेषण की बदली हुई इस मानसिकता को रेखांकित करते हुए कमलेश्वर ने लिखा है, ”विचार विमर्श से गुजरते हुए मेरी यह धारणा और भी पुष्ट हुई है कि सर्जनात्मक साहित्य अब साहित्य–शास्त्र द्वारा नहीं, समाज–शास्त्र द्वारा ही सही सन्दर्भों में विश्लेषित हो सकता है। खासतौर से हिंदी कथा–साहित्य अब साहित्य–शास्त्रीय मान्यताओं की परिधि से निकलकर बहुत व्यापक जीवन के परिवेश में सांस ले रहा है –जहाँ उसकी चिंताएँ और अपेक्षाएँ बदल गयी है, यानी बहुत हद तक साहित्यिक–बोध परिवर्तित हुआ है।”[1] स्पष्ट है कि 'नई कहानी' की वैचारिक मानदंडों को रेखांकित करते हुए कमलेश्वर ने साहित्य को विश्लेषित करने के लिए साहित्य–शास्त्र को नहीं, समाज शास्त्र को अधिक महत्वपूर्ण माना है। क्योंकि साहित्यालोचन की जो परम्परागत पद्धति रही है, वह बदले सन्दर्भों में वर्तमान साहित्य को विश्लेषित करने में बहुत सफल नहीं रही। इसका मुख्य कारण साहित्यिक मूल्यों में हो रहे परिवर्तन के अनुसार साहित्य–बोध में परिवर्तन का न होना है। मसलन यदि नया कथा–शास्त्र गढ़ा जायेगा तो वह भी अपने वर्तमान समय–सन्दर्भों से ही जन्म लेगा।

एक यह भी कारण है कि नई कहानी की सामाजिक प्रतिबद्धता के बावजूद इस पर बहुत सारे आरोप लगाये गए। इसमें एक आरोप वैचारिक प्रतिबद्धता और राजनीतिक उपेक्षा का भी है। क्योंकि जिस समय देश का भविष्य राजनीति के सांचे से गढ़ा जा रहा था उस समय 'नयी कहानी' के कहानीकार इससे अपने को अलग रखते हुए, पारिवारिक संबंधों में उलझे हुए थे। इन्होंने अपनी कहानियों में राजनीति भाव–बोध को उपेक्षित रखा और उनमें वैचारिक प्रतिबद्धता की कोई मुखर आवाज नहीं मिलती। लेकिन यह कितना सच है इसे हम नई कहानी आन्दोलन के एक प्रमुख स्तंभ कमलेश्वर के रचनात्मक व्यक्तित्व के सहारे देखेंगे।

कमलेश्वर राजनीति को बहुत गंभीरता से देखते हैं और उसके लिए वैचारिक जुड़ाव को अत्यंत महत्वपूर्ण मानते हैं। उनके जैसा संवेदनशील व्यक्ति राजनीतिक परिदृश्य और उसकी घटनाओं से निरपेक्ष हो ही नहीं सकता। उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष और देश के विभाजन की त्रासदी को अपनी आँखों से देखा था, तो वही नए भारत के स्वप्न को टूटते हुए भी देखा। ये घटनाएँ जीवन भर उनके जेहन में जिन्दा बनी रहीं और उनकी रचनात्मकता को सबसे अधिक प्रभावित किया। जिन लोगों के भरोसे एक नए भविष्य का सपना संजोया जा रहा था, वे पथभ्रष्ट हो गए। ऐसा क्या कारण था जो लोग अब तक त्याग और सदाचार का झंडा बुलंद किए थे एकाएक स्वार्थ के महासागर में तैरने लगे। इस सन्दर्भ में कमलेश्वर ने लिखा है, ”वह त्यागी पीढ़ी, जो 14 अगस्त की रात के ग्यारह बजकर उनसठ मिनट तक बहुत संयमी, आदर्शवादी, स्वप्नदर्शी, सच्चरित्र और साधू थी, एक मिनट बाद ही स्वार्थ लोलुप, अत्याचारियों में बदल गयी। चारों तरफ एक नया राजनीतिक वर्ग पनपने लगा जो जोंक की तरह जनता का रक्त चूसने लगा और अपने लिए सुविधाएँ बटोरने में लग गया। स्वार्थपरता, भाई–भतीजावाद, कालाबाजारी, बेईमानी

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

का जो दौर चला उसने जनता को मोहभंग की स्थिति में जबर्दस्ती खड़ा कर दिया।"[2] यह परिवर्तन मुख्य रूप से एक राजनीतिक परिवर्तन था जिससे साहित्य सबसे अधिक प्रभावित हुआ। इन बदलती हुई परिस्थितियों ने कमलेश्वर के राजनीतिक और वैचारिक समझ को गहरे तक प्रभावित किया है।

राजनीतिक चेतना के स्तर पर कमलेश्वर का जुड़ाव मार्क्सवादी चिंतन और विचारधारा से रहा है। वे इलाहाबाद के अपने छात्र जीवन में ही एक सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में वामपंथी आंदोलनों से जुड़े रहे और पार्टी के 'जनक्रांति' अखबार के लिए भी कार्य किया। लेकिन मार्क्सवादी नेताओं के सिद्धांत और व्यवहार के गहरे फांक ने इनकी निष्ठा को गहरा आघात पहुँचाया था। साथ ही पार्टी कार्यकर्ता और लीडरशीप में घोर असंगतियों और इनके छद्म व्यवहारों ने इनको पार्टी की गतिविधियों से विमुख कर दिया। पार्टी और 'जनक्रांति' अखबार से जुड़े अपने इलाहाबाद के दिनों को याद करते हुए वे लिखते हैं, "जनक्रांति' बराबर निकल रहा था। उसमें लिखना कुछ और बढ़ गया था। आदर्शों के प्रति आस्था और भी बढ़ गयी थी। साथियों की अडिग आस्था मुझे और पुख्ता करती जा रही थी। पार्टी दफ्तर में एक दिन मैं अकेला था और हुक्म मिला था कि मैं वहां से हट कर न जाऊँ। नेता लोग किसी अहम बातचीत के लिए कांग्रेस के नेताओं के पास दिल्ली गए थे।

किसान आन्दोलन चल रहा था। पुलिस ने ऑफिस पर छापा मारा। दो तीन साथियों के साथ मैं पकड़ा गया। नैनी जेल में उन्नीस दिन बंद रहा। उम्र से नाबालिग होने के कारण चुपचाप मुझे छोड़ दिया गया। जेल के जूते, लाल मोहम्मद बीड़ी का बंडल और रिक्शे के छह आने नगद लेकर मैं जमना पार नैनी से उस पार गऊघाट तक लौट आया...

पर दिल्ली से लौट कर कोई नहीं आया। पार्टी के जिम्मेदार व्यक्तियों ने कांग्रेस में शामिल होना स्वीकार कर लिया था। उनके वक्तव्य अखबारों में आ गए थे। जिन्होंने कांग्रेस में शामिल होना ठीक नहीं समझा था, वे हताश होकर अपने पुराने घर–गाँवों को लौट गए थे। मैं दतर में बैठा लोगों के लौटने की प्रतीक्षा करता रहा, पर कोई नहीं आया। सब दस्तावेज, सब प्रस्ताव, सब वक्तव्य एक दिन में झूठे पड़ गए। मुरदा हो गये।"[3] इस घटना ने कमलेश्वर को बहुत अधिक प्रभावित किया। उनका मोहभंग अनायास नहीं था। उनकी आस्था की हत्या हुई थी।

लेकिन वामपंथी पार्टियों से उनका सक्रिय राजनीतिक जुड़ाव भले ही खत्म हो गया हो पर वैचारिक आधार पर जीवन भर वे वामपंथी और प्रगतिशील विचारधारा से जुड़े रहे। उनके लेखन की कसौटी भी यही रहा। उनकी यह विशेषता रही कि वामपंथी विचारधारा से जुड़े होने के बावजूद भी इसकी कमियों और इसकी सीमाओं को बड़ी बेबाकी से चिह्नित किया और उसका विरोध भी करते रहे। यह कमलेश्वर के ईमानदार व्यक्तित्व का प्रमाण है।

भारतीय राजनीति के चारित्रिक पतन में कमोवेश वामपंथी राजनीति भी समिल्लित रही है लेकिन इसका प्रतिशत कम रहा है। कुछ असंगतियों को यदि छोड़ दे तो वैचारिक आधार पर आज भी वामपंथी विचारधारा अधिक समृद्ध है जो सामाजिक और आर्थिक समानता की पक्षधरता के साथ खड़ा है। यही कारण है कि भले ही वामपंथी राजनीति से कमलेश्वर की शिकायत रही हो लेकिन अपनी रचनात्मक विचारधारा के स्तर पर वे हमेशा इससे जुड़े रहे। कमलेश्वर की इस वैचारिक प्रतिबद्धता के बारे में ललित मोहन अवस्थी ने लिखा है "किसी व्यक्ति की वैचारिकता– ही उसकी आस्थाएं और संस्कार ही उसके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का मुख्य निकष होती हैं। वैचारिकता से या व्यक्ति की आस्थावान विचारधारा से अलग रखकर किसी व्यक्ति के चरित्र और .तित्व को परखना न केवल नितांत अवैज्ञानिक है, वरन सर्वथा गलत भी है। यह तथ्य रचनाधर्मी साहित्यकारों पर विशेष रूप से लागू होता है। इस मूल कसौटी पर कमलेश्वर (कमलेश्वर प्रसाद सक्सेना) के अब तक के कृतित्त्व, रचनात्मकता और व्यक्तित्व को, लगभग ढाई दशक पूर्व जब उन्होंने एक कथाकार के रूप में हिंदी साहित्य में प्रवेश किया था, तब से लेकर आजतक यदि परखा जाय, तो उसे दो ही शब्दों में व्याख्यायित किया जा सकता है कि– कमलेश्वर एक प्रतिबद्ध वामपंथी हैं।"[4] कमलेश्वर ने अपने एक साक्षात्कार में भी बहुत ही स्पष्टता और ईमानदारी से स्वीकार किया है कि "मैं वामपंथी रुझान का लेखक हूँ– राजनीतिक और सामाजिक रूप से सचेत और प्रतिबद्ध व्यक्ति हूँ।"[5] लेकिन कुछ आलोचकों को उनके सारिका जैसी व्यवसायिक पत्रिका का संपादक होने और उनकी

विशेष जीवनशैली से चिढ़ था, जिन्होंने यह घोषणा की कि कमलेश्वर एक छद्म वामपंथी हैं और वे वामपंथी मोर्चे को कमजोर कर रहे हैं। लेकिन यह कोरा गल्प था इसके लिए उनके पास कोई पुख्ता तथ्य या तर्क नहीं था।

कमलेश्वर की कहनियों में भी इनके वामपंथी रुझान के स्पष्ट संकेत देखे जा सकते हैं। इनकी शुरुआती दौर की कहानियों में एक कहानी है, 'कामरेड'। इस कहानी का रचनाकाल 1948 है। अर्थात पंद्रह–सोलह वर्ष की उम्र में कमलेश्वर मार्क्सवाद के प्रभाव में आ गए थे। हालांकि यह उनकी शुरूआती कहानी होने के कारण इसमें परिपक्वता कम है लेकिन इनके वैचारिक रुझान का स्पष्ट संकेत इस कहानी में देखा जा सकता है। ऐसे ही फरार, देवा की माँ आदि कहनियों में भी वामपंथी विचारधारा के पात्र अपनी वैचारिकी के साथ मौजूद हैं। देवा की माँ' कहानी का देवा सरकार के खिलाफ आन्दोलन करने के कारण जेल जाता है। उसके और उसके साथियों की गतिविधियों से स्पष्ट पता चलता है कि वे मार्क्सवादी विचारधारा के ताप में तपते हुए युवा हैं। उसकी माँ को "एक दिन पता लगा कि देवा राजनीतिक आदमियों के साथ उठने–बैठने लगा है, उनके साथ झोला डाले इधर–उधर घूमता रहता है। अब वह अपने बारे में या घर के बारे में उतना चिंतित नहीं है, जितना कही दूर बैठे लोगों या शहर के दूसरे लोगों के लिए है। कभी–कभी रात को भी बाहर रह जाता है घरों में देवा की चर्चा होती कि वह अखबार बेचने लगा है। बेकार आदमियों की तरह घर–घर दौड़ता फिरता है और चार पैसे का अखबार पहुंचाता है द्य चर्चा अगर बुराइयों पर चल पड़ी तो देवा और उसकी माँ को एकदम काला करार दे दिया जाता और कभी अच्छाइयों पर मुड़ गयी तो उसकी जीवनी शक्ति के सामने सब सिर झुका देते।

और वह सोचती...देवा भी सपनों में उलझा जा रह है। उसमें जो आग सुलगी है, जो स्थिरता आई है, वह उसे शक्ति देगी, पर वह दिन–दुनिया की नंगी बातें करता है, उसकी बातों में कच्चापन है, पर बचपना नहीं। और माँ को लगता है कि देवा अब निपट अकेला नहीं है, वह बहुतों से अनदेखे रूप से जुड़ गया है।"[6] ये गतिविधियां और विवरण देवा के एक प्रतिबद्ध मार्क्सवादी की तस्वीर ही पेश करती हैं।

'मांस का दरिया' का मदनलाल भी वामपंथी पार्टी का कार्यकर्ता है। जुगनू जब कभी गली से बहार निकलती तो कनखियों से उन लोगों को जरूर देख लेती, जो उसके कोठे पर आते–जाते थे। ऐसे ही जब वह निकली "तभी एक दिन वह दिखाई पड़ा था– वही थैले वाला आदमी। एक इमारत की पहली मंजिल के बारजे पर कोहनियां टेके वह बीड़ी पी रहा था। वही कमीज पहने था। इमारत पर लाल झंडा लगा हुआ था, जिसकी छाया उसके कन्धों पर कांप रही थी।"[7] मदनलाल के कन्धों पर लाल झंडे की छाया का कापना पाठकों को उसके वामपंथी होने का स्पष्ट संकेत देता है।

'मांस का दरिया' का पार्टी कार्यकर्ता मदनलाल जुगनू के कोठे पर जाता जरूर है लेकिन वह जुगनू के प्रति अमानवीय नहीं है। उसका वेश्यागमन करना उसकी शारीरिक–जैविक जरूरत है परन्तु वह जुगनू के साथ कभी अमानवीयता से पेश नहीं आता। वह उसके पास आने वाले अन्य ग्राहकों की तरह नहीं है, जैसे कंवरजीत, मानसू और संतराम जैसे लोग हैं, जो उसके शरीर को नोचते हुए अपना ब्याज चुकता करते हैं और उसकी बीमारी में भी घोर अमानवीयता से पेश आते हैं। जुगनू भी मदनलाल से मिलकर कुछ सुकून सा महसूस करती है और उससे इधर–उधर की बातें भी करती है। उससे यह भी पूछती है की तुम क्या करते हो और जब वह यह बताता है की हम मजदूरों के लिए काम करते हैं तो वह कहती है, "हमारा भी कुछ काम कर दिया करो...हम भी मजदूर हैं।" जुगनू ने मदनलाल से यह मजाक में भले ही कहा हो लेकिन क्या कमलेश्वर एक वेश्या के मुंह से यह कहलवा कर समाज द्वारा उसे 'सेक्स वर्कर' के रूप में देखने के हिमायती नहीं हैं ? एक पाठक के रूप में हमारा ध्यान इधर भी एक बार जरूर जाता है।

राजनीति का अंतिम लक्ष्य सत्ता प्राप्ति ही रहा है। सत्ता भारतीय राजनीति का साध्य है। इसके लिए किसी भी साधन का प्रयोग किया जा सकता है। इसकी शुद्धता और नैतिकता का मानक इस पर निर्भर करता है कि वह सत्ता तक पहुँचने में कितना कारगर है। सत्ता का पक्ष हो या विपक्ष दोनों कि पीड़ा सत्ता में बने रहने की पीड़ा है। कमलेश्वर भारतीय नेताओं की इस पीड़ा से बखूबी परिचित हैं। इनकी अनेकों कहानियां इस राजनीतिक प्रपंच की शिनाख्त करती हैं और भारतीय नेताओं की इस महिमा को उजागर करती हैं। कमलेश्वर की एक कहानी है 'लाश'। "लाश' अपनी सांकेतिकता के बावजूद इस देश

के तमाम राजनीतिक प्रपंच को बेनकाब कर देने में समर्थ है। सत्ता प्रतिष्ठानों में जीने वाले मंत्रियों–नेताओं तथा प्रचंड विरोध का तेवर अपनाकर शानदार जुलूसों का आयोजन कर व्यवस्था के विरुद्ध धुआंधार चीखने वाले विरोधी नेताओं में क्या आज कोई प्रत्यक्ष–मौलिक अंतर रह गया है ? प्रचंड विद्रोह का तेवर भी आज सत्ता में आते ही मंद–शीतल पड़ जाता है, इसे अब कौन नहीं जानता ? जनता छोटे बड़े सभी नेताओं द्वारा इस्तेमाल हो रही है, इसे आज सभी लेखक जनता है और स्वयं जनता भी जानने लगी है।"[8]

कमलेश्वर ने व्यवस्था के यथार्थ को स्पष्ट करने के लिए व्यंग और फैंटेसी शैली का सफल प्रयोग किया है। जार्ज पंचम की नाक, अपने देश के लोग, अपने अजनबी देश में, जैसी कहनियां उदाहरण के तौर पर में देखी जा सकती है।

'अपने अजनबी देश में' कहानी भारतीय लोकतंत्र की विडम्बनाओं को बड़ी बेबाकी से सामने रखती है। कहानी में व्यंग का सुन्दर प्रयोग जहाँ लोकतंत्र के मर्म को बयान करने में अत्यंत सफल रहा है वही यह कमलेश्वर की कहानी कला का अद्भुत उदाहरण भी है। यह छोटी सी कहानी समाज के एक बड़े फलक को सामने रखती है। देश के लोक सेवकों, समाज सेवकों, सेना के जवानों, पुलिस बल के जवानों और सामान्य जन समुदाय के बीच उनके अन्तःसम्बन्धों को यह कहानी यथार्थ के स्तर पर रेखांकित करती है। देश में अन्न की कमी को दूर करने के लिए 'एफ्रिजेरेटर और नेलपॉलिश बनाने' जैसे विचार से भारतीय मध्यवर्ग के लोक सेवकों और समाज सेवकों के समुदाय के सोचने के तरीकों का अनुमान लगाया जा सकता है। यहाँ व्यंग का बहुत ही सटीक प्रयोग है। भारतीय लोकतंत्र की मजबूती को बताते हुए कहानीकार बड़ी सफाई से अपनी बात कह देता है कि, "लोकतंत्र और किस्मत का चोली–दामन का रिश्ता है...जबतक हिंदुस्तान में लोग भाग्य पर विश्वास करते हैं, लोकतंत्र को कोई हिला नहीं सकता।" वही भारतीय लोकतंत्र की सफलता को चिह्नित करते हुए कहता है, "गरीबी लोकतंत्र की एक बड़ी शर्त है। सच्चा लोकतंत्र वही है, जहाँ जनता और सरकार का कोई सम्बन्ध नहीं होता। सरकार सोचने का काम करती है और जनता अपना काम करती है...इस सोचने और काम करने में कोई ताल–मेल नहीं होता... जब तक यह हालात रहते हैं, लोकतंत्र बना रहता है।"[9] ऐसी ही एक कहानी है 'अपने देश के लोग'। यह कहानी भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था और राजनीति पर मीठा व्यंग करती है और सत्ता के चरित्र को बड़ी स्पष्टता से सामने रखती है। कोई सरकार या प्रशासन यह नहीं चाहता कि व्यवस्था में काम करने वाला कोई भी व्यक्ति या कर्मचारी किसी तरह की मांग करे और व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाये। सरकार ऐसे किसी व्यक्ति को बरदास्त नहीं कर सकती जो उसकी बनायीं व्यवस्था में अपना दिमाग चलाये और अपने और समाज के बारे में सोचे, जो उस व्यवस्था के विरुद्ध हो। कहानी का जनसंपर्क अधिकारी, जो एक मशीन की तरह काम करता है, भारतीय लोकतंत्र की इसी सच्चाई को बताते हुए कहता है, "भारत में लोकतंत्र को स्थापित करने के लिए ऐसे नए आदमियों की जरूरत है, जो सिर्फ मन लगाकर अपना काम करें...अनुशासन को समझें। जो सपने न देखा करें। अपनी बुद्धि का ज्यादा इस्तेमाल न करें। खाना–कपड़ा और रहने की जगह न मांगें। बढ़ती हुई कीमतों से परेशान और नाराज न हों। प्रदर्शनों और आंदोलनों में भाग न लें क्योंकि इससे प्रगति में बांधा पड़ती है। यह विभाग कर्मचारियों के सुधार के लिए खोला गया है...ताकि वे मन लगाकर सिर्फ अपना काम करें।"[10] इसका पालन न करने वाले हर व्यक्ति को मरीज घोषित कर दिया जाता है और बड़े अधिकारियों द्वारा, जो सता के मशीनीकृत रूप होते हैं और उनके अनुसार ही काम करते हैं, उसका शल्य चिकित्सा किया जाता है। जिसमें विरोध करने वाले का दिल, दिमाग और आँखें निकाल कर सत्ता के दिल, दिमाग, और आँखें लगा दी जाती हैं और वह उनके अनुसार देखने और काम करने लगता है। लेकिन फिर भी यदि उस व्यवस्था में जिसका अनुकूलन नहीं होता उसे 'बयान' कहानी के फोटोग्राफर–पत्रकार और उसके परिवार की उस स्थिति से गुजरना पड़ता है जिसका 'बयान' फोटोग्राफर की पत्नी देती है। यह राजनीतिक सत्ता की वह क्रूरता है जो मानवता के लिए भी स्थान नहीं बचा पाती।

भारतीय राजनीति और सत्ता के अनेकों संचारी भाव हैं जो समयानुकूल प्रस्फुटित होते हैं। इसका जमीर उस स्थिति तक गिर सकता है जिसकी कल्पना देश का आम नागरिक नहीं कर सकता। भारतीय राजनीति के एक ऐसे ही संचारी भाव की तस्दीक कमलेश्वर ने अपनी चर्चित कहानी 'जार्ज पंचम की नाक'

में की है। भारत की राजधानी दिल्ली की बात करते हुए कहानीकार व्यंग रूप में कहता है कि "नई दिल्ली में सब कुछ था .... सिर्फ नाक नहीं थी।"[11]दिल्ली, जो देश की राजधानी होने के कारण पूरे देश की नाक है, उसे आज भी विकसित राष्ट्रों को सौंपा जा चुका है। ऐसे तो हम अपनी नाक को किसी भी देश की नाक से बड़ा सिद्ध करने में हमेशा लगे रहते है लेकिन किसी विकसित राष्ट्र का राष्ट्राध्यक्ष या शासनाध्यक्ष जब भारत आता है तो हमारी स्थिति देखने लायक होती है। कमलेश्वर ने आजादी के बाद की अंग्रेजपरस्त राजनीति के इस पहलू का बड़ा ही सटीक चित्रण किया है। इंग्लैंड की महारानी एलिजाबेथ द्वितीय भारत की यात्रा पर आने वाली हैं, इसे लेकर भारत सरकार और यहाँ की मीडिया किस तरह लगी है इसका अद्‌भुत रूप इस कहानी में देखने को मिलता है। अखबारों में "रानी ऐलिजाबेथ की जन्मपत्री भी छपी। प्रिंस फिलिप के कारनामे छपे, और तो और उनके नौकरों, बावर्चियों, खानसामों, अंगरक्षकों की पूरी की पूरी जीवनियाँ देखने में आई। शाही महल में रहने और पलने वाले कुत्तों तक की तस्वीरें अखबारों में छप गयी...।"[12] यह आज की वर्तमान स्थिति पर भी उतना ही सटीक है और हम आज भी इस स्थिति से ऊपर नहीं उठ पाए हैं। लेकिन हमने अपनी नाक को कभी भी छोटा नहीं माना।

महारानी एलिजाबेथ भारत आने वाली हैं और जार्ज पंचम की बुत का नाक नहीं है। उसे लगाने को लेकर पूरे महकमे में अफरातफरी मच जाती है। नाक लगाने के लिए बुलाया गया मूर्तिकार भी वैसा पत्थर खोजने के लिए परेशान हो जाता है, मंत्रियों और नेताओं की लगातार बैठकें होती है। लेकिन हमारा गर्व और अभिमान इतना ऊँचा है और उसपर हम इतने आत्ममुग्ध हैं, इसे बैठक से निकलते हुए सभापति के वक्तव्य से जाना जा सकता है। "सभापति ने चलते–चलते गर्व से कहा– 'ऐसी क्या चीज है जो अपने हिंदुस्तान में मिलती नहीं। हर चीज इस देश के गर्भ में छिपी है...जरूरत खोज करने की है...खोज करने के लिए मेहनत करनी होगी, इस मेहनत का फल हमें मिलेगा, आने वाला जमाना खुशहाल होगा।"[13] लेकिन उस लाट का पत्थर कही नहीं मिल पाता। फिर बंद कमरे में देश के बड़े नेताओं की बैठक होती है और मूर्तिकार कहता है "देश में अपने नेताओं की मूर्तियाँ हैं....अगर इजाजत हो...अगर आप लोग ठीक समझें, तो मेरा मतलब है, तो... जिसकी नाक इस लाट पर ठीक बैठे, उसे उतार लाया जाए ...।"[14] और आश्चर्य की बात की हमारे नेताओं और अधिकारियों की इसपर सहमति बन जाती है। हम अपने महानायकों और पूर्वजों की नाक काट कर भी महारानी को खुश करना चाहते हैं। भारतीय राजनीति पर इससे तीखा व्यंग और क्या हो सकता है ? वर्चस्वशाली पूंजीवादी सत्ता को खुश करने के लिए देश के नेता किसी भी हद तक जाने को तैयार हैं। यह सिलसिला आज भी कायम है। कमलेश्वर को इस देश की नाक की असलियत का पता है जिसको बचाने और बेचने का खेल देश के नेताओं द्वारा किया जाता रहा है, लेकिन शर्त सिर्फ इतनी है कि इस खेल को जनता की नजरों से बचा कर खेलना है।

lUnHkZ %

1. कमलेश्वर, 1978, नई कहानी की भूमिका, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, की भूमिका' शुरू की बात से
2. वही, पृष्ठ 59
3. कमलेश्वर, 2012, समग्र कहानियाँ, राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली, की भूमिका से
4. मधुकर सिंह, 1977, (संपादित) कमलेश्वर, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ– 223
5. कमलेश्वर, 1996, मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, पृष्ठ– 305
6. कमलेश्वर, 2012, समग्र कहानियाँ, राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली, पृष्ठ– 157–158)
7. वही, पृष्ठ– 158
8. मधुकर सिंह, 1977, (संपादित) कमलेश्वर, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ– 142
9. कमलेश्वर, 2012, समग्र कहानियाँ, राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली, पृष्ठ– 414–415
10. वही, पृष्ठ, 409
11. वही, पृष्ठ– 288
12. वही, पृष्ठ– 288
13. वही, पृष्ठ– 289
14. वही, पृष्ठ– 290

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 186-188

Tkxnso izlkn vkSj lekftd vkanksyu

MkW0 gjsUnz flag*

जगदेव प्रसाद (1922–1974) का योगदान राजनीति के क्षेत्र में तो ही लेकिन इसके अलावा अगर व्यापक सामाजिक दृष्टि से देखा जाए तो उनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान है–ब्राह्मणवाद के विरुद्ध संघर्ष। वे समाजवादी पार्टियों में सक्रिय रहे। बाद में उन्होंने समाजवादी पार्टी से अलग होकर शोषित दल की स्थापना में प्रमुख भूमिका निभाई। अंततः उन्होंने रामस्वरूप वर्मा (1923–1998) के साथ मिलकर ही बिहार में अर्जक संघ की स्थापना की, जो आज ब्राह्मणवाद के विरुद्ध और मानवतावाद के पक्ष में काम करने वाला एक प्रमुख समाजिक संगठन है।

ब्राह्मणवाद और ब्राह्मणवाद के बीच संघर्ष भारत में कोई नई चीज नहीं है। इसकी एक पुरानी लंबी परंपरा रही है। आज भी ब्राह्मणवादी लेखकों द्वारा प्राचीन मध्ययुगीन भारतीय दर्शन के संप्रदायों की ''आस्तिक'' और ''नास्तिक'' के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। इस संदर्भ में ''आस्तिक'' का अर्थ है ''जो वेद को प्रमाणित माने'' और ''नास्तिक'' का अर्थ है ''जो वेद को प्रमाणिक नहीं माने''। दूसरे शब्दों में ''आस्तिक'' धाराएं ब्राह्मणवादी हुई और ''नास्तिक'' धाराएं गैर ब्राह्मणवादी या वेदों से स्वतंत्र लोकायत। चार्वाक, जैन और बौद्ध दर्शन को ''नास्तिक'' के अंतर्गत रखा जाता है। इन तीनों धराओं द्वारा वेदों की प्रामाणिकता और ब्राहमणों की श्रेष्ठता सहित वर्ण व्यवस्था को पूरी तौर से अस्वीकार किया गया है। इनमें भी लोकायत दर्शन में, जो एक पूरी तरह धर्मनिरपेक्ष और लौकिक दर्शन है, ब्राह्मणवाद पर सबसे करारा प्रहार किया है। लोकायत दर्शन में ब्राहमणों की श्रेष्ठता को चुनौती दी गई है। इसके अलावा श्राद्ध सहित सभी ब्राह्मणवादी कार्मकांडों को पूरी तरह नकारा गया है। इसी तरह, लोकायत दर्शन द्वारा ईश्वर, आत्मा, परलोक और मोक्ष सहित परलोकवाद को पूरी तौर से अस्वीकार किया गया है प्राचीन और मध्ययुगीन काल में इन ब्राह्मणवादी और गैर ब्राह्मणवादी धाराओं के बीच वैचारिक और यहां तक की हिंसक संघर्ष के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं। बिहार इन गैर ब्राह्मणवादी ताकतों का गढ़ रहा है। इसलिए, ब्राह्मणवादी ताकतों द्वारा हमेशा बिहार को बदनाम करने और नीचा दिखाने की कोशिश की गई । आज भी यह सिलसिला जरी है ।

उन्नीसवीं सदी में ब्राह्मणवाद का विरोध करने वाले प्रमुख व्यक्ति हैं– महाराष्ट्र में जन्मे ज्योतिराव फुले। उन्होंने अपनी पुस्तक गुलामगीरी में वर्ण व्यवस्था को सीधी चुनौती दी है। बीसवीं सदी में तमिलनाडु में जन्में रामास्वामी पेरियार और महाराष्ट्र में जन्मे डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने ब्राह्मणवाद के विरुद्ध संघर्ष को आगे बढ़ाया। जहां अम्बेडकर ने बौद्ध–धम्म का समर्थन किया, वहां पेरियार ने बुद्धिवद मानवतावाद की वकालत की। उत्तर प्रदेश के कानपुर जिला में जन्म लेने वाले रामस्वरूप वर्मा और बिहार के गया जिला के कुर्था प्रखण्ड (अब अखल जिला) में जन्म लेने वाले शहीद, जगदेव प्रसाद के संघर्ष को ब्राह्मणवाद और गैर ब्राह्मणवाद के बीच पुराने और लंबे संघर्ष को जोड़कर देख सकते हैं।

ऐसा दिखता है कि जगदेव प्रसाद अपने पिता के मृत्यु के बाद ही ब्राह्मणवाद के विरुद्ध विद्रोह कर गए थे। देवी–देवताओं की पूजा करने और ओझा–गुणियों से झाड़–फूंक करवाने के बाद भी जगदेव के बीमारी पिता ठीक नहीं हो पाए थे। पिता की मृत्यु के बाद जगदेव प्रसाद ने आक्रोश में आकर देवी–देवताओं की मूर्तियों और तस्वीरों को निकालकर पिता की अर्थी पर डाल दिया। इसी तरह उनहोंने

*राजकीय प्राथमिक विद्यालय, कुम्हिला प्रखण्ड, करगहर, रोहतास (बिहार)

अपने दादा और अन्य उपस्थित जनों को मृत्यु के बाद ब्राह्मणवादी कर्मकांडो (श्राद्ध) का बहिष्कार करने के लिए भी राजी कर लिया था।

परिवार में मृत्यु के समय कई बार कुछ बुद्धिवादी मानवतावादी रुझान के व्यक्ति भी दृढ़ता से अपने विचारों पर टिक नहीं पाते हैं। ''लोग क्या कहेंगे'' या अन्य परिवार जनों की ''भवनाओं'' का ख्याल जैसे दबाव उन पर हावी हो जाते हैं। यही सही है कि लोकतांत्रिक दृष्टि से अपने विचारों को अन्य परिवार जनों पर जबरदस्ती लादा नहीं जा सकता है, लेकिन कम से कम मानवतावादियों को स्वयं तो अपने विचारों पर दृढ़ता से टिकना हीं चाहिए। ऐसे में, जगदेव प्रसाद की उपलब्धि प्रशंसनीय है। उल्लेखनीय है कि परिवार जनों को राजी करने के लिए जगदेव प्रसाद ने जिन युक्तियों का इस्तेमाल किया,उनमें से कुछ लोकायत दर्शन की परंपरा में हैं।

लोकायत दर्शन की प्रमाणित लोकगाथा के कुछ अंश इस प्रकार हैं–न कोई परलोक है, न कोई मोक्ष न आत्मा किसी परलोक में जाती है, वर्णाश्रम धार्मों के पालन से भी काई फल प्राप्त नहीं होता । अगर श्राद्ध में अर्पित भोजन से परलोक में बैठे लोगों को नीचे से भोजन दे दिया जाता है। तो फिर किसी राहगीर के साथ में भोजन देने की क्या जरूरत है ? घर पर दिए भोजन से ही उन्हें रास्ते में तृप्ति मिल जाएगी। इसलिए ब्राहमणों ने मात्र अपनी आजीविका के लिए श्राद्ध कर्म की व्यवस्था की है। इसमें इससे अधिक कुछ भी नहीं है।

अर्जक संघ द्वारा भी ब्राह्मणवादी कर्मकांडों और संस्कृती के पूर्ण बहिष्कार की बात की गई है तथा मानववादी संस्कृति की वकालत की गई है। अर्जक संघ द्वारा ब्राहमण, पुरोहितों की सहायता या धार्मिक कर्माकांडों का सहारा लिए बिना विवाह और शोकसभा का आयोजन भी करवाया जाता है। इस संदर्भ में जगदेव प्रसाद द्वारा दिए गए नारों में एक है।

ekuoon dh D;k igpkuAA
cge.k Hkxh ,d lekuAA
iu tUe vkj HkX;oknAA
bll tUek ckã.koknAA 1

इसी तरह, शोषित दल के झंडा–गान में भी ब्राह्मणवाद का विरोध और मानववाद का समर्थन स्पष्ट दिखता है–

Qgj 'kkf"kr >Mk l;kjk] c< fo'o e Hkb&pkjkA
;g >Mk nk jxk okyk] Økfr&,drk dk j[kokykA
Ekuookn dk yku okyk] ble lj t dk mft ;kjkA Qgj---
fiNM] fgUn] ck)] bl kb] vNr] fxfjtu] efLye HkkbA
bTtr vkj jkVh dh yMkb] lk e uCc Hkkx gekj A Qgj---
iu tUe vkj HkkX;okn e dU;knku vkj erd Jk) eA
'kkf"kr Q l x, ckã.kokn e] vc gkxk budk fuLrkjk A Qgj---
o.k ;) d ?kk;y vkvk] o.k ;) d dk;y vkvkA
lerk ij **lekt** cukvk] i.k Økfr dk xt ukjkA Qgj----

जगदेव प्रसाद के भाषण पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए जनसंघ के जनार्दन तिवारी ने कहा था– ''माननीय सदस्य जगदेव बाबू को बिहार से मद्रास चले जाना चाहिए क्योंकि जैसा चाहते हैं, वैसा मद्रास में हो गया है। इसके उत्तर में जगदेव प्रसाद ने कहा था– ''घबराइए नहीं, मैं बिहार को ही मद्रास बना दूंगा।

ब्राह्मणवाद के विरुद्ध संघर्ष एक महत्वपूर्ण राजनीतिक पक्ष भी है, जिसका संबंध सरकार (विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका) शिक्षा और व्यवसायिका मीडिया सहित निजी क्षेत्र में पिछड़े वार्गों के हिस्सेदारी से है। डॉ. लोहिया पिछड़े वर्गों के आरक्षण के पक्ष में थे। उनकी पार्टी का नारा था–

jkt ikV e lkB ifr'kr]
fiNMk oxl d gkFk e nk]
Åph tkfr jkt pyko]
n'k dh j{kk dl gk \

इसी तरह–

ykfg;k u ck/kh xkBA
fiNMk iko lk e lkBA

जगदेव प्रसाद इन्हीं नीतियों के कारण समाजवादी पार्टी की ओर आकर्षित हुए थे। बाद में वह समाजवादी पार्टी से अलग भी इसलिए हुए, क्योंकि उन्हें यह महसूस हुआ कि 1967 में बिहार में महामाया प्रसाद के नेतृत्व में बनी और कांग्रेसी संविद सरकार में भी पिछड़े वर्गों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिला। जगदेव प्रसाद ने एक कदम आगे यह नारा दिया।

lk e UkCc 'kkf"kr g] 'kkf"kr u yydkjk gA
/ku&/kjrh vkj jkt&ikV e] UkCc Hkkx gekjk gA
nl dk 'kklu uCc ij] ugh pyxk ugh pyxkA

ऐसा नहीं है कि ब्राह्मणवाद के विरुद्ध जहां एक ओर विधायिका, कार्यपालिका और काफी हद तक सार्वजनिक शिक्षा के क्षेत्र में उच्च जातियों का वर्चस्व समाप्त हो चुका है या हो रहा है, वहीं दूसरी ओर उच्च न्यायपालिका और व्यवसायिक मीडिया सहित निजी क्षेत्र में उच्च जातियों का वर्चस्व बरकरार है। खुशी की बात है कि आजादी के बाद पहली बार कोई दलित जाति में जन्मा व्यक्ति भारत के उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश बना है। आज उच्च न्यायपालिका और मीडिया एवं शिक्षण संस्थानों सहित निजी क्षेत्र में पिछड़े वार्ग की हिस्सेदारी बढ़ाने की जरूरत है। ब्राह्मणवाद के विरुद्ध राजनीतिक संघर्ष का यह अगला मोर्चा है। जगदेव प्रसाद के जीवन और विचारों से प्ररणा लेकर सामाजिक और राजनीतिक दोनों क्षेत्रों में इस संघर्ष को और आगे बढ़ाने की जरूरत है।

lUnHk %

1. शहीद का संग्राम, पृ0 सं0 –17
2. शहीद का संग्राम, पृ0 सं0 –18
3. शहीद का संग्राम, पृ0 सं0 –19
4. शहीद का संग्राम, पृ0 सं0 –20

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 189-192

fgUnh nfyr dgkfu;ksa esa L=h psruk

vfouk'k jatu*

हिंदी दलित साहित्य को पढ़ने से पता चलता है कि लंबे समय से कथा कहानियॉ लिखी जा रही है। अन्य साहित्यकारों को दलित कथा–कहानी की भाषा, शैली, सौंदर्य, परिवेश अच्छा नहीं लग रहा था। दलित साहित्य में कविता के बाद ज्यादा रचना की गई वह कहानी है। अभी तक दलित साहित्य में पहली कहानी कौन है इस दिशा में विशेष चर्चा नहीं हुआ है। दलित साहित्य में अधिकांश कहानियॉ यथार्थपरक हैं। इन कहानियों में भारतीय समाज के जातिवादी, सामंतवादी चरित्र और दलितों के प्रति उनके व्यवहार को जिस साहस के साथ चित्रित किया गया है। वह साहित्य की एक बड़ी उपलब्धि है।

कहानी शब्द को परिभाषित डॉ. अमरनाथ की बहुत चर्चित पुस्तक आलोचना की परिभाषिक शब्दावली में कुछ इस प्रकार किया गया है:–

"कहानी का प्राचीन नाम संस्:त में 'गल्फ' या 'आख्यायिका' में मिलता है, लेकिन आधुनिक युग में कहानी के नाम से जिन रचनाओं का अवतरण हुआ वे संस्:त साहित्य में 'गल्प' अथवा 'आख्यायिका' के नाम से मिलने वाली रचनाओं से अलग है। हिंदी की आधुनिक कहानी का जन्म वर्तमान युग की आवश्यकताओं के कारण हुआ। अपने वर्तमान रूप में यह विधा अंग्रेजी साहित्य से होकर हिंदी में आई। कहानी को पश्चिम में 'शार्ट स्टोरी' कहा जाता है।"[1]

कभी–कभी कहानियां प्रारंभ में साधारण उठान की होती है, मगर अंत तक आते–आते भाव विचलित कर देती है। कहानी के रूप में प्रेमचन्द का कथन है जिसमें मानव के एक अंग या किसी एक मनोभाव को परदर्शित करना लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उनका कथा विन्यास सभी उसी एक भाव को पुष्ट करने होते हैं। कहानी के छः तत्व होते हैं– 1. कथावस्तु अथवा कथानक, 2. कथोपकथन अथवा संवाद, 3. चरित्र–चित्रण अथवा पात्र, 4. देशकाल–वातावरण, 5. भाषा–शैली और शिल्प तथा 6. उद्देश्य।

बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में हिन्दी कहानी में जो महत्वपूर्ण मोड़ मिलते हैं उनमें से एक प्रमुख मोड़ है हिंदी दलित कहानी। दलित कहानी का विकास मराठी से सन 1960 में उद्भव हुआ। हिंदी में दलित पक्ष को रखने के लिए ओमप्रकाश बाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, रमणिका गुप्ता, श्यौराज सिंह 'बेचैन', अजय नवारिया आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

विचारों और सिद्धांतों से आज जिस तरह हिंदी साहित्य में दलित स्त्री–विमर्श चर्चा का विषय बना हुआ है। स्त्री विमर्श को और अच्छा से समझने के लिए इस माध्यम से और अच्छा से समझ सकते हैं:–

"फेमनिज्म या नारीवाद पुरुष वर्चस्ववाद की नाक पर घुस्सा जड़ने का भरा–पूरा नारी दर्शन है। नारीवाद या स्त्रीवाद का अर्थ नारी का आत्मचेतना की अस्तित्व की अस्मिता की तलाश और खोज। चंद्रकांता की इस अंश के माध्यम से समझा जा सकता है:–

"आज जो लेखिकाएं स्त्री–विमर्श और नारी मुक्ति की बातें करती हैं, तो इस विमर्श की जमीन हमारे कुछ पुरुष रचनाकारों और स्त्री लेखिकाओं ने पहले ही तैयार की है। यशपाल ने 'दिव्या' उपन्यास और भगवती चरण वर्मा ने 'चित्रलेखा' में स्त्री की दी गई सहिंताओं और रूढ नैतिकताओं को उलंघ कर, अपने नियम आप बनाने वाले सशक्त स्त्री चरित्र रचे।

*शोध–छात्र, हिन्दी विभाग, बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फपुर

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उम्मीद जगी थी कि एक स्वतंत्र और स्वस्थ समाज का निर्माण होगा। हमारा संविधान बना, स्त्री–पुरुष को बराबर अधिकार दिए गए। पश्चिम में स्त्रियों को मताधिकार और लैंगिक समानता एक लंबे संघर्ष बाद मिली।"[2]

"स्त्री होने की पीड़ा तो वह सहती ही है जाति का दंश भी सहना पड़ता है। लिंग आधार पर दलित स्त्री हो चाहे सामान्य स्त्री, सब की लड़ाई पुरुषवादी मानसिकता तथा वर्चस्व से है। नैमिशराय की 'सुहाग' कहानी कथालोक के सितंबर 1977 के अंक में प्रकाशित हुई थी। महिला प्रधान इस कहानी में रंजना नाम की उस महिला की ह्दय विदारक व्यथा है, जिसका पति वीर सैनिक है और युद्ध के मोर्चे पर दुश्मन से टक्कर लेते हुए बर्फीले क्षेत्र में फंस जाता है। खोज–बीन के बाद उसका पता नहीं चलता है और फौजी कैंप में मृत करार दे दिया जाता है। लेकिन कहानी का अंत होते–होते विपिन अपने शहर पहुंचता है और स्वयं अपनी पत्नी यानि रंजना से प्लेटफार्म पर अजीबोगरीब स्थिति में मिलता है।"[3]

भारतीय समाज में दलितों के प्रति की जाने वाली हिंसा का दायरा अत्यंत व्यापक है। यह हिंसा सामाजिक से लेकर आर्थिक और राजनीतिक गलियारों से होती हुई दलितों के प्रति शारीरिक और मानसिक वेदना कष्ट देती हुई उन्हें मनुष्यता से नीचे की सीढ़ी पर जीने को मजबूर करती है। श्यौराज सिंह 'बेचौन' ने अपनी कहानी 'शोध–प्रबंध' कहानी के माध्यम से दलित स्त्री के साथ नीचता व बर्बरता पूर्ण गुरु–शिष्य परंपरा को तार–तार कर देने वाली घटना को समाज के सामने रखा है। इस अंश के माध्यम से समझा जा सकता हैः–

श्यौराज सिंह बेचौन की कहानियों की एक खास विशेषता उनके पात्रों की अदम्य जिजीविषा है, जो उसे गहन निराशा के क्षण में भी टूटने नहीं देती। तमाम विपरीत परिस्थितियों में भी उनके पात्र अपने अटूट विश्वास के साथ न केवल खड़े रहते हैं, बल्कि हर समय अपने प्रतिपक्ष को असहाय और झुकने के लिए मजबूर बना देते हैं। शोध प्रबंध में नायिका 'रीना' इसी का उदाहरण है, जिसने अपने शोध निदेशक को सारी अय्याशियों और षड्यंत्रों का वाजिब सबक सिखाया। यह कहानी शैक्षिक जगत के तमाम षड्यंत्रों का पर्दाफाश करती है। जिस शिक्षक को गुरु कहा जाता है, माता–पिता से भी ऊंचा दर्जा दिया जाता है, उम्मीद की जाती है कि वे अपने शिष्यों को बेटी की तरह मानेंगे। वे शिक्षक अपने शिष्यों के साथ खासकर दलित शिष्याओं के साथ, किस तरह का व्यूह रच कर उसे अपनी कामुकता में फंसाते हैं, उसका जीवंत नमूना यह कहानी पेश करती है, वस्तुतः यह कोई कहानी नहीं, इस समय के शैक्षिक परि.श्य की सच्चाई है और समाज को इस बात से बा–खबर करती है कि भारतीय सामाजिक ढांचे की विडंबना में दलित स्त्रियॉ दोहरी मार झेलती है। एक दलित होने की, दूसरी स्त्री होने की। रीना जैसी कथा नायिका इस अर्थ में श्यौराज की विलक्षण सर्जनात्मक .ष्टि का सबूत है। कि वह इस दोहरी मार को झेलती हुई भी अपने संघर्ष से दृढ़ रहती है।"[4]

इस तरह 'जिनावर' कहानी ओमप्रकाश वाल्मीकि के कहानी संग्रह सलाम में संकलित है। इसमें स्त्री के शोषित पहलू को उजागर किया गया है। कहानी में सवर्ण स्त्री को एक दलित आत्मबल मिलता है। स्त्रियॉ पुरुष वर्ग के अत्याचारों को भुगतने के लिए विवश है। और जिंदगीभर अपना जीवन घुट–घुट कर जीने को विवश हो जाती है। इसी तरह अम्मा कहानी के माध्यम से वाल्मीकि जी ने दलित समाज की बूढ़ी औरत जो झाड़ू लगाने का व घरों में साफ–सफाई का कार्य करती है, उनकी दयनीय स्थिति का चित्रण किया है। अम्मा संपूर्ण जीवन ईमानदारी की मिसाल बन कर रहती है।

वैसे तो दलित समाज में महिलाओं को आगे बढ़ने के अवसर बहुत कम है। अगर वे अपने प्रयासों से बढ़ भी जाए तो परिस्थितियां उनके प्रतिकूल होती है। गांव में उच्च जाति के लोगों जातिगत धृणा की शिकार महिलाओं को ग्राम पंचायत से संबंधित व्यक्ति तथा संस्थाएं जैसेः– पंचायत समिति, जिला परिषद, बीडियो, कलेक्टर और ग्राम–पंचायत का सेक्रेटरी बिल्कुल ही सहयोग नहीं करते। ऐसी परिस्थितियों में उन महिलाओं को अपमानित होकर उच्च जाति के लोगों के साथ कठपुतली मात्र रह जाती है।

रमणिका गुप्ता की कहानी 'बहू–जुठाई' में भारतीय समाज में औरत समाज की सबसे बड़ी इज्जत और मर्यादा रही है, लेकिन यहॉ उन्हें मान–मर्यादाओं को पैरों तले कुचला जा रहा है। रमणिका गुप्ता के इस कहानी 'बहू–जुठाई' कहानी से स्त्री को नई चेतना प्रदान की है। इस अंश के माध्यम से समझा जा सकता हैः–

"'बहू–जुठाई' का दलित समाज ऐसा ही अमानवीय प्रथा का शिकार है। कथा का भूगोल बिहार के चतरा और हजारीबाग क्षेत्र आदिवासी, दलित और मुसहर बहुल गांव है। गांव में जो भी नई दुल्हन आती है, उसकी पहली डोली ठाकुर के घर पर ही उतरती है। गौने की पहली रात को उसे ठाकुर की दुल्हन बनकर ही रहना पड़ता है। उसके बाद ठाकुर का जूठन बनकर वह अपने पति के घर जाती है। इस रस्म को 'बहू–जुठाई' कहते हैं। इसके बदले ठाकुर उसके शगुन का खर्च एवं दूल्हा–दुल्हन को कुछ उपहार देता है। किसी जमाने के में केरल के समाज में भी कुछ ऐसे ही प्रचलित थे, जिसमें शादी के पूर्व जवान लड़कियों को नम्बूदरीपाद ब्राह्मण युवकों द्वारा यौन भंग कराकर पवित्र करवाया जाता था। किंतु वहॉ इसे सामाजिक स्वी.ति प्राप्त थी और अंधविश्वास आस्था बनकर काम कर रहा था। किंतु स्वेच्छा से कुछ भी नहीं हो रहा है। कुछ सब ठाकुर की मर्जी पर। पीढ़ी–दर–पीढ़ी यह सामंती से नहीं बची है। मॉ और दादी मॉ बड़ी ठाकुर की जुठाई हुई है और बहूऍं छोटे ठाकुरों की। जूठी तो सभी है। इसलिए यौनता का गर्व किसी को नहीं है।"[5]

दलित समाज का हजारों साल का इतिहास और सत्य यह है कि स्त्री पुरूष के बराबर कमाते हुए कभी बोझ नहीं रही है। एक तरफ गाँवों में दलित औरतों पुरूषों के साथ खेतों आदि में काम करती है वहीं दूसरी ओर शहरों में दलित औरते असंगठित क्षेत्रों में जुटी हैं जैसे– अखबार, धूपबत्ती, कपड़े–लत्ते की फेरी कर बिक्री करना, कबाड़ चुनना, कोयला–लोहा बीनना, चौका बर्तन साफ करना, निर्माण कार्य सड़क बनाना आदि। ये अस्वच्छ न्यून्तम मूल्य और कठोर परिश्रम के काम हैं जो रोटी–रोजी के लिए पहाड़ खोदने से कम नही है। उपर से यौन शोषण की समस्या अलग। अधिकतर दलित महिलाएँ निरक्षर एवं अगूंठा टेक है। उनमें धार्मिक पाखण्ड, धर्मान्धता एवं रूढ़िप्रियता है जो उनकी प्रगति में बाधक है। समाज ने इस विकृति को प्रकृति मान लिया जिसमें प्रबुद्ध–स्वातंत्र्यचेता, दलित लेखिका त्रस्त है जो वैयक्तिक अनुभूतियों से बाहर नहीं निकल पाती है। दलित महिलाओं की सक्रिय उपस्थित कम, प्रतिपक्षी को हरदम जिम्मेमदार ठहराना आन्तरिक मामलों में कतराने की प्रवृति से विमर्श नहीं आने का कारण है।

दलित साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर मोहनदास नैमिशराय के शब्दों में "दलित आन्दोलन के भीतर एक और आन्दोलन की आहट भी सुनाई पड़ रही है। यह है कि दलित महिलाओं का आन्दोलन जो समग्र महिला समुदाय के लिए मुक्ति आन्दोलन की आहत सुनाई पड़ रही है। यह है दलित महिलाओं में पितृसत्ता का प्रश्न उठाता है एक तरफ उन्हें हिन्दू परंपराओं तो दूसरी तरफ पितृसत्ता का बोझ झेलना पड़ता है।"[6]

स्त्री के प्रति सौतेला रूप तो होता ही है मगर दलित स्त्री के प्रति और दोहरा अभिशाप दिखाई पड़ता है। अगर स्त्री अपने मन के करने लगती है तो उसे तरह–तरह के यातना का शिकार होना पड़ता है। अगर लड़की जो भी दलित की तो और परेशानी की बात होगी। स्त्री को भी पुरूष मानसिकता को समझना होगा और स्त्री विमर्श को और धारदार बनानी होगी। श्यौराज सिंह बेचैन की कहानी संदेश में उन्होंने एक पुरूष जो कि दलित वर्ग का है जो एक सवर्ण लड़की से शादी कर लेता है उसके बाद उसके बहन और माता के साथ जो घटना घटती है उससे समझा जा सकता है कि कैसी मानसिकता है हमारे समाज की जिसमें एक तो दुर्गा को माता मान कर पूजा जाता है और दूसरे तरफ एक दलित स्त्री के साथ क्या–क्या होता है। इस अंश के माध्यम से समझा जा सकता है– "इधर मैंने शहर में शादी की थी, उधर उसी रात मेरे गाँव में मेरे घर में आग लगा दी गई थी। मेरी बहन का अपहरण किया गया था। मेरी माँ को गाय का गोबर चटाया गया था।"[7]

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि विवेच्य साहित्य में दलित स्त्री की चेतना, उसके प्रतिरोध तथा संघर्ष के स्वर अधिक मुखर रूप में अभिव्यक्त हुए है। विशेषकर दलित स्त्री रचनाकारों की रचनाओं में स्त्री चेतना तथा अस्तित्व बोध अधिक दिखाई देता है।

l UnHk %

1. हिंदी आलोचना के परिभाषिक शब्दावली, डॉ. अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृष्ठ– 116।
2. आजकल, सं– फरहत परवीन, वर्ष 69, अंकः11, मार्च 2014, नारी चेतना के विविध पक्ष और कथा साहित्य, चंद्रकांत, पृष्ठ–21।
3. हिंदी दलित साहित्य, मोहनदास नैमिश्यराय, साहित्य अकादमी, रविंद्र भवन, 35, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ–138।
4. सम्यक भारत, विशेषांक, सं– कामता प्रसाद मौर्य, सम्यक भवन, रोहिणी सेक्टर 5, दिल्ली, वर्ष 9, अंक 1, नवंबर 2012, पृष्ठ 180।
5. दलित साहित्य का समाजशास्त्र, हरिनारायण ठाकुर, भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड दिल्ली, 2004, पृष्ठ 440–41।
6. दलित दखल, 2013 (वार्षिकी), श्यौराज सिंह बेचैन एवं रजतरानी 'मीनू' पृष्ठ 91
7. भरोसे की बहन, श्यौराज सिंह 'बेचैन', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010, पृष्ठ 17

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 193-194

jfM;k foKkiu fd iklfxdrk

Mk0 tyUæ dekj flg*

आज रेडियो पर विज्ञापन खूब बरस रहे हैं और एस0एम0एस0 के बहाने गाने ही गाने .... ऑफिस जाने और आने के बीच एफ0एम के कई चैनल्स......और बोरियत बिलकुल नहीं चूँकि रफी साहब से लेकर हिमेश रेशमिया तक जिसका जब मन हो किसी न किसी चैनल पर हाजिर है। इसके अलावा किसी रास्ते में कहाँ जाम लगा है, आज किस सड़क से जायें, किस से न जाएं किसी न किसी रूप में आपको विज्ञापन रेडियो मिर्ची पर तो जरूर मिल ही मिल जाएंगे, भले आकशवाणी पर मिले या न मिले।

आकशवाणी में सर्वप्रथम 1967 में विविध भारती के साथ ही आकशवाणी के प्राइमरी चैनल और अन्य चैनलों के द्वारा भी विज्ञानों को प्रसारण शुरू हो गया । आज स्थिति यह है कि ग्रामीण महिलाओं के कार्यक्रम, लोकगीत कार्यक्रम, युवाओं के कार्यक्रम, के फिल्म संगीत आदि के प्रारंभ मध्य और अंत में तो विज्ञापनों का प्रसारण होता ही है। रामचरितमानस संगीतमय पाठ या भक्ति संगीत के कार्यक्रमों के बीच भी साबुन, शैम्पू या परिवार नियोजन जैसे विज्ञापन सुनने के लिए श्रोता बाध्य होते हैं। समाचार के मध्य में कॉमर्शियल ब्रेक होता है लेकिन अर्थ के आज के युग मे इसे रोक पाना संभव नहीं है। एक तरफ विज्ञापन उपभोक्ताओं को भ्रमित करते हैं तो दूसरी ओर पूँजीवादी जीवन पद्धति की ओर भी ढकेलते है लेकिन कुछ नकारात्मक पहलुओं के साथ ही विज्ञापन ने समाज में अपनी सकारात्मक भूमिका भी निभाई है। एड्स, कन्याभ्रूण हत्या, जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश के उपाय, पर्यावरण संरक्षण या अनौपचारिक और प्रौढ शिक्षा आदि के विज्ञापनों ने समाज में चेतना की एक लहर जरूर फैलायी है। लोग अनेक सच्चाइयों से रू–ब–रू भी हुए हैं। छोटे–छोटे विज्ञापनों ने अपनी बार–बार आवृति से लोगों को इन समस्यओं के बारे में जागरूक किया है। रेडियों विज्ञापन (स्पोंसर) प्रायोजक बनने के लिए मारा–मारी है क्योंकि रेडियो की पहुँच सबसे अधिक सुलभ– सहज एवं सरल के साथ–साथ विश्वसनीय तक मानी जाती है। भारत सरकार के उपक्रम होने के बावजूद रेडियों विज्ञापन का स्वरूप,प्रस्तुतकर्ता की परिकल्पना और दक्षता पर निर्भर करता है। इसमें शब्दों के उच्चारण एवं शब्दों के उतराव–चढ़ाव पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। रेलवे का एक विज्ञापन हैः– रेल आपकी संपत्ति है, उसे क्षति न पहुँचाए इस छोटे से वाक्य को विज्ञापन की कला में विविध रूपों में प्रस्तुत करके आम जनता तक पहुँचाया जा सकता है। रेडियो सीलोन के गीतमाला कार्यक्रम का विज्ञापन करते हुए एक–एक पायदान पर चढ़ते सयानी जैसे आवाज के जादूगर की खनक आज भी स्मृतियों में रची हुई है। जिसका आरंभ इस तरह के शब्दों से शुरू होता थाः–

rk nkLrk@dnnkuk@egjckuk!@Ekr dhft, rdjkj]@gk tkb, r;kj

और स्वागत कीजिए इस नई खिचड़ी को जो अस्सी करोड़ लोगों के दिमागों में जबर्दस्ती धर करने के इरादे से मीडिया के विशालकाय कढा हों में पक कर

bu fnuk eLrnh d lkFk@vkidk ijklh tk jgh g!@;kuh dj Dydh@[kk McyjkVh@vkj [k'kh l Qy tk@vkehu l;kuh d lkFk

रेडियो से देवानंद, बलराज साहनी, सुनील दत एवं आमीन सयानी जैसे उद्घोषक शब्दों के उतराव–चढ़ाव के साथ अपने प्रशंसकों को बांध रखने में कामयाब रहे हैं। वे लोग रेडियो के लिए जान और जहान से बढ़कर रेडियो की आवाज में श्रोताओं को खींच लेते थे अपनी तरफ।[1] प्रायः– रेडियो

*संवाददाता, महुआ न्यूज, कैमूर

विज्ञापन आकर्षक संगीतमय जिगल्स के रूप में रचे जाते हैं। जिंगल्स संगीत ध्वनि के रूप में होता है। इससे श्रोता का ध्यान बंधा रहता है और उस विज्ञापन के बोल जुबान चढ़ जाते हैं अंत में विज्ञापन लगातार आ– आकर मन पर दस्तक देने लगता है। कहानीनुमा विज्ञापन भी रेडियो पर सुनाये जाते हैं। इसका एक निश्चित फॉर्मूला है कि मुख्य बातों को समेटकर कुछ मजेदार मनोरंजक ढंग से बात कहीं जाती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि मूल बिंदुओं को उजागर करते हुए उत्पाद या सेवा का नाम दो तीन बार दोहराये जाने पर वह श्रोता के मन मस्तिष्क में बस जाता है। स्मरणीयता रेडियो विज्ञापन का सबसे बड़ा गुण है। इसका रोचक उदारहरण है आँखे देखे क्रिकेट कॉमेन्टेअर्स देशापांडे की आवाजः– और ये बहेतरीन छक्का फाइन, लेग पर खड़े क्षेत्ररक्षक देखते ही रह गए.............. इस पर हमारे विशेषज्ञ पटोदी। इस बाउंसर के पहले फील्ड सजाई गयी थी और लेग साइड पर जाल बिछाया गया था, बल्लेबाज भाग्य

खाली रहे कि गेद फील्डर के हाथ नहीं लगी, यह खराब शॉट था कभी–कभी ये भी होता है, गौर फरमाईए प्रसारण चल रहा है। हिरवानी की अगली गेंद लेग स्टंप पर ओवर पिच और एन पी सिंह ने उसे ड्राईव किया है ऑन साइड पर वहां संजय जगदाले ने उसे फील्ड किया दे दिया विकेट कीपर प्रशांत को........... कोई रन नहीं[2]

अतः रेडियों विज्ञापान में देखा गया है कि शब्दों के उतार चढ़ाव से एक तरह की नाटकीयता पैदा होती है, जिसकी वजह से उद्घोषक की प्रस्तुति इतनी शानदार होती है कि वह श्रोता को अपनी तरफ आकर्षित कर लेती है। जो रेडियो विज्ञापन का एक पहचान है।

lUnHkZ %

1. मीडिया विमर्श पत्रिका प्रकाशन भोपाल रेडियो की वापसी, पृष्ठ 64
2. मधुकर लेले, भारत में जनसंचार और प्रसारण मीडिया, स्मारिका माखनलाल चतुर्वेदी, लेख रेडियो कॉमेंटेटर और क्रिकेट, पृष्ठ 112

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 195-198

iHkk [ksrku dh miU;klksa esa L=h& la?k"kZ dk fofo/k :i

MkW0 uwru dqekjh*

कथा–लेखिका प्रभा खेतान समकालीन उपन्यास–लेखन में अपनी स्त्री–चेतना एवं विमर्श के लिए जानी जाती हैं। प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों में समकालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति, संघर्ष एवं सवालों को गहराई से चित्रित किया है, जिसके द्वारा हम सम्बद्ध समाज में स्त्री की स्थिति को जान सकते हैं। प्रभा खेतान ने न केवल स्त्री की स्थिति एवं संघर्ष को चित्रित किया है वरन् उन्होंने समकालीन समाज पर जरूरी प्रश्न भी खड़े किये है।

विदेशी पृष्ठभूमि पर लिखा गया उपन्यास 'एड्स' प्रभा खेतान की चर्चित आत्मकथा है। जिसमें पति–पत्नी के बीच बढ़ती दूरियाँ, और परिवार विघटन की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। आपसी कलह के कारण दाम्पत्य जीवन टूटने की कगार पर आ गया है। मनुष्य भौतिक सुख–सुविधाओं पाने के लिए पैसों के पीछे भागने लगा है, जिसके कारण वह परिवार से दूर होता जा रहा है। इस उपन्यास में यह बतलाने का प्रयास किया गया है कि परिवेश चाहे कोई भी हो नारी अकेलेपन की त्रासदी झेल रही है। जिसके कारण पारिवारिक कलह, पारिवारिक विघटन की समस्या उत्पन्न हो रही है– "दुनिया में कहीं भी जाओ, हर जगह औरत का वही रोना। अकेली औरत की सूनी आँखें कह रही होती है कि मुझे कोई प्यार नहीं करता। मुझे इरीना की उदास आँखें याद आ जाती हैं। हर जगह कोई न कोई शिकायत । पति किसी और को प्यार करता है।"[1]

स्त्री उत्पीड़न के इर्द–गिर्द रचित उपन्यास 'छिन्नमस्ता प्रभा खेतान की चर्चित उपन्यास है। जिसकी नायिका प्रिया अपने संघर्ष से उँचाई की बुलिंदियों पर पहुचँती है तो पति को इर्ष्या होने लगती है और वह पत्नी का शोषण करना प्रारंभ कर देता है। पितृसत्तात्मक समाज में पुरूष वर्चस्व के विरूद्व अपनी पहचान के लिए संघर्षरत स्त्री की छवि को उपन्यास में दर्शाया गया है– "छिन्नमस्ता' एक ऐसी नारी की संघर्ष गाथा है, जो पुरूष प्रधान समाज में पुरूष वर्चस्व के विरूद्ध अपनी पहचान बनाने के लिए 'छिन्नमस्ता' बन जाने में आत्मसम्मान का अनुभव करती है। यह विचार का विषय रहा है कि पुरुष ने 'अर्थ' और 'सेक्स' इन दोनों धरातलों पर स्त्री का निरंतर शोषण किया है। औपन्यासिक कृति 'छिन्नमस्ता' की कथानायिका प्रिया इन दोनों ही मोर्चों पर पुरुष के एकाधिकार और शोषण–विचार से मुक्ति पाना चाहती है। वह पुरुष का गुलाम बनकर नहीं, अपितु अपने मनोराज की रानी बनकर जीना चाहती है।"[2]

'छिन्मस्ता' उपन्यास में लेखिका ने नायिका प्रिया के माध्यम से स्त्री के दर्द को रेखांकित किया है। संयुक्त परिवार में स्त्री के शोषण, उत्पीड़न और संघर्ष का जीवन्त चित्रण किया गया है। इसमें स्त्री जीवन के उन पक्षों को परत–दर–परत खोला गया है। इसमें स्त्री जीवन के उन पक्षों को परत–दर–परत खोला गया है जिसको पुरुष प्रधान समाज इसको औरत की स्वाभाविक नियति मानता है। स्त्री के शोषण, उत्पीड़न, संघर्ष, आंतरिक घुटन इस उपन्यास में देखने को मिलता है– "औरत कहाँ नहीं रोती? सड़क पर झाड़ू लगाते हुए, खेतों में काम करते हुए, एयरपोर्ट पर बाथरूम साफ करते हुए या फिर सारे भोग–ऐश्वर्य के बावजूद मेरी सासूजी की तरह पलँग पर रात–रातभर अकेले करवटें बदलते हुए। हाड़ माँस की बनी ये औरतें....... अपने–अपने तरीके से जिन्दगी जीने की कोशिश में छटपटाती ये औरतें! हजारों सालों से इनके ये आँसू बहाते आ रहे हैं।"[3]

*एम.ए., पीएच.डी. (हिन्दी), बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुफ्फरपुर

'आओ पेपे घर चले' उपन्यास में प्रभा खेतान ने अमेरीकी औरत के जीवन संघर्ष को चित्रित किया है। इसमें अमरीका जीवन शैली और सम्पन्न परिवार की अमरीकी स्त्री के अकेलेपन को बड़े ही सहजता से प्रस्तुत किया है। आर्थिक रूप से संपन्न महिलाएँ भी दुखी रहती हैं, क्योंकि संपन्न घरों में भी नारी, वृद्ध और असहाय की चिन्ता करने वाले लोगों की कमी है। अमेरिका में प्यार, आत्मीयता का परिचायक नहीं फैशन है। स्त्री–पुरुष के जीवन में प्यार आत्मीय रूप में नहीं स्वार्थवश है। जिसके कारण वहाँ की स्त्री तलाकमय जीवन, असफल प्रेम, के कारण अन्तःसंघर्ष से जूझती है– "गोपाल राय के शब्दों में 'प्रभा खेतान का 'आओ पेपे घर चलें' अमरीकी औरत के जीवन के भयानक सच को प्रस्तुत करने वाला हिन्दी का पहला उपन्यास है।......यह वैश्विक स्तर पर तूफानी जीवन–संघर्ष, संबंधों के व्यवसायीकरण, भोगवादी मानसिकता, नस्लवादी मनोवृति, पारिवारिक विघटन, उच्चवर्गीय जीवन ,पति–पत्नी की टकराहट में टूटते–पिसते बच्चे, भोग विलास के पीछे अंधी दौड़, आर्थिक समृद्धि के बीच संबंधहीनता और संवेदनशून्यता और संवेदनशून्यता की पीड़ा, प्रामाणिक अनुभव और गहरी अनुभूति के साथ अंकन करने वाला उपन्यास है।"[4]

'आओ पेपे घर चलें' उपन्यास में हेल्गा के संघर्षमय जिन्दगी का जीवंत चित्रण किया गया है। हेल्गा अपना पहचान खुद स्थापित करना चाहती है, इसलिए वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनना चाहती है– ''हां, बेरी तो कमाते ही थे, पर हेल्गा को अपनी अलग पहचान चाहिए थी। वह केवल पत्नी और मां की भूमिका में सिमटकर नहीं रहना चाहती । मेरा मन न जाने क्यों हमेशा हेल्गा में अटका रहता। लगता, मानों वह एक टूटे हुए अक्स को ठीक करने की कोशिश में है और जितना वह टुकड़ों को जोड़ती है, उतना हीं कई और होती है।"[5]

व्यावसायिक जगत को कथा की धुरी बनाकर लिखा गया 'तालाबंदी' उपन्यास प्रभा खेतान का आत्मकथांश है। उपन्यास का नायक श्यामबाबू स्वयं प्रभा जी ही हैं। 'तालाबंदी' उपन्यास में श्यामबाबू के पारिवारिक जीवन के साथ–साथ फैक्ट्री, मजदूर और यूनियन – संघर्ष की कथा भी उभर कर सामने आती है इस उपन्यास के माध्यम से दिखाया गया है कि व्यापार करना कितना कठिन है। कोई मनुष्य ऊपर से देखने पर कितना भाग्यशाली और चिंतामुक्त दिखाई पड़ता है लेकिन अंदर ही अंदर कैसे टूटता प्रतीत होता है। यह इस उपन्यास में देखने को मिलता है– "उपन्यास में बंगाल के श्रमिक आंदोलन के संदर्भ में मजदूर–मिल मालिक संबंधों की व्याख्या की गई है। प्रभा खेतान की यह दूसरी प्रकाशित कृति है। इसमें विशेष बात यह है कि कलकत्ता आदि महानगरों में बसे मारवाड़ी व्यवसायी और उद्योगपति घरानों की सोच और विचारधारा में आए परिवर्तन को भी रेखांकित करने का प्रयास किया गया है और यह दिखलाया गया कि इस समुदाय के अंदर भी प्रगतिशील मानसिकता का उन्मेष हो रहा है जो उनकी परम्परागत और रूढ़िवादी विचारधारा के विपरीत है।"[6]

'तालाबंदी' उपन्यास में मारवाड़ी समाज की व्यावसायिक उथल–पुथल का चित्रण बड़े ही मार्मिक ढंग से किया गया है। इसमें एक महत्वाकांक्षी पुरुष को अपने मुकाम पर पहुँचने के बाद कैसे समस्याओं और अन्तर्विरोधों का सामना करना पड़ता है। उसकों चित्रित किया गया है। इसमें मालिक–मजदूर के संबंध और श्रमिक समस्याओं को कथ्य का मुख्य विषय–वस्तु बनाया गया है– "सुमित्रा, इतना आतंकित क्यों हो रहीं हो? 'डरूँ नही ंतो और क्या करूँ? आप ही बोलिए। आज वे घर में घुस आए। रात को दस बजे विक्रम के पास किसी का फोन आया था। कोई उसे जान से मारने की धमकी दे रहा था। मकान के बाहर मजदूरों का एक जत्था धरना देकर बैठा है। विक्रम ने थाने में फोन किया, तो ओ.सी. साहब ने फर्माया कि हाईकोर्ट ने जुलुस के खिलाफ आर्डर दिया है शांतिपूर्वक सत्याग्रह के खिलाफ नहीं, यानि इसके लिए हम लोग अभी असमर्थ हैं।" "सुनो,सुमित्रा! इनका समाना करना होगा।"[7]

'अग्निसंभवा' उपन्यास में प्रभा खेतान ने आइवी के जीवन संघर्षों को चित्रित किया है कि किस तरह आइवी सारे दुख तकलीफ को झेलते हुए तथा कठिन संघर्ष करते हुए अपनी पहचान बनाती है। उपन्यास में चीन में शोषित होने वाली स्त्री और मजूदर वर्ग का चित्रण किया गया है। इसमें चीन की क्रांति और मार्क्सवाद पर भी प्रकाश डाला गया है। वह चीन में आर्थिक प्रगति लाकर सच्चे समाजवाद की

स्थापना करना चाहती है। आज बड़े–बड़े कारखानों, मिलों में मजदूरों से खूब काम किया जाता है और बदले में उन्हें बहुत कम राशि मिलता है। इतना कम मेहनताना मजदूरों को मिलता है कि वह अपना ठीक से पेट भी भर नहीं पाता– "प्रस्तुत उपन्यास में प्रभा जी आईवी के जीवन के साथ विदेशों में पति द्वारा नारी शोषण के प्रसंग का भी चित्रण किया है। आलोच्य उपन्यास में मुख्य कथा के साथ चीन की राजनीति वहाँ की क्रांति, मार्क्सवादी दृष्टिकोण आदि को भी उजगार किया है। इतना निश्चित है कि प्रभा खेतान प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से आईवी के टैक्सी ड्राईवर से ब्रांच मैनेजर बनने तक की विकास यात्रा का निरूपण करती हैं।"[8]

प्रभा खेतान ने 'अग्निसंभवा' उपन्यास में आईवी के जीवन–संघर्ष को रेखांकित किया गया है। आईवी का पति शराबी है। पति रोज उसके साथ मार–पीट करता है। घरेलू हिंसा से प्रताड़ित होकर, पति का घर त्याग एक फैक्ट्री में काम करती हुई हांगकांग की ब्रांच मैनेजर बन जाती है। आईवी अपने बॉस शिव के बेटे को गोद ले लेती है। और अपने पुत्र की तरह प्यार करती है– "क्या करता हैं? सारे दिन दोस्तों के साथ ताश पीटता है। बेचारे बच्चे! इनको कोई घुमाने ले जाने वाला भी नहीं। एन्डू तो चलो बड़ा हो गया है, दोस्तों के साथ समय बिता लेता है पर मेरा यह छोटा वाला चुपचाप बैठा–बैठा टी.वी. देखता रहता है। तुम इसे अपने पास रख लो। इसे मां की जरूरत है और तुम्हें बच्चे की.... मैं अपनी जिन्दगी के बचे हुए दिन अपनी माँ के घर बिता लूँगी। आइवी ने धीरे से अपनी आँखे पोछी।"[9]

'अपने अपने चेहरे' उपन्यास के माध्यम से प्रभा जी यह बतलाने की कोशिश करती है कि स्त्री का अपना अस्तित्व है। किसी पुरुष से दोस्ती हमारा समाज स्वीकार नहीं करता । वह स्त्री को दूसरी औरत के रूप में देखता है। कोई भी कदम स्त्री और पुरुष मिलकर उठाता है, लेकिन दोषारोपण सिर्फ स्त्री पर किया जाता है और स्वतंत्र घूमता है। इस उपन्यास में पूरी कथा रमा की दूसरी होने की पीड़ा को दर्शाता है– "मैंने त्याग, आदर्शवाद, पुरुष के प्रति पूजा भाव , सब कुछ अपनी आरती की थाली में सजाया, बिना यह समझे कि समाज का अपना एक अलग मापदंड है। पत्नी और प्रेमिका का स्थान एकदम अलग–अलग है। प्रेमिका, पत्नी बन सकती है, लेकिन वह जो पहले से वहाँ मौजूद है, एकाधिकार से खुश है, समझौता करके चल रही है, अकेले नहीं झेल रही। वह भी पीड़ित है। नहीं दुनिया मुझे कायर कहे लेकिन बसे हुए घोंसले को मैं नहीं उजाड़ सकी। तब क्या करूँ? आत्मनियंत्रण। अपने आचरण पर संयम। इस पथ पर इतनी दूर चली आयी हूँ कि पीछे लौटना संभव नहीं। समाज मुझे किस नजर से देखता है इसकी चिंता नहीं। लेकिन अपनी नजर में मेरी पहचान क्या है– इसके बारे में जरूर सोचना होगा। क्या हम इस संबंध का प्रारूप नहीं बदल सकते? क्या स्त्री पुरुष में दोस्ती नहीं हो सकती?"[10]

'पीली–आँधी' उपन्यास में प्रभा जी ने पुरातन पंथी मारवाड़ी समाज के अंध–विश्वास, रीति–रिवाज, रहन–सहन आदि संस्कारों में बँधी स्त्री, संयुक्त परिवार के बीच सड़ते रिश्तों को दर्शाती है। उपन्यास की नायिका सोमा संयुक्त परिवार के सड़े–गले रिश्तों को तोड़कर मातृत्व की लालसा लिए धन दौलत को छोड़कर एक प्रोफेसर से प्रेम करती है और उसके बच्चे की माँ भी बनती है। उपन्यास की कथा–नायिका सोमा आर्थिक पक्ष को उतना महत्व नहीं देती है। संतान की प्राप्ति के लिए वह एक करोड़पति का घर त्याग देती है। रेखा अग्रवाल का कहना है कि– "परम्परा, पूँजी और पहचान के आत्मसंघर्ष में छटपटाती स्त्री शक्ति अपनी मुक्ति के लिए नई भाषा गढ़ती है। जहाँ परिवार की इज्जत के लिए पद्मावती अपनी भावनाओं को दबाकर जीती है। वहीं सोमा शिक्षित होने के कारण परिवार की इज्जत के नाम पर कोई समझौता नहीं करती। मातृत्व की चाह में वह करोड़पति घर को छोड़कर एक प्रोफेसर के साथ रहने चली जाती है तथा मामूली–सी नौकरी कर लेती है। प्रभा जी के अन्य उपन्यासों में नायिका अपनी अस्मिता की पहचान बनाने के लिए घर छोड़ती है परंतु यहाँ मातृत्व के लिए अर्थ के महत्व को कम कर दिया गया है और पुरुष के हाथों मात्र कठपुतली न बने रहने का संकेत भी दिया गया है।"[11]

'पीली आँधी' उपयुक्त संयुक्त परिवार के बसने–उजड़ने, टूटने–बिखरने की कथा है, जिसमें राजस्थान के मारवाड़ी समाज की दारुण कथा को प्रमाणिकता के साथ रेखांकित किया गया है। इस उपन्यास में प्रभा जी ने मारवाड़ियों की शान–शौकत के पीछे छिपे संघर्ष को उजागर किया है– "नहीं

रे, छोटी कैसी, उस जमाने के हिसाब से तो उमर बड़ी ही थी, लेकिन दहेज के बिना गरीब बनिए की बेटी को कौन ले जाता? तकदीर देखो, कहां तो मैं गांव में चराती, कुओं भेड़ से पानी खींचती कहां राजरानी बनकर आ गयी । तेरे ताउजी तो मेरी सुंदरता से रीझ गए। वहां अपने चुरू की हवेली में ही फेरा हो गया था। तेरी पहले वाली ताई सास बड़े घर की बेटी थी। कानोड़िया को कौन नहीं जनता? लेकिन बेटी के गुजर जाने से अगलो ने संबंध नहीं रखा। रखते नहीं है क्या? लोग रखते तो हैं ही। पर उन लोगों ने भी मुझे कभी बुलाया नहीं।"[12]

प्रभा खेतान ने 'स्त्री पक्ष' उपन्यास के माध्यम से किशोर होती लड़की से लेकर परिपक्व और आत्मनिर्भर होती स्त्री तक के सफर को बड़ी सजगता से दिखाने का प्रयास किया है। स्त्री के रोजमर्रा जिन्दगी में आने वाली छोटी–छोटी परेशानियाँ स्त्री को किस प्रकार झकझोर देती है इसका जीवंत चित्रण किया गया है। मासिक धर्म, प्रेम, विवाह , ईश्वर ये सब क्या है इनसे जुड़ी अनेक समस्याएँ आती है और वह समस्या का समाधान खोजती रहती है डॉ. निमिषा सिंह का कथन द्रष्टव्य है– "उपन्यास की कथा नायिका वृंदा एकल मारवाड़ी परिवार की है। उसका बचपन कठोर अनुशासन में बीता है। स्त्री क्या है? उसका अर्थ क्या है? मासिक धर्म, प्रेम, विवाह, ईश्वर से जुड़ी हुई तमाम बातें उसे व्यथित करती है। इन बातों का तार्किक जवाब पाने के लिए वृंदा अपनी माँ और शिक्षिकाओं से कई बार बहस करती है। उसकी रूचि कभी–कभी राजनीतिक परिप्रेक्ष्यों तक भी जाती है।"[13]

'स्त्री–पक्ष' की कथा नायिका निम्नवर्गीय मारवाड़ी परिवार की है। यह उपन्यास लड़कियों का किशोरावस्था में प्रवेश होने के पश्चात् शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों को दर्शाता है। स्वतंत्र विचारों वाली वृदां अपने जीवन को अपने ढंग से जीना चाहती है। लेकिन हमारा समाज उसके स्वतंत्रता पर बंदिश लगाता है– ''अकेली लड़की के कितने बंधन रहते हैं माँ और पिता के साथ बाहर जाओ, लेकिन सारे दिन उनलोगों के साथ बेहद उबाऊ लगता है। माँ की वही बातें घर–गृहस्थी की, वृंदा की शादी की, भाई की उदंडता की। भाई साथ नहीं ले जाता, उसके अपने दोस्त थे..... अपना सर्कल। भाई के साथ वृंदा जाना भी नहीं चाहती..... वह कहती– 'अपने से छोटो के साथ मैं क्या जाऊँ? क्या मेरे दोस्त नहीं।''[14]

वस्तुतः प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों में हमारे समकालीन समाज में स्त्री की स्थिति एवं संघर्ष के विभिन्न पहलुओं को चित्रित किया है। उन्होंने अनेक उपन्यासों में न केवल स्त्री की सामाजिक स्थिति एवं संघर्ष को ही चित्रित किया है, वरन् उसके बाजिब सवालों को भी उठाया है, तो हमारे समाज को मानवीय एवं बेहतर बनाने में अपनी कारगर भूमिका निभा सकती है।

lUnHkZ %

1. एड्स, प्रभा खेतान, 'आज', पूजा वार्षिकांक, 1994, पृष्ठ–79
2. प्रभा खेतान के औपन्यासिक कृतित्व, डॉ0 निमिषा सिंह, अभिधा प्रकाशन, मुजफरपुर, 2013, पृष्ठ–41
3. छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, राजकमल पेपर बैक्स, दिल्ली, 2012, पृष्ठ–189
4. प्रभा खेतान के साहित्य में नारी विमर्श, डॉ0 कामिनी तिवारी, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2011, पृष्ठ–27
5. आओ पेपे घर चलें, प्रभा खेतान, सरस्वती विहार, दिल्ली ,1990, पृष्ठ–80
6. प्रभा खेतान के साहित्यि में नारी विमर्श, डॉ0 कामिनी तिवारी, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2011, पृष्ठ 27
7. तालाबंदी, प्रभा खेतान, सरस्वती विहार, दिल्ली, 1991, पृष्ठ–97
8. प्रभा खेतान के साहित्य मे नारी विमर्श डॉ0 कामिनी तिवारी, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2011, पृष्ठ–28
9. अग्निसंभवा, प्रभा खेतान , मई, 1992 , हंस, पृष्ठ–65
10. अपने–अपने चेहरे, प्रभा खेतान, किताब घर, नई दिल्ली, पृष्ठ–200
11. प्रभा खेतान के उपन्यास , डॉ. रेखा अग्रवाल, विकल्प प्रकाशन, नई दिल्ली ,2012 पृष्ठ–34–35
12. पीली आँधी, प्रभा खेतान, राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ–138
13. प्रभा खेतान का औपन्यासिक कृतित्व, डॉ0 निमिषा सिंह, अभिधा प्रकाशन, मुजफरपुर,2013, पृष्ठ–74
14. स्त्री पक्ष, प्रभा खेतान, पांचवी कड़ी, जनसत्ता, सबरंग, 7 मार्च 1999, पृष्ठ–21

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 199-200

lkj.k ftyk d: vu|lfpr tkfr;k e: lkekftd ifjortu % ,d Hkkxkfyd fo'y"k.k

/ku:t ; d|ekj vkʼtkn*

Lkkjk'k % *प्रस्तुत शोध पत्र बिहार राज्य के सारण जिले के अनुसूचित जातियों के सामाजिक विषय पर केन्द्रित है। इस क्षेत्र के अनुसूचित जातियों में सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन हो रहा है तथा उनमें व्यवसायिक गतिशीलता भी बढ़ रही है। सामाजिक न्याय एवं आर्थिक गतिविधियों के लिए यह वर्ग अभी भी प्रभावशाली जातियों पर आश्रित है। अनुसूचित जाति के आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर व्यक्ति न्याय के लिए सरकारी एजेंसियों के पास जाते हैं जबकि अपेक्षाकृत निर्धन व्यक्ति अभी भी गाँव के प्रभावशाली लोगों की मध्यस्थता के माध्यम से अपने विवाद निपटाना उपयुक्त मानते हैं।*

l:d:r 'kCn % अनुसूचित जाति, सहभागिता, मध्यस्थता, बहुमुखी।

çLrkouk % सामान्यतः अनुसूचित जातियों को अस्पृश्य जातियाँ भी कहा जाता है, अतः इनकी परिभाषा, अस्पृश्यता के आधार पर की जाती है, लेकिन अनुसूचित जातियों को पूर्व मे अन्त्यज, अन्तयवासिन,चाण्डाल, अछुत आदि नामों से पुकारा जाता था। साधारणतः अनुसूचित जाति का आशय उन जातियों से लगाया गया है, जिन्हे धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक सुविधाएँ, दिलाने के लिए जिनका उल्लेख संविधान की अनुसूची में किया गया है, इन्हें अछुत जातियाँ, दलित वर्ग, बाहरी जातियाँ और हरिजन आदि नामों से भी पुकारा जाता है, अनुसूचित जातियों को ऐसी जातियों के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो धृणित पेशों के द्वारा अपनी आजीविका अर्जित करती है। किन्तु अस्पृश्यता के निर्धारण का यह सर्वमान्य आधार नहीं है, इसका कारण यह है कि अनेक जातियाँ भी जो धृणित व्यवसाय से लगी हुई नहीं हैं, परन्तु फिर भी उन्हे संवैधानिक रूप से अनुसूचित जाति माना जाता है। अस्पृश्यता का संबंध मुख्यतः पवित्रता एवं अपवित्रता की धारणा से है, हिन्दू समाज में कुछ व्यवसायों या कार्यो को पवित्र एवं कुछ को अपित्र समझा जाता रहा है। यहाँ मनुष्य या पशु–पक्षी को अपवित्र समझा जाता रहा है, यहाँ मनुष्य या पशु–पक्षी के शरीर से निकले हुए पदार्थों को अपवित्र माना गया है। बिहार में अनेक जातियों को राज्य सरकार ने अनुसूचित जाति की श्रेणी में रखा है, जिनमें दुसाध, चमार, धोबी, मुशहर, पासी, डोम, घोसी, मेहतर, हलखोर, नट, खार, रजवार, तुरी आदि उल्लेखनीय है।

v/;;u {k= % सारण जिला का प्रसार 25030′उत्तरी अक्षांश से 26013′उत्तरी अक्षांश तथा 84024′पूर्वी देशान्तर से 85015′ पूर्वी देशान्तर के बीच है, आपात दृष्टि से यह एक वक्रानुमा त्रिभुजाकार है जिसका आधार पश्चिमोतर में है, उ0प0 से0 द0पू0 की ओर क्रमशः संकुचित होता गया है, तिरहुत कमिश्नरी से पृथक सारण कमिश्नरी के दक्षिणी भाग में गंगा नदी से परिसीमित होकर अवस्थित है, गंडक नदी इसकी पूर्वी सीमा का निर्धारण करती है। इसके पूर्व में मुजफ्फरपुर एवं वैशाली जिला अवस्थित है। इसके उत्तर एवं उत्तर–पश्चिम में क्रमशः गोपालगंज एवं सीवान जिला विद्यमान है, इसके द0प0 में उत्तर प्रदेश राज्य अवस्थित है तथा दक्षिण में पटना एवं भोजपुर जिला की अवस्थिति है, द0प0 में घाघरा(सरयू) नदी सारण एवं यू0पी0 के बलिया जिला के बीच प्राकृतिक सीमा का निर्धारण करती है।

v/;;u d mís'; % प्रस्तुत अध्ययन सारण जिले के अनुसूचित जातियों में हो रहे सामाजिक परिवर्त्तन को प्रकाश में लाना है ताकि सभी लोगों में उनके प्रति जनजागरूकता आये तथा उनकी समस्याओं को

---

*शोध छात्र, भूगोल विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सुधारा जा सके, इसके अलावे अनुसूचित जातियों के सामाजिक न्याय एवं विकास के प्रतिमानों का अध्ययन करना है।

vkdMs ,o fof/kr= % प्रस्तुत शोध प्रपत्र में मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों का सहारा लिया गया है, जनसंख्या आँकड़ो के प्रभावों के मूल्यांकन हेतु आँकड़ो एवं सूचनाओं के साथ–साथ सर्वेक्षण का भी सहारा लिया गया है, इसके साथ ही विवरणात्मक एवं विशलेषणात्मक विधितंत्रों का प्रयोग भी किया गया है।

fo'y"k.k ,o 0;k[;k

vuqlfpr tkfr;k e lkekftd ifjorlu % आज से लगभग दो–तीन दशक पहले जिले में सामाजिक भेदभाव की स्थिति आज की अपेक्षा और भी गम्भीर थी। अनुसूचित जातियों पर अनेक प्रतिबन्ध थे तथा साथ ही अपने अधिकारों का प्रयोग वे लोग स्वतंत्र रूप से नहीं कर सकते थे। स्वतंत्रता, शानोशौकत के साथ बारात आदि निकालना उच्च जातियों का विशेषाधिकार ही माना जाता था। समय के साथ–साथ बदलते कानून के प्रभाव तथा अनुसूचित जातियों की जागरूकता, आर्थिक स्थिति में सुधार तथा राजनीतिक सामाजिक माहौल में हुए परिवर्तन के कारण ये जातियाँ अपने हक–हकूक एवं अधिकारों के लिए संघर्ष करना भी सीख लिया है।

2001 की जनगणना के अनुसार बिहार में अनुसूचित जाति की जनसंख्या 15.7प्रतिशत तथा 1991 ई0 में 15.5प्रतिशत भी सारण जिले में मूल जनसंख्या का 12.0 प्रतिशत जनसंख्या अनुसूचित जातियों का है। जिनका साक्षरता 33.6 प्रतिशत है। अनुसूचित जातियों पर सूक्ष्मता से अध्ययन करने के पश्चात अनेक प्रकार की समस्यायें सामने आती है, जिनमें कुछ प्रमुख हैं।

– अगर बात करे सामाजिक समस्याओं की तो ये आज भी सामाजिक संपर्क स्थापित करने में अपने आप को सहज नहीं पाती है, इस कारण ये सामाजिक सांस्कृतिक अलगाव, भूमि अलगाव, अस्पृश्यता की भावना महसूस करती है, इसी के साथ इनमें शिक्षा, मनोरंजन, स्वास्थ्य तथा पोषण संबंधी सुविधाओं से वसन की स्थिति भी मिलती है।

– आज भी अनुसूचित जाति समुदायों का एक बहुत बड़ा वर्ग निरक्षर है जिससे ये आम बोलचाल की भाषा को समझ नहीं पाते है। सरकार की कौन–कौन सी योजनायें इन तबकों के लिये है इसकी जानकारी तक इनको नहीं हो पाती है जो इनके सामाजिक रूप से पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण है।

– इनके आर्थिक रूप से पिछड़ेपन की बात की जाए तो इसमें प्रमुख समस्या गरीबी तथा ऋृणग्रस्तता है, आज भी जनजातियों के समुदाय का एक तबका ऐसी है जो दूसरों के घरों में काम कर अपना जीवनयापन कर रहा है। माँ–बाप आर्थिक तंगी के कारण अपने बच्चों को पढ़ा–लिखा नहीं पाते हैं तथा पैसे के लिये उन्हे बड़े–बड़े व्यवसायियों या दलालों को बेचते हैं, दरअसल अनुसूचित जातियों के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण उनका आर्थिक रूप से पिछड़ापन ही है जो उन्हे उनकी बाकी सुविधाओं से वंचित करता है।

– धार्मिक अलगाव भी जातियों की समस्याओं का एक बड़ा पहलू है, इन समुदायों के अपने अलग देवी–देवता होते हैं, इसका सबसे बड़ा कारण है कि समाज में अन्य वर्गो के द्वारा इनके प्रति छूआछूत का व्यवहार, लेकिन अनुसूचित जातियाँ, वर्तमान समय में शिक्षा, सामाजिक गतिविधिओं एवं अन्य कामों में बढ़–चढ़कर हिस्सा ले रही है, समाज की मुख्यधारा के प्रत्येक कार्य में अब अपनी सहभागिता दर्ज करा रही हैं। समाज के प्रत्येक वर्ग अब इन्हे सामान्य तौर पर देखते हैं।

lkj.k ftyk e vuqlfpr tkfr;k dh tula[;k ¼2011½

vuqlfpr tkfr;k dk uke	xkeh.k	uxjh;	dqy tula[;k	ftys dh tula[;k dk izfr'kr
चमार, मोची, रविदास, चमार–रोहीदास, चरमाकर	203895	11761	215656	45.49

दुसाध, धरी, धरही	145811	10408	156219	32.95
पासी	13978	6056	20034	4.23
धोब, रजक	16668	2704	19372	4.09
मुशहर	12929	19	12948	2.73
नट	8285	810	9095	1.92
डोम, धनगढ़, बासफोर, धरीकर, धरकर, डोमरा	4531	1360	5891	1.24
हरि, मेहतर, भांगी	1224	1395	2619	0.55
कनजर	179	22	201	0.04
डबगर	54	35	89	0.02
राजवर	35	14	49	0.01
पन , सवासी, पनर	42	6	48	0.01
कुररीआर	33	8	41	0.01
चौपाल	29	9	38	0.01
हलखोर	32	5	37	0.01
धासी	29	0	29	0.01
बनटार	7	2	9	0
भुईया	6	2	8	0
बउरी	7	0	7	0
तुरी	0	5	5	0
लालबेगी	1	0	1	0
dqy vuqlwfpr tkfr;k	438183	35883	747066	100

सारण जिले में अनुसूचित जातियों सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर अनेक कमियों का पता चलता है, समाज में अशिक्षा, रूढ़िवादिता, अंधविश्वास सामाजिक कुप्रथा इत्यादि महत्वपूर्ण पहलू है, जिससे अनुसूचित समाज पिछड़ा हुआ है। स्वतंत्रता के बाद संविधान लागू होने के बाद इन परम्पराओं में मामूली सुधार आना शुरू हुआ। जो धीरे–धीरे समाप्ति की ओर अग्रसर है, परन्तु निम्न जातियों के जो व्यक्ति आर्थिक रूप से कमजोर है या उनकी संख्या किसी स्थान पर बहुत कम है तो उन्हे ऐसी स्थितियों से अभी भी दो चार होना पड़ता है, अर्थात यदा–कदा सामाजिक गुलामी अभी भी कायम है। विश्व दासता सूचकांक 2013 के अनुसार दुनिया के 162 देशों पर किये गये सर्वे के अनुसार भारत में आज भी विश्व के सबसे ज्यादा गुलाम निवास करते हैं। अध्ययन में 7.0 प्रतिशत लोगों से पता चला की उन्हे बलपूर्वक कार्य करना पड़ता है, हालांकि अब उसकी आवृति पहले जैसी नहीं है, और पहली जैसी कठोरता भी नही है, परन्तु फिर भी परिस्थितियाँ ऐसी बन जाती है, उन्हे न चाहते हुए भी कार्य करना पड़ता है। समाज के निम्न वर्गो में विशेषकर पासी जाति के लोग दूसरे अनुसूचित जातियों की अपेक्षा उच्च वर्ग के उच्च जातियों से विशेष रूप से जुड़ी हुई है, दूसरी ओर हम हरिजन, रविदास एवं नट लोगों की सामाजिक विकास पर सूक्ष्मता से देखते है, तो पता चलता है कि इनमें शिक्षा का स्तर बढ़ने के कारण सामाजिक विकास एवं उनके रीति–रिवाजों में आशानुकूल परिवर्तन देखने को मिल रहा है। राजवर, दुसाध, धुरी, मुशहर, डबगर, जातियों से वार्तालाप एवं सर्वेक्षण के द्वारा दी जा रही आरक्षण के कारण इनके शैक्षणिक पृष्ठभूमि में काफी सुधार हुआ है। ये समाज के प्रत्येक वर्ग के अनुकूल सरकारी प्राईवेट सभी नौकरियों में बढ़–चढ़कर आगे आ रहे हैं और समाज के हर वर्गों के साथ अपनी सहभागिता दर्ज करा रहे हैं। अनुसूचित जाति का हर जाति अब जागरूक हो गया है, अपनी स्थिति एवं गरिमा अब समझ गया है, समाज के सभी जातियों के साथ हर पर्व त्योहार एवं उत्सवों में हिस्सा ले रहा है, यह उनकी शैक्षणिक, आर्थिक, राजतीतिक सहभागिता के द्वारा ही संभव हुआ है। अभी भी इन्हें विकास करना है, हालाँकि वे विकास की ओर अग्रसर है।

fu"d"k : अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जातियों की सामाजिक स्थिति में धीरे–धीरे परिवर्तन हो रहा है, परन्तु उन्हे समाज के अन्य वर्गों के बराबर लाने के लिए सरकारी एवं सामाजिक स्तर पर और अधिक प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। अध्ययनों से स्पष्ट है कि अनुसूचित जातियों का समाज के अन्य वर्गों के साथ सामंजस्य बढ़ रहा है तथा पहले की तुलना में सामाजिक रीति–रिवाजों में बदलाव हुआ है, समाज के सबसे उच्च पायदान पर आसीन ब्राहमण भी अनुसूचित जातियों का निमन्त्रण स्वीकार कर इनके यहाँ अनेक अवसरों पर अपनी सेवाएँ दे रहे है, धीरे–धीरे विकास हो रहा है, इनके विकास के लिए समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए समाज सरकार एवं स्वयं अनुसूचित जातियां तीनों स्तरों पर कार्य किये जाने की आवश्यकता है।

lUnHkZ %

1. मदन, जी0 आर0 (2012)ः विकास का समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0–124
2. कुमार, विवेक (2008)ः चेंजिग ट्रेजेक्टी ऑफ दलित असरशन इन उतर प्रदेश, दलित इन कन्टेम्परोरी इण्डिया, के 1, सम्पादक नन्दूराम में प्रकाशित, सिद्धान्त पब्लिकेशन नई दिल्ली।
3. अम्बेडकर, बी0 आर0 (1989) : डा0 बाबासाहेब राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खण्ड–5, एजूकेशन डीपार्टमैंट, गर्वनर ऑफ महाराष्ट्र।
4. ऑमवैत गैल (2007)ः दलित एण्ड द डेमोक्रेटिक रीवॉल्यूशन सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ0–239
5. नन्दूराम (2009) दलित मूवमैंट इन इण्डिया, दलित इन कनटेम्परारी इण्डिया, सम्पादक नन्दूराम, सिद्धान्त पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ0 232
6. दूबे अभय कुमार (2007) : आधुनिकता के आइने में दलित (सम्पादित), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0–37

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 203-206

तुलसी बाबा की कविताई और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की समीक्षा दृष्टि

रोहित सिंह*

मानवीय संचेतना एवं सदाचार के उद्गाता गोस्वामी जी के जीवन एवं कविताई के प्रातिभ शोध, गहन अध्ययन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रमाणित, सर्वाधिक विश्वसनीय समीक्षा दृष्टि की आधारशिला आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रखी। तुलसी के जीवन–दर्शन, भक्ति–भाव, कविकर्म पर समग्रता से विचार किया, साथ ही प्रारम्भिक आध्यात्मिक एवं औपनिवेशिक पाठ के दायरे से बाहर लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

साहित्यिक मानदंडो के आधार पर तुलसी साहित्य के यर्थाथपरक, वस्तुनिष्ठ, वैज्ञानिक मूल्यांकन की तरफ हिन्दी आलोचना को अग्रसर करने का महनीय कार्य किया। आचार्य शुक्ल की 'गोस्वामी तुलसीदास' पुस्तक तुलसीदास सम्बन्धी समीक्षा दृष्टि का आधार है। तुलसीदास अपने युग के सामाजिक–सांस्कृतिक विकास–प्रक्रिया के अविच्छिन्न अंग थे। तत्कालीन समाज के अन्तर्विरोधों को समझे बिना, इनकी कविताई को भी समझना मुश्किल है। वर्णाश्रम धर्म सम्बन्धी सामाजिक मान्यताओं के दायरे में रहकर मानव का जितना उत्कर्ष सम्भव हो सकता है वह तुलसी काव्य में उपस्थित है। आचार्य शुक्ल ने ''भारतीय धर्म चेतना को लौकिक जीवन और कर्मण्यता की जिस नवीन भूमिका को देने का प्रयास किया गया है, उसका सर्वोत्तम स्वरूप 'शुक्ल जी' की तुलसी समीक्षा में ही मिल सकता है।''[1] शुक्ल जी ने तुलसीदास को अपनी आलोचना के माध्यम से आध्यात्मिक, धार्मिक छाया से निकालकर साहित्यिक कवि के रूप में स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

आज नई खोजों एवं अध्ययन का दायरा बहुत बढ़ गया है, फिर भी तुलसी बाबा की कविताई पर शुक्ल जी द्वारा दिये गये निष्कर्ष आज भी तत्तसम्बन्धी अध्ययन का प्रमुख आधार है। शुक्ल जी ने पाश्चात्य एवं भारतीय दोनों समीक्षा पद्धति का विशद् अध्ययन किया था। भारतीय काव्यशास्त्र के आचार्य आनन्दवर्द्धन, मम्मट, अभिनवगुप्त, जगन्नाथ आदि संस्कृत के मर्मज्ञ आचार्य के समीक्षा सिद्धान्त से अर्जित ज्ञान के साथ पाश्चात्य विद्वान अरस्तु, लोंजाइनस, ड्राइडन, क्रोचे, रिचर्ड्स आदि से भी गहरे रूप से प्रभावित थे। शुक्ल जी मूलतः रसवादी थे। इस सम्बन्ध में डॉ0 रामचन्द्र तिवारी का कहना है– ''आचार्य शुक्ल ने 'रसवाद' को आध्यात्मिक भूमि से उतारकर मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित किया, उसे बौद्धिक चिन्तन की दृष्टि से अधिक पूर्ण एवं विश्वसनीय बनाया।''[2]

'गोस्वामी तुलसीदास' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की महत्वपूर्ण रचना है। इसमें व्यक्तित्व एवं कृतित्व के शोधपरक अध्ययन का कार्य किया गया है। इस पुस्तक की विषय सूची इस प्रकार है– भक्ति पद्धति, प्रकृति एवं स्वभाव, लोकधर्म, धर्म एवं जातियता का समन्वय, मंगलाशा, लोकनीति व मर्यादावाद, शील साधना व भक्ति ज्ञान एवं भक्ति की यात्रा करते हुये, तुलसी की काव्य पद्धति, भावुकता, शील निरूपण, चारित्रचित्रण, अलंकार विधान, भाषा पर अधिकार गोस्वामी जी का हिन्दी साहित्य में स्थान के साथ ही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

आचार्य शुक्ल के समीक्षा सिद्धान्त पर विश्वनाथ त्रिपाठी जी कहते हैं– ''वे व्यवहार से सिद्धान्त पर पहुँचते हैं। साहित्य का परायण करके निगमनात्मक पद्धति से जो सत्र उन्होंने खोज निकाले हैं, वे ही उनके समीक्षा सिद्धान्त हैं। रचना में डूब कर विवेकपूर्ण निष्कर्ष निकालना ही आधुनिक और वैज्ञानिक

---

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

पद्धति है।[3]'' शुक्ल जी ने शुरुआत में विश्वप्रपंच (1920 ई0), बुद्धचरित (1922), 'गोस्वामी तुलसीदास' (1923), 'जायसी ग्रथांवली' की भूमिका (1924) भ्रमरगीत सार की भूमिका (1925) तथा हिन्दी साहित्य का इतिहास (1929) का सृजन किया। यह समय अत्यन्त विविधता से युक्त था, एक तरफ प्राचीन सामंतवादी गढ़ ढह रहे थे और पूँजीवाद जन्म ले रहा था, अंग्रेजी शासन के कारण आधुनिकीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी जिसके कारण मध्यवर्ग का उदय हुआ। नये ज्ञान–विज्ञान के प्रति लोगों में उत्सुकता बढ़ी। शुक्ल जी ने तुलसी, सूर, जायसी की व्यवहारिक समीक्षा का महत्वपूर्ण कार्य किया, जिससे इन कवियों को समझने की एक नई दृष्टि प्राप्त हुई। तुलसी के 'रामचरितमानस' की लोकप्रियता एवं उदात्त भावना के कारण, अपनी काव्यगत मान्यताओं एवं आलोचना का आधार तथा मूल्यांकन की कसौटी बनाया।

आचार्य शुक्ल ने अपनी भक्ति सम्बन्धी मान्यताओं में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को आधार बनाया है। डॉ0 राम विलास शर्मा जी लिखते हैं कि ''शुक्ल जी ने भक्ति और योग में मौलिक अन्तर दिखाया है। लेकिन योग पर उनका आक्रमण यहाँ ज्यादा है।[4]'' आचार्य शुक्ल के अनुसार ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग और योगमार्ग तीनों अलग–अलग साधना पद्धति द्वारा भारतीय भक्ति परम्परा में विकसित हुई है, उनके अनुसार ज्ञान एवं भक्ति साधनायें अलग हैं। शुक्ल जी के अनुसार– ''प्रेम के इस झूठे दावे से, इस प्रकार के पाखण्ड से, अज्ञान के अनिष्ट प्रचार की आशंका नहीं।[5]'' इसी कारण शुक्ल जी का मानना है कि भक्तिमार्ग स्वाभाविक एवं सीधा है।

आचार्य शुक्ल ने प्रकृति एवं स्वभाव के सन्दर्भ में बताया है कि– ''भक्ति केवल व्यक्तिगत एकांत साधना के रूप में नहीं है, व्यवहार क्षेत्र के भीतर लोकमंगल की प्रेरणा करने वाली है।[6]'' शुक्ल जी ने स्पष्ट किया है कि लोकधर्म की उपेक्षा करने वाली भक्ति गोस्वामी तुलसीदास को मान्य नहीं है। लोकधर्म को उन्होंने व्यापक धर्म के रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार कर्म, ज्ञान और उपासना, इन तीनों के बिना भक्ति मार्ग पूर्ण नहीं हो सकता है। शुक्ल जी का मानना है कि – ''कर्म, ज्ञान और उपासना लोकधर्म के ये तीन अवयव जनसमाज के स्थित के लिए बहुत प्राचीन काल से भारत में प्रतिष्ठित है। मानव जीवन की पूर्णता इन तीनों के बिना मेल के नहीं हो सकती।[7]'' ऐसा धर्म ही व्यापक धर्म है, जिससे समाज का संचालन होता है और लोक की रक्षा होती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसीदास को मुख्य रूप से धर्म एवं जातियता के समन्वयक के रूप में माना है। समन्वय की यही प्रवृति वाह्य खतरे से भारतीय जनता एवं संस्कृति को बचाने का पूर्ण प्रयास करती है। शुक्ल जी के अनुसार– ''खेलने कूदने, हँसने रोने में, लड़ने भिड़ने में, नाचने गाने में, आनन्दोत्सव में, शोक समाज में, सुख–दुःख में, घर में, सम्पत्ति में, विपत्ति में प्रत्येक स्थित में भगवान दिखाई देते हैं।'' तुलसी के समान धर्म एवं जातियता का सुन्दर समन्वय शायद ही कोई कवि कर सका हो।

तुलसी के सम्पूर्ण काव्य में मंगलाशा सर्वत्र देखी जा सकती है, जिसका प्रमाण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'काव्य में रहस्यवाद' नामक लेख में स्पष्ट किया है कि भविष्य के गर्भ में भावना या कल्पना की पूर्णता मंगलाशा के रूप में व्यक्त होती हैं। आचार्य शुक्ल के अनुसार – ''यह मंगलाशा बहुत ही प्रशस्त भाव है, इसमें संदेह नहीं[9]'' बाबा का ह्रदय लोक की मंगल कामना से भरा हुआ है, यही मानवता के कल्याण का आधार है।

आचार्य शुक्ल तुलसीदास के वर्णव्यवस्था सम्बन्धी मान्यताओं के प्रति सकारात्मक दृष्टि रखते हैं, उनके अनुसार प्राचीन समय से ही चला आ रहा वेदों, पुराणों और स्मृतियों से ये आदर्श स्वीकृत चले आ रहे हैं। वे कहते हैं कि – ''सरस्वती और दृशद्वती के तटों पर पल्लवित आर्य सभ्यता के अन्तर्गत जिस धर्म का प्रकाश हुआ, विशेष धर्मो की विस्तृत व्यवस्था उसका लक्षण हुआ और वह वर्णाश्रम धर्म कहलाया।[10]'' आचार्य शुक्ल जी के अनुसार धर्म में विपरीत परिस्थित तभी उत्पन्न होती है, जब मनुष्य अपना कर्तव्य भूलकर केवल अधिकार सुख की इच्छा रखता है। उनके रामराज्य में त्याग एवं कर्तव्य पालन की तुलना में अधिकार की बात ही नहीं है। लोकनीति और मर्यादावाद के प्रबल पक्षधर तुलसी से आचार्य शुक्ल इसीलिए प्रभावित हैं।

गोस्वामी जी की 'रामचरितमानस' में सदाचार एवं भक्ति का सुन्दर समन्वय हुआ है। तुलसी के राम में शील, शक्ति, सौन्दर्य की साक्षात प्रतिमूर्ति हैं। व्यक्ति सत्ता को लोक सत्ता में विलीन करके ही राम जैसा व्यक्तित्व निर्मित होता है। सादाचार का शक्ति से गहरा रिश्ता है, सिर्फ ज्ञान से मनुष्य के आचरण में वो स्थायित्व नहीं आ सकता, भक्ति का प्रवाह भी ना रहना चाहिए। शुक्ल जी कहते हैं कि– ''भक्ति मार्ग के लिए आशा परम आवश्यक है यह वह गुण है जिसे देख पापी से पापी भी अपने उद्धार की आशा कर सकता है।[11]''

आचार्य शुक्ल ने मानस की धर्मभूमि पर बात करते हुए यह स्थापित किया है कि जीवन के सत्यस्वरूप की ओर प्रवृत्ति का साक्षात्कार जितना ही व्यापक होगा उतनी ही हमारी भावना ईश्वर के वास्तविक स्वरूप की ओर उन्मुख होगी।'' जब भीतर का 'चित्त' बाहर के 'सत्' का साक्षात्कार करता है तब आनन्द का आविर्भाव होता है।[12] तुलसी के राम अर्न्तयामी से अधिक बर्हियामी हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचार सरणि में गोस्वामी जी के साधक और सुधारक रूप से इतर उनका कवि रूप अधिक वैविध्यपूर्ण एवं परिपक्व है। काव्य पद्धति पर विचार करते हुए शुक्ल जी कहते हैं कि तुलसीदास का काव्य अतिरंजित या प्रतीकोन्मुख न होकर जीवन की वास्तविक दशाओं से स्पंदित है। काव्य की संप्रेषणीयता के सम्बन्ध में शुक्ल जी के विचार है कि– ''कृति के अर्थ और प्रभाव की प्रेषणीयता को गोस्वामी जी बहुत ही आवश्यक मानते थे। किसी रचना का वही भाव जो कवि के हृदय में था यदि पाठक या श्रोता के हृदय तक न पहुँच सका हो ऐसी रचना कोई शोभा नहीं प्राप्त कर सकती।[13]''

तुलसीदास ने रामकथा के प्रमुख मार्मिक स्थलों की व्याख्या बड़ी ही मनोरम एवं प्रभावली शैली में किया है। तुलसी की भावुकता की पहचान मार्मिक स्थलों की पहचान से जुड़ी हुयी है, जैसे– राम का अयोध्या त्यागना, वनगमन, राम–लक्ष्मण का जनकपुर आगमन, चित्रकूट में राम–भरत का मिलन, विवाह–वर्णन, शबरी का आतिथ्य, लक्ष्मण को शक्ति लगना, भरत की प्रतिक्षा आदि। शुक्ल जी का इन मार्मिक प्रसंगो से लगाव का कारण इतना स्वाभाविक गाम्भीर्य एवं औदात्य रूप मुख्य रहा है।

शुक्ल जी का मानना है कि ''मानव प्रकृति के जितने अधिक रूपों के साथ गोस्वामी जी के हृदय का रागात्मक सामंजस्य हम देखते हैं, उतना अधिक हिन्दी भाषा के और किसी कवि के हृदय का नहीं[14]'' चरित्र चित्रण में तुलसीदास को विशेष महारत हासिल थी, इससे शुक्ल जी अत्यन्त प्रभावित दिखाई देते हैं। रामचन्द्र तिवारी के अनुसार ''शुक्ल जी ने जीवन की क्रिया भूमि, काव्य की भाव भूमि और समीक्षा की विचारभूमि में अद्‌भुत सामंजस्य स्थापित किया है।[15]'' शुक्ल जी का मानना है कि इस उच्च भूमि पर केवल तुलसीदास ही पहुँच सके, अन्य कोई कवि नहीं।

आचार्य शुक्ल के अनुसार भाषा, भाव, और काव्य सौण्ठव की विशेषता की दृष्टि से अगर तुलसी का स्थान निर्धारित करें तो विश्व के महान कवियों में अग्रगणी ठहरता है। लोकप्रियता के प्रमुख कारकों में सरस, सरल गाथा, व्यापक अनुभव, मानव जीवन का वैविध्यपूर्ण चित्रण प्रमुख कारण हैं। शुक्ल जी के अनुसार– ''केशव, बिहारी आदि के साथ ऐसे कवि को मिलान के लिए रखना उनका अपमान करना है।[16]''

'गोस्वामी तुलसीदास' पुस्तक एवं अन्य कृतियों के माध्यम से तुलसी सम्बन्धी आचार्य शुक्ल की समीक्षा दृष्टि से मूल्यांकन का प्रयास करें तो यह कहा जा सकता है कि शुद्ध साहित्यिक स्वरूप में भारतीय प्रतिमानों के आलोक में तुलसी साहित्य समीक्षा का प्रथम गंभीर प्रयास है। आचार्य शुक्ल का तुलसी सम्बन्धी समीक्षा में जो महत्वपूर्ण बिन्दु उभरे उसमें तुलसी को सर्वश्रेष्ठ कवि घोषित करना, व्यापक लोकधर्म की अभिव्यक्ति, शील, शक्ति और सौन्दर्य से युक्त राम का चरित्र, लोकमंगल की साधनावस्था, कवि में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के रक्षा का भाव, मर्मस्पर्शी स्थलों की पहचान आदि शुक्ल जी की मान्यतायें परवर्ती समीक्षा की आधार निर्मित हुयी। शुक्ल जी के आलोचना के कारण ही आज हिन्दी जगत तुलसी की कविताई के काव्योत्कर्ष से परिचित हुआ है। तुलसी लोकप्रिय पहले से थे, महान कवि के रूप में शुक्ल जी ने स्थापित किया। निर्विवाद रूप से आचार्य शुक्ल तुलसी साहित्य के श्रेष्ठ समीक्षक हैं।

lUnHkZ %

1. डॉ0 विरेन्द्र पाल श्रीवास्तव–गोस्वामी तुलसीदास सम्बन्धी समीक्षाओं एवं शोधों का अनुशीलन, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1974 ई0 पृ0 17
2. डॉ0 रामचन्द्र तिवारी–आचार्य शुक्ल और उनके समकालीन आलोचक–विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2007 ई0, पृ0 6।
3. डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी–हिन्दी आलोचना–राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2006, ई0 पृ0 67।
4. डॉ0 रामविलास शर्मा–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1993 ई0, पृष्ठ 95।
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2004 ई0, पृ0 14।
6. वही, पृष्ठ 20।
7. वहीं, पृष्ठ 25।
8. वही, पृष्ठ 36।
9. वहीं, पृष्ठ 38।
10. वही, पृष्ठ 40।
11. वहीं, पृष्ठ 55।
12. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – चिन्तामणि, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007 ई0, पृ0 122।
13. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2004 ई0, पृ0 67
14. वहीं, पृ0 75
15. डॉ0 रामचन्द्र तिवारी–आचार्य शुक्ल और उनके समकालीन आलोचक–विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2007 ई0, पृ0 5।
16. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2004 ई0, पृ0 136।

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 207-211

L=hoknh bfrgkl nf"V vkSj fganh lkfgR; dk vk/kk bfrgkl % ,d eqY;kadu

izdk'k dqekj iknnkj*

bfrgkl vkSj lkfgR;frgkl % 'इतिहास' का अर्थ है, 'इति़हास'(बीती हुई कहानी)। 'अथर्ववेद' में सबसे पहले इसका उल्लेख मिलता है। वैदिक साहित्य में ऋषियों एवं महापुरुषों के चरित गान को इतिहास के रूप में स्वीकारा गया। 'महाभारत' में इसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उपदेश देने वाला साधन माना गया। इस प्रकार इतिहास के प्रति भारतीय दृष्टिकोण पूर्णतः आदर्शमूलक है। इसी सिद्धांत के कारण उपेक्षितों, दलितों, शोषितों द्वारा निर्मित विशाल लोक साहित्य इतिहास से अलग होता चला गया। शुक्ल जी एवं अन्य तथाकथित इतिहासकारों ने भी यही किया।

'साहित्येतिहास' के सम्बन्ध में शुक्ल जी का मत "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चितवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के साथ–साथ साहित्य के स्वरुप में भी परिवर्तन होता चलता है। आदि से अंत तक इन्हीं चितवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।"[1]

L=hokn : 'स्त्रीवाद' का विचार सर्वप्रथम 1400 ई. में फ्रांस में पैदा हुआ था। धीरे–धीरे विचारों के वैश्वीकरण के साथ तृतीय विश्व के देशों में भी प्रचलित हुआ। इसे कुछ विद्वानों ने निम्न प्रकार से परिभाषित करने का प्रयास किया है।

वृंदा करात के अनुसार "नारीवाद एक विचारधारा है , जिसके आधार पर महिलाओं की मुक्ति के प्रयास किये जाते हैं।"[2] कात्यायनी के अनुसार "नारीवाद स्त्री मुक्ति चिंतन की महज एक विचार सरणी है, और कुछ नहीं।"[3]

'स्त्रीवाद' स्त्री की पराधीनता एवं उसके बंधनों से मुक्ति की बात करता है। मुक्ति शब्द नारीवाद के केंद्र में है यद्यपि इस मुक्ति के मायने समय के साथ बदलते रहे हैं। यह मुक्ति शब्द बताता है कि यह समाज महिलाओं के लिए न्याय संगत नहीं रहा है। उसका दर्जा पुरुष की तुलना में निम्नस्तर का रहा है। साथ ही सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं विचारधारा के स्तर पर उसके साथ भेदभाव युक्त व्यवहार किया जाता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र घर में तथा घर के बाहर उसका शोषण किया जाता है। उस पर पितृसत्तात्मक नियम लादे जाते हैं। इन सभी बन्धनों से मुक्ति के लिए जाग्रति पैदा करना नारीवाद का मुख्य कार्य है। उनका कहना है कि पुरुषों को अपना अधिकार छोड़ना है, न कि देना।

L=h&lkfgR; ,o L=hoknh bfrgkl nf"V : सबसे पहले रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने 'स्त्री–साहित्य' और 'पुरुष–साहित्य' शब्दों का प्रयोग 1931 में किया। ऐसे साहित्य में क्रमशः स्त्री और पुरुष की अनुभूतियाँ (भोगे हुए सत्य) समाहित रहती हैं। ऐसे में स्त्री साहित्य का इतिहास स्त्री–सम्बन्धी जटिल स्वरूपों का अवलोकन है। समसामयिक रूप में स्त्री को किस रूप में देखा जाय इस दृष्टि से इसका काफी महत्व है। नामवर सिंह के शब्दों में "इतिहास की एक शिक्षा यह भी है कि वास्तविक इतिहास स्वतः आत्म निषेध है। जिस इतिहास के बोध से मन स्वयं उस इतिहास का अतिक्रमण कर जाय, सच्चा इतिहास वही है। मार्क्स का इतिहास दर्शन इतिहास से मुक्ति की यही चेतना प्रदान करता है।"[4]

L=hoknh lkfgR;frgkl dh ijaijk % हिंदी में पहला स्त्री काव्य संकलन मृदुवाणी (1905) नाम से मुंशी देवी प्रसाद ने तैयार कर प्रकाशित कराया था। इसमें 35 कवियित्रियों की कविताएँ शामिल हैं। इसके बाद गिरजा दत्त शुक्ल और ब्रजभूषण शुक्ल ने 'हिंदी काव्य कोकिलायें' (1933) कृति सम्पादित करके प्रकाशित

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सेन्टर 29, गाँधीनगर

की साथ ही इन्होनें ‘हिंदी की कहानी लेखिकाएँ और उनकी कहानियां’ 1935 में प्रकाशित की। 1931 में ज्योति प्रसाद मिश्र ने ‘निर्मल स्त्री–कवि–कौमुदी’ शीर्षक से वृहद काव्य संकलन सम्पादित किया। इसका दूसरा संस्करण 1938 में प्रकाशित हुआ। सन् 1941 में राजेन्द्र सिंह गौड़ सम्पादित ‘महिला काव्य चन्द्रिका’ का प्रकाशन हुआ। डॉ सावित्री सिन्हा का शोध प्रबंध ‘मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ’(1953), उमेश माथुर की शोध कृति ‘आधुनिक युग की हिंदी लेखिकाएँ’(1969), शकुंतला सिरोठिया की कृति ‘आधुनिक हिंदी साहित्य को नारी की देन’(1963), बलभद्र प्रसाद गुप्त ‘रसिक’ कृत ‘काव्य कुञ्ज की कोकिलाएं’ उर्मिला गुप्त का शोध प्रबंध ‘हिंदी कथा साहित्य में महिलाओं का योग’ व ‘स्वातंत्र्यात्तर कथा लेखिकाएं’(1967), सरिता कुमार का शोध ग्रन्थ ‘महिला कथाकारों की रचनाओं में प्रेम का स्वरूप विकास’ (1983), रामकली सर्राफ सम्पादित ‘समकालीन हिंदी कथा लेखिकाएँ (1988) एवं रमणिका गुप्ता सम्पादित ‘आधुनिक महिला लेखन’ (1995) महत्वपूर्ण कृतियाँ है। इसके अलावा नामवर सिंह के प्रधान सम्पादकत्व में हिंदी कथा लेखिकाओं की प्रतिनिधि कहानियां’(1984) का प्रकाशन हुआ। कुछ पत्रिकाओं जैसे आम आदमी, हंस, मानुषी, निमित्त, उत्तरार्ध, उद्भावना, साक्षात्कार आदि में स्त्री अंक प्रकाशित हुए। इनमें स्त्री–साहित्य पर मूल रूप से केन्द्रित सामग्री प्रकाशित की गई है।

fgnh lkfgR; dk vk/kk bfrgkl

eY;kdu % ‘हिंदी साहित्य का आधा इतिहास’ को सुमन राजे ने चार भागों में बांटा है। इसके प्रत्येक भागों का लघु विश्लेषण इस प्रकार हैः पहले भाग में तीन अध्याय हैं। 1. पहचान की संकट और संकट की पहचान 2. नाम धरो वैसुन्हर . एक खोज महिला लेखन के सौन्दर्यशास्त्र की 3. आधे इतिहास की तलाश में।

पहले अध्याय में महिला लेखन की परंपरा का उद्घोष है। वैदिक काल की रोमशा, लोपामुद्रा, श्रद्धा कामायनी, आदि ऋषिकाओं के पश्चात् ‘थेरीगाथाओं’ का वर्णन किया है। बौध–धर्मग्रन्थ के सुत्तपिटक के पांच निकाय हैं। इसके खुद्दक निकाय के नवें भाग में थेरी गाथाओं का पालीभाषा में 100 भिक्षुणियों की गाथाएँ संकलित हैं। परन्तु, यह प्राकृत भाषा में नहीं मिलता जो की स्त्रियों की भाषा रही है। ऐसे में स्त्रियों के प्राकृत साहित्य से इंकार नहीं किया जा सकता है परन्तु इसका अभाव पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह खड़ा करता है। राजशेखर का कथन है कि ‘पुरुषों के सामान ही स्त्रियाँ भी कवि हो सकती हैं। ज्ञान का संस्कार आत्मा से सम्बन्ध रखता है, उसमें स्त्री और पुरुष का भेद नहीं है। सुनते और देखते हैं कि अनेक राजकुमारियां, मंत्रियों की पुत्रियां, वेश्याएं एवं नाट्य प्रयोक्ताओं की स्त्रियाँ शास्त्रों की प्रकांड विदुषियाँ और कवयित्रियाँ है।’[5] उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि सामान्य नारियां शैक्षिक गतिविधियों से उपेक्षित रहीं हैं।

साहित्येतिहास में कालों का नामकरण उस काल विशेष की प्रधान प्रवृत्तियों के आधार पर किया है जबकि सुमन राजे ने अपने इतिहास में इसे महिला लेखन की दृष्टि से रखने की वकालत करती हैं।

पुरुष कवियों ने स्त्री–मनोवृतियों के चित्रण में देहांतरण किया है। जैसे मानस, साकेत आदि की रामकथा में सीता, उर्मिला, सूर्पनखा आदि स्त्री पात्रों का संवाद। वहीँ स्त्री कवयित्रियों ने प्रसव पीड़ा व अन्य दुखों को निजी लय में अभिव्यक्त करती हैं।

‘कोई–कोई जनने वाली माताएं।एक बार ही मृत्यु चाहती हुई ।अपना गला काट लेती है’

सुमन राजे कहतीं हैं कि जहाँ पुरुष मौन हो जाता है वहीं से महिला लेखन जन्म लेती है। खाली अंश जो पुरुषों द्वारा छोड़ दिए गए हैं उसी का भराव यह करती हैं। वे यह भी कहती हैं कि साहित्य में ‘दूसरी परंपरा’ की खोज तो की गयी परन्तु वह ‘तीसरी परंपरा’ जब तक नहीं खोज ली जाती तब तक साहित्येतिहास आधा इतिहास ही है।

पुरुष पात्र राम द्वारा स्त्री पात्र सीता को प्रसव काल में अकेले जंगल में छोड़ने से उसके मन में जो विक्षोभ उत्पन्न होता है वह निम्न लोकगीतों के माध्यम से दिखता है जिसे पुरुषों ने दिखाने की कोशिश नहीं की। पुत्र जन्म की सूचना राम को लक्ष्मण से मिलती है तो वे जंगल में देखने जाते हैं और उन्हें खेलते हुए देखते हैं तो उससे परिचय पूछते हैं। बच्चा उत्तर देता है...

cki dk ukok u tkuk] y[ku d Hkrhtok gkA
ge jktk tud d g ufr;k] lhrk d ny#vk gkA

तुलसी जहाँ लोकशास्त्र के माध्यम से राम को ब्रह्म सिद्ध करने में लगे हैं वहीं उड़िया लोक गीत के नारी मन में वे इसके विपरीत दीखते हैं। वहां 'सीता ठकुरानी फटे पुराने वस्त्र पहने हुए हैं, राम टूटे वर्तन में भात खा रहे हैं...।'[6]

पुरुष साहित्येतिहासकारों ने अपने इतिहास में हमेशा श्रेष्ठ साहित्य का ही चयन किया है यह उसकी सामंती मानसिकता है। इस इतिहास के तीसरे भाग में लेखिका ने इतिहास परंपरा में आधे इतिहास को खोजने की कोशिश की है। इतिहास लेखन को एक सामंती मानसिकता कहकर व्यक्ति, वंश, युग के इतिहास को इतिहास का अधूरापन माना है। राजशेखर ने एक बहुत बड़े वर्ग को छोड़ दिया है जिसने सबसे अधिक कवयित्रियों को संरक्षण दिया है वह है धर्म। इसका कारण विशुद्ध साहित्य हो सकता है। वे राजशेखर को आधे इतिहास का पहला इतिहासकार मनती हैं। क्योंकि राजशेखर ने कवयित्रियों का उल्लेख शुद्ध साहित्यिक कारणों से किया है, उसपर आलोचनात्मक टिप्पणियाँ भी दी हैं, उसके पीछे धार्मिकता व साम्प्रदायिकता नहीं है। 19वीं से 20वीं शताब्दी में जो इतिहास लिखे गये उनमें स्त्री रचनाकारों की पहचान शून्य है। 20वीं सदी का नवजागरण नारी केन्द्रित है। स्वतंत्रता आन्दोलन में उसे एक पहचान मिली। 1901 से 1925 में पांडुलिपियों की खोज हुई जिससे कई कवियित्रियीं की रचनाएँ सामने आई और उसे व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया। मुंशी देवी प्रसाद की 'महिला मृदुवानी' आधे इतिहास की यह पहली किताब है। राम नरेश त्रिपाठी की कविता कौमुदी में महिला रचनाकारों के सन्दर्भ के अभाव की पूर्ति ज्योति प्रसाद निर्मल की स्त्री–कवि–कौमुदी(1931) से हो जाती है। इसके दूसरे भाग में भी तीन अध्याय हैं। 1. विश्व की प्राचीनतम कवयित्रियाँ : वैदिक ऋषिकाएं 2. प्रथम भारतीय नवजागरण : थेरी गाथाएँ 3. द्वितीय नवजागरण : संस्कृत और प्राकृत–कवयित्रियाँ। पहले में वैदिक ऋषिकाओं का जिक्र है जिसमें रोमशा, लोपामुद्रा, अदिति आदि ने अपने क्षमता के मूल्यांकन के समान अधिकार को पाने के लिए आवाज उठाई है। दूसरा प्रथम भारतीय नवजागरण में थेरी गाथाओं का वर्णन है। प्रथम भारतीय नवजागरण काल लगभग 800 ई.पू. माना जाता है। इस युग में कर्मकांड से भावना की ओर विकास हुआ है। बौद्ध साहित्य के सुत्तपिटक के खुद्दक निकाय में थेर और थेरी गाथाओं का चित्रण है। इसमें 100 थेरियों के 522 गाथाओं का संकलन है जिसमें भोगे हुए यथार्थ की कथा है। विंटरनीत्स ने इसे 'भारतीय गीतिकाव्य का सच्चा रत्न कहा है।' तीसरे भाग में दूसरा नवजागरण होता है। इस समय रामायण महाभारत, पुराणों उपनिषदों को स्थान मिला। नवीन जीवनदर्शन, साहित्य एवं कला पद्धतियों के विकास के कारण यह स्वर्णयुग माना जाता है। संस्कृत को राष्ट्रभाषा का स्थान मिला। इस काल की कविताएँ पूर्व से भिन्न है। इसमें न स्तुतिगान है न संसार का त्याग है बल्कि लोक राज्य में अनुरक्ति है। इस काल की विज्जिका आदि कवयित्रियों की कविता संस्कृत क्लासिकल परंपरा को अपनाती है और उसकी प्रतिष्ठा के लिए भी सचेत है।

तीसरा भाग जो मध्य युग से प्रारंभ होती है, में चार अध्याय हैं। 1. तृतीय नवजागरण : भक्ति–आन्दोलन, 2. भक्ति में अपने को खोजती हुई मध्युगीन कवयित्रियाँ 4. एक भीतरी नदी की यात्रा 4. महिला लेखन के चेहरे और सहयात्री कविताएँ।

पहले अध्याय में अखिल भारतीय भक्ति आन्दोलन का उद्‌भव एवं उसका स्वरूप वर्णित है। इस काल में उच्च वर्ग की स्त्रियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था थी। बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम सबसे शिक्षित महिला थी, जिसने 'हुमायूँनामा' लिखी। कविता कहानियों के अलावा इस समय की स्त्रियाँ राजनीति और सत्ता पर भी पकड़ रखती थीं। रानी कर्णावती, रानी दुर्गावती अकबर के साथ लड़ी थी और पराजित होने के बाद उन्होंने आत्महत्या कर ली थी। 16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में तिरुमालंबा, देव कुमारिका, मधुरवाणी, आदि राजघराने की स्त्रियाँ अपने समय की महान् कवयित्रियाँ रही हैं। डा. रमाशंकर शुक्ल रसाल मानते हैं कि वीरगाथा काल में स्त्रियाँ काव्य प्रणयन नहीं की। यदि युद्ध में पति मारा गया तो उसे जौहर की सलाह दी जाती थी। मीरा ने इसका विद्रोह किया। क्षत्रिय कुल में यह विद्रोह एक असाधारण घटना थी। इसलिए इसकी चर्चा किये बगैर कोई भी इतिहासकार आगे नहीं बढ़ सकता। मीरा की भांति चंद्रमुखी, पद्‌मचारिणी आदि हुई। आगे सांई, शेख, प्रवीन राय, आदि कवयित्रियाँ हुई हैं। सुमन राजे कहती हैंः 'प्रवीन

राय पतुर वीरांगना कुल में जन्म लेकर अपने पतिव्रत का निर्वाह करती हैं।'[7] इन्होंने ने अकबर के सामने अपने वाक् चातुरी का अद्भुत प्रदर्शन किया है।

^fourh jk; çohu dh l|fu, lkg l|tkuA
tBh irjh Hk[kr g|] ckjh ck; l LokuAA*

इस अध्याय में स्त्री के पारिवारिक जीवन में घट रही विपदा को दिखाया गया है। पतिव्रता धर्म में कितनी निरंकुशता है। पति के न रहने पर सती होना ही ठीक है अन्यथा विधवा की स्थिति उससे भी दयनीय है। पति के विदेश चले जाने पर भी उसे वैसे ही दुखों का सामना करना पड़ता है। ऐसे में स्त्री के प्रति मनु का संरक्षणवादी सिद्धांत भी ध्वस्त हो जाता है। वही रक्षक भक्षक और पीड़क बन जाता है।

चौथे भाग में मध्युगीन महिला लेखन के तीन चेहरे उभरते हैं। पहला चेहरा इस युग की अरबी–फारसी एवं संस्कृत में किया गया रचनात्मक लेखन है जो शासक वर्ग से जुडी हुई है। इस युग में कवयित्रियाँ शास्त्रीय पक्ष की जानकारी रखते हुए भी लक्षण ग्रंथों के लेखन का जोखिम नहीं उठातीं। दूसरा भक्ति सम्बन्धी है। तीसरा पक्ष ग्रामीण नारी का चेहरा है जिसमें अथक परिश्रम, गरीबी एवं देह पर आधारित कविताएँ है। इसी प्रकार तमिल, कन्नर मराठी आदि की स्त्री काव्य परम्पराएं हैं।

चौथे भाग में आधुनिक युग है जिसमें छः अध्याय हैं। 1. चौथा नवजागरण और हिंदी साहित्येतिहास 2. आधुनिक चेतना की उर्ध्वमुखी यात्राएं 3. 'इत्यादि' का साहित्येतिहास . कविता (एक) 4. स्वातंत्र्योत्तर परिदृश्य कविता (दो) 5. 'इत्यादि' का साहित्येतिहास . गद्य 6. पुनश्च स्त्री–विमर्श।

आधुनिक नवजागरण राजनीतिक सरोकारों से जुड़ता है और स्वतंत्रता प्राप्ति का लक्ष्य तय करता है। 1857 के विद्रोह में एवं स्वतंत्रता संग्राम में स्त्रियों की स्व–चेतना जागृत हुई। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने पहली बार स्त्री–सेना का गठन किया। साहित्यिक दृष्टि से इस समय महिलाओं ने अनुवाद, पत्र–पत्रिकाएँ आदि में शरीक हुईं। क्रिपई सत्यनाथन की 'सगुन' एवं 'कमला', ए हिन्दू वाइफ का अनुवाद, पंडिता विशालाक्षी अम्मल का 'हितकारिणी' इसके उदहारण हैं। केरल सरस्वती अम्मा स्त्री–दीनता के विरुद्ध है। उसकी एक कहानी की नायिका कहती है "मैं एक ऐसी विधवा की कहानी लिखना चाहती हूँ, जिसका पति जीवित है।"[8] आजादी के समय इंदिरा भागवत, लक्ष्मीबाई पटवर्धन आदि की आत्मकथाएँ पति केन्द्रित होते हुए भी अन्याय के प्रति अपना प्रतिरोध दर्ज करती हैं। हिंदी में सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा लेखिकाओं ने अपनी प्रखर लेखनी से पितृसत्ता का विरोध किया है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी एक मात्र ऐसे इतिहासकार हैं जो अपने .ति में महिला कथाकारों की कहानियों पर अलग से विचार किया है। श्रीमती शिवरानी, सुभद्रा कुमारी चौहान, कामला चौधरी और हेमवती देवी की कहानियों के सन्दर्भ से उन्होंने कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे उठाए हैं। छठे दसक में शिवानी, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा आदि लेखिकाओं ने स्त्रियों के गहरी मानसिक बेचौनी वाले मुद्दे लेकर आये।

fo'k"krk ,oa miyfC/k;ka% सुमन राजे के इतिहास लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि अबतक पुरुषों ने जो केवल पुरुषों का इतिहास लिखा, स्त्रियों की प्रतिभा को नकारा, उसी नकार की यह सफल अभिव्यक्ति है। इसके लिए उन्होंने लोक पर विशेष बल दिया है। लोक संपत्ति के विश्लेषण से ही स्त्रियों के संघर्षों एवं उसपर विजय प्राप्त करने जैसी दक्षता का पता चलता है। आचार्य शुक्ल जब कहते हैं कि जनता की चित्तवृत्ति से ही लोक बनता है तब वे लोक साहित्य को क्यों नहीं शामिल करते हैं जो केवल शिष्ट साहित्य से ही अपने इतिहास की इतिश्री कर देते हैं। मैथिलि, मगही, भोजपुरी, यदि हिंदी की बोलियाँ हैं, तो उसके साहित्य को इतिहास लेखन में क्यों नहीं शामिल किया गया। सुमन राजे लोकगीत एवं लोककथाओं के माध्यम से ऐसे साहित्य में उसे जगह देती हैं। पुरुषों ने हमेशा अपने साहित्य में स्त्री पात्रों में अपनी कल्पना का रंग भरकर उसके संवादों में जीवंत सत्ता की पैरोकारी की है वहीँ सुमन राजे ने स्त्रियों के अनुभूति सत्य को उनके लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

lhek dk js[kkadu% ऐसा माना जाता है कि इतिहास लेखन में तथ्यों की अधिकाधिक खोज कृति को वैज्ञानिकता प्रदान करता है परन्तु सुमन राजे ने केवल नौ किताबों के माध्यम से अपनी व्याख्या प्रस्तुत की है। हालांकि सन्दर्भों को सही से निरूपित नहीं कर पाई हैं। अनुक्रमणिका का अभाव है। इतिहास लेखन के क्रम में खोज करने का श्रम नहीं करती, पत्र–पत्रिकाएँ भी नहीं देखती हैं। किताब को मोटा बनाने के

लिए भारतीय साहित्य की परंपरा में जाती हैं। आचार्य शुक्ल जिस तरह अपने इतिहास में तुलसी की प्रतिष्ठा करते हैं, द्विवेदी जी कबीर की वैसे ही सुमन राजे किसी महिला लिखिका को स्थापित नहीं कर पाती हैं। ऐतिहासिक तथ्यों, कलाओं और उसके औचित्य के मूल्यांकन के क्या प्रतिमान हैं यह निर्धारित नहीं की हैं। विचारों की अपेक्षा कला की चर्चा कम है जबकि दोनों को साथ लेकर चलना चाहिए। स्त्री–सुचिता एवं पवित्रता के खूब गुण गयी हैं। उदहारण के लिए मुगलों को चकमा देकर चन्द्रावली को उससे दूर भाग जाना चाहिए या उससे जीतेजी मुकाबला करनी चाहिए, परन्तु वह सती हो जाती है। चन्द्रावली की मृत्यु का समाचार सुनकर श्वसुर रो पड़ते हैं, परन्तु उसे इतना विश्वास है कि बहु ने 'पगड़ी' की लाज रखी।

gkM tj tl ykdMk/dl tj tl ?kklA
gk;&gk; eqxyk dj/BkM [kkbZ iNkjAA

पुरुष समाज ने स्त्री को जिस सती प्रथा का आत्मसातीकरण कराया है सुमन राजे इसका विरोध नहीं कर रही हैं। यह आज के दौड़ में उसके व्यक्तित्व का दुर्बल पक्ष है। उपर्युक्त पद में मुगला शब्द साम्प्रदायिकता को दर्शाता है।

साहित्य और समाज का सम्बन्ध आधा इतिहास में कहाँ तक है इसका पता नहीं चलता है। साथ ही एक ही युग की साहित्य की अवधारणा के आधार पर उसका नामकरण करने की कोशिश की है। नारियां क्रांति तो कर रही हैं परन्तु केवल साहित्य में ही, व्यवहार में नहीं। केवल स्त्री होने के नाते स्त्री के दुःख दर्द को समझ लेती हैं जो कि केवल एक युग में संभव हो सकती है प्रत्येक युग में नहीं। इससे नवजागरण में फर्क होना चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं है। नवजागरण के कवियों के प्रति वे उदार हैं। उसकी सही आलोचना नहीं करती हैं। परन्तु 1960 के बाद ऐसा नहीं है। बड़ी मात्रा में रचनाकार आते हैं एवं उसकी उत्कृष्ट रचनाएँ भी आती हैं। वे सुधार परिष्कार की बात नहीं कर रही हैं बल्कि राजनीति एवं अधिकार की बात कर रही हैं। छोटे से अध्याय में सारे रचनाकारों को निपटा दिया है। तटस्थ नहीं हैं। अपने समकालीनों के प्रति आलोचनात्मक रवैया है, परन्तु उसकी सही पड़ताल नहीं कर पायी है। इसी कारण साहित्य एवं समाज का सम्बन्ध आधुनिक साहित्य में भी नहीं दिख रहा है।

blds ckotwn ;g ,d lkFkZd ç;kl g% इन सब खामियों के बावजूद यह इतिहास स्त्री जाति की लम्बी परंपरा का उल्लेख करती है जो अन्य इतिहास में नहीं मिलता है। उन्होंने अपने समय में किस तरीके से संघर्ष करके रचनाएँ कीं उनका विवरण दिया। लोकसाहित्य को महत्व दिया, जो अन्य साहित्य में नहीं है। प्रतिरोध की भाषा को स्त्रियों में तलाशी। वे किस प्रकार इसके लिए गालियों का प्रयोग करती हैं, आदि अन्यान्य बातें। इस प्रकार विधेयवादी, मार्क्सवादी के साथ–साथ स्त्रीवादी साहित्येतिहास के रूप में यह एक महत्वपूर्ण रचना है।

lUnHkZ%

1. आचार्य शुक्ल, काल विभाग, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या–1
2. वृंदा करात, जीना है तो लड़ना होगा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 19
3. आलेख किंगसन सिंह पटेल, नारीवाद के मायने (पृष्ट संख्यां 2, कात्यायनी, कुछ जीवंत कुछ ज्वलंत, परिकल्पना प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ संख्या 156
4. जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, पृष्ठ संख्या 20
5. सुमन राजे, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, पृष्ठ 19
6. सुमन राजे, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, पृष्ठ 26
7. सुमन राजे, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, पृष्ठ 90
8. सुमन राजे, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास पृष्ठ 162

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 212-216

iHkk [ksrku ds miU;klksa esa L=h&psruk

MkW jfo jatu*

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री–संघर्ष एवं चेतना को लेकर जिन्होंने अपनी एक अलग जगह बनाई है, उसमें कथा लेखिका प्रभा खेतान विशिष्ट हैं। प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों में हमारे वर्तमान समाज में स्त्री की उपेक्षा एवं संघर्ष को चित्रित किया है। प्रभा खेतान का परिवेश भले ही भिन्न है, परन्तु उस भिन्न परिवेश में भी स्त्री की स्थिति दोयम दर्जे की है। प्रभा खेतान अपने उपन्यासों की कथा–भूमि अपने सम्बद्ध सामाजिक परिवेश से चुनती हैं और उसके अंतर्विरोधों एवं उसमें स्त्री के सवालों को बखूबी उठाती हैं।

'एड्स' प्रभा खेतान की उपन्यासिका है। इसकी कथा एड्स जैसी भयानक बीमारी के कारण दाम्पत्य जीवन में उत्पन्न त्रासदी को व्यक्त करता है। वैश्विक धरातल पर स्त्री के जीवन में भौतिक सुख–सुविधा के बावजूद उसकी आँखें प्रेम पाने के लिए तरसती है। समय के अभाव एवं व्यवसाय की व्यस्तता के कारण पति–पत्नी को समय नहीं दे पाता और पत्नी प्यार पाने के लिए पति के मित्र के संर्पक में आती है। उसी से उसे यह छूत की बीमारी लग जाती है और दाम्पत्य जीवन में खटास उत्पन्न हो जाती है। और यह पारिवारिक कलह उसे अकेलापन के साथ जीने को मजबूर करता है– "विदेशी पृष्ठभूमि पर लिखा गया यह उपन्यास वैवाहिक जीवन की त्रासदी को व्यक्त करता है। यह उपन्यास छोटा ही है परन्तु एड्स की समस्या को लेकर लिखा गया है। इसमें अमेरिकी परिवार में दाम्पत्य जीवन को दर्शाया गया है और यह दिखाया गया है कि इस बीमारी की वजह से कैसे परिवार टूट रहे हैं।"[1]

'छिन्नमस्ता' प्रभा खेतान का चर्चित उपन्यास है, जिसमें एक स्त्री के उत्पीड़न एवं सामर्थ्य की कहानी साथ–साथ बयां की गई है। इस उपन्यास की नायिका प्रिया है। प्रिया का बचपन उपेक्षित, कुंठित और भयभीत–सहमी हुई लड़की का बचपन है। इस उपन्यास में लेखिका ने स्त्री जीवन के शोषण ,उत्पीड़न का चि्त्रण बड़े ही बारीकी से किया है। अपने ही घर में उपेक्षित प्रिया दोयम दर्जे की जीवन जीने को मजबूर होती है। प्रिया के जीवन में सिर्फ छलावा, दुत्कार, उपेक्षा, शोषण, घृणा मिलती है– "मारवाड़ी परिवार में जन्मी प्रिया का बचपन उपेक्षित, कुंठित और भयभीत–सहमी हुई लड़की का बचपन है। नौ वर्ष की उम्र से ही अंदर तक तोड़ देने वाली घटनाओं के कारण प्रिया का मासूम डरा हुआ मन किसी सुरक्षित कोने को खोजता है। कुछ दिनों के लिए पहले शिक्षक तो फिर पति की मजबूत बांहों के घेरे में वह अपने–आप को सुरक्षित महसूस करती भी है, परंतु ये भ्रम भी टूटते हैं। वही छलावा, दुत्कार, उपेक्षा, घृणा उसे मिलती है। अंत में उसे सुरक्षा मिलती है लेकिन वह कहीं बाहर नहीं, अपने अंदर, अपने–आप में।"[2]

'छिन्नमस्ता उपन्यास में प्रभा खेतान ने मारवाड़ी परिवार की बहू प्रिया की यातना और विद्रोह को रेखांकित किया है। मारवाड़ी समाज की नारीयों का शोषण इस उपन्यास का केन्द्र बिन्दु है। यह उपन्यास में नारी जीवन की पीड़ा, अभाव, डर, घुटन, शोषण से भरा पड़ा है। प्रिया प्यार के नाम पर हमेशा छली गई है। सगे भाई द्वारा , प्रेमी द्वारा, पति द्वारा। उसके जीवन में एक के बाद एक घटना घटती है। और ये सब रिश्ते नाते, समाजिक नियमों को तोड़ वह अपना व्यवसाय स्थापित करती है– "मैं समझाती, बार–बार समझाती थी, लेकिन मन समझकर भी नहीं समझता। बेटा? मेरा इकलौता बेटा.... नहीं नरेन्द्र नहीं

*एम.ए., पीएच.डी. (हिन्दी), बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुफ्फरपुर

छोड़ेगा। वह नरेन्द्र की मुट्ठी में बन्द है, कानून भी नरेन्द्र के साथ है। प्रिया! अपने कलेजे पर पत्थर रख ले, पर उस बेचारे लड़के को बेघर मत करो। उसे अपनी दादी से लगाव है, वह अपने पापा को बेहद चाहता है, तुम्हें भी चाहता है। तुम हट जाओ, चुपचाप हट जाओ।"[3]

'आओ पेपे घर चलें' प्रभा खेतान का चर्चित उपन्यास है, जो विदेशी धरातल पर लिखा गया है। इस उपन्यास में प्रभा, आइलिन, एलिजा, कैथरिन, मूर, हेल्गा, क्लारा ब्राउन जैसे नारी पात्र हैं। यह नारी जीवन की पीड़ा, अपमान, शोषण को अभिव्यक्त करने वाला उपन्यास है यह उपन्यास अमरीकी स्त्री–जीवन के भयानक सच को उदघाटित करती है। सामाजिक विसंगतियाँ, रूढ़ियाँ, परंपराओं को भी बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया गया है। इसमें अमरीकी स्त्री की जीवन शैली, संकीर्ण मानसिकता सम्पन्नता के बीच टूटते–बिखरते रिश्ते, अकेलापन, घुटन आदि को बड़े ही जीवंतता के साथ दिखाया गया है– "प्रभा जी का पहला उपन्यास अमरीकी औरत के जीवन के भयानक सच को उजागार करने वाला शायद पहला हिन्दी उपन्यास है। इस उपन्यास में अमरीकी जीवनशैली और सम्पन्न घरों की नारी के एकाकी जीवन को बड़ी संवेदनशीलता के साथ लेखिका ने किया प्रस्तुत है।''

'दुनिया में ऐसा कोई कोना बताओ जहाँ औरत के आंसू नहीं गिरे।' दो संस्कृतियों के निष्कर्ष स्वरूप प्रभा जी का यह कथन सार्थक लगता है कि 'यह परायी जमीन है, लेकिन आदमी तो सब जगह एक सा है, वहीं सुख–दुःख के लम्हें वहीं नाते।"[4]

'आओ पेपे घर चलें' उपन्यास की स्त्री पात्र मरील तलाकशुदा महिला है, जो जिंदगी को यथार्थ रूप से जीती है। प्रभा जी आर्थिक स्वतंत्रता की पक्षधर थी। उनका मानना कि औरत के अस्तित्व की पहचान बिना आर्थिक स्वतंत्रता के संभव नहीं। प्रभा जी ने इस उपन्यास के माध्यम से नारी जीवन की पीड़ा, अपमान और वंचना को अभिव्यक्त किया है–''पति के बारे में पुछने पर बोली भाग गया साला, किसी बीस बरस की लड़की को लेकर। कोर्ट का दरवाजा खटखटाने पर आजकल हजार डालर महीने का भेजता है, बास्टर्ड। मरील के मुँह से गालियाँ फूलों की तरह झरा करती । एक दिन टोकने पर बिगड़ गई, जिन्दगी जब तुम्हें ठगेगी और बार–बार ठगेगी, तब तुम क्या करोगी? गाली नहीं बकोगी? अभी बहुत छोटी हो, औरत के सीने में दर्द का कौन–सा लावा खौलता रहता है, यह आज तुम क्या जानो।"[5]

'तालाबंदी' उपन्यास प्रभा जी का दूसरा उपन्यास है। जिसमें व्यवसाय जगत की समस्या, मालिक मजदूर के संबंध, व्यापारिक धोखाधड़ी, श्रमिक आंदोलन, श्रमिक समस्याओं को केन्द्र में रखकर इसका ताना–बाना बुना गया है। इस उपन्यास का नायक श्याम बाबू है जो मारवाड़ी समाज से आते हैं। पूरी कथा इन्ही के इर्द–गिर्द घूमती है। दिन–रात मेहनत कर वे अपने व्यवसाय को आगे बढ़ाते है। धन दौलत के चक्कर में वे अपने परिवार से अलग होते नजर आते है– "प्रभा जी का यह दूसरा उपन्यास व्यावसायिक जगत् की कहानी है। उपन्यास का नायक श्यामबाबू और कोई नहीं स्वंय प्रभा जी है। उपन्यास का कथानक अत्यंत कट्टर मारवाड़ी समाज की व्यावसायिक ऊहापोह का चित्रण करता है। नायक श्यामबाबू बचपन से आर्थिक तंगी को झेलकर उससे निजात पाने के लिए पिता की तरह मुनीमी करने से इंकार कर देता है। धनोपार्जन के लिए व्यापार की शुरूआत करते हैं। धीरे–धीरे उनका व्यापार चल निकलता है, लेकिन पैसों के चक्कर में अपनों से वे दूर होते जाते हैं। जिन्हें सुखी करना चाहते थे, वे ही उनसे दूर हो जाता है।"[6]

'तालाबंदी' उपन्यास व्यवसायी जगत का लेखा–जोखा प्रस्तुत करता है। आर्थिक तंगी मिटाने के लिए मनुष्य दिन–रात परिश्रम करता है और वह अपने काम–काज में इतना व्यस्त हो जाता है कि परिवार के लिए समय नहीं निकाल पाता है– "सुमित्रा चुपचाप बैठी पति का चेहरा देख रही थी। कहने लगी, 'जी, कम खा लेंगे, पर यह क्या रात–दिन की झक–झक? यह भी कोई जीवन हुआ? आपको तो मुझसे, बच्चों से बात तक करने की फुर्सत नहीं। मां जी को दो दिन से बुखार आ रहा है, डॉक्टर साहब आकर चले गये। पर आप दो मिनट भी मां के पास नहीं बैठे। हम लोग पहले सुखी थे।''[7]

'अग्निसंभवा' प्रभा खेतान की उपन्यासिका है, जो लम्बी कहानी और उपन्यास की मध्य की श्रेणी है। 'अग्निसंभवा' चीनी महिला आइवी पर केन्द्रित है। जो इस उपन्यास की कथा नायिका है और गरीब किसान की बेटी है। जिसे अपने देश से अटूट प्रेम है। आइवी गरीबी से निजात पाने के लिए भागकर हांगकांग आती है और जीवनयापन के लिए टैक्सी ड्राइवर के रूप में अपने आपको स्थपित करती है। बाद में अनेक संघर्षों के बाद हांगकांग में ब्रांच मैनेजर बनती है। प्रभा जी इस उपन्यास के माध्यम से यह बताना चाहती है कि महिला अपने संघर्ष के बल पर अपनी पहचान खुद स्थापित कर सकती है– "आईवी चीनी महिला है जो कि मामूली किसान की बेटी होकर भी अनेक संघर्षों के बाद हांगकांग में ब्रांच मैनेजर बन जाती है। इस कथा के साथ–साथ चीनी क्रांति, मार्क्सवाद, गोरी जाति का शोषण आदि का वर्णन भी मिलता है। आइवी महत्वाकांक्षी स्त्री है। मेहनती भी है। सिलाई कढ़ाई करती हुई एक दिन टैक्सी ड्राईवर बन जाती है और छुपकर हांगकांग आ जाती है। परन्तु अपने देश को नहीं भूलती । यही महिला प्रभा जी को व्यवसाय का गुर सिखाती है। लेखिका ने इस उपन्यास में वैश्विक धरातल पर स्त्री संर्घष को मुखर किया है।"[8]

प्रभा खेतान ने 'अग्निसंभवा' उपन्यास में नायिका आइवी के माध्यम से स्त्री के संघर्ष को वैश्विक स्तर पर उभारा है। हमारे समाज में लड़की पैदा लेने पर स्त्री को शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जाता है– "मेरी पहली संतान लड़की थी, सरकार की ओर से हम दो ही बच्चे पैदा कर सकते थे। अतः किसान के घर लड़की होना अभिशाप था। पति ने बच्ची को देखा तक नहीं। सास ने खाने में पता नहीं कौन–सी दवा मिलाकर दी कि दूध से भरी मेरी छातियां सूख गयीं। बच्ची को दूध सास ही पिलाती थी, पर वे उसे दूध नहीं पिलाती थी। घोला हुआ सफेद पानी जैसा स्टार्च पिलाती रहीं बच्ची का पेट फूलता गया और दस दिन में वह मर गयी। "तुम्हें कैसे पता चला कि बच्ची को स्टार्च पिलाया गया था?"[9]

'अपने–अपने चेहरे' उपन्यास प्रभा खेतान का चर्चित उपन्यास है। जिसमें नारी–जीवन की त्रासदी को दर्शाया गया है। नारी को अपने आप को पहचानने की जरूरत है। स्त्री को पुरुषों के बनाये गये व्यवस्था एवं नियमों से उपर उठकर जीना होगा। उसे अपनी जमीर खुद तलाशनी होगी– "वास्तव में प्रभा खेतान ने इस पूरे उपन्यास में स्त्री को सशक्त होने का संदेश दिया है। आगे बढ़ने के लिए स्त्री को अपने पैर मजबूत होने जरूरी हैं। न सिर्फ पैर ही, जिस जमीन पर स्त्री खड़ी है, वह जमीन भी उसकी स्वयं उपार्जित हो तभी वह पुरुषवादी सत्ता का सामना कर सकेगी। यही बात प्रभा अपने एक पात्र से कहलवाती है–"पुरूष की जमीन पर खड़े होकर पुरुषों के खिलाफ बोलेगी तो उठाकर फेंक दी जाओगी। अपनी जमीन तैयार करो।"[10]

'अपने अपने चेहरे' की नायिका इमा को पूरी कथा में दूसरी होने की पीड़ा, अंतर्द्वद्व को दर्शाया गया है। पहली औरत पति के प्यार के अभाव में भी समाज के नजर में वैध मानी जाती है और दूसरी अवैध। इस उपन्यास को नायिका रमा बार–बार दूसरी औरत होने की पीड़ा के अंतर्द्वद्व से गुजरती है। रमा तीन बच्चों के पिता राजेन्द्र गोयनका से प्यार करती है। समाज के डर के कारण न वह अपनी बीबी को तलाक देता है और न ही रमा से शादी करता है। इसका दंश रमा को बार–बार झेलना पड़ता है। गोयनका के लिए वह अपना सर्वस्व समर्पित कर देती है फिर भी समाज द्वारा उसकी स्थिति को सम्मानपूर्वक नहीं स्वीकारा जाता – "यह दूसरी औरत ब्याहता है, दो बच्चों की माँ है। बड़े घर की बहू है। इसके सास–ससुर सब देख–सुन कर भी कैसे अनदेखा करते हैं? और इसका पति? वह भी तो कुछ नहीं बोलता, इतनी बेशर्म! हर पार्टी में हर जगह कुणाल के साथ जाती है, लेकिन यह तो मेरी दोस्त बन कर मेरे घर आई थी, तब तो यह और इसका पति हम चारों में खूब पटती थी। फिर यह अकेले हमारे घर आने लगी। सारे–सारे दिन पड़ी रहती और कुणाल...... नहीं, मुझे उसी समय रोकना चाहिए था। उसी समय इस औरत से दोस्ती तोड़ लेनी चाहिए थी। लेकिन मैं समझ क्यों नहीं पाई? शायद समझ रही थी, पर बोल नहीं पाई। बोलने में कोई मनाही नहीं थी। फिर....फिर क्या कारण था? कुणाल का अत्यधिक

प्रेमभरा व्यवहार, तब तो ये दोनों ही मुझसे डरते थे। मेरे इशारे पर चलते थे। मैं कुणाल के साथ विदेश गई तब एअरपोर्ट पर इसका चेहरा देख कर मुझे समझना चाहिए था। बात तो चारों के साथ जाने की थी। पता नहीं क्यों, उसका पति ना कर गया। बस कहने लगा—"नहीं जाऊँगा, मेरा मन नहीं है।"[11]

'पीली—आँधी' प्रभा खेतान के चर्चित उपन्यासों में एक है। इस उपन्यास में एक संयुक्त परिवार की तीन पीढ़ियों के रचने , बसने , टूटने , और बिखरने की कथा वर्णित है। कैसे संयुक्त परिवार में संबंधों का जाल बुना होता है और कैसे सभी लोग एक दूसरे से कटे—कटे रहते हैं। उनके संबंधों में मधुरता नहीं होती। इसमें रूढ़िगत परंपराएँ है। रीति—रिवाज, रहन—सहन संस्कारों में जकड़ी स्त्री है, जिसमें इन सब से मुक्त होने की छटपटाहट है— "प्रभा जी ने उपन्यास के आरंभ में ही राजस्थान भूमि और वहाँ के मारवाड़ी समाज की जीवन शैली पर प्रकाश डाला है। साथ ही अकाल के कारण उपस्थित भुखमरी, राजा रजवाड़ों की झूठी शान—शौकत, कंपनी सरकार की चालबाजियों का भी पर्दाफाश किया है। राजाओं का कंपनी सरकार के साथ मिलकर शराब के नशे में डूबे रहना, गुलछर्रे उड़ना, बनियों से नजराने में संपत्ति माँगना, न मिलने पर उसे छिन लेना आदि बातों पर लेखिका ने खुलकर कलम चलाई है। साथ ही मारवाड़ियों की शान—शौकत के पीछे छिपे संर्घष को उनके जीवन के अन्तर्विरोधों को भी इस कथा में उभारना चाहा है।"[12]

'पीली आँधी' प्रभा खेतान की महत्वपूर्ण उपन्यासों में एक है। जिसमे तीन—तीन पीढ़ियों की कथा कही गई है— इसमें राजस्थान की भूमि और वहाँ के मारवाड़ी समाज की जीवन शैली पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही राजवाड़ों की झूठी शान—शौकत से भी पर्दा उठाया गया है। उपन्यास की पात्र पद्यावती(माधो की पत्नी) घर की इज्जत को पति का इज्जत समझती है। अपनी कोई संतान न होते हुए भी वह देवर के बच्चों को अपने बच्चों की तरह स्नेह करती है— "माधो की बिनणी सासू के सामने दान—दहेज भी अच्छी लाती, लेकिन मिरगी के दौरे पर तो किसका वश चले। चलती फिरती कहीं भी गिर पड़ती। एक बार चौखट की चोट से माथा भी फूट गया। एक बार रशोई करती हुई बेहोश हो गई। मूलिए की दादी ने बाड़ी में सबसे कहा— 'वह तो कहो बगल में राधा बाई बैठी थी इसलिए बिनणी जलते—जलते बची, नही तो आज सब कुछ स्वाहा हो जाता।' ''मगर राधा बाई ने मन ही मन कुढ़ते हुए कहा— मर जाती तो अ़च्छा था, इस भाटे की मैं कब तक पूजा करूँ? मुकलावा लेकर एक बरस हो गया, अभी तक तो गोद नहीं भरी । क्या पता पोता हो जाता तो हमलोगों का मन का दुख हल्का होता।"[13]

'स्त्री पक्ष' प्रभा खेतान का अंतिम उपन्यास है। स्त्री पक्ष की कथा नायिका वृंदा निम्नवर्गीय मारवाड़ी परिवार की है। यह उपन्यास किशोरावस्था में प्रवेश करने के पश्चात् लड़कियों में होने वाले शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों को बयां करता है, वह अपने में होने वाले परिवर्तन के प्रति हमेशा सोचती रहती है। वह सारी बातों को पलभर में समझ लेना चाहती है। डॉ. कृष्णा जाखड़ ने लिखा है कि ''वृंदा इस उपन्यास की प्रमुख पात्र है या कहें कि इस पूरी कहानी का ताना—बाना वृंदा के इर्द—गिर्द बुना गया है। वृंदा के पिता व्यवासायी है और माँ एक साधारण गृहिणी, जो अपने बच्चों की देखभाल व पति की सेवा में व्यस्त रहती है। उपन्यास में वृंदा की किशोरवय का रूपांकन हुआ है। वृंदा अपने मन में उठने वाले उटपटांग सवाल माँ से पूछती है। उसकी माँ कभी डाँटती है तो कभी खामोश रहती है। वृंदा अपने किशोर मन की उलझनों को सुलझाना चाहती है और माँ से उत्तर न पाकर वह अधिक से अधिक किताबें पढ़ती है।"[14]

'स्त्री पक्ष' उपन्यास में प्रभा खेतान ने नायिका वृंदा के माध्यम से नारी जीवन की स्थिति और त्रासदी का चित्रण किया है। स्त्री का क्या अर्थ है धर्म, ईशवर से संबंधित तमाम बातें उसे उद्वेलित करती है। स्त्री के रोजमर्रा जिन्दगी में आने वाली छोटी—छोटी परेशानियाँ स्त्री को किस तरह झकझोर देती है? का सजीव चित्रण किया गया है— "वैसे वृदां बखूबी समझ रही थी कि सारी समस्या तो उसकी अपनी देह थी और इस देह को पाने के लिए अनीश की यह जिद्द, क्वारे शरीर को भोगने का जिद्दी अहंकार। अनीश के सामने वृंदा अपनी इस लाचारी पर घंटों सोचती रह जाती वह जानती थी कि अनीश की उसको

हमेशा जरूरत पड़ेगी। न केवल प्रेम के लिए बल्कि सुरक्षा के लिए भी। मगर क्या अनीश जैसा पुरुष उसका साथ देने में समर्थ होगा? या कोई और? इस पुरुष के बारे में, कल्पना में, किताबों में, सिनेमा के पर्दे में आंखें गड़ाए वह बहुत कुछ सोचती रह जाती, पर किसी से कुछ पूछ नहीं पाती थी।"[15]

कुल मिलाकर कथा लेखिका प्रभा खेतान के कमोबेश सभी उपन्यासों में स्त्री के सवाल एवं भिन्नताएँ ही केन्द्र में है। प्रभाखेतान के उपरोक्त वर्ण उपन्यासों में चित्रित स्त्री–समस्याओं ने हमारे समाज का एक विद्रूप चेहरा प्रस्तुत करता है। जब तक समाज में स्त्री के सवालों एवं चिन्ताओं को हल नहीं किया जायेगा, तब तक प्रभा खेतान के उपन्यास प्रासंगिक बने रहेंगे।

I UnHk %

1. प्रभा खेतान के उपन्यास , डॉ. रेखा अग्रवाल, विकल्प प्रकाशन नई दिल्ली, 2012 पृष्ठ–32
2. प्रभा खेतान के साहित्य में नारी विमर्श, डॉ0 कृष्णा जाखड़, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2012, पृष्ठ–45
3. छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, राजकमल पेपर बैक्स, दिल्ली, 2012 , पृष्ठ–147
4. प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री–पुरुष संबंध, काकडिया हेतना, एस, हेस्सा पब्लिकेशन, गुजरात, 2015, पृष्ठ–11–12.
5. आओ पेपे घर चलें, प्रभा खेतान, सरस्वती विहार, दिल्ली ,1990, पृष्ठ–24
6. प्रभा खेतान के उपन्याासें में स्त्री–पुरूष संबंध, काकडिया हेतना, एस, हेस्सा पब्लिकशन, गुजरात,2015 ,पृष्ठ–38.39
7. तालाबंदी, प्रभा खेतान, सरस्वती विहार, दिल्ली, 1991, पृष्ठ–55
8. प्रभा खेतान के उपन्यास, डा. रेखा अग्रवाल, विकल्प प्रकाशन,नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ–30
9. अग्निसंभवा, प्रभा खेतान, अप्रैल, 1992, हंस, पृष्ठ–58
10. प्रभा खेतान के साहित्य में नारी विमर्श, डॉ0 कृष्णा जाखड़, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2012, पृष्ठ–48
11. अपने–अपने चेहरे, प्रभा खेतान, किताब घर, नई दिल्ली, पृष्ठ–121–122
12. प्रभा खेतान के उपन्यासों में नारी, डॉ0 अशोक मराठे, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2012, पृष्ठ–62–63
13. पीली आँधी, प्रभा खेतान, राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ–68–69
14. प्रभा खेतान के साहित्य में नारी विमर्श, डॉ0 कृष्णा जाखड़, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2012, पृष्ठ–196
15. स्त्री पक्ष, प्रभा खेतान, पांचवी कड़ी, जनसत्ता, सबरंग, 7 मार्च 1999, पृष्ठ–2

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 217-218

vt; ukofj;k ds miU;kl ^m/kj ls ykx* esa nfyrksa dh fLFkfr

jke vkljs ljkst*

m/kj ds ykx& भारतीय समाज जाति धर्म, सम्प्रदाय आदि में बंटा हुआ है। हर जाति अपने को श्रेष्ठ समझती है। चाहे वो सवर्ण हो या शूद्र हो। हिन्दू या मुसलान सबके सब अपने तथा अपने धर्म को श्रेष्ठ कहने में पीछे नहीं हटते हैं। आज इसी श्रेष्ठता की वजह से इंसानों के बीच दूरी बढ़ती जा रही है लोग एक दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यहाँ तक कि लोग एक दूसरे के खून के प्यासे होते जा रहे हैं। चाहे वे हिन्दू हो या मुसलमान या ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कोई भी। शूद्र भी अपनी जातियों में अपने को श्रेष्ठ कहलाना पसन्द करते हैं। एक शूद्र दूसरे शूद्र को घृणा की दृष्टि से देख रहा है। उसको लगता है कि आरक्षण का लाभ कोई विशेष जाति उठा रही है और उससे पीछे जा रहे हैं। जबकि यह सत्य नहीं है।

अजय कुमार नावरिया का उपन्यास 'उधर से लोग' में भी जाति विडम्बनाओं को उद्घृत किया गया है। उन्होंने अपने उपन्यास में सामाजिक संघर्ष, बाजार मौन संसार और प्रेम की मार्मिक गाथा को कहा है सबबसे ज्यादा चिन्ता उन्होंने जाति व्यवस्था पर व्यक्त की है। उपन्यास की शुरुआत 'आयशा' नामक वेश्या से होती है। आयशा जो कि वेश्या है फिर भी उससे उसका धर्म पूछा जाता है। यदि वह मुसलमान बताती है तो हिन्दू धर्म के पुरुष उसको और कामुकता की दृष्टि से देखते हैं। वह कहती है– ''हिन्दू ग्राहकों को मुसलमान औरतों के साथ, यह सब करने में बहुत तसल्ली मिलती है। वे कहते हैं कि मुसलमान औरतं बहुत गर्म होती हैं। यह तो बाइचांस की बात थी कि मेरे मुँह से एक ग्राहक के सामने जैसे ही आयशा निकला, तो झट उसने खानम जोड़कर पूछा था, 'क्या' मुसलमान और मास्टरजी मैंने भी मजाक में हाँ कह दिया था। बस वह तो दीवाना हो गया। हालांकि वह आदमी कमजोर था, पर यह सुनकर तो वह भी पठान हो गया था। यह काम मत छोड़ना कभी। पैसे की जरूरत पड़े तो बताना। जाते वक्त उसने मुझे ज्यादा पैसे दिये थे, अपना कार्ड भी दिया था।

कालरा और राणा जब मास्टरजी को आयशा के पास मिलने के लिए भेजता है तो पहले तो मसस्टरजी उसकी जाति जाननी चाही फिर आयशा ने उनकी जाति पूछी तो मास्टर जी अपने मन में सोचते हैं– ''हमारी नामंजूरी के बावजूद हमारी जाति से हमारी पहचान है। मैं जिस जाति में जन्मा हूँ वह मरते दम तक और यकीनन मरने के बाद भी मरी गर्दन नहीं छोड़ेगी। जाति की इस पहचान को शायद हमारी पीढ़ियाँ भी वहन करेगी। आदमी से लेकर देवता विभिन्न जातियों में घट बढ़ जाते हैं। फिर मैं जाति से क्यों भागना चाहता हूँ। क्या हम इसे खत्म पर पायेगें? क्या मेरा सपना दिन में तारे देखना जैसा है।''[2]

मास्टर जी के दोस्त वेदप्रकाश सुशील जयंत, असलम फिरोज सब पढ़े लिखे होने पर भी जाति के झगड़े में उलझ जाते हैं। हमारे समाज की यही विडम्बना है कि कोई कितना भी पढ़ लिख जाये लेकिन जातियों के प्रति घृणा इस तरह मन में बस गई है कि वह निकाले से भी नहीं निकलता। वेद प्रकाश जो ब्राह्मण है वह सुशील से इसलिए नफरत करता है कि उसके पिता गटर साफ करते–करते मर गये थे। वह कहता है– ''मुझे सुशील की जात से परेशानी नहीं है। मुझे इस काम से घिन आती है, जबकि मैं जानता हूँ कि मैं रोज खुद अपना मल धोता अपने हाथ से धोता हूँ पर क्या करूँ? मन को समझाता हूँ पर मन मानता नहीं। अगर उसके पापा सीवर साफ करने का काम नहीं करते होते तो कोई बात नहीं थी।''[3]

सुशील के पिता का काम अब कोई नहीं करता न तो वह नहीं उसकी मॉ। सुशील का घर भी बढ़िया हो गया है। सुशील अब अधिकारी है फिर भी वेदप्रकाश मास्टर जी को बातों का पलटवार करते

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, दीनदयाल उपाध्याय, गोरखपुर विश्वविद्यालय

हुए कहता है– ''नहीं मानता यार मान तो नहीं मानता। तुम्हारे साथ या जयंत के साथ तो मुझे कोई दिक्कत नहीं है। जयंत तो जाटव है और अपने गांव के जाटवों के साथ तो मुझे कोई दिक्कत नहीं है। पर वह सब मैंने नहीं देखा। मैं तो शहर में पैदा हुआ हूँ। गॉव में जाटव क्या करते हैं मैंने तो देखा नहीं। पर शहर में सीवर साफ करने या कूड़ा उठाते हुए बाल्मीकियों को मैंने देखा है।''[4]

यह सच है कि कोई बात अगर मन में बैठ गयी तो वह निकाले से भी नहीं निकलती। न चाह कर भी जाति के प्रति घृणा बन जाती है चाहे वह हमारा उच्च जाति का हो या निम्न जाति का। उसके मन में छूआछूत की बात चलती रहती है। वे कहीं भी जाये पर उनका मन हमेशा असुरक्षा तथा घृणा महसूस करता रहता है। जैसे कि सुशील कहता है– ''मैंने कब कहा कि जाटव जाति से मैं चिढ़ता हूँ। मुझे उन जाटव लोगों से चिढ़ है जो हमारे लोगों से छूत–छात करते हैं। ये साले छिपे हुए वेद प्रकाश हैं। हमारे जैसे कितने लोग हैं? दस–बीस लोगों से यह जारों साल की नफरत खत्म नहीं होने जा रही है।''[5]

दस–बीस नहीं दसियों लाख लोग है जितने दिलों में वाल्मीकियों के लिए प्यार है बराबरी है पर वाल्मीकि खुद असुरक्षा बोझा अपमान बोध और हीनता बोध से पीड़ित है। इसका इलाज तो उन्हें खुद करना पड़ेगा। यदि कोई व्यक्ति जाति व्यवस्था से हटकर कुछ करना चाहता है तो उसकी सोच को भी बदलने का प्रयास किया जाता है। घर, गांव समाज के लोग ऐसे उदाहरण देंगे कि आदमी सोचने पर मजबूर हो जाता है। जैसा कि मास्टर जी के साथ होता है। वे अपनी जाति से शादी न करके ब्राह्मण जाति की लड़की वन्दना ओझा से करते हैं पहले तो सब ठीक रहता है किन्तु शक की वजह से वन्दना सुसाइड कर लेती है उसकी वजह से मास्टर जी को छः माह की जेल हो जाती है। वहाँ जेल से आने के बाद कुछ दिन बाद उनकी शादी शेडयूल कास्ट की लड़की से तय होती है किन्तु वह उसकी बिरादरी की नहीं थी। मास्टर जी का माँ चाह रही थी उनकी शादी अपनी ही बिरादरी खटिक में हो इसके लिए उन्होंने लड़की भी देख रखी थी। किन्तु मास्टर जी के पिता चमार जाति की लड़की संगीता से उसकी शादी कराते हैं तो मास्टर जी की माँ कहती है– ''बामनी काफी नहीं थी क्या? जीवन भर का दुःख गई। बिरादरी की लड़की कभी ऐसा न करती। बिरादरी का भी कोई दबाव होता है। बिरादरी बाहर के इन्सान को क्या समझाए, कौन समझाए?''[6]

हर जाति अपनी अलग–अलग पार्टी बना रही है ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य पासी, चमार, अहीर सबके सब अपनी जाति का संगठन बना रहे हैं तथा दूसरी जाति के लोगों के प्रति घृणा पैदा कर रहे हैं दूसरी जाति के लोगों को भ्रमित करके वोटों का खेल खेला जा रहा है। उन्हें जाति के नाम पर आरक्षण के नाम लड़ाया जा रहा है। जैसा कि राणा उधर के लोग उपन्यास का एक पात्र राणा मास्टर जी से कहता है– ''मैं तुम्हारी तरह पढ़ा–लिखा आदमी नहीं हूँ प्रोफेसर पर इतनी बात जानता हूँ कि महार कम्युनिटी एक स्टेट में है और चमार कम्युनिटी पूरे नार्थ इण्डिया में। ये पावर में जरूर आयेंगे। हमारी सुनवाई न आज होती है और न कल होगी।''[7] इस प्रकार यह उपन्यास समकालीन सोच को व्याख्यापित करता है। इस उपन्यास में लोगों के वैचारिक मतभेदों को उदृघृत किया गया है। स्तन्त्रता के पूर्व जो स्थिति दलितों की थी। स्वतन्त्रता के बाद वही बातें खुद दलित भी सोच रहा है। पहले तो उच्च वर्ग ही इनसे घृणा करता था किन्तु अब तो निम्न वर्ग के लोग अपनी ही निम्न जातियों से घृणा भाव रखते हैं। भूमण्डलीयकरण ने सब कुछ बदल के रख दिया। लोग विकास की होड़ में एक दूसरे से ईर्ष्या करने लगे। कहीं न कहीं मानवता खतरे में नजर आने लगी है। पहले तो जातिगत लड़ाई बनती जा रही है। हर जाति अपने से निम्न जाति खोज लेती है। ऐसा कहा जाता है जो कि यथार्थ है।

lUnHkZ %

1. अजय नावरिया–उधर के लोग, राजकमल प्रकाशन, सं0 2008, पृ0सं0, 14
2. वही पृष्ठ – 27
3. वही पृष्ठ – 54
4. वही पृष्ठ 55
5. वही पृष्ठ 63
6. वही पृष्ठ 148
7. वही पृष्ठ – 157

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 219-221

cfdx i.kkyh dk mnHko vkj fodkl

vt; dekj*

बैंकिंग संस्थान देश की जनता द्वारा संग्रहीत धन को गतिशील करके तथा धन को उत्पादन कार्यों में माध्यम बना कर देश की आर्थिक उन्नति में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। यह बात काफी सीमा तक सत्य है कि किसी भी देश के उद्योग, व्यापार तथा अन्य आर्थिक पहलू इस बात पर निर्भर करते है कि वहाँ के बैंक किस क्षमता तक मूलधन को व्यवस्थित करते हैं।

जहाँ तक बैंक शब्द की उत्पत्ति का प्रश्न है, इस पर अभी तक अर्थशास्त्री तथा इतिहासकार एकमत नहीं हो पाये हैं। कुछ लेखकों का मत है कि बैंक शब्द बैंकों, बैंकस, बैंक्वे तथा बैंक जैसे शब्दों से मिलकर बना है, जिन सबका तात्पर्य एक ऐसे बैंक से है, बाजार में जिस पर मध्यकालीन यूरोपियन मुद्रा का विनिमय करने वाले तथा ऋण देने वाले अपने सिक्कों का प्रदर्शन करते थे तथा इसे अपने व्यापार का माध्यम बनाते थे। कुछ अन्य के अनुसार बैंक शब्द की उत्पत्ति जर्मन शब्द बैंक से हुई प्रतीत होती है, जिसका तात्पर्य संयुक्त संचित मूलधन है, अर्थात इस शब्द का प्रयोग मध्यकाल में बैंक के व्यापार के सम्बन्ध में किया जाता था। वैसे एक समय में बैंकिंग के इतिहास में मुद्रा का विनिमय एक बैंकर का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य था।

भारत में बैंकिंग संस्था के जन्म के संबंध में काफी मतभेद है। अर्थशास्त्रियों का मत है कि 1913 के पूर्व भारत में बैंकिंग नामक कोई प्रणाली कार्य नहीं कर रही थी। इन अर्थशास्त्रियों का यह भी मत है कि इससे पूर्व जितने भी व्यापारी या व्यक्ति आर्थिक कार्य करते थे, चाहे वह मुद्रा का विनिमय हो, ऋण देना हो या धन सम्बन्धी अन्य कोई भी कार्य हो, यह कार्य करने वाले व्यावसायिक बैंकिंग का कार्य नहीं करते थे और यह नहीं कहा जा सकता था कि भारत में बैंकिंग प्रणाली का विकास हो चुका था। जब ये संस्थाएं डूब जाती थी या दिवालिया हो जाती थी, तो यह कहा जाता था कि बैंक ही समाप्त हो गया।

वैसे भारत में बैंकिंग का उद्‌गम काफी प्राचीन है। कुछ महत्वपूर्ण विद्वानों द्वारा यह निर्दिष्ट है कि 2000 ईसा पूर्व से 1400ईसा पूर्व के मध्य वैदिक काल में धन का आदान–प्रदान करने के तथ्य प्राप्त होते हैं। पूरे भारतीय इतिहास में ऋणदाताओं, जो कि बैंकर, सेठ तथा श्रोफ के नाम से जाने जाते थे, का अस्तित्व प्राप्त होता है। विख्यात फ्रेंच यात्री जे0बी0 ट्रेवर्नियर ने 17वीं शताब्दी में लिखा है कि प्रत्येक गाँव में एक मुद्रा परिवर्तन करने वाला था जो श्रोफ कहलाता था। ट्रेवर्नियर के अनुसार यह श्रोफ बैंकर की तरह व्यवहार करता था तथा हुण्डी जारी करने का कार्य भी करता था।

यहाँ तक कि मुगल काल में भी भारत के स्वदेशी बैंकर हर प्रकार के व्यापार को आर्थिक सहायता देने में काफी तत्पर रहते थे। औरंगजेब ने अपने शासनकाल में मानिक चंद नामक सर्वाधिक प्रतिष्ठित बैंकर को 'सेठ' की उपाधि से विभूषित किया। तत्पश्चात् मानिक चन्द के भतीजे फतेहचन्द को शासक फरूखसियर ने 'जगत सेठ' की उपाधि प्रदान की। जगत सेठ का बैंक अंग्रेजों के भारत आगमन के प्रारम्भिक दिनों में उनका काफी सहायक सिद्ध हुआ। उन दिनों ईस्ट इण्डिया कम्पनी की वार्षिक मालगुजारी विभिन्न जिलों विशेषतः बंगाल में इन्हीं स्वदेशी बैंकरों के द्वारा एकत्रित की जाती थी।

भारत में केन्द्रीय बैंक की धारणा को हम बंगाल के गर्वनर वारेन हेस्टिंग्स के जन0 1773 के उस सुझाव में देख सकते हैं जिसमें उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बंगाल और बिहार में एक जनरल बैंक बनाने की योजना प्रस्तुत की थी। इसके बाद इस प्रकार के जनरल बैंक की स्थापना के बारे में कई सुझाव पेश किए जाते रहे। 1836 में इंग्लैण्ड में व्यापारियों के एक संगठन ने भी ब्रिटिश भारत के लिए एक ग्रेट

*शोध छात्र, इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

बैंकिंग संस्था के निर्माण का सुझाव रखा था। वायसराय कौंसिल के भारत के प्रथम वित्तीय सदस्य जेम्स विल्सन ने भी 3 मार्च 1860 को भारतीय विधान परिषद में पेपर करेंसी के बारे में बिल पेश करते हुए एक राष्ट्रीय बैंकिंग जैसी संस्था की स्थापना का सुझाव दिया था। 1867 में जी. डिकन्सन ने, जो कि बैंक ऑफ बंगाल के तत्कालीन सेक्रेटरी एवं ट्रेजरर थे, तीनो प्रेसीडेन्सी बैंकों को मिलाकर करेंसी एवं साख पर नियंत्रण रखने की दृष्टि से समूचे देश के लिए एक बैंक बनाने का सुझाव रखा था। किन्तु इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया गया। इसके बाद 1870 एवं 1884 में भी केन्द्रीय बैंक जैसी ही किसी संस्था के बनाने के सुझाव आए, किन्तु इन्हें भी अस्वीकार कर दिया गया।

1898 में एक बार फिर से फाउलर करेंसी कमेटी के सदस्य इ0हम्ब्रो ने भारत में बैंकिंग सुविधाओं के विकास करने तथा करेंसी के नियंत्रण को ठीस से लागू करने के लिए एक मजबूत केन्द्रीय बैंक बनाने का सुझाव दिया था। इन्होंने केन्द्रीय बैंक की स्थापना के लिए जो तर्क दिए थे उन्हें लॉर्ड कर्जन ने अस्वीकार कर दिया। आगे चलकर चेम्बरलिन आयोग के दो सदस्यों सर अन्रेस्ट केबल और जे.एम. केन्ज ने 1913 में भारत में केन्द्रयी बैंक की स्थापना की एक विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत की। किन्तु 1914 में विश्व युद्ध छिड़ जाने के कारण इस प्रस्ताव पर हम नहीं किया जा सका। बाद में जब अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ परिषद ने ऐसे देशों में जहां केन्द्रीय बैंक नहीं थे, वहां इनकी स्थापना पर जोर दिया तो भारत में तीन प्रेसीडेन्सी बैंक को मिलाकर 1921 में इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना कर दी गई। इसकी स्थापना के साथ ही यह माना गया कि यह ही प्रस्तावित केन्द्रीय बैंक के कामों को कर देगा, अतः किसी अलग संस्था को बनाए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः तो यह एक वाणिज्यि बैंक ही था जिसे कुछ केन्द्रीय बैंक के काम भी सौंप दिए गए थे। किन्तु आगे के अनुभवों ने यह सिद्ध कर दिया कि इम्पीरियल बैंक देश में केन्द्रीय बैंक की कमी को पूरा नहीं कर पाया। 1926 में हिल्टन यंग कमीशन ने भी इम्पीरियल बैंक के केन्द्रीय बैंक के रूप में कार्य करने के विचार का समर्थन नहीं किया और रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के नाम से देश में एक अलग से केन्द्रीय बैंक की स्थापना का सुझाव रखा। इस कमीशन ने रिजर्व बैंक को शेयर होल्डर्स की एक निजी संस्था के रूप में स्थापित करने का सुझाव दिया था ताकि इसे राजनीतिक दबावों से मुक्त रखा जा सके और यह देश की वित्तीय स्थिरता की दिशा में ठीक से काम कर सके। इस सुझाव के अनुसार भारत सरकार ने जनवरी 1927 में निजी शेयर होल्डर्स के बैंक के रूप में रिजर्व बैंक की स्थापना के बारे में एक बिल पेश किया। किन्तु विधान–परिषद में यह पास नहीं हो सका। सरकार इसे एक सरकारी बैंक बनाना चाहती थी। कई वर्षों तक यह विवाद चलता रहा कि रिजर्व बैंक की स्थापना प्राइवेट शेयर होल्डर्स के बैंक के रूप में हो अथवा एक सरकारी बैंक के रूप में। आखिरकार सितम्बर 1933 में फिर से सरकार ने रिजर्व बैंक की स्थापना के लिए बिल पेश किया और यह बिल मार्च 1934 में पास कर दिया गया। इसके अनुसार 1 अप्रैल 1935 से रिजर्व बैंक अस्तित्व में आ गया और इसने काम करना शुरू कर दिया। प्रारम्भ में रिजर्व बैंक को निजी शेयर होल्डर्स की एक संस्था के रूप में ही स्थापित किया गया था। इस बैंक की कुल चुकता पूंजी 5 करोड़ रूपये की रखी गई और उसे 100 रूपये के शेयर्स में बांटा गया था। रिजर्व बैंक अधिनियम (1934) की प्रस्तावना में रिजर्व बैंक की स्थापना के उद्देश्य को इन शब्दों में समझाया गया है– 'बैंक नोटों के निर्गमन को नियमित करना तथा रक्षित निधियों को रखना ताकि भारत में मौद्रिक स्थिरता बनाई रखी जा सके तथा देश की साख व करेंसी प्रणाली को देश के लाभ के लिए क्रियाशील किया जा सके।' भारत की विशेष परिस्थिति को देखते हुए भारत में रिजर्व बैंक केवल परम्परागत केन्द्रीय बैंकिंग कार्य ही नहीं करता बल्कि भारत के एक अल्पविकसित देश होने के कारण इसकी आर्थिक प्रगति की दिशा में कुछ गैर–परम्परागत कार्य भी करता है। आगे चलकर यह महसूस किया गया कि अपने काम को प्रभावी ढंग से करने की दृष्टि से रिजर्व बैंक को सरकार के स्वामित्व में ही होना चाहिए। अतः रिजर्व बैंक अधिनियम (1948) के अन्तर्गत 1जनवरी, 1949 को इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। सरकार ने 100 रूपये के प्रत्येक शेयर के बदले 118.10 रूपये देकर सब शेयर खरीद लिए। इस प्रकार अब यह अंशधारियों का बैंक न रहकर सरकारी स्वामित्व वाला बैंक हो गया।

उपर्युक्त विभिन्न प्रकार के बैंकों के अलावा अंग्रेजी शासनकाल में बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में सहकारी साख प्रणाली की भी शुरुआत हो चुकी थी। यद्यपि स्वतन्त्रता से पहले सहकारी साख

समितियों एवं सहकारी बैंकों की संख्या सीमित ही थी, तो भी इस दिशा में प्रयास प्रारम्भ हो चुके थे और लगातार आगे बढ़ते जा रहे थे– यह एक स्वागत योग्य कदम था।

lUnHk %

1. ओमप्रकाश : प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, नई दिल्ली, 1996, पृ0 97
2. गीता दत्त : प्राचीन भारत में बैंक व्यवस्था, नई दिल्ली, 1993, पृ0 38
3. कृष्णदत्त वाजपेई : भारतीय व्यापार का इतिहास, मथुरा, 1951, पृ0 73
4. श्याम मनोहर मिश्र : प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, इलाहाबाद, 1997, पृ0 205
5. रामशरण शर्मा : प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1992, पृ012
6. चोपड़ा दास पूरी : भारत का सामाजिक आर्थिक इतिहास, नई दिल्ली, 1994 (भाग 1–3), पृ0 78
7. राय चौधरी दत्त मजुमदार – भारत का वृहद इतिहास, नई दिल्ली, 1995 (भाग 1–3), पृ0 7
8. अतहर अव्वास रिजवी : आदि तुर्ककालीन भारत, अलीगढ़, 1956, पृ0सं0 26
9. चन्द्र सतीश : उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1980, पृ0स0 29
10. स्मिथ, बी0ए0 : अकबर दि ग्रेट मुगल, नई दिल्ल, 1966, पृ0सं0 23

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 222-227

tkrd pk.Mkyk d lEcU/k e tkudkjh nu oky lcl le) lkr

MkO lt; dqekj frokjh*

जातकों में अधिकांश को अब पूर्व पाली धर्मसाहित्य का समकालीन नहीं माना जाता है और ईस्वी सन् की प्रारम्भिक सदियों तक की स्थिति को प्रतिबिम्बित करते हैं।[1] ये जातक चाण्डालों के सम्बन्ध से जानकारी देने वाले शायद सबसे समृद्ध स्रोत तथा उनमें जो विवरण मिलते हैं ब्राह्मण धारा के धर्मशास्त्र में निर्धारित नियमों से उनका अद्‌भुत साम्य है। उनमें चाण्डालों को विशेष रूप से तिरस्कृत जाति दोपायों में नि.ष्ट माना गया है। उनको मात्र एक सैद्धान्तिक वर्ग नहीं माना गया। कलुष और अपवित्रता के ये उपकरण अपने अलग गाँवों में और नगरों के बहार रहते थे।[2] उनकी अस्पृश्यता मानी हुई वस्तु है और उनका वर्णन वातावरण को अपवित्र करते हुए और देखने भर से या कुछ दूरी से ही अशौच लगाते हुए किया गया है। उदाहरण के लिए पश्चिमोत्तर का श्वेतकेतु नामक एक अभिमानी ब्राह्मण युवा जब वाराणसी में एक चण्डाल से मिलता है तो उसको पहचानने पर उसे शाप देते हुए तेजी से वहाँ से हट जाता है।[3] एक सेट्ठि की पुत्री दिट्ठमंगलिका का सामना जब एक चण्डाल से वाराणसी के द्वार पर हो जाता है तब उसे अशुभ मानते हुए वह लौट जाती है तथा उसके अनुचर चाण्डाल को बूंसो से मार–मारकर संज्ञा शून्य कर देते हैं।[4] इसी प्रकार चिच्त और संभूत नाक दो चाण्डाल सड़कों को उज्जयिनी के द्वार पर बासुरी बजाते देखकर एक सेट्टि की कन्या तथा एक पुरोहित की कन्या नगर को लौट जाती है किन्तु लोग उन्हें मार–मारकर बेहाल कर देते हैं। इससे स्पष्ट है कि चाण्डाल से अशौच करने का भय केवल ब्राह्मणों के नहीं रहता था बल्कि आम लोग भी इन लड़कियों करे व्यवहार में कोई दोष नजर नहीं आया और उनके पूर्वाग्रह में वे भी सहभागी थे। उस समय की जाति व्यवस्था के जर्जर समाज में बेचारा चाण्डाल असहाय था। इस कथन में वर्णित दोनों भाई अपनी जाति को अपने दुःख विपद का मूल मानते हैं (इमं अम्हाकं जाति निस्साय दुक्खं उत्पन्नम्) अपनी इस दयनीय स्थिति से बचने के लिए वे अपनी जाति को छिपा लेते हैं। तक्कशिला (तक्षशिला) में जाकर एक गुरु शिष्य बन जाते हैं। एक दिन वे अनजान में अपनी बोली (चाण्डाल भाषा) का प्रयोग कर बैठते हैं और उनका भेद खुल जाता है। जो विद्या उच्चतर वर्गों की जागीर मानी जाती थी। उसमें प्रवेश करने की धृष्ठता करने तथा शायद छद्‌म रूप से वहाँ रहने के कारण भी वहाँ के लोग उनकी ताड़ना करते हुए उन्हें भगा देते हैं। चाण्डाल भाषा के उल्लेख से इस भाषा का संकेत मिलता है कि वे किसी आदिवासी जाति के थे जिनकी एक अलग प्रजाति थी उन्हें इतना पृथक करके रखा गया था कि आर्य भाषाएँ बोलने वाली आबादी के बीचट भी वे अपनी अलग भाषा ही बोलते रहे। चाण्डाल से भोजन ग्रहण करने से सम्बन्धित निषेध यहाँ पूर्णता को प्राप्त होता है, मनु के विधानों के विपरीत क्षुधात मनुष्य को भी इस नियम से छूट नहीं दी गयी थी।[5] ऐसा एक प्रसंग है कि अंजान में चावल मिला पानी, जो चाण्डाल के भोजन का बचा हुआ अंश था मुँह में चले जाने से सोलह हजार ब्राह्मणों को जाति भ्रष्ट होना पड़ा। एक क्षुधार्त ब्राह्मण को हम चण्डाल का उच्छिष्ट खाने के तत्काल बाद पश्चाताप करते देखते हैं वह खून सने भोजन की उल्टी करने लगता है और एकान्त में मरने के लिए जंगल में चला जाता है।[6] साधारण चाण्डालों के साथ काम सम्बन्ध की तो विवेचना भी नहीं की जा सकती एक श्रृंगाल जब एक युवा सिंहनी के सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है। तो सिंहनी जो उसे पशुओं में चाण्डाल। मानती

*असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, राष्ट्रीय पी.जी. कालेज सुजानगंज, जौनपुर, उ0प्र0।

है बेचौन हो उठती है और उसकी सद्यः प्रतिक्रिया मर जाने की होती है किन्तु उसके कुछ भ्राता की तीव्र गर्जना सुनकर भय से ही दोषी श्रृंगाल की मृत्यु हो जाती है (सिगालस्य......भीतत सितस्य हृदयं फलि)[7] यद्यपि चाण्डाल शब हटाने (छवछद्दक)[8] शव जलाने (सौदाहक) चोर का बध करने (चोर घातक) रात में पहरा देने (नगर गुत्तिक)[9] झाडू बुहारू करने नाच तमाशा करने और फल बेचने जैसे तरह–तरह के काम करते हैं। तथापि उनका जीवन दुःख दैन्य से भरा ही है और अब भी वे शिकार के अपने पुराने धन्धे में लगे हुए हैं। उस समय के अत्यधिक श्रेणीबद्ध समाज ने स्पष्ट ही चण्डाल का उपयोग अपने लाभ के लिए किया उन्हें सर्वथा पृथक् कर दिया और निम्नतम सोपान पर पशवत अवस्था में रखा। जातक के विवरणों की अन्य बौद्ध श्रोत पूरी पुष्टि करते हैं। और यदि इन श्रोतों से प्राप्त सामग्री से चाण्डालों की ऐसी तस्वीर उभरती है तो फिर बी0आर0 अम्बेडकर का न तो यह मानना उचित होगा कि अस्पृश्यता विद्वेषी ब्राह्मणों की एक क्रूरतापूर्ण युक्ति दृष्टतापूर्ण कटचाल थी।[10] और न इस संस्था के विकास में बौद्ध धर्म की भूमिका को आदर्श रंग में प्रस्तुत करना।[11] मजेदार बात यह है कि अस्पृश्यता के प्रारम्भ के काल को आगे बढ़ाने की चिंता में अम्बेडकर ने चण्डाल के अस्तित्व को ही नकार दिया। बुद्ध की तरह महाबीर ने भी जाति के बजाय गुण पर बल दिया और चण्डाल सहित सबको अपने धर्म संगठन में शामिल किया। किन्तु समय सिद्ध जातीय प्रतिबन्धों तथा अस्पृश्यता के मामले में जैन में भी बौद्ध धर्म से कुछ अधिक नहीं कर पाया।[12] उसने भी उच्च और निम्न जाति, (जाति आर्य, जाति जुंगित), ऊँच और नीचे कर्मों (कम्भ आर्य, कम्म जुंगित) तथा श्रेष्ठ और निकृष्ठ शिल्पों (शिप्प आर्य, शिप्प जंगित) में भेद किया। जैन पाठों के चण्डालों सम्बन्धी कथनों का स्वर बौद्ध श्रोतों के स्वर के ही समान है। उदाहरण के लिए एक पूर्व जैन पाठ 'उत्तराध्‍ ययन सूत्र' ओट में हरिकेश बल नामक एक सेवाग (स्वपाक या चाण्डाल) की कथा है। वह उच्चतम गुणों से युवत मुनि बन गया और यज्ञ स्थल पर तपश्चर्या सज्जीवन सम्यक् श्रम तथा आत्मनिग्रह से होने वाले पुण्य पर एक ब्राह्मण आचार्य को उपदेश दिया।[13] किन्तु जैन संघ से बाहर के चाण्डाल से भिन्न और निम्न स्थान दिया जाता था। यह भी उपलब्ध साक्ष्यों से प्रमाणित होता है। उदाहरण के लिए 'सूत्रकृतांग सूत्र' में चाण्डालों की कला को उन अनिष्टकर गूढ़ ज्ञानों में गिना गया है जिनमें किसी को दुःखी कर देने, विमूढ़ बना देने, सुला देने, गिरा देने, निश्चल बना देने, या रूग्ण कर देने तथा स्त्री को गर्भवती कर देने की कलाएँ शामिल हैं। इन कलाओं के अभ्यास करने वालों को असुरों तथा दुष्कर्मियों की योनि में पुनर्जन्म लेना है। उनकी आदिवासी पृष्ठभूमि का संकेत यहाँ शबरों, द्रविणों, कलिंगों, गौड़ों तथा गंधारों के उल्लेख से मिलता है।[14] मातंग नेता के चित्त तथा संभूय नामक दो पुत्रों को वाराणसी के ऊँची जातियों के लोगों ने इस कारण पीटा की उन्होंने कामोत्सव के दौरान नाचने गाने वालों की मण्डली को नगर में लाने की धृष्टता की थी।[15] इस कथा से पता चलता है कि उन्हें चारों वर्षों से अलग माना जाता था। वे सामान्य बस्तियों से बाहर रहते थे। उनका अपना पृथक् संगीत था और अपने घृणित दर्जे के कारण वे लोगों में निकटता या सम्पर्क से अशौच लगने का भय पैदा करते थे। मुर्दे ढोने और कब्रगाह में काम करने से चाण्डालों के सम्बन्ध थे। इसका संकेत पणों के रूप में की गयी उनकी पहचान से मिलता है क्योंकि पण लोग यह काम करते थे।[16] ब्राह्मण परम्परा के अनुरूप किन्तु बौद्ध श्रोतों के विपरीत चाण्डालों को वर्णसंकर जातियों में भी गिनाया गया है।[17] प्राचीन पाली ग्रन्थों में पाँच हीन जातियों यथा चाण्डाल, वेण, निषाद, रथकार और पुक्कुस जातियों की चर्चा बार–बार हुई है।[18] उन्हें नीच कुल[19] और हीन जाति[20] का बताया गया है। हीन व्यवसायों कार्यों एवं जातियों की गणना फलतः मौर्य पूर्व काल की मानी जाती है क्योंकि बुद्ध हवाला देकर उन्हें अपमानित न करगे और इस प्रकार संघ में भेद–भाव उत्पन्न न करें।[21]

बौद्ध ग्रन्थों की अनेक हीन जातियाँ ब्राह्मण कालीन समाज के अछूत वर्गों से मोटे तौर पर मिलती जुलती हैं। बौद्ध और जैन ग्रन्थों के अनुसार चाण्डाल और पुक्कुस शूद्र वर्ण में सम्मिलित नहीं थे।[22] किन्तु धर्मशूत्रों ने उन्हें विभिन्न जातियों की सूची में रखा है, और इनमें शूद्र जातियों का खून मिला है।[23] पतंजलि का कथन है कि पाणिनि ने चण्डाल और मृतप (शवों की रखवाली करने वाला) को उन शूद्रों की कोटि में रखा है जो नगरों और गावों से बाहर रहते थे। जिनका स्पर्श हो जाने से ब्राह्मणों का कॉस्य। पात्र सदा के लिए अपवित्र हो जाता था।[24]

मूलतः चाण्डाल आदिवासी प्रतीत है। यह उनकी बोली से ही स्पष्ट हो जाता है।[25] एक जैन ग्रन्थों में अन्य जन जातियों, अर्थात् शबर, द्रविण, कलिंग, गौड और गांधारो। के साथ उनका उल्लेख किया गया है।[26] किन्तु कालक्रम से चाण्डाल अछूत समझे जाने लगे। आपस्तंब का मत है कि चण्डाल को छूना और देखना पाप है।[27] किन्तु यह परिच्छेद। उसके धर्मसूत्र की पहले की दो पांडुलिपियों में नहीं मिलती।[28] जिससे पता चलता है कि अस्पृश्यता प्रायः मौर्य पूर्व काल के अन्त में आयी इसी प्रकार एक उपबन्ध गौतम के परवर्ती ग्रन्थ में मिलता है कि यदि किसी चाण्डाल के स्पर्श से शरीर अपवित्र हो जाय तो सभी वस्त्रों के साथ स्नान करके उसे पवित्र किया जा सकता है।[29]

पाली ग्रन्थों में चाण्डाल को स्पष्टतया बताया गया है। बाद के एक जातक में चंडाल को अध ामाधम कोटि का माना गया है।[30] चण्डाल का शरीर स्पर्श करके आने वाली हवा दूषित समझी जाती थी।[31] चाण्डाल पर दृष्टि पड़ना अपशकुन माना जाता था।[32] यहीं कारण है कि बनारस के एक सेट्ठि की लड़की चाण्डाल को देखने पर अपने आँख धोने लगती है क्योंकि वे आँख अधम व्यक्ति को देखने के कारण दूषित हो गयी थी।[33] यदि चाण्डाल भोजन या पेय सामग्री को देख ले तो उसे ग्रहण करना वर्जित था।[34] अंजान में भी उसका अन्न ग्रहण कर लेने पर उन लोगों को सामाजिक बहिष्कार का भागी बनना पड़ता था।[35] कहा जाता है कि सोलह हजार ब्राह्मण अपनी जाति से इस कारण बहिष्कृत कर दिये गये कि उन्होंने अनजाने में ऐसा अन्न ग्रहण किया जो शूद्र के जूठन के स्पर्श से दूषित हो गया था।[36] ऐसे ब्राह्मण का भी वर्णन आया है जिसने भूख की पीड़ा में चाण्डाल का जूठा खा लिया और अपनी जाति के लोगों की निन्दा से बचने के लिए आत्महत्या कर ली।[37] एक जातक कथा में बताया गया है कि जब चाण्डाल शहर में प्रवेश करता है तब लोग उसे मार–मार कर बेहोश कर देते हैं।[38] इसी प्रकार की कथा बाद के जैनग्रन्थ में आयी है। कहा जाता है कि कामदेव के पूजा के अवसर पर बनारस के मातंक नेता के दो बेटे गायक और नर्तक दल को लेकर पहुंचे तो उच्च जाति के लोगों ने उन्हें लातों और थप्पड़ों से मारा और शहर के बाहर निकाल दिया।[39] जो भी हो जातक प्रसंगों से पता चलता है कि यद्यपि उच्च वर्गों के सभी लोग चण्डाल को अस्पृश्य समझकर घृणा करते थे फिर भी ब्राह्मण उनसे विशेष नफरत करते थे।

बौद्धों ने हीन जातियों की जो सूची बनायी उसमें निषादों को कैसे सम्मिलित किया गया। इसकी व्याख्या करना बहुत कठिन नहीं है।[40] यह धर्मसूत्रों में उनकी हीन स्थिति से मिलता जुलता है। वे लोग आर्य पूर्व जनजातियों में थे जो नाटे कद के होते थे। उनका रंग कोयले जैसा काला आँख, लाल[41] कपोल उभरे हुए नाक चिपटी और बाल ताँबे के रंग के थे।[42] उनके सम्बन्ध में विचित्र परम्परा चली आ रही है कि वे वेण राजा के तन से पैदा हुए थे।[43] जिसने मुनियों पर बहुत अत्याचार किये थे। इससे अनुमान किया जा सकता है कि उन्होंने ब्राह्मणवाद के विकास का विरोध किया था। जब उन्हें ब्राह्मण प्रधान समाज से समाविष्ट कर लिया गया। तब भी निषाद मुख्यतया शिकारी ही बने रहे।[44] और अपने गाँवों में निवास करते रहे।[45] सम्भव है कि कुछ निषादों ने ब्राह्मणों के वर्ग में स्थान पा लिया हो यद्यपि गोत्रों की किसी भी मानक सूची में निषाद गोत्र का उल्लेख नहीं है फिर भी पाणिनिके गण पाठ[46] में निषाद गोत्र की चर्चा हुई है। ऐसा तभी सम्भव हुआ होगा जब आदिवासी पुरोहित में से कुछ को ब्राह्मणों का दर्जा दे दिया गया होगा या जब ब्राह्मण आदिम जातियों के पुरोहित के रूप में काम करने लगे होंगे।[47] इतना तो स्पष्ट है कि इस काल में निषाद उस दर्जे से नीचे अवश्य आ गये थे, जो वैदिक समाज में उन्हें मिला था। पाली ग्रन्थों में उल्लिखित कुछ हीन जातियों खासकर निषादों और चण्डालों को तो अवश्य ही अछूत माना जाता था। सामूहिक रूप से अछूत अन्त्य को पापिष्ट माना है।[48] वशिष्ठ ने भद्र शूद्रों और अन्त्यजोनियों के बीच अन्तर करते हुए बताया है कि अन्त्यजोनि के लोग केवल अपने मुकदमे में गवाह बनाकर उपस्थछित हो सकते थे।[49] आपस्तंब धर्मसूत्र में अन्तः शब्द का प्रयोग चण्डाल के प्रसंग में हुआ है और उसमें बताया गया है कि वह गाँव के आखिरी छोर पर रहता था।[50] इसी सम्बन्ध में हरदत्त ने बाह्यों की जिनके सलामने वेद पाठ करना निषिद्ध था, उग्र और निषाद कहा है।[51] वशिष्ठ के मतानुसार अन्त्यावसायिन ऐसी जाति थी जिसकी उत्पत्ति शूद्र पुरुष और वैश्य स्त्री से हुई थी।[52] कहा गया है कि जो ब्राह्मण पिता अन्तेवासी के साथ रहे या उस समुदाय किसी स्त्री का सम्भोल करे तो उसे जाति से बहिष्कृत कर देना

चाहिए। अछूत साधारणतया। गाँवों और नगरों के छोर पर अथवा अपनी बस्तियों में रहते थे। उनका विलगाँव किन्हीं प्राचीन आर्य बस्तियों से जानबूझ कर बाहर निकाले जाने के फलस्वरूप नहीं हुआ था। मालूम होता है कि आदिम जातियों के गांवों की पूरी आबादी को ब्राह्मणों ने अस्पृश्य घोषित कर दिया था।[53]

धर्मसूत्रों से अस्पृश्यता की उत्पत्ति की जो व्याख्या की गयी है उसे स्वीकार करना सम्भव नहीं है क्योंकि इसमें अस्पृश्य उसे कहा गया है जो विभिन्न जातियों से उत्पन्न हो। बताया गया है कि अधि ाकांश मामलों में अस्पृश्यों की उत्पत्ति बौद्ध समुदायों के सर्वथा विलग और परम्परा रहित जीवन के परिणाम स्वरूप हुई।[54] किन्तु यह विचार तर्कसंगत नहीं लगता क्योंकि यह सामाजिक तथ्य मौर्य पूर्व काल में प्रकट हुआ जब बौद्ध धर्म का उद्भव और विकास हुआ। यह भी कहा गया है कि जिन लोगों ने गोमांस खाना जारी रखा उन्हें अछूत करार दिया गया। 10 हो सकता है कि इस कारण आगे चलकर उनकी संख्या बढ़ी हो किन्तु यह उनकी उत्पत्ति की व्याख्या नहीं मानी जा सकती क्योंकि मात्र गौतम धर्मसूत्र[55] को छोड़ कहीं भी कुछ ऐसा दिखायी नहीं पड़ता जिससे पता चलता हो कि इस युग में ब्राह्मण समाज में गोमांस खाना निषिद्ध था। यह भी तर्क दिया जा सकता है कि घृणा की जिस भावना से अस्पृश्यता का विकास हुआ वह भारतीय आर्यों में मूलतया नहीं थी। बल्कि उसका प्रवेश द्रविड़ों के माध्यम से हुआ जिनके बीच दक्षिण में आज भी अस्पृश्यता की भावना प्रबल है।[56] किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि ब्राह्मण प्रधान समाज में द्रविड़ों में आत्मसातकरण के पहले उनके द्वारा ब्राह्मणवाद के अंगीकार के पहले दक्षिण में अस्पृश्यता प्रचलित थी। इसके विपरीत दक्षिण के विधि प्रवर्तक बौधायन ने यथा आपस्तंब ने आहार और स्पर्श के विषय में, अन्य उत्तरक्षेत्रीय लेखकों ने अपनाया है।[57] इसके अलावा पहले यह भी बताया गया है कि उच्च वर्ण के लोग जो आर्य होने का दावा करते थे किस प्रकार कुल शिल्पों और व्यवसायों के हेय समझते थे। अंततः यह निष्कर्ष निकलता है कि अस्पृश्यता की भावना का उद्भव कुछ व्यवसायों को अपवित्र मानने के सिद्धान्त के आधार पर हुआ है।[58] किन्तु महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कुछ व्यवसाय वयों अपवित्र माने जायें? अस्पृश्यता की उत्पत्ति का एक कारण आदिम जातियों का संस्कार हीन जीवन था क्योंकि वे मुख्यतया शिकारी और बहेलिए। के रूप में जीवन बिताते थे और उनकी तुलना में ब्राह्मण समाज के लोग धातुकर्म और .षि का ज्ञान रखते थे तथा नगर जीवन का विकास कर रहे थे।[59] बौद्ध ग्रन्थों में इन जातियों के हीन संस्कार और तज्जन्य उनकी दुरावस्था का वर्णन इन शब्दों में किया गया। है। यदि वह मूढ़ इतनी लम्बी अवधि के बाद मनुष्य की कोख में जन्म लेता भी है तो वह नीच जाति के घर जाता है जैसे चाण्डाल, निषाद, वेण, रथकार और पुवकुस इनका पुनर्जन्म घुमक्कड़ अकिंचन के रूप में अभाव ग्रस्त जीवन बिताने के लिए होता है इन्हें पेट भर भोजन और शरीर पर वस्त्र शायद ही मिल पाता था।[60] इससे पता चलता है। कति इन अधम जातियों का जीवन बड़ा शंकटमय था। इनकी हालत शूद्रों से कहीं बदत्तर थी जो दासों और कुम्भकारों के रूप में नियोजित थे और जीविका की दृष्टि से कुछ हद तक सुरक्षा का अनुभव करते थे। भौतिक जीवन की यह विषमता खुद ब्राह्मण समाज में बढ़ रही घृणा की भावना के साथ उग्र होती चली गयी। तत्कालीन ग्रीक समाज[61] की भाँति ही वैदिक काल के पश्चातवर्ती समाज में शारीरिक श्रमवाले कार्यों और व्यवसायों के प्रति धणा के भाव दिखायी पड़ते हैं। उच्च वर्ण के लोग खासकर ब्राह्मण और क्षत्रिय धीरे–धीरे उत्पादन कार्य से हाथ खींचने लगे और अपनी स्थिति तथा .त्यों के सम्बन्ध में वंश परम्परा का निर्वाह करने लगे जिनका परिणाम यह हुआ[61] कि उनके मन में न केवल शारीरिक श्रमवाले कार्यों के प्रति घृणा बढ़ी बल्कि वे उन्हें भी हेय समझने लगे जो इस तरह का कार्य करते थे।

lUnHkZ %

1. दीर्घनिकाय, III, पृ0 80–98।
2. अंगुत्तर निकाय IV, पृ0 202 देखें
3. जातक III अनुवाद 33 मूल 48।

4. धर्मषास्त्र का इतिहास प्रथम भाग पृ0 109–10।
5. वही भाग एक पृ0 189–92।
6. वैदिक लिट्रेचर संहिताज एण्ड ब्राह्मणाज (विसवेडन 1975), पृ 330।
7. मनुस्मषति XI, 42।
8. चण्डाल और अस्पृश्यता का उद्भव–विवेकानन्द झा, पृ0 36।
9. समराँगण सूत्रधार 7/15–16।
10. रूपम् 1924 जनवरी।
11. प्रबन्धचिन्तामणि, पृ0 43।
12. जातक, IV, पृ0 151।
13. वही, IV, 376,390।
14. जैन–लाइफ ऐज लिपिक्टिड इन जैन कैनन्स पृ 110।
15. उत्तराध्ययन सूत्र IV.
16. चण्डाल और अस्पृश्यता का उद्भव–विवेकानन्द झा़ पृ0 37।
17. सूत्र कृताँग सूत्र 5.8–229।
18. चण्डाल और अस्पृश्यता का उद्भव–विवेकानन्द झा़ पृ0 37।
19. पी0आई0एच0 सी0, (भुवनेश्वर 1977) पृ0 25–49।
20. मझिम निकाय III, 169–78II 152, 183–4.
21. वही।
22. विनय विटक II 6 देखें अंगुत्तर निकाय II 25 संयुक्त निकाय I 93।
23. वही IV, 4–111।
24. संयुक्त निकाय 102, 166।
25. रामषरण शर्मा शूद्रो का प्राचीन इतिहास पृ0 118
26. पाणिनि, II 4–10, महाभाश्य, I 475 शूद्राणाम् निखिसितानाम्।
27. जातक IV पृ0 391–2।
28. सूयग्ड्म (सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईश्ट, अनुसार) II 2, 27।
29. आपस्तम्ब धर्मसूत्र II 1, 2, 8।
30. मैतायणि संहिता, बुहलर के वर्गीकरण (पुर्वोद्धृत, इट्रोडक्सन पष्ठ III) के अनुसार पाँण्डुलिपि जी0 यू0 2, 3।
31. गौतम धर्मसूत्र XIV, 30।
32. जातक IV, 397।
33. जातक III, 233।
34. वही IV, 376, 390।
35. वही IV, 376, 390।।
36. शूद्रो का प्राचीन इतिहास–रामशरण शर्मा, पृ0 118–119।
37. वही, IV, 387।
38. वही 1, 82–83।
39. वही IV, 376–391।
40. उत्तराध्ययन सूत्र टीका, 13 पृ0 850 जैनलिखित पूर्ण निर्दिष्ट ग्रन्थ, पृ0 144 में उद्धृत।
41. रामषरण शर्मा–शूद्रों का प्राचीन इतिहास–पृ0 119–120।
42. महाभारत XII 59, 102–3।
43. दत्त, पूर्व निर्दिष्ट पृ0 107।
44. महाभारत XII, 59, 99–101, ला पूर्व निर्दिष्ट, पृ0 100 बी0 सी0 ला का कथन है कि ये निशध थे न कि निशाध, किंतु महाभारत के आलोचनात्मक संस्करण में स्पष्टतया निशाद शब्द का उल्लेख हुआ है।
45. जातक II पृ0 200 VI पष्ठ 71–170.
46. वही VI पृ० 71।
47. पाणिनि, IV, 1,100।
48. कोसांवी, (जर्नल ऑफ दि अमेरिकन ओरियंटल सोसायटी, बाल्टीमोर, LXXV 44) यह इस धारणा पर निर्भर है कि निषाद गोत्र ब्राह्मणीय गोत्र था. जो संदिग्ध है।

49. गौतम धर्म सूत्र, IV, 28, एक अन्य स्थान पर गौतम ने कहा है कि अन्त्यो को अपवित्र वस्त्र दिये जाने चाहिए। XIV. 42।
50. वशिष्ठ धर्म सूत्र XVI 30।
51. आपस्तंब धर्मसूत्र 1.3.9.15।
52. वही, 1, 3, 9, 18।
53. वशिष्ठ धर्मसूत्र XV III 3।
54. राम शरण शर्मा–शूद्रो का प्राचीन इतिहास पृ0 121
55. (माडर्न रिब्यू, दिसम्बर 1923) पृ0 7, 12–13।
56. गौतम धर्मसूत्र, XXII, 13 में गोवध को मामूली अपराध बताया गया है, जिसका मोक्ष प्रायश्चित से किया जा सकता है।
57. दत्त पूर्व निर्दिष्ट पृ0 106–7 पृ0 31।
58. रामशरण शर्माकृशूद्रों का प्राचीन इतिहास, पृ0 122।
59. धुर्ये कास्ट एण्ड क्लास पृ0 159।
60. शूद्रों का प्राचीन इतिहास, रामशरण शर्मा, पृ0 122।
61. फिक पूर्व निर्दिष्ट, पृ0 324।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 228-234

Hkhe vdsyk dk lnHkZ vkSj fo|klkxj ukSfV;ky dh lkLdfrd nf"V

ekuoUnz izrki flag*

विद्यासागर नौटियाल हिन्दी के प्रमुख कहानीकार और उपन्यासकार हैं। आत्मकथा के साथ कथेतर की दूसरी विधाओं में भी उन्होंने उल्लेखनीय लेखन किया है। नौटियाल जी हिन्दी कथा परिदृश्य में बहुपठित, सुप्रसिद्ध कथाकार के रूप में स्थापित हैं। कहानी के साथ अपने रचनात्मक लेखन की शुरुआत करने वाले नौटियाल जी की पहली बहुचर्चित कहानी थी 'भैंस का कट्या'। इस कहानी के माध्यम से तत्कालीन साहित्यिक परिदृश्य में नौटियाल जी की सशक्त उपस्थिति दर्ज हुई। यह कहानी 1954 में 'कल्पना' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। सुप्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह ने कहानी पत्रिका के 1958 में प्रकाशित नववर्षांक में गदल, चीफ की दावत, जिन्दगी और जोंक के साथ 'भैंस का कट्या' कहानी की चर्चा की।

लेख का शीर्षक था– 'नई कहानी सफलता और सार्थकता'। इस कहानी के प्रकाशन और उसके प्रभाव की चर्चा नौटियाल जी ने अपनी प्रतिनिधि कहानियाँ की लगभग संस्मरणात्मक भूमिका में की है। वे लिखते हैं– ''मेरी नोटबुक में दर्ज है कि ता0 10–7–53 को मैंने 'भैंस का कट्या' कहानी हिन्दुस्तान साप्ताहिक को भेजी थी। वहाँ से उसे लौटा दिया गया था। कुछ दिन बाद प्रगतिशील लेखक संघ की गोष्ठी में मुझे उस कहानी 'भैंस का कट्या' का पाठ करने का मौका मिला। नामवर सिंह उसे पहले ही पढ़ चुके थे। गोष्ठी में उपस्थित साहित्यकारों को कहानी बहुत अच्छी लगी। जगत शंखधर, चंद्रबली सिंह, त्रिलोचन शास्त्री, विष्णुचन्द्र शर्मा, केदारनाथ सिंह, रामदरश मिश्र, विश्वनाथ त्रिपाठी, ठाकुर प्रसाद सिंह, शिवप्रसाद सिंह और काशाी के अनेक दूसरे रचनाधर्मी गोष्ठी में उपस्थित थे। शिवप्रसाद सिंह जी ने भी हॉस्टल में अकेले मिलने पर उसकी बहुत तारीफ की। कहानी 'कल्पना' के पते पर हैदराबाद भेद दी गयी। लेकिन 'कल्पना' में प्रकाशित होने से पहले ही मेरा नाम काशी की सीमाएँ लाँघकर प्रयाग के साहित्य जगत तक जा पहुँचा था। उसके छप जाने के बाद प्रयाग विश्वविद्यालय के छात्र–कथाकार मारकण्डेय ने उसे एक संकलन में लेने की योजना बनाई।''[1] नौटियाल जी ने साहित्यकर्म के साथ–साथ एक सक्रिय सामाजिक–राजनैतिक कार्यकर्ता और राजनेता के रूप में भी कार्य किया जिसकी अनेक छवियाँ उनके लेखन में प्रायः दिखाई देती हैं। किसी भी लेखक के साहित्य में उसका अनुभव उसकी विचार संपन्नता का एक प्रमुख आधार होता है। निजी जीवन और समाज लेखक के रचनाकर्म की कार्यशाला है और इन दोनों का ही महत्व किसी भी लेखक के लिए होना चाहिए। साहित्य प्रकृति से सार्वदेशिक होता है पर वह विशिष्ट भी होता है। आशय यह कि जब रचनाकार आँचलिक अनुभवों, विमर्श आदि की बात करता है तो उसे विशिष्ट अनुभूति के रूप में समझना चाहिए। पर यह ध्यान हमेशा रखना चाहिए कि साहित्य अपनी सार्वदेशिकता के कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य छोड़ता है। कई बार लेखक की भविष्य दृष्टि के रूप में साहित्य की सार्वदेशिकता मुखरित होकर, महत्वपूर्ण हो उठती है। नौटियाल जी का साहित्रू इसकी एक बानगी है। नौटियाल जी का जन्म टिहरी–गढ़वाल रियासत के मालीदेवल में हुआ था। यह उनकी सामाजिक–राजनैतिक सक्रियता की भूमि थी और आजीवन बनी रही। पहाड़ के लोगों का जीवन–संघर्ष और उसके विविध रूप उनकी कहानियों और संपूर्ण लेखन का मुख्य उत्स है। 'भीम अकेला' नौटियाल

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

जी की एक ऐसी ही महत्वपूर्ण रचना है। 'भीम अकेला' नौटियाल जी की दो दिन की यात्रा का लेखा–जोखा है। यह यात्रा उन्होंने उत्तर प्रदेश विधानसभा का सदस्य रहते हुए की थी। 'भीम अकेला' तकनीकी तौर पर भले यात्रावृत्त हो पर अपने विषय वस्तु और कथन की शैली के कारण इसे आत्मकथा, संस्मरण और यात्रावृत्त तीनों का मिला–जुला रूप कहा जा सकता है। नौटियाल जी की इस कृति का शिल्प की दृष्टि से भी विशेष महत्व है, वह यह कि यह विधाओं का अतिक्रमण करने वाली कृति है और इसमें एक स्तर पर कथा के भी लक्षण मौजूद हैं। पांडवों की स्वर्ग यात्रा और भीम के चरित्र के माध्यम से एक कथा का संयोजन किया है। हालाँकि इस कथा के मुख्य सूत्र का रचना की केन्द्रीय वस्तु या उद्देश्य के साथ कोई प्रतिनिधि संगत नहीं है। इसलिए इस कथा उपक्रम को इस रचना का केन्द्रीय नहीं अपितु गौण विधान माना जाना चाहिए। इस प्रसंग का उल्लेख इसलिए आवश्यक हुआ है कि कई समीक्षकों द्वारा 'भीम अकेला' को उपन्यास भी कहा जाता रहा है। यह स्पष्ट है कि यह कृति उपन्यास नहीं बल्कि कथेतर की मिली–जुली विधाओं की कृति है। नौटियाल जी की यह कृति– 1994 में प्रकाशित हुई। यह नौटियाल जी की साहित्यिक यात्रा का दूसरा पड़ाव है। पुस्तकाकार आने के पूर्व यह 'पहाड़' पत्रिका के 1989 के तीसरे अंक में प्रकाशित हुआ था। इसका आरंभ लेखक की दो दिवसीय यात्रा की तैयारी के साथ होता है। नौटियाल जी ने बिल्कुल शुरुआत में ही सूत्र रूप में पहाड़ के जीवन की चर्चा कर दी है और साथ ही पांडवों की चर्चा भी। लिखते हैं– ''यह पहाड़ है, यहाँ चढ़ो या उतरो रास्ता चढ़ाई का है। लगातार चढ़ाई, फिर उतराई, फिर चढ़ाई और लौटते वक्त भी लगातार उतराई, चढ़ाई, उतराई के सिलसिले। उतराई ऐसी होती है कि घुटनों की टोपियाँ दर्द करने लगें। इस विकट राह पर कभी पांडव भी चढ़े होंगे। वे हिमालय में गलने आए थे। अपने पापों का प्रायश्चित करने आए थे। बन्धु–बांधवों का महावध करने के बाद आए थे।''[2] यह तो पहाड़ की भौगोलिक विकटता का एक रूप था। पहाड़ की सांस्कृतिक विकटता का एक रूप भी देखें। नौटियाल जी लिखते हैं– ''जिस भू–भाग के लिए 'महाभारत' रचा गया उसे जितने के बाद विजेता भी वहाँ से भाग गए। उन्होंने भी उसका सुखोपभोग नहीं किया। हिमालय में भाग आए। बसने के लिए नहीं गलने के लिए आए, ऐसा विकट था। आज भी ऐसा ही विकट है हिमालय। महाभारत के योद्धा पांडव हिमालय के लिए नहीं लड़े थे। हिमालय के लिए हम लड़ रहे हैं।''[3] यहाँ पर नौटियाल जी ने पहाड़ों को लेकर गैरपहाड़ी जन की आत्माहीन आस्थाओं और उपयोगितावादी नजरिए की जरूरी पहचान की है और उससे उपजे पहाड़ी जीवन के त्रासद जीवन बोध की भी।

यह पुस्तक एक सेनानी, जननेता, विधायक व बाहैसियत आम पहाड़ी नागरिक के अनुभवों का दस्तावेज है। जो लेखक की अलग–अलग भूमिकाओं में पैबस्त समाज व तंत्र की विफलताओं, लोगों के जीवन की कठिनाईयों और पहाड़ी जीवन के रोजमर्रा के संघर्षो को तफसील से और विश्वसनीय रूप में सामने रखती हैं। इस कृति का विस्तार पहाड़ के उतार–चढ़ाव भरे रास्तों से लेकर पहाड़ों की कृषि, खेतिहरों की परेशानियाँ, नदी–नालों, तत्कालीन नौकरशाही, राजनीति और व्यवस्था के गठजोड़ से उत्पन्न भ्रष्टाचार से लेकर पारिवारिक जीवन के सच्चे चित्रों की उपस्थिति और लेखक के साहित्यिक जीवन की कुछ झलकियाँ भी शामिल हैं। जिनमें बनारस प्रवास के दौरान के साहित्यिक मित्र भी उपस्थित है। इस यात्रा में पाठक पहाड़ के कुछ दिलचस्प ग्रामीण चरित्रों से भी मुलाकात करता चलता है और खान–पान, रहन–सहन, जन–जीवन के सामान्य दृश्यों से एकाकार होते हुए भी। नौटियाल जी की इस कृति में एक विधायक का चरित्र भी सामने आता है और उनके माध्यम से राजनीतिक विद्रूपता भी सामने आती है। पर एक बात जिसका जिक्र महत्व के साथ होना चाहिए, वह यह कि राजनीति के भीतर मौजूद व्यक्तिगत नैतिकता और शुचिता। आप देखेंगे कि 90 के बाद तेजी से पाँव पसार रहे कॉपोरेट और पूँजीवादी ढाँचे के प्रभाव में हमारी स्मृति पर हमला होता रहा है। राजनीति ने इसे सुसंगत ढंग से और नीतिगत रूप से किया है। धीरे–धीरे यह हमला हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की स्मृतियों पर तेज होता चला गया है। स्वाभाविक है कि आज की पीढ़ी के सामने वे सारी स्मृतियों या तो मौजूद नहीं है या है तो आधी–अधूरी और विकृत रूप में। इस कृति के आलोक में नौटियाल जी के रूप में हम राष्ट्रीय आन्दोलन और उसके राजनैतिक सांस्कृतिक मूल्यों और टकराहटों से निर्मित हुई राजनीतिकों का एक प्रतिनिधि चरित्र

देख सकते हैं। नौटियाल जी का यह चरित्र हमारी राजनीतिक स्मृति को साफ–सुथरा करने का काम करता है और हमें हमारी वास्तविक पहचान और राजनैतिक संस्कृति को देखने का एक रास्ता मिलता है। आप इस पूरी कृति में गाँव–गाँव पैदल चलते, लोगों से मिलते–जुलते, उनकी समस्याओं को सुनते, लोगों के घर में ही खाते और रूकते और उनके साथ कदम से कदम या कंधे से कंधा मिलाकर चलते एक विधायक को देख सकते हैं। पाठक को बार–बार गाँधी बाबा की याद हो आना स्वाभाविक है।

पहाड़ के भूगोल में खेती–किसानों के चित्र और किसानों की पीड़ा इस कृति में दिखाई देती है। किसानों की स्थिति कहीं बहुत बेहतर नहीं है। लिखते हैं– ''मैं पांडे से वहाँ सिंचाई के पानी और धारी नहर के विस्तार के बारे में बात करता जा रहा हूँ...... हमारी बातें पास से गुजर रही कुछ महिलाएँ बड़े ध्यान से सुनने लगी हैं। हमें (मुझे) सुनाते हुए उनमें से किसी ने अपनी पीड़ा यों प्रकट की 'यह धरती कभी न बदलेगी।' न यहाँ कभी पानी आएगा, न हमारी भूख मिटेगी। किसानों को मिलने वाले कर्ज की बंदरबाट पहाड़ के बीच–'बीच के हिस्से का थोड़ा बहुत समतल भू–भाग, जहाँ आने वाली नहर की परियोजना, नौकरशाही की सुस्तपरस्ती और उपेक्षा भाव के कारण लटकी हुई है। लंबित है। भ्रमण के दौरान नौटियाल जी कुछ छोटे रास्तों और गाँवों के संपर्क मार्गों से गुजरते हैं जो बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं और उससे भी ज्यादा शासकीय उपेक्षाओं का शिकार है। वे लिखते है– 'राजनेताओं, शासकों की जमात का कभी इस तरह की राहों की ओर ध्यान ही नहीं जा सकता।' वे बड़े काम करें कि छोटे–छोटे महत्वहीन नालों–खालों में अपने को उलझा दें, बड़े पुल बनाएं कि छोटी पुलिया बनाने में देश–प्रदेश का पैसा जाया कर दें ? किसानी, दस्तकारी और उनसे जुड़ा हुआ जीवन यानी की उनकी सामुदायिकता और उनका रहवास यानी की गाँव का आर्थिक ढाँचा औपनिवेशिक परियोजनाओं के माध्यम से ही काफी कुछ नष्ट किया जा चुका था। अफ़सोसनाक है कि आजादी के बाद भी यह जारी रहा है। यह हिन्दुस्तान की 20वीं सदी की सबसे बड़ी सांस्कृतिक पराजय है। गाँव के इन्हीं साधारण जन, किसानों मजदूरों की स्थिति बयान करते हुए और इसके साथ ही सरकारी योजनाओं की विफलता एक साथ एक टुकड़े में व्यक्त हुई है।'' लिखते हैं– ''मैंने उठकर स्कूल भवन की परिक्रमा की। भवन में दो कमरे थे, एक गलियारा। ये खंडहर ऐसी कोई चीज नहीं बता रहे थे कि इमारत बुलंद थी। इस मुल्क के लाखों इन्सानों की तरह जिन पर कभी यौवन चढ़ता ही नहीं, इस भवन ने भी अपने जोश भरे दिन कभी नहीं देखे।''[4] गाँव और उनकी बुनियादी जरूरतों शिक्षा, अस्पताल के प्रति सरकारी उदासीनता का एक और उल्लेख किया है, लिखते हैं– ''इसकी मरम्मत के लिए शिक्षा विीागा मात्र नौ हजार की राशि देने को तैयार था, जिसे गाँव वालों ने लेने से इंकार कर दिया। उतने में मरम्मत करवा लेना किसी भी तरह संभव न था।''[5]

आजादी के बाद राजनैतिक मोहभंग हिन्दी क्षेत्र के बुद्धिजीवियों–लेखकों, कवियों में तो दिखने लगा था, बाद में वह धीरे–धीरे जन सामान्य की चेतना का हिस्सा बनता गया। सरकारों, राजनेताओं से होने वाले मोहभंग की परिणति राजनीति को एक 'खराब' बात मानने के रूप में भी होती चली गयी। यात्रा के दौरान धारी गाँव के एक सज्जन ने नौटियाल जी से कहा 'मैं राजनीति वालों से तंग आ गया हूँ नौटियाल जी। सैकड़ों घूमते हैं। राजनीति वालों की मैं सूरत तक नहीं देखना चाहता। इसीलिए मैंने आपकी उपेक्षा की थी।'

यात्राएं जीवन–जगत के दृश्य तो सम्मुख करती ही है, यात्री के आत्म को भी उसके सम्मुख ले आती है। गाँधी जी ने पूरे देश की यात्रा की थी, तब वे भारत को जान सके थे। नौटियाल जी भी अपने क्षेत्र की यात्रा करते हुए लिखते हैं– 'ऐसे ही भागता रहा तो मैं किसी भी गाँव को नहीं समझ पाउँगा। यहाँ एक–एक गाँव को समझने के लिए आधा जीवन लगाने की जरूरत है।' कितना सतही काम कर रहा हूँ। इस गाँव के बारे में मेरी क्या जानकारी हैं ? इस गाँव के सीधे–सादे लोगों का प्रतिनिधित्व करने का सचमुच मुझे कोई अधिकार है ? समाज सापेक्ष आत्मालोचना का गुण अपने परिवेश के प्रति सच्चे लगाव और वैचारिक आदर्शों के प्रति समर्पण भाव से ही आता है। लंबे समय तक भारतीय राजनेताओं के भीतर इस तरह क आत्मालोचना और नैतिकतावादी दृष्टि मौजूद रही है। भारतीय मूल्यों की खोज में यह हमेशा एक जीवंत अध्याय साबित होगा। विद्यासागर नौटियाल आरंभ से ही वामपंथी जनांदोलनों में सक्रिय रूप

से भागीदार रहे हैं। उन आन्दोलनों की मुख्य प्रेरणा आमजन और किसान मजदूर थे। स्वाभाविक तौर पर इस पुस्तक में किसान, कंडक्टर, सूअर, नदिया चपरासी, गाँव के सीधे–सच्चे लोग बार–बार आते हैं। नौटियाल जी की यह यात्रा उनके अनुभव संपदा का विस्तार तो करती ही है साथ–साथ पाठक के सांस्कृतिक बोध में कुछ तोड़–फोड़ करती और कुछ जोड़ती–घटाती चलती है। नौटियाल जी एक प्रसंग में झींगुरों की बोली को याद कर रहे हैं और उनके कम होते जाने पर दुखी हैं। यह नष्ट होते जाने की पीड़ा और अवसाद का बोध है जो पाठक को भी मार्मिक ढंग से स्मृति संसार में ले जाता है।

नौटियाल जी के इस यात्रा प्रसंग में कई ऐसे लोग आते हैं जो नौटियाल जी से अपने पुत्र/पुत्रियों की नौकरी की सिफारिश करते हैं। लेखक के शब्दों में ही देखिए– 'कुछ देर तक मेरे दिमाग में उन बेकार नवयुवकों और नवयुवतियों के चेहरे घूमते रहे, जिन की नजरों में कहीं काम मिलने की चाह रहती है। उनके माता–पिता के आत्मीयता भरे स्वरों में उलाहने–विधायक जी। आप इतना छोटा–सा काम भी नहीं करवा सकते ? सिर्फ एक बेटे के लिए नौकरी लगानी है। हिन्दी क्षेत्र और उसकी राजनीति को जानने वालों के लिए यह एक आम दृश्य रहा है।' सबके बाद हिन्दी क्षेत्र के राजनेताओं का जनता के प्रति सच्ची आत्मीयता से यह संभव हो सका होगा। हिन्दी क्षेत्र में मौजूद राजनीति के सर्वसमावेशी चरित्र से ही यह संभव होना था। आज परिदृश्य में यह दृश्य नदारद है। राजनैतिक पदों पर प्रतिष्ठित लोगों द्वारा निर्मित संस्कृति में आम जन और उनके मुद्दे सिरे से गायब हैं। राजनैतिक शक्ति और प्रभाव का उपयोग करने वाला वर्ग, किसान और गाँव के दूसरे पेशों से जुड़े लोगों की जगह 90 के बाद कॉपोरेट, नीतियों से उपजे नव धनाढ्य वर्ग के रूप में सीमित हो गया है। उसने राष्ट्रीय से स्थानीय परिदृश्य तक देश के आम आवाम को स्थानान्तरित कर अपनी जगह ले ली है। इस पूरे परिदृश्य ने देश में बहुत कुछ बदल दिया है। जो चीज तेजी से क्षरित हुई है, वह है लोकतांत्रिक राजनीति के परिसर में मौजूद वैयक्तिक और सामूहिक नैतिकता। आज लोकतंत्र के सभी स्तंभ इस क्षरण का शिकार हैं। सबसे बड़ी मुश्किल है। इस लोकतंत्र का आधार, जन मानस के भीतर का क्षरण। यह किसी भी लेखक, रचनाकर्मी की वास्तविक चिंताओं का सबब होना चाहिए। विद्यासागर नौटियाल जी के यहाँ यह मौजूद है। नौटियाल जी वामपंथी आंदोलनों में सक्रिय रहे हैं। बेरोजगारी, बेकारी, नवयुवकों की खराब दशा को लेकर उनकी स्पष्ट समझदारी दिखती है, वे कभी भ्रम में नहीं रहे है कि पूँजीवादी संस्कृति व आर्थिक गतिविधियों के भीतर इस समस्याओं का कोई हल हो सकता है। लिखते हैं– ''एक–एक कर हजारों नौजवान बेकार हैं। हर पिता के सामने एक दो बेटे–बेटियों की समस्या हैं। मैं सोचता चला जा रहा हूँ। पूंजीवाद के कायम रहते क्या बेकारी को दूर किया जा सकता है ?''

नौटियाल जी की इस कृति में अद्योपांत भाषा की सरसता और उसका प्रवाह दिखाई देता है। रचनात्मक लेखन में अपने समय की विडम्बना, त्रास और सम्पूर्णता में उसकी अभिव्यक्ति के लिए लेखक, व्यंजनात्मक युक्तियों का सहारा लेते हैं। नौटियाल जी के यहाँ भी यह खूब आजमायी गयी है। यहाँ तक कि नौटियाल जी जब कहीं अपनी बात कहते हैं, इसी युक्ति का सहारा लेते हैं। खुद के बारे में लिखते कहते हुए उनमें एक संकोच है। उनकी यह कृति एकालापी नहीं है, यह पुस्तक इस संकट से मुक्त है और यह इस पुस्तक की सर्वप्रमुख विशेषता है। नौटियाल जी अपनी इस कृति में भाषा की व्यंजनात्मकता के कई अनूठे और जरूरी प्रयोग करते हैं– ''यह काफी आश्चर्य की बात है कि इतनी लंबी राह में मेरी दिशा की ओर चलने वाला एक भी व्यक्ति नहीं दिखाई दे रहा हैं। सब लोग दूसरी विपरीत दिशा में अग्रसर हैं।'' अव्वल तो यह सामान्य वाक्य या सहज दृश्य वर्णन लगता है पर ठहरकर विचार करने पर यह समझा जा सकता है कि पुस्तक में मिथकीय पात्र के रूप में उपस्थित 'भीम' जिन्हें उनके पांडव भाई लोकविश्वास, रूढ़, या अन्धविश्वास के कारण मार्ग में पथ पर मिलने वाले राक्षस को सौप देते है और हिमालय के रास्ते में आगे बढ़ जाते हैं। भीम यहाँ अकेला संघर्ष करता है। इस कथा बिन्दु जो कि इस कृति में कथात्मकता का अकेला सूत्र है और जो इस कृति को एक कथा की संवेदना के साथ पढ़ने की मांग करता है। एक लेखक, विचारक या नेतृत्वकर्ता अपनी संवेदनात्मक परिणति में कई बार खुद को अकेला भी महसूस करता है और इस नियति या परिस्थिति या एक तरह की मनोग्रंथि से अकेला ही संघर्ष करता है। लेखक,

विचारक की राह पर चलना आसान नहीं। विचारों की इस यात्रा में लेखक अग्रगामी चेतना का वाहक होता है। गालिब ने लिखा भी है 'जी खुश हुआ है राह को पुरखार देखकर।'

यात्रा के दौरान नौटियाल जी धारी से सेरा गाँव के बीच निर्माणाधीन नहर को देखते हैं। यह नहर सिंचाई विभाग, वन विभाग और केन्द्र सरकार की नई नियमावली और पारित कानूनों के बीच उहापोह में फँसी हुई है। इसकी डिजाइन और कार्ययोजना ऐसी है कि इस नहर का अधिकतम लाभ किसानों तक नहीं पहुँच सकता था और पहाड़ों के बीच का बड़ा समतल भू–भाग असिंचित ही रह जाना था। जिक्र कर देना जरूरी है कि 1980 में आये वन अधिनियम के अनुसार–वन भूमि का उपयोग, गैर वन प्रयोजन के लिए किये जाने की स्थिति में राज्य सरकारों को कार्य आरंभ करने से पूर्व केन्द्रीय शासन से अनिवार्यतः अनुमति लेनी होगी। वन अर्थात् वह भूमि जहाँ कृषि न की जाती हो। इस वन कानून के आने के बाद पहाड़ी इलाकों में विकास के कार्य काफी मुश्किल हो चुके थे। सांस्कृतिक, भौगोलिक आधारों के अलावा ऐसे कारण भी है, जो स्थानीय स्वशासन की जरूरत को पुख्ता करते हैं। स्थानीय और क्षेत्रीय भौगोलिक सांस्कृतिक कारकों और उसमें निवास करने वाली जनता की जरूरतों को समझे बिना विकास का सही और सुव्यवस्थित रास्ता तैयार नहीं किया जा सकता। हमें यह समझना होगा कि विशिष्ट सांस्कृतिक, भौगोलिक, लैंगिक और जातीय क्षेत्रों की समझदारी विकसित किये बिना कोई ईमानदार प्रयास नहीं किया जा सकता। बिना इसे समझे और लागू किये लोकतंत्र की मूल भावना के अनुरूप कोई राज्य न्यायपूर्ण हो सकेगा, इसमें संदेह है। इस विडम्बना का एक उदाहरण देखिए, लिखते हैं– 'उस इलाके में जहाँ धारी नहर खोदी जा रही थी, एक भी दरख्त मौजूद नहीं। चूँकि उस खड़े पहाड़ पर कोई कृषि कार्य नहीं किये जाते, इसलिए वह वनक्षेत्र की परिभाषा के अंतर्गत आता है। फलस्वरूप अब केन्द्रीय शासन की स्वीकृति के बगैर नहर के एक मीटर पर भी कार्य आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है।'

इस पुस्तक में कई ऐसे प्रसंग आते हैं जो लेखक की ओर से है यानी कि लेखक की टिप्पणी या वक्तव्य के रूप में। यह टिप्पणियाँ जितना लेखक की अपनी तबीयत का बयान करती है, उतनी ही तत्कालीन समय की राजनीति, राजनेताओं और जनता के साथ उनके संवाद और संबंध की बानगी भी प्रस्तुत करती है। नौटियाल जी पेशे से वकील थे और अपने इन अनुभवों का खूब तबीयत से बखान करते थे। एक मुवक्किल द्वारा किसी काम के सिलसिले में फटकारे जाने के बाद उनके परिचित बचनलाल द्वारा इस बाबत पूछे जाने पर कहते है– ''पूरी बात यह है लाला कि मुवक्किल अपना केस लेकर मेरे घर आते थे। मैं नहीं जाता था कभी उनके पास। लेकिन यह आदमी मेरे पास नहीं आया था, मैं गया था उसके घर। उसका वोट मांगने गया था। इसलिए उसे अपनी बात सुनाने का हक़ है, जो मुझे सुननी पड़ती है।''[6] लेखक की इस यात्रा में प्रसंगवश स्मृतियों का उल्लेख आता रहता है। इस स्मृति–उल्लेख में दो–तीन दफा बनारस और उसका साहित्यिक परिवेश भी आया है। नौटियाल जी ने बी0एच0यू0 से अपनी शिक्षा ली थी। उन्होंने यहीं से अंग्रेजी साहित्य से एम0ए0 किया था। बनारस में ही उनकी लेखकीय यात्रा शुरू हुई और एक तरह से परवान भी चढ़ी जिसका कुछ उल्लेख मैंने लेख के आरंभ में ही कर दिया है। बनारस के भूगोल का एक छोटा चित्र भी इस कृति में सामने आता है। बुडापेस्ट के क्रांतिकारी नेता सआदती बाबक के साथ कैंट से बी0एच0यू0 परिसर की यात्रा के बहाने नौटियाल जी के सहपाठी रहे आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी, कविता और उसके अनुवाद के बहाने बच्चन सिंह का आत्मीय स्मरण भी उनकी कृति में उपस्थित है। बनारस के शैक्षिक प्रवास के दौरान निर्मित संबंध और परिवेश का प्रभाव नौटियाल जी पर आजीवन बना रहा। एक प्रसंग में पण्डित हजारी प्रसाद द्विवेदी को उन्होंने दिलचस्प ढंग से याद किया है। यह किस्सा बनारस प्रवास का नहीं वरन् इस दो दिवसीय यात्रा के दौरान का है। लिखते हैं– ''नेपथ्य में स्तुति गाई जाने लगी। संस्कृत में थी या हिन्दी में मुझे नहीं मालूम। लेकिन भक्ति रस था। बाणभट्ट की आत्मकथा के चन्द्रदीधिची की याद हो आयी। मेरी नींद टूट गई। बाहर अँधेरा था। अभी रात नहीं खुली थी। अपनी गृहस्थी का काम करते–करते गृहस्वामिनी हरिस्मरण कर रही थी। आँखें बंद कर मैंने मन ही मन पंडित जी (हजारी प्रसाद द्विवेदी) का स्मरण किया और उन्हें प्रणाम किया।''

पहाड़ों का जीवन एकरूपाकार और एकरेखीय नहीं होता। नौटियाल जी अपनी कृतियों और साक्षात्कारों में इस बात को कहते रहे हैं। पहाड़ की अपनी विशिष्ट भौगोलिक और सांस्कृतिक भिन्नताएँ

भी हैं। नौटियाल जी के यहाँ गढ़वाल की स्थानिकता अपनी घनीभूत संवेदना के साथ मौजूद है। 'भीम अकेला' के वृत्तान्त का दूसरा पक्ष है, 1948 में टिहरी राजशाही के विरुद्ध गढ़वाली जनता के विद्रोह की कथा। देश की आजादी जिन परिस्थितियों में मिली थी, उसकी स्वाभाविक परिणति की अनुगूँज केन्द्र से दूर के प्रदेशों, रियासतों के भीतर देखने को मिलने लगी थी। अंग्रेजी गुलामी के विरुद्ध लम्बे समय से संघर्ष कर रही जनता को देश के कई हिस्से में स्थानीय भू–स्वामियों और रियासतों के राजा–महाराजाओं से संघर्ष करना पड़ा। आजादी एक भौतिक अवधारणा के साथ ही एक आत्मिक–सामाजिक गतिशील मूल्य भी है। एक नागरिक को किसी भी समाज में इसके लिए संघर्ष करना होता है। आजादी का भाव, लोकतांत्रिक राज्य और समाज का नैतिक आधार होना चाहिए। नौटियाल जी का जीवन इस प्रक्रिया का जीवंत उदाहरण रहा है। 1948 की जनवरी में टिहरी राजशाही के खिलाफ जनता के विद्रोह का तारीख और चरित्रों के साथ छिट–पुट विवरण उनकी इस कृति में मौजूद है। ये समूचा संघर्ष लोकतांत्रिक अधिकारों और आजादी का संघर्ष था। गढ़वाल विद्रोह के नायक तेजसिंह के साथ बीतचीत करते हुए नौटियाल जी सम्पूर्ण वृत्तांत पाठक के सामने ले आते है। यह पूरा वृत्तांत एक जनान्दोलन का रूप पाठक के सामने ले आता है। गढ़वाली जनता की राजनैतिक चेतना और पक्षधरता इस कृति के जरिए पाठक के सामने आती है।

इस आन्दोलन के प्रमुख नायक थे तेजसिंह, कामरेड चन्द्र सिंह गढ़वाली, देवीदत्त तिवारी, तिपन सिंह तेगी, नागेन्द्र सकलानी आदि। तेजसिंह जैसे कितने स्वतंत्रता सेनानी सरकारी उपेक्षा और भ्रष्टाचार का शिकार हुए और उनका बाद का जीवन कष्टों से भरा रहा। उसका एक वर्णन देखिए– 'तेजसिंह फुट–फूटकर रोने लगा। आर्थिक स्थिति ने उसे पस्त कर दिया है। स्वतंत्रता सेनानियों के नाम पर शोहदों ने क्या–क्या फायदे नहीं उठाए ? लेकिन तेजसिंह जैसा का तैसा है। आजाद हिन्दुस्तान पर शासन कर रहे राजनेताओं ने उसके एक भी बेटे को नौकरी पर लगाना तक जरूरी नहीं समझा।'

'भीम अकेला' के एक हिस्से में नौटियाल जी के पारिवारिक चित्र भी मौजूद है। नौटियाल जो कि बचपन के मुख्तसर किस्से, उनकी बहन, भाई, पिता के साथ नौटियाल जी के जीवन के कुछ चित्र मौजूद है। इसी के साथ ग्रामीण जीवन में मौजूद परस्परता, साझापन और सुख–दुःख के दुर्लभ हो चुके जीवन चित्र भी मौजूद हैं। 'भीम अकेला' और पांडवों की कथा को नौटियाल जी पहाड़ी प्रदेशों और उनकी सरकारी उपेक्षा के प्रति एक रूपक की तरह भी प्रयोग करते हैं और उसके साथ ही इन समस्याओं के समाधान की राजनैतिक व्याख्या भी प्रस्तुत करते हैं। लिखते हैं– ''लेकिन बिजली की बात यहाँ सोची भी कैसे जा सकती हैं ? जहाँ पांडव भी गलने आए हो उस शापित प्रदेश की अहिल्या की भांति पथराई जड़वत अर्थव्यवस्था को साम्यवाद के स्पर्श के अलावा कोई पुनर्जीवित नहीं कर सकता।'' बिजली पानी जैसी आधारभूत समस्याओं से जूझ रहे गढ़वाल की दशा को व्यक्त करते हुए लिखते हैं– 'अपने सूखे खेतों की सिंचाई के लिए सिर्फ पानी मांगते है। कभी पानी आ सकेगा पांड़वों का वह सख्त बोल बदल सकता है– 'दुःख की धारी, सुख की स्यारी' धारी और स्यारी गढ़वाल अंचल के वे दो गाँव है, जिनके आस–पास यह यात्रा–वृत्त और कथा रचना बुनी गयी है। 'भीम अकेला' के आखिर में 'उपसंहार' के रूप में 'सूरमा' भरदारी की उपकथा शीर्षक से लगभग दस पृष्ठ की सामग्री प्रस्तुत है। यह एक सच्ची कहानी है। यह कहानी है 'मोलाराम नौटियाल' जिन्हें उनके लोग मोलाराम भरदारी के नाम से पुकारते थे और उनकी 14 वर्ष की विधवा पत्नी सुरमा भरदारी थी।' भरदार एक पूरा इलाका है, जिसमें अलग–अलग कई गाँव है। वहाँ के लोग अपने गाँव और अपने नाम के साथ 'भरदार' शब्द जोड़ते हैं। भरदार के बारे में नौटियाल जी लिखते हैं 'भरदार को गौरव है, सिर्फ भरदार को, टिहरी गढ़वाल की आजादी के महायज्ञ में उसकी कुर्बानी सर्वाधिक रही। एक पट्टी में दो–दो शहीद। एक हमें छोड़ कर चला गया, दूसरा हमारे बीच कायम हैं।' इस विवरण के बाद सुरमा भरदारी की कहानी आकार लेती है। शहीद नागेन्द्र सकलानी और मोलाराम भरदारी की मुक्ति के बाद 'प्रजामंडल' दल भंग हो गया, उससे जुड़े बहुतेरे प्रजामंडिलियों को आजादी के बाद मोटर परमिट, सरकारी उपेक्षित रही, सरकार ने उसकी सुधि न ली। बड़े प्रयासों के बाद 25 वर्ष बाद सुरमा भरदारी को उत्तर प्रदेश सरकार ने 15 रूपया माह की पेंशन मुहैया करायी। बाद में किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा सुरमा के प्रति भेजी गयी, शिकायत पर जाँच बैठाकर सरकार द्वारा सुरमा की पेंशन निरस्त कर दी गयी।

सुरमा पर यह आरोप था कि उन्होंने देवर से अपने बच्चे पैदा किए है ? सुरमा की पेंशन बंद करने के साथ ही अब तक किये गये भुगतान की वसूली का आदेश भी शासन द्वारा जारी किया गया।

सुरमा ने पति की शहादत के बाद एक तकलीफदेह जीवन जिया था। उनकी व्यक्तिगत तकलीफ को नौटियाल जी ने जनता की सामूहिक चेतना की निर्मित का वाहक बनाकर प्रस्तुत किया है लिखते हैं– 'उसकी समझ में यह बात बहुत अच्छी तरह बैठ चुकी थी कि आजादी के चमकते हुए घाम पर थोड़े से लोग कुंडली मारकर बैठ गए हैं।' नौटियाल जी ने 'भीम अकेला' में जीवन के वास्तविक पात्रों और मिथकीय कथा के बहाने लोकतंत्र, देश की राजनीति और जनचेतना की प्रासंगिक व्याख्या करने का प्रयास किया है और हिन्दी जनता के सामने एक जरूरी सवाल रखा है, ताकि आजादी के चार दशक बितते–बितते इन सब बातों का पुनर्मूल्यांकन किया जा सके। लिखते हैं– 'सुरमा की पेंशन बंद किया जाने के मामले से आजाद भारत में कई प्रश्नों पर फिर से विचार किया जाना जरूरी हो गया है। सुरमा भरदारी उन प्रश्नों से ऊपर उठ गई है। प्रश्न सुरमा का नहीं है, प्रश्न हमारा है, उसका संबंध हमसे है पूरे भारतीय समाज से है।' नौटियाल जी ने अंग्रेजी शासन के साथ देशी रजवाड़ों और सामंतों का शासन और उनका दमन भी देखा था। वे राजनीति के साथ–साथ लेखन में भी सक्रिय थे। अतः उनकी दृष्टि में जमीनी ठोस सच्चाईयों के साथ समाज और जनता के भीतर हो रहे सांस्कृतिक बदलावों की समझ भी पुख्ता थी। वे सहज ही सामाजिक, राजनैतिक दुर्भिसंधियों को समझते थे। वे उनके ठोस तत्कालीन उद्देश्यों, सांस्कृतिक घेराबन्दियों और राजनैतिक कार्यवाहियों को भी समझ रहे थे। वे अपने लेखन में सामाजिक–राजनैतिक हैरारिकी की प्रतिगामी, पुनरूत्थानपरक मूल्य मीमांसा की स्थापना की कोशिशों को बेनकाब करने का काम करते हैं। वे समाज और साहित्य में गरीब, किसान, पहाड़ी जनजातियों के लोगों को उनकी वास्तविक जगह दिलाने का प्रयास करने वाले लेखक के रूप में जाने गये। उनकी वर्गीय व सामाजिक दृष्टि साफ थी। 'भीम अकेला' की आखिरी पंक्तियाँ हैं– 'शहीदों का अनादर करने वाले समाज का नेतृत्व लाजमी तौर पर उन्हीं के हाथ में जायेगा, जो आजादी के आन्दोलन का अपनी पूरी ताकत से विरोध करते थे और अब तथाकथित पवित्र परंपराओं को जीवित रखने के नाम पर सती प्रथा को पुनर्जीवित करना चाहते हैं।' आगे लिखते है– 'क्या हम अपनी नई पीढ़ी को उन राजा–रानियों के युग में लौटाना चाहेंगे ?'

नौटियाल जी इस सच्चाई को समझ रहे थे कि वस्तुतः सांस्कृतिक पुनरुत्थानवाद, सामंती ढांचे पर आधारित सत्तागत पुनरुत्थान का ही एक रूप है और जनविरोधी सत्तामूलक पुनरुत्थान को मजबूत करता है और आज़ादी और बराबरी के स्वप्न को स्थगित भी करता है। भीम अकेला में 90 के पहले का समाज मौजूद है, लेकिन 90 के बाद भारतीय समाज में उभरने वाले बदलावों और सांस्कृतिक प्रतिगामिता की साफ आहट दिखाई देती है। आज 2020 में इस कृति के प्रकाशित होने के 25 से अधिक वर्षों बाद इसका महत्व नौटियाल जी की राजनैतिक, सांस्कृतिक दृष्टि को समझने के लिए तो है ही, साथ ही एक बड़े राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक बदलाव के मुहाने पर खड़े समाज की स्थिति और उसके निर्मिति की सामाजिकता और सांस्कृतिक विमर्श को समझने में भी इसका महत्व असंदिग्ध है।

lUnHk %

1. भूमिका, प्रतिनिधि कहानियाँ : विद्यासागर नौटियाल–किताबघर प्रकाशन, संस्करण, 2006
2. भीम अकेला–विद्यासागर नौटियाल, पेंगुइन बुक्स इंडिया, 2008 संस्करण, पृ0सं0 2
3. भीम अकेला–विद्यासागर नौटियाल, पेंगुइन बुक्स इंडिया, 2008 संस्करण, पृ0सं0 4
4. भीम अकेला–विद्यासागर नौटियाल, पेंगुइन बुक्स इंडिया, 2008 संस्करण, पृ0सं0 32
5. वही, पृ0सं0 32
6. भीम अकेला–विद्यासागर नौटियाल, पेंगुइन बुक्स इंडिया, 2008 संस्करण, पृ0सं0 46

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 235-239

jktsUnz ;kno ,oa lekarj dgkuh vkanksyu

izhfr JhokLro*

समांतर कहानी आंदोलन के सूत्रधार माने जाते हैं– कमलेश्वर। कमलेश्वर ने कहानी पर केन्द्रित पत्रिका 'सारिका' का संपादन किया। वस्तुतः 'सारिका' पत्रिका के माध्यम से ही समांतर कहानी आंदोलन की शुरुआत की गयी। उस जमाने में समांतर कहानी आंदोलन को गति देने के लिए विचार गोष्ठियों का आयोजन किया गया। साथ ही शिविर लगाकर समांतर कहानी की अवधारणा को स्पष्ट किया गया। यह माना गया कि समांतर कहानी पीढ़ियों और समांतर सोच की कहानी है। इस कहानी में लेखकों की उम्र सीमा और विचारधारा को बंदिश नहीं माना गया। दूसरे शब्दों में 'पीढ़ीमुक्त लेखन' और 'बंध्यमूल चिंतन' पर पुनर्विचार के बाद समांतर कहानी का जन्म हुआ।

मधुरेश ने अपनी पुस्तक में हिन्दी कहानी के विकास–क्रम को व्याख्यायित किया है। समानांतर अथवा समांतर कहानी आंदोलन पर विचार करते हुए उन्होंने लिखा है– '' इस तरह समांतर कहानी दृष्टि की प्रतिबद्धता से मुक्त होकर जतना के बीच जाने के आग्रह की कहानी बनकर सामने आई। चूंकि इसमें किसी आंदोलन और वाद से मुक्त लेखकों का आह्वान किया गया था और इसमें सभी उम्र और विचारधारा के लेखकों के लिए साझा–मंच की बात कही गयी थी, इसे समांतर कहानी के रूप में प्रस्तुत किया गया।''[1]

वस्तुतः कमलेश्वर आम आदमी को लेकर लिखी गई कहानियों को समांतर कहानी आंदोलन से जोड़ते हैं। इसको लेकर कमलेश्वर ने 'सारिका' के कहानी विशेषांकों का प्रकाशन भी किया। 'सारिका' की संपादकीय टिप्पणियों में उन्होंने युवा पीढ़ी के गुमराह होने से लेकर कहानी में फैले अराजकता तक की चिंता व्यक्त की। कमलेश्वर ने समांतर कहानी के तहत नये मनुष्य और समाजवादी आंदोलन समाज की स्थापना के साथ आम आदमी की चिंता को केन्द्र में रखा। सचाई यह है कि कमलेश्वर ने समांतर कहानी में आम आदमी की प्रकृति और स्वरूप को परखने की परिकल्पना की।

कमलेश्वर का मानना था कि अब तक की कहानी जगत में कोई संभावना नहीं रह गई थी। कहानी आत्मकेन्द्रित होकर देश समाज के एक बड़े वर्ग से कटकर रह गई थी। कथा–संवेदना और आम–आदमी के बीच के फासले बढ़ रहे थे। वस्तुतः सातवें दशक की कहानी में न तो मध्यवर्गीय समाज को ही यथोचित स्थान मिला और न ही यह जन सामान्य से जुड़ पाया। समांतर कहानी ने कहानी की संवेदना से आम–आदमी को जोड़ने का सफल प्रयास किया। इसने पूर्ववर्ती कहानी के गलत मन्यताओं तथा व्यवस्थाओं के खिलाफ सचेत, सजग तथा आक्रामक प्रतिक्रिया व्यक्त की। समांतर कहानी के इसी वैचारिक पक्ष को कमलेश्वर के साथ–साथ अन्य लेखकों– ललित मोहन अवस्थी, इब्राहिम शरीफ, डॉ0 विनय आदि ने प्रतिपादित करके इस आंदोलन को प्रतिष्ठित किया।

समांतर कहानी आंदोलन में जिस आदमी की बात की गयी थी उसकी बदतर हालत का जिम्मेदार पुराने मूल्यों के प्रति उसकी अंधआस्था थी। आम आदमी अपने पुराने मूल्यों से इस कदर जुड़ा था कि नये और परिवर्तित मूल्य ही उसकी संस्कारग्रस्तता की विकल्प हो सकते थे। समांतर कहानी के वैचारिक पक्ष पर विचार करते हुए शैलजा लिखती हैं– ''जहाँ एक तरफ समांतर कहानी ने 'आम आदमी' की पक्षधरता निभाई वहीं दूसरी तरफ आम आदमी की संघर्षशील स्थितियों को रेखांकित करते हुए उन्हें एक

*आनंदपुरी, बी.बी.गंज, मुजफ्फरपुर

दिशा भी प्रदान की। एक पक्ष में वह (समांतर कहानी) उन सारी शक्तियों के उन्मूलन का स्वरघोष करती है, जिनके कारण आज के समाज में आम आदमी ऐसे दमघोटू वातावरण में रहने को अभिशप्त है, जहां उसकी कम से कम आवश्यकताओं का आधार भी लुप्त हो गया है। दूसरे पक्ष में वह आम आदमी के संघर्ष की अभिव्यक्ति करते हुए उन सारे कमजोर स्थलों को भी बेरहमी से चीर रही है जिनके कारण आम आदमी के संघर्ष की पकड़ दुर्बल पड़ गई है। समांतर कहानी ने आम आदमी को बहुत निकट से देखा है, समझा है और उसके प्रामाणिक चित्र कहानियों में खींचे हैं, यह 'आम आदमी' किसी एक वर्ग या पेशे का नहीं बल्कि पूरे भारतीय समाज का सामान्य जन है जो महानगरों से लेकर गांवों तक में विद्यमान है। समांतर कहानी में आम आदमी की बदतर स्थितियों के पीछे जो कारण टटोल गया है वह है पुराने, रूढ़िगत मूल्यों के प्रति आम आदमी की आस्था, जिसे कमलेश्वर ने आम आदमी की संस्कार ग्रस्तता माना है।''[2]

समांतर कहानी लेखन की केन्द्रीय अवधारणा ''समय सापेक्षता'' अथवा ''समाज सापेक्षता'' थी। इन लेखकों के अनुसार साहित्य एक सामाजिक सचाई है। समांतर कहानी आंदोलन के प्रतिष्ठापरक लेखकों ने रचना में 'समाजगत अर्थ' की प्रतिष्ठा पर बल दिया। इन्होंने साहित्य में रूप और सौन्दर्य की जगह उसे सामान्य जन से जोड़ने की वकालत की जो पूंजीवादी व्यवस्था से त्रस्त और शोषित थे। समांतर लेखन की विचारधारा को स्पष्ट करते हुए आनंद प्रकाश लिखते हैं– ''लेखन की इस भूमिका में समांतर लेखकों का ''सामान्यतामूलक'' दृष्टिकोण भी सहायक होता है, अर्थात् समांतर लेखक किसी भी रूप में स्वयं को समाज की सामान्य जनता से अलग, ऊपर या श्रेष्ठ नहीं मानते। चूंकि यह लेखन जनता की सामान्य समस्याओं और चिंताओं से जुड़ा है, इसलिए लेखक का स्वयं को सामान्य समझना उसे पीड़ित वर्गों के साथ तादात्म्यता प्रदान करता है। सामान्य होकर ही लेखक वह सांस्कृतिक योग्यता प्राप्त करता है जिससे लोगों के सुख–दुख का भागीदार बन सके और उनकी चेतना–स्तर के निकट पहुंच कर, बल्कि उसमें आत्मसात होकर, अपने माध्यम से उस सुख–दुख को व्यक्त कर सके। इतिहास के सम–सामयिक बिंदु पर समाज के तनावों को अपनी संवेदना पर ''झेलता हुआ'' समांतर लेखक एक प्रामाणिक रचना–संसार की सृष्टि करने में समर्थ होता है ओर अपने यथार्थ के सृजनशील आयामों को उभारता है। इसी कारण उसकी रचना अपने ''समय की नब्ज'' को पकड़ लेती है और समसामयिक अनुभवों को संश्लिष्ट रूप में व्यक्त करती है।''[3]

नयी कहानी के बाद कहानी में जो उलझाव व अस्पष्टता उत्पन्न हो गई थी, वह अकहानी की नकारवादी दृष्टि के चलते और अधिक विकृत हो गयी। समांतर कहानी आंदोलन के विचारकों ने कहानी में दोबारा उद्देश्यपरकता को स्थापित करने की बात की। समांतर आंदोलन ने नयी कहानी के बाद की विकृतियों से संघर्ष किया और कहानी को ''समय की जरूरतों'' से जोड़ा। समांतर कहानी लेखन में आज के मनुष्य को सम्पूर्णता में समझने की कोशिश हुयी।

कमलेश्वर ने 'सारिका' के (अक्टूबर 1974 से जुलाई 1975 तक) दस अंकों में समांतर विशेषांकों के शीर्षक से विभिन्न समांतर लेखकों के विचारों को प्रकाशित किया। इन लेखकों ने अपनी टिप्पणियों में समय सापेक्षता अथवा समाज सापेक्षता की अवधारणा पर बहुत कुछ लिखा।

समांतर लेखन को और भी अधिक स्पष्ट करते हुए आनंद प्रकाश लिखते है– ''समांतर लेखन में मध्यवर्गीय मानसिकता का जो विशिष्ट स्वरूप प्रतिबिंबित हुआ है उसका एक निश्चित सामाजिक आयाम भी है। बूर्ज्वा संकट से उत्पन्न होने वाली सामाजिक विभीषिकाओं के संदर्भ में मध्यवर्ग की आदर्शवादिता, तर्कशीलता और अस्मिता पर निरंतर आक्रमण होता है– आपेक्षित पूंजीवादी विकास के दौर में मध्यवर्ग यदि बूर्ज्वा वर्ग के विवेक, आदर्श, रूमानियत और उदारवादी विचार प्रणाली का वहन करता है तो आर्थिक संकट और अवरोध के दौर में वही मध्य वर्ग शासक वर्गों की निराशा, मूल्यहीनता, प्रतिगामिता और विवेकहीनता की व्यापक अभिव्यक्ति का माध्यम बनता है। तब मध्यवर्गीय चेतना में एक साथ निराशा और उत्तेजना, अवसाद और आक्रामकता साधारण बोध और अहम्मन्यता और परस्पर विरोधी तत्व प्रकट होते हैं। तभी मध्यवर्गीय चेतना पतनशीलता की ओर बढ़ती हुई अंततः एक विशिष्ट ''सामाजिक भूमिका निभाने'' और ''समाज–प्रक्रिया में सीधे–सीधे संबंद्ध होने'' के लिए तत्पर हो जाती है।

''समय सापेक्षता'' जैसे मुहावरों के अधीन समांतर लेखन इसी सामाजिक प्रक्रिया की साहित्यिक परिणति प्रतीत होता है।''[4]

समांतर कहानी आंदोलन के विचारकों ने समसामयिकता से जोड़ने के साथ ही समांतर लेखन को पूर्व की साहित्य धारा से भी सीधा संबंधित माना है। इन लेखकों का मानना है कि हिन्दी कहानी की जो अंतर्धारा प्रेमचंद से प्रारम्भ होकर नयी कहानी तक आई, समांतर कहानी उसी धारा की निरंतरता में आज की कहानी है।

आठवें दशक की कहानियों में रचनाकार और उसके परिवेश के समन्वय से शोषित समाज और उससे जुड़े मानवीय अस्तित्व का रूपायन होने लगा। समांतर कहानीकारों ने मानव अस्तित्व के व्यापक प्रश्नों पर अपनी चिंता प्रकट की। अपनी कहानियों के माध्यम से इन लेखकों ने बदलते समाज में एक नये मानवीय धरातल की खोज की। समांतर कहानियों के संदर्भ में डॉ0 साधना शाह लिखती हैं– ''ये कहानियां इतिहास जनित जिन स्थितियों को उभारती हैं, जिनके रहते समकालीन लेखक पहले ही तरह आत्म केन्द्रित रह ही नहीं सकता। अब वह सामाजिक स्थितियों के रूबरू खड़ा है, स्थिति व शक्तियों को पहचान रहा है। इन कहानियों में इसीलिए इन तमाम ऐतिहासिक संदर्भों का विश्लेषण है जिनके कारण प्रगति के बावजूद शोषित वर्ग मानव विरोधी शक्तियों का शिकार बना हुआ है ये ही वे संदर्भ है, जिनके आधार पर आठवें दशक की कहानी को सांतवे और छठे दशकों की कहनियों से अलगाया जा सकता है। इस बात को फिर से दोहरा दें, छठे और सातवें दशक में कहानी की रचनाशीलता व्यक्ति और यथार्थ की आंतर क्रियाओं का लेखा–जोखा किये बिना ही कामू और सार्त्र के कदमों पर कदम रखकर तथा कथित आधुनिकता के भ्रमजाल में फंस गयी थी। परिणामतः उन दशकों में इतिहासजनित वस्तुगत सच्चाई से मुंह मोड़ लिया गया था। हिन्दी कहानी प्रेमचंद की वस्तुपरकता से दूर चली गयी थी। लेकिन आठवें दशक की कहानी ने फिर से उसे प्रेमचंद की चेतना से जोड़ा।''[5]

समांतर कहानी में सामाजिक यथार्थ को उसकी तमाम विसंगतियों के साथ व्यंग्य के स्तर पर उद्घाटित किया गया है। ये कहानियां युगीन संदर्भों के समानांतर चलने वाली कहानियां थीं। इन कहानियों में उभरा हुआ सामान्यजन संघर्षशील होने के साथ–साथ रचना का ईमानदार घटक बनने की क्षमता भी रखता है। समांतर कहानी के चरित्रों के संदर्भ में साधना शाह ने डॉ0 विनय के विश्लेषण को रखा है– ''समांतर कहानी का नायक सामान्यजन लोक जीवन में विविध स्थितियों और समस्याओं से ग्रस्त और त्रस्त है। वह अति वामपंथी का क्रांतिकारी मन भी नहीं और सामंतवादी चेनता में पालित–पोषित अपनी स्थिति को सहज स्वीकारने वाला व्यक्ति भी नहीं। उसके पास एक ओर आर्थिक वृत्त में टूटता खुद का व्यक्तित्व है, दूसरी ओर समय की सापेक्षता में जन्म लेने वाली द्विविधा रहित अपराजेयता भी। एक उसके वर्तमान का यथार्थ है, दूसरा उसके आगे की चिंता। अपने संघर्ष के स्तर पर उसकी समस्या है कि वह किस प्रकार आर्थिक सांस्कृतिक और सामाजिक विषमताओं से जूझते अपने अस्तित्व को वरण के एक ऐसे निर्णायक दौर पर ले जाये, जहां वरण की सच्चाई और ईमानदारी दोनों की समांतरता हो।''[6]

गोपाल राय ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी कहानी का इतिहास–2 में समांतर कहानी आंदोलन की प्रेरणा पर विचार करते हुए लिखा है– ''समांतर कहानी आंदोलन' को समान्तर (पैरेलल) सिनेमा से प्रेरणा मिली थी। पचास और साठ के बीच सिनेमा साफ तौर पर दो विपरीत धाराओं में बंटता चला गया। एक धारा वह थी जिसमें मुख्य तौर पर मनोरंजन प्रधान सिनेमा को स्थान दिया गया। इसे मुख्य धारा का सिनेमा कहा गया। दूसरी तरफ कुछ ऐसे फिल्मकार थे जो जिन्दगी के यथार्थ को अपनी फिल्मों का विषय बनाते रहे। उनकी फिल्मों को समांतर सिनेमा का दर्जा दिया गया। 'समान्तर कहानी' का आन्दोलन इसी परिप्रेक्ष्य में आरम्भ हुआ। कमलेश्वर के अनुसार समांनातर लेखन ने नारायण सुर्वे, बाबूराव बागुल, दया पवार, नामदेव ढसाल, राजा ढाले, गंगाधर पानतावाड़े, सतीश कालसेकर, अर्जुन डांगले, प्रह्लाद चेंदवडकर, केशव मेश्राम जैसे दलित लेखकों की सोंच को आत्मसात किया था और व्यापक सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलन की भूमिका तय हुई थी।''[7]

कमलेश्वर ने 'समान्तर' की व्याख्या करते हुए कहा कि 'समान्तर वह जो लगातार जीवन और समय के समांतर चलता है।' इस आंदोलन में 'आम आदमी' की समस्याओं और उसके समाधान को केन्द्र में रखा गया। हरदयाल ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी कहानी : परम्परा और प्रगति' में समान्तर आन्दोलन के एक प्रवक्ता, विनय, की टिप्पणी को रखा है– ''समान्तर कथा लेखक बुनियादी रूप में आम आदमी से जुड़ा है। .... इन सारी चरित्रगत स्थितियों में यह आभास नहीं होना चाहिए कि यह कहानी केवल आम आदमी की दुर्बलता की अभिव्यक्ति ही करती है अपितु उस संघर्ष की ओर भी संकेत करती है जिसकी व्यापकता आज के स्वस्थ जीवन की पहचान है। जैसे हमारा जीवन चिरन्तन है, वैसे ही हमारा वाम भी चिरन्तन है और उसी रूप में सामान्यजन की विवशता और संघर्ष भी चिरन्तन है।''[8]

'समकालीन हिन्दी कहानी : बदलते जीवन संदर्भ' पुस्तक में समांतर कहानी पर विचार करते हुए शैलजा लिखती हैं– समांतर कहानी आम आदमी तथा दलित वर्ग की संघर्षशील जीवन स्थितियों, परिस्थितियों को उघाड़ती हुई अपनी सामाजिक पक्षधरता निभाती है। यह लेखक वामपंथी होते हुए भी प्रगतिवादी आदि खेमो में बंटने का विरोध करता है। ललित मोहन अवस्थी ने अपने निबंध में मार्क्सवादी चिंतन का हवाला दिये बिना समांतर कहानी के चार आक्रामक मोर्चों का जिक्र किया है– सामंतवाद का विरोध, पूंजीवाद का विरोध, साम्राज्यवाद का विरोध, विदेशी फासिस्टवाद का विरोध। किंतु समांतर कहानी में सामंतवाद तथा पूंजीवाद का विरोध ही अधिक मुखर हुआ है।''[9]

'समांतर कहानी आंदोलन' की रूपरेखा कुछ पहले से कमलेश्वर के मन में तैयार हो रही थी। परम्परागत कहानी लेखन की समाप्ति के बाद नयी कहानी आंदोलन के कहानीकारों में कमलेश्वर प्रमुख हैं। इस कहानी आंदोलन में प्रयोग और प्रक्रिया पर बल दिया गया। राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर सहित दर्जनों कथाकारों ने नयी कहानी आंदोलन को सुस्थापित किया।

नयी कहानी आंदोलन में इन कथाकारों का मन नहीं भरा। कमलेश्वर की संवेदना 'मैं' और 'स्व' के बीच बराबर 'आम आदमी' की तलाश करती रही। नयी कहानी के संदर्भ में कमलेश्वर जब चिंतनशील थे उस समय भी वे जनसाधारण तक कहानी को पहुंचाने अथवा जनसाधारण की समस्या को कहानी के कथ्य में शामिल करने की परिकल्पना करते रहे। 'कहानी में 'जीवित विचार' और अमूर्तता का प्रश्न' पर विचार करते हुए कमलेश्वर लिखते है– ''कीट्स के कुछ खत कहीं छपे थे। एक खत की लाइन बराबर याद आती रहती हैः 'म्अमतल जीपदह जींज तमउपदके उम वीमितम हवमे जीतवनही उम सपाम ेचमंत!' ... वह नदी भी कभी–कभी बहुत उदास होती थी। उसके थके हुए पानी में रौशनी की शमशीरें कांपती रहती थीं। अब भी कांपती होंगी। पर कोई अब तक खड़ा रह सकता है? मेरा जो कुछ छूट गया है, वह जैसे अब भी वहीं है– मेरी शक्ल अख्तियार किये हुए और एकाएक बहुत–सा वक्त गुजर गया है। लेकिन इस गुजरने के साथ कुछ ऐसा भी जुड़ा है, जो हाथ नही आता, कहा नहीं जाता, लिखने से भी बचा रहता है।

कुछ–कुछ ऐसा ही तो है, कहानी के बारे में भी.... उसे परिभाषित नहीं किया जा सकता। परिभाषा वे दे सकते हैं जो उस सबसे गुजरे नहीं है और न जिन्होंने वक्त को गुजरते देखा है। अगर ऐसा हुआ होता तो वे भी परिभाषा नहीं दे पाते।

दूसरे की तकलीफ को शब्दों में बांधा जा सकता है? अपनी तकलीफ को नहीं। आज कहानी में 'दूसरे की तकलीफ' जैसी कोई चीज नहीं रह गई है। जो दूसरे का था, उसे भी लेखक ने अपना बना लिया है। आज की कहानी के बहुत से 'मैं' ऐसे हैं जो 'स्व' नहीं है। उसने आत्मकेन्द्रित 'मैं' को आत्म–विस्मृति दी है।

'दूसरे की तकलीफ'– थके हुए पानी में रोशनी की कांपती हुई शमशीरों की तरह ही तो है। उसकी भी कोई परिभाषा नहीं है।''[10]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि समांतर कहानी आंदोलन के हिन्दी कहानी के विकासक्रम को एक नवीन दृष्टि दी। इस आंदोलन से हिन्दी कहानी में 'आम आदमी' का सवाल उठकर सामने आया। नयी कहानी आंदोलन के बाद इस आंदोलन में कहानी–लेखन प्रक्रिया को नयी धारा प्रदान की। कमलेश्वर जैसे

बड़े कथा–चिंतक और लेखक ने इस आंदोलन का समर्थन किया। राजेन्द्र यादव की कहानी चिंतन धारा में इस आंदोलन से उभरे तत्व शामिल हुए। हिन्दी कहानी पर शोध की दृष्टि से समांतर कहानी आंदोलन का विशेष महत्व है।

lUnHkZ %

1. हिन्दी कहानी का विकास– मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण–2011, पृ0–136 ।
2. समकालीन हिन्दी कहानी : बदलते जीवन संदर्भ, शैलजा, वाणी प्रकाशन, संस्करण– 2014, पृ0–36 ।
3. हिन्दी कहानी की विकास प्रक्रिया– आनंद प्रकाश, ''समांतर'' लेखन : विचारधारा और राजनीति, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण–1997, पृ0–73 ।
4. वही, पृ0–80 ।
5. हिन्दी कहानी : संरचना और संवेदना– डॉ0 साधना शाह, वाणी प्रकाशन, संस्करण–2008, पृ0–84 ।
6. वही, पृ0–92 ।
7. हिन्दी कहानी का इतिहास–2, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2011, पृ0–557 ।
8. हिन्दी कहानी : परम्परा और प्रगति – हरदयाल, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं0–2005, पृ0–174 ।
9. समकालीन हिन्दी कहानी : बदलते जीवन संदर्भ, शैलजा, वाणी प्रकाशन, संस्करण–2014, पृ0–37 ।
10. नयी कहानी की भूमिका, कलेश्वर, ईशान प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1991, पृ0–53 ।

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 240-241

21oh lnh e x# jfonkl d fopkjk dh iklfxdrk

'kkfyuh*

13वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जब हमारा समाज चार वर्णों में विभाजित था ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उस समय कुलीन वर्ग के हाथों में सत्ता होने कारण निम्न जाति के लोग शोषित और पीड़ित थे। उस समय भारतीय जनता हर तरफ से हताष और निराष हो चुकी थी उसके पास मात्र एक ही उपाय सामने था कि वह ईश्वर की शरण में जाये।उस संक्रमण काल में क्रान्ति के दूत निर्बलों, असहायों के मसीहा सन्त रैदास (चमार जाति में जन्म लेने वाले) अस्पृश्यों के जननायक बनकर उनकी पीड़ा को बाँटने आये। भक्तिकाल साहित्य का स्वर्णयुग कहलाया उसके पीछे इन तमाम जननायकों का सहयोग रहा कबीर, गुरुनानक, इत्यादि। एक तरफ देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। तो दूसरी तरफ आम जनता कुलीन वर्गों की बेड़ियों में। संत रविदास ने इस परंपरा की बेड़ियों को अपने द्वारा अपने शब्दों से तोड़ा। तुलसीदास, मीराबाई सभी उनके विचारों से प्रभावित थे।

उनकी पंक्तियाँ यह कहती हैं–

^on /kel lcl cMk] vuie lPpk Kku@ fQj e D;k NkM] bl i< y >V djku^[1]

रविदास भक्तिकाल के ज्ञान मार्गी शाखा के साथ ही प्रेममार्गी धारा में भी अपना स्थान निर्धारित किए हुए थे। वह दौर संक्रमण काल का दौर था । जब काशी ब्राम्हणवादी नीतियों से परिपूर्ण थी। उस दौर में रविदास निराकार ब्रम्ह के उपासक कबीर की श्रेणी में आने वाले मूर्ति पूजा और तीर्थ यात्रा के प्रबल विरोधी थे । उनका इन बाह्य आडम्बरों में जरा भी विश्वास न था। इसका विरोध वे सदैव करते रहे।

उनका मानना था क सच्ची भक्ति एक दूसरे की सहजता और भाई चारे की सहायता और भावना मे है। जो अखिल विश्व को अखंडता एवं एकता के सूत्र में पिरोती है। उनकी इन्हीं समन्वय और एकता वादी नीतियों से बाबर जैसा कट्टर शासक रविदास जी का शिष्यत्व ग्रहण करने को तैयार था। जाहिर सी बात है रैदास के विचारों मे वह ओज वह शांति विद्यमान थी जो प्रत्येक मनुष्य के ह्रदय से होकर गुजरते थे। यज्ञोपवीत की नीति और ब्राम्हण वादी परम्परा को भरसक तोड़ने का प्रयास किया। उन्होंने कहा की जनेऊ पहनने मात्र से कोई ईश्वर का रूप नहीं धारण कर लेता ये संस्कार केवल किसी एक जाति के लिए नहीं बने हैं। सबको समान अधिकार है क्योंकि उनके रक्त का रंग भी लाल है और अन्य व्यक्तियों के रक्त का रंग भी लाल है। तब अधिकार केवल कुलीन वर्ग को ही क्यों? यह भेद भाव किस प्रकार का जिस विधाता ने हमे जना है उसने तो सबको समान अधिकार दिये हैं। फिर यहाँ अधिकारों का हनन कैसा? उन्होंने मनुवादी इन नीतियों पर करारा व्यंग किया है वे स्वयं कहते हैं–

Þtkfr tkfr e tkfr g] tk dyu d ikr@ jnkl eku"k u tM ld rc rd tkfr u tkrß[2] रैदास जी का ऐसा मानना है कि जाति–पाँति के जाल ने सबको उलझा रखा है यही भेदभाव धीरे–धीरे मानवता को खो रहा है इस जाति रुपी रोग को मिटाने से ही मानवता का कल्याण हो सकता है वे कहते हैं– tkr& ikr d Qj e v#fl já le ykx@ekuLrk d [kk, já jfonkl tkr dm jkx tkr[3] ।

उच्च जाति के इसी भेदभाव के कारण उन्हें बचपन से संघर्षों के मध्य जूझना पड़ा। उन्होंने अखण्ड भारत निर्माण के लिए विश्व–बन्धुत्व की भावना से ओत–प्रोत अपने विचारों को जन–जन तात्पर्य प्रत्येक

*आनंदपुरी, बी.बी.गंज, मुजफ्फरपुर

देशवासी के हृदय में भरने का प्रयास किया। उनकी ये पंक्तियाँ इस बात का सच्चा प्रमाण प्रस्तुत करती हैं–

^fgUn rjd ugh dg Hkbnk lHkh eg ,d jDr vkj eklk@nkÅ ,dÅ ntk ukgh] i[;k lkb jnkl k*[4]

रैदास की इन नीतियों से प्रभावित सिकन्दर लोदी अपने राज्य में आश्रय देने को तैयार थे। क्योंकि उस दौर में रैदास की ख्याति एक सच्चे समाज सुधारक के रूप में समूचे राज्य में फैल गयी थी।

अपने कार्य के प्रति सजग सदैव आमजन की चिन्ता का निवारण एवं अस्पृश्यता को जड़ से उखाड़ फेंकने का प्रयत्न करने वाले सन्त रैदास अपने विविध आयामों से आज भी प्रासंगिक हैं। उनके उपदेशों की सम्प्रेषणीयता आमजन के हृदय में अपना तादात्मय स्थापित करने में सफल रहीं। यही कारण हैं कि उनके द्वारा दिये गये उपदेश समाज के कल्याण तथा उत्थान के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उनका मानना है कि जन्म या व्यवसाय के आधार पर कोई श्रेष्ठ नहीं होता है बल्कि मनुष्य अपने विचारों की नीतियों और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में किये गये कार्यों के द्वारा श्रेष्ठ माना जाता है। कबीर की भाँति उनमें भी फक्कड़पन था उन्होंने अन्याय के खिलाफ हमेशा आवाज उठायी है। लेकिन अपने कर्तव्य के प्रति भी सदैव वे निष्ठावान रहे इस बात का प्रमाण उनकी यह पंक्ति स्वयं देती है–

^eu Pkxk rk dBkrh e xxk*[5]

तात्पर्य अपने कार्य से बढ़कर कोई भी कार्य नहीं होता यहाँ तक की ईश्वर की उपासना भी। यदि आपका मन साफ और स्वच्छ है तो किसी प्रकार का बाह्य आडम्बर करने की कोई आवश्यकता नहीं है जहाँ श्रद्धा से ईश्वर को याद करेंगे, ईश्वर सर्वत्र आपको नजर आयेंगे। आपके कर्म में भी ईश्वर का वास प्रत्यक्ष रुप से नजर आयेगा। उन्होंने कहा है कि भक्ति के लिए वैराग्य की जरुरत है बिना वैराग्य के भक्ति सम्भव नहीं ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार एक ही म्यांन में दो तलवारें नहीं रह सकती।

उनकी नीतियाँ उनके विचार आज ही नहीं चिरकाल तक प्रासंगिक रहेंगे। उनकी यह पंक्तियाँ जो नाम मात्र से उनका स्मरण करा जाती है सदैव सबकी जुबान पर रहती हैं–

^vc dl NV jke uke jV ykxhA@iHk th re pUnu ge ikuh]@ tkdh vx&vx ckl lekuhA@iHk th re ?ku cu ge ekjk]@ tl fpror pUn pdkjkA@iHk th re nhid ge ckr] @ tkdh tkfr cj fnu jkfrA@iHk th re ekrh ge /kkxk]@tl lku feyr lgkxkA@iHk th re Lokeh ge nklk]@,lh HkfDr dj jnklk[6]

सच्चे समाज सुधारक, अस्पृश्यों के मसीहा, शोषित –पीड़ित जनता के सच्चे समर्थक सन्त रविदास सदैव सबके हृदय में निवास करते रहेंगे। रविदास जी सर्वजन हिताय की बात को ध्यान में रखते हुए अपने मनोभावों को इस प्रकार व्यक्त करते हुए कहते हैं –^,lk pkg jkt e feyl lc dk vUu@NkVk cMk l [kh jg jfonkl jg çlUu^[7]

वस्तुतः इन सभी आधारों पर हम कह सकते हैं कि 21वीं शदी में भी गुरु रविदास के विचारों की प्रासंगिकता वैसी ही है जो भक्तिकाल के उस दौर में थी।

lUnHkZ %

1. भारत दर्शन ई पत्रिका
2. रैदास वाणी भोला यामिनी पृष्ठ 63,
3. रैदास वाणी भोला यामिनी पृष्ठ 64
4. रैदास वाणी भोला यामिनी पृष्ठ 65
5. गोविन्द पाण्डेय पृष्ठ 103
6. हिंदी साहित्य का इतिहास डॉ नगेन्द्र पृष्ठ 121–122
7 रैदास वाणी पृष्ठ 64, भारत दर्शन ई पत्रिका, हिंदी साहित्य डॉ विवेक शंकर पृष्ठ 120
8. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ. बच्चन सिंह, पृष्ठ 92–93

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 242-244

Hkkjro"k e: ukjh dh lkekftd fLFkfr e: ifjorZu

MkW0 lUrks"k dqekj flag*

भारतवर्ष में नारी की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन की वास्तविक नींव महात्मा गाँधी के समय में डाली गयी और उसे मूर्त रूप भारतीय संविधान में डॉ0 अम्बेडकर ने प्रदान किया। परन्तु इधर दो दशकों में औद्योगीकरण, शिक्षा का प्रसार राजनीतिक जागृति तथा संचार के साधनों के विकास के कारण बहुत तेजी से सुधार हुआ है और इस दशक में महिलाओं को पंचायत चुनावों के साथ ही राजनीति में आरक्षण प्राप्त होने के कारण और गति प्रदान होने की संभावना है। पचास से साठ के दशक में संविधान द्वारा यौन एवं जातीय समरूपता का प्राविधान किया गया व इधर के बाद के दशकों में व्यवहारिक स्वरूप प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया है। वास्तव में ये सब परिवर्तन भारतीय इतिहास में नवीन नहीं है वैदिक काल में भी स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पुरुषों के समान थी। मध्यकालीन युग में उसका ह्रास हो गया और स्त्रियाँ घर की चहार दीवारी तक सीमित हो गयीं। उच्च एवं मध्यम वर्गीय महिलाओं की स्थिति में सुधार तो स्वतंत्रता के बाद तेजी से प्रारम्भ हुए किन्तु अनुसूचित महिलाओं की स्थिति में सुधार कई दशक बाद व्यवहारिक स्वरूप प्राप्त कर सका। चूंकि अनुसूचित महिलाएं हिन्दू समाज व्यवस्था का ही अंग रही हैं। अतः उससे अलग करके इनकी स्थिति के बारे में अध्ययन करना अपूर्ण एवं अव्यवहारिक सा प्रतीत होता है। इन दलित स्त्रियों की दृष्टिकोण और मूल्यों का आकलन करने के लिए उनके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर प्रकाश डालना आवश्यक है। इसलिए यहां पर संक्षेप में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के उत्थान एवं पतन का इतिहास प्रस्तुत किया जा रहा है।

ग्रंथों से प्राप्त दृष्टान्तों के आधार पर इसमें संदेह नहीं है कि स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पुरुषों के समान नहीं थी। लड़कों के समान उनका भी उपनयन संस्कार होता था ताकि वे भी वेदों का अध्ययन कर सकें जैसा कि अथर्ववेद के इस वक्तव्य से स्पष्ट होता है कि स्त्रियों का जीवन में सफलता के लिए शिक्षा अनिवार्य है। वैवाहिक जीवन में स्त्रियों की सफलता ब्रह्मचर्य जीवन में प्राप्त उनके प्रशिक्षण पर निर्भर करती है। जैसा कि 'सर्वानुक्रमणिका' में कहा गया है कि अब तक के प्राप्त तथ्यों के आधार पर अधिक से अधिक बीस महिलाएं ऐसी थी जो कि ऋग्वेद के मंत्रों का निर्माण की है अतः उनकी विद्वता स्तरीय थी। इन प्रसिद्ध वैदिक महिलाओं में लोपामुद्रा, विश्वारा, सिकता, निवावारी तथा घोषा मुख्य हैं। 'अश्वालायान गुह्यास्त्र' ने सुलभा, मैत्रेयी, गार्गी आदि महान महिलाओं के उच्च सामाजिक प्रस्थिति के लिए धन को अधिक महत्व नहीं देती हैं।

इस तथ्य से सभी लोग अवगत हैं कि उपनिषद युग में अनेक ब्रह्मवादिनी महिलाएं थी जो कि आजीवन दर्शनशास्त्र की विद्यार्थी बनी रहीं। 'वृद्धारण्यक उपनिषद' में याज्ञवल्क्य जैसे महान विद्वान को विद्वता के क्षेत्र में ललकारने वाली गार्गी थी जिन्होंने अनेक सूक्ष्म एवं जटिल प्रश्नों को पूछा। एक महत्वपूर्ण उपनिषद का खण्ड मैत्रेयी और उनके पति याज्ञवल्क्य के वार्ता पर आधारित है। याज्ञवल्क्य अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति अपनी दो पत्नियों में विभाजित करके संसार को छोड़ दिये। मैत्रेयी वरासत में प्राप्त सम्पत्ति को छोड़कर ब्रह्म विद्या का ज्ञान प्राप्त करना उचित समझा। यद्यपि बौद्ध काल में भी महान महिला विद्वान थी उनमें से महान सम्राट अशोक की बहन संघमित्रा मुख्य हैं जो कि बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए सिलोन तक गई थीं, इन दृष्टान्तों के आधार 'अल्तेकर' ने कहा है कि ''इसलिए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लगभग 300 ई0पू0 तक अच्छे परिवारों की बहुत सी लड़कियाँ पर्याप्त अच्छी शिक्षा प्राप्त किया करती थी।''[1] 'शकुन्तला राव शास्त्री' ने लिखा है कि ''अमजुर (वैदिक शब्द) शब्द का जहाँ तक अर्थ उन लड़कियों

---

*प्रवक्ता, समाजशास्त्र, शि0 3/40 पी–119, साईंधाम कालोनी, लक्ष्मनपुर, शिवपुर,वाराणसी,उ0प्र0

से है जो पिता के घर पर ही बूढ़ी हो गयी तथा कुमारी अवस्था में सेवा करती रहीं एवं सुमन त्योहार के अवसर पर युवा महिलाओं के लिए प्रयुक्त होता है साथ ही अपाला तथा मैत्रेयी जैसी अविवाहित महिलाओं के लिए प्रयुक्त होता है तथा इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि एक स्त्री के लिए विवाह आवश्यक नहीं था तथा विवाह की आयु के लिए कोई सीमा निश्चित नहीं थी।[2]

स्त्रियाँ विवाह अपनी स्वेच्छा से करती थी और गन्धर्व विवाह के अस्तित्व में आने का यही कारण था। ऋग्वेद में विधवाओं के जीवन पर कम प्रकाश डाला गया है परन्तु पुनर्विवाह के लिए संस्तुति दी गई है। नियोग प्रथा के अनेक उदाहरण मिलते हैं, स्त्री बड़ों से स्वीकृति लेकर मृत पति के भाई से विवाह कर सकती थी लेकिन ऐसे भी उदाहरण है जिसमें कि अन्य पुरूषों के साथ विवाह किये गये हैं। पूर्वकालीन धर्मशास्त्र विवाह विच्छेद को भी स्वीकृति प्रदान किये हैं। वास्तव में विवाह विच्छेद का विस्तृत ब्यौरा कौटिल्य के द्वारा दी गयी है। शंकुतलाराव शास्त्री लिखती हैं कि– ''ऋग्वेद कहीं भी विधवाओं को अपने पति के साथ जलने की प्रथा का उल्लेख नहीं करता है।''

वैदिक मंत्रों के अनुसार सम्पत्ति पर पति–पत्नी का समान अधिकार था। जैसा कि पहले याज्ञवल्क्य के संदर्भ में उल्लेख किया गया है। रमेश चन्ददत्त (1948 से 1909) ने लिखा है कि ''हिन्दू नारियों का समाज में सम्मानजनक स्थान था .... वे सम्पत्ति की अधिकारी होती थी, वे यज्ञ तथा धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेती थी। वे अपने समय के ज्ञान व विज्ञान के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखती थी। अपने पति के बौद्धिक साथी के रूप में समझी जाती थी तथा अपने माता–पिता के जीवन की यात्रा में दोस्त और अच्छे सहायक के रूप में मानी जाती थी। अपने धार्मिक कर्तव्यों तथा घरेलू कार्यों में हिन्दू महिलाएं प्राचीन काल में प्रतिष्ठा एवं सम्मान प्राप्त किये हुए थी।''[3]

इस प्रकार वैदिक काल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति बहुत अच्छी थी परन्तु 300 ई0पू0 यह बहुत ही निम्न हो गई थी। अल्तेकर ने कहा है कि ''पूर्व की शताब्दियों में स्त्रियाँ प्रसिद्धि प्राप्त की हुई थी इसको समझना कठिन नहीं है, उन्हें वैदिक अध्ययन के प्रति उन्मेषित किया जाता था और वे भगवान के प्रति यज्ञादि सम्पन्न करने का अधिकार रखती थी। केवल पुत्र ही इस कार्य के लिए आवश्यक नहीं था और उससे बढ़कर यह कि पुत्री का विवाह समस्या नहीं थी यह केवल पुत्रियों के द्वारा हल कर लिया जाता था साथ ही विधवापन का भय नहीं था क्योंकि समाज के द्वारा देवर विवाह एवं पुनर्विवाह मान्य था और समान स्थान रखता था।''

300 ई0पू0 के आस–पास भारतीय समाज में बहुत ही व्यापक परिवर्तन आये और ईसाकाल तक स्त्रियों की स्वतन्त्रता को बिल्कुल समाप्त कर दिये गये। समाजशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए यह जानना आवश्यक है कि 300 ई0पू0 के बाद वे कौन से सामाजिक कारक है जो स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी हैं।

इनमें से सबसे महत्वपूर्ण कारक यह दिखाई पड़ता है कि पुत्री से पुत्र का महत्व अधिक बढ़ गया, क्योंकि आर्य यहाँ के स्थानीय लोगों को पराजित करना प्रारम्भ कर दिये आर्यो से युद्ध की प्रक्रिया पुत्रों को महत्व प्रदान की। एक दूसरी उपकल्पना यह भी है कि पूर्वजों की पूजा भी पूर्वजों को महत्व प्रदान की। एक दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि उपनिषद बुद्ध तथा जैन धर्म की प्रतिक्रिया के कारण भी पुत्रों का महत्व बढ़ा। जैसा कि वृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया कि ''आत्म को प्राप्त करने के लिए केवल मठाधीश अपने सभी अधिकारों को छोड़ता है तथा अपने घर का त्याग करता है। आत्म के प्राचीन ज्ञाता पुत्र की इच्छा नहीं करते थे, जैसा कि कर्मकाण्ड तथा ध्यान मग्न होने के लिए ब्राह्मण होने की शर्त भी नहीं थी। तीन का अर्थ तीन वाह्य संसार से था .... वे पुत्र की इच्छा धन तथा संसार की इच्छा का त्याग करते थे और भिक्षु के रूप में टहलते थे।[4] बहुत सी युवा महिलाएं भी घर का त्याग करके बुद्ध एवं जैन मठों में भाग ली और इन मठाधीशों एवं सन्यासिनियों की इच्छा तपस्या के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने की हुई। तपस्वी जीवन में प्रवेश से बचाने के लिए स्त्रियों का अल्प आयु में विवाह प्रारम्भ हो गया और 300 ई0पू0 के आस–पास स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के पतन का सबसे बड़ा कारण बना। आर्यन शक्ति के सन्दर्भ में लोगों का तो एक बहुत बड़ा भाग अनार्य लोगों का था। आर्य–अनार्य महिलाओं के साथ विवाह करते थे। विष्णु और अन्य धर्मशास्त्रों के जो प्रारम्भिक लेखक हुए वे इस प्रकार के विवाह का प्रतिकार नहीं किये हैं परन्तु अनार्य महिलाओं का धार्मिक कार्यों के सम्पादन पर प्रतिबन्ध लगाये हैं। अनार्य

स्त्रियां इसलिए धार्मिक कार्यों का सम्पादन नहीं करती थी क्योंकि वे अशिक्षित थी और संस्कृत नहीं जानती थी और धीरे–धीरे आर्य और अनार्य दोनों स्त्रियां वैदिक अध्ययन से दूर हो गई और धार्मिक कार्यों के अनुपालन से भी वंचित कर दी गई। इसका एक कारण वैदिक कर्मकाण्डों का जटिल होना भी था। अब उपनयन स्त्रियों के लिए मात्र औपचारिकता रह गया था। प्रारम्भिक अवस्था में विवाह के कारण लड़कियां शिक्षा नहीं प्राप्त कर पाती थी जिसके कारण 205 ई0 के आस–पास धर्म शास्त्रों ने यह घोषणा कर दी थी कि स्त्रियों के लिए विवाह ही उपनयन संस्कार है। क्योंकि उपनयन संस्कार की आयु 8 या 9 वर्ष था अब वही विवाह की आयु हो गई। जैसा कि अल्तेकर ने कहा है कि ''उपनयन संस्कार का सातत्य शिक्षा का तिरस्कार, विवाह की कम आयु होना स्त्रियों की प्रस्थिति एवं स्थान पर अनर्थकारी प्रभाव डाला।''[5] नियोग और विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये, स्त्री के लिए विवाह अपरिहार्य कर दिया गया। स्मृति के अनुसार स्त्री के लिए पति ही भगवान हो गया और कुछ लोगों ने यहां तक कहा कि यदि पति दुष्ट भी हो तो भी स्त्री को उसकी पूजा करनी चाहिए। बड़े–बड़े राज्य उत्पन्न हुए राजा लोग जनानाखानों का निर्माण कराये। इस प्रकार समान जनता से विशिष्टता दिखाने के लिए पर्दा प्रथा का विकास हुआ।

राजनीतिक व्यवस्था ने भी स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को प्रभावित किया। ग्रीक, साइथियस तथा पार्थियंस उसके बाद कुषाण के आक्रमण हुए और आर्थिक ह्रास हुआ। युद्ध के कारण पुरुषों का महत्व बढा ये बाह्य समूहों पर उपनिषद, बौद्ध तथा जैन धर्मो का प्रभाव पड़ा। इस नवीन विकास से विधवा स्त्री की प्रस्थिति पर प्रभाव पड़ा। वे विधवायें जो पुनर्विवाह के लिए प्रतिबन्धित थी उन्हें शक्ति प्राप्त नहीं हुई और वे तपस्वी की जीवन बिताने के लिए बाध्य हो गई। वे लोग जो कि नियोग प्रथा और पुनर्विवाह का विरोध करते थे वे शक्तिशाली हो गये। संतान विहीन विधवाओं की संख्या में वृद्धि हो गई। आठवीं शताब्दी तक विधवाओं का मुंडन भी प्रारम्भ हो गया। पर्दा प्रथा राजघराने से मध्यम व निम्न घराने में पहुँच गई। अल्तेकर ने कहा है कि ''200 ई0पू0 से 1800 ई0 तक लगभग दो हजार वर्ष में धीरे–धीरे स्त्रियों की सामाजिक स्थिति ध्वस्त हो गई, अब वे माता–पिता के द्वारा दुलारी जाती थी, पति के द्वारा प्यार की जाती थी और अपने बच्चों के द्वारा सुरक्षित रखी जाती थी, सती का पुनरुद्धार, पुनर्विवाह का प्रतिबन्ध, पर्दा प्रथा का प्रसार तथा बहुपत्नी प्रथा का प्रसार स्त्रियों की स्थिति को बुरा कर दिया।''[6] इस प्रकार प्रारम्भिक वैदिक काल और 19वीं सदी के मध्य स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के बीच में बहुत बड़ी खाई उत्पन्न हो गई। मनु के द्वारा प्रतिस्थापित दोहरी नैतिकता के मापदण्ड का प्रसार 1950 तक रहा। नीरा देसाई ने कहा है कि ''वैचारिक दृष्टिकोण से स्त्रियाँ बिल्कुल निम्न श्रेणी की प्राणी मानी जाती है व पुरुषों से बुरी मानी जाती हैं व उनका कोई महत्व नहीं होता है। सामाजिक दृष्टिकोण से उनका कोई व्यक्तित्व नहीं होता वह तथाकथित प्रजा के रूप में रखी जाती हैं और किसी भी अधिकार से वंचित रहती हैं वे पददलित व शोषित हैं।''[7]

इस प्रकार शिक्षा का अभाव, बाल विवाह, बहुपत्नी प्रथा, पर्दा प्रथा ने महिलाओं की सामाजिक स्थिति को बिल्कुल निम्न कर दिया। 19वीं शताब्दी में समाज सुधार की एक लहर चली जिसमें राजाराम मोहन राय (1774–1833), ईश्वरचन्द विद्यासागर (1820–1871), स्वामी दयानन्द सरस्वती, (1827–1883), केशवचन्द सेन (1886–1889) और अन्य ने संवैधानिक सामाजिक तथा शैक्षिक क्षेत्र में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया और अन्त में महात्मा गाँधी डा0 अम्बेडकर और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ने स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में पर्याप्त सुधार लाये।

lUnHk %

10. अल्तेकर, ए.एस. द पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, मोतीलाल बनारसीदास, देलही, 1962
11. शास्त्री, शंकुतला राव, वीमेन इन वैदिक एज, भारतीय विद्या भवन, 1952
12. दत्त, रमेशचन्द्र, सिविलाइजेशन एण्ड एन्सिएन्ट इण्डिया।
13. वृहदारण्यक उपनिषद, पृ0 55/78, 108
14. अल्तेकर, ए.एस. द पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, मोतीलाल बनारसीदास, देलही, 1962
15. अल्तेकर, ए.एस. द पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, मोतीलाल बनारसीदास, देलही, 1962
16. देसाई नीरा, वीमेन इन माडर्न इण्डिया, बाम्बे, 1957।

◆◆◆

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 245-250

Hkkjr esa xzkeh.k csjkstxkjh dk ifjek.k % ,d v/;;u

M,0 jktsa'k dqekj o.kZoky*

çLrkouk % अर्थव्यवस्था विकसित हो अथवा अल्प विकसित–बेरोजगारी का होना सामान्य बात है। हर समय बड़ी संख्या में अकुशल श्रमिकों के साथ–साथ विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त श्रमिक भारी संख्या में बेरोजगार होते हैं। सामाजिक दृष्टि से बेरोजगारी की स्थिति में राष्ट्र के मानव स्रोतों की बर्बादी होती है। व्यक्तिगत दृष्टि से बेरोजगारी बेरोजगार इंसान के लिए कष्टदायक होती है। बेरोजगारी की अवस्था में व्यक्ति का नैतिक पतन भी होता है। यह ऐसी वास्तविकता है जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। लेकिन काफी समय तक क्लासिकल अर्थशास्त्री जे.बी.से के बाजारों केनियम' के आधार पर यह बताते रहे कि पूर्ण रोजगार जहाँ सामान्य स्थिति है, वहाँ बेरोजगारी इस सामान्य स्थिति से अस्थायी विचलन है और इसे मजदूरी की दरों में थोड़ी–बहुत कमी करके दूर किया जा सकता है। 1936 में केन्स की 'General Theoryof Employment] Interest and Money' का प्रकाशन हुआ। इस पुस्तक में कीन्स ने स्पष्ट किया कि बेरोजगारी एक सामान्य स्थिति है। प्रायः अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार कीस्थिति से पहले ही संतुलन की अवस्था में आ जाती है और इस प्रकार बेरोजगारी स्थायी बन जाती है।

çLrqr 'kks/k dk mís'; %

प्रस्तुत शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है :–

1. भारत में ग्रामीण बेरोजगारी का अध्ययन करना।
2. भारत में योजनावार बेरोजगार की दर में परिवर्तन का अध्ययन करना ।
3. बेरोजगारी को दूर करने हेतु सरकारी प्रयासों का अध्ययन करना ।

v/;;u fof/k %

प्रस्तुत शोधपत्र में ग्रामीण बेरोजगारी के परिमाण एवं बेरोजगारी को दूर करने हेतु सरकारी प्रयासों का अध्ययन किया गया है । अध्ययन की सरलता की दृष्टि से द्वितीयक समंको का प्रयोग किया गया है । ये समंक काफी विश्वसनीय स्रोतों से प्राप्त किया = गया है। जैसे– योजना आयोग द्वारा प्रस्तुत विभिन्न पंचवर्षीय योजना केंद्रीय सांख्यिकीय संघठन, रास्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (NSSO) द्वारा प्रकाशित एवं लेख आदिद्य आकड़ो के संग्रहण हेतु विभिन्न वेबसाइट का भी प्रयोग किया गया है। अध्ययन की पद्धति विश्लेषणात्मक है।

Hkkjr esa xzkeh.k csjkstxkjh dh fLFkfr %

किसी भी देश के समग्र आर्थिक विकास में सभी क्षेत्रों का योगदान महत्वपूर्ण होता है चाहे वह ग्रामीण क्षेत्र हो या शहरी। भारत जैसे विकासशील देश जहाँ ग्रामीण तथा शहरी जनसंख्या का अनुपात 68.2 : 31.8 हो वहाँ विकास हेतु ग्रामीण विकास और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त सततप्रयास के फलस्वरूप भारत विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति करते हुए आर्थिक विकास के पथ पर पर्याप्त आगे बढ़ चुका है, परन्तु विडम्बना यह है कि देश की 31.8 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या अभी भी गरीबी का जीवन व्यतीत कर रही हैं और जीवन की न्यूनतम आधारभूत आवश्यकताओं से वंचित है। ग्रामीण भारत अभी भी गरीबी बेरोजगारी की समस्या से ग्रसित है। देश की 70 प्रतिशत आबादी को आवास, पेयजल एवं यातायात के लिए सड़कों की समुचित व्यवस्था उपलब्ध नहीं है। देश के सतत् एवं

*सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, रामअधार चौरसिया, महाविद्यालय, उसका बाज़ार, सिद्धार्थनगर।

सर्वांगीण विकास की कल्पना करना तब तक बेमानी होगी जब तक ग्रामीण भारत का समुचित विकास न हो जाए।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने परतंत्र काल में ग्रामीण भारतवासियों की दुर्दशा को स्वयं अपनी आँखों से देखा था। उनकी यह मान्यता थी कि भारत की आत्मा गाँवों में ही निवास करती है। यदि भारत के गाँव विनष्ट हुए तो पूरा देश नष्ट हो जाएगा अर्थात् गाँवो के विकास के अभाव में भारत की समृद्धि, सम्पन्नता व आत्मनिर्भरता अर्थहीन है।

भारत में विभिन्न शैक्षिक स्तरों पर ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रो में बेरोजगारी की स्थिति को निम्न तालिका द्वारा दर्शाया गया है।

rkfydk

शैक्षणिक स्तर	ग्रामीण			शहरी		
	पुरूष	स्त्री	कुलव्यक्ति	पुरूष	स्त्री	कुलव्यक्ति
अशिक्षित	3	2	2	17	4	12
साक्षर (up-to)	12	4	10	26	19	25
माध्यमिक	23	28	25	55	69	57
सेकेंडरी	27	84	45	44	89	49
हायर सेकेंडरी	55	101	61	54	163	70
सभी प्राकर के तकनकी शीक्षा	12	205	90	73	157	85
शिक्षीत स्नातक	65	180	80	60	162	78
उच्च शिक्षा और इससे उपर	59	144	72	44	110	63
सेकेंडरी और इससे उपर	48	109	58	53	137	67

lkr % राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (विभिन्न दौर)

उपर्युक्त तालिका में अखित भारतीय स्तर पर विभिन्न शैक्षिक स्तरों पर बेरोजगारों की संख्या को प्रदर्शित किया गया है जिसमें शहरी एवंग्रामीण दो क्षेत्रोंको मुख्यतः फोकस किया गया है। सामान्य स्थिति का दो रूप (Ps+ss) का अभिप्राय पूरे वर्ष में सभी रोजगार चाहते थे परन्तु सभी को रोजगार प्राप्त नही हुआ। प्रति हजार जनसंख्या में जितने व्यक्ति बेरोजगार पाये गए उनकी संख्या को उपर्युक्त तालिका में दर्शाया गया है। सर्वप्रथम अशिक्षित संख्या पर विचार करते हुए पाते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुष वर्ग में 3 तथा महिला वर्ग में 2 संख्या बेरोजगार थे। शहरों में पुरुष बेरोजगारों की संख्या 17 तथा स्त्री बेरोजगारों की संख्या 4 है। ग्रामीण तथा शहरों में तुलनात्मक रूप से अशिक्षित बेरोजगारों की संख्या शहर में अधिक है। यदि शिक्षित स्नातक की बात की जाए तो ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुष एवं स्त्री बेरोजगार की संख्या क्रमशः 65 तथा 180. वही शहर में पुरुष एवं स्त्री बेरोजगारों की संख्या घट कर क्रमशः 90 तथा 162 है। इससे स्पष्ट है कि शहर में पुरुष तथा स्त्री दोनों वर्ग में अशिक्षित बेरोजगारों की संख्या अधिक तथा शिक्षित बेरोजगारों की संख्या कम है। सभी प्रकार के तकनीकि शिक्षा पर ध्यान आकर्षित किया जाए तो गांवों में पुरुष वर्ग में बेरोजगारों की संख्या 12 तथा शहरों में 73 है वही स्त्री वर्ग गाँवों में 205 तथा शहरों में कम होकर 157 है।

इससे स्पष्ट है कि शहरों में तकनीकि शिक्षा प्राप्त महिला रोजगार पाने में पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा सफल है। उच्च शिक्षा तथा इससे उपर प्राप्त ग्रामीण क्षेत्र मेंमहिला तथा पुरुष बेरोजगारों की संख्या क्रमशः 59 तथा 144 है जो शहरों में बेरोजगार की संख्या पुरुष तथा महिला वर्ग में कम होकर क्रमशः 44 तथा 110 है।

लैंगिग स्तर पर भारत में ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी की स्थिति को निम्न तालिका द्वारा दर्शाया गया है।

	पुरुष			स्त्री		
दौर	सामान्य स्थिथि	प्रचलति सापताहिक स्थिति	प्रचलति प्रतिदिन स्थिति	सामान्य स्थिथि	प्रचलति सापताहिक स्थिति	प्रचलति प्रतिदिन स्थिति
62	25(14)	43(24)	83(44)	22(5)	33(9)	75(16)
61	21(12)	38(21)	80(42)	31(8)	42(12)	87(21)
60	24(13)	47(25)	90(47)	22(5)	45(12)	93(19)
59	19(10)	28(15)	___	10(2)	16(4)	___
58	18(10)	28(15)	___	10(2)	16(4)	___
57	14(7)	26(14)	___	20(5)	26(7)	___
56	16(9)	23(12)	___	6(1)	18(4)	___
55	21(11)	39(21)	72(37)	15(4)	37(10)	70(15)
54	24(13)	29(15)	___	20(4)	27(6)	___
53	16(9)	20(11)	___	9(2)	18(4)	___
52	15(8)	18(10)	___	8(2)	9(2)	___
51	12(7)	18(10)	___	5(1)	12(3)	___
50	20(11)	30(17)	56(30)	14(3)	30(8)	56(13)

ukV %& Figures within brackets the proportion of unemployed per 1000 persons (person-days)
lzksr % राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संघठन 62 वाँ दौर (जुलाई, 2005 से जून, 2006) पृ. सं. 52

उपर्युक्त तालिका में विभिन्न दौर के बेरोजगारी की दर को दिखाया गया है। जिसमें 50वाँ दौर 1993–94 से 62वाँ दौर 2005–06 का आंकड़ा प्रस्तुत कियागया हैं सर्वप्रथम हम ग्रामीण क्षेत्रों के बेरोगारी सामने के तीन आधारों को लिया गया है। इसमे पुरुष एवं स्त्री दो भागों में बाँटा गया है। 60वाँ दौर में पुरुषों में बेरोजगारी दर 20 था जो 62वाँ दौर मे बढ़कर 25 हो गया। प्रचलित साप्ताहिक स्थिति के आधार पर 50वाँ दौर में बेरोजगारी 30 था जो 62वाँ दोर में बढ़कर 83 हो गया। स्त्री के बेरोजगारी की संख्या को देखने से स्पष्ट होता है कि सामान्य स्थिति के आधार पर 50वाँ दौर में 14 था जो 62वाँ दौर में बढ़कर 22 हो गया। साप्ताहिक स्थिति में 50 वाँ दोर में 30 था जो 62वाँ दौर में बढ़कर 33 हो गया तथा प्रतिदिन स्थिति पर देखा जाय तो 50वाँ दौर में 56 था जो 62वाँ दौर में बढ़कर 75 हो गया। अर्थात् निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है 50वाँ दौर से लेकर 62वाँ दौर में बेरोजगारी में वृद्धि हुई हो चाहे ग्रामीण पुरुष हो ग्रामीण स्त्री ।

;kstukokj csjkstxkj dh fLFkfr %

भारत का विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक की गरीबी एवं बेरोजगारी को दूर नहीं किया जाये इस हेतु विभिन्न पंचवर्षीय योजना में अनेक प्रयास किये गए योजनावार बेरोजगारी की स्थिति को निम्नलिखित द्वारा दर्शाया गया।

	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	तीन वार्षिक	चतुर्थ	पांचवीं	छठवीं	सातवीं	आठवीं	नौवीं	दसवीं	ग्यारहवीं 2011-12	बारहवीं 2016-17
श्रम शक्ति	185.2	197.0	215.0	229.0	243.0	280.0	269.81	306.08	374.0	423.4	478.8	541.84	586.44
रोजगार	182.3	193.4	210.5	219.3	237.2	270.0	264.14	298.38	367.2	416.4	474.7	515.67	579.88
बेरोजगारी	2.9	3.6	4.5	9.7	5.8	10.0	8.67	7.8	7.0	7.0	4.1	26.17	6.56
बेरोजगारी दर	1.56	1.82	2.09	4.23	4.05	3.57	3.21	2.55	1.87	1.66	0.86	4.83	1.12

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना से दसवीं पंचवर्षीययोजना तक बेरोजगारी का परिणाम हमारे सामने है, तथा ग्यारहवीं एवं बारहवीं पंचवर्षीय योजना तक रोजगारी का प्रक्षेपण किया गया है। यदि श्रम शक्ति की बात करें तो योजना में 1802 मिलियन था जो दसवीं पंचवर्षीय योजना तक लगातार वृद्धि हुई है। यहाँ तक कि ग्यारहवीं योजना क अन्त में भी श्रम शक्ति में वृद्धि की संभावना था की गई है। बीच के मात्र छठवीं योजना में श्रम शक्ति में कमी दृष्टिगत होती है। पांचची योजना में 280.0 मिलियन था। घटकर 20081 मिलयन रहा। इसी प्रकार यदि रोजगार की बात की जाए तो प्रथम योजना से दसवीं योजना तक वृद्धि हुई हैं तथा ग्यारहवीं एवं बारहवीं के अन्त में वृद्धि की संभावना व्यक्त की गई है। इसी प्रकार यदि बेरोजगारी पर की बात की जाए तो इसमें काफी उतार–चढ़ाव दृष्टिगत होती है। प्रथम योजना में बेरोजगारी दर 1.56 प्रतिशत था जो द्वितीय योजना में घटकर 1.82रह गया। पुनः तृतीय तथा चतुर्थ योजना में बढ़कर क्रमशः 2.02 एवं 4.05 रह गया। पांचवी योजना में 3.67 प्रतिशत था जो दसवीं योजना तक घटकर 0.86 प्रतिशत रहगया। ग्यारहवीं में बढ़ने एवं पुनः बारहवीं में बेरोजगारी दर घटने की संभावना व्यक्त की गयी है।

xkeh.k cjkstxkjh mUewyu grq lsjdkjh ç;kl %

भारत में स्वतंत्रता के बाद से ही पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए अनेक कार्यक्रम चलाए गए ताकि ग्रामवासियों के मानसिकता में परिवर्तन आ सके, दृष्टिकोण प्रगतिशील हो सके और उनकी आर्थिक प्रगति इसप्रकार हो कि समाज के कमजोर वर्ग के लोग लाभान्वित हो सके। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु भारत सरकार द्वारा विभिन्न पंचवर्षीय योजना में बहुत से विकास कार्यक्रमों को संचालित किया गया।

जिनमें से प्रमुख ग्रामीण विकास विकास कार्यक्रम निम्नलिखित है।

1. सामुदायिक विकास कार्यक्रम (2 अक्टूबर 1952)
2. ग्रामीण रोजगार के लिये नकद योजना (1972–72)
3. न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (1972–)
4. बीस सूत्रीय कार्यक्रम (1975–)
5. कम के बदले आनाज कार्यक्रम(1977–78)
6. समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (1979–)
7. राष्ट्रीय ग्रामीण विकास या रोजगार कार्यक्रम (1980–)
8. लघु एवं मध्यम कस्बो के समन्वित विकास का कार्यक्रम (DWCRA), 1980–
9. ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (RLEGP) 1983–
10. जवाहर रोजगार योजना (28 अप्रैल, 1989)
11. रोजगार आश्वासन योजना (2 अक्टूबर, 1993)
12. प्रधानमंत्री रोजगार योजना (2 अक्टूबर, 1993)
13. शहरी रोजगार एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम (1993–94)
14. ग्रामीण रोजगार सृजन (1995)

15. स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (1अप्रैल ,1999)
16. सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (25 सितम्बर, 2001)
17. रास्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून (2005)

उपर्युक्त कार्यक्रम में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम एक प्रमुख कार्यक्रम है, जिसे वर्ष 2006 में संचालित किया गया।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम के तहत वर्ष 2006–07 से 2009 तक 69400 करोड़ रूपये खर्च किया गया है तथा इसके सापेक्ष 12.71 करोड़ लोगों को रोजगार प्रदान किया गया है। इस प्रकार ग्रामीण गरीब परिवारों के एक व्यक्ति को वर्ष में 100 दिन रोजगार उपलब्ध करने में सफल रही है।

भारत सरकार द्वारा चलाए गए विभिन्न कार्यक्रमों से अभी भी ग्रामीण वेरोजगारी की स्थपाना का पूर्णतः समाधान प्राप्त नही हो पाया है।

xzkeh.k csjkstxkjh mUewYu gsrq lq>ko %

ग्रामीण बेरोजगारी को दूर करने हेतु निम्नलिखित उपाय आवश्यक है –

1. ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने तथा जरूरतमंद लोगों को लाभप्रद रोजगार प्रदान करने के लिए लघु एवं कुटीर उद्योग क्षेत्र का भी विस्तार किया जाए।
2. ग्रामीणों को अपना रोजगार चलाने के लिए तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान करके कम ब्याज व आसान किस्तों पर ऋण प्रदान किया जाए तथा अन्य सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाए ताकि उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो सके, जो ग्रामीण समस्याओं का मूल कारण है।
3. ग्रामीण विकास की विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों में भ्रष्टाचार को रोकने के लिए सतत् निगरानी एवं मूल्यांकन की आवश्यकता है
4. रोजगार सृजन, गरीबी निवारण तथा गाँवों और मलिन वस्तियों मेंजन सुविधाओं के विकास हेतु चलाई जा रही अनेक योजनाओं एवं कार्यक्रमों के स्थान पर इनकी संख्या घटाकर उनके आधार को व्यापक करना चाहिए।
5. ग्रामीण विकास योजनाओं एवं कार्यक्रमों को प्राथमिक शिक्षा के साथ जोड़कर प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक एक विषय में पढ़ाया जाए।

fu"d"kZ % उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि– प्रथम पंचवर्षीय योजना के क्रियान्वयन के दिन से आज तक ग्रामीण क्षेत्र से बेरोजगारी, गरीबी, कुपोषण दूर करने के उद्देश्य से अनेक योजनाएं चलाई गई है। योजनाओं की इतनी भीड़–भाड़ थी कि समन्वय बनाए रखना कठिन कार्य था। किन्तु अधिकांश योजनाओं ने दमकल का कार्य किया है न कि पानी के स्थायी स्रोत का। लम्बे समय तक रोजगार व आय सृजन हेतु स्थायी परिसंपत्ति का सृजन नहीं हो सका। इसके फलस्वरूप भूमिहीन श्रमिकों खेतिहर मजदूरों, अनुसूचित जातियों व जनजातियों में निर्धन लोगों की स्थिति में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हो पाया है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में कम से कम 27.5 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन–यापन कर रहे हैं। यह स्थिति प्रजातंत्र से मेल नहीं खाती। अतः हमे ग्रामीण क्षेत्र के कमजोरव निर्बल वर्ग पर विशेष ध्यान देना चाहिए। कोई कार्यक्रम प्रारम्भ किया जाय तो हमारी नियत साफ होनी चाहिए और वोट की राजनीति नहीं होनी चाहिए। सरकारी प्रयास के साथ स्वैच्छिक संगठनों आदि को विशेष प्रोत्साहन देना चाहिए।

lUnHkZ %

1. इंडियन इकॉनोमिक सर्वे, 1992–93, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया पृष्ट सं.–214
2. छठवी पंचवर्षीय योजना (1980 –85) पृष्ट सं.–207
3. सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–90) खण्ड 1, तालिका 5.1
4. आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992 –97) खण्ड 1, तालिका 5.1

5. NSSO Employment and Unemployment Survey: 38th Round (1983), 50th Round (1993–94), 61th Round (2004–05), 66th Round (2009–10) and 68th Round (2011–12).
6. NSSO Employment and Unemployment Survey: 38th Round (1993–94), 61th Round (2004–05), 66th Round (2009–10) and 68th Round (2011–12).
7. Krishna raj "The Growth of Aggregate unemployment of India Trends ,'Source and Macro& Economic Policy Option]" world Bank staff working papers, number 638 ,Washington, D-C& 1984]
8. Bhagwati] Jagdish: "Growth Poverty and Reforms-" Economic and Political weekly, March , 10&16, 2001
9. रूद्र दत्त एव के.पी.एम सुन्दरम : भारतीय अर्थव्यवस्था, 2009 एस.चन्द, एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
10. मिश्रा एंड पूरी "भारतीय अर्थव्यवस्था" 2008, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुंबई पृष्ठ सं.–137
11. Rural & Urban Employment in India, Retrieved March 15, 2019
12. Kumar, A-, Kumar, S-, Singh,D-K-, &Shivjee- (2011). Rural Employment Diversification in India: Trends, Determinants and Implications on Poverty- Agriculture Economics Research Review, 24, 361&372- Retrieved March 16, 2019
13. Rural Non & Farm Employment- (n-d)- Retrived March 15, 2019.

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 251-253

orZeku lekt dk fodkl esa laLÑfr dk izHkko

MkW0 fd'kksjh yky*

भारत मानव सभ्यता के उद्गम स्थलों में एक है तथापि भारत की संस्कृति अनेक जनगण की संस्कृति से घनिष्ठतम रही है तथा उसके विकास पर भी प्रभाव डाला है। अतः आज के युग में इसकी क्या प्रासंगिकता हो सकती है यह विचारणीय है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र राजनीतिक सिद्धान्तों की महत्त्वपूर्ण कृति है। राजनीतिक शास्त्र एक स्वतंत्र शास्त्र है और दर्शन, वेद तथा वार्ता एवं कानून उनकी शाखायें हैं। समाप्त वचने तस्मिनरथशास्त्र विशारद चार्थोथाधर्मार्थतत्वज्ञों जगोवाक्यनन्दितरू। प्राचीन भारत का कौटिल्य का अर्थशास्त्र भी राजशास्त्र ही था। कौटिल्य ने कहा–

euq";uke foR;FkkA

rL;k ifFko;k ykHkikyukik;% 'kkL=eFk&'kkL=fefrA

शुक्राचार्य ने दण्डनीति को इतनी महत्त्वपूर्ण बतलाया है कि इसमें अन्य सब विद्याओं का अंतर्भाव मान निया है, क्योंकि शास्त्रे रक्षिते देशे शास्त्र चिन्ता प्रवर्तते की उक्ति के अनुसार दण्ड द्वारा सुभाषित तथा सुरक्षित देश में ही वेद आदि अन्य शास्त्रों की चिन्ता हो सकती है। अतः दंडनीति को राज्य शास्त्र के आधारभूत अंग के रूप में स्वीकार करना आवश्यक है और यही दंडनीति को समाजशास्त्र, प्राचीन भारत की यह स्थिति थी कि वह एक क्षत्रिय शासक के अन्तर्गत न रहकर विभिन्न छोटे–छोटे राज्यों में विभाजित रहा था तथापि राजशास्त्र के उद्भव और विकास की दृष्टि से यह स्थिति अपना विशिष्ट मूल्य रखती है। यह स्थिति उस समय और भी बड़ी भयावह हो गयी जब इन राज्यों में मित्रता और एकता न रहकर आपसी कलह और मतभेद बढ़ते रहे। बाद में कुछ बड़े समाज भी अस्तित्व में ओ। इनके बीच पारस्परिक सम्बन्ध थे। भारत में राज्य सरकार का प्रयोग अति प्राचीन काल से चलता आ रहा है, वैदिक काल के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में हमारा ज्ञान सीमित है। महाकाव्य तथा पौराणिक गाथाओं में राजनीतिक गाथाओं में राजनीतिक गाथाओं में राजनीतिक गतिविधियों के अनेकों उदाहरण मिलते हैं।

प्राचीन भारतीय राजशास्त्रीय विचार का केन्द्र बिन्दु राजा होता था अतः पराया सभी राजनीतिक विचारकों कौटिल्य, मनु, अश्वघोष, वस्पति, भीष्म, विशाखदत्त आदि ने राजाओं के कर्त्तव्यों का वर्णन किया है। स्मृति में तो राजा के जीवन तथा उसका दिनचर्या के नियमों तक का भी वर्णन मिलता है, राजशास्त्र, नृपशास्त्र, राजविद्या, क्षत्रिय विद्या, दंडनीति, नीतिशास्त्र तथा राजधर्म आदि शास्त्र राज्य तथा राजा के सम्बन्ध में बोध कराते हैं वेद पुराण, रामायण, महाभारत, कामन्दक नीतिशास्त्र, शुक्रनीति आदि में राजशास्त्र से सम्बन्धित उपलब्ध विशेष विवरण आज के राजनीतिक सन्दर्भ में उपयोग है इस प्रकार पुरातन काल से ही भारतीय राजशास्त्र का विशिष्ट स्थान रहा है। मानव धर्म पर लिखित मनुस्मृति भारत की एक ऐसी प्राचीनतम कृति है, जिसमें राजदूतों तथा उनके कार्यों का विस्तृत मिलता है राजनीतिक सम्बन्धों को बनाये रखने के लिए राजदूत की नियुक्ति का प्रावधान था वह राजदूत को बहुत ही महत्त्व देता था। अतः मनुराजा को परामर्श देते हैं कि उसे मित्र, शत्रु, अथवा तटस्थ राज्य को कभी भी अपने से अधिक शक्तिशाली नहीं बनने देना चाहते थे राज्य की रक्षा तथा शत्रु का विनाश राज्य का प्रमुख कर्त्तव्य है। युद्ध करना राजा का धर्म है। मनु का मौलिक सिद्धान्त षाड्गुण्य मात्र है, जिसमें वरू राजा को संधि, विग्रह, यान, आसान, द्वैधीभाव अैर संशय गुणों को ग्रहण करने का परामर्श देता है।

*समाजशास्त्र विभाग, ल0ना0मि0वि0, दरभंगा

विश्व साहित्य के प्राचीनतम महाकाव्यों की तुलना में रामायण व महाभारत उत्कृष्ट कृति है, इनमें राजशास्त्र की उपयोगिता व उनमुक्तियों से सम्बन्धित उदाहरण मिलते हैं। महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण में राम ने लंका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा के पूर्व अंगद ने नीति के अनुसार समझौते का पूर्ण प्रयास किया था रावण द्वारा हनुमान के लंका दहन के कारण प्राणदंड के आदेश देने पर रावण के भाई विभीषण ने व्यवधान डालते हुए कहा था कि शास्त्रानुसार दूत का वध नीति विरोधी है, उसे दंडित नहीं किया जा सकता चाहे वह कैसा भी अपराध क्यों न करे। महाभारत हमारे प्राचीन राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन का प्रमुख साधन है। रामायण की भांति महाभारत भी नीतिशास्त्र की ऐसी पुस्तक है जिसका अध्ययन कर राजा स्वयं के राज्य हितों की रक्षा के लिए कार्य कर सकता था। गीता को विद्वानों ने राजनीतिशास्त्र, कर्तव्यशास्त्र आदि नाम दिए हैं। गीता के उपदेश राजनीति के उच्चतम आदर्श के रूप में देखे जाते हैं। पाण्डवों की ओर से श्रीकृष्ण एक विशेष दूत बन गए थे जिससे की भविष्य में संग्राम न हो, महाभारत में दूतों का वर्णन मिलता है शासन की सफलता के लिए दूतों और गुप्तचरों की आवश्यकता पर बल दिया गया है। श्रीकृष्ण एक विशेष दूत बनकर कौरवों के राजा दुर्योधन के दरबार में दोनों पक्षों के मध्य समझौता कराने गए थे जिससे कि भविष्य में युद्ध न हो। द्रौपदी द्वारा ऐसे असंभव कार्य के औचित्य के सम्बन्ध में पूछने पर श्रीकृष्ण ने जो उत्तर दिया वह राजशास्त्र से परिपूर्ण था। युद्धनीति एवं राजनीति के कृष्ण एक महाज्ञाता थे धर्मराज युधिष्ठिर व अर्जुन को दिए गए नीति प्रवचन कृष्ण के योग्य एवं आदर्श राजदूत होने का द्योतक है। ये दानों ही महाकाव्य राजशास्त्र राजनीति युद्ध और शांति पर लिखे गये महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस प्रकार रामायण और महाभारत काल में राजशास्त्र का संस्थागत स्वरूप उभर कर आया था। प्राचीन भारतीय राजशास्त्र का स्वर्ण को स्वर्णकाल कहा जा सकता है। इस काल में दूतों को भेजने की प्रथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का एक भाग बन चुकी थी। चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में मेगास्थनीज और समुद्रगुप्त की दरबार में सिंघल राजा के दूत आये थे इसी प्रकार भारत की और चीन व रोम को दूत भेजे गए थे। इसका कार्य मूलरूप से व्यापारी सुविधाएँ प्राप्त करना था मेगास्थनीज की पुस्तक "इण्डिका" मै मौर्यकालीन भारत की राजनीतिक दशाओं का वर्णन है।

बिन्दुसार के राज काल में सीरिया के राजा एन्टीयोकस ने डायमेकस नमक व्यक्ति को अपने दूत के रूप में भेजा था। भरतीय राजशास्त्र के चार प्रसिद्ध अधार्मिक सिद्धान्त साम, दाम, भेद और दंड राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों को प्राचीनकाल की भांति आज भी निर्धारित करते हैं। इन्हें नीतिशास्त्र में चतुद पद कहा गया है। राजशास्त्र के इस नियम के अन्तर्गत विपक्षी राजा को वाणीचातुर्य तथा राज लाईक कुशलता अर्थात् तर्क और विनम्रता से मित्र बनाये रखा जाता था। कौटिल्य के अनुसार भेद डालने के कार्य के अन्तर्गत पड़ोसी राज्यों को उत्तेजित करना अथवा प्रतिष्ठित नागरिकों और अधिकारियों को विद्रोह के लिए प्रेरित करना था। राजशास्त्र के क्षेत्र में कौटिल्य का महान योगदान है चाणक्य ने पूर्व में सिकन्दर के आक्रमण के आंतरिक अराजकता तथा हिन्दू राज–व्यवस्था के विघटन की स्थिति में मौर्य वंश के पृथक् सम्राट चन्द्रगुप्त के पथ प्रदर्शन के लिए नरेन्द्र हेतु एक प्रसिद्ध पुस्तक अर्थशास्त्र की रचना की थी। राजनीति शास्त्र के प्रथम पुस्तक के रूप में दिया गया है। राजशास्त्र के साहित्य में इस विशिष्ट, अतुलनीय तथा अपूर्व ग्रन्थ का महत्व चिरन्तन है। कौटिल्य ने प्रथम बार भारत को व्यवस्थित और स्थापित राजशास्त्र के नियमों को भेंट की प्राचीन राजशास्त्र व्यवस्था में परिपक्व था, इसके द्वारा दिए गए साधारण परिवर्तन के पश्चात् आज भी लागू किये जा सकते हैं। हालांकि इसका निर्माण आज से हजारे वर्ष पूर्व किया गया था। कौटिल्य वर्तमान अर्थ–व्यवस्थाओं का संस्थापक था। कौटिल्य का उद्देश्य सुदृढ़ और शक्तिशाली राज्य की स्थापना करना था। कौटिल्य ने राज्यशिल्प के अन्तर्गत छः प्रकार की नीतियों का उल्लेख किया है– संधि, युद्ध, यान (शत्रु के विरुद्ध अभियान), मैत्री और द्वैधीभाव। कौटिलय ने इन नीतियों में संधि का सर्वप्रथम उल्लेख करके उसके महत्व को दर्शाया है प्राचीन काल में शांति सुरक्षा स्वतंत्रता और सार्वभौमिकता की रक्षा होने से बचाना ही सर्वोच्च धर्म है इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपनाये जाने योग्य नियम कौटिल्य की राजशास्त्र की एक बहुत बड़ी देन है। इस प्रकार राजशास्त्र वेदन, पुराण, रामायण, महाभारत, अर्थशास्त्र राजतरंगणी में विशद वर्णन किया गया है।

हिन्दू राजशास्त्र के प्रभाव के बावजूद कौटिल्य के सिद्धान्तों का महत्त्व कम नहीं हुआ है। निश्चयपूर्वक यह कहना संभव है कि जो यह अर्थ शास्त्र कहता है वह विश्व राजनीति के सन्दर्भ में आज भी अधिकांशतः संभव है प्राचीन भारत में राज्यशास्त्र सुव्यवस्थित और सुनियोजित था। राजशास्त्र पर प्राचीन भारतीय विचारकों के विचार इतिहास की बहुमूल्य धरोहर है।

lUnHk %

1. डॉ॰ वैकुण्ठनाथ सिंह, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं शासन, साइंटिफिक बुक कम्पनी, अशोक राजपथ, पटना, छठां संस्करण–1988, पृ॰ सं॰–89.
2. नेहरू जी की वाणी, (नेहरू के व्याख्यान और लेखों का संग्रह), पृ॰ सं॰–63.
3. डा॰ पुखराज जैन, प्रमुख राजनीतिक विचारक, साहित्य भवन, आगरा, संस्करण–1982, प्रथम भाग, पृ॰ सं॰–47.
4. वही, पृ॰ सं॰–219.
5. वही, द्वितीय भाग, पृ॰ सं॰–37.
6. वही, द्वितीय भाग, पृ॰ सं॰–77.
7. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, 8: 1.

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 254-258

fl/kq lH;rk ds iqjkrkfRod LFkyksa esa uxjhdj.k dk fodkl

MkW0 jke ukjk;.k jtd*

Hkwfedk%& हड़प्पा संस्कृति (सैंधव सभ्यता) के सभी प्रमुख स्थान पाकिस्तान में पड़ गये, अतः इस कमी को पूरा करने पर विशेष ध्यान दिया गया। अब स्थिति यह हो गई है कि इस सभ्यता के अवशेष सर्वाधिक स्थानों में उपलब्ध किये जा चुके हैं, जिनमें रूपड़, कालीबंगन, बनावली, सुरकोतदा तथा लोथल के उत्खनन उल्लेखनीय हैं। इन खोजों एवं उत्खननों के परिणामस्वरूप अब हड़प्पा संस्कृति को सिन्धु घाटी में ही सीमित नहीं माना जा सकता। पूर्व में इसका विस्तार उत्तर प्रदेश के आलमगीरपुर तक तो था ही, घग्गर–घाटी, कच्छ एवं सौराष्ट्र में इस संस्कृति की बस्तियों की कोई कमी नहीं थी।

l/ko rFkk bfrgkl iwoZ dky% रूपड़ में हड़प्पा काल से मध्युग पर्यन्त का उत्तर स्तरीय अनुक्रम मिला तो कालीबंगन, बनावली, सुरकोतदा और लोथल में हड़प्पा सभ्यता के विषय में नूतन जानकारियाँ उपलब्ध हुई। कालीबंगन तथा बनावली के उत्खनन में हड़प्पा–पूर्व काल के अवशेष मिलने से इस सभ्यता के उद्भव और विकास के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान पूर्वापेक्षा विशेष समृद्ध हो गया है। कालीबंगन की हड़प्पा–पूर्व बस्ती कच्ची ईंट के रक्षा–प्राचीर से परिवेष्टित थी। इसी स्थान पर उत्तरकाल में हड़प्पाईयों ने अपने दुर्ग का निर्माण किया। हड़प्पाकालीन दुर्ग का प्लान समचतुर्भुज फलक से मिलता–जुलता है। हड़प्पा और मोहेंजोदारों के दुर्गों की अपेक्षा यहाँ के दुर्ग के निर्माण में थोड़ी भिन्नता है। हड़प्पा और मोहेंजोदारों के दुर्ग की आधारवेदिका और रक्षाप्राचीर अभिन्न बनाये गये हैं, परन्तु कालीबंगन में दोनों के मध्य खुली जमीन है। आधारवेदिका दो समान भागों में विभाजित है। दक्षिणी भाग में 4–6 वेदिकाएँ हैं जो रक्षाप्राचीर से संलग्न नहीं है। यहाँ अन्नागार भी नहीं है। कालीबंगन, बनावली और सुरकोतदा में नगर के पश्चिमी (दुर्ग) और पूर्वी भाग के प्राचीर परिवेष्टित होने का स्पष्ट प्रमाण मिला। सुरकोतदा के पत्थर से बने रक्षाप्राचीर के प्रवेशद्वार के दोनों ओर संतरी के कमरे बने थे। पत्थर का इतना विशाल और विशिष्ट प्रवेशद्वार–युक्त यह अब तक मिला सर्वाधिक प्राचीन रक्षाप्राचीर है। अग्निकुण्डों के अतिरिक्त मात्र मुहरों से धर्म–सम्बन्धी विशेषताओं का पता चलता है। हड़प्पाकालीन कालीबंगन की आबादी की परतों में नौ निर्माण काल पाये गये। नगर का प्लान शतरंज फलक जैसा है। प्रत्येक मकान कम–से–कम दो सड़कों से सटा बनता था। उसका प्लान आयताकार रहता, जिसमें एक ऑगन, प्रायः एक कुऑ और छः या सात कमरों की व्यवस्था की जाती। कमरों का निर्माण क्रम में ऑगन के तीन पार्श्वों में किया जाता था। प्रायः प्रत्येक गृह के एक कमरे में अग्नि कुण्ड बनाया जाता था। हड़प्पाकालीन श्मशान में दो प्रकार के शवाधान पाये गये – एक तो यथावत् शवाधान और दूसरा भांड–शवाधान। दूसरे प्रकार का शवाधान पहली बार हड़प्पाकालीन शमशान में मिला। अवशेषों में लघुलेख–युक्त कुछ ठीकरे भी मिले। अक्षरों के अतिक्रमण के आधार ब्रजवासी लाल महोदय ने लिखने की दिशा दाहिने से बाएँ होने का अनुमान लगाया है। लोथल में उत्खनित पक्की ईंट की बनी गोदी का अवशेष बड़े महत्व का है, क्योंकि इससे तत्कालीन समुद्रयात्रा एवं विदेश–व्यापार के विषय में हमारे संदेहों का निराकरण होता है। विदेश–व्यापार की पुष्टि यहाँ उपलब्ध हबरैन–मुहर से भी होती है।

हड़प्पा सभ्यता के अवसान तथा भगवान बुद्ध के आविर्भाव के मध्य–काल का इतिहास बड़ा ही विवादास्पद और धुंधला रहा है। परन्तु विगत बीस वर्षों में इस क्षेत्र में जो खोज किये गये उनसे इस काल के इतिहास पर जो अवरण अब तक पड़ा रहा वह शनैः शनैः हटता जा रहा है।

---

*एम०ए०, यू0आर0एस0, पी–एच0डी0, प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया।

इस प्रसंग में सबसे महत्वपूर्ण उत्खनन हस्तिनापुर में हुआ। यहाँ पाँच कालों के अवशेष उपलब्ध हुए। प्रत्येक काल के मध्य समय का विराम था। सबसे नीचे के स्तरों में गेरू–मृद्भांड मिले। तत्पश्चात् चित्रित धूसर मृद्भांडों का काल आता है। इस काल का अंत गंगा की भीषण बाढ़ के कारण हुआ। तीसरी आबादी उन लोगों की थी जो कृष्ण–मार्जित मृद्भांड का प्रयोग करते थे। इसी प्रकार के क्रम अहिच्छत और नोह के उत्खन्नों में भी प्राप्त हुए।

अंधकार युग की समस्या के समाधान की दिशा में अतरंजिखेड़ा के उत्खन्न से उपलब्ध साक्ष्य बड़े महत्वपूर्ण पाये गये। यहाँ की कहानी भी गेरू मृद्भांड से प्रारंभ होती है, तदनन्तर क्रमशः कृष्ण–लोहित मृद्भांड, चित्रित धूसर मृद्भांड तथा उत्तरी कृष्ण–मार्जित मृदभांड संस्कृतियों के साक्ष्य उपलब्ध हुए हैं। जहाँ तक गेरू मृद्भांड, संस्कृतिक का प्रश्न है, इसका प्रसार पूर्वी पंजाब (कतपलोन, जिला–जालंधर) से लेकर पूर्वी राजस्थान (नोह, जिला–भरतपुर) पश्चिमी उत्तर प्रदेश (बहरिया, जिला–शाहजहाँपुर) तक के विस्तृत क्षेत्र में होने के साक्ष्य उपलब्ध हुए।[1] इस क्षेत्र के लगभग सौ स्थानों में यह मृद्भांड पाया गया जिनमें हस्तिनापुर, अहिच्छत्र (जिला–बरेली), नोह (जिला–भरतपुर), बरगॉव बहादराबाद, अम्बखेड़ी (जिला सहारणपुर) अंतरजिखेड़ा (जिला–एटा), साइ पाई (जिला–ईटावा), लाल किला (जिला–बुलंदशहर) विसोल (जिला बदायूँ) राजपुर परसु (जिला –बिजनौर), नसीरपुर इत्यादि उत्खनित स्थान उल्लेखनीय हैं। अतरंजिखेड़ा और लालकिला की गेरू मृद्भांड सम्बन्धी सामग्री महत्वपूर्ण हैं। इन दोनों स्थानों में चित्रित तथा उत्कीर्ण मृद्भांड पाये गये। सर्वप्रथम् अतरंजिखेड़ा में कुछ चित्रित गेरू मृद्भांड मिले, परन्तु लाल किला में इनकी बहुलता पाई गई। यहाँ इनका संचय भी सुस्तरित है। इस स्थान के गेरू मृद्भांड़ों में बड़े जार, कलश, कटोरे, ढक्कन और साधार थाली के उल्लेख किये जा सकते हैं।

कुछ स्थानों– जैसे, अम्बखेड़ी और बहादराबाद के गुरू मृद्भाँड़ में हड़प्पाई प्रभाव की विद्यमानता के कारण इसे कतिपय विद्वानों ने हड़प्पा संस्कृति से सम्बद्ध माना।[2] इसे वे हड़प्पाई मृद्भांड का ही विकृत रूप स्वीकार करते हैं। परन्तु विश्वसनीय साक्ष्य के अभाव में गेरू मृद्भांड के निर्माताओं को हड़प्पाई शरणार्थी नहीं माना जायेगा। मृद्भांडों में आकार साम्य के एकाधिक संभावनाओं को स्वीकारते हुए हड़प्पाई प्रभाव को सम्पर्कजन्य मानना अधिक तर्कसंगत होगा। गेरू मृद्भांड संस्कृति के विभिन्न पहलुओं के अध्ययन से इसके विकास के दो क्षेत्र निर्धारित होते हैं। (1) मध्य गंगा–यमुना दोआब और (2) पूर्व पंजाब तथा ऊमरी दोआब। मध्य गंगा–यमुना दोआब क्षेत्र से उपलब्ध गेरू मृद्भांड में प्रकाराधिक्य का अभाव है और इसकी संरचना पश्चिमी क्षेत्र के मृदभांड की तुलना में उत्कृष्ट नहीं है। इन विशेषताओं के साथ यह हड़प्पाई प्रभाव से मुक्त है। उपलब्ध प्रमाण इस मृद्भांड के स्वतंत्रत विकास के संकेतक है। इस सम्बन्ध में दो संभावनाऐं स्पष्ट होती है – पहली तो यह कि गेरू मृद्भांड का प्रयोग करने वाले गंगा घाटी के निवासी थे। इस क्षेत्र से उनके पश्चिम दिशा में तथा हड़प्पाईयों के पूर्व दिशा में प्रसार से इन संस्कृतियों का सम्पर्क कायम हुआ, फलस्वरूप मिश्रित मृद्भांड बने। दूसरी संभावना यह है कि पंजाब और ऊपरी दोआब क्षेत्र से इनका प्रसार पूर्व की ओर हुआ। इस प्रक्रिया में हड़प्पाई सम्पर्क क्षेत्र से जो लोग दूर चले गये वे उनके प्रभाव से मुक्त रहे, परन्तु हड़प्पा संस्कृति से अविदूर पश्चिमी क्षेत्र के निवासी उनके प्रभाव से अछूते नहीं रह पाये। इस कारण इन लोगों ने हड़प्पा–प्रकार के जिन उपयोगी बर्तनों का निर्माण किया उनका पूर्वी क्षेत्र में अभाव पाया गया। गेरू मृद्भांड संस्कृति की तिथि 2000–1500 ई0 पूर्व निर्धारित होने से इसकी हड़प्पा संस्कृति के साथ समकालीनता प्रमाणित होती है।[3] और इन संस्कृतियों के सम्पर्क सम्बन्धी मान्यता की पुष्टि होती है। उत्तर हड़प्पाई संदर्भ में मीटाथल में उपलबध सेल्ट और चक्र द्वारा भी उपर्युक्त संस्कृतियों की समकालीनता का समर्थन होता है।

गंगा घाटी के विस्तृत क्षेत्र तथा छोटानागपुर के अनेक स्थानों में ताम्रायुधों (शुद्ध ताम्र निर्मित परशु, भाले, कटार, तलवार इत्यादि) के जो भांडार मिले उन्हें संस्कृति विशेष से निर्णायक रूप में सम्बद्ध करने का प्रयास लम्बी अवधि तक सफल नहीं हो पाया। परन्तु स्वातंत्रयोत्तर काल में इस सम्बन्ध में जो कार्य किये गये उनसे उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर सर्वप्रथम श्री ब्रजवासी लाल महोदय ने ताम्रायुधों को गेरू

मृद्भांड संस्कृति से सम्बद्ध करने का प्रयास किया और अंततोगत्वा साई पाई के उत्खनन में उपलब्ध स्तरीय साक्ष्य से इस सम्बन्ध की पुष्टि हुई।[4] अब ताम्रायुध तथा गेरू मृद्भाँड के उपयोग कर्त्ताओं को भिन्न मानना भूल होगी। उपलब्ध पुरातात्विक साक्ष्य से प्रतीत होता है कि गेरू मृद्भाँड संस्कृति एक ऐसी जाति की देन थी जिसने न तो किसी स्थान विशेष पर लम्बी अवधि तक वास किया और न स्थायी आवासों का ही निर्माण किया। इस संस्कृति से सम्बन्धित जो स्तरीय संचय उपलब्ध हुए हैं वे अल्पकालीन आवास के संकेतक हैं। परन्तु इनको पूर्णतया घुमक्कड़ जाति मानना सही नहीं होगा। काल किले के उत्खनन में गेरू मृद्भांड संस्कृतिकालीन स्तर में आवास निर्माण के साक्ष्य उपलब्ध होने से यह अनुमान लगाना उपर्युक्त होगा कि कहीं–कहीं इस समुदाय के लोग ईंट (कच्ची और पक्की) और लकड़ी के बने स्थायी आवासों का उपयोग करने लगे थे। यद्यपि वर्तमान स्थिति में निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि यह आर्योत्तर जाति थी अथवा आर्य, परन्तु हड़प्पाईयों से शस्त्रास्त्र में श्रेष्ठत्तर तथा ताम्रायुध प्रयोगी आदि कार्यों की किसी शाखा से इन्हें सम्बद्ध करने की पर्याप्त संभावनाएँ हैं। आर्यों की मूल भूमि जहॉ भी रही हो, हड़प्पाईयों के साथ उनके कुछ शताब्दियों तक सह–अस्तित्व को अस्वीकार कदापि नहीं किया जायेगा, क्योंकि उनके प्रादुर्भाव के परिणामस्वरूप हड़प्पा संस्कृति का संघः लोप नहीं हो गया।

गंगा घाटी में प्रायः चित्रित धूसर मृद्भांड तथा कृष्ण–मार्जित मृद्भांड संस्कृतियों के पूर्ववर्ती स्तरों में कृष्ण–लोहित मृद्भांड मिलता है, परन्तु कुछ स्थानों (जैसे अतरंजिखेड़ा) में यह गेरू मृद्भांड एवं चित्रित धूसर मृदभांड संस्कृतियों के मध्य स्तरीय संचय में पाया गया। पूर्वोत्तर भारत में चिरांद का साक्ष्य महत्वपूर्ण है। जहाँ ताम्राश्म से लेकर लौह काल तक इसका प्रयोग होता रहा। इस मृद्भांड का प्रसार क्षेत्र व्यापक है। यह पश्चिम में गुजरात (लोथल, रंगपुर, सुरकोतदा इत्यादि) से लेकर पूर्व में बंगाल (पांडु राजार ढिबि, जि0–बर्दवान) महिषदल, जि0–बीरभूम) तक पाया गया है। पंजाब और हरियाणा में यह चित्रित धूसर मृद्भांड के साथ मिलता है। सौराष्ट्र–गुजरात में हड़प्पा काल के आरंभ से ही इसके प्रचलन का साक्ष्य उपलब्ध है– लोथल में आबादी के आरम्भ से ही हड़पाई मृद्भांड के साथ कृष्ण–लोहित मृद्भांड मिले। राजस्थान और दक्कन के ताम्राश्म संस्कृति काल में श्वेत चित्रित कृष्ण–लोहित मृद्भांड प्रचलित थे।[5] मध्य एवं पश्चिमी भारत में इतिहास काल के आरंभ में इसका पुनः प्रचलन हुआ। दक्षिण में यह महाश्म संस्कृति के मृद्भांड के रूप में उपलब्ध होता है।

यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि कृष्ण–लोहित मृद्भांड प्रयोग करने वाले मूलतः एक ही मानव समुदाय के लोग थे जो विभिन्न क्षेत्रों में आबाद हो गये अथवा भिन्न–भिनन समुदायों के सम्पर्कजन्य तकनीकी साम्य के फलस्वरूप इस मृद्भांड का व्यापक प्रसार हुआ। जहाँ तक गंगा घाटी का प्रश्न है। गेरू मृद्भांड के उत्तरकालीन स्तर में ही इसका क्रम निश्चित होगा। इस बात की पूरी संभावना है कि सौराष्ट्र गुजरात राजस्थान के मार्ग से इसका प्रसार गंगा घाटी में हुआ हो। इस क्रम में कुछ समुदायों ने अनुकरण द्वारा इस मृद्भांड का निर्माण आरंभ किया हो।

कुछ विद्वानों ने कृष्ण–लोहित मृद्भांड प्रयोग करने वाली जाति को आर्यों से अभिन्न सिद्ध करने का प्रयास किया तो कुछ ने उसे हड़प्पा पूर्व माना। लोयल में आबादी के आरंभ से ही इस मृद्भांड की उपलब्धि तदन्तर हड़प्पा संस्कृति के अवसान काल में इसका प्रचलन जारी रहने से कुछ पुरातत्वज्ञों ने यह निष्कर्ष निकाला कि हड़प्पाइयों के पराभाव से कृष्ण–लोहित मृदृभांड के आदि निर्माताओं को सिर उठाने का अवसर सुलभ हुआ। इस मृद्भांड का मूल सम्बन्ध हड़प्पा–पूर्व उस समुदाय से था जिन्हें हड़प्पाईयों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी हो। परन्तु मृद्भांड विशेष का किसी मानव समुदाय से अनन्तकालीन सम्बन्ध स्वीकार करना सही नहीं माना जायेगा। तकनीकी विकास ऐसी प्रक्रिया है, जिसे सीमित नहीं रखा जा सकता और एकाधिक समुदायों के सम्पर्कजन्य परिणाम तकनीकी ज्ञान के आदान–प्रदान के रूप में अभिव्यक्त होते हैं।

जहाँ तक चित्रित धूसर मृद्भांड की समस्या है, इसके प्रचलन की सर्वमानय सी014 विधि पर आधारित तिथि 800–400 ई0 पू0 है। रूपड़ और आलमगीरपुर में इसका स्थान हड़प्पोत्तर तथा उत्तरी

कृष्ण–मार्जित मृद्भांड–पूर्व काल है। हस्तिनापुर तथा अहिच्छत्र में यह गेरू मृद्भांड के पश्चात् और अतरंजिखेड़ा में कृष्ण–लोहित एवं उत्तरी कृष्ण–मार्जित मृद्भांडों के मध्य–स्तरीय संचय में पाया गया। इसका प्रसार पश्चिम में सिंध, पूर्व में बिहार, उत्तर में पंजाब और दक्षिण में उज्जैन तक था। लाल महोदय ने इसे आर्य मृद्भांड कहा और महाभारत कालीन स्थानों में इसे सम्बद्ध बतलाया। संकलिया महोदय महभारत के स्थानों के साथ इसके सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं, परन्तु इसे आर्य मृद्भांड न कहकर इतिहास काल के आरंभ का मृद्भांड स्वीकार करते हैं।

गंगा घाटी की दूसरी प्रशस्त मृद्भांड संस्कृति उत्तरी कृष्ण–मार्जित की सी014 तिथि 550–50 ई0 पू0 निर्धारित की गई है। यह मृदभांड हस्तिनापुर में चित्रित धूसर के उत्तरकालीन संचय में पाया गया, परन्तु कहीं–कहीं दोनों समकालीन संख्य में पाये गये। स्तरीय क्रम तथा सी0 तिथि, दोनों के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि उत्तरी कृष्ण–मार्जित मृद्भांड के साथ चित्रित धूसर मृद्भांड का प्रचलन कुछ समय तक जारी रहा था। उत्तरी कृष्ण–मार्जित मृदभंडार का प्रसार क्षेत्र विस्तृत है यह उत्तर में तक्षशिला, पूर्व में तामलुक और दक्षिण में अमरावती तक पाया गया और यह पूर्णतः इतिहासकालीन मृद्भांड है।

चित्रित धूसर तथा उत्तरी कृष्ण–मार्जित, इन दोनों प्रमुख मृद्भांडों का निर्माण समान उत्तम प्रकार की गंगा घाटी की मिट्टी से किया जाता था। दोनों में आकार–साम्य भी पाया गया और दोनों चित्रित है। परन्तु जहाँ उत्तरी कृष्ण–मार्जित मृद्भांड मार्जित होने चमकदार हैं, चित्रित धूसर मृद्भांड का उद्भव गंगा घाटी का पश्चिमी क्षेत्र था, परन्तु उत्तरी कृष्ण–मार्जित का पूर्वोत्तर भारत। इसमें संदेह नहीं कि दोनों मृद्भांड का रंग उसके पकाने की विधि का परिणाम है। धूसर मृद्भांड आर्य संस्कृति की देन है और उत्तरी कृष्ण–मार्जित पूर्णतः इतिहासकालीन है, पर चित्रित धूसर का उद्भव आदितिहासकाल में हुआ यद्यपि इसका प्रचलन इतिहासकाल तक जारी रहा।

इस प्रकार ऊपरी गंगा घाटी में विकसित संस्कृतियों का अब तक उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर निम्नक्रम निर्धारित होगा– हड़प्पा संस्कृति– गेरू मृद्भांड संस्कृति–कृष्ण–लोहित मृद्भांड संस्कृति – चित्रित धूसर मृदभांड संस्कृति, उत्तरी कृष्ण–मार्जित मृदभांड संस्कृति। परन्तु इन संस्कृतियों का विकास इस रूप में नहीं हुआ कि एक के आविर्भाव के फलस्वरूप दूसरे का लोप हो गया। इनमें काफी समय तक सह–अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं, जैसे– आलमगीरपुर में कृष्ण–लोहित और चित्रित–धूसर मृद्भांड तथा अंतरजिखेड़ा और नोह में चित्रित धूसर एवं कृष्ण–मार्जित मृद्भांड के सह–अस्तित्व के साक्ष्य। श्रावस्ती, बैराट, उज्जैन और कयथा में उत्तरी कृष्ण–मार्जित मृद्भांड के साथ कुछ चित्रित धूसर मृद्भांड के ठीकरें पाये गये।

इस प्रकार हड़प्पा संस्कृति के अवसान से लेकर ऐतिहासिक काल के आरंभ तक का एक मोटी–मोटी विवरण प्रस्तुत होता है, यद्यपि यह सर्वथा पूर्ण नहीं है।

fu"d"k %

जहाँ तक हड़प्पोत्तर कालीन पश्चिम भारत का सम्बन्ध है, रंगपुर, सोमनाथ तथा कई छोटे स्थानों में उपलब्ध साक्ष्य संस्कृति परिवर्तन के घोतक है। लोथल के ऊपरी स्तरों (लोथल–बी) की वस्तुओं से हड़प्पा संस्कृति के क्रमिक रूपान्तरण के संकेत मिलते हैं। सुरकोतदा (आई0सी0) में श्वेत–चित्रित कृष्ण–लोहित संस्कृति के साथ हड़प्पा संस्कृति के अस्तित्व का साक्ष्य उपलब्ध है। यह कहना उपयुक्त नहीं होगा कि इस संस्कृति का अन्त बलात् एवं अकस्मात् हुआ। यदि ऐसा होता तो उत्तरकालीन संस्कृति में हड़प्पाई तत्वों का सर्वथा अभाव पाया जाता। कई कारणों से जिनमें प्राकृतिक और मानवीय सम्मिलित माने जायेंगें इसका तीव्र गति से ह्रास हुआ। अपने अवसान के पश्चात् लम्बी अवधि तक सिंधु, सौराष्ट्र और पंजाब के मृद्भांड में इसने अपना अस्तित्व बनाए रखा, यधपि यह मृद्भांड पूर्वावेक्षा घटिया है।

lUnHkZ %

1. एनशियेंट इण्डिया, नं0–5–सेमिनार ऑन ओ0सी0पी0 एण्ड एन0बी0पी.
2. अम्बखेड़ी और बहादराबाद के गेरू मृद्भांड संस्कृति उपकरणों तथा बाड़ा, रूपंड़ और आलमगीरपुर के हड़प्पाई सामग्री में सादृश्य परिलक्षित होता है। बरगाँव और आलमगीरपुर में गेरू और हड़प्पाई दोनों मृद्भांड पाये गये।
3. ऊष्मिक दीप्ति विधि से निर्धारित गेरू मृद्भांड संस्कृति के कुछ स्थानों की तिथियाँ इस प्रकार हैं :–
   लाल किला– 1880 ई पू0,
   झिनझन – 2070 ई0 पू0
   अतरंजिखेड़ा – 1690 ई0 पू0
   नसीरपुर –1340 ई0 पू0।
   ये तिथियाँ आर्क्योलॉजिकल लेबोरेटरी, ऑक्सफोर्ड द्वारा निर्धारित हैं।
4. राजपुर परसु, बिसौली, बहादराबाद, नसीरपुर इत्यादि गेरू मुद्भांड संस्कृति स्थलों से ताम्रायुध पाये गये यद्यपि गेरू मृद्भांड के साथ उनकी सम्बद्धता का स्तरीय प्रमाण नहीं मिला।
5. राजस्थान के बनास घाटी के अहाड़, गिलुंड इत्यादि ताम्राश्म स्थल तथा दक्कन के कयथा, नेवासा, नवदाटोली इत्यादि।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 259-260

iwoZe/;dky Hkkjr esa 'kknksa ds ifr 0;ogkj ds fo'ks"k lanHkZ esa

MkW0 mes'k izlkn jtd*

समय और परिस्थिति के अनुसार भारतीय समाज में अनेक प्रकार के शूद्र हो जाया करते थे। कौटिल्य ने ऐसे अनेक प्रकार के शूद्रों का उल्लेख किया है जो अपनी कठिनाईयों और मजबूरियों के कारण दास बन जाते थे –

1. आत्मविक्रयी (जो परिस्थितिवश अपने को बेचकर दासता स्वीकार करते थे।)
2. उदर–दास (जो अपना पेट पालने के लिए अपने को बेच देते थे)
3. प्रक्षेपानुरूप दास (जो अपने आप को बंधक रखकर धन लेते थे)
4. दण्डप्रणीत दास (जो राज्य द्वारा अर्थदंड से दंडित होने पर होते थे)
5. ध्वजाहृत दास (जो युद्ध में बन्दी होने के कारण दासता स्वीकार करते थे)
6. दाय भाग में प्राप्त दास (जो दास दाय भाग के कारण दूसरे के दास हो जाते थे)
7. गर्भवती दासी से उत्पन्न दास।

प्रायः यह सेवकों के स्वामियों की प्रकृति और व्यवहार पर निर्भर करता था कि वे स्वभाव और हृदस से कैसे है। तदनुरूप ही वे अपने दासों के साथ व्यवहार करते थे। वस्तुतः दासों के प्रति उनका व्यवहार, उनकी प्रकृति की कठोरता अथवा निर्मलता पर ही निर्भर करता था। कभी–कभी स्वामियों की अमानवीय बर्बरता और कटुता के वे शिकार होते थे तथा छोटे से अपराध के लिए भी उन्हें प्रताड़ना और शारीरिक दंड भुगतना पड़ता था, अथवा इसके विपरीत कभी–कभी अपने स्वामियों की दयालुता, मानवाता और सहृदयता के कारण वे सहज और स्वाभाविक जीवन व्यतीत करते थे। भारतीय साहित्य में दासों के प्रति होने वाले ऐसे अच्छे और बुरे अनेक प्रकार के व्यवहारों के द्रष्टान्त अल्लिखित है, जिनसे उनके जीवन पर प्रकाश पड़ता है। जातकों में दासों के विभिन्न जीवन से संबंधित अनेकानेक उल्लेख मिलते है। एक जातक में अल्लिखित है कि एक दासी प्रतिदिन मजदूरी करने जाती थी, किंतु दुर्भाग्यवश एक दिन की मजदूरी धन नहीं ले आई तो वह अपने स्वामी और स्वामी–पत्नी द्वारा गष्ह के द्वार पर ही धकेल दी गई तथा रस्सियों द्वारा प्रहारित की गई। एक अन्य जातक में विवदित है कि एक दास अपने भाग्य का सर्वदा स्मरण किया करता था तथा यह मनाया करता था कि कही उसका भाग्य साथ ना छोड़ दे और वह अपने स्वामी द्वारा भाण्डागारिक जैसे पद से हटा न दिया जाए। वह सर्वदा अपने मन में अपने स्वामी को कठोर व्यवहार को लेकर इस प्रकार की आशंका किया करता था।

''क्या ये हमें भाण्डागारिक बनाए रखेगें? बंदी बना लेंगे, मेरी देह को दागेंगे और दासों जैसा भोजन देंगे।'' तक्क जातक की कथा से विदित होता है कि वाराणसी की एक श्रेष्ठी–कन्या अपने दासों को अत्यन्त निर्ममता और क्रूरता–पूर्वक पीरा करती थी। बेस्सन्तर जातक के अनुसार एक ब्राह्मण स्वामी अपने दास और दासियों को अतिशय कष्ट दिया करता था। उसके विषय मे ंकहा गया है कि बेस्सन्तर नामक नृप न जब उस ब्राह्मण को दान में अपने पुत्र और पुत्री को प्रदान किया तक वह अपने हाथ में डंडा लेकर उन दोनों के हाथों को लात से आबाध्य कर खींचता हुआ अपने गष्ह की ओर चला। उसका घर बहुत दूर था, इसलिए रास्त में जब रात होती थी तब वह उन दोनों को पेड़ के तनों से बांध देता था, और स्वयं जंगली जंतुओ के भय से पेड़ पर चढ़ जाता था। अंगुत्तर निकाय के एक संदर्भ से विदित होता

*U.R.S., प्राचीन भारतीय एवं एशियाई, अध्ययन विभाग, म०वि०वि०, बोधगया

है कि एक हृदयहीन और क्रूर स्वामी के दंड से दास–दासियाँ सर्वदा डरा करती थी और वे अश्रुपूरित नेत्रों से रोआ करती थी।

इन विवरणों से स्पष्ट है कि समाज में ऐसे अनेक क्रूर और निर्मम गृहस्वामी थे जो अपनी दास–दासियों के साथ अमानवीय व्यवहार किया करते थे और उन्हें आयदिन प्रताड़ित किया करते थे। वैसे, मनु जैसे स्मृतिकारों ने भी दासों के अपराध करने पर ''रज्जु'' (रस्सी) अथवा ''वेणुदल'' (बांस की छड़ी) से पीटने की बात कही है।

lUnHkZ %

1. ग्यारवी शदी का भारत पृ० 119
2. द स्ट्रगल फार एँपायर पृ० 475
3. मनु स्मृति पृ० 67, 121, 156
4. कृत्य कल्प तरू गृहस्थ पृ० 427

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 261-265

çk0 j ,o çk0 xndj —r lLdj.kk dk vfHkKku'kkdUrye 0;k[;k&fookn dh leh{kk

Mk0 cky—".k 'kek*

^^dk0;"k ukVd jE; r= jE;k 'kdUryk ^^

अर्थात् काव्यों में नाटक रम्य होते हैं, उनमें भी अभिज्ञानशाकुन्तल रम्य है। यह रमणीयता के कारण ही संस्कृत साहित्य का ही नहीं, बल्कि विश्वसाहित्य का सर्वोत्कृष्ट नाटक है। इसकी रमणीयता ने देश–विदेश के मानव हृदय पर अपनी अमिटछाप डाली है। इसलिए विद्वज्जनों ने कहा है कि–

^^dkfynkl L; loLoe vfHkKku'kkdUryeA^^

अर्थात् कवि कुल गुरु महाकवि कालिदास का सर्वस्व अभिज्ञानशाकुन्तलम् है। विभिन्न विद्वज्जनों ने इसकी सरस एवं सरल टीकायें लिखी और विभिन्न भाषाओं में इसके अनुवाद किए। उन्होनें कवि की काव्य प्रतिभा के सौन्दर्योन्मूलन के लिए साहित्यिक अनुशीलन किया। कवि की भावनाओं को समझा और अन्ततोगत्वा यह मान्य किया कि कालिदास ने एक–एक शब्द, एक–एक वाक्य बड़ी सावधानी पूर्वक एवं कलात्मक सोद्देश्यता से नियोजित किया है।[1] फिर भी अभिज्ञानशाकुन्तलम् के जो विभिन्न संस्करण विद्वज्जनों के समक्ष आये, उनमें कुछ शास्त्रार्थ एवं विवाद हुए। जिनमें प्रमुख रूप से मोनियर विलियम्स, प्रो॰ रे, प्रो॰ गदकर, प्रो॰ काले राधवभट्ट आदि उल्लेखनीय हैं। यहाँ पर प्रो॰ रे, एवं प्रो॰ गदकर कृत संस्करणों की अभिज्ञानशाकुन्तलव्याख्या– विवाद की समीक्षा संक्षेप में प्रस्तुत है।

प्रो॰ शारदा रंजन रे बंगाल के प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान थे। जिनके कारण ही अभिज्ञानशाकुन्तलम् बंगाल में अत्यन्त प्रचलित हुआ। प्रो॰ रे ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् नामकरण की व्युत्पत्ति में लिखा है–

अभिज्ञायते अनेन इति अभिज्ञानम् (करणाधिकरणयोश्च सूत्र से करण के अर्थ में ल्युट्–अभि+ज्ञा+ल्युट्= अभिज्ञान (अंगूठी) शकुन्तलम् अधिकृत्य कृतं नाटकं शाकुन्तलम् (अधिकृत्य कृते ग्रंथे– सूत्र से अण्– शकुन्तला+अण्= शकुन्तल (शकुन्तला विषयक) अभिज्ञानप्रधानं शाकुन्तलम् अभिज्ञानशाकुन्तलम् (मध्यमपदलोपी समास) अर्थ होगा– अभिज्ञान (अंगूठी) वर्णन प्रधान शकुन्तला विषयक नाटक।

प्रो॰ रे के अतिरिक्त प्रो॰ गद्कर एवं अन्य विद्वान् उपर्युक्त नामकरण के विषय में विभिन्न मत रखते हैं। उनके अनुसार –अभिज्ञानेनस्मृता शकुन्तला अस्ति अस्य तत् नाटकम्–अभिज्ञानशाकुन्तलम्। 'अर्श आदिभ्योश्च' सूत्र से अच् प्रत्यय होकर अभिज्ञानशाकुन्तलम् नामकरण सिद्ध हुआ है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्रथम अंक के नान्दीपाठ के विषय में प्रो॰ रे का मत है कि कालिदास ने बौद्ध प्रभाव के ह्रास तथा ब्राह्मण प्रभाव के उद्भव हेतु अष्टपदात्मिका नान्दी पाठ किया है। जिसमें उन्होंने देववाद के विरोधी समय के कारण शंकर की अमूर्त अष्टमूर्ति की कल्पना की है।[2]जबकि प्रो॰ गद्कर एवं अन्य विद्वानों का मत है कि कालिदास ने ऐसा कहीं भी प्रयास नहीं किया है। कालिदास की दृष्टि में समस्त संसार परमेश्वर का स्वरूप है और प्रत्यक्ष है। यही प्रत्यक्ष अष्टमूर्तियाँ (1) जल, (2) अग्नि, (3) यजमान, (4) सूर्य, (5) चन्द्र, (6) आकाश, (7) पृथ्वी, (8) वायु रूप हैं। इसमें आकाश को शब्द एवं वायु को स्पर्श द्वारा प्रत्यक्ष रूप मानते हैं। वे भगवान् शिव की विभु एवं सर्वशक्तिमान प्रतिभा की धारण ब्रह्माण्डव्यापी मानते हैं। यही कारण है कि उन्होंने अपने सभी नाटकों में भगवान् शंकर की विशद् प्रशंसा की है।

*अतिथि शिक्षक, साहित्य, राजकुमारी गणेश शर्मा संस्कृत विद्यापीठ, कोलहन्टा पटोरी, दरभंगा (बिहार)

प्रो॰ रे एवं प्रो॰ गद्कर की व्याख्याओं में कहीं–कहीं पर बड़ी भिन्नता मिलती है। वे दोनों व्यर्थ के विवाद में पड़कर विचित्र व्याख्यायें प्रस्तुत करते हैं। प्रथम अंक के द्वितीय छन्द[3] मे प्रो॰ रे बलवत् को चेतः का विशेषण कहते हैं। जबकि प्रो॰ गद्कर इसे शिक्षितानाम् का क्रियाविशेषण कहते हैं। प्रो॰ गदकर विशेष शिक्षितों का भी अन्तःकरण तथा प्रो॰ रे शिक्षितों का सुदृढ़ अन्तःकरण भी अर्थ कहते हैं। प्रथम अंक के चतुर्थ छन्द[4] में नटी के गायन पर प्रो॰ रे एवं प्रो॰ गदकर का ' शिरीषकुसुमानि एवं दयमानाः सम्बन्धी विवाद है। इसमें प्रो॰ रे के अनुसार कालिदास ने शिरीष पुष्प में शकुन्तला और भ्रमर में दुष्यन्त का संकेत अन्तर्निहित कर दिया है। साथ ही कवि ने इसमें नाटकीय कथा का संकेत भी दिया है। जबकि प्रो॰ गदकर इसको उचित नहीं मानते हैं। वे यहाँ इनका प्रयोग अनुचित बताते हैं। यदि हमें अन्य विद्वानों की समीक्षा करें तो पाते हैं कि प्रो॰ रे एवं प्रो0 गदकर का 'शिरीषकुसुमानि–दयमानाः" सम्बन्धी विवाद उचित नहीं है। क्योंकि भ्रमर और स्त्रियाँ दोनो अत्यन्त करूणा के साथ व्यवहार करते दिखाये गये हैं। वस्तुतः प्रमदा और दयमानाः दोनों शब्द यहाँ साभिप्राय है।

प्रथम अंक के पंचम छन्द[5] में सारंग शब्द पर दोनों विद्वानों में विवाद है। प्रो॰ रे द्वारा सारंग के माध्यम से सांरग=मृग और सारंग = मुनि को भावी घटनाओं के प्रति सूचित किया है। इसमें मुनि द्वारा (क्रोधी दुर्वासा ऋषि द्वारा) दुष्यन्त का शकुन्तला से बलात् दूर करना ध्वनित होता है। जबकि प्रो॰ गदकर आदि अन्य विद्वान सारंग –सारं अंग यस्य(पर रूप सन्धि करके) गीतरागेण सारङ्ग्ण मानकर नटी के द्वारा सारंङ्ग्राग गाया जाना स्वीकारते हैं। जब रथारूढ़ राजा दुष्यन्त मृगया को जाते हैं, तब वेगशाली रथ रूप में जुते हुए अश्वों को देखकर वे सारथि से कहते हैं कि यह घोड़े सूर्य और इन्द्र के अश्वों का भी अतिक्रमण कर रहे हैं।[6] इसमें प्रों॰ गदकर 'अतीतावर्तन्ते' पाठ सुन्दर नहीं मानते हैं और इसके स्थान पर'अतियत्ति' प्रयोग उचित मानते है। प्रथम अंक के 11वें छन्द [7] में जब दुष्यन्त हिरण का पीछा करते हुए जाते हैं, तो अचानक आश्रम के तपस्वी बीच में आकर कहते हैं कि हे राजन्! यह आश्रम का मृग है। इसे मत मारिये। यथोचित रूप से धनुष पर चढाये बाण को हटा लीजीए। इसमें 'तत् साधुकृतसंधानं प्रतिसंहर सायकम्' प्रो॰ गदकर साधु को संधान क्रिया के विशेषण के रूप में लेते हैं, जबकि प्रो॰ रे साधु को प्रतिसंहार के पहले रखते हैं। जब राजा धनुष से बाण को उतार लेता है तब तपस्वी राजा को बताता है कि हम समिधा संग्रह के लिए कुलपति कण्व के आश्रम से आये हैं–

o[kkul & jktu] lfenkgj.kk; çfLFkrko;eA[8]

यहाँ पर प्रो॰रे 'क्रियार्थोंपपदस्यsत्र कर्मणि स्थोनिनः' से समिदाहरणं कुर्तुम् और तादर्थ्यें चतुर्थी कहते हैं। किन्तु प्रो॰ गदकर 'समिधः आहर्तुमः' कहकर तुमुर्थाच्च भाववचनात् से चतुर्थी कहते हैं। अभि॰ ज्ञा॰ के द्वितीय अंक में राजा के आश्रम में पहुँचने पर विदूषक राजा से कहता है–

कृतं भवता निर्मक्षिकम्। साम्प्रतमेतस्यां पाद्पच्छायायांविरचित लता वितान

दर्शनीयाया मासने निषीद्तु भवान् यावदहमपि सुखसीनो भवामि।[9]विदूषक के प्राभूत भाषा का संस्कृतांशे यहाँ पर प्रो0 गद्कर का कहना है कि यह पाठ कालिदास के लिए उपयुक्त नहीं है। क्योंकि छाया पृथ्वी पर पड़ती है। वह वितान की भाँति शिर के ऊपर तनी नहीं रहती है। प्रो0 रे का कहना है कि प्रस्तुत दृश्य प्रातः कालीन है। उस समय पाद्पच्छाया का सन्दर्भ तर्क संगत नहीं है। इसमें सुखासीनः (सुखेन आसीन :– सुख+आस्+शानच्) पाठ दोनों (प्रो0 ए0 बी0 गजेन्द्रगदकर एवं प्रो0 शारदारंजन रे) की दृष्टि में सुन्दर है। राजा विदूषक से शकुन्तला विषयक प्रेम को व्यक्त करते हुए कहता है कि वह मेरे द्वारा सम्मुख देखने पर आँखे फेर लेती है और अन्य बात को लक्ष्य करके हँस देती है।[10]

vfHkeq[k ef; l âreh{kr gfl reU;fufeÙkÑrksn;eA

यहाँ पर प्रो0 गद्कर का कहना है कि "अन्यनिमित्तकृतोद्‌यम्" पद विन्यास शिथिल है। क्योंकि "अन्यनिमित्तम् अन्यनिमित्तोद्‌यम्" से ही पर्याप्त अर्थ निकल आता है। कृत जोड़ने की आवश्यकता नहीं थी। समीक्षा करे तो हम पाते हैं कि प्रो0 गद्कर का कथन समीचीन नहीं है। क्योंकि जब कवि किसी छन्द की रचना करता है तो वह वृत्त की पाद पूर्ति के लिए भी कुछ पदों का चयन करता है। यहाँ पर द्रुतविलम्वित वृत्त है। इसीलिए कवि ने पाद पूर्ति के लिए भी पद विन्यास किया है, भले ही उसका अर्थ

न हो। साथ ही अन्य निमित्तकृतोद्यम् से श्रृंगारलज्जा, उत्तमनायिकत्व एवं स्वानुराग द्योतन की ध्वनित होता है।[11] ईक्षण संवरण के साथ मन्दहसित होना कामभाव को प्रकट करने वाली शकुन्तला के मुग्धानायिका होने को भी व्यक्त कर देता है।

तृतीय अंक में कामपीड़िता शकुन्तला लताकुंजनिर्मितगृह में दोनों सखियाँ (प्रियम्वदा एवं अनुसूया) के साथ प्रवेश करती है। दोनों सखियों के कथन।[12]

सख्यौ–उपवीज्य सस्नेहम् हला शकुन्तले, अपि सुखयति ते नलिनी पत्रवातः।

अर्थात् दोनों सखियाँ– (स्नेह के साथ पंखा झलकर) सखी शकुन्तला, वचा कमलपत्र की वायु तुम्हें सुख दे रही है।

यहाँ पर प्रो0 रे "सुखायते" पाठ देते हैं किन्तु प्रो0 गदकर इसे अच्छा नहीं मानते हैं। क्योंकि "सुखादिश्यः कर्तृवेद्नायाम्" से सिद्ध यह रूप यही सम्यक अर्थ नहीं देता है। क्योंकि सुख इस नियम से यहाँ कर्म होता है। किन्तु प्रो0 रे–

"कर्तुः वयड़. सलोपश्च" से सुखायते सिद्ध करते हैं और सुख को कर्त्ता और उपमान कहते हैं। प्रो0 गदकर के मत में "सुखायते" पदच्छेद अधिक उचित है। डॉ0 त्रिपाठी एवं राधव आदि विद्वान् सुखयति पाठ ही स्वीकार करते हैं– सुखयति सुखं करोति। तत्करोति णिच्। अथवा सुख+मतुप्+णिच्+शतृ=सुखवन्तं करोति।

छठवें अङक में धीवर से अंगूठी मिलने पर सिपाहियों द्वारा पकड़ा गया वह अपनी जीविका के बारे में बताता है। कोतवाल मुस्कुराते हुए कहता है कि तुम्हारी जीविका तो बहुत शुद्ध है। धीवर–कथन।[13]दृष्टव्य है।

Lkgt fdy ;nfofufUnr u [ky rRdeZ foo tZuh;eA
Ik'kekj.kdeZnk:.kkuqdEikeZnqjo Jkf=;%AA

अर्थात् निन्दनीय भी जो कार्य प्राकृतिक (परम्परागत) है उसे नहीं त्यागना चाहिए। (यज्ञों में) पशुवध रूप (कठोर) कर्म से निष्ठुर वेद–ज्ञानी ब्राह्मण (श्रोत्रिय) वास्तव में कृपाआर्द्रहृदय वाला होता है। यहाँ पर प्रो0 रे का कथन है कि प्रस्तुत पद्य वैदिक कर्मकाण्ड के समर्थन में तथा बौद्धधर्म के प्रत्युत्तर में है। क्योंकि बुद्ध यज्ञीयहिंसा के निन्दक थे। यहाँ पर विभिन्न विद्वानों का मत है कि प्रो0 रे का कथन ठीक नहीं है क्योंकि कालिदास ने ऐसा कहीं भी प्रयास नहीं किया है और यदि वे ऐसा प्रयास करते भी तो धीवर के मुख से ब्राह्मण धर्म प्रतिपादन को लक्ष्य नहीं बनाते। वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था के समर्थक कालिदास ने प्रस्तुत पद्य में श्रुतियों, स्मृतियों और धार्मिक ग्रंथों का अनुकरण किया है। गीता में दृष्टव्य है–

lgt deZ dkSUr; lnks'kHkfi u R;tsrA
LokjEHkk% fg nks'ks.k /kseukfXu fjokoZrk%AA[14]
J;kULo/keksZ foxq.k% ij/kekZRLouqf"BrkrA
Lo/keZ fu/ku J;% ij/keksZ Hk;kog%AA[15]

छठवें अंक में दुष्यन्त की विरहजन्यकृशता का उल्लेख करते हुए कंचुकी कहता है कि शकुन्तला से विमुक्त होने पर भी इनकी आकृति सौन्दर्ययुक्त है।[16]

iR;kfn'V fo'k"ke.Mufof/kokZe iZdk"Bkfir
foHkRdkpuedeooy; 'okl kijDrk/kj%A
fpUrktkxj.k irkUru;uLrstkxq.kknkReu%
lLdkjkfYyf[krk egkef.kfjo{kh.kkfi uky{;rAA vfHk0 'kk0 6@6

अर्थात् राजा दुष्यन्त ने विशेष–प्रकार के अलंकार धारण करना बन्द कर दिया है, बायीं भुजा में एक ही सोने का कंगन धारण किए हुए है, उनके होंठ (उष्ण) श्वांसों से अधिक रक्तवर्ण के हो गये हैं। चिन्तावश (रात्रिभर) जागरण के कारण उनकी आंखे बहुत अलसायी हो रही है, कसौटी पर कसे गये बहुमूल्य मणि के समान दुर्बल होने पर भी वे अपने तेज गुण के कारण (कृश) नहीं दिखायी दे रहे हैं। इस पद्य में प्रो0 गदकर "उपरक्ताधरः के स्थान पर" अपरक्ताधरः" पाठ उचित मानते हैं। जबकि प्रो0 रे यहाँ पर "उपरक्ताधरः" पाठ ही उचित मानते हैं। इसी तरह "प्रतान्तनयनः" के स्थान पर प्रो0 गदकर "प्रताम्रनयनः"

स्वीकारते हैं। क्योंकि रात्रि जागरण के कारण आँखे लाल हो जाती हैं। जबकि अन्य विद्वान् प्रतान्तनयवः भी उचित मानते हैं। क्योंकि रात्रिजागरण से आँखें अलसा जाती हैं। इसलिए यहाँ पर दोनों का विवाद अनुचित है। सातवें अङ्क में मारीचऋृषि के आश्रम में दुष्यन्त पुत्र (भरत) सिंह के बच्चें से खेलता है। राजा पास जाकर कहता है।[17]

,oekJefo:)ofÙkuk l;e% fdfefr tUerLRo;kA
lÙo;J;l[kkfi n'';r Ñ".kl if'k'kuo pUnueAA

अर्थात् इस भांति आश्रमविरूद्ध व्यवहार से तुम जन्म से ही प्राणियों को अभय दान देने से सुखमय भी संयम को, काले नाग के बच्चे के द्वारा चन्दन वृक्ष की भाँति , क्यों कलंकित कर रहे हो ?

यहाँ पर प्रो0 रे और प्रो0 गदकर में बड़ा विवाद है। प्रो0 रे जन्मतः के स्थान पर जन्मनः पाठ मानते हैं।

जन्मतः जायते अस्मात् इति जन्म। यम्+मनिन् (अपादाने)+तस् (अपादाने)

जन्मनः पाठ स्वीकार करने पर शेषे षष्ठी से षष्ठी मानते हैं।

सातवें अङ्क में ही जब (दुष्यन्त और शकुन्तला का मिलन होता है तो राजा शकुन्तला के पैरों पर गिर पड़ता है। शकुन्तला के उठाने पर राजा का कथन[18]

ekgkUe;k lru ioeif{krLr ;k ok"ifcUnj/kj ifjck/keku%A
r rkonkdfVyi{efoyXue?k] ok"i iHkT; foxrku'k;k Hko;eAA

अर्थात् हे सुन्दरि। जो अक्षुविन्दु तेरे अधरों को पीड़ित करते हुए मेरे द्वारा अज्ञानवश पहले उपेक्षित किये गये थे, कुछ तिरछी पलक पर लगे हुए उन्हीं अश्रुबिन्दुओं को पोंछकर अनुतापविहीन हो जाउँगा।

यहाँ पर श्री प्रो0 रे एवं प्रो0 गदकर में विवाद है। प्रस्तुत पद्य में प्रो0 रे दो बार वाष्प पद के आ जाने को सुन्दर पाठ नहीं मानते हैं। वे वाष के स्थान पर अन्तिमचरण में "कान्ते" पाठ स्वीकारते हैं। जबकि प्रो0 गदकर एवं काले महोदय "वाष्पविन्दु" की जगह बद्धविन्दु पाठ सुन्दर मानते हैं। इसमें राघव आदि विद्वान् वाष्प को दो बार आना अनुचित पाठ नहीं मानते हैं। क्योंकि इस समय शकुन्तला के अश्रुप्रियजन मिलन से आनन्दजन्य है एवं पूर्व के अश्रु दुःखमार्जन के परिणाम स्वरूप है। इसलिए दोनों का विवाद् उचित नहीं है। इस प्रकार उपर्युक्त समीक्षा से ज्ञात होता है कि प्रो0 शारदा रंजन रे और प्रो0 ए0 बी0 गजेन्द्रगदकर कृत अभिज्ञानशाकुन्तलम् के संस्करणों में व्याख्या एवं पाठादि सम्बन्धी काफी विवाद् तथा शास्त्रार्थ है। किन्तु उन्होंने महाकवि कालिदास की मौलिक उद्भावनाओं को उद्धाटित कर यह सिद्ध किया है कि महाकवि ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में जिन आदर्शों को जीवन के सन्दर्भ में रखकर उद्घाटित किया है, वे आज भी मूलरूप में अपना महत्त्व अक्षुण्ण बनाये हुए हैं।

lUnHk %

1. महाकवि कालिदास, डॉ0 रामाशंकर तिवारी, पृ0 224
2. या सृष्टिः स्रष्टुराधा वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,
   ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
   यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यथा प्राणिनः प्राणवन्तः,
   प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।। (अभि0 शा0 1/1)
3. आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
   बलवद्पि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः।। (अभि0 शा0 1/2)
4. ईषदीषच्चुम्वितानि भ्रमरैः सुकुमारकेसरशिखानि।
   अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि।। (अभि0षा0 1/4)
5. तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसंभं हृतः।
   एष राजेव दुष्यन्तः सारेङ्गेणातिरंहसा।। (अभि0षा0 1/5)
6. राजा–सत्यम्। अतीत्य हरितो हरींश्च वर्तते वाजिनः।
   प्रथम अंक में 9 वें छन्द के पहले गद्यांश।

7. तत् साधुकृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम्।
   आर्त्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि।। (अभि0शा0 1/11)
8. अभि0शा0प्रथम अंक में छन्द 12 के बाद का गद्यांश।
9. (अभि0शा0 द्वितीय अङक में 7वें छन्द के बाद का गद्यांश।
10. अभिमुखे मयि संहृतमीक्षितं हसितमन्यनिमित्तकृतोदयम्।
    विनयवारितवृत्तिरतस्तया न विवृतो मदनो न च संवृतः।। (अभि0शा0 2/11)
11. डॉ0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, अभि0षा0, पृ0 231
12. अभि0शा0, तृ0 अङक छठवें छन्द के पूर्व का गद्याशं।
13. अभि0शा0 6/1
14. गीता 18/48
15. गीता 3/35
16. अभि0शा0 6/6
17. अभि0शा0 7/18
18. अभि0शा0 7/25

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 266-268

tEe&d'ehj e vkrdokn&'kkfUr ,o lj{kk e ck/kd

Mk0 vkykd jtu ;kno*

lkjk'k% *आतंकवाद आज सर्वाधिक ज्वलन्त अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है, इस अन्तर्राष्ट्रीय खतरे के प्रति सभी देश चिन्तित दिखायी दे रहे हैं। आज कोई भी देश ऐसा नहीं है, जहाँ पर आतंकवाद न पनप रहा हो, आतंकवाद प्रतिपल हमारे लिए संकट का वाहक और हमारे प्राणों का ग्राहक बना रहता है। कोई भी आतंकवादी संगठन केवल अपनी जन्मभूमि तक ही सीमित नहीं होता यह एक ऐसा जहरीला पौधा है जो पोषण के लिए अपनी जड़े निकटवर्ती देशों तथा राज्यों में फैलाता है। इससे समाज में असुरक्षा की भावना पनपती है और असमय मानव जीवन कालकवलित होता है। यह मानवाधिकार को ही प्रभावित नहीं करता बल्कि आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक सौहार्द एवं राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता को भी प्रभावित करता है।*

आतंकवाद का खूनी चेहरा आज पूरे विश्व के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। यह एक ऐसी समस्या है जिसकी नींव दबाव, हत्या, भय, अपहरण और उत्पीड़न पर आधारित है। इसके सामने नैतिक और मानवीय मूल्यों का कोई महत्व नहीं होता है, इसमें मासूम और निरपराध नागरिक मारे जाते हैं। आज आतंकवादियों का कार्य किसी गाँव या बस्ती के लोगों को गोलियों से भूनना, बैंकों को लूटना, विमानों का यात्रियों सहित अपरहण करना, वैयक्तिक एवं सार्वजनिक सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाना, युवकों को जबरदस्ती अपने संगठनों में शामिल करके उनसे नृशंस हत्याएं करवाना, हथियारों और नशीली दवाओं की तस्करी करना तथा पुलिस और सैनिक, चौकियों पर अचानक हमला करके प्रशासनिक व्यवस्था को कमजोर बनाना होता है। ये अपने तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति के लिए देश की एकता और अखण्डता को नष्ट कर अपने लिए पृथक राज्य बनाने की बात करने लगे हैं, और अपनी माँगों को मनवाने के लिए आतंक का सहारा लेने लगे हैं। दबाव, हत्या और भय के द्वारा अपनी माँगों को मनवाना ही आतंकवाद है।

भारत में आतंकवाद बढ़ने के कई कारण हैं। इस्लामिक आतंकवाद पिछले कुछ दशकों से भारत तथा पूरे संसार में होने वाली आतंकवादी घटनाओं का मुख्य कारण रहा है। कुछ कट्टर इस्लामी संस्थाओं ने हमारे देश के कई नौजवानों को गुमराह कर आतंकवाद की राह पर धकेल दिया। उन्हें धर्म के नाम पर भड़काया जाता है। आतंकवाद के कार्य को अल्लाह का कार्य बताया जाता है। धार्मिक उन्माद के बाद भारत में आतंकवादी घटनाओं का एक बड़ा कारण रहा है। भारत से अलग होकर अलग देश बनाने की माँग। कश्मीर में काफी समय से यह माँग चल रही है। पंजाब में अलग खालिस्तान बनाने की माँग काफी जोरों शोरों से उठी थी। देश के उत्तरी–पूर्वी राज्यों में यह माँग कई बार उठी। यद्यपि इन माँगों को भी व्यापक जनसमर्थन नहीं मिला। इससे हताश होकर कुछ संगठनों ने आतंकवाद का रास्ता चुना। इन्हें आई0एस0आई0 संगठन से संरक्षण मिला, इससे कश्मीर, पंजाब और भारत के उत्तर–पूर्वी राज्यों में आतंकवादी घटनाएं बढ़ने लगी। पंजाब और उत्तर–पूर्वी में तो अब काफी शान्ति है, लेकिन कश्मीर इस आतंकवाद की आग में आज भी जल रहा है।

सुरम्य स्थली कश्मीर धरती पर प्रकृति का सम्पूर्ण सौन्दर्य संजोए हुए स्वर्ग समान यह पुण्य धरा, देवस्थली, तप और साधना है। विद्या, कला, साहित्य, संस्कृति की अनमोल धरोधर को यह सदियों से अपने आंचल में संजोए हुए गगन से बातें करती गगनचुम्बी, हिमखण्डित शैल शिखाएँ हैं। गले का रजत

*प्रवक्ता, राजनीति शास्त्र, ठा0 मातिवर सिंह महाविद्यालय जमालापुर, जौनपुर (उ0प्र0)

हार बनकर अमृत बहाने वाली नदियाँ, झीलें एवं सरोवर है। विशाल हरे–भरे खेत, खलिहान, मैदान इसकी प्राकृतिक सम्पदा का गौरव गान करते हैं। घने जंगलों की अनुपम छंटा, अनेकानेक प्रकार की बहुमूल्य वनस्पति तथा खनिज पदार्थ की उपलब्धता तथा नित सूर्य गगन के उज्जवल मस्तक पर यहाँ का केसर उसका तिलक करता है। कभी शान्त एवं पर्यटकों को आकर्षित करने वाली कश्मीर घाटी आज आतंकवाद से ग्रसित हो गयी है। कश्मीर समस्या के आन्तरिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय पहलुओं ने उसे और भी ज्वलन्त कर दिया है। तनाव की यह स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में भारत एवं पाकिस्तान के रिश्तों को प्रभावित किया है।

जम्मू–कश्मीर भारत का एक ऐसा राज्य है जो स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात से ही विवाद का विषय रहा है। जम्मू–कश्मीर में आतंकवाद का मुख्य कारण कश्मीर को लेकर उलझी हुई राजनीतिक गुत्थी है। यह अत्यन्त चिन्ता का विषय है कि कश्मीर में पाकिस्तान द्वारा निरन्तर आतंकवाद को फैलाया जा रहा है। पाकिस्तानी घुसपैठियों की घुसपैठ लगातार जारी है। हलाँकि स्वतंत्रता के बाद से ही दोनों के मध्य लगातार तनाव, घुसपैठ, आर्थिक नाकेबन्दी, समय–समय पर युद्ध, झड़प और सैद्धान्तिक व राजनैतिक संघर्ष जारी है। जम्मू–कश्मीर को पाकिस्तान द्वारा अपने राज्य में मिलाने के दुराशय से भारत एवं पाकिस्तान के बीच निरन्तर 1947, 1965, 1971 तथा 1999 ई0 में युद्ध हुए तथा पाकिस्तान द्वारा अनवरत आतंकवादी षड्यंत्र जारी रहे।

d'ehj ?kkVh esa lapkfyr fofo/k vkradoknh laxBu % हिंसात्मक गतिविधियों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से निरन्तर पाकिस्तान द्वारा विविध आतंकवादी संगठनों का गठन किया गया। इन आतंकवादी संगठनों के गठन का मुख्य उद्देश्य जम्मू–कश्मीर के सम्पूर्ण जनमानस को अव्यवस्थित करना है। वर्तमान समय में कश्मीर घाटी में संचालित विविध आतंकवादी संगठन इस प्रकार हैं– कश्मीर स्टूडेण्ट्स फोर्स, जनस्वातंन्त्य संगठन, तहकीके–जेहाद, पीपुल्स लींग, इन्कलाबी काउन्सिल, इस्लामिक–जम्हूरिए–कश्मीर, जम्मू–कश्मीर इन्कलाबी फ्रन्ट, विक्ट्री कमाण्डो फोर्स, जम्मू–कश्मीर लिब्रेशन संगठन, कश्मीर मुक्ति संगठन, इस्लामिक छात्र समूह, अलमहमूदी मिजाहूद्दीन, मुस्लिम स्टूडेण्ट फ्रन्ट, तहकीके आजादी, जिन्नाह लिब्रेशन टाइगर, हिज्ब–उल–जहीद, नेशनल मुस्लिम यूनाइटेड फ्रन्ट, इरव्वान–उल–मुसलमान, ऑल जम्मू एण्ड कश्मीर सोल्जर्स फील्ड फ्रन्ट, अल–बदर, छात्र मुक्ति मोर्चा, हिजबुल्लाह, अल खुमैनी, जम्मू–कश्मीर लिब्रेशन फ्रन्ट आदि अनेक संगठन आतंकवादी गतिविधियों को संचालित किये जाने के उद्देश्य से पाक द्वारा संचालित किये जा रहे हैं।

आतंकवादियों की अमानवीय एवं अमानसिक कृत्यों के कारण धरती का स्वर्ग कहा जाने वाला जम्मू–कश्मीर की स्थिति अब नरक में तब्दील हो गयी है, आतंकवाद के प्रभाव के कारण वहाँ का जनजीवन अस्त–व्यस्त हो गया है। चीख, सन्नाटा, उदासी और डोलती परछाईयाँ ही आज का जम्मू–कश्मीर है। हलाँकि आतंकवाद के खिलाफ वैश्विक स्तर पर सम्पूर्ण देश अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर एकजुट हो रहे हैं। भारत सरकार द्वारा भी आतंकवाद जैसी समस्याओं के समाधान के लिए अनेक प्रकार के कानूनों का निर्माण कर उसे लागू करने पर बल दिया जा रहा है। कश्मीर का आतंकवाद अशिक्षा, बेरोजगारी, गरीबी, पिछड़ापन, असंतुष्ट और नाराज कश्मीरियों का महज उग्र और हिंसक आन्दोलन नहीं है, अपितु पाकिस्तान द्वारा कुत्सित मानसिकता के अन्तर्गत कश्मीर से अलग करने का कुकृत्य है। इसलिए कठोर कदम उठाने की आवश्यकता है। सरकार के द्वारा इस मामले पर व्यापक नीति बनाना होगा तथा सुरक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ बनाना होगा ताकि प्रत्येक पहलू पर विचार हो सके, तभी देश की एकता और अखण्डता सुरक्षित रह सकती है।

भारत सरकार आतंकवाद से निपटने के लिए जम्मू–कश्मीर से लगने वाले अन्य प्रदेशों की सीमा पर गस्त तेज करने तथा अधिक संख्या में पुलिस चौकियाँ स्थापित की जाय ताकि आतंकवादी अन्य प्रदेशों में जाकर घिनौनी वारदातें न कर पाये। जम्मू–कश्मीर में आतंकवाद समाप्त करने के लिए स्थानीय प्रशासन, पुलिस प्रशासन, सेना एवं अर्द्धसैनिक बलों का आपस में समन्वय स्थापित करने की आवश्यकता है, जिससे पूरी शक्ति के साथ कार्य कर सकें। आतंकवाद का एक कारण निर्धनता और बेरोजगारी भी है। थोड़े से रूपयों के लालच में आकर देश के बेरोजगार और निर्धन व्यक्ति आतंकवादियों का साथ देने

से नहीं हिचकिचाते हैं। जम्मू–कश्मीर के नागरिकों की शिक्षा पर अधिक बल देने की आवश्यकता है ताकि वे शिक्षित होकर समाज की मुख्य धारा से जुड़ सकें। आतंकवाद को समाप्त करने के लिए राजनीतिक प्रक्रिया में नये प्राण फूंकने होंगे, उसका कायाकल्प करना होगा जिससे कि पुलिस कार्यवाही के साथ–साथ चल सके।

जम्मू–कश्मीर में आतंकवाद के कारण लाखों नागरिकों तथा सैनिकों ने प्राण गवाएँ हैं। अतः भारत को चाहिए कि आतंकवादी घटनाओं को रोकने के लिए कड़े कदम उठाये। आतंकवाद विरोधी कानूनों को दोबारा बनाने की जरूरत है ताकि आतंकवादियों से मुकाबला करके आतंकवाद को खत्म किया जा सके। सशस्त्र बलों का आधुनिकीकरण किया जाना चाहिए, गुप्तचर संस्थाओं को अधिक सक्रिय बनाने की आवश्यकता है। आतंकवादी संस्थाओं को जहाँ से पैसा और हथियार मिलता है, उन संस्थाओं पर सरकार द्वारा कठोर कार्यवाही की जानी चाहिए। इससे आतंकवाद की कमर टूट जायेगी। हमारी सरकार को देश में जितने भी राजनैतिक और सामाजिक संगठन हैं, उनसे बातचीत का रास्ता खुला रखना चाहिए।

जम्मू–कश्मीर को आतंकवाद की काली छाया ने पूरी तरह से ढक लिया है, वहाँ की सम्पूर्ण मानवता आतंकवाद का शिकार हो गयी है। अतः सरकार को चाहिए आतंकवाद के खिलाफ कठोर कार्यवाही करके वहाँ की अशक्त घाटी को पुनः कश्मीर बनाने का प्रयास करे। जम्मू–कश्मीर में भारत सरकार द्वारा आतंकवाद के विरुद्ध कूटनीतिक प्रयास शुरू कर दिया गया है। देश की एकता, अखण्डता व सम्प्रभुता की रक्षा के लिए व कश्मीरवादी में पुनः आम जनजीवन को पुष्पित व पल्लवित करने के उद्देश्य से सार्थक प्रयास किये जा रहे हैं। क्योंकि आतंकवाद से मुक्त हुए बिना जम्मू–कश्मीर में सुख, समृद्धि एवं शान्ति और विकास सम्भव नहीं है।

lUnHkZ %

1. विरेन्द्र कुमार गौड़, विश्व में आतंकवाद, सामयिक प्रकाशन जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई–दिल्ली प्रकाशन, 2004, पृ0 24
2. प्रो0 एम0एल0 गुप्ता, विमलेश गुप्ता, 'समाजशास्त्र' साहित्य पब्लिकेशन्स, नई–दिल्ली, पृ0 124
3. राम आहूजा, ''सामाजिक समस्याएं'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर–2014, पृ0 57
4. रवीन्द्र जुगरान, ''रक्त रंजित जम्मू–कश्मीर'' ज्ञान गंगा प्रकाशन नई–दिल्ली– 2009, पृ0 40
5. पन्त पुष्पेश, ''अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध'', मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ, 2004, पृ0 56
6. नन्दा के0के0 ''कश्मीर निरन्तर युद्ध के साये में'', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली–2001, पृ0 89

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 269-272

df"k mRiknu vkSj fdlku dY;k.k

MkW0 vej ukFk*

---

lkjka'k& *कृषि हमारी अर्थव्यवस्था का केन्द्र बिन्दु व आर्थिक जीवन की धुरी है। देश से गरीबी समाप्त करने एवं समावेशी वृद्धि के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कृषि कार्य को सतत विकास के साथ जोड़ना होगा। जिससे किसान की आय दुगना करने एवं खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में सहायता मिलेगी।*

कृषि ने मानव सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा किया है। औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व कुल जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषि एवं उससे सम्बन्धित क्रियाओं में संलग्न थी। कृषि हमारी अर्थव्यवस्था का केन्द्र बिन्दु व आर्थिक जीवन की धुरी है। वर्ष 1901 की जनगणना के अनुसार देश की कुल जनसंख्या 23.84 करोड़ थी, किन्तु देश के पास इतना खाद्यान्न नहीं था कि हर व्यक्ति का पेट भर सके। लगातार सूखे की स्थिति, राजनीतिक अस्थिरता एवं भुखमरी के कारण देश के नागरिकों के स्वास्थ्य की हालत और बिगड़ गयी। 1960 में देश में कुल खाद्यान्न उत्पादन बढ़कर 5 करोड़ टन हो गया, किन्तु देश की कुल जनसंख्या की तुलना में यह पर्याप्त नहीं था। खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि के लिए देश में 1958 में इण्डियन सोसाइटी आफ एग्रोनामी की स्थापना हुई, तब से कृषि विकास में तेजी आयी। अमेरिकी कृषि वैज्ञानिक डॉ0 नोरमन ई0 बोरलॉग एवं डॉ0 एम0एस0 स्वामीनाथन के विज्ञान एवं परिश्रम ने देश में हरित क्रान्ति को जन्म दिया जिससे न केवल खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि हुई वरन देश खाद्यान्न के उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया। हरित क्रान्ति के परिणामस्वरूप भारत धान एवं गेहूँ के उत्पादन में विश्व का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश हो गया है एवं वैश्विक स्तर पर 80 प्रतिशत कृषि उत्पादों के सबसे बड़े उत्पादकों में से एक है।

देश में जनसंख्या के एक बड़े वर्ग के लिए वर्तमान समय में भी खेती एक बड़ा व्यवसाय बना हुआ है। समय के साथ–साथ कृषि क्षेत्र में अनेक चुनौतियाँ उभर कर सामने आयी जिसमें प्रमुख रूप से उत्पादकता में कमी, कृषि उत्पादन लागत में वृद्धि और प्रति इकाई क्षेत्र में शुद्ध लाभ में कमी, घटता सीमान्त जोतों का आकार, भूमि का अपखण्डन एवं उपविभाजन एवं सिंचाई के साधनों की सुविधा की कमी आदि। ऐसी स्थिति में संसाधन कुशल सूचना और संचार प्रौद्योगिकी आधारित जलवायु अनुकूलता अपनाने एवं आधुनिक कृषि तकनीकी अपना कर कृषि उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है। उन्नत कृषि प्रणाली को अपना कर विशेष कर एकीकृत कृषि प्रणाली और प्राकृतिक, जैविक एवं न्यूनतम लागत वाली कृषि प्रणाली द्वारा लघु एवं सीमान्त जोतों वाले किसानों की आजीविका का आकर्षक साधन बन सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की आर्थिक स्तर में सुधार के लिए कृषि क्षेत्र के साथ सहयोगी क्षेत्र विशेष कर डेयरी, मुर्गी पालन, मत्स्य पालन, रेशम कीट पालन आदि पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

कृषि एवं सम्बन्धित क्षेत्र रोजगार एवं आजीविका की दृष्टि से लघु एवं सीमान्त किसानों के लिए सबसे महत्वपूर्ण है। देश में गरीबी समाप्त करने एवं समावेशी वृद्धि के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कृषि कार्य को सतत विकास के साथ जोड़ना होगा। कृषि के सतत विकास के लिए लघु एवं सीमान्त क्षेत्र की कृषि को संसाधनों की कुशलता के साथ जोड़ने की आवश्यकता है। साथ ही जलवायु परिवर्तन के अनुकूल कृषि, कुशल तकनीकी, सूचना एवं प्रौद्योगिकी के गहन प्रयोग द्वारा लघु एवं सीमान्त किसानों की आय को बढ़ाकर उन्हें आत्म निर्भर बनाया जा सकता है। किसानों की आय को दुगना करने एवं खाद्यान्न की पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए कृषि क्षेत्र में भारी बदलाव की जरूरत है।

---

*प्रवक्ता, अर्थशास्त्र, जनता इण्टर कॉलेज अम्बारी, आजमगढ़ (उ0प्र0)

भारत जैसे विकासशील देश में कृषि क्षेत्र एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था, आजीविका के अवसर उपलब्ध कराने, खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने, उद्योग एवं सेवा क्षेत्रों के विकास को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हालांकि विकास की प्रक्रिया में वर्तमान समय में अन्य बातों के साथ–साथ सकल मूल्य संवर्धन में कृषि के हिस्से में दिन, प्रतिदिन कमी होने के बावजूद भी रोजगार, आजीविका, खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण बना हुआ है, क्योंकि यह क्षेत्र 2011 की जनगणना के अनुसार लगभग 54.6 प्रतिशत जनसंख्या और वर्ष 2019–20 में देश के सकल मूल्य संवर्धन में इसकी भागीदारी 16.5 प्रतिशत रही है (वर्तमान मूल्य पर)। गत पाँच वर्षों में चालू मूल्यों पर कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों का देश के कुल जी0वी0ए0 में भागीदारी का विवरण इस प्रकार हैः–

df"k ,oa lEc) {ks=ksa esa th0oh0,0 rFkk mldh Hkkxhnkjh izfr'kr

¼djksM+ :0 esa½

क्षेत्र	वर्ष					
	2014–15	2015–16	2016–17	2017–18	2018–19	2019–20
कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों का जी0वी0ए0	2093612	2227533	2496358	2670147	2775852	3047187
कुल जी0वी0ए0 की प्रतिशतता	18.2%	17.7%	17.9%	17.2%	16.1%	16.5%

L=ksr& केन्द्रीय सांख्यिकी कार्यालय, सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय भारत सरकार।

1. 31 जनवरी 2019 को जारी वर्ष 2017–18 के लिए राष्ट्रीय आय, उपभोग व्यय, बचत और पूँजी निर्माण के प्रथम संशोधित अनुमानों के अनुसार।
2. 31 मई 2019 को सी0एस0ओ0 द्वारा जारी राष्ट्रीय आय वर्ष 2018–19 के दूसरे अग्रिम अनुमान के सम्बन्ध में।
3. 07 जनवरी 2020 को सी0एस0ओ0 द्वारा जारी राष्ट्रीय आय 2019–20 के अग्रिम अनुमानों के अनुसार।

देश के सकल जी0वी0ए0 में कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों में अनवरत कमी आयी है। वर्ष 2014–15 में 18.2 प्रतिशत थी जो वर्ष 2019–20 में घटकर 16.5 प्रतिशत रह गयी। अर्थव्यवस्था के तेजी से बढ़ने तथा ढाँचागत परिवर्तन के कारण कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र की जी0वी0ए0 में कम भागीदारी संभावित थी।

भारत में कृषि क्षेत्र वृद्धि की दृष्टि से चक्रीय गति से गुजरता है। कृषि एवं सहयोगी क्षेत्र की वास्तविक वृद्धि दर 2014–15 से 2018–19 में लगभग 2.88 प्रतिशत थी। जहाँ पर इसी अवधि में पशुपालन एवं वानिकी क्षेत्र में उतार–चढ़ाव भरा रहा है, वहीं पर मत्स्य क्षेत्र में वर्ष 2012–13 में 4.9 प्रतिशत से बढ़कर 2017–18 में 11.9 प्रतिशत हो गया।

केन्द्र सरकार वर्ष 2022 तक किसानों की आय को दुगना करने का लक्ष्य निर्धारित किया है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक कार्य नीति पर काम कर रही है। आय में वृद्धि के मुख्य स्त्रोतों की पहचान कर उसे क्रियान्वयन कर रही है। इसके लिए फसल और पशुधन उत्पादकता में सुधार, उत्पादन की लागत में पर्याप्त संसाधनों का उपयोग अथवा बचत, फसल की सघनता में वृद्धि, उच्च मूल्य वाली फसलों को बढ़ावा देना, किसानों द्वारा प्राप्त उचित मूल्यों में सुधार और कृषि एवं सहयोगी क्षेत्रों में बदलाव कर रही है। सरकार कृषि में और कृषि के लिए निवेश तथा कृषि ग्रामीण सड़कों, ग्रामीण विद्युतीकरण, सिंचाई के लिए सार्वजनिक निवेश बढ़ावा, कृषि में कार्पोरेट क्षेत्र द्वारा निवेश को सक्षम करने के लिए नीतिगत सहायता की आवश्यकता पर ध्यान दे रही है। सरकार आय केन्द्रितता को फोकस करके कृषि को पुनर्जीवित कर रही है, जो केवल लक्षित उत्पादन करने से परे है। आय के लिए अधिक लाभ पर ध्यान देने के साथ ही उच्च उत्पादकता प्राप्त करने, खेती की लागत को कम करने और उपज के अधिक मूल्य के प्राप्त करने पर फोकस कर रही है।

भारत में फसल शैली में जल आधारित फसलों की बाहुल्यता है। न्यूनतम समर्थन मूल्य जैसी प्रोत्साहन योजनाएं, भारी सब्सिडी वाली बिजली, जल और उर्वरकों ने भी फसल शैली के संतुलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। धान और गन्ने की फसल में देश में उपलब्ध सिंचाई जल का 60 प्रतिशत से अधिक लग जाता है, जिससे अन्य फसलों के लिए पानी की कमी हो जाती है। प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना द्वारा जल के समुचित उपयोग पर बल दिया गया। इस योजना में फील्ड स्तर पर सिंचाई के क्षेत्र में निवेश के अवसर पैदा करने, सुनिश्चित सिंचाई के अन्तर्गत कृषि योग्य क्षेत्र को बढ़ावा देने, पानी के दुरूपयोग को कम करने के लिए खेत स्तर पर पानी के उपयोग क्षमता में सुधार लाने, सुव्यवस्थित सिंचाई और अन्य जल बचत प्रौद्योगिकी के उपयोग को बढ़ावा दिया गया है। वर्ष 2019–20 के दौरान 6 दिसम्बर 2019 के अनुसार प्रति बूँद अधिक फसल घटक के तहत राज्यों को क्रमशः 1426.28 करोड़ रूपये दिये गये हैं। इसी अवधि में सूक्ष्म सिंचाई के तहत 5.60 लाख हेक्टेयर क्षेत्र को शामिल किया गया है। वर्ष 2018–19 के दौरान 11.58 लाख हेक्टेयर क्षेत्र सूक्ष्म सिंचाई के तहत लाया गया है, जो अभी तक किसी कैलेण्डर वर्ष में अधिकतम् है। इस प्रकार इस कृषि सिंचाई योजना से जल उत्पादकता में वृद्धि आयेगी जो वर्तमान समय की जरूरत भी है।

tfod ,o ik|kfxdh [krh dk c<kok%&

जैविक एवं प्राकृतिक खेती की पद्धति किसानों की आय को दुगनी करने में मदद करेगी। परम्परागत कृषि विकास परियोजना जैविक खेती को बढ़ावा देती है। इसके अन्तर्गत प्राकृतिक कृषि, वैदिक कृषि, गौ पालन, घरेलू कृषि, शून्य निवेश वाली प्राकृतिक कृषि पद्धतियों को शामिल किया गया है। राज्यों को किसानों की पसन्द के अनुसार कोई भी जैविक कृषि मॉडल को चुनने की छूट दी गयी है। शून्य निवेश वाली प्राकृतिक कृषि का मुख्य उद्देश्य रासायनिक उर्वरकों का उपयोग समाप्त कर उत्तम कृषि पद्धति को बढ़ावा देना है जो कि पर्यावरण संरक्षण के लिए भी अनुकूल है। इस कृषि पद्धति में पानी की कम आवश्यकता पड़ती है और यह जलवायु के लिए भी अनुकूल है। अब तक 163034 किसान शून्य निवेश वाली कृषि पद्धति को अपनाया है।

y?k ,o lhekUr tkr d fy, lefpr ik|kfxdh dk mi;kx%& वर्तमान समय में देश में परिवार विभाजन के कारण लघु एवं सीमान्त जोतों की संख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है। ऐसे में कृषि एवं किसान कल्याण के लिए उचित पर्यावरण अनुकूल कृषि प्रौद्योगिकी का चयन आवश्यक हो जाता है। लघु एवं सीमान्त जोतों में कृषि कठिनाई से बचने के लिए उच्च प्रौद्योगिकी तकनीकी के इस्तेमाल को बढ़ावा देने के लिए, कस्टम हायरिंग सेण्टर की स्थापना की जा सकती है। संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग छोटी जोतो की लागत को कम करने के महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। ग्रामीण क्षेत्र में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल किसानों को बाजार तक पहुँच, वित्तीय समावेशन और मौसम सम्बन्धी सूचना पहुँचाने में मदद करती है।

eRL; ikyu%& भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा मत्स्य उत्पादक देश है। वर्ष 2018–19 में देश के कुल 1 करोड़ 37 लाख मीट्रिक टन मछली का उत्पादन हुआ, जिसमें 65 प्रतिशत भाग अन्तर्स्थलीय क्षेत्र से था। इस क्षेत्र में लगातार मूल्य संवर्धित वृद्धि हो रही है। देश में कृषि निर्यात में मछली एवं मछली उत्पाद का सर्वाधिक योगदान है। वर्ष 2018–19 में यह मूल्य के आधार पर 47620 करोड़ रहा। मत्स्य क्षेत्र की अपार संभावनाओं के देखते हुए सरकार ने वर्ष 2019 में पृथक मत्स्य विभाग का गठन किया है। अन्तर्स्थलीय एवं समुद्री मछली उत्पादन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 7522 करोड़ 48 लाख रूपये से मत्स्य और जलचर अवसंरचना विकास कोष के सृजन की मंजूरी दी।

i'kikyu ,o nX/k mRiknu%& भारत में पशुपालन कृषि प्रणाली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। फसल एवं पशुओं के मध्य सीधा सम्बन्ध है। फसलों के द्वितीयक उत्पाद पशुपालन की आगत के रूप में प्रयुक्त होते हैं और पशुओं के मल–मूत्र का उपयोग किसान मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने के रूप में उपयोग करते हैं।

वर्तमान समय में भारत विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश है। विश्व के कुल दुग्ध उत्पादन का 20 प्रतिशत भाग अकेले भारत में होता है। इसके उत्पादन में लगातार वृद्धि होती जा रही है। देश में अखिल भारतीय स्तर पर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन दुग्ध की उपलब्धता 375 ग्राम है, किन्तु राज्यवार उत्पादन एवं उपलब्धता में बड़ा अन्तर है। जहाँ पंजाब में प्रति व्यक्ति दुग्ध की उपलब्धता 1120 ग्राम प्रतिदिन है, वहीं असम में यह मात्र 71 ग्राम ही है।

सरकार श्वेत क्रान्ति के माध्यम से दुग्ध उत्पादन में वृद्धि करने का प्रयास किया। पशुपालन एवं दुग्ध उत्पादकता में सुधार के लिए राष्ट्रीय पशुपालन मिशन, राष्ट्रीय डेयरी विकास कार्यक्रम, डेयरी प्रसंस्करण और अवसंरचना विकास कोष, राष्ट्रीय गोकुल मिशन आदि योजना का प्रारम्भ किया।

U;ure leFkZu eY;%& सरकार किसानों के कल्याण एवं उसके उपज का उचित मूल्य दिलाने के लिए बुआई, मौसम से पूर्व ही 22 अनाजों का न्यूनतम् समर्थन मूल्य घोषित करती है। न्यूनतम् समर्थन मूल्य द्वारा सरकार किसानों को मूल्य के उतार–चढ़ाव से बचाने के साथ ही साथ उनको अति उत्पादन की स्थिति में सुरक्षा भी प्रदान करती है। वर्ष 2019–20 में सरकार रबी एवं खरीफ फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य में वृद्धि की है। न्यूनतम समर्थन मूल्य में वृद्धि होने से किसानों के लाभ में वृद्धि होगी और किसान निश्चिंत होकर उत्पादन कर सकेंगे। देश की अधिकांश जनंसख्या गाँव में निवास करती है, जो कि कृषि एवं पारम्परिक उद्योगों पर निर्भर रहती है। परस्पर उद्योग उन्नयन और पुनरूत्थान कोष योजना द्वारा सामान्य सुविधा केन्द्रों का गठन करके पारस्परिक उद्योगों को अधिक लाभकारी उत्पादक एवं आजीविका युक्त बनाने पर बल दिया गया है। ग्रामीण उद्योगों की प्रौद्योगिकी में सुधार के लिए नवाचार ग्रामीण उद्योग और उद्यमिता संवर्धन को सशक्त बनाया गया है।

df"k _.k%& कृषि कार्य को सम्पादित करने के लिए किसानों को खाद, बीज, उर्वरक आदि के लिए वित्त की उपलब्धता अति महत्वपूर्ण है। अधिकांश भारतीय किसान के निर्धन होने का कारण उर्वरक, उन्नत, बीज, सिंचाई के साधन का उपयोग नहीं कर पाते हैं, ऐसे में उन्हें इन साधनों की पूर्ति के लिए ऋण पर निर्भर रहना पड़ता है। कृषि वित्त की पूर्ति के लिए सरकार प्रत्येक वर्ष बजट में कृषि ऋण के लिए वार्षिक बजट में लक्ष्य घोषित करती है। कृषि ऋण प्रवाह में लगातार प्रगति हो रही है। वर्ष 2018–19 में कृषि ऋण प्रवाह लक्ष्य 1100000 करोड़ रूपये निर्धारित था। इस लक्ष्य की तुलना में उपलब्धि 1256830 करोड़ रूपये थी। वर्ष 2019–20 में कृषि ऋण प्रवाह लक्ष्य 1350000 करोड़ रूपये की तुलना में 30 नवम्बर, 2019 तक 907843.37 करोड़ रूपये संवितरित किया गया था। सरकार किसानों को ब्याज छूट स्कीम के तहत एक वर्ष की अवधि के लिए 3 लाख तक का अल्पकालीन फसल ऋण 7 प्रतिशत वार्षिक ब्याज दर पर उपलब्ध कराती है, जो किसान समय पर ऋण जमा करते हैं यह ब्याज दर घट कर 4 प्रतिशत हो जाता है। किसान क्रेडिट कार्ड योजना किसानों को जोत के आधार पर क्रेडिट कार्ड जारी करता है ताकि किसान बीज, उर्वरक, कीटनाशक आदि तात्कालिक कृषि सहायक सामग्री की खरीद के साथ– साथ अपने उत्पादन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए नकदी प्राप्त कर सके।

lUnHkZ %

1. डॉ0 मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, 2016
2. डॉ0 एस0एन0लाल, भारतीय अर्थव्यवस्था, 2019
3. सम–सामयिक घटना चक्र पत्रिका अक्टूबर–नवम्बर, 2018
4. कुरूक्षेत्र, ग्रामीण विकास को समर्पित पत्रिका, 2019
5. वार्षिक रिपोर्ट 2019–20 कृषि सहकारिता एवं किसान कल्याण विभाग।
6. वार्षिक रिपोर्ट 2018–19 कृषि, सहकारिता एवं किसान कल्याण विभाग।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 273-274

Ekgknsoh oekZ dk /kkfeZd lkfgR;d ,oa lkLd`frd i"BHkwfe

Mk0 euJkt*

Lkkjka'k% *महादेवी वर्मा ने भारतीय नव जागरण एवं शिक्षा की गतिविधियाँ शुरू की जिसमे यूरोप मे रोमांटिक कविता का आरम्भ फ्रांस की क्राति के बाद हुआ। जब हिन्दी साहित्य मे छायावाद 1920 ई0 के आस पास अपना स्वरूप ग्रहण कर लिया था जिससे हिन्दी कविता छायाबादी आन्दोलन के पीछे वह सांस्कृतिक भारतीय नवजागरण प्रचार या जिनका संचालन प्रर्थना समाज आर्य समाज थियोसाँफिकल सोसायटी रामकृष्ण परमहंस विवेकानन्द आदि ने किया। छायावादी आन्दोलन के पीछे भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रमुख हाथ है जिनमे सामाजिक धार्मिक दार्शनिक और सुधारवादी आन्दोलन महत्वपूर्ण है।*

छायावाद का आगमन भारत वर्ष में सामाजिक धार्मिक सांस्कृतिक का श्री गणेश महादेवी के व्यक्तित्व के विकास मे उसने बौधिक उत्कर्ष हृदय मे भावात्मक स्फूर्ति है इनके जीवन मे उनका व्यक्तित्व धार्मिक रूढियों से निकलकर आस्था जीवन के सहज विकास मे बाधक होती है आस्था जीवन के प्रति स्वस्थ्य दृष्टिकोण प्रदान करती है इस आस्था मे महादेवी वर्मा को आस्तिकता प्रदान की है। महादेवी वर्मा का सामाजिक व्यक्तित्व जहाँ मानवतावादी एवं लोक मंगल की भावना से प्रेरित है वही उसमें भारतीय संस्कृति एवं आदर्शों के प्रति गौरव भी है यह भारतीयता उनके स्वाभिमानी व्यक्तित्व का परिचय देती है। '' कवयित्री महादेवी वर्मा का भारतीय स्वाभिमान जितना सच्चा व स्वभाविक है उतना ही विवेकपूर्ण और प्रगतिशील भी है नवीन विचारों को अपनी प्रखर बुद्धि कि कसौटी पर कसकर खरे उतरने पर उन्हे प्राचीन भारतीय साचें मे ढालना तथा निर्भिकता पूर्वक अपने इस क्षमता मे महादेवी शक्तिशाली व्यक्तित्व का गुण मानता हूँ '' वस्तुतः उनके व्यक्तित्व मे इतनी सरलता की एक के अभाव दूसरे की स्वायत्तता लुप्त हो जाती है जिसका विश्लेषण नहीं किया जा सकता है युगों –युगों के सांस्कृतिक तत्व के रासायनिक मिश्रणो से गढ़े गये उनके व्यक्तित्व का पता लगाने कि लाख कोशिशें करे उनकी रहस्यम्यता फिर भी अछुती रहेगी महादेवी सबके बीच है तभी स्वतन्त्र है।

आधुनिक कवियों मे महादेवी वर्मा का स्थान सर्वोच्च है इनमे मानव पीड़ा का एहसास की अनुभूति का अनुभव है जो एक दुसरे के दुख को समझती है इनके चिन्तनशील व्यक्तित्व के साथ इनके जीवन दर्शन दृष्टि दिशाओं पर भी सांकेतिक किया जिनमे महादेवी वर्मा का आधुनिक काल के छायावाद प्रसिद्व कवयित्री है उनमे बहुमुखी प्रतिभा का विकास हुआ उन्होंने अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया वेद उपनिषद् और बौद्धिक साहित्य उन्होने गम्भीर अध्ययन किया। उन्होंने जीवन दर्शन का अध्ययन रहस्यवाद, वेदनावद,सर्वात्मवाद,और नारी भावना के अन्तर्गत उभर कर सामने आया है।

प्रकृति मानव जीवन और संवेदनाओं के साथ अन्नत काल से सम्बद्व है व्यक्ति के हर्ष ,उल्लास,शोक, वेदना आदि की अभिव्यक्ति मे प्रकृति सहायक है राधा कृष्ण आदि के वर्णन में प्रकृति का जो सौन्दर्य चित्रण चित्रांकन किया गया है वह आंचालिक ,भौगोलिक,प्राकृतिक परिवेश से बिल्कुल भिन्न नही है भारतेन्दु युगीन कवि प्रकृति के अंग –प्रत्यंग नदी घाटी के परिवेश ,पहाड़ तथा पहाड़ी जीवन की स्थितियां वनांचल प्रदेश के क्षेत्र आदि समग्रता के साथ उभरकर भारतेन्दु युगीन काल मे दृष्टिगत होते हैं।

पर्वतीय प्रदेश का चित्र चाहे वह मथुरा का हो या बिहार या मध्यप्रदेश मे उपस्थित हो अथवा झारखण्ड या उड़ीसा मे प्रायः सभी जगह एक से होते हैं पहाड़ी जीवन स्तम्भ होते हैं। आंचालिक जीवन

*राम बक्श सिंह स्मारक, महाविद्यालय, सकरा दक्षिण, अम्बेडकरनगर

में दीपावली के दीप को पंक्तिबद्ध अलंकृत की जाती है ये दीपक पहाड़ों पर अतिशय सुशोभित होते हैं।

^^vkt fxfjjkt ds mPpre f'k[kj ij
lkje'kksfHkr Hkkbl fn0; nhikoyh**

नदियाँ मानव जीवन की स्त्रोतस्विनी तथा आंचालिक जीवन की आधार बिन्दु होती है नदियों के किनारे का जीवन यापन आदि की सारी सुविधाएँ नदीय घाटियों के निवासियों को नदीयां ही प्रदान करती है यह नदी चाहे गंगा, यमुना, सरयू, कोसी,गण्डक ब्रम्हपुत्र, गोदावरी कोई भी हो सकती है। कार्तिक महीने मे आंचालिक जीवन मे तुलसी के पौधे तथा नदियों के किनारे दीपदान की परम्परा है नदियों को अस्मिता मातृत्व स्नेह के स्वरुप मे की जाती है विशेषकर परम्परा से सम्बद्ध और स्भिरता से जड आंचालिक जीवन मे नदियों की पूजा अर्चना तथा आभीप्सित फल प्राप्ति की कामना आंचालिक विश्वास है।

छायावादी काव्य में दो प्रमुख तत्व है– वस्तुगत प्रवृत्तियां शिल्पगत विशेषताएँ वस्तुगत प्रवृत्तियों के अंतर्गत वैयक्तिकता, रूढियों के प्रति विद्रोह प्रकृति के प्रति प्रेम, राष्ट्रीय चेतना, करुणा की निवृत्तियाँ सामाजिक रूढियों एवं विषमताओं के प्रति निर्भिकता के साथ चोट की इसलिए पर्वत की उँची–नीची ऊबड–खाबड भूमि यंत्रवत चलने वाली जोगिया तथा धनिया जैसे कुली जो अपने जीवन के आर्विभाव से अपरिचित रहते हैसहज ही उसकी सहानुभूति पा लेते हैं और बडी सरलता उनके अन्तस्थल मे बैठकर उनके जीवन के मर्म को समझ लेती है गूगिया जैसे निर्वाक प्राणी की अत्यन्त वेदना को उभारकर उनकी सहानुभूति सक्रिय रूप से प्रकट करती है। एक बार दशहरे का मेला देखते हुए रमा का साथ छूट गया अपनी उदविग्रता और घबराहट को छुपाने के लिए उन्होंने एक हलवाई से पूछा क्या तुमने रमा को देखा है? वह खो गया है बुढे हलवाई ने धुंधली आँखों में वात्सल्य भाव भर कर जो उत्तर दिया वह अर्थहीन था।

आर्य समाज संस्कारों को लेकर उन्होंने मिशन स्कूल मे प्रवेश लिया हिन्दी उर्दू चित्रकला तथा संगीत की पढाई घर पर ही पूरित हुई बचपन में काव्य सृजन का भाव उनके मानस मे उसी प्रकार संतोष प्रदान किया जिस प्रकार वर्षा से तप्त भूमि सराबोर हो जाती है ब्रजभाषा मे खडी बोली का उदाहरण प्रस्तुत है–

gkFkh us viuh l< es ;fn fujk Hkj Ykkrk vgks]
rks fdl rjg ckny ty of"V gks ldrh dgks]

ब्रजभाषा मे खड़ी बोली के साथ सवैया का भी प्रयोग की है। खडी बोली के प्रयोग से उनकी राष्ट्रीयता, सामाजिकता तथा जनजागृति का भाव लक्षित होता है। छायावादी कवियों मे सास्वत प्रेम और सच्ची मानवता पर आधारित नूतन समाज और संस्कृति के निर्माण की लालसा प्रबल जान पड़ती है इसलिए ऐसे कवियों में मानव जीवन के चरम विकास की परिकल्पना सजाई गयी है।

lUnHkZ %

1 हिन्दी साहित्य का आधुनिक इतिहास–डॉ0 बच्चन सिंह, पृष्ठ 34
2 डॉ0 नामवर सिंह – आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ0 56
3 हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 नगेन्द्र, पृष्ठ 456
4 छायापथ, पृष्ठ, 078
5 वही, पृष्ठ 374

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 275-278

Nk;kokn dh çeq[k çof̀Ùk;k¡

MkW0 vfHk"kd jatu*

हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत विभिन्न परिस्थितियों के कारण विभिन्न समय में विभिन्न वादों का प्रवर्तन हुआ। द्विवेदी–युग की घोर नैतिकता और आदर्शवादिता के विरुद्ध छायावाद एक विद्रोह है जिसका आभास द्विवेदी–युग के प्रथम चरण में ही मालूम पड़ने लग गया था। छायावाद विशुद्ध हार्दिकता, वैयक्तिकता, स्वच्छन्दता आदि तत्त्वों से परिपूर्ण है। इनमें से अधिकांश तत्त्व अँग्रेजी के रोमांटिसिज्म में भी थे, जिससे बंगला–साहित्य प्रभावित हुआ। मगर, इसी आधार पर हिन्दी के छायावाद का मूल स्वीकार कर लेना उचित नहीं है। द्विवेदी युग की साहित्यिक, राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों को ही छायावाद का उत्पत्ति का कारण कहा जा सकता है। इन्हीं परिस्थितियों के प्रति –– थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद आदि विद्रोह के रूप में छायावाद का उदय हुआ। छायावाद का मूलाधार संवेदनशील प्रकृति है और इसका दार्शनिक आधार है सर्वात्मवाद।

राजनाथ शर्मा के अनुसार 'छायावादी काव्य की प्रधान प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित पाते हैं –– (1) सौन्दर्य भावना, (2) श्रृंगार भावना, (3) प्रकृति–प्रेम, (4) वैयक्तिकता, (5) करुणा की विवृत्ति, (6) अज्ञात के प्रति प्रेम, (7) नारी का नया रूप, (8) नवीन जीवन–दर्शन, (9) शैली में क्रान्ति, (10) सांस्कृतिक गौरव की भावना।'[1]

कहना न होगा कि 'समग्र छायावादी काव्य का विश्लेषण करने के उपरान्त उसकी निम्नांकित दस प्रमुख प्रवृत्तियाँ प्रकाश में आती हैं ––

(1) वैयक्तिकता, (2) सौन्दर्य–भावना, (3) श्रृंगार–भावना, (4) प्रकृति–प्रेम, (5) वेदना तथा करुणा का प्राधान्य, (6) अज्ञात सत्ता के प्रति आकर्षण, (7) नारी–विषयक नवीन दृष्टिकोण, (8) नवीन जीवन–दर्शन, (9) पलायनवादी प्रवृत्ति, (10) अभिव्यक्ति की शैली में क्रान्ति।'[2]

दूसरी ओर 'महादेवी जी के अनुसार छायावाद की छः मुख्य विशेषताएँ हैं ––

1. व्यक्तिगत अनुभव में प्राण संचार, अर्थात् कवि व्यक्ति रूप में जो अनुभव करता है, वह उसकी स्वच्छन्द अनुभूति होती है।
2. प्रकृति के अनेक रूप में एक महाप्राण का अनुभव अर्थात् सर्वात्मवाद।
3. समीम और असीम का ऐसा सम्बन्ध जिसमें एक प्रकार के अलौकिक व्यक्तित्व का अरोप हो। यही दूसरे शब्दों में असीम के प्रति अनुरागजन्य आत्म–विसर्जन का भाव या रहस्यवाद।
4. स्थूल की प्रतिक्रिया एवं सूक्ष्म सौन्दर्य सत्ता की ओर जागरूकता।
5. इनमें युगानुरूप वेदना की विवृत्ति है, पलायनवाद नहीं है।
6. इन भावनाओं की अभिव्यक्ति युगानुरूप प्रतीकों (मुख्यतः प्रकृति के लिए हुए) द्वारा गीतात्मक पद्धति में ही अच्छी प्रकार से हो सकती है।'[3]

हिन्दी में जितने भी वादों का उदय हुआ उन सबकी अपनी अलग–अलग प्रवृत्तियाँ (विशेषताएँ) हैं। छायावाद का निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ (विशेषताएँ) हैं :––

¼d½ O;fDrdrk & छायावादी जगत की प्रत्येक चेष्टा, प्रत्येक धड़कन अनुभूति का विषय बनकर भी छायावादी कवियों द्वारा पूर्ण वैयक्तिकता का जामा पहनकर आती है। छायावादी कवियों ने सामान्य को विशेष बनाकर किसी विषय का प्रस्तुतीकरण किया है। उन कवियों के 'मैं' में ही समष्टि समाहृत है।

*एम0 ए0 (हिन्दी), पी–एच0 डी0, नेट, पासवान नगर, युसुफपुर, हाजीपुर (वैशाली), पिन – 844101

¼[k½ míke Hkkoqdrk & कवि तो स्वभाव से ही भावुक होता है, मगर छायावादी कवियों में यह भावुकता पराकाष्ठा पर पहुँची हुई दिखाई पड़ती है। यह भावुकता कहीं–कहीं तो इतनी अप्राकृतिक या असाधारण हो उठी है कि उनका साधारणीकरण असंभव हो गया है। छायावाद की दुरुहता के पीछे इस उद्दाम भावुकता का ही हाथ है।

¼x½ vfr dkYifudrk & चूँकि छायावादी कवियों को स्थूल को सूक्ष्म में व्यक्त करना था, इसीलिये इन कवियों ने अति काल्पनिकता का सहारा लिया है। यह कल्पना इतनी सूक्ष्म है कि सहज ग्राह्य नहीं है। कल्पना ही अधिक ऊँचाई के कारण चित्रोपमता विश्रृंखल–सी हो जाती है और उनकी क्रमवद्धता टूट जाती है।

(?k½ çÑfr&çe & छायावाद कवियों ने प्रकृति के माध्यम से ही अपने भावों को व्यक्त किया है। इन कवियों ने प्रकृति का मानवीकरण कर उसे मानव–मनोभावों का प्रतीक बनाकर चित्रित किया है। इन कवियों ने मनुष्य और प्रकृति में एकात्मकता स्थापित की है।

इतना ही नहीं, 'सौन्दर्य और प्रेम का चित्रण छायावादी काव्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति है, जिसे रूपों में विभक्त किया जा सकता है – नारी सौन्दर्य एवं प्रेम–चित्रण प्रकृति के सौन्दर्य और प्रेम की अभिव्यंजना, अलौकिक प्रेम या रहस्यवाद का चित्रण। छायावादी कवि का मन प्रकृति–चित्रण में खूब रमा है। इस काव्य में प्रकृति पर चेतनता का आरोप (मानवीकरण) किया गया है'[4] तथा इतना तो मानना ही होगा कि 'प्रकृति–प्रेम छायावाद की बहुत बड़ी विशेषता है। सभी छायावादी कवियों ने अपने–अपने काव्यों में प्रकृति का चित्रण बड़े ही आग्रह के साथ किया है और सभी ने उस पर मानव–चेतना का आरोप किया है।'[5]

¼3½ LoPNUnrk & जहाँ पूर्ववर्ती काव्य कुछ विशेष मान्यताओं तथा आदर्शों का आधार लेकर चल रहा था और भाव–प्रकाशन में लोक–दृश्य का पूरा–पूरा ध्यान रख रहा था। वहाँ छायावाद अपनी वैयक्तिकता को सर्वोपरि मानकर स्वच्छन्द भावों का स्वच्छ शैली में प्रकाशन करने लगा। भाषा, छन्द तथा अलंकारों में स्वतंत्र प्रयोग इसी प्रवृत्ति के कारण परिलक्षित होते हैं।

¼p½ iyk;uokn dh çofÙk & छायावादी कवि जीवन की अशांतियों से ऊबकर प्रकृति में आश्रय पाना चाह रहे थे। उन्हें यह नहीं ज्ञात होता था कि कहाँ आश्रय पाना चाहिये। वे किसी किसी निर्जन स्थान में चले जाना चाहते थे। इस सन्दर्भ में जयशंकर प्रसाद की निम्न पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं –

^y: py e>: Hkykok ndj ej: ukfod /khj&/khjA
ftl futu lkxj e: ygjh] vcj d: dkuk e: xgjh]
fu'py çe&dFkk dgrh gk] rt dkykgy dh vouh jA*

यहाँ कवि वाह्य जगत के कोलाहल से ऊबकर ही प्रकृति की शरण में जाना चाहता है।

¼N½ lkUn;&Hkkouk & बिना सौन्दर्य–भावना के काव्य की सृष्टि हो ही नहीं सकती। काव्य में सत्यं, शिवं और सुन्दरं होता है। प्रत्येक युग में सौन्दर्य का आलम्बन भिन्न–भिन्न वस्तुएँ रही हैं। छायावादी कवियों ने प्रकृति में सौन्दर्य का सर्वाधिक तत्त्व देखा। इस सौन्दर्य–भावना में वासना की गंध भी कम नहीं है।

इतना तो मानना ही होगा कि 'छायावादी कविता की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति उसकी सौन्दर्यानुभूति है। यों तो यह सौन्दर्य की शाश्वत प्रवृत्ति ही है, किन्तु इसका स्वरूप छायावाद में पूर्ववर्ती रूप से भिन्न है। श्रृंगारकालीन कविता में सौन्दर्य–बोध अधिकांशतः बाह्य शरीरगत है, यों तो उन्मुक्त प्रेम के गायकों में आत्मिक सौन्दर्य अथवा सूक्ष्म सौन्दर्य के भी दर्शन हो जाते हैं। छायावाद में सूक्ष्म सौन्दर्य–सत्ता की प्रतिष्ठा बड़े व्यापक रूप में हुई और सौन्दर्य–बोध की भूमि का विस्तार हुआ।'[6] यहाँ प्रकृति–चित्रण का एक उदाहरण प्रस्तुत है ––

^cUn dpdh d: [kky fn;: lc l;kj l@;kou mHkkj u@iYyo i;:d ij lkrh 'kQkfyd@ed vkaku Hkj: yky&lh dikyk d@0;kdy fodkl ij@>jr: gk f'kf'kj d: pEcu xxu dA*

वास्तव में इस सौन्दर्य–भावना ने ही छायावादी कवियों की प्रेम–भावना को उत्प्रेरित किया है। प्रकृति की कोमल पंखुड़ियों में नारी–सौन्दर्य और नारी–प्रेम की झाँकी देखी जा सकती है।

¼t½ d#.kk & करुणा से छायावादी कवियों का बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। निराला को छोड़कर प्रायः सभी छायावादी कवियों को हम करुणा के आँसू में डूबे हुए देखते हैं। महादेवी और पंत को तो करुणा के कवि हम कह सकते हैं। छायावादी कवियों की करुणा में आशा का जो भाव छिपा है, उसमें अलौकिक आनन्द की झलक मिलती है।

¼>½ çPNUu foækg & छायावादी कवियों की करुणा, कुण्ठा, निराशा–आशा आदि भावनाओं को देखने से विदित होता है कि ये कवि वास्तव में पलायनवादी नहीं थे। ये किसी उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में थे। तबतक वे अपनी दबी हुई आवाज में स्वच्छन्दता को व्यक्त कर रहे थे। छायावाद के अनेक कवि अवसर पाकर अपने हृदय की विद्रोह–भावना को व्यक्त करते दिखाई देते हैं। इनके द्वारा चित्रित प्रकृति के शक्तिमय रूप में इसी प्रच्छन्न विद्रोह भावना को हम देखते हैं।

¼¥½ dykRedrk & छायावादी कवियों में हम कलात्मकता के प्रति विशेष आग्रह देखते हैं। इन कवियों की रचनाओं में निम्नलिखित शैलीगत विशेषताएँ पायी जाती है।

(1) प्रतीकात्मकता, (2) गीतात्मकता और (3) स्वच्छन्दता।

कहने की आवश्यकता नहीं कि 'छायावाद में अन्तर्मुखी प्रवृत्ति की प्रमुखता के कारण बाह्य स्थूलता का चित्रण न होकर सूक्ष्मता का चित्रण हुआ है। प्रकृति–चित्रण छायावाद की एक प्रमुख विशेषता है। प्रकृति के बीच कवि ने अपनी शोभा और भावनाओं को देखा है और अनुभव भी किया है।'[7] तथा 'छायावादी कवि ने अहंवादी होने के कारण विषय, भाव, कला, धर्म, दर्शन और समाज सभी क्षेत्रों में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति को अपनाया। उसे अपने हृदयोद्गारों को अभिव्यक्त करने के लिए किसी प्रकार का शास्त्रीय बन्धन और रूढ़ियाँ स्वीकार नहीं हैं। भाव–क्षेत्र में भी उसने इसी क्रांति का प्रदर्शन किया।'[8]

प्रतीकात्मकता तो छायावादी शैली के प्राण ही हैं। छायावादी अप्रस्तुत उपदानों को प्रतीकों के माध्यम से ही व्यक्त करता है। इसी प्रकार सम्बद्ध प्रतीक विशेष तत्त्वों को भी धारण करते हैं, यथा –

^fc[kjh vydas T;ksa rdZ tkyA@Fkk ,d gkFk es dez&dy'k] olq/kk dk thou lkj fy,A@nwljs fopkjks ds uHk dks Fkk e/kqj vHk; voyEc fn;sAA*

मध्ययुगीन गीतिकाव्य का पुनरुद्धार छायावादी कवियों ने नये कलेवर में किया है।

इस युग में छन्द के क्षेत्र में पूरी स्वच्छन्ता वरती गई। कुछ कवियों ने तो छन्द–विधान माना ही नहीं है, मगर इससे रचनात्मकता या गीतात्मकता में कोई कमी नहीं आ सकी है। छायावादी कविता की शैलीगत विशेषताओं के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही कहा है – 'छायावाद की शाखा के भीतर धीरे–धीरे काव्य–शैली का अच्छा विकास हुआ, इसमें सन्देह नहीं। इसमें भावावेश की आकुल व्यंजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्त्त–प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध चमत्कार, कोमल पद–विन्यास इत्यादि काव्य का स्वरूप संगठित करनेवाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ी।'

¼V½ r`rh; mRFkku&dky dh Li"V foækg&Hkkouk & तृतीय उत्थान–काल के प्रथम दशक अर्थात् 1920 ई0 से 1930 ई0 के बीच कुछ कवियों ने राजनीतिक विद्रोह को उकसानेवाली रचना की थी। इस युग में कवियों ने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया और जेल की यात्रा भी की। विद्रोही कविता के रचयिताओं में माखनलाल चतुर्वेदी, वालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उदाहरण के लिए माखनलाल चतुर्वेदी की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं ––

^e>s rkM+ yuk ouekyh@ml iFk ij rqe nuk Qsd]@ekr`Hkwfe ij 'kh'k p<kus]@ ftl iFk tkos ohj vusdA*

इसी प्रकार 'नवीन' की निम्न पंक्तियों में भी विद्रोह की भावना देखी जा सकती है ––

^dfo dqN ,slh rku lqukvks@ftlls mFky&iqFky ep tk;A@,d fgyksj b/kj ls vk;s]@,d fgyksj m/kj ls vk;A@çk.kksa ds yky iM+ tk;s@=kfg&=kfg jo uHk es Nk;A@uk'k vkSj lR;kuk'kh dk@/kqvk/kkj txe es Nk tk;sAA*

इतना ही नहीं, 'द्विवेदी–काल की काव्यगत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं ––

1. इस काल की कविता में गोचर में अगोचर की खोज, पार्थिव में दिव्य का अवतरण, मानवीय भावना में निसर्ग का स्थान और मानवीय सीमाओं में ही असीम की प्रतिष्ठा भारतीय अद्वैत दर्शन के आधार पर हुई।
2. इस काल की कविता में व्यक्तिवाद की सीमाओं में ही समष्टिवाद का दर्शन दिया गया।
3. इस काल का सम्पूर्ण काव्य प्रगति शैली में लिखा गया।
4. इस काल की कविता में खड़ी बोली का अधिक परिमार्जित रूप देखने को मिलता है।
5. इस काल की कविताओं में शृंगार–भावनाओं का उदात्तीकरण किया गया है।
6. छायावाद के कवियों ने प्रकृति के माध्यम से रहस्यवादी अभिव्यक्ति की है।
7. इस काल की कविता में वेदना और निराशा का भाव अधिक है।
8. रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रवीन्द्र, गाँधी और अरविन्द से प्रभावित होकर इस काल के कवियों ने एक व्यापक मानवतावादी सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की।'[9]

निष्कर्षतः 'छायावादी काव्य–लोक दूर से दृष्टिगत करने पर ऐसा लगता है जैसे एक मनोरम स्वप्नलोक है। यहाँ स्वप्नों की छाया में जीवन के क्षण पलते हैं। सौन्दर्य की तितलियाँ इन्द्रधनुष से होड़ लेती हैं। कवि की तरल कल्पनाएँ परीलोक से आमंत्रण पाकर उधर ही उड़ी जा रही हैं –– उड़ी जा रही हैं। सव्रीड़ कविता कामिनी, किरण जाल–सी झिलमिल, मधु–श्लथ, सौन्दर्य–विकल, शिल्प के ताजमहल में निवसित, रूप–सुरूप के सर्–सर् उपवनों में विलसित, अनेक लाक्षणिक संकेतों में मुखर है। समस्त वातावरण जैसे मदिरा की मन्द–मन्द मादकता में अर्द्धनिमीलित है। लगता है कि यह लोक स्वर्ग के किरणोज्ज्वल कछारों में झूल रहा है। यदि किसी छायावादी से उसके लोक का परिचय पूछा जाता तो शायद वह कुछ ऐसी ही शैली में अपने लोक का परिचय देता।'[10]

इस प्रकार छायावाद हिन्दी–साहित्य में एक विशेष वाद के रूप में आया, जिसकी उपरिलिखित विशेषताएँ हैं।

lUnHk %

1. राजनाथ शर्मा, साहित्यिक निबन्ध, पूर्णतः संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण 2018, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा – 2, पृ0 सं0 427.
2. लेखक एवं सम्पादक : डॉ0 शान्ति स्वरूप गुप्त, साहित्यिक निबन्ध, नवीन संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण 2004, अशोक प्रकाशन, 2015, नई सड़क, दिल्ली – 6, पृ0 सं0 377.
3. डॉ0 जयकिशन प्रसाद, हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, 17वीं परिवर्द्धित संस्करण 2018, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा – 2, पृ0 सं0 444.
4. सम्पादक एवं लेखक : डॉ0 शिवकुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, नवीन संस्करण 2020, अशोक प्रकाशन, 2615, नई सड़क, दिल्ली – 6, पृ0 सं0 500–501.
5. वही, पृ0 सं0 378.
6. डॉ0 जयकिशन प्रसाद, हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, 17वीं परिवर्द्धित संस्करण 2018, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा – 2, पृ0 सं0 449.
7. सम्पादक एवं लेखक : डॉ0 शिवकुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, नवीन संस्करण 2020, अशोक प्रकाशन, 2615, नई सड़क, दिल्ली – 6, पृ0 सं0 505.
8. वही, पृ0 सं0 503.
9. सम्पादक डॉ0 दशरथ ओझा, हिन्दी काव्य–कुसुमांजली, प्रथम संस्करण : 1972, वसन्त प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 सं0 गगप.गगपपण
10. डॉ0 चन्द्र भान रावत, दृष्टि और दिशा : साहित्यिक निबन्ध, मीतल प्रकाशन मन्दिर, मथुरा, पृ0 सं0 349.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 279-282

lkdfr d: l|dekj dfo lfe=kuUnu iar

vthrk fi;nf'kuh*

फूलों की कोमलता, स्वच्छ निर्मल चाँदनी की पवित्रता, कल–कल निर्झरों की निच्छलता तथा फेनोज्ज्वल सागर की गंभीरता का अपूर्व समाहार सुमित्रानंदन पंत के व्यक्तित्व में निहित है। पंत का समस्त काव्य अन्तर्मुखता का काव्य न होकर आत्मोत्कर्ष का काव्य है। यह आत्मोत्कर्ष अपनी समग्र संरचना में एक सार्वभौमिक शुभेच्छा तक ले जाता है। इसलिए उनका काव्य अतीतोन्मुख न होकर वर्तमान के फलक पर भविष्योन्मुखी काव्य है। यह सार्वभौमिक शुभेच्छा ही वह तत्व है, जिसके भीतर से कवि पन्त ने विश्व–मानव और नव–मानव की परिकल्पना को अपनी कविता में सार्थक किया है। अपनी सम्पूर्ण काव्य–सम्पदा के भीतर से उन्होंने एक नये और निजी अध्यात्मक की रचना की है। यह अध्यात्म अपनी मंगलकामना में निजी होते हुए भी 'स्व' की भावना से पूर्णतया मुक्त है।

कविवर पंत रमणी के सौंदर्य की अपेक्षा प्रकृति के सौंदर्य को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं, लेकिन रमणी के सौंदर्य की यह उपेक्षा क्या जीवन की उपेक्षा के भाव को व्यंजित नहीं करती? यह तो सच है कि बाद की रचनाओं में कवि ने प्रणय के महत्व को स्वीकार किया है। कविवर पंत (1900–1970) का जन्म उतरांचल के जिला अल्मोड़ा के कौसानी ग्राम में हुआ था। जन्म के कुछ घंटे बाद ही मातृस्नेह से वंचित हो जाने के कारण अल्मोड़ा की प्राकृतिक सुषमा ने इन्हें बचपन से ही अपनी ओर आकृष्ट किया और प्रकृति के उस मनोरम वातावरण का इनके व्यक्तित्व पर गंभीर प्रभाव पड़ा। पंत में यथार्थ के विषम और दारूण रूप के अभाव का कारण भी कुछ सीमा तक प्रकृति के उस प्रभाव को माना जा सकता है। इनके मन में प्रकृति के प्रति इतना मोह पैदा हो गया था कि ये जीवन की नैसर्गिक व्यापकता और अनेकरूपता में पूर्ण रूप से आसक्त न हो सके:

^^NkM nqek dh em Nk;k]@rkM iadfr l Hkh ik;k]@cky] rj cky tky e dl my>k n@ykpu\@NkM vHkh l bl tx dkA**

पंत के परवर्ती काव्य पर मार्क्स की छाया अल्पकाल ही रही, आगे चलकर वे अरविंद दर्शन से अधिक प्रभावित हुए। जहाँ तक आध्यात्मिकता का प्रश्न है, वह उनमें आरंभ से ही विद्यमान थी, जिसे उन्होंने पारिवारिक परिवेश से प्राप्त किया था।

अल्मोड़ा की शिक्षा के अनंतर पंत लभगग नौ–दस महीने वाराणसी रहे, जहाँ वे धार्मिक–साहित्यिक परिवेश के संपर्क में आए। वाराणसी–प्रवास बहुत कम समय का था और यहाँ से हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण कर वे प्रयाग आ गए, जहाँ उनका अधिकांश जीवन व्यतीत हुआ। 1919 में पंत ने म्योर कॉलेज, प्रयाग में प्रवेश लिया और इसकी चर्चा करते हुए उन्होंने स्वीकार किया है कि मैंने प्रयाग की साहित्यि उर्वर, शांत, संस्कृत भूमि में प्रवेश किया, जिसकी स्नेहपूर्ण अंचल–छाया में मेरे किशोर–कवि को मानसिक पोषण तथा आत्मविश्वास का तारूण्य प्राप्त हुआ।

पंत आधुनिक रचनाकारों की उस पंक्ति में है, उन्हें शिक्षा संस्थानों की विधिवत् शिक्षा नहीं मिली थी, पर जिन्होंने अध्ययनशीलता से अपने ज्ञान में विस्तार किया और उस जीवन से निरंतर संवाद किया, जिसे रचना का मूलाधार कहा जाता है। हिन्दी में प्रसाद, निराला इसके उदाहरण हैं और आधुनिक भारतीय साहित्य में रवीन्द्र जैसी विराट प्रतिभाएँ हैं, जिन्होंने विदेश में भी व्याख्यान दिए।

*203, सूर्यवंशम् अपार्टमेन्ट, विजय विहार कॉलोनी, सगुना खगौल रोड, दानापुर, पिन– 801503

विवेकानंद के अल्मोड़ा–आगमन पर पंत ने एक कविता लिखी थी (वीणा)। उन्होंने स्वयं गांधी, विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ के व्यक्तित्व के प्रभाव को स्वीकार किया है। जहाँ तक अरविंद का प्रश्न है, पंत ने 'लाइफ डिवाइन' का विशेष उल्लेख करते हुए लिखा है कि– द मदर, लाइटस ऑन योग, थॉटस एंड गिल्मसेज, एसेज ऑन गीता आदि पुस्तकों ने उन्हें प्रभावित किया। भाई उदयशंकर के संस्कृति केंद्र के साथ वे यात्रा पर निकले, उन्होंने उनके 'कल्पना' चित्र के लिए कुछ गीत भी लिखे, जैसे युग की साँझ आज गहराई, भारत जय जन, दीप जलाओ आदि पर वे मद्रास में अस्वस्थ हो गए। जब कुछ स्वस्थ हुए तब वे पांडिचेरी के अरविंद आश्रम आए, जहाँ कुछ समय रहे भी। इसे पंत के जीवन का एक नया मोड़ कहा जा सकता है, इस अर्थ में कि अरविंद के व्यक्तित्व का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा और उनकी आध्यात्मिकता चेतना को नया विकास मिला। उन्होंने स्वयं इस प्रभाव को स्वीकार किया है और मध्यकाल से इसे अलगाते हुए, इस नवआध्यात्मिकता की व्याख्या विस्तार से की है।

'चिदंबरा' की भूमिका में पंत कहते हैं– ''मेरे द्वितीय उत्थान काव्य के लिए उपयुक्त संज्ञा होगी, नवीन चेतना काव्य, जिसके अंतर्गत मानवजीवन मन के उच्च एवं समदिक दोनों स्तरों की संस्कृत, संतुलित व्यापक सामाजिकता तथा नवमानवता के तत्त्व वर्त्तमान हैं। मेरी काव्य चेतना मुख्यतः नवीन संस्कृति की चेतना है, जिसमें आध्यात्मिकता तथा भौतिकता का नवीन मनुष्यत्व के धरातल पर संयोजन है।''[1]

पंत स्वच्छंदतावाद की वैयक्तिक चेतना, गाँधी की नैतिकता, मार्क्स के भौतिकवाद को अधूरी जीवन दृष्टि कहते हैं ओर अरविंद की ऊर्ध्वमुखी मानवीय चेतना की सहायता से एक नयी आध्यात्मिकता का विन्यास करते है। उनके परवर्ती काव्य में इसकी अभिव्यक्ति हुई है और 'स्वर्ण–काव्य' के अतिरिक्त प्रबंधकाव्य 'लोकायतन' तो जैसे इसी चेतना की स्थापना के लिए रचा गया है।

पंत काव्य में प्रकृति के मनोरम रूपों का मधुर और सरस चित्रण मिलता है। 'आंसू की बालिका', 'पर्वत–प्रदेश में पावस' आदि कविताओं में प्रकृति के मनोहर चित्र विद्यमान हैं, जिनमें कवि की जन्मभूमि के प्राकृतिक सौंदर्य का वैभव दिखायी देता है। किंतु 'बादल' और 'छाया' जैसी कविताओं में केवल एक अद्भुत या विलक्षण कल्पना के ही दर्शन होते हैं, जिससे चमत्कार की अनुभूति तो होती है, लेकिन किसी गंभीर भाव की नहीं। छाया को दमयंती के समान या 'रति श्रांता ब्रजवनिता' के समान चित्रित करने में कवि किसी गंभीर अनभूति से प्रेरित नही प्रतीत होता। दूसरी ओर कवि पंत आदर्श प्रेमी रहे हैं। उनकी कविताओं में अधिकांशतः प्रकृति–प्रेम और आदर्शवादिता संबद्ध रूप में मुखरित हैं। 'वीणा' से कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैः– ^^dien dyk cu dygkfluh!@veir idkf'kuh] uHk&okfIfu]@rjh vkHkk dk ik dj ekA@tx dk frfej&=kl gj n&@uh[k jtuh ei fuHk;A**[2] यहाँ कवि ने प्रकृति से चाँदनी की आभा को पा कर जग के 'तिमिर–त्रास' को दूर करने की आकांक्षा व्यक्त की है। कवि की यह आदर्शवादी भावना निरंतर प्रबल होती गयी है। यह आदर्शवादी भावना ही 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में 'सर्ववाद' का रूप ग्रहण करती हुई अंत में अरविंद–दर्शन की ओर उन्मुख हो गयी।

डॉ. नगेन्द्र ने स्पष्ट लिखा है– ''छायावाद की कविता का विषय अन्तरंग व्यक्तिगत जीवन हुआ : छायावाद का कवि आत्मतल्लीन होकर कविता लिखने लगा। उसका यही व्यक्ति–भाव प्रसाद में आनन्दवाद और निराला में अद्वैतवाद के रूप में प्रकट हुआ। पंत में उसने आत्मरति का रूप धारण किया और महादेवी में परोक्ष रति का....।''[3]

पंत जी ने प्रकृति का चेतना रूप देखा है। उनका मानना है प्रकृति में भी मनुष्यों की तरह चेतना है, अनुभव करने की सामर्थ्य है। प्रकृति भी हंसती–रोती मुस्काती और शर्माती है। कलि–काल और तृण–तृण के जीवन में भी भावनाओं का ज्वार उठता है। उसकी भी आत्मा है–

^^vkRek gS lfjrk dS Hkh@ftlls lfjrk gS lfjrk @ty ty gS ygj ygj j@xfr xfr lfr lfr fpj HkfjrkA**[4]

सारी प्रकृति में छायावाद के कवि को अज्ञात चेतना का आभास मिलता था। प्रकृति के कण–कण में उसे चेतना की छाया दिखायी देती थी। प्रकृति का वह एक सहानुभूतिशील ह्रदय रखने वाली साकार चेतन मानवी के रूप में देखता था।

सुमित्रानंदन पंत जी के अनुसार ''काव्य के शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों, सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सके।''[5]

^^ppy ix nhi f'k[kk d ?kj@ xg ex ou e vk;k olUr@ lyxk QkYxu dk lukiu@ lkn;&f'k[kkvk e vuUr@ lkjHk dh 'khry Tokyk l@Qyk mj&mj e e/kj nkg@vk;k olUr Hkj iFoh ij@Lofxd lUnjrk dk iokg@iYyo&iYyo e uoy #f/kj @i=k e ekly jx f[kyk@vk;k uhyh&ihyh yk l@i:"kk d fpf=r nhi tykA**[6]

पंत का विशेषतः लिखने की प्रेरणा प्रकृति से ही मिली। विशेष जीवन दृष्टि प्राप्त होने से पंत में प्रकृति को नयी दृष्टि से देखने की प्रेरणा मिली। मूल मानव जीवन ही है, उसी केन्द्र के आसपास प्रकृति घूमती है। जिन लोगों में जीवन की गति, जीवन की शक्ति, जीवन की छवि, जीवन की विविध भावात्मक स्थिति को बोध जाग्रत नहीं होगा, वे प्रकृति में वे चीज कैसे देख पाएँगे। अतः पहले छायावादियों का स्वच्छन्द व्यक्तित्व मानव–छवियों का अनुभव कर सका होगा, बाद में उन्हीं छवियों को प्रकृति में देखा होगा। प्रकृति अपने आप में क्या है, साहित्य में यह महत्व का नहीं है, उसे हम कैसे और कितना देख पाते हैं यह महत्त्व का है।

जहाँ तक प्रकृति के बाह्य स्वरूप का संबंध है, दो युगों की दृष्टियों में कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता। झरना झरता है, कोयल बोलती है, सभी लोग उन पर मुग्ध होते हैं। कोई अधिक होता है कोई कम होता है। पंत जी ने लिखा है– ''मेरे किशोर प्राण मूक कवि को बाहर लाने का सर्वाधिक श्रेय मेरी जन्म–भूमि के उस नैसर्गिक सौन्दर्य को है जिसकी गोद में पलकर मैं बड़ा हुआ हूँ। मेरे भीतर ऐसे संस्कार अवश्य रहे होंगे जिन्होंने मुझे कवि कर्म करने की प्रेरणा दी, किन्तु उस प्रेरणा के विकास के लिए स्वप्नों के पालने की रचना पर्वत प्रदेश की दिगन्त–व्यापी प्राकृतिक शोभा ही ने की, जिसने छुटपन से ही मुझे अपने रूपहले एकान्त में एकाग्र तन्मयता के रश्मि ढोल में झुलाया, रिझाया तथा कोमल कण्ठ बन पाखियों के साथ बोलना–कुहु–करना सिखलाया।''[7]

^^vU/kdkj dh xgk ljh[kh mu vk[kk l Mjrk g eu]@Hkjk nj rd mue nk:.k nU;&n[k dh uhjo jknuA@QV jgk mul xgjk vkrd] {kkHk] 'kk"k.k] l'k;] Hke@Mc dkfyek e mudh dirk eu] @mue ej?kV dk reA**[8]

एक बूढ़े किसान का चित्रांकन पंत जी ने कितने ही यथार्थवादी ढंग से पंक्तिबद्ध किया है। ये चित्र कवि की बदली हुई दृष्टि और परिवर्तित सम्वेदना, दोनों के परिचायक हैं। 'ग्राम्या' के बाद पन्त की काव्य यात्रा प्रगतिवाद से अरविन्दवाद की ओर मुड़ जाती है। पंत जी की कविता अपने ढंग से अपनी शक्ति और सीमाओं के साथ उत्तर छायावादी कविता को प्रगतिवादी चेतना से मंडित करती है।

^^ek#r u ftldh vydk e@ppy pcu my>k;kA @v/kdkj dk vyflr vpy@vc nr vk<xk lslkj@tgk Lolu ltr ÜkxkjA**[9]

इस मूर्तिमती लाक्षणिकता का आभास पंत की कृति 'वीणा' से ही मिलने लगती है। 'वीणा' के उपरांत 'ग्रंथि' है असफल प्रेम की। इसमें एक छोटे से प्रेम प्रसंग का आधार लेकर युवक कवि ने प्रेम की आनंदभूमि में प्रवेश, फिर चिरविषाद के गर्त में पतन दिखाया है। प्रसंग की कोई नयी उद्भावना नहीं है। करूणा और सहानुभुति से प्रेम का स्वाभाविक विकास प्रदर्शित करने के लिए जो वृत उपन्यासों और कहानियों में प्रायः पाये जाते हैं– जैसे– डूबने से बचाने वाले, अत्याचार से रक्षा करनेवाले, बंदीगृह में पड़ने या रणक्षेत्र में घायल होने पर सेवा सुश्रुषा करने वालों के प्रति प्रेम संचार– उन्हीं में से चुनकर भावों की व्यंजना के लिए रास्ता निकाला गया है। झील में नाव डूबने पर एक युवक डूबकर बेहोश होता है और आँख खुलने पर देखता है कि एक सुंदरी युवती उसका सिर अपने जंघे पर रखे हुए उसी ओर देख रही है। इसके उपरांत दोनों में प्रेम–व्यापार चलता है, पर अंत में समाज के बड़े लोग इस स्वेच्छाचार को न सहन करके उस युवती का ग्रंथिबंधन दूसरे पुरुष के साथ कर देते हैं।

^^rfMr tk lef[k! rEgkjk /;ku iHkk d@iyd ekj mj phjA@x< xtu dj tc xHkhj e>@djrk g vf/kd v/khj]@txuvk l mM ej ik.k [kk tr g@rc rEg funkuA @iol lf/k lglk tc ldekfj@ljy 'kd lh l[kdj lj eA @rEgkjh Hkkyh ckr dHkh ngjkrh@g mj eA**[10]

छायावाद के भीतर माने जाने वाले सब कवियों में प्रकृति के साथ सीधा प्रेम संबंध पंत का ही रिकार्ड पड़ता है। प्रकृति के अत्यंत रमणीय खंड के बीच उनके हृदय ने रूप–रंग पकड़ा है। 'कलावाद' के प्रभाव से जिस सौंदर्यवाद का चलन यूरोप के काव्यक्षेत्र के भीतर हुआ उसका पंत जी पर पूरा प्रभाव रहा है।

lUnHk %

1. भारतीय स्वच्छंदतावाद और छायावाद, प्रेमशंकर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006, पृ.सं. 216.
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, संपादक डॉ. नगेन्द्र, मयूर पेपरवैक्स, प्रथम संस्करण, 1973 पृ.सं. 536.
3. छायावाद विश्लेषण और मूल्यांकन, डॉ. दीनानाथ शरण, नवयुग ग्रन्थागार, पृ.सं. 32.
4. छायावाद विश्लेषण और मूल्यांकन, डॉ. दीनानाथ शरण, नवयुग ग्रन्थागार, पृ.सं. 33.
5. छायावाद विश्लेषण और मूल्यांकन, डॉ. दीनानाथ शरण, नवयुग ग्रन्थागार, पृ.सं. 38.
6. छायावाद का रचनालोक, रामदरश मिश्र, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009, पृ.सं. 55.
7. छायावाद का रचनालोक, रामदरश मिश्र, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009, पृ.सं. 56.
8. छायावाद का रचनालोक, रामदरश मिश्र, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009, पृ.सं. 88.
9. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी, संस्करण 2010, पृ. सं. 461.
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी, संस्करण 2010, पृ. सं. 462.

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 283-285

egf"kZ n;kuUn ljLorh d nk'kfud fopkjk dk fo'y"k.k

MkO vkjrh noh*

भारत के प्रायः सभी धर्माचार्यों एवं आध्यात्मिक मनीषियों पर किसी न किसी दार्शनिक विचारधारा का प्रभुत्व रहा है, महर्षि दयानन्द सरस्वती के दर्शन का मूल आधार वेद और आर्य ग्रन्थ है। उन्होंने किसी नये दर्शन की स्थापना करने की कोशिश नहीं की है । यह सत्य है कि वैदिक ऋचाओं एवं मन्त्रों की नवीन रूपों में शास्त्र सम्मत, तर्कपूर्ण एवं अन्वेषणात्मक व्याख्या के फलस्वरूप हिरण्य सूक्त, पुरुष सूक्त, नारदीय सूक्त आदि मंत्र संग्रहों में प्रछन्न रहस्य चिन्तन को दर्शन का स्वरूप प्राप्त हुआ है। इस दृष्टि से उनके दर्शन को 'वैदिक दर्शन' से अभिहित करना समीचीन प्रतीत होता है।

यद्यपि स्वामी जी ने दर्शन पर पृथक से कोई ग्रन्थ नहीं लिखा है तथापि वे स्वभावतः दार्शनिक है। इन्होंने केवल अपने वृहद् ग्रन्थों यथा 'वेदभाष्य' ऋग्वेदभाष्य भूमिका' तथा 'सत्यार्थ प्रकाश' जैसे ग्रन्थों में ही दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या नहीं की है, अपितु अपने लघु ग्रन्थों यथा–''स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश' 'आर्योद्देश–रत्नमाला' में शास्त्रार्थ तथा पत्रों व विज्ञापनों के दार्शनिक तत्वों का विवेचन किया है। दार्शनिक तत्वों को भी सूत्र रूप में निरूपण की उनमें असीम प्रतिभा थी।

महर्षि दयानन्द के समय आचार्य शंकर द्वारा प्रतिपादित अद्वैतदर्शन तत्वचिन्तन के सार के रूप में प्रतिष्ठित था। स्वामी जी ने शंकर के इस दर्शन को स्वीकार नहीं किया। दार्शनिक क्षेत्र में आचार्य शंकर का विरोध करना वस्तुतः एक साहस की बात थी और यह साहस स्वामी दयानन्द जैसा कोई अपूर्व मेधा सम्पन्न, निर्मल, आर्शप्रज्ञा का धनी महापुरुष ही दिखला सकता था। स्वामी जी जीवन के तत्व एवं रहस्य पर अपने तर्कपूर्ण विचार प्रस्तुत करते हुए उसे सुनिश्चित दर्शन पद्धति का स्वरूप प्रदान किया, जो 'त्रैतावाद' के नाम से लोक में विश्रुत हुआ । स्वामी जी के दार्शनिक विचाराधारा के मुख्य बिन्दु ईश्वर, जीवात्मा, प्रकृति, मुक्ति एवं मोक्ष, जगत ज्ञान–अज्ञान एवं सामाजिक दर्शन थे ।

v/;;u dh vko';drk ,o egRo %& संदर्भित साहित्य का अध्ययन करने पर यही दिखायी पड़ता है कि स्वामी जी के बारे में जो अध्ययन किये गये वे ज्यादातर उनके दर्शन से सम्बद्ध हैं । चौहान वी0पी0एएस0 (1981)1 ने स्वामी दयानन्द के शैक्षिक दर्शन का अध्ययन किया है । इनके अतिरिक्त जॉन केनेथ डब्ल्यू (1972)2, लक्ष्मी नारायण (1962)3 , गुप्ता विष्णु कुमार (1997)4 , शुक्ला अंजली (1985)5, ने भी अध्ययन किया है वर्तमान समय में इसकी क्या उपादेयता है? इस दर्शन को आज के परिवेश में कैसे समाहित किया जाय? शिक्षण विधियों एवं पाठ्यक्रमों में स्वामी जी के विचारों को कैसे रखा जाय? ये सभी प्रश्न अनुत्तरित हैं। अतः अध्ययनकर्ती ने इन्हीं बिन्दुओं को अध्ययन करने का प्रयास किया है । अतः प्रस्तुत अध्ययन का शीर्षक है–''महर्षि दयानन्द सरस्वती के दार्शनिक विचारों का विश्लेषण''।

v/;;u dk mís'; %&

अध्ययन के निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं :–

1. महर्षि दयानन्द सरस्वती के ईश्वर से सम्बन्धित विचारों का विश्लेषण करना।
2. महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवात्मा से सम्बन्धित विचारों का विश्लेषण करना।
3. महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रकृति से सम्बन्धित विचारों का विश्लेषण करना।
4. महर्षि दयानन्द सरस्वती का मुक्ति एवं मोक्ष से सम्बन्धित विचारों का विश्लेषण करना।

*असिस्टेन्ट प्रोफेसर, माँ मुराती बालिका महाविद्यालय, बलरामपुर,–आजमगढ़ (उ0प्र0)

v/;;u dh ifjdYiuk%

1. महर्षि दयानन्द का दर्शन सभी जीवों को कर्मानुसार सत्य एवं न्याय मिलता है।
2. महर्षि दयानन्द के अनुसार जीवात्मा अनादि, अजर व अमर है।
3. स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रकृति को भी अनादि मानते हैं।
4. महर्षि दयानन्द ने जीवात्मा की मुक्ति एवं मोक्ष को आनन्द स्वरूप माना है।

v/;;u fof/k% प्रस्तुत अध्ययन ऐतिहासिक विधि पर आधारित है, परन्तु इस शोध की प्रकृति दार्शनिक भी है । जिस प्रकार सम्बन्ध ज्ञान के प्रति गहन आस्था से है और ज्ञान पूर्ण अमूर्त अवधारणा है ज्ञान का अनुभव किया जा सकता है, ज्ञान का अनुभव करके ही हम वास्तविक निष्कर्ष पर पहुॅच सकते हैं। इसलिए प्रस्तुत अध्ययन में महर्षिक दयानन्द सरस्वती के विचारों का विभिन्न ग्रन्थों के माध्यम से अध्ययन किया गया है । इस शोध का निष्कर्ष शोधकर्ती की अपनी अर्न्तदृष्टि तथा खोज पूर्ण प्रवृत्ति पर निर्भर है । जिसमें विभिन्न पुस्तकालयों का सहयोग लिया गया है ।

v/;;u dh ikfIr;k ,o fu"d"k% अध्ययन की प्राप्तियाँ एवं निष्कर्ष निम्न है :—

1. स्वामी जी का दर्शन आस्तिकता के अद्‌भुत भाव पर आधारित है । उनकी दृष्टि में ईश्वर सर्वोच्च है वह सत् चित् और आनन्द (सच्चिदानन्द) का प्रतीक है। उसकी सत्ता सृष्टि के कण—कण में व्याप्त है । वह निराकार है । उसके साकार रूप की काई संभावना नहीं है । वह अनन्त, अनादि और सर्वशक्तिमान है । वह जीवों के कर्मों का निर्णायक है सृष्टि, पालन एवं संहार करने वाला वही है।

   ईश्वर के लक्षण बताते हुए स्वामी जी कहते हैं कि 'जिसके ब्रह्म परमात्मादि नाम है, जो सच्चिदानन्दादि लक्षण मुक्त है, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र है। जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्ता, धर्ता, हर्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षण युक्त है, उसी को परमेश्वर मानता हूँ।''

2. ईश्वर की भाँति जीवात्मा भी अनादि, अजर और अमर है । इसकी पृथक सत्ता है । लेकिन ईश्वर के विपरीत इसकी शक्ति एवं इसके गुण असीम एवं अनन्त न होकर सीमित हैं। स्वमी जी जीवात्मा के लक्षण को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—जो इच्छा, द्वेष, सुख एवं ज्ञानादित गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है, उसी को जीवन मनता हूँ ।''

3. ईश्वर और जीवात्मा की भाँति प्रकृति भी अनादि है। इसकी पृथक सत्ता है । प्रकृति सृष्टि का भौतिक आधार है । वह जड़ है। सत्व (शुद्ध) रजः (मध्य), तमः (आड्‌य अर्थात जड़ता) इन तीनों वस्तुओं के साथ को प्रकृति कहा जाता है।

स्वामी जी ने ईश्वर, जीवन एवं प्रकृति के सम्बन्धों को स्पष्ट करने में ऋग्वेद की प्रसिद्ध ऋचा को उद्धरित करते हुए कहा कि—

^^}k l|i.kk l;|tk l[kk;k leku| o{k| ifj Lotkr| A
R;kjU;% filiy| Lok}R;u'uUuU;k vfHk pkd'khfrAA**6

(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश (सयुजा) व्याप्त व्यापक भाव से संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रता युक्तसनातन अनादि है और (समानम्) वैसा ही (वृक्षम्) अनादि मूलरूप कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न—भिन्न हो जाता है वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनों के गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि है। (त्योरन्यः) इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्षरूप संसार में पापपुण्यरूप फलों को (स्वाद्धत्ति) अच्छे प्रकार भोक्ता है और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को (अनश्नन्) न भोक्ता चारों ओर अर्थात भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूपः तीनों अनादि है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक फल वाला वृक्ष है। दो पक्षी इसमें रहते हैं। उनकी आपस में गहरी मित्रता है किन्तु एक बड़ी भिन्नता है कि एक पक्षी उस वृक्ष के फल का भोग करता है जबकि दूसरा फल न खाते

हुए केवल साक्षी भाव से देखता है। वह दृष्टा मात्र है । यहाँ फलवान वृक्ष प्रकृति है, फल भोक्ता जीव है। दृष्टा साक्षी परमात्मा है ।

स्वामी जी के अनुसार 'ईश्वर' सच्चिदानन्द (सत+चित+आनन्द) स्वरूप है । ईश्वर की सत्ता है, उसमें चेतना है एवं वह आनन्द का श्रोत है। 'जीवात्मा' की सत्ता है, उसमें चेतना है किन्तु आनन्द नहीं है। 'प्रकृति' की केवल सत्ता है । उसमें न चेतना है, न आनन्द है ।

4. महर्षिक के अनुसार जीव स्वभावतः बद्ध या मुक्त नहीं होता है, अपितु अज्ञान आदि निमित्त से जीव बंधन में फंस जाता है एवं ज्ञानादि से मुक्त हो जाता है। जीवात्मा अज्ञानतावश प्रकृति का भोग करता हुआ माया के दलदल में फंसकर बंधनजन्य दुख को प्राप्त करता है। आत्मा को दुःख एवं क्लेश से मुक्त होना है।

परमेश्वर की आज्ञा का पालन करने, अधर्म, अविद्या, कुसंग, कुसंस्कार, बुरे व्यसनों से अलग रहने और सत्यभाषण, परोपकार, विद्या, पक्षपातरहित न्याय, धर्म की वृद्धि करने, पूर्वोक्त प्रकार से परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना अर्थात योगाभ्यास करने, विद्या पढ़ने–पढ़ाने एवं धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने, सबसे उत्तम साधनों को करने और जो कुछ करें वह सब पक्षपातरहित न्याय धर्मानुसार ही करें। इत्यादि साधनों से मुक्ति एवं इनसे विपरीत ईश्वराज्ञाभंग करने आदि काम से बद्ध होता है ।

अर्थात धर्म प्रवण, शास्त्रोक्त आचरण, जितेन्द्रियता, सत्यविद्या, श्रवण, चिन्तन, निदिध्यासन, योगाभ्यासादि को अंगीकार करने से जीवात्मा को मोक्ष का फल प्राप्त होता है । इसके विपरीत मिथ्या ज्ञान, असत्कर्म एवं अनुचित उपासना से बन्धन में रहता है ।

मोक्ष का स्वरूप क्या है? वह विवाद का प्रश्न है । प्रायः अन्य मतों के अनुयार मोक्ष की अवस्था में जीव का ब्रह्म से एकाकार हो जाता है एवं मोक्षोपरान्त जीवात्मा आवागमन से मुक्त हो जाती है। किन्तु स्वामी जी की दृष्टि से यह मिथ्या है । मोक्ष आनन्द रूप है । इस अवस्था में परम् आनन्द की प्राप्ति होती है। दुःख का लेशमात्र अंश विद्यमान नहीं रहता है । यद्यपि इस अवस्था में स्थूल शरीर नहीं होता है तथापि इन्द्रियाँ एवं मन विद्यमान रहते हैं, जिससे वह आनन्द का उपभोग करता है ।

स्वर्ग एवं नरक नामक कोई भिन्न लोक नहीं है, अपितु सुख विशेष को भोग करना स्वर्ग कहलाता है एवं दुःख विशेष का भोग करना नरक कहलाता है। सांसारिक सुख विशेष स्वर्ग है।

lUnHkZ %

1. बी0पी0 एस0 स्वामी दयानन्द के शैक्षिक दर्शन 1981, संदर्भित, डॉ0 आरती देवी, पी0एच0डी0 थेसिस सन् 2012, पेज–6।
2. जॉन्स केनेथ डब्ल्यू The Arya Dharma शोध प्रबन्ध डयूक वि0 वि0 अमेरिका 1972, संदर्भित, डॉ0 आरती देवी, पी0एच0डी0 थेसिस सन् 2012, पेज–15।
3. गुप्ता लक्ष्मी नारायण, हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन लखनऊ वि0 वि0 लखनऊ 1962, संदर्भित, डॉ0 आरती देवी, पी0एच0डी0 थेसिस सन्–2012, पेज–16।
4. गुप्ता विष्णु कुमार, भारत में सामाजिक, धार्मिक आन्दोलन का एक अध्ययन, स्वामी दयानन्द तथा स्वामी विवेकानन्द के संदर्भ में इलाहाबाद वि0 वि0 इलाहाबाद 1979 संदर्भित डॉ0 आरती देवी, पी0एच0डी0 थेसिस सन्–2012, पेज–16।
5. शुक्ला अंजली, स्वामी दयानन्द तथा स्वामी विवेकानन्द के सामाजिक तथा राजनीतिक विचार, एक अध्ययन इलाहाबाद वि0 वि0 इलाहाबाद 1985, संदर्भित डॉ0 आरती देवी, पी0एच0डी0 थेसिस सन्–2012, पेज–17।
6. श्रीमती आरती देवी, महर्षि दयानन्द सरस्वती का भारतीय शिक्षा में योगदान एवं वर्तमान परिवेश में इसकी उपादेयता, पी0एच0डी0 शिक्षा शास्त्र सन् 2012, डॉ0 रा0 म0 लो0 अवध वि0 वि0 फैजाबाद, पेज–63।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 286-287

o'kf"kd rFkk pkokd n'ku dk vUrdj.k

vt; dqekj flag*

वैशेषिक दर्शन के प्रणेता कणाद हैं। 'विशेष' नामक पदार्थ को स्वीकार करने के कारण इस दर्शन का नाम वेशैषिक पड़ा। ऐसा कई विद्वानों का विचार है, न्याय और वैशेषिक दर्शन में अत्यधिक समानता है। इसी समानता के कारण उत्तर काल में दोनों दर्शन मिलकर एक हो गये। न्याय ने वैशेषिक के प्रमेय को अपना लिया और वेशैषिक ने न्याय के प्रमाण–शास्त्र को पुनः न्याय में जहाँ तर्क की प्रधानता है वहीं वैशेषिक में तत्वमीमांसा को अत्यधिक महत्व प्रदान किया गया है।

वैशैषिक दर्शन के अनुसार जगत की सभी वस्तुओं को सात पदार्थों में विभाजित किया गया है। वे द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय तथा अभाव है–

"द्रव्यगुण कर्म–सामान्य विशेषसमवाभावाः सदैव पदार्थाः।"

nzO; %& कार्य के समवायी कारण और गुण एवं कर्म के आश्रयभूत पदार्थ को कहते हैं।

"क्रियागुणवत्सभावा विकारणमिति द्रव्य लक्षणम्।"[1]

द्रव्य नौ हैं– पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक, आत्मा और मन।

xq.k %& कार्य का असामावायिक कारण 'गुण' है। गुण द्रव्यों के आश्रित रहते हैं, उनमें और गुण नहीं होते हैं, न क्रिया होती है। रूप रस, गंध आदि चौबिस प्रकार के गुण होते हैं।

deZ %& कर्म गति अथवा क्रिया को कहते हैं। कर्म का अर्थ गति यारस्थान परिवर्तन है। कर्म के फलस्वरूप ही द्रव्यों का संयोग या विभाजन संभव हैं। कर्म पाँच प्रकार के हैं– अत्क्षेपन, अवक्षेपन, आकंचन, प्रसारण तथा गमन।

lkekU; %& अनेक वस्तुओं के उपस्थितनित्य एक प्रदार्थ को सामान्य कहते हैं। इसे सामान्य अर्थ में जाति भी करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक जाति या श्रेणी का एक सामान्य श्रेणी धर्म होता है। जैसे गो का गोत्व, अश्व का अश्वत्व आदि।

fo'ks"k %& यह सामान्य के विपरीत है। प्रत्येक नित्य द्रव्य को एक विशिष्ट वृति होती है। नित्य द्रव्य की इस विशिष्ट वृति को ही 'विशेष पदार्थ' कहा जाता है। 'विशेष' की उपस्थिति के कारण ही एक परमाणु दूसरे परमाणु और एक पदार्थ से अलग रहते हैं।

leok; %& नित्य सम्बन्ध को समवाय कहा है। यदि दो पदार्थों में ऐसा सम्बन्ध हो कि उनमें से एक दूसरे के आश्रय लेकर रहता है एवं इस सम्बन्ध के अभाव में इनकी कोई पृथक सत्ता नहीं रहे, तब ऐसे सम्बन्ध को समवाय कहते हैं।

vHkko %& कणाद ने छः प्रकार के भाव पदार्थ का उल्लेख किया है। परवर्ती वैशेषिकों ने अभाव को भी एक पदार्थ के रूप में ग्रहण किया है। उनके विचार से पात्र में जल नहीं हैं। इसमें पत्र को जिस प्रकार पदार्थ के रूप में ग्रहण किया गया है उसी प्रकार पात्र में जलाभाव भी एक पदार्थ है।

ijek.kqokn %& अविभाज्य सूक्ष्म जड़कणिकाओं के परमाणु कहते हैं। इनके समिश्रण से ही जागतिक जड़ वस्तुएँ उत्पन्न हुई हैं। किसी परमाणु अतिन्द्रिय द्रव्य है। इन्द्रियों की सहायता से इनका प्रत्यक्ष नहीं होता। प्रत्येक परमाणु का एक विशिष्ट धर्म है इसलिए परमाणु परस्पर भिन्न है। पृथ्वी, जल, तेज और वायु नित्यदशा में परमाणु रूप होते हैं।

*शोध छात्र, प्राकृत विभाग, समाजिक विज्ञान संकाय, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

vkRek %& वैशेषिक दर्शन के अनुसार आत्मा एक द्रव्य है। स्वरूपतः निर्गुण तथा निष्क्रिय है। यह मुक्त तथा शुद्ध है। शरीर और मन के सम्पर्क में आकर यह ज्ञाता, कर्त्ता और भोक्ता हो जाता है, तब यह सगुण और सक्रिय होता है। नैयायिकों के समान वैशेषिक का भी विचार है कि चैतन्य आत्मा का स्वभाविक गुण नहीं है और मुक्तावस्था सुषपि समान अचेतन अवस्था है।

bZ'oj %& वैशेषिक सूत्रों में ईश्वर का वर्णन नहीं है। विद्वानों का अनुमान है कि वैशेषिक पहले अनिश्वरवादी था परन्तु परवर्ती वैशेषिक ईश्वरवादी को अपनाया। उनके मत में आत्मा द्विविध है– जीवात्मा और परमात्मा।

pkokd n'ku %& चार्वाक दर्शन के प्रणेत बृहस्पति कहे जाते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि 'चार्वाक' नामक एक ऋषि इस मत के प्रवर्तक थे, जिनकी चर्चा महाभारत में की है। चर्वाक अर्थ चारूवाक् अर्थात् मधुर वचन वाला मत भी कहा जाता है। इसी प्रकार सामान्य लोक मत का प्रतिपादन करने के कारण इसे लोक मत दर्शन भी कहा जाता है।

चार्वाक गण प्रत्यक्षवादी हैं। वृहस्पति सूत्र के अनुसार प्रत्यक्ष ही एक मात्र प्रमाण है। "प्रत्यक्षमेव प्रमाणम्" पृथ्वी, जल, जेत और वायु ये चान तत्व हैं।

"पृथिव्यापस्ते जो वायु रिति तत्वाति।" पंचभूत आकाश प्रत्यक्ष द्वारा ज्ञेय नहीं है, अतः वह मान्य नहीं है। इन्हीं भूतों को शरीर, इन्द्रिय तथा विषय नाम दिया गया है।

"तत्समुदायै शरीरेन्द्रिय विषय संज्ञा।" इन्हीं भूतों से चैतन्य की उत्पत्ति होती है। "तेभ्यश्चैतन्यम्।" चैतन्यचुक्त स्थूल शरीर ही आत्मा है। "चैतन्य विशिष्टः कायः पुरुषः।" परलोक में रहनेवाला कोई नहीं है, अतः परलोक ही नहीं है। "परलोकिनोध्भावात् पर लोकाभावः।" मरण ही मोक्ष है– "मरणमेवापवर्गः।"

चार्वाक के अनुसार सुख ही परम पुरुषार्थ है। "सुखमेव पुरूषार्थ।" इस लघु ओरे नश्वर जीवन से सुख ही सार है। अतः जब तक जिये सुखपूर्वक जिये, चाहे ऋण लेकर के भी घृतपान करे। एक बार भस्म होने पर इस अमूल्य देह का पुनरागमन नहीं होता।

Þ;koTthosr~ l[ka thosr _.ka d`Rok ?kra fiosrA@HkLehHkrL; nsgL; iqukjkxeua dqr%AAß[4] चार्वाक मत के अनुसार सभी प्रकार के वैदिक और नैतिक कर्म निरर्थक हैं। वृहस्पति ने वेद और वैदिक कर्मों की बड़े कठोर शब्दों में निन्दा की है। वेदों के निर्माताओं को भेंड़, धूर्त्त और निशाचर कहा गया है। वेद की भाषा अनेक स्थलों पर जर्झरीं, तुर्झरी आदि अर्थहीन शब्दों से परिपूर्ण है।

Þ=;ksonL; dÙkkjks Hk.M&/kwrZ&fu'kkpjk%A@ t>jh r`>jhR;kfn iafMrkuka op% Le`reAAß[5]

यदि यज्ञ में बलिदान करने से पशु स्वर्ग जाता है तो यमजान का अपने मिता की ही बलि देनी चाहिए, जिससे वह सीधा स्वर्ग को चला जाये। यदि मरे हुए पितरों को पिण्ड पहुँच सकता है, तो प्रदेश यात्रा करनेवालों के साथ पाथेय बाँधना व्यर्थ है। इस प्रकार चार्वाक दर्शन पूर्ण रूप से भौतिकवादी है। उनके मतानुसार स्वर्ग, अपवर्ग, आत्मा और परलोक नाम की कोई चीज नहीं है। वर्णाश्रय, अपवर्ग, आत्मा और परलोक नाम की कोई चीज नहीं है। वर्णाश्रय आदि भी मिथ्या है। केवल क्रिया ही फल प्रदायिनी है।

Þu Loxksa ukikoxksa o uSokRek ikjykSfdd%A@uSo o.kkZJekn~huka fØ;k'p Qynkf;dk%AAß[6]

lUnHkZ %

1. वैशेषिक सूत्र – 1/1/15
2. वैशेषिक सूत्र – कणाद, सं. नारायण मिश्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
3. वैशेषिक दर्शन – महर्षि कणाद, विद्या विलास प्रेस, बनारस
4. सर्वदर्शनसंग्रह, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1994 ई. पृ. 21
5. माधवाचार्य, हिन्दी व्याख्या – शर्मा 'ऋषि' उमाशंकर, सर्वदर्शनसंग्रह, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1984 ई. पृ. 20
6. वही, पृ. 20

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 288-292

xkre c) d fHk{kkik= dk o'kkyh l iotu

fi:d d|ekj pk/kjh*

भगवान बुद्ध 28 वर्ष की आयु में शाक्य गणराज्य कपिलवस्तु के रामकुमार सिद्धार्थ के रूप में घर–बार और राजपाट त्याग कर जब ज्ञान की खोज में निकल पड़े तो कई गुरुओं के आश्रम में भी रहे थे। वे गुरु थे आचार्य अलार कालाम। ईसवी सन् की पहली और दूसरी शताब्दी में सुप्रसिद्ध बौद्ध महाकवि अश्वघोष हुए थे, जिन्होंने संस्कृत में बुद्धचरित्र नामक महाकाव्य की रचना की थी। इसके बाद संस्कृत में ललितविस्तर नामक प्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ की रचना गुप्त वंश के शासनकाल में (लगभग 319, 550 ई०) की गयी । इस ग्रंथ में विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है कि विभिन्न स्थलों से गुजरते हुए, ''बोधिसत्व पहले वैशाली गये, और वहाँ अलार कालाम के शिश्य बन गये। फिर वे राजगृह चले गये।[1]

यद्यपि धर्मानन्द कोसम्बी, राहुल सांकृत्यान, आदि विद्वानों के बीच वैशाली क्षेत्र में अलार कालाम एवं उद्दक रामपुत्त जैसे बुद्ध–पूर्व आचार्यों के आश्रमों के बारे में मतैक्य नहीं है, फिर भी ललितविस्तर जैसे ग्रंथ में राजकुमार सिद्धार्थ के सर्वप्रथम वैशाली में आने से संबंधित तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। सबसे बड़ी बात तो यह है कि छठी एवं पाँचवीं सदी ई०पू० में, जब अधिकांश भूमि जंगलों से आच्छादित थी तथा सड़क मार्गों की संख्या बहुत कम थी, उत्तर बिहार में वैशाली प्रमुख सड़कों के नेटवर्क से अच्छी तरह जुड़ी हुई थी। वैशाली होकर एक प्रमुख मार्ग नेपाल की तराई से दक्षिण दिशा में मगध की राजधानी राजगृह तक जाता था। पालि साहित्य में सर्वत्र यह वर्णन मिलता है कि श्रावस्ती से राजगृह तक की दूरी लोग प्रायः कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा, भोगनगर और वैशाली होकर ही तय करते थे। ललितविस्तर सहित पालि, संस्कृत एवं चीनी भाषाओं में लिखे गये विभिन्न बौद्ध ग्रंथों के आधार पर तिकन्यात हन्ह नाम प्रसिद्ध वियतनामी बौद्ध भिक्षु एवं विद्वान ने बुद्ध के जीवन एवं शिक्षाओं पर एक अत्यंत ही दिलचस्प आख्यान की रचना की है। इसमें यह भी वर्णन मिलता है कि वैशाली के निकट उत्तर दिशा में आलार कालाम का विद्या केन्द्र था। वहीं पर कालाम के शिष्य के रूप में सिद्धार्थ ने जीवन में सर्वप्रथम हाथ में भिक्षापात्र लेकर वैशाली में प्रवेश किया था। इस भिक्षाटन में उन्होंने सीखा कि किस प्रकार भिक्षापात्र पकड़ना है, किस प्रकार खाद्य पदार्थ भिक्षापात्र में स्वीकार करना है और कैसे भिक्षादाता को धन्यवाद देना था।[2] आलार कालाम से ही बुद्ध ने साधना एवं समाधि में रम जाने की शिक्षा पायी थी तथा योग–प्राणायन की विधियों द्वारा एकाग्रचित होने का अभ्यास किया था।[3] साधना द्वारा ही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है न कि केवल मानसिक तर्क–वितर्क द्वारा।

848 ई०पू० में 79 वर्ष की आयु में जब भगवान बुद्ध ने बरसात प्रारम्भ होने के बाद पटना होते हुए लिच्छवि गणराज्य में प्रवेश किया तो जीवन के अंतिम समय तक, लगभग 8–9 महीनों तक लगातार उसी क्षेत्र में अंतिम वर्षावास एवं विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करते हुए अपनी भिक्षुओं का प्रचार करते रहे। वैशाली के पास वेलुव ग्राम में अंतिम वर्षावास के दौरान ही वे गम्भीर रूप से बीमार भी हो गये थे। उनके पेट में जानलेवा पीड़ा होने लगी थी। किन्तु नियम–संयम, श्वसन–प्रश्वसन क्रिया एवं मनोबल से यह बीमारी शांत हो गयी। तीन महीने बाद पुनः वही बीमारी उभर गयी और कुशीनारा में उनका शरीरांत हो गया।

भगवान बुद्ध को भरपूर सम्मान एवं संरक्षण मगध, कोसल, आदि राजतंत्रात्मक राज्यों द्वारा भी प्रदान किया था, लेकिन उनके अंतरतम में गणतंत्रात्मक शासन पद्धति ही घर बनाये हुई थी और भारत के सभी गणराज्यों में वैशाली का लिच्छवि गणराज्य ही सर्वश्रेश्ठ था। प्रमुख बौद्ध ग्रंथ 'दीघनिकाय' के

*प्रा०भा०इ० एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

'महापरिनिब्बाण सुत्त' (महापरिनिर्वाण सूत्र) में बुद्ध की अंतिम जीवन यात्रा का सविस्तार वर्णन किया गया है। इसमें उनके जीवन के अंतिम साल का पूरा विवरण मौजूद है – राजगृह से नालन्दा, पाटलिपुत्र, वैशाली आदि स्थानों से होते हुए कुशीनगर में महापरिनिर्वाण तक का। इस ग्रंथ में वज्जि गणराज्य के संविधान अथवा राजकाज की उन सात विशेषताओं का वर्णन किया गया है, जिनके भगवान बुद्ध कायल थे। स्वयं बुद्ध ने ही इस साथ गुणों का बखान तब किया था जब राजगृह के गृद्धकूट पर्वत पर मगध के प्रधानमंत्री वर्षकार ने राजा आजातशत्रु द्वारा लिच्छवियों पर आक्रमण करने की योजना पर उनकी राय मांगी थी। बुद्ध ने महामंत्री को साफ–साफ जवाब दिया था कि जब तक वज्जिसंघ के लोग उन सात नियमों के अनुसार कार्य करते रहेंगे, उन्हें कोई जीत नहीं सकेगा।[4] वस्तुतः गणराज्य के संविधान का स्वरूप प्रजातांत्रिक एवं धर्मनिरपेक्ष था और इसके सात गुणों के अनुरूप ही बुद्ध ने बौद्ध धर्म एवं संघ के संचालन के लिए सात नियम निर्धारित किये थे।

लगभग 483 ई॰पू॰ में माघ मास की पूर्णिमा को भी भगवान बुद्ध ने वैशाली में अपने प्रधान शिष्य आनन्द को सम्बोधित करते हुए यह घोषणा कर दी थी, ''आनन्द! मैं (अब; जीर्ण–शीर्ण और वृ्द्ध हो चुका हूँ।) अस्सी वर्ष की मेरी उम्र है। जिस प्रकार पुरानी गाड़ी को बाँध–जोड़कर चलाया जाता है, ठीक उसी प्रकार तथागत का शरीर बाँध–बूंधकर चल रहा हूँ।'' उन्होंने वैशाली की सुन्दरता का भी इस प्रकार बखान किया; ''आनन्द रमणीय है वैशाली। रमणीय है यहाँ का उदयन चैत्य, गोतमक चैत्य, सतम्बक (सप्तआम्रक) चैत्य, बहु–पुत्रक चैत्य, सारनन्द चैत्य; रमणीय है चापाल चैत्य .....।''[5]

जब भगवान बुद्ध वैशाली से निर्वाण–पथ पर प्रस्थान करने की थे तो पूर्वाह्न समय में वैशाली में अंतिम बार हाथ में भिक्षापात्र लेकर पिंडचार (भिक्षाटन) भी किया था। भोज के बाद उन्होंने वैशाली को चतुर्दिक निहारते हुए मार्मिक स्वर में कहा, ''आनन्द! तथागत का यह अंतिम वैशाली दर्शन होगा।''[6] इसी उक्ति को अश्वघोष ने इस प्रकार रखा है। हे वैशाली, अपने जीवन के शेषभाग में मैं तुम्हें फिर न देखूँगा, क्योंकि मैं निर्वाण की ओर जा रहा हूँ[7] और जब वे कुशीनारा जाने के क्रम में अगले पड़ाव भंडग्राम की ओर चलने लगे तो वैशाली के बहुत से लिच्छवि भी रोते–बिलखते हुए उनके पीछे–पीछे जाने लगे। उस समय वैशाली के लोगों की जो हालत हो गयी थी, उनका मार्मिक चित्रण अश्वघोष ने इस प्रकार किया है; जब मुनि निर्वाण के लिए चले, तब वैशाली निष्प्रभ हो गयी, जैसे कि सूर्यग्रहण होने पर अंधकार से ढ़का हुआ आकाश।[8] भगवान बुद्ध ने वैशाली के लोगों को लौट जाने के लिए बार–बार आग्रह किया, लेकिन वैशाली और कोसल की सीमा पर आधुनिक केसरिया नामक स्थान तक वे उनके साथ गये। अन्त में भारी मन से वे लौटने की राजी हुए। कहा जाता है कि लिच्छवियों को सांत्वना देने के लिए उन्होंने अपना भिक्षापात्र भी उनको दे दिया।[9] कोई छः सौ वर्षों तक भगवान बुद्ध का वैशाली के निवासियों को दिया हुआ भिक्षापात्र बहुमूल्य धरोहर के रूप में वहाँ पर सुरक्षित रहा। इस बीच, परिनिर्वाण के ठीक एक सौ साल बाद लगभग 383 ई॰पू॰ में बौद्ध धर्म एवं संघ की दूसरी संगीति वैशाली में हुई, जिसमें पूरे सात सौ भिक्षुओं ने भाग लिया था। बुद्ध का भिक्षापात्र वैशाली की धतरी पर मौजूद रहने के कारण इस नगर का बौद्ध जगत में बहुत महत्व था। जिस वस्तु का उपयोग भगवान बुद्ध ने स्वयं किया हो, उस पर देश–विदेश के पर्यटकों की निगाहें सदैव टिकी रहती थीं। लेकिन छः सौ साल बाद, लगभग 78 ई॰ से 120 ई॰ के बीच, मध्य एशियाई मूल का कुषाण कनिष्क इस अमूल्य धरोहर को वैशाली से उठाकर अपनी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) चला गया।

ईसवी सन् की दूरी सदी में कुषाण राजा कनिष्क जब भिक्षापात्र को पेशावर ले गया, तब से उसका पिछले दा हजार साल के दौरान, प्रायः देशांतरण ही होता रहा। जहाँ तक विशाल कुशाण साम्राज्य के मध्य एशिया से लेकर मध्य गंगा घाटी तक विस्तार का प्रश्न है, अब यह तथ्य अच्छी तरह स्थापित हो चुका है कि इसकी पूर्वी सीमा बिहार के अनेक भागों तक फैल चुकी थी, जिनमें मगध और वैशाली के क्षेत्र भी शामिल थे। कुषाण शासक कनिष्क की गिनती प्राचीन भारत के सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं पराक्रमी शासक में की जाती है। अनेक भारतीय एवं चीनी स्रोतों से ज्ञात होता है कि वह स्वयं बौद्ध धर्म का निष्ठावान अनुयायी हो चुका था तथा उनके संरक्षण में कश्मीर में बौद्ध भिक्षुओं को चौथा महासम्मेलन हुआ

था। उसके राज्यकाल में जारी किये गये अगिनत सिक्कों में हिन्दू, यूनानी एवं ईरानी देवताओं के अलावा कुछ पर बुद्ध का भी चित्रण हुआ है।[10]

अनेक भारतीय एवं विदेशी स्रोतों से कनिष्क के गंगा घाटी में अभियान के दौरान मगध पर आक्रमण किये जाने तथा बौद्ध विद्वान अश्वघोश एवं बुद्ध के भिक्षापात्र को अपने साथ गंधार ले जाने का उल्लेख हुआ है। श्रीधर्मपिटकनिदानसूत्र नामक ग्रंथ में यह वर्णन किया गया है कि कनिष्क ने पाटलिपुत्र पर आक्रमण करके वहाँ के राजा को पराजित किया था और क्षतिपूर्ति के रूप में पाटलिपुत्र से अश्वघोष को भी अपने साथ लेकर चला गया था।[11] साथ ही उत्तर बिहार से वह बुद्ध के भिक्षापात्र को भी अपने साथ लेकर चला गया था। ऐसा समझा जाता है कि वह वैशाली से भिक्षापात्र को पुरुषपुर ले गया था।[12]

अनेक तिब्बती एवं चीनी स्रोतों में कनिष्क के मगध पर आक्रमण के बारे में यह दिलचस्प वर्णन भी मिलता है पराजित हो जाने पर पाटलिपुत्र का राजा नौ लाख स्वर्ण मुद्राएँ कनिष्क को देने के लिए तैयार हो गया, किन्तु जब वह इतनी बड़ी धनराशि जुटाने में असमर्थ हो गया तो इस कुषाण राजा को बदले में बुद्ध का भिक्षापात्र ही दे दिया। अतः विदेशी स्रोतों में दिए गए इस प्रकार के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि उस समय पाटलिपुत्र से शासन कर रहे राजा का आधिपत्य वैशाली पर भी था तथा भगवान बुद्ध के भिक्षापात्र को किसी भी कीमत पर हथियाने के लिए होड़ मची हुई थी।

वैशाली से भिक्षापात्र को पेशावर ले जाने के कोई तीन सौ साल बाद, पाँचवी सदी के प्रारम्भ में (399 ई॰ से 494 ई॰) सुप्रसिद्ध चीनी यात्री फाह्यान ने सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप एवं श्रीलंका का भ्रमण किया था। उसके वृत्तांत से बुद्ध के भिक्षापात्र को पेशावर में होने तथा उसे वैशाली से वहाँ ले जाने की पुश्टि हो जाती है। उसने गंधार क्षेत्र में भ्रमण के दौरान कनिष्क जैसे प्रतापी एवं धर्मात्मा शासक की प्रशांसा करने के बाद पुरुषपुर का वर्णन किया है। उसने लिखा है कि, ''बुद्ध का भिक्षापात्र इस देश (गंधार) में मौजूद है।'' उसने इस बात का उल्लेख भी किया है कि वहाँ पर सात सौ से भी ज्यादा भिक्षु रहते हैं। दोपहर होने से थोड़ा पहले ही वे भिक्षापात्र को बाहर निकालते हैं तथा वहाँ के आम लोगों के साथ उसकी पूजा–अर्चना करते हैं। लोग भिक्षापात्र पर तरह–तरह के चढ़ावे अर्पित करते हैं और तदुपरांत मध्याह्न काल में भोजन करते है।[13] संध्या वेला में भी इसे बाहर निकाला जाता था और धूप–बत्ती दिखाकर इस पर फूल चढ़ाये जाते थे। शाम में भी निर्धन जन धनी लोगों के साथ इसके अभिवादन में सम्मिलित हो जाते थे।[14]

फाह्यिान के यात्रा के वृत्तांत में बुद्ध के भिक्षापात्र के उद्गम स्थान का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है। यात्रा के अंतिम चरण में श्रीलंका में भ्रमण के दौरान फाह्यिान ने एक भारतीय उपासक द्वारा यह कहते हुए सुना था कि, ''बुद्ध का भिक्षापात्र सर्वप्रथम वैशाली में था और अब यह गंधार में है।''[15] उस उपासक ने प्रवचन–मंच से एक सूत्र का पाठ करते समय यह जानकारी दी थी। उसके प्रवचन का मुख्य विषय ही था बुद्ध का भिक्षापात्र।

फाह्यिान के सवा सौ साल बाद, 629 ई॰ से 645 ई॰ की अवधि में, प्रख्यात बौद्ध यात्री ह्वेन–त्सांग ने भी भारत यात्रा के दौरान बुद्ध के भिक्षापात्र के बारे में वर्णन किया है। उसने गंधार की राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) के आंतरिक भाग में अथवा राजकीय परिसर में उस टावर का जिक्र किया है जहाँ पर पहले बुद्ध का भिक्षापात्र था। वह भी इस तथ्य का उल्लेख करता है कि ''बुद्ध के निर्वाण के बाद उनका पात्र इस देश में लाया गया था।''[16] पुरुषपुर में सदियों तक इस पात्र का पूजा–अर्चना होती रही। किन्तु ह्वेन–त्सांग के भारत भ्रमण के समय वह पात्र पुरुषपुर में नहीं था, बल्कि उसके अनुसार विभिन्न देशों का चक्कर काटते हुए फारस (ईरान) पहुँचा हुआ था।[17] ह्वेन–त्सांग ने स्वयं ईरान की यात्रा नहीं की थी, बल्कि पेशावर में ही वहाँ के बारे में सारी जानकारी प्राप्त की थी। उस समय ईरान की राजधानी सूरस्थान नामक स्थान में यह पात्र रखा हुआ था। वहाँ पर उन दिनों दो–तीन संघराम थे, जहाँ पर हीनयान की सर्वास्तिवादी शाखा के कई सौ भिक्षु रहते थे। वहीं पर राजमकल में शाक्यमुनि बुद्ध का भिक्षापात्र रखा हुआ था।[18] ह्वेन–त्सांग के अनुसार उस समय वहाँ के मूल पारसी–धर्म से संबंधित सूर्य मंदिर सहित ढ़ेर सारे देव मंदिरों के आलावा कई बौद्ध विहार भी मौजूद थे।[19]

ह्वेन–त्सांग के प्रसिद्ध चीनी शिष्य शमन (श्रमण) हुई ली ने भी अपने गुरु की जीवनी लिखी थी। ह्वेन–त्सांग के भारत भ्रमण से संबंधित यह भी महत्वपूर्ण कृति समझी जाती है। इसमें भी पुरुषपुर में अनमोल भिक्षापात्र को सुरक्षित रखने के लिए कनिष्क द्वारा निर्मित बहुमूल्य टावर की चर्चा की गयी है। इसमें भी कहा गया है कि इस पात्र को कलान्तर में विभिन्न देशों का चक्कर काटना पड़ा और ''सम्प्रति यह वाराणसी में मौजूद है।''[20] किन्तु यहाँ पर सातवीं में भिक्षापात्र का ठिकाना बनारस में बतला कर जीवनी–लेखक ने भारी भूल कर दी है।

सातवीं सदी में ह्वेन–त्सांग द्वारा बुद्ध के भिक्षापात्र की उपस्थिति ईरान में बतलाया जाना युक्तिसंगत प्रतीत होता है। क्योंकि तीसरी सदी के मध्य में ही कुषाणों को ईरान के सस्सानिद वंश के शासक से हुए भीषण युद्ध में करारी हार खानी पड़ी थी। इसके पश्चिमोत्तर भारत एवं अफगानिस्तान के क्षेत्र ईरान के सस्सानी शासक शापुर (241–272) ई॰ के साम्राज्य के अंग बन चुके थे।[21] साथ ही मध्य एशिया के खानाबदोश कबायली जातियों के हमले भी उन्हें झेलने पड़े थे। पाँचवीं सदी तक एक ओर कुशाण साम्राज्य पूर्णतया विघटित हो चुका था और दूसरी ओर वे भारतीय संस्कृति में घुल–मिलकर बहुत हद तक अपनी विदेशी पहचान खो चुके थे। फिर भी पाँचवीं शताब्दी तक, यानि फाह्यिान के समय तक तो भिक्षापात्र पेशावर में था ही। हो सकता है कि सस्सानी शासन काल में इसे ईरान ले जाया गया हो। बात जो कुछ भी हो लेकिन इतना तो तय है कि भगवान बुद्ध के शरीरान्त के बाद उनका भिक्षापात्र लगभग छः सौ वर्षो तक वैशाली में सुरक्षित रहा और ईसवी सन् की दूसरी सदी के प्रारम्भ में, जब वह पेशावर चला गया तब से वह प्रायः भ्रमणशील ही बना रहा। चूँकि कुषाण शासनकाल में पश्चिमोत्तर भारत, अफगानिस्तान एवं मध्य एशिया के विभिन्न क्षेत्रों के अलावा सुदूर पूर्व में चीन और जापान तक बौद्ध धर्म फैल चुका है, इसलिए पेशावर में रखे हुए अनमोल भिक्षापात्र को बलपूर्वक भी उठाकर ले जाने की ताक में लोग रहते थे। फाह्यिान के यात्रा वृत्तांत के अध्याय [12] में इस प्रवृत्ति का जीवन वर्णन किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि कालांतर में भिक्षापात्र को कन्दहार में प्रतिष्ठापित कर दिया गया। अफगानिस्तान प्राचीन काल में बौद्ध धर्म और संस्कृति का गढ़ था ही, जिस कारण लम्बी अवधि तक यह पात्र कन्दहार में बरकरार रहा। तबसे यह पात्र सदियों तक वहीं पर सुरक्षित रहा। सम्प्रति भगवान बुद्ध का भिक्षापात्र अफगानिस्तान की राजधानी काबुल स्थित देश के बड़े संग्रहालय में सुरक्षित है। 1918 ई॰ में इस संग्रहालय की स्थापना के बाद भिक्षापात्र को वहाँ पर स्थानांतरित कर दिया गया था।

वैशाली के सांसद एवं ग्रामीण विकास मंत्री डॉ॰ रघुवंश प्रसाद सिंह जी ने भारत सरकार की समिति बनाकर भिक्षापात्र का निरीक्षण हेतु पुरातत्त्व वैज्ञानिक को काबुल भिजवाया तथा सही पाया। अब उसे वैशाली लाने की आवश्यकता है। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के प्रसिद्ध पुरातत्त्वविद् डॉ॰ फणिकान्त मिश्र ने काबूल जाकर बौद्ध भिक्षापात्र का निरीक्षण कर रिपोर्ट भारत सरकार को दिया।

lUnHkZ %

1. धर्मानन्द कोसम्बी : (2008), भगवान बुद्ध, जीवन और दर्शन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ॰ 89
2. तिक न्यात हन्ह : (2008), जहाँ–जहाँ चरण पड़े गौतम के (Cold Path White Cloud) का हिन्दी अनुवाद, हिन्द पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, पृ॰ 99–107
3. वही, पृ॰ 99–107
4. राहुल, सांस्कृत्यायन : (1995), बुद्धचर्या, भारतीय बौद्ध समिति, लखनऊ, पृ॰ 484–489
5. वही, पृ॰ 496
6. वही, पृ॰ 497
7. बुद्धचरित, सर्ग 24.34; सूर्यनारायण चौधरी (अुनवाद), (1995), अश्वघोष कृत बुद्ध चरित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ॰ 208
8. बुद्धचरित, सर्ग 25.1
9. जगदीश्वर पाण्डेय : (1996), ऑन द फुटप्रिंट्स ऑफ द बुद्ध, तनुश्री प्रिंटिंग प्रेस, पटना, पृ॰ 47
10. के॰ एंटोनावा, जी॰ बोगाड लेविन एवं जी॰ कोटोत्यस्की : ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग–1, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मास्को, पृ॰ 120

11. बी॰पी॰ सिन्हा (सं॰) : (1974), कम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ बिहार भाग– 1, के॰पी॰जे॰आर॰आई॰, पटना, पृ॰ 783
12. वही, पृ॰ 783–84
13. जेम्स लेगे : (1886), ए रिकॉर्ड ऑफ बुद्धिस्ट किंगडम्स, ऑक्सफोर्ड, अध्याय 12
14. वही,
15. वही, अध्याय 19
16. सैम्युअल बील : (1981), बुद्धिस्ट रिकॉर्ड ऑफ द वेस्टर्न वर्ल्ड, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, भाग, पृ॰ 98
17. वही, पृ॰ 99
18. वही, पृ॰ 278
19. वही, पृ॰ 94
20. शमन हुई ली और एस॰ बील : (1973), द लाइफ ऑफ ह्वेनसांग, एकैडिमिका एशियाटिका, पटना, पृ॰ 98
21. के॰ एंटोनोवा एवं अन्य, पूर्वोक्त, पृ॰ 118

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 293-295

Lokeh n;kuUn ljLorh

MkW0 lk/kuk tk;loky*

''ब्रिटिश शासन–काल में एक अत्यधिक शक्तिशाली व्यापक औश्र विशुद्ध भारतीय आन्दोलन आर्य– समाज द्वारा संचालित किया गया, जिसके जन्मदाता स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। उन्होंने अपने धार्मिक– सामाजिक विचार 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक पुस्तक में लिखी। वेदों की टीकाएं लिखीं। उनके सत्यार्थ प्रकाश का समाज पर बड़ा प्रभाव पड़ा तथा आर्य– समाज ने समाज को नई दिशा देने का ऐतिहासिक कार्य किया।'' हिन्दू धर्म के प्रति स्वामी जी को अत्यधिक गर्व था। आर्य समाज का गुजरात उत्तर प्रदेश और पंजाब में विशेष प्रभाव था।

कहा जा सकता है कि ब्रहमसमाज और प्रार्थना– समाज के सदस्यों की निर्बलता ने स्वामीजी को पैदा किया। समाज की उपलब्धियों का व्याख्यान करते हुए स्वामी जी कहते हैं– ''जो कुछ ब्रहा समाज और प्रार्थना समाजियों ने इसाई मत में मिलने से थोड़े मनुष्यों को बचाया और कुछ– कुछ पाषाणादि मूर्ति पूजा को हटाया, अन्य जाल ग्रन्थों से बचाया, इत्यादि अच्छी बातें हैं। परन्तु इन लोंगों में स्वदेश– भक्ति बहुत न्यून है। ईसाईयों के आचरण बहुत से लिए हैं, खान–पान, विवाहादि के नियम भी बदल दिए हैं। अपने देश की प्रशंसा और पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही, उसके बदले पेट भर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में इसाई आदि अंग्रेजों की प्रशंसा खूब करते हैं। ब्रहादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते। प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि बिना अंग्रेजों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई विद्वान ही नहीं हुआ।

आर्यावर्ती लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं। वेदादि की प्रतिष्ठा तो दूर रही, परन्तु निन्दा करने से भी पृथक नहीं रहते, ब्राहा समाज के उद्देश्य की पुस्तिका में साधुओं की संख्या में ईसा, मूसा, मुहम्मद, नानक और चैतन्य लिखे हैं। किसी ऋषि– महर्षि का नाम भी नहीं लिखा।''[1]

स्वामी जी का आर्य समाज की स्थापना का उद्देश्य राष्ट्रवाद को बढ़ावा देना था। स्वामी जी के राष्ट्रवादी विचारों की प्रशंसा करते हुए रोम्याँ रोला ने लिखा है, '' स्वामी जी जनता के महान् उद्धारक थे। आर्य सामज उस समय राष्ट्रीय पुनर्जागरण के महत्वपूर्ण काय में महत्वपूर्ण शक्ति थी। स्वामीजी ने राष्ट्रीय संगठन एवं पुननिर्माण के लिए एक महान कार्य किया। उनके आर्य समाज ने 1905 के बंगाल के राष्ट्रवादी आन्दोलन के लिए मार्ग प्रशस्त किया। यद्यपि इसकी स्थापना इस लक्ष्य को लेकर नहीं की गई थी।''[2]

एक अन्य लेखक ने कहा है, '' स्वामी दयानन्द पुननिर्माण तथा राष्ट्रीय चेतना के एक दूत थे।''[3] '' आर्य समाज ने राष्ट्रीय विचारधारा को आगे बढ़ाने में आश्चर्यजनक योगदान किया। कुछ समय ब्रिटिश सरकार इसे दबाने के लिए भरपूर चेष्टा करती रही, किन्तु उत्तर भारत के आचार–विचार, रहन–सहन और साहित्य– संस्कृति पर आर्यसमाज का गहरा प्रभाव पड़ा।''[4] पाश्चात्य विचाराधारा से राष्ट्रवाद और देशप्रेम की तुलना में समाजी लोग अधिक प्रभावित थे। वे नई बौद्धिक चेतना से प्रभावित होकर परम्परित जड़ मान्यताओं में सुधार के आग्रही थे। आर्यसमाज का कार्य बहुमुखी था। भारतीय जीवन के धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक आदि सभी विषयों पर उन्होंने नये ढंग से विचार किया। जब शिक्षित वर्ग वैज्ञानिक विकास की चकाचैंध से ओतप्रोत था और प्राचीन सामाजिक मान्यताओं में सुधारवादी परिष्कार हो रहे थे विश्वधर्म के नारे के बीच स्वधर्म धूमिल हो रहा था, उस समय स्वामी जी ने विश्वचिंतन को वैदिक वाङ्मय की ओर प्रेरित किया। आडम्बरपूर्ण विधि निषेध को त्याज्य बताया राष्ट्रीय स्वाभिमान को उन्होंने जाग्रत

*न्यू पुलिस लाइन, कल्ली पश्चिम, पी0जी0 आई0 लखनऊ, उ0प्र0

किया। मूर्तिमूजा का विरोध, विधवा–विवाह– समर्थन– अछूतोद्धार, बाल–विवाह– निन्दा, अनाथालयों एवं विधवाश्रमों तथा बाढ़ एवं दुर्भिक्ष के अवसर पर संतप्त लोगों की सहायता स्वामी दयानन्द जी के महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य थे। ''वैदिक कट्टरता के बावजूद दयानन्द अत्यन्त प्रगतिशील महात्मा थे, बल्कि कहना चाहिए कि वैदिक साहित्य का नया भाष्य लिखाकर और उसे नयी भूमिका देकर दयानन्द ने बौद्धिक धारा का प्रगतिशीलता से सीधा सम्बन्ध प्रमाणित किया। वर्ण– व्यवस्था की उन्होंने नयी व्याख्या की और ब्राह्मण– शूद्र का तात्विक भेद स्पष्ट किया। नारी जाति को अपेक्षित सम्मान दिया।''[5] वैदिक धर्म के व्याख्याता होने के बाजवजूद स्वामी दयानन्द समाज की भौतिक उन्नति के लिए पश्चात्य ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा को आवश्यक समझते थे। इसीलिए सन् 1886 में दयानन्द एंग्लावैदिक कालेज की स्थापना हुई और आगे चलकर प्रत्येक महत्वपूर्ण स्थान पर दयानन्द स्कूल, कालेज खोले गये।

स्वामी दयानन्दजी गुजराती थे, लेकिन राष्ट्रीय एकता के लिए हिन्दी के प्रचार– प्रसार की आवश्यकता मानते थे। उस समय जो लोग अपने धर्म को छोड़कर ईसाई और इस्लाम धर्म में दीक्षित हो गये थे, उन्हें शुद्धि आन्दोलन द्वारा पुनः अपने धर्म में लाने का उन्होंने भरसक प्रयास किया। उन्होंने अन्य धर्म के अनुयायियों को भी अपने धर्म में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया।

सामाजिक अव्यवस्था एवं राजनीतिक दासता के बीच ही राष्ट्रीय चेतना तीव्र हो रही थी उदारतावादी नेताओं की तरह सुशासन के नहीं स्वामीजी स्वशासन के आकांक्षी थे। जीन–जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओं पर उनका ध्यान गया था। ''यह स्पष्ट है कि बहुत से पढ़े– लिखे लोगों को भी नौकरी नहीं मिलती या वे जीवन–निर्वाह का प्रबन्ध नहीं कर सकते। ऐसी अवस्था देखकर मैं एक कलाा– कौशल के स्कूल की आवश्यकता पर विचारता हूँ। प्रत्येक पुरुष को आय का सौवाँ भाग प्रस्तावित संस्था को दे देना चाहिए, उस धन से चाहे तो विद्यार्थी कला– कौशल सीखने जर्मनी भेजे जायँ या वहाँ से अध्यापक बुलाए जायँ।''[6]

इस प्रकार स्वामी दयानन्द जी में गुरुकुलों में विश्वास रखने वाले प्रगतिशील चेतना का बोध होता है। यह सही है कि विश्व धर्म एवं अन्तर्राष्ट्रीयता का राग अलापने की तुलना में तिलक की ही भाँति वे उग्र राष्ट्रवादी चेतना से प्रभावित थे। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा के परिदृश्य में ही आगे चलकर राजनीति में ही आगे चलकर राजनीति मेंभी गरम और नरम दो दल पैदा हुए। राष्ट्रीय भावना के कारण स्वामी जी गरमदल के पार्श्व में पड़ते थे। पाण्ड्या मोहनलाल जी से स्वामीजी ने कहा था– ''एक तो मेरा धार्मिक लक्ष्य सार्वजानिक है। उसे संकुचिल नहीं किया जा सकता; दूसरे भारतवासी लम्बी तानकर ऐसी गहरी नींद में सो रहे हैं कि मीठे शब्दों से तो आँख तक खोलने को समुद्यत नहीं होते। सुधार का तो ये नाम तक नहीं लेते। कुरीतियों और कुनीतियों के खंडन रूप किसी कड़े की तड़ातड़ ध्वनि से भी यदि वे जाग जाएँ तो ईश्वर का कोटि–कोटि धन्यवाद करूँगा। –– पाण्ड्या जी। कोई देश जन– शून्य नहीं हो जाया करता। लोग तो बने ही रहा करते हैं। परन्तु धर्म गुरुओं और सामाजिक नेताओं की असावधानी, प्रमाद और आलस्य से भावना, भाव और भाषा आदि एकता के चिन्ह बदल जाते हैं। जाति के आचार–विचार प्रवर्तित हो जाते हैं। रहन–सहन के ढंगों में भेद आ जाता है। ठीक ऐसा ही समय स देश पर उपस्थित है। यदि संभाला नहीं गया तो आर्य जाति परिवर्तन के चंचल चक्र पर चढ़कर अतिशय उतावली से अपने पूर्व शरीर को परिवर्तित कर डालेगी। इसके पिछले प्रमाण के कारण करोड़ों मनुष्य मुसलमान बन गए। अब प्रतिदिन सैकड़ों ईसाई बनते चले जा रहे हैं। ऐसे समय में तो सार्मबन्धुओं को कड़े हाथ से , उनकी चोटियाँ पकड़कर ही जगाना होगा। भाई, यह कटु कर्तव्य मैं कोई अपने स्वार्थ के लिए तो पालन नहीं कर रहा हूँ। मुझे तो इंनके कारण अवहेलना, निन्दा, कुवचन, ईंट– पत्थर और विद्या ही स्थान–स्थान पर मिलता है।परन्तु बन्धु–वात्सल्य की भावना मुझे विपत्तियों के निकट और जटिल जाल में भी समाज–सुधार के लिए प्रोत्साहित कर रही है।''[7] स्वामी जी के इस कथन द्वारा देश–प्रेम, धर्म–प्रेम और राष्ट्रीय चेतना व्यक्त होती है। स्वामी दयानन्द के धार्मिक वक्तव्यों एवं लेखों में राष्ट्रीय भाव के आवेग देखने को मिलते हैं।

आध्यात्मिक चेतना से सम्पन्न होकर जीवन–संघर्ष में अपने को लगातार जीवन का स्वस्थ भोग ही स्वर्ग है।आर्य समाज की उपलब्धियाँ पंडित चूमपति ने इस प्रकार लिखकर व्याख्या किया है– '' आर्य समाज के जन्म के समय हिन्दू मककोरा फुसफुसिया जीवन था। उनके मेरूदण्ड की हड्डी थी ही नहीं। चाहे कोई उसे गाली दे, उसकी हँसी उड़ाये, उसके देवताओं की भर्त्सना करे या उसके धर्मपर कीचड़ उछाले जिसे वह सदियों से मानता आ रहा है, फिर भी, इन सारे अपमानों के सामने वह दाँत निपोरकर रह जाता था। लोगों को यह उचित शंका हो सकती थी कि आदमी भी है या नहीं, इसे आवेश भी चढ़ता है या नहीं, अथवा यह गुस्से में आकर प्रतिपक्षी की ओर घूर भी सकता है या नहीं किन्तु आर्यसमाज के उदय के बाद अविचल उदासीनता की यह मनोवृत्ति विदा हो गई। हिन्दुओं का धर्म एक बार फिर जगमगा उठा है। आज का हिन्दू अपने धर्म की निन्दा सुनकर चुप नहीं रह सकता। जरूरत हुई तो धर्म के रक्षार्थ वह अपने प्राण भी दे सकता है।''[8]

I UnHkZ %

1. रामधरी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार उध्याय, सत्यार्थप्रकाश, एकादश उल्लास, पृ0 559।
2. शिवनारायण सिंह राना, माध्यमिक भारत भूमि का इतिहास, पृ0 272।
3. शिवनारायण सिंह राना, माध्यमिक भारत भूमि का इतिहास, पृ0 272।
4. डॉ0 नागेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 440।
5. डॉ0 कृष्णबिहारी मिश्र, हिन्दी पत्रकारिता, पृ0 66।
6. महेश प्रसाद मौलवी आलिम फाजिल, महर्षि दयानन्द, पृ0 56।
7. स्वामी सत्यानन्द जी, श्रीमद्दयानन्द प्रकाश ,पृ0 507।
8. रामधरी सिंह दिनकर, द कल्चरल हेरिटेज ऑफ इंडिया, उद्धृत, संस्कृति के चार अध्याय, पृ0 567।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 296-299

jkgrkl d: vk/;kfRed tkxj.k e: fo"od`lukpk;l dk vonku

KkfUr d|ekjh*

विष्वक्सेनाचार्य जी महाराज का जन्म बक्सर जिले में हुआ था। संस्कृत शिक्षा के लिए प्रसिद्ध संस्कृत विद्यालयों में ज्ञानार्जन के लिए उपस्थित हुए और सारी परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी पाकर भी अन्त में गुरु महाराज से दीक्षित होकर 1983 मे त्रिदण्ड धारण कर लिया। उसके बाद उनकी जीवनचर्या संन्यासी की भाँति हो गई। ये किसी गाँव या शहर में नहीं जाते थे बल्कि उसके बाहर झोपड़ी लगाकर वहीं ज्ञानयज्ञ करते थे। इन्होंने अपने प्रवचनों से अनेक वर्षों तक जनमानस का परिष्कार किया। उनके ज्ञानयज्ञ में स्त्री–पुरु षों की बड़ी भीड़ होती थी। ये प्रायः नदी सरोवर ओर नहर के निकट अपनी पर्ण कुटी का निर्माण करवाते थे। इनका भोजन में एक पैली (पात्र) दुग्ध, पूजन, वंदना तथा शिष्यों की सच्चरित्रता का निर्माण जीवनोद्देश्य था। इनके प्रवचनों का संग्रह पुस्तकाकार कई जिल्दों में छपा है।जीवन के सांध्यकाल में इनके निधनोपरान्त 'श्रीमदभगवत्' गीता', 'व्याख्यामृत सरिता' प्रकाशित हुई हैं। श्रीदण्डी स्वामी के शिष्य श्री लक्ष्मी प्रपन्न जीयर स्वामी जी ने 'गीता व्याख्यामृत सरिता' का प्रकाशन कराया है। इसके संपादक हैं– डॉ0 सुदामा सिंह।

श्रीमद्भगवत् गीता के लिए प्रसिद्ध है कि यह भारत का पंचम वेद है। वेद का अंतिम भाग वेदान्त कहा जाता है, उसी प्रकार महाभारत का यह श्रेष्ठ अध्याय वेदान्त ही है। परब्रह्म के स्वरूप आदि का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन करने के कारण उसके समीपस्थ वेदान्त को उपनिषद् कहने का सिद्धान्त है। अतः श्रीमद्भगवत गीता भी उपनिषद् कही जाती है।उसकी पुष्पिका में लिखा भी है –श्रीमद्भगवत गीता सुयनिशत्सु भगवान् ने श्रीमुख से इसका विवेचन किया है। त्रिदण्डी स्वामी जी इस गीतोपनिषद् पर नित्यशः प्रवचन किया करते थे। उसी का स्वरूप यह अमृत सरिता ग्रन्थ में है। इसे व्याख्यामृत सरिता के रूप में प्रकट किया गया है। यह रचना उनकी साधुता और सारस्वत चेतना दोनों से आविर्भूत हुई है। भक्त के लिए विद्वत्ता बहुत आवश्यक नहीं है। स्वामी जी ने गीता को बोधगम्य बनाने के लिए अनेक उदाहरण सटीक दिये हैं। उन्होंने एक–एक पात्र के पूरे जीवनेतिहास को बताकर उनके वृत्त की व्याख्या गीता के तीनों होने के आधार पर जैसे–इन्होंने मंगलाचरण के साथ 'धर्मक्षेत्र' का मंगलार्थ प्रयोग किया है और फिर त्रिविध मंगल के साथ त्रिविध कर्म संग्रह को भी उदाहृत किया है। यद्यपि इनका मत रामानुज सम्प्रदायानुमोदित है। गीता के आद्य श्लोक में जो 'धर्मक्षेत्र' शब्द आया है उस धर्म को उन्होंने विश्व वाचक होने से मंगलार्थ प्रयोग किया है, फिर वे कहते हैं ग्रन्थ के आदि–अंत और मध्य में इस प्रकार मंगलयुक्त निबद्ध किए जाते हैं क्योंकि उसको पढ़कर पाठक ही प्रवक्ता बन जाए। वस्तुतः किसी भी ग्रन्थ के आदि में मंगल करना चाहिए। वे आशीर्वादात्मक मंगल, नमस्कारात्मक मंगल, वस्तु निर्देशात्मक मंगल कोई भी हो सकते हैं चूँकि भगवान का नाम 'धर्मोधर्मविद्युंत्महः' है क्योंकि धर्म ही अभ्युदय और पारलौकिक कल्याण रूप मोक्ष का कारण होता है।

स्वामी जी महाराज ने अनेक ग्रंथों का सृजन किया है, जो उनके सम्प्रदाय से सम्बद्ध ग्रन्थ हैं। उनके प्रवचनों के अनेक संग्रह उनके श्रद्धालु भक्तों ने प्रकाशित कराया है। ये सभी संग्रह अत्यन्त लोकसंग्रहकारी हैं। स्वामी जी ने कभी अपने प्रवचन के लिए ध्वनिविस्तारक यंत्र का प्रयोग नहीं किया। जिस प्रकार गौतम बुद्ध ने अपनी बातें पाली भाषा में व्यक्त कीं उसी प्रकार इन्होंने अपने बहुत से प्रवचन अशिक्षित स्त्रियों को समझाने के लिए भोजपुरी भाषा में किया। यद्यपि भोजपुरी में वैसे प्रवचनों का संग्रह

*अध्यापिका, उत्क्रमित माध्यमिक विद्यालय, अकाशी, बिहार

अभी तक देखने में नहीं आया है। कुल मिलाकर स्वामी जी ने यज्ञ करके अनेक विद्वानों का प्रवचन कराया। गरीबों को कम्बल बाँटा तथा जगह–जगह पर अपने ज्ञानयज्ञ से लोगों की तृषित भावनाओं में शान्ति स्थापित किया। चूँकि वे उच्च कोटि के विद्वान् भी थे। अतः शास्त्रार्थ की परम्परा का भी विद्वानों के बीचकायम किया जो काशी, अयोध्या आदि अनेक तीर्थ स्थानों में इनकी भावनाओं का प्रचार करने में लगे हैं।

त्रिदण्डी स्वामी जी का जीवन परिचय उनके गोलोकगमन के पश्चात् स्मृति ग्रंथ के रूप में प्रकाशित हुआ है । इससे पता चलता है कि इनका छात्र जीवन बड़ा ही ज्योतिर्मय था। संन्यास मार्ग में दीक्षित होने के पश्चात् ये अपना पूरा जीवन उसी प्रकार व्यतीत करते रहे । इनके प्रवचनों के कई संग्रह निकल चुके हैं। इनमें प्रमुख हैं– 'त्रिदण्डिव्याख्नमाला' के पाँच ग्रंथ। ये जहाँ कहीं भी यज्ञ कराते थे या इनके द्वारा जो प्रवचन कराया जाता था उनको लिपिबद्ध कराकर वहाँ यज्ञ में अवशिष्ट धन राशि से इसे प्रकाशित करा दिया जाता था। ऐसा करते–करते लगभग पाँच भाग में यह प्रवचन प्रकाशित हैं। अंतिम ग्रन्थ है– 'श्रीमद्भगद्गीता व्याख्यामृत सरिता'।

'त्रिदण्डिव्याखनमाला' के पहले पुष्प में संग्रहकर्ताओं ने एक अध्याय से लेकर नौ अध्याय तक श्लोकों का व्याख्यान संकलित दिया है। तीसरे भाग में गीता के साथ–साथ अन्य प्रवचनों को भी संकलित किया गया है। चतुर्थ भाग लगभग साढ़े चार सौ पृष्ठों में समाहित है। इसमें गीतार्थ के साथ अन्य प्रवचन भी संकलित हैं। इसका विषय भी ज्यादा गीता का ही कहा जा सकता है।गीता को विद्वानों तथा सर्वसाधारण के लिए सील स्थापक ग्रंथ के रूप में स्वामी जी मानते है।

पंचम भाग में स्वामी जी के अमृतमय प्रवचनों का संचय किया गया है। इस भाग में गीता के बारहवें अध्याय से लेकर सोलहवें अध्याय तक का व्याख्यान संगृहीत है। यह भाष्य श्री सम्प्रदायानुमोदित है। इसकी व्याख्या में अर्चावतार रूपी भगवान के सभी दिव्य देशों में विराजमान सभी रूपों का वर्णन है। जो सोलहवाँ अध्याय तक गया है। एक–एक श्लोक की व्याख्या इनकी सर्वमान्य विशेषताएँ है। स्वामी जी के अन्य ग्रन्थों का परिचय पूर्व के अध्यायों में दिया जा चुका है। अतः अंतिम ग्रन्थ जो भगवत लीला समाप्त कर उन्होंने शरीर छोड़ा था, उसके बाद का है। इसमें प्रथम संस्करण की बातें परिमार्जित रूप से प्रकट हुई है। द्वितीय संस्करण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गीता के श्लोंकों की व्याख्या उनके अभीष्टार्थ के आधार पर की गई है। इसमें आत्मा, पुरुष, ब्रह्म, ईश्वर इत्यादि अनेकानेक पदों की व्याख्या प्रकरण आदि को देखते हुए की गई है। यह व्याख्या समाधि में विचरण करने वाले योगी की व्याख्या है। अतः उस दृष्टि से भी विचारणीय है। अठारहों अध्याय इस ग्रंथ में व्याख्यायित हुए हैं और उनके सौन्दर्य तथा गुप्त रहस्य को प्रवचनकर्त्ता ने खोलकर रख दिया है। यह ग्रंथ आठ सौ ग्यारह बड़े साईज के पृष्ठों में अंकित हुआ है। यह अपने आप में बहुत बड़ा विशाल ग्रन्थ है और स्वामी जी के सम्प्रदाय के विचारों से अनुप्राणित है ।

त्रिदण्डी स्वामी के नाम पर भक्तों ने अनेक मठ–मंदिरों का निर्माण किया है और अनेक भक्तों ने पूरे बिहार प्रान्त में आश्रम के हित भूमि प्रदान की है। बहुत से लोगों ने साधुमत मानकर गृहस्थ रूप में भी दीक्षा ली है। वे तीन फांक वाली टीका भी लगाते हैं तथा बीच में श्री स्वरूप रोली। अतः उनकी पहचान रोली–चंदन के टीकों के रूप में आज भी है। स्वामी जी को प्रवचन के और अनेक संग्रह हो सकते हैं। इनका विषय गीता, मानस तथा उपनिषद हैं।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में भी भागवत माहात्म्य की कथा बतायी गयी है। भागवत की कथा का महत्व भारतीय हिन्दू जीवन में अनेक रूपों में स्मरणीय है। प्रत्येक हिन्दू स्त्री–पुरुष इस कथा का श्रवण कर अनंत सुख का अनुभव करते हैं। इस कथा का इहलौकित और पारलौकिक दोनों प्रकार का महत्व है।

भागवत कथा में पाप–पुण्य, सुख–दुःख और आदर्शमय जीवन की रक्षा कैसे की जाए इसका उपाय बताया गया है। क्योंकि राजा परीक्षित सात दिवस में ही मृत्यु के शाप से अभिसप्त होकर परलोक गमन करने वाले हैं। मानव जीवन में जन्म और मृत्यु दोनों का महत्व अविवाद्य है। राजा परीक्षित मरणशील मनुष्य के धर्म का बतलाते ही नहीं उसकी व्याख्या भी प्रस्तुत करते हैं। पूरी परम्परा इसमें बतायी गई है।

इस प्रकार शेषजी ने पूरे ऋषियों को भागवत की कथा सुनाई। इसी प्रकार कपिल जी ने अपनी माँ को भक्ति मार्ग का उपदेश दिया।

तात्पर्य यह है कि विविध युगों की महत्वपूर्ण कथाओं को जिनके माध्यम से धर्म और पाप–पुण्य की कथा अनुपम बनी हुई है। सृष्टि क्या है ? स्वर्ग क्या है ? पृथ्वी पर अनेक राजाओं, की कथा दशावतारों की कथा इसमें बहुभाँति वर्णित है। स्वामी जी ने भागवत धर्म के अतिमहत्वपूर्ण व्यापक धर्म की परम्परा को अपनी व्याख्या में स्थान देते हुए गार्हस्थ्य जीवन के सर्वथा अनुकूल इसे बनाकर कहने का अनुपम प्रयास किया है। उन्होंने भक्तिपूर्ण मोक्ष का साधन माना और भगवान के सम्मुख प्राप्ति ही मोक्ष है को स्थान दिया । पांचरात्र संहिताओं के अनुसार सम्पूर्ण भागवत धर्म चार खण्डों में विभक्त है– ज्ञानपाद, योगपाद, क्रियापाद तथा चर्यापाद। स्वामी जी ने इन सबका विश्लेषण विस्तार के साथ किया है। स्वामी की परम्परा में चातुरमास व्रत बहुत महत्वपूर्ण है। भागवत कथा का लेखन व प्रवचन इस काल में स्वामी जी द्वारा किया जाता रहा है।

इस प्रकार पूरे ग्रन्थ के पठन–पाठन से इस प्रवचन साहित्य में उपलब्ध आध्यात्मिक सूत्रों के दिगंतव्यापी प्रभाव का महत्व इस पुस्तक से प्राप्त होता है। स्वामी जी ने हजारों–हजार शिष्यों को अपने मत में दीक्षित किया है और वे सभी बड़े ही श्रद्धालु और नियमनिष्ठ हैं। वे लोग भी चातुर्मास्य व्रत का निर्वाह किया करते हैं। स्वामी जी नदियों के तट पर विशेषकर गंगा शोणभद्र के तट पर रहना ज्यादा पंसद करते हैं। उनके ज्ञानयज्ञ के लिए अलग से झोपड़ियों से पूरा शहर बस जाता है। भोजन, वस्त्र एवं अन्य उपादानों का वितरण भी साधु–महात्माओं तथा गरीबों के मध्य किया जाता है। इस प्रकार गुरूदेव श्रीमत् विष्क्सेनाचार्य जी (त्रिदण्डी स्वामी) के लोकहित में किए गए प्रयासों की परम्परा को अन्वित करने में अभी उनके अनेक शिष्य लगे हैं।

आध्यात्मिक दृष्टि से इस रोहतास में अनेक प्रकार के सम्प्रदायों के साधु सन्तों ने समाज में अध्यात्म की दीपशिखा जलाई है। शिवबंधनदास जी ने कबीर की परम्परा को जाग्रत किया है और अपने पंथ के अनुसार मठ मंदिरों का निर्माण किया है। स्वामी परम ज्ञानानंद जी महाराज ने रोहतास के रायपुर चोर में बृहत् मंदिर का निर्माण कराया तथा अनेक महात्माओं और गृहस्थ भक्तों को अपने मत में दीक्षित किया। स्वामी शिवानंद जी महाराज ब्रह्मनिष्ठ संत थे। वे कविता में ही प्रवचन किया करते थे। उनके प्रवचनों का भी संग्रह है जो वचनावली के रूप में क्रमशः प्रकाशित हो रहा है। उनका उपदेश ग्रंथ 'मेरा लक्ष्य' है। पर वे मठ मंदिर के निर्माण के विश्वासी नहीं थे। यद्यपि उनके भक्तों ने अनेक मूर्तियाँ उनके परलोक गमन के बाद बनवाई और मंदिर भी बने। गीता के श्लोकों का उत्कीर्णन हुआ। अनेक मूर्तियाँ मंदिरों में प्रतिष्ठित हुईं। किन्तु स्वामी जी इन सबों के फेरे से दूर रहना चाहते थे। यह सही है कि शिष्य मंडली गुरू भगवान को अपनी इच्छा के अनुसार चलाती है। सम्प्रदायों का निर्माण स्वामी जी का उद्देश्य नहीं था। क्योंकि सम्प्रदाय में अनेक राग–द्वेष धीरे–धीरे बढ़ जाता है। राग द्वेष से हीन व्यक्ति ही धर्म के मर्म को अच्छी तरह समझ सकता है। अतः कोई भी संत जिसने अपने बल पर परमात्मा को देखा, परखा है उसका राज्य आकाश की भाँति निर्लेप हो जाया करता है। अतः ऐसे संत न तो सम्प्रदाय का निर्माण करते हैं और न उसमें विश्वास ही। स्वामी शिवानंद जी तीर्थ ऐसे ही महात्मा थे। नागा बाबा स्वामी विमलानंद सरस्वती जी रामाश्रय सत्संग से जुड़े हुए थे। किन्तु वे भी आत्मप्रतिष्ठित संत थे। वे नशा करते और संगीत के स्वर सुनकर मस्त रहते। उनके पास सघन विचार और अनुभव थे। उनके वाक्यों में तीर की चुभन और अध्यात्म की पराकाष्ठा थी। स्वामी परम जी ने अपने जीवन भर के आध्यात्मिक अनुभव को अपने प्रवचनों द्वारा भक्तों के मध्य प्रकाशित किया। ये प्रवचन उनकी मासिक पत्रिका 'परम ज्ञान प्रकाश' में अब तक प्रकाशित हो रहे हैं। उनकी रहनि, सत्संग, दीक्षा तथा वचन अनुपालन के सम्बन्ध में दिए गए निर्देश अध्यात्म साहित्य के महान् पर्व और सर्ग हैं। श्री त्रिदण्डि स्वामी जी रामानुजाचार्य जी के सम्प्रदाय के बड़े ही अधीती संत थे। उनकी अपनी रहनि थी। किसी भी शहर में नहीं जाते तथा गाँव शहर से अलग सदानीरा नदी या नहर के तट पर निवास करते थे। यज्ञ कराते, प्रवचन देते और दीक्षा भी देते। उनका अनुशासन बड़ा कठोर था। वे एक पैली दूध पर सुबह शाम शरीर यापन कर लेते। उनके

प्रवचनों का संग्रह कई भागों में प्रकाशित हुआ है। गीता का भाष्य उनका बहुत ही विलक्षण है तथा उसमें इनके आध्यात्मिक अनुभव के साथ विद्वत्ता का भी संस्पर्श प्रकट होता है। उनके शिष्य जीयर स्वामी ने अपने प्रवचनों का आधार श्रीमद्भागवत को बनाया है और उनके प्रवचन भी श्रोताओं के मध्य अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

कुल मिलाकर रोहतास की धरती विभिन्न मतावलंबी संत–महात्माओं से सदा आपूर्ण रही है। उन्होंने इस क्षेत्र को साधनाभूमि, कर्मभूमि और मर्मभूमि बनाकर अद्भुत सेवा की है, जिसका प्रतिदान यहाँ के जनों से संभव नहीं है। पूरे उत्तर भारत में इनके विचारों का प्रचार है और उनके शिष्य अपने जीवन कार्यों के द्वारा अनेक प्रकार से उनके विचारों को प्रकाशान्वित कर रहे हैं। रोहतास की भूमि और यहाँ के रहने वाले मनुष्यों पर उनका बहुत बड़ा ऋण है, साथ ही इस क्षेत्र से जो उन्होंने प्रकाश फैलाया है, उससे पूरा युग प्रभावान्वित रहेगा। श्रीमत् स्वामी विष्वक्सेनाचार्य जी की विशेषता है कि वे उच्च कोटि के संस्कृतज्ञ और साधक दोनों है उनके प्रवचनों में पठित ज्ञान और साधना जनित आचरण का मणिकांचन मिश्रण हुआ है। ये अपने विचारों को सर्वसाधारण की भाषा भोजपुरी में रखने की क्षमता रखते थे। इनका उद्देश्य था शास्त्रीय ज्ञानानुमोदित आचरण का लोक जीवन में प्रचार। ये व्याख्यान से ज्यादा अपने आचरण से जनता जनार्दन को शिक्षित तथा प्रशिक्षित करना चाहते थे। शास्त्र ज्ञान का प्रचार प्रशिक्षित लोगों के बीच कैसे हों? इस पावन उद्देश्य को लेकर वे सदा कष्ट सहते हुए अहर्निश चिन्तनशील थे। मनुष्य समाज को सत्य पथ पर लाने का उनका प्रयास सर्वथा स्तुत्य रहा है। अब उनकी परम्परा का पोषण जीयर स्वामी जी के द्वारा हो रहा है। इनके शिष्य लाखों मे होंगे।

lUnHkZ %

1. रोहतास के संत और साहित्यकार : डॉ0 नन्दकिशोर तिवारी, किशोर विद्या निकेतन, वाराणसी, 2014
2. श्री त्रिदण्डि व्याख्यानमाला, भाग–1 एवं 2, सं0–अजेय सिंह, यज्ञ समिति, धनडीहाँ, वि0 सं0 2042.
3. श्री त्रिदण्डि व्याख्यानमाला, भाग–3, सं0–रामजी पाठक, डिहरी–ऑन–सोन, वि0 सं0 2027.
4. श्री त्रिदण्डि व्याख्यानमाला, भाग–5, सं0–रामजी पाठक, वाराणसी, वि0 सं0 2047.
5. श्रीमद्भगवत्गीता–व्याख्यामृतसरिता, सं0–डॉ0 सुदामा सिंह, बोधगया, सं0 2069
6. श्री त्रिदण्डि स्वामिस्मृतिग्रन्थ, सं0–डॉ0 सुदामा सिंह, श्री लक्ष्मी नारायण यज्ञ समिति, चन्दौली, वि0 सं0 2057.
7. प्रत्याभिता (त्रैमासिक) सं0–डॉ0 नन्दकिशोर तिवारी, सहसराम

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 300-306

cLrh tuin ¼m0 iz0½ esa tula[;k of) ,oa forj.k dk ,d HkkSxksfyd v/;;u

vjfoUn dqekj ekS;Z*] MkW0 fctsUnz flag**

जनसंख्या प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सम्पूर्ण विश्व के प्राकृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक पर्यावरण को प्रभावित करती है।आज के औद्योगिक –प्राविधिक युग में व्यक्ति, परिवार,समाज, राष्ट्र एवं समूचे विश्व के सर्वांगींण विकास के लिए जनसंख्या का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। भारत जैसे विकासशील देश में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि एक प्रमुख समस्या बन गई है। मानव धरातल पर व्याप्त सभी पदार्थों या तत्वों को अपने उपयोग में लेकर अपनी आवश्यकता पूरी करता है। स्पष्ट है कि कोई तत्व या पदार्थ तभी संसाधन कहलाता है जब वह मनुष्य के विभिन्न प्रयोजनों को सिद्ध करने के उपयोग में लाया जाता है। अपितु यह कहा जा सकता है कि संसाधन होते नहीं हैं बल्कि आवश्यकताओं के सन्दर्भ में खोजे और बनाये जाते हैं। यद्यपि संसाधनों का प्रमुख स्रोत प्रकृति है। तथापि इन्हें मनुष्य अपनी बुद्धि एवं प्रौद्योगिकीय दक्षता के सहारे प्राकृतिक तत्वों के सहयोग से कृत्रिम रूप से पैदा कर लेता है या बना लेता है। जिम्मरमैन के अनुसार संसाधन पर्यावरण की वे विशेषतायें या तत्व होते हैं जो मनुष्य की आवश्यकता की पूर्ति में सक्षम माने जाते हैं और उन्हें मनुष्य की आवश्यकताओं और क्षमताओं द्वारा उपयोगिता प्रदान की जाती है।[1] संसाधन का स्वरूप और उपयोग मनुष्य की आवश्यकता उसकी बोध क्षमता तथा प्रौद्योगिकीय दक्षता पर निर्भर करता है। इस अर्थ में मनुष्य अपनी बौद्धिक क्षमता और प्रौद्योगिक दक्षता तथा जनांकिकीय संख्या बल के आधार पर स्वयं में संसाधन बन जाता है, क्योंकि इन्हीं विशेषताओं के बल पर वह संसाधनों की खोज अथवा सष्जन करके विविध रूपों में उनका उपयोग करता है। इस प्रकार संसाधनों का प्रत्यक्षण, उनकी व्याख्या, उनका सृजन एवं उनका उपयोग देश, व्यक्ति, काल एवं समाज सापेक्ष होता है। अपने जीवन की विविध गत्यात्मक आवश्यकताओं के सन्दर्भ में मनुष्य प्रकृति से नित्य नूतन संसाधन प्राप्त करता रहता है।[2] ट्रिवार्था[3] ने कहा है कि "पृथ्वी तल पर बसे हुए लोगों की प्रादेशिक भिन्नता सम्बन्धी ज्ञान में ही जनसंख्या भूगोल के तत्व समाहित हैं यह प्रादेशिक भिन्नता क्षेत्रीय वितरण की ओर ध्यान आकृष्ट करती है।"जेलिंस्की महोदय[4] ने बताया कि जनसंख्या विभिन्न तत्वों के मध्य अन्योन्यक्रिया एवं अपने व्यवहारगत नियम के फलस्वरूप स्थान –काल सापेक्ष बदलती रहती है। इन्होंने तीन तथ्यों पर विशेष बल दिया है–

1. जनसंख्या की दृष्टि से स्थानों, क्षेत्रों व प्रदेशों का भौगोलिक स्वरूप क्या है तथा दोनों के बीच परस्पर सम्बन्ध कैसा है?
2. स्थान और काल के अनुसार जनसंख्या तथा स्थानों में होने वाले परिवर्तनों की व्याख्या करना।
3. स्थान व जनसंख्या के बीच होने वाली प्रतिक्रियाएं तथा दोनों के अजनांकिकीय प्रक्रियाओं से सम्बन्धों का विश्लेषण करना।

गार्नियर[5] ने जनसंख्या अध्ययन के तीन स्तर बताया है–मानव कावितरण, मानव समाज का विकास तथा उसके द्वारा प्राप्त सफलता की मात्रा। पुनः इन्होंने जनसंख्या के वितरण पक्ष को ही प्राथमिक मानने का सुझाव दिया है। क्लार्क[6] महोदय जहां एक ओर जनसंख्या के मात्रात्मक और गुणात्मक पक्षों

*असि0प्रो0 भूगोल, रतनसेन पी0 जी0 कालेज बांसी, सिद्धार्थ नगर
**प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग, वी0आर0जी0गर्ल्स पी0जी0 कॉलेज, मुरार, ग्वालियर, म0प्र0

के अध्ययन पर बल देते हैं वहीं दूसरी ओर जनसंख्या के क्षेत्रीय अभिमुखता को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। अस्तु मानव अपने ही विकास का प्रमुख कारक है। अतः मानव संसाधन का मूल्यांकन तथा गुणात्मक एवं मात्रात्मक पहलुओं का अध्ययन करके मानव तथा पर्यावरण के मध्य अन्तर्सम्बन्ध तथा उससे उत्पन्न प्रारूपों का ज्ञान प्राप्त करना अति महत्वपूर्ण है। क्लार्क[7] ने जनसंख्या के अध्ययन में जनसंख्या की गत्यात्मकता को एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है।तथा उन्होंने जनसंख्या वृद्धि के लिए प्रजनन, मृत्यु एवं प्रवास को प्रमुख संघटक या सोपान माना है। जनसंख्या समूह में स्थानिक एवं कालिक परिवर्तन ही जनसंख्या वृद्धि कहलाती है।यह वृद्धि दो प्रकार की होती है–धनात्मक वृद्धि एवं ऋणात्मक वृद्धि। ओमप्रकाश[8] के अनुसार जनसंख्या समूह में किसी प्रकर का परिवर्तन ही जनसंख्या वृद्धि कहलाता है। सिद्धू[9]के अनुसारविकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि प्रायः तीव्र होती है।निरन्तर वढ़ती जनसंख्या किसी भी राष्ट्र एवं प्रदेश के लिए एक विकराल समस्या है। जनसंख्या अपने संख्या बल से संसाधनों पर दबाव डालती है फलतः संसाधन उपयोग प्रतिरूप परिवर्तित होने लगता है। प्रस्तुत शोध पत्र में उ0 प्र0 के बस्ती जनपद की जनसंख्या संरचना को समझने का प्रयास किया गया है।

mnns'; ¼ प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य निम्न लिखित है–

1. जनसंख्या की वृद्धि दर का विकासखण्ड स्तर पर आकलन करना तथा देश एवं प्रदेश की वृद्धि से तुलना करना।
2. वर्तमान व भविष्य की जनसंख्याके सन्दर्भ में आर्थिक विकास, उच्च स्तर की शिक्षा,स्वास्थ्य व आवास आदि सुविधाओं को उपलब्ध कराना।
3. तीव्र जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट करना।
4. कम सन्तान सुखी इंसान की भावना को विकसित करना।
5. पर्यावरण संतुलन का ज्ञान कराना।

vkdM ,o fof/krU= ¼ प्रस्तुत शोध अध्ययन में जनसंख्या के विश्लेषण हेतु विकासखण्ड स्तर पर उपलब्ध द्वितीय आंकड़ों का उपयोग किया गया है। इन द्वितीयक आंकड़ों का स्रोत बस्ती जनपद की सांख्यिकीय पत्रिका 1993 तथा 2016 है। इसके अतिरिक्त तालिका तथा व्याख्यात्मक विधि का भी उपयोग किया गया है।

v/;;u {k= ¼ उत्तर प्रदेश के राज्य मुख्यालय से 200 किमी0 दूर पूर्वांचल के प्रवेश द्वार पर स्थित बस्ती जनपद 2688 वर्ग किमी0 क्षेत्र के विस्तष्त भूभाग पर फैला हुआ है। यह जनपद $26^{0}23'$ से $27^{0}30'$ उत्तरी अक्षांश तथा $82^{0}17'$ से $83^{0}20'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। इसके उत्तर में सिद्धार्थ नगर जनपद, पश्चिम में गोण्डा, पूरब में संत कबीर नगर, और दक्षिण में अम्बेडकर नगर जनपद स्थित है। दक्षिण में परम पावन सरयू नदी इस जिले को फैजाबाद तथा अम्बेडकर नगर जनपद से अलग करती है। सामान्यतः जनपद की लम्बाई 96 किमी0 और चौड़ाई 70 किमी0 है। जनपद की प्रशासनिक व्यवस्था चार तहसीलों(हर्रैया, बस्ती सदर, भानपुर तथा रुधौली), 14 विकासखण्डों, 139 न्यायपंचायतों तथा 1045 ग्रामसभाओं में विभक्त है। यहां की कुल जनसंख्या (2011)2461056 जिसमें पुरूष 1256158 तथा स्त्रियां 1204898 हैं। जनसंख्या घनत्व 916 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी0 तथा लिंगानुपात 959प्रति हजार है। यहां की साक्षरता 69.69 प्रतिशत है जिसमें पुरुष साक्षरता 80.65 प्रतिशत एवं महिला साक्षरता 58.35 प्रतिशत है।

tul[;k dh dkfyd of) ¼ सामान्यतया जनसंख्या में वृद्धि होना एक जैविक प्रक्रिया है। लेकिन कहीं यह वृद्धि मन्द गति से होती है, तो कहीं पर तेज गति से होती है। विभिन्न ऐतिहासिक घटनायें अध्ययन क्षेत्र के जनसंख्या के विकास में उत्तरदायी रही हैं। युद्ध, अराजकता एवं महामारी काल में जनसख्या के विकास में बाधा आती है जबकि शान्त सुव्यवस्थित, जलप्लावन रहित काल में जनसंख्या का अबाध गति से विकास होता है। यहां पर समय –समय पर बाहर से आने वाली जातियों यथा हूण, कुषाण, शक, ईसाई, मुसलमान आदि का जनसंख्या के विकास में अप्रतिम योगदान है।[6] किसी क्षेत्र की जनसंख्या की प्राकृतिक वृद्धि मृत्यु दर से जन्मदर अधिक होने से तथा स्थानान्तरण द्वारा जनवृद्धि से बढ़ती है तथा कम होने पर घटती है। अध्ययन क्षेत्र जनपद बस्ती की जनसंख्या वृद्धि को सारणी तथा चित्र 1

में प्रदर्शित किया गया है। सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि वर्ष 1901 में जनपद की जनसंख्या 658285 थी जो वर्ष 2011 में बढ़कर 2463939 हो गयी।

lkj.kh 1

cLrh tuin esa tula[;k of)

o"kZ	tula[;k	n'kdh; of)
1901	658285	0
1911	650693	0.85
1921	684396	5.17
1931	738712	7.93
1941	776969	5.17
1951	848764	9.24
1961	1010706	19.07
1971	1142299	13.01
1981	1366434	19.62
1991	1675369	23.41
2001	2084814	23.63
2011	2463939	18.05

ftyk tux.kuk gLr iqfLrdk ,oa lkaf[;dh; if=dk tuin cLrh tula[;k of)

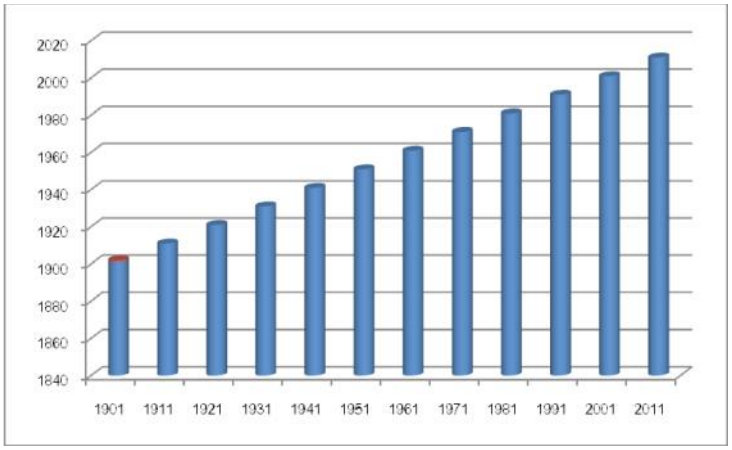

fp=&1

उपर्युक्त अवधि में जनसंख्या वृद्धि में असमानता प्रकट होती है। जनसंख्या वृद्धि की अवधि को चार अवस्थाओं में विभक्त किया जा सकता है–

1. शून्य या अत्यल्प वृद्धि काल (1901–1911)
2. अल्प वृद्धि काल (1921–1951)
3. मध्यम वृद्धि काल (1961–1971)
4. तीव्र वृद्धि काल (1981–2011)

1- 'kwU; ;k vR;Yi of) dky ¼1901&1911½& वर्ष 1901 से 1911 के दशक में जनपद बस्ती की जनसंख्या वृद्धि एक प्रतिशत से कम रही है। जिसका कारण अध्ययन क्षेत्र में व्याप्त बाढ़, सूखा, तथा महामारी आदि हैं। इस काल में जनसंख्या का ह्रास समग्र भारत देश में था जिसका कारण महामारी तथा संक्रामक रोगों का होना था।

2- vYi of) dky ¼1921&1951½& इस काल में जनसंख्या वृद्धि 01– 10 प्रतिशत के मध्य थी। आजादी के पूर्व तक अध्ययन क्षेत्र में अल्प जनसंख्या वृद्धि रही है। वर्ष 1911–1921 के दशक में 5.17

प्रतिशत, 1921—1931 के दशक में 7.93 प्रतिशत, 1931—1941 के मध्य 5.17 प्रतिशत, तथा 1941 —1951 के मध्य 9.24 प्रतिशत जनसंख्या वृद्धि रही है। जबकि वर्ष 1911—1951 के मध्य 30.44 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज हुई। इस अवधि में अनुकूल वर्षा, तथा महामारी एवं अकाल का प्रभाव कम होने से कुछ जनसंख्या वृद्धि हुई है।

3- e/;e of) dky ¼1951&1971½& इस काल में जनसंख्या वृद्धि 10.01 प्रतिशत से 19.5 प्रतिशत के मध्य थी। अध्ययन क्षेत्र में स्वास्थ्य सेवाओं के सुधार के कारण मृत्युदर में गिरावट होने से जनसंख्या वृद्धि हुई है। वर्ष 1951—1961 के दशक में 19.07 प्रतिशत, 1961—1971 के दशक में 13.01 प्रतिशत वृद्धि हुई।

2- rho of) dky ¼1971&2011½&बस्ती जनपद में वर्ष 1971 के पश्चात जनसंख्या अति तीव्र गति से बढ़ी है। वर्ष 1971 —1981 के दशक में 19.62 प्रतिशत, 1981—1991 के दशक में 23.41 प्रतिशत, 1991—2001 के दशक में 23.63 प्रतिशत तथा 2001—2011 के मध्य 18.05 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।जो समग्र देश की दशकीय जनसंख्या वृद्धि की दर 17.7 प्रतिशत से 0.35 प्रतिशत अधिक है जबकि प्रदेश की वर्षॄि दर 20.20 प्रतिशत से 2.15 प्रतिशत कम है। उक्त अवधि में यातायात के साधनों का विकास, कषषि सम्बन्धी तकनीकि में आशातीत परिवर्तन, औद्योगीकरण तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं की सुविधाओं में वृद्धि के फलस्वरूप मृत्यु दर कम हुई है और जनसंख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है। स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र में वर्ष 1901 से 2011की अवधि में 274.29 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या लगातार बढ़ रही है।

xkeh.k tul[;k of)& अध्ययन क्षेत्र गाँव प्रधान क्षेत्र है। आज भी यहां की 94.40 प्रतिशत जनसंख्या गाँव में रहती है जिनके भरण पोषण का आधार कषषि ही है। यहां वर्ष 1901 से 2011 तक ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि की दर कुल जनसंख्या वृद्धि दर के लगभग समान ही रही है। वर्ष 1951 तक अर्थात् आजादी प्राप्त होने के बाद से पूर्व ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि की दर कम थी किन्तु 1951 के पश्चात सभी दशकों में ग्रामीण जनसंख्या निरन्तर बढ़ी है। जिसका कारण भूमि सुधार एवं कृषि हेतु आवश्यक सुविधाओं यथा कृषि भूमि विस्तार, सिंचाई का विकास आदि, तथा स्वास्थ्य एवं परिवहन सेवाओं में वृद्धि प्रमुख थे। वर्ष 1951 में जहाँ जनसंख्या वृद्धि दर 9.98 थी वहीं वर्ष 1961 में वृद्धि दर 19.07 हो गई तथा वर्ष 1991 में यह बढ़कर 25.45 प्रतिशत हो गई। किन्तु वर्ष 2001 में जनसंख्या वृद्धि दर घटकर 23.82 प्रतिशत और वर्ष 2011 में घटकर 18.79 प्रतिशत हो गया अर्थात् वर्ष 1991 से 2011 के मध्य 6.66 प्रतिशत की कमी आयी है। जो देश की ह्रास दर (1991—2011) 6.16 के लगभग करीब ही है। वर्ष 1991 के पश्चात जनसंख्या वृद्धि में कमी आने का कारण लोगों में छोटे परिवार के प्रति जागरुक होना है जिसके फलस्वरूप जन्मदर में गिरावट का आना है। क्षेत्र के जनसंख्या वृद्धि को सारणी 2 में प्रदर्शित किया गया है।

lkj.kh 2

cLrh tuin e xkeh.k tul[;k of)

o"k	n'kdh; of)
1901	0
1911	0.8
1921	5
1931	7.9
1941	9.9
1951	9.98
1961	19.07
1971	12.01
1981	19.01
1991	25.45
2001	23.82
2011	18.79

ftyk tux.kuk gLr iqfLrdk ,o lkf[;dh; if=dk tuin cLrh

uxjh; tula[;k o`f)& नगर प्राचीन काल से ही लोगों के आकर्षण का केन्द्र रहे हैं। नगरीय केन्द्र किसी भी क्षेत्र में मानव के समाजार्थिक कार्य कलाप को प्रभावित एवं नियन्त्रित करते हैं। किसी भी क्षेत्र की नगरीय वृद्धि वहाँ के आर्थिक, औद्योगिक, शैक्षणिक विकास, स्वास्थ्य एवं उत्तम जीवन स्तर को उजागर करती है। ग्राम प्रधान देश होने के कारण विश्व के विकसित देशों यथा संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी आदि की तुलना में हमारे यहां नगरीय वृद्धि कम हुई है। इसी प्रकार प्रदेश के विभिन्न विकसित जनपदों की अपेक्षा बस्ती जनपद में नगरीकरण कम हुआ है। अर्थात् यहां नगर एवं नगरीय जनसंख्या दोनों ही कम हैं। यहाँ की कुल जनसंख्या का 5.6 प्रतिशत(2011)नगरीय आबादी है। जनपद में कुल तीन नगरीय क्षेत्र हैं– बस्ती नगर पालिका, हर्रैया नगर पंचायत तथा बभनान नगर पंचायत आदि जिसकी कुल जनसंख्या 138097 (72426 पुरुष तथा 65671 महिलायें)है । अध्ययन क्षेत्र की नगरीय जनसंख्या वृद्धि का प्रदर्शन सारणी सं0 3 में किया गया है।

lkj.kh 3

cLrh tuin esa uxjh; tula[;k o`f)

o"kZ	tula[;k	n'kdh; o`f)
1901	14761	0
1911	11447	-22.45
1921	17691	54.55
1931	22526	27.33
1941	23893	6.07
1951	33203	38.97
1961	38403	15.66
1971	49635	29.25
1981	69465	39.95
1991	94108	25.78
2001	115985	23.15
2011	138097	18.79

Vkmu fMD'kujh m0iz0] fljht &25 lsal vkQ bf.M;k] 1991 ,oa Vkmu fMD'kujh m0iz0] lsal vkQ bf.M;k] 2001

tula[;k iz{ksi.k& जनसंख्या के प्रक्षेपण से तात्पर्य किसी देश, प्रदेश, क्षेत्र या स्थान विशेष की जनसंख्या के पूर्वानुमानों या पूर्व आकलनों से है। अगले 10, 20, या 30 वर्षों में विश्व या उसके किसी भाग की जनसंख्या कितनी होगी, उसका स्वरूप कैसा होगा, इसे हम पूर्व और वर्तमान वृद्धि दर की प्रवृत्तियों के आधार पर जान सकते हैं। सामान्यतः यह कम समय के लिए की गई भविष्यवाणी है इसमें समय के साथ गलत होने की संभावना बढ़ती जाती है। फिर भी देश की विकास योजनाओं के निर्माण हेतु देश की जनसंख्या एवं उसकी वृद्धि दर, क्षेत्रीय वितरण एवं जनसंख्या संरचना का ज्ञान होना अति आवश्यक है। चूंकि विकास योजनाएं भविष्य के लिए बनायी जाती हैं अतः जनसंख्या का पूर्वानुमान आवश्यक होता है। क्षेत्र में भविष्य में कितने लोगों के लिए खाद्य सामग्री की व्यवस्था करनी है, कितने लोगों को शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा तथा रोजगार देना है, आदि के लिए जनसंख्या प्रक्षेपण आवश्यक है। जनसंख्या प्रक्षेपण हेतु गणितीय समीकरणों, प्रतिरूपों एवं वक्रों का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में जनसंख्या की वर्तमान वृद्धि के आधार पर वर्ष 2021, 2031 तथा 2041 तक के लिए जनसंख्या प्रक्षेपित की गयी है।

tula[;k iz{ksi.k dh fof/k;k& जनसंख्या प्रक्षपेण हेतु दो विधियों का आश्रय लिया गया है–

1. गणितीय विधि
2. आरेखीय विधि

1-xf.krh; fof/k& अध्ययन क्षेत्र की जनसंख्या को प्रक्षेपित करने के लिए निम्नलिखित सूत्र[7] का सहारा लिया गया है।

$$Pn=Po\ (1+r)^{n}$$

उपर्युक्त सूत्र में –

Pn= दशक की प्रक्षेपित जनसंख्या

Po= पिछले दशक की जनसंख्या

r= जनसंख्या परिवर्तन की दर

n= वर्ष की संख्या

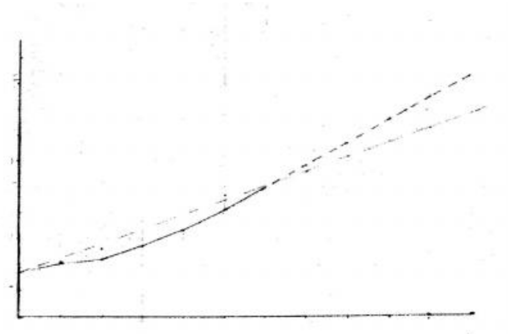

उपर्युक्त विधि के अनुसार अध्ययन क्षेत्र की वर्ष 2021, 2031, 2041 तथा 2051 की जनसंख्या का प्रक्षेपण किया गया है जो क्रमशः 3006006, 3667327, 4474139 एवं 5458450 है।

vkjs[kh; fof/k& आरेखीय विधि द्वारा पिछले दो दशकों की जनसंख्या वृद्धि को मिलाते हुए वृद्धि वक्र को आगे बढ़ाकर जनसंख्या को अनुमानित किया गया है। इस विधि द्वारा 2021, 2031, 2041,तथा 2051 की जनसंख्या क्रमशः 29.5 लाख, 34 लाख, 38.5 लाख तथा 42.5 लाख आकलित की गयी है।

स्पष्ट है कि क्षेत्र में जनसंख्या की वृद्धि की जो प्रवृत्ति है वह काफी खतरनाक है। अतः यदि समय रहते इसका निदान न हुआ तो अब वह दिन दूर नहीं जब निकट भविष्य में जनसंख्या जनित समस्या यथा बेरोजगारी, निर्धनता, आवास, व प्रदूषण जैसी समस्यायें पैदा हो जायेंगी जो काफी भयावह होगी।

tula[;k dk LFkkfud forj.k& वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार बस्ती जनपद की कुल जनसंख्या 2463939 है जिसमें से 1254880 पुरुष तथा 1209059 महिलायें हैं, यहां की जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों को दो वर्गों में रखा जा सकता है :–

(1.) प्राकषतिक, (2.) सांस्कृतिक।

धरातल की बनावट, मिट्टी की उर्वरता तथा जलोपलब्धि आदि प्राकृतिक कारक जनसंख्या के वितरण को मुख्य रूप से प्रभावित करते हैं। यद्यपि भौतिक तत्वों का प्रभाव जनसंख्या के स्थानिक वितरण के मूल में झलकता है, फिर भी मानव समाज क्रमिक विकास के साथ इसका प्रभाव कम होता गया है। सारणी 3.4 एवं चित्र–3.2 से स्पष्ट होता है कि मांझा क्षेत्र में जनसंख्या का विरल बसाव है जबकि बांगर क्षेत्रों एवं सड़कों के किनारे तथा बाजार या नगर या सेवाकेन्द्रों के चतुर्दिक जनसंख्या का सघन बसाव एवं पुंजन है। जिन क्षेत्रों में मष्दा उर्वरता, जलोपलब्धि तथा आवागमन के साधनों का स्तर उच्च है वहां जनसंख्या बसाव सघन है। मानव बसाव एवं उक्त तत्वों में उच्च धनात्मक सहसम्बन्ध पाया जाता है। सारणी 4 में से स्पष्ट है कि परशरामपुर में 189702 (कुल जनसंख्या का 7.7 प्रतिशत), गौर में 203827(कुल जनसंख्या का 8.27 प्रतिशत), हर्रैया में 162576(कुल जनसंख्या का 6.6 प्रतिशत), विक्रमजोत में 144120 (कुल जनसंख्या का 5.85 प्रतिशत), कप्तानगंज में 113654(कुल जनसंख्या का 4.61 प्रतिशत), रामनगर में 170402(कुल जनसंख्या का 6.92 प्रतिशत), सल्टौआ में 189172(कुल जनसंख्या का 7.68 प्रतिशत), रूधौली में 152523(कुल जनसंख्या का 6.19 प्रतिशत), साऊँघाट में 163507(कुल जनसंख्या का 6.64 प्रतिशत), बस्ती सदर में 232448(कुल जनसंख्या का 9.43 प्रतिशत), बनकटी में 179866(कुल जनसंख्या का 7.3प्रतिशत), बहादुरपुर में 171601(कुल जनसंख्या का 6.96 प्रतिशत), कुदरहा में 139815(कुल

जनसंख्या का 5.67 प्रतिशत) तथा दुबौलिया विकासखण्ड में 112629(कुल जनसंख्या का 4.57 प्रतिशत) जनसंख्या हैं, नगरीय क्षेत्र में 138097 जनसंख्या है जो कुल जनसंख्या का 5.6 प्रतिशत है।

lkj.kh &4
cLrh tuin esa tula[;k forj.k 2011

क्र0 सं0	विकासखण्ड	पुरुष	स्त्री	कुल जनसंख्या	कुल जनसंख्या का प्रति0	जनसंख्या घनत्व
1	परसरामपुर	95843	93859	189702	7.7	893
2	गौर	103829	99998	203827	8.27	851
3	हर्रैया	82245	80331	162576	6.6	704
4	विक्रमजोत	73617	70503	144120	5.85	480
5	कप्तानगंज	57816	55838	113654	4.61	483
6	रामनगर	84596	85806	170402	6.92	726
7	सल्टौआ	95904	93268	189172	7.68	872
8	रूधौली	75826	76697	152523	6.19	1316
9	साऊंघाट	83446	80061	163507	6.64	858
10	बस्ती सदर	121060	111388	232448	9.43	1218
11	बनकटी	90036	88830	179866	7.3	968
12	बहादुरपुर	87836	83765	171601	6.96	749
13	कुदरहा	71717	68098	139815	5.67	1027
14	दुबौलिया	57683	54946	112629	4.57	826
योग ग्रामीण		1182454	1143388	2325842	94.4	815
नगरीय		72426	65671	138097	5.6	1653
योग जनपद		1254880	1209059	2463939	100	839

स्पष्ट है कि जनपद में जनसंख्या वृद्धि की गति तीव्र है अतः इसको रोकने की महती आवश्यकता है तभी विकास का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।

lUnHkZ %

1. कौशिक, एस0डी0 1995–96 : संसाधन भूगोल, मेरठ, पृ0–7।
2. पाठक, राम करन, 1989, : टाण्डा तहसील : ग्राम्य रूपान्तरण एवं विकास नियोजन का स्थानिक–पारिस्थैतिक अध्ययन, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध अवध विश्व विद्यालय, फैजाबाद, पृ0–51।
3. ट्रिवार्था, जी0 टी0,1953 : "दि केस फार पापुलेशन ज्यॉग्रफी,"ए0 ए0 ए0 जी0, वाय0 43, पृ0 81 ।
4. जेलिंस्की, डब्ल्यू0, 1971 : "दि हाइपोथेसिस ऑफ दि मोबिलिटी", ज्यॉग्रफिकल रिव्यू, वाय0 61 ।
5. गार्नियर, जे0 वी0, 1966 : "ज्यॉग्रफी ऑफ पापुलेशन,"सेंट मॉर्टिन प्रेस न्यूयार्क।
6. क्लार्क, जे0 आई0, 1972 : "पापुलेशन ज्योग्राफी", आक्सफोर्ड ।
7. वही,
8. ओमप्रकाश, 1973 : पापुलेशन ज्यॉग्रफी आफ उत्तर प्रदेश, पी–एच0 डी0 थीसिस, अप्रकाशित बी0 एच0 यू0।
9. सिद्धू , एम0 एस0 1980 : इन्ट्रोडक्शन टू पापुलेशन ज्यॉग्रफी, कल्यानी पब्लिशर्स नई दिल्ली, पृ0 31।

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 307-310

xkiky flg uikyh d xhrk e L=h pruk

,drk tk;loky*

प्रकृति और पुरुष से मिलकर इस संसार का सृजन हुआ। प्रकृति को ही नारी तत्त्व कहा गया है, जो मातृत्व धारण किए हुए हैं। जन्म से लेकर पालन–पोषण और व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में नारी का योगदान सर्वोपरि है। हमारी भारतीय सभ्यता और संस्कृति की मूल सूत्रधार नारी है।

नारी प्रकृति, जीवन और समाज का केन्द्र है और भारतीय समाज में नारी की पूजा होती है, वहीं उसे उपभोग की वस्तु समझकर उसका दुरुपयोग भी किया जाता रहा है। इस वैषम्यपूर्ण समाज में नारी की दशा का चित्रण 'नेपाली' की गीतों में आता है। स्त्री 'नेपाली' की गीतों में समता के मूल्य की चिंता के कारण ही विषय बनती है। वे स्त्री के व्यक्तित्व विशेष का रेखांकन नहीं करते। उसे बराबरी का अधिकार मानते एक वर्ग के रूप में देखते हैं। 'नेपाली' के समता के स्वर में स्त्री की दशा का कारुणिक दृश्य अत्यन्त मूर्तिमान और उसकी स्वतंत्रता की कामना की धुन अतिसूक्ष्म तौर पर उपस्थित है।

'नेपाली' स्त्री को कोरा उपदेश ग्रहण करने वाला केवल पात्र नहीं मानते, स्त्री की कोमलता और शीलता उन्हें चिंगारी नजर आती है। यदी जीवन संग्राम में कूदने की बात आती है तो स्त्री उन्हें अपने समकक्ष नजर आती है। अपने काव्य संग्रह 'रागिनी' के भाई–बहन शीर्षक गीत में सामाजिक परिवर्तन के लिए स्त्री और पुरुष की समान और पूरक भूमिका को देखते हैं। वह लिखते हैं–

^r fpxkjh cudj mM jh] tkx&tkx e Tokyk cu!
cu tk r ggjkrh xxk] e >ye cgky cuA

x x x x

;g vijk/k dyd] l'khy] lkj Qy tyk nukA
tuuh tthj ct jgh] py rfc;r cgyk nukA*[1]

यहाँ यह ध्यान देने वाली बात है कि नवजागरणकालीन समय में आधुनिक भारतीय स्त्री की जो छवि गढ़ी गयी थी, उस छवि से बिल्कुल अलग 'नेपाली' की स्त्री है, क्योंकि वहाँ स्त्री का कर्मक्षेत्र घर तक सीमित है, जहाँ उसे अपने धर्म का निर्वाह और देश के नौनिहालों का वैज्ञानिक और तार्किक तौर पर पालन–पोषण करना है, इसलिए स्त्री का केवल शिक्षित होना जरूरी समझा गया। हालांकि भारतीय राजनीति में गांधी जी के पदार्पण ने स्त्री को घर की चहारदिवारी से निकालकर सामाजिक जीवन तक पहुँचाया। लेकिन उस सामाजिक–जीवन में विचार का निर्माण करने वाला, पुरुष वर्ग ही था और स्त्री को केवल उसका अनुपालन करना था। नवजागरण में स्त्री की ऐसी सामाजिक परिस्थिति होने के बावजूद स्त्री की नवजागरण कालीन धारणा से 'नेपाली' असहमत हैं। वह स्त्री को भी स्वतंत्रता आन्दोलन में बराबरी की भूमिका का हकदार मानते हैं। भाई–बहन शीर्षक गीत इस बात का प्रमाण है कि 'नेपाली' स्त्री को केवल कामना और प्रेम के लुभावने घेरों में बन्द करके रखने के पक्षधर नहीं हैं। स्वतंत्रता के लिए उनकी तीव्र उत्कंठा समानता के धरातल पर खड़ी है, जिसे स्त्री के सहयोग के बिना नहीं प्राप्त किया जा सकता।

सन् 1944 में प्रकाशित 'नवीन' काव्य संग्रह में एक गीत है, 'कोई रो रही थी' इसके शीर्षक के ठीक नीचे गीतकार की ओर से लिखा है– 'एक संध्या को पड़ोस में एक नवविवाहिता स्त्री रो रही थी।'[2]

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

^vkbZ Fkh vkokt

fdlh ikl dh gh edku ls vkbZ Fkh vkokt

rqEgkjs jksus dh vkokt*[3]

इस कविता में स्त्री के जीवन में विवाह के तुरन्त बाद होने वाले दारुण परिवर्तनों का मार्मिक चित्रण है। विवाह से पूर्व लड़कियां अपने ससुराल को लेकर बहुत से सपने सजाए रहती हैं, उनके मन में आशाओं के अनेक दीप जलते हैं, चंचल मन खुशियों के झूलें झुलाता है, वह उस नए देश की अनेक कल्पनाएँ लिए उड़ती है; किन्तु विवाह के बाद उनकी सारी कल्पनाओं और सपनों को यह समाज कैंची रूपी उपदेश से काट देता है। नवीन में ही एक दूसरी गीत है, 'अभागिनी' इस गीत के शीर्षक के नीचे लिखा है– ''15 मई 1943 को आधी रात को कोई स्त्री नदी के उस पार रो रही थी। यह गीत उस करुण विषय से सम्बन्धित है।''[4] 'अभागिनी' गीत स्त्री–जीवन के दुःख की जितनी आशंकाएँ होती हैं, उन सबको टटोलती है। उनसे थर्रायी स्त्री की जिंदगी के भय से आक्रांत होती हैं, और गीत की कारुणिक खूबसूरती यह है कि वह शुरू तो हाती है स्त्री को संज्ञा मानकर और उसके जीवन–जल में प्रवेश करने की कोशिश के साथ, लेकिन न जाने कब अपनी विषयवस्तु से एकाकार होकर सर्वनाम तक पहुँच जाती है और गीत की परिणति इस बात में होती है नदी पार रोती स्त्री के साथ एकाकार होकर गीत और गीतकार दोनों एक रूदन–उत्सव में बदल जाते हैं–

^bruh cMh nqfu;k esa lkFk esa gh gks jgk

jks jgh vHkkfxuh vkj lkFk esa Hkh jks jgk

ehBh&ehBh uhan esa lkjk tgku lks jgk

vkg ls ;g gekjk bu iRFkjksa dks /kks jgk

fly /kqu jgh ygj unh dh rhj ds dNkj esa

X X X X X X

jks jgh vHkkfxuh dkbZ unh ds ikjA*[5]

सन् 1957 में धर्मयुग में 'नेपाली' का एक गीत 'बाबुल तुम बगिया के तरुवर' प्रकाशित हुई थी। यह गीत उनकी किसी भी गीत संकलन में संकलित नहीं है किन्तु स्त्री जीवन की विडम्बनाओं की बहुत मार्मिक अभिव्यक्ति है इसमें। यह गीत पढ़ते समय भोजपुरी का एक लोकगीत– 'बाबा निबिया के पेड़ जनि काटहु' की याद आती है। लड़की चिड़िया है और बाबुल तरूवर। चिड़िया जैसे उड़ जाती है और पेड़ जहाँ का तहाँ खड़े का खड़ा ही रह जाता है, उसी तरह बेटी को बाबुल के आँगन से विदा होना ही होना है। उसे जिस जीवन में जाना है इसकी मार्मिक अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में हुई है–

^p<rh mej c<h rks dy] e;kns ls tk Vdjkbl

ixMh fxjus ds Mj ls nqfu;k tk Mkyh ys vkbZ

eu jks;k x;qth 'kgukbZ

u;u cgs pqujh igukbZ

igukbZ pqujh lqgkx dh] ;k Mkyh gFkdfM+;k; jh]

mM+ tk, rks ykSV u vk, T;ksa ekrh dh yfM+;k; jhA*[6]

नेपाली की स्त्री–दृष्टि को इस गीत के माध्यम से समझा जा सकता है। पारंपरिक भारतीय समाज एवं संस्कृति का वह मर्यादित पक्ष, जो स्त्री–जीवन की स्वतंत्रता एवं सहजता में बाधक है, की बहुत मार्मिक एवं निर्मम आलोचना हुई है इसमें। यह एक लम्बी कविता है। कई छोटे–छोटे बंद हैं और हर बंद एक–दूसरे से बँधे हुए हैं। यह गीत जितनी कोमल है उतनी कठोर भी।

'कवि नेपाली की स्त्री चेतना और लैंगिक विचारधारा के सन्दर्भ में इस कविता के महत्व को वसुधा के सम्पादक की इस टिपपणी से समझा जा सकता है– आज के स्त्री–विमर्श के नारे के उछलने से भी बहुत पहले 'नेपाली' ने बेटी की करुणा–गाथा के माध्यम से अपने एक गीत में ही नारी–जीवन का महाकाव्य लिख दिया। इस गीत को हमे 'बेटियों का राष्ट्रगीत' कहकर सम्मानित करने में गुरेज नहीं होना

चाहिए। हिन्दी साहित्य में जैसे निराला की 'राम की शक्तिपूजा' को महाकाव्यात्मक गरिमा प्राप्त है, उसी तरह अपने वर्णन–वैदग्ध्य, कथात्मक–आख्यानात्मक प्रस्तुति, करुण रस की विवृत्ति, रोमांचक कल्पना, दृष्टि, मार्मिक–रागात्मक भाषा शैली और व्यक्तिपरक, व्यक्तिगत अनुभूति की गीतात्मक छवि को प्रबंधात्मक स्वरूप प्राप्त होनेर, क्षण–खण्ड में विश्वदर्शन कराने के लिए इस गीत को अपनी प्रगतिशीलता में 'प्रबंधात्मकता' का दर्जा तो मिलना ही चाहिए। निराला की 'सरोज स्मृति' का गीतत्व आत्यांतिक रूप से व्यक्तिगत, नेपाली का गीत अपनी सर्वातिशयता में व्यक्तिगत है।''[7]

नेपाली की कविता 'बाबुल तुम बगिया के तरूवर' इसलिए महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि आधुनिक हिन्दी कविता–जगत का स्त्रीवादी विमर्श इस कविता के बिना अधूरा है। यूँ तो यह गीत शैली में लिखी गयी है लेकिन इस गीत की विशेषता यह है कि साहित्य के औपचारिक जगत् से इसका पुराना और गहरा नाता है। सैकड़ों सालों से लोकगीतों में बेटियाँ अपने बाबुल से अपने जीवन के संतापों की शिकायतें करती आई हैं।

'मैंने एक परी देखी है' कविता में नेपाली की सौन्दर्य–दृष्टि एक ग्राम्य युवती के नैसर्गिक सौन्दर्य और उसका चित्र इतनी स्वाभाविकता और सहजता से उकेरा गया है कि उसके इस रूप का अंकन मोनालिसा की समानता प्राप्त कर लेता है–

^esu ;kSou dh ygjksa esa f>yfey Lo.kZ ijh ns[kh gS
?kq?kV Fkk rkjksa dk uHk&lk] eq/k&[k.M&lk mMrk vkpy
tx esa mldh ubZ tokuh iwue dh pkanuh cuh Fkh
mldh Nfo ;kSou&olar esa Qyk&lh fu[kjh ns[kh gSA**[8]

नेपाली ने यहाँ स्त्री के रूप और सौन्दर्य का वर्णन किया है, उसकी देह से परे होकर यह वर्णन न कृत्रिमता का बोध कराती है और न ही अतिशयोक्ति का। नेपाली नारी सौन्दर्य के बहिरंग को उसके अन्तरंग से एकीकृत मानते हैं। बल्कि उनकी दृष्टि में बाह्य सौन्दर्य आन्तरिक सौन्दर्य की ही सहज अभिव्यक्ति है। इस दृष्टिकोण से नेपाली कालिदास की सौन्दर्य–दृष्टि के अत्यन्त समीप निकट है। यहाँ कवि की 'चन्द्रमुखी' शीर्षक प्रसिद्ध कविता को देखा जा सकता है। इसमें कवि ने नायिका के स्वाभाविक सौन्दर्य का वर्णन किया है, जिसके लिए मूल्यवान गहनों और वस्त्रों की कोई जरूरत नहीं होती–

^dN Qdz ugha iMrk] xguk iguk] ;k dHkh ugha iguk
xguksa dk Hkh xguk rqjk eLdjkdj 'kekZrh jguk
eLdku&'kje bruh Hkksyh uknku mefj;k >Bh gSA
jx&jx esa bruh jx Hkjh jxhu pqufj;k >Bh gSA*[9]

यहीं इस दृष्टि से नेपाली 'बच्चन' और 'दिनकर' से अलग दिखलाई पड़े हैं। ये दोनों कवि नारी को उसके शरीर में अधिक देखते हैं, जिससे उनकी दृष्टि नारी के बाहरी सौन्दर्य का हि ज्यादा वर्णन कर पाती है, इसलिए प्रेम हो या नारी–सौन्दर्य उनके यहाँ अधिक इच्छापूर्ति न होने के कारण अपने सामान्य रूप में नहीं प्रकट होती है। नेपाली के लिए सौन्दर्य का अर्थ देह–सुख पाने की अधिकता नहीं है, वहाँ तो प्रेमिका के सौन्दर्य की एक झलक मात्र से शाम हो या रात, सूर्योदय हो जाता है और मन, कमल की तरह खिल उठता है। 'नेपाली' के एक गीत में नारी–सौन्दर्य और जीवन–मर्म को देखा जा सकता है–

^rw i<rh gS ejh iLrd] esa rjk eq[kMk i<rk gwA
rw pyrh gS iUu&iUus] esa ykpu&ykpu c<rk gwA*[10]

गीतकार केवल चेहरे की मनमोहक छवियों को ही नहीं पढ़ता बाल्कि उसके माध्यम से मन के भावों को भी पढ़ता है, इसलिए नेपाली की दृष्टि में सौन्दर्य मन की छवि है।

'नेपाली' की कविता स्त्री–विमर्श की दृष्टि से अपने समय से बहुत आगे की कविता है। आज जिस तरह स्त्री–विमर्श की चर्चा साहित्य में बड़े जोर–शोर से चल रही है उसमें नारी सशक्तिकरण के कृत्रिम प्रवाह में, नारियों के जीवन–संवेदना से कोई सरोकार नहीं रह जाता है। कृत्रिम चरित्रों के निर्माण

के विमर्श को पन्नों पर हि दिखाया जा रहा है। किन्तु नेपाली ने यथार्थ के धरातल पर स्त्रियों के वेबशी को पहचाना और उनकी वेदना के साथ अपनी वेदना को मिलाया है।

lUnHkZ %

1. 'गोपाल सिंह नेपाली– समग्र', भाग– 1, सम्पादिका–सविता सिंह, 'नेपाली' पृ0सं0 180
2. 'गोपाल सिंह नेपाली– समग्र', भाग– 1, सम्पादिका–सविता सिंह, 'नेपाली' पृ0सं0 399
3. वही, पृ0सं0 399
4. 'गोपाल सिंह नेपाली– समग्र', भाग– 1, सम्पादिका–सविता सिंह, 'नेपाली' पृ0सं0 444
5. वही, पृ0सं0 445
6. जनपथ पत्रिका, नेपाली विशेषांक, सम्पादक– अनन्त कुमार सिंह, दिसम्बर 2011, प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली, पृ0सं0 76
7. आजकल पत्रिका, नेपाली विशेषांक, सम्पादक–सीमा ओझा नवम्बर 2011, प्रकाशन विभाग, लोदी रोड, नई दिल्ली, पृ0सं0 37
8. गोपाल सिंह नेपाली, युगद्रष्टा कवि – नन्दकिशोर नंदन, प्रकाशन विभाग, प्रथम संस्करण–2012, पृ0सं0 121
9. वही, पृ0सं0 122
10. 'गोपाल सिंह नेपाली समग्र', भाग–1, सम्पादिका सविता सिंह 'नेपाली' प्रथम संस्करण–2010, पृ0सं0 600

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 311-315

vk/;kfRed ukjhokn

bUn| JhokLro*

सृष्टि के उषाकाल से ही नारी पुरुष की कोमल भावनाओं में चेतना फूँकती और उसकी कल्पनाओं में रग भरती आयी है। इसी कारण वह साहित्य के साम्राज्य पर सदैव ही अधिष्ठित रही है। चिरकाल से ही नारी सुकुमारता, कोमलता, विनम्रता, त्याग, कर्तव्यपरायणता और मधुरता की प्रतीक तथा पुरुष शक्ति, शौर्य और कठोरता का प्रतीक रहा है। ''नारी का मानसिक विकास पुरुष के मानसिक विकास से अधिक तीव्र गति से होता है। उसका स्वभाव अधिक कोमल और प्रेम, घृणादि भाव अधिक तीव्र तथा स्थायी होते हैं। ....इन दोनों प्रकृतियों में उतना ही अन्तर है जितना विद्युत में। एक से शक्ति उत्पन्न की जा सकती है,.......परन्तु प्यास नहीं बुझाई जा सकती है। दूसरी से शक्ति मिलती है, परन्तु पशुबलि की उत्पत्ति सम्भव नहीं।''[1]

नारी से ही नर 'शक्तिमान' कहलाता है। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर अब तक, पाषाण काल से स्पूतनिक युग तक नारी, नर के जीवन का पोषण और उन्नयन करती रही है। आज तक उसने अपनी ममता, वात्सल्य, त्याग, करुणा, कोमलता और मधुरता से पुरुष की कठोरता एवं रूक्षता को कम कर जीवन में एक स्निग्ध, अतस्त्र प्रेमधारा बहाने में अपूर्व योग दिया है। यह सत्स है कि संघर्ष पुरुष की जीवन प्रेरणा रहा है तथा नारी का आत्मसमर्पण ही उसकी जीवन–शक्ति का प्रमाण रहा है, किन्तु विश्व का सामाजिक इतिहास बतलाता है कि पुरुष ने प्रगतिपथ पर अग्रसर होने के लिए किसी न किसी अंश में माता, बहिन, पत्नी, प्रेयसी आदि से किसी न किसी प्रार की प्रेरणा अवश्य प्राप्त की है।

'आँचल में दूध और आँखों में पानी' लिये त्यागमयी नारी सामाजिक व्यवस्था का अनिवार्य अंग रही है और यह स्पष्ट है कि हमारी आदिमकालीन गृहस्थी का शिलान्यास नारी की कोमलता के कर कमलों द्वारा ही हुआ होगा, पुरुष की कठोरता की 'क्रेन' द्वारा नहीं। महोदवी जी के शब्दों में – ''पुरुष को यदि ऐसे वृक्ष की उपमा दी जाए, जो अपने चारों और के छोटे–छोटे पौधों का जीवन–रस चूस–सूचकर आकाश की ओर बढ़ता जाता है तो स्त्री की ऐसी लता कहना होगा, जो पृथ्वी से बहुत थोड़ा सा स्थान लेकर अपनी सघनता में बहुत से अंकुरों को पनपाती हुई उस वृक्ष की विशालता को चारों ओर से ढँक लेती है।...... ....प्रकृति ने केवल उसके शरीर को ही अधिक सुकुमार नहीं बनाया, वरन् उसे मनुष्य की जननी का पद देकर उसके ह्रदय में अधिक संवेदना, आँखों में अधिक आर्द्रता तथा स्वभाव मे अधिक कोमलता भर दी।''[2]

अपनी रूक्ष्ता के कारण पुरुष जहाँ प्रतिशोध लेता है वहाँ नारी अपनी कोमलता के कारण क्षमा कर देती है। पुरुष जहाँ कठोर कर्तव्य–पालक बनता है नारी वहाँ संवेदना की प्रतिमा और पुरुष जहाँ शौर्य का प्रतीक है तो नारी प्रेरणा की प्रतिरूप बनती है।

यद्यपि प्रागैतिहासिक काल के विषय में भी सब कुछ निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता, फिर भी विभिन्न स्थानों पर प्राप्त अवशेषों, विभिन्न वस्तुओं पर मिले चिह्नों आदि के आधार पर उस काल–सम्बन्धी बातों का अनुमान लगाया जाता रहा है। उस काल में समाज मातृसत्तात्मक था या पितृसत्तात्मक, समाज में नारी की स्थिति क्या थी, उसका क्या क्षेत्र था, ऐसे कितने ही प्रश्न अभी भी निश्चित उत्तर की अपेक्षा रखते हैं, फिर भी 'प्रागैतिहासिक काल में नारी की स्थिति पुरुष से अच्छी थी, यह मातृदेवी की

*हरवंशपुर, आजमगढ़, उ0प्र0

उपासना से अनुमानित किया जा सकता है कि वह समाज पितृसत्तात्मक न होकर मातृसत्तात्मक रहा होगा।''[3] प्रारम्भिक काल के सभी रूपों में वंश माता के नाम से ही चलता था, क्योंकि सामूहिक विवाह–प्रथा में अकेली माता ही निश्चित रूप से पहचानी जा सकती थी। कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि उस काल में विवाह नामक संस्था का अभाव था।

धीरे–धीरे पुरुष अपनी कठोरता, शौर्य आदि के कारण सम्पत्ति के निर्विवाद स्वामी होते गये। निःसंदेह यह संक्रमण :मातृ अधिकार के उन्मूलन' अथवा 'नारी जाति की पराजय' के रूप में प्रागैतिहासिक काल में ही हुआ माना जाएगा।''[4] जो भी हो, जब से मानव समाज पितृसत्तात्मक बना है, तब से नारी–जाति का इतिहास करुणांकित ही रहा है।

विश्व इतिहास के पृष्ठ चाहे नारी जाति की करूण–कथा से काले नहीं रंगे गये हों, किन्तु मानव–जाति का जीवन अवश्य अपने अर्द्धांग के कुण्ठित होने से समुचित विकास नहीं कर सका। पुरुषों द्वारा निर्मित कलुषित कानून–कायदों की कोठरियों में कैद कर दिये जाने से नारी–जाति ने बिना कराहे जो कष्ट सहे हैं, उनकी कथा करूण ही नहीं, करूणतम है और उसे लिपिबद्ध करने में हर लेखनी असमर्थ ही रही है।

प्रायः सभी युगों में पुरुष पर सूत्रधार ने विश्व–रंगमंच पर नारी–कठपुतलियों को अपनी अंगुलियों के इशारे पर जैसे चाहा नचाया है। नारी–जीवन के इस नाटक के कुछ दृश्य अवश्य सुखमय प्रतीत होते हैं, किन्तु वस्तुतः इस नाटक के सभी अंक दुखमय ही रहे हैं। यही नहीं, अपवादस्वरूप आये इन सुखद दृश्यों पर भी विवशता की छाया सर्वत्र व्याप्त रही है, क्योंकि पुरुष ने उसे अपनी सम्पत्ति मात्र समझा है या अधिक से अधिक चेतनायुक्त मिट्‌टी का प्याला।

अर्थ के अभाव एवं अपनी दुर्बलता क कारण से रूप का बाजार लगाने को भी विवश होना पड़ा और उसकी देह की दीपशिखा पर सम्राट व सेठ ही नहीं मंडराये बल्कि मंदिर में देवदासी बनाकर भगवान के भक्त पुजारियों ने भी उसके रूप–यौवन के 'प्रसाद' को भोगा। रूप की रूपहली रात्रि के व्यतीत हो जाने पर वे इन रूप–विक्रेता नारियों को रूप–क्रेता पुरुष ने निर्दयता के साथ दूध की मक्खी की भाँति फेंक दिया, किन्तु उन तिरस्कृत नारियों ने अपनी अहं पर मधुर–मोहक मुस्कान डालकर अपनी व्यथा को छुपाये रखा और गाने के बहाने रसिक खरीदारें को रिझाने के साथ–साथ अपनी व्यथा को भी सहलाने का प्रयास किया। नारी–जाति के इन अभिशापित प्रतिमानों को कहीं वेश्याएँ कहा गया और कहीं गणिकाएँ कहीं मंगल मुखियाँ कहकर पुकारा गया तो कहीं नगर–बधुएँ। विषयासक्ति का मूल मानी जाने के कारण ही ये स्त्रियाँ घृणा की पात्र बनीं। आश्चर्य तो यह है कि इनको घृणित कहने वाले पुरुष इनकी उपेक्षा भी न कर सका। यही नहीं कि केवल राजा–महाराजाओं ने ही इन्हें नचाया हो, सेठ–साहूकारों ने ही उसे खरीदा हो, सरदार–सामंतो ने ही उसे हाम समझा हो या उसकी देह के साथ खिलवाड़ किया हो, पावनता का पंचामृत पान किये हुए भक्तों ने भी उसके देवदासी रूप की दीपशिखा से अपने अन्तर में आनन्द का आभास किया। इतना ही नहीं, स्वयं को सहृदय मानने वाले साहित्यकार का हृदय भी नारी के इस रूप पर मँडराता रहा। दार्शनिकों को भी उसकी दयनीय दशा पर दया नहीं आयी और संतों को भी जैसे सांप सूंघ गया। उन्हें तो उनकी सांसों में सर्पिणी के विष का संदेह हुआ और उसकी सांस–सांस पर पहरा बिठा दिया गया। और तो और, उसके सामने प्रेम का अभिनय करने वाले प्रेमियों ने भी उसके साथ प्रवंचना ही की।

नारी को देवी कहकर पुरुष ने उसे उसके अधिकारों से वंचित करने का भरपूर अच्छा नाटक खेला है। देवी कहकर पुरुष ने उसे पाषाणी प्रतिमा बना दिया और उसके मानवीय जीवन को भी दुर्लभ कर दिया। केवल देना और सहना ही उसके हिस्से में रह गया और 'सर्मपण उसके भाग्य में कील सा गड़ गया।' जीवन का इससे बड़ा करूण प्रहसन और क्या हो सकता है कि 'देवता की भूख को समझने वाला पुरुष मानव की भूख–प्यास को नहीं समझ सका।' समाजशास्त्रियों के लिए यह सबसे बड़ा आश्चर्य है कि नारी के उदर से जन्म लेकर उसकी गोद में पल–बढ़ कर, माता की ममता, पाकर भी पुरुष नारी के

प्रति पाषाण कैसे बना रहा? इससे भी बड़ा आश्चर्य तो यह है कि पद्–दलित होकर भी नारी पुरुष के प्रति नवनीत–सी कोमल कैसे बनी रही? प्रतिशोध की अग्नि उसमें क्यों प्रज्जवलित नहीं हुई? उसके स्नेह का स्त्रोत सूख क्यों नहीं गया? शायद इसका रहस्य नारी ह्रदय स्वयं भी नहीं जानता। इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती कि यदि स्नेह का यह स्त्रोत सूख गया होता तो मानवता की बेलि समर्पण बिना कैसे पनपती, कैसे पुष्पित, पल्लवित होती?

समग्र भूमण्डल पर शायद ही कोई ऐसा कोना होगा, जहाँ नारी–जाति ने पुरुष वर्ग के अत्याचारों को नहीं सहा हो। उसकी निर्बलता के कारण ही यूरोप में यह कहा गया है कि गाय और स्त्री के आत्मा नहीं होती और कई देशों में नारी को लेकर ऐसी ही भिन्न–भिन्न लोकोक्तियाँ प्रचलित हो गई। यथा– 16 वीं शताब्दी में जर्मनी में यह लोकोक्ति प्रचलित हो गई कि गधा व स्त्री पिटने के लिये ही होते हैं। फिर चीन भला किससे कम रहने वाला था? अफीम की ढेर में वहाँ भी यह कहावत चल पड़ी कि बीच लड़का भी सर्वोत्तम लड़की से भी अच्छा होता है।

रूस में नारी को कोई भी बात जानना हिस्से की दीवारों में ही सीमित रहना पड़ता था। क्रान्ति से पूर्व वहाँ की 'तुवा' भाषा में तो ''नारी'' शब्द ही नहीं था तथा उसका उल्लेख 'निरपयोगी' अनावश्यक अर्थी अपमान जनक शब्द 'खेरेजोक' से किया जाता था।[5] परिवार को अंग्रेजी में ''फैमिली'' कहते हैं। यह फैमिली शब्द रोमन भाषा का है। उस भाषा में 'फैमिलुस' का अर्थ है – गृहदास। इसी का बहुवचन है 'फैमिलिया' अर्थात एक व्यक्ति के दासों का समूह। यह शब्द संकेत करता है कि उस समय वहाँ नारी की स्थिति गृहदासी के समान ही थी। ग्यारहवीं शताब्दी में जब भारत के मन्दिर देवदासियों से भरे जा रहे थे, तब रोमन कैथोलिक गिरजाघरों में भी प्रभु ईसा की दुल्हनों का संग्रह किया जा रहा था।

यूनान के सुकरात, अरस्तू, थ्यूसीडाइजिज, डिमस्थनीज आदि महान सन्तों, दार्शनिको ंनं भी नारी का तिरस्कार ही किय।प्राणी मात्र की पीड़ा को पहचानने वाले तथा नवीन समाज–व्यवस्था देने वाले इन विचारकों व दार्शनिकों ने भी नारी को न्याय नहीं दिया। ''अफलातून ने नारी को नौकरों का दर्जा दिया।''[6] ''अरस्तू ने खरीदी हुई दासी से भी अधिक तत्परता से पति–आज्ञा मानने की आज्ञा दी''[7] 'मुहम्मद ने तो उसे पुरुष के लिए बनाई गयी सबसे बड़ी मुसीबत बताया।'[8] स्वयं ईसा भी नारी को धर्म–कार्य में बाधक मानते थे। मिल्टन व रूसो ने भी नारी को बंधन में रखना जरूरी बताया था। मध्य युग में मिल्टन ने भी बिना विवाद पति–आज्ञा मानना नारी का धर्म बताया। आगस्टाइन को तो लगा कि मनुष्य को स्वर्ग से पतित करने के लिए ही नारी को बनाया गया है।

इतना ही नहीं चीन एवं यूनान मे तो नारियाँ मन्दिरों में पूजा नहीं कर सकती थीं। यूनान में उसे घर की नौकरानी मात्र समझा गया। मार्शल टापुओं में स्त्री के पूजा कार्य में भाग लेने पर प्रतिबन्ध लागा दिया गया और हजरत मुहम्मद ने उसके लिए मस्जिद में नमाज पढ़ने की मनाही कर दी। ईसाइयत में भी उसे हटवा उत्तराधिकारिणी बताकर बहिष्कृत ही कर दिया गया। बाइबिल की प्रथम पुस्तक 'जिनीसस' में हव्वा को ईश्वर ने पति द्वारा शासित होने का शाप दिया है। यही नहीं स्थिति यहाँ तक आ पहुँची है कि मध्ययुग में चर्च में गीत गाने के लिए हिजड़े तो जा सकते थे, परन्तु स्त्रियाँ नहीं। टकर के अनुसार – 'यूनान की नारी, जीवन के किसी भी काल में बिना संरक्षक नहीं रह सकती थी।[9] संभवतः सतीत्व का जन्म भी पुरुष की नैसर्गिक ईर्ष्या व अहं भाव से ही हुआ होगा।

समाज व्यवस्था, विधि–निर्माण आदि पुरुष वर्ग के हाथों में होने से पुरुष ने निर्बल नारी की सभी त्रुटियों के लिए मनचाहे दण्ड की व्यवस्था की दी। पुरुष को जिस अपराध के लिए क्षम्य माना गया, उसी अपराध के लिए नारी को कठोरतम दण्ड देना निर्धारित किया गया। जापान वाले पुरुष चाहे जितनी रखैले रखते, नारियाँ ईर्ष्या नहीं कर सकती थीं। रोमन कानून ने पति को यह अधिकार दे दिया कि पर पुरुष से सहवास करती हुई पत्नी को देखते ही वह उसे मार दे।[10] इतना ही नहीं, मुहम्मद से पूर्व अरबों को भी व्यभिचारिणी नारी को पत्थरों से मारने का भी अधिकार दे दिया गया था। अफ्रीका की अशंती जाति में तथा न्यूजीलैण्ड में एस्किमों लोगों की कुछ जातियों में भी इस त्रुटि के लिये पुरुष को उसकी इहलीला समाप्त कर देने को अधिकार प्रदान कर दिया गया था।[11] यूनान–जर्मनी व इग्लैण्ड में ऐसी नारी को मार

डालते थे और पुराने सैक्सन भी ऐसी नारी को चिता पर जला देते थे।[12] प्रारम्भिक आर्य जातियों में भी पत्नी का व्यभिचार भयंकर अपराध था।[13] मंगोल शासकों के मरने पर उनके साथ उनकी दासियां भी गाड़ दी जाती थीं, यह रहस्य मिंग सम्राट के मकबरे की खुदाई से अभी हाल ही में खुला है।[14]

नारियों को जिस त्रुटि के लिए पुरुषों ने उसे कठोर से कठोर दण्ड दिया, उसी व्यभिचार के अपराध के लिए पुरुष ने स्वयं को दण्डित करना स्वीकार नहीं किया। अपनी वासना की तृप्ति के लिए जिन नारियों के जीवन उसने तबाह किये, उन्हें वेश्याएँ कहर गया, किन्तु उन वेश्याओं के यहाँ जाने वाले पुरुषों के लिये ऐसा कोई समानार्थी शब्द नहीं गढ़ा गया जो उसकी इस दुर्बलता का परिचायक होता। विश्व के हर कोने में ये वेश्याएँ कहलाने वाली नारियाँ अपने जीवन को पुरुषों की वासना की अग्नि में अर्पित कर, अपने गृहस्थी के सुमधुर सपनों को चूर कर, दूसरों की गृहस्थियों तक उस आग की लपटों को पहुँचाने से रोकती रही हैं। 'इतिहास–कार स्ट्राबो तथा यूनानी इतिहासकार हेरोडेट्स ने भी बेबीलोन की वेश्यावृत्त का विस्तृत वर्णन किया है। सिकन्दर के मित्र इतिहासकार कर्टियस ने भी बेबीलोन के पुरुषों के लिए पैसा लेकर अपनी पत्नी व पुत्री को सौंप देने की बात कही है।[15] रोम की दशा भी यूनान से अच्छी नहीं थी और मिस्र में भी देवदासी प्रथा व वेश्यावृत्ति की महामारी फैली हुई थी। द्वितीय महायुद्ध से पूर्व जापान में तो सरकार स्वयं वेश्यागृहों की देखभाल करती थी। बाइबिल व यहूदियों के ग्रन्थ 'जेनेसिस' में भी वेश्यावर्णन मिलते हैं।

पुरुषों ने केवल पत्नियों को ही प्रताड़ित किया हो या षोडशी बालाओं को ही वेश्याएँ बनाकर उनका विनाश किया हो, इतनी ही बात नहीं है। उसने अपनी नवजात कन्या रूपी कलिका को जनमते ही कुचल कर कफन ओढ़ाने में भी संकोच नहीं किया। मेक्सिकावासी अपने देवता के सम्मुख कन्या का वध कर देते थे, और कई अरब देश कब्र को सबसे अच्छा दामाद समझते थे तथा कन्या का जन्म होते ही उसे दफन कर देत थे।[16] कुवैत के लोग भी मक्का के पास अबूदिलाया पहाड़ पर अपनी कन्याओं का वध कर देते थे। स्वयं को विधायक एवं महान संरक्षक समझने वाले पुरुष ने नारी को अर्द्धांगिनी न समझकर मात्र पशु ही समझा, इसके अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं। जब उसे पशु ही समझ लिया गया तब उसे प्रताड़ित करना तो साधारण सी बात हो गई। इसीलिये पुरुष ने निर्बल नारी को पीट–पीटकर सुधारने की व्यवस्था दी। 'रूस में तो 'वर' कोड़े लगाकर 'वधू' को घर ले जाता था और जब वह 'वधू' करे जूते खोलने को कहता था तो उसके जूते में एक कोड़ा मिलता था।[17]

'मध्य युगीन यूरोप, रोम व आस्ट्रेलिया में भी नारी को पीटने का अधिकार पुरुष को प्राप्त था। नारी को कुत्तों से भी अपवित्र मानने वाले देश 'फिओं' में पत्नी को पेड़ों से बाँधकर पीटना पतियों का मनोरंजन था।[18] इतना ही नहीं, इग्लैण्ड का मण्यकालीन कानून तो नमक व सिरके में भींगी मजबूत छड़ी से नारी को पीटने का अधिकार पुरुष को देता है। मध्य युग तक ही क्यों, अपने को सर्वाधिक उन्नत एवं सभ्य समझने वाले इग्लैण्ड में तो पुरुषों को 1891 तक पत्नियों को पीटने का अधिकार प्राप्त था। जिसका समर्थन कान लॉ के सर्वोत्तम व्याख्याता ब्लेक स्टोन ने भी किया था।[19]

आदत मनुष्य का दूसरा स्वभाव है। इसी कारण पिंजरे में रहने वाले पंक्षी की भाँति परतंत्र रहने वाला व्यक्ति भी परतंत्रता को ही भला समझने लगता है। इसका उदाहरण है कि हंगरी के कुछ भागों की तथा इतालनी कैमोरिस्टों की नारियां जो क्रमशः पिटने को अपना सम्मान समझती थीं, कान ऐंठने को प्रेम का चिन्ह तथा पति के न पिटने पर उसे बेवकूफ समझती थीं।[20]

जिस नारी से स्नेह मिला, संतान मिली, उस नारी को पुरुष गुलाम ही नहीं बल्कि पाप–पुण्य समझ कर जैसा चाहा वैसा व्यवहार किया। पता नहीं पुरुष अपनी पुरुषता में यह सब कैसे भूल बैठा कि नारी के भी ह्रदय होता है, उसे भी सुख–दुःख की अनुभूति होती होगी। एस्कीमों की भाँति रैडिस्किन, नाचेज, आस्ट्रेलियन, बुशमैन जातियों व न्यूमैक्सिको में यूमा जाति के 'पति देवता' भी अपनी पत्नियों को अपने मित्रों को उधार में तथा किराये पर देते रहे हैं। अमेरिका की 'छिनक जाति' के लोग भी अपनी कन्या या अन्य स्त्री को अपने अतिथि की शैय्या पर भेजना अपना धर्म समझते थे। सभ्य एवं सु–संस्कृत कहलाने

वाले पुरुषों ने भी नारी के साथ मनमाना अन्यायपूर्ण व्यवहार किया है। यूनान व रोम में प्रसिद्ध पुरुषों ने भी अपनी पत्नी का दान किया है। एक रोमन महापुरुष द्वारा अपनी पत्नी 'मार्शिया' को होर्टेनसिस, को दान देने का उल्लेख मिलता है और तो और, ''महात्मा सुकरात ने भी अपनी पत्नी जैनटिपि को अपने मित्र अल्सीबियाडीज को उधार दिया था'', ऐसा कहा जाता है। सिर्फ असभ्यता के कारण ही पुरुष ऐसा करता रहा हो बल्कि वह सभ्यता का ढ़िंढ़ोरा पीटने वाले देशों में भी यह कार्य होता रहा है।

यूरोप में तो 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक पत्नी पत्नी–विक्रय का अधिकार जारी रहा है। ''ग्रिम ने तो 1828 तक इंग्लैण्ड में खुली मण्डियों में पत्नियों के खुले आम विक्रय की बात कही है।[21] बोस्टन (अमेरिका) में भी सन् 1850 तक नारी नागरिक ही नहीं मानी जाती थी।[22] पुरुष ने नारी के अधिकारों को किस प्रकार कुचला है इसका यह ज्वलंत उदाहरण है कि फ्रेंच राज्य–क्रान्ति के बाद में बुलायी गई। समानता का सिद्धान्त प्रतिपादित करने वाली, राष्ट्रीय परिषद तक ने नारियों के आवेदन पत्र को सुनने से इंकार कर दिया था।

इस प्रकार विश्व का चाहे कोई भी देश हो –पाश्चात्य हो या पूर्वात्य। सभ्य हो या असभ्य ईसाई धर्मानुयायी हो या इस्लाम धर्मानुयायी, बौद्ध धर्मावल्म्बी हो या हिन्दू धर्मप्रेमी, भौतिकवादी, बौद्ध अध्यात्मवादी, लघु हो या विशाल, गरीब हो या अमीर, स्वतंत्र हो या परतंत्र – उन सभी में नारी–जाति को जुल्म की जंजीरों से ही जकड़ा गया है। चाहे उस श्रृंखला की कड़ियाँ संस्कृति की हो या सत्ता की, धर्म की हो या कबीले की, सोने की हो या लोहे की, कठोर हो या कमजोर किन्तु थीं वे श्रृंखला का अंश ही, बंधन का प्रतीक ही।

lUnHkZ %

1 महादेवी वर्मा – श्रृंखला की कड़ियाँ, पृ0 11–12
2 महादेवी वर्मा – श्रृंखला की कड़ियाँ, पृ0 32–93
3 शशिभूषण दास गुप्ता – इवोल्यूशन ऑफ मदर वरशिप इन इंडिया – 'ग्रेट विमेन ऑफ इण्डिया' में संग्रहीत
4 वाहिद प्रवीन (अनु0 आनन्द प्रकाश जैन) – नारी, विवाह और सदाचार, पृ0 24
5 चिरंजीलाल पराशर –नारी और समाज, पृ0 251
6 रिपब्लिक – पृ0 41431
7 इकॉनामिका, 117
8 लेन –स्पौचेज ऑफ मुहम्मद पृ0 161, 163
9 ग्रीफिस – रिलीजन्स ऑफ जापान, पृ0 320
10 लतूनों – इवोल्यूशन ऑफ मैरिज, पृ0 223–24
11 लतूनों – इवोल्यूशन ऑफ मैरिज, पृ0 204, 217, –+213
12 पोमराय –मैरिज, पृ0 143–45
13 श्राडर–प्रिहिस्टारिक एण्टीक्विटीज, पृ0 388
14 चिरंजीलाल पराशर –नारी और समाज, पृ0 298
15 श्राडर–प्रिहिस्टारिक एण्टीक्विटीज, पृ0 388
16 चिरंजीलाल पराशर –नारी और समाज, पृ0 271
17 कावलस्की – मॉडर्न कस्टमज एण्ड एनशेंट लाज ऑफ एशिया, पृ0 44
18 विलियाम – फिली एण्ड दी फिजीयन्स, पृ0 156
19 स्मिथ – हिस्ट्री ऑफ मॉर्डन कल्चर, पृ0 520
20 इग्लैण्ड के कानूनों की टीका (पुस्तक 1, अध्याय 15)
21 मइलर – फैमिली, पृ0 224
22 रच्चन्द – नारी का मूल्य, पृ0 45

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 316-318

NkVkukxiqj esa tutkrh; la?k"kZ % dkj.k vkSj vk;ke

MkW0 Hkkjrh >k*

छोटानागपुर प्रक्षेत्र में अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध कई विद्रोहात्मक संघर्ष हुए। इनमें 1831–32 ई0 का कोल विद्रोह, 1832–33 ई0 का भूमिज विद्रोह, 1855–56 ई0 का संताल विप्लव 1858 से 1895 ई0 तक व्याप्त सरदार आन्दोलन आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिन्होंने बाद में बड़े पैमाने पर शुरू होनेवाले बिरसा आन्दोलन (1895–1900 ई0) को विस्तृत आधारशिला प्रदान की। इतिहास के जानने वालों के अनुसार इन संघर्षों की वजह जनजातीय भूमि पर बाहरी लोगों का अनाधिकार प्रवेश थी। इस प्रवेश के फलस्वरूप उनकी परम्परागत भूमि–व्यवस्था नकारात्मक रूप में प्रभावित हुई।[1] जनजातीय समाज व्यवस्था के ख्यातिलब्ध विद्वान इतिहासकार कुमार सुरेश सिंह ने भी माना है कि अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से भारतीय उपमहाद्वीप के कई हिस्सों में जनजातीयों की भूमि व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो रही थी और इसका प्रधान कारण जनजातीय क्षेत्रों में बाहरी लोगों का बड़ी संख्या में पहुँचना था।[2]

1831–32 ई0 का कोल विद्रोह छोटानागपुर क्षेत्र में ब्रिटिश कम्पनी शासन के प्रथम छः दशकों में स्थानीय असंतोष का प्रतिरोधात्मक प्रतिफल था। कोल विद्रोह के मूल कारणों एवं वास्तविक स्वरूप की समीक्षा की जानी चाहिए। वस्तुतः कोल विद्रोह छोटानागपुर में अंग्रेजों की बढ़ी हुई शक्ति एवं प्रभाव को एक खुली चुनौती थी। यह विद्रोह कई प्रकार की शिकायतों की परिणति था, जैसे–करों में वृद्धि, जबरन बेगारी तथा साहुकारों द्वारा भारी सूद की वसूली इत्यादी।[3] इतिहास इस तथ्य का गवाह है कि व्यापक कृषक असंतोष विद्रोह का मूल कारण था और घृणित ब्रिटिश से मुक्त होने की आदिवासियों की उत्कृष्ट इच्छा थी।[4] पिछले दशकों में छोटानागपुर के विभिन्न राजाओं तथा उनकी प्रजा के साथ कम्पनी सरकार के संबंध तनावपूर्ण हो गये थे। सरकार की राजस्व नीति के कोल विद्रोह कालीन छोटानागपुर खास के नागवंशी राजा जगन्नाथ शाह को तबाह कर दिया था। 1828 ई0 में उसे सेयर करों को वसूलने से रोक दिया गया।[5] आबकारी करों की वसूली का ठेका करीम अली नामक एक व्यक्ति को दे दिया गया।

सरकार के इन कदमों से न केवल नागवंशी राजा तथा उसके जागीरदारों की आमदनी मारी गयी, बल्कि आदिवासियों की कठिनाइयाँ भी बढ़ी और उनमें से अनेक अवांदित करों से बचने के लिए अपने गाँवों को छोड़कर सीमावर्ती सिंहभूमि चले गये।[6] 16 Qjojh 1826 b0 dks ukxoa'kh jktk ds ifjy lEc/kh vf/kdkj lekIr dj fn;s x;s tks 1809 b0 ls gh ukxoa'kh jktkvksa dks lkSais x;s FksA जगन्नाथ शाह की आर्थिक कठिनाई इसलिए भी बढ़ गई थी कि उसे अनेक खोरपोशदारों को जीवनयापन भत्ता देना पड़ता था जिसका सालाना खर्चा लगभग 9400/–रू0 आता था। इस तरह 1825 ई0 के अन्त तक उसकी स्थिति इतनी कठिन हो गयी कि सरकारी राजस्व चुकाना भी मुश्किल हो गया। इस प्रकार राजाओं, जमीन्दारों और जागीरदारों के प्रति सरकार का नजरिया द्वेषपूर्ण था और आदिवासियों के प्रति सरकारी रूख सर्वथा उपेक्षापूर्ण था। कोल–विद्रोह के ठीक पहले आदिवासी अनेक अवांछित करों तथा गैर–कानूनी वसूली से दबे जा रहे थे। आदिवासियों को बाध्य किया जाता था कि वह जमींदार की जमीन जोते और अनेक प्रकार के गैरकानूनी असवाब उसे दे। लूट, दण्ड और उत्पीड़न की यह प्रक्रिया तबतक चलती रहती थी, जबतक आदिवासी गाँव–छोड़कर भाग नहीं जाता था।[7]

*जिला परिषद् उच्चतर माध्यमिक शिक्षिका (इतिहास), प्रोजेक्ट बालिका उच्च माध्यमिक, विद्यालय, जलालपुर, प्रखण्ड–लालगंज, जिला–वैशाली, (बिहार)

इस स्थल पर एक और विशिष्ट तथ्य का उल्लेख आवश्यक है। 17वीं शताब्दी के आरी से ही भारी संख्या में हिन्दू तथा मुसलमान छोटानागपुर में प्रविष्ट हो रहे थे। किन्तु पैतृक भूमि से आदिवासियों को वंचित किये जाने की प्रक्रिया ब्रिटिश शासन काल में ही शुरू हुई थी। 19वीं शताब्दी के आरंभ से ही स्थानीय अमला शतप्रतिशत बंगाली अथवा बिहारी थे। आदिवासी इन्हें बाहरी आदमी समझते थे और यहीं से दिकू अवधारणा की शुरुआत हुई।[8] इन बंगाली अधिकारियों की शोषक प्रवृत्ति ने आदिवासियों को ब्रिटिश विरोधी बना दिया। यदि स्थापित व्यवस्था लोगों की परम्परा के अनुकूल नहीं थी तो नागरिक प्रशासन का यह कर्त्तव्य बनता था कि उस व्यवस्था के दोषों की ओर इंगित करें। दूर स्थित ब्रिटिश कचहरियाँ भोले–भाले आदिवासियों को न्याय नहीं दे पाती थी। कचहरी पहुँचने पर आदिवासी पाते थे कि उन्हें न केवल उनकी जमीन से वंचित कर दिया गया था, बल्कि उन्हें बागी भी घोषित कर दिया गया।

इतना ही नहीं छोटानागपुर में बंगाल रेगुलेंशस को लागू करके भारी भूल की गई थी। छोटानागपुर में 1824 ई0 में आबाकारी करों का लगाया जाना और हंड़िया पर 'पतचुई' नामक कर लगाया जाना आदिवासियों को सख्त नापसंद था। अत्यन्त प्राचीन काल से वे बिना कोई कर दिये हंड़िया का निर्बाध सेवन कर रहे थे। पुनः हंड़िया पर कर लगाये जाने से उनके घरों की पोशीदगी पर आंच आती थी, क्योंकि आबकारी विभाग के अधिकारी अवैध शराब की खोज में उनके घरों की तलाशी लेते थे।

छोटानागपुर–शास की ही तरह पलामू की जनजातियाँ, विशेषतः चेरओं–खरवारों ने भी कोलविद्रोह में हिस्सा लिया। पलामू का इतिहास उपद्रवों का इतिहास रहा है। 1801] 1817 rFkk 1823 b0 esa dEiuh 'kklu dk ;gka dMk fojks/k gqvk FkkA ये सभी विद्रोह किसी–न–किसी तरह कृषि एवं राजस्व से सम्बद्ध थे। फिर भी सरकार ने पलामवी जन–जातियों की भावनाओं की उपेक्षा की। 1817 ई0 के विद्रोह से सरकार ने कुछ भी नहीं सीखा था। और तूफान से पूर्व के उपशय को शांति समझ लिया गया था। एक इतिहासविद् के अनुसार पलामू में विद्रोह की प्रमुख वजह स्थानीयकनीय पदाधिकारियों की अकुशलता, लापरवाही और विद्रोहियों के साथ उनकी मिलीभगत थी।[9]

सिंहभूमि के लड़ाका कोल भी अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध उठ खड़े हुए। इन कोलों के विद्रोह में शामिल होने का एक खास कारण था–उनकी स्त्रियों के साथ ठीकेदारों का दुर्व्यवहार। ये स्त्रियाँ सोनपुर में लोहा बेचने जाती थीं। जहाँ उन्हें दाम कम और अपमान अधिक मिलता था। वामनधारी के महापातर और मयूरगंज राजा के बीच कुछ जनजातीय गाँवों पर कब्जा का झगड़ा था। कटक के कमिश्नर ने 1825 ई0 में झगड़े को समाप्त कराने का प्रयास किया था, किन्तु मयूरगंज राजा द्वारा विवादग्रस्त क्षेत्र के कुछ गाँवों को ब्राह्मणों तथा देवस्थानों को दान के रूप में दे दिये जाने से स्थिति बिगड़ गयी। उत्तरी सिंहभूम में पोरहाट, खांरसवां तथा सरायकेला के राजाओं के आपसी मतभेद से भी विद्रोही प्रोत्साहित हुए। पोरहाट राजा की घटती हुई शक्ति का लाभ उठाकर लड़ाका कोलों ने 1832–33 ई0 में छोटानागपुर खास तथा अन्य सीमावर्ती इलाकों पर कई हमले किये। उपर्युक्त राजाओं द्वारा इन विद्रोहियों का एक–दूसरे के खिलाफ उपयोग किया जाता रहा।

सिंहभूम के विद्रोह के संबंध में एक विशेष बात हुई। यद्यपि स्वयं सिंहभूम इस विद्रोह द्वारा उद्वेलित नहीं हुआ था, तथापि यहाँ के लड़ाका कोल छोटानागपुर–खास के विद्रोहियों के प्रमुख समर्थक थे। छोटानागपुर खास के व्रिद्रोही बराबर यह प्रचार करते रहे कि लड़ाका कोल उनकी सहायता करने आ रहे थे। बंदगाँव के लड़ाका कोल बिंदराई मानकी, गोदरपिरी के सुई, मुंडा तथा सिंहभूमि के अन्य कई लोगों के नेतृत्व में सोनपुर के विद्रोहियों की सहायता कर रहे थे।

मानभूम में विद्रोह स्वतः स्फूर्त रहा। कोल विद्रोह के समय 1856 ई0 तक के मानभूम जिला का क्षेत्र जंगल–महाल का भाग था। जंगल–महाल जिला का मुख्यालय बांकुड़ा में था जो वर्धमान डिवजीन के कमिश्नर के अन्तर्गत था। उस समय जंगल–महाल जिला का मजिस्ट्रेट एच0 पी0 रसेल था और वर्तमान डिवीजन का कमिश्नर डब्ल्यू ब्रैडोन था। छोटानागपुर के अन्य भागों की तरह यहाँ की जनजातियाँ भी असंतुष्ट थीं और उन्होंने भी विद्रोह में भाग लिया।

lUnHk %

1. सिंह, कुमार सुरेश, 'बिरसा मुण्डा और उनका आन्दोलन', क्लासिक पब्लिकेसन्स, नई दिल्ली, पृ0 23
2. पूर्वोक्त, पुस्तक, पृ0 24
3. चौधरी, एस0बी0, सिविल डिस्टरवेंसेज ड्युरिंग द ब्रिटिश रूल इन इंडिया, पृ0 99
4. दिवाकर, आर0आर0, बिहार थ्रू द एजेज, पष्0 604–05
5. बंगाल रेवेन्यू प्रोसिडिंग्स, 19 जून 1826, नं0 38, एस0 टी0 कथबर्ट का पत्र, एच0 मैकेंजी को।
6. बंगाल फोरेन (सिक्रेट) प्रोसिडिंग्स, 6 अगस्त, 1832, नं0 8
7. कलकत्ता रिव्यू, जि0 XLIX नं0 XCVII लेख 5, पृ0 119–20
8. वीरोत्तम, बालामुकुन्द : छोटानागपुर, इतिहास एवं संस्कृति, पृ0 213
9. झा, जे0 सी0, कोल इन्सरेक्शन, पृ0 16

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 319-321

df"ktU; m|ksxksa ds mRiknksa dk fo'ys"k.k uks[kk iz[k.M ¼jksgrkl ftyk½ ds lUnHkZ esa

latho dqekj*

ifjp;% *कृषि जन्य उद्योग से उत्पादित जो वस्तुएँ है वह हर व्यक्ति के उपयोग के लिए अतिआवश्यक वस्तु है। इसलिए भले ही इस उद्योग में उत्पादित वस्तुओं के उत्पादन में गुणात्मक एवं मात्रात्मक अन्तर आया हो लेकिन वस्तुओं की उपयोग और गुण में कोई विशेष अन्तर नहीं पाया जाता है। अब वर्तमान अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य कृषिजन्य उद्योगों के उत्पादों का विश्लेषण के बारे में विशेष उल्लेख किया जायेगा।*

नोखा मूलतः कृषि प्रधन प्रखण्ड का प्रतिनिधित्व करता है। कृषि उत्पादन में विविधता एवं वांछित गुणवता के अनुरूप कृषि पर आधरित विविध वर्ग के उद्योगों की उत्पति एवं प्रगति यहाँ की स्वाभाविक परम्परा रही है। इस प्रकार प्रखण्ड की औद्योगिक अर्थव्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि कृषि उत्पादन पर ही आधरित उद्योगों के विकास से समर्पित रही है। इस प्रकार कृषि द्वारा उत्पन्न वस्तुएँ धन, गेहूँ, तेलहन, दलहन, गन्ने आदि पर आधरित उद्योग का विकास एवं कार्य प्राचीन समय से चली आ रही है।

नोखा प्रखण्ड में कृषि पर आधरित उद्योग मुख्यतः चावल मिल उद्योग, गेहूँ पिसाई उद्योग, माशाला पिसाई उद्योग, सतू–बेसन पिसाई उद्योग, खाद्य तेल उद्योग, मिठाई बनाने का उद्योग, कुक्कुट पालन उद्योग, पशु आहार निर्माण उद्योग, मुर्गीदाना निर्माण उद्योग, गुड़ निर्माण उद्योग, बेकरी कन्पफेन्कशनरी उद्योग, चिउड़ा उद्योग तथा गन्ने से रस निकालना आदि प्रमुख उद्योग है। इस क्षेत्रा में कृषि आधारित उद्योगों के अलावा कोई भी बड़ी–बड़ी औद्योगिक ईकाईयाँ स्थापित नहीं है। जो भी इस क्षेत्रा में उद्योग लगे है वह प्राचीन काल से न्यूनाधिक तकनीकी परिवर्तन होते हुए चली आ रही है।

pkoy m|ksx % चावल उद्योग नोखा प्रखण्ड की सबसे महत्वपूर्ण उद्योग है। अध्ययन में पाया गया कि चावल उद्योग ही इस क्षेत्र की धुरी है। इस उद्योग में सबसे अधिक पूँजी निवेश, उत्पादन एवं श्रमिक लगे है। क्योंकि प्रखण्ड एक समतल उपजाउफ मैदान है, जहाँ सिंचाई एवं तकनीकी विकास के कारण धन की खेती होती है। कुल कृषि भूमि के लगभग 85 प्रतिशत भाग पर की जाती है। जिससे इस क्षेत्रा में कृषि आधरित उद्योग बरबस विकास करता गया एवं अध्ययन क्षेत्रा में दूसरी बड़ी–बड़ी उद्योगों की अभाव से चावल उद्योग एक महत्वपूर्ण उद्योग के रूप में सामने आया है।

नोखा प्रखण्ड में 1963 में ही 7 बड़ी राईस मिल खुल चुकी थी जिसका वर्णन पिछले अध्ययन में किया जा चुका है। इसके बाद अलग–अलग केन्द्रों पर जखीनी, बरॉव, नासरीगंज मोड, पेनार, सरीयाँव टोला, डुमरा मिल, भलुआही, नोखा आदि केन्द्रों पर बड़ी चावल राईस मिलों की इकाइयाँ स्थापित की गई है। बड़ी राईस मिलों की संख्या नोखा प्रखण्ड में 38 है। इन मिलों का वितरण एवं केन्द्र बाजार सड़क से जुड़ा हुआ है।

(क) उसना चावल वाला बड़ी राईस मिल जिनकी उत्पादन क्षमता प्रति ईकाई 30 से 40 टन, स्वचालित एवं स्वशक्ति उत्पादन, पूँजी निवेश 400 से 500 लाख प्रति इकाई।

(ख) उसना चावल मिनी राईस मिल जिनकी उत्पादन क्षमता प्रति ईकाई 5 से 10 टन, स्वाचलि एवं अर्द्धस्वालित, पूँजी निवेश 10 से 50 लाख प्रति इकाई।

---

*शोधार्थी, स्नातकोत्तर भूगोल विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

(ग) अरवा चावल मिनी राईस मिल जिनकी उत्पादन क्षमता 10 से 30 टन प्रति इकाई, स्वचालित एवं (स्वचालित, पूँजी निवेश से 100 लाख प्रति ईकाई।

jkbl feyk dk forj.k

Ø-l-	iapk;r	dy feyk dh l[;k	dy Jfedk dh l[;k
1	धर्मपुर	19	255
2	सोतवा	17	235
3.	नोनसारी	11	175
4.	घोसिया	10	210
5.	गढ़नोखा	23	1152
6.	हथनी	14	325
7.	मौडीहा	12	300
8.	छतौना	15	285
9.	श्रीखिण्डा	17	185
10.	सिसिरता	13	180
11.	उत्तरी बराव	20	900
12.	दक्षिणी बराव	18	810
13.	चनकी	13	215
14.	कुरी	09	105
15.	कदवा	12	295
	dy	223	5627

lk=& शोधार्थी द्वारा संकलित।

इस तरह से हम देख चुके हैं कि अरवा मिलों की संख्या बढ़ रही है। बहुत से ऐसी भी मिले पाई गई जिसमें बाजार के हिसाब से उसना और अरवा दोनों चावल तैयार किये जाते हैं। तालिका 4.3 से स्पष्ट है कि चावल मिलों कि सबसे अधिक संख्या गढ़ नोखा में है। उसके बाद उत्तरी बराव, दक्षिणी बराव, धर्मपुर आदि का नम्बर आता है। सबसे कम चावल मिल कुरी में है। श्रमिक के दृष्टि से भी गढ़ नोखा का स्थान पहला आता है जिसमें 1152 श्रमिक काम करते हैं तथा सबसे कम कुरी पंचायत में चावल मिल में मजदूर कार्यरत हैं।

पूँजी निवेश एवं इसकी महत्ता, वितरण तथा उत्पादन से यह तथ्य आयी की चावल उद्योग एक व्यवसायिक उद्योग हो चुका है। इस चावल उद्योग में जितनी पूँजी निवेश हो चुका है, अन्य सभी कृषि आधरित उद्योगों को मिलाकर भी चावल उद्योग में पूँजी निवेश से भी कम हुआ है। इसमें 7600 करोड़ रुपया का निवेश हुआ है। इतनी बड़ी पूँजी लागत दर्शाता है कि चावल उद्योग इस क्षेत्र का प्रमुख व्यवसायिक उद्योग के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है।

चावल उद्योग में अप्रत्यक्ष रूप से बहुत श्रमिक जुड़े है जैसे– धन को खेतों खलिहानों से उठाकर मिलों तक पहुँचाना, हार्वेस्टर मशीन द्वारा धन की कटाई में श्रमिक लगाना, ट्रैक्टर, ट्रक इत्यादि चलाने वालों की संख्या, चावल को बाजार में बेचने, शहरों में दलाल द्वारा व्यवसायिक केन्द्र खोलना, धन के भूसी को खरीद बिक्री में लगे श्रमिक, चावल के पॉलिस करने के क्रम में निकले ब्राण्ड को सासाराम निकट स्थित पहलेजा, पटना निकट बिहटा या दूसरे क्षेत्रों में भेजने या उससे संबंध्ति कर्मचारी, श्रमिक इत्यादि क्रिया–कलापों अप्रमाणित संख्या में श्रमिक लगे है। चावल का व्यवसायिक उत्पादन तीन लाख टन से ऊपर है। लेकिन जो गाँवों में घरेलू खपत के लिए या एक किसान द्वारा कम–से–कम मात्राा में बेची गई चावल, इसका प्रमाणिक आँकड़ा नहीं है। गाँवों में हालर द्वारा धन की कुटाई होती है। उसकी उत्पादन की कोई ठोस आँकड़ा नहीं होते है। लेकिन ऐसी घरेलू खपत एवं उत्पादन एक बड़ी मायने रखती है।

lUnHkZ %

1. Mandal, R.B. "Manufacturing Regions of North Bihar", The National Geography Journal of India, Vol. XVII, Part - I, March 1971, P- 50.
2. के प्रमीला एवं शर्मा श्री कमल (1997) : ''औद्योगिक भूगोल'', मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
3. लोढ़ा राजकमल (1990) : ''औद्योगिक भूगोल, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
4. Sharma, T.R. (1954) : Location of Industries in India, Hind Kitab Limited, Bombay.
5. Ahmad, E. (1965) Bihar A Physicals Economic & Regional Geography Ranchi University, Ranchi.
6. Roy Choudhary, P.C. (1966) : District Gazeteer of Shahabad B.J.P., Patna.
7. पण्डित बाढ़ू एवं कु. गुप्ता अनिल ;2009द्ध : बिहार का भौगोलिक अध्ययन, साहित्य।

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 322-323

Hkkst i jh ftyk e f’kf{kr cjkst xkj efgykvk dh fLFkfr dk fo’y"k.k

Lug dhfr*

ifjp; % किसी भी समाज व राष्ट्र की स्थिति को वहाँ की नारियों की सामाजिक स्थिति को देखकर आंका जा सकता है। प्राचीन काल में भारतीय समाज गौरवशाली था। उसके निर्माण का श्रेय प्राचीन काल की नारियों को दिया जा सकता है। वैदिक ग्रंथों से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में नारियों को शिक्षा, धर्म, विवाह आदि विभिन्न क्षेत्रों में स्वतंत्रता प्राप्त थी व पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। वे स्वतंत्रता पूर्वक पुरुषों के साथ विद्वानों की गोष्ठियों में और दार्शनिक वाद–विवादों में भाग लेती थी। उन्हें हर क्षेत्र में पुरुषों के समान अवसर उपलब्ध थे। मौर्यकाल पर लिखी गई पुस्तकों के अध्ययन से भी ज्ञात होता है कि मौर्यकाल में भी महिलाओं को प्राचीन काल की भांति गौरवशाली व सम्माननीय स्थान प्राप्त था। उन्हें भी शिक्षा प्राप्त करने, यज्ञ करने, ज्ञान प्राप्त करने के समान अवसर प्राप्त थे। वे प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के समान भाग लेती थी। उस समय की अर्थव्यवस्था बहुत सुदृढ़ थी और अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने में महिलाओं की विशेष भूमिका थी। गृहकार्य से लेकर कृषि, पशुपालन, प्रशासन, यज्ञ कर्म से लेकर आध्यात्म साधना तक के कोई भी क्षेत्रा महिलाओं के विशिष्ट व्यक्तित्व, प्रतिभा एवं कौशल की छाप से अछूते नहीं थे। स्त्रियों की सामाजिक एवं आर्थिक दोनों ही स्थितियाँ मजबूत थीं।[1]

v/;;u {k= %& भोजपुर जिला बिहार राज्य के पश्चिमी भाग में स्थित है। 1972 में तत्कालीन शाहाबाद जिला दो भागों में बँटा भोजपुर और रोहतास। पुनः 1992 में भोजपुर से विभक्त होकर बक्सर जिला बना। वर्तमान भोजपुर जिला का अक्षांशीय विस्तार 25°10’ से 25°4’ उत्तर तक तथा देशान्तरीय विस्तार 83 45' से 84 45' पूरब तक विस्तृत है जिसका समुन्द्रतल से औसत ऊचाई 192.989 फीट है जिले के उतर दिषा में गंगा नदी तथा पूर्व दिशा में सोन नदी प्राकृतिक सीमा बनाती है। जिले के उत्तर में सारन (छपरा) और उत्तर प्रदेश का बलिया जिला का पूर्वी हिस्सा तथा पश्चिम में बक्सर पूर्व में पटना, जहानाबाद एवं अरवल जिला है तथा दक्षिण में रोहतास जिला स्थित है।

भोजपुर जिला का कुल क्षेत्रफल 2395 वर्ग कि0मी0 है तथा कुल जनसंख्या 2011 के अनुसार 2728407 है। जिसमें अनुसूचित जाति की कुल जनसंख्या 425402 है। इसमें पुरुष की संख्या 222716 तथा स्त्री की संख्या 202686। जो कुल जनसंख्या का 15.6 प्रतिशत है।

efgykvk dh lkekftd fLFkfr %&

i=h d :i e efgykvk dh lkekftd fLFkfr %& वैदिक काल में पुत्री के जन्म पर दुःखी होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है किन्तु सामाजिक वातावरण में पुत्रा जन्म की कामना करना स्वभाविक था। अयोग्य पुत्र के स्थान पर योग्य कन्या का जन्म माता–पिता अधिक श्रेष्ठ मानते थे।[2] ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि ‘‘पुत्र के जन्म से पिता को जो आनन्द मिलता है वही आनन्द पुत्री के जन्म से माता को बल्कि उससे भी कहीं अधिक।’’[3]

वेदों में एक पंक्ति है– वह पुरुष धन्य है जिसकी कई पुत्रियाँ हैं।[4] पिता पुत्रा के समान ही पुत्री के सुख व कल्याण की कामना भी करता था। शुभ अवसरों पर पुत्रियों की उपस्थिति अनिवार्य होती थी। भारत में वैदिक काल से लेकर गुप्त काल तक परिवारों में कन्या का आदर किया जाता था, कन्याएँ परिवार का गौरव भी मानी जाती थीं।

*शोधार्थी, स्नातकोत्तर, भूगोल विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

iRuh d: :i esa efgykvksa dh vkfFkZd fLFkfr % वैदिक काल में पत्नी के रूप में नारी को कुछ सीमा तक साम्पत्तिक अधिकार प्राप्त थे। आपस्तम्ब ने कहा कि पति की अनुपस्थिति में पत्नी को गृहस्थ धर्म से सम्ब(व्ययों को करने का अधिकार है।

पत्नी को ''पारिणाह्य'' अर्थात् घर की वस्तुओं की स्वामिनी स्वीकार किया गया है। शतपथ ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि पत्नी पति के दाय की उत्तराधिकारिणी होती थी। जब याज्ञिक कर्मकाण्ड में पवित्राता का विचार बढ़ जाने से स्त्रियों की धर्मिक स्थिति को जो आघात पहुंचा उससे वैदिक युग के अन्त में हिन्दू नारी के साम्पत्तिक अधिकारों का भी ह्रास हुआ। यज्ञाधिकार के साथ–साथ दायाधिकार से भी स्त्रियों को पूर्णतया वंचित किया जाने लगा। तैतिरीय संहिता में उल्लेख है कि यज्ञ में नारियों के द्वारा दिया गया सोमनिर्वीय ;निरिन्द्रयद्ध हो जाता है अतः नारियों को निरिन्द्रय तथा दाय को ग्रहण न करने वाली अर्थात् अदायद माना गया है। इस कथन के आधर पर आगामी शास्त्राकारों ने स्त्रियों को दायद से पूर्णतः वंचित माना और उनके सम्पत्ति के अधिकार समाप्त कर दिये।

इस दृष्टिकोण से भोजपुर की मध्यम वर्गीय महिलाओं का अध्ययन इस बात की ओर ध्यान केन्द्रित करता है कि आज भी मध्यम वर्गीय महिलाओं में आत्म–विश्वास का अभाव है। पुरुष–प्रधन समाज द्वारा शोषित समाज में इन महिलाओं का जीवन अनेक कुंठाओं, प्रताड़नाओं से ग्रसित है। यह बात अलग है कि शिक्षा के प्रचार–प्रसार से इस वर्ग की महिलाएँ अछूती नहीं रहीं और अपना योगदान पुरुषों के बराबर देने में सक्षम हो रही हैं। परन्तु शिक्षित महिलाओं की संख्या अभी भी कम है। ज्यों–ज्यों इसमें तेजी आएगी समाज में इनका स्तर अपने आप उँचा होता चला जाएगा। मध्यम–वर्गीय परिवारों की ओर भी अनेक दुर्बलताएँ हैं जिनके कारण इनका उत्थान इस गति से नहीं हो पाया जितना कि होना चाहिए था। इनमें बौद्धिक क्षमता का अभाव नहीं पाया जाता बल्कि ये अधिक दूरदर्शी भी होती हैं। पर सामाजिक बेड़ियाँ अब भी इन्हें जकड़े हुए हैं। उच्च–मध्यम एवं मध्यम वर्ग की महिलाएँ बहुत हद तक स्वतंत्रता है, क्योंकि इनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति संतुलित है परन्तु निम्न–मध्यम वर्ग आज भी घर की चहारदिवारी में कैद है और शोषण का शिकार है। अशिक्षित महिलाएँ सबसे अध्कि इसी वर्ग की हैं। अशिक्षा इनकी समस्याओं का एकमात्रा कारण है। अशिक्षा एक प्रबल कारण हैं, इनकी आर्थिक विपन्नता का। अशिक्षित महिलाएँ मजदूर, नौकरानी इत्यादि कार्यों में संलग्न हैं जहाँ इनका शोषण निक्षरता के कारण ही होता है। पढ़ी–लिखी महिलाएँ आर्थिक रूप से सम्पन्न होने के साथ ही सामाजिक रूढ़ियों की विरोधी होती हैं। अपने पैरों पर खड़े होने के कारण इनका आर्थिक आधर बलवान होता है। निम्न वर्ग की महिलाओं का उच्च–मध्यम तथा मध्य–मध्यम वर्ग की महिलाओं की अपेक्षा अध्कि सामाजिक, आर्थिक ओर राजनीतिक शोषण होता है। उच्च शिक्षित महिलाओं का कार्यालयों में भी प्रभाव रहता है एवं सहकर्मियों से भी उनके सम्बन्ध् सामान्य रहते हैं। अतएव इस शोध–प्रबन्ध में पाया गया कि अशिक्षा के समाप्त होने पर ही मध्यम वर्गीय महिलाओं के विकास की बात सोची जा सकती है। महिलाओं की समाज में अहम् भूमिका है पिफर भी देखा जाता है कि आज भी उन्हें वो स्थान प्राप्त नहीं जिसकी वो हकदार हैं। समाज के हर विकासशील क्षेत्रों में इनकी आवश्यकता है पर इनकी भागीदारी का प्रतिशत आज भी बहुत कम है। पर अब महिलाएँ इन सब समस्याओं से जूझने की कोशिश कर रही हैं और वो दिन दूर नहीं जब ये समाज पर छा जाएँगी।

lUnHkZ %

1. डॉ. शशि अवस्थी, ''प्राचीन भारतीय समाज'', पृष्ठ 336
2. वृहदारण्यक उपनिषद् 4/4–18 अथ न अच्छे दुहिता में पंडिता जायेत। तिलोंदनौ पाययित्वा अश्नीयात मिती।। डॉ. उर्मिला प्रकाश मिश्र, ''प्राचीन भारत में नारी'' पृष्ठ 1
3. वही, 6.75 डॉ. लता सिंहल, ''भारतीय संस्कृति में नारी'', पृष्ठ
4. आलोक कुमार पाण्डेय, ''प्राचीन भारत'', पृष्ठ 5–10
5. काठक ग्रहसूत्र 25/23, डॉ. उर्मिला प्रकाश मिश्र, ''प्राचीन भारत में नारी'' पृष्ठ 2
6. ओमप्रकाश, ''प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास'', पृ. 220
7. डॉ. ए.एस. अल्तेकर, ''पोजीशन ऑपफ वुमेन इन एनशियेंट इंडिया'', पृष्ठ 11
8. डॉ. अल्तेकर, ''पोजीशन ऑपफ वुमेन इन एनशियेंट इंडिया'', पृष्ठ 14
9. डॉ. श्रीमती शशि अवस्थी, ''प्राचीन भारतीय समाज'', पृष्ठ 337

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 324-327

x|Irdkyhu f'k{kk] lkfgR; ,oe foKku

Mk0 'kkgckt okfjl [kk*

lkjka'k% *शिक्षा साहित्य और विज्ञान के क्षेत्र मे गुप्तकाल में अपूर्व वृद्धि हुई। वेदों की शिक्षा के साथ ही साथ उस युग मे पुराण, स्मृति, तर्क, दर्शन, न्याय, व्याकरण आदि की शिक्षा दी जाती थी। नालन्दा विश्वद्यिालय की स्थापना इस युग में हुई। नालन्दा के साथ ही बनारस, बल्लभी, और नासिक भी शिक्षा के गढ़ थे।*

गुप्त सम्राटों ने सस्कृत भाषा को विशेष प्रोत्साहन दिया। इस युग में हरीषेण, बीरसेन, कालिदास, भान गुप्त, भारवि, भट्टि जैसे महान कवि हुए। नाटककारो में कालिदास, शूद्रक और विशाखादत उल्लेखनीय है। डॉ0 अम्बेदकर पंचतंत्र, हितोपदेश आदि की रचना भी इसी युग में मानते हैं। चन्द्रगोभिन ने चन्द्र–व्याकरण अमरसिंह ने अमरकोष और दण्डी ने काव्यदर्श भी गुप्तकाल में लिखे। मनुस्मृति के आधार पर अनेक स्मृतियां लिखी गयी। महाभारत ग्रन्थ का सम्पादन इसी युग में हुआ।

श्रीमदभागवत, शिव मत्सय, वायु पुराण आदि इसी युग में फिर से लिखे गये। कामन्दक नीतिसार और सांख्यकारिका की रचना भी इसी युग मे हुई। बौद्ध–ग्रंथ प्रमाण समुच्य, न्याय प्रवेश विसुद्ध मग्ग सुमंगल विलासीनि आदि ग्रन्थ भी इसी युग मे रचित हुए। जैन विद्वान सिद्धसेन ने न्यायावतार नामक ग्रन्थ लिखा। साहित्यिक क्षेत्र में गुप्तकाल भारतीय इतिहास का पेरीक्लीज युग कहा जाता है।

गुप्तकाल में विज्ञान मे सभी क्षेत्रों में उन्नति हुई। प्रसिद्ध ज्योतिष आर्यभट्ट इसी काल मे हुआ। उसने आर्यभटिट्म की रचना की। वाराहमिहिर के वृहत–संहिता आदि ग्रन्थ भी इसी युग की देन है। ज्योतिषियों में ब्रम्हगुप्त भी उल्लेखनीय है। गणित के क्षेत्र में श्री आर्यभट्टीयम का विशेष महत्व है। आयुर्वेद के क्षेत्र में चरक तथा सुश्रुत नाम चिकित्सकों ने महान योगदान दिया। धन्वन्तरी भी गुप्तकाल में हुए। नागार्जुन, बाणभट्ट आदि विद्वानों ने भी इस क्षेत्र मे योगदान दिया।

शिक्षा, साहित्य और विज्ञान के क्षेत्र में गुप्तकाल का अपूर्व देन है। कालिदास और बाराहमिहिर आदि विद्वानों का यह युग साहित्यिक और वैज्ञानिक क्षेत्र में किसी काल से पीछे नहीं कहा जा सकता। शैक्षणिक, साहित्यिक एवम वैज्ञानीक क्षेत्र में जो उन्नति गुप्तकाल मे हुई उसकी चर्चा यहां सक्षेप में की जा रही है।

f'k{kk& गुप्ताकालीन शिक्षा प्रणाली काफी संतोषप्रद थी। इस समय शिक्षा कार्य गुरुकुलों द्वारा संपादित होती था। वेदों की शिक्षा के साथ ही पुराण, स्मृति, तर्क, दर्शन, न्याय, व्याकरण आदि की भी शिक्षा दी जाती थी। वादविवाद द्वारा शिक्षा प्रदान करने की प्रथा भी प्रचलित थी। आश्रम मे दो प्रकार के विद्यार्थी होते थे प्रथम धन देकर शिक्षा प्राप्त करने वाले और दूसरे गुरु के साथ रह कर उनकी सेवा करके शिक्षा प्राप्त करने वाले। धनवान व्यक्ति शिक्षा आश्रमों को आर्थिक सहायता देते थे। शिक्षा का द्वार केवल शूद्र को छोड़ कर सबके लिये खुला था। इस समय तक्षशिला विश्वविद्यालय का प्रभाव कम हो गया था। नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना इसी समय शुक्रदित्य नामक नरेश ने की थी। बुधगुप्त आदि ने उसके विकास में प्रोत्साहन दिया। विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के लिये बड़ी कठिन परीक्षा देनी पडती थी। इसमें वाद–विवाद तथा विमर्श के आधार पर शिक्षा दी जाती थी। इसमें एक बडा पुस्तकालय भी था। विश्वविद्यालय में लब्ध–प्रतिष्ठि विद्वान ही अध्यापक हो सकते थे। नालन्दा के अतिरिक्त बनारस, बलभी, नासिक आदि में भी विश्वविद्यालय थे।

*शोधार्थी, इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

lkfgR;%& गुप्त सम्राट ने संस्कृत भाषा को पूर्ण आश्रय दिया और उसको राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान किया। श्री के0 एम पणिकर ने लिखा है, ''गुप्तकाल मे उच्च कोटि के संस्कृत साहित्य का सृजन हुआ। इसे संस्कृत साहित्य का श्रेष्ठ युग कहा जा सकता है। पाणिनि के पश्चात पांच सौ वर्ष तक संस्कृत का परिर्माजन और परिष्कार होता रहा और तब कही वह कालिदास के समय में अपनी लावण्यमयी साहित्य शिक्षा से अत्यन्त मनोरम बन गई। इस समय प्रमुख पुराणों और महाभारत के नवीन संस्करण तैयार किये गये जो निःसंदेह एक बडा काम था और अकेला वही काम गुप्त साम्राज्य को हिन्दू सभ्यता के निर्माण को ऊँचा स्थान प्रदान कर सकता है।

इस काल ने महाभारत को नवीन रुप प्रदान किया। गुप्त सम्राटों का संस्कृत भाषा के बारे में चित्रण करते हुए श्री लुनिया लिखते हैं– गुप्त सम्राट संस्कृत के इतने अधिक उत्साही प्रशंसक थे कि ऐस कहा जाता है कि उन्होंने रंगमहलों और अन्तःपुर मे भी संस्कृत का प्रयोग करने के आदेश दिये थे। उन्होने संस्कृत राज–भाषा घोषित कर दी और उनके सभी शिलालेखों और शासकीय अभिलेखों में निरन्तर संस्कृत का ही प्रयोग होने लगा।

मुद्राओं, उपाख्यानों में और धर्म शास्त्रों में संस्कृत ने प्राकृत का स्थान छिन लिया सारे देश के दार्शनिकों, कवियो और शासकों की भाषा होने से संस्कृत भारत की राष्ट्रभाषा बन कर आसीन हुई। इस सजग प्रगति से उसका योग और प्रभाव बढ़ चला और संस्कृत साहित्य के सर्वोत्कृष्ट की रचना इसी गुप्तकाल मे हुई।''

इस प्रकार कुषाण काल मे संस्कृत साहित्य का जो पौधा लगाया गया था वह गुप्त काल में वृक्ष के रुप में परिणत हुआ। साहित्य की विभिन्न विधाओं में हुई उन्नति की चर्चा यहा संक्षेप में की जा रही है।

dk0;%& काव्य–कला को सम्पन्न एवम समृद्ध बनाने का कार्य गुप्तकालीन कावियें द्वारा सम्पन्न हुआ। इस काल के कवियें को दो श्रेणियों मे बांटा जा सकता है। प्रथम वे जिनके विषय में अभिलेखों द्वारा ही कुछ जान सकते हैं। इस श्रेणी में हरिषेण, वीरसेन तथा वत्सभटि्ट प्रमुख हैं। हरिषेण का परिचय समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से मिलता है। वीरसेन का परिचय उदयगिरी के द्वितीय गुहालेख से मिलता है। इस लेख के आधार पर उन्हें व्याकरण, राजनिति तथा दर्शन का मर्मज्ञ माना गया है। वत्सभटि्ट मन्दसौर प्रशस्ति के रचयिता थे।

द्वितीय श्रेणी में वे कवि आते हैं जिनके पूरे–पूरे ग्रंथ प्राप्त हैं। इस प्रकार के कवियो में कालिदास, मातृगुप्त, भारवि और भटि्ट के नाम उल्लेखीय हैं। कालिदास, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नौरत्नों में से थे। इन्होंने रघुवंशम की रचना इसी काल में की थी। यह संस्कृत का सर्वश्रेष्ठ माहकाव्य है। इनकी दूसरी अनुपम कृति 'ऋतु संहार' है। इनकी ख्याति को बढाने वाला तीसरा काव्य ग्रन्थ मेघदूत है। यह एक गीति काव्य है जिसमें विरही यक्ष मेघ का दूत बनाकर अपनी प्रियतमा के पास अपना संदेश भेजता है। इन काव्य ग्रंथो में कवि ने भाषा, भाव और अलंकारों की जो प्रतिभा दिखाई है वह आर्श्चयजनक है। इस कवि के मस्तिष्क में भाषा का भण्डार तो था ही साथ ही एक एक शब्द को प्रयोग करने की चतुरता विद्यमान थी कि उसने जो शब्द जहाँ रख दिया है वहां से बदल देने पर सारे ग्रन्थ की सुंदरता चली जाती है। उपमाओं के प्रयोग के सम्मुख तो उपनाम भी फीके पड़ जाते हैं। कवि की इस महान प्रतिभा का दिग्दर्शन कराते हुए डॉ0 बी0 जे0 गोखले ने लिखा है।–

"As kalidasa lays down his pen after a brilliant display of his poetical and dramatic talent the best in Sanskrit literature is already accomplished. He creates such high forms of litrery compositon that later composiotion fall far short of them."

इस युग के दूसरे महान कवि भारवि ने किरातार्जुनीयम की रचना की। इसमें किरात तथा अर्जुन युद्ध का सुन्दर वर्णन है। भटि्ट ने भटि्ट काव्य की रचना की। प्रसिद्ध कवि मातृगुप्त काश्मीर के सम्राट थे।

ukVd%& इस काल मे संस्कृत के तीन महान नाटककार हुए–कालिदास, शूद्रक और विशाखदत्त। कालिदास ने तीन नाटक लिखे– मालविकाग्नि–मित्रम, विक्रमोर्वशीयम, अभिज्ञानशकुन्तलम्। इनमें अभिज्ञानशकुन्तलम् संस्कृत साहित्य का सबसे उत्कृष्ट नाटक माना जाता है। इसका नायक दुष्यंत तथा

नायिका शकुन्तला है। शूद्रक ने मृच्छकटिकम् की रचना की जिसके द्वारा गुप्तकालीन संस्कृति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। मुद्राराक्षस का लेखक विशाखादत भी इसी काल में हुआ है।

dFkk lkfgR;%– डा0 अम्बेदकर का कथन है कि पंचतन्त्र और हितोपदेश की रचना इसी काल में हुई। ये ग्रन्थ केवल भारत में ही नही वरन् संसार के अनेक भागों में बहुत प्रचलित हुए और 50 विभिन्न भाषाओं मे इनका अनुवाद किया गया है। वासवदत्ता के लेखक वसुबन्धु भी इसी युग में हुए।

0;kdj.k xzUFk%& इस युग में व्याकरण एवम कोष भी बने। चन्दगोमिन ने चन्द्र व्याकरण की रचना की। यह ग्रन्थ बड़ा प्रसिद्ध हुआ और तिब्बत में इसका सर्वाधिक प्रचार हुआ। तिब्बतीय भाषा मे इसका अनुवाद भी हुआ। अमर सिह ने अमरकोष की रचना की । दण्डी ने काव्यदर्श मे काव्य सम्बंधी नियमो का उल्लेख किया।

/kkfeZd rFkk nk'kZfud lkfgR;%& गुप्तकाल में धार्मिक तथा दार्शनिक साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ। श्री के0 एम0 पणिकर ने लिखा है– '' जिस अतुल्य महाभारत ग्रन्थ की आज भी हिन्दूग्रन्थ के जीवन पर अमिट छाप दिखती है उसका सम्पादन गुप्त काल में हुआ था। यही बात पुराणों पर लागू होती है। प्राचीनतम परम्पराओं का प्रतिनिधत्व करने वाले श्रीमद्भागवत, स्कन्द शिव, मत्स्य, वायु और ब्रम्हाण्ड पुराण, राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिये गुप्ताकल में फिर से लिखे गये।

मनुस्मृति के आधार पर अनेक स्मृतियों का सृजन इस युग में हुआ। याज्ञवल्क्य, नारद, कात्यायन आदि गुप्तकाल की महान विभूतियाँ थी। स्मृतियों के याज्ञवल्क्य स्मृति का विशेष महत्व है। इसी काल मे कामन्दक–नीति–सार नामक ग्रंथ का सृजन किया गया।

धार्मिक साहित्य के साथ ही दार्शनिक साहित्य लिखा गया। सभी धर्मों के दार्शनिकों ने अपने अपने विचार प्रकट किये। सांख्य दर्शन पर ईश्वर कृष्ण द्वारा रचित सांख्या–कारिका गुप्तकाल की ही देन है। वात्सयायन ने न्याय सूत्र पर टीका लिखी है। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान वसुबन्धु ने हीनयान और महायान दोनो ही सम्प्रदायों के ग्रन्थ का सृजन किया। बौद्ध आचार्य दिङ्नाग ने प्रमाण समुच्चय तथा न्याय प्रवेश का सृजन किया। बुद्ध घोष ने 'विसुद्धि मग्न' की रचना की 'सुमंगल विलासिनी' नामक ग्रंथ का सृजन भी बुद्ध घोष ने किया।

जैन धर्म के ग्रन्थों के दार्शनीकों में आचार्य सिद्धसेन गुप्त, भद्रबाहु के नाम उल्लेखनीय हैं। सिद्धसेन ने न्यायावतार नामक ग्रन्थ लिखा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साहित्य और दर्शन दोनों ही क्षेत्र मे बौद्ध धर्म की महान देन है। इस युग के साहित्य की तुलना यूनान के पेरिक्लीज युग, इग्लैंड के एलिजबेथन युग और चीन के तुंग काल से की गई है। श्री नाहर ने लिखा है– पेरिक्लीज के युग और एलिजबेथ के शासन काल की तरह गुप्त युग भी विशुद्ध साहित्य के क्षेत्र मे मौलिक सृजन का काल था। चीनी इतिहास के स्वर्णयुग में तुंगकाल की भांति गुप्त युग मे कविता का विकास अपनी परकाष्ठा पर पहुंच गया था।

विज्ञान के एक विद्वान का मत हैः– During the gupta era Indian science also made great advances. we know that the Indian astronomy was already far advanced when Greeks arrived and the Indian learned from the invaders a new system. But it was Indian astronomy which passed onto Europe in Arab translation in middle ages.

विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में हुई उन्नति की चर्चा यहा संक्षेप में की जा रही है–

T;kfr"k%& ज्योतिष के क्षेत्र में भी इस काल में काफी प्रगति हुई थी। आर्यभट्ट ने नवीन खोजें की थी। उसने यह सिद्ध कर दिया था कि पृथ्वी अपनी कीली पर घूमती है। उसने सूर्य–ग्रहण और चन्द्र–ग्रहण के सिद्धान्त भी निकाले थे। वैज्ञानिक में सर्वश्रेष्ठ स्थान आर्यभट्ट को ही प्राप्त है। वह बडी ही प्रखर बुद्धि वाला व्यक्ति था। 23 वर्ष की अवस्था मे ही उसने आर्यभट्टीयम की रचना की थी। उस समय यूनानी विद्वान मिश्र के संरक्षण मे जो नवीन ज्योतिष सम्बंधी खोजे कर रहे थे उनसे वह पहले ही अवगत था और उसने पूर्व तथा पश्चिम मे होने वाली खोजों से प्राप्त ज्ञान को पहले ही भारतवासियो को बता दिया था। उसके शिष्य भी उससे ज्ञान प्राप्त करके काफि ख्याति प्राप्त की थी।

दूसरा गणितज्ञ एवम ज्योतिष वाराहमिहिर था। वह धातु विज्ञान का पंडित था। उसका प्रसिद्ध ग्रन्थ वृहत्संहिता अमूल्य निधि है। इस पुस्तक में उसने ज्योतिष तथा वनस्पति विज्ञान की विद्वतापूर्ण

विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त उसने लघुजातक और पंचसिद्धान्तिक नाम ग्रन्थों की भी रचना की थी।

इस युग में एक अन्य ज्योतिष ब्रम्हगुप्त था। उसे ब्रह्म सिद्धान्त की रचना शक–सम्वत् 550 अर्थात 628 ई0 में की थी। ज्योतिष के क्षेत्र में ब्रम्हगुप्त की महान देन है।

xf.kr%& इस काल में गणित के क्षेत्र के काफी प्रगति हुई है। दशमलव प्रणाली का प्रचार इस समय हुआ। रोम और यूरोप को यह सिद्धान्त ग्यारहवीं सदी तक मालूम नहीं था। अरब वालों से यूरोप वालों ने इस सिद्धान्त को सीखा था और अरब वालों ने यह ज्ञान भारत से ही प्राप्त किया था।

जेम्म ऐडगरस्वे का मत है:– They taught the Arabs the fundamental of algebra and through the arabs. taught the worlds, what we know as Arabic numerical were known in india hundred of years before they were adopted by the arabs.

आर्यभट्ट का आर्यभट्टीयम् नामक ग्रन्थ अंकगणित, बीजगणित तथा ज्यामिति के अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है। ब्रम्हगुप्त इस युग का सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ था। इसके महत्व को प्रतिपादित करने हुए एक विद्वान ने लिखा है,– Bramaha gupta's works cover very briefly the ordinary arithmetical operation, square and cube roots, rule of interest, pregression and geometry including treatment fo rational right angles triangle and the element of the circle, elementary mensuration of solid shadow problems and simple equations of first and second degrees which are briefly treated with special attention in cycle quadrilaterals.

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्तकाल मे गणित के क्षेत्र मे भी पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी।

vk;qosZn%& इस काल में आयुर्वेद–शास्त्र की भी काफी प्रगति हुई थी। चरक तथा सुश्रुत इस काल के चिकित्सक थे। पशु चिकित्सा और विज्ञान में भी इस काल मे काफी प्रगती हुई। हस्त्थायुर्वेद नामक ग्रन्थ इसी काल में रचित हुआ। इस युग में वानस्पतिक औषधियां ही अधिक काम मे लाई जाती थी। चीड़–फाड़ विज्ञान भी उन्नत दशा में था। आयुर्वेद शास्त्र का महान आचार्य धनवन्तरि भी इसी युग में हुआ। उसका कोई ग्रन्थ तो उपलब्ध नहीं है परन्तु वह इतना चतुर था कि बहुम कम ही ऐसे रोग थे जिनकी चिकित्सा वह न कर सका हो। अष्टांग संग्रह, सुश्रुत संहिता, चरक संहिता नामक चिकित्सा–शास्त्र सम्बंधी ग्रंथों का सृजन भी इसी युग में हुआ।

कहा जाता है कि नागार्जुन नामक विद्वान ने रस चिकित्सा नामक प्रणाली का अविष्कार इसी युग में किया था। उसने धातुओं के द्वारा रोग निदान की प्रणाली भी चलाई। वाग्भट्ट नामक विद्वान ने अष्टांग हृदय नामक ग्रंथ की रचना की। तुर्किस्तान से नवनीतकम नामक चिकित्सा सम्बंधी पुस्तक की चर्चा की गई है। जिसमें विभिन्न रोगों के निदान के नुस्खे दिये हुए हैं। शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में भी इस काल में पर्याप्त उन्नति हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा साहित्य और विज्ञान के क्षेत्र मे गुप्तकाल की महान देन है।

lUnHkZ %

1. अग्रवाल, वी0 एस0 वाकाटक, गुप्त युग, पृ0 473
2. अग्रवाल बासुदेव वाकाटक, गुप्त युग, पृ0 467–468
3. त्रिपाठी, भारत का स्वर्णयु, पृ0 39–395
4. राय कृष्ण दास, भारत की चित्रकला, पृ0 10
5. वर्मा ए0 बी0, भारतीय चित्रकला का इतिहास, पृ0 44
6. राय कृष्णदास, पूर्वोक्त, पृ0 12–13
7. उपाध्याय, वासुदेव गुप्त, साम्राज्य का इतिहास भाग–2, पृ0 412

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 328-331

T;kfr"k'kkL= esa jksx fopkj % ,d v/;;u

Mk0 euh"k dqekj*

ज्योतिषशास्त्र की व्युत्पत्ति 'ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्' की गयी है, अर्थात् सूर्यादि ग्रह और काल का बोध करानेवाले शास्त्र को ज्योतिषशास्त्र कहा जाता है। भारतीय ज्योतिष की परिभाषा के स्कन्धत्रय–होरा, सिद्धान्त और संहिता अथवा स्कन्धपंच–होरा, सिद्धान्त, संहिता, प्रश्न और शकुन–ये अंग माने गये हैं। यदि हम विराट पंचस्कन्धात्मक परिभाषा का विश्लेषण किया जाय तो आज का मनोविज्ञान, जीवविज्ञान, पदार्थ विज्ञान, रसायन विज्ञान, चिकित्साशास्त्र इत्यादि भी इसके अन्तर्भूत हो जाते हैं।

विविध ज्योतिषीय ग्रन्थों के अनुशीलन से स्पष्ट है कि कालरूपी पुरुष,जो संम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं विभिन्न ग्रह, राशियां और नक्षत्र कालपुरुष के शरीर के ही विभिन्न भाग हैं। यह ऋग्वेद और वामन–पुराण में भलीभांति स्पष्ट किया गया है। वैदिक ज्योतिष में सभी पूर्वानुमान कालपुरुष और जातक के बीच संबंध द्वारा अध्ययन किये जाते हैं। कालपुरुष मानवीय भावनाओं एवं आवेगों, खुशी एव गम, स्वास्थ्य व रोग की सभी स्तर पर एक ऐसी सार्वभौमिक अभिव्यक्ति है जो जातक के स्वास्थ्य, कर्म एवं भाग्य से जुड़ी है।

ज्योतिषशास्त्र की मान्यता के अनुसार कालपुरुष के शरीर के विविध अंगों में मेष से लेकर मीन तक बारह राशियों की स्थापना की गयी है।

^^dkykRed p f'kjkses[kns'ko{kk
âRdqf{kHkkxdfVcfLrjgL;ns'kk%A
Å: p tkuq;qxya ijrLrq t³?k
Ikn};a fØ;e[kko;ok% Øes.kAA8AA** tkrd ikfjtkr]jkf'kxq.kk/;k;A

मेष राशि–सिर, वृष–मुख, मिथुन–भुजा, कर्क–हृदय, सिंह–पेट, कन्या–कमर, तुला–वस्ति, वृश्चिक–गुप्तांग, धनु–ऊरू, मकर–घुटनें, कुम्भ–जंघा तथा मीन राशि पैर का प्रतिनिधित्व करती है।

बारह राशियों से उत्पन्न होने वाले रोग इस प्रकार हैं –

मेष– नेत्ररोग, मुखरोग, सिरदर्द, मानसिक तनाव, अनिद्रा तथा सिर के बाल।
वृष– गला एवं श्वासनली रोग, आँख, नाक, होंठ, दांत, मुंह, जीभ एवं गले के रोग।
मिथुन– कंठ, गर्दन, कंधा, भुजा, कोहनी, छाती एवं स्तन, रक्तविकार, श्वास,फुफुस रोग।
कर्क – हृदय रोग, रक्त विकार, फेफड़ें, श्वासनली रोग।
सिंह– पेटरोग, आंते, जिगर, तिल्ली, गुर्दा, नाभि रोग तथा वायुविकार।
कन्या– आमाश्य विकार, अपच, जिगर, कमरदर्द तथा नितम्ब रोग।
तुला – मूत्राशय रोग, मधुमेह, प्रदर, बहुमूत्र एवं गर्भाश्य का उपरी भागसे संबंधित रोग।
वृश्चिक– गुप्त रोग, भगन्दर, संसर्गजन्य रोग, एचआइवी, एसटीडी इत्यादि रोग।
धनु – यकृत रोग, मज्जारोग, रक्तदोष, अस्तिभंग एवं जंघा से संबंधित रोग।
मकर– वात्रोग, चर्मरोग,शीतरोग, रक्तचाप एवं घुटनें से संबंधित रोग।
कुम्भ– मानसिक रोग, ऐंठन, गर्मी, जलोदर, पींडली एवं नस से संबंधित रोग।
मीन– एलर्जी, गठिया, चर्मरोग एवं रक्त विकार तथा टखना, पैर एवं पैर की अंगुलियों से संबंधि रोग।

*संस्कृत विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

^^xgk dk vkRekfn dkjdRo%
dkyL;kRek HkkLdjf'pÙkfeUn%
lÙo Hkke% L;knop'pUnlu%A
nokpk;% lk[;foKkulkj%
dke% 'kØk n%[keokdllu%AA1AA** tk-ik- xg:ixl.kk/;k;%

कालपुरुष की आत्मा का प्रतिनिधित्व सूर्य करता है। चन्द्रमा मन है। मंगल सत्त्व (धैर्य व मानसिक संन्तुलन) है। बुध वाणी का कारक है। गुरु सब सुखों का कारक है। शुक्र काम सुख (भौतिक सुख) का प्रतीक है तथा शनि सब दुःखों व विपत्तियों का प्रतीक है। इसी संदर्भ में महर्षि पराशर ने बृहत्पाराशरहोराशास्त्र के ग्रहस्वरूपाध्यायः में –

^^lokRek p fnokukFkk eu% dqenckU/ko%A
lÙo dtk c/k% ikDrk c/kk ok.khinkd%AA13AA
noT;k Kkul[knk Hkxoh;iink;d%A
_f"kfHk% idru% ikDr'Nk;klu'p n%[kn%AA14AA*'

cgRikjk'kjgkjk'kkL= xgLo:ik/;k;%

ग्रहों के प्रकृति, धातु, रस, अंग, अव्यय, स्थान, बल एवं अन्यान्य विशेषताओं के आधार पर विनिश्चय किया गया है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार नौग्रहों की शुभाशुभ स्थिति से मानव जीवन के क्रिया–कलाप संचालित होते हैं। जीवन का संपूर्ण सुख–दुख, हानि–लाभ, जय–पराजय आदि नौ ग्रहों पर आधारित है।

uoxgk l lcf/kr jkx & सूर्य ग्रह जनित रोग– इस ग्रह के दूषित प्रभाव से आंखों से संबंधित रोग यथा आंखों की रोशनी कम होना, अंधापन, नेत्रपीड़ा एवं सिर दर्द, बुखार, क्षय, अतिसार, पित्तविकार, टाईफायिड, अस्थिभंग, जलना, कोढ़, भूख न लगना, चिड़चिड़ापन एवं पीलिया रोग।

pUn xg tfur jkx& इस ग्रह के प्रभाव से नींद नहीं आना व नींद से संबंधित रोग, हृदय रोग, फेफडों, खून की कमी, खून से संबंधित रोग, स्त्री प्रजनन रोग, आहार नली, शरीर के द्रव, मोतियाबिंद, कैंसर, सर्दी–खांसी, साइनस, जल और सींग वाले पशुओं से भय।

exy xg tfur jkx& इसके दूषित प्रभाव से सूखारोग, खून में खराबी, पथरी और गुर्दारोग, टायफायड, मांस–पेशियों व पार्किन्सन रोग, मूत्रपिण्ड में तकलीफ, एड्रेनल, यौन व थाइरायड ग्रंथि रोग, बुखार, पित्तदोष, दन्तपीड़ा, राज्याधिकारियों से पीड़ा, भाई से क्लेश, माता निकलना आदि रोग।

c/k xg tfur jkx& इस ग्रह के दूषित प्रभाव से मस्तिष्क, नसें, छाती, फेफड़ें, मिर्गी, नपुंसकता, नाक–कान–मुंह, माता निकलना, बेहोशी, हिस्टीरिया, तुतलाना, ओष्ठ–तालु–जीभ और स्वर यंत्र की खराबी, संग्रहणी, पेचिश आदि रोग।

cgLifr xg tfur jkx& इस ग्रह के दूषित प्रभाव से आंत के रोग, मुंह, अपच, मोटापा, याददाश्त की कमी, ट्यूमर, दिमाग सुन्न हो जाना, किसी अंग में सूजन, खून का थक्का जमना, पीलिया इत्यादि।

'kØ xg tfur jkx& इस ग्रह के दुष्प्रभाव से चेहरा, गला, दृष्टि दोष, शरीर की चमक, यौन रोग, हर्निया, नपुंसकता, पथरी, पेशाब में जलन, शरीर पीला पड़ना, अत्याधिक कामपीड़ा, दुष्ट स्त्रियों की संगति, स्तन रोग, श्वास रोग, श्वेत कुष्ठ रोग, दमे से सांस का फूलना आदि रोग।

'kfu xg tfur jkx& शनि ग्रह के दुष्प्रभाव से मांसपेसियां, हड्डी, जोड़, घूटने, नसें, दांत से संबंधित रोग होते हैं। शनि पीड़ा दायक होने पर पिण्डलियां दुखना, जोड़ो व घूटनों में दर्द, हाई–लो ब्लडप्रेशर, दांत के रोग, लकवा, नस एवं नाड़ियों के रोग, बहरापन आदि रोग।

jkg xg tfur jkx& इसके दुष्प्रभाव से तिल्ली, कोढ़, हकलाना, हिचकी, हाईड्रोसिल, भूतबाधा, भूख–प्यास से संबंधित रोग। पेट में कीड़े एवं पेट से संबंधित रोग होते है।

dr xg tfur jkx& इस ग्रह के दुष्प्रभाव से पेट, पाचन प्रणाली, आतें, पीनियल ग्रन्थि, मस्तिष्क, कान, वाक् दोष, वायरल रोग आदि रोग होते हैं।

ज्योतिषशास्त्र में सात ग्रह और दो छाया ग्रहों को मिलाकर नौ ग्रह होते हैं। नवों ग्रह 27 नक्षत्रों और 12 राशियों पर ये ग्रह सतत् भ्रमण करते रहते हैं। ग्रहों की अनुकूल परिस्थिति होने पर सुख एवं प्रतिकुल परिस्थिति होने पर मनुष्य दुखानुभूति प्राप्त करता है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार नक्षत्रों तथा राशियों के स्वामी ग्रह हैं। अश्विनी, भरणी आदि 27 नक्षत्र हैं और मेष, वृष आदि 12 राशियां हैं। सवा दो नक्षत्र की एक राशि होती है।

u{k= tfur jksx& ज्योतिषशास्त्र में 27 नक्षत्र की चर्चा की गयी है। 27 नक्षत्रों से जनित होने वाले रोग निम्न हैं –

1. अश्विनी नक्षत्र जनित रोग– सिर, मस्तिष्क, घुटने के रोग, चोट–चपेट, पक्षाघात, कोमा, सिर–दर्द, नींद न आना, थ्रोम्बोसिस आदि।
2. भरिणी नक्षत्र जनित रोग– माथा, चेहरे, आंख पर चोट, उच्च ज्वर, यौन रोग एवं नशा रोग आदि।
3. कृत्तिका नक्षत्र जनित रोग– उच्च ज्वर, मेनिनजायटिस, मलेरिया, अपच, अग्नि, विस्फोटक एवं घाव आदि।
4. रोहिणी नक्षत्र जनित रोग– ठण्ड, खांसी, स्तन, गला, टांगों व मासिक–धर्म में रोग, बेहोशी, मिर्गी एवं सूजन रोग।
5. मृगशिरा नक्षत्र जनित रोग– नेत्र, त्वचा व यौन रोग, चोट, रक्त बहना, संक्रमण, एलर्जी, अशुद्ध रक्त, उच्च रक्तचाप,कन्धा व बांहों में दर्द, घाव, फ्रैक्चर, पक्षाघात एवं डिपथीरिया रोग।
6. आद्रा नक्षत्र जनित रोग– गला, कन्धा, बाहों में दर्द, वाये रोग, नींद न आना, निमोनिया, कोढ़ एवं अस्थमा आदि रोग।
7. पुनर्वसु नक्षत्र जनित रोग– रक्त–संक्रमण, जहरीला भोजन, निमोनिया, टोनसिल, पीलिया, ब्रोंकायटिस, सूजन व दर्द, टी.बी, ट्यूमर, मधुमेह, पायोरिया एवं अपच आदि रोग।
8. पुष्य नक्षत्र जनित रोग– कैंसर, पीलिया, पेट में घाव, उबकाई, दर्द, स्कवी, पथरी, बुखार, टी.बी आदि रोग।
9. अश्लेषा नक्षत्र जनित रोग– वायु, श्वांस, स्नायु, पैर में रोग, घुटने, टांग, पेट दर्द, नशा, जहर आदि रोग।
10. मघा नक्षत्र जनित रोग– दिल, पेट–दर्द, दौरा, बेहोशी, हैजा, पक्षाघात, मेनिन्जायटिस, सिर–दर्द आदि रोग।
11. पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र जनित रोग– सिर, दिल, रीढ़, कान, प्रजनन अंग, टांग, टखने को रोग, कमर, शरीर में दर्द, थ्रोम्बोसिस, तेज बुखार, ट्यूमर, आंतों, गले एवं सूजन, कान संबंधी एवं सिर के रोग आदि।
12. उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र जनित रोग– पित्त, ज्वर, अस्थिभंग, सर्वांगपीड़ा, सूजन, हाथ व गले के रोग, ट्यूमर आदि रोग।
13. हस्त नक्षत्र जनित रोग– मस्तिष्क, स्नायु, पेट, आंतों, हाथ के रोग, पेट के कीड़े, दस्त एवं हिस्टीरिया आदि रोग।
14. चित्रा नक्षत्र जनित रोग– नासूर, तीव्र दर्द, घाव, पेट के कीड़े एवं लघु–जीव, सिर दर्द, मूत्राशय रोग, रक्त–स्राव आदि रोग।
15. स्वाति नक्षत्र जनित रोग– मूत्र, नासूर, गुर्दे, त्वचा एवं गंभीर दंत रोग आदि।
16. विशाखा नक्षत्र जनित रोग – कैंसर, मोटापा, गर्भाशय व मस्तिष्क के रोग, गुर्दे व ग्रंथियों के रोग, अंगों का बढ़ना एवं पथरी रोग आदि।
17. अनुराधा नक्षत्र जनित रोग– प्रजनन, रक्त, नाक, अपच, बांझपन, बवासीर, कुल्हे का फ्रैक्चर आदि रोग।

18. ज्येष्ठा नक्षत्र जनित रोग– श्वेत प्रदर, रक्त–बवासीर, कैंसर, गुप्त रोग, आंत एवं गले का रोग आदि।
19. मूल नक्षत्र जनित रोग– फेंफड़ों, कुल्हें, मांस–पेसियों के रोग, पक्षाघात, गठिया, अनिद्रा आदि रोग।
20. पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र जनित रोग– फेफड़ों, प्रमेह, धातुक्षय, श्वास, रक्त, घुटने व कुल्हे के रोग, मधुमेह एवं साईटिका, अन्य गुप्त रोग आदि।
21. उत्तराषाढ़ा नक्षत्र जनित रोग– उदरशूल, कटिशूल, जंघा के रोग, ज्वर व बी.पी., अन्य पीड़ादायक रोग होते हैं।
22. श्रवण नक्षत्र जनित रोग– अतिसार, मूत्रकृच्छ, प्लुरसी, फाइलेरिया एवं संग्रहणी से संबंधित रोग।
23. धनिष्ठा नक्षत्र जनित रोग– आमाशय, बस्ति एवं गुर्दों के रोग, अंग भंग, हड्डी का टूटना, यकृत के रोग।
24. शतभिषा नक्षत्र जनित रोग– हृदय रोग, जबड़ा, दांत का रोग, वात, ज्वर, सन्निपात आदि रोग।
25. पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र जनित रोग– घबराहट, शूल,शरीर के बांया भाग, स्नायु, पेट का नीचला भाग, टांगे एवं टखने से संबंधित रोग होते है। दिल, बी.पी., गुर्दे, मूत्राशय, यकृत के रोग, हर्निया, पेट के अल्सर, मिर्गी आदि रोग।
26. उत्तराभाद्रपद नक्षत्र जनित रोग– दंत रोग, वात रोग, ज्वर से संबंधित रोग, बवासीर, हर्निया, एनेमिया, टी.बी. आदि रोग।
27. श्रेवती नक्षत्र जनित रोग– मानसिक रोग, प्रजनन अंग से संबंधित रोग, पित्त–वात रोग, पैर में विरूपता आदि रोग।

ज्योतिषशास्त्र में रोग का विचार करने के लिये विविध विधियों को अपनाना चाहिये। इसके लिये षष्ठ, अष्टम् तथा द्वादश भाव में स्थित ग्रह और इन भावों के स्वामी अर्थात् षष्ठेश और षष्ठेश से युक्त दृष्ट ग्रह और दृष्ट भावों से रोगों का विचार किया जाना चाहिए। इसके अलावा अशुभ ग्रहों से युक्त राशियां एवं भाव नीच राशिस्थ ग्रह अस्त ग्रह तथा निर्बल ग्रह, लग्न और लग्नेश, मारक ग्रह एवं बलारिष्ठ उत्पन्न करने वाले ग्रह भी रोगों के कारक माने जाते हैं। ग्रहों के शुभ–अशुभ एवं बल के आधार पर रोग एवं रोगी पर प्रभाव समयावधि निर्धारण करने का प्रयास किया जाता है। राशि एवं ग्रहों से रोग का अनुमान करना ज्योतिषशास्त्र में फुटकर रीति से अनेकानेक स्थानों में पाए जाते हैं। इसके विभिन्न कारण हो सकते हैं। रोग भाव का प्रतिनिधि ग्रह अष्टम द्वादश भाव के प्रतिनिधि ग्रह षष्ठ भाव की स्थिति, लग्न की स्थिति, ग्रह का नीच या शत्रु राशि में निर्बल होना, पाप ग्रहों से पीड़ित होना, ग्रहों का अरिष्ट कारक या मारक होना आदि पर विचार कर के हीं रोग का निर्धारण किया जाता है।

lUnHkZ %

1. भारतीय ज्योतिष – डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री – भारतीय ज्ञानपीठ – नयी दिल्ली 110003 – तेतालिसवाँ संस्करण 2007
2. जातक पारिजात – श्री वैद्यनाथ विरचित – व्याख्याकार : डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र – रंजन पब्लिकेशन – नयी दिल्ली – 110002
3. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम् – टीकाकार : सीताराम झा – मास्टर खेलाड़ीलाल संकटा प्रसाद – वाराणसी 1
4. भृगुसंहिता – भृगु ऋषि कृत – टीकाकार : राजेश दीक्षित – हिंद पुस्तक भण्डार, दिल्ली 6
5. ज्योतिषशास्त्र में रोग विचार – डॉ. सुखदेव चतुर्वेदी
6. बृहज्जातकम् – आचार्य वरामिहिर प्रणीतं – व्याख्याकार : डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र – रंजन पब्लिकेशन – नयी दिल्ली – 110002

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 332-335

Hkkstiqj dh le`) ukV;&ijEijk

Mkå vkuUn dqekj*

भोजपुर जिला की नाट्य–परम्परा प्राचीन है। आज भी शहरी क्षेत्र से देर के गाँवों में 'रामलीला' इत्यादि की चली आ रही अविच्छिन्न परम्परा इस बात को प्रमाणित करती है। बिना किसी शक अथवा संदेह के कहा जा सकता है कि भोजुपर प्रदेश उपयोगी कलाओं से सम्पन्न रहा है। यहाँ के निवासी नृत्य–प्रिय होते हैं। भोजपुर प्रदेश में लोक नाट्यों की एक लम्बी परम्परा रही है।

हिन्दी नाट्य–लेखन और मंचन का प्रारम्भ 19वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में हुआ । डॉ० लक्ष्मीकान्त सिन्हा जैसे विद्वान आलोचक स्व० जैनेन्द्र किशोर 'जौहर' को भोजपुर के प्रथम हिन्दी नाटककार मानते हैं। स्वीर्गाीय 'जौहर' ने पारसी नाटकों और मंच से प्रभावित होकर सन् 1897 इ० में 'जैन नाटक मंडली' की स्थापना की । उन्होंने अपने नाटकों का मंचन इसी मंच से किया था । ''कलि–कौतुक'' उनका प्रथम नाटक था, जो पद्यबद्ध पारसी शैली में लिख गया है। उनके समस्त नाटकों का प्रकाशन उनके दत्तक पुत्र देवेन्द्र किशोर जी ने किया । इस प्रकार, भोजपुर में हिन्दी नाट्य–लेखन की परम्परा का श्री गणेश सन् 1892 ई० में हुआ ।

भोजपुर में अब तक सैकड़ों नाटक लिखे जा चुके हैं:, यह बात और है कि किन्हीं कारणों से सभी का प्रकाशन नहीं हो सका । प्राप्त नाटकों के आधार पर ही भोजपुर के नाट्य साहित्य का वर्गीकरण उचित जान पड़ता है। आचार्य विश्वनाथ मिश्र के अनुसार नाटकों को तीन दृष्टि से विभाजित किया जाना चाहिए – (क) विषय के विचार से , (ख) शैली के विचार से और (ग) रंगशाला के विचार से ।

वस्तु या विषय की दृष्टि से नाटकों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– ऐतिहासिक और सामाजिक । भारत में पुराण भी इतिहास के ही अन्तर्गत आते हैं और ऐतिह्य कहलाते हैं। पुराण शब्द का अर्थ पुरानी कथा है। पौराणिक नाटकों से भिन्न ऐसे भी नाटक लिखे गये हें, जिनमें अनुंसधान–मूलक इतिहास की प्रख्यात कथा गृहित हुई है। इस कोटि में जयशकंर प्रसाद प्रणीत ''चन्द्रगुप्त'', ''स्कन्दगुप्त'' इत्यदि नाटक आते हैं। अतः विषय की दृष्टि से नाटकों के तीन भेद किये जा सेकते हैं–

(क) ऐतिहासिक–जिस नाटक की कथावस्तु पौराणिक कथाओं पर आधारित हो , जैसे–भारतेन्दु कृत–''सत्य हरिश्चन्द्र'' नाटक ।।

(ख) ऐतिहासिक–जिस नाटक की कथावस्तु इतिहास की खोज पर आधारित हो जैसे– भारतेन्दु कृत ''नील देवी'', जयशंकर प्रसाद कृत ''चन्द्रगुप्त'' इत्यादि ।

(ग) सामाजिक–जिस नाटक की कथावस्तु सामाजिक समस्याओं पर आधारित हो, जैसे–''डेढ़ रोटी'' ।

भोजपुर के नाट्य–साहित्य में पौराणिक और सामाजिक नाटक ही अधिक लिखे गये जान नड़ते हैः, जैसे –

1.	टंजना सती नाटक	–	जैनेन्द्र किशोर जौहर
2.	प्रद्युम्न प्रभाव नाटक	–	जैनेन्द्र किशोर जौहर
3.	वरदान	–	ब्रजनन्दन सहाय
4.	सुदामा नाटक	–	शिवनंदन सहाय

*पूर्व शोधार्थी, हिन्दी विभाग, वीर कुवँर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

5. ये अभी भी क्वारी है — डॉ० सिद्वनाथ कुमार
6. निर्वासन — श्री भगवती प्रसाद 'राकेश'

उपर्युक्त वर्णित नाटकों में ''अंजना सती'' नाटक की विषय–वस्तु हनुमान की माता अंजना की कथा पर आधारित है। ''प्रद्युम्नप्रभाव'' नाटक में कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न की कथा है। ''वरदान'' और निर्वासनः, में रामायण की कथा है, जिसमें राम–वनवास और सीता–वनवास की कथा है। वे अभी भी क्वारी हैः, में शकुन्तला की प्रिय सखियाँ 'प्रियंवदा और अनसूया का उद्धार हुआ है।

सामाजिक नाटकों का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इन नाटकों को आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने सामाजिक नाटकों के तीन स्थूल भेद किया है– समाज–सुधार सम्बन्धी, जन–समस्या सम्बन्धी और राजनीतिक । समाज–सुधार–संबंधी नाटकों के विषय प्रायः विधवा–विवाह, बाल–विवाह, वृद्ध –विवाह, वेश्वा–गमन, मद्यपान–निषेध इत्यदि हैं। जन–सम्बनघी नाटकों में रोमांचक प्रेम, हड़ताल, वर्ग भेद इत्यदि को दर्शाया जाता है। राजनीतिक–नाटक के अन्तर्गत देश–प्रेम, जातिगत–ऐक्य इत्यादि से सम्बन्धित नाटक आते हैं।

सामाजिक नाटक

(क) समाज–सुधार सम्बन्धित नाटक निम्नलिखित हैं–

1. मनोरमा–सुन्दरी — श्री जैनेन्द्र किशोर
2. कलि–कौतुक — श्री जैनेन्द्र किशोर
3. सोमासती — श्री जैनेन्द्र किशोर
4. ज्ञान प्रभाकर (प्रभाकर) – श्री जैनेन्द्र किशोर
5. धर्म की धुरी — राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह
6. गंगा–स्नान — स्वीर्गीय भिखारी ठाकुर
7. विधवा–विलाप — स्वीर्गीय भिखारी ठाकुर
8. पुत्र–वध — स्वीर्गीय भिखारी ठाकुर
9. बेटी–विलाप — स्वीर्गीय भिखारी ठाकुर
10. ननद–भौजाई संवाद — स्वीर्गीय भिखारी ठाकुर
11. धरकट सूम — श्री हरद्वार प्रसाद जालान
12. रेल–यात्रा — श्री हरद्वार प्रसाद जालान
13. सोना — श्री हरद्वार प्रसाद जालान

(ख) जन–समस्या सम्बन्धी नाटक निम्नलिखित है–

1. अर्धांगिनी — श्री ब्रजनंदन सहाय 'व्रजवल्लभ'
2. सप्तम प्रतिमा — श्री ब्रजनंदन सहाय 'व्रजवल्लभ'
3. कवि — डॉ० सिद्धनाथ कुमार
4. बादलों का शाप — डॉ० सिद्धनाथ कुमार
5. विकलांगों का देश — डॉ० सिद्धनाथ कुमार
6. सृष्टि — डॉ० सिद्धनाथ कुमार

(ग) राजनीतिक नाटक निम्नलिखित हैं–

1. पलकू काका का सपना – श्री भागवत शरण सिंह
2. क्रूर वेण — श्री हरिहर प्रसाद 'जालान'
3. सूर्योदय — पं० ईश्वरी प्रसाद शर्मा
4. पूर्व और पश्चिम — प्रो० श्याम मोहन अस्थाना
5. जमीन जो किसी की नहीं –प्रो० श्याम मोहन अस्थाना

(घ) भोजपुर की नाट्य–परम्परा में मनोवैज्ञानिक नाटक भी लिखे गये हैं। इनमें व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याओं का विश्लेषण होता है। मनोवैज्ञानिक–नाटकों के लेखन में सर्वाधिक और बेजोड़ प्रयास, जो सार्थक हैं, वे प्रो० श्याम मोहन अस्थाना के हैं–

1. खरीदा हुआ चेहरा
2. अंधेरे की डाल
3. तूफान
4. नागफनी की डाल
5. आखिरी रात

ऊपर चार्चित नाटककारों के आलावा और भी नाटक लिखे गये हैं, जैसे–व्यवसाय रूपक या सैद्धान्तिक रूपक । ''रजनी का स्वप्न (अप्रकाशित)–श्री भगवती प्रसाद ''राकेश'' । सैद्धान्तिक नाटकों में

1. संत रविदास – डॉ० गोपल जी ''स्वर्णकिरण''
2. विभीषण – डॉ० गोपल जी ''स्वर्णकिरण''
3. सुनयना – डॉ० गोपल जी ''स्वर्णकिरण''

इस विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि भोजपुर के नाट्य–साहित्य में पौराणिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, सैद्वान्तिक इत्यादि नाटक प्राप्त होते हैं। इनमें नाटक, एकांकी, प्रहसन, रेडियो–नाटक और रेडियो–एकांकी, गीमि–नाट्य इत्यादि है। भोजपुर के नाट्य–साहित्य का विकास भी हिन्दी नाट्य परम्परा जैसा ही हुआ है। श्री जैनेन्द्र किशोर का नाटक पारसी रंगमंच से प्रभावित है। ''कलि कौतुक (1898 ई०)'' नामक प्रहसन में मंगलाचरण आदि में भारतीय पद्धति अपनायी गई है, किन्तु संवाद पद्यमय हैं और उनका तर्ज वही है जो पारसी रंगमंच के नाटकों में होता है।

भोजपुर का प्रारम्भिक हिन्दी नाटक पारसी रंगमंच से स्पष्टतः प्रभावित है। नाटकों में ऊर्दू मिश्रित हिन्दी भाषा है। 1907 ई० में बाबू शिवनन्दन सहाय का ''सुदामा'' नाटक भारतीय नाट्यकला पर लिखा गया। इसमें भी कहीं–कहीं पद्यमय संवाद मिलते हैं, जो पारसी नाटकों से प्रभावित प्रतीत होते हैं। भोजपुर के तीसरे हिन्दी नाटककार माने जाने वाले बाबू ब्रजनंदन सहाय जी ने 1906 ई० में नाट्य–लेखन आरम्भ किया। ये नाटक भारतीय शैली में लिखे गये हैं किन्तु पारसी प्रभाव से मुक्त नहीं हैं। इनमें शेरो–शायरी में संवाद हैं और भाषा ऊर्दू मिश्रित हिन्दी है।

पं० ईश्वरी प्रसाद ने सन् 1922 ई० में सामाजिक नाटक 'सूर्योदय' की रचना भारतीय शैली में की पर इसमें घटनाओं की बहुलता है। इसकी भाषा हिन्दी है लेकिन ऊर्दू के शब्द भी जहाँ–तहाँ मिल जाते है।। श्री हरिहर प्रसाद 'जालान' का प्रहसन 'धरकट सूम' भी इसी श्रेणी में आता है।

1929 ई० से राष्ट्र–प्रेम से सम्बन्धित नाटकों की रचना का श्री गणेश 'क्रूर वेण' नामक नाटक से हुआ । यही राष्ट्र प्रेम 'सूर्योदय' में भी पाया गया। 1917 ई० में भोजपुर के जनकवि भिखारी ठाकुर ने स्वरचित सामाजिक–सुधार–सम्बन्धी नाटकों का मंचन प्रारम्भ किया , जो 'विधवा–विवाह', बेमेल–विवाह इत्यादि से सम्बद्व थे। भिखारी ठाकुर के सभी नाटक लोकनाट्य हैं जिनकी भाषा भोजपुरी है।

स्वतंत्रता–प्राप्ति के अनन्तर, भोजपुर के नाटकों की शैली मिश्रित हो गई । विषय–वस्तु की दृष्टि से सामाजिक सुधार, राष्ट्र–प्रेम आदि को अपनाया गया। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के नाटक, इसी कोटि में आते हैं। श्री भगवती प्रसाद ''राकेश' का नाटक 'निर्वासन' पौराणिक आख्यान पर आधारित है। लेकिन उसमें नारी–जागरण का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। 1956–1957 ई० से भोजपुर के रंगमंच पर प्रो० राणा प्रताप सिन्हा के नाटक मंचित हुए, जो समाजिक असंगतियों, पूँजीवादी व्यवस्था पर प्रहार करते हैं।

'भोजपुर के नाटककारों ने सन् 1952 ई० में रेडियो–नाटक' का लेखन प्रारम्भ किया। इस दिशा में डॉ० सिद्धनाथ कुमार, प्रो० श्याम मोहन अस्थाना, प्रो० राणा प्रताप सिन्हा के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। डॉ० सिद्धनाथ कुमार ने भोजपुर के नाट्य–साहित्य को रेडियो–नाटक प्रदान किया । इनकी विशेषता यह है कि ये सभी नाटक छंदबद्ध हैं। छन्दों में सिर्फ मुक्त छंद का प्रयोग किया गया है। प्रो० श्याम मोहन अस्थाना ने 1963 ई० से और 'पूर्व और पश्चिम' नामक नाटक लिखा । एकांकी 1964 ई० से और रेडियो–नाटक 1967 ई० में लिखना प्रारम्भ किया । उन्होंने अधिकतर रेडियो–नाटक (ज्यादा रेडियो–एकांकी) लिखे हैं। जिनमें कुछ मनोवैज्ञानिक, कुछ सामाजिक भ्रष्टाचार पर लिखे गये हैं।

डॉ० स्वर्ण–किरण ने 1960 ई० से कुछ सैद्धान्तिक नाटकों का प्रणयन किया । उन्होंने 1960 ई० में 'संत रविदास', 1969 ई० में 'विभीषण' और 1972 ई० में 'सुनयना' नामक सैद्वांतिक नाटक लिखे । इनके अलावा भी कुछ नाटककार हैं, जिन्होंने भोजपुर के नाट्य–साहित्य को समृद्व बनाया है।

भोजपुर में नाट्य–लेखन और मंचन की परम्परा अभी तक चली आ रही है। अवश्यमेव, यह परम्परा सुदीर्घ और समृद्ध है।

lUnHkZ %

1. भोजपुर रंगमंच के सौ वर्ष और प्रो० श्याम मोहन, अस्थााना के नाटक : श्रीमती सरोज कुमार सिन्हा, (मगध विश्वविद्यालय) के शोध–प्रबंध से साभार।, पृ०सं०–36.
2. भोजपुर के नाटककार, रंगमंच और अभिनेताः डॉ० वासुदेवनंदन प्रसाद (मगध विश्वविद्यालय) द्वारा निर्देशित शोध–प्रबंध से साभार। पृ०सं०–26
3. वही, पृ० सं०–29
4. भोजपुर रंगमंच के सौ वर्ष, और प्रो० श्याम मोहन अस्थाना के नाटकः श्रीमती सरोज कुमारी सिन्हा, पृ0 38

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 336-340

ikÑr Hkk"kk ,oa laLd`r ; dk of'k"V;

MkW0 fdju noh*

आर्यों के आगमन–काल से उनके बोलचाल की भाषा प्राकृत रही है, उसकी स्थिति बिल्कुल भिन्न थी। प्राकृत भाषा की सामान्य प्रकृति सदा परिवर्तनशील रही है। भौगोलिक परिस्थितियों से यह प्रभावित होती आई है। भरत (ईसा की तीसरी शताब्दी) के नाट्यशास्त्र[1] में जो मागधी, अवन्तिजा, प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, वाह्लीका और दाक्षिणात्या–ये प्राकृत के सात भेद बताये गये हैं, वे इन भाषाओं की भौगोलिकता को ही सूचित करते है। इसका तात्पर्य यह है कि जो भाषा प्राकृत अर्थात् स्वभावसिद्ध हो और जनसामान्य द्वारा व्यवहार में लाई जाती हो, वह प्राकृत है और संस्कारित कही जाने वाली संस्कृत से वह भिन्न है। पाणिनि ने वैदिक वाङ्मय को छान्दस और साधारण जनों की बोलचाल को भाषा का नाम दिया है। भगवान् बुद्ध ने जनभाषा को महत्त्व देते हुए सकायनिरुत्तिया को प्रोत्साहन दिया तथा छान्दस के प्रयोग को दुक्क्ट बतलाया। इसमें भी दोनों भाषाओं का पार्थक्य सिद्ध होता है। ईसवी सन् 11 वीं शताब्दी के जैन विद्वान् नमिसाधु ने रुद्रट के काव्यालंकार की टीका मिलाते हुए प्राकृत और संस्कृत की जो विशेषता प्रतिपादित की है, वह ध्यान देने योग्य हैः–

ikÑrfrA ldytxTtUruka O;kdj.kkfnfHkjukfgrlaLdkj% lgtks opuO;kikj% iÑfr%] r= Hkoa l So ok ikÑreA-- ok ikd~ iwoZ Ñra ikDÑra ckyefgykfnlqcks/ka ldyHkk"kkfuca/kuHkwra opueP;rA e?kfueqDr tyfeosdLo:ia rnso p ns'kfo'ks"kkr~ laLdkj.kkp; lek lkfnrfo'ks"ka lr~ laLÑrk|qRrjfoHkknkuklukfrA vr,o 'kkL=ÑrkeknkS fufn"Va rnuq laLÑrknhfuA ikf.kU;kfnO;kdj.kkfnr'kCny{k.ku laLdj.kkr~ laLÑreP;rA[2]

प्राकृत शब्द का अर्थ है व्याकरण आदि के संस्कार से विहीन स्वाभाविक वचन का व्यापार, उससे उत्पन्न; अथवा वही प्राकृत है। अथवा जो पहले हो, उसे प्राकृत कहते है, जो बालक, महिला आदि की सरलता से समझ में आ सकती है, और जो समस्त भाषाओं की मूल है। वह प्राकृत है। यही प्राकृत मेघमुक्त जल के समान, पहले एक रूप होने पर भी देशभेद और संस्कार के कारण भिन्नता को प्राप्त करती हुई संस्कृत आदि अवान्तर भेदों में परिणत होती है। अतएव मूल ग्रन्थकार (रुद्रट) ने पहले प्राकृत का और तत्पश्चात् संस्कृत का निर्देश किया है। पाणिनी आदि व्याकरणों के अनुसार, संस्कार प्राप्त करने के कारण यह भाषा संस्कृत कही जाती है।

laLÑr ukVdksa esa ikÑr dk iz;ksx % संस्कृत–नाटकों में प्राकृत भाषाओं का प्रयोग भी सामान्य जीवन की वास्तवविकता की ओर इंगित करता है। यहाँ धीरोदात्त और धीरप्रशान्त नायक आदि उच्चकोटि के समझे जाने वाले पात्र संस्कृत बोलते हैं। जब कि स्त्री. नौकर–चाकर, दास, शूद्र आदि सामान्य पात्र प्राकृत का ही आश्रय लेते हैं। गरुणपुराण में कहा है–

ykdk;ra dqrdZ p ikÑra EysPNHkkf"kreA
u JksrO;a f}tsusrr~ v/kks u;fr rn~ f}teA[3]

–लोकायत, कुर्तक तथा म्लेच्छों द्वारा बोली जाने वाली प्राकृत किसी ब्राह्मण को सुनने योग्य नहीं, ये उसे अधोगति को ले जाते हैं।

इससे पता चलता है कि स्त्री, नौकर–चाकर और शूद्र आदि निम्न वर्ग के समझे जाने वाले पात्रों द्वारा ही संस्कृत नाटकों में प्राकृत बोले जाने का विधान किया गया है। भले हि आगे चलकर शिष्टवर्ग

*सहायक आचार्या–संस्कृत, रतन सेन डिग्री कालेज, बाँसी, सिद्धार्थ नगर, उ0प्र0

ने संस्कृत की तुलना में प्राकृत को निम्नवर्ग की भाषा सिद्ध करने का प्रयत्न किया। फिर भी प्राकृत भाषाओं की जनतांत्रिकता सर्वग्राही थीं। गुप्तकाल के पूर्व जो लगभग 1500 शिलालेख उपलब्ध हुए हैं उनमें 25 प्रतिशत से अधिक प्राकृत के हैं, और गुप्तकाल के बाद के संस्कृत शिलालेखों की संख्या अत्यन्त अल्प हे। इससे प्राकृत की सार्वजनिकता ही सूचित होती है।

ikÑr dh iÑfr ifjorZu'khyrk % जैसे ब्राह्मण पुरोहित वर्ग ने अपौरुषेय कहे जाने वाले वेदों की रक्षा के लिये शिक्षा और व्याकरण के अध्ययन पर जोर दिया, वैसा प्रयत्न जैन और बौद्ध विद्वानों ने महावीर और बुद्ध के वचनों को यथावत् सुरक्षित रखने के लिये नहीं किया। इसका प्रमुख कारण था कि प्रतिदिन के बोलचाल के व्यवहार में आने वाले प्राकृत बोलियाँ देश और काल के अनुसार परिवर्तनशील थीं, अतएव उन्हे व्याकरण आदि के नियंत्रण में रखना कठिन था; जब उन्होंने साहित्यिक दर्जा प्राप्त कर लिया तब भी। वस्तुतः प्राकृत भाषा की सामान्य प्रकृति सदा परिवर्तित होती रहती है, उदाहरण के लिये, जैन आगमों की भाषा, संस्कृत से भिन्न, लोक भाषा प्राकृत कहलाई और जैसे–जैसे लोकभाषा में परिवर्तन हुए, जैन आगमों की भाषा भी परिवर्तित होती गई। जैसे–जैसे जैनधर्म अपने मूल केन्द्र स्थल मगध (उत्तर विहार) से पश्चिम और दक्षिण की ओर फैलता गया, वैसे–वैसे उन–उन क्षेत्रों में प्रचलित भाषा के शब्दों का प्राकृत में समावेश होता गया। ऐसी स्थिति में श्वेताम्बर जैन आगमों की भाषा जो अर्धमागधी कही गई है,। वर्तमान में उपलब्ध आगम–ग्रन्थों में इस भाषा के लक्षण यथवत् विद्यमान नहीं कहे जा सकते। उल्लेखनीय है कि जैन आगम–ग्रन्थ के पाठों को स्थिर और सुनिश्चित करने के लिये जैन आगमविद्, जैन साधुओं के एक–दो नहीं, तीन सम्मेलनों का आयोजन किया गया, लेकिन क्या इन सम्मेलनों में महावीर के मौलिक वचनों का यथावत् संकलन किया जा सका? महावीर के वचनों की बात तो दूर रही, महावीर–निर्वाण के लगभग 1,000 वर्ष बाद लगभग ईसा की 5वीं शताब्दी में जैन साधुकों का वल्लभी मे जो अन्तिम सम्मेलन आयोजित कर जैन आगम–ग्रन्थों के विविध पाठान्तर एवं वाचनाभेद को जिस भाषा में अन्तिम रूप में स्थिर किया गया, उस भाषा के वास्तविक रूप की भी हमें प्रामाणिक जानकारी नहीं है।

प्राकृत भाषा की इस बहुरंगी प्रवृत्ति के अनेक कारण थे। सबसे पहला तो यही कि प्राकृत बोलियाँ सदा परिवर्तनशील रही हैं, देश–काल के अनुसार, उनमें परिवर्तन होता रहा है। दूसरे, ऐसी हालत में व्याकरण सम्बन्धी नियमों के सम्बन्ध में असंदिग्ध नहीं रह सकते। तीसरे, जिस साहित्य का विश्लेषण करके उन्होने व्याकरण के नियमों का विधान किया, वह साहित्य भिन्न काल का था। वस्तुतः हेमचन्द्र कृत सिद्धहेमशब्दानुशासन इस विश्लेषण के लिये पर्याप्त न था। जिन प्राचीन प्राकृत व्याकरणों में जिन प्रयोगों और सूत्रों का अभाव था, वे प्रयोग एवं सूत्र हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण में कहाँ से आ सकते थे; वह विचारणीय है।

मध्ययुगीन भारतीय आर्यभाषाओं को भी तीन भागों में विभक्त किया जाता है। इसका प्रथम भाग ईसा पूर्व 600 से लेकर ईसा पूर्व 200 तक चलता है। इसके द्वितीय भाग को प्रथम दो अवस्थाओं (ईसा पूर्व 200 से लगाकर ईसवी सन् 200 तक और ईसवी के 200 से लगाकर ईसवी सन् 400 तक) में शिलालेखों, पालि, जैन–लेखों, अश्वघोष की प्राकृत आदि का समावेश होता है। तत्पश्चात् पालि और अर्धमागधी के साहित्यिक लेख तथा शौरसेनी में लिखित दिगम्बर आम्नाय के आगम ग्रन्थों का अन्तर्भाव होता है। अश्वघोष के नाटक इसी श्रेणी में आते हैं। द्वितीय भाग की तीसरी अवस्था (ईसवी सन् 400 से लगाकर ईसवी सन् 600/700 तक) में साहित्यिक प्राकृतें आती हैं जिनके लक्षण वररुचि, हेमचन्द्र, पुरुषोत्तम, क्रमदीश्वर, रामशर्मा तर्कवागीया, मार्कण्डेय आदि प्राकृत वैयाकरणों द्वारा निर्दिष्ट किये गये है। इन प्राकृतों की अनेक बोलियां और उपबोलियाँ है; इनमें महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची और अपभ्रंश की बोलियां और उपबोलियाँ अपने साहित्यिक लेखों के कारण महत्त्वपूर्ण हैं। अपभ्रंश (ईसवी 600 से लेकर ईसवी सन् 1000 तक) का समावेश मध्युगीनभारतीय आर्यभाषाओं की इसी तीसरी अवस्था में होता है। वस्तुतः अपभ्रंश अपने विकास पर तभी पहुँच सका जब कि मध्ययुगीन प्राकृत भाषायें इसी प्रकार विकसित हुई थीं जब कि तत्कालीन भाषाओं ने संस्कारित एवं परिमार्जित होकर संस्कृत का रूप लिया था। आगे चलकर जब अपभ्रंश भी लोकभाषा न रहकर साहित्यिक भाषा बनने लगी तो हिन्दी, गुजराती, मराठी,

बंगाली, पंजाबी, सिन्धी आदि आधुनिक आर्यभाषाओं ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया। भारतीय आर्यभाषाओं के विकास–क्रम का यही इतिहास है जो ईसा पूर्व 2000 वर्ष से प्रारम्भ होकर आधुनिक काल तक चला आ रहा है। काव्यालंकार के टीकाकार नमिसाधु ने 'प्राकृतमेवापभ्रंशः'[4] लिखकर जो प्राकृत को अपभ्रंश संज्ञा दी है, उसका यही तात्पर्य है कि विभिन्न क्षेत्र और समय के अनुसार प्राकृत बोलियां अपभ्रंश का रूप ग्रहण करती जाती हैं, अर्थात विकसित होती जाती हैं।

ikÑr Hkk"kk,¡ % इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्ययुगीन भारतीय आर्यभाषायें अनेक रूपों में पाई जाती हैं। ये भाषायें श्वेताम्बर जैन आगमों की प्राकृत, दिगम्बर जैन आगम–ग्रन्थो की शौरसेनी प्राकृत, जैनों की धार्मिक और लौकिक कथाओं की प्राकृत, संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त विविध रूप वाली प्राकृत, मुक्तक काव्यों की महाराष्ट्री प्राकृत, बृहत्कथा की पैशाची प्राकृत, अशोक शिलालेखों की प्राकृत, निया प्राकृत, खरोष्ठी लिपि में उल्लिखित धम्मपद की प्राकृत आदि के रूप में बिखरी हुई हैं। इन सब को सामान्यतया प्राकृत की संज्ञा दी जाती है, यद्यपि प्राकृत वैयाकरणों ने इनके अनेक नाम दिये हैं। संस्कृत नाटककारों और अलंकारशास्त्र के पंडितों ने भी इन प्राकृतों के विविध रूप प्रदर्शित किये हैं। वास्तव में देखा जाय तो प्राकृत बोलियों के कथ्य भाषा न रह जाने के कारण इन बोलियों का सही रूप निर्धारित करने में बड़ी कठिनाई हो रही थी। विविध रूपों में बिखरे पड़े प्राकृत साहित्य को पढ़–पढ़ कर ही वैयाकरण अपने सूत्रों को रचनाबद्ध करने में लगे थे। परिणाम यह हुआ कि वैयाकरणों द्वारा प्राकृत बोलियों का जो विवेचन किया गया वह बहुत अस्पष्ट और अपूर्ण रह गया। प्राकृत व्याकरण की इन रचनाओं को पढ़कर यह ज्ञात नहीं होता कि किन ग्रन्थों का विश्लेषण करके इन नियमों की रचना की गई है तथा अश्वघोष के नाटकों, खरोष्ठी लिपि में निबद्ध धम्मपद और अर्धमागधी में रचित श्वेताम्बर जैन आगम आदि की प्राकृतों का वास्वत में क्या स्वरूप था। ठीक है कि 18वीं शताब्दी में रामपाणिवाद आदि प्राकृत साहित्य के उत्तरकालीन लेखकों ने प्राकृत व्याकरणों के आधार पर अपनी रचनायें प्रस्तुत की हैं, लेकिन ऐसी रचनायें केवल उंगलियों पर गिनने लायक हैं।

डॉ. जगदीशचन्द्र जी का कहना है कि भरत के नाट्यशास्त्र में उल्लिखित ekx/kh] vofUr tk] ikP;k] 'kkSj lsuh] v/kZekx/kh] okg~yhdk vkSj nf{k.kkR;k नाम की सात प्राकृत भाषाओं के सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी हमें नही मिलती। आगे चलकर संस्कृत नाटककारों ने अपने पात्रों के मुख से भिन्न–भिन्न प्राकृतें कहलवाई हैं और वैयाकरणों ने इनका विवेचन भी किया है, किन्तु इससे प्राकृतों का भाषाशास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करने में जरा भी सहायता नहीं मिलती। वैयाकरणों में प्राकृत बोलियों का विस्तृत विवेचन कर्ताओं में वररुचि का नाम सर्वप्रथम आता है। उनके अनुसार, प्राकृत (जिसे आगे चलकर महाराष्ट्री कहा गया है), पैशाची, मागधी और शौरसेनी ये चार प्राकृत भाषायें हैं।[5]

इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि वररुचिकृत प्राकृत–प्रकाश के प्रथम नौ परिच्छेदों में केवल प्राकृत भाषा का ही विवेचन है। इसके पश्चात् दसवें मे पैशाची, ग्यारहवें में मागधी और बारहवें में शौरसेनी का विवेचन है। टीकाकारों ने प्रथम नौ परिच्छेदों पर ही टीकायें लिखी हैं, जिन्हें वे वररुचिकृत स्वीकारते थे। दसवां और ग्यारहवां परिच्छेद टीकाकार भामह अथवा अन्य किसी टीकाकार द्वारा रचित माना जाता है। बारहवें परिच्छेद पर भी भामह की टीका नहीं है यहाँ वररुचि ने शौरसेनी के लक्षण बताने के पश्चात् *'ks"k egkjk"Vªhor~* लिखकर महाराष्ट्री को मुख्य प्राकृत कहा है। महाराष्ट्री प्राकृत के सम्बन्ध में आगे चलकर कहा जायेगा। इससे यही सिद्ध होता है कि प्रारंभिक वैयाकरण सामान्य रूप से प्राकृत को ही मुख्य मानते थे और साहित्यिक रचनाओं की यह भाषा समझी जाती थी। शूद्रक के मृच्छकटिक में सूत्रधार द्वारा बोली जाने वाली भाषाा को प्राकृत कहा गया है, यद्यपि उत्तरकालीन वैयाकरणों की शब्दावली में यह शौरसेनी बन गई।[6]

डॉ. अनेकान्त जैन ने प्राकृत विद्या में श्री चक्रधर शर्मा गुलेरी के 'ikÑr dk lUnHkZ esa fopkj' उद्धृत किय थे उनमें कुछ महत्त्वपूर्ण हैं – छान्दस में रचे गये वैदिक मंत्रो के यदि गूढ़ार्थ को हम समझाना चाहते हैं तो संस्कृत के साथ–साथ प्राकृत भी हमारी मद्द कर सकती है। हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण में 'iÑfr% laLÑra r= Hkoa rr vkxra ok ikÑre~'[7] की बहुत अच्छी व्याख्या की है। प्रायः इसका

अर्थ यही लगाया जाता है– 'संस्कृत मूल है तथा वहाँ से उत्पन्न तथा आयी हुई प्राकृत है।' गुलेरी जी ने इस विषय में बहुत शोध–खोजपूर्ण टिप्पणी की है। वे कहते हैं कि 'यहाँ भव या आगत कहना ठीक नहीं है। वररुचि संस्कृत को शौरसेनी की प्रकृति और शौरसेनी को महाराष्ट्री की प्रकृति कहते हैं। वे 'मंख' के श्रीकंठचरित की टीका से षट् भाषा सम्बन्धी श्लोक का उदाहरण देकर बताते हैं कि संस्कृत उससे प्राकृत उससे उत्पन्न शौरसेनी, मागधी, पहले की तरह पैशाची और देशजा– ये छह भाषयें हुई। वे कहते हैं कि मालूम होता है कि प्रकृति शब्द के अर्थ में भ्रम होने से तत आगतं, तदुद्भवा और ततः आदि की कल्पना हुई। प्रकृति का अर्थ यहाँ उपादान करण नहीं है। यहाँ 'प्रकृति' शब्द मीमांसा के रूढ़ अर्थ में लिया जाना चाहिए। वहाँ पर 'प्रकृति' और 'विकृति शब्द विशेष अर्थों में लिय गये हैं। साधारण, नियम, नमूना, माडल, उत्सर्ग– इस अर्थ में प्रकृति आता है। विशेष, अलौकिक, भिन्न, अंतरित, अपवाद के अर्थ में विकृति आता है। अग्निष्टोम यज्ञ प्रकृति है, दूसरे सोमयाग उसकी विकृति है। इसका अर्थ यह नही है कि सोमयाग अग्निष्टोम से निकलते हैं या उससे आए हैं। अग्निष्टोम की जो रीति है उससे दूसरे सोमयागों की रीति बहुत कुछ मिलती और कुछ–कुछ भिन्न है, साधारण रीति प्रकृति में दिखाकर भेदों को विकृति में गिन दिया है। पाणिनी ने भाषा (व्यवहार) की संस्कृत को प्रकृति मानकर वैदिक संस्कृत को उसकी विकृति माना है, साधारण सा उत्सर्ग नियम संस्कृत के मानकर वैदिक भाषा को अपवाद बना दिया है। वहाँ प्रकृति का उपादान कारण अर्थ मानकर क्या वैदिक भाषा को rr vkxr ;k rnnHko कह सकते हैं, उल्टी गंगा बहा सकते है?

पं. चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' प्राकृत वैयाकरणों की भी समीक्षा करते हुए कहते हैं एक तो जिस किसी ने प्राकृत का व्याकरण बनाया, उसने प्राकृत को भाषा समझकर व्याकरण नहीं लिखा। ऐसी साधारण बातों को छोड़कर कि प्राकृत में द्विवचन और चतुर्थी विभक्ति नहीं है, सारे प्राकृत व्याकरण केवल संस्कृत–शब्दों के उच्चारण में क्या–क्या परिवर्तन होते हैं इनकी परिसंख्या–सूची मात्र है। दूसरी यह कि संस्कृत नाटकों की प्राकृत को शुद्ध प्राकृत का नमूना नहीं मानना चाहिए। वह पंडिताऊ या नकली या गढ़ी हुई प्राकृत है, जो संस्कृत में मसविदा बनाकर प्राकृत व्याकरण के नियमों से, 'त' की जगह 'य' और 'क्ष' की जगह 'ख' रखकर सांचे पर जमाकर गढ़ी गई है। वह संस्कृत मुहावरों का नियमानुसार किया हुआ रूपान्तर है, प्राकृत भाषा नहीं है। हाँ, भास के नाटकों की प्राकृत शुद्ध मागधी है।

पिशल ने 'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण' (पृ. 8–9) में कितने ही प्राकृत और वैदिक भाषाओं में प्रयुक्त रूपों की समानता प्रदर्शित की है; त्तण (वैदिक त्वन), स्त्रीलिंग षष्ठी एक वचन 'आय' (वैदिक आर्य), तष्तीया बहुवचन 'एहिं' (वैदिक एभिः), आज्ञावाचक 'हीहि' (वैदिक बोधि), ता (तात्), जा (यात्), एत्थ (इत्था), अम्हे (अस्मे), वग्गूहिं (वग्नुभिः), सद्धिं (सध्रीम्), विऊ (विदुः), घिंसु (ध्रंस), रुक्ख (रुक्ष) आदि' अनुवादक डॉक्टर हेमचन्द्र जोशी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना 157–59, लाहोर 1933, प्रोफेसर देवेन्द्रकुमार बनर्जी ने के. बी. पाठक कसोमरेशन वॉल्यूम, पष् 327 पर (भण्डारगर ओरिएण्टिल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, 1934) प्राकृत और वैदिक भाषा में निम्नलिखित समानताओं का उल्लेख किया है : 1. 'अ' अन्त वाले प्रथमा विभक्ति के एकवचन में विसर्ग के स्थान पर 'ओ' का प्रयोग, 2. तष्तीया के बहुवचन में 'भिस्' का प्रयोग, 3. अन्तिम व्यंजन का लोप, 4. चतुर्थी के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग, 5. संधि का अभाव;। के सी. आचार्य, प्राकृतसर्वस्व, भूमिका, 46।

'kCnksa dk oxhZdj.k% प्राकृत वैयाकरणों ने संस्कृत शब्दों से सादृश्य और वैदृश्य रखने वाले प्राकृत के शब्दों को तीन भागों में विभक्त किया है : तत्सम (संस्कृत–सम), तदभव (संस्कृत–योनि) और देश्य (देशी या दशेज)। संस्कृत के ऐसे कितने ही शब्द है जो संस्कृत में समान रूप से व्यवह्रत होते हैं; जिनकी ध्वनि और अर्थ में समानता है (तत्सम)। दूसरे प्रकार के ऐसे शब्द हैं जो वर्णलोप, वर्णागम अथवा वर्ण–परिवर्तनन से निष्पन्न होते हैं, इनकी ध्वनि में भेद उत्पन्न हो गया है, लेकिन इनके अर्थ में समानता है (तद्भव), और अज्ज अथवा आरिअं (आर्य), मिलक्खु अथवा मिच्छ (म्लेच्छ), विंचुअ, विछुंअ विच्छु, अथवा विच्छुअ (वृश्चिक), आदि। जो शब्द तत्सम और तद्भव शब्दों की भांति संस्कृत शब्दों से निष्पन्न होते, और उन्ही संस्कृत शब्दों के स्थान में प्रयुक्त हो सकते है जिनके अर्थ से उनकी समानता है, वे देशी हैं। ये शब्द संस्कृत

की किसी धातु या प्रत्यय से अथवा वर्णलोप, वर्णागम या वर्ण परिवर्तन से सिद्ध नहीं है। उदाहरण के लिये, बोदि (शरीर), पोच्चड (निस्सार), उँदर (चूहा), हत्थंदुग (हथकड़ी), वाजल्ल (गुड़िया), फेल्ल (दरिद्र), तुप्प (घी), वेंटल (वशीकरण प्रयोग), सोट्टा (सूखी लकड़ी), डगलग (मिट्टे के ढेले), आदि शब्दों का उल्लेख किया जा सकता है हेमचन्द्र की देशीनाममाला (रयणावलि) देशी शब्दों का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संग्रह हैं। जो भाषा विज्ञान की दृष्टि से बहुत उपयोगी है।

डॉ. जगदीशचन्द्र जैन का कथन है कि प्राकृत में ये देशी शब्द कहाँ से आये। इन शब्दों का प्रयोग जैन आगम–ग्रन्थ, उनकी टीकायें, कथा साहित्य, प्रकरण ग्रन्थ आदि में प्रचुर मात्रा में देखने में आता है। अधिकांशतः देशी शब्दों का भारतीय आर्यों की भाषा में प्रवेश आर्यों का भारत में बसी हुई आर्येतर जाति के साथ संपर्क का परिणाम कहा जा सकता है। यह परिणाम केवल देशी शब्दों के ही रूप में नहीं बल्कि आर्य भाषा की ध्वनि, रूप–विधान और वाक्य–विन्यास में भी दृष्टिगोचर होता है।

lUnHk %

1. नाट्यशास्त्र 17–18
2. काव्यालंकार पर नमिसाधु की टीका श्लोक 2.12
3. प्राकृत साहित्य का इतिहास – डॉ. जगदीशचन्द्र जैन
4. काव्यालंकार पर नमिसाधु की टीका पष्ठ 15
5. प्राकृतविद्या, वर्ष 23, अंक 4
6. हेमचन्द्र कृत प्राकृत व्याकरण
7. के0सी0 आचार्य प्राकृतसर्वस्व भूमिका पृष्ठ 46

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 341-344

dchj d: dk0; e: L=h thou

f’ko dqekj*

कबीर अपने समय के युगद्रष्टा और युग प्रवर्तक संत थे। उन्होंने जनसाधारण के हृदय को परिष्कृत करने, उन्हें धार्मिक भावना से अनुप्राणित करने और सत्य की ज्योति से जगमगाने के लिए अपनी वाणी को मुखरित किया। वे भाषाविद नहीं थे, उन्हें छन्दों का ज्ञान नहीं था, वे शास्त्र ज्ञाता नहीं थे, फिर भी सभी निर्गुण संतों में कबीर की वाणी अपेक्षाकृत कहीं अधिक मार्मिक, प्रभावोत्पादक, एवं हृदयस्पर्शी जान पड़ती है। संत कबीर ने कहा भी है–

efl dkxt N;ks ufga dye xg;ks ufg gkFkA

कबीर ने सभी सम्प्रदायों एवं मत–मतान्तरों का सार ही ग्रहण किया वे किसी भी एक सम्प्रदाय के बनकर नहीं रहे हैं। सहजयानी सिद्धों की 'सहज साधना' नाथ पंथियों से उन्होंने शून्यवाद, हठयोग साधना तथा गुरु की प्रतिष्ठा का तत्व लिया। इस्लाम के प्रभाव से उन्होंने एकेश्वरवाद ग्रहण किया। मूर्ति पूजा का खण्डन किया और अवतारवाद का विरोध किया। सूफियों से उन्होंने प्रेमभाव ग्रहण किया और दाम्पत्य प्रतीकों का प्रयोग भक्ति भावना की अभिव्यक्ति हेतु किया। यही एक सन्त की सबसे बड़ी पहचान है और इसमें कबीर खरे उतरते हैं। इसी कारण कबीर को ही संत मत का प्रमुख प्रवर्तक माना जाता है। सन्त कबीर ऐसे युग का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसमें विलासिता, आतंक, अत्याचार, छुआछूत तथा धार्मिक आडम्बर अपनी चरम सीमा पर थे। नारी विलासिता की वस्तु समझी जाती थी। बाह्य सौन्दर्य ही नारी का सबसे बड़ा आकर्षण था। यही कारण था कि प्रेम ने वासना का रूप धारण कर लिया था। लोग सात्विक प्रेम को भूलकर विलासिता की ओर अग्रसर होने लगे थे। परायी बहू–बेटियों का अपहरण साधारण सी बात हो गयी थी। ऐसी विषम परिस्थितियों में तत्वज्ञानी कबीर के लिए नारी के बाह्य सौन्दर्य की भर्त्सना एवं उपेक्षा के अलावा अन्य मार्ग न था। उन्होंने यह अनुभव किया कि बिना इसकी भर्त्सना के पुरुष की उच्छृंखल प्रवृत्ति को रोका नहीं जा सकता। इसी कारण इनके साहित्य में कुछ अंश ऐसे हैं, जो नारी के कामिनी रूप की निन्दा के रूप में दिखाई देते हैं।

वास्तविक रूप में देखा जाय तो संत काव्य देश की राजनीतिक, धार्मिक, तथा सामाजिक परिस्थितियों के विरोध में उत्पन्न हुआ मानव कल्याण का काव्य है। जिसके अन्तर्गत मनुष्य को सांसारिक भोग विलास से विरत रहकर शोषित पीड़ित मानव के कल्याण की ओर उन्मुख किया गया है।

संत कबीर के नारी संबंधी विचारों को निम्न रूपों में समझा जा सकता है।–

ifrozrk ukjh& संत कबीर के यहाँ आध्यात्मिक क्षेत्र में पतिव्रता शब्द अद्वैत ब्रह्म की उपासना एवं अर्चना के लिए हुआ है, जिसमें जीवात्मा रूपी स्त्री परमात्मा रूपी प्रिय की उपासना, अर्चना करती है। जो पति के प्रति निष्ठावान रहती है, उसे सदा सुख सम्मान और आनन्द का सौभाग्य मिलता है। वह सदैव पति के निकट सुन्दर रूप में सुशोभित रहती है। संतों के यहाँ सांसारिक क्षेत्र में पतिव्रता नारी से अभिप्राय उस पत्नी रूप से है जो मनसा, वाचा, कर्मणा, सर्वथा अपने पति में अनुरक्त रहती है एवं पति परायणा रहती है। हमेशा उसी की पूजा एवं सेवा करती है।

कबीरदास जी माया फैलाने वाली कामिनी की जितने कठोर शब्दों में निन्दा करते हैं उतने ही अच्छे रूप में धर्मशील और पतिव्रता नारी की प्रसंशा भी करते हैं।

---

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

कबीरदास के दृष्टिकोण से पतिव्रता नारी ही समाज का आदर्श है वह चाहे जैसी भी चाहे जिस रूप में रहे, उत्तम मानी जाती है–

^^ifro:rk e:yh Hkyh] dkyh d:yp d: :iA
ifro:rk d: :i ij] okjkS dksfV l: :iAA**1

कबीर के नारी विषयक दृष्टिकोण का एक आयाम उनकी आध्यात्मिकता है। भारतीय नारी की संवेदना, उसका समर्पण, पतिव्रता धर्म आदि देखकर भारतीय दर्शन ने आत्मा को नारी और परमात्मा को पुरूष माना है कबीर अपने आपको 'हरि की बहुरिया' मानकर परमपुरुष के प्रति उत्कृष्ट प्रेम अभिव्यक्त करते हैं।

वे कहते हैं पतिव्रता नारी पति को ही सर्वगुण सम्पन्न मानती है, पर पुरुष से कभी हँसकर बात नहीं करती। ऐसे में वे कलंकित अनुभव करती है–

dchj ihrMh rk r:> lk] cg: xf.k;ky d:rA
tk gfl ckyk vkj lk] rk uhy j:xkÅ n:rAA2

संत कबीर कहते हैं जैसे सिंह भूखों मर जाता है पर कभी घास नहीं खाता। उसी तरह पतिव्रता नारी भी अपने पति के अतिरिक्त अपने जीवन में अन्य पुरूष को कभी भी स्वीकार नहीं करती–

ifrojrk ifr dk Hkt:] vkj u vku l:gk;A
fl:g cPpk tk y:?kuk] rk Hkh ?kkl u [kk;AA

कबीर ने गृहिणी नारी के पावन रूपों की चर्चा की है। उसकी निर्मल स्नेह छटा को परमात्मा की ओर उन्मुख करने वाला आध्यात्मिक दिव्य प्रकाश बताया है।

ukjh dk ekrk :i& निर्गुण संत कवियों ने नारी के माता रूप की बहुत प्रशंसा की है क्योंकि माता ही नर की जन्मदात्री होती है और उसका पालन पोषण करती है। वह अपने पुत्र की सारी गलतियाँ माफ कर देती है। बालक चाहे जितना भी अपराध करे। इसलिए कबीर दास विचार करके कहते हैं कि यदि बालक दुःखी है तो उसकी माता भी दुःखी रहती है कबीर तभी तो स्वंय को बालक और ईश्वर को माता के रूप में देखते हुए कहते है।–

gfj tuuh e: ckyd rkjk] dkg: u vox:u cd:l g: ejkA
l:r vijk/k djr g: d:r] tuuh d: fpr jg: u r:rA
dg dchj ,d cf) fopkjh] ckyd n:[kh n:[kh egrkjhAA

कबीर को अक्सर नारी निन्दक के रूप में देखा जाता है। अगर वे नारी निन्दक होते तो ईश्वर को नारीरूप में क्यों वर्णित करते? इसलिए कि माता रूप में वह ममतामयी, स्नेहमयी एवं त्यागमयी मानी जाती है।

dU;k :i& कबीर दास ने 'परचा को अंग' में नारी के कन्या रूप को दर्शाया है। वे कहते हैं– जब तक प्रियतम ब्रह्म से परिचय नहीं होता, तब तक आत्मा कुमारी ही रहती है। इसी कुमारी कन्या का कबीर के 'परचा को अंग' में प्रीतम से परिचय हुआ है। संत कबीर कन्या के रूप का वर्णन करते हुए कहते हैं–

tc yfx ih;o ijpk ufg] dU;k d:ekjh tkf.kA
gFkyok gkl: fy;k] e:ldy iMh fiNkf.kAA3

इसी परिचय के पश्चात् आत्मा प्रियतम से मिलने के लिए तड़पने लगती है। यही तड़प विरह की अभिव्यक्ति बनकर व्यक्त हुई है। यह प्रियतम से परिचय गुरु की कृपा से ही संतो को प्राप्त होता है।

nkEiR;&Hkko& निर्गुण संत कविता में संतो ने दाम्पत्य–भाव (प्रेम) का विवेचन किया है। प्रेम की जैसी तीव्रता और उन्माद दाम्पत्य भाव में प्राप्त होती है, वैसी तीव्रता और उन्माद किसी और संबंध में लक्षित नहीं होती अतः संतो ने भक्त और भगवान के प्रेम की तुलना दाम्पत्य भाव से की है। आत्मा और परमात्मा के इस संबंध को पति–पत्नी के संबंध के रूप में दिखाया है यह संबंध दो प्रकार से निर्गुण संत कवियों ने किया है। परमात्मा को पति मानकर ज्ञानमार्गी निर्गुण कवियों ने तथा परमात्मा को पत्नी मानकर सूफी धारा के कवियों ने किया है।

संत कबीर ने पति मिलन पर पत्नी का प्रेमभाव एवं हृदय में प्रेम के लिए उमड़ता हुआ उल्लास–उमंग एवं आनन्द को इस तरह से दर्शाया है–

gfj e|jk iho e gfj dh cgfj;k

x x x x x x x

^^gfj e|jk iho ekb] gfj e|jk iho

gfj fcu jfg u ld e|jk thoA^^[4]

इस प्रकार कबीर एवं सभी निर्गुण संतो ने इस बात का समर्थन किया है कि पति–पत्नी का प्रेम लज्जा का विषय नहीं है बल्कि हर्ष व आनन्द का प्रतीक है। इसमें कोई बुराई नहीं है। लगभग सभी निर्गुण संत कवियों ने पति–पत्नी प्रेम को ईश्वर की अनुभूति माना है।

ukjh dk ek;k :i& संत कबीर ने अपने वाणियों में माया को अनेक उपनामों से सम्बोधित किया है। कबीर कहते हैं यह पापिनी है यह महाठगिनी है। जो भक्त को हरि से मिलन में बाँधा डालती है। यह पूरा का पूरा संसार माया के फंदे में फंसा हुआ है। इसी प्रकार हाट–बाजार में अपना जाल फैलाये हुये है जिसके कारण समस्त संसार इसकी ज्वाला से भस्म हो रहा है। इस (माया) के प्रकोप से बचकर निर्गुण संत ही इसके सारे फंदो को काटकर सुरक्षित बच पाते हैं– कबीर कहते हैं–

^^dchj ek;k ikfi.kh] Qan ys cSBh gkfVA

lc tx rks Qan iM+;k] x;k dchjk dkfVAA

^^dchj ek;k eksguh] tSlh ehBh [kkaMA

lrxq: dh Ñik Hkb] ugha rks djrh HkkaMAA[5]

इसी तरह एक स्थान पर कबीर दास जी कहते हैं यह जो माया है यह सारे संसार को अपने मोह पाश में पूरी तरह से बाँध के रखे हुई है। यह मोहिनी शक्ति लोगों को मीठे गुण के समान प्रिय है। जिसका एक बार स्वाद ले लेने के बाद मनुष्य बार–बार उसी चीज की कामना करने लगता है। अतः कबीर दास कहते हैं कि जिसके ऊपर सतगुरु की कृपा हो जाती है, वह इन सब से परे हो जाता है।

dkfeuh :i e ukjh& निर्गुण संत कवियों का धर्म वैराग्य प्रधान था। त्याग और वैराग्य पर आधारित इन संतो के धर्म में नारी अपने आकर्षक कामिनी रूप में विशेष बाधक थी। बहुत कम लोग ही नारी के कामिनी रूप से बच पाते हैं। संतों ने नारी के कामिनी रूप की निन्दा कर इससे दूर रहने की बात कही है। त्याग, तपस्या व योगसाधना में बाधक नारी के भोग–विलासमय वासनापूर्ण स्वरूप की निन्दा की गयी। नारी के कामिनी रूप को संतों ने त्याज्य व घृणित कहा है; क्योंकि कामिनी का प्रभाव साधकों को साधना मार्ग से विचलित कर देता है।

संत कबीर कामिनी नारी के बारे में बताते हुए कहते हैं– कामिनी विष फल के समान है जिसे देखने से बहुत ही सुन्दर मन को मोह लेने वाला होता है। परन्तु संतों के अलावा कोई भी सांसारिक यह नहीं जानता कि कनक (धतूरा फल) और कामिनी को देखने से ही विष चढ़ जाता है तो उसे खाने के बाद या उसमें लिप्त होने के बाद वह मर ही जायेगा–

,d dud v: dkfeuh] fo"k Qy dh ,m ikbA

n[ks gh Fks fo'k p<S] [kk; ls efj tkbAA[6]

इस प्रकार नारी के कामिनी रूप की निन्दा एवं उसकी भर्त्सना कबीर व अन्य संतों द्वारा की गयी है। नारी के कामिनी रूप के प्रति आकर्षित होकर नर अपने कर्तव्य को भूलकर काम–वासना में लिप्त हो जाता है। संतों को नारी का काममूलक रूप केवल साधना मार्ग में प्रतीत न होकर सामाजिक मर्यादाओं में भी प्रबल घातक प्रतीत हुआ। इसी कारण संतों ने नारी के कामिनी रूप की निन्दा की है। संत कबीर ने स्त्री की जो निंदा की है वह दूसरी दृष्टि से की है। स्त्री से उनका अभिप्राय स्त्री कामवासनापूर्ण संसर्ग से है, न कि सम्पूर्ण स्त्री जाति से। संत कवि नारी से दूर रहने का उपदेश उन लोगों को देते हैं जो संत है साधक है, और उन लोगों को भी नारी से दूर रहने का आह्वान करते हैं जो लोग उसे केवल वासना और उपभोग की वस्तु समझते हैं, आदर की नहीं। संत कबीर गष्हस्थ जीवन व्यतीत करते हुए साधना

करते थे तथा समाज को एक नयी दिशा प्रदान कर रहे थे, तो वे नारी निंदक कैसे हो सकते हैं। उनका मुख्य उद्देश्य कामवासनापूर्ण स्त्री की निंदा करते हुए साधक और समाज के अन्य व्यक्तियों को चरित्र भ्रष्टता से बचाना था। संत कवियों के बारे में कहा जा सकता है कि वह आकृतिम, सहज एवं अनुभूतिजन्य हैं। आचरण की शुद्धता पर बल देकर एवं बाह्याडम्बरों का खण्डन करके उन्होंने समाज को एक नई दिशा दी। यहीं कारण है कि उनके काव्य में अनुभूति की सच्चाई एवं अभिव्यक्ति का खरापन है।

lUnHk %

1. कबीर ग्रन्थावली, डॉ0 श्याम सुन्दर दास, पृ0 61
2. वही, पृ0 62
3. कबीर ग्रन्थावली, संपा0– डॉ0 श्याम सुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ0 13
4. कबीर ग्रन्थावली, संपा0– पुष्पपाल सिंह, पृ0 133
5. कबीर ग्रन्थावली, डॉ0 श्यामसुन्दर दास, पृ0 73
6. उत्तरी भारत की संत परम्परा, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, प्रकाशन– साहित्य भवन इलाहाबाद, पृ0 172

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 345-347

—"kd thou dh =klnh vkj dfo ukxktZu

Mk- lqjsUnz izrki flag*

नागार्जुन एक ऐसे कवि हैं जिनकी कविताओं में पीड़ित और शोषित किसानों के प्रति गहरे लगाव महसूस किये जा सकते हैं। नागार्जुन का जन्म एक अत्यन्त निर्धन कृषक परिवार में हुआ था।

नागार्जुन गरीबों एवं शोषितों के हिमायती कवि माने जाते हैं। उनकी अधिकतर कविताएँ कृषक एवं श्रमिक वर्ग की कठिनाईयों से जुड़ी हैं। नागार्जुन का दुःख व्यक्तिगत दुःख नहीं है, बल्कि वह समष्टिगत है, यही एक सच्चे कवि की पहचान भी है। नागार्जुन देश के दीन–हीन किसानों की विषम स्थितियों का विवेचन इस प्रकार करते हैं –

^^cht ugha gS cSy ugha gS] cj[kk fcuq vdqykrs gSa @ugj jsr c< x;k [ksr esa ikuh ugha iVkrs gSa@ugha [ksr esa dudk Hkj Hkh nkuk mitk ikrs gSa@fiNyk dtZ pqdk u ldsa] lkgw dh f[kM+dh [kkrs gSaA**[1]

किसानों की स्थिति इतनी दयनीय है कि उन्हें दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं हो पाती है। वे पैसे के अभाव में बीज–खाद नहीं खरीद पाते हैं। अन्न की पैदावार भले न हो लेकिन उन्हें मालगुजारी अवश्य देना पड़ता है। नागार्जुन में अपने समय के यथार्थ को पहचानकर किसानों की समस्या को अपनी लेखनी का विषय बनाया है।

भारत एक कृषि एक प्रधान देश है। इसके बावजूद भारतीय कृषकों की स्थिति काफी सोचनीय है। सामन्त एवं जमीदार कृषकों को हर तरह से शोषण करते हैं। किसान जीवनपर्यन्त कर्ज के बोझ में डूबा रहता है, अभाव में जीवन व्यतीत करना मानों उनकी नियति बन गयी हो। नागार्जुन भारतीय किसानों की वास्तविक स्थिति का चित्रण अपनी कविताओं के माध्यम से इस प्रकार करते हैं –

^^ugha Hkkfe esa du Hkj Hkh nkuk mitk ikrs gSa@fiNyk dtZ pqdk u ldsa] lkgw dh f[kM+dh [kkrs gSa@mruk gh Qlyr] viuk dks ftruk vf/kd cpkrs gSa @Hkk[kk jgdj (vk/kk [kkdj fnu ij fnu ncjkrs gSaA**[2]

नागार्जुन मूलतः गाँव के कवि हैं। उनके बावजूद शहर के मजदूरों के लिए उनकी किसान की सी सहृदयता का काबिलेतारीफ है। नागार्जुन समाज के उपेक्षित व्यक्तियों के अभावों का अवलोकन कराकर चुपचाप बैठने वाले कवि नहीं हैं। वे समाज के दीन–हीन दुखियों में शक्ति का संचार भी करते हैं। वे अपनी कविताओं में किसान के पेट न भर पाने की स्थिति का चित्रण इस प्रकार करते हैं –

^^>B&eB lqtyk&lqQyk dks xhr u vc ge xk;saxs]@Hkkr&nky rjdkjh tc rd ugha isV&Hkj ik,saxs (@× × × × × ×tehankj gSa cngokl] geus mudks yydkjk gS]@ftldk tksxj mldh /kjrh] ;gh ,d cl ukjk gSaA**[3]

इस कविता में एक तरफ किसानों की विषमता का चित्रण किया गया है तो दूसरी तरफ किसानों द्वारा जमींदारों को ललकारना भी दिखाया गया है।

नागार्जुन स्वयं एक किसान परिवार में पैदा हुए थे, इसलिए उनकी सहानुभूति किसानों के साथ थी। नागार्जुन ने एक कविता में गरीबी की मार झेलते किसान की संवेदना के साथ स्वयं को जोड़ा है –

cU/kq ejs ikl Hkh ;fn@cki&nknk dh mikftZr Hkkfe gksrh@/kku gksrk c[kkjks e@vkt dVgy & yhfp;ks dk ckx gksrs@ik[kjk gksrk eNfy;ksa ls Hkjk@fQj D;k u esa Hkh ;kn djs@iSFke] f}rh; ;k r`rh; ¼i`;l h½ dkA**

*असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

भारतीय किसान भारतीय समाज का मेलदण्ड है। इसके बिना पूरा भारतीय जनमानस अधूरा जान पड़ता है। यह किसान भारतीय जनमानस की समृद्धि एवं खुशहाली का आधार बिन्दु है। जो अपने श्रम से अन्न उगाकर भारतीय जनमानस का भरण – पोषण करता है। नागार्जुन अपने साहित्य में श्रमशील समाज को विशेष महत्व देते हुए इस प्रकार लिखते हैं –

^^e /kjrh dk l;kjk f'k'k g@Je gh ftldh viuh ith@Ny l ftldk lgt ?k.kk g@e rk og dPNh fdlku gA**[4]

नागार्जुन ऐसे कवि के रूप में ख्यात हैं, जो अपनी बात को सहज एवं सीधे ढंग से पाठकों तक संप्रेषित करते हैं। भारतीय कृषक सर्वत्र दुःखों से घिरा हुआ है। नागार्जुन की कविताओं में किसान जीवन का सच पूरी सच्चाई के साथ मुखरित हुआ है –

^^ink gvk Fkk e &@nhu&ghu&vifBr fdlh –"kd dy e@vk jgk g ihrk vHkko dk vklo BB cpiu l@dfo e : id g nch g;h nc dk@gjk gvk ugh fd eju nkMr !!@thou xtjrk ifriy l?k'k e !@× × × ×/ejk {kn 0;fDrRo@#n g lhfer g&vkVk&nky&ued&ydMh d txkM eA**[5]

उपर्युक्त कविता में कवि ने आत्म कथन के माध्यम से कृषक जीवन की बदहाली का चित्रण किया है। भूख की पीड़ा नागार्जुन की कविताओं में बारम्बार चित्रित हुयी है।

जमींदार किस प्रकार से श्रमिक वर्ग पर अत्याचार करते हैं इसका चित्रण नागार्जुन की कविताओं में हुआ है। देश में जमींदारी प्रथा लागू हो जाने के बाद किसानों को उनकी जमीन से बेदखल कर दिया गया, जिससे किसान मजदूर बनने को विवश हो पड़े। इस प्रकार किसानों की स्थिति बद से बदतर हो गयी है। 'संत बिनोबा' कविता के माध्यम से कवि ने किसानों के दुःख दर्द को इस प्रकार प्रकट किया है –

^^dgk x;k tehnkjh mUeyu dk Qeku@Nhu tk jg xkNh & xkpj & ik[kj vkj 'e'kku@@Xkko & xko e yV eph g Hkjk cu yBrA**[6]

जमींदार अपने बल पर श्रमिक वर्ग का निरंतर शोषण करते रहते हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में जनता के कल्याण हेतु अनेक योजनाएँ चलायी गयी, लेकिन दुःख है कि सारी योजनाएँ सिर्फ कागजों की शोभा बढ़ाती रही। इसके कारण श्रमिकों के जीवन में कोई सुधार नहीं हुआ। कृषकों एवं श्रमिकों की वर्तमान स्थिति के लिए भ्रष्ट राजनेताओं एवं जमीदारी प्रथा को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। 'स्वदेशी शासक' कविता के माध्यम से नागार्जुन ने शोषण की स्थिति का यथार्थ अंकन किया है –

^^D;k fcxMxk vth rEgkjk !@vkek dh xBfy;k pldj@× ×× ×/[kk yr g ykx] iM dh Nkyk dk rheu curk g@Mkdk & flrvk ?kk?kk ?k?kph dMgj & lk#[k ?kkl ikr & MBy & dk<h Qy & Qy@gekjh turk dh Hk[kh vkrk dk dc rd Fkke \ × × × ×/'kh?k efDr nk bl 'k[k l@tgk u Hkjrk iV] n'k og dlk Hkh gk] egkujd gA**[7]

नागार्जुन मूलतः जनांदोलनों के कवि हैं। आजादी से पहले तो लगभग पूरी हिन्दी कविता मुक्ति आन्दोलन से जुड़ी थी, परन्तु आजादी के बाद आ रहे परिवर्तनों पर सबसे पहले नागार्जुन का ध्यान जाता है।

नागार्जुन ने सन् 1942 में स्वयं कृषक आन्दोलन का नेतृत्व किया। किसान मजदूर के पक्ष में खड़े होकर वे किसानों को जगाने का प्रशंसनीय कार्य करते हैं –

^^gkf'k;kj (dN nj ugh g yky lojk vku e]@yky Hkokuh idV gb g luk g fd rlyxku e**AA[8]

नागार्जुन का श्रमिक वर्ग से जुड़ाव एवं लगाव जग जाहिर है। श्रमिक वर्ग से जुड़ाव ही उनकी कविताओं का ताजगी का प्रमुख कारण हैं। शिवकुमार मिश्र के विचार इस सन्दर्भ में सार्थक जान पड़ते हैं। उनका मानना है ''नागार्जुन किसी कोण से वासी नहीं है, उनकी भाषा, उनकी कल्पना, उनकी अनुभूतियाँ तथा उनके विचार खिले टटके फूलों की तरह ताजें हैं क्योंकि जनता को जीवन से अपने निरंतर लगाव के तहत नागार्जुन को वह अक्षय जीवन रस प्राप्त होता है जो उन्हें तथा उनकी रचना को निरंतर तरो ताजा रखता है।''[9]

आजादी के बाद की यथार्थ परक पृष्ठभूमि को नागार्जुन ने बड़ी बेबाकी से प्रकट किया है। उनका मानना है कि आजादी के कितने वर्ष बीत जाने के बाद भी हमारे देश के सच्चे अन्नदाता दाने – दाने के लिए तरस रहा है ? इनके दुःख को कवि ने एक कविता में इस प्रकार व्यक्त किया गया है –

^thHk dVh gS Hkkjrekrk epk u ikrh 'kkj@nq[kk /kSlh&/kSlh eS vk[k] fipdk&fipdk xky@dku jgxk] vktknh dh chrh rhjg lky \ @yk[k & yk[k Jfedk dh xnu dku jgk gS jgr \ **10

नागार्जुन की मैथिली कविताओं में भी किसान जीवन के संघर्ष, दुख और करुणा की मार्मिक अभिव्यक्ति हुयी है। हिन्दी की तुलना में उनकी मैथिली कविताओं में प्रतिरोध के स्तर ज्यादा सघन और सूक्ष्म है। नागार्जुन की कविताओं में शोषितों के प्रति अपार प्रेम एवं लगाव दृष्टिगोचर होता है तो शोषकों के प्रति आक्रोश भी। कृषक एवं श्रमिक वर्ग की दयनीय स्थिति को देखकर कवि का मन विह्वल् हो उठा है। 'पक्षधर' कविता में कवि ने शोषितों को शोषण के प्रति एक साथ खड़े होने का आग्रह करते दिखते हैं –

^rk mBk &@Eku vkj ru dh leph rkdr yxkdj@fo?u & ck/kk d igkMk dk fxjk nk] <kg nk !@× × × ×/[kkndj dj fuely dj nk nk dVdk or >kfM;k dk !@jkg e jkM iM gS vfer & vxf.kr --------------------@mUgh ls vUrjky xgoj ikV MkykA**11

नागार्जुन जटिल से जटिल स्थितियों को सहज से सहज ढंग से व्यक्त करने के हिमायती है। नागार्जुन की कविता नये कर्म सौन्दर्य की कविता है। यह एक ऐसी कविता है जो सुन्दर दुनिया की रचना में श्रमिक और बौद्धिक दोनों के श्रम– सौन्दर्य की हिमायती है।

नागार्जुन सच्चे अर्थों में एक संवेदनशील एवं जागरूक कवि हैं। नागार्जुन की कविताओं के गहरी पड़ताल करने पर यह बात स्पष्ट होती है कि नागार्जुन किसानों एवं गरीबों के पक्षधर कवि रहे हैं, जो निरन्तर उनके दुःखों एवं समस्याओं के निदान के हिमायती रहे हैं। उनकी अधिकांश कविताओं में कृषकों एवं श्रमिकों की समस्याओं तथा कठिनाइयों की मुखर अभिव्यक्ति हुयी है। इनकी कविताएँ आमजन से जुड़ी हैं। नागार्जुन ने कविताओं में अनेक प्रयोग किये हैं। तुलसी के बाद नागार्जुन ऐसे कवि हैं जिनके कविता की पहुँच किसानों के चौपाल से लेकर काव्य–रसिकों की गोष्ठियों तक है। अपने समकालीन कवियों में जमीनी हकीकत से जुड़ा ऐसा क्रान्तिकारी दूसरा कवि नहीं है जो किसानों के दुःख दर्द को इतनी संजीदगी से व्यक्त किया हो।

lUnHkZ %&

1. हजार–हजार बाहों वाली, नागार्जुन, पृ0 51।
2. नागार्जुन रचनावली – 2 शोभाकान्त (संपा0), पृ0 230।
3. नागार्जुन रचनावली – 1, शोभाकान्त (संपा0), राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण : 2013, पहली आवृत्ति : 2011, पृ0 100।
4. नागार्जुन रचनावली – 2, शोभाकान्त (संपा0), राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण : 2013, पहली आवृत्ति : 2011, पृ0 370।
5. नागार्जुन रचनावली – 2 शोभाकान्त (संपा0), राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण : 2013, पहली आवृत्ति : 2011, पृ0 31।
6. वही, पृ0 227।
7. वही, पृ0 194।
8. वही, पृ0 100।
9. दर्शन साहित्य एवं समाज, शिव कुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2000, पृ0 01।
10. नागार्जुन रचनावली – 1, शोभाकान्त (संपा0), राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण : 2013, पहली आवृत्ति : 2011, पृ0 337।
11. नागार्जुन रचनावली – 1, शोभाकान्त (संपा0), राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण : 2013, पहली आवृत्ति : 2011, पृ0 167।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 348-351

efgyk dFkk y£u vkj L=h thou dk ;FkkFk

fot; d|ekj j:tu*

प्राचीन युग से वर्तमान समय तक भारत में स्त्रियों की स्थिति परिवर्तनशील रही है। हमारा समाज प्राचीन काल से आज तक पुरुष प्रधान ही रहा है। ऐसा नहीं है कि स्त्रियों का शोषण सिर्फ पुरुष वर्ग ने ही किया, पुरुष से ज्यादा तो एक स्त्री ने दूसरी स्त्री पर अत्याचार किया है। पुरुष की उदंडता, उच्छृंखलता और अहम के कारण या स्त्री की अशिक्षा, विनम्रता और स्त्री सुलभ उदारता के कारण उसे प्रताड़ित, अपमानित और उपेक्षित होना पड़ा। इतिहास में भारतीय स्त्रियों की स्थिति प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक कैसी रही है, इसकी चर्चा हम आगे करेंगे। रायबर्न के अनुसार– ''स्त्रियों ने ही प्रथम सभ्यता की नींव डाली है और उन्होंने ही जंगलों में मारे–मारे भटकते हुए पुरुषों को हाथ पकड़कर अपने स्तर का जीवन प्रदान किया तथा घर में बसाया।'' भारत में सैद्धान्तिक रूप से स्त्रियों को उच्च दर्जा दिया गया है, हिन्दू आदर्श के अनुसार स्त्रियाँ अर्धांगिनी कही गयी है। मातृत्व का आदर भारतीय समाज की विषेशता है। संसार की ईश्वरीय शक्ति दुर्गा, काली, लक्ष्मी, सरस्वती आदि नारी शक्ति, धन, ज्ञान का प्रतीक मानी गयी है तभी तो अपने देश को हम भारत माता कहकर अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं। युग सापेक्ष दृष्टि से भिन्न–भिन्न युगों में स्त्रियों की दशा निरंतर परिवर्तनशील रही है।

स्त्री की चाहत क्या है ? वह अभी तक अस्पष्ट इसलिए है क्योंकि कुछ भी अपनी इच्छानुसार चाहना उसके लिए सर्वथा एक अनजाना एहसास है। इस सृष्टि में स्त्री ही एकमात्र ऐसी जाति है जो हजारों लाखों वर्षों से पराधीन है। ''इसलिए स्त्री को 'अन्तिम उपनिवेश' कहा गया है।''[1] जैसा कि कोई भी उपनिवेश अचानक से एक दिन में नहीं तोड़ा जा सकता। एक लम्बे संघर्ष के पश्चात उपनिवेश की पकड़ कुछ ढ़ीली पड़ती है। पश्चिम में जहाँ स्त्रियों की एक बड़ी संख्या स्वतंत्रता और समानता के प्रत्येक पहलू का अनुभव कर रही हैं, वे अब पूर्व की भाँति रहस्यपूर्ण नहीं रहीं। उनकी स्वतन्त्रता का यथार्थ वैसा ही नग्न है जैसा कि वहाँ के पुरूष। वैश्विक जगत में उदारीकरण, भूमण्डलीकरण की घटनाओं ने जैसे–जैसे अपने बहुआयामी प्रभाव से लगभग प्रत्येक चीजों को प्रभावित किया, इससे स्त्रियाँ भी अछूती नहीं रहीं। इसका असर केवल पश्चिम में ही नहीं हुआ बल्कि हमारे भारतीय परिवेश में भी नारियों की स्थिति में काफी कुछ परिवर्तन हुआ। स्त्रियों की अस्मिता, स्वाभिमान और आत्मविश्वास को बढ़ाने हेतु स्त्री सशक्तिकरण के नारे बुलंद हुए।

महिला सशक्तिकरण को लेकर एक अलग और यथार्थवादी कथा का सूत्रपात श्याम जांगिड़ ने किया भारतीय परिवेश में। उनका मन्तव्य है– ''मेरा तो मानना है कि भारत में स्त्री का सम्मान यथायोग्य है। सामाजिक बनावट में सम्बन्धों की लम्बी कड़ियों के मुताबिक स्त्री का वर्चस्व बरकरार है। जहाँ गरीबी और अज्ञानता का अन्धकार है वहाँ की बात क्या करें ? वहाँ तो स्त्री–पुरुष दोनों पीड़ित हैं। सबसे अधिक स्त्री अशिक्षा मुसलमानों में है। जब तक मुस्लिम महिलाएँ शिक्षित नहीं होंगी उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझेगा।'' उनकी स्वीकारोक्ति इस बात में भी है कि – 'स्त्री पर होने वाले अत्याचारों में स्त्रियाँ भी आगे होती हैं'। अनामिका एक स्त्रीवादी लेखक हैं तथा उन्होंने इस लेखन की पक्षघरता को स्वीकार करते हुए स्पष्ट किया है कि स्त्रीवादी रचना की भाव–भाषा अलग है और महिला लेखिकाओं को उन्हें उसका श्रेय दिया जाना चाहिए। आज स्त्रीवाद लिबरल हो चुका है। उनका यह मानना है कि ''पक्षधरता ही स्त्री मुक्ति

*सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

का माध्यम बन सकता है। हाँ उसे घटनाओं को ध्यान में रखना होगा जिससे समाज का जीवन– प्रभावित हुआ। उनकी दृष्टि में वैयक्तिक आत्माओं का सामाजिक सन्दर्भीकरण ही स्त्री लेखन का लक्ष्य है। स्त्रीवादी लेखन उन्हीं से जुड़ा है जो संत्रस्त थे, पीड़ित थे या संत्रास, कुण्ठा, पीड़ा, दुःख आदि के जनक थे। वे यह भी स्वीकार करती हैं कि 20वीं सदी में स्त्रीवादी लेखन से सदियों से संत्रस्त नारी मुक्ति की सामूहिक भावना सामने आई।''[2] अब यह सर्वसम्मति से स्वीकार्य हो चुका है कि स्त्री और पुरुष दोनों का लेखन एक ही नहीं है।

स्त्री लेखिकाओं ने अपने लेखन में उन कारकों को प्रमुख रूप से अपना मुद्दा बनाया है, जिनमें वे सामाजिक, विसंगति पर चोट तथा पुरुषों के द्वारा किऐ जाने वाले अत्याचार, बलात्कार एवं लैंगिक भेद का खुलासा बेबाक और यथार्थवादी तरीके से करती हैं। उनके इस खुलेपन को साहित्य की भाषा में अश्लीलता की संज्ञा से नवाजा गया है। मैनेजर पाण्डेय साहित्य की अश्लीलता पर अपना विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि – ''अश्लीलता एक अर्थ में पुरुषवादी वर्चस्व को कायम रखने का माध्यम है। काम सम्बन्धों के बारे में स्त्री का अपना अनुभव, अपनी संवेदना और अपनी दषष्टि को न सिर्फ अस्वीकार किया जाता है बल्कि नैतिकता की दुहाई देकर इसका दमन भी किया जाता है।''[3] इस संबन्ध में सुधीश पचौरी ने एक अलग धारणा प्रस्तुत की है तथा 'पूँजीवाद' को केन्द्र में रखते हुए यह स्पष्ट किया है कि आज के दौर में स्त्री विमर्श और स्त्री लेखन तथा स्त्री की दशा के पीछे 'पूँजीवाद' ही मुख्य वजह है। इन्होंने 'एडवटीजमेन्ट' को भी मुख्य दोषी माना है इसे फैलाने में। ''स्त्री के नए उपकेन्द्र के समक्ष और प्रत्यक्ष होने को जिस चीज ने संभव किया है वह पूँजीवाद का नया रूप है जो हर मनुष्य को श्रमिक और उपभोक्ता बनाए दे रहा है।''[4]

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि स्त्री लेखन ने जिस यथार्थ को अपने अनुभव से संजोकर उसे व्यापकता और गहराई प्रदान की एक मानदण्ड है। लेखन के स्तर पर चाहे जो भी स्वीकृति या अस्वीकृति रही हो, लेकिन इस द्वन्द्व से उभरकर स्त्री लेखिकाओं ने खुद की एक अलग पहचान बनाई है। बदलते समय के साथ स्त्रियों के लोक में भी परिवर्तन हुआ है। स्त्रियों के द्वारा जिस लोकापेक्षी समाज का सपना देखा गया वह कितना सच है इसकी पड़ताल उनके द्वारा किए जा रहे लेखन से करना समीचीन होगा।

तत्कालीन समय में जिन स्त्री–कथाकारों ने अपनी लेखनी से आज के बनते–बिगड़ते लोक को अपनी कहानियों में पकड़ने की सफल कोशिश की है, उन सभी का एक–एक करके नाम गिनाना असंभव तो नहीं लेकिन दुरूह कार्य अवश्य है। अतः कुछ कथा लेखिकाओं की महत्वपूर्ण कहानियाँ जिनमें स्त्री के बनते–बिगड़ते लोक का उद्घाटन हुआ है उनका विश्लेषण किया जा रहा हैं।

कहानी लेखन में मैत्रेयी पुष्पा का नाम काफी चर्चित है। उन्होंने स्त्री के उस स्वरूप को उद्घाटित किया है, जिसमें स्त्री अपने नग्न यथार्थ तथा खुद के आन्तरिक व्यक्तित्व के साथ उपस्थित है। 'ललमनिया' कहानी में कुछ इसी तरह का वर्णन है। कथानायिका ललमनिया द्वारा विवाह के अवसर पर लोकप्रचलित नृत्य की अद्भुत प्रस्तुति के कारण एक युवक द्वारा जीवन साथी के रूप में स्वीकार कर ली जाती है। लेकिन युवक के घर वाले उसे अपनाने से मना कर देते हैं। इस स्थिति में उसे खुद का और उसकी दूधमुही बच्ची का जीवनयापन स्वयं करना पड़ता है। एक लम्बे समयान्तराल के बाद जब उसका पति उसके सामने आता है एक अजीब से प्रस्ताव के साथ (नए विवाह के लिए) तब कथानायिका एक विकल्पहीन स्थिति में पहुँच जाती है।

इन्दिरा राय की कहानी 'पल भर का सच' एक सामान्य सी कहानी है। जिसकी नायिका यह जानकर कि उसका पति उसे संतान देने में असमर्थ है, वह बच्चे की किलकारियों की लालसा में अपना शरीर अपने जीजा को सौंप देती है। कहानी का नायक अनिल पत्नी के कोख की सम्पन्नता से चकित होता है और अपनी असमर्थता से परिचित होने के बावजूद अंत में निर्णय करता है कि – '' क्या होगा डॉक्टर के पास जाकर। कहीं अमृत के स्थान पर हलाहल निकल आया तो ? परिणाम के भयावह आतंक

से निकलकर थके अनिल को यह लगा कि संगीता का प्रेम भरा आमंत्रण ही इस पल का सबसे बड़ा सच है।'' यहाँ इस मानसिकता पर जोर दिया गया है कि नारी सब कुछ सह सकती है, पर अपने कोख के सूनेपन को सहन नहीं कर पाती। इन्दिरा राय ने स्त्री के अन्तर्मन के इस कमजोरी को बड़े ही संजीदगी और यथार्थ ढंग से प्रस्तुत किया है।

महाजन की कहानी 'एंटीक' गोगी नामक एक लड़की की जीवनगाथा की कथा–व्यथा को स्वर देती है। आज के भागम–भाग और चकाचौंध के दौर में प्यार और परिवार की युवा–वर्ग के मन में कोई कीमत नहीं है। कैरियर पहली चीज है बिना इसके जिन्दगी का कोई महत्व नहीं। समाज में आ रहा इस तरह का बदलाव कितना सही है, कितना गलत ये तो भविष्य ही तय करेगा, लेकिन एक बात तो जरूर है कि आज के युवा वर्ग को शान्ति नसीब नहीं है।

उर्मिला शिरीष की कहानी 'चीख' समाज में व्याप्त एक घृणित समस्या को सिद्दत से उठाती ही नहीं है, बल्कि उसे एक सकारात्मक अंत तक भी ले जाती है। यह कहानी एक ऐसी लड़की की कहानी है, जो बलात्कार का शिकार होती है पर मानसिक यंत्रणा के दौर से गुजरती है। वह अपने माँ–बाप, भाई–बहन, समाज तथा स्वयं को झेलती नजर आती है। परन्तु कहानी के अन्त में वह डाक्टर शोभना के समझाने पर एक नई उमंग के साथ समाज के साथ टकराने को कुछ करने को और कुछ बनने की इच्छा शक्ति से उठ खड़ी होती है।

स्त्री–विमर्श की चर्चित कहानीकार के रूप में सुधा अरोड़ा भी एक हस्ताक्षर हैं। इनकी कहानी 'सुजाता तनेजा की जिन्दगी का आखिरी दिन' अति–संवेदनशील है। बंगाल में होने वाली शादी की रस्मों से भरी हुई यह कहानी सुजाता की शादी को एक बोझ के रुप में स्वीकार करती है, जिसे उन्होंने दूसरे को सौंप दिया। इस कहानी में इस सच को भी सिद्ध करने की कोशिश की गई है कि लड़कियों की जिन्दगी वहीं तक होती है, जब तक वह माता–पिता के छाँव में पलती–बढ़ती हैं। विदाई के समय सुजाता का पथराया हुआ चेहरा इस बात का प्रमाण देता है कि लड़कियों की जिन्दगी हर एक के लिए बोझ बन जाती है।

लवलीन की कहानी 'चक्रवात' आज के आधुनिक स्त्री–पुरुष का प्रहार है। इस कहानी के माध्यम से लवलीन ने पुरुष तथा स्त्री के बीच यौन–आकर्षण का रेखांकन किया है। आज के समाज का पुरुष दूसरी स्त्री के प्रति आकर्षित होकर उससे यौन संबन्ध तो बनाता है, पर वह अपनी पत्नी से डरता भी है। कहानी का नायक रणजीत इसी तरह अपनी दोस्त कीर्ति से संबन्ध बनाता है। कीर्ति यह मानती है कि यह वासना का जलजला था जिसमें दोनों बह गये। वह इतना भी नहीं समझ पाती कि उसकी हार हुई है या जीत। वह कहती भी है– ''मैं उन्हें बहुत प्यार करती हूँ, बहुत चाहती हूँ।''[5] वह रणजीत की पत्नी सुमन से डरती भी है।

क्षमा शर्मा स्त्री–विमर्श की एक चर्चित कथाकार हैं। 'लव स्टोरी' इनकी बहु–चर्चित कहानी है, जिसमें आज के लोक, समाज और जन–मानस की संवेदनाओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। महानगर के जीवन पर आधारित बस ड्राइवर के साथ ही दिलीप ताहिर के विचारों को अभिव्यक्त करती हुई कहानी है। वह नारी जगत की असलियत को उजागर करते हुए कहता है कि ''पछताना क्या है ये औरतें जो अंदर बैठती हैं ना दस–दस यार रखती हैं। जब हम–तुम जैसों को ये यार बनाने को तैयार हैं, सिर्फ बैठने के लिए, तो और किसी के साथ तो क्या न करती होंगी? इनमें और रंडियों में क्या फर्क है।''[6]

दूर्वा सहाय की कहानी 'बोध'[7] यह दर्शाती है कि हम पाश्चात्य संस्कृति के चक्कर में धोखा खा गए। कहानी के एक सफर का दृश्य प्रस्तुत किया गया है जिसमें कथा नायिका जेस्सी की अनुदशा का चित्रण भी है, जो सफर के दौरान एक विदेशी परिवार में रूचि लेती है। इनकी एक दूसरी कहानी 'प्रेत–मुक्ति'[8] पारिवारिक त्रासदी के भंवर में फँसे व्यक्ति के मनःस्थिति के बारीक रेशों से बुनी हुई है। उसके व्यक्तित्व में, प्रेम– प्रसंग में हुई असफलता और रेल के आगे आयी औरत के अपराध बोध से गिरा या ध्वंस–मानस है। कोई भी तत्व अलग–थलग नहीं जो नायक के व्यक्तित्व का निर्माण करे।

नासिरा शर्मा की कहानी 'एक दूसरा कबूतर'[74] संवेदना को उभारने में सफल है। यह मुस्लिम सम्प्रदाय की बहु–विवाह प्रथा की खामियों, त्रासदियों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती है। पुरुष अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए हमेशा स्त्रियों का शोषण करता आया है और कबूतर की तरह उसकी निरीहता का दोहन भी करता है। सारा राय की कहानी 'बारिश'[75] अपने परिवेश का चित्रण प्रस्तुत करती है। मल्का का पति माजिद सत्रह वर्ष पहले कहीं चला जाता है। मल्का तो उसकी प्रतीक्षा नहीं करती किन्तु वर्षा की एक रात माजिद वापस आता है, जिसकी जानकारी मल्का को पहले से हो जाती है। वह अपनी नौकरानी पन्ना को सुबह ही बता देती है कि आज सत्रह साल बाद सरकार घर आ रहे हैं, और माजिद घर पहुँचता है। वही जिन्दगी जीने के लिए जो उसे दी गई थी। यह भी स्त्री विमर्श के उस नए आयाम को साबित करती है कि जो पतियों से प्रायः पत्नी को सौगात मिलती है। पत्नी को दुःख पहुँचाता है। स्वयं सुख की तलाश में वह भटकता है पर सुख नसीब नहीं होता। सुख मिलता है, उसे परित्यक्ता की गोद में ही।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि अपनी रचनाओं में स्त्री कथाकारों के द्वारा स्त्री लोक के जिस पक्ष का उद्घाटन किया गया है, वह पुरुष वर्चस्ववादी सत्ता के खिलाफ है या स्त्री सशक्तिकरण को वैचारिक आधार प्रदान करने वाला विचारणीय प्रश्न है।

I UnHki %

1. राजकिशोर,स्त्री के लिए जगह, पृ0– 5
2. आलोचना, अप्रैल–जून, 2002, पृ0– 113–115
3. हंस, नवम्बर–दिसम्बर, 1994, पृ0– 28
4. हंस, नवम्बर–दिसम्बर, 1994, पृ0– 34
5. हंस, अगस्त, 1996, पृ0– 23
6. हंस, नवम्बर–दिसम्बर, 1994, पृ0– 20
7. हंस, अगस्त, 1984
8. हंस, अगस्त, 2000

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 352-354

वैदिक कालीन संस्थाएँ सभा और समिति का अवलोकन

डॉ0 अनिल कुमार यादव*

वैदिक काल का इतिहास हमें मुख्यतः वेदों से ज्ञात होता है जिसमें ऋग्वेद सर्वप्राचीन होने के कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। विकास की प्रारंभिक स्थिति में प्रत्येक ग्राम प्रायः स्वतंत्र रूप से अपना प्रथक–प्रथक प्रबंध करता था सर्वसाधारण विषयों को तय करने के लिए ग्राम–निवासियों ने अपनी एक प्रबंधकारिणी स्थानीय संस्था बना ली थी जो सभा के नाम से विख्यात हुई कालांतर में जब राज्यों की स्थापना हुई और प्रत्येक राज्य के अंतर्गत अनेक ग्राम आ गए तो सार्वजनिक विषयों की देखभाल करने के लिए एक केंद्रीय प्रशासनिक संस्था की स्थापना हुई जो 'समिति' कहलाई।

अथर्ववेद[1] में एक स्थान पर पहले सभा का, फिर समिति का और सबसे बाद में मंत्रणा का उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद में सभा का उल्लेख आठ बार मिलता है। यह चुने मानवों की एक स्थायी संस्था थी। लुडविग का विचार है कि सभा उच्च सदन थी जिसमें पुरोहित और कुलीन लोग भाग लेते थे[2]। इसके सदस्य को सुजात अर्थात कुलीन कहा गया है। सभा एक संसद के रूप में कार्य करती थी, वाद–विवाद और चर्चा के द्वारा राजकाज निपटाते थे। सभा का प्रधान 'सभापति' कहलाता था उसके रक्षकों को 'सभापाल'[3] और उसके सदस्यों को सभेय, सभासद या सभासीन कहा का जाता था। काशी प्रसाद जायसवाल ने इस तथ्य का समर्थन किया है। कि सभा की बैठकों में भाग लेने वाले राज्य के प्रभावशाली एवं ज्येष्ठ मानव हुआ करते थे, जिन्हें समाज तथा राजनीति में विशेष सम्मान एवं वैभव प्राप्त था।[4]

ऋग्वेद में समिति का नौ बार उल्लेख मिलता है समिति एक महान सामूहिक संस्था थी।[5] जिसमें संपूर्ण जनता का प्रतिनिधित्व होता था। इस प्रकार यह सर्वसाधारण की संस्था थी। काशी प्रसाद जायसवाल ने इसी संदर्भ में कहा कि समिति एक प्रकार से राष्ट्रीय सभा थी, क्योंकि राजा का चुनाव इसी के द्वारा होता था। लुडविग के अनुसार समिति की तुलना वर्तमान में लोकसभा से की जा सकती है जहां जनसाधारण का प्रतिनिधित्व होता था।राजा का कर्तव्य प्रजा की रक्षा करना था। सभा और समिति नामक दो संस्थाएं राजा की निरंकुशता पर नियंत्रण रखती थी।

संभवतः राष्ट्र के अंतर्गत सब ग्रामों के ग्रामणी उसमें सम्मिलित होते थे, और साथ ही विशः के कतिपय प्रमुख व्यक्ति–सूत्र,रथकार व अन्य शिल्पी आदि भी उसमें उपस्थित होते थे। राजा भी समिति में उपस्थित होता था। समिति के पति (अध्यक्ष) को ईशान कहते थे। अथर्ववेद से यह पता चलता है कि महिलाएं भी इसमें शामिल होती थी।[6] अथर्ववेद के अनुसार समिति का महत्वपूर्ण कार्य राजा का निर्वाचन करना था। यह पदच्युत भी कर सकती थी एवं अन्य व्यक्ति को राजा के रूप में चुनाव कर सकती थीं। राजकीय प्रश्नों पर विचार करना समिति का ही कार्य था। समिति का अन्य महत्वपूर्ण कार्य व्यवस्थापिका संबंधी माना गया है। समिति में विभिन्न समस्याओं पर विचार एवं बहस होता था तथा इसी दौरान हाथापाई की भी नौबत आ जाती थी।[7] इसलिए ऋग्वेद में वर्णन मिलता है कि समिति की कार्यवाही सौहार्दपूर्ण हो।

वैदिक साहित्य में सभा–संबंधी जो वर्णन मिलता है उनसे भी अधिकांशतः सभा का ग्राम– संस्था होना सिद्ध होता है एक स्थान पर सभा की वार्ता का विषय गाय और उनकी उपयोगिता है।[8] ऋग्वेद की एक ऋचा में सभा को पासा और जुआ खेलने का जमाव कहा गया है।[9] इससे स्पष्ट होता है कि

*असि0 प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, पुरातत्व, संस्कृति विभाग, पी0जी0 कालेज, पट्टी, प्रतापगढ़

विचार–विमर्श के अतिरिक्त सभा ग्राम–निवासियों द्वारा सामूहिक नृत्य, संगीत, आदि क्रीड़ाओं के स्थल के रूप में मनोरंजन का केंद्र भी होती थी। सभासद सभा में रथ पर आरूढ़ होकर जाते थे।[10] सभा के संचालन के विषय में बाकायदा नियम बने हुए थे और वाजसनेयी संहिता में कहा गया है कि गलती करने वाले सदस्यों की (आलोचना) की जाती थी ऐसा प्रतीत होता है कि सभा न्यायालय की तरह कार्य करती थी यह कहा गया कि जो सभा में उपस्थित होता है[11] वह न्यायालय की तरह न्याय प्रदान करने के लिए बैठता है अतः सभा की तुलना आधुनिक न्यायालय से की जा सकती है। डॉ0 काशी प्रसाद जायसवाल[12] ने भी सभा को राष्ट्रीय न्यायपालिका के समान बताया है। सभा दंड–विधि का अंतिम सभा थी। अथर्ववेद[13] में सभा को 'नरिष्ठ' कहा गया है जिसकी व्याख्या सायणाचार्य ने इस प्रकार की है–''जहाँ बहुमत से लोग एकत्र होकर एक बात कहे,उसका उल्लंघन दूसरों को नहीं करना चाहिए। क्योंकि यह 'अनितलंध्य' होती है, इसी कारण इसे 'नरिष्ठ' कहते हैं। सभा के नरिष्ठविशेषण से यह स्पष्ट है कि इस के निर्णय का अतिक्रमण कर सकना कदापि संभव नहीं था ऋग्वेद[14] में सभा का एक विशेषण 'किल्विष–स्पृत्' दिया गया है जिसका अर्थ है पाप या अपराध का परिमार्जन करने वाली। सभा में न्याय करते हुए उनके सभासदों द्वारा कदाचित् अन्याय या पाप हो जाने की संभावना भी बनी रहती थी। इसलिए यजुर्वेद[15] में मंत्र द्वारा ''सभा में किए गये पाप'' से मुक्ति की प्रार्थना भी की गई है। यह राजनैतिक, प्रशासनिक कार्यों के साथ न्यायिक कार्य की संपन्न करती थी इसकी तुलना आधुनिक राज्यसभा से की जा सकती है।समिति एक केंद्रीय राजनीतिक संस्था थी। ऋग्वेद में एक स्थान पर एक राजा समिति के सदस्यों से कहता है कि ''मैं तुम्हारा विचार और तुम्हारी समिति स्वीकार करता हूँ।[16] वैदिक काल में जीवन के विभिन्न कार्यकलापपृथक–पृथक संस्थाओं के अंतर्गत नहीं होते थे। ये किसी एक संस्था के अंतर्गत ही राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक कार्य समान रूप से संपादित हो सकते थे। यही कारण है कि ऋग्वेद में हम समिति के अंतर्गत राजनीतिक कार्यों के अतिरिक्त सामाजिक कार्यों के संपादित होने का भी आभास पाते थे।[17] समिति राज की केंद्रीय संस्था प्रतीत होती थी। अथर्ववेद में एक स्थान पर उल्लेख है कि ब्राह्मण–समिति का अपहरण करने वाले राजा को समिति का सहयोग नहीं मिलना चाहिए।[18] दूसरे स्थान पर राजा के लिए समिति के चिर सहयोग की शुभकामना प्रकट की गई।[19] समिति के निर्णय भी वाद–विवाद के पश्चात ही होते थे। प्रत्येक व्यक्ति समिति के बाद वाद–विवाद में ख्याति प्राप्त करने का इच्छुक रहता था। समिति की कार्यवाही केवल राजनीतिक विषयों तक ही सीमित नहीं थी।[20] उत्तर– वैदिककाल में इसमें दार्शनिक प्रश्नों की भी चर्चा होती थी। जब श्वेतकेतु ने विद्यार्जन के बाद पूरे दार्शनिक साहित्य का ज्ञाता होने का दावा किया तो वह पंचालोंकी समिति के समक्ष प्रस्तुत हुआ। पंचालों की जनसभा के अध्यक्ष राजा प्रवहण जाबालि ने उससे पांच दार्शनिक प्रश्न किए जिनमें से किसी का भी उत्तर वह नहीं दे सका। इस पर जाबालि ने कहा कि 'इन प्रश्नों का उत्तर न देने वाला कोई भी व्यक्ति यह कैसे कह सकता है कि उसकी शिक्षा पूर्ण है।[21] समिति का संबंध धार्मिक अनुष्ठानों और प्रार्थनाओं से भी था। समिति में सभी एकमत होकर निर्णय पर पहुंचे, इसके लिए भी प्रार्थनाएँ की जाती थी। देवताओं को अर्पित बलि से भी समिति का संबंध था। एक ऋचा में समिति में अग्नि का आवाहन किया गया है, ताकि वह बलि का अपना अंश ग्रहण करें। इसमें यह कामना की गई कि देवताओं के बीच भी एक देवा समिति हो।[22] समिति के कुछ सैनिक कार्य भी होते थे, क्योंकि टीकाकारों ने समिति शब्द का अर्थ युद्ध या व्यूह लगाया है। यास्क[23] ने इसका अर्थ युद्ध बतलाया है।सायण ने भी समिति का अनुवाद युद्ध या संग्राम किया है।[24] अनेक उल्लेखों से यह प्रकट होता है कि 'समिति' अत्यधिक अधिकारों से संपन्न थे।

सभा व समिति में सम्बन्धः–दोनों संस्थायें राजा के ऊपर नियंत्रण का कार्य करती थी हिलब्रैण्ड का मत था कि 'समिति' संस्था थी और सभा उसका अधिवेशन स्थान। अथर्ववेद में सभा और समिति दोनों को दो पृथक संस्थाओं के रूप में घोषित किया गया है[25] और उन दोनों प्रजापति की दो पुत्रियाँ कहा गया है। लुडविग का विचार है कि सभा उच्च सदन थी जबकि समिति निम्न सदन है। जिमर का मत है कि सभा,ग्राम की संस्था थी तथा समिति सम्पूर्ण जन की केंद्रीय समिति होती थी। हिलब्रान्ट के मतानुसार समिति संस्था थी जबकि सभा उस की बैठक स्थल थी डॉ0 अल्टेकर[26] का मत है कि उत्तर

वैदिक काल में सभा ग्राम संस्था ना रह गई थी वह राज संस्था हो गई शतपथ ब्राह्मण के अनुसार राजा सभा में उपस्थित रहता था[27] आश्चर्य की बात है कि परवर्ती संहिता और ब्राह्मणों ग्रंथों में समिति का कोई उल्लेख नहीं मिलता परंतु उपनिषद काल में आते ही हम समिति के महत्व को पुनः प्रतिष्ठित देखते हैं परंतु उपनिषद काल के पश्चात समिति पूर्ण रूप से तिरोहित हो जाती है कहीं पर भी उसका नाम सुनाई नहीं देता और यह केवल परामर्श दायिनी परिषद रह गई।

lUnHkZ %

1. अथर्ववेद– 10.8.8.13
2. यू0एन0घोषाल, स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री कल्चर, पृ0–321
3. ऋग्वेद – 8.4.9
4. काशी प्रसाद जायसवाल, हिन्दू राज्यशास्त्र, पृ0–19.20
5. के0सी0 श्रीवास्तव–प्राचीन भारत का इतिहास और संस्कृति, पृष्ठ–67
6. अथर्ववेद–8.10.5
7. अल्टेकर, स्टेट एण्ड गर्वनमेंट इन एन्शियेण्ट इण्डिया, पृ0–144
8. ऋग्वेद–7.28.6
9. ऋग्वेद–10.34.6 ''सभामेति कितवः पृच्छमानों जेष्यामीति तन्वा शूशुजानः''
10. ऋग्वेद– 8.4.9 ''सदा चन्द्रों याति सभामुप''।
11. वजसनेयी संहिता–16.24
12. काशी प्रसाद जायसवाल हिन्दू राज्यशास्त्र पृ0–13
13. अथर्ववेद – 7.12.3–4
14. ऋग्वेद – 10.70.10
15. यजुर्वेद– 30.6
16. ऋग्वेद – 10.191.2–3
17. अथर्ववेद–5.19.15
18. अथर्ववेद– 5.19.15
19. अथर्ववेद– 6.88.3 'ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिथ।'
20. अथर्ववेद–12.1.56
21. वृहदारण्यक उपनिषद – 41.2
22. अथर्ववेद–18.10.26
23. यास्क, निरूक्त – 2–107
24. सायण, ऋग्वेद का भाष्य, 10ए, 97
25. अथर्ववेद – 7.12.1
26. ए0एस0 अल्टेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्वति – पृ0–117
27. शतपथ ब्राहम्ण–33.4.14

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 355-357

xkeh.k fo/kokvks dh lkekftd Lohdfr % ,d lkekftd euksoSKkfud v/;;u

gal jkt*

भारतीय सामाजिक व्यवस्था पितृ सत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था है। जिससे पौराणिक काल से लेकर स्वतंत्रा के पहले तक महिलाओं तक धार्मिक रूप से अधिकार वंचित थी। जिसमें विधवा महिला की स्थिति सभी महिलाओं में सबसे दयनीय रही है। जिसमें इसे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक रूप से समाज द्वारा वंचनाओं का शिकार बनाया गया था जिसे भारतीय संदर्भ में एक जटिल समस्या के रूप में देखा जाता है। क्योंकि विधवाएं भी समाज का अभिन्न अंग है इन्हें विकास की मुख्य धारा से जुड़े बिना देश का विकास सम्भव नहीं है जिसके सम्बन्ध में अनुसंधानकर्ता शोध कार्य करने का प्रयास कर रहा है।

परम्परागत सामाजिक कलंकों से पीड़ित विधवाएं जिनके मनोदशा को हीनता का शिकार बनाना पड़ता है। जबकि जहाँ शिक्षा का सतर निम्न है भारतीय समाज में पति के मरने के बाद पत्नी की जीवित रहने की स्थिति को विधवा कहा जाता है। प्राचीन भारतीय समाज को इतिहास का अध्ययन करने के बाद पता चलता है कि विधवा जो जीवित रहना था उसे पति के शव के साथ जिन्दा चिता पर जला दिया जाता था, जिसे सती प्रथा के नाम से जाना जाता है। सर्वप्रथम सती प्रथा का विरोध कर इसकी कानूनी रूप अन्त कराने का काम नियम समान है। तीर्थ स्थान में विधवाओं के रहने का मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक जीवन–यापन करना गांव और परिवार के साथ रहने में इन्हें कई प्रकार के संकट है। पहला तो यह है कि सामान्य लोगों में विधवाओं के प्रति अशुभ होने की मान्यता और उनके भोजन वस्त्र आदि में गणचिन्ह् की भिन्नता मध्य कालीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था की तुलना में वर्तमान समाज विधवाओं में परिवर्तन आया है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के अथक प्रयास से विधवा पुनर्विवाह अधिनियम बना। आज आधुनिक एवं वैज्ञानिक शिक्षा के परिणामस्वरूप विधवाएं अपने को सहज महसूस करती है उन्हें समाज में पापी एवं अशुभ माना जाता था। जिसके कारण सामाजिक तन्तुओं के हिले निके तत्व विश्रृंखलित हुए हैं जिससे सामाजिक नैतिकता का हनन एवं विघटन उत्पन्न हुआ है।

भारतीय समाज में वैधव्य का दंश शुभ और अशुभ की अवधारणा पर आधारित है। परम्परागत विधवा अशुभ है, इसलिए किसी शुभ कार्य में इसकी उपस्थिति की सामाजिक स्वीकृति नहीं है। विधवा का कलंक उसे तिरस्कार अमानवीय तथा अशोभनीय व्यवहार का शिकार बनाता है। तथापि आज इस स्थिति में बुनियादी परिवर्तन हुए हैं। महानगरों में विधवा के प्रति कुछ सकारात्मक दृष्टिकोण भी दिखाई पड़ रहा है। इसके बावजूद आज भी लगभग 80 प्रतिशत विधवाएं कलंक की शिकार हैं।

प्रस्तुत अध्ययन के माध्यम से अध्ययन क्षेत्र की विधवाओं का तथा उनके परिवार के सदस्यों द्वारा उनसे कैसे व्यवहार किया जाता है। परिवार के लोग अन्तःक्रिया कैसी है उस विधवा की अद्यतन स्थिति कैसी है तथा शुद्ध–अशुद्ध की वैचारिकी के आधार पर सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों से अवगत होने का प्रयास किया जायेगा। विधवाएं आधुनिक परिवर्तनकारी शक्तियों द्वारा नये मूल्यों की हो रही सामाजिक स्वीकृति के स्तर की जानकारी ली जायेगी।

---

*शोध छात्र, समाजशास्त्र ,महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी,उ0प्र0

विधवाएं समाज में कहां तक आत्मनिर्भर एवं सामाजिक सम्मान की ओर अग्रसर हैं। सामाजिक मूल्यों के कारण विधवाओं की राजनैतिक एवं सामाजिक सहभागिता बढ़ी जिसका अध्ययन प्रस्तुत शोध कार्य के माध्यम से किया जायेगा।

भारतीय धर्मशास्त्रों में महिलाओं के संदर्भ में ऐसी ही संकल्पना की गयी है। अर्थात् जहाँ नारियों को सम्मान, अधिकार, प्रेम, सहयोग के दृष्टिकोण से देखा जाता है तो वहाँ देवता भी निवास करते हैं। भारत के सन्दर्भ में हम देखें तो यहाँ नारियों को माँ, बहन, पत्नी आदि के रूपों में प्रतिष्ठा रही है। उसे गृहलक्ष्मी की संज्ञा से भी सम्बोधित किया गया है। वहीं नारी को पत्नी के रूप में पुरुष की अर्धांगिनी एवं सहधर्मचारिणी भी कहा गया है। यहाँ पत्नी के अभाव में पति द्वारा किये गये धार्मिक कार्यों को पूर्ण नहीं माना जाता है।

लेकिन देखा जाय तो सिक्के का यह एक पहलू है। सिक्के के दूसरे पहलू को देखा जाये तो संसार के लगभग समस्त देशों में स्त्री, पुरुषों की दास रही है। जिस तरह मार्क्स सामाजिक परिवर्तन के चरणों में दासत्व युग की चर्चा करता है। जहाँ दास खरीदे एवं बेचे भी जाते हैं। उसी तरह महिलाएं भी पुरूषों की वैयक्तिक सम्पत्ति के रूप में रही है। औरत के संदर्भ में सिमोन द बुआ अपनी पुस्तक 'सेकेन्ड सेक्स' में कहते हैं कि औरत पैदा नहीं होती है, बल्कि उसे बनाया जाता है। यह कथन पश्चिम के देशों में भी लागू होता है।

ikphu dky e efgykvk dh fLFkfr& प्राचीन काल में महिलाओं की प्रस्थिति के संदर्भ में देखा जाये तो विद्वानों के दो मत उभर कर सामने आते हैं। एक का मानना है कि प्राचीन काल में महिलाओं की स्थिति पुरुषों के समान थी अथवा पुरूषों के बराबर का दर्जा हासिल था। जबकि वहीं दूसरे मत के विद्वानों का माना है कि प्राचीन काल में महिलायें एवं पुरुषों के बीच बड़े स्तर पर भेद था। वहीं पतंजलि एवं कात्यायन जैसे विद्वान का मानना है कि प्रारम्भिक वैदिक काल में शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था थी। अर्थात् महिलाओं को शिक्षा दी जाती थी। वहीं विभिन्न धर्म ग्रन्थों में भी विभिन्न तथ्य उभरकर सामने आते हैं कि इस कालक्रम में महिलाओं का विवाह वयस्क होने के बाद ही होता था एवं उन्हें अपना पति चुनने का भी स्वतंत्रता थी। वहीं ऋग्वेद एवं विभिन्न उपनिषदों में महिला साध्वियों के भी उल्लेख मिलते हैं। जिसमें गार्गी एवं मैत्रेयी जैसी महिलाओं के नाम उल्लेखनीय है। प्राचीन भारत के कुछ राज्यों में नगरवधू जैसे परम्पराओं के उल्लेख मिलते हैं। इस तरह देखा जाय तो महिलाओं को लगभग समस्त अधिकार प्राप्त थे। लेकिन इसी काल के उत्तरार्द्ध में देखा जाये अर्थात् 500 ई0पू0 मुख्यतः मनुस्मृति की वैचारिकी लागू होने पर महिलाओं की स्थिति में गिरावट आनी प्रारम्भ हो गयी और यहीं से शुरू होता है महिलाओं के शोषण का, उन पर अत्याचार का, उन पर विभिन्न निषेधों का। इसी क्रम में हम देखें तो मुगल साम्राज्य के आगमन से महिलाओं की स्थिति और दयनीय होती गयी। उन्हें दासता एवं बंदिशों की जंजीरों से जकड़ दिया गया। बाल–विवाह जैसी प्रथा का प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार देखा जाये तो यहीं से महिलाओं के ऊपर पितृसत्ता की जड़ें मजबूत हो जाती है।

सामाजिक व्यवस्था की अभिव्यक्ति, भूमिकाओं के व्यवस्थित प्रतिमानों के आधार पर होती है। इस आधार पर देखा जाय तो व्यक्ति महत्वपूर्ण नहीं होता, बल्कि उसकी प्रस्थितियाँ एवं भूमिकाएं महत्वपूर्ण होती हैं, जिनके माध्यम से समाज में एक व्यवस्था बनी रहती है। भारतीय समाज में जाति, परिवार व नातेदारी जैसी प्रदत्त प्रस्थितियों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। लेकिन वर्तमान समय में देखा जाय तो शिक्षा, आय, व्यवसाय एवं सम्पत्ति भी सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थिति के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। इस संदर्भ में टालकाट पारसंस कहता है कि ''किसी भी सामाजिक व्यवस्था में व्यक्तियों के ऊपर नीचे क्रम–विन्यास में विभाजन होता है।''[1] इस प्रकार देखा जाय तो व्यक्ति, संस्कृति तथा समाज के मध्य एक व्यवस्था पायी जाती है। प्रस्थिति निर्धारण में आयु, आय, शिक्षा, भूमि, स्वामित्व, पारिवारिक सवरूव आदि का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इस संदर्भ में हम देखें तो दुर्खीम[2] सोरोहिकन[3], धुरिये[4] दास[5], रेडक्लिफ ब्राउन[6] आदि के अध्ययन उल्लेखनीय है।

इस संदर्भ में हम नारियों की स्थिति देखें तो भारतीय समाज में इनकी प्रस्थिति काफी दयनीय रही है। कुछ कालक्रमों को हम छोड़ दें तो अधिकांश कालक्रमों में इन्हें हाशिए पर रखा गया। इनमें विधवा महिलाओं की स्थिति और ही दयनीय रही। पति की चिता के साथ उन्हें जबरन जला दिया जाता था। समाज में उनकी कोई प्रस्थिति नहीं थी। एक लाश के समान वे जीवन जीने के लिए मजबूर थीं। कालान्तर में धीरे–धीरे परम्परागत वैचारिकी में बदलाव हुआ एवं विभिन्न समाज सुधारकों एवं समाज वैज्ञानिकों द्वारा इन्हें समाज की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया।

हरिकृष्ण रावत अपनी प्रसिद्ध कृति समाजशास्त्र विश्व कोष में कहते हैं कि ऐसी कोई भी अवांछित तथा आपत्तिजनक दशा, स्थिति अथवा व्यवहार–प्रतिमान जो किसी समाज के अधिसंख्य व्यक्तियों द्वारा असहनीय एवं निंदनीय माना जाता है तथा जिसके सुधार एवं निदान के लिए सामूहिक क्रिया की आवश्यकता महसूस की जाती है, सामाजिक समस्या कहलाती है। सामाजिक समस्याएं सामाजिक– व्यवहारों के टूटने, भंग कराने अथवा विचलन की स्थिति की परिचायक है। अपराध, अपचार, वेश्यावृत्ति, भिक्षावृत्ति मादक द्रव्यों का प्रयोग, बेरोजगारी आदि समस्याओं ही कुछ उदाहरण है।[7]

किसी समस्या के सामाजिक होने के लिए यह आवश्यक है कि वह स्थिति सम्पूर्ण प्रणाली को प्रभावित करे और व्यक्तियों की उसमें सहभागिता हो। इसमें वे समस्याएं ही सम्मिलित होती है जो अन्तर्निहित सामाजिक दशाओं के कारण उत्पन्न होती है तथा जिनके परिणाम सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करते हैं।

वाल्स और फर्फे सामाजिक समस्याओं को सामाजिक आदर्श का विशेषज्ञ मानते हैं। जो सामूहिक प्रयासों से ही ठीक हो सकता है। फुलर और मेयर्स ने सामाजिक समस्या को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''सामाजिक समस्या वह स्थिति है जिसमें व्यक्तियों की बड़ी संख्या आंकलित सामाजिक मानदण्डों से विचलन मानती है।''[8] जबकि रेनहार्ट का कहना है कि ''सामाजिक समस्याओं से समाज का एक बड़ा भाग प्रभावित होता है। जिसके हानिकारक परिणाम हो सकते हैं। जिसका सामूहिक रूप से समाधान सम्भव है,''[9] वहीं हरबर्ट ब्लूमर का मानना है कि सामाजिक समस्याओं में वे कार्य और व्यवहार आते हैं जिन्हें लोग समाज के प्रति घटक मानते हैं। परूल लैग्डिंस सामाजिक समस्याओं के व्यक्तियों की कल्याण सम्बन्धी आकंक्षाएं मानता है।

lUnHkZ %

1. Agarwal, Bina : A Field of On's Own : Gender and Land Rights in South Asia, Cambridge University Press, Cambridge, 1994.
2. Aggarwal, P.C. : Caste, Religion and Power : An Indian Case Study, Shri Ram Centre for Industrial Relations, Delhi, 1971.
3. Agrawala, S.N. : Age at Marriage in India, Kitab Mahal, Allahabad, 1962.
4. Ahuja, Mukesh : Widows : Role Adjustment and Violence, Wishwa Prakashan, New Delhi, 1996.
5. Aitken, R.H. : Femala Offenders in India, Meerut, Meenakshi Prakashan, 1969.
6. Alagna, S.W. : Sex-role identity, per evaluation of competition and the responses of women and men in a competitive situation, Journal of Personality and Social Psychology, 1982.
7. Altekar, A.S. : The Position of Women in Hindu Civilization, Motilal Banarasidas, New Delhi, 1962.
8. Ambedkar, B.R. : The Rise and Fall Hindu Woman, Bheem Patrika Publications, Jullunder, Punjab, 1970.
9. Andre, Beteille : Equality and Enequality - Theory and Practice, Oxfird University Press, Delhi, 1983.

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 1-5

Hazards of Climate Change on Health, Coastal Life and Livelihood : Policy Appraisal in India

Swati*

Abstract: *India being a country of diverse culture of folklore, environment and biodiversity, has now threat on it in general and on its coastal area in particular due to its climate change resulting in sea change level, migration of coastal affected area, rising level of saline water, threat on livelihood and survivorship problem.*

This climate change is not a new thing which has resulted spontaneously but it resulted due to changed behavior of developed country in the form of excess exploitation of environment and forest whereas person's attitude towards environment has also increased the pollutant level in the environment resulting in rising of temperature and sea level thereof as a big threat to the environment. An environmental journey from Stockholm conference to Sustainable Development Goal conceptualized the environmental problem and Concern and solutions thereon. In international regime, a conflict between community right and individual right has always been an obstacle to achieve the environmental goal.

Effect of Climate change i.e. on livelihood, health, migration etc. may be minimizing by adopting the 17 goals of Sustainable Development Goal. When health is prime concern of the people may also be protected by following the SDG Goal as well as National health Policy 2017.

This article will give also insight to the policy makers to form an idea relating to the subject matter that under Umbrella legislation of the Environment Law in India, the regulation can be made with an objective to prevent any activity which may cause irreparable loss to the environment affecting coastal area as well as preventing measures.

This Article alsodiscusses the problem of refusee after migration due to coastal crisis and its rehabilitation based on municipal law as well as International humanitarian law. Recent coastal and sea activities has degrade the coastal environment by way of shrimp culture, petroleum exploration in the sea, nuclear testing in the sea, single use of plastic, directly whereas transboundary pollution, Industrial pollution in water and air polluted the water and air channel harmed indirectly to flora and fauna of coastal life.

Previously, riparian right concept was the concept to save the water channel and thereby to save the Public trust like sea shore, river, forest, etc what the Joseph L sax in his article and later on Hon'ble Supreme Court of India has adopted.

Keywords: Climate Change, Migration, Livelihood, Health, Transboundary pollution, Riparian right, coastal life etc.

Introduction: Pollution[1] doesn't discriminate with the states on geography or status of the state whether rich or poor because it has global effect and impact on climate and Environment.[2] Initially the problem like pollution, unhygienic substances, hazardous waste, and other pollutant were not reflecting in the society but in last few decades have been where these problem are really concern to not only the human being but all other living creatures. The life are

*Research Scholar, Faculty of Law, Banaras Hindu University Varanasi 221005

sacrosanct, non-negotiable and our holy earth is giving everything which are needed for growing of the life or in other words, holy earth nurturing the every life of all species. We have life cycle, food chain system, life structure naturally in the holy earth but when the whole structure are diluted or disturbed by the human being for their luxury, greed, or through their behavior, our eco systems are getting disturbed. In the last few years where, due to over exploitation of natural resources, industrialization, consumerism, human behavior, changing habit of food system, etc. are the reason for the pollution, which has affected significantly to all of us without any discrimination. Over the passing of time, human being the most intellectual class among all other species has realized that living life with same quality is a big challenges due to various reason like increased pollution along with new type of health crisis, climate crisis, urbanization, hazardous waste, e waste or all other waste not managed properly. The Pollution has its different types in terms of water, air or soil, the ultimate sufferer are the living being or creature and due to population growth, urbanization, and some time war has increased the pollution aspects not only to the air, water, soil but in the forms of nuclear, sea, and air also, therefore, the problem of pollution has not been confined now to a particular state but it has its global impact as global problem.

Environment Problem as Global Problem: We, all human being, are living in progressive society where society believes in development though there are some lacunae as discussed above, however the development is need for either survival ship or for the better life of the human being, which changed the life and associated thing with the life of human being in various manner like changes in life through the development through discovery or invention in the field of science, technology, and later resulted into human being divided in geographical or in political boundary, sovereign aspiration emerges which had resulted the nuclear conflict[3] and if we see the ultimately the whole world forum united for peace, human right and global issues like environment and its transboundary effects as well. Though we have early fisheries convention[4], conservation of wildlife (fisheries, birds, seals),migratory birds, whale etc. but that were not sufficient to deal with global environmental issues. Environment as a global issues are not new thing but the global environmental problem realized only after when whole world united through emergence of united nation and Stockholm conference and other protocol/conferences have given the ideas that pollution are really an issue to address and it has its global impact, and international law like principle of Stockholm conference may only be enforceable in true sense when it may be respected by the state parties through the implementation of the same in municipal laws.

Though environment is not defined in either Stockholm conference (1972)[5] or world charter for nature(1982) but talks about natural resources of earth, nature, ecosystem etc, however Stockholm conference had differentiated the environment of natural resources and the human environment which we creates and the bridges between natural environment and human environment must not degrade the natural environment. But LRTAP convention (1979) had initially tried to define the environment but in later stage different convention like Espoo Convention (1991) and the Watercourses Convention (1992) defines the environment[6], which in terms of impacts includes human health and safety, flora, fauna, soil, air, water, climate,landscape and historical monuments or other physical structures or the interaction among thesefactors and in later stage when Indian legislature has defined the environment and environment pollution to deal with environmental issues and problem.

Principle 1 of the Stockholm conference recognizes theadequate condition of life which may achieve the dignity and well-being when Stockholm had accepted the human environment concept, Stockholm Conference mainly comes with purposes to give practical means to to encourage and provide guidelines for action by Governments and international organizations designed to protect and improve the human environment.[7]

Coming to the Rio Declaration, world had realized that human being is in Centre of the environment[8] and for which neither development nor environment can be ruled out and both environment and development will go together[9] and human being is main concern for sustainable development. Before Rio declaration, the Sustainable Development we can trace back in Stockholm conference as well as in Bruntland commission[10] report which defines as the development which meets the need of present generation without compromising the ability of future generation, but still Rio declaration is relevant in terms of Rio Declaration is talking about the Sustainable Development through state parties and state can implement the same in their municipal laws.[11]

ost Rio Declaration, the most debated subject matter has been sustainable development due to its relevancy in present generation and for future generation, which has started with Stockholm conference in full pace and in Rio declaration, which modus operandi to deal with sustainable development goal. Global summit of Rio Declaration was not a spontaneous event happened for the environment but we can see various other treaty/ declaration are showing the interest of state to protect the environment, for eg:

- “Our Common Future, Popularly known as Bruntland Commission Report.
- The Basel Convention on the Control of Transboundary Movements of Hazardous Wastes (1989).
- UN Convention on the Law of the Sea, 1982.
- Vienna Convention on Protection of Ozone Layer, 1985
- Montreal Protocol, 1987.
- Convention on International Trade in Endangered Species of Wild Fauna and Flora, 1973.
- Bonn Convention on the Conservation of Migratory Species of Wild Animals, 1979.
- Convention on Wetlands of International Importance, 1971 and Ramsar Convention, 1982.
- World Charter for Nature, 1982"[12]

Where various components of the ecology and environment was tried to protect and preserved through the above noted conventions. Human being are entitled to have the healthy and productive life of environment, Principle 2 of the Rio as well as principle 21 of Stockholm principles accepts the sovereign function to exploit the environment whereas other hand it adopts the neighboring country rights of clean environment based on *sic utero tuo et alienum non laedas*, which means ‘ do not behave in a way that hurts your neighbor’[13] but still we have transboundary problem or haze pollution[14] also.Stockholm and Rio Declaration has in various ways contributed a roadmap for technology transfer, environmental awareness, some liability on states on various ways. Principle 6 of Stockholm is talking about heat releasing toxic substances and other substances must be halted so that serious or irreversible damage may not be inflicted. Human health is main concern from the environmental changes and state must ensure the improvement in human health through their efforts and Stockholm declaration has raise on concern on human health also. Coming to the Rio or post Rio, state parties discussed the important aspects which were beneficial for environment and achieving the sustainable development like, Polluter pays principle, precautionary principle, intergenerational equity, intragenerational equity, technology transfer, awareness of common citizen, poverty etc[15]. were addressed through the Rio declaration. Without the protection of biodiversity[16], which refers to variety & variability of life, variation at genetic, species, at ecosystem level, and protecting the community right, right of indigenous people, folklore, traditional knowledge, we cannot achieve the sustainable development in true sense. Effect of non- conservation of bio-diversity or non- complying the sustainable development may result into climate change due to release of carbon, nitrogen, chlorine,

hydrogen substances into the environment. That's why we have different United Nation Climate Change conference and different Conference of the parties[17] and its different session to lower the carbon foot print. Cutting of carbon emissions and carbon foot print are the important programme which is also relevant for today's time. Due to Climatic change, our globe is facing different problem of rising temperature resulted in global warming, climate crisis, climate migration, and climate refugee which are big challenges before the environmentalist. As the Paris agreement of COP 21 has stressed upon to limit the temperature rise upto 1.5'C instead of projected temperature rise of 2.C and for which investment from Indian government is also done for sustainable low carbon futue. Govt. of India has taken various initiates to low the carbon and suggested for healthy and sustainable living, climate friendly economic development, reduction of emission intensity, 40% power generation from non-fossil fuel, additional tree and forest cover which may sink upto 2.5 to 3 billion tons of CO2, Investment in climate vulnerable sector, climate technology or future technology may lower the carbon emission.[18]However Marrakesh Conference (COP 22) is talking about implementation by the state parties. Climate change is affecting the coastal areas most where every year cyclone can be seen now a days. COP 23 (Bonn Conference)[19] also talks about the leaders of national governments, cities, states, business, investors, NGOs and civil society will gather to speed up climate action to meet the goals of the Paris Climate Change Agreement, but still there are need of crucial climate action work was taken forward in areas including finance, the transparency of climate action, forests and agriculture, technology, capacity building, loss and damage, indigenous peoples, cities, oceans and gender.If we focus on vehicular pollution where adoption of Bharat Stage vehicles as compared to Euro standard has also reduced comparatively but still we have to achieve the different goal as one is climate action of Sustainable development goal by 2030, where all goal are interconnected, then only we can heal our globe and the Environment. Indian Government and Supreme Court of India has taken various steps to save the environment, ecology and climate also.

Conclusion and Suggestion : Environment and climate are complementary and supplementary to each other, living creatures on the earth creating ecology may sustain only when our ecology, environment and climate are not disturbed otherwise every system may get disturbed and climate change may cause to danger to human being and other species. Climate has no boundary to control by political or geographical boundary so we the people of global village through our United Nation adopted various programme and conferences and applied and adopted in municipal laws. State are duty bound to make every efforts to protect the environment and it can only be possible when our action (action of the citizen of each country) will help to protect the environment, ecology and climate.

References :

1. Presence of Environment Pollutant creates Environment Pollution; See: Sec 2 (b) "environmental pollutant" means any solid, liquid or gaseous substance present in such concentration as may be, or tend to be, injurious to environment; at https://www.indiacode.nic.in/bitstream/123456789/4316/1/ep_act_1986.pdf
2. See: Principle 2 of Rio Conference 1992 and Principle 21 of Stockholm Conference 1972.
3. See more, https://papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm?abstract_id=3155983
4. See more, North Pacific Fisheries Convention 1952., See also: International Whaling Convention, 1946
5. 1972 UN Conference on the Human Environment in Stockholm.
6. Philippe Sands Jacqueline Peel , Adriana Fabra Ruth MacKenzie et. al., *Principle of International Environmental Law,* (Cambridge University Press, Cambridge U.K., 3rdedn., 2012)

7. Brisman A. (2011) Stockholm Conference, 1972. In: Chatterjee D.K. (eds) Encyclopedia of Global Justice. Springer, Dordrecht.
https://doi.org/10.1007/978-1-4020-9160-5_655
8. See Principle 1 of the Rio Declaration (The United Nations Conference on Environment and Development 1992).
9. Principle 4, Rio Declaration 1992.
10 Report of the World Commission on Environment and Development: Our Common Future, available at http://un-documents.net/our-common-future.pdf
11. See Principle 11 of Rio Declaration.
12. S. C. Shastri, *Environmental Law,* (Eastern Book Company, Lucknow, 5thedn., 2015)
13. Shyam Divan and Armin Rosencranz, *Environmental Law and Policy in India,* (Oxford University Press, New Delhi, 17th impression, 2014).
14. See The Conference of the Parties (COP) to the ASEAN Agreement on Transboundary Haze Pollution was established in 2003, consisting of the ASEAN Ministers responsible for the environment. At https://asean.org/15th-asean-ministerial-meeting-environment-15th-meeting-conference-parties-asean-agreement-transboundary-haze-pollution/
15. Rio Declaration 1992. See also, Vellore Citizens Welfare Forum vs Union Of India &Ors at https://indiankanoon.org/doc/1934103/
Supreme Court of India while discussing the Sustainable development approach added public trust doctrine through M.C.Mehta Vs. Kamalnath, and borrowed the doctrine from the Article of Prof. Joseph L. Sax. And further adopted the concept of riparian right.
In 1821, the Modern revival of Public trust doctrine took place in the USA in the case of Arnold vs Mundyand in the landmark case of Illinois Central Railroad v. Illinoiswhere the court came with a principle that the state cannot hand its trust of resources to private ownership when the interest of the public is involved.
16. See The United Nations Convention on Biological Diversity 1992 and The Biological Diversity Act 2002.
17. See Paramjit S.Jaswal, NishthaJaswal et. al., *Environmental Law,* (Allahabad Law Agency, Faridabad, 4thedn., 2015).
18. See: https://beeindia.gov.in/content/climate-change
19. See: https://www.un.org/sustainabledevelopment/cop23/

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 6-10

Socio-Economic conditions of Labourers of Sugar Cane Works In Eastern Uttar Pradesh

Dr. Vivek Kumar Singh*

Abstract : *The socioeconomic status of the workers of Sugar Cane units has been analyzed. It is understood that maximum number of workers belong to weaker section, and the majority of them are illiterate. The maximum number of workers does not have sanitation facilities in their houses. It is also noted that the wages paid to them are comparatively low and their total expenditure is more than their earnings. In order to make good the deficit, majority of the workers borrow money from others. Engaged in Sugar Cane activities is not encouraging due to the reason that workers are cheaply available and therefore paid comparatively little wages. In this situation the need to analyse the socio-economic conditions of the workers of Sugar Cane units was felt.*

Introduction : An organization is a human grouping in which work is done for the accomplishment of some specific goals, or missions. The resources of men, money, materials and machinery are collected, coordinated and utilized through people. It is through the combined efforts of people that material and monetary resources are effectively utilized for the attainment of common objectives. Therefore, people are the most significant resource of any organization. The principal component of an organization is its 'human resources' or 'people at work'.

Human resources have been defined as from the national point of view, the knowledge skills, creative abilities, talents and aptitudes obtained in the population; whereas from the viewpoint of the individual enterprise, they represent the total of the inherent abilities, acquired knowledge and skills as exemplified in the talents and aptitudes of its employees. Eastern Uttar Pradesh is famou s for its Sugar Cane Industries.

Sugar Cane industry plays a vital role in the promotion and the development of economy of Eastern Uttar Pradesh District. The large numbers of Sugar Cane units in India, in general and in Eastern Uttar Pradesh District in particular are unorganized units and hence the Sugar Cane units are mainly employing unskilled or semi-skilled workers who are neither educationally qualified nor technically experienced Eastern Uttar Pradesh District provides employment opportunity to the Sugar Cane workers throughout the year, the economic status of the people.

Objectives: The present research attempts to analyse the socio-economic conditions of the workers of Sugar Cane units in Eastern Uttar Pradesh District and to offer suitable suggestions for improving the social status of the workers of Sugar Cane units in Eastern Uttar Pradesh District.

There are a number of similar studies in the field of socio economic background of workers of various industries But, so far, no attempt has been made to study the socio economic conditions of Sugar Cane industry which covers all kinds of laborers.

Methodology : The present study was based on both primary and secondary data. The primary data were collected from workers of different Sugar Cane units in Eastern Uttar

*Assistant Professor, Department of Economics, Govt. College, Sarai, Singrauli, M.P.

Pradesh District by using the interview schedule method. The secondary data were obtained from the offices of various agencies such as Inspector of Factories, Municipalities, and Central Excise Department, Labour Commission Office and also from various Government Reports connected with Sugar Cane units.

Hypotheses : The study population consists of 47 Sugar Cane units available in the Eastern Uttar Pradesh District. Stratified Random Sampling technique was adopted based on the average number of workers working in each unit. Thus the sample consists of 200 male laborers and 300 female labourers working in the registered Sugar Cane units in Eastern Uttar Pradesh District. Samples were selected by using Random Number Table. The primary data collected and used in the research report covers a period of one year i.e. (2014-2015).

Table -1- Gender Wise Classification of the Employees

Gender of the Respondents	No. of Respondents	Percentage
1. Male	200	40.00
2. Female	300	60.00
Total	**500**	**100.00**

Gender Wise Classification of the Employees :

1. Though the wages paid in the Sugar Cane units are comparatively less women are highly attracted because of greater safety and bonus.
2. Thus, out of 500 total respondents 200 (40.00%) are male and 300 (60.00%) are female.

Classification of the Employees on the Basis of Social Group

3. In India, there are hundreds of social groups available, but all these groups can broadly be classified into four major categories namely, Scheduled Caste, Scheduled Tribe, Backward Community and Other communities.
4. It could be seen from table 3, that 30.00% of the total respondents (150 respondents) belong to backward community, 19% of the respondents (95 respondents) belong to most backward community, 33.40% of the respondents (167 respondents) belong to schedule caste, 5% of the respondents (26 respondents) belong to forward community and the rest 12% of the respondents (62 respondents) belong to other community.
5. The educational level of the Sugar Cane employees is poor. The majority of them are illiterates. They form 53% of the total respondents. About 25% of the respondents have completed secondary education. The percentage of employees who have completed primary education IS about 16%.

Table -2- Social Group of the Employees

Social Group of the Employees	No. of Respondents	Percentage
1. Forward community	26	05.00
2. Backward community	150	30.00
3. Most backward community	95	19.00
4. Scheduled Caste	167	33.40
5. Other community	62	12.40
Total	**500**	**100.00**
6. Illiterate	264	52.80
7. Primary education	79	15.80
8. Secondary education	124	24.80
9. Higher Secondary education	33	06.60
Total	**500**	**100.00**

Only 6.60% of the total respondents have finished up to higher secondary education .

It is evident from Table-3 that 196 (39.20·0) respondents earn a monthly income between Rs 1501 and Rs.2000, 127 (25.40%) respondents earn income between Rs.1001 and Rs.1500 per month, 96 (19.20%) respondents earn between Rs.2001 and Rs. 2500 per month, and 57 (11.40%) respondents earn a monthly income between Rs.2501 and Rs. 3000 and the rest 24 (4.80%) respondents earn income below Rs. 1000 per month.

Total Monthly Income of the Employees' Family: Since the total monthly income of the respondents' family is one of the important factors in analyzing the socio-economic condition, data were collected.

The total monthly income of 296 (59.20%) respondents is less than Rs.2500 and the total monthly income of the rest 204 (40.80%) respondents' ranges between Rs.2501 and Rs.4000.

Table -3

Monthly Income (Rs.)	No. of Respondents	Percentage
1. Below Rs. 1000	24	04.80
2. Income between Rs. 1001 and Rs. 1500	127	25.40
3. Income between Rs. 1501 and Rs. 2000	196	39.20
4. Income between Rs. 2001 and Rs.2500	96	19.20
5. Income between Rs. 2501 and Rs. 3000	57	11.40
Total	**500**	**100.00**
6. Below Rs. 2500	296	59.20
7. Income between Rs. 2501 and Rs. 4000	204	40.80
Total	**500**	**100.00**

The Average Expenditure of the Family Per Month: Workers spend their monthly earnings for different purpose in the socio-economic analysis, the average monthly expenditure of the respondents is one among the important factors. Table presents the average expenditure of the respondent's family per month.

It is clear from Table-4 that the monthly average expenditure of 226 (45.20%) respondents is between Rs.1001 and Rs. 2000, the monthly average expenditure of 194 (38.80%) respondents is between Rs. 2001 and Rs. 3000, the average monthly expenditure of 54 (7.21 %) respondents is less than Rs. 1000, the average monthly expenditure of 28 (5.60%) of the respondents is between Rs. 3001 and Rs. 4000, and the average monthly expenditure of 24 (3.2%) respondents is between Rs. 4001 and Rs. 5000 per month to look after their family.

Table -4 - The Average Expenditure of the Family Per Month

Average Expenditure	No. of Respondents	Percentage
1. Amount Less than Rs. 1000	36	07.20
2. Amount between Rs. 1001 and Rs. 2000	226	45.20
3. Amount between Rs. 2001 and Rs. 3000	194	38.80
4. Amount between Rs. 3001 and Rs. 4000	28	05.60
5. Amount between Rs. 4001 and Rs. 5000	16	03.20
Total	**500**	**100.00**

Amount Spent on Various Items of Expenditure: 1. It is deduced from Table-5 that 265 (53%) respondents spend Rs. 1001 to Rs. 2000 90 (38%) respondents spend less than RS.1000 and the rest 45 (9%) of the respondents spend RS. 2001 to RS. 3000 per month on

food. 2. It is evident from Table-5 that 263 (52.60%) respondents live in their own houses, 128 (25.60%) respondents spend below Rs. 500 on rent, 60 (12.00%) respondents spend RS. 501 to Rs. 1000 for renting a house, and the remaining 49 (9.80%) respondents spend between RS.1001 and RS.1500 per month on rent. 3. It could be seen from Table-5 that 209 (41.80%) respondents spend Rs. 201 to Rs. 400, 160 (32.00%) respondents spend between Rs. 401 and Rs. 600, and the rest 131 (26.20%) respondents spend below Rs. 200 per month for their medical treatment. 4. It is inferred from Table-5 that 434 (86.80%) respondents spend below Rs. 500, 44 (8.80%) respondents spend between Rs. 501 and Rs. 1000, and the rest 22 (4.40%) respondents spend between RS.1001 and Rs.1500 per month for educating their children.

Table -5 - Amount spent on food Per Month

	No. of Respondents	Percentage
1. Less than Rs. 1000		190
2. Between Rs. 1001 and Rs. 2000	265	53.00
3. Between Rs. 2001 and Rs. 3000	45	09.00
Total	**500**	**100.00**
4. Own house	263	52.60
5. Less than Rs. 500	128	25.60
6. Between Rs. 501 and Rs. 1000	60	12.00
7. Between Rs. 1001 and Rs. 1500	49	09.80
Total	**500**	**100.00**
8. Less than Rs. 200	131	26.20
9. Amount Between Rs. 201 and Rs. 400	209	41.80
10. Amount Between Rs. 401 and Rs. 600	160	32.00
Total	500	100.00
11. Less than Rs. 500	434	86.80
12. Between Rs. 501 and Rs. 1000	44	08.80
13. Between Rs. 1001 and Rs. 1500	22	04.40
Total	**500**	**100.00**

Table - 6- Chi-square test for Experience and Income per month of the respondents

	Value	df	Asymp. Sig. (2-sided)
Person Chi-square	156.840	20	.000
Likelihood Ratio	142.613	20	.000
Linear-by-Linear Association	31.168	1	.000
N of Valid Cases	749		

a. 6 cells (20.0%) have expected count less than 5. The minimum expected count is 1.42

Table - 7- Chi-square test for Sex and Wages per month of the respondents

	Value	df	Asymp. Sig. (2-sided)
Person Chi-square	23.519	4	.000
Likelihood Ratio	28.976	4	.000
Linear-by-Linear Association	13.215	1	.000
N of Valid Cases	749		

Table - 8- Chi-square test

	Value	df	Asymp. Sig. (2-sided)
Person Chi-square	21.530	12	.043
Likelihood Ratio	23.711	12	.022
Linear-by-Linear Association	.106	1	.745
N of Valid Cases	749		

Hypothesis Testing :

Hypothesis 1: There is no significant relationship between experience and income.

Chi-square analysis can be used to test for the statistical significance of differences observed between two equivalents sets of categories, which result from field surveys or experiments. The numbers that appear in the categories are actual counts of the number of responses received. They are not percentages.

Since the Chi-Square value of significance is found at 0.000, the alternate hypothesis is accepted. There is a significant relationship between experience and income of the respondents.

Hypothesis 2: There is a significant relationship between gender and wages.

Since the Chi-Square value of significance is found at 0.000, the alternate hypothesis is accepted. There is a significant relationship between gender and wages of the respondents.

Hypothesis3: Wage income forms a major share in the annual income of the household. Since the Chi-Square value of significance is found at 0043, the alternate hypothesis is accepted. Wage forms a major share in the annual income of the sample respondents.

Conclusion : The socioeconomic status of the workers of Sugar Cane units has been analyzed. It is understood that maximum number of workers belong to weaker section, and the majority them are illiterate. The maximum number of workers does not have sanitation facilities in their houses. is also noted that the wages paid them are comparatively low and the total expenditure is more than the earnings. In order to make good the deficit, majority of the workers borrow money from others.

With regard to savings of the workers, out of 500 respondent selected for this study 165 (33%) have saved less than Rs. 500 per month for their future. These factor reveal that the socioeconomic conditions of the workers of Sugar Cane are not encouraging and favorable. Every organization must evaluate the prevailing human resources thoroughly, especially the matters pertaining to employees welfare like working condition and their socioeconomic status.

References:

1. The world Book Encyclopedia Volume 7 Wordbook - Child craft Inter National Inc pp. 130.
2. Abstract of industries as on March 2014: Office of the Deputy Chief Controller of Audit. Department of Eastern Uttar Pradesh District.
3. Dr.Vivek Kumar singh, published thesis, chini udyog, me shram kalayan karyakarmo ka alochanatmak mulyankan, purvi uttar prades ke vishes sandarbh me, 140 -210.
4. Cooperative Sugar monthly general various issues 2011, 12, 13, 14, 15.
5. Sugar Statistics year book various issues 2011, 12, 13, 14, 15.
6. ISMA Report various issues 2011, 12, 13, 14, 15.
7. Cooperative Sugar general various issues 2011, 12, 13, 14, 15.

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 11-14

Impact of Water Pollutants on Phytoplanktons Diversity and Productvity in Ponds at Bhadohi

Piyush Mishra*

Abstract : The lentic water bodies in eastern Uttar Pradesh are very much affected by industrial pollutants, indiscriminate disposal of sewage and poor maintenance. The aquatic water bodies have unique capacity of purification through cells regulatory mechanisms of recycling but the disposal of waste has surpassed beyond the recycling capacity. In the present study five ponds selected at Bhadohi area facing variety of anthropogenic pressure it was conducted that the biotic activity deteriorate the physico-chemicals characteristics of water. The result indicate that temperature conductance and pH value over found to be in the following descending order site III>site IV> site V> site II> site I, indicating higher value at more polluted sites. Similarly, Nitrate-N, , Phosphate-P, Chloride-C, Total Solid, Total Alkalinity, BOD & COD showed higher value at polluted site where as the DO shows reverse trend. So far as the Phytoplanktons diversity concerned. It was found that it is mainly constituted of the member of Cyanophyceae, Chlorophyceae and Bacillariophyceae, Microcystis, Scendesmus and Fragillaria were found to be the most dominant Species of class Cyanophyceae, Chlorophyceae and Bacillariophyceae respectively. The Plankton value and productivity of Phytoplankton is also directly related to pollution load.

Keywords : Diversity, Nutrient enrichment, Phytoplankton, Pollutant, Productivity.

Introduction : Phytoplankton constitute the very basis of nutritional cycle of aquatic ecosystem. The maintenance of a healthy aquatic ecosystem is dependent on the abiotic property of water and the biological diversity of the ecosystem. Phytoplankton function as the primary producers in the aquatic biotopes. Hence the quality and quantity of Phytoplankton population bear much influence on the production potential of the aquatic ecosystem. In India large number investigation has been to study of the limnology of lentic as well as lotic water bodies. (Zutschi and Khan, 1977, Singh 1993 and Kumar and Singh 2000). The studies on the primary productivity of the fresh water bodies has been carried out by many workers. Recently the primary productivity and fresh water bodies has been worked out by Sedamkar and Angadi (2002), where Phytoplankton diversity in lake has been worked out by the Arjarya (2003). The ponds Plankton play very important role in accumulating rain water and run off water containing lots of toxic chemicals. Due to biotic activities lot of agrochemicals, domestic waste, sewage, industrial effluents are directly discharged in to the ponds or they ultimately reach to the ponds through runoff water. These unwanted pollutant greatly affect the ponds water characteristics and also promotes eutrophication. Due to nutrient enrichment Phytoplankton diversity and productivity is very much affected, which plays an important role in functioning of such water bodies.

Material and Methods : The Present study was conducted at Bhadohi, (Sant Ravidas Nagar). Which is famous as carpet city because of many carpet Industries situated in the city. To study the impact of various pollutants, pond were selected for the present study. The first pond (site-I) was protected and considered as control site, in the second one (site II)

*Environmental Studies, S.B.P.G. College, Baragaon, Varanasi- 221204 (U.P.) India

agrochemical and surface runoff reached, third one (site-III) receives domestic waste directly in the fourth one (site IV) effluents of famous carpet industry are discharged in the last one (site V) was kaccha pond, washing, bathing, activity take place. In the present study Samples of selected pond's water collected at monthly intervals in the first week of the month from December 2008 to November 2009, between 08 am to 11 am during the three sessions, Rainy (July to October), Winter (November to February), Summer (March to June). The analysis of the collected samples from different ponds was done by the methods described in standard methods for the analysis of water and waste water APHA (1998) American water works association (AWWA) and water pollution control federation (WPCF). Temperature was measured at the site using a Celsius thermometer, hydrogen ion concentration (pH) was an analyzed by an electronic pH meter (CK-701), Alkalinity was measured by titrametic analysis using methyl orange and phenolphthalein indictor, D.O. was measured by Automatic oxygen analyzer and COD by dichromatic reflux method. Algal sample from the selected sites were collected preserved as for standard method and analyzed for qualitative and quantitative assessments. Taxonomic identification of algae was done using pertinent literature. The algal genera were identified with the help of standard books and monographs of Smith, Prescott and Fritsch etc. Data obtained using conversion factor 0.375. The productivity was expressed in term of mg C/m3 /6 hours (Trivedi and Goel, 1990).

Net Primary Productivity, (NPP) : O_2 mg/L/Hr=D1-D1/hr

Gross Primary Productivity, (GPP) : O_2 mg/L/Hr=D1-Dd/hr

Community respiration (CR) : O_2 mg/L/Hr=D1-Dd/hr

Results and Discussion : The physicochemical characteristics of five study ponds were analyzed and results are shown in table-1. The temperature, turbidity, pH conductivity values are found to be in the following descending order Site-III> Site-IV> Site-V> Site-II > Site-I it may be due to the various biotic activity taking place at different study sites.

According to Mc Cumbie (1953). The temperature may affect the seasonal cycle of Phytoplankton. Hutchinson (1957) has mentioned that temperature is important in controlling both the quality and quantity of planktonic flora. Conductivity is good parameter which is method to measure the total dissolved solids and is directly related to the total solids (Mishra and Saksena 1993).

The Nitrate-N, Phosphate-P and Chloride were found to be ranging from 0.042 mg/l to 0.178 mg/l ; 0.066 mg/l to 0.124 mg/l and 81.20 mg/l to 142.48 mg/l respectively at all the study sites according to Fleisher 1978, the sediment flora important in increasing concentration of Phosphorus dissolved in interstitial water on sediment. Total solid, total alkalinity, BOD and COD values were higher at more polluted sites. Where DO shows reverse trend. A low content of dissolved oxygen is a sign of organic pollution. Tolerance limit of dissolved oxygen is not less than 3 mg/l (Kudesia, 1985) Dcomposition of organic matter may be an important factor is consumption of DO, which is more Vigorous during warm weather (Badge and Verma, 1985). The phenomenon of reoxygenation of water during monsoon may be due to circulation and mixing by inflow after monsoon rains (Hannan, 1979).

Altogther 17 taxa of Phytoplankton were recorded during the study period out of which five taxa belonging to Chlorophyceae, five to Cyanophyceae and seven to Bacillariophyceae (Table-2). Among Cyanophyceae, Microsystis, Spirulina, Ostillatoria species and Lyngbya species were dominant Vashisht and Sra (1979), have recorded the dominant and regular presence of Microcystis species as an indicator of pollution and eutrophication. Among Chlorophyceae Sendsmus species, Chlorella species and Teteracladus species were dominant. Among Bacillariophyceae, Fragillaria, Pinnularia, Nevicula and some unidentified species were dominant. Result indicate that except the control pond all the ,four ponds are moderately polluted and showed trend of increasing eutrophication. Algal diversity in water bodies has been studied by Ratha, et al., (2003), and Pandey & Dungarwal (2004).

The primary productivity of water bodies with special reference to Phytoplankton has been studied Saxena and Srivastava (2001), Prasad and Singh (2003) and Saha (2004). The result as shown that the Phytoplankton value (%) was highest in case of Cynophyceae, followed by Chlorophyceae and Bacillariophyceae respectively. So for as the Phytoplankton production is the concerned, Gross primary production was higher at site-II and IV, this may be because of luxuriant growth of Phytoplankton at these two sites due to nutrient enrichment.

From the above account it can be concluded that anthropogenic pressure form of biotic activities play and important role in governing the physico-chemical characteristics of water, eutrophication and productivity of Phytoplanktons.

Table-1 Mean Value of Physicochemical Parameter of different study ponds.

Parameter	Study Sites				
	Site-I	Site-II	Site-III	Site-IV	Site-V
Temperature	21.6	22.8	26.5	22.6	23.0
PH	7.6	7.9	8.4	8.3	8.0
Alkalinity µ mhos/cm	367.5	493.7	628.0	578.4	533.2
DO mg/l	9.12	4.51	3.46	2.89	3.07
BOD mg/l	9.48	26.18	27.52	29.40	19.96
COD mg/l	76.45	119.38	128.06	140.67	108.23
Total Solids mg/l	261.4	312.8	334.6	395.0	383.7
Nitrate mg/l	0.42	0.066	0.178	0.096	0.078
Phosphate mg/l	0.066	0.093	0.124	0.099	0.087
Chloride mg/l	81.20	91.56	142.48	136.72	110.61

Table-2 (Average Phytoplankton composition of ponds (Cells/ml)

Phytoplankton	Class	Site-I	Site-II	Site-III	Site-IV	Site-V
Anabeana sp.	Cyanophyceae	435	776	532	697	428
Lyngbia sp.	"	937	2663	2277	2546	1888
Oscillatoria sp.	"	1637	4132	3576	3951	2189
Microcystis sp.	"	1858	5285	3986	4832	2947
Spirulina sp.	"	176	335	212	228	192
Chlorella sp.	Chlorophyceae	18	32	21	28	20
Closterium sp.	"	-	4	9	3	-
Pediastrum sp.	"	-	18	-	12	-
Scendesmus sp.	"	93	214	175	192	146
Tetracladus sp.	"	-	28	19	22	-
Amphora sp.	Bacillariophyceae	-	49	26	37	-
Diatoma Sp.	"	-	18	42	37	25
Fragillaria sp.	"	414	856	702	655	597
Navicula sp.	"	69	294	265	301	176
Pinnularia sp.	"	28	376	305	288	162
Unidentified sp. A	"	468	740	557	632	419
Unidentified sp. B	"	221	297	267	283	198

References :

1. APHA, AWWA and WEF, (1998) standard methods for the examination and waste water., A.D. Eaton, L.S. Clesceri and A.E. Greenbarg (eds.) 20th ed. American Public Heath Association, Washingtion, D.C.
2. Arjarya, A. (2003), Physicochemical profile and plankton diversity of Rani Tal lake Chhatarpur, M.P., Nat. Env. and Poll. Tech. 2 (3) : 327- 328.
3. Badger, U.S. and Verma, A.K. (1985). Limnological studies on J.N.U. lake New Delhi. India Bull. Bot. Soc. Sagar, 32 : 16- 23

4. Fleisher, S. (1978). Evidence of Anaerobic release of phosphorus from lake sediments as biological process Naturwissenschaften. 65 : 109.Li
5. Hutchinson, G.E. (1957). A Treaties on Limnology, Vols., I and II John Wiley and Sons. Inc. New York.
6. Kudesia V.P. (1985) water pollution, 2nd Ed. Pragati Prakashan, Meerut India.
7. Mishra, S.P. and Saksena, D.N. (1993) Planktonic Funa in relation to physicochemical characteristics of Gauri tank at. Bhind, M.P. India. advances in Limnology, Narendra Publishing House New Delhi. P. 57-61.
8. Pandey, U. and Dungarwal H.K. (2004) Algal Flora from tank of Ekling Ji. Temple Udaipur Rajsthan. Plant Archives, 4 (2) : 483-485.
9. Prasad, B.B. and Singh B. (2003) Ecological status in relation to primary productivity of a Tropical water body of East. Champaran, Bihar, Nat. Env. and Poll. Tech. 2 Ed. 387-390.
10. Saxena, A. Srivastava P. (2001). Primary Production by Phytoplankton in sewage Fed. Lake and Energy Transformation to fish Yield, Poll. Res. 20 (4) : 613-617.
11. Sedamkar, E. and Angadi S.V. (2002), Primary Productivity of two fresh wter bodies of Gulbarga, India, Nat. Env. and Poll. Tech. 1 (20 : 151-157.
12. Trivedi, R.K. and Goel, P.K. (1990). Chemical and Biological Methods for water pollution studies. Enviro. Media, Karad, India.
13. Zutschi, D.P. and Khan M.A. (1977). Limnological Investigation of to subtropical lakes. Geobios, 4 : 45-48.

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 15-20

Sustainable Development and Poverty : A Sociological Study

Dr. Sita Ram Singh*, Prof. Mohammad Salim**

Sustainable development is development that needs of the present without comprising the ability of future generations to meet their own needs. Sustainable development was coined as a political administrative term to bridge differences between developed and developing countries in the context of UN negotiations and resolutions. The UN World Commission future (World Commission 1987) to address the environmental challenges intertwined with economy and social research. Due to growing societal needs, society is using modern technologies for extracting and utilizing natural resources which are limited. Future generations will not able to meet their own needs if we continue to exploit the existing limited natural resources. Sustainable development is based on an integrated view of development. It recommends the development strategies in order to maximize economic growth and to minimize the risks and hazards. It has emerged from those countries which themselves practice unsustainable resource use. The struggle between nature and man is inevitable unless and need to bring greater balance between human needs and natural resources. Sustainability is not feasible with limited natural resources set against unlimited human needs.

Sustainable development includes reviving growth, changing the quality of growth, meeting essential needs for jobs, food, energy, water and sanitation, ensuring a sustainable level of population, conserving and enhancing the resource base, reorienting technology and managing risks in decision making. Poverty is multi facet phenomenon in today's globalized world. According to Oxford dictionary 'poverty means the state being extremely poor and the state of being inferior in quality or insufficient in among poverty. Poverty is a multidimensional problem that includes low access to opportunities for developing human capital and education'. Future of those economies who have access to highest levels of technology or to sustainable sources of minerals and metals can exist. Those using middle level technologies with large basic in agriculture will face increasing difficulties in the emerging international economic environment leading to 21st century, thereby it needs attention and redirection.

Mobilization of the poor extending the frontiers of development beyond those who have already arrived. The poor provided the energies and assured larger returns on meager investments. In this process development will become a mass movement and help in the development of those who already developed. Living conditions with much greater exposure to air and water pollution, poor hygiene and sanitation causes under nourishment which decreases the potential for educational attainment and brings low human capital, high morbidity, insufficient utilization of time, a low productivity of labour. An integral part of the problem of sustainable development is that of poverty and inequality. Economic and social inequalities are a manifestation of the effects of unfair institutional mechanism at work. Trends in poverty specially rural poverty indicates worsening feature in South Asia and to lead a serious multiplier effects.

Objectives : The present study has the following objectives :-

1. To find out the socio-economic profile of the respondents of the rural community.

*Associate Professor & Head, Department of Sociology, Ganpat Sahai P>G. College, Sultanpur-228001 (U.P.), India
**Retd. Professor, Department of Sociology, Banaras Hindu University, Varanasi-221005

2. To find out the various programmes run by government and NGO's and basic causes of poverty prevalent in the rural community.
3. To suggest important measures to eradicate the poverty in the rural community.

Research Methodology : The present study is based on 100 rural families of the four villages i.e. Bahlolpur, Dikhauli, Palhipur and Pitamberpur of Dubepur block in Sultanpur district of Uttar Pradesh, India. Data have been collected from primary and secondary sources. Research design is exploratory and purposive sampling has been used. Structured interview-schedule, observation and case-studies have been used.

Socio-Economic Profile of the Respondents : Traditionally in Indian society caste, family and village are the basic ingredients of institutional matrix to which the traditional farmers have belonged. Occupation, income, ownership of property are becoming important determining factors of the new levels of the socio-economic status. Low socio-economic status may hinder the process of mobility, therefore an attempt is made to investigate systematically the socio-economic characteristics of the farmers.

On the basis of caste it has been found that 12.0% respondents belong to high caste, 48.0% backward caste and 40.0% lower caste. Although four villages are agriculturally dominated, the majority of the backward castes are more than lower and high caste. On the basis of age of the respondents it has been found that 42.0% respondents belong to the middle age-group. 30.0% respondents older age-group, while 28.0% respondents belong to young age-group. Therefore, it seems that majority of the respondents have been found in middle age-group.

On the basis of educational status of the respondents it has been found that 12.0% are illiterate, 41.0% belong to low level education, 32.0% respondents medium education level and only 15.0% respondents belong to high level educational groups. (Graduation and other higher degrees, diploma etc.). Therefore, it appears that majority of the respondents are low level of education. On the basis of Income (yearly) it has been found that majority of the respondents (54.0%) belong to Rs. 10,000/-, 31.0% respondents Rs. 10,001/- to 20,000/- and 15.0% respondents belong above Rs. 20,000/-. It is clear from the data that the majority of the respondents are coming under Rs. 10,000/- yearly income-group. As far as occupational classification of the respondents are concerned, it has been found that 35.0% respondents are engaged completely in agriculture. 18.0% respondents in small business/shops apart from agriculture. 27.0% respondents are manual labour in addition to agriculture, 13.0% respondents are busy in dairy work besides agriculture, only 9.0% respondents are doing jobs in private sectors. Thus we can say that majority of the respondents are still engaged in agriculture.

On the basis of marital status it has been found that 87.0% respondents are married, 4.0% respondents unmarried and 9.0% are widower/divorced. It shows that marriage is an important institution even today for the traditional Indian society. On the basis of the type of family it has been found that majority of the respondents (83.0%) belong to nuclear family (Husband, wife and unmarried children). Whereas 17.0% respondents belong to joint family (Two or more generation) members reside. It shows that due to urbanization, industrialization and modernization process, the joint family system is gradually disintegrating. The respondents have been asked to provide information about members who constitute their families. It has been found that 83.0% families there are 6 or less members, 7.0% families there are 7 to 12 members and 10.0% families having more than 12 members. It is clear that in most of respondents families an average size consisting of 1 to 6 members. Extended families comprising large number of members seem to be on decline. It points out that small size an average size have been found in comparatively higher proportion among the nuclear households, whereas among the joint households the size of the family is extended (see table 01).

Causes of Poverty and Various Programmes in the Rural Society : Rural economy relies on agriculture. Farming in India depends upon unpredictable monsoon leading to erratic yield. Water shortage, bad weather conditions and reoccurring drought are also reason for rural poverty. Rural areas are so poor that they back the basic facilities of sanitation, infrastructure, communication and education etc. There are many causes of rural poverty such as geographical factors create conditions which lead to poverty. The most prominent geographical factors in India is unpredictable monsoon and weathers which impact the crop production and yield. Natural calamities like flood, drought, cyclone etc. damage the crop, livestocks and land. There are many personal factors leading to poverty sickness is one among it. Due to poverty families do not have enough foods to eat and therefore lack in immunity. They become prone to many diseases. Poverty and sickness form a vicious partnership each helping the other to add to miseries of most unfortunate of mankind. Laziness and not willing to work is other major reasons of poverty in India. Addiction to drinking, drugs and other social evils add to rural poverty and make the entire family poor. Biological factors include rapid growth in population. Big families and limited resources result in poverty. Birth-rates are not controlled with effectiveness. Lastly and more important are economic factors.

Rural India depends upon agriculture and most of the farmers rely on traditional methods of agriculture, therefore the annual production is very less. Agriculture sector in India is still underdeveloped to provide enough jobs. Mismanagement and faulty supply cause the farmers to suffer the most people of the top of supply chain on the maximum benefit of the farmers hard work. Some of the causes of poverty are inflation, poor growth rate, unemployment, high rise in population, more debts in rural areas, poor education, moving from rural to urban areas and ineffective implementation of the policies and reforms.

Data analysis show that unemployment has been given main cause of poverty by lower caste 17.05%, young-group 14.29%, illiterate 16.67%, below Rs. 10,000/- yearly income-group 12.96% and agriculture and small business/shops 18.75% respondents respectively. Second cause of poverty i.e. constants rising population has been given by backward caste 10.42%, young age-group10.71%, low education level 17.07%, above Rs. 20,000/- income-group 13.33% and agriculture and small business/shops 12.50% respondents respectively. As far as education is concerned it has been found that poor education has been given cause of poverty by backward caste 12.50%, young and middle age-group 14.29% each, high educational level 20.00%, above Rs. 20,000/- income-group 33.33% and agriculture and service occupation-group 22.22% respondents respectively. Ineffective government programmes have been given cause of poverty by high and backward caste 16.67% each, middle age-group 16.67%, low educational level 17.07%, above Rs. 20,000/- income-group 13.33% and again service occupation-group 22.22% respondents.

Four main causes of poverty i.e. unemployment, constants rising population, poor education an ineffective government programmes have been given greater importance by high caste 66.67%, Young and middle age-group 42.86%, high educational level 46.67%, below Rs. 10,000/- income-group 35.19% and agriculture and manual labour 44.44% respondents. Excessive debits has given main cause of poverty by backward caste 14.58%, older age-group 23.33% illiterate 41.67%, upto Rs. 10,000/- 12.96% and agriculture and dairy occupation-group 15.39% respondents in our study. Migration to urban town as a cause of poverty has been dictated by low caste 20.00%, older age-group 23.33%, illiterate 33.33%, Rs. 10,001/- to 20,000/- income-group 16.13 and agriculture as a occupation by 17.14% respondents in our analysis (see table 02).

Various Governmental Programmes : Government of India has launched various programmes for the eradication of poverty such as Integrated Rural Development Programme (IRDP,1978), Sampoorna Gramin Rozgar Yojana (SGRY, 2001), Pradhanmantri Gramodaya Yojana (PMGY, 2000), Mahatma Gandhi National Rural Empolyment Grantee Scheme (MGNREGS,2006), Gram Swaraj Abhiyan (2018) to promote social harmony to reach out

to poor rural households, focus on doubling farmers income, enhance livelihood opportunities and reemphasize national priorities such as a cleaniness and strengthen panchayatiraj institutions. The campaign was launched on Ambedkar Jayanti 14 April, 2018 under the name of "Sabka Sath Sabka Gaon, Sabka Vikas". It includes seven schemes known as - Pradhanmantri Ujjwala Yojana, Ujala Scheme, Saubhagya, Pradhanmantri Jan Dhan Yojana, Pradhanmantri Jeevan Jyoti Bima Yojana,Pradhanmantri Suraksha Bima Yojana and Mission Indradhanush. Eklavya Model Residential School (2018) launched by government of India schemes to establish quality residential schools for the promotion of education for ST students are set up in States/ UTs. Unnat Bharat Abhiyan (MHRD,2018) students for 750 colleges and universities across the country to adopt the near by villages and to familiar with the life of village people and the problems faced by them in day-to-day life. Atal Pension Yojana 2018 (earlier Swavalamban Scheme) as a social security scheme person in the age between 18-40 years will receive a minimum guaranteed pension of Rs.1,000/- to 5,000/- per month depending on their contribution from the age of 60 years - largest subscribers in Uttar Pradesh followed by Bihar and Tamilnadu. Khush Scheme 2018 (launched by Odisha government) to provide free sanitary napkins to school girls across the state, Rupshree (launched by West Bengal government) to ensure safe future for young women to provide one time financial support of Rs. 25,000/- for marriage of poor girls will be credited to the girls bank account before the marriage. Ganga Hariteema Yojana as also known as Ganga Greenary Scheme,2018 is started by U.P. government to increase the green cover in the catchment areas of the Ganga river and to control the erosion of the land.

Regarding various governmental programmes under study it has been found that benefits of IRDP/MGNREGA have been availed by low caste 37.50%, young and middle age-group 33.33%, low educational level 41.71%, Rs. 10,001/- to 20,000/- income-group 45.16% and agriculture and service occupation-group 44.44% respondents. Pradhanmantri Gramin Awas Yojana (PGAY) has been availed mainly by backward caste 12.50%, young age-group 17.86%, high educational group 13.33%, below Rs. 10,000/- income-group 11.11% and agriculture and service occupational group 22.22% respondents respectively. Pradhanmantri Ujjwala Yojana benefits have been taken by lower caste 17.50%, young age-group 21.43%, low educational group 14.63%, above Rs. 20,000/- income-group 13.33% and agriculture and service occupational group 22.22% respondents.

As far as Swachh Bharat Abhiyan (Clean India Mission) has been taken by lower caste 60.00%, middle age-group 57.14%, low educational farmers 53.66%, Rs. 10,001/- to 20,000/- income-group 45.16% and agriculture and manual labour 62.96% farmers respectively. Other governmental programmes such as -Pradhanmantri Jan Dhan Yojana, Pradhanmantri Jeevan Jyoti Bima Yojana, Saubhagya, Ujala Scheme, Pradhanmantri Suraksha Bima Yojana and Mission Indradhanush have been availed by backward and high caste 16.67% each, young farmers 32.14%, high educated farmers 20.00% and agriculture and service group 22.22% on priority basis (see table 03).

The Role of NGO's : The role of NGO's is very crucial specially in a country like India. Huge majority of the Indian population is still below the poverty line. Subsidies and poverty amelioration mechanism of various governments have been corporated in India. In the last few decades, role of NGO's is extremely very significant in poverty eradication. They have brought some of the best employment opportunities, livelihood programmes, self-help groups and also empowerment programmes. NGO's play a significant role in offering relief and other basic amenities to extreme suffering poverty individuals. At present they have brought some viable and effective skill based livelihood programmes. They also provide various public services at micro and macro levels. NGO's have also implemented some development programmes which are extremely for the poverty-stricken individuals. These NGO's have also initiated empowerment programmes for men and women offering some commendable benefits in their life-style.

Measures to Eradicate Poverty in the Rural Society : 'Due to multidimensional problems more attention needs to be focused on investment in human capital particularly in education as a means to increase earning, quality of jobs and improving the quality of life' such a better utilization of health facilities, shelter, water and sanitation. 'Poor countries increase their poverty level due to lack of training skills, productive knowledge and transforms human beings into more human capital and education'. 'Education provides attractive returns, comparable with alternative rates of returns both to the individual and to the society'. Education would help in promoting sustainable development making rapid social progress. Education has direct relevance of the well-being and freedom of the people.

Estimation of poverty has been a contentious issue in India. First estimation of poverty line was done by Dadabhai Naoroji (1867-68) in 19th century followed by National Planning Committee (1938), First Planning Commission (1962), Y.K. Alagh Committee (1979), Lakdawala formula (1993) 2400 and 2100 calories worth of consumption in rural and urban areas in addition to clothing and shelter, Suresh Tendulkar Committee (2005) was constituted by planning commission the current estimations of poverty are based upon the recommendations of this committee to shift away from the calories based model and the mode the poverty line somewhat broad based by considering monthly spending on education, health, electricity and transport. It strongly recommended target nutritional outcomes i.e. instead of calories, intake nutrition support should be counted. It suggested that a uniform poverty basket-line be used for urban and rural region. It recommended a change the way prices are adjusted and demanded for an explicit provision in the poverty basket-line to account for private expenditure in education and health. He adopted the cost of living as the basis for identifying poverty.

The NDA (National Democratic Alliance) government had constituted a fourteen members task-force under 'NITI Aayog's vice-chairman Arvind Panagariya to come out with recommendation for a realistic poverty-line. The approach adopted by the government may be categorized as specific programmes for poverty alleviation, enhancement of economic growth and fulfilling of the minimum needs of the poor. Important policy introduction in the developing countries specially in India such as increase market accessibility, improve incetives for private sector development, increased foreign direct investment, sustain for civil society specially under-privileged, women rights etc. are needed to prevent and will help towards to eliminating the poverty. According to World Bank (2000) 'India : Policies to Reduce Poverty and Accelerate Sustainable Development' on the Indian state which are key actor in human development and infrastructure provisions as well as regulation and governance issues - a major concern of the bank to poverty reduction and development, with ways to increase growth and its poverty reducing content through improvement in infrastructure, incentive and regulatory framework to encourage efficiency and labour demands and financial system corporate government.

Analysis of the data regarding various measures taken for the eradication of poverty it has been found that high caste 41.67%, younger farmers 39.29%, high educated respondents 40.00%, above Rs. 20,000/- income-group 33.33% and agriculture and service occupation group 55.56% have given education and health as majors and steps in this regards. Debits control, social awareness and distribution of debit agencies is important for farmers belonging to lower caste17.50%, older age-group 16.67%, illiterate 33.33%, below Rs. 10,000/- income-group 17.96% and agriculture farmers 8.57% respectively. Selling domestic products through active cooperative society has been pronounced by lower caste 27.50%, older age-group 20.00%, illiterate farmers 25.00%, below Rs. 10,000/- income-group 20.37% and agriculture farmers 28.57%. Regarding changing attitudes of subculture of poverty of farmers it has been found that high and backward caste 8.33% each, young age-group 10.71%, low literacy 9.76%, below Rs. 10,000/- income-group 7.41% and agriculture and small business/shops 12.50% given top priority. At present time poverty alleviation campaign emphasize creating

more and more employment in the rural society, the data indicate that backward caste18.75%, older farmers 33.33%, high literate 20.00% and agriculture and small business/shops 18.75% have been more importance to creating employment. Effectively eradication of poverty needs implementing government policies, it has been found that backward caste 39.59%, middle age-group farmers 35.71%, low educated respondents 36.58%, below Rs. 10,000/- income-group farmers 31.48% and agriculture and manual labour occupational group 44.44% have been priority to this measure.

Conclusion : Sustainable development is visualized as a solution to make available raw materials on a continuous basis for production system, expanding market and non-threatened political system. A more responsive international system linking the present needs of the developing to the future possibilities of the developed as the need of the hour. Sustainable development plays a dominant role over sustainability while sustainability is deemed as a binding constraint on the socio-economic development process. Active policies and implementation mechanism are needed to achieve desirable environmental quality and sustainable standards of living.

Poverty is multidimensional and varies from place to place and society to society. The main causes of poverty are education, ineffective local governance and government policies and natural and geographical characteristics. Therefore identify the basic causes of poverty is more important. The root causes of the poverty faced by the community/society require to be identified, all sided efforts to be adopted to eradicate poverty for sustainable development. The need of the hour is still to get fundamental needs such as food, clothing and shelter for individuals survival not based on choices and opportunities. If the back these basic needs, poor are unable to participate effectively in society for strong community development. Poverty leads to powerlessness, insecurity exclusion of individual's communities and household.

References :

1. World Bank, Nigeria : Structural Adjustment Program, Policies Implementation and Impact, 1994, Washington,D.C.
2. Romer,P.M.,"Human Capital and Growth : Theory and Evidence", Caregie-Rochester Series on Public Policy, 1990, p. 251-286.
3. Mauro,P., "Corruption and the Composition of Government Expenditure", Journal of Public Economics, 1998, p. 263-269.
4. World Bank, "India : Policies to Reduce Poverty and Accelerate Sustainable Development", Report No. 19471-IN, 31 January,2000.
5. Elesh, David, "Poverty Theories and Income Maintenance : Validity and Policy Relevance", Social Science Quarterly, Vol. 26, 1973, p.359.
6. Sagar, Deep, "Rural Development Policies of India : A Historical Analysis", The Indian Journal of Public Administration, Delhi, Vol. 36, No. 2, 1990.
7. Rao, P.K., "Sustainable Development Economics and Policy", Blackwell Publishers, Massachusetts, USA, 2000, p. 233-257.
8. Morris, Julian, " Sustainable Development : Promoting Progress or Perpetuating Poverty ?", Profile Books Ltd., London, 2002, p.5-54.
9. Salim, Mohammad, "Rural Innovations in Agriculture", Chugh Publictions, Allahabad, 1986, p. 278-308.
10. Ahuja, S.P., "Environment Development and Poverty", Centre for Research Planning and Action, New Delhi, 1992, p. 35-36.
11. Galbraith, James K., "Unequality : What Everyone Needs to Know", Oxford University Press, USA, 2016, p. 1-11.
12. Bhalla, Surjit S., "Growth and Poverty in India - Myth and Reality", www.oxvsresearch.com, 2000, p. 1-39.
13. Burns, Tom R., "Sustainable Development : Sociological Perspectives, Sociopedia.isa, 2013, p. 1-20.

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 21-26

Effects of Seed Germination at Harvesting Times and Storage on Seed hardness of Different varieties in Okra (Abelmoschus esculentus L.)

Kailash Ram*

ABSTRACT : *The occurrence of seed hardness and the low percentage of seed germination are major challenges for this reason. Study was conducted to determine the effects of time of harvest and storage on seed germination of four different cultivars of okra. The study was carried out at Government Degree College, Jakhini, Varanasi during 2016 and 2017. An investigation to study the seed germination percent was estimated in complete randomized block design with three replication under factorial arrangement. Four different cultivars of okra included, Kashi Kranti, Pusa A-4, Kashi Pragati and Arka Anamica and six harvesting times 20, 25, 30, 35, 45 and 60 days. After flowering were considered in the present study. The results should that seed germination increased in 2016 from 3.75%, at the first harvesting time to 65.75% at fifth harvesting time in 2016, and increased in 2017, 4.25% at first harvesting time to 66.25% at fifth harvesting time. Different cultivars varied in seed germination. In 2016 and 2017, Arka Anamica and Kashi Pragati cultivars showed the highest germination. Seeds from different parts of the plant also showed different germination rate. In 2016, seeds from the middle part of the plant with 49.67%, and in 2017, seed from the lower part with 49.33% showed the highest germination. Seeds from the lower and middle part of plant showed a higher germination after storage. Seeds from the middle part of pod showed more germination in both years. By increasing time to harvest, the percentage of seed germination after storage highly increased. Different cultivars during storage showed different behaviours on germination. Arka Anamica and Kashi Pragati cultivars produced more seed germination than other varieties after storage, and Pusa A-4 and Kashi Kranti after storage produce less seed germination.*

Key words : Abelmoschus esculentus, harvesting time, seed hardness, seed storage, seed germination.

Introduction : Okra (Abelmoschus esculentus L.), a popular vegetable crop of tropical and sub tropical countries is a good source of carbohydrate, protein, dietary fibre, minerals and vitamins. Seed germination stage is a crucial part of plants life. Seed germination initiated by water imbibition which results in enhancement of key enzymes included in the Catabolism of seed storage reserves. These events are under the control of the seeds genetic make-up, but environmental conditions are also effective. The endosperm has been shown to be a major barrier to radicle protrusion for many seeds. Okra shows a particular kind of seed dormancy, called delayed permeability caused due to structure of the seed coat and particularly by the chalazal plug. There is a direct relationship between the seed moisture content and delayed permeability with variances between cultivars and moisture contents (Anonymous, 2005). The occurrence of hard seedness and the low percentage of seed germination are major challenges in growing okra. The percentage of seed germination of okra in frequently low, due to seed hardness. Integument permeability is the major barrier to the emergence of radicle

*Department of Genetics and Plant Breeding, Government Degree College Jakhini, Varanasi (U.P.) India

from okra seeds for commercial producers. There are differences among the okra cultivars in relation to seed hardness, resulting less uniformity in seed germination. In some cultivars, the occurrence of seed hardness becomes more frequent due to seed remain longer time in pod with the plant (Luis Felpe et. al., 2010). Seed hardness can be variable in a population of seeds, which increased by dry environmental conditions during seed maturation, and during seed storage (Baskin and Baskin, 1998). Immature seeds harvesting prevent the completing desiccation, can reduce seed hardness. Seed hardness interferes with seed germination. The degree of seed hardness in seeds of this species is influenced by a number of factors such as seed moisture content, time of harvest and drying rate during seed maturation (Demir, 2001). Demir (1997) also reported that harvesting seeds at earlier storages of development, when seed moisture is still high (28-40%) and drying seeds within the pod (slow drying) might eradicate the occurrence of hard seed coat and stimulates germination. If the combination of slow during and after ripening improves germination in seed harvested at earlier stages of development (before seeds are dry and hardness has developed), then it may be possible to improve the germination of okra seed simply by modifying the traditional time of harvest, and introducing new drying procedures. Setubal et. al., (1994) observed that the proportion of hard seeds significantly increased when the harvesting was delayed until senescence of the plant. Chauhan and Bhandari (1971) reported that the best time for harvesting pods of 'Pusa Sawani' was 30 days after anthesis, when the pods were fully mature and dry seed germination recorded was 86%. Fruits of cultivars 'Amerilinho', harvested 55 days after anthesis, showed the highest (92%) seed germination (Zanin et. al., 1998). The developing seed attained germination capability at 21 days after anthesis, with the highest germination and vigour values at 30-36 days after anthesis. Similar observations for the 'Pusa Sawani' cultivar were recorded by Velumani and Kamaswamy (1976).

Okra seed show conventional storage behaviour in which the longevity is improved with desiccation and storage at chilling temperature. High storage temperatures and high relative humidity reduces the storage life of seeds. Therefore, dry cool conditions are to be maintained for longer storage. Low seed moisture, preferably 5-7% is ideal for seed storage (Dhankhar and Singh, 2009). Agrawal (1980) stored okra seeds (10% moisture) for 37 months at ambient conditions. Moisture content of 13.6% or less was ideal for maintaining high seed viability for several years at room temperature is congenial for long term storage. However, seeds with high moisture content are not suitable for sealed storage at low temperature. Doijode (1986) reported that seed viability rapidly decreased at higher storage temperatures which promotes the leaching of electrolytes and solute sugar from the seeds.

Under this perspective, the present experiment was undertaken to investigate the effects of different harvesting time and storage on increasing germination and decreasing seed hardness of different okra cultivars. This study will help to find out the suitable time for harvesting the seed of okra.

Material and Methods :

The experiment was carried out at the Government Degree College, Jakhini, Varanasi in two years, 2016 and 2017. Climate characteristics of experimental location were shown in Table 1. The experiment was laid out in randomized complete block design under factorial arrangement with three replications. Four different cultivars of okra including, Kashi Kranti, Pusa A-4, Kashi Pragati and Arka Anamica and six harvesting times (Harvesting pods after flowering) were studied. Six harvesting times such as Harvesting pods 20 days after flowering (T1), harvesting pods 25 days after flowering (T2), harvesting pods 30 days after flowering (T3), harvesting pods 35 days after flowering (T4), harvesting pods 45 days after flowering (T5) and harvesting pods 60 days after flowering (T6). Planting Okra cultivars as a Kharif planting was performed by hand. Each experimental unit of three rows was established. The row to row and plant to plant distance was kept 45 cm. The seeds were planted 3 cm deep on the sowing lines. After crop started flowering were tagged and saved in enveloped for pollen

controll 20, 25, 30, 35, 45 and 60 days after tagging, pods were collected. Each individual crop of okra divided in three different parts and pods tagged as pods of low, middle and upper part of pod. Seeds in the pods were dried under oven. The seed germination experiment was conducted using three replications of 30 seeds per each treatment. Seeds were sterilized with suitable fungicide and were placed on double layered Wathman No. 1 filter paper moistured with distilled water in sterilized Petridishes, every 2 days the number of germinated seeds were counted and removed. For seed storage, seed harvested in 2016, kept at room temperature for 6 months were submitted to germination tests. Data were analyzed by using SFS statistical program and Duncan test was employed to classify mean values of different treatments when F-Values were significant (P < 0.05).

Table 1 Climate characteristics of experimental location2016 and 2017

Table 1 Climate characteristics of experimental location2016 and 2017

Months	2016						Months	2017					
	Minimum Temperature (°C)	Maximum Temperature (°C)	Average Temperature (°C)	Minimum Humidity (%)	Maximum Humidity (%)	Average Humidity (%)		Minimum Temperature (°C)	Maximum Temperature (°C)	Average Temperature (°C)	Minimum Humidity (%)	Maximum Humidity (%)	Average Humidity (%)
August	25	35	29	62	100	87	August	25	34	30	57	100	84
September	24	34	28	61	100	90	September	26	35	30	62	98	82
October	18	34	27	31	88	76	October	20	34	28	38	96	76
November	13	30	21	41	100	75	November	12	33	21	40	98	74
December	10	22	16	56	100	90	December	10	25	17	41	100	78
January	6	26	15	45	100	79	January	7	24	15	41	100	81
Av. Temp./ Humidity	16	30.17	22.67	49.33	99.33	82.83	Av. Temp./ Humidity	16.67	30.83	23.5	46.5	98.67	79.17

Table 2 Effects of different harvesting times on seed moisture content at 2016 and 2017

Harvesting time (DAA)	Seed Moisture (%) when harvested		Seed moisture (%)	
	2016	2017	2016	2017
20	64.5	62.6	9.3	9.5
25	58.2	56.3	9.1	9.3
30	52.7	51.5	8.5	8.7
35	46.3	45.8	8.3	8.5
45	41.1	42.4	8.1	8.3
60	12.8	13.2	8.0	8.1

Results and Discussion : The results of this study showed that in 2016 seed germination increased from 3.75% at first harvesting time (T1) to 65.75% at fifth harvesting time (T5) and in 2017 from 4.25%, at first harvesting time (T1) to 66.25% at fifth harvesting time (T5) (Fig. 1). Most seed hardness occurred at sixth harvesting time (T6) in both years, at this harvesting time only 41.5% of seeds in 2016 and 42.50% of seeds in 2017 germinated. Study of climate characteristics (Tab. 1) showed that in sixth harvesting time (T6) seeds were faced with lower temperature, and this may be temperature induced impermeable layer occurrence in seeds. Temperature during pod development also influenced seed germination as it influenced the development and the hardness of the seed coat (Dhankhar and Singh, 2009). Seed moisture content at the time of harvest from first harvesting time (T1) to lost one (T6) were declined, in this case dramatic decrease of 28.3% and 29.2% occurred from fifth harvesting time (T5) to the sixth harvesting time (T6) in 2016 and 2017, respectively (Tab.2). It seems that by reduction of seed moisture content, seed hardness was increased in seeds that at 60 days after anthesis, this result is consistent with the result of Demir (2001) which mentioned that seed coat impermeability increased as moisture levels of the seed decreased. The highest and lowest seed moisture after drying was monitored in 2016 at first and second harvesting time (T1 and T2) and last harvesting time (T6), and also in 2017 at first and second harvesting time (T1 and T2), respectively (Tab.2). It seems when immature okra fruits were harvested, the amount of

dry matter of such fruits was fairly low and this caused the seed of these fruits not to have capability of good germination. Several studies are available on development of seed within the capsule and the days to physiological maturity and harvesting. The highest seed germination was recorded when the pods were harvested 35 days (Saimbhi, 1987) and 40 days after anthesis (Neupane et. al., 1981). Delay in harvesting reduced seed weight and germination percentage. Percentage of seed germination after storage by increasing time of harvesting dramatically increased. Harvesting at 60 days after anthesis (T6) in first germination test showed more seed hardness subsequently after storage showed more seed germination (92.75%) (Fig.1). It seems that 50C caused overcome of seed hardness, so they germinate better. Okra seeds show conventional storage behaviour in which the longevity improved with desiccation and storage at chilling temperatures. Low seed moisture, preferably 5% - 7% was ideal for seed storage (Dhankhar and Singh, 2009).

Different varieties showed different seed germination. In 2016 Arka Anamica and Pusa A-4 varieties while in 2017, Kashi Pragati and Pusa A-4 varieties showed higher and lower germination, respectively. Considering lower germination of Pusa A-4 variety in both years, it seems that this had more seed hardness that caused less seed germination (Fig.2). Study of seed moisture of different varieties showed that Kashi Pragati and Arka Anamica varieties in both years had more moisture content at the time of harvest and after drying. Pusa A-4 which showed less seed germination in both years had less seed moisture content at the time of harvest, but after drying Kashi Pragati and Arka Anamica varieties in both years showed higher moisture content (Tab.3). There is a different relationship between the seed moisture content and delayed permeability with variances between cultivars and moisture contents (Demir, 2001). After storage, different varieties showed different germination behavior. Arka Anamica variety after storage produced more germinated seeds than other varieties, while Pusa A-4 variety after storage showed less germinated seeds (Fig.2). It seems a genetic difference between varieties that caused different germination after storage. In okra, seed germination is influenced by the position of the fruit on the plant and the cultivar as well, Purquerio et. al., (2010) found that in some cultivars, the occurrence of hard seeds becomes more frequent the longer the pod remain on the plant.

Seeds from different parts of plant showed different germination potential. In 2016, seed from middle part of the plant, and in 2017, seeds from the lower part of the plant showed higher germination rate (Fig.3). The same result was reported by Yadav et. al., (2001), higher value of seed per fruit, test weight, germination, vigor index and seed yield in fruits harvest from lower positions on the plant under semiarid conditions. Also same results reported by Naik et al., (2004). Study of seed moisture content showed that in both years, seed from middle part of the plant has more seed moisture content at the time of harvest and after drying (Tab.4). Result showed that after storages, seed from the middle part of plant showed more germination. In this study seeds from upper part of the plant after storage produce less germination (Fig.3).

Study of different parts of pod showed that seed from the middle part of pod had more germination in both years. Seeds from upper parts of pod in both years germinated less then other parts of pod. Seeds from middle and lower part of the pod after storage produced more germination than upper part of the pod (Fig.4). The same results was reported by Purquerio et. al., (2010) which explained that seeds from middle parts of pod presented higher germination capacity than upper part of pod.

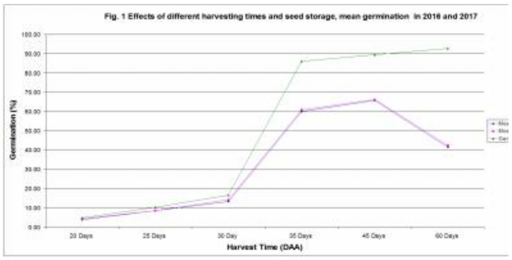

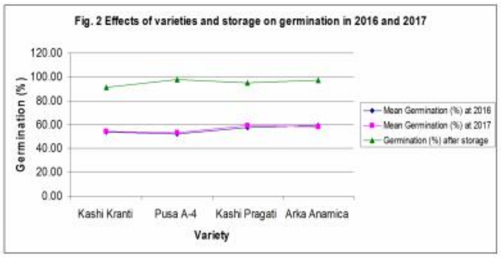

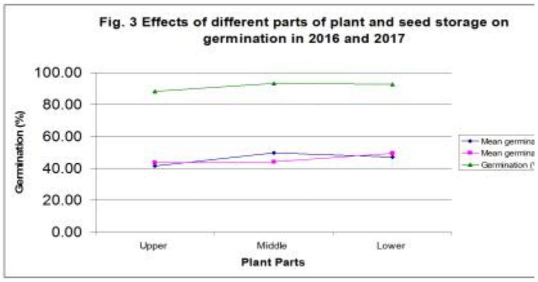

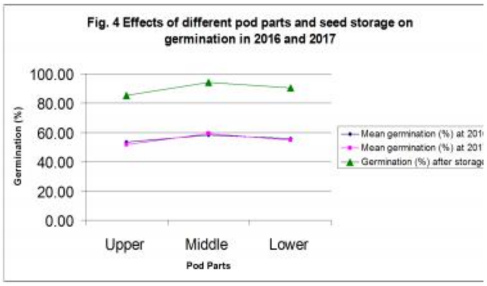

Table 3. The effects of the variety on seed moisture in 2016 2017

Varieties	Seed Moisture (%) when harvested		Seed moisture (%) after drying	
	2016	2017	2016	2017
Kashi Kranti	44.5	48.2	8.5	8.0
Pusa A-4	43.9	49.1	8.0	8.5
Kashi Pragati	51.6	58.9	8.6	8.6
Arka Anamica	48.3	58.5	8.2	8.9

Table 4 Effects of different plant parts on seed moisture in 2016 and 2017

Plant parts	Seed Moisture (%) when harvested		Seed moisture (%) after drying	
	2016	2017	2016	2017
Upper	60.1	58.5	8.3	8.2
Middle	63.3	62.4	9.5	8.7
Lower	59.5	59.6	8.2	8.1

Table 5 Effects of different parts of pod on seed moisture in 2016 and 2017

Pod parts	Mean Germination (%) at 2016	Mean Germination (%) at 2017	Germination (%) after storage
Upper	58.7	53.7	82.9
Middle	68.8	61.8	92.5
Lower	63.4	58.6	88.3

References :

1. Anonymous (2005). Biology of Okra. Series of Crop Specific Biology Document. Department of Biotechnology Ministry of Science and Technology of India.
2. Baskin, J.M. and Baskin, C.C. (1998). Ecolony, Biogeography and Evolution of dormancy and Germination. Academic Press, San Diegon, CA.
3. Chauhan, K.S. and Bhandari, Y.M. (1971). Pod development and germination studies in okra (Abelmoschus esculentus (L.) Moench). Indian J. Agri. Sci., 41 (10) : 852-856.
4. Dhankhar, B.S. and Singh, R. (2009). Okra handbook, global production, processing and crop improvement.
5. Demir, I. (1997). Occurrence of hard seedness in relation to seed developmenting okra (Abelmoschus esculentus (L.) Moench). Pl. Var. Seeds, 10 : 7-13.
6. Demir, I. (2001). The effects of heat treatment on hard seedness of serially harvested okra seed lots at optimum and low temperature. Sci. Horric., 89 : 218-221.
7. Doijode, S.D. (1986). Deteriorative changes in okra seeds after artificial aging. Prog. Hart., 18 : 218-221.
8. Ewere, F.K. (1980). Quality seed production in okra (Abelmoschus esculentus (L.) Moench). Veger. Hor. Humid. Trop., 5 : 39-44.
9. Luis Felpe, V.P.; Antonio, A. do L. and Francisco Antonio, P. (2010). Germination and hard seedness of seeds in okra elite lines. Horric. Bros., 28 : 232-235.
10. Neupane, P.R.; Ghimire, A.J. and Khanala, R. (1991). Seed research on summer vegetable crop (sweet paper and okra) at PAC. Tech. Pop. Pakhribas Agril. Cent., 144-140.
11. Purquerio, L.F.; Antonio A. do L. and Francisco, A. (2010). Germination and hard seedness of seeds in okra elite lines. Hortic. Bras-, 28 (2) : 232-235.
12. Setubal, J.W.; Zanin, A.C.W. and Nakagawa, J. (1994). Efeirosde merodos de colheita e da localizacao dos frutos na plan sobre a ocorrencia de sementes duras em quiabeiro (Abelmoschus esculentus (L.) Moench). Sci. Agric., 51 : 490-493.
13. Velumani, N.P. and Ramaswamy, R.K. (1976). Studies on seed maturation in bhindi (Abelmoschus esculentus (L.) Moench). Madras Agri. J., 66(2) : 75-83.
14. Yadav, S.K.; Dhankhar, B.S.; Deshwal, D.P. and Tomer, R.P.S. (2001), Effects of sowing date and plant geometry on seed production and quality of okra (Abelmoschus esculentus (L.) Moench), ev. ‘Varsha Uphar’. Seed Res., 29(2) : 149-152.
15. Zamin, A.C.W.; Nakagawa, J. and Setubal, J.W. (1998). Effects of fruit age, drying method and condition on seed quality of okra. II cultivar Amerelinho. Pesq. Agropec. Bras., 33(7) : 1186-1189.

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 27-30

Comparative Analysis of Literacy in Patna Division

Dr. Satyendra Singh Chandra*

Introduction: *Literacy is a positive quality of person and one of the most important determinants of quality of life. It is that quality of population which is fairly relative index of the socio-economic development of an area.[1] It effects fertility, mortality, economic pattern, occupational structure as well as migration pattern. It is one of the important tools of poverty eradication, helps in understanding and development of civic sense. Man being the citadel in the planning process, development of human resources has to be essential concern of the planners. Man is more important than their tools for growth of their production capacity. In order to study the human resource it is essential to analyse the literacy of the people. The degree of education in a community is a good measure of its progress towards modernisation.[2] Diversion of economic activities opens up new opportunities of gainful employment but it is possible only if the prospective employees are literate.[3] Literacy is considered as the yardstick to measure the extent to which a country or part thereof has developed. Its trend of growth indicates the trend of transformation of a particular society.[4]*

In India all those persons who can read and write a simple message with understanding in any language are classified as literate.[5] In Indian census 2001, a person aged 7 years and above who can both read and write with understanding in any language has been taken as literate. It is not necessary for a person to have received any formal education or passed any minimal educational standard for being treated as literate. The people who were blind and could read in Braille treated as literate. All children of age 6 years or less, even if going to school and have picked up reading and writing are treated as illiterate.[6]

Factors Affecting Literacy Rate:

Literacy rate in any area is determined by a variety of historical, social and economic factors. Among the important determinants of literacy are:

Cost of literacy
Political / ideological background
Type of economy
Standard of living
Degree of urbanisation
Stage of technological development
Degree of development of means of transportation and communication
Religious background
Medium of instructions
Status of women in the society
Prejudices against the female mobility and education
Availability of educational institutions
General value system
Public policies

There existed inter and intra-regional differences in literacy rate, differences between males and females, between rural and urban areas and among various population sub-groups.

*M.A. , Ph.D. (Geography), Magadh University, Bodh-Gaya.

Such differences are found only in those societies where either literacy transitions is in its infacy stage. Thus, the less developed countries are by and large characterised by wide male female differential, rural-urban differential or any other such differentials in term of literacy.8 Under this backdrop literacy rates in Patna division is highlighted here.

Patna division has remained in limelight since time immemorial. The region has its historical importance, known as rice bowl of Bihar has industrial prospect and very sensitive zone of social conflicts.

Types of Literacy Rate: As regard literacy the region does not present a disappointing scene when compared with state literacy level. However, intra-regional differentiations, like male-female differentials, rural-urban differential etc are observed. Patna division comprised of six districts as stated earlier has crude literacy rate 64.00 percent against 63.82 percent for the state of Bihar. Two types of literacy rate is calculated :

Crude Literacy Rate

Effective Literacy Rate

Calculation of Crude Literacy Rate:

Crude Literacy Rate is calculated using simple formula :

CLR = TotalLiteratePersons/TotalPopulation x 100

Here, CLR = Crude Literacy Rate

Calculation of Effective Literacy Rate: Effective Literacy Rate is calculated subtracting the population of 0-6 years from the total population. As it is supposed that the children below the age 6 years are incapable of reading and writing a passage of daily use with understanding.

Effective Literacy Rate (ELR) is calculated using formula :

ELR = (Total Literate Persons)/(TotalPopulation-(0-6 population)) x 100

A glance at table-1 reveals differential in literacy rate in the study area.

Table -1

Patna Division : Crude Literacy Rate, 2001-2011

Districts	2011			2001		
	Total	Male	Female	Total	Male	Female
Patna	70.36	74.88	65.71	62.90	73.40	50.90
Nalanda	62.77	68.04	57.00	53.20	66.40	38.50
Bhojpur	72.79	84.08	60.20	47.83	60.54	33.74
Buxar	71.77	82.78	59.84	45.79	58.18	35.12
Rohtas	75.59	85.79	64.94	49.18	60.74	36.47
Kaimur	71.01	81.49	59.56	43.18	55.37	30.53
Patna Division	64.00	70.14	57.37	59.03	66.35	41.06
Bihar State	63.82	73.39	53.37	47.00	59.70	33.10

Source : Census of India, 2001 and 2011.

Table-1 reveals that the study area witnessed commendable literacy rate. Total crude literacy in Patna division is 64.00 percent in 2011 and for male and female it is 70.14 and 57.37 percent respectively. Rohtas district recorded highest literacy rate (75.59%) not only in study area but in the state. In Bihar state literacy rate is only 63.82 percent. Rohtas district is followed by Bhojpur (72.79%), Buxar (71.77%), Kaimur (71.01%), Patna (70.36%) and Nalanda (62.77%). Sex-wise literacy pattern reveals that in Rohtas district male literacy rate is 85.79 percent followed by Bhojpur (84.08%), Buxar (82.78%), Kaimur (81.49%), Patna (74.88%) and Nalanda (68.04%). In respect of female literacy it is 65.71 percent in Patna followed by 64.94 percent in Rohtas, Bhojpur 60.20 percent, Buxar 59.84 percent, Kaimur 59.56 percent and Nalanda (57.00%). Literacy rate in the Patna Division is encouraging (Fig.-1).

When we compare the literacy rate with 2001 census year (table-1) to 2011 it shows an encouraging trend. Total literacy rate was only 59.03 percent, it was 66.35 and 41.06 percent for male and female respectively. In 2001 literacy rate in Bhojpur district was only 47.83 percent, it increased by 24.96 percent point. Similarly in Buxar it increased by 25.98

percent point,in Rohtas 26.41 percent point and Kaimur 27.83 percent point,Nalanda 9.57 percent point and Patna 7.46 percent point. In respect of male literacy the highest increase recorded in Kaimur (26.12 percent point) followed by Rohtas (25.05 percent point), Buxar (24.62 percent point), Bhojpur (23.54 percent point),Nalanda (1.64% point) and Patna (1.48% point). As regard female literacy the change is remarkable. The highest change occurred in Kaimur (29.03 percent point) followed by Rohtas (28.47% point), Bhojpur (26.46% point) and Buxar (24.72% point), Nalanda (18.50% point) and Patna (14.81% point). In Bihar the female literacy rates witness an increase of 20.27 percentpoint. It is due to recent steps taken by the state and central governments to promote education specially female education. The government sponsored schemes like cycle yojana, book yojana, dress yojana to girl's students encouraged in promoting female education.[9]

Effective Literacy Rate in the study area is also encouraging. It is shown in table-2.

Table - 2

Patna Division : Effective Literacy Rate, 2001 & 2011

(Figure in %)

Districts	2011	2001
Patna	80.95	62.92
Nalanda	74.59	53.14
Bhojpur	86.87	58.96
Buxar	86.27	56.80
Rohtas	90.68	61.29
Kaimur	86.53	55.12
Patna Division	84.32	58.04

Source : Calculated on basis of Census Report, 2011 and 2001.

The table-2reveals that effective literacy rate in the study area is commendable. It is the highest (90.68%) in Rohtas followed by Bhojpur (86.87%), Kaimur (86.53%), Buxar (86.27%), Patna (80.95%) and Nalanda (74.59%). It appears that during 2021 census effective literacy rate would reach hundred percent, if the existing trend continues.

Rural - Urban Literacy: However, rural-urban differential in literacy in the study area is found. The average literacy in rural area is 60.60 percent while in the urban area it is 76.47 percent. Rural-urban differential in the literacy rate is shown in table-3.

Table - 3

Patna Division : Rural-Urban Literacy, 2001 & 2011

(Figures in %)

Districts	2011		2001	
	Rural	Urban	Rural	Urban
Patna	29.33	69.51	41.31	67.01
Nalanda	46.93	62.77	40.42	56.62
Bhojpur	71.48	80.40	45.87	59.97
Buxar	70.75	81.03	44.23	61.28
Rohtas	74.74	84.66	47.26	64.39
Kaimur	70.41	80.47	42.89	64.24
Patna Division	60.60	76.47	43.66	62.25

Source : Census of India, 2001 and 2011.

Table- 3 depicts that there exists rural-urban differential in literacy rate. The highest rural and urban literacy rate is found in Rohtas district where it is 74.74 and 84.66 percent respectively. Bhojpur (71.48%) ranks second in respect of rural literacy but fourth in urban literacy. Buxar (70.75%) ranks third in rural literacy and second (81.03%) in urban literacy. Kaimur (70.41%) ranks fourth in rural literacy and third (80.47%) in urban literacy rate. In Nalanda district rural and urban literacy rate is 46.93 and 62.77 percent and in Patna rural and urban literacy rate is 29.33 and 69.51 percent.

References:

1. Chandra, R.C. and Sidhu, M.S. (1980) : Introduction to Population Geography, New Delhi, Ludhiana, Kalyani Publishers, P.96.
2. Davis, Kingsley (1980) : The Population of India and Pakistan Princeton university Press, P. 130.
3. India, 2006, New Delhi : Publication Division, Ministry of Information Broadcasting, Govt. of India, P. 221.
4. Pandey, N. (1985) : A geographical Analysis of the Population Dynamics of Magadh Plain, Bihar, An Unpublished Ph.D. Dissertation, Magadh University, Bodh Gaya.
5. Godden, Hilda, H. Literacy in International Encyclopaedia of the Social Science, Vol. 9, Mac Millan Company & Free Press, P. 415.
6. Census of India 2001, Bihar Series-II, Vol. 1, Primary Census Abstract, P. XXXVIII.
7. Chandana, R.C. (1986) : Geography of Population, New Delhi : KalyaniPrakashan, P. 350.
8. Ibid, P. 346-47.
9. Yadav, S.K. (2010) : "Female Literacy Pattern in Rural Area of Bihar : A geographical Analysis", The Social Profile Vol. 14, PP. 14-21.

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 31-33

Impact of Change in Govenment's Monetary Policy on Indian Economy

Dr. Shatrudhan Prasad*

Among country-specific studies on monetary policy frameworks, a study on India would be important. This is not only because of the large size of its population or economy, but because a few specific features make India a unique case study among countries. Although India consistently maintained a democratic form of governance, prior to the 1990's its economic framework was largely similar to that of a commond and controlled economy.

The story of economic reforms in India has been discussed in detail by several researchers form different perspectives. [1] Specific aspects like reforms in monetary and financial sectors in India and the role played by the Reserve Bank of India (RBI) in this endeavour have also been reviede in some of these studies[2]. Some reviews, were specifically devoted to the financial sector reforms and listed the changes in detail. A few studies have also documented the evolution monetary policy frameworks[3] and taken a view on the applicability of specific frameworks. in the Indian context. of late, some studies- mostly by current and ex-central bankers have begun to take a futuristic look, critically assessing the changes and raising issues of[4] concern aspects of the past and future of monetary policy in India and the framework under which it operates can also be gleaned from the speeches of the RBI mangemant, sometimes on a general note and sometimes on more specialized areas like central bank independence or communicatin strategies[5]. Reports of different advisory groups appointed by the RBI also summarise the changes in specialized areas like transparency in monetary and financial policies or data dissemination. These reports often review county;s[6] experiences and are valuable sources to analyse India's relative strengths and weakness among countries. Although aspects of these will inevitably crop up in what follows, they are discussed from the perspective of indentifying new lessons on the grey areas of economic theory.

In the theoretical literature, the choice of monetary policy strategy is often seen asa part of an optimal control problem[7]. The optimal strategy in this problem depends on issues like the stability of demand for money and the relative variances of shocks to the real and the financial sector. Empirical observations, however, do not match this theory. Central Banks that sear to different monetary policy strategies have been found to use similar instruments and to react to shocks in a similar manner.

What makes India an especially attractive case to examine the generality of the theory is the fact that the monetary policy framework in India has changed twice since the 1980;s. In both cases, the change in monetary policy gramework in India took place without substantial changes in the RBI Act, so that apparently the atated objectives of monetary policy in India remained the same. However, the operating environments at those two points in time were sharply different. The first change occurred during the heyday of command and control era, while the second took place when the so-called first-generation reform in India was near completion. Interestingly, in each case, the change occurred at points where it is possible to argue that there was no immediate urgency to act.

*Senior Secondary Teacher, Mahatma Gandhi Smarak+2 ,Sr.Sec.School Khajauli, Madhubani, Bihar

The second grey area in literature where the Indian experience could be of additional help is in understanding to what extent the monetary policy framework helps in improving economic performance. Both country-specific and cross-country experiences do not provide clear answers to this problem.[8] Country-specific studies indicate that switching to inflation targeting (IT) has sometimes been fllowed by a dramatic reduction in inflation. However, due to post hoc fallacy, to what extent the change in monetary framework is responsible for this reduction is not easy to answer. The general conclusion appears to be not easy to answer. The general conclusiton appears to be that both transparency and accountability are curcial to constraining discretionary monetary policy so that it produces the desired long-run outcome.[9] As the details of transparency and accountability are difficult to quantify, this is a serious impediment in obtaining definitive results.

The Indian experience might throw up some interesting insights on the role of the monetary framework because rather than a dramactic cut off, the fall in inflation in India had been gradual. Among emerging market countries,, its performance in containing inflation expecially after the adoption of MIA (the multiple indicator approach, appears to be good. As India is not a formally declared inflation targeting economy, this observation assumes additional importance. A juxtaposition of the Indian versions of transparency and accountability to other economies with diverse ometary policy frameworks may perhaps extract what aspects of them are essential for better economic performance.

Evolution of the monetary policy framework in India : The first and most important part of the monetary policy framework in a country is the task mandated to the monetary authoritites. In &democracy, this task is typically specified in the Central Bank act. It is interesting to note that despite overwhelming changes in the financial sector in India, the mandate to the monetary aurhorities in India mentioned in the Reserve Bank of India Act, 1934 has remained unchanged. The RBI act, 1934: different interpretations and implications for central bank independence and transparency.

The preliminaries of the reserve Bank of India Act, 1934 set the mandated tasks as "…to regulate the issue of 1934 set the mandated tasks as "to regulate the issue of Bank notes and keeping of reserves with a view to securing monetary stability in Inida and generally to operate the currency and credit system of the country tc its advantage." The tasks mandated to the RBI can, however, be interpreted in several ways. In particular the words "monetary stability" may mean both internal and external stability. If it is interpreted in the narror sense of internal stability, then price stability becomes a major objective. If, in contrast, the interprecation also includes external stability, financial stability as a whole (including price stability) becomes the mandated task. The RBI website interprets the objective of the RBI as monetary authority as: "maintaining price stability and ensuring edequate flow of credit to productive sectors." A lternatively, Rangarajan, one of the main architects of economic reforms in India. Interprets the objectives as :"(1) to maintain a reasonable degree of price stability and (2) to help accelerate the rate of economic growth."[10]

The additional emphasis on credit growth by the RBI gives Indian monetary policy objectives a distinct feature that is not typically discussed in standard textbooks. In most cases, however, the objective is stated with an additional "for sustaining overall economic growth" or simply "to support growth" in the end. Therefore in a broad sense, the additional monetary policy objective (besides price stability) in India is to support or to facilitate GDP growth.[11] The relative emphasis on price stability versus growth is ,once again, subject to interpretation.

It is interpreted that the objective would depend on underlying nacroeconomic conditions. Monetary policy in India, therefore, strives for a "judiciuous balance between price stability and growth reddy, however, observes that due to the demorcratic process of governance in India, the "judicious balance" is heavily tilted toward price stability, which, in some ways, amounts to an "informal mandate" to the central bank for maintaining an "acceptable" level of inflation.[12]

An interesting question here is: who sets these objectives/ In a democratic framework, the power to set the target typically rests with the elected representatives. In monetary policy frameworks like inflation targeting. this target is revealed to the public in the form of a transparent contract between the government and the central bank. In the Indian case, there is no such explioit contract. Rather, Section 7 of the RBI Act, 1934 stipulates that the central government my from time to time give such directions to the Bank as it may, after consultation with the governor the Bank, consider necessary in the public interest. The RBI Act does not stipulate that such directions should be in the public domain or should need the approval of parliament.

References :

1. M.S. Ahulwalla,"Economic Reforms in India shince 1991: Has graduallam worked\" Journal of Economic Perspective, Vol. 16, 2002, pp. 67-88.
2. Y.V. Reddy, "Monetary Policy operating procedure in India", Monetary policy operating Procedures in Emerging market Economies, Bank of International Settlement (ed), 1999, pp 90-109.
3. R.Kannan, "Inflation Targeting Issues and Relevance for India", Economic and Political weekly, XXXIV, 1999, pp. 115-122.
4. R.Mohan, "Globalization, Financial Markets and the operation of Monetary Policy in India" BIS Papers, No. 23, pp. 161-170.
5. R.Mohan, "Communications in Central Bank: A Perspective Speech", devivered at the SAARC Finance Governors' Psymposium, Mumbai, 9 september, 2005.
6. R.B.I, Report of the Advisory Group on Transparency in Monetary and Financial Policies, 2000.
7. W.Poole, "Optimal Choice of Monetary Policy Instruments in a Simple Scholastic Macro Model" Quarterly Journal of Economic, No.84, 1970, pp. 197-216
8. R.8. Mishkin, "International Experiences with different Monetary policy Regtimes", NBER Working paper, 7044. 1999.
9. Ibid.
10. C. Ranarajan, op. cit., p. 77.
11. R.Mohan, "Financial Sector Reforms in India: Policy and Performance Analysis", Economic and Political Weekly, XXXX, 19 March, 2005, pp.1109-1119.
12. Y.V. Reddy, "Globalization of Monetary Policy and India Experience", Speech at 8th Meeting of the BIS Working Party on Monetary Policy in Asia, held at RBI, Mumbai on 6-7 June, 2005.

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 34-38

Plastic waste management in India

Tripuresh Nath Tiwari*

Take a moment and look around, you will realise how dependent we are on plastics. It has become an unavoidable part of our lives in the past three decades or so.Plastic has multiple uses and the physical and chemical properties lead to commercial success. According to the recent United Nations Environment Programme report, the world produces 400 million tonne single-use plastic (SUP) waste annually (47 per cent of the total plastic waste).[1] It is estimated that only 9 per cent of the plastic is getting recycled worldwide.

Like any other country, waste management is a pressing issue in India, especially with the unceasing growth of consumerism throughout the nation. Interestingly, almost 60 per cent of the total plastic waste generated in India gets recycled while the remaining escapes into the environment. However, most of this plastic is down-cycled. The indiscriminate disposal of plastic has become a major threat to the environment. In particular, the plastic carry bags are the biggest contributors of littered waste and every year, millions of plastic bags end up in to the environment vis-a-vis soil, water bodies, water courses, etc and it takes an average of one thousand years to decompose completely. This leads to burden on the landfills and poor socio-economic conditions of the waste pickers.At this juncture, India needs robust and stringent waste management tools to substantially improve the situation. Therefore, to address the issue of scientific plastic waste management, the Plastic Waste (Management and Handling) Rules, 2011 were notified in 2011, which included plastic waste management. The Government has notified the Plastic Waste Management Rules, 2016, in suppression of the earlier Plastic Waste (Management and Handling) Rules, 2011.

Plastics : Plastics are derived from materials found in nature, such as natural gas, oil, coal, minerals and plants. The raw materials for today's plastics come from many places (some even use salt!), but most plastics can be made from the hydrocarbons that are readily available in natural gas, oil and coal. Now the question is what is how it is converted into waste or pollution 'the accumulation of plastic objects (e.g.: plastic bottles and much more) in the Earth's environment that adversely affects wildlife, wildlife habitat, and humans. It also refers to the significant amount of plastic that isn't recycled and ends up in landfill or, in the developing world, thrown into unregulated dump sites and the main reason is plastic does not decompose easily it takes thousands years. That plastic has to go somewhere, and it's frequently either dumped carelessly on land or in rivers in developing countries, before ending up in the ocean, where it threatens marine life.

The three quarters that isn't recycled enters our environment, polluting our oceans and causing damage to our ecosystem. In less developed countries, the majority of plastic waste eventually ends up in the ocean, meaning that marine animals are especially at risk. Plastic is considered to be so much problematic, why so? We will discuss it later. We simply can't cope with the amount of plastic on our planet — nor the amount that continues to be produced. For this reason, our attitudes and behaviours towards plastic must change to ensure a safe and healthy future for our planet.[2]

*Research scholar, Faculty of law, University of Allahabad

The Society of the Plastics Industry, Inc. (SPI) introduced its resin identification coding system in 1988 at the urging of recyclers around the country.
The types of plastic and the number of times it can be recycled:

Type of plastic	Uses	Number of times can be recycled
Polyethylene Terephthalate (PETE or PET)	Water and soft drink bottles, food jars	1
High-Density Polyethylene (HDPE)	Shampoo bottles and packaging	2
Polyvinyl Chloride (PVC)	Cabels, pumping pipes	3
Low-Density Polyethylene (LDPE)	Grocery bags packaging	4
Polypropylene (PP)	Bottle caps, medicine bottles, chips bags	5
Polystyrene, polycarbonate or Styrofoam (PS)	Food packaging, electronic good and defence gadgets	6
Miscellaneous plastics (includes: polycarbonate, polylactide, acrylic, acrylonitrile butadiene, styrene, fiberglass, and nylon)	Fishing nets, ropes, clothing,	7

Indian Legal system for plastic waste management : India is the first country that has made constitutional provisions for protection and improvement of the environment. The Indian constitution provides a broad framework of powers and functions in relation with maintenance of safe and healthy environment for people and other living ones. Article 243 (W) of the constitution specifies the powers, authority and responsibility of the municipalities to carry out functions that are relevant to solid waste management, public health, sanitation conservancy and protection of environment, safeguarding interests of weaker sections and urban poverty alleviation. The state is obligatory to secure a social order for the promotion of welfare of people.[3]It is a duty on the state toimprove the standard of living and public health.[4] The constitution also imposes certain duties on citizens of the country and courts have expanded the understanding of certain provisions in keeping with changing times. In this connection, Article 21 of constitution says 'No person shall be deprived of his life or personal liberty except according to procedure established by law' while Article 48-A is 'The state shall endeavour to protect and improve the environment and to safeguard the forests and wild life of the country'. In addition, an important provision related with protection of the environment as 'It shall be the duty of every citizen of India to protect and improve the natural environment including forests, lakes, rivers and wildlife and to have compassion for living creatures'.[5] These provisions have formed the basis for the outcome of current environmental governance for the protection of environment in India.

Plastic Waste Management (PWM) Rules 2016 : As every law has its roots in the constitution only the Government of India notified Plastic Waste Management (PWM) Rules, 2016 on 18thMarch, 2016, superseding Plastic Waste (Management &Handling) Rules, 2011. These rules were further amended and named as 'Plastic Waste Management (Amendment) Rules, 2018

Salient features of Plastic Waste Management (PWM Rules), 2016

• These rules shall apply to every Waste Generator, Local Body, Gram Panchayat, Manufacturer, Importer, Producer and Brand Owner.

• Carry bags made of virgin or recycled plastic, shall not be less than fifty microns in thickness. The provision of thickness shall not be applicable to carry bags made up of Compostable plastic, complying IS/ISO: 17088.

• Waste Generators including institutional generators, event organizers shall not litter theplastic waste, shall segregate waste and handoverto authorized agency and shall pay user fee as prescribed by ULB and spot fine in case of violation.
• Local Bodies shall encourage use of plastic waste for road construction or energy recovery or waste to oil or co-processing in cement kilns etc. It shall be responsible for development and setting up of infrastructure for segregation, collection, storage, transportation, processing and disposal of the plastic waste either on its own or by engaging agencies or producers
• Gram Panchayat either on its own or by engaging an agency shall set up, operationalize and coordinate for waste management in the rural area under their control and for performing the associated functions, namely, ensuring segregation, collection, storage, transportation, plastic waste and channelization of recyclable plastic waste fraction to recyclers having valid registration; ensuring that no damage is caused to the environment during this process; creating awareness among all stakeholders about their responsibilities; and ensuring that open burning of plastic waste does not take place.
• Producer, Importers and Brand Owners need to work out modalities for waste collection system for collecting back the plastic waste within a period of six months in consultation with local authority/State Urban Development Department and implement with two years thereafter.
• State Pollution Control Board (SPCB)/ Pollution Control Committee (PCC) shall be the authority for enforcement of the provisions of PWM Rules, 2016, relating to registration, manufacture of plastic products and multi-layered packaging, processing and disposal of plastic wastes.
• Concerned Secretary-in-charge of Urban Development of the State or a Union Territory and concerned Gram Panchayat in the rural area of the State or a Union Territory shall be the authority for enforcement of the provisions of PWM Rules, Rules relating to waste management by waste generator, use of plastic carry bags, plastic sheets or like, covers made of plastic sheets and multi-layered packaging.
• District Magistrate or Deputy Commissioner shall provide the assistance to SPCBs/PCCs, Secretary-in- Charge, Urban Development Department and Gram Panchayat under his jurisdiction, whenever required for enforcement of provisions of PWM Rules, 2016.

Effects of plastic on environment : Millions of animals are killed by plastics every year, from birds to fish to other marine organisms. Nearly 700 species, including endangered ones, are known to have been affected by plastics. Nearly every species of seabird eats plastics.[6]Most of the deaths to animals are caused by entanglement or starvation. Seals, whales, turtles, and other animals are strangled by abandoned fishing gear or discarded six-pack rings. Micro plastics have been found in more than 100 aquatic species, including fish, shrimp, and mussels destined for our dinner plates. In many cases, these tiny bits pass through the digestive system and are expelled without consequence. But plastics have also been found to have blocked digestive tracts or pierced organs, causing death. Stomachs so packed with plastics reduce the urge to eat, causing starvation. Plastics have been consumed by land-based animals, including elephants, hyenas, zebras, tigers, camels, cattle, and other large mammals, in some cases causing death. Tests have also confirmed liver and cell damage and disruptions to reproductive systems, prompting some species, such as oysters, to produce fewer eggs. New research shows that larval fish are eating nanofibers in the first days of life, raising new questions about the effects of plastics on fish populations.

Micro plastics entering the human body via direct exposures through ingestion or inhalation can lead to an array of health impacts, including inflammation, genotoxicity, oxidative stress, apoptosis, and necrosis, which are linked to an array of negative health outcomes including cancer, cardiovascular diseases, inflammatory bowel disease, diabetes, rheumatoid

arthritis, chronic inflammation, auto-immune conditions, neuro-degenerative diseases, and stroke.

The role of rag pickers : Rag pickers sustain themselves by collecting, sorting and segregating waste and then trading it. In doing so, they help clean up a significant proportion of the 62 million tonnes of waste generated annually in India. If India is successful in recycling a big part of its waste it's possible to a lot of extent because of the rag pickers. Given that rag-picking is a totally informal sector it is hard to quantify how much waste is collected in this manner, but there are rough indicators: Only 75-80% of the waste generated in India is collected by municipal bodies and more than 90% of India does not have a proper waste disposal system.[7]

A lot of garbage clearing thus is the done informally, by ragpickers who work without any job security, salary or dignity. Not just that, they are regularly exposed to cuts, infection, respiratory diseases and tuberculosis apart from poverty, humiliation, harassment, and sexual abuse on the streets. This informal sector has saved the country. They are doing a good job and I have decided to recognise their efforts. We will grant (a) national award," former environment minister Prakash Javadekar had declared in 2015 at an event on waste management in New Delhi.It was declared that a cash prize of Rs 150,000 ($2,330) would be given to three ragpickers and three associations involved in innovative waste management. More than a year later there is no information available about the scheme.

But there is one more issue the occupation exposes these workers to toxins, the International Archives of Occupational and Environmental Health shows. They have little or no access to protective gear. These saviours need protective mechanism and recognition.

Plastic Waste Management : All plastic waste management technologies (including incineration, co-incineration, gasification, and pyrolysis) result in the release of toxic metals, such as lead and mercury, organic substances (dioxins and furans), acid gases, and other toxic substances to the air, water, and soils. All such technologies lead to direct and indirect exposure to toxic substances for workers and nearby communities, including through inhalation of contaminated air, direct contact with contaminated soil or water, and ingestion of foods that were grown in an environment polluted with these substances. Toxins from emissions, fly ash, and slag in a burn pile can travel long distances and deposit in soil and water, eventually entering human bodies after being accumulated in the tissues of plants and animals. Even after maximum number of recycling plastic will ultimately be useless and will pollute the environment in the end.[8]

UNDP and plastic waste management in India : United Nations Development Programme (UNDP) India, in partnership with Hindustan Coca-Cola Beverages Private Limited (HCCBPL) and Hindustan Unilever Limited (HUL) is building on existing systems to reduce the impact of plastic waste on environment in India. The partnership promotes collection, segregation and recycling of all kinds of plastics to move towards a circular economy.[9]

This project aims to:

- Create a socio-technical model for taking plastic waste management from informal to formal economy
- Establish Material Recovery Centres for sustained practices in waste management
- Institutionalize Swachhta Kendras within governance framework structures and improved socio-economic conditions of waste pickers.
- Develop technology-supported knowledge management: Promote Cloud-based traceability, accountability and digital governance along waste value chain through our technical partner *Mindtree* through field implementing partners.

Conclusion : Plastic as we know is now an essential part of our daily life we can notice from brushing your teeth in the morning with a toothbrush of plastic till sleeping at night we

use plastic made things all day. Plastic is not only dangerous when it became waste but also when it is still in use, we have scientific data proving its negative effects on human and environment. One of the main reason of this plastic pollution is the lack of recycling and being non-biodegradable nature of plastic. As we are again trying to shift to old methods of living without plastic. But the problem is it is very difficult to withdraw things when they come once in such a huge public use. It's now a matter of policy making and general awareness that can help with the problem of plastic pollution. Our small day to day activities can improve the scenario and save our beautiful planet earth

Bibliography :

- Constitution of India 1950, Plastic waste management rules 2016, UNDP program 2018-2024.

Articles and research papers :

- National geographic.com, The world's plastic pollution crisis explained by Laura Parker
- Indiaspend.com, Bose & Anirban BhattacharyaWhy Rag pickers, Unrecognised and Unpaid, Are Critical for Waste Management in India by Rajanya, May 12, 2017 Plastic and Human Health: A Lifecycle Approach to Plastic Pollution (centre of international environment 2020
- https://archive.indiaspend.com/cover-story/why-ragpickers-unrecognised-and-unpaid-are-critical-for-waste-management-in-india-43164 last visited of 10 oct 2020
- https://www.ciel.org/project-update/plastic-and-human-health-a-lifecycle-approach-to-plastic-pollution/last visited on 8th of oct 2020
- https://www.downtoearth.org.in/blog/waste/plastic-waste-management-what-can-india-learn-from-other-countries-67048 last visited on 20 september 2020
- https://cleanstreets.westminster.gov.uk/plastic-waste-complete-guide last visited on 18 September 2020

References :

1 Plastic waste management: What can India learn from other countries by sanika Santosh and rashmin .Srivastava , Down to Earth 1st October 2019

2. Plastic waste – everything you need to know, city of webminister

3. Article 38 Constitution of India 1950

4. Article 47 Constitution of India 1950

5. Article 51-A (g) Constitution of India 1950

6. The world's plastic pollution crisis explained by Laura Parker

7. Bose & Anirban Bhattacharya Why Rag pickers, Unrecognised and Unpaid, Are Critical for Waste Management in India by Rajanya, May 12, 2017

8. Plastic and Human Health: A Lifecycle Approach to Plastic Pollution (centre of international environment law)

9. Plastic Waste Management Programme (2018-2024)

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. I, Part-III
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 39-43

Failed Diplomacy: St Lubin's Mission to Maratha Court

Brijesh Kumar Shukla*

Relations of French East India Company's relations with Marathas is not as celebrated and debated in Indian colonial history as of Mysore or Hyderabad. The present paper analytically reveals that through diplomatic missions French tried to associate closely with the Marathas. So that they can use it as one of the main stay of French hope of *revanche* in India. During the late Eighteenth century they kept negotiating with the Maratha powers to form a formidable Alliance.

The governor of French possessions in India, M. Law de Lauriston has been an advocate of Franco- Maratha alliance. Since his arrival in India, Law maintained correspondence with different fractions of Marathas with the hope that whenever the opportune moment will arrive he will be able to bring these Maratha chiefs closer to French and put forth a combined force against the English in India. Marathas too wanted to cultivate the friendship of French to repulse the increasing English dominance and had forwarded certain proposals of friendship to Law, which in turn were forwarded to home government by him for consideration.

French governments initiatives : The Maratha proposals sent by Law through Beylie reached France in early 1776. War had just broken out between England and her American colonies. The situation seemed propitious for France to avenge her defeat in 1763. Though the decision to intervene in the War was still in its infancy, Vergennes, the French minister for Foreign Affairs, advised Sartine, the Minister of Marine, to establish contact with the Government of Poona. Sartine, who had been already approached by Lubin on this subject, decided to entrust him with the mission. [1]Lubin's plan was a treaty with the Marathas, by which the French would furnish them a corps of troops, consisting of 2,400 soldiers. These troops would be divided into two regiments. The first would be composed of 1,200 men, named the Regiment of Alliance, which would serve the Marathas and always maintain its full strength. The second would be stationed at Pondicherry and utilized for recruiting the Regiment of Alliance.[2] The Marathas, Lubin underscored, possessed a decided superiority over the English in the open field. The French artillery would give the Marathas a decisive advantage over the English in siege opera- tions.

On March 26, 1776, Sartine informed Lubin of the King's decision to employ him as accredited envoy to negotiate a treaty of commerce with the Marathas at Poona.[3] St. Lubin was be entrusted with two letters. In the first letter, the King of France assured the Peshwa that the former had no ambition for making territorial acquisitions in Hindusthan. His Majesty's real intentions were only to establish commerce between the two Nations.[4] The second letter was from Sartine and was addressed to Nana Fadnavis, First Minister of the Maratha Empire.[5] On April 22, St. Lubin received the contents of his mission.[6] He was to sign a treaty of commerce consisting of the following four articles:[7]

1. There should exist between the French and the Marathas a perpetual friendship whereby the French would render all possible service to the Marathas, who, in turn, would guarantee protection to French posses- sions in Hindusthan against any enemy whosoever;

*Research Scholar, University Department of History, Vinoba Bhave University, Hazaribag

2. Maratha traders would be exempt from customs duties in all the French dominions, present and future, and vice- versa;
3. Maratha shipswill have free access into all French ports and the same will apply to French ships at Maratha ports;
4. And lastly, Maratha vessels would be under French protection at all times in all the ports under the rule of that Government and vice-versa.[8]

In explaining Article 1, Lubin had to underscore that since France was presently at peace with other nations (meaning England), His Majesty could not enter into an alliance hostile to any of them.[9] But, if any Power provoked hostilities and took up arms, the King would then unite his forces with those of the King of the Marathas to punish the common enemy.[10] On this understanding, Lubin was to negotiate a conditional treaty of offensive and defensive alliance between the two Crowns against any aggressor.[11] Pending the ratification of these terms by His Majesty, the King of France, St. Lubin was to procure from the Marathas a guarantee of provisional protection to all the French establishments in India against the attacks of any enemy.[12] In return, His Majesty would permit His ship-owners to trade in arms and munitions with the Marathas, a relationship befitting the two nations bound by friendship and common interests.[13]

As a precondition of this commercial bond, St. Lubin was instructed to request the grant of suitable sites in the Maratha ports for the establishment of commercial houses, as well as for the construction of vessels.

Events at the Poona court : On February 22, 1777, St. Lubin reached Poona and was received by the Peshwa with all the honors befitting the dignity of the envoy of the King of France.[14] This was in contrast of the instruction given to him by the minister to follow extreme secrecy in negotiations. St Lubin arrived 'riding an elephant and accompanied by seven or eight officers in palanquins'.[15] He was given as audience with the Peshwa on 8th may. On June 27, Nana Fadnavis delivered the Peshwa's reply to Louis XVI's letter. The Peshwa expressed his great pleasure in accepting the French King's friendship, and gave the latter an assurance about his own. He also confirmed that the French could obtain from the Maratha Government all the assistance they needed. Nana Fadnavis sent his reply to Sartine's letter. M. Pascal de Santy carried the responses back to France.[16]

With regard to the conditional treaty, the Marathas promised to place at St. Lubin's disposal, a cavalry force of 25,000 men in case of hostilities against the French establish- ments in India. On their part, the French were to dispatch a force of 2,500 men to assist the Marathas as soon as war was declared between France and England in Europe. St Lubin had also planned for the landing of these troops at a Portuguese harbor and requested for the same to the Captain General of Goa.[17]

The French request for the grant of suitable sites in the Maratha ports for the establishment of commercial houses was assured. St. Lubin sent his reports to the Minister.

The smooth course of negotiations between the French and Marathas was for a while disrupted by English intrigues.[18] Nevertheless, St. Lubin continued to use all the diplomatic nuances to influence the Peshwa and his Council. He revealed them the intricacies of English politique in India. The English could never defeat the Marathas if the latter remained united. Hence, the English were trying to divide and weaken them by sowing the seeds of discord between the different factions. This motive impelled the English to foment quarrels between the Marathas and Haider Ali.

St Lubin also kept Bellecombe, governor of Pondicherry informed about the transactions taking place by a letter.[19]Bellecombe, however, did not find any benefit by the commercial treaty concluded by Lubin as he was in favour of a military alliance with Mysore.[20] Also, he betrays jealousy for Lubin as he was independently negotiating a treaty

with Marathas on behalf of French King. He felt that his position and dignity as the Governor of whole French dominions in India was compromised.[21] He was right when he concludes that having the Marathas and Haider Ali both on board is a must for any success of French designs in India.[22]

Meanwhile, Bombay government grew anxious of French machination and expressed their disappointment to Nana. To which he gave a dubious reply:

theirs being a sovereign state, every power desirous of sending ambassadors to cultivate in friendship and seek its connection; to refuse admission to the ambassadors of the French monarch or other powers charged with proposition of friendship from their masters would be highly improper, and not to hear their representation would be inconsistent with the credit and dignity of the state.[23]

Given the uncertain nature of reply, now Bombay government registered their protest through official channel, i.e. by English agent at the Poona darbar, MrMostyn. He, in person, informed Minister SakharamBapu that friendship with the France has definitely caused a breach of trust and has injured the honourable company.[24]

English, for a time being, with the help of Moroba and Ragunathrao were able check these activities, Moroba with help of TkojiHolker had captured Poona and Nana, along with PeshwaSawaiMadhavrao, had to retreat to Purandar. But soon both the parties reconciled and St Lubin again started with his plans.

Lubin, in line with the instructions he received, implored the Marathas to reconcile their differences with Haider Ali for the moment, and make a united stand against a more menacing enemy, the English. The Peshwa agreed to terminate hostilities with Mysore, but he demanded the assistance of the King of France to reduce Bombay, Salsette, Surat and Bhadoch (190 miles north of Bombay). In return for their services, the Peshwa would cede Bombay and Surat to the French, while Salsette and Bhadoch would return to the Marathas. Lubin hurriedly dispatched this entire information through M. Pascal de Santy to France. St. Lubin was invited to Purandhar to finalize the agreement.[25]

The negotiations for the supply of French troops to expel the English from India were concluded after prolonged discussions between Lubin and the representatives of the Maratha government at Poona, namely, SakharamBapu, Nana and Krishnarao. War against the English would commence as soon as France furnished her contingent of 2,500 men. The Marathas undertook to defray the expenses of the French troops —their levy, armament, equipment, maintenance, transport and pay. They were to supply the wood for the construction of the French fleet, composed of one vessel of 64 guns, four frigates of 32, sixteen corvettes of 16, including the other resources. This fleet armed, equipped and maintained by the King of France and attached to the French contingent of 2,500 men, would to be stationed at the Isle of France under the orders of the Envoy Plenipotentiary of the King of France to the Maratha Court, who would assume the command of all the troops [land and naval] which would be called “troops of alliance”. St. Lubin planned to proceed to France himself to explain all the terms of the treaty. The Peshwa sent a letter to the King of France, requesting him for an expeditious reply. He also solicited St. Lubin’s return to his Court, in order that the latter may serve as the link of friendship between the two Crowns.

English Response to St Lubin’s Mission : “Hitherto no agreement had been concluded between him and this darbar, neither shall any be made here after , and I will never hold with him or his nation, any sort of friendship….” [31]

Mahadji Sindhia wrote to Hastings that he has persuaded Nana and Sakharam Bapu to cease friendliness with French and both have adhered to the suggestion.[32] Though English were able to check the power of Nana for time being but their hope of getting a pro-English administration at Poona failed as soon Maratha factions reconciled and came together.[33] St Lubin, too, remained in Poona itself.

Throughout the negotiations, St Lubin maintained regular correspondence with French consul at Surat, M. Briancourt.[34] It was from Briancourt that St Lubin came to know about the English designs on Bessein.[35]

In fact, the French with the assistance of the Marathas might have succeeded in defeating the English, and it was the reality of this threat which drove the English to frustrate their plans.

'We regard the Marathas as the only native and the French as the only Foreign Power in the East Indies, capable of affecting the influence which the English nation has acquired in it...;[36]

In addition, the English were aware of the formidable strength of Haider Ali. The latter would seize this opportunity to attack the English in the South. To avoid such a concerted attack, the English disrupted the Franco-Maratha alliance and exacted a promise from the new Maratha leader at Poona, Raghoba, to repudiate all connections with France. Thus, I will conclude that the delay in the Franco-Maratha negotiations exacerbated by the military insufficiency of the French in India, and the circum- spect disposition of the Versailles government, foiled the vigorous attempts of French plenipotentiaries in India to erect a firm bond between the French and their Maratha connec- tion.

References

1. Letter dt. April 7,1775, Paris , A.N. C
2. 123, f. 123 vo- *French Records.*- Vol–II, p. 2 *French Records.* Vol. II, p. 243
3. FondsAsie, Vol IV, Archives Of The Ministry For Foreign Affairs, folio. 165. Quoted in Kadam, U.A. (2008). *History of Marathas.* Sundeep Prakashan. pp. 157-159
4. Ibid. folio. 165 vp
5. Malekandathil, Pius (2016). *The Indian Ocean in the Making of Early Modern India*. Routledge. p. 251
6. Ibid.
7. Malekandathil, Pius *The Indian Ocean in the Making of Early Modern India.*p. 252
8. FondsAsie, Vol IV, ARCHIVES OF THE MINISTRY FOR FOREIGN AFFAIRS, folio. 166 v; *French Records.*Vol II, p. 288
9. Ibid. folio 167, *French Records.*Vol II, p. 290
10. Margerison, Kenneth (Dec 2016). Rogue diplomacy: Sartine, Saint-Lubin and the French attempt to recover 'Lost India' 1776–80. *French History*. 30(4). 477–504, Retrieved on June 24, 2020 from https://doi.org/10.1093/fh/crw056 p. 491
11. fol. 165, op. cit. *French Records.* Vol II, p. 287
12. Margerison, Kenneth.Rogue diplomacy, op. cit. p. 491
13. Ibid.
14. The reception given to St. Lubin was a grand affair and a contrast to the icy chill of the welcome that Mostyn, newly appointed English envoy to Maratha court, had received a few days back. Mostyn had replaced Upton as the agent of English Company at Poona.
15. *Copy of a letter from the waquilVenkatrao, maintained by the French with Muhammad Ali Ahan at Madras, written to the secretary of M De Bellecombe, dated 31st may 1977 received on 2nd June*, A.N. C 2 128 folio 79, *French Records*, Vol II., p. 354
16. Alarmed by these negotiation, English immediately resolved to give encouragement to the party formed in Raghoba'sfavour. The Bombay Government fabricated a very fascinating picture of their prospects. See Verma ,Shanti P. (1956). *Study in Maratha Diplomacy (Anglo-Maratha Relations, 1772 -1783 A.D.),* Shivalal Agrawal & Co., pp. 163-164
17. *Copy of letter from Mons. St. Lubin to the Captain General of Goa*, 12th March 1778 Forrest, G. (ed.)(1885). Selections from the letters, despatches and other state papers preserved in the Bombay secretariat Maratha series, Vol. I (henceforth *Maratha Series). http://hdl.handle.net/10973/19523* retrieved 20 July 2020. pp. 323 & 325
18. Hatalkar,V.G. *Relations between the French and the Marathas*. op.cit. pp. 190-192
19. Letter dated. August 10,1777. *Maratha series*, p. 297; folio 171. *French records*Vol II. P. 36320Bellecombe's letter dated 15 October 1777 to Sartine, Pondicherry. A.N., C2 148 f. 159-169 v°, *French Records.* op. cit. p. 107
21. Ibid.

22. A.N. Col.C2 148, fos.164–167, Bellecombe to Sartine, Pondichéry, 15 Oct. 1777.
23. *The Calendar of Persian Correspondence*, Imperial Record Department. Vol. V, p. 176 ; *Maratha Series*, p. 525
24. Mostyn to William Hornby, President and Governor, and Members of the Select Committee, at Bombay, 19 May 1777, *Maratha Series*, pp. 288-289
25. Hatalkar,V.G. *Relations between the French and the Marathas*. op.cit. pp. 194
26. Willam Hornby, president of the British East India Company's Council of Bombay and Council to Warren Hastings, Bombay Castle, 10 May 1777, *Maratha Series*. p. 288.
27. Mostyn to Hornby, Letter dated 28 May 1778, *Maratha Series*, 322; Enclosure from Mostyn, 29 May 1778, *Calendar of Persian Correspondence*, Vol V, p. 172 & 186
28. Marshal, P. J. (2005). *The Making and Unmaking of Empires : Britain, India, and America c.1750–1783*. OUP. p. 240
29. '*Resolutions of the Governor General and Council'*, Fort William, 2 Feb. 1778, Maratha Series, p. 309.
30. *Study in Maratha Diplomacy,* Op. cit., pp. 170-172
31. Duff, Grant (1921). *History of the Marathas*, Vol II, p. 80
32. *The Calender of Persian Correspondence*, Imperial Record Department, Vol. V, Calcutta, pp. 223-224
33. *Study in Maratha Diplomacy,* op. cit., pp. 17-174
34. *French Records*. Vol. I contain the correspondence of Briancourt, the French chief of Surat Factory.
35. Duff, Grant. *History of the Marathas*, Vol. II, p. 125
36. *Calcutta Council to Bombay Government*, Letter dt. March 23, 1778, *Maratha Series*, pp. 314-317

♦ ♦ ♦

सदस्यता शुल्क :
वार्षिक सदस्यता शुल्क व्यक्तिगत : २००० रू०
वार्षिक सदस्यता शुल्क संस्थागत : ३००० रू०

सम्पादकीय सम्पर्क :
जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान
सी–23, आवास विकास कालोनी,
प्रतापगढ़–230001 (उ0प्र0) भारत
मो0– 09415627372, 08004802456
वेब साईट : unmeshjournal.com
ई–मेल : unmesh0110@gmail.com
shivendrakr.maurya@gmail.com

ISSN 2394-2207

RAJ GRAPHICS # 09415842611